श्री मत्पूज्यपादाचार्य विरचिता

सर्वार्थसिद्धिवृत्तिः

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित शब्दश हिन्दीअनुवाद समेत

द्वितीय अध्याय से पंचम अध्याय पर्यंत

अनुवादक और संपादक— जगरूप सहाय एल० एल० बी० वकील हाईकोर्ट

भूतपूर्व मुंसिफ (यू०पी०) डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट एन्ड सबोर्डीनेट जज (सी०पी०)

प्रकाशक—लाला महेशचन्द्र जैन, श्री उमास्वामी आफिस, मैनगंज, एटा (संयुक्त प्रांत)

प्रथमबार १००० मिती मगसिरशुक्ला अष्टमी, वीर संवत् २४५४, विक्रम संवत् १९८४ न्योछावर रुपये ८)

T tle Printed Photo Tyye Press Chanani Chowk Delhi



जगरूपसहाय जैन पल पल बी
अनुवादक और सपादक,
सर्वार्थसिद्धिवृत्ति ॥ वीर सवत् २४५४

इस ग्रन्थको

स्वर्गीया पूज्य माताजी,

श्रीमती डालकुंवर बाई

—अवतरण १९०२ उत्तरण विक्रम सम्वत् १९३३—

की,

आत्मशान्त्यर्थ स्मारकरूपमें,

नतमस्तक जगरूपसहायने

समर्पण किया ॥ वीर सम्वत् २४५४ ॥

श्री १०८ पूज्यपाद स्वामी विरचिता

॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिः ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित शब्दश हिंदी अनुवाद समेत

प्रथम खंड-प्रथम अध्याय मूल्य ८)

समस्त ग्रन्थ की पृष्ठ सख्या १६०० से अधिक, श्लोक सख्या पूर्णग्रन्थकी लगभग ५०००० (पचास सहस्र)

अनुवादक और सम्पादक—जगरूप सहाय—एल एल० बी० वकील हाईकोर्ट

भूतपूर्व मुंसिफ (यू पी), डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट एन्ड सबोर्डीनेट जज (सी पी)

प्रकाशक—महेशचन्द्र जैन, द्वारा जगरूप सहाय वकील, श्री उमास्वामी आफिस, मेनगज एटा (सयुक्त प्रान्त)

प्रथम बार] मिती माघ कृष्णा १४ वीर सवत् २४५४ (विक्रम सवत् १९८५) समस्त ग्रंथ का मूल्य २५)

करल यद टायम्लि पन श्रीकृष्ण / प्रेस, भवागढ, म छपा ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि भाषाटीकामें आये हुये संकेतोंकी सूची और अर्थ।



इस ग्रंथके प्रत्येक पृष्ठके उपरि भागमें इस मोक्षशास्त्रके सूत्र और संस्कृत वृत्ति रहैगी, मध्य भागके बाईं ओर उपर्युक्त सूत्रका और वृत्तिका पदच्छेद, विभक्ति आदि सहित उतना ही लिखा जायगा जितनेका शब्दश अर्थ दाहिनी ओरके भागमें आजाय और नीचेके भागमें नाना प्रकारकी टिप्पणियां लिखी जांयेंगी ॥

संस्कृतमें कर्ता प्राय प्रथमा विभक्ति, कर्म द्वितीया विभक्ति, करण तृतीया विभक्ति संप्रदान चतुर्थी विभक्ति, अपादान पंचमी विभक्ति, संबंध षष्ठी विभक्ति, अधिकरण सप्तमी विभक्ति, और सम्बोधन प्रथमा विभक्ति होता है । इनमेंसे प्रथम छहको कारक भी कहते हैं ॥ संबंध षष्ठी विभक्तिको कारक नहीं माना है क्योंकि संज्ञा और क्रियामें परस्पर यह किसी प्रकारके संबंधका प्रादुर्भाव नहीं करता है ।

संस्कृतमें एकवचन द्विवचन और बहुवचन होते हैं तथा तीन स्त्री पुरुष नपुंसक लिंग होते हैं ।

आड़ी (—) लकीरके ऊपरकी संख्या विभक्तिकी और नीचेकी संख्या १, २, ३ यथा क्रमसे एक वचन, द्विवचन, बहुवचनकी और ऊपरकी संख्याके दाहिनीओर एक खड़ी लकीर पुल्लिंगकी दो खड़ी रेखा स्त्री लिंगकी और तीन खड़ी लकीरें नपुंसक लिंगकी बोधक हैं ॥ जैसे- $\frac{१}{१}$। प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंगका संकेत है। $\frac{२}{२}$॥—कर्म द्वितीया विभक्ति द्विवचन स्त्रीलिंगका संकेत है । $\frac{३}{३}$।।।करण तृतीया विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंगका द्योतक है। $\frac{४}{३}$॥चतुर्थी विभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंगका चिन्ह है। $\frac{५}{२}$। पंचमी विभक्ति द्विवचन पुल्लिंगका बोधक है। $\frac{६}{१}$।।।षष्ठी विभक्ति एकवचन नपुंसक लिंगका संकेत है । इत्यादि इसी प्रकार और भी जानना चाहिये ॥ ८ संबोधनका संकेत है ।

शब्दोंके पास निम्न लिखित संकेत नीचे लिखा हुए व्याकरण संबंधी संज्ञाओंके बोधक हैं ॥

* = अव्यय

T = क्रिया

× = भूतकृदन्त

— = संबंधसूचक भूतकृदन्त

• = हेत्वर्थ कृदन्त

‖ = वर्तमान कृदन्त

यहां पर अष्टाध्यायी व्याकरणके १४ सूत्र और उनसे उत्पन्न हुये प्रत्याहार अर्थसहित लिखते हैं—

(१) अइउण् । इसमें अन्त्य ण्की इत्संज्ञा होनेसे एक 'अण्' प्रत्याहार बनता है ।

(२) ऋलृक् । इसमे अन्त्य क् की इत्संज्ञा होनेसे तीन प्रत्याहार अक्–इक्–उक् बनते हैं ।

(३) एओङ् । इसमे अन्त्य ङ् की इत्संज्ञा होनेसे एक एङ् प्रत्याहार बनता है ।

(४) ऐऔच् । इसमें अन्त्य च् की इत्संज्ञा होनेसे अच्–इच्–एच्–ऐच् ये चार प्रत्याहार बनते हैं ।

(५) हयवरट् । इसमें अन्त्य ट् की इत्संज्ञा होनेसे अट् ऐसा एक प्रत्याहार बनता है ।

(६) लण् । इसमें अन्त्य ण् की इत्संज्ञा होनेसे तीन प्रत्याहार अण् इण् यण् बनते हैं ।

(७) ञमङणनम् । इसमें अन्त्य म् की इत्संज्ञा होनेसे अम् यम् ञम् ङम् ये चार प्रत्याहार बनते हैं ।

(८) झभञ् । इसमें अन्त्य ञ् की इत्संज्ञा होनेसे एक यञ् प्रत्याहार बनता है ।

(९) घढधष् । इसमें अन्त्य ष् की इत्संज्ञा होनेसे भष् झष् ये दो प्रत्याहार बनते हैं ।

(१०) जबगडदश् । इसमें अन्त्य श् की इत्संज्ञा होनेसे अश्–हश्–वश्–जश्–झश्–बश्–प्रत्याहार बनते हैं ।

(११) खफछठथचटतव् । इसमें अन्त्य व्की इत्संज्ञा होनेसे एक छव् प्रत्याहार बनता है ।

(१२) कपय् । इसमें अन्त्य य्की इत्संज्ञा होनेसे यय्–मय्–झय्–खय् ये चार प्रत्याहार बनते हैं ।

(१३) शषसर् । इसमें अन्त्य र्की इत्संज्ञा होनेसे यर्–झर्–खर्–चर्–शर् ये पांच प्रत्याहार बनते हैं ।

(१४) हल् । इसमें अन्त्य ल्की इत्संज्ञा होनेसे अल्–हल्–वल्–रल्–झल्–शल् ये छह प्रत्याहार बनते हैं

ये चौदह सूत्र अक्षर समाम्नाय कहाते हैं । काममें आनेवाले केवल ४२ प्रत्याहार हैं ॥

अनुस्वार–विसर्ग–जिह्वामूलीय–उपध्मानीय उपर्युक्त सूचीमें अन्तर्गत नहीं हैं ॥

ह–य–व इत्यादिमें अन्तका अकार उच्चारणकेलिये है और अन्तका अमिश्रित वा निरा वा शुद्ध व्यंजन (ण्–क्–ङ् इत्यादि)

प्रत्येक सूत्रमें इत् संज्ञक है-शक्तिहीन वा फलदायक नहीं है। भावार्थ—व्याकरणसंबंधी रूप वाक्य इत्यादि बनानेमें कुछ कार्यकारी नहीं होते हैं॥

प्रत्याहार एक व्याकरणसंबंधी संकेत है जो आदिवर्ण और अन्त्यवर्ण जो इत्संज्ञक है उसके साथ मिलके अपने स्वरूप और मध्यस्थों का द्योतक होता है जैसे हल् प्रत्याहारसे सर्वव्यञ्जनोंसे अभिप्राय है जो पांचवें सूत्रके ह से प्रारम्भ होते हैं और अंतके ल इत्संज्ञकके अनन्तर पूर्व तकमें हैं, अर्थात् आदिवर्ण ह अपनी और बीचके अक्षर (अंतके ल् इत्संज्ञक के पूर्व पूर्व) हयवर ल-ञमङणन-झभ घढध-जबगडद-खफछठथचटत-कप-शषस का द्योतक है। हल् प्रत्याहारसे १४वें सूत्रसे अभिप्राय नहीं हो सका क्योंकि इस हल्में ह आदिका वर्ण तो है, बीचका कोई भी अक्षर नहीं है॥





नमः परमात्मने वीतरागाय ।

पदच्छेदसहित भाषानुवाद ।

ॐ नमः* परमात्मने४। वीतरागाय४।

=(१) आरम्भमें परमात्मा वीतरागकेलिये नमस्कार हो ।
=(२) मंगलमय ईश्वर वीतरागके लिये प्रणाम हो ।
=(३) ब्रह्म चिदात्मा वीतरागके लिये प्रणति हो ।
=(४) पंचपरमेष्ठी परमब्रह्म रागरहितकेलिये नमस्कार हो ।
(ओम् शब्दके बहुत अर्थ हैं उनमेंसे चार आरम्भ मंगलमय, ब्रह्म, पंचपरमेष्ठी अर्थोंको लेकर अनुवाद किया है)

१। संस्कृत भाषाका नियम है कि ग्रंथकार तथा सूत्रकार भी अपने अपने ग्रंथकी आदिमें एक ऐसा मांगलिक शब्द लाते हैं जो शुभका याचक हो और उसका कुछ अर्थ और तात्पर्य भी निकलता हो जैसे यह ॐ दिया है॥ पुज्यपाद स्वामीने "मोक्षमार्गस्य" दिया है। इसीप्रकार श्रीउमास्वामी सूरिने इस तत्त्वार्थमोक्षशास्त्रके प्रथम सूत्रका प्रारम्भ "सम्यञ्च् शब्द (सम्यक् शब्द) लाकर किया है॥ श्रीयुत पाणिनिने अष्टाध्यायीके प्रथम सूत्र "वृद्धिरादैच्" में (वृद्धिसंज्ञक आ ऐ औ हैं) वृद्धि पद दिया है । ॐ, मोक्ष, सम्यक्, वृद्धि ये चारों शब्द मंगलवाची हैं और जिस जिस शास्त्रमें आये है उसके प्रकरण और तात्पर्यसे भी संबंध रखते हैं जैसा कि आगे चलकर ज्ञात होगा। वृद्धिरादैच्का अर्थ ऊपर लिख ही दिया है।

आचार्य आह–निरवशेषनिराकृतकर्ममकलङ्कस्याशरीरस्यात्मनोऽचिन्त्यस्वाभाविकज्ञानादिगुणमव्याबाधसुखमात्यन्तिकमवस्थान्तरं मोक्ष इति ॥

आचार्यः १। आह	= आचार्य कहते हैं।
आत्मनः ६। निर् अवशेष–निराकृत कर्ममल–कलंकस्य ६।	= आत्माके (=आत्मनः) समस्त कर्ममल कलंकरहित हो जानेको
अशरीरस्य ६।।।	= (आत्माके) शरीररहित हो जानेको
अचिन्त्य–स्वाभाविक–ज्ञानादि–गुणम् १।।।	= (आत्माके) स्वाभाविक अचिंत्य ज्ञानादिगुण प्रगट हो जाना।
अव्याबाध–सुखम् १।।।	= (आत्माके) बाधारहित सुखकी प्राप्ति [और]
आत्यन्तिकम् १।।। अवस्थान्तरं १।।।	= (आत्माकी संसार अवस्थासे) अत्यन्त भिन्न दशाका हो जाना
मोक्षः १। इति *	= ऐसी मोक्ष है॥

प्रयोग उनके स्थानमें होता है। जैसे प्रा प् त् इ+उपाय=प्रा प् त् य्+उपाय=प्राप्त्युपाय।

तृणानि+अत्ति+अश्वः=तृणान् इ+अत्त् इ+अश्व.=तृणान् य्+अत्त् य्+अश्वः (तृणान्यत्त्यश्वः—घोड़ा तिनके अर्थात् घास खाता है।) इस ही प्रकार कर्तर् इ+आत्मने=कर्तर्य्+आत्मने=कर्तर्यात्माने (सं. स वृत्ति १०८) मूर्तमिव मोक्षमार्गमवागविसर्गं वपुषा निरूपयन्तं; युक्त्यागमकुशलं; परहितप्रतिपादनैककार्यम्; आर्यनिषेव्यं; निर्ग्रन्थाचार्यवर्यम् ये पांच विशेषण निर्ग्रन्थ आचार्य महाराजके हैं जिनके समीप भव्य बैठ कर प्रश्न करता है।

तस्यात्यन्तपरोक्षत्वाच्छद्मस्थाः प्रवादिनस्तीर्थकरम्मन्यास्तस्य स्वरूपमस्पृशन्तीभिर्वाग्भिर्युक्त्याभासनिबन्धनाभिरन्यथा परिकल्पयन्ति 'चैतन्य पुरुषस्य स्वरूप, तच्च ज्ञेयाकारपरिच्छेदपराङ्मुखमिति ॥ तत्सदप्यसदेव, निराकारत्वात् खरविषाणवत् ॥ बुद्ध्यादिवैशेषिकगुणोच्छेदः पुरुषस्य मोक्ष इति च।

तस्य ६।१ अत्यन्तपरोक्षत्वात् ५।१।१	=तिस मोक्षके अतिशय (बहुत) परोक्ष होनेसे
छद्मस्था ६।१ प्रवादिनः ६।१	=अल्पज्ञानी मतिवादी (मत्यर्थी)
तीर्थकरम्मन्या ६।१	=जो अपनेको धर्मका उत्पादक मानते हैं (वे)
तस्य ६।१ स्वरूपम् २।१।१ अस्पृशन्तीभिः ३।३	=उस (मोक्ष) के स्वरूपको स्पर्शतक न करनेवाले
युक्ति+आभासनिबन्धनाभिः ३।३ वाग्भिः ३।३	=युक्तिसहित सरीखे दीखनेवाले वचनोंकर
अन्यथा * परिकल्पयन्ति T	=और प्रकार (=उलटा) कहते हैं। जैसे—
चैतन्य १।१।१ पुरुषस्य ६।१ स्वरूप १।१।१	=[सांख्यमती मानता है कि] आत्माका (पुरुषस्य) स्वरूप चैतन्य है
तत् १।१।१ च* ज्ञेयाकारपरिच्छेदपराङ्मुखम् १।१।१ इति	और वह [स्वरूप] ज्ञेयाकार [पदार्थों] को नहीं जानता है। (इसप्रकार मोक्षका स्वरूप कहता है)
तत् १।१।१ सत् १।१।१ अपि * असत् १।१।१ एव *	=सो [ऐसा मानना] ठीक है तो भी ठीक नहीं है
निराकारत्वात् ५।१।१ खरविषाणवत्*	=क्योंकि [वह] निराकार है गधाके सींगवत् मिथ्या [कल्पना] है
च पुरुषस्य ६।१ बुद्ध्यादिवैशेषिकगुण–उच्छेद १।१ मोक्ष १।१ इति	=और आत्माके बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म आदि विशेष गुणोंका नाश होजाना सो मोक्ष है [ऐसा वैशेषिक मतवाले मानते हैं]

१। वैशेषिक—कणाद मुनिका रचा हुआ एक शास्त्र। कणादके शास्त्रको माननेवाला। पञ्चास्तिकाय पृष्ठ २७०।

कहीं कहीं पर ओ और म् के मध्यमें ऐसा ३ तीनकासा चिन्ह कर देते हैं अर्थात् ओ३म्–ओ३म्–ओ३म्–ॐ३म् लिखते हैं। यह '३' चिन्ह प्रगट करता है कि ओं स्वर प्लुत संज्ञक है क्योंकि स्वर ह्रस्व दीर्घ और प्लुत संज्ञक होते हैं अर्थात् एकमात्रिक—द्विमात्रिक—त्रिमात्रिक—स्वर क्रमसे ह्रस्व, दीर्घ, और प्लुत संज्ञक हैं । भावार्थ—जिस स्वरके बोलनेमें उ के तुल्य काल लगे उसको ह्रस्व जिसके उच्चारणमें दीर्घ ऊ के समान काल लगे उसका दीर्घ और जिसके बोलनेमें बहुत बड़े वा खिंचे हुये ऊ के बराबर समय लगे उस स्वरको प्लुत कहते हैं जैसे मधु शूयते सोम३सुत । बहुधा कुक्कुट प्रात कालमें बोलते हैं उनकी बोलीमें इस ह्रस्व दीर्घ प्लुतका एक अच्छा उदाहरण मिलता है जैसे कु-कू-कू ३ ॥ उपर्युक्त चिन्हके लिखनेसे प्रायः तीनकी गणनाका बहुधा पाठकोंको भ्रम हो जाता है इसलिये ओ३म्–ओ३म्–ओ३म्–ॐ ३ के स्थानमें कहीं कहीं पर ओम्–ओम्–ओम्–ॐम् लिख देते हैं इस ३ चिन्हकी धारणा उच्चारणके समय हृदयमें कर लेते हैं। प्लुत स्वर, गाने रोने चिल्लाने आदिकम बोला जाता है। हमने कई स्थानोंमें देखा है कि लेखकोंने अज्ञानताके वशमें अथवा प्रमादके वशमें आकर प्लुत ३ चिन्हको उ समझ कर ओउम् ऐसा यहा तक अशुद्ध लिखा दिया है। ओउम् किसी प्रकारसे शुद्ध नहीं है।

इस शब्दको सर्व जैनमतावलम्बियोंने आर्यसमाजियोंने धर्मसमाजियोंने वेदान्तियों आदिकने मंगलीक माना है और ग्रंथकारोंने तथा शास्त्रकारोंने अपनी २ रचनाकी आदिमें इस शब्दका प्रयोग बहुलतासे किया है ॥

"ओम्" अव्यय प्रणव । अ उ और म् इन तीनोंसे बना हुआ एक अक्षर। आरम्भ स्वीकार-मानना-हटाना-मंगल-ब्रह्म-जानने योग्य निकालना (पद्म चन्द्रकोष पृष्ठ ८७)

" स्यादोमेव परमं मते " ओम् एव, परम ये तीन नाम अंगीकारके हैं (अमरकोष वर्ग २४ श्लोक १२)

जैन सम्प्रदायमें यह शब्द पंचपरमेष्ठीका वाचक निम्नलिखित आर्या छंद द्वारा है ॥

अरहंता १। असरीरा १। आइरिया १। तह उवज्झया १। मुणिणो १। = अर्हंत अशरीर (सिद्ध) आचार्य उपाध्याय व मुनिके
अर्हन्त १। अशरीरा १। आचार्या १। तथा उपाध्याया १। मुनय १।
पढमक्खर-णिप्पण्णो १। ओंकारो १। पंचपरमेट्ठी १। = प्रथम अक्षरसे निष्पन्न वा सिद्ध हुआ
प्रथम-अक्षर-निष्पन्न १। ओंकार १। पंचपरमेष्ठी १।

= ओंकार वा ओम् सो पंचपरमेष्ठी (का वाचक) है। अर्थात् अर्हंतका आदिका अक्षर 'अ' अशरीरी (सिद्ध) का आदिका अक्षर 'अ' आचार्यका आदिका अक्षर आ उपाध्यायका आदिका अक्षर उ मुनियों (साधुओं) का आदिका अक्षर 'म्' इस प्रकार

अ+अ+आ+उ+म्+ये पांच अक्षरोंमें से आदिके अक्षर अ+अ = मिलकर 'आ' हो जाते हैं क्योंकि जब ए-ऐ-ओ औके अतिरिक्त किसी ह्रस्व वा दीर्घ स्वरके पश्चात् वही स्वर ह्रस्व वा दीर्घ आवे तो दोनों स्वरोंके स्थानमें वही स्वर दीर्घ 'अकः सवर्णे (अचि) दीर्घः। अष्टा० ६-१-१०१। सूत्रसे होजाता है। अ+अ+आ+उ+म्=आ+आ+उ+म् हो गये। अब आ+आ+ दोनों मिलकर पूर्वोक्त सूत्रसे ही एक आ हो गये। यदि अ-आके पश्चात् इ-उ-ऋ-ऌ (ह्रस्व वा दीर्घ) आवे तो दोनो स्वरोंके स्थानमें (एक अनुकूल) गुण हो जाता है॥ इसलिये—आ+उ+म्=मिला कर ओम्=हो गये इसलिये ओम् शब्द पांच परमेष्ठीका वाचक हुआ।

ओम् शब्द अव्यय है अर्थात्

सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु = तीनों लिंगोंमें और [च] सर्व विभक्तियोंमें समान रहे।

वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् = और समस्त वचनोंमें जो विकारको प्राप्त न हो वह अव्यय है।

स्मरण रहे कि ॐम् अव्यय [जिसका उच्चारण ओम् है] वही अव्यय नहीं है जो ऊम् है। ऊम् एक न्यारा और भिन्न अव्यय हैं जिसका अर्थ क्रोधसे बोलना और प्रश्न निंदा है"। देखो पद्मचंद कोष पृष्ठ ८१॥ इन तीनों अर्थोंमेंसे ओम् किसी भी एक अर्थमें नहीं आता है॥ ऊम् और ॐम् का उच्चारण भी भिन्न २ है।

२। नमः+ स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, वषट्, हित, सुख इनके अर्थसे जिस शब्दका योग हो उससे चतुर्थी विभक्ति होती है।

(१) नमः जैसे ओं नमः परमात्मने ४। वीतरागाय ४। गुरवे ४। नमः। नमः श्रीवर्धमानाय (वर्द्धमानकेलिये नमस्कार है) यदि नमस् शब्दके साथ क्रियाका योग हो तो विकल्पसे चतुर्थी होती है जैसे गुरवे४। नमस्कृत्य = गुरुकेलिये प्रणाम करके अथवा गुरुं २ नमस्कृत्य = गुरुको प्रणाम करके।

(२) स्वस्ति, जैसे राज्ञे स्वस्ति = राजाके लिये मंगल वा कल्याण हो। तुभ्यं स्वस्ति = तुम्हारे लिये कल्याण वा मंगल हो—क्षेम हो।

(३) स्वाहा = जैसे अग्नये स्वाहा-आगके लिये अर्पण हो। अग्नये ४। वायवे ४। वरुणाय ४। इन्द्राय ४। प्रजापतये ४। सूर्याय ४। चन्द्रमसे ४।

जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दश हिंदी अनुवाद ।

अथ श्रीमत्पूज्यपादाचार्यविरचिता सर्वार्थसिद्धिः प्रारभ्यते ।

अथ श्रीमत्-पूज्यपाद-आचार्यविरचिता १।१	= अब (अथ) श्रीमान् पूज्यपाद आचार्यकृत
सर्वार्थसिद्धि: १।१	= सर्वार्थसिद्धि अर्थात् उमास्वामिविरचित तत्त्वार्थसूत्र पर संस्कृतवृत्ति
प्रारभ्यते T ॥ प्रथम १। अध्याय: १।	= प्रारम्भ की जाती है । पहिला वा आदि पर्व ॥

वा स्वाहा = आगके लिये, पवनके लिये, वरुण देवताके लिये, इन्द्रके लिये, विश्वकर्माके (प्रजापति) के लिये भानुके लिये, मयकके लिये, अर्पण हो ।

(४) स्वधा-जैसे-पित्रे ४। स्वधा = पिताकेलिये अर्पण हो-प्रदान हो । पितृभ्य ४। स्वधा = पितरोंकेलिये अर्थात् बाप-दादा-परदादा इत्यादि बड़े पुरुषोंके लिये अर्पण हो ।

(५) अलम्-जैसे अल मल्लोऽयम् अपरमल्लाय ४। यह मल्ल दूसरे मल्लके लिये बहुत हैं । अल अन्नम् इदम् क्षुधायै ४।१ = अन्न इस भूखके लिये बहुत है । अल जल पिपासायै ४।१ = जल प्यासके लिये बस है बहुत है । कृष्ण दैत्येभ्य ४। अलम् = कृष्णजी असुरोंके लिये समर्थ है ।

(६) वषट्-जैसे इन्द्राय ४। वषट् = इन्द्रके लिये पूजा वा सत्कार हो । ज्वालायै ४।१ वषट् = आगकी ज्वालाकेलिये सत्कार वा सन्मान हो ॥

(७) हित—जैसे साधुभ्य ४। हितम् = साधुओंके लिये हितकारी है ।

(८) सुख—जैसे सद्भ्य सुखम् = सज्जनोंके लिये सुखकारी है ।

१ । श्रीमत् (शब्दार्थ शोभावाला) एक प्रकारकी उपाधि है जो प्रतिष्ठा आदर वा सन्मानके लिये व्यक्तिवाचक नामके प्रथम लाते हैं तथा बोलते हैं । २ । पूज्यपाद — पूज्यपादस्वामी नन्दिसंघके आचार्य थे। देवनन्दि और जिनेन्द्रबुद्धि ये दो नाम भी इन्हीके हैं । गणरत्नमहोदधिके कर्त्ताने आपका नाम चन्द्रगोमि भी बतलाया है । विक्रम सवत् ३०८ जेठ सुदी १० का आपका जन्म हुआ था ऐसा पट्टावलियोंसे प्रतीत होता है । जैनाभिषेक समाधिशतक, चिकित्साशास्त्र और जैनेन्द्रव्याकरण आदि ग्रंथ भी आपके बनाये हुए हैं ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रकी उत्थानिका पृष्ट २ सात खार्पे अथवा ' ये शब्द परवारोंमे बहुत पुराने समयमें हुए जान पड़ते हैं । क्योंकि विक्रम सवत् १४० में

जगरूपसहायवकील कृत पदच्छेद विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद।

प्रथमोऽध्यायः ॥

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।

जो नंदिसंघके पट्टधर जिनचन्द्र नामके आचार्य हुए है. वे चौसला परवार थे और संवत् ३४८ मे जो पूज्यपाद आचार्य हुए हैं, वे पद्मावती-पुरवार थे, ऐसा पट्टावलियोमें लिखा हुआ मिलता है।" जैनहितैषी छठा भाग अंक ११-१२ पृष्ट ४५। ऐसा जान पड़ता है कि पूज्यपाद स्वामीका अस्तित्व ३४८ विक्रम संवत्मे था परंतु जन्म संवत् ३०८ जेष्ट सुदी १० को हुआ था। "सिद्धिप्रिय, पचवास्तुक आदि कई ग्रंथ भी पूज्यपादके वनाये हुए प्रसिद्ध हैं परन्तु बहुत करके ये दूसरे पूज्यपाद भट्टारकके बनाये हुये हैं।" जैनहितैपी छठा भाग पृष्ठ ४४ अंक ५-६ "पूज्यपाद द्वितीयकृत -पूजाकल्प, सिद्धप्रिय, पाणिनीयसूत्रवृत्ति काशिका (श्लो० ३००००), जैनेन्द्रपंचाध्यायीकी टीका, पचवास्तुक, श्रावकाचार, वैद्यक, जैनेन्द्र व्याकरणकी लघुटीका॥ इस बातको तो अन्य धर्मके विद्वान भी मानते हैं कि, काशिकाका कर्त्ता कोई जैनी है" जैनहितैषी (मासिक पत्र) भाग ६ अंक ५-६ वां पृष्ठ ४६॥

१। जब ए अथवा ओ अक्षर पदके अन्तमें हों पश्चात् इस पदान्त ए अथवा ओके अकार (अ) आवे तो यह अ, ए अथवा ओमें समा जाता है वा अन्तर्गत हो जाता है अर्थात् न तो यह अकार बोला ही जाता है और न लिखा ही जाता है। इस अके स्थानमे बहुधा ऽ ऐसा चिन्ह कर दिया जाता है जैसे कि (१) मुने+अव मुनेव वा मुनेऽव (२) ते+अत्र = तेत्र वा तेऽत्र (३) प्रथमोऽध्यायः वाक्योंसे प्रगट है॥ इस चिन्ह ऽ को अर्ध अकार कहते हैं॥

२ यह श्लोक मंगलाचरणरूप श्रीमत्पूज्यपादकृत है॥ श्रीउमास्वामिसूरि कृत तत्त्वार्थसूत्रका भाग नहीं है॥ इसके संबंधमें पं० जयचंदजीने लिखा है कि "तहां प्रथमही सर्वार्थसिद्धिटीकाकार मंगल अर्थि आप्तका असाधारण विशेषणरूप श्लोक रच्या है, सो लिखिये है॥ "मोक्ष-मार्गस्य नेतारं इत्यादि"। अधिकतर प्रतियोंमें यह तत्त्वार्थसूत्र "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" इस सूत्र ही करि प्रारम्भ किया है परंतु कुछ प्रतिया ऐसी हैं जिनसे यह झलकता है कि उपर्युक्त श्लोक भी सूत्रकारने रचा है सो यह भूल है क्योंकि भाष्यकारोंकी यह प्रथा है कि प्रथम वे मंगलाचरण लिखते हैं जैसे कि श्रीमद्भट्टाकलंकदेवने तत्त्वार्थराजवार्त्तिककी आदिमें "प्रणम्य सर्वविज्ञान" इत्यादि और श्री-मद्विद्यानंदिस्वामीने तत्त्वार्थश्लोकवार्त्तिककी 'आदिमें, 'श्रीवर्धमानमाध्याय' इत्यादि ऐसे भिन्न भिन्न दो श्लोक मंगलाचरण रूप दिये हैं॥ राभाष्य

ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां

मोक्षमार्गस्य ६। नेतारम् २।	= मोक्षपथके प्रवर्तावनेवालेको वा चलानेहारेको
भेत्तारम् २। कर्मभूभृताम् ६।	= कर्मरूपी पर्वतोंके भेदनेवालेको अथवा विनाश करनेवालेको

तत्त्वार्थाधिगमसूत्रके रचयिताने भी 'सम्यग्दर्शनशुद्ध' इत्यादि आर्याछंद मंगल रूपमें दिया है॥ इसही प्रकार पूज्यपाद स्वामीने भी 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' इत्यादि दिया है॥ यदि हम इसको उमास्वामिकृत श्लोक मान लें तो पूज्यपाद स्वामीका मंगलाचरण कहा है वह कौनसा श्लोक है? मूल सूत्रकार सूत्रसे ही ग्रन्थका आरम्भ करते हैं और सूत्रकी आदिमें ही एक दो शब्दका ऐसा प्रयोग करते हैं कि वह शब्द मंगलाचरणको भी पूरा करता है और साथहीमें प्रकरण और विषयके अभिप्राय व अर्थसे भी संबंध रखता है जैसे कि हम इस ग्रन्थकी आदिमें लिख चुके हैं॥

१। नेतार–यह शब्द नी भ्वादि प्रथमगणकी धातुमें तृच् प्रत्यय जोड़नेसे और नी का गुण करदेनेसे बनता है जैसे नी+तृच्=ने+तृच् (नीका गुण करदेनेसे) इस रूपमें च इत्संज्ञक है अर्थात् च का लोप हो जाता है और नेतृ शेष रह जाता है। नेतृ=प्रवर्तावनेवाला–चलानेवाला बतानेवाला।

२। भेत्तार–यह शब्द भिद् भ्वादि प्रथमगण अथवा रुधादि सप्तमगणके उभयपदी धातु (परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी) से सकर्मकमें तृच् प्रत्यय लगानेसे और भिद्की इकारका गुण (ए) करदेनेसे बना है। भिद्+तृच् गुणसंज्ञा करनेसे=भेद्+तृच् हुआ। अष्टाध्यायीके ८। ४। ५५ खरि च (खरि झलां चरः स्युः) –जब खर् पश्चात्में हो तब झलोंको चर् हो।

(अर्थात् जब ख्-फ्-छ्-ठ्-थ्-च्-ट्-त्-क्-प्-श्-ष्-स् परे हो तब झ्-भ्-घ्-ढ्-ध्-ज्-ब्-ग्-ड्-द्-ख्-फ्-छ्-ठ्-थ्-च्-ट्-त्-क्-प्-श्-ष्-स् ह्-को च्-ट्-त्-क्-प्-श् ष् स् हो) सूत्र द्वारा भेद्के द् का त् होकर भेत्तृच रूप हुआ। च का इत्संज्ञक होनेके हेतुसे लोप प्राप्त हुआ तब भेत्तृ ऐसा रूप भेदनेवालेके अर्थमें हुआ॥

३। ज्ञातार–यह शब्द ज्ञा (=जानना–समझना) क्र्यादि नवमगणके परस्मैपद सकर्मक धातुमें तृच् प्रत्यय लगानेसे ज्ञा+तृच् ऐसा रूप बना। च इत्संज्ञक होनेसे लोपता प्राप्त हुआ इसलिये ज्ञातृ जाननेवालेके अर्थमें बन गया है॥

नेतार भेत्तार ज्ञातार–ये तीनों शब्द कर्म–द्वितीया विभक्ति एक वचन पुलिङ्गमें हैं। द्वितीया विभक्ति इसप्रकारसे बनती है कि ऋकारान्त

ज्ञातारं३। विश्वतत्त्वानां१।१।१ = संसार (विश्व) के अथवा समस्त (विश्व) तत्त्वोंके जाननेवालेको,

पुलिंग शब्दके ऋकी वृद्धि होजाती है अर्थात् ऋ+आर आरंभ पलट जाता है। उसके पश्चात अम द्वितीया विभक्तिका प्रत्यय जोडनेसे नेतार् + अम्। भेत्तार् + अम्। ज्ञातार् + अम् रूप हुये = नेतारम्-भेत्तारम्--ज्ञातारम् = नेतारं-भेत्तारं ज्ञातारं क्योंकि इन प्रत्येकके पीछे व्यंजनसे आरम्भ होनेवाले शब्द (श्लोकमें) भेत्तारं, कर्म और विश्व क्रमसे हैं। केवल भेत्तारमें दुहरा तकार है इसलिये नेतारं वा ज्ञातारंमें दुहरा तकार बोलना अथवा लिखना अशुद्ध है।

१। तत्वाना-तत्त्वानां—ये दोनों प्रकारके पाठ प्राय मिलते हैं॥ तत्त्व और तत्वमें कुछ भेद नहीं है॥

(१) तत्त्व-तद्--" (त्रि०) तन्+अदि। पहिले कहा हुआ। बुद्धिमें ठहरा हुआ। दूरका विषय। ब्रह्म।" पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १६१
तन् प्रथम भ्वादिगण अष्टम तनादिगण और दशम चुरादिगणका धातु श्रद्धा करना, उपकार करना, फैलाना इत्यादि अर्थोंमें आता है। तन्+अदि से व्याकरणके नियमानुसार तद् बन गया 'तद्' ऐसा सर्वनाम संज्ञा है (= तदिति सर्वनामपदम्)। और सर्वनाम संज्ञा समानता वा सदृशभावमें प्रवर्तती है (सर्वनाम च सामान्ये वर्तते) तिस (तद्) का भाव सो तत्त्व है (= तस्य भावः तत्त्वम्)" सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ५॥ तद्+त्व, उपर्युक्त 'खरि च' सूत्रद्वारा = तत्+त्व = तत्त्व होता है। इस तद् तत् में त्व प्रत्यय, भाव अर्थमें आया है॥ तत्त्व अमरकोषमें यथार्थ, सार, सचाई इत्यादि अर्थोंमें है॥

(२) "तत्व, (न०) तन्+क्विप्। ततो भावः। तस्य भावः। त्वथा तलोपः। सचाई-स्वरूप" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ १६५। अब श्रीपूज्यपादकृत जैनेन्द्र-व्याकरणके ४--३--६७ वे सूत्र [पिति कृति तुक् = प्रांतस्य तुगागमो भवति पिति कृति परतः अर्थात ह्रस्व (अ) अंतमें जिसके हो उसको तुक् (= त्) का आगम होता है यदि उस ह्रस्वांतके पश्चात् ऐसा कृत् प्रत्यय आवे जिस प्रत्ययके अंतमें प् हो। यहां पर क्विप् ऐसा कृत् प्रत्यय है जिसके अंतमें प् है। क्विप् प्रत्यय साराही उड़ जाता है॥] द्वारा तन्+क्विप् = तन्+तुक् = तत्पश्चात् पद्मचन्द्रकोषमें लिखा है ततो भावः। तस्य भावः। इसलिये त्व-ता दो प्रत्यय भाववाचीयोंमेंसे ता स्त्रीलिंग प्रत्ययको छोडकर त्व लगानेसे तत्त्व बना। पुनः उसी कोषमें लिखा है त्व वा तलोपः विकल्पकरि त्वके तका लोप हो गया और तत्व शब्द रह गया॥ हमारी समझमें नहीं आया कि किस नियमसे तका लोप हो गया॥ आंगल विद्वान् मानीयर विलियम महाशयने अपने संस्कृत कोष पृष्ठ २६५ में तत्त्व शब्द लिखनेके पश्चात् तत्व शब्द लिख १२

वन्दे तद्गुणलब्धये ॥ १ ॥[1]

वन्दे = तद्गुणलब्धये [2] = उन्हीं (मोक्षमार्गप्रणयन–कर्मभेदन–विश्वतत्त्वज्ञान) गुणोंकी प्राप्तिकेलिये प्रणाम करता हू वा वन्दना करता हू अर्थात् मैं पूज्यपाद आचार्य इस सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका रचयिता उक्त तीनों गुणोके उपार्जनके लिये उसको जो मोक्षमार्गका नेता है, जो कर्मोंका विनाशक है, जो जड चेतन सर्व वस्तुओंका युगपद् एक समयमें ज्ञाता है, नमस्कार करता हू ॥ १ ॥

है और यह मत प्रगट किया है कि तत्त्व शब्दके स्थानमें तत्व शब्द अल्प ईपत् या शुद्धेक शुद्ध रूप है, कुछ भी हो प्रमादवश या असावधानीसे या सुगमताके हेतुसे तत्व शब्द इस वृत्तिमे तथा अन्य अन्य कोश व शास्त्रोंमें पचासो स्थानों लिखा है ॥ इसलिये तत्व तत्त्व दोनो एक हैं ।

१ । कहीं कहीं पर वदे और कहीं कहीं वन्दे शब्द पुस्तकोंमें आया है, उनमें वदे अशुद्ध है । (देखो अष्टाध्यायी ८ । ३ । २४, ८ । ४ । ५८, और ८ । ४ । ५६ वें सूत्र ॥

२ । लब्धि शब्द स्त्रीलिङ्ग है । लब्धये चतुर्थी (सम्प्रदान) विभक्तिका एक वचन है इसका रूप एसे बना है कि ए चतुर्थीका चिन्ह है । अथवा इ का गुण ए है उ अथवा ऊ का गुण ओ है ऋ का = अर् है लृ का अल् है । स्त्रीलिंग सज्ञाक अतके इ वा उ चतुर्थी (सम्प्रदान) पचमी (अपादान) और षष्ठी (सबध) विभक्तियोंके प्रत्ययोंके पहिले अपनी अपनी गुण सज्ञामें पलट जाते हैं इसलिये लब्धिका लब्धे हो जाता है । ए चतुर्थीका चिन्ह जोड़नेसे लब्धे+ए हुआ । सस्कृतमें दो स्वर विना मिले हुये प्राय नहीं रह सक्ते हैं । वर्तमान दशामें जो नियम लागू है वह यह है कि पहिले आये हुये ए ऐ ओ औ का यथासख्य [=क्रमसे] परिवर्तन अय् आय्, अव्, आव्में हो जाता है तब पश्चात्का स्वर जोड़ देते हैं जैसे लब्धेकी ए का अय् होकर लब्धय् हो गया पश्चात् ए जोडनेसे (जो चतुर्थीका चिन्ह है) लब्धय्+ए हुआ अर्थात् लब्धये हो गया ॥ सक्षेपत ए ऐ ओ औ का क्रमसे अय् आय् अव् आव् हो जाता है यदि इनके पीछे कोई स्वर आवे तो, एचोऽयवायाव अष्टाध्यायी ६ । १ । ७८ वा सूत्र ।

कश्चिद्भव्यः प्रत्यासन्ननिष्ठः प्रज्ञावान् स्वहितमुपलिप्सुर्विविक्ते परमरम्ये भव्यसत्त्वविश्रामास्पदे क्वचिदाश्रमपदे मुनिपरिषण्मध्ये सन्निषण्णं मूर्त्तमिव मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं

कश्चित्[१] भव्यः [२] १। प्रत्यासन्ननिष्ठः १।	= कोई भव्य अत्यन्त निकट है सिद्धि जिसके
प्रज्ञावान् १। स्वहितम् २। उपलिप्सुः १। विविक्ते ७।१११	= बुद्धिमान् अपने हितको इच्छुक निर्जन
परमरम्ये ७।१११ भव्यसत्त्वविश्रामास्पदे ७।१११ क्वचित्[३]	= अत्यन्त सुन्दर भले जीवोंके विराम (=विश्राम) स्थानमें (=आस्पदे) किसी (=क्वचित्)
आश्रमपदे ७।१११ मुनिपरिषण्मध्ये ७।१११ सन्निषण्णं २।	= आश्रम स्थानमें (=पदे) मुनियोंकी सभामें बैठे हुये
अवाग्[४]-विसर्गं २।१११	= वचन (=वाग्) दान (=विसर्ग) रहित (=अ) अर्थात् विना ही वचनके

---

१ चित् अथवा अपि इन दो अव्ययोंको यदि किम्के सर्व लिंगोंके साथ जोड़ दें तो वह [अर्थात् जुड़ा हुआ] वाक्य अनिश्चित अर्थ का द्योतक होगा जैसे किंचित्=कुछ वस्तु अथवा कोई वस्तु ; कश्चित् [=कः १। चित्] कोई पुरुष अथवा कोई जन। देखो भाण्डारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ १२६॥

२ भव्यः—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणामेन भविष्यति इति भव्यः=सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र भावकरि, जो होगा अथवा परिणमेगा सो भव्य है [राजवार्तिक पृष्ठ ७७]

३ क्वचित्—क्व—क्वचन—क्वचित्—ये तीनो अव्यय 'कहां' अर्थमें आते हैं (पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ १२०)

४ यथार्थमें यह शब्द वाच् स्त्रीलिंगी वाक्य, वचन, वाणी, कहना आदि अर्थोंमें आता है और वाचा शब्द भी स्त्रीलिंगी है और इसी अर्थमें आता है [देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३४२]

वाच्का चकार ग् में कैसे पलट गया ? चोः कुः [झलि पदान्ते] अष्टा० ८-२-३०॥ जैनेन्द्रव्याकरण ५। ३। ६५वां सूत्र। च्-छ्-ज्-झ्-ञ् [चु] के स्थानमें क्रमसे क्-ख्-ग्-घ्-ङ्-(=कु) हों यदि झल् प्रत्याहार पश्चात्में हो वा पदान्तमें च्-छ्-ज्-झ्-ञ् हो इसलिये वाच्के पदान्त चकारका क् होकर वाक् होगया॥

वपुषा निरूपयन्तं युक्त्यागमकुशल

वपुषा ३ ११	=अच्छे स्वरूप [=वपुषा] वा प्रशस्ताकारकरि (=वपुषा) अर्थात् अपने शरीरहीकी शांत मुद्राकरि
मूर्तम् २। इव* मोक्षमार्गम् २। निरूपयन्त १। युक्ति–आगम–कुशल १	=मानो मूर्तिक मोक्षमार्गको निरूपण करते, युक्ति तथा आगममें प्रवीण

क् का परिवर्तन ग् में हो जानेका यह नियम है कि जब किसी शब्दके अन्तका व्यंजन [ङ् ञ्–ण्–न्–म् व्यंजनोंको छोड़कर) दूसरे शब्दके प्रथम घोष व्यंजन (=ग्—घ्—ङ् । ज्—झ्—ञ् । ड्—ढ्—ण् द्—ध्—न् । ब्—भ्—म् । य्—र्—ल् व्—ह्) वा प्रथम स्वरके साथ संधित वा स्थापित किया जावे तो वह अंतका व्यंजन अपने वर्गके तीसरे व्यंजनमें परिवर्तित हो जाता है अत अवाक्+विसर्गका अवाग्+विसर्ग हो गया । क्रियाविशेषण सदा नपुंसकलिंग एव एक वचन होता है इसलिये यहां अवाग्विसर्ग निरूपण क्रियाका विशेषण होनेसे नपुंसक लिंग एव एक वचन होगया है ।

इसी प्रकार नगरात्+आगच्छतिका नगराद्=आगच्छति=नगरादागच्छति होगया (भा० मार्गोपदेशिका पृष्ठ २८) ।

१ । वपुषा—वपुस् नपुंसक लिंगी शब्द प्रशस्ताकार वा अच्छे स्वरूपके अर्थमें है । (पद्म० का० पृ० ३३९) यहां पर शांत मुद्रारूप शरीर इस तात्पर्यमें लिया है । वपुस्में आङ् (=आ) तृतीयाकरण विभक्तिका चिन्ह लगाकर और स् को निम्नलिखित नियमसे ष् में पलटकर वपुषा बना लिया है ॥

जब स् जो कि अपदान्त हो और जो आदेश अथवा प्रत्ययका अंश या टुकड़ा हो, अ—आको छोड़कर किसी स्वरके पीछे आवे, य्—र्—ल्—व् के पश्चात् आवे, क्—ख्—ग्—घ्–ङ के परे आवे, अथवा ह् के पश्चात् आवे तो वह स् पलट कर ष हो जाता है, अष्टाध्यायीके ८—३ पा ५५—५७—५९ सूत्रोंके अनुसार ॥

परहितप्रतिपादनैककार्यमार्यनिषेव्यं निर्ग्रंथाचार्यवर्यमुपसद्य सविनयं परिपृच्छति स्म । भगवन्

परहित-प्रतिपादन-एक-कार्यम् २।१	=दूसरेके हित कहनेका है केवल (एक) काम जिन (आचार्य) को
आर्य-निषेव्यं २।१	=श्रेष्ठ पुरुषोंकरि सदा (= नि) सेवने योग्य
निर्ग्रंथ—आचार्य-वर्यम् २।१ उपसद्य-	=निर्ग्रन्थ अर्थात् परिग्रहरहित दिगम्बर आचार्योंमें मुख्य तिनकों प्राप्त होकर
स-विनयं २।१ । परि-पृच्छति T स्म ॐ भगवन् २	=विनयसहित पूछता हुआ कि हे स्वामी !

१ । निषेव्यं—नि (अव्यय) =सदा (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २११) भ्वादि प्रथम गणके सेवृ आत्मनेपदी धातुमें ण्य प्रत्यय लगानेसे बना है । ण इत् संज्ञक होनेसे लोपको प्राप्त होता है और केवल य रह जाता है और इसलिये नि+सेव्+ण्य = नि+सेव्+य = नि+सेव्य, पूर्वोक्त नियमसे (देखो पृष्ठ १५) सकारका परिवर्तन षकारमें हो गया और निषेव्य रूप प्राप्त हुआ जो द्वितीया विभक्ति एक वचन पुल्लिंगमें है ।

२ उपसद्य—यह शब्द संबंधकभूत कृदन्त है । इसके बनानेका यह नियम है कि धातुमें त्वा प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे श्रु (=सुनना) धातुमें त्वा प्रत्यय लगानेसे श्रुत्वा (=श्रवण करके) बनता है । यदि धातुसे पहिले उपसर्ग जोड़ा जाय तो त्वा प्रत्ययके स्थानमें य लगाते हैं जैसे भू धातुके पहिले अनु उपसर्ग लाकर अनुभू बनाया इसका संबंधकभूत कृदन्त अनुभूमें य जोड़नेसे अनुभूय (=अनुभव करके) हुआ ॥ इसी प्रकार प्रथम भ्वादि छठे तुदादि अथवा दशवें चुरादिगणके सद् धातुमें उप उपसर्ग लगानेसे उपसद् (=प्राप्त होना) शब्द बना पश्चात् य लगानेसे उपसद्य (=प्राप्त होकर) ऐसा शब्द बना ॥ इसी सम्बन्धकभूत कृदन्तके बनानेमें अन्य विशेष यह है कि यदि धातुके अंतमें ह्रस्व स्वर हो तो इस य से पहिले त् जोड़ा जाता है जैसे अनुकृत्य = अक्षरशः लिपि करके । अतीत्य = उलंघन करके । यदि धातु सेट् हो तो त्वा के पहिले धातुमें इ लगाकर संबंधकभूत कृदन्त बनाते हैं जैसे जीव धातुमें इ जोड़नेसे जीव+इ हुआ पश्चात् त्वा लगाकर जीवित्वा बना (देखो भाण्डारकार मार्गोपदेशिका पृष्ठ ६१)।

३ परि एक अव्यय है जो यहां पर वाक्यभूषणके लिये आया है ।

४ स्म एक अव्यय है ॥ "स्मि+उ । अतीत (वीतगया) पादको पूरा करना ," देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २३० ॥

५ भगवन्—यह भगवत् पुल्लिंग शब्दका सम्बोधन है ॥

किं खलु आत्मने हितं स्यादिति ॥ स आह मोक्ष इति ॥ स एवं पुनः प्रत्याह किंस्वरूपोऽसौ मोक्षः कश्चास्य प्राप्त्युपाय इति ॥

किं* खलु आत्मने १¹ हितं १¹¹ स्यात् ७ इति स' १¹ आह ७	=आत्माके लिये क्या हितकारी है ? आचार्य (=सः) कहते हैं
मोक्षः १¹ इति * । स १¹ एव *	=मोक्ष (आत्माके लिये हितकारी) है वह (= स एव) ही
पुनः * प्रति+आह (= प्रत्याह)	=फिर (=पुनः) पलटकर (=प्रति) पूछता है (आह) कि
किंस्वरूप १¹ असौ १¹ मोक्षः १¹ कः १¹ च	=यह (=असौ) मोक्ष किस (=किं) स्वरूप है और क्या
अस्य १¹ प्राप्ति–उपाय १¹ इति	=इस मोक्षकी प्राप्तिका साधन या उपाय है ।

६ इति–यह अव्ययम् यहां पर वाक्यकी समाप्तिके लिये है ।

७ स आह, स, पद विसर्जनीयके पहिले अकार (अ) हो, और उसके पश्चात्में अ स्वरके अतिरिक्त कोई, अन्य स्वर आवे तो विसर्गका लोप हो जाता है। जैसे सः आह=स आह । सः एव=स एव । बुधः इच्छति=बुध इच्छति इत्यादि (देखो भाण्डारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ१५)

८ प्रत्याह--प्रति+आह उलट कर (=प्रति) अथवा फिर (=प्रति) पूछता है-प्रश्न करता है । प्रति=फिर-उलट कर (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २४६) इसलिये अनुवादमें पुनः के लिये फिर शब्द लाये हैं और प्रति शब्दके लिये लोटकर या पलटकर शब्द अनुवादमें लाये हैं ।

आह–यह रूप ब्रू (=कहना-बोलना) द्वितीय अदादि गण उभय पद (परस्मै पद, और आत्मने पद) धातुसे बना है ॥ अन्यपुरुष एक वचन वर्तमान कालमें इस शब्द (ब्रू) का रूप आह बिना किसी व्याकरणके नियमसे बना है ॥ आह=बोलता है-कहता है । परन्तु श्रीआचार्यकेलिये सन्मान, आदर या प्रतिष्ठा प्रगट करनेके लिये बहुवचन अन्य पुरुष वर्तमानकाल क्रियामें "कहते हैं" ऐसा अनुवाद किया है ।

९ असौ–यह शब्द कर्त्ता प्रथम कारक एक वचन पुल्लिंग अदस् शब्दका है अदस् शब्दका अर्थ वह अथवा यह दोनों है यहा पर 'असौ'का अर्थ 'यह' ऐसा लिया है क्योंकि कश्चास्य प्राप्त्युपाय इति' इस वाक्यमें अस्य शब्द इदम् शब्दकी षष्ठी विभक्ति पुल्लिंग एक वचन है जिसका अर्थ है 'इस (मोक्ष) का।'

१० प्राप्त्युपाय–जब इ, उ, ऋ, और लृ (ह्रस्व हो अथवा दीर्घ हो) असमान स्वरके पहिले हो तो यथाक्रम (क्रमसे) य् व् र् और ल् का

आचार्य आह–निरवशेषनिराकृतकर्ममलकलङ्कस्याशरीरस्यात्मनोऽचिन्त्यस्वाभाविकज्ञानादिगुणमव्याबाधसुखमात्यन्तिकमवस्थान्तरं मोक्ष इति ॥

आचार्यः १। आह ༡	= आचार्य कहते हैं।
आत्मनः ६। निर् अवशेष–निराकृत कर्ममल–कलंकस्य ६।	= आत्माके (=आत्मनः) समस्त कर्ममल कलंकरहित हो जानेको
अशरीरस्य ६।१११	= (आत्माके) शरीररहित हो जानेको
अचिन्त्य–स्वाभाविक–ज्ञानादि–गुणम् १।।	= (आत्माके) स्वाभाविक अचिंत्य ज्ञानादिगुण प्रगट हो जाना।
अव्याबाध–सुखम् १।।	= (आत्माके) बाधारहित सुखकी प्राप्ति [और]
आत्यन्तिकम् १।। अवस्थान्तरं १।।	= (आत्माकी संसार अवस्थासे) अत्यन्त भिन्न दशाका हो जाना
मोक्षः १। इति ॐ	= ऐसी मोक्ष है ॥

प्रयोग उनके स्थानमें होता है। जैसे प्रा प् त् इ+उपाय=प्रा प् त् य्+उपाय=प्राप्त्युपाय।

तृणानि+अत्ति+अश्वः=तृणान् इ+अत्त् इ+अश्वः=तृणान् य्+अत्त् य्+अश्वः (तृणान्यत्त्यश्वः—घोड़ा तिनके अर्थात् घास खाता है।) इस ही प्रकार कर्तर् इ+आत्मने=कर्तर् य्+आत्मने=कर्तर्यात्माने (सं. स. वृत्ति १०८) मूर्तमिव मोक्षमार्गमवागविसर्गं वपुषा निरूपयन्तं; युक्त्यागमकुशलं; परहितप्रतिपादनैककार्यम्; आर्यनिषेव्यं; निर्ग्रन्थाचार्यवर्यम् ये पांच विशेषण निर्ग्रन्थ आचार्य महाराजके हैं जिनके समीप भव्य बैठ कर प्रश्न करता है।

तदपि परिकल्पनमसदेव विशेषलक्षणशून्यस्यावस्तुत्वात् ॥ प्रदीपनिर्वाणकल्पमात्मनिर्वाणमिति च । तस्य खरविषाणवत्कल्पना तैरेवाहत्य निरूपिता । इत्येवमादि ॥ तस्य स्वरूपमनवद्यमुत्तरत्र वक्ष्यामः ॥ तत्प्राप्त्युपायं प्रत्यपि ते विसंवदन्ते–'ज्ञानादेव चारित्रनिरपेक्षात्तत्प्राप्तिः,

---

तत् $^{1}_{1}$111 अपि परिकल्पनम् $^{1}_{1}$111 असत् $^{1}_{1}$111 एव ※ = वह भी सब कल्पना झूठी ही है

विशेषलक्षणशून्यस्य $^{6}_{1}$111 अवस्तुत्वात् $^{5}_{1}$111 = [क्योंकि] विशेषणरहित कोई वस्तु ही नहीं होती

च प्रदीपनिर्वाणकल्पम्[1] $^{1}_{1}$111 =बहुरि दीपकके विनाशके समान [बुझ जानेके सदृश]

आत्मनिर्वाणम् $^{1}_{1}$111 इति =आत्माका [ज्ञानादि गुणोंका] नाश होजाना मोक्ष है इसप्रकार [मोक्षका स्वरूप बौद्धमती माने हैं]

तस्य $^{6}_{1}$1 कल्पना $^{1}_{1}$11 खरविषाणवत्※ =उसका [मोक्षका] वह स्वरूप गधाके सींगके तुल्य

तैः $^{3}_{3}$1 एव आहत्य※ निरूपिता $^{1}_{1}$11 इति एवम्※ आदि $^{1}_{1}$111 = [तैः एव] उनने ही असिद्ध ठहरा दिया है । इसीप्रकार और भी हैं

तस्य $^{6}_{1}$1 स्वरूपम् $^{2}_{1}$111 अनवद्यम् $^{2}_{1}$111 उत्तरत्र※ वक्ष्यामः T =उस [मोक्ष] का स्वरूप यथार्थ आगें (हम) कहेंगे

तत्प्राप्ति–उपायं $^{2}_{1}$1 प्रति ※ अपि * ते विसंवदन्ते T = तिस [मोक्ष] के साधनके प्रति भी वे [अन्यवादी] वाद =विवाद करते हैं अर्थात् मोक्षके उपार्जनके उपयोंको भी एकमत दूसरे मतके विरुद्ध बताता है ।

ज्ञानात् $^{5}_{1}$111 एव चारित्रनिरपेक्षात् $^{5}_{1}$111 तत्प्राप्तिः $^{1}_{1}$11 = ज्ञान [मात्र] सेही चारित्रके विना संबंधसे तिस [मोक्ष] की प्राप्ति [बताते हैं]

---

१ । "कल्प" सादृश्य अर्थमें कल्पप् प्रत्यय होता है जैसे—पितृकल्पः, गुरुकल्पः =गुरुके समान, निर्वाणकल्पम् । पद्मचंद्रकोष पृष्ठ १०१ ।

श्रद्धानमात्रादेव वा, ज्ञाननिरपेक्षाच्चारित्रमात्रादेवेति च ॥ व्याध्यभिभूतस्य तद्विनिवृत्त्युपायभूतभेषजविषयव्यस्तज्ञानादिसाधनत्वाभाववत् ॥ एवं व्यस्तं ज्ञानादि मोक्षप्राप्त्युपायो न भवति । किं तर्हि? तत्त्रितय समुदितमित्याह—

वा * श्रद्धानमात्रात् ५।१।१ एव *	= अथवा श्रद्धान [विश्वास] मात्रसे ही [ज्ञान चारित्रके विना मोक्षकी प्राप्ति कहते हैं]
च * ज्ञाननिरपेक्षात् ५।१।१ चारित्रमात्रात् ५।१।१ एव* इति	= बहुरि ज्ञान सम्बन्धसे रहित चारित्रमात्रसे ही इसप्रकार (मोक्ष की प्राप्ति कहते हैं)
व्याधि–अभिभूतस्य ६।[1]	= रोगसे घबराये हुए (रोगी) के
तद्–विनिवृत्ति–उपाय–भूत–	= उस (रोग) के दूर करनेके कारणभूत
भेषज–विषय–व्यस्त[2]–ज्ञानादि–	= औषधके सम्बन्धमें ज्ञान, श्रद्धान, आचरणमें कोई एक
साधनत्व–अभाववत् * एवं *	= साधन जिसप्रकार दूर करनेमें असमर्थ हैं तिस प्रकार
व्यस्त १।१।१ ज्ञानादि १।१।१	= ज्ञान–चारित्र–श्रद्धानमसे एक एक (= व्यस्त)
मोक्ष–प्राप्ति–उपाय १।१ न भवति	= मोक्षके प्राप्तिका साधन नहीं होता है
किं १।१।१ तर्हि*	= तो (= तर्हि) क्या (मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है ?)
तद्–त्रितय १।१।१ समुदित १।१।१	= उन तीनों (ज्ञान–दर्शन–चारित्र) की एकता है
इति–आह	= ऐसे (श्रीउमास्वामी आचार्य सूत्र) कहते हैं

[1] अभिभूत (त्रि०) घबराया हुआ दबाया हुआ। पद्मचन्द्रकोष देखो पृष्ठ ३७।

[2] व्यस्त (त्रि०) सारे पदार्थोंमेंसे एक एक। देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३७२

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि १।३ = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र (इन तीनोंका समुदाय अथवा संगम)

मोक्ष—मार्गः १।१ = मोक्षका मार्ग है अथवा मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है अर्थात् पदार्थों के यथार्थ ज्ञानके विषयमें श्रद्धान व प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है जिस जिस भांति जीवादिक पदार्थ तिष्ठे हैं तिस तिसप्रकार जानना सो सम्यग्ज्ञान है। संसारके हेतुओं (आस्रव-बन्ध) की निवृत्ति करनेके लिये उद्यमी सम्यग्ज्ञानी पुरुषके कर्मका ग्रहण करनेवाली क्रियाका त्याग सो सम्यक्चारित्र है। अनुभवसे यह बात प्रत्यक्ष है कि संसारके जितने कार्य हैं उन सबमें ही प्रथम ज्ञान, दूसरे श्रद्धान वा विश्वास तीसरे आचरणकी आवश्यक्ता होती है यदि इन तीनोंमेंसे एक भी घाटि हों तो कोई कार्य कदाचित् सिद्ध नहीं हो सक्ता है वैसे ही मोक्षकी प्राप्तिमें भी इन तीन हीकी आवश्यक्ता है। ध्यान रहे कि प्रथम ज्ञान होता है उसके पश्चात् सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति है उस सम्यक्त्वकी प्राप्ति होते ही वही ज्ञान जो सम्यग्दर्शनके पहिले कुज्ञान या सम्यग्ज्ञान हो जाता है (विशेष जाननेकेलिये नीचेका वृत्त्यर्थ देखो)

"१ इस तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थकी रचनाके विषयमें कर्णाटकभाषाकी तत्त्वार्थवृत्ति नामकटीकाकी प्रस्तावनामें एक बडी मनोरंजक कथा लिखी है, वह इस प्रकार है कि;—

सौराष्ट्र (गुजरात) देशके किसी नगरमें एक पवित्रात्मा करया और नित्यनैमित्तिक क्रियाओंमें तत्पर श्रद्धावान् द्वैपायक नामक श्रावक रहता था। वह बड़ा विद्वान् था । और इसलिये चाहता था कि किसी उत्तम ग्रंथकी रचना करू, परन्तु गाहस्थ्यजंजालके कारण अनवकाशवशत शुरू कर नहीं सका था । निदान एकदिन उसने प्रतिज्ञा की कि, प्रतिदिन जब एक सूत्र बना लूगा, तब ही भोजन करूगा, अन्यथा उपवास करूगा । और मोक्षशास्त्रके बनानेका निश्चय करके उसी दिन उसने "दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" यह प्रथम सूत्र बनाया। तथा विस्मरण हो जानेके भयसे अपने घरके एक खम्भेपर उसे लिख दिया।

इसके पश्चात् दूसरे दिन वह श्रावक किसी कार्यके निमित्त कहीं अन्यत्र चला गया और उसके घर एक मुनिराज आहारके लिये आये। मुनिके दर्शनसे द्वैपायककी सुशीला गुणवती भार्याने अत्यन्त प्रसन्न होकर नवधाभक्तिपूर्वक उन्हें भोजन कराया। भोजनोपरान्त मुनिराजने खंभेपर लिखा हुआ वह सूत्र जो द्वैपायकने लिखा था, देखकर किंचित् विचार किया और तत्काल ही उसके पहिले सम्यक् विशेषण लिख कर वहांसे चल दिये। तदनन्तर जब द्वैपायक आया, तो उसे अपने लिखे हुए सूत्रमें सम्यक् विशेषण अधिक लिखा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, और साथ ही सूत्रकी शुद्धता (निर्दोषता) से आनंद भी हुआ। भार्याके पूछनेसे विदित हुआ कि, मुनिराज आहारके निमित्त पधारे थे, कदाचित् वे लिख गये होंगे। तब श्रावक उसी समय बड़ी आतुरतासे उनके ढूढनेको निकला। यत्र तत्र बहुत भटकनेके पश्चात् एक रमणीक वनमें उसे उक्त मुनिराजके दर्शन हुए। वे एक बड़े भारी मुनियोंके संघके नायक थे। उनकी मुद्राके दर्शनमात्रसे वह श्रावक जान गया कि इन्हीं महात्माने मेरे सूत्रको शुद्ध करनेकी कृपा की होगी और गद्गद होके उनके चरणोंपर पड गया। बोला भगवन्! उस मोक्षशास्त्रको आप ही पूर्ण कीजिये। ऐसे महान् ग्रन्थके रचनेका सामर्थ्य मुझमें नहीं है। आपने बड़ा उपकार किया, जो मेरी वह बड़ी भारी भूल सुधार दी। सच है दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्षका मार्ग नहीं है किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही मोक्षमार्ग है। अतएव "सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग" ही परिपूर्ण और विशुद्ध सूत्र है। श्रावकके उक्त आग्रह और प्रार्थनाको मुनिराज टाल नहीं सके, और निदान उन्होंने इस तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) को रचके पूर्ण किया। पाठक! वे मुनिराज और कोई नहीं, हमारे इस लेखके मुख्यनायक भगवान् उमास्वामी ही थे।"

भगवद्उमास्वामि श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य जिन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचनाकी है उनके शिष्य थे। उमास्वामि सूरिका जन्म दिगम्बर सम्प्रदायकी पट्टावलियोंके अनुसार विक्रमशक ५७ (=विक्रम सम्वत् १९२) में हुआ था १९ वर्षकी अल्प वयमें आपने जिन दीक्षा ग्रहणकी और

सम्यगित्यव्युत्पन्नः शब्दो व्युत्पन्नो वा। अञ्चतेः क्वौ समञ्चतीति सम्यगिति। अस्यार्थः प्रशंसा।

सम्यग्+इति अ+व्युत्पन्नः १।१	=सम्यग् ऐसा (पद) अव्युत्पत्ति पक्ष (व्याकरणकी रीति रहित) वाला
वा व्युत्पन्नः १।१ शब्दः १।१	=अथवा व्युत्पत्ति पक्ष (व्याकरणकी रीति) वाला शब्द हो सक्ता है अर्थात्। यह अव्युत्पत्ति पक्ष अपेक्षा तो रूढि संज्ञक है
अञ्चतेः ५।१ क्वौ ७।११ समञ्चति T इति सम्यक् १।१ इति॥	= और व्युत्पत्तिपक्ष अपेक्षा सम् उपसर्ग पूर्वक अञ्च धातुसे पूजन वा प्रशंसार्थमें (अञ्च = पूजायाम् गतौ) क्विप् प्रत्यय करनेपर सम्यक् बनता है।
अस्य ६।१ अर्थः १।१ प्रशंसा १।११	=इस (सम्यक् शब्द) का अर्थ (इस सूत्रविषै) प्रशंसा है। प्रशस्त=उत्तम = प्रशंसनीय

२५ वर्ष दीक्षित रहनेके पश्चात् कार्त्तिक शुक्ला ८ विक्रमशक १०१ में नंदिसंघके पट्ट पर विराजमान होकर आचार्य पद लाभ किया॥ उन्होंने ४० वर्ष ८ दिन आचार्य पद पर सुशोभित रहकर परम धर्मका उपदेश किया। इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोमें एक है॥ तत्त्वार्थ सूत्र दोनों संप्रदायोंमें माना जाता है। दिगम्बर सम्प्रदायका मत है कि वे दिगम्बर आचार्य थे, और उनका नाम उमास्वामि है। श्वेताम्बर आम्नायवाले उनको उमास्वातिके नामसे श्वेताम्बर आचार्य मानते हैं। कुछ भी हो, इसमें सदेह नहीं है श्रीमदुमास्वामिने एक ही तत्त्वार्थ शास्त्र रचा था। पश्चात् अपने अपने माने हुये पदार्थोंके प्रतिपादनके लिये जहां तहां सूत्रोंमें पाठ भेद कर दिया गया है। प्रायः ऐसा होता है कि जो ग्रन्थ अति उत्तम होता है और जिसका रचयिता अत्यंत मान्य और प्रतिभाशाली प्रसिद्ध होता है उस ग्रन्थ तथा आचार्यको प्रत्येक शाखाकी जनता अपनाया करती है॥ यही कारण है कि-जहां तहां सूत्रोंमें भेद है॥

१। सम्यग्:—सम् उपसर्गमें अञ्च धातु पूजन वा प्रशंसा अर्थमें जोडकर तथा क्विप् प्रत्यय लगानेसे सम्+अञ्च+क्विप् ऐसा रूप हुआ। इस सम् उपसर्गके स्थानमें समिक आदेश अष्टाध्यायी ६-३-९३ सूत्रसे होकर समि+अञ्च+क्विप् बना। क्विप् प्रत्यय सारा ही उडजाता है और

स प्रत्येकं परिसमाप्यते। सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्रमिति। एतेषां स्वरूपं लक्षणतो विधानतश्च पुरस्ताद्विस्तरेण निर्देक्ष्यामः॥ उद्देशमात्रं त्विदमुच्यते। भावानां याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसंग्रहार्थं दर्शनस्य सम्यग्विशेषणम्। येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्था व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानम्।

स १ प्रत्येक १ १११ परिसमाप्यते T	=सम्यक् पद अलग अलग (तीनोंपर) लगाया जाता है
सम्यग्दर्शन १ १११ सम्यग्ज्ञान १ १११	=तब सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और
सम्यक्चारित्र १ १११ इति*	=सम्यक्चारित्र इसप्रकार (तीनों पद) होते हैं।
एतेषा १ १११ स्वरूप १ १११ लक्षणतः*	=इन (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र)के स्वरूपको लक्षण
च विधानत * पुरस्तात् * विस्तरेण १ १११ निर्देक्ष्यामः T	=तथा भेदसे आगे विस्तारकरि कहेंगे।
उद्देशमात्र १ १११ तु * इद १ १११ उच्यते T	=परतु संक्षेपमात्र यह (इस सूत्रमें) कहा जाता है
भावाना १ याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसंग्रहार्थं १ १११	=पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानके विषयमें श्रद्धानको ग्रहण करनेके लिये
दर्शनस्य १ १११ सम्यक् विशेषणम् १ १११	=दर्शनके सम्यक् (पद) विशेषण है
येन १ येन १ १ प्रकारेण १ १ जीवादय. १ १ पदार्था. १ १	=जिस २ भाति जीवादिक पदार्थ
व्यवस्थिताः १ १ तेन १ १ तेन १ १ अवगम १ १ सम्यग्ज्ञानम् १ १११	=तिष्ठे हैं तिस तिस प्रकार जानना (सो) सम्यग्ज्ञान है।

धातु प्राय हल नहीं रहता है इसलिये समि+अञ्च् रूप हुआ। जब इ उ, ऋ, और ऌ, (ह्रस्व अथवा दीर्घ हों) किसी असमान स्वरके प्रथम आवें तो यथाक्रमसे य्-व्—र्-ल् का प्रयोग उनके स्थानमें हो। इसलिये समि+अञ्च्=सम्यञ्च् हुआ। (देखो अष्टाध्यायी ६-१-७७ वां सूत्र) सम्यञ्च्के ञ का लोप होकर सम्यच् सिद्ध हुआ। शब्दचद्रकोष पृष्ठ ४१४ में सम्यच को अव्यय भी लिखा है॥ सम्यच् का च् घोष अक्षरके पहिले ग् में पलट जाता है इसलिये सम्यग् दर्शन और सम्यग्ज्ञान रूप हुये और अघोष अक्षरके पहिले क् में इस च् का परिवर्तन हो जाता है इसलिये सम्यक्चारित्र हुआ॥ इस सूत्रके प्रत्येक शब्द दर्शन-ज्ञान और चारित्रके साथ सम्यग्-सम्यक् पद जाना चाहिये।

(१) रूढि वह है जो प्रकृति और प्रत्ययके अर्थकी अपेक्षा किये बिना समुदाय शक्ति (सार शब्द सामर्थ्य) से "अर्थकोतावे।" रूढि वह है जो

मोहसंशयविपर्ययनिवृत्यर्थं सम्यग्विशेषणम् । संसारकारणनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रम् । अज्ञानपूर्वकाचरणानिवृत्यर्थं

मोह[1]–संशय–विपर्यय[3]–निवृत्ति–अर्थं ६।१११	= अनध्यवसाय (मोह, विमोह,) संदेह, तथा विभ्रम वर्जनेके लिये
सम्यग्विशेषणम् १।१११	= (ज्ञानके पहले) सम्यग् विशेषण (लगाया) है ।
संसारकारणनिवृत्तिं २।११ प्रत्यागूर्णस्य ६।१ ज्ञानवतः ६।१	= संसारके हेतुओं (आस्रव बन्ध) की निवृत्ति करनेको उद्यमी सम्यग्ज्ञानी पुरुषके
कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः १।१ सम्यक्चारित्रं १।१११	= कर्मको ग्रहण करनेवाली क्रियाका त्याग (सो) सम्यक्चारित्र है ।
अज्ञानपूर्वक–आचरणनिवृत्ति–अर्थम् ६।१११	= अज्ञानपूर्वक चारित्रको दूर करनेके अर्थ [चारित्र इस पदमें]

नाम किसीका हो परन्तु न आप किसी दूसरे शब्दसे निकला हो न उससे कोई दूसरा शब्द निकल सकै, अर्थात् न किसी ठहराये हुये नियमके साथ किसी धातुसे बना हो और न वह आप धातु हो (हिन्दी व्याकरण पृष्ठ १७)

१ द्रव्य संग्रह (सम्यग्दर्शनके प्रकरण) गाथा ४२ में मोह–संशय–विपर्यय इन्हीं तीन विशेषणोंके लिये "संशय विमोह विब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स" ऐसा वाक्य लाये हैं ॥ पं० जयचंदजीने मोहका अनुवाद इसी सूत्रके अर्थ करनेमें "विमोह" किया है । "संशय विपर्यय और अनध्यवसाय रहित जीवादि पदार्थोंके जाननेको सम्यग्ज्ञान कहते हैं" पन्नालालजी कृत भाषाटीका पृष्ठ १ । "अध्यवसाय–यह ऐसा ही है इस प्रकार किसी विषयके विचारमें निश्चय करना" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ १७ । इसलिये मोह शब्दका अनुवाद अनध्यवसाय किया है ॥ "जाननेकी इच्छाके अभावमें अनिश्चितरूप तथा विकल्प रहित जो सूक्ष्म ज्ञान हो, उसे अनध्यवसाय कहते हैं । जैसे–मार्गमें चलते समय पांवसे छुए हुए अनेक धूलिकंटक पाषाण बालू तृण आदिकोंका स्पर्श होनेपर 'कुछ'है-इसप्रकार विकल्परहित तथा अनिश्चितरूप (जिसमें अनेक कोटियोंका अवलंबन नहीं हो, ऐसा) ज्ञान होता है वह अनध्यवसाय है" पन्ना० तत्त्वार्थ पृष्ठ १ सं स वृत्तिके दूसरे संस्करणमें मोहके स्थानमें अनध्यवसाय पाठ है

२ संशय—"अनिश्चितानेककोट्यवलम्बनं संशयः" । जिन जिन पदार्थोंके ज्ञानमें संशय हो उनमें समान रहनेवाले धर्मके दर्शनसे तथा उनके विशेष धर्मके अदर्शनसे जो अनेक पदार्थोंका अवलम्बन करनेवाला ज्ञान होता है उसको संशय कहते हैं । जैसे यह पदार्थ स्थाणु (=शाखादि विहीन वृक्ष = ठूठ) है वा पुरुष है ? सीप है वा चांदी है ॥

३ "समान चिन्ह देखने पर अन्य पदार्थमें अन्य पदार्थके निश्चय होनेको विपर्यय कहते हैं–जैसे रस्सीमें सर्पका निश्चित-ज्ञान । विपर्यय शब्द के लिये उक्त द्रव्य संग्रहके आर्याछन्दमें 'विब्भम (= विभ्रम) शब्द लाये हैं इसलिये विपर्ययका अनुवाद हमने विभ्रम किया है ॥

सम्यग्विशेषणम् ॥ स्वयं पश्यति दृश्यतेऽनेनेति दृष्टिमात्रं वा दर्शनम् ॥ जानाति ज्ञायतेऽनेन ज्ञप्तिमात्र वा ज्ञानम्। चरति चर्यतेऽनेन चरणमात्रं वा चारित्रम्। नन्वेव स एव कर्ता स एव करणमित्यायातम्। तच्च विरुद्धं

सम्यग्विशेषणम् १।१।१	=सम्यग्विशेषण (लगाया) है।
स्वयं * पश्यति ग इति दर्शनम् १।१।१	=आपही आप श्रद्धान करे सो दर्शन है [यहां कर्तृसाधन भया, करनेवाला आत्मा है सो ही दर्शन है]
दृश्यते ग अनेन ३।१।१ इति दर्शन १।१।१	=श्रद्धिये जिसकरि सो दर्शन है [यहां करण साधन भया]
वा दृष्टिमात्र १।१।१ इति दर्शनम् १।१।१	=अथवा श्रद्धान सो दर्शन है [यहां भाव साधन हुआ, दर्शन क्रियाको ही दर्शन कहा]
जानाति ज्ञानम् ---१।	=जो जाने सो ज्ञान है [यहां कर्तृसाधन हुआ, जाननेवाले आत्माहीको ज्ञान कहा]
ज्ञायते अनेन ३।१।१ ज्ञानम् १।१।१	=जाकरि जानिये [सो] ज्ञान है [यहां करण साधन हुआ]
वा * ज्ञप्तिमात्र १।१।१ ज्ञानम् १।१।१	=अथवा जानना सो ज्ञान है [यहां भाव साधन भया, जानना रूप क्रियाको ज्ञान कहा]
चरति चारित्रम् १।१।१	=आचरता है सो चारित्र है [यहां कर्तृसाधन हुआ क्योंकि आत्मा ही चारित्र है]
चर्यते अनेन ३।१।१ चारित्रम् १।१।१	=जिसकरि आचरण किया जाय सो चारित्र है [इसप्रकार करण साधन भया]
वा * चरणमात्र १।१।१ चारित्रम् १।१।१	=अथवा आचरण मात्र है सो चारित्र है [यहां भाव साधन भया] अर्थात् आचरनेहीको चारित्र कहा गया।
ननु * एवं * स १।१। एव कर्ता १।१ स १।१ एव * करण १।१।१	=प्रश्न—इसप्रकार तो वही कर्ता वही करण [=साधन]
इति आयातम् १।१।१ तत् १।१।१ विरुद्ध १।१।१	=ऐसा प्राप्त हुआ सो विरुद्ध है।

सत्यं, स्वपरिणामपरिणामिनोर्भेदविवक्षायां तथाऽभिधानात् । यथाऽग्निर्दहतीन्धनं दाहपरिणामेन ॥ उक्तः कर्त्रादिभिः साधनभावः पर्यायपर्यायिणोरेकत्वानेकत्वं प्रत्यनेकान्तोपपत्तौ स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्यविवक्षोपपत्तेरेकस्मिन्नप्यर्थे न विरुध्यते । अग्नौ दहनादिक्रियायाः कर्त्रादिसाधनभाववत् ॥ ज्ञानग्रहणमादौ न्याय्यं, दर्शनस्य तत्पूर्वकत्वात् अल्पान्तरत्वाच्च ॥ नैतद्युक्तं,

---

सत्यं, स्वपरिणाम-	=[नहीं, यह] ठीक है क्योंकि अपने परिणाम
परिणामिनोः ^{1} विवक्षायां ^{11} तथा	=और परिणामी (दोनोंकी) भेद विवक्षामें वैसा
विधानात् ^{111}	=विधान है । अर्थात् वही कर्ता वही कर्म वही करण हो सकता है
यथा अग्निः ^{1} दहति T इन्धन ^{111} दाहपरिणमेन ^{1}	=जैसे अग्नि अपने दाह परिणामसे लकडीको जलाती है ।
उक्तः ^{1} कर्त्रादिभिः ^{1}	=(भावार्थ) कहा गया जो कर्ता कर्म क्रियासे
साधनभावः ^{1}	=साधनभाव (कर्तादिको प्रधान मानकर कीहुई व्युत्पत्ति)
पर्यायपर्यायिणोः ^{1} एकत्व-अनेकत्वं ^{111} प्रति अनेकान्त-	=वह पर्याय और पर्यायवालेके एकपना और अनेकपना अनेकांतसे
उपपत्तौ ^{11} स्वातन्त्र्य-पारतन्त्र्य-	=स्वीकार कर लेनेपर स्वतंत्रता और परतंत्रताकी
विवक्षा-उपपत्तेः ^{11} एकस्मिन् ^{1} अपि न विरुद्धयते T	=विवक्षा होनेसे एक पदार्थमें भी विरुद्ध नहीं पडता है
अग्नौ ^{11} दहनादिक्रियायाः ^{11}	=जैसे-अग्निमें दहन आदि क्रियाकी
कर्त्रादि-साधनभाववत्*	= [पृथक् और एक मान लेनेपर] कर्ता आदिमें सिद्धि हो जाती है ।
ज्ञानग्रहणमादौ ^{1} न्याय्यं ^{111}	=(प्रश्न) सूत्रमें ज्ञानका लाना आदि विषै उचित था
दर्शनस्य ^{111} तत्पूर्वकत्वात् ^{111}	=क्योंकि दर्शनके उस ज्ञानका कारणपना है
अल्पान्तरत्वात् ^{112} + च*	=दर्शनसे ज्ञानके अल्प अक्षर होनेके कारण [क्योंकि व्याकरणमें द्वंद समासविषैं जिस शब्दमें अल्प अक्षर होते हैं वह प्रथम आता है] सेभी प्रथम लाना योग्य है ।
न + एतद् ^{111} युक्तं ^{111}	=उत्तर-यह तुम्हारा कहना या तर्क ठीक नहीं है

युगपदुत्पत्तेः ॥ यदाऽस्य दर्शनमोहस्योपशमात्क्षयात्क्षयोपशमाद्वा आत्मा सम्यग्दर्शनपर्यायेणाविर्भवति तदेव तस्य मत्यज्ञानश्रुताज्ञाननिवृत्तिपूर्वकं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं चाऽविर्भवति । घनपटलविगमे सवितुः प्रतापप्रकाशाभिव्यक्तिवत् ॥ अल्पान्तरादभ्यर्हितं पूर्वं निपतति । कथमभ्यर्हितत्वं ? ज्ञानस्य सम्यग्व्यपदेशहेतुत्वात् ॥ चारित्रात्पूर्वं ज्ञानं प्रयुक्तं,

युगपत् + उत्पत्तेः ५।११	= क्योंकि दर्शनज्ञानकी एक काल उत्पत्ति है
यदा * + अस्य ६।१ दर्शनमोहस्य ६।१	= जब इस (आत्मा) का दर्शन मोहका
उपशमात् ५।१ क्षयात् ५।१ वा क्षयोपशमात् ५।१ वा	= उपशमसे क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे
आत्मा १।१ सम्यग्दर्शनपर्यायेण ३।१ आविर्भवति T	= चेतन सम्यग्दर्शनकी पर्यायसहित प्रकाशित होता है । अर्थात् चेतनके सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है
तदा+एव तस्य ६।१ मति+अज्ञान श्रुत+अज्ञान निवृत्तिपूर्वक २।११	= तबही तिस चेतनके कुमति कुश्रुतका अभाव होकर
मतिज्ञान १।११ च* श्रुतज्ञान १।११ आविर्भवति	= मतिज्ञान और श्रुतज्ञान प्रकट होते हैं ।
घनपटलविगमे ७।१ सवितुः ६।१	= बादलोकी ओटके दूर होनेपर सूर्यके
प्रतापप्रकाश–अभिव्यक्तिवत् *	= तेज व धूप (= आतप) के (एक साथ) प्रगट होनेके सदृश दर्शन व ज्ञानकी उत्पत्ति एक साथ है।
अल्पान्तरात् ५।११ अभ्यर्हित १।११ पूर्वं १।११ निपतति T	= थोडे अक्षर वाले (अल्प* अच् शब्द) से पूज्य (व्याकरणके अनुसार) पहले आता है ।
कथम् * अभ्यर्हितत्व १।११	= कैसे दर्शनको ज्ञानसे पूज्यपना है ?
ज्ञानस्य ६।११ सम्यग्व्यपदेशहेतुत्वात् ५।११	= सम्यग्दर्शन ज्ञानको सम्यक् नाम देनेका हेतु है ।
चारित्रात्पूर्वं ५।११ ज्ञान १।११ प्रयुक्त १।११	= सूत्रमें चारित्रसे पहले ज्ञान कहा ।

तत्पूर्वकत्वाच्चारित्रस्य ॥ सर्वकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः। तत्प्राप्त्युपायो मार्गः। मार्ग इति चैकवचननिर्देशः समस्तस्य मार्गभावज्ञापनार्थः। तेन व्यस्तस्य मार्गत्वनिवृत्तिःकृता भवति ॥ अतः सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्रमित्येतत्त्रितयं समुदितं मोक्षस्य साक्षान्मार्गो वेदितव्यः ॥ तत्रादावुद्दिष्टस्य सम्यग्दर्शनस्य लक्षणनिर्देशार्थमिदमुच्यते—

तत्पूर्वकत्वात् ५।१ चारित्रस्य ६।१[1]	= क्योंकि चारित्रके पहिले वह ज्ञान होता है अर्थात् चारित्र तब ही सम्यक् होता है जिस समय सम्यग्ज्ञान हो लेता है।
सर्वकर्मविप्रमोक्षः १।१ मोक्षः १।१	= समस्त कर्मका अत्यन्त अभाव [सो] मोक्ष है।
तत्प्राप्ति + उपायः १।१ मार्गः १।१	= उस [मोक्ष] की प्राप्तिके लिये यत्न करना [सो] मार्ग है
मार्गः १।१ इति च एकवचननिर्देशः १।१	= और [सूत्रमें] मार्ग [शब्द] एकवचनमें कहा है
समस्तस्य ६।१ मार्गभावज्ञापनार्थः १।१	= सो समस्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्रके [एक ही] मार्गभाव जनावनेके लिये है।
तेन ३।१ व्यस्तस्य ६।१ मार्गत्वनिवृत्तिः १।१ कृता १।१ भवति	= तिस [मार्ग शब्द एकवचन] करि जुदे जुदे [सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्र] को मार्गपनाका वर्जना होता है।
अतः सम्यग्दर्शनं १।१ सम्यग्ज्ञानं १।१	= इसलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान [भले प्रकारका ज्ञान]
सम्यक्चारित्रं १।१ +इति+एतत् १ त्रितयं १।१ समुदितं १।१	= भले प्रकारका आचरण ऐसे ये तीनों मिले हुए
मोक्षस्य ६।१ साक्षात्मार्गः १।१ वेदितव्यः १।१	= मोक्षका प्रत्यक्ष मार्ग जानना चाहिये।
तत्र+आदौ ७।१+ उद्दिष्टस्य ६।१	= तहां (सूत्रमें) आदिविषै उपदेशित
सम्यग्दर्शनस्य ६।१	= सम्यग्दर्शनका
लक्षणनिर्देशार्थम् १।१ इदम् १।१ उच्यते	= लक्षण कहनेकेलिए यह (अर्थात् आगेका सूत्र) कहा जाता है।

१ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका एक देशपना परम्परा मोक्षका कारण है और समस्तता (=पूर्णता) साक्षात् मोक्षका कारण शास्त्र है यहां ऐसा सम्द्के लानेका भाव है।

॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥

तत्त्वशब्दो भावसामान्यवाची। कथम्? तदिति सर्वनामपदम्। सर्वनाम च सामान्ये वर्तते। तस्य भावस्तत्त्वम्॥ तस्य कस्य?

(क) सूत्रार्थ—तत्त्वार्थ = तत्त्वेन ३।१।१+अर्थः १।१ = यथावस्थित रूप करि [तत्त्वेन] जो निश्चय किया जाय पदार्थ
श्रद्धान १।१।१ [अर्थ] उसका जो श्रद्धान
सम्यग्दर्शनम् १।१।१ = सो सम्यग्दर्शन है—अथवा

[ख] तत्त्वार्थ = तत्त्वम् १।१।१ एव+अर्थः १।१।१ = यथावस्थित [= तत्त्व] ही [= एव] वस्तु [= अर्थः] की
श्रद्धान १।१।१ सम्यग्दर्शनम् १।१।१ प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है।

[ग] तत्त्वार्थ (= तत्त्वम् १।१।१ एव+अर्थः १।१) = जो जिस प्रकार अवस्थित है [= तत्त्व] उस ही [= एव] वस्तु
श्रद्धान १।१।१ सम्यग्दर्शनम् १।१।१ = (अर्थः) की उस ही प्रकार प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका भाषानुवाद।

तत्त्वशब्दः १।१ भावसामान्यवाची १।१ = (इस सूत्रमें) तत्त्व शब्द (वस्तुके) भाव स्वरूप वा धर्मका वाचक है
कथम्। तद् इति सर्वनाम-पदम् १।१।१। = (तत्त्व) कैसे (भाव सामान्यवाची) है तद् ऐसा शब्द सर्वनाम पद है
सर्वनाम १।१।१ च सामान्ये ७।१।१ वर्तते ग = और सर्वनाम सादृश्य प्रयोजकधर्म [बराबरीको जतलानेवाले धर्म] मेंवर्तता है
तस्य ६।१।१ भावः १।१ तत्त्वम् १।१।१ ॥ तस्य ६।१।१ कस्य ६।१।१। = तिस (तद्) का भाव सो तत्त्व है॥ वह (भाव) किसका है?

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है। (२) वाची—यह शब्द नकारान्त वाचिन् पुलिंगका प्रथमा विभक्ति एक वचन है॥ स् प्रथमा विभक्ति पुलिंग एक वचनका चिन्ह है इस स् को वाचिन् में जोड़नेसे वाचिन्+स् हुआ॥ जब पदान्तमें एक व्यञ्जनसे अधिक हों तो पहिला व्यञ्जन रह जाता है और अन्यका लोप हो जाता है (भाण्डारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ १७) वाचिन्+स्, वाचिन् जिस पुलिंग शब्दके अन्तमें इन् हो तो न् का प्रथमा विभक्ति एक वचनमें और विभक्तियोंके सर्व उन प्रत्ययोंके पहिले जो व्यञ्जनसे (प्रत्यय)

जगरूपसहायवकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ।

योऽर्थो यथावस्थितस्तथा तस्य भवनमित्यर्थः । अर्यत इत्यर्थो निश्चीयत इत्यर्थः ॥ तत्त्वेनार्थस्तत्त्वार्थः । अथवा भावेन भाववतोऽभिधानं तदव्यतिरेकात् । तत्त्वमेवार्थस्तत्त्वार्थः । तत्त्वार्थस्य श्रद्धानं तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं प्रत्येतव्यम् ।

यः ₁¹ अर्थः ₁¹ यथा अवस्थितः ₁¹ तथा तस्य ₆¹ भवनम् ₁¹	= जो वस्तु जैसी दशा [अवस्था] में है तैसा तिसका होना
इति अर्थः ₁¹ अर्यते T इति*अर्थः ₁¹	= ऐसा अर्थ [तत्व शब्दका] है ॥ जो प्राप्त [= ग्रहण] किया जाय सो अर्थ [= पदार्थ] है [जोड़नेसे अर्थ बना है ॥
निश्चीयते T इति—अर्थः ₁¹ ।	= निश्चय किया जाय ऐसा तात्पर्य है ॥ ऋ धातुको गुण अर् करके थक् (थ)
तत्त्वेन ₃¹ । । अर्थः ₁¹ तत्त्वार्थः ₁¹	= यथावस्थित रूप करि [= तत्त्वेन] जो निश्चय किया जाय पदार्थ [= अर्थः] सो तत्त्वार्थ है ।
अथवा भावेन ₃¹ भाववतः ₆¹ अभिधानं ₁¹	= अथवा भाव करि भाववान्‌का कथन किया गया है
तद्—अव्यतिरेकात् ₅¹	= क्योंकि उन [दोनों भाव और भाववानमें] अभिन्नता है । इससे
तत्त्वम् ₁¹ एव अर्थः ₁¹ तत्त्वार्थः ₁¹	= यथावस्थित [= तत्त्वं] ही [= एव] वस्तु (= अर्थः) तत्त्वार्थ है ।
तत्व+अर्थस्य ₆¹	= यथावस्थित रूप करि [= तत्त्वेन] जो निश्चय किया जाय पदार्थ [अर्थः] उसका अथवा यथावस्थित [तत्त्व] वस्तु [= अर्थः] की
श्रद्धानं ₁¹ तत्त्वार्थश्रद्धानं ₁¹ सम्यग्दर्शनं ₁¹ प्रत्येतव्यम् ₁¹ ।	= प्रतीति [सो] तत्त्वार्थ श्रद्धान है [और वह ही] सम्यग्दर्शन निश्चयसे समझना चाहिये । सम्यग्दर्शन शब्दके अर्थका इसप्रकार श्रद्धान करना चाहिये ।

आरम्भ होते ही लोप हो जाता है । जैसे—वाचिन्, शशिन् = वाचि, शशि और शशिभ्याम्, शशिभिः, शशिभ्यः, शशिषु इन सबमें न् का लोप हो गया है ॥ शशिन् = चन्द्रमा । इ पुलिंग—प्रथमा विभक्ति एक वचनमें ही दीर्घ हो जाती है इसलिए ऐसा रूप बना कि वाचिन् ॥ वाचिन् + स = वाचि = वाची ॥ (भाण्डा०र० पृष्ठ १०४ से १०६ तक)

तत्त्वार्थश्च वक्ष्यमाणो जीवादिः ॥ दृशेरालोकार्थत्वात् श्रद्धानार्थगतिर्नोपपद्यते । धातूनामनेकार्थत्वाददोषः । प्रसिद्धार्थत्यागः कुत इति चेत्, मोक्षमार्गप्रकरणात् ॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं हि आत्मपरिणामो मोक्षस्य साधनं युज्यते । भव्यजीवविषयत्वात् ॥ आलोकस्तु चक्षुरादिनिमित्तः सर्वसंसारिजीवसाधारणत्वान्न मोक्षमार्गो युक्तः ॥

तत्त्वार्थः [१।१] च वक्ष्यमाणः [१।१] जीव आदिः [१।१]	=और आगे कहे जानेवाले (=वक्ष्यमाण) जीवादिक तत्त्वार्थ हैं ॥
दृशेः [५।१] आलोकार्थत्वात् [५।१] श्रद्धान अर्थगति [१।१] न उपपद्यते	=दृशि (धातु) का देखना अर्थ होनेसे प्रतीति अर्थका ग्रहण प्राप्त नहीं होता है
धातूनाम् [६।३] अनेक-अर्थत्वात् [५।१] अदोषः [१।१]	=धातुओंके अनेक अर्थ होनेसे (दृश् धातुका श्रद्धान अर्थ लेनेमें) दोष नहीं है
प्रसिद्ध-अर्थ-त्यागः [१।१] कुतः इति चेत् *	=विख्यात अर्थ (दृश्का देखना) का परित्याग क्यों (किया) ऐसे संदेह होनेपर
मोक्षमार्ग-प्रकरणात् [५।१]	=(कहते हैं) कि (यहां) मोक्षमार्गका विषय है ॥
तत्त्वार्थश्रद्धानं [१।१] हि* आत्मपरिणामः [१।१]	=तत्त्वार्थश्रद्धान निश्चय करके चेतनका परिणाम है (और वही[१])
मोक्षस्य [६।१] साधनं [१।१] युज्यते T	=मोक्षका कारण युक्त है
भव्यजीव-विषयत्वात् [५।१]	=क्योंकि (तत्त्वार्थ श्रद्धान) भव्य जीवका ही विषय अथवा अधिकार प्राप्त है
आलोकः [१।१] तु* चक्षुरादिनिमित्तः [१।१] सर्वसंसारिजीव-	=देखना तो नेत्र आदि जन्य है, (सो देखना) समस्त संसारी जीवोंके
साधारणत्वात् [५।१] न मोक्षमार्गः [१।१] युक्तः [१।१]	=समान होनेसे मोक्षका मार्ग ठीक (=युक्त)[१] नहीं बनता है [क्योंकि सबके मोक्षमार्गका प्रसंग आता है] ॥

(१) स् अथवा विसर्ग जो अ-आको छोड़कर किसी स्वरके पहिले हो और उस (उक्त स् अथवा विसर्ग) के पश्चात् कोई स्वर हो अथवा घोष अक्षर (=ग्-घ्-ङ् । ज्-झ्-ञ् । ड्-ढ्-ण् । द्-ध्-न् । ब्-भ्-म् । य्-र्-ल्-व्-ह्) मेंसे कोई एक आवे तो उक्त स् अथवा विसर्गका परिवर्तन र् में हो जाता है जैसे दृशेः आलोक=दृशेरालोक , अर्थगतिः न=अर्थगतिर्न । बहिस् इति=बहिर् इति=बहिरिति । (सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २७१) । नृपतिः रक्षति=नृपति र् रक्षति । र् के पश्चात् र् होवे तो पहिला र् गिर जाता है और गिरनेवाले र् के पहिला स्वर (ऋ छोड़कर) यदि लघु हो तो दीर्घ हो जाता है जैसे नृपति र् रक्षति=नृपती रक्षति ।

अर्थश्रद्धानमिति चेत्सर्वार्थग्रहणप्रसङ्गः। तत्त्वश्रद्धानमिति चेद्भावमात्रप्रसङ्गः। सत्ताद्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वादि तत्त्वमिति कैश्चित्कल्प्यत इति॥ तत्त्वमेकत्वमिति[1] वा सर्वैक्यग्रहणप्रसङ्गः॥ पुरुष एवेदं सर्वमित्यादि कैश्चित्कल्प्यते[2] इति तस्मादव्यभिचारार्थमुभयोरुपादानम्॥

अर्थ-श्रद्धानम् १।१ इति चेत् * =अर्थ श्रद्धान इसप्रकार यदि (=चेत्, सूत्र) होता तो (उत्तर-अर्थ शब्दके)

सर्व-अर्थ-ग्रहण-प्रसंगः १।१ =समस्त अभिधेयोंके स्वीकार करनेका संयोग आता। भावार्थ-अर्थ नाम धनका भी है, अर्थ नाम प्रयोजन आदिका है, उनका भी श्रद्धान सम्यग्दर्शन ठहरता।

तत्त्व-श्रद्धानम् १।१ इति चेत् =तत्त्वश्रद्धान ऐसा (सूत्र) यदि (=चेत्) होता तो

भावमात्र-प्रसंगः १।१ =(उत्तर) भाव वा वहपना मात्रका प्रसंग आता वा केवल (=मात्र) सत्ता होनापन-विद्यमानताका ही प्रसंग आता अर्थात् इस भाव-होनापन, वहपना-विद्यमानता सत्ताहीका श्रद्धान सम्यग्दर्शन ठहरता

सत्ता-द्रव्यत्व-गुणत्व-कर्मत्वादि १।१ तत्त्वम् १।१=सत्ता, द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, आदि तत्त्व है

इति * कैश्चित् * कल्प्यते T इति॥ ऐसा कितनोंकरि (वैशेषिकोंसे) माना गया है वा कल्पना की गई है॥

वा * तत्त्वं १।१ एकत्वं १।१ =एकपना तत्त्व है ऐसा (कितनोंसे अर्थात् वैयास वेदान्तियोंकरि कल्पना की जाती है

इति सर्व-ऐक्य-ग्रहण-प्रसंगः १।१ =(इसप्रकार) सब पदार्थोंकी एकताके ग्रहणका प्रसंग आता अर्थात् सब पदार्थ भेदरहित एकरूप हो जाते

पुरुषः १।१ एव * इदं १।१ सर्वं १।१ इत्यादि १।१ =एक पुरुष ही यह सर्व वस्तु है इत्यादिक

कैश्चित् कल्प्यते T इति तस्मात् ५।१ अव्यभिचार-अर्थम् १।१ =कितनोंसे कल्पना की जाती है तिस कारणसे निर्दोषता दिखावनेके लिये

उभयोः ६।२ उपादानं १।१ =दोनों (तत्त्व और अर्थ) का ग्रहण (सूत्रमें) किया गया है

(१) तत्त्वमेकत्वमिति कैश्चित्कल्प्यते वा ऐसा पूर्ण वाक्य है॥ (२) कृलृप्-कृप् भ्वादि प्रथम गणके आत्मनेपदी धातु हैं जिनके रूप जब उनका प्रयोग किया जाता है कल्प् होजाते हैं इस कल्प् में य कर्मणि प्रयोगका प्रत्यय लगाकर कल्प्य हुआ पश्चात् ते आत्मनेपदी एक वचन अन्यपुरुष वर्तमान कालका प्रत्यय जोडकर कल्प्यते बना लिया।

तद्द्विविधम्, सरागवीतरागविषयभेदात् ॥ प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याद्यभिव्यक्तिलक्षणं प्रथमम्। आत्मविशुद्धिमात्रमितरत् ॥ अथैतत्सम्यग्दर्शनं जीवादिपदार्थविषयं कथमुत्पद्यत इत्यत आह ॥

सरागवीतरागविषय–	=सराग विषय और वीतराग विषय (= निमित्त अथवा प्रकरण)
भेदात् ५।१ तत् १।१ द्विविधं १।१	=भेदसे वह तत्त्वार्थ श्रद्धान स्वरूप सम्यग्दर्शन दो प्रकार है ॥
प्रशम–	=प्रशम=क्रोध, मान माया, लोभ संबंधी रागद्वेषादिकका अभाव
संवेग–	=संवेग पांच परिवर्तनरूप संसारसे भय
अनुकम्पा—	=अनुकंपा त्रस स्थावर सर्व प्राणियोंपर दयाका प्रादुर्भाव
आस्तिक्यादि—	=अस्तित्व आदिका [जीवादिक तत्त्वोंको युक्ति आगमकरि जैसाका तैसा
अभिव्यक्तिलक्षणं १।१ प्रथमम् १।१	= मानना] आविर्भाव [प्रगट] रूप सो पहला (सराग सम्यग्दर्शन) है अर्थात् ये चार चिन्ह जिसके प्रगट होवें उसके सराग सम्यग्दर्शन जानो।
आत्म–विशुद्धिमात्रम् १।१ इतरत् १।१	=केवल [मात्र] आत्माकी विशुद्धता ही दूसरा [वीतराग सम्यग्दर्शन] है
अथ एतत् १।१ सम्यग्दर्शनम् १।१	= अब [अथ] यह सम्यग्दर्शन
जीव–आदि–पदार्थविषयम् १।१	= जीव–अजीव–आस्रव–बन्ध–संवर–निर्जरा और मोक्ष हैं विषय जिसके
कथं* उत्पद्यते T इति अतः आह T	=कैसे उत्पन्न होता है इसलिये [आचार्य उत्तरसूत्र] कहते हैं कि—

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ ७ में निर्वेद (=संसारके पदार्थोंमें घृणापूर्वक वैराग्य) यह पांचवां लक्षण भी कहा है। हमारे यहांके 'आदि' जो आस्तिक्यके साथ दिया है उसमें (रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक १३७) अन्तर्गत हो जावेगा।

(२) अयत इति—अयत शब्दमें ऋ आदि प्रथम गणका धातु अनिट् परस्मै पद प्राप्त करना अर्थमें यहां पर आया है ॥ ऋ का गुणसहक अर् है ॥ अर्में य कर्मणि प्रधानका चिन्ह जोडनेसे अर्य ऐसा रूप हुआ पश्चात् वर्तमान क्रिया, अन्य पुरुष एक वचन आत्मनेपदीका चिन्हते लगानेसे अर्यते (प्राप्त किया जाता है) ऐसा रूप बना क्योंकि कर्मणि प्रधानमें सदा आत्मनेपदी क्रियामें प्रत्यय लगाये जाते हैं ॥ अर्यते इति= अर्यत इति। क्योंकि यदि पदान्त व्–य् जिसके पहिले अ–आ हो और जिनके पश्चात् अश् प्रत्याहारका कोई अक्षर हो अर्थात् अ–इ–उ–ऋ–लृ–ए–ओ–ऐ–औ ह्–य् व्–र्–ल्–ञ्–म्–ङ्–ण्–न्–झ्–भ्–घ्–ढ्–ध्–ज् ब् ग्–ड्–द् मेंसे कोई अक्षर हो तो उक्त व्–य्का शाकल्य मुनिके मतमें (अर्थात् विकल्पसे) लोप हो जाता है। (लोपः शाकल्यस्य (अष्टाध्यायी ८—३—१९)। उत्पद्यते इति=उत्पद्यत इति

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥

निसर्गः स्वभाव इत्यर्थः। अधिगमोऽर्थावबोधः। तयोर्हेतुत्वेन निर्देशः ॥

कस्याः क्रियायाः। का च क्रिया। उत्पद्यत इत्यध्याह्रियते।

तद् १।१ निसर्गात् ५।१ अधिगमात् ५।१ वा उत्पद्यते T =सूत्रार्थ—वह [सम्यग्दर्शन] स्वभावसे अथवा वा परोपदेशसे उत्पन्न होता है अर्थात् जो तत्वार्थ श्रद्धान विना किसी बाह्य उपदेशके अपने आप ही हो उसको निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं और जो जीवादिक तत्वोंका श्रद्धान परके उपदेशसे हो उसको अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं। सूत्रार्थ

निसर्गः १।१ स्वभावः १ इति अर्थः १।१ अधिगमः अर्थ-अवबोधः = निसर्ग है सो स्वभाव है ऐसा अर्थ है। अधिगम है सो पदार्थका ज्ञान है

तयोः ६।२ हेतुत्वेन ३।१।१ निर्देशः १।१ कस्याः ६।१ = उन दोनों [निसर्ग और अधिगम] को [सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका] साधनपना वा कारणपना करि कहा। किसका [साधनपना करि कहा]

क्रियायाः ६।१। का १।१ च * क्रिया १।१— = क्रियाका [तो वह] क्रिया कौनसी है ?

उत्पद्यते T इति * अध्याह्रियते T = उत्पन्न होता है। ऐसा वाक्य अध्याहार किया गया है अर्थात् ऊपरके सूत्र को स्पष्ट करनेकेलिये उसमें " उत्पद्यते " वाक्य जोडा गया है।

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एक है। (२) निसर्ग-परिणाम-स्वभाव अपरोपदेश (=दूसरेके उपदेशादिका अभाव) ये सब एकार्थ वाचक अर्थात् पर्याय-शब्द हैं सभाष्य पृष्ठ ८ (३) "अधिगम, अभिगम, आगम, निमित्त, श्रवण, शिक्षा तथा उपदेश ये सब समानार्थक ही हैं" सभाष्य० पृष्ठ ८ ॥

(४) तन्निसर्ग. तद्निसर्ग, (पदान्तस्य) "हलोऽनुनासिकेऽनुनासिकः स्वः (वा)" १।१।१०६ शाकटायनव्याकरण=जब अनुनासिक परे हो (= अनुनासिके) पदान्त व्यंजनके स्थानमें (=पदान्तस्य ६।१ हलः ६।१) सवर्ण (= स्वः १।१) अनुनासिक (= अनुनासिकः १।१) विकल्पसे हो (= वा) जैसे " तद् नयनं, तन्नयनम्"। पदान्तस्य "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा" अष्टाध्यायी ८-४-४५ ॥ जैसे एतद् मुरारि वा एतन्मुरारिः। "यरो ङो वा ङे" ५।४।१२५ जैनेन्द्रव्याकरणम् ॥ पदान्त व्यंजन (हको छोड़कर) के स्थानमें (=यरः ६।१) विकल्पसे (वा) अनुनासिक हो। (= ङः १।१) यदि अनुनासिक परे हो (= ङे०) ॥ इसलिये तद् निसर्ग और तन्निसर्ग दोनों पाठ ठीक है ॥

सोपस्कारत्वात् सूत्राणाम्। तदेतत्सम्यग्दर्शनं निसर्गादधिगमाद्वोत्पद्यत इति॥ अत्राह। निसर्गजे सम्यग्दर्शनेऽर्थाधिगमः स्याद्वा न वा। यद्यस्ति, तदपि अधिगमजमेव, नार्थान्तरम्। अथ नास्ति, कथमनवबुद्ध-तत्त्वस्यार्थश्रद्धानमिति॥ नैष दोषः। उभयत्र सम्यग्दर्शने

सोपस्कारत्वात् ५।। सूत्राणाम् ६।। = क्योंकि सूत्रोंको अध्याहारसहितपना होता है अर्थात् सूत्रोंमें उनके अर्थ स्पष्ट करनेके लिये क्रिया आदिका अध्याहार किया जाता है-क्रिया आदि जोडी जाती है, लगाई जाती है।

तत् १।। एतत् १।। सम्यग्दर्शन १।। निसर्गात् ५। वा आधिगमात् ५। उत्पद्यते T इति = सो [= तद्) यह (= एतद्) तत्त्वार्थश्रद्धान स्वभावसे अथवा परोपदेशसे उत्पन्न होता है

अत्र आह T निसर्गजे ७।। सम्यग्दर्शने ७।। अर्थ—आधिगमः १। = यहां प्रश्न करता है (= आह) कि स्वभावजनित तत्त्वार्थश्रद्धानमें पदार्थका ज्ञान

स्यात् T वा न * वा *। यदि * अस्ति T तद् १।। = है। अथवा नहीं है यदि [पदार्थका ज्ञान] है [तो] वह

अपि अधिगमजम् १।। एव = भी अधिगमज ही हुआ

न * अर्थ—अंतरम् १।। = और अर्थ विषैं कुछ भेद नहीं हुआ अर्थात् दोनों एक ही ठहरे

अथ न अस्ति T, कथम् * अनवबुद्धतत्त्वस्य ६।। = यदि (निसर्गज सम्यग्दर्शनमें अर्थबोध) नहीं है (तब) कैसे विना जाने

अर्थ—श्रद्धानम् १।। इति। = तत्त्वार्थका श्रद्धान हुआ

न * एष १। दोषः १। । उभयत्र * सम्यग्दर्शने ७।। = यह दूषण नहीं है। क्योंकि दोनो सम्यग्दर्शनोंमें

१ अध्याहार-' वाक्यको पूरा करनेकेलिये शब्दका ' जोड़ना पञ्चचन्द्रकोश पृष्ठ १८ (२) क्षयोपशमोवा-जब विसर्गके पहिले अ हो और इसी विसर्गके परे अ हो अथवा ग्-घ्-ङ्। ज्-झ्-ञ्। ड्-ढ्-ण्। द्-ध्-न्। ब्-भ्-म्। य्-र्-ल्-व्-ह्। में से कोई अक्षर आवे तो यह विसर्ग उ में परिवर्तन होजाता है॥ फिर यह उ जिसके पहिले अ है दोनों (अ+उ) मिलकर ओ हो जाते हैं जैसे क्षयोपशम वाक्य क्षयोपशम उ वाक्य = क्षयोपशम+अ+उ वाक्य = क्षयोपशम + ओ वाक्य क्षयोपशमो वाक्य भण्डारकर माग० पृष्ठ १५।

अन्तरङ्गो हेतुस्तुल्यः । दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा । तस्मिन्सति यद्बाह्योपदेशादृते प्रादुर्भवति तन्नैसर्गिकम्, यत्परोपदेशपूर्वकं जीवाद्यधिगमनिमित्तं स्यात् तदुत्तरमित्यनयोरयं भेदः ॥

तद्ग्रहणं किमर्थम् । अनन्तरनिर्देशार्थम् । अनन्तरं सम्यग्दर्शनं तदित्यनेन प्रतिनिर्दिश्यते । इतरथा मोक्षमार्गोऽपि प्रकृतस्तस्याभिसम्बन्धः स्यात् । ननु च अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषधो वेति

अन्तरङ्गः १।१ हेतुः १।१ तुल्यः १।१ = अन्तरङ्ग कारण समान है । और वह
दर्शनमोहस्य ६।१ उपशमः १।१ क्षयः १।१ क्षयोपशमः १।१ वा = दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम क्षय अथवा क्षयोपशम है
तस्मिन् ७।१ सति ७।१ यद् १।१ बाह्य–उपदेशात् ५।१ = तिस अभ्यन्तर कारणके होनेपर (= सति) जो परोपदेश
ऋते * प्रादुर्भवति T = विना प्रगट होता है
तद् १।१ नैसर्गिकं १।१ यद् १।१ परोपदेशपूर्वकं १।१ = वह निसर्गज वा स्वभावजनित [सम्यग्दर्शन] है जो दूसरेके उपदेशपूर्वक
जीवादि— = जीवादि तत्वोंके
अधिगम-निमित्तं १।१ स्यात् T तद् १।१ उत्तरम् १।१ = जाननेका कारण हो वह दूसरा अधिगमज सम्यग्दर्शन है
इति अनयोः ६।२ अयं १।१ भेदः १।१ = ऐसे इन दोनोंमें यह भेद है
तद्–ग्रहण १।१ किमर्थम् १।१ = सूत्रमें "तद्" शब्दका लाना किस लिये है
अनंतर-निर्देश–अर्थम् १।१ = निकटस्थको जतलानेकेलिये (तद्) है
अनन्तरं १।१ सम्यग्दर्शनं १।१ तद्–इति*अनेन ३।१ = लगता ही सम्यग्दर्शन (शब्द जो दूसरे सूत्रके अंतमें है) इस "तद्" शब्दसे
प्रतिनिर्दिश्यते T। इतरथा मोक्षमार्गः १।१ अपि*प्रकृतः १।१ = बतलाया गया है। अन्यथा (यदि तद् न लाते तो) मोक्षमार्ग भी वर्णनीय है
तस्य ६।१ अभिसम्बन्धः १।१ स्यात् T ननु च* = उसका [निसर्ग अधिगमके साथ] संबंध हो जाता [मोक्षके ये भेद हो जाते]
अनन्तरस्य ६।१ विधिः १।१ वा भवति प्रतिषेधः १।१ = प्रश्न—निकटस्थका विधान होता है अथवा [= वा] निषेध होता है
वा इति [अर्थात् तद् निकटताके लिये लाओ वा मत लाओ]

अनन्तरस्य सम्यग्दर्शनस्य ग्रहण सिद्धमिति चेन्न, प्रत्यासत्तेः प्रधान बलीय इति मोक्षमार्ग एव सम्बध्येत तस्मात्तद्वचन क्रियते। तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनमित्युक्तम्। अथ किं तत्त्वमित्यत इदमाह—

अनन्तरस्य ६।१ सम्यग्दर्शनस्य ६।१ ग्रहण १।१ सिद्धम् १।१	=निकटका (दूसरे सूत्रके मन्त्रके) सम्यग्दर्शनका ग्रहण (विना तद् शब्द के सूत्रमें लाये हुये) सिद्ध है
इति चेत् * न * । प्रत्यासत्तेः ५।१ प्रधान १।१ बलीयः १।१ [बलीयस्]	=ऐसी (इति) शंका [=चेत्] ठीक नहीं है। क्योंकि निकटरूपसे मुख्य बलवान होता है
इति मोक्षमार्गः १।१ एव सम्बध्येत T	=इसप्रकार मोक्षमार्ग ही (जो दूसरे सूत्रमें आये हुये सम्यग्दर्शनसे दूर है किंतु उससे प्रधान होनेसे—निसर्ग और अधिगमके साथ) संबंधमें नियमानुसार आजाता।
तस्मात् * तद् १।१ वचन १।१ क्रियते T।	=तिससे तद् लाया गया है।
तत्त्वार्थश्रद्धानं १।१ सम्यग्दर्शनम् १।१	=तत्त्वार्थका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है
इति उक्तम् १।१ । अथ * किं १।१ तत्त्वम् १।१ इति अत * इदम् १।१ आह।	=ऐसा [दूसरा सूत्र] कहा गया है। अब तत्व क्या है यह इसलिये (निम्न सूत्र) कहते हैं

१ यह नियम है कि दो शब्द हों उनमेंसे एक शब्द निकट और दूसरा शब्द (किसी शब्द जिससे सम्बध करना है या मिलाना है) दूर हो परन्तु यह दूसरा शब्द प्रधान हो तो इस प्रधान शब्दका सम्बध मिलानेवाले शब्दके साथ समझा जावेगा। जैसे "निसर्गादधिगमाद्वा" यदि ऐसा सूत्र होता तो निसर्ग और अधिगमके साथ प्रथम सूत्रके मोक्षमार्ग शब्दका संबध होता न कि दूसरे सूत्रके सम्यग्दर्शन शब्दका क्योंकि यद्यपि दर्शन शब्द निसर्ग और अधिगम शब्दोंके निकट है परन्तु मोक्षमार्ग शब्द जो दूर है प्रधान होनेसे निसर्ग और अधिगमके साथ सम्बध कर जाता उस सम्बधका दूर करनेके लिये सूत्रमे तद् शब्द दूसरे सूत्रके दर्शन शब्दको प्रगट करनेके लिये लाये हैं।

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥ ४ ॥

तत्र चेतनालक्षणो जीवः । सा च ज्ञानादिभेदादनेकधा भिद्यते । तद्विपर्ययलक्षणोऽजीवः । शुभाशुभकर्मागमद्वाररूप आस्रवः । आत्मकर्मणोरन्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशात्मको बन्धः । आस्रवनिरोधलक्षणः संवरः । एकदेशकर्मसंक्षयलक्षणा निर्जरा । कृत्स्नकर्मविप्रयोगलक्षणो मोक्षः ॥ एषां प्रपञ्चः

जीव-अजीव-आस्रव-बन्धसंवरनिर्जरामोक्षाः १। तत्वम् १।। =जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये [सात] तत्व हैं अर्थात् चेतना लक्षण जीव है, चेतनारहित अजीव है; कर्मोंके आनेका द्वार आस्रव है; चेतन और कर्मोंके परस्पर प्रदेशोंका नीर क्षीरके सदृश एक क्षेत्रावगाह संबन्ध सो बन्ध है । शुभाशुभ कर्मोंके आगमन द्वारको रोकना सो संवर है; आत्माके प्रदेशोंसे कर्मोंका एक देश पृथक् होना सो निर्जरा है; समस्त कर्मोंका सर्वथा नाश सो मोक्ष है।

तत्र * चेतनालक्षणः १। जीवः १। सा १।। च ज्ञानादिभेदात् ५। अनेकधा * भिद्यते T । =तहां चेतना लक्षण जीव है और वह चेतना ज्ञानादिके भेदसे =(अर्थात् ज्ञान चेतना, कर्म चेतना, कर्मफलचेतना) नाना प्रकार भेदरूप है

तद्विपर्ययलक्षणः १। अजीवः १। । = उस (जीव) से विरुद्ध लक्षणवाला [अर्थात् चेतनारहित] अजीव है

शुभ-अशुभ-कर्म-आगमनद्वाररूपः १। आस्रवः १। । = भले बुरे कर्मोंके आनेका द्वार सो आस्रव है

आत्मकर्मणोः ६।। अन्योऽन्यप्रदेश- अनुप्रवेश-आत्मकः १। बन्धः १। । = चेतन और कर्मके परस्पर प्रदेशोंका =(दूध पानीके समान एकमेक होकर एक क्षेत्रावगाह] संबंधरूप बन्ध है

आस्रवनिरोध-लक्षणः १। संवरः १। । = शुभाशुभ कर्मोंके आगमनद्वारके रोकनेरूप संवर है

एकदेश-कर्म-संक्षयलक्षणा १।। निर्जरा १।। = [आत्माके प्रदेशोंसे] कर्मोंका एकदेश पृथकरूप होना सो निर्जरा है

कृत्स्नकर्मविप्रयोग-लक्षणः १। मोक्षः १। एषां ६।।। प्रपञ्चः १। = समस्त कर्मोंका सर्वथा नाशरूप मोक्ष है । इनका विस्तार

---

(१) श्वेताम्बर और दिगंबर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ।

उत्तरत्र वक्ष्यते। सर्वस्य फलस्यात्माधीनत्वादादौ जीवग्रहणम्। तदुपकारार्थत्वात्तदनन्तरमजीवाभिधानम्। तदुभयविषयत्वात्तदनन्तरमास्रवग्रहणम्। तत्पूर्वकत्वात्तदनन्तरं बन्धाभिधानम्। संवृतस्य बन्धाभावात्तत्प्रत्यनीकप्रतिपत्त्यर्थं तदनन्तरं संवरवचनम्। संवरे सति निर्जरोपपत्तेस्तदन्तिके निर्जरावचनम्। अन्ते प्राप्यत्वान्मोक्षस्यान्ते वचनम्॥ इह पुण्यपापग्रहणं च कर्तव्यं नवपदार्था इत्यन्यैरप्युक्तत्वात्॥ न कर्तव्यम्। तयोरास्रवबन्धे चान्तर्भावात्॥ यद्येवम्

उत्तरत्र* वक्ष्यते१॥ सर्वस्य ६।१ फलस्य ६।१ आत्म	= आगे कहेंगे। समस्त फलको चेतनके
अधीनत्वात् ५।१ आदौ ७।१ जीवग्रहणम् १।१।	आश्रय होनेसे आदिमें जीवका प्रतिपादन किया।
तद् उपकार अर्थत्वात् ५।१ तद् अनन्तरम् १।१	= उस जीवका उपकारी होनेसे उसके समीप ही
अजीव अभिधानम् १।१। तद् उभयविषयत्वात् ५	= अजीव कहा गया है। उन (जीव अजीव) दोनोंके संबन्ध होनेसे
तद् अनन्तरम् १।१ आस्रवग्रहणम् १।	= उसके निकट आस्रवका उपादान किया गया है।
तत्पूर्वकत्वात् ५।१ तद् अनन्तरम् १।१	= उस (आस्रव) जन्य होनेसे (आस्रवपूर्वक बंध होनेसे) फिर
बन्ध अभिधानम् १।१। संवृतस्य२ ६ बंध अभावात् ५।१	= बन्ध कहा गया है। संवरके होनेसे बन्धका अभाव होता है अतः
तत्प्रत्यनीक प्रतिपत्ति अर्थम् १।१	= उस (बन्ध) के प्रतिपक्षीको जतावनेकेलिये
तद् अनन्तर १।१ संवरवचनम् १।१। संवरे ७।१ सति ७।१	= उस [बन्ध] के लगता ही संवर कहा है क्योंकि संवर होनेपर
निर्जरा-उपपत्ते: ५।१ तद् अन्तिके ७।१ निर्जरावचनम् १।१	= निर्जराकी प्राप्ति होती है [अतः] उसके निकटमें निर्जराका कथन है
अन्ते ७।१ प्राप्यत्वात् ५।१ मोक्षस्य ६।१ अन्ते ७।१ वचनम् १।१	= अन्तमें प्राप्त होनेसे मोक्षका सबके पीछे कथन है।
इह पुण्य पाप ग्रहण १।१ च कर्तव्य १।१ नव पदार्था: १।३ इति	= यहां पुण्य और पापका ग्रहण भी करना चाहिये। नो पदार्थ ऐसे
अन्यै: ३।३ अपि* उक्तत्वात् ५।१। न कर्तव्यम् १।१	= और [आचार्यों] ने भी कहे हैं। [उत्तर] नहिं करना चाहिये।
तयो ६।२ आस्रवे ७।१ बंधे ७।१ च अन्तर्भावात् ५।१ यदि एवम्	= क्योंकि दोनोको आस्रव और बन्धमें गर्भित किया है। जो ऐसे हैं तो

१। वच्+स्यते (=भविष्यत् कालका प्रत्यय आत्मनेपदी एक वचन अन्यपुरुष) = वक्+ष्यते (टिप्पणी पृष्ठ १४—१५) =वक्ष्यते = कहेगा प्रतिष्ठार्थ = कहेंगे। २ संवृत शब्द तीनों लिंगमें आता है इससे लिंग नहीं लिखा है।

आस्रवादिग्रहणमनर्थकम्, जीवाजीवयोरन्तर्भावात् । नानर्थकम् । इह मोक्षः प्रकृतः सोऽवश्यं निर्देष्टव्यः । स च संसारपूर्वकः । संसारस्य प्रधानहेतुरास्रवो बन्धश्च । मोक्षस्य प्रधानहेतुः संवरो निर्जरा च । अतः प्रधानहेतुहेतुमत्फलनिदर्शनार्थत्वात्पृथगुपदेशः कृतः ॥

जीव-अजीवयोः ६।२ अतर्भावात् ५।१ आस्रव आदि	=जीव अजीवमें गर्भित होनेसे आस्रव बंध-संवर-निर्जरा तथा मोक्षका भी
ग्रहणम् १।१ अनर्थकम् १।१	=ग्रहण व्यर्थ है । [तब जीव-अजीव दो तत्व कहने थे]
न अनर्थकम् १।१	=[आचार्य कहते हैं] व्यर्थ नहीं है ।
इह मोक्षः १।१ प्रकृतः १।१	=यहां मोक्ष अधिकृत है अर्थात् इस तत्त्वार्थ सूत्रमें मोक्षका प्रकरण है
सः १।१ अवश्य निर्देष्टव्यः १।१ । सः १।१ च संसारपूर्वकः १।१	=सो अवश्य कहना चाहिये और वह [मोक्ष] (संसारसे होती) है ।
संसारस्य ६।१ प्रधानहेतुः १।१ आस्रवः १।१ बन्धः १।१ च	=संसारके मुख्य कारण आस्रव और बन्ध हैं।
मोक्षस्य ६।१ प्रधानहेतुः १।१ संवरः १।१ निर्जरा १।१ च	=मोक्षका मुख्य कारण संवर और निर्जरा है ।
अतः * प्रधानहेतु-	=इसलिये मुख्य साधन [आस्रव और बन्ध, संवर और निर्जरा तथा]
हेतुमत्फल-निदर्शन-अर्थत्वात् ५।१	=साधनयुक्त [=साधन सहित] फल [मोक्ष] दिखलानेका अभिप्राय होनेसे
पृथक् * उपदेशः १।१ कृतः १।१ ॥	=भिन्न उपदेश [सातों तत्वोंका] किया है ॥ यहां पर भावार्थ ऐसा है कि प्रश्न कर्ता दो तत्व जीव और अजीवका वर्णन किया जाना स्वीकार करता है अन्य पांच तत्वों में तर्क है । उत्तरमें कहते हैं कि तत्त्वार्थसूत्रमें मोक्षमार्गका प्रकरण वा विषय है अतः मोक्षका निरूपण यहांपर करना अभीष्ट है और वह मोक्ष संसार-पूर्वक [=से] होता है । संसारके प्रधान साधन आस्रव—बन्ध हैं और मोक्षके प्रधानहेतु संवर—निर्जरा हैं । एवं संसारके साधनभूत आस्रव—बन्धका निरूपण और मोक्षके साधन संवर—निर्जराका निर्देश और साध्यरूपफल [=हेतुमत्फल] मोक्षका निरूपण पृथक् पृथक् कहना आवश्यक समझा है ।

(१) सः और एषः का अन्तका स् अथवा विसर्ग जब सः वा एषः के पश्चात् वाक्यमें कोई व्यंजन आवै तो गिरजाता है । सः पुरुषः = सपुरुषः

दृश्यते हि सामान्येऽन्तर्भूतस्यापि विशेषस्य यथोपयोगं पृथगुपादानं प्रयोजनार्थम् । क्षत्रिया आयाताः सुरवर्मापीति ॥ तत्त्वशब्दो भाववाचीत्युक्तः स कथं जीवादिभिर्द्रव्यवचनैः सामानाधिकरण्यं प्रतिपद्यते ? ॥ अव्यतिरेकात्तद्भावाध्यारोपाच्च सामानाधिकरण्यं भवति । यथा उपयोग एवात्मेति ॥ यद्येव तत्तल्लिङ्गसंख्यानुवृत्तिः प्राप्नोति । विशेषणविशेष्यसम्बन्धे सत्यपि शब्दशक्ति–

दृश्यते T हि * सामान्ये ७।१ अन्तर्भूतस्य ६।१ अपि = क्योंकि (= हि) देखा जाता है कि सामान्यमें गर्भित हैं तो भी
विशेषस्य ६।१ = मुख्यका
पृथक् * उपादान १ प्रयोजन अर्थम् १।१ यथोपयोग * = न्यारा ग्रहण प्रयोजनकेलिये आवश्यकता अनुसार [यथा-उपयोग] किया जाता है
क्षत्रियाः १।३ आयाताः १।३ सुरवर्मा १।१ अपि इति * = जैसे क्षत्री आगये (आयाता) सुरवर्मा (क्षत्री) भी [आगया] है
तत्त्वशब्दः १।१ भाववाची १।१ इति उक्तः १।१ स १ कथ * = तत्त्व शब्द (सूत्रमे) भाववाची है ऐसा कहा जाता है सो कैसे [तत्त्व शब्द]
जीवादिभिः ३।३ द्रव्यवचनैः ३।३ = जीव अजीव आश्रव-बन्ध-सवर-निर्जरा मोक्ष द्रव्यवाची शब्दोंके साथ
सामानाधिकरण्य १।१ प्रतिपद्यते T अव्यतिरेकात् ५।१ = समानाधिकरणताको प्राप्त होता है । (जीवादि और तत्त्व दोनों) अभेदरूप होनेसे
च तद्-भाव-अध्यारोपात् ५।१ = और उस (तत्त्व) का भाव [जीवादिमें] लगानेसे [अध्यारोपात्]
समानाधिकरण्य १।१ भवति T = समानाधिकरण (तत्वका जीवादिकके साथ) हो जाता है अर्थात् द्रव्य, और भाव दोनोंमें अभेदपना होनेसे समानाधिकरण बनता है
यथा* उपयोग, १।१ एव आत्मा १।१ इति । यदि एव = जैसे उपयोग (ज्ञान दर्शन) ही चेतना है ऐसा (कहना) है जो इसप्रकार है तो
तत्-तत्-लिंग-सख्या- = उन (तत्-जीवादि सातोंके उस) तत्वशब्द में लिङ्ग सख्याकी अनुवृत्ति
अनुवृत्तिः १।१ प्राप्नोति । = प्राप्त होती है । अर्थात् मोक्षाः बहुवचन पुलिंग है वैसे ही तत्त्व भी बहुवचन
विशेषण-विशेष्य— = पुलिंग चाहिये । (उत्तर) विशेषण (जीवादि) और विशेष्य [तत्व] के
सबधे ७।१ सति ७।१ अपि शब्द-शक्ति = सबंध होनेपर भी शब्दकी शक्तिकी

व्यपेक्षया उपात्तलिङ्गसङ्ख्याव्यतिक्रमो न भवति ॥ अयं क्रम आदिसूत्रेऽपि योज्यः ॥ एवमेषामुद्दिष्टानां सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां च संव्यवहारविशेषव्यभिचारनिवृत्त्यर्थमाह । नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः

व्यपेक्षया ३।१ उपात्त-लिङ्गसङ्ख्या— = अपेक्षासे पाईहुई (प्राप्त गृहीत) लिंग संख्याका
व्यति-क्रमः १।१ न भवति ॥ अयं १।१ क्रमः-आदि- = विपर्यय नहीं होता है। यह नियम प्रथम
सूत्रे ७।१ अपि* योज्यः १।१ = सूत्रमें भी योग्य लागू हुआ है अर्थात् पहिले सूत्रमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि बहुवचन नपुंसक लिंग है और मोक्षमार्गः एकवचन पुलिंग है।
एवं एषाम् ६।१ उद्दिष्टानां ६।३ सम्यग्दर्शनादीनाम् ६।३ =इस प्रकार ये कथित सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र ।
च जीवादीनां ६।३ संव्यवहार-विशेष =और (=च) जीवादि (सात तत्वों) का लोकव्यवहारमें [अनेकप्रकार] विशेष
व्यभिचार-निवृत्ति-अर्थम् १।१ =दोष (आता) है तिनके-निराकरण करनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्र)
आह T कहते हैं। अर्थात् भिन्न भिन्न मतवाले सम्यग्दर्शनादि तथा जीवादि सात तत्वोंका स्वरूप नानाप्रकारसे मानते हैं और उन सम्यग्दर्शनादि और जीवादिकका 'यथार्थ स्वरूप समझे विना अन्यथापन' आता है तिस विशेष व्यभिचार अथवा नानाप्रकारके दोषोंका निराकरण करनेके लिये "नामस्थापना" इत्यादि सूत्र कहा जाता है ॥

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥

नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतः तद्- =नाम, स्थापना, द्रव्य, और भावसे उन [सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीवादि
न्यासः १।१ =तत्वोंका] निक्षेप अथवा लोक व्यवहार [न्यास] होता है अर्थात्
[क] गुण जाति द्रव्य और क्रियाकी अपेक्षा विना ही अपनी इच्छानुसार लोकव्यवहारके लिये किसी पदार्थकी संज्ञा करनेको नाम निक्षेप कहते हैं। जैसे किसी पुरुषका नाम इन्द्रराज है परन्तु उसमें इन्द्रके समान गुण जाति द्रव्य क्रिया कुछ भी

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है समाप्य० पृष्ठ ९, १० सूक्ष्मदृष्टिसे पढ़ो)

अतद्गुणे वस्तुनि संव्यवहारार्थं पुरुषाकारान्नियुज्यमान सज्ञाकर्म नाम ।

नहीं है । उसके माता पिताने केवल व्यवहारार्थ नाम रख लिया है । लोकमें ब्रह्मदत्त, कृष्णचन्द्र, बलभद्र, जिनदत्त, हाथीसिंह, रत्नसिंह, मोतीसिंह, इत्यादि नाम रख लेते हैं । गुण जाति द्रव्य क्रियाकी अपेक्षासे ये नाम नहीं रक्खे जाते, इसीको नाम निक्षेप कहते हैं ।

[ख] धातु, काष्ठ, पाषाण, मिट्टीके चित्रादिक तथा गोटोंके खेलमें घोडा हाथी–नृपति–मनुष्य–इत्यादिक तदाकाररूप अथवा अतदाकाररूप मान लेना वा कल्पना कर लेना सो स्थापना निक्षेप है । जो पदार्थ जिस आकारका हो उसको वैसा ही पत्थर काष्ठ मृत्तिकादिका बनाकर उसमें उसीकी स्थापना करनेको तदाकार स्थापना कहते हैं और जिसमें वस्तुका यथार्थ आकार न हो ऐसे किसी भी पदार्थमें किसीकी कल्पना वा स्थापना करनेको अतदाकार स्थापना कहते हैं। जैसे महावीर स्वामीकी वीतरागरूप जैसीकी तैसी शान्तमुद्रायुक्त धातु पाषाणमय प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करना यह तदाकार स्थापना है और किसी खेलमें गोटोंमें नृप–ऊट–अश्व—हाथी इत्यादिकी कल्पना करना सो अतदाकार स्थापना है ॥ नाम निक्षेप और स्थापना निक्षेपमें यह भेद है कि पहिलेमें पूज्य अपूज्यका भाव नहीं है दूसरेमें प्रतिष्ठा–आदर और पूज्यबुद्धि होती है ।

(ग) जो भूत भविष्यत् पर्यायकी मुख्यता लेकर वर्तमानमें कहना सो द्रव्य निक्षेप है जैसे भविष्यत्में होनेवाले राजपुत्र, अर्थात् युवराजको राजा कहना अथवा कोई पुरुष जो पहले राजा वा मन्त्री था अब मन्त्री पदसे च्युत कर दिया गया हो उसको अब भी मन्त्री महाशय कहके बात चीत करना ।

(घ) जिस पदार्थकी वर्तमानमें जो पर्याय हो उसको उसी रूप कहना सो भाव निक्षेप है जैसे राज्य करता हो उसीको राजा कहना ।

पदच्छेद तथा विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः भाषानुवाद ॥

अतद्गुणे ७।१ वस्तुनि ७।१ संव्यवहार अर्थं १।१	=पदार्थमें वह गुण (क्रिया–जाति द्रव्य) न होने पर लोक व्यवहारके लिये
पुरुषाआकारात् ५।१ नियुज्यमान १।१	=हठसे वा आग्रहसे नियत किया हुआ
सज्ञाकर्म १।१ नाम १।१	=नाम रखना सो नाम (निक्षेप) है

काष्ठपुस्तचित्रकर्माक्षनिक्षेपादिषु सोऽयमिति स्थाप्यमाना स्थापना । गुणैर्द्रोष्यते गुणान्द्रोष्यतीति वा द्रव्यम् । वर्तमान तत्पर्यायोपलक्षितं द्रव्यं भावः ॥ तद्यथा । नामजीवः, स्थापनाजीवः,

काष्ठ–पुस्त-चित्र कर्म-अक्ष-निक्षेपादिषु ७।१ = काठ, पुस्तक, मूरत बनाने (= चित्रकर्म) और फासा फेंकने आदिमें
सः १।१ अयम् १।१ इति * स्थाप्यमाना १।११ = वह (= सः) यह है ऐसे संस्थापन, आरोपण वा कल्पना करना
स्थापना १।११ (न्यासः १।१) गुणैः ३।१ द्रोष्यते T = (सो) स्थापना (निक्षेप) है। गुणोंकरि (जो) परिणाया जायगा वा प्राप्त किया जायगा [ऐसा द्रव्य है
वा* गुणान् २।१ द्रोष्यति T इति * द्रव्यम् १।११ = (सो द्रव्य है) अथवा [= वा] गुणोंको (जो) परिणवैगा प्राप्त होगा
वर्तमान-तत्-पर्याय-उपलक्षितं १।११ द्रव्यं १।११ = उपस्थित वा विद्यमान वही (उसी ही) पर्यायसहित द्रव्य
भावः १।१ तद्यथा * नामजीवः १।१ स्थापनाजीवः १।१ = सो भाव (निक्षेप=न्यास) है । जैसे नाम जीव, स्थापना जीव,

(१) क—गुणपर्यायवद्द्रव्यम् (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५ सूत्र ३८) गुण और पर्यायसंयुक्त द्रव्य है ॥ सूत्र ५ में गुणको प्रधानकरि द्रव्य की परिभाषा दी है और भविष्यत्काल (लृट्) के कर्मणि प्रधान और कर्तरि प्रधानमें है अर्थात् द्रु भ्वादि प्रथम गणका धातु है इसको गुण संज्ञक होनेसे द्रो हो जाता है, स्यते–भविष्यत्काल (लृट् लकार) का कर्मणि प्रधान प्रत्यय है और स्यति भविष्यत्काल (लृट् लकार) का कर्तरि प्रधान प्रत्यय है । द्रो+स्यते । द्रो+स्यति । स का परिवर्तन ष में टिप्पणी पृष्ठ १५ से लेकर द्रोष्यते (प्राप्त किया जायगा) द्रोष्यति (प्राप्त होगा) रूप हुए । (ख)—इस सूत्रकी टिप्पणी २ में भी गुणको मुख्य मानकरि द्रव्यकी परिभाषा भूतकृदन्तमें (जो धातुमें त निष्ठा प्रत्यय जोडनेसे बनता है) दी है हमारी समझमें यहांपर सामान्यभूतकालके अर्थमें भूतकृदन्तको लिया है ॥ गुणैर्गुणान्वा द्रुतं गतं प्राप्तमिति द्रव्यमित्यप्याधिकः पाठः पुस्तकान्तरे दृश्यते ॥

गुणैः ३।१ द्रुतं १।११ गतं प्राप्तम् १।११ इति द्रव्यम् =गुणोंकरि जो प्राप्त (=द्रुतं–गतं) किया गया ऐसा द्रव्य है
वा गुणान् २।११ द्रुतं १।११ गतं १।११ प्राप्तम् १।११ = अथवा गुणोंको जिसने प्राप्त किया (द्रुतं–गतं) ऐसा द्रव्य है ॥
अपि अधिकः १।१ पाठः १।१ पुस्तकान्तरे ७।११ दृश्यते इति = इसप्रकार भी अधिक पाठ अन्य पुस्तकोंमें देखा गया है ॥

(ग)—अध्याय ५ सूत्र २ की वृत्तिमें "यथास्वं पर्यायै द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि द्रव्याणि" यहां पर्यायको मुख्य मानकर वर्तमान कालमें द्रव्य की परिभाषा है ॥ स्वरूपके अनुसार पर्यायोंकरि प्राप्त किये जाते हैं अथवा जो पर्यायोंको प्राप्त होते हैं वे द्रव्य है इस प्रकार द्रव्यकी परिभाषा गुणको मुख्य और पर्यायको प्रधान करि भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों क्रियायोंमें कही है ॥

द्रव्य निक्षेपका मानचित्र जो ससारी जीवोंको लागू होता है

आगम द्रव्य निक्षेप अर्थात् आत्मा जो किसी वस्तुको जानता तो हो परतु उसका उपयोग ध्यान या चितवन उस समय उस ज्ञात वस्तुकी ओर न हो जैसे किसी ज्योतिषी-को जवकि वह स्नान कर रहा हो ज्योतिषी कह कर वुलाना

नो आगम द्रव्य निक्षेप अर्थात् किसी वस्तु के जानने वाले के शरीर को ज्ञाता कहना, इसके तीन भेद हैं

(१) ज्ञायक शरीरनो आगम द्रव्य निक्षेप

(२) भावीनो आगम द्रव्य निक्षेप अर्थात् किसी को जो मृत्युके पश्चात् अन्य भव पावैगा इसही भवमें उसको उस अन्य भव वाला कह देना। जैसे कोई पशुमृत्यु- के पीछे मनुष्य होगा उसको इस पशु भवमें ही मनुष्य कहना

(३) तद् वितिरिक्त नो आगम द्रव्य निक्षेप

अतीत ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसी पदार्थके कथनके ज्ञाता(पुरुष)का शरीर पूर्वमें उसकथनको जानताथा अवधि पूर्णहो-जानेपरवह ज्ञान जाता-रहा तवभी उसशरीरको भूतज्ञायकशरीर कहना

अनागत ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य निक्षेप अर्थात् किसी पदार्थके कथनके ज्ञाता(पुरुष,का शरीर उसकथनका जानकार नहीं है परंतु आगामीकालमें उसकथनको जानेगा तव भीउसको इससमय जानकार कहनासोभविष्यत् ज्ञायकशरीरहै

वर्तमान ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसी पदार्थ केकथन केज्ञाता पुरुषका शरीर जान-कारतोहै परतु पूर्णरूपसे उसकथनका जानकारनहीं उसकोप्राप्तकररहाहैउसका वह शरीर वर्तमान ज्ञायक शरीर नोआगमद्रव्यहै

कर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसीके शरीरको द्रव्य कर्म वर्गणाओंरूप (जिनको वह अन्य भवमें पावैगा,कहना जैसेभावी नो आगम द्रव्यनिक्षेपके उक्त उदाहरणमें पशुके शरीरको मनुष्यनामक नामकर्मके द्रव्यकर्म-वर्गणाओं रूप कहदेना

नो कर्म तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसीकेशरीरको नो कर्म वर्गणाओं रूप (जिनकोअन्यभवमेंपावैगा) कहनाजैसे भावीनोआगम-द्रव्यनिक्षेपके दृष्टान्तमें पशुकेशरीरको द्रव्यनोकर्म-वर्गणा (आहारादिकनोकर्म वर्गणा जिनसे शरीरवनताहै) रूप कह देना.

द्रव्यजीवो भावजीव इति चतुर्धा जीवशब्दार्थो न्यस्यते ॥ जीवनगुणमनपेक्ष्य यस्य-कस्यचिन्नाम क्रियमाण नामजीवः । अक्षनिक्षेपादिषु जीव इति वा मनुष्यजीव इति वा व्यवस्थाप्यमानः स्थापनाजीवः ॥

द्रव्यजीवः $^{1}_{1}$ भावजीवः $^{1}_{1}$ इति चतुर्धा *	= द्रव्यजीव, भावजीव ऐसे चार प्रकार
जीव शब्द अर्थः $^{1}_{1}$ न्यस्यते T जीवनगुणम् $^{1}_{3}$	= जीव शब्दका अर्थ स्थापित वा निक्षेप किया जाता है । जीवन गुणकी
अनपेक्ष्य । यस्य $^{1}_{6}$ कस्याचित्* नाम $^{111}_{1}$	= अपेक्षा न करके जिस किसीका नाम
क्रियमाण $^{111}_{1}$ नामजीव $^{1}_{1}$	= रक्खा गया वा किया गया सो नाम जीव (निक्षेप) है जैसे—किसीने अपने कार्यालयका नाम जीव रख लिया इस अवस्थामें पत्र सूचना इत्यादि सर्व उसी 'जीव' कार्यालयमें आवेंगे यद्यपि उस कार्यालयमें जीवन गुण नहीं पाया जाता है । इस सञ्ज्ञाका नाम जीव कहेंगे ॥
वो* अक्षनिक्षेप आदिषु $^{1}_{7}$ जीवः $^{1}_{1}$ इति	= फांसाके फेंकने आदिमें जीव ऐसा
व्यवस्थाप्यमान $^{1}_{1}$ स्थापनाजीवः $^{1}_{1}$	= आरोपण किया हुआ (= व्यवस्थाप्यमान) सो स्थापना जीव है (जैसे किसी गोटमे जो जड़ पदार्थ है यह स्थापना कर ली कि इसको प्रत्येक व्यवहारमें 'जीव' कहेंगे)
वा [अक्षनिक्षेपादिषु $_{7}$] मनुष्यजीवः $^{1}_{1}$	= अथवा फांसाके फेंकने आदिमें (किसी गोटमे विशेष रूपसे) मनुष्य जीव
इति व्यवस्थाप्यमान स्थापनाजीवः $^{1}_{1}$	= ऐसी स्थापना करना सो स्थापना जीव निक्षेप है [जैसे किसी गोटको जब काममे लाया जावे तब कहा जावे कि यह मनुष्य जीव है यद्यपि यह गोट जड है]

(१) न्यस्यते – यह शब्द = नि + अस् + य + ते—अस् = फेंकना दिवादि चतुर्थ गणके सकर्मक परस्मैपद धातुमें कर्मणि प्रधान य प्रत्यय जोड़कर पीछे ते वर्तमानकाल अन्य पुरुष एक वचन आत्मनेपदी क्रियाका प्रत्यय लगा देनेसे बनता है । अस् = होना अदादिगण अकर्मक भी धातु है इसमें य प्रत्यय यहा नहीं लगाया है ।

...वो द्विविधः । आगमद्रव्यजीवः । नोआगम द्रव्यजीवश्चेति ॥ तत्र जीवप्राभृतज्ञायी मनुष्य-जीवप्राभृतज्ञायी वा अनुपयुक्त आत्मा आगमद्रव्यजीवः ॥ नोआगमद्रव्यजीवस्त्रेधा व्यवतिष्ठते । ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तभेदात् ।

द्रव्यजीवः १ । द्विविधः १ आगमद्रव्यजीवः १	=द्रव्य जीव दो प्रकार है आगम द्रव्यजीव
च * नोआगमद्रव्यजीवः १ इति * तत्र *	=और (=च) नो आगम द्रव्यजीव इस प्रकार हैं । तहां
जीव-प्राभृत-ज्ञायी १	=जीवके कथनके शास्त्रको (प्राभृत जैसे गोम्मट्टसारमें जीवकांडको) जाननेवाला
अन् उपयुक्तः १ । आत्मा १ आगम द्रव्यजीवः १	=उपयोगरहित चेतन आगमद्रव्यजीव है अर्थात् जिस कालमें उस जीवके कथनके आगमको जाननेवाले आत्माका (उस शास्त्रमें) ध्यान वा चिंतवन हो उस कालमें उस आत्माको आगम द्रव्यजीव कहते हैं ।
वा मनुष्य-जीव-प्राभृत-	=अथवा [विशेषरूपसे] वह आगम जिसमें मनुष्यके जीवका कथन हो
ज्ञायी १	=उसका ज्ञाता [=ज्ञायिन् । इस मनुष्य जीव प्राभृतमें]
अनुपयुक्तः १ आत्मा १ आगम द्रव्यजीवः १	=उपयोगरहित-लक्षरहित [जिस समय हो] सो आगमद्रव्यजीव है
नोआगम द्रव्यजीवः १ त्रेधा * ज्ञायकशरीर-	=नोआगमद्रव्य जीव तीन प्रकार ज्ञायक शरीर
भावि-तद्व्यतिरिक्त-भेदात् ५ । व्यवतिष्ठते T	=भावि, तद्व्यतिरिक्त भेदसे व्यवस्थित हैं वा विशेषकरि विद्यमान हैं

(१) विसर्गके पीछे च अथवा छ आवे तो वह विसर्ग श् में पलट जाता है (जैसे जीवश्च चेति=जीवश्चेति) त् अथवा थ् आवे तो वह विसर्ग स् में और ट वा ठ आवे तो ष् में क्रमसे पलट जाता है जैसे जीवः त्रेधा=जीवस्त्रेधा । रामः टीकते=रामष्टीकते ॥ (२) व्यवतिष्ठते स्था भ्वादि प्रथम गणका परस्मैपद धातु है । इस धातुको जब प्रयोगमें आती है तो बिना किसी व्याकरणके नियमके 'तिष्ठ' हो जाता है भ्वादि गणका अ विकरण है ति परस्मैपद, अन्यपुरुष एकवचन वर्तमान कालकी क्रियाका चिन्ह लगानेसे तिष्ठति=ठहरता है परन्तु जब अवउपसर्ग लगानेसे, अथवा वि+अव दोनों उपसर्ग लगानेसे यह आत्मनेपदी हो जाते हैं और अवतिष्ठते व्यवतिष्ठते रूप बन जाते हैं ते आत्मनेपद, अन्य पुरुष, एकवचन वर्तमान कालकी क्रियाका प्रत्यय है ॥

तत्र ज्ञातु[1] र्यच्छरीरं त्रिकालगोचर तज्ज्ञायकशरीरम् । सामान्यापेक्षयानोआगमभाविजीवो नास्ति। जीवनसामान्यस्य सदापि विद्यमानत्वात् ॥

=अर्थात् नो आगम द्रव्य जीवके ज्ञायक शरीर नोआगम द्रव्य जीव [२] भावी नोआगम द्रव्यजीव [३] तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यजीव ये तीन भेद हैं ।

तत्र * ज्ञातु ॥ यत् ॥ शरीर ॥ त्रि- काल-गोचर ॥ तत् ॥ ज्ञायकशरीरम् ॥ =तहां ज्ञाताका जो [=यत्] शरीर तीन [भूत-भविष्यत्-वर्तमान] =कालसंबंधी [=कालगोचर] वह ज्ञायक शरीर [नोआगमद्रव्य जीव] है भावार्थ.जीवके कथनके शास्त्रके ज्ञाता(पुरुष)का शरीर पूर्वमें जीवके कथनके शास्त्र को जानता था अवधि पूर्ण हो जानेपर वह ज्ञान जाता रहा तबभी उस शरीरको भूतज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य जीव कहते हैं ॥ जो शरीर जीव के कथनके शास्त्रका जानकार नहीं परन्तु आगामीकालमें उस कथनको जानेगा तबभी उसको इस समय जीवके कथनके शास्त्रका जानकार कहना सो भविष्यत्ज्ञायक शरीर नोआगमद्रव्य जीवहै ॥ जो शरीर जीवके कथनके शास्त्रका जानकार तोहै परन्तुपूर्ण रूपसे उस कथनको जानकार नहीं हुआ है उसको प्राप्त कर रहाहै उसका वहशरीर वर्तमान ज्ञायक शरीर नोआगम द्रव्य जीवहै ॥ स्मरण रहैं कि भविष्यत् ज्ञायक शरीर में जीवके शास्त्र का जानने वाला (ऐसा ज्ञायक) शरीरहै परन्तु भावीनो आगमद्रव्य में जो शरीर आगे जाकर मनुष्य आदि जीवन पर्याय प्राप्त करैगा उन्हें उनके शास्त्र जानने की अवश्यकता नहीं है। अज्ञायक होकर ही प्राप्तकर सकगा ऐसे ज्ञायक पना और अज्ञायक पनाका दोनों में भेद वा अतर है। आगम द्रव्य में आत्माका ग्रहण किया है नोआगम द्रव्य में उसके परिकर शरीर कर्म वर्गणा आदिका ग्रहण किया है ॥

सामान्यअपेक्षया ॥ नोआगम भाविजीव ॥ न*अस्ति ॥ =सामान्य,वा विशेष,रहित अपेक्षासे नो आगम भावी द्रव्यजीव नहीं है अर्थात् सामान्य विधानसे शास्त्रको ज्ञाता भविष्यत् में होने वाला जीव नहीं हो सक्ताहै

जीवनसामान्यस्य ॥ सदापि* विद्यमानत्वात् ॥ =क्योंकि जीवन सामान्य सदा ही विद्यमानहै अर्थात् जीव जीवन भावकरिसदैवहैही

(१) यत्—इके पश्चात् च् छ् ज् झ् ञ् मेंसे कोई अक्षर आवै तो इसका परिवर्तन च् में होजाता है जैसे तत्+छद्मस्थेषु =तच्छद्मस्थेषु, यत्+छरीरं=यच्छरीरं । अष्टाध्यायी =-४-४० । तत् ज्ञायक= तज् ज्ञायक, टिप्पणी पृष्ठ १५ देखो। ( ) जब किसी शब्द या रूपके

विशेषापेक्षया त्वस्ति गत्यन्तरे जीवो व्यवस्थितो मनुष्यभवप्राप्तिं प्रत्यभिमुखो मनुष्यभाविजीवः[1]।
तद्व्यतिरिक्तः कर्म नोकर्म विकल्पः॥

विशेष–अपेक्षया ३॥ तु* (नोआगमभाविजीवः १।) =परंतु विशेष अपेक्षासे [नोआगम भावी द्रव्यजीव] होता है।
अस्ति I गति-अन्तरे ३॥ जीवः१।व्यवस्थितः१। मनुष्य–=[जैसे कोई] जीव जो अन्यगति में विद्यमान है (और) नर
भवप्राप्तिं २॥ प्रति* अभिमुखः १। =भव पानेको उपस्थित (सन्मुख) है (उसको उस ही अन्य गतिमेंही मनुष्य कहना सो)
मनुष्य–भावि–जीवः १। =मनुष्यभावो [नो आगम द्रव्य] जीव है [इस भावी नो आगमद्रव्य जीव निक्षेपमें जीव तत्त्वके ज्ञानकी वा जीवतत्त्व के जाननेकी अपेक्षा नहीं है] अर्थात् जो शरीर आगे भव में जाकर मनुष्यादि जीवने पर्याय प्राप्तकरैगा उसको जीव तत्वके ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता नहींहै वह अज्ञायक होकरही मनुष्यादि भव प्राप्त करसकैगा
तद्– =उन[ज्ञायक शरीर नो-आगम द्रव्य जीव निक्षेप,भावी नो आगम द्रव्य जीव निक्षेप]से
व्यतिरिक्तः १। =भिन्न [नो आगमद्रव्य जीव निक्षेप] अर्थात् तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यजीव निक्षेपहैसो
कर्म–नोकर्म–विकल्पः १। =कर्म, नोकर्म दो भेदरूप है भावार्थ सामान्य जीव अपेक्षासे तो किसी कर्म के उदयसे जीव नहीं होता है और विशेष जीव अपेक्षा मनुष्य नामा नामकर्म के द्रव्यरूपकर्म वर्गणाओंको मनुष्यनाम तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य मनुष्य जीव कहते है और (२) मनुष्य आहारादिक

अंतमें क्-ख्-ग्-घ्। च्-छ्-ज्-झ्। ट्-ठ्-ड्-ढ्। त्-थ्-द्-ध्। प्-फ्-ब्-भ् में से कोई एक अक्षर विद्यमान हो और श् इन बीस अक्षरों में से किसी के पश्चात् हो और इस श् के पहे-पीछे कोई स्वर अथवा य्-र्-ल्-व्-ह्-ङ्-ञ्-ण्-न्-म् हो तो यह श् विकल्पकरिके छ् में पलट जाता है जैसे यत्+शरीरं अथवा यच्+शरीर =यच्छीर। (१) मनुष्यभावी=भविष्यत् समयमें होनेवाला मनुष्य। (२) प्रति अव्ययके पहिले जो संज्ञा आती है वह द्वितीया विभक्तिमें होती है जैसे प्राप्तिम्—प्रति।

५१ भावजीवो द्विविधः। आगमभावजीवो नोआगम भावजीवश्चेति। तत्र जीवप्राभृतविषयोपयोगाविष्टो मनुष्यजीव प्राभृतविषयोपयोगयुक्तो वा आत्मा आगम भावजीवः। जीवनपर्यायेण मनुष्य जीवत्वपर्यायेण वा समाविष्ट आत्मा नोआगम भावजीवः॥

	करता है तिनसे शरीर वृद्धिको प्राप्त होता है यह नोकर्म है इसलिये आहारादिक तद्व्यतिरिक्तका दूसरा भेद नोकर्म द्रव्य जीव है
भावजीवः $^{1}_{1}$ द्विविधः $^{1}_{1}$ आगमभावजीवः $_{1}$	=भावजीव (निक्षेप) दो प्रकार है। आगमभावजीव (निक्षेप)
च नोआगम भावजीवः $^{1}_{1}$ इति तत्र	=और (=च) नोआगम भावजीव (निक्षेप) ऐसे हैं। तहां
जीव-प्राभृत-विषय-	=जीवके (कथनका) शास्त्रके अभिधेय (=विषय) वा वाच्य अर्थ [विषयके]
उपयोग-आविष्टः $^{1}_{1}$	=चिंतवन आदि व्यापारमें (=उपयोग) लगा हुआ अथवा लिप्त (आविष्ट)
आत्मा $^{1}_{1}$ आगम भावजीवः $_{1}$	=आत्मा (सो) आगम भावजीव (निक्षेप) है
वा मनुष्य जीव-प्राभृत विषय-	=वा [विशेष अपेक्षासे] मनुष्य जीवके [कथनका] शास्त्रके अभिधेय
उपयोगयुक्तः $^{1}_{1}$ आत्मा $^{1}_{1}$ आगम भावजीवः $^{1}_{1}$	=उपयोगसहित चेतना सो मनुष्य आगम भाव जीव [निक्षेप] है
जीवन-पर्यायेण $^{1}_{1}$ समाविष्टः $^{1}_{1}$ आत्मा $^{1}_{1}$	=जीवन पर्यायकरि संयुक्त [=समाविष्ट] चेतना
नोआगमभाव जीवः $_{1}$	=सो नोआगम भाव जीव [निक्षेप] है
वा मनुष्य जीवत्व-पर्यायेण $^{1}_{1}$ समाविष्टः $_{1}$	=अथवा [विशेष अपेक्षाकरि] मनुष्य जीवन पर्यायकरि संयुक्त [आविष्ट]
आत्मा $^{1}_{1}$ नोआगम भावजीव $_{1}$	=चेतना सो मनुष्य नोआगम भाव जीव [निक्षेप] है॥

१ औदारिक-वैक्रियिक-आहारक-शरीर	=औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर
त्रयस्य $^{111}_{1}$ च षट्पर्याप्तीनां $^{1}_{1}$	=तीनोंके और छह (आहार-शरीर-इन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास भाषा मन) पर्याप्तियोंके
योग्य-पुद्गलानाम् $^{1}_{1}$ आदान $^{111}_{1}$ नोकर्म $^{111}_{1}$	=योग्य पुद्गल परमाणुओंका ग्रहण करना नोकर्म है॥

एवमितरेषामपि पदार्थानामजीवादीनां नामादिनिक्षेपविधिर्नियोज्यः। स किमर्थः? अप्रकृतनिराकरणाय प्रकृतनिरूपणाय च॥ निक्षेपविधिना नामशब्दार्थः प्रस्तीर्यते॥

एवम् इतरेषाम् ६। अपि अजीवादीनाम् ६।	=इसप्रकार अन्य भी अजीवादिक
पदार्थानाम् ६। नाम–आदि–निक्षेप–विधिः १।	=पदार्थोंके नामादि निक्षेप विधि
नियोज्यः १। सः १। किमर्थः १।	=लगालेनी चाहिये। वह [निक्षेप विधि] किस प्रयोजनके लिये है?
अप्रकृत–निराकरणाय ४।१।	=[उत्तर] प्रकरणरहित [के कथन] को पृथक् करनेके लिये
च प्रकृत–निरूपणाय ४।१।	=और जिसका विषय है उसको कहनेके लिये [यह निक्षेपादि विधि] है [अर्थात् लोकव्यवहार अभिप्रायके अनुकूल, और उचित प्रकारसे चलाने केलिये जिस वस्तुका जो वाच्य [अर्थ] प्रकृतमें है जिस रूपमें उपयोगी है उसका वही अर्थ ग्राह्य हो, उसके विरुद्ध न हो यह निक्षेप विधि है]
निक्षेपविधिना ३। नामशब्दार्थः १। प्रस्तीर्यते T	=निक्षेप विधि करि नाम वा संज्ञा शब्दोंका अर्थ विस्तृत किया गया है। अर्थात् इस निक्षेप विधिसे व्याकरणके अनुसार जो नाम अथवा संज्ञा शब्द हैं उनके अभिप्रायका बखान वा वर्णन किया गया है नाम शब्दार्थके अतिरिक्त अन्य शब्दोंके अर्थोंके विवरण वा प्रस्तारसे यह निक्षेप विधि लागू नहीं है॥

[१] किमर्थः। किमर्थम् ये दोनों समासरूपमें॥ इनमें (किम्-अर्थः और किम्-अर्थम्) ऐसे प्रत्येकके साथ दो २ विभक्ति नहीं हो सक्ती वरन एक एक अर्थात् किमर्थः प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिंग है और किमर्थम् प्रथमा विभक्ति एक वचन नपुंसक लिंग समझा जावेगा

(२) प्रस्तीर्यते—स्तृ-स्वादि-और क्र्यादि–उभयपदी–सकर्मक सेट् धातु है ऋतः ६ इत् १ धातोः ६ (ऋतः इद्धातोः अष्टाध्यायी ७-१-१००) ऋकारान्त धातु अङ्गको इकारादेश हो॥ इस इ के पश्चात् र् (उरण् रपरः १-१-५१) सूत्रसे आजाता है॥ अतः स्तृ=स्तिर्। हल् व्यंजन परे हो तो और र्-व् जिस धातुके अंतमें हो तो उस धातुका उपधा (=अंत अक्षरसे पहिलेका) इ-उ दीर्घ हो जाता है ८ २-७७। अतः स्तिर स्तीर् प्र उपसर्ग, य कर्मणि प्रत्यय, ते अन्य पुरुष, एक वचन, आत्मनेपदी, वर्तमान क्रियाका प्रत्यय लगाकर प्रस्तीर्यते बना॥

तच्छब्दग्रहणं किमर्थम् ? सर्वसङ्ग्रहार्थम् । असति हि तच्छब्दे सम्यग्दर्शनादीनां प्रधानानामेव न्यासेनाभिसम्बन्धः स्यात् । तद्विषयभावेनोपगृहीतानामप्रधानानां जीवादीनां न स्यात् ।

निक्षेप-विधिना ३।१ नामा शब्द-	=निक्षेप विधिसे नाम-स्थापना-द्रव्य भाव शब्दोंसे [परस्पर]
अर्थः १।१ प्रस्तीर्यते T	=जो प्रयोजन-अभिप्राय है वह विस्तृत किया जाता है, विवरण किया जाता है अर्थात् ऐसा है कि लोकव्यवहारमें कोई मनुष्य नामको भाव समझ जाय तथा नामको स्थापना समझ जाय और स्थापनाको भावादिक जान जाय इत्यादि व्यभिचार दूर करनेके लिये और यथार्थ समझानेके लिये यह निक्षेप विधि है । द्रव्यार्थिक नयसे तो नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप हैं। पर्यायार्थिक नयसे भाव निक्षेप है
तद्-शब्द-ग्रहण १।१ किमर्थम् १।१ सर्व-	=[इस सूत्रमें] तद् शब्दका प्रयोग किस लिये है ? सब=[सम्यग्दर्शना-
सङ्ग्रह-अर्थम् १।१ ।	दिक तीन और जीवादि सात तत्त्वों] के समुच्चयके लिये [तद्] है
असति ७।१ हि * तद्-शब्दे ७।१ सम्यग्दर्शन-	=क्योंकि (हि-इस सूत्रमें) तद् शब्दके न होनेपर सम्यग्दर्शन
आदीनां ६।३ प्रधानानाम् ६।३ एव * न्यासेन ३।१	=आदि [तीन] मुख्योंका ही न्यास (=निक्षेप) शब्दसे
अभिसम्बन्धः १।१ स्यात् T	=संयोग वा ग्रहण होता [जीवादिक सात तत्त्वोंके ग्रहण करनेसे रहजाते]
तद्-विषयभावेन ३।१ उपगृहीतानां ६।३	=उन (सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र) के प्रकरण भावकरि स्वीकृत
अप्रधानानाम् ६।३ जीवादीनाम् ६।३	=गौण जीवादि सात तत्त्वोंका
न्यासेन ३।१ अभिसम्बन्धः १।१ न स्यात् T	=(सूत्रमें तद् शब्द न लाते तो न्यास शब्दसे ग्रहण वा सम्बन्ध) न होता अर्थात् तद् शब्द सूत्रमें न लाते तो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका तो न्यास-निक्षेप-वा लोकव्यवहार ठहरता परन्तु जीवादि सात तत्त्वोंका निक्षेप न ठहरता

(१) कहीं कहीं पर 'नाम शब्द, के स्थानमें नामादि शब्द ऐसा पाठ है ॥ वहा पर कोई ऐसा अर्थ लेते हैं । हमने दो प्रकारके अर्थ लिख दिये हैं ॥

तच्छब्दग्रहणे पुनः क्रियमाणे सति सामर्थ्यात्प्रधानानामप्रधानानां च ग्रहणं सिद्धं भवति ॥ एवं नामादिभिः प्रस्तीर्णानामधिकृतानां तत्त्वाधिगमः कुतः ? इत्यत इदमुच्यते ।

पुनः तद्-शब्द-ग्रहणे ७।१। क्रियमाणे ७।१। सति ७।१	= और [=पुनः] तद् शब्दके ग्रहण किये जानेपर [उस तद् शब्दकी]
सामर्थ्यात् ५।१ प्रधानानाम् ६।३ अप्रधानानां च	= शक्तिसे मुख्य [सम्यग्दर्शनादि] का और गौण (सप्त तत्त्वों) का
ग्रहणं १।१ सिद्धं १।१ भवति एवं नामादिभिः ३।३	= ग्रहण सिद्ध हो जाता है । इसप्रकार नामादि निक्षेप करि
प्रस्तीर्णानाम् ६।३ । अधिकृतानां ६।३ तत्त्व-	= प्रकरण वालोंके (विस्तारका सम्यग्दर्शनादि और सात तत्त्वोंका) यथार्थ
अधिगमः १।१ कुतः इति अतः इदम् १।१ । उच्यते	= ज्ञान (अधिगम) क्यों कर होता है इसलिये यह [सूत्र] कहा जाता है कि

प्रमाणनयैरधिगमः ॥ ६ ॥

प्रमाण-नयैः ३।३	= सूत्रार्थ प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणोंसे और द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंसे
अधिगमः १	= (उक्त सम्यग्दर्शनादि और जीवादि सात तत्त्वोंके स्वरूपका ज्ञान) होता है ।

पदच्छेद तथा विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः भाषानुवाद ।

(१) इस सूत्रकी टिप्पणीमें प्रस्तीर्को हम प्रमाणित कर चुके हैं ॥ भूत कृदन्तका त लगानेसे प्रस्तीर्त हुआ ॥ रेफ और दकारसे परे (रदाभ्याम् ५) निष्ठा (भूत कृदन्त) के त कारके स्थानमें (=निष्ठातः ६) न (= नः १) आदेश हो और पहिलेकी (=पूर्वस्य) दकारके स्थान में (दः १) भी (=च) (नकारका आदेश) हो इसलिये प्रस्तीर्न हुआ और भिद्+त्=भिन्+न हुआ ॥ (देखो अध्यायी रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२) यदि न् उसही शब्दमें ऋ—र्—ष् के पश्चात् आवे तो इस न्का ण् हो जाता है ॥ यदि कोई स्वर और य्-र्-व्-ह् । क्-ख्-ग्-घ्-ङ् । प्-फ्-ब्-भ्-म् मेंसे कोई अक्षर इस न और ऋ-र्-अथवा ष् के मध्य आजावे तो भी उक्त परिवर्तन हो जावेगा (जैसे शरीराणि— कार्माणि नारकाणाम् इत्यादि) परन्तु पदान्तमें न् होनेसे यह परिवर्तन न होगा जैसे नरान् ॥ इसलिये प्रस्तीर्ण हुआ प्रस्तीर्णानाम् षष्ठी बहुवचन नपुंसक लिंग है और प्रस्तीर्णम् नपुंसक लिंग है एकवचन है

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ सामान्य अपेक्षासे एकसा है ।

नामादिनिक्षेपविधिनोपक्षिप्तानां जीवादीनां तत्त्वं प्रमाणाभ्यां नयैश्चाधिगम्यते । प्रमाणनया वक्ष्यमाणलक्षणविकल्पाः । तत्र प्रमाणं द्विविधम् । स्वार्थं परार्थं च । तत्र स्वार्थं प्रमाण श्रुतवर्ज्यम् । श्रुतं पुनः स्वार्थं च भवति परार्थं च ।

नामादि निक्षेप विधिना ३।१ उपन्क्षिप्ताना ६।११	=नाम–स्थापना द्रव्य भाव निक्षेप विधानसे अंगीकृत वा स्वीकृत
जीवादीना ६।११ तत्त्व १।११ प्रमाणाभ्या ३।११	=जीवादिकोंका यथार्थ स्वरूप (=तत्त्व) प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणोंसे
च॰ नयै ३।१ अधिगम्यते T । प्रमाण–	=और (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक) नयोंसे जाना जाता है । प्रमाण
नयाः १।१ वक्ष्यमाणलक्षणविकल्पाः १।१	=और नय आगे कहे जानेवाले लक्षण और भेदसयुक्त हैं
तत्र प्रमाण १।११ द्विविधम् १।११ स्वार्थं १।११ च	=तहां प्रमाण दो प्रकार हैं । स्वार्थ और
परार्थं १।११ तत्र स्वार्थं प्रमाण १।११ श्रुतवर्ज्यं १।११	=परार्थ । तहां स्वार्थ प्रमाण श्रुत (=वचन) रहित है अर्थात्
	=मतिज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान स्वार्थरूप ही हैं
पुनः श्रुत १।११ स्वार्थ १।११ च॰भवति T	=और (पुनः) श्रुतज्ञान स्वार्थ (=ज्ञानरूप) होता है (=भवति)
परार्थं १।११ च भवति	=और (=च) परार्थ (अर्थात् वचनरूप) भी (=च) होता है [भवति]

(१) "जीवादीना" शब्द लानेसे यह न समझलेना चाहिये कि प्रमाण और नयोंसे जीवादिक सात तत्वोंका ही ज्ञान होता है सम्यग्दर्शनादि तीनका ज्ञान नहीं होता है । हमारी समझमें जीवादीना वाक्यके पहले सम्यग्दर्शनादीनां वाक्य रह गया है और पाठ "सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां" होना चाहिये सम्यग्दर्शनादीनां प्रधान होनेसे जीवादीना वाक्यसे प्रथम होना चाहिये अथवा यों समझ लो कि जीवादीनांमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र और सातों तत्व ऐसे दशों गर्भित हैं जैसा कि इसी सूत्रके नीचे दी हुई तत्वार्थराजवार्तिककी पंक्तिसे प्रगट है । "प्रमाणनयास्तैरधिगमो भवति सम्यग्दर्शनादीना जीवादीना =सम्यग्दर्शन आदिका (और) जीवादिका प्रमाण और नय तिनकरि ज्ञान होता है ।

(२) कहीं कहीं "प्रमाणेभ्य" पाठ हैं यहा पांच ज्ञान लेने और यह पंचमी विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंग है ।

(३) गम् भ्वादि प्रथम गण–परस्मैपद धातु जाना अर्थमें है अधि उपसर्ग लगानेसे परस्मैपदी ही बना रहता है । अधिगम्=जानना । य कर्मणि प्रत्यय और ते वर्तमानकालकी क्रिया अन्यपुरुष–एकवचन–आत्मनेपदी लगानेसे अधि+गम्+य+ते=अधिगम्यते रूप (जाना गया है) इस अर्थमें बन जाता है ॥

ज्ञानात्मकं स्वार्थम् । वचनात्मकं परार्थम् ॥ तद्विकल्पा नयाः ॥ अत्राह । नयशब्दस्य अल्पाच्तरत्वात् पूर्वनिपातः प्राप्नोति । नैष दोषः । अभ्यर्हितत्वात्प्रमाणस्य तत्पूर्वनिपातः । अभ्यर्हितत्वं च सर्वतो वलीयः । कुतोऽभ्यर्हितत्वम् ? नयप्ररूपणप्रभवयोनित्वात् ॥

ज्ञान-आत्मकं १।। स्वार्थम् १।। वचन-आत्मकं १।।	=स्वार्थ ज्ञान स्वरूप है । वचनरूप
परार्थम् १।। । तद्-विकल्पाः १। नयाः १।	=परार्थ है । उस (श्रुत प्रमाण) के भेद नय हैं
अत्र आह T नयशब्दस्य ६ । अल्प-अच्तरत्वात् ५।।	=यहां [शिष्य] पूछता है कि नय शब्दके थोडे अक्षर होनेसे [द्वंद्वसमासमें]
पूर्व-निपात १। प्राप्नोति T	=प्रथम पतन वा ग्रहण प्राप्त होता है अर्थात् द्वंद समासका नियम है कि जो शब्द मिलाये जांवें उनमेंसे थोडे अक्षरवाला शब्द पहिले लाना चाहिये पश्चात् बहुत अक्षरयुक्त शब्द । इसलिये प्रमाणनयैरधिगमः सूत्रके स्थानमें " नयप्रमाणैरधिगमः " सूत्र होना चाहिये
प्रमाणस्य ६।। अभ्यर्हितत्वात् ५।। न एषः १। दोषः १।	=उत्तर-प्रमाणको [नयसे] पूज्यपना वा प्रधानपना होनेसे यह दोष नहीं है
तत्पूर्व-निपातः १। च अभ्यर्हितत्वं १।।	= (कि) उस (प्रमाण) का इस सूत्रमें प्रथम ग्रहण है और श्रेष्ठपना
सर्वतः ※ बलीयः १।। कुतः अभ्यर्हितत्वम् १।।	=सबसे बलिष्ठ होता है । क्योंकर (नयोंसे प्रमाणोंमें) प्रधानपना है
नय-प्ररूपण-प्रभव-योनित्वात् ५।।	=क्योंकि नयके भेदोंकी उत्पत्तिका (=प्रभव) कारण [=योनि] प्रमाण है

(१) प्राप्नोति=प्र+आप्+नु+ति+आप् स्वादि पंचमगणका परस्मैपद धातु है । स्वादिगणका नु विकरण और प्र उपसर्ग तथा ति परस्मैपद एक वचन अन्य, पुरुष, वर्तमानकालका प्रत्ययसे प्र+आप्+नु+ति बनालिया । अङ्गके अंतका स्वर और अंगके उपांतक ह्रस्व स्वरके पित्संज्ञक (मि-सि-ति । अम्-स्-त । आनि-आव-आम-तु परस्मैपदी और ऐ-आवहै-आमहै । आत्मनेपदी) प्रत्ययके पहिले गुण आदेश हो जाता है प्राप्नो+ति=प्राप्नोति (२) जो समुच्चित और समुच्चेय मिलकर बना हो उसको द्वन्द समास कहते हैं ॥ द्वन्द समासका चिन्ह 'और' (दो शब्दोंके वीचमें) है ॥ और शब्द द्वन्द (समासका चिन्ह) से जो पहले (शब्द) हो वह समुच्चित और पीछेका शब्द समुच्चय कहलाता है जैसे प्रमाण और नय =प्रमाणनयौ इसमें प्रमाण शब्द समुच्चित है और नय समुच्चेय है [३] बलीयस् शब्द त्रिलिंगी है यहांपर नपुंसक लिंग एक वचन प्रथमा विभक्तिमें है (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २६५)

एवं ह्युक्तं प्रगृह्य प्रमाणतः परिणतिविशेषादर्थावधारणं नय इति । सकलविषयत्वाच्च प्रमाणस्य । तथा चोक्तम् "सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीन इति ॥" नयो द्विविधः । द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च । पर्यायार्थिकनयेन भावतत्त्वमधिगन्तव्यम् । इतरेषां त्रयाणां द्रव्यार्थिकनयेन सामान्यात्मकत्वात् ॥

एव * हि* उक्तम् १।१।१	= क्योंकि (= हि) इसप्रकार (नयका लक्षण आगम वा शास्त्रमें) कहा गया है कि
प्रमाणतः* प्रगृह्य परणति-	= प्रमाणसे ग्रहणकरि [सत्त्व-असत्त्व नित्य अनित्य इत्यादि]
विशेषाद् १।१ अर्थ अवधारण १।१।१ नय १।१ इति	= भेदसे पदार्थका [= अर्थ] निश्चय करना ऐसी नय है
च प्रमाणस्य १।१।१ सकलविषयत्वात् १।१।१	= और प्रमाणका सपूर्ण विषयभाव (धर्म और धर्मी) है
तथा च* उक्तम् १।१।१	= जैसा कि कहा गया है ॥
सकल आदेश. १।१ प्रमाण आधीन १।१	= सकलादेश प्रमाणके आश्रय है–पदार्थके सब देशोंको कहै सो प्रमाण है
विकल आदेश १।१ नय–आधान. १।१ इति*	= विकलादेश नयके आधार है—पदार्थके एक देशको कहै सो नय है
नय १।१ द्विविध १।१ द्रव्यार्थिक १।१	= नय दो प्रकार वा दो भांति है। द्रव्यार्थिक [नय]
च पर्यायार्थिक १।१ । पर्यायार्थिकनयेन १।१	= और पर्यायार्थिक [नय] । पर्यायार्थिक नयसे
भावतत्त्वम् १।१।१ अधिगन्तव्यम् १।१।१	= भावतत्त्व अथवा पर्यायतत्त्व अर्थात् भावनिक्षेपका स्वरूप जानना चाहिये
इतरेषां १।१।१ त्रयाणां १।१।(नाम स्थापना द्रव्याणां)	= अन्य तीन (नाम-स्थापना द्रव्य निक्षेप) का
सामान्य आत्मकत्वात् १।१।१ द्रव्यार्थिक-	= सामान्यस्वरूप होने (के हेतु) से द्रव्यार्थिक
नयेन १।१ (अधिगन्तव्यम्)	= नयकरि जानना चाहिये (= शब्दार्थ ज्ञान किया जाना चाहिये क्योंकि द्रव्यार्थिक नय सामान्यको ग्रहण करती है)

१ प्रगृह्य सम्बन्धकभूतकृदन्त वा सम्बन्धकसूचक भूतकृदन्त है ॥ (२) भावतत्त्वके स्थानमें पर्यायतत्त्व पाठ अन्य पुस्तकमें है अर्थ दोनोंका एक ही है (३) त्रयाणांके स्थानमें 'नामस्थापनाद्रव्याणां' यह वाक्य अन्य प्रतिमें है, हमारी समझमें "त्रयाणां नामस्थापनाद्रव्याणां" समस्त वाक्य हो तो अर्थ स्पष्ट हो जाता है ॥

द्रव्यमर्थः प्रयोजनमस्येत्यसौ द्रव्यार्थिकः ॥ पर्यायोऽर्थः प्रयोजनमस्येत्यसौ पर्यायार्थिकः ॥ तत्सर्वं समुदितं प्रमाणेनाधिगन्तव्यम् ॥ एवं प्रमाणनयैरधिगतानां जीवादीनां[2] पुनरप्याधिगमोपायान्तरप्रदर्शनार्थमाह—

द्रव्यम् १।१ अर्थः १।१ प्रयोजनम् १।१ अस्य ६।१	= द्रव्य है विषय प्रयोजन जिसका [अथवा इसका]
इति * असौ १।१ द्रव्यार्थिकः १।१	= ऐसा यह द्रव्यार्थिक [नय] है
पर्यायः १।१ अर्थः १।१ प्रयोजनम् १।१ अस्य ६	= पर्याय है विषय [अर्थ] प्रयोजन जिसका [अथवा इसका]
इति असौ १।१ पर्यायार्थिकः १।१ । तत्सर्वं १।१ समुदितं १।१	= ऐसा यह पर्यायार्थिक [नय] है । ये सब इकट्ठे
प्रमाणेन ३।१ अधिगन्तव्यम् १।१ एवं *	= प्रमाणकर जाने जाते हैं । इसप्रकार
प्रमाणनयैः ३ अधिगताना ३ । जीवादीनां ६।१	= प्रमाण और नयोंसे ज्ञात या जाने गये (सम्यग्दर्शनादि और) जीवादि तत्त्वोंका
पुनः * अपि * अधिगम–उपाय अन्तर—	= फिर भी जाननेका अन्य उपाय
प्रदर्शनार्थम् १।१ आह T	= दिखावनेके लिये (आचार्य निम्न सूत्रको) कहते हैं कि—

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः[3] ॥ ७ ॥

निर्देश–स्वामित्व–साधन–अधिकरण–स्थिति–विधानतः * सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां च अधिगमः भवति॥ ७ ॥

(१) अदस् सर्वनाम वह अथवा यह इन दो अर्थोंमें आता है। यहां पर यह ऐसा अर्थ है क्योंकि अस्य शब्दसे इसका संबंध है जो षष्ठी विभक्ति एक वचन पुल्लिंग इदम् (=यह) शब्दका है। असौ प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिंग यहां पर है ।

(२) जीवादीनां–यहां पर भी छठवें सूत्रकी वृत्तिके आदिमें जो टिप्पणी दी है उसके अनुसार "सम्यग्दर्शनादीनां" के कथनको भी अग्रिम सातवें सूत्रमें गर्भित समझ–लो क्योंकि तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें इस सातवें सूत्रके नीचे ये वाक्य हैं " केषामधिगमः ? जीवादीनां सम्यग्दर्शनादीनां च " सातवें सूत्रमें किनका अधिगम है जीवादि सात तत्त्व और सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रोंका ।

(३) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है ।

निर्देशः स्वरूपाभिधानम्। स्वामित्वमाधिपत्यम्। साधनमुत्पत्तिनिमित्तम्। अधिकरणमधिष्ठानम्। स्थितिः कालपरिच्छेदः। विधानं प्रकारः॥

निर्देशत स्वामित्वतः,	= सूत्रार्थ–वस्तुके नाम संकीर्तन वा स्वरूप कथनसे, अधिपतिपनासे,
साधनत, अधिकरणत,	= उत्पत्तिके निमित्तसे (जैसे–निसर्गसे अधिगमसे) आधार वा अधिष्ठानसे
स्थितितः,	= कालकी मर्यादा–कालके प्रमाण–कालकी सीमा अथवा कालपरिच्छेदसे,
च विधानतः* सम्यग्दर्शनादीनां ६।।।	= भेदसंख्या वा भेद प्रभेदके कथनसे, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका
जीवादितत्त्वानां ६।।। अधिगमः १।१ भवति	= तथा जीवादिक सात तत्त्वोंका ज्ञान [= अधिगमः] होता है ॥ 'ऐसा भावार्थ है कि इन निर्देशादिकका द्वंद्व समासकरि बहुवचनरूप करण अर्थ प्रमाण नयकी ज्यों जानना। संक्षेपतैं तो अधिगमका उपाय प्रमाण नय कहे। बहुरि मध्यम स्थानतैं शिष्यके आशयके वशकरि इनि निर्देश आदि अनुयोग करि कहना। तहां कहा वस्तु है ? कौनके है ? काहेकरि है ? कौन विषै है ? कितेक काल है ? के प्रकार है ऐसे छह प्रश्न होय हैं, इनका उत्तर कहना ते निर्देशादिक हैं' सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ५९।
स्वरूप अभिधान १।।। निर्देशः १।१ आधिपत्य १।।।	= (वस्तुके) स्वरूप (मात्र)का कथन सो निर्देश है। (वस्तुका) अधिपतिपना
स्वामित्वम् १।।। उत्पत्तिनिमित्त १।।। साधनम् १।।।	= सो स्वामित्व है। (वस्तुकी) उत्पत्तिका कारण सो साधन है
अधिष्ठानम् १।।। अधिकरणम् १।।। काल–	= (वस्तुका) आधार (सो) अधिकरण है। कालका
परिच्छेदः १।१ स्थितिः १।।। विधान १।।। प्रकारः १।१	= प्रमाण वा मर्यादा (सो) स्थिति है। वस्तुका प्रकार वा भेद [सो] विधान है

(१) विधान शब्दमें तसिल् (= तस्) प्रत्यय लगानेसे विधानत शब्द बना है॥ अष्टाध्यायी 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः १।१।३८ ध सूत्र से यह अव्यय है पंचमी विभक्तिका हेतु अर्थ देता है॥ द्वन्द्व समास तोड़नेसे प्रत्येक छहो शब्दमें यह तसिल् प्रत्यय लगेगा निर्देशत आदि छह उक्त रूप हो जायेंगे॥ इल् इत् संज्ञक होनेसे लोपको प्राप्त होकर केवल तस् रह जाता है।

तत्र सम्यग्दर्शनं किमिति प्रश्ने तत्त्वार्थश्रद्धानमिति निर्देशः। नामादिर्वा॥ सम्यग्दर्शनं कस्येत्युक्ते सामान्येन जीवस्य॥ विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु नारकाणां पर्याप्तकानामौ-

तत्र * सम्यग्दर्शन १।१ किम् १।१ इति प्रश्ने ७।१ =तहां सम्यग्दर्शन क्या है ऐसा प्रश्न होने पर
तत्त्वार्थ-श्रद्धानं १।१ इति निर्देशः १।१ =तत्त्वार्थका श्रद्धान यह (=इति) निर्देश (अनुयोग) है।
वा नामादिः १।१ सम्यग्दर्शनं १।१ =अथवा नाम स्थापना-द्रव्य-भाव सो निर्देश (अनुयोग) है तत्त्वार्थ श्रद्धान
कस्य ६।१ इति उक्ते ७।१ सामान्येन ३।१ =किसके होता है ऐसा प्रश्न होनेपर (कहते हैं कि) सामान्य अपेक्षाकरि
जीवस्य ६।१ विशेषेण ३।१ गति-अनुवादेन ३।१ =जीवके होता है। विशेषकरि गतिके कथनानुसारसे
नरक-गतौ ७।१ सर्वासु ७।३ पृथिवीषु ७।३ =नरक गतिमें सब पृथिवीनमें (अर्थात् प्रथम नरकसे लेकर सातवे नरकतकके)
पर्याप्तकानां ६।३ नारकाणां ६।३ =पर्याप्त नारकियोंके

नरक गतिके सम्यक्त्वका मानचित्र

प्रथम नरकमे कौन कौन सम्यक्त्व
- पर्याप्तक नारकियोंके तीनों सम्यक्त्व
- अपर्याप्तक नारकियोंके क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व

दूसरे नरकसे सातवेंतक कौन २ सम्यक्त्व
- पर्याप्तक नारकियोंके उपशम और वेदक सम्यक्त्व
- अपर्याप्तक नारकियोंके कोई सम्यक्त्व नहीं

(श्लोक) प्रथमायां त्रितयं स्यात्पर्याप्तानां द्वयं तदितरेषाम्। अशमजमितरास्वपि वाऽक्षयजं पर्याप्तकानां तु॥ १॥ सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १५॥

प्रथमायां ७।१ त्रितयं १।१ स्यात् T पर्याप्तानां ६।३ =पहले (नरक) में पर्याप्तक (नारकियों) के तीनों सम्यक्त्व हैं
अशमजम् १।१ तद् =उपशम (सम्यक्त्व) वर्जित (अ-शमजं) उन (=तद्-प्रथम नरकके पर्याप्तकों) से
इतरेषाम् ६।३ द्वयम् १।१ =भिन्न (इतरेषाम् अर्थात् पहले नरकके अपर्याप्तकों) के दो (वेदक क्षायिक सम्यक्त्व) है
इतरासु ७।३ अपि वा पर्याप्तकानां ६।३ तु * =और (=तु) अन्य अवशेष (अर्थात् दूसरी पृथिवी वा, नरकसे सातवें) में पर्याप्तक नारकियोंके भी (दो)
अक्षयजं १।१ =क्षायिक सम्यक्त्वको छोडकर (अक्षयजं, औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व) हैं।

औपशमिकं क्षायोपशमिकं चास्ति ॥ प्रथमायां पृथिव्यां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति।

औपशमिक ;।। च क्षायोपशमिक ;।। अस्ति	= औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है
प्रथमाया ३।। पृथिव्यां ३।।	= पहले नरकमें अर्थात् भूमिके अप्बहुलभागमें जहां प्रथम नरक है उसमें
पर्याप्त-अपर्याप्तकानाम् ६।। क्षायिक ;।।	= पर्याप्तक और अपर्याप्तक (नारकियों) के क्षायिक (सम्यग्दर्शन)
च * क्षायोपशमिक ;।। अस्ति T	= और (च) क्षायोपशमिक [सम्यग्दर्शन] होता है

(१) रत्नप्रभा नाम पृथ्वी है सो एक लाख अस्सी सहस्र (१८००००) योजनकी माटी है। उसकी मोटाईके स्कन्धमें तीन विभाग हैं उन में सोलह सहस्र (१६०००) योजनका मोटा ऊपरका खर भाग है। तिस (खरभाग) में चित्रावज्रा वैडूर्य इत्यादि एक २ सहस्र योजनकी माटी सोलह पृथ्वी है और तिस खर भागके नीचे पंक भाग है सो चौरासी सहस्र योजन मोटा है। इस पंक भागके नीचे अस्सी सहस्र योजन मोटा अब्बहुल भाग है उस अब्बहुल भागमें प्रथम नरक है उसमें सङ्क्लेशित नारकी रहते हैं ॥ नारकियोंके वसनेके लिये तीस लाख बिले हैं और तेरह प्रस्तर (=पडल) हैं। इसलिये "भूमिके अब्बहुल भागमें जहां प्रथम नरक है उसमें" यह वाक्य अनुवादमें लाये हैं।

सामान्येन सम्यग्दर्शनस्य स्वामी जीवो भवतीति स्वामित्वमुच्यते ( ) विशेषेण तु चतुर्दशमार्गणानुवादेन स्वामित्वमुच्यते (संस्कृत सर्वार्थ०)

(२) सामान्येन ३।। सम्यग्दर्शनस्य ६।। स्वामी १।	= संक्षेप (अपेक्षा) से सम्यक्त्वका अधिपति
जीव १। भवति T इति स्वामित्वम् १।। उच्यते T	= चेतन होता है। ऐसा अधिपतिपन वर्णित है
(३) विशेषेण ३। तु * चतुर्दश-मार्गणा—	= और (= तु) विस्तारसे अथवा भेद प्रभेदसे चौदह मार्गणा (गति-इन्द्रिय—काय-योग-वेद-कषाय-ज्ञान संयम-दर्शन—लेश्या—भव्य—सम्यक्त्व—संज्ञा—या सैनी और आहारक) की
अनुवादेन ३। स्वामित्वम् १।। उच्यते T	= अपेक्षासे अधिपतिपना कहा गया है

(४) वच् (=कहना) अदादि द्वितीय गणका द्विकर्मक परस्मैपद अनिट् धातु है ॥ व का परिवर्तन (नीचेके नियमसे) उ में होकर उच बना, य कर्मणि प्रत्यय और ते (अन्य पुरुष—एकवचन-आत्मनेपदी वर्तमान कालकी क्रियाका चिह्न) लगानेसे उच्यते बन गया। वच् स्वप्-यज् वप्-वद्-वस्-वह्-ग्रह-व्यध्-वश्-व्यच् वश्च-प्रच्छ्-भ्रस्ज-धातुके य्-र्-ल्-व् का परिवर्तन क्रमसे इ-उ-ऋ-लृ में केवल परस्मैपदमें और कर्मणिप्रधान य प्रत्ययके पहिले हो जाता है ॥ देखो अष्टाध्यायी ६-१-१५ वचिस्वपियजादीनां किति' और १६ वा सूत्र ॥

तिर्यग्गतौ तिरश्चां पर्याप्तकानामौपशमिकमस्ति। क्षायिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तापर्याप्तकानामस्ति॥ तिरश्चीनां क्षायिकं नास्ति।

तिर्यग्-गतौ ७।१ पर्याप्तकानाम् ६।३ तिरश्चां ६।३	= तिर्यंचगतिमें पर्याप्तक तिर्यंचोंके
औपशमिकम् १।१ अस्ति T क्षायिकं १।१	= उपशम सम्यक्त्व होता है॥ क्षायिक सम्यग्दर्शन
च क्षायोपशमिकं १।१ पर्याप्त-अपर्याप्तकानां ६।३	= और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पर्याप्तक और अपर्याप्तक तिर्यंचोंके
अस्ति तिरश्चीनाम् ६।३ क्षायिकं १।१ न* अस्ति	= होता है। तिर्यंचनियोंके क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है

(१) पर्याप्तानां त्रितयं द्वयं तिरश्चामशान्तमितरेषाम्। क्षायिकवर्ज्यं द्वितयं पर्याप्तास्वेव तत्स्त्रीषु। सर्वार्थ० पृ० १५।

पर्याप्तानां ६।३ त्रितयं १।१ अशान्तम् १।१	= पर्याप्तक (तिर्यंचों) के तीनों (सम्यक्त्व) होते हैं। उपशमवर्जित (अशान्तम्)
इतरेषाम् ६।३ तिरश्चाम् ६।३ द्वयं १।१	= अन्य वा अवशेष (= इतरेषाम्) अर्थात् अपर्याप्तक तिर्यंचोंके दो होते हैं
क्षायिक-वर्ज्यं १।१ द्वितयं १।१	= क्षायिक (सम्यक्त्व) छोड़कर दो (औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व)
पर्याप्तासु ७।३ एव * तत्स्त्रीषु ७।३	= उन (तिर्यंचों) की (= तद्) पर्याप्तक ही (= एव) स्त्रियोंमें (न कि अपर्याप्तक तियचनियोंमें) होते हैं। भावार्थ ऐसा है कि भोगभूमिके पर्याप्तक तिर्यचोंके तीनों सम्यक्त्व होते हैं और अपर्याप्तक तिर्यंचोंके वेदक (= क्षायोपशमिक) और क्षायिक-सम्यक्त्व हैं कर्मभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचोंके उपशम और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होते हैं। कर्मभूमिकी पर्याप्तक तिर्यंचनियोके और भोगभूमिकी पर्याप्तक तिर्यंचनियोके औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होते हैं॥ स्मरण रहे कि कर्मभूमिकी अपर्याप्तक तिर्यंचनीके और भोगभूमिकी अपर्याप्तक तिर्यंचनीके और कर्मभूमिके अपर्याप्तक तियचके भी कोई सम्यग्दर्शन नहीं है जैसा कि निम्न मानचित्रसे प्रगट है

भोगभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचके तीनों सम्यक्त्व	भोगभूमिके अपर्याप्तक तिर्यंचके वेदकसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व	कर्मभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचके उपशम और वेदकसम्यक्त्व	भोगभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचनीके और कर्मभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचनी के उपशम और वेदक सम्यक्त्व	कर्मभूमिके अपर्याप्तक तिर्यंच तिर्यंचिनीके भोगभूमिकी अपर्याप्तक तिर्यंचनीके सम्यक्त्व नहीं है

कुत इत्युक्ते

कुतः ॐ इति उक्ते ॥

=क्योंकर । (तिर्यंचिनियोंके क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता) ऐसा पूछनेपर कहते हैं कि

(१) सर्वार्थसिद्धिसस्कृतवृत्तिकी हमारे पास इस समय दो सस्करण वा आवृत्ति हैं। उनमें तिरश्चीनां क्षायिकं नास्ति वाक्यके पश्चात्-न-पर्याप्तकानाम् तक पाठभेद "भाव" के अतिरिक्त नहीं है किन्तु क्रममें अन्तर है जो निम्न लिखित सन्दर्भ दोनो पाठोंसे जान लो।

प्रथम आवृत्तिका पाठ

नास्ति । औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव ना पर्याप्तिकानाम् । मनुष्यगतौ मनुष्याणां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति । औपशमिकं पर्याप्तकानामेव नापर्याप्तकानाम् । कुत इत्युक्ते मनुष्य कर्मभूमिज एव दर्शनमोहक्षपणप्रारम्भको भवति । क्षपणप्रारम्भकालात्पूर्वं तिर्यक्षु बद्धायुष्कोऽपि उत्कृष्टभोगभूमितिर्यक्पुरुषेष्वेवोत्पद्यते । न तिर्यक्स्त्रीषु भाववेद—स्त्रीणां तासां क्षायिकासम्भवात् । एवं तिरश्चामप्यपर्याप्तकानां क्षायोपशमिकं ज्ञेयम् । न पर्याप्तकानाम् । मानुषीणां इत्यादि

दूसरी आवृत्ति वा सस्करणका पाठ

नास्ति । कुत इत्युक्ते मनुष्य कर्मभूमिज एव दर्शनमोहक्षपणप्रारम्भको भवति । क्षपणप्रारम्भकालात्पूर्वं तिर्यक्षु बद्धायुष्कोऽपि उत्कृष्टभोगभूमि तिर्यक्पुरुषेष्वेवोत्पद्यते । न तिर्यक्स्त्रीषु । द्रव्यवेदस्त्रीणां तासां क्षायिकासम्भावात् । एवं तिरश्चामप्यपर्याप्तकानां क्षायोपशमिकं ज्ञेयम् । न पर्याप्तकानाम् ॥ औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम् । मनुष्यगतौ मनुष्याणां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति । औपशमिकं पर्याप्तकानामेव ना पर्याप्तकानाम् । मानुषीणां इत्यादि

(क) प्रथम आवृत्ति सर्वार्थसिद्धिमें भाव शब्द अशुद्ध है दूसरी आवृत्तिमें इसके स्थानमें द्रव्य शब्द है सो ठीक है क्योंकि द्रव्यवेद स्त्रीके क्षायिक सम्यक्त्वका होना असम्भव है भाववेद स्त्रीके क्षायिक सम्यक्त्व हो सका है। हमने अपने पाठमें "द्रव्य" रक्खा है।

(ख) दूसरी आवृत्तिके पाठका क्रम ही ठीक है क्योंकि भाष्यकारके कथन करनेपर कि तिर्यंचिनियोंके क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है शिष्यने तिर्यंच गतिके शेषभागको सम्यक्त्वके सबधमें पूर्ण होनेके पहिले ही तत्काल प्रश्न कर दिया कि कुत इत्युक्ते । = क्योंकर । तब आचार्यने मनुष्य कर्मभूमिज तासां क्षायिकासम्भवात् । वाक्योंमें उत्तर देकर अवशेष भाग (तिर्यंचोंके सम्यक्त्व होनेके सम्बन्धमें) औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तकानाम् । पीछे कहा । पश्चात् 'मनुष्यगतौ मनुष्यगतिमें सम्यक्त्व कहा

(ग) 'एवं तिरश्चामप्यपर्याप्तकानां क्षायोपशमिकं ज्ञेयम् । न पर्याप्तकानाम् ।" यह वाक्य दोनों प्रतियोंमें अशुद्ध और व्यर्थ है क्योंकि कोई सम्यक्त्व ऐसा नहीं कि जीवकी पर्याप्त अवस्थामें न हो परन्तु अपर्याप्तक अवस्थामें हो (२) क्षायोपशमिकं पर्याप्तापर्याप्तकानामस्ति" वाक्य और उसके अर्थके विरुद्ध पड़ता है। हमने पाठमें इसको नहीं रक्खा है।

जगरूपसह ... तिर्यग्गतौ ...

मज एव दर्शनमोहक्षपणप्रारम्भको भवति। क्षपणप्रारम्भकालात्पूर्वं तिर्यक्षु बद्धा-गभूमितिर्यक्पुरुषेष्वेवोत्पद्यते। न तिर्यक्स्त्रीषु। द्रव्यवेदस्त्रीणां तासां क्षायिकासं-पशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम्॥

यः ॥१ कर्म-भूमिजः ॥१ एव दर्शनमोह-	=कर्मभूमिका जन्मा ही (=एव) मनुष्य दर्शन मोहकी प्रकृतियोंको
क्षपण-प्रारम्भकः ॥१ भवति।	=क्षपावनेका प्रारम्भ करनेवाला होता है (और वह दर्शनमोहका क्षपण केवली अथवा श्रुतकेवलीके निकट अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्त-संयत इन चार गुणस्थानोंमें होता है)
क्षपण-प्रारंभकालात् ॥१ पूर्वं ॥११ तिर्यक्षु ॥७	= क्षपण करनेके प्रारंभ समयसे पहिले तिर्यंचों (= तिर्यंच गति) में
बद्ध-आयुष्कः ॥१ अपि उत्कृष्टभोगभूमितिर्यक्-	=आयु बांधनेवाला भी उत्तम भोगभूमिके तिर्यंच
पुरुषेषु ॥७ एव ※ उत्पद्यते	=पुरुष (पुलिंग अर्थात् द्रव्य पुरुष) में ही जन्म लेता है वा उपजता है
न तिर्यक्स्त्रीषु ॥७	=न कि (उत्तम भोगभूमिकी) तिर्यंचनियोंमें [जन्म लेता है]
द्रव्यवेदस्त्रीणां ॥६ तासां ॥६ क्षायिक-असंभवात् ॥५	=क्योंकि तिन द्रव्य वेद तिर्यंच स्त्रियोंके क्षायिक सम्यक्त्वका होना असंभव है
औपशमिकं ॥११ क्षायोपशमिकं ॥११ च पर्याप्ति-	=उपशम सम्यक्त्व और वेदकसम्यक्त्व पर्याप्तिक
कानां ॥६ [तिरश्चीनां ॥६] एव न, अपर्याप्तिकानां ॥६ =	[तिर्यंचनियों) के ही होता है न कि अपर्याप्तिकोंके

(१) पर्याप्तक किसी तिर्यंचके, देवके अथवा नारकीके क्षायिक सम्यक्त्वका प्रारम्भ नहीं होता है॥

(२) तिरस् (तिरः) अञ्चति गच्छति इति तिर्यङ्=वक्रगामी अर्थात् वक्र (=तिरः) गमन करता है (अञ्चति=गच्छति) ऐसा वक्रगामी तिर्यङ् है तिर्यञ्च पुलिंग है और पशु-पक्षी-टेढ़ा चलनेवाला—वक्रगामी अर्थमें है जहां व्याकरणके नियमसे ञ् का लोप होकर और च् का परिवर्तन क् में होकर तिर्यक् हो गया है वहां पश्चात् सु प्रत्यय सप्तमी बहुवचन लगानेसे तिर्यक्+सु हुआ=तिर्यक्+षु (देखो टिप्पणी पृष्ठ १५)=तिर्यक्षु॥ और जहांपर ञ् का लोप तो न हुआ परन्तु ञ् का परिवर्तन ङ् में और च् का परिवर्तन क् में हुआ और इसमें सु जोड़ा तब तिर्यङ्क्+सु=तिर्यङ्क्+षु (टिप्पणी पृष्ठ १५) तिर्यङ्क्षु रूप हुआ। क् को ख में परिवर्तन करनेसे तिर्यङ्ख्षु भी रूप बनगया। ऐसे तिर्यञ्च शब्दकी सप्तमी विभक्ति बहुवचन पुलिंगके तिर्यक्षु—तिर्यङ्क्षु—तिर्यङ्ख्षु तीन रूप हुये॥

मनुष्यगतौ मनुष्याणां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति। औपशमिकं पर्याप्तकानामेव नापर्याप्तकानाम्॥ मानुषीणां त्रितयमप्यस्ति पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम्। क्षायिकं पुनर्भाववेदेनैव॥

मनुष्य गतौ ७॥ पर्याप्त–अपर्याप्तकानां ६।	=नरगतिमें पर्याप्तक और अपर्याप्तक
मनुष्याणां ६। क्षायिकं १॥ च क्षायोपशमिकं १॥ अस्ति	=मनुष्योंके क्षायिक और (=च) वेदक सम्यग्दर्शन है
औपशमिकं १॥ पर्याप्तकानां ६। एव* न*	=औपशमिक सम्यक्त्व पर्याप्तक (मनुष्यों) के ही होता है न कि
अपर्याप्तकानाम् ६। पर्याप्तिकानां ६॥ एव	=अपर्याप्तक (मनुष्यों) के॥ पर्याप्तिक ही (=एव)
मानुषीणां ६॥ त्रितयम् १॥ अपि अस्ति T	=स्त्रियोंके तीनों (उपशम वेदक क्षायिक-सम्यक्त्व) ही होते हैं
न–अपर्याप्तिकानाम् ६॥ क्षायिकं १॥	=अपर्याप्तिक स्त्रियोंके (कोई भी सम्यग्दर्शन) नहीं होता है और क्षायिक
पुनः* भाव वेदेन ३। एव*	= सम्यक्त्व भाववेदकर ही है अर्थात् भाव स्त्रीके है द्रव्य स्त्रीके नहीं है

(गाथा) *नृणां पर्याप्तानां त्रयमितरेषां द्वयं तु शमवर्ज्यम्। त्रयमपि नारीषु स्यात्पर्याप्तास्वेव नान्यासु॥ ३॥*

नृणां (नृणां) ६। पर्याप्तानां ६। त्रयम् १॥	=पर्याप्तक मनुष्योंके तीनों (उपशम वेदक क्षायिक सम्यक्त्व) होते हैं
इतरेषाम् ६।	=और अन्य वा भिन्न (इतरेषाम्– मनुष्यों) के अर्थात् अपर्याप्तक मनुष्योंके
शमवर्ज्यम् १॥ द्वय १॥	=उपशम सम्यक्त्वरहित (शमवर्ज्यम्) दो (वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व होते हैं)
त्रय १॥ अपि नारीषु ७॥ स्यात् पर्याप्तासु ७॥ एव	=तीनों (सम्यक्त्व) ही पर्याप्तिक ही स्त्रियोंमें होते हैं (क्षायिक केवल भावस्त्रीके होता है)
न* अन्यासु ७॥ (स्यात्)	=(कोई भी सम्यक्त्व) इतर (स्त्रियोंमें अर्थात् अपर्याप्तिक स्त्रियोंमें) नहीं होता है

मनुष्यगतिमें सम्यक्त्वका मानचित्र।

(क) पर्याप्तक मनुष्योंके तीनों (उपशम वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व, होते हैं

(ख) अपर्याप्तक मनुष्योंके क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व होते हैं

(ग) पर्याप्तिक मनुष्यणीके (औपशमिक—क्षायोपशमिक-क्षायिक) तीनों होते हैं परन्तु क्षायिक सम्यक्त्व भाव स्त्रीके होता है द्रव्यस्त्रीके नहीं। अपर्याप्तक स्त्रीके सम्यक्त्व नहीं होता है।

देवगतौ सामान्येन देवानां पर्याप्तापर्याप्तकानां त्रितयमप्यस्ति । औपशमिकमपर्याप्तकानां कथमिति चेच्चारित्रमोहोपशमेन सह मृतान्प्रति ।

देवगतौ ७।१ सामान्येन ३।१ पर्याप्त-अपर्याप्तकानां ६।३	=देवगतिमें सामान्य (अपेक्षा) से पर्याप्तक और अपर्याप्तक
देवानां ६।३ त्रितयम् १।१ अपि* अस्ति T	=देवोंके तीनों (उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व) ही होते हैं
औपशमिकम् १।१ अपर्याप्तकानां ६।३ कथम्*	=उपशम सम्यक्त्व अपर्याप्तक (देवों) के कैसा
इति चेत्* चारित्रमोह—उपशमेन ३।१	=ऐसे प्रश्न होनेपर [कहते हैं कि] चारित्रमोहनीय कर्मप्रकृतिके
सह* मृतान् ६।३ प्रति*	=उपशमसहित मरण करनेवाले [जीवों] को [=प्रति] होता है भावार्थ— किसी जीवके चारित्रमोहनीय कर्मकी प्रकृतियोंका उपशम होय और वह जीव उपशमश्रेणीमें मरण करै तोउस जीवके अपर्याप्तक देव अवस्थामें द्वितीय उपशम सम्यक्त्व होता है प्रथम उपशम सम्यग्दर्शन अपर्याप्त अवस्थामें किसी भी जीवके नहीं होता है ।

[श्लोक] पर्याप्तापर्याप्तकदेवेषु त्रितयमस्ति सम्यक्त्वम् । देवेष्वकल्पजेषु पर्याप्तिष्वक्षयजमेव ॥

पर्याप्त—अपर्याप्तक देवेषु ७।३ त्रितयम् १।१	=पर्याप्तक और अपर्याप्तक देवोंमें तीनो (उपशम—वेदक—क्षायिक)
सम्यक्त्वम् १।१ अस्ति । अकल्पजेषु ७।३ पर्याप्तेषु ७।३	=सम्यग्दर्शन है । कल्पवासियोंसे भिन्न पर्याप्तक
देवेषु ७।३	=देवोमें अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें
अक्षयजम् १।१ एव *	=क्षायिक वर्जित वा रहित ही (दो उपशम और वेदक सम्यक्त्व) है

देवगतिमें सम्यग्दर्शनका मानचित्र ।

(सामान्यकरि) पर्याप्त और अपर्याप्त देवोंके तीन सम्यग्दर्शन है ॥

(विशेषकरि) भवनवासी—व्यन्तर और ज्योतिषी देव और उनकी देवियोंके सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें उपजी देवियोंके (१) क्षायिक सम्यक्त्व नहीं (२) अपर्याप्त अवस्थामें कोई भी सम्यक्त्व नहीं, पर्याप्त अवस्थामें उपशम वेदक सम्यक्त्व है ।

विशेषेण भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्काणां देवाना देवीनां च सौधर्मैशानकल्पवासिनीनां च क्षायिकं नास्ति। तेषां पर्याप्तकानामौपशमिकं क्षायोपशमिकं चास्ति ॥

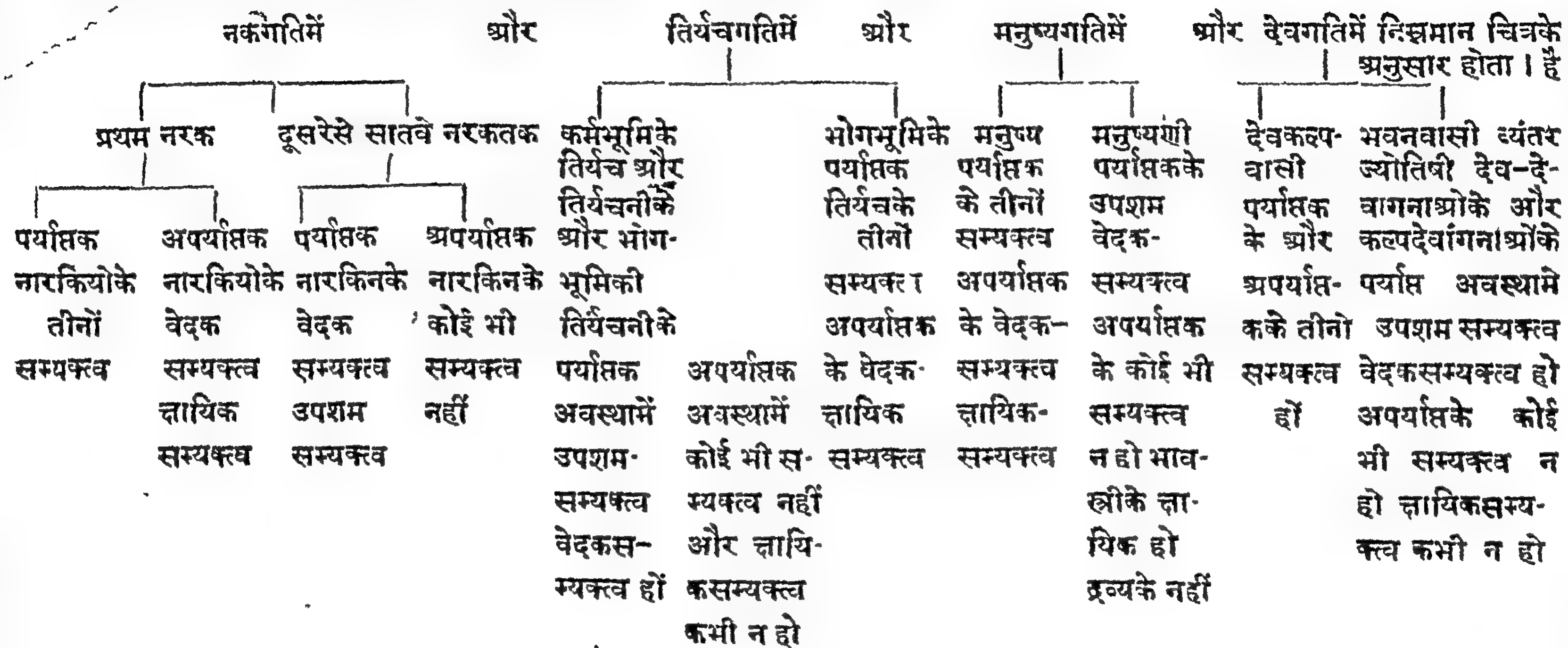
विशेषेण ३। भवनवासिन्–व्यन्तर–ज्योतिष्काणां	=विशेषकरि भवनवासी, व्यतर और ज्योतिषी
देवाना ६। च देवीना ३॥ सौधर्म–ऐशान–	=देवोंके और [=च] इनकी देवियोंके और सौधर्म ऐशान स्वर्गोंके
कल्पवासिनीना ३॥ क्षायिकं १॥ न * अस्ति T	=कल्पवासिनी देवियोंके क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है (सौधर्म, और ऐशान दो स्वर्गोंमेंही कल्पवासिनी देवी उत्पन्न होती हैं इनही दो स्वर्गोंसे सोलह स्वर्ग पर्यंत चली जाती हैं)
तेषा ३।	=उन (भवनवासी, व्यन्तर, और ज्योतिषी देव और देविया और सौधर्म ऐशान स्वर्गोंकी कल्पवासिनी देवी)
पर्याप्तकानाम् ३। औपशमिक १॥	=पर्याप्तकोंके उपशम सम्यग्दर्शन
च क्षायोपशमिक अस्ति T	=और वेदक सम्यक्त्व [क्षायोपशमिक सम्यक्त्व] होता है अर्थात् इन सबोंके क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता और अपर्याप्तक अवस्थामें कोई भी सम्यक्त्व नहीं है

(१) आयुष्क–चतुष्क–ज्योतिष्क शब्द आयुस्–चतुस्–ज्योतिस शब्दोंमें कन् (क) प्रत्यय अपने २ अर्थमें लगानेसे बने हैं अर्थात् क जोड़ देनेसे इनका वही अर्थ रहता है जो क जोड़नेसे पहिले था ॥ आयुष्क–चतुष्क ज्योतिष्कका वही अर्थ है जो आयुस्–चतुस् और ज्योतिस् शब्दों का है ॥ इनके स की पलटन षमें कैसे हो जाती है देखो टिप्पणी पृष्ठ १५ ॥

(श्लोक) क्षायिकमविरतदृष्टिप्रभृतिषु सम्भवति वेदक तु पुन । अस्त्यप्रमादकान्तेष्वौपशम चौपशान्तान्तम् ॥

क्षायिकम् १॥ अविरतदृष्टिप्रभृतिषु ३॥	=क्षायिक सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान, आदिकोंमे
सम्भवति T	=समव है (=होसक्ता है) अर्थात् चौथे गुणस्थानसे चौदहवें तक है
पुन * वेदक १॥ तु * अस्ति	=और (=पुन) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व तो (=तु) (चौथे अविरत गुणस्थानसे)
अप्रमादक—अन्तेषु ३॥ च * औपशमम् १॥	=अप्रमत्त (सातवा गुणस्थान) के अत तकमें है। और [=च] उपशम सम्यक्त्व
उपशान्तान्तम् १॥	=[चौथे गुणस्थानसे] उपशान्त कषाय ग्यारहवा गुणस्थान तक है

१ सामान्य अपेक्षासे सम्यग्दर्शन जीवके होता है विशेष अपेक्षासे गतिके अनुवादकरि



इन्द्रियानुवादेन पञ्चेन्द्रियाणां संज्ञिनां त्रितयमप्यस्ति, नेतरेषाम् ॥ २ ॥ कायानुवादेन त्रसकायिकानां त्रितयमप्यस्ति, नेतरेषाम् ॥ ३ ॥ योगानुवादेन त्रयाणां योगिनां त्रितयमप्यस्ति । अयोगिनां क्षायिकमेव ॥ ४ ॥

इन्द्रिय-अनुवादेन [३] पचेंद्रियाणां [६] सज्ञिनां [६]	=इन्द्रियके कथनानुसारकरि पचेंद्रिय सैनीके
त्रितयम् [१] अपि अस्ति न * इतरेषाम् [६]	=तीनों ही सम्यक्त्व हैं अन्य [असैनी और पांचइन्द्रियोसे न्यून इन्द्रियवाले] के नहीं हैं
काय-अनुवादेन [३] त्रसकायिकानां [६] त्रितयम् [१]	=कायकी अपेक्षासे त्रसकायजीवोंके तीनों [उपशम वेदक क्षायिक सम्यक्त्व]
अपि * अस्ति न * इतरेषाम् [६]	=ही [= अपि] हैं अन्योंके अर्थात् थावरजीवोंके [कोई भी सम्यक्त्व] नहीं है
योग-अनुवादेन [३] त्रयाणां [६] योगिनां [६] त्रितय [१]	= योगकी विवक्षाकरि तीनों [मन-वचन-काय] योगवालोंके तीनों
अपि अस्ति अयोगिनां [६] क्षायिकम् [१] एव अस्ति	= ही [सम्यग्दर्शन] हैं योगरहित [अयोगिकेवली भगवान्] के क्षायिक है

(१) पचेंद्रियाणां— पांच है इन्द्रिय जिनके यहां पचेन्द्रिय शब्द पुल्लिंग है क्योंकि बहुव्रीहि समास है परन्तु पञ्चेन्द्रियाणि अध्याय २ सूत्र १५ में नपुसकलिंग है ।

[२] त्रितयम् अपि अस्ति वाक्यका शब्दार्थ अनुवाद तीनों ही है होना चाहिये—संस्कृतकी बोल चालमें त्रितयम् अस्ति ठीक हैं परन्तु भाषामें बुरा और हिंदीकी बोल चालकी प्रणालीके विरुद्ध है इसलिये तीनों ही हैं अनुवाद करना पड़ता है ॥ त्रितयम् । तीनोंका भाग २ तीन भागवाला (३) तीनों-तीन तीन सख्यावाला (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३७८) (४)

(तिहरा) ये चार अर्थमें आता है ॥ इन चारो अर्थोमेंसे-तीनों तीन अर्थ जगता है अन्य अर्थ लेनेसे अनुवाद नहीं बनता है यदि ऐसा अनुवाद करें "तीनोंमेंसे एक सम्यक्त्व होता है" तौभी ठीक नहीं होता है क्यों कि यहां पर नाना जीवोंकी अपेक्षा कथन है, और तीनों योग वाले जीवोंके एक समयमे सब जीवोंकी अपेक्षासे तीनों ही प्रकारके सम्यक्त्व विद्यमान होते हैं और यही श्रीआचार्यका अभिप्राय है कि पृथक् पृथक् सम्यग्दर्शनके भेद लिये जावें जैसा कि इसी वाक्यके पिछले भाग "अयोगिनां क्षायिकम् एव अस्ति" (अयोगियोंके क्षायिक ही है) से प्रगट है । इस भागका अनुवाद शब्दश ठीक बन जाता है । श्रीपूज्यपादसूरिने एक अस्तिके प्रयोगसे दोनों आशय बहुवचन और एकवचनके लिये हैं और संस्कृतके भी बोल चालके अनुसार शुद्ध है ॥ अन्यत्र भी हमने बहुवचनकी क्रियामें अनुवाद किया है जहां एकसे अधिक सम्यक्त्वके भेदोंसे तात्पर्य है ॥

वेदानुवादेन त्रिवेदानां त्रितयमप्यस्ति। अपगतवेदानामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति ॥ ५ ॥ कषायानुवादेन चतुष्कषायाणां त्रितयमप्यस्ति। अकषायाणामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति ॥ ६ ॥ ज्ञानानुवादेन आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानिनां त्रितयमप्यस्ति। केवलज्ञानिनां क्षायिकमेव ॥ ७ ॥ संयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापन–

वेद–अनुवादेन ३।१ त्रिवेदानां ६।३	=वेदकी अपेक्षाकरि तीनोंवेद (स्त्री–पुरुष–नपुंसक) वालोंके
त्रितयम् १।१ अपि * अस्ति अपगत-वेदानाम् ६।३	=तीनोंही (औपशमिक-क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व) हैं वेदरहितोंके
औपशमिकं १।१ च क्षायिकं १।१ अस्ति T	=उपशम और क्षायिक (सम्यग्दर्शन) हैं
कषाय–अनुवादेन ३।१ चतुष्कषायाणां ६।३	=कषायके कथनानुसारकरि चारो [क्रोध मान माया-लोभ] कषायवालोंके
त्रितयम् १।१ अपि अस्ति। अकषायाणाम् ६।३	=तीनोंही (उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व) हैं और कषायरहितोंके
औपशमिकं १।१ च क्षायिकं १।१ अस्ति। ज्ञानअनुवादेन	=उपशम और क्षायिक (सम्यग्दर्शन) हैं। ज्ञानकी अपेक्षाकरि
आभिनिबोधिक–श्रुत–अवधि–मनः पर्यय—	=मति (=आभिनिबोधिक) श्रुत अवधि मनःपर्यय
ज्ञानिनां ६।३ त्रितयम् १।१ अपि * अस्ति	=ज्ञानवालोंके तीनों (उपशम-वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व) ही हैं
केवल–ज्ञानिनां ६।३ क्षायिकम् १।१ एव *	=केवलज्ञानियोंके अर्थात् सयोग केवली और अयोगकेवली भगवन्के क्षायिक ही है
संयम–अनुवादेन ३।१ सामायिक-च्छेदोपस्थापन–	=संयमकी अपेक्षाकरि सामायिक और छेदोपस्थापन

(१) च्छेदोपस्थापन—यदि छ के पहिले कोई स्वर हो तो यह छ च्छ में पलट जाता है। यह परिवर्तन करो अथवा मत करो यदि छ से पहिले आनेवाला स्वर दीर्घ और पदान्त हो तो। जैसे सामायिकच्छेदोपस्थापन वाक्यमें कमें जो अ है वह छ के प्रथम है इससे च्छ हो गया। इच्छति=चाहता है—शीर्षाणि अच्छिद्यन्त=मस्तक छेदे गये। गच्छति=जाता है। अपदान्त दीर्घस्वर छ से प्रथम आवे जैसे ह्रीच्छति=लज्जा करता है। यदि छ से प्रथम दीर्घ पदान्त स्वर हो जैसे लक्ष्मीच्छाया—लक्ष्मीछाया=लक्ष्मीकी परछाई। यहां विकल्पसे दो रूप हुये। विशेष यह है कि यदि छसे पहिले मा निषेध वाचक प्रत्यय हो अथवा आ उपसर्ग हो तो छका परिवर्तन च्छमें अवश्य ही होगा जैसे आच्छाया=ईषच्छाया अर्थात् कुछ छाया। आच्छादयति=ढकता है। माच्छिदत्=नहीं छेदा। माच्छैत्सीत्=नहीं छेदा है। अष्टाध्यायी ६-१-७३-७४-७५-७६

सयताना त्रितयमप्यस्ति । परिहारविशुद्धिसयतानामौपशमिकं नास्ति । इतरत् द्वितयमप्यस्ति । सूक्ष्मसाम्परायथाख्यातसंयतानामौपशमिक क्षायिकं चास्ति । संयतासयतानां च त्रितयमप्यस्ति ॥८॥ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनिनां त्रितयमप्यस्ति । केवलदर्शनिनां क्षायिकमेव ॥ ९ ॥

सयतानां ३। त्रितयम् २।।। अपि * अस्ति T	= सयमियोंके तीनों [उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व] ही हैं
परिहारविशुद्धिसयतानां ३। औपशमिक १।।।	= परिहार विशुद्धि सयमियोंके उपशम सम्यग्दर्शन
न अस्ति । इतरत् १।।। द्वितयम् १।।। अपि अस्ति	= नहीं है। अन्य दो [वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व) ही हैं
सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यात सयताना औपशमिक १।।।	= सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात सयमवालोंके उपशम सम्यग्दर्शन
च क्षायिक १।।। अस्ति । च सयतासयतानां ३।	= और क्षायिक सम्यक्त्व है । और देशव्रतियोंके [पांचवां गुणस्थानवालोंके]
त्रितयम् १।।। अपि अस्ति	= तीनों औपशमिक-क्षायोपशमिक-और क्षायिक सम्यक्त्व ही है
दर्शन-अनुवादेन ३। चक्षुर्दर्शन—अचक्षुर्दर्शन	= दर्शनके कथनानुसार चक्षुदर्शनवालोंके अचक्षुर्दर्शन वालोंके
अवधिदर्शनिनां ३। त्रितयम् १।।। अपि अस्ति	= और अवधि दर्शनवालोके तीनों (उपशम वेदक क्षायिक सम्यक्त्व) हैं।
केवलदर्शनिनां ३। क्षायिक १।।। एव (अस्ति)	= केवल दर्शनियोंके सयोगकेवली अयोगकेवलीके क्षायिक ही (सम्यग्दर्शन) है

(१) इतरत्—कर्ता प्रथमा विभक्तिके सु प्रत्यय और कर्म द्वितीया विभक्तिके अम् प्रत्ययोंके स्थानमें अद्ड् आजाय यदि सु अम् पांच सर्वनाम कतर (दोमेंसे कौन) कतम (बहुतोंमेंसे कइ) इतर (दूसरा) अन्य (दूसरा) और अन्यतर (दो मेंसे एक) के परे आवै तो (अष्टाध्यायी—अद्ड् डतरादिभ्य पञ्चभ्य ७ १ २५) जैसे इतर+अद्ड् =इतरत् । इतरत् तिष्ठति=दूसरा ठहरता है—इतरत् पश्य=दूसरेको देख । इतरके अकार् से लोप हो जाता है अर्थात् अद्ड् प्रत्ययमें इत्संज्ञक ड् का यह प्रभाव है कि वह अष्टाध्यायी ६ ४ १४३ व सूत्र टे (डिति भस्य) द्वारा इन पांचों शब्दोंके अन्तके अ का लोप कर देता है ॥ और इतरद्—इतरत् दो रूप हुये ।

(२) सर्वार्थसिद्धिवचनिका मुद्रित पृष्ट ६१ में "सयतासयतके अरु असयतके तीन ही हैं' ऐसा वाक्य लाये हैं और इस संस्कृत वृत्तिमें असयताना वाक्य लाये नहीं है इसका कारण यह है कि यहा पर कथन सयमकी अपेक्षासे है न कि असयमकी अपेक्षासे, श्री आचार्यने सयतासयत तो-ले लिया क्योंकि सयम उस पांचवें गुणस्थानमें कुछ कुछ पाया जाता है । यदि असयताना शब्द लाते तो आचार्य विपयान्तर हो जाते क्योंकि विषय वा प्रकरण तो सयमका है । इसमें सदेह नहीं कि चौथे गुणस्थानवर्ती असयतके तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं ॥ यदि वह विषय होता कि किस किस स्थानमें कौन कौन सम्यक्त्व है तो असयत लाते सो प्रकरण नहीं है अत वृत्तिमें असयताना शब्द नहीं लाये ।

लेश्यानुवादेन षड्लेश्यानां त्रितयमप्यस्ति। अलेश्यानां क्षायिकमेव ॥१०॥ भव्यानुवादेन भव्यानां त्रितयमप्यस्ति, नाभव्यानाम् ॥ ११ ॥सम्यक्त्वानुवादेन यत्र यत्सम्यग्दर्शनं तत्र तदेव ज्ञेयम् ॥ १२॥ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां त्रितयमप्यस्ति, नासंज्ञिनाम्। तदुभयव्यपदेशरहितानां क्षायिकमेव ॥ १३ ॥ आहारानुवादेन आहारकाणां त्रितयमप्यस्ति। अनाहारकाणां छद्मस्थानां त्रितयमप्यस्ति ॥ केवलिनां समुद्घातगतानां क्षायिकमेव ॥ १४ ॥

लेश्या-अनुवादेन ३ षड्लेश्यानां ६ = लेश्याकी अपेक्षाकरि छह (कृष्ण-नील-कापोत, पीत-पद्म-शुक्ल) लेश्यावालोंके
त्रितयम् १ अपि * अस्ति T अलेश्यानां ६ = तीनों ही [उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व] हैं लेश्यारहित [अयोग केवली]के
क्षायिकम् १ एव * १० भव्य-अनुवादेन ३ = क्षायिक ही [सम्यग्दर्शन] है। भव्यकी विवक्षा करि
भव्यानां ६ त्रितयम् १ अपि अस्ति। = भव्य जीवनके तीनोंही [सम्यक्त्व] हैं। अभव्य जीवोंके
अभव्यानाम् ६ न * ॥ ११ ॥ सम्यक्त्व— = (कोई भी सम्यग्दर्शन) नहीं है। सम्यग्दर्शनके
अनुवादेन ३ यत्र * यद् १ सम्यग्दर्शनम् १ = कथनानुसार करि जहां जो (= यद्) सम्यक्त्व है
तत्र * तद् १ एव ज्ञेयम् १ ॥ १२ ॥ = तहां वोही (= तद् सम्यक्त्व) जानना चाहिये अर्थात् उपशममें उपशमसम्यक्त्व, क्षायोपशममें क्षायोपशम सम्यक्त्व क्षायिकमें क्षायिक सम्यक्त्व जानना
संज्ञा-अनुवादेन ३ संज्ञिनां ६ त्रितयम् १ अपि = संज्ञी (= सैनी) के अनुवादकरि सैनी जीवोंके तीनोंही
अस्ति। न-असंज्ञिनाम् ६। तद्—उभय— = (सम्यक्त्व हैं) असैनियोंके (कोई भी सम्यग्दर्शन) नहीं है। उन दोनों
व्यपदेश-रहितानां ६ क्षायिकम् १ एव * १३ = नामोंसे वर्जित (सयोगकेवली-अयोगकेवली भगवान) के क्षायिकही है
आहार-अनुवादेन ३ आहारकाणां ६ त्रितयम् १ = आहारकी अपेक्षासे आहारकनके तीनोंही
अपि अस्ति अनाहारकाणां छद्मस्थानां ६ त्रितयं = सम्यग्दर्शन हैं आहारक वर्जित छद्मस्थोंके तीनोंही (उपशम वेदक—क्षायिक)
अपि अस्ति केवलिनां ६ समुद्घातगतानां ६ = ही हैं केवली समुद्घात करनेवाले (अनाहारक) अर्थात् सयोग केवली [जब समुद्घात करैं तब अनाहारक हैं] और अयोग केवली [अनाहारक होते हैं]
क्षायिकम् १ एव * ॥ १४ ॥ = क्षायिक ही (सम्यक्त्व) है ॥

३। साधनं द्विविधम्। आभ्यन्तरं बाह्यं च ॥ आभ्यन्तरं दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा। बाह्य नारकाणां प्राक्चतुर्थ्याः ॥ सम्यग्दर्शनस्य साधनं केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिद्वेदनाभिभवः ॥ चतुर्थीमारभ्य आसप्तम्या नारकाणां जातिस्मरणं वेदनाभिभवश्च ॥ तिरश्चां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनबिम्बदर्शनम् ॥

साधन १।।। द्वि-विधम् १।।।	=साधन अर्थात् सम्यक्त्वके होनेके कारण अथवा हेतु दो प्रकार है
आभ्यन्तर १।।। बाह्य १।।। च आभ्यन्तर १।।।	=अन्तरग और बहिरग [साधन] अन्तरग [कारण तो]
दर्शनमोहस्य ६।। उपशमः १।। क्षयः १।। क्षयोपशमः १।।	=दर्शन मोहनीय [कर्म] का उपशम, क्षय वा क्षयोपशम है। [नरक पर्यंत
वा बाह्य १।।। प्राक्चतुर्थ्याः ५।।	=बहिरग [साधन] चौथे [नरक] से पहिले [अर्थात् पहिले दूसरे तीसरे–
नारकाणां ६।।। सम्यग्दर्शनस्य ६।।। साधन केषांचित्	=नारक जीवोंके सम्यक्त्वका कारण कितनेके
जातिस्मरण १।।। केषाञ्चित् धर्मश्रवण १।।।	=जातिस्मृति कितनेकके धर्मका सुनना (और)
केषाञ्चित् वेदना अभिभव १।। चतुर्थी २।। आरभ्य	=कितनेकके दुःखका भोगना है चौथी पृथिवी (=नरक) से लेकर
आसप्तम्याः ५।। नारकाणां ६।। जातिस्मरण १।।।	=सातवीं पृथिवी (नरक) तक नारकी जीवोंके जातिका स्मरण
च वेदना-अभिभव १।। तिरश्चां ६।। केषाञ्चित्	=और (च) दुःखका भोगना (सम्यक्त्वके कारण) है। तिर्यंचोंके कितनेकके
जातिस्मरण १।।। केषाञ्चित् धर्मश्रवण १।।।	=जातिस्मरण (अर्थात् पूर्व जन्मकी स्मृति) कितनेकके धर्मका सुनना
केषाञ्चित् * जिनबिम्बदर्शन १।।।	=कितनेकके भगवानका बिंब देखना (सम्यक्त्वके कारण) हैं

१ अभ्यन्तर 'बीच बीचका स्थान पद्म० कोष पृष्ठ ३८। आभ्यन्तर=भीतर होनेवाला ॥ अत आभ्यन्तर शब्द सर्वार्थसिद्धि द्वितीय आवृत्तिका ठीक है न कि अभ्यन्तर प्रथम आवृत्तिका (२) केषाम् चित्=म् का परिवर्तन (मोऽनुस्वार उक्त सूत्रसे) अनुस्वारमें होगया ॥ इस अनुस्वारका परिवर्तन परसवर्ण चवर्गके ञ् में (पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि पर परसवर्णो वा अष्टाध्यायी ८-४-५९ सूत्रसे) होगया अतः केषाम् चित्=केषाञ्चित्। चित्+जाति=चिज्जाति (देखो टिप्पणी पृष्ठ ४१) चित् के त् का परिवर्तन ज् में हो जाता है (देखो टिप्पणी पृष्ठ १४-१५) (३) आरभ्य सबध सूचक भूत कृदत है। (४) आ-सप्तम्या आङ् मर्यादाभिविध्यो २।१।१३ वा अष्टाध्यायी २।१।१३ सूत्र। मर्यादा (अर्थात् जो सीमा कहैं उसके बाहर बाहर) और अभिविधि अर्थमें (अर्थात् जो सीमा कहैं उसको मिलाकर) वर्तमान जो आङ् (=आ) वह पचमी अपादान विभक्तिके साथ विकल्पसे (=वा) समासको प्राप्त हो और वह समास।

मनुष्याणामपि तथैव ॥ देवानां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनमहिमदर्शनं केषाञ्चिद्देवर्द्धिदर्शनम् ॥ एवं प्रागानतात् ॥

मनुष्याणाम् ६। अपि * तथा * एव *	=मनुष्योंके भी वैसाही अर्थात् तिर्यंचोंके समान जातिस्मरण-धर्मश्रवण और जिनबिम्ब दर्शन ये तीन ही सम्यग्दर्शन होनेके साधन वा कारण हैं
देवानां ६। केषांचित् * जातिस्मरणं १।। केषांचित्	=देवोंके कितनेकके जाति का स्मरण आजाना कितनेकके
धर्मश्रवणं १।। केषांचित् * जिनमहिमदर्शन १।।	=धर्मका सुनना, कितनेकके भगवानके (पंचकल्याणकके) महत्वका देखना
केषांचित् * देव+ऋद्धि-दर्शनम् १।। एवं *	=कितनेकके देवनकी ऋद्धि देखना इसप्रकार
प्राग्-आनतात् ५।	=आनत (तेरहवेंस्वर्ग) से पहिले पहिले अर्थात् सहस्रार बारहवें स्वर्ग तक सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके कारण वा साधन हैं

अव्ययी भाव संज्ञक हो पंचमी विभक्तिके साथ समास न करे तो द्वितीया विभक्तिके साथ अव्ययी भाव समास हो। मर्यादा अर्थमें जैसे आमुक्तेः संसारः मुक्तिकी सीमाके बाहर संसार है—एक मुक्तिकी सीमा मानलो और एक संसारकी, दोनों सीमा एक दूसरेसे चिपटी हुई हैं। यहां आङ् उपसर्गका यह प्रभाव है कि मुक्तिकी सीमासे संसारकी सीमाको बाहर बाहर रखता है। आमुक्ति २।। संसारः १। का भी यही अर्थ है॥ अभिविधि अर्थमें जैसे आ आकाशादेकद्रव्याणि=आकाश पर्यंत अथवा आकाशको सम्मिलित करते हुये एक एक द्रव्य हैं अध्याय ५ सूत्र ६॥ इसका यह अर्थ नहीं है कि आकाशके बाहर बाहर एक एक द्रव्य है क्योंकि जैनसिद्धांतके अनुसार काल जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश छह द्रव्य हैं उनमें जीव अनन्तानन्त हैं। पुद्गल परमाणु जीवोंसे अनन्तगुणे हैं कालद्रव्यके अणु असंख्यात हैं। धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य एक एक हैं। आकुमारेभ्यो यशः सीतायाः अथवाआकुमारं यशः सीतायाः=सीताका यश लड़कों पर्यंत भी है अर्थात् सीताके यशके जाननेमें लडके भी सम्मिलित हैं। ऐसे ही आसप्तम्या नारकाणांमें नारकियोंके सातवां नरक पर्यंत अभिविधि अर्थमें आ ङ् उपसर्ग है अर्थात् आङ्के प्रभावसे सातवां नरक भी सम्मिलित है॥ (१) ए-ऐ-ओ-औ स्वरोंको छोड कर यदि पहिले कोई स्वर आवे और उसके पश्चात् ह्रस्व ऋ हो तो इस ऋको स्वरके साथ मिलादो अथवा मत मिलावो जैसे देव+ऋद्धि=देव+अर्ते=देवर्द्धि, देवऋद्धि भी रूप ठीक है यदि पहिले आया हुआ स्वर दीर्घ हो तो इसको ह्रस्व कर देते हैं जैसे ब्रह्मा+ऋषिः=ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः।

आनतप्राणतारणाच्युतदेवानां देवर्द्धिदर्शनं मुक्त्वाऽन्यत्त्रितयमप्यस्ति । नवग्रैवेयकवासिनां केषांचिज्जातिस्मरणं केषांचिद्धर्मश्रवणम् ॥ अनुदिशानुत्तरविमानवासिनामियं कल्पना न सम्भवति । प्रागेव गृहीतसम्यक्त्वानां तत्रोत्पत्तेः ॥

आनत-प्राणत-आरण—	= आनत [तेरहवें स्वर्ग] प्राणत (चौदहवें स्वर्ग) आरण [पंद्रहवें स्वर्ग]
अच्युतदेवानां ६। देव ऋद्धि दर्शन २।। मुक्त्वा	= अच्युत [सोलहवें स्वर्ग] के देवोंके देवोंकी ऋद्धि अवलोकन छोड़कर
अन्य-त्रितय १।। अपि *	= अन्य तीनो (जातिस्मरण धर्मश्रवण जिनमहत्वदर्शन) ही
अस्ति।	= [सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके कारण] हैं।
नवग्रैवेयक-वासिना ६।	= (सोलह स्वर्गके ऊपर) नवग्रैवेयकके [नव पटलोमे] रहने वालोंके
केषांचित् * जातिस्मरण १।। केषांचित *	= कितनेकके जातिस्मरण कितनेकके
धर्मश्रवण १।।	= धर्मका सुनना (ये दोही सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके कारण) हैं
अनुदिश—	= [नव ग्रैवेयकोके नो पटलोंके ऊपर) नव अनुदिशके एक पटलके विमानोंमे
अनुत्तर—	= और (उनके ऊपर) अनुत्तरके पांच [विजय वैजयंत जयंत-अपराजित
विमान वासिनां ६। इयम् १।। कल्पना १।। न सम्भवति	= सर्वार्थसिद्धि] विमान वासियोंके यह साधन नहीं संभवै है
प्राग् एव * गृहीत सम्यक्त्वाना ६। तत्र उत्पत्ते ५।।	= क्योंकि पहले (जन्ममें] ही प्राप्त सम्यग्दर्शनवालोंकी वहां उत्पत्ति होती है

(१) धर्मश्रुति-जातिस्मृति-सुरर्द्धि-जिन— = धर्म श्रवण करना जातिस्मरण करना, देव ऋद्धि अवलोकन करना जिन भगवानके
महिमदर्शनम् १।। बाह्यम् १।। = (गर्भादिक कल्याणके समयका) महत्व देखना (सम्यक्त्वके उत्पत्तिके) बाहिरी कारण है

(२) प्रागेव = प्राग्-एव। यह शब्द प्राय तीन अर्थोमें आता है (१) प्रकर्षेण अचति गच्छति इति प्राङ् सुगन्ता अर्थात् अतिशय करि वा बहुत अधिकतामे गमन करता है (अञ्चति = गच्छति) सो प्राङ् अथवा सुगन्ता है ॥ २ ॥ प्रकर्षेण अच्यते पूज्यते इति प्राङ् पूज्य अतिशयकरि पुजा जाता है ऐसा प्राङ् वा पूज्य है ॥ इन दोनों अर्थोमें प्र उपसर्गमें अञ्च् धातु लगानेसे प्राञ्च् शब्द बना है । ॥ पद्मच द्र कोष पृष्ठ २५७ में " प्राञ्च (त्रि) प्र + अञ्च + क्विन् पहिला समय और देश,' ऐसा अर्थ दिया है यहां पर पहिला देश अर्थात् पहिला स्थान इस अर्थमें आया है।

(४) अधिकरणं द्विविधम्। आभ्यन्तरं बाह्यं च॥ आभ्यन्तरं स्वस्वामिसम्बन्धार्हो एव आत्मा विवक्षातः कारकप्रवृत्तेः॥ बाह्यं लोकनाडी। सा कियती? एकरज्जुविष्कम्भा चतुर्दशरज्ज्वायामा॥ (५) स्थितिरौपशमिकस्य जघन्योत्कृष्टा चान्तर्मौहूर्तिकी। क्षायिकस्य संसारिणो जघन्यान्तर्मौहूर्तिकी। उत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सान्तर्मुहूर्त्ताष्टवर्षहीनपूर्वकोटिद्वयाधिकानि। मुक्तस्य सादिरपर्यवसाना क्षायोपशमिकस्य जघन्यान्तर्मौहूर्तिकी। उत्कृष्टा षट्षष्टिसागरोपमाणि [६] विधानं सामान्यादेकं सम्यग्द-

---

अधिकरणं १।१ द्विविधम् १।१ आभ्यन्तरं १।१ च =(४) आधार दो प्रकार है। अंतरंग और [च]
बाह्यं १।१ आभ्यन्तरं १।१ स्व-स्वामि— =बहिरंग [सम्यक्त्वका आधार] आभ्यन्तर अपना अधिपति [=स्वस्वामिन्]
सम्बन्ध-अर्हः १।१ एव आत्मा १।१ कारकप्रवृत्तेः ५।१ =सम्बन्धके योग्य आत्मा ही है। क्योंकि कारकन व्यवहारका
विवक्षातः * बाह्यं १।१ लोकनाडी १।१। सा १।१ =अपेक्षासे है। बाह्य [सम्यक्त्वका आधार] लोकनाड़ी है सो
कियती १।१ एक-रज्जु-विष्कम्भा १।१ चतुर्दशरज्जु- =कितनी है? एकराजू चौडी है (और) चौदहराजू
आयामा १।१ औपशमिकस्य ६।१ स्थितिः १।१ =ऊंची है [५] उपशम सम्यग्दर्शनकी स्थिति [ठहराव टिकाव] ठहरती है
जघन्या १।१ च उत्कृष्टा १।१ अन्तर्मौहूर्तिकी १।१ =जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्तकी है ४ घंटेसे न्यून समय तक उपशम सम्यक्त्व
संसारिणः ६।१ क्षायिकस्य ६।१ जघन्या अन्तर्मुहूर्तिकी १।१ =संसारी जीवके क्षायिककी जघन्य (स्थिति) अन्तर्मुहूर्त्तकी है पीछे मुक्ति है
उत्कृष्टा १।१ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि १।१ =(क्षायिक सम्यक्त्वकी) उत्कृष्ट (स्थिति] तेतीस सागर प्रमाण
स-अन्तर्मुहूर्त-अष्टवर्षहीन-पूर्वकोटिद्वय— =आठसाल अन्तर्मुहूर्तसहित न्यून दो करोड पूर्व
अधिकानि १।१ =अधिक है [३३ सागर+२०००००० पूर्वमेंसे ८ बरस अंतर्मुहूर्त्त न्यून है]
मुक्तस्य ६।१ सआदिः १।१ अपरि-अवसाना १।१ =मोक्षजीवके [क्षायिक सम्यक्त्वकी स्थिति] आदि सहित और असमाप्ति है
क्षायोपशमिकस्य ६।१ जघन्या-अन्तर्मौहूर्तिकी १।१ =वेदक सम्यक्त्वकी जघन्य (स्थिति) अन्तर्मुहूर्त है
उत्कृष्टा १।१ षट्षष्टिसागरोपमाणि, =(६] उत्कृष्ट [स्थिति-वेदक सम्यक्त्वकी] छयासठ सागर प्रमाण है।
विधानं १।१ सामान्यात् ५।१ एकं १।१ सम्यग्दर्शनम् १।१ = सामान्य [विवक्षा] से सम्यग्दर्शन एक प्रकार है

---

१ कियत् (त्रि०) (किम् परिमाणे वतुप्, किमः कादेशः वस्य यः कितना परिमाण कितना पद्म० १०८) शब्दसे कियती प्रथमा एक वचन स्त्रीलिंग है॥

दर्शनम् । द्वितय निसर्गजाधिगमजभेदात् । एव संख्येया विकल्पाः शब्दतः ॥

निसर्गजअधिगमजभेदात् ५/१ द्वितय १/१	=स्वभाव जनित और परोपदेश जनित भेदसे [सम्यक्त्व] दो प्रकार है
एव * शब्दत * संख्येयाः १/३ विकल्पा: १/३	=इसप्रकार शब्द (की अपेक्षा) से संख्यात भेद हैं

(१) आज्ञामार्गसमुद्भव मुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात् । विस्तारार्थाभ्या भवमव परमावादिगाढ च ॥ १ ॥ इति दशविधम् ॥

आज्ञा-समुद्भवम् १/१ मार्ग-समुद्भवम् १/१ उपदेशात् ५/१	=आज्ञासे उत्पन्न (सम्यग्दर्शन) मार्गसे उत्पन्न (सम्यक्त्व) उपदेशसे
भवम् १/१ सूत्रात् ५/१ भवम् १/१ बीजात् ५/१ भवम् १/१	=उत्पन्न (सम्यग्दर्शन) सूत्रसे उत्पन्न बीजसे उत्पन्न,
संक्षेपात् ५/१ भवम् १/१ विस्तारात् ५/१ भवम् १/१ अर्थात् ५/१	=संक्षेपसे उत्पन्न (सम्यक्त्व) विस्तारसे उत्पन्न अर्थसे
भवम् १/१ अवगाढ १/१ च परम अवगाढ १/१ इति	=उत्पन्न (सम्यग्दर्शन) अवगाढ और (च) परम अवगाढ (सम्यक्त्व) ऐसे
दश-विधम् १/१	=(शब्दसे सम्यक्त्व) दश प्रकार है

इस आर्या छदम वर्णित दश विध सम्यग्दर्शनके अर्थ स्पष्ट करनेके लिये निम्न लिखित तीन स्रग्धरावृत्त (स्रग्धरा छद) कहते हैं—

स्रग्धरा— आज्ञासम्यक्त्वमुक्त यदुत विरुचित वीतरागाज्ञयैव । त्यक्तग्रथप्रपच शिवममृतपथ श्रद्दध मोहशान्ते ।

मार्गश्रद्धानमाहु पुरुषवरपुराणोपदेशोपजाता । या सज्ञानागमाब्धिप्रसृतिभिरुपदेशादिरादेशि दृष्टि ॥ १ ॥

यद् १/१ उत * विरुचित १/१ वीतराग-आज्ञया ३/१	=और (=उत) जो (=यद्) वीतरागकी आज्ञाकरि ही (एव) श्रद्धान किया
एव आज्ञा-सम्यक्त्व १/१	=जाय (जो वीतरागके वचन पर ही विश्वास किया जाय) सो आज्ञा सम्यक्त्व
उक्त १/१ त्यक्तग्रथप्रपञ्च १/१	=कहाजाता है । शास्त्र विस्तारके (श्रवण) विना
शिवम् १/१ अमृतपथ १/१ मोहशान्ते ५/१	=कल्याणरूप मोक्षमार्गमें (शब्दार्थ अमर मार्ग) मोहकी शांति होनेसे (अर्थात् दर्शन मोहनीय कर्मके उपशम क्षयोपशम और क्षय होनेसे)
(२) श्रद्दधत् १/१ मार्गश्रद्धानम् १/१ आहु T	=श्रद्धान वा रुचि करनेको मार्ग सम्यग्दर्शन कहते हैं (आहु)
पुरुष-वर-पुराण-उपदेश-उपजाता १/१ या १/१ सज्ञान	=श्रेष्ठ प्राचीन पुरुषों (तीर्थंकरादिक) के उपदेश जनित जो श्रेष्ठ ज्ञान (उस) से
आगम-अब्धि-प्रभृतिभि ३/१ उपदेशादि १/१	=उत्पन्न हुआ आगमरूपी समुद्र (तिस) के विस्तारोंकरि (प्राप्ति) उपदेशादिक
आदेशदृष्टि १	=(सो) आदेशदृष्टि है (उत्कृष्ट पुरुषोक्त शास्त्रादिकके पढ़नेसे सुननेसे जो श्रद्धान हो)

(१) ब्रू कहना अदादिगणके धातुसे अन्य पुरुष बहुवचन परस्मैपद वर्तमान काल आहु विना नियमके बना है (२) श्रद्दधत् श्रद्दधन् क्योंकि

श्रद्धत् के त् का परिवर्तन न् में हो जाता है (देखो टिप्पणी पृष्ठ ३६) श्रत् (अव्य०) विश्वास पद्म पृष्ठ ३६० ॥ धा जुहोत्यादि तृतीय गणका उभय परस्मैपदी और आत्मनेपदी सकर्मक अनिट् धातु धारण वा पकड़ने अर्थमें है। इस गणके धातुओंके रूप बनानेमें यदि धातुमें पहिले व्यंजन हो और पश्चात् एक स्वर हो तो धातुको दुहरा देते हैं अतः धाधा होगया और दुहराये हुये भागको व्याकरणमें अभ्यास कहते हैं यहाँ प्रथम धा अभ्यास है अभ्यासमें वर्गका दूसरा और चौथा अक्षर क्रमसे उसी वर्गके प्रथम और तीसरे अक्षरमे पलट जाता है इसलिये धाधा = दाधा अष्टाध्यायी ८-४-५४) और अभ्यासके दीर्घ स्वरका ह्रस्व हो जाता है (अ० ७-४-५९) अतः दाधा = दधा। धा का आ क्रिया के ङित् संज्ञक प्रत्ययके पहिले गिर जाता है। अति बहुवचन अन्य पुरुष परस्मैपद वर्तमान काल जुहोत्यादि गणका ङित् प्रत्यय है इसके पहिले धा का आ गिरकर केवल दध् रूप रह जाता है अब श्रत् दध् रूप हुआ ॥ श्रत्के त् का द् में परिवर्तन टिप्पणी पृष्ठ १५से हुआ। श्रद्दध् ॥ श्रद्दधत् वर्तमान कृदन्त है और प्रपञ्चं शिवम्, अमृतपथं तीनों शब्द द्वितीया विभक्ति पुल्लिंग एकवचन श्रद्दधत् क्रियाके कर्म है। वर्तमान कृदन्त बनानेका प्रायः यह नियम है कि धातुका वह रूप लेलो जो अन्य पुरुष बहुवचन वर्तमान कालकी क्रिया बनानेसे पहिले कोई धातु ग्रहण करता है पश्चात् धातु आत्मनेपदी हो जिसका वर्तमान कृदन्त बनाना है तो आन प्रत्यय लगा दो (जैसे दध्+आन दधान वा श्रत्+दध्+आन श्रद्धान यदि धातुका परस्मैपदमें प्रयोग हो तो अत् प्रत्यय लगादो इसलिये श्रद्ध्+अत्=श्रद्दधत्—विश्वास (श्रद्) करते हुये दधत् = श्रद्दधान (स्रग्धरा) आकर्ण्याचारसूत्रंमुनिचरणविधेः सूचनं श्रद्दधानः। सूक्तोऽसौ सूत्रदृष्टिर्दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य वीजैः।

केश्चिज्जातोपलब्धेरसमशमवशाद्वीजदृष्टिः पदार्थान्। संक्षेपेणैव बुध्वा रुचिमुपगतवान् साधु संक्षेपदृष्टिः। ४ से ६ तक भेद है

मुनिचरणविधेः ६।१ सूचनं २।१ आचार सूत्रं २।१	=मुनिके आचरणके विधानका जतलानेवाले आचार सूत्रको
आकर्ण्य श्रद्दधानः १।१ असौ १।१ सूत्रदृष्टिः १।१ सूक्तः १।१	=सुनकर विश्वास (=श्रद्) करना वा धरना (=दधान) वह सूत्रदृष्टि भलेप्रकार कहा गया है अर्थात् मुनिका आचरण सुननेसे जो तत्वार्थ श्रद्धान हो सो सूत्र सम्यक्त्व है
दुर्-अधिगम-गतेः ६।१ अर्थसार्थस्य ६।१	=कठिनाईसे (दुर्) ज्ञान (अधिगम) प्राप्त होनेवाले (गतेः) पदार्थोंके समूहका
केश्चित् * वीजैः ३।१	=केइकके वीजाक्षर (जैसे ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः इत्यादि) करि
असम—शम—वशात् ५।१	=असाधारण (असम) मोहनीय कर्मके उपशम (क्षय-क्षयोपशम) के वशसे

ज्ञात-उपलब्धे ६। बीजदृष्टिः १। =उत्पन्न हुआ [=ज्ञात] ज्ञान (=उपलब्धे) सो बीजदृष्टि सम्यक्त्व है॥ (ये हैं (वा "बीज सकल समय दल सूचना व्याजमें" ऐसा भी अनगारधर्मामृत अ०२ श्लो० ६२

पदार्थान् २। सक्षेपण ३।। एव बुध्वा – रुचिम् २। =पदार्थोंको सामान्यसे ही जानकर श्रद्धानको

उपगतवान् १। साधु-सक्षेपदृष्टि १। =प्राप्त होनेवाला प्रशस्त वा भली [=साधु] सक्षेपदृष्टि (=सम्यक्त्व है) अर्थात् सक्षेप रूपसे पदार्थोंको जानकर जो श्रद्धान होय सो सक्षेप सम्यक्त्व है)

(श्लोक) य श्रुत्वा द्वादशाङ्गीं कृतरुचिरिह त विद्धि विस्तारदृष्टिम्। सञ्जातार्थात्कुतश्चित्प्रवचनवचनान्यन्तरेणार्थदृष्टि॥
दृष्टि साङ्गाङ्गबाह्यप्रवचनमवगाह्योत्थिता या ऽवगाढा। कैवल्यालोकितार्थे रुचिरिह परमावादिगाढेति रूढा॥ ३॥

यः १। श्रुत्वा द्वादशाङ्गीं २। कृतरुचि १। इह * त २। =जो (भव्य) द्वादशाग वाणीको सुनकर इसलोकमे (=इह) श्रद्धानी हो तिसको

विद्धि T विस्तारदृष्टिम् २। =विस्तारदृष्टि जानों (द्वादशागको सुनकर जो रुचि हो वह विस्तार सम्यक्त्व है।

प्रवचन वचनानि २।। अन्तरेण* कुतश्चित्* =आगम वा शास्त्रके वाक्योंके विना (देखे वा सुने) किसी (=कुतश्चित्)

सञ्जातार्थात् ५। अर्थ-दृष्टि १।। =पदार्थ (के निमित्त) से उत्पन्न हुआ (जो श्रद्धान) सो अर्थदृष्टि (सम्यक्त्व) है अर्थात् दृष्टान्तादिक रूप पदार्थोंसे जो श्रद्धान हो सो अर्थ सम्यक्त्व है

स-अङ्ग-अङ्ग-बाह्यप्रवचनम् २।। अवगाह्य- =अङ्ग और अङ्गबाह्यसहित उत्तम (वा श्रेष्ठ) शास्त्रको जानकर (=अवगाह्य)

उत्थिता १।। या १।। दृष्टि १।। अवगाढा १।। (दृष्टि १।।) =उत्पन्न हुई (=उत्थिता) जो (=या) रुचि (=दृष्टि) सो अवगाढ सम्यक्त्व है (जो श्रुतकेवलीके सम्यग्दर्शन हो सो अवगाढदृष्टि वा अवगाढ सम्यक्त्व है)

कैवल्य आलोकित अर्थे ७। इह* =केवलज्ञानकरि देखे गये पदार्थमें इसलोकमें (=इह, श्रद्धान)

परमावादिगाढा १।। इति* रूढा १।। =सो परम अवगाढ (दृष्टि=सम्यक्त्व) है ऐसा प्रसिद्ध है अर्थात् इसलोकमें जो =(वीतराग सर्वज्ञ) केवलीका श्रद्धान है सो परमावगाढ दृष्टि है॥

* अर्थदृष्टि यहापर पुलिंग भी हो सका है॥ (२) सा अङ्ग भी हो सकता है फिर दृष्टि शब्दका सांकेतिक होगा अर्थात् सा १।। दृष्टि १।।
(१) सम्यक्त्वके कहनेवाले शब्दोंकी सख्या होनेसे उपर्युक्त सम्यग्दर्शनके सख्यात भेद हुये॥ आत्मानुशासनसे।

असङ्ख्येया अनन्ताश्च भवन्ति श्रद्धातृश्रद्धातव्यभेदात् ॥ एवमयं निर्देशादि विधिर्ज्ञानचारित्रयोर्जीवाजीवादिषु चागमानुसारेण योजयितव्यः ॥ किमेतैरेवे जीवादीनामधिगमो भवति उत अन्योऽप्यधिगमोपायोऽस्तीति परिपृष्टोऽस्तीत्याह—

श्रद्धातृ-श्रद्धातव्य- = विश्वास करनेवाले और प्रतीत करने योग्य [वस्तु] के
भेदात् ३। असंख्येयाः १। च अनन्ताः १। भवन्ति १ = भेदसे असंख्यात और अनंत [भेद सम्यक्त्वके) होते हैं
एवम् अयम् १। निर्देश-आदि-विधिः १। ज्ञान- = ऐसे यह निर्देशादिक क्रम (सम्यग्दर्शनकी भांति] ज्ञान
चारित्रयोः ३।। च जीवाजीवादिषु ३।।। = और चारित्रमें: तथा (=च] जीव-अजीव आदि (सात तत्त्वों] में
आगम-अनुसारेण ३।। योजयितव्यः १। = शास्त्रके अनुकूल लगाया जाना चाहिये ।
किम् १।। एतैः ३। = क्या इन [निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और
जीवादीनाम् ३।।। = विधान] अनुयोगों करि ही जीवादिक सात तत्त्वों (और सम्यग्दर्शनादिका
अधिगमः १। भवति उत * अन्यः १।। अपि अधिगम = ज्ञान होता है अथवा भिन्न भी जाननेका
उपायः १। अस्ति इति परिपृष्टः अस्ति इति आह T = उपाय है ऐसा प्रश्न किया गया है (सो आचार्य) ऐसा कहते हैं कि

---

(१) विसर्गसे पहिले आ हो और उसके पश्चात् कोई स्वर वा घोष व्यंजन आवे तो यह विसर्ग गिर जाता है जैसे नराः इमे = नरा इमे। और यदि विसर्गके पहिले अ हो और उसके पश्चात् अ को छोड़कर अन्य कोई स्वर हो तो भी इस विसर्गको गिरा देते हैं जैसे बुधः इच्छति = बुध इच्छति और दो स्वर जो विसर्गके गिरने पर रह जाते हैं एक दूसरेमें सम्मिलित नहीं होते हैं ॥ जैसे असंख्येयाः अनन्त = असङ्ख्येयाः अनन्त अव असङ्ख्यानन्त ऐसा वाक्य नहीं हो सक्ता है ॥ (२) एतैः पुलिंग और नपुंसकलिंग दोनोंमें है यहां अनुयोगैः शब्द जो पुलिंग होता है गुप्त है अतः इसको हमने पुलिंग माना है ॥ (३) जीवादीनां वाक्यके पहिले सम्यग्दर्शनादीनां वाक्य अधिक समझ लेना चाहिये जैसा कि हम टिप्पणी सूत्र ६ में लिख चुके हैं ॥

सूत्र—सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८ ॥

सदित्यस्तित्वनिर्देशः । प्रशंसादिषु वर्तमानो नेह गृह्यते । संख्या भेदगणना ।

पदच्छेदः— सत्—संख्या—क्षेत्र—स्पर्शन—काल—अन्तर—भाव—अल्पबहुत्वैः ३।।। च
(सम्यग्दर्शनादीनां ६।।। च जीवादीनां ६।।। अधिगमः)

सत्—संख्या—	=सूत्रार्थ—(पदार्थकी) विद्यमानता अथवा अस्तित्व, (वस्तुके) परिणामोंकी वा भेदोंकी गणना
क्षेत्र—	=[वस्तुका वर्तमान कालमें] निवास अथवा [वस्तुका] वर्तमान स्थान वा आधार,
स्पर्शन—काल—	=[पदार्थका] त्रिकाल गोचर निवास, [वस्तुका] तीनों कालमें विचरनेका क्षेत्र, समयकी मर्यादा
अन्तर—	=विरहकाल, वियोग काल, विछोह काल, [अर्थात् जो एक परिणामोंसे दूसरे परिणाम जाय फिर तिसही परिणामको आवै तिसके बीच जितना काल लगे उसको वस्तुका विरहकाल कहते हैं]
भाव—(च)	=उपशम, क्षायोपशमिकादि परिणाम, (और)
अल्प बहुत्वैः ३।।।	=एक वस्तुको दूसरेकी अपेक्षा थोडी बहुत कहना, परस्परकी अपेक्षासे हीनपना अधिकपनाका होने
सम्यग्दर्शनादीनां ६।।। च	=करि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका और
जीवादीनां ६।।। अधिगमः १।	=जीव—अजीव—आस्रव—बंध—संवर—निर्जरा—मोक्षका अधिगम होता है ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ।

सत् इति अस्तित्व निर्देशः १।	=(इस सूत्रमें) सत् ऐसा (शब्द पदार्थकी) विद्यमानताका जतलानेवाला है
प्रशंसादिषु ७। वर्तमानः १।	=(सत् शब्द) प्रशंसादिक अर्थोंमें प्रवर्तता है
न * इह * गृह्यते T	=[सो] इस स्थानमें [=इह] नहीं लिया गया है
संख्या १।। भेदगणना १।।	=संख्या (वस्तुके) भेदनकी गणना अथवा गिनती है

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों दिगम्बर और श्वेताम्बर आम्नायोंमें एकसा है ॥ साध्वर्चित प्रशस्तेषु सत्येऽस्तित्वे च सम्मतः ।
(२) साधु अर्चित प्रशस्तेषु ७। सत्ये ७।।। =सदाचारी, पूज्य, बहुत उत्तम, यथार्थ वा ठीक
च * अस्तित्वे ७।।। सम्मतः १। =और विद्यमानता (अर्थों) में (सत्शब्द) स्वीकृत है । (इस सूत्रमें अस्तित्व अर्थ लिया है)

क्षेत्रं निवासो वर्तमानकालविषयः। तदेव स्पर्शनं त्रिकालगोचरम्। कालो द्विविधः। मुख्यो व्यावहारिकश्च। तयोरुत्तरत्र निर्णयो वक्ष्यते। अन्तरं विरहकालः। भावः औपशमिकादिलक्षणः। अल्पबहुत्वमन्योऽन्यापेक्षया विशेषप्रतिपत्तिः॥ एतैश्च सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां चाधिगमो वेदितव्यः॥ ननु च "निर्देशादेव सद्ग्रहणं सिद्धम्। विधानग्रहणात्संख्यागतिः। अधिकरणग्रहणात्क्षेत्रस्पर्शनावबोधः।

क्षेत्रं १।१ वर्तमानकालविषयः १।१ निवासः १।१ तद् १।१ = क्षेत्र (पदार्थका) विद्यमान समय संबन्धी निवास है वही निवास वा क्षेत्र है।
एव स्पर्शनं १।१ त्रिकाल-गोचरम् १।१ = (यदि) तीनकाल गोचर हो [पदार्थके तीन कालमें विचरनेका क्षेत्र] स्पर्शन है
कालः १।१ द्वि-विधः १।१ मुख्यः १।१ च व्यवहारिकः १।१ = काल दो प्रकार है। एक निश्चयकाल और [= च] व्यवहार [काल]
तयोः ६।२ उत्तरत्र * निर्णयः १।१ वक्ष्यते T = उन दोनोंका आगे निर्णय कहा जायगा।
अन्तरं १।१ विरह-कालः १।१ = अंतर विच्छेद, वियोग वा विछोह समय [का नाम] है अर्थात् जो एक परिणामसे दूसरे परिणाम जाय पुनः तिसही परिणामको आवे तिसके बीच जितना काल लगे सो विरह काल है तिसहीको अंतर कहते हैं
औपशमिक-आदि-लक्षणः १।१ = औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-औदयिक-पारिणामिक लक्षण—संयुक्त
भावः १।१ अन्योऽन्य-अपेक्षया ३।१ विशेषप्रतिपत्तिः १।१ = (जीवके) भाव हैं। एक दूसरेकी अपेक्षासे थोडे बहुतका ज्ञान करना
अल्पबहुत्वम् १।१ च एतैः ३।३ सम्यग्दर्शनादीनां ६।३ = अल्प बहुत्व है। बहुरि इन [आठ अनुयोगों] करि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका
च जीवादीनां ६।३ अधिगमः १।१ वेदितव्यः १।१ = और जीवादिक सात तत्त्वोंका अधिगम [स्वरूपका ज्ञान] जानना चाहिये
ननु[1] * च निर्देशात् ५।१ एव सद्ग्रहणं १।१ सिद्धम् १।१ = प्रश्न। (पिछले सूत्रमें) निर्देश शब्दसे ही सत् शब्दका ग्रहण सिद्ध है
विधान-ग्रहणात् ५।१ संख्या-गतिः १।१ = विधान शब्दके ग्रहणसे (इस सूत्रके) संख्याका ज्ञान हो जाता है
अधिकरणग्रहणात् ५।१ क्षेत्र-स्पर्शन अवबोधः १।१ = अधिकरण शब्दके लानेसे क्षेत्र [और] स्पर्शनका ज्ञान होता है

१ ननु च। इसका शब्दशः अनुवाद होगा "और प्रश्न" संस्कृतमें ऐसे च का प्रयोग ठीक है परन्तु भाषामें यदि हम 'और प्रश्न' ऐसा अनुवाद करें तो बोल चालके विरुद्ध होगा इसलिये "प्रश्न" केवल यही अनुवाद "ननु च" वाक्यका किया है॥

स्थितिग्रहणात्कालसङ्ग्रहः । भावो नामादिषु सङ्गृहीत एव । पुनरेषां किमर्थं ग्रहणमिति ॥ सत्यं, सिद्धम् ॥ विनेयाशयवशात्तत्त्वदेशनाविकल्प॰ ॥ केचित्सक्षेपरुचयः । केचिद्विस्तररुचयः । अपरे नातिसङ्क्षेपेण[2] नातिविस्तरेण प्रतिपाद्याः ॥ सर्वसत्त्वानुग्रहार्थो हि सता प्रयास इति अधिगमाभ्युपायभेदोद्देशः कृतः । इतरथा हि "प्रमाणनयैरधिगमः"

स्थिति-ग्रहणात् ५।१ काल-सङ्ग्रह १।१ = स्थितिशब्दके लानेसे (इस सूत्रके) कालका ग्रहण होता है (और)
भावः १।१ नामादिषु ७।३ सङ्गृहीत १।१ एव = भाव शब्द नामादि निक्षेपमें गर्भित है ही (=एव-देखो पांचवांसूत्र)
पुनर्* एषां ६।३ ग्रहण १।१ किमर्थं १।१ इति = फिर इन (सत्-सख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-काल-भाव) का ग्रहण क्यों किया है
सत्य* सिद्धम् १।१ विनेय-आशय-वशात् ५।१ = हा (पिछले सूत्र और नामादि निक्षेपसे) सिद्ध है शिष्यके अभिप्राय वशसे
तत्त्व-देशना-विकल्प॰ १।१ = तत्त्वके उपदेशका भेद किया है (अर्थात् जुदे २ प्रकारसे वर्णन किया है]
केचित्* सक्षेप-रुचय॰ १।३ = कोई (शिष्य) सक्षेप इच्छावाले हैं (थोडेसे कहनमे बहुत समझ लेते है)
केचित् विस्तर-रुचय' १।३ = कितनेही विस्तार रुचिवाले हैं (बहुत कथन करनेसे समझ पाते हैं]
अपरे १।३ न* अतिसंक्षेपेण ३।१ न अति = अन्य वा इतर (शिष्य) न बहुत सक्षेपकरि न बहुत
विस्तरेण ३।१ प्रतिपाद्या॰ १।३ = विस्तारसे समझाये जाते है (अर्थात् मध्यम कथन करनेसे समझते हैं)
सर्वसत्त्व-अनुग्रह-अर्थः १।१ हि सता ६।१ प्रयास १।१ = समस्त प्राणियोंके उपकारके लिये ही सत्पुरुषोंका परिश्रम होता है
इति अधिगम-अभ्युपाय-भेद-उद्देश १।१ कृतः १।१ = ऐसे ज्ञान करनेके अच्छे उपायोंके भेदसे कथन किया है [भिन्नतासे कथन है]
इतरथा* हि* प्रमाणनयैरधिगम १।१ = नहीं (=इतरथा) तो (हि) "प्रमाण और नयोंसे ज्ञान होता है" ऐसे

(१) नामादयस्त्रय द्रव्यार्थिकनयविषया । भाव पर्यायार्थिकनयविषया यत ॥
नाम-आद्य १।३ त्रय १।३ द्रव्यार्थिक नयविषया १।३ = नाम, स्थापना, द्रव्य (निक्षेप) द्रव्यार्थिक नय (नैगम सग्रह व्यवहार) के विषय है
यत * भाव १।१ पर्यायार्थिक नय विषय १।१ = क्योंकि भाव निक्षेप पर्यायार्थिक नय (ऋजुसूत्र, शब्द समभिरूढ, एवंभूत) का विषय है
(२) सङ्क्षेपेण शब्द क्रियाविशेषण है अत नपुसक लिंग है यद्यपि ये शब्द पुलिंग है ।

इत्यनेनैव सिद्धत्वादितरेषां ग्रहणमनर्थकं स्यात्॥ तत्र जीवद्रव्यमधिकृत्य सदाद्यनुयोगद्वारनिरूपणं क्रियते॥ जीवाश्चतुर्दशसु गुणस्थानेषु व्यवस्थिताः॥ १ मिथ्यादृष्टिः। २ सासादनसम्यग्दृष्टिः ३ सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः ४ असंयतसम्यग्दृष्टिः। ५ संयतासंयतः। ६ प्रमत्तसंयतः। ७ अप्रमत्तसंयतः। ८ अपूर्वकरणस्थाने उपशमकः क्षपकः। ९ अनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने उपशमकः क्षपकः।

अनेन ३।१ एव सिद्धत्वात् ५।१ इतरेषां ६।३ ग्रहणम् १।१ = इस (सूत्र) करि ही सिद्ध होनेसे अन्य (पांचवें-सातवें-आठवें सूत्रोंका) प्रयोग
अनर्थकं १।१ स्यात् T तत्र * जीवद्रव्यम् २।१ = निःप्रयोजन वा व्यर्थ होता [अतः भेदसे कहना योग्य है] तहां चेतन द्रव्यको
अधिकृत्य=सत्-आदि-अनुयोगद्वार-निरूपणं १।१ = आश्रयकर सत् आदि [आठ] प्रश्नोंद्वारा कथन वा उपदेश
क्रियते T जीवाः १।३ चतुर्दश—गुणस्थानेषु ७।३ = किया है॥ और जीव चौदह गुणस्थानोंमें
व्यवस्थिताः १।३ = व्यवस्थित हैं वा तिष्ठे हैं [और वे गुणस्थान निम्न लिखित हैं)
१ मिथ्यादृष्टिः १।१। २ सासादनसम्यग्दृष्टिः १।१ = १ मिथ्यादृष्टि प्रथमगुणस्थानवर्ती। २ सासादन सम्यग्दृष्टि द्वितीयगुणस्थानवाले
३ सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः १।१। ४ असंयतसम्यग्दृष्टिः १।१ = ३ सम्यग्मिथ्यादृष्टि [मिश्रगुणस्थानवर्ती] ४ अविरत सम्यग्दृष्टि
५ संयतासंयतः १।१ ६ प्रमत्तसंयतः १।१ ७ अप्रमत्तसंयतः १।१ = ५ संयतासंयमी वा देशविरतसंयमी ६ प्रमत्तसंयमी, ७ अप्रमत्तसंयमी,
८ अपूर्वकरणस्थाने ७।१ उपशमकः १।१ = [८ क] अपूर्वकरण [गुण] स्थानमें उपशम करनेवाला [उपशमक]
(अपूर्वकरणस्थाने) क्षपकः १।१ = (८ ख) अपूर्वकरण (गुण) स्थानमें क्षय करनेवाला [क्षपक]
९ अनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने ७।१ उपशमकः १।१ = [९ क] अनिवृत्तिबादरसाम्पराय (गुण) स्थानमें उपशम करनेवाला
[अनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने] क्षपकः १।१ = [९ ख] अनिवृत्तिबादरसाम्पराय [गुण] स्थानमें क्षय करनेवाला क्षपक

---

(१) अनेन—इदम् शब्दकी तृतीया विभक्ति एक वचन पुल्लिंग और नपुंसक लिंग दोनोंमें हो सक्ती है यहां पर सूत्र शब्दसे सम्बन्ध रखता है अतः नपुंसक लिंगमें है इदमका अनया—तृतीया विभक्ति स्त्री लिंगका रूप है (२) इतरेषाम्—इतर शब्दकी षष्ठी नपुंसक लिंग वा पुल्लिंग हो सक्ती है यहां पर सूत्र शब्दसे संबंधित है अतः नपुंसक लिंगमें है। (३) क्रियते-कर्मणि प्रधानमें यदि धातुके अंतमें ऋ हो और इस ऋ के पहिले कोई संयोग संज्ञक व्यंजन न हो तो ऋ के स्थानमें रि लाते हैं पश्चात् य कर्मणि प्रत्यय और ते एक वचन अन्यपुरुष आत्मनेपदी वर्तमानकालकी क्रियाका चिन्ह लगानेसे क्रियते बन जाता है जैसे कृ=क्रि क्रिय+ते=क्रियते।

१० सूक्ष्मसाम्परायस्थाने उपशमकः क्षपकः। ११ उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थः। १२ क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थः। १३ सयोगकेवली। १४ अयोगकेवली चेति॥ एतेषामेव जीवसमासानां निरूपणार्थं चतुर्दशमार्गणास्थानानि ज्ञेयानि॥ गतीन्द्रिय-काय-योग-वेद-कषाय-ज्ञान-संयम-दर्शन-लेश्या-भव्य-सम्यक्त्व-संज्ञाऽऽहारका इति॥ तत्र सत्प्ररूपणा द्विविधा सामान्येन विशेषेण च॥ सामान्येन तावत् अस्ति मिथ्यादृष्टिः।

१० सूक्ष्मसाम्परायस्थाने १॥ उपशमकः १।	=१० क, सूक्ष्मसाम्पराय (गुण) स्थानमें उपशम करनेवाला उपशमक
[सूक्ष्मसाम्परायस्थाने] क्षपकः १।	=१० ख, [सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें] नाश करनेवाला क्षपक
११ उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थः १।	=११ उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ
१२ क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थः १।	=१२ कषायविनाशक वीतराग छद्मस्थ
१३ सयोगकेवली १। च अयोगकेवली १। इति	=१३ सयोगकेवली और १४ अयोगकेवली॥ ऐसे [१४ गुणस्थानवर्ती] हैं
एतेषाम् १। एव जीवसमासानां १। निरूपण-अर्थं १॥	=इनही गुणस्थानोंके [=जीवसमासानां] कथनके लिये
चतुर्दश-मार्गणा-स्थानानि १॥ ज्ञेयानि १॥	=चौदह मार्गणास्थान जानने योग्य हैं (और वे)
गति-इन्द्रिय-काय-योग-वेद—	=गति [चार] इन्द्रिय [पांच] काय [छह] योग [पन्द्रह] वेद [तीन]
कषाय-ज्ञान-संयम-दर्शन-लेश्या—	=कषाय (पच्चीस) ज्ञान (आठ) संयम (सात) दर्शन (चार) लेश्या [छह]
भव्य-सम्यक्त्व-संज्ञा-आहारकाः १। इति॥	=भव्य (दो) सम्यक्त्व (तीन) संज्ञा (दो) आहारक (दो) ऐसे मार्गणा हैं
तत्र सत्प्ररूपणा १॥ द्विविधा १। सामान्येन १।	=तहां सत्प्ररूपणा दो प्रकार है सामान्यकरि अथवा संक्षेपकरि
च विशेषेण १। । सामान्येन १॥ तावत् *	=और (=च) विशेषकरि। संक्षेपकरि प्रथम (तावत्)
मिथ्यादृष्टिः १। अस्ति	=मिथ्यादृष्टि सद्रूप है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका अस्तित्व होनापन [वर्तमान] है

(१) "ऐसे चौदह गुणस्थान जानने। बहुरि इनिकूं जीवसमास संज्ञा भी कही है" सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ६७॥ इसलिये हमने यहां जीवसमासका अनुवाद गुणस्थान किया है॥ "जहां जीव पाइये सो जीवसमास कहिये" जीवसमास ५७ हैं और ९८ भी हैं जीवाः १। सम्यग् १॥ आसते येषु इति जीवसमासाः १।=जिन स्थानोंमें (=येषु) जीव अधिक (=सम्यग्) तिष्ठते हैं सो जीवसमास हैं॥

अस्ति सासादनसम्यग्दृष्टिरित्येवमादि ॥ विशेषेण—गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु आद्यानि चत्वारि गुणस्थानानि सन्ति । तिर्यग्गतौ तान्येव संयतासंयतस्थानाधिकानि सन्ति । मनुष्यगतौ चतुर्दशापि सन्ति । देवगतौ नारकवत् ॥ इन्द्रियानुवादेन एकेंद्रियादिषु चतुरिन्द्रियपर्यन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । पंचेन्द्रियेषु चतुर्दशापि सन्ति ॥ कायानुवादेन पृथिवीकायादिषु वनस्पतिकायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् ॥ त्रसकायेषु चतुर्दशापि सन्ति ॥

अस्ति सासादनसम्यग्दृष्टिः ।१ एवम् इत्यादि = सासादन सम्यग्दृष्टि सत् स्वरूप है । ऐसे [= एवम्] इत्यादि अर्थात् तीसरे गुणस्थानसे लेकर चौदहवे गुणस्थान पर्यंत अस्तित्व जानो
विशेषेण ।१ गति अनुवादेन ।१ नरकगतौ ।१ = भेद प्रभेद करि गतिके कथनानुसारसे नरकगतिमें
सर्वासु ।१ पृथिवीषु ।१ आद्यानि ।१ चत्वारि ।१ = सब नरकोंमें पहले चार [मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-अव्रत]
गुणस्थानानि ।१ सन्ति । तिर्यग्गतौ ।१ तानि।१ एव = गुणस्थान हैं । तिर्यंचगतिमें वे ही [अर्थात् आदिके चार गुणस्थान]
संयतासंयत-स्थान-अधिकानि ।१ सन्ति संयतासंयत गुणस्थान अधिक सहित [अर्थात् आदिके पांच गुणस्थान] हैं
मनुष्यगतौ ।१ चतुर्दश ।१ सन्ति = मनुष्यगतिमें चौदह ही [अपि] गुणस्थान हैं
देवगतौ ।१ नारकवत्* = देवगतिमें नारकियोंके सदृश (आदिके चार गुणस्थान) है
इन्द्रिय-अनुवादेन ।१ एकेन्द्रिय-आदिषु ।१ चतुर् = इन्द्रियकी अपेक्षासे एकेन्द्रियसे चार
इन्द्रिय-पर्यन्तेषु ।१ एकम् ।१ एव मिथ्यादृष्टि- = इन्द्रियतकमें एक ही मिथ्यादृष्टि
स्थानम् ।१ पञ्चेन्द्रियेषु ।१ चतुर्दश ।१ अपि सन्ति = गुणस्थान है पंचेन्द्रियमें चौदह (गुणस्थान) भी हैं
कायअनुवादेन ।१ पृथिवीकाय आदिषु ।१ वनस्पति- = कायकी अपेक्षाकरि पृथिवी कायसे लगाय वनस्पति
काय- = काय (अर्थात् पृथिवीकाय, अप्काय, तेजःकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय)
अन्तेषु ।१ एकम् ।१ एव मिथ्यादृष्टि-स्थानम् ।१ = पर्यन्तमें एकही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है
त्रसकायेषु ।१ चतुर्दश ।१ अपि सन्ति = त्रसकायमें चौदह भी गुणस्थान हैं ॥

योगानुवादेन त्रिषु योगेषु त्रयोदशगुणस्थानानि भवन्ति । ततः परः अयोगकेवली ॥ वेदानुवादेन त्रिषु वेदेषु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानि सन्ति। अपगतवेदेषु अनिवृत्तिबादराद्ययोगकेवल्यन्तानि ॥ कषायानुवादेन क्रोधमानमायासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि अनिवृत्तिबादरस्थानान्तानि संति। लोभकषाये तान्येव सूक्ष्मसाम्परायस्थानाधिकानि। अकषायः

योग अनुवादेन ३। त्रिषु ७। योगेषु ७। त्रयोदश- =योगकी अपेक्षासे [मन वचन काय] तीनो योगनमे तेरह

गुणस्थानानि १।३। भवन्ति T ततः ५ परः १। =गुणस्थान (प्रथमसे तेरह तक) होन हैं। तहा [तेरह गुणस्थान] से आगे

अयोग-केवली १। =अयोग केवली है अर्थात् चौदहवे गुणस्थानमें कोई भी योग नहीं है

वेद-अनुवादेन ३। त्रिषु ७। वेदेषु ७। मिथ्यादृष्टि- =वेदके कथनानुसारकरि तीनों (स्त्री पुरुष नपुसक) वेदोंमे मिथ्यादृष्टिके

आदि अनिवृत्तिबादर-अन्तानि १।३। सन्ति T =आरमसे [आदि] अनिवृत्ति बादर (नववें) गुणस्थान पर्यंत हैं। अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानसे नववें गुणस्थानके दो (तीन वेद और तीन अवेद) भागोमेसे वेदभाग तक है।

अपगतवेदेषु ७। अनिवृत्तिबादर-आदि— =वेदरहितमे अनिवृत्ति बादर (नवमे गुणस्थान के अन्तके तीन भाग) से

अयोग-केवलि-अन्तानि १।३। =अयोगकेवली (चोदह गुणस्थानवर्ती) तक हैं यहां भावार्थ ऐसा है, कि अनिवृत्ति बादर साम्पराय नववें गुणस्थानके छह भाग किये हैं उनमें से पहिले तीन भागोंमें वेद है और अन्तके तीन भाग वेदरहित हैं इस कारण यह गुणस्थान वेदरहित और वेदसहित दोनों गुणस्थानोंमें लिखा गया है

कषाय-अनुवादेन ३। क्रोध मान मायासु ७। मिथ्यादृष्टि =कषायके कथनानुसार करि क्रोध मान मायामे मिथ्यादृष्टि प्रथमगुणस्थान

आदीनि १।३। अनिवृत्तिबादर स्थान+अन्तानि १।३। सन्ति =से अनिवृत्ति बादर साम्पराय (नववें गुणस्थान) तक (नौ गुण स्थान) हैं

लोभकषाये ७। तानि १।३। एव सूक्ष्मसाम्पराय- =लोभ कषायमे वेही [प्रथमसे नोनक गुणस्थान] और सूक्ष्मसांपराय

स्थान अधिकानि १।३। अकषायः १। =गुणस्थान अधिक [ऐसे दश] गुणस्थान हैं। कषायरहित

उपशान्तकषायः क्षीणकषायः सयोगकेवली अयोगकेवली च ॥ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानश्रुताज्ञान-विभङ्गज्ञानेषु मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिश्चास्ति। (१) आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानेषु असंयत-सम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति।

उपशान्तकषायः १। क्षीणकषायः १। = उपशान्तकषाय (ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती) क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थानवर्ती)
सयोगकेवली १। च अयोगकेवली १। = सयोगकेवली (तेरहवांगुणस्थानवर्ती) और अयोगकेवली (चौदहवां गुणस्थानवर्ती) हैं
ज्ञान-अनुवादेन ३। मति-अज्ञान-श्रुत-अज्ञान- = ज्ञानकी विवक्षासे मतिअज्ञान श्रुतअज्ञान
विभङ्गज्ञानेषु ७। मिथ्यादृष्टिः १ = कुअवधिज्ञान [= विभङ्गज्ञान] में मिथ्यादृष्टि [प्रथम गुणस्थानवर्ती]
च सासादनसम्यग्दृष्टिः १। अस्ति। = और [= च] सासादनसम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती] हैं
आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधि-ज्ञानेषु ७।३ असंयत = मति श्रुत अवधि ज्ञानोंमें अविरत
सम्यग्दृष्टि आदीनि १।३ क्षीणकषाय-अन्तानि १।३ सन्ति = सम्यग्दृष्टि प्रभृति क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थान] पर्यंत (नोगुणस्थान) हैं

(१) मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानका प्रारंभ असंयत चौथे गुणस्थानसे इसहेतुसे होता है कि—
सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ज्ञानमज्ञानं च केवलं न सम्भवति। तस्याज्ञानत्रयाधारत्वात्। उक्तं च 'मिस्से णाणत्तय (त्तिय) मिस्सं अण्णाणत्तये (त्तिये)णेति तेन ज्ञानानुवादे मिश्रस्यानभिधानम्। तस्याज्ञानप्ररूपणायामेवाभिधानं ज्ञातव्यम्। ज्ञानस्य यथार्थविषयत्वाभावात्॥ इति श्रुतसागरः॥

सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ६।१ ज्ञानम् १।१ अज्ञानं १।१ च = सम्यङ्मिथ्यादृष्टि (तीसरे गुणस्थानवर्ती) के ज्ञान और अज्ञान
केवलं १।१ न सम्भवति। तस्य ६।१ अज्ञानत्रय- = अकेला (=निरा) सम्भव नहीं है। क्योंकि (तिस मिश्रस्थान)के तीन अज्ञानका
आधारत्वात् ५।१ उक्तं १।१ च मिस्से ७।१ (मिश्रे) = आश्रय वा सामीप्य है। कहा भी (= च) है। मिश्र (तीसरे) गुणस्थानमें
णाणत्तय (त्तिय) मिस्सं १।१ = ज्ञानत्रय-(त्रिक)मिश्रं १।१ = तीन (मति-श्रुत-अवधि) ज्ञान मिश्रित है अथवा मिले हुये हैं
अण्णाणत्तये(त्तिये)ण ३।१ इति = तीन (मति-श्रुत-अवधि) अज्ञानकरि। (ज्ञान कुज्ञान नीर क्षीरके समान मिले हुये
अज्ञान त्रयेण ३।१ (त्रिकेण ३।१) इति हैं इससे न तो ज्ञानका ही मिश्रगुणस्थानमें अस्तित्व कह सकते हैं न कुज्ञानका)
तेन ३।१ ज्ञान-अनुवादे ७।१ = तिस (मिश्रमें ज्ञान कुज्ञानको दुध पानीके सदृश मिले रहने) से ज्ञानके प्रकरणमें

मनःपर्ययज्ञाने प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः सन्ति । केवलज्ञाने संयोगोऽयोगश्च ॥ संयमानुवादेन संयताः प्रमत्तादयोऽयोगकेवल्यन्ताः । सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयताः प्रमत्तादयोऽनिवृत्तिस्थानान्ताः । परिहारविशुद्धिसंयताः प्रमत्ताप्रमत्ताश्च । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयता एकस्मिन्नेव सूक्ष्मसाम्परायस्थाने ।

मनःपर्ययज्ञाने ७।१ प्रमत्तसंयत आदय १।३	=मनःपर्ययज्ञानमें प्रमत्तसंयमी [छठेगुणस्थान] से
क्षीण कषाय अन्ताः १।३ सन्ति । केवलज्ञाने ७।१	=क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थान) तक हैं केवलज्ञानमें
सयोगः १।१ च अयोगः १।१	=सयोगकेवली और (चौदहवें गुणस्थानमें) योगरहित (अयोगकेवली) हैं
संयम अनुवादेन ३।१ संयताः १।३ प्रमत्त आदयः १।३	=संयमके कथनानुसारसे संयमी प्रमत्त [छठे गुणस्थानवालों] से
अयोग केवलि अन्ताः १।३ सामायिकच्छेदोपस्थापना-	=अयोगकेवली (चौदह गुणस्थानवर्ती) तक हैं । सामायिकच्छेदोपस्थापना
शुद्धि-संयताः १।३ प्रमत्त-आदय १।३ अनिवृत्तिस्थान	=शुद्धिसंयमी प्रमत्त (छठे गुणस्थान) के प्रारम्भसे अनिवृत्तिगुणस्थान
अन्ताः १।३ परिहारविशुद्धि संयताः १।३ प्रमत्त	=पर्यंत हैं । परिहारविशुद्धि संयमी प्रमत्त (छठे गुणस्थानवर्ती)
अप्रमत्ताः १।३ च सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयताः १।३	=और अप्रमत्त [सातवें गुणस्थान वर्ती] हैं । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयमी
एकस्मिन् ७।१ एव सूक्ष्मसाम्परायस्थाने ७।१	=एक [=एकस्मिन्] ही सूक्ष्मसाम्पराय [दशवें] गुणस्थानमें हैं

मिश्रस्य ६।१ अन् अभिधानम् १।१ । तस्य ६।१	=मिश्र (तीसरे गुणस्थान) का कथन नहीं है । तिस (मिश्रगुणस्थान) का
अज्ञान प्ररूपणायाम् ७।१ एव अभिधान १।१ ज्ञातव्यम् १।१	=अज्ञानप्ररूपणामें ही (=एव) कथन जानना योग्य है
ज्ञानस्य ६।१ यथार्थ - विषयत्व—अभावात् ५।१	=क्योंकि ज्ञानका ठीक ठीक विषय है उसका (अज्ञानमें) अभाव है अर्थात् ज्ञान अपने विषयोंमें पदार्थके स्वरूपको ज्योंका त्यों ग्रहण करता है उस प्रकारका विषय या सामर्थ्य जो पदार्थके स्वरूपका यथार्थ ग्रहण करे यह अज्ञानमें नहीं पाई जाती है
इति श्रुतसागर १।१	=ऐसा श्रुतसागर सूरिकी तत्त्वार्थसूत्रकी श्रुतसागरी टीकामें है ॥

(१) जब ङ—ण—न शब्द अथवा पदके अन्तमें हो और उसके प्रथम कोई ह्रस्व स्वर हो और उक्त ङ—ण—न् के पीछे कोई स्वर हो तो ङ—ण् अथवा न् दुहरा हो जाता है इसलिये एकस्मिन् पदमें न् दुहरा होकर एकस्मिन्नेव बन गया।

आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि। अनाहारकेषु विग्रहगत्यापन्नेषु त्रीणि गुणस्थानानि, मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च। समुद्घातगतः सयोगकेवली अयोगकेवली च। सिद्धाः परमेष्ठिनः अतीतगुणस्थानाः॥ उक्ता सत्प्ररूपणा॥

आहार-अनुवादेन ३। आहारकेषु ७। मिथ्यादृष्टि = आहारकी अपेक्षाकरि आहारकमें मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थान)

आदीनि १।। सयोग-केवलि-अन्तानि १।। = से लेकर सयोग केवली (तेरहवें गुणस्थान) तक (तेरह) हैं

अन् आहारकेषु ७। विग्रह-गति-आपन्नेषु ७। त्रीणि १।। = अनाहारकोंमें विग्रहगतिको प्राप्तोंमें तीन

गुणस्थानानि १।। मिथ्यादृष्टिः १। सासादनसम्यग्दृष्टिः १। = गुणस्थान मिथ्यादृष्टि (प्रथम) सासादन सम्यग्दृष्टि (दूसरा)

च असंयतसम्यग्दृष्टिः १। समुद्घातगतः १। = और अविरत सम्यग्दृष्टि (चौथा) एवं समुद्घातको प्राप्त

सयोगकेवली १। च अयोगकेवली १। = सयोगकेवली (तेरहवें गुणस्थानवर्ती हैं और अयोगकेवली (चौदहवें गुणस्थानवर्ती अनाहारक) हैं॥ भावार्थ—यह जीव तीन अवस्थामें अनाहारक हो सकता है एक तो विग्रहगति करते समय दूसरे सयोगकेवलीका आत्मा समुद्घात करते समय, तीसरे अयोगकेवली हो जानेके समय॥ उसमें साधारण जीवके विग्रहगति (अर्थात् नवीन शरीर धारण करनेके लिये गमन) में प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थानोंमेंसे कोई एक गुणस्थान होता है सयोगकेवलीके समुद्घात [अर्थात् मूलदेह न छोडकर जीवके प्रदेश बाहर जाकर पुनः उसी शरीरमें लौट आने] की अवस्थामें तेरहवां गुणस्थान रहता है और अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानवर्ती अनाहारक होते हैं और उनके समुद्घात नहीं होता है]

सिद्धाः १। परमेष्ठिनः १। अतीत-गुणस्थानाः १। = सिद्ध परमेष्ठी अर्थात् मुक्तजीव गुणस्थानरहित हैं।

उक्ता १। सत्प्ररूपणा १। = इस प्रकार सत् [प्रथम प्ररूपणा] कही गई॥

---

(१) औदारिक वैक्रियिक आहारक ये तीन शरीर और छह (आहार शरीर इन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास-भाषा और मन) पर्याप्तिके योग्य पुद्गल वर्गणाके ग्रहणको आहार कहते हैं। ऐसे आहारको ग्रहण नहीं करे तब तक उसको अनाहारक कहते हैं। जीव अधिकसे अधिक विग्रहगतिमें तीन समय तक अनाहारक रहता है। चौथे समयमें शरीर पर्याप्तिका ग्रहण करके आहारक हो जाता है।

संख्या प्ररूपणा को आरम्भ करने से पहिले निम्न टिप्पणी को अवश्य ही पढना चाहिये क्योंकि पूज्यपाद स्वामी और श्रुतसागर सूरि के उल्लेखों में द्वितीय सासादन गुणस्थान से पांचवां संयतासंयत गुणस्थान तक के जीवों की संख्या में बाह्यरूप से विरुद्धता जान पड़ती है जिसका समाधान नीचे की टिप्पणी से हो जाता है।

हमको इस टिप्पणी में यह बात सिद्ध करनी है कि संख्या प्ररूपणा में पूज्यपाद स्वामी न सासादन गुणस्थानसे संयतासंयत तकप्रत्येक गुणस्थान में पल्य के असंख्यातवां भाग संख्या का निर्देश किया है वह (१) सब प्रकार के जीवों की है और (२) वे जीव प्रत्येक गुणस्थान में असंख्याते हैं श्रुतसागरसूरिने जो संख्या श्रुतसागरीटीका के संख्या प्ररूपणा में बावन करोड़ एकसो चार करोड़, सातसो करोड़ और तेरह करोड़ का क्रम से उल्लेख किया है वह केवल मनुष्यों की गणना का कथन है। और यह भी सिद्ध करता है कि अल्प बहुत्व प्ररूपणामें पूज्यपादस्वामीके निम्न उद्धृत लेख में तीन गुणस्थानों में असंख्येय गुणा शब्दका प्रयोग है परन्तु उस प्ररूपणामें ही श्रुतसागरसूरिने संख्येयगुणा शब्दका उल्लेख किया है इस बाह्यरूप विरोधता या प्रतिकूलता का कारण यह है कि सर्वार्थ सिद्धि वृत्ति में विशेष गुणस्थान सम्बन्धी सब प्रकार के जीव ग्रहण किये हैं परन्तु श्रुतसागरीटीका में अमुक गुणस्थानके केवल मनुष्योंकी गणनाका निरूपण है जैसा कि निम्न उद्धृत वाक्यों तथा टिप्पणी से प्रगट होता है॥

" सामान्येन तावत् जीवा मिथ्यादृष्टयो ऽनन्तानन्ता सासादन सम्यग्दृष्टय सम्यङ्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टय संयतासंयताश्च पल्योपमासंख्येयभाग प्रमिता "	"सामान्येन मिथ्यादृष्टयो जीवा ऽनन्तानन्तसंख्या सासादनसम्यग्दृष्टय सम्यग्मिथ्यादृष्टय असंयत सम्यग्दृष्टय देशसंयताश्च पल्योपमाऽसंख्येयभागराशय ॥ तथाहि। द्वितीय गुणस्थाने द्वापंचाशत्कोटय ५२०००००००। (द्वापंचाशद्गुणकोट्य) तृतीयगुणस्थाने चतुरधिका शतकोटय (=शतकोट्य) १०४०००००००॥ चतुर्थगुणस्थाने सप्तशतकोटय (=सप्तशतकोट्य) ७०००००००००॥ पंचमगुणस्थाने त्रयोदशकोटय (=त्रयोदशकोट्य) १३००००००० उक्तंच ॥ तेरह कोडी देसे बावण्णा सासणा मुणेयव्वा ॥ मिस्सम्मि य तद्दुगुणा असंजया सत्तसयकोडी ॥ (असंयदा सत्तसय कोडीओ—असंजदा सत्तकोडिसय)"
(सर्वार्थ सिद्धि वृत्ति की संख्या प्ररूपणासे उद्धृत)	(श्रुतसागरी टीका की संख्या प्ररूपणा से उपर्युक्त गाथा तक उद्धृत)
"संयतासंयता असंख्येयगुणा	"संयतासंयता संख्येयगुणा संयतासंयताना नास्त्यल्पबहुत्व पञ्च गुणस्थान वर्तित्वात् ॥ संयतासंयता नामपि गुणस्थानभेदाऽसम्भवात् १३००००००० (गुणस्थानभेदात १३०००००००)॥
सासादन सम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा	सासादन सम्यग्दृष्टय संख्येयगुणा ५२००००००००
सम्यग्मिथ्यादृष्टय संख्येयगुणा	सम्यग्मिथ्यादृष्टय संख्येयगुणा १०४००००००००
असंयत सम्यग्दृष्टयोऽसंख्येय गुणा। मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणा "	असंयतसम्यग्दृष्टय संख्येयगुणा ७०००००००००० मिथ्यादृष्टय अनन्तगुणा "॥
(सर्वार्थसिद्धि की अल्प बहुत्व प्ररूपणासे उद्धृत)	(श्रुतसागर टीका की 'अल्प बहुत्व' प्ररूपणासे उद्धृत)

(२१) निर्जरा पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये ।
(२३) निर्जरा पदार्थ कालकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये ।
(२५) मोक्ष पदार्थ आपहो से कालकरि अस्तित्व कीजिये ।
(२७) मोक्ष पदार्थ कालकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये ।
(२९) पुन्य पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये ।
(३१) पुन्य पदार्थ कालकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये ।
(३३) पाप पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये ।
(३५) पाप पदार्थ कालकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये ।

(२२) निर्जरा पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये ।
(२४) निर्जरा पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये ।
(२६) मोक्ष पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये ।
(२८) मोक्ष पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये ।
(३०) पुन्य पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये ।
(३२) पुन्य पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये ।
(३४) पाप पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये ।
(३६) पाप पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये ।

निम्नलिखित छत्तीस (३६) भेद ईश्वर पर लगाने से होते हैं

(१) जीव पदार्थ आपही से ईश्वरकरि अस्तित्व कीजिये ।
(३) जीव पदार्थ ईश्वरकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये ।
(५) अजीव पदार्थ आपही तै ईश्वरकरि अस्तित्व कीजिये ।
(७) अजीव पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(९) आस्रव पदार्थ आपही तैं ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(११) आस्रव पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(१३) बन्ध पदार्थ आपही तै ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(१५) बन्ध पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(१७) संवर पदार्थ आपही तै ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(१९) संवर पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(२१) निर्जरा पदार्थ आपही तै ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(२३) निर्जरा पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(२५) मोक्ष पदार्थ आपही तैं ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(२७) मोक्ष पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(२९) पुन्य पदार्थ आपही तैं ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(३१) पुन्य पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(३३) पाप पदार्थ आपही तैं ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(३५) पाप पदार्थ ईश्वरकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।

(२) जीव पदार्थ परही तै ईश्वरकरि अस्तित्व कीजिये ।
(४) जीव पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि अस्तित्व कीजिये ।
(६) अजीव पदार्थ परही से ईश्वरकरि अस्तित्व कीजिये ।
(८) अजीव पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(१०) आस्रव पदार्थ परहो से ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(१२) आस्रव पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(१४) बन्ध पदार्थ परही से ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(१६) बन्ध पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(१८) संवर पदार्थ परही तै ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(२०) संवर पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(२२) निर्जरा पदार्थ परहीसे ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(२४) निर्जरा पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(२६) मोक्ष पदार्थ परही से ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(२८) मोक्ष पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(३०) पुन्य पदार्थ परही से ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(३२) पुन्य पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।
(३४) पाप पदार्थ परही से ईश्वरकरि ,, ,, कीजिये ।
(३६) पाप पदार्थ ईश्वरकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये ।

निम्नलिखित छत्तीस (३६) भेद आत्मा पर लगाने से होते हैं

(१) जीव पदार्थ आपही से आत्माकरि अस्तित्व कीजिये। (२) जीव पदार्थ परही से आत्माकरि अस्तित्व कीजिये।
(३) जीव पदार्थ आत्माकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (४) जीव पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि अस्तित्व कीजिये।
(५) अजीव पदार्थ आपही से आत्माकरि अस्तित्व कीजिये। (६) अजीव पदार्थ परही से आत्माकरि अस्तित्व कीजिये।
(७) अजीव पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (८) अजीव पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(९) आस्रव पदार्थ आपही से आत्माकरि ,, कीजिये। (१०) आस्रव पदार्थ परही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(११) आस्रव पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (१२) आस्रव पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(१३) बन्ध पदार्थ आपही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (१४) बन्ध पदार्थ परही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(१५) बन्ध पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (१६) बन्ध पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(१७) संवर पदार्थ आपही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (१८) संवर पदार्थ परही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(१९) संवर पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (२०) संवर पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(२१) निर्जरा पदार्थ आपही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (२२) निर्जरा पदार्थ परही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(२३) निर्जरा पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (२४) निर्जरा पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(२५) मोक्ष पदार्थ आपही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (२६) मोक्ष पदार्थ परही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(२७) मोक्ष पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (२८) मोक्ष पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(२९) पुन्य पदार्थ आपही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (३०) पुन्य पदार्थ परही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(३१) पुन्य पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (३२) पुन्य पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।
(३३) पाप पदार्थ आपही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये। (३४) पाप पदार्थ परही से आत्माकरि ,, ,, कीजिये।
(३५) पाप पदार्थ आत्माकरि नित्यताकरि ,, ,, कीजिये। (३६) पाप पदार्थ आत्माकरि अनित्यताकरि ,, ,, कीजिये।

क्रियावादियोंके छत्तीस भेद नियति पर ऐसे होते हैं

(१) जीव पदार्थ आपहीसे नियतिकरि अस्तित्व कीजिये है। (२) जीव पदार्थ परहीसे नियतिकरि अस्तित्व कीजिये है।
(३) जीव पदार्थ नियतिकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये है। (४) जीव पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये है।
(५) अजीव पदार्थ आपहीसे नियतिकरि अस्तित्व कीजिये है। (६) अजीव पदार्थ परहीसे नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(७) अजीव पदार्थ नियतिकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (८) अजीव पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(९) आस्रव पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये। (१०) आस्रव पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(११) आस्रव पदार्थ नियतिकरि नित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये। (१२) आस्रव पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(१३) बन्ध पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये। (१४) बन्ध पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(१५) बन्ध पदार्थ नियतिकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (१६) बन्ध पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।

सग्रन्थ निर्ग्रन्थः, केवली कवलाहारी, स्त्री सिध्यतीत्येवमादिः विपर्ययः ॥ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि किं मोक्षमार्गः स्याद्वा न वेत्यन्यतरपक्षापरिग्रहः संशयः ॥ सर्वदेवतानां सर्वसमयानां च समदर्शनं वैनयिकम् ॥ हिताहितपरीक्षाविरहोऽज्ञानिकत्वं ॥ उक्तञ्च—असिदिसदं किरियाणं

सग्रन्थ. निर्ग्रन्थ.; (१)केवली कवल-आहारी, =परिग्रह सहित अपरिग्रही, केवली ग्रासद्वारा भोजन करने वाले (माने जाते) हैं

स्त्री सिध्यति एवम् इत्यादिः विपर्ययः; =नारीसिद्धहोजातीहैवामोक्ष प्राप्त करती है, ऐसे इत्यादि(मानना)विपर्यय मिथ्यात्वहै

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि किम् मोक्षमार्गः स्यात् =सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक् चारित्र क्या मोक्ष पथ है,

(२) वा न वा इति अन्यतर-पक्ष (३) अपरिग्रहः =वा नहीं ऐसे दोनोंमेंसे एक (=अन्यतर) पक्षको स्वीकार न करना (=अपरिग्रहः)

संशयः: सर्वदेवतानाम् सर्व-समयानाम् च =सो संशय मिथ्यादर्शन है। सब देवोंकी तथा (=च) सब शास्त्रोंकी

समदर्शनम् वैनयिकम्; हित--अहित- =समान बुद्धि वा समान मानता करना सो वैनयिक (मिथ्यादर्शन) है। भले बुरे की

परीक्षाविरहः अज्ञानिकत्वम्; उक्तम् च =पहिचान और परख रहित सो अज्ञानिकपना वा अजान मिथ्यात्व है, कहा भी है

असिदिसदं किरियाणं =अशीतिशतम् क्रियावादि =एकसौ अस्सी (४) क्रियावादि हैं अर्थात् एकसौ अस्सी भेद क्रियावादियों के हैं

(१) केवलिन् और आहारिन् शब्दोंके प्रथमा एक वचन पुलिंग क्रमसे केवली और आहारी है। (२) यह 'वा' संस्कृत की बोलचाल का कारण है यदि यह न होता तो भी वाक्य 'स्याद् नवेति' (=स्यात् न वा इति) ठीक था ॥ (३) अपरिग्रह—पास कुछ न रखना यहां यह अर्थ नही है, स्वीकार न करना ऐसा अर्थ है (पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ ३१) (४) क्रियावादियों मे कौत्कल, कांठेविद्धि, कौशिक, हरिश्मश्रु, मांधपिक, रोमश हारीत, मुण्ड, आश्वलायन इत्यादिक हैं उनके एकसौ अस्सी भेद इस प्रकार से है कि मूल भेद पांच (क) काल (ख) ईश्वर (ग) आत्मा (घ) नियति (ङ) स्वभाव इन पांचोंमे से प्रत्येक पर आपसे परसे-नित्यपनाकरि-अनित्यपनाकरि-लगाने से बीस भेद हुये, पश्चात् इन बीसोंमे से प्रत्येक का जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप पे लगानेसे एकसौ अस्सी भेद हुये। उक्त पांच भेदों का आशय ऐसा है कि (क) काल-वादी तो सर्वथा काल ही को कर्त्ता मानता है और कहता है कि काल ही सर्वको उत्पन्न करता है काल ही सर्वका (नाश करता है, कालही निद्रा को करता है काल ही जागृत करता है काल ही पुण्य पाप आदिके फल करि संयुक्त करता है, काल ही रहित करता है, काल ही संयोग वियोग करता है, काल ही समस्त को तरुण करता है और काल ही जीर्ण करता है काल सर्व के ऊपर खड़ा है काल किसीसे जीता नही जासक्ता है। समस्त जगत की रचना का काल ही कारण है (ख) ईश्वरवादी कहता है कि आत्मा तो अज्ञानी है अनाथ है। आत्मा के सुख, दुःख, जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, ज्ञानता, अज्ञानता, पापीपना, धर्मीपना, स्वर्ग गमन नरक गमन इत्यादि ईश्वर करता है। और संसारका कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, ईश्वर ही है तात्पर्य जो कुछ इस संसार मे होता है बिना ईश्वर के कुछ भी नही हो सक्ता है सबका कारण एक ईश्वर ही है(ग) आत्मावादी समस्त को एक आत्मा कहता है आत्मा जगतमे एक ही है वह सर्व व्यापी है देव है महात्मा है पुरुष है सर्व अंग इसके गूढ़ है चेतना है निर्गुण है उत्कृष्ट है-यह सब रचन है सो पुरुष मयी है दूसरा कोई नही है।

(घ) नियतवादी भवितव्य, भवितव्यता को मानता है। और कहता है कि जो जिसके जैसा होना है सो अवश्य होवेगा, उसका कोई भी इन्द्रादिक भी मेट नहीं सकता है, यह अमिट है होनहार है वह अवश्य ही होयगा॥ इस सम्बन्धमें भर्तृहरिशतकमें एक शार्दूलविक्रीडित छन्द है

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जयत्वाहवे। वाणिज्य कृषिसेवनादि सकला विद्या कला॰ शिक्षतु॥
आकाश विपुल प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्न पर। नाभाव्य भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाश कुत ॥ १०२॥

मज्जतु अम्भसि, यातु मेरु शिखरम्, शत्रून् जयतु आहवे =(चाहे)समुद्रमें डूब जाओ, मेरु पर्वतके शिखर पर चढ जावो, शत्रुओंको युद्धमें जीतलो
वाणिज्यम् कृषि सेवनादि सकला विद्या कला शिक्षतु =चाहे बनिज को, खेती, सेवा आदिक सर्व विद्या और कलाओं को सीखलो
आकाशम् विपुलम् प्रयातु खगवत् कृत्वा प्रयत्नम् परम् =(चाहे) पक्षीके समान बड़ा आकाश को उत्कृष्ट (=परम्) प्रयत्न करके उड़ जावो
अभाव्यम् इह कर्म वशत न भवति =(परन्तु जानलो कि)अनहोनी(=अभाव्यम्)इस लोकमें कर्मवशात नहीं होती है,
भाव्यस्य नाश कुत =होनहार की क्योंकर नाश हो (सकता) है॥ १२॥

अर्थात् जो अनहोनी है वह कभी न होगी और जो होनी है वह कभी टल नहीं सकती॥

(ङ) स्वभाववादी कहता है कि जो कुछ संसार में है सो स्वभाव से है काटेको तीक्ष्ण कौन करता है वह स्वभाव से तीक्ष्ण है, मोर को चित्र विचित्र कौन करता है वह स्वभाव से ऐसा है कमलोंमें तथा और द्रव्योंमें सुगन्ध कौन करता है वे स्वभाव से सुगन्धित हैं, मृग, शूकर, सिंह, व्याघ्र, सर्प, पक्षी इत्यादिकों का भिन्न भिन्न रूप कौन करता है इन समस्त को स्वभाव ही कारण है॥

क्रियावादियोंके एकसौ अस्सी (१८०) मेंसे छत्तीस भेद काल पर लगानेसे ऐसे होते हैं

(१) जीव पदार्थ आपहीसे कालकरि अस्तित्व कीजिये है। (२) जीव पदार्थ परहीसे कालकरि अस्तित्व कीजिये है।
(३) जीव पदार्थ कालकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये है। (४) जीव पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये है।
(५) अजीव पदार्थ आपहीसे कालकरि अस्तित्व कीजिये है। (६) अजीव पदार्थ परहीसे कालकरि अस्तित्व कीजिये।
(७) अजीव पदार्थ कालकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (८) अजीव पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(९) आस्रव पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये। (१०) आस्रव पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये।
(११) आस्रव पदार्थ कालकरि नित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये। (१२) आस्रव पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(१३) बन्ध पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये। (१४) बन्ध पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये।
(१५) बन्ध पदार्थ कालकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (१६) बन्ध पदार्थ कालकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(१७) संवर पदार्थ आपही से कालकरि अस्तित्व कीजिये। (१८) संवर पदार्थ परही से कालकरि अस्तित्व कीजिये।
(१९) संवर पदार्थ कालकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (२०) संवर पदार्थ कालकरि अनित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये।

तत्प्रतिपक्षभूतमास्रवविधाने च क्रियासु व्याख्यातं मिथ्यादर्शनक्रियेति ॥ विरतिरुक्ता । तत्प्रतिपक्षभूता अविरतिर्ग्राह्या । आज्ञाव्यापादनक्रिया अनाकांक्षक्रियेत्यनयोः प्रमादस्यान्तर्भावः । स च प्रमादः कुशलेष्वनादरः ॥ कषायाः क्रोधादयः अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसञ्ज्वलनविकल्पाः प्रोक्ताः । क्व ? इन्द्रियकषाया इत्यत्रैव ॥ योगाः कायादिविकल्पाः प्रोक्ताः ।

तत्-प्रतिपक्षभूतम्[१।।।] आस्रव-विधाने[१।।।] च* क्रियासु[७।।] व्याख्यातम्[१।।।]
(१)मिथ्यादर्शनक्रिया[१।।] इति*॥
विरतिः[१।।] उक्ता[१।।], तत्-प्रतिपक्षभूता[१।।] अविरतिः[१।।]
(२)ग्राह्या[१।।]; आज्ञाव्यापादनाक्रिया[१।।]
अनाकांक्षाक्रियाः[१।।]
इति* अनयोः[२।] प्रमादस्य[६।] अन्तर्भावः[१]
सः[१।] च प्रमादः[१।] कुशलेषु[७।।।] अनादरः[१।]; कषायाः[३।]
क्रोध-आदयः[३।] अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान-
प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाः[३।] प्र-उक्ताः[३।];
क्व* इन्द्रिय-कषायाः[३।] इति* अत्र* एव*॥
योगाः[३।] काय-आदि-विकल्पाः[३।] प्रोक्ताः[३।]

= उस (तत्त्वार्थ श्रद्धान वा सम्यग्दर्शनको) का प्रतिपक्षी वा विरोधी (अतत्त्वार्थ श्रद्धान)
= तथा (= च) आस्रवके कथनमें पच्चीस क्रियाओमें व्याख्यान की गयी
= मिथ्यादर्शन क्रिया ऐसा (मिथ्यादर्शन) है (देखो अ० ६ सू० ५ संस्कृत सर्वार्थसिद्धिपृष्ठ ३१६)
= विरति कही गई है (अध्याय ७ सूत्र १) तिस विरतिके विपरीत (प्रतिपक्षभूत) अविरति
= जानने योग्य (ग्राह्य) है। आज्ञा व्यापादन क्रिया अर्थात् चारित्र मोहके उदयसे (परमागममें)
= कहीहुई आज्ञानुसार आवश्यक आदिकके करनेको असमर्थ होकर और प्रकार वर्णन करना
= और अनाकांक्ष क्रिया अर्थात् कपट तथा आलस्यसे शास्त्रोक्त विधानके कर्तव्यमें अनादर
= इस प्रकार इन दोनोमें प्रमाद अन्तरवर्तीपन है अर्थात् प्रमाद इन दोनोंमें गर्भित है
= बहुरि वह प्रमाद कल्याण कार्योंमें निरादर (रूप) है ॥ कषाय
= क्रोध आदिक अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान।
= प्रत्याख्यान, सञ्ज्वलनके भेद पहिले (= प्र) कहे गये हैं (= उक्त :)
= (प्रश्न) कहां (कहे गये हैं) इन्द्रिय कषाय ऐसे इस स्थान (अध्याय ६ सूत्र ५) में ही
= योग-काय आदि भेद रूप प्रथम कहे गये हैं (अध्याय ६ सूत्र १)

(१) संस्कृत सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ३१६ में मिथ्यात्वक्रिया है और यहा पर उसी अर्थमें मिथ्यादर्शन क्रिया लिखी है। इससे प्रगट है कि मिथ्यादर्शन और मिथ्यात्व शब्द एक ही अर्थ में लियेगये हैं। इसी कारणसे भाषाकी पुस्तकोंमें और संस्कृतकी पुस्तकोंमे भी मिथ्यात्व शब्द मिथ्यादर्शनके अर्थ में लिया गया है। (२) ग्राह्य शब्द के अर्थ पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ १३६ में जानने योग्य, ग्रहण करने योग्य लिखा है।

क ? कायवाङ्मन कर्म योग इत्यत्र ॥ मिथ्यादर्शनं द्विविधम् । नैसर्गिकं परोपदेशपूर्वकं च । तत्र परोपदेशमन्तरेण मिथ्यात्वकर्मोदयवशाद्यदाविर्भवति तत्त्वार्थाश्रद्धानलक्षण तन्नैसर्गिकम् । परोपदेशनिमित्त चतुर्विधम् । क्रियाक्रियावाद्यज्ञानिवैनायिकाविकल्पात् ॥ अथवा पञ्चविध मिथ्यादर्शनम् एकान्तमिथ्यादर्शनम् । विपरीतमिथ्यादर्शनम् । संशयमिथ्यादर्शनम् । वैनयिकमिथ्यादर्शनम् । अज्ञानमिथ्यादर्शनं चेति ॥ तत्र इदमेव इत्थमेवेति धर्मिधर्मयोरभिनिवेश एकान्त । पुरुष एवेदं सर्वमिति वा नित्यमेवेनि ॥

क*।काय वाङ्-मन॰कर्म॰१।।।योग॰१।।	=[प्रश्न]क्या[योग कह गये हैं] काय-वाङ् मन कर्म योग [काय-वचन मनकी क्रिया योग है
इति*अत्र*मिथ्यादर्शनम्१।।।द्वि-विधम्१।।।,नैसर्गिकम्१।।।	=ऐसे इस स्थानमें अर्थात् अ० ६ सूत्र १ म [योग कहगये है]मिथ्यात्व दो प्रकार नैसर्गिक
पर उपदेश पूर्वकम्१।।।च।तत्र।पर-उपदेशम्२।(१)अन्तरेण*	=और [=च]पर उपदेश निमित्तक या परउपदेश जन्य,तहा दूसरेके उपदेशविना
मिथ्यात्व कर्म-उदय-वशात्५।यत्१।।।आविर्भवति१तत्त्वार्थ-	=मिथ्यात्व कर्मके उद्रेक वशसे जो प्रगट होता है [=आविर्भवति] तत्त्वार्थका
अश्रद्धान लक्षणम्१।।।तत्१।।।नैसर्गिकम्१।।।,	=अश्रद्धानरूप परिणाम[आत्माके]सो[=तत्]नैसर्गिक वा अगृहीत[मिथ्यात्व]है
पर-उपदेश निमित्तम्१।।।चतुर् विधम्१।।।,क्रियावादिन्	=दूसरेकेउपदेश वा शिक्षासे उत्पन्नहुआ जो[मिथ्यादर्शनसो]चार प्रकार,क्रियावादी
अक्रियावादिन्-अज्ञानिक-वैनयिक विकल्पात्५।,अथवा*	=अक्रियावादी, अज्ञानिक और वैनयिक भेद से है अथवा
पञ्चविधम्१।।।मिथ्यादर्शनम्१।।।एकान्तमिथ्यादर्शनम्१।।।	=मिथ्यादर्शन वा मिथ्यात्व पाच प्रकार [क]एकान्तमिथ्यादर्शन
विपरीतमिथ्यादर्शनम्१।।।संशयमिथ्यादर्शनम्१।।।वैनयिक-	=[ख]विपरीतमिथ्यादर्शन [ग] संशयमिथ्यादर्शन [घ] वैनयिक
मिथ्यादर्शनम्१।।।अज्ञानमिथ्यादर्शनम्१।।।च*इति*	=मिथ्यादर्शन और (=च)अज्ञानमिथ्यादर्शन इस प्रकार (पाच भेद) है
तत्र*इदम्१।।।एव*इत्थम्*एव*इति*[२]धर्मि-	=तहा यह [=इदम्]ही[=एव]है इसरीतिस[इत्थम्]ही है । धर्मी तथा
धर्मयो.अभिनिवेश॰१।।	=धर्मका हठ करना अर्थात् पदार्थका धर्मीमात्र होनेका हठ करना तथाधर्ममात्र होने का हठ करना भावार्थ—वस्तु द्रव्य और पर्यायस्वरूप है उसम से उस को केवल द्रव्यात्मक ही मानना अथवा केवल पर्याय स्वरूप ही मानना सो
एकान्त १।,पुरुष १।एव*इदम्१।।।सर्वम्१।।।इति*वा*	=एकान्त है [जैसे]पुरुष मात्रही (=एव) यह सब रचना है इस प्रकार अथवा
नित्यम्१।।।एव*इति*	=नित्यही है ऐसे [अपेक्षा रहित एक नयका पक्षपात करे सो एकान्त मिथ्यात्व]है

॥ अथाष्टमोऽध्यायः ॥

व्याख्यात आस्रवपदार्थस्तदनन्तरोद्देशभाग्बन्धपदार्थ इदानीं व्याख्येयस्तस्मिन्व्याख्येये सति पूर्वं बन्धहेतूपन्यासः क्रियते तत्पूर्वकत्वाद्बन्धस्येति ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥१॥

अथ*अष्टमः[1/1] अध्यायः[1/1] = आठवां अध्याय प्रारम्भ (= अथ) है

व्याख्यातः[1] आस्रव-पदार्थः[1/1]	= आस्रव पदार्थ (छठे और सातवें अध्यायों में) वर्णन किया गया है
तद्-अनन्तर-उद्देशभाक्[1/1] बन्ध-पदार्थः[1/1] इदानीम्*व्याख्येयः[1/1]	= तिस (आस्रव पदार्थ) के निकट कहा गया बन्ध पदार्थ अब व्याख्यान योग्य है
तस्मिन्[7/1] व्याख्येये[7/1] सति[7/1] पूर्वम्[2/1] बन्ध-हेतु-उपन्यासः[1/1]	= तिस के व्याख्यान योग्य होते संते पहिले बन्ध के कारण की प्रस्तावना (= उपन्यास)
क्रियते T तत्पूर्वकत्वात्[5/1] बन्धस्य[6/1] इति *	= की जाती है क्योंकि बन्धका होना उस (कारण) पूर्वक है ऐसे (निम्नसूत्र कहा जाता है)

(१) मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥ १ ॥

सूत्रार्थः— मिथ्यादर्शन—	= अतत्त्वार्थ श्रद्धान अथवा तत्त्वार्थका अश्रद्धान
अविरति—	= हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म परिग्रह से विरति न होना पृथक् न रहना अथवा हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह की आकांक्षा रूप होना
प्रमाद—	= कल्याण रूप कार्यों में अनादर और मनकी खोटी प्रवृत्ति का होना अर्थात्

(१ इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। अर्थ भेद केवल इतना है कि दोनों सम्प्रदायोंमें मिथ्यादर्शनके दो भेद गृहीत मिथ्यात्व और अगृहीत मिथ्यात्व मानने पर भी हमारे यहां गृहीत मिथ्यात्वके पाँच भेद (क) एकान्तमिथ्यात्व (ख) संशयमिथ्यात्व (ग विनयमिथ्यात्व (घ) अज्ञानमिथ्यात्व (ङ) विपरीतमिथ्यात्व माने हैं। इस विपरीतमिथ्यात्वमें केवलीके कवलाहार मानना और स्त्री को मोक्ष होना इत्यादिक गर्भित किये हैं। परन्तु दूसरी आम्नाय वाले इसको विपरीत मिथ्यात्व नहीं कहते हैं। वे 'एकादश जिने' अध्याय ९ सूत्र ग्यारह से केवलीके कवलाहार मानते हैं। वे स्त्री के मोक्ष इत्यादि मानते हैं॥ (२) हेतवः-'हेतु' शब्दका प्रथमाविभक्ति पुल्लिंग बहुवचन है॥

मिथ्यादर्शनादय उक्ताः । क मिथ्यादर्शनं तावदुक्तं ? तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनमित्यत्र,

मान शुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भैक्ष्यशुद्धि, शयनासनशुद्धि, प्रतिष्ठापन शुद्धि और वाक्य शुद्धि ये आठ शुद्धियें तथा दशलक्षण धर्ममें उत्साह रहित परिणाम हो, मन्दउद्यमी हो, स्त्रीकथा, राजकथा, भोजनकथा, देशकथा ये चार विकथा और क्रोध, मान, माया (= कपट), लोभ ये चार कषाय पांच (स्पर्शन-रसन-घ्राण-भाण कर्ण) इन्द्रियें, निद्रा और अतिराग (= प्रणय) या स्नेह ये १५ प्रमाद हैं।

कषाय-- = आत्मा के स्वभाव अथवा परिणाम को कषैला करने में कारण (सो कषाय) है अर्थात् उनके पचीस भेद हैं, अनन्तानुबन्धी क्रोध अनन्तानुबन्धी मान, अनन्तानुबन्धी माया (कपट), अनन्तानुबन्धी लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध, अप्रत्याख्यानमान (अहंकार, घमंड), अप्रत्याख्यान माया, (कपट) अप्रत्याख्यान लोभ संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान (अभिमान), संज्वलन माया (कपट), संज्वलन लोभ (लालच) नौ अकषाय या ईषत् कषाय, अल्परूप कषाय अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद, ऐसे सोलह उपर्युक्त कषाय, और नौ ये, अकषाय, सर्व मिलकर पचीस कषाय हुये

योगा॰ [१] = काय-वचन मनकी क्रिया (देखो अध्याय ६ सूत्र १) अर्थात् काय, वचन, मन इन तीनों द्वारा आत्माके प्रदेशोंका कम्पायमान होना सो योग है, भावार्थ कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलन रूप होना सो काय योग है। वचनके निमित्तसे, आत्माके प्रदेशोंका चलना सो वाग्योग है। और मनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलना सो मनो योग है,

बन्ध हेतवः [१] (ये सर्व) बन्धके हेतु वा कारण हैं, अर्थात् आत्माके कर्म बन्ध इनके निमित्तसे ही होता है।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस प्रथम सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद ।

मिथ्यादर्शन आदय॰ [१] उक्ता॰ [१] = मिथ्यादर्शन आदिक पहिले कहे जा चुके हैं (देखो अध्याय २ सूत्र ६ अ॰ ६ सूत्र १, अ॰ ७ सूत्र १)

क मिथ्यादर्शनम् [१] तावत् * उक्तम् [१] ? = (प्रश्न) तो (= तावत्) मिथ्यादर्शन कहां कहा गया है ?

तत्त्वार्थ- = (उत्तर) जो पदार्थ जिस प्रकारसे अवस्थित है उसको उसी प्रकारसे (= ज्ञान) निश्चयकरि (= अर्थ)

श्रद्धानम् [१] सम्यग्दर्शनम् [१] इति * अत्र = जो विश्वास (= श्रद्धान) है सो सम्यग्दर्शन है, इस प्रकार यहां अर्थात् इस ग्रन्थके अ॰ १ सूत्र २ में (कहा गया)

विशेषो गुणकृतः। तस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धः क्रियते–विधिविशेषो द्रव्यविशेषो दातृविशेषः पात्रविशेष इति॥ तत्र विधिविशेषः प्रतिग्रहादिष्वादरानादरकृतो भेदः। तपः स्वाध्यायपरिवृद्धिहेतुत्वादिर्द्रव्यविशेषः। अनसूयाविषादादिर्दातृविशेषः।

विशेषः[1/1] गुणकृतः[1/1];	=गुणसे कियागया वा गुणद्वारा कियागया सो विशेष है अर्थात् विलक्षणता को कहते हैं
तस्य[6/1] प्रत्येकम्[2/1] अभिसम्बन्धः[1/1]	=तिस (विशेषशब्द) का प्रत्येक (विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र) को सम्बध
क्रियते T—विधिविशेषः[1/1] द्रव्यविशेषः[1/1] दातृविशेषः[1/1]	=किया जाता है कि विधिविशेष–द्रव्यविशेष–दातृविशेष–
पात्रविशेषः[1/1] इति* ॥ तत्र *विधिविशेषः[1/1]	=पात्रविशेष ऐसे हुये। तहां विधानकी विलक्षणता
प्रतिग्रहादिषु[7/3] आदर–अनादरकृतः[1/1] भेदः[1/1]।	=प्रतिग्रहादिक (पूर्वोक्त नवधाभक्ति) में सन्मान अप्रतिष्ठा कृत भेद है,
तपः-स्वाध्याय–परिवृद्धि-हेतुत्वादिः[1/1] द्रव्यविशेषः[1/1]।	=तपस्वाध्यायकी वढ़ती अथवा उन्नतिका निमित्तपना आदि द्रव्यविशेष है, अर्थात् जिस वस्तुसे राग-द्वेप-असंयम-मद-दुःख–भय-प्रमाद रोगादिक उत्पन्न हों सो तपस्वी को न देना, जिनसे तपस्वाध्यायकी वृद्धि हो ऐसी उत्तम जाति तथा उत्तम गुण संयुक्त वस्तु देना सो द्रव्यविशेष है
अन्–असूया-अविषाद–आदिः[1/1] दातृविशेषः[1/1]।	=अन्यके गुणोंमें दोषदृष्टि न करना शोक न करना (अविषाद) आदिक–दातृविशेष है अर्थात् दाताके निम्नलिखित गुण हैं (क) अनसूया वा ईर्षारहितता (ख) विषाद रहितता, पछतावा न करे (ग) देनेके इच्छुकमें, देने वालेमें प्रीति हो (घ) कुशल वा कल्याणका अभिप्राय हो (ङ) दृष्ट फल की चाहना न हो अर्थात् दान देय इस लोक परलोकमें धन संपदा, यश, कीर्ति इनकी वांछा न करना–(च) निरुपरोधपना अर्थात् उपधा (=छल=उपाधि) विशेष से वर्जित हो कपटसे दान न दिया जावै (छ) निदान रहित (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ मुद्रित २९२ देखो)॥

मोक्षकारणगुणसंयोग पात्रविशेष।ततश्च पुण्यफलविशेपः।क्षेत्रादिविशेषाद्बीजफलविशेषवत्॥

क्षेत्रादिविशेपाद्बीजफलविशेपवत् ॥इति तत्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धि-सञ्ज्ञिकायां सप्तमो ऽध्यायः ॥

मोक्ष-कारण-गुण-सयोग १'	=मोक्षके नि॰त्त गुण (जे सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक् चारित्र) निकरि सयुक्त
पात्रविशेप १', तत॰ * च *	=सो पात्रविशेप है,बहुरि (=च)तिन (विधिविशेप-द्रव्यविशेप-दातृविशेष-पात्रविशेप)से
पुण्यफ॰विशेप॰१',	=पुण्यफलमें विशेप वा भेद है अर्थात् इन चार कारणोंसे ,उत्तम मध्यम जघन्य आदि दानके विशेप भेद हाते हैं और उनके फल भी उत्तम मध्यम-जघन्य होते हैं
क्षेत्रादि विशेपात्५' बीज-फल-विशेपवत् *	=जैसे पृथिवी वा भूमि आदिके विशेपसे बीज तथा फल का विशेप वा भेद होता है

इति* तत्वार्थवृत्तौ७।१ = इस प्रकार तत्वार्थके विवरणमें

सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायाम्७।१ = सर्वार्थसिद्धि नामा ग्रन्थमें

सप्तमः१।१ अध्यायः१।१ = सातवां अध्याय (पूर्ण) हुआ ॥७॥

शुभमस्तु ! शुभमस्तु !! शुभमस्तु !!!



संख्या प्ररूपणा से उद्धृत पाठों के अवलोकन से विदित है कि दोनों आचार्यों का लग भग एकसा पाठ है और शब्दार्थ भी दोनों का एकसा है प्रथम वाक्य में 'जीवा' शब्द भी दोनों पाठों में विद्यमान है। इस 'जीवाः' शब्द की अनुवृत्तिभी अग्रिम दोनों पाठों के सर्व वाक्यों में है। श्रुतसागरीटीकामें विशेषरूपसे बावन करोड़, एकसौ चार करोड़, सात सौ करोड़, और तेरह करोड़, की संख्या का इयत्ता 'तेरह कोडी देशे' इत्यादि गोम्मटसारकी गाथा के आधार पर है अब हमको यह देखना है कि उक्त आर्या छन्द गोम्मटसारके किस प्रकरणमें है और दूसरे गुणस्थानसे पांचवां तक के सर्व प्रकारके जीवोंकी संख्या किस प्रकरणमें है और कितनी है ॥ गोम्मटसारमें ६४२वीं गाथा 'मनुष्यगतावाह' ऐसे सरनामा या लाली के नीचे उपर्युक्त गाथा है अर्थात् 'मनुष्यगति में कहते हैं' 'गुणस्थानों की अपेक्षा से जीवोंका प्रमाण' ॥ इसलिये आर्या छन्द का यह अर्थ हुआ कि तेरह करोड़ मनुष्य देशसंयतमें, बावन (करोड मनुष्य) सासादनमें और मिश्रगुणस्थानमें उस (सासादन)से दूने एकसौचार करोड़ मनुष्य, असंयतमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं ॥ "चतुर्दश गुणस्थानेषु जीव संख्या" इस सरनामा के नीचे गोम्मटसार में ६२३वीं और ६२४ वीं निम्न लिखित गाथायें हैं ॥

( ) मिच्छाइट्ठी पावा णंताणंता य सासणगुणावि । पल्लासंखेज्जदिमा अणअण्णदरुदय मिच्छगुणा ॥६२३॥ संस्कृत छाया इस प्रकार है कि = मिथ्यादृष्टयः पापा अनन्तानन्ताश्च सासनगुणा अपि । पल्यासंख्येया अन्यान्यतरोदय मिथ्यात्वगुणा. ॥ ६२३ ॥

अर्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि पापजीव हैं । ये अनन्तानन्त हैं तथा (=य=च) सासादन गुणस्थान वाले भी पापजीव हैं ये पल्यके असंख्यातवां भाग हैं क्योंकि अनन्तानुबन्धी चार कषायों में से किसी एक कषाय का इसमें उदय होरहा है । इसलिये यह मिथ्यात्वगुण को प्राप्त है । इससे विदित है कि सासादन में पल्य के असंख्यातवां भाग जीव हैं ॥

( ) मिच्छा सावयसासण मिस्साविरदा दुवारणंता य । पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संख(म)संखगुणं ॥ गोम्मटसार गाथा॥ ६२४॥पृष्ठ १०७६ मुद्रित ॥ संस्कृतच्छाया-मिथ्याः श्रावक सासन मिश्राविरता द्विवारानन्ताश्च पल्यासंख्येयमसंख्यगुणं संख्यासंख्यगुणम्॥ ६२४ ॥

अर्थ-मिथ्या दृष्टि अनन्तानन्त हैं । श्रावक पल्य के असंख्यात में भाग हैं सासादन गुणस्थान वाले श्रावकों से असंख्यात गुणे हैं । मिश्र सासादनवालों से संख्यात गुण हैं । अव्रत सम्यग्दृष्टिमिश्रजीवोंसे असंख्यातगुणे हैं इनमें अन्तके चार स्थानों में कुछ कुछ अधिक समझना चाहिये । भावार्थ देशसंयम गुणस्थान मनुष्य तिर्यंच दो गतियों में ही होता है । इनमें तेरह करोड़ मनुष्य और पल्य का असंख्यातवां भाग तिर्यंच हैं । सासादन गुणस्थान चारों गतियोंमें होता है । इनमें बावन करोड़ मनुष्य और श्रावकों से असंख्यातगुणे इतर तीन गति के जीव हैं । मिश्रगुणस्थान भी चारों गतियों में होता है इनमें एकसौ चार करोड़ मनुष्य और सासादन वालों से संख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं। अव्रत गुणस्थान भी चारों गतियोंमें होता है इनमें सात सौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन गतिके जीव हैं ॥ ( ) प्रमत्त गुणस्थान जिसमें " पांच करोड़ तिरानवे लाख हजार अट्ठानवे दोसो छै जानों" जीव हैं उनसे संयतासंयतमें असंख्यात गुणे हैं सासादन, मिश्र, असंयत से संयतासंयत से भी असंख्यात गुणे हैं । इसलिये 'पल्य का असंख्यातवां भाग' में असंख्याते जीव हुये और श्रुतसागरसूरिने चार सासादन-मिश्र-असंयत-संयतासंयत-गुणस्थानों में मनुष्योंकी संख्या बताई है न कि सब जीवोंकी ॥ उक्त चारों गुणस्थानोंकी संख्या जो हमने जो ९७, ९८, १०१, १०२, १०४, १०५, १०६, १०८, १०९, ११०, ११२, ११३, ११४ पृष्ठों में बावन करोड़, एक सौ चार करोड़, सात सौ करोड़, और तेरह करोड़ बतलाई है यह मनुष्यों की समझना चाहिये न कि सब जीवों की ॥ पृष्ठ १०२ का भावार्थ का और पृष्ठ १०३ के अर्थात् का लेख छोड़ दीजिये ये अशुद्ध छपगये हैं ॥

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गस्त्यागो दानं वेदितव्यम् ॥ अत्राह–उक्त दानं तत्किमविशिष्टफलमाहोस्विदस्ति कश्चित्प्रतिविशेष इत्यत आह—

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

प्रतिग्रहादिक्रमो विधि ।

अनुग्रह-अर्थम् "स्वस्य" अतिसर्ग " त्याग "दानम्" =(अपने तथा परके) उपकारकेलिये(अपने) धनका (=स्वस्य) अर्पण वा त्याग सो दान
वेदितव्यम्॥ अत्र*आह । उक्तम् "दानम्" =जानना चाहिये । यहां प्रश्न करताहै कि दान कहागया
तत्किम् "अविशिष्टफलम्" आहोस्वित्* =क्याउस (दान) का(=तत्) विशेषरहित वा एकही फलहै अथवा (=आहोस्वित्)
अस्ति कश्चित्*प्रतिविशेष "इति* अत : आह =कुछ विशेष (फल) है इसलिये (आचार्यउत्तर सूत्र कहते हैं कि

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेष ॥ ३९ ॥

विधिविशेषात्-द्रव्यविशेषात् दातृविशेषात् पात्रविशेषात् तद् (=दानस्य) विशेष· वेदितव्य· ॥ ३९ ॥

सूत्रार्थ —विधिविशेषात्" द्रव्यविशेषात्" =(आदरपूर्वक वचन वा प्रतिग्रहादिक)विधानकीविलक्षणतासे,दातव्य पदार्थकेविशेष से
दातृविशेषात् पात्रविशेषात्" =दातार (देने वाले) के विशेषसे, जिसको दान दिया जाय उसके विशेष से
तद्-विशेष " वेदितव्य " । =उस (दान) में विलक्षणता वा भेद होताहै अर्थात् उत्तम रीतिसे दान देने में, उत्तमजाति तथा गुणसयुक्त वस्तु देनेसे, उत्तमगुण वाले दातारके हाथसे दान दिये जानसे, तथा रत्नत्रयके धारकमुनि जो उत्तम पात्रहै उनको दान देनेसे उत्तमफल होताहै इसी प्रकार मध्यमविधिसे मध्यमगुणसयुक्त द्रव्य देनेसे, मध्यमगुण वाले दातासे तथा मध्यमपात्रव्रत सहित श्रावकको दानदेने मेंमध्यमफलकी प्राप्ति होतीहै और ऐसेही जघन्यविधिसे जघन्य गुणसयुक्तवस्तु वा पदार्थ देनेसे जघन्यगुणसयुक्त दातारद्वारा दिये जानेसे तथा जघन्यपात्र जो व्रत रहित सम्यक्त सहित अव्रत सम्यक् दृष्टि को दान देनेसे जघन्य फल होता है ।

वृत्त्यनुवाद·—प्रतिग्रह आदि क्रम "विधि " =(क) पडगावना अथवा आदरपूर्वक वचन (=प्रतिग्रह) (ख) उच्च स्थान देना (ग) पाद-प्रक्षालन वा पादोदक (घ) पूजनकरना वा अर्चन (ङ) नमस्कारकरना प्रणामकरना वा प्रणमन (च) मनकीशुद्धता (छ) वचनकीशुद्धता (ज) कायकी शुद्धता (झ) भोजनकी शुद्धता-काक्रम विधिहै । अर्थात् मुनिको दानदेनेमें नव प्रकारकीभक्ति कही गई है ॥

त एते पंच सल्लेखनाया अतिचाराः ॥ अत्राह—उक्तं भगवता तीर्थकरत्वकारणकर्मास्रवनिर्देशे शक्तितस्त्यागतपसीति, पुनश्चोक्तं शीलविधानेऽतिथिसंविभाग इति। तस्य दानस्यलक्षणमनिर्ज्ञातं तदुच्यतामित्यत आह—**अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ ३८ ॥** स्वपरोपकारोऽनुग्रहः। स्वोपकारः पुण्यसंचयः, परोपकारः सम्यग्ज्ञानादिवृद्धिः। स्वशब्दो धनपर्यायवचनः।

सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दीअनुवाद-पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस अड़तीसवां सूत्रपर

ते[१/३] एते[१/३] पंच[१/३] सल्लेखनायाः[६/१] अतिचाराः[१/३] अत्र* आह T	=ते इतने पांच सल्लेखनाके अतीचार है। यहां प्रश्न है कि
तीर्थकरत्व कारण—कर्म—आश्रव निर्देशे[७/१] शक्तितः*	=तीर्थंकर होनेका कारण कर्म आश्रवके कथनमें शक्तितः शक्ति पूर्वक—
त्यागतपसी[१/२] इति* उक्तम्[१/१] भगवता[३/१]	=त्याग तपसी ऐसा आप (भगवान्) द्वारा वर्णित है,
पुनः च* उक्तम्[१/१] शीलविधाने[७/१] अतिथिसंविभागः[१/१] इति*	=बहुरि शील विधानमें अतिथिसंविभाग भी (=च) ऐसा वर्णितहै (=उक्तम्)।
तस्य[६/१] दानस्य[६/१] लक्षणम्[१/१] निर्ज्ञातम्[१/१] तद्[१/१]	=तिस दानका लक्षण ज्ञात नहीं हुआ वह (दानका लक्षण)
उच्यताम् T इति* अतः* आह T	=कहाजाना चाहिये, इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्र) कहतेहै कि
(१)अनुग्रहार्थ स्वस्यातिसर्गोदानम्	—अनुग्रह—अर्थम्—स्वस्य—अतिसर्गः दानम् भवति॥ ३८॥
सूत्रार्थः—अनुग्रह-अर्थम्[१/१] स्वस्य[६/१] अतिसर्गः[१/१] दानम्[१/१]।	=(अपने; परके) उपकारके लिये धन, वस्तु का अर्पण वा त्याग करना सोदान है
स्व—पर—उपकारः[१/१] अनुग्रहः[१/१], स्वउपकारः[१/१]	=अपना तथा दूसरे का उपकार सो अनुग्रह है। अपना (=स्व. उपकार
पुण्य संचयः[१/१], पर-उपकारः[१/१] सम्यग्ज्ञानादिवृद्धिः[१/१];	=पुण्यका इकट्ठाहोना वा बन्धहोना है अन्यका उपकार सम्यग्ज्ञानादिककीवढ़ती होना है,
(२)स्व—शब्दः[१/१] धन—पर्याय वचनः[१/१];	=(इस सूत्रमें) स्व शब्द धनके समअर्थको (=पर्याय) कहने वालाहै
	अर्थात् स्व शब्दका वही अर्थ यहां पर है जो धन शब्दका अर्थ होता है

(१) इस सूत्रका दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर संप्रदायोंमे एकसा पाठ और अर्थ है। (२) स्व —(क) आत्मा (आप) आत्मीय (अपना) अर्थमे इसकी सर्व नाम संज्ञा होती है (ख) (पु०) ज्ञाति किसीके वंशका अथवा जातिका (ग) स्वाभाविक, प्राकृतिक, मूल (घ) पुलिंगमे आ मा के अर्थ मे भी आता है ङ. धन के अर्थ मे पुलिग नपुसक होता है (देखो वैद्य संस्कृत आंगलूकोश पृष्ठ =१९)

आशंसनमाशसा आकाक्षणमित्यर्थ. । जीवित च मरण च जीवितमरण, जीवितमरण स्याशंसे जीवितमरणाशंसे। पूर्वसुहृत्सहपांसुक्रीडनाद्यनुस्मरण मित्रानुराग.।अनुभूतप्रीतिविशेष स्मृतिसमन्वाहार. सुखानुबन्ध. । भोगाकाक्षया नियत दीयते चित्तं तस्मिस्तेनेति वा निदानम् ।

सुखानुबन्ध— =सुखका सम्बन्ध रखना अथवा सुखका स्मरण करना-अर्थात् पूर्वकाल में अनुभव किये जे इन्द्रिय जनित सुख तिनका बारम्बार चिन्तवन सा सुखानुबन्ध है ।

(१) निदानानि ३''' ॥ =अगले जन्म में विषयादि सुखोंके प्राप्त होने की वाछा करना सो निदान है।

ते३'' एते३'' पंच३'' सल्लेखनाया ६''अतिचारा ३'' भवन्ति T =ते इतने पाच सल्लेखना व्रतके अतिचार होते हैं ॥

पदच्छेद और विरूकरर्थ सहित इस सैंतीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

आशँसनम् १''' आशँसा १'' आकाक्षणम् १''' इति*अर्थ.१'', =आशँसन है वह आशँसा है अभिलापा वा इच्छा ऐसा अर्थ (आशँसा का) हुआ ।

जीवितम् १''' च * मरणम् १''' च * जीवितमरणम्१''' =और (=च) जीवित तथा (=च) मरण (मिलकर) जीवित मरण (वाक्य) हुआ ।

जीवितमरणस्य ६''' आशँसे१'' (२)जीवित मरणाशसे१'', =जीने और मृत्यु की आकाक्षा-सो जीवितमरणआकाक्षा है ।

पूर्व-सु-हृत् सहपासुक्रीडन आदि-अनुस्मरणम् १''' =पाहिले मित्र सहित धूल(पासु=पाशु)परिहास्य वा केलि आदि की सुध वा स्मृति

मित्रानुराग १'', अनुभूत-प्रीति विशेष-स्मृति-समन्वाहार. १'' =सो मित्रानुराग है । अनुभव किये हुये(सुख)की प्रीति विशेषसे बार बार स्मरण

सुखानुबन्ध १'', भोग-आकाक्षया३'' तस्मिन्७' =सो सुखानुबन्ध है । भोग की आशा करि उस (भोग) पर (तस्मिन्)

तेन३'इति * वा * नियतम्१'',दीयते T चित्तम्१'''निदानम्१'''=अथवा उस (भोग) से (=तेन) नियत की जाय चित्त लगाया जाय सो निदान है । अर्थात् भोगकी वाछाकरि नियम धारना जो ऐसा भोग मिलै सो निदान है

(१) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें, ' निदानानि ' शब्दके स्थानमें ' निदानकरणानि है शेष सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है ॥ हमारे यहा निदानका वही अर्थ किया है जो सभाष्य० में निदानकरणका किया है । ' आगामी विषय भोगों की आकाक्षा करना निदान करण पंचम अतिचार है " (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १७२) " अगले जन्ममें विषयादि सुखोंके प्राप्त होनेकी वाछा करना सो निदान नामका अतिचार है " (पं० पन्नालाल जी टीका) ॥ आगामी विषय भोगोंकी आकाक्षा करना इस वाक्यमें और अगले जन्ममें विषयादि सुखोंके प्राप्त होनेकी वाछा करना एक ही अभिप्राय के द्योतक हैं॥ २) जीवित नपुंसक और मरण नपुंसक ही कहते हैं,जीवित का लिंग नपुंसक है,आशंसा का स्त्रीलिंग है इन दोनोंके मिलनसे दो वचन अन्त शब्द के अनुसार होगा, आशंसा का स्त्रीलिंग दो वचन आवश्यक है ॥ इसलिये जीवितमरणाशंसे हो गया ॥

सचित्ते पद्मपत्रादौ निक्षेपः सचित्तनिक्षेपः। अपिधानमावरणं सचित्तेनैव सम्बध्यते सचित्तापिधानमिति। अन्यदातृदेयार्पणं परव्यपदेशः। प्रयच्छतोऽप्यादराभावोऽन्यदातृगुणासहनं वा मात्सर्यम्। अकाले भोजनं कालातिक्रमः॥ त एते पँचातिथिसंविभागशीलातिचाराः॥

॥ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥ ३७॥

सचित्ते[७।१] पद्मपत्र-आदौ[७।१] निक्षेपः[१।१] सचित्तनिक्षेपः[१।१];	=जीवसहित कमलके पत्र आदिमें रखना सो सचित्त निक्षेप है।
अपिधानम्[१।१] आवरणम्[१।१] सचित्तेन[३।१] एव* सम्बध्यते	=अपिधान आवरण वा ढकनहै, सचित्तकरिही (इसअपिधान शब्दका) सम्बन्ध कियागया है
सचित्त-अपिधानम्[१।१] इति* ।	=सो सचित्त-अपिधान है अर्थात् सचित्त करि (अतिथिके देनेका आहार) ढाकना सो सचित्त अपिधान वा सचित्त पिधान है।
अन्यदातृ-देय-अर्पणम्[१।१] परव्यपदेशः[१।१] ।	=दूसरे दाताकी देने योग्य (वस्तु) का दान करना अथवा अन्यका दान (अपने नामसे) देना सो पर व्यपदेश है (देखो टिप्पणी इस सूत्रके अर्थ पर)
प्रयच्छतः[६।१] अपि* आदर-अभावः[१।१] वा अन्यदातृगुण- असहनम्[१।१] मात्सर्यम्[१।१]; अकाले[७।१] भोजनम्[१।१]	=दान देने वाले के भी आदर का अभाव अथवा अन्य दातारके गुणको =सहन न करना सो मात्सर्य है। असमय पर भोजन देना अर्थात् भोजन के समय का उल्लघ कर बिलम्ब से अतिथि को भोजन देना,
काल-अतिक्रमः[१।१]; ते[१।३] एते[१।३] पंच[१।३] अतिथिसंविभाग- शील-अतिचाराः[१।३]	=सो काल अतिक्रम है। ते एते पांच अतिथि संविभाग =शील के अतिचार हैं॥ (अगलेसूत्रमें आचार्य सल्लेखनाके पांच अतिचार कहते हैं)

॥ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥ ३७ ॥

(१)जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्ध-निदानानि (ते एते पञ्च सल्लेखनायाः अतिचाराः भवन्ति)॥ ३७ ॥

सूत्रार्थः—

=जीवितआशंसा-मरणआशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबन्ध-निदानानि	
जीवित-आशंसा-	=(सल्लेखना धारण करके) जीनेकी इच्छा वा अभिलाषा करना
मरण-आशंसा-मित्रानुराग-	=(रोगादिक के उपद्रवोंसे घबराकर) मरनेकी वांछा करना; मित्रोंमें प्रीति अर्थात् जिन मनुष्योंके साथ प्रीतिपूर्वक पहिले क्रीडा कीथी उनका बारम्बार स्मरण करना-

(१) किसीकिसी पुस्तकमें बध पाठहै और कही कहीं बन्धहै दोनों पाठ ठीक है(देखो टिप्पणी अध्याय प्रथम पृष्ठ ५३८, ५४०) शेषपाठ हमारेयहां एकहै॥

सचित्त निक्षेप	=जीव सहित (कमलके पत्रादिक) में (अतिथिके देनेका आहारपानादिक) रखना
सचित्त–अपिधान–	=सचित्तकरि (अतिथिके देनेका आहार पानादिक) ढकना अथवा आच्छादन करना-
(१)पर व्यपदेश–	=दूसरे (दातार) की देने योग्य वस्तुका दान करना अन्यकी वस्तुका दानकरना अर्थात् अन्य दातारकी देय कहिये आहार आदि देने योग्य वस्तु सो लेकरि अपना नाम करना, (=अन्यकी वस्तुका दान करना।) अथवा अन्यका नाम करि दान देना अपना नाम न करना-
मात्सर्य-	=पर गुणमें द्वेष-दूसरेके गुणमें वैर करना अर्थात् अन्य देही दातारके गुणआदिसे ईर्षाकरना
कालातिक्रमा'³'	=समयको उल्लंघन करना अर्थात् समय पर अतिथि को भोजन न देना अथवा अतिथि का जो भोजनका समय है उस समयको उल्लंघनकरि विलम्बसे देरीसे भोजन देना

ते³'एते³'पंचअतिथिसंविभाग व्रतस्य³'''अतिचारा'³'भवन्ति=येपांच अतिथिसंविभाग व्रतके अतीचार होते हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस छत्तीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिटीका शब्दशः हिन्दी अनुवाद ॥

---

(१) व्यपदेश=(पु०) वि+अप+देश+घञ्। कथन (कहना) संज्ञा (नाम) कापट्य (छलपन) पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३७१ ऐसा अर्थ है, पर व्यपदेशका अर्थ 'अन्यदातृदेयार्पणम्' (संस्कृत सर्वार्थ सिद्धि वृत्ति पृष्ठ ३७३ तत्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ४७२) तत्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २६१ में) ऐसा किया है, इसके विवरण उक्त राजवार्तिक में "अन्यत्र दातार सति दीयमानोप्ययमन्यस्येति वा अर्पण परव्यपदेश इति प्रतिपद्यते" से प्रगट है कि संक्षेपतः इस विवरण के दो भाग हैं (क) अन्यकी वस्तु का दान करना (ख) अपनी द्रव्यका दान करना परन्तु परका नाम करना अपना नाम न करना, जय चंद्रायजीने राजवार्तिकके अनुसार दोनों अर्थ किये हैं इसी का साराश लेकर हमने भी दोनों अर्थ किये हैं ॥ पं० ठाकुर प्रसादजीने सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १७२ में दूसरा भाग लिया है "यह पदार्थ पराया अर्थात् अन्य मनुष्यका है ऐसा कहना'। पं० सदासुखजीने तत्त्वार्थसूत्रकी लघुटीकामें प्रथम भाग 'अन्य पुरुषका दान अपने नाम से देना' लिया है (देखोलघुटीकापृष्ठ ४०) और अर्थ प्रकाशिकामें द्वितीय भाग लिया है "अन्यका नाम करिदान देना (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ४३७) ॥ परव्यपदेश=(१) अन्यसे कापट्य वा अन्यसे छलपना अर्थात् अन्यसे वस्तु लेकरि अपना नाम करिके दान देना (२) अन्यका नाम (करना) या कथन (करना) अर्थात्, अपनी वस्तु दान देना दूसर का नाम करना इस प्रकार दोनोंके अर्थ कोशके अनुसार भी हो गये ॥

आहारो विशेष्यते–सचित्ताहारः सम्बन्धाहारः सम्मिश्राहारोऽभिषवाहारो दुःपक्वाहार इति ॥
त एते पञ्च भोगोपभोगपरिसंख्यानस्यातिचाराः ॥

॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥

आहारः १/१ विशेष्यते। =आहार विशेष किया गया है वा अधिक किया गिया है अर्थात् सचित्त, सचित्त सम्बन्ध, सचित्तसम्मिश्र-अभिषव-दुष्पक्क ये आहार शब्दके विशेषण वा गुणवाचकहैं और आहार शब्द इन सचित्तादिक का विशेष्य है (तब)

सचित्त-आहारः १/१ (१) सम्बन्ध-आहारः १/१ सम्मिश्र-आहारः १/१ अभिषवआहारः १/१ दुःपक्व-आहारः १/१ इति॥ =सचित्तआहार-सचित्त सम्बन्ध आहार, सचित्तसम्मिश्रआहार, =अभिषवआहार, दुष्पक्क आहार इस प्रकार

ते १/३ एते १/३ पञ्च-(२) भोग-उपभोग-परिसंख्यानस्य ६/१ अतिचाराः १/३ =ते इतने पाँच परिभोग परिमाण-उपभोग परिमाणके दूषण वा व्यतिक्रम हैं

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥

(पञ्चातिथिसंविभागव्रतस्यातिचाराः भवन्ति)॥

सचित्त-निक्षेपः १/१ सचित्तअपिधानम् १/१ पर–व्यपदेशः १/१ मात्सर्यम् १/१ काल-अतिक्रमः १/१ पञ्च १/३ अतिथिसंविभागव्रतस्य ६/१ अतिचाराः १/१ भवन्ति। =सचित्तनिक्षेप-सचित्त(३)अपिधान-परव्यपदेश-(४)मात्सर्य-कालातिक्रमाः

(१) यहां पर सम्बन्ध आहारसे-सचित्त-सम्बन्ध आहारसे आशय है और सम्मिभ आहारसे सचित्तसमिश्र आहार से प्रयोजन है (२) भोगसे यहांपर परिभोगसे तात्पर्यहै क्योंकि भोगके दो भेदहैं उपभोग, परिभोग, उपभोग वहहै जो एक बार भोगने वा सेवनमें आवे जैसे खान पान आदि, परिभोग जो बार बारसेवने मे आवै जैसे वस्त्र-आभूषण इत्यादि (देखो पृष्ठ ६४ और ६५) (३) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें अपिधान शब्दके स्थानमे पिधान है दोनों का अर्थ एकही है पद्मचंद्र कोश पृष्ठ ३३में "अपिधान" (नं०) अपि+धाञ्-ल्युट् ढकना (आच्छादन) पिधान इसी अर्थमे होता है ऐसा अर्थ लिखाहै और पद्मचंद्र कोश पृष्ट २४०मे 'पिधान (नं०)अपि+धा+ल्युट् (अकालोप, छादन-आवरण-उच्छादन। ढकना, जब पिधानसे काम चल जाता है और सूत्रभी एक अकार मात्र लघुहोजाता है तब मेरी समझमे सभाष्य तत्त्वार्थधिगम का पाठ लघु है, शेष पाठ दोनों सम्प्रदायोंमे एक है और अर्थभी एक है (४) कही कही पर मात्सर्य शब्द है कहीं कही पर मात्सर्य्य है दोनों शुद्ध अवो रहाभ्यांद्ध वा व्याकरण के सूत्रसे हैं, परन्तु मात्सर्य लिखना श्रेष्ठ है क्योंकि मूल सूत्र जितना भी लघुहो उतना ही अच्छा है॥

सह चित्तेन वर्तते इति सचित्त चेतनावद्द्रव्यम् । तदुपश्लिष्ट सम्बन्ध । तद्व्यतिकीर्ण सम्मिश्र । कथ पुनरस्य सचित्तादिषु प्रवृत्ति स्यात्? प्रमादसम्मोहाभ्याम् । द्रवो वृष्यो वाऽभिषव । असम्यक्पक्वो दु पक्व । एतै

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस पैंतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दीअनुवाद

सह* चित्तेन³''' वर्तते१' इति*सचित्तम्¹''' =जीव सहित वा जीवकरि विद्यमान ऐसा सचित्त है
चेतनावत्* द्रव्यम्¹''' ,तद्-उपश्लिष्ट¹' =चेतना सम वस्तु है, उस (सचित्त) से भिड़ा हुआ वा लगा हुआ(=उपश्लिष्ट)
सम्बन्ध¹',तद् व्यतिकीर्ण¹'सम्मिश्र¹', =सम्बन्ध है। उस(सचित्त)में मिलाहुआ (=व्यतिकीर्ण) सो समिश्र है
कथम् पुन *अस्य⁶'''सचित्तादिषु⁷'''प्रवृत्ति¹''स्यात्? =बहुरि (=पुन) इस सचित्तादिकमें कैसे प्रवृत्ति होती है
प्रमाद सम्मोहाभ्याम्³' द्रव¹'वृष्य¹'वा* =(=उत्तर) प्रमाद और तीव्र रागसोरस(=द्रव) अथवा (=वा) पुष्ट पदार्थ (=वृष्य)
अभिषव¹',असम्यक्-पक्व¹'दु पक्व¹', =अभिषव है, भले प्रकार न पका हुआ(पदार्थ)दु पक्व है
एतै³' =इन (सचित्त-सचित्तसम्बध-सचित्तसमिश्र-अभिषव-दुष्पक्व) करि ।

और सयद्ध का एकही तात्पर्य या अभिप्राय है क्योंकि पद्मचन्द्र कोशके पृष्ठ ४१३ में दोनों का अर्थ सम्बन्ध=अच्छा बन्धन,सम्बद्ध (स पद)= सम्यक् बन्धन लिया है इसके लिखने की आवश्यकता नहीं है कि सम्यक् बन्धन और अच्छा बन्धन का अर्थ एक है (ख)सम्मिश्र और स मिश्र= सम् मिश्र दोनों ठीक हैं स मिश्र अशुद्ध है(टिप्पणी अ०१ पृष्ठ ५३६,५४०)(ग)दु पक्व और दुष्पक्वदोनों एकही हैं क्योंकि यह शब्द दुर् (उपसर्ग)और पक्व सेबना है दुर्के र् का विसर्गमें परिवर्तन होगया और दु पक्व शब्द हुआ पश्चात् इस विसर्ग का परिवर्तन ष् में होकर दुष्पक्व बना इसके नियमके सम्बन्धमें देखो टिप्पणी अध्याय ७ पृष्ठ९७,९८ अथवा देखो अष्टाध्यायी"खरवसानयोर्विसर्जनीय"८।३।१५"इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य॥८-३-४१॥ दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका एकही अर्थ है हमारे यहां कहीं सम्बन्ध पाठ है कहीं 'सबध' पाठ है दोनों ठीक हैं[देखो टिप्पणी अध्याय१ पृष्ठ ५२९,' ८०]

(१) उपश्लिष्ट –यह शब्द 'उप' उपसर्ग और 'श्लिष्' चतुर्थ दिवादि गणका सकर्मक अनिट् धातु से मिलना, समान होना अर्थमें बना है ॥ श्लिष् का और अन्य धातुओं का भी भूत कृदन्त धातु में त जोड़ने से बनता है जैसे श्रु=सुनना धातु से श्रुत(=सुनागया) बनगया इसी प्रकार श्लिष् में त जोड़ने से श्लिष्+त हुआ, अष्टाध्यायी ८-४-४१ सूत्र ष्टुना ष्टु (स्तो) के एक भाग द्वारा कि त्-थ्-द्-ध्-न् ष् के साथ अनुमत ट्-ठ्, ड्-ढ्, ण् में पलट जाते हैं श्लिष्+ट=श्लिष्ट हुआ, इसमें उप उपसर्ग ईषत्-किंचित् अर्थ में जोड़ने से उपश्लिष्ट बनगया । अब हुआ लगा हुआ भिड़ा हुआ ॥ उपश्लेष(पु०)उप अव्यय[क्योंकि अव्यय क्रिया के साथ आते हैं तब उनकी उपसर्ग संज्ञा हो जाती है]और श्लेष=आलिंगन ईषत् अर्थ में इस प्रकार बना है कि 'उप ईषत् एक देशेन श्लेष [सम्बन्ध]एक आदमी मिलावट । आधार और आधेयका एक आपसमें मिलना जैसे घर और घट का उपश्लेष होता है इसी प्रकार यहांपर सचित्त आधार है और उससे भिड़ी हुई वस्तु आधेय है ॥उपश्लेष(न०) = आलिंगन

च वस्त्रादेरादानमप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादानम् । अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितस्यप्रावरणादेः संस्तरस्योपक्रमणं, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमणम् । क्षुदभ्यर्दितत्वादावश्यकेष्वनादरोऽनुत्साहः । स्मृत्यनुपस्थानं व्याख्यातम् ॥ त एते पंच प्रोषधोपवासस्यातिचाराः ॥

॥ सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥

च=वस्त्र-आदेः[६।१] आदानम्[१।१] अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित- =और (=च) वस्त्र आदिका उठावना-लैना-सो अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित
आदानम्[१।१] ; अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जितस्य[६।१] प्रावरण- =आदानहै । विना देखेहुये विना स्वच्छ कियेहुये डुपट्टा
आदेः[६।१] संस्तरस्य[६।१] उपक्रमणम्[१।१] ,अप्रत्यवेक्षित- =आदिका सांथरा करना अर्थात् विछावना सो अप्रत्य वेक्षित-
अप्रमार्जित-संस्तर-उपक्रमणम्[१।१] ;क्षुत्-अभ्यर्दितत्वात्[५।१] =अप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण है । भूकदकरि पीड़ित होनेसे
आवश्यकेषु[७।३] अनादरः[१।१] अनुत्साहः[१।१] ; =(उपवासकी) आवश्यक क्रियायोंमें निरादर सो अनुत्साह है ।
स्मृत्यनुपस्थानम्[१।१] व्याख्यातम्[१।१] =सुधनरहना वा स्मरणका भुलाव विस्मृति होना (सूत्र ३३ में) वर्णन कर दिया गया
=सुधनरहना वा स्मरणका भुलाव विस्मृतिहोना वा पर्वमें उपवासही भूलजाना अर्थात् प्रोषधोपवासमें कर्तव्य विधिकी विस्मृतिहोना वा पर्वमें उपवासही भूलजाना
तेः[१।३] एते[१।३] पञ्च-प्रोषध-उपवासस्य[६।१] अतिचाराः[१।३] =ते इतने पांच प्रोषधउपवास के व्यतिक्रम-दूषण-दोष अतीचार हैं ॥

सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥

सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः पञ्चोपभोगपरिभोगपरिमाणस्यातिचाराः भवन्ति

सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः पञ्चोपभोगपरिभोगपरिमाणस्य अतिचाराः[१।३] भवन्तिT ॥३५॥

=सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः[१।३] पञ्च-उपभोग परिमाण परिभोगपरिमाणस्य अतिचाराः[१।३] भवन्ति T
=सचित्त-सचित्तसम्बन्ध-सचित्त सम्मिश्र-अभिषव-दुः पक्व-आहाराः =जीव सहित अथवा चेतना सहित द्रव्य (जैसे-पुष्प फलादिक) का भोजन करना
सूत्रार्थः-सचित्त-आहारः[१।१] =जीव सहित अथवा चेतना सहित द्रव्य (जैसे-पुष्प फलादिक) का भोजन करना-सचित्तसे मिलीहुई (वस्तु) का
सचित्त-सम्बन्ध-आहारः[१।१] ,सचित्त-सम्मिश्र- =सचित्त वस्तुसे स्पर्शेहुये (द्रव्य) का भोजन करना-सचित्तसे मिलीहुई (वस्तु) का
आहारः[१।१], अभिषव-आहारः[१।१] ,दुष्पक्व- =सचित्त वस्तुसे स्पर्शेहुये (द्रव्य) का भोजन करना-अच्छे प्रकार नपकाये हुये (द्रव्य) का
आहारः[१।१] तेः[१।३] एते[१।३] पञ्च[१।३] उपभोगपरिमाण =आहार करना-पुष्ट अथवा रस संयुक्त आहार करना-अच्छे प्रकार नपकाये हुये (द्रव्य) का
परिभोग परिमाणस्य[६।१] अतिचाराः[१।३] भवन्ति T =आहार करना-ते इतने पांच उपभोग परिमाण
=परिभोग परिमाणके व्यतिक्रम-अथवा दूषण हैं

(क) यहां पर सम्बन्ध के स्थानमे सवद्ध है सम्मिश्रके स्थानमे संमिश्र है दुःपक्वके स्थानमे दुष्पक्व है

(१) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमे सम्बन्धके स्थानमे सवद्धहै सम्मिश्रके स्थानमे संमिश्र है दुःपक्वके स्थानमे दुष्पक्व है

जन्तव. सन्ति न सन्ति वेति प्रत्यवेक्षण चक्षुर्व्यापार. । मृदुनोपकरणेन यत्क्रियते प्रयोजनं तत्प्रमार्जितम् । तदुभयं प्रतिषेधविशिष्टमुत्सर्गादिभिरभिसम्बध्यते-अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग इत्येवमादि । तत्र अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितायां भूमौ मूत्रपुरीषोत्सर्ग अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग. । अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितस्यार्हदाचार्यपूजोपकरणस्य गन्धमाल्यधूपादेरात्मपरिधानाद्यर्थस्य

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चौंतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश. हिंदी अनुवाद

जन्तव.१' सन्ति T न* सन्ति T वा* इति* चक्षुर्-व्यापार १' =जीवहैं अथवा नहीं हैं इसप्रकार नेत्रको काममें लाना अर्थात् देखना

प्रत्यवेक्षणम्१''', मृदुन-उपकरणेन३''' = सो प्रत्यवेक्षण है । कोमल (=मृदुन) साधनकरि (=उपकरणेन)

यत्१''' क्रियते T प्रयोजनम्१''' =जोकार्य,काम(=प्रयोजन)किया जाताहै अर्थात् स्वच्छ किया जाताहै झाड़ा जाताहै

तत्१'''प्रमार्जितम्१''',तत्१'''उभयम्१'''प्रतिषेध विशिष्टम्१'''=सो प्रमार्जित है। वह दोनों(प्रत्यवेक्षित प्रमार्जित) निषधरूपमें मानेहुये विशेषण

उत्सर्ग-आदिभि ३' अभिसम्बध्यते T =उत्सर्ग, आदान, सस्तर (=आदि) से मिलादिये जाते हैं अर्थात् प्रत्यवेक्षण और प्रमार्जित विशेषणोंके निषेधरूप विशेषण यथासख्य अप्रत्यवेक्षित और अप्रमार्जित हैं जब ये दोनों निषेधरूप गुणवाचक प्रत्येक उत्सर्ग आदान सस्तरोपक्रमण के साथ मिलाये जाते हैं (तब)

अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित उत्सर्ग.१' इत्येवम्* आदि१''', =अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित—उत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित-आदान, अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित सस्तरोपक्रमण ऐसेहुये

तत्र* अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जितायाम्७'''भूमौ७'''मूत्र-पुरीष =तहा विना देखी हुई विना स्वच्छ कीहुई पृथिवी पर मूत्र और विष्टाका

उत्सर्ग:१' अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जितोत्सर्ग.१', अप्रत्यवेक्षित =क्षेपण सो अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग है । विना देखेहुये

अप्रमार्जितस्य६'''अर्हत्-आचार्य पूजा-उपकरणस्य६''' =विना स्वच्छ किये हुये अरहत आचार्य के पूजा के उपकरणका

गन्ध-माल्य धूपादे.६''' =वास(सुगधवाली वस्तु जैसे लौंग कपूर इत्यादि) पुष्प (=माल्य) पुष्पमाला (=माल्य)

आत्म-परिधानादि-अर्थस्य६''' =धूपादिकका अपने पहरने के आदिक वस्तुका (=अर्थस्य)

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥

(१ अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादान(२ संस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥

=अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित उत्सर्ग–अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित आदान–अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण–अनादर–स्मृतिअनुपस्थानानि १।३ ''ते१।३'एते१।३' पञ्च१।३' प्रोपधोपवासस्यातिचाराः१।३' भवन्ति T ॥ ३४ ॥

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित उत्सर्ग– =विना देखे हुये विना स्वच्छाकिये हुये क्षेपण करना (=उत्सर्ग)अर्थात् विना नेत्रोंसे देखे हुये तथा विनाझाड़े हुये स्थान पर मल–मूत्र–खखार–नाकका मैलादिक डालना

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित आदान– =विना देखे हुये (=अप्रत्य वेक्षित) विना स्वच्छकिये हुये वा विना शुद्ध किये हुये (=अप्रमार्जित) उठाना वा लैना वा ग्रहण करना र्थात् विना देखे हुये और विना शोधे हुये अरहंत आचार्यादिकोंके पूजनके उपकरण गंधमाल्य धूपादिकको ग्रहण करना वा वस्त्र पात्रादिक को भूमि देखे शोधे विना ही घसीट कर उठाना

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण- =विना देखे हुये विना झाड़े हुये वा विना स्वच्छ किये हुये दुपट्टा आदिका सांथरा करना वा विछावना

अनादर- =उत्साह का न होना वा निरादर अर्थात् क्षुधा तृषा की बाधासे आवश्यकीय धर्म क्रियायोंमें अनादर से प्रवर्तना

स्मृत्यनुपस्थानानि१।३''' =सुधका भुलाव अथवा स्मरण न रहना अर्थात् प्रोपधोपवासके दिन करने योग्य धर्म क्रियायों क भूलजाना अथवा प्रोपधमें उपवास ही भूलजाना

ते१।३'एते१।३'पंच१।३' प्रोपधोपवासस्य६।१'अतिचाराः१।३'भवन्ति T=ते इतने पांच प्रोपधोप वासके अतीचार होते हैं

(१) हमारे यहां शुद्ध पाठ सर्वत्र प ' है और अर्थ भी एक है॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें निक्षेप शब्द अधिक है और उपस्थान शब्द के स्थान में उपस्थापन है ॥ उपस्थान और उपस्थापन का तात्पर्य एक ही है ॥ अर्थ भेद केवल निक्षेप शब्द की अधिकता से इस दूसरे अतीचार में वस्तुक कहीं स्थापित कर देना अथवा फेंकदेना वढ़ गया है शेष सूत्र दोनों आम्नायों मे एक है (२) संस्तरोपक्रमण के स्थान मे सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सस्तारोपक्रमण है, अर्थ दोनों शब्दोंका एक सा है ॥

सङ्ख्याप्ररूपणोच्यते–सा द्विविधा सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत् जीवा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः। सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यङ्मिथ्यादृष्टयोऽसयतसम्यग्दृष्टयः सयतासंयताश्च पल्योपमासङ्ख्येयभागप्रमिताः॥ प्रमत्तसयताः कोटीपृथक्त्वसङ्ख्याः। पृथक्त्वमित्यागमसंज्ञा, तिसृणां कोटीनामुपरि

सङ्ख्याप्ररूपणा ॥ उच्यते ॥ सा ॥ द्विविधा ॥	=(अब) सङ्ख्या वा भेद गणना प्ररूपणा कही जाती है वह दो प्रकार है
सामान्येन ॥ च विशेषेण ॥	=सक्षेपकरि और विशेषकरि अर्थात् सक्षेपसे गुणस्थानमें और भेदप्रभेदकरि मार्गणामें सख्या प्ररूपणाका कथन है।
सामान्येन ॥ तावत् मिथ्यादृष्टिजीवाः ॥	=सामान्यसे प्रथम (= तावत्) मिथ्यादृष्टि जीव
अनन्तानन्ताः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥	=अनन्तानन्त हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि दूसरे गुणस्थानवर्ती
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥ असयतसम्यग्दृष्टयः ॥	=मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्ती अविरतसम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवर्ती
च सयतासयता, ॥ पल्योपम–	=और देशविरत सयमी पाचवां गुणस्थानवर्ती पल्योपमके
असख्येयभागप्रमिताः ॥	=असख्यात भाग प्रमाण हैं
प्रमत्तसयताः ॥ कोटीपृथक्त्वसख्याः ॥	=प्रमत्तसयमी (छठे गुणस्थानवर्ती) हैं जिनकी गणना पृथक्त्व करोड है
पृथक्त्वम् ॥ इति आगमसज्ञा ॥ तिसृणां ॥	=पृथक्त्व ऐसी आगममें गणना तीन
कोटीनाम् ॥ उपरि नवानाम् ॥ अधस् *	=करोडके ऊपर नौ (करोड) के नीचे [1] (अर्थात् ५९३९८२०६ जीव छठेगुणस्थानमें हैं

(१) तेरह कोड़ी देसे बावण्णा सासणे मुणेयव्वा ॥ मिस्सम्मि य तद्दुगुणा असजदा सत्त सय कोडीओ।

तेरह कोड़ी ॥ देसे ॥ (त्रयोदश ॥ कोटय ॥ देशे ॥)	=देशविरत (पांचवे गुणस्थान) में तेरह करोड़ (जीव)
बावण्णा ॥ सासणे ॥ (द्वापञ्चाशत् ॥ सासादने ॥)	=बावन करोड़ (जीव) सासादन (दूसरे गुणस्थान) मे
मुणेयव्वा ॥ मिस्सम्मि ॥ य(ज्ञातव्या ॥ मिश्रे॥च)	=जानना और (= य) मिश्र (गुणस्थान) में
तद्दुगुणा ॥ असजदा ॥ (तद्-द्विगुणा ॥ असयता ॥)	=उस (बावन करोड़के) दूने (एकसौ चार करोड) हैं असयत (चौथेगुणस्थानवर्ती)
सत्तसय कोड़ीओ ॥ (सप्तशतकोटय ॥)	=सातसौ करोड हैं अर्थात सात अरब हैं।

॥ योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥

योगो व्याख्यातस्त्रिविधः । तस्य दुष्टं प्रणिधानं योगदुष्प्रणिधानम्-

(१)योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥

=योगदुष्प्रणिधान-अनादर-स्मृतिअनुपस्थानानि (पंच सामायिकस्य-अतिचाराः)

=कायदुष्प्रणिधान-वचनदुष्प्रणिधान-मनोदुष्प्रणिधान-अनादर-स्मृतिअनुपस्थानानि[१।३] पञ्च[१।३] सामायिकस्य[६।१] अतिचाराः[१।३] भवन्ति T

सूत्रार्थः-काय-दुष्प्रणिधान- =शरीरको खोटी वा अन्यथा प्रवृत्ति अर्थात् सामायिक करनेके अवसरमें शरीरके आंगोपांगादिकों का निश्चल और सावधान न रखना,

वचन-दुष्प्रणिधान- =वचनका बुरा प्रवर्तन अर्थात् सामायिक करनेके समयमें अक्षरोंके उच्चारणमें शुद्ध, स्पष्ट संस्कारका अभाव इसप्रकार पाठ पढ़ना जिसमें अर्थ न जाना जाय,

मनो-दुष्प्रणिधान- =मनका दुष्ट परिणमन,मनका अन्यथा चलायमान अर्थात् सामायिकके भावमें,अर्थमें मन न लगाना,

अनादर- =उत्साहका न होना,निरादर अर्थात् सामायिक विषै उत्साह न होना जैसे तैसे कालपूरा करना तथा आपत्तिसी टाल दैना,

स्मृति-अनुपस्थानानि [१।३] ॥ =सुधका भुलाव,स्मरण न रहना अर्थात् पूर्णरूपसे सामायिककी विधि कैसे करनी चाहिये तथा किसका ध्यान, किस आसनसे वा किस विधिसे इत्यादि विषयोंका स्मरण न रखना अथवा चित्तकी व्यग्रतासे पाठका भूलजाना अथवा सामायिक करनाही भूलजाना

पंच[१।३] सामायिकस्य[६।१] अतिचाराः[१।३] भवन्ति T=(ये) पांच सामायिक के व्यतिक्रम, अतिचार वा दूषण हैं ॥ २ ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस तेतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकाशब्दशःहिन्दीअनुवाद

योगः[१।१] व्याख्यातः[१।१] त्रिविधः[१।१]; =योग तीन प्रकार(काययोग-मनोयोग-वचनयोग) वर्णन कियागया(अध्याय ६ सूत्र १ देखो)है

तस्य[६।१] दुष्टं[१।१] प्रणिधानं[१।१] योगदुष्प्रणिधानं[१।१] =तिस(योग)की खोटी अथवा अन्यथा प्रवृत्ति सोयोग दुष्प्रणिधान है

(१)अधिकतर पुस्तकोंमें "योग दु.प्रणिधान वाक्य है, इससर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें और कई पुस्तकोंमें योगदुष्प्रणिधान वाक्य है" दं.नों दुःप्रणिधान और दुष्प्रणिधान ठीक हैं क्योंकि यह शब्द दुर् उपसर्ग और प्रणिधामसे मिलकर बना है जिसके नियम नीचे लिखते है (क) शब्दों के अन्तका स् जिस

कायदुष्प्रणिधानम् । वाग्दुष्प्रणिधानम् । मनोदुष्प्रणिधानमिति । अनादरोऽनुत्साह । अनैकाग्र्यं स्मृत्यनुपस्थानम् । त एते पंच सामायिकस्यातिक्रमा. ॥

(१)कायदुष्प्रणिधानम्[१]''',	=शरीरकीखोटी वा अन्यथाप्रवृत्तिअर्थात् सामायिककरनेकेअवसरमेंशरीरकेभागापागादिकोंका (निरचल न रखना
वाग्दुष्प्रणिधानम्[१]''',	=वचन का बुरा प्रवर्तन शुद्ध, स्पष्ट उच्चारणन करना
मनोदुष्प्रणिधानम्[१]'''इति *।	=मनका खोटा परिणमन एसेंहै कि जिसकाल सामायिक करें उस समयमें मनकी लगन वा प्रवृत्ति सामायिकमें न रहे अ य कार्यमें चलीजाय
अनादर[१] अनुत्साह[१]',	=उत्साहका न होना सो अनादर वा निरादर है अर्थात् जैसे तैसे सामायिकका समय पूरा करना तथा सामायिकको आपत्ति समझ कर टाल देना
(२)अनैकाग्र्य[१]''' [३])स्मृति –अनुपस्थानम्[१]''' ॥	=चित्तकी एकाग्रताविना, सुध, स्मरण न रहना अर्थात् पूर्ण रूपसे सामायिककी विधि कैसे करनी चाहिये तथा किसका ध्यान किस आसनसे वा किस विधिसे इत्यादि विषयोंको स्मरण न रखना अथवा चित्तकी व्यग्रतासे पाठ भूलजाना अथवा सामायिक करना ही भूलजाना इत्यादि ध्यान पूर्वक, धि न रखना
ते[१]'एते[१]'पंच[१]'सामायिकस्य[१]'अतिक्रमा [१]'	=ते इतने पाच सामायिक व्रतके अतीचार हैं

स् के पश्चात् कोई अक्षर हो वा न हो और र् यदि उसके पश्चात् कुछ न हो अथवा क् ख्-च्-छ् ट्-ठ् त्-थ् प्-फ्-श्-ष्-स् में से कोई अक्षर हो तो उन र् स् का विसर्ग हो जाता है अत दुर् के र् का( )विसर्ग हो गया और दु प्रणिधान हो गया ।(ख)विसर्ग जो प्रत्ययका न हो और उसके पहिले इ वा उ हो और पश्चात् उस विसर्ग के क्-ख्-ग् घ्-ट्-ठ्-त्-थ्-प्-फ् हो तो यह विसर्ग ष् में पलट जाता है अत दु प्रणिधानका दुष्प्रणिधान हो गया यह नियम निर्-दुर् बहिर् आविस् चतुर् प्रादुस् के विसर्गोंसे सम्बन्ध रखता है ॥ मुहुस् के स् अर्थात् विसर्गसे यह नियम लागू नही हे इस लिये मुहु कामा और मुहु स्कामा रूप हुये ॥ जो विसर्ग प्रत्ययका न हो उस अग्नि करोति वायु करोति यहा विसर्ग स् प्रत्यय का है इस लिये विसर्ग का परिवर्तन ष् में नहीं हुआ (ग, मातु कृपा और पितु कृपा के विसर्ग प्र यय का नहीं है तो भी इनका ष् में परिवर्तन नहीं होता परन्तु भ्रातु पुत्रका विसर्ग भी प्रत्ययका नहीं है इसका परिवर्तन हो जाताहै भ्रातुष्पुत्र हमको पुस्तकोंमें मिलता है ८ ३ ४१ ॥(१)प्रणिधान प्रयोग परिणाम इत्यनर्थान्तरम् अर्थात् प्रणिधान,प्रयोग परिणाम एकार्थ वाची हैं । तत्त्वार्थराजवार्तिकमुद्रित पृष्ठ २९०) (२)एकाग्र अथवा एका य=और विषयोंको छोडकर एकही ओर मनवाला (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २१) ३)सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रम अनुपस्थानानि स्थानम अनुपस्थापनानि है अर्थ भेद सूत्रमें कुछ नहीं है क्योंकि अनुपस्थान और अनुपस्थापन एकही अर्थमें लिये गये हैं और पाठ एक है अर्थ इस सब सूत्र का दोनों आम्नायमें एक है । अन्-उप-स्थान और अन् उप-स्थापनका एकसा यहा पर अर्थ है ॥

(१) कंदर्प- =काम संयुक्त वाक्य अर्थात् राग और हास्य पूर्ण सभ्यता विरुद्ध भाषण,

(२) कौत्कुच्य- =रागोदयकी तीव्रतासे हास्य और अशिष्ट भंडवचन बोलना और कायसे भी निन्द्यनीय क्रियाकरना

(३) मौखर्य-असमीक्ष्याधिकरण- =निर्लज्जता लिये अनर्थक बहुत बकबक (=बकवाद्)—बिना विचार कर (=असमीक्ष्य) (आवश्यकतासे) अधिक प्रवर्तन करना अर्थात् प्रयोजनको बिना विचारे (आवश्यकतासे) अधिक क्रिया करना भावार्थ अधिक प्रवर्त्तन मनो, वचन, कायसे तीन प्रकार है तहां अनर्थको करने वाला खोटा काव्य श्लोकादिक चितवन करना सो मन अधिकरण है और निष्प्रयोजन कथा करना विकथा करना तथा परके पीड़ा करने वाला वचन सो वचन अधिकरण है और प्रयोजन बिना गमन करना बैठना खड़ारहना सचित्त अचित्त तृण-वृक्ष-पत्र-पुष्प-फलादि छेदन-भेदन-कुट्टन-क्षेपणादिकरना अग्निका-विषका दैना समस्त असमीक्ष्या धिकरण हैं

(४) उपभोग-परिभोग-आनर्थक्यानि[१।३] =एकवार भोगने योग्य पदार्थ (उपभोग जैसे खान पान इत्यादि) और बार बार भोगने योग्य पदार्थ (=परिभोग जैसे वस्त्राआभूषणादि) प्रयोजनादि से बाहिर वा अधिकता में देखना

पञ्च[१।३] अनर्थ-दण्ड-विरतेः[६।१] अतिचाराः[१।३] भवन्ति =पांच अनर्थदण्डविरमण (अणुव्रत) के दूषण होते है ॥

(१) कही कही कन्दर्प पाठ हे और कही कही कन्दर्प्प पाठ है कही कही कदर्प पाठहै तीनों पाठ ठीक है (देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५३८, ५४०)
(२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमे कौत्कुच्य शब्दके स्थानमे कौकुच्य है अर्थ दोनों शब्दोंका एकहै, तो हमारे यहां के पाठमे तू क्यों अधिक है
(३) कही मौखर्य पाठ है और कही मौखर्य्य भी पाठ है दोनों (अचो रहाभ्यां द्वे वा—व्याकरणके सूत्रसे) ठीक है (४) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र
मे, "उपभाग परिभोगानर्थक्यानि, वाक्य के स्थान मे "उपभोगाधिकत्वानि" है, अनर्थक्यानि और अधिकत्वानि क्रमसे आवश्यकतासे व्यर्थ
रखना और आवश्यकतासे अधिक रखना दोनों का पृथक् पृथक् अक्षरार्थ है भावार्थ दोनों का एकसा है, परन्तु अर्थ भेद दोनों सम्प्रदायके सूत्रों
मे केवल इतना है कि परिभोगका अर्थ अन्य सम्प्रदायके सूत्रमे नही निकलता क्योंकि भोग सामान्य शब्द है जिसमे उपभोग और परिभोग
तत्त्वार्थराजवार्तिक और तत्त्वार्थश्लोक वार्तिकके अनुसार (देखो राजवार्तिक पृष्ठ २८२, श्लोक वार्तिक पृष्ठ ४६६ और इस अध्याय का पृष्ठ ६४
और ६५) दोनो गर्भित है। उपभोग वह है जो एक वार भोगमे आवै जैसे भोजन और पान और परिभोग वह है जो बारबार अथवा बहुत वार
भोगने मे आवै जैसे वस्त्र गहना आदिक, हमारे यहां भी किन्ही किन्हीके मतमे भोग वह है जो बारबार भोगनेमे आता है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमे
जब "दिग्देशानर्थ दण्ड विरतिइत्यादि" सूत्रमे उपभोग परिभोग लाये है तब परिभोग इससूत्र मे क्यों नही लाये परिभोग को यदि कोई
आवश्यकतासे अधिक सग्रह कर लेता तो अतीचार का वह भागी न होगा ऐसा अर्थ किसी आम्नायमे नही होसक्ता हमारी समझमें सभाष्य-
तत्त्वार्थ धिगमसूत्रमे परिभोग रह गया है। आनर्थक्यानि ऐसा पदच्छेदहै क्योंकि देखो वृत्ति पृ० ३७१ पंक्ति ८, ६ "आधिक्यम्, आनर्थक्यम्॥

रागोद्रेकात्प्रहासमिश्रोऽशिष्टवाक्प्रयोग. कन्दर्प.। तदेवोभय परत्र दुष्टकायकर्मप्रयुक्तं कौत्कुच्यम्। धाष्टर्यप्रायं यत्किञ्चनानर्थकं वहुप्रलपित मौखर्यम्। असमीक्ष्य प्रयोजनमाधिक्येन करणमसमीक्ष्याधिकरणम्। यावताऽर्थेनोपभोगपरिभोगौ सोऽर्थस्ततोऽन्यस्याधिक्यमानर्थक्यम्॥ त एते पचानर्थदण्डविरतेरतिचारा ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसाहित इस बत्तीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दीअनुवाद

राग-उद्रेकात्[५]प्रहास मिश्र[१]	=राग (भाव) के तीव्र उदयसे वा उत्कटतासे (उद्रेकात्) हास्यमिले हुये
अशिष्टवाक् प्रयोग[१]कन्दर्प[१]तद् एव* उभय[१]	=नीचवचनकाव्यवहार(=प्रयोग)सो कदर्प है वही दोनों(रागसयुक्त असभ्यभाषण, हास्य)
परत्र*दुष्ट-काय-कर्म-	=और कहीं (=परत्र) अर्थात् यदि दुष्टकाय (शरीर)की निन्दनीय क्रिया (=कर्म) से
प्रयुक्तम्[१] कौत्कुच्यम्[१] धाष्टर्यप्रायम्[१]	=भरा हुआ होतौ कौत्कुच्यहै। ढीठपन की वहुतायतसे अथवा निर्लज्जता की बाहुल्यसे
यत्किञ्चन[१]अनर्थक[१] वहुप्रलपितम्[१]मौखर्यम्[१]	=जो कुछ निरर्थक वहुत प्रलाप (करना) वा बकबक सो मौखर्य है
(१)असमीक्ष्य-प्रयोजनम्[२]आधिक्येन[३]करणम्[१]	=प्रयोजन का विनाविचार कर अधिकपनासे क्रिया (=करण) सो
असमीक्ष्याधिकरणम्[१], यावता[३] अर्थेन[३]	=असमीक्ष्याधि करणहै, जितना (=यावता) अर्थकरि वा आवश्यकता करि
उपभोग परिभोगौ[१] अर्थ[१] तत *	=उपभोग परिभोगहै सो प्रयोजनहै वा अर्थ है तिस (अर्थ) से अर्थात् आवश्यकतासे-
अन्यस्य[६] आधिक्यम्[१] आनर्थक्यम्[१]	=अन्यका अधिकाई वा वहुतायतहै सो आनर्थक्यहै अर्थात् खानपीन की सामिग्री जे उपभोगको तथा वस्त्र आभूषण आदि जे परिभोगको विना आवश्यकताके संग्रह करना सो उपभोग परिभोग आनर्थक्य है ॥
ते[१]एते[१]पञ्च-अनर्थदण्डविरते[६] अतिचारा[१]	=ते एते पाच अनर्थ दण्ड विरति (अणुव्रत) के अतीचारा हैं

चिद् अपि चिदपि अथवा चन को यदि 'किम्' के साथ उसके किसी लिंगमें जोड दें तो पद अर्थात् जुडा हुआ वाक्य अनिश्चित अर्थ का द्योतक होगा जैसे किंचित् =कुछ वस्तु या कोई वस्तु कश्चित् कोई पुरुष या जन कश्चिद् यत्र =कोई यत्र (देखो भाण्डारकर प्रथम मार्गोपदेशिका पृष्ठ १२६)। 'यत्किचन अथवा यत्किंचित् क्षुद्रवस्तु, निरर्थक वस्तु असार वस्तु, अकिंचित्कर द्रव्य,(देखो वी० स० एत आपटेकोश पृष्ठ ५६३) ॥ (२) असमीक्ष्य =सम्बन्धसूचक भूत कृदन्त है अ+सम्+ईक्ष्य =असमीक्ष्य =विना विचारकर। भोग, उपभोग,परिभोगके लिये पृष्ठ ६८

॥ आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥

आत्मना सङ्कल्पिते देशे स्थितस्य प्रयोजनवशाद्यत्किंचिदानयेत्याज्ञापनमानयनम् ।

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥३१॥

=आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्दअनुपात रूपअनुपात-पुद्गल क्षेपाः[१|३] [पंचदेशविरतेरणुव्रतस्याति चाराःभवन्ति] दोनोंआम्नायोंमें सूत्रका पाठअर्थएकहै

आनयन- =मगावना वा बुलावना अर्थात् मर्यादासे बाहरकी वस्तुको मगावना वा किसीको बुलाना

प्रेष्यप्रयोग- =सेवक द्वारा [=प्रेष्य] अनुष्ठान [=प्रयोग] चाकरसे [=प्रेष्य] कामकराना [=प्रयोग] भृत्य द्वारा [=प्रेष्य] कामनिकाललैना [=प्रयोग] अर्थात् मर्यादा कियेहुये क्षेत्रसे स्वयम् तो गमन न करे परन्तु भ्राता-पुत्र-मित्र-परिवार इत्यादिक द्वारा कहकर कि हमारे तो अमुक क्षेत्रमें जाने की प्रतिज्ञा है तुम अमुक कार्य को हमारे अभिप्रायके अनुसारकरना

शब्दअनुपात =शब्दका अभिप्रायके अनुसार पतन =(अनुपात) शब्दका प्रयोजनके अनुयायी पतन अर्थात् परिमित क्षेत्रके बाहर न जाकर परिमाण कियेहुये क्षेत्रमें स्थित करते हुये शब्द सुनाकर कार्य निकाल लेना अथवा कार्यका निर्वाह करलेना

रूपअनुपात- =स्व विग्रह [=स्वरूप] अथवा शरीर (=रूप) प्ररूपण करना (=अनुपात) रूपका दिखावना अर्थात् नियत देशसे बाहिर स्वयं न जाकर मर्यादा कियेहुये क्षेत्रसे बाहिर अपना प्रतिबिम्ब वा अपना रूप दिखाके कार्य चलालेना वा कार्यमें प्रवर्त करावना प्रयोजन समझादेना

पुद्गलक्षेपाः[१|३] =निर्जीव वस्तुका (=पुद्गल) फेंकना (=क्षेप) अचेतन द्रव्यका (पुद्गल) निपात (=क्षेप) अर्थात् परिमाणके बाहिर क्षेत्रमें देशमें ढेला-पाषाण वस्त्रआदिक फेंककर डारकर अपने कार्यका निर्वाह करलैना

पञ्च[१|३] देशविरतेः[६|१] अणुव्रतस्य[६|१] अतिचाराः[१|३] भवन्ति । =(ये) पांच देशविरति अणुव्रतके अतीचार वो व्यतिक्रम होते हैं

वृत्त्यार्थः-आत्मना[३|१] सङ्कल्पिते[७|१] देशे[७|१] स्थितस्य[६|१] प्रयोजन-=आत्म द्वारा मर्यादा किये हुए क्षेत्र में स्थित युक्त (अणुव्रती) अभिप्रायके वशात्[५|१] यत्[१|१] किञ्चित् आनय ' इति* आज्ञापनम्[१|१] =वशसे कहै कि कोई वस्तुको ला (=आनय) ऐसा आदेशपन (=आज्ञापन) (१)आनयनम्[१|१] आनयन है अर्थात् अणुव्रती मर्यादा किये हुये क्षेत्रमें हो कहै 'लाओ' किसी को ॥ ९३

(१) नी भ्वादि प्रथम गणका धातु है इसमें क्रिया प्रत्ययके पहिले अ विकरण जोड़ा जाता है और नी का "गुण" हो जाता है नी = ने = नय् इसमें

एव कुर्विति नियोग प्रेष्यप्रयोग ।व्यापारकरान्पुरुषान्प्रत्यभ्युत्कासिकादिकरण शब्दानुपात।
स्वविग्रहदर्शन रूपानुपात । लोष्टादिनिपात पुद्गलक्षेप ॥त एते दशविरमणस्य पञ्चातिचारा॥

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ।

एवम्*(१)कुरु १' इति* नियोग १' =एसा करो, इसप्रकार आज्ञा (=नियोग) अथवा निकृष्ट प्ररण (=नियोग) नौकरों को काममें लगाना
प्रेष्यप्रयोग १', व्यापारकरान्३' =सो प्रेष्य नौकरको) प्रयोग (=काममें लगाना) है । व्यापार करवेवा" (=व्यापार करान्)
पुरुषान्३' प्रति*अभ्युत्- =मनुष्योंको (=पुरुषान् दृष्टिमें(=प्रति) प्रकाश करनेको (=अभ्युत्)
कासिकादि करण१' ''शब्द-अनुपात १' । =खासना आदिक मो शब्द अनुपातहै अर्थात् मर्यादा किये हुये क्षेत्रमें रहकर व्यापारियों को खासी आदिक शब्द रूप समस्या द्वारा अपने प्रयोजनको समझा देना सो शब्दानुपात है
स्व-विग्रह दर्शनम्१''' रूप अनुपात १' । =अपना (=स्व) शरीर (=विग्रह) दिखाना (कि प्रयोजन प्रगट होजाय) सो रूपानुपात है
लोष्ट आदि निपात.१' पुद्गलक्षेप १' ॥ =ढेला वा ढेले आदिक फेंकना (कि अभिप्राय दुसरेका प्रगट हो) सो पुद्गलक्षेप है
ते३'एते३'दश विरमणस्य६'पञ्चअतिचारा.१' =ते इतने देश विरति (अणुव्रत) के पांच व्यतिक्रम वा दोष है

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥

श्र जोडा तब नय हुश्रा, नीका श्रर्थ लेजाना है जब क्रिया के साथ श्राङ् (=श्रा) उपसर्ग लगाया जाता है तब इसका श्रर्थ उलट जाता है श्रर्थात् नी=लेजाना श्रौर श्रानी=लाना, इस "नय के साथ श्रा जोडनेसे श्रानय हुश्रा ॥ यदि इस में ति प्रत्यय जोडे, जो श्रन्य पुरुष एक वचन है तो श्रानयति हुश्राश्रर्थ वह लाताहे एसा हुश्रा श्राज्ञासूचक क्रिया एक वचन मध्यम पुरुष(सार्वधातुकका)तिङ् को किया प्रत्यय कुछ नहीं है श्रत श्रानय रुप हुश्रा, श्रानय=ला श्रर्थात् कुछ वस्तु ला वा कोई वस्तु ला भावार्थ किसी वस्तुका मगावना, श्रौर जब कहें ला श्रर्थात् किसी पुरुष या स्त्रीको तो भावार्थ होगा किसी पुरुष श्रथवा स्त्रीको बुलावना इसी कारणसे श्रौर एक भाषा कोशके पृष्ठ १६ के निमित्तसे मन श्रानयन का श्रर्थ मगावना (कोई वस्तु) श्रौर बुलाना । किसी जन वा स्त्रीका) किया है ॥ यही श्रर्थ सदा सुखज्ञान दोनों टीकाश्रोंमे लिया है किया है। कोई वस्तु 'ला ऐसा श्रर्थ तत्वार्थ श्लोक वार्तिकमें 'तमानयेत्याज्ञापनमानयन=तम् श्रानय इति श्राज्ञापनम् श्रानयनम्=उसको लाश्रो एसा श्राज्ञापन है सो श्रानयन है (१)यहांपर कृ तनादि श्राठवा गण का धातु है श्रर्थ करना है श्राठवा गणमें क्रिया प्रत्यय मध्यम उत्तम जघन्य पुरुषके पहिले उ जोडा जाता है इसलिये कृ+उ हुश्रा पर तु कृ का कुर् ङित् संज्ञक क्रिया प्रत्ययों के पहिले होजाताहै श्रब कुर्+उ=कुरु होगया ॥ हि मध्यम पुरुष एक वचन परस्मैपद प्रत्यय श्राज्ञासूचक क्रिया का श्राठवा गणके धातुमें लगजाताहै तब केवल'कुरु ही रहा श्रर्थ हुश्रा करो श्रर्थात् हि प्रत्यय ङित् संज्ञक होने से हेतुसे कृ धातु कुर् रूपमें होगया पश्चात् उ लगाने से कुरु हुश्रा ॥ कुरु+इति=कुरु इति=कुरव्+इति=कुरविति ॥

उक्तव्रतानामतिचाराः शीलानामतिचारा वक्ष्यन्ते, तद्यथा—

॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥

उक्ताः व्रतानाम् अतीचाराः शीलानाम् =अणुव्रतोंके अतीचार कहे गये (सात) शीलोंके
अतिचाराः(१) वक्ष्यन्ते तद्यथा =व्यतिक्रम (आचार्य अग्रिम सूत्रोंमें) कहते हैं जैसे(देखो सूत्र ३०-३१-३२-३३-३४-३५-३६)

(२)ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि ॥ ३० ॥

=ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि (पञ्च—दिग्विरतेरणुव्रतस्यातिचाराः भवन्ति)॥३०॥

=ऊर्ध्वव्यतिक्रम-अधोव्यतिक्रम-तिर्यग्व्यतिक्रम-क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि-(पञ्च-दिग्विरतेः अणुव्रतस्य-अतिचाराः भवन्ति) ॥३०॥

सूत्रार्थः—ऊर्ध्वव्यतिक्रम- =मर्यादासे अधिक (=व्यतिक्रम) ऊपर (=ऊर्ध्व) जाना अर्थात् प्रतिज्ञा किये हुयेसे पर्वत, वृक्ष, भूमि आदिक पर अधिक ऊपर चढ़ना,

अधोव्यतिक्रम- =मर्यादासे अधिक उतरना वा नीचेको जाना अर्थात् नियमित सीमासे कूप बावड़ी नदी इत्यादिकमें उतरना,

तिर्यक्—व्यतिक्रम- =मर्यादासे अधिक इधर उधर जाना अर्थात् कंदरा-बिले-गुफा-सुरंग आदिकमें मर्यादासे अधिक प्रवेशकरना,

क्षेत्रवृद्धि- =गमना गमनके क्षेत्रको बढ़ाना अर्थात् मर्यादा कियेहुये क्षेत्रसे लालचके वशसे वा तृष्णाके अभिनिवेशसे गमना गमनके लिये अधिककी वांछा करना

स्मृति-अन्तरा—धानानि =मर्यादाके अनुसार सुध न रखना

---

(१) ध्यान रहे कि 'वक्ष्यन्ते' वच् धातुसे कर्तरि प्रयोगमें अन्य पुरुष बहु वचन बना है। वक्ष्यते (एक वचन) वक्ष्येते (द्विवचन) हैं। वच्+स्यन्ते स्यन्ते-लुट-वा श्वस्तनीवृत्ति वा साधारण भविष्यत् कालके आत्मने पदका अन्य पुरुष बहुवचन का चिन्ह है॥ वच्+स्यन्ते वक्+स्यन्ते वक्+ष्यन्ते=वक्ष्यन्ते ॥ कर्मणि प्रयोग वच् का-उच्यते-उच्येते-उच्यन्ते होगा-कहा गया है, दोनो कहे गये है-बहुत कहे गये हैं।

(२) यह सूत्र दोनों आम्नायोंमे एकसाहै केवल स्मृत्यन्तराधानानिके स्थानमे श्वेताम्बर सम्प्रदायमे स्मृत्यन्तर्धानानि है,अर्थ सर्वत्र एकसाहै, क्योंकि
स्मृत्यन्तर्धानम् =स्मृति-अन्तर-धानम्=स्मरणका छिपना (=अन्तर्धान,पद्मचन्द्र कोश-पृष्ठ २७)
स्मृत्य तर्धानम् =स्मृतेर्भ्रंशोऽन्तर्धानम् (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १६६)=सुध वा स्मरणका जाता रहना वा न रहना
स्मृत्यन्तराधानम्=स्मृति-अन्तर् आधानम्=सुधको-भीतर-रखना अर्थात् गुप्तरखना भावार्थ सुध न रखना
,, =स्मृति-अन्तर-आधानम्=स्मरण न रहना (अन्तर=बिना, पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ २६)
,, =स्मृति-अन्तरा-आधानम्-सुध न रहना (अन्तरा अव्यय है) अन्तरा=बिना (पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ २६)

परिमितस्य दिगवधेरतिलङ्घनमतिक्रम.। स समासतस्त्रिविध.–उर्ध्वातिक्रम.। अधोऽतिक्रम तिर्यगतिक्रम' इति । तत्र पर्वताध्यारोहणादूर्ध्वातिक्रम कूपावतरणादेरधोऽतिक्रम । विलप्रवेशादेस्तिर्यगतिक्रम.॥परिगृहीताया दिशो लोभावेशादाधिक्याभिसन्धि क्षेत्रवृद्धि ।स एपोऽतिक्रम·प्रमादान्मोहाद्यासङ्गाद्वा भवतीत्यवसेय.॥अननुस्मरण स्मृत्यन्तराधानम्॥त एतेदिग्विरमणस्यातिचारा ॥

पञ्च' दिग्विरते'' अणुव्रतस्त' अतिचारा' भवन्ति =(ये) पाच दिग्विरति अणुव्रतके अतिचार होते हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस तीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदीअनुवाद

परिमितस्य' दिक्-अवधे.' अतिलघनम्''' अतिक्रम' =इयत्ता कहिुई दिशाकी सीमाका उल्लघन करना वा नायना सो अतिक्रम है ।
स' समासत * त्रिविध' ऊर्ध्वअतिक्रम' =वह (उल्लघन) सक्षेपसे तीन प्रकार है ऊर्ध्व अतिक्रम
अध.* अतिक्रम' तिर्यक्* अतिक्रम' इति*,तत्र*पर्वत- =अधो अतिक्रम, तिर्यक् अतिक्रम । तहा पर्वतादिक पर
अध्या आरोहणात्''' ऊर्ध्व अतिक्रम' कूप- =(मर्यादासे अधिक) चढनेसे ऊर्ध्व अतिक्रम (नामका अतीचार) है । कूपमें
अवतरण-आदे' अध अतिक्रम' विल-प्रवेश =(मर्यादासे अधिक)उतरनेसे अधोअतिक्रम है, विलमें (मर्यादासेअधिक) प्रवेश
आदे' तिर्यक्-अतिक्रम', परिगृहीताया'' दिश.'' =आदिक से सो तिर्यक् अतिक्रम है । मर्यादा की हुई दिशासे
लोभ-आवेशात्' आधिक्य अभिसन्धि.'' =लालचके वशसे अथवा तृष्णाके अभिनिवेशसे अधिक (दिशा) की आकाक्षा
क्षेत्रवृद्धि'', स' एप' अतिक्रम' प्रमादात्' =सो क्षेत्रवृद्धिहै सो यह मर्यादा का उल्लघन प्रमादसे
मोहादि आसङ्गात्' वा भवति T =मोहसे अथवा भोगकी अभिलाषासे वा परिग्रह (के निमित्त) से होता है
इति*अवसेय ,अननुस्मरणम्'' =ऐसाजानना वा निश्चय करना चाहिये न(=अन)मर्यादाके अनुसार (=अनु) सुधरहना।
स्मृति-अन्तराधानम्''',ते' एते' =सो स्मृति-अन्तराधानहै अर्थात् दिशामें की हुई मर्यादा का भूलजाना । ते इतने
दिग्विरमणस्य''' अतिचारा' =दिग्विरति अणुव्रतके अतिचार वा दूषण हैं

(१) 'विल प्रवशादेस्तियग_ (=विलमें प्रवेश आदिकसे तिर्यग_(अतिक्रमहै) यह पाठ सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्ति, तीन हस्त लिखित प्रतियोंका तथा तत्त्वार्थश्लोक वार्तिकका है परतु बिलप्रवेशादि स्तियग_' =बिलमें प्रवेश आदिक सो तियग (अतिक्रम)) है ऐसा पाठ द्वितीया वृत्तिमें, तत्त्वार्थराजवातिक श्लोकवार्तिक तथा एक हस्त लिखित प्रतिका पाठहै, प्रथमपाठ अच्छाहै क्योंकि इसके उपरन्दो या स्योंम पचमा विभक्तिलायहैं॥

क्षेत्रं सस्याधिकरणम्। वास्तु अगारम्। हिरण्यं रूप्यादिव्यवहारतन्त्रम्। सुवर्णं प्रतीतम्। धनं गवादि। धान्यं व्रीह्यादि। दासीदासं भृत्यस्त्रीपुंसवर्गः।

वृत्त्यनुवादः-क्षेत्रम्१''' सस्य-अधिकरणम्१''', वास्तु१''' अगारम्१''' ;	=क्षेत्र नाज(=सस्य)(उपजाने)का आधार है अर्थात् खेतहै वास्तु गृह वा घर है
हिरण्यम्१''' रूप्य–आदि १''' व्यवहार–	=हिरण्य रूपा (=तांबा मिली हुई चांदी वा रजत) आदिक व्यवहार में–
तन्त्रम्१''' ; सुवर्णम्१''' प्रतीतम्१''', धनम्१''' गौ–आदि१'''।	=प्रवृत्तिका कारण (=तन्त्रम्) है। सोना–प्रसिद्ध वा ख्यातहै, धन गौ आदि है
धान्यम्१''' व्रीहि–आदि१''' दासीदासम्१''' भृत्यः१'' स्त्रीपुंसवर्गः१''	=धान्य तंदुल आदिक हैं दासीदास चाकर, नर नारिका समूह[=वर्गः] है

इक्कास अर्थोंमे से बना हुआ अथवा वे बना हुआ स ने अथवा चांदी के भी है (वैद्य कोश पृष्ठ२११)
हिरण्य ना अर्थोंमेंसे[क]सोना(ख चांदी अर्थोंमें भी आता है[वैद्य संस्कृत आंगिल क श पृष्ठ ८३२ देखो]

ताभ्याम् यत् अन्यत् तत् कुप्यम्	=तिन (हेम रूप्य]से जो भिन्न है वह कुप्य है अर्थात् सोने चांदी को छोड़कर शेष धातु कुप्य हैं
रूप्यम् तद् द्वयम् आहतम्	=उन दोनों [=कुप्य और चांदी] मिलाकर बनाया जाता है सो रूपा है॥

इस श्लोकसे प्रगट है कि कुप्य शब्द का अर्थ अमर कोशके अनुसार सोने चांदी को छोड़कर ताँबा आदिक सब धातु चाहें वे गढे हुए हों और चाहें अनगढे हुए है, पद्मचंद्र कोश पृष्ठ १११ में कुप्यशब्द का अर्थ इसप्रकार किया है कि सोने और रूपे से भिन्न तैजस उपधातु, सोने रूपे के विना और सबधातु' है। सात उप धातुहैं-(क)स्वर्णमाक्षिक (सोना मक्खी) (ख) तारमाक्षिक (रुपामक्खी) तुत्थ (ग)तिया -नीला थोथा घ) कांस्य (ङ) रीति वा पीतल(च)सिंदूर(छ)शिलाजीत,इसलिये अनुवादमे सोना चांदी को छोडकर अन्य गढीहुई वा वे बनी हुई धातुको कुप्य माना है(२)सभाष्य-तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमे कुप्यका अनुवाद भाण्ड वर्तनादि कियाहै इसलियेभाण्ड वर्तनादिकको अनुवादमे कुप्य मानाहै। सर्वार्थसिद्धिसस्तवृत्ति और तत्त्वार्थराज वार्तिकमें "क्षौम कार्पास-कौशेय-चन्दनादि"को कुप्य कहाहै अनुवाद में-वस्त्र-कपास-चन्दनादि लाये हैं क्योंकि क्षौम औरकौशेय पाट वस्त्रको कहतेहैं॥हिरण्य शब्दका अर्थ कृत =गढ़ेहुये-बनेहुये)और अकृत(=न बनेहुये-अनगढे हुए)सोना और रुपाके हैं जैसाकि अमरकोशके १९वां वैश्यवर्ग के उपर्युक्त ११ वां श्लोक से स्पष्ट है। हिरण्य = "(न०) हिरणमेव (स्वार्थे) यत्। सुवर्ण। साना। धतूरा। धन" (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ४४६) धतूरे से इस सूत्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। धन का अर्थ यहां पर संपत्ति,द्रव्य,अर्थ जैसे रुपया-पैसा-मोहर इत्यादिक,है॥ "हिरण्य रूप्यादि व्यवहार-तन्त्रम्"(देखो पृष्ठ सर्वार्थ सिद्धि वृत्ति ३६६ और तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ मुद्रित)२८८। हिरण्य (देखो अर्थ प्रकाशिका पृ०४३१) हिरण्य शब्द करि तो व्यवहारमें प्रवृत्ति का कारण रुपये मोहर इत्यादि लिखे हैं। हिरण्य शब्द का अर्थ जो अमरकोश-पद्मचंद्र कोश-सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और तत्त्वार्थ राजवार्तिक के अनुसार जो मैंने ऊपर लिया है इससे स्पष्ट है कि हिरण्य शब्द ऐसा विशाल अर्थ वाला है कि उसमें प्रत्येक प्रकारका रूप्या चांदी और सोनाचाहे वह किसी रूपमें हो अन्तर्गत होजाता है इसलिये द्वितीय अतिचारमे हिरण्य शब्द और सुवर्ण शब्द लेकर ऐसा अर्थ करना पड़ाहै कि गढ़ेहुए अनगढ़ेहुए प्रत्येक प्रकार के सोना, चांदी-रूप्या (किसी रूपमे क्यों न हो) को तथा सुवर्णको प्रमाणसे अथवा प्रतिज्ञा कियेहुए से अधिक सग्रह करना सो हिरण्य सुवर्ण प्रमाण अतिक्रम है क्योंकि अनुवाद मैने इसका शब्दार्थ रूपमे किया है इससे मुझे "तथा सुवर्ण" भी लाना पड़ा है नही तो हिरण्य शब्दमें ही सुवर्ण भी गर्भित है अब प्रश्न यह है कि उमा स्वामी महाराजने सुवर्ण शब्दका प्रयोग क्यों कियाहै क्योंकि सुवर्ण शब्द सूत्रमें न लायाजाता तौभी काम केवल हिरण्य शब्दसे ही चल जाता जैसाकि भावार्थ से स्पष्ट है लघुसूत्र बनानेमे सूत्रकर्ताको हर्षहोताहै॥

कुप्य क्षौमकार्पासकौशेय चन्दनादि । क्षेत्रं च वास्तु च क्षेत्रवास्तु, हिरण्यं च सुवर्णं च हिरण्यसुवर्णं, धनं च धान्यं च धनधान्यम्, दासी च दासश्च दासीदास, क्षेत्रवास्तु च हिरण्यसुवर्णं च धनधान्य च दासीदास च कुप्यं च–क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यानि ।एतावानेव परिग्रहो मम नान्य इति परिच्छिन्नात्प्रमाणात्क्षेत्रवास्त्वादिविषयादतिरेका अतिलोभवशात्प्रमाणातिक्रमा(रेका)इतिप्रत्याख्यायन्ते ॥ त एते परिग्रहपरिमाणव्रतस्यातिचाराः॥

कुप्यम्१/१	=कुप्य अर्थात् सोने चांदीको छोड़कर अन्य सबधातु,(रूपा=चांदी तांबा मिलाहुआ)
क्षौम–कार्पास–	=सनका वस्त्र[=क्षौम] पाटका वस्त्र [=क्षौम] दुकूल वा कपास [=कार्पास]
कौशेय–	=कृमियोंके कोशसे उपजा वस्त्र[=कौशेय]वा पीले पाटका वस्त्र वा पीतारंग[=कौशेय]
चन्दनादि१/१, क्षेत्रम्१/१ च* वास्तु१/१ च*	=चन्दनादिक हैं । बहुरि [=च] क्षेत्र और [=च] वास्तु
क्षेत्रवास्तु१/१, हिरण्य१/१ च*	=[मिलकर वा द्वन्द्व समास होकरि]क्षेत्रवास्तु[वाक्य]हुआ, तथा [=च] हिरण्य
सुवर्ण१/१ च* हिरण्यसुवर्ण१/१,धन१/१ च*	=और [=च] सुवर्ण [मिलकर] हिरण्यसुवर्ण वाक्य हुआ बहुरि [=च]धन तथा[=च]
धान्यम्१/१ च* धनधान्य१/१ दासी१/१ च* दास१/१च*	=धान्य[मिलकर]धनधान्य वाक्य हुआ और[=च]दासी बहुरि(=च)दास
दासीदास१/१,क्षेत्रवास्तु१/१ च हिरण्यसुवर्ण१/१ च*	=(समास होकर) दासीदास हुआ तथा (=च) क्षेत्रवास्तु और(=च) हिरण्यसुवर्ण
धनधान्यम्१/१ च* दासीदास१/१ च* कुप्यम्१/१ च*	=और (=च) धनधान्य तथा (=च) दासी दास बहुरि (=च) कुप्य (मिलकर)
क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यानि१/३,	=क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्य [वाक्य] हुआ,
एतावान्१/१ एव* परिग्रह१/१ मम६/१ न* अन्य१/१ इति*	=इतना ही(=एव)परिग्रह मेरा है अन्य नहीं है(इससे अधिक परिग्रह का मेरे त्याग है)
परिच्छिन्नात्५/१ प्रमाणात्५/१	=सीमा वा इयत्ता किये ऐसे (=परिछिन्नात् अथवा) मर्यादासे (=प्रमाणात्)
क्षेत्र-वास्तु-आदि-विषयात्५/१ अतिलोभवशात्५/१	=क्षेत्र-गृह आदिक विषयका तीव्र लोभ वा तृष्णाके अभिनिवशसे(=वशात्)
अतिरेका१/३ प्रमाण अतिक्रमा१/३ [अतिरेका१/३]	=अधिक ग्रहण करने (से) प्रमाण अतिक्रम वा अतिरेक है
इति* प्रत्याख्यायन्ते T	=ऐसे(ये प्रमाण अतिक्रम वा अतिरेक)निरादर किये गये हैं अथवा अनादर किये गये है
ते१/३ एते१/३ परिग्रह-परिमाण-व्रतस्य६/१ अतिचारा१/३[भवन्ति]	=ते इतने परिग्रह परिमाण (अर्थात् परिग्रह त्याग) अणुव्रतके अतीचार वा दूषण हैं

नवानामधः ॥ अप्रमत्तसंयताः संख्येयाः । चत्वार उपशमकाः प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा । उत्कर्षेण चतुःपञ्चाशत् स्वकालेन समुदिताः संख्येयाः ॥ चत्वारः क्षपका अयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन एको वा

अप्रमत्तसंयताः । संख्येयाः ।	= अप्रमत्त संयमी (सातवें गुणस्थानवर्ती) संख्यात अर्थात् २९६९९१०२ हैं
चत्वारः । उपशमकाः । एकः । वा द्वौ । वा	= चारो उपशम [श्रेणी] वाले एक अथवा दो अथवा
त्रयः । वा उत्कर्षेण । चतुःपंचाशत् । प्रवेशेन ।	= तीन [आदि उत्कृष्टकरि चौवन । संख्या तक] प्रवेश होनेसे
स्वकालेन । समुदिताः । संख्येयाः ।	= अपने अपने कालकरि इकट्ठे हों (तब) संख्यात होते हैं भावार्थ—अपूर्वकरण आठवां, अनिवृत्ति करण नवमां, सूक्ष्म सांपराय दशवां, उपशांतकषाय ग्यारहवां, गुणस्थान उपशम श्रेणीमें एक जीवसे लेकर उत्कृष्ट चौवन तक एक समयमें एक २ गुणस्थानमें प्रवेश कर सकते हैं, और चारो गुणस्थानकी समस्त उत्कृष्ट संख्या ११९६ जीवोंकी होगी, एक एक गुणस्थानमें २९९,२९९ जीव उत्कृष्ट रह सक्ते हैं और इन गुणस्थानोंमेंसे अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय क्षपक श्रेणीमें भी होते हैं उन प्रत्येकमें उत्कर्ष जीव संख्या ५९८ है ॥
चत्वारः ।	= चारो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय और क्षीणकषाय)
क्षपकाः । च अयोगकेवलिनः । एकः । वा *	= क्षपक (श्रेणी गुणस्थान) वाले और अयोग केवली एक

* च-वा । इन अव्ययोंका प्रयोग संस्कृतमें वाक्यके प्रत्येक भागके साथ करते हैं अथवा केवल वाक्यके अंत भागके साथ करते हैं वाक्यके प्रत्येक भागके साथ च-वा का प्रयोग संस्कृतकी बोल चालके अनुकूल शुद्ध है परन्तु भाषामें वाक्यके प्रथम भागको छोडकर शेष भागोंमें सर्व में लगा दो अथवा केवल अंत भागमें लगादो इसलिये भाषाके अनुवाद करनेमें संस्कृतके प्रथम च अथवा वा का अनुवाद छोड़ दिया जाता है । नहीं तो बोल चालके प्रतिकूल पड़ता है जैसे 'अथवा एक अथवा दो अथवा तीन उपशमक प्रवेश कर सक्ते हैं' बोलनेमें ठीक नहीं है 'एक अथवा दो अथवा तीन उपशमक प्रवेश कर सक्ते हैं' ठीक है । एको द्वौ त्रयो वा = एक दो अथवा तीन इसमें दोनों संस्कृत और हिंदीका प्रयोग ठीक होजाता है ॥ वैसे ही च का है जैसे रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च शत्रुघ्नश्च जल्पन्ति = राम और लक्ष्मण और भरत और शत्रुघ्न तुतलाते हैं ॥ प्रथम चकारका अनुवाद छोड दिया गया अथवा रामो लक्ष्मणो भरतः शत्रुघ्नश्च जल्पन्ति = राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तुतलाते हैं यहां दोनों भाषाओंकी बोलचाल मेलकर गई इसलिये ऊपरके प्रथम ना को अनुवाद करनेमें छोड दिया है ॥

=क्षेत्र-वास्तु-प्रमाण-अतिक्रमः, हिरण्य सुवर्ण-प्रमाण-अतिक्रम, धनधान्य-प्रमाण-अतिक्रम, दासी-दास-प्रमाण-अतिक्रम कुप्यप्रमाण अतिक्रम, पञ्चपरिगृहविरते अणुव्रतस्य अतिचारा, भवन्ति—

सूत्रार्थः—क्षेत्र-वास्तु-प्रमाण-अतिक्रम है' =खेत और रहनेके घरकी मर्यादा का उलघन करना अर्थात् खेत और गृहको प्रमाण से अधिक ग्रहण करलेना भावार्थ अन्न वा धान्यादिक उत्पन्न होने के स्थान को तथा रहनेके घरआदि के रखने की प्रथम तो एक सीमा नियत करना परघ त् लोभके वशते अधिक ग्रहण करना (सोक्षेत्रवास्तु प्रमाण अतिक्रम नामका अतिचार है

हिरण्यसुवर्ण-प्रमाण-अतिक्रम.है' =गढ़े हुये-अन गढ़े हुये प्रत्येक प्रकारके साने चादी रुपयाका तथा सुवर्ण को प्रमाण से प्रतिज्ञा किये हुयेसे अधिक संग्रह करना (सो हिरण्य सुवर्ण प्रमाण अतिक्रम अतिचार है)

धनधान्य-प्रमाण-अतिक्रम.है' =पोहे (=धन) और नाज अन्न (=धान्य) की मर्यादाको उलघन करना अर्थात् गौ भैंस बैल अश्व-ऊंट-हाथी आदि जो हैं तथा जौ गेहूं चना-ज्वार मटर-मक्का तदुल इत्यादि अनाजका प्रतिज्ञा की थी उससे अधिक संग्रह करना वा रखना (सोधन धान्य प्रमाण अतिक्रमअतिचारहै

दासी-दास-प्रमाण-अतिक्रम.है' =चाकर और चाकरनियोंकी निर्यमित गणनाका उलघकर अधिक नियत करना (सोदासी) दास प्रमाण अतिक्रम नामक अतिचार वा व्यतिक्रम है)

कुप्य-प्रमाण-अतिक्रम है' =सोने चादीके अतिरिक्त अन्य गढ़ीहुई (=गढ़ीहुए) अनगढ़ी (अनगढ़ेहुए) धातु जैसे= तावा-पीतल-जस्त-आदिक) को (=कुप्य) अथवा भाण्डा-वर्तनादिक (=कुप्य) अथवा वस्त्र-कपास-चदनादिकको (=कुप्य) कियेहुये प्रमाणसे अधिक संग्रह करना (सोकुप्यप्रमाणातिक्रम नाम का अतिचार है

पञ्चहै' परिग्रहाविरते है'' अणुव्रतस्य अतिचारा है' भवति =(ये) पाच परिग्रह परिमाण अणुव्रतके अतीचार होते हैं

(प्रश्न होन पर) क्या विशेषरहित (यह जोडा चलाजाता है वा चालू रहता है) एस कहत हैं कि (इनके) कुप्य (शब्द) के पहिले तक, इसी प्रकार तत्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४७० में "क्षेत्रवास्त्वादीनां द्वयाद्वयो द्वन्द्व प्राक् कुप्यात्' ऐसा वाक्य है॥ सर्वार्थसिद्धि संस्कृत तिमें जो इस सूत्रका विग्रह दिया है 'क्षेत्रच वास्तुच इत्यादि' इससे भी प्रगट है कि भाण्ड शब्द सूत्रमें नहीं है जब इन चारों संस्कृत ग्रथों से स्पष्ट हैकि भाण्ड शब्द नहींहै मेरी समझमें यह शब्द पीछेसे किसीने विचारकर कि पाचों द्वन्द्व हाजाय बढ़ादियाहै॥ सूत्रका अर्थ भी दोनों सम्प्रदायोंमें एक है

[१] स्यात्कोशश्च हिरण्य च हेमरूप्ये कृताकृते। ताभ्यां यदन्यत्तत्कुप्य रूप्य तद्द्वयमाहतम् [देखो अमर कोश (उत्तरार्ध)वैश्य वर्ग श्लोक ९१]

स्यात् कोश च हिरण्यम् च, कृत— =बहुरि [=च] कोश तथा [=च] हिरण्य [य दो नाम], गढ़े हुये (=कृत=गढ़े हुये-बने हुये)

अकृते हेम रूप्य =और अन गढ़े हुये (=अकृत=अगढ़े हुये बिना बनेहुये) सोना रुपया हैं अर्थात् कोश [कोष] व

इत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमने। अंङ्गं प्रजननं योनिश्च ततोऽन्यत्र क्रीडा अनंगक्रीडा। कामस्य प्रवृद्धः परिणामः कामतीव्राभिनिवेशः। त एते पंच स्वदारसन्तोषव्रतस्यातिचाराः॥

॥क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः॥२९॥

इत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमने" । =इत्वरिका परिगृहीताऽपरिगृहीतागमने (यह वाक्य) हुआ अर्थात् व्यभिचारिणी विवाही हुई वा पतिवाली स्त्रीके पास जाना आना सोई इत्वरिका परिगृहीता गमन नामा अतीचार है और कुलटा अविवाहिता (जैसे कन्या कुमारी वेश्यादिक)के पासजाना आनासो इत्वरिका अपरिगृहीता गमन नामा अतीचारहै

अङ्गम्" प्रजननम्" योनिः" च ततः अन्यत्र क्रीडा" =लिंग (=प्रजनन) तथा भग (=योनि) अंगहै इस (अंग)से दूसरे स्थानमें क्रीडन वा केलि

अनंग—क्रीडा" =सो अयोग्य अंगसे क्रीडा है अर्थात् काम सेवनके योग्य अंगोंको छोड़कर अन्य अंगोंसे अन्य अंगोंमें वा अन्यरीति से क्रीडा करना सो अनंग क्रीडा है

(१)कामस्य" प्रवृद्धः" परिणामः" कामतीव्र-अभिनिवेशः" =कामका बढ़ाहुआ भाव अर्थात् जिसमें कामसेवनका निरन्तर परिणाम वा अभिप्राय प्रवर्तता है सो कामतीव्राभिनिवेश (नामक अतीचार) है

ते" एते" पञ्चस्वदारसंतोषव्रतस्य" अतिचाराः" =ते एते पांच अपनी स्त्रीमें तृप्ति (अणु) व्रतके व्यतिक्रम वा दूषण हैं

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥ २९ ॥

क्षेत्रवास्तु-हिरण्यसुवर्ण-धनधान्य-दासीदास-कुप्य-प्रमाण-अतिक्रमाः (पञ्च परिग्रह विरतेरणुव्रतस्यातिचाराः भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें और हमारे यहां की अधिकतम पुस्तकों मे यही उपर्युक्त पाठ है जो सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमे है परन्तु पं० सदासुखजी कृत अर्थप्रकाशिकामे और तत्त्वार्थ सूत्रकीलघुटीकामे और पं० ज्ञानचन्द्र जी लाहौर की मुद्रित तत्त्वार्थ सूत्र मे कुप्य शब्दके पश्चात् भाण्ड (भांड) शब्द अधिक पाया जाता है। भाण्ड अथवा भांड शब्दका अर्थ पात्र वा बासन है। यह भाण्ड शब्द व्यर्थ है क्यों कि इसका अभिप्राय कुप्य शब्दमे आजाता है, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमे इसका अर्थ ऐसा लिखा है "और कुप्य अर्थात् भाण्ड वर्तनादि पदार्थोंको प्रमाण से अधिक नियत करना" पं० पन्नालालजी ने इसप्रकार लिखा है "वस्त्र-थाली-लोटा कपास-चन्दनादि कुप्यहैं" ऐसा जान पड़ता है कि यह भाण्ड शब्द पीछेसे बढ़ाया गयाहै क्योंकि तत्त्वार्थ राजवार्तिकमे लिखाहै कि क्षेत्रवास्त्वादीनां द्वयोर्द्वयोः द्वन्द्व=भवति किं-अविशेषणेत्याह-प्राक कुप्यात् अर्थात् क्षेत्र-वस्तु-आदिकों के दो दो का जोड़ा होता हैं वा दो दो का द्वद्व समास होता है

परपुरुषगमनशीला अस्वामिका सा अपरिगृहीता। परिगृहीता चापरिगृहीता च परिगृहीता-परिगृहीते इत्वरिके च ते परिगृहीतापरिगृहीते च इत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीते,तयोर्गमने

परपुरुषगमनशीला१'' अस्वामिका१'' सा१''	=दूसरेमनुष्यके(पास) जानेके स्वभाववाली(=शीला)बिनाभरतार वाली वा पतिहीन सो
अपरिगृहीता१'' ,परिगृहीता१'' च-अपरिगृहीता१''च= अपरिगृहीता है। बहुरि(=च)परिगृहीता और(=च)अपरिगृहीता(मिलकर-समासहोकर)	
परिगृहीता अपरिगृहीते१''इत्वरिके१''च ते१''	=परिगृहीता परिगृहीते (वाक्य)हुआ बहुरि(=च)तेदोनों इत्वरिके
परिगृहीतापरिगृहीते १''च*	=और(च)परिगृहीता परिगृहीते (मिलकर—समासहोकर)
इत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीते १''	=इत्वरिका परिगृहीता अपरिगृहीते (ऐसावाक्य हुआ)
(१) तयोर्गमने१''	=तिन दोनों प्रकार की कुलटाओंका गमन

(१)परिगृहीतापरिगृहीतेत्वरिका गमन में जो गमन शब्द है उस के तीन अर्थ हो सकते हैं। एक तो किसी अन्य कार्य की योजना करते समय भ्रम से वेश्या वा पुश्चलीके गृह के अन्दर पहुंच जाना, जैसे कोई पुरुष किसी नगर से परिचित नहीं है और वह उस नगर में रहना चाहता है इस लिये वह भाड़े के लिये गृह की खोजमें वेश्या वा पुश्चलीके गृह-पर पहुंच जावे। दूसरे स्त्री प्रसंग अर्थ में भी गमन शब्द आता है। (देखो बध कोश पृष्ठ २३६)। वेश्या वा व्यभिचारिणी स्त्री के यहां रागभावसे सलापादिके (=आपस में प्रेमसे बात चीत करना वा एकान्त में बात चीत आदिक करना) लिये आना जाना परन्तु उनके साथ प्रसंग न करना इस अर्थ में भी गमन शब्द आता है। अब देखना तो यह है कि यहां गमन शब्द के इन तीनों अर्थों में कौन सा अर्थ लेना चाहिये। परन्तु इस के पहिले अतीचार के लक्षण का 'कि व्रतका मूल से नाश तो न हो परन्तु व्रत दूषित हो जावे' ॥ स्मरण रखना प्रयोजनीय है कि यदि गमन शब्द का पहिला अर्थ लिया जाता है तो उस अर्थसे अणुव्रतोंमें कोई दोष नहीं पहुंचा है इस लिये पहिले अर्थ में अतीचार का लक्षण नहीं घटता है। यदि गमन शब्द का स्त्रीप्रसंग अर्थ लेते हैं तो स्वदार संतोष वा पर स्त्री त्याग व्रतके मूल से नष्ट होनके कारण परिगृहीतेत्वरिका गमन वा अपरिगृहीतेत्वरिका गमन अतीचार न होकर अनाचार हो जाते हैं। क्योंकि इस चौथे अणुव्रत में अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य समस्त स्त्रियों का त्याग किया जाता है। यह दूसरा अर्थ भी नहीं आता है यदि गमन शब्द का तीसरा अर्थ लिया जाता है तो इस में वेश्या या पुश्चली स्त्री के साथ प्रसंग तो नहीं किया जाता है अत एव यहाचर्य अणुव्रत समूल नष्ट तो नहीं होता है परन्तु रागपरिणामों से चित्त अवश्य चलायमान हो गया है अत एव अन्तरंग में व्रत के दूषित हो जानसे व्रत नष्ट हो गया परन्तु बाह्यसे व्रत नष्ट नहीं हुआ अत एव व्रतके भंगाभंग होनेसे अतीचार लगता है। इस लिये पाठकों को यहां पर वेश्या वा पुश्चली स्त्रीसे काम राग भाव से सलाप आदिके लिये उस के यहां जाना गमन शब्द का तीसरा अर्थ लेना चहिये। इसका अर्थ हमारी समझ में ऐसा ही आया है अधिक तर पाठक गण विचार करले ॥

कन्यादानं विवाहः परस्य विवाहः परविवाहः परविवाहस्य करणं परविवाहकरणम् । परपुरुषानेति गच्छतीत्येवंशीला इत्वरी, कुत्सायां क इत्वरिका । या एकपुरुषभर्तृका सा परिगृहीता । या गणिकात्वेन पुंश्चलित्वेन वा

इत्वरिकाअपरिगृहीतागमनम् [१/१] =कुलटा अविवाहिता (जैसे कन्या–कुमारी–वेश्यादिक) स्त्रीके पास जाना अर्थात् वह व्यभिचारिणी स्त्री जिसका कोई पति वा भरतार नहीं है जैसे गणिका–कन्या–कुमारी इत्यादिकके पास जाना आना देनलेन वार्तालापादिक करना इत्वरिकाअपरिग्रहीतागमनहै।

अनङ्गक्रीडा [१/१] =लिंग वा योनि जो काम सेवने के अंग है तिन को छोड़ कर अन्य अगोंमें वा अन्य अंगोंसे वा अन्यरीति से कामकेलिकरना (सो अनंग क्रीडा है)

(१) कामतीव्र–अभिनिवेशः[१/१] =कामका प्रवृद्ध वा बढाहुआ परिणाम अर्थात् जिसमें काम सेवनेका निरन्तर अभिप्राय प्रवर्तता है वा अत्यन्त कामी होना(सो कामतीव्राभिनिवेश नामा पांचवां अतिचारहै)

पञ्च-[३]ब्रह्मचर्य-अणुव्रतस्य[६/१]अतिचाराः[१/३]भवन्ति=पांच ब्रह्मचर्य अणुव्रतके वा एकदेश व्रतके व्यतिक्रम दूषण वा अतीचार होते हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस अट्ठाइसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद ॥

(२)कन्यादानम्[१/१]विवाहः[१/१]परस्य[६/१]विवाहः[१/१]परविवाहः[१/१]=कन्याका देना सो विवाह है दूसरे वा अन्यका विवाह सो पर विवाह है

पर–विवाहस्य[६/१] करणम् [१/१] पर-विवाह-करणम्[१/१] =अन्यके विवाह का करना सो परविवाह करना है अर्थात् अपनी पुत्री विना दूसरे की पुत्रीका विवाह करना अथवा अपने पुत्र न होनेपर दूसरेके पुत्रका विवाह करना

परपुरुषान्[२/३]एति गच्छति इत्येवंशीला [१/१] =अन्य पुरुषोंके (पास) जाती है (=एति) गमन करती है ऐसे स्वभाववाली है सो

इत्वरी[१/१]कुत्सायाम्[७/१] (२) कः[१/१] इत्वरिका[१/१] इत्वरी अर्थात् कुलटा है, निंदा[अर्थ]में क [प्रत्यय इत्वरी शब्दमें जोड़ने] करि इत्वरिका हुआ

या[१/१]एकपुरुषभर्तृका[१/१]सा[१/१]परिगृहीता[१/१]या[१/१] =जो एक मनुष्य की भरतारा वा गृहणी हो सो परिगृहीता है, जो

गणिकात्वेन[३/१]पुंश्चलित्वेन[३/१]वा =वेश्यापनकरि अथवा[वा] असतीपनसे [पुंश्चलित्वेन]

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें 'कामतीव्राभिनिवेश.''के स्थानमे 'तीव्रकामाभिनिवेशः'है दोनों वाक्योंका अर्थ एक है ।

(२) दश वर्षकी क्वांरी–न विवाही हुई लड़की ये दो अर्थ कन्याके पद्मचंद्रकोश पृष्ठ ६३मे लिखेहैं यहा विना विवाही हुई लड़की से अभिप्राय है ।

=परविवाहकरण-इत्वरिकापरिग्रहीता गमन-इत्वरिका अपरिगृहीतागम , अनङ्गक्रीडा-कामतीव्रअभिनिवेशा (पञ्चब्रह्मचर्याणुव्रतस्यातिचारा भवति)
=परविवाहकरणम्१''' इत्वरिकापरिगृहीतागमनम्१''' इत्वरिकाअपरिग्रहीतागमनम्१''' अनङ्गक्रीडा१'' कामतीव्रअभिनिवेश १' पञ्च१' ब्रह्मचर्य अणुव्रतस्य६।'अतीचारा १' भवति ।

सूत्रार्थ —परविवाहकरणम् १''' =दूसरेके लड़की लड़केका विवाह करना अर्थात् अपनी पुत्री बिना दूसरेकी पुत्रीका विवाह करदेना अथवा अपने पुत्र बिना दूसरे के पुत्र का विवाह करना ॥

(१) इत्वरिकापरिग्रहीतागमनम्१''' =व्यभिचारिणी विवाही हुई स्त्री के पास जाना अथवा व्यभिचारिणी राड के पास जाना

'स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः' ... 'त पते पाचादत्तादानत्यागाणुव्रतस्यातिचारा' ऐसा वाक्य होना चाहिये ॥ इस अवस्थामें पदच्छेद और अर्थ ऐसा होता है कि पञ्च-अदत्ता-आदान-त्याग-अणुव्रतस्य अतिचारा =पांच विनादिये हुये के (=अदत्ता) ग्रहणसे (=आदान) परित्याग(=त्याग) सो अणुव्रत के अतीचार हैं। जब मैंने चार हस्तलिखित प्रतियों से पाठ मिलाया तो दोनों मुद्रित आवृत्तियोंके पाठ किंतु पते पाचादत्तादानाणुव्रतस्यातिचारा मिलगये मैंने इसी पाठ को रक्खा है और अपनी समझ से ते पते पांच अदत्ता-दान अणुव्रतस्य अतिचारा पदच्छेद करके और दानका अर्थ त्याग, या छोड़ना लेकर यह अनुवाद ते इतने पांच बिनादी हुई (वस्तु) का (=अदत्ता) छोड़ना (=दान) नामा अणुव्रतके दूषण हैं, किया है अर्थ दोनों प्रकारके पाठों से एक ही निकला जो विद्वान् इस पर प्रकाश डालकर सूचित करेंगे उनका आभारी हूंगा। (१) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें 'इत्वरिका' के स्थानमें 'इत्वर' शब्द है अर्थ वही लिया है अतीचारका जो हमारे यहां किया है 'व्यभिचारिणी वा दूसरेकी विवाहिता से संग करना' अन्यकी विवाहिता कुलटा स्त्रीसेगमन करना ऐसा अर्थ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पृष्ठ १६८ पर किया है। दूसरेकी विवाही हुई व्यभिचारिणी स्त्रीके यहां जाना आना वा उसके साथ देन लेन वचनालापादि करना सो 'परिग्रहीतेत्वरिका गमन नामका अतीचार है' ऐसा अर्थ पन्नालालजी कृत टीकामें किया है इस से प्रगट है कि दोनों आम्नायोंमें अर्थ भेद कुछ भी नहीं है। इत्वर शब्दका अर्थ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ६६ में तीनों लिंगों में 'नीच मूर्ख' ऐसा लिखा है। और पृष्ठ ६६ में ही इत्वरी का अर्थ 'व्यभिचारिणी जो प्यारेको मिलनेकी इच्छासे संकेत किये गये स्थान पर जाती है अथवा 'अभिसारिका' लिखा है अभिसारिका वा अभिसारिणीका अर्थ पृष्ठ ३७ में नायकको मिलने के लिये संकेत स्थानमें आप पहुंचने वाली स्त्री, अर्थात् इत्वरी व्यभिचारिणी अभिसारिका और अभिसारिणी का एकसा अर्थ हुआ ॥ अमरकोश के सोलहवां मनुष्य वर्ग में श्लोक १० और ११ में जारिणी स्त्रीको इत्वरी कहते हैं जैसे पुंश्चली धर्षिणी बन्धक्यसती कुलटेत्वरी ॥ १० ॥ स्वैरिणी पांसुला च स्यादशिश्वी-शिशुना विना ॥ अर्थात् पुंश्चली-धर्षिणी-बन्धकी असती-कुलटा-इत्वरी ॥१०॥ स्वैरिणी पांसुला ये आठ नाम जारिणी स्त्री के हैं। प्रश्न यह है कि 'इत्वर' शब्दके होतेहुये इत्वरिका शब्द हमारे यहां क्यों लाये अर्थात् जब इत्वरी का अर्थ जारिणी वा व्यभिचारिणी स्त्रीका है तब इत्वरी शब्दके निंदा अर्थ विषे क प्रत्ययसे इत्वरिका ऐसा नाम भया' वचनिका पृ० ५७४ सो क्यों? यदि कहें कि उमास्वामी सूत्रकर्त्ताके समयमें 'इत्वरी' शब्द का अर्थ केवल स्त्री का या दुराचारिणी स्त्री का नहीं था पश्चात् में व्यभिचारिणीका अर्थ हुआ अथवा दुराचारिणीका अर्थ होगया क्योंकि बहुत से शब्द भाषा और संस्कृत में ऐसे हैं कि प्राचीन कालमें उनके अर्थ अच्छे थे और पश्चात् वे शब्द बुरे अभिप्रायमें काम आने लगे सो बात इस शब्दके सम्बन्धमें नहीं है क्योंकि अमरकोश तत्त्वार्थसूत्र से पहिलेका है उसमें 'इत्वरी' का अर्थ जारिणी स्त्रीका है अनुवादक के विचारमें इत्वर शब्दसे सूत्र लघु होता है और श्वेता०सं०केअनुसारठीकभी है।

तुलाद्युन्मानमेतेन न्यूनेनान्यस्मै देयमधिकेनात्मनो ग्राह्यमित्येवमादिकूटप्रयोगोहीनाधिकमानोन्मानम् ॥ कृत्रिमैर्हिरण्यादिभिर्वंचनापूर्वको व्यवहारः प्रतिरूपकव्यवहारः ॥ त एते पंचादत्तादानाणुव्रतस्यातिचाराः ॥

॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥

तुलादि[१''']उन्मानम्[१''']एतेन[३''']न्यूनेन[३''']अन्यस्मै[४']देयम्[१'''] =ताखड़ी आदिक उन्मान है इस (मान वा उन्मान)करि अन्यके लिये न्यून दियाजाय
आत्मनः[६]अधिकेन[३'''] ग्राह्यम्[१''']इत्येवम्*आदि[१'''] =आपको .। = ।(६') अधिककरि लियाजाय इत्यादिक
कूट–प्रयोगः[१'] हीनाधिकमानोन्मानम् [१'''] ॥ =कपटका अनुष्टानसोही ।नधिक मानोन्मान (नामक चौथा अतिचार) है
कृत्रिमैः [३'] हिरण्यादिभिः[३'] =सुवर्णआदिक खोटेवनायकरि (=कृत्रिमैः)ठगईके बनायकरि (=कृत्रिमैः)
वंचना–पूर्वकः[१']व्यवहारः[१'] प्रतिरूपकव्यवहारः[१'] ॥ =मायाचारपूर्वक व्यापार सो प्रतिरूपक व्यवहार [नामा पांचवां अतीचार] है
ते[१']एते[१']पंच(१ अदत्ता-दान-अणुव्रतस्य[६''']अतिचाराः[१']- =ते एते पांच विनादी हुई का(=अदत्ता)त्याग,छोड़ना[=दान] अणुव्रतके अतीचार है

॥ परविवाहकरण त्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥

यह 'न्' उस अनुनासिक अक्षर मे पलट जाता है जो न् के पश्चात् के वर्गसे संबंध रखता है क्योंकि न् के पश्चात् क् है इसलिये न् पलट गया ङ्मे,तब युङ् क् + ते हुआ प्रजोडो तव प्रयुङ्क्ते = प्रयुङ्क्ते बना(ग)युज् = मिलना–जुडना,–चुरादि दशवां गणका उभय पदी है इसका विकरण अय् है युज् का गुण होकर योजय हुआ प्र–ति लगाने से प्रयोजयति बना । (घ) युज् भ्वादि प्रथम गणका धातु जब होता है तब अ विकरण लगाकर योजति बनता है ॥ (१) पच-अदत्तादान-अणुव्रतस्य-अतिचाराः । इस वाक्य का अर्थ स्पष्ट समझ । । । .. ,। प्रत्यक्षरूपसे यह हुआ कि पांच स्तेय(=अदत्तादानं तेयम् देखो सूत्र १५)अणुव्रतके अतीचार हैं अब स्तेय अणुव्रत नही है बरन् अव्रतहै,अस्तेय, वा अदत्तादान–त्याग, अदत्तादान विरति,अवश्य अणुव्रत वा (महाव्रत)है इसीहेतुसे तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ट २८७ में यह वाक्य ऐसे है कि 'त एते पंच अदत्तादानविरतरतोचारा. इसमे अणुव्रत शब्द वढा देनेसे, 'त एते पंच अदत्तादानविरतेऽणुव्रतस्यातोचाराः' हुआ और इसी कारणसे अर्थप्रकाशिकामे, अदत्तादानत्यागनामा अणुव्रतके पांच अतिचार त्यागने योग्य हैं ऐसा वाक्य लाये यदि यह शब्द रह गया हो तो

मुष्णन्तं स्वयमेव वा प्रयुंक्तेऽन्येन वा प्रयोजयति प्रयुक्तमनुमन्यते वा यत स स्तेनप्रयोग । अप्रयुक्तेनाननुमतेन च चौरेणानीतस्य ग्रहण तदाहृतादानम् । उचितन्यायादन्येन प्रकारेण दानग्रहणमतिक्रम.- विरुद्ध राज्य विरुद्धराज्य विरुद्धराज्येऽतिक्रम· विरुद्धराज्यातिक्रम. । तत्र ह्यल्पमूल्यलभ्यानि महार्घ्याणि द्रव्याणीति प्रयत्न· ॥ प्रस्थादि मान,

पद छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सत्ताईसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिटीका शब्दश· हिन्दी अनुवाद ॥

मुष्णन्तम्२'स्वयम्*एव*(१)वा*(२)प्रयुंक्ते१अन्येन३' वा*	=चोर का आप(=स्वयम्)ही (=एव) प्रेरणा करता है अथवा दूसरेसे
प्रयोजयति T प्रयुक्तम्२'''अनुमन्यते T वा*	=प्रेरणा करता है वा प्रेरणा करनेको अनुमोदना करता है, भला मानता है
यत *स.१'स्तेनप्रयोग'१', अप्रयुक्तेन३'''	=इसी कारण से (=यत.) सो स्तेन प्रयोगहै, (चोर की)न प्रेरणाद्वारा
अननुमतेन३'''च चौरेण३'	=और (=च) [चोर की]न अनुमोदनाद्वारा (वरन्) चौर (=चोर)के द्वारा
आनीतस्य६''' ग्रहणम्१'''तदाहृतादानम्१''' ।	=लायेहुये[द्रव्य] का (=आनीत) लेना है सो तदाहृतादानहै)
	अर्थात् शब्दार्थ यह हुआ कि उसचोरके लायेहुए द्रव्यका ग्रहण [=आदानम्]
उचित-न्यायात्५'अ येन३'प्रकारेण३'दान-ग्रहणम्१'''	=योग्य न्याय से(वर्जित)अन्यभातिकरि वा अन्यथा देन-लेन सो
अतिक्रम.१',विरुद्धम्१'''राज्यम्१'''विरुद्धराज्यम्१'''	=अतिक्रमहै, विरुद्धहै राज्य से सो विरुद्धराज्य है
विरुद्धराज्ये७''' अतिक्रम.१'''विरुद्धराज्यअतिक्रम.१' ।	=[यह]अन्यथा देनलेन (=अतिक्रम) राज्यसे विरुद्ध सो विरुद्ध राज्य अतिक्रम है
तत्र*हि*महान् -अर्घ्याणि३'''द्रव्याणि३'अल्पमूल्य-लभ्यानि३'''	=क्योंकि (=हि) तहा बहु मूल्य (=अर्घ्याणि) द्रव्ये थोडे मूल्यमें लब्धि
इति*प्रयत्न १' ॥ प्रस्थादि१'''मानम्१'''	=ऐसा प्रयत्न (विरुद्धराज्य अतिक्रम) है प्रस्थ (=एक सेरका माप)आदिक=मान है

(१) यह वा शब्द स कृतके बोल चाल में आता है भाषामें 'अथवा चोर का आपही इत्यादि अनुवाद अच्छा न होगा (२ प्रयुंक्ते और प्रयोजयति (अन्य पुरुष एकवचन)युज्धातु से निम्न लिखित रीतिसे बनते है(क)युज्=दिवादि चतुर्थ गणका धातुहै य विकरणजोड़ा जाता है अकर्मक है जेसे युज्यते =जुडता है समाधि लगाता है यहा चतुर्थ गण में प्रयोग नहींहै (ख) युज् जुडना—प्रयुज्=प्रेरणा करना रुधादि उभय पदी सकर्मक धातु है इस गणके धातुके मूल का स्वर और अन्तके व्यञ्जनके मध्यमें क्रियारूप बनानसे पहल न लाते है जैसे युज्-यु+न+ज=युनज्+त इस न का अकारङित्लक्षक(क्रियाके साथ ज ङ जान)प्रत्ययोंके पहिले गिरजाता है अत युन्+ज् त हुआ॥च अथवाज्=क ख्-च छ्-ट ठ्-त थ् प फ् श स् ष्के पहिले क् में पलट जाता है और ग घ् ज झ्-ड ढ् द ध्-ब भ् और ह् के पहिले ग में पलटजाता है अत युन्क्+त=युनक्त,हुआ

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीना- धिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः । २७॥

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥२७॥

=स्तेनप्रयोग-तदाहृतादान-विरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपकव्यवहाराः(पञ्चास्तेयाणुव्रतस्यातिचाराः भवन्ति)

सूत्रार्थः-स्तेनप्रयोग- =चोरी(करने) का उपाय बताना वा प्रेरणा करना(=प्रयोग)अथवा चोर(=स्तेय) को उपाय बताना वा प्रेरणा करना सो स्तेन प्रयोग है ।

तदाहृतादान- =उस (तद्=चोरी) से लायेहुए (द्रव्य) का (=आहृत)ग्रहण करना वा लेना(=आदान) अथवा उस (चोर) द्वारा लाये हुए (वस्तु) का (=आहृत) लेना (=आदान) सो तदाहृतादान है ।

(२)विरुद्धराज्यातिक्रम- =राज्य से विरुद्ध(=विरुद्ध राज्य)अन्याय रूप देन लेन(=अतिक्रम)(जैसे बहु मूल्य द्रव्यको धोकेसेथोड़े मूल्यमें ले लेना सो विरुद्ध राज्यातिक्रम (अतीचार)है अथवा राज्यकेन्याय से विरुद्ध वा प्रतिकूल सोविरुद्ध राज्यातिक्रम अतिचार है, जैसे खोटेरुप्यका बनाना, खोटादाम चलाना इत्यादि ।

हीनाधिकमानोन्मान- =(लेन देनके) बाट(=मान)तखड़ी(=उन्मान)न्यून(=हीन)बढती (अधिक राखने सो हीनाधिक मानोन्मान [अतीचार]है-संक्षेपतः कमती बढ़ती बाट तखड़ी लेनेदेनेको रखना सो हीनाधिकमानोन्माननामअतीचारहै

प्रतिरूपकव्यवहाराः[१/३] =सदृशरूप बनाकर व्यापारकरना अथवा वैसा ही बनावटीरूप बनाकर व्यवहार करना अर्थात् बहु मूल्य वस्तुमें अल्पमूल्य द्रव्य मिलाकर बहुमूल्य वस्तुके सदृश उसका रूप करके मायाचार पूर्वक व्यापार करनेको प्रतिरूपकव्यवहार कहते हैं

पञ्च-अस्तेय-अणुव्रतस्य[६]"अतिचाराः[१/३]भवन्ति T=पांच अचौर्य अणुव्रतके अतीचार होते हैं ॥

---

(१) सूत्र पाठ दोनों आम्नायोंमे एकसा है ॥ श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे "तत्र स्तेनेषु हिरण्यादि प्रयोगः" = "उनमे (चोरोंमे) सुवर्ण आदिका लेन देन करना यह स्तेन प्रयोगहै ऐसा अर्थ कियाहै (२) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र में ऐसा अर्थ है" विरुद्धराज्यमे अतिक्रम करना अर्थात् विरुद्धराज्यमे क्रमका उल्लंघन करना क्योंकि विरुद्धराज्य मे सब स्तेय युक्त ही ग्रहण होता है (=विरुद्धे हि राज्ये सर्वमेव स्तेययुक्तमादानं भवति) जैसे अपने राजा और अन्यराजामे युद्धके समय मे, अन्यराजा की सहायता अस्त्र शस्त्र और अन्य प्रकारकी वस्तुयें देकर करना ॥

अन्येनानुक्त यत्किंचित्परप्रयोगवशादेव तेनोक्तमनुष्ठितमिति वंचनानिमित्त लेखनं कूट लेखक्रिया। हिरण्यादेर्द्रव्यस्य निक्षेप्तुर्विस्मृतसंख्यस्याल्पसंख्येयमाद्धानस्यैवमित्यनुज्ञान-वचन न्यासापहार.। अर्थप्रकरणाङ्गविकारभ्रूनिक्षेपणादिभि पराकूतमुपलभ्य तदाविष्करणमसूयादिनिमित्त यत्तत्साकारमन्त्रभेद इति कथ्यते॥ त एते सत्याणुव्रतस्य पचातिचारा बोद्धव्या।

अन्येन३' अनुक्तम्२''' यत्१'' किंचित् * पर-	=अन्य [पुरुष] से विना कहा गया जो किंचित् परके
प्रयोगवशात्५' एवम्*	=अभिप्राय के[=प्रयोग] वशसे ही अथवा चेष्टाके[=प्रयोग]वशसे ही कि
तेन३''' उक्तम्१''' (१) अनुष्ठितम्१''' इति*	=तिस् द्वारा ऐसा[=इति] कहागया है वा तिस द्वारा ऐसा किया गया है
वचना निमित्तम्१''' लेखनम्१' 'कूटलेखक्रिया१'' ।	=[पर को]ठगनेके लिये लिखना सो कूटलेखक्रिया है अर्थात् झूठा बनावटी वा कृत्रिम पर को ठगने के लिये लेख लिख देना सो कूटलेख क्रिया है
हिरण्य-आदे.६''' द्रव्यस्य६''' निक्षेप्तु ६' विस्मृत-सख्यस्य	=सुवर्ण आदि वस्तुके सोपने वालेके विस्मरण होगई है सख्या जिसकी
अल्प-सख्येयम्२'' आदधानस्य६'' एवम्* इति*	=थोडी सख्या उठाने वालेको ऐसा
अनुज्ञानवचनम्१'' न्यास-अपहार १' ।	=आदेशका वचन वा सम्मति का वचन[सो]न्यासापहार है अर्थात् कोई पुरुष न्यास [=धरोहर]किसीके रखगया है और गणना भूल करि थोडी मागने लगा तब उसको उसकी धरोहर की गणना न बतलाकर कहना कि जितना हो तुम्हारा लेजाओ सो न्यास-अपहार-[=धरोहर का अपहरण नामा अतीचार] है
अर्थ-प्रकरण अङ्ग विकार-भ्रू निक्षेपण आदिभि ३'	=प्रयोजन करि-प्रकरणकरि-अगकी चेष्टाकरि-भ्रकुटी के विक्षेपादिक करि
पर-आकूतम्२' उपलभ्य—	=अन्यका अभिप्राय [=आकूत]जान कर
तद्-आविष्करणम्१'' असूयादि निमित्तम्१'''	=ईर्षादिक निमित्तकर उस[अभिप्राय]का प्रगट करना
यत्* तत्* साकार-मन्त्र-भेद १' इति कथ्यते T, ते१' एते१'	=जो सो साकार मन्त्र भेद ऐसा कहा गया है । ते इतने
सत्य अणुव्रतस्य६'' पच-अतिचारा.१' बोद्धव्या १' ॥	=सत्य अणुव्रत के पाच अतीचार जानना चाहिये ॥

पुल्लिंग और नपुसकलिंग दोनोंमें आता है क्रियाविशेषस्य पुल्लिगमें है इसलिये अनुष्ठितस्य को षष्ठी विभक्ति पुल्लिग में लिखाहै और अनुष्ठितम् को नपुसल्लिंग मॆंलिखा है।

मिथ्योपदेशरहोऽभ्याख्यानकूटलेखक्रिया-न्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥ २६ ॥

अभ्युदयनिःश्रेयसार्थेषु क्रियाविशेषेषु अन्यस्यान्यथा प्रवर्तनमतिसन्धापनं वा मिथ्योपदेशः। यत्स्त्रीपुंसाभ्यामेकान्तेऽनुष्ठितस्य क्रियाविशेषस्य प्रकाशनं तद्रहोऽभ्याख्यानं वेदितव्यम्।

मिथ्योपदेश (१) रहोऽभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥ २६ ॥

=मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-साकारमंत्रभेदाः (सत्य-अणुव्रतस्यपंच-अतिचाराः भवन्ति ॥ २६ ॥

सूत्रार्थः-मिथ्या-उपदेशः[1/1] रहोऽभ्याख्यानम्[1/1] =झूठा वा अयथार्थ वचनका उपदेश देना-किसीकी गोप्य वार्ता वा आचरण को प्रगट करना

कूटलेख क्रिया[1/1] न्यासापहारः[1/1] =झूठा, बनावटी, कृत्रिम वा छली लेखलिखना, धरोहरको (=न्यास) छिपाना अर्थात् विस्मरण आदिक द्वारा धरोहर रूपसे स्थापित पदार्थ को हर लेना

साकार मंत्रभेदः[1/1] सत्य-अणुव्रतस्य[6/1] =किसीकी चेष्टासे उसका गुप्त अभिप्राय जानकर प्रगट करना (ये) सत्य अणुव्रतके

पंचअतिचाराःभवन्ति। =पांच व्यक्तिक्रम दूषण अथवा अतीचार हैं -

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस छब्बीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद ॥

अभ्युदय-निःश्रेयस-अर्थेषु[7/3] =स्वर्ग (=अभ्युदय) मोक्षकी (=निःश्रेयस) साधक (=अर्थेषु)

क्रियाविशेषेषु[7/3] अन्यस्य[6/1] अन्यथा* प्रवर्तनम्[1/1] वा* =क्रियाविशेषोंमें दूसरेका अयथार्थ प्रवर्तावना, अथवा

अतिसंधानम्[1/1] =विवादोंमें सम्बन्ध (=सन्धान) को उल्लंघिकर असम्बद्ध वा प्रकरण विरुद्ध उपदेश

मिथ्योपदेशः[1/1]; यत्[1/1] स्त्री-पुंसाभ्याम्[3/2] =सो मिथ्योपदेश (अतीचार) है, जो स्त्री पुरुषकरि

एकान्ते[7/1] (२) अनुष्ठितस्य[6/1] क्रियाविशेषस्य[6/1] =अकेलेमें की हुई क्रिया विशेषका

प्रकाशनम्[1/1] तद्[1/1] रहोऽभ्याख्यानम्[1/1] वेदितव्यम्[1/1] =प्रगट करना सो (=तद्) रहोऽभ्याख्यान वा रहस्याभ्याख्यान जानना चाहिये

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायमें 'रहोऽभ्याख्यान' के स्थानमे 'रहस्याभ्याख्यान' है अर्थ भेद नहींहै क्योंकि रहस् और रहस्य शब्दोंका एकही 'गोप्य' छिपाने योग्य अर्थहै हमारी सम्प्रदायकी पुस्तकोंमें कहीं पर रहोऽभ्याख्यानहै और कहीं पर रहोभ्याख्यान है। (२) अनेष्ठितस्य अनुष्ठितम् अनुष्ठित शब्द

द्वौ वा त्रयो वा। उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः। स्वकालेन समुदिताः संख्येयाः॥ सयोगकेवलिनः प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा। उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः। स्वकालेन समुदिताः शतसहस्रपृथक्त्वसंख्याः॥ विशेषेण गत्यानुवादेन (१) नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारका मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः

द्वौ ॥ वा ॥ त्रयः ॥ वा उत्कर्षेण ॥ अष्टोत्तरशत =अथवा दो अथवा तीन [आदिक] उत्कृष्टकरि एकसो आठकी
संख्या ॥ प्रवेशेन ॥ स्वकालेन ॥ समुदिताः ॥ =गिनती तक प्रवेश होनेसे अपने २ कालकरि इकट्ठे हों (तब) [५९८ हैं।
संख्येयाः ॥ =संख्यात होते हैं अर्थात् पाचो गुणस्थानोमेंसे प्रत्येक प्रत्येकमें उत्कृष्ट जीव
सयोगकेवलिनः ॥ प्रवेशेन ॥ एकः ॥ वा द्वौ ॥ =सयोग केवली (तेरहवे गुणस्थानवर्ती) प्रवेशकरि एक अथवा दो
वा त्रयः ॥ वा उत्कर्षेण ॥ अष्टोत्तरशतसंख्याः ॥ स्व =अथवा तीन [आदि] उत्कृष्ट करि एकसौ आठकी गणना तक हैं अपने २
कालेन ॥ समुदिताः ॥ शतसहस्रपृथक्त्वसंख्याः ॥ =समयकरि समुच्चय होंय [तब] तीन शतहजारसे ऊपर नोशत हजारसे नीचे हैं (तीन लाखसे ऊपर और नोलाखसे न्यून) अर्थात् उत्कृष्ट ८९८५०२ जीव हो सके हैं ऐसे प्रमत्त सप्तमीसे अयोग केवलीपर्यंत तीन न्यून नो करोड सप्तमी हैं।
विशेषेण ॥ गत्यनुवादेन ॥ =विशेष रीतिसे गतिके अनुवादकरि
नरकगतौ ॥ प्रथमायां ॥ पृथिव्यां ॥ नारकाः ॥ =नरकगतिमें पहली पृथिवी [के अब्बहुल भाग] में नारकी
मिथ्यादृष्टयः ॥ असंख्येयाः ॥ श्रेणयः ॥ =मिथ्यादृष्टि (जीव) असंख्यात [जगत] श्रेणी हैं।

---

(१) पृथक्त्व केवल तीनसे ऊपर और नौसे नीचला अर्थमें आता है और जिस संख्याके साथ आता है उसका विशेषण होता है जैसे कोटी पृथक्त्वसंख्या अर्थात् वह संख्या जो तीन करोड और नो करोडके बीचमें हो। शतपृथक्त्वसंख्या अर्थात् वह संख्या जो तीनसौ और नौसेके बीचमें हो। (२) यह श्रेणि क्या है ऐसा प्रश्न करने पर कहते हैं कि "सप्त रज्जुकमयी मुक्ताफलमालावदाकाशप्रदेशपंक्ति श्रेणिरित्युच्यते॥" मानविशेष इत्यर्थः॥

सप्तरज्जुकमयी ॥ मुक्ताफलमालावत् ॥ आकाश— =सातराजूरूपवाली (=मयी) मोतियोंकी मालाके सदृश आकाशके
प्रदेशपंक्ति ॥ श्रेणि ॥ इति उच्यते। मानविशेष ॥ =प्रदेशोंकी पाती सो श्रेणी कही जाती है। (श्रेणि) परिमाणका मापका भेद है
इति ॥ अर्थः ॥ =ऐसा अर्थ है।

अगार्यधिकारात् अगारिणो व्रतशीलेषु पंच पंचातिचारा वक्ष्यमाणा यथाक्रमं वेदितव्याः।
तद्यथा–आद्यस्य तावदहिंसाव्रतस्य—

॥ बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः॥२५॥

अगारी–अधिकारात् [५/१] =(७ अध्यायके २० सूत्र अणुव्रतोऽगारीसे)अगारी वा अणुव्रतीका प्रकरण होनेसे
अगारिणः [६/१] व्रतशीलेषु [७/३] पंच [१/३] पंचअतिचाराः [१/३] वक्ष्यमाणाः [१/३] =अणुव्रतीके व्रतशीलोंमें कहेजाने वाले पांच पांच अतीचार वा दूषण
यथाक्रमम्* वेदितव्याः [१/३] =अनुक्रमसे जानना चाहिये (क्योंकि बन्ध, वध, छेद अतिभार–आरोपण अन्नपाननिरोध दोषोंका अनागारी वा साधुओं के होना संभव नहीं है)
तद्यथा* आद्यस्य [६/१] तावत्* अहिंसा-व्रतस्य [६/१] =प्रथम(=तावत्)आदिका अहिंसा (नामा)अणुव्रत के [अतिचार ऐसे हैं कि]

(१)बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥

=बन्ध-वध-च्छेद-अतिभार आरोपण-अन्नपान निरोधाः[अहिंसा अणुव्रतस्य पञ्च अतिचाराः भवन्ति]

सूत्रार्थः–बन्ध–वध - च्छेद–अतिभारआरोपण— =बांधना,पीटना,छेदना [लेजाने की शक्तिसे] अधिकभार लादना
अन्नपान-निरोधाः [१/३] =खान पानका रोकना अर्थात् भूखा प्यासा रखना वा विलम्ब से अन्नपान देना(ये)
अहिंसा-अणुव्रतस्य [६/१] अतिचाराः [१/३] भवन्ति T =अहिंसा [नामा] अणुव्रतके पांच अतीचार होते हैं।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस पच्चीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

(१)हमारी सम्प्रदायमे किसीकिसी पुस्तकमे"बंध–वध–छेद इत्यादि पाठहै(देखो सदासुखजीकी लघुटीका) परन्तु अधिकतर, बन्ध-वध–छेदइत्यादि पाठ हैं शेष पाठ सर्वत्र एकसा है ॥ बन्धके स्थानमें बंध भी ठीक है(देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ५३८,५४०और च्छेदके स्थानमें छेद भी ठीक है (देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ७०) ॥ श्वेताम्बर सम्प्रदायमे च्छेद शब्द के स्थान मे विच्छेद शब्द है और इस शब्दका अर्थ काष्ठादिक की त्वक् (छाल आदि) का छेदन "त्वक् छेदः काष्ठादीनां" लिया है (देखो सभाष्य-तत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १६६) परन्तु हमारी आम्नाय में च्छेदका अर्थ पशु–मनुष्य इत्यादिकके कान—नाक–हस्त लिंगादिक अङ्गोपाङ्ग का छेदना लिया है शेष सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है ॥

अभिमतदेशगतिनिरोधहेतुर्बन्धः ॥ दण्डकशावेत्रादिभिरभिघातः प्राणिनां वधः । न प्राणव्यपरोपणम् । ततः प्रागेवास्य विनिवृत्तत्वात् ॥ कर्णनासिकादीनामवयवानामपनयनं छेदः ॥ न्याय्यभारादतिरिक्तवाहनमतिभारारोपणम् ॥ गवादीनां क्षुत्पिपासाबाधाकरणमन्नपाननिरोधः ॥ एते पञ्चाहिंसाणुव्रतस्यातिचाराः ॥

अभिमत-देशगति-निरोधहेतु १।१ बन्ध १।१, दण्ड-कशा-	=मनो वाञ्छित स्थानमें गमन करनेके रुकावका कारण सो बन्ध है। दंडा-कोड़ा (=कशा)
वेत्रादिभि ३।३ अभिघातः १।१ प्राणिनाम् ६।३ (१) वध १।१,	=बेत आदिक से चोट (देना) सो जीवों का वध है ।
न* प्राण-व्यपरोपणम् १।१, ततः*	=(इस वधमें) प्राण व्यपरोपण नहीं होताहै क्योंकि तिस (प्राण व्यपरोपण) से (=ततः)
प्राग्-एव* अस्य ६।१ विनिवृत्तत्वात् ५।१ ॥	=पहिलेही (देखो इस अध्याय का सूत्र १३वा) इसकानिषेधहै भावार्थ प्राणव्यपरोपण इस वधमें नहीं लेना चाहिये क्योंकि प्राण व्यपरोपण जो तेरहवा सूत्रमें कथित है वह अतीचार नहीं है उससे तो व्रतका नाश हो जाता है अहिंसा व्रत नहीं रहता वरन हिंसा नाम अव्रत होजाताहै अतिचारका अर्थहै कि व्रतको दूषित करना व्रतपालन तो करना परन्तु उसमें दोषलगालेना ॥
कर्ण-नासिका-आदीनाम् ६।३ अवयवानाम् ६।३ अपनयनम् १।१ छेदः १।१,	=कान-नाक-आदिक शरीरके भागोंका (=अवयवानाम्) खण्डनकरना सो छेदहै
न्याय्य भारात् ५।१ अतिरिक्त-	=उचित (अर्थात् जितना चाहिये उस) बोझ से अधिक (=अतिरिक्त)
वाहनम् १।१ अतिभार आरोपणम् १।१,	=लादना (=वाहनम्) सो अतिभारारोपण (अतिचार) है
गो-आदीनाम् ६।३ क्षुत् पिपासाबाधाकरणम् १।१	=वृषभ (=गो) अथवा गौ (=गो) आदिकके क्षुधातृषाकी बाधारूप क्रियाकरना
अन्नपाननिरोधः १।१,	=(उनको) खाना पीना न देना अथवा (उनको) विलम्बसे खान-पान देना सो अन्न पाननिरोध (नामा पाचवा अहिंसा अणुव्रतका अतीचार) है
एते १।३ पञ्च १।३ अहिंसा-अणुव्रतस्य ६।१ अतिचाराः १।३	=ये पाच अहिंसा अणुव्रतके दूषण हैं

(१) तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४६६ में इस वधका जिसमें प्राणव्यपरोपण नहीं है निम्नलिखित वाक्य पाया जाता है "प्राणिपीड़ा हेतुर्वधः कशाद्यभिघातमात्रं न तु प्राणव्यपरोपणं तस्य व्रतनाशरूपत्वात् ॥ अवयव=शरीर के भाग (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ४४)

प्राणिन्-पीडा-हेतुः वधः, कशा-आदि-अभिघात-मात्रम् =जीवके दुःखका कारण सो वध है, कोड़ा (=कशा) आदि से चोटमात्र देना (सो वध) है

न तु प्राणव्यपरोपणम् तस्य व्रतनाश रूप त्वात् =न कि प्राणव्यपरोपण (यहा वध) है क्योंकि तिस (प्राणव्यपरोपण) के व्रतका नाशपना है अर्थात् प्राणव्यपरोपण (=द्रव्यप्राण वा भाव प्राण वा दोनों को दुःख देने) से अहिंसा व्रतका नाश होजाताहै ।

विवक्षुणाऽऽचार्येण प्रशंसासंस्तवयोरितरानतिचारानन्तर्भाव्य पञ्चैवातिचारा उक्ताः ॥

आह सम्यग्दृष्टेरतिचारा उक्ताः किमेवं व्रतशीलेष्वपि भवन्तीति । ओमित्युक्त्वा तदतिचारसंख्यानिर्देशार्थमाह—

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥ २४ ॥

विवक्षुणा[३/१] आचार्येण [३/१]	=विवरणकरनेकी इच्छा करनेवाले आचार्य्यकरि
प्रशंसा-संस्तवयोः[७/२] इतरान्[२/३] अतिचारान्[२/३] अन्तर्भाव्य÷	=प्रशंसा-स्तवनमें अन्य अतीचारों को गर्भित करते हुये (=अन्तर्भाव्य)
पञ्च[१/३] एव* अतिचाराः[१/३] उक्ताः[१/३] ;आह T	=[सम्यग्दृष्टी के]पांचही अतीचार कहेगये हैं(सूत्र२५से३७तक)। प्रश्न करताहै कि
सम्यग्दृष्टेः[६/१] अतिचाराः[१/३] उक्ताः[१/३] किम्[१/१] एवम्*	=सम्यग्दृष्टिके दूषण वा अपवाद कहे गये, क्या इस प्रकार
व्रतशीलेषु[७/३] अपि* भवन्ति T इति* । ओम्* इति* उक्त्वा÷	=व्रतशीलोंमें भी[अतीचार] होते है । हां [=ओम्] ऐसा कहकरि
तद्-अतिचार-संख्या-निर्देश अर्थम्[१/१] आह T	=तिन अतिचारोंकी गणना कहनेके लिये(आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहतेहैं कि

(२)व्रतशीलेषु पञ्च पंच यथा क्रमम्२४=व्रतशीलेषु पंच पंच (अति चाराःभवन्ति)यथाक्रमम्२४

सूत्रार्थः-व्रतेषु[७/३] शीलेषु[७/३] पञ्चपञ्च[१/३] अतिचाराः[१/३] यथाक्रमम्*	=व्रतोंमें शीलोंमें पांच पांच अतीचार क्रमसे
भवन्तिT	=होते हैं अर्थात् पूर्वोक्त अहिंसा अणुव्रतमें

—सत्यभाषण अणुव्रतमें—अस्तेय अणुव्रतमें— ब्रह्मचर्य अणुव्रतमें अपरिग्रह अणुव्रतमें (ऐसे इन पॉच अणुव्रतोंमें) दिग्विरति व्रतमें—देशविरति व्रतमें—अनर्थदण्डविरति व्रतमें (ऐसे तीनगुण व्रतोंमें)सामायिक व्रतमें—प्रोषधोपवास व्रतमें—उपभोग परिमाण परिभोग परिमाण व्रतमें—अतिथि संविभाग व्रत में (ऐसे इनचार शिक्षा व्रतोंमें) [तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत मिलकर ऐसे इन सात शीलोंमें] तथा सल्लेखना में इस प्रकार इन तेरहमें से प्रत्येकके पांच पांच अतीचार अनुक्रमसे (सर्व मिलकर पैंसठ अतीचार) होते हैं वे २५ से ३७ सूत्रोंमें अनुक्रमसे कहे जावेंगे।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चौवीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

व्रतानि च शीलानिच व्रतशीलानि तेषु व्रतशीलेषु। शीलग्रहणमनर्थकम्, व्रतग्रहणेनैव सिद्धे. ॥ नानर्थकम्।विशेषज्ञापनार्थं व्रतपरिरक्षणार्थं शीलमिति दिग्विरत्यादीनीह शीलग्रहणेन गृह्यन्ते॥

व्रतानि१''' च*शीलानि१''' च* व्रतशीलानि१''' =बहुरि=(च) व्रतहैं और (=च) शील हैं सो व्रतशीलानि (ऐसा द्वद्वसमास) हुआ

तेषु१''' =तिन (व्रत शीलों)मेंहै सो तेषु है अर्थात् तिनमें यह तेषु का अर्थ है

व्रतशीलेषु१''', =व्रतों में शीलों में है सो व्रतशीलेषु (वाक्यका अर्थ) है।

शील-ग्रहणम् १'''अनर्थकम्१''', =(प्रश्न इस सूत्र में)शील (शब्द) का लाना निष्प्रयोजन है

व्रत-ग्रहणेन१'''एव*सिद्धे १''', =क्योंकिव्रत (शब्द) के ग्रहण करने से ही (शील भी व्रतों में गर्भित होनेसे) सिद्ध है ॥

अर्थात् व्रतके ग्रहण करने से ही शीलका भी ग्रहण होजाताहै क्योंकि शीलभी व्रतहै जैसा कि 'अतिथिसंविभाग व्रत सम्पन्नश्च" (वाक्य जो सू॰ २१ वा जिसमें सातशीलों का कथन है)से प्रगट है।

न-अनर्थकम्१'''-विशेष- =(उत्तर)(इस सूत्र में शीलशब्दका आदान)निष्प्रयोजननहीं है, विशेष-

ज्ञापन-अर्थम्१'''व्रत परिरक्षण-अर्थम् १'''शीलम् १'''इति*=जतावनेके लिये (शीलशब्दका ग्रहण) है(क्योंकि) व्रतोंकी रक्षाके लिये शील हैं ऐसे

दिग्विरति आदीनि१'''इह * =दिग्विरति आदिक इसस्थानमें (=इससूत्रमें)

शील-ग्रहणेन१'''गृह्यन्ते ।' =(शील शब्द)के लानेसे (अथवा ग्रहणकरनेकरि) ग्रहण किये जाते हैं भावार्थ २१ वा सूत्रकेअन्तिम वाक्य 'अतिथिसंविभाग व्रत सम्पन्नश्च" से प्रगट है कि ये सात व्रतहैं अहिंसादिक भी पांच व्रत हैं ऐसी अवस्था में प्रश्नहै कि (१)"व्रतेषु पञ्चपञ्च यथाक्रमम्"सूत्र होनाचाहिये ॥ उत्तर में कहतेहैं कि दिग्विरति व्रतआदिक अन्य अहिंसा आदिव्रतोंके रक्षा के लिये हैं इसलिये इन अन्य पांच व्रतोंकी रक्षाकी विशेषता जतावनेकेलिये सूत्रमें शील(शब्द)आयेहै,अत पांच व्रत और सात शीलोंके क्रमसे पांचपांच अर्थात् साठअतीचार(२)रहेंगे॥

---

(१) ये अतीचार गृहस्थ या अगारी या अणुव्रती से सम्बन्ध रखनेहैं क्योंकि इस अध्यायके २० वां सूत्र"अणुव्रतोऽगारी"से 'अगारी गृहस्थ, श्रावक, अणुव्रती का प्रकरण या अधिकार चलाहै इसलिये अणुव्रतोंके"(=अगारिणः)'व्रतोंमें शीलोंमें तथा सल्लेखनामें यह जान वाले ये पांचपांच अतीचार वा दूषण क्रम से जानना चाहिये और क्योंकि व ध वध छेद इत्यादिक इन दोषों का या अतीचारों का साधुओं के होना सम्भव नहीं है ॥(२) अतीचार और अनाचार में यहभेद है कि व्रतको सर्वथा छोड देना अनाचार है और व्रतको दोष लगाना (दूषित करना) सो अतीचार है ॥

=(१)शंका-कांक्षा-विचिकित्सा-अन्य दृष्टिप्रशंसा-अन्य दृष्टिसंस्तवाः सम्यग्दृष्टेः अतिचाराः भवन्ति ॥

सूत्रार्थः—शङ्का— =अरहंत सर्वज्ञ वीतरागके वर्णित तत्त्वोंके स्वरूपमें संदेह करना अथवा अपने आत्माको ज्ञाता दृष्टा अखंड अविनाशी-पुद्गलसे भिन्न जानकरके भी सप्त भय(अर्थात् इस लोकभय-परलोकभय-मरणभय-वेदनाभय-अरक्षाभय-अगुप्तभय और अकस्मात् भय) को प्राप्त होना सो शङ्कानाम अतीचार है ॥

कांक्षा— =इसलोक परलोक सम्बन्धी भोगोंमें तथा मिथ्या दृष्टियोंके ज्ञान तथा आचरण आदिकमें वांछा रखना सो कांक्षानाम [अतीचार है

(२)विचिकित्सा- =शरीरादिकको शुचि जानना-साधुओं को जो स्नान करें, दाँत न मांजें-केश लौंच करें इत्यादिकों में तथा उनके अन्य गुणोंमें और धर्मात्माओंके गुणोंमें तथा दुखी दरिद्री रोगी-इत्यादि क्लेश सम्पन्न जीवों को देख कर ग्लानि करना सो विचिकित्सा नामा अतीचार है ।

अन्य दृष्टिप्रशंसा- =मिथ्यादृष्टिके ज्ञान-तप-शील-चारित्रदानादिकों को मनकरि प्रगट करनेका विचार अथवा तिनको भला जानना (सो अन्यदृष्टि प्रशंसा अतिचार है)

अन्य दृष्टिसंस्तवाः १|३ =मिथ्यादृष्टिके ज्ञान, तप-शील-चारित्र-दानादिकों तथा अन्य विद्यमान-अविद्यमान गुणों का वचन से प्रगट करना. (सो अन्यदृष्टि वा मिथ्यादृष्टि संस्तव नामा पांचवां अतीचार है)

सम्यग्दृष्टेः ६|१ अतिचाराः १|३ =सम्यग् दृष्टि के (ये पांच) अतिचार अथवा दोष हैं

---

(१) कहीं शङ्का काङ्क्षा पाठ है और कहीं शंका कांक्षा पाठहै दोनों ठीकहैं (अध्याय१ पृष्ठ ५३८,५४०) (२) "विचिकित्सान्यदृष्टिप्रशसासस्तवाः" कहीं कहीं यह पाठ है और कहीं कहीं ऽ चिन्ह विचिकित्सा और न्यदृष्टि के बीच में है अर्थात् विचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशसासंस्तवाः" ऐसा पाठ है ॥ इसका कारण जहां तक अनुवादक को जान पड़ा है यह है किऽऐसा चिन्ह विकल्प करि (=जी चाहै लाओ जी चाहै न लाओ) वहां पर लाते हैं जहां यदि संधिके मध्यमें कहीं पर ऐसा शब्द आवे जिसके पदच्छेद करनेमे उसके अन्तका दीर्घ अकार होना चाहिये और इस शब्द के अनन्तर वा लगाहुआ शब्दअकारसे आरम्भ होताहो यहऽचिन्हपदच्छेदकी सुगमताकेलिये लावेंगे(जैसे-विचिकित्साऽन्यदृष्टि=विचिकित्सा-अन्यदृष्टि, एकसमयाविग्रहा वा एक समयाऽविग्रहा=एक समया-अविग्रहा येसर्व ठीकहै, और यदि दीर्घअकारसे आरभ होताहो तोऽऽचिन्ह लावेंगे (देखो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति सूत्र २४ अध्याय५) जैसे-शब्द बन्ध ··· तमश्छाया ऽऽ तपोद्योतवन्तश्च = तमश्छाया-आतपोद्योतवन्तश्च ऐसा पदच्छेद हुआ । यही सूत्र अन्य २ पुस्तकों मे जैसे पन्नालाल कृत बाल बोधिनी भाषा मे, राजवार्तिक मुद्रित तथा तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित मे तथा अर्थ प्रकाशिका मुद्रितमे तथा श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र मुद्रित इत्यादिकोंमे 'तमश्छायातपोद्योत-वन्तश्च' ऐसा पाठ है। प्रथम अध्याय 'देखो मतिः स्मृतिः इत्यादि' सूत्र १५ । 'बहु बहुविध इत्यादि' सूत्र १६, छठवां अध्याय सूत्र ७ इत्यादि । सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३६५ में, विवक्षुणा ऽऽ चार्येण है यदि ऽ ऐसा चिन्ह न हो तो विना अर्थ समझे यह सदेह होता है कि पदच्छेद क्या करे क्योंकि "विवक्षुणाचार्येण" के पदच्छेद विवक्षुण-आचार्येण भी हो सक्ता है वा विवक्षुण -अचार्येण इत्यादि हो सक्ते है ऽऽ ऐसे चिन्होंसे स्पष्ट होता है कि-अर्थ हमने इस वाक्य का समझा हो वा न समझा हो, विवक्षुणा-आचार्येण ही पदच्छेद है ॥

नि.शङ्कितत्वादयो व्यख्याता दर्शनविशुद्धिरित्यत्र । तत्प्रतिपक्षभूता· शङ्कादयो वेदितव्या· । अथ प्रशंसासंस्तवयो को विशेष ? मनसा मिथ्यादृष्टेर्ज्ञानचारित्रगुणोद्भावनं प्रशसा, भूताभूतगुणोद्भाववचन सस्तव इत्ययमनयोर्भेद ॥ ननु च सम्यग्दर्शनमष्टाङ्गमुक्त तस्या· तिचारैरप्यष्टभिर्भवितव्यम् ॥ नैष दोष ॥ व्रतशीलेषु पंचपचातिचारा इत्युत्तरत्र

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस तेईसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद॥२३।

नि शकितत्व-आदय दर्शनविशुद्धि	=नि शकितपना आदिक (आठ सम्यग्दर्शनके अग) दर्शनविशुद्धि'
इति*अत्र*व्याख्याता· ।	=ऐसे इस स्थानमें (=अत्र)(अर्थात् छठवा अ०के २४ वा सूत्रमें)वर्णन कियेगये
तत्-प्रतिपक्ष-भूता:	=तिन (नि.शकितत्व आदि) के प्रतिकूल पक्षवाले (इस सूत्रमें वर्णित)
शका-आदय वेदितव्या·, अथ*प्रशसा-सस्तवयो	=शकादि(येपाच अतीचार)जाननाचाहिये(प्रश्न)अब प्रशसा और सस्तवनदोनोंमें
क विशेप मनसा मिथ्यादृष्टे ज्ञान-चारित्र-गुण-	=क्या अन्तर है । (उत्तर) मन करि अन्य दृष्टिके ज्ञान तथा चारित्र गुणोंकी
उद्भावनम् प्रशसा, भूत अभूत-गुण-उद्भाव-	=प्रगटता सो प्रशसा है। छते अन छते अथवा विद्यमान अविद्यमान गुणोंकी प्रगटता
वचनम् सस्तव इति*अयम् अनयो भेद ॥	=वचनकरि (जिह्वा करि) करना सो सस्तव है । ऐसे यह दोनोंमें अन्तर है
ननु*च*सम्यग्दर्शनम् (१)अष्ट-अगम् उक्तम् तस्य	=पुनि प्रश्न-सम्यग्दर्शन अष्ट अग सयुक्त कहा गया है, तिस (सम्यग्दर्शन)के
(२)अतिचारै अपि*अष्टभि भवितव्यम्, न*एप· दोप	=अतीचार भी आठ अवश्य होना चाहिये । यह दूपण नहीं है अर्थात् सम्यक्त्वके आठ अग कहे परन्तु अतिचार पाचही कहे ऐसाआठ औरपाचकीमर्यादा करनेमें दोपनहीं है
व्रत शीलेपु पञ्च पञ्च अतिचारा इति*उत्तरत्र*	=व्रत शीलोंमें पाच पाच दूपण हैं ऐसा यहा से आगे

(१) अष्टांग को समास मानकर आठ है अङ्ग जिसके ऐसा अर्थ होता है अतएव आठ अङ्ग से युक्त ऐसा अनुवाद किया है । (२) 'अतिचारै' अष्टभि तृतीया बहु वचन है तिसका शब्दश अनुवाद अतीचार भी आठ करि इत्यादि होगा परन्तु बोल चालमें अच्छा नहीं जान पडता है, यह वाक्य राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २८६ में ऐसे है कि "स्यादेतत् सम्यग्दर्शनमष्टाग नि शङ्कितत्वादिलक्षण उक्त तस्यातिचारैरपि तावद्भिरेव भवितव्यमित्यष्टावतिचारा उपदेष्टव्या" तिस(सम्यग्दर्शन) के अतीचार भी उतने ही होना चाहिये ऐसे आठ अतीचार उपदेश कियेजाने चाहिये

तेसिं चेदुप्पत्ती हिंसेत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठा ॥१॥ किञ्च मरणस्यानिष्टत्वाद्यथावणिजो विविधपण्यदानादानसञ्चयपरस्य स्वगृहविनाशोऽनिष्टः, तद्विनाशकारणे च कुतश्चिदुपस्थिते यथाशक्ति च परिहरति, दुःपरिहारे च पण्यविनाशो यथा न भवति तथा यतते एवं गृहस्थोऽपि व्रतशीलपण्यसञ्चये प्रवर्तमानः तदाश्रयस्य न पातमभिवांछति।

(१)तेसिं चेदुप्पत्ती=तेसिं[६/३]चेत्*उप्पत्ती[१/१]
तेषाम्[६/३] चेत्*उत्पत्तिः[१/१]
हिंसेत्तिजिणेहिणिद्दिट्ठा=हिंसा[१/१]इतिजिणेहि[३/१]णिद्दिट्ठा
हिंसा[१/१]इति*जिनेन[३/१] निर्दिष्टा[१/१] ॥१॥किञ्च*
मरणस्य[६/१]अनिष्टत्वात्[५/१]यथा*वणिजः[६/१]
विविध–पण्यदानादान सञ्चय–परस्य [६/१] (२)
स्वगृह–विनाशः[१/१]अनिष्टः[१/१]च*तद्
विनाश-कारणे[७/१] कुतश्चित्*उपस्थिते[७/१]यथाशक्ति*
च*परिहरति; दुःपरिहारे[७/१] च*
पण्यविनाशः[१/१]यथा*न*भवति तथा*यतते
एवम्*गृहस्थः[१/१]अपि*व्रतशीलपण्य-सञ्चये[७/१]
प्रवर्तमानः[१/१]तद्-आश्रयस्य[६/१] ३)
न*पातम्[२/१]अभिवाञ्छति।

=यदि(=चेत्) तिन (रागादिक)की उत्पत्ति है सो
=हिंसा है इस प्रकार जिन भगवान द्वारा कथित है कुछ और (वा बहुरि विशेष)
=क्योंकि(प्राणीको) मृत्यु अप्रिय है जैसे(किसी) व्यापारीके वा वणिज करनेवालेके
=नाना प्रकारकी श्रेष्ठ वा उत्तम व्यापरकी देनेलैनेयोग्य वस्तुओंको संचय करनेवालेके
=अपने घरका विनाश इष्ट नहीं है अथवा अप्रिय है। और(=च)उस(अपने घर) के
=विनाशके कारण कहींसे आजाने पर-शक्तिके अनुसार (अर्थात् शक्तिभर)
=दूर भी (=च) करता है और (=च) [उक्त कारण को] दूर न कर सकनेपर
=जैसे व्यापारकी वस्तुओंका नाश न होय तैसा जतन करता है
=ऐसे गृहस्थ भी व्रतशील रूप व्यापारकी वस्तुओंके इकट्ठा करनेमें
=लगा हुआ वा प्रवर्तता हुआ उस (व्रतशील)के आधारका वा घरका (अर्थात् शरीरका)
=पतन वा नाश नहीं चाहता है अर्थात् व्रत-शील संयमादिक पुन्य परिणामोंके संचय
संयुक्त जो शरीर तिसका विनाश नहीं चाहता है ॥

(१) राजवार्तिक मे पेसा पाठ हैकि ॥"रागादीण मणुप्पा अहिंसकत्तेति देसिदं समये। तेसिंचेदुप्पत्ती हिंसेति जिणेहिणिद्दिट्ठा ॥ (२) पर शब्द का अर्थ अमरकोष वर्ग २३ श्लोक १६१मे श्रेष्ठ,उत्तमका भी है॥(३)आश्रयका अर्थ आधार, गृह दोनों है (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ६३) जिसके आधार कोई वस्तु रहै यहां पर (अर्थात्) जिसके आधार व्रत शील संयम रहते हैं ॥ तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें आश्रय शब्द का अर्थ शरीर लिया है जैसा कि निम्न लिखित वाक्य से प्रगट है "एवं गृहस्थोऽपि व्रतशीलपुण्यसंचयप्रवर्तमानस्तदाश्रयस्य शरीरस्य न पातमभिवाँछति" आश्रयस्य=शरीरस्य ॥

तदुपप्लवकारणे चोपस्थिते स्वगुणाविरोधेन परिहरति। दुःपरिहारे च यथा स्वगुणविनाशो न भवति तथा प्रयतत इति कथमात्मवधो भवेत्॥अत्राह निःशल्यो व्रतीत्युक्तं तत्र च तृतीयं शल्यं मिथ्यादर्शनम्। ततः सम्यग्दृष्टिना व्रतिना निःशल्येन भवितव्यमित्युक्तं तत्सम्यग्दर्शनं किं सापवादं निरपवादमिति? उच्यते—कस्यचिन्मोहनीयावस्थाविशेषात्कदाचिदिमे भवन्त्यपवादाः—

शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः

तद्–उपप्लव कारणे।। च* उपस्थिते।।	=बहुरि (=च) उस (आश्रय वा शरीर) के नाशके (=उपप्लव) कारणके आजानेपर
स्वगुण–अविरोधेन।	=अपने गुण(जैसेसम्यग् दर्शनादिक)कोविना मलिनता करि(उसशरीरके नाशकेनिमित्तको)
परिहरतिT, दु परिहारे। च* यथा*	=दूर करता है बहुरि (उस शरीरके नाशके कारणको) दूर न करसकनेपर जैसे
स्वगुण-विनाश।न*भवति Tतथा* प्रयतते T	=अपनागुण (व्रत-शील-संयमादिक)का विनाश न होय है तैसे प्रयत्न करता है
इति*कथम्*आत्मवध। भवेत् T। अत्र*आह T	=ऐसे (करनेमें) कैसे आत्म घात हो। यहा प्रश्न करता है कि
नि शल्यो। व्रती। इति*उक्तम्। तत्र*च*	=नि शल्यो व्रती ऐसा (१८ वा सूत्रमें) कथितहै और(=च)उस स्थानमें अर्थात् उस १८सूत्रमें
तृतीयम्।।शल्यम्।।। मिथ्यादर्शनम्।।, ततः*	=तीसरा शल्य मिथ्या दर्शन है, तिस (सूत्र) से (यह फल निकलता है कि)
सम्यग्दृष्टिना।व्रतिना। निःशल्येन। भवितव्यम्।।।	=शल्य रहित व्रतीसम्यग्दृष्टी (ही) होना चाहिये वा होसक्ताहै अर्थात् जो व्रती होय है सो सम्यग दृष्टी ही होयहै मिथ्या दृष्टी व्रतोंकी कियारूप प्रवर्तने परभी व्रती नहीं है
इति*उक्तम्।।।तत्सम्यग्दर्शनं।।।किम्।।।स-अपवादम्।।।	=ऐसाभाषित है। क्या वह सम्यग्दर्शन (व्रतीके) अतीचार सहित होता है
निर्* अपवादम्।।। इति*।उच्यते T कस्यचित्*	=कि अतीचार रहित इस प्रकार पूछने पर कहा जाताहै कि किसीके
मोहनीय–अवस्था विशेषात्। कदाचित्*	=मोहनीय कर्मकी अवस्थाके विशेष (जो सम्यक्त्व प्रकृति) से कदाचित्
इमे। भवन्ति T अपवादाः।	=ये [अर्थात् अग्रिम सूत्र में निम्न कथित] अतीचार होते हैं

(१) शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः ॥ २३ ॥

दिगम्बर तथाश्वेताम्बर आम्नायके ग्रंथोंमें किसीकिसीमें 'रतीचाराः' पाठहै किसीकिसीमें 'रतिचाराः' पाठहै। अतिचारऔर अतीचार दोनोंशब्दठीक हैं शेष पाठ दोनों सम्प्रदायों में और अर्थ भी एकसा है॥

न केवलं सेवनमिह परिगृह्यते। किं तर्हि ? प्रीत्यर्थोऽपि यस्मादसत्यां प्रीतौ वलान्न सल्लेखना कार्यते। सत्यां हि प्रीतौ स्वयमेव करोति॥ स्यान्मतमात्मवधः प्राप्नोति स्वाभिसन्धिपूर्वकायुरादिनिवृत्तेः॥ नैष दोषः। अप्रमत्तत्वात्। प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसेत्युक्तम्।

न*केवलम् ।। सेवनम् ''' इह*परिगृह्यते ; =केवल सेवन[शब्द]इस स्थान में [अर्थात् इस सूत्रमें] इच्छित वा वाञ्छित नहीं है

किम्*तर्हि*?प्रीति-अर्थः 'अपि*यस्मात् ''' =[प्रश्न)तौ (=तर्हि) क्या(=किम्) (आकांक्षित)है। प्रेमका अभिप्राय भीहै इसकारणसे

असत्याम् ।।प्रीतौ ।।(१)वलात् ।।।न*सल्लेखना ।। कार्यते ; =कि प्रीति न होने पर, जोरावरीसे नहीं सल्लेखना कराई जाती है

सत्याम् ।हि*प्रीतौ ।।स्वयम्*एव*करोति ॥ =प्रीति होनेपरही (=हि) आप ही (=स्वयम्-एव) करताहै भावार्थ इसप्रश्नके होने पर कि इससूत्रमें जोषिताके स्थानमें यदि सेविताशब्द जो अधिकतर प्रचलित वा प्रगट है सो लाना योग्य था उत्तरमें कहते हैं कि सल्लेखना को जोरावरी से सहन करनेका आशय नहीं है इससे सेविता सूत्रमें नहीं लाये हैं वरन् प्रीतिसे सहना अथवा प्रीतिपूर्वक सेवने से अभिप्रायहै इसलिये जोषिता शब्द लाये हैं क्योंकि जोषिता शब्दमें प्रीतिऔर सेवना दोनों भाव गर्भित वा अन्तर्गत हैं ॥

(२) स्यात् मतम् '''आत्म-वधः 'प्राप्नोति =ऐसा अभिप्राय हो अर्थात् संभवहै कि जोषिता शब्दमें प्रीति और सेवन दोनों अर्थ गर्भित होनेसे सूत्रमें सेविता शब्द नहीं लाये (परन्तु सल्लेखना पूर्वक मरण करनेसे) आत्मघात प्रचलित होताहै अथवा प्राप्त होता है

स्व-अभिसन्धिपूर्वक-आयुष्-आदि-निवृत्तेः '' ॥ =क्योंकि अपने अभिप्रायसे आयु आदिक (प्राणों)का नाश करता है ॥

न*एषः 'दोषः । =(उत्तर) (सल्लेखनापूर्वक मरण करनेमें) यह (आत्मघातका) दूषण नहीं है

अप्रमत्तत्वात् ''' ; =क्योंकि कषाय रागद्वेष अयत्नाचार पना नहींहै वा प्रमादरूप परिणाम नहीं है

प्रमत्त-योगात् ' =कषाय रागद्वेष और अयत्नाचार (=असावधानी) के संयोगसे वा सम्बन्धसे अथवा

(प्रमत्त-योगात् ') कषाय रागद्वेष और अयत्नाचार सहित होकर (=प्रमत्त) काय-वचन-मनो योगसे

प्राणव्यपरोपणम् ''' हिंसा '' इति*उक्तम् ''' =भाव वा द्रव्य वा दोनों(प्राणों)कावियोगकरना सो हिंसाहै ऐसाकहागयाहै(सूत्र १३)

(१) वल शब्द यहां नपुसकलिंग में है'बलवाले के' अर्थ में तीनों लिंग में आता है पुलिंग होताहै तब इसका अर्थ काग, बलदेव-वरुणवृक्ष-एक दैत्य होताहै (पद्मचंद्रकोश २६३) (२) स्यात्-अस् (=होना) धातु का अन्यपुरुष, एकवचन, विधि लिंग क्रियाका है,अव्यय भी होताहै अर्थ 'संभव' है॥

न चास्य प्रमादयोगोऽस्ति । कुतः ? रागाद्यभावात् रागद्वेषमोहाविष्टस्य हि विषशस्त्राद्युपकरणप्रयोगवशादात्मानं घ्नत. स्वघातो भवति, न सल्लेखनां प्रतिपन्नस्य रागादय सन्ति ततो नात्मवधदोष.॥ उक्त च–रागादीणमणुप्पा अहिंसगत्तेत्ति भासिदं समये ।

न*च*अस्य॑ प्रमाद–योग ॑अस्ति T । =बहुरि[=च] इस [सल्लेखना मरण वाले] के प्रमत्त योग नहीं है

कुत ? रागादि अभावात्॑, राग द्वेष-मोह-आविष्टस्य॑=[प्रश्न]किस कारणसे,रागादिक परिणाम के न होनेसे-रागद्वेषमोहकरि ग्रसित वा लिप्तके

हि*विष-शस्त्र आदि-उपकरण प्रयोगवशात्॑आत्मानं॑ =ही विष शस्त्रादिक कारणों वा साधनों के अनुष्ठानके वश होकरि अपनेको

(१)घ्नत ॑ स्वघात ॑भवति1,नसल्लेखनाम्॑'प्रतिपन्नस्य॑ =घातनेवाला होताहै(तिसके)आत्मघात होताहै। नहीं है सल्लेखनाको धारणकरनेवालेके

रागादय ॑सन्ति T तत *न*आत्म-वध दोष ॑ =रागादिक , तिससे आत्मघातका दूषण नहीं है । अर्थात् जो रागद्वेष मोहके वशमें होकर विष खाकर शस्त्रादिक द्वारा अपने को मारता है उसके आत्मघात होता है सल्लेखना मे रागद्वेष मोहादिक का अभाव है इसलिये सल्लेखना मरणमें अपघात का दोष नहीं आता है

उक्तम्॑'च*रागादीणमणुप्पा=राग आदीणं॑'''अणुप्पा॑। राग–आदीनाम् ॑।।। अनुत्पादा. ॑। } =कथित वा भाषित भी है कि(जहा) रागादिक उत्पन्न नहीं होते हैं

अहिंसगत्तेत्तिभासिदसमये-अहिंसगत्तइति*भासिद॑''समये अहिंसकत्वम्॑'''इति*भाषितम्॑'''समये॑ } =वहा अहिंसकपना सिद्धान्त में कहा गया है

(१)हन् अदादि दूसरे गणका धातु बहुधा परस्मैपदमे आता है कभी कभी आत्मने पदमें भी आता है ॥ इस हन् धातुका अन्तका व्यञ्जन(अर्थात् न्)उस ङित् सञ्ज्ञक प्रत्ययके पहिले जो अनुनासिक वा य् र् ल् व् के अतिरिक्त अन्य व्यञ्जनसे आरम्भ हो गिर जाताहै और इसप्रकार ह' रहजाता है और इस हन् धातुका ही उपान्तिक (अर्थात् एक छोड कर अन्तका अक्षर) अकार उस ङित् सञ्ज्ञक प्रत्ययके पहिले जो स्वरसे आरम्भ होता हो गिरजाता है अर्थात् ह्न् ऐसा रूप बन जाता है इस हन् का ह् घ् मे बदल जाता है और घ्न् प्रातिपदिक हो जाता हे ॥ प्रातिपदिक =व्याकरण मे प्रत्यय और प्रत्ययान्त एव धातु से भिन्न कृदन्त–तद्धित और समास से सिद्ध हुआ अर्थ वाला शब्द का स्वरूप, अर्थ रखनेवाला शब्द (पञ्चव द्र कोश पृष्ठ २५८) ।बहुधा वर्तमान कृदन्त इस प्रकार बनाये जाते हैं कि धातु का वह रूप लेलो जो अन्य पुरुष बहु वचन वर्तमान काल के प्रत्यय लगाने से प्रथम बनता है ॥ इस के पश्चात् वर्तमान कृदन्त का अत् यदि धातु परस्मैपद में हो और (वर्तमान कृदन्त का मान् प्रत्यय यदि धातु मे आत्मने पद जोडा जाय॥ क्योंकि हन् धातु द्वितीयगण का है इसमें कोई विकरण नहीं लगाया जाता है इस लिए पूर्वोक्त घ्न् +अत् लगानेसे घ्नत् वर्तमान कृदन्त बन गया, इसका एक वचन षष्ठी पुंलिंग अस् जोडनेसे बनता है घ्नत्+अस्=घ्नत षष्ठीएकवचन बनगया

प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः ॥ द्वितीयादिष्वा सप्तम्या मिथ्यादृष्टयः श्रेण्यसंख्येयभागप्रमिताः । स चासंख्येयभागः असंख्येया योजनकोटयः । सर्वासु पृथिवीषु सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयश्च पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः ॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः ॥

प्रतर असंख्येयभाग-प्रमिताः = (वे असंख्यात जगतश्रेणी जगत) प्रतरके असंख्यातवें भाग हैं
द्वितीय-आदिषु आ-सप्तम्याः = दूसरी (पृथिवी वा नरक (से सातवी (पृथिवी वा नरक) तक [= आ]
मिथ्यादृष्टयः श्रेणी-असंख्येयभागप्रमिताः सः च = मिथ्यादृष्टि श्रेणीके असंख्येय भाग परिमाण हैं और वह
असंख्येयभागः असंख्येयाः योजनकोटयः = असंख्यातवां भाग असंख्यात करोड योजनके प्रदेशोंके समान है ।
सर्वासु पृथिवीषु सासादनसम्यग्दृष्टयः = सब (पहिलेसे सातवें) नरकमें सासादन सम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती]
सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः च असंयतसम्यग्दृष्टयः = सम्यङ्मिथ्यादृष्टी [तीसरे गुणस्थानवर्ती] और अविरत सम्यग्दृष्टि
पल्योपमाअसंख्येयभागप्रमिताः तिर्यग्गतौ = पल्योपमके असंख्यातवां भाग परिमाण हैं तिर्यंचगतिमें [अनन्तानन्त हैं ॥
तिरश्चां मिथ्यादृष्टयः अनन्तानन्ताः = मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंकी [संख्या] अनन्तानन्त हैं (तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि
सासादनसम्यग्दृष्टि आदयः संयतासंयत-अन्ताः = सासादन सम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती] से संयमासंयमी तक
पल्योपम-असंख्येयभाग-प्रमिताः = पल्योपमके असंख्यातवेंभाग परिमाण [तिर्यंच] हैं

---

(१) प्रतर-असंख्येय-भागप्रमिता इति यद् उक्तं = प्रतरके असंख्यातवें भाग परिमाण ऐसे जो (वाक्य) कहागया है
सः प्रतरः कियान् भवति । श्रेणि-गुणिता = वह प्रतर कितना (परिमाणमें) है । श्रेणीसे गुणी गई (प्रतर है)
श्रेणीः प्रतरः उच्यते । = श्रेणी प्रतर कही जाती हैं (श्रेणीको श्रेणीसे गुणा करनेसे जो गुणनफल हो सो
प्रतर-असंख्यातभागप्रमितानां असंख्यातानां = प्रतरके असंख्यातवें भाग परिमाण जो असंख्यात
श्रेणीनां यावन्तः प्रदेशाः तावन्तः तत्रनारकाः = श्रेणीयोंके जितने पदेश हों तितने तहां नारकी हैं
इति अर्थः = ऐसा आशय है अर्थात् असंख्यात जगत श्रेणियोंके (जो श्रेणियां जगत् प्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं) जितने प्रदेश हैं उतने प्रथम नरकमें नारकी हैं

(२) देखो टिप्पणी पृष्ठ ७३-७४ । यहां षष्ठीके आगे संख्या शब्द लगानेसे अनुवाद बनता है वा सप्तमीके अर्थमें षष्ठी अष्टाध्यायी २-३-४ सूत्रसे है

कायस्य वाह्यस्याभ्यन्तराणां च कषायाणां तत्कारणहापनक्रमेण सम्यग्लेखना सल्लेखना । तां मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता सेविता गृहीत्यभिसम्बध्यते ॥ ननु च विस्पष्टार्थं सेवितेत्येवं वक्तव्यम् । न । अर्थविशेषोपपत्ते

कायस्य६। वाह्यस्य६। अभ्यन्तराणाम् ६। च* कषायाणाम् ६।	=बाहिर कायका तथा [=च] अन्तरंग कषायोंका
[१]तत्कारण हापन क्रमेण३। सम्यक्-लेखना१।।	=अनुक्रमसे तिन[काय और कषाय]के कारणोंको घटावने करि,भले प्रकार कृशकरना
सल्लेखना१।।,ताम्२।।मारणान्तिकीम्२।।सल्लेखनाम्२।।जोषिता१।।	=सो सल्लेखना है । तिस मृत्युके निकटकी सल्लेखनाको योषिता
सेविता१।।गृही१।इति*	=[प्रीतिपूर्वक]सेवने वाला वा सेवी अर्थात् प्रेम से सहन करनेवाला गृहस्थहै ऐसा
अभिसम्बध्यते P । ननु*च*	=[अगारी-व्रती शब्दों का] अनुवर्तन किया गया है ॥ तथा प्रश्न
विस्पष्ट-अर्थम्१।।सेविता१।।इत्येवम्*वक्तव्यम्१।।,	=[सूत्रमें जोषिताके स्थानमें]विशेषस्पष्ट करनेको सेविता'शब्द ऐसा कहना योग्यहै
न*अर्थ-विशेष-उपपत्ते ५।।,	=[उत्तर][सेविता शब्द लाना योग्य]नहीं है क्योंकि अर्थकी विशेष सिद्धिके कारण

(१) 'तत्कारणहापन क्रमेण' इस वाक्यको तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'तत्कारणहापनया क्रमेण' ऐसा लिखा है अर्थात् एकसमासके स्थानमें 'तत्कारणहापनया तक एक समासकिया है और 'क्रमेण शब्दको भिन्न लिखा है ॥

(२) जोषिता शब्द जुष् तुदादि छठवा गणका धातु से है पाणिनि मुनिके धातु पाठमें 'जुषि प्रीति सेवनयो' ऐसा अर्थ कियाहै यही अर्थ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'जुषि प्रीति सेवनयो वस्मात्' किया है अर्थात् जुष धातु हर्ष सेवा के अर्थ में आता है हर्ष में आना,प्रसन्न होना इस अर्थमें अकर्मक है, जब सकर्मक होता है तब सेवाकरना (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १६०) और सहन करना (धातु पाठ चन्द्रिका पृष्ठ५८६) अर्थों में आता है। यहां दोनों अर्थ मिलाकर 'प्रीतिपूर्वक सहना' के लिये है । इसलिये सेविता=प्रीत्या सेवता=जोषिता भावार्थ संतोष औरप्रीति पूर्वक सहन करना सो जोषिता है ॥ जोषिका(स्त्री०)कलियोंका गुच्छा (स्त्री०)नारी,जोषा(स्त्री०)नारी स्त्री जोषित् (स्त्री०)=नारी, स्त्री, योषा (स्त्री०)=लडकी,तरुणनारी, योषित् (स्त्री०) वा योषिता (स्त्री०) स्त्री लडकी नारी ॥ जुष् जब विशेषण होता है तब प्राय (बहुधा, समान्यत) समासके अंतमें आता है तब मिलना पहुंचना, लेना, सुख होना अर्थोंमें आता है, जुष्-धातुका अर्थ विशेष रूप से इस प्रकार है जुष्-तुदादि छठवा गणमें अकर्मक और सकर्मक आत्मने पदी होताहै जेसे जुष्+अ+ते=जुषते वर्तमान काल की क्रिया है। पांच अर्थ (क)संतुष्ट होना (ख) कृपालु होना (ग) प्रसन्न होना (घ) सहन करना (ङ) बसना, अपनेतई रथ इत्यादि में बेठना ॥

जब भ्वादि प्रथम गणका धातु होता है तब अकर्मक वा सकर्मक और परस्मैपद होता है जेसे=जोषति, चुरादिदशवा गणका धातु होता है तब उभय पदी अकर्मक और सकर्मक दोनों होताहै,(च) ध्यान करना, विचार करना, (छ) संतुष्ट होना अर्थों में आता है जैसे जुष्+अय+ति=जोषयति, जुष्+अय+ते=जोषयते ॥

सर्वार्थसिद्धि | अध्याय ७ सूत्र २२

६७

स्वपरिणामोपात्तस्यायुप इन्द्रियाणाँ वलानां च कारणवशात्संक्षयो मरणम्। अन्तग्रहणं तद्भवमरणप्रतिपत्त्यर्थम्। मरणम तः मरणान्तः। स प्रयोजनमस्य इति मारणान्तिकी॥ सम्यक्कायकषायलेखना सल्लेखना

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस बाईसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

स्व-परिणाम-उपात्तस्य[६।१] आयुषः[६।१]	=अपने(=स्व) परिपाकको (=परिणाम) प्राप्त भये(=उपात्तस्य) आयु कर्मके(निमित्तसे)
इन्द्रियाणाम्[६।३] वलानाम्[६।३] च*कारणवशात्[५।१]	=तथा इन्द्रिय [प्राण] निके और [=च] मनो वचन कायके[वलानां]कारण वश से
संक्षयः[१।१] मरणम्[१।१]; अन्त-ग्रहणम्[१।१] (१)तद्-भव-मरण-	=क्षय होना सो मृत्यु है (इस सूत्रमें) अन्त शब्दका आदान उसी जन्मकी मृत्युके
प्रति-पत्ति-अर्थम्[१।१]; मरणम्[१।१] अन्तः[१।१] मरणान्तः[१।१]।	=जनावने के लिये है। मृत्यु है अन्त वा निकट सो मरणान्त है
सः[१।१] प्रयोजनम्[१।१] अस्य[६।१] इति(२)मारणान्तिकी[१।१]	=वह मारणान्त) है प्रयोजन इसका ऐसी मारणान्तिकी है अर्थात् मृत्यु वा मरण है निकट प्रयोजन इसका सो मारणान्तिकी है॥
सम्यक्-काय-कषाय-लेखना[१।१] सल्लेखना[१।१]।	=भले प्रकार-कायका तथा कषायका[क्रमसे]कृश करना सो सल्लेखना(सत्—लेखना)है

सूत्र१६ से और व्रती शब्दकी सूत्र१८से लीगई है॥ किसी किसी प्रतिमें'मारणान्तिकीं'है और किसी किसीमें'मारणातिकीं'है। दोनों ठीक है। सल्लेखना मरण-सन्यासमरण-समाधिमरण-उत्तममरण समानार्थक हैं सल्लेखना दो प्रकारहै (क) कायसल्लेखना (ख) कषायसल्लेखना-काय सल्लेखना= कायको आत्महित के लिये सम्यक्(=सत्)कृशकरना(=लेखना)भावार्थ शोक-काम-निंदा-मन-इन्द्रिय-आलस्य-प्रमाद जीतनेको वातपित्त कफादिकके प्रकोपके अभावकरनेको सुखिया स्वभाव दूरकरने को मार्गसे नहिं डिगने को परीषह सहनेको उपवास नीरस आहार वेलातेला आदिक करने को जिन सूत्रके अनुकुल शरीरको कृश करना सो काय सल्लेखना है॥ (ख) कषायसल्लेखना-कषायोंका आत्महितके लिये कृशकरना-घटावना सो कषाय सल्लेखना है॥

(१) तत्त्वार्थराजवार्तिक और तत्त्वार्थश्लोक वार्तिकमें भी नित्यमरण और तद्भवमरणमृत्युके दोभेद कहे है॥ "तत्र नित्यमरणं समये समये स्वायुरादीनांनिवृति" =तहां समय समय पर वा प्रत्येक समय पर अपने आयु आदिककी निवृत्ति सो नित्य मरणहै॥ तद्भव मरणं भवान्तर प्राप्त्यनतरोपश्लिष्टं पूर्वभव विगमनं =पूर्वलेजन्म के नाश होते ही उसके अत्यन्तनिकट वा समीप दूसरे भव की प्राप्तिहोजाना॥

२) अन्तिक शब्द त्रिलिंगीहै इसका अर्थ पद्मचंद्रकोश पृष्ठ २७मे पासका है अन्तिकी स्त्रीलिग हुआ अर्थ पास वा निकट का है परन्तु अन्तिका वा अन्ति नाटकमे बड़ी बहिन को बोला जाता है॥ मारणान्तिकी का विग्रह (=समास के अर्थ को जतलाने वाला वाक्य)तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक में इस प्रकार किया है "मरणमेवान्तो मरणान्तः मरणान्तप्रयोजनमस्या इतिमारणांतिकी ="मरण ही है अन्त सो मरणान्त है मरणांत है प्रयोजन इसका ऐसा मारणांतिकी है। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४६७ देखो॥

दातव्यानि । औषधमपि योग्यमुपयोजनीयम्। प्रतिश्रयश्च परमधर्मश्रद्धया प्रतिपादयितव्य इति ॥ च शब्दो वक्ष्यमाणगृहस्थधर्मसमुच्चयार्थः ॥ क पुनरसौ ?—

॥ मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता॥ २२ ॥

दातव्यानि,औषधम् अपि*योग्यम् उपयोजनीयम्	=देना चाहिये ।योग्य वा उचित भेषज भी देना चाहिये।
प्रतिश्रय च*परमधर्मश्रद्धया 'प्रतिपादयितव्य' इति*॥	=और वस्तिका (=प्रतिश्रय) उत्कृष्ट धर्मका विश्वास करि दान दना योग्य है
च*शब्द 'वक्ष्यमाण-गृहस्थधर्म समुचय अर्थः' ॥	=[इस सूत्रमें]'चशब्द'अग्रिममें कहे जाने वाले गृहस्थधर्मको इकट्ठा करनेके लियेहै
क 'पुनः'*असौ' ?	=बहुरि[=पुनः]वह(=असौ=गृहस्थ धर्म) क्याहै ?[प्रश्नके उत्तरमें कहा जाताहैकि]

(२) सूत्रम्—मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता[१] ॥ २२ ॥

	=मारणान्तिकीम्'' सल्लेखनाम्''जोषिता'' स अगारी' व्रती'भवति ।
सूत्रार्थ —मारणान्तिकीम्''सत्-	=मृत्युके निकट वा मरणके अन्तमें [=मारणान्तिकीं]उत्तम प्रकारसे [=सत्]
लेखनाम्'' जोषिता॥	=काय तथाकषायकी कृशताको वा घटाउको प्रीतिसे सेवनेवाला वा सहने वाला
स 'अगारी' व्रती' भवति।	= सो अगारी व्रती है ॥ [अन्य प्रकार से अर्थ]
मारणान्तिकीं''सत्-लेखनां॥	=मृत्युहै निकट प्रयोजन इसके, जो भले प्रकारसे काय तथा कषायकी हीनताको
जोषिता॥स 'अगारी'व्रती भवति।	=प्रीतिसे सेवी है अर्थात् प्रीतिसे वा प्रेम से सहन करने वालाहै सो अणुव्रतीहै

(१)किसी किसी पुस्तकमें'जोषिता' पाठ हे और कहीं कहीं'योषिता है दोनोंही पाठ ठीकहैं। सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें और तत्त्वार्थराजवार्तिकमें जोषिताका अर्थ सेविता लियाहै। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें जोषिता शब्दका अर्थ"प्रीत्या सेविता अर्थात् प्रीतिपूर्वक सेवा वालेका है जैसा कि नीचे के वाक्यों से प्रगट है ॥ "तांमारणान्तिकीं सल्लेखना जोषिता सेविता गृहीत्यभिसम्बध्यते' संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३६३ प्रथमा वृत्ति देखो ॥ तांमारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता सेविता गृहीत्यभिसम्बध्' तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रितपृष्ठ २८४ ॥ तांमारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता प्रीत्यासेवितेत्यर्थ ॥ ' तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकपृष्ठ ४६७,पश्चात् सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें और तत्त्वार्थराजवार्तिक में प्रश्न उत्तर के स्वरूप में जोषिता का अर्थ प्रीतिसे सेवनवालेका ही लियाहैइसप्रकार तीनों ग्रन्थों का एकसा ही अर्थ होगया॥(२) दिगम्बर तथा श्वेताम्बर सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ,अर्थ एकसाहै अगारी व्रती अणुव्रती गृही गृहस्थ श्रावक, विरताविरत संयतासंयत-ये समानार्थ वाचक शब्द है ॥ इस सूत्रमें अगारी शब्द की अनुवृत्ति

निवर्तनं कर्तव्यं कालनियमेन यावज्जीवं वा यथाशक्ति ॥ संयममविनाशयन्नततीत्यतिथिः । अथवा नास्य तिथिरस्तीत्यतिथिः अनियतकालागमन इत्यर्थः ॥ अतिथये संविभागोऽतिथिसंविभागः।स चतुर्विधः—भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात्॥ मोक्षार्थमभ्युद्यतायातिथयेसंयमपरायणाय शुद्धाय शुद्धचेतसा निरवद्याभिक्षादेया। धर्मोपकरणानि च सम्यग्दर्शनाद्युपबृंहणानि

निवर्तनम्[1] '''कालनियमेन[3] '(१)यावज्जीवं[3] '''वा* यथाशक्ति*	=परित्याग कालकी मर्यादा करि अथवा जीवन पर्यन्त सामर्थ्यके अनुसार
कर्तव्यः[1] ''';संयमम्[2] 'अविनाशयन् अतति।इति॥अतिथिः[1] ';	=करना चाहिये। संयमको पालता हुआ विहार करताहै ऐसा अतिथि है।
अथवा*न* अस्य[6] 'तिथिः[1] 'अस्तिइति*अतिथिः[1] '	=अथवा नहीं है इसके (दोज-तीज-आदिक) तिथि ऐसा अतिथि है।
अनियत-काल-आगमनः[1] 'इति* अर्थः[1] ' ॥	=कालके नियम विना (आहारके लिये) आना ऐसा अर्थ(अतिथि शब्दका) है
अतिथये[4] 'संविभागः[1] '	=अतिथि अथवा महाव्रतीके लिये (अपने भोजन वस्तु विषैं) विभाग देना
अतिथिसंविभागः[1] '; सः[1] 'चतुर्विधः[1] '—	=सो अतिथि संविभाग है। वह (अतिथिसंविभाग) चार प्रकार
भिक्षा-उपकरण-औषध-प्रतिश्रय-भेदात् [5] ' ॥	=भिक्षा-उपकरण-औषध-वसतिका वा वस्तिका [=प्रतिश्रय] भेद से है।
मोक्ष-अर्थम्[1] '''अभ्युद्यताय[4] 'संयम—परायणाय[4] ' शुद्धाय[4] '	=मोक्षके लिये उद्यमी, संयम विषैं तत्पर, शुद्ध,
अतिथये[4] ' शुद्धचेतसा [3] '''निरवद्या[1] ''भिक्षा[1] ''देया[1] '';	=अतिथिके लिये,शुद्ध मनकरि,निर्दोष भिक्षा,भोजन, आहार देना चाहिये।
धर्म-उपकरणानि[3] '''च* सम्यग्दर्शनादि—उपबृंहणानि[3] '''	=और [=च] धर्मके साधन सम्यग्दर्शनादिकके बढाने वाले

(ख) परित्यज्य भुज्यतइति परिभोग ॥६॥ सकृद्भुक्त्वा परित्यज्यपुनरपिभुज्यतेइतिपरिभोगइत्युच्यते।आच्छादनप्रावरणालंकारशयनासनगृहयानवाहनादिः
परित्यज्य भुज्यते इति परिभोगः ॥ ६ ॥ =छोड़ छोड़ कर अथवा फिर फिरभोगा जाता है ऐसा परिभोग है॥ राज० वार्तिक वार्तिक ६)
सकृत्भुक्त्वा परित्यज्य पुन अपिभुज्यते इतिपरिभोगइतिउच्यते =एक वार भोगे हुयेको छोड़कर फिर भी भोगा जाताहै ऐसा परिभोग वर्णित है
आच्छादन-प्रावरण-अलंकार-शयन-आसन-गृह-यान-वाहन-आदि= (जैसे) वस्त्र-चादर-भूषण-सेज-बैठक-घर-रथगाडी-अश्ववारी आदिक(परिभोगहै
परित्यज्य भुज्यत इति परिभोग पुन. पुनर्भुज्यत इत्यर्थ. स वस्त्रादि। (तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ मुद्रित ४६६)
परित्यज्य भुज्यते इति परिभोग. पुन पुन. भुज्यतेइति अर्थ =(जो) छोड़ छोड़कर भोगाजाताहै ऐसा परिभोगहै फिर फिर भोगाजाताहै ऐसाअर्थ है,
सः व आदि =सो वस्त्रादिक है। (क) (ख) से स्पष्ट है। भोग के उपभोग, परिभोग दो भेद हैं। एक वार भोगा जाताहै, सो उपभोग है और वार वार,
भोगा जाता है वह परिभोग है। परि (अव्यय) का अर्थ यहाँ पर 'फिर फिर' का है किसी ग्रन्थमें'भोग'का अर्थ वार वार भोगने योग्यका लियाहै॥
(१)काल मर्यादासे जैसे एक दिन-दो दिन-पक्ष-मांस-वरस आदिके वास्ते त्यागको नियम कहतेहैं॥किसी वस्तुका यावज्जीव त्यागको यम कहतेहैं॥

परिभोग आच्छादनप्रावरणालङ्कारशयनासनगृहयानवाहनादि । तयो परिमाणमुपभोगपरिभोगपरिमाणम्॥ मधु मांस मद्यञ्च सदा परिहर्तव्य त्रसघातान्निवृत्तचेतसा॥ केतक्यर्जुनपुष्पादीनि शृंगवेरमूलकादीनि बहुजन्तुयोनिस्थानान्यनन्तकायव्यपदेशार्हाणि परिहर्तव्यानि बहुघाताल्पफलत्वात् ॥ यानवाहनाभरणादिष्वेतावदेवेष्टमतोऽन्यदनिष्टमित्यनिष्टात्

परिभोग १/१' अच्छादन-प्रावरण- अलंकार शयन आसन-गृह यान- वाहन-आदि १/१' = वार वार भोगनेमें आवे सो परिभोग वस्त्र (आच्छादन) दुपट्टा चादर भूषण-गहना (=अलंकार) सेज (=शयन) बैठक (=आसन) घर, रथ-गाड़ी (=यान) अश्ववारी (=वाहन) आदिक है,

। तयो ६/२' परिमाणम् १/१''' (१) उपभोग-परिभोग-परिमाणम् १/१''' = तिन दोनों (उपभोग परिभोग) का प्रमाण सो उपभोग परिभोग परिमाण है।

॥ मधु १/१''' मांस १/१''' च* मद्यम् १/१' सदा* त्रस-घातात् ५/१' निवृत्त-चेतसा ३/१' परिहर्तव्यम् १/१''' = और पुष्परस चौद्र वा माक्षिक (=मधु) सुरा मदिरा वा दारू (=मद्य) नित्य त्रस घात (करने) से निवृत्त आत्माकरि त्यागने योग्य है ॥

केतकी-अर्जुन पुष्पादीनि १/३''' शृगवेर मूलक आदीनि १/३''' = केतक वा केवड़ा (=केतकी) तृण (=अर्जुन) फूलादिक आर्द्रक-वासोंठ (=शृगवेर) मूली (=मूलक) आदि

बहु-जन्तु-योनि-स्थानानि १/३''' अनन्त-काय-व्यपदेश-अर्हाणि १/३''' परिहर्तव्यानि १/३''' = बहुत जीवोंकेउपजनेकेठिकाने जिनको अनन्त काय कहना योग्य है त्यागने योग्य हैं

बहु-घात-अल्प-फलत्वात् ५/१''' ॥ = क्योंकि बहुत घात है और फल अल्प (अर्थात् किञ्चित् स्वाद मात्र) है

यान-वाहन-आभरण आदिषु ७/३' एतावत्* एव* इष्टम् १/१''' अत *अन्यत्* अनिष्टम् १/१''' इति* अनिष्टात् ५/१''' = रथ-गाड़ी आदि (=यान) अश्ववारी (=वाहन) भूषण (=आभरण) आदिमें इतना ही इष्ट है इससे अन्य अनिष्ट है इस प्रकार अनिष्ट से

(१) (क) उपेत्य भुज्यत इत्युपभोग ॥ = ॥ उपेत्यात्मसात् कृत्य भुज्यते अनुभूयत इत्युपभोग । अशनपानगंधमाल्यादि ' (राजवार्तिक, वार्तिक =)

उपेत्य भुज्यते इति उपभोग ॥=॥ = एक साथ भोगा जाताहै ऐसा उपभोगहै अर्थात् एकवार जो भोगनेमें आसके सो उपभोगहै

उपेत्य आत्मसात्* कृत्य भुज्यते अनुभूयते इति उपभोग = अपना अथवा अपने आधीन (=आत्मसात्) कर (=कृत्य) भोगा जाता है अनुभवमें आताहै अथवासेवनमें आताहै ऐसा उपभोगहै, अर्थात् जोएक वार भोगनेमें आसके सो उपभोगहै

अशन पान गन्ध माल्य आदि = (जैसे) भोजन, (किसी वस्तुका) पीना सुगन्ध वास, पुष्प अथवा पुष्पमाला इत्यादि

"उपेत्य भुज्यत इत्युपभोग अशनादि" (उपेत्य भुज्यत इति उपभोग अशन आदि) = एकसाथ भोगाजाताहैऐसा उपभोगहै (जैसे) भोजन आदि (श्लोकवा०)

शब्दादिग्रहणं प्रति निवृत्तौत्सुक्यानि पञ्चापीन्द्रियाण्युपेत्य तस्मिन् वसन्तीत्युपवासः।चतुर्विधाऽऽहारपरित्याग इत्यर्थः॥प्रोषधेउपवासःप्रोषधोपवासः।स्वशरीरसंस्कारकारणस्नानगन्धमाल्याभरणादिविरहितः शुभावकाशे साधुनिवासे चैत्यालये स्वप्रोषधोपवासगृहे वा धर्मकथाचिन्तनावहितान्तःकरणः (१)सन्नुपवसेत् निरारम्भश्रावकः॥ उपभोगोऽशनपानगन्धमाल्यादिः ।

	ही आशयको कहते हैं भावार्थ अष्टमी, चतुर्दशी, पर्वोंको प्रोषध कहते हैं ।
शब्दादिग्रहणम्२/१'''प्रति*निवृत्त–	=शब्दादिक (पांच इन्द्रियोंके विषयों) के ग्रहणसे निवृत्त
औत्सुक्यानि२/३'''पञ्च२/३'''अपि*इन्द्रियाणि२/३'''	=पांचों ही (=अपि) इन्द्रियोंकी इच्छाओंको (विषयोंसे) (=औत्सुक्यानि)
उपेत्य÷तस्मिन्७/१'वसन्तिTइति*उपवासः१/१';	=अपने आधीन करि (=उपेत्य) जसमें वसती हैं ऐसा उपवास है ।। संक्षेपतः पांचों ही इन्द्रियें अपने विषयोंसे छूटकर जिसमें आय वसतीहैं सो उपवास है।
चतुर्विध–आहार–परित्यागः१/१'इति*अर्थः१/१' ॥	=(अशन-पान-भक्ष्य-लेह्य) चार प्रकारके आहार का त्याग ऐसा अभिप्राय है ।
प्रोषधे७/१'उपवासः१/१'प्रोषध-उपवासः१/१';	=(अष्टमी वा चतुर्दशी आदिक) पर्वमें निराहार (विधि से)रहना सो प्रोषधोपवासहै।
स्व-शरीर-संस्कार-कारण-स्नान गन्ध-माल्य-	=(तहां) अपने शरीरके संस्कारके हेतु स्नान-सुगन्ध-पुष्प(=माल्य) वा पुष्पमाला
आभरण-आदि-विरहितः१/१'	=गहना(=आभरण) आदिकसे वर्जित हो
शुभ–अवकाशे७/१'साधुनिवासे७/१'चैत्यालये७/१'	=पवित्र भीतरे स्थानमें [=अवकाश] मुनिके रहनेके स्थानमें चैत्यालयमें
स्व-प्रोषधोपवासगृहे७/१'''वा धर्मकथा-चिन्तन-	=वा अपने बनाये हुए पर्व के उपवासके घरमें धर्मकथाके चिन्तवनमें
अवहित-अन्तःकरण१/१'सन्१/१'	=मन लगायेंहुये[=अवहितअन्तकरणःसन्][सोलहपहर पर्व के पहिले दिनके दुपहरसे लगाय पारनेके दिनके दुपहर तक]
उपवसेत् T निरारम्भ-श्रावकः१/१'; अशन-पान-गन्ध–	=आरम्भ वर्जित श्रावक उपवासे (सो प्रोषधोपवास)है-भोजन-पान-सुगन्ध
माल्य-आदिः१/१'उपभोगः१/१';	=पुष्प(=माल्य)पुष्पमाला(=माल्य)आदिक उपभोगहै अर्थात् जो एक वार भोगनेमें आवे सो उपभोग है ।

---

(१)सन् प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग सत् शब्द काहै,सत् वर्तमान कृदन्त अस्(=होना)काहै । उपवसेत्=उप+वस्+अ+इत् विधिलिंगहै॥

विगृह्य समायिकम्॥ इयति देशे एतावति काले इत्यवधारिते सामायिके स्थितस्य महाव्रतत्वं पूर्ववद्वेदितव्यम्॥अणुस्थूलकृतहिंसादिनिवृत्तेस्संयमप्रसङ्ग इतिचेन्न। तद्घातिकर्मोदयसद्भावात्॥ महाव्रतत्वाभाव इति चेदुपचाराद्राजकुले सर्वगतचैत्राभिधानवत्॥ प्रोपधशब्द पर्वपर्यायवाची॥

विगृह्य–समायिकम्[१/१]॥ { ह् में यङ्(=य) लगानेसे ग्रह=गृह्य }	=विग्रहकरि(=अर्थप्रकाशकरने वाले वाक्य करि) समायिक (शब्द) बना है भावार्थ स्वरूपविर्षे तथा शुभ क्रियाविर्षेएकताकरिलीन होना सो समायिक है
इयति[७/१]'देशे[७/१]'एतावति[७/१]'काले[७/१]'इति*अवधारिते[७/१]'''समायिके[७/१]'''	=इतनेक्षेत्रमें इतने काल में ऐसीमर्यादाकरि (=अवधारिते)समायिकमें अर्थात् साम्यभावको प्राप्त होकर आत्म स्वरूप विर्षे वा शुद्ध क्रियाविर्षे
स्थितस्य[६/१]'महाव्रतत्वम्[१/१]'''	=प्रतिज्ञा वालेके (देश-काल-सम्बन्धी)महाव्रतपना
पूर्ववत्*वेदितव्यम्[१/१]'''	=पहले (दिग् विरतिव्रतऔर देशविरतिव्रत)के समान जानना चाहिये
अणु-स्थूल-कृत हिंसादि-निवृत्ते[५/१]''	=सूक्ष्म-स्थूल-प्रकार करि(=कृत)हिंसादिक के अभाव (के कारण)से
संयम प्रसङ्ग[१/१]'	(इस सामायिक वाले संयतासंयतके) (सकल) संयमका अवसर आता है
इति*चेत्*न* ।	=ऐसा संशयहै (=इति चेत्) (उत्तर)(सकल संयमका प्रसंग) नहीं आता है,
तद्-घातिन्–कर्मन्–	=क्योंकि उस(सकल संयम)के घातने वाले(=घातिन्)(प्रत्याख्यानावरण कर्मका)
उदय-सद्भावात्[५/१]' ॥	=(उस संयतासंयत वा अणुव्रती के) उदयका सद्भाव वा अस्तित्व है
महाव्रतत्व-अभावः[१/१]'इति*चेत्*	=(उस अणुव्रतीके) महाव्रत के होने की निवृत्ति (आती है) ऐसा संदेह है
उपचारात्[५/१]' राजकुले[७/१]'''	=(पूर्वोक्त सामायिक करने वाले के) उपचार करि वा व्यवहार करि राजघरमें,
सर्वगत–चैत्र–अभिधानवत्* ॥	=सब स्थानोंमेंजानेवाले चैत्र नामा राज पुरुष के कथन के समान महाव्रत है

अर्थात् किसी पुरुषका राज घरमें प्रवेशहो परन्तु कोई गुप्त स्थान ऐसे हैं जहा वह नहीं जा सक्ता है तौ भी सामान्यतासे यह कहते हैं कि उस राज पुरुषका सब स्थानोंमें गमन है तैसे यहा पर पूर्वोक्त सामायिक करने वालेके सकल संयम नहीं है तौ भी उपचार वा बोल चालके व्यवहारमें कहे हैं कि उसके महाव्रत सामायिक समयमेंहै ॥

प्रोषधशब्द[१/१]' पर्व–पर्याय–वाची[१/१]',	=(सूत्रमें)प्रोषधशब्द पर्वशब्दका समानार्थकहै अर्थात् प्रोषध शब्द, पर्वशब्द एक

प्रयोजनमन्तरेणवृक्षादिच्छेदनभूमिकुट्टनसलिलसेचनाद्यवद्यकार्यं प्रमादाचरितम्॥ विषकण्टक-शस्त्राग्निरज्जुकशादण्डादिहिंसोपकरणप्रदानं हिंसाप्रदानम् । हिंसारागादिप्रवर्धनदुष्टकथा-श्रवणशिक्षणव्यापृतिरशुभश्रुतिः । समेकीभावे वर्तते । तद्यथा सङ्गतं घृतं सङ्गतं तैलमि-त्युच्यते एकीभूतमिति गम्यते । एकत्वेन अयनं गमनं समयः; समय एव सामायिकं, समयः प्रयोजनमस्येति वा

	आरम्भ इस उपाय करि करना चाहिये ऐसा वृतान्त(=आख्यान) आरम्भका उपदेशहै
प्रयोजनम् [२/१] अन्तरेण*वृक्षादिच्छेदन-	=प्रयोजन विना (=अन्तरेण) वा निष्प्रयोजन वृक्षादिकका छेदना
भूमिकुट्टन-सलिल-सेचन-आदि-अवद्यकार्यम् [१/१]	=पृथिवीका कूटना, जलका बखेरना आदिक निंद्य कार्य
प्रमाद-आचरितम् [१/१]; विष-	=सो प्रमादाचरित अथवा प्रमाद चर्यानामा अनर्थ दण्ड है । माहुर वा हलाहल (=विष)
कण्टक-शस्त्र-अग्नि-रज्जु-कशा-दण्डादि-हिंसा-	=कांटा-शस्त्र-अग्नि-रस्सी-कोड़ा (=कश) दंडादिक हिंसाकी
उपकरण-प्रदानम् [१/१] हिंसा-प्रदानम् [१/१] ॥	=सामिग्री वा साधन देना सो हिंसा प्रदान (नामा अनर्थ दंड) है
हिंसा-रागादि- प्रवर्धन-	=हिंसा तथा रागादिक (क्रोध-काम-द्वेष-अभिमान इत्यादिक) के बढ़ावने वाली
दुष्टकथाश्रवण-शिक्षण-व्यापृतिः [१/१] अशुभश्रुतिः [१/१];	=खोटी कथाका सुनना-सीखना-प्रवर्तन करना सो दुःश्रुति (नामा अनर्थ दंड है)
सम्-एकीभावे [७/१] वर्तते । तद्यथा*	=सम् (उपसर्ग) एकताके भावमें वा एकताके अर्थमें प्रवर्तता है॥जैसे (किसी वस्तुमें)
संगतम् [१/१] घृतम् [१/१]	=घी की एकता हो अर्थात् उसमें घी मिलकर एक मेक होजाय सो संगत घृत है ।
संगतम् [१/१] तैलम् [१/१]	=(किसी वस्तुमें)तेलकी एकता हो अर्थात् उसमें तेल मिलकर एकमेक होजाय सो संगततैलहै
इति*उच्यते । एकीभूतम् [१/१] इति*गम्यते ।;एकत्वेन [३/१]	=ऐसा कहा जाता है । एक हुआ ऐसे जाना जाता है । एकपन करि
अयनम् [१/१] गमनम् [१/१] समयः [१/१];समयः [१/१] एव*	=लीन (=अयनम्) गमन(=अयन)सो समय है। समयही हो अर्थात् एकत्व करिलिनिहीहो
सामायिकं [१/१];समयः [१/१] प्रयोजनं [१/१] अस्य [६/१] इति*वा*	=सो सामायिक है अथवा समय है प्रयोजन इसका (सो सामायिक है) ऐसे

असत्युपकारे पापादानहेतुरनर्थदण्ड.। ततो विरतिरनर्थदण्डविरति ॥ अनर्थदण्ड·पंचविध·। अपध्यानम् । पापोपदेश· । प्रमादाचरितम् । हिसाप्रदानम् । अशुभश्रुतिरिति ॥ तत्र परेषा जयपराजयवधबन्धनाङ्गच्छेदपरस्वहरणादि कथ स्यादिति मनसा चिन्तनमपध्यानम् । तिर्यक्क्लेशवाणिज्य प्राणिवधकारम्भकादिषु पापसयुक्त वचन पापोपदेश· ॥

परमित दिशासे बाहिर न जानेमें हिंसादिकके अभावसे महाव्रत पनेका उपचार है वैसेही यहा भी जितनो गमनागमनकी मर्यादा देशकी कीगई उससे बाहिर न जाने आनेसे हिंसादिकके अभावसे महाव्रत पनेका उपचार है ॥

असति 'उपकारे 'पाप आदान हेतु 'अनर्थदण्डः', तत'* =उपकार न होते सते पापके ग्रहणका कारण (है सो) अनर्थदण्ड है । तिससे

विरति ''अनर्थदण्डविरति.'', अनर्थदड पञ्चविध '— =विरक्तता (सो) अनर्थ दड विरति (व्रत) है । अनर्थदड पाच प्रकार है

अपध्यान ''',पापोपदेश ',प्रमादाचरित'''हिसाप्रदान''',=अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादाचरित, हिसाप्रदान,

अशुभश्रुति ''इति*॥तत्र परेषाम् ' जय–पराजय- =अशुभ श्रुति इस प्रकार[पाच भेद]हैं। तहा और[जीवों]की जीत-हार[=पराजय]

वध बन्धन-अगच्छेद-परस्व-हरण-आदि'''कथम्*स्यात् T =मारना बाधना-अगछेदन अन्यका धन [=स्व] लेना आदिक कैसे होय

इति*मनसा'''चिन्तनम्'''अपध्यानम्''' ॥ =इस प्रकार मनद्वारा स्मरण अथवा ध्यान सो अपध्यान[नामा अनर्थदड]है।

तिर्यग् क्लेशवाणिज्य (तिर्यग्वाणिज्य क्लेशवाणिज्य)प्राणि-वधक =तिर्यंचोंके वनिजमें, क्लेश वाणिज्यके विषयमें,प्राणियोंके मारनेवालोंमें

आरम्भकादिषु' पापसयुक्तम्'''वचनम्'''पापोपदेश ' =तथा आरम्भादिकमें पाप सहित वाक्य कहना सो पापोपदेश[नामअनर्थदड]है

भावार्थ जैसे इस देश में दास [=दासा '] दासी [दासी शब्दका=दास्य ''] सुलभ है यहासे लेकर उस देशमें बेचने पर अत्यन्त धनका लाभ होता है ऐसे क्लेश वाणिज्य है ॥ और गाय भैस आदिक यहा से लेकर और देशमें व्यवहार करने पर बहुतसा लाभ होगा इसप्रकार तिर्यग् वाणिज्य है ॥ व्याध वा बहेलिया [=वागुरिक] आखेटकी[सौकारिक]पक्षियों को मारने वाले [शाकुनिक] आदिक से कहना कि इस देशमें हिरन शूकर-प्रत्येक प्रकार के पक्षी [=शकुन्त]आदिक[बहुत] है वधकोपदेश है॥खेती-सैना-आदिक आरम्भियोंसे कहना कि पृथिवी (=क्षिति)जल अग्नि पवन-वनस्पति कायका

तद्यथा—दिक्प्राच्यादिः तत्र प्रसिद्धैरभिज्ञानैरवधिं कृत्वा नियमनं दिग्विरतिव्रतम् ॥ ततो बहिस्त्रसस्थावरव्यपरोपणनिवृत्तेर्महाव्रतत्वमवसेयम् । तत्र लाभे सत्यपि परिणामस्य निवृत्तेर्लोभनिरासश्च कृतो भवति ॥ ग्रामादीनामवधृतपरिमाणप्रदेशो देशः ततोबहिर्निवृत्तिर्देशविरतिव्रतम् । पूर्ववद्बहिर्महाव्रतत्वं व्यवस्थाप्यम् ॥

तद्यथा-दिक्-प्राच्यादिः तत्र प्रसिद्धैः अभिज्ञानैः अवधिं कृत्वा नियमनम् दिग्विरतिव्रतम् ॥ =जैसे पूर्वआदि दिशाहैं तिनमें प्रसिद्धचिह्न(=अभिज्ञान)(पर्वत-नदी-ग्रामादिद्वारा) =मर्यादा करि नियम करना वा प्रमाण करना सो दिग्विरति व्रत है भावार्थ लोभका आरम्भके त्यागके अर्थ पूर्वादिक दिशाओंका योजन-नदी-ग्राम-नगर-पर्वतादिक प्रसिद्ध चिह्नों करि प्रमाण करना जो इतना क्षेत्रका प्रमाण है, इतना क्षेत्र बाहिर गमनादि नहीं करूंगा और न किसीको गमन कराऊंगा। गमन करने वाले को भला नहीं जानूंगा, सेवक मित्र आदिकको नहीं भेजूंगा, कोई वस्तु किञ्चित् भी नहीं मँगाऊंगा, और कोई किञ्चित् वस्तु भी नहीं भेजूंगा, ऐसी यावज्जीव (=जीवन भरि=जबतकजीवै) मर्यादाकरि अधिक क्षेत्र में वनिज व्यवहारादिक का त्याग करे तिसके दिग्विरति नाम व्रत होता है।

ततः बहिस् त्रस-स्थावर-व्यपरोपण-निवृत्तेः =उस(मर्यादा वा सीमा)से बाहिर चरअचर(=त्रस-स्थावर)जीवोंके घातकेअभावसे
महाव्रतत्वम् अवसेयम्; तत्र =महाव्रतपना जाननाचाहिये(=अवसेयम्)क्योंकि तहां(अर्थात्प्रमाणसेबाहर)
लाभे सति अपि परिणामस्य निवृत्तेः =लाभ होनेपरभी परिणामकी विरक्तताहै अर्थात् परिणाम नहीं चलताहै।
लोभनिरासः च कृतः भवति ॥ (१)ग्रामादीनाम् =(इससे)लोभ(कषाय)का परित्याग भी पूरा (=कृतः) होता है॥ ग्रामादिकके
अवधृत-परिमाण-प्रदेशः देशः ॥ =निश्चित परिमाणोंके प्रदेश हैं सो देशहैं अर्थात् ग्राम-नगर-घर-अंतःपुर अंतर्वेश्मन,इत्यादिके निश्चितपरिमाणोंमें वा परिसरोंका प्रदेशहै वहदेश है
ततः बहिस् निवृत्तिः देशविरतिव्रतम्; =तिस(देश)से बाहिर (कालकीमर्यादासे गमनागमनका)त्याग देशविरति व्रत है
पूर्ववत् बहिस् =पहिले के सदृश(परिमित दिशासे)बाहिर अर्थात् दिग्वृतके समान ही
महाव्रतत्वम् व्यवस्थाप्यम् =(देश व्रत मेंभी) महाव्रतपना व्यवस्थित वा उपचरितहै भावार्थ जैसे दिग्वृतमें

(१)ग्रामदीनां अवधृत परिमाणः प्रदेशो देशः (त०राज०वार्तिक२)=ग्रामनगरगृहापवरकादीनामवधृतपरिमाणानांप्रदेशोदेश इत्युच्यते(वा०३वृत्तिः)

मनुष्यगतौ मनुष्या मिथ्यादृष्टयः श्रेण्यसंख्येयभागप्रमिताः । स चासंख्येयभागः असंख्येया योजनकोट्यः । सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः संख्येया । प्रमत्तादीनां सामान्योक्ता संख्या ॥ देवगतौ देवा मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः ॥

मनुष्यगतौ ७॥ मिथ्यादृष्टय ४॥ मनुष्याः ३॥ श्रेणि =मनुष्यगतिमें मिथ्यादृष्टि मनुष्य श्रेणीके
असंख्येयभागप्रमिताः ५॥ च सः ५॥ असंख्येयभाग २॥=असंख्यातवे भाग परिमाण हैं ॥ और वह [श्रेणीका] असंख्यातवा भाग
असंख्येया, ५॥ योजनकोट्यः ६॥ सासादनसम्यग्दृष्टि =असंख्यात करोड योजन हैं । सासादन सम्यग्दृष्टि
आदयः ५॥ संयतासंयत–अन्ताः ३॥ संख्येयाः ५॥ =से संयमासंयमी (वा देशव्रती पांचवां गुणस्थानवर्ती) तक संख्यात हैं अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि ५२ करोड हैं, मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्ती एक अरब चार करोड हैं, असंयमी सात अरब है संयमासंयमी तेरह करोड हैं यह सबकी उत्कृष्ट संख्या है ॥
प्रमत्त-आदीनाम् ६ सामान्या ५॥ संख्या ४॥ उक्ता ३॥=प्रमत्त आदि (शेष गुणस्थानवर्तियों) की (उत्कृष्ट) गणना संक्षेपसे कह दी है अर्थात् चार उपशम श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें २९९, चार क्षपक श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें, और चौदहवें गुणस्थानमें ५९८, और तेरहवें गुणस्थानमें ८९८५०२ जीव हैं । यह सबकी उत्कृष्ट संख्या है ॥
देवगतौ ७॥ मिथ्यादृष्टयः २॥ देवाः ३॥ असंख्येयाः ५॥ =देवगतिमें मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात
श्रेणयः ५॥ प्रतर–असंख्येयभागप्रमिताः ३॥ =श्रेणी हैं (सो यह देवोंकी संख्या) प्रतरके असंख्यातवां भाग परिमाण है
सासादनसम्यग्दृष्टि–सम्यग्मिथ्यादृष्टि–असंयत =सासादन सम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती] मिश्र गुणस्थानवर्ती, असंयमी
सम्यग्दृष्टयः ५॥ पल्योपम–असंख्येयभागप्रमिताः ५॥ =सम्यग्दृष्टि पल्योपमके असंख्यातवां भाग प्रमाण हैं ॥

(१) श्रेणि—श्रेणी (स्त्री०)=छिद्ररहित पंक्ति । श्रेण्यसंख्येय=श्रेणि–असंख्येय अथवा श्रेणी असंख्येय (इको यणचि सूत्रसे टिप्पणी पृष्ठ १७) श्रेणि का बहुवचन=श्रेणयः है परन्तु श्रेणीका=श्रेण्यः है वृत्तिकारने श्रेणि शब्द लिया है क्योंकि आगे चलकर श्रेणयः बहुवचन दिया है । अतः हमने श्रेणि—असंख्येय ऐसा ही पदच्छेद किया है ॥

उपभोगपरिमाणपरिभोगपरिमाण व्रतसम्पन्न	=एक वार सेवने योग्य वस्तु (जैसे ताम्बूल-भोजन आदि) निका मर्याद और वार वार सेवने योग्य वस्तु (जैसे-आभरण-वस्त्र-गृह-वाहन-शय्या आदिक) निका मर्याद और
च*अतिथिसंविभागव्रतसपन्नः १।	=महा व्रतियोंके लिये चार प्रकार (भिक्षा-उपकरण-भेषज-वसतिका)का दान देने वाला
अगारी १। व्रती १। भवति T	=भी (=च) अगारी व्रती-अणुव्रती होता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस इक्कीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

इन दोनों प्रोषधोपवास और पौषधोपवास शब्दोंका अर्थ एक ही है शेष सूत्र पाठ दोनों सम्प्रदायोंमे एकसा है ॥ परिमाण शब्द न होने पर भी अर्थ दोनों सम्प्रदायों मे एकसा है ॥ 'सभाष्यतत्वार्थधिगम सूत्र' मे उपभोग परिभोग व्रत का पृष्ठ १६३ मे संस्कृत और भाषा इस प्रकार है कि 'उपभोगपरिभोगव्रत नामाशनपानखाद्यस्वाद्यगन्धमाल्यादीनामाच्छादनप्रावरणालंकारशयनासनगृहयानवाहनादीनां च बहुसावद्यानां वर्जनम् । अल्पसावद्यानामपि परिमाणकरणमिति ॥ "

उपभोगपरिभोगव्रतम् नाम अशन-पान-खाद्य	="उपभोगपरिभोग व्रतनामा वह है कि जिसमे भोजन, पानादि खाद्य पदार्थों का
स्वाद्य गन्धमाल्य-आदीनाम्	=स्वाद्य अर्थात् प्रिय आनन्ददायक, गन्धमाला आदि पदार्थो का,
आच्छादन-प्रावरण-अलकार-शयन-आसन-गृह-	=आच्छादन-आवरण (वस्त्रादि) अलङ्कार, शय्या, आसन, गृह,
यान-वाहन-आदीनाम् च	=यान (सवारी घोडे हाथी बग्गी आदि) वाहन बैल आदि पदार्थों का भी (=च)
बहुसावद्यानाम् वर्जनम् ।	=जो कि बहुत सावद्य है अर्थात् निंदा दोषादि सहित है उन सबका त्याग करना ।
	और इन भोजन, पान, गन्धमाल्य, वस्त्र, अलङ्कार, शय्या-गृह-यानादिकमेंसे जो
	=अल्पदोषादि युक्त हैं उनका भी परिमाण करना कि इतने से अधिक नहीं रक्खेंगे अर्थात् अल्प दोषवालोंमे भी आवश्यक पदार्थों की गणना करके काममे लाना ॥ यही अर्थ हमारी-सम्प्रदायमे भी सर्वार्थसिद्धि वृत्ति, तत्त्वार्थराजवार्तिक और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, प० जयचद जीकी भाषावचनिका और अर्थ प्रकाशिका इत्यादिक मे दिया है ॥ विशेष जाननेके इच्छुक उक्त ग्रन्थोंकोदेख सक्तेहैं। इस इकीसवां सूत्रके (पृष्ठ ५६,५७ देखो) पदच्छेदको अनुवादकने सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थ राजवार्तिक तथा तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके अनुसार किया है कि

(क) विरति शब्द प्रत्येक पर लगाना चाहिये तब दिग्विरति-देशविरति-अनर्थदंडविरति हुए फिर कहा गयाहै कि व्रतशब्द प्रत्येक परलगाओ ऐसे दिग्-विरतिव्रत-देशविरतिव्रत-अनर्थदण्डविरतिव्रत हुये पश्चात् मे लिखा है कि समायिक व्रत, प्रोषधोपवासव्रत-उपभोग-परिभोग परिमाणव्रत-अतिथिसंविभागव्रत ॥ "एतैः व्रतैः सम्पन्नो," इन पूर्वोक्त सातों व्रत करि सहित वा युक्त ऐसा कहने से स्पष्ट है कि सम्पन्न शब्द सर्व पर लगाओ देखो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३५६ पंक्ति २,३,४,५,६, " तयोः परिमाणमुपभोगपरिभोग परिमाणम् " दोनोंका परिमाण अर्थात् उपभोग परिमाण तथा परिभोग परिमाण सो उपभोगपरिभोग परिमाण है ॥ देखो सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३६१ पंक्ति ६-७।

(ख) विरति शब्द प्रत्येक पर लगाओ तो दिग्विरति-देशविरति अनर्थदण्डविरति हुये (=विरति शब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते-दिग्विरतिः

विरतिशब्द प्रत्येकं परिसमाप्यते।दिग्विरति। देशविरति। अनर्थदण्डविरतिरिति। एतानि त्रीणि गुणव्रतानि व्रतशब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बंधात्।तथासामायिकव्रतम्।प्रोषधोपवासव्रतम्। उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रतम्।अतिथिसंविभागव्रतमिति॥ एतैर्व्रतैः सम्पन्नो गृही विरताविरतइत्युच्यते।

विरतिशब्द[१।१] प्रत्येकम्[२।१] परिसमाप्यते[३।१] ।	=विरतिशब्द(दिग् देश-अनर्थदण्ड)प्रत्येकको लगाया जाता है प्रत्येकको परिपूर्ण किया जाता है अथवा पृथक् पृथक् तीनों शब्दों पर लगाया जाता है
दिग्विरति[१।१],देशविरति[१।१], अनर्थदण्डविरति[१।१]"इति* ॥	=(अर्थात्-तब)दिग्विरति देशविरति,अनर्थदण्डविरति एसे हुए
एतानि[१।३] त्रीणि[१।३] गुणव्रतानि[१।३] व्रतशब्दस्य[६।१] प्रत्येकम्[२।१]	=ये तीन गुणव्रत-व्रत शब्दका प्रत्येक (दिग् देश अनर्थदण्ड) को
अभिसम्बन्धात्[५।१],	=सम्बन्ध करनेसे होते हैं अर्थात् दिग् विरतिव्रत-देशविरतिव्रत अनर्थदण्ड विरतिव्रत हुए (इनको तीन गुणव्रत कहते हैं) ॥
तथा*सामायिकव्रतम्[१।१],प्रोषधोपवासव्रतम्[१।१],	=तथा समायिकव्रत,प्रोषधोपवासव्रत,
उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रतम्[१।१],अतिथिसंविभागव्रतम्[१।१]	=उपभोगपरिमाण परिभोगपरिमाणव्रत अतिथिसंविभागव्रत,
इति। ॥ एतैः[३।३] व्रतैः[३।३] "सम्पन्न[१।१]	=एसे (ये चार शिक्षा व्रत)है॥इन(सात शील वा सात)व्रतों करि युक्त अर्थात् तीनगुण व्रत,चार शिक्षा व्रत(सबको सात शीलभी कहतेहैं इन करि) सहित
गृही[१।१]विरत-अविरत'[१।१]इति*उच्यते। ।	=गृहस्थ (=गृही) विरताविरत अथवा संयमासंयम कहा जाता है ।

देशविरतिरनर्थदण्डविरतिरिति" तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २८१ पंक्ति २५ देखो। 'व्रतसंपन्नशब्द' प्रत्येकमभिसंबध्यते ॥ दिग्विरतिव्रत संपन्न देशविरतिव्रतसंपन्न इत्यादि" तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २८२ पंक्ति १३)

(ग) श्लोकवार्तिकमें दिशा देश और अनर्थ दण्ड का अर्थ कहने के पश्चात् लिखा है विरति शब्द प्रत्येकमभिसंबध्यते' अर्थात् विरति शब्द प्रत्येक दिग्-देश -अनर्थ दण्ड शब्दों पर लगाया जाता है तब दिग्विरति-देशविरति-अनर्थ दण्ड विरति हुये ॥ पश्चात् सामायिक प्रोषधोपवास-उपभोगपरिभोग परिमाण-अतिथि संविभाग शब्दोंकी व्युत्पत्ति और अर्थ कहकर लिखते हैं कि 'व्रतशब्द प्रत्येकमभिसंबध्यते संपन्न शब्दश्च तेन दिग्विरतिव्रतसंपन्न इत्यादि योज्यम्। अर्थात् व्रतशब्द प्रत्येकपर जोड़ो और संपन्न शब्दभी (प्रत्येक पर) (जोड़ो) तिस (जोड़ने)करि दिग्विरतिव्रतसंपन्न-देशविरतिव्रतसंपन्न-अनर्थदण्डव्रतसंपन्न-सामायिकव्रतसंपन्न-प्रोषधोपवासव्रतसंपन्न-उपभोग (परिमाण) परिभोगपरिमाण व्रत संपन्न-अतिथि संविभाग व्रतसंपन्न (=इत्यादि) हुये ॥ 'परिमाणशब्द प्रत्येकमुभाभ्यां संबंधनीय' अर्थात् परिमाणशब्द प्रत्येक (उपभोग-परिभोग)दोनों को जोड़ना चाहिये देखो तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ४६६,"तथा परिमाणमुपभोगपरिभोग परिमाणम्। सर्वार्थसिद्धिपृष्ठ३६१॥

अणुशब्दोऽल्पवचनः । अणूनि व्रतान्यस्य अणुव्रतोऽगारीत्युच्यते ॥ कथमस्य व्रतानामणुत्वं? सर्वसावद्यनिवृत्त्यसम्भवात् ॥ कुतस्तर्ह्यसौ निवृत्तः ? त्रसप्राणिव्यपरोपणान्निवृत्तः अगारीत्याद्यमणुव्रतम् ॥ स्नेहमोहादिवशाद् गृहविनाशे ग्रामविनाशे वा कारणमित्यभिमतादसत्यवचनान्निवृत्तो गृहीति द्वितीयमणुव्रतम् ॥ अन्यपीडाकरपार्थिवभयादिवशादवश्यं परित्यक्तमपि यददत्तं ततः प्रतिनिवृत्तादरः श्रावक इति तृतीयमणुव्रतम् ॥ उपात्तायाः

अणुशब्दः[१/१] अल्पवचनः[१/१] ; अणूनि[१/३] व्रतानि[१/३] अस्य[६/१]	=(इस सूत्रमें) अणुशब्द अल्पवाची है । अल्पव्रत हैं जिसके
अणुव्रतः[१/१] अगारी[१/१] इति* उच्यते ॥	=सो अणुव्रती ऐसा अगारी कहा जाता है ॥
कथम्* अस्य[६/१] व्रतानाम्[६/३] अणुत्वम्[१/१] ?	=(प्रश्न) इस (अगारी वा गृहस्थ) के व्रतोंकी अल्पता वा सूक्ष्मता कैसे है
सर्व-सावद्य-निवृत्ति-असम्भवात्[५/१] ॥	=(उत्तर) क्योंकि(अणुव्रतीके)सब पापोंसे निवृत्त होनेकी(छुटनेकी)असम्भवताहै अर्थात् सम्भव नहीं कि गृहस्थ सर्व प्रकारके पापोंसे पूर्णरूपसे बचा रहै ।
कुतः* तर्हि* असौ[१/१] निवृत्तः[१/१] ?	=(प्रश्न) तौ (तर्हि) वह(=असौ=अगारी) किन (पापों) से निवृत्तहै वा हटा हुआ है
त्रस-प्राणिन्-व्यपरोपणात्[५/१] निवृत्तः[१/१] अगारी[१/१] इति*	=त्रस जीवोंके मारनेसे अगारी निवृत्त है इस प्रकार
आद्यम्[१/१] अणुव्रतम्[१/१] ; स्नेह-मोहादि-वशात्[५/१]	=प्रथम (=आद्य=अहिंसा नामा) अणुव्रत (उसके) है । प्रीति और मोहकेवशसे
गृहविनाशे[७/१] ग्रामविनाशे[७/१] वा कारणम्[१/१] इति*	=घरके विनाशमें अथवा ग्रामके विनाशमें है कारण जो ऐसे
अभिमतात्[५/१] असत्यवचनात्[५/१] निवृत्तः[१/१] गृही[१/१]	=अंगेजे वा अंगीकृत झूठसे गृहस्थ वा गृही निवृत्त है
इति* द्वितीयम्[१/१] अणुव्रतम्[१/१] ॥	=ऐसा दूसरा (सत्यनामा) अणुव्रत(उस गृहस्थके) है अर्थात् जिस असत्य वचनसे घरका विनाश होय तथा ग्रामका विनाश होय ऐसा आप जानता हो तिस असत्य वचनसे निवृत्त होय स्नेह मोहके वशसे ऐसा वचन नहीं कहै ऐसे गृहस्थके दूसरा अणु व्रत होता है
अन्यपीडाकर-पार्थिव-भयादि-वशात्[५/१] अवश्यम्* परित्यक्तं[१/१]	=दूसरेको पीड़ा करने वाला तथा राजाके भयादिकके निमित्तसे अवश्य त्यागनेयोग्य
अपि* यद्[१/१] अदत्तम्[१/१] ततः* प्रतिनिवृत्त-आदरः[१/१] श्रावकः[१/१]	=भी जो बिना दी हुई(वस्तु)तिससे श्रावक हटाहुआ(उसका)प्रयत्न नहीं करताहै
इति* तृतीयम्[१/१] अणुव्रतम्[१/१] ॥ उपात्तायाः[६/१]	=ऐसा तीसरा(अस्तेय नामा)अणुव्रत (उस अगारीके)है ॥ व्याही हुई(=उपात्तायाः)

अनुपात्तायाश्च पराङ्गनाया सङ्गान्निवृत्तरतिर्गृहीति चतुर्थमणुव्रतम् ॥ धनधान्यक्षेत्रादीना-मिच्छावशात् कृतपरिच्छेदो गृहीति पञ्चममणुव्रतम् ॥ आह अपरित्यक्तागारस्य किमेतावानेव विशेष· आहोस्विदस्ति कश्चिदन्योऽपीत्यत आह—

॥ दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासो-पभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥२१॥

अनुपात्तायाः ६'' च॰ पराङ्गनायाः ६'' सङ्गात् ५'' निवृत्तरतिः १'' गृहीति = और [=च] विना व्याही हुई दूसरोंकी स्त्रीके समागमसे रति रहित गृहस्थ है

इति॰ चतुर्थम् १''' अणुव्रतम् १''', धन धान्य क्षेत्रादीनाम् ६' = यह चौथा (ब्रह्मनामा) अणुव्रत (उस गृहस्थके) है—धन-धान्य क्षेत्रादिकका

इच्छावशात् ५' कृतपरिच्छेदः १' गृही १' इति॰ = इच्छा के वशसे गृहस्थ अथवा गृही परिमाण करता (=कृतपरिच्छेद) है यह

पञ्चमम् १''' अणुव्रतम् १''', आह १' = (परिग्रह त्यागनामा) पाचवा अणुव्रत है। पूछता है

अपरित्यक्त-अगारस्य ६' किम् एतावान् १' एव॰ विशेषः १' = कि गृहस्थ या अगारी [=अपरित्यक्त अगारस्य] का क्या इतना ही विशेष है

आहोस्वित्॰ अस्ति १ कश्चित्॰ अन्यः १' अपि॰ इति॰ अतः॰ आह १ = अथवा (=आहोस्वित) कुछ और भी है इसलिये (अगले सूत्रमें कहते हैं) कि

[¹] दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥ २१ ॥

= दिग्विरतिव्रतसम्पन्न-देशविरतिव्रतसम्पन्न-अनर्थदण्डविरतिव्रतसम्पन्न-सामायिकव्रतसम्पन्न प्रोषधोपवासव्रतसम्पन्न-उपभोगपरिमाणपरिभोग परिमाणव्रत सम्पन्न अतिथिसंविभागव्रतसम्पन्न च [अगारी व्रती भवति]

दिग्विरतिव्रतसम्पन्न- = दिशाओंमें गमनागमनकी सीमाका [यावज्जीव] नियम करियुक्त

देशविरतिव्रतसम्पन्न- = किसी देशके बाहर गमनागमन [कालकी मर्यादा करि] न करनेवाला

अनर्थदण्डविरतिव्रतसम्पन्न- = व्यर्थपापबंधके कारणोंसे त्यागी (ये तीन गुणव्रत कहलाते हैं)

सामायिकव्रतसम्पन्न = स्वरूप विषै तथा शुभक्रियामें एकताकरि लीन होने वाला वा रागद्वेषत्याग साम्यभावको प्राप्त होकर शुद्ध आत्म स्वरूपमें लीन होने वाला

(१) [illegible] इस सूत्रका पाठ ऐसा है॥ श्वेताम्बर आम्नायमें 'परिमाण' शब्द नहीं है और 'प्रोषधोपवास' के स्थानमें 'पौषधोपवास'

अनिवृत्तविषयतृष्णस्य कुतश्चित्कारणाद् गृहं विमुच्य वने वसतोऽनगारत्वञ्च प्राप्नोतीति ॥ नैष दोषः। भावागारस्य विवक्षितत्वात् ॥ चारित्रमोहोदये सत्यगारसम्बन्धं प्रत्यनिवृत्तः परिणामो भावागारमित्युच्यते ॥ स यस्यासावगारी ॥ वने वसन्नपि च गृहे वसन्नपि तदभावादनगार इति च भवति ॥ ननु चागारिणो व्रतित्वं न प्राप्नोति असकलव्रतत्वात् ॥ नैष दोषः ।

च अनिवृत्तविषयतृष्णस्य कुतश्चित् कारणात्	=और (=च) जो विषय तृष्णासे (का) निवृत्त नहीं भया किसी कारणसे
गृहम् (१)विमुच्य वने वसतः अनगारत्वम् प्राप्नोति।	=घरको त्यागवनमें वसने वालेके अनगारपना घरका त्यागना प्राप्त है
इति भाव-अगारस्य विवक्षितत्वात् न एषः दोषः;	=भाव अगारकी विवक्षासे यह दोष नहीं है
चारित्र-मोह-उदये सति अगारसम्बन्धम् प्रति अनिवृत्तः	=चारित्र मोहके उदय होनेपर घरके सम्बन्ध प्रति नहीं हटा हुआ अथवा लगाभया
परिणामः भाव-अगारम् इति उच्यते।(२)सः यस्य	=परिणाम है सो भाव अगार ऐसा कहागयाहै जिसके वह (=सः) (भाव अगार)है
असौ अगारी ;वने वसन् अपि च गृहे वसन् अपि	=वह (=असौ) अगारी है और वनमें वसते हुए भी घरमें वसते हुए भी
तद्-अभावात् अनगारः इति च भवति ॥	=उस (भाव अगार) की अविद्यमानतासे वा न होनेसे अनगारी ही (=च)होताहै
	भावार्थ यहहै जिसका भाव घरके सम्बन्धमें वा गृहस्थीमें लगा हुआहै फसाहै वह चाहे वनमें रहै चाहे घरमें रहै अगारीहै और जिसका परिणाम गृहस्थीसे विरक्त है हटा हुआहै वह चाहे शून्य (सूने) घरमें रहो चाहे वनमें रहो अनगारी है ॥
ननु च अगारिणः ,असकल-व्रतत्वात् ॥	=पुन प्रश्न—गृहस्थके वा गृहीके व्रतकी परिपूर्णता न होने (के हेतु) से
व्रतित्वम् न प्राप्नोति;न एषः दोषः	=व्रतपना प्राप्त नहीं होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है

(१) विमुच्य—सम्बन्ध सूचक भूत कृदन्त मुच् धातु का है (२) वसतो=वसतः=वसत्+अस्। वसत्—वर्तमान कृदन्त वस् धातु का है और वसतः षष्ठी एक वचन पुल्लिङ्ग वसत् का है ॥ (३) यह वाक्य राजवार्तिक मे इस प्रकार हैकि "स यस्यास्त्यसौ वने वसन्नपि अगारीति व्यपदेशमर्हति। तदभावादनगार इति च भवति"। तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ट २८० की दूसरी वार्तिककी वृत्तिका अत वाक्य देखो)

स यस्य अस्ति असौ वने वसत् अपि	=जिसके (=यस्य) वह (=सः)अर्थात् भाव अगारहै। वह (=असौ पुरुष) वनमे वास करते हुएभी
अगारी इति व्यपदेशम् अर्हति।	=अगारी है ऐसा विशेष रूप से उपदेश करना उचित है (ऐसे ही)
तद्-अभावात् अनगारः इति च भवति ॥	=और उस (अगार भावके अभाव से) अनगार होता है ॥

नैगमादिनयापेक्षया अगारिणोऽपि व्रतित्वमुपपद्यते । नगरावासवत् ॥ यथा गृहे अपवरके वा वसन्नपि नगरावास इत्युच्यते । तथा असकलव्रतोऽपि नैगमसंग्रहव्यवहारनयापेक्षया व्रतीति व्यपदिश्यते ॥ अत्राह किं हिंसादीनामन्यतमस्माद्य प्रतिनिवृत्त स खल्वगारी व्रती? नैवम् ॥ किं तर्हि? । पञ्चतय्या अपि विरतेर्वैकल्येन विवक्षित इत्युच्यते—अणुव्रतोऽगारी॥२०॥

नैगम आदि-नय अपेक्षया॥ अगारिण॥ अपि॰ व्रतित्वम्॥ नगर-आवास-वत्॰उपपद्यते ।
=नैगमादिक (सात) नयोंकी अपेक्षासे गृहस्थके भी
=व्रतपना नगरके रहने (=आवास) के सदृश प्राप्त होता है (=उपपन्न) अर्थात्

यथा॰गृहे॥ अपवरके॥ वा॰(१)वसत् अपि॰ नगर-आवास॰॥ इति॰उच्यते॥ तथा॰असकल-व्रत-॥ अपि॰
=गृह में बसे और नगरमें वासकरना कहलावे
=जैसे घरमें अथवा वासगृहमें (जो नगरका एक भाग है) रहते हुए भी
=नगरमें रहना ऐसा कहा जाता है । वैसे अपूर्ण व्रत धारक भी

नैगम-संग्रह-व्यवहारनय-अपेक्षाया॥ व्रती॥ इति॰व्यपदिश्यते।
=नैगम-संग्रह-व्यवहार नयोंकी अपेक्षासे व्रती ऐसा कहा जाता है

अत्र॰आह।किम्॥ हिंसादीनाम्॥ अन्यतमस्मात्॥ य॥ प्रतिनिवृत्त॥ स॥ खलु॰अगारी॥ व्रती॥ ?
=यहां पूछना है क्या हिंसादिकके बहुतोंमेंसे एक पापसे (=अन्यतमस्मात्)
=जो निवृत्त हुआ है सो गृहस्थ निश्चयरूपसे व्रती है (कि नहीं) ?।

न॰एवम्॰ ॥
=(उत्तर) नहीं है अर्थात् हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म-परिग्रह इन पापोंमें कोई मनुष्य एक पाप न करे तो वह गृहस्थ व्रती वा अहन्नती नहीं है ।

किम्॥ तर्हि॰पञ्चतय्याः॥ अपि॰विरते॥ वैकल्येन॥ विवक्षित॥ इति॰उच्यते।
=तो क्या है (उत्तर) पांचों (पापों) से ही एक देशपनेकरि(=वैकल्येन) निवृत्ति
=अपेक्षित है ऐसे (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

(२) अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥

सूत्रार्थ –अणुव्रत॥ स॥ अगारी॥ भवति ।
=अणुव्रत.स. अगारी भवति ॥ २० ॥
=अणु व्रतवाला, अणुमात्र व्रतवाला अथवा अल्प व्रतका धारी अर्थात् वह व्रती जिसके एक देशवा थोड़े रूपमें यथाशक्ति पांचों पापोंका त्याग हो
=सो अगारी अणुव्रती-गृहस्थ-गृही अथवा श्रावक है

---

(१) वसन् वर्तमान कृदन्त वस् धातुका है (२) इस सूत्र का दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में एक सा पाठ और एक सा अर्थ है ।

न हिंसाद्युपरतिमात्रसम्बन्धात् व्रती भवत्यन्तरेण शल्याभावम्। सति शल्यापगमे व्रत-सम्बन्धात् व्रती विवक्षितो यथा बहुक्षीरघृतो गोमानिति व्यपदिश्यते। बहुक्षीरघृताभावात्सतीष्वपि गोषु न गोमांस्तथा सशल्यत्वात्सत्स्वपि व्रतेषु न व्रती॥ यस्तु निःशल्यः स व्रती। तस्य भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

न*हिंसादि-उपरतिमात्र-सम्बन्धात् =न कि हिंसादिक (पांच पापों) से हटने मात्र के सम्बन्धसे
व्रती भवति (१) अन्तरेण*शल्य-अभावम् ; =शल्यके अभाव विना (=अन्तरेण) व्रती होता है,
सति शल्य-अपगमे व्रत-सम्बन्धात् व्रती =शल्यके अभाव होने पर व्रतके सम्बन्धसे व्रती
विविक्षतः यथा*बहुक्षीरघृतः गोमान् =विवक्षित है अर्थात् विवक्षाकरि कहा गया है। जैसे बहुत दूध'घी'संयुक्त गऊवाला
इति*व्यपदिश्यते। बहु-क्षीर-घृत-अभावात् =कहा जाता है। बहुत दूध घी के अभावसे
सतीषु अपि*गोषु न*गोमान् =गौओंके होने पर भी गौ वाला नहीं कहा जाता है अर्थात् जिसके बहुत दूध हो और गऊयें हों उसको गऊ वाला कहना युक्त है और जिसके गऊयें होवें परन्तु दूध घी न हो तौ उसको गऊ वाला कहना निष्फल है
तथा*सशल्यत्वात् सत्सु अपि*व्रतेषु न*व्रती ; =तैसे शल्य सहित पना करि व्रतों के होने परभी व्रती नहीं (कहा जाता है)
यः तु*निःशल्यः सः व्रती तस्य भेद- =और (=तु) जो शल्य रहित है सो व्रती है, तिस (व्रती) के भेद
प्रतिपत्ति-अर्थम् आह। =बतानेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

अन्तर् और अन्तरेण —ये दोनों अव्यय हैं। अन् और तुड् प्रत्ययके आगम से अन्तर् शब्द बनाहै मध्य (बीच), प्राप्त, स्वीकार, चित्त इत्यादि अर्थों मे आता है, अन्तर शब्दमे 'इण् + ण' लगानेसे अन्तरेण बना है जिसका (क) मध्य, बीच (ख) संबधमे, बारेमे (ग) विना इन अर्थोंमे प्रयोग किया जाता है जब पिछले दो अर्थों में आता है तब इसके साथ द्वितीया विभक्ति आती है जैसे देवीं वसुमतीमन्तरेण महदुपालम्भनम् गतोऽस्मि (=देवीम् वसुमतीम् अन्तरेण महत् उपालम्भन गतोऽस्मि) =देवी वसुमती के बारे वा सम्बन्धमें बडे दूषण वा उलाहने को प्राप्त हुआहूं। (वैद्यकोष पृष्ठ ३१ मे अन्तरेण, १४५ मे उपालम्भ, उपालम्भन शब्दों कोदेखो)॥ तानन्तरेण रमणी रमणीय शीले =तान् अन्तरेण रमणी रमणीयशीले =उनके विदून प्यारी आनन्दित चित्त मे है, क्रियान्तरांतरायमन्तरेण =क्रियान्तर-अंतराय-अन्तरेण =अन्य क्रिया के विघ्नके विदूनअथवा विना॥ इसी अर्थ मे अन्तरेण शल्याभावम् =शल्य-अभावम् अन्तरेण =शल्यके अभाव विना, इस वाक्यमें यह शब्द आया है॥

॥ अगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥

प्रतिश्रयार्थिभि अग्यते इति अगार वेश्म, तद्वानगारी। न विद्यते अगारमस्येत्यनगार॥ द्विविधो व्रती अगारी अनगारश्चेति॥ ननु चात्र विपर्ययोऽपि प्राप्नोति– शून्यागारदेवकुलाद्यावासस्य मुनेरगारित्वं,

(१)अगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥ [व्रती]अगार्यनगारश्च =[व्रती अगार् य् अनगार च=व्रती अगार ई अनगार च]
=घ्रती अगारी अनगारश्च [द्विविधः भवति]

सूत्रार्थ –व्रती अगारी अनगार च =व्रती गृही वा गृहस्थ (अगारी) अर्थात् श्रावक और (=च)
अनगार द्विविध भवति । =अनगारी गृहत्यागी(=अनगार)अर्थात् मुनि,साधु ऋषि दो प्रकार होते हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस उन्नीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश: हिन्दी अनुवाद

प्रतिश्रय-अर्थिभि अग्यते । इति अगारम्, =वसनेके लिये(=प्रतिश्रय)अर्थियों द्वारा अंगीकार किया जाता है ऐसा अगार है
वेश्म, तद्वान् अगारी, =गृह (=वेश्मन्) है उस अगार वा गृहवाला है सो अगारी है अर्थात् जिस के आश्रय वा आसरे के लिये घर वा अगार हो सो अगारी है।
न विद्यते अगारम् अस्य इति अनगार =नहीं है विद्यमान अगार इसके ऐसा अनगार है
द्विविध व्रती अगारी अनगार च इति =व्रती दो प्रकार अगारीगृही वा गृहस्थ और अनगार गृहत्यागी अर्थात् मुनि हैं
ननु च अत्र विपर्यय अपि प्राप्नोति =तर्क इस स्थानमें (=अत्र)अर्थात् जहा पर वचन है कि अगारमें रहनवाले =गृहस्थ हैं और घरके त्यागी मुनि हैं वहा उलटा वा व्यतिक्रम भी प्राप्त होता है
शून्य अगार देव-कुल-आदि-आवासस्य मुने अगारित्वम् =(जैसे) शून्यघर देव मंदिर, आदिमें वास करने वाले मुनिके अगारी पना

(१) इस सूत्रका दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एकसा पाठ है॥ इस १९ वा सूत्रमें व्रती शब्दका अनुवर्तन १८ वा सूत्रसे है॥ द्विविध शब्दका अध्याहार (=वाक्यको पूरा करने के लिये शब्द वा शब्दों का जोड़ना) इस सूत्रमें किया गया है॥ अगारमस्यास्तीत्यगारी = अगारम् अस्य-अस्ति-इति अगारी=गृह इसके (आश्रय) है ऐसा अगारी है (तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २८०)॥ नविद्यते अगारमस्येत्यनगार = न विद्यते अगारम् अस्य इति अनगार =नहीं (आश्रयके लिये) है गृह इसके विद्यमान ऐसा अनगार है (तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २८०)

गुणाहितचेतसः परमप्रयत्नस्याहिंसादीनि व्रतानि यस्य सन्ति सः—

॥ निश्शल्यो व्रती ॥ १८ ॥

शृणाति हिनस्तीति शल्यम्। शरीरानुप्रवेशिकाण्डादिप्रहरणं तच्छल्यमिव शल्यं; यथा तत्प्राणिनो

गुण—आहित-चेतसः६' परम-प्रयत्नस्य६'-अहिंसादीनि१''' =गुण निश्चित आत्माके परम जतन करने वाले (आत्मा) के अहिंसादिक
व्रतानि१''' यस्य६' सन्ति T सः१' =व्रत जिसके होते हैं वह निम्न सूत्र में कहा जाता है कि

[१] निश्शल्योव्रती ॥ १८ ॥ निश्शल्यः व्रती = निःशल्यः सः व्रती भवति ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—निश्शल्यः१' =जो शल्य रहित है अर्थात् जिसके मायाशल्य-मिथ्यात्वशल्य-निदानशल्य नहीं हैं
सः१' व्रती१' भवति T. =वही व्रती होता है भावार्थ यह है कि मनमें कुछ और वचन में कुछ और तथा कार्य कुछ और करना ऐसी माया शल्य-तत्त्वार्थका अश्रद्धान ऐसी मिथ्यात्व शल्य-आगामी कालमें विषयभोगोंकी वांछा करना ऐसी निदान शल्य इन तीनों के होते हुए कोई भी मनुष्य अहिंसादिक पांचव्रत होने पर भी व्रती नहीं हो सक्ता वास्तव में व्रतों को धारण कर शल्य रहित होने पर ही व्रती होता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस अठारहवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

[२] शृणाति T हिनस्ति T इति* शल्यम् १।।; शरीर- =घातता है-चुभता है (=शृणाति) मारता है (=हिनस्ति) ऐसी शल्य है । शरीरमें
अनुप्रवेश-काण्ड-आदि-प्रहरणम् १।।। =प्रवेशकरनेवाले अथवा घुसजाने वाले वाण आदिक-शस्त्र (=प्रहरण)
तत्—शल्यम् १''' इव* शल्यम् १।।; यथा* तत् १।।। प्राणिनः६' =तिस सारिखा (मनविषै) चुभै-बाधा करै सो शल्यहै; जैसे वह (काण्ड=वाण) जीवोंको

(१) इस सूत्रका पाठ कहीं कहीं पर "निः शल्यो व्रती" ऐसाहै क्योंकि निम्नलिखित नियमके अनुसार विसर्गकोश् होजाताहै। यदि विसर्गके पश्चात् श् ष् स् आवें तो श्-ष् वा स् मे विसर्ग पलट जाताहै अथवा विसर्ग अपने रूप में ही बना रहता है जैसे ऋषयः शाम्यन्ति का विसर्ग श् मे बदल कर—ऋषयश्शाम्यन्ति होजाताहै वा न पलटकर ऋषयः शाम्यन्ति ऐसाही बनारहताहै अत.निः शल्यो व्रती,–निश्शल्यो व्रती दोनों ठीक है(२)शृ-क्र्यादि नवमांगणका धातुहै-सार्वधातुक कालोंमें नवमांगणके धातुओर क्रिया प्रत्ययके मध्यमें ना आताहै । जैसे शृ + ना–ति ना का णा हो गया तब शृणाति ऐसा बना॥ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायामें यह सूत्र एकसा है अर्थ भी समान हैं॥

वाधाकरं तथा शरीरमानसवाधाहेतुत्वात्कर्मोदयविकार शल्यमित्युपचर्यते ॥ तत्रिविधम्— मायाशल्यम्। निदानशल्यम्। मिथ्यादर्शनशल्यमिति ॥ माया निकृतिर्वञ्चना । निदानविषयभो· गाकांक्षा । मिथ्यादर्शनमतत्त्वश्रद्धानम् । एतस्मात्रिविधाच्छल्यान्निष्क्रान्तो निश्शल्योव्रती इत्युच्यते ॥ अत्र चोद्यते-शल्याभावान्नि· शल्य व्रताभिसम्बन्धाद्व्रती, न निश्शल्यत्वाद्व्रतीभवि तुमर्हति । नहि देवदत्तो दण्डसम्बन्धाच्छत्री भवतिइत्यत्रोच्यते-उभयविशेषणविशिष्टत्वात्

वाधाकरम्॥ तथा*शरीर-मानस-वाधा-हेतुत्वात्	=वाधा करताहै, तैसे शरीर सम्बन्धी और मन सम्बन्धी वाधाका कारण होनेसे
कर्म-उदय विकार शल्यम् इति*उपचर्यते ॥	=कर्मका उदयजनित विकार (भी) शल्यहै ऐसे (शल्यनामका) उपचारकियागयाहै
तत् त्रिविधम् "मायाशल्यम्", निदानशल्यम्",	=वह (शल्य) तीन प्रकार है-मायाशल्य-निदानशल्य
मिथ्यादर्शनशल्यम् "इति, माया" निकृति· वञ्चना",	=मिथ्यात्व शल्य है, छल [=निकृति] ठगई [=वञ्चना] है सो माया है
निदानम्",विषयभोग- आकांक्षा	=विषय भोगों की वाछा है सो निदान है
मिथ्या दर्शनम् "अतत्त्वश्रद्धानम्",एतस्मात् "त्रिविधात्"	=तत्त्वोंके श्रद्धानका अभाव सो मिथ्या दर्शन है। इन तीन प्रकारके
शल्यात् "निष्क्रान्त निशल्य व्रती इति*उच्यते । ॥	=शल्यों से रहित वा वर्जित है सोनिरशल्य है सोव्रती है ऐसे कहा जाता है
अत्र*चोद्यते। शल्य-अभावात् नि शल्य 'व्रत-	=यहां तर्क की जाती है कि शल्यके न होनेसे निरशल्य होजाता है । व्रतके
अभिसम्बधात् व्रती, न*निश्शल्यत्वात् "व्रती	=सम्बन्धसे वा धारण (करने) से व्रती होता है, निश्शल्य पनासे व्रती
भवितुम् °अर्हति । ।	=होने के (को) योग्यनहीं होता है अर्थात्व्रती का विशेषण नि शल्य किया
	=सो व्रतके और निरशल्यपनाके विरोध है तिससे विशेषण वनेगा नहीं निरशल्य को व्रती कहना ठीक नहीं है (तर्ककर्ता दृष्टान्तसे तर्ककीपुष्टिकरताहै)
नहि*देवदत्त 'दण्डसम्बन्धात् 'छत्री 'भवति ।	=(जैसे) देवदत्त दण्डके धारण करनेसे छत्री नहीं होता है (वरन् छत्र के धारणसे)
इति*अत्र*उच्यते उभय –	=ऐसे यहा (प्रश्न पर) कहा गयाहै कि दोनों(नि शल्यता और हिंसादिसे त्याग के)
विशेषण–विशिष्टत्वात्"	=विशेषणोंकी युक्तता वा मिलावसे (=विशिष्टत्वात्) व्रती होता है।

[२] इन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रिया मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः ॥ द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रिया असंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः ॥ पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः[1] ॥

इन्द्रिय—अनुवादेन ३।१ एकेन्द्रियाः १।३ मिथ्यादृष्टयः १।३ =इन्द्रियके कथनानुसारसे एकेंद्रिय मिथ्यादृष्टि (जीव)
अनन्तानन्ताः १।३ द्वीन्द्रियाः १।३ त्रीन्द्रियाः १।३ चतुरिन्द्रियाः =अनंतानंत हैं। दो इंद्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले, चार इन्द्रियवाले [जीव]
असंख्येयाः १।३ श्रेणयः १।३ प्रतर—असंख्येयभाग— =असंख्यात श्रेणि [परिमाण] हैं वे प्रतरके असंख्यातवें भाग
प्रमिताः १।३ पंचेन्द्रियेषु७।३ मिथ्यादृष्टयः१।३ असंख्येयाः१।३ =परिमाण हैं। पांच इन्द्रियवालोंमें मिथ्यादृष्टि [जीव] असंख्यात
श्रेणयः १।३ प्रतर—असंख्येयभाग-प्रमिताः १।३ =श्रेणी (परिमाण) हैं। (वे असंख्यात जगत् श्रेणी) प्रतरके असंख्यातवां भाग परिमाण हैं।
सासादनसम्यग्दृष्टि-आदयः १।३ अयोगकेवलि अन्ताः १।३ =सासादन सम्यग्दृष्टिसे अयोग केवली पर्यंत (इन १२ स्थानोंमें)
सामान्य—उक्त—संख्याः १।३ =संक्षेपसे [प्रथम] कही हुई संख्यावाले हैं अर्थात् दूसरे गुणस्थानमें बावन करोड ५२०००००० तीसरेमें एकसौ चार करोड, चौथेमें सातसौ करोड (=सात अरब), पांचवेंमें १३ करोड, छठेमें पांचकरोड़ तिरानवे-लाख, अठानवें सहस्र दोसौछह (५९३९८२०६) सातवेंमें दो करोड़, छियानवैलाख, निन्यानवे सहस्र एकसौ तीन (२९६९९१०३) आठवें-नववें-दशवें और ग्यारहवें उपशम श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें दोसौ निन्यानवे (२९९) और आठवें, नववें, दशवें क्षपक श्रेणीके प्रत्येक गुण-स्थानमें और क्षीण कषाय बारहवें गुणस्थानमें और अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानमें प्रत्येकमें ५९८ और सयोग तेरहवां गुणस्थानमें आठलाख अठानवे हजार पांचसौ दो (८९८५०२) दूसरेसे चौदह गुणस्थान तक सर्व जीवोंकी संख्या ८७७९९९९९७ हुई ॥

(१) सामान्योक्तसंख्याः=संक्षेपसे वर्णित संख्यावाले, अतः यह वाक्य (प्रथमा विभक्ति बहुवचन) पुल्लिंग है।

नैष दोष --प्रमत्तयोगादित्यनुवर्तते। ततो ज्ञानदर्शनचारित्रवतोऽप्रमत्तस्य मोहाभावान्न मूर्छाऽस्तीति नि.परिग्रहत्वं सिद्धम् ॥ किञ्च तेषा ज्ञानादीनामहेयत्वादात्मस्वभावत्वादपरिग्रहत्व । रागादय पुन कर्मोदयतन्त्रा इति अनात्मस्वभावत्वाद्धेया । ततस्तेषु सङ्कल्प परिग्रह इति युज्यते । तन्मूला. सर्वेदोषा. ॥ ममेदमिति हि सति संकल्पे संरक्षणादय सञ्जायन्ते। तत्र च हिंसाऽवश्यम्भाविनी। तदर्थमनृत जल्पति। चौर्यंवा आचरति। मैथुने च कर्मणि प्रयतते। तत्प्रभवा नरकादिषु दुःखप्रकारा ॥ एवमुक्तेन प्रकारेण हिंसादिदोषदर्शिनोऽहिंसादि

न* एष दोष प्रमत्त-योगात् इति* =(उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि (इस सूत्रमें भी) प्रमत्त योगात् ऐसे (वाक्य की)
अनुवर्तते । =अनुवृत्ति है अर्थात् यह सूत्र 'प्रमत्त योगात् मूर्छा परिग्रह' ऐसा है
तत ज्ञान-दर्शन-चारित्रवत =तिस (प्रमत्त योगात् इस वाक्यको सूत्रमें और मिलानेसे) ज्ञान-दर्शन-चारित्रवान्
अप्रमत्तस्य मोह-अभावात् न* मूर्छा अस्ति । इति* =अप्रमत्त (पुरुष) के मोहके न होने (के कारण) से मूर्छा नहीं है इस प्रकार (सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्रवान् के)
नि परिग्रहत्वम् सिद्धम्, किञ्च तेषाम् ज्ञानादीनाम् =निष्परिग्रहता सिद्ध है । कुछ और (भी विशेष) है तिन ज्ञानादिकके
अहेयत्वात् आत्म-स्वभावत्वात् अपरिग्रहत्वम् =आत्माके स्वभाव होनेसे त्यागपना नहीं है (अतएव) अपरिग्रहपना है
रागादय पुन कर्म-उदय-तन्त्रा इति* अनात्म स्वभावत्वात् =और (=पुन) रागादिककर्माके उदयके आधीनहै ऐसे आत्माके स्वभाव न होनेसे
हेया, तत *तेषु सङ्कल्प =त्याजनाय है त्यागने योग्य है । तिससे तिन (रागादिक)में सकल्प (कि यह मेरा) है
परिग्रह इति* युज्यते । तत्-मूला सर्वे दोषा, =सो परिग्रह है ऐसा (कथन) युक्त है उचित है। तिन [रागादिक] के मूल सब दूषण हैं अर्थात् रागादिकसे ही सर्व दोष उत्पन्न होते है
मम इदम् इति* हि* सति सङ्कल्पे संरक्षण-आदय =मेरा यह है ऐसा ही सकल्प होनेपर [परिग्रहकी] रक्षा करना आदिक
सञ्जायन्ते। तत्र* च* हिंसा अवश्यम्*भाविनी =उपजते है और (=च) तहां (इन रागादिक में) हिंसा अवश्य होती है
तद्-अर्थम् अनृतम् जल्पति । चौर्यम् वा आचरति । मैथुने च* =तिस (हिंसा) के लिये झूठ बोलता है है वा चोरी करता है और मैथुन
कर्मणि प्रयतते । तत्प्रभवा नरकादिषु दुःखप्रकारा =कर्ममें जतन करता है । ते (पाप) नरकादिकोंमें अनेक प्रकार के दु खोंके उत्पादक हैं
एवम्* उक्तेन प्रकारेण हिंसादि-दोषदर्शिन अहिंसादि =ऐसे उक्त अनुक्रमकरि हिंसादिक (पापों)में दोष देखने वालेके अहिंसादिक

एवमपि बाह्यस्य परिग्रहत्वं न प्राप्नोति। अध्यात्मिकस्य संग्रहणात्। स यमेवैतत्-प्रधानत्वादभ्यन्तर एव संगृह्यते। असत्यपिंबाह्यममेदमिति सङ्कल्पवान् सपरिग्रहो भवति॥ अथ बाह्यः परिग्रहो न भवत्येव। भवति च मूर्छाकारणत्वाद्यदि ममेमिति,सङ्कल्पः परिग्रहःसंज्ञानाद्यपिपरिग्रहः प्राप्नोति; तदपि हि ममेदमिति सङ्कल्प्यते रागादिपरिणामवत्।

एवम्*अपि* =(प्रश्न)ऐसे भी अर्थात् यदि मूर्छा शब्दको विशेष अर्थ रागादिमें ग्रहणकरेंतौभी

बाह्यस्य ६/१' परिग्रहत्वम् १/१''' न*प्राप्नोति T =बाह्य [वस्तु गऊ-भैंस-मणि-मोती इत्यादिक] के परिग्रहता प्राप्त नहीं होती है

अध्यात्मिकस्य ६/१' संग्रहणात् ५/१'''; सत्यं*एव*एतत् १/१'''— =क्योंकि [यहां] अभ्यन्तर [=अध्यात्मिकस्य]मूर्छाका ग्रहणहै यह सत्य ही है

प्रधानत्वात् ५/१''' अभ्यन्तरः १/१' एव*संगृह्यतेT =मुख्य पनासे अभ्यन्तर ही ग्रहण किया गया है

असति ७/१' अपि*बाह्ये ७/१' मम६/१' इदम्१/१'''इति*संकल्पवान्१/१''' =बाह्यके(में)(परिग्रह)विद्यमान न होने परभी यह मेरा है ऐसा संकल्प करने वाला

स-परिग्रहः१/१' भवतिT।अथ बाह्यः१/१'परिग्रहः१/१' न*भवतिTएव* =परिग्रह सहित होता है। अब बाह्य परिग्रह होता ही नहीं है

भवति T च*मूर्छा १/१'' कारणत्वात् ५/१''' =[और] [बाह्य परिग्रह] होती भी है तो [=च] मूर्छाके कारणसे [होती है]

भावार्थ मूर्छा शब्दमें बाह्य परिग्रह नहीं आती है क्योंकि यह शब्द अन्तरंग रागादिकको प्रगट करता है और इस मूर्छा शब्दमें बाह्य परिग्रह आती भी है क्योंकि मूर्छा है सो बाह्य परिग्रहका कारण है जैसे अन्न प्राण है यथार्थमें अन्न प्राण नहीं है वरन् अन्न प्राणका कारण है यहां कारणमें कार्यका उपचार तैसे ही यह मेरा है ऐसी मूर्च्छा है सो बाह्य परिग्रह का तिमित्त है जो कि मूर्च्छा स्वयं बाह्य परिग्रह है यहां भी कारणमें कार्यका उपचार है।

यदि*मम६/१'इदम्१/१'''इति*संकल्पः१/१'परिग्रहः१/१'सञ्ज्ञानादि१/१'''अपि* =[प्रश्न]जो मेरा यह है ऐसी मनकी इच्छा परिग्रह है तो सम्यग्ज्ञानादिकभी ४८

परिग्रहः १/१'प्राप्नोतिT। तद् १/१''' अपि*हि*मम६/१'इदम्१/१'''इति* =परिग्रह ठहरें उस (सम्यग्ज्ञानदि) में भी कि मेरा यह है ऐसा

रागादि-परिणामवत्*—संकल्प्यतेT =रागादि भावके सदृश विचार किया जाता है अर्थात् रागादि परिणामको अभ्यन्तर परिग्रहकी ज्यों है कि यह मेरा है सम्यग्ज्ञानादिक विषैभी पाया जाताहै

मूर्छेत्युच्यते॥का मूर्छा?बाह्यानां गोमहिषमणिमुक्तादीनां चेतनाचेतनानां अभ्यन्तराणाञ्च रागादीनमुपधीनां संरक्षणार्जनसंस्कारादिलक्षणाव्यावृत्तिर्मूर्छा॥ ननु च-लोके वातादिप्रकोपविशेषस्य मूर्छेति प्रसिद्धिरस्ति तद्ग्रहणं कस्मान्न भवति?सत्यमेवैतत्। मूर्छितिरयं मोहसामान्ये वर्तते। सामान्यचोदनाश्च विशेषेष्ववतिष्ठन्ते इत्युक्ते विशेषे व्यवस्थितः परिगृह्यते। परिग्रहप्रकरणात्

मूर्छा॥इति•उच्यते।,का॥मूर्छा॥?बाह्यानाम्॥गो महिष-	=मूर्छा ऐसा कहा जाता है [प्रश्न]मूर्छा क्या है ? बाह्य गऊ-भैंस[=महिष]
मणि-मुक्ता-आदीनाम्॥चेतन-अचेतनानाम्॥च	=मणि-मोती-आदिक जीव-अजीव पदार्थ और
अभ्यन्तराणाम्॥राग आदीनाम्॥उपधीनाम्॥संरक्षण अर्जन-	=अंतरंग रागादिक परिग्रहकी(=उपधीनाम्) रक्षा करना उपार्जन करना
संस्कार-आदि-लक्षण अव्यावृत्तिः॥ मूर्छा॥ ॥	=संस्कारादिक करनेरूप प्रवृत्ति वा लगन (=अव्यावृत्ति) सो मूर्छा है
ननु•च• लोके॥ वात-आदि प्रकोपविशेषस्य॥	=पुनि प्रश्न लोकविषैं वायु आदि (रोग) के प्रकोपका भेद (=विशेष)
मूर्छा॥इति• प्रसिध्दिः॥ अस्ति।	=मूर्छा ऐसा प्रसिध्द है अर्थात् वात पित्त खखार के वशसे रोग उत्पन होने पर अचेतना होजाय उसको मूर्छा कहते है
तद्-ग्रहणम्॥कस्मात्॥ न• भवति । ?	=उस(अर्थात् मूर्छा शब्दका अर्थ अचेतनता)का ग्रहण किसकारण से नहीं होवाहै?
सत्यम्•एव•एतत्॥[१]मूर्छति॥ अयम्॥	=यह (मूर्छा शब्दका अर्थ अचेतनता) सत्य ही है। यह मुर्च्छ (=मूर्च्छ)धातु
मोह-सामान्ये॥वर्तते। च• सामान्य-चोदना॥	=मोह सामान्य अर्थमें वर्तती है और (=च)सामान्य प्रेरणायें (पद)
विशेषेषु॥ अवतिष्ठन्ते।	=विशेष [अर्थ]में अवस्थित हैं [=अवतिष्ठन्ते] अर्थात् सामान्य अर्थ छोड़कर विशेष अर्थमें मूर्छा शब्दको लिया है
इति•उक्ते॥ विशेषे॥ व्यवस्थितः॥,	=ऐसा कथन होते संते विशेष अर्थ में निर्णीत वा व्यवस्थित [मूर्छा शब्द]
परिगृह्यते। परिग्रह प्रकरणात्॥,	=ग्रहण किया गया है क्योंकि परिग्रहका प्रकरण वा विषय है

(१) मूर्छा परस्मैपदी प्रथम भ्वादिगण का धातु है मूर्छति एक वचन अन्य पुरुष वर्तमानकाल में रूप होता है इसका प्रथमाविभक्ति में एक वचन पुल्लिङ्ग मूर्छति बना लिया है तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ मुद्रित २७६ में मूर्छिरयम् (=मूर्छि अयम्) सामान्य वर्तमान इत्यादिक है
(२) व्यवस्थित=दूसरे विषय को छोड़कर किसी विशेष विषयमें स्थापित किया गया (पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ २०१)

वृद्धिमुपयान्ति तद्ब्रह्म । न ब्रह्म अब्रह्म। किं तत् ? मैथुनम्।।तत्र हिंसादयो दोषाःपुष्यन्ति।। यस्मान्मैथुनसेवनप्रवणः स्थास्नूश्चरिष्णून् प्राणिनो हिनस्ति। मृषावादमाचष्टे। अदत्तमादत्ते। सचेतनमितरञ्च परिग्रहं गृह्णाति ॥ अथ पञ्चमस्य परिग्रहस्य किं लक्षणमित्यतआह—

॥ मूर्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥

वृद्धिम् $\frac{2}{1}$ उपयान्ति T तद् $\frac{1}{1}$ ब्रह्म $\frac{1}{1}$; न* ब्रह्म $\frac{1}{1}$ अब्रह्म $\frac{1}{1}$; =वृद्धिको प्राप्त होते हैं, वह ब्रह्म हैं । जो ब्रह्म नहीं सो अब्रह्म है ।

किम् $\frac{1}{1}$ तत् $\frac{1}{1}$ मैथुनम् $\frac{1}{1}$; तत्र* हिंसा-आदयः $\frac{1}{3}$ =(प्रश्न) वह (अब्रह्म) क्या है, (उत्तर) मैथुन है, वहां (अब्रह्मविषै) हिंसादिक

दोषाः $\frac{1}{3}$ पुष्यन्ति T । यस्मात् $\frac{5}{1}$ मैथुन-सेवन-प्रवणः $\frac{1}{1}$ =अवगुण पुष्ट होते हैं । तिस[अब्रह्म]से मैथुन सेवनमें प्रवीण पुरुष

स्थास्नून् $\frac{2}{3}$ चरिष्णून् $\frac{2}{3}$ प्राणिनः $\frac{2}{3}$ हिनस्ति T =थावर त्रस जीवोंको हनता है

मृषावादम् $\frac{2}{1}$ आचष्टे T;अदत्तम् $\frac{2}{1}$ आदत्ते T । =मिथ्या वचन बोलताहै। विना दीहुई वस्तुको ग्रहण करताहै अर्थात् चोरी करताहै।

[१]सचेतनम् $\frac{2}{1}$ इतरम् $\frac{2}{1}$ च* परिग्रहम् $\frac{2}{1}$ गृह्णाति T ॥ =चेतन तथा अचेतन परिग्रह को ग्रहण करता है

अथ* पञ्चमस्य $\frac{6}{1}$ परिग्रहस्य $\frac{6}{1}$ किं $\frac{1}{1}$ लक्षणं $\frac{1}{1}$ इति* अतःआह =अव पॉचवां परिग्रहका क्या लक्षण है इसलिये(आचार्य उत्तर सूत्र) कहते हैंकि

मूर्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥ (प्रमत्तयोगात्) मूर्छा (मूर्च्छा)परिग्रहः भवति

(२) सूत्रार्थः–प्रमत्त-योगात् $\frac{5}{1}$ मूर्च्छा $\frac{1}{1}$ परिग्रहः $\frac{1}{1}$ भवति T

=प्रमत्त योगसे बाह्य अभ्यन्तर चेतन अचेतन रूप द्रव्योंमें ममत्वरूप परिणाम सो

=परिग्रह है अर्थात् बाह्यमें स्त्री-पुत्र दासी-दास सेवक-परिवार-गाय-भैंस-हाथी घोड़ा-धनधान्य-सुवर्ण-रूपा-मणि-मोती-शय्या-आसन-गृह आभरण-वस्त्रादिक में तथा अभ्यन्तरमें रागादिक परिणामोंके उपार्जन संसारादिक रूप जो ममत्व भाव उसे मूर्छा कहते है मूर्छा ही परिग्रह है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सत्रहवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

(१) कहीं 'सचेतनमितरंच' 'कहीं अचेतन मितरच्च' पाठहै दोनों ठीक है । मुद्रित प्रतियोंके 'सचेतन मितरच्च' अशुद्ध है क्योंकि 'इतरत्' का अन्वय परिग्रहके साथ न होसकेगा । (२) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमे "मूर्च्छा परिग्रह" ऐसा पाठ है, यह पाठ हमारे यहांके सर्वार्थसिद्धिवृत्ति के पाठ के अतिरिक्त अन्य बहुधा पाठों से मिलना है, अर्थ दोनों आम्नायों मे इससूत्रका एक है ॥ मूर्छा-और मूर्च्छा दोनों रीतिसे लिखा जाता है ।

स्त्रीपुंसयोश्चारित्रमोहोदये सति रागपरिणामाविष्टयोः परस्परस्पर्शनं प्रति इच्छा मिथुनम् । मिथुनस्य कर्म मैथुनमित्युच्यते । न सर्वं कर्म । कुतः-लोके शास्त्रे च तथा प्रसिद्धेः । लोके तावदागोपालादिप्रसिद्धं स्त्रीपुंसयोः रागपरिणामनिमित्तं चेष्टितं मैथुनमिति । शास्त्रेऽपि अश्ववृषभयोर्मैथुनेच्छायामित्येवमादिषु तदेव गृह्यते॥ अपि च प्रमत्तयोगादित्यनुवर्तते तेन स्त्रीपुंसमिथुनविषयं रतिसुखार्थं चेष्टितं मैथुनमिति गृह्यते न सर्वम् ॥ अहिंसादयो धर्मा यस्मिन् परिपाल्यमाने बृंहन्ति

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सोलवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

स्त्री पुंसयोः चारित्र-मोह-उदये सति रागपरिणाम =स्त्री पुरुष विषैं चारित्र मोहनीय कर्मके उदय होनेपर स्नेहरूपभावकरि
आविष्टयोः परस्पर-स्पर्शनम् प्रति इच्छा मिथुनं, =संयुक्त आपसमें स्पर्शन प्रति अभिलाषा सो मैथुन है
मिथुनस्य कर्म मैथुनं इति उच्यते; न सर्वं कर्म =मिथुनका कार्य सो मैथुन ऐसा कहा गया है नकि सर्व कार्य(मैथुन) है
कुतः लोके शास्त्रे च तथा प्रसिद्धेः, लोके =(प्रश्न)क्यों (उत्तर)लोक और(=च) शास्त्रमें तैसे ही प्रसिद्ध होनेसे। लोकविषैं
तावत् आ-गोपाल-आदि-प्रसिद्धं स्त्री-पुंस- =तो गोपालादिक तक [=आद=आ]में ख्यात है कि स्त्री-पुरुष द्वारा
राग-परिणाम-निमित्तम् चेष्टितम् मैथुनम् इति । =(परस्पर) रागभावपूर्वक चेष्टा कीजाय सो मैथुन है
शास्त्रे अपि अश्व-वृषभयोः मैथुन-इच्छायाम् =शास्त्रमें भी घोड़ा बैलमें (के) मैथुनकी इच्छाविषै
इत्येवम् आदिषु तद् एव गृह्यते । =इत्यादिक(पाठ)में, वहां (मैथुन) ही ग्रहण किया गया है अर्थात् आगम विषैंभी पशुओंके कामादिकको मैथुन कहा गया है ।
अपि च प्रमत्त-योगात् इति अनुवर्तते । =फिर(=च) भी(=अपि) (इसस्थलमें) 'प्रमत्त-योगात्' ऐसी अनुवृत्ति (१३वा सूत्रमेंसे) है
तेन स्त्री-पुंस मिथुन विषयम् रति-सुख-अर्थम् =तिस [अनुवर्तन] करि स्त्री पुरुषका युगल(=मिथुन) संबंधी (=विषय) रति सुखके लिये
चेष्टितम् मैथुनम् इति गृह्यते । न सर्वम् ॥ =चेष्टाकी जाय सो मैथुन ऐसा ग्रहण किया जाय है नकि सर्व [कार्य मैथुन] है
अहिंसा-आदयः धर्माः यस्मिन् परिपाल्यमाने बृंहन्ति । =अहिंसादिक गुण (=धर्मा) जिसके पालन किये जानेमें बढते हैं

सर्वार्थ-सिद्धि ४३

प्रमत्तयोगाददत्तादानं यत् तत्स्तेयमित्युच्यते। न च रथ्यादि प्रविशतः प्रमत्तयोगोऽस्ति। तेनैतदुक्तं भवति यत्र संक्लेशपरिणामेन प्रवृत्तिस्तत्र स्तेयं भवति बाह्यवस्तुनो ग्रहणे वाऽग्रहणे च। अथ चतुर्थमब्रह्म किंलक्षणमित्यत्रोच्यते—

अध्यय ७ सूत्र १५, १६

॥ मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥

प्रमत्त-योगात् ५/६।	=[तब] प्रमाद रूप परिणामके सम्बन्धसे अथवा राग द्वेष कषाय सहित होकर (=प्रमत्त) मनो वचन काय योगोंसे (=योगात्)
अदत्त-आदानम् १/६।।। यत् १/६।।।	=विना दीहुई (वस्तु) को ग्रहण करना वा लेलेना जो (=यत्) है
तत् १/६।।। स्तेयम् १/६।।। इति*उच्यते T।	=वह (=तत्) स्तेय है ऐसा कहा गया है
न*च*रथ्य-आदि १/६।।। प्रविशतः ६/६। प्रमत्त 1। तेन ३/६।।।	=बहुरि गली आदिमें प्रवेश हुए (मुनि) के प्रमत्त योग नहीं है तिससे
एतत् १/६।।। उक्तम् १/६।।। भवति T यत्र*सङ्क्लेश-परिणामेन ३/६। प्रवृत्तिः १/६।	=यह कथन वा अर्थ होता है कि जहां सक्लेश भाव करि प्रवृत्ति है
तत्र*स्तेयम् १/६।।। भवति T च*बाह्य-वस्तुनः ६/६।।। ग्रहणे ७/६।।।	=वहां चोय वा स्तेय होती है और [=च] बाह्य वस्तुके ग्रहण होनेपर
वा*अग्रहणे ७/६।।।; अथ*चतुर्थम् १/६।।। अब्रह्म १/६।।। किम् १/६।।।	=वा न होनेपर,[चोरी नहीं होता है]॥ अब चौथा अब्रह्म है जिसका क्या
लक्षणम् १/६।।। इति*अत्र*उच्यते T	=लक्षण है ऐसे [प्रश्न होने पर]यहां[अग्रिम सूत्र में]कहा जाता हैकि

(१)
मैथुन मब्रह्म ॥ १६ ॥ (प्रमत्त योगात्) मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—प्रमत्त—योगात् ५/६।	=प्रमादरूप परिणामके सम्बन्धसे [=प्रमत्त—योगात्] [अथवा] रागद्वेपकपायसहित होकर (=प्रमत्त)मनोवचन-कायके योगोंसे(योगात्)
मैथुनम् १/६।।। अब्रह्म १/६।।। भवति T ॥ १६ ॥	=स्त्री पुरुषोंकी परस्पर स्पर्शन रूप क्रिया अर्थात् काम सेवन सो अब्रह्म है

४३

(१) दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें यह सूत्र एक सा पाया जाता है और अर्थ भी एक सा है।

दानादाने यत्र सम्भवतस्तत्रैव स्तेयव्यवहार । कुत ? अदत्तग्रहणसामर्थ्यात् ॥ एवमपि भिक्षोर्ग्रामनगरादिषुभ्रमणकाले रथ्याद्वारादिप्रवेशाददत्तादानमाप्नोति॥ नैष दोष । सामान्येन मुक्तत्वात् । तथाहि–अय भिक्षु पिहितद्वारादिषु न प्रविशति अमुक्तत्वात् । अथवा प्रमत्तयोगादित्यनुवर्तते

दान-आदाने *यत्र*सम्भवत.*तत्र*एव*स्तेय-व्यवहार., =जहा देन लेन सम्भव है तहा ही चोरीका व्यवहार होता है।

कुतः*अदत्त-ग्रहण-सामर्थ्यात्, =(प्रश्न)क्योंकर[=कुत]विनादीहुई [वस्तु]के ग्रहणकी योग्यता वा शक्तिसे (चोरी होती है) अर्थात् इससूत्र में 'अदत्त' शब्दको इस अर्थमें लिया है कि जहा देन लेन किसी वस्तु जैसे धन धान्य वस्त्र इत्यादिक का हो सकता है वहा ही चोरी सम्भव है कर्म नो कर्म वर्गणाओंके ग्रहणमें देन लेनका व्यवहार नही है वे सूक्ष्म और अदृश्य हैं उनके ग्रहण में चोरी नहीं है

एवम्*अपि*भिक्षोः ग्राम-नगरादिषु भ्रमणकाले =(प्रश्न) इस प्रकार भी है कि मुनिके गाव नगरादिकोंमें पर्यटन कालमें

रथ्या-द्वारादि-प्रवेशात् अदत्त-आदान माप्नोति ॥=गली द्वारादिकमें घुसनेसे अदत्तादान प्राप्त होता है

न*एष. दोष, सामान्येन मुक्तत्वात् =(उत्तर) यह दोप नहीं है(द्वार गली-आदिक) साधारणपनेसे(सर्वके आने जानेके लिये) खुले हुए हैं

तथाहि*अयम् भिक्षु. पिहित द्वारादिषु =जैसा कि-यह मुनि बंद किये हुये (=पिहित) द्वारादिकमें

न*प्रविशति अमुक्तत्वात्, =अमुक्त होनेके (हेतु) से प्रवेश नहीं करता है अर्थात् द्वार-गली-आदिक साधारणपनेसे सर्वके जाने आनेके लिये खुले हैं इससे अदत्ता दानका दोप वर्जित है उनमें मुनि प्रवेश करता है और बंद द्वारादिकोंमें मुनि इस निमित्तसे प्रवेश नहीं करता है कि उनमें प्रवेश करनेसे अदत्तादानका दोप लगता है क्योंकि जिसने वे द्वार गली आदिक बंद किये हैं वह साधारण के आने जाने को नहीं चाहता है इससे बंद किये हैं

अथवा*प्रमत्त-योगात् इति*अनुवर्तते । =वा (इस सूत्रमें) प्रमत्त-योगात् ऐसे(१३वा सूत्रसे)अनुवृत्ति आती है अर्थात् प्रमत्त योगात् इतने वाक्यको १३वा सूत्रसे इस सूत्रमें मिला लिया गयाहै

सर्वार्थ-सिद्धि 41 | अध्याय ७ सूत्र १४ १५

उक्तं च-प्रागेवाहिंसाप्रतिपालनार्थमितरद्व्रतमिति । तस्माद्धिंसाकर्मवचोऽनृतमिति निश्चेयम् ॥ अथानृतानन्तरमुद्दिष्टं यत्स्तेयं तस्य किं लक्षणमित्यत आह—

अदत्तादानं स्तेयम् ॥ १५ ॥

आदानं ग्रहणमदत्तस्यादानमदत्तादानं स्तेयमित्युच्यते । यद्येवं कर्मनोकर्मग्रहणमपि स्तेयं प्राप्नोति अन्येनादत्तत्वात् ॥ नैष दोषः ।

उक्तम्*च*प्राग्*एव*अहिंसा-प्रतिपालन-अर्थम् १/१	=और पहले ही [=प्राग् एव] कहागया था कि अहिंसा[व्रत] के रक्षाके लिये
इतरत् १/१ व्रतम् १/१ इति*;तस्मात् हिंसा-कर्मवचः १/१ अनृतम् १/१	=अन्य[=इतरत् वा इतरद्] व्रतहैं । तिससे हिंसाकरने वाला वचन है सो अनृतहै
इति*निश्चेयम् १/१;अथ*अनृत-अनन्तरम् १/१ उदिष्टम् १/१ यत् १/१	=ऐसा निश्चय करना चाहिये। अब अनृतके अत्यन्त समीप वर्णित जो
स्तेयम् १/१ तस्य ६/१ किम् १/१ लक्षणम् १/१ इति*अतः*आह T ।	=चौर्य्य वा स्तेय है तिस(स्तेय)काक्या लक्षण वा परिभाषा हैअतः(अग्रिमसूत्र)कहतेहैं कि
(१) **अदत्तादानं स्तेयम् ॥ १५ ॥**	**=(प्रमत्तयोगात्) अदात्तादनं स्तेयम् भवति ।१५।**
सूत्रार्थः—प्रमत्तयोगात् ५/१	=प्रमादरूप परिणामके सम्बन्धसे
	अथवा रागद्वेष कषाय सहित होकर (=प्रमत्त)मनो वचन-काय-योगोंसे(=योगात्)
अदत्त-आदानम् १/१ स्तेयम् १/१ भवति T	=बिनादिये (वस्तु-धनादिकका)ग्रहण करना वा लेलेना सो चौर्य वा चोरी है अर्थात्
	लोभक्लेशादिक प्रमादके योगसे बिनादियेहुये पदार्थका ग्रहण करना सो चोरी है
वृत्त्यानुवादः-आदानम् १/१ ग्रहणम् १/१ अदत्तस्य ६/१ आदानम् १/१	=आदान है सो ग्रहण वा ले लेना है. बिनादिये हुए(अन्यके धन वस्तु आदि)का ग्रहण
अदत्त-आदानम् १/१ स्तेयम् १/१ इति*उच्यते T यदि *एवम्*	=अदत्ता दान है । सो(अदत्तादान)चोरी है,ऐसा कह गया है(प्रश्न) यदि ऐसे है
	अर्थात् जो बिनादियेहुएका ग्रहण वा लेलेना ही चौर्य वा स्तेय है तो
कर्म-नोकर्म ग्रहणम् १/१ अपि*स्तेयम् २/१ प्राप्नोति T	= कर्मवर्गणा तथा नोकर्म वर्गणाओं का ग्रहण भी चोरीको प्राप्त होता है
अन्येन ३/१ अदत्तत्वात् ५/१;न*एषः १/१ दोषः १/१	=क्योंकि(कर्म नोकर्म वर्गणा)किसी दूसरेकरि नहीं दीजाती हैं(उत्तर)यह दोष नहीं है

(१) इस सूत्रका दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों मे एकसा अर्थ और पाठहै ॥ प्रमत्त—योगात्-अदत्त-आदान यत् तत्स्तेयम् इति उच्यते संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३५२ पङ्क्ति ६ में इस सूत्रको उपर्युक्त प्रकार से पूर्ण किया गया है ॥

41

सच्छब्दः प्रशंसावाची न सदसदप्रशस्तमिति यावत् । असतोऽर्थस्याभिधानमसदभिधानमनृतम् ॥ ऋतं सत्यं न ऋतमनृतम् ॥ किं पुनरप्रशस्तं ? प्राणिपीडाकरं यत्तदप्रशस्तम् ॥ विद्यमानार्थविषयं वा अविद्यमानार्थविषयं वा ॥

अनृतम् १''' कथ्यते । =अनृत वा असत्य कहा गया है । इस सूत्रका संक्षेप अर्थ इस प्रकारसे है कि

प्रमत्त-योगात् ५' =प्रमादरूप परिणामके संबंधसे (अथवा) रागद्वेष और कषाय सहित होकर(=प्रमत्त)मनो-वचन-काय योगोंसे (=योगात्)

असत्१'''अभिधानम् १''' अनृतम् १''' =अप्रशस्त वा बुरा (हिंस्य मिथ्या निंदित) वचनकहना(=अभिधान)सो अनृत वा असत्य है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चौदहवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

सत्-शब्द १' प्रशंसा-वाची १' न*सत् १''' =सत् शब्द बड़ाई वा श्लाघाका बोधक वा कहनेवाला है सत् न हो सो

[१]असत् १''' अप्रशस्तम् १'''इति* यावत्* । =असत् वा अप्रशस्त इसप्रकार इतना (अभिप्राय) है

असत• ६' अर्थस्य ६' अभिधानम् १''' =असत् अर्थका (वस्तुका) विषय कहना सो

असत् १'''अभिधानम् १''' अनृतम् १''' =असत् अभिधान है अनृत है अर्थात् यथार्थ में है उससे अयथार्थ कहना सो अनृत है जैसे गौको अश्व कहै और अश्वको गौकहै (देखो सभाष्यतत्त्वार्थधिगम सूत्र पृष्ठ१६१)

ऋतं १'''सत्यम् १' 'न*ऋतम् १'''अनृतम् १'''किं १'''पुन•*=ऋत है सो सत्य है नहीं ऋत है सो असत्य है । पुनि क्या है ?

अप्रशस्तम् १'''?प्राणिपीडाकरम् यत् १'''तद् १'''अप्रशस्तम्=अप्रशस्त । (उत्तर) प्राणियोंका पीडाकारी (वचन) जो सो अप्रशस्त है

विद्यमान-अर्थ विषयं १'' =चाहे [उस वचनका] वर्तमान वस्तु विषय हो

वा*अविद्यमान-अर्थ-विषयं १'''वा* अथवा अविद्यमान वस्तु विषय हो (जहां हिंसा हो सो सर्व न अनृत है)

(१) ऋत जब विशेषण होता है तब क उचित (ख) निष्कपट (ग पूज्य, जब संज्ञा होता है तब (घ) नियम (ङ) ईश्वरीय नियम (च) सचाई (छ)खेतोंमेंसे अन्नके दाने चुनना अर्थ हैं । इस(ऋत शब्द)का संस्कृतमें बहुत थोडा प्रयोग किया जाताहै इसके निषेधवाची शब्द अनृत(अन्+ऋत) का प्रयोग बहुत किया जाता है ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमा वृत्तिमें ऋतं सत्यं न ऋतमसत्यम् पाठ है ॥ द्वितीयावृत्तिमें तथा तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें ' ऋतं सत्यं न ऋतमनृतम् पाठ है, ' न ऋतमनृतम् ' तत्त्वार्थराजवार्तिक का पाठहै । श्रुतसागरीटीकाका पाठ 'न ऋतं न सत्यमनृतं ऐसा है यद्यपि दोनों पाठोंका अर्थ एक है परन्तु बहु मतसे हमने द्वितीयावृत्ति और हस्त लिखित प्रतियोंका पाठ रक्खा है ॥

उक्तं च-प्रागेवाहिंसाप्रतिपालन...

निश्श्रेयस ॥ ...

आह अभिहितलक्षणा हिंसा, तदनन्तरोद्दिष्टमनृतं किं लक्षणमित्यत्रोच्यते—

॥ असदभिधानमनृतम् ॥ १४ ॥

हिंसाकी सूत्रित परिभाषाके दोनों नियम प्रमादवान् आत्माके पूर्ण होगये

आह १अभिहित-लक्षणा॥हिंसा॥,तद्-अनन्तर— = (शिष्य) प्रश्न करता है कि कथित लक्षण वाली हिंसा है उस (हिंसा) के अत्यन्त समीप

उद्दिष्टम्,अनृतम्,किं,लक्षणं॥इति,अत्र,उच्यते = उपदेश कियाहुआ अनृतक्या लक्षण वालाहैऐसे (प्रश्नहोनेपर) यहां (अग्रिमसूत्र) कहा

असदभिधानमनृतम् ॥१४॥ = (प्रमत्तयोगात्) असत्-अभिधानम्-अनृतम् (कथ्यते) ।

सूत्रार्थ: प्रमत्त—योगात् = प्रमादरूप परिणामके सम्बंधसे (अथवा)

(प्रमत्त-योगात्) = राग द्वेष कषाय सहित होकर (= प्रमत्त) मनो वचन-काय योगोंसे (= योगात्)

असत्॥—अभिधानम्॥ = विपरीत—असमीचीन—मिथ्या—झूठ (=असत्) वचनकहना . =अभिधानम्) (अथवा)

(असत्॥— = अप्रशस्त—असुहावना—अहितकारी-पीड़ाकारी—बुरा-हिंस्य-पारुष्य वा कठोर-पैशून्य-गर्हित वा निन्दित)

अभिधानम्॥ = वचनकहना (=अभिधानम्)

असत्॥—अभिधानम्॥ = (अथवा) सद्भावके निषेधकाकथन (अर्थात् सद्भूत अर्थका अपह्नव वा छिपाना अविद्यमान का उद्भावन वा प्रकटी करण-जैसे आत्मा नहीं है परलोक नहीं है इत्यादि सद्भूत पदार्थ का निषेध और श्यामा वा अतिसूक्ष्म तण्डुलमात्र जीवात्मा है वा अङ्गुष्ठके पर्वमात्र यह आत्मा है आदित्य वर्ण है निष्क्रिय है इत्यादि असद्भूत वस्तु का प्रकटी करण) सो

(१) इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायों में एकसा पाठ और अर्थ है॥ असत्- अन्य तीन व्रत और सत्यव्रत भी हिंसा व्रतकी रक्षा-पालन पोषण वा बचाव के लिये हैं इसलिये इससूत्र के असत् शब्दमें दोभाव गर्भित वा अन्तर्गत हैं (क) असुहावना अहितकारी-पीड़ाकारीहिंस्य-पारुष्य वा कठोर पैशून्य और गर्हित वा निन्दित (ख) मिथ्या-झूठ॥ यदि असत् शब्दका अर्थ सर्वथा निषेध (अविद्यमानता) कोलेवें तो शून्य का प्रसंग आता है और यदि विपरीत (झूठ-मिथ्या) अर्थ लेवें तो वस्तुका स्वरूप अन्यथा कहै है तिसका प्रसंग आवै है इस हेतु से असत् शब्द का अप्रशस्तअर्थ लेने में पूर्वोक्त दोनों अभिप्राय आजाते हैं अर्थात् झूठ वा मिथ्या भाषण अनृत है और पीड़ा कारी-हिंस्य-पारुष्य-निन्दित वचन भी अनृत है ग) तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक (मुद्रित पृष्ट ४६२) में इस सूत्र की अनुवृत्ति और अध्याहार इस प्रकार है कि प्रमत्तयोगा-दसदभिधानं यत्तदनृतमिति" = प्रमत्त योगसे अप्रशस्त कथन (=अभिधान) जो सो अनृत है (प्रमत्त योगात्-असत् अभिधान यत्-तद्-अनृतम इति

(३) कायानुवादेन–पृथिवीकायिका अप्कायिकास्तेजःकायिका वायुकायिका असङ्ख्येयलोकाः। वनस्पतिकायिका अनन्तानन्ताः। त्रसकायिकसङ्ख्या पञ्चेन्द्रियवत्॥

काय अनुवादेन ॥ पृथिवीकायिका ॥ अप्कायिकाः ॥	=कायकी विवक्षासे पृथिवीकायिक, जलकायिक,
तेजःकायिका ॥ वायुकायिका ॥ असङ्ख्येयलोकाः ॥	= अग्निकायिक, पवनकायिक, असंख्यात लोक (परिमाण) हैं
वनस्पतिकायिका अनन्तानन्ताः ॥	= वनस्पतिकायिक अनन्तानन्त [प्रमाण] हैं [अवश्य पढो)
त्रसकायिकसङ्ख्या ॥ पञ्चेन्द्रियवत्*	= त्रसकायिककी गणना पांचइन्द्रियवालोंके समान है (इसके नीचेकी टिप्पणी

(*) पांच इन्द्रियवालोंके समान है अर्थात् पचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवोंकी संख्या पृष्ठ ९८ में असंख्यात जगत् श्रेणी प्रमाण कह चुके हैं और ये असंख्यात जगत श्रेणी जगत प्रतरके असंख्यातवा भाग बराबर हैं और यह भी पृष्ठ ९८ में लिख चुके हैं कि सासादन दूसरे गुणस्थानसे चौदह गुणस्थान तक ८७७११११११०७ जीव हैं यह छोटी सी संख्या भी प्रथम संख्यामें अन्तर्गत होनेसे सामान्य रीतिसे कह सकते हैं कि पांच इन्द्रिय वाले जीवोंकी संख्या असंख्यात जगत श्रेणी है=जगत प्रतरके असंख्यातवें भागके=असंख्यातासंख्यात=असंख्येयलोक है क्योंकि लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं अतः असंख्येय लोक असंख्यात×असंख्यात=असंख्यातासंख्यात (देखो प० खूबचन्द्रजी अनुवादित गोमट्टसारजी जीवकाण्डगाथा १७४) और स सवार्थवृत्ति पृष्ठ २६ (३) ॥ स०स वृत्ति पृष्ठ २८ में यह भी कथन है कि दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय,चार इन्द्रियकी संख्या असंख्यात श्रेणी हैं जो जगत प्रतरके असंख्यातवा भाग है और यह भी बात है कि वास्तवमें विशेषतासे पचेंद्रिय जीवोंसे चौइन्द्रिय जीव अधिक हैं और चौइन्द्रिय जीवोंसे तीन इन्द्रिय जीव अधिक हैं और त्रिइन्द्रिय जीवोंसे दोइन्द्रिय जीव अधिक हैं जब केवल पचेन्द्रिय जीव असंख्यात जगत श्रेणी हैं तब प्रत्येक वर्गके जीव (दोइन्द्रिय-त्रिइन्द्रिय-चौइन्द्रिय और पचेन्द्रिय) असंख्यात श्रेणी प्रमाण होना चाहिये और इस प्रकार चार असंख्यात श्रेणियां हुई॥ फिर वृत्तिकारने पचेन्द्रियवत् कैसे कहा और यह बात भी प्रत्यक्ष है कि सब त्रस जीवोंकी संख्या सूक्ष्मदृष्टिसे पचेन्द्रियके बराबर नहीं हो सकती है क्योंकि त्रसजीवोंमें दोइन्द्रियसे लेकर पांच इन्द्रिय तक सम्मिलित है। त्रस शब्द ऐसा विस्तृत है कि पांच इन्द्रियवाले जीवोंके अतिरिक्त तीन वर्गके जीव और भी उसीमें अन्तर्गत हैं॥ अब इसके दो उत्तर हो सकते हैं।

असंख्येया श्रेणय =[असंख्यात श्रेणीय) इसके छोटे बडे रूपमे असंख्यात ही भेद हो सकते हैं इसलिये दोइन्द्रियसे चारइन्द्रिय तक असंख्यात श्रेणी संख्या कही और फिर उसके अनन्तर पचेन्द्रियकी संख्या असंख्यात श्रेणी कही, पश्चात् त्रसजीव जिसमें दो इन्द्रियसे चौइन्द्रिय तकके जीव और पचेन्द्रिय जीव भी गर्भित हैं उनकी भी संख्या असंख्यात श्रेणी प्रमाण कही॥ यह पिछली असंख्यात श्रेणीकी गणना न्यारी न्यारी चार बार कही हुई असंख्यात श्रेणियोंकी संख्यासे बहुत बडी संख्या होगी क्योंकि असंख्यातके भी असंख्यात भेद हो सकते हैं॥

सर्वार्थसिद्धि ३७

व्यपरोपणं वियोगकरणं हिंसेत्यभिधीयते ॥ सा प्राणिनो दुःखहेतुत्वादधर्महेतुः ॥ प्रमत्तयोगादिति विशेषणं केवलं प्राणव्यपरोपणं नाधर्मायेति ज्ञापनार्थम् ॥ उक्तं–च–वियोजयति चासुभिर्न च वधेन सँयुज्यते इति ॥ उक्तं च– उच्चालिदंमि पादे इरियासमिदस्स णिग्गमट्ठाणे । आवादेज्ज कुलिंगो मरेज्ज तज्जोगमासेज्ज ॥ १ ॥ णहि तस्स तण्णिमित्तो बंधो सुहमोवि देसिदो समये ॥ मुच्छापरिग्गहोत्ति य अज्झप्पपमाणदो भणिदो॥ २ ॥

अध्याय ७ सूत्र १३

व्यपरोपणम् वियोगकरणम्	=न्यारा करना (= व्यपरोपण) अलग अलग करना (= वियोगकरण)
हिंसा इति*अभिधीयते T ॥	=ऐसी हिंसा कही जाती है
सा प्राणिनः दुःख-हेतुत्वात् अधर्म-हेतुः ॥	=सो (हिंसा) जीवोंका क्लेश वा संतापका कारण होनेसे अधर्मका कारण है
प्रमत्त-योगात् इति*विशेषणम् ज्ञापन-अर्थम् ।	=(इस सूत्रमें) प्रमत्तयोगात् ऐसा गुणवाचकवाक्य जतानेके लिये है कि
केवलम् प्राण-व्यपरोपणम् न*अधर्माय इति ॥	=प्राणोंका वियोग करनामात्रही (=केवल) अधर्म के लिये नहीं है ॥
उक्तम् च*वियोजयति T च* असुभिः	=कहा गया भी (= च) है कि और (= च) (प्राणियोंको) प्राणोंसे न्यारा करता है
न*च*वधेन सँयुज्यते T इति* ॥ उक्तम् च*	=और हिंसाकरि (= वधेन) वन्धसंयुक्त न होय है (= न संयुज्यते) कहा गया भी है
उच्चालिदंमि पादे इरियासमिदस्स णिग्गमट्ठाणे उत्-चालिते पादे ईर्यासमितस्य निर्गमस्थाने	=पगके उठानेमें ईर्यासमितिवाले (मुनि)के निर्गमस्थानमें अर्थात् निकलनेके स्थानमें भावार्थ बाहर भीतर इधर उधर गमन करनेके स्थानमें
आवादेज्ज कुलिंगो मरेज्ज तज्जोगमासेज्ज आपते च*कुलिङ्गः म्रियेत-तत्-योगम् आसाद्य÷	=कोई जीव आपड़े (=आपते) और [= च] उस [पग]के सँयोगको प्राप्त होकर मरजायतो
णहि*तस्स तण्णिमित्तो बंधो सुहमोवि देसिदो समये नहि*तस्य तत्-निमित्तः वन्धः सूक्ष्मः अपि*उपदेशितः समये ।	=उस [मुनिके] उस [मृत्यु]केनिमित्तसे सूक्ष्म बन्धभी [= वि] नहीं होता है [ऐसा] सिद्धान्तमें [= समये] उपदेश किया गया है
मुच्छापरिग्गहोत्तिय [= मूर्च्छा परिग्रहः इति*च*]	=और [= च] वांछा परिग्रह है ऐसा
अज्झप्प पमाणदो-भणिदो॥२॥[= अध्यात्म-प्रमाणतः*भणितः]	= अध्यात्म प्रमाणकरि वा प्रमाणद्वारा कहा गया है

(१) प्राकृतमें राम शब्द पुल्लिंगके रामे और राममि दोनोंरूप सप्तमी विभक्ति एक वचन हैं अत उच्चालदंमि और पादे दोनों सप्तमी एक बचन है

३७

ननु च प्राणव्यपरोपणाभावेऽपि प्रमत्तयोगमात्रादेव हिंसेष्यते । उक्तं च—मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा । पयदस्स णत्थि बन्धो हिंसामित्तेण समिदस्स॥१॥ इति । नैष दोषः । अत्रापि प्राणव्यपरोपणमस्ति भावलक्षणम्॥ तथा चोक्तम्—स्वयमेवात्मनाऽऽत्मानं हिनस्त्यात्मा प्रमादवान् ॥ पूर्वं प्राण्यन्तराणान्तु पश्चात्स्याद्वा नवावध॥१॥ इति ॥

ननु*च*प्राण-व्यपरोपण-अभावे अपि*प्रमत्त-योग-मात्रात् =पुनि प्रश्न-प्राणोंके वियोग करनेके अभावमें भी प्रमत्त योग मात्र से
एव*हिंसा इष्यते । उक्तम्*च* =ही हिंसा मानी गई है । कहा भी गया है कि
मरदु व*जियदु व*जीवो (=मृत वा जीवित वा जीवः) =जीव मरो अथवा मत मरो
अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा (=अयत्नाचारस्य निश्चिता हिंसा) =अयत्नाचारीके निश्चय हिंसा होती है
पयदस्स णत्थि बन्धो (प्रयत्नस्य न*अस्ति बन्धः) =प्रयत्न (से प्रवर्तने) वाले
हिंसामित्तेण समिदस्स (=हिंसामात्रेण समितस्य) समिति युक्तके हिंसा मात्र से बन्ध नहीं है [ण-त्थि]
न*एष दोष, अत्र* =[उत्तर] यह दूषण नहीं है यहा सूत्रमें [अयत्नाचारके प्रवर्तनेमें]
अपि*प्राणव्यपरोपणम् अस्ति भावलक्षणम् ॥ =भाव लक्षणयुक्त प्राणोंकाभी[=अपि]वियोग है अर्थात् अयत्नाचारसे प्रवर्तनेमें केवल प्रमत्त योगही नहीं वरन् भाव प्राणों का भी वियोग है
तथा*च*उक्तम् स्वयम्*एव*आत्मना =तैसे[तथा निम्नलिखित श्लोक म] कथन भी है अपनी ही आत्मा करि
आत्मानं हिनस्ति आत्मा प्रमादवान् पूर्वं* =आपको (=आत्मानं) पहिले (र्वं) प्रमाद सहित आत्मा हनता है
प्राणि अन्तराणाम् तु*पश्चात्*स्यात् वा*न*वा*वध इति* =और(=तु)पीछे अन्य जीवोंका वधहो अथवा नहो बस–इस समस्तका

संक्षेप भावार्थ यह हैकि प्रमादरूप परिणामके सम्बन्धसे प्राणोंका वियोग करना हिंसा है [अध्याय ७ सूत्र १३]इस पर प्रश्न हुआ कि प्राणों के वियोग बिना केवल प्रमादके संयोग से [अयत्नाचारके प्रवर्तने से] भी हिंसा शास्त्र म कही है उत्तरमें कहते हैं कि प्रमादसे प्रवर्तने में पहिले तो जीव अपने ही भाव प्राणों का वियोग करता है पश्चात् अन्य का प्राण व्यपरोपण हो अथवा मति हो ऐसे जहा प्रमाद है वहा प्राण व्यपरोपण अवश्य ही है ऐसे दोनों नियम [प्रमत्त के योग का कारणपना और भाव प्राण वा द्रव्य प्राण अथवा दोनों प्राणों का वियोग करना]

आह अभिहिंसालक्षणा हिंसा —

निःसारता अशुचित्वमित्येवमादि ॥ कायस्वभावचिन्तनाद्विषयरागनिवृत्तेर्वैराग्यमुपजायते इति जगत्कायस्वभावौ भावयितव्यौ ॥ अत्राह उक्तं भवता हिंसादिनिवृत्तिर्व्रतमिति, तत्र न जानीमः के हिंसादयः क्रियाविशेषा इत्यत्रोच्यते । युगपद्वक्तुमशक्यत्वात्तल्लक्षणनिर्देशस्य क्रमप्रसंगे याऽसावादौ चोदिता सैव तावदुच्यते—

॥ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥

निःसारता[1/6'''] अशुचित्वम्[1/6'''] इत्येवम् आदि[1/6''']; काय-स्वभाव-	=सार रहित है अपवित्र है इत्यादिक है कायकी प्रकृतिके
चिन्तनात् [5/6'] विपय-राग-निवृत्तेः [5/6''] वैराग्यम् [1/1''']	=चिन्तवन करनेसे विपयमें प्रीति वा अनुराग न होनेसे निर्वेद वा वैराग्य
(१) उपजायते T' इति*जगत्काय–स्वभावौ [1/2'] भावयितव्यौ [1/2']॥	=उपजता है इस प्रकार संसार तथा शरीर(दोनों)के स्वभाव भावने योग्य हैं
अत्र*आह T' हिंसादि-निवृत्तिः[1/1''] व्रतम् [1/1''']	=यहां पूछता है कि हिंसादिकसे विरक्तता वा परित्यागता सो व्रत है
इति*उक्तम् [1/1'''] (२) भवता [3/1'] तत्र*न*जानीमः T	=ऐसा आप द्वारा वर्णित हुआ(अध्याय७सूत्र१में) तहां हम नहीं जानतेहैं कि
के [1/3'] हिंसादयः [1/3'] क्रिया-विशेषाः [1/3'] इति*अत्र*उच्यते T ।	=हिंसादिक क्रिया विशेष क्याहैं इस प्रकार (प्रश्न होनेपर)यहां कहाजाताहैकि
युगपद्*वक्तुं०अशक्यत्वात् [5/1'''] तत्-लक्षण-निर्देशस्य [6/1']	=एक साथ कहने को असमर्थ होनेसे उन (हिंसादिक) के रूपके कथनके
क्रमप्रसंगे[7/1'] या[1/1''] असौ[1/1''] आदौ[7/1'] चोदिता[1/1'']	=क्रमप्रसंगमें जो (=या) यह (=असौ) आदिमें उपदेशकी हुई(हिंसा)
सा[1/1''] एव*तावत्* उच्यते T	=सो (=सा) ही प्रथम (=तावत्-निम्न सूत्रमें) कही जाता है कि

(४)

(३) सूत्रम्— प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥

(१) जन् दिवादि चौथे गणका अकर्मकधातु है इस मे विकरण य लगाने से कर्तरि प्रयोग मे जायते बनता है उप उपसर्ग जोड़ कर उपजायते बन जाता है ॥ (२) भगवता--भवता के स्थान में अशुद्ध मुद्रित हो गया है क्योंकि सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकी चार हस्त लिखित प्रतियोंमे, तत्त्वार्थ राजवार्तिकमे और सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'भवता' शब्द है ॥(३) दिगम्बर आम्नायमे और श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें औरभाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामे एक सा पाठ और अर्थभी लगभग एकसा है। ४ तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें प्रमत्त शब्दका अर्थ इस प्रकारलिखाहै कि

प्रमादः सकषायत्वं तद्वानात्मपरिणामः प्रमत्तः प्रमत्तयोगः प्रमत्तयोगः तस्मात्प्रमत्तयोगात् इन्द्रियादयो दशप्राणास्तेषां यथासंभवं

सूत्रार्थ -प्रमत्त-योगात् ५।१ =कषाय राग द्वेष और अयत्नाचार (असावधानी) के संयोग वा सम्बन्ध से अथवा प्रमादीके मन वचन काय से

प्राण-व्यपरोपणम् १।१ हिंसा १।१ =भाव प्राण वा द्रव्य प्राण वा दोनोंका वियोग करना न्यारा करना, सो हिंसा है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस तेरहवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

प्रमाद १।१ सकषायत्वम् १।१ तद्वान् १।१ आत्म परिणाम १।१ =कषाय सहितपना सो प्रमाद है उस (प्रमाद)सहित चेतनका भाव वा परिणाम सो

प्रमत्त १।१ प्रमत्तस्य ६।१ योग १।१ प्रमत्तयोग १।१ =प्रमत्त है प्रमत्तका संयोग वा सम्बन्ध सो प्रमत्त योग है

तस्मात् ५।१ प्रमत्त-योगात् ५।१ इन्द्रिय-आदय १।३ =तिस प्रमत्तके संयोगसे, (पांच)इन्द्रिय मनोबल-कायबल-वचनबल आयु स्वासोच्छ्वास

दशप्राणा १।३ तेषाम् ६।३ यथासम्भवम् २।१ =ये दश प्राण हैं तिन (प्राणों) का जितने होसकें उतनों का अर्थात् एकेन्द्रियसे लेकर पचेन्द्रिय तक जीवोंके दश प्राणोंमेंसे जितने जितने अमुक अमुक इन्द्रिय वाले जीवोंके हो सकते हैं उतनोंका

(क) इन्द्रियोंके प्रचारका विशेष असावधानीसे वा अयत्नाचार से होना सो प्रमत्त है

(ख) अथवा प्रमत्तकी ज्यों वा सदृश हो सो प्रमत्त है ॥ यहां उपमा वाचक इव शब्द का प्रत्ययार्थमें लोप है सो उपमार्थ अर्थ ऐसा जैसे दारुका पीवने वाला मतवाला होय तब कार्य अकार्यका जिसके विचार न हो तिसका उपमा है ॥ तथा जीवोंके स्थान और उनके उपजनेके ठिकाने तथा जीवोंके आधार जाने बिना कषायोंके उदयसे दबाया हुआ (=कषायोदयाविष्ट) हिंसाके कारण विषै स्थिति करे । सामान्य करि अहिंसाका यत्न न करे, सो प्रमत्त है ॥

(ग) अथवा पंद्रह (पांच इन्द्रिय चारकषाय चारविकथा-रागद्वेष एक और निद्रा) प्रमाद रूप परिणाम हों सो प्रमत्त है ।

(घ) संयोग वा सम्बन्धसे अर्थात् प्रमाद रूप परिणाम (=प्रमत्त) के सम्बन्धके हेतुसे मन वचन कायका क्रिया को भी योग कहते हैं अर्थात् प्रमाद रूप भाव होकर मन वचन कायके योगोंके कारणसे (प्राणोंका) व्यपरोपण वा न्यारा करना सो हिंसा है ॥ प्रमत्तयोग को प्राण व्यपरोपण के लिये हेतु रूप कहा है ॥

हिंसा मारण प्राणातिपात प्राणवध देहान्तरसंक्रमण =हिंसा मारण प्राणातिपात, प्राणवध एक देह से दूसरी देह में जीवका संक्रमण और

प्राणव्यपरोपणमित्यनर्थान्तरम् =प्राणोंका व्यपरोपण ऐसे (ये) समानार्थ क (वाचक) शब्द हैं समाप्य० पृष्ठ १६० देखो

जगत्स्वभावस्तावदनादिरनिधनो वेत्रासनझल्लरीमृदङ्गनिभः ।

पदच्छेद औरविभक्त्यर्थसहित इस वारहवां[1] सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवचनिकाशब्दशःहिन्दीअनुवाद

जगत्-स्वभावः१ तावत् अनादि :१ अनिधनः१ = संसारका स्वभावतो (= तावत्) आदि शून्य (= अनादि) नाशवर्जित वा नाश रहित (= अनिधन)

वेत्र–आसन–झल्लरी– = (जड़ वा तली में) वतेंके (चौकोर) आसनके (मध्यमें झाल्लरके (= झल्लरी) (और

मृदङ्ग–निभः१ (२) = ऊर्ध्वमें) मृदङ्ग वा मुरज के सदृश–समान है

(१) " भावयितव्यौ व्रतस्थैर्यार्थमितिशेषः" ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ४६१ (मुद्रित) अर्थात् तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके अनुसार इस सूत्रमें भावयितव्यौ इत्यादि वाक्य औरअधिक अनुवृत्ति करना योग्य है भावार्थ सूत्रका रूप इस प्रकार होजाता है कि जगत्कायस्वभावौ वा संवेग वैराग्यर्थम् इति भावयितव्यौ व्रतस्थैर्यार्थम्" अब यहां पर प्रश्न यह होता है कि इस अध्यायके प्रथम सूत्रमे व्रत की परिभाषा कही गई और तीसरे सूत्रमें यह कहा कि उस व्रतकी स्थिरता वा दृढ़ता के लिये पांच पांच भावना एक एक व्रत के लिये है पश्चात् ९, १०, ११ वां सूत्रमें भी उन व्रतों की ही स्थिरता के लिये अन्य भावनायें कही गई है इससूत्र में जो यह कहा है कि संवेग वैराग्य के लिये जगत् तथा शरीर का स्वभाव चिंतवने योग्य है तो संवेग वैराग्य का प्रकरण कहां से और कैसे उन व्रतों को स्थिरता के प्रकरणमे आगया इसके उत्तर मे तत्त्वार्थ श्लोक-वार्तिकके कर्त्ता कहते हैं कि अर्थ इस प्रकार है कि "संवेग वैराग्ये हि व्रतस्थैर्यस्य हेतू "= संवेग और वैराग्य ही व्रत की स्थिरताके कारण हैं इसलिये व्रतोंकी स्थिरताके कारण संवेग और वैराग्य के होने से यहां पर उन का कथन करते हुये उन के प्रधान निमित्त बतलाये गये हैं जिस से जीवको संवेग और वैराग्य के निमित्त मिलने पर संवेग और वैराग्य के द्वारा वह अहिंसा आदि व्रतोंको स्थिर कर सके

यह बात ध्यान देने योग्य है कि हिंसादिष्वि इत्यादि सूत्र ९ में दुःखमेव वा सूत्र १० मे "तत्स्थैर्यार्थम् भावयितव्यम्" मिलाकर और मैत्री प्रमोद आदि सूत्र ११ मे तत्स्थैर्यार्थम् भावयितव्यानि" जोडकर तथा जगत्काय आदि सूत्र १२ मे "तत्स्थैर्यार्थम् भावयितव्यौ" ऐसा वाक्य शेष मानकर अर्थ करना चाहिये जैसा कि तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक के निम्न लिखित वाक्यों से प्रगट है

सूत्र ९ के सम्बन्धमे "सकलव्रतस्थैर्यार्थं मित्थं च भावना कर्तव्येत्याह" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (मुद्रित) पृष्ठ ४६०

सूत्र १० के सम्बन्ध में "हिंसादिसकलमव्रतं दुःखमेवेति च भावनां व्रतस्थैर्यार्थमाह" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (मुद्रित) पृष्ठ ४६०

सूत्र ११ के सम्बन्ध मे :" हिंसादिविरतिस्थैर्यार्थं भावयितव्यानीति भावनाश्चतास्रोपि वेदितव्या " तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (मुद्रित) पृष्ठ ४६०

सूत्र १२ के विषय मे "भावयितव्यौ व्रतस्थैर्यार्थमिति शेषः" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (मुद्रित) पृष्ठ ४६१ ॥

(२) निभः–इस शब्दका जब अकेला प्रयोग करते है तब पुलिङ्ग होता है और अर्थ व्याज (बहाना) छल वा मिष होता हैं ॥ जब समासके अन्तमे आता है तब सम-तुल्य सदृक्ष-सदृश-सदृश्–समान के अर्थ मे आता है और तीन लिंगों मे से किसी लिंग में होसकता है जैसे पितृनिभ. मातृ-निभः (पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ २१९ देखो)

अनादि.अनिधन.–अनिधन समास के आरम्भ मे कभी नहीं आता जगत्स्वभावः तावत् अनादि अनिधनः ऐसे चार पद इस वाक्य मे है

अत्र जीवा अनादिससारे ऽनन्तकालं नानायोनिषु दु:ख भोजभोजं पर्यटन्ति। न चात्र किञ्चिन्नियतमस्ति। जलवुद्बुदोपम जीवित, विद्युन्मेघादिविकारचपला भोगसम्पद इत्येवमादि जगत्स्वभावचिन्तनात्संसारात्सवेगो भवति ॥ कायस्वभावश्च अनित्यता दु:खहेतुत्व

अत्र*जीवा. अनादि-ससारे अनन्तकालम् = इस (जगत) में (= अत्र) प्राणी आदि शून्य (ससारमें) अनन्तकाल तक
नाना-योनिषु दु:खं भोजम् भोजम् पर्यटन्ति। = अनेक जोनियोंमें क्लेशको भोग भोग चारो ओर भ्रमण करता है
न*च*अत्र*किञ्चित्*नियतम् अस्ति। जल-बुद्बुद = और [= च] इस [जगत] में कुछ निश्चित नहीं है। पानीके बुलबुलाके [बुद्बुद]
उपमम् जीवितम्, विद्युत मेघादि विकार- = सदृश जीवन है, बिजली [= विद्युत] बादलादिकके परिणाम वा पलटने
चपला: भोगसम्पद. इत्यादि एवम्*जगत्स्वभाव- = चचल वा क्षणभगुर भोगसम्पदा है इत्यादिक इस प्रकार लोक के स्वभाव के
चिन्तनात् ससारात् सवेग भवति ॥ = चिन्तवन करि ससार से भय-डर-वा भीरुत्व होता है
कायस्वभाव: च*अनित्यता दु:खहेतुत्वम् = तथा (= च) शरीर वा कायका स्वभाव अनित्य है, क्लेशका कारण है

निधन = नाश (पद्मकोष पृष्ठ २१३) इसलिये अनिधन का अर्थ नाश रहित वा नाश वर्जित हुआ, इसलिये आदि शून्य और नाश वर्जित शब्दार्थ अनादिरनिधान वाक्यका हुआ। अर्थात् ससार की आदि नहो है और नाना प्रकार के जीव अजीव पदार्थोंकी अपेक्षासे इसका नाश भी नहीं है वरन् प्रवाह रूपसे अनन्त काल तक इसका अस्तित्व चालू रहेगा ऐसा तात्पर्य जान पडता है ॥ मैंने इस वाक्य को देखकर यह विचारा कि मुद्रण यत्र की भूल से अनादिनिधन के स्थान में अनादिरनिधन होगया है परन्तु सर्वार्थ सिद्धि वृत्तिकी हस्त लिखित सात प्रतियोंमें 'अनादिरनिधन' है अत पाठ शुद्ध है राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २७४ में इसी सूत्रकी व्याख्यामें अनादिनिधन इस नावका वाक्यमें लिखा है ॥ जगत्स्वभाव तावत् आदिमत् अनादिमत् परिणाम द्रव्यसमुदायरूप ताल वृक्षसस्थान अनादिनिधन = जगतका स्वभाव तो आदि मान तथा अनादि मान परिणाम वाला द्रव्य का समुदाय रूप ताड के वृक्ष के सस्थान वत् अनादिनिधन है। जयचन्दजी का वचनिकामें तहा प्रथम ही जगत का स्वभाव जो यह लोक है सो अनादिनिधन वेत्रासन झालरी मृदगसारिखा आकार रूप है ऐसा अर्थ किया है) इसी सूत्र के अर्थमें प० सदासुखजीकृत अर्थप्रकाशिका तत्त्वार्थसूत्रकी लघुटीका, और कितने ही स्थानोंपर 'अनादिनिधन शब्द दियागया है (न कि अनादि निधन, पृथक् पृथक जो अशुद्ध है) अनादिनिधन = अनादि + अनिधन अर्थात् ऐसा कहते हैं कि अकार निषेध वाची दोनों शब्दोंमें लागू होता है ॥ हमारी समझमें अनाद्यनिधनका अधिकतम उच्चारण करते २ अनादिनिधन अपभ्रश हो गया क्योंकि आलापपद्धतिग्रन्थमें श्लोक है कि अनाद्यनिधन (= अनादि + अनिधन) द्रव्ये स्वपर्याया प्रतिक्षणम् = अनादि और नाशरहित द्रव्यमें अपने स्वभावके अनुकूल क्षणक्षणमें पर्यायें उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोल वज्जले ॥१॥ = जलमें जलकी कल्लोल सदृश उपजती है और विनशती हैं इसका फल यह निकला कि समासान्त पदमें तो अनाद्यनिधन ठीक है और सधिरूपमें 'अनादिरनिधन ठीक है ॥ खाचातानी करके अनादिनिधन का भी ठीक मान लेते हैं ॥

दीनानुग्रहभावः कारुण्यम् । रागद्वेषपूर्वकपक्षपाताभावो माध्यस्थम् । दुष्कर्मविपाकवशान्नानायोनिषु सीदन्तीति सत्त्वा जीवाः । सम्यग्ज्ञानादिभिः प्रकृष्टा गुणाधिकाः । असद्वेद्योदयापादितक्लेशाः क्लिश्यमानाः । तत्त्वार्थश्रवणग्रहणाभ्यामसम्पादितगुणा अविनेयाः । एतेषु सत्त्वादिषु यथासंख्यं मैत्र्यादीनि भावयितव्यानि ॥

दीन-अनुग्रह-भावः[१।१] कारुण्यम्[१।।।१] =क्लिश्यमान वा दुःखित(=पुरुष)निमें उपकारका परिणाम सो कारुण्य है
राग-द्वेष-पूर्वक-पक्षपात-अभावः[१।१] =अनुराग और दूषणजन्य[=पूर्वक]सहकारिता की अविद्यमानता वा न होना [=अभाव]
माध्यस्थम्[१।।।१] दुष्कर्म-विपाक- =सो माध्यस्थ है अथवा माध्यस्थ उदासीनता वा उपेक्षा है । बुरे कर्मके फल वा उदयके
वशात्[५।१] नानायोनिषु(१)[७।३] सीदन्ति(२) T =वशसे अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हैं [=सीदन्ति] अर्थात् दुःख पाते हैं क्लेश भोगते हैं
इति*सत्त्वाः[१।३] जीवाः[१।३] सम्यग्ज्ञानादिभिः[३।३] =ऐसे सत्त्वा-जीव-प्राणी वा चेतना हैं-सम्यग्ज्ञानादि [गुणों] करि
प्रकृष्टाः[१।३] गुणाधिकाः[१।३] असद्वेद्य-उदय- =प्रधान-मान्य वा वडे वे गुणाधिक हैं। असाता वेदनीय [कर्म] के उदयसे
आपादित-क्लेशाः[१।३] क्लिश्यमानाः[१।३], तत्त्वार्थ-श्रवण- =दुःख संयुक्त [अपादित] हैं सो क्लिश्यमान हैं। तत्त्वार्थके सुनने करि और
असम्पादितगुणाः[१।३] अविनेयाः[१।३] ग्रहणाभ्याम्[३।।।२] =ग्रहण करने करि गुण न पाने वाले जीव अर्थात् तत्त्वार्थके श्रवण और उपदेश ग्रहण करने मेंअयोग्य ऐसे मिथ्या द्रष्टि हठग्राही बुरे अशिक्षित जन [=अविनेय] अविनेय वा अविनय हैं
एतेषु[७।३] सत्त्वादिषु यथासंख्यम् मैत्री-आदीनि भावयितव्यानि =इन जीवादिक[चारों]में क्रमानुसार मैत्री आदिक(चार)अर्थात् पहिले को पहला दूसरे को दूसरा तीसरे को तीसरा चौथे को चौथा भावने योग्य है वा बारम्बार चितवन किये जाने योग्य है

---

(१) योनिषु-योनि शब्द पुल्लिग और स्त्रीलिंग दोनों है (देखो पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ ११२ अमरकोष १६ वर्ग ७६वां श्लोक)।

(२) सीदन्ति सात अर्थों मे से यहां पर (क) जाते है (ख) दुःख वा क्लेश उठाते हैं दो अर्थ मे है॥ सद्-प्रथम गणका वा कुछ वि.ानों के मतानुकूल छठवां गणका परस्मैपद अकर्मक धातु है इसका 'स्' प्रथममें 'प्रति' उपसर्ग के अतिरिक्त यदि कोई उपसर्ग आवै तो 'ष्' मे परिवर्तित हो जाता है जैसे निषीदति=वह बैठताहै। सद् का रूप विना किसी नियमके सीद् हो जाताहै.पीछे क्रियाके प्रत्ययलगाये जाते है जैसे सीद्+अ+अन्ति, इस का प्रथम अ गिरा दिया जाता है यदि अगले प्रत्यय में अ हो इस लिये सीद्+अ÷अन्ति=सीदन्ति होगया॥

सर्वसत्त्वेषु मैत्री, गुणाधिकेषु प्रमोदः, क्लिश्यमानेषु कारुण्य, अविनयेषु माध्यस्थमित्येव भावयत पूर्णान्यहिंसादीनि व्रतानि भवन्ति ॥ पुनरपि भावनान्तरमाह—

॥ जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥

सर्व-सत्वेषु[३] मैत्री[१], गुणा-अधिकेषु[३] प्रमोद [१] =सकल [साधरण] जीवों में मित्रता वा सौहार्द (सम्यग्ज्ञान-चारित्रादिक) गुणोंमें (अपनेसे) प्रधान-अधिक मुख्य बड़े (पुरुष)निमें प्रमोद-प्रहर्ष, बहुत आनद

क्लिश्यमानेषु[३] कारुण्यम्, अविनयेषु[३] माध्यस्थम्[१] इत्येव* =सतापित वा दु खित (जनों) में करुणाभाव तत्त्वार्थके उपदेशको ग्रहणकरनेमें असमर्थ हठग्राही मिथ्यादृष्टिजीवोंमें उदासीनता वा उपेक्षा इस प्रकार

भावयत[५] [१] अहिंसादीनि[३] व्रतानि[३] पूर्णानि[३] भवन्ति =भावना करने से वा भावना करने वालेके अहिंसादिक (पाच) व्रत पूर्ण होते है

पुन*अपि*भावना-अनन्तरम्[१] आह फिर भी अन्यभावना (अग्रिम सूत्रमें आचार्य) कहते हैं कि

जगत्कायस्वभावौ वा सवेग वैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥

=वा जगत्काय स्वभावौ सवेग वैराग्यार्थम् (भावयितव्यौ)

सूत्रार्थः—वा-जगत्-काय-स्वभावौ[१] सवेग-अर्थम्[१] =अथवा ससार तथा देह (दोनों) का स्वभाव (प्रत्येक) सवेगके लिये

वैराग्य-अर्थम्[१] भावियितव्यौ[१] =और वैराग्यके लिये भावने योग्य है अर्थात् ससारका स्वरूप सयोगके लिये तथा निर्वेद (=वैराग्य) केलिये और शरीर का स्वरूप सवेग के लिये और निर्विण्ण (=वैराग्य) के लिये वारम्वार चिन्तवने योग्य है, भावने योग्य है

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इस सूत्रमे वा के स्थानमे च है शेष सूत्रका एकसा पाठहै है वा का अर्थ अथवा हमारी सम्प्रदाय में कियाहै और च शब्दका अर्थ और-तथा शब्दकरि अन्य सम्प्रदायवालोंने इस प्रकार कियाहै कि और (=च)जगत्कायका स्वभाव सवेग वैराग्य केलिये भावन योग्यहै अर्थात् मैत्रीआदिक सत्त्वादिकमें (सूत्र ११) भावन योग्यहै और (=च जगत्काय स्वभाव सवेग वैराग्य के लिये भावन योग्य है (सूत्र १२) ऐसे चशब्द दोनो सूत्रोंको मिलादताहै ॥

(क) मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि च (यथासंख्यं) सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमान-अविनयेषु (तत्स्थैर्यार्थम् भावयितव्यानि)

(ख) मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानिच[यथाक्रमं]सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमान-अविनयेषु[भावयतःपूर्णान्यहिंसादीनि व्रतानि भवन्ति]

(ग) मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानिच [यथासंख्यं] सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमान-अविनयेषु (तत्स्थैर्यार्थम भावयेत्)

सूत्रार्थः-[क]च*मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि १।।। ३ = और (=च) मित्रता-प्रहर्ष-दयालुता वा अनुग्रहता-उदासीनता

यथासंख्यं-सत्त्व-गुणाधिक- = क्रमानुसार वा अनुक्रमसे प्राणियोंमें-गुणोंमें श्रेष्ठ वा प्रधानपुरुषोंमें

क्लिश्यमान- अविनयेषु ७। ३ = दुःखितजनोंमें, पीडितोंमें, वा क्लेशसंयुक्तोंमें-मिथ्यादृष्टियोंमें अथवा तत्त्वार्थके उपदेशको ग्रहणकरनेमें अयोग्य पुरुषोंमें

तत्-स्थैर्यार्थम् १।।। १ भावयितव्यानि १।।। ३ = उन (अहिंसादिक पांच व्रतों) के स्थिरताके लिये भावने योग्य हैं वा बारम्बार चिन्तवन किये जाने योग्यहैं अर्थात् साधारण जीवोंमें मित्रता रखना सो मैत्री भावना है,जो गुणोंमें अधिक हों उनमें प्रमोद रखना(उनको देखते ही प्रणामकरि मुखकी प्रसन्नताकरि नेत्रोंका आल्हादन करि रोमांचहोनेकरि स्तुति,भाषण नामकीर्तनादिकरि अन्तरगतभक्ति प्रगट करना सो) प्रमोद भावनाहै ।। जो जीव रोगादिक से ग्रसित पीड़ित वा दुःखित हों उन पर करुणा बुद्धि रखना, उनके दुःख दूरहोने वा करनेका अभिप्राय रखना सो कारुण्य भावनाहै;और जो जीव तत्त्वार्थ के उपदेशको ग्रहण करने योग्य नहीं ऐसे अविनयी जीवोंमें राग द्वेष रहित मध्यस्थ वा उदासीन भाव रखना सो माध्यस्थ भावना है ।।

(ख)मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि१।।। ३ च*यथाक्रमम् सत्त्व- =तथा सौहार्द-अधिक आनंद-करुणाभाव-उपेक्षा क्रमसे साधारण जीवोंमें

गुणाधिक-क्लिश्यमान-अविनयेषु ७। ३ भावयतः ५। १ (६। १) = बड़े गुणियोंमें,दुःखियोंमें,विनय शून्यों में भावना करने से अथवा(१)भावनाकरने वालेके

पूर्णानि १।।। ३ अहिंसादीनि १।।। ३ व्रतानि १।।। ३ भवन्ति T = सम्पूर्ण अहिंसादिक (पांच) व्रत होते हैं

(ग) तत्-स्थैर्यार्थम् १।।। १ = (मैत्री इत्यादि साधारण जीवोंमें इत्यादि)उन (पांच व्रतोंके)दृढ़ताकोलिये

भावयेत् T = भावना करै (=भावयेत्)

(१ भाव' शब्दके राग, आशय अवस्था, मत,पदार्थ, सचाई जन्म, विश्व, पंडित, इत्यादि २७ अर्थ हैं (वैद्यकोश पृष्ट ५२७)। 'भावयत ' शब्द भावयत् की पंचमी विभक्ति एक वचन पुल्लिंगहै'भावना करनेसे'बारम्बार चिंतवनकरनेसे वा बारबार विचार करनेसे ऐसा अर्थ है और इसीरूपमें भावयतः षष्ठी एक वचन पुल्लिंग हो सक्ता है'भावना वा विचार करने वाला ऐसा अर्थ है अतः अनुवाद पचमीऔर षष्ठी दोनों विभक्तियोंमेकियागया है ॥

परेषादुखानूत्पत्त्ययभिलाषो मैत्री। वदनप्रसादादिभिरभिव्यज्यमानान्तभक्तिराग प्रमोद ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस ग्यारहवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

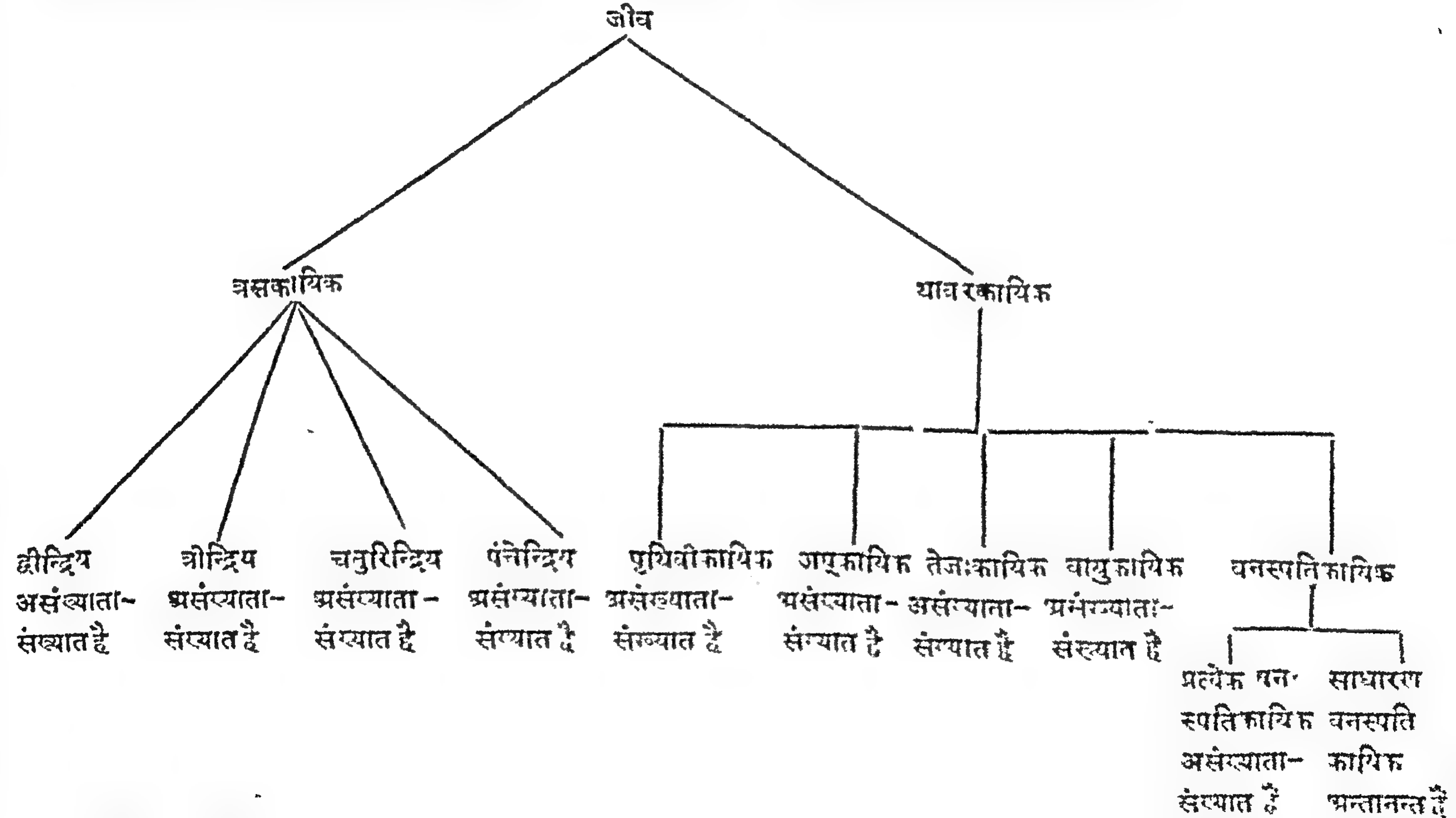
परेषाम्[६]'दु ख-अनुत्पत्ति-अभिलाष [१]'मैत्री[१]'॥	=अन्यके क्लेश न होनेकी इच्छा सो मैत्री वा मित्रता है वा दूसरोंके दु खकी उत्पत्तिका अभाव चाहना सो मैत्र्य वा मैत्री है ।
वदन प्रसादादिभि॰ [३]' अभिव्यज्यमान-	=कथन अथवा वचन(=वदन)करि तथा प्रसन्नता आदिक करि प्रगटहुआ(=अभिव्यज्यमान)
अन्तर्भक्तिराग॰[१]' प्रमोद॰[१]' (वदन-प्रसाद-	=अतरङ्गमें भक्तिका अनुराग सो प्रमोद वा प्रहर्ष है[मुखकी (=वदन)प्रसन्नताकरि(=प्रसाद)
आदिभि॰[३]'	=नेत्रों का आल्हाद करि रोमाच होने करि औरस्तुति अभीक्ष्ण-नाम कीर्तिनादिकरि
अभिव्यज्यमान-अ तर्भक्तिराग [१]'प्रमाद [१]')	=अन्तर्भक्तिके अनुराग का प्रगट होना (=अभिव्यज्यमान)सो प्रमोद प्रहर्ष-बहुत आन द है]

एकसा रूप इसले है कि अस् प्रत्यय पचमी और षष्ठी विभक्ति दोनों का चि ह है जब भावयत् शब्द में जोडा जाता है तो पचमी और षष्ठी दोनोंमें एक ही रूप बनता है जैसे भावयत् +अस्=भावतस्=भावियत (देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ट १५७ में) इस प्रकार हिंसादि पच पापोंमे दु ख की ही भावना करने से यहा प चमी विभक्ति में, इस रीति से भावना करने वाले यहा षष्ठी विभक्ति में भावयत का अनुवाद किया गया है। भावयितव्यम् (एक वचन) भावन योग्य है अर्थात् भावना चि तवन वा विचार कियेजाने योग्य है भावयितव्यौ दो वचन भावयितव्या बहु वचन हे स्थान स्थान में इनका प्रयोग है ॥ भावयन् भावना करता हुआ-विचार वा चि तवन करता हुआ ॥

(१,वदन=कथन, कहना (पद्मच द्र कोश पृष्ठ ३३५) और मुख के भी हैं (पद्मच द्र कोश पृष्ठ ३३५) इसलिये इस वाक्यके दो अथ एक यह दूसरा कोष्ठक देकर किया गया है ऊपर के ही वाक्य को दो बार करके कोष्ठक में लिख दिया है (सस्कृत) वृत्ति म केवल एक बार ही यह वाक्य है प्रथम तो आदिभि वाक्यका आदिककरि अनुवाद कर दिया है और वदन शब्द का अथ कथन, वचन किया है, कोष्ठकमें जो वदन शब्द है उसका अर्थ मुख किया है और आदिभि वाक्य का अर्थ तत्वार्थ राजवार्तिक (मुद्रित पृष्ठ २७३) म नयनप्रह्लादनेन रोमांचोद्भवेन स्तुत्य भीक्ष्णसंज्ञाकीर्तनादिभिश्च' किया हे मैंने भी उक्त वार्तिक के अनुकूल सस्कृत वाक्य का भाषानुवाद करके कोष्ठकमें इन दो कारणों से वदन का दूसरा अथ करके और आदिभि शब्द का उपरोक्त अर्थ करके समस्त वाक्य वदन से प्रमोद तक कोष्ठकम दे दिया है एक श्लोक बहुत मनोरजक 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र" में इस प्रकार दिया है कि ३०

क्षमे)ह सवसत्त्वानाम्, क्षमय(ह सर्वसत्त्वान्=सब जीवों के (अपराध में क्षमा करता हू और सम्पूर्ण जीवों से (अपने अपराध क्षमा कराता हू)
मैत्री मे सव सत्त्वेषु, वेर ममन केनचित् =सब जीवों पर मैं मित्रता की दृष्टि रक्खू मेरा वैर किसी प्राणी से नहीं है ।

(२) उत्तर देनेके प्रथम भांति भांतिके जीवोंका एक मानचित्र लिखते हैं जिससे उत्तर सरलतासे समझमें आ जावे और स्मरण रहे कि असंख्यात जगत श्रेणी, जगत प्रतरका असंख्यातवां भाग, असंख्येयलोक, असंख्यातासंख्यात एकार्थवाची शब्द हैं ॥



उपर्युक्त मान चित्रसे स्पष्ट है कि इसके अनुसार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंमें प्रत्येक वर्गकी संख्या असं-

पुनरपि भावनान्तरार्थमाह–

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च स-त्वगुणाधिकाक्लिश्यमानाविनयेषु ॥

अर्थात् सुदर स्त्रीके कोमल और सुदर शरीरके स्पर्शनसे रति सुख उपजता दीखता है सो सुख नहीं है भ्राति वा झूठा समझ से सुखरूप दीखता है ॥ वेदनाका उपाय है जैसे चाम–मास–रुधिर जब विकारसे कलुषपना वा अस्वच्छताको प्राप्त होकर खाजकी उत्कटता वा उग्रता करि बाधा करता है तब नखोंसे ठीकरीयोंसे पत्थर इत्यादिकसे अपने शरीर को खुजाता है गात्रको छेदनसे रगड़नेसे रुधिरसे लिप्त हुआ भी बहुत खुजला करि दुखही को सुख मानता है तैसे मैथुन सेवने वाला भी मोहसे दुखही को सुख मानता है जैसे कोई पुरुष चारों ओर अग्निकी ज्वालामे चलता अग्निके आतापको नहीं सहन कर सक्ता विष्टासे भरा हुआ महा दुर्गंध कुडमें जायपड़ता है तिसविष्टा में मस्तक पर्यंत डूब तिसको आताप रहित सुखमानि मरण करता है तैसे स्पर्शन इन्द्रियकृ आताप सहनको असमर्थ हुआ ससारीजीव स्त्रियोंकी दुर्गंध देहमें कामको आताप रहित सुख मानता अति तृष्णासे उत्पन्न हुआ तीव्रदुखका भोगता मरणकरि ससारमें नष्ट हो जाता है

पुन *अपि* भावनान्तर–अर्थम्'" आह I' =फिर (=पुन) भीअ न्य भावनाके लिऐ (आचार्य उत्तर सूत्र) कहते हैं कि

(१) (२)

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥ ११ ॥

इस सूत्रकी निम्नलिखित तानविधि से वाक्य शेषता पूर्ण कर सक्ते हैं

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें चशब्द नहीं है ॥ इसचकारका अर्थ यहां तथा और बहुरि वा पुन ' का है ॥ भावार्थ करनेमें आरम्भमे और वा तथा शब्द लगा दिया गया है यह च ९,१० सूत्रोंका ११ १२ सूत्रोंसे मिलाता है जैसाकि वृत्तिसे प्रगट होगा ॥ यथार्थमें दोनों सम्प्रदायोंमे इस सूत्रका अर्थ एकसा है ॥ २ ॥ श्वेताम्बर सम्प्रदायमें तथा दिगम्बर सम्प्रदायके तत्त्वार्थ राजवार्तिक (मुद्रित पृष्ठ २७३) और सर्वार्थ सिद्धि इतोयावृत्तिमे अविनयेषु वाक्य है शेष नौ दश तत्त्वार्थ सूत्र की प्रतियों का, तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक सहितका अविनेयेषु ही पाठ है, पाठ दोनों ही शुद्ध हैं और अर्थ भेद भी नहीं है क्योंकि विनय, का अर्थ सिखाने योग्य (पद्मचंद्र कोश पृष्ठ ३८४ मे) है इस लिय सप्तमी बहुवचन मे अविनेयेषुका अर्थ सिखाने अयोग्य का है और विनय का अर्थ विनययुक्तजन (पद्मच द्र कोश पृष्ठ ३५३ में) है इसलिय सप्तमी बहुवचन मे अविनयेषु का अर्थ विनय रहित जनका हुआ,यद्यपि विनय शब्दका अर्थ (पुल्लिंग वि+नी+अच् । शिक्षा- प्रणाम और अनुनय (नम्र) के हैं (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३५३) परन्तु इसी पृष्ठ मे वि+नी+कर्तरि अच् । विनय युक्त जनका भी अर्थ है ॥

परात्मसाक्षिकमवगन्तव्यम् (?) ननु च तत्सर्वं न दुःखमेव विषयरतिसुखसद्भावात् । न तत्सुखं वेदनाप्रतिकारत्वात्कच्छूकण्डूयनवत् ॥

पर(१)-आत्म-साक्षिकम् (२) = अन्य[के सम्बन्ध वा विषय] में अथवा अन्यके लिये अपने तुल्य(=साक्षिकं)

अवगन्तव्यम् = बोध किया जाना चाहिये अर्थात् ये हिंसादिक पांच पाप अथवा अव्रत दुःख के कारण हैं अथवा दुःखके कारणके कारण हैं ऐसा विचारकर जानना चाहिये कि जैसे वे मुझको व्यापते हैं अथवा मेरी आत्मामें चुभते हैं वैसे ही परके व्यापते चुभते हैं जैसे (क) बध बन्धन पीडन और अन्य दुःख मुझको अप्रिय अनिष्ट वा बुरे लगते हैं वैसे ही सम्पूर्ण जीवों को अप्रिय लगते हैं तथा दुःख उपजाते हैं (ख) जैसे मिथ्याभाषणसे मुझे दुःख होता है अर्थात् मेरे विषय में यदि कोई मिथ्याभाषण करे तो मुझे दुःख होता है ऐसे ही अन्य प्राणी को दुःखहोगा (ग) जैसे मुझे इष्ट पदार्थके वियोगसे दुःख होता है और पूर्वमें हुआ भी ऐसे ही यदि चोरी करके उनका इष्ट पदार्थसे वियोग कर देवेंगे तो उनको दुःख होगा (घ) जैसे कोई मेरी स्त्री का तिरस्कार करे तिससे मेरे तीव्र मानसिक पीडा होती है तैसे अन्य जीवोंको जिनकी स्त्रियोंसे व्यभिचार करके उनका अपमान और शील भंग किया जाता है होता है (ङ) जैसे आपके धनादिक परिग्रह नहीं प्राप्त होते वा प्राप्त हुआ तिसको नष्ट होते वांछा-रक्षा-शोक इत्यादि करि उपजा दुःख को प्राप्त होता है तैसे ही परिग्रह की वांछासे तथा परिग्रह के नष्ट होनेसे समस्त जीवोंको दुःख होता है तिससे हिंसादिक पांच पापों से निवृत्ति वा हटना ही जीवों को कल्याण कारी है ॥

ननु* च* विषय-रति सुख-सद्भावात् = पुनि प्रश्न-विषय रमण(=रति)में वा भोग (=विषय)विलासकरनेमें(=रति)व सुखकी विद्यमानताहोनेसे

तत्-सर्वम् न* दुःखम् एव* = वह सब(अव्रत) दुःख (के कारण वा कारण के कारण)ही नहीं है ?

न* तत्- सुखम् वेदना- = (उत्तर) वह (विषय रति) सुख नहीं है क्योंकि(वह विषय रति) व्याधि वा रोग का

प्रतिकारत्वात् कच्छू-कंडूयनवत्* = उपाय(=प्रतिकार)खाज की(=कच्छू)खुजली(=कन्डूयन) के समान है

(१) अत्र 'परत्रात्रसाक्षिक मितिपाठः तालपत्रपुस्तके वर्तते । परत्रात्मसाक्षिकमित्यन्य. पाठस्तृतीयपुस्तके वर्तते ।
परत्र-अत्र-साक्षिकम् इति पाठः तालपत्रपुस्तके वर्तते=परमे और अपने मे(=अत्र)समान ऐसापाठताडके पत्तोंपर लिखीहुई प्रतिमे विद्यमानहै
परत्र-आत्मा-साक्षिकम् इति । अन्य:पाठ. तृतीय-पुस्तके वर्तते=परमे और आत्मामे समान ऐसा अन्य पाठ तीसरी पुस्तक में विद्यमान हैं
(२) साक्षात् प्रत्यक्ष तुल्ययो· = साक्षात् यह एक नाम प्रत्यक्षका और तुल्यकाहै (अमरकोष नानार्थ वर्ग श्लोक २४४)

हिंसादयो दु खमेवेति भावयितव्या ॥ कथ हिंसादयो दु खम् ? दु खकारणत्वात् । यथा अन्न वै प्राणा इति ॥ कारणस्य कारणत्वाद्वा यथा धन प्राणा इति ॥ धनकारणमन्नपान अन्न पानकारणा प्राणा इति ॥ तथा हिंसादयोऽसद्वेद्यकर्मकारणम् । असद्वेद्यकर्म च दु खकारणमिति दु खकारणे दु खकारणकारणे वा दु खोपचार ॥ तदेतत् दु खमेवेति भावन

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस दशवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

हिंसा आदय १।३ दु खम१।१ एव*इति*भावयितव्या १।३, = हिंसादिक[पाच पाप]दु खही[दु ख] हैं इसप्रकार भावना वा चिन्तवन कियेजाने योग्य है

कथम्*हिंसा आदय १।३ दु खम्?दु ख-कारणत्वात्५।१ = कैसे हिंसादिक [पाच अव्रत] दु ख वा क्लेश हैं [उत्तर] क्य कि [हिंसादिक] दु खके कारण हैं

यथा*अन्नम१।१ वै* प्राणा १।३ इति* । = जैसे नाज ही(= वै) प्राण अर्थात् नाजको प्राणकहनाहै सो कारणको कार्य कहनाहै ऐसे हिंसादिक दु खके कारण हैं तिनको दु खही ऐसा कहनेसे यहा कारणमें कार्यका उपचार है

कारणस्य६।१ कारणत्वात५।१ वा*यथा*धन१।१ प्राणा १।३ = अथवा [हिंसादिक दु खके] कारणके कारण हैं जैसे धनहै सो प्राण हैं

इति*। धनकारणम् १।१ अन्नपानम् १।१ = ऐसे धन है कारण जिसका ऐसा अन्नपान है अर्थात् अन्नपानका कारण धनहै भावार्थ अन्न पान धनसे मोल आते हैं

अन्नपानकारणा १।३ प्राणा १।३ इति*, = अन्नपानहै कारण जिनके ऐसे प्राणहैं अर्थात् प्राणका कारण अन्नपानहै भावार्थ अन्न पान खा पी करि प्राण रहते नहीं तो शरीर से निकल जातहैं

तथा*हिंसा आदय १।३ असद्वेद्यकर्मकारणम १।१ = तैसे हिसादिक असाता वेदनीय कर्मका कारण है

असद्वेद्यकर्म१।१ च*दु खकारणम१।१ इतिदु खकारणे७।१ = और[= च]असाता वेदनीय कर्म दु खका कारणहै इसप्रकार दु खके कारण विषै

दु खकारण-कारणे७।१ वा*दु ख-उपचार १।१ । = अथवा दु खके कारणके कारणविषै दु खकी स्थापनाहै अर्थात् अन्नप्राणहै इस उदाहरण में दु खके कारणमें दु खकी कल्पनाहै और धन प्राणहैं इस दृष्टान्तमें दु खके कारणके कारणमें दु ख का उपचार है

तत्१।१ एतद्१।१ दु खम १।१ एव*इति*भावनम्१।१ = सो[= तद्]यह[= एतद्]हिंसादिक पाचपाप दु खही हैं इस प्रकार भावना वा चिन्तवन

तदर्जनरक्षणप्रयत्नकृताश्च दोषान् बहूनवाप्नोति नचास्य तृप्तिर्भवति इन्धनैरिवाग्नेः लोभाभिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानपेक्षो भवति प्रेत्य चाशुभां गतिमास्कन्दते । लुब्धोऽयमिति गर्हितश्च भवतीति तद्विरमणं श्रेयः ॥ एवं हिंसादिष्वपायावद्यदर्शनं भावनीयम् ॥

हिंसादिषु भावनान्तरप्रतिपादनार्थमाह — दुःखमेव वा ॥१०॥

तद्-अर्जन-रक्षण-प्रयत्न- कृतान् च* =उस (परिग्रह) के उपार्जन-रक्षण-जतन वा प्रयास करनेके
दोषान् बहून् अवाप्नोति न च अस्य =अनेक दोषोंको (परिग्रहधारी) प्राप्त होता है तथा(च) इस [परिग्रह] का
तृप्तिः न* भवति इन्धनैः इव* अग्नेः =अग्निको ईंधन के डालनेके समान संतोष नहीं होता है अर्थात् जैसे अग्निमें जितनाजितना ईंधन डालते जाओ उतनीही उतनी वह बढती जाती है उसी प्रकार जितना जितना परिग्रह अधिक होता जाता है उतनाही उतना उस परिग्रहकी वांछा बढती जातीहै
लोभ-अभिभूतत्वात् च* कार्य- =और (=च)लालचसे ग्रसित वा पीडित होनें (के कारण) से [परिग्रहधारी] कर्तव्य
अकार्य-अनपेक्षः भवति प्रेत्य* च* अशुभाम् =अकर्तव्यके विवेकके अवलोकनसे शून्य(=अनपेक्ष)हो जाता है और मृत्यु के अनन्तर
गतिम् आस्कन्दते । लुब्धः अयम् इति* =दुर्गति को प्राप्त होता है यह लोभी है इस प्रकार
गर्हितः च भवति इति* तद्-विरमणम् =भी निंदित होता है ऐसे उस(परिग्रह)का अकरण वा उपरम
श्रेयः एवम्* हिंसा-आदिषु =कल्याण दायक वा उत्तम है इस प्रकार हिंसा—अनृत—स्तेय—अब्रह्म—परिग्रह विषैं है
अपाय-दर्शनम् =वियोग-दुःख-नाश-वा अपत्ति का(—अपाय)अवलोकन-आलोक वा द्रष्टि (दर्शन)
अवद्य-दर्शनम् =(इनही हिंसादिक पांच पाप वा अव्रतोंमें) पाप वा निंदा(=अवद्य)की प्राप्ति,उपलब्धि[=दर्शन]
भावनीयम् हिंसा-आदिषु =भावने योग्य है वा बारम्बार चिंतवने योग्य है हिंसादिक में
भावना-अन्तर-प्रतिपादन-अर्थम् आह । =अन्य भावना का बोध कराने के लिये व कथन करने के लिये कहते हैं

दुःखमेव वा ॥१०॥ (हिंसादिषु) दुःखम् एव (इति तत्स्थैर्यार्थम् भावयितव्यम्)

हिंसा-आदिषु दुःखम् एव* वा* तत्स्थैर्यार्थम् =अथवा हिंसादिकमें दुःख ही दुःख है पांच भावनाओं के स्थिर रखनेके लिये
इति* भावयितव्यम् =इस प्रकार चिन्तवन वा बिचार किये जाने योग्य है

मोहाभिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानभिज्ञो न किञ्चित्कुशलमाचरति परागनालिङ्गनसङ्गकृतरतिश्चे हैव वैरानुबन्धिनो लिङ्गच्छेदनवधबन्धसर्वस्वहरणादीनपायान् प्राप्नोति । प्रेत्यचाशुभा गतिम-श्नुते, गर्हितश्च भवति, अतो विरतिरात्महिता ॥ तथा परिग्रहवान् शकुनिरिव गृहीतमांस-खन्डोऽन्येषा तदर्थिना पतत्रिणामिहैव तस्करादीनामभिभवनीयो भवति।

मोह-अभिभूतत्वात् १''' च *कार्य-अकार्य-	=और (=च) मोह पीड़ित वा ग्रस्त होनेसे कर्तव्य तथा अकर्तव्य का
अनभिज्ञ १'	= ज्ञान रहित (=अनभिज्ञ) अर्थात् क्या हमको करना चाहिये और क्या हमको नही करना चाहिये इस प्रकारके विवेकसे शून्य
न❀किञ्चित्❀ कुशलम् १''' आचरति Tच ❀परागना-	=कुछ भी कुशल रूप कार्य नहीं आचरता है और पर स्त्री(=परागना)के
आलिगन-सगकृत-रति १'' इह❀एव❀	=सेवनविषे वा सग विषै प्रीति करने वाला इस लोकमें ही
वैर-अनुबन्धिन. १' लिगछेदन-वध-बन्ध-सर्वस्व-	=वैरके बन्धानसे लिगछेदन-मारणबन्धन समस्त धन [स्व] की
हरण- आदीन् २' अपायान् २' प्राप्नोति ।	=लूटि किये जाने आदिककष्ट वा दु ख वा आपत्तियों को प्राप्त होता है
प्रेत्य*च*अशुभा २'' गतिम् २'' अश्नुते Tगर्हित १'च*भवति ।	=और [=च] परलोकमें दुर्गति को प्राप्त होता है और निंदित होता है
अत ❀विरति १'' आत्महिता १',तथापरिग्रहवान् १'	=इस लिये [अब्रह्म से] निवृत्ति अपना हित है । वैसे ही [तथा] परिग्रहधारी
इह❀एव * तस्कर-आदीनाम् ६' अभिभवनीय १'	=इस लोक में ही चोर आदिकके आपर्णीय वा लूटने योग्य वा पराजय के योग्य
भवति T शकुनि १'इव❀गृहीतमासखण्ड १'अ येषाम्६'	=होता है जैसे (=इव) मासके खड को लिये हुए पक्षी दूसरे
तद्-अर्थिनाम् ६' पतत्रिणाम् ६'	=उस (मास खड) के इच्छा करने वाले पक्षियों के (लूटने योग्य होताहै] अर्थात् जैसे मासके पिन्डयुक्त पक्षीको और पक्षी देखकर चोंच पजों से दु.ख देकर उस मास खडको लेलेते हैं तैसेही परिग्रह धारकोंको चोर ठग लुटेरे अन्य दुष्ट जन धनके ग्राहक क्लेश पहु चाते हैंऔर धन को लेलेते है ॥

वासितावञ्चितो विवशो वधबन्धनपरिक्लेशाननुभवति ।

(१)वासिता–वञ्चितः१।१ विवशः१।१ ,वधबन्धन– =[कपटकी]हथिनी द्वारा ठगाया गया वा भूलमें डालागया वा परवशहुआ, मारण बन्धन
परिक्लेशान्२।३ अनुभवति = अति(=परि)दुःखोंको सहनकरताहै अर्थात् जैसे हाथी पकड़नेवाले वनमें जाकर गढ़ा,खोदकर उसको जीर्ण और सड़ी सड़ी सोट पत्ते लकड़ियों इत्यादिकसे पाट देतेहै उस गढ़हा पटेहुए के ऊपर कल्पित निर्जीव हथिनी रख देते है मदनमत्त वा मदकरि व्याकुलित वनगज(बनी का हाथी) उस हथनीको देखकर उससे भोग करने वा विषय सेवने की लोलुपतामें फसकर उसके पास जाता है गढ़हा पै पद रखते ही गढ़ेमें गिर जाता है परवश होकर बहुत मारण-ताड़न बन्धन इत्यादिक दुःखों को सहन करता है तैसे ही पर स्त्री गामी मनुष्य भी जो मदकर व्याकुल है और जो पर स्त्रियों के विभ्रम-कटाक्ष विलास टेढी भृकुटियों से मोह को प्राप्त होता है अर्थात् उनसे ठगाया जाता है उनके प्रेम रूपी बन्धन में फंस कर नाना प्रकार के दुःखों को क्लेशों को उठाता है ।

(१)तथा अब्रह्मचारी मदविभ्रमोद्भ्रान्त चित्तो वनगज इव वासितावञ्चितो विवशो वधबन्धनपरिक्लेशाननुभवति (सर्वार्थसिद्धिवृत्तिसेउद्धृत) तथा अब्रह्मचारी मदविभ्रमोद्ग्रथितचित्तः वनगज इव वनितावञ्चितो विवशो वधबन्ध परिक्लेशादीन् अनुभवति ।(तत्त्वार्थराजवार्तिकसेउद्धृत) इन दोनों पाठोंके मिलान करनेसे ज्ञातहै कि तत्त्वार्थराजवार्तिकमे वासितावञ्चितोके स्थानमे वनितावञ्चितोहै । अनुवाद करते समय राजवार्तिक के आधार पर हमने यह लिखा था कि वासिता शब्द वनिता शब्द के स्थान मे अशुद्ध छपगया है क्योंकि वासितावञ्चितका अर्थ होगा जो सुगन्धित करि ठगायागया है कुछ तात्पर्य नही निकलता है जब उक्त टिप्पणी हमने अपने एक काशी के जैन विद्वान मित्रको दिखाई तो उन्होंने 'परंतु इस से'शब्दोंकोकुछ के प्रथम जोडकर हमारी टिप्पणीको स्वीकार कर लिया और इसके समर्थनमे" अर स्त्रीनिकरि ठिग्या हुवा वनका हस्ती कीज्यों वध बध परि क्लेशादिकनिकू भोगै है " अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ४०४ वाक्यका प्रमाण दे दिया । इस समय चार प्रतियें सर्वार्थसिद्धि-वृत्तिकी जो इन्द्रप्रस्थके मन्दिरों से प्राप्त हुई हैं हमारे पास है । छपने को देनेके प्रथम हमारे विचार मे आया कि अन्य प्रतियोंसे भी इस पाठ को मिलाले, मिलान करने का परिणाम यह हुआ कि दो मुद्रित प्रतियों का पाठ और चार हस्तलिखित प्रतियों का पाठ मिल गया तब निश्चय होगया कि सर्वार्थसिद्धिवृत्ति में जो वासिता' शब्द आया है वह ठीक हैं, कई कोशोमे जैसे पञ्चचद्रकोश इत्यादि देखे गये परन्तु उनमें वासिता' शब्द नही मिला, फिर वेयक्त सस्कृत आङ्गलकोश देखा तो उसके पृष्ठ ६५६ में 'वासिता' (=वाशिता) के (क) हथिनी और [ख] स्त्री, वनिता दोअर्थ निकले जिनका समर्थन अमरकोशके नानार्थ तेईसवां वर्गके पचहत्तरवां श्लोक के तृतीयपाद 'वासिता स्त्री करिण्योश्च' (वासिता यह एक नाम स्त्री और (=च) हथिनी का है होताहै अब प्रश्न यह है कि यहां पर 'वासिता' का अर्थ 'वनिता वा स्त्रीलें अथवा हथिनी लें, क्योंकि वाक्य में 'वनगज' कहा है इसलिये 'वासिता' का अर्थ हथिनी सगतप्रद है इसका समर्थन प० जयचन्दरायजी की वचनिका और श्रुतसागरी सूरिकी टीका के निम्न यथासख्य वाक्यों से होता है "तैसे ही अब्रह्मचारी मदविभ्रमकरि उद्भ्रान्त है चित्त जाका सो कपटकी हथनीके अर्थ भ्रमतैं खाडा में पडया जो हस्ती तिसकी ज्यों परवश हुवा वध बधन अति क्लेश आदिक भोगवे है ॥ सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ५३८,५३९ अब्रह्मचारी पुमान् मदोन्मत्तो भवति, विभ्रमोपेत उद्भ्रान्तमन. यूथनाथ इव करिणी विवंचितः परवशः सन् वधबंध परिक्लेशान् प्राप्नोति" इसलिये "हमने वासिता-वंचित.उपर्युक्त वाक्यका अनुवाद इसप्रकार कियाहै कि कपटरूप वा कपटकी हथनी द्वारा ठगायागया, छलागया, भूलमें पड़गया

हिसाया व्युपरम श्रेयान्॥ तथा अनृतवादी अश्रद्धेयो भवति इहैवच जिव्हाछेदादीन् प्रतिलभते । मिथ्याख्यानदु खितेभ्यश्च बद्धवैरेभ्यो बहूनि व्यसनान्यवाप्नोति प्रेत्यचाशुभा गति, गर्हितश्च भवतीति अनृतवचनात् व्युपरम श्रेयान् ॥ तथा स्तेन परद्रव्यापहरणासक्त सर्वस्योद्वेजनीयो भवति इहैव चाभिघातवधबन्धहस्तपादकर्णनासोत्तरौष्ठच्छेदनभेदनसर्वस्वहरणादीन् प्रतिलभते प्रेत्य चाशुभा गति,गर्हितश्च भवतीति स्तेयात् व्युपरति श्रेयसी ॥ तथा अब्रह्मचारी मदविभ्रमोद्भ्रान्तचित्तो वनगज इव

हिसायाम् व्युपरम श्रेयान्, तथा = हिसामें परित्याग श्रेष्ठ वा कल्याण दायक है तैसेही (=तथा)

अनृतवादी अश्रद्धेय भवति । इह*एव* च = असत्यवादी श्रद्धा वा विश्वासके योग्य नहीं होताहै। और(=च) इसलोकमेंही

जिह्वा-छेदादीन् प्रतिलभते । मिथ्या-आख्यान- = जीभ वा रसनाके छेदन आदिकको प्राप्त होता है (बहुरि) मिथ्या कथनसे

दु खितेभ्य च❀बद्धवैरभ्य बहूनि व्यसनानि अवाप्नोति = दु खित हुऐ (लोगों) से बहुवैर से अनेक दु खों को प्राप्त होता है

प्रेत्य❀च❀अशुभा [१]गतिम्, गर्हित च❀भवति । = बहुरि [=च] अन्य बुरी गति को प्राप्त होता है और (च) निंदित होता है

इति*अनृत, वचनात् व्युपरम श्रेयान् तथा❀ स्तेन = इस प्रकार मिथ्याभाषणसे विरक्त होना उत्तम है तैसे ही चोर जो

पर-द्रव्य-अपहरण-आसक्त सर्वस्य = अन्य की द्रव्य लेने में लागू वा अनुरक्त रहता है सबके (द्रव्यके विरह से)

उद्वेजनीय भवति। इह* एव च = दु ख उपजाने वाला वा (सबके) भय उपजावने वाला होता है और यहाही

अभिघात-वध-बन्ध-हस्त-पाद-कर्ण-नासा-उत्तरओष्ठ-छेदन- = चोट निहनन बन्धन हाथ पग कान नाक ऊपरके होठका छेदन

भेदन-सर्वस्वहरणादीन् प्रतिलभते । = भेदन सर्वधनके (सर्व-स्व) हरण आदिक को प्राप्त होना है और [=च]

प्रेत्य❀च❀ अशुभागतिम् गर्हित च* भवति । = मृत्यु के पश्चात [अन्य जन्म में] दुर्गतिको जावै है और निंदित होताहै

इति❀स्तेयात् व्युपरति श्रेयसी तथा अब्रह्मचारी = ऐसे चोरी से निवृति कल्याण कारी है उसी प्रकार कुशील पुरुष

मद-विभ्रम-उद्भ्रान्त-चित्त = मत्तता (=मद) की चेष्टा कर (=विभ्रम) व्याकुल चित्त सयुक्त

वनगज इव❀ वनके हाथीके समान

अभ्युदयनिःश्रेयसार्थानां क्रियाणां विनाशकप्रयोगोऽपायः(१) । अवद्यं गर्ह्यम् । अपायश्चावद्यं चापायावद्ये तयोर्दर्शनमपायावद्यदर्शनं (२) भावयितव्यम् ॥ क्व? इहामुत्र च । केषु? हिंसादिषु ॥ कथमिति चेदुच्यते—हिंसायां तावत्, हिंस्रो हि नित्योद्वेजनीयः सततानुबद्धवैरश्च इह च वधबन्धपरिक्लेशादीन् प्रतिलभते प्रेत्य चाशुभां गतिम् । गर्हितश्च भवतीति

अभ्युदय-निःश्रेयस-अर्थानाम् ६/३''' क्रियाणाम् ६/३'''	= सम्पदा वा समृद्धि (= अभ्युदय) और मोक्षके [= निःश्रेयस] लिये क्रियाओंके
विनाशक-प्रयोगः १/१' अपायः १/१', अवद्यम् १/१''' गर्ह्यम् १/१'''	; = नाश करने वाला उपाय (= प्रयोग) सो अपायहै। अवद्य है सो निंद्य वा निंदनीय है
अपायः १/१' च*अवद्यम् १/१''' च*अपायावद्ये १/२'''	= बहुरि अपाय और अवद्य (दोनों मिलकर) अपायावद्ये (द्विवचनान्त वाक्य हुआ)
तयोः ६/२''' दर्शनम् १/१'''	= तिन दोनों [अपाय तथा अवद्य] को उपलब्धि वा प्राप्ति होना
अपाय- अवद्य-दर्शनम् १/१''' भावयितव्यम् १/१'''	= सो अपाय अवद्य दर्शन है ऐसा विचार वा चिन्तवन किया जाना योग्य है
क्व* ? इह* अमुत्र* च*; केषु ७/३' ? ।	= कहां, ?यहां वा इस लोकमें और [च =] वहां वा दूसरे जन्ममें, कौन विषै
हिंसा-आदिषु ७/३' ॥	= हिंसा—अनृत—स्तेय—अब्रह्म—परिग्रह [इन पाँच अव्रतों] में
कथम्* इति* चेत् "उच्यते—हिंसायां ७/१''	= कैसी (उपलब्धि वा प्राप्ति) इस प्रकार प्रश्न होने पर कहा जाता है कि प्राण व्यपरोपणमें
तावत्* हिंस्रः १/१' हि* नित्य-उद्वेजनीयः १/१'	= तौ (= तावत्) हिंसक ही सदा उद्वेगरूप रहताहै अर्थात् चित्तमें व्याकुल रहता है
सतत-अनुबद्धवैरः १/१' च* इह* च*	= और (= च) निरन्तर [= सतत] वैरानुबद्ध होताहै और (= च) इस लोकमें (= इह)
वध-बन्ध-परिक्लेशादीन् २/३' प्रतिलभते T	= मारण-बन्धन-अर्थात् शत्रुता बधती रहती है बहुत [= परि) दुःखादिकको प्राप्त होता है
प्रेत्य* च* अशुभां २/१'' गतिम् २/१''; गर्हितः १/१' च* भवति T इति	= तथा [= च] अन्य जन्ममें बुरी गति को (प्राप्त होता है) और (= च) निंदित होता है। ऐसे

(१) अपायशब्दका अर्थ पद्मचंद्रकोश पृष्ठ ३३ में 'वियोग—नाश—दुःख-आपत्ति' कियाहै—राजवार्तिक तथा श्लोक वार्तिक में इसका अर्थ 'भय' भी किया है "अथवा पेह लौकिकादि सप्तविधभयं अपाय इति कथ्यते" (राजवार्तिक पृष्ठ २७२) "भय वा" श्लोकवार्तिक पृष्ठ मुद्रित (५६०) ॥ इन दोनों वार्तिकों के अनुकूल जयचंद्रजी वचनिका में तथा अर्थ प्रकाशिकामे इसका भय अर्थ किया है इसलिये अनुवाद में पांचों शब्द लाये गये है ॥

(२) दर्शन = उपलब्धि—प्राप्ति (पद्मचंद्र कोश पृष्ठ ७८, १८३) अतः अनुवाद में प्राप्ति लाये हैं ॥ अवद्य = निंदा—पाप (देखो पद्मचंद्र कोश पृष्ठ ४४)

(१) हिंसा-आदिपु-इह अमुत्र-अपाय-अवद्य-दर्शनम् ॥ ९ ॥

=हिंसा-आदिपु[७/३]-इह-अपाय दर्शनम्[१/१] अमुत्र-अवद्य दर्शनम्[१/१] इति॰भावयितव्यम्[१/१]

(क) हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म-परिग्रहेपु-इह-अपायदर्शनम् इति भावयितव्यम्

(ख) हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म-परिग्रहेपु-अमुत्र-अवद्य दर्शनम् इति भावयितव्यम्

सूत्रार्थ, हिंसा-आदिपु[७/३]	=हिंसा-मिथ्याभापण-चोरी-मैथुन-पदार्थसचय और ममता (करने) में
इह॰अपाय-दर्शनम्[१/१]	=इसलोकमें वियोग-नाश दु ख-आपत्ति-भयकी (=अपाय) उपलब्धि (=दर्शन) होती है
अमुत्र॰	=[तथा इन्ही हिंसादिकके करनेमें] परलोकमें-दूसरेजन्म में-मृत्यु के पश्चात् वा अनन्तर
अवद्य-दर्शनम्[१/१]	=निन्दा,पापकी प्राप्ति [=दर्शन] [पापसे निद्यगति वा दुर्गति की प्राप्ति] होती हैं
इति॰भावयितव्यम्[१/१]	=[उन पाचव्रतोंकी स्थिरताके लिये] इसप्रकार वारम्वार विचार वा चिंतवन किये जानेयोग्य है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस नवमासूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

अनुवाद में ऋषियों द्वारा नानवानोंद्वारा के स्थान म लासक्त हैं [देखो पद्मच द्र कोश पृष्ठ ३५४]

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रम इस सूत्रके दो पद हैं और अमुत्र शब्द तथा अपाय शब्द के मध्यम एक चकार है हम उसको नीचे लिखे भी देतेहैं इसके अतिरिक्त शेप पाठ एकसाहै हिंसादिष्विहामुत्रचापायावद्य दर्शनम्' इस चकारका अधिकता स दोनों सम्प्रदाय म इस सूत्र के अर्थ करनम भिन्नता प्रगट की है श्वेताम्बरसम्प्रदाय के अनुकुल अर्थ इस प्रकार है कि—

"हिंसादिपु पञ्चपु आस्रवेपु इह अमुत्र च= हिंसादिक पाचोंक आस्रवम इसलोकम तथा [=च] परलोक में

अपायदशनम् अवद्यदर्शनम् च भावयेत्=अपायदशन तथा [=च] अवद्य दशनको वार वार चिंतवनकरै [सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १५५

यह चकार जो इस सस्कृत भाष्यम अमुत्र और अपाय शब्दोंके मध्यम आयाहै वही च शब्द है और उसीका तथा एसा भापानुवाद कियाहै जो इस सूत्रके अमुत्र और अपाय शब्दके बीचम आयाहै ॥ प० ठाकुरप्रसादजी का भापानुवाद अक्षर प्रति अक्षर लिखत हैं— हिंसा तथा मिथ्या भापणादि पाचोंक आस्रवोंम इसलोकम तथा मृत्युक पश्चात् परलोकम अपाय दशन तथा अवद्य दशन की भावना करे अर्थात् हिंसादिक विपे इस लोकम तथा परलोकम भीश्रेय प्रणाश तथा निन्दायुक्त की दृष्टि रक्खै कि ये जीवके श्रेष्ठ कार्योंके नाशक तथा निन्द्य फ जनक हैं मेरा और इनका अर्थ एकसे तात्पर्य को प्रगट करता हे दिगम्बर सम्प्रदायम अर्थ ऐसा है कि— हिंसादिकम इस लोकम अपाय दशन को चिंतवन करे और परलोकम अवद्यके उपलब्धिकी भावनाकरे इसलिय इससूत्रका मेन ऊपर [क] और [ख] संख्याओंसे विभाग करदिया है ॥

किंचान्यद्यथाऽमीषां व्रतानां द्रढिमार्थं भावनाः प्रतीयन्ते तद्विपश्चिद्भिरिति भावनोपदेशः, तथा तदर्थं तद्विरोधिष्वपीत्याह—

हिंसादेष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम्॥ ९॥

(ख) रसना इन्द्रियके इष्टविषयोंके सम्बन्ध होनेपर उनमें प्रीति न करना और इसी इन्द्रियके अमनाज्ञोविषयों के मिलनेपर उनमें द्वेष न करना (ग) (घ्राण) नाक इन्द्रियोंके मनोज्ञविषयोंके प्राप्तहोनेपर उनमें स्नेह न करना और इसी इन्द्रिय के अनभिलषित विषयोंके आनेपर उनमें विरोध न करना [घ] नेत्र इन्द्रियके अभिलषित विषयोंके मिलनेपर उनमें प्रेम न करना वा इसी इन्द्रियके अनिष्ट विषयोंमें अप्रीति वा द्वेष न करना [ङ] ऐसेही कान इन्द्रियके मनोज्ञविषयोंके मिलनेपर उनमें राग न करना और इसी इन्द्रिय के अनभिलषित विषयोंके आनेपर वा भेंटा होनेपर उनमें अप्रेम न करना सो पृथक् पृथक् पांच भावना परिग्रहत्याग व्रतकी हैं यहां भावार्थ ऐसाजानना कि संसारमें परिग्रह हैं ते इन्द्रियोंके विषयों के सेवने वा भोगनेके और कषायोंके पुष्टकरनेके निमित्तहैं जिससे विषय कषायके गुणतथा दोष बारम्बार विचारनेसे परिग्रहत्याग व्रतकी स्थिरता रहती है

किंच*(१)अन्यत्[१।।।] यथा*अमीषाम्[६।।।](२) =कुछ (=किंच) और(=अन्यत्) है जैसे इन (=अमीषाम्)
व्रतानाम्[६।।।] द्राढिम्–अर्थम्[१।।।] =(अहिंसा–सत्य–अचौर्य–अस्तेय–ब्रह्मचर्य–अपरिग्रह) व्रतोंके स्थैर्य वा स्थिरता के लिये
भावनाः[१।।] =(प्रत्येक व्रतकी पूर्वोक्त पांच पांच) भावनायें
प्रतीयन्ते [।'] तद्—विपश्चिद्भिः[३] ३ इति❀ =उन(व्रतोंके) ज्ञानवानोंद्वारा अथवा जाननेवालों द्वारा निश्चयकीगई है (=प्रतीयंते)
तथा–तद्विरोधिषु[७'] अपि*तद्अर्थं[१।।।] =तैसे तिन (व्रतों) के विरोधी [पांच पापोंविषैंभी उन [व्रतोंके] [स्थैर्य के] लिये
भावना-उपदेशः[१'] इति*आह[1'] =भावनाका उपदेश इसप्रकार [अग्रिम सूत्रमें] कहते हैं कि

हिंसा दिष्विहामुत्रा पायावद्यदर्शनम् ॥९॥

[१] किञ्चअव्ययहै अर्थ समुच्चय कुछ और है परन्तु किञ्चित् अव्यय का अर्थ अधूरा वा छोटे काहै (देखोपद्मचन्द्र कोश पृष्ट १०८)(२) अमीषाम् षष्ठी बहुवचन नपुंसकलिंग अदस [=यह] शब्द का है [३] विपश्चित् [पुल्लिंग] विप्रकृष्ट चेतति = बहुत समझता है पण्डित ज्ञानवान्–ऋषि ऊपर के

४ योगानुवादेन मनोयोगिनो वाग्योगिनश्च मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः । काययोगिषु मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः। त्रयाणामपि योगिनां सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः । प्रमत्तसंयतादयः सयोगकेवल्यन्ताः संख्येयाः । अयोगकेवलिनः सामान्योक्तसङ्ख्याः ॥

योगानुवादेन ३। मनःयोगिनः १। च वाग्योगिनः १।	= योगकी अपेक्षाकरि मन योगवाले और बचनयोगवाले
मिथ्यादृष्टयः १। असंख्येयाः १। श्रेणयः १।	= मिथ्यादृष्टि असंख्यात जगतश्रेणी (परिमाण संख्यामें) हैं। (ये असंख्यात
प्रतर असंख्येयभागप्रमिताः १। काययोगिषु ७।	= जगत श्रेणी) प्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। काययोगवालोंमें
मिथ्यादृष्टयः १। अनन्तानन्ताः १। त्रयाणाम् ६। अपि	= मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त प्रमाण हैं। (मन वचन काय) तीनोंही
योगिनां ६। सासादनसम्यग्दृष्टि आदयः १।	= योगवालोंमें सासादन सम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती] से
संयतासंयत अन्ताः १। पल्योपम-असंख्येयभाग-	= संयमासंयमी पर्यंत पल्योपमके असंख्यातवे भाग
प्रमिताः १।	= प्रमाण हैं अर्थात् दूसरेमें ५२ करोड तीसरेमें एक अरब चार करोड, चौथेमे सात अरब, पांचवेमें तेरह करोड़ (जीव) हैं
प्रमत्त संयत आदयः १। सयोग केवलि अन्ताः १।	= प्रमत्तसंयमी [छठे गुणस्थानवर्ती] से लेकर सयोगकेवली पर्यंत
संख्येयाः १।	= संख्यात हैं अर्थात् ८९९९९३९९ हैं जिनका विशेष कथन कर चुके हैं
अयोगकेवलिनः १। सामान्य उक्तसंख्याः १।	= अयोग केवलज्ञानवाले संक्षेपसे [प्रथम] कही हुई संख्यावाले हैं ५९८ हैं

ख्यात जगतश्रेणी प्रमाण हैं। और यही पं० टोडरमलजीने ' थावर संख पिपीलिय ' इत्यादि गाथाका अर्थ किया है वह शब्दशः इसप्रकार है कि ' स्थावर जो पृथ्वी अप्, तेज वायु प्रत्येक वनस्पती ए पंच प्रकार तौ एकेंद्री बहुरि संख कौड़ी लट इत्यादि बेंद्री बहुरि कीडी मकोड़ा इत्यादि तेंद्री बहुरि भ्रमर माखी पतंग इत्यादि चोइन्द्रिय बहुरि मनुष्य देव नारकी अर जलचरादि तिर्यंच ते पंचेन्द्री ए जुदे जुदे एक एक असंख्यातासंख्यात प्रमाण हैं। बहुरि निगोदिया जो साधारण वनस्पति रूप एकेंद्री ते अनंतानंत हैं॥ '

त्यागशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते । स्त्रीरागकथाश्रवणत्यागः । तन्मनोहराङ्गनिरीक्षणत्यागः । पूर्वरतानुस्मरणत्यागः । वृष्येष्टरसत्यागः । स्वशरीरसंस्कारत्यागश्चेति चतुर्थव्रतस्य भावनाः पञ्चविज्ञेयाः ॥ अथ पञ्चमव्रतस्य भावनाः का इत्यत्रोच्यते—

॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥ ८ ॥

पूर्व–रत–अनुस्मरण–त्यागः १/१ =[ग] पूर्वकालमें (किया हुआ) मैथुन वा स्त्री प्रसंग [=रत] का स्मरण करनेका निषेध,
वृष्य–इष्ट–रस–त्यागः १/१ =[घ] पुष्टकारक वा कामोद्दीप करने वाले [=वृष्य] इन्द्रियोंको लालसा उत्पन्न करनेवाले रसोंका वर्जन
स्व–शरीर–संस्कार–त्यागः १/१ =[ङ] अपने शरीर को शृंगार युक्त करने का परित्याग
पंच१/३ भावनाः १/३ ब्रह्मचर्य्य व्रतस्य ६/१ भवन्ति T=ये पांच भावना ब्रह्मचर्य्य व्रत की हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस आठवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

त्यागशब्दः १/१ प्रत्येकं २/१ परिसमाप्यते T =त्याग शब्द पृथक् पृथक् [भावना] को लगाया जाता है [ऊपर देखो]
स्त्री–राग–कथा–श्रवण–त्यागः १/१; तद्–मनोहर–अंग– =स्त्रियोंमें राग उत्पन्न करने वाली कथा को सुनने का त्याग। उन [स्त्रियों] के मनोहर अंगों को
निरीक्षण–त्यागः १/१; पूर्व–रत–अनुस्मरण–त्यागः १/१, =[राग सहित] देखने का त्याग, पूर्व समय में [किया हुआ] मैथुन वा स्त्री प्रसंगकेसुधिका त्याग,
वृष्य–इष्ट–रस–त्यागः १/१, =पुष्ट कारक और इन्द्रियों को लालसा उत्पन्न करने वाले रसोंका त्याग,
च स्व शरीरसंस्कार–त्यागः १/१ इति * चतुर्थ–व्रतस्य ६/१ =और अपने शरीरको शृंगार युक्त करनेका त्याग, इस प्रकार चौथे [ब्रह्मचर्य] व्रतकी
भावनाः १/३ पञ्च १/३ विज्ञेयाः १/३ अथ * =भावनायें पांच विशेष रूप से जानने योग्य हैं [=विज्ञेयाः]। अब
पञ्चम–व्रतस्य ६/१ भावनाः १/३ काः १/३ इति * उच्यते T =पांचवां [परिग्रह त्याग] व्रतकी भावनायें क्या हैं ऐसे [प्रश्न होनेपर] यहां कहाजाता है कि

॥ (१) मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच ॥ ८ ॥

मनोज्ञ–अमनोज्ञ–इन्द्रिय–विषय– =इष्ट अनिष्ट [पांच] इन्द्रियों के [पांच प्रकारके] विषयोंमें
राग–द्वेष–वर्जनानि १/३ पञ्च १/३ [भावनाः १/३] =[यथा संख्य वा अनुक्रम से] लोलुपता वा प्रीति और द्वेषका त्यागसो पांच भावनायें

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम (पृष्ठ १५४) मेयहसूत्र नहीहै वरन् तीसरे सूत्र पर परिग्रह त्याग व्रतकी पांच भावनायें ऐसे है कि–

पचानामिन्द्रियाणा स्पर्शनादीनामिष्टानिष्टेषु विषयेषूपनिपतितेषु स्पर्शादिषु रागद्वेप-वर्जनानि पच आकिचन्यस्य व्रतस्य भावना प्रत्येतव्या ॥

अपरिग्रह—व्रतस्य भवान्ति T	=आकिञ्चन अथवा परिग्रहत्याग व्रतकी हैं अर्थात् आकिञ्चन्य व्रतकी स्थिरताके लिये स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु-श्रोत्र इन पाच इन्द्रियोंके इष्ट वा अभिलषित स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्द-रूप विषयोंके प्राप्त होनेपर लोलुपता का परित्याग और इन्हीं इन्द्रियोंके अनिष्ट स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्द-रूप विषयोंके प्राप्तहोने पर द्वेप वा विरोधका निषेध वा त्यागकरना सो पाचभावनायें हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इसआठवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदीअनुवाद

पञ्चानाम् इन्द्रियाणाम् स्पर्शन-आदीनाम्	=पाचइन्द्रियस्पर्शन-रसन(जीभ),घ्राण(=नाक),चक्षु (आख)श्रोत्र(कान)के
इष्ट-अनिष्टेषु स्पर्शआदिषु विषयेषु	=मनोज्ञ और अमनोज्ञ-स्पर्श-रस-गध-वर्ण-शब्द-रूप विषयोंके
उपनिपतितेषु राग-द्वेप-	=सम्बन्धहोनेपर वा प्राप्तहोनेपर(=उपनिपतितेषु)(क्रमसे) प्रीतिऔर विरोधका
वर्जनानि पञ्च आकिञ्चन्यस्य व्रतस्य भावना वेदितव्या	=परित्याग वा अभावहोना (वे) परिग्रहत्याग व्रतकी पाच भावनायें जाननाचाहिये अर्थात् स्पर्शनइन्द्रियके अभिलषित विषयोंके प्राप्तहोनेपरउनमें राग न करना और इन्द्रियके अनिष्ट विषयोंके आनेपर उनमेंविरोधनकरना

आकिञ्चनस्य पञ्चानामिन्द्रियार्थानां स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दानां मनोज्ञानां प्राप्तौ गार्द्ध्यवर्जनममनोज्ञानां प्राप्तौ द्वेषवर्जनमिति ॥

आकिञ्चनस्य पञ्चानाम् इन्द्रियअर्थानाम्	=आकिचन (व्रत) की पाच भावनायें अर्थात् इन्द्रियों के विषय (=अर्थ)
स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दानां मनोज्ञानां प्राप्तौ	=स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दों के इष्ट प्राप्त होने पर
गार्द्ध्य-वर्जनम् अमनोज्ञानाम्	=लोलुपता वा लुब्धता का त्याग वा अभावऔर अनिष्ट वा अनभिलषित(स्पर्श रस-गन्ध वर्ण शब्दोंके)
प्राप्तौ द्वेषवर्जनम् इति	=आनेपर विरोध का न होना इसप्रकार है

शून्यागारेषु गिरिगुहातरुकोटरादिष्वावासः । परकीयेषु च विमोचितेष्वावासः । परेषामुपरोधाकरणम् । आचारशास्त्रमार्गेण भैक्षशुद्धिः । ममेदं तवेदमिति सधर्मभिरविसंवादः

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस छटवें सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

शून्य–आगारेषु तरुगिरिगुहा–कोटरादिषु आवासः,	=रीते वा खाली घरोंमें पहाड़की गुफा वृक्षकी कुटियामें बसना
परकीयेषु च विमोचितेषु आवासः	=और (च) पर सम्बन्धी छोड़े हुए (स्थानों) में बसना
परेषाम् उपरोध–अकरणम्	=दूसरोंकी रुकावट वा वर्जन नहींकरना अर्थात् कोई किसी स्थानमें आवै तो उसको नहीं रोकना और यदि आप किसी स्थानमें जाय और अन्य कोई जन वहांपर होतो उसको हटाना नहीं । वास करनेके लिये उसको निषेध नहींकरना और आप वास करनेको किसी स्थानमें जाय और अन्य निषेधकरे तो उसके निषेधका वर्जन नहींकरना (तात्पर्य वहां न ठहरे)
आचार-शास्त्र–मार्गेण भैक्ष्य-शुद्धिः	=आचारांग शास्त्रके द्वारा भिक्षाकी शुद्धता (शुद्धि) और पावित्रतारखना अर्थात् शास्त्रविहित भिक्षाकी विधिमें न्यूनाधिक नहींकरना वा आचारांग शास्त्रके अनुकूल पवित्र भिक्षा ग्रहण करना
मम इदम् तव इदम् इति सधर्मभिः	=मेरा यह तेरा यह इसप्रकार साधर्मी भाइयोंसे (शिष्य–पुस्तक–उपकरण–स्थान और अन्य वस्तुओं के सम्बध में
अविसंवादः	=झगड़ा नहींकरना, वादविवाद नहींकरना, उलटी बातचीत नहीं करना

(१) विमोचितेषु—विमोचितेषु आगारेषु,क्योंकि आगरेषु नपुसक लिंग मे है इसलिये परकीयेषु और विमोचितेषु को नपुसक लिंग मे रक्खा है

(१)अविसंवाद=विप्रलम्भ-झगड़ा (देखा विप्रलम्भ शब्दको पद्मचन्द्रकोश के पृष्ठ ३५५ मे) व ाँ विसवाद का अर्थ झगड़ा लिखाहै इस लिये अविसंवाद का अनुवाद झगड़ा नही करना लिखा है ॥ विसंवाद=किसी पदार्थ के विषयमे उलटा कहना पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३६१) इसलिये उलटी बातचीत नहीकरना ऐसा अनुवाद अविसवाद का किया है ॥

इत्येता पञ्चादत्तादानविरमणव्रतस्य भावना ॥ अथेदानीं ब्रह्मचर्यव्रतस्य भवाना वक्तव्या इत्यत्राह

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरता-नुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच ॥७॥

इति॰एता [1/3] पञ्च–अदत्ता–आदान–विरमण–व्रतस्य[6/1] =ऐसेइतनी पाच बिनादियेहुए(पदार्थ)के ग्रहण न करनेरूप[=विरमण]व्रतकी
भावना॰[1/3], अथ–इदानीं =भावना है अर्थात् ये पाच भावनायें अचौर्य्यव्रतकी हैं । निरन्तर अब
ब्रह्मचर्य–व्रतस्य[6/1] भावना [1/3] वक्तव्या [1/3] इति॰अत्र॰आह T =ब्रह्मचर्यव्रत की भावना कहने योग्यहैं ऐसे यहा (अग्रिमवचन) कहाजाताहै कि

(१)स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागा (२) पञ्च
=स्त्रीराग—कथाश्रवणत्याग –तन्मनोहराग निरीक्षणत्याग –पूर्वरतानुस्मरणत्याग –वृष्येष्टरसत्याग –स्वशरीर संस्कारत्याग पच (भावना) ब्रह्मचर्य्यव्रतस्य भवन्ति ।

सूत्रार्थ —स्त्रीराग–कथा–श्रवण–त्याग [1] =(१)स्त्रियों में रागउत्पन्न करने वाली कथाको सुननेका त्याग–
तद्‌मनोहर–अग–निरीक्षण–त्याग [1] (२ उन (स्त्रियों) के मनोहर अगों को [रागसहित] देखनेका त्याग

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमे यहसूत्र नहीहै उनके यहा पाचभावना जो इस अध्यायके तीसरे सूत्रकी हैं ऐसे हैं कि 'ब्रह्मचर्यस्य स्त्रीपशुपण्डकसंसक्तशयनासनवर्जन रागसंयुक्तस्त्रीकथावर्जन स्त्रीणां मनोहरेन्द्रियालोकनवर्जन पूर्वरतानुस्मरणवर्जन प्रणीतरसभोजनवर्जनमिति
ब्रह्मचर्यस्य—स्त्री पशु–पण्डक–संसक्त– =ब्रह्मचर्यकी(स्थिरताके लिये भावना)(क)स्त्री पशु नपुंसक (पण्डक)के सम्बन्ध वाले,(=संसक्त)
शयनआसन–वर्जन राग–संयुक्त–स्त्रीकथा–वर्जन=शय्या [=शयन] आसन–वर्जन (ख) रागयुक्त स्त्रियोंकी कथा का वर्जन वा निषेध
स्त्रीणाम् मनोहर–इन्द्रिय–आलोकन वर्जनम् =(ग) स्त्रियोंकी सुन्दर इन्द्रियोंके दर्शनका निषेध–
पूर्व–रत–अनुस्मरण–वर्जनम् =(घ)पूर्वकालकी मैथुन(=रत)वा रमण(=रत)वा स्त्रीप्रसंग(=रत)की सुधिका त्याग याछोडना,
प्रणीत रस—भोजन—वर्जनम् इति =(ङ)अतिपुष्टकारक वा कामोत्पादक रसवाले[=प्रणीतरस]भोजनका निषेध वा अभाव ऐसे हैं
इन पाच भावनाओं को ऊपरके सातवा सूत्र की भावनाओं से मिलान करने से प्रगट है कि स्वशरीर संस्कार त्यागके स्थानमें "स्त्रीपशुपण्डकसंसक्त शयनासन वर्जन" है शेषचार भावनायें तात्पर्यमे मिलती हैं ॥२॥ त्यागा अधिकतम पुस्तकोंमे जैसे राजवार्तिक और तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक इत्यादिकमे यही शब्द आयाहै परन्तु किसी किसी (जैसे ज्ञानचन्दजी मुद्रित तत्वार्थ सूत्रमें) परित्यागा आया है ॥ अशुद्ध तो नहीं है परंतु अधिकहै क्योंकि राज वार्तिक पृष्ट २७२ मे पूर्वरता नुस्मरण परित्याग लाये हैं सूत्र तो है कि अक्षर अल्पसे अपहा अर्थ बहुत और सारभूतहो ।

क्रोधप्रत्याख्यानम् । लोभप्रत्याख्यानम् । भीरुत्वप्रत्याख्यानम् । हास्यप्रत्याख्यानम् । अनुवीचिभाषणं चेत्येताः पञ्चभावनाः सत्यव्रतस्य ज्ञेयाः ॥ अनुवीचिभाषणं निरवद्यानुभाषणमित्यर्थः ॥ इदानीं तृतीयस्य व्रतस्य का भावना इत्यत्राह—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्षशुद्धिसद्धर्माविसंवादाःपंच॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस पंचम सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद,

क्रोध–प्रत्याख्यानम् १/१ लोभप्रत्याख्यानम् १/१	=क्रोधका त्याग, लालचका छोड़ना
भीरुत्वप्रत्याख्यानम् १/१ हास्यप्रत्याख्यानम् १/१	=भयका अभाव, हंसीका त्याग वा तिरस्कार
अनुवीचिभाषणम् १/१ च*	=और (=च) तत्त्वानुकूल आभाषण (श्लोकवार्तिकसे यहअर्थ लियागयाहै)
इति*एताः १/३ पञ्चभावनाः १/३ सत्यव्रतस्य ६/१ ज्ञेयाः १/३ ॥	=ऐसे ये पांच भावना सत्य व्रतकी जानना चाहिये
(१)अनुवीचिभाषणं १/१ निरवद्य–अनुभाषणम् १/१ इति* अर्थः १/१	=अनुवीचिभाषणसो पापरहित(आगमके)अनुकूल(=अनु)बोलनाऐसे अर्थमें है
इदानीं* तृतीयस्य ६/१ व्रतस्य ६/१ काः १/३ भावनाः १/३	=अब तीसरे (अचौर्य) व्रतकी क्या भावना है
इति*अत्र*आह T	=इस प्रकार (प्रश्न होने पर) यहां (अगला सूत्र) कहा जाता है कि—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्य(२)शुद्धिसधर्माविसवादाः पञ्च(३) ॥ ६ ॥ अर्थात्

(१)अनु=अनुसार–अनुकूल-अनुसरण–वीची–वीचि वा विचि (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३५०,३६२)=तरंग,लहर वा किरणकेहैं यहाँपर अनिंद्य (सभाष्य–तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ१५४ देखो) निरवद्य–निष्पाप पापरहित [सस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ ३४४]और तत्त्व(तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ २७१ देखो) के है इस लिये अनुवीचि भाषणका अर्थ अनिन्द्य भाषण (सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १५४ मे) निरवद्य वा निष्पाप अथवा पापरहित अनुभाषण (सस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ ३४४ मे) तत्त्व के अनुसार आभाषण वा तत्त्वानुकूलआभाष (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ४५६देखो। मे किया है ॥ अनुवीचिभाषण=अनुलोमभाषण-विचार्यभाषण (राजवार्तिक पृष्ठ २७१मे ऐसा अर्थ है) अनुवीचिभाषण=निष्पाप सूत्र, आगम वा शास्त्र के अनुकूल वचन बोलना भावार्थ जिनागम के अनुकूल वचन बोलना, अनुवीचि–इस समस्त को एक शब्द मान कर सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमे कई स्थानोंमे इसका अर्थ अनिन्द्य लिखा है (२) पुस्तकोंमे 'भैक्ष' भैक्ष्य दोनों शब्द आयेहैं दोनों ठीकहै यहाँ दोनों एकही अर्थमें है॥ (३) श्वेताम्बर सम्प्रदायमे यहसूत्र नहींहै येपांच भावना इस अध्यायके तीसरे सूत्रके अचौर्य्य व्रतकी है ॥ श्वेताम्बर सम्प्रदायमे पांच

=शून्यागार-आवास + विमोचितागार-आवास + पर-उपरोध-अकरण + भैक्ष्य शुद्धि + सधर्म-अविसंवादाः [१]' पञ्च [२]''

(भावनाः [३]''' अस्तेय-व्रतस्य [४]'''' भवन्ति)

सूत्रार्थ —(१)शून्य-आगार-आवास	=सूने [रीते-खाली] घर (स्थान) में रहना, बसना
विमोचित-आगार-आवास-	=[किसी के] छोड़े हुए घर वा स्थानमें रहना [=आवास]
पर-उपरोध-अकरण-	=अन्य का वर्जन वा रुकावट नहीं करना अर्थात् कोई किसी स्थानमें आवे तो उसको नहीं रोकना और यदि आप किसी स्थानमें जाय और अन्य वहांपर होतो उसको हटाना नहीं और वास करनेके लिये उसका निषेध नहीं करना और आप वास करनेको किसी स्थानमें जाय और अन्यकोई निषेधकरे तो उसके निषेधको वर्जन नहींकरे (तात्पर्य वहां न ठहरे)
भैक्ष्य-शुद्धि +	=भिक्षाकी पवित्रता(=शुद्धि) निर्दोषता (=शुद्धि) अर्थात् शास्त्रविहित भिक्षाविधिमें न्यूनाधिक नहींकरना वा आचारांगशास्त्रके अनुकूल पवित्र,निर्दोषभिक्षाका ग्रहण करना
सधर्म-अविसंवादाः [१]' पञ्च[२]'' भावनाः [३]'''	=साधर्मी भाइयोंमें उलटी बातचीत और झगड़ा नहींकरना ये पांच भावना
अस्तेय—व्रतस्य[४]'''' भवन्ति ।	=अचौर्यव्रत की होती हैं

भावना इस अस्तेय व्रतकी कही हैं वे इनभावनाओं से नहीं मिलती हैं वे इसप्रकारहैं कि—"अस्तेयस्यानुवीच्यवग्रहयाचनमभीक्ष्णावग्रहयाचनमेतावदित्यवग्रहावधारणं समानधार्मिकेभ्योऽवग्रहयाचनमनुज्ञापितपानभोजनमिति

अस्तेयस्य —अनुवीच्यवग्रहयाचनम्	=अचौर्यव्रतकी(भावना)(क) अनिंद्य (पदार्थ) का ग्रहण (=अवग्रह) तथा याचन,
अभीक्ष्ण—अवग्रह-याचनम्, एतावदित्यवग्रह-	=(ख) निरंतर ग्रहण तथा याचन (ग) इतनाही ऐसे (पदार्थ का) ग्रहणका
अवधारण	=निश्चय करना अर्थात् इतनाही हमारेलिये प्राप्त होगा ऐसे विचारपूर्वक पदार्थ का ग्रहण
समानधार्मिकेभ्योऽवग्रहयाचनम्	=(घ) समान धर्मियों से ग्रहण तथा याचन
अनुज्ञापितपानभोजनम् इति	=अनुज्ञापित (आज्ञादिये हुए पदार्थों का) पान तथा भोजन ऐसे हैं

(१) अगार और आगार दोनों शब्द ठीक हैं (प्रथमके लिये देखो अमरकोश वर्ग १२ श्लोक ५ दूसरे के लिये देखो पद्मचंद्रकोश पृष्ठ ५३) ॥

वाग्गुप्तिः । मनोगुप्तिः

(अर्थकी सुगमताके निमित्त इस सूत्र को इस प्रकार लिखते हैं कि—)
वाग्गुप्तिर्मनोगुप्तिरीर्यासमितिरादाननिक्षेपणसमितिरालोकितपानभोजनम्
(अहिंसा व्रतस्य) पंच (भावनाः) भवन्ति ॥

सूत्रार्थः—वाग्गुप्तिः [१।। ५] =वचनगुप्ति अर्थात् वचनकी प्रवृत्तिको भले प्रकार रोकना

मनोगुप्तिः [१।। ५] =मनो गुप्ति अर्थात् मनकी प्रवृत्तिको भले प्रकार रोकना

ईर्यासमितिः [१।। ५] =ईर्यासमिति अर्थात् चार हाथ पर्यन्त पृथिवीको देखकर यत्नाचार पूर्वक चलना

आदाननिक्षेपणसमितिः [१।। ५] =आदाननिक्षेपणसमिति अर्थात् भूमिको जीव रहित देखकर यत्नाचार पूर्वक वस्तुको उठाना वा रखना वा डालना

आलोकितपानभोजनम् [१।।। ५] =आलोकित पान भोजन अर्थात् आहार पानादिक में अन्तरंगकी ज्ञानदृष्टिसे वा नेत्रदृष्टिसे देख शोध कर भोजन पान करना

अहिंसाव्रतस्य[६।।। १] पञ्च[१।। ३] भावनाः(१)[१।। ३] भवन्ति - अहिंसा व्रतकी (ये) पांच भावना होती हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस चतुर्थ सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

वाग्गुप्तिः [१।। ५] =वचनगुप्ति अर्थात वचनकी प्रवृत्तिको भले प्रकार रोकना

मनोगुप्तिः [१।। ५] =मनोगुप्ति अर्थात् मनकी प्रवृत्तिको भले प्रकार रोकना

में निम्नलिखित भाष्य है "अहिंसायास्तावदीर्यासमिति मनोगुप्तिरेषणासमितिरादाननिक्षेपणसमितिरालोकितपानभोजनमिति ॥" अहिंसाया. तावत् ईर्यासमिति मनोगुप्ति एषणासमिति आदाननिक्षेपणसमिति. आलोकितपानभोजनम् - प्रथम = तावत्) अहिंसा (व्रत) की ईर्या समिति, मनोगुप्ति, एषणासमिति आदाननिक्षेपण समिति, आलोकितपानभोजन (ये पांच भावना) होती है । इन पर विचार करनेसे जान पड़ता है कि वचन गुप्तिके स्थानमें एषणा समिति है शेष चारों मिलती हैं ।

(१) भावना (स्त्री०) 'भाव ल्युट' होना-युच् । चिंता, सोचना वासना, विमर्श अर्थ में इस शब्द को सूत्र मे लाये है ॥ वैद्यकमे औषध के संस्कार विशेष को भी 'भावना' (स्त्री०) कहते है वह अर्थ यहाँ नही लिया गया है, और पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ २७३ मे इसको नपुंसकलिंगो मानकर (भू + णिच् + ल्यु) 'चालता नामी एक फल' यह अर्थ लिखा है इस अर्थ से भी यहां संबंध नही है । परन्तु भावन(त्रि०)(सबार्थी स्त्री०) के वैद्य कोश पृष्ठ ४२५ मे अठारह अर्थ दिये हैं उन मे से बारह अर्थ ऐसे हैं जिन मे भावन और भावना के वे ही अर्थ हैं जैसे सोचना इत्यादि ॥

सर्वार्थ-सिद्धि | अध्याय ७ सूत्र २

१२

ईर्यासमिति । आदाननिक्षेपणसमिति । आलोकितपानभोजनमित्येता पञ्चाहिंसाव्रतस्य भावना ॥ अथ द्वितीयस्य व्रतस्य का इत्यत्रोच्यते—

(१)क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच॥ ५ ॥

ईर्यासमिति १।।	=ईर्या समिति अर्थात् चार हाथ पर्यन्त पृथ्वीको देखकर यत्नपूर्वक चलना
आदाननिक्षेपणसमिति १।।	=आदाननिक्षेपण समिति अर्थात् भूमिको जीव रहित देखकर यत्नाचार पूर्वक वस्तु को उठाना वा रखना वा डालना
आलोकितपानभोजनम् १।।। इति *	=आलोकितपानभोजन ऐसे अर्थात् आहारपानादिक में अन्तरंगकी ज्ञानदृष्टिसे वा नेत्र दृष्टिसे देख शोधकर भोजनपान करना ऐसे
एता १।। पच–अहिंसाव्रतस्य ६।। भावना १।।	=ये पाच अहिंसाव्रतकी भावना हैं
अथ* द्वितीयस्य ६ (२)व्रतस्य ६ का १।।इति–अत्र–उच्यते	=अब दूसरे(सत्य)व्रतकी कौनसी भावना हैं ऐसे (प्रश्न पर) यहाकहाजाताहै कि

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषण च पञ्च ॥ ५ ॥

=क्रोध–लोभ–भीरुत्व–हास्यप्रत्याख्यानानि १।।। अनुवीचिभाषणम् १।।। च पचभावना १।। सत्यव्रतस्य ६।।। भवन्ति ।

क्रोध–लोभ–भीरुत्व–हास्यप्रत्याख्यानानि१।।।	=क्रोधका, लालचका, भयका, हसीका त्याग वा तिरस्कार
अनुवीचिभाषणम् १।।।च पच१।।भावना १।। सत्यव्रतस्य६।।।	=और (च) आगम वा शास्त्रके अनुकूल बोलना ये पाच भावना सत्यव्रत की
ज्ञेया १।।	=जानना चाहिये अर्थात् क्रोधका त्याग, लालचका अभाव, भयका अभाव, हसी का तिरस्कार और पाप रहित सूत्रके अनुसार वचन बोलना सो सत्यव्रत की पाच भावनायें जानना

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्ररूपमें नहीं है वरन् (तीसरे सूत्रके) भाष्यरूपमें ऐसे है कि — 'सत्य वचनस्यानुवीचिभाषणं क्रोधप्रत्याख्यानं लोभप्रत्याख्यानमभयत्वं हास्यप्रत्याख्यानमिति =सत्य वचनकी (पांचभावनायें) अनुवीचिभाषणम् (अनि घ भाषणम), क्रोधका त्याग, लालचका अभाव, अभयपना, हसी का छुडाव है "न्यनुवीचि' ऐसा पाठ राजवार्तिकमें अर्थप्रकाशिकामें सदासुखजीकी तत्त्वार्थ सूत्रभाषामें, प० पन्नालाल कृत भाषा इत्यादिकों में है। न्यनुवीची ऐसा पाठ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें जयचदजी कृतवचनिकामें नित्यपाठसग्रह इत्यादिकमें है ॥ अनुवीचि और अनुवीची दोनों शब्द ठीक हैं क्योंकि पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३६२ में वीची और वीचि विचितीनों शब्द एक ही अर्थ में हैं ॥ २ कृतशब्द नियमाव्रतमर्थ। पुल्लिंग नपुसकलिंग दोनोंहै (अमरकोशयहवर्गश्लोक २८)॥

१२

यथासंख्यमभिसम्बध्यते । देशतो विरतिरणुव्रतं सर्वतोविरतिर्महाव्रतमिति द्विधा भिद्यते प्रत्येकं व्रतम् ॥ एतानि व्रतानि भावितानि वरौषधवद्यत्नवते दुःखनिवृत्तिनिमित्तानि भवन्ति॥ किमर्थं कथं वा भावनं तेषामित्यत्रोच्यते–

यथासंख्यम् [१/१] अभिसम्बध्यते T	=[देशतः, सर्वतः के साथ अणु और महत् का] क्रमसे संबन्ध कियागया है अर्थात् देशतः के साथ 'अणु' शब्द को लगाना चाहिये और 'सर्वतः' के साथ 'महत्' शब्द का सम्बन्ध करना चाहिये
देशतः * विरतिः [१/१] अणुव्रतम् [१/१]	=(हिंसादिक पापोंसे) एक देश अथवा अल्परूप विरक्तता अणुव्रत है
सर्वतः * विरतिः [१/१] महाव्रतम् [१/१]	=(और इन्हीं हिंसादिकसे) सर्वथा, सर्वविधिसे विरक्तता महाव्रत है
इति * द्विधा * भिद्यते T प्रत्येकम् [१/१] व्रतम् [१/१],	=ऐसे दो प्रकार पृथक् पृथक् [=प्रत्येकं] व्रत भेदरूप कियेगये हैं [=भिद्यते] अर्थात् हिंसासे एक देश विरति, हिंसासे सर्वतः विरति, अनृतसे एकदेश विरति, अनृतसे सर्वतः विरति, स्तेयसे अंश रूपसे विरति, स्तेयसे सर्वथा विरति, अब्रह्मसे, अल्परूपसे विरति, अब्रह्मसे सर्व प्रकारसे विरति, परिग्रहसे थोड़े रूपसे विरति, परिग्रहसे सब विधिसे विरति, ऐसे अहिंसाव्रतके, अहिंसाअणुव्रत, और अहिंसा महाव्रत दो भेद हुए, सत्यव्रत के सत्य भाषण अणुव्रत तथा सत्य महाव्रत दोभेद हुए, अचौर्यव्रतके अचौर्य अणुव्रत, बहुरि अचौर्यमहाव्रत दोभेद हुए, ब्रह्मचर्यव्रतके ब्रह्मचर्य अणुव्रतऔर ब्रह्मचर्यमहाव्रत दोभेद हुए, परिग्रहत्यागव्रत के परिग्रह प्रमाण अणुव्रत और परिग्रहत्याग महाव्रत दो भेद हुये।
एतानि [१/३] व्रतानि [१/३] भावितानि [१/३]	=ये [पांच] व्रत भावना रूप किये गये अर्थात् वारम्बार चिन्तवन और अभ्यास कियेगये
वर-औषधवत् * यत्नवते [४/१] दुःख-निवृत्ति-	=श्रेष्ठ, औषधके समान, जतन वाले के लिये दुःख को दूर करनेके
निमित्तानि [१/३] भवन्ति T किम् [१/१] अर्थम् [१/१] कथं * वा	=कारण होते हैं, किसलिये अथवा [=वा] कैसे [कौनप्रकार]
भावनम् [१/१] तेषाम् [६/३] इति * अत्र * उच्यते T	=तिन (पांच पूर्वोक्तव्रतों)की भावना है ऐसे (प्रश्न होने पर) यहां (अग्रिम सूत्र) कहाजाता है कि

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंचपंच ॥३॥

तेषा व्रताना स्थिरीकरणार्थमेकैकस्य व्रतस्य पंचपच भावना वेदितव्या ॥

यद्येवमाद्यस्याहिंसाव्रतस्य भावना का इत्यत्रोच्यते—

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच ॥४॥

---

(१)तत्स्थैर्यार्थं भावना पंचपच ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ —तद्स्थैर्य—अर्थम् ६''' =उन अथवा पूर्वोक्त (व्रतों) की स्थिरता वा दृढताके लिये (निमित्त)
भावना ३'' पच पच ३''' ॥३॥ =[एक एकव्रतकी] पाचपाच भावनायें हैं अर्थात् [वारम्वार चितवन और कर्तव्य करना] है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इसतृतीय सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदीअनुवाद

तेषाम् ६''' व्रतानाम् ६''' स्थिरीकरणाय ४''' एक एकस्य ६''' = तिन व्रतोंके स्थिरकरनेके लिये प्रत्येक वा पृथक् पृथक्
व्रतस्य ६''' पचपच भावना ३'' वेदितव्या ३'' =व्रतकी पाच पाच भावना जानना चाहिये
यदि❀एवम्❀ =जो इस प्रकार है अर्थात् एक एक व्रत के स्थिर करने के लिये पाच पाच भावना हैं तो
आद्यस्य ६''' अहिंसाव्रतस्य ६''' भावना ३'' का ३'' =प्रथम के अहिंसा व्रत की भावनायें क्याहैं
इति❀अत्र❀उच्यते T =इस प्रकार (प्रश्न होने पर) यहा (अगला सूत्र) कहाजाताहै कि

(३ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पच(२ ॥४॥

=वाङ्मन गुप्ति—ईर्या—आदाननिक्षेपणसमिति—आलोकितपानभोजनानि ३''' अहिंसाव्रतस्य ६''' पचभावना ३'' (भवन्ति) ॥

---

(१) श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों में इस सूत्रका एकसा पाठ और एकसा अर्थ है, तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २७१ में इस सूत्रका संस्कृतमें इस प्रकार अर्थ किया है 'तस्य पच विधस्य व्रतस्यस्थैर्यार्थं एकैकस्य पच पच भावना वेदितव्या ॥ तस्य पचविधस्य व्रतस्य स्थैर्यार्थं एक एकस्य पच पच भावना; वेदितव्या =तिस पाच प्रकारके व्रतके स्थिर रखनके लिये एक एक व्रतकी पाच पाच भावना जानना चाहिये ॥

(२) स्थिरताके लिये स्थिरभावके निमित्त स्थिर करन के हेतु-स्थिर रखनके कारण दृढताके अर्थ ये सब एकार्थवाची वाक्य हैं।

(३) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें यह सूत्ररूपमें नहीं है अर्थात् इसको सूत्र नहीं माना है इसके स्थानमें सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र मुद्रित पृष्ठ १५४

(५) वेदानुवादेन-स्त्रीवेदाः पुंवेदाश्च मिथ्यादृष्टयोऽसङ्ख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः । नपुंसकवेदा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । स्त्रीवेदा नपुंसकवेदाश्च सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । प्रमत्तसंयतादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः संख्येयाः ।

ऐसे प्रमत्तसंयमीसे सयोगी तक ८९९९९३९९+५९८ अयोगी तीन न्यून नौ करोड़ हुये

वेद-अनुवादेन ३।१ स्त्रीवेदाः १।३ पुंवेदाः १।३ च = वेदकी अपेक्षासे स्त्री वेदवाले और पुरुष वेदवाले

मिथ्यादृष्टयः १।३ असंख्येयाः १।३ श्रेणयः १।३ = मिथ्यादृष्टि असंख्यात [जगत] श्रेणी [प्रमाण] हैं। वे [असंख्यात श्रेणी]

प्रतर-असंख्येय भाग = प्रतरके असंख्यातवे भाग

प्रमिताः १।३। नपुंसकवेदाः १।३ मिथ्यादृष्टयः अनन्तानन्ताः १।३ = प्रमाण हैं। नपुंसकवेदवाले मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं

स्त्रीवेदाः १।३ च नपुंसकवेदाः १।३ सासादनसम्यग्दृष्टि- = स्त्रीवेद और नपुंसक वेदवाले सासादनसम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती]

आदयः १।३ संयतासंयत-अन्ताः १।३ सामान्य-उक्त-संख्याः = से लेकर संयमासंयमी [पांचवे गुणस्थान वालों] तक संक्षेपसे [पहिले] कही संख्यावाले हैं अर्थात् "गुणस्थानवत् संख्या है" स० सिद्धि० वचनिका मुद्रित पृष्ठ ७४ ॥ भावार्थ-सासादनमें ५२ करोड़ हैं मिश्रमें १०४ करोड हैं असंयमी सात अरब हैं संयमासंयमी तेरह करोड हैं संभव है कि स्त्रीवेद और नपुंसक वेदियोंकी इतनी संख्या हो जाती हो ऐसी अवस्थामें पुरुष वेदी एक भी दूसरेसे पांचवे गुणस्थानमें न रहैगा क्योंकि तीनों वेदियोंकी संख्या कदापि अभी कही हुई संख्यासे अधिक किसी गुणस्थानमें नहीं हो सक्ती ॥

प्रमत्त संयत-आदयः १।३ अनिवृत्ति बादर अंताः १।३ = [स्त्रीवेद-नपुंसक वेदी] प्रमत्तसंयत आदि अनिवृत्ति बादर सांपराय ताईं

संख्येयाः १।३ = संख्यात हैं ॥ सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ मुद्रित ७४ । जयचन्द रायजीके

देश एकदेश । सर्व सकल । देशश्च सर्वश्च देशसर्वौ ताभ्या देशसर्वत । विरतिरित्यनुवर्तते । अणु च महच्चाणुमहती । व्रताभिसम्बन्धान्नपु सकलिङ्गनिर्देश

सूत्रार्थ —देशत * हिसा–अनृत–स्तेय–अब्रह्म–	=अश रूप से वा अल्प रूप से हिंसासे, असत्य भाषणसे, चोरीसे, मैथुनसे,
परिग्रहेभ्य [5] विरति [1] अणुव्रतम् [1]	= पदार्थ सचय अथवा ममतासे विरक्त होना अणुव्रत है
सर्वत * हिसा–अनृत–स्तेय–अब्रह्म–	=सर्वथा वा सर्व प्रकार वा सब विधि हिंसासे, मिथ्या भाषणसे, चोरीसे, स्त्री प्रसगसे,
परिग्रहेभ्य विरति [1] महत्–व्रतम् [1]	=वस्तु सचय अथवा ममत्वसे त्याग होना महाव्रत है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित द्वितीय सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकाशब्दश हिन्दीअनुवाद

देश [1] एकदेश [1] । सर्व [1] सकल [1],	=अश (देश) एक अश (से तात्पर्य) है सर्व समस्त है
देश [1] च* सर्व [1] च* देशसर्वौ [1]	=बहुरि देश और सर्व सो देशसर्वौ (ऐसा द्वन्द्व समास) हुआ
ताभ्याम् [3] देशसर्वत *	=तिन (देश तथा सर्व दो मिल्ने) से देश सर्वत (वाक्य) हुआ अर्थात् थोडे रूप से और सर्वथा सब प्रकार से अथवा अश विभाग-अल्परूप से और समस्त विधि से
विरति [1] इति* अनुवर्तते [1] अणु [1]	=विरति (=विरक्तता शब्द प्रथम सूत्रसे) अनुवर्तता है वा आता है
च* महत् [1] च,	=बहुरि अणु तथा महत्
अणुमहती [1]	=अणुमहती (नपुसकलिंगी दो वचनान्त वाक्य) हुआ
व्रत–अभिसम्बन्धात् [5]	=(प्रथम सूत्रसे) व्रत [शब्द] का सम्बन्ध [इस अणु–महत् के साथ] होनेसे
नपुसकलिंग-निर्देश [1]	=नपुसकलिंगमें [अणु–महत्‌का] कथन वा उपदेश है

= अल्परूपसे चोरीसे उपरम सो अचौर्यअणुव्रत है (घ) देशत अब्रह्मण विरति अणुव्रतम् =पर स्त्री प्रसगसे सर्वथा विरक्त होना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है (ङ) देशत परिग्रहात् विरति अणुव्रतम् =एक देश वस्तु सचय और ममतासे दूर होना सो परिग्रह त्याग अणुव्रत है (च) सर्वत हिंसाया विरति महाव्रतम् =सर्वथा हिंसा से विरक्त होना सो अहिंसा महाव्रत है (छ) सर्वत अनृतात् विरति महाव्रतम्=सब प्रकारसे झूठसे उपरम सो सत्य महाव्रत है (ज) सर्वत स्तेयात् विरति महाव्रतम्–सब प्रकारसे चोरीसे उपरम सो अचौर्य महाव्रत है (झ) सर्वत अब्रह्मण विरति महाव्रतम् =सब प्रकारसे मैथुनसे विरक्त होना सो ब्रह्मचर्य महाव्रत है (ञ) सर्वत परिग्रहात् विरति महाव्रतम्=सब प्रकारसे परिग्रहका छोड़ना सो परिग्रह त्याग महाव्रत है।

ननु च–षष्ठमणुव्रतमस्ति रात्रिभोजनविरमणं तदिहोपसंख्यातव्यम्। न। भावनाखन्तर्भावात्। अहिंसाव्रतभावना हि वक्ष्यन्ते। तत्र आलोकितपानभोजनभावना कार्येति॥ तस्य पञ्चतयस्य व्रतस्य भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ देशसर्वतोऽणुमहती[1,2,3] ॥२॥

दिये तो व्रत आस्रवके अधिकारमें क्यों कहे (उत्तर) आस्रवमें व्रत कर्मोंकी प्रवृतिके लिये हैं, आस्रवमें अव्रतोंसे अशुभ कर्मका आगमन होता है और व्रतों से शुभ कर्मोंकी प्रवृत्ति वा आगमन होता है परन्तु संवर प्रकरण में जहां व्रत गर्भित हैं वहां कर्मकी निवृत्ति (कर्मके आस्रवके रोकने) के लिये है।

ननु च* षष्ठम् ¹''' अणुव्रतम् ¹''' अस्ति T रात्रि–भोजन– =पुनि प्रश्न छठवां अणुव्रत है रात्रिमें अहारका

विरमणम् ¹''' तद् ¹''' इह* उपसंख्यातव्यम् ¹''' =त्याग (=विरमणम्) वह यहां गिनाजाना चाहिये।

न। =(रात्रि भोजन यहां गणनामें) नहीं (गिना जाना चाहिये)।

भावनासु ⁷''' अन्तर्–भावात् ⁵'' =क्यों कि (रात्रि भोजन त्याग) भावना विषैं गर्भित है।

अहिंसा व्रत भावना ¹''' हि* वक्ष्यन्ते T =अहिंसा व्रतकी भावना(=वार वार चिंतवन)ही कही जायेगी(देखो अध्याय७सूत्र४)

तत्र*आलोकितपान–भोजन–भावना ¹''' कार्या ¹''' इति* = तहां (इस अध्याय के सूत्र ४ में) देख सोध आहार भावना करना चाहिये

तस्य ⁶''' पंचतयस्य ⁶''' व्रतस्य ⁶''' भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम् ¹''' आह=तिस पांच की संख्या वाले व्रतके भेद जनावनेके लिये कहते हैं कि—

देशसर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥ = देशसर्वतः *अणुमहती ¹''' ॥२॥

देशतः *अणु ¹''' =देशतः * (हिंसा–अनृत–स्तेय–अब्रह्म–परिग्रहेभ्यः) अणु–व्रतम् ¹'''

सर्वतः*महत् ¹''' =सर्वतः (हिंसा–अनृत–स्तेय–अब्रह्म–परिग्रहेभ्यः विरतिः) महत्–व्रतम् ¹'''

(१) इस सूत्रका श्वेताम्बर तथा दिगम्बर संप्रदायोंमे एकसा पाठ और एकसा अर्थ है (२) अणु, और महत् व्रत शब्दसे सम्बन्ध रखनेके हेतुसे यहां नपुंसक लिंग एक वचन है और प्रथमा विभक्ति है (३) इस सूत्रमे दो स्थानों पर प्रथम सूत्र सपूर्णकी अनुवृत्ति है जैसा कि इस पृष्ठकी पंक्ति १६ और १७ से प्रगट है कि (क) देशत. हिंसायाः विरति. अणुव्रतम्=एक देश हिंसासे विरक्त होना सो अहिंसा अणुव्रत है ॥ख॥ देशत. अनृतात् विरति. अणुव्रतम्=अशरूपसे मिथ्या भाषण से विरक्त होना सो सत्य अणुव्रत है॥ ग॥ देशतः स्तेयात् विरति. अणुव्रतम्

नैष दोष –तत्र संवरो निवृत्तिलक्षणो वक्ष्यते । प्रवृत्तिश्चात्र दृश्यते हिंसानृतादत्तादानादि परित्यागे अहिंसा सत्यवचन दत्तादानादिक्रियाप्रतीते , गुप्त्यादिसंवरपरिकर्मत्वाच्च ॥ व्रतेषु हि कृतपरिकर्मा साधु सुखेन संवर करोतीति तत पृथक्त्वेनोपदेश क्रियते ।

अर्थात् उत्तमक्षमामें अहिंसा, उत्तम सत्यमें सत्य वचन, उत्तम शौच [= निर्लोभ] में अचौर्य, उत्तम ब्रह्मचर्यमें ब्रह्मचर्य और उत्तम आकिंचन्य में [निर्ममत्व में] परिग्रह त्याग गर्भित होता है।

न ✽ एष १।१ दोष १।१ – तत्र ✽ संवर १।१ निवृत्ति–लक्षण १।१ = यह दूषण नहीं है वहां [संवरके अधिकारमें] संवर [कर्मोंका] निवृत्ति स्वरूप

वक्ष्यते ।, अत्र ✽ च ✽ प्रवृत्ति १।१ = कहा जायगा वा निरूपण किया जायगा और यहां [आस्रव प्रकरण में] प्रवृत्ति

दृश्यते ।, हिंसा-अनृत-अदत्तादान-आदि-परित्यागे ७।१ = दिखाई गई है क्योंकि हिंसा–मिथ्या भाषण–स्तेय वा चोरी आदिक के छोडने पर

अहिंसा–सत्यवचन-दत्तादान-आदि क्रिया प्रतीते ७।१ = अहिंसा-सत्य बोलना-दीहुई वस्तु को ग्रहण आदिक क्रिया की प्रतीति अथवा प्रसिद्धि होती है अर्थात् पांच पापों के दूर होने पर पांच व्रतों का आविर्भाव वा व्यक्तता वा प्रगट पना होता है सो व्रत शुभ कर्मोंके आगमनका कारण है इन व्रतोंसे भी अव्रतोंके सदृश कर्मोंकी प्रवृत्ति वा प्रवाह होता है कर्मों की निवृत्ति नहीं होती है इसीलिये उत्तर में कहते हैं कि आस्रव प्रकरणमें व्रतों का निर्देश कर्मोंकी प्रवृत्ति दिखाने के लिये किया है;

गुप्ति–आदि–संवर–परिकर्मत्वात् ५।१ च ✽, = और [= च] क्योंकि गुप्त्यादिक स्वरूप संवरके परिवार हैं

व्रतेषु ७।३ हि ✽ कृतपरिकर्मा १।१ साधु १।१ सुखेन ३।१ = व्रतों में ही पूर्ण [= कृत] लगा हुआ [= परिकर्म] वा प्रवृत्ति होने वाला साधु सुखसे

संवर २।१ करोति । इति ✽ = संवरको करता है अर्थात् गुप्ति–समिति–धर्म– अनुप्रेक्षा-परीषहजय और चारित्र ये छह संवर के कारण हैं इन में जहां जहां व्रत हैं वे कर्मों के आगमनके रोकनेके लिये अथवा कर्मों की निवृत्ति के लिये हैं ।

तत ✽ पृथक्त्वेन ३।१ उपदेश १।१ क्रियते । = तिससे (व्रतों को) न्यारापनाकरि (आस्रवके प्रकरणमें कर्मोंकी प्रवृत्तिमें और संवरके प्रकरणमें कर्मोंकी निवृत्तिमें) कथन किया गया है इस प्रश्न और उत्तरका संक्षेपत तात्पर्य यह है कि जब संवरके प्रकरण धर्म वा संयममें व्रत गर्भित कर

हिंसाया विरतिः, अनृताद्विरतिरित्येवमादि ॥ तत्र-अहिंसाव्रतमादौ क्रियते प्रधानत्वात् । सत्यादीनि हि तत्परिपालनार्थानि सस्यस्य वृतिपरिक्षेपवत् ॥ सर्वसावद्यनिवृत्तिलक्षणसामायिकापेक्षया एकं व्रतं, तदेव छेदोपस्थापनापेक्षया पञ्चविधमिहोच्यते॥ ननु च-अस्य व्रतस्यास्रवहेतुत्वमनुपपन्नं संवरहेतुष्वन्तर्भावात् । संवरहेतवो वक्ष्यन्ते गुप्तिसमित्यादयः । तत्र दशविधे धर्मे संयमे वा व्रतानामन्तर्भाव इति ।

हिंसायाः ५/१'' विरतिः १/१'' अनृतात् ५/१''' विरतिः १/१'' इत्येवम् आदि १/१''' ॥ =(तब) हिंसासे विरक्तता असत्य (भाषण) से निवृत्ति ऐसेही =चोरीसे उपरम(=स्तेयात् ५/१''' विरतिः १/१''), स्त्री प्रसंगसे हटना(अब्रह्मणः ५/१''' विरतिः १/१''), पदार्थ संचय अथवा ममतासे उपरम वा त्याग [परिग्रहात् ५/१' विरतिः १/१''] होता है

तत्र-अहिंसा व्रतम् १/१''' आदौ ७/१' क्रियते T प्रधानत्वात् ५/१'''; =तहां–अहिंसा व्रत (इस सूत्रके) आरम्भमें मुख्य होनेसे रखागया है

सत्य-आदीनि १/३''' हि❀तत्परिपालन–अर्थानि १/३''' =सत्यादिक ही उस (अहिंसा व्रत) के रक्षाके लिये

सस्यस्य ६/१'' वृति–परिक्षेपवत् ❀ ॥ =खेतके धान्य (=सस्य) का [=स्य] वाड़ि वा वेड़ा[=वृत्ति] के समान है

सर्व-सावद्य-निवृत्ति-लक्षण-सामायिक-अपेक्षया ३/१'' =समस्त सावद्य योगसे विरक्तताहै लक्षण जिसकाऐसा सामायिक[चारित्र]की अपेक्षासे

एकम् १/१''' व्रतम् १/१''', तद्-एव❀छेदोपस्थापन-अपेक्षया ३/१'' =एक व्रत है, वह [सामायिक]ही छेदोपस्थापनकी अपेक्षासे

पञ्चविधम् १/१''' इह ❀ उच्यते T ॥ =पांच प्रकार यहां [=इस मोक्ष शास्त्रमें]कहा गया है[अध्याय ९ सूत्र १८ देखो) ।

ननु❀च❀अस्य ६/१'''व्रतस्य ६/१''' आस्रव-हेतुत्वम् १/१''' =पुन प्रश्न वा तर्क–इस [पूर्वोक्त हिंसादिकसे विरक्ततारूप] व्रतके आस्रवका कारणपना

अनुपपन्नम् १/१''' संवर हेतुषु ७/३' अन्तर्भावात् ५/१' =(संवरके कारणोंमें व्रतके) गर्भित होनेसे अयुक्त है अर्थात् व्रतोंको जब संवरका कारण नवमें अध्याय के सूत्र २ में गर्भित करदिया तब उन व्रतोंको यहां (इस सूत्र में) आस्रवका कारण कहना ठीक वा उचित नहीं है

संवर–हेतवः १/३' गुप्ति-समिति-आदयः १/३' वक्ष्यन्ते T =संवरके कारण गुप्ति (अध्याय ९ सूत्र ४) समिति (अध्याय ९ सूत्र ५) आदिक =(अध्याय ९ सूत्र ६, ९, १८ में) कहे जावेंगे

तत्र दशविधे ७/१' धर्मे ७/१' संयमे ७/१' वा व्रतानाम् ६/३''' अन्तर्भावः १/१' इति=तहां (संवरके प्रकरणमें) दश प्रकारके धर्ममें अथवा संयममें व्रतोंका गर्भितपनाहै

श्रद्धामात्रगम्यमिति स्वबुद्ध्या सम्प्राप्य निवर्तते ॥ एवमिहापि य एष मनुष्य प्रेक्षा-पूर्वकारी स पश्यति–य एते हिंसादय परिणामास्ते पापहेतव पापकर्मणि प्रवर्तमानानिहैव राजानो दण्डयन्ति परत्र च दु खमाप्नुवन्तीति–स्वबुद्ध्या सम्प्राप्य निवर्तते ॥ ततो बुद्ध्या ध्रुवत्वविवक्षोपपत्तेरपादानत्व युक्तम् ॥ विरतिशब्द प्रत्येक परिसमाप्यते–

श्रद्धामात्रगम्यम् १''' इति❀ (३) स्वबुद्ध्या ३''	=विश्वासमात्र से जाना जाता है अर्थात् प्रत्यक्षनहीं है ऐसे अपनीबुद्धिद्वारा
सम्प्राप्य–निवर्तते T एवम् ❀ इह❀ अपि❀ य १'एष १'	=ग्रहणकरि (धर्मसे) हटता है ऐसे यहां (इससूत्र में) भी जो यह
मनुष्य १' प्रेक्षापूर्वकारी १' स. १' पश्यति T ये १' एते १'	=मनुष्य परीक्षावान् है सो विचारता है कि ये इतने
हिंसा-आदय १' परिणामा १' ते १' पापहेतव १'	=हिंसादिक भाव है ते पापके कारण है,
पाप–कर्मणि ७''' प्रवर्तमानान् २' इह❀एव❀राजान १'	=पाप क्रियामे (=पापकर्मणि) प्रवर्तनेवालोंको यहां ही राजा लोग
दण्डयन्ति T परत्र❀ च❀ दु खम् २''' आप्नुवन्ति T	=दंड देते है और (=च) परलोकमें (=परत्र) दु खको प्राप्त होते हैं
इति❀स्वबुद्ध्या ३'' सम्प्राप्य – निवर्तते T	=ऐसे अपनी बुद्धि से ग्रहणकरि (हिंसा–अनृत–स्तेय–अब्रह्म-परिग्रह से) हटजाता है
तत ❀ बुद्ध्या ३' ध्रुवत्व❀ विवक्षा–उपपत्ते. ५''	=तिस कारणसे (=तत)बुद्धिसे स्थिरपना की विवक्षा बननेसे
अपादानत्वम् १''' युक्तम् १'''	=(हिंसा-अनृत–स्तेय–अब्रह्म–परिग्रहके) अपादानपना ठीक है अर्थात् हिंसा अनृत–स्तेय–अब्रह्म–परिग्रह ये पदार्थ तो ध्रुवही है इनका ज्ञान (बुद्धि में) रहता ही है त्याग–ग्रहण बुद्धि में होता है तिसकी अपेक्षा से (हिंसादिक के) अपादानपना वा ध्रुवपना युक्त अथवा उचित है
विरतिशब्द १' प्रत्येकम् २''' परिसमाप्यते T	=[सूत्रमें] विरति शब्द [हिंसा-अनृत-स्तेय अब्रह्म परिग्रह] पृथक् को जोड़ा जाता है

दुस्साध्य है और पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ १११ में दु खेन क्रियते =(दुष्कर) दु खसे कियाजाता है ऐसा अर्थ है ॥ (३) सम्प्राप्य (जहां जहां) है सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त है ॥ (४) प्रेक्षापूर्वकारिन् शब्दका प्रथमा विभक्ति एक वचन पुंलिंगमें प्रेक्षापूर्वकारी (शशिन् शब्दसे शशीके तुल्य) है ॥

बुद्ध्यापाये ध्रुवत्वविवक्षोपपत्तेः॥ यथा धर्माद्विरमतीत्यत्र य एष मनुष्यः सम्भिन्नबुद्धिः स पश्यति दुष्करो धर्मः फलं चास्य

अध्रुव हैं इसलिये प्रश्न है कि इन अस्थिर वा चलायमान परिणामों को कैसे ध्रुवपना वा अपादानपना मानकर पंचमी विभक्ति बहु वचन (भ्यःअर्थात् से) करि प्रगट किया है ॥

बुद्धि–अपाये[७¹] =(उत्तर) धी वा बुद्धिके विभागमें (=अपाये) वा हटनेमें (=अपाये)

ध्रुवत्व॰ विवक्षा[३¹¹] उपपत्तेः[५¹¹] ॥ (=हिंसादिकके) स्थिरता वा निश्चलपना विवक्षाकरि सिद्ध है, बने है

यथा॰ धर्मात्[५¹] विरमति । इति॰ अत्र॰ यः[१¹] एषः[१¹] मनुष्यः[१¹]= जैसे धर्मसे हटता है यहां जो यह पुरुष (अर्थात् परीक्षावान् मनुष्य)

(१)संभिन्न–बुद्धिः[१¹] =विकसित बुद्धियुक्त अर्थात् भली प्रकार खिली हुई है बुद्धि जिसकी

सः[१¹] पश्यति T =सो विचारता है अथवा सोचता है कि

(२) दुष्करः[१¹] धर्मः[१¹] फलम्[१¹¹¹] च॰ अस्य[६¹] =धर्म कठिन वा दुःसाध्यहै अर्थात् दुःखसे कियाजाताहै और (=च) इस (धर्म)का फल

जैनेन्द्रव्याकरणमे अपादानका लक्षण ऐसा कहा है—" ध्यपाये ध्रुवमपादानम्" (देखो जैनेन्द्र व्याकरण १-२-१२४) धी अथवा बुद्धिके हटनेमे (=अपाये) वा नाशहोने पर (=अपाये) जो निश्चल—स्थिर रहै सो अपादान है जैसे धर्माद्विरमति=धर्मात् विरमति =धर्मसे हटता है (ख) पाणिनि मुनिकृत अष्टाध्यायी = (पाणिनीयमे) अपादानका लक्षण, "ध्रुवमपायेऽपादानम्" १-४-२४सूत्रमे है जिस निश्चल अवधिसे (=ध्रुव) विभाग हो—हटना हो (=अपाय) वह (अवधिभूत) अपादान है (ग) अपादाने पञ्चमी २-२-२८ ॥ अपादान कारकमे पञ्चमी विभक्ति हो ॥ पञ्चमी विभक्तिका चिन्ह हिंदीमे से अथवा तें है और सस्कृतमे उन शब्दोंके पञ्चमी विभक्तिके चिन्ह जिनके अन्तमे अ हो आत् (एक वचनका चिन्ह) भ्याम् (दो वचनका चिन्ह) और भ्यः (बहु वचन का चिन्ह) है ॥ अपादान वा ध्रुवके दृष्टान्त देते है जैसे ग्रामात् आयाति=गांवसे आता है यहां निश्चल अवधि जो ग्राम है तिससे आनेवालेका विभाग वा हटना है और धावतोऽश्वात् पतति=धावतः अश्वात् पतति=दौडते घोडेसे गिरता है यहां भी घोडेकी पीठ ध्रुव अवधि है (घ) पूर्वोक्त पाणिनीय सूत्रके अनुसार, जुगुप्सा—विराम और प्रमाद अर्थवाले धातुओंमे अपादानत्व नही घटता है इस हेतु से यह प्रश्न " हिंसादयः परिणाम विशेषा अध्रुवा.कथ तेषामपादानत्वमुच्यते" कियागया है ॥ पाणिनिमुनि के " ध्रुवमपाये ऽपादानम्" को पूरा करनेके लिये कात्यायन जी की वार्तिक इस प्रकार है "जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसख्यानम्" =जुगुप्सा–विराम–प्रमाद–अर्थवाले धातुओंके प्रयोगमे कारक अपादान सज्ञक हो यह उपसख्यान करना चाहिये जैसे' पापाज्जुगुप्सते–धर्माद्विरमति धर्मात् प्रमाद्यति ' यहां अपायमे ध्रुवार्थ नही घटनेसे अपादान संज्ञा नही प्राप्त थी ॥ पापसे घिन करता है– धर्म से हटता है–धर्म से असावधान है,यही कारण है कि कात्यायनमुनि ने वार्तिक निर्देश किया है, टिप्पणी (क) तथा (घ) से प्रगट है कि जैनेन्द्र व्याकरण में" ध्यपाये ध्रुवमपादनम्" से और कात्यायन मुनिकीजुगुप्सा विराम इत्यादिक पाणिनी कृत १-४-२४ सूत्रपर वार्तिक से हिसा अनृत-स्तेय अब्रह्म परिग्रह मे अपादान पना बनता है (१) बुद्धि. स्त्रीलिंग है परन्तु समास होनेसे पुंलिंग होगयाहै=विकसित है बुद्धि जिसकी-इस अर्थमे है (२) दुष्करका अर्थ

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसेत्येवमादिभिः सूत्रैर्हिंसादयो निर्देक्ष्यन्ते। तेभ्यो विरमणं विरतिर्व्रतमित्युच्यते ॥ व्रतमभिसन्धिकृतो नियमः ॥ इदं कर्तव्यमिदं न कर्तव्यमिति वा ॥ ननु च हिंसादयः परिणामविशेषा अध्रुवाः कथं तेषामपादानत्वमुच्यते ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित प्रथम सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दीअनुवाद ॥

प्रमत्तयोगात् ५'/१ =प्रमादके सम्बन्धसे अथवा प्रमादी के मन वचन और काय से

प्राण-व्यपरोपणम् १'''/१ हिंसा १''/१ =भाव प्राण तथा द्रव्य प्राण का वियोग करना सो हिंसा है।

इत्येवम् ❀ आदिभि ३'''/३ सूत्रै ३'''/३ हिंसा- =इत्यादि सूत्रों करि हिंसा [देखो इस अध्यायका सूत्र १३]

आदय १'/३ =अनृत[सूत्र १४में] स्तेय [सूत्र १५में] अब्रह्म [सूत्र १६में] परिग्रह [सूत्र १७में]

निर्देक्ष्यन्ते । तेभ्य ५'/३ =कहे जायगे अथवा निरूपण किये जायगे तिन [हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म परिग्रह]से

विरमणम् १'''/१ विरति १''/१ व्रतम् १'''/१ इति ❀ उच्यते । =विरक्तता [अर्थात्] निवृत्ति [=विरति] सो व्रत ऐसा वर्णित है

व्रतम् १'''/१ अभिसन्धिकृत १'/१ नियम १'/१, इदम् १'''/१ =व्रत है सो [बुद्धि पूर्वक] अभिप्राय वा परिणाम करि किया हुआ नियम है। यह

कर्तव्यम् १'''/१ इदम् १'''/१ न कर्तव्यम् १'''/१ इति वा❀ननु च❀ =करनेयोग्य है अथवा यह करनेयोग्य नहीं है ऐसा (व्रत) है पुन [=च] प्रश्न-

हिंसा १''/१ आदय १'/३ परिणाम-विशेषा १'/३ अध्रुवा. १'/३ =हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म-परिग्रह-भाव विशेष है चलायमान वा अस्थिर हैं

कथम् ❀ तेषाम् ६'/३ अपादानत्वम् १'''/१ =कैसे तिन [हिंसादिक अध्रुव परिणाम विशेषनिकें] अपादानपना वा ध्रुवपना

उच्यते । =[इस सूत्र में] कहा गया है अर्थात् जिस निश्चल अवधि वा सीमासे हटनाहो -विभाग हो उस निश्चल अवधि को अपादान [कारक=हेतु=निमित्त]

कहते हैं [व्याकरणमें] जहा अपादान कारक सीमा है वहा पचमी विभक्ति का उपयोग होता है पचमी विभक्तिका चिन्ह हिन्दीमें से अथवा तें है और सस्कृतमें आत् [एक वचन] भ्याम् [दो वचन] भ्य [बहु वचन] चिन्ह हैं जैसे ग्रामात् आयाति गावसे आता है तात्पर्य हटता है यहा पर गाव जिसको से प्रत्यय जोडा गया है ध्रुव अथवा स्थिर रहता है और अमुक पुरुष हटता है इसी प्रकार हिंसा-अनृत-स्तेय-अब्रह्म-परिग्रह से हटना सो व्रत है यहापर हिंसादिक (पूर्वोक्त गावके सदृश) ध्रुव रहना चाहिये परन्तु ये हिंसादिक चलायमान भाव हैं

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

आस्रवपदार्थो व्याख्यातस्तत्प्रारम्भकाले एवोक्त "शुभः पुण्यस्येति" तत्सामान्येनोक्तम् । तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थं कः पुनः शुभ इत्युक्ते इदमुच्यते—

॥ हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥

१ अथ॥सप्तमः [१/१] अध्यायः [१/१]	=(मोक्ष शास्त्र वा तत्त्वार्थ सूत्रका) सातवां अध्याय प्रारम्भ (=अथ) है
आस्रव-पदार्थः[१/१] व्याख्यातः[१/१] तद्-प्रारम्भकाले[७/१]	=आस्रव तत्त्व वर्णन किया गया, उस (आस्रव पदार्थ) के आरम्भ समयमें
एव॥उक्तम्[१/१] "शुभः[१/१] पुण्यस्य[६/१] इति॥	=ही (=एव) कहागया (=उक्तं) कि शुभ (योग) पुण्य (कर्म) का आस्रव है ॥ ऐसा
तत्-सामान्येन [३/१] उक्तम् [१/१]	=वह (=तत्=शुभः पुण्यस्य) अविशेषकरि कहागया था
तद्-विशेप-प्रतिपात्ति-अर्थम्[१/१] कः[१/१] पुनःशुभः[१/१]	=उस (अर्थात् शुभयोगपुण्य कर्मका आस्रव) के विशेष जाननेके लिये "फिर शुभ क्या है ?"
इति॥उक्ते[१] [७/१] इदम्॥ उच्यते T	=इस प्रकार कहने पर अर्थात् प्रश्न करने पर यह (सूत्र) कहा जाता है कि

[२]हिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥

=हिंसा—अनृत—स्तेय—अब्रह्म[२]—परिग्रहेभ्यः [५/३] विरतिः [१/१] व्रतम् [१/१] ॥ १ ॥

हिंसा—अनृत—स्तेय—अब्रह्म[२]—	=हिंसासे, असत्य झूठ वा मिथ्या (भाषण) से, चोरी (करने) से, मैथुनसे वा स्त्री प्रसंगसे
परिग्रहेभ्यः[५/३] विरतिः[१/१] व्रतम् [१/१]	=पदार्थ संचय और ममता वा ममत्व परिणाम से (बुद्धि पूर्वक) विरक्तता वा निवृत्ति सो व्रत है

(१) उक्त ञि०वच्+क्त । कथित । कहागया और 'भावे क्त'कथन, कहना (न०) पद्मचंद्रकोश पृष्ठ ६६) (२) इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमे एकसा पाठ है अर्थमें भी कुछ भेद नहीं है ॥ अब्रह्म और अब्रह्म दोनों ठीक है ॥ इस सूत्रका विशेष रूपसे विभाग करने पर पांच भाग इस प्रकार हो जाते हे कि (क) हिंसायाः विरतिः व्रतम् =हिंसासे विरक्तता अथवा विरक्त होना वा परिहार सो अहिंसा व्रत है अनृतात् विरति· व्रतम् झूठ वा मिथ्या भाषणसे उपरम वा निवृत्ति सो सत्य भाषण व्रत है, स्तेयात् विरति· व्रतम्=चोरी से अकरण, वा हटना सो अस्तेय व्रत है (घ) अब्रह्मण· विरतिः व्रतम्—मैथुन वा स्त्री संसर्गसे उपरम सो ब्रह्मचर्य्य व्रतहै (ङ) परिग्रहात् विरतिः व्रतम्=पदार्थ संचय और ममत्व भावसे उपरम वा शान्त होना सो परिग्रहत्याग नामा व्रत है ॥ अकरण (न करना), उपरम, निवृत्ति, निवटना ये समानार्थक वाची शब्द है ॥

सप्तकर्माणि आयुर्वर्ज्याणि प्रतिक्षणं युगपदास्रवन्तीत्युक्तम् । त रोध स्यात् ॥ अथा ० ३ प-णास्रवहेतोर्विशेषनिर्देशो न युक्त इति ॥ अत्रोच्यते—यद्यपि तत्प्रदोषादिभिर्ज्ञानावरणादीना सर्वासाकर्मप्रकृतीना प्रदेशबन्धनियमो नास्ति । तथाप्यनुभागनियमहेतुत्वेन तत्प्रदोषनिह्न-वादयो विभज्यन्ते ॥ इति तत्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकाया षष्ठोऽध्याय ॥

सप्तकर्माणि॥।आयु वर्ज्याणि॥।प्रतिक्षणं॥।युगपद्* =आयु (कर्म) रहित शेष सात कर्मोका वारवार (=प्रतिक्षण) समय समय प्रति, एकसाथ आस्रवति। इति*उक्तम्॥, तद् विरोध स्यात्। अथ =आस्रव होते है इस प्रकार कथनहै(=उक्तम्)उस(शास्त्र मे कथन)का विरोध होगा अब (यदि तत्प्रदोप आदि १०सूत्रसे२७सूत्र तकमें गर्भितभाव ज्ञान दर्शनावरण आठकर्मों के

अविशेषेण॥ आस्रव-हेतो ॥ =विशेषता रहित आस्रवके कारण होवे तो (अर्थात् सर्व कर्माका आस्रव प्रदोप निह्नव-आदिक सर्व प्रकारके भावोंसे सामान्यपनेसे होवे तो)

विशेप-निर्देश ॥ =विशेप कथन (जो सूत्र १०से२७तक कि अमुक भावोंसे अमुक प्रकारका आस्रवहोताहै)

न* युक्त ॥ इति* ॥ =अयुक्त होगा-सक्षेपत प्रश्न यह है कि १० से २७ सूत्र तक अमुक अमुक भावोंको अमुक अमुक आस्रवके कारण कहे है शास्त्रमें आयुकर्मके अतिरिक्त सर्वभाव सब प्रकारके आस्रव के कारण होते है यह विरोध-कैसा ?

अत्रउच्यते-यद्यपितत्प्रदोपादिभि ज्ञानावरणादीना॥ =यहा(उत्तरमे)कहा जाता है कि जो(=यद्यपि=यदपि)प्रदोपादिककरि ज्ञानावरणादिक सर्वासां॥।कर्मप्रकृतीनां॥।प्रदेश-बन्ध नियम ॥न*अस्ति-सर्व कर्म प्रकृतियोंका प्रदेश बधका नियम नहीं है

तथापि*अनुभाग नियम हेतुत्वेन॥।तत्प्रदोप निह्नव =तौभी विपाक वा अनुभवके नियमके निमित्तपनाकरि तत्प्रदोप निह्नव

आदय ॥ विभज्यन्ते । =आदिक भेदरूप कियेगये है अर्थात् प्रदोप निह्नव आदि भावोंसे जिनका कथन १०से२७ सूत्र तकहै जो कर्म आते है वे अनुभाग प्रति नियम जताते हैं जैसे किसी पुरुपका भाव दानदेनेमें अंतराय करने वाला हो तो उससमयमें जो कर्मका आस्रव हुआ सो सात कर्मो को लगया परन्तु दानान्तराय कर्ममें तो रस प्रचुर पड़ा और अन्य प्रकृतियोंमें रस मद पड़ा

इति*सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायाम् = इस प्रकार सर्वार्थसिद्धिनामा (वृत्ति) मे

तत्त्वार्थ-वृत्तौ॥ षष्ठ ॥ अध्याय ॥ = तत्त्वार्थके विवरणमे छठा अध्याय (समाप्त वा पूर्ण) हुआ

दानादीन्युक्तानि दानलाभभोगोपभोगवीर्याणि चेत्यत्र ॥ तेषां विहननं विघ्नः। विघ्नस्य करणं विघ्नकरणमन्तरायस्यास्रवविधिर्वेदितव्यः ॥ अत्र चोद्यते-तत्प्रदोषनिह्नवादयो ज्ञानदर्शनावरणादीनां प्रतिनियता आस्रवहेतवो वर्णिताः; किं ते प्रतिनियतज्ञानावरणाद्यास्रवहेतव एव, उताविशेषेणेति । यदि प्रतिनियतज्ञानावरणाद्यास्रवहेतव एव,आगमविरोधःप्रसज्यते।आगमेहि

वृत्त्यनुवादः–दान-आदीनि ॥युक्तानि ॥ दान-लाभ-	=दानादिक(पूर्वमें)कहे जाचुकेहै[अर्थात्]उपकारके लिये किसी वस्तुका अर्पण,प्राप्ति,
भोग--उपभोग–वीर्याणि ॥ च* इति*	=औरजो एकवार सेवनेमें आवे-जो वारम्वार भोगनेमें आवे शक्ति[वा पराक्रम]ऐसे हैं
अत्र । तेषाम् ॥	=यहां [इस स्थानमें] तिन [दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य] का
विहननम् ॥ विघ्नः ;विघ्नस्य करणम् ॥	=व्याघात, हनना, वा विगाड़ सो विघ्नहै । विघ्न वा वाधाका करना
विघ्नकरणम् ॥ अन्तरायस्य आस्रव-विधिः वेदितव्यः ;	=सो विघ्नकरण अन्तराय [कर्म] के आस्रवकी रीति जानना चाहिये,
अत्र* (१) चोद्यते T तत्प्रदोष-निह्नव-आदयः	=यहां तर्ककी जाती है,तत्प्रदोष निह्नव आदिक[इसअध्यायके १०सूत्रसे २७तकदेखो]
ज्ञानदर्शन-आवरण-आदीनाम् । प्रतिनियताः ।	=ज्ञानावरण-दर्शनावरणादिक [आठकर्मों] के नियमित
आस्रव-हेतवः वर्णिताः ; किम्*ते । प्रतिनियत-	=आस्रवके कारण वर्णन किये गये हैं। क्या वे निश्चित वा विधित [=प्रतिनियत]
ज्ञानावरण-आदि-आस्रव-हेतवः । एव*,उत*	=ज्ञानावरणादिक कर्मोके आस्रवके कारणही हैं अथवा (=उत)
अविशेषेण । इति* । यदि*	=अविशेषकरि हैं अर्थात् सर्वभावोंसे समस्तकर्मोंका आस्रव होता है जो [ते प्रदोषादिक इस अध्यायके १० से २७ सूत्रोंमें कथित भाव तक]
प्रतिनियत-ज्ञानावरण-आदि-आस्रवहेतवः एव*,	=नियमित ज्ञानावरणादिक [कर्मों] के आस्रवके कारण ही हैं
आगम-विरोधः(२) प्रसज्यते T आगमे । हि*	=तो शास्त्रके विरोध प्रसंग आता है क्योंकि [=हि] शास्त्रमें

(१)चुद्-चुरादि दशवांगणका उभय (आत्मने और परस्मै)पदी सकर्मक सेट् धातु है, प्रेरणा करना प्रश्न करना अर्थ में आताहै,कर्मणि प्रयोगमें गुणसंज्ञा होकर चोद् हो जाता है, य कर्मणि प्रयोगका प्रत्यय जोडकर चोद्य वना पीछे ते प्रथम पुरुष एक वचन आत्मनेपदी वर्तमान कालकी द्योतक क्रियाका चिन्ह लगा कर चोद्य+ते=चोद्यते वना=तर्ककी जाती है ॥ (२) सञ्ज् भ्वादि प्रथम गणका परस्मैपदी अकर्मक धातु है, कर्मणि प्रयोग और कर्तरि प्रयोग दोनों में इसका अनुनासिक गिर जाता है,सज् मे य कर्मणि प्रधानका और प्र उपसर्ग जोड़नेसे प्रसज्य वना, ते अन्य पुरुष एक वचन आत्मनेपदी वर्तमान क्रिया का द्योतक चिन्ह लगाने से प्रसज्यते वना=प्रसंग आता है ऐसा अर्थ है ॥

पुंवेदाः सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । प्रमत्तसंयतादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । अपगतवेदा अनिवृत्तिबादरादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसङ्ख्याः ॥

अनुवादसे यहां पर यह बात झलकती है कि इन गुणस्थानोंमें जीवोंकी संख्या तो नहीं बढ़ेगी परन्तु पुरुष वेदी भी रहेंगे, पर कह नहीं सकते कि कितने स्त्रीवेदी नपुंसकवेदी रहेंगे और कितने पुरुषवेदी रहेंगे तीनों वेदवाले यदि उत्कृष्ट होंगे तो पृष्ठ ९८ में उक्त संख्यासे अधिक न होंगे ॥

पुंवेदाः १। सासादनसम्यग्दृष्टि आदयः १। संयतासंयत = पुरुष वेदवाले सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर संयमासंयमी (पांचवें गुणस्थानवालों) के

अन्ताः १। सामान्य-उक्त-संख्याः १। = अंत तक संक्षेपसे (प्रथम) कथित (गुणस्थानवत्) गिनतीवाले हैं अर्थात् यहां पर यही अर्थ झलकता है कि सासादनसे संयतासंयत तक उक्त संख्यासे जीवोंकी वृद्धि नहीं होगी केवल पुरुषवेदियोंकी गुणस्थानवत् जभी संख्या हो सकी है कि स्त्रीवेदी नपुंसकवेदी एक भी किसी विशेष कालमें न रहे ॥

प्रमत्तसंयत आदयः १। अनिवृत्तिबादर अन्ताः १। = (पुरुषवेदी)प्रमत्तसंयमीसे अनिवृत्तिबादरसाम्पराय (के आदिके तीन वेद सहित भागमें) तक

सामान्य-उक्त-संख्याः १। = संक्षेपसे [प्रथम] कही [गुणस्थानके सदृश] संख्यावाले हैं अर्थात् जब पुरुषवेदी संख्यामें उक्त गुणस्थानोंकी संख्याके बराबर उत्कृष्टपनेसे किसी समयमें वा कालमें हो जावेंगे तब स्त्रीवेदी-नपुंसकवेदी कोई भी न रहेंगे क्योंकि जीवोंकी संख्या उत्कृष्ट नियत संख्यासे बढ नहीं सक्ती और पुरुषवेदी उक्त संख्याके बराबर जबतक स्त्री वेदी नपुंसकवेदी रहेंगे हो नहीं सके ॥

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥

तदित्यनेन प्रत्यासत्तेर्नीचैर्गोत्रस्यास्रवः प्रतिनिर्दिश्यते ॥ अनेन प्रकारेण वृत्तिर्विपर्ययः ॥ तस्यविपर्ययस्तद्विपर्ययः । कः पुनरसौ विपर्ययः ? । आत्मनिन्दा,

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य॥ २६ ॥

=तद्-विपर्ययः नीचैः वृत्ति-अनुत्सेकौ च उत्तरस्य (गोत्रस्य आस्रव-कारणानि भवन्ति)

सूत्रार्थः-तद्-विपर्ययः =उस (नीच गोत्रके आस्रव)के विरुद्धप्रवृत्ति अर्थात् अपनी बुराईदूसरेकी बड़ाई अपने विद्यमान-साधु-उत्तम-पूज्य-सच्चे गुणको ढकना अन्यके अविद्यमान-बुरे-अधम,निंद्य-अपूज्य-भूठे गुणको ढांकना और उत्तमगुण धारकोंमे विनयकरि

नीचैस् वृत्ति-अनुत्सेकौ च =नम्रताका वर्ताव, अनभिमानता वा मदरहितपना है (वे)

उत्तरस्य गोत्रस्य आस्रव-कारणानि भवन्ति T =ऊंच (=उत्तर) गोत्रके आस्रवके कारण होते हैं

तद्-इति अनेन प्रत्यासत्तेः नीचैस् गोत्रस्य =(इस २६वॉ सूत्रमें) तद् इस(शब्द)करि अतिनिकट होनेसे नीच गोत्रका

आस्रवः प्रतिनिर्दिश्यते T । अनेन प्रकारेण =आस्रव लियागया है अन्यथा प्रवृत्ति वा उलटे प्रकारसे

वृत्तिः विपर्ययः; तस्य विपर्ययः तद्विपर्ययः =प्रवृत्तिहै सो विपर्ययहै। तिस(नीचगोत्र)केआस्रवके प्रतिकूल उलटा सो तद्विपर्यय है

कः पुनः (१) असौ विपर्ययः;आत्मनिंदा। =बहुरि वह(=असौ)क्या विपरीत वा प्रतिकूल वा व्यतिक्रम है। अपनी बुराई

श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमे तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पत्र ५२९, ५३० पर और दिगम्बर आम्नायकी सर्वार्थ-सिद्धि मुद्रित पृष्ठ ३३८पर,तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें, तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २६७में, तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४५६ पर और अन्य पुस्तकोंमें भी"तद्विपर्ययो."पाठ है । उक्तग्रन्थोंके भाष्योंमें भी भी आचार्य 'विपर्ययः' शब्द लाये हैं परन्तु अर्थप्रकाशिका मुद्रित पृष्ठ ३९२ पर और जयचन्दजी कृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ ५२३ पर 'तद्विपर्ययो' के स्थानमें 'तद्विपर्ययौ' वाक्य है अर्थात् एक पाठ एक वचनमें है दूसरा दो वचनमेंहै अर्थभेद नहीं हैजैसा कि निम्नसे प्रगट है ॥ उसके (=तद्) विपरीत, प्रतिकूल अथवा विरुद्ध अर्थात उस कथनका उलटा जो पच्चीसवां सूत्रमें कहा है भावार्थ आत्मनिंदा पर प्रशसा आत्मसद्गुण-आच्छादन पर-असद्-गुणउद्भावन ॥ यदि 'तद्-विपर्ययौ" पाठलें तब भी यही तात्पर्य निकलेगा जैसे उन दोनों परात्मनिन्दा प्रशंसे तथा परात्मसदसद्गुणोच्छादनोद्भावने भावार्थ दूसरेकी निंदा अपनी प्रशसा और दूसरेके वर्तमान गुणों को ढकना अपने अविद्यमान गुणोंका प्रगट करना नीच गोत्रके आस्रवका कारण है इन दोनोंके विरुद्ध ऊंचगोत्रके आस्रवका कारण है ॥

परप्रशंसा, सद्गुणोद्भावनमसद्गुणोच्छादनं च ॥ गुणोत्कृष्टेषु विनयेनावनतिर्नीचैर्वृत्ति । विज्ञानादिभिरुत्कृष्टस्यापि सतस्तत्कृतमदविरहोऽनहङ्कारताऽनुत्सेक । तान्येतान्युत्तरस्योच्चैर्गोत्रस्यास्रवकारणानि भवन्ति ॥ अथ गोत्रानन्तरमुद्दिष्टस्यान्तरायस्य क आस्रव इत्युच्यते—

विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥ २७ ॥

पर-प्रशंसा, च सद्-गुण- =दूसरेकी बड़ाई और [=च] विद्यमान, अच्छे, उत्तम, पूज्य वा सच्चे गुणका
उद्भावनम् =प्रगटपना अनछते, बुरे अप्रशस्त, निन्द्य अधम, अपूज्य, वा झूठे गुणका
उच्छादनम्, =संवरण गोपन अप्रगटता है, संक्षेपतः सद्गुणका प्रगट करना असद्गुणका ढकना है।
गुण-उत्कृष्टेषु विनयेन अवनति =प्रशस्त वा उत्तमगुणवालोंमें विनयकरि नम्रता वा झुकना
नीचैर्वृत्ति, विज्ञानादिभि उत्कृष्टस्य =नीचैर्वृत्ति है। विशेष ज्ञानादिकरि उत्तम वा श्रेष्ठ
अपि सत तद्-कृत मदविरह अनहङ्कारता =पुरुषके भी(=अपि)उन[विज्ञानादिक]करि कियेहुये गर्वसे रहित वा वर्जित अनभिमानताई
अनुत्सेक, तानि एतानि उत्तरस्य =सो अनुत्सेक है। ते इतने अच्छे वा ऊंच [=उत्तर]
उच्च गोत्रस्य आस्रव-कारणानि भवन्ति =[अर्थात्] बड़े [=उच्चैः]कुलके आस्रवके कारण वा निमित्त होते हैं
अथ गोत्र अनन्तरम् उद्दिष्टस्य अन्तरायस्य =अब गोत्रके अनन्तर वा निकट वर्णित अन्तराय [कर्म] का
क आस्रव इति उच्यते— =क्या आस्रव [का कारण] है, इस प्रकार [प्रश्न होने पर अगला सूत्र]कहा जाता है कि

विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥ २७॥ =विघ्नकरणम् अन्तरायस्य आस्रवस्यकारण(भवति) ॥

विघ्नकरणम् अन्तरायस्य आस्रवस्य कारणम् =रोक वा बाधाकरना अन्तराय (कर्म) के आस्रवका कारण
भवति =होता है अर्थात् दानदेनेमें विघ्नकरनेसे दानान्तराय कर्मका आस्रव होता है, परके लाभमें रोक डालनेसे लाभान्तराय कर्मका आस्रव होता है, परके बल वीर्यका व्याघात करनेसे वीर्यान्तराय कर्मका आस्रव होता है, परके भोगके कारणोंमें बाधा डालनेसे भोगान्तराय कर्मका आस्रव होता है, परके उपभोग के कारणोंमें अटकाव डालनेसे उपभोगान्तराय कर्मका आस्रव होता है ॥

तथ्यस्य वा अतथ्यस्य वा दोषस्योद्भावनं प्रति इच्छा निन्दा । गुणोद्भावनाभिप्रायः प्रशंसा । यथासंख्यमभिसम्बन्धःपरनिन्दा आत्मप्रशंसेति॥ प्रतिबन्धकहेतुसन्निधाने सति अनुद्भूतवृत्तिता अनाविर्भाव उच्छादनम् । प्रतिबन्धकाभावे प्रकाशवृत्तिता उद्भावनम् ॥

गुण-उच्छादन-उद्भावने[७/२]॥ =गुणका (क्रमसे अथवा यथाक्रम) आच्छादन अथवा प्रकाशन

नीचैः*गोत्रस्य[६/१]आस्रव-कारणानि[१/३]॥ भवन्ति T =नीच कुलके(उत्पत्तिके)आस्रवके हेतु होते हैं, अर्थात् दूसरेकी बुराई करना अपनी बड़ाई करना। दूसरेके, अच्छे-उत्तम-विद्यमान पूज्य वा सच्चे गुणोंको ढांकना और अपने बुरे-अधम निंद्य-अविद्यमान-अपूज्य वा झूठे गुणोंका प्रकाश करना सो नीच कुलके (उत्पत्ति होनेके) आस्रवके कारण हैं ॥

वृत्यनुवादः- तथ्यस्य[६/१]वा*अतथ्यस्य[६/१] वा*दोषस्य[६/१]=सत्य अथवा झूठ (मिथ्या) दूषणके

उद्भावनम्[२/१]॥प्रति* इच्छा[१/१]॥ निन्दा[१/१]; गुण— =प्रगट करनेके लिये(=प्रति)अभिलाषा, कामना, सो निंदा है। (सच वा झूठ)गुणके

(१)उद्भावन-अभिप्रायः[१/१] प्रशंसा[१/१]; =प्रगट करनेके लिये मनोरथ वा अभिप्राय सो प्रशंसा है ।

यथासंख्यम्[१/१]॥ =(इन पूर्वोक्त निन्दा और प्रशंसाका पर और आत्मके साथ, क्रमानुसार, क्रमसे

अभिसम्बन्धः[१/१] परनिन्दा[१/१]॥ आत्मप्रशंसा[१/१]। इति* ॥=संयोगहै। परनिन्दाआत्मप्रशंसाऐसेहै भावार्थअन्यकी बुराई अपनी बड़ाईकरना ॥

प्रतिबन्धक-हेतु-सन्निधाने[७/१]॥सति[७/१]॥(२)अनुद्भूतवृत्तिता[१/१]॥ =रोकनेवाले कारणके निकट होनेपर (=सति) अप्रगट स्थितिका होना

अनाविर्भावः[१/१] उच्छादनम्[१/१]॥; =अप्रगट अवस्थाका होना सो उच्छादन-आच्छादन वा संवरण है

प्रतिबन्धक-अभावे[७/१]प्रकाशवृत्तिता[१/१]॥उद्भावनम्[१/१]॥ ॥=रोकनेवाले हेतुके अभावमें, विद्यमान न होने पर प्रगट अवस्थाका होना सोउद्भावन है

---

(१) 'तदेव परात्मनो निन्दाप्रशंसे सदसद्गुणयोश्छादनोद्भावने नीचैर्गोत्रस्यास्रव इति वाक्यार्थ प्रत्येयः" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमुद्रित पृष्ठ ४५६ तद्-एवम् पर-निंदा-आत्मनः-प्रशंसा सद्गुण-च्छादन=वोही(=तद्-एवम्) अन्यकी बुराई अपनी बढ़ाई (अन्यके) विद्यमान गुणोंका ढाकना असद्-गुण-उद्भावन, नीचैःगोत्रस्य-आस्रव इति वाक्यार्थःप्रत्येयः=(अपने)अनहोने गुणोंका प्रकाशन नीचगोत्रकाआस्रवका(कारण)हैऐसावाक्यार्थ जानो उद्भावन=आविर्भाव-आविष्कार-प्रकाशन-प्रगट करना-प्रसिद्ध करना-व्यक्त करना एकार्थ वाची है ॥

(२)"प्रतिबधक भावेन प्रकाशवृत्तिता उद्भावनम्"सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्ति जिससे अनुवाद किया गया है उसमे यह पाठहै, द्वितीय मुद्रित संस्करणमे "प्रतिबन्धकाभावेन प्रकाशवृत्तिता उद्भावनम्"पाठ है अर्थात् द्वितीयावृत्तिमे 'बन्धक'के स्थानमे 'बन्धका' है ॥ प्रथमावृत्तिके शुद्धाशुद्धविवरणमे कोई भूल भी इस संबंधमें प्रगट नही कीगई है अतः छपनेमें भूल नही है । सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्रतियोके पृष्ठ ६४, ७७, १३९ पर अनुक्रमसे

अत्रापि च यथाक्रममभिसम्बन्ध -सदगुणोच्छादनमसद्गुणोद्भावनमिति ॥ तान्येतानि नीचैर्गोत्रस्यास्रवकारणानि वेदितव्यानि ॥ अथोच्चैर्गोत्रस्य क आस्रवविधिरत्रोच्यते—

अत्र॥अपि॥च॥यथाक्रमम्॥अभिसम्बन्धः॥ =और (=च) यहां भी (=अपि) यथाक्रम (उच्छादन और उद्भावनका) सम्बन्ध है
सत्-गुण-उच्छादनम्॥ =(अर्थात्) परके सच्चे उत्तम विद्यमान पूज्य भले अच्छे गुणोंका संवरण या ढाकना और
असत् गुण-उद्भावनम्॥इति॥तानि॥एतानि॥ =अपने झूठे अप्रशस्त अविद्यमान अपूज्य-बुरे गुणोंका प्रकाश करना ये इतने
नीचैर्गोत्रस्य॥आस्रवकारणानि॥वेदितव्यानि॥अथ=नीचकुलके आस्रवके कारण जानना चाहिये। अब
उच्चैः॥गोत्रस्य॥कः॥आस्रवविधिः॥इति॥अत्र॥उच्यते =ऊंच कुलकी क्या आस्रवकी रीति है ऐसे (प्रश्नपर) यहां (अगला सूत्र) कहाजाता है॥

'प्रतिबंधकाभावे प्रकाशितवृत्तिता उद्भावन" पाठ है। तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २६७ पर वार्तिक चार हस्तलिखित प्रतियोंके पृष्ठ४० ६८पैंमस
'प्रतिबंधकाभावे प्रकाशितवृत्तितोद्भावन" पाठ है। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिककी प्रतिके पृष्ठ३७९परहै और यही पाठ मुद्रितप्रतिके पृष्ठ४५६
"प्रतिबंधकाभावे प्रकाशितवृत्तितोद्भावन" ॥४॥ पाठ है इस वार्तिकका भाष्य 'प्रतिबंधकस्य हेतोरभावे प्रकाशितवृत्तिताउद्भावनमिति व्यपदेशमर्हति" है
पर है ॥ अब प्रश्न यह है कि इनमेंसे कौनसा पाठ लेना चाहिये उपर्युक्तसे प्रगट है कि सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंका तीन राजवार्तिक
कीप्रतियोंकाऔर दो श्लोकवार्तिककी प्रतियोंका पाठ मिलता है, हमने बहुमत लक्षानुकूल और निम्न हेतुओंसे "प्रतिबंधकाभावे प्रकाशितवृत्तिता
द्भावन=प्रतिबंधकाभावे प्रकाशितवृत्तिता उद्भावनम्' पाठ लिया है।
(क) प्रतिबंधक अभावे प्रकाशित वृत्तिता उद्भावनम्= रोकनेवाला कारणका अभाव होय, तब प्रगटहोना उद्भावन है"जयचन्द्रजीवचनिकापृष्ठ५२३॥
हस्तलिखित वचनिकाके पृष्ठ २२१पर यही पाठ है, उद्भावनके स्थानमें उद्भाव है, अर्थ एकही रहता है॥
'प्रतिबंधक हेतुका अभावमें होता सता प्रकाशित प्रवृत्तिता जो है सो उद्भावन है" पन्नालाल दूनीसे उद्धृत
प्रतिबंधक कहिये वस्तुके रोकने वाला कारणका अभाव होते संते प्रवृत्तिका प्रकाशितपना सो उद्भावन है(प० पन्ना० वाय०अनु० राज०उद्धृत)
प्रतिबंधकस्यहेतोः 'अभावे प्रकाशित वृत्तिताउद्भावनम्=रोकने वाले कारणकी अविद्यमानतामें प्रगटप्रवृत्तिका होना सो उद्भावन है
इति व्यपदेशम् अर्हति =ऐसा उपदेश विशेषरूपसे योग्य है॥(राजवार्तिककी चौथी वार्तिकके भाष्यका यहअनुवादहै॥
बहुमतानुकूल हमने भी तृतीया विभक्ति प्रतिबंधकाभावेन'न लेकर सप्तमी विभक्ति 'प्रतिबंधकाभावे लेकर अर्थ किया है॥अब हमको यह देखना है कि
प्रतिबंधकभावेन'का क्या अर्थ होता है=रोकनेवाले कारण द्वारा अथवा रोकनेवाले हेतुके होनेकरि (भावेन) प्रगट अवस्थाका होना या
अविर्भाव सो उद्भावन है यह अर्थ प्रथम तात्पर्यके प्रतिकूल है हां इसी पाठके न' को हम भावेन से भिन्न करदें तो नाव सप्तमी एक वचनमें
होकर न अव्यय निषेध अर्थमें होजावेगा और तात्पर्य भी ठीक निकल आवेगा॥ द्वितीयावृत्ति सर्वार्थसिद्धिका पाठ तृतीया विभक्तिमें यही अर्थ देताहै
क्योंकि यहां प्रतिबंधकभावके स्थानमें प्रतिबंधक-अभावेन है॥ इसका यह फल हुआ कि प्रथमावृत्तिका पाठ तृतीया विभक्तिमें अशुद्ध है द्वितीया
वृत्तिका पाठ तृतीया विभक्तिमें ठीक है क्योंकि द्वितीयावृत्तिमें प्रतिबंधकभावेन के स्थानमें प्रतिबंधकाभावेन' है। हमने बहुमतानुकूल पाठ लिया है॥

भावविशुद्धियुक्तोऽनुरागो भक्तिः ॥ षण्णामावश्यकक्रियाणां यथाकालं प्रवर्तनमावश्यकापरिहाणिः ॥ ज्ञानतपोजिनपूजाविधिना धर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावना ॥ वत्से धेनुवत्सधर्मणि स्नेहः प्रवचनवत्सलत्वम् ॥ तान्येतानि षोडशकारणानि सम्यग्भाव्यमानानि व्यस्तानि समस्तानि च तीर्थकरनामकर्मास्रवकारणानि प्रत्येतव्यानि ॥

भावविशुद्धियुक्तः १। अनुरागः १। भक्तिः १॥	=भावोंकी विशुद्धता सहित अनुराग वा प्रीति सो भक्ति है भावार्थ अरहंतोमें भावोंको विशुद्धता संयुक्त प्रीति सो अर्हद्भक्ति है, आचार्योमें भावोंकी विशुद्धता सहित अनुराग सो आचार्य भक्ति है, उपाध्याय वा सर्व शास्त्र ज्ञान सम्पन्नोंमें स्नेह सो बहुश्रुतभक्ति है, जिन भाषित शास्त्रोंमें प्रेम वा रुचि सो प्रवचन भक्ति है ॥
(१) षण्णाम् ६॥	=छह (सामायिक, स्तव–स्तवन वा वंदना, नमस्कार-प्रणाम, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग)
आवश्यक-क्रियाणाम् ६॥ यथाकालम् *	=आवश्यक क्रियाओंका अपनी अपनी क्रिया के समय पर (अर्थात् ठीक २ समय पर)
प्रवर्तनम् १॥आवश्यक-अपरिहाणिः १॥; ज्ञान-	=प्रवृत्ति करना सो आवश्यकापरिहाणि है –ज्ञान
तपस्–जिनपूजा–विधिना ३।	=तपस्या वा तपश्चरण से (और) जिन पूजनके विधानसे वा करनेसे (=विधिना)
धर्मप्रकाशनम् १॥	=जिन धर्मका उद्योत करना–जिन धर्मकी महिमाको प्रगट करना
मार्गप्रभावना १॥;	=जैन धर्मके महत्वका प्रख्यापन सो मार्ग प्रभावना है अर्थात् ज्ञानके प्रकाश से–घोर तपश्चरण करनेसे जिन पूजा वा प्रतिष्ठा करके तथा अन्य अन्य प्रशस्त तथा सर्वोत्तम् आचारण द्वारा जिन धर्म का बड़प्पन वा महिमा प्रगटकरना सो मार्ग प्रभावना है
वत्से ७। धेनुवत् * सधर्मणि ७ स्नेहः १।	=बछरा में (=वत्से) गायके जैसा (प्रेम) हो साधर्मी जीवोंमें वैसी ही प्रीति–अनुराग
प्रवचनवत्सलत्वम् १॥ ।	=सो प्रवचन वत्सलताहै भावार्थ जैसे गाय अपने बछड़े विषैं अकृतिम प्रेम रखती तैसेही सधर्मीजनोंको देखकरि स्वाभाविक स्नेहसे चित्तका भीगजाना सो प्रवचन वत्सलताहै ॥
तानि १॥एतानि १॥षोडशकारणानि १॥सम्यग्भाव्यमानानि १॥	=वे इतने सोलह कारण भले प्रकार भाये हुए (भावना किये गये)
व्यस्तानि १॥ समस्तानि १॥ च*	=पृथक् पृथक् अर्थात् सोलह भावनाओंमेंसे एक, दो तीन आदि और सब हों सो
तीर्थकर-नामकर्म-आस्रवकारणानि १॥प्रत्येतव्यानि १॥;	=तीर्थकर नाम कर्मके आस्रवके कारण प्रतीति करना चाहिये वा मानना चाहिये

(१) षष् यह शब्द बहुवचन मे आताहै और तीनो लिगो मे इसका एकसा रूप है यहां पर क्रिया शब्दसे सम्बन्धहै इसलिये स्त्रीलिग मानलियाहै॥

इदानीं नामास्रवाभिधानानन्तरं गोत्रास्रवे वक्तव्ये सति नीचैर्गोत्रस्यास्रवविधानार्थमिदमाह—

परात्मनिन्दाप्रशंसेसदसद्गुणोच्छादनोद्भावने(१) च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥

इदानीं=नाम आस्रव अभिधान निरन्तरम् गोत्र आस्रवे =अब नाम आस्रवके कथनके (=अभिधान) लगवाई गोत्र आस्रवके वक्तव्ये सति नीचैः गोत्रस्य आस्रव विधान- =कथन(=वक्तव्ये)के (प्रसग) होनेपर नीच गोत्रके आस्रवके आरम्भ (=विधान)के अर्थम् इदम् आह =लिये यह (अग्रिम सूत्र आचार्य) कहते हैं कि

परात्मनिन्दाप्रशंसेसदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥ २५ ॥

=परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैः गोत्रस्य आस्रवकारणानि भवन्ति

सूत्रार्थ पर-आत्म-निन्दा प्रशंसा =दूसरेकी तथा अपनी (यथासत्य वा अनुक्रमसे) बुराई और बड़ाई

च (२) सत्— =और (=च) विद्यमान(=सत्) अच्छे(=सत्) उत्तम(=सत्) पूज्य (=सत्), सच्चे =सत्)

असत्— =और अविद्यमान (=असत्) बुरे (=असत्) अधम-निंद्य (=असत्) अपूज्य (=असत्) झूठे (=असत्)

(१) उच्छादन-अधिकतर मुद्रित तथा हस्तलिखित पुस्तकोंमें यही पाठ है जो ऊपर लिखा गयाहै परन्तु मुद्रित तत्त्वार्थ राजवार्तिक तथा मुद्रित तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकमें उच्छादनके स्थानमें च्छादन है अर्थात् 'सदसद्गुणच्छादनोद्भावन" ऐसा पाठ है और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें उच्छादन,च्छादनके स्थानमें आच्छादन है इसलिये सदसद्गुणाच्छादनोद्भावने"ऐसा पाठहै अर्थ भेद नहीं हैक्योंकि उच्छादन च्छादन-आच्छादन तीनोंका अर्थ अप्रगटता अव्यक्तता, गोपन-संवरण-छिपाना या अप्रकाशन है ॥ (२) सत् शब्दके पाँच अर्थ हैं सत्य-साधो-विद्यमाने-प्रशस्तेऽभ्यर्हिते च सत्" ॥ अमर कोश नानार्थ (२३वां) वर्ग श्लोक ८२ और पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ४०२=सांच अच्छा भला-हुता-उत्तम-पूज्य ऐसे ही असत् के भी पांच अर्थ इनसे प्रतिकूल हैं अर्थात् झूठ बुरा अनहुता अधम निंद्य अपूज्य यहां पांचों ही अर्थ लागू हो सकते हैं ॥ सत्=उत्तम और असत्=निंद्य सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १५२ । सत्=सत्य और असत्=झूठ(सदासुखदासजी तत्त्वार्थसूत्रटीका पत्र३२ सत् हुते और असत्=अनहुते सत्=सांच असत् झूठ देखो अर्थप्रकाशिका मुद्रित पृष्ठ ३६१ तथा जयचन्दजी वचनिका पृष्ठ ५२२ और ५२३ ॥

त्यागो दानं, तत्त्रिविधमाहारदानमभयदानं ज्ञानदानं चेति । तच्छक्तितो यथाविधि प्रयुज्यमानं त्याग इत्युच्यते ॥ अनिगूहितवीर्यस्य मार्गाविरोधिकायक्लेशस्तपः ॥ यथा भाण्डागारे दहने समुत्थिते तत्प्रशमनमनुष्ठीयते बहूपकारत्वात्तथाऽनेकव्रतशीलसमृद्धस्य मुनेस्तपसः कुतश्चित्प्रत्यूहे समुपस्थिते तत्सन्धारणं समाधिः ॥

शरीर सबंधी क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोगादि जनित दुःख मन सबंधी दुःख इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, वांछितका अलाभ, इत्यादि संसारके दुःखोंसे नित्य भयभीत होकर परम वीतरागता का चिन्तवन सो अभीक्ष्ण संवेग भावनाहै

त्यागः [१/१] दानम् [१/१], =(उपकारके लिये किसी वस्तुका)छोड़ना-अर्पण-वितरण-अतिसर्जन-सो दान है

तत्-त्रिविधिम्[१/१] आहारदानम्[१/१] अभयदानम्[१/१] =वह (दान वा अतिसर्ग) तीन प्रकार आहारदान-अभयदान-

ज्ञानदानं[१/१]चइति;तत्[१/१]शक्तितः*यथाविधि*प्रयुज्यमानं=और(=च)ज्ञानदान है। जो यथा सामर्थ्य(=शक्तितः)रीतिके अनुसारअतिसर्जन है

त्यागः[१/१] इति*उच्यते । (१ अनिगूहित-वीर्यस्य[६/१]=सो त्याग है ऐसा कहा गया है। शक्तिको न छिपाने वालेके (=अनिगूहित)

मार्ग-अविरोधिन्-कायक्लेशः [१/१] तपः [१/१]; =(जिनेन्द्रके) मार्गसे अविरोधी कायक्लेश सो तप है अर्थात् अपनी सामर्थ्यभर अर्हत्-भगवान्सेभाषित रीतिके अनुकूलअनशनादिक करकेकायक्लेशका सहनसोशक्तितःतपहै

यथा*(२)भाण्ड-आगारे[७/१]दहने[७/१] =जैसे वस्तुग्रहके (अर्थात् उस कोठारके जिसमें बहुप्रकारकी वस्तुयें भरी हुई हैं) अग्नि

समुत्थिते[७/१] तत्-प्रशमनम्[१/१] =लगजाने पर (=समुत्थिते) उस (भंडारमें लगीहुई आग) का बुझाना शान्ति करना

अनुष्ठीयते । (३)बहु-उपकारत्वात्[५/१] =विधि पूर्वक किया जाता है(=अनुष्ठीयते)क्योंकि(उसके बुझानेमें)बहुत उपकार है

तथा*अनेक व्रत-शील-समृद्धस्य[६/१]मुनेः[६/१] =तैसे अनेक व्रतशीलरूप सम्पदायुक्त मुनिके

तपसः[६/१]कुतश्चित्*प्रत्यूहे[७/१] समुपस्थिते[७/१] =तपके किसी कारणसे विघ्न (=प्रत्यूह) आजाने पर

तत्-सन्धारणम्[१/१] समाधिः[१/१] । =उस (विघ्न)का दूर करना (बड़ा उपकार वा सहायता) है सो (साधु) समाधि है भावार्थ

---

(१) अ, नि अव्ययों और गुह=छिपाना धातुसे 'अनिगूहित बना है' (२ आगार(न०)गृह-घर । पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ५३ अगार [न०]भवन अमरकोश-पुरवर्ग अगार वैद्यकोश पृष्ठ ४, पृष्ठ ९४ आगार=गेह, आलय अत भाण्डागारे वाक्यके भाण्ड अगारे और भाण्ड आगारे दोनों पदच्छेद होसकते हैं (३)इस वाक्यका पाठ सर्वार्थसिद्धि की मुद्रित और हस्तलिखित प्रतियोंमें एक है । तत्त्वार्थराजवार्तिककी सब प्रकारकी प्रतियों तथा श्रुतसागरीटीकामें

गुणवत्दु खोपनिपातेनिरवद्येन विधिना तदपहरण वैयावृत्त्यम्॥ अर्हदाचार्यबहुश्रुतेषु प्रवचनेषु च

जैसे किसी घरमें जिसमें अनेक प्रकारकी वस्तुए भरी हों आग लगजाये तो उसके बुझानेमें बहुत उपकार होता है तैसे नाना प्रकारके व्रत-तप-शील-संयम को धारण कियेहुए मुनिके किसी कारणसे उनके व्रत तप-शील संयम इत्यादिक में विघ्न आजाय तो उसके दूर करनेमे उपकार होता है ऐसी सहायता साधुसमाधि (भावना) है

गुणवत् दु ख उपनिपातेः॥ निरवद्येनः॥ विधिनाः॥ = गुणवन्तोंके दु.ख आजाने पर निर्दोष वा पापवर्जित विधानकरि अथवा रीतिकरि

तत् अपहरणम् ः॥ वैयावृत्त्यम् ः॥ = उस (दु ख) को दूरकरना सो वैयावृत्त्य है अर्थात् रोगी दु खित साधुजनों की सेवा टहल शुश्रूषादिक करना सो वैयावृत्त्य है

अर्हत्-आचार्य-बहुश्रुतेषुः॥ = अरहत (वीतराग भगवान्) आचार्य-उपाध्याय अथवा सर्वशास्त्रज्ञानसम्पन्नोंमे

प्रवचनेषु ः॥ चः॥ = तथा(च) उक्ताः भगवन्त वचनामें अर्हत् परमर्षियोंके वचनोंमे अर्थात् जिन भाषित शास्त्रोंमे

लगभग सर्वार्थसिद्धिकासा पाठ है संस्कृतमें किसी आचार्य ने 'उपकारत्वात् शब्दका अर्थ खोलकर नहीं लिखा हैकि भंडार जिसमें अनेक वस्तुयें भरीहुईहैं उपकारी है वा उपकार करनेवाला हेकि अग्निका बुझाना वैसाही उपकारी हैजैसाकि उपकारीसाधुओंके व्रत तप सील संयमकी विघ्नताका हटाना। जयचंदजी कृत वचनिका मुद्रित और हस्तलिखितका अर्थ यह है कि अनेक व्रत शीलकरि सहित जो मुनि ताके कोई कारणते विघ्न आया ताकूं दूरि करनो जाते यामे बहुत उपकार है॥ जैसे काहूके अनेक वस्तुनिकरि भरा भंडार विषै अग्नि लागी होय ताका बुझावना तैसे यह साधु समाधि है'॥ प० सदासुखदासजीने उपकारके संबंधमें कुछ नहीं लिखा है। उनके शिष्य प० पन्नालाल दूनी अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिकमे निम्न अर्थ है 'जैसे भांडारगारके विषे उत्पन्न भया अग्निको होता संता वाका उपशमनको अनुष्ठान करियेहै। क्योंकि भंडारकूँ बहु उपकारी पणो है याते। तैसे अनेक *व्रत शील* रूप है समृद्धि जाके ऐसा मुनि समूहके तथा तपके काऊ विघ्न उत्पन्न होते संते वा मुनि समूह को तथा तपका परिपालन जो है सो समाधि है ऐसें व्याख्यान करिये है"। प० पन्नालालजी सोनी दिवाकर, दूनीजीका अनुकरण करते हुये निम्न प्रकार अनुवाद करतेहै। जैसे काहूकै अनेक वस्तुनिकरि भरया भंडारविषै अग्नि लागी होय ताके बचावन अर्थि जैसे तैसे कियाकरि बुझायें। अनुष्ठान करें जातें अनेक वस्तुनिकरि जो भरया जो भंडार ताकें बहु उपकारी पना है॥ तैसे अनेक व्रत शीलनिकरि समृद्धिहै जाकै ऐसे मुनि समूह के तथा तप के काई कारणते विघ्न उत्पन्न भये संते ताका निर्दोष विधान कर दूर करना मुनि समूहका तथा तपका निर्दोष विधान कर परिपालन करना सो समाधि है' ॥ हमने प० जयचंदजीके अनुकूल अनुवाद किया है जैसे भंडारकी वस्तुओं को अग्निसे बचानेका कार्य उपकारी है तैसे ही मुनि के जप तप व्रत,शील संयम इत्यादिका विघ्नसे बचाना उपकारी और लाभदायकहै यह अनुवाद हृदय में अधिक चुभताहै॥ इसपर पाठक विचार करले। ८८

जिनेनभगवताऽर्हत्परमेष्ठिनोपदिष्टे निर्ग्रन्थलक्षणेमोक्षवर्त्मनि रुचिर्दर्शनविशुद्धिः प्रागुक्तलक्षणा। तस्याऽष्टावङ्गानिश्शङ्कितत्वं,निष्काङ्क्षिताविचिकित्साविरहता,अमूढदृष्टिता,उपबृंहणं,स्थितीकरणं

वृत्यनुवादः-जिनेन भगवता = (इस सूत्रकी वृत्तिका शब्दशः अनुवाद) जिन भगवान्

अर्हत्-परमेष्ठिना उपदिष्टे = अरहंत परमेष्ठीसे भाषित अथवा उपदेश किया हुआ

निर्ग्रन्थ-लक्षणे मोक्ष-वर्त्मनि = निर्ग्रन्थ अर्थात् निर्दोष निष्काम यथार्थ लक्षणसंयुक्त मोक्षमार्गमें (=वर्त्मनि=वर्तमनि)

(१)रुचिः दर्शन-विशुद्धिः = अनुराग सो उज्ज्वल-निर्मल प्रशस्त वा अतिचार रहित दर्शन है

प्राक्-उक्त-लक्षणा तस्याः = जिसका लक्षण (प्रथम अध्याय सूत्र २ में) कहा गया है, तिस (दर्शन विशुद्धि) के

(२)अष्टौ अङ्गानि निश्शङ्कितत्वं = आठ गुण वा अंग हैं। निःशंकित अंग वा गुण अर्थात् वस्तुका स्वरूप यही है इसी प्रकारही है और नहीं है और अन्य प्रकार भी नहीं है ऐसे जैन मार्गमें खड्गके पानीकेसमान निश्चल श्रद्धान(=रुचि)

निःकाङ्क्षिता = निःकांक्षित अंग अर्थात् कर्मका है परवशपना जिसमें अन्तकरि सहित दुःखोंकरके मिला हुआ है उदय जिसका तथा जो पापका बीज भूत है ऐसे सांसारिक सुखमें अनित्यरूप श्रद्धा रखना भावार्थ सांसारिक सुखकी वांछा नहीं करना सो निःकाङ्क्षितअंग कहा गया है(१२वां श्लोकका अनुवाद)

विचिकित्साविरहता = निर्विचिकित्सितअंग अर्थात् रूपसे अपवित्र रत्नत्रयसे पवित्र ऐसे धर्मात्माओंके शरीरमें (ग्लानि रहित) गुणोंमें प्रीति करना जो है सो निर्विचिकित्सितअंग मानागया है (१३वांश्लोक०)

अमूढदृष्टिता = अमूढदृष्टि अंग अर्थात् दुःखोंका मार्ग ऐसे कुमार्ग वा मिथ्यामतमें और कुमार्गमें स्थिति ऐसेमिथ्या-तियोंमें मनकर सम्मत न होना, कायकर सराहना नहीं करना, वचनकर प्रशंसा नहीं करना सो अमूढ़दृष्टिनामा अंग कहा जाता है (१४वां श्लोकका अनुवाद)

उपबृंहणम् = उपगूहन अंग अर्थात् जो अपने आपही पवित्र ऐसे जैनमार्गकी अज्ञानी तथा असमर्थजनोंके आश्रयसे उत्पन्न हुई निंदाको जो दूर करते हैं उसको उपगूहन अंग कहते हैं(१५वांश्लोककाअनुवाद)

स्थितीकरणम् = स्थितीकरणअंग अर्थात् सम्यग्दर्शनसे अथवा सम्यक् चारित्रसे भी डिगते हुये वा भ्रष्ट होते हुये

(१) 'रुचि' शब्दका अर्थ प०सदासुखदासजीने रत्नकरण्डश्रावकाचारका ११वांश्लोकके अर्थमें श्रधान किया है और पद्मचन्द्रकोषके पृष्ठ ३२३में 'रुचि' का अर्थ अनुराग है मेरी समझमें यह शब्दका दुहरा अर्थ (कि वस्तुके यथार्थ स्वरूप मे अनुराग और श्रद्धान दोनों हों सो निःशङ्कित अंग है) देता है-श्रधा-श्रधान-प्रतीति-विश्वास-निश्चय-प्रत्यय-एकार्थ वाचक है॥ (२) इन आठ अंगोंके भावार्थ इन पृष्ठोंमें अक्षर प्रति अक्षर श्री समन्तभद्राचार्य विरचित रत्नकरण्ड श्रावकाचारके श्लोक ११ से १८ तकका अनुवाद लिख दिया गयाहै॥

वात्सल्यं, प्रभावन चेति॥ सम्यग्ज्ञानादिषु मोक्षसाधनेषु तत्साधनेषु च गुर्वादिषु स्वयोग्यवृत्त्या सत्कार आदरो विनयस्तेन सम्पन्नता विनयसम्पन्नता॥ अहिंसादिषु वृतेषु तत्प्रतिपालनार्थेषु च क्रोधवर्जनादिषु शीलेषु निरवद्या वृत्ति शीलवृतेष्वनतिचार ॥ जीवादिपदार्थस्वतत्त्वविषये सम्यग्ज्ञाने नित्य युक्तता अभीक्ष्णज्ञानोपयोग ॥ संसारदु खान्नित्यभीरुता संवेग ॥

पुरुषोंको धर्मसे है प्रेम जिनको ऐसे पुरुषोंके द्वारा जा फिर उसीमें स्थिर करदेना है सो विद्वानोंके द्वारा स्थितीकरण अग कहाजाता है (१६वा श्लोकका अनुवाद)

वात्सल्यम् ॥ =वात्सल्य अग अर्थात् अपने सहधर्मी भाइयोंके प्रति (धर्मात्मा जैनी भाइयोंके प्रति) समीचीन भावोंकर सहित छल कपट रहित यथायोग्य आदर सत्कार करना सो वात्सल्य नामा अग कहा जाता है (१७वा श्लोकका अनुवाद)

प्रभावनम् ॥ च* इति* ॥ =और (=च) प्रभावना अग इस प्रकार है अर्थात् अज्ञानरूपी अन्धकारके विस्तारको जिस प्रकार बनें उस प्रकार दूर करके जिन मार्गका समस्त मतावलम्बियोंमें प्रभाव (महिमा–बड़प्पन) प्रगट कर देना सो प्रभावना नामा अग है (१८वा श्लोकका अनुवाद)

सम्यग्ज्ञान–आदिषु॥ मोक्षसाधनेषु॥ तत्– =सम्यग्ज्ञान–सम्यग्दर्शन–सम्यक्चारित्र मोक्षके उपायोंमें तथा (=च) उन

साधनेषु च*गुर–आदिषु स्वयोग्य– =(सम्यग्ज्ञानादिक)के धारकोंमें अथवा धारणकरनेवाले गुरुआदिकोंमें अपने योग्य

वृत्त्या* सत्कार आदर विनय तेन =प्रवृत्तिकरि सत्कार– आदर– विनय तिसकरि

सम्पन्नता॥ विनयसम्पन्नता॥ ॥ =युक्तता (=परिपूर्णता–साहित्यता–सगता) सो विनयसम्पन्नता है

अहिंसादिषु॥ वृतेषु॥ च–तत्प्रतिपालन–अर्थेषु॥ =अहिंसादिक वृतोंमें तथा (=च) तिनके रक्षक

क्रोधवर्जन–आदिषु॥ शीलेषु॥ निरवद्या॥ वृत्ति॥ =क्रोधवर्जनादिक शीलोंमें अतीचार (दोष) रहित प्रवर्तना वा प्रवृत्ति सो

शीलवृतेष्वनतिचार जीवादि–पदार्थ–स्व–तत्त्व =शीलव्रतेष्वनतिचार है। जीवादिक (छह)पदार्थोंका निजनिज (=स्व)स्वरूप (तत्त्व)

विषये॥ सम्यग्ज्ञाने॥ नित्यम्॥ युक्तता॥ =है विषय जिसका ऐसे सम्यग्ज्ञानमें निरन्तर वा सदा(=नित्य)सम्पन्नता(=युक्तता)

अभीक्ष्ण–ज्ञानोपयोग, ससार–दु खात्॥ =सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है। ससारके दु खसे–

नित्य–भीरुता॥ सवेग ॥ =सदा भयभीतता वा डरते रहना सो सवेग है, अर्थात् अभीक्ष्ण सवेग है।

[६] कषायानुवादेन-क्रोधमानमायासु मिथ्यादृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। प्रमत्तसंयतादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः संख्येयाः। लोभकषायाणाम्

अपगतवेदाः १।३ अनिवृत्ति–बादर–आदयः १।३ = "वेदरहित अनिवृत्तिबादरसांपराय आदि
अयोग–केवलि–अन्ताः १।३ सामान्य–उक्त–संख्याः १।३ = अयोग केवली ताईं सामान्योक्त कहिये गुणस्थानवत् संख्या है" जय०७४

अर्थात् इस नववे गुणस्थानके छह भागोंमेंसे अन्तके तीन भाग वेदरहित हैं उपशम श्रेणीवालोंकी संख्या २९९ जीवोंकी है और क्षपक श्रेणीवालोंकी संख्या ५९८ है इन तीनों भागोंमें गुणस्थानवत् संख्या २९९ होनेसे और ५९८ होनेसे आदिके तीन वेद भागोंमें कोई भी जीव न रहैगा॥ दशवेंसे चोदहवें गुणस्थानोंमें जीवोंकी संख्या वही है जो पृष्ठ ९८ में कह चुके हैं॥ इस वेद अनुवादकी संख्यामें हमारी समझमें जो आया है वह लिख दिया है। इसको और जगह विशेष नहीं मिला, पाठकगण अन्य ग्रंथोंसे निश्चय करलें॥

(६) कषाय–अनुवादेन ३।१ क्रोध-मान-मायासु ७।३ = कषायके कथनानुसारकरि क्रोध-मान मायावालोंमें
मिथ्यादृष्टिआदयः १।३ संयतासंयत–अन्ताः १।३ सामान्य– = मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयमासंयमी तक सामान्यकरि
उक्त-संख्याः १।३ = कथित [गुणस्थानसदृश] गणनावाले हैं अर्थात् क्रमसे अनंतानंत, बावन करोड, एक अरब चार करोड, सात अरब और [संयमासंयमी] तेरह करोड हैं।
प्रमत्तसंयत-आदयः १।३ अनिवृत्तिबादर–अन्ताः १।३ = प्रमत्त संयमीसे लेकर (=आदयः) अनिवृत्ति बादर साम्पराय तकके
संख्येयाः १।३ = संख्यात हैं (परिमित संख्याके लिये देखो पृ० ९८)
लोभकषायाणाम् ६।३ = लोभ कषायवालोंका [पहिले मिथ्यादृष्टिसे अनिवृत्ति बादर नववें गुणस्थान तक]

वैयावृत्त्यकरणम् ॥ =रोगी-दु खित साधुजनोंकी सेवा-टहल-शुश्रूषादिक करना,

अर्हद्भक्ति ॥ =अरहतवीतराग, भगवान विषैं भावोंकी विशुद्धता सहित प्रीति,

आचार्यभक्ति ॥ =सघमें दिक्षा शिक्षा देने वाले आचार्यो में भावोंकी विशुद्धता सहित अनुराग

बहुश्रुतभक्ति ॥ =उपाध्यायोंमें वा सर्व शास्त्र सम्पन्नोंमें भावोंकी विशुद्धता युक्त स्नेह वा प्रेम

प्रवचनभक्ति ॥ =अर्हतपरमर्षियोंके वचनोंमें अर्थात् उनके भाषित शास्त्रोंमे भावोकी परिणामोंकी विशुद्धता निर्मलताकरि स्नेह

आवश्यक- =आवश्यकीय क्रियायों(सामायिक-स्तव वदना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान-कायोत्सर्गनि) में

अपरिहाणिः॥ =त्यागका अभाव अथवा हानि नहीं करना अर्थात् सामायिक-स्तोत्र (स्तुति-स्तव) प्रशसा, तीर्थकरोंके पवित्र गुणोंका कीर्तनकरना वन्दना, नमस्कार(प्रणाम),प्रतिक्रमण,स्मरण करके अतीतकालके लगे हुये दोषोंसे निवर्तना वा हटना-प्रत्याख्यान आगामी दोषोंका त्याग(निरादर तिरस्कार निषेध), कायोत्सर्ग कालकी मर्यादाकरि शरीर विषैं ममत्व छोडना (=उत्सर्ग),

मार्गप्रभावना ॥ =(ज्ञानके प्रकाशसे तपस्या करके जिन पूजा करके अन्य सम्यग् आचरणोंसे) जिन धर्मका (=मार्ग) उद्योत करना महत्व वा बडप्पन प्रगट करना

(१) प्रवचनवत्सलत्वम्॥ =उत्कृष्ट(=प्र)वचनके धारकोंमेंअनुरागता(वत्सलत्वम्)अर्थात् साधर्मीजनोंमें अनुराग(प्रीति,स्नेह,प्रेम)रखना

इति तीर्थकरत्वस्य॥नामकर्म- =इस प्रकार तीर्थकरपना वा (अरहतपना) नामकर्मके

आस्रव-कारणानि॥भवन्ति । =आस्रवके कारण होते है

१ उत्कृष्ट वाक्यमें अनुरागता ऐसा'प्रवचनवत्सलत्वम्'का शब्दार्थ है । प्र=उत्कृष्ट वा प्रसिद्ध वचन=वाक्यअर्हत् केवली भगवानका ही हो सकता है इसलिये अर्हत्केवली भगवान्के वाक्यमें वत्सलत्व स्नेहता सो प्रवचन वत्सलत्व है अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग-हितोपदेशक अरहत भगवान्से भाषित सोही वाह श्रुतमें प्रेमता सो प्रवचन वत्सलता है ॥ तत्त्वार्थ राजवार्तिक (मुद्रित पृष्ठ २६७)में 'य [illegible]धर्मणि स्नेह सप्रय प्रवचन स्नेह इति' यह वाक्य है=जो साधर्मीमें प्रीति है सोही प्रवचन अनुराग वा वात्सल्य ऐसा है इसलिये साधर्मी जीवमें वा अरहत भगवानके वचनके अनुकूल चलने वालेमें अनुरागता सो प्रवचन वत्सलता ऐसा अर्थ हुआ ॥ यही अर्थ (साधर्मी जीवमें अनुरागता) प० जयचन्द्जीकी वचनिकामें-सदासुखदासजी कृता अर्थ प्रकाशिकामें है पर तु विद्यानन्दजीने तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक (मुद्रितका देखो पृष्ठ ४५६ श्लोक १६) वत्सलत्व पुनर्वत्स धेनुवत्सप्रकीर्तित । जैने प्रवचने सम्यक् छद्मस्थज्ञानवत्स्वपि=धेनुरि बछरेमें जायकी जैसी अनुरागता बधी हुई है जिनेन्द्रभाषित वचनमें सम्यक् श्रद्धान वाले ज्ञानियोंमें भी वही होना चाहिये यदि साधर्मी जीवोंमें अनुरागता ऐसा अर्थ न लवें केवल शब्दार्थ (प्रवचनमें प्रीति) ऐसा अर्थ प्रवचन वत्सलत्वका लवे तो १३वीं भावना प्रवचन भक्ति और प्रवचन वत्सलतामें अर्थ भेद न होगा १३वीं प्रवचनमें प्री[illegible] प्रवचनमें स्नेह एक ही भावना हो जायेगी॥

(१)शक्तितः* त्यागः॥=यथाशक्ति,शक्तिके अनुकूल वा जितनीसामर्थ्य होउतना,उपकारके लिये अपने धनका देना,वाअर्पणसोशक्तिभर त्याग है
(१)शक्तितः* तपः॥=जितनी सामर्थ्य हो उतनी आगमके अनुकूल कायक्लेशका करना अथवा कायक्लेशका सहन सो शक्तिभर तप है ।
(२)साधु-समाधिः॥=मुनीश्वरादिकोंके किसीकारणसे व्रतशील-तप-संयममें विघ्नआनेपरउसकोदूरकरकेउनके व्रत-शील-तप-संयमकीरक्षा करना

यहां पर यहकहा जा सकता हैकि संवेग शब्दका अर्थ ही नित्य भयभीत रहनेका है यथार्थमें यह बात नहीं है क्योंकि पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३९८में और अन्य कईसंस्कृत और भाषा कोशोंमें संवेगका अर्थ 'डर' का है।।"अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगः"कापदच्छेद वैसा हीहैं जैसा"शक्तितस्त्यागतपसीवाक्यका
(१)(क)शक्तितस्त्यागतपसो = यथाशक्तितस्त्याग तपश्च (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रपृष्ठ १५१से) = यथा शक्तितः त्यागः यथा शक्तितः तपः च
(ख) तच्छक्तितो यथाविधि प्रयुज्यमान त्याग इत्युच्यते = अनिगूहितवीर्यस्य मार्गाविरोधिकायक्लेशस्तपः ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३३६से उद्धत ॥
तद्-शक्तितः यथाविधि प्रयुज्यमानम् त्याग इति उच्यते = शक्तिभर विधिके अनुकूल अपनी वस्तुका देना अर्पण करना वह(= तद्)त्याग कहागया है
अनिगूहित-वीर्यस्यमार्गअविरोधिन्-कायक्लेश.तपः = शक्तिकोनछिपाकर(जिनेन्द्रके)मार्गसेअविरोधीअनशनादिकायक्लेशकासहनसोतपहै॥गुह = छिपाना
(ग) "परप्रीतिकरणातिसर्जनं त्यागः ॥ ६ ॥" = तत्त्वार्थ राजवार्तिक६॥"यथा शक्तिमार्गाविरोधिकायक्लेशानुष्ठान तप इति निश्चीयते"राज०वा०से
पर-प्रीति-करण-अतिसर्जनम् त्यागः ॥६॥ = अन्यमें प्रीति करते हुये (अर्थात् अपनेसे भिन्नके उपकार के लिये) अर्पण वा देना सो त्याग है
"परकी प्रीतिका कारण ऐसी वस्तुका देना सोत्यागहै(पन्नालाल न्यायदिवाकरकेअनुवादसे उद्धृत)
यथा-शक्ति-मार्ग-अविरोधिन्-कायक्लेश-अनुष्ठानम्=शक्तिभर कायक्लेश जैसे अनशनादि भगवान्के मार्ग के अनुकूल करना
तपःइति निश्चीयते = सो तप है ऐसा निश्चय कियागया है ॥

(घ) शक्तितस्त्याग उद्दीतः प्रीत्या स्वस्यातिसर्जनं । .....॥ अनिगूहितवीर्यस्य सम्यग्मार्गाविरोधितः कायक्लेशः समाख्यात विशुद्धं शक्तितस्तपः॥८॥
शक्तित त्यागः उद्दीतः प्रीत्या स्वस्य-अतिसर्जनम् । = प्रीतिसे धनका(= स्वस्य)शक्तिभर अर्पण वा देना(=अतिसर्जन)सोशक्तिभर त्यागकहागयाहै
अनिगूहित-वीर्यस्य सम्यग्मार्ग-अविरोधितः । = शक्तिको न छिपाकर भलेमार्ग से अविरोधरूप अर्थात् जिनेन्द्र कथित विधिके अनुकूल
कायक्लेशः समाख्यातम् विशुद्धं शक्तितः तपः ॥८॥ = कायक्लेश (जैसे अनशनादि) का सहना सो शक्तिभर तप दोष रहित कहा गया है ॥
शक्तितस्त्यागतपसी प्रथमा विभक्ति दो वचन नपुसकलिंगमें हैं, ऊपरके प्रमाणोंसे सिद्ध है कि शक्तितः त्याग तथा शक्तितः तपः इसके पदच्छेद है,इसी प्रकार 'अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ'भीप्रथमाविभक्तिदोवचनपुलिंगमेंहै,अभीक्ष्णज्ञानोपयोग.औरअभीक्ष्णसंवेगःइसकेपदच्छेदहैंजैसाकिप्रथमलिखागयाहै॥
(२) "संघ साधुसमाधि वैयावृत्यकरणम्" श्वेताम्बरसम्प्रदायमें ऐसा पाठ है अर्थात् संघ शब्द अधिक है और साधुसमाधिः वैयावृत्यकरणम्का समास कर दिया है इससे विसर्ग वा रकालोप होगया है अथवा समाधिमें प्रथमा विभक्तिके चिन्हकी आवश्यकता नहीं रही और अर्थ करनेमें संघ का सम्बन्ध समाधिसे रक्खा है साधुका सम्बन्ध वैयावृत्यकरणसे न्यारा न्यारा रक्खा है अर्थात् इस प्रकार अर्थ किया है कि संघ तथा साधुओं की समाधि और वैयावृत्यकरण अर्थात् संघकी समाधि (समाधान) और साधुओंकी वैयावृत्यकरण अर्थात् शरीर, वाक् तथा मनोयोगसे सेवा टहल करनी ॥ दिगम्बर सम्प्रदायमें पूज्यपाद स्वामी कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक, प० जयचन्दजी कृत सर्वार्थसिद्धि वचनिका-अर्थ प्रकाशिका, इन किसी संस्कृत अथवा भाषाके ग्रन्थोंमें संघ शब्द नहीं आया और न कहीं अर्थमें चार प्रकारके संघको प्रगटकिया
(१) उपदेश देकर तथा शरीरकी टहल करके आहारादिक दान करके तो वैयावृत्य होती है परन्तु उनके व्रत-शील-तप संयमादिकमें विघ्नके कारणों को दूर करना सो साधु समाधि है अर्थ प्रकाशिका (मुद्रित पृष्ठ ३८७से उद्धृत)

बहुरि शरीर सबधी क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोगादि जनित अर मनसंबधी दुःख अर इष्ट वियोग अनिष्ट सयोग वांछितका अलाभ इत्यादिक संसारकेदु खनित भयभीत होइ परम वीतरागता का चिंतवन सो संवेग भावना हे ॥ ५ ॥" सदासुखदासजी कृत अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ३८८स। ()सदासुखदासजी कृत तत्वार्थसूत्र लघु टीकामें पदच्छेद करनेमें अभीक्ष्ण शब्दको छोड़ दिया हे परन्तु अर्थमें अभीक्ष्ण शब्दका समानअर्थ वाचक [illegible] द ज्ञानोपयोग और संवेग दोनों के साथ है जेसे "ज्ञानोपयोग १ संवेग १" ज्ञानकी भावना पढना पढावना उपदेश करना इत्यादि जिनोपदेश श्रुतज्ञानके अर्थमें निरंतर उपयोग रखना सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग हे ॥ ४ ॥ संसारके दु खनीतें नित्य भयभीत रहना सो संवेग हे ॥५॥" पृष्ठ ३७८ अर्थप्रकाशिकाके पदच्छेद सत्याचारओरपाव से प्रगट है कि पदच्छेद सदासुखजीका अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग संवेग ऐसा है (ग)' मति आदि ज्ञानके भेद प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणरूप अज्ञानका अभाव जिनका फल तथा हेयका त्याग उपादेयका ग्रहण तथा उपेक्षा कहिये वीतरागता जिनका फल ऐसे ज्ञानकी भावना विषै निरंतर उपयोग राखना सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है ॥ ४ ॥ संसार विषै शरीर सबधी मन सबधी अनेक भेद लिये अति कष्ट लिये दु ख है बहुरि प्यारेका वियोग अनिष्ट सयोग चाही वस्तुका अलाभ इत्यादि सहित हे ऐसे ससार तें भय करना सो संवेग है ॥ ५ ॥ सर्वार्थसिद्धि वचनिका प० जयचन्दजी कृता मुद्रितका पृष्ठ ५१६ ५७० हस्तलिखितमें भी यही है ॥ निम्नलिखित आचार्यों के संस्कृत वाक्यों से तथा अन्य नीचे दिये हुये कारणोंसे प्रगट हे कि अभीक्ष्ण शब्द ज्ञानोपयोग और संवेग दोनोंके साथ लाना चाहिये ॥

(क) "अभीक्ष्ण ज्ञानोपयो संवेगश्च" = अभीक्ष्ण अर्थात् सदा ज्ञानोपयोग तथा संवेग (सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रपृष्ठ १५) ॥

(ख) "जीवादिपदार्थ स्वतत्वविषये सम्यग्ज्ञाने नित्य युक्तता अभीक्ष्णज्ञानोपयोग । ससार दु खान्नित्यभीरुता संवेग ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिपृष्ठ ३३६

"जीवादि पदार्थस्वतत्वविषय सम्यग्ज्ञाने नित्यम् = जीवादिक (छह) पदार्थों का यथार्थ स्वरूप है विषय जिसका ऐसे निरन्तर सम्यग्ज्ञानमें
युक्तता अभीक्ष्णज्ञानोपयोग = सम्पन्नता (= युक्तता वा उपयोगता) सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है। सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ३३६
संसार दु खात् नित्य-भीरुता संवेग = संसारके दु खसे निरन्तर (= नित्य = अभीक्ष्ण) भयभीतता वा भयमें त रहना सो संवेग है ॥

(ग) "ज्ञान भावनायां नित्ययुक्तता ज्ञानोपयोग ॥४॥ = संसारदु खान्नित्यभीरुता संवेग ॥५॥ तत्वार्थराजवार्तिक ४ ५ वार्तिक मुद्रित पृष्ठ २६६

ज्ञान-भावनायाम् नित्य-युक्तता ज्ञानोपयोग ॥४॥ = ज्ञानकी भावना विषै निरन्तर उपयोग राखना सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है(प० पा० न्यायदि०स)
अर्थात् ज्ञानके ध्यान, चिन्तन वा वासनामें निरन्तर चित्तका लगाव वा सम्पन्नता सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग हे 'ज्ञानकी भावनाके विषै नित्ययुक्तता जो है सो ज्ञानोपयोग है" (तासों = ज्ञानसों)
प० पन्नालाल दूनी, अनुवादित तत्वार्थ राजवार्तिकसे उद्धृत

संसार दु खात् नित्यभीरुता संवेग ॥५॥ = "संसार दु ख रूप महाकष्ट तातें निरन्तर भय करना सो संवेग हे ',(प० पा०० न्यायदिवा०अनु०)
संसार दु खरूप महाकष्ट तातें निरन्तर भीरुताजो हेसो संवेग है' प०पन्ना०दूनीजीअनु०राज०से)

(घ) स ज्ञान भावनायां तु या नित्यमुपयुक्तता । ज्ञानोपयोग एवासो तदाभीक्ष्ण प्रसिद्धित ॥६॥ तत्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४५६स उद्धृत ॥
संसाराद्भीरुता भीक्ष्ण संवेग सद्धिया मत । न तु मिथ्यादृशा तेषां संसारस्या प्रसिद्धित ॥७॥ तत्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४५६से उद्धृत ॥
सज्ञान-भावनायाम् तु या नित्य उपयुक्तता । = और (= तु) सम्यग्ज्ञा[illegible]की भावना विषै जो नित्य चित्तका लगाव है।
ज्ञानोपयोग एव असो तदा-अभीक्ष्ण प्रसिद्धित = सो (= असो) ही (= एव) तो (= तदा) निरन्तर ज्ञानोपयोग प्रचारित वा प्रसिद्धित है ॥
संसरात् भीरुता अभीक्ष्णम् संवेग सद्धियाम् मत = संसारसे नित्य (= अभीक्ष्ण) भयभीतता(सो) संवेग है (ऐसी) बुद्धिमानोंमें सम्मति है
न तु मिथ्यादृशाम् तेषाम् स सरस्य अप्रसिद्धित ॥ नहिं मिथ्यादृष्टियोंके (संसारसभयहे) जिनकें संसारको प्रसिद्धि नहीं है ॥

विनयसम्पन्नता॥	=विनयकी युक्तता–विनयकी परिपूर्णता अर्थात् चार प्रकारकी विनय जैसे ज्ञानकी विनय करना, दर्शनकी विनयकरना, चारित्रकी विनयकरना, उपचारकी विनय करना(देखो अध्याय ९ सूत्र २३वां)
शीलव्रतेषु॥ अनतिचारः॥	=शील और व्रतोंमें निर्दोष पालन अर्थात् शील तथा व्रतोंको दोष रहित पालन करना
अभीक्ष्णज्ञानोपयोगः॥	=निरन्तर (=अभीक्ष्णम्=सदा) तत्त्वाभ्यास करते रहना
(१) अभीक्ष्णसंवेगः॥	=संसारके दुःखोंसे निरन्तर(=अभीक्ष्ण)भयभीत रहना,संसारसे नित्य वैराग्य और धर्मसे सदा अनुराग–

जो उपासना कीजाती है सो देव मूढताहै॥(म)पाखण्ड मूढता-गुरु मूढ़ता अर्थात् परिग्रह आरम्भ और हिंसा सहित संसारके चक्रमें रहनेवाले पाखण्डी साधु तपस्वियोंका आदर, सन्मान,भक्ति,पूजा करना सो गुरु मूढ़ता वा पाखंड मूढ़ता है(ये तीन मूढ़तायें रत्नकरण्डश्रावकाचारके २२-२३-२४वे श्लोकोंका शब्दशः अनुवाद है ॥ आठ गुण(य) निःशङ्कित अंग अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग हितोपदेशीके द्वारा वर्णित वस्तु स्वरूपमें सन्देह रहित अचल श्रद्धान वा प्रतीत ॥ (र) निःकांक्षित गुण अर्थात् इसलोक परलोक सम्बन्धी सांसारिक सुखकी भोगोंकी कांक्षा नही करना (ल) निर्विचिकित्सा अंग धर्मात्माओंके शरीरमें तथा गुणोंमें ग्लानि न करना प्रीति करना ॥ (व) अमूढदृष्टिअंग अर्थात् कुमार्गमें वा मिथ्यामतमें और मिथ्यातियोंमे मनकर सम्मत न होना कायकरि सराहना नही वचनकरि प्रशंसा नहीं करनी (श) उपगूहन वा उपबृंहण अंग अर्थात् पवित्र मार्ग–जिन मार्गकी निन्दाको दूर करना,सहन नहीं करना (ष) स्थितिकरण गुण अर्थात् कोई धर्मसे सम्यक् दर्शनसे तथा सम्यक्चारित्रसे डिगता हो तो उसको उसमे दृढ़ कर देना, (स) वात्सल्य अंग अर्थात् धर्ममे, धर्मात्माओंमे तथा धर्मके कारणोंमें प्रीति, अनुराग अथवा भक्ति रखना, (ह)प्रभावना गुण अर्थात् अपने चारित्रसे अपने कार्योंसे तथा अज्ञानरूपी अंधकारको दूर करनेसे जैनधर्मके महत्व बड़प्पनकोप्रगटकरनावृद्धि करना (१) "अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगसंवेगौ" ऐसा पाठ श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें है "अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ" ऐसा दिगम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें पाठ है अर्थात् श्वेताम्बर सम्प्रदायवालोंने अभीक्ष्णम् अव्ययको (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३८ और अमरकोष-अव्यय वर्ग श्लोक १) 'ज्ञानोपयोग संवेगौ" से भिन्न रक्खा है, दिगम्बर सम्प्रदायने अभीक्ष्ण को और ज्ञानोपयोग-संवेगौ का समास कर दिया है, 'अभीक्ष्णम्'का अर्थ निरन्तर-सदा-नित्य-वारम्वार–पुनः पुनर्–असकृत्–मुहुस् शश्वत् है। अब तर्कना इस बात पर है कि अभीक्ष्णम् शब्दका सम्बन्ध, केवल ज्ञानोपयोगके साथ है कि संवेगके साथ भी है अर्थात् पदच्छेद करनेमे अभीक्ष्णम् ज्ञानोपयोगसंवेग है, अथवा अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग और अभीक्ष्णं संवेग है जैसा कि मैने ऊपर (पदच्छेद) किया है क्योंकि इसमे टीकाकारोंका भिन्न २ मत है॥ प्रथम वह लिखते है जहां अभीक्ष्ण केवल ज्ञानोपयोगके साथ है ॥ "अभीक्ष्णज्ञानोपयोग ॥४॥ संवेग ॥५॥" सदासुखदासजी अर्थप्रकाशिकाके पृष्ठ ३७८मे अर्थ करनेमे निरन्तर (अभीक्ष्ण) केवल ज्ञानोपयोगके साथ लाये है–संवेगके साथ नही लाये है॥ "अर्थ बहुरि निर्दोष ग्रन्थनिकूं पढ़ना पढ़ावना, उपदेश करना श्रुत ज्ञानके अर्थमे निरन्तर उपयोग रखना सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है ॥४॥"

वीतरागके द्वारा वर्णित तत्त्वोंके स्वरूपमें स देह करना (ख) कांक्षा=इस लोक परलोक सम्बधी भोगोंमें तथा मिथ्यादृष्टियोंके ज्ञान-आचरण तप आदिकोंमें वाञ्छा (ग) विचिकित्सा=शरीरादिकको शुचि जानना साधुओंका जो स्नान न करें-दांत न मलें-केशलोंच करें इत्यादिकोंमें तथा उनके अ य गुणोंमें ओर धर्मात्माओंके गुणोंमें ग्लानि करना (घ) मूढतादोष=कुमार्गमें वा मिथ्यामतमें और मिथ्यातियोंमें मतकर सम्मत होना कायकर सराहना करना वचनकर प्रशंसा करना (ङ) अनुपगूहन-अनुपबृंहण=पवित्र मार्ग अर्थात् जिन मार्गकी नि दा दूर न करना सहन करना (च) अस्थितिकरण=कोई धर्मसे सम्यग्दर्शनसे तथा चारित्रसे डिगजाय तो उसको धर्मादिकमें दृढ न करना (छ) अवात्सल्य= धर्ममें, धर्मात्माओंमें तथा धर्मके कारणोंमें प्रीति वा अनुराग न रखना (ज) अप्रभावना=अपने चारित्रसे अज्ञानरूपी अ धकारको दूर करनेसे जैन धर्मके महत्व वा बड़प्पनको प्रगट न करना ॥ (आठ मद) (झ) ज्ञान अथवा विद्याका मद (ञ) पूजा प्रतिष्ठा वा अधिकारका मद ('पूजा पूज्यपनाका मद ऐश्वर्यका मद'' सदासुखदासजी कृतटीका रत्नकाण्डश्रावकाचार मुद्रित पृष्ठ २४) (ट) कुलका गर्व करना (पिता के वशका कुल कहते हैं) सदासुखदासजी कृता रत्नकाण्डश्रावकाचारकी वचनिका पृष्ठ ३८) (ठ) जातिका मद वा जातिका गर्व करना (माता की पक्ष जाति है) सदासुखदासजी कृता रत्नकाण्डश्रावकाचारकी वचनिका पृष्ठ ३४) (ड) बल अथवा शक्तिका मद (ढ) ऋद्धिका मद धनका मद सम्पत्तिका मद, अथवा सम्पदाका मद इसका धर्मविलासके छहढा कवित्तमें लाभका मद माना है (ण) तपका मद व्रताचरणका गर्व करना (त) वपु अथवा शरीरके रूपादिकका मद कहा भी है हस्तकी कलाका मद करना माना है, ओर अर्थ प्रकाशिकामें इसी सूत्रके नीचे

ज्ञान पूजा कुल जातिं । बल ऋद्धिं तप वपु ॥ अष्टावाश्रित्य मानित्व स्मय आहु गतस्मया ॥

भावार्थ—ज्ञानम् पूजाम् कुलम् जातिम् =विद्या पूज्यपना-प्रतिष्ठा-ऐश्वर्य-अधिकार कुलका पिताका वंश जाति(माताकी पक्षसे आतिहै) बलम् ऋद्धिम् तप वपु =बल-शक्ति-सामर्थ्य ऋद्धि-धन-सम्पत्ति-सम्पदा तप वपु अथवा शरीरके रूपादिक अष्टौ आश्रित्य मानित्वम् स्मयम् आहु गतस्मया =आठोंके आश्रय करि गर्वपनाको, अहंकार वर्जित (आचार्य) मद कहते हैं (=स्मयम् आहु)

षट् अनायतन= वह वस्तुये जिनमें धर्म न हो, धर्मसे रहित हों—

(थ) कुदेव अर्थात् रागी द्वेषी मोही हो ओर देवपना करि रहित सो है (द) कुधर्म जो इष्ट स्थानमें धरने वाला न हो जैसे हिंसादिकोंमें तथा पशुओंके होम रूप यज्ञमें धर्म मान लेता है (ध) कुगुरु अर्थात् जो विषय कषायके आधीन प्रवर्तने वाला हो परिग्रहधारी आरम्भधारी हो, सच्चे ज्ञान ध्यान ओर तपकरि वर्जित सो है (न) (प) (फ) ओर इन कुदेव-कुधर्म-कुगुरुके सेवने वाले इस प्रकार ये छह अनायतन हैं, इन छहों (कुदेव-कुधर्म कुगुरु-ओर इन तीनोंके सेवने वाले में धर्म नहीं तिससे इनको अनायतन कहते हैं (ब) लोक मूढ़ता अर्थात् धर्म समझ कर गंगा यमुनादि नदियोंमें तथा समुद्रमें स्नान करना वालुका ओर पत्थरोंका ढेर करना, पर्वतसे गिरना अग्निमें जलना, जैसे पतिके पीछे सती होना सो है ॥ (भ) देव मूढ़ता अर्थात् आशावान् होता हुआ वरकी इच्छा करके राग द्वेष रूपी मैलसे मलीन क्षेत्रपाल पद्मावती इत्यादि देवी देवताओंकी

पदच्छेदः—(१) दर्शन-विशुद्धिः[१/१], विनयसम्पन्नता[१/१], (२) शीलव्रतेषु[७/३] अनतिचारः[१/१], अभीक्ष्ण-ज्ञान-उपयोगः[१/१], (अभीक्ष्ण) संवेगः[१/१],(३) शक्तितः*त्यागः[१/१], शक्तितः*तपसी[१/२],(४)साधुसमाधिः[१/१], वैयावृत्यकरणम्[१/१],(५) अर्हद्भक्तिः[१/१](अर्हत्भक्तिः) आचार्यभक्तिः[१/१] बहुश्रुतभक्तिः[१/१], प्रवचनभक्तिः[१/१], (६) आवश्यक-अपरिहाणिः[१/१], मार्गप्रभावना[१/१],(७) प्रवचनवत्सलत्वम्[१/१] इति* (८) तीर्थकरत्वस्यम्[६/१] [नामकर्मणः[६/१] आस्रव-कारणानि[१/३] भवन्ति] ॥

सूत्रार्थः-(१) दर्शनविशुद्धिः[१/१] =पच्चीस दोष रहित और आठ गुण वा अंग सहित निर्मल उज्वल वा अतीचार रहित सम्यक्त्व,

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीकामें और दिगम्बर समाजकी प्रतियोंमे "दर्शनविशुद्धिर्विनय-सम्पन्नता" सूत्रके इतने भागका एक पाठ और एकसा अर्थ है ॥ (२) "शीलव्रतेष्वनतिचारो" इस वाक्यमे और सातवां अध्यायके तेईसवां सूत्रमे अतिचार पाठ है, कहीं कहीं अतीचार पाठ है दोनो शब्द ठीक हैं, "अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ" इस वाक्यका सर्व दिगम्बर सम्प्रदायकी प्रतियोंमें एकसा पाठ है परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामे 'अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग संवेगौ' पाठ है ॥ अभीक्ष्णम् को अव्यय माना है और समास नहीं किया है ॥ (३) "शक्तितस्त्यागतपसी" इतने भागका समस्त प्रतियोंमें एकसा पाठ है (४)"साधुसमाधिः वैयावृत्त्यकरणम" ऐसा दिगम्बर सम्प्रदायका पाठ है, श्वेताम्बर सम्प्रदायमे 'संघ' शब्द अधिक है और साधुसमाधिर्वैयावृत्त्य-करणम् का समास करके इस प्रकार पाठ है कि 'संघसाधुसमाधिवैयावृत्त्यकरणम्" अर्थ भी भाषामे यह किया है कि "संघ(=चातुर्वर्ण्यम् तथा साधुओंकी समाधि और वैयावृत्यकरण अर्थात् संघकी समाधि (=समाधान) और साधुओंका वैयावृत्यकरण अर्थात् शरीर-वाक् तथा मनो-योगसे सेवा टहल करनी दिगम्बर सम्प्रदायमें इस प्रकार भाषार्थ है कि मुनियोंके विघ्न और कष्टको दूर करके उनके संयमकी रक्षा करना (=साधुसमाधि) और रोगी साधु मुनि गणोंकी सेवा (टहल)करना (वैयावृत्यकरणम्) (५) 'अर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिः"इस वाक्यका पाठ और अर्थ दोनो सम्प्रदायमें एकसा है ॥ (६)"आवश्यकापरिहाणिर्मार्ग प्रभावना"ऐसा पाठ श्वेताम्बर सम्प्रदायमे है और इस सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमे, मुद्रित तत्त्वार्थराजवार्तिक और मुद्रित तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकमे है परन्तु 'आवश्यकापरिहाणिमार्ग प्रभावना" ऐसा पाठ अर्थ प्रकाशिका सदासुखदासजी तत्त्वार्थ सूत्र लघुटीकामे, जयचन्दरायकी हस्तलिखित और मुद्रित वचनिकाओंमे, निर्णयसागरयन्त्रमुद्रित नित्यपाठसंग्रह और सनातन जैनग्रन्थमालामें है, इसका कारण यह है कि पूर्वोक्तने आवश्यक-अपरिहाणिः और मार्गप्रभावनाको भिन्न भिन्न वाक्य रक्खे है और उत्तरोक्तने दोनो वाक्योको मिलाकर समास कर दिया है इसलिये विसर्ग अथवा र्का लोप होकर एक वाक्य होगया है, अर्थ समस्तका एकसा है ॥ (७) "प्रवचनवत्सलत्वमिति"यह भाग सब प्रतियोमें एकसा है अर्थके सम्बन्धमे आगे लिखा है देखो पृष्ठ ८० (८) "तीर्थकरत्वस्य" इस भागका पाठ दिगम्बर सम्प्रदायकी प्रतियोंमे एकसा हैपरन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्य तत्वार्थाधिगमसूत्रमे तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामे 'तीर्थकृत्त्वस्य" पाठ है अर्थमे कुछ भेद नही है ॥ इसी प्रकार आठवां अध्यायके 'गतिजातिशरीराङ्गो .. ..तीर्थकरत्वच इससूत्रमें भी "तीर्थकरत्वच" के स्थानमे पूर्वोक्त सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामे 'तीर्थकृत्त्व च' पाठ है ॥

(१) शंका कांक्षादि आठ दोष, आठमद, षट अनायतन और तीन मूढ़ता ये पच्चीस दोष इस प्रकार है कि (क) शंका=अरहत सर्वज्ञ

आहकिमेतावानेव शुभनाम्न आसूवविधिरुतकश्चिदस्ति प्रतिविशेषः ? इत्यत्रोच्यते यदिद तीर्थकरनामकर्मानन्तानुपमप्रभावमचिन्त्यविभूतिविशेषकारणं त्रैलोक्यविजयकरं तस्यासूव-विधिविशेषोऽस्तीति ॥ यद्येवमुच्यता के तस्यासूवा ? इत्यत इदमारभ्यते—

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ २४ ॥

आह। किम् * एतावान् । एव शुभनाम्नः । आसवविधिः । = क्या इतना ही शुभ नाम (कर्म) के आस्रवका क्रम (=विधि) है,
उत * कश्चित् । अस्ति । प्रतिविशेषः । इति * अत्र * उच्यते । = अथवा (=उत) कोई और प्रतिविशेष है इस प्रकार इस स्थानमें कहाजाता है कि
यत् । इदम् । तीर्थकरनामकर्म । अनन्त अनुपम- = जो(=यद्) यह(=इदम्) तीर्थंकर नामा नामकर्म है सो अनन्त, उपमा रहित
प्रभावम् । अचिन्त्य विभूति-विशेष-कारणम् । = तेज और सामर्थ्य वाला(=प्रभाव) है वह अचिन्त्य ऐश्वर्य वा विभव विशेषका कारण है
अर्थात् वह विभव जो इन्द्रियजनित विचारमें नहीं आसक्ता है ॥
त्रैलोक्य-विजयकरम् । तस्य । आसूव— = तीन लोकविषे विजय करने वालाहै तिस (तीर्थंकर नामा नाम कर्म)केआसूवका
विधि विशेषः । अस्ति । इति * यदि * एवम् * उच्यताम् । = विधि विशेष है । यदि इस प्रकार है तो कहा जाना चाहिये कि
के । तस्य । आसूवाः । = कौन तिस (तीर्थंकर नामा नाम कर्म)के आसूवके कारण हैं
इति * अतः * इदम् । आरभ्यते । = इसलिये यह (अग्रिम सूत्र) आरम्भ वा प्रारब्ध किया जाता है

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलवृतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी

अथ शुभनामकर्मणः क आस्रव इत्यत्रोच्यते—

तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥

कायवाङ्मनसामृजुत्वमविसंवादनं च तद्विपरीतम्॥चशब्देन समुच्चितस्य च विपरीतं ग्राह्यम्। धार्मिकदर्शनसद्भावोपनयनसंसरणभीरुताप्रमादवर्जनादि।तदेतच्छुभनामकर्मास्रवकारणं वेदितव्यम्।

अथ*शुभ-नामकर्मणः[६।१]।।कः[१।१]।आस्रवः[१।१]।इतिअत्रउच्यते = अब शुभ नामकर्मका क्या आस्रव है ऐसे यहां (अग्रिम सूत्रमें)कहाजाता है कि

तद्विपरीतम् शुभस्य॥ २३॥ =तद्विपरीतं शुभस्य(नाम्नः कर्मणः आस्रव हेतुः भवति)

तद्-विपरीतम्[१।१]।।शुभस्य[६।१]।।नाम्नः[६।१]।।कर्मणः[६।१]।। =उस(योग वक्रता विसंवादनं च)के प्रतिकूल वा उलटा, शुभ नामकर्मके

आस्रव-हेतुः[१।१]। भवति T =आस्रवका कारण होता है अर्थात्मन-वचन कायके योगोंकी सरलता वा आर्जवता यथार्थ प्रवर्तन कराना (अविसंवादनं,विसंवादका अभाव)और(=च)धार्मिक दर्शन-सद्भावउपनयन ससरणभीरुता-प्रमादि वर्जनादि(देखो वृत्ति २-३ वाक्य)शुभनाम कर्मके आस्रवका कारणहै

काय-वाग्-मनसाम्[६।३]।।ऋतत्वम्[१।१]।।अविसंवादनम्[१।१]।।च*=काय वचन-मनकी सरलता वा आर्जवता, विसंवादनका अभाव और (=च)

तद्-विपरीतम्[१।१]।।; =धार्मिकदर्शन-आदिक(=च)पूर्व कथितसे(=तद्)वा"योगवक्रता विसवादन च"केप्रतिकूलहैं

चशब्देन[३।१]। =(बाइसवाँ सूत्रका प्रतिकूल लेनेसे इस सूत्रमें चकारभी होगा सो) चकारकरि

समुच्चितस्य[६।१]।। च *विपरीतम्[१।१]।। ग्राह्यम्[१।१]।।; =समुचित किये गयेके उलटे वा[प्रतिकूल भाव]भी[=च]लिये गये हैं, ग्रहण किये गये हैं अर्थात् २२वाँ सूत्रमें चकारकरि मिथ्यादर्शन-पैशून्य इत्यादिक लिये थे [देखो वृत्तिकी ६ पंक्ति] यहां पर बाइसवाँ सूत्रको उलटनेसे 'ऋजुयोगोऽविसंबादनं च' वा 'प्रयोगताऽविसंवादनं च' प्राप्त हुए, इस प्राप्त हुए सूत्रके चकारसे धार्मिक दर्शन-सद्भावादिक लिये गये हैं जो बाइसवां सूत्रके चकारसे प्राप्त हुये भावोंसे विरुद्ध हैं ॥

धार्मिकदर्शन-सद्भावउपनयन- =धर्मात्मा वा धर्मशील [पुरुषों]का दर्शन, साधुभावोंको धरना

संसरणभीरुता-प्रमादवर्जन आदि[१।१]।।;तद्[१।१]।।एतद्[१।१]।।=संसारसे भयभीत प्रमादका त्याग आदिक हैं सो [=तद्] यह [=एतद्]

शुभनामकर्म-आस्रवकारणम्[१।१]।।वेदितव्यम्[१।१]।। =शुभ नाम कर्मके आस्रवका कारण जानना चाहिये

विसंवादनं,सम्यगभ्युदयनि श्रेयसार्थासु क्रियासु प्रवर्तमानमन्य तद्विपरीतकायवाङ्मनोभि-र्विसंवादयति मैवं कार्षीरेव कुर्विति ॥ एतदुभयमशुभनामकर्मास्रवकारणं वेदितव्यम्॥ चशब्देन मिथ्यादर्शनपैशुन्यास्थिरचित्तताकूटमान तुलाकरणपरनिन्दाऽऽत्मप्रशंसादि समुच्चीयते ॥

(१) विसवादनम्॥, सम्यक्-अभ्युदय-नि श्रेयस-	=विसवादनहै।भली(=सम्यक)कल्यानकरनहारी(=अभ्युदय)स्वर्गमोक्षके(=नि.श्रेयस)
अर्थासु॥क्रियासु॥प्रवर्तमानम्॥अन्यम्॥	=उपायकी (=अर्थासु) क्रियायोंमें अन्य प्रवर्तता हो तो
तद्-विपरीत-काय-वाग् मनाभि॥	=उस(भलीकल्यानकरनहारी-स्वर्ग मोक्षकेउपायकीक्रियायों)केप्रतिकूलमनवचनकायकरि
विसवादयति।मा*एवम्*(२)कार्षी। एवम्(३)कुरु। इति,	=अन्यथा प्रवर्तावै,झूठो प्रयोजना करै,न करो ऐसेकर,(वक्रता विसवादमें)ऐसा(भेद)है॥
एतद्॥ उभयम्॥अशुभ-नामकर्मआस्रव-कारणम्॥	=यह दोनों(योगवक्रता तथा विसवादन)अशुभ नामकर्मके आस्रवका कारण
वेदितव्यम्॥,च*शब्देन॥मिथ्यादर्शन पैशन्य-	=जानना चाहिये।(इस सूत्रमें)चशब्दकरि मिथ्या दर्शन, किसीकी झूठी बुराईकरना
अस्थिर-चित्तता-(४)कूटमान-	=चलायमान चित्तपना,कपट रूप (=कूट)माप वा प्रमाण (=मान)मायारूप(=कूट)
तुलाकरण	=तखड़ी काममें लाना अर्थात् दूसरेका हीन नाप देना, घाटि तौल देना, अपने लिये, अन्य मित्रादिकोंके लियेअधिक माप लैना बढती तौल कर लैना ॥
परनिंदा आत्मप्रशसा-आदि॥ समुच्चीयते।	=परकीनिन्दाकरनाअपनी प्रशसा करना,आदि समुचय किये जाते हैं।औरमिलायेजातेहैं

[१]विसवादनका अर्थ अन्यथा प्रवर्तन है [देखो सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ३३४ पंक्ति२ ३]प्रयोजनाका अर्थ झूठहै[पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २९]प्रवर्तनका अर्थ प्रवर्तापना अथवा प्रयोजनाका है इसलिये विसवादयति-झूठी प्रयोजना करता है(२)कृ अनिट् धातु अर्थात् वहधातु है जो क्रियाके प्रत्ययके प्रथम इ ग्रहण नहीं करता, इसकी वृद्धि सज्ञा होकर कार् हुआ और सीस् मध्यम पुरुष एक वचन परस्मैपद लुङ् वा अद्यतनीवृत्तिका प्रत्यय है जो धातुके पश्चात् लगाया जाता है इस लिये कार्+सीस् हुआ र् के पश्चात् वा लगताही स्का ष् होकर षीस् बन गया कार्+षीस् रूप हुआ=कार्षी ,अजोड़ो परन्तु अद्यतनी वृत्ति या लुङ् के साथ जब निषेध वाचक मा लगाया जाता है तब वह आज्ञा सूचक का अर्थ देता है और अट का अ गिर जाता है इस लिये माकार्षी का अर्थ हुआ मत कर या न कर ॥(३) कृ आठवां तनादि गणका धातु है क्रियाके प्रत्ययके पहिले उ विकरण लगाया जाता है कृ का कुर् ङित् संज्ञक प्रत्ययके पहिले हो जाता है इसलिये कुर्+उ =कुरु और आज्ञासूचकमध्यमपुरुष एक वचन का हि गिर जाताहै तब आठवां गणमें कुरु+हि से कुरु बन जाता है ॥(४)कूटमानतुलाकरण=कूटमानकरण कूट तुलाकरण अर्थात् कूट शब्द दोनों पर लागू है

योगस्त्रिप्रकारो व्याख्यातः। तस्य वक्रता कौटिल्यम्। विसंवादनमन्यथाप्रवर्तनम्॥ ननु च नार्थभेदः। योगवक्रतैवान्यथाप्रवर्तनम्॥ सत्यमेवमेतत्-स्वगता योगवक्रतेत्युच्यते। परगतं

सूत्रार्थः-योग-वक्रता॥ विसंवादनम्॥ च॥ =(मन-वचन-कायके)योगोंकीकुटिलतावाअसरलताअन्यथाप्रवर्तनकराना वा प्रवर्तावना

अशुभस्य॥ नाम्नः॥ कर्मणः॥ आस्रव-हेतुः॥ =अशुभ नाम कर्मके आस्रवका कारण होता है अर्थात् मनमें कुछऔर विचारना, वचनसे कुछऔर कहना, और कायसे कुछ अन्य ही क्रिया करना(=योग वक्रता) तथा अन्यको धर्म मार्गसे छुड़ाय उन्मार्गमें प्रवृत्त कराना अथवा दूसरेको सुमार्गसे कुमार्गमें प्रवर्तावना (=विसंवादन) अशुभ नाम कर्मके आस्रवके कारण हैं और(=च)मिथ्या दर्शन, चुगली खाना,चलायमान चित्तपना,हीनाधिक मान तथा तखरीसे तोल देना लेना, परकी निन्दा करना अपनी प्रशंसा करनी इत्यादिक हैं (देखो सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका अन्तका भाग)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस बाइसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकाशब्दशःहिन्दी अनुवाद

योगः॥ त्रिप्रकारः॥ व्याख्यातः॥; तस्य॥ =योग तीन प्रकार कहेगये (देखो अध्याय ६ सूत्र १) तिस(तीन प्रकारके योग)का

वक्रता॥ कौटिल्यम्॥; अन्यथा॥ प्रवर्तनम्॥ =टेढ़ापन सो कुटिलता है अन्यथा प्रवर्तन वा अन्यथा काममें जोड़ना अथवा अन्य को अन्य प्रकार से काममें लगावना अथवा अन्यथा प्रयोजना

विसंवादनम्॥; ननु॥ च॥ न-अर्थभेदः॥। =सो विसंवादन है। बहुरितर्क (वक्रता और विसंवादनमें) अर्थ भेद न हुआ

योग-वक्रता॥ एव॥ अन्यथा॥ प्रवर्तनम्॥; =क्योंकि योगोंकी वक्रता ही अन्यथा प्रवर्तन है

सत्यम्॥ एवम्॥ एतद्॥ =(उत्तर)सत्य ही यह है।

स्व-गता॥ योग-वक्रता॥ इति॥ उच्यते।। परगतम्॥ =(परन्तु)आपकी अपेक्षा योग वक्रता है ऐसा कहा गया है। अन्यकी अपेक्षा

उक्त एव क्रमः । अथ तु विशेषः सूक्ष्मसाम्परायसंयताः सामान्योक्तसंख्याः । अकाषाया उपशान्तकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः ॥ (७) ज्ञानानुवादेन—मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्च मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टयः सामान्योक्तसंख्याः ।

उक्त. ॥ एव* क्रमः ॥ [सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २० की २१ पंक्तिसे ५० पंक्ति तक] वर्णित ही अनुक्रम है अर्थात् मिथ्यादृष्टि = अनन्तानन्त, सासादन = बावन करोड, मिश्रवाले = एक अरब चार करोड, असयमी = सात अरब, सयमासयमी = तेरह करोड, प्रमत्त सयमी = ५९३९८२०६, अप्रमत्तसयमी = २९६९९-१०३ अपूर्वकरण उपशमक = २९९, अपुर्वकरण क्षपक = ५९८, अनिवृत्तिकरण उपशमक = २९९ अनिवृत्तिकरणक्षपक ५९८ हैं

तु* अयम् ॥ विशेषः ॥ सूक्ष्मसाम्परायसयता. ॥ सामान्य उक्तसख्याः ॥ = परतु यह विशेष है कि सूक्ष्मसाम्पराय [दशवे गुणस्थानवर्ती] सक्षेपकरि = पहले कही हुई [गुणस्थानवत्] सख्यावाले हैं अर्थात् उपशमक = २९९ क्षपक ५९८ हैं ।

अकषाया ॥ उपशान्तकषाय आदय ॥ अयोगकेवलिअन्ताः सामान्य उक्त सख्याः ॥ = कषायवर्जित उपशांतकषायवर्तीसे लेकर अयोगकेवलीपर्यंत = सक्षेपसे वर्णित (गुणस्थानवत्) सख्या वाले हैं, अर्थात् उपशांत कषाय वीतराग छद्मस्थ २९९ हैं क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ ५९८ हैं, सयोग केवली वीतराग सर्वज्ञ ८९८५०२ हैं और अयोगकेवली सर्वज्ञ ५९८ हैं ।

[७] ज्ञान-अनुवादेन ॥ मतिअज्ञानिनः ॥ च श्रुत-अज्ञानिन ॥ मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टय ॥ सामान्य-उक्त सख्याः ॥ = (७) ज्ञानकी विवक्षाकरि मति अज्ञानवाले और श्रुत = अज्ञानवाले मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि (दूसरे गुणस्थानवर्ती) = सक्षेपसे (पहले) कथित (गुणस्थानवत्) गिनतीवाले हैं । मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त, और सासादन = बावन करोड हैं ।

बालतपो मिथ्यादर्शनोपेतमनुपायकायक्लेशप्रचुरं निकृतिबहुलव्रतधारणम् ॥ तान्येतानि दैवस्यायुष आस्रवहेतवो वेदितव्याः ॥ किमेतावानेव दैवस्यायुष आस्रवो ? नेत्याह-

सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥

किम् ? दैवस्यायुष आस्रव इत्यनुवर्तते ॥

मिथ्यादर्शन-उपेतम्॥। अनुपाय-कायक्लेश-प्रचुरम्॥। =मिथ्यात्वकरि सहित(=उपेतम्=युक्त)विना उपाय जिसमें बहुत कायक्लेश हो

निकृति-बहुल-व्रतधारणम्॥' बालतपः। =कपटसे अनेक संख्या वाले(अर्थात् अनेक प्रकारके) व्रतधारना सो बालतप है अर्थात् तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपकी अनभिज्ञतासे अनेक प्रकारके काय क्लेश सहना और व्रत करना सो बालतप है

तानि॥।एतानि॥।दैवस्य।आयुषः॥।आस्रवहेतवः। =ते इतने देवकी आयुके आस्रवके कारण

वेदितव्याः।,किम्*एतावान्' एव*दैवस्य॥। =जानना चाहिये। क्या इतनाही देवकी

आयुषः॥।आस्रवः। ? न*इति*आह। =आयुके आस्रव (का कारण) है ?, (उत्तर)नहीं, इस प्रकार कहते हैं कि

सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥ =**सम्यक्त्वम् च(दैवस्य आयुषः आस्रव हेतुः भवति)**

सूत्रार्थः-सम्यक्त्वं॥।च*दैवस्य।आयुषः॥।आस्रवहेतुः।भवति =सम्यग्दर्शन भी (=च) देवकी आयुकेआस्रवका कारण होता है परन्तु पृथक् विधानसे अर्थात् २०वां सूत्रमें सम्यक्त्वको न मिलाकर भिन्न सूत्ररचनेसे कल्पवासी देवोंकी आयुके आस्रवकाकारण (सम्यक्त्व) है

किम्॥।दैवस्य॥।आयुषः॥।आस्रवः।इति*अनुवर्तते। =क्या है ? देवकी आयुका आस्रव ऐसा(वाक्य)(सम्यक्त्वं च सूत्रमें) अनुवर्तता है अर्थात् 'सम्यक्त्वं च' सूत्रमें देवकी आयुका आस्रव होता है इतना वाक्यशेष है अथवा इतना वाक्य न्यून है सो मिलाकर पढ़ना चाहिये तब सूत्रार्थ इस प्रकार होगा कि सम्यग्दर्शन भी देवकी आयुका आस्रव का कारण होता है ॥

अविशेषाभिधानेऽपि सौधर्मादिविशेषगति । कुत ?पृथक्करणात् यद्येवं,पूर्वसूत्रे उक्त आस्रवविधिरविशेषेण प्रसक्त ,तेन सरागसंयमसंयमासंयमावपि भवनवास्याद्यायुष आस्रवौ प्राप्नुत ॥ नैष दोष सम्यक्त्वाभावे तद्व्यपदेशाभावात्तदुभयमप्यत्रान्तर्भवति ॥ आयुषोऽनन्तरमुद्दिष्टस्य नाम्न आस्रवविधौ वक्तव्ये, तत्राऽशुभनाम्न आस्रवप्रतिपत्त्यर्थमाह—

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥ २२ ॥

अविशेष–अभिधाने॥अपि*सौधर्म–आदि– =(इस सूत्रमे देवकी जातिका) विशेष कथन न करने पर भी सौधर्मआदिक

विशेषगति ॥,कुत. ? पृथक्करणात्॥ =मुख्यका(=विशेष)ज्ञान होताहै(प्रश्न)क्योंकर(उत्तर)पृथक्विधानसे भिन्न सूत्र रचनेसे

यदि*एवम्*, =(पुन प्रश्न) जो ऐसा है अर्थात् २०वां सूत्रमें सम्यक्त्वको न मिलाकर भिन्न २१वा सूत्र रचनेसे कल्यासी देवोंकी आयुका आस्रवका कारण है ।

पूर्वसूत्रे॥उक्त॥आस्रवविधि.॥अविशेषेण॥प्रसक्त॥, =तो पहिले (२०वा) सूत्रमें वर्णित आस्रव रीति विशेष रहित प्राप्त हुई ।

तेन॥,सरागसंयम–संयमासंयमौ॥अपि* =तिस (विशेष रहित आस्रव विधि)करि सरागसंयम, संयमासंयम (दोनों) भी

भवनवासिन्–आदि आयुष॥आस्रवौ॥ प्राप्नुत ॥ =भवनवासी(देव)आदिकी आयुके आस्रवोंको प्राप्त है वा ग्रहण करते है

न*एष॥दोष सम्यक्त्व–अभावे॥तद्व्यपदेश अभावात्॥= उत्तर)यह दोष नहीं है क्योंकि सम्यक् दर्शनके न होनेपर उन(सरागसंयम-संयमासंयमके नामका अभाव होता है अर्थात् सम्यक्त्व न होवे तो सराग संयम और संयमासंयम नाम का ही नहीं प्राप्त कर सकते

तद्–उभयम्॥अपि*अत्र*अन्तर्भवति ॥ =यह(सरागसंयम–संयमासंयम)दोनों भी यहां इस सूत्रमे गर्भित है

आयुष.॥अनन्तरम्॥उद्दिष्टस्य॥नाम्न॥ =आयुके अत्यन्त समीप वर्णित् वा कथित नाम (कर्म) की

आस्रवविधौ॥ वक्तव्ये॥,तत्र*अशुभ–नाम्न॥ =आस्रव विधिके वर्णनमे तहां अशुभ नामकर्म आस्रवके

प्रतिपत्ति–अर्थम्॥ आह । =कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्र) कहते हैं कि

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्न ॥ २२ ॥

=योग वक्रता विसंवादन च अशुभस्य नाम्न (कर्मण आस्रव हेतु भवति)

निम्नलिखित लेखसे दोनो सम्प्रदाय वालोंके समस्त सूत्र बह्वारम्भसे निःशीलव्रतत्व पर्यंतका भेद, अर्थ भेद, संख्या इत्यादि सर्व ज्ञात होजावेंगे।

दि० स० बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः =अधिक आरम्भता (और) बहुत परिग्रहता वा ममत्व नारकीकी आयुका आस्रवका कारण है ॥१५॥

श्वे० स० बह्वारम्भपरिग्रहत्वं च नारकस्यायुष =''अधिक आरम्भ अधिक परिग्रह नरककी आयु के आस्रवका कारण होताहै॥१६''सभाष्य०च अधिकहै

दि० स० माया तैर्यग्योनस्य॥ १६ ॥ =कपट, छल वा निकृति तिर्यंच योनिके आयुके आस्रवका कारण है ॥ १६॥

श्वे० स० माया तैर्यग्योनस्य ॥ १७ ॥ =''माया(कपट चारिता)तैर्यग्योनकी आयुके आस्रवकाकारण होतीहै॥१७॥सभाष्य०पृष्ठ१४६। एकपाठ है

दि० स० अल्पारम्भपरिग्रहत्व मानुषस्य ॥१७॥ =थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह वा तृष्णा मनुष्यकी आयुके आस्रव का कारण है ॥ १७॥

स्वभावमार्दवञ्च(स्वभावमार्दवंच॥१८॥ =स्वाभाविक कोमलता भी (=च) मनुष्य आयुके आस्रवका कारण है अर्थात् अल्पारम्भ अल्पपरिग्रहता तो मनुष्यको आयुके आस्रवका कारण है ही (सूत्र १७) विना सिखाई हुई स्वभावसे कोमलता भी मनुष्यके आयुका आस्रव का कारण होती है और बीसवां सूत्रके भाष्यके अनुसार देव आयुके आस्रवका भी कारण है इसीलिये यह सूत्र१७वां सूत्रसे भिन्नरचागयाहै

श्वे० स० अल्पारम्भपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवार्जवं मानुषस्य ॥ १८ ॥ अल्पारम्भ तथा अल्पपरिग्रह, अर्थात् अल्प कार्य्यों का आरम्भ और परिग्रह जैसेकि जितनेमें अपना कार्य चलजाय उतनेहीकार्य्योंका आरम्भ करना, तथा जितनेमें अपना प्रयोजन होजाय उतनाही सचय वा परिग्रह करना, तथा स्वभावकी कोमलता व सरलता ये सब मानुष आयुषके आस्रवके हेतु है॥ १८॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम् सूत्र पृष्ठ१४६

सूचना
१७, १८वां सूत्रके स्थानमे श्वे०स०में १८वां सूत्र है और 'आर्जव'शब्द अधिक है अर्थात् स्वाभाविक सरलताभी मनुष्य आयुके आस्रवका हेतु है॥

दि० स० निश्शीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥ १९ ॥ =और (=च) शीलव्रतरहितपन सब (नरक तिर्यंच मनुष्य-देव) आयु के आस्रवका हेतु है॥ १९॥

श्वे० स० निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥ १९ ॥ =''शील और व्रतसे रहित होना, सब प्रकारकी आयु वालोके आस्रवका हेतु है॥ १९॥ सभाष्य० ''विशेष व्याख्या-शील तथा व्रतोंसे रहित होना अर्थात् शील तथा व्रतोंका जो प्रभाव है वह नारक, तैर्यग्योन, तथा मानुष, इन सब आयुषोंके आस्रवका हेतु है॥ और जो जिस आयुषके आस्रवके कारण कह आये है वे भी है (=यथोक्तानि च)। जैसे-अधिक आरम्भ परिग्रह नरककी,माया तिर्यग्योनिकी और अल्पारम्भ परिग्रह तथा स्वभाव मृदुता आदि मनुष्यकी आयुके आस्रव के हेतु हैं (अ० ६ सूत्र १६-१७-१८) ॥१९॥ सभाष्य० पृष्ठ १४९, १५०

१९वां सूत्रकी संख्या और पाठ दोनो आम्नायोंमे एक है हमने 'सर्वेषाम्'से नरक-तिर्यंच मनुष्य-देव-आयुके आस्रव लिये हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायने वे सब आस्रव लिये हैजो १९वां सूत्रसे पहिले कहे हैं, अर्थात् देव आस्रवको छोड़ दिया है।

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥२०॥

सरागसंयमः संयमासंयमश्च व्याख्यातौ । अकामनिर्जरा-अकामश्चारकनिरोधबन्धनबद्धेषु क्षुत्तृष्णानिरोधब्रह्मचर्यभूशय्यामलधारणपरितापादिः । अकामेन निर्जरा अकामनिर्जरा।

सरागसयमसयमासंचमाकामनिर्जरावालतपासि दैवस्य ॥ २० ॥

(१)सरागसयम सयमासयम अकामनिर्जरा-बालतपासि [४] दैवस्य [२] (आयुष [३] आस्रव-हेतव: भवन्ति)

(२)सरागसयम-	=कर्मनाश करनेमें राग तथा व्रतादिक शुभ आचरणमें राग सहित सयमभाव,
(३) सयमासयम	=त्रसहिंसाका त्यागरूप सयम और स्थावर हिंसाका त्याग नहीं सो असयम इस प्रकार सयमरूप और असयमरूप दोनों प्रकारके परिणाम सो सयमासयम है
अकाम-निर्जरा-	=अपनी इच्छा न रहते भी पराधीनताकी अपेक्षासे दुष्ट कुकर्मादि कार्य न करना तथा भोजन विषयादिक सेवन न करसकना सो अकाम निर्जरा है
बालतपासि[४] दैवस्य[२] आयुष [३] आस्रव-हेतव:[१] भवन्ति	=आत्मज्ञानरहित तप, अज्ञान तप, मूढतासे तप तीनों देवकी आयुके आस्रवके कारण है

वृत्त्यर्थ. -सरागसयम:[१] सयमासयम:[२] च व्याख्यातौ[३], =सरागसयम तथा (=च) सयमासयम वर्णन कियेगये (अध्याय ६ सूत्र १२)

अकाम [१] च*	=बहुरि (=च) इच्छा विना अर्थात् अपनी इच्छा न रहते भी
चारक-निरोध-	= बन्दीगृह (=चारक) मे रोक अर्थात् बदीगृहके भुगतनमें
बन्धन-बद्धेषु[३] क्षुत्-तृष्णा निरोध-	=बन्धनसे बाधे जानेमें, क्षुधा तृषाका भुगतना
ब्रह्मचर्य-भूशय्या-	=स्त्री सगमसे रहित अर्थात् स्त्री न मिलनेके निमित्तसे ब्रह्मचर्य, भूमिशयन
मल धारण-परितापादि [१]	=(शरीर विषे)मलधारण करना, दुःखपरिताप आदिक सहना
अकाम निर्जरा[१], अकामेन[३] निर्जरा[२] अकामनिर्जरा[१],	=सोअकामनिर्जरा है-परिणामोंको नहीं बिगडकर जोदुख सहना सो अकाम निर्जरा है।

(१) इस सूत्रका दोनोंआम्नायोंमेंपाठ और अर्थएकसाहै।सरागसयम सँयमासँयम औरसरागसयम सयमासयम चारों पाठ्य ठीक है सयम=सम्+यम देखो अध्याय६पृष्ठ६१) (२)सरागसयम-यह महाव्रती मुनिके होता है। (३) सयमासयम (=देशव्रत=अणुव्रत) यह अणुव्रती अर्थात् श्रावकके होता है। (४) बालतप=मूढतप-तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपसे अनभिज्ञ मिथ्यादृष्टिको बाल और उसके तपको बाल तप वा अज्ञान तप कहते हैं (देखो सभाष्य० १५०)

च शब्दः अधिकृत-समुच्चय-अर्थः	=(उन्नीसवां सूत्रमें चशब्द प्रकरणमें लाये हुये(मनुष्यआयुके आस्रवके कारण)केसचयकेलियेहै
अल्प-आरम्भ-परिग्रहत्वम् मानुषष्य-आयुःनिःशीलव्रत्वम्	= 'अल्पआरंभपरिग्रहपणौ मनुष्य आयुके आस्रव है। अर निःशीलव्रतपणों
च इति अधिकृत-समुच्चयः-अर्थः च शब्द क्रियते ॥	=भी मानुष आयुका आस्रव है ऐसें अधिकार प्राप्तका समुच्चयके अर्थि चशब्द करिये है" श्रीयुत पण्डित पन्नालाल दूनीजी अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिकसे उद्धृत॥
अल्पारंभ— परिगृहत्वम्मानुषस्य-आयषःनिःशीलव्रतत्वम्चइतिअधिकृत समुच्चय-अर्थः चशब्द क्रियते।	= "पहले अल्पारम्भपरिगृहपना कह्या सो मनुष्य आयुका आस्रव है बहुरि अल्पारम्भ-परिग्रहपना भी अर निःशीलव्रतपना भी मनुष्य आयुके आस्रव है ॥ऐसे (?) = समुच्चयकेअर्थसूत्रमेचशब्दकानिर्देशहै॥"प०पन्नालाल न्यायदिवाकरअनुवादितराजवार्तिकसे
चशब्दोधिकृतसमुच्चयार्थः(=चशब्द अधिकृतसमुच्चय-अर्थः	= (उन्नीसवां सूत्रमें) चकार प्रकरणमे लाये हुये(मनुष्यके आयुकेआस्रव)के समुदायके लियेहै श्लोकवार्तिकसे उद्धृत इसके अतिरिक्त श्लोकवार्तिकमें अन्य विशेष कथन नही है
(आ)चशब्दोऽधिकृतसमुच्चयार्थः=चशब्दःअधिकृत समुच्चयअर्थः	= "इहीं सूत्रमें चशब्द है सो पहले अल्पारम्भपरिग्रहपणा कह्या ताका मनुष्य के आयुका समुच्चयके अर्थि है" प० जयचन्द्रजीकी वचनिकासे उद्धृत।
"अल्पारम्भपरिग्रहत्वञ्च निःशीलव्रतत्वञ्च" ॥	= "तातें अल्पारम्भपरिगृहपणा भी अरु निःशीलव्रतपणा भी मनुष्यआयुके आस्रव है,ऐसे जानना"पं० जयचन्द्रजी कृत वचनिकासे उद्धृत॥

इससे यह न समझना चाहियेकि निःशीलव्रतपना शेष नरक तिर्यंच देव आयुके आस्रवके कारण नही है, अठारहवां सूत्रके अन्तका कि अल्पारम्भपरिगृहपणा और स्वाभाविक कोमलता दो ही कारण मनुष्य आयुके आस्रवके हैं कि अन्य भी कोई कारण है उसके उत्तरमें कि तीसरा कारण मनुष्यकी आयुके आस्रवका निःशीलव्रतपना भी है ऐसा निर्देश है क्योंकि उपर्युक्त उन्नीसवां सूत्रका अर्थ प० जयचन्द्ररायजीने इस प्रकार लिखा है कि "शील कहिये उत्तरगुण, व्रत कहिये मूलगुण तिनकरि रहितपणा है, सो सर्व आयु कहिये च्यारौंही आयुका आस्रव होय है॥"

(इ) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थधिगमसूत्र पृष्ठ १४६,१५० तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका पृष्ठ ५२० इस बातके ज्ञापक है कि अल्पारम्भपरिग्रहता और निःशीलव्रतता मनुष्य आयुके आस्रवके कारणहै न कि अल्पारम्भपरिग्रहताऔर निःशीलव्रतपना चारोंआयुके आस्रवके कारणहै

(ई) तर्क और हृदय इस बातको कदापि स्वीकार नही करते कि अल्पारम्भपरिग्रहता और निःशीलव्रतता चारों आयुके आस्रवके कारण है क्योंकियदि हम सूत्रोंके स्पष्ट शब्दोंके विरुद्ध उक्त बातको मानभीलें तो इस अवस्थामे सत्रहवां सूत्र अल्पारम्भपरिगहत्वं मानुषस्य व्यर्थ हुआ जाता है क्योंकि जब अल्पआरम्भता और थोड़ी परिग्रहता चारों गतिके आस्रवका कारण है तो फिर वह केवल मनुष्य आयुके आस्रवका कारण कैसे हो सकते है॥

(उ) "एतदपि मानुषस्यायुष आस्रवः पृथग्योगकरणं किमर्थम् ?। उत्तरार्थम् देवायुष आस्रवोऽपि यथास्यात् ॥" सर्वार्थसिद्धि वृत्ति प्रथमावृत्ति पृष्ठ ३३२[प्रश्न]यह[स्वाभाविक कोमलता]मनुष्य आयुके आस्रवको भी कारण है तो भिन्न नियम [=योग] अर्थात् सूत्र किसलिये किया ॥ [उत्तर] अग्रिम[सूत्र अर्थात् २०वां]के लिये जैसे[=यथा]देव आयुका आस्रव भी [स्वाभाविक कोमलतासे] होता है। तत्त्वार्थराजवार्तिक, मुद्रित पृष्ठ २६४में वीसवां सूत्रकी वृत्तिमे निम्न वाक्य आया है 'निःशीलव्रताः सानुकम्पहृदयाः जलराजितुल्यरोषाः भोगभूमि समुत्पन्नाश्चव्यन्तरादिषु जन्म प्रतिपद्यंते=शीलव्रतरहित कोमलता सहित हृदय वाले,जलकी रेखाके समान क्रोधसहित और भागभूमिमें उपजेजे जीव अर्थात् भोगभूमियां व्यन्तरादिकमें जन्मलेतेहैं वा उत्पादनकरतेहै॥यदि अल्पारम्भपरिगृहता चारो आयुके आस्रवका कारण होता तो देवआयुके आस्रवकाभी कारण हुआ,"फिर स्वभाव मार्दवत्वञ्च"सू भाइसी अल्पारम्भपरिग्रहत्वम्में अन्तर्गतहोना चाहियेसोनहीकिया,क्योंकि१७वांसूत्रदेवायुकेआस्रवकाकारणनहींहैअतः१८वांसूत्रभिन्न है।

शीलानि च वृतानि च शीलवृतानि वक्ष्यन्ते। निष्क्रान्तः शीलवृतेभ्यो नि शीलव्रत । तस्य भावो नि शीलवृतत्वम्॥ सर्वेषा ग्रहणं सकलायुरासूवप्रतिपत्त्यर्थम्॥ कि देवायुषोऽपि भवति?। सत्यम्, भवति भोगभूमिजापेक्षया॥ अथ चतुर्थस्यायुष क आसूव इत्यत्रोच्यते–

शीलानि॥च॥व्रतानि॥च॥शीलव्रतानि॥	=बहुरि(सात)शील और(पाच)व्रत(मिलकर)शीलव्रतानि(वाक्य हुआ)
वक्ष्यन्ते॥, निष्क्रान्त॥शीलव्रतेभ्य॥	=उनको हम कहगे (अध्याय ७ सूत्र २१)शीलवृत (दोनों) से रहित
नि'शीलवृत॥,तस्य॥ भाव॥ नि'शीवृतत्वम्॥ ॥	=सो नि.शीलवृत है, तिस(नि'शीलवृत)का भाव वा होना सो नि शीलव्रतपना है॥
सर्वेषाम्॥ग्रहणम्॥सकल-आयुस्-आस्रव–	=सर्वेषाम्(सर्वोका)ग्रहण(इस सूत्रमें)सर्व आयुके आस्रवका(कारणके)
प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ किं॥देव-आयुष॥ अपि॥भवति	=जतावनेके लिये है सो देव आयुके आसूवका भी (कारण)होता है
सत्यम्॥भवति। भोगभूमिज–अपेक्षया॥ ॥	=सत्य है(परन्तु)भोगभूमिके उपजे जीवोंकी विवक्षासे है भावार्थ ,भोगभूमियोंके शीलव्रत नहीं है तो भी मदकषायके प्रभावसे देव आयुका आसूव होता है

अथ॥चतुर्थस्य॥ आयुष॥क आसूव॥इतिअत्रउच्यते=अबचौथा देव आयुका आसूवहै क्या ऐसे(अगिम सूत्र)इस स्थानमें कहा जाता हैकि

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें जो श्वेताम्बर सम्प्रदायकी संस्कृत टीका है उसमें इस सूत्रके पाठमें भेद नहीं है परन्तु अर्थमें केवल देव आयुके आस्रवका छोडकर शेष तीन आयुके आस्रवका कारण नि शीलव्रतपनेको[संमत]इस हतुसेमानाहैक्योंकिबह्वारम्भपरिग्रहत्वसस्वभावमार्दवंच इनके सूत्रोंमें केवल तीन आयुका कथन है और सर्वेषाम्'का अर्थ यह लिया हैकि सकल आयुके [जिनका ऊपर वर्णन कर चुके है] आस्रवका कारण नि शीलव्रत पना है॥ इस सूत्रका भाष्य ऐसा दिया हैकि "नि शीलव्रतत्वंच सर्वेषानारकतैर्यग्योनमानुषाणामायुषामास्रवा भवति यथोक्तानि च।" शील तथा व्रतोंसे रहित होना अर्थात् शील तथा व्रतोंका जो अभाव है वह नारक तैर्यग्योन, तथा मानुष इन सब आयुवोंके आस्रवका हेतु है। और जो जिस आयुपके आस्रवके कारण कह आये है वे भी हैं। जैसे अधिक आरम्भ परिग्रह नरकका, मायातिर्यग्योनिकी और अल्पारम्भ परिग्रह तथा स्वभाव मृदुता आदि मनुष्यकी आयुके आस्रवके हेतु हैं(सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सू। अध्याय ६ ६* १६,१७ १८ पृष्ठ १४९ और १ ० दिगम्बर सम्प्रदायमें केवल भोगभूमियों को जिनके नि शीलव्रत व है उनको देव आयुके आस्रवका कारण माना है अ यको नहीं, श्वेताम्बर आम्नायकी श्री सिद्धसेनसूरि कृता भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका हस्तलिखित के पृष्ठ ५९० पर जिसमें बाइस सहस्रसे भी श्लोक अधिक उसमें भी उन्नीसवाँ सूत्रमें 'सर्वेषाम् शब्दसे केवल तीन नरक,तिर्यंच, मनुष्य आयुके आस्रव लिये है जैसाकि निम्न उद्धृत वाक्यसे प्रगट है 'नि शीलत्व निर्व्रतत्व च सर्वेषा नारक तैर्यग्योनमानुषाणा यदायुस्तस्यास्रवोभवति '=नि शीलत्वम् निर्व्रतत्वम् च सर्वेषाम् नारक तैर्यग्यान मानुष्याणाम् यत् आयुस तस्य आस्रव भवति

नि शीलत्वम् निर्व्रतत्वम् च सर्वेषाम् नारक–तैर्यग्योन-मनुष्याणाम्	=शीलत्वसेरहित और वृतपनासे रहित अर्थात्सात शील पाच व्रतोंसे रहित सब नरक तिर्यंच, मनुष्यकी।
यत् आयुस् तस्य आस्रव भवति	=जा (=यत्) आयु है तिसका (=तस्य) आस्रव [का कारण] होता है॥

निश्शीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥ १९ ॥

चशब्दोऽधिकृतसमुच्चयार्थः।

(१) निश्शीलव्रतत्वं च सर्वेषाम्॥ निश्शीलव्रतत्वं च सर्वेषां॥ निःशीलवृतत्वं च सर्वेषाम्॥
निःशीलवृतत्वं च सर्वेषां॥ निश्शीलवृतत्वञ्च सर्वेषाम्॥ निःशीलवृतत्वञ्च सर्वेषां ॥

निश्शीलव्रतत्वम् च सर्वेषाम् == निःशीलत्वंनिव्र तत्वम् च सर्वेषाम्

=च निःशीलव्रतत्वं-निव्र तत्वम् सर्वेषां(चतुर्णाम्नारक-तैर्यग्योन-मानुष-देवानां आयुषां आस्रवहेतवः)भवन्ति ।

सूत्रार्थः-च॰निःशीलत्वम्॥निव्र तत्वम्॥ =और शीलरहितपना(देखो अध्याय ७ सूत्र २१)व्रतरहिपना(देखो अध्याय ७ सूत्र १)

सर्वेषाम् चतुर्णाम्नारक–तैर्यग्योन–मानुष–देवानाम्=सब चारौ नरककी तिर्यंचकी मनुष्यकी देवकी

आयुषाम्॥आस्रव–हेतवः भवन्ति; =आयुके आस्रवके कारण होते हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस उन्नीसवांसूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

(२) च–शब्दः अधिकृत–समुचय–अर्थः =(१९वां सूत्रमें)चशब्द,अधिकार किये गयेके वा प्रकरण किये गयेके सचयके लियेहै अर्थात् मनुष्य आयुके आस्रवके कारणका विषय अथवा प्रकरण सत्रहवां सूत्रसे आरम्भ किया है और अठारहवां सूत्रमें भी उसी आयुके आस्रवके विषयको कहा है उस आरब्ध प्रकरण वा विषयके संचयके लिये इस सूत्रमें चशब्द लाये हैं॥ इस सूत्रमें समुदाय,वा समुचयका चिन्ह "और" है जैसाकि अनुवादसे प्रगट है ।

(१) ये छह प्रकारके पाठ भिन्न भिन्न प्रतियोंमे मिलते है सब शुद्ध हैं अर्थात् ऊपरके तीन पाठ जिनके अन्तमें म्‌के स्थानमें अनुस्वार है वे पाठ भी शुद्ध हैं(अध्याय १ पृष्ठ ६) । विसर्गके पश्चात् श् ष् अथवा स् हो तो विसर्गके स्थानमे विसर्गही रहने दो अथवा यथा संभव उसविसर्गको श्‌ष्‌स् से पलटदो जैसे निःशील वा निश्शील वृक्षःषण्डे = वृक्षष्षण्डे–चन्द्रमः सु वा चन्द्रमस्सु (२)"इहां सूत्रमें चशब्दहै सो पहले अल्पारम्भ परिग्रहपणा कह्या ताका मनुष्यकेआयुका समुच्चयके अर्थि है यह अर्थ इस सूत्रके नीचे पं०जयचन्द्रायजी कृता वचनिकामें"चशब्दोऽधिकृत-समुच्चयार्थः"सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके इस वाक्यका किया है सो हमारे अर्थ से मिलता है ।

अल्पारम्भपरिग्रहत्वञ्च निःशीलव्रतत्वञ्च ॥

अल्पारम्भपरिग्रहत्वम्॥च*(=अल्पारम्भत्वम् अल्पपरिग्रहत्वम् च) =अल्पआरम्भता थोडीपरिग्रहता भी (=च)
निःशीलव्रतत्वम्॥च *(=नि शीलत्वम् निर्व्रतत्वम् च) =(सात) शीलसे रहितपन (पाँच) व्रतोंसे रहितपन भी [=च] (मनुष्य आयुके आस्रव) हैं॥इस प्रकार(क)अल्पारम्भता अल्पपरिग्रहता सूत्र १७ [ख]स्वाभाविक कोमलता (सूत्र १८) और (ग) नि शीलव्रतपना-अव्रतपना सूत्र१९ ये मनुष्य आयुके आस्रवके कारण है ॥ (निःशीलव्रतपना नरक तिर्यंच देवायुके आस्रवका भी कारण है)

(१) इस वाक्यका अर्थ भाष्यकार और टीकाकारोंने दो प्रकारसे किया है। दोनों अर्थोके सम्बन्धमें विवेचन करनेके पहिले यहा उचित जान पड़ता है कि कुछ आरम्भिक शब्द लिखे जावें भिन्न भिन्न आयुके आस्रवका प्रकरण इस अध्यायके सूत्र पद्रहवेंसे सूत्र इक्कीस तक है। अल्पारम्भ परिग्रहता (सूत्र १७) स्वाभाविक कोमलता (सूत्र १८) मनुष्य आयुके आस्रवके दो कारण निर्देश कर अठारहवा सूत्रके अन्तमें प्रश्न किया गया हैकि क्या दोय ही मनुष्य आयुके आस्रवके कारण है कि और भी है, इसपर उत्तर हेकि 'और (=च) नि शीलव्रतपना सर्व आयुके आस्रवका कारण है अर्थात् शीलरहितपना व्रतरहितपना मनुष्य आयुके आस्रवका कारण है और अवशेष तीन नारकी तिर्यंच और देव आयुके आस्रव के भी कारण है इस प्रकार मनुष्य आयुके आस्रवके कारण [क] अल्प आरम्भपरिग्रहता [ख] स्वाभाविक कोमलता [ग] शीलरहितपना व्रतरहितपना य तीन हुये, पूज्यपाद स्वामीने चशब्दोऽधिकृत समुच्चयार्थ । अल्पारम्भ परिग्रहत्वञ्च नि शीलव्रतत्वञ्च' ये दो वाक्य उन्नीसवा सूत्रके नीचे दिये हैं॥ श्री श्रुत सागरसूरि जिनका अस्तित्व विक्रम सम्वत् १५५० में माना जाता हे अपनी श्रुतसागरी टीकामें उक्त दोनों वाक्योंका तात्पर्य निम्नशब्दोंमें दिया है 'चकारादल्पारम्भपरिग्रहत्व च सर्वेषा नारकतैर्यग्मनुष्यदेवाना आयुष आस्रवो भवति"
च चकारात् अल्प आरम्भ परिग्रहत्वम् सर्वेषाम् =और (=च) (उन्नीसवा सूत्रमें) चकारसे (=च से) अल्पारम्भ परिग्रहता समस्त नारक तैर्यग् मनुष्य देवानाम् आयुष आस्रव भवति =नरक, तिर्यच, मनुष्य, देवोंकी आयका आस्रव (का कारण) होता है ॥
जनता इस बातसे अपरिचित नहीं है कि प० सदासुखजी ने तत्त्वार्थ सूत्र टीका जिसकी श्लोक सख्या लगभग २००० है विक्रम संवत् १६१० में समाप्त की और दूसरी बडा टीका जिसका नाम 'अर्थ प्रकाशिका हे सम्वत् १६१२में समाप्त की उनने तत्त्वार्थ सूत्र टीकामें पूज्यपाद स्वामीके पूर्वोक्त दोनों सस्कृत वाक्योंका तात्पर्य यह लिखा हैकि "चशब्द तै अल्पारम्भी अल्पपरिग्रहीपणा शीलव्रतरहितपणा ये समस्त (च्यारू) आयुके आस्रवके कारण है" सभव हेकि प० सदासुखजीने श्रुतसागरी टीकाके आधार पर ऐसा अर्थ लिखा हो॥ अर्थ प्रकाशिकामें' शीलरहितपणा अर व्रतरहितपणा समस्त च्यारूही आयुका आस्रव होय हे" पश्चात् व्रतशील रहितके देव आयुका आस्रव कैसे होय, इस प्रश्नका समाधानका किया है और चकार तथा पूज्यपाद स्वामीके दूसरे वाक्यके सम्बन्धमें कुछ भी नहा लिखा हे ॥ इन्हीका अनुकरण श्रीयुत जुग मंदिर लाल जैनीने तत्त्वार्थ सूत्र पर आगलभाषाके अनुवादमें किया है श्री श्रुतसागर सूरि और प० सदासुखजी और जैनीजी प्रति बहुत विनय और प्रतिष्ठा हृदयमें धारण करते हुए निवेदन करता हू कि उनके अर्थ और तात्पर्यसे मैं निम्नलिखित हेतुओं से सहमत नहा हू ॥
(अ) च शब्दोधिकृतसमुच्चयार्थ ॥१॥ अल्पारम्भपरिग्रहत्व मानुषस्यायु नि शीलव्रतत्वञ्चे यधिकृतसमुच्चयार्थश्च शब्द क्रियते॥(तत्त्वार्थ राजवार्तिक)

मृदोर्भावो[१]मार्दवम् । स्वभावेन मार्दवं स्वभावमार्दवम् । उपदेशानपेक्षमित्यर्थः॥ एतदपि मानुषस्यायुषः आस्रवः ॥ पृथग्योगकरणं किमर्थं ?

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस अठारहवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिन्दीअनुवाद

मृदोः[६/१] [१]भावः[१/१]मार्दवम्[१/१]॥; =मृदु(नरम वा कोमल)काभाव अर्थात् कोमलता वा कोमलपन सो मार्दव है

स्वभावेन[३/१]मार्दवम्[१/१]॥स्वभाव-मार्दवम्[१/१]॥; =(अन्य कारणकी अपेक्षा रहित) प्रकृतिकरि वा स्वभावकरि,कोमलपना सो स्वभावमार्दव है

उपदेश-अनपेक्षम्[१/१]॥ इति※अर्थः[१/१] ॥ =उपदेश अथवा सिखावनेकी अपेक्षारहित है ऐसातात्पर्य(इस सूत्रमें स्वभाव शब्दसे)है।

एतद्[१/१]॥अपि※मानुषस्य[६/१]आयुषः[६/१]॥आस्रवः[१/१]; =प्रश्न यह(स्वभावकरि कोमलता)भी(=अपि=च)मनुष्यकी आयुका आस्रव(का कारण)है।तो

पृथक्-योग-करणम्[१/१]॥किम्※अर्थम्[१/१]॥ ? =न्यारा नियम(=योग) अर्थात् भिन्न सूत्रका करना (=करण) किस लिये है ?

अर्थात् भिन्न सूत्रके करनेका क्या प्रयोजन है प्रश्नका भावार्थ यह है कि इस १८वां सूत्रको १७वां सूत्रसे क्यों न्यारा रचा है १७वाँ सूत्र में मिलाकर इस प्रकार निर्देश कर देते "अल्पारम्भपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवं मानुषस्य"तो इस अवस्थामें चशब्द भी न लायाजाता।

म् पदान्त हो वा म् किसी प्रत्ययके अन्तमें हो और इस म्के पश्चात् कोई व्यञ्जन आवै तो म् विकल्प करि अनुस्वारमें पलट जाता है,यदि इस म्के पश्चात् श-ष्-स्-र्-ह् आवै तो म् अवश्यही अनुस्वारमें पलट जावेगा॥ यदि हम इस म्को अनुस्वारमें न पलटे तो उसका अनुनासिक(ङ्-ञ्-ण्-न्-म्)में परिवर्तन हो जावेगा जिसका व्यञ्जन इस म्के पश्चात् आवै॥ और यदि इस म्के पश्चात् य्-व्-ल्-हों तो म् अनुनासिक य- व्- ल् में क्रमानुसार पलट जावेगा॥ इसलिये स्वभावमार्दवम्का म्अनुस्वारमें ,परिवर्तन होनेसे स्वभाव मार्दवं हो गया, यदि अनुस्वारमें नही पलटते हैं तो क्योंकि म्के पीछे च है इसलिये ञमें पलट गया और 'तव स्वभाव मार्दवञ्च' ऐसा सूत्र होगया॥

(१) भाव—(क)होना (ख)अवस्था (ग)विद्यमान,सत्ता(घ)सत्य,सत्यता (ङ)मन सम्बन्धी विकार(च)प्रेम-अनुराग (छ)सम्मति (ज)अभिप्राय(झ)ध्यान (ञ) तात्पर्य, [ट] आत्मा [ठ]वस्तु-पदार्थ[ड]प्राणी-जन्तु [ढ]चेष्टा [ण]विलास-क्रीडा-काम चेष्टा [त]गर्भस्थान, गर्भाशय (थ)जन्म (द)संसार-विश्व (ध) अपौरुषेयशक्ति [न] उपदेश-बोधन-शिक्षा-शिक्षण [प] स्वभाव [फ] इच्छा [ब] घटना [भ] विद्वान् अर्थात् भावयति [चिन्तयति] पदार्थान् [कई प्रकारके पदोंके अर्थोंके सोचने हारा] पण्डित [म] व्याकरणमें भाववाच्य क्रियाके लिये एक शब्द ॥ नाटकमें नाना पदार्थ चिन्तक (देखो वैद्यसस्कृतआंगलकोश पृष्ठ ५२४,५२५ ।) जिसमें इस भाव शब्दके सत्ताइस अर्थ दिये है और बहुतसे इसके समास पद दिये हैं॥

उत्तरार्थम् । देवायुष आस्रवोऽपि यथा स्यात् ॥ किमेतदेव द्वितीय मानुपस्यास्रवो? नेत्युच्यते-

उत्तर अर्थम् ;
देव आयुष आस्रव अपि यथा स्यात् =जैसे देव आयुका आस्रवभी [स्वाभाविक कोमलतासे] होता है
=उत्तर अग्रिम (देवायुके आस्रव) के लिये १७वा [सूत्रसे पृथक् १८वा सूत्रचा] है
इस कारण अलग रचा है कि स्वभाव मार्दव मनुष्य आयुके आस्रवका कारण है (जैसा कि १८वॉ सूत्रमें है) और देव आयुके आस्रवका कारण है जसाकि बीसवा सत्र सराग सयमादिककी विस्तार रूप वृत्ति जो तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें इसी सूत्र पर दी है उसमें निम्नलिखित वाक्यसे प्रगट है वह वाक्य यह है (पृष्ठ मुद्रित राजवार्तिक २६४) "नि शीलव्रता सानुकम्पहृदया जलराजितुल्य रोषा. भोगभूमिसमुत्पन्नाश्च व्यन्तरादिषु जन्म प्रतिपद्यते" ॥ शीलव्रत रहित, कोमलता सहित हृदय वाले जलकी रेखाके समान क्रोध सहित और भाग भूमि में उपजे जीव अर्थात् भोग भूमियां व्यन्तरादिकमें जन्म लेते ह वा उत्पादन करते हे ॥ सर्व चारों आयुके आस्रवका कारण स्वभाव मार्दव नहीं है सक्षेपत. मनुष्य आयु और दव आयुके आस्रवका कारण स्वभाव मार्दव है तिर्यञ्च आयु और नरककी आयुके आस्रवका कारण स्वभाव मार्दव नहीं है यहा पहले सूत्र तैं न्यारा सूत्र किया, ताका यह प्रयोजन हे आगे दव आयुका आस्रव कहेंगे सो स्वभाव मार्दव देव आयुका भी आस्रव है ऐसा जणाया॥" पं० जयचन्द्जी कृत सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ५०९,५१० और इसी तात्पर्यका वाक्य 'तन दैवस्यायुपोयमास्रव प्रतिपाद यिष्यते'=तिस १७वां सूत्रसे १८वा सूत्रको भिन्न रचन) करि यह देवका आस्रव प्रतिपादन किया गया है तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ ४५४ पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके (पृष्ठ ३३२ प्रथमा वृत्ति) के सदृश दिया है॥ "स्वभाव मार्दव सराग सयमादिक च देवायुरास्रवो भवतीति" 'पृथग्योगविधानम्' (श्रुतसागरी टीकासे उद्धृत) =स्वाभाविक कोमलता और (=च) सरागसयमादिक (सूत्र २०) दव आयुके आस्रवका कारण होता है एसे १७वा सूत्र की १८वां सूत्रसे भिन्न रचनाकी है ॥

किम् एतत् एव द्वितीयम् मानुपस्य आस्रव ,
न इति उच्यते
=क्या यह (=एतद्) ही (=एव) दूसरा मनुष्य आयुकी
=आस्रवका कारण है
=(उत्तर) नहीं और भी मनुष्यके आयुकाआ मूत्रका कारण है इस लिये एसा (सूत्र) कहा गया है॥

(१) दूसरके दु खका नसहारनसहन्यका पि घलजानासामादव या कामलतावानरमपनहै

विभङ्गज्ञानिनो मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। सासादनसम्यग्दृष्टयः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः। मतिश्रुतज्ञानिनोऽसंयतसम्यग्दृष्ट्यादयः क्षीणकषायान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। अवधिज्ञानिनोऽसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः संख्येयाः। मनःपर्ययज्ञानिनः प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः संख्येयाः। केवलज्ञानिनः सयोगा अयोगाश्च सामान्योक्तसंख्याः॥

विभङ्गज्ञानिनः। मिथ्यादृष्टयः। असंख्येयाः। = विभंगज्ञानी (कुअवधिज्ञानवाले) मिथ्यादृष्टि असंख्यात [जगत]
श्रेणयः। प्रतर-असंख्यातभाग प्रमिताः। सासादन = श्रेणी हैं [ये असंख्यात श्रेणी] प्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं सासादन
सम्यग्दृष्टयः। पल्योपम-असंख्येयभाग-प्रमिताः। = सम्यग्दृष्टि [विभंगज्ञानी]पल्यके असंख्यातवां भाग प्रमाण हैं [बावन करोड़ हैं]
मतिश्रुतज्ञानिनः। असंयतसम्यग्दृष्टि-आदयः। = मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी असंयमी सम्यग्दृष्टि (चतुर्थगुणस्थानवर्ती से)
क्षीणकषाय-अन्ताः। सामान्य-उक्त संख्याः। = क्षीणकषाय वालोंतक संक्षेपसे (पूर्व) कथित (गुणस्थानवत्) गणना वाले हैं अर्थात् असंयमी सात अरब, संयमासंयमी तेरह करोड ,प्रमत्त संयमी ५९३९८२०६ इनसे आधे अप्रमत्तसंयमी चार उपशमक प्रत्येक २९९ चार क्षपक प्रत्येक ५९८ हैं।

अवधिज्ञानिनः। असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयत- = अवधिज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टिसे संयमासंयमी वा देश विरत सम्यग्दृष्टि
अन्ताः। सामान्य-उक्त-संख्याः। = पर्यन्त संक्षेपकरि (पूर्व) कथित (गुणस्थानवत्) संख्यावाले हैं
= अर्थात् असंयमी सम्यग्दृष्टि सात अरब हैं संयमासंयमी तेरह करोड हैं
प्रमत्त-संयत-आदयः। क्षीणकषाय-अन्ताः। = (अवधिज्ञानी , प्रमत्तसंयमीसे क्षीणकषाय (गुणस्थान) पर्यन्त
संख्येयाः। = संख्यात हैं प्रमत्तसंयमी ५९३९८२०६ इससे आधे अप्रमत्त संयमी चार उपशमक प्रत्येक २९९ चार क्षपक प्रत्येक ५९८ हैं।
मनःपर्ययज्ञानिनः। प्रमत्तसंयत-आदयः। = मनः पर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयमी (छठे गुणस्थान) से लेकर
क्षीणकषाय अन्ताः। संख्येयाः। केवलज्ञानिनः। = क्षीणकषाय तक संख्यात हैं [यह संख्या ऊपर कह दी है] केवलज्ञानवाले
सयोगाः। च अयोगाः। सामान्य-उक्त-संख्याः। = सयोग और अयोगकेवली संक्षेपसे वर्णित गुणस्थानवत् संख्यावाले हैं।

नारकायुरास्रवो व्याख्यात.। तद्विपरीतो मानुषस्यायुष इति सक्षेप॥तद्व्यास -विनीतस्वभाव-प्रकृतिभद्रताप्रगुणव्यवहारतातनुकषायत्वमरणकालासंक्लेशतादि ॥

किमेतावानेव मानुषस्यायुष आस्रव इत्यत्रोच्यते—

स्वभावमार्दवञ्च ॥१८॥

नारक–आयुस्–आस्रव.व्याख्यात ,	=नारकीकी आयुके आस्रव[का कारण] कहा जा चुका है।
तद्–विपरीत मानुषस्य आयुष.	=उस नारकीकी आयुके आस्रवके कारणके प्रतिकूल मनुष्यकी आयुके आस्रवका कारण है
इति सक्षेप.,तद्–व्यास –	=ऐसा सक्षेप है। उस(मनुष्यआयुके आस्रवके कारण)का विस्तार–
विनीत–स्वभाव-प्रकृतिभद्रता–	=विनययुक्त परिणाम वा विनयवान् स्वभाव,प्रकृतिकरि भद्र परिणामका होना।
प्रगुण–व्यवहारता–	=सीधे स्वभावसे व्यवहार वा उद्यमपना अर्थात् मनवचनकायकी सरलतासे व्यवहार करना
तनुकषायत्व मरणकाल असक्लेशता–	=थोडी कषायका होना मृत्यु समयमें क्लेश रहित परिणामका होना—
आदि ,किम् एतावान् एव मानुषस्य आयुष =	आदिक(मनुष्यकी आयुके आस्रवका कारण)है, क्या इतना ही मनुष्यकी आयुका
आस्रव. इति अत्र उच्यते	=आस्रव है ? ऐसे यहां(अग्रिम सूत्रमें) कहा जाता है कि

स्वभावमार्दवञ्च(१)॥१८॥ -स्वभावमार्दवम् च अथवा स्वभाव मार्दव च॥१८॥

=स्वभाव मार्दवम् च(मानुषस्य आयुष. आस्रव.,देखो सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके प्रथमावृत्तिके ३३१ पृष्ठपंक्ति१२)

=स्वभावेन मार्दवम् च (मानुषस्य आयुष आस्रव. भवति)

स्वभावेन मार्दवम् च	=(उपदेशकी अपेक्षासे रहित) प्रकृति वा स्वभाव करि कोमलता भी (=च)
मानुषस्य आयुष आस्रव भवति	=मनुष्यकी आयुका आस्रव(का कारण)है अर्थात् अल्पआरम्भ और अल्पपरिग्रहता मनुष्यकी आयुके आस्रवका कारण है ही(सूत्र १७)परन्तु बिना सीखी हुई स्वभावसे कोमलता भी मनुष्यकी आयुके आस्रवका कारण है।

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इस सूत्रको 'अल्पारम्भपरिग्रहत्व' इस सूत्रमें गर्भित कर दिया है जिसका अर्थ और वर्णन १७वां सूत्रमें कहा गया है।

(२)यथार्थमें स्वभावेन मार्दवम् च ऐसा तीनपदका सूत्रहै समासमें स्वभाव मार्दवम् होगया॥म्का ञ् निम्नलिखितनियमसेहोगया॥देखोपृष्ठ९१कीटिप्पणी॥

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥

अल्पारम्भपरिगृहत्वं मानुषस्य=अल्पारम्भपरिगृहत्वं मानुषस्य(आयुषः)आसूव भवति ॥१७॥

=अल्प-आरम्भः अल्पपरिग्रहः च यस्य सः तस्य भावः मानुषस्य आयुषः आसूव हेतुः भवति ॥१७॥

सूत्रार्थः-अल्प-आरम्भः१ अल्प-परिग्रहः१ च* =थोड़ा आरम्भ और (=च) थोड़ी परिग्रह वा तृष्णा

यस्य६ सः१ तस्य६ भावः१ मानुषस्य६ आयुषः६ =जिसके है सो (=सः) उसका (=तस्य) जो भाव(=भावः) (वह) मनुष्यकी आयुके

आसूव-हेतुः१ भवतिT ॥१७॥ =आसूवका कारण होता है ॥१७॥

---

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इसो सूत्रमे दिगम्बर सम्प्रदायका अठारहवां सूत्र भी सम्मिलित है आर्जव शब्द अधिक है जैसा निम्न लेखसे प्रगट होताहै

(श्वेताम्बर सम्प्रदायका सूत्र)

अल्पारम्भपरिग्रहत्व स्वभाव मार्दवार्जवं च मानुषस्य ॥१८ सूत्र॥

अनुवादः-अल्पारम्भ तथा अल्पपरिग्रह अर्थात् अल्प कार्योंका आरम्भ परिग्रह जैसेकि जितनेमें अपना कार्य चल जाय उतने ही कार्योंका आरम्भ करना तथा जितनेमें अपना प्रयोजन होजाय उतना ही संचय वा परिग्रह करना तथा स्वभावकी कोमलता (=मार्दव) और सरलता(=आर्जव,ये मानुष आयुषके आस्रवके हेतु है ॥१८॥

(दिगम्बर सम्प्रदायकके सूत्र)

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७ सूत्र॥ स्वभाव मार्दवंच ॥१८ सू॰

थोड़ी आरम्भता थोडी परिग्रहता-स्वभावसे कोमलता भी (=च) मनुष्यकी आयुके आस्रवके कारण हैं

दोनों सम्प्रदायका अर्थ भी एकसा है केवल आर्जव शब्दका अर्थ श्वेताम्बर सम्प्रदायमें अधिक है दिगम्बर सम्प्रदायमें १७-१८ दो सूत्र दिये गये हैं ॥ "ताका यह प्रयोजन है, जो आगे देव आयुका आस्रव कहेंगे सो स्वभाव मार्दव देवायुका भी आस्रव है ऐसा जणाया" (जयचन्दजी वचनिका मुद्रित पृष्ठ ५०६,५१०) इसी तात्पर्य के भिन्न भिन्न वाक्य हमने सर्वार्थसिद्धि वृत्ति, तत्त्वार्थ राजवार्तिक,तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक, श्रुतसागरी टीकासे लेकर उनको अनुवाद सहित पृष्ठ ६२में दिये है उनको स्थान अभावसे यहां नही लिखा है उन्हीं वाक्योंसे स्पष्ट हैकि सत्रहवां सूत्र अठारहवां सूत्रसे इस लिये भिन्न रचा गया है कि 'सरागसयमादि'बीसवां सूत्रमें देवआयु कहेंगे ॥ उसके आस्रवका कारण 'स्वभाव मार्दव'भी है॥ हमने पृष्ठ६४, ६५में इस बातको सिद्ध किया हैकि 'अल्पारम्भपरिग्रहत्व' 'निःशीलव्रत्वं च सर्वेषाम्'सूत्रके असमान नरक, तिर्यंच,देव आयुके आस्रवके कारण नहीं है और उक्त भिन्न भिन्न वाक्य जिनको हमने पृष्ठ ६२में उद्धत किया है इस बातके ज्ञापक हैकि'अल्पारंभपरिग्रहत्वं'देव आयुके आसूवका कारण होतातो सत्रहवें'सूत्र से १८वासूत्रका'पृथग्विधान'क्यों होता ॥ इसका परिणाम यह हुआकि १९वां सूत्रमें चकारसे यह नहींनिकलताकि 'अल्पारभपरिगृहत्व'सवचारोंआयु के आस्रव के कारण हैं ॥

चारित्रमोहकर्मविशेषस्योदयादाविर्भूत आत्मन कुटिलभावो माया निकृति तैर्यग्योनस्यायुष आस्रवो वेदितव्य । तत्प्रपञ्चो मिथ्यात्वोपेतधर्मदेशना निःशीलता सन्धानप्रियता नीलकपोतलेश्यार्तध्यानमरणकालतादि.॥

आह व्याख्यातस्तैर्यग्योनस्यायुष आस्रव.। इदानी मानुषस्यायुष. को हेतुरित्यत्रोच्यते –

सूत्रार्थ.–माया।१।तैर्यग्–योनस्य।६।आयुष।६।आस्रव.।१। =कपट, छल वा निकृति तिर्यंच योनिके आयुके आस्रवका[कारण]है अर्थात् मनमें अन्य बात विचारना वचनसे अन्यही कथन करना,शरीरसे अन्य ही प्रवृत्ति करना ऐसे आचारको मायाचार कहते हैं वह तिर्यंच,योनिके आयुके आस्रव [=द्रव्य कर्मके आगमन]का कारण है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सोलहवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश.हिन्दी अनुवाद

चारित्र–मोहकर्म विशेषस्य।६।उदयात्।५। आविर्भूत।१। =चारित्र मोहनीय कर्मके विशेषके उदयसे प्रगट हुआ

आत्मन।६।कुटिल–भाव।१।माया।१।निकृति।१। =आत्माका कपटरूप परिणाम सो माया अथवा निकृति है।

तैर्यग्योनस्य।६।आयुष।६।आस्रव।१। वेदितव्य।१।, =[सो] तिर्यंच योनिके आयुका आस्रव जानना चाहिये।

तत् प्रप-च.।१। मिथ्यात्व–उपेत–धर्म–देशना।१।नि.शीलता।१। सन्धानप्रियता।१। =उस (तिर्यंच योनिके आस्रवके कारण)का विस्तार, मिथ्यात्व सहित धर्मका उपदेश [देना],शीलरहितपना, ठगनेमेंप्रीतिरूप परिणाम अर्थात् परके ठगनेमें स्नेह

नील–कपोतलेश्या आर्त यान मरणकालता आदि।१।, =नील लेश्या तथा कपोतलेश्या [के परिणाम]आर्तध्यानकरि मरण कालता आदि [तिर्यंच योनिके आयुके आस्रवके कारण] है

आह।(१)तैर्यग्योनस्य।६।आयुष.।६।आस्रव.।१।व्याख्यात।१।,=[शिष्य]प्रश्नकरता है कि तिर्यंचयोनिके आयुके आस्रव [तो] कहे गये

इदानीं*मानुषस्य।६।आयुष।६।क।१।हेतु।१।इति*अत्र* उच्यते,=अब मनुष्य आयुके[आस्रव]का क्या कारणहै ऐसे(प्रश्नपर)यहां कहाजाता है कि

(१) तिर अञ्चति इति तिर्यङ् तिरछा जाता है ऐसा तिर्यङ् या वक्रगामी है। तिर्यग् योनाभव तैर्यग्योनम्–अण्= तिर्यंच योनिमें भया सो तैर्यग्योनि है।

बहव आरम्भपरिग्रहा यस्य स बह्वारम्भपरिग्रहः। तस्य भावः बह्वारम्भपरिग्रहत्वम्॥ हिंसादिक्रूर-कर्माजस्रप्रवर्तनपरस्वहरणविषयातिगृद्धिकृष्णलेश्याभिजातरौद्रध्यानमरणकालतादिलक्षणो नारक-स्यायुष आस्रवो भवति। आह उक्तो नारकस्यायुष आस्रवः।तैर्यग्योनस्येदानीं वक्तव्य इत्यत्रोच्यते-

॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥

बहवः[१/३] आरम्भपरिग्रहाः[१/३] यस्य[६/१] सः[१/१] बह्वारम्भपरिग्रहः[१/१]; = बहुत हैं आरम्भ परिग्रह जिसके सो बहु आरम्भ परिग्रह है।
तस्य[६/१] भावः[१/१] बह्वारम्भ-परिग्रहत्वम्[१/१]॥, = तिस(बहुत आरम्भ और परिग्रह)का भाव वा होना सो बहुआरम्भ परिग्रहता
हिंसादि-क्रूर-कर्म-अजस्र-प्रवर्तन-पर-स्व हरण- = हिंसादिक निर्दय कर्मोंमें निरन्तर [=अजस्र]प्रवर्तना,पराये धन[=स्व]का हरना
विषय-अतिगृद्धि-कृष्णलेश्या-अभिजात-रौद्रध्यान- = विषयोंमें अतिलोलुपता[=अतिगृद्धि]कृष्णलेश्या करि उत्पन्नभयोजो रौद्रध्यान
मरणकालता-आदि-लक्षणः[१/१]नारकस्य[६/१]॥आयुषः[६/१]॥आस्रवः[१/१]=तिस सहित मृत्युकाहोना-आदि चिन्ह वा लक्षण(से)नारकीकी आयुका[=आस्रव]
भवति T,आह T,नारकस्य[६/१]॥आयुषः[६/१]॥आस्रवः[१/१]उक्तः[१/१]; = होताहै(शिष्य)प्रश्नकरता है कि नारकीकी आयुका तो आस्रव कहा गया
तैर्यग्योनस्य[६/१]॥इदानीम्*वक्तव्यः[१/१]इति*अत्र*उच्यते T, = अब तिर्यञ्चयोनिका(आस्रव)कहना चाहिये,ऐसे यहां(अगलासूत्र)कहा जाता हैकि

सूत्रम्— मायातैर्यग्योनस्य॥१६॥ = मायातैर्यग्योनस्य(आयुषः आस्रवः भवति) ॥१६॥

[१] एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि, अष्टाध्यायी ॥६।१।१३२॥ एतद्-तदो.सुलोपः अकोः अनञ्समासे हलि। (क) ककार से रहित [=अकोः] जो एतत् और तत् [=एतत्-तदोः] शब्दका सकार तिसका लोप हो [=सु-लोपः] हल् परे रहते[=हलि]परन्तु (ख) नञ समासमें [=नञसमासे] नहीं[=अ] जैसे एषस्+विष्णुका एष विष्णु और सस+शम्भुका स शम्भु होगया इसी प्रकार पूर्वोक्त सस्+बह्वारम्भ परिग्रहका स बह्वारम्भ परिग्रह होगया॥ एषकस्+रुद्र=एषकः रुद्रः यहां एतत् ककार सहित है इससे सकार का लोप नहीं हुआ। अ+सस्+शिवः=असःशिवः यहां सकार का लोप नहीं हुआ क्योंकि नकार रूप समास है [२] हल परे क्यों कहा क्योंकि व्यञ्जन पश्चात् न होगा स्वर होगा तो सकारका लोप न होगा जैसे एषस्+अत्र=एषः अत्र ३] श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनोंआम्नायोमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है,सभाष्य तत्त्वार्थधिगम सूत्रमें इसकी सत्रहवीं संख्या है॥ यस्यसः बह्वारम्भ परिगृह...पाठ अशुद्ध है क्योंकि तत्त्वार्थराजवार्त्तिक पृष्ठ २६३ मुद्रितमें इसी सूत्र की व्याख्यामें "बह्वारम्भाः परिगृह यस्य स बह्वारम्भ परिग्रहः है॥ हस्तलिखित प्रतियोंमें भी"स बह्वारम्भ परिगृहः" ऐसा पाठ है॥

निर्दिष्टस्यायुष आस्रवहेतौ वक्तव्ये आद्यस्य नियतकाल परिपाकस्यायुष कारणप्रदर्शनार्थ-मिदमुच्यते—॥बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः॥१५॥

आरम्भ प्राणिपीडाहेतुर्व्यापार।ममेदबुद्धिलक्षण.परिग्रह ।आरम्भाश्चपरिग्रहाश्चआरम्भपरिग्रहा।

निर्दिष्टस्य॥ आयुष ॥⁽¹⁾आस्रवहेतौ ⁽²⁾वक्तव्ये =वर्णित (=निर्दिष्ट) आयुकर्मके आस्रवके कारण कहनेमें

आद्यस्य॥ नियत काल-परिपाकस्य॥ आयुष ॥ =आदिकी नियत कालमें समाप्तिहोनेवाली(नारकीजीवनिकी)आयुके (आस्रव)का

कारण-प्रदर्शन-अर्थम्॥ इदम्॥ उच्यते =हेतु दिखानेके लिये यह (अग्रिम सूत्र) कहा गया है कि

सूत्रम्— ॥ बह्वारम्भपरिग्रहत्व⁽³⁾ नारकस्यायुष. ॥ १५ ॥

=बहव आरम्भपरिग्रहा यस्य स तस्य भाव.नारकस्य आयुष' आस्रव.भवति ॥

=बहव'आरम्भा.बहव परिग्रहा च यस्य स तस्य भाव.नारकस्य आयुष. भवति।

सूत्रार्थ –बहव ॥ आरम्भा ॥ बहव ॥ परिग्रहा ॥ च॥ =अधिक आरम्भ,उद्योग,उपक्रम वा उद्यम और(=च)बहुत परिग्रह वा ममत्वभावहै

यस्य॥स ॥तस्य॥भाव नारकस्य॥आयुष ॥ आस्रव ॥भवति=जिसकेबहुतसकाभाववापरिणाम,सोनरककी आयुकाआस्रव(कारण)होता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस पन्द्रहवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

प्राणि(४) पीडाहेतु व्यापार ॥ आरम्भ ॥ =प्राणियोंकी वेदना वा दु खका कारण और व्यापार सो आरम्भ है।

मम॥इदम्॥ बुद्धिलक्षण ॥ परिग्रह। =मेरा यहहै ऐसी समझ वा ज्ञान(=बुद्धि)है लक्षण जिसका सो परिग्रहहै अर्थात् यह वस्तु मेरीहैमैइसका स्वामीहूँ ऐसा आपा परका सकल्पका अभिमान सो परिग्रहहै

आरम्भा ॥च॥परिग्रहा ॥च॥आरम्भपरिग्रहा. ॥ =बहुरि आरम्भ और परिग्रह है सो आरम्भपरिग्रहा(ऐसा वाक्य समासमें हुआ)

(१) "आस्रवहेतौ वक्तव्ये आद्यस्य नियतकालपरिपाकस्यायुष यह वाक्य सर्वार्थसिद्धिकी मुद्रित प्रथमावृत्तिमें और हस्तलिखित प्रतियों में भी पाया जाता है परन्तु मुद्रित सर्वार्थसिद्धिके द्वितीय सस्करण में यह वाक्य नहीं है, ज्ञात होता है कि छपने से रह गया है ॥ (२) वक्तव्यका अर्थ कथन (कहना) पञ्चम शब्दकोश पृष्ठ ३३२ में है यहा कहना अर्थ में है ॥ (३) श्वेताम्बर सम्प्रदाय में बह्वारम्भपरिग्रहत्वं च नारकस्यायुष ऐसा सूत्र है अर्थात् चकार अधिक है परन्तु अर्थ एक ही है जो ऊपर लिखा है (४) समास के कारण प्राणिन् शब्द का न् गिर गया है।

स्वभयपरिणामःपरभयोत्पादनादिर्भयवेदनीयस्य। कुशलक्रियाचारजुगुप्सादिर्जुगप्सावेदनीयस्य। अलीकाभिधायितातिसन्धानपरत्वं पररन्ध्रापेक्षित्वप्रवृद्धरागादिः स्त्रीवेदनीयस्य। स्तोकक्रोधानुत्सुकत्वस्वदारसन्तोषादिः पुंवेदनीयस्य। प्रचुरकषायगुह्येन्द्रियव्यपरोपणपराङ्गनास्कन्दादिर्नपुंसकवेदनीयस्य ॥ निर्दिष्टो मोहनीयस्यास्रवभेदः। इदानीं तदनन्तर

स्वभय-परिणामः१/१। पर-भय-उत्पादन-आदिः१/१।	=अपना(=स्व) भयरूप भाव रखना-परको भय उपजावना आदिक
भय-वेदनीयस्य६/१॥;कुशलक्रिया-आचार-जुगुप्सादिः१/१।	=भयवेदनीय[कर्मका] [आस्रवकाहेतु]है। भलीक्रिया आचार विषैं ग्लानि आदिक
जुगुप्सावेदनीयस्य६/१॥; अलीक—	=जुगुप्सावेदनीय[कर्म]का आस्रवका कारण है। झूठ बोलनेका
अभिधायिता—अतिसंधान-परत्वम् १/१॥	= स्वभाव[=अभिधायिता]मायाचार [=अतिसंधान] में तत्पर रहना
पर-रन्ध्र-अपेक्षित्व-प्रवृद्ध-रागादिः १/१।	=परके छिद्र अर्थात् दूषण विषैं आकांक्षा, अति बढ़ते रागादिक
स्त्री-वेदनीयस्य६/१॥; स्तोक-क्रोध—	=स्त्रीवेदनीय[कर्म]का[आस्रवका निमित्त] है। अल्प [स्तोक] क्रोध
अनुत्सुकत्व-	=[इष्ट पदार्थोंमें] आशक्तता का अभाव अथवा अरुचिपना [=अनुत्सुकत्व]
स्वदारसंतोष-आदिः१/१। पुंवेदनीयस्य ६/१॥।	=अपनी स्त्रीमें संतोष आदिक पुरुष वेदनीय[कर्म]का [आस्रवका कारण] है
प्रचुर-कषाय-गुह्य-इन्द्रिय-	=कषायकी प्रबलता अथवा प्रबल कषाय, छिपाने योग्य इन्द्रिय अर्थात् भग लिङ्गादिका
व्यपरोपण-पराङ्गनास्कन्दादिः१/१[२]नपुंसकवेदनीयस्य६/१॥;	=छेदना-काटना,पर स्त्रीगमन आदिक नपुंसकवेदनीय[कर्म]का आस्रवका निमित्त है
मोहनीयस्य ६/१॥	=मोहनीयकर्मकाअर्थात्दर्शनमोहनीयकर्मका१३वां चारित्रमोहनीयकर्मका१४ वाँ सूत्रमें
निर्दिष्टः१/१।आस्रव-भेदः१/१।इदानीम्*तद्-अनन्तर	=आस्रवकाभेद वर्णन किया गया [=निर्दिष्टः] अब उस मोहनीय कर्मके लगताई

[१] स्कन्द=[पु०] उछल करजाना और स्कन्दन [न०]जाना के अर्थ में है, [देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ४३५] ये दोनों शब्द स्कद् [अकर्मक आत्मनेपदी भ्वादि प्रथम गणकी) धातु से बने है। स्कद् धातु का अर्थ उछल कर जाना है[पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ४३५ [२] परांगनावस्कन्दन=परअङ्गना-अवस्कन्दन तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ २६२ में है॥ इस लिये पर-अङ्गना-स्कन्द का अनुवाद पर स्त्री-गमन (=स्कन्द] लिखा है॥

कषाया उक्ताः । उदयो विपाकः । कषायाणामुदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्यास्रवो वेदितव्य ॥ तत्र स्वपरकषायोत्पादनं तपस्विजनवृत्तदूषणं संक्लिष्टलिङ्गव्रतधारणादि कषायवेदनीयस्यास्रवः ॥ सद्धर्मोपहसनदीनातिहासबहुविप्रलापोपहासशीलतादिर्हास्यवेदनीयस्य । विचित्रक्रीडनपरताव्रतशीलारुच्यादिः रतिवेदनीयस्य । परारतिप्रादुर्भावना रतिविनाशनपापशीलसंसर्गादि अरतिवेदनीयस्य । स्वशोकोत्पादनापरशोकप्लुताभिनन्दनादि शोकवेदनीयस्य ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चौदहवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

कषाया³ उक्ता'³, उदय ¹। विपाक ¹, =कषाय कहे जा चुके है (अध्याय ६ सूत्र ५) उदय है सो विपाक वा अनुभव है।
कषायाणाम्³ उदयात्⁵। तीव्रपरिणाम ¹। चारित्रमोहस्य⁶।=कषायोंके उदयसे तीव्र भावका होना चारित्र मोहनीयकर्मका
आस्रव'¹।वेदितव्य ¹॥ तत्र स्व पर-कषाय-उत्पादनम्¹॥=आगमन जानना चाहिये । तहां, आपके तथा परके कषाय उपजावना
तपस्विजन'¹'-वृत्तदूषणम्¹ ॥ =तपस्वीजनोंके चारित्रका दोष लगाना
संक्लिष्ट-लिङ्गव्रत-धारण-आदि.¹। कषायवेदनीयस्य⁶।-संक्लेश परिणामको उपजाने वाला भेष व्रत धारण आदि कषाय वेदनीय कर्मका
आस्रव ¹ ॥ सद्धर्म-उपहसन- =आस्रव है भावार्थ इनसे कषाय वेदनीय कर्मका आस्रव होता है-सत्य धर्म की हास्य(करना)
दीन ²अतिहास-बहु-विप्रलाप- =दीनोंकी प्रशंसारूप(अति)हास्य वा व्याज स्तुति करना, बहुत वृथा प्रलाप (बकना)
उपहासशीलता आदि ¹। हास्यवेदनीयस्य⁶॥ =हास्य स्वभाव रखना आदिक हास्यवेदनीय कर्मका आस्रव का कारण है
विचित्र क्रीडन-परता-व्रत शील-अरुचि-आदि ¹। =अनेक प्रकार की क्रीडा करने में तत्परपना व्रतशीलमें अरुचि (परिणाम) आदिक
रतिवेदनीयस्य⁶॥(आस्रव),परअरति-प्रादुर्भावना¹॥ =रति वेदनीय कर्म का आस्रव है । परकेअरति उपजावना
रति-विनाशन-पापशील-संसर्गादि ¹ । =परकी रतिका विनाशन-पापका स्वभाव (शील) पापका संसर्ग आदिक
अरतिवेदनीयस्य⁶॥,स्वशोक-उत्पादना परशोकप्लुता-अरति वेदनीय कर्मका(आस्रव)है । अपनाशोक उपजावना-परशोकमें गहरा(=प्लुत)
अभिनन्दन-आदि ¹। शोकवेदनीयस्य⁶ ॥ =हर्ष (अभिनन्दन) आदिक शोक वेदनीय (कर्म) का आस्रव का कारण है।

[१] गुरु का आदर-दया शौच, सत्य इन्द्रियों का रोकना हितकारी वार्ता का चलाना इस प्रकार के चारित्र का प्रवर्तक वृत्त है (पद्मचन्द्र कोशपृष्ठ३६४) 'वृत्त पद्ये चरित्रे त्रिष्वतीते दृढनिस्तले' अमर कोश वर्ग २३ श्लोक ७८में चारित्रके अर्थमें भी वृत्त शब्द आया है इसलिये चारित्र ऐसा अनुवाद किया है

शूद्रत्वाशुचित्वाद्याविर्भावना सङ्घावर्णवादः। जिनोपदिष्टो धर्मो निर्गुणस्तदुपसेविनो ये ते चासुरा भविष्यन्तीत्येवमभिधानं धर्मावर्णवादः। सुरामांसोपसेवाद्याघोषणं देवावर्णवादः॥

द्वितीयस्य मोहस्यास्रवभेदप्रतिपादनार्थमाह—

॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥

शूद्रत्व–अशुचित्व–आदि–आविर्भावना।	=(चार प्रकार के महा मुनियोंके प्रति) शूद्रपना, अपवित्रपना, आदिक प्रगट करना
(१)संघ–अवर्णवादः।	=सो संघका अवर्ण वाद वा निंदा प्रवाद है अर्थात् मुनियोंको शूद्रकहना अपवित्र कहना निर्लज्जकहना इनको यहां ही इतना दुख भोगना होताहै तो पर लोक में कैसे सुखको प्राप्त हो सक्ते हैंसो मुनियोंके संघको अविद्यमान दूषणका लगानाहै
जिन–उपदिष्टः। धर्मः। निर्गुणः। च* तत्–	=अर्हत् भगवानसे कथित धर्म गुण रहित है। और (=च) उस (धर्म) के
उपसेविनः। ये। ते। असुराः। भविष्यन्ति T	=सेवन करनेवाले जो हैं ते असुर होगे।
इति* एवम्* अभिधानम्। धर्मअवर्णवादः।	=इस प्रकार कहना सो धर्म का निंदाप्रवाद है।
सुरा–मांस–(२)उपसेव–आदि–आघोषणम्। देवअवर्णवादः।	=मदिरा(सुरा) मॉसके उपसेवन आदिका प्रसिद्ध करना सो देवोंका अवर्णवाद है
द्वितीयस्य। मोहस्य। आस्रवभेद–प्रतिपादन–अर्थम्। आह T	=दूसरा चारित्र मोहनीय कर्मके(=मोहस्य)आस्रवके भेद कहनेकेलिये कहतेहैं कि

कषायोदयात्तीव्र(३) परिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥

=कषाय–उदयात्–तीव्र–परिणामः चारित्रमोहस्य (आस्रव हेतुः भवति)

सूत्रार्थः–कषायाणाम्। उदयात्। तीव्र–परिणामः।	=कषायोंके उद्गत वा उद्रेक होनेसे उत्कट वा उग्र भावका होना सो
चारित्र–मोहस्य। आस्रवस्य। हेतुः। भवति T	=चारित्र मोहनीय कर्मके आस्रवका कारण है

(१) "मुनि कहिये अवधि मन पर्ययज्ञानी, ऋषि कहिये ऋद्धि जिनकों फुरीहोय यति कहिये इन्द्रियके जीतनहारे अनगार कहिये सामान्य साधु ऐसे च्यारभेद है" सर्वार्थसिद्धिवचनिका पृष्ठ मुद्रित ५०४ (२) उपसेव और उपसेवनका यहां एक 'भोगना' अर्थ है। सेव और सेवनका एक अर्थ है (देखो वैद्य कोश पृष्ठ ७९६) (३) तीव्र परिणामके स्थानमें श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामे "तीव्रात्म परिणाम है" अर्थात् सूत्र ऐसा है कि कषायोदयात्तीव्रात्मपरिणामश्चारित्रमोहस्य। १५॥ परन्तु इससे सूत्रके अर्थमें भेद नही होजाता है॥

भूतग्रहणात् सिद्धे व्रतिग्रहणं तद्विषयानुकम्पाप्राधान्यख्यापनार्थम्॥ त एते सद्वेद्यस्यास्रवा ज्ञेयाः॥ अथतदनन्तरोद्देशभाजोमोहस्यास्रवहेतौवक्तव्ये तद्भेदस्यदर्शनमोहस्यास्रवहेतुप्रदर्शनार्थमिदमुच्यते

॥(१) केवलिश्रुतसङ्घधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥

निरावरणज्ञानाः केवलिनः ।

भूत-ग्रहणात् ५/१। सिद्धेः ५/१। व्रतिन् ग्रहणम् १/१। तद्-विषय =(इस सूत्रमें) भूतशब्दके लानेसे व्रतियोंका ग्रहण सिद्ध है। (उत्तर) उन(व्रतिनि) में
अनुकम्पा-प्राधान्य-ख्यापन-अर्थम् १/१; =दयादृष्टि का प्रधानपना जतावनेके लिये(व्रतिन् शब्द का सूत्रमें ग्रहण किया गया)है अर्थात् संपूर्ण प्राणीमात्र के ऊपर दया वा कृपा दृष्टि सामान्यपनेसे तथा अगारी अथवा अनगारी व्रतियोंपर विशेषतासे अनुकम्पा करना चाहिये ॥
ते १/३। एते १/३। सद्वेद्यस्य ६/१। आस्रवाः १/३। ज्ञेयाः १/३। अथ॰तद्- =ते इतने सातावेदनीय[कर्म] केआस्रवजाननेचाहिये(=ज्ञेयाः)अब उस(वेदनीय कर्म)के
अनन्तर-उद्देशभाजः ६/१। मोहस्य ६/१। आस्रव-हेतौ ७/१। =लगताही वा निकट कहागया मोहनीयकर्मके आस्रवके कारणके
वक्तव्ये ७/१। तद्-भेदस्य ६/१। दर्शनमोहस्य ६/१। आस्रवहेतु- =कथनमें उस (मोहनीयकर्म) का भेद दर्शनमोहनीयके आस्रवके कारणोंके
प्रदर्शन-अर्थम् १/१। इदम् १/१। उच्यते। =दिखावनेके लिये यह (उत्तर सूत्र में) कहा जाता है कि

केवलिश्रुतसङ्घधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥

=केवलिनःअवर्णवादः,श्रुतस्य अवर्णवादः,सङ्घस्य अवर्णवादः,धर्मस्य अवर्णवादः,देवस्य अवर्णवादः,दर्शनमोहस्य-आस्रवहेतवःभवन्ति॥
सूत्रार्थः—केवलिनः ६/१। अवर्णवादः १/१, श्रुतस्य ६/१। =अर्हत् भगवानके अनहुते वा अविद्यमान दोषका आरोपन, शास्त्रके
अवर्णवादः १/१, सङ्घस्य ६/१। =अविद्यमान दूषण-का संस्थापन, (चार प्रकार के मुनियोंके) समूह के
अवर्णवादः १/१, धर्मस्य ६/१। =न होते हुये दोष को प्रकट करना, [पञ्चमहाव्रत साधनीभूत] धर्मकी
अवर्णवादः १/१, देवस्य ६/१। अवर्णवादः १/१। =निंदाकरना(भवन वासीआदि चतुर्विध)देवके अविद्यमान दोषोंका आरोपण (येसब)
दर्शनमोहस्य ६/१। आस्रव-हेतवः १/३। भवन्ति। =दर्शन मोहनीय कर्मके आस्रवके कारण होते हैं
वृत्त्यनुवादः:—निरावरणज्ञानाः १/३। केवलिनः १/३। =निरावरणज्ञान वाले केवली भगवान हैं अर्थात् समस्त ज्ञानावरण कर्मका अत्यन्त क्षयसे अतीन्द्रिय(क्रम रहित)त्रिकालवर्ती व्यवधान(=रोक)रहित ज्ञान संयुक्त केवली हैं

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों दिगम्बर तथा श्वेताम्बर आम्नायोंमें एकसा है॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या चौदहवीं है ॥

[८] संयमानुवादेन–सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयताः प्रमत्तादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । परिहारविशुद्धिसंयताः प्रमत्ताश्चाप्रमत्ताश्च संख्येयाः । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयता यथाख्यातविहारशुद्धिसंयताः संयतासंयताः (असंयताश्च) सामान्योक्तसंख्याः ॥

संयम अनुवादेन ३। सामायिक च्छेदोपस्थापनशुद्धि- = संयमकी विवक्षाकरि सामायिकच्छेदोपस्थापन शुद्धि
संयताः १। प्रमत्त आदयः १। अनिवृत्तिबादर-अंताः १। = संयमी प्रमत्त गुणस्थानसे अनिवृत्ति बादर सांपराय (नवमे) गुणस्थान तक
सामान्य उक्त–संख्याः १। = सामान्य (प्रकरणमें पृष्ठ २६ सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें) कथित संख्यावाले [गुणस्थानवत्] हैं अर्थात् प्रमत्तमें ५९३९८२०६, इनसे आधे अप्रमत्तमें, दो उपशमक प्रत्येकमें २९९ दो क्षपक प्रत्येकमें ५९८ ।
परिहारविशुद्धिसंयताः १। च प्रमत्ताः १। च अप्रमत्ताः १। = परिहार विशुद्धिसंयमी और [=च] प्रमत्त गुणस्थानवाले और [च] अप्रमत्त गुणस्थानवाले
संख्येयाः १। = संख्यात हैं [स्मरण रहे कि सामायिक च्छेदोपस्थापन–परिहार विशुद्धि–संयमी तीनोंकी संख्याका सर्वयोग ८९०९९१०३ से अधिक नहीं हो सक्ता है जो कि पूर्वोक्त प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंके जीवोंकी उत्कृष्ट संख्या है
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयताः १। यथाख्यातविहार- = सूक्ष्म साम्पराय शुद्धि संयमी (दशवे गुणस्थानवर्ती) यथाख्यात विहार
शुद्धिसंयताः ३। = शुद्धि संयमी (उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ–क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ सयोगकेवली और अयोग केवली क्रमसे ११,१२,१३,१४ गुणस्थानवर्ती)
संयतासंयताः ३। च सामान्य उक्त संख्याः ३। = और संयमासंयमी संक्षेप (प्रकरण सर्वार्थ सिद्धि पृष्ठ २६) से वर्णित (गुणस्थानवत) संख्यावाले हैं अर्थात्

(१) संयतासंयता असंयताश्च' इस वाक्यमें "असंयता" हमारी समझमें अधिक छप गया है क्योंकि यहां पर जीवोंकी संख्या संयमके कथनानुसार है नकि असंयमके फिर असंयमीयोंकी संख्या क्यों गिनाइ वृत्तिकार क्यों विषयांतर हुये। इसी अध्यायके सातवे सूत्रके दूसरे

तासु तासु गतिषु कर्मोदयवशाद्भवन्तीति भूतानि प्राणिन इत्यर्थः। व्रतान्यहिंसादीनि वक्ष्यन्ते, तद्वन्तो व्रतिनः॥ ते द्विविधाः। अगारम्प्रतिनिवृत्तौत्सुक्याः संयताः, गृहिणश्च संयतासंयताः। अनुग्रहार्द्रीकृतचेतसःपरपीडामात्मस्थामिव कुर्वतोऽनुकम्पनमनुकम्पा। भूतेषु व्रतिषु चानुकम्पा भूतव्रत्यनुकम्पा। परानुग्रहबुद्ध्यास्वस्यातिसर्जनंदानम्। संसारकारणनिवृत्तिम्प्रत्यागूर्णोऽक्षीणाशयः

वृत्त्यनुवाद–तासु॥तासु॥गतिषु॥कर्म–उदय–	=तिनतिन गतियोंमें अर्थात् नरकादि गतियोंमें कर्मके उदयके
वशात्॥भवन्ति इति*भूतानि॥प्राणिनः॥इति*	=वशसे होते हैं (=वर्तते हैं) ऐसे जीव वा प्राणी हैं इस प्रकार
अर्थः;व्रतानि॥ अहिंसा–आदीनि॥ वक्ष्यन्ते;	=अर्थ हुआ। अहिंसादिक व्रत कहेजायंगे [अध्याय ७ सूत्र १]
तद्वन्तः॥व्रतिनः॥;ते॥ द्विविधाः॥,	=तिन [व्रतों] को धारण करने वाले सो व्रती हैं। ते (व्रती) दो प्रकार हैं
अगारम्॥ प्रति*निवृत्त–औत्सुक्याः॥ संयताः॥	=घरकेलिये वा घरकी ओरसे दूरहोगई है उत्कन्ठा इच्छावा लालसा जिनकी वेसंयमीवा मुनि है
गृहिणः॥ च*संयतासंयताः॥; ।	=और (=च) गृहस्थ वा अणुव्रतधारी हैं वे संयमासंयमी वा श्रावक हैं
अनुग्रह–आर्द्रीकृत–चेतसः॥परपीडाम्॥	=उपकार विषै भीगरहा है चित्त जिनका अन्यकी पीड़ाको
आत्मस्थाम्॥इव* कुर्वतः॥ अनुकम्पनम्॥	=अपने हुई के तुल्य माननेवालेके करुणा भाव हो
अनुकम्पा॥भूतेषु॥ व्रतिषु॥ च*अनुकम्पा॥	=सो अनुकम्पा है। प्राणियों विषै और[=च]व्रतिनविषै करुणाभाव दया वा कृपादृष्टि
भूत–व्रतिन्–अनुकम्पा॥पर–अनुग्रह–बुद्ध्या॥	=सो भूत वृत्त्यनुकम्पा है। पर के उपकार (=परानुग्रह) की बुद्धि करि
स्वस्य॥ अतिसर्जनम्॥ दानम्॥;	=धन(आदिक)का(=स्वस्य) दैना(=अतिसर्जन)सो दान है अर्थात् परके भला करने की बुद्धि से अपना धन और औषधि,विद्या,अभय आदिक प्रदान करना सो दान है
संसार–कारण–निवृत्तिम्॥ प्रति*आगूर्णः॥	=संसार के कारण(द्रव्यकर्म भावकर्म)के अभाव करनेके लिये(=निवृत्तिम्प्रति)उद्यमी और
अक्षीण–आशयः॥	=राग भाव का नष्ट नहीं होना

भूत-व्रति-अनुकम्पा दान सरागसंयम-	=प्राणियों और व्रतियों पर दया पालना [=दान] और सराग संयम
आदि योग. क्षांति. शौचम्	=संयमासंयम अकामनिर्जरा, बालतप, और योग, क्षांति, शौच
इति सद्वेद्यस्य [आस्रव हेतवः भवन्ति]	=ये [सब] साता वेदनीयके आस्रवके कारण हैं

श्वेताम्बर आम्नायमें यहां दानको साता वेदनीयके आस्रवका हेतु नहीं माना योगका एक पृथक् कारण उक्त आस्रवका माना है।

सराग इत्युच्यते। प्राणीन्द्रियेष्वशुभप्रवृत्तेर्विरतिः संयमः। सरागस्य संयम सरागो वा संयम सरागसंयमः। आदिशब्देन संयमासंयमाकामनिर्जरावालतपोऽनुरोध। योग समाधि सम्यक्प्रणिधानमित्यर्थः॥ भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादीना योग भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः। क्रोधादिनिवृत्ति क्षान्ति। लोभप्रकाराणामुपरम शौचम्॥ इतिशब्द प्रकारार्थ। के पुनस्ते प्रकारा ?। अर्हत्पूजाकरणपरतावालवृद्धतपस्विवैयावृत्त्यादय॥

सराग ॥ इति ॥ उच्यते। प्राणिन्-इन्द्रियेषु ॥ अशुभप्रवृत्ते ॥ विरति ॥ संयम ॥, सरागस्य ॥ संयम ॥ वा ॥ सराग ॥ संयम ॥ सरागसंयम। =सो सराग इस प्रकार कहा गया है। प्राणी तथा इन्द्रियनिविषै अशुभ =वृत्तिका त्याग (=विरति) सो संयम है। (पूर्वोक्त) सरागीका संयम =अथवा रागसहितसंयम सो सरागसंयमहै

आदि-शब्देन ॥ संयमासंयम-अकामनिर्जरा-वालतपस्-अनुरोध ॥, (इस बारहवा सूत्रमें) आदिवचनकरि =संयमासंयम अकामनिर्जरा-और वालतपका ग्रहण होता है

सम्यक्-प्रणिधानम् ॥ योग ॥ समाधि ॥ इति-अर्थ ॥ ॥ =भले प्रकार चित्तका बांधनाहै सो योग (वा) समाधिहै ऐसा तात्पर्य है अर्थात् चित्तको हेयरूप पदार्थोंसे हटाकर ध्येयरूप पदार्थोंमें लगावना सो योग वा समाधिहै॥

भूत वृतिन् अनुकम्पा-दान सरागसंयमादीनाम् ॥ योग ॥ =भूत वृत्यनुकम्पादान-सरागसंयमादिकनिका अनिन्द्य आचरण (=योग)

भूत-वृत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोग ॥। =सो भूतवृत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोग (ऐसा समासरूप वाक्य) हुआ।

क्रोधादि-निवृत्ति ॥ क्षान्ति ॥, =क्रोधादिकका अभाव सो क्षान्ति वा क्षमा है।

लोभ-प्रकाराणाम् ॥ उपरम ॥ शौचम् ॥। =लोभ के भेदोंकात्याग अर्थात् प्रकार प्रकारके लोभोंका त्याग वा छोड़ना (जैसे जीवनका लोभ, निरोगरहनेकालोभ, इन्द्रीवनेरहनेकालोभ, उपकरणबनरहनकालोभइत्यादिहै) सो =शौचहै

इतिशब्द ॥ प्रकार-अर्थ ॥ =(इस सूत्रमें) इति शब्द प्रकार अर्थमें है अर्थात् पूर्वोक्त अनुकम्पा दान, योग, क्षान्ति, शौच के अतिरिक्त और भी ऐसी क्रियायें हैं जो साता वेदनीय कर्मके आस्रव के कारण हैं।

के ॥ पुन ॥ ते ॥ प्रकारा ॥। =बहुरि ते प्रकार वा भेद क्या हे। अर्हत्-पूजाकरण-परता- =अरहतकी पूजा करने विषै तत्परता

वाल-वृद्ध-तपस्विन्-वैयावृत्ति- =वाल-वृद्ध तपस्वियों वा मुनियों की वैयावृत्ति (=टहल)

आदय ॥ ॥ =आदिक (सातावेदनीय कर्मके आस्रव के कारण) हैं

संक्लेशपरिणामाभावात् दुःखनिमित्तत्वे सत्यपि न पापबन्धः ॥ उक्तञ्च—न दुःखं न सुखं यद्वद्धेतुर्दृष्टश्चिकित्सिते ॥ चिकित्सायां तु युक्तस्य स्यात् दुःखमथवा सुखम् ॥१॥ न दुःखं न सुखं तद्वद्धेतुर्मोक्षस्य साधने ॥ मोक्षोपाये तु युक्तस्य स्यात् दुःखमथवा सुखम् ॥ २ ॥ उक्ता असद्वेद्यास्रवहेतवः सद्वेद्यस्य पुनः क इत्यत्रोच्यते—

संक्लश-परिणाम-अभावात्[5/1] दुःखनिमित्तत्वे[7/1] ॥सति[7/1]॥ अपि* =सक्लेश परिणामके अभावसे [बाह्यमें] दुःखके निमित्तपना होनेपर भी

न* पापवन्धः[1/1] =पाप वन्ध नहीं होता है। अर्थात् जैसे कोई वैद्य दयाके अभिप्रायसे किसी रोगी का गूमड़ा वा अन्य फोड़ा चीरता है यद्यपि गूमड़ा चीरनेसे उस रोगीको दुःख पहुँचता है और बाह्यमें उस दुःखका कारण पूर्वोक्त वैद्य है तौ भी अन्तरंग अभिप्राय वैद्यका उसको निरोग करने का है इसलिये उस वैद्यके पापवन्ध नहीं होता है तैसे ही संसारके विषयरूप महादुःखोंसे घवराये हुये और उस दुःखको निवारणके लिये उद्यमी मुनिको शास्त्रोक्त विधानसे अनशन–केशलुञ्चन–कायक्लेश क्रिया विषैं प्रवर्तावने वाला है यद्यपि वह पूर्वोक्त मुनिको बाह्यमें दुःख का कारण है तोभी पापबन्ध नहीं होता है क्योंकि प्रवर्तावनेवालेके संक्लेश परिणाम नहीं हैं।

उक्तम्[1/1] च*—न* दुःखं[1/1] न* सुखम्[1/1] यद्वत्* =कहा भी गया है कि जैसे (=यद्वत्) न दुःख न सुख

हेतुः[1/1] दृष्टः[1/1] चिकित्सते[7/1]; =रोगके उपाय कियेजाने में वा रोगके प्रतिकारमें [=चिकित्सते]हेतु देखे जाते हैं

चिकित्सायां[7/1] तु* युक्तस्य[6/1] स्यात् दुःखं[1/1] अथवासुखं[1/1] =चिकित्सामेंतो(=तु)रोगीको(=युक्तस्य)दुःखहोवासुखहो(रोगकी चिकित्सातोहोगीही)

न* दुःखं[1/1] न* सुखं[1/1] तद्वत्* हेतुः[1/1] मोक्षस्य[6/1] साधने[7/1]; =तैसे (=तद्वत्) (संसारसे छूटनेके लिये) मोक्षके साधनेमें दुःख सुख (दोनों भी) कारण नहीं है और

मोक्ष-उपाये[7/1] तु* युक्तस्य[6/1] स्यात् दुःखं[1/1] अथवासुखम्[1/1] =मोक्षके उपाय में तौ योगी के (=युक्तस्य)दुःख हो वा सुख (करना ही पड़ेगा) भावार्थ जैसे वैद्यका अभिप्राय रोगीको निरोग करनेकाहै रोगकी चिकित्साकरनेमें उस रोगीको दुःख हो अथवा सुख तैसे संसार दुःख मेटि मोक्ष प्राप्त करने का अभिप्राय वालों कें सुख हो अथवा दुःख मोक्ष के लिये उपाय करना ही पड़ेगा

उक्ताः[1/3] असत्-वेद्य-आस्रव-हेतवः[1/3] =आसाता वेदनीय कर्मके आस्रवके कारण कहेगये

सद्वेद्यस्य[6/1] पुनः* के[1/3] इति* अत्र* उच्यते। =फिर साता वेदनीयके (आस्रवके हेतु)कौन हैं ऐसा प्रश्न(होनेपर) कहा जाताहै कि

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगःक्षान्तिःशौचमितिसद्वेद्यस्य

=(१) भूतवृत्यनुकम्पादानसरागसंयमादि योग क्षान्ति शौचमिति(सद्वेद्यस्यास्रव हेतव भवन्ति)

सूत्रार्थ.–भूत-व्रति अनुकम्पादान (भूतेषु व्रतिषु च अनुकम्पा–दान) =प्राणियोंमें,व्रतके धारकोंमें दया वा कृपादृष्टि, दानदेना

सरागसंयमादियोग (=सरागसंयमादीनाम् योग) =सरागसंयमियों आदिकका अनिन्द्यआचरण (=योग)

आदीनाम्योग = [क संयमासंयमयोग[ख]अकाम निर्जरायोग[ग]बालतपयोग =संयमासंयमका, अकामनिर्जराका,बालतपका अनिंद्य आचरण अर्थात् दुष्टकर्मोका नष्टकरनेमें रागसहित संयमीका अनिंद्य आचरण वा रागसहित संयम पालनेवालेका निर्दोषआचरण सो सराग संयमी है और

(क) एक देश त्याग करनेका व तथा विषयोंमें बिना प्रयोजन ही त्याग करनेवाले ऐसे संयमासंयमीका निर्दोष आचरण

(ख) अपनअभिप्रायसे त्याग नहीं करके पराधीनतासे भोगोपभोगका निरोधकरनेवाले अकाम निर्जरावालेका अनिंद्य आचरण

(ग) तत्त्वों के यथार्थ स्वरूपसे अनभिज्ञ मिथ्या दृष्टिके तपका (प्रत्यक्षमें) दोषरहित आचरण

क्षांति ॥ शौचम् ॥ इति* =क्षमा, लोभकात्याग (=शौच) और ऐसे अन्य भाव,क्रियायें (जैसे पूजन,मुनियोंकी वैयावृत्त्य,विनय,योगोंकी सरलता आदि

सद्वेद्यस्य॥ आस्रव-हेतव ॥ भवन्ति =साता वेदनीय (कर्म) के आस्रवके, कारण हैं अर्थात् इनसे साता वेदनीय कर्मका आस्रव होता है

(१) दिगम्बर सम्प्रदायकी बहुतसी प्रतियोंमें भूतवृत्त्यनुकम्पादानसराग संयमादियोग क्षान्तिशौच मिति सद्वेद्यस्य ' ॥ १२ ॥ पाठ है अर्थात् "भूतव्रत्यनुकम्पाके स्थानमें" भूतवृत्त्यनुकम्पा है क्षान्तिशौचम्' समासरूपमें है परन्तु हमारी समाजमें अर्थ भेद नहीं है तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रितमें भूतवृत्त्यनुकम्पादान सराग संयमादि योग क्षांति शौचमिति सद्वेद्य पाठ है॥ भूतवत्त्यनुकम्पा और 'भूतव्रत्यनुकम्पा का एक ही अर्थ है क्योंकि अचोरहाभ्याम् द्वे वा' (८-४-४६ सूत्रसे) र् ह् से पहिले कोई स्वर हो और पश्चात् में हल् अतिरिक्त कोई व्यंजन हो तो वह व्यंजन विकल्पकर के दुहरा होजाता है जैसे व्रति+ अनुकम्पा=व्रत्यनुकम्पा अथवा व्रत्त्यनुकम्पा दोनों ही रूप ठीक हैं।

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र में यह सूत्र भूतव्रत्यनुकम्पा दान सरागसंयमादियोग क्षांति शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१३॥ इस प्रकार पाया जाता है ॥ उक्त आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका' में कम्पा के स्थान में कपा है शेष पाठ एक है ॥ अर्थ एक है कि

क्रियते, तथा दुःखविषयास्रवासंख्येयलोकभेदसम्भवात् दुःखमित्युक्ते विशेषानिर्ज्ञानात्क-तिपयविशेषनिर्देशेन तद्विशेषप्रतिपत्तिः क्रियते ॥ तान्येतानि दुःखादीनि क्रोधावेशादात्मस्थानि भवन्ति परस्थान्युभयस्थानि च ॥ एतानि सर्वाण्यसद्वेद्यास्रवकारणानि वेदितव्यानि ॥ अत्र चोद्यते-यदि दुःखादीन्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यास्रवनिमित्तानि, किमर्थमार्हतैः केशलुञ्चनानशनातपस्थानादीनि दुःखनिमित्तान्यास्थीयन्ते परेषु च प्रतिपाद्यन्ते ? इति ॥

क्रियते T तथा* दुःख-विषय-आस्रव-असख्येय लोक- =किया जाता है। तैसे दुःख सम्बन्धी आस्रवके असंख्यात लोक प्रमाण

भेद-सम्भवात्[५/१] दुःखम्[१/१] इति* उक्ते[७/१] =भेद सम्भवहोनेसे दुःख ऐसा कहनेमें

विशेष-अनिर्ज्ञानात्[५/१] कतिपय-विशेष-निर्देशेन[३/१] =विशेष न जानने (केहेतु) से कितनेई भेद (=विशेष) निर्देश करि

तद्-विशेष-प्रतिपत्तिः[१/१] क्रियते T =उस (दुःख) के भेदोंका (=विशेष) ज्ञान (=प्रतिपत्ति) कियागया है।

(१)तानि[१/३] एतानि[१/३] 'दुःखादीनि[१/३] क्रोध-आवेशात्[५/१] =ये दुःखादिक क्रोध (परिणाम) के आवेशसे (ये दुःखादिक)

आत्मस्थानि[१/३] भवन्ति T परस्थानि[१/३] =आत्मसंस्थ अर्थात् अपनेमें स्थितिहोते हैंअन्यमेंसंस्थ अर्थात् दूसरेमें स्थितिहोते हैं

उभयस्थानि[१/३] च* ॥ =और (=च) दोनों (अपने तथा पर) में संस्थ होते हैं।

एतानि[१/३] सर्वाणि[१/३] =ये (दुःख-शोक-ताप-आक्रंदन-वध-परिदेवन) समस्त

असद्वेद्य-आस्रव-कारणानि[१/३] वेदितव्यानि[१/३] =आसातावेदनीयकर्मके आस्रवके हेतु जानना योग्य है॥

अत्र* चोद्यते T यदि* दुःखादीनि[१/३] आत्मपरउभय— =यहां तर्ककी जातीहै कि यदि दुःखादिक अपनेमें परमें तथादोनों(आपतथापर)में

स्थानि[१/३] असद्वेद्य-आस्रव— =स्थितिशील होकर असाता वेदनीयकर्मके आस्रवके

निमित्तानि[१/३], किम्[१/१] अर्थम्[४/१] आर्हतैः[३/३] केश-लुञ्चन- =कारण हैं तो किसलिये अर्हन्तमतको माननेवालोंके द्वारा केशोंका लोंच

अनशन-आतपस्थान-आदीनि[१/३] दुःखनिमित्तानि[१/३] =अनशन(तप)आताप योगका धारण आदिक दुःख के कारण (अपने में)

आस्थीयन्ते T परेषु[७/३] च* प्रतिपाद्यन्ते T इति* ॥ =किये जाते हैं और (=च) दूसरो में उपदेश दिये जाते हैं ? इति ॥

---

(१) "कान्येतानि दुःखादीनि ? सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके प्रथम संस्करणके पृष्ठ ३२५ में यह पाठहै परन्तु उसकी द्वितियावृत्तिमे तथा अन्य हस्त लिखित चार प्रतियोंमें 'तान्येतानि दुःखादीनि' पाठ है तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २५६ पर 'तानि दुःखादीनि'; तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४५१ पर तान्या (त्मपरोभयस्थानि क्रोधाद्यावेशवशाद्भवन्ति) पाठ है ॥ पं० जयचन्द्रायजी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४६६ पर अनुवाद इस प्रकार है कि ते ऐते दुःखादिक (क्रोधादिक परिणामनितै आप विषै भी होय है) उपर्युक्त से स्पष्ट है कि प्रथमावृत्ति में तानि के स्थान में कानि ? अशुद्ध है

नैष दोषः-अन्तरङ्गक्रोधाद्यावेशपूर्वकाणि दुःखादीन्यसद्वेद्यास्रवनिमित्तानीति विशेष्योक्तत्वात् ॥ यथा कस्यचिद्भिषजः परमकरुणाशयस्य निःशल्यस्य संयतस्योपरि गण्डं पाटयतो दुःखहेतुत्वे सत्यपि न पापबन्धो बाह्यनिमित्तमात्रादेव भवति । एवं संसारविषयमहादुःखादुद्विग्नस्य भिक्षोस्तन्निवृत्त्युपायं प्रति समाहितमनस्कस्य शास्त्रविहिते कर्मणि प्रवर्तमानस्य

न एषः दोषः अन्तरङ्ग-क्रोधादि- = (उत्तर) यह दूषण नहीं है । आभ्यन्तर क्रोधादिक परिणामोंके
आवेश-पूर्वकाणि दुःखादीनि असद्वेद्य आस्रव-निमित्तानि = आवेश पूर्वक दुःखादिके असाता वेदनीयकर्मके आस्रवके निमित्त हैं
इति विशेष्य-उक्तत्वात् = इस प्रकार विशेष कथन होने से (पूर्वोक्त दुःखादिक अपनेमें परमें तथा आप पर दोनोंमें करने कराने पर असाता वेदनीय कर्मके आस्रवके निमित्त है) । भावार्थ केशलोंच करनेमें, अनशनतप करनेमें तथा आताप योग इत्यादिक धारण करनेमें आत्माके अन्तरंग क्रोधादिके वशसे दुःखादिक नहीं होते हैं इसलिये ये दुःखादिक असातावेदनीय कर्मके आगमनके हेतु नहीं हैं परन्तु पूर्वोक्त केशलुञ्चन आदिको छोड़कर अन्य दुःखादिक होनेके कारण आत्माके क्रोधादिक परिणाममें ग्रसित होनेसे असातावेदनीय कर्मोंके आस्रवके कारण होते हैं इन दोनों में यही अन्तर वा भेद है ।

यथा कस्यचित् भिषजः परमकरुणा आशयस्य निःशल्यस्य = जैसे किसी परमदयावान् अभिप्राय धारक और शल्य रहित वैद्यके
संयतस्य उपरि-गण्डम् पाटयतः = संयमी पुरुषके फोडेको काटनेवाले वा छेदनेवालेके वा चीरनेवालेके
दुःखहेतुत्वे सति अपि बाह्य-निमित्तमात्रात् एव = (संयमीपुरुषके) दुःखका कारण होने पर भी केवल बाह्य निमित्तसे ही
न पापबन्धः भवति, एवम् संसारविषय महादुःखात् । = पाप बन्ध नहीं होता है । इसीप्रकार संसारसम्बन्धी महादुःख से
उद्विग्नस्य भिक्षोः तद् निवृत्ति- = घबराया हुआ मुनिके उस (संसारविषय महादुःख) के अभाव करनेके
उपायम् प्रति समाहितमनस्कस्य शास्त्रविहिते = उपाय प्रति लगा हुआ है मन जिसका, शास्त्रोक्त विधान (अनशनादिक)
कर्मणि प्रवर्तमानस्य = क्रियाविषे (= कर्मणि) प्रवर्ताने वालेके (वा स्वयं प्रवर्तनेवालेके)

(१) भिषग्की उपमामें वर्तमानस्य भारी समझमें प्रवर्तावने वालेके अर्थमें है जैसाकि धनञ्जय अथ ७०५ सूत्र २ में है । उपलक्षणसे प्रवर्तनेवाला भी है ।

४६

॥ दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

पीडालक्षणः परिणामो दुःखम्। अनुग्राहकसम्बन्धविच्छेदे वैक्लव्यविशेषः शोकः। परिवादादिनिमित्तात्

सूत्रम्—[1]दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

=दुःख-शोक-ताप-आक्रन्दन-वध-परिदेवनानि-आत्म-पर-उभय-स्थानि-असद्वेद्यस्य-आस्रव-हेतवः-भवन्ति

सूत्रार्थः—दुःखम्-आत्मस्थम्-परस्थम्-उभयस्थम्	=दुःख अपने करै, अन्यके करै, तथा दोनोंके (एक साथ) उत्पन्न करै
शोकः आत्मस्थम्-परस्थम्-उभयस्थम्—	=शोक अपने करै, अन्य के करै, तथा दोनों के (एक साथ) उत्पन्न करै
तापः आत्मस्थम्-परस्थम्-उभयस्थम्—	=ताप अपने करै, अन्य के करै, तथा दोनों के (एक साथ) उत्पन्न करै
आक्रन्दनम्-आत्मस्थम्-परस्थम्-उभयस्थम्—	=तीव्र पश्चाताप वा रुदन अपनेकरै, अन्यके करै, तथा दोनोंके(एक साथ)उत्पन्न करै
वधः आत्मस्थम्-परस्थम्-उभयस्थम्	=वध अपने करै, अन्यके करै, तथा दोनोंके एक साथ उत्पन्न करै
परिदेवनम्-आत्मस्थम्-परस्थम्-उभयस्थम्	=दया उत्पन्न करने वाला विलाप स्वयं करै, अन्य को करावै, तथा दोनोंको (एक साथ) उत्पन्न करावै,
असद्वेद्यस्य ६।१। आस्रवहेतवः १।३। भवन्ति ।	=ये असाता वेदनीय कर्मके आस्रवके कारण होते हैं। संक्षेपतः इस प्रकार है कि दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध, परिदेवन ये अपने करै अन्य के करै तथा दोनोंके एकसाथ उत्पन्नकरै तो इनसे असाता वेदनीय कर्मका आस्रवहोताहै

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस ग्यारहवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

पीडालक्षणः १।१। परिणामः १।१। दुःखम् १।१।;	=पीडारूप परिणाम सो दुःख है।
अनुग्राहक-सम्बन्ध-विच्छेदे ७।१। वैक्लव्य—	=उपकारी वा इष्टवस्तुके सम्बन्धके वियोग होने पर (परिणाममें) विकलता का
विशेषः १।१। शोकः १।१।; परिवाद-आदि-निमित्तात् ५।१।	=विशेष सो शोक है। अपवाद अथवा कलंकादिक के कारण से

(१) इस सूत्र का पाठ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों आम्नायों के ग्रन्थों में एक सा है।

आविलान्तःकरणस्य तीव्रानुशयस्तापः। परितापजाताश्रुपातप्रचुरविप्रलापादिभिर्व्यक्तक्रन्दनमाक्रन्दनम् । आयुरिन्द्रियबलप्राणवियोगकरणं वधः। सङ्क्लेशपरिणामावलम्बनं गुणस्मरणानुकीर्तनपूर्वकं स्वपरानुग्रहाभिलाषविषयमनुकम्पाप्रचुरं रोदनं परिदेवनम् ॥ ननु च- शोकादीनां दुःखविशेषत्वात् दुःखग्रहणमेवास्तु । सत्यमेवम् । तथापि कतिपयविशेषप्रतिपादनेन दुःखजात्यन्तरविधानं क्रियते । यथा गौरित्युक्ते अनिर्ज्ञाते विशेषे तत्प्रतिपादनार्थं खण्डमुण्डकृष्णशुक्लाद्युपादानं ।

आविल–अन्तःकरणस्य। तीव्र अनुशयः। तापः,	=अन्तरंगकी कलुपता वा गदलापनसे बहुत पश्चाताप सो ताप है।
परिताप–जात–अश्रुपात–प्रचुर–विप्रलाप–आदिभिः।	=संतापसे उत्पन्न अश्रुपात सहित बहुत (=प्रचुर) विलाप आदिक करि
व्यक्त–क्रन्दनम्। आक्रन्दनम्।, आयुस्–इन्द्रिय–बल–	=प्रगट वा व्यक्त रूप रोदन सो आक्रन्दन है। आयु, इन्द्रिय(पांच)(मन वचनकाय)बल
प्राण–वियोग–करणम्। वधः, सङ्क्लेश–परिणाम–	=और प्राणका वियोग करना सो वध है। संक्लेश परिणामका
अवलम्बनम्। गुणस्मरण–अनुकीर्तनपूर्वकम्। स्व–पर–	=आलम्बन करि गुणोंका स्मरण तथा प्रशंसा पूर्वक अपने तथा अन्यके
अनुग्रह–अभिलाष–विषयम्।	=उपकार करने (=अनुग्रह) तथा करावने (=अनुग्रह) की वांछा सहित
अनुकम्पा–प्रचुरम्।रोदनम्।परिदेवनम्।,	=करुणा उत्पन्न करने वाला बहुरुदन सो परिदेवन है।
	संक्षेपतः ऐसा रोदन कि जिससे प्रत्येक पुरुषको दया आजाय सो परिदेवन है।
ननु *च*–शोक–आदीनाम्। दुःख–	=प्रश्न–शोक ताप–आक्रन्दन–वध–परिदेवन–दुःख के
विशेषत्वात्। दुःख–	=विशेष वा प्रभेद होने (के कारण)से (इससूत्रमें) केवल (=एव) दुःख शब्दका
ग्रहणम्।एव*अस्तु। सत्यम्।एवम्*तथा*अपि*कतिपय-	=ग्रहण होता। (उत्तर) ऐसा (=एवम्) सत्य है। तौ भी कितनेक (=कतिपय)
विशेष-प्रतिपादनेन। दुःख जाति अन्तर-विधानम्। क्रियते।	=विशेषोंका कथन करनेसे दुःख जाति के भेदोंका (=अन्तर) निर्णय किया है।
	अर्थात् कितने ही विशेष कहने से दुःख जातिका ज्ञान कराया गया है।
यथा*गौः। इति* उक्ते। अनिर्ज्ञाते। विशेषे। तत्-	=जैसे गऊ ऐसा कहनेमें विशेष नजानने पर उस (विशेष) के
प्रतिपादन अर्थम्।। खण्ड-	=जनावने वा कहनेके लिये खाडी अर्थात् वह गऊ जिसका कोई अवयव टूटा हो
मुण्ड-कृष्ण शुक्ल-आदि उपादानम्।।	=मूडी अर्थात् गंजी गऊ, काली गऊ धौली वा श्वेत गऊ आदिक का ग्रहण

कायेन वाचा च परप्रकाश्यज्ञानस्य वर्जनमासादनम् । प्रशस्तज्ञानदूषणमुपघातः । आसादनमेवेति चेत्सतो ज्ञानस्य विनयप्रदानादिगुणकीर्तनाननुष्ठानमासादनम् । उपघातस्तु ज्ञानमज्ञानमेवेति ज्ञाननाशाभिप्राय इत्यनयोरयं भेदः ॥ तच्छब्देन ज्ञानदर्शनयोःप्रतिनिर्देशःक्रियते । कथं पुनरप्रकृतयोरनिर्दिष्टयोस्तच्छब्देन परामर्शः कर्तुं शक्यः ? प्रश्नापेक्षया ॥ ज्ञानदर्शनावरणयोः क आस्रव इति प्रश्ने कृते तदपेक्षया

अभ्यास करताहो, उसमे विघ्नकरदैना पुस्तक, पाठक, पाठशालाकेस्थानका विच्छेद करना अथवा जिसकार्य से ज्ञानका (=विद्याका) प्रचार होने वाला हो उस कार्यका विरोध करना वा विगाड़ देना सो अन्तराय है

कायेन३/१ वाचा३/१ च*पर-प्रकाश्य-ज्ञानस्य६/१ =कायसे और(=च) वचनसे अन्यके द्वारा प्रकाश कियेजानेयोग्य ज्ञानका

वर्जनम् १/१ आसादनम् १/१ ; =रोक देना (कि अभी इस विषयको मत करो इत्यादिभाव)सो आसादन है ।

प्रशस्तज्ञान-दूषणम् १/१ उपघातः १/१ । =प्रशंसनीय ज्ञानको दूषण लगाना उपघात है ।

आसादनम् १/१ एव* इति* चेत्* =(दूषण लगावना)आसादन ही हुआ ऐसा संदेह है वा प्रश्न है

सतोः६/१ ज्ञानस्य६/१ विनय-प्रदानादि-गुण-कीर्तन- =(उत्तर) विद्यमानज्ञानका विनय, सिखावना आदिक गुण वर्णन (=गुणकीर्तन)

अन्-अनुष्ठानम्१/१ आसादनं१/१ ;तुज्ञानं-अज्ञानं१/१ एव*इति* =न करना (=अन्-अनुष्ठानम्)आसादन है परन्तु(=तु-यह कि)ज्ञान अज्ञान ही है अर्थात् ज्ञानको कहैकि यह झूठाज्ञानहै (=अज्ञान)वा कहैकिज्ञानहीनही (=अज्ञान) है

ज्ञान-नाश-अभिप्रायः१/१ उपघातः१/१ इति* =(तथा) ज्ञानके नाशका अभिप्राय सो उपघात है इस प्रकार

अनयोः६/२ अयम्१/१ भेदः१/१; तत्-शब्देन ३/१ =दोनों (आसादन तथा उपघात) में यह भेदहै । (इस सूत्रमें) तत् शब्दकरि

ज्ञान-दर्शनयोः६/२ प्रतिनिर्देशः१/१ क्रियते T । =ज्ञान दर्शन (दोनों) का ग्रहण (=प्रतिनिर्देश) किया जाता है ।

कथं*पुनः*अप्रकृतयोः६/२ अनिर्दिष्टयोः६/२ तत्-शब्देन३/१ =(प्रश्न) बहुरि कैसे प्रकरण रहित और विना कहे हुये(ज्ञानदर्शन)का तत् शब्दकरि

परामर्शः१/१ (१)कर्तुं शक्यः१/१ प्रश्न-अपेक्षया३/१; =उपदेश (=परामर्श) वा कथन (=परामर्श) करनेको समर्थ हो अर्थात् प्रकरण रहितका कथन कैसे किया जा सक्ता है (उत्तर) प्रश्नकी अपेक्षासे (कथन कियाहै)

ज्ञान-दर्शन-आवरणयोः६/२ कः१/१ आस्रवः१/१; =ज्ञान दर्शनावरण कर्मोंके क्या आस्रव है ।

इति*प्रश्ने७/१ कृते७/१ तद्-अपेक्षया ३/१ =इस प्रकार (शिष्यके) प्रश्न करनेपर(=कृते) उस (प्रश्न) की अपेक्षासे

तच्छब्दो ज्ञानदर्शने प्रतिनिर्दिशति ॥एतेन ज्ञानदर्शनवत्सु तत्साधनेषु च प्रदोषादयो योज्या तन्निमित्तत्वात्॥त एते ज्ञानदर्शनावरणयोरास्रवहेतव ॥एककारणसाध्यस्य कार्यस्यानेकस्य दर्शनात् तुल्येऽपि प्रदोषादौ ज्ञानदर्शनावरणास्रवसिद्धिः ॥ अथवा विषयभेदादास्रवभेद ॥ ज्ञानविषया प्रदोषादयो ज्ञानावरणस्य । दर्शनविषया प्रदोषादयो दर्शनावरणस्येति ॥

यथाऽनयो कर्मप्रकृत्योरास्रवभेदास्तथा—

तद्-शब्द ज्ञान दर्शने प्रतिनिर्दिशति = (इस सूत्र में) तद् शब्द ज्ञान दर्शनको ग्रहण करता है

एतेन ज्ञानदर्शनवत्सु = इस [तद् शब्द] करि ज्ञान दर्शन वालामें

तत्-साधनेषु च* = तथा [=च] तिस [ज्ञानदर्शन] के कारणों [जैसे गुरु-पुस्तक-यतीश्वर इत्यादिकनि] में

प्रदोष-आदय योज्या = प्रदोष-निह्नव-मात्सर्य-अन्तराय-आसादन-उपघात-लगाना चाहिये

तद्-निमित्तत्वात्, = क्योंकि (गुरु पुस्तक-यतीश्वरादिक) उस [ज्ञान-दर्शन] के [= तद्] निमित्त हैं

ते एते ज्ञान-दर्शन-आवरणयो = वे इतने (प्रदोषादिक) ज्ञान दर्शनावरण कर्मके

आस्रव-हेतव, एककारण-साध्यस्य = आस्रवके कारण है। एक कारणसे साध्य

कार्यस्य अनेकस्य दर्शनात् = अनेक कार्य दृष्टि गोचर होने से [ज्ञान विषे तथा दर्शन विषै]

तुल्ये अपि* प्रदोष आदौ ज्ञान दर्शन आवरण- = प्रदोषादिक समान होने पर भी ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मका

आस्रव-सिद्धि = आस्रव (रूपकार्य) सिद्ध होता है अर्थात् प्रदोषादिक ज्ञान विषै होय तैसे ही दर्शनमें होय ऐसे समानहै तौभी दोनों कर्मका आस्रवरूप कार्य न्यारा न्यारा करतेहैं

अथवा* विषयभेदात् आस्रवभेद ज्ञान-विषया = अथवा विषयके भेदसे आस्रव में भेद है। ज्ञान सम्बन्धी

प्रदोष-आदय ज्ञान आवरणस्य दर्शनविषया = प्रदोषादिक ज्ञानावरण कर्मके आस्रवके कारण हैं। दर्शन सबधी

प्रदोष-आदय दर्शन-आवरणस्य इति* = प्रदोषादिक दर्शनावरण कर्मके आस्रवके कारण है।

यथा-अनयो कर्म-प्रकृत्यो आस्रव-भेदा = जैसे इन दोनों (ज्ञानावरण-दर्शनावरण) कर्मो की प्रकृतोंके आस्रवके भेद हैं

तथा* = तैसे (दु ख-शोक इत्यादिक अग्रिमसूत्र में असातावेदनीय कर्म के आस्रव के भेद है।)

[९] दर्शनानुवादेन—चक्षुर्दर्शनिनो मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः । अचक्षुर्दर्शनिनो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । उभये च सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः

सूक्ष्म साम्पराय उपशमक २९९ सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक ५९८, उपशान्तकषाय २९९ क्षीणकषाय ५९८ सयोगकेवली ८९८५०२ और अयोग केवली ५९८ हैं और संयमासंयमी तेरह करोड हैं ॥

दर्शन-अनुवादेन ३।१ चक्षुर्दर्शनिनः १।३ मिथ्यादृष्टयः १।३ = दर्शनकी अपेक्षासे चक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थानवर्ती)
असंख्येयाः १।३ श्रेणयः १।३ प्रतर-असंख्येयभागप्रमिताः १।३ = असंख्यात श्रेणी [प्रमाण] हैं [ये श्रेणी जगत] प्रतरके असंख्यातवां भाग प्रमाण हैं
अचक्षुर्दर्शनिनः १।३ मिथ्यादृष्टयः १।३ अनंतानंताः १।३ = अचक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं [स्थानवालोंसे
च उभये १।३ सासादन-सम्यग्दृष्टि-आदयः १।३ = और दोनों [चक्षुर्दर्शनवाले-अचक्षुर्दर्शनवाले] सासादन सम्यग्दृष्टि गुण

अनुयोगमें कि सम्यक्त्वका स्वामी कौन है- संयमके अनुवादकरि इस प्रकरणमें वृत्तिकार असंयतानां शब्द नहीं लाये उसके सम्बन्धमें हमने पृष्ठ ७१ में यह टिप्पणी दी है कि "कथन संयमकी अपेक्षासे है नकि असंयमीकी इत्यादि" वही अवस्था यहां पर है हमने "असंयताः" वाक्य पाठमे नहीं रक्खा है ॥ पाठकोंके लिए विस्तारसे अर्थ 'असंयताश्च' वाक्यका लिखते हैं = और असंयमी (मिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यङ् मिथ्यादृष्टि—असंयतसम्यग्दृष्टि) संक्षेपसे कथित गुणस्थानवत् सख्यावाले हैं अर्थात् यथासंख्य, अनन्तानन्त, बावनकरोड, एकसौ चार करोड, सात सौ करोड हैं ॥ यदि यह पक्ष लिया जाय कि आचार्यको फिर असयतोंके कथन करनेका कहां अवसर था और कथन करना अवश्य ही चाहिये तो पृष्ठ ७१ के वृत्ति पाठमें असंयतानां शब्द रह गया है वहां पर लिखना चाहिये ॥ जयचंदजीने दोनों स्थानोंमें असंयतानां और असंयताः शब्द लिये हैं ॥ (१) उभ= दो । यह शब्द सदीव दो वचनमें आता है इसका एक वचन और बहुवचन नहीं होते हैं । उभय = दो वाला-यह शब्द तीनों वचनमे आता है ॥ सर्वादिगणमें आनेसे अर्थात् सर्वनाम संज्ञक होनेके हेतुसे इसके रूप भी सर्व शब्दके समान होते हैं यहां पर उभये प्रथमा विभक्ति बहुवचन पुल्लिग है जैसे कि सर्वे (शब्द) सर्व शब्दका प्रथमा विभक्ति बहुवचन पुंलिंग है । अर्थ यहा पर यह है कि चक्षुर्दर्शनवाले और अचक्षुर्दर्शनवाले ॥

तत्त्वज्ञानस्य मोक्षसाधनस्य कीर्तने कृते कस्यचिदनभिव्याहरतः अन्तः पैशून्यपरिणामः प्रदोषः। कुतश्चित्कारणान्नास्ति न वेद्मीत्यादिज्ञानस्य व्यपलपनं निह्नवः। कुतश्चित्कारणाद्भावितमपि विज्ञानं दानार्हमपि यतो न दीयते तन्मात्सर्यम्। ज्ञानव्यवच्छेदकरणमन्तरायः।

उपघाता ।।	=उपघात अर्थात् प्रशस्त ज्ञानमें दोष लगाना वा सराहने योग्य ज्ञानको दूषण लगावना,
ज्ञान–आवरण–	=(यदि ज्ञानके विषयमें हो तो) ज्ञानावरण कर्मके
दर्शन–आवरणयो. ।।।	=(और यदि दर्शनके विषय में होतो) दर्शनावरण कर्मोंके
भवन्ति T आस्रव हेतव ।।	=आस्रवके कारण होते हैं।
वृत्त्यनुवाद–तत्त्वज्ञानस्य।।मोक्षसाधनस्य।।।	=मोक्षका कारण अथवा उपाय तत्त्वज्ञानके
कीर्तने।कृते। कस्यचित्*अनभिव्याहरत ।।	=प्रशसा (कीर्तने) करने पर (=कृते) किसी पुरुषके विना कुछ कहे
अन्त. पैशून्य–	=अन्तरगमें दुष्टता (=पैशून्य) का
परिणाम ।प्रदोष ।,कुतश्चित्*कारणात्।।।	=परिणाम वा भाव सो प्रदोष है। किसी कारण(जैसे दूसरेका भय वा अपने प्रयोजनवश)से
न* अस्ति T न*वेद्मि T	= ऐसा नहीं है (=न अस्ति) मै नही जानता हू (=न वेद्मि)
इत्यादि।।।ज्ञानस्य।।। व्यपलपन।।। निह्नव ।।	=इत्यादिक ज्ञान का छिपाना सो निह्नव है।
विज्ञान ।।। भावितम् ।।। अपि*	=शास्त्रादिकका ज्ञान (=विज्ञान) प्राप्त भी हो (=भवितम् अपि)
दान–अर्हम् ।।। अपि*	=देने वा सिखाने योग्य भी हो (=दान–अर्हम्–अपि)
कुतश्चित्* कारणात् ।।।	=किसी कारणसे (जैसे अमुक पुरुष सीखकर मेरी बराबरी करेगा)
यत. * न* दीयते T तत् ।।। मात्सर्यम् ।।।	=जिससे न दियाजाता है अथवा न सिखायाजाता है वह (परिणाम) मात्सर्य है।
ज्ञान–व्यवच्छेदकरण ।।। अन्तराय ।।	=ज्ञानका व्यवच्छेद करना अथवा ज्ञानमें विघ्न डालना अन्तराय है अर्थात् कोई ज्ञानका

मनोनिसर्गाधिकरणञ्चेति ॥ उक्तः सामान्येन कर्मास्रवभेदः ॥ इदानीं कर्मविशेषास्रवभेदो वक्तव्यः । तस्मिन् वक्तव्ये आद्ययोर्ज्ञानदर्शनावरणयोरास्रवभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयो ॥ १० ॥

मनोनिसर्ग-अधिकरणम् ॥ च * इति *	=और मनोनिसर्ग अधिकरण अर्थात् मनको प्रवर्ताना, वा मनका प्रवर्तन करना
उक्तः सामान्येन ॥ कर्म-आस्रव-भेदः; इदानीं*	=सामान्यकरि कर्म आस्रवका भेद कहागया। अब
कर्म-विशेष-आस्रव-भेदः वक्तव्यः	=कर्मोंके विशेषकरि आस्रवके भेद कहना चाहिये।
तस्मिन् वक्तव्ये आद्ययोः ॥ ज्ञान-	=तिस [कर्मोंके विशेषकरि आस्रवके भेदों] के कथनमें,आदिके [दो] ज्ञानावरण
दर्शन-आवरणयोः॥आस्रव-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थं॥आह	=दर्शनावरण आस्रवके भेद जाननेके लिये [अग्रिमसूत्रमें] कहते हैं कि

सूत्रम्[1]—तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥

=तत्-प्रदोष-निह्नव-मात्सर्य-अन्तराय-आसादन-उपघाताः ज्ञान-दर्शन-आवरणयोः आस्रव-हेतवः भवन्ति ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—तत्-	=उस [ज्ञान दर्शन]के [विषय अथवा सम्बन्ध में] अर्थात् ज्ञान दर्शन अथवा ज्ञान दर्शनके साधनोंके तथा ज्ञान दर्शनके धारकोंके प्रति
प्रदोष—	=प्रदोष अर्थात् मोक्षके कारण तत्त्वज्ञानके कथन करने पर किसी पुरुष की प्रशंसा न की जाय और अतरंगमें दुष्टताका परिणाम हो,
निह्नव-	=निह्नव अर्थात् ज्ञानादिका छिपावना,जानते हुये भी यह कहना कि यह मैं नहीं जानता
मात्सर्य-	=मात्सर्य अर्थात् डाह वा देने योग्य ज्ञान को न देना,
अन्तराय-	=अन्तराय अर्थात् ज्ञानका व्यवच्छेद करना वा ज्ञानकी प्राप्तिमें विघ्न डालना,
आसादन-	=आसादन अर्थात् मन और वचनसे परके द्वारा प्रकाश करने योग्य ज्ञानका रोक देना,

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दिगम्बर आम्नायमें तथा श्वेताम्बर समाजके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें, भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकामें एक है

सहसानिक्षेपाधिकरणमनाभोगनिक्षेपाधिकरणं चेति ॥ संयोगो द्विविधः । भक्तपानसंयोगाधिकरणं चेति ॥ निसर्गस्त्रिविधः । कायनिसर्गाधिकरणं वाग्निसर्गाधिकरणं

(१)सहसानिक्षेप-अधिकरणम् ॥	=सहसानिक्षेप अधिकरण अर्थात् अकस्मात् उतावलीपनसे अथवा शीघ्रतासे कहीं कुछ रख देना ।
अनाभोगनिक्षेप—अधिकरणम् ॥ च॰ इति॰ ॥	=और (=च) अनाभोग निक्षेपअधिकरण अर्थात् बिनाशुद्धकिये हुये वा बिना स्वच्छ किये हुये, तथा बिना देख हुये स्थानमें शरीर आदिकका रख देना ॥
संयोग द्विविध भक्तपान संयोग अधिकरणम् ॥	=संयोग (अधिकरण) दो प्रकार हैं, भक्तपान संयोग अधिकरण वा भक्तपान (=अन्नपान) संयोजना अधिकरण अर्थात् पान भोजन को अन्य पान भाजनमें मिलावना वा परस्पर मिलावना, सक्षेपत भोजन पानका मिलावना
उपकरण-संयोग अधिकरणम् ॥ च॰इति॰	=और (=च) उपकरण संयोग अधिकरण अर्थात् (भोजनसे भिन्न) अन्यसामिग्री वस्त्राभूषण आदि जिन वस्तुओंसे कार्य किया जाई तिन उपकरणोंका संयोग करना अथवा मिलावना ॥
निसर्ग त्रिविध कायनिसर्ग-अधिकरणम् ॥	=निसर्ग (अधिकरण) तीन प्रकार(२) हैं कायनिसर्ग अधिकरण, कायका प्रवर्तन अथवा कायका प्रवर्ताना अर्थात् शरीरको हिलाना चलाना
(३)वाग्निसर्गअधिकरणम् ॥	=वाग् निसर्ग अधिकरण, वचनका प्रवर्तन करना, वचनका प्रवर्ताना

(१) अप्रमृष्टादृष्टभूमौकायादिनिक्षेपोऽनाभोग ॥
अप्रमृष्ट-अदृष्टम्-भूमो काय-आदि-निक्षेप अनाभोग =बिना स्वच्छकिय तथा बिना देखी भूमिमें कायआदिका स्थापन वा निक्षेपन सो अनाभोगहै
(२) यहा भावार्थ ऐसा जानना कि जीव अजीव द्रव्य हैं तिनके आश्रयकरि (=आधारकरि) कर्मोंका आगमन (=आस्रव) होताहै सो इन दोनों अधिकरणोंके भावार्थ ये सब विशेष भेदकहेगयेहैं ॥ (३) (क) अधिकरण (न०) अधि+कृ+ल्युट् । आधार । आसरा । आश्रय (जैसे न्यायाधिकरण) (ख) व्याकरण शास्त्रमें प्रसिद्धकर्ता और कर्मद्वारा क्रियाका आश्रय अधिकरणनाम कारक (अर्थात् सप्तमी विभक्ति) जैसे "गृहे स्थाल्यामन्नं पचति" =घरमें थालीमें (वह) अन्न पकाताहै इत्यादि उदाहरणमें घर कर्ता द्वारा, और थाली कर्मद्वारा परम्परासे पकानारूप क्रियाका आश्रयहै । आधारोऽधिकरणम् (अष्टाध्यायी १-४-४५ वा सूत्र)=क्रियाका जो आधार वह कारक अधिकरण सज्ञकहो । (ग) प्रभुता (घ) न्यायालय (ङ) अभियोग अभिमान (च) पूर्वोत्तरमीमांसाशास्त्रमें न्यायसमूह विषय, संशय, पूर्वपक्ष, सिद्धान्त, निर्णय स्वरूप पांच प्रकार साधन करनेद्वारा वाक्य समुदाय ॥

जीवाधिकरणविकल्पा एवेति विज्ञायन्ते ॥ निर्वर्तनाधिकरणं द्विविधम्, मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरण-मुत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरणञ्चेति ॥ तत्र मूलगुणनिर्वर्तनं पञ्चविधम्। शरीरवाङ्मनःप्राणापानाश्च। उत्तरगुणनिर्वर्तनं काष्ठपुस्तचित्रकर्मादि ॥ निक्षेपश्चतुर्विधः । अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरणं दुष्प्रमृष्टनिक्षेपाधिकरणं

जीवाधिकरण-विकल्पाः ¹₃ एव*इति* विज्ञायन्ते T ॥	=जीवाधिकरणके भेद ही निश्चय किये जाते (और अजीवाधिकरणके भेदोंका निश्चय न होता) ॥ 'इति' यहां पर वाक्यके पूर्णार्थ है।
(१)निर्वर्तना-अधिकरणम्¹₁॥द्वि-विधम्¹₁॥,मूलगुणनिर्वर्तना-	=निर्वर्तना अधिकरण दो प्रकार है। मूलगुण निर्वर्तना-
अधिकरणम्¹₁॥उत्तरगुण-निर्वर्तना-अधिकरणं¹₁॥च*इति*॥	=अधिकरण और (=च) उत्तरगुण निर्वर्तनाधिकरण ॥
तत्र* मूलगुणनिर्वर्तनम्¹₁॥ पञ्चविधम् ¹₁॥ ;	=तहां मूलगुण निर्वर्तना पांच प्रकार है (अर्थात्)
शरीर-वाङ्-मनः-प्राण-अपानाः¹₃ च*	=(पॉच प्रकारके) शरीर-वचन-मन-उच्छ्वास(=प्राण)और निःश्वास (=अपान)हैं
उत्तरगुणनिर्वर्तनम्¹₁॥ काष्ठ-पुस्त-	=उत्तरगुणनिर्वर्तना काठ मट्टी पत्थर कपड़े (=पुस्त)
चित्र-कर्मादि ¹₁॥; निक्षेपः¹₁	=चित्रकर्म इत्यादिक (का उपजावना वा रचना) है। निक्षेप (अधिकरण)
चतुर्विधः¹₁, अप्रत्यवेक्षित-निक्षेप-अधिकरणम् ¹₁॥	=चार प्रकार है। अप्रत्यवेक्षित निक्षेप अधिकरण अर्थात् बिना देखे (=अप्रत्यवेक्षित) (किसी वस्तुको) निक्षेप करना वा स्थापन करना.
दुः प्रमृष्ट-निक्षेप-अधिकरणम् ¹₁॥	=दुः प्रमृष्ट निक्षेप अधिकरण अथवा दुः प्रमार्जित निक्षेप अधिकरण अर्थात् उत्तमतासे माजे बिना वा स्वच्छ किये बिना कहीं कुछ रख देना

(१) इस निर्वतना के देहतः प्रयुक्त निर्वतना अधिकरण [=शरीरसे कुचेष्टा उत्पन्न करना] और उपकरण निर्वतना अधिकरण [=हिंसाके उपकरण शस्त्रादिक की रचना करना] इस प्रकार भी दो भेद है ॥ (२) अप्रत्यवेक्षित =अ-प्रति-अव-ईक्षत, अ निषेध अर्थमें है, ईक्ष् देखना (भ्वादिगण आत्मनेपदी सकर्मक, सेट है) इस [ईक्ष] का भूत कृदत ईक्षित है क्योंकि ईक्ष् धातु सेट् है। अर्थात् इ जोड़नेके पश्चात् त भूत कृदत का चिन्ह लगाया जाताहै इसलिये ईक्ष्+इ=ईक्षित जोड़नेसे ईक्षित बना अर्थ देखा हुआ अ-लगाने से बिना देखेहुये अव का अर्थ नीचे का है। इसलिये समस्त का अर्थ बिना देखे हुये किसी वस्तु को नीचे स्थापन करना वा रखना होता है ॥

॥ निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥ ९ ॥

निर्वर्त्यत इति निर्वर्तना निष्पादना । निक्षिप्यत इति निक्षेपः स्थापना ।

सूत्रम्—निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥ ९ ॥

=निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गाः द्वि-चतुर्-द्वि-त्रिभेदाः परम् (अधिकरणम् भवन्ति)

सूत्रार्थः-निर्वर्तना-निक्षेप— =निर्वर्तना (रचना वा उत्पन्न करना) निक्षेप (=रखना,धरना, स्थापनकरना)

संयोग-निसर्गाः १|३ =संयोग (=जोड़ना, मिलावना) निसर्ग (=प्रवर्तना) (यथासंख्य)

द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः१|३ परम् १|१ अधिकरणं १|१ भवन्ति=दो-चार-दो-तीन-भेदरूप (=भेदवाला) अन्य अजीवाधिकरण है अर्थात् अजीवअधिकरणके निर्वर्तना अधिकरण, निक्षेप अधिकरण, संयोग अधिकरण और निसर्ग अधिकरण ये चार भेद हैं इन चार भेदोंमेंसे निर्वर्त्तना अधिकरण के दो, निक्षेप अधिकरणके चार संयोग अधिकरणके दो तथा निसर्ग अधिकरणके तीन भेद होते हैं (इनका विस्तार वृत्तिके अनुवादमें कियागया है)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस नवमां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

निर्वर्त्यते T इति* निर्वर्तना १|१ निष्पादना १|१ =उत्पन्न किया जाता है ऐसा निर्वर्तना अर्थात् सम्पादना (=निष्पादना) है

निक्षिप्यते T इति*निक्षेपः१|१ स्थापना १|१ =रक्खा जाता है अथवा धराजाता है ऐसा धरना वा स्थापना है

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसाहै,अर्थात् हमारे यहां सर्वत्रऔर सभाष्य०में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें एकहै॥

(२) द्वौ च चत्वारश्च द्वौ च त्रयश्च, द्विचतुर्द्वित्रयः, ते भेदाः एषां ते द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः इति द्वन्द्वगर्भोऽन्यपदार्थः प्रत्येतव्यः

=यहां प्रथम तो द्वन्द्वसमास होता है उसका अर्थ इस प्रकार है कि दो और चार और दो और तीन जे हैं ते द्विचतुर्द्वित्रयः कहिये; बहुरि बहुव्रीहि-समास करि भेद शब्दके साथ इनका सम्बन्ध कियाजाय तो तहां ऐसा अर्थ होता है कि 'ते हैं भेद जिनके ते द्विचतुर्द्वित्रिभेदा' कहे जाते हैं। ऐसे द्वन्द्वसमास है गर्भ विषै जाके ऐसा अन्यपदार्थ वृत्तिनामा बहुव्रीहिसमास अर्थात् द्वन्द्वगर्भित बहुव्रीहि समास जानने योग्य है॥

(१) अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतमनआरम्भ (२) अप्रत्याख्यानक्रोधकृतमनआरम्भ (३) प्रत्याख्यानक्रोधकृतमनआरम्भ
(४) सञ्ज्वलनक्रोधकृतमनआरम्भ (५) अनन्तानुबन्धीमानकृतमनआरम्भ (६) अप्रत्याख्यानमानकृतमनआरम्भ
(७) प्रत्याख्यानमानकृतमनआरम्भ (८) सञ्ज्वलनमानकृतमनआरम्भ (९) अनन्तानुबन्धीमायाकृतमनआरम्भ
(१०) अप्रत्याख्यानमायाकृतमनआरम्भ (११) प्रत्याख्यानमायाकृतमनआरम्भ (१२) सञ्ज्वलनमायाकृतमनआरम्भ
(१३) अनन्तानुबन्धीलोभकृतमनआरम्भ (१४) अप्रत्याख्यानलोभकृतमनआरम्भ (१५) प्रत्याख्यानलोभकृतमनआरम्भ
(१६) सञ्ज्वलनलोभकृतमनआरम्भ (१७) अनन्तानुबन्धीक्रोधकारितमनआरम्भ (१८) अप्रत्याख्यानक्रोधकारितमनआरम्भ
(१९) प्रत्याख्यानक्रोधकारितमनआरम्भ (२०) सञ्ज्वलनक्रोधकारितमनआरम्भ (२१) अनन्तानुबन्धीमानकारितमनआरम्भ
(२२) अप्रत्याख्यानमानकारितमनआरम्भ (२३) प्रत्याख्यानमानकारितमनआरम्भ (२४) सञ्ज्वलनमानकारितमनआरम्भ
(२५) अनन्तानुबन्धीमायाकारितमनआरम्भ (२६) अप्रत्याख्यानमायाकारितमनआरम्भ (२७) प्रत्याख्यानमायाकारितमनआरम्भ
(२८) सञ्ज्वलनमायाकारितमनआरम्भ (२९) अनन्तानुबन्धीलोभकारितमनआरम्भ (३०) अप्रत्याख्यानलोभकारितमनआरम्भ
[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितमनआरम्भ [३२] सञ्ज्वलनलोभकारितमनआरम्भ [३३] अनन्तानुबन्धीक्रोधअनुमतमनआरम्भ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतमनआरम्भ [३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतमनआरम्भ [३६] सञ्ज्वलनक्रोधअनुमतमनआरम्भ
[३७] अनन्तानुबन्धीमानअनुमतमनआरम्भ [३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतमनआरम्भ [३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतमनआरम्भ
[४०] सञ्ज्वलनमानअनुमतमनआरम्भ [४१] अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतमनआरम्भ [४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतमनआरम्भ
[४३] प्रत्याख्यानमायाअनुमतमनआरम्भ [४४] सञ्ज्वलनमायाअनुमतमनआरम्भ [४५] अनन्तानुबन्धीलोभअनुमतमनआरम्भ
[४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतमनआरम्भ [४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमतमनआरम्भ [४८] सञ्ज्वलनलोभअनुमतमनआरम्भ

ऐसे कायसरम्भके ४८, वचन सरम्भके ४८ मनसरम्भके ४८ भेद देखो क्रमसे पृष्ठ २६, २७, २८ और कायसमारम्भके ४८ भेद पृष्ठ २९, वचन समारम्भके ४८ भेद पृष्ठ ३०, मन समारम्भ के ४८ भेद पृष्ठ ३१ कायआरम्भ के ४८ भेद पृष्ठ ३२, वचन आरम्भके ४८ भेद पृष्ठ ३३, और मन.आरम्भ के ४८ भेद पृष्ठ ३४, सर्व मिलकर ४३२ भेद जीव अधिकरणके हुये ॥

परस्याजीवस्याधिकरणस्य भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह

परस्य ६॥ अजीवस्य६॥ अधिकरणस्य ६॥ भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम् २॥ आह=दूसरे अजीव अधिकरणके भेद जाननके लिये कहते हैंकि-

वचन आरम्भके अड़तालीस ४८ भेद

(१) अनन्तानुवन्धी क्रोधकृत वचनआरम्भ (२) अप्रत्याख्यान क्रोधकृत वचनआरम्भ (३) प्रत्याख्यान क्रोधकृत वचनआरम्भ (४) संज्वलन क्रोधकृत वचनआरम्भ (५) अनन्तानुवन्धी मानकृत वचनआरम्भ (६) अप्रत्याख्यान मानकृत वचनआरम्भ (७) प्रत्याख्यान मानकृत वचनआरम्भ (८) संज्वलन मानकृत वचनआरम्भ (९) अनन्तानुवन्धी मायाकृत वचनआरम्भ (१०) अप्रत्याख्यान मायाकृत वचनआरम्भ (११) प्रत्याख्यान मायाकृत वचनआरम्भ (१२) संज्वलन मायाकृत वचनआरम्भ (१३) अनन्तानुवन्धी लोभकृत वचनआरम्भ (१४) अप्रत्याख्यान लोभकृत वचनआरम्भ (१५) प्रत्याख्यान लोभकृत वचनआरम्भ (१६) संज्वलन लोभकृत वचनआरम्भ (१७) अनन्तानुवन्धी क्रोधकारित वचनआरम्भ (१८) अप्रत्याख्यान क्रोधकारित वचनआरम्भ (१९) प्रत्याख्यान क्रोधकारित वचनआरम्भ (२०) संज्वलन क्रोधकारित वचनआरम्भ (२१) अनन्तानुबन्धीमानकारित वचनआरम्भ (२२) अप्रत्याख्यान मानकारित वचनआरम्भ (२३) प्रत्याख्यान मानकारित वचनआरम्भ (२४) संज्वलन मानकारित वचनआरम्भ (२५) अनन्तानुवन्धीमायाकारित वचनआरम्भ (२६) अप्रत्याख्यान मानकारित वचनआरम्भ (२७) प्रत्याख्यान मायाकारित वचनआरम्भ (२८) संज्वलन मायाकारित वचनआरम्भ (२९) अनन्तानुबन्धी लोभकारित वचनआरम्भ (३०) अप्रत्याख्यानलोभकारित वचनआरम्भ (३१) प्रत्याख्यान लोभकारित वचनआरम्भ (३२) संज्वलन लोभकारित वचनआरम्भ (३३) अनन्तानुवन्धीक्रोधअनुमतवचनआरम्भ (३४) अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमत वचनआरम्भ (३५) प्रत्याख्यान क्रोधअनुमत वचनआरम्भ (३६) संज्वलन क्रोधअनुमत वचनआरम्भ (३७) अनन्तानुबन्धीमानअनुमत वचनआरम्भ (३८) अप्रत्याख्यान मानअनुमत वचनआरम्भ (३९) प्रत्याख्यानमान अनुमत वचनआरम्भ (४०) संज्वलन मानअनुमत वचनआरम्भ (४१) अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतवचनआरम्भ (४२) अप्रत्याख्यान मायाअनुमत वचनआरम्भ [४३] प्रत्याख्यान मायाअनुमत वचनआरम्भ [४४] संज्वलन मायाअनुमत वचनआरम्भ [४५] अनन्तानुबन्धीलोभअनुमत वचनआरम्भ [४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतवचनआरम्भ [४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमत वचनआरम्भ [४८] संज्वलन लोभअनुमत वचनआरम्भ

मन आरम्भके अड़तालीस ४८ भेद

[३७] अनन्तानुवंधीमानअनुमतवचनसमारंभ [३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतवचनसमारंभ [३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतवचनसमारंभ
[४०] संज्वलनमानअनुमतवचनसमारंभ [४१] अनन्तानुवन्धीमायाअनुमतवचनसमारंभ [४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतवचनसमारंभ
[४३] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतवचनसमारंभ [४४] संज्वलनमायाअनुमतवचनसमारंभ [४५] अनन्तानुवंधीलोभअनुमतवचनसमारंभ
[४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतवचनसमारंभ [४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमतवचनसमारंभ [४८] संज्वलनलोभअनुमतवचनसमारंभ

॥ मनसमारम्भके ४८ भेद ॥

[१] अनन्तानुवन्धीक्रोधकृतमनसमारंभ [२] अप्रत्याख्यानक्रोधकृतमनसमारंभ [३] प्रत्याख्यानक्रोधकृतमनसमारंभ
[४] संज्वलनक्रोधकृतमनसमारंभ [५] अनन्तानुवन्धीमानकृतमनसमारंभ [६] अप्रत्याख्यानमानकृतमनसमारंभ
[७] प्रत्याख्यानमानकृतमनसमारंभ [८] संज्वलनमानकृतमनसमारंभ [९] अनन्तानुवन्धीमायाकृतमनसमारंभ
[१०] अप्रत्याख्यानमायाकृतमनसमारंभ [११] प्रत्याख्यानमायाकृतमनसमारंभ [१२] संज्वलनमायाकृतमनसमारंभ
[१३] अनन्तानुवन्धीलोभकृतमनसमारंभ [१४] अप्रत्याख्यानलोभकृतमनसमारंभ [१५] प्रत्याख्यानलोभकृतमनसमारंभ
[१६] संज्वलनलोभकृतमनसमारंभ [१७] अनन्तानुवन्धीक्रोधकारितमनसमारंभ [१८] अप्रत्याख्यानक्रोधकारितमनसमारंभ
[१९] प्रत्याख्यानक्रोधकारितमनसमारंभ [२०] संज्वलनक्रोधकारितमनसमारंभ [२१] अनन्तानुवंधीमानकारितमनसमारंभ
[२२] अप्रत्याख्यानमानकारितमनसमारंभ [२३] प्रत्याख्यानमानकारितमनसमारंभ [२४] संज्वलनमानकारितमनसमारंभ
[२५] अनन्तानुवंधीमायाकारितमनसमारंभ [२६] अप्रत्याख्यानमायाकारितमनसमारंभ [२७] प्रत्याख्यानमायाकारितमनसमारंभ
[२८] संज्वलनमायाकारितमनसमारंभ [२९] अनंतानुवंधीलोभकारितमनसमारंभ [३०] अप्रत्याख्यानलोभकारितमनसमारंभ
[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितमनसमारंभ [३२] संज्वलनलोभकारितमनसमारंभ [३३] अनन्तानुवंधीक्रोधअनुमतमनसमारंभ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतमनसमारंभ [३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतमनसमारंभ [३६] संज्वलनक्रोधअनुमतमनसमारंभ
[३७] अनन्तानुबन्धीमानअनुमतमनसमारंभ [३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतमनसमारंभ [३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतमनसमारम्भ
[४०] संज्वलनमानअनुमतमनसमारंभ [४१] अनन्तानुवन्धीमायाअनुमतमनसमारंभ [४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतमनसमारम्भ

क्षीणकषायान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। अवधिदर्शनिनोऽवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनिनः केवलज्ञानिवत्॥
(१०) लेश्यानुवादेन—कृष्णनीलकपोतलेश्या मिथ्यादृष्ट्यादयोऽसयतसम्यग्दृष्ट्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः। तेजःपद्मलेश्या मिथ्यादृष्ट्यादयः सयतासयतान्ताः स्त्रीवेदवत्।

क्षीणकषाय-अन्ताः १। सामान्य उक्त सख्याः १। = क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती तक संक्षेप (प्रकरण)मे कही हुई सख्यावाले हैं
अवधिदर्शनिनः १। अवधिज्ञानिवत् *। केवल- = अवधि दर्शनवाले, अवधिज्ञानियोके बराबर हैं। केवल
दर्शनिन १। केवलज्ञानिवत् *॥ = दर्शनवाले केवलज्ञानियोके समान हैं अर्थात् सयोगकेवली =८९८५०२, [अयोगी ५९८ हैं।
१० लेश्या अनुवादेन १। कृष्णनीलकपोतलेश्याः १। = लेश्याकी अपेक्षाकरि कृष्ण नील कपोत लेश्यावाले
मिथ्यादृष्टि आदयः १। असयतसम्यग्दृष्टि अन्ता १। = मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर्यन्त
सामान्य-उक्त-सख्याः १। = सक्षेप (प्रकरणमे) कही हुई (गुणस्थानवत्) सख्यावाले हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त सासादनवर्ती बावनकरोड, मिश्रवाले एकसौ चार करोड, असयमी सात अरब हैं।
तेज.पद्मलेश्या मिथ्यादृष्टि-आदय. १। सयतासयत- = पीत पद्म लेश्यावाले मिथ्यादृष्टिसे सयमासयमी
अन्ताः १। स्त्रीवेदवत् * = पर्यन्त स्त्रीवेद सदृश हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि असख्यात जगत श्रेणी परिमाण हैं॥ सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ २९ "स्त्रीवेदा' पुवेदाश्च मिथ्यादृष्टयोऽसङ्ख्येयाः श्रेणयः" इस वाक्यमें पुरुषवेदी भी समिलित हैं और ऊपर सख्या केवल स्त्रीवेद सदृश कही है पुरुषवेद वालोंको असंख्यात श्रेणियोंमेंसे घटा दें तब भी कह सक्ते है कि स्त्रीवेदी असख्यात श्रेणी रह गये क्योकि असख्यातके असख्यात भेद हैं अतः हमने मिथ्यादृष्टियोंको स्त्रीवेदवत् असख्यात श्रेणी प्रमाण लिख दिया है॥ अब सासादनसे सयमासयमी तक स्त्रीवेद और नपुसकवेदी दोनोंकी सख्या सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ

[२५] अनंतानुबंधीमायाकारितमनसंरंभ	[२६] अप्रत्याख्यानमायाकारितमनसंरंभ	[२७] प्रत्याख्यानमायाकारितमनसंरंभ
[२८] संज्वलनमायाकारितमनसंरंभ	[२९] अनन्तानुबंधीलोभकारितमनसंरंभ	[३०] अप्रत्याख्यानलोभकारितमनसंरंभ
[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितमनसंरम्भ	[३२] संज्वलनलोभकारितमनसंरंभ	[३३] अनन्तानुबंधीक्रोधअनुमतमनसंरंभ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतमनसंरंभ	[३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतमनसंरंभ	[३६] सज्वलनक्रोधअनुमतमनसंरंभ
[३७] अनन्तानुबंधीमानअनुमतमनसरंभ	[३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतमनसंरंभ	[३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतमनसंरंभ
[४०] संज्वलनमानअनुमतमनसंरंभ	[४१] अनन्तानुबंधीमायाअनुमतमनसंरंभ	[४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतमनसंरंभ
[४३] प्रत्याख्यानमायाअनुमतमनसंरंभ	[४४] संज्वलनमायाअनुमतमनसंरंभ	[४५] अनन्तानुबंधीलोभअनुमतमनसंरंभ
[४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतमनसंरंभ	[४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमतमनसंरंभ	[४८] संज्वलनलोभअनुमतमनसंरंभ

(ऐसे तीनों स्थानों के ४८, ४८, ४८, अडतालीस, अडतालीस, अडतालीस संरंभ के १४४ भेद भये)

॥ कायसमारम्भके ४८ भेद ॥

[१] अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतकायसमारंभ	[२] अप्रत्याख्यानक्रोधकृतकायसमारंभ	[३] प्रत्याख्यानक्रोधकृतकायसमारंभ
[४] संज्वलनक्रोधकृतकायसमारंभ	[५] अनन्तानुबन्धीमानकृतकायसमारभ	[६] अप्रत्याख्यानमानकृतकायसमारभ
[७] प्रत्याख्यानमानकृतकायसमारंभ	[८] संज्वलनमानकृतकायसमारंभ	[९] अनन्तानुबन्धीमायाकृतकायसमारभ
[१०] अप्रत्याख्यानमायाकृतकायसमारंभ	[११] प्रत्याख्यानमायाकृतकायसमारभ	[१२] संज्वलनमायाकृतकायसमारभ
[१३] अनन्तानुबन्धीलोभकृतकायसमारभ	[१४] अप्रत्याख्यानलोभकृतकायसमारंभ	[१५] प्रत्याख्यानलोभकृतकायसमारंभ
[१६] संज्वलनलोभकृतकायसमारंभ	[१७] अनन्तानुबन्धीक्रोधकारितकायसमारंभ	[१८] अप्रत्याख्यानक्रोधकारितकायसमारंभ
[१९] प्रत्याख्यानक्रोधकारितकायसमारंभ	[२०] संज्वलनक्रोधकारितकायसमारंभ	[२१] अनन्तानुबंधीमानकारितकायसमारंभ
[२२] अप्रत्याख्यानमानकारितकायसमारंभ	[२३] प्रत्याख्यानमानकारितकायसमारंभ	[२४] संज्वलनमानकारितकायसमारंभ
[२५] अनन्तानुबंधीमायाकारितकायसमारंभ	[२६] अप्रत्याख्यानमायाकारितकायसमारंभ	[२७] प्रत्याख्यानमायाकारितकायसमारंभ
[२८] संज्वलनमायाकारितकायसमारंभ	[२९] अनन्तानुबंधीलोभकारितकायसमारंभ	[३०] अप्रत्याख्यानलोभकारितकायसमारंभ

[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितकायसमारम्भ
[३२] सञ्ज्वलनलोभकारितकायसमारम्भ
[३३] अनन्तानुबन्धीक्रोधअनुमतकायसमारम्भ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतकायसमारम्भ
[३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतकायसमारम्भ
[३६] सञ्ज्वलनक्रोधअनुमतकायसमारम्भ
[३७] अनन्तानुबन्धीमानअनुमतकायसमारम्भ
[३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतकायसमारम्भ
[३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतकायसमारम्भ
[४०] सञ्ज्वलनमानअनुमतकायसमारम्भ
[४१] अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतकायसमारम्भ
[४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतकायसमारम्भ
[४३] प्रत्याख्यानमायाअनुमतकायसमारम्भ
[४४] सञ्ज्वलनमायाअनुमतकायसमारभ
[४५] अनन्तानुबन्धीलोभअनुमतकायसमारभ
[४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतकायसमारभ
[४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमतकायसमारभ
[४८] सञ्ज्वलनलोभअनुमतकायसमारभ

॥ वचन समारम्भ के अडतालीस (४८) भेद ॥

[१] अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतवचनसमारभ
[२] अप्रत्याख्यानक्रोधकृतवचनसमारभ
[३] प्रत्याख्यानक्रोधकृतवचनसमारभ
[४] सञ्ज्वलनक्रोधकृतवचनसमारभ
[५] अनन्तानुबन्धीमानकृतवचनसमारभ
[६] अप्रत्याख्यानमानकृतवचनसमारभ
[७] प्रत्याख्यानमानकृतवचनसमारभ
[८] सञ्ज्वलनमानकृतवचनसमारभ
[९] अनन्तानुबन्धीमायाकृतवचनसमारभ
[१०] अप्रत्याख्यानमायाकृतवचनसमारभ
[११] प्रत्याख्यानमायाकृतवचनसमारभ
[१२] सञ्ज्वलनमायाकृतवचनसमारभ
[१३] अनन्तानुबन्धीलोभकृतवचनसमारभ
[१४] अप्रत्याख्यानलोभकृतवचनसमारभ
[१५] प्रत्याख्यानलोभकृतवचनसमारभ
[१६] सञ्ज्वलनलोभकृतवचनसमारभ
[१७] अनन्तानुबन्धीक्रोधकारितवचनसमारभ
[१८] अप्रत्याख्यानक्रोधकारितवचनसमारभ
[१९] प्रत्याख्यानक्रोधकारितवचनसमारभ
[२०] सञ्ज्वलनक्रोधकारितवचनसमारभ
[२१] अनन्तानुबन्धीमानकारितवचनसमारभ
[२२] अप्रत्याख्यानमानकारितवचनसमारभ
[२३] प्रत्याख्यानमानकारितवचनसमारभ
[२४] सञ्ज्वलनमानकारितवचनसमारभ
[२५] अनन्तानुबन्धीमायाकारितवचनसमारम्भ
[२६] अप्रत्याख्यानमायाकारितवचनसमारम्भ
[२७] प्रत्याख्यानमायाकारितवचनसमारम्भ
[२८] सञ्ज्वलनमायाकारितवचनसमारम्भ
[२९] अनन्तानुबन्धीलोभकारितवचनसमारम्भ
[३०] अप्रत्याख्यानलोभकारितवचनसमारम्भ
[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितवचनसमारम्भ
[३२] सञ्ज्वलनलोभकारितवचनसमारम्भ
[३३] अनन्तानुबन्धीक्रोधअनुमतवचनसमारम्भ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतवचनसमारम्भ
[३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतवचनसमारम्भ
[३६] सञ्ज्वलनक्रोधअनुमतवचनसमारम्भ

(७) प्रत्याख्यानमानकृतकायसंरम्भ (८) संज्वलनमानकृतकायसंरम्भ (९) अनन्तानुबन्धीमायाकृतकायसंरम्भ
(१०) अप्रत्याख्यानमायाकृतकायसंरम्भ (११) प्रत्याख्यानमायाकृतकायसंरम्भ (१२) संज्वलनमायाकृतकायसंरम्भ
(१३) अनन्तानुबन्धीलोभकृतकायसंरम्भ (१४) अप्रत्याख्यानलोभकृतकायसंरम्भ (१५) प्रत्याख्यानलोभकृतकायसंरम्भ
(१६) संज्वलनलोभकृतकायसंरम्भ (१७) अनन्तानुबन्धीक्रोधकारितकायसंरम्भ (१८) अप्रत्याख्यानक्रोधकारितकायसंरम्भ
(१९) प्रत्याख्यानक्रोधकारितकायसंरम्भ (२०) संज्वलनक्रोधकारितकायसंरम्भ (२१) अनन्तानुबन्धीमानकारितकायसंरम्भ
(२२) अप्रत्याख्यानमानकारितकायसंरम्भ (२३) प्रत्याख्यानमानकारितकायसंरम्भ (२४) संज्वलनमानकारितकायसंरम्भ
(२५) अनन्तानुबन्धीमायाकारितकायसंरम्भ (२६) अप्रत्याख्यानमायाकारितकायसंरम्भ (२७) प्रत्याख्यानमायाकारितकायसंरम्भ
(२८) संज्वलनमायाकारितकायसंरम्भ (२९) अनन्तानुबन्धीलोभकारितकायसंरम्भ (३०) अप्रत्याख्यानलोभकारितकायसंरम्भ
(३१) प्रत्याख्यानलोभकारितकायसंरम्भ (३२) संज्वलनलोभकारितकायसंरम्भ (३३) अनन्तानुबन्धीक्रोधअनुमतकायसंरम्भ
(३४) अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतकायसंरम्भ (३५) प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतकायसंरम्भ (३६) संज्वलनक्रोधअनुमतकायसंरम्भ
(३७) अनन्तानुबन्धीमानअनुमतकायसंरम्भ (३८) अप्रत्याख्यानमानअनुमतकायसंरम्भ (३९) प्रत्याख्यानमानअनुमतकायसंरम्भ
(४०) संज्वलनमानअनुमतकायसंरम्भ (४१) अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतकायसंरम्भ (४२) अप्रत्याख्यानमायाअनुमतकायसंरम्भ
(४३) प्रत्याख्यानमायाअनुमतकायसंरम्भ (४४) संज्वलनमायाअनुमतकायसंरम्भ (४५) अनन्तानुबन्धीलोभअनुमतकायसंरम्भ
(४६) अप्रत्याख्यानलोभअनुमतकायसंरम्भ (४७) प्रत्याख्यानलोभअनुमतकायसंरम्भ (४८) संज्वलनलोभअनुमतकायसंरम्भ

वचनसंरम्भके अड़तालीस ॥४८॥ भेद

[१] अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतवचनसंरम्भ [२] अप्रत्याख्यानक्रोधकृतवचनसंरम्भ [३] प्रत्याख्यानक्रोधकृतवचनसंरम्भ
[४] संज्वलनक्रोधकृतवचनसंरंभ [५] अनन्तानुबन्धीमानकृतवचनसंरम्भ [६] अप्रत्याख्यानमानकृतवचनसंरम्भ
[७] प्रत्याख्यानमानकृतवचनसंरंभ [८] संज्वलनमानकृतवचनसंरम्भ [९] अनन्तानुबन्धीमायाकृतवचनसंरम्भ
[१०] अप्रत्याख्यानमायाकृतवचनसंरम्भ [११] प्रत्याख्यानमायाकृतवचनसंरम्भ [१२] संज्वलनमायाकृतवचनसंरम्भ
[१३] अनन्तानुबन्धीलोभकृतवचनसंरम्भ [१४] अप्रत्याख्यानलोभकृतवचनसंरम्भ [१५] प्रत्याख्यानलोभकृतवचनसंरम्भ

[१६] सज्वलनलोभकृतवचनसरम्भ
[१९] प्रत्याख्यानक्रोधकारितवचनसरम्भ
[२२] अप्रत्याख्यानमानकारितवचनसरम्भ
[२५] अनन्तानुबन्धीमायाकारितवचनसरम्भ
[२८] सज्वलनमायाकारितवचनसरम्भ
[३१] प्रत्याख्यानलोभकारितवचनसरम्भ
[३४] अप्रत्याख्यानक्रोधअनुमतवचनसरम्भ
[३७] अनन्तानुबन्धीमानअनुमतवचनसरम्भ
[४०] सज्वलनमानअनुमतवचनसरम्भ
[४३] प्रत्याख्यानमायाअनुमतवचनसरम्भ
[४६] अप्रत्याख्यानलोभअनुमतवचनसरम्भ

[१७] अनन्तानुबन्धीक्रोधकारितवचनसरम्भ
[२०] सज्वलनक्रोधकारितवचनसरम्भ
[२३] प्रत्याख्यानमानकारितवचनसरम्भ
[२६] अप्रत्याख्यानमायाकारितवचनसरम्भ
[२९] अनन्तानुबन्धीलोभकारितवचनसरम्भ
[३२] सज्वलनलोभकारितवचनसरम्भ
[३५] प्रत्याख्यानक्रोधअनुमतवचनसरम्भ
[३८] अप्रत्याख्यानमानअनुमतवचनसरम्भ
[४१] अनन्तानुबन्धीमायाअनुमतवचनसरम्भ
[४४] सज्वलनमायाअनुमतवचनसरम्भ
[४७] प्रत्याख्यानलोभअनुमतवचनसरम्भ

[१८] अप्रत्याख्यानक्रोधकारितवचनसरम्भ
[२१] अनन्तानुबन्धीमानकारितवचनसरम्भ
[२४] सज्वलनमानकारितवचनसरम्भ
[२७] प्रत्याख्यानमायाकारितवचनसरम्भ
(३०) अप्रत्याख्यानलोभकारितवचनसरम्भ
[३३] अनन्तानुबन्धीक्रोधअनुमतवचनसरम्भ
[३६] सज्वलनक्रोधअनुमतवचनसरम्भ
[३९] प्रत्याख्यानमानअनुमतवचनसरम्भ
[४२] अप्रत्याख्यानमायाअनुमतवचनसरम्भ
[४५] अनन्तानुबन्धीलोभअनुमतवचनसरम्भ
[४८] सज्वलनलोभअनुमतवचनसरम्भ

मनसंरम्भके अड़तालीस (४८) भेद

[१] अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतमनसरम्भ
[४] सज्वलनक्रोधकृतमनसरम्भ
[७] प्रत्याख्यानमानकृतमनसरम्भ
[१०] अप्रत्याख्यानमायाकृतमनसरम्भ
[१३] अनन्तानुबन्धीलोभकृतमनसरम्भ
[१६] सज्वलनलोभकृतमनसरम्भ
[१९] प्रत्याख्यानक्रोधकारितमनसरम्भ
[२२] अप्रत्याख्यानमानकारितमनसरम्भ

[२] अप्रत्याख्यानक्रोधकृतमनसरम्भ
[५] अनन्तानुबन्धीमानकृतमनसरम्भ
[८] सज्वलनमानकृतमनसरम्भ
[११] प्रत्याख्यानमायाकृतमनसरम्भ
[१४] अप्रत्याख्यानलोभकृतमनसरम्भ
[१७] अनन्तानुबन्धीक्रोधकारितमनसरम्भ
[२०] सज्वलनक्रोधकारितमनसरम्भ
[२३] प्रत्याख्यानमानकारितमनसरम्भ

[३] प्रत्याख्यानक्रोधकृतमनसरम्भ
[६] अप्रत्याख्यानमानकृतमनसरम्भ
[९] अनन्तानुबन्धीमायाकृतमनसरम्भ
[१२] सज्वलनमायाकृतमनसरम्भ
[१५] प्रत्याख्यानलोभकृतमनसरम्भ
[१८] अप्रत्याख्यानक्रोधकारितमनसरम्भ
[२१] अनन्तानुबन्धीमानकारितमनसरम्भ
(२४) सज्वलनमानकारितमनसरम्भ

आरम्भा अपि षट्त्रिंशत् ।

(१) क्रोधकृतकायसमारम्भ	(२) मानकृतकायसमारम्भ	(३) मायाकृतकायसमारम्भ	(४) लोभकृतकायसमारम्भ
(५) क्रोधकारितकायसमारम्भ	(६) मानकारितकायसमारम्भ	(७) मायाकारितकायसमारम्भ	(८) लोभकारितकायसमारम्भ
(९) क्रोधअनुमतकायसमारम्भ	(१०) मानअनुमतकायसमारम्भ	(११) मायाअनुमतकायसमारम्भ	(१२) लोभअनुमतकायसमारम्भ
(१३) क्रोधकृतवचनसमारम्भ	(१४) मानकृतवचनसमारम्भ	(१५) मायाकृतवचनसमारम्भ	(१६) लोभकृतवचनसमारम्भ
(१७) क्रोधकारितवचनसमारम्भ	(१८) मानकारितवचनसमारम्भ	(१९) मायाकारितवचनसमारम्भ	(२०) लोभकारितवचनसमारम्भ
(२१) क्रोधअनुमतवचनसमारम्भ	(२२) मानअनुमतवचनसमारम्भ	(२३) मायाअनुमतवचनसमारम्भ	(२४) लोभअनुमतवचनसमारम्भ
(२५) क्रोधकृतमनःसमारम्भ	(२६) मानकृतमनःसमारम्भ	(२७) मायाकृतमनःसमारम्भ	(२८) लोभकृतमनःसमारम्भ
(२९) क्रोधकारितमनःसमारम्भ	(३०) मानकारितमनःसमारम्भ	(३१) मायाकारितमनःसमारम्भ	(३२) लोभकारितमनःसमारम्भ
(३३) क्रोधअनुमतमनःसमारम्भ	(३४) मानअनुमतमनःसमारम्भ	(३५) मायाअनुमतमनःसमारम्भ	(३६) लोभअनुमतमनःसमारम्भ

आरम्भाः१ अपि२ षट्त्रिंशत्३॥ =आरम्भ भी छत्तीस हैं अर्थात्

(१) क्रोधकृतकायआरम्भ	(२) मानकृतकायआरम्भ	(३) मायाकृतकायआरम्भ	(४) लोभकृतकायआरम्भ
(५) क्रोधकारितकायआरम्भ	(६) मानकारितकायआरम्भ	(७) मायाकारितकायआरम्भ	(८) लोभकारितकायआरम्भ
(९) क्रोधअनुमतकायआरम्भ	(१०) मानअनुमतकायआरम्भ	(११) मायाअनुमतकायआरम्भ	(१२) लोभअनुमतकायआरम्भ
(१३) क्रोधकृतवचनआरम्भ	(१४) मानकृतवचनआरम्भ	(१५) मायाकृतवचनआरम्भ	(१६) लोभकृतवचनआरम्भ
(१७) क्रोधकारितवचनआरम्भ	(१८) मानकारितवचनआरम्भ	(१९) मायाकारितवचनआरम्भ	(२०) लोभकारितवचनआरम्भ
(२१) क्रोधअनुमतवचनआरम्भ	(२२) मानअनुमतवचनआरम्भ	(२३) मायाअनुमतवचनआरम्भ	(२४) लोभअनुमतवचनआरम्भ
(२५) क्रोधकृतमनआरम्भ	(२६) मानकृतमनआरम्भ	(२७) मायाकृतमनआरम्भ	(२८) लोभकृतमनआरम्भ
(२९) क्रोधकारितमनआरम्भ	(३०) मानकारितमनआरम्भ	(३१) मायाक[illegible]आरम्भ	(३२) लोभकारितमनआ[illegible]
(३३) क्रोधअनुमतमनआरम्भ	(३४) मानअनुमतमनआरम्भ	(३५) मायाअनुमतमनआरम्भ	(३६) लोभअनुमतमनआरम्भ

एते सपिण्डिता जीवाधिकरणास्रवभेदा अष्टोत्तरशतसख्या सम्भवन्ति ॥ चशब्दोऽनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसञ्ज्वलनकषायभेदकृतान्तर्भेदसमुच्चयार्थं ॥

एतं॥ सपिण्डिता॥ जीवाधिकरण आसूवभेदा॥ =इतने जीवाधिकरण आस्रवके भेद समुच्चित होकर
अष्टोत्तर (१) शतसख्या॥ सम्भवन्ति॥ =एक सौ आठ गणनामें हो जाते है (इस सूत्रमें) च शब्द
च शब्द॥ अनन्ताऽनुबन्धी– =अनतानुबंधी (क्रोध मान माया लोभ) अर्थात् जिससे अनत संसारका कारण मिथ्यात्वभाव होता है
अप्रत्याख्यान– =अप्रत्याख्यान (क्रोध मान माया-लोभ) अर्थात् जिसके उदयसे एकदेश त्यागरूप श्रावकक व्रत भी किंचि मात्र न कर सकै (अ=ईषत्, किंचित्)
प्रत्याख्यान– =प्रत्याख्यान (क्रोध, मान, माया, लोभ) अर्थात् जिसके उदयसे समस्त महाव्रत रूप त्याग नही हो सक्के अथवा सकल सयम का ग्रहण न करसके
सञ्ज्वलन– =सञ्ज्वलन (क्रोध, मान, माया, लोभ) अर्थात् जिसके उदय से सयमी तो रहै परतु शुद्ध स्वभावमें वा शुद्धोपयोगरूपमें लीन न हो सके
कषाय भेदकृत अन्तर्भेद–समुच्चय अर्थं॥ =कषाय सम्बन्धके अन्तरग भेदोंके सग्रहके लिये है अर्थात् पूर्वोक्त सरम्भ समारम्भ और आरम्भ के १०८ भेदों को अनतानुबधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सञ्ज्वलन कषायोंसे गुणा करनेस जीवाधिकरणके चार सौ बत्तीस ४३२ भेद इस प्रकार हो जाते है कि

कायसंरम्भके ४८ भेद॥

(१) अनन्तानुबन्धीक्रोधकृतकायसंरम्भ (२) अप्रत्याख्यानक्रोधकृतकायसरम्भ (३) प्रत्याख्यानक्रोधकृतकायसरम्भ
(४) सँज्वलनक्रोधकृत कायसरम्भ (५) अनन्तानुबन्धीमानकृतकायसरम्भ (६) अप्रत्याख्यानमानकृतकायसरम्भ

(१) सामायिककी जापमाला म एक सो आठ (१०८) दाने हाते है, सा उपर्युक्त एकसो आठ (१०८) आरम्भ जनित पापक आस्रवोंका दूर करने क लिये अथवा इन एक सो आठ प्रकारके ... कर जाप करने के लिये वैठनेके अभिप्राय से हात है॥

एते चत्वारः सुजन्तास्त्र्यादिशब्दा यथाक्रममभिसम्बन्ध्यन्ते–संरम्भसमारम्भारम्भास्त्रयः। योगास्त्रयः। कृतकारितानुमतास्त्रयः। कषायाश्चत्वार इति॥ एतेषां गणनाभ्यावृत्तिः सुचा द्योत्यते॥ एकश इति वीप्सानिर्देशः। एकैकं त्र्यादीन् भेदान् नयेदित्यर्थः॥

एते १। चत्वारः १। त्र्यादिशब्दाः १। सुच अन्ताः १। =ये चार त्रिः, त्रिः त्रिः चतुः-(आदि) शब्द सुच् (=स्) प्रत्यान्त हैं अर्थात्

यथाक्रमम् ॐ =(वे) अनुक्रमसे (संरम्भ-समारम्भ–आरम्भ; काययोग वचनयोग-मनोयोग, कृत-कारित-अनुमत; क्रोधकषाय, मानकषाय; मायाकषाय; लोभीकषाय के साथ)

अभिसम्बन्ध्यन्ते T =लगाये जाते हैं अर्थात् संरम्भ-समारम्भ आरम्भ के साथ प्रथम त्रिस् लगाया जाता है, योग, के साथ दूसरा त्रिस्, कृत-कारित–अनुमत के साथ तीसरा त्रिस् और कषाय के साथ चतुर् लगाया जाता है॥ देखो टिप्पणी(२) पृष्ठ २१॥

संरम्भ–समारम्भ–आरम्भाः १। त्रयः १; =(इस प्रकार) संरम्भ–समारम्भ–आरम्भ तीन हुये। (योग तीन हुए। काय-वचन मनो)

योगाः १। त्रयः १;

कृत–कारित–अनुमताः १। त्रयः १; कषायाः १। =कृत कारित-अनुमोदना तीन हुए। (क्रोध मान, माया–लोभ) कषाय

चत्वारः १। इति ॐ एतेषाम् ६। =चार हुए। इन (संरम्भ–समारम्भ-आरम्भ, योग, कृत–कारित–अनुमत, और क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभकषायकी)

गणना-अभ्यावृत्तिः १। सुचा ३। द्योत्यते T =गिनतीकी (=गणना) दुहराना (=अभ्यावृत्ति) सुच् (=स्) प्रत्यय करि प्रगट की गई है (अर्थात्)

एकशः ॐ इति ॐ वीप्सा–निर्देशः १। =(इस सूत्रमें) एकशः (शब्द) वारवार कहने (=वीप्सा) अर्थमें (=निर्देशः) है।

एकैकम् १। त्रि-आदीन् २। भेदान् २। नयेत। इति ॐ अर्थः १। =एक एकप्रति तीन आदिक भेदोंको प्राप्तकरना ऐसा अभिप्राय वा तात्पर्य है॥

तद्यथा–क्रोधकृतकायसरम्भ । मानकृतकायसरम्भ । मायाकृतकायसरम्भ । लोभकृतकायसरम्भ । क्रोधकारितकायसरम्भ । मानकारितकायसरम्भ । मायाकारितकायसरम्भ । लोभकारितकायसरम्भ । क्रोधानुमतकायसरम्भ । मानानुमतकायसरम्भ । मायानुमतकायसरम्भ । लोभानुमतकायसरम्भश्चेति द्वादशधा कायसरम्भ ॥ एव वाग्योगे मनोयोगे च द्वादशधा सरम्भ. । त एते पिण्डिता षट्त्रिंशत्, तथा समारम्भा अपि षट्त्रिंशत् ।

तद्यथा * क्रोधकृतकायसरम्भ. १/१, मानकृतकायसरम्भ' १/१, मायाकृतकायसरम्भ. १/१, लोभकृतकायसरम्भ. १/१
क्रोधकारित कायसरम्भ १/१ मानकारितकायसरम्भ. १/१, मायाकारितकायसरम्भ. १/१, लोभकारितकायसरम्भ १/१, क्रोधअनुमतकायसरम्भ' १/१, मानअनुमतकायसरम्भ' १/१, मायाअनुमतकायसरम्भ १/१ च लोभअनुमतकायसरम्भ. १/१
इति * द्वादशधा * कायसरम्भ' १/१ एवम् * वाग्योगे ७/१ मनोयोगे ७/१ च * द्वादशधा * संरम्भः १/१

=जैसे (१) क्रोधकृतकायसरम्भ, मानकृतकायसरम्भ,
=मायाकृतकायसरम्भ, लोभकृतकायसरम्भ,
=क्रोधकारितकायसरम्भ, मानकारितकायसरम्भ,
=मायाकारितकायसरम्भ, लोभकारितकायसरम्भ,
=क्रोधअनुमतकायसरम्भ, मानअनुमतकायसरम्भः,
=मायाअनुमतकायसरम्भ, और (=च) लोभअनुमतकायसरम्भ ॥
=इस प्रकार (=इति) बारह प्रकार कायसरम्भ है। इसप्रकार वचन योगमें
=और (=च) मनो योग विषै बारह बारह प्रकार सरम्भ है अर्थात्

(१) क्रोधकृतवचन सरम्भ (२) मानकृतवचनसरम्भ (३) मायाकृतवचनसरम्भ (४) लोभकृतवचनसरम्भ
(५) क्रोधकारितवचनसरम्भ (६) मानकारितवचनसरम्भ (७) मायाकारितवचनसरम्भ (८) लोभकारितवचनसरम्भ
(९) क्रोधअनुमतवचनसरम्भ (१०) मानअनुमतवचनसरम्भ (११) मायाअनुमतवचनसरम्भ (१२) लोभअनुमतवचनसरम्भ
(१३) क्रोधकृतमन'सरम्भ (१४) मानकृतमनसरम्भ (१५) मायाकृतमनस्सरम्भ (१६) लोभकृतमनस्सरम्भ
(१७) क्रोधकारितमनस्सरम्भ (१८) मानकारितमनस्सरम्भ (१९) मायाकारितमनस्सरम्भ (२०) लोभकारितमन'सरम्भ
(२१) क्रोधअनुमतमन सरम्भ (२२) मानअनुमतमन सरम्भ (२३) मायाअनुमतमन.सरम्भ (२४) लोभअनुमतमन.सरम्भ

ते १/३ एते १/३ पिण्डिताः १/३ षट्त्रिंशत् १/३ ॥ =वे इतने समुच्चित छत्तीस हैं।
तथा समारम्भा. १/३ अपि षट्त्रिंशत् १/३ ॥ =और समारम्भ भी छत्तीस हैं अर्थात

आद्यंसंरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥

आद्यंसंरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः =आद्यं (जीव-अधिकरणं) संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैः त्रिः-त्रिः-त्रिः-चतुः च एकशः भेदाः भवन्ति ॥ ८ ॥

संरम्भ-समारम्भ-आरम्भ-योग-कृत-कारित-अनुमत-कषाय-विशेषः त्रिः-त्रिः-त्रिः-चतुः च एकशः भेदाः भवन्ति ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः-आद्यम् [1]॥ जीव-अधिकरणम् [1]॥ संरम्भ-
समारम्भ-आरम्भ-विशेषैः [3] त्रिः *
एकशः*योग-विशेषैः [3] त्रिः *
एकशः * कृत-कारित-अनुमत-
विशेषैः[3]त्रिः ७ एकशः ७
क्रोध-मान-माया-लोभ कषाय-विशेषैः[3]
चतुर् * च ७ भेदाः [3] भवन्ति ।

=प्रथम (=आदौभवः=आद्यः) जीव-अधिकरण, संरम्भ-
=समारम्भ-आरम्भके विशेष वा भेदकरि तीन और
=(संरम्भ-समारम्भ आरंभ) एक एकके काय-वचन-मनोयोगके भेद करि तीनतीन
=(पूर्वोक्तनौमेंसे) एक एकके कृत-कारित अनुमोदना के
=विशेषकरि तीन तीन (उपर्युक्त सत्ताईसमेंसे) एक एक के
=क्रोधमान माया लोभ कषाय के विशेषकरि
=चार चार (ये सब मिलकर एक सौ आठ) भेद भी (=च) होते हैं अर्थात्

भावार्थ संरम्भ-समारम्भ-आरम्भ इन तीनों को मन वचन कायरूप तीनों योगोंसे गुणने से ९ तथा कृत-कारित अनुमोदना इनतीनोंसे गुणनेसे २७ और क्रोध-मान-माया-लोभ-इन चार कषायोंसे गुणनेसे १०८ भेद होते हैं और यदि २७ भेदोंमेंसे प्रत्येक को कषायके १६ भेदों से गुणिये तो ४३२ भेद जीवाधिकरणके होते हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ; अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ; प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ; संज्वलन क्रोध मान माया लोभ से पूर्वोक्त प्रत्येक सत्ताईस भेदोंको गुणनेसे ४३२ भेद होते हैं। और यदि अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन भेदोको न लेकर पूर्वोक्त प्रत्येक सत्ताईस भेदोंको केवल क्रोध-मान-माया-लोभ कषायके सामान्य भेदों से गुणनेसे जीवाधिकरण के १०८ भेद भी होते है (इस सूत्र में 'च' शब्दका यही तात्पर्य है) अतः त्रिः त्रिः त्रिः चतुः=तीन गुणित तीन गुणित तीन गुणित चार=१०८काजोड़ हुआ ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा हमारे यहां एकसा पाठ है ॥ ४३२ भेदों के लिये देखो पृष्ठ २५ से ३४ तक ।

(२) त्रि का अर्थ तीन है परन्तु त्रिः अथवा त्रिस् का अर्थ है तीन वार यह अव्यय है, क्रिया विशेषण अव्यय है जो अव्ययोंका एक विभाग वा भेद है

प्राणव्यपरोपणादिषु प्रमादवत प्रयत्नावेश सरम्भ । साधनसमभ्यासीकरण समारम्भ. । प्रक्रम आरम्भ । योगशब्दो व्याख्यातार्थ । कृतवचन स्वातन्त्र्यप्रतिपत्त्यर्थम् । कारिताभिधान परप्रयोगापेक्षम् । अनुमतशब्द प्रयोजकस्य मानसपरिणामप्रदर्शनार्थ । अभिहितलक्षणा कषाया क्रोधादय । विशिष्यतेऽर्थोऽर्थान्तरादिति विशेष । स प्रत्येकमभिसम्बध्यते—सरम्भविशेष· समारम्भविशेष इत्यादि ॥ आद्य जीवाधिकरण एतैर्विशेषैर्भिद्यत इति वाक्यशेष

वृत्त्यनुवाद —प्राणव्यपरोपण आदिषु प्रमादवत
प्रयत्न-आवेश सरम्भ, साधन-
समभ्यासीकरणम् समारम्भ,
प्रक्रम आरम्भ,
योगशब्द व्याख्यात-अर्थ, कृतवचनम्
स्वातन्त्र्य-प्रतिपत्ति-अर्थम्, कारित-
अभिधानम् पर-प्रयोग-अपेक्षम्, अनुमतशब्द
प्रयोजकस्य मानस-परिणाम-प्रदर्शन-अर्थ,
अभिहित-लक्षणा कषाया क्रोध-आदय ॥
अर्थ अर्थ-अन्तरात् विशिष्यते इति विशेष

स प्रत्येकम् अभिसम्बध्यते सरम्भविशेष
समारम्भविशेष इत्यादि ।

आद्यम् जीव अधिकरणम् एतै विशेषै भिद्यते
इति वाक्यशेष ॥

=हिंसादिक विषे प्रमादी जीवका
=उद्यमरूप परिणाम अथवा उद्यमरूप भाव सो सरम्भ है । (हिंसादिकके) उपायमें
=अभ्यास करना वा सामिग्री मिलावना सो समारम्भ है ॥
=(हिंसादिकमें) प्रवृत्ति वा प्रवर्तन करना वा लगना सो आरम्भ है ।
=योग वह शब्द है जिसका अर्थ (पूर्वमें) कह चुके हैं । कृतशब्द
=स्वय प्रवर्तनकेलिये वा अपनी प्रवृत्तिकेलिये है अर्थात् स्वयं करै सो कृत है । कारित
=नाम (=अभिधान) दूसरके सम्बन्धमें कराया जाय सो है ॥ अनुमत शब्द
=करने वाले को मनोभाव करि भला जाननेके अर्थमें है ।
=(पहिले) कह चुके हैं लक्षण जिनके ऐसे कषाय क्रोध-मान-माया-लोभ हैं
=एक अर्थ (=अर्थ) अन्य अर्थसे जिस कारि भिन्न किया जाय ऐसा विशेष है
अर्थात् एक वस्तुका दूसरी वस्तुसे जो भेद जतलावै वह विशेषशब्दका अर्थ है ॥
=वह (विशेषशब्द) प्रत्येकको लगाया जाता है (जैसे) सरम्भ विशेष,
=समारम्भ विशेष, आरम्भ विशेष, योग विशेष, कृतविशेष,
कारितविशेष, अनुमत विशेष, कषाय विशेष एम है ।
=प्रथम जीव-अधिकरण इतने विशेषणों करि भेदरूप किया गया है ।
=ऐसा (भिद्यतेशब्द) वाक्य शेष है अर्थात् इस सूत्रमें 'विशेषै' शब्द के पश्चात्
भिद्यते शब्द और जोड लेना चाहिये वा और समझ लेना चाहिये ।

ये क्रिया विशेषण जो बारम्बार के अर्थ में आते है, द्वि, त्रि, चतुर्स 'स्' और शेष सख्याओंमें कृत्वस् जोडने से बनते है । सख्याओंका अन्तिम न् गिरा दिया जाता है जैसे सकृत्=एकबार द्विस (=द्वि) दोबार, त्रिस् (त्रि) तीनवार चतुर् + स =चतुर् + स् (क्ष या श से अन्त में अधिक व्यजन हो तो केवल एक ही रहता है)=चतुर=चतु =चार बार । पचकृत्व=पांचबार, षट्कृत्व=छहबार, सप्तन + कृत्व=सप्तकृत्व=सातबार इत्यादि ॥

प्रमत्ताप्रमत्तसंयताः संख्येयाः । शुक्ललेश्या मिथ्यादृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः । प्रमत्ताप्रमत्तसंयताः संख्येयाः । अपूर्वकरणादयः संयोगकेवल्यन्ता अलेश्याश्च सामान्योक्तसंख्याः ॥

२९में गुणस्थानवत् कही है हमने पृष्ठ १०२ में जो भाव दिया है उसमें लिख दिया है कि स्त्रीवेदी नपुंसकवेदियोंकी संख्या एक रीतिसे उक्त गुणस्थानोंकी संख्यावत् हो सकती है । परंतु यहांपर हम नहीं कह सकते कि पीत-पद्म-लेश्यावालोंकी संख्या कितनी होगी क्योंकि हमको नपुंसकवेदियोंकी संख्या नहीं ज्ञात है ताकि हम उसको घटाकर स्त्रीवेदियोंकी संख्या निकाल लें परंतु स्मरण रहै कि दूसरे गुणस्थानसे पांच तककी उत्कृष्ट संख्या यथासंख्य बावन करोड, एकसौ चार करोड, सातसौ करोड़ और तेरह करोड है उससे अधिक कदापि नहीं हो सकती है न्यून संख्या ही होगी ॥

प्रमत्त-अप्रमत्तसंयताः १।३ संख्येयाः १।३ = (पीत पद्म लेश्यावाले) प्रमत्त-अप्रमत्त संयमी संख्यात हैं अर्थात् ५९३९८२०६ जीव प्रमत्तमें इनसे आधे २९६९९१०३ अप्रमत्तमें हो सक्ते हैं

शुक्ललेश्याः १।३ मिथ्यदृष्टि-आदयः १।३ संयतासंयत- = शुक्ल लेश्यावाले मिथ्यादृष्टिसे संयतासंयमी

अन्ताः १।३ पल्योपम-असंख्येयभागप्रमिताः १।३ = तक पल्यके असंख्यातवां भागके बराबर परिमाण हैं

प्रमत्त-अप्रमत्तसंयताः १।३ संख्येयाः १।३ = (शुक्ललेश्यावाले) प्रमत्तसंयमी अप्रमत्तसंयमी संख्यात हैं [तक

अपूर्वकरण-आदयः १।३ सयोगकेवलि अन्ताः १।३ = (शुक्ललेश्यावाले) अपूर्वकरण गुणस्थानसे सयोगकेवली (८से १३वें गुणस्थान)

अलेश्याः १।३ च सामान्य-उक्त = और लेश्यरहित चौदहवां गुणस्थानवर्ती संक्षेपसे कही हुई [गुणस्थानवत्]

संख्याः १।३ = संख्यावाले हैं अर्थात् चार उपशमक प्रत्येक गुणस्थानमें २९९ चार क्षपक प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ सयोगकेवली ८९८५०२ अयोगकेवली ५९८ हैं

उक्तलक्षणा जीवाऽजीवा ॥ यद्युक्तलक्षणा पुनर्वचन किमर्थम् । अधिकरणविशेषज्ञापनार्थं पुनर्वचनम् ॥ (१) जीवाऽजीवा अधिकरण इत्यय विशेपो ज्ञापयितव्य इत्यर्थं ॥ क पुनरसौ ? हिंसाद्युपकारणभाव इति ॥ स्यादेतन्मूलपदार्थयोर्द्वित्वाज्जीवाजीवा इति द्विवचन न्यायप्राप्तमिति ॥ तन्न—पर्यायाणामधिकरणत्वात् येन केन-चित्पर्यायेण विशिष्ट द्रव्यमधिकरणम् । न सामान्यमिति बहुवचन कृतम् ॥ जीवाऽजीवा अधिकरण कस्य ? आस्रवस्येत्यर्थवशादभिसम्बन्धो भवति ॥ तत्र जीवाधिकरणभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

वृत्त्यनुवाद.—उक्तलक्षणा जीवा –अजीवा ॥ =प्रथम कहेगये हैं लक्षण जिनके ऐसे जीव अजीव हैं ॥

यदि ॐ उक्त-लक्षणा. पुनर् ॐ वचनम् किम् अर्थम् =(प्रश्न) जो (जीव- अजीव के) लक्षण कहे गये हे फिर कथन किसलिये है ॥

अधिकरण-विशेष-ज्ञापन-अर्थम् पुनर् वचनम् ॥ =(उत्तर) अधिकरणका विशेप जतावनेके लिये पुनि कथन है ॥

जीव-अजीव-अधिकरणम् इति ॐ अयम् विशेप. =जीव-अजीव-अधिकरण है इस प्रकार यह भेद

ज्ञापयितव्य इति अर्थ । क. पुनर् ॐ असौ =बताये जाने योग्य हे ऐसा अभिप्राय हे। बहुरि वह (असा) क्या (अधिकरण) है

हिंसा-आदि-उपकरणभाव. इति ॐ स्यात् । एतद् =हिंसा आदिका उपकरणपना है । यदि यह है अर्थात् यदि जीव अजीव अधिकरण हैं तो

मूल-पदार्थयो: द्वित्वात् जीव-अजीवा इति * =जीवअजीव मूल वस्तुओंके द्विताँसे अर्थात् जीव अजीव दो वस्तुओंके होनेसे

द्वि वचनम् न्याय-प्राप्तम् इति ॐ ॥ तत् न ॐ =(इस सूत्रमें बहुवचनके स्थानमें) द्विवचन युक्तियुक्त (न्याय) प्राप्त है। (उत्तर) सो नहीं है ॥

पर्यायाणाम् अधिकरणत्वात् येन केनचित् ॐ =पर्यायोंके अधिकरणपना है अर्थात् जीव अजीवके पर्यायें अधिकरण हैं ॥ जिसतिस

पर्यायेण विशिष्टम् द्रव्यम् अधिकरणम् =पर्यायकरि युक्त वा भेदवाला अधिकरण (वा) द्रव्य है ।

न ❋ सामान्यम् इति ॐ बहुवचनम् कृतम् ॥ =नकि अभेदरूप है । ऐसे (इस सूत्रमें जीवाऽजीवा) बहुवचन किया है ॥

जीवाऽजीवा अधिकरणम् कस्य आस्रवस्य =(प्रश्न) जीव-अजीव-अधिकरण वा आधार किसका है (उत्तर) आस्रवका है

इति ❋ अर्थ-वशात् अभिसम्बन्ध भवति । ॥ =इस प्रकार अभिप्रायके वशसे सम्बन्ध होता है ।

तत्र-जीव-अधिकरण-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह । =तहां जीव अधिकरणके भेद जतावनेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि

"(१) जीवाऽजीवाधिकरण इत्यय' प्रथमावृत्तिका पाठ है । द्वितीय संस्करणका पाठ "जीवाजीवाधिकरण इत्यय पसा है । दो हस्तलिखित प्रतियों का भी यही पाठ है परन्तु 'अधिकरण इत्यय वाक्यके स्थानमें संधि करके 'अधिकरणमित्यय' करदिया है ॥ एक तीसरी हस्तलिखित प्रतिमें जीवाजीवा अधिकरण मित्यर्थ' पाठ है । अर्थात् 'इत्यय' के स्थान में 'इत्यर्थ' पाठ है इन सब पाठों का एकसा अर्थ है ... द्वितीय संस्करणका पाठ लिया है ॥

द्रव्यस्य स्वशक्तिविशेषो वीर्यम् । भावशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते—तीव्रभावः, मन्दभाव इत्यादिः । एतेभ्यस्तस्यास्रवस्य विशेषो भवति कारणभेदाद्धि कार्यभेद इति ॥ अत्राह अधिकरणमित्युक्तं, तत्स्वरूपमनिर्ज्ञातमतस्तदुच्यतामिति । तत्र भेदप्रतिपादनद्वारेणाधिकरणस्वरूपनिर्ज्ञानार्थमाह—

॥ अधिकरणं जीवाऽजीवाः ॥ ७ ॥

द्रव्यस्य॥स्वशक्तिविशेषः वीर्यम्॥;भावशब्दः प्रत्येकम् परिसमाप्यते । तीव्रभावः मन्दभावः इत्यादिः एतेभ्यः तस्य आस्रवस्य विशेषः भवति ।

=द्रव्यके निजशक्तिका विशेष सो वीर्य है; (इस सूत्रमें) भावशब्द =पृथक् पृथक् (तीव्र-मन्द-ज्ञात-अज्ञात) को लगाया जाता है॥ =(तब) तीव्रभाव-मंदभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव होते हैं । =इन(तीव्रभाव-मंदभाव-ज्ञातभाव-अज्ञातभाव-अधिकरणतथावीर्यकेविशेष) करि तिस (साम्परायिक) आस्रवके भेद होजाता है । अर्थात् इन छहके अन्तरसे साम्परायिक आस्रवका अन्तर है, ये छह जहां जैसे जैसे होते हैं तहां तैसा =तैसा न्यूनाधिकतालिये हुये साम्परायिक आस्रव भी होता है ।

कारण-भेदात् हि कार्यभेदः इति ॥अत्र आह । अधिकरणम् इति उक्तम् ॥ तत्स्वरूपम् ॥ अनिर्ज्ञातम् ॥ अतः तत् उच्यताम् । इति । तत्र भेद-प्रतिपादन-द्वारेण अधिकरण-स्वरूप-निर्ज्ञान-अर्थम् आह ।

=कारणके भेदसे ही कार्य भेद होता है । यहां (शिष्य) पूछता है कि =अधिकरण कहा गया, उस (अधिकरण) का स्वरूप नहीं बताया गया है =इसलिये (=अतः) वह (स्वरूप) कहा जाना चाहिये ॥ तहां (उसअधिकरणके) =भेदके प्रतिपादन द्वाराकरि अधिकरणके स्वरूपके =निर्णयके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) सूत्रम्—अधिकरणं जीवाऽजीवाः

=(आस्रवस्य) अधिकरणं जीव-अजीवाः भवन्ति

सूत्रार्थः—आस्रवस्य अधिकरणम् ॥जीवाः च अजीवाः ॥ भवन्ति ।

=आस्रवका आधार वा अधिकरण जीव द्रव्यें और = अजीव द्रव्यें (दोनों) हैं अर्थात् जीव द्रव्यें और अजीव द्रव्यें दोनोंके आधार आश्रय वा आसरेसे आस्रव होता है अकेले जीवके आश्रयसे आस्रव नहीं होता है । तथा अकेले पुद्गलके आश्रयसे भी आस्रव नहीं होता है जैसे पुरुष विना स्त्रीके गर्भ नहीं रहसकता है और स्त्री विना पुरुष भी गर्भ नहीं रख सकता है।

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है ॥

बाह्याभ्यन्तरहेतूदीरणवशादुद्रिक्त परिणामस्तीव्र । तद्विपरीतो मन्द । अयं प्राणी हन्तव्य इति ज्ञात्वा प्रवृत्तिर्ज्ञातमित्युच्यते । मदात्प्रमादाद्वाऽनवबुध्य प्रवृत्तिरज्ञातम् । अधिक्रियन्तेऽस्मिन्नर्था इत्यधिकरणं द्रव्यमित्यर्थ ।

वीर्य-विशेषेभ्य ५ =और वीर्य (=सामर्थ्य, बल) [इन छह] के विशेषसे वा भेदसे

तद्-विशेष १ =पूर्वोक्त (=तद् अर्थात् साम्परायिक आस्रवके उनतालीस भेदों) में विशेष (अर्थात् न्यूनाधिक तारतम्य) है ॥ (जैसे कि लघु-लघुतर तथा लघुतम ऐसे ही तीव्र-तीव्रतर तथा तीव्रतम इत्यादि) भावार्थ जीव के जैसे २ उग्र परिणाम की, शिथिल परिणामकी, ज्ञानपूर्वक परिणामकी अज्ञानपूर्वक परिणामकी, आधारकी और वीर्य (इन छहों) की न्यूनता और अधिकता होती है वैसे वैसे ही साम्परायिक आस्रवके पूर्वोक्त उनतालीस भेदों में विशेषता होती है ॥

वृत्त्यनुवाद —बाह्य-अभ्यन्तरहेतु-उदीरण-वशात् ५ =बाह्य अन्तरंग कारणकी उदीरणा [फेंक, बढाव] के वशसे

उद्रिक्तः १ परिणाम १ तीव्र १ =उग्र वा उत्कट परिणाम सो तीव्रभाव है अर्थात् बाह्य अभ्यन्तर कारणोंसे बढेहुए क्रोधादिक कषायोंकरि तीव्रता वा उग्रतारूप परिणाम सो तीव्र भाव है ।

तद्-विपरीत १ मन्द १ =उस [तीव्रभाव] से विरुद्ध [परिणाम] सो मन्दभाव है अर्थात् क्रोधादिक कषायों की शिथिलता से जो परिणाम हो सो मंदभाव है ।

अयम् १ प्राणी १ हन्तव्यः १ इति ॐ ज्ञात्वा-प्रवृत्तिः १ =यह जीव हत्या जाय ऐसा जानकर प्रवर्तना सो

ज्ञातम् १ इति ॐ उच्यते ७ । मदात् ५ =ज्ञात [भाव] ऐसा कहा जाता है मादक वस्तु [के वश में होने] से [=मदात्] वा अहंकार से [=मदात्]

प्रमादात् ५ अनवबुध्य — प्रवृत्ति १ अज्ञातम् १ =[वा] असावधानतासे [=प्रमादात्] विना जानकर प्रवर्तना सो अज्ञात [भाव] है

अधिक्रियन्ते । अस्मिन् ७ अर्थाः १ =आधार किये गये हैं वा आश्रय किये गये हैं जिसमें प्रयोजन

इति ॐ अधिकरणम् १ द्रव्यम् १ इति ॐ अर्थः १ =ऐसा अधिकरण है द्रव्य है ऐसा तात्पर्य है ।

अत्राह योगत्रयस्य सर्वात्मकार्यत्वात्सर्वेषां संसारिणां साधारणस्य ततो बन्धफलानुभवनम्प्रत्यविशेष इत्यत्रोच्यते। नैतदेवम्। यस्मात् सत्यपि प्रत्यात्मसम्भवे तेषां जीवपरिणामेभ्यः अनन्तविकल्पेभ्यो विशेषोऽभ्यनुज्ञायते। कथमिति चेदुच्यते—

॥ तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥

अत्र आह योगत्रयस्य सर्व-आत्म -	=यहाँ प्रश्न करता है कि (मन वचन-काय) तीन योगसे सर्व आत्मा के
कार्यत्वात् सर्वेषाम् संसारिणाम् साधारणस्य ततः	=कार्यपनासे समस्त संसारी जीवोंके समान रूप है. तिससे
बन्धफल-अनुभवनम् प्रति अविशेषः इति	=बन्धका फल भोगनेको समान अथवा तुल्य (=अविशेष) है।
अत्र उच्यते। न एतद् एवम्।	=(उत्तरमें) यहां कहा जाता है कि इस प्रकार यह नहीं है
यस्मात् सति अपि प्रति-	=इसलिये (मन-वचन-काय के योग) प्रत्येक जीवके (साधारण)
आत्मसंभवे तेषाम् जीवपरिणामेभ्यः	=सम्भव होने पर भी (=सत्यपि) तिन (जीवों) के जीवपरिणामके
अनन्त-विकल्पेभ्यः विशेषः अभ्यनुज्ञायते। कथं इतिचेत्	=अनन्त भेद होनेसे विशेष जाना जाता है। प्रश्न (=चेत्) ऐसा कैसे हैं अर्थात्-जीवकेपरिणामके भेद के निमित्तसे बन्धका फलके भोगने में क्या विशेषता है ऐसा प्रश्न होने पर
उच्यते।	=(अग्रिम सूत्र में) कहाजाता है कि

सूत्रम्—तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥

=तीव्रभाव—मन्दभाव-ज्ञातभाव-अज्ञातभाव-अधिकरण-वीर्यविशेषेभ्यः तद्-विशेषःभवति ॥ ६ ॥

१७

सूत्रार्थः—तीव्र भाव-	=तीव्र भाव (=उत्कट परिणाम, उग्रपरिणाम, वृद्धिरूप परिणाम)
मंदभाव-	=मन्दभाव (=शिथिल परिणाम, अनुत्कट परिणाम)
ज्ञातभाव-	=ज्ञातभाव (=ज्ञानपूर्वक परिणाम, वा ज्ञानपूर्वक प्रवृत्ति)
अज्ञातभाव-	=अज्ञातभाव(=अज्ञानपूर्वक परिणाम, वा अज्ञानपूर्वक प्रवृत्ति)
अधिकरण-	=अधिकरण (=आधार आसरा अर्थात् जिसके आश्रय पुरुषका प्रयोजन हो)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके समाज में तत्वार्थानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें भावाधिकरणवीर्य के स्थानमें भाववीर्याधिकरण,, है। शेष पाठ और अर्थ एक है।

परिग्रहाविनाशार्था पारिग्राहिकी क्रिया । ज्ञानदर्शनादिषु निकृतिर्वंचन मायाक्रिया। अन्यमिथ्यादर्शनक्रियाकरणकारणाविष्ट प्रशंसादिभिर्दृढयति यथा साधु करोषीति सा मिथ्यादर्शनक्रिया । संयमघातिकर्मोदयवशादनिवृत्तिरप्रत्याख्यानक्रिया।ताएता पञ्चक्रिया ॥ (समुदिता पञ्चविंशतिक्रिया) एतानीन्द्रियादीनि कार्यकारणभेदाद्भेदमापद्यमानानि साम्परायिकस्य कर्मण आस्रवद्वाराणि भवन्ति

परिग्रह अविनाश अर्थाः॥ पारिग्राहिकी॥ क्रिया॥ ।	=(२२) परिग्रहकी रक्षाके लिये (प्रवर्तना) सो पारिग्राहिकी क्रिया है ।
ज्ञान-दर्शन आदिषु। निकृति ॥ वञ्चनम्॥	=(२१) ज्ञान-दर्शन-आदिकमें अधर्म (=निकृति) और ठगई अर्थात् कपटसे प्रवर्तना
मायाक्रिया॥ । अन्यम्। मिथ्यादर्शन-	=सो माया क्रिया है । (२४) अन्यको अर्थात् किसीको मिथ्यात्वके
क्रिया करण कारण-आविष्टम्॥ प्रशसादिभि ।	=कार्य करने, कराने में लीन हो (=आविष्ट), वडाई आदि करि
दृढयतिT यथा*साधु॥ करोषिTइति*सा॥	=दृढ करता है जैसे तू भला (=साधु) करता है सो (=सा)
मिथ्यादर्शनक्रिया ॥ । सयमघाति-कर्म-	=मिथ्या दर्शन क्रिया है । (२५) सयमके घात करनेवाले कर्मके
उदयवशात्। अनिवृत्ति ॥	=उदयके वशसे निवृत्तिरूप नहा होना अर्थात् सयमरूप नहीं प्रवर्तना वा अत्यागरूप प्रवर्तना
अप्रत्याख्यानक्रिया॥ । ता ॥ एता ॥ पञ्चक्रिया ॥ ॥	=सो अप्रत्याख्यान क्रिया है । ते येती पाच क्रिया है ॥
(समुदिता ॥ पञ्चविंशतिक्रिया ॥) एतानि॥	=(पूर्वोक्त सर्वसमुचित पचीस क्रियायें हुई) । ये
इन्द्रिय आदीनि॥ कार्य कारण-भेदात्। भेदम्।	=इन्द्रिय-कषाय अव्रत क्रिया (=आदीनि)कार्य कारणके भेदसे भेदरूप
आपद्यमानानि॥साम्परायिकस्य। कर्मण ॥ आस्रव-	=प्राप्त होकर (=आपद्यमान) साम्परायिक कर्मके आस्रवके
द्वाराणि॥ भवन्तिT	=द्वार होते है अर्थात् यहा इन्द्रिय-कषाय अव्रत तो कारण है बहुरि क्रिया है ये उन (इन्द्रिय-कषाय अव्रत) के निमित्तसे होती है इसलिये कार्य है । ये दोना ससारके कारणरूप (=साम्परायिक) कर्मके आस्रवके उपाय है ॥

अप्रमृष्टादृष्टभूमौ कायादिनिक्षेपोऽनाभोगक्रिया। ता एताः पंचक्रियाः ॥ यां परेण निर्वर्त्यां क्रियां स्वयं करोति सा स्वहस्तक्रिया । पापादानादिप्रवृत्तिविशेषाभ्यनुज्ञानं निसर्गक्रिया । पराचरितसावद्यादिप्रकाशनं विदारणक्रिया । यथोक्तामाज्ञामावश्यकादि चारित्रमोहोदयात्कर्तुमशक्नुवतोऽन्यथाप्ररूपणादाज्ञाव्यापादिकी क्रिया । शाठ्यालस्याभ्यां प्रवचनोपदिष्टविधिकर्तव्यतानादरोऽनाकांक्षक्रिया। ता एताः पंचक्रियाः॥ छेदनभेदनविशसनादिक्रियापरत्वमन्येन वा क्रियमाणे प्रहर्षः प्रारम्भक्रिया

अप्रमृष्ट-अदृष्ट-भूमौ[७/१] काय-आदि-निक्षेपः[१/१]	=विनासोधीहुईवा झाड़ीहुई(=अप्रभ्रष्ट)(और)विनादेखीहुई(=अदृष्ट)पृथिवीमें कायआदिकानिक्षेपण अर्थात् बैठना,सोवना,लेटना, इत्यादि करना[१/१]
अनाभोगक्रिया[१/१], ताः[१/३] एताः[१/३] पंचक्रियाः[१/३]	=सो अनाभोग क्रिया है। ते एती पांच क्रिया हैं।
याम्[२/१] परेण[३/१] निर्वर्त्याम्[२/१] क्रियां[२/१] स्वयम्*करोतिT सा[१/१]	=(१६) जो दूसरेकरि करने योग्य क्रियाको आप करता है सो
स्वहस्तक्रिया[१/१] । पाप-आदानादि-प्रवृत्ति-विशेष-	=स्वहस्त क्रिया है। (१७) पापके ग्रहणादिक प्रवृत्तिके विशेषको
अभ्यनुज्ञानम्[१/१] निसर्गक्रिया[१/१] । पर-आचरित-	=भला जानना सो निसर्ग क्रिया है। (१८)अन्यका आचरण कियाहुआ
स-अवद्यादि-प्रकाशनम्[१/१] विदारणक्रिया[१/१] ।	=पापसहित कार्यादिकका प्रगट करना सो विदारण क्रिया है ॥
चारित्र-मोहउदयात्[५/१] यथा*उक्ताम्[२/१] आज्ञाम्[२/१]	=(१९) चारित्रमोहके उदयसे (परमागममें) ज्योंकी त्यों कहीहुई आज्ञाके
आवश्यकादि-कर्तुम्[१/१] अशक्नुवतः[६/१] अन्यथा*प्ररूपणात्[५/१]	=आवश्यकआदिके करनेको(=कर्तुम्)असमर्थहोनेवालाभिन्न प्रकारवर्णनकरनेसे
आज्ञाव्यापादिकी[१/१] क्रिया[१/१] । शाठ्य-आलस्याभ्याम्[५/२]	=आज्ञाव्यापादिकीक्रियाहै। (२०)कपट(=शाठ्य)मूर्खता(=शाठ्य)तथाआलस्यसे
प्रवचन-उपदिष्ट-विधि-कर्तव्यता-अनादरः[१/१]	=शास्त्रोक्त विधान अथवा रीतिकी कर्तव्यतामें अनादर (करना)
अनाकांक्षक्रिया[१/१] । ताः[१/३] एताः[१/३] पंचक्रिया[१/३] ॥	=सो अनाकांक्ष क्रिया है। ते येती पांच क्रिया हैं॥
छेदन-भेदन-विशनादि-क्रिया-परत्वम्[१/१] अन्येन[३/१] वा	छेदन भेदन मारण आदिक क्रियामें तत्परपणा अथवा अन्यकरि
क्रियमाणे[७/१] प्रहर्षः[१/१] प्रारम्भक्रिया[१/१] ।	=कियेहुयेमे आनन्द (मानना) सो प्रारम्भ क्रिया हैं।

(१) तीन हस्तलिखित प्रतियोंका पाठ "छेदनभेदनविसर्जनादि क्रिया परत्वं अन्येनवारम्भे क्रियमाणे प्रहर्ष प्रारम्भ क्रिया" ऐसा पाठ है तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'विसर्जनादिके' स्थानमें 'वस्रंसनादि' शब्द है।

कायिकी क्रिया । हिंसोपकरणादानादाधिकरणिकीक्रिया । सत्त्वदुःखोत्पत्तितन्त्रत्वात्पारितापिकी क्रिया । आयुरिन्द्रियबलप्राणानां वियोगकरणात्प्राणातिपातिकी क्रिया । ता एता पञ्चक्रिया ॥ रागार्द्रीकृतत्वात्प्रमादिनो रमणीयरूपालोकनाभिप्रायो दर्शनक्रिया । प्रमादवशात्स्प्रष्टव्यसञ्चेतनानुबन्ध स्पर्शनक्रिया । अपूर्वाधिकरणोत्पादनात्प्रात्ययिकी क्रिया । स्त्रीपुरुषपशुसम्पातिदेशेऽन्तर्मलोत्सर्गकरणं [1] समन्तानुपातक्रिया ।

कायिकी॥ क्रिया॥ हिंसा उपकरण-
आदानात्। आधिकरणिकीक्रिया॥ सत्त्व दुःख उत्पत्ति-
तन्त्रत्वात्॥ पारितापिकी क्रिया॥ । आयु इन्द्रिय बल
प्राणानाम्। वियोगकरणात्॥ प्राणातिपातिकी॥ क्रिया॥
ता॥ एता॥ पचक्रिया॥ ॥ राग आर्द्रीकृतत्वात्॥ प्रमादिन॥
रमणीय रूप[2] आलोकन अभिप्राय। दर्शनक्रिया॥ ॥
प्रमाद वशात्। स्प्रष्टव्य सचेतन
अनुबन्ध। स्पर्शनक्रिया॥
अपूर्व अधिकरण-उत्पादनात्।
प्रात्ययिकी॥ क्रिया॥ ।
स्त्री पुरुष पशु सम्पाति-देशे।
अन्तर्मल-उत्सर्गकरणम्॥ समन्तानुपातक्रिया॥

=सो कायिकी क्रिया है । (८) हिंसाके प्रधान साधन उपकरण जैसे शस्त्रादिक का
=ग्रहण करनेसे जो हो सो आधिकरणिकी क्रिया है। (९) आत्माको दुःखके उत्पत्तिके
=कारणपनासे जो होसो पारितापिकी क्रिया है । (१०) आयु-इन्द्रिय-बल
=प्राणोंका वा उच्छ्वास निःश्वासका वियोग करनेसे होसो प्राणातिपातिकी क्रिया है
=ते येती पांचक्रिया हैं ।(११) प्रमादी (पुरुष) के राग भावसे आर्द्रित होकर
=रमणीकरूपके देखनेका (=आलोकन) अभिप्राय दर्शन क्रिया है ।
=(१२) प्रमादके वशसे स्पर्शनयोग्य वस्तुमें रागपरिणामसे (=सचेतन)
=प्रवृत्ति वा प्रवर्तना (=अनुबन्ध=सम्बन्ध) सो स्पर्शन क्रिया है
=(१३) (विषयके) नवीन (=अपूर्व) आधार वा कारण उपजावनेसे (जो होसो)
=प्रात्ययिकी क्रिया है (प्रत्ययक्रिया है ॥
=(१४) नारी नर-पशुके प्रवर्तने (अर्थात् सोवने बैठने चलने फिरने) में
=भीतरीमल अर्थात् पाखाना मूत्र नाकमैल इत्यादिका फैंकना सो समन्तानुपातक्रिया है।

(१) सर्वार्थसिद्धिवृत्तिक प्रथम संस्करणमें 'समन्तापातन क्रिया' पाठ है द्वितीयावृत्तिमें, एकप्रति हस्तलिखितमें, पं० जयचन्दजी रचित वचनिकामें और श्रुतसागरी सूरि कृता टीकामें 'समन्तानुपातनक्रिया' ऐसा पाठ है ॥ 'समन्तानुपातक्रिया" श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें हमारे यहाकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें, पं० पन्नालाल बाकलीवालकी टीकामें तत्त्वार्थराजवार्तिकमें पं० जयचन्दजी विरचिता वचनिका मुद्रितमें, पं० सदासुखजी कृत अर्थप्रकाशिकामें और अन्य अनेक प्रतियोंमें ऐसा पाठ है॥ 'सा समन्तानुपातिकी' ऐसा पाठ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें है इसलिये हमने समन्तानुपात क्रिया यह पाठ लियाहै ॥ (२) रूपालोकनाभिप्राया—स्मरण रहे कि इस वाक्य का पदच्छेद 'रूप आलोकन अभिप्राय' होगा नकि 'रूप अलोकन अभिप्राय' क्योंकि आलोकन वा आलोचन का अर्थ देखना है (वैद्यकोश पृष्ठ १०६ देखो) और 'अलोकन' का अर्थ अदर्शन और न देखनेके हैं (वैद्यकोश पृष्ठ ७० देखो) यहापर 'रूपालोकनाभिप्राय' वाक्यका अर्थ 'रूपके देखनेका अभिप्राय' ऐसा है।

पंचावृतानि प्राणव्यपरोपणादीनि वक्ष्यन्ते ॥ पंचविंशतिक्रिया उच्यन्ते— चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया सम्यक्त्वक्रिया । अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका कर्मप्रवृत्तिर्मिथ्यात्वक्रिया ॥ गमनागमनादिप्रवर्तनं कायादिभिः प्रयोगक्रिया । सँयतस्य सतः अविरतिं प्रत्याभिमुख्यं समादानक्रिया । ईर्यापथनिमित्तेर्यापथक्रिया । ता एताःपंच क्रियाः ॥ क्रोधावेशात्प्रादोषिकी क्रिया । प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यमः

पंच-अवृतानि[1/3] प्राणव्यपरोपण-आदीनि[1/3] वक्ष्यन्ते	=पांच अवृतहिंसा(=प्राणव्यपरोपण)आदिक(सातवां अध्यायके प्रथम सूत्रमें, कहेंगे
पंचविंशतिक्रियाः[1/3] उच्यन्ते—चैत्यं-गुरु-प्रवचन-	=पच्चीस क्रियायें(नीचे)कही जाती हैं। देव(=चैत्य)गुरु शास्त्र वा आगमकी
पूजादि-लक्षणा[1/1] सम्यक्त्ववर्धिनी[1/1] क्रिया[1/1]	पूजादि लक्षण सम्यग्दर्शनके बढानेवाली क्रिया
सम्यक्त्वक्रिया[1/1]; अन्यदेवता-	=सो सम्यक्त्व क्रिया है । (२) अन्य देवता वा कुदेव (कुगुरु कुश्रुत)का
स्तवन-आदिरूपा[1/1] मिथ्यात्वहेतुका[1/1] (१)कर्मप्रवृत्तिः[1/1]	=स्तवनादिरूपमिथ्यात्वके कारणवाली क्रिया(=कर्म)में अभिरुचि वा लगन(=प्रवृत्ति)
मिथ्यात्वक्रिया[1/1];गमन-आगमनादि-प्रवर्तनं[1/1] कायादिभिः[3/3]	=सो मिथ्यात्व क्रिया है । (३) कायादिकोंसे गमनागमनादिरूप प्रवर्तना
प्रयोगक्रिया[1/1];संयतस्य[6/1] सतः[6/1]	=सो प्रयोग क्रिया है (४) संयमी पुरुषका (=सतः[6/1])
अविरतिम्[2/1] प्रति*अभिमुख्यम्[1/1] समादानक्रिया[1/1];	=असंयमके सन्मुखपना वा सन्मुख होना सो समादान क्रिया है ॥
ईर्यापथनिमित्त-	=(५) गमनकर्मके निमित्तक क्रिया अर्थात् गमन करनेके लिये जो क्रिया
ईर्यापथक्रिया[1/1]; ताः[1/3] एताः[1/3] पंच[1/3] क्रियाः[1/3] ॥	=सो ईर्यापथ क्रिया है । ते इतनी पांच क्रिया हैं ॥
क्रोध-आवेशात्[5/1]	=(६)क्रोधके वशसे(जो क्रिया)अर्थात् परको दोष लगावनेकी प्रवृत्ति दुष्टस्वभावता
प्रादोषिकी[1/1] क्रिया[1/1]; प्रदुष्टस्य[6/1] सतः[6/1]	=सो प्रादोषिकी क्रिया है । (७) दुष्टभावका (=सतः) अर्थात् दुष्टताका
अभ्युद्यमः[1/1]	=उद्यम करना (जैसे चोरी इत्यादिका)

(१) 'मिथ्यात्वहेतुका प्रवृत्ति मिथ्यात्वक्रिया' यह पाठ द्वितीय संस्करण सर्वार्थसिद्धि तथा एक प्रतिहस्तलिखितके पर्ण ५८ पर है यही पाठ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें है ॥ प्रथमावृत्तिकी सर्वार्थसिद्धि तथा दो हस्तलिखित प्रतियोंमें 'मिथ्यात्वहेतुका कर्मप्रवृत्ति मिथ्यात्वक्रिया' ऐसा पाठ है । दोनों पाठोंका भावार्थ एकसा है,जयचन्द्रायजीने 'मिथ्यात्वकी कारण प्रवृत्ति' सो मिथ्यात्व क्रियाहै ऐसाअर्थ कियाहै हमने पिछलापाठ ग्रहणकरके 'मिथ्यात्व के कारणवाली क्रिया (=कर्म) में अभिरुचि वा लगन (=प्रवृत्ति) ऐसा अनुवाद किया है ॥

अत्र इन्द्रियादीना पंचादिभिर्यथासंख्यमभिसंवन्धो वेदितव्य. ॥ इन्द्रियाणि पच । चत्वार कषाया. । पचाव्रतानि ।
पंचविंशतिक्रिया इति ॥ तत्र पचेन्द्रियाणि स्पर्शनादीन्युक्तानि ॥ चत्वार कषाया क्रोधादय ॥

सूत्रार्थः—इन्द्रिय कषाय-अव्रत-क्रिया॥ पञ्च चतुर्- पच पचविंशति सख्या॥ पूर्वस्य॥ साम्परायिक-आस्रवस्य॥ यथासख्यम्*भेदा॥ भवन्ति

=इन्द्रिय, कषाय, अव्रत, क्रिया, पाच चार-
=पांच-पचीस सख्यारुप अथवा गणनावाले पहिले
=साम्परायिक आस्रवके यथासख्य अर्थात् पहिलेको पहिला, दूसरेको दूसरा, तीसरेको तीसरा, चौथेको चौथा, भेद होते है

भावार्थ इन्द्रिय (स्पर्शन-रसन घ्राण चक्षुस् श्रोत्र) पाच, कषाय (क्रोध मान-माया-लोभ) चार; अव्रत (हिंसा अनृत वा मिथ्याभाषण, स्तेय वा चोरी अब्रह्म परिग्रह) पाच, क्रिया (सम्यक्त्व मिथ्यात्व प्रयोग-समादान-ईर्यापथ, प्रादोषिकी, कायिकी, आधिकरणिकी, पारितापिकी, प्राणातिपातिकी, दर्शन स्पर्शन प्रात्ययिकी-सम तानुपातन अनाभोग, स्वहस्त निसर्ग विदारण आज्ञाव्यापादिकी, अनाकांक्ष, आरंभ पारिग्राहिकी-माया मिथ्यादर्शन अप्रत्याख्यान,)पचीस ये उनतालीससाम्परायिकआस्रवकेभेदहैं ।

वृत्त्यनुवाद —अत्र*इन्द्रिय-आदीनाम्॥ पचादिभि॥ =यहा (इस सूत्रमें)इन्द्रियादिकोंके पाच आदि (सख्याओं)से
यथासख्यम्* =यथासख्य अर्थात् पहिलेकोपहिला,दूसरेकोदूसरा,तीसरेकोतीसरा,चोथेकोचौथा
अभिसम्बन्धः॥ वेदितव्य॥, इन्द्रियाणि॥ पच॥ =सम्बन्ध जानने चाहियें । इन्द्रिय (स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्र) पाच हैं
चत्वार॥ कषाया॥ =चार (क्रोध-मान वा अहकार-माया वा कपट, लोभ) कषाय हैं
पचअव्रतानि॥ =पाच(हिंसा मिथ्याभाषण चोरी मैथुन परिग्रह अव्रत हैं)
पचविंशति-क्रिया॥ इति* । तत्र*पचइन्द्रियाणि॥ =पचीस(सम्यक्त्व मिथ्यात्व इत्यादि) क्रिया है । तहा पाच इन्द्रिय
स्पर्श आदीनि॥,उक्तानि॥,चत्वार.कषाया.क्रोधआदय॥ =स्पर्शादिक(अध्याय २ सूत्र १९में)वर्णन कीगई है।चारकषायक्रोधादिक हैं ॥

आदावुद्दिष्टस्यास्रवस्य भेदप्रतिपादनार्थमाह—

इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाःपंचचतुःपंचपंचविंशतिसङ्ख्याःपूर्वस्य भेदाः।५

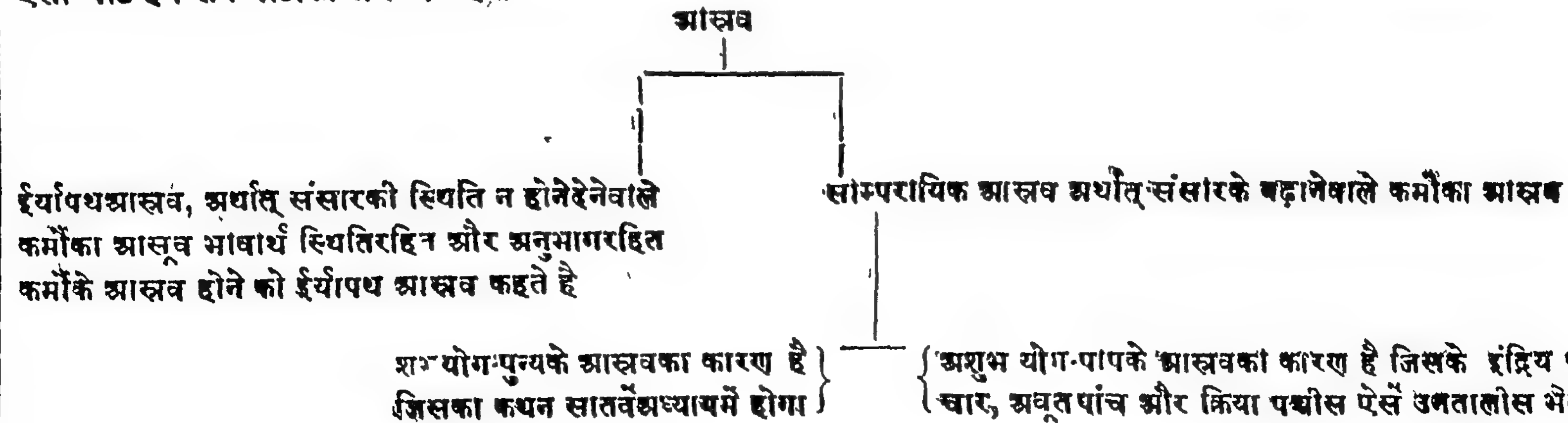
दीर्घकाल संसारमें परिभ्रमण करते हैं बहुरि अकषायी जीव (उपशांत कषाय ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती, क्षीणकषायी बारहवां गुणस्थानवर्ती, सयोग केवली तेरहवां गुणस्थानवर्ती)निके कर्मोंकी स्थिति और अनुभाग नहीं पड़ते है जिस समय आस्रव आते हैं सो स्थिति बिन वा स्थितिरहित तिसही समय झड़ जाते हैं वा निर्जर होजाते हैं ॥

आदौ७। उद्दिष्टस्य६। आस्रवस्य६। भेद-	=प्रथममें वा पहिले उपदेश किया हुआ (साम्परायिक) आस्रवके भेद
प्रतिपादन- अर्थम्४।।। आह।'	=कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पंच, चतुः, पंच, पंचविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥

= इन्द्रिय-कषाय-अव्रत-क्रियाः पञ्च-चतुर्-पंच-पंचविंशतिसंख्याःपूर्वस्य साम्परायिकास्रवस्य यथा-संख्यम् भेदाः (भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायकी "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका" (सिद्धसेनसूरि रचित) जिसमें बाईस सहस्रसेभी अधिक श्लोक हैं इस सूत्रका वही पाठ है जो हमारे यहां है परन्तु उनकेयहांके"सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें""अव्रतकषायेन्द्रियक्रिया. पचचतुःपञ्च,पञ्चविंशतिसंख्या पूर्वस्य भेदाः" ऐसा पाठ है। सब पाठोंका अर्थ एक है॥



(११) भव्यानुवादेन–भव्येषु मिथ्यादृष्ट्यादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः । अभव्या अनन्ताः ॥
(१२) सम्यक्त्वानुवादेन—क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टयः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः । संयतासंयतादय उपशान्तकषायान्ताः संख्येयाः । चत्वारः क्षपकाः

भव्य-अनुवादेन ३। भव्येषु ७। मिथ्यादृष्टि आदय १। = [११] भव्यमार्गणाकी, अपेक्षासे भव्योंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर
अयोगकेवली अन्ताः १। सामान्य उक्त संख्याः १। = अयोगकेवली तक संक्षेपप्रकरणमें [पहले] कथित [गुणस्थानवत्] संख्या वाले हैं
अभव्याः १। अनन्ताः १। = अभव्यजीव अनन्त हैं भावार्थ ऐसा है कि सामान्यसे कही हुई संख्या मिथ्यादृष्टि जीवोंकी अनन्तानन्त है (देखो सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २६) और अभव्य जीव अनन्त हे इस अनन्तानन्तमेसे अनन्त घटानेसे भव्य जीवोंकी संख्या निकलती है अतः भव्योकी संख्या भी अनन्तानन्त हुई क्योकि भव्य जीव बहुत अधिक हैं और अभव्य जीव बहुत थोडे हैं ॥ गोम्मटसार गाथा ५५९-५६० अवरो जुत्ताणंतो इत्यादिमें कहा है। जघन्य-युक्तानन्त प्रमाण अभव्य राशि है। और सम्पूर्ण संसारी जीवराशिमेंसे अभव्य राशिका प्रमाण घटाने पर जो शेप रहै उतना ही भव्य राशिका प्रमाण है। भव्यराशि बहुत अधिक है और अभव्य राशि बहुत-थोडी-है-॥
सम्यक्त्व अनुवादेन ३। क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु ७। = सम्यग्दर्शनकी विवक्षाकरि क्षायिक सम्यग्दर्शनवालोंमे
असंयतसम्यग्दृष्टय. १। पल्योपम असंख्येयभाग प्रमिताः १। = असंयत सम्यग्दृष्टि पल्योपमके असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं ।
संयतासंयत आदय १। उपशान्तकषाय-अन्ताः १। = संयमासंयमी गुणस्थानसे उपशांतकषाय गुणस्थानवालों तक
संख्येयाः १। चत्वारः १। क्षपकाः १। च = संख्यात हैं । चार [अपूर्वकरण गुणस्थान अनिवृत्तिकरण गुणस्थान सूक्ष्म-साम्पराय गुणस्थान, क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती] क्षपक श्रेणीवाले और

कषाय इत्युच्यते ॥ सह कषायेण वर्तत इति सकषायः । न विद्यते कषायो यस्येत्यकषायः । सकषायश्चाकषायश्च सकषायाकषायौ तयोः सकषायाकषाययोः ॥ सम्परायः संसारः तत्प्रयोजनं कर्म साम्परायिकम् । ईरणमीर्यायोगो गतिरित्यर्थः ।

कषायः १। इति * उच्यते T; सह कषायेण ३। =सो कषाय है इस प्रकार कहा जाता है । कषाय करि सहित
वर्ततेTइतिसकषायःन*विद्यते (१) कषायः१।यस्य६।इति* =वर्तता है ऐसा सकषायी है । नहीं है विद्यमान कषाय जिसकें ऐसा
अकषायः १। सकषायः १। च * =अकषायी है । बहुरि (=च) कषाय करि सहित हैं
अकषायः१।च*सकषाय-अकषाययौ१। =और (=च)कषायकरि रहित हैं (ये दोनों) सकषायाकषायौ (द्वन्द्वसमास में) है
तयोः ६। स- कषाय- अकषाययोः ६। =तिन(सकषाय-अकषायौ)काहैसो सकषाय-अकषाययोः(ऐसावाक्य तत्पुरुषमेंबनता)है।
सम्परायिः१। संसारः१। तत्-प्रयोजनम् १।॥ =सम्पराय है सो संसार है । उस (संसार) का प्रयोजनवाला
कर्म १।। साम्परायिकम् १।॥ =कर्म साम्परायिक है अर्थात् संसारहै प्रयोजन जिस कर्मका सो साम्परायिक कर्म है॥
(२) ईरणम् १।॥ गतिः १।॥ ईर्यायोगः १। इति * अर्थः १। =ईरणम् है सो गति वा गमनहै (वे)योगोंका गमन है (=ईर्या) ऐसा तात्पर्य्य है ।

(१) विद्-यहांपर दिवादि चौथेगणका धातुआत्मनेपदी अकर्मक 'होना' अर्थमें है । अत. 'य' अ विकरण जोडकर 'ते' आत्मनेपदी वर्तमानकालका प्रत्यय लगाकर विद्+य+ते=विद्यते बनाया । (२) ईरणमीर्यायोगो गतिरित्यर्थः (=ईरणम्-ईर्यायोगः गतिः इति अर्थः) ॥ इस वाक्य का ऊपर जो हमने अनुवाद दिया है उससे प्रगट है कि इस वाक्य के पाठ में कुछ गड़बड है । सर्वार्थसिद्धि मुद्रितकी दोनों आवृतियों में उपर्युक्त एकसा पाठ है । हस्तलिखित दो प्रतियोंके पृष्ठ १२६ और ७२ पर क्रमसे "ईरणमीर्यादियोगो गतिरित्यर्थ." ऐसापाठ है तीसरी हस्तलिखित एकप्राचीन प्रतिके पर्ण५६पर "ईरणमीर्यायोगो गतिरित्यर्थः यह पाठ है "ईरणमीर्या योगगतिरित्यर्थ "(=ईरणम् ईर्या योगगतिः) इन दोनों पाठोंके मिलानेसे ज्ञात होताहै कि 'योग'शब्दमें प्रथमा विभक्ति लगाकर 'गति' शब्दसे पृथक् करदिया है । इसको तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें "ईरणमीर्या योगगतिः" ऐसे छठवीं वार्तिकके रूपमें दिया है जिसका संस्कृतअर्थ "ईरेर्गत्यर्थाद्भावेण्य. । ईरणमीर्या योगगतिरिति यावत् । ऐसा दिया है (इस तत्त्वार्थ राजवार्तिक के पाठ को हम ने मुद्रित और कई प्रतियें हस्तलिखितसे मिलाकर लिखा है ऐसा ही पाठ सर्व पुस्तकों में है) इसका हिंदी अनुवाद निम्नलिखित प्रकार है ।

गति-अर्थात्*ईरेः५। भावे७।ण्य.३। =गमन अर्थवाली (=गत्यर्थात्)ईरि(धातु)से(परे)भाव(अर्थ)मेंण्यः(प्रत्ययकरि)
ईर्या ईरणम् योगगतिः इति*यावत् * =ईर्या (शब्द) बनता है । ईर्या ईरणम् है सो योगों की गति वा योगोंका गमन ऐसे इतना अर्थ हुआ ।

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ १४४ के छठवें श्लोक में 'ईर्यायोगगतिः' वाक्य है 'ईर्या योगगति सैवं यथा यस्य तदुच्यते कर्मेर्यापथमस्यास्तु शुष्क कुड्येऽश्मवच्चिरम् ॥ ६ ॥ =ईर्या योगगतिः सा एवम् यथा यस्य तद् उच्यते । कर्म ईर्यापथम्-अस्याः तु शुष्क कुड्ये अश्मवत् चिरम् ॥ ६ ॥

ईर्या१॥योगगतिः१॥ =योगों की हलन चलन रूप क्रिया अर्थात् आत्माके प्रदेशोंका कंपन स्पंद वा स्पदन सो ईर्या है ।
सा१॥एवम् * यथा * यस्य६। तद्उच्यतेT =सो(=सा)ही(=एवम्)अर्थात् सोयोगोंकाकंपनवास्पंदनजिस(चेतन वाचेतनके)जैसाहैवैसाकहाजाताहै

तद्वारकं कर्म ईर्यापथम् । साम्परायिकं च ईर्यापथं च साम्परायिकेर्यापथे । तयो साम्परायिकेर्यापथयो ॥ यथासख्यमभिसम्बन्ध । सकषायस्यात्मनो मिथ्यादृष्ट्यादे साम्परायिकस्य कर्मण आस्रवो भवति ॥ अकषायस्य उपशान्तकषायादे ईर्यापथस्य कर्मण आस्रवो भवति ।

तत्-द्वारकम् १/१ कर्म १/१ ईर्या-पथम् १/१ =तिस (योग की गति) द्वारा आने वाला (=द्वारक) कर्म है सो ईर्या पथ है

साम्परायिकम् १/१ च* ईर्यापथम् १/१ च* साम्परायिकेर्यापथे १/२ =बहुरि(=च) साम्परायिक और ईर्यापथहैसोसाम्परायिकेर्यापथे(द्वद्वसमासमें) है

तयो ६/२ साम्परायिक-ईर्यापथयो ६/२ =तिसका(सबधकेअर्थमेंषष्ठीविभक्तिद्विवचनमें)साम्परायिकेर्यापथयो ऐसावाक्यहुआ

यथासख्यम्* अभिसम्बन्ध, १/१ =(साम्परायिक ईर्यापथका)यथासख्य(=पहिलेको पहिला दूसरेकोदूसरा)सबध है

सकषायस्य ६/१ आत्मन, ६/१ (१) मिथ्यादृष्टि-आदे ६/१ =कषायसहितआत्माकेमिथ्यादृष्टिआदिकप्रथमगुणस्थानसेदशमगुणस्थानतकनिके

साम्परायिकस्य ६/१ कर्मण ६/१ आस्रव १/१ भवति ᴸ =ससारके कारणरूप कर्मका आस्रव होता है

अकषायस्य ६/१ उपशान्त-कषाय आदे ६/१ =कषाय रहित (आत्मा) के उपशान्त कषाय आदिकके

ईर्यापथस्य ६/१ कर्मण ६/१ आस्रव १/१ भवति ᵀ =ईर्यापथ वा स्थिति रहित कर्मका आस्रव होताहै भावार्थ ऐसाहै कि सकषाय जीवकै तो ऐसी स्थिति और अनुभाग पडते है जिनकरि जीव

भावार्थ उक्त ईर्यापथ आस्रव उपशातकषायी क्षीणकषायी सयोगकेवली मुनियोंके होताहै सो जिसप्रकारका यह ईर्यापथआस्रवहै वैसाही उसकानाम है।

तु * कर्म ईर्या पथम् १/१ अस्या ६/१ =और (=तु) इस (ईर्या) का जो कर्म (अर्थात् ईर्याका परिणाम या फलकि आयेहुये कर्मों की स्थिति और अनुभाग विना तत्काल । झडजाती है सो ईर्या पथ है (कैसा है ईर्यापथ)

शुष्क-कुड्ये ७/१ चिरम्* अश्मवत् * =सूखी भीत में सदीव पत्थर के सदृश अर्थात् सूखी भितिमें चिरकाल तक भिन्न ही रहता है भवार्थ जैसे सूखी भीत में पत्थर भि न ही चिरकाल तक रहताहै तैसे ईर्यापथ आस्रवमेंभिन्नकर्मों की स्थिति नहीं होतीहै जितनी कर्मों की वर्गणा आती हैं वे उसी समय झड जाती है

एक बात विशेष यह है कि जिन महाशयोंने सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और तत्वार्थ राजवार्तिक मिलाकर अध्ययन कियाहोगाउनकोज्ञात होगाकि उक्त ग्रथके रचयिता ने पूज्यपाद स्वामी जो अकलकदेव भट्ट से बहुत पहिले प्रसिद्ध हुए हैं सर्वार्थ सिद्धि को वृत्ति को वार्तिक रूप में तथा वृत्तिरूप में शब्दश अनेक स्थानों में ग्रहण किया है। अत स्पष्ट है कि 'योगा' विभक्तिरूप में न होकर " ईरणमीर्या योगगति रित्यर्थ " ऐसा पाठ ठीक है।

(१) दोनों बार की छपी हुई सर्वार्थसिद्धिवृत्तियोंमें मिथ्या दृष्टे साम्परायिकस्य पाठहै, परन्तु तीनहस्तलिखितप्रतियोंमें मिथ्यादृष्ट्यादे साम्परायिक ऐसा पाठ है । तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ मुद्रित २४८ में मिथ्या दृष्ट्यादीना सूक्ष्म साम्परायान्ताना' ऐसा पाठ है । हमने मिथ्या दृष्ट्यादे साम्परायिकस्य पाठ लियाहै क्योंकि मिथ्या दृष्टि गुणस्थान से सूक्ष्म साम्पराय दशवें गुणस्थानतक कषाय का अस्तित्व है ।

पाति रक्षति आत्मानं शुभादिति पापम् । असद्वेद्यादि ॥

आह किमयमास्रवः सर्वसंसारिणां समानफलारम्भहेतुराहोस्वित्कश्चिदस्ति विशेष इत्यत्रोच्यते—

॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥

पातिTरक्षतिTआत्मानं$^{२}_{१}$।शुभात्$^{५}_{१}$। =आत्माको शुभसे (दूर) रखता है वा आत्माको शुभसे रक्षा करता है (रक्षति=पाति) अर्थात् जो आत्मा को शुभ रूप नही होने देता है

इति*पापम्$^{१}_{१}$।।।असद्वेद्य-आदि$^{१}_{१}$।।। । आहTकिम्* =ऐसा पाप है वह असाता वेदनीय आदि है । (वह) प्रश्न करताहै क्या

अयम्$^{१}_{१}$।आस्रवः$^{१}_{१}$।सर्व-संसारिणाम्$^{६}_{३}$।समान- =यह आस्रव समस्त संसारी (जीव) निकें तुल्य

फल-आरंभ-हेतुः$^{१}_{१}$।आहोस्वित्*कश्चित्* =फलके आरम्भका कारण है कि (=आहोस्वित्=अथवा) कुछ

अस्ति। विशेषः$^{१}_{१}$।इति*अत्र*उच्यतेT =विशेष है यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाताहै कि

(२)सूत्रम्—सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥

= सकषायाकषाययोः (आत्मनोः$^{६}_{२}$।) साम्परायिकेर्यापथयोः (कर्मणोः$^{६}_{२}$।।।आस्रवौ यथासंख्यं भवतः)

सूत्रार्थः—सकषाय-अकषाययोः$^{६}_{२}$।आत्मनोः$^{६}_{२}$। =कषायसहित और कषायरहित जीवोंके

साम्परायिक-ईर्यापथयोः$^{६}_{२}$।कर्मणोः$^{६}_{२}$।।।आस्रवौ$^{१}_{२}$। =साम्परायिक तथा ईर्यापथ कर्मोंके आस्रव

यथासंख्यम्*भवतःT =यथासंख्य वा अनुक्रमसे अर्थात् पहिलेको पहिला दूसरेको दूसराहोतेहैंअर्थात्

आहोस्वित दो अव्ययों (आहो) और (स्वित्) से

(१) आहोस्वित (अव्यय)=विकल्प, सन्देह, प्रश्न, जाननेकी इच्छा (पद्मचंद्रकोश पृष्ठ ६५) स्वित्=स्वित्प्रश्ने च वितर्के च, अमरकोश नानार्थवर्गः २३, श्लोक २४३। मिलकर बनता है। आहो=प्रश्न-सन्देह-विकल्प (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ६५) का वही अर्थ है जो आहोस्वित् का मिलकर होता है ॥ स्वित=प्रश्न (पद्मचन्द्रकोश पृ०४४४) अर्थात् भिन्न भिन्न आहो और स्वित् का वही अर्थ है जो आहोस्वित्का मिलकर होता है ॥

(२) श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ एकसा है। कहीं कहीं ईर्यापथयोः पाठ है कहीं कहीं "ईर्य्यापथयो" पाठ है। दोनों पाठ ठीक हैं क्योंकि अचोरहाभ्यांद्वे वा अष्टाध्यायी ८। ४। ४६ सूत्रसे (जिसका विवरण पहले करचुके हैं) य को दोहरा करदिया गयाहै ॥

स्वामिभेदादास्रवभेद । स्वामिनौ द्वौ ॥ सकषायोऽकषायश्चेति ॥ कषाय क्रोधादि । कषाय इव कषाय । क उपमार्थ. ? यथा कषायो नैयग्रोधादि श्लेषहेतुस्तथा क्रोधादिरप्यात्मन कर्मश्लेषहेतुत्वात् कषाय इव

कषाय सहित जीवकें ससारके कारण रूप कर्मका आस्रव होता है। और कषाय रहित जीवकें स्थिति रहित (=ईर्यापथ)कर्मका आसव होता है भावार्थ सकषाय जीवकें तौ ऐसी स्थिति और अनुभाग पडते हैं जिन करि जीव दीर्घकाल ससारमें परिभ्रमण करतेहैं । बहुरि अकषायीजीव(=उपशातकषायी ग्यारहवां गुणस्थानवर्ता, क्षीणकषायी बारहवा गुणस्थानवर्ता, और सयोग केवली तेरहवा गुणस्थानवर्ती, तिनकैं कर्मांकी स्थिति और अनुभाग नहीं पडते है) एक समय मात्र आस्रव आवे है । सो (स्थिति विना वा स्थिति रहित) तिसही समय झडजाता है अथवा निर्जराहोजाता है।

स्वामि-भेदात्५।१ आस्रव-भेद.१।१ स्वामिनौ१।२ द्वौ१।२	=स्वामीके भेदसे आस्रवविषै भेद है [सूत्रमें] स्वामी दो है अर्थात् आस्रवके स्वामी दो हैं
सकषाय.१।१ अकषाय १।१ च*इति*	=कषाय सहित और (=च) कषाय रहित (जीव) हैं ॥ अथवा सकषायी (जीव) और अकषायी (जीव) हैं ॥
कषाय १।१ क्रोध आदि १।१ कषाय १।१ इव*कषाय.१।१	=कषाय क्रोध आदि (=मान-माया-लोभ) है । कषाय सरीखे वा सदृश है सो कषाय है
क.१।१ उपमा अर्थ १।१ यथा*कषाय १।१	=समानताके लिये क्या वस्तु(लीगई)है जैसे कषैले वा कषायले रसवाले अर्थात् लालपीले मिले हुये रग देनेवाले
नैयग्रोध आदि १।१	=न्यग्रोध फल (=नैयग्रोध) (वडीकाफल-वटफल वरगदफल)
श्लेष-हेतु १।१ तथा*क्रोध आदि १।१ अपि*आत्मन ६।१	=(वस्त्रादिकविषैं) रगलगनेका निमित्त है तैसे क्रोधादि भी, आत्माकें
कर्म श्लेष हेतुत्वात्५।१ कषाय १।१ इव*	=कर्म रूप रग लगनेका हेतुहोनेसे कषाय सरीखे अथवा कषाय समान हैं ॥

कः शुभयोगः को वा अशुभः ? प्राणातिपातादत्तादानमैथुनादिरशुभः काययोगः । अनृतभाषण-परुषासभ्यवचनादिरशुभोवाग्योगः । वधचिन्तनेर्ष्यासूयादिरशुभो मनोयोगः॥ततो विपरीतःशुभः ॥ कथं योगस्य शुभाशुभत्वं ॥ शुभपरिणाम—

से पुन्य आस्रव(का आगमन)होताहै और अशुभ योगसे पाप आस्रव(का आगमन)होताहै

वृत्त्यनुवादः—कः१/१|शुभयोगः१/१|कः१/१|वा*अशुभः१/१| ? =शुभयोग क्या है अथवा अशुभ (योग) क्या है

प्राण-अतिपात- [१]अदत्त-आदान- =प्राणों का घात (=अतिपात) अदत्तका वा अदानका ग्रहण (=आदान) अर्थात् जो वस्तु नही दी गई उसका लैना भावार्थ चोरी करना

मैथुन-आदिः१/१|अशुभः१/१|काययोगः१/१|अनृतभाषण- =रतिसेवन (=मैथुन) आदिक अशुभ काययोग है । झूठ बोलना

परुष-असभ्य-वचनादिः१/१|अशुभः१/१|वाग्योगः१/१| =कठोर (=परुष) अयोग्य वा बुरे (=असभ्य) वचनादिक अशुभ वचनयोग है

वधचिन्तन-ईर्ष्या-असूया- =परके घातका चिंतवन,जलन(=ईर्ष्या)गुणोंमें दोषारोपण वा नदेखसकनेका भाव(=असूया)

आदिः१/१|अशुभः१/१|मनोयोगः१/१|ततः* =आदिक अशुभ मनोयोग है तिन (अशुभ काययोग)अशुभ वचनयोग, अशुभमनोयोग)से

विपरीतः१/१| शुभः१/१| =विरुद्ध शुभ (काय-वचन-मनोयोग) हैं । अर्थात् तहां अहिंसा अस्तेय ब्रह्मचर्यादिक शुभकाययोग हैं-सत्यवचन, हितमित भाषणादि शुभवचनयोग हैं और अरहंतआदिमें भक्ति, स्तवनविषैं रुचि, शास्त्रआदिविषैं विनय आदिक प्रवृतियें ये शुभ मनोयोग हैं॥

कथम्*योगस्य६/१|शुभ-अशुभत्वम्१/१|| शुभ-परिणाम- =(प्रश्न) योग के कैसे शुभ अशुभपना है । शुभ परिणामकरि

---

(१) अदत्तादान, इस वाक्यके पदच्छेद अदत्त आदान, और अदत्ता-आदान दोनों हो सक्ते हैं । अदत्ता (स्त्रीलिंग) न विवाही गई स्त्री, न दीहुई वस्तु (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ १४) इस पिछले अर्थमें अदत्ताआदान, पदच्छेदयुक्त है । अदत्तका अर्थ अदान, दिया नहीं ऐसाहै और अदत्ताका अर्थ कुमारी, अविवाहिता भी लिखा है इस अवस्था में अदत्त-आदान ऐसा पदच्छेद है ॥ यहां कन्याके अर्थमें नहीं आया है अतः 'अदत्त-आदान' पदच्छेद किया है ।

निर्वृत्तो योग शुभ ॥ अशुभपरिणामनिर्वृत्तश्चाशुभ ॥ न पुन शुभाशुभकर्मकारणत्वेन ॥ यद्येवमुच्यते शुभयोग एव न स्यात् । शुभयोगस्यापि ज्ञानावरणादिवन्धहेतुत्वाभ्युपगमात् ॥ पुनात्यात्मान पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम् । तत्सद्वेद्यादि ॥

निर्वृत्त [१।] योग [१।] शुभ [१।] च*अशुभपरिणाम-निर्वृत्त [१।] अशुभ [१।] न * पुन * शुभ-अशुभ कर्म-कारणत्वेन [३।] । यदि * एवम् * उच्यते T	=निष्पन्न वा पूरा किया हुआ योग (सो) शुभ है ॥ वहुरि(च)अशुभ परिणामकरि =निष्पन्न योग (सो) अशुभ (योग) है । वहुरि शुभ अशुभ कर्मके =निमत्तपनासे (शुभ अशुभ योग) नहीं है । यदि ऐसा कहा जाय अर्थात् शुभ अशुभ कर्मके निमित्तपनासे शुभ अशुभ योग क्रमसे होते हैं तो
शुभयोग [१।] एव* न* स्यात् T शुभ-योगस्य [६।] अपि*ज्ञानावरणादि वन्ध हेतुत्व-अभ्युपगमात् [५।]	=शुभयोगही विद्यमान न हों (=स्यात् न) क्योंकि शुभयोगके =भी ज्ञानावरणादि (पापरूप कर्म)का वधका कारणपना माना है अर्थात् शुभ योगस भी ज्ञानवरणादि पापरूप कर्मोंका बन्ध होता है तातें (यदि शुभ अशुभ कर्मोंके कारणपनासे शुभ अशुभ योग यथासंख्य माने तो) पापका कारण शुभ अशुभ योग नहीं ठहरें
(१)पुनाति । आत्मानम् [२।] (२ पूयते T अनेन [३।] वा* इति*पुण्यम् [१।] । तद् [१।] (३)तत् [१।]) ४)सद्वेद्य-आदि [१।]	=(जो) आत्माको पवित्र करता है अथवा जिसकरि (आत्मा)पवित्र कियाजाता है =ऐसा पुन्य है सो साता वेदनीय आदिक (कर्म) है

(१) पू ' क्रयादि नवमा गणका धातु है, पू धातु और इकोंसे इसी गणके और धातुओंके अन्तस्वर का ह्रस्व होजाता है सार्वधातुक(शत्) प्रत्ययोंमें 'प्वादीना ह्रस्व ' ॥ ७ अध्याय ३ पाद ८० सूत्र अष्टाध्यायी और क्रयादि गणका विकरण ना धातु प्रत्यय मि सि ति इत्यादिके पूर्व जोडा जाता है इसलिये पू+ना+ति=पुनाति । (२) पूयते यह 'पू धातुका कर्मणि प्रयोग है 'त' आत्मने पदका प्रत्यय य को धातुमें जोडदेनेके पश्चात् जोड़ा जाता है । (३) 'तद् दकारान्त नपुंसकलिंग सर्वनाम है अर्थ 'वह' ऐसा है, इसका प्रथमा एक वचन नपुंसकलिंग तद् वा तत् दोनों प्रकारसे बनता है इसलिये तद् और तद् (पदच्छेदके पश्चात्)दोनोंही ठीक हैं । (४) यह शब्द अर्थात् 'सद्वेद्य नपुंसकलिंग है । आठवा अध्याय (तत्त्वार्थसूत्र)का आठवा सूत्र 'सदसद्वेद्ये" है जहा दो वचन प्रथमा विभक्ति नपुंसकलिंगमें है । इस प्रथमावृत्ति सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके पृष्ट ४०४ में 'सद्वेद्यम् ' इति ऐसा वाक्य आया है ॥

मनः परिणामाभिमुखस्यात्मनः प्रदेशपरिस्पन्दो मनोयोगः ॥ क्षयेऽपि त्रिविधवर्गणापेक्षः सयोगकेवलिन आत्मप्रदेशपरिस्पन्दो योगो वेदितव्यः ॥

आह अभ्युपगत आहितत्रैविध्यक्रियो योग इति ॥ प्रकृत इदानीं निर्दिश्यतां किंलक्षण आस्रव इत्युच्यते । योऽयं योगशब्दाभिधेयः संसारिणः पुरुषस्य—

॥ स आस्रवः ॥ २ ॥

मनः परिणाम-अभिमुखस्य॥आत्मनः॥प्रदेश-	=मनो परिणाम के सन्मुख आत्माके प्रदेशोंका
परिस्पन्दः॥मनोयोगः॥	=सकम्प होना मनोयोगहै भावार्थ-मनकेनिमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलना मनोयोग है
क्षये॥अपि*सयोगकेवलिनः॥	=(पूर्वोक्त वीर्यान्तराय तथा ज्ञानावरणकर्मों के) क्षय होने पर भी सयोग केवली के
त्रिविध-वर्गणा-अपेक्षः॥	=तीन प्रकार (मन वचन काय) की वर्गणाओंके संबन्धसे (अर्थात् निमित्तसे)
आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः॥योगः॥वेदितव्यः॥ । आहT	=आत्माके प्रदेशोंका हलनचलनरूप योग जानना चाहिये ॥ प्रश्न करता है कि
अभ्युपगतः॥आहित-त्रैविध्यक्रियः॥योगः॥इति*।प्रकृतः॥	=तीन प्रकार (=काय-मन-वचन)की क्रियारूप स्थापित योग जाने गये (=अभ्युपगतः)
इदानीम्॥निर्दिश्यताम्T किंलक्षणः॥आस्रवः॥इति*उच्यते	=अब विषयप्राप्त आस्रव क्या वस्तु है वा आसूव किसलक्षण सहितहै ऐसे कहाजाताहै कि
संसारिणः॥पुरुषस्य॥यः॥अयम्॥योगशब्द-अभिधेयः॥	=संसारी जीवके जो यह योगशब्द करि कथन किया गया (=अभिधेय) है
(१)स (२)आसूवः॥२॥	=सः॥आसूवः॥भवति॥२॥

=सो आसूव है अर्थात् पूर्वोक्त कायिक वाचिक तथा मानसिक क्रिया ही आसूव है वा पूर्वोक्त योग ही आसूव है भावार्थ वह योग ही कर्मों के आगमनका द्वाररूप आसूव है। जिस प्रकार सरोवरमें जलआनेके द्वार (मोरियां) जल आनेके लिये कारण होते हैं वैसे ही आत्माके भी मनोवचनकायरूप योगोंके द्वारा शुभ अशुभ कर्म आते हैं सो उन कर्मोंके आनेमें योग कारण है इसलिये कारणमें कार्यकी संभावना करके योगकोही यहां पर आसूव कहा है ॥

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनोंआम्नायोंमें एकसा है(२)"सःआस्रवः"का शब्दशः अर्थ "वह आगमन है" अर्थात् वह (योग)आगमन(कर्मका)है ॥

यथा सरस्सलिलावाहिद्वारं तदाऽस्रूवकारणत्वात् आसूव इत्याख्यायते तथा योगप्रणालिकया आत्मन कर्म आसूवतीति योगआसूव इति व्यपदेशमर्हति॥ आह कर्म द्विविध पुण्यं पापं चेति। तस्य किमविशेषेण योग आसूवणहेतुराहोस्विदस्ति कश्चित्प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥

यथा॰सरस् सलिल आ वाहि द्वारम्॥ =जैसे सरोवर (=सरस्) के पानीके चारों ओरसे (=आ) वहने वा पहुचनेका द्वार होता है

तद्-आसूव-कारणत्वात्॥ आसूव इति॰ =वह (द्वार) (जलके) आवनेको निमित्त होनेसे आसूव ऐसा

आख्यायते। तथा॰योग प्रणालिकया॥ =कहा जाताहै। तैसे (काय-वचन मनो) योगरूपी नाली वा द्वारकरि

आत्मनः॥ कर्म॥ आसूवति। इति॰योग॰ आसूव॰ =आत्माके कर्म आता है ऐसे योग आसूव

इति॰व्यपदेशम्॥ अर्हति। =इस (उपचार करके) नामको पाता है। (यहा कारणमे कार्यका उपचार है)।

आह। कर्म॥ द्विविधम्॥ पुण्यम्॥ पापम्॥ च॰ इति =(शिष्य) प्रश्न करता है कि कर्म पुन्य और (=च) पाप दो प्रकार है

तस्य॥ किम्॥ अविशेषेण॥ योग॥ आसूवणहेतु॥ =तिस (कर्म) के आवनेका कारण क्या योग सामान्य है

आहोस्वित्॰अस्ति। कश्चित्॰प्रतिविशेष॥ इति॰ =अथवा कुछ औरविशेष है ऐसें (प्रश्न होने पर)

अत्र॰उच्यते। =यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाता है कि

सूत्र—शुभ (१) पुण्यस्याशुभ पापस्य॥ =शुभ॰ (योग) पुण्यस्य (आसूव) भवति अशुभ॰ (योगः) पापस्य (आसूव) भवति

सूत्रार्थ शुभ॥ योग॰॥ पुण्यस्य॥ आसूव॰॥ =शुभ योग पुन्य का आसूव है

अशुभ॥ योग॥ पापस्य॥ आसूव॰॥ =अशुभयोग पापका आसूव है अर्थात् शुभयोग पुन्यके आसूवका कारण होता है और

अशुभयोग पापके आसूवका कारण होता है ॥ यहा पर भी कारणमें कार्यकी
सभावना करके शुभयोगको पुन्यरूप आसूव कहा है और अशुभयोगको पापरूप आसूव कहा है
यद्यपि शुभयोग और अशुभयोग पुन्य और पाप आसूवोंके यथासंख्य कारण हैं। भावार्थ-शुभयोग

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदाय में यह सूत्र दो सूत्रों में विभाजित इस प्रकार है। शुभ पुण्यस्य ॥ ३ ॥ अशुभ पापस्य ॥ ४ ॥

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथाजीवपादार्थो व्याख्यात इदानीं तदनन्तरोद्देशभागास्रवपदार्थो व्याख्येय इति । ततस्तत्प्र-

सिध्यर्थमिदमुच्यते— ॥ कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥ १ ॥ कायवाङ्मनसां कर्म कायवाङ्मनः

कर्म, योग इत्याख्यायते ॥ आत्मप्रदेशपरिस्पन्दो कायादयः शब्दा व्याख्यातार्थाः । कर्म क्रिया इत्यनर्थान्तरम् ॥

अथ*षष्ठः[1/1] अध्यायः[1/1]	= छठवां अध्याय प्रारम्भ (= अथ) है
अथ*अजीव-पदार्थः[1/1]।व्याख्यातः[1/1]।इदानीम्*	=प्रश्न(=अथ) अजीवपदार्थ(पांचवा अध्यायमें) वर्णन किया गया । अब=(इदानीं)
तद्-अनन्तर-उद्देश-भाक्[1/1]।आस्रव-पदार्थः[1/1]।व्याख्येयः[1/1]।इति*	=उस(अजीव)के अत्यन्तसमीप निर्देश वा कथन कियागया आस्रवपदार्थ कहना चाहिये
ततः*तद्-प्रसिद्धि-अर्थम्[1/1]।।इदम्[1/1]।।उच्यते।	=तहां उस(आस्रवपदार्थ)की व्याख्याके लिये यह (प्रथम सूत्रमें) कहाजाता है कि

(१)सूत्रम्—कायवाङ्मनः कर्म योगः ॥ १ ॥

सूत्रार्थः-काय-वाङ्-मनःकर्म[1/1]।।योगः[1/1]।	=काय वचन मनकी क्रिया, अथवा कायिक, वाचिक, मानसिक क्रिया है सो योग है =काय वचन मनकी क्रिया, अथवा काय वचन और मनके द्वारा आत्माके प्रदेशोंका सकंप होना सो योग है
वृत्त्यनुवादः-काय-आदयः[1/3]।शब्दाः[1/3]	=काय, वाक्, मन (वे) शब्द हैं
व्याख्यात-अर्थाः[1/3];कर्म[1/1]।।क्रिया[1/1]।।इति*	=जिनके अर्थ (पूर्वमें) कहेगये (देखो अध्याय ५ सूत्र१९) कर्म और क्रिया (शब्द)
अनर्थान्तरम्[1/1]।।	=पर्यायवाचक वा समानार्थक हैं अर्थात् इस सूत्रमें कर्मशब्दका अर्थ क्रिया है
काय-वाङ्मनसाम्[6/3]।।कर्म[1/1]।।कायवाङ्मनःकर्म[1/1]।।,	=कायवचन मनकी क्रिया सो काय-वाङ्मनः कर्म हुआ
आत्मप्रदेश-परिस्पंदः[1/1]।	=कायवचन मनकी क्रिया सो काय-वाङ्मनः कर्म हुआ =कायवचन मनकी क्रिया आत्माके प्रदेशोंका सकंप होना वा कांपना
योगः[1/1]इति*आख्यायते ॥	=(वह)योग ऐसा प्रसिद्ध है वा वर्णित है।

(१) यह सूत्र दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है (२) काययोग = कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलने रूप होना । वचन योग = वचनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलायमान होना । मनोयोग = मनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलना (सो मनोयोग है)॥

योग । स निमित्तभेदात्त्रिधा भिद्यते॥ काययोगो वाग्योगो मनोयोग इति॥ तद्यथा—वीर्यान्तराय-क्षयोपशमसद्भावे सति औदारिकादिसप्तविधकायवर्गणान्यतमालंबनापेक्षया आत्मप्रदेशपरिस्पन्द काययोग । शरीरनामकर्मोदयापादितवाग्वर्गणालम्बने सति वीर्यान्तरायमत्यक्षराद्यावरणक्षयोपशमापादिताभ्यन्तरवाग्लब्धिसान्निध्ये वाक्परिणामाभिमुखस्यात्मन प्रदेशपरिस्पन्दोवाग्योग। अभ्यन्तर-वीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमात्मकमनोलब्धिसन्निधानेवाह्यनिमित्तमनोवर्गणालम्बने च सति

योग है। । सः है। निमित्त भेदात् है। त्रिधा * भिद्यते	=(सो) योग है ॥ वह (योग) कारणकी विशेषतासे तीन प्रकार भेद कियागया है
काययोग: है। वाग्योग: है। मनोयोग है। इति * तद्यथा *	=काययोग, वचनयोग, मनोयोग इस प्रकार हैं जैसे
वीर्यान्तराय-क्षयोपशम-सद्भावे है। सति है। औदारिकादि-	=(आत्माके) वीर्यान्तरायकर्मके क्षयोपशमकी विद्यमानता होनेपर औदारिकादि
सप्त-	=सात(औदारिक,औदारिकमिश्र,वैक्रियिक,वैक्रियिकमिश्र,आहारक,आहारकमिश्र,कार्मण)
विध-कायवर्गणा अन्यतम आलम्बन-	=प्रकारकी कायवर्गणाओंमेंसे किसीएक(=अन्यतम)(कायवर्गणाके)अवलंबनकी
अपेक्षया है। आत्म प्रदेश परिस्पन्द: है।	=अपेक्षासे वा सम्बन्धकरि आत्माके प्रदेशोंका सकंप होना वा चलनेरूपहोना
काययोग है।	=सो काययोग है भावार्थ कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चलने रूपहोना ॥
शरीरनामकर्म उदय आपादित वाग्वर्गणा-	=शरीरनामा नामकर्मके उदयकरि उत्पन्न हुई (=आपादित) वचनवर्गणाके
आलम्बने है। सति है। वीर्या तराय मति अक्षरादि-	=अवलम्बन होनेपर(और)वीर्यान्तरायका अर मतिज्ञानावरणका तथा श्रुतअक्षरादि
आवरण क्षयोपशम आपादित अभ्यन्तर-वाक्-	=ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशमकरि प्राप्त हुई (=आपादित) अन्तरग वचनके
लब्धि सान्निध्ये है। ।। वाक्-परिणाम अभिमुखस्य है।	=बोलनेकेकी शक्तिकी निकटता होते वचनरूप परिणमनके सन्मुख
आत्मन: है। प्रदेश परिस्पन्द है। वाग्योग है।	=आत्माके प्रदेशोंका हलन चलन सो वचनयोगहै भावार्थ-वचनके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंका सकंप होना सो वाग्योग है
अभ्यन्तर-वीर्या तराय नोइन्द्रिय आवरण-	=अभ्य तर वीर्यान्तराय कर्मके और नोइन्द्रियावरण (नामक ज्ञानावर्णकर्म) के
क्षयोपशम-आत्मक-मनोलब्धि सन्निधाने है। ।।	=क्षयोपशमरूप मनोलब्धिके सामीप्य वा निकट होनेपर
वाह्यनिमित्त-मनोवर्गणा आलंबने है। च * सति है।	=और (=च) वाह्यकारण मनोवर्गणाके अवलंबन होने पर (=सति)

सयोगकेवलिनोऽयोगकेवलिनश्च सामान्योक्तसंख्याः। क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्ट्याद-योऽप्रमत्तान्ताः सामान्योक्त संख्याः। औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयताः पल्यो-पमासंख्येयभागप्रमिताः। प्रमत्ता प्रमत्तसंयताः संख्येयाः।

सयोगकेवलिनः १/३।	=सयोग केवली
अयोगकेवलिनः १/३। सामान्य-उक्त-	=अयोग केवली संक्षेप [प्रकरण] करि (पहले) कही हुई [गुणस्थानवत्]
संख्याः १/३।	=संख्यावाले हैं अर्थात् सयोग केवली ८९८५०२ और अवशेष प्रत्येकमें ५९८ जीव हैं।
क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ७/३। असंयतसम्यग्दृष्टि—	=वेदक सम्यक्त्ववालोंमें असंयत सम्यग्दृष्टि [चौथे गुणस्थानवर्ती]
आदयः १/३। अप्रमत्त-अन्ताः १/३। सामान्य—उक्त—	=से अप्रमत्तसंयमी [सातवां गुणस्थान] तक संक्षेपसे कथित गुणस्थानवत्
संख्याः १/३।	=संख्यावाले हैं अर्थात् क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वालोंकी गुणस्थानवत् उसी समय संख्या हो सक्ती है जब क्षायिक सम्यक्त्ववाले और उपशम सम्यक्त्ववाले इन गुणस्थानोंमें कोई समय ऐसा आ जाय कि एक भी न रहै क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व असंयत गुणस्थानसे अयोग गुणस्थान तक है और उपशम सम्यक्त्व असंयत गुणस्थानसे उपशान्त कषाय गुणस्थान तक है और असंयत गुणस्थानमें सात अरब, संयतासंयतमें तेरह करोड, प्रमत्त में ५९३९८२०६, अप्रमत्तमें २९६९९१०३ उत्कृष्ट जीव हो सकते हैं
औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ७/३। असंयतसम्यग्दृष्टि-	=उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें असंयमी सम्यग्दृष्टि [चतुर्थ गुणस्थानवर्ती]
संयतासंयताः १/३। पल्योपम—असंख्येय-भाग-प्रमिताः १/३।	=संयमासंयमी पल्यके असंख्यातवें भागके समान [उपम] परिमाण हैं
प्रमत्त-अप्रमत्तसंयताः १/३। संख्येयाः १/३।	=(उपशम सम्यक्त्ववालोंमें) प्रमत्त संयमी अप्रमत्तसंयमी संख्याते हैं

श्री १०८ पूज्यपाद स्वामी विरचिता

॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिः ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित शब्दशः हिंदी अनुवाद समेत

तृतीय खंड-छठे अध्याय से दशवां अध्याय तक, मूल्य ६)

समस्त ग्रन्थकी पृष्ठ संख्या १६०० से अधिक, श्लोक संख्या पूर्ण ग्रन्थकी लगभग ५०००० (पचास सहस्र)

अनुवादक और सम्पादक—जगरूप सहाय—एल एल० बी० वकील हाईकोर्ट

भूतपूर्व मुंसिफ (यू.पी.), डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट एन्ड सबोर्डीनेट जज (सी.पी.)

प्रकाशक—महेशचन्द्र जैन, द्वारा जगरूप सहाय वकील, श्री उमास्वामी आफिस, मेंनगंज एटा (संयुक्त प्रान्त)

प्रथम वार] मिती माघ कृष्णा १४ वीर संवत् २४५५ (विक्रम संवत् १९८५) समस्त ग्रन्थ का मूल्य २५)

केवल यह टायटिल पेज श्रीकृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, अवागढ, में छपा ।

इति व्याख्यायते ॥ स द्विविधोऽनादिरादिमांश्च। तत्रानादिर्धर्मादीनां गत्युपग्रहादिः सामान्यापेक्षया। स एवादिमांश्च भवति विशेषापेक्षया ॥४२॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां पंचमोऽध्यायः ॥

इति*व्याख्यायते T ॥ स १।१ द्वि-विधः १।१ अनादिः १।१ आदिमान् १।१ च* =ऐसे विवरण किया जाता है। वह(परिणाम) दो प्रकार अनादि और आदिमान्

तत्र*अनादिः १।१ सामान्य-अपेक्षया ३।१ धर्मादीनाम् ६।३ =तहां अविशेष अपेक्षासे अनादि (परिणाम) धर्मादिक द्रव्योंके

गति-उपग्रह-आदिः १।१ । =गति हेतुपना आदिक हैं (देखो इस अध्यायके सूत्र १७-१८-२२)

विशेष-अपेक्षया ३।१ सः १।१ एव* =और(=च विशेष अपेक्षाकरि वो (=स)ही = एव) अर्थात् अनादि परिणाम

आदिमान् १।१ च*भवति T ॥ =आदिमान्(=सादि)(परिणाम)होता है अर्थात् गति-स्थिति हेतुपनादि धर्मादिक द्रव्योंका अनादि परिणाम है। सो विशेषकी अपेक्षा बाह्य निमित्तसे परिणाम होता है तिससे वही अनादि परिणाम आदिमान् होता है क्योंकि पर्यायें उपजती है, और विनशती है तिनको आदि सहित कह सकते हैं। चार द्रव्य धर्म-अधर्म-आकाश काल का तो अनादि तथा आदिमान् दोनों परिणाम आगमगम्य हैं। और जीव पुद्गलद्रव्योंके अनादि परिणाम आगमगम्य हैं। किन्तु उनके आदिमान् परिणाम कथंचित् प्रत्यक्षगम्य भी हैं।

इति*तत्त्वार्थ-वृत्तौ ७।१ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां ७।१ पंचमः अध्यायः १।१ =ऐसे तत्त्वार्थके विवरणमें सर्वार्थसिद्धि नाम ग्रंथमें पांचवां अध्याय(पूर्ण) हुआ

इस सूत्रके पश्चात् श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में तथा 'भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थवृत्तिमें निम्नलिखित तीनसूत्र हमारे यहांके पाठसे अधिक है॥

अनादिरादिमांश्च (अनादिः आदिमान् च) ॥४२॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पृष्ठ० १४१, भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें पर्ण ४८५पर॥

अनादि आदिमान् च*तत्र*अनादिः =अनादि और (=च) आदिमान् (दो प्रकार का परिणाम) है। तहां अनादि (परिणाम)

अरूपिषु ७।३ धर्म-अधर्म-आकाश-जीवेषु ७।३ इति* =अरूपी द्रव्य) धर्म-अधर्म आकाश तथा जीव में होता है॥

रूपिष्वादिमान् ॥४३॥(=रूपिषु:आदिमान्) ॥ सभाष्य० तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पृष्ठ १४१ ॥भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका पर्ण ४८६ पर

रूपिषु ७।३ तु*द्रव्येषु ७।३ ॥ आदिमान् =और तु* रूपी द्रव्योंमें आदिमान् (परिणाम) होता है अर्थात् श्वेत कृष्ण नील आदि रूप वाले जो द्रव्य है उनमें आदिमान् (सादि) परिणाम होता है।

परिणाम १।१ अनेक-विधः १।१ (परिणामोऽनेकविधः।) =वह आदिमान् परिमाण अनेक प्रकार होता है (जैसे)

स्पर्श-परिणाम-आदि १।१ इति(स्पर्शपरिणामादिरिति) =स्पर्श परिणाम रसपरिणाम-और गंध परिणाम इत्यादि होते हैं॥

योगोपयोगौ जीवेषु ॥४४॥(=योगः उपयोगः च जीवेषु)। सभाष्य०तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पृष्ठ १४१ भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका पर्ण ४८७पर

अरूपी द्रव्योंमें अनादिपरिणाम कहा है सूत्र४२ अ०५ऊपर देखो उसका यह अपवाद वा विशेषवचन हैं कि

जीवेषु ७।३ अरूपिषु ७।३ अपि सत्सु ७।३ योग- =जीवों के अरूपी (द्रव्य) होने पर (=सत्सु) भी (=अपि) उनमें योग-

दर्शन तत्किं भवतोऽभिमतं नेत्याह—यद्यपि कथञ्चिद्व्यपदेशादिभेदहेतुत्वापेक्षया द्रव्यादन्ये, तथापि तदव्यतिरेकात्तत्परिणामाच्च नान्ये ॥ यद्येवं स उच्यतां कः परिणाम इति तन्निश्चयार्थमिदमुच्यते—

धर्मादीनि द्रव्याणि येनात्मना भवन्ति तद्भाव तत्त्वं परिणाम

दर्शनम्॥ तत्॥ किम्॥ (१)भवत: (२)अभिमतम्॥ =मत वा सिद्धान्त(दर्शन है। वह दर्शन वा मत) क्या आपके (अर्थात् स्याद्वादियोंके) मान्य है

न * इति * आह। यद्यपि * कथंचित् * व्यपदेश- =ऐसा नहीं (मानते समाधान करनेकेलिये) कहते हैं कि यद्यपि कभी संज्ञा (संख्या-लक्षण प्रयोजन)

आदि-भेद हेतुत्व-अपेक्षया॥ द्रव्यात्॥ (३)अन्ये॥, =आदिके भेदके कारणपनाकी अपेक्षाकरि (गुण) द्रव्यसे भिन्न हैं ॥

तथापि * (४)तद्-(६)अव्यतिरेकात्॥ च * तत्- =तौ भी उस (द्रव्य)के अभेदसे और (=च) उस(द्रव्य)के

परिणामात्॥ न * अन्ये॥ =परिणामसे गुण अन्य नहीं हैं भावार्थ ऐसा है कि यद्यपि(५)संज्ञा-संख्या लक्षण-विषयादिकरि गुणोंकै द्रव्यसे कथंचित् भेद है तौ भी वस्तुपनाकरि प्रदेशपनाकरि अभेद है क्योंकि ये गुण उस द्रव्यके ही परिणाम हैं ॥

यदि * एवम् * स: ॥ उच्यताम् =यदि इस प्रकार है तौ अर्थात् गुण द्रव्यके ही परिणाम हैं तो वह कहाजाय कि

क:॥ परिणाम: ॥ इति * तद्-निश्चय-अर्थम्॥ इदम्॥ =परिणाम क्या है। उस(परिणाम)के अवधारणके अर्थ यह (ब्यालीसवां सूत्र)

उच्यते। धर्मादीनि॥ द्रव्याणि॥ येन॥ =कहाजाता है कि धर्मादिक(छह) द्रव्य जिस जिस

आत्मना॥ भवन्ति। =स्वरूपकरि होती हैं(देखो अर्थ प्रकाशिका में इससूत्रकी भाषाटीका) अर्थात् परिणमती हैं (देखो, प जयचंदकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४९५, ४७६)

तद्भाव:॥ तत्त्वम्॥ परिणाम: ॥ =सो तद्भाव है(वही) तत्त्व है-वही स्वतत्त्व है वही निजतत्त्व है॥ वही परिणाम

(१) भवत: शब्द यहां पर आपके अथवा तुम्हारे के अर्थमें पुल्लिङ्ग एकवचन षष्ठी विभक्तिमें है सका है ॥ [illegible] धातुका भवत लट् वर्तमानकाल की क्रिया नहीं है ॥ [२] अभिमत = सम्मत, स्वीकृत, अंगीकृत मान्य पदार्थ [illegible]

(३)'अन्य' यहांपर सर्वनाम है और 'सर्व' शब्दकी भांति 'अन्य' पुल्लिंग सर्वनाम बहुवचन प्रथमा विभक्ति [illegible] सप्तमी एक वचन पुल्लिंग नहीं समझना चाहिये क्योंकि 'अन्य' शब्दकी भी सप्तमी विभक्ति 'सर्व' शब्दके सदृश अन्यस्मिन् है। [illegible] सर्वस्मिन्' है॥

(४) तथापि = तौ भी-तबभी तिसपरभी समानार्थक है॥ (५)संज्ञा संख्या आदिकी अपेक्षासे कथंचित् [illegible]

(६)सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें 'तद्व्यतिरेकात्' पाठ है, द्वितीयावृत्तिमें और तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें [illegible] इन चार प्रतियोंका पाठ शुद्ध है क्योंकि पहिले संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजनादिकी अपेक्षासे भेद कहा इसके पीछे अभेद कहा जैसाकि अनुवाद और भावार्थसे प्रगट है ॥

ते हि कादाचित्का इति ॥ असकृत्परिणामशब्द उक्तः । तस्य कोऽर्थ इति प्रश्ने उत्तरमाह—

॥ तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

अथवा गुणा द्रव्यादर्थान्तरभूता इति केषाञ्चिद्-

ते १/३ हि * कादाचित्काः १/३ इति * ॥ =क्योंकि (=हि) वे (पर्यायें) कभी कभी होने वाली (कादाचित्काः) होती हैं अर्थात् इस इकतालीसवां सूत्रमें द्रव्याश्रया (द्रव्यसे नित्य सम्बन्धरूप द्रव्यसूं तन्मय) विशेषणसे पर्यायोंको गुणपनेका निषेध होता है क्योंकि पर्यायें कदाचित् होकर विनशिजाती हैं कदाचित् अन्य अन्य रूप होजाती हैं

असकृत् * (१)परिणामशब्दः १/१-उक्तः १/१; तस्य ६/१ =परिणाम शब्द (सूत्रोंमें) पुनि पुनि कहा गया है, तिस (परिणाम शब्द) का

कः १/१ अर्थः १/१ इति * प्रश्ने ७/१ (२)उत्तरम् २/१ आह =क्या तात्पर्य्य वा आशय है ऐसे प्रश्न पर (आचार्य) उत्तर कहते हैं कि

सूत्रम्—(३)तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थः—तद्-भावः १/१ परिणामः १/१ =उस द्रव्य)का स्वभाव, निजभाव, स्वतत्त्व, वा निजतत्त्व है सो परिणाम है अर्थात् द्रव्य जिस स्वरूप करि (=येनात्मना) होतीहै(=भवति)सो तद्भाव है, वही परिणाम है, भावार्थ ऐसा है कि धर्मादिक छह द्रव्यें जिस स्वरूपकरि होती हैं (देखो सर्वार्थसिद्धि-वृत्ति पृष्ठ ३११ पंक्ति ६,७, जिस स्वरूपकरि परिणमती हैं देखो पं०जयचन्दजीकृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४७५ ४७६ उसको तद्भाव कहतेहैं। वही(=तद्भाव) परिणामहै॥

(४)अथवा * =(यह सूत्र परिणाम शब्द के अर्थ कहने के लिये है)अथवा (इसलिये है कि)

गुणाः १/३ द्रव्यात् ५/१ अर्थान्तरभूताः १/३ इति * केषाञ्चित् * =गुण द्रव्यसे भिन्न हैं ऐसा कितनोंका

(१)सूत्र जिनमें परिणाम शब्द लाये हैं(क) औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च अ०२ सू०१ (ख) नारका नित्या शुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदना विक्रियाः" अ०३ सूत्र ३ (ग) "वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य"॥अ०५सू०२२॥"बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च॥ अ०५ सूत्र ३७॥ तद्भाव परिणामः अ०५सूत्र४२ ॥(२)'ब्रू' दोकर्मक धातुसे 'आह' (=कहता है) बना है (देखो अध्याय १ पृष्ठ १७)" 'ब्रू'के साथ दो कर्म 'उत्तरम्' 'सूत्रम्' आये हैं। 'उत्तरम्' समाधानकेअर्थमें यहां पुल्लिंग है (देखो वैद्यकोश पृष्ठ १२५,५१६) (३)दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥(४)अथवा=पक्षान्तरमें,प्रकारान्तरमें ॥

एवमुभयलक्षणोपेता गुणा इति॥निर्गुणा इति विशेषणं द्व्यणुकादिनिवृत्त्यर्थम्॥ तान्यपि हि कारणभूतपरमाणुद्रव्याश्रयाणि गुणवन्ति तु तस्मान्निर्गुणा इति विशेषणात्तानि ' निवर्त्तितानि भवन्ति॥ननु पर्याया अपि घटसंस्थानादयो द्रव्याश्रया निर्गुणाश्च तेषामपि गुणत्वं प्राप्नोति॥ द्रव्याश्रया इति वचनान्नित्यं द्रव्यमाश्रित्य वर्तन्ते गुणा इति विशेषणत्वात्पर्यायाश्च [१]निवर्तिता भवन्ति ।

एवम्*उभय लक्षण उपेता ॥ =ऐसे दोनों (द्रव्यके आश्रय रहनेवाले और अन्य गुणोंकरि रहित) लक्षणों सहित हैं
गुणा ॥इति * निर्गुणा ॥इति*विशेषणम्॥ =वे गुण हैं (इससूत्रमें) "निर्गुणा " (=अर्थात् अन्यगुणोंकरि रहित) ऐसा विशेषण
द्वि अणुक-आदि निवृत्ति अर्थम्॥,हि* =दो आदि परमाणुके (स्कन्धके) निवारण वा दूर करनेके लिए हैं क्योंकि =हि)
तानि॥अपि * कारणभूत परमाणु- =वे (दोआदिपरमाणुओंके स्कन्ध) भी जिनके उत्पत्तिका निमित्त परमाणु है
द्रव्य आश्रयाणि॥गुणवन्ति॥तु * तस्मात्॥ =द्रव्यके आश्रय गुणवान् होजाते हैं ('गुणवत्'का गुणवन्ति॥ है)तिस कारणसे
निर्गुणा ॥इति * विशेषणात्॥ =निर्गुणा ऐसा गुणवाचक शब्द (इस सूत्रमें लाने)से(=विशेषणात्)
तानि॥(१)निवर्त्तितानि॥भवन्ति ॥ =वे (दो आदिपरमाणुओंके स्कन्ध गुणरूप होनेसे) निवृत्त होजाते हैं (=भवन्ति) अथवा छूटजाते हैं अर्थात् "द्रव्याश्रया गुणा "यदि ऐसा सूत्र होता तो दो आदि परमाणुके स्कन्ध जो द्रव्यके आश्रय हैं और द्रव्य हैं ये भी गुण हो जाते हैं

ननु * पर्याया ॥अपि * घट-संस्थान आदय ॥ =प्रश्न पर्यायें भी घटके आकार वा आकृति, आदिक
द्रव्यआश्रया ॥निर्गुणा॥च*तेषाम्॥अपि*गुणत्वम्॥ =द्रव्यके आश्रय हैं और गुणरहित हैं तिन (पर्यायों) के भी गुणपना
प्राप्नोति॥द्रव्याश्रया ॥इति * वचनात्॥नित्यम्* =प्राप्त होता है (उत्तर) "द्रव्याश्रया " वाक्यसे नित्य
द्रव्यम्॥आश्रित्य - वर्तन्ते॥गुणा ॥इति * =द्रव्यको आश्रयकरि वर्तते हैं वे गुण हैं (इस सूत्रमें द्रव्याश्रय) ऐसा
विशेषणत्वात्॥पर्याया ॥च * निवर्तिता ॥भवन्ति॥=विशेषण होनेसे पर्यायें भी (गुणरूपहोनेसे) निवर्तित होजाती हैं, अथवा पर्यायें भी गुणपना रहित वा वर्जित होजाती हैं ।।

(१) सर्वार्थसिद्धिके प्रथम संस्करणमें 'निर्वर्सितानि' और 'निर्वर्तिता' ये दोनों शब्द अशुद्ध हैं॥ दूसरे संस्करणमें और अन्य तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें 'निवर्त्तितानि' (=निवर्तितानि) और निवर्त्तिता (=निवर्तिता)शुद्ध हैं क्योंकि पहिले दोनों शब्द 'निर्वृत्ति'के जिसका अर्थ रचना है रूपान्तर हैं और पिछले दो शब्द निवृत्ति के जिसका अर्थ छोड़ना, निवारण करना, दूर करना है रूपान्तर हैं निर्वृत्तिका अर्थ निवृत्तिसे उलटा है॥ वे(दोआदि परमाणुओंके स्कन्ध गुणरूप होनेसे)निवृत्त होजाते हैं, पर्यायें भी गुणपना रहित होजाती हैं, इसअनुवादसे प्रगट है कि निवृत्ति'होनाचाहिये॥

कालाणुरनन्त इत्युपचर्यते । समयः पुनः परमनिरुद्धः कालांशस्तत्प्रचयविशेष आवलिकादिरवगन्तव्यः ॥ आह गुणपर्यायवद्द्रव्यमित्युक्तं तत्र के गुणा ? इत्यत्रोच्यते-

॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥

द्रव्यमाश्रयो येषां ते द्रव्याश्रयाः । निष्क्रान्ता गुणेभ्यो निर्गुणाः ।

काल-अणुः।अनन्तः।इति*उपचर्यतेT ।	=कालाणु अनन्त है ऐसा मानाजाता है अर्थात् अनन्त पर्यायोंके वर्तनाका कारण एक कालका अणु है तिस हेतुसे मुख्यकालके अनन्त समयपना वर्तता है ॥
समयः।पुनः*परम-निरुद्धः।काल-अंशः।	=बहुरि समय अत्यन्त सूक्ष्म (=परमनिरुद्ध) कालका अंश है
तत्प्रचयविशेषः।आवलिक-आदि-अवगन्तव्यः। ॥	=उस (समयके) समूह विशेष सो आवलिक आदिक जानने चाहिये ।
आहT गुण-पर्याय-वत्*द्रव्यम्।।।इति*उक्तम्।।।तत्र*	=(शिष्य) पूछता है कि "गुणपर्यायवद्द्रव्यम्" ऐसा (सूत्र)कहा गया तहां
के।गुणाः।इति*अत्र*उच्यतेT	=गुण क्या हैं ऐसे (जतावनेके लिये) यहां (उत्तरसूत्रमें) कहा जाता है कि

(१)सूत्रम्—द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थः—द्रव्य-आश्रयाः।	=जिनके रहनेके स्थान द्रव्य हैं अर्थात् जो विना द्रव्यके आश्रयके स्वतंत्र नहीं रह सकते हों द्रव्यसें तन्मय हों ॥
निर्गुणाः।	=और स्वयं अन्य गुणोंसे रहित हों अर्थात् उन गुणोंमें अन्य गुण न हों
गुणाः।	=वे गुण हैं संक्षेपतः भावार्थ ऐसा है कि जो द्रव्यसूं तन्मय हों और उन गुणोंमें अन्य गुण न हों जैसे-जीवके ज्ञान-दर्शन-चेतनत्व इत्यादिकगुणहैं और पुद्गलमें अचेनत्व रुप, रस, गन्ध,वर्ण, इत्यादिक गुण हैं
वृत्त्यनुवादः-द्रव्यम्।।।आश्रयः।येषाम्।ते।द्रव्य-आश्रयाः।;	=द्रव्य है आश्रय जिनका ते द्रव्याश्रया हैं अर्थात् जिनके रहनेके स्थान द्रव्य हों भावार्थ द्रव्यसूं तन्मय हों,एकमेक हों वेद्रव्यश्रया हैं
निष्क्रान्ताः।गुणेभ्यः।निर्गुणाः।	=नहीं घिरेहुए हैं (अन्य) गुणों करि वे निर्गुण हैं

(१) दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रकापाठ औरअर्थ एकसा है।द्रव्यमेषामाश्रय इति द्रव्याश्रयाः। नैषां गुणाः सन्तीति निर्गुणाः ॥

द्रव्यम् एषाम् आश्रयःइति द्रव्य-आश्रयाः	=जिनकाआधार द्रव्यहो अर्थात् जो द्रव्यमें स्वयम्रहतेहों । जिनकेरहनेका स्थान [illegible] द्रव्याश्रया है॥
न एषाम् गुणाःसन्ति इति निर्गुणाः	=नहींहै जिनके गुण विद्यामान् अर्थात जिनकेअथवा जिनमें गुण(गुणों)का अस्तित्व नहीं ऐसे निर्गुणा है ॥

॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥

साम्प्रतिकस्यैकसमयिकत्वेऽपि अतीता अनागताश्च समयाअनन्ता इति कृत्वा अनन्तसमय इत्युच्यते अथवा मुख्यस्यैव कालस्य प्रमाणावधारणार्थमिदमुच्यते ॥ अनन्तपर्यायवर्त्तना हेतुत्वादेकोऽपि

(१)सूत्रम्-(२)सो ऽनन्त समय ॥४०॥ =स (२) काल अनन्तसमय अस्ति॥४०॥

सूत्रार्थ स ।काल।अनन्तसमय ।अस्ति।	=वह काल अनन्त समयवाला है। अथवा वह काल अनन्त समयरूप है ॥ अर्थात् वर्तमान काल तो एक समय मात्र है किन्तु अतीत (भूत) और अनागत (भविष्यत्) काल के समय अनन्त हैं ॥
वृत्त्यनुवाद—साम्प्रतिकस्य।एक समयिकत्वे।	=वर्तमान (काल)का एक समय होने पर
अपि*अतीता ।अनागता ।च*समया ।अनन्ता।	=भी भूत और भविष्यत् समय अनन्त हैं।
इति*कृत्वा + अनन्तसमय ।इति*उच्यते ॥	=ऐसा करके अनन्त समय (=अनन्त समयवाला) ऐसा (सूत्र) कहा गया है ॥
अथवा*मुख्यस्य।एव*कालस्य।(३)प्रमाण	=अथवा मुख्य ही कालका परिमाण (मर्यादा इयत्ता)
अवधारण-अर्थम्।इदम्।उच्यते ॥	=निश्चय करनेके लिये यह (सूत्र) कहागया है (कि मुख्य कालका परिमाण सीमा मर्यादा इयत्ता अनन्त समय है)
अनन्त पर्यायवर्तना हेतुत्वात्।एक ।अपि*	=अनन्त पर्याय के वर्तन (पदार्थों के परणति में बाह्य सहकारिता) के निमित्तपनासे एक भी

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥

(२) 'तद्' का पुल्लिङ्ग एक वचन प्रथमा विभक्ति स है और इसके पश्चात् क्योंकि स्वर अ अनन्त शब्दका सूत्रमें आया है इससे विसर्ग रहा और उसका उकार होकर अ+उ मिलकर "सो" रूप होगया, पुनः ओ और ए के पश्चात् 'अ' ए अथवा ओ में गर्भित होजाताहै। और अ के स्थानमें ऽ ऐसा चिह्न विकल्प से कर देतेहैं, यह चिह्न सूत्रमें देखा विद्यमान है (अध्याय प्रथम पृष्ठ १०) ॥ अर्थ'स' के पश्चात् कालशब्द जो व्यञ्जनसे आरम्भ होता है लोप तथा (अष्टाध्यायी सूत्र ६ १ १३२) से विभक्ति प्रत्यय 'स' अर्थात् विसर्ग जाता रहा और ऊपर 'स काल' ऐसा लिखागया है ॥ (अध्याय १ पृष्ठ ४२)

(३) 'प्रमाणंहेतु मर्यादाशास्त्रयत्ताप्रमातृषु' ॥अमरकोश नानार्थवर्ग २३, श्लोक ५४ का प्रथमार्ध है ॥ प्रमाणका अर्थ (क) हेतु कारण,(ख)मर्यादा सीमा (ग) शास्त्र षड्दर्शन (घ) इयत्ता, प्रमाण, माप, परिच्छेद (=विशेषरूप से इयत्ताकरण) (ङ) प्रमाता, ज्ञाता, यहां पर मुख्य कालका परिमाण माप के अर्थ में है कि मुख्य काल कितना है ॥

ठिया हु एक्केक्के ॥ रयणाणं रासीविव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥ १ ॥ रूपादिगुणविरहादमूर्त्ताः ॥ वर्तनालक्षणस्यमुख्यस्यकालस्यप्रमाणमुक्तम् । परिणामादिगम्यस्यव्यहारकालस्यकिंप्रमाणमित्यतइदमुच्यते–

(१) ठिया[1/3] (२ हु* (३) एक्केक्के[1/3] (स्थिताः[1/3] हि* एकैके[1/3]) =एक एक (कालाणु) निश्चय करकें(=हु=हि)स्थित

रयणाणं[6/3] रासी[1/1] (४ विव* (रत्नानां[6/3] राशिः[1/1] इव*) = रत्नोंकी राशिके समान है

(५) ते[1/3] काल-अणू[1/3] असंख-दव्वाणि[1/3] ॥ ⎫ = वे कालके अणु असंख्यात द्रव्य हैं अर्थात् एकएक लोकाकाशके प्रदेशमें जो एकएक

ते[1/3] काल-अणवः[1/3] असंख्य-द्रव्याणि[1/3] ॥ ⎭ कालके अणु रत्नोंकी राशिके समान निश्चयकरके स्थित हैं, वे असंख्यात् द्रव्य है ॥

भावार्थ एक एकके क्रमसे लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं उतनेही प्रदेशोंमें निश्चय कालके असंख्य अणु रत्नोंकी राशिके समान भरेहुए हैं। रत्नोंके ढेरका उदाहरण देनेका अभिप्राय यह है कि जिनका ढेर एकत्र होनेपर भी उसमें प्रत्येक रत्न भिन्नभिन्न है उसी प्रकारसे कालके अणु पृथक् पृथक् एकके पश्चात् एक क्रमसे भरे हुये हैं। इसीलिये जितने लोकाकाशके प्रदेश हैं उतनेही कालद्रव्य गणनामें हैं ॥

रूप-आदि-गुण-विरहात्[5/1] अमूर्ताः[1/3] । = रूपादि गुणोंसे रहित (कालाणवः) अमूर्तीक हैं

वर्तना-लक्षणस्य[6/1] मुख्यस्य[6/1] कालस्य[6/1] प्रमाणम्[1/1] ॥ = (प्रश्न)वर्तना लक्षणवाले मुख्य कालका प्रमाण

उक्तम्[1/1] ॥ परिणाम-आदि-गम्यस्य[6/1] व्यवहार- = कहागया । परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्वकरि ज्ञात होनेवाले (ऐसे) व्यवहार

कालस्य[6/1] किम्[1/1] ॥ प्रमाणम्[1/1] ॥ इति* अतः* इदं[1/1] ॥ उच्यते = कालका क्या प्रमाण(वानिश्चयकरण)है इसलिये यह (अग्रिम सूत्र) कहाजाता है कि

(१) ठिया-स्थिताः प्राकृतमें विसर्ग नहीं है और भिन्न वर्गीय वर्णोंका (अक्षरोंका) संयोग नहीं होता भिन्न वर्गके पचम अक्षरका कहीं २ संयोग होता है। इसलिये ठिआ, ट्ठिया ऐसे पाठ हैं क्यों कि ट, ठ भिन्न वर्गके अक्षर नहीं है (२) हु (संस्कृत) हि=ही निश्चय करके। (३) एक्केक्के यह शब्द दो स्थानोंमें आया है ऊपर जिस प्रकार यह गाथा लिखी है उसमें इसको सर्व नाम मानाहै इसलिये 'सर्व' शब्दके सदृश एकैकस्मिन् पुंल्लिंग सप्तमी विभक्ति एक वचन पहिले शब्द 'एक्केक्के' की संस्कृत छाया लिखी है और द्वितीय एक्केक्के की "सर्व" शब्दके सदृश सर्वनाम संज्ञा मानकर 'एकैके' पुंल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहु वचनमें संस्कृत छाया दी है॥ जहां 'एक्केक्का' पाठ है वहां सर्वनाम नहीं मानाहै वहां प्रथमा है 'एकैकाः' संस्कृत छाया है

रासी-(३) यह शब्द प्राकृत शब्द 'रासि' का पुल्लिंग एकवचन प्रथमाविभक्ति है, जैसे-प्राकृत 'हरि' से हरीसंस्कृत छाया राशि है (४) विव विव, मिव, इव, तीन प्रकारके पाठ हैं मिव-पिव विव, व्व, विअ इवार्थे वा २-१८२ हेमचन्द्र आचार्यकृत प्राकृतव्याकरण । येछहप्रत्यय इव अर्थमेंविकल्पसे अर्थात् किसी के स्थानमेंकोई आते हैं इव न ता हेमचन्द्र आचार्यकृत प्राकृत व्याकरणमें मिला न शौरसेन्य अव्यय प्रकरणमें मिला। किन्तु 'द्रव्यसंग्रह' की २४वींगाथामें "काया इव बहुदेशा" इस वाक्य में आया है इससे जाना जाता है कि प्राकृत में 'इव' भी कहीं २ काममें लातेहैं (५) "ते 'कालाणू' असंख दव्वाणि" पांच प्रतियों में ऐसा पाठ है पं० मनोहरलाल जी और पं० खूबचन्द्र जी द्वारा संपादित गोम्मटसार में "असंख दव्वाणि के स्थानमें" 'मुणेयव्वा' है जिस की संस्कृत छाया 'मन्तव्या' है ध्यान रखना चाहिये पूज्यपादस्वामी, नेमिचन्द्र आचार्यसे पहिले हुए हैं जिनने गोम्मटसार, द्रव्यसंग्रह इत्यादि रचे हैं॥

चत्वारः औपशमिकाः सामान्योक्तसंख्याः । सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयो मिथ्यादृष्टयश्च सामान्योक्तसंख्याः ॥ (१३) संज्ञानुवादेन—संज्ञिषु मिथ्यादृष्ट्यादयः क्षीणकषायान्ताश्चक्षुर्दर्शनिवत्। असंज्ञिनो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः। तदुभयव्यपदेशरहिताः सामान्योक्तसंख्याः॥

चत्वारः ।१।	= चार (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय उपशांतकषाय)
औपशमिकाः।१। सामान्य उक्त संख्याः ।१।	= उपशम श्रेणीवाले संक्षेप [प्रकरण] करि कथित गुणस्थानवत् संख्यावाले है अर्थात् इन प्रत्येक आठवें—नवमें—दशवें—ग्यारहवें गुणस्थानमें २९९ जीव है।
सासादन सम्यग्दृष्टयः ।१। सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः ।१।	= सासादन सम्यग्दृष्टि, मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवर्ती
च मिथ्यादृष्टयः ।१। सामान्य—उक्त—संख्याः ।१।	= और मिथ्यादृष्टि संक्षेप [प्रकरणमें] कथित [गुणस्थानवत्] संख्यावाले हैं अर्थात् बावन करोड, एकसौ चार करोड और अनन्तानन्त क्रमसे हैं
संज्ञा—अनुवादेन ।३। संज्ञिषु ।७। मिथ्यादृष्टि आदय ।१।	= [१३] संज्ञाकी अपेक्षासे सैनियोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर
च क्षीणकषाय—अन्ताः ।१। चक्षुःदर्शनिवत् ॐ	= और क्षीणकषाय [बारहवें] गुणस्थानपर्यंत चक्षुर्दर्शनवालोंके समान संख्या है अर्थात् असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं
असंज्ञिनः ।१। मिथ्यादृष्टय ।१। अनन्तानन्ताः ।१।	= असैनी [मनरहित] मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं।
तद्—उभय—व्यपदेश—रहिताः ।१।	= उन (सैनी—असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित [सयोग और अयोग केवली]
सामान्य—उक्त—संख्याः ।१।	= संक्षेप [प्रकरणमें पहिले] कही हुई संख्यावाले हैं अर्थात् सयोगकेवली ८९८५०२ हैं और अयोगकेवली ५९८ हैं

एकद्रव्यत्वमस्य स्यात् । तस्मात्पृथगिह कालोद्देशः क्रियते॥ अनेकद्रव्यत्वेसति किमस्य प्रमाणं? । लोकाकाशस्य यावन्तः प्रदेशाः

एकद्रव्यत्वम्[१।१] (१) अस्य[६।१] स्यात्[T] =(यदिअधर्म और आकाश केमध्य में काल होता तो)एक द्रव्यपना इस(काल)के भी होजाता

तस्यात्[५।१] पृथक् * इह * काल-उद्देशः[१।१] क्रियते[T] =तिस (कारण) से न्यारा इस स्थानमें (=इह)कालका कथन कियागया है ॥

अनेकद्रव्यत्वे[७।१] सति[७।१] किम्[१।१] अस्य[६।१] प्रमाणम्[१।१] =अनेक द्रव्यपना होनेमें (=सति)इस (काल) का क्या प्रमाण है ?
अर्थात् काल को अनेक द्रव्य कहा है सो इसका क्या प्रमाण है ॥

लोक-आकाशस्य[६।१] यावन्तः[१।३] प्रदेशाः[१।३] =लोकाकाश के जितने प्रदेश है ।

(१) पृथक् ही यदि पूर्वोक्तकारणोंसे प्रथम सूत्रसे कहनाथा तो इतने अन्तरसे क्यों कहा? इस अध्यायका तीसरा सूत्रऐसा रचनेकि "कालोजीवाश्च वा जीवाः कालश्च इन दोनों विधिमें एक 'च'कम भी होजाता है क्योंकि जीवाश्च तीसराऔर कालश्च उनतालीसवां सूत्रोंमें दो चकारहैं यदि तीसरा सूत्र 'जीवाश्च' ही रचना था तो कालोऽपि इसको इस 'जीवाश्च' तीसरे सूत्रकी वार्तिक मान लेते अथवा'जीवाश्च'सूत्रके पश्चात् 'कालोऽपि'ऐसा भिन्न सूत्र करते तो चार सूत्रों में "द्रव्यव्यपदेशप्रकरण" भी समाप्त होजाता क्योंकि प्रथम सूत्रमें चारद्रव्य कहे दूसरे सूत्रमें धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गलकीसंज्ञा स्थापित की तीसरे में जीवों को भी द्रव्य नाम दिया ॥ चौथेमें वा 'जीवाश्च' ही सूत्रमें मिलाकर काल कहदेना योग्य था कि द्रव्य नामा विषय चार वा तीन सूत्रोंमें समाप्ति होजाता॥इन बातोंके उपरान्त चौथे, छठवें, और सातवें(अर्थात् नित्यावस्थितान्यरूपाणि ४॥ आआकाशादेक द्रव्याणि ॥ ६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥) सूत्रोंके अर्थ करनेमें कि काल द्रव्य सहित नित्य हैं अवस्थित हैं अरुपी हैं धर्म अधर्म-आकाश ये तीन एक एक द्रव्य हैं और जीव पुद्गल-काल अनेक द्रव्य हैं। धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं काल भी निष्क्रिय है खैंचातानी न करनी पडती और सुगमतासे (काल को जीव के समीप द्रव्य कहते तो) इन सूत्रों के अर्थ हो जाते ॥ सातवां सूत्र "निष्क्रिाणि च" का अर्थ मेरी समझ में चकारको समुच्चय अर्थमें लेनेसे यह अर्थ हो सक्ता हैकि धर्म-अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं चकार से काल भी (=च) (निष्क्रिय है)॥ कुछ वाक्य ज्यों के त्यों देतेहैं जो३,४,६,७.२२,वें सूत्रोंके अर्थ करनेमें प० जयचन्द्ररायजी ने 'सर्वार्थ सिद्धि वचनिका में, पं० सदासुखजीने 'अर्थ प्रकाशिका' में तथा 'तत्त्वार्थ सूत्र लघुटीका' में "काल" को द्रव्य ३९ वां सूत्र के अनुकूल मानकर अर्थ किया है(क)"जीव हैं ते भी द्रव्यहैं ऐसें व आगेकहेंगे जो काल द्रव्यको ताकरि सहित छहद्रव्यहैं। धर्म-अधर्म-आकाश, जीव, पुद्गल काल इन छहहुनि के द्रव्य नाम कहिये हैं ॥ जीवाश्च ॥३॥ के अर्थमें ये वाक्य हैं पृ० ४०८ (मुद्रित) (ख) तातैं अवस्थित कहे धर्मादिक छह द्रव्य हैं ॥ पृष्ट ४११ (नित्यावस्थितान्यरुपाणि इस सूत्र के अर्थ में) यह वाक्य है (ग) "बहुरि आगे कहियेगा काल द्रव्य सो भी क्रिया रहित है" यह वाक्य "निष्क्रियाणि च"के अर्थमें पृष्ट ४१६ परवचनिकामेंहै(घ)"आगे कहेंगे जो काल व पांचों अजीव द्रव्यहैं"॥"अर यहां कह्याजीव द्रव्यकालकरि सहित व छह द्रव्य जानने" ये वाक्य जीवाश्च सूत्रके अर्थमें कहे है अर्थ प्रकाशिका पृ० २८७(ङ)"व धर्मादिक द्रव्यहै ते अपनी छहकी संख्या कूंनाहींछोडेहैं पांच नहीं होय सात नहीं होय तातें अवस्थित हैं"॥"अर काल कैं एक प्रदेशोपणा है सो अपने प्रदेशनिकी संख्याको नहीं छोडे हैं तातैं अवस्थित हैं" ये वाक्य 'नित्यावस्थितान्यरुपाणि' इस चौथे, सूत्र के अर्थ में आये है (देखो अर्थ प्रकाशिका पृ-२८८) (च) "धर्म अधर्म आकाश इन तीन द्रव्यनि को एक एक कहने तैं ही जीव, पुद्गल काल इन तीन द्रव्यनि कै अनेक पना आया 'काल द्रव्य असंख्यातहैं"। ये वाक्य छठवां सूत्र के अर्थमें है, देखो

तावन्त कालाणवो निष्क्रिया एकैकाकाशप्रदेशे एकैकवृत्त्या लोक व्याप्य व्यवस्थिता ॥ उक्तं च–
लोगागासपदेसे एक्केक्के जे

तावन्त १कालअणुव १निष्क्रिया१एकैक आकाश- =तितनेकालकेअणु हलनचलनरूपक्रियारहित एकएक (लोक)आकाशके
प्रदेशे१एकैक वृत्त्या१लोक१व्याप्य – व्यवस्थिता १उक्तम्११च* =प्रदेशमें एकएक स्थितिकरि लोकको व्याप्त करि तिष्ठे हैं॥ कहाभीजावाहैकि
लोगागास पदेसे१एक्केक्के१जे१(=लोकाकाश प्रदेशे१एकैकस्मिन्१ये१)=लोकाकाशके प्रदेश एक एक में जो

(अर्थप्रकाशिका पृ २८८)(ङ) धर्म अधर्म आकाश तथा आगे कहेंगे काल द्रव्य ए च्यारो ही निष्क्रिय हैं यह ७वा सूत्रके अर्थ में है पृ २९०(झ)' वर्त्तना परिणाम क्रिया परत्व अप त्व ए काल द्रव्यकृत उपकार है"॥ सब द्रव्यनिके वर्तावनेवाला कालद्रव्य है यह वर्तना है सो कालद्रव्यका अस्तित्व जनावै है"॥ (अर्थ प्रकाशिका पृ० ३०८) ॥ " द्रव्यनिका पर्याय वर्त है ताका वर्तावने हारा काल द्रव्य है" ॥ "कालाणु द्रव्य है" ये सर्व ही वाक्य २२ वा सूत्र वर्तना इत्यादि के अर्थ में कहे हैं ॥ (यदि जीवाद्य के समीप काल द्रव्य कहते तो यह खेंचा तानी अर्थ में क्यों करने होती ॥ क्यों कि जब तक आचार्य काल द्रव्य को न उपदशें तबतक टीका कारोंको उसको काल द्रव्य के नाम से पुकारने का क्या अधिकार है)(झ) "जीव धर्म अधर्म आकाश काल ये पांच द्रव्य, नित्य कहिये अविनाशी हैं' चौथे सूत्र का अर्थ किया है। 'छह द्रव्यमें पुद्गल द्रव्यरूपी है"॥ यह 'रूपिणः पुद्गला 'के अर्थ में है(द्रव्य तो पांच ही अब तक कहे छठवा ये कहा से लाये। 'तिस वर्त्तनाको बाह्यनिमित्त काल द्रव्य है' ॥ समस्त काल द्रव्य का उपकार है में दो वाक्य वर्तना परिणाम इत्यादि बाईसवा सूत्र के अर्थ में है ॥ तत्त्वार्थ सूत्र लघु टीका सदासुखकृत पृष्ठ२१,२२,। अब पुन वाही प्रश्न है कि इन सर्व कठिनाइयों और उलझनों को सहन करते हुए उमास्वामी ने इस सूत्रको क्यों इतने अन्तर से पठन किया, इस अनुवादक की अल्प बुद्धि के अनुसार यह विशेष धारणा ज्ञात पड़ता है कि आचार्यों में परस्पर इस बात पर मत भेद था कि कितने ही काल का द्रव्य मानते थे और कितनेही इसका द्रव्य नहीं मानते थे इसी लिये तत्त्वार्थ सूत्रके कर्ताने द्रव्यव्यपदेश प्रकरण को छोड कर अर्थात् जीवाद्य के समीप इस सूत्र को न कह करि २२ वा सूत्र में कालका उपकार और द्रव्यों के सदृश बताया, पश्चात् २९वा सूत्रमें द्रव्य का लक्षण सत् कहा और'गुणपर्यायवत् द्रव्यम्(वा गुणपर्यायवद्द्रव्यम्)"अहतीसवां सूत्रमें विशेष रूपसे द्रव्य का लक्षण कहा अब द्रव्यके सर्व प्रकारके लक्षण स्थापित करलिये तत्पश्चात् "कालश्च यह सूत्र कहा और साधारण असाधारण द्रव्य के सर्व लक्षण कालमें घटित कियेकि अपना मत कि काल भी द्रव्य है, भले प्रकार से पुष्ट होजावे ॥ कालमें, द्रव्य लक्षणोंके सम्बन्धमें –जो सर्वार्थ सिद्धि संस्कृत वृत्ति पृष्ठ ३०७ पंक्ति ११ १२ और पृष्ठ ३०८ पंक्ति १–६ तक इनका अनुवाद पूर्व में करदिया है। (ञ) इस प्रश्न के पूर्वोक्त उत्तर को पुष्ट करने के लिये एक प्रमाण और देते हैं ॥ वह यह है कि श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका में इस सूत्र को "कालश्चेत्येके" ऐसे दिया है (=अर्थात् काल च इति एके)। भाष्यम् एकेत्वाचार्य्या व्याचक्षते कालोऽपि द्रव्यमिति =कोई एक आचार्य ऐसा कहते हैं कि काल भी द्रव्य है ॥ इन कारणों से ज्ञात है कि आचार्यों में काल के सम्बन्ध में मत भेद था कि कालका द्रव्य मानें या न मानें (१) कहीं २ लोयायास ऐसा पाठ है अर्थ दोनोंका एक ही है। (२) कहीं २ पर इक्केक ऐसा पाठ है ॥

किमर्थमयं कालः पृथगुच्यते? । यत्रैव धर्मादय उक्तास्तत्रैवायमपि वक्तव्यः । अजीवकाया धर्माधर्माकाशकालपुद्गला इति॥ नैवं शंक्यम् । तत्रोपदेशे सति कायत्वमस्य स्यात् । नेष्यते च मुख्योपचारप्रदेशप्रचयकल्पनाभावात् ॥ धर्मादीनां तावन्मुख्यप्रदेशप्रचय उक्तः असंख्येयाः प्रदेशा इत्येवमादिना ॥ अणोरप्येकप्रदेशस्य पूर्वोत्तरप्रज्ञापननयापेक्षयोपचारकल्पनयाप्रदेशप्रचय उक्तः ।

किम्[१/१]।।अर्थम्[१/१]।।अयम्[१/१]।कालः[१/१]।पृथक् * उच्यतेT ।	=प्रश्न)किसलिये यहकाल न्यारा(स्थानमें)कहागया है ।
यत्र * एव * धर्म-आदयः[१/३]।उक्ताः[१/३]।तत्र * एव *	=जहां ही धर्मादिक (द्रव्य) कहेगये थे तहां ही
अयम्[१/१]।अपि * वक्तव्यः[१/१]।;अजीवकायाः[१/३]।धर्म-	=यह (काल) भी कहाजाना योग्य था । 'अजीवकाया-धर्म-
अधर्म-आकाश-काल-पुद्गलाः[१/३]।इति * एवम् *	=अधर्म-आकाश-काल-पुद्गलाः'इस प्रकार (इसअध्यायका प्रथम सूत्र)होता तो(उत्तर)ऐसे
न * शंक्यम्[१/१]।।।;तत्र * उपदेशे[७/१]।सति[७/१]।	=संशय वा वितर्क नही होनी चाहिये, तहां(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें)उपदेश होनेपर
कायत्वम्[१/१]।।अस्य[६/१]।स्यात्T ।	=कायपना अर्थात् बहुत प्रदेशों का मिलनरूप शक्तिपना)इस(काल)के होजाता
च * मुख्य-उपचार-प्रदेश-	=और मुख्यपना तथा उपचारसे प्रदेशोंकी
प्रचय-कल्पना-अभावात्[५/१]।न * इष्यतेT	=समूह कल्पनाके अभावसे (कालके कायपना) नही देखा गया वा जाना गयाहै ॥
धर्मादीनाम्[६/३]।तावत् * मुख्य-प्रदेश-प्रचयः[१/१]।	=धर्मादिक (द्रव्यों) के तौ मुख्य प्रदेशोंका प्रचय
असंख्येयाः[१/३]।प्रदेशाः[१/३]।इत्येवम् * आदिना[३/१]।उक्तः[१/१]। ॥	=असंख्येयाः प्रदेशाः इत्येवं आदि(देखो इस अध्यायके सूत्र ८,९,१०)सूत्रोंकरि कहागया
अणोः[६/१]।अपि * एक-प्रदेशस्य[६/१]।पूर्व-उत्तर-प्रज्ञापन-	=अणु भी (=अपि)एक प्रदेशवालाहै(देखो सूत्र ११)पूर्व उत्तर भावजतावनेवाली=प्रज्ञापन
नय-अपेक्षया[३/१]।।उपचार-कल्पनया[३/१]।।	=नयके अपेक्षासे उपचार वा कल्पनाकरि अर्थात् पूर्व भाव यह कि पृथक् पृथक् अणु हैं उत्तर भाव यह कि तौभी उनमें भविष्यत् कालमें मिलन शक्ति है इन दोनों भावोंकी प्रकाशक वा जतावने वाली नयकी अपेक्षा करि, उपचार वा कल्पना से
प्रदेश-प्रचयः[१/१]।उक्तः[१/१]।	=प्रदेश समूहवाली कहीजाती है भावार्थ परमाणु (संघात से) स्कन्धरूप होजाती है । जिससे प्रदेशप्रचय कही गई है ।

कालस्य पुनर्द्वेधाऽपि प्रदेशप्रचयकल्पना नास्तीत्यकायत्वम् ॥ अपि च तत्र पाठे निष्क्रियाणि चेत्यत्र धर्मादीनामाकाशान्तानां निष्क्रियत्वे प्रतिपादिते इतरेषां जीवपुद्गलादीनां सक्रियत्वप्राप्तिवत्कालस्यापि सक्रियत्वं स्यात् ॥ अथाकाशात्प्राकाल उद्दिश्येत । तन्न । आ आकाशादेकद्रव्याणीति,

कालस्य॥पुनः*द्वेधा*अपि*प्रदेश प्रचय-	=बहुरि कालके दोनों प्रकार (मुख्यपनासे तथा उपचारपनासे भी प्रदेश समूहकी
कल्पना॥न*अस्ति॥इति*अकायत्वम्,*अपि*च*तत्र	=कल्पना नहीं है। इस प्रकार (काल द्रव्य के)अकायपना है। बहुरि तहां भी (इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें भी अजीवकाया धर्माधर्माकाशकालपुद्गलाःऐसे)
पाठे॥निष्क्रियाणि॥च*इति*अत्र*	=पठनमें भी (काल के कायपना ठहरनेके उपरान्त) " निष्क्रियाणि च " यहां इसी अध्याय के (इस सातवां सूत्र में)
धर्मादीनाम्॥आकाश-	=धर्मादिक (द्रव्यों से आकाश
अन्तानाम्॥निष्क्रियत्वे॥प्रतिपादिते॥	=पर्यन्तनिकें (अर्थात् धर्म-अधर्म आकाश-के)हलनचलनक्रियासेरहितपनाकेकथनकरनेमें
इतरेषाम्॥जीवपुद्गलादीनाम्॥सक्रियत्व-प्राप्तिवत्*	=अन्यशेष जीव पुद्गल (द्रव्य)निके क्रिया सहित पनाकी प्राप्तिके समान
कालस्य॥अपि*सक्रियत्वम्॥स्यात्	=कालकेंभी सक्रियपना होजाता(परन्तुकालनिष्क्रिय है ही) ॥
(१ अथ*आकाशात्॥प्राक्*	=यदि (अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गला सूत्र के)आकाश(शब्द)के पहिले
कालः॥(२ उद्दिश्येत	=काल उपदेश कियागया होता तो अर्थात् इस का प्रथम सूत्र अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गला के स्थानमें-अजीवकाया धर्माधर्माकालाकाशपुद्गला ऐसाकहते तो!
तत्॥न*आ*आकाशात्॥	=(उत्तर)सोनहीं क्योंकि छठा सूत्रकिइसअध्यायकेप्रथमसूत्रके)आकाश(शब्द)पर्यंत(=आ)
एकद्रव्याणि॥इति*	=एक एक द्रव्य है अर्थात्-धर्म अधर्म-आकाश एक एक द्रव्य हैं ऐसे

(१) अथ शब्दके सात अर्थोंसे अधिकहोने पर भी यहां 'यदि' के अर्थ में है (देखो वैद्य संस्कृतागल कोश पृष्ठ १८) (२) किसी किसी हस्तलिखित प्रतिमें 'उद्दिश्यत' पाठ है हमारी समझ में उद्दिश्येत' शब्द श्रेष्ठ है क्योंकि 'दिश्' तुदादि छठवां गणके धातुमें 'उद्' अव्यय जो क्रिया के साथ आनेपर उपसर्ग कहलाता है जोड़ने से 'उद्दिश्' बनता है इस में कर्मणि प्रधान का य चिन्ह जोडकरि उद्दिश्य' बना इसमें 'ते' अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी वर्तमान कालका चिन्ह लगाने से 'उद्दिश्यते' उपदेश किया गया है यह हुआ, ईत प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) एक वचन आत्मने पदी, विधिलिङ् क्रियाका 'उद्दिश्य शब्दमें लगाने से उद्दिश्य+ईत=उद्दिश्येत बना उद्दिश्यत=उपदेश किया गया होता इसी अर्थमें यहांपर है अर्थात् यदि काल प्रथम सूत्रके अधर्म और आकाश के मध्यमें उपदेश किया गया होता तो एक द्रव्यत्व कालके होता,परन्तु कालके असंख्याते अणु हैं ॥

ऽर्थान्तरभाव एषितव्यः ॥उक्तानां द्रव्याणां लक्षणनिर्देशात्तद्विषय एव द्रव्याध्यवसाये प्रसक्ते अनुक्त-द्रव्यसंसूचनार्थमिदमाह—

॥ कालश्च ॥ ३९ ॥

किम् ? द्रव्यमिति वाक्यशेषः ॥ कुतः? । तल्लक्षणोपेतत्वात् ॥ द्विविधं लक्षणमुक्तम् । "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" "गुणपर्यायवद्द्रव्यमिति"च॥तदुभयं लक्षणं कालस्य विद्यते । तद्यथा—ध्रौव्यं तावत्कालस्य स्वप्रत्ययं स्वभावव्यवस्थानात् ॥

अर्थान्तर- =(संज्ञा-संख्या-लक्षण-प्रयोजनादिककी अपेक्षा)न्यारा(=अर्थान्तर)
भावः।एषितव्यः।उक्तानाम्।।।द्रव्याणाम्।।।लक्षण-=पदार्थ (=भाव) मानना योग्य है । कथित द्रव्योंके लक्षण
निर्देशात्।तद्-विषयः।एव*द्रव्य-अध्यवसाये। =वर्णन करनेसे पहिले कहेहुये (=तद्) विषय ही (पांच)द्रव्योंके निश्चयका
प्रसक्ते।अनुक्त-द्रव्य-संसूचन-अर्थम्।।इदम्।।।आह।=प्रसंग होनेपर अकथित वा अगणित द्रव्यके सूचनाके लिये (अग्रिमसूत्रमें) कहतेहैं कि

(१)सूत्रम्— कालश्च ॥३९॥=कालः च (द्रव्यम्) अस्ति ॥३९॥

सूत्रार्थः—कालः।च*द्रव्यम्।।।अस्ति। =काल भी द्रव्य है
वृत्त्यनुवादः—किम्।।?द्रव्यम्।।।इति*वाक्य-शेषः। =क्या (कहा)। 'द्रव्यम्' ऐसा(शब्दइस सूत्रमें)वाक्यशेष है अर्थात् वह वाक्य जिस विना सूत्र अपूर्ण वा अधूरा रहता है वह (वाक्य इस सूत्रमें) मिला लैना चाहिये ॥
कुतः*?तत्(=तद्)लक्षण-उपेतत्वात्।।। ॥ =(वाक्य शेष) क्योंकर है क्योंकि उस (द्रव्य)के लक्षण (कालविषैं) प्राप्त है ॥
द्विविधम्।।।लक्षणम्।।।उक्तम्।।।उत्पाद-व्यय- =दो प्रकार (द्रव्यका) लक्षण कहागया, उत्पत्ति-नाश-
ध्रौव्य-युक्तं।।।सत्।।।गुण-पर्यायवत्*द्रव्यम्।।।इतिच=स्थिरता युक्त सत् है । और(=च) गुणवान्-पर्यायवान् द्रव्य है ॥
तद्-उभयं।।।लक्षणं कालस्य।विद्यतेतद्यथा*ध्रौव्यं।।।=(ऊपर सूत्रोंमें कहे हुये)सो दोनों लक्षण कालकें विद्यमान हैं जैसे स्थिर रहना ।
तावत्कालस्य।स्व-प्रत्ययम्।।।स्वभाव-व्यवस्थानात्। =तो(तावत्*)कालके स्वभावकरि व्यवस्थित होने (केनिमित्त)से स्वकारणकृत है अर्थात्

---

(१)हमारी आम्नायमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है। श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में और 'भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ' वृत्तिमें "कालश्चेत्ये के" सूत्र है। कालः च इति एके =काल भी (=च) (द्रव्य) है ऐसा केइक के मत में है अर्थात् केई आचार्य कहतेहै कि काल भी द्रव्य है। इस सूत्रके पाठसे जो श्वेताम्बरआम्नायमें है और उनके यहांके बियालीसवां, तेतालीसवां और चवालीसवां सूत्रोंसे- जो 'सभाष्यतत्त्वा-

व्ययोदयौ परप्रत्ययौ । अगुरुलघुगुणवृद्धिहान्यपेक्षया स्वप्रत्ययौ च ॥ तथा गुणा अपि कालस्य साधारणासाधारणरूपा सन्ति ॥ तत्रासाधारणो वर्तनाहेतुत्वं, साधारणाश्चाचेतनत्वामूर्तत्वसूक्ष्मत्वागुरुलघुत्वादय ॥(१)पर्यायाश्च व्ययोत्पादलक्षणा योज्या ॥तस्माद्द्विप्रकारलक्षणोपेतत्वादाकाशादिवत्कालस्य द्रव्यत्वं सिद्धम् ॥ तस्यास्तित्वलिङ्गं धर्मादिवद्व्याख्यातं,वर्तनालक्षण काल इति,

लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें एक एक कालाणु जो अमूर्त-अचेतन निष्क्रिय, स्पर्श रस-गंध वर्ण गुण रहित और जो मिलनेकी शक्ति रहित(=अकाय)है रत्नकी राशिके सदृश स्वभावसे ही स्थिरता लियेहुये तिष्ठीहुई है ॥

व्यय उदयौ।परप्रत्ययौ। । =व्यय उत्पाद (पर द्रव्यके परणमनिकी अपेक्षा) पर(निमित्त) कृत है ।

अगुरुलघुगुणवृद्धिहानिअपेक्षया।च*स्वप्रत्ययौ। । =और (=च)अगुरुलघुगुणकी वृद्धि हानिकी अपेक्षाकरि स्व कारणकृत है ॥

तथा*गुणा।अपि * कालस्य।साधारण- =और गुण भी काल के साधारण

असाधारणरूपा।सन्ति। ।तत्र*असाधारण। =और साधारण रूप है तहां(कालका) असाधारण (गुण)

वर्तना-हेतुत्वम्।,साधारणा।च*अचेतनत्व अमूर्तत्व =वर्तना(=पदार्थोंके पर्यायोंके पूराकरनेमें वा द्रव्योंके परणतिमें बाह्य सहकारिता) =हेतुपना और (=च साधारण (गुण)अचेतनपना, अमूर्तपना,

सूक्ष्मत्व-अगुरुलघुत्व-आदयः।(१)पर्यायाः।च * व्यय- =सूक्ष्मपना, अगुरुलघुपना, आदिकहै बहुरि पर्यायें व्यय,

उत्पाद-लक्षणा।योज्या। =उत्पाद लक्षणरूप जोडीली जाय अर्थात् उत्पादरूप और व्ययरूप पर्यायें होती हैंही ॥

तस्मात्।द्वि प्रकार- =तिससे दो प्रकारके (उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् और गुण पर्यायवत् द्रव्यम् ऐसे)

लक्षण-उपेतत्वात्।।आकाश-आदिवत्*कालस्य। =लक्षण युक्त पनासे आकाशादिकके सदृश कालके

द्रव्यत्वं।'सिद्धं।,तस्य।अस्तित्व-लिङ्गं।।धर्मादि-वत्=द्रव्यता सिद्ध है। तिस(काल)की विद्यमानता का चिन्ह धर्मादिक द्रव्योंके समान

व्याख्यातम्।।वर्तना-लक्षण।काल।इति*, =वर्णन किया गया था कि वर्तना लक्षणवाला काल है ।

र्थाधिगम सूत्रमें तथा 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका' में दिये हैं (यतीन सूत्र हमारे यहां नहीं हैं) जिन सूत्रोंका कथन हम इस अध्यायके अंतमें विशेषरूपसे करेंगे उनसे प्रगट है कि उनके यहां 'काल' को द्रव्य नहीं माना है देखो इस अध्यायके पृष्ठ १५६ १६० ॥

(१) द्रव्य गुण,पर्याय तीन कहगये और नय द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो हैं गुणार्थिकनय तीसरा क्यों नहीं कहागया ? (उत्तर)"जो पर्याय दोयप्रकारहैं एक सहवर्ती दूसरी क्रमवर्ती तहां सहवर्तीता गुण है,सो सहवर्ती पर्यायमें गुण जाणलेंणे तातैं गुणार्थिकनयभिन्न नहीं॥गुणपर्यायवान् ही द्रव्यकानिर्दोषलक्षणहै॥

तद्यथा-परस्परविलक्षणानां समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभावःपरस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ॥ यदिदं रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादयः । ततः समुदायोऽनर्थान्तरभूतः॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूतः समुदायः स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

तद्यथा*परस्पर-विलक्षणानाम्।	=जैसे(=तद्यथा)(किसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ([१]गुणपर्याय)निका
समुदाये।सति।समुदायस्य।एकानर्थान्तर-	=समुदाय होनेपर (=सति)(उस)समुदायके(गुण-पर्यायोंसे)अनर्थान्तर-
भावात्।	=भाव (मानने)सेअथवा अभेदपना मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुणपर्यायोंसे कदाचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)
सर्व-अभावः।	=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नही ठहरता है क्योंकि
परस्परतः*अर्थान्तरभूतत्वात्।;यत्।इदम्।	=(वे गुण-पर्याय)आपस में भिन्नभिन्न रूप हैं(दृष्टान्त देतेहैं)जो(पुद्गल का)यह
रूपम्।तस्मात्।अर्थान्तरभूताः।रस-आदयः।	=रूप(गुण)है तिस (रूपगुण)से(उसी पुद्गलद्रव्य के)रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
ततः * समुदायः।अर्थान्तरभूतः।;यः।च*	=तिस (रूपगुण) से समुदाय अभेदरूप है और जो(=यः अर्थात् वह समुदाय)
रसादिभ्यः।अर्थान्तरभूतात्।रूपात्।	=रसादिक से भेदरूप होने से वा भिन्न होने से, रूपसे
अनर्थान्तरभूतः।समुदायः।सः।कथं*रसादिभ्यः।	=समुदाय अभेदरूपहुआ सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे
अर्थान्तरभूतः।न*भवेत्।ततः*च*रूपमात्रम्।	=पृथक् नहोयअर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नहोई होय औरतिस(हेतु)से(=ततः)रूपमात्र

(१) गुणके विकारको पर्याय कहते हैं

- व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रदेशवत्व गुणका विकार
  - स्वभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् विना अन्य निमित्तके जो व्यंजन-पर्याय हो जैसे जीवकी सिद्धपर्याय
  - विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् दूसरे निमित्तसे जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी मनुष्य तिर्यंच, नारक, देव पर्याय
- अर्थ पर्याय अर्थात् प्रदेशवत्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार
  - स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात् विना दूसरे निमित्तके जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका केवल ज्ञान
  - विभाव अर्थपर्याय अर्थात् पर निमित्त से जो अर्थ-पर्याय हो जैसे जीवके राग, द्वेष, क्रोध, मानादिक

जीव पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं, धर्म अधर्म आकाश काल द्रव्योंके अगुरु लघुगुणमें षड्गुणी हानि वृद्धिरूप अर्थ पर्याय ही होती है

समुदाय प्रसक्त ॥ नचैकं रूपसमुदायो भवितुमर्हति। तत समुदायाभाव।समुदायाभावच्च तदनर्थान्तर-भूताना समुदायिनामप्यभाव इति सर्वाभाव।एवंरसादिष्वपि योज्यम्॥ तस्मात्समुदायमिच्छताकथंचिद्

	अर्थात् रसादिक से समुदाय भिन्नहोनेके कारणसे
समुदाय १।प्रसक्त १।न*च*	=समुदाय प्राप्तहुआ ॥ और न
एकम् १।रूपम् १।समुदाय १।भवितुम् २।अर्हति।	=एक रूप(मात्र) समुदाय हो सकता है, वा होनेके योग्य है अर्थात् समुदायतो वहुतोंको कहतेहै और रूपगुण एकही हुवा इसलिये केवल रूपको समुदाय नहींकहसकते
१४६ तत *समुदाय अभाव १।समुदाय अभावात् ५।च*	=तिस कारणसे समुदायका अभाव हुआ और (=च)समुदायकी अविद्यमानतासे
तद् अनर्थान्तरभूतानाम् ६।समुदायिनाम् ६।अपि*	=उस(समुदाय)के अभेदरूप समुदायियोंका भी (अर्थात् वह जिस में समुदाय रहेउनकाभी)
अभाव १।इति*सर्व अभाव १।	=अभाव हुआ इस प्रकार समस्त का अभाव हुआ (कुछभी न रहा)
एवम*रसादिषु ७।अपि*योज्यम् १।॥	=इस प्रकार(द्रव्य के गुण)रसादिकमें भी लगाना चाहिये भावार्थ जैसे यह रस गुण है तिस(रस) से भिन्न भिन्न रूप-गंध-स्पर्श आदिक हैं और रस गुण

को समुदाय से अभेदरूप माना है। इस लिये समुदाय रूप-गंध स्पर्श आदिकमें न्यारा न्यारा (भेदरूप) हुआ,तब एकरस(मात्र गुण) समुदाय ठहरा सो समुदाय नहीं हो सक्ता क्यों कि समुदाय तो वहुतोंका होता है। रसतो एकही है। उसको समुदाय क्यों कहना चाहिये इसप्रकार समुदायका अभाव आया और समुदाय (अपने) समुदायियों से भिन्न नहीं हो सक्ते हैं। तिन समुदायियोंका भी अभाव हुआ इस प्रकार समुदाय समुदायी दोनों के अभाव होने से समस्तका अभाव हुआ॥

तस्मात् ५।समुदायम् २।(१ इच्छता ३।(२ कथंचित्*	=तिससे समुदायकी इच्छा करनेवालेकरि (गुण-पर्यायोंके समुदायरूपद्रव्यको) कथंचित्

(१) इच्छत् यह शब्द हल त पुल्लिङ्ग है इसकी तृतीया विभक्ति त् में आ लगाने से बनती है॥ जैसे गच्छत्"की गच्छता, तैसे इच्छत्'की इच्छता'॥

(२) 'जैसे मृत्तिका नाम द्रव्य है। तिसके घटादिक पर्याय हैं॥ सो मृत्तिकाकै अर घटादिककै कथंचित् संज्ञा या नामकरि भेद है। याकू मृत्तिका कहिये॥ याकू घट कहिये। अर संख्या करि भेद है मृत्तिका का पिंड एक था ताके घट पांच बणिगये तातें संख्या करि करि भी भेद है। बहुरि मृत्तिका का लक्षण तो पिंडादिक रूप अन्य है। अर घटका लक्षण कुंभ ग्रीवा आकारादिपणा भिन्न हैं बहुरि मृत्तिकाका प्रयोजन तो लेपन हस्त धावनादिक अन्य है और घट का जल धारणादि प्रयोजन अन्य है।ऐसे द्रव्यकै और पर्यायोंकै संज्ञा, संख्या, लक्षण प्रयोजनादि करि कथंचित् भेद होते भी वस्तुपणा करि भेद नहीं है वहीं एक मृत्तिका है' ॥ देखो अर्थप्रकाशिका ॥ १४६

गुणइदि दव्वविहाणं दव्वविकारो हि पज्जवो भणिदो । तेहि अणूणं दव्वं अजुदपसिद्धं हवे णिच्चं इति एतदुक्तं भवति-द्रव्यं द्रव्यान्तराद्येन विशिष्यते स गुणः । तेन हि तद्द्रव्यं विधीयते । असति तस्मिन् द्रव्यसंकरप्रसंगः स्यात् ॥ तद्यथा-जीवः पुद्गलादिभ्यो ज्ञानादिभिर्गुणैर्विशिष्यते पुद्गलादयश्च रूपादिभिः । ततश्चाविशेषे संकरः स्यात् ॥

१४२ (१) गुणो[१/१] इदि*दव्वविहाणं[१/१]।।(गुणः[१/१] इति*द्रव्यविधानम्[१/१]।।)=गुण ऐसा द्रव्यका विधान है अर्थात् गुणका समुदाय सो द्रव्य है

दव्वविकारो[१/१] हि (२) पज्जवो[१/१] भणिदो[१/१] (द्रव्य-विकारः[१/१] हि*पर्यायः[१/१] भणितः[१/१]) =द्रव्यके विकारही(=हि, वा क्रमपरिणामही पर्याय कहीजाती है अर्थात् द्रव्यका क्रमरूपसे एक अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थारूप होना सो पर्यायकहीजाती है

(३) तेहि[५/३] अणूणं[१/१]।।दव्वं[१/१]।।(तेभ्यः[५/३] अन्यूनम्[१/१]।।द्रव्यम्[१/१]।।) =तिन(गुण तथा पर्यायों)करि सहित द्रव्य है

अजुदपसिद्धं[१/१]।।हवे। णिच्चं[१/१]।।(अयुतप्रसिद्धं[१/१]।।भवेत्। नित्यम्[१/१]।।)=अयुत प्रसिद्ध अर्थात् संयोगरूप नहीं है तदात्मक स्वरूप है(और)नित्य है।। (द्रव्य अपने विशेष लक्षणको कदापि नही छोड़तीहै सारांश गुणपर्यायोंकरि सहित द्रव्य है तदात्मक स्वरूप है कभी विशेष लक्षणको नहीं छोड़ती है)

इति*एतत्[१/१]।।उक्तम्[१/१]।।भवति, द्रव्यम्[१/१]।। =इस प्रकार यह कथन वा अर्थ होता है कि (एक)द्रव्य

द्रव्यान्तरात्[५/१]।।येन[३/१] विशिष्यते। =अन्यद्रव्यसे जिसकरि विशेषित कीजातीहै अर्थात् विशेषरूप होकर भिन्न दीखतीहै

सः[१/१] गुणः[१/१] तेन[३/१] हि*तद्[१/१]।।द्रव्यम्[१/१]।।विधीयते। =वह गुण है । तिस(गुण)करिही वहद्रव्यविधान कीजाती है वा व्यवस्थित कीजाती है

असति[७/१] तस्मिन्[७/१] द्रव्य-संकर-प्रसंगः[१/१] स्यात्। =तिस(गुण)के न होनेपर(=असति द्रव्यके पलटने तथा 'एकता'का प्रसंग होजाय

तद्यथा-जीव-पुद्गलादिभ्यः[५/३] ज्ञानादिभिः[३/३] गुणैः[३/३] =जैसे जीवद्रव्य पुद्गलादिक(द्रव्यों)से ज्ञानादिक गुणोंकरि

विशिष्यते। पुद्गलादयः[१/३] च*रूपादिभिः[३/३] =न्यारा दीखताहै और पुद्गलादिकरूपादि (गुणों)करि(जीवसेन्यारे जानेजातेहैं

ततः*च*अविशेषे[७/१] =और (ज्ञानादि और रूपादिक गुणोंके) विशेषनहोनेमें तौ(=ततः)(एक द्रव्य दूसरेमें

संकरः[१/१] स्यात्। =पलटजायअर्थात् जो जीवद्रव्य ज्ञानादिकगुणोंकरिऔरपुद्गलद्रव्यरूपादि गुणोंकरि १४३

(१) प्राकृतमें 'गुणो' नकि'गुण'गुणः' प्रथमाविभक्ति एकवचन पुल्लिंग 'रामो' शब्दके सदृश है ॥ (प्राकृत सुबन्त कौमुदी पृष्ठ १७२)

(२) हि=निश्चये, वितर्के, सम्भावने, निश्चये च (प्राकृत व्याकरण, हृषिकेषकृत पृष्ठ १३३) यहां पर निश्चय करके ही अर्थमें है।

(३) तेहि=तेभ्य, दकारान्तः पुल्लिंग तद् शब्दको पचमी विभक्ति बहुवचन है (प्राकृत सुबन्तकौमुदी पृष्ठ १८३)

तत सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा । पुद्गलादीनां च रूपादय ॥तेषा विकारा विशेषात्मना भिद्यमाना पर्यायाः ॥ घटज्ञान पटज्ञान क्रोधो मानो गधो वर्णस्तीव्रो मद इत्येवमादय । तेभ्योऽन्यत्वं कथंचिदापद्यमान समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायोऽनर्थांतरभूत एव स्यात् सर्वाभाव स्यात् ॥

एक दूसरेसे भिन्न भिन्न न जाने जावें तो पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें पलटजाय या एक होजाय और जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्रव्यका दूसरेद्रव्यमें पलटाव होजावे, पूर्वोक्त विशेष गुणोंके अभाव होनेपर जीव पुद्गलमें पलटजावे और पुद्गलद्रव्य पुद्गलही रहे तो एकता होवे और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें परिवर्तित होजावे और जीवद्रव्य जीवही रहे तो दोनों द्रव्योंमें एकता ठहरे।

तत *सामान्य अपेक्षया॥'अन्वयिन ॥'ज्ञान- =तहां सामान्य अपेक्षासे नित्यसाथरहनेवाले या सर्वकालरहनेवाले(=अन्वयिन)ज्ञान

आदय ॥'जीवस्य॥'गुणा ,॥'पुद्गल आदीनाम्॥'च* =आदिक जीवके गुण हैं और पुद्गलादिकोंके(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी)

रूप आदय ॥,तेषाम्॥'विकारा ॥' =रूपादिक(गुण)हैं,तिन(जीव पुद्गलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न छोडकर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें परिवर्तन

विशेष-आत्मना॥'भिद्यमाना ॥'पर्याया ॥' ॥घटज्ञानम्॥'=विशेष स्वरूपकरिके भेदरूप हुए वे पर्याय हैं (जैसे)घडेका ज्ञान

पटज्ञानम्॥'''क्रोध ॥'मान.॥'गन्ध.॥'वर्ण ॥'तीव्र ॥' =कपडेका ज्ञान,क्रोध,मान,गंध,वर्ण,तीव्र

मद ॥'इत्येवम्*आदय॥' =मद इत्येवं आदि(जीव और पुद्गलोंकी पर्यायें)हैं अर्थात् घडेका ज्ञान कपडेका ज्ञान, क्रोध(रिस), अहंकार इत्यादि जीवके पर्याय हैं और गंध रूप-तीव्र-मद इत्यादिक पुद्गलके पर्याय हैं

तेभ्य ॥'अन्यत्वम्॥'''कथंचित्*आपद्यमान ॥' =तिन(गुण पर्यायों)से कथंचित् अन्यपनाको प्राप्त होता हुआ

समुदाय ॥'द्रव्य व्यपदेश भाक्॥' =समुदाय द्रव्यनामका प्राप्तकरनेवाला(=भाक्)है अर्थात् गुण और पर्यायें द्रव्यसे अभेद रूप हैं द्रव्यसे भिन्न नहीं है (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ २४५)गुण-पर्यायोंमें और समुदायमें कथंचित् भेद माननेसे कथंचित् अभेद माननेसे द्रव्यनामकी सिद्धि होतीहै(संस्कृतसर्वार्थसिद्धि २६२) १४५

यदि*हि*सर्वथा*समुदाय ॥' अनर्थान्तरभूत ॥' =यदि सर्वप्रकारसही(=हि)समुदाय(उनगुणपर्यायोंसे)अभेदरूप(अनर्थान्तरभूत)

एव*स्यात्।सर्व-अभाव.॥'स्यात्T =ही हो तो सर्वका अभाव होजाय अर्थात् यदि समुदायमें और गुणपर्याय (समुदायी)में अनन्यपना सर्वप्रकार से हो तो समस्तकी अविद्यमानता ठहरे या किसीका भी अस्तित्व न ठहरे

(१४) आहारानुवादेन-आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादयः सयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः। अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयः सामान्योक्तसंख्याः। सयोगकेवलिनः संख्येयाः। अयोगकेवलिनः सामान्योक्तसंख्याः। संख्या निर्णीता॥

आहार-अनुवादेन ३। आहारकेषु ७। मिथ्यादृष्टि- आदयः १। सयोगकेवलि-अन्ताः १। सामान्य-उक्त संख्याः १। अनाहारकेषु ७। मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टयः १ सामान्य-उक्त-संख्याः १। = [१४] आहारकी विवक्षासे आहारकनिविषैं मिथ्यादृष्टि से सयोगकेवली तक सामान्य (प्रसंगमें) कथित [गुणस्थानवत्] संख्यावाले हैं। आहारकरहितोंमें मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टि असंयमी सम्यग्दृष्टि संक्षेप (प्रकरणमें) कथित [गुणस्थानवत्] गिनती वाले हैं। भावार्थ-मिथ्यादृष्टि आहारक और अनाहारक अनन्तानन्त हैं। सासादन सम्यग्दृष्टि अनाहारक और आहारक बावन करोड हैं अविरत सम्यग्दृष्टि आहारक और अनाहारक सातसौ करोड़ हैं। सयोगकेवली अनाहारक (जो केवल समुद्घात अवस्थामें ही अनाहारक होते हैं) और आहारक ८९८५०२ तक हो सकते हैं।

सयोगकेवलिनः १। संख्येयाः १। अयोगकेवलिनः १। = [अनाहारक] सयोगकेवली संख्याते हैं। अयोगकेवली (जो सदैव अनाहारक होते हैं)

सामान्य-उक्त-संख्याः १। = सामान्य (प्रकरणमें) कथित [गुणस्थानवत्) संख्यावाले हैं अर्थात् ५९८ हैं। (स्मरण रहै कि जीवकी आहारक अवस्था प्रथमसे तेरहवें गुणस्थानों तक है। अनाहारक प्रथम, दूसरे, चौथे, पांचवे, छठे, समुद्घात अवस्थाको प्राप्त तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानोंमें है)

संख्या १। निर्णीता १। = (इसप्रकार) गणना (अनुयोग वा प्ररूपणा) निश्चित हुई [कह दी गई]

गुणाश्च पर्यायाश्च गुणपर्याया तेऽस्य संतीतिगुणपर्यायवद्द्रव्यम्॥ अत्र मतोरुत्पत्तावुक्त एव समाधि। कथंचित् भेदोपपत्तेरिति। केगुणा केपर्याया। अन्वयिनो गुणा व्यतिरेकिण पर्याया। उभयैरुपेतंद्रव्यमिति। उक्तंच

वृत्त्यनुवाद —गुणा[१।३] च*पर्याया[१।३] च गुण-पर्याया[१।३] =बहुरि(=च) गुणहैंऔर(=च)पर्यायें हैं, 'गुणपर्याया' ऐसा वाक्य (द्वंद्वसमासमें) है

ते[१।३] अस्य[६।१] सन्ति[१] इति*गुणपर्यायवत्*द्रव्यम्[१।१]॥ =वे (गुण-पर्याय)जिसके है ऐसा 'गुण पर्यायवत् द्रव्यम्' सूत्र हुआ।

अत्र*(१)मतो[६।१] उत्पत्तौ[७।१] उक्त[१।१] एव*समाधिः[१।१] =यहां मतुप् (मत्=वत्) प्रत्ययकी उत्पत्ति(विषय)में(पूर्वे)कथित वा कहाहुआ ही समाधान है

कथंचित्*भेद-उपपत्ते[५।१]॥इति* =कथंचित्भेदकी युक्ति वा साधन(=उपपत्ते)से(मतुप् प्रत्ययबनै)एसाहैअर्थात् जिस वस्तुके (प्रकाशक शब्दके)साथ मतुप् (मत्=वत्)प्रत्यय लगायाजाताहै तो कभी तो भेदपनासेएक वस्तुको दूसरी वस्तुसे भिन्न दिखाना होता हैं और कथंचित् अभेद विवक्षासे पृथक् न जनावनेके लियेभी(मतुप् प्रत्यय) लाते है। जैसे 'दण्डवान् देवदत्त' यहांपर देवदत्त मनुष्य है सो अन्य वस्तु है और दण्ड अन्य वस्तु है, भेद विवक्षामें मतुप्(प्रत्यय)है। 'सारवान् स्तम्भ'में स्तम्भसे सार पृथक् नही। स्तम्भ और सार(=लोहा)अथवा वह वस्तु जिसका स्त म्भ हो पृथक् पृथक् नही एकही है तौभी मतुप् प्रत्यय अभेदपनाके अर्थमें वा एकपनाके अर्थमें लाये है तैसे ही द्रव्य है सो अपमें 'गुणपर्यायोंसे भिन्नभिन्न नहीहै'। "गुणपर्याय विनाद्रव्य नहीं' प० सदासुखजीकृता तत्त्वार्थसूत्र(लघु)टीका पृष्ठ २४१।

के[१।३] गुणा[१।३] के[१।३] पर्याया[१।३] अन्वयिन[१।३] गुणा[१।३] =गुण क्या है? पर्यायें क्या है? अन्वयी अथवा नित्य साथ रहनेवाले गुण हैं अर्थात् जो द्रव्यसे किसी काल और किसी अवस्थामें पृथक् नही होते है वे गुण, सदैव (नित्ये) जोडरूप साथही रहते है। वे सर्वगुण कदापि नही पलटतेहैं। उन गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है वे द्रव्यमें एकमेकत मई हैं

व्यतिरेकिण[१।३] पर्याया[१।३] =पलटनेवाली वा भिन्न भिन्न रूपमें होनेवाली पर्यायें है अर्थात् द्रव्यकी अवस्थायें सर्व समयपर क्रमवर्ती होंय पलटती रहतीहैअथवा पर्यायेंहै वे द्रव्यके विकार(=क्रमपरिणाम)

उभयै[३।३] उपेतम्[१।१]॥ द्रव्यम्[१।१]॥ इति*उक्तम्[१।१]॥ च* =दोनों(गुणों तथा पर्यायों)करि युक्त(=उपेत)द्रव्य है कहाभी गया है कि

(१) वत् जब विशेषण है तब त्रिलिंगी होता है वती स्त्रीलिंगमें इसका रूप है। यह एक प्रत्यय है जो सज्ञाके पश्चात् सब ध अर्थ में अर्थात् 'वाला स्युक्त,सहित, युक्त सपन्न इन अर्थो का द्योतक होताहै जैसे विद्यावत्(=विद्यावाला,विद्यासयुक्त विद्यासहित,विद्यायुक्त,विद्यासपन्न)॥यदि भूतकृद् तमें जोडाजाय तो वर्तमान कृद न्त बनजाता है जैसे'कृत से कृतवत् (काम करचुकनेवाला)॥ दूसरे जब अव्यय होता है तब सदृश वा समान अर्थ में आताहै जैसे रत्नवत् (रत्नके सदृश वा समान)सुवर्णवत् सोने के सदृश सोना नहीं बरन् सोने कासा)हमको यहां द्वितीय अर्थ से प्रयाजन नहीं है अब प्रश्न यह है कि मतुप् (=मत्)केस्थानमें वत् कैसे होजाताहै अर्थात् 'म का व'में कैसे परिवर्तन होजाता है॥ अष्टाध्यायी ८-२-९ सूत्रसगणपठित यवादि बीस शब्दोंका छोडकर यदि किसी अगके अन्तमें, उपान्त्य(या उपधामें,म् अ आ, हो तो मतुप(मत्)के म् के स्थानमें व् हो॥ यहांपर 'मत्'के स्थानमें वत् होकर गुण पर्यायवत्द्रव्यम् ऐसा सूत्र हुआ॥ इस अध्याय के पृष्ठ ८९,९० की टिप्पणीमें हमने वत्को केवल सदृशके अर्थमें माना है। पृष्ठ ८९के अंतिम शब्द 'अशुद्ध है' के स्थानमें श्रेष्ठ नहीं है पढ़ना चाहिये, और पृष्ठ ९० के अंतिम वाक्य 'शुद्ध है' के स्थानमें 'श्रष्ट है'

उक्तेन विधिना बंधे पुनः सति ज्ञानावरणादीनां कर्मणां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिस्थितिरुपपन्ना भवतिउत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति द्रव्यलक्षणमुक्तं पुनरपरेण प्रकारेण द्रव्यलक्षणप्रतिपादनार्थमाह-

॥ गुणपर्यायवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

पुनः*उक्तेन३।विधिना३।बन्धे७।सति७। =बहुरि कथित रीतिकरि बन्धहोनेपरअर्थात् अल्पअधिकके एकमेकरूप होतेहुए बन्ध होनेपर तीसरी अवस्थाके उपादान करनेपर

ज्ञानावरण-आदीनाम्६।।।कर्मणाम्६।।।त्रिंशत्- =ज्ञानावरणादिक कर्मोंकी तीस

सागरोपम-कोटी-कोट्यादि-स्थितिः१।।उपपन्ना१।।भवति। =कोड़ाकोड़ी आदिक सागरप्रमाण स्थिति उत्पन्न होती है

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्१।।।सत्१।।।इति*द्रव्यलक्षणम्१।।। =उत्पत्ति-नाश-स्थिरतास्वरूपसहित(=युक्त)सत् है ऐसा द्रव्यका लक्षण

उक्तम्१।।पुनःअपरेण३।प्रकारेण३।द्रव्य-लक्षण-प्रतिपादन-अर्थंआह=(सूत्र३०में)कहागयाहैअन्यप्रकारकरि द्रव्यका लक्षणजतलानेके लियेकहतेहैंकि

सूत्रम्-(१)गुणपर्याय वद्द्रव्यम्(२)(३)॥ ३८ ॥ = गुणपर्यायवत्-द्रव्यम् अस्ति ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः-गुण-पर्यायवत्*द्रव्यम्१।।।अस्ति। =गुण-पर्याय(स्वभाव-स्वरूप)वाला(=वत्)द्रव्य है,अथवा गुणवान् पर्यायवान् द्रव्यहै, गुण और पर्यायोंकरि युक्त(सहित)द्रव्य है अर्थात् गुण और पर्याय जिसके हैं वा जिसमें हैं वही द्रव्य है। भावार्थ द्रव्यकी अनेक परिणति होनेपर भी जो द्रव्यसे भिन्न न हो द्रव्यके साथ नित्य रहै सो तो गुण है। और क्रमवर्ती होय पलटनरूप होय सो पर्याय है। द्रव्यके जितने गुण है वे द्रव्यसे कभी भिन्न नहीं होते हैं॥ समस्त गुणोंका समूह (=समुदाय)ही द्रव्य है। द्रव्यकी अनेक पर्यायें (अवस्थायें)पलटते हुए भी गुण कभी नहीं पलटते। द्रव्यके नित्य साथ वा अविनाभावी है। इसी कारण गुणोंको अन्वयी कहते हैं और पर्यायोंको व्यतिरेकी(क्योंकि पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं)

(१) गुणपर्यायवत् द्रव्यम्=गुणवत्वे सति पर्यायवत्वंद्रव्यत्वम् "(सभा०य० पृष्ठ १४०)गुणवान् होते सन्ते जिसमें कोई न कोई पर्याय हो वह द्रव्यहै
(२)वत्=वाला,सहित,युक्त,संपन्न,संयुक्त=जैसे गुणवत्,गुणवाला,गुणसहित,गुणयुक्त,गुणसंपन्न,गुणसंयुक्त(३)३८वां सूत्रमें दोबारा द्रव्यका लक्षण क्यों कहा, जब २९वां सूत्रमें सत्द्रव्यलक्षणम् कहा है ? (उत्तर)पहिले सत् लक्षण कहा सो तो शुद्ध द्रव्यका लक्षण है।सो(सत्) एकहै,सो सामान्य है, अभेदरूपहै इसको महान् द्रव्यभी कहिये। जातैं सर्ववस्तु हैं सो सत्ताको उलंघि नहीं वर्तै है।सर्वद्रव्य सर्वपर्याय सत्ताके विशेषणहैं जिसको ज्ञानगोचर तथा वचनगोचर कहिये सो सर्व सत्तामयी है। बहुरि द्रव्य अनेक हैं तिनका भिन्न व्यवहार करनेको यह गुणपर्याय सहितपना दूसरा लक्षण कहा, सो यह लक्षण न कहिये तौ द्रव्योंके गुणपर्याय न्यारे न्यारे हैं, ते द्रव्य न ठहरै, तब सर्वथा सत्‌ही द्रव्य ठहरै॥चेतन अचेतन आदि द्रव्योंका लोप होय तब संसार मोक्ष आदि व्यवहारका भी लोप होय. तिससे दूजा लक्षण का कथन युक्त है ॥

भावान्तरोपादानं परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्लिन्नो गुडोऽधिकमधुररसः परीतानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिकः । तथाऽन्योऽप्यधिकगुणः अल्पीयसः पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादिस्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्षः परिणामको भवति । ततः पूर्वावस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते ॥ इतरथा हि शुक्लकृष्णतन्तुवत् संयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात्सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत ॥

(१)भाव अन्तर उपादानं परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् = अन्य अवस्था ग्रहणकरनेको परिणामकता अर्थात् पलटाउ गीले गुड के सदृश है
यथा क्लिन्न गुड अधिकमधुररस परीतानाम् = जैसा बहुत मीठे रसवाला गीला गुड गिरेहुये
रेणुआदीनाम् स्वगुण-उत्पादनात् पारिणामिक तथा = रेतआदिकके अपना(मधुररस) गुणके उपजावनेसे परिणामावनेवाला होता है तैसे
अन्य अपि अधिकगुण अल्पीयस पारिणामिक = अन्य भी अधिकगुणवाला अल्पगुणवालेका अपनेरूपमें परिणामावनेवाला होता है
इति कृत्वा द्विगुण आदि-स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुण- = ऐसें करि (वा ऐसें करके) दो गुणआदिक स्निग्धरूक्षका चार गुण
आदि-स्निग्धरूक्ष (२) परिणामक भवति = आदिक स्निग्ध रूक्षपुद्गल अपने स्वरूपमें परिवर्तनकरनेवाला वा पलटनेवाला होताहै
ततः पूर्व-अवस्था प्रच्यवन पूर्वकम् तार्तीयिकम् = तिस(परिणामकता)से पहिलीअवस्थाका अभाव वा त्यागपूर्वक तीसरी(प्रच्यव=प्रच्यवन)
अवस्थान्तरम् प्रादुर्भवति इतिएकत्वम् उपपद्यते । = अन्य अवस्था प्रगट होती है ।ऐसे एकता वा एकपना अर्थात् एकस्वरूपपना उपजताहै
इतरथा हि = औरप्रकारसे तो अर्थात् यदि दो परमाणु वा स्कंधके बन्ध होनेपर एकता न हो तो
शुक्ल कृष्ण तन्तुवत् संयोगे सति अपि अपरिणामकत्वात् = स्वेत काले तंतुके सदृश संयोग होनेपर भीएकरूपमें नीरक्षीरके सदृशपलटाउ नहोनेसे
सर्वम् विविक्त रूपेण अवतिष्ठेत = समस्त पृथक् पृथक् रूपकरि ही तिष्टैं, दीखैं ॥ (अवतिष्ठेत है नकि अवतिष्ठते)

(१)सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी दोनों आनतियोंके पाठ शुद्धाशुद्धसूचीके अनुसार भावान्तरोपादान परिणामकत्व क्लिन्नगुडवत्। यथा क्लिन्नगुडोऽधिक मधुर रस परीताना रेण्वादीना स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिक ॥तथान्योप्यधिक गुण ॥ अल्पीयसः पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्षः परिणामको भवति । तत पूर्वावस्था प्रच्यवनपूर्वक तार्तीयीकमवस्थान्तर प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते॥इतरथा हि शुक्लकृष्ण तन्तुवत् सयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात्सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठत तत्वार्थराजवार्तिकका शुद्धपाठजोचारपांचप्रतियोंका मिलाकरलिखागयाहै भावा तरोपादान परिणामकत्व क्लिन्नगुडवत् ॥ ॥यथा क्लिन्नगुडोहि मधुर रस पतिताना रेण्वादीना स्वगुणोत्पादनात्परिणामक तथा ऽन्योप्यधिक गुण ॥अल्पीयस परिणामक इति कृत्वा द्विगुणादि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्षपरिणामकोभवतीति,अत पूर्वावस्थाप्रच्यवपूर्वक तार्तीयिकमवस्थान्तरप्रादुर्भवतीत्येकस्कन्धत्वमुपपद्यते इतरथा हि शुक्लकृष्ण तन्तुवत्सयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात् सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत

(२)सर्वार्थसिद्धिकीसातप्रतियोंमें'परिणामक' पाठहै एकमें 'पारिणामिक' है हमने'परिणामक' लिया है। पृष्ट १३९में यद्यपि परिणामक =पारिणामिक॥

(क) परीणाम वा परिणाम दोनों प्रकार से लिखना ठीक है। 'परि' अव्यय है कभी कभी इसका रूप 'परी' होजाता है जैसे परिहास, परीहास, परिणाम,परीणाम,कभी कभी 'पलि' जैसे पर्यंक पल्यंक। हम अपने प्रयोजन के लिये केवल 'परिणाम' रूप लेते हैं ॥ यह परिणाम, नम् (झुकना, नमस्कार करना इत्यादि अर्थोंवाली धातुमें परि और घञ् (=घ् औरञ् इत् संज्ञक होने से गिरकर केवल 'अ' रहजाता है) लगाये जाते हैं परि+नम्+अ, नम् के न की वृद्धि संज्ञा होकर, र के कारण 'न' 'ण' में पलट जाता है तब 'परिणाम' हुआ। स्वभावका पलटना, पलटना, फल; शेष; अर्थालंकार; पचन, पचनाजैसे भुक्तस्य परिणामहेतुरौदर्य (खाये गये के पचने का कारण पेटाग्नि है) बुढापा; पकना (जैसे फल का), भाव इत्यादि अर्थोंमे आता है। इस ३७ वां सूत्रके लिये हमने इसको स्वभावका पलटना, पलटना, फल, भाव इन अर्थों मे अवसरानुकूल लिया है ॥ इसके परिणत, परिणामिन्, इत्यादि बहुनसे रूप हैं परन्तु हमने अपने प्रयोजनके लिये पारिणामिक,पारिणामिकत्व, परिणामक, परिणामकत्व, लिये है॥सबन्धके अर्थमें संज्ञाके आगे (ठक्) लाकर, उसको अष्टाध्यायी ७-३-५० सूत्रसे 'इक' में पलटकर आदिमें वृद्धि करदेते हैं जैसे परिणाम+ठक् (ठक् के कारण वृद्धि होती है)=पारिणाम+इक 'यस्येति च' ६-४-१४८ सूत्र (कि ईकार और तद्धित प्रत्यय परे रहत भसंज्ञक अ आ, इ, ई, का लोप हो) से 'पारिणाम' का अकार गिर कर पारिणाम् रहगया 'इक' जोड़ने से'पारिणामिक'शब्द बना॥पारिणामिक='परिणामकरावनेवारा'दूनीजीकी राजवार्तिक अध्याय ५ पर्ण १०१, परिणामस्वरूप करनेवाला अर्थात् अपनेस्वरूपमें पलटावने वाला, परिणमावनेवाला, अपनेरूपमें परिणमन करनेवाला।

( ) पारिणामिकत्व अथवा पारिणामिकता-भाव अर्थ में पारिणामिक शब्द में 'त्व' 'ता' प्रत्यय जोडने से बनता है।

( ) परिणामक-सर्वप्रातिपदकेभ्यः स्वार्थेकन् (लघुसिद्धान्त कौमुदी-तद्धित प्रकरणमेंसूत्रसंख्या १२५०)=सम्पूर्ण कच्चे शब्दोंसे वा विभक्तिवर्जित शब्दों से (=प्रातिपदिकेभ्यः) (शब्दोंके अपने) अपने अर्थ में कन् (=क) प्रत्यय हो अर्थात् पदरहित किसी भी शब्द के अन्तमें उसका अर्थ ज्यों का त्यों रखते हुये, क लगा सकते है जैसे अश्व एव =अश्व+कन् अश्वक—अश्वकः(घोड़ा) ऐसेही परिणाम शब्द से अपन अर्थमें 'कन्' प्रत्यय लगाने से बिना अर्थ के पलटाउ के 'परिणामक' बना यहां पर परिणामक शब्दके उपर्युक्त आठअर्थों मेंसे सब अथवा कोईभी अर्थ लेसकते है॥

( ) परिणामक —धातुशब्दके अंतमें कर्ताके अर्थमें ण्वुल्(=अक) प्रत्यय लाते हैं जैसे बाध्+अक=बाधक रोकने वाला बना,ऐसे ही 'परिणाम' में अक जोड़ने से कर्त्ता अर्थ में (परिणाम्+अक) परिणामक 'अपनेपरिणाम स्वरूप करने वाला, परिणमन करने वाला, परिणाम करावनेवाला। 'परिणाम का कर्ता' दूनी जी ने कितने ही स्थानों पर 'परिणामक' शब्दका यही अर्थ दिया है।

( ) परिणामकत्व, परिणामकता—परिणामक शब्द में भाव (होना) अर्थमें त्व-ता प्रत्यय लगानेसे परिणामकत्व और परिणामकता शब्द बनगये।

परिणामकत्व-परिणामकता=पलटनेका कर्तापन, पलटनेका कर्त्तृत्व 'परिणाम को कर्तापन' दूनी जी ( ) अपरिणामकत्वात् = "अपरिणामकपणा अर्थात् (एकस्वरूप से दूसरेमें)पलटाउ न होनेसे ॥अब परिणामिक, पारणामक, पारिणामक, परणाम इत्यादि लिखना अशुद्ध है। सर्वार्थ०प्रथमावृत्ति तथा द्वितीयसस्करण और तत्वार्थराजवार्तिकमें आपादान, परिणामकत्व, परिणामक 'परिणामकः''परिणामकः' 'अपरिणामकत्वात्' येछह शब्द अक्षरशः एकहैं परन्तु प्रथमावृत्तिके शुद्धाशुद्ध विवरणमें आपादान के स्थान में "उपादान"है और तीसरे शब्द 'परिणामकः' और चौथे शब्द 'परिणामकः' के स्थानोमें क्रमसे 'पारिणामिकः' 'पारिणामकः' है इसपर हमको भ्रम हुआ कि यथार्थ पाठ क्या है इस पर सर्वार्थसिद्धिकी तीन प्रतियों से पाठका मिलान किया तो फल यह हुआ कि यदि हम इन प्रतियोंमें लेखकोंकी अशुद्धियां ठीक करके पढें तो 'उपादान' 'पारिणामिक' 'पारिणामिकः' शब्द पाये गये। हमारी समझमें 'आपादान' का वही अभिप्रायहै,जो 'उपादान'का हैक्योंकि आपादानात्='देवांसे'(=देनेसे)आपादित ='ग्रहण कराया' (दूना जी अध्याय ५ क्रम से पर्ण १०१, १०२) ॥ साधारणरूपसेः-आपादान= प्राप्त कर लेना, उपादान=ग्रहण कर लेना, परन्तु अपादान का अर्थ छोडदेना है ॥और पारिणामिकः, और परिणामकः का एक ही आशय है क्योंकि 'परिणाम' शब्दमें सम्बन्धके अर्थमें 'इक' प्रत्यय लगाया है तब 'पारिणामिक बना और कर्त्ताके अर्थमें'परिणाममें' ण्वुल्(=अक)प्रत्यय लगाकर'परिणामक' बना जैसाकि इनके उपर्युक्तअर्थोंसे प्रगटहै। पृष्ठ१४०में सर्वार्थसिद्धिवृत्तिऔर तत्वार्थराजवार्तिकका पाठ भिन्न२ दोस्तम्भोंमें दियाहै पढ़नेसे विदितहैकि दोनोंका पाठ और अर्थभी लगभग एकसाहै॥

यह सूत्र परमाणु और स्कंध(अर्थात् पुद्गलस)सबन्ध रखताहै बंधके प्रथम स्निग्धरूक्षगुणवाली,रूक्षगुणवाली स्निग्धगुणवाली यथयोग्य परमाणु पृथक् पृथक् रहती हैं इस अपेक्षासे तो अणुसे सबंध रखता है और जब योग्यगुणवाली परमाणुओंमें बन्ध होजाता है तब स्कन्ध होता है इस विवक्षा को लिये हुये स्कन्धसे सबन्ध रखता है, यह प्रत्यक्ष है तौभी तीन उदाहरणगोम्मटसार, सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, और तत्वार्थराजवार्तिकसे यथासमय देतहैं॥
'णिद्धिदरगुणा अहिया हीणं परिणामयंति बंधम्मि । संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाण खंधाणं' ॥ पंडित टोडरमलजी अनुवादित गोम्मटसार गाथा ६१६ ॥
=स्निग्धेतरगुणा अधिका हीनं परिणामयंति बंधे । संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां स्कंधानाम् ॥ ६१६ ॥
=संख्यातासंख्यातानंतप्रदेशा स्कंधानां मध्ये स्निग्धगुणस्कंधा रूक्षगुणस्कंधाश्च द्विगुणाधिका तं बन्धे हीनगुणस्कंधं परिणामयंति"
=संख्यात असंख्यात अनंतप्रदेशोंके(स्कंधों)में स्निग्धगुणवाले स्कंध और(=च)रूक्षगुणवाले स्कंध जो दोगुण अधिक हैं वे बन्ध होनेपर हीनगुणवाले स्कंधको परिणावैं हैं ॥ जैसे दशसहस्र स्निग्ध वा रूक्षगुणवाले परमाणु वा स्कंधको दशसहस्र दोअंशवाला स्निग्ध वा रूक्षगुणयुक्त परमाणु वा स्कंध अपने रूप परिणमावै है ॥ पं०टोडरमलजीने केवल स्कंधका उदाहरण दिया है परन्तु बन्ध स्कंध स्कंध और परमाणु परमाणु तथा स्कन्ध परमाणुका भी हो सक्ता है ॥

" भावान्तरोपादानं परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्लिन्नोगुडोऽधिकमधुररसः परीतानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिकः =अन्य अवस्थाके ग्रहण करनेको परिणामकता गीले गुडके सदृशहै । जैसे गीलागुड बहुत मीठे रसवाला(आनकर)गिरेहुए रेतादिकोंको अपने(मधुर रस) गुणके उपजावनेसे परिणामावनेवाला होता है ॥ (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० ३०४, ३०५)इससे प्रगट है कि यह सूत्र स्कंधोंसे भी सबन्धरखता है ।
"ततः पूर्वावस्थाप्रच्यवपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थांतरं प्रादुर्भवतीत्येकस्कंधत्वमुपपद्यते=ततः पूर्व अवस्थाप्रच्यव पूर्वक तार्तीयिकम् अवस्थांतर प्रादुर्भवति इति-एक स्कंधत्व उपपद्यते='तातैं पूर्व अवस्थाका च्यवनपूर्वक त्रितीय अवस्थांतर प्रगट होय है । ऐसे एक स्कंधपणों उपजै होय है" प० पन्ना लालजी दूनी तत्वार्थराजवार्तिक सूत्र ३७ वार्तिक २ की वृत्ति है ॥ इन उदाहरणोंसे प्रगट है कि यह सूत्र स्कन्धोंसे सम्बन्ध रखता है ॥
तार्तीय(स्त्री०तार्तीया)तार्तीयिक(स्त्री०=तार्तीयिका-तार्तीयीका)तृतीय तीसराके अर्थमें आते हैं(स्वार्थमें अपनअर्थमें ईकक प्रत्यय तार्तीयशब्दमेंलगाथाहै एकत्व संघात बन्ध और संयोगमें क्या अन्तर वा भेद है ? (उत्तर) पृथग्भूतानामेकत्वापत्तिः संघातः (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति प्रथमावृत्ति पृ० २६४, द्वितीया वृत्ति पृ० १७२) पृथग्भूतानाम् एकत्व आपत्ति ॥संघात ॥=न्यारी न्यारी वस्तुओंके एकपनाकी प्राप्ति सो संघात है । इससे स्पष्ट है कि एकत्व बन्ध और संघातमें कुछ भी भेद वा अन्तर नहीं है तीनों एकही हैं । परन्तु संयोगमें एकत्वकी आवश्यकता नहीहै केवल सबन्ध वा मिलाउ होनपरभी चिपटे हुये होनेपर भी संयोग होजाता है जैसे किसी दरी वा कपड़ेमें बहुतसे रंगेहुये सूतादिकके तार नाना प्रकारके रंगके होते हैं और मिले हुये होने पर भी तार भिन्न भिन्न दीखते हैं ॥ इसको बन्ध संघात वा एकत्व नहीं कहसकते केवल संयोग है परन्तु दूध पानी का मिलानेपर और भले प्रकार हिलानेपर एकमेक होजानेपर बंध, संघात वा एकत्व कहते हैं ॥

अधिकारात् गुणशब्दः सम्बध्यते । अधिकगुणावधिकाविति

वृत्त्यनुवादः—अधिकारात्[३]गुणशब्दः[१]सम्बध्यते[२] =प्रकरण(वश)से(इस सैंतीसवांसूत्रमें)गुणशब्द लगायागयाहै वा अनुवर्तन कियागयाहै अधिकगुणौ[२]अधिकौ[१]इति* =दो अधिक(=अधिकौ) हैं वे अधिक दोगुण है(जैसे दोगुणवाली परमाणुसे चारगुणवाली परमाणु अधिक दोगुणवाली है,तीनसे पांचगुणवाली, चारसे छहगुणवाली, पांचसे सातगुणवाली, छहसे आठ गुणवाली, आदि ऐसे और भी दो अधिकगुणवाली परमाणु कहलाती हैं ॥

कारण यह है कि दोनों आम्नायवालोंने 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका अर्थ भिन्न भिन्न किया है । हमारी आम्नायके अनुकूल गुणोंके समान संख्यामें होनेपर न तो सदृशपरमाणुओंका बन्ध होता है और न विसदृशपरमाणुओंका इसलिये हमारे यहांके पाठमें 'सम' शब्द इस सूत्रमें नहीं है और "द्वि-अधिकादि गुणानां तु" सूत्रमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार केवल"सदृशानां'की अनुवृत्ति"गुणसाम्ये सदृशानाम्"सूत्रसे आतीहै इसलिये उन्होंनेअर्थ किया है कि 'सदृशों'के लिये दोगुण अधिकको आवश्यकता है विसदृशपरमाणुओंका बन्ध चाहैं वे समगुणधारक हों चाहै विषम गुणवाली हों अथवा गुणवाली परमाणुके अतिरिक्त और विसदृशोंमें सबमें सर्वप्रकारसे बंध होजाता है परन्तु हमारे यहांके सिद्धान्तके अनुकूल 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रसे सदृशानाम् और स्निग्धरूक्षत्वानां (=सदृशानाम् और विसदृशानाम्)अर्थात् सदृशोंकी और असदृशोंकी अनुवृत्ति "द्वि अधिकादि गुणानांतु"में ग्रहण करके यह अर्थ किया है कि दोगुण आदिसे अधिकगुणवाली सदृशपरमाणुका और दोगुण आदिसे अधिक गुणवाली विसदृश परमाणुओंका ही बन्ध होता है, यदि दोगुण एक परमाणुमें दूसरीसे अधिक न होंगे तो बन्ध कदापि नहीं होगा जब हमारे यहां समगुणवाली परमाणुओंका बन्ध नहीं है तब 'सम' शब्द सैंतीसवां सूत्रमें नहीं लाये हैं ॥

"गुणसाम्ये सदृशानाम् न" पाठकगण आपका कुछभी विचार हो मैं तो यही कहूंगा कि इस सूत्रकी रचना विचित्र और अद्भुत है वह कैसे? यदि इस सूत्रकाअर्थ इसी क्रमसे कियाजावे जैसेकि वह है तब अर्थके संबन्धमें श्वेताम्बरआचार्योंके अनुकूल हृदयसे ध्वनि निकलतीहै यदि'सदृशानां गुणसाम्ये न' इस क्रमसे अनुवाद कियाजावै तब दिगंबरआचार्योंके मतानुसार अर्थकी ध्वनि निकलतीहै जैसे गुणोंकी समानता वा बराबरी होनेपर सदृशोंका बन्धनहीं होताहै ध्वनि आती है कि विसदृशोंका बन्ध गुणोंकी समानता होजानेपर होजाताहै यदि अर्थ कियाजावै कि सदृशोंका गुणकी समानता होनेपर बन्ध नहीं होता है तब ध्वनि निकलती है कि गुणोंकी असमानतामें सदृशोंका भी बन्ध होजाता है इसी हेतुसे पूज्यपाद स्वामीने उत्तर दिया है कि 'गुणवैषम्ये बधप्रतिपत्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते' गुणोंकी विषमतामें बन्धके प्रगट करनेके लिये सूत्रमें'सदृशानां' लायागया है इसलिये कह सक्ते है कि उमा स्वामिनः सूत्राणाम् विचित्रा हि कृतिः कृता, अर्थात् उमा स्वामीके सूत्रोंकी रचना वा बनावट विचित्र और अद्भुतहो है ॥

श्वेताम्बर आम्नायमें "बन्धेसमाधिको पारिणामको"पाठ है इस कथनके समर्थनमें हम तत्त्वार्थराजवार्तिकसे इसी सूत्रके नीचे वार्तिक तीन उसकी वृत्तिके सहित उल्लेखकरतेहैं'समाधिका वित्येपरेषां पाठः'(=समाधिकौ इति अपरेषांपाठः)(=बन्ध होनेपर)सम(परिणमन)वा अधिक परिणामहोता है, ऐसे अन्यअन्यआचार्यों का पाठहै।तत्त्वार्थराज०सेवृत्ति"बन्धे समाधिकौपारिणामिका वित्यपरे सूत्रंपठति,द्विगुणस्निग्धस्यद्विगुणरूक्षोपिपरिणामकइति"॥ =बन्धे समाधिको पारिणामिको इस प्रकार अन्य अन्य (आचार्य) सूत्रको पढ़ते हैं (अतः) "द्विगुणस्निग्धके द्विगुण रूक्ष भी परिणामका कर्ता है" पं० पन्नालाल दूनी अध्याय ५ पर्ण १०२ ॥

॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च = बन्धे अधिकौ गुणौ पुद्गलौ(परमाणू वा स्कन्धौ)पारिणामकौच भवत ॥

सत्रार्थ —च बंधे सति अधिकौ गुणौ = और बंध होनेपर दो अधिक गुणवाला
पुद्गलौ (=परमाणू वा स्कन्धौ) =पुद्गल(=परमाणु वा स्कंध)(हीन गुणवाले परमाणु वा स्कन्धको अपने रूपमें)
पारिणामिकौ च भवत । =परिणामावनेवाला होता है अर्थात् दो गुण आदि स्निग्ध वा रूक्ष पुद्गलके चतुर्गुण आदि स्निग्ध वा रूक्ष गुणपुद्गलस्वरूप पारिणामिकता होतीहैं॥ भावार्थ जैसे एक परमाणु वा स्कंध में दोगुण स्निग्धताके होंय और दूसरे परमाणु वा स्कंधमें चारगुण रूक्षपनाके होंय तौ दोनोंके बंध होनेपर अधिकगुणरूप जो रूक्ष पुद्गल (=परमाणु वा स्कंध) तिसरूप हीनगुणरूप जो स्निग्धपरमाणु वा स्कंध हैं सो होजाता है। इसी प्रकार रूक्षसे स्निग्धमें बंध होय तो, रूक्षसे रूक्ष मिले तो, और स्निग्धसे स्निग्धमें बन्ध होय तो दो अधिकगुण जिस परमाणु अथवा स्कन्धमें होय तिसरूप हीनगुणवाला परमाणु वा स्कंध परिणमि जाता है और इस परिणमन अथवा पलटनेकी अवस्थामें प्रथम और दूसरी अवस्थाओंका अभाव होकर एक तीसरी भिन्न अवस्था प्रगट होजाती है । इस प्रकार अधिकगुणके और हीनगुणके एक स्वरूपपना होता है ॥

धारण करके आशय निकाल लगे ॥ ऐसा ही तत्त्वार्थराजवार्तिक, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्ति (हा श्वेताम्बरीय भाष्यों)में भी कहा है जैसाकि निम्न उद्धृत वाक्यों से प्रगट है ।

तुश दो व्यावृत्तिविशेषप्रतिपत्त्यर्थ '= सूत्रमें) तुशब्द(निषेधके)हटानेको और दूर करनेके तथा बंधकी विधिको विशेष अवस्थामें अतलानेकलियेहै।॥ देखो तत्त्वार्थराजवार्तिक वार्तिक दूसरी ॥

"तुशब्द क्रियमाण प्रतिषेध व्यावर्तयति बंध च विशेषयति =(सूत्रमें) तुशब्द ('न जघन्यगुणानाम्' 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' इन दो सूत्रोंमें) किये हुए निषेधको हटाता है दूर करता है और बंधका विशेष अवस्था (दोगुण अधिकवाली)में विधान करता है
'अत्र तुशब्दो व्यावृत्तिविशेषणार्थ प्रतिषेध व्यावर्तयति बंध च विशेषयति'(सभाष्य० पृ० १३६ भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्ति पर्व ४५०) "इस सूत्रमें द्वि अधिकादिगुणाना तु यहां जो तुशब्द पठित है वह व्यावृत्ति तथा विशेषणके लिये है अर्थात् न जघन्यगुणानां वा गुणसाम्ये सदृशानाम्' इत्याकारक प्रतिषेधको तो व्यावृत्ति करता है और बंध को विशेषित करता है"('सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'के पृष्ठ १३६ से उद्धृत)

(१) मुद्रित तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकमें 'च' नहीं है परन्तु हस्तलिखितमें है । बहुधा प्रतियोंमें उपर्युक्त ही पाठहै॥श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०पृ०१३६में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्ति पृ०४७२में"बंधेसमाधिकौपारिणामकौ" =बंधे सति समगुणस्यसमगुण परिणामकोभवति।अधिकगुणाहीन स्यति। बंध होनेपर यदि समगुण है तब तो समगुणका समगुणवालाही परिणाम होगा और हीनगुणका अधिक गुणवान परिणाम होगा। इस पाठमें भेदका

तु शब्दो विशेषणार्थः प्रतिषेधं व्यावर्तयति बन्धं च विशेषयति ॥

किमर्थमधिकगुणविषयो बन्धो व्याख्यातः न समगुणविषयः इत्यत आह—

तुशब्दः(१)व्यावृत्ति-विशेषण-अर्थः(१)प्रतिषेधं(२)व्यावर्तयति(१) =तुशब्द व्यावृत्ति और विशेषणकेलिये है(तु बंधके)निषेधको निवारण वा दूर करताहै
बन्धम् (२) च * विशेषयति = और(=च)बन्धको विशेषित करता है अर्थात् तुशब्द बन्धके निषेध करनेवाले पूर्व के दो सूत्र कि 'जघन्यगुणवालोंका बन्ध नहीं होता है' और 'गुणोंके समतामें सदृशोंका बन्ध नहीं होताहै' बस बन्धके निषेधको दूर करता है तथा बन्धकी विधिको कि द्वि-अधिक आदि गुणोंकरि बंध होता है जतलाताहै। भावार्थ ऐसा है प्रश्न होनेपर कि यदि जघन्यगुणवालोंका और गुणोंकी संख्यामें बराबरी होनेपर बन्धका निषेध है तो फिर किसका बन्ध है उसपर बन्धके दो पूर्व कथित निषेधक सूत्रोंकी व्यावृत्ति करते हुए और बन्धकी विधि करते हुए कहते हैं कि बन्ध तबही होसकता है जबकि एक परमाणुमें दूसरीसे दोगुण अधिक है जिसको विशेषरूपसे इस सूत्रके अर्थमें कहा है

किम्(१) अर्थम् (१) अधिकगुणविषयः(१)बन्धः(१)व्याख्यातः(१)=कौन अर्थ अधिकगुणमें बन्धवर्णित है
न * समगुणविषयः(१) इति * =नकि तुल्य अथवा बराबर गुणमें(अर्थात् बन्ध अधिकगुणोंमें एक दूसरेसे होनेपर
अतः * आह = क्यों होता है समानगुणोंके होनेपर क्यों बन्ध नहीं होता हैइसलिये कहते हैं कि

() दिगम्बर आम्नायके चार सूत्र तथा उपर्युक्त आर्या छन्दका सारांश स्निग्धका स्निग्ध द्वारा दो अधिक (गुणों)करि, रूक्षका रूक्षद्वारा दोअधिक-गुणोंकरि और स्निग्धका रूक्षद्वारा दो अधिक(गुणों)करि बन्ध होता है। जघन्य गुणवाली)के छोड़दिये जानेपर (परमाणुए) समधारा(दो-चार छह-आठ-दश आदिकगुणों)में हो अथवा विषमधारा(तीन-पांच.सात-नौ ग्यारह इत्यादि गुणों,में हो बन्ध होजाता है ॥

() श्वेताम्बर आम्नायके चार सूत्र तथा उपर्युक्त आर्याछन्दका सारांश स्निग्धका स्निग्धद्वारा दो अधिक गुणों)करि, रूक्षका रूक्षद्वारा दो अधिक-गुणोंकरि बन्ध होता है ॥ जघन्यगुणवाली परमाणुओंको छोड़कर स्निग्ध का रूक्षद्वारा अथवा यों कहिये कि रूक्षका स्निग्धद्वारा(सब अवस्थाओंमें) चाहे स्निग्धरूक्षपरमाणुयें जो बध्यमानहैं(अर्थात् जिनका बन्धहोनेवालाहै) हैंगणनामें समानगुणवाली हों वा असमान गुणवालीहोंबन्ध होजाताहै ॥

(१) व्यावृत्ति—'तुशब्दोविशेषणार्थः प्रतिषेधं व्यावर्तयति बन्धं च विशेषयति" यह वाक्य दोनों आवृत्तियोंमें ऐसाहीछपाहै और हमने तीन हस्तलिखित प्रतियोंसे मिलाया उनमेंभी अक्षरशः ऐसाही है ॥ परन्तु 'प्रतिषेध व्यावर्तयति' से प्रगट है कि 'विशेषणार्थ 'वाक्यसे पहले"व्यावृति"शब्दका अध्याहार होनाचाहिये तब समस्त वाक्य ऐसा होगा कि'तुशब्दो व्यावृत्ति विशेषणार्थः प्रतिषेधं व्यावर्तयति बन्धम् चविशेषयति' इसअवस्थामें व्यावृत्तिका अर्थ प्रतिषेध व्यावर्तयति(=निषधको दूर करता है) और'विशेषणार्थ.' वाक्यका अर्थ हुआ किं'च बन्धंविशेषयति'।=और बन्धका विशेष अवस्थामेंविधान करना है)। संस्कृतके उपर्युक्त सर्व वाक्य पूज्यपाद स्वामीके हो हे। ऐसा जान पड़ताहै कि अद्वितीय विद्वान होनेसे पूज्यपाद स्वामीने यह समझकर कि जब हम प्रतिषेध व्यावर्तयति'का उल्लेख करते हैं तब पाठकगण स्वयम्'व्यावृत्ति' शब्दका अध्याहार करलेंगे अथवा अपने चित्तमें इस शब्दको

एक स्निग्ध परमाणुका दूसरी दोगुण अधिक स्निग्ध परमाणुके साथ बंध होता है। एक रूक्ष परमाणुका दूसरा दोगुण अधिक रूक्षपरमाणुकेसाथ बंध होता है। एक स्निग्ध परमाणुका दूसरी दोगुण अधिक रूक्षपरमाणुके साथ भी बंध होता है। सम विषम दोनोंका बंध होता है, किंतु जघन्य गुणवालेका बंध नहीं होता। भावार्थ एक गुणवालेका अनेकगुणवाले परमाणुके साथ बंध नहीं होता। शेष स्निग्ध या रूक्ष दोनों जातिके परमाणुओं का समधारा या विषमधारामें दो गुण अधिक होनेपर बंध होता है (दो, चार, छह, आठ दश इत्यादि जहांपर दोके ऊपर जो दो अंशोंकी अधिकता हो उसको समधारा कहते हैं। तीन, पांच, सात, नौ ग्यारह इत्यादि जहांपर तीनके ऊपर दो दो अंशोंकी वृद्धि हो उसको विषमधारा कहते हैं। इन दोनों धाराओंमें जघन्य गुणको छोड़कर दो गुण अधिक वालोंका बंध होता है औरका नहीं॥" गोम्मटसार॥ उपर्युक्त टिप्पणीसे विदित है कि हमारे यहांके अधिकतम भाष्यकारों तथा भावके टीकाकारोंने समगुण (=दोके इत्यादि ऊपर दो दोकी अधिकता) अर्थात् परमाणुके अविभाग प्रतिच्छेदरूप अंश जो समधारामें हों ऐसा अर्थ 'सम' का लिया है और इसी प्रकार विषमका अर्थ परमाणुके अविभाग परिच्छेदरूप अंश जो विषमधारा (तीनकीसंख्याके ऊपर दो दो की अधिकता) में हों ऐसा अर्थ विषमका ग्रहण किया है परन्तु हमारे यहांके तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीमद्विद्यानंदिका यह मत नहीं है, उन्होंने समका अर्थ "तुल्यजातीय' परमाणु लिया है और विषमका अर्थ विसदृश या विजातीय परमाणु लिया है जैसाकि उनके निम्नलिखित वाक्यसे प्रगट है 'विषमोऽतुल्यजातीयः समः सजातीयो न पुनः समानभाग इति व्याख्यानान् समगुणयोर्बन्धप्रसिद्धिः"

विषम असदृश जातीय परमाणु है और सम सजातीय परमाणुको कहते हैं बहुरि नहीं है समानगुण या समान अविभाग प्रतिच्छेदरूपअंश क्योंकि व्याख्यान से (अर्थात् जो कुछ हम पूर्व कह चुके हैं उससे) समान अविभाग परिच्छेद रूपअंशके धारक परमाणुओं में बंधकी प्रसिद्धि नहीं है।

श्वेतांबर आम्नायके भाष्यकारोंने इस आर्या छंदके पिछले दो चरणों का अर्थ बहुत साधारण रूपसे यह किया है कि जघन्य गुण वाले परमाणु को छोड़कर स्निग्ध परमाणुका बंध रूक्ष परमाणुके साथ चाहे उनदोनों परमाणुओं में गुणों की संख्या बराबर हो चाहे न्यूनाधिक हो बंध होजाता है उनके अनुकूल दो गुण युक्त स्निग्ध परमाणु दो गुण सहित रूक्ष परमाणुके साथ बंधको प्राप्त होगी, इसी प्रकार दो गुणवाली स्निग्ध परमाणु तीनगुण चार गुण पांच गुण, छह गुण इत्यादि संख्यात, असंख्यात अनंतगुणवाला रूक्षपरमाणुके साथ बंधको प्राप्त होता है जैसाकि श्रीसिद्धसेनगणिरचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्तिके निम्नलिखित वाक्यसे जो पृ० ४७१ में है भाव टपकता है॥ 'पाश्चात्यमर्द्धमेतेन च स्निग्धरूक्षत्वाद्बंधोऽजघन्यगुणानामिति। सूत्रद्वय परिग्रहः स्निग्धरूक्षयोश्च जघन्यगुणवर्जं परस्परेण विषमगुणयोस्समगुणयोश्च बंधो भवतीति'

च एतेन¹। पाश्चात्यम्²॥ अर्द्धम्³॥ स्निग्धरूक्षत्वात्⁴॥ बन्धः⁵।	=और (=च) इस (आर्याछंदके, पिछले अर्द्ध भागद्वारा स्निग्धरूक्षपनसे बंध होता है
न जघन्यगुणानाम्⁶ इति सूत्रद्वय	= परन्तु) जघन्यगुणवाले (परमाणुओं) का बंध नहीं होता है (इन) दो सूत्रोंका
परिग्रह स्निग्धरूक्षयोः⁷। जघन्यगुणवर्जं⁸।	=मानहुये और (=च) जघन्यगुणवाली परमाणुको छोड़ते हुये स्निग्ध रूक्षका बन्ध (अन्य सब अवस्थाओंमें) (चाहे स्निग्ध रूक्षपरमाणुओंमें)
विषमगुणयोः⁹। च समगुणयोः¹⁰।	=समान संख्यामें गुण न हों और समानगुणसंख्यामें हों तो भी
परस्परेण बंधो¹¹ भवति इति	=(उनमें) परस्पर बंध होजाता है। (जैसे दोगुणवाली स्निग्धपरमाणुका दो गुणवाली रूक्षपरमाणुके साथ तीनगुणवाली रूक्षके साथ, चार गुणवाली रूक्षके साथ पांच

छह सात आठ आदि संख्यातगुणवाली, असंख्यातगुणवाली, अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुके साथ बंध होजाता है इसी प्रकार दोगुणवाली रूक्षपरमाणुका दोगुणवाली स्निग्धपरमाणुके साथ, तीनगुण स्निग्धके साथ, चारगुण स्निग्धकेसाथ, पांच छह, सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली स्निग्धपरमाणुके साथ बंध होजाता है॥ दोनों आम्नायोंके अंतर या भेदका सारांश पृष्ठ १३४ की टिप्पणीमें आ दिया है॥

अर्थात् एकस्निग्ध परमाणुका दूसरी दोगुण अधिक स्निग्धपरमाणुके साथ वन्ध होता है॥ एक रूक्षपरमाणुका दूसरी दोगुण अधिक रूक्षपरमाणुके साथ बन्ध होता है। एकस्निग्धपरमाणुका दूसरी दो अधिक गुणवाली रूक्षपरमाणुके साथ भी वन्ध होता है। समधारा और विषमधारा दोनोंमें बन्ध होता है किन्तु जघन्यगुणवाले परमाणुओंका वन्ध नहीं होता है भावार्थ ऐसा है कि एकगुणवाले परमाणुका तीनगुणवाले परमाणुके साथ वन्ध नही होताहै, शेष स्निग्ध वा रूक्ष दोनों जातिके परमाणुओं का समधारा वा विषमधारामें दोगुण अधिक रहनेपर बन्ध होजाताहै॥ स्निग्ध रूक्ष दोनोंमें दो-चार-छह-आठ-दश-बारह-इत्यादि जहां दोगुण के ऊपर दो दो अंशोंकी वृद्धि वा अधिकता हो उसको समधारा कहते हैं और स्निग्ध रूक्ष दोनोंमें ही तीन-पांच-सात नौ-ग्यारह-तेरह इत्यादिक जहां तीन गुणोंके ऊपर दो दो अंशोंकी अधिकता हो वहां विषमधारा होती है। इन दोनों धाराओंमें जघन्यगुणको छोड़कर दोगुण अधिकका ही वन्ध होता है अन्यका नहीं॥ सो इन दोनों सम,विषम धाराओंमें अनन्तर-द्विक(अत्यन्त-समीप-द्विक)का वन्ध होताहै अन्यका नहीं जैसे दोगुणवाले स्निग्ध वा दोगुणवाले रूक्षका चारगुणवाले स्निग्ध वा चारगुणवाले रूक्षकेसाथ तथा तीन गुणवाले स्निग्ध वा रूक्षका पांचगुणवाले स्निग्ध वा रूक्षके साथ वन्ध होताहै अन्य किसीके साथ नही ऐसे औरऔर अधिकगुणवाली परमाणुओंका बंधजानो

हमारे यहां भी यही वात है परन्तु पिछली दो पंक्तिके सवन्धमें भाष्यकारोंने तथा भाषाके टीकाकारोंने दो अधिक परमाणुओं द्वारा बन्धका उल्लेख किया है वह इसप्रकार हैकि(क)पूज्यपादस्वामी औरधवलसागरसूरिने कुछ भी संस्कृतमें अर्थ इस आर्याछंदका नहीं कियाहै(ख)राजवार्तिकके रचयिताने पूज्यपाद स्वामीके मतको विशेषरूपसे उदाहरणों द्वारा समर्थन करदिया है इस आर्या छंदकी वृत्ति नहीं दी है॥ पं०पन्नालाल दूनी,पं०जयचन्द्रायजी पं० सदासुखजी और श्रीनेमिचन्द्राचार्यने 'सम'शब्दका अर्थ समगुणवाली अर्थात २,४,६,८,१०,१२,१४,आदिगुणवाली परमाणु ली हैं और 'विषम'से विषमगुणवाली अर्थात् ३,५,७ ९,११,१३,१५,आदि गुणवाली परमाणु ग्रहण की है जैसाकि उनके यथाक्रम निम्नलिखित लेखोंसे प्रगट होता है।

"स्निग्धके स्निग्धकरि बन्ध होय है। तहां दोयगुण अधिककरि होय है। तथा रूक्षकै रूक्षकरि बन्ध होय है। सोभी दोगुण अधिककरि होय है अर स्निग्धकै रूक्षकरि तथा रूक्षके स्निग्धकरि ऐसें जघन्यगुण वर्जिकरि समगुण होऊ तथा विषमगुण होऊ। दोगुण अधिकही करि बन्ध है।अन्यकरि नाहीं है इस प्रकार स्निग्ध और रूक्ष इनके दोय होय अंश प्रत्येकके बन्ध होनेमें कारण हैं। ताकरि पुद्गलपरमाणुनिके एक पिंडात्मक बंध पर्याय होते संते द्वि गुणक आदि अनंतानंत प्रदेश पर्यन्त स्कन्धनिकी उत्पत्ति होय है। ऐसा जानना। पं०(पन्नालालजी दूनीने इस गाथाका उपर्युक्तअर्थ किया है)॥

'स्निग्धके स्निग्धकरि दोगुण अधिककरि बन्ध होय है। तथा रूक्षके रूक्षकरि दोयगुण अधिककरि बन्ध होय है। जघन्यगुणवर्जिकरि समगुण होऊ तथा विषमगुण होऊ दोय गुण अधिक हीकरि बन्ध है अन्यकरि नाहीं है" पंडित जयचन्द्रकृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४६५

'स्निग्ध परमाणुकै स्निग्धपरमाणु दोयगुण अधिककरि बन्ध होय है॥ अर रूक्षपरमाणुकै दोयगुणअधिक रूक्षपरमाणुकरि बन्ध होय है॥ अर स्निग्ध परमाणुके दोयगुण अधिक रूक्षपरमाणुकरि बन्ध होय है॥ अर जघन्यगुण जो एकगुण तिस सहित परमाणुकरि बन्ध नहीं होय है॥ अर दोय, च्यार, छह, आठ इत्यादिक समगुणके धारकनिकैहू बन्ध है। अर तीन पांच,सात, नव, ग्यारा इत्यादिक विषमगुण धारकनिकैहू बन्ध होय है। परन्तु गुणके दोय अंशकी हीन अधिकता होय तिनहीके बन्ध है अन्यके नहीं है भावार्थ स्निग्धस्निग्धकै, अर रूक्षरूक्षकै अर स्निग्धरूक्षकै अर रूक्षस्निग्धकै दोय गुण अधिक सम विषम होते बन्ध होय है अन्य हीन अधिकके बन्ध नहीं होय' पंडित सदासुखजीकृत अर्थप्रकाशिका पृ० २३७ और २३८ देखो॥

क्षेत्रमुच्यते ॥ तद् द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टीनां सर्वलोकः ॥

क्षेत्रम् १।१ उच्यते T तत् १।१ द्वि विधम् १।१ = (अब) क्षेत्र (अनुयोग) कहा जाता है । वह (प्ररूपणा) दो प्रकार है
सामान्येन ३।१ च विशेषेण ३।१ = संक्षेपसे और भेदसे (संक्षेपसे गुणस्थानोंका क्षेत्र विशेषसे मार्गणाओंका)
सामान्येन ३।१ तावत्* मिथ्यादृष्टीनां ६।३ सर्वलोकः १।१ = संक्षेपसे प्रथम (= तावत्) मिथ्यादृष्टियोंका समस्त लोक (क्षेत्र) है

(१) स्वस्थानस्वस्थाने वेदनाकषायमारणान्तिकसमुद्घातेषु उपपादे च एव पञ्चसु पदेषु सर्वलोको मिथ्यादृष्टीनां क्षेत्रम् ॥

स्वस्थानके दो भेदोंमेंसे (१) स्वस्थानस्वस्थान अर्थात् "जीव जिस नरक स्वर्ग नगर ग्रामादि क्षेत्रविषै उपजै" (२) विहारवत्-स्वस्थान अर्थात् जीवोंके विहार करने योग्य जो क्षेत्र हो]

स्वस्थानस्वस्थाने ७।१ वेदना- = स्वस्थानस्वस्थान (पद) में वेदना समुद्घातमें (= मूल देहका न छूटना और = आत्माके प्रदेशोंका बहुत पीडाके अनुभवसे बाहर निकलने) में

कषाय = कषायसमुद्घात (= मूल देहका न छूटना और जीवके प्रदेशोंका किसी तीव्र = कषायके उदयसे परके घातके लिये बाहर निकलने) में

मारणान्तिकसमुद्घातेषु ७।३ = मारणान्तिक समुद्घात (= मूल शरीरका न छूटना और मरते समय आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलने) में

च उपपादे ७।१ = और (= च) उपपाद (= पहलैं जो पर्याय धरता था ताको छोड़ि पहिले समय अन्य पर्याय रूप होइ अंतरालविषै जो प्रवर्तना") में

एव = इसप्रकार ("दश स्थानकनि" उपर्युक्त पांच और वैक्रियिक समुद्घात, तैजससमुद्घात आहारकसमुद्घात केवलिसमुद्घात, विहारवत्स्वस्थानमेंसे)

पञ्चसु ७।३ पदेषु ७।३ मिथ्यादृष्टीनां ६।३ = पाँच स्थानकनिविषैं' मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थानवर्ती) का
क्षेत्रम् १।१ सर्वलोकः १।१ = वर्तमानकालमें निवास वा वर्तमानस्थान वा आधार (= क्षेत्र) समस्त लोक है ॥

द्विगुणरूक्षस्य पंचगुणरूक्षादिभिरुत्तरैर्नास्ति बन्धः ॥ एवं त्रिगुणरूक्षादीनामपि द्विगुणाधिकैर्बन्धो योज्यः ॥ एवं भिन्नजातीयेष्वपि योज्यः॥उक्तंच–

द्विगुण-रूक्षस्य। पंचगुणरूक्षादिभिः। उत्तरैः। =दोगुणरूक्ष(परमाणु)का पांचगुणरूक्षादिकरि अगली निकरि

न✱अस्ति बन्धः।;एवम्✱त्रिगुणरूक्ष-आदीनाम्।अपि=बन्धनहीं है। इस प्रकार तीनगुण(वाली)रूक्षादिकोंका भी(=अपि) (अर्थात् उस तीनगुण-चारगुण-पांचगुण-छहगुण आदि संख्यात, असंख्यात, और अनन्तगुणवाली रूक्षपरमाणुका यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

द्विगुण अधिकैः। =दोगुण अधिककरि (अर्थात् पांचगुण रूक्षकरि, छहगुण रूक्षकरि, सातगुण रूक्षकरि, आठ आदिगुण रूक्षकरि ऐसे दोगुण अधिक संख्यातरूक्षगुणकरि, तथा दोगुणअधिक असंख्यातरूक्षगुणकरि, और दोगुण अधिक अनंतरूक्षगुणवाली परमाणुकरि)

बन्धः।योज्यः। । एवम्✱भिन्नजातीयेषु।अपि✱ =बन्ध योग्य है। इस प्रकार भिन्नजातीय(परमाणुओं)में भी(अर्थात् स्निग्धपरमाणुओंका रूक्षोंकरि और रूक्षपरमाणुओंका स्निग्धोंकरि भी बन्ध)

योज्यः। ॥ =योग्य है (=योज्यः) भावार्थ द्विगुण स्निग्धकै एक दो तीन रूक्षगुण संयुक्त परमाणुओंकरि बन्ध नहीं है। चतुर्गुणही रूक्षकरि बंध है इसी प्रकार तीनगुणस्निग्ध परमाणुओंके पांचगुण रूक्षपरमाणुकरि बंध है। शेष पूर्वोत्तर गुणयुक्त परमाणुओंकरि बंध नहीं है। इस प्रकार संख्यात, असंख्यात, अनन्तगुणके धारक जे स्निग्ध रूक्षपरमाणु तिनकैं सजातीयमें अथवा विजातीयमें दोगुण अधिक संयुक्त परमाणुकरिही बन्ध है अन्य प्रकार नहीं है। एक परमाणुके बन्धके लिये दूसरीमें दोगुण अधिक होना ही चाहिये ॥

उक्तम्।।।च✱ =कहा भी है कि

'णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिएण। लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिएण। णिद्धस्स लुक्खेण उवेदि(हवेदि)बन्धो। जहण्णवज्जो विसमे समे वा ॥गोम्मटसार तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक तथा श्रुतसागरी टीकामें 'दुराधिएण'के स्थानमें दुराहिएण' है ॥ गोम्मटसारमें'उवेदि-हवेदि'=(उपैति)के स्थानमें'हवेज्ज' भवेत् है और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें 'उएइ'=है ॥ श्लोकवार्तिक,गोम्मटसार, श्रुतसागरी टीकामें'वज्जे' हैं सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें (दोनों आवृत्तियोंमें) राजवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें 'वज्जो' शब्द लाये हैं

यह आर्याछन्द अत्यन्त प्राचीन और महत्त्वका है क्योंकि हमारे यहां के लगभग सब संस्कृत भाष्योंमें जैसे सर्वार्थसिद्धिवृत्ति,तत्त्वार्थ राजवार्तिक

द्वाभ्यां गुणाभ्यामधिको द्व्यधिकः। कः पुनरसौ? चतुर्गुणः॥ आदिशब्दः प्रकारार्थः। कः पुनरसौ प्रकारः? द्व्यधिकता। तेन पंचगुणादीनां सम्प्रत्ययो न भवति। तेन द्व्यधिकादिगुणानां तुल्यजातीयानां मतुल्यजातीयानां च बन्ध उक्तो भवति। नेतरेषाम्॥ तद्यथा-द्विगुणस्निग्धस्य परमाणोरेकगुणस्निग्धेन, द्विगुणस्निग्धेन, त्रिगुणस्निग्धेन वा नास्ति बन्धः॥ चतुर्गुणस्निग्धेन पुनरस्तिबन्धः

वृत्त्यनुवादः—द्वाभ्याम्[३/२]।गुणाभ्याम्[३/२]।अधिकः[१/१]।द्वि-अधिकः[१/१]।=(एक परमाणु दूसरेसे) दो गुणकरि अधिक परमाणु सो द्व्यधिक (गुण) है

कः[१/१]।पुनः*असौ[१/१]।? चतुर्गुणः[१/१]।॥ =फिर यह(=असौ) क्याहै। चारगुणवाली है अर्थात् जघन्यगुणवाली परमाणुओं को छोड़कर एकपरमाणुसे दोगुण जिस परमाणुमें अधिक हों सो चतुर्गुण वाली है।

आदि-शब्द[१/१]।प्रकार-अर्थः[१/१]। =(इस सूत्रमें) आदि शब्द प्रकार अथवा जातिके लिये है अर्थात् द्व्यधिक प्रकार से बंध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुसे जिसमें चारगुण है सो दो अधिकगुण वाला परमाणु है 'आदि'शब्दके निमित्त से तीनगुणवाली परमाणुसे पांचगुणवाली परमाणु दोगुण अधिकहै चार गुणवालीसेछहगुणवाली दोगुण अधिक है पांचगुणवालीसे सातगुणवाली दोगुण अधिक है, छह गुणवालीसे आठ गुणवाली दोगुण अधिक है इत्यादि इसी रीतिसे 'आदि'शब्दमें पूर्वोक्त से उत्तरोक्त दोगुण अधिक अधिक वाली क्रमसे सर्व संख्यात-असंख्यात-अनन्तगुणवाली परमाणुयें गर्भित है और इन्ही प्रकारकी परमाणुओंकें बंध होतेहै

कः[१/१]।पुनः*असौ[१/१]।प्रकारः[१/१]।? द्वि-अधिकता[१/१]।। =(प्रश्न)बहुरि वह प्रकार क्या है? (एकपरमाणुमें दूसरीसे)दो(गुण)की अधिकता है

तेन[३/१]।पञ्चगुण-आदीनाम्[६/३]।संप्रत्ययः[१/१]।न*भवतिT =तिस(द्व्यधिक)से पांच गुणादिकोंका जानना अथवा ज्ञान नहीं होता है

तेन[३/१]।द्वि-अधिक-आदि-गुणानां[६/३]।तुल्य-जातीयनां[६/३]।च* =तिस(द्व्यधिक)से दो अधिकादिगुणवाली सदृशोंका और(=च)

अतुल्य-जातीयनाम्[६/३]।बन्धः[१/१]।उक्तः[१/१]।भवतिT। न*इतरेपाम्[६/३]।=विसदृशोंका बन्ध कहागया(=उक्त)है(=भवति)अन्यपरमाणुकें(बन्ध) नहीं है

तद्यथा*द्विगुण-स्निग्धस्य[६/१]।परमाणोः[६/१]।एकगुण-स्निग्धेन[३/१]।द्विगुण-स्निग्धेन[३/१]।वा त्रिगुणस्निग्धेन[३/१]। =जैसे दोगुणवाली स्निग्धपरमाणुओंके एकगुण स्निग्ध(परमाणु)करि दोगुण स्निग्ध(परमाणु)करि वा तीनगुण स्निग्धकरि

न*अस्तिTबन्धः[१/१]। । चतुर्गुण-स्निग्धेन[३/१]।पुनः*अस्तिबंधः[१/१]।=बन्ध नहीं है। बहुरि चारगुण स्निग्ध (परमाणु)करि बन्ध है।

तस्यैव पुनर्द्विगुणस्निग्धस्य पंचगुणस्निग्धेन षट्सप्ताष्टसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन वा नास्ति । एवं त्रिगुणस्निग्धस्य पंचगुणस्निग्धेन बन्धोऽस्ति ॥ शेषैः पूर्वोत्तरैर्न भवति ॥ चतुर्गुणस्निग्धस्य षड्गुणस्निग्धेनास्ति बन्धः । शेषैः पूर्वोत्तरैर्नास्ति । एवं शेषेष्वपि योज्यः॥ तथा—द्विगुणरूक्षस्य एकद्वित्रिगुणरूक्षैर्नास्ति बन्धः । चतुर्गुणरूक्षेणत्वस्ति बन्धः ॥ तस्यैव

तस्य एव*पुनः*द्वि-गुण-स्निग्धस्य पचगुणस्निग्धेन =तथा(=पुनः)तिसही दोगुण स्निग्ध(परमाणु)का पचगुण स्निग्धकरि
षट् सप्त-अष्ट संख्येय-असंख्येय-अनन्तगुण स्निग्धेन वा =छह,सात,आठ (आदि ऐसे)संख्यात,असंख्यात वा अनन्तस्निग्ध(परमाणु) करि
बन्धः न*अस्ति । एवम्*त्रिगुणस्निग्धस्य पचगुण- =बन्ध नहीं है । ऐसे तीनगुणस्निग्ध(परमाणु)के पाचगुणवाला
स्निग्धेन बन्धः अस्ति । शेषैः पूर्व- =स्निग्धकरि बन्ध है।(पांचसे)प्रथम बचीहुई(संख्या एक-दो तीन चार स्निग्ध)निकरि
उत्तरैः =(तीनस्निग्ध गुणवाली परमाणुका बन्ध) तथा अग्रिम
(संख्यातस्निग्धगुणवाली,असंख्यात स्निग्धगुणवालीअनंतस्निग्धगुणवाली)निकरि
न*भवति ॥ =(तीनस्निग्धवाली परमाणुओंका बन्ध) नहीं होता है अर्थात् तीनगुणवाली स्निग्धपरमाणुका बन्ध एक दो तीन-चार स्निग्ध परमाणुओंके साथ जो पांचस्निग्ध गुणवाली परमाणुसे संख्यामें पूर्व है तथा छ सात-आठ-नौ आदि संख्यात असंख्यात अनंत पर्यंत स्निग्धगुणवाली परमाणुओंके साथ जो पांचस्निग्ध गुणवाली परमाणुओंसे उत्तर वा अगली है बन्ध नहीं होता है केवलपांचगुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथही तीनस्निग्धगुणवाली परमाणु बन्धको प्राप्त होती है
चतुर्गुणस्निग्धस्य षड् गुणस्निग्धेन अस्ति बन्धः, =चारगुण स्निग्ध(परमाणु)का छहगुणस्निग्ध (परमाणुकरि) बन्ध है
शेषैः पूर्व- =(छहगुणस्निग्धपरमाणुसे) बची हुई पहली(एकसे पांच तक स्निग्धपरमाणु,निकरि
उत्तरैः =(तथा छहगुणस्निग्धपरमाणुसे)अगली (सात आठ नौ-दश आदिक संख्यातगुण स्निग्ध परमाणु असंख्यातगुण स्निग्धपरमाणु अनंतगुण स्निग्धपरमाणु)निकरि
न*अस्ति । एवम्*शेषेषु अपि*योज्य ॥ तथा* =(बंध)नहीं होता है । इस प्रकार(दोगुण अधिक)अवशेष विषैंभी जोड़ो । उसीप्रकार
द्विगुणरूक्षस्य एक-द्वि त्रिगुणरूक्षैः न * अस्ति बन्धः =दोगुणरूक्ष(परमाणु)के एक दो तीन गुणवाली रूक्ष(परमाणु)करि बन्ध नहीं है
चतुर्-गुणरूक्षेण तु*अस्ति बन्धः तस्य एव* =किन्तु (=तु)चारगुण वाली रूक्ष परमाणु करि बन्ध है । तिसही

सदृशानाम्³ विसदृशनाम्³ परमाणूनाम्³ =सजातीय अथवा विजातीय परमाणुओंका
परस्परेण*बन्धः⁵ भवति¹ =आपसमें बन्ध होता है ॥ द्वि-अधिक आदिगुण वाक्यमें आदि शब्द प्रकार वा जातिवाची है। दोगुणकरि अधिक सो द्व्यधिकगुण है अर्थात् बंध होनेयोग्य जो परमाणु दोगुण करि अधिकहै सो द्व्यधिकगुण(परमाणु है, जघन्यगुणको छोड़कर बंध होने योग्य दो अधिक गुणवाली परमाणु है। अतः द्व्यधिक गुण परमाणु का अभिप्राय चार गुण संयुक्त परमाणु हुई ॥ "द्व्यधिकादिबन्धःभवति" अर्थात् द्व्यधिक प्रकारसे बन्ध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुंसे जिस में चारगुण है सो दो अधिक गुणवाली परमाणु है, आदि शब्दके हेतुसे तीन गुण वाली परमाणुसे पांच गुण वाली परमाणु दो गुण अधिक है, चार गुण वाली से छह गुण वाली दो गुण अधिक है, पांच गुण वाली से सात गुण वाली दो गुण अधिक है, छह गुण वालीसे आठ गुण वाली दोगुण अधिक है इत्यादि इसी रीति से (आदि शब्द में) पूर्वोक्त से उत्तरोक्त दो गुणअधिकवाली क्रमसे सर्व (सख्यात असंख्यात-अनंतगुणवाली परमाणुंयें गर्भित है और इन्ही प्रकार की परमाणुंओके बंध होता है ॥

(क) सजातीय परमाणुंओं के आपस में बंध के उदाहरणः—दो गुणवाली स्निग्ध परमाणु चार गुणवाली स्निग्ध परमाणु के साथ बंधको प्राप्त होती है तीन गुणवाली स्निग्ध पांच गुणवाली स्निग्ध के साथ, चार गुणवाली स्निग्ध छह गुणवाली स्निग्ध के साथ पांच गुणवाली स्निग्ध सात गुणवाली के साथ छह गुणवाली स्निग्ध आठ गुणवाली स्निग्ध के साथ बंधको प्राप्त होती हैं इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश, आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुयें, असंख्यात गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें और अनंत गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ दश ग्यारह बारह आदि, संख्यात गुणवाली

---

*अब श्वेताम्बर आम्नायके आचार्योंने "गुणसाम्ये सदृशानां" सूत्रका यह अर्थ किया है कि गुणोंकी समान संख्या होनेपर सदृशोंका बन्ध नहीं होगा परन्तु विसदृशोंका बन्ध गुणोंकी संख्याके तुल्य होनेपर भी होजावेगा तब यह परिणाम निकला कि सदृश परमाणुओंके ही बन्धके लिये एकसे दूसरेमें दोगुणोंके अधिक होनेकी आवश्यकता हुई क्योंकि उक्त आम्नायके सिद्धान्तके अनुकूल विसदृश परमाणुओंके आपसमें बन्ध होनेके लिये एकसे दूसरेमें अधिकगुणोंके होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु हमारे यहां 'गुणसाम्ये सदृशानां' में 'स्निग्धरूक्षत्वाणाम्' कीभी अनुवृत्तिग्रहणकीहै इसलिये ऐसा अर्थ होता है कि परमाणुओंमें गुणोंकी संख्या यदि बराबर हो तो चाहे वे परमाणु सजातीय हों अथवा विजातीय हों बन्ध नहीं होता है और पश्चात् 'सदृशानां विसदृशानां' दोनोंकी अनुवृत्ति द्वि-अधिकादि गुणानांतु' सूत्रमें ग्रहण करके ऐसा तात्पर्य निकाला है कि द्विगुण आदिसे अधिक गुण वाली सदृश परमाणुओंका परस्पर अथवा विसदृश परमाणुओ का आपसमें बन्ध होता है अन्य प्रकारसे नहीं जघन्यगुणवाली परमाणुओंको दोनोंही सम्प्रदायवालोंने बन्धसे वर्जित रक्खा है ॥

स्निग्ध परमाणुओंके साथ, असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ पूर्वोक्त से उत्तरोक्त दो दो गुण अधिक, अधिक स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती है ॥

( ) दो गुणवाली रूक्ष परमाणु चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ, तीन गुणवाली रूक्ष पांच गुणवाली रूक्ष के साथ, चार गुणवाली रूक्ष छह गुण वाली रूक्ष के साथ पांच गुणवाली, रूक्ष सात गुणवाली रूक्ष के साथ, छह गुण वाली रूक्ष आठ गुणवाली रूक्षके साथ बंधको प्राप्त होती है ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यात गुणवाली रूक्ष परमाणुयें असंख्यात गुण वाली रूक्ष परमाणुयें और अनंत गुण वाली रूक्ष परमाणुयें यथाक्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ, असंख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ और अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ पूर्वोक्तसे उत्तरोक्त दो दो गुण अधिक अधिक रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती है ॥

(ख) विजातीय परमाणुओंके परस्पर बंधके दृष्टांत—दो रूक्ष गुणवाली परमाणुओंका बंध चार स्निग्धवाली परमाणुओंके साथ होता है। *तीन रूक्ष गुणवालीका पांच स्निग्धगुणवालीके साथ, चार रूक्षगुणवालीका छह स्निग्ध गुणवालीके साथ, पांच रूक्ष* गुणवालीका सात स्निग्धवालीके साथ, छह रूक्षगुणवालीका आठ स्निग्धगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इस प्रकारसे सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली रूक्ष परमाणुयें, असंख्यात गुणयुक्त रूक्ष परमाणुयें और अनंत गुणसंयुक्त रूक्ष परमाणुयें क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं यदि पूर्वोक्त रूक्षगुणवाली परमाणुओंसे उत्तरोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंमें दो दो गुण अधिक अधिक स्निग्धताके हों तो ॥

() दो *स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका बंध* चार रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ होता है; तीन स्निग्धगुणवालीका पांच रूक्षगुणवालीके साथ, चार स्निग्धगुणवालीका छह रूक्षगुणवालीके साथ, पांच स्निग्धगुणवालीका सात रूक्षगुणवालीके साथ, छह स्निग्धगुणवालीका आठ रूक्षगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली स्निग्धपरमाणुयें असंख्यातगुणयुक्त स्निग्धपरमाणुयें, और अनंतगुणवाली स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह, आदि संख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ असंख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ और अनंतगुणवाली रूक्ष परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं यदि पूर्वोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंसे उत्तरोक्त रूक्षगुणवाली परमाणुओंमें दो अधिक रूक्षताके हों तो ॥

अतो विषमगुणानां तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां च अनियमेन बन्धप्रसक्तौ विशिष्टार्थसंप्रत्ययार्थमिदमुच्यते— ॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥

नही होता यदि सूत्रमें'सदृशानां'न लाते तो वह इस प्रकार छूटजाता कि तेतीसवां सूत्रसे'स्निग्धरूक्षत्वानाम्'कीअनुवृत्ति तो इस सूत्रमें आजाती और अर्थ यह होता कि गुणोंकी समानता होनेपर स्निग्धरूक्षोंका बन्ध नही होताहै इसअनुवृत्तिसे इस बातकी प्राप्ति हुई कि गुणोंकी विषमता होनेपर असदृशोंका बन्ध होगा अब सूत्रमें 'सदृशानां'शब्द तो होताही नहीं अतएव सदृशानां का कथनहीविषमगुणोंकी अवस्थामें नहीं करसकतेथे इसी हेतुसे वृत्तिमें 'सदृशानां'केसाथ 'अपि'(=भी) शब्द लाये हैं कि गुणोंकी विषमतामें सदृशोंका भी बन्ध प्रगट होजाय ; अपि शब्दसे यह भास होता है कि ३३वां सूत्रकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आनेसे असदृशोंका बन्धतो विषमगुणोके होनेपर होहीजाताहै।सूत्रमें'सदृशानां'लानेसे विषमगुणोंमेंसदृशोंके बन्धकीभी प्राप्ति होगई अतः सूत्रमें सदृशानां' शब्द व्यर्थ नहीं है।।स्मरण रहे कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका अर्थ करनेमें हमारे यहां'साम्ये'शब्द पर बल देकर यह अर्थ किया है कि सदृशों(सजातीय परमाणुओं)का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर नहीं होता गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका भी बन्ध होता है इसलिये सूत्रमें सदृशानां' शब्दका ग्रहण है कि गुणकी विषमता होनेपर सजातियोंकाभी बंध होता है।।श्वेताम्बर आम्नायमें 'सदृशानां' शब्दपर बलदेकर यह अर्थ कियाहै कि सदृशोंका बन्ध गुणोंकीसमानता होनेपर नहीं होता है विसदृशों'का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर भी होजाता है जैसे चार गुणवाली स्निग्ध परमाणुका बन्ध चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ होजावेगा इसीलिये श्वेताम्बर तथा दिगम्बरआम्नायोंमें इस सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है ।

अतः*विषमगुणानाम्[६/३]तुल्यजातीयनाम्[६/३]च* =इसलिये विषमगुणवाले सदृशोंका और (=च)
अतुल्यजातीयनाम्[६/३]अनियमेन[३/१]बन्ध- =विसदृशों(=असदृशों)का नियमरहित वा अविशेषरूपसे बन्धका
प्रसक्तौ[७/१]।।विशिष्ट-अर्थ-संप्रत्यय-अर्थम्[१/१]।। =प्रसंग आनेपर विशेष तात्पर्य वा अभिप्राय जतावनेके लिये
इदम्[१/१]।।उच्यते। =यह(अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

(१)सूत्रम्—द्व्यधिकादिगुणानां तु।३६। = द्वि-अधिक-आदिगुणानाम् (सदृशानाम् विसदृशानाम् परमाणूनां परस्परेण बन्धः) तु (भवति) ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थः-द्वि-अधिक-गुणानाम्[६/३]। =किन्तु (पर-परंतु) दोगुण आदिसे(=आदिकरि)अधिकगुणवाले

(१) यह सूत्रभी परम गुणारी सम्बन्ध रखता है क्योंकि 'न जघन्यगुणानम्' 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' इन सूत्रोंसे अनुवृत्तियां इस सूत्रमें ग्रहण कीगई हैं

गई है ॥ अर्थात् सदृशोंका विसदृशोंका पना तथा सूक्ष्म परमाणुओं स्थूलोंसे सूक्ष्म बन्ध नाममें सूक्ष्म बतलाते हैं परस्परका और भवति शब्दोंका अध्याहार इस सूत्रमें कियागया है। तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इस सूत्रका प्रथमवार्तिककी वृत्तिमें कितनेही उदाहरण दिये हैं ॥ सदृश परमाणुओंका सम्बन्ध रखता है राज०२४७ । यह भाव भी यह है कि बन्ध होनेके पश्चात् स्कन्ध हो जाते हैं ॥ अन्यान्य प्रथमवार्तिककी वृत्तिमें वाक्योंसे प्रगट है मालूम होता है कि बिना बन्धके ॥ द्वि अणु आदि अनन्तानन्त प्रदेशवाले स्कन्धोंकी उत्पत्तियें दिखाया, इसप्रकार स्निग्ध रूक्षोंके बन्ध होनेपर द्व्यणुकसे द्वि अणुआदि अनन्तानन्त प्रदेश पर्यन्त स्कन्धोंकी उत्पत्ति जानना चाहिये, समर्थनमें देखो इसका पृ०४६ जिसमें श्वेता०आम्नायके सम्बन्धमें कुछ कहा है

(२) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एक है तो भी अर्थमें यह भेद है कि वे दोनों केवल सदृशानाम् की अनुवृत्ति गुणसाम्ये सदृशानाम् सूत्रसे लेकर इस प्रकार सूत्र किया है कि द्वि अधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवतीति भाष्यम्- द्वाभ्यां गुणविशेषाभ्यामभ्यधिक परमाणुसे आदियतो गुणानां द्वि अधिकादिगुणा गुण शब्दोऽत्र गुणिवचन गुणवन्तो गुणाः परमाणव इत्यर्थ तथा द्वि अधिकादि गुणानामणूनां सदृशानां बन्धो भवति ॥ सदृशानामिति स्निग्धसामान्यरूक्षसामान्यपाधि च सादृश्य व्याख्येय ॥ श्रीसिद्धसेनसूरि विरचिता भाष्यानुसारिणी टीका या भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका पृ० ४९६-श्वेताम्बर आम्नायमें यह ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्रपर महत्त्वका है इसमें बाईस सहस्र श्लोकोंके प्रमाणका बोध कुछ है॥

द्वि अधिक आदि-गणाना तु सदृशानाम् बन्ध भवति इति	=परन्तु द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाले सदृश(परमाणु)निका बन्ध होताहै, एसाहै
भाष्यम् – अन्यस्मात् द्वाभ्याम् गुणविशेषाभ्याम् अधिक	=व्याख्या(भाष्य)है कि अन्य परमाणु से(=अन्यस्मात्) दो विशेषगुणकरि अधिक अर्थात् स्निग्धहोतो द्विगुणअधिकस्निग्धकरि और रूक्षहोतो द्विगुण अधिकरूक्षकरि
य परमाणु स आदि येषाम् गुणानाम् ते द्वि अधि कादिगुणा	=जो परमाणु है सो है आदिगुण(=आदिगणाना)जिनके हैं वे(=ते द्वि अधिकादि गणाहै
गुणशब्द अत्र गुणिवचन	=यहां।=अत्र अर्थात् इससूत्रमें) गुण शब्द है सो गुणीका वाचक(=गुणि-वचन)है।
गुणव त गुणा परम णुर इत्यर्थ	=गुण सहित हैं ये गणा परमाणु हैं एसा तात्पर्य है अर्थात् सूत्रमें गुणाना शब्द है सो जिनके गुण विद्यमान है उनसे प्रयोजन है एसी गुणवालीपरमाणु है
तेषाम् द्वि अधिकआदिगुणानाम् अणूनाम् सदृशानाम् बन्ध भवति	=तिन द्विगुण अधिक आदिसे सदृश परमाणुओंका बन्ध होताहै
सदृशाना इति स्निग्धसामान्य रूक्षसामान्य च आश्रित्य	=सदृशाना एसा वाक्य सामान्य स्निग्धका और सामान्य रूक्षका आश्रयकरि
सादृश्यव्याख्येयम् ॥ताचेका भाष्य,सभाष्य०क पृ०१३९से लिया है	=(सामान्य स्निग्ध और सामान्य रूक्षका विवक्षासे)समानता वर्णित है
भाष्यम्-द्वि अधिकादिगुणाना तु सदृशाना बन्धो भवति	=द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाले सदृश पदार्थोंकाभी बन्ध होता है ॥

विशेषव्याख्या- अब इस विषयको कहते हैं कि रूक्षका रूक्षके साथ औरस्निग्धका स्निग्धके साथ भी बन्ध होता है किन्तु रूक्ष तथा स्निग्धगुणों की इस प्रकारसे विषमता होनी चाहिये कि

यथा स्निग्धस्य द्विगुणाद्यधिक स्निग्धेन(द्विगुण आदिअधिक)।	=जैसे स्निग्धका अर्थात्सामान्य स्निग्धका द्विगुणआदि अधिक स्निग्धके साथबन्धहोताहै
द्विगुणाद्यधिक स्निग्धस्य स्निग्धेन द्विगुण आदि अधिक)॥	=(तथा)द्विगुण आदि अधिक स्निग्धका सामान्य स्निग्धके साथ बन्ध होता है
रूक्षस्यापि द्विगुणाद्यधिकरूक्षेण(द्वि-गुण आदि अधिक)	=(ऐसेही सामान्य)रूक्षका द्विगुण आदि अधिक रूक्षके साथ बन्ध होता है
द्विगुणाद्यधिकरूक्षस्य रूक्षेण(=द्वि गुण आदि अधिक)	=तथा द्विगुण आदि अधिक रूक्षका सामान्य रूक्षके साथ भी बन्ध होता है (तात्पर्य यह कि सामान्य स्निग्ध पदार्थका उससे द्विगुण अधिक स्निग्धके साथ बन्ध होता है और सामान्य रूक्ष पदार्थका उससे द्विगुण अधिक रूक्षके साथबन्ध होता है परन्तु यह बैपम्य द्विगुण आदिसे अधिक होना चाहिये)
एकादिगुणाधिकयोस्तु सदृशयोर्बन्धो न भवति	=और एकादिगुण अधिक सदृशोंका बन्ध नहीं होताहै ॥ देखो सभाष्य०पृ० १२६॥

सदृशग्रहणं तुल्यजातीयसंप्रत्ययार्थं । गुणसाम्यग्रहणं तुल्यभागसंप्रत्ययार्थम् ॥ एतदुक्तं भवति—द्विगुणस्निग्धानां द्विगुणरूक्षैः त्रिगुणस्निग्धानां त्रिगुणरूक्षैःद्विगुणस्निग्धानां द्विगुणस्निग्धैः द्विगुणरूक्षाणां द्विगुणरूक्षैश्चैत्येवमादिषु नास्तिबन्धइति ॥ यद्येवं

आदि संख्यात-असंख्यात अनंत गुणवाली स्निग्धपरमाणुओंका वन्ध तीन-चार-पांच-छह-सात आदि संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ न होगा ॥ उपर्युक्त उदाहरण विजातीय(असदृश वा विसदृश) परमाणुओंके, जो अविभाग परिच्छेदरूप अंशोंमें समान हैं । निम्नलिखित दृष्टान्त सजातीय वा सदृश परमाणुओंके हैं जो सवकी सव गुणोंमें एक दूसरेके बरावर वा समान हैं ।

जैसे दो गुणवा तीन गुणवाली स्निग्धपरमाणुका वन्ध दो गुणवाली वा तीन गुणवाली स्निग्ध परमाणुसे यथासंख्य न होगा और दो गुणवाली अथवा तीन गुणवाली रूक्ष परमाणुका वन्ध दो गुणवाली वा तीनगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ क्रमसे न होगा,इसीप्रकार चार-पांच-छह-सात-आठआदिकसंख्यात-असंख्यात-अनंत स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंकावन्ध चार-पांच-छह-सात-आठआदिसंख्यात-असंख्यात अनंतगुणवालीस्निग्ध परमाणओंके साथ क्रमसे न होगा और चार-पांच-छह-सात-आठ-आदि संख्यात-असंख्यात अनंतरूक्षगुणवाली परमाणुओंका वंध क्रमसे चार-पांच-छह-सात-आठ आदि संख्यात-असंख्यात-अनंतगुणसे युक्त रूक्षपरमाणुओंके साथ न होगा ॥

वृत्त्यनुवादः—सदृश-ग्रहणम्$\frac{1}{1}$।।तुल्य-जातीय-संप्रत्यय-अर्थम्$\frac{1}{1}$।। =(इस सूत्रमें)सदृश(शब्द)का ग्रहण समानजातिको प्रगट करनेके लिये है

गुणसाम्य-ग्रहणम्$\frac{1}{1}$।।तुल्य-भाग-संप्रत्यय-अर्थम्$\frac{1}{1}$।।;एतद्$\frac{1}{1}$।।उक्तम्$\frac{1}{1}$।।भवति। =(इससूत्रमें)गुणसाम्य वाक्यका लाना(स्निग्धता वा रूक्षताकेगणनामें) बरावर =अविभागपरिच्छेदरूप अशोंके जतावनेकेलिये है। यह कथन वाअर्थहोताहैकि

द्विगुण(१ स्निग्धानाम्$\frac{6}{3}$।द्विगुण(२)रूक्षैः$\frac{3}{3}$।त्रिगुण(३)स्निग्धस्नाम्$\frac{6}{3}$। =दोगुण स्निग्धोंके दोगुण रूक्षोंकरि, तीनगुण स्निग्धोंके

त्रिगुणरूक्षैः$\frac{3}{3}$।द्विगुणस्निग्धानाम्$\frac{6}{3}$।द्विगुणस्निग्धैः$\frac{3}{3}$। =तीनगुणरूक्षोंकरि, दोगुणस्निग्धोंके दोगुण स्निग्धोंकरि,

च*द्विगुणरूक्षाणाम्$\frac{6}{3}$।द्विगुणरूक्षैः$\frac{3}{3}$।इत्येवम्*आदिषु$\frac{7}{3}$। =और दोगुण रूक्षोंके दोगुण रूक्षोंकरि इत्यादि में

न*अस्ति। बन्धः$\frac{1}{1}$।इति*।।यदि*एवम्* =इस प्रकार वन्ध नहीं है । (प्रश्न) जो ऐसे है तो अर्थात् गुणोंकी संख्यामें बरावरी होनेपर न तो सदृश परमाणुओंका बंध होता है और न असदृश

(१)(२)(३)तीन स्थानोंपर इस पृष्ठमें और पांच स्थानोंमें १२४ पृष्ठमें 'बहुवचनमें' ये शब्द इसलिये लाये गयहैं कि लोकमें ऐसी परमाणु अनन्तानन्त है

सदृशग्रहणं किमर्थं ? गुणवैषम्ये(सदृशानामपि)बधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते॥

परमाणुओंकाही बंध होताहै जब सदृश विसदृश दोनोंहीका बन्ध नहीं होता तब सूत्रमें
सदृश ग्रहणम्¹।।।किम्¹।।।अर्थम्¹।।। ? =सदृश(शब्द)का ग्रहण किसलिये है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्ये' और 'न' की अनुवृत्ति 'नजघन्यगुणानाम्' सूत्रसे आकर 'गुणसाम्येन' सूत्र होकर एसा अर्थ होजाता कि '(परमाणुओंमें)गुणोंकी संख्या एक दूसरोंसे बराबर होनेपर बंध नहीं होता'
गुण-वैषम्ये?।।।(सदृशानाम्¹।अपि*) बध-प्रतिपत्ति-अर्थम्¹।।।सदृश-ग्रहणम् क्रियते। =(उत्तर)गुणोंकी विषमता होनेपर { सजातीय(परमाणु)निकें भी(=अपि) } बंध =जतलानेके लिये (सूत्रमें) सदृश(शब्द) ग्रहण किया गया है वा लायागया है।।शिष्यके प्रश्न और आचार्यके उत्तरका साराश यह है कि शिष्यने 'न जघन्यगुणानाम्' सूत्रका अर्थ समझकर कि जघन्यगुणोंकी परमाणुओंका चाहे सदृश हों वा विसदृश हों बन्ध नहीं होता है अजघन्यगुणोंवाली परमाणुओंका बंध होताहै पश्चात् 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका बंध होता है और न असदृशोंका बन्ध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें चाहे सदृश हों चाहे विसदृश हों बंध होजाता है प्रश्न करदिया कि जब "न जघन्यगुणानाम्" सूत्रमें सदृश विसदृशका बंध नहीं है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका बन्धहै तब सूत्रभी उसी ढांचेपर बनाना था अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर बन्ध नहीं होता(न सदृशोंका न असदृशोंका फिर इस सूत्रमें 'सदृशानां' लाना व्यर्थ है आचार्यके उत्तरका भावार्थ यहहैकि सदृशोंका बंध विषमगुणोंके होनेपरभी

(१) सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें "गुणवैषम्ये बंध प्रतिपत्त्यर्थं" पाठ है द्वितीयावृत्तिमें 'गुणवैषम्ये सदृशानामपि बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं' पाठ है। तीन हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिकीप्रतियोंका पाठभी प्रथमावृत्तिसे मिलता है॥ यही पाठ श्लोकवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें और तीन चार प्रतियों राजवार्तिककी वार्तिक पांचका है तत्वार्थराजवार्तिकमें इस वार्तिककी वृत्ति ऐसे हैं कि 'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवतीत्येतस्यार्थस्य प्रतिपत्त्यर्थं' इत्यादि अर्थात् यह वृत्ति सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मेल रखती है॥ "गुणवैषम्ये बंधो भवति इति परिज्ञानार्थं सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिसे मिलता जुलता हुआ पाठ श्रुतसागरी टीकामें है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में दो स्थानोंपर देखा(पृष्ठ १३८)तथा भाष्यानुसारिणीतत्वार्थ टीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकोंसे भी अधिक हैं उसके पत्र ४६६ पर दो स्थानोंपर गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति 'पाठहै जो सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीया वृत्तिसे मिलता जुलता हुआ है॥ गुणका विषमता [illegible] तो बंध होय है ऐसे अनावनेक अर्थ हैं' प० जयचन्दजीने ऐसाअर्थ कियाहै॥ गुणका विषमता होते सन्तेभी बन्ध होय हैं' न्यायदिवाकरजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय५ पत्र १४३मेंहै॥ प०पन्नालाल दूनीजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय ५ पत्र १०० पर "गुणनिकी विषमतामें सदृशनिकें बंध है" ऐसा अर्थ प्राप्त है सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर इन सबका परिणाम यहहै कि यथार्थमें सर्वार्थसिद्धि का पाठ तो 'गुणवैषम्ये बंधप्रतिपत्त्यर्थं' है॥ 'सदृशानां" वाक्य शेष है अर्थात् यह शब्द छिपा हुआ है हमने द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए "सदृशानामपि"को कोष्टकमें करदिया है क्योंकि 'सदृशानां"सहित अनुवाद करनेमें तथा अर्थ और व्याख्या समझने समझानेमें सरलता होजाती है॥

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनामयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः

सासादनसम्यग्दृष्टि-आदीनाम् ६। अयोगकेवलि-	= सासादनसम्यग्दृष्टि आदि अयोगकेवली (चौदहवें गुणस्थान तक)
अन्तानाम् ६। लोकस्य ६। असंख्येय-भागः १।	= पर्यन्तोंका लोकके असंख्यातवां भाग (वर्तमान कालमें निवास वा क्षेत्र) है

मूलदेह छूटै नाहिं बाहिर प्रदेश जाहिं. कह्यो है समुदघात सोई भेद सात है। क्रोधसेती सत्रुनिपै वेदनासौं औषधिपै, शुभाशुभ तैजसको पूतला विख्यात है ॥ मरणांत गतिमांहि वैक्री बहु जीव करै, आहारक साधूनिके संदेह विलात है ॥ केवल समुदघात समैमांहि चेतन ही काय सेती बाहिर निकल आप जात है ॥ ११ ॥ (द्यानतरायकृत द्रव्यसंग्रह भाषा)

सासादनस्य असंयतसम्यग्दृष्टेश्च स्वस्थानस्वस्थानविहारवत्स्वस्थानवेदनाकषायवैक्रियिकमारणान्तिकोपपादेषु लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रम् ॥ मिश्रस्य तेष्विव मारणान्तिकोपपादरहितेषु। तद्रहितत्वं कुत इति चेत्तस्य मारणान्तिकमरणयोरभावात्। तदपि कुतः? मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि' इत्यनेन 'मिस्सा आहारस्स य खवगा' इत्यादिना च तयोः प्रतिषेधान्निश्चीयते ॥ एवं देशसंयतादिषु आगमानुसारेणाववोद्धव्यम् ॥

(१) सासादनस्य ६। असंयतसम्यग्दृष्टेः ६। च	= सासादन सम्यग्दृष्टिका और (= च) असंयमी सम्यग्दृष्टिका
स्वस्थानस्वस्थान—	= स्वस्थानस्वस्थान (= जीव जिस नरक स्वर्ग नगर ग्रामादि क्षेत्रमें उपजे उस) में
विहारवत्स्वस्थान—	= विहारवत्स्वस्थान (= जीवोंके विहार करने योग्य जो क्षेत्र हो उस) में
वेदना-कषाय-वैक्रियिक	= वेदनासमुद्घातमें, कषायसमुद्घातमें, वैक्रियिकसमुद्घातमें (= विक्रिया अर्थात् छोटे बडे एक अनेक आदि नाना क्रियायोंके निमित्तसे मूल शरीरको न छोड़कर आत्माके प्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलने)में
मारणांतिक—	= मारणांतिक समुद्घात (मरण होनेसे प्रथम नवीन पर्यायके धरनेका क्षेत्र पर्यंत प्रदेशोंका मूल देहको न छोड़कर निकसने) में
उपपादेषु ७॥	= उपपाद (प्रथम धारणकी हुई पर्यायको त्यागकर पहले समय अन्य पर्याय रूप हो अंतरालमें प्रवर्तनकी अवस्था) में
लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। क्षेत्रम् १॥.	= लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है अर्थात् वर्तमानकालमें निवास (= क्षेत्र) है
मिश्रस्य ६। मारणांतिक—उपपाद—रहितेषु ७॥	= सम्यग्मिथ्यादृष्टिका मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादरहित

सूत्रार्थ —गुणसाम्ये [2] ॥असदृशानाम् [3]सदृशानाम् [3]=गुणोंकी सख्यामें समानता होनेपर विजातीय और सजातीय(=रूक्षरूक्ष,स्निग्धस्निग्ध) परमाणूनाम् [3]बन्ध [3] न*भवति। =परमाणुओंके बन्ध नहीं होता है अर्थात् एक परमाणुके अविभाग परिच्छेदरूप अशों(=गुणों)की गणना दूसरी परमाणुके अविभागपरिच्छेदरूप अशोंकी सख्याके यदि बराबर हो तो उन दोनों परमाणुओंका आपसमें चाहे रूक्षस्निग्ध(विजातीय) (क्रमसे) हो चाहे स्निग्धरूक्ष=(विजातीय)(क्रमसे)होंचाहे स्निग्धस्निग्ध=(सजातीय)(क्रमसे)होंचाहे रूक्षरूक्ष=(सजातीय)क्रमसे हों बध नहींहोताहै जैसे रूक्षपरमाणुके दो अविभागपरिच्छेदरूप अशका बध स्निग्धपरमाणुके दो गुणोंके साथ नहीं होगा औरदो स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका बन्ध दो रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ नहीं होसकता है इसी प्रकार तीन चार पाच छह-सात आदि सख्यात असख्यात अनतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंका बध तीन चार पाच-छह सात आदि सख्यात-असख्यात अनतगुणवाली स्निग्धपरमाणुओंके साथ नहीं होगा और तीन-चार पाच छह-सात

गुणसाम्ये वा इति सूत्र उपदेशे हि सदृशाना गुणवैषम्येऽपि = गुणसाम्ये वा यदि ऐसा सूत्र करते तो गुणोंकी विषमता होनेपर भी सदृशोंके
बधप्रतिषेध प्रसक्तो =बध षेधका प्रसग आजाता अर्थात् सदृशोंका भी बन्ध न होता। (इसलिये)
तद् वत् तद् सिद्धये सदृश =विसदृशोंके समान (=तद्वत्) सदृशोंका बध (=तद्)सिद्ध करनेके लिये सदृशका
ग्रहणम् कृतम् , तत स्निग्धरूक्षजात्या =ग्रहण (इससूत्रमें)किया है। तिसकरि अर्थात् स्निग्ध रूक्ष जातीयसे
साम्येऽपि =समान होने पर भी भावार्थ रूक्ष रूक्ष या स्निग्ध स्निग्ध होनेपर भी
गुण वैषम्ये बधसिद्धि । =गुणोंकी विषमता होने पर बधकी सिद्धि है। बन्ध होजाता है॥

इस सूत्रका पाठ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें अक्षरश मिलने पर भी अर्थमें भेद है॥ श्वेताम्बर आम्नायके आचार्यों ने 'स्निग्ध रूक्षत्वात्" वेतीसवां सूत्रकी अनुवृत्ति नहीं ली है वे कहते हैं कि ततीसवा सूत्रसे उपर्युक्त अनुवृत्ति नहीं लेना चाहिये नहीं तो सूत्र अशुद्ध होजावेगा यही कारण है कि सूत्रके अर्थमें भेद पडगया है उनके अनकूल"गुणसाम्येसदृशानाम्"="गुणसाम्ये सति सदृशाना बन्धा न भवति"=गुणकी समता होने पर सदृशोंका बध नहीं होता" पर असदृशोंका बध अर्थात् रूक्षस्निग्धका बध गुणोंकी बराबरी होनेपर भी होजाता है उनका भावार्थ यह है कि गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका (रूक्षका रूक्षके साथ और स्निग्ध का स्निग्धके साथ)बध होजाता है और यह गुणोंकी विषमता उनके 'द्वि अधिकादिगुणानां तु'(=द्विअधिकादिगुणाना तु सदृशाना बन्धा भवति' सूत्रके अनुसार केवल दो गुण एकसदृशसे दूसरे सदृशमें अधिक होना चाहिये बस बध होजावेगा परन्तु उनके मतानुसार इससे यह फल निकला कि असदृशोंके परस्पर (रूक्षका स्निग्धके साथ अथवा यों कहिये कि स्निग्धका रूक्षके साथ) बध होनेके लिये गुणोंकी अधिकताकी कोई आवश्यकता नहीं है तो असदृशोंके गुणोंकी सख्या समान होने पर भी बध होजाताहै। (इस टिप्पणी को हमने श्वेताम्बर आम्नायके कईभाष्योंको मिलाकर सावधानी से लिखो है)॥

विषयख्यापनार्थमाह— ॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥

विषय-ख्यापन-अर्थम्[१] आह।[१] =प्रकरणके कहनेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते है अर्थात् ऊपरके उपान्तिक वा उपधा वाक्यसे ऐसा अनुमान निकलता है कि जघन्यगुणोंको छोड़कर अन्य सब गुणवाली परमाणुओंका स्निग्धरूक्षतासे बन्ध होजाता होगा सो इस प्रसंगको दूर करनेके लिये आचार्य बन्धके निषेधका निम्नलिखित अन्यसूत्रमें कहते है कि

(१)सूत्रम्—गुणसाम्ये सदृशानाम्॥ ३५॥ = (न)गुणसाम्ये(स्निग्धरूक्षत्वानाम्) सदृशानाम् (परमाणूनाम् बन्धः भवति) ॥ ३५ ॥

=गुणसाम्ये असदृशानाम् सदृशानाम् परमाणूनाम् बन्धः न भवति ॥ ३५ ॥

परमाणुमें बन्ध नहीं होसका है तब वह परमाणु बिना बन्धके पृथक्‌ही रहेगी कभीभी स्कधरूपमें नहीं होसकी(जबतक जघन्य गुण उसमें विद्यमान है)॥ श्लोकवार्तिक पृ० ४३६,राजवार्तिक तथा जयचद्रायजीकी वचनिकापृ०४६२,४६३सेप्रगटहैकि यहसूत्र केवल परमाणुओंसेही संबधरखताहैनकिस्कधोंसे।

(१) यह सूत्र जो पर्व चौतीसवां सूत्रका अपवाद विशेष समर्थनके लिये है परमाणुओंसे सम्बन्ध रखता है स्कन्धोंसे नहीं क्योंकि चौतीसवां सूत्र से 'परमाणनाम्' शब्दकी भी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आती है। समस्त तेतीसवां सूत्रभी यहां अनुवर्तता है। 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्'और 'असदृशानाम्' यहां पर समानार्थकवाची है अत "स्निग्धरूक्षत्वानाम्"के स्थानमें "असदृशानां"वाक्यका आदेश करदिया है। यहकि स्निग्धरूक्षत्वानाम्"की अनुवृत्ति आती है इसके समर्थनमें श्लोकवार्तिकसे निम्न वाक्य देते हैं। नन्वेवं विसदृशानां गुणसाम्ये बन्धप्रतिषेधो न स्यादिति न मतव्यं सदृशग्रहणस्य विसदृशव्यवच्छेदार्थत्वाभावात् सदृशानामेवेत्यवधारणानाश्रयणात् ॥ गुणसाम्येषेति स त्रोपदेशेहि सदृशानां गुणवैषम्येऽपि बधप्रतिषेधप्रसक्तौ तन्निवृत्तिसिद्धये सदृशग्रहणकृतं, तेन स्निग्धरूक्षजात्या साम्येपि गुणवैषम्यबन्धसिद्धिः॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक सूत्र३५ पृ० ४३७॥

ननु एवं*विसदृशानां गुणसाम्ये बंधप्रतिषेधः न स्यात् इति=प्रश्न ऐसे गुणोंकी समानता होनेपर विसदृशोंके बन्धका निषेध नहीं होता होगा

न मंतव्य, सदृशग्रहणस्य विसदृश- =(उत्तर—ऐसा) मानना ठीक नहीं है। क्योंकि सदृशके ग्रहणके (से) विसदृशके

व्यवच्छेदार्थत्वाभावात् =रुकावटका(=व्यच्छेदार्थत्व)अभाव है अर्थात् 'विसदृश'शब्दकी अनुवृत्ति बराबर आरही है उस (अनुवृत्ति)में कहींपर रुकावट नहीं हुई है

सदृशानाम् एव इति अवधारण-अनाश्रयणात्। =(और)सदृशो काही(=एव) ऐसा निश्चयात्मकपद (सूत्रमें) दिया नहीं है अर्थात् "गुणसाम्ये सदृशानामेव"ऐसा सूत्र नही है नहीं तो मानलेते कि असदृशोंकी अनुवृत्ति नहीं आरही है और गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर केवल सदृशोंकाही बन्ध नहीं होता है असदृशोंका गुणोंकी समानता होने पर होजाता है ऐसा मानलेते ॥ स्मरण रहेकि ऐसी अवस्थामें श्वेताम्बरतथा दिगम्बरआम्नायोंमें इनपांचोसूत्रोंका पाठऔरअर्थ एकहोजाता॥

जघन्यो निकृष्ट गुणो भाग । जघन्यो गुणो येषा ते जघन्यगुणा । नेषा जघन्यगुणाना नास्ति वन्ध । तद्यथा-एकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन च नास्ति वन्ध तस्यैवैकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूक्षेणद्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणरूक्षेण वा नास्ति वन्ध । तथा एकगुणरूक्षस्यापि योज्यमिति ॥ एतौ जघन्यगुणस्निग्धरूक्षौ वर्जयित्वा अन्येषा स्निग्धाना रूक्षाणा च परस्परेण बन्धो भवतीत्यविशेषेण प्रसङ्गे तत्रापि प्रतिषेध-

---

रूक्षत्वका वा सचिक्कणता का एक अविभाग परिच्छेद(=जघन्यगुण) रहजाय सो बधको प्राप्त नहीं होता है

वृत्त्यनुवाद:—जघन्य ।निकृष्ट ।गुण ।भाग । =जघन्य वा घटिसे घटि है सो निकृष्ट है । गुण है सो गुणका अविभाग परिच्छेद है

जघन्य ।गुण ।येषाम् ।ते ।जघन्यगुणा । =घटिसे घटि है अविभाग परिच्छेद जिनके वे जघन्यगुण है

तेषा ।जघन्यगुणानाम् ।न *अस्ति ।वन्ध । तद्यथा*- =तिन निकृष्टगुणों(वाली परमाणुओं)के बध नहीं है । जैसे

एकगुणस्निग्धस्य ।एकगुणस्निग्धेन ।च द्वि आदि-संख्येय =एकगुण स्निग्धका एकगुण स्निग्धकरि और(=च)दो आदिक संख्यात

असंख्येय-अनंतगुणस्निग्धेन ।न *अस्ति बध ,तस्य । =असंख्यात अनंतगुण स्निग्धकरि बध नहीं है । तिस

एव *एकगुणस्निग्धस्य ।एकगुणरूक्षेण ।वा *द्वि आदि =ही एकगुण स्निग्धका एकगुणरूक्षकरि अथवा दो आदिक

संख्येय-असंख्येय-अनंतगुणरूक्षेण ।वन्ध ।न *अस्ति =संख्यात असंख्यात अनंतगुणरूक्षकरि बध नहीं है

तथा *एकगुणरूक्षस्य ।अपि *योज्यम् ।इति* =तैसेही(=तथा)एकगुण रूक्षके भी लगाना चाहिये अर्थात् एकगुणरूक्षका एकगुण रूक्षकरि और दो तीन चार पाच आदिक संख्यात,असंख्यात,और अनंतगुणरूक्षकरि वन्ध नहीं होता है तैसेही एकगुणरूक्षका एकगुण स्निग्धकरि अथवा दो, तीन, चार,पाच आदि संख्यात असंख्यात अनन्तगुण स्निग्धकरि बध नहीं होता है

एतौ ।जघन्यगुण-स्निग्ध रूक्षौ ।वर्जयित्वा-अन्येषाम् । =ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाली स्निग्ध रूक्षोंको छोडकर अन्य

स्निग्धानाम् ।रूक्षानाम् ।च परस्परेण ।बध -भवति इति=स्निग्ध और(=च)रूक्ष(गुणवाली परमाणु)निकें परस्पर बन्ध होता है । ऐसे

अविशेषेण ।प्रसंगे ।तत्र *अपि *प्रतिषेध =विशेषरहित प्रसंग आनेपर तहां औरभी(=अपि) बन्धके निषेधके

और यह सूत्र केवल परमाणुओंसे सबन्ध रखता है क्योंकि जघन्यगुण परमाणुमेंही पायाजाताहै बाकि स्कधमें और जबकिसीप्रकारकी अन्य परगुणधारक

तथा रूक्षगुणोऽपि॥ तद्गुणाः परमाणवः सन्ति। यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीक्षीरघृतेषु स्नेहगुणः प्रकर्षाप्रकर्षेण प्रवर्तते। पांशुकणिकाशर्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्टः। तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्तिः प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते॥ स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाहः-

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

तथा*रूक्षगुणः[१/६]।अपि* ॥	=वैसेही(=तथा)रूक्षगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच छह इत्यादि संख्यात,असंख्यात और अनन्त रूक्षगुण तक होसकते हैं
तद्-गुणाः[१/३]।परमाणवः[१/३]।सन्ति।' । यथा*तोय-अजा-	=पूर्वकथित(=तद्)चिकणे रूखेगुणवाली परमाणुहैं ।जैसे जल(=तोय)बकरी(अजा)
गो-महिषि-उष्ट्री-क्षीर-घृतेषु[७/३]।स्नेहगुणः[१/६]।	=गऊ(=गो)भैंस(=महिषि)ऊटनी(=उष्ट्री)के दूध घी विषैं सचिक्कणगुण
प्रकर्ष-अप्रकर्षेण[३/६]। प्रवर्तते।' । च*पांशु-कणिका-	=प्रकर्षकरि और घटतीकरि प्रवर्तता है। और (=च)धूलि(=पांशु)वालु(=कणिका)
शर्करादिषु[७/३]।रूक्षगुणः[१/६]।दृष्टः[१/६]। । तथा *	=कंकरादिकमें रूक्षगुण(वढता घटता क्रमसे) देखा जाता है। तैसे
परमाणुषु[७/३]।अपि * स्निग्ध-रूक्षगुणयोः[६/२]।वृत्तिः[१/६]।	=परमाणुओंमेंभी चिकने रूखे दोनों गुणोंकी स्थिति (=वृत्तिः)
प्रकर्ष-अप्रकर्षेण[३/६]।अनुमीयते। ॥ स्निग्धरूक्षत्व-	=बढताई घटताईसे अनुमान कीजाती है। सचिक्कनता और रूखापन
गुणनिमित्ते[७/६]।बन्धे[७/६]।अविशेषेण[३/६]।प्रसक्ते[७/६]।	=गुणनिमित्तक बन्धमें अविशेषताकरि प्रसंग आनेपर
अनिष्ट-गुण-निवृत्ति-अर्थम्[१/६]।।आह।	=अनिष्ट फलके निवारण के लिये कहते हैं अर्थात् पुद्गलके गुणोंमेंसे चिकनाई रूखापनके हेतुसे वन्ध होता है इससे यह प्रसंग आता है कि यदि सचिक्कणता और रूखापन परमाणुओंमें वर्तमान वा विद्यमान है तो बन्ध सर्व प्रकार अभेदरूपसे विशेषता रहित होही जाताहोगा इस अनचिछत अनुमानके दूर करने के लिये अग्रिम सूत्रमें कहतेहैं कि

[१]सूत्रम्—न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥ = न जघन्यगुणानाम्(परमाणूनां बन्धः भवति) ॥३४॥

११६

स्निग्धरूक्षत्वात्[५/६]।।'न जघन्य-गुणानां[६/३]।परमाणूनां[६/३]।वंधः[१/६]।भवति=स्निग्धरूक्षतासे निकृष्टगुणोंके परमाणुका बंधनही होताहैअर्थात् जिस परमाणुमें

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ भी दोनों आम्नायोंमें एकसा है। हमारे यहा कहीं कहींपर 'नजघन्यगुणानां'पाठ है वह कातन्त्ररूपमाला व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है(अ०१ पृ० ५४०,५४१) इस सूत्रमें'परमाणूनां और 'भवति' शब्दोंका अध्याहार कियागयाहै और बन्धशब्दकी अनुवृत्ति३३वांसूत्रसेहै।

द्वयोः स्निग्धरूक्षयोरण्वोः परस्परश्लेषलक्षणे बन्धे सति द्व्यणुकस्कन्धो भवति ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशः स्कन्धो योज्यः । तत्र स्नेहगुण एकद्वित्रिचतुःसंख्येयासंख्येयानन्तविकल्पः ॥

द्वयोः स्निग्ध रूक्षयोः अण्वोः परस्पर-श्लेष-लक्षणे =दो चिकनी रूखी अणुओंमें आपसके एकमेक(=श्लेष)स्वरूपविषैं(=लक्षणे)

बन्धे सति द्वि अणुक-स्कन्धः भवति ॥ =बन्ध होनेपर(=सति)दो अणुवाला स्कन्ध होता है अर्थात् दो परमाणु स्निग्ध और रूक्षगुणोंसहित हों उनके परस्पर सर्वात्मभावकरि प्रदेशानुप्रवेशात्मक बन्ध होनेपर दो अणुवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है

एवम् संख्येय-असंख्येय अनन्तप्रदेश स्कन्धः योज्यः =इस प्रकार संख्यात असंख्यात और अनन्त प्रदेशवाला स्कन्ध जुड़जाता है

तत्र स्नेहगुण एक द्वि त्रि चतुर् संख्येय- =तहां स्निग्धगुण एक,दो,तीन,चार संख्यात

असंख्येय-अनन्तविकल्प =असंख्यात और अनन्तभेदरूप है अर्थात् एकगुण स्निग्ध, दोगुण स्निग्ध, तीनगुण स्निग्ध,चारगुण स्निग्ध,पांचगुण स्निग्ध,छहगुण स्निग्ध इत्यादि ऐसे संख्यातगुण स्निग्ध, असंख्यातगुणस्निग्ध और अनन्तगुण स्निग्ध तक एक परमाणुमें होसकते हैं ॥

स्निग्धेस्तथाकृतस्ताकृते स्निग्धाश्च पुद्गला' पश्चात् उक्त स्वामीजीके'गुणसाम्ये सदृशानां'सूत्रके भाष्यसे यह बात झलकतीहै कि'स्निग्धरूक्षत्वात्बन्ध' सूत्र केवल स्निग्धरूक्ष संबंध (जहांतक उसका शब्दार्थ है) रखता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथ बन्ध" और रूक्षका रूक्षके साथ बन्ध से ॥ () चौथे यह कि उपर्युक्त अंशसे रचनाका और क्रमका महत्व प्रगट होता है, सो कैसे? इस प्रकार कि ३३वां सूत्र बन्धका केवल हेतु प्रगट करता है और चौंतीसवां सूत्र सामान्यरूपसे ततीसवां सूत्रका अपवाद है पतीसवां सूत्र गुणोंकी समानतामें तेतीसवां सूत्रका अपवाद होतेहुयेभी विषमगुणोंकी अवस्थामें उस(तेतीसवां) सूत्रका विधान करता है छतीसवां सूत्र इस विधानकी त्रुटिको पूरा करता हैकि दो अधिक-आदिगुणोंके होनेपरही सदृश और असदृशोंका बन्ध होता है सैंतीसवां सूत्रमें बन्धके होनेपर द्रव्यकी एकतीसरी अवस्था या तीसरा स्वरूप होजाता है न प्रथमरूप रहै ॥ दूसरा, दोनों बन्धहोनेपर एकतीसरारूप धारण करतेहैं॥जैसे कालापीला रंग घोलकरमिलानेपर कीरके पंखसदृश हराहोजाताहै॥नकृष्णवर्णरहै न पीतवर्णरहै॥

(१) "इहां सचिक्कणपणाका वा रूक्षपणाका अविभागपरिच्छेद है तिनहीकूं गुण कहै हैं ॥ परमाणुमें सचिक्कणपणाका एकअविभागपरिच्छेदसे लेय अनन्त पर्यंत बढ़े है ॥ अर एक परमाणुमें अनंत अविभाग परिच्छेद से घटै तो असंख्यात वा संख्यात होय तथा एक अंशपर्यंत रहै॥तथा सचिक्कण परमाणु रूक्ष होजाय है रूक्ष परमाणु सचिक्कण होय है ॥ समय समय परिणमन है अर बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकनिके निमित्तते परिणमै है॥ऐसे स्निग्धरूक्षपणा परमाणुमें तथा स्कंधमें जानना ॥ पं० सदासुखजी कृत अर्थप्रकाशिका पृ० ३३६ सूत्र तेतीसकी भाषा से उद्धृत)

(२) यह संख्यात प्रदेशी स्कन्ध इस प्रकार उत्पन्न होता है कि रूक्षपना तथा चिकनापनाके अविभाग परिच्छेदके निमित्तसे दोपरमाणुके जुड़नेसे दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है। दोप्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा तीन खुली हुई परमाणुके मिलनेसे तीन प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है॥ दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धो के संघातसे तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे, अथवा चार खुली हुई परमाणुओंके संघातसे चारप्रदेशी स्कन्ध उपजता है इसी प्रकार अन्य संख्यात प्रदेशी स्कन्धपूर्वोक्त क्रमानुसार बंधी हुई और खुली हुई परमाणुसे उपजता है ऐसाही क्रम असंख्यात प्रदेशी स्कन्धकी अनन्त प्रदेशी स्कन्धकी और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्धकी उत्पत्ति जानो ॥

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः। तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादि परिणामः।

स्निग्ध-रूक्षत्वात्[5]॥इति*हेतु-निर्देशः[1]॥ =चिकनापन रूखापनसे ऐसेहेतुका कथनहैअर्थात् बंधकाकारणजो पुद्गलोंमें है वहचिकनाई रूखापनहै
तद्-कृतः[1]बन्धः[1]द्वि-अणुक-आदि-परिणामः[1]॥=उन(स्निग्धपन-रूक्षपन)का किया हुआ बन्ध दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥

(१) "स्निग्ध-रूक्षत्वात्"इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें 'स्निग्ध रूक्षत्वात्'क्यों लाये केवल'पुद्गलाबन्धः' इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु होजाता और 'पुद्गलानां'शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणूनां' शब्दका अध्याहार किया जावै अथवा'पुद्गलानां' शब्दका। दूसरा प्रश्न यह हैकि बन्धका निमित्त वा हेतु सूत्रके शब्दानुकूल(न कि सिद्धान्तके अनुकूल)'स्निग्धत्व-रूक्षत्व' मिले हुये हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनों हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थके अनुसार स्निग्धपन और रूक्षपन अथवा यों कहिये कि रूक्षपन स्निग्धपन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु हैं वा स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्वपृथक् भी बंधके कारणहैं

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके शुद्ध अशुद्ध दो भेद हैं। अशुद्धरूप स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित बीस गुण हैं। वर्ण पांच (श्वेत, पीत, नील, अरुण, कृष्ण)। रस पांच (तिक्त, कटुज, कषायला, खट्टा, मीठा)। गंध दो (सुगंध, दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, कठोर हलका भारी)॥ अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक, पाच वर्णमेंसे एक, दो गन्धमेंसे एक, स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा, रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध, कविवर प०द्यानतिरायजीने "द्रव्यसग्रह"की भाषामें कहाभी है कि"पच अजीव शुद्धहै चारों (=धर्म,अधर्म,आकाश,काल) जिनके कभी विभाव न होय। पुद्गल सुद्ध असुद्ध विराजै सुद्ध अनू गुन पांचों जोय॥ सीत, ताप,रूख,चिकने(में)से दो, रस, गन्ध, वरन इकलोय। खध असुद्धबीस गुन परगट देखेजाने चेतन सोय ॥ कवित्त ३५। भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्वऔररूक्षत्वही है इसलिये इस तेतीसवां सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व लाये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण, रस, गधमें से कोई गुण और स्पर्शके आठ गुणोंमें से स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त तो यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व, रूक्षत्व स्निग्धत्व, स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्व रूक्षत्व, बन्धके हेतु हैं परन्तु निम्न लिखित हेतुओंसे सूत्रका शब्दार्थ यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व, रूक्षत्व स्निग्धत्व, बन्धके कारण है अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका(सिद्धान्तके अनुकूल)यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व,रूक्षत्वरूक्षत्व,रूक्षत्व स्निग्धत्व, और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता हैतोसूत्रकी रचना ऐसे होती कि "स्निग्धरूक्षत्वेभ्योबन्ध."अर्थात् स्निग्धपनसे और रूक्षपनसे और स्निग्धपन रूक्षपनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने 'भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (पुद्गलोंका स्कन्ध)भेदसे उपजता है सघातसे उपजता है और भेदसघातसेभी उपजताहै॥ दूसरे यह कि"गुणसाम्येसदृशानां" सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावे कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व)का भी बन्ध नहीं होताहै और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्व रूक्षत्व,स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे इस पिछले कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे॥ ()तीसरे यहकि जहांतक हमने टटोल कीहै संस्कृतके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी, अकलंक स्वामी, श्रीश्रुतसागर सूरिन,सभाष्य०के रचयिता इत्यादिने और भाषाके टीकाकारों ने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रकेअर्थमेंयह नहीं लिखा कि 'स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्व रूक्षत्वसे' बन्ध होता है। हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थकरनेमें तो यही उल्लेख कियाहै कि 'स्निग्धरूक्षत्व'से बन्ध होताहैपरन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त देदियाहै'स्निग्धा.

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्ध । तथा रूक्षणाद्रूक्ष । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भाव. स्निग्धरूक्षत्व । स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षण. पर्याय । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्व ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे होता है ॥

वृत्त्यर्थ –बाह्य अभ्यन्तर-कारणवशात् स्नेह पर्याय	=बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिक्कण पर्यायके
अविर्भावात् स्निह्यते अस्मिन् इति स्निग्ध, तथा	=प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निह्यते)ऐसा स्निग्ध है । वैसेही
रूक्षणात् रूक्ष	=रूखेपनसे रूक्षहै अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनसेजिसमेंरूक्षताहै सो रूक्षहै
स्निग्ध. च रूक्ष च स्निग्ध-रूक्षौ	=और स्निग्धऔररूक्षहै उनकारूप सो(द्वन्द्वसमासमें)स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनताहै ।
तयो भाव स्निग्ध रूक्षत्वम्	=उनदोनों(स्निग्धरूक्ष)का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व हैअर्थात् चिकनापन और रुखापन है ॥
चिक्कणगुणलक्षण पर्याय स्निग्धत्वम्	=चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है
तद्द विपरीत परिणाम रूक्षत्वम्	=उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम वा पर्याय सो रुखापन है

(घ) स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगाद्रूक्षास्तद्भावात् पुद्गलाना बन्ध स्यात् =स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगात्रूक्षा तद्भावात् पुद्गलाना बन्ध स्यात् =चिक्कणगुणके सयोगसे स्निग्ध है रूक्षगुणके सयोगसे रूक्ष है उनके भावसे(=होनेकरि)पुद्गलोंका बन्ध होता है ॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृ०४३५देखो॥ श्लोक—स्कधो बन्धात्स चास्त्येषा स्निग्धरूक्षत्वयोगत । पुद्गलानामिति व्यक्ता सूत्रेऽस्मिस्तदभावत ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो =स्कन्ध बन्धात् स च अस्ति एषा स्निग्ध रूक्षत्वयोगत । पुद्गलाना इति व्यक्ता सूत्रे अस्मिन् तद् अभावता ॥ =बन्धसे स्कध होता है और(च) वहस्कन्धहनपद्गलोंकीचिकनाईरूखेपनकेसयोगसहोताहै,(पुद्गलोंका)नाशहोजाताहैइससूत्रमेंउससिद्धान्तका कि पुद्गलमात्रकाप्राप्तहोजाताहै,अभावहै॥ (श्लोक) स्निग्धास्निग्धैस्तथा रूक्षारूक्षै स्निग्धाश्च पुद्गला । बन्ध यथासते स्कन्धसिद्ध बाधकहानित ॥ २ ॥

=स्निग्धा स्निग्धै तथा रूक्षा रूक्षै स्निग्धा च पुद्गला । बन्ध यथा आसते स्कन्धसिद्ध बाधकहानित ॥

=स्निग्ध(पुद्गल स्निग्धकरि,तथारूक्ष(पुद्गल)रूक्षकरिऔर(च)स्निग्ध पद्गल(रूक्षकरि,यथायोग्य(यथा)बन्धका प्राप्त होतहैं स्कन्धकीसिद्धिबाधारहितहै

(ङ) 'स्निग्धरूक्षयो पुद्गलयो परस्परयो स्पृष्टयो बन्धो भवतीति" =स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके)पुद्गलोंका आपसमें छूजाने पर बन्ध होता है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृ० १३७। पुद्गलयो' शब्दके लानसे स्पष्ट है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है ॥

(च)'अणूना बन्ध 'में स्कन्धोंके बन्धका अभाव आताहै और यह नियमसा होजाताहैकि समाजमें केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै स्कन्धोंका नहीं और यह बात यथार्थता और सत्यताके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै॥अत उपर्युक्त हेतुओंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होगई कि यह सूत्र अणु औरस्कन्ध दोनोंके बन्धसे सम्बन्ध रखताहै अत हमने पुद्गलाना शब्दको अध्याहार करके इस.सूत्रका भावार्थ ऊपर यह लिखाहै कि दो पृथक्२ परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक्२ स्कन्धोंका आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षतासे होताहै ॥ ११६

सूत्रार्थः—(१)पुद्गलानाम् ६।३स्निग्धत्वात् ५।१।। =पुद्गलोंके(परस्पर छूजानेपर स्पृष्ट वा स्पर्श होनेपर) स्निग्धपनासे वा चिकनाईसे
रूक्षत्वात् ५।१।।बन्धः १।१भवति। =(और)रूक्षपनासे रूखेपनसे, वा खरखरेपनसे बन्ध होता है अर्थात्
दो पृथक्पृथक् परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कंधरूपमें और दो आदि पृथक्पृथक् स्कन्धोंका

इसी हेतुसे उन्होंने "द्वि-अधिकादिगुणानांतु सदृशानां बन्धो भवति" इस सूत्रमें केवल'सदृशानां'की अनुवृत्ति लीहै और यह अर्थ कियाहै कि सदृशोंके बन्धके लिये दोगुण अधिक होनेकी आवश्यकता है, असदृशोंके बन्धके लिये अधिक गुणोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस अर्थको पुष्ट करनेकेलिये कि असदृशोंका बन्ध विना गुणोंकी अधिकताके होजाताहै हमारे यहांके "बन्धेऽधिकौ पारिणामकौच"के स्थानमें 'बन्धे समाधिकौ परिणामकौ' सूत्र दिया है और यह अर्थ किया है कि 'बन्धे सति समगुणस्य समगुणः परिणामको भवति अधिकगुणो हीनस्येति' बन्ध होनेपर यदि समगुण है तब तो समगुण का समगुणवालाहो परिणाम होगा और हीन गुणका अधिक गुणवान् परिणाम होगा' भावार्थ असदृशोंके बन्धमें जहां गुणोंकी समता है वहां समगुणवाला परिणाम होगा और सदृशोंके बन्धमें जहां दोगुण अधिकहैं वहां अधिक गुणवान् परिणाम होगा॥ "जघन्यगुणवालोंका बन्ध नहीं होता" इस अन्तिम सिद्धान्तमें दोनों आम्नाय सहमत हैं।

(१) यहां यह शंका होसकती है कि 'पुद्गलानां' शब्दका अथवा 'अणुनां' शब्दका अध्याहार करना चाहिये अर्थात् यहसूत्र केवल अणुओंसे संबंध रखताहै अथवा अणुओं और स्कन्धों दोनोंसे सम्बन्ध रखताहै॥२६वां सूत्रमें यह निर्देश है कि स्कंध भेदसे,संघातसे, और भेदसंघातसे उत्पन्न होतेहैं। यहांपर संघात शब्द और बन्ध शब्दका एकही अर्थ जान पडता है जैसाकि आगे बन्ध संघात एकत्वऔर संयोगके अनन्तर दिखानेमें सिद्ध करेंगे। बन्ध, संघात, एकत्वरूप,संयोगके भेदकेलिये इस अध्यायका पृष्ठ १४०,१४१ देखो।(उत्तर)यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंसे सम्बन्ध रखताहै क्योंकि

(क) दो पृथक् २ परमाणुओंके बन्ध वा संघातसे स्कन्ध होता है। एक परमाणु और स्कन्धके संघातसे स्कन्ध उत्पन्न होता है, दो तीन आदिक स्कन्धोंके बन्धसे स्कन्ध होता है और बन्धका कारण स्निग्धत्व रूक्षत्वही कहा है। परमाणुओंके स्निग्धत्व और रूक्षत्वसेही बन्ध होता है। जब स्कन्धोंके भी आपस के बन्धके लिये सचिक्कनता और रूक्षता हेतु है और पुद्गलके "अणव. स्कन्धाः" ये दोही भेद हैं तो प्रगट है कि तेतीसवां सूत्रमें "पुद्गलानां" शब्दका अध्याहार होना चाहिये (नकि केवल अणुनां शब्दका) जैसा कि निम्न लिखित उदाहरण सूत्र२६(देखो इसअध्यायका ९९,१००)में, दियाहै,जैसेकि दो परमाणुओंके जुडनेसे दोप्रदेशवाला स्कन्ध उपजताहै,दोप्रदेशवाले स्कन्धके और एकअणुके संघातसे वा तीन खुलीहुई परमाणुओंके मिलनेसे तीनप्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है। दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धोंके संघातसे, तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा चार खुली हुई परमाणुके संघातसे चार प्रदेशी स्कन्ध उपजता हैं। इस प्रकार संख्यात,असंख्यात,अनन्त अनन्तानन्तके संघातसे उतने प्रदेशवाले स्कन्ध उपजतेहै इससे प्रगट हैकि एक स्कन्धका दुसरे स्कन्धके साथ परस्पर संघातसे स्निग्ध रूक्षताके हेतुसे बन्ध होताहै और परमाणुका परमाणुकरि बन्धहोताहै। अतः यह सूत्र परमाणुओं और स्कन्ध दोनोंसे सम्बन्धरखता है नकि केवल परमाणुओंसेही॥

(ख) "ऐसे स्निग्धरूक्षपणातैं पुद्गलनिकै परस्पर बन्ध जानना" पं०सदासुखजीकृतअर्थप्रकाशिकाके तेतीसवांसूत्रका उपांत्य(उपांतिक)वाक्यदेखो॥ ११५

(ग) "ये रूक्षपणाकं तथा सचिक्कणताके अविभागपरिच्छेदके निमित्ततैं,एक परमाणु तथा द्वि-अणुकादि स्कन्धकैं परस्पर बन्ध होयहै"सदासुखजी कृत तत्त्वार्थ सूत्रकी लघु टीका पृष्ठ २३॥ उपर्युक्त वाक्यका,यह अर्थ है कि स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे एक परमाणु तथा दोपरमाणुका स्कंधकैं परस्पर बन्ध होता है। एक परमाणु तथा तीन परमाणु वाले स्कन्धकैं परस्पर बन्ध होता है एक परमाणु तथा चार अणुका स्कन्धकैं परस्पर बन्ध होता है इसी प्रकार एक परमाणु तथा चार आदिक अणुवाले स्कन्धकैं परस्पर बन्ध जानना॥

संयोगे च सति भवति केषाचिद्वन्धोऽन्येषा च नेति । उच्यते यस्मात्तेषा पुद्गलात्माविशेषेऽप्यनन्त-पर्यायाणा परस्परविलक्षणपरिणामादाहितसामर्थ्याद्भवन्प्रतीत

॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥

(१)सयोगे७।१च*सति७।१भवति।' =और सयोग होते सते यह होगा कि
केषांचित्*बन्ध१।१अन्येषाम्६।३च*न*इति।' =कितने परमाणुओंको बन्ध और(=च)दूसरी परमाणुओंका(बन्ध)नहीं (होता) है
उच्यते-यस्मात्*तेषाम्६।३पुद्गगल आत्म अविशेषे७।१अपि* =इससेकहाजाता हैकि तिन(परमाणुओं)केपुद्गगलस्वरूपकरि,विशेषता न होने पर भी
अनन्त पर्यायाणाम ६।३परस्पर विलक्षण परिणामात्५।१आहित=अनन्त पर्यायोंके परस्पर विलक्षण परिणमनकरिग्रहणकरीभई(=आहित)
सामर्थ्यात्५।१।।भवन्१।१प्रतीत१।१ =सामर्थ्यसे बन्धका होना प्रतीत है ।(भवन् वर्तमानकृदन्त प्रथमा एकवचन पुल्लिंगहै)

(२)सूत्रम्–(३)स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्ध ॥३३॥ = (पुद्गलाना)स्निग्धरूक्षत्वात् बन्ध (भवति)॥३३॥

(१)दानोंवारकी छपीहुई सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'सयोगच सतिभवति" वाक्य छपनेसे रहगयाहैक्योंकि यहवाक्य तीनहस्तलिखितसर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रतियोंमें विद्यमान है और तत्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृ० २४०पर तथा हस्तलिखित राजवार्तिकोंमेंभी उक्त वाक्य'सति'शब्दके अतिरिक्त पाया जाता है विना उक्त वाक्य अनुवाद नहीं होसकता है न वाक्योंका परस्पर सम्बन्ध मिल सकता है ।

(२) दोनोंआम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है । कहीं२९२ब न्ध पाठहै कहींरपर'बध'पाठ है, दोनों पाठ ठीक है (१अध्याय ५४० ५४१)

(३) इन पांचों सूत्रोंका अर्थ और तात्पर्य क्लिष्ट है अपने अपने ढगसे हमारे यहा भाष्यकारों तथा हिन्दी टीकाकारोंने उक्त सूत्रोंका तात्पर्य लिखाहै अर्थमें हमारे यहां मत भेद नहीं है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र'में प्रथम चार सूत्रोंका पाठ हमारे यहाके पाठसे अक्षरश मिलता है । "बन्धे समाधिकौ परिणामकौ"के स्थानमें हमारे यहां 'बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च' सूत्र है अर्थात् हमारे यहा 'च है उनके यहा सम' शब्द है ॥ दोनों आम्नायोंके पाठमें इतनी समानता होनेपर भी पिछले तीन सूत्रोंके अर्थों में भेद पाया जाता है जिसका उल्लेख हम प्रसगानसार आगेकरेंगे । उक्त पाचों सूत्रोंके समझानेमें भरकस प्रयत्न किया गया है प्रथम इसके कि हम पृथक् पृथक् सूत्रका अर्थ करें यह उचित है कि दोनों आम्नायोंमें जो अर्थ भेद है उसका सक्षेपसे कुछ उल्लेख किया जावै ॥ स्निग्धका स्निग्धद्वारा दोगुण(=अविभागपरिच्छेद) अधिककरि बन्ध होताहै और रूक्षका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और रूक्षका स्निग्धद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और स्निग्धका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है जघन्यगुणको छोडकर उक्त दो अधिकगुण सम(अर्थात् ४,६,८,१०,१२ इत्यादि) हो अथवा विषम(अर्थात् ५ ७,९,११,१३ इत्यादि)हो दोगुणअधिककरिही बध है अन्यकरि नहीं है । श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र'में)'गुणसाम्ये सदृशानाम् सूत्रका शब्दश यह अर्थ करके कि' गुणसाम्येसति सदृशानां बधो न भवति" गुणकी समता होनेपर सदृश पुद्गलोंका बन्ध नहीं होता हमारे यहाके प्रथम भागको मानाहै और दूसरे भागको नहीं मानाहै अर्थात् स्निग्धका स्निग्धद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होताहै और इससे सहमत हैं और कहते है कि रूक्षका स्निग्धद्वारा बन्ध होनेमें और स्निग्धका रूक्षद्वारा बन्ध होनेमें दोगुणोंकी अधिकताकी आवश्यकता नहीं है ॥एसोंकाबन्धसमानगुणोंसेंभीहै॥

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवतः॥ अत्राह सतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्यः सतां स्कंधात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं, किं संघातः संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति?। उच्यते—सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यतां, कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तव नित्यत्व सिद्ध है ॥

२१३ विशेष-अर्पणया[३/१] ।। अनित्यम्[१/१] ।। =विशेषअर्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(योजित) किया जाय तव अनित्यत्व सिद्ध है ॥

इति*न*अस्तिT विरोधः[१/१]; तौ[१/२] च*सामान्यविशेषौ[१/२] =इस प्रकार विरोध नहीं है। वहुरि(=च)ते(दोनों)सामान्य-विशेष

कथञ्चित्*भेद-अभेदाभ्याम्[३/२] व्यवहार-हेतू[१/२] भवतःT =कथंचित्-भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं।

अत्र*आहT सतः[६/१] अनेक-नय-व्यवहार-तन्त्रत्वात्[५/१] ।। =यहां(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे

उपपन्नाः[१/३] भेद-संघातेभ्यः[५/३] सताम्[६/३] स्कंध-आत्मन-उत्पत्तिः[१/१] ।। =भेद तथा संघात औरभेदसंघातकरि ये सत् जेहै तिनकें(=सताम्)स्कंधस्वरूप करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्नाः)है सारांश सत् है ताकैं अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातैं सत्रूप पुद्गलस्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है

इदम्[१/१] ।। तु*सन्दिग्धम्[१/१] ।। किम्[१/१] ।। द्वि-अणुक-आदि-लक्षणः[१/१] संघातः[१/१] =परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि लक्षणवाला संघात

संयोगात्[५/१] एव*भवति। उत*कश्चित्*विशेषः[१/१] अवध्रियतेT इति। =संयोगमात्रसेही होताहै वा(=उत)कोईऔर(=कश्चित्)विशेषनिर्णय कियागया है अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होताहै वा कुछ और वात है ॥

उच्यतेT वन्धात्[५/१] एकत्वपरिणाम-आत्मकात्[५/१] सति[७/१] संयोगे[७/१] =(उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणमन स्वरूप वन्धानसे संयोगहोनेपर

संघातः[१/१] निष्पद्यतेT ॥ यदि*एवम्*उच्यताम्T =संघात उपजता है जो इस प्रकार कहाजाय तो (अर्थात् जो आप कहतेहैंकि संयोग होते संते एकत्व परिणमनस्वरूप बंधसे संघातकी निष्पत्ति होती है ११३

कुतः* (१)नु, खलु *पुद्गलजाति-अपरित्यागे[७/१] =तौ(=नु)कहांसे(ऐसाहोता,है क्योंकिपुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नछोड़तेसंते

---

(१) नु = वितर्क = विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकालना (देखो पद्मचन्द्रकोष पृ० २२१) इसका अनुवाद 'तो' किया गया है

तेषु ॥	=तिन (स्वस्थान स्वस्थान—विहारवत्स्वस्थान—वेदनासमुद्घात-कषायसमुद्घात-वैक्रियिकसमुद्घात-) में
इय	=(पूर्वोक्त सासादन सम्यग्दृष्टिके और असंयतसम्यग्दृष्टिके) सदृश
(लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रम्)	=(लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है)
तद्रहितत्व ॥ कुत *	=उन (मारणांतिकसमुद्घात और उपपाद) का रहितपना क्योंकर है
इति चेत् * तस्य ॥	=ऐसा प्रश्न-संदेह वा तर्क होनेपर (= चेत्)—उत्तर है कि—तिस (मिश्र) के
मारणान्तिकमरणयो ॥ अभावात् ॥	=मारणांतिक समुद्घात और मृत्यु दोनोंके न होने (के हेतु) से (मारणान्तिक समुद्घात और उपपादका वर्जितपना) है अर्थात् मिश्रगुणस्थानमें किसी जीवका मरण नहीं होता है इसलिये मारणान्तिक समुद्घात नहीं है मारणान्तिक समुद्घात जब ही होता है जब मृत्यु होती है
तद् * अपि कुत *	=वह (मारणांतिक समुद्घात और मरणका अभाव मिश्रगुणस्थानमें) भी क्योंकर
य मरणंतसमुग्घादो ॥ (=च मारणांतिकसमुद्घात ॥)	=(उत्तर) और (=य =च) मारणांतिक समुद्घात
वि * ण * मिस्सम्मि ॥ (अपि * न * मिश्रे ॥)	=भी (=वि =अपि) मिश्रगुणस्थानमें नहीं होता है
इति—अनेन ॥ च	=ऐसे इस (आगम वाक्य) से और
मिस्सा ॥ (= मिश्रा ॥)	=मिश्रगुणस्थानवर्तिन (=मिस्सा ॥ =मिश्रा ॥) वा मिश्रगुणस्थानवर्ती
आहारस्स॥ (आहारस्य॥ = आहारकयका ॥)	आहारमिश्रकाययोगि वा निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थारूप मिश्रकाययोगी अर्थात् जो शरीर पर्याप्ति पूरी करनेवाला है उस शरीरपर्याप्तिके पहिले जैसे औदारिकमिश्र-वैक्रियिक मिश्र आहारक मिश्र
य (= च) खवगा ॥ (क्षपका ॥) इति आदिना ॥	=और (=य =च) क्षपकश्रेणीवाले इत्यादिसे

॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥

अनेकान्तात्मकस्य वस्तुनः प्रयोजनवशाद्यस्यकस्यचिद्धर्मस्य विवक्षया प्रापितं प्राधान्यमर्पितमुपनीतमिति यावत्। तद्विपरीतमनर्पितम्। प्रयोजनाभावात् ॥

सूत्रम्—अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२॥ = अर्पित-अनर्पित सिद्धेः(तदेव द्रव्यं कथञ्चिन्नित्यं कथंचिद् नित्यं च भवति ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—अर्पित-अनर्पित-सिद्धेः (५/१) तद् (१/१) एव * द्रव्यम् (१/१) कथञ्चित् * नित्यम् (१/१) कथञ्चित् * अनित्यम् (१/१) च * भवति । ॥ ३२॥ =मुख्यता प्रधानताकरि गौणता करि (पदार्थोंकी) सिद्धि होनेसे वहही वस्तु कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है अर्थात् वही वस्तु सामान्य अर्पणासे वा सामान्यकी मुख्यतासे नित्य है और विशेष अर्पणासे अथवा विशेषकी मुख्यतासे अनित्य है भावार्थ यह है कि वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करके कहै सो तो अर्पित है। और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मको कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहा गया वह धर्म वस्तु में है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेक धर्मात्मक है

अनेकान्त- आत्मकस्य (६/१) वस्तुनः (६/१) =अनेकान्त धर्म स्वरूपवाली वस्तुका (वस्तुनः (६/१))

प्रयोजन-वशात् (५/१) यस्य (६/१) कस्यचित् * धर्मस्य (६/१) =प्रयोजनके वशसे जिस (=यस्य) कोईएक (=कस्यचित्) धर्मकी

विवक्षया (३/१) प्राधान्यम् (१/१) प्रापितम् (१/१) =विवक्षासे प्रधानपना अथवा मुख्यपना (=प्राधान्यम्) प्राप्तहुआ

अर्पितम् (१/१) उपनीतम् (१/१) =(वह मुख्यता) अर्पित है उपनीत है

इति * यावत् * तद्-विपरीतम् (१/१) अनर्पितम् (१/१) =इसप्रकारइतना (अर्थ है) उस (मुख्यता) केविरुद्ध अर्थात् गौणता है सो अनर्पित है

प्रयोजन- अभावात् (५/१) ॥ =क्योंकि (अनर्पितमे) प्रयोजन का आभाव है (नकि वस्तुमें धर्मका अभाव)

---

(१) इस सूत्र का पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों में एकसा है ॥ हमारे यहां की किसी किसी पुस्तकमें "अर्पितानर्पित सिद्धेः ऐसा पाठ है सो भी 'अचोरहाभ्यां द्वे वा' सूत्र से ठीक है।

(२) अर्पित = मुख्य किया गया प्रधान किया गया, उपनीत, अभ्युपगत, योजित, व्यावहारिक (= जो व्यवहार में आवै) अनुपसर्जनीभूत ये शब्द एकार्थवाची हैं ॥ (३) अनर्पित = मुख्य नहीं किया गया गौण किया गया, अप्रधान किया गया, अनुपनीत, अनभ्युपगत, अव्यावहारिक, उपसर्जनीभूत ये शब्द एकार्थ वाची हैं ॥

सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्या सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोध ॥ तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागिनेय इत्येवमादय. सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणाभेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्य

भावार्थ—वस्तु म अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करि कहै सो तो अर्पित है और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मके कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है

सतः¹ अपि*अविवक्षा² भवति। इति*	=सत् की अविवक्षा भी होती है अर्थात् सत् की विवक्षा तथा अविवक्षा दोनों होता है तिस से सत् रूप होय तिसकू प्रयोजन के वशसे अविवक्षा करये सो गौण है इस लिये विरोध रहित दोनों (विवक्षा तथा अविवक्षा) में वस्तु की सिद्धि है
उपसर्जनीभूतम्¹ अनर्पितम्¹ इति*उच्यते ।	=अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है
अर्पितम्¹ च*अनर्पितम्¹ च * अर्पितानर्पिते¹	=और (=च) अर्पित और (च=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वंद्व समास रूपमें है)
ताभ्याम्¹ सिद्धे¹ अर्पित अनर्पित सिद्धे¹	=तिन (अर्पित अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनेसे "अर्पित अनर्पित सिद्धे" (ऐसा सूत्र)
न * अस्ति विरोध¹, तद्यथा * एकस्य¹ देवदत्तस्य¹	=विरोध रहित है । जैसे कि एक देवदत्तका
पिता¹ पुत्र¹ भ्राता¹ भागिनेय¹ इत्येवम् * आदय.¹	=पिता पुत्र भाई भानजा इत्यादिक
सम्बन्धा¹ जनकत्व जन्यत्व आदि निमित्ता¹	=सम्बन्ध जनकपना (तथा) जन्यपना आदिके निमित्त
अर्पणा भेदात्¹ न*विरुध्यन्ते पुत्र अपेक्षया¹	=अर्पणा या मुख्यताके भेदसे नहीं विरोध्या जाता है । बेटेकी अपेक्षाकरि (यह पुरुष)
पिता¹ पितृ अपेक्षया¹ पुत्र¹ इत्येवम् * आदि¹	=बाप है बापकी अपेक्षासे वही पुरुष बेटा इत्यादिक है ॥
तथा * द्रव्यम्¹ अपि*सामान्यअर्पणया¹ नित्यम्	=वैसेही (=तथा) द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

---

(१) सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्तिमें माताशब्द नहीं है ॥ तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी यह शब्द नहीं है प० जयचन्द्रजीकी वचनिकामें भी नहीं है केवलद्वितीय संस्करण संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है, इससे हमने 'माता' शब्द नहीं रक्खा है यह माता शब्द भ्राता शब्दके पश्चात् द्वितीयावृत्तिमें है॥
(२) यहा पर ऋके स्थानमें र् होगया है अपेक्षयाका अ परे अर्थात् पितृ = पितर् (ऋके स्थानमें र् आनेसे) + अपेक्षया = पित्रपेक्षया बनाया ॥

तद्भाव इत्युच्यते । कस्तद्भावः ? । प्रत्यभिज्ञानहेतुता । तदेवेदमिति स्मरणं प्रत्यभिज्ञानम् । तदकस्मान्न भवतीति योऽस्य हेतुः स तद्भावः । तस्य भावस्तद्भावः ॥ येनात्मना प्राग्दृष्टं वस्तु तेनैवात्मना पुनरपि भावात्तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञायते ॥ यद्यत्यन्तविरोधोऽभिनवप्रादुर्भावमात्रमेव वा स्तात्ततः

अर्थात् तद्-भाव जो पहिले समयमें था सोही दूसरे समयमें था उसका नाश न होना सोही नित्य है भावार्थ यह है कि पहिले कहा हुआ (तद्)अथवा २९वां सूत्रमें कथित सत् जो स्वभावसे अविनाशी वा विनाशरहित है सोही नित्य है अर्थात् जिस स्वरूपकरि वस्तु पूर्वमें देखाथा उसी स्वरूपकरि वर्तमानमें देखिये है ऐसा जोड़रूप वस्तु में भाव वही तद्भाव है, उस जोड़रूप भाव द्वारा विनाश रहित (=अव्यय)हो उसीको नित्य कहतेहैं । सर्वथा नित्य अर्थात् कूटस्थ कोई वस्तु नहीं है कूटस्थके पर्याय पलटनेका अभाव है तव संसार तथा संसारके अभावके कारण विधानमें विरोध आता है ।

वृत्त्यनुवादः-तद्भावः$\frac{1}{1}$'इति*उच्यतेT कः$\frac{1}{1}$'तद्भावः$\frac{1}{1}$'।प्रत्यभिज्ञान- =(सूत्रमें) तद्भाव ऐसा कहागया है । तद्भाव क्या है । प्रत्यभिज्ञानका

हेतुता$\frac{1}{1}$'';तद्$\frac{1}{1}$'''एव*इदम्$\frac{1}{1}$''' इति* =हेतुपन वा कारणपना हे । यह (=इदम्)वहही है(=तद्-एव) ऐसी

स्मरणम्$\frac{1}{1}$'''प्रत्यभिज्ञानम्$\frac{1}{1}$''';तद्$\frac{1}{1}$'''अकस्मात्* =स्मृति प्रत्यभिज्ञान है; वह(प्रत्यभिज्ञान)अकस्मात्(विना हेतु वस्तुमें)

न*भवतिTइति*यः$\frac{1}{1}$' अस्य$\frac{6}{1}$'''हेतुः$\frac{1}{1}$'सः$\frac{1}{1}$'तद्भावः$\frac{1}{1}$'तस्य$\frac{6}{1}$''' =नही होता है, जो इस(प्रत्यभिज्ञान)का कारण सो तद्भाव है तिस (सत्)का

भावः$\frac{1}{1}$'तद्भावः$\frac{1}{1}$';येन$\frac{3}{1}$'आत्मना$\frac{3}{1}$'प्राग्दृष्टम्$\frac{1}{1}$'''वस्तु$\frac{1}{1}$''' =भाव अथवा होना सो तद्भावहै । जिस स्वरूपकरि पहिले देखा हुआ पदार्थ है

तेन$\frac{3}{1}$एव*आत्मना$\frac{3}{1}$'पुनः*अपि*भावात्$\frac{5}{1}$' =तिसही स्वरूपकरि फिरभी विद्यमान होनेसे (स्वभावात्)

तद्$\frac{1}{1}$'''एव*इदम्$\frac{1}{1}$'''इति*प्रत्यभिज्ञायतेT ॥ =कि यह वहही है इस प्रकार प्रत्यभिज्ञान कियाजाता है

यदि-अत्यन्त-विरोधः$\frac{1}{1}$' =जो(पूर्वोक्त प्रत्यभिज्ञानके अस्तित्वके)अतिशय विपरीत हो अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का अभाव हो

अभिनव-प्रादुर्भावमात्रम्$\frac{1}{1}$'''एव*वा*स्यात्T ततः* =अथवा नवीन आविर्भावमात्रही हो, तहां

स्मरणानुपपत्तिः । तदधीनो लोकसंव्यवहारो विरुध्यते । ततस्तद्भावेनाव्यय नित्यमिति निश्चीयते तत्तु कथञ्चिद्वेदितव्यम् । सर्वथानित्यत्वे अन्यथाभावाभावात्संसारतन्निवृत्तिकारणप्रक्रियाविरोध स्यात् ननु इदमेव विरुद्धं तदेव नित्यं तदेवानित्यमिति । यदि नित्यं व्ययोदयाभावादनित्यताव्याघात । अथानित्यत्वमेव स्थित्यभावान्नित्यताव्याघात इति ॥ नैतद्विरुद्धम् ॥ कुत ?—

स्मरण अनुपपत्ति १, तद्-अधीन १ लोक-	=स्मृतिका अभाव(=अनुपपत्ति) होताहै । इस (स्मरण)के आधीनलोक
सव्यवहार १ विरुध्यते । तत * तद्भावेन १ अव्ययम् १	=व्यवहार विरोध्या जाता है । इसकारणसे (=तत) तद्भावकरि अविनाशी है
नित्यम् १ इति * निश्चीयते । ॥ तद् १ तु *	=सो नित्य है ऐसा अवधारण वा निश्चय कियाजाता है । परतु यह अर्थात् तद्भावकरि अव्ययरूप होना
कथञ्चित् * वेदितव्यम् १, सर्वथा * नित्यत्वे १	=कथञ्चित् जानो । (=वस्तुके, सर्वथा नित्यपना (माननेमें) अर्थात् कूटस्थ होनेमें
अन्यथाभाव अभावात् १ ससार-तत् निवृत्तिकारण-	=पर्याय पलटनेके अभावसे ससार और (संसार)के निवृत्ति वा छूटनेके कारणके
(१) प्रक्रिया विरोध १ स्यात् । ननु * इदम् १ एव * विरुद्धम् १	=विधानमें विरोध होताहै । प्रश्न—यह (=इदम्) ही(एव)विपरीत है
तद् १ एव * नित्यम् १ तद् १ एव * अनित्यम् १ इति * ।	=(क्योंकर) वहही (वस्तु) नित्य हुई (और) वह ही (वस्तु) अनित्य हुई
यदि * नित्यम् १ व्यय-उदय अभावात् १	=जो नित्य है तौ विनाश-उत्पादके अभावसे
अनित्यता-व्याघात १, अथ * अनित्यत्वम् १ एव *	=अनित्यत्वका व्याघात है । पक्षान्तरमें (=अथ) अनित्यता ही है तौ
स्थिति अभावात् १ नित्यता-व्याघात १ इति * ॥	=स्थिरताके अभावसे नित्यपनाका विरोध है अर्थात् नित्यतामें अन्तराय वा रुकावट है
न * एतद् १ विरुद्धम् १ कुत *	=(उत्तर) यह विरुद्ध नहीं है अर्थात् हमारा यह कथन कि सोई वस्तु कथचित् नित्यहै कथचित् अनित्य है यह विपरीत कथन नहीं है क्योंकर कि

(१) आत्मन सर्वथा नित्यत्वे नरनारकादिरूपेण संसारस्तद्विनिवृत्तिरूपमोक्षश्च न घटते। तत संसारस्वरूपकथन मोक्षोपायकथन च विरुध्यते इतिभाव ॥

आत्मन १। सर्वथा * नित्यत्वे १ ॥ नरनारकादि	=आत्माके सर्वथानित्यपना (मानने)में मनुष्य और नरकादिक
रूपेण १ ॥ ससार तद्विनिवृत्तिरूप मोक्ष १ च * न * घटते	=रूपसे ससार तथा(=च) उस(ससार)के अत्यन्त छूटने रूप मोक्ष नही बनतीहै
तत * ससारस्वरूप कथनम् १ ॥ मोक्षकथनम् १ ॥ विरुध्यते इति * भाव ॥	=तिससे संसारस्वरूपका वर्णन और मोक्षके उपायका कथन विरोध्या जाय हैं ऐसा तात्पर्य है ॥

तैर्युक्तस्य द्रव्यस्य चाभावः प्राप्नोति ॥ नैष दोषः । भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया युक्तशब्दो दृष्टः । यथा सारयुक्तः स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सद्व्यपदेशो युक्तः ॥ समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्तः समाहितः तदात्मक इत्यर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

च*तैः।युक्तस्य।।द्रव्यस्य।।अभावः।प्राप्नोति ॥	=और(=च)तिन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होता है अर्थात् जो ऐसे तीन भाव पृथक् पृथक्करि युक्त हैं तो द्रव्यका अभाव आता है
न*एषः।दोषः।; (१)भेदे।अपि*कथञ्चित्*	=(उत्तर) यह दूषण नहीं हैं, भेद होनेपरभी कभी कभी
अभेद-नय-अपेक्षया।।युक्तशब्दः। दृष्टः।	=अभेदनयकी अपेक्षासेयुक्त शब्द देखागयाहै अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तुको पृथक् दिखाना होता हैं वहां तो युक्त शब्द लाते ही हैं परन्तु कभी कभी अभेदपनाके अर्थमेंभी युक्त शब्द आता है ।
यथा*सारयुक्तः।स्तम्भः।इति * ॥ तथा*सति।तेषाम्।	=जैसे सारयुक्त स्तम्भ है, तैसे होनेमें तिन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)के
अविनाभावात्।सत्-व्यपदेशः।युक्तः।	=अविनाभाव होनेसे(=एकविना दूसरेका अस्तित्व न रहसकनेकेहेतुसे)सत्का कथन है
समाधिवचनः।वा*युक्तशब्दः।।युक्तः।समाहितः।	=अथवा युक्त शब्दएकमेकतारूप वचन (=समाधिवचन) हैं । युक्त है सो समाहित
तदात्मकः।इति*अर्थः।;उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं।।सत्	=तदात्मक वा तत्स्वरूप ऐसा अर्थ है । उत्पत्ति,नाश, स्थिरता,मिलित(=युक्त)सत् है,

(१) सर्वार्थसिद्धका प्रथमावृत्तिमें "भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है इस पर चरणटिप्पणी ऐसे है कि 'अभेदेऽपिकथञ्चिद्भेदापेक्षया इत्यपि पाठान्तरम्' द्वितीयावृत्तिमेंभी यही चरणटिप्पणी है परन्तु "अभेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है यह छापेकी अशुद्धि है अथवा सम्भव है कि अन्य प्रकारकी अशुद्धि हो क्योंकि कोईभी पाठ हम लें, यदि प्रारंभमें 'अभेद' शब्द है तो मध्यमें भेद शब्द होना चाहिये यदि प्रारम्भमें 'भेद' शब्द हो तो दूसरा शब्द अभेद होना चाहिये ॥ दो हस्तलिखित प्रतियोंमे "अभेदेऽपिकथचिदभेदनयापेक्षया" पाठ है एक अन्य हस्त लिखित पुस्तकमें "अभेदेन कथंचिद्भेदनयापेक्षया" ऐसा पाठ है । इन समस्त पाठोंको छोडकर हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है क्योंकि शिष्यके प्रश्नके शब्दोंके क्रमानुकूल उत्तर प्राप्त होजाता है जैसाकि नीचेके हिन्दी अनुवादसे प्रगट है । प्रश्न करता है कि "भेद होनेमें युक्तशब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तु भिन्न दिखानी होतीहै वहां युक्त शब्द लातेहैं जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो चेतन है और दण्ड अचेतन अन्य वस्तु है देवदत्त और दंड एकही नहीं है इस भांति होनेपर तिन तीन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)के और उन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होताहै अर्थात् जो ऐसे तीनभाव भिन्नरकरि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आताहै ।(उत्तर)यह दूषण नहींहै । भेद होनेपरभी कभीकभी अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखाजाता है अर्थात् जहां एक वस्तुसे दूसरी वस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द लातेही हैं परन्तु कभीकभी अभेदपनाके अर्थमें भी युक्तशब्द आता है । जैसे सार युक्त स्तम्भ है ऐसे होनेपर तिन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)केअविनाभावसे सत् का कथनहै॥

उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिति यावत् । एतदुक्तं भवति—उत्पादादीनि त्रीणि द्रव्यस्य लक्षणानि । द्रव्यं लक्ष्यम् । तत्पर्यायार्थिकनयापेक्षया परस्परतो द्रव्याच्चार्थान्तरभाव ॥ द्रव्यार्थिकनयापेक्षया व्यतिरेकेणानुपलब्धेरनर्थान्तरभाव इति लक्ष्यलक्षणभावसिद्धिः ॥

आह नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्युक्तं तत्र न ज्ञायते किं नित्यमित्यत आह—

॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आत्मकम् इति यावत्*एतद्*उक्त भवति । =उत्पत्ति विनाश स्थिरता स्वरुप होना इतना(=यावत्) अर्थ है अर्थात् यह सिद्ध होता है कि

उत्पाद आदीनि।।त्रीणि।।द्रव्यस्य।।लक्षणानि।। =उत्पादादिक तीनों द्रव्यके लक्षण है

द्रव्यम्।।लक्ष्यम्।।,तत् पर्यायार्थिक-नय- =द्रव्य लक्ष्य है वे(=तद्=उत्पाद व्यय ध्रौव्य)पर्यायार्थिकनयकी

अपेक्षया।।परस्परत.*द्रव्यात्।।च*अर्थ अन्तर-भाव।, =अपेक्षासे आपसमें तथा (=च)द्रव्यसे अन्य अन्य पदार्थ हें अर्थात् विशेषकी अपेक्षा समस्त पर्याय क्रमवती भिन्नभिन्न हैं, परस्पर मिलें नहीं तिसकरि भिन्न हैं

द्रव्यार्थिक-नय-अपेक्षया।। व्यतिरेकेण। =द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)पृथक् पृथक् (=व्यतिरेकेण)

अनुपलब्धे.।।अनर्थ अन्तर-भाव:।इति* =न प्राप्ति होनेसे अन्य अन्य पदार्थ नहीं हैं अर्थात् ये उत्पाद-व्यय ध्रौव्य सामान्य तो अभिन्न हैं वोही एक द्रव्य है द्रव्यसे भिन्न नही हैं (अर्थ प्रकाशिका पृ० ३२२) (इस प्रकार भेद अभेदनयकी अथवा (पर्यायार्थिक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे)

लक्ष्य-लक्षणभाव सिद्धि।।,आह।नित्य अवस्थितानि।।। =लक्ष्य लक्षणभावकी सिद्धि है । (शिष्य) पूछता है कि "नित्यावस्थितान्य-

अरुपाणि।।। इति*उक्तम्।।। =रूपाणि" (इस प्रकार इस अध्यायका चौथा सूत्र) कहागया है

तत्र*न*ज्ञायते।किम्*नित्यम्।।।इति*अत.*आह। =तहा नहीं जतायागया है कि नित्य क्या है,इसलिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

[1]तद्भावाऽव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थ —तद्द भाव अव्ययम्।।। नित्यम्।।। =वह(सत्)जो स्वभावसे विनाशरहित वा अविनाशी(=अव्यय)है सो नित्य है

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंसे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है हमारे यहा 'नित्यम् शब्दके स्थानमें किसी किसी पुस्तकमें 'नित्य' पाठ है यह बात जरूपमालाव्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ५,६,५५०,५५१,)

तथा पूर्वभावविगमनं व्ययः । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृतेः॥ अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुवः ।

नाश होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद जानना

तथा*पूर्वभावविगमनम्[१]।।व्ययः[१]। । =वैसेही (=तथा)पहिली अवस्थाका विनाश होना (=विगमनं) समुच्छेद होना अथवा अभाव होना सो व्यय है

यथा*घट-उत्पत्तौ[७]।।पिण्ड-आकृतेः[६]।।; अनादि- =जैसे घटके उपजनेमें पिंडके आकारका (विनाश होना)अनादिकालसे

पारिणामिक-स्वभावेन[३]।(१)व्यय-उदय-अभावात्[५]। =परिणमन होनेवाले स्वभाव द्वारा (पर्यायोंके) विनाश उत्पादनके वशसे रहित

(२)ध्रुवतिT स्थिरीभवतिTइति*ध्रुवः[१]। =स्थिर रहता है वा अवतिष्ठमान रहता है (=स्थिरी भवति) ऐसा ध्रुव है अर्थात् जो पूर्वभावका नाश और उत्तरभावका उत्पाद होतेभी अपनी जातिको नहीं छोड़ता है सो ध्रुव है, पर्याय नवीन उपजतीहैं और विनशती हैं, द्रव्यस्वभावकरि उत्पाद विनाशरूप नहीं है ध्रुव है ही ॥

कुण्डलरूप अवस्थाका नष्ट होना सो विनाश वा व्यय है और पीतरंग, भारीपन आदि अपनी सोनेकी जातिको लिये हुए दोनों अवस्थाओंमें विद्यमान रहना सो ध्रौव्य है । और भी जैसे मिट्टीके पिंडका घट करना सो उत्पाद है ॥और पिंडपर्यायका अभाव सो व्ययहै और पिंडपर्यायमें तथा घटपर्यायमें मिट्टीका अभाव न होना तथा सर्व मिट्टीके गुणोंको धारण किये हुये दोनों पिंड तथा घट अवस्थाओंमें रहना है सो ध्रौव्य है ॥

(१) श्वेताम्बरआम्नायमें इस सूत्रके भिन्नभिन्नभाष्य और पाठ ऐसे हैं कि (क)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येण च युक्तलत्" (ख)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येणच युक्तसतोलक्षणम् (उत्पादसे,व्ययसे, तथा ध्रौव्यसे, युक्त होना यह सतका लक्षण है) (ग) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं चैतत् त्रितययुक्तं सत् (घ) उत्पादव्ययौ ध्रौव्य च सतो लक्षणम् (ङ)उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों एकही पदमें पडे हैं ॥ सर्वथा सूत्रका यह अर्थहै कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित सत् है ॥

(२)अनेकान्तस्वरूप वस्तुके अन्वयी जोड़रूप तो गुण है और व्यतिरेकी पर्याय हैं जैसे मृत्तिकाविषैं स्पर्श रस गन्ध रूप ये तो गुणहैं और पिंड,घट कपाल, खड, शर्करादिक पर्याय हैं ॥ स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं ते तो मृत्तिका के साथही घट कपाल खडादिक सर्वपर्यायोंमें पाये जाते है तिससे स्पर्शादि गुण अन्वयी हैं । और घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमें पायेजाते हैं । जिस कालमें पिंड पर्याय है तिस कालमें घटादिक अन्य पर्याय नही है और घट पर्याय है तिसमें पिण्डादिक पर्याय नहीं है, तिससे पर्याय व्यतिरेकी है और द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्न नही है गुण पर्यायात्मकही द्रव्य है ॥ गुण है वे तो द्रव्यमें युगपत् प्रवर्तते है और पर्याय हैं ते क्रमकरि प्रवर्तती हैं, तिससे गुणपर्यायहैं ते द्रव्यका स्वभाव भूत हैं तिससे द्रव्यलक्षणपना को धारण करती है ॥ इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) कहेगये हैं ।

 ध्रुवस्य भाव कर्म वा ध्रौव्यम् । यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय ॥ तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्युक्त
सदिति ॥ आहभेदे सति युक्तशब्दो दृष्ट । यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सतितेषा त्रयाणा

ध्रुवस्य ६।१ भाव १।१ कर्म १।१ वा* ध्रौव्यम् १।१ ।	ध्रुवका भाव अथवा कर्म है सो ध्रौव्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना ध्रौव्य हे
यथा* (१) मृद् पिण्ड घटादि अवस्थासु ७।३ मृद्-आदि-	=जैसे मिट्टीका ढेला घट (कपाल) आदिक अवस्थाओं में मिट्टी आदि है
अन्वय १।१ ॥	=सो जोड रूप वा सर्व दशाओंमें सम्बन्धरूप है अर्थात् वही मिट्टी पिंडमे थी वही घटमें
तै• ३।३ उत्पाद-व्यय ध्रौव्यै ३।३ युक्तम् १।१ सत् १।१ इति* ॥	=तिन उत्पत्ति-विनाश स्थिरता (तीनों) करि सहित (=युक्त) सत् है ॥
आह [भेदे ७।१ सति ७।१ युक्तशब्द• १।१ दृष्ट• १।१ ।	=प्रश्न करता है कि भेद होनेमें युक्त शब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एक वस्तु से दूसरी वस्तु भिन्न दिखानी होती है वहा युक्त शब्द लाते है
यथा* दण्डेन ३।१ युक्त• १।१ देवदत्त १।१ इति* ॥	=जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्तमनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य वस्तु है । देवदत्त और दंड एक ही नही हे
तथा* सति ७।१ तेषाम् ६।३ त्रयाणाम् ६।३	=इस भांति (=तथा) होने मे (=सति) तिन तीन (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) कें

(१) "यथा मृत्पिण्ड घटाद्यवस्थासु मदाद्य वय " ऐसा पाठ हो अर्थात् 'मृद न्वय 'के स्थानमें 'मृदाद्यन्वय ' हो तो पिण्डका अर्थ लोहा (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ट २३६) होगा और वाक्यका अर्थ इसप्रकार होगाकि जैसे मिट्टी और लोहा(=पिण्ड,घट आदिक लोटा, करहा अवस्थाओंमें मिट्टीऔर लोहेके जोडरूप वा अन्वय रूप है (२) द्रव्यका एक लक्षण सत् कहा, एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तपणा कहा । एक गुण पर्यायवान् (देखो सूत्र३८) कहा, इन तीन लक्षणोंके मध्य एकके कहने पर अन्यदो लक्षण अर्थसेही आजाते हैं ॥ सत् लक्षणके कहनमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् पना और गुण पर्यायवान् पणा स्वयमेव आजाते हैं ॥ और उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् कहने पर सत्पना और गुणपर्यायवान् पणा स्वयमेव गर्भित होजाता है और गुण पर्यायवान् पणा कहनेमें सत्पना और उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना स्वयमेव आजाते हैं ॥

स कथं चाक्षुषो भवतीति चेदुच्यते । भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः । न भेदादिति ॥ का तत्रोपपत्तिरिति चेत् ब्रूमः । सूक्ष्मपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदे सौक्ष्म्यापरित्यागादचाक्षुषत्वमेव । सौक्ष्म्यपरिणतः पुनरपरः सत्यपि तद्भेदेऽन्यसंघातान्तरसंयोगात्सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थौल्योत्पत्तौ चाक्षुषो भवति ॥ आह धर्मादीनां द्रव्याणां विशेषलक्षणान्युक्तानि, सामान्यलक्षणं नोक्तं, तद्वक्तव्यम् ॥ उच्यते—

॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

स:[१/१] कथम्* चाक्षुष:[१/१] भवति । इति* चेत्* उच्यते । =सो कैसे नेत्र इन्द्रियगोचर होता है । ऐसी शंका होनेपर कहाजाता है कि

भेदसंघाताभ्याम्[५/२] चाक्षुषः[१/१] न* भेदात्[५/१] इति* =भेदसंघात दोनों से नेत्र इन्द्रियगोचर(स्कन्ध)होता है न भेद वा खंडसे केवल ।

का[१/१] तत्र* उपपत्तिः[१/१] इति* चेत्* ब्रूमः । =क्योंकर तहां(चाक्षुपस्कन्धकी)उत्पत्ति है ऐसा संदेह है(उत्तरमें) हम कहते हैं कि

सूक्ष्म-परिणामस्य[६/१] स्कन्धस्य[६/१] भेदे[७/१] सौक्ष्म्य- =सूक्ष्म परिणमनरूप स्कन्धके भेद वा खंड होनेपर सूक्ष्मताके

अपरित्यागात्[५/१] अचाक्षुपत्वम्[१/१] एव* । =न छोड़ने(के कारण)से नेत्र इन्द्रियके अगोचरही रहता है ।

सौक्ष्म्य-परिणतः[१/१] पुनः* अपरः[१/१] सति[७/१] अपि* तद्-भेदे[७/१] =बहुरि कोई एक(=अपर)सूक्ष्मतारूप परिणमा(स्कन्ध)हो उस(स्कन्ध)के भेद होनेपर

अन्य-संघात-अन्तर-संयोगात्[५/१] सौक्ष्म्य- =अन्य(स्कन्ध)का संघात विशेषके(अन्तर)मिलनेसे सूक्ष्मपनाके

परिणाम-उपरमे[७/१] स्थौल्य-उत्पत्तौ[७/१] चाक्षुषः[१/१] भवति ॥ =परिणमनको छोड़नेपर और(=च)स्थूलताके उत्पन्न होनेपर नेत्र इन्द्रियगोचर होताहै

आह धर्मादीनां[६/३] द्रव्याणाम्-विशेष-लक्षणानि[१/३] उक्तानि[१/३] =शिष्य पूछता है कि धर्मादिक द्रव्योंके विशेष लक्षण कहेगये

सामान्य-लक्षणम्[१/१] न* उक्तम्[१/१] तद्-वक्तव्यम्[१/१] उच्यते । =सामान्यलक्षण नहीं कहागया, उस सामान्यलक्षणको कहना चाहिये -कहाजाताहैकि

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥२९॥ = **सत्-द्रव्य-लक्षणम् (भवति) ॥२९॥**

सूत्रार्थः-सत्[१/१] द्रव्य-लक्षणम्[१/१] भवति =द्रव्यका लक्षण सत् है वही द्रव्य है अथवा जो सत्रूप हैं वही द्रव्य है

श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें यह सूत्र नहीं है अर्थात् इसको सूत्र नहीं माना है वार्तिक और वृत्तिरूपमें दिया है ॥

यत्सत्तद्द्रव्यमित्यर्थ ॥ यद्येवं तदेव तावद्वक्तव्य कि सत् ? इत्यत आह—

॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

चेतनस्याचेतनस्य वा द्रव्यस्य स्वा जातिमजहत उभयनिमित्तवशाद्भावान्तरावाप्तिरुत्पादन-मुत्पाद । मृत्पिण्डस्य घटपर्यायवत् ॥

वृत्यनुवादः–यद् ।।।सत्।।।तद्।।।द्रव्यम्।।।इति*अर्थ =जो सत् हे वह द्रव्य है ऐसा तात्पर्य है

य ।।।एवम्*तावत्*तद्।।। एव* =जो ऐसे है अर्थात् जो सत् है सो द्रव्य है तो(=तावत्)सोही (तद्एव)

वक्तव्यम्।।।किम्।।।सत्।।।? इति*अत.आह। =कहना चाहिये सत् क्या है इसलिये(आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

(१)उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त (२)सत् ॥३०॥ = भवति सत् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् ॥ ३०

सूत्रार्थ.—उत्पाद-व्यय ध्रौव्ययुक्तम्।।।सत्।।।भवति। =उत्पत्ति नाश-स्थिरता स्वरूप (=युक्त) सत् है वा उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षणवाला (=युक्त) सत् है अर्थात् (३)उत्तर पर्यायका उपजना सोही पूर्व पर्यायका नाश होना है और जो पूर्व पर्यायका नाशहोना सोही उत्तर पर्यायका उत्पाद है और द्रव्य है सो उत्पादमेंभी वही द्रव्य है और व्यय में भी वही द्रव्य है अन्य द्रव्य नहीं होगई है और उत्पाद-व्ययद्रव्यमें समय समय होता है इससे सर्वद्रव्य परिणामी है परिणमन विना किसी समयमभी कोई द्रव्य नहीं रहती है । ये(उत्पाद व्यय ध्रौव्य) तीनों गुण द्रव्यमें एक साथ निरन्तर रहते हैं।

वृत्यनुवाद –स्वाम्।।जातिम्।।अजहत ।चेतनस्य।।। =जिसने अपनी जातिको नहीं छोडा है चेतन

अचेतनस्य।।।वा*द्रव्यस्य।।।उभय निमित्त वशात्। =अथवा अचेतन द्रव्यके (बाह्य, अभ्यन्तर) दोनों कारणोंके बलसे

भावान्तर अवाप्ति ।।उत्पादनम्।।।उत्पाद । =(एक अवस्थासे)अन्य अवस्था वा परणतिको प्राप्त होना सो उत्पाद है

मृद्।। पिण्डस्य। घट-पर्यायवत्* =माटीके पिंडके घट पर्याय होने सदृश है अर्थात् मृतिका द्रव्य विषें पिंड पर्यायका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमें कई पाठ है उनमेंसे एक पाठ मिलता है (देखो पृष्ठ १०१) ॥

(२) (प्रश्न) अब उनतीसवां सूत्रमें 'सत् शब्द है तो यहां तीसवां सूत्रमें 'सत् शब्द क्यों लाये हैं, उनतीसवां सूत्रसे अनुवृत्ति लेकर ऐसा सूत्र क्यों नहीं किया कि ' उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त ॥(उत्तर) यह सदेह रहता कि 'सत् शब्दका अनुवृत्ति है अथवा द्रव्यलक्षणम् की क्योंकि उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत् अथवा उत्पाद-व्यय ध्रौव्य युक्तम् द्रव्यलक्षणम् इन दोनोंका अर्थ एकही है (३) जैसे सानेके कुण्डलोंका कडेरूप होना खाता उत्पाद है और

संयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः

सयोगकेवलिनां ६।३ लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ =योगसहित केवलियोंका (क्षेत्र) लोकका असंख्यातवां भाग है

तयोः ६।२ प्रतिषेधात् ५।१ =उन दोनों (मारणांतिक और मरण) के निषेध होनेसे [संयमी
निश्चीयते । एवं देश—संयत— =(मारणांतिक तथा मरणका अभाव मिश्रमें) निर्णय किया जाता है ऐसे संयमा-
आदिषु ७।३ आगम—अनुसारेण ३।१ अवबोद्धव्यम् १।१ = आदिमें शास्त्रके अनुसारसे जानना चाहिये ॥

(१) एकस्मिन्काले सम्भवतां पूर्वोक्तशतसहस्रपृथक्त्वसंख्यानां सयोगकेवलिनां स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थानापेक्षया च लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रम् ॥ असंख्येयभागा इति वचनेन प्रतरसमुद्घाते लोकस्यासंख्यातबहुभागमात्र क्षेत्रमित्युक्तं ज्ञेयम् ॥ त्रिलोकसारे ' सत्तासीदी चदुस्सदेत्यादिना' कथितेन सर्ववातवलयावरुद्धक्षेत्रेण एतावता १०२३१९८७१४८७ सर्वलोकासंख्यातैकभागमात्रेण हीनस्य सर्वलोकस्य तत्क्षेत्रत्वात् । लोकपूरणापेक्षया सर्वलोकः क्षेत्रम् ॥

एकस्मिन् ७।१ काले ७।१ सम्भवतां ६।३ पूर्व—उक्त— =एक समयमें होनेवाले पहले कहे हुये
शतसहस्रपृथक्त्व— =तीनसौहजार (तीनलाख) से अधिक नौसौहजार (नौ लाख) से नीचे
संख्यानां ६।३ सयोगकेवलिनां ६।३ =(अर्थात् ८९८५०२) गिनती किये हुये सयोगकेवलियोंका
स्वस्थानस्वस्थान—विहारवत्स्वस्थान-अपेक्षया ३।१ =स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत् स्वस्थान की अपेक्षासे
लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ क्षेत्रम् १।१ "असंख्येय =लोकका असंख्यातवां भाग निवासस्थान (=क्षेत्र) है "असंख्येय
भागाः" इति वचनेन ३।१ प्रतर-समुद्घाते ७।१ =भागाः" ऐसे वाक्यसे (सयोगकेवलीके) प्रतर समुद्घातमें
लोकस्य ६।१ असंख्यातबहुभागमात्रं १।१ क्षेत्रं १।१ =लोकके असंख्यातभागोंमेंसे बहुत भागके परिमाण (=मात्र) क्षेत्र है
इति—उक्तं १।१ ज्ञेयम् १।१ त्रिलोकसारे ७।१ =ऐसा कथन वा अर्थ जानना चाहिये । त्रिलोकसार (ग्रन्थ गाथा १३९) में
सत्तासीदि चदुस्सद (सप्ताशीति चतुःशत—) =सत्तासीदि चदुस्सद (= चारसौ सतासी) इत्यादि (निम्नलिखित) कथनमें

॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अनन्तानन्तपरमाणुसमुदयनिष्पाद्योऽपि कश्चिच्चाक्षुषः कश्चिदचाक्षुषः ॥ तत्र योऽचाक्षुषः

सूत्रम्–भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः[1] ॥ २८ ॥ = भेदसंघाताभ्याम्चाक्षुषः (स्कंध उत्पद्यते)॥ २८॥

सूत्रार्थ.—भेदसंघाताभ्याम् ३। चाक्षुषः १।स्कंधः १। उत्पद्यते [=भेद संघात(दोनों)सेही नेत्र इंद्रियगोचर स्कंध उत्पन्न होता है(भेदसे नहीं होता) अर्थात् जो सूक्ष्म परिणमनरूप स्कंध है उसका भेद अथवा खंड होनेपर भी सूक्ष्म परिणामको नहीं छोडता है इससे वह नेत्र इंद्रियसे अगोचर है परंतु जब वह सूक्ष्म परिणाम(=भेद)रूप किया हुआ स्कंध अन्य स्कंधमें संघातरूप होकर मिले तब सूक्ष्मपणाके परिणामको छोडकर स्थूलपनाको प्राप्त होकर नेत्र इंद्रिय ग्राह्य होता है इसलिये कहते हैं कि भेद संघात दोनोंसे नकि केवल भेदसे नेत्रइन्द्रियगोचर स्कंध पैदा होता है

वृत्त्यनुवाद —अनन्तानन्त-परमाणु समुदय निष्पाद्य १।अपि*=अनन्तानन्त परमाणुके समूहकरि उत्पन्न होने योग्य(स्कंधों)मेंभी

कश्चित्*चाक्षुषः १। कश्चित्*अचाक्षुषः १। =कोई एक(स्कंध)नेत्र इंद्रियकरि ग्राह्य है,कोई एक नेत्रइन्द्रियकरि ग्रहण योग्य नहीं है

तत्र*यः १। अचाक्षुषः १। =तहां जो स्कंध नेत्र इंद्रियके ग्रहण योग्य नहीं (अचाक्षुष) है

---

(१) नेत्र इन्द्रियगोचर=नेत्र इंद्रियसे प्रत्यक्षहोनेवाला, नेत्रइन्द्रियके ग्राह्य नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य (२) दिगम्बर आम्नायकी बहुतसी मुद्रणकी पुस्तकों तथा हस्तलिखित कई प्रतियोंमें यह सूत्र पूर्वोक्त लेखअनुसार है परंतु श्वेताम्बर सम्प्रदायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथाश्रीसिद्धसेनसूरि रचिता भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पेज ४०६ पर यह सूत्र इस प्रकार है कि ' भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः ॥ अर्थात् चाक्षुषाः बहुवचन चाक्षुष'(नेत्र इन्द्रियगोचर)का है चाक्षुषाः शब्दमें योग्यता और समता यह जान पडती है कि'स्कन्धाः 'शब्दकी अनुवृत्ति पचीसवां सूत्रसे और उत्पद्यन्ते शब्दकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे लेकर इधरउधरसे खैंचातानी बिना कियेहुये ' भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः स्कन्धाः उत्पद्यन्ते" यह अनुवृत्तियोंसे सूत्र होजाता है। इसमें संदेह नहीं कि एक अकारके तुल्यसूत्र दीर्घ होजाताहै अर्थात् 'भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः " होजाता है अनुवृत्ति स्कन्धाके स्थानमें'स्कन्ध की माननी पडती है और इसी प्रकार उत्पद्य तके स्थानमें उत्पद्यतकी। अर्थ इसप्रकार सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें किया है कि

भेद संघाताभ्यां ३। चाक्षुषाः १।स्कन्धाः १। =भेद संघात (दोनों)से ही नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होसकनेवाले स्कन्ध

उत्पद्यन्ते अचाक्षुषाः १।तु*यथा*उक्तास् १॥ =उत्पन्न होते हैं और (=तु)जोनेत्र इंद्रियगोचर नहीं हैं वे जैसाकि (छब्बीसवांसूत्रमें कहागया है कि)

संघातात् ५।भेदात् ५। संघातभेदात् ५।च*इति* =संघातसे,भेदसे तथा(=च) संघातभेद(दोनों)से(ही)(उत्पन्न होतेहैं)।अर्थ दोनोंसंप्रदायोंमें एकसाहै।

सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थो भवति। अणोरुत्पत्तिर्भेदादेव, न संघातान्नापि भेदसंघाताभ्यामिति॥

आह संघातादेव स्कन्धानामात्मलाभे सिद्धे भेदग्रहणमनर्थकमिति ॥ तद्ग्रहणप्रयोजनप्रतिपादनार्थमिदमुच्यते—

सूत्रार्थः—भेदात् ५।१ अणुः १।१ उत्पद्यते । =भेद से अणु उत्पन्न होता है अर्थात् अणु किसी वस्तुके खण्ड से उपजता है न कि किसी वस्तु के जुड़ने अथवा मिलने से ॥

वृत्त्यनुवादः—सिद्धे ७।१ विधिः १।१ आरभ्यमाणः १।१ नियम-अर्थः १।१ =सिद्ध होनेपर अर्थात् सिद्ध होनेके पश्चात् विधि सूत्रका प्रारम्भ नियमके लिये

भवति । =होता है अर्थात् जो पहले विधि सूत्रसे अर्थ सिद्ध होनेपर फिर विधि सूत्र कहा जाता है वह नियमके लिये होता है और उसको नियम सूत्र(सीमाबंधक सूत्र) कहते हैं जैसे पच्चीसवां सूत्रमें कहा है कि पुद्गलके अणु और स्कंध दो भेद होते हैं और छब्बीसवां सूत्रमें कहते हैं कि (१)भेदसे (२) संघातसे और (३) भेद संघात दोनोंसे स्कंध उत्पन्न होते हैं यह विधि सूत्र अथवा एक बातको साधारण वर्णन करनेवाला सूत्र है, पच्चीसवां सूत्रसे इस २६वां सूत्रमें अणवः स्कंधाः दोनोंकी अनुवृत्तियां यदि लीजावें तो यह अर्थ होगा कि अणु और स्कंध (१) भेदसे (२) संघातसे और (३) एकही समयमें भेद संघात दोनोंसेही उत्पन्न होते हैं, यथार्थमें यह अर्थ है नही इसलिये ऊपरके अर्थको नियमित वा रोकनेके लिये पूर्वोक्त विधि सूत्र २६वां के पश्चात्ही दूसरा विधि सूत्र अर्थात् २७वां सूत्र कि अणु भेदसेही उपजते है (नकि संघातसे और भेद संघात दोनोंसे उपजते हैं) दिया है ॥

अणोः ६।१ उत्पत्तिः १।१ भेदात् ५।१ एव*, न* संघातात् ५।१ अपि* =अणुकी उत्पत्ति भेदसेही है नकि संघातसे भी ॥

भेद-संघाताभ्याम् ५।२ इति*। आह । संघातात् ५।१ एव* =(और नकि एकसमयमें)भेदसंघात दोनोसे(होतीहै)(शिष्य)तर्क करताहैकि संघातसेही

स्कंधानाम् ६।३ आत्म-लाभे ७।१ सिद्धे ७।१ भेदग्रहणम् १।१ =स्कंधोंके स्वरूप लाभ सिद्ध होने पर(संघातके साथ) भेदको ग्रहण करना

अनर्थकम् १।१ इति* =निष्प्रयोजन है अर्थात् संघातसे स्कंध उत्पन्न होते हैं फिर भेद संघातसे उत्पत्ति कहना निरर्थक है

तद्-ग्रहण-प्रयोजन-प्रतिपादन-अर्थम् १।१ =उस संघातके साथ भेद शब्द)के लानेके प्रयोजन कहनेके लिये

इदम् १।१ उच्यते । =यह(अग्रिम सूत्र)कहाजाता है कि

एवं संख्येयासख्येयानन्तानामनन्तानन्ताना च संघातात्तावत्प्रदेशा । एषामेव भेदात्तावद्द्विप्रदेश-पर्यन्ता. स्कन्धा उत्पद्यन्ते ॥ एवं भेदसघाताभ्यामेकसामयिकाभ्यां द्विप्रदेशादय स्कन्धाउत्पद्यन्ते । अन्यतो भेदेनान्यस्य सघातेनेति॥एवं स्कन्धानामुत्पत्तिहेतुरुक्त ॥अणोरुत्पत्तिहेतुप्रदर्शनर्थमाह—

॥ भेदादणुः ॥ २७ ॥

एवम्*स ख्येय अस ख्येय अनन्तानाम्॥ अनन्तानन्तानाम्॥ च*=इसप्रकार स ख्यात अस ख्यात अनन्त और(=च)अनन्तानन्तके

स घातात्॥ तावत्*प्रदेशा.॥ ,एषाम्॥ एव*भेदात्॥ =संघातसे उतने प्रदेशवाले स्कध(उपजतेहैं),इन(स्कधों)के ही विदारणसे

तावत्*द्वि-प्रदेश पर्यन्ता.॥ स्कधा ॥ उत्पद्य तेT =(तावत्—'वाक्यके भूपके लियेहै')दो प्रदेशीतक स्कध उपजते हैं अर्थात् अन्य बहुत प्रदेशवाले स्कध यदि विदारें जांये तो वे स्कध टूट टूटकर छोटेसे छोटे स्कधदो।प्रदेश तकके होसकते हैं । इससे छोटा स्कध नहीं होसकता है

एवम्*भेद-स घाताभ्याम्॥ एकसामयिकाभ्याम्॥ =इस प्रकार एक समयकरि(=सामयिक)भेद स घात दोनोंसे

द्विप्रदेशादय.॥ स्कन्धा ॥ उत्पद्यन्ते T । =दो प्रदेशादिक वाले स्कध उत्पन्न होते हैं अर्थात् किसी स्कधका विदारण हो और उसी समय में किसी दूसरे स्कधसे उसका स घात होतो इसप्रकारभेद सघात दोनों से एक ही समय में स्कध उपजते हैं

अन्यत.*भेदेन॥ अनस्य ॥ सघातेन ॥ इति* ॥ =अन्यसे भेदकरि (और) अयका सघात करि (ये स्कध उत्पन्न होते हैं) *अर्थात् ये भेद सघात (दोनों) सेएक ही समयमें उत्पन्न होनेवाले स्कध इस प्रकार होतेहैं कि किसीएक स्कधकी जिस समय टूटन हुई उसी समय किसी दूसरेस्कधके साथ उसका जुडनाहोतो कहेंगेकि अमुकस्कधभेद सघातसेउपजाहै*

एवम्* स्कन्धानाम् ॥ उत्पत्ति हेतु ॥ उक्त ॥ ॥ =इस प्रकार स्कन्धोकी उत्पत्तिका कारण कहा गया

अणो ॥ उत्पत्ति हेतु-प्रदर्शन अर्थम् ॥॥ आह T =अणु की उत्पत्तिका कारण दिखावनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहतेहैं कि

सूत्रम्—भेदादणु ॥२७॥ =भेदात्-अणु (उत्पद्यते) ॥२७॥

(१) हमारेयहां तथा श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यके पृष्ठ१३२ पर और भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकाकेपृष्ठ४०५ पर इससूत्रका पाठएकहै अर्थभी एकहै

संघातानां द्वितयनिमित्तवशाद्विदारणं भेदः । पृथग्भूतानामेकत्वापत्तिः संघातः ॥ ननु च द्वित्वाद्द्विवचनेन भवितव्यम् ॥ बहुवचननिर्देशस्तृतीयसंग्रहार्थः । भेदात्संघाताद्भेदसंघाताभ्यां च उत्पद्यन्त इति ॥ तद्यथा—द्वयोः परमाण्वोः संघाताद्द्विप्रदेशः स्कन्ध उत्पद्यते । द्विप्रदेशस्याणोश्च त्रयाणां वा अणूनां संघातात्त्रिप्रदेशः ।द्वयोर्द्विप्रदेशयोस्त्रिप्रदेशस्याणोश्चतुर्णां वा अणूनां संघाताच्चतुःप्रदेशः

तथा ऐसेही किसी स्कन्धके भेद होनेसे अथवा विदारे जानेसे और उसी समयमें अन्य स्कन्धोंके संघातके जुड़नेसे स्कन्धोंकी उत्पत्ति होती है

वृत्त्यनुवादः—संघातानाम्$^{६}_{३}$।द्वितयनिमित्त-वशात्$^{५}_{१}$।	=संघातोंके दोनों (बाह्य और अभ्यन्तर)निमित्तोंके बलसे
विदारणम्$^{१}_{१}$।।।भेदः$^{१}_{१}$।;पृथक्*भूतानाम्$^{६}_{३}$। एकत्व-	=टूटना(न्यारा न्यारा वा भिन्न २ होना)है सो भेद है। न्यारीन्यारी द्रव्योंके एकपनाकी
आपत्तिः$^{१}_{१}$।।सङ्घातः$^{१}_{१}$। ननु*च*द्वित्वात्$^{५}_{१}$।।।	=प्राप्ति हैं सो संघात है । पुनि प्रश्न द्वित्वसे अर्थात् भेदपना और संघातपना के निमित्तोंसे (इस सूत्रमें)
द्विवचनेन$^{३}_{१}$।।।	=दो वचन युक्त(भेदसंघाताभ्याम् ऐसा न कि बहुवचन भेद संघातेभ्यः ऐसा)
भवितव्यम्$^{१}_{१}$।।। । बहुवचन-निर्देशः$^{१}_{१}$।	=होना चाहिये। (उत्तर इससूत्रमें) बहुवचनका निरूपण वा वर्णन
तृतीय-संग्रह-अर्थः$^{१}_{१}$।; भेदात्$^{५}_{१}$।	=तीसरे(भेदसंघाताभ्याम्)के समुच्चय के लिये है ।(पुद्गलोंके स्कन्ध) बिछुड़नेसे
संघातात्$^{५}_{१}$।भेद-संघाताभ्याम्$^{५}_{२}$। च*	=मिलने(जुड़ने)से और(=च) मिलने बिछुड़ने (दोनोंसे)
उत्पद्यन्ते।इति*तद्यथा*द्वयोः$^{६}_{२}$।परमाण्वोः$^{६}_{२}$।	=उत्पन्न होते है(अतःभेदसंघातेभ्यःऐसा बहुवचन है) । जैसेकि दो परमाणुओंके
संघातात्$^{५}_{१}$।द्विप्रदेशः$^{१}_{१}$।स्कंधः$^{१}_{१}$।उत्पद्यते।द्विप्रदेशस्य$^{६}_{१}$।च*	=जुड़नेसे दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है । दो प्रदेशवाले (स्कन्ध)के और(=च)
अणोः$^{६}_{१}$।त्रयाणाम्$^{६}_{३}$।वा*अणूनाम्$^{६}_{३}$।संघातात्$^{५}_{१}$।	=अणुके (=अणोः)(संघातसे) अथवा तीन(खुलीहुई)परमाणुके मिलनेसे(=संघातात्)
त्रिप्रदेशः$^{१}_{१}$।; द्वयोः$^{६}_{२}$।द्वि-प्रदेशयोः$^{६}_{२}$।	=तीन प्रदेशवाला(स्कंध उपजता)है । दो दो प्रदेशवाले दो (स्कन्धों)के (संघातसे),
त्रि प्रदेशस्य$^{६}_{१}$।अणोः$^{६}_{१}$।चतुर्णाम्$^{६}_{३}$।वा*	=तीन प्रदेशवाले(स्कन्ध) के और अणुके संघातसे, अथवा चार (खुलीहुई)
अणूनाम्$^{६}_{३}$।संघातात्$^{५}_{१}$।चतुः प्रदेशः$^{१}_{१}$।	=परमाणुओंके संघातसे चार प्रदेशी(स्कंध उत्पन्न) होता है

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च स्पर्शादिमन्तश्चेति ॥ आह किमेषा पुद्गलानामणुस्कन्धलक्षण परिणामोऽनादिरुत आदिमानित्युच्यते। स खलूत्पत्तिमत्त्वादादिमान्प्रतिज्ञायते ॥ यद्येव तस्मादभिधीयता कस्मान्निमित्तादुत्पद्यन्त इति॥ तत्र स्कन्धाना तावदुत्पत्तिहेतुप्रतिपादनार्थमुच्यते—

॥ भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

शब्द-ब ध सौक्ष्म्य स्थौल्य-सस्थान-भेद तमस् छाया आतप- =शब्द, ब ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, खड, अ धकार, छाह, तप्तप्रकाश
उद्योतवन्त.[१] च * स्पर्श आदिमन्त [१]च*इति* =और(=च)शीतलप्रकाश संयुक्त है। (और) स्पर्श रस गध वर्णवान् भी (च) है
आह[1] किम् * एषाम्[६] पुद्गलानाम्[६] अणुस्क धलक्षण.[१] =शिष्य पूछता है कि क्या इन पुद्गलोंके अणुस्कन्ध लक्षणरूप
परिणाम [१] अनादि [१] उत * आदिमान्[१] इति * उच्यते[1] =विकार अनादि है अथवा (=उत) आदिमान है (उत्तरमें ऐसा कहाजाता है कि
स.[१] खलु * उत्पत्तिमत्त्वात्[५] आदिमान्[१] प्रतिज्ञायते[T] =वह (परिणाम) निश्चयसे उत्पत्तिमान होनेसे आदिमान् कहागया है
यदि * एवम् * तस्मात्[५] अभिधीयताम्। कस्मात्[५] =जो ऐसा है अर्थात् आदिमान् है तौ (=तस्मात्) कहाजाना चाहिये कि किस
निमित्तात्[५] उत्पद्य ते[T] इति *, तत्र * स्कधानाम्[६] तावत् * =निमित्तसे वा किस कारणसे उत्पन्न होते है। तहा प्रथम (=तावत्) स्कधोंकी
उत्पत्ति हेतु प्रतिपादन अर्थम्[१] उच्यते[T] =उत्पत्तिका कारण कहनेके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहाजाता है कि

॥ [१] भेदसघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥ = (पुद्गलाना स्कधा) भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६॥

= पुद्गलाना स्कंधा. भेदात् सघातात्-भेदसघाताभ्याम् च * उत्पद्यन्ते॥ २६॥

सूत्रार्थः—पुद्गलानाम्[६] स्कधा.[१] भेदात्[५] सघातात्[५] =पुद्गलोंकेस्कध भेदसे और संघातसे
भेद-सघाताभ्याम्[५] च * उत्पद्य ते[T] =और (एकही कालमें) भेद सघात (दोनोंसे) उत्पन्न होते हैं अर्थात् (१) बाह्य या अभ्यन्तरिक निमित्तसे स्कधोंके टूट जानेसे दो परमाणुओं तकके अनेक स्कध उत्पन्न होते हैं (२) और बाह्य वा अभ्यन्तरिक कारणसे अ य अन्य स्कधोंके सघातसेभी स्कध होते हैं

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "सघातभेदेभ्य उत्पद्य त" ऐसा पाठ उपर्युक्त सूत्रका है, परन्तु अर्थ दोनोंसम्प्रदायोंमें एकसा है॥

अयोग्येष्वपि व्यणुकादिषु स्कन्धाख्या प्रवर्तते॥ अनन्तभेदा अपि पुद्गला अणुजात्या स्कन्धजात्या च द्वैविध्यमापद्यमानाः सर्वे गृह्यन्त इति तज्जात्याधारानन्तभेदसंसूचनार्थं बहुवचनं क्रियते॥ अणवः स्कन्धा इति भेदाभिधानं पूर्वोक्तसूत्रद्वयभेदसम्बन्धनार्थम्॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तोऽणवः।स्कन्धाः पुनः

अयोग्येषु।अपि*द्वि-अणुक-आदिषु।स्कन्ध-आख्या।। प्रवर्तते। =योग्यता न होनेपरभी दो अणु आदिमें स्कन्ध-संज्ञा प्रवर्तती है अर्थात् दो अणु आदिके स्कन्धकें मिलने विछुड़नेकी योग्यता नहीं है तौभी रुढिके वशसे(दो अणु आदिके स्कन्धभी) स्कन्ध नाम पाते हैं

अणुजात्या।।स्कंधजात्या।।च*द्वैविध्यम्।।। =अणु जातिसे और(=च) स्कंध जातिसे दो प्रकारता को

आपद्यमानाः। अनन्त-भेदाः।अपि*पुद्गलाः। सर्वे। =प्राप्त होनेवाले अनन्त भेदवाले भी पुद्गल सर्व (अणु और स्कन्ध जातियोंमें)

गृह्यन्ते।इति* =ग्रहण कियेजाते हैं अर्थात् पुद्गलोंके अनन्त भेद हैं वे समस्त भेद अणु और स्कन्ध इन दो जातियों में गर्भित होजाते हैं भावार्थ यह है कि यद्यपि द्व्यणुकादिक तथा स्पर्श-रस-गंध-वर्णादिककरि पुद्गलोंके अनन्तभेद हैं तथापि वे समस्त भेद अणु और स्कन्ध इन दो जातियोंमें ही समावेश होजाते हैं।

तद्-जाति-आधार-अनन्त-भेद-संसूचन-अर्थम्।।। =तिन (अणु और स्कन्ध)की जातियोंके आश्रय रहनेवाले(पुद्गलों)के अनन्त भेदोंके ज्ञापन वा जतलानेके लिये (सूत्रमें अणवः ऐसा अणु शब्दका बहुवचन और स्कन्धाः ऐसा स्कन्ध शब्दका

बहुवचनम्।।।क्रियते। =बहुवचन किया है अर्थात् यद्यपि पुद्गलके अनन्त भेद हैं तो भी वे भेद अणु जाति और स्कन्ध जाति द्वारा दोही भेदोंमें सब ग्रहण कर लिये जाते हैं इस प्रकार एक एक जाति(अणु और स्कन्धजातिके आधार अर्थात् एक एक जातिमेंभी अनन्त अनन्त भेद होते हैं इसी बातको जतलानेके लिये सूत्रमें बहुवचन दिये हैं॥

अणवः।स्कन्धाः।इति*भेद-अभिधानम्।।।पूर्व-उक्त-सूत्रद्वय-भेद-सम्बंधन-अर्थम्।।। =अणवः स्कंधाः इस प्रकार(पुद्गलोंके)भेदोंका कथन प्रथम कहेहुये दो(तेईसवां और चौबीसवां) सूत्रके अन्तर(भेद) सम्बंधके लिये है

स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः।अणवः। । स्कंधाः। पुनः* =स्पर्श,रस,गंध वर्णवाले(वा संयुक्त)अणु हैं बहुरि स्कंध (है वे)

॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥

प्रदेशमात्रभाविस्पर्शादिपर्यायप्रसवसामर्थ्येनाण्यन्ते शब्द्यन्त इत्यणव ॥ सौक्ष्म्यादात्मादय आत्ममध्या आत्मान्ताश्च ॥ उक्त च-अत्तादिअत्तमज्झं अत्तत्तं णेव इदिये गेज्झम् । जद्दव्वं अविभागी त परमाणु विआणेहि ॥ १ ॥ स्थूलभावेन ग्रहणनिक्षेपणादिव्यापारस्कन्धनात्स्कन्धा इति सञ्ज्ञायन्ते ॥ रूढौ क्रिया क्वचित्सती उपलक्षणत्वेनाश्रीयते इति ग्रहणादिव्यापार-

सूत्रम्—अणव स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥	= अणव स्कन्धा· च (पुद्गला भवन्ति)
सूत्रार्थः—अणव स्कन्धा च*पुद्गला भवन्ति।	=अणुऔर स्कन्ध पुद्गलद्रव्यहैंअर्थात् पुद्गलद्रव्यकेअणुऔरस्कन्ध येदोभेदहै
वृत्त्यनुवाद·—प्रदेश-मात्र भावि स्पर्श आदि-पर्याय-	=(एक)प्रदेशमात्र होकर भी जो होनेवाले(=भाविन्) स्पर्शादि पर्यायोंके
प्रसव सामर्थ्येन।।।अण्यन्ते।शब्द्यन्ते।	=उपजावनेकी(=प्रसव)शक्ति होनेसे जो कहेजाते है(अण्यन्ते=शब्द्यन्ते)
इति*अणव, सौक्ष्म्यात्।।।आत्म आदय	=ऐसे अणु हैं। सूक्ष्मपणासे(अणु)आपही आदि है
आत्म मध्या।आत्म अन्ता च*। उक्तम्।। च*	=आपही मध्य हैं और आपही अन्त है (और) कहागया भी है कि
अत्त आदि।।।अत्त मज्झ।।।(आत्म आदि।।।आत्म-मध्यम्।।।)	=(परमाणु) आपही आदि आपही मध्य
अत्त अत्तं।।(आत्म-अन्तम्।।।)ण*एव*इदिए।।। गेज्झम्।।। (न*एव*इन्द्रियै।।ग्राह्यम्।।।)	=आपही अन्त है(और) निश्चयसे(=एव)इन्द्रियोंकरि ग्रहण करनेयोग्य नहीं है
जद्।।।दव्वं।।।अविभागी।(यत्।।।द्रव्यम्।।। अविभागी)	=जो अविभागी द्रव्यहै जिसका दूसरा विभाग नहीं हो सकता
त। परमाणु। विआणेहि।(तम्।परमाणुम्।विजानीहि।)	=उसको परमाणु जानो
स्थूल-भावेन। ग्रहण निक्षेपण-आदि	=असूक्ष्मपणाकरि अथवा मोटापन करि जुडने विछुडनेआदिरूप
व्यापार स्कन्धनात्। स्कन्धा। इति*सञ्ज्ञायन्ते।	=व्यापारका स्कन्धोसे वा संयोग (समूह)से स्कन्ध ऐसी संज्ञायें कीजातीहैं
रूढौ।। क्रिया।। क्वचित्*सती।।उपलक्षणत्वेन।।।	=रूढिविषैं क्रिया कहीं कहा होती हैं तौ भी उपचारताकरि
आश्रीयते। इति*ग्रहण आदि-व्यापार-	=(उसरूढिका)आश्रय कियाजाता है(इसी न्यायसे)मिलन आदिके व्यापारकी

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ "पुद्गलाः" शब्दकी अनुवृत्ति तेईसवां सूत्रसे लीगई है ॥

सर्वार्थ सिद्धि ९५

प्रतिविम्बमात्रात्मिका चेति ॥ आतपः आदित्यादिनिमित्तः उष्णप्रकाशलक्षणः ॥ उद्योतश्चन्द्रमणि-खद्योतादिप्रभवः प्रकाशः॥ त एते शब्दादयः पुद्गलद्रव्यविकारास्त एषां सन्तीति शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तः पुद्गला इत्यभिसम्बध्यते॥ च शब्देन नोदनाभिघातादयः पुद्गलपरिणामा आगमे प्रसिद्धाः समुच्चीयन्ते ॥ उक्तानां पुद्गलानां भेदप्रदर्शनार्थमाह—

प्रतिविम्बमात्र-आत्मिका$\frac{1}{1}$॥च*इति* ।	=और (=च)प्रतिविम्बस्वरूप ही(=मात्र)
उष्ण-प्रकाश-लक्षणः$\frac{1}{1}$। आतपः$\frac{1}{1}$।	=तप्त(=उष्ण-संतप्त)रूप है स्वभाव(=लक्षण)जिसका ऐसा प्रकाश वा उजालाहै सोआतपहै
आदित्य-आदि-निमित्तः$\frac{1}{1}$।	=उक्त आतप सूर्य,अग्नि,इत्यादिके निमित्तसे उत्पन्न होता है जैसे धूप, घाम, लौ सहित अग्नि का प्रकाश
उद्योतः$\frac{1}{1}$। चन्द्रमणि-	=ठंडा(शीतल)प्रकाश वा उजाला सो उद्योत है वह चन्द्रकान्ति
खद्योत-आदि-प्रभवः$\frac{1}{1}$।प्रकाशः$\frac{1}{1}$। । ते$\frac{1}{3}$।एते$\frac{1}{3}$।शब्दादयः$\frac{1}{3}$।	=जुगनू(पटवीजना)आदिकसे उपजनेवाला प्रकाश है । वे इतने शब्दादिक
पुद्गलद्रव्य-विकाराः$\frac{1}{3}$। ते$\frac{1}{3}$।	=पुद्गलद्रव्यके विकार,पर्याय,परिणाम वा परिणत हैं । ते (शब्दादिक)
एषाम्$\frac{6}{3}$।सन्तिT इति* शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-	=जिनके (विद्यमान)हैं ऐसे शब्द-बन्धान-सूक्ष्मता-स्थूलतावाले
संस्थान-भेद-तमस्-छाया-आताप-उद्योतवन्तः$\frac{1}{3}$।	=आकार, भेद, अन्धकार, छाया, तप्तउजाला, शीतल प्रकाश
पुद्गलाः$\frac{1}{3}$।इति*अभिसम्बध्यते ॥ च-शब्देन$\frac{3}{1}$।	=पुद्गल हैं ऐसा सम्बन्ध कियाजाता है (इस सूत्रमें) चशब्दकरि
नोदन-अभिघात-आदयः$\frac{1}{3}$। पुद्गल परिणामाः$\frac{1}{3}$।	=प्रेरणा (नोदन) अभिघात(=मारना)आदिक पुद्गलद्रव्यके विकार वा पर्याय
आगमे$\frac{7}{1}$। प्रसिद्धाः$\frac{1}{3}$। समुच्चीयन्तेT ॥	=(जोपरिणाम)शास्त्रमें विख्यात वा व्यक्त हैं इकट्ठे लाये गये हैं अर्थात् ग्रहण कियेगये हैं ॥
उक्तानाम्$\frac{6}{3}$।पुद्गलानाम्$\frac{6}{3}$।भेद-प्रदर्शन-अर्थम्$\frac{2}{1}$॥आहT	=कथित पुद्गलोंके भेद दिखावने के लिये(उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

नुद् छठवां तुदादिगणका धातु है जो प्रेरण अर्थमें (=प्रेरणे) आता है । (प्रश्न) यदि स्पर्श-रसादि तथा शब्दबन्धादि पुद्गलोंहीमें होते है तो स्पर्शादिक तथा शब्दादिकके लिये पृथक २ दो सूत्र क्यों किये ! अर्थात् स्पर्श रस गन्ध इत्यादि (२३) तथा शब्द-बन्ध-इत्यादि (२४) दो सूत्र क्यों किये एकही सूत्रसे कार्य चलजाता (उत्तर) स्पर्श-रस आदि जो हैं वे परमाणुओंमें तथा स्कन्धोंमें स्वभावसेही होते है और शब्द बन्ध-आदि तो स्कन्धोंहीमें होते है और अनेक निमित्तोंसे होते है न कि केवल परिणाम जन्य इसलिये पृथक् पृथक् सूत्र किये गये है ॥ ९५

परिमण्डलादीनामित्थंलक्षणम् । ततोऽन्यन्मेघादीनां संस्थानमनेकविधमित्थमिदमिति निरूपणाभावादनित्थंलक्षणम् ॥ भेदाः षोढा, उत्करचूर्णखण्डचूर्णिकाप्रतराणुचटनविकल्पात् ॥ तत्रोत्करः काष्ठादीनां करपत्रादिभिरुत्करणम् । चूर्णो यवगोधूमादीनां सक्तुकणिकादिः । खण्डो घटादीनां कपालशर्करादिः । चूर्णिका माषमुद्गादीनां । प्रतरोऽभ्रपटलादीनाम् । अणुचटनं सन्तप्तायःपिण्डादिषु अयोघनादिभिरभिहन्यमानेषु स्फुलिङ्गनिर्गमः॥ तमो दृष्टिप्रतिबंधकारणं प्रकाशविरोधि॥ छाया प्रकाशावरणनिमित्ता । सा द्वेधा, वर्णादिविकारपरिणता

परिमण्डल आदीनाम्॰ इत्थलक्षणम्॰ । इत्थम्॰ इदम्॰ इति॰ =चारोंओर गोलआदिकके इत्थलक्षण(संस्थान) है ऐसे यह इत्थम् है
तत अन्यत् मेघ आदीनाम् संस्थानम् अनेकविधम् =तिस (इत्थलक्षणसंस्थान)से ॰ बादल आदिकका आकार बहुतप्रकारहै।
निरूपण अभावात् =सो परिभाषण अथवा कथनकियेजानेके अभावसे
अनित्थंलक्षणम् ; भेदाः षोढा उत्कर चूर्ण =अनित्थ लक्षण(संस्थान)है॥भेद छ प्रकार (=षोढा)अर्थात् उत्कर-चूर्ण
खण्ड चूर्णिका प्रतर अणुचटन विकल्पात् ॥ =खण्ड चूर्णि ॰ प्रतर अणुचटन विकल्पसे है
तत्र उत्करः काष्ठ आदीनाम् करपत्र आदिभिः =तहां उत्कर भेद काठादिका आरा (=करपत्र-क्रकच) आदिकसे
उत्करणम् ; चूर्ण यव गोधूम आदीनाम् =विदारण है । चूर्ण जौ गेहूं(=गोधूम) आदिकोंका
सक्तु कणिकादिः । खण्डः घटादीनां कपाल शर्करादिः । =सतुआ आटा वा चून आदिक है ।खंड घडादिकोंके टुकडा रोडादिक हैं।
चूर्णिका माष मुद्ग-आदीनाम् । प्रतरः अभ्र- =चूर्णिका उरद (माष) मूंग (=मुद्ग) आदिकी दाल है । प्रतर अभ्रकके
पटल आदीनाम् । अणुचटनम् सन्तप्त-अयस्- =पत्रादिकोंका (उपाटना) है । अनुचटन वा अनुतर अतिगरमलोहेके
पिण्डादिषु अयस्-घन आदिभिः अभिहन्यमानेषु =पिंडादिक विषैं लोहेके घनादिककरि चोटदेनेपर वा पीटनेपर
स्फुलिङ्ग-निर्गमः । तम दृष्टि प्रतिबन्धकारणम् =फुलिंगोका निर्गमन, उछलनावानिकलनाहै।तमअन्धकार दृष्टिकारोकनेवाला
प्रकाश-विरोधि । छाया प्रकाश आवरणनिमित्ता =उजालेका विलोम वा प्रतिकूल है । छाया उजालके ढकनेकाकारण है ।
सा द्वेधा वर्णआदिविकार-परिणता॥ =वह छाया दो प्रकार है वर्णादि विकार परिणत अथवा तद्वर्ण परिणत
(अर्थात् कांचविषैं मुखके) वर्णादिकका परिणमन दीखना

तत्रान्त्यं परमाणूनाम् । आपेक्षिकं बिल्वामलकबदरादीनाम् ॥ स्थौल्यमपिद्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं चेति ॥ तत्रान्त्यं जगद्व्यापिनि महास्कन्धे । आपेक्षिकं बदरामलकबिल्वतालादिषु ॥ संस्थानमाकृतिः । तद्द्विविधं, इत्थंलक्षणमनित्थंलक्षणं चेति ॥ वृत्तत्र्यस्रचतुस्रायत-

तत्र*अन्त्यम्[१]।परमाणूनाम्[६/३];आपेक्षिकम्[१]।बिल्व-आमलक-बदर-आदीनाम्[६/३]। ॥ =तहां परमाणुओंकी (सूक्ष्मता) अन्त्य है । आपेक्षिक सूक्ष्मता बेल(=बिल्व) =आमलेके फलकी(=आमलक)और बेरआदिककीसूक्ष्मताहै अर्थात् बेलकेफलसे आमलेकाफल सूक्ष्म है औरआमलेकेफलसे झरबेरीके बेरआदि छोटे होतेहैं

स्थौल्यम्[१]।अपि।द्वि-विधम्[१]।अन्त्यम्[१]।आपेक्षिकम्[१]।चइति=स्थूलताभी दोप्रकारहै अन्त्य और(=च)आपेक्षिकअर्थात्किसीकीअपेक्षासे।

तत्र*अन्त्यम्[१]।जगद्व्यापिनि[७]महास्कंधे[७]; =तहां अन्तिम (स्थूलता)जगतमें व्याप्त होनेवाला वा सर्वलोकव्यापीमहास्कंधमेंहै

आपेक्षिकम्[१]।बदर-आमलक-बिल्व-ताल-आदिषु[७]; =आपेक्षिक(स्थूलता)बेर, आमकेफल,बेलफल और तालफलादिकमें है अर्थात् झरबेरीकेबेरकी अपेक्षा आमला स्थूल होताहै आमलेसे बेल बड़ा होताहै और बेलकी अपेक्षा तालफलादिक बड़े होते हैं ॥

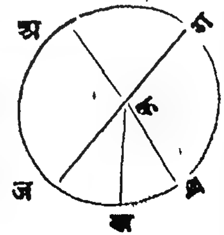
संस्थानम्[१]।आकृतिः[१]।; =संस्थान है सो आकृति अथवा आकारहै अर्थात् अवयव रचनाविशेष है।

तत्[१]।द्विविधम्[१]।इत्थम्[६]।लक्षणम्[१]। =वह(आकार)दोप्रकारहै इत्थंलक्षण अर्थात् आकार जिसकालक्षणकथनयोग्यहै

अनित्थम्[६]।लक्षणम्[१]।च*इति*॥ =और(=च) अनित्थं लक्षणअर्थात् वहआकारजिसकालक्षण कथनयोग्य नहीहै

वृत्त-त्र्यस्र-चतुस्र-आयत- =गोलवा वर्तुल(=वृत्त) तिकोना(=त्र्यस्र) चतुष्कोण(चतुरस्र) आयत, जात्यायत अर्थात् समानान्तर चतुर्भुज जिसके सबकोन समकोन हों किंतु सबभुज बराबर नहीं परंतु आमनेसामनेके भुज बराबर हों ॥

'वृत्त' वह सम धरातल क्षेत्र है जो एक रेखासे जिसको परिधि कहते है घिरा हो और ऐसा हो कि उसके अन्दर एक विशेष विन्दुसे परिधि तक जितनी रेखा खींची जांय वह सब आपसमें बराबर हों और इस विन्दुको उसवृत्तका केन्द्रकहतेहैं॥ वृत यह गोल क्षेत्र है जिसकी अ ब ज रेखा परिधि है 'क' केन्द्र है और जिसकी कज, कख, कब, क ग और कअ सब रेखायें आपसमें बराबर हैं ॥



सर्व-वातवलय—	=सब वात वलयोंसे (अर्थात् प्रथम घनोदधि वात वलय जो जल और पवन मिश्रित है दूसरा घनवातवलय जो स्थूल वायुका है तीसरा तनुवात वलय जो सूक्ष्म वायुका है ये तीनों लोकको उसी प्रकारसे वेढे हुये हैं जैसे छाल वृक्षको और चाम शरीरको सब ओरोंसे घेरे हुये हैं)
अवबद्ध-क्षेत्रेण ३।१	=घिरा हुआ या आच्छादित क्षेत्र
(एतावता ३।१ १०२४१९८३४८७)	=(इतना (=एतावता) १०२४१९८३४८७×जगत्प्रतर / १०९७६० (=भागहार) होता है और लोकके असंख्यातवां भाग प्रमाण है (देखो त्रिलोकसारकी गाथा १३८, १३९, १४०,) (तीनों वात वलयोंकी फलावट उक्त ग्यारह अंक प्रमाण है)
हीनस्य ६।१ सर्वलोक-असंख्यात-एकभागमात्रेण ३।१	=उससे हीन जो (क्षेत्र) सब लोकके असंख्यात भागोंमेंसे एक भागमात्र है
सर्वलोकस्य ६।१ तत्-क्षेत्रत्वात् ५।१	=सब लोकके प्रमाण उस (प्रतर समुद्घात) का क्षेत्र होता है भावार्थ " प्रतर समुद्घात विषै तीन वात वलय विना सर्वलोक विषैं प्रदेश व्याप्त होहैं तातैं तीन वात वलयका क्षेत्रफल लोकके असंख्यातवे भाग प्रमाण है सो वह प्रमाण लोकका प्रमाण विषै घटाए अवशेष रहे तितना एक जीव सम्बन्धी प्रतर समुद्घात विषैं क्षेत्र जानना " गोमट्टसार जीव काण्ड मुद्रित पृष्ठ ६६०
लोक पूरण-अपेक्षया ३।१ सर्वलोकः १।१ क्षेत्रम् १।१	=(समुद्घातमें) लोक पूरणकी अपेक्षासे समस्त लोक क्षेत्र है अर्थात् " लोक पूरण विषैं सर्वलोकाकाशविषैं प्रदेश व्याप्त हो हैं तातैं लोक प्रमाण एक जीव सम्बन्धी लोक पूरणविषै क्षेत्र जानना । सो प्रतर और लोक पूरणके

शब्दो द्विविधो भाषालक्षणो विपरीतश्चेति ॥ भाषालक्षणो द्विविधः। साक्षरोऽनक्षरश्चेति ॥ अक्षरीकृतः शास्त्राभिव्यञ्जकःसंस्कृतविपरीतभेदादार्यम्लेच्छव्यवहारहेतुः॥ अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादीनामतिशयज्ञानस्वरूपप्रतिपादनहेतुः स एषः सर्वप्रायोगिकः।अभाषात्मकोद्विविधः। प्रायोगिको वैस्रसिकश्चेति॥

तमोवन्तः(१/३) पुद्गलाः(१/३) वा तमोवान्(१/१) पुद्गलः(१/१);	=अंधकारवाले पुद्गल हैं अथवा अंधकारसंयुक्त पुद्गल है
छायावन्तः(१/३) पुद्गलाः(१/३) वा छायावान्(१/१) पुद्गलः(१/१),	=छाहसहित पुद्गल हैं अथवा छाहवान् पुद्गल है
आतपवन्तः(१/३) पुद्गलाः(१/३) वा आतपवान्(१/१) पुद्गलः(१/१);	=तप्तप्रकाशसंयुक्त पुद्गल हैं अथवा उष्णरूपउजालासहित पुद्गल है
च* उद्योतवन्तः(१/३) पुद्गलाः(१/३)	=और शीतल प्रकाश जैसेचांदनी(=चंद्रमाकी पटवीजनाकीचमक) वाले पुद्गल हैं
वा उद्योतवान्(१/१) पुद्गलः(१/१)	=वा ठंडे उजालेवान् जैसे चांदनीवान् पुद्गलहै अर्थात् येदशपुद्गल द्रव्यके पर्याय, परिणाम, विकार वा अवस्थाविशेष हैं ॥
वृत्त्यनुवादः-शब्दः(१/१) द्विविधः(१/१) भाषालक्षणः(१/१) च*	=शब्द दोप्रकार है भाषास्वरूप वा भाषात्मक और (=च)
विपरीतः(१/१) इति*॥ भाषालक्षणः(१/१) द्विविधः(१/१) ।	=प्रतिकूल अर्थात् अभाषास्वरूप वा अभाषात्मक; भाषात्मकशब्द दो प्रकारहै
स-अक्षरः(१/१) च* अन्-अक्षरः(१/१) इति*॥	=अक्षररूप(अक्षरसहित,अक्षरीकृत)और(=च अनक्षररूप(अक्षररहित)
अक्षरीकृतः(१/१) शास्त्र-अभिव्यञ्जकः(१/१) संस्कृत-	=अक्षररूपभाषा (भाषात्मक शब्द)शास्त्रके प्रगटकरनेवाली संस्कृत और
विपरीत-	=(संस्कृतसे)प्रतिकूल वा विरोधीभाषा अर्थात् देशभाषा, प्राकृत, पैशाचीआदि
भेदात्(५/१) आर्य-म्लेच्छ-व्यवहारहेतुः(१/१); अनक्षरात्मकः(१/१)	=भेदसे आर्य और म्लेच्छ(मनुष्यों)के व्यवहारका कारणहै । अनक्षररूप भाषा
द्विइन्द्रिय-आदीनाम्(६/३); अतिशय-ज्ञान-स्वरूप-प्रतिपादनहेतुः(१/१)	=दोइन्द्रियादिजीवोंके है,औरसर्वोत्तमज्ञानकास्वरूपकहनेकाकारणहैअर्थात्अक्षररहित भाषा है सो दोइन्द्रियवाले जीवोंमें, तीन इन्द्रियवाले जीवोंमें, चारइन्द्रिय वाले जीवोंमें, औरकितनेई पांचइन्द्रियवालेजीवोंमेंभीपाईजातीहैऔर(अक्षररहितभाषाही) अतिशयरूप अथवा महानज्ञानके प्रकाशनेके कारण सर्वज्ञके दिव्यधुनिमेंभी है॥
सः(१/१) एषः(१/१) सर्व-प्रायोगिकः(१/१)	=सो यह (भाषास्वरूपशब्द) समस्त प्रायोगिक है अर्थात् पुरुषके प्रयत्नसे होताहै॥
अभाषा-आत्मकः(१/१) द्वि-विधः(१/१); प्रायोगिकः(१/१)	=अभाषास्वरूप (शब्द) दोप्रकारहै,प्रायोगिकअर्थात्पुरुषकेनिमित्तसे उपजाऊ
च* वैस्रसिकः(१/१) इति*॥	=और वैस्रसिक (वैश्रसिक) पुरुषके प्रयत्नकी अपेक्षारहित स्वभावसे उपजनेवाला ॥

वैस्रसिको वलाहकादिप्रभव.। प्रायोगिकश्चतुर्धा, ततविततघनसौषिरभेदात् ॥ तत्र चर्मतननिमित्त पुष्करभेरीदर्दुरादिप्रभवस्तत.। तन्त्रीकृतवीणासुघोषादिसमुद्भवो वितत । तालघण्टालालनाद्यभिघातजो घन। वंशशंखादिनिमित्त सौषिर ॥बन्धो द्विविधो वैस्रसिक प्रायोगिकश्च ॥पुरुषप्रयोगानपेक्षो-वैस्रसिक.। तद्यथा—स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तो विद्युदुल्काजलधाराग्नीन्द्रधनुरादिविषय ॥पुरुषप्रयोग-निमित्त प्रायोगिक,अजीवविषयो जीवाजीव विषयश्चेति द्विधाभिन्न । तत्राजीवविषयो जतुकाष्ठादि-लक्षण । जीवाजीवविषय· कर्मनोकर्मबन्ध ॥ सौक्ष्म्य द्विविध, अन्त्यमापेक्षिक च ॥

वैस्रसिक वलाहक-आदि प्रभव, =वैस्रसिक (अभाषात्मकरूपशब्द) जैसे मेघ(=वलाहक)आदिसे उपजनेवाला ॥
प्रायोगिक चतुर्धा*तत वितत घन सौषिर भेदात्; =प्रायोगिक(अभाषात्मकरूपशब्द चारप्रकार, तत वितत-घन सौषिर भेदसे है
तत्र*चर्मतनन निमित्त पुष्कर भेरी (=भेरि) =तहां चमडेके तननेके कारण वा हेतुसे खजरी (=पुष्कर)दुदुभि-ढोल नगारा
दर्दुर आदि प्रभव तत, =दर्दुर (एकप्रकारका) बाजा आदिसे उत्पन्न होनेवाला शब्द तत है ।
तन्त्रीकृत वीणा-सुघोष =तात अथवा ताररचित बीन (=वीणा) सुघोष अर्थात् एकप्रकारका सितार
आदि समुद्भव वितत, ताल घण्टा-लालन आदि- =आदिसे उपजाऊ (शब्द) वितत है ॥ ताल घंटाका हिलावना (=लालन,आदिके
अभिघातज घन । वंश शंख आदि-निमित्त =चोटसे उपजाल (=अभिघातज) शब्द घन है । बंशुरीशंख आदिहैं कारण जिसको
सौषिर, बन्ध द्विविध वैस्रसिक प्रायोगिक च*॥=(ऐसा शब्द) सौषिर है । बन्ध दो प्रकार है । वैस्रसिक और प्रायोगिक
पुरुष प्रयोग अनपेक्ष वैस्रसिक,तद्यथा* =पुरुषके प्रयोग वा प्रयत्नकी अपेक्षारहित वैस्रसिक है ॥ जैसे
स्निग्ध-रूक्षत्व गुण निमित्त विद्युत् उल्का जलधार- =सचिक्कन, रूखापन गुणकेकारणसे बिजली, उल्कापात, बादल
अग्नि-इन्द्रधनुष् आदि विषय,पुरुषप्रयोगनिमित्त =आग,इन्द्र धनुषादि सम्बन्धी है ॥ पुरुषके प्रयत्न हेतुक वा कारणक है सो
प्रायोगिक अजीवविषय च*जीवाजीवविषय इति*=प्रायोगिक है । (प्रायोगिकबंध) अजीव सम्बधी और (=च)जडचेतनसबंधी
द्विधा*भिन्न,तत्र*अजीवविषय जतु काष्ठादि- =दोप्रकारमें (द्विधा) विभाजित है । तहां अचेतनसबंधी लाख(जतु)औरकाठआदिका
लक्षण,जीव-अजीव विषय कर्म-नोकर्म बन्ध, =सम्बंध होता है । चेतनअचेतनसम्बंधी कर्म-नोकर्मका(जीवके साथ)बंधहै,
सौक्ष्म्यम् द्विविधम्, अन्त्यम् आपेक्षिक च॥ =सूक्ष्मता दो प्रकार है,अन्त्य और (=च)आपेक्षिक

इति । नित्ययोगे [(१)]मन्निर्देशः ॥ यथा क्षीरिणो न्यग्रोधा इति ॥ ननु च "रूपिणः पुद्गला" इत्यत्र पुद्गलानां रूपवत्त्वमुक्तं तदविनाभाविनश्च रसादयस्तत्रैव परिगृहीता इति व्याख्यातं तस्मात्तेनैव पुद्गलानां रूपादिमत्त्वसिद्धेः सूत्रमिदमनर्थकमिति ॥ नैष दोषः । नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्यत्र धर्मादीनां नित्यत्वादिनिरूपणेन

इति*नित्य-योगे[७/१] मत्-निर्देशः[१/१] ॥ =इस प्रकार सदैव संयोगमें मतुप (=मत्)प्रत्ययका निरूपण है भावार्थ "स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः" इस वाक्यको जब पृथक् पृथक् करदेते हैं तब स्पर्शवान् रसवान्-गंधवान्-वर्णवान्-ऐसे चार शब्द होते हैं स्पर्शका नित्य है संयोग जिसमें अथवा स्पर्शगुण सदैव जिसमें रहता है वह स्पर्शवान् (पुद्गल) है इसप्रकार मतुप (=मत्)प्रत्यय स्पर्शगुणके सदैव विद्यमान रहनेकेअर्थमेंलगाया गया है ऐसेही रसवान्-गंधवान्-वर्णवान् जानना ॥ स्मरण रहे कि इस सूत्रके दो प्रकारसे विभाग होसकते हैं

(क)स्पर्शवन्तः पुद्गलाः ; रसवन्तः पुद्गलाः, गंधवन्तः पुद्गलाः, वर्णवन्तः पुद्गलाः, अथवा

(ख) स्पर्शवान् पुद्गलः, रसवान् पुद्गलः, गंधवान् पुद्गलः वर्णवान् पुद्गलः ॥

यथा*क्षीरिणः[१/३] न्यग्रोधाः[१/३] इति*ननु*च*रूपिणः[१/३] =जैसे दूधवाले अथवा दूधयुक्त वड़वृक्ष(=वटवृक्ष)। पुनि प्रश्न,रूपी या मूर्तीक

पुद्गलाः[१/३] इति*अत्र*पुद्गलानाम्[६/३] रूपवत्त्वम्[१/१] उक्तम्[१/१]॥ =पुद्गल हैं ऐसे यहां(अध्याय ५ सूत्र५में) पुद्गलोंके रूपपना कहागया है

तद्-अविनाभाविनः[१/३] च*रस-आदयः[१/३] तत्र* =और(=च)उस (रूप)का अविनाभावी तथा भिन्न न रहनेवाले रस-स्पर्श गंध तहां

एव*परिगृहीताः[१/३] इति* व्याख्यातम्[१/१]॥ =(उस पांचवां सूत्रसे)ही ग्रहण कियेगये ऐसा वर्णन कियागया है

तस्मात्[५/१] तेन[३/१] एव*पुद्गलानाम्[६/३] =तिस कारणसे(=तस्मात्)उस(इस अध्यायके पांचवां सूत्र)करिही पुद्गलोंके

रूप-आदिमत्वसिद्धेः[५/१] सूत्रम्[१/१] इदम्[१/१] अनर्थकम्[१/१] इति*॥ =रूपपना,स्पर्शपना,रसपना,गंधपना सिद्ध होनेसे यह सूत्र निष्प्रयोजन है ॥

न*एषः[१/१] दोषः[१/१]; नित्य-अवस्थानि[१/३] अरूपाणि[१/३]॥ =(उत्तर) यह दूषण नहीं है नित्य, अवस्थानि और अरूपाणि,

इति*अत्र*धर्मादीनाम्[६/३] नित्यत्वादि-निरूपणेन[३/१]॥ =ऐसे यहां धर्मादिकोंका ध्रुवपनादिकका कथन करनेसे

---

(१) प्रथमावृत्तिसर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'मन्निर्देशः' पाठ है, द्वितीयावृत्तिमें औरएकहस्तलिखितमें 'वन्निर्देशः' पाठहै दोअन्यहस्तलिखितप्रतियोंमें 'वत्निर्देश' पाठहै 'वन्निर्देश' और 'वत्निर्देश' एकही है क्योंकि प्रथम वाक्य सन्धिरूपमें है दूसरेमें सन्धि नहीं कीगई है ॥ यहांपर समास करना है संधि अवश्य होनी चाहिये, इसलिये 'वत्निर्देश' पाठ 'वन्निर्देश'की अपेक्षा अशुद्ध है ॥ द्वितीया वृत्तिमें और जहां कहीं भी 'वत्निर्देशः' और'वन्निर्देशः'पाठहैं वे अशुद्ध हैं।

पुद्गलानामरूपत्वप्रसगे तदपाकरणार्थं तदुक्तम्॥ इद तु तेषा स्वरूपविशेषप्रतिपत्त्यर्थमुच्यते॥
अवशिष्टपुद्गलविकारप्रतिपत्त्यथमिदमुच्यते—

॥शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च॥

पुद्गलानाम् $\frac{6}{3}$ अरूपत्व-प्रसगे $\frac{7}{1}$ तद्-	=पुद्गलोंके अमूर्तीकपनेका अवसर आनेपर उस (अरूपत्व)के
अपाकरण अर्थम् $\frac{1}{1}$ तत् $\frac{1}{1}$ उक्तम् $\frac{1}{1}$, इदम् $\frac{1}{1}$ तु*	=निराकरणके लिये वह (रूपिण पुद्गला) कहागया है ॥ यह(सूत्र) तो
तेषाम् $\frac{6}{3}$ स्वरूपविशेष प्रतिपत्ति अर्थम् $\frac{1}{1}$ उच्यते	=तिन(पुद्गलों)के विशेष स्वरूप जाननके लिये कहागया है ॥
अवशिष्ट-पुद्गल-विकार-प्रतिपत्ति अर्थम् $\frac{1}{1}$	=शेष पुद्गलके परिणाम (=विकार = पर्याय) जाननेके लिये
इदम् $\frac{1}{1}$ उच्यते।	=यह (उत्तर सूत्र)कहाजाता है कि

सूत्रम्—शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥

=शब्द बन्ध सौक्ष्म्य-स्थौल्य-सस्थान-भेद तमः—छाया-आतप.—उद्योतवन्त —च पुद्गला भवन्ति ॥२४॥

पदच्छेदः—शब्दवन्त पुद्गला., वा शब्दवान् पुद्गलः। बन्धवन्त.पुद्गलाःवा बन्धवान्पुद्गल सौक्ष्म्यवन्त. पुद्गला. वा सौक्ष्म्यवान् पुद्गल। स्थौल्यवन्त. पुद्गलाः वा स्थौल्यवान् पुद्गल । सस्थानवन्त पुद्गला वा सस्थानवान् पुद्गल । भेदवन्त' पुद्गला वा भेदवान् पुद्गल.। तमोवन्तः पुद्गला वा तमोवान् पुद्गल.। छायावन्त पुद्गला वा छायावान् पुद्गल । आतपवन्त. पुद्गला वा आतापवान् पुद्गल. ।च उद्योतवन्त. पुद्गला वा च उद्योतवान् पुद्गल. ।

सूत्रार्थ.—शब्दवन्त. $\frac{1}{3}$ पुद्गला $\frac{1}{3}$ वा शब्दवान् $\frac{1}{1}$ पुद्गल $\frac{1}{1}$	=शब्दयुक्त पुद्गल है अथवा शब्द सहित पुद्गल है
बन्धवन्त $\frac{1}{3}$ पुद्गला $\frac{1}{3}$ वा बन्धवान् $\frac{1}{1}$ पुद्गल $\frac{1}{1}$	=बधसहित पुद्गल है वा बधयुक्त पुद्गल है।
सौक्ष्म्यवन्त $\frac{1}{3}$ पुद्गला $\frac{1}{3}$ वा सौक्ष्म्यवान् $\frac{1}{1}$ पुद्गल $\frac{1}{1}$	=सूक्ष्मतावान् पुद्गल है अथवा सूक्ष्मतासहित पुद्गल है
स्थौल्यवन्त. $\frac{1}{3}$ पुद्गला $\frac{1}{3}$ वा स्थौल्यवान् $\frac{1}{1}$ पुद्गल $\frac{1}{1}$	=स्थूलतासहित पुद्गल है अथवा स्थूलतावान् पुद्गल है
सस्थानवन्त $\frac{1}{3}$ पुद्गला. $\frac{1}{3}$ वा सस्थानवान् $\frac{1}{1}$ पुद्गल. $\frac{1}{1}$	=आकारसहित पुद्गल है अथवा आकारसयुक्त पुद्गल है।
भेदवन्त $\frac{1}{3}$ पुद्गला $\frac{1}{3}$ भेदवान् $\frac{1}{1}$ पुद्गल. $\frac{1}{1}$	=खडवाले पुद्गल है अथवा खडसहित पुद्गल है

क्योंकि वत्' प्रत्यय सदृश अथवा तुल्य अर्थमें आताहै और मतुप् (मत्)प्रत्यय'नित्ययाग 'सति'अर्थमें आताहै यहांपर अर्थ ऐसा है कि 'त' (स्पर्श रस ग ध वर्ण) जिसके होतेहैं (वे) स्पर्श रस-गध-वर्णवाले हैं"॥यहा नित्ययागमें मतुप(मत्)प्रत्यय होनाचाहिये अत. प्रथमावृत्तिका 'मन्निर्देश" शुद्धहै ॥

क्रियावद्द्रव्यापेक्षत्वात्कालकृतत्वाच्च ।।

अत्राह धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवकालानामुपकारा उक्ताः । लक्षणं चोक्तम् "उपयोगो लक्षणमित्येवमादि" पुद्गलानां तु सामान्यलक्षणमुक्तं "अजीवकाया इति" विशेषलक्षणं नोक्तम् । तत्किमित्यत्रोच्यते—

॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

कहना गौण है नकि समय,आवली,घटिका,प्रहर,दिन,राति,पक्ष,मास,ऋतु,अयन,बरस इत्यादिको कहना गौण है क्योंकि कथन करते समय ये सब (समय, आवली, घटिका इत्यादि) यातो भूतकालमें वा वर्तमान कालमें वा भविष्यत्कालमें आजावेंगे, गर्भित हो जावेंगे और सम्बन्ध रक्खेंगे ॥ फिर भूतादिको मुख्य कहना, समय घटिकादिको गौण कहना एकही वस्तुको मुख्य गौण कहदेना है सो ठीक नहीं ॥

(१)क्रियावत्* द्रव्य-अपेक्षत्वात्[५/६]।। च*	=क्रियावान् (अन्य) द्रव्योंकी अपेक्षाभावसे(व्यवहारकालनाम पायाहै)और(=च)
काल-कृतत्वात्[५/६]।।	=निश्चयकाल(=काल)द्वारा कियेजानेसे(उत्पन्न होनेसे)(व्यवहारकाल नाम पाया है)
अत्र*आहTधर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल-जीव-कालानाम्[६/३]।	=यहां पूछता है कि धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल द्रव्योंके
उपकाराः[१/३]उक्ताः[१/३];लक्षणम्[१/१]।।च*उक्तम्[१/१]।। "उपयोगः[१/१]	=उपकार कहेगये(और) लक्षणभी(=च)(इनके)कहेगये। उपयोग(अध्याय२सूत्र८)
लक्षणम्[१/१]।। इत्येवम्-आदि[१/१]।।" पुद्गलानाम्[६/३] तु*	=(जीवका लक्षण है इत्येवमादिक (कहेगये) और (=तु) पुद्गलोंका
"अजीव-कायाः[१/३] इति" सामान्य लक्षणम्[१/१]।। उक्तम्[१/१]।।	="अजीवकाया" ऐसा(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें) साधारण लक्षण कहागया
विशेष-लक्षणम्[१/१]।। न* उक्तम्[१/१]।। तत्[१/१]।। किम्[१/१]।।	=(किन्तु)(पुद्गलोंका)विशेष लक्षणनहीं कहागया है। वह विशेष लक्षण क्या है
इति*अत्र*उच्यतेT।	=इस हेतुसे(=इति)(पुद्गलोंका विशेष लक्षण अग्रिम सूत्रमें,कहाजाता है कि

सूत्रम्[(२)]स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः २३ = स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तःपुद्गलाः(भवन्ति)॥ २३॥

(१) (प्रश्न) समय, आवली, घटिका, प्रहर, दिन इत्यादि ने व्यवहार काल नाम कैसे पाया है। (उत्तर) क्रियावान् जो अन्य द्रव्य तिनकी अपेक्षासे व्यवहारकाल नाम पाया है तथा निश्चय कालकरि कियेगये है जो समय,आवली,घटिका,प्रहर,दिन,रातादि तिससे (व्यवहार)काल नाम पाया है ॥

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनो श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एकसा है।

स्पृश्यते स्पर्शनमात्रं वा स्पर्श । सोऽष्टविध । मृदुकठिनगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षभेदात् ॥ रस्यते रसनमात्रं वा रस । स पञ्चविध । तिक्ताम्लकटुमधुरकषायभेदात् ॥ गन्ध्यते गन्धनमात्रं वा गन्ध । स द्वेधा । सुरभिरसुरभिरिति ॥ वर्ण्यते वर्णनमात्रं वा वर्ण । स पञ्चविध । कृष्णनीलपीतशुक्ललोहितभेदात् ॥ त एते मूलभेदा प्रत्येक सख्येयासंख्येयानन्तभेदाश्च भवन्ति॥ स्पर्शश्च रसश्च गन्धश्च वर्णश्च स्पर्शरसगन्धवर्णास्त एतेषा सन्तीति स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त

सूत्रार्थ—स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्त १ पुद्गला २ =स्पर्श, रस, ग ध, वर्णवाले पुद्गल होते ह अर्थात् स्पर्श रस ग ध, वर्ण ये चार गुणोंकरि सहित अथवा लक्षणोंकरि युक्त पुद्गल होते ह ॥

वृत्त्यनुवाद—स्पृश्यते । वा स्पर्शनमात्रम् ॥ स्पर्श १, =(वृत्तिका अनुवाद, जो स्पर्श्या वा छूआ जाता है अथवा छूनेमात्र सो स्पर्श है

स १ अष्टविध १, मृदु कठिन गुरु लघु-शीत- वह (स्पर्श) आठ प्रकार, कोमल मुलायम (मृदु) कठोर (कडा) भारी, हलका, ठडा,

उष्ण स्निग्ध रूक्ष भेदात् ; रस्यते । रसनमात्रम् ॥ वा* =गरम, सचिक्कन(=चिकना) रूखा भेदसे है । स्वाद लियाजाताहै वा स्वादमात्र

रस १, स १ पञ्चविध १, तिक्त अम्ल कटु मधुर- =रस है सो पाच प्रकार चिरपर(चरपरा) खट्टा(आमिल) कडवा(कटुक) मीठा,

कषाय-भेदात् , गन्ध्यते वा गन्धनमात्रम् ॥ गन्ध १ =कषायला(कशला) भेदसे है । जो सूघा जाता है अथवा घासमात्र है सो गध है

स १ द्वेधा*सुरभि १ असुरभि १ इति* । वर्ण्यते । =वह (ग ध) दो प्रकार सुग ध दुग ध होती है । जो वर्ण स्वरूप देखाजाता है

वा*वर्णमात्रम् ॥ वर्ण १, स १ पञ्चविध १, कृष्ण नील पीत =वा रूपमात्र सो वर्ण है । सो पाच प्रकार काला, नीला, पीला

शुक्ल-लोहित-भेदात् १, ते १ एते १ मूलभेदा १ प्रत्येकम् ॥ =श्वेत, लाल(रक्त-अरुण) भेदसेहै । वे इतने मूलभेदहैं । (इन बीस भगोंमेंसे) एकएकके

संख्येय-असख्येय अनन्तभेदा १ च*भवन्ति । =सख्यात, असख्यात और अन त भेद होते हैं अर्थात् इन बीस (८ स्पर्श ५ वर्ण ५ रस दो गन्धके) भेदोंमेंसे प्रत्येकके भेदके स्थानकोंकी अपेक्षासे (एक दो तीन चार इत्यादि) सख्यातभेद, असख्यातभेदहैं, अविभाग प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षासे अनतभेदहैं

स्पर्श १ च*रस १ च*गन्ध १ च*वर्ण १ च* =और(=च) स्पर्श और(=च) रस और(=च) गन्ध और(=च) वर्ण ह

स्पर्शरसगन्धवर्णा १ ते १ =सो द्व द्वसमासमे) स्पर्शरसगन्धवर्णा (ऐसा वाक्य) होता है । ते (स्पर्शरसगन्धवर्ण

एतेषाम् १ सन्ति । इति*स्पर्श रस गन्ध वर्णवन्त १ =जिनके होते हैं ऐसे स्पर्श रस ग ध वर्णवाले हैं अर्थात् वे पुद्गलहैं

भावार्थ समस्त पुद्गलोंमें ये उक्त चार(स्पर्श रस-ग ध-वर्ण) निश्चय करने चाहिये ॥

वृद्धिहानिकृतः ॥ क्रिया परिस्पन्दात्मिका । सा द्विविधा । प्रायोगिकवैस्रसिकभेदात् । तत्र प्रयोगिकी शकटादीनां, वैस्रसिकी मेघादीनाम् ॥ परत्वापरत्वे क्षेत्रकृते कालकृते स्तः । तेऽत्र कालोपकरणात्कालकृते गृह्यते ॥ त एते वर्तनादय उपकाराः कालस्यास्तित्वं गमयन्ति ॥ ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु, तद्भेदाः परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम् । नानर्थकम् । कालद्वयसूचनार्थत्वात्

वृद्धि-हानि-कृतः[1/1];क्रिया[1/1]परिस्पन्द-आत्मिका[1/1]प्रायोगिक=वृद्धिहानिरूप होना(परिणाम)है । हिलनेचलनेरूप है सो क्रिया है ॥ प्रायोगिक
वैस्रसिक-भेदात्[5/1];सा[1/1]द्विविधा[1/1],तत्रप्रयोगिकी[1/1] =तथा वैस्रसिक भेदसे वह(क्रिया) दो प्रकार है । तहां प्रायोगकी क्रिया अर्थात्
शकटादीनाम्[6/3] =(अन्यके प्रयोगसे होनेवाली क्रिया) जैसे गाडी आदिकका(बैलों द्वारा चलना)
वैस्रसिकी[1/1] =वैस्रसिकी अर्थात् स्वयं वा निजस्वभावसे विना किसी अन्यके निमित्तसे होनेवाली
मेघादीनाम्[6/3];परत्व-अपरत्वे[1/2]क्षेत्रकृते[1/2] =(जैसे)बादलादिका (=मेघादीनाम्) ॥ परत्व और अपरत्व क्षेत्रकृत
कालकृते[1/2]स्तःT। ते[1/2]अत्र*कालउपकरणात्[5/1]=(और)कालकृत(दोदो प्रकारके) हैं, वे यहां कालका प्रधान साधन होनेसे
काल-कृते[1/2]गृह्येतेT ॥ =कालकृत वा कालसंबंधीय (दो परत्व अपरत्व विषयभूत होनेसे)लियेगये हैं
ते[1/3] एते[1/3] वर्तना-आदयः[1/3] उपकाराः[1/3] कालस्य[6/1] =वे एते वर्तनादिक उपकार(निश्चय-मुख्य-वा परमार्थ)कालकी
अस्तित्वम्[2/1] गमयन्तिT ॥ =विद्यमानताको जताते हैं अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व ये सब कालके निमित्त (=उपकार)से होते हैं और इन्हींसे निश्चयकाल, परमार्थकाल, मुख्यकाल वा असंख्यातकालाणुरूप द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता है ॥
ननु*वर्तना-ग्रहणम्[1/1]एव*अस्तुT,तद्-भेदाः[1/3] =प्रश्न (इस सूत्रमें)वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये, उस (वर्तना)के भेद
परिणाम-आदयः[1/3]तेषां[6/3]पृथग्-ग्रहणम्[1/1]अनर्थकं[1/1]=परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व हैं । उन भेदोंका पृथक् ग्रहण व्यर्थ है
न*अनर्थकम्[1/1]; =(उत्तर)(परिणाम क्रिया-परत्व-अपरत्व वर्तनाके भेदोंकासूत्रमेंग्रहणकरना)निष्प्रयोजन नहीं है
कालद्वय-सूचन-अर्थत्वात्[5/1] =क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके अर्थ अर्थात् कालके दो भेद जतलानेके लिये

---

(१) परत्व अपरत्व तीन प्रकारभी है (क) प्रशंसाकृत जैसे धर्म 'पर' है ज्ञान 'पर' है तथा अधर्म 'अपर' है अज्ञान 'अपर' है (ख) क्षेत्र(देश)कृत जैसे एकदेश वा कालमें स्थितहुयेदो पदार्थोके विषय जा दूरहै वहतो पर है और जा समीप है वह अपर है (ग)कालकृत जैसे सोलह वर्ष वालेकी अपेक्षासे

प्रपञ्चस्य ॥ कालो हि द्विविध परमार्थकालो व्यवहारकालश्च । परमार्थकालो वर्तनालक्षण । परिणामादिलक्षणो व्यवहारकाल ॥ अन्येन परिच्छिन्न अन्यस्य परिच्छेदहेतु क्रियाविशेष काल इति व्यवह्रियते । स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वर्तमानो भविष्यन्निति ॥ तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशो मुख्य । भूतादिव्यपदेशो गौण ॥ व्यवहारकाले भूतादिव्यपदेशो मुख्य । कालव्यपदेशो गौण ।

प्रपञ्चस्य, काल । हि द्विविध । परमार्थकाल । =विस्ताररूप(पूर्वोक्त कथन)है । जैसे(=हि)काल दो प्रकार है, परमार्थकाल
च व्यवहारकाल, वर्तनालक्षण । परमार्थ =और(=च)व्यवहारकाल, वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थ वा निश्चय
काल, परिणामादि-लक्षण । =काल है । परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो
व्यवहारकाल, अन्येन । परिच्छिन्न । =व्यवहारकाल है । (वह व्यवहारकाल)अन्य(पदार्थ)करि जाना जाता है
(जैसे सूर्य चन्द्र आदिके उदय अस्तसे दिन राति जाने जाते हैं जो व्यवहार काल है
जीव और पुद्गलके परिणमनसेभी व्यवहारकाल प्रगट होताहै)
अन्यस्य । परिच्छेद हेतु । =(व्यवहारकाल)दूसरी(वस्तु)के ज्ञान करानेमें निमित्त है जैसे (क) इस कालसे निश्चय-
काल जानाजाताहै(इसग्रन्थका पृष्ठ८४)(ख) यह पुल सौ वर्षका है एसीअवस्था पुलकी है
क्रिया विशेष । काल । इति व्यवह्रियते । =क्रिया विशेष है सो कालहै एसा व्यवहार कियाजाताहै (क्रियाका विशेष व्यवहारकालहै)
स । त्रिधा भूत । वर्तमान । भविष्यत् । इति =वह(व्यवहारकाल)तीन प्रकार अतीत वर्तमान अनागत एसे
व्यवतिष्ठते । तत्र परमार्थकाले । काल व्यपदेश । =व्यवस्थित है ॥(तहां परमार्थकाल(की अपेक्षा) विषैं कालका नाम वा कथन
(अर्थात् लोकाकाशके एकएक प्रदेशपर एकएक कालाणु भिन्नभिन्न तिष्ठते हुओंका काल कहना)
मुख्य, भूतादि व्यपदेश । =मुख्य वा प्रधान है, भूत, वर्तमान, भविष्यत्का कथन(निश्चयकालकी अपेक्षासे)
गौण, व्यवहारकाले । भूत-आदि-व्यपदेश । =गौण वा अप्रधान है । व्यवहारकाल विषैं अतीत वर्तमान अनागतका कथन
मुख्य । काल व्यपदेश । गौण । =प्रधान है और काल कहना गौण वा अप्रधान है अर्थात् निश्चयकाल वा परमार्थकाल

शत(सौ) वर्षवाला पर है और शतवर्षवालेकी अपेक्षासे सोलह वर्षवाला अपर है ॥ यहां प्रशंसा तथा क्षेत्रकृत परत्वअपरत्वको छोड़कर वर्तनादि सब कालकृत हैं अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, कालिक परत्व, कालिक अपरत्व ये कालके उपकार हैं ॥

स कथं काल इत्यवसीयते ? समयादीनां क्रियाविशेषाणां समयादिभिर्निर्वर्त्यमानानां च पाकादीनां समयः पाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढिसद्भावेऽपि समयः कालः, ओदनपाककालः इति अध्यारोप्यमाणः कालव्यपदेशः ।

सः१।१ कथम्*कालः१।१ इति*अवसीयते । ? =(प्रश्न)सो(करीषाके आगके दृष्टान्तवत्)कैसे काल जाना जाता है? वा निश्चयकियाजाताहै?

समय-आदीनाम्६।३ (१) क्रियाविशेषाणाम्६।३ =समय आदिक क्रियाकेविशेषोंके

(किसी विशेष क्रिया वा अमुक क्रिया करनेमें जो समयादिक व्यतीत होते हैं सो)

समय-आदिभिः३।३ निर्वर्त्यमानानाम्६।३ च पाक-आदीनाम्६।३=तथा (=च)समय आदिकरि कियेहुए पाकआदिकोंका

समयः१।१;पाकः१।१ इत्येवम्*आदि१।१ (२) स्वसंज्ञारूढि- =समय पाक इत्यादिमें स्वसंज्ञारूढि

सद्भावे७।१ अपि* =होनेपर भी अर्थात् अपनी अपनी समय और पाककी संज्ञा प्रसिद्ध होनेपर भी

समयः१।१ कालः१।१ ओदनपाककालः१।१ इतिअध्यारोप्यमाणः=समयकाल तथा भातका पाककाल(अनक्रमसे)ऐसा आरोपणकरि

काल-व्यपदेशः१।१ =(व्यवहार)कालका कथन होता है भावार्थ यह है कि किसी क्रिया करनेमें जो समय आवली, घंटा, वा दिन आदि लगता है तथा किसी कार्य जैसे भात औषधि रसोई आदि करनेमेंजो समय,आवली,घंटा वा दिन आदि व्यतीत होताहै उसको(क्रमसे)समयकाल-आवलीकाल-घंटाकाल-दिवसकाल कहते है तथा ओदन(भात)पाककाल, औषधि पाककाल, रसोई पाककाल कहते हैं सो यह समय, आवली तथा घंटा आदि व्यवहारकालका कथन है अर्थात् समय, आवली, घंटा तथा दिन आदि व्यवहारकाल है ।

---

(२) 'असंज्ञारूढि'-सर्वार्थसिद्धिके दोनों सस्करणोंमें 'स्वसंज्ञारूढि' के स्थानमें 'असंज्ञारूढि' अशुद्ध छपगयाहै । असंज्ञारूढि शब्दकाकुछभी यौगिकअर्थ नहीं होताहै असंज्ञारूढि होनेपर असंज्ञा कैसे रूढि वा प्रसिद्ध होसकती है अतः पाठ शुद्ध करदियागयाहै ॥ सर्वार्थसिद्धि तीन हस्तलिखितप्रतियोंमें भी तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके "समयपाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढि सद्भावेकालः"वाक्यमें जो शब्द शः सर्वार्थसिद्धिके पाठसे मिलता है 'स्वसंज्ञारूढि' शब्द पाया जाता है ॥

(१) पुद्गल परमाणुका कालकी एक अणुसे दूसरी अणुतक मदगति जानेमें अथवा लोकाकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशतक मदगति जानेमेंजोकाल व्यतीत होता है उसको समय कहते है। ऐसा करनेमें पुद्गल परमाणुकी जाने रूपक्रियाको विशेष क्रिया कहसकते है ॥ 'एक काल अनूसेती दूजी काल अनूजाय पुद्गलकी परवानू तहां समय होत है। जलको कटोरी घरी सूरजसौ दिन होय, मास,रितु, वर्ष, ऐन आदिक उदोत है । नई वस्तु वोधी करै परावर्त चाल धरै, सोई व्यवहारकाल विनासीक गोत है। अतीत अनागत वरतमान परजाय, कालानू दर्व लखै जाकेउर जांत है॥द्यानतविलास ॥

तद्व्यपदेशनिमित्तस्य मुख्यस्य कालस्यास्तित्वं गमयति। कुतः? गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात्॥ द्रव्यस्य पर्यायो धर्मान्तरनिवृत्तिधर्मान्तरोपजननरूपः अपरिस्पन्दात्मकः परिणामो, जीवस्य क्रोधादिः। पुद्गलस्य वर्णादिः। धर्माधर्माकाशानामगुरुलघुगुण-

तद्-व्यपदेश निमित्तस्य[६/१]	=उस(व्यवहारकाल)का(उपर्युक्त)कथन(अपने)निमित्तक अथवा हेतुकर्ता
मुख्यस्य[६/१] कालस्य[६/१] अस्तित्वम्[२/१] गमयति।	=निश्चय(=मुख्य)वा परमार्थ (=मुख्य)कालकी विद्यमानताको जताता है भावार्थ समय आवली घटिका इत्यादिरूप जो व्यवहारकाल है तिस(समय आवली घटिकादिरूप व्यवहारकाल) नामको निमित्त ऐसा जो निश्चयकाल (=असंख्यातरूपकालाणु) तिन असंख्यात कालाणुओंका अस्तित्व वा विद्यमानता इस(समय-आवली घटिकादिरूप,व्यवहारकालसे जानी जाती है
कुतः ? गौणस्य[६/१]	= प्रश्न)(व्यवहारकालसे निश्चयकालका ज्ञान)क्योंकर होता है। गौणकी(विद्यमानता)
मुख्य अपेक्षत्वात्[५/१]	=मुख्यकी अपेक्षासे होती है अर्थात् क्योंकि गौण मुख्यके विना कभीभी नहीं होसक्ता है भावार्थ व्यवहारकाल गौण है, निश्चयकाल मुख्य है, ओदनपाकादि जो प्रसिद्ध व्यवहारकाल है वह निश्चयकालसे उत्पन्न होने वाले समय आदिका समूह है विना निश्चयकालके व्यवहारकाल उत्पन्न नही होसकता इसलिये व्यवहारकालसे निश्चयकाल जाना जाता है॥
द्रव्यस्य[६/१] पर्यायः[१/१] धर्मान्तर निवृत्ति-(१) धर्मान्तर-उपजननरूपः[१/१] अपरिस्पन्दात्मकः[१/१] परिणामः[१/१]	=द्रव्यकी पर्याय(अर्थात्)अन्य अवस्थाको(=धर्मान्तर)छोडकर दूसरी अवस्था=रूप होना तथा क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमे चलनरूप न होना सो परिणाम वा परणति है
जीवस्य[६/१] क्रोधादि[१/१], पुद्गलस्य[६/१] वर्ण आदि[१/१],	=जीवके क्रोधादिक (परिणाम) है पुद्गल के वर्णादिक(परिणाम) है।
धर्माधर्म-आकाशानाम्[६/३] (२)अगुरुलघुगुण-	=धर्माधर्म आकाशके अगुरुलघुगुण अथवा द्रव्यकीद्रव्यतारखनेवाले गुणकी

(१) एक हस्तलिखित प्रतिके पृष्ठ ५४ पर निर्वृत्ति शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि निवृत्तिका अर्थ छोडना निश्चिन्त होजाना है निर्वृतिका अर्थ रचना, उत्पन्न करना है। यहा पर पहिले अर्थमें है॥

(२) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता स्थिर रहे अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमे और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्तगुण बिखरकर जुदे २ न होजावें उसको अगुरुलघुगुण कहते हैं॥

(३) कहीं २ पर क्रिया तीन प्रकारकी मानी है प्रथम प्रायोगगति, द्वितीय विस्रसागति और तृतीय मिश्रकागति,उनमें प्रायोगगति पुरुषप्रयत्नज यहै॥ विस्रसागति=स्वयं परिपाकसेज यहऔर मिश्रिका(=मिश्रका)उभयजन्यहैअर्थात् पुरुषप्रयत्नऔर स्वयंपरिपाकसेउत्पन्नहोनेवालीक्रियाकोमिश्रिकाकहतेहैं

समुद्घातेऽसंख्येया वा भागाः सर्वलोको वा

समुद्घाते ७। असंख्येयाः १। वा भागाः सर्वलोकः १। वा = समुद्घातमें असंख्याते भाग हैं वा असंख्यातवां भाग है वा सर्वलोक है
= (क) समुद्घाते ७। लोकस्य ६। असंख्येयाः १। = (क) समुद्घातमें लोकके असंख्याते
भागाः १। = भाग [सयोगकेवलीका क्षेत्र] है अर्थात् पतर समुद्घातमें तीनों वातवलयों के उक्त क्षेत्रको छोडकर सर्वलोक है जो लोकके असंख्याते भागोंके बराबर है
(ख) वा समुद्घाते ७। लोकस्य ६। असंख्येय-भागः १। = [ख] समुद्घातमें लोकका असंख्यातवां भाग [सयोगकेवलीका क्षेत्र] है अर्थात् दण्ड और कवाट समुद्घातमें लोकका असंख्यातवां भाग है
(ग) वा समुद्घाते ७। सर्व-लोकः १। = [ग] समुद्घात की चौथी समयों) में [सयोगकेवलीका क्षेत्र] सर्वलोक है
= अर्थात् समुद्घात करनेकी चौथी समयमें सयोगकेवलीके आत्माके प्रदेश सर्वलोकाकाशमें व्याप्त हो जाते हैं ।

बीस जीव तौ करनेवाले, और बीस जीव समेटनेवाले ऐसैं एक समयविषैं चालीस पाइए परंतु पूर्वोक्त क्षेत्र ही विषैं एक क्षेत्रावगाहरूप सर्व पाइए तातैं क्षेत्र तितना ही जानना । बहुरि दंड और कपाटविषैं भी बीस जीव करनेवाले बीस समेटनेवालेनिकी अपेक्षा चालीस जीव हैं सो ए जीव जुदे जुदे क्षेत्रको भी रोकै तातैं दण्ड और कपाट विषैं चालीसका गुणाकार कहा, यह जीवनिका प्रमाण उत्कृष्टताकी अपेक्षा है। गोमट्टसार जीव कांड मुद्रित पृष्ठ ६६०

(४) असंख्येया वा भागा इति वा शब्देन समुद्घाते असंख्येयभागोऽपि परामृष्टः । तेन दण्डकवाटसमुद्घातयोर्लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रमित्यवसेयम् ॥ तत्र आरोहणावरोहणापेक्षया उत्कर्षेण चत्वारिंशत्केवलिनः सम्भवन्ति । तथापि क्षेत्रं लोकस्यासङ्ख्येयभाग एव । उत्तरत्र सर्वत्र स्वस्थानादिपदानि यथासम्भवं योज्यानि ॥

इति कृत्वा वर्तना कालस्योपकार ॥ को णिजर्थ ? । वर्तते द्रव्यपर्यायस्तस्य वर्तयिता काल ॥ यद्येव कालस्य क्रियावत्त्व प्राप्नोति । यथा शिष्योऽधीते, उपाध्यायोऽध्यापयतीति ॥ नैष दोष । निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्ट । यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति। एव कालस्य हेतुकर्तृता ॥

इति*कृत्वा*वर्तना¹।कालस्य⁶। उपकार¹ , =इस प्रकार करके (समयरूप) वर्तना कालका उपकार है ।

क¹ णिच्¹ अर्थ¹ ? वर्तते। द्रव्य = वृत्धातुमें)णिच् प्रत्यय जो लगाया है किसलिये है(उत्तर)वर्तती है द्रव्यकी

पर्याय¹ तस्य⁶ (¹ वर्तयिता¹ काल¹ ॥ =पर्याय, तिस(द्रव्यकी पर्याय)का वर्तावनेवाला काल है अर्थात् 'णिच्' प्रत्यय प्रयोजनके हेतुकर्ता विषैं (जो कुछ हमारा प्रयोजन है उसके प्रेरकके करणा करनेवालेके अर्थ विषैं यहा द्रव्यके वर्तावनेका प्रयोजन है) अथवा प्रयोजनके प्रेरक विषैं आया है भावार्थ ऐसा है कि धर्मादिक द्रव्योंक पर्याय समय समय पलटते है सो इस पलटनेका समय जो काल सोही (इस पलटनेका) निमित्त है अत इस प्रकार कहते है कि द्रव्योंकी पर्यायें वर्तती है तिन पर्यायोंका वर्तावनेवाला द्रव्यकाल अथवा निश्चयकाल है ॥

यदि*एवम्*कालस्य⁶।क्रियावत्त्वम्²।।।प्राप्नोतिT । =जो ऐसे है(कि काल वर्तावनेवाला है)तो कालके क्रियावानपना प्राप्त होता है

यथा*शिष्य¹।अधीते1,उपाध्याय¹।अध्यापयतिइति=जैसे शिष्य पढता है गुरु पढाता हैएसा (होता है

न*एष¹।दोष¹, निमित्तमात्रे⁷।।। अपि* =(उत्तर)यह दूषण नहीं है । निमित्त कारणमात्रमभी(नकि उपादान कारणमात्रम)

हेतुकर्तृ व्यपदेश¹। दृष्ट¹, यथा*कारीष¹। =हेतु कर्ताका कथन वा नाम देखाजाता है जसे कारीष अथवा कडेकी

अग्नि¹। अध्यापयति1 । =आग (शीतकालमें) पढाती है अर्थात् शीतकालमें शिष्य कडेकी आगके सहारेसे स्वय पढते ह परन्तु ससार में ऐसेभी कहते है कि जाडेकी ऋतुमें अथवा जडकालम कडेकी आग शिष्यको पढाती है ।

एवम्*कालस्य⁶। हेतुकर्तृता¹॥ =ऐसे कालके (पदार्थों के वर्तावनेमें) हेतुकर्तापना वा प्रेरकपना है ॥

(१) जैसे पितृ शब्दकी प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग पिता शब्द है तैसे वर्तयितृ पुल्लिंग शब्दका वर्तयिता एकवच । प्रथमाविभक्ति पुल्लिंग बनता है ।

स्वात्मनैव वर्तमानानां बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्त्यभावात्तत्प्रवर्तनोपलक्षितः कालः

स्व-आत्मना[३/१] एव*(१) वर्तमानानाम्[६/३]॥ बाह्य-	=आपसे स्व-आत्मना[३/१])ही वर्तमानरूप हैं या वर्तनेवाली हैं (तौभी) बाह्य
उपग्रहात्[५/१] विना*तद्-	=निमित्त विना (सहायता विना या सहारा विना) उन (धर्मादिक द्रव्यों) की
(२) वृत्ति-अभावात्[५/१]	=अन्तरंग परणति (=वृत्ति) वा वर्तना (=वृत्ति) का अभाव होता है। इससे
तत्-प्रवर्तना-उपलक्षितः[१/१] कालः[१/१]	=उन (धर्मादिक द्रव्यों)को वर्तनारूपकरनेमें वा प्रवर्तावनेमें काल जाना जाता है-निश्चय कियाजाताहै वा पहचाना जाताहै(=उपलक्षितः)अर्थात् धर्मादिक द्रव्यें हैं वे स्वयं उपादान कारणकरि अपनी अपनी पर्यायोंके उत्पत्तिरूप वर्तती हैं तौभी उनकी उक्त पर्यायोंके

लिये बाह्य कारणकी आवश्यकता है, बाह्य निमित्त विना अन्तरंग परणति नहीं होसकती है, सो तिस अन्तरंग परणति अथवा प्रवर्तनेका समय है सो परमार्थकालका चिन्ह है ॥ जैसे एक मनुष्य जिसकी पदार्थों के देखनेकी शक्ति विद्यमान है परन्तु उस को यदि बहुत अंधेरेमें लेजाकर पदार्थ दिखाये जावैं तो वह किसी प्रकार किसीभी पदार्थको नहीं देख सकता है क्योंकि बाह्य सहकारी कारण अर्थात् उजेला नहीं है इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें अन्तरंग शक्ति वर्तनेकी विद्यमान है तौभी द्रव्यकाल वा निश्चयकालकी सहायता विना वे द्रव्य वर्तनेमें असमर्थ हैं। इनद्रव्योंको(३)वर्तनारूप करनेमेंही निश्चयकालका अस्तित्व ज्ञात होता है॥

(१) 'धर्मादीनां' और 'वर्तमानानां' येदोनों शब्द'द्रव्याणां' शब्दसे सम्बन्ध रखतेहैं और'द्रव्याणां'शब्दके विशेषणहै,अतःनपुंसकलिंगमें रक्खेगये हैं।

(२) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३६४ में 'वृत्ति'शब्दका अर्थ 'अन्तःकरणका परिणामविशेष'और 'वर्तन' लिखाहै॥इसलिये अन्तरंग परणति(पं०सदासुखजी के अनुसार) और वर्तना (प० जयचन्द्रायजीके अनुकूल) यहां पर "वृत्ति" शब्दका अनुवाद कियागया है॥

(३) व्याकरण शास्त्रमें करण और अधिकरण अर्थ में धातुओंसे युट् प्रत्ययका विधान माना है। यदि यहां पर 'वृतोङ् वर्तने' धातुसे करण और अधिकरण अर्थ में युट् प्रत्यय कर एवं 'वर्तते अनया अस्यांचेति वर्तना' अर्थात् जिसके द्वारा वा जिसमें वर्तन किया जाय वह वर्तना है ऐसा विग्रह कर वर्तना शब्द सिद्ध किया जायगा तो यह नियम है जिन प्रत्ययोंका ट् इत्संज्ञक चलाजाता है उनसे ङी प्रत्यय होता है। यहांपरभी युट्में ट् इत्संज्ञक आनेसे ङी प्रत्यय होगा अतः 'वर्तनी'ऐसारूप सिद्ध होगा'वर्तना'नहीं फिर सूत्रमें 'वर्तना'शब्दका उल्लेख अशुद्धहै?(उत्तर)यहांपर णिच्प्रत्ययांत'वृतोङ्' धातुसे स्त्रीलिंगमें कर्म और भावरूप अर्थके विवक्षित रहनेपर युच् प्रत्यय कर वर्तना शब्दकी सिद्धि कीगई है इसलिये यहांपर ङी प्रत्ययकी कोई संभावना नहीं॥ 'वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तना' अर्थात् जो वर्तन स्वरूप हो वह 'वर्तना' है ऐसा वर्तना शब्दका विग्रह हुआ॥ अथवा "अनुदात्तेत्वाच्ता च्छीलिको वा" जिसका अनुदात्त इत जाता है उससे ताच्छीलिक अर्थ में अर्थात् 'वह उसका स्वभाव ही हो' इस अर्थ में व्याकरणशास्त्रकेभीतर 'युच्' प्रत्ययका विधान माना है 'वृतोङ्' धातुका अनुदात्त इत्संज्ञक है इसलिये ताच्छीलिक अर्थ में युच् प्रत्ययकर वर्तना शब्दकी सिद्धि हुईहै॥ वर्तनशीला वर्तना अर्थात् वर्तन-परिवर्तन करना ही जिसका स्वभाव हो वह वर्तना है। यह वर्तना शब्दका विग्रह है॥

वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायनिवृत्ति प्रति

वर्त्यते। =वर्तायाजाता है (यह वाक्य कर्मणिप्रयोगमें वा कर्मप्रधानमें न कि कर्तरिप्रयोग वा कर्तृप्रधानमें है)

वर्तनमात्रं।'''वा#वर्तनाई॥ इति# =प्रवर्तावनेमात्र वा वर्तनमात्र है सो वर्तना ऐसा(भावेप्रयोग=भावमें काम लायागया) है। सो वर्तनाशब्द ऐसे बनाहै कि वृत्+णिच्+युट+आ (=स्त्रीलिंगका चिन्ह)=वर्त्+अन+आ=वर्तना णिच्के लगानेसे ऋको

• गुणसंज्ञा होकर वर्त् होगया और सहेतुक सकर्मक क्रिया होगई॥ वर्तना=दूसरोंको प्रवर्तावना अर्थात् पदार्थोंमें परिणमन में सहकारिता। भावार्थ यह है कि वृत् धातुके अन्तमें णिच्प्रत्यय लगाया जिस णिच् प्रत्ययका यह फल होताहै कि वृत् धातुके ऋको गुण संज्ञाहोकर वर्त् शब्द बनजाताहै और वृत् अकर्मक धातुको (णिच् प्रत्यय) सहेतुक सकर्मक करदेता है अर्थात् वृत् धातुका अर्थ (दूसरोंको) वर्तावना ऐसा होजाता है फिर युट् प्रत्यय जिसके स्थानमें अन होजाता है जोडा जाता है तब वर्त्+अन=वर्तन शब्द बना पश्चात् 'आ' स्त्रीलिंगका चिन्ह जोडनेसे वर्त्+अन+आ होजाता है इसलिये वर्तना शब्द स्त्रीलिंग भाव प्रयोगमें बना और उपर्युक्त कथित 'वर्त्' धातुमें य कर्मप्रधानका चिन्ह जोडकर फिर अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपद वर्तमान क्रियाकाचिन्ह 'ते' लगाते हैं तब वर्त्+य+ते=वर्त्यते कर्मप्रधानमें)बनगया इस'वर्त्यते'काअर्थ वर्तायाजाताहै इसलिये 'वर्तना'भावप्रयोगस्त्रीलिंगमेंबनाऔर'वर्त्यते'कर्मप्रधान,एकवचन,अन्यपुरुष वर्तमानक्रियाका रूप बना॥

धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्याय निवृत्ति ३॥ प्रति# =धर्मादिक द्रव्यें अपने अपने पर्यायोंके निवृत्तिके लिये (=निवृत्ति प्रति)

प्रति हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिमें 'यचि स्त्रालिंगे वर्त्तनेति भवति । वर्त्यते वर्त्तमानमात्र वा वर्त्तनेति' एसा पाठ है ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकका पाठ कि स्त्रालिंगे (कर्मणिभाव वा णिजतात्) युचि सति वर्तनेति भवति। वर्त्यत वर्तनमात्र वा वर्तनेति एसा है ॥ इसलिये हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है ॥

(१) प० जयचन्द्रजीने वचनिका (पृष्ठ ४४१)में उत्पत्ति लिखा है सम्भव है कि जिस पाठपर उन्होंने वचनिका की हो उस पाठमें निवृत्ति'के स्थानमें उत्पत्ति, वृत्ति या निर्वृत्तिमेंसे कोई शब्द हो क्योंकि इन तीन शब्दोंमेंसे कोईभी उत्पत्तिके अर्थमें आसकता है परन्तु 'निवृत्ति'का अर्थ उत्पत्ति नहीं होसकता है राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकभी अवलोकन कियागये परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई ॥ 'निर्वृत्ति' शब्द सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकी हस्तलिखितके तीन प्रतियोंमें पायाजाता है परन्तु सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें 'निवृत्ति' छपा हुआ है ॥ इससे मैंने उस शब्दको लेकर अनुवाद किया है और मेरी समझमें एक प्रकारसे दोनोंही शब्दोंसे एकही भाव प्रगट होसकता है क्योंकि किसी द्रव्यकी एक पर्यायकी जिस समय निवृत्ति होती है उसी समयमें दूसरी पर्यायकी उत्पत्ति वा निर्वृत्ति होती है अथवा यों कहसकते है किसी द्रव्यकी जिस समय एक पर्यायकी उत्पत्ति होती है उसी समय उस द्रव्यका दूसरा पर्यायकी निर्वृत्ति होती है जैसे जिस समयमें आंगुलिरूप द्रव्यके वक्र (बांके) पर्यायकी उत्पत्ति होती है उसी समयमें उसके सरल पर्यायकी निवृत्ति होती है और अंगुलीरूपसे उस अंगुलीमें ध्रौव्य है अथवा यों दृष्टान्त लीजिये कि जिससमयमें अंगुलिरूप द्रव्यके सरल पर्यायकी निवृत्ति होता है उसी समयमें उसकी वक्री पर्यायकी उत्पत्ति होती है ॥ वृत्त=उत्पन्न (पद्मचन्द्रकोशपृष्ठ १६४ अत वृत्ति स्त्रीलिंगमें उत्पत्ति के अर्थमें आसकता है ॥

वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा [१]युट् स्त्रीलिङ्गे वर्तते । तेनेति भवति ।

पर्याय है उस पर्यायकी जो समय घटिका आदिरूप स्थिति है वहही जिसका स्वरूपहै वह द्रव्यपर्यायरूप व्यवहारकाल है सोही संस्कृत प्राभृतमें कहाभी है कि "स्थिति जो है सो कालसंज्ञक है" तात्पर्य यह है कि उस द्रव्यके पर्यायसे संबन्ध रखनेवाली जो समय घटिका आदिरूप स्थिति है वह स्थितिही 'व्यवहारकाल' इस संज्ञाकी धारक होतीहै ॥ निश्चयकालका वर्तनालक्षण है और व्यवहारकालके परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व लक्षण हैं ये पांचों निश्चयकालके निमित्तसे होते हैं और अन्य द्रव्योंको यह (निश्चय)कालद्रव्यका उपकार है और उसी परमार्थकालका अस्तित्व जतावे है । क्योंकि व्यवहारकाल गौण निश्चय मुख्यकाल के विना नहीं होसकता है ॥ व्यवहारकाल अन्यपदार्थों करि जाना जाता है जैसे दिनरात आदिक व्यवहारकाल सूर्यादिकके उदय अस्तसे जाने जाते हैं और व्यवहारकाल ही अन्य पदार्थों के जतलानेका कारण है जैसे यह पुल शतवर्षका है ॥ यातैं (व्यवहारकालसे)निश्चयकाल जाना जाता है । (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ४४३देखो) 'जीवपुद्गलोंकेपरिणमनकरि व्यवहारकाल प्रगट होय है सो यह व्यवहारकाल तीनप्रकार है' (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ३०९) अतीत(=भूत) वर्तमान अनागत(=भविष्यत्) ॥ निश्चयकालविषैं एक एक लोकाकाशके प्रदेशविषैं आपसमें परस्पर भिन्न २ रत्नकी राशिके सदृश तिष्ठते असंख्यातकालाणु तिनकों काल कहना सो तो मुख्य है और भूत वर्तमान भविष्यत् नाम कहना गौणहै और व्यवहारकालविषैं अतीत वर्तमान अन्तगतनाम हैं सो तो मुख्य है और काल कहना गौण है ।

वृत्त्यनुवादः—(२) वृतेः५। णिच् अन्तात्५। =वृत्(=होना)(धातु)से(परैं)णिच् (प्रत्यय)के अन्तमें आनेसे (वृत् धातुका) प्रेरक(प्रयोजक हेतुकर्ता वा काममें लगानेहारा)अर्थ होजाता है अर्थात् वृत् धातु,अकर्मकसे सहेतुक सकर्मक क्रिया होजातीहै,

कर्मणि७।१। भावे७। वा*युट्१। =(सो वृत् धातु)कर्मविषैं(कर्मणि प्रयोगमें)वर्तता है अथवा भावमें युट्(=अन) प्रत्यय सहित

स्त्रीलिंगे७। वर्ततेT तेन३। इति*भवतिT =स्त्रीलिंगमें वर्तता है । तिस (कर्मणि वा भावे) करि ऐसा होता है

(१) पूज्यपाद स्वामीके 'युट्' श्रीपाणिनिके "ल्युट्" और श्रीतत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके रचयिताके युक् प्रत्ययोंके स्थानमें 'अन' होजाता है सूत्रमें 'काल'शब्द सामान्यतासे निश्चय और व्यवहार कालका द्यातक है । (२)(क) वृतर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युट् स्त्रीलिंगे वर्तते । तेनेति भवति । वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तना इति ॥ ऐसा पाठ सर्वार्थसिद्धिकी वृत्तिकी प्रथमा वृत्तिमें है । (ख) वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युट् स्त्रीलिंगे वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तते वर्तनमात्र् वा वर्तना इति ॥ यह पाठ सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीया वृत्तिमें है । द्वितीयावृत्तिके पाठमें 'वर्त्यते'के पश्चात् 'वर्तते' शब्द नहीं होना चाहिये शेष पाठमें यद्यपि दोनों संस्करणों में कुछ अन्तर है परन्तु अर्थ दोनों पाठोंका एकसा बनजाता है जैसे प्रथमके अर्थके लिये देखो इस पृष्ठको और पृष्ठ८९ को । दूसरेके स्त्रीलिंगे वर्तनेति भवति वाक्यका अर्थ है कि 'स्त्रीलिंगमें वर्तना शब्द ऐसा होता है' ॥ दूसरे भागमें 'वर्तते' शब्द इस हेतुसे ठीक नहीं है कि यह 'कर्तरि' प्रधान "वृत्" धातुका है और यहां पर केवल 'कर्मणि प्रयोग' और 'भावे प्रयोगमें' 'वृत्'में णिच् प्रत्यय लगाया है ॥ तीन

= [1]वर्तना-परिणाम-क्रिया.–च परत्वम् अपरत्वम् च(=परत्वापरत्वे)जीवानाम् पुद्गलानाम् कालस्य उपकार भवति॥२२॥

सूत्रार्थ.—वर्तना- =वर्त्तना(=पदार्थोकी पर्यायोके पूरणकरनेमे वाह्य सहकारता)
परिणाम =परिणाम(=द्रव्यका अपने स्वभावको न छोडकर पहिली अवस्थाको छोडकर दूसरी अवस्थारूप होना)
क्रिया [1/3] =क्रिया (=हलनचलनादिरूप होना अथवा एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्र तक जाना)
च*परत्वम्[1/3]॥ =और परत्व (=एकसे दूसरेका काल रचित अवस्थामें वडापन अथवा पहिले होना वा पूर्वता)
अपरत्वम्[1/3]॥ च* =तथा अपरत्व (एक दूसरेका काल रचित अवस्थामे छोटा होना अथवा पिछलापन वा छोटापन)
जीवानाम्[6/3] पुद्गलानाम्[6/3] =(ये पाच) जीवोंको और पुद्गलोंको
कालस्य[6/1] उपकार.[1/1] =काल(द्रव्य कृत उपकार है अर्थात् वर्तना लक्षण निश्चय वा परमार्थ कालका है और परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व व्यवहार कालके लक्षण हे भावार्थ यह है कि कालद्रव्य दो प्रकारका है (१) निश्चयकाल वा परमार्थकाल (२) व्यवहारकाल (१) जो आदि तथा अ तसे रहित है अमूर्त है, नित्य है समय घटा आदिका उपादानकारण भूत हैं तो भी समय आदि भेदोंसे रहित है और कालाणुद्रव्यरूप है वह तो निश्चयकाल है वृहद्द्रव्यसग्रह (पृष्ठ५४) (२)जो आदि तथा अ तसे सहित है समय घटिका तथा महरआदि विवक्षित व्यवहारके विकल्पोंसे युक्त है वह उसी द्रव्यकालका पर्यायभूत व्यवहारकाल है (वृहद्द्रव्य सग्रह पृष्ठ ५४) अथवा यों कहिये कि जीव तथा पुद्गलका परिवर्तन जोनूतन तथा जीर्ण

---

(१)धर्मादिक द्रव्यें अपनी अपनी पर्यायोके पूर्णार्थ (=पूरणार्थ)अपन अपने उपादान कारणकरि स्वभावसही वर्तें हैं तोभी(=तथापि)जैसे कुम्हारके चाकके भ्रमणमें उसके नीचकी शिलाकीली सहकारिणी है तैसे जो उस अन्तरग परिणतिमें अथवा वर्तनेमें बाह्यकारण है जो सब पदार्थोकी परिणतिमें सहकारी है उसीको "वर्तना" कहते हैं॥

(२) वर्त तो सर्वद्रव्योंके पर्याय हैं उन द्रव्योंका प्रवर्तानेवाला अथवा हेतुकर्ता कालद्रव्य है तिस समय स्वरूप वर्तनाकर कालका वर्तना कहिये (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ४४२) यहा भावार्थ ऐसा है जो धर्मादि द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटते हैं सो इस पलटानकू समय है सोही निमित्त मात्र है। तिस समय ही कू कालकी वर्तना कहिये है। यह वर्तना ही कालाणु, द्रव्यका अस्तित्व जनावे है। बहुरि इस वर्तनाकू जेती वार लगी ताका नाम काल कहिये। सो यह व्यवहारकालसंज्ञा है। सो तिस निश्चयकालकी अपेक्षा ही त कहिये है ऐसे यह वर्तना द्रव्यनिकू कालका उपकार है। सर्वार्थसिद्धिवचनिका पृष्ठ ४४२

= वर्तना-परिणाम-क्रियाः-[१]परत्वापरत्वेच(जीवानाम् पुद्गलानाम्) कालस्य(उपकारः)भवति॥ २२॥

"और तथा-और येतीनों चके अर्थवाची होसकते हैं परन्तु चकार को कोष्ठकमें लानेके पश्चात् "और" शब्द लायेहैं। इससे जानपडता है कि उपकार का प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रसे पिछले सूत्रसे मिलादिया है अर्थात् जीवोंके परस्पर उपकार हैं (सूत्र २१) और (=च) कालके वर्तना, परिणाम, क्रिया,परत्व,अपरत्व ये पांच उपकार है॥ सूत्र२२॥ ऐसे दोनों सूत्रोंको मिलासकते है। 'तथा'शब्द अधिक जान पडताहै अंतिम'और' शब्द 'परत्वापरत्वे' समासको तोडनेसे "परत्वं अपरत्वंच" ऐसा होजाता है सो इस चकारका भाषानुवाद है। पंडित सदासुखजीकृता अर्थप्रकाशिका और पंडित जयचंदजीकृता सर्वार्थसिद्धि वचनिका में चकारका भाषानुवाद नहीं है अर्थात् दोनोंमें यथाक्रम ऐसा अर्थ किया है कि "वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए कालकृत उपकार हैं"। वर्तना परिणाम क्रिया परत्वा परत्व ए कालके उपकार हैं॥

(॥) द्विवचनान्त क्यों है (उत्तर) संस्कृत सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २८८ का पाठ है कि 'ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु'=इस सूत्रमें वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये 'तद्भेदाः परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्' ॥उस वर्तनाके भेद परिणाम, क्रिया,परत्व अपरत्व है तिन भेदोंका भिन्न ग्रहण निष्प्रयोजन है नानर्थकम्=निष्प्रयोजन परिणामदयका ग्रहण नहीं है॥ कालद्वय सूचनार्थत्वात्प्रपञ्चस्य=क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके लिये विस्ताररूप कथन है। कालोहि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च=काल दो प्रकार है परमार्थकाल और व्यवहारकाल

परमार्थकालो वर्तना लक्षणः=वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थकाल है॥ परिणामादि लक्षणो व्यवहारकालः=परिणाम, क्रिया, परत्व अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो व्यवहारकाल है॥ जब वर्तना निश्चयकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्व-अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं तब वर्तना शब्दको एक वचन मानकर और परिणाम-क्रिया परत्व अपरत्व इन सबको एक मानकर दोनोंको मिलाकर वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वे ऐसा द्विवचन किया है। दोनों शंकाओंका समाधान ऐसा होसकता है कि यदि चकारको समुच्चयके अर्थमें लेलें अर्थात् उपकारका प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रको पूर्व२१वांसूत्रसे मिलादिया जावे,'वर्तना'को निश्चयकालका लक्षण मानकर और परिणाम-क्रिया-परत्वअपरत्वको व्यवहारकालका लक्षण मानकर, दोनोंप्रकारके लक्षणोंको एक एक मानकर मिला देवें, समास करदेवें तो'च वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वेकालस्य'ऐसासूत्रहोजाताहै

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें "वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेच कालस्य" ऐसे सूत्रका यह हेतु दिया है कि 'परत्वापरत्वे' (=परत्व अपरत्वं च) सापेक्ष होनेसे 'परत्व-अपरत्व' को दो शब्द पृथक् पृथक् समझकर नपुंसकलिंगमें द्विवचनमें लाये औरवर्तना-परिणाम-क्रिया इतनेका एकसमास करके "वर्तना परिणाम क्रियाः" ऐसा स्त्रीलिंग बहुवचनमें लाये क्योंकि क्रियाशब्द स्त्रीलिंग है॥ परत्व अपरत्व दोनों नपुंसकलिंगी है और "च" 'वर्तना-परिणाम क्रियाः' और 'परत्वा परत्वे' दोनों समासोंको मिलाता है। अब अर्थ ऐसा हुआ कि 'वर्तना-परिणाम क्रिया और परत्वापरत्वकालके उपकार हैं॥ यहांपर स्मरण रहै कि इस सूत्रमें 'कालस्य' शब्दका प्रयोग सामान्यरूपमें किया है 'कालशब्द' निश्चयकाल और व्यवहारकाल अर्थात् समय आवली, मुहूर्त, पहर, दिन इत्यादि दोनों का द्योतक है इसलिये यह अर्थ हुआ कि "वर्तना निश्चय वा परमार्थकालका लक्षण है और परिणाम, क्रिया परत्व और अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं॥

इत्यत्रोच्यते—

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेचकालस्य ॥ २२ ॥

भावार्थ ऐसा है कि जब यह बात सुनिश्चितरूपसे मानी जाचुकी है कि जो सत्स्वरूप होगा वह अवश्य उपकारी होगा जैसे धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य इत्यादि पदार्थ सत्स्वरूप हैं इसलिये वे उपकारी मानेगये हैं तब काल द्रव्यभी सत्स्वरूप पदार्थ है उसका उपकार है। कालद्रव्यका लक्षण विशदरूपसे आगे सूत्र ३९में कहाजायगा और वह अमूर्तीक स्वरुप और निष्कर्म हे सब द्रव्योंका यहा उपकार प्रकरण है इसलिये

इति॰अत्र॰उच्यते = इस प्रकार यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहाजाता है कि—

[1]सूत्रम्—वर्तनापरिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥

उपकारीकू सत् दोनों योग्य है सो सतरूप काल अभिमत है सो कहा उपकारवान है"। तत्वार्थराजवार्त्तिक अध्याय५ पष्ठ ६६ आगैं जो सत्तारूप वस्तु है सोई उपकारकरि परिणमन रूप होय है। काल द्रव्य भी सत्ता स्वरूपहै ' सो कालद्रव्य कहीं उपकाररूप है' तत्वार्थरत्नमाला अध्याय ५ पष्ठ ६९ ॥

(१) इस सूत्रके कई पाठ है। मुद्रितसस्कृत सर्वार्थसिद्धि की और पन्नालालजी वाकलीवाल मुद्रित मोक्षशास्त्रकी दोनों दोना आवृत्तियोंमें उपयुक्त पाठ हैक्योंकि अनुवाद सस्कृत सर्वार्थसिद्धिसे किया है। अत पूर्वोक्त पाठ लिया है (२) सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पष्ठ १०७में वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वेचकालस्य ऐसा पाठ है। वहापर उक्तभाष्यमें यह टिप्पणा भी है कि "यहा पर वर्तना, परिणाम और क्रिया इन तीनों पदोंका विरोध न होनेसे समास करके पढ़ना चाहिये कोई असमस्त ही पढ़ते हैं। सापेक्ष होनेसे परत्वापरत्वका तो समास है ही' । और तत्वार्थश्लोकवार्तिक(मुद्रित) पष्ठ ४१२में पूर्णतया सभाष्यका ही पाठ है अर्थात् दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ एकप्रकारसे एकसा "वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वच काल स्य"हुआ॥२२॥ और दोनों आम्नायोंमे अर्थभी एकसा है ॥ (३) पडित सदासुखजी कृता 'अर्थप्रकाशिका' के पष्ठ ३०८ और पडित सदासुखजीकृत लघु सूत्रटीका के पष्ठ २१ में, पडित जयचन्द्ररायजी कृता सर्वार्थसिद्धि वचनिकाके पृष्ठ १४० में, निर्णयसागर मुद्रित बम्बई के जैन नित्यपाठसग्रहके १३६ दोनों आवृत्तियोंमें (जहा तत्त्वार्थसूत्र मुद्रित है) और श्रीयुत् ज्ञानचन्द्रजी मुद्रित तत्त्वार्थसूत्रादि के पृष्ठ १६में और सनातन जैनग्रन्थमालाके पृष्ठ ६० में तथा तत्वार्थराजवार्त्तिक के पष्ठ २२३ में निम्नलिखित पाठ है। "वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वेच कालस्य' इस पाठमें दो शकायें उपस्थ होती हैं। चकार इस स्थान पर क्यों लाये दूसरी शका यह कि जब वर्तना शब्दसे परत्वे शब्दपर्यन्त एकसमासहै जाकि तीन्हियचनमेंसमाप्त न क्यों किया ? बहुवचन करके ऐसा सूत्र क्यों न किया कि "वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वानि च कालस्य" (क) चकारके सम्बन्ध में पूज्यपाद स्वामीने वृत्तिमें भी कुछ नहीं लिखा कि क्यों लाए और जहातक खोज कियागया हैं किसी भाषाके अनुवादक महाशय ने भी नहीं लिखा कि "च"शब्द सूत्रमें इस कारणसे लाये हैं, हा पन्नालाल वाकलीवालकृत मोक्षशास्त्र बालबोधनी भाषाटीका सहित द्वितीयावृत्ति के पृष्ठ ३६ में ऐसा अर्थ किया है "(च)और (कालस्य) कालके (वर्तना परिणामक्रिया) वर्तना, परिणाम क्रिया तथा(परत्वा परत्वे)परत्व और अपरत्व ये पांच उपकार हैं" इस अनुवादमें

स्वामी तावद्वित्तत्यागादिना भृत्यानामुपकारे वर्तते । भृत्याश्च हितप्रतिपादनेनाहितप्रतिषेधेन च ॥ आचार्य उभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनेन तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठापनेन च शिष्याणामनुग्रहे वर्तते । शिष्या अपि तदानुकूल्यवृत्या आचार्याणामुपकाराधिकारे ॥ पुनरुपग्रहवचनं किमर्थम् ? पूर्वोक्तसुखादिचतुष्टयप्रदर्शनार्थं पुनरुपग्रहवचनं क्रियते ॥ सुखादीन्यपि जीवानां जीवकृत उपकार इति ॥ आह यद्यवश्यं सतोपकारिणा भवितव्यं संश्च कालोऽभिमतस्तस्य क उपकार

स्वामी[१/१]।तावत्*वित्तत्याग-आदिना[३/१]।भृत्यानाम्[६/३]।	=स्वामी तौ(=तावत्)धन(=वित्त)देने आदिसे(=त्यागादिना) सेवकोंकी
उपकारे[७/१]।वर्ततेभृत्याः[१/३]।च*हितप्रतिपादनेन[३/१]।।।च*अहित-	=सहायता करने)में प्रवर्तता है और(=च)चाकर हितकी वार्ता कहिकरि और अहितका
प्रतिषेधेन[३/१]।;आचार्य्यः[१/१]।उभय-लोक-फल प्रद-	=निषेधकरि स्वामियोंकेउपकारमेंप्रवर्तता है) आचार्य दोनों लोकका फलदेनेवाला(प्रद)
उपदेश-दर्शनेन[३/१]।।।च*तद्-उपदेश-विहित-	=उपदेशको दिखावनेकरि और(=च)उस उपदेशके अनुकूल उचित अथवा योग्य
क्रिया-अनुष्ठापनेन[३/१]।।।शिष्याणाम्[६/३]। अनुग्रहे[७/१]।	=क्रियाका आचरण करावनेकरि शिष्योंके उपकार (=अनुग्रह)में
वर्तते। शिष्याःअपि*तद्-आनुकूल्यवृत्या[३/१]।।	=प्रवर्तता है । चेलेभी उस(आचार्य)के अनुकूलपना(=आनुकूल्य)में प्रवृत्ति होकर
आचार्याणाम्[६/३]।उपकार-अधिकारे[७/१]।, पुनर्*	=आचार्योंके उपकार विषयमें(अधिकारमें)(प्रवर्ततेहैं)(प्रश्न)बहुरि
उपग्रह-वचनम्[१/१]।।।किम्[१/१]।।।अर्थम्[१/१]।।। ? पूर्व-	=उपग्रह शब्द(इस सूत्रमें)किसलिये है । पहिले(सूत्र अर्थात् इस अध्यायके२०वां सूत्रमें)
उक्त-सुख आदि-चतुष्टय-प्रदर्शन-अर्थम्[१/१]।।। पुनर्*	=कहे हुए सुखदुःख-जीवित-मरण-चारअवयवोंके दिखावनेके लिये फिर (=पुनः)
उपग्रहवचनम्[१/१]।।।क्रियतेT; सुख-आदीनि[१/३]।।।अपि*	=उपग्रहवाक्य(=इससूत्रमें)कियागया है सुख-दुःख-जीवित-मरणभी
जीवानाम्[६/३]।जीवकृतः[१/१]।उपकारः[१/१]।इति*आह। यदि*	=जीवोंके जीवकृत उपकार है कोई पूछता है कि जो (=यदि)
अवश्यम्*सता[३/१]।-उपकारिणा[३/१]। भवितव्यम्[१/१]।।।;	=सत्तारूपवस्तु(=सत्)अवश्य उपकार सहित होनेयोग्य (=भवितव्यम्) है
सन्[१/१]।च*कालम्[१/१]।अभिमतः[१/१]।तस्य[६/१]।कः[१/१]।उपकारः[१/१]।	=और काल सत्तारूप वा सत्स्वरूप (=सन)मानागयाहै तोतिस(काल)काक्या उपकार है

(१) सत यहापर प्रथमा विभक्ति एकवचन पुलिंल 'सत शब्दका है । इसकाअर्थ सतरूप अथवा सत्स्वरूपहै।()तत्वार्थराजवार्तिकमें 'आहसे इत्यत्रोच्यते' तक यह वाक्य वैसा ही है जैसाकि सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है 'तस्य क उपकारः' के स्थानमें 'सकिमुपकारः' राजवार्त्तिकमें है उससे अर्थ भेद नहीं होताहै। इस वाक्यका अनुवाद पंडित पन्नालालजी दूनीवाले और पंडित पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने क्रमसे ऐसे किया है 'कोऊ शिष्य कहै है जो अवश्य

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्द कर्मव्यतिहारे वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहार । परस्परस्योपग्रह परस्परोपग्रह । जीवानामुपकार ॥ क पुनरसौ ? । स्वामी भृत्य, आचार्य शिष्य, इत्येवमादि भावेन वृत्ति परस्परोपग्रह ॥

---

(१)सूत्रम्—परस्परोपग्रहो जीवनाम्(२१) = परस्परोपग्रहो(जीवानाम्)जीवानाम्(उपकार)भवति॥२१॥

सूत्रार्थ.—परस्पर-उपग्रह-(२)जीवानाम्। =परस्पर उपकार जीवोंको

जीवानाम्। (३)उपकार। भवति। =जीवोंका उपकार है अर्थात् जीवकारणवशात् एक दूसरेका सुख दु:ख जीवन मरण तथा सेवा शुश्रूसा आदिसे उपकार करते हैं भावार्थ एक जीव दूसरको आपसमें सुखका निमित्त, दु:खका निमित्त, जीवनका हेतु मरणका निमित्त और सेवा शुश्रूसा आदिका हेतुभी होते हैं

वृत्त्यनुवाद:—परस्परशब्द:।कर्म व्यतिहारे। वर्तते। =(इस सूत्रमें)परस्परशब्द क्रिया(=कर्म)के अलटन पलटन(=व्यतिहार)के अर्थविषैं वर्तता है

कर्मव्यतिहार:।च*क्रियाव्यतिहार.। =और(=च) कर्म-व्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह वह करता है और उसको उपग्रह वह करता है

परस्परस्य। उपग्रह:। परस्पर-उपग्रह.। =आपसका उपग्रह वा अनुग्रह है सो परस्पर उपग्रह है

जीवानाम्। उपकार। =(वह परस्परउपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंकें एक दूसरेकेलिये उपकार प्रवर्तता है

क.। पुन,*असौ। स्वामी। भृत्य:। = प्रश्न)बहुरि(=पुन.)वह(=असौ)(परस्पर उपग्रह) क्या है (उत्तर) स्वामी, चाकर

आचार्य। शिष्य। इत्येवम्*आदि।।।भावेन। =आचार्य शिष्य इत्यादिककी हृदयकी अवस्थासे(=भावेन)

वृत्ति।। परस्पर-उपग्रह.। =जो चेष्टा-उद्योग-उपाय व्यवसायय =वृत्ति, है सो परस्पर उपग्रह है

---

(१) दोनो सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ हमारे यहा किसी २ पुस्तकमें जीवानाम् के स्थान पर जीवाना पाठ है वह कातन्त्ररूप माला व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५, ६, और पृष्ठ ५३६ ५४०)

(२) 'जीवानाम् शब्दकी अनुवृत्ति १५वें सूत्रसे लीगई है। (३) 'उपकार इस शब्दकी अनुवृत्ति सत्रहवा सूत्रसे लीगई है।

उपकाराधिकारादुपग्रहवचनमनर्थकम् । नानर्थकम् । स्वोपग्रहप्रदर्शनार्थमिदम् । पुद्गलानां पुद्गलकृत उपकार इति ॥ तद्यथा—कांस्यादीनां भस्मादिभिर्जलादीनां कतकादिभिरयःप्रभृतीनामुदकादिभिरुपकारः क्रियते ॥ चशब्दः किमर्थः ? । समुच्चयार्थः । अन्योऽपि पुद्गलकृत उपकारोऽस्तीति समुच्चीयते । यथा शरीराणि एवं चक्षुरादीनीन्द्रियाण्यपीति ॥

एवमाद्यमजीवकृतमुपकारं प्रदर्श्य जीवकृतोपकारप्रदर्शनार्थमाह—

उपकार-अधिकारात्५। (१)उपग्रह-वचनम्१।।।	=उपकारका प्रकरण होने(के कारण)से(सूत्रमें) उपग्रहशब्द
अनर्थकम्१।।।; न-अनर्थकम्१।।।; स्व-उपग्रह-	=निष्प्रयोजन है(उत्तर)(सूत्रमें उपग्रहशब्द)निष्प्रयोजन नही है । अपने लिये सहायता
प्रदर्शन-अर्थम्१।।।पुद्गलानाम्६।। पुद्गलकृतः१।	=दिखावनेके लिये कि पुद्गलोंका पुद्गलकृत
उपकारः१।इदं१।।।इति*तद्यथाकांस्यादीनां६।।।भस्मादिभिः३।=उपकार है यह(उपग्रहवचन इस सूत्रमें)है । जैसे कांसादिकोंका भस्मादिकरि	
जलादीनाम्६।।।कतकादिभिः३।।।अयस्-प्रभृतीनाम्६।।।	=जलादिकोंका निर्मली आदिकरि (और उष्ण) लोहादिकोंका
उदकादिभिः३।।। उपकारः१। क्रियते।।।	=जलादिकोंसे उपकार वा अनुग्रह कियाजाता है । अर्थात् कांसादिक धातु भस्मकरि उज्ज्वल होजाते हैं तथा जलादिक निर्मली आदिके संयोगसे मैलरहित होजाते है और तप्तलोहादि पानीके डालनेसे शीतल होजाते हैं इत्यादिक पुद्गलद्रव्योंके पुद्गलकृत उपकार हैं
चशब्दः१।किम्*अर्थः१।समुच्चय-अर्थः१।?अन्यः१।अपि*	=(इस सूत्रमें)चशब्द किसलिये है ? । समुच्चय अथवा समुदायके लिये है और भी
पुद्गलकृतः१।उपकारः१।अस्तिTइति*समुच्चीयतेT	=पुद्गलका किया हुआ उपकार है ऐसा समुच्चय कियागया है
यथा*शरीराणि१।।।एवम्*चक्षुर्-आदीनि१।।।	=जैसे(पूर्वोक्त)शरीरादिक(पुद्गलजन्यजीवको उपकारी)हैं ऐसे नेत्रादिक
इन्द्रियाणि१।।।अपि*इति*एवम्*आद्यम्२।अजीवकृतम्२।	=इन्द्रियांभी(पुद्गलकृत जीवोंको अन्य उपकार)हैं इसप्रकार प्रथम अजीवका कियाहुआ
उपकारम्२। प्रदर्श्य+जीवकृत-उपकार-	=उपकार(जीवोंप्रति)दिखाकर जीवका कियाहुआ(परस्पर)अनुग्रह वा भलाई(उपकार)
प्रदर्शन-अर्थम्१।।। आहT	=दिखानेके लिये(आचार्य्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) क्योंकि 'उपग्रहाः' शब्द इस सूत्रमें बहुवचन है इससे सुख-उपग्रह, दुःख-उपग्रह, जीवित-उपग्रह, मरण-उपग्रहके पश्चात्भी 'पुद्गलान्३। पुद्गलानाम्६। उपग्रह है(अर्थात् पुद्गलोंको पुद्गलकृत सहायता है) ऐसाभी अनुवर्तन है । (२) खड्गधाराश्रित तोय भिनत्ति गजमस्तकम् ॥

विशेषेण—(१) गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु नारकाणां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येयभागः। तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्।

विशेषेण ३। [१] गति-अनुवादेन ३। नरकगतौ ७। = भेदकरि गतिकी विवक्षासे नरकगतिमें
सर्वासु ७। पृथिवीषु ७। नारकाणां ६। चतुर्षु ७। = सब नरकोंमें नारकियोंका [क्षेत्र प्रथमसे] चारो
गुणस्थानेषु ७। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। = गुणस्थानोंमें लोकका असंख्यातवां भाग है (नारकियोंके चारगुणस्थानोंसे अधिक नहीं होसक्ते हैं)
तिर्यग्गतौ ७। तिरश्चां ६। मिथ्यादृष्टि आदि संयता = तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंका मिथ्यादृष्टिसे संयमा—
संयत अन्तानां ६। सामान्य उक्तं १। क्षेत्रम् १। = संयमी पर्यन्त संक्षेप [सर्वार्थ० ३३, ३४] में कथित गुणस्थानवत् क्षेत्र है

असंख्येयाः १। वा भागाः १। इति वाशब्देन ३। समुद्घाते ७। = 'असंख्येयाः वा भागाः" ऐसे (वाक्य) में वा शब्दसे समुद्घातमें
असंख्येयभागः १। अपि परामृष्टः १। तेन ३। दण्ड = (लोकका) असंख्यातवां भाग भी उपदेश्या है तिस (वा शब्द) करि दण्ड
कपाट-समुद्घातयोः ७। लोकस्य ६। असंख्येय भागः १। = और कपाट दोनों समुद्घातोंमें लोकका असंख्यातवां भाग
क्षेत्रम् १। इति—अवसेयम् १। तत्र ७। आरोहण = क्षेत्र है ऐसा निश्चय करना चाहिये। तहां (आत्माके प्रदेशोंके) फैलाव और
अवरोहण—अपेक्षया ३। उत्कर्षेण ३। = संकोचकी विवक्षासे उत्कृष्टकरि
चत्वारिंशत् १। केवलिनः १। सम्भवति १। = चालीस केवली सम्भवै है। (उत्कृष्ट चालीस केवली एक साथ समुद्घात करते हैं)
तथापि॰ क्षेत्र १। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। एव = तौ भी क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग ही है
उत्तरत्र॰ सर्वत्र॰ स्वस्थान—आदि— = यहासे आगे सब स्थानोंमें स्वस्थानस्वस्थान—विहारवत्स्वस्थान आदि
पदानि १। यथासम्भव १। योज्यानि १। = पद जैसा योग्य अथवा यथा उचित हो लगा लेना चाहिये

(१) एकोनविंशति (उन्नीस) से नवनवति (निन्यानवै) तक अर्थात् अस्सी संस्कृतकी संख्याओंको संज्ञा मानते हैं वे सब अस्सी ही स्त्रीलिंगी हैं। संज्ञा जिनके साथ वे लाई जाती हैं किसी भी लिंगकी क्यों न हों बहुवचन संज्ञाके साथ वे एक वचनमें लाई जा सकी हैं जैसे चत्वारिंशत् १। केवलिनः १। द्विचत्वारिंशत् १। अहानि = ब्यालीस दिवस। चतुर्विंशति १। स्मृतयः १।

[1]श्लेष्मणा चाभिभवः ॥ न चामूर्तस्य मूर्तिमद्भिरभिघातादयः स्युः॥ अत एवात्मास्तित्वसिद्धिः। यथा यन्त्रप्रतिमाचेष्टितं प्रयोक्तुरस्तित्वं गमयति, तथा प्राणापानादिकर्मापि क्रियावन्तमात्मानं साधयतिकिमेतावानेव पुद्गलकृत उपकार आहोस्विदन्योऽप्यस्तीत्यत आह—

॥सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥

[1] श्लेष्मणा[3/1] च* अभिभवः[1/1] ;	=कफसेभी तिरस्कार होताहै अर्थात् खखारसेभी उच्छ्वास-निश्वासका निरोध होता है
न*च [2] अमूर्तस्य[6/1]मूर्तिमद्भिः[3/3]अभिघात-आदयः[1/3]स्युः।	=और अमूर्तीकका मूर्तीवान्‌करि मारन आदिक नहीं होसकते अर्थात् यदि मन प्राण अपान अमूर्तीक होते तो उपर्युक्त कथनानुसार उनका मूर्तीक पदार्थोंसे प्रतिभय प्रतिघात (=रुकना, अभिभव(=तिरस्कार) और अभिघात (=मारण) न होता ॥
अतः*एव*आत्म-अस्तित्व-सिद्धिः[1/1]।;	=इसलिये (प्राण-अपानादि क्रियाओं द्वारा)ही आत्माका अस्तित्व सिद्ध है
यथा*यन्त्रप्रतिमा-चेष्टितम्[1/1]।प्रयोक्तुः[6/1]	=जैसे यन्त्रकी पुतलीका इधरउधर चलायेजाना यन्त्रकेचलानेवालेकी
अस्तित्वं[2/1]।गमयति।तथा*प्राण-अपानादि-कर्म-अपि*	=विद्यमानताको जताता है तैसे उच्छ्वास और निःश्वासादिकी क्रिया(कर्म)भी
क्रियावन्तम्[2/1]आत्मानम्[2/1]साधयति।;किम्*एतावान्[1/1]	=क्रियावन्त आत्माको सिद्ध करता है। क्या इतना (एतावान्)
एव*पुद्गलकृतः[1/1]उपकारः[1/1]आहोस्वित्*अन्य-	=ही पुद्गलका कियाहुआ उपकारहै अथवा(आहोस्वित्) अन्य
अपि*अस्ति।इति*अतः*आह।	=भी है। इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहतेहैं कि

[2]सूत्रम्— ॥ सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥

= ([4]जीवानाम्) सुख-दुःख-जीवित-मरण-उपग्रहाः च (पुद्गलानाम् उपकारः) भवति ॥२०॥

= जीवानाम्[6/3] सुखउपग्रह-दुःखउपग्रह-जीवितउपग्रह-मरणउपग्रहचपुद्गलानां उपकारः भवति २०

(१) श्लेष्मणा श्लेष्मन् शब्द पुलिंग है (पद्मचन्द्रकोश पृष्ट ३६३)। 'कफ' संस्कृत शब्द है (वैद्य० कोश पृष्ठ १६७। (२) अमूर्त्तस्य, मूर्तिमद्भिः, पुलिंग और नपुसकलिंग दोनों हैं (३) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है (४) 'जीवानां' पद्रहवां सूत्रसे पुद्गलानां ऊन्नीसवांसे और 'उपकारः' शब्द सत्रहवांसे इस सूत्रमें अनुवर्तते हैं ॥

सदसद्वेद्येऽन्तरङ्गहेतौ सति बाह्यद्रव्यादिपरिपाकनिमित्तवशादुत्पद्यमान प्रीतिपरितापरूप परिणाम सुखदु खमित्याख्यायते । भवधारणकारणायुराख्यकर्मोदयाद्भवस्थितिमादधानस्य जीवस्य पूर्वोक्त-प्राणापानक्रियाविशेषाव्युच्छेदो जीवितमित्युच्यते । तदुच्छेदो मरणम् । एतानि सुखादीनि जीवस्य पुद्गलकृत उपकार ॥ कुत ? मूर्तिमद्धेतुसन्निधाने सति तदुत्पत्ते ॥

सूत्रार्थ.—जीवानाम् सुखउपग्रह दु खउपग्रह =जीवोंको (अर्थात् जीवोकेऊपर)सुखकाकारण, दु खकानिमित्त, वा मत्यय
जीवितउपग्रह मरणउपग्रह च* =जीवनका हेतु, मरण वा मृत्युका निमित्त भी[1](च)
पुद्गलानाम् उपकार भवति। =पुद्गलोका उपकार है
वृत्त्यनुवाद—सत् असत् वेद्ये अन्तरङ्ग हेतौ सति =साता असाता वेदनीय कर्मका (उदय) अभ्यन्तर कारण होनेपर
बाह्य द्रव्य आदि परिपाक निमित्त-वशात् =और बाहिर द्रव्य क्षेत्र काल भावके परिपाक कारणके वशसे
उत्पद्यमान प्रीतिपरितापरूप परिणाम =(आत्माकै) उपजाहुआ प्रसन्नता और क्लेशरूप भाव
सुख-दु खम् इति* आख्यायते, भव-धारण-कारण =सो(यथाक्रम) सुख, दु ख कहलाता है, भव धारणका कारण
आयुस् आख्य-कर्मउदयात् भव स्थितिम् =आयुनामक नामकर्मके उदयसे भव स्थितिको
आदधानस्य जीवस्य पूर्वोक्त प्राण अपान =धारणकरनेवाले(=आदधानस्य) जीवोंके पहिले कहेहुये उच्छ्वासनि श्वासरूप
क्रियाविशेष अव्युच्छेद जीवितम् इति* उच्यते =क्रियाविशेषका विच्छेदन होना (अव्युच्छेदो) सो जीवित कहाजाता है
तद् उच्छेद मरणम् एतानि सुख आदीनि =उस (जीवित)का उच्छेद है सो मरण है। ये सुख दु ख जीवित मरण
जीवस्य पुद्गलकृत उपकार ॥ कुत *? =जीवके पुद्गलका कियाहुआ उपकार है। (प्रश्न)क्योंकरसुखादिपुद्गलके(उपकारहैं)
मूर्तिमत् हेतु सन्निधाने सति तद् उत्पत्ते =(उत्तर)मूर्तिक निमित्त निकट होनेपर उन(सुखादिको)की उत्पत्ति होजाती है

(१) च यहांपर समुच्चयके लिये है इस बातका द्योतक है कि उक्त चार पुद्गलोंके कर्तव्य या कार्यके अतिरिक्त जीवोंका अन्यभी उपकार है व उपकार "शरीर वाक् मन प्राण अपाना " हैं जिनका कथन उन्नीसवां सूत्रमें करचुके हैं और उपग्रह शब्द इस प्रयोजनसे लाये हैं कि एक पुद्गलका दूसरे पुद्गलके ऊपर उपकार, अनुग्रह, सहायताभी होती है जैसे कांसादिकका भस्मादिसे, जलादिकका निर्मलीसे, उष्ण लोहका जलसे इत्यादि एक पुद्गलको दूसरे पुद्गलकृत उपकार है ॥

सर्वार्थसिद्धि

अध्याय ५ सूत्र १९

असम्बद्धं वा ? । यद्यसम्बद्धं, तन्नात्मन उपकारकं भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिव्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदणु इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिभ्रमणमिति चेन्न—तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रियस्यादृष्टो गुणः, स निष्क्रियः सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थः । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेषः क्रियावान्स्पर्शवान्प्राप्तवनस्पतौ

असम्बद्धम्[१/१]। वा। ?*यदि*असम्बद्धम्[१/१]।तद्[१/१]।आत्मनः[६/१]।	=असंबन्ध होगा । जो संबंध नहीं है तो वह (मन) आत्माका
उपकारकम्[२/१]।भवितुम्[२/१]।न*अर्हतिT; च*इन्द्रियस्य[६/१]।।	=सहायक अथवा सहकारी होने योग्य नही है और इन्द्रियका
साचिव्यम्[२/१]।न*करोतिTअथ*	=मंत्रीपना नहीं करताहै । पक्षान्तरमें(=अथ)अर्थात्इन्द्रियसेऔरआत्मासे मनका
सम्बद्धम्[१/१]।सत्[१/१]।तद्[१/१]।अणु[१/१]।एकस्मिन्[७/१]।प्रदेशे[७/१]।	=संबंध है तो वह (मन)अणु होतेसंते इन्द्रिय तथा आत्माके एकप्रदेशमें
सम्बद्धम्[१/१]।इतरेषु[७/३]।प्रदेशेषु[७/३]।उपकारम्[२/१]।	=संयोग होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको
न*कुर्यात्। अदृष्ट-वशात्[५/१]।	=नहीं कर सकता है ॥ (आत्माके)न दीखेजानेके वशसे वा अदृष्टगुणहोनेसे
अस्य[६/१]।अलात-चक्रवत्*	=इस (मनका) अर्द्धदग्धकाष्ठ अथवा अंगारके चक्रके सदृश
परिभ्रमणम्[१/१]।।	=(आत्माके सर्वप्रदेशोंमें) परिभ्रमण होता है
इति*चेत्*न*	=ऐसा अन्यमती)आग्रह करता है(=इतिचेत्)(उत्तर सो नही है)
तत्-सामर्थ्य-अभावात्[५/१]।	=क्योंकि उस आत्माके (अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी) शक्तिका अभाव है
अमूर्तस्य[६/१]।आत्मनः[६/१]।निष्क्रियस्य[६/१]।अदृष्टः[१/१]।गुणः[१/१]।	=अमूर्तीक और क्रियारहित आत्माका अदृष्ट गुण है
सः[१/१]।निष्क्रयः[१/१]। सत्[१/१]।अन्यत्र*क्रिया आरम्भे[७/१]।	=सो निष्क्रय होकर अन्यवस्तुविषैं क्रियाके आरम्भमें
न*समर्थः[१/१]।	=सामर्थ्यरहित है अर्थात् आत्माका अदृष्टगुण आत्माके तुल्य अमूर्तीक है क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिसे रहितहै
दृष्टः[१/१]।हि*वायुद्रव्य-विशेषः[१/१]। क्रियावान्[१/१]।	=जैसे(=हि)देखाजाता है कि वायुद्रव्य वा गुण क्रियावान् और
स्पर्शवानः[१/१]। प्राप्त-वनस्पतौ[७/१]।।	स्पर्शवान् हैं सो प्राप्त कीहुई(अर्थात् पवन जिनमें छूजातीहै उन)वनस्पतियोंमें

परिस्पन्दहेतुस्तद्विपरीतलक्षणश्चायमिति क्रियाहेतुत्वाभाव ॥ वीर्यान्तरायज्ञानावरणक्षयोपशमागोपांगनामोदयापेक्षिणाऽऽत्मना उदस्यमान कोष्ठ्यो वायुरुच्छ्वासलक्षण प्राण इत्युच्यते ॥ तेनैवात्मना वाह्यो वायुरभ्यन्तरक्रियमाणो नि श्वासलक्षणोऽपान इत्याख्यायते ॥ एवं तावप्यात्मानुग्राहिणौ जीवितहेतुत्वात् ॥ तेषा मन प्राणापानाना मूर्तिमत्त्वमवसेयम् । कुत ? मूर्तिमद्भि प्रतिघातादिदर्शनात् ॥ प्रतिभयहेतुभिरशनिपातादिभिर्मनस. प्रतिघातो दृश्यते । सुरादिभिश्चाभिभव ॥ हस्ततलपटादिभिरास्यसंवरणात्प्राणापानयो प्रतिघात उपलभ्यते ।

परिस्प दहेतु ३ च*-तद् विपरीत-लक्षण.१ अयम् ३	=चलावनेका कारण है और उस.वायु.से विरुद्ध लक्षणवाला यह(अदृष्ट गुण है
इति*क्रिया-हेतुत्व अभाव ३ ॥	=सो ऐसे (अन्य वस्तुमें यह अदृष्टगुण.क्रिया करावनेका कारण नहीं होसकता है
वीर्यान्तराय ज्ञानावरण क्षयोपशम आंगोपांगनाम-	=वीर्या तराय ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशम और आगोपांगनामक नामकर्मके
उदय अपेक्षिणा३ आत्मना३	=उदय अपेक्षावाले आत्माकरि(उदयकी है अपेक्षा जाकैं ऐसा जो आत्मा है तिससे)
उदस्यमान १ कोष्ठ्य १ वायु१ उच्छ्वासलक्षण:१	=कोठेको ऊचा लिया हुआ पवन सो उच्छ्वासका लक्षण
प्राण १ इति*उच्यते। , तेन३एव*आत्मना३वाह्य १	=प्राण ऐसा कहाजाता है, तिसही आत्माकरि बाहिरका (=बाह्य, बहिर्भव)
वायु १ अभ्य तर क्रियमाण.१ निश्वास लक्षण १	=पवन भीतर किया हुआ नि.श्वासका लक्षण या जतलानेवाला चि ह है
इति*अपान १ आख्यायते। , एवम् *तौ१ अपि*	=इस प्रकार अपान कहाजाता है । ऐसे वे दोनों (प्राण अपान)भी
आत्म अनुग्राहणौ१ जीवितहेतुत्वात्५॥ , तेषाम् ६ मनः-	=जीनेका कारण होनेसे आत्माको उपकारी है, तिन मन,
प्राण अपानानाम्६ मूर्तिमत्वम् १॥ अवसेयम् १॥	=प्राण और अपानके(उच्छ्वास नि.श्वासके) मूर्तिपना जानना चाहिये
कुत'*मूर्तिमद्भि.३ प्रतिघातादि दर्शनात्५॥	=क्यों (मूर्तिपना) है (उत्तर) मूर्तिमान (पदार्थ)निसे प्रतिघातादिक दीखेजानेसे
प्रतिभयहेतुभि.३अशनि पातादिभि ३मनस.६॥	=भयके कारणरूप बिजली (=अशनि)के गिरने आदिसे मनका
प्रतिघात१ दृश्यते। , च*सुरादिभि ३ अभिभव १	=प्रतिघात देखा जाता है और मदिरादिसे (चित्तका) चलाचल भ्रमपना होता है
हस्त तल-पुटादिभि ३ आस्य सवरणात्५॥ प्राण-	=हाथके तले और पियाला (=पुट) आदिसे मुखके दापनेसे उच्छ्वास
अपानयो ६ प्रतिघात.१ उपलभ्यते।	=निःश्वासका रुकना जानाजाता है या प्राप्त कियाजाता है

तदभावे तद्वृत्त्यभावात् ॥ तत्सामर्थ्योपेतेन क्रियावताऽऽत्मना प्रेर्यमाणाः पुद्गला वाक्त्वेन विपरिणमन्त इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकी । श्रोत्रेन्द्रियविषयत्वात् ॥ इतरेन्द्रियविषया कस्मान्न भवति? तद्ग्रहणायोग्यत्वात् ॥ घ्राणग्राह्ये गन्धद्रव्ये रसाद्यनुपलब्धिवत् ॥ अमूर्ता वागिति चेन्न- मूर्तिमद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनान्मूर्तिमत्वसिद्धेः ॥ मनो द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति भावमनस्तावल्लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलावलम्बनत्वात् पौद्गलिकम् ॥

तद्-अभावे। तद्-वृत्ति-	=उस(भाववाक्)के अभाव होनेपर, उस (भाववाक्)की चेष्टा(व्यवसाय का
अभावात्।	=अभाव होजाता है अर्थात् भाव वचनके न होनेपर आत्मा बोल नही सकता है ॥
तत्-सामर्थ्य-उपेतेन। क्रियावता। आत्मना।	=तिस (भाववाक्)की शक्तिको प्राप्त हुआ (=उपेतेन) क्रियावान् आत्माकरि
प्रेर्यमाणाः।पुद्गलाः।वाक्त्वेन।।।विपरिणमन्ते।	=प्रेरे हुये पुद्गल वचनरूप होकर परिणमते हैं (वह द्रव्य वचन है)
इति*द्रव्यवाक्।।अपि*पौद्गलकी।; श्रोत्र-इन्द्रिय-	=ऐसे द्रव्य वाणीभी पुद्गलसे उपजी है, क्योंकि(द्रव्यवचन) कान इन्द्रियका
विषयत्वात्।।;इतरेन्द्रिय-विषया।।कस्मात्*न*भवति।	=विषय है । किस कारणसे(=कस्मात्)कि(द्रव्यवाक्)दूसरी इन्द्रियका विषय नहीं है?
तद्-ग्रहण-अयोग्यत्वात्।। ; घ्राण-ग्राह्ये।।	=क्योंकि उस(दूसरी इन्द्रिय)के ग्रहण योग्य नही हैं। नाक इन्द्रियके ग्रहणयोग्य(=ग्राह्य)
गन्ध-द्रव्ये।।रसादि-अनुपलब्धिवत्*;	=गंध द्रव्य है । (वह घ्राण इन्द्रिय) रसादिक ग्रहण करने योग्य नही है
अमूर्ता।। वाक्।। इति*चेत्*न*	=वचन अमूर्तीक है ऐसी शंका है । (उत्तर)(वाणी अमूर्तीक) नहीं है
मूर्तिमत्-ग्रहण-अवरोध-व्याघात-	=क्योंकि मूर्तीकके ग्रहणसे,(मूर्तीककरि)रुकजानेसे(मूर्तीकसे) प्रहारको प्राप्त होनेसे
अभिभवादि-दर्शनात्।। मूर्तिमत्वसिद्धेः।	=(मूर्तीक द्वारा) तिरस्कारादिक देखनेसे मूर्तिपना सिद्ध है अर्थात् वाणीका मूर्तीक द्वारा एक दिशासे दूसरी दिशाको चलेजाना आदि देखनेसे मूर्तिपना सिद्ध है
(१)मनः।।द्विविधम्।।द्रव्यमनः।।च*भावमनः।।इति*	=मन दोप्रकारकाहै । द्रव्यमन और(=च)भावमन। (दोनोंप्रकारका मन पुद्गलस्वरूपहै)
भावमनः।। तावत्*लब्धि-उपयोग-लक्षणम्।।	=भावमन तो (तावत्) लब्धि तथा उपयोग स्वरूप है
पुद्गल-अवलम्बनत्वात्।। पौद्गलिकम्।।	=और पुद्गलके आश्रयभावसे पुद्गलजन्य है अर्थात्

(१)(क)मनस्(ख)पयस् = जल,दूध,(ग)यशस् = गुणोकी प्रगटता,तीनोंशब्द सकारान्त नपुंसकलिंगीहै जिनके प्रथमा एकवचन नपुंसकलिंग मनः,पयः,यशःहै

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहका पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति। यदयुक्तम् ॥ कथम्? उच्यते-तदिन्द्रियेणात्मना च सम्बद्धं वा स्यात्

पुद्गल कर्मके क्षयोपशमसे हुआ है तिस हेतुसे पुद्गलमयी है ॥

द्रव्यमनः ॥ च॰ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय क्षयोपशम =और(=च)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशमका

आंगोपांगनाम-लाभ प्रत्ययाः॥गुण दोष विचार =तथा आंगोपांग नामा नामकर्मका उदय है कारण जिसको और गुण दोष विचार

स्मरणादि प्रणिधान-अभिमुखस्य॥ आत्मनः॥ =स्मरणादिके प्रयत्न(=प्रणिधान)के सन्मुख है जो आत्मा तिसके

अनुग्राहका ॥ पुद्गला ॥ मनस्त्वेन॥ =उपकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे वा मनरूपकरि

परिणता ॥ =परिणये हैं (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मोंके क्षयोपशम तथा उदयसे 'गुण-दोष विचार-स्मरणादिकके उपकारी' हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ सूक्ष्म पुद्गलोंका प्रचयरूप अष्टपाखुरीके फूले हुये कमलके आकार =मनपनाकरि परिणये पुद्गल) है सो द्रव्य मन है

इति॰पौद्गलिकम्॥ =इस प्रकार (वह द्रव्य मन) पुद्गलजन्य है अर्थात् रूप रस-गन्ध स्पर्शके संयोगसे पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप रस-गंध-स्पर्शवान् है ॥

कश्चित्॰आह। मनः॥ द्रव्यान्तरम्॥ रूपादि- =कोई प्रश्न करता है कि मन न्यारा द्रव्य है। रूपादि

परिणाम रहितम्॥ अणु-मात्रम्॥ तस्य॥ पौद्गलिकत्वम्॥ =परिणाम वा विकार वर्जित है, अणुमात्र है, तिस (मन)के पुद्गलजन्यपना

अयुक्तम्॥ इति॰, तद्॥ अयुक्तम्॥ कथम्॰ =ठीक नहीं है(उत्तर)सो(मनको रूपादिपरिणामवर्जित और अणुमात्र कहना) अयुक्त है। कैसे?

उच्यते। तद्- =(उत्तरमें) कहा जाता है कि उस तुम्हारे मतमें मन न्यारा द्रव्य और अणुमात्र) का

इन्द्रियेण॥ आत्मना॥ च॰सम्बद्धम्॥ वा॰स्यात् =इन्द्रियसे और आत्मासे सम्बन्ध रखता होगा अथवा

वृत्तीन्युपचयशरीराणि कानिचित्प्रत्यक्षाणि कानिचिदप्रत्यक्षाणि ॥ एतेषां कारणभूतानि कर्माण्यपि शरीरग्रहणेन गृह्यन्ते ॥ एतानि पौद्गलिकानीति कृत्वा जीवानामुपकारे पुद्गलाः प्रवर्तन्ते ॥ स्यान्मतं कार्मणमपौद्गलिकमनाकारत्वादाकाशवत् । आकारवतां हि औदारिकादीनां पौद्गलिकत्वं युक्तमिति ॥ तन्न । तदपि पौद्गलिकमेव,

---

वृत्तीनि(१/३)। उपचय-शरीराणि(१/३)। =संचय वा स्थूल (=उपचय) शरीररूप वृत्तियें अर्थात् नोकर्मसंचयरूप वृत्तियें-स्थितियें वा अवस्थायें

कानिचित्*प्रत्यक्षाणि(१/३)। कानिचित्*अप्रत्यक्षाणि(१/३)। =(वे नोकर्मरूपवृत्तियोंमेंसे) केई इन्द्रियगोचर (प्रत्यक्ष) हैं । केई इन्द्रियगोचर (प्रत्यक्ष) नहीं हैं भावार्थ यह है कि औदारिक, वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्मण ये नाम कर्मकी प्रकृतियें सूक्ष्म हैं उक्त औदारिकादि कर्म प्रकृतिरूपमें सूक्ष्म होनेके कारण अप्रत्यक्ष (इन्द्रियगोचर नहीं) हैं । उन सूक्ष्मशरीरोंके उदय जन्य (अथवा यों कहियेकि सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष-कर्मप्रकृतिरूप-उक्त औदारिकादि द्वारा उत्पन्न हुईं जो) नो कर्म स्थूलरूप परिणत अवस्थायें स्थितियें (=वृत्तीनि) उनमें औदारिक शरीर प्रत्यक्ष (इन्द्रियगोचर) है, वैक्रियिक शरीर प्रत्यक्ष (इन्द्रियगोचर) है और अप्रत्यक्ष (इन्द्रियगोचर) नहींभी है, आहारक शरीर (अप्रत्यक्ष) इन्द्रियगोचर नहीं है । आहारक शरीरसे तैजस शरीर सूक्ष्म और तैजससेभी कार्मणशरीर सूक्ष्म (परं परं सूक्ष्म अध्याय २ सूत्र ३७ में) है

एतेषाम्(६/३)। कारणभूतानि(१/३)। कर्माणि(१/३)। अपि* =तिन (उपचय शरीर वा पिंडरूप शरीर वा नोकर्म) के कारणरूप कर्म प्रकृति) भी

शरीर-ग्रहणेन(३/१)। गृह्यन्ते। ; एतानि(१/३)। =शरीरके ग्रहणसे लियेजातेहैं ॥ ये शरीर अर्थात् कार्मणानि और नोकार्मणानि)

पौद्गलकानि(१/३)। इति*कृत्वा*जीवानाम्(६/३)। उपकारे(७/१)। =पुद्गल जन्य अथवा पुद्गलके हैं । ऐसे करके जीवोंके उपकार (करने) में

पुद्गलाः(१/३)। प्रवर्तन्ते। ,स्यात्-मतम्(१/१)। कार्मणम्(१/१)। आकाशवत्* =पुद्गल प्रवर्तते हैं । शंका है कि कार्मण (शरीर) आकाशके सदृश

अपौद्गलिकम्(१/१)। अनाकारत्वात्(५/१)। आकारवताम्(६/३)। हि* =निराकार होनेसे पुद्गल जन्य नहीं है ॥ आकारवान् ही

औदारिकादीनाम्(६/३)। पौद्गलिकत्वम्(१/१)। युक्तम्(१/१)। इति* =औदारिक आदिकोंके पुद्गलजन्यपना वा पुद्गलमयी होना ठीक है

तद्(१/१)। न* ; तद्(१/१)। अपि* पौद्गलिकम्(१/१)। एव*, =(उत्तर) सो ठीक नहीं है वह (कार्मणशरीर) भी पुद्गलमयी वा पुद्गलकाहीहै।

तद्विपाकस्य मूर्तिमत्सम्बन्धनिमित्तत्वात् ॥ दृश्यतेहि व्रीह्यादीनामुदकादिद्रव्यसम्बन्धप्रापितपरिपाकानां पौद्गलिकत्वम् । तथा कार्मणमपि गुडकण्टकादिमूर्तिमद्द्रव्योपनिपाते सति विपच्यमानत्वात्पौद्गलिकमित्यवसेयम् ॥ वाक् द्विविधा । द्रव्यवाग्भाववागिति ॥ तत्र भाववाक् तावद्वीर्यान्तरायमतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी ।

तद्-विपाकस्य६। मूर्तिमत्-सम्बन्ध निमित्तत्वात्५।।, =क्योंकि उस (कार्मण शरीर)के उदयका कारण मूर्तिवान्के संयोगसे है अर्थात् मूर्तिमान वस्तुका सम्बन्ध उस कार्मणके उदयका कारण है

दृश्यते। हि*व्रीहि आदीनाम्६।उदक-आदि-द्रव्य- =जैसे (=हि) देखागया है कि चांवल आदिकोंके जल आदिक द्रव्योंके

सम्बन्धप्रापित परिपाकानाम्६। =संयोग प्राप्त कर भले प्रकारसे पकनेरूप वा उत्तम पाकरूप होना है उनके

पौद्गलिकत्वम्१।।तथा*कार्मणम्१।।अपि*गुड- =(वेदोनों व्रीहि उदक पुद्गलमयी वा पुद्गलजन्य है। पुद्गल)। तैसे कार्मण(शरीर)भी गुड

कण्टकादि मूर्तिमत्-द्रव्य-उपनिपाते७। सति७। =कांटे आदि मूर्तिक द्रव्योंके संयोग होनेपर

विपच्यमानत्वात्५।।पौद्गलिकम्१।।इति*अवसेयम्१।।=भले प्रकार पकतासे पुद्गलमयी है ऐसे जानना चाहिये भावार्थ गुड बोर जडी आदिकसे मदिरा बनती है तिस मदिराके पीनेसे चित्त विभ्रमरूप होजाता है उस समय ज्ञानावरण दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तरायकर्मका उदय जानना चाहिये । कांटा अथवा चोट लगनेसे जो दु ख होता है तहां असाता वेदनीयकर्मकाउदय जानो इत्यादि बाह्यमूर्तीक द्रव्योंके सम्बन्धसे पचकरि कार्मण उदय आताहै तिससे कार्मण पुद्गलमयीहै ॥

वाक्१।।द्वि विधा१।।द्रव्यवाक्१।।भाववाक्१।।इति*।। =वचन दो प्रकार द्रव्य वचन भाव वचन ऐसे हैं

तत्र*भाववाक्१।। तावत्*वीर्यान्तराय-मति =तहां भाव वचन तो (=तावत्) वीर्यान्तराय, मति

श्रुत ज्ञानावरण-क्षयोपशम आंगोपांग- =श्रुत ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे और अंगोपांग नामक (आंगोपांगनामा)

नाम-लाभनिमित्तत्वात्५।।(आत्मनो६।वाक्सामर्थ्यम्) =नाम कर्मके लाभ (=उदय)का निमित्त होनेसे (आत्माके बोलनेकी शक्ति)

पौद्गलिकी१।। =पुद्गलजन्य है अर्थात् उपरोक्त कर्मोंके कारणसे आत्माके बोलनेकी शक्ति अथवा सामर्थ्य है सो भाव वचन है

अलोकाकाशे तदभावादभाव इति चेन्न--स्वभावापरित्यागात् ॥

उक्त आकाशस्योपकारः । अथ तदन्तरोद्दिष्टानां पुद्गलानां क उपकार इत्यत्रोच्यते—

॥ शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

जो सूक्ष्म पदार्थ आपसमें अवकाशदान देतेहैं तौ आकाशका अवकाशदान देना कोई असाधारण लक्षण(वह स्वभाव वा गुण जो किसी दूसरेमें न हो) न ठहरा इसके उत्तरमें आचार्य कहते है कि आकाश सर्व पदार्थोंको एकही कालमें अवकाशदान देता है कोई पदार्थ ऐसा नही है जिसको आकाश स्थान दान न देता हो इससे आकाशका यह अवकाशदान देना असाधारण लक्षण है और सूक्ष्म पदार्थमें अवकाशदान देनेका अपूर्व अथवा असाधारण लक्षण इस हेतुसे नही है कि वे (सूक्ष्म पदार्थ) आपसमें एक दूसरेको अवकाशदान देते हैं सर्व पदार्थोंको एकही कालमें स्थानदान नही देसकते हैं

अलोकाकाशे[७।१] तद्-अभावात्[५।१] = अलोकाकाशमें उन (अवगाह करनेवालों)के विद्यमान न होनेसे

अभावः[१।१] इति*चेत्* ; न* = (अवकाशदानका) अभाव है ऐसी शंका है । (उत्तर) (ऐसी शंका) नही होनी चाहिये ,

स्वभाव-अपरित्यागात्[५।१] ; = क्योंकि (कोईभी पदार्थ) स्वभाव नहीं छोड़ता है अर्थात् आकाशमें अवगाहन (=अवकाश दान देनेका) की शक्ति और स्वभाव है सो चाहे अवगाह करने वाले उसमें हों वा न हों (जैसे अलोकाकाशमें अवगाह करनेवाले नही हैं)तौभी वह पदार्थ(अलोकाकाश) अपना स्वभाव नही त्यागता है

उक्तः[१।१] आकाशस्य[६।१]उपकारः[१।१]अथ*तदन्तर- = आकाशका उपकार कहागया अब उस (आकाश)के अत्यन्त समीप वा लगताही

उद्दिष्टानाम्[६।३] पुद्गलानाम्[६।३] = वर्णित पुद्गलोंका (देखो प्रथम सूत्रमें आकाश शब्दके पश्चात् "पुद्गलानां" शब्द)

कः[१।१] उपकारः[१।१] इति*अत्र*उच्यते । = क्या उपकार है इस कारण (=इति) यहां (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

(१)सूत्रम्— शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

= शरीर-वाङ्-मनस्-प्राण-अपानाः (जीवानाम्)पुद्गलानाम् (उपकारः)

(१)दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है। हमारे यहां कहीं२ पर 'पुद्गलानामके स्थानमें 'पुद्गलानां' पाठहै वह बहुमतमें अशुद्ध है इस सूत्रमें 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति पंद्रहवा सूत्रसे लीगई है ॥ अथवा यों समझला कि "जीवानाम्" शब्दका अध्याहार किया गया है ॥

इदमयुक्त वर्तते । किमत्रायुक्तम् ? पुद्गलानां क उपकार इति परिप्रश्ने पुद्गलानां लक्षणमुच्यते भवता शरीरादीनि पुद्गलमयानीति ॥ नैतदयुक्तम् । पुद्गलाना लक्षणमुत्तरत्र "स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त पुद्गला इत्यत्र ' वक्ष्यते । इदं तु जीवान् प्रति पुद्गलानामुपकारप्रतिपादनार्थमेवेति उपकारप्रकरणे उच्यते ॥ शरीराण्युक्तानि औदारिकादीनि, सौक्ष्म्यादप्रत्यक्षाणि, तदुदयापादित [1](तदुभयोपपादित ?) ।

सूत्रार्थ —शरीर-वाग् मनस प्राण-अपाना ¦ जीवानाम् ¦	=शरीर वचन मन उच्छ्वास (प्राण) अपान (=निश्वास) जीवोंपर
पुद्गलानाम् ¦ उपकार ¦ भवति	=पुद्गल द्रव्यके या पुद्गल कृत उपकार अर्थात उपकार है
पृश्नानुवाद—इदम् ¦ अयुक्त ¦ वर्तते ? कि अत्र अयुक्तम् ¦	=(प्रश्न) यह ठीक नहीं (अयुक्त) है (वर्तते) यहां क्या ठीक नहीं है ?
पुद्गलानाम् ¦ क ¦ उपकार ¦ इति परिप्रश्ने ¦	=पुद्गलोंका क्या उपकार है ऐसा पूछने पर
पुद्गलानाम् ¦ लक्षणम् ¦ उच्यते । भवता ¦	= पुद्गलोंका लक्षण आपसे कहा गया है
शरीर आदीनि ¦ पुद्गल मयानि ¦ इति एतत् ¦	=क्योंकि शरीर आदिक पुद्गलमयी हैं (उत्तर) यह
न अयुक्तम् ¦ पुद्गलानाम् ¦ लक्षणम् ¦ उत्तरत्र	= अयुक्त नहीं है (क्योंकि) पुद्गलोंका लक्षण यहांसे आगे (=उत्तरत्र)
स्पर्श रस-गन्ध वर्ण-वन्त पुद्गला ¦ इति अत्र	=(स्पर्श रस गन्ध वर्णवाले) पुद्गल हैं इस प्रकार इसठौर (=अत्र)
वक्ष्यते ।	=(अर्थात् इस अध्यायके तेईसवां सूत्रमें) कहेंगे ॥
इदम् ¦ तु जीवान् ¦ प्रति पुद्गलानाम् ¦ उपकार-	= यह (सूत्र) तो जीवोंकी ओर (=प्रति) पुद्गलोंका उपकार
प्रतिपादन अर्थम् ¦ एव इति उपकार प्रकरणे ¦ उच्यते ।	= कहनेके लियेही (=एव) ऐसा उपकारके प्रकरण या प्रसंगमें कहागया है
शरीराणि ¦ उक्तानि ¦ औदारिक आदीनि ¦ सौक्ष्म्यात् ¦	=शरीर औदारिक आदिक (नामकर्मकी प्रकृतिरूप) कहे ॥ ये सूक्ष्म होनेसे
अप्रत्यक्षाणि ¦ तद्-	=इन्द्रियगोचर (प्रत्यक्ष) नहीं हैं; उन (औदारिक आदिक प्रकृतिरूप सूक्ष्म शरीरोंके)
उदय आपादित (तद् उभय-उपपादित ?)	= उदयकरि उत्पन्न हुई (=आपादित) (उन दोनों सूक्ष्म और अप्रत्यक्षरूप औदारिक आदि कर्म प्रकृतिरूप शरीरों द्वारा जन्य, शरीरों द्वारा उत्पन्न हुए

(१) दोनों बार की छपी 'सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें तदुदयापादित (तदुभयोपपादित ?) ऐसा पाठ है और हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रतियोंमें तद्द्वयापपादित पाठ है । सूत्र के नीचे राजवार्तिक मुद्रितमें दो हस्तलिखित प्रतियोंमें तदुदयापादित पाठ है ॥ हमने मुद्रित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका पाठ लिया है ॥

मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । सयोगकेवलिनां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । देवगतौ देवानां सर्वेषां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येयभागः ॥ (२) इंन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रियाणां क्षेत्रं सर्वलोकः । विकलेन्द्रियाणां लोकस्यासंख्येयभागः ।

अर्थात् तिर्यचोंके प्रथमसे पांच तक गुणस्थान होसक्ते हैं । प्रथम गुणस्थानवर्तियोंका सब लोक क्षेत्र है शेषका लोकका असंख्यातवां भाग है [सर्वार्थसिद्धि ३३, ३४]

मनुष्यगतौ ७।१ मनुष्याणां ६।३ मिथ्यादृष्टि-आदि-अयोग = मनुष्यगतिमें मनुष्योंका [क्षेत्र] मिथ्यादृष्टिसे अयोग

केवलि-अन्तानां ६।३ लोकस्य ६।१ असंख्येय-भागः १।१ = केवली (चौदहवां गुणस्थानवर्ती) तक लोकका असंख्यातवां भाग है

सयोगकेवलिनां ६।३ सामान्य-उक्तं १।१ क्षेत्रम् १।१ = सयोगकेवलियोंका संक्षेप [प्रकरण] में कथित [गुणस्थानवत्] क्षेत्र है अर्थात् एक कालमें ८९८५०२ इकट्ठे हों अथवा दण्ड और प्रतर समुद्घात करें तो लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है, प्रतर समुद्घातमें लोकके असंख्याते भाग है [=तीन वात वलयोंका क्षेत्र छोडकर सर्व लोक है] और लोक पूर्ण समुद्घातमें सर्व ही लोक है (देखो पृष्ठ ११६ से १२०तक)

देवगतौ ७।१ देवानां ६।३ सर्वेषां ६।३ चतुर्षु ७।३ = देवगतिमें सब देवोंका क्षेत्र चार (मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-असंयत)

गुणस्थानेषु ७।३ लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ = गुणस्थानोंमें लोकका असंख्यातवां भाग है । [देवोंके चार गुणस्थान हो सक्ते हैं]

इन्द्रिय-अनुवादेन ३।१ एकेन्द्रियाणां ६।३ = [२] इन्द्रियोंकी विवक्षासे एकेन्द्रियवालोंका

क्षेत्रं १।१ सर्वलोकः १।१ विकल-इन्द्रियाणां ६।३ = क्षेत्र सर्वलोक है । विकल अर्थात् दो तीन चार इन्द्रियवालोंका (क्षेत्र)

लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ = लोकका असंख्यातवां अंश वा भाग है ॥

---

(१) केवल एक स्पर्शन (त्वक्) इन्द्रिय सहित जीवोंको एकेन्द्रिय कहते हैं । (२) स्पर्शन—रसना दो इन्द्रियवाले जीवोंको द्वीन्द्रिय, स्पर्शन—रसना—नासिका तीन इन्द्रिय वाले जीवोंको त्रीन्द्रिय, स्पर्शन-रसना-नासिका—चक्षुः चार इन्द्रियवाले जीवोंको चतुरिन्द्रिय कहते हैं ॥

भित्यादिभिर्गवादीना च व्याघातो न प्राप्नोति । दृश्यते च व्याघात । तस्मादस्यावकाशदानहीयते इति ॥ नैष दोष । वज्रलोष्टादीना स्थूलाना परस्परव्याघात इति नास्यावकाशदानसामर्थ्यंहीयते- तत्रावगाहिनामेव व्याघातात् । वज्रादय पुन स्थूलत्वात्परस्पर प्रत्यवकाशदान न कुर्वन्तीति नासावाकाशदोष· । ये खलु पुद्गला सूक्ष्मास्ते परस्परं प्रत्यवकाशदानं कुर्वन्ति ॥ यद्येव नेदमा- काशस्यासाधारणं लक्षणमितरेषामपि तत्सद्भावादिति ॥ तन्न । सवपदार्थाना साधारणावगाहनहेतु- त्वमस्यासाधारण लक्षणमिति नास्ति दोष· ॥

भिति आदिभि गो आदीना च व्याघात.नप्राप्नोति	=और(=च)भीत आदिकरि गऊ आदिका रुकाव नहीं प्राप्त होता है
दृश्यते च*व्याघात ,तस्मात् अस्य	=और(ढेलादिकतथागऊआदिका)रोकाजानादेखाजाताहैइसकारणसेइसआकाशका
अवकाशदान हीयते न*एष दोष	=स्थानदान देना चलाजाता है अथवा बाधा जाता है । यह दूषण नहीं है
वज्र लोष्ट आदीनाम् स्थूलाना परस्पर-व्याघात	=वज्र ढेलादिक स्थूल अथवा मोटे (पदार्थ) निका आपसमें रुकाव है
इति*न*अस्य अवकाशदान सामर्थ्यम् हीयते	=इस (आकाश)की अवकाशदानकी शक्ति नहीं बाधी जाती है
तत्र*अवगाहिनाम् एव*व्याघातात्,पुन *वज्र-	=क्योंकितहा(आकाशमें,अवगाह करनेवालोंकेही(परस्पर,व्याघात है और वज्र
आदय स्थूलत्वात् परस्पर प्रति*अवकाश-	=आदिक स्थूल होनेसे एक दूसरेको (=प्रति) स्थान
दानम् न*कुर्वन्ति इति* नअसौ	=दान नहीं करते हैं । न यह(अर्थात् स्थूल पदार्थोंका एक दूसरेसे रुकना)
आकाश दोष. ये खलु*पुद्गला सूक्ष्मा ते	=आकाशका दूषण है । निश्चयसे जे सूक्ष्म पुद्गल है । ते
परस्पर प्रति*अवकाशदान कुर्वन्ति, यदि* एवम्*	=एक दूसरेको (=प्रति) अवकाशदान करते है । (प्रश्न) जो इस प्रकार है (अर्थात् जो सूक्ष्म पुद्गल आपसमें अवकाशदान करते है । तो)
न*इदम् आकाशस्य असाधारणम् लक्षण	=यह (अवकाशदान) आकाशका असाधारण स्वभाव नहीं है
इतरेषाम् अपि* तत्-सद्भावात् इति*	=क्योंकि दूसरोंकेभी उस(अवकाशदानकी) विद्यमानता अथवा अस्तित्व है
तत् न* सर्वपदार्थानाम् साधारण अवगाहन-	=(उत्तर)सो =तत्) नहीं है क्योंकि सब पदार्थोंके साधारण(युगपत्)अवकाशदानका
हेतुत्वम् अस्य असाधारणम् लक्षणम्	=कारण होना इस आकाशका अनूठा वा अपूर्व स्वभाव है
इति*न*अस्ति दोष	=(सो ऐसा) उपर्युक्त दूषण नहीं है भावार्थ यह है कि शिष्यके इसप्रश्न पर कि

उपकार इत्यनुवर्तते ॥ जीवपुद्गलादीनामवगाहिनामवकाशदानमवगाह आकाशस्योपकारो वेदितव्यः ॥ आह जीवपुद्गलानां क्रियावतामवगाहिनामवकाशदानं युक्तम् । धर्मास्तिकायादयः पुनर्निष्क्रिया नित्यसम्बन्धास्तेषां कथमवगाह इति चेन्न—उपचारतस्तत्सिद्धेः । यथा गमनाभावेऽपि सर्वगतमाकाशमित्युच्यते सर्वत्र सद्भावात् एवं धर्माधर्मावपि अवगाहक्रियाभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदर्शनादवगाहिनावित्युपचर्येते ॥ आह यद्यवकाशदानमस्य स्वभावः वज्रादिभिर्लोष्टादीनां-

उपकारः। इति*अनुवर्तते। अवगाहिनाम्। = (इस सूत्रमें) उपकार (शब्द सत्रहवां सूत्रसे) आता है रहनेवाले वा अवगाही

जीव-पुद्गलादीनाम्। अवकाशदानम्।।। अवगाहः। = जीव पुद्गलों, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य कालद्रव्यको स्थानदान देना है सो अवगाह

आकाशस्य।।।उपकारः।वेदितव्यः।आह।जीव-पुद्गलानां = आकाशद्रव्यका उपकार जानना चाहिये । पूछताहै कि जीव पुद्गल

क्रियावतां।अवगाहिनां। अवकाशदानम्।।।युक्तम्।।। = क्रियावाले और अवगाह करनेवालोंके अवकाशदान देना (तो) ठीक है

पुनःधर्मास्तिकाय-आदयः। निष्क्रियाः।नित्यसम्बन्धाः। = किन्तु(=पुनः)धर्मास्तिकायआदिक अर्थात् धर्म अधर्म और आकाश जो क्रियारहित और आपसमें नित्य सम्बन्धवाले है अथवा जो क्रियारहित तथा नित्य सम्बन्धरूप हैं

तेषाम्। कथम्* अवगाहः। इति*चेत्* न* = तिनकों कैसे आकाशका स्थानदान है ऐसी शंका है । यह शंका नहीं होनी चाहिये

उपचारतः*तत्-सिद्धेः।।यथा*गमन-अभावे। अपि* = क्योंकि उपचारसेवाकल्पनासे(अवकाशदानकी)सिद्धि हैजैसेगतिके अभावहोनेपरभी

सर्वगतम्।।।आकाशम्।।।इति-उच्यते।सर्वत्र* सद्भावात्। = सर्वगत आकाश है ऐसा कहागया है क्योंकि आकाशका सर्व स्थानमें अस्तित्व है अर्थात् आकाश है सो सदा गमनरहित है और कहींभी उसका हलनचलन आना जाना नहीं होसकता है निष्क्रिय है तौभी उसको सर्वगत कल्पनासे कहते हैं ।

एवम्*धर्म-अधर्मौ।अपि*अवगाह-क्रिया-अभावे। = इसी प्रकार धर्म अधर्म दोनोंभी अवगाहरूप क्रियाके न होनेपर

अपि*सर्वत्र-व्याप्ति-दर्शनात्। अवगाहिनौ। इति* = भी(लोकाकाशके) सर्वस्थानमें प्रवेशताके उपलब्धसे अवगाह करनेवाली

उपचर्येते। आह।यदि*अवकाशदानम्।।। = कल्पी जाती हैं वा मानी जाती हैं । पूछता है कि जो स्थान दान देना

अस्य।।। स्वभावः। वज्रादिभिः। लोष्ट-आदीनाम्। = इस(आकाश)का गुण और लक्षण होता तो वज्रादिसे ढेला वा गोलादिका

(१) उपचर्येते = उपचर्य + इते = चर धातुमे उप उपसर्ग लगाकर कर्मणिप्रधान, अन्यपुरुष द्विवचन वर्तमान क्रियाका 'इते' प्रत्यय लगाकर बनाया है

(२) 'आदयः' यह शब्द दोसे अधिक संख्याका बोधक है और छह द्रव्योंमें इस अध्यायके सातवां सूत्रके अनुकूल धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाश ...क्रियारहित हैं शेषदो द्रव्यजीव, औरपुद्गलक्रियासहित हैंअतःअनुवादम हमने धर्म अधर्म आकाशद्रव्योंकाही ग्रहणकियाहै क्योंकि कालअस्तिकायनहींहै॥

सर्वज्ञेन निरतिशयप्रत्यक्षज्ञानचक्षुषा धर्मादय सर्वे उपलभ्यन्ते। तदुपदेशाच्च श्रुतज्ञानिभिरपि॥

अत्राह यद्यतीन्द्रिययोर्धर्माधर्मयोरुपकारसम्बन्धेनास्तित्वमवध्रियते, तदनन्तरमुद्दिष्टस्य नभसो-ऽतीन्द्रियस्याधिगमे क उपकार इत्युच्यते—

॥ आकाशस्यवगाह ॥ १८ ॥

सर्वज्ञेन निरतिशय प्रत्यक्षज्ञान चक्षुषा	=सर्वज्ञके परमोत्कृष्ट (=निरतिशय) प्रत्यक्ष(केवल)ज्ञानरूपी नेत्रेन्द्रियकरि
धर्म आदय सर्वे उपलभ्यन्ते। च* तद्-	=धर्मादिक समस्त (द्रव्यें) जानी गई है और उस (सर्वज्ञ) के
उपदेशात् श्रुतज्ञानिभि अपि*, अत्र*आह।	=उपदेशसे श्रुतज्ञानियोंकरिभी (जानी गई) है। यहा पूछता है कि
यदि*अतीन्द्रिययो धर्म अधर्मयो उपकार-	=यदि धर्म-अधर्मद्रव्योंकी (जो इन्द्रियोंसे नही जानेजासकते हैं) उपकारके
सम्बन्धेन अस्तित्वम् अवध्रियते (१ तदनन्तरम्	=संयोगसे विद्यमानता निश्चय कीजाती है तो उन(धर्म अधर्म)के अत्यन्त समीप
उद्दिष्टस्य नभस अतीन्द्रियस्य अधिगमे	=कथित इन्द्रिय अगोचर आकाशके जानने में
क उपकार (२ इति* उच्यते।	=क्या उपकार वा सहायता है इस हेतुसे(=इति)(उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

सूत्रम्–(३ आकाशस्यावगाह ॥१८॥ = (जीवानाम्-अजीवानाम् च)आकाशस्य(उपकार)अवगाह

सूत्रार्थ —जीवानाम् च अजीवानाम् आकाशस्य	=जीवोंको और अजीवोंको आकाश द्रव्यका
उपकार अवगाह	=उपकार, सहारा, अथवा सहायता, अवकाशदान देना वा स्थानदान देना है अर्थात् समस्त जीव और अचेतन द्रव्योंको स्थानदान देना आकाशका उपकार है

(१) "अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गला" इस प्रथम सूत्रमें धर्मअधर्मके समीपही आकाश द्रव्यका कथन है इसलिये अग्रिम सूत्रमें आकाशका उपकार कहते हैं।

(२) "इति हेतु प्रकरण प्रकाशादि समाप्तिषु" अमरकोश नानार्थ वर्ग श्लोक २४६ इति यह एक नाम हेतु प्रकरण-प्रकाश निश्चय समाप्ति शब्दों का है यहा पर हेतु अथवा कारणके अर्थमें लिया है इससे 'इति का अनुवाद 'इस हेतुसे' ऐसा किया गया है॥

(३)इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। "अजीवानाम्' शब्दका अध्याहार कियागया है। 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पन्द्रहवा सूत्रसे लीगई है और 'च' शब्दकी दशवा सूत्रसे लीगई है। उपकार सत्रहवा सूत्रसे अनुवर्तता है॥

अनुपलब्धेर्न तौ स्तः खरविषाणवदिति चेन्न—सर्वप्रवाद्यविप्रतिपत्तेः। सर्वे हि प्रवादिनः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षानर्थानभिवाञ्छन्ति ॥ अस्मान्प्रतिहेतोरसिद्धेश्च।

अनुपलब्धेः[५।१] तौ[१।२] [(१)] खरविषाणवत्* न* स्तः[I] =क्या आंखकरि न दीखनेसे धर्म-अधर्म ये दोनों (द्रव्यें) गधाके सींगके सदृश नहीं है

इति* चेत्* =ऐसी शंका है अर्थात् जैसे संसारमें गधा (वा शश खरहा) के सींगोंकी कल्पना है विद्यमानता नहीं है क्योंकि किसीने अपनी आंखोसे नहीं देखे हैं वैसेही धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य केवल कल्पनामात्रहै वास्तविक वा यथार्थमें उनका कोई अस्तित्व नहीं है ऐसी शंका है ॥

न* =(उत्तर) (ऐसा संदेह कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य नेत्रोंसे न दीखनेसे गधाके सींगके तुल्य कल्पित द्रव्य है) नहीं (होना चाहिये)

सर्व- [(२)] प्रवादि-अविप्रतिपत्तेः[५।१] =क्योंकि (ऐसे अस्तित्वमें) सब प्रतिवादियोंको (हमारे साथ) अविरोध (=विवाद नहीं) है

सर्वे[१।३] हि* [(२)] प्रवादिनः[१।३] प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षान्[२।३] =समस्त ही (=हि) अन्य मतावलम्बी प्रत्यक्ष और परोक्ष

अर्थान्[२।३] अभिवाञ्छन्ति[I] अस्मान्[२।३] प्रति* =पदार्थोंको मानते हैं हम प्रति अर्थात् हमारे ऊपर

हेतोः[५।१] असिद्धेः[५।१] च* =(तुम्हारे इस) साधनकी (कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य अनुपलब्ध हैं) सिद्ध भी नहीं है ॥

भावार्थ यह है कि हम स्याद्वादीनके ऊपर तुम्हारा यह साधन कि धर्म, अधर्मद्रव्यें अनुपलब्ध हैं उनका अस्तित्व गधेके सींग सदृश है निम्नलिखित कारणसे लागू नहीं है

---

(१) संसारमें चार वस्तुयें (क) खर अथवा शशविषाण (ख) बांझ स्त्रीका पुत्र (ग) मृगतृष्णा (४) आकाशका फूल ये विद्यमान नहीं है। जब किसी वस्तुके अभावको प्रगट करना होता है तब इन चार पदार्थोंसे प्राय. एक वा दोका नाम लेते हैं। ये चारों वस्तुये निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट हैं

"एष वन्ध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखरः। मृगतृष्णाम्भसि स्नातः शशशृङ्गधनुर्धरः ॥ १ ॥

एष[१।१] वन्ध्यासुत[१।१] याति[I], (एषः) ख-पुष्प-कृत शेखर[१।१] =यह बांझ स्त्रीका पुत्र जाता है। यह आकाशके फूलोंकी बनाई हुई शिखा वा चोटी है

(एष) मृगतृष्णा-अम्भसि[७।१] स्नातः[१।१] (एषः) शशशृङ्ग-धनुर्धरः[१।१] =यह मृगतृष्णाके नीर (धूपमेंजलभ्रान्ति) मेंन्हायाहुआहै यह खरके सींगकेधनुषकाधारीहै

(२) प्रथम वारकी छुपी हुई सर्वार्थसिद्धिमें 'प्रतिवादिन्' शब्द, इन दो स्थानोंपर है परन्तु द्वितीय संस्करणमें और तीन हस्तलिखित प्रतियों में 'प्रवादिन्' शब्दका दोनों स्थानोंमें प्रयोग किया गया है। दोनों शब्दोंका लगभग एकही अर्थ है हमने 'प्रवादिन्'का प्रयोग किया है क्योंकि ये पाठ बहुतसी प्रतियोंमें पाये जाते हैं ॥

भूमिजलादीन्येव तत्प्रयोजनसमर्थानि नार्थो धर्माधर्माभ्यामिति चेन्न–साधारणाश्रय इति विशिष्योक्तत्वात् । अनेककारणसाध्यत्वाच्चैकस्य कार्यस्य ॥ तुल्यबलवत्त्वात्तयोर्गतिस्थितिप्रतिबन्ध इति चेन्न–अप्रेरकत्वात् ॥

नहीं होसकता है क्योंकि ठहराने और गमन करने में सहायक होना यदि ये कार्य आकाशके माने जावेंगे तो आकाश तौ अलोकाकाशमें भी है तो वहापरभी जीवपुद्गल गति और स्थिति करसकेंगे अत. लोक अलोकके विभागका लोप होजावैगा ॥

भूमि जलादीनि[१]॥।एव*तत् प्रयोजन समर्थानि[१]॥ = भूमि जलादिक ही उस (गति स्थति) के प्रयोजनके लिये समर्थ हैं तो

न अर्थ[१]।धर्म अधर्मभ्याम्[५]॥। इति*चेत्*न* = धर्म, अधर्म द्रव्योंसे प्रयोजन नहीं ऐसी शका है । यह शका नहीं होनी चाहिये

साधारण- = (धम अधर्म द्रव्यें सब जीव पुद्गलोंको एक कालम गतिस्थितिका) साधारण

आश्रय[१]। इति* = आश्रय है (क्योंकि किसी किसी द्रव्यके एक एक प्रयोजनके सम्ब धमें जल पृथिवी आदि गमन स्थिति आदि उपकार करनेमें)

विशिष्य-उक्तत्वात्[५]॥,च*एकस्य[६]॥कार्यस्य[६]॥अनेक = विशेष आश्रयरुप कहे जाते ह । और (=च) एक कार्यको अनेक

कारण साध्यत्वात्[५]॥, = कारण सिद्धि करने योग्य वा साधनीय ह अर्थात् एक कार्यको अनेक कारण साधते है सो यहा स्थितिमें पृथिवी भी कारण हे और अधर्मद्रव्य भी कारण हैं

तुल्य बलवत्वात्[५]॥ तयो[६]। = (धर्म अधर्मद्रव्यें) समान बलवान होनेसे तिन दोनोंमें

गति स्थिति प्रतिबन्ध[१]। इति* चेत्* = गतिस्थितिका विरोध होगा ऐसी शका है अर्थात् जव धमद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनों समान बलवाले है सो जिस काल धर्मद्रव्य जीव पुद्गलोंको गमन कराती होगी उसीसमय अधर्मद्रव्य स्थिति कराती होगी तब गमन स्थिति दोनोंकी रोक होती होगी ॥

न* = सो नहा ।(धर्मद्रव्य जीव,पद्गलोंके गतिके निमित्तह अधर्मद्रव्य उनकी स्थितिकेहैसो)

अप्रेरकत्वात्[५]॥ = अप्रेरक वा बलाधान भावसे हैं अर्थात् यदि जीव पुद्गल चलें तो धर्मद्रव्य उदासीनतासे चलनेम निमित्त होती है और यदि ठहरें तो एसेही अधर्म द्रव्य स्थितिमें ऐसी प्रेरणा न करें कि अमुक जीव पुद्गल चलें अमुक ठहरे रहैं ॥

सर्वार्थ सिद्धि ४४७

निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनम् । धर्माधर्मयोर्गतिस्थित्योश्च यथासंख्यं भवति, एवं जीवपुद्गलानां यथासंख्यं प्राप्नोति धर्मस्योपकारो जीवानां गतिः अधर्मस्योपकारः पुद्गलानां स्थितिरिति । तन्निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनं क्रियते ॥ आह धर्माधर्मयोर्य उपकारःस आकाशस्य युक्तः सर्वगतत्वादिति चेत्—तदयुक्तं, तस्यान्योपकारसद्भावात् सर्वेषां धर्मादीनां द्रव्याणामवगाहनं यत्प्रयोजनम् । एकस्यानेकप्रयोजनकल्पनायां लोकालोकविभागाभावः ॥

निवृत्ति-अर्थम् $^{1}_{1}$ उपग्रह-वचनम् $^{1}_{1}$ धर्म-	=निषेधके लिये उपग्रहका कथन (इस सूत्रमें) है धर्मद्रव्य
अधर्मयोः $^{6}_{2}$ गति-स्थित्योः $^{6}_{2}$ च*यथासंख्यम्*भवति	=अधर्मद्रव्यमें और गतिस्थितिमें यथासंख्य सम्बन्ध होजाता है अर्थात् धर्मद्रव्य का गमनसे सम्बन्ध होजाता है और अधर्मद्रव्यका स्थितिसे सम्बन्ध होजाता है
एवम्*जीव-पुद्गलानाम् $^{6}_{3}$ यथासंख्यम्*प्राप्नोति	=इस प्रकार जीवों और पुद्गलोंका(भी) यथासंख्य(क्रम)प्राप्त होता है
धर्मस्य-उपकारः $^{1}_{1}$ जीवानाम् $^{6}_{3}$ गतिः $^{1}_{1}$ अधर्मस्य $^{6}_{1}$	=(तब)धर्मद्रव्यका उपकार जीवोंका गमन अधर्मद्रव्यका
उपकारः $^{1}_{1}$ पुद्गलानां $^{6}_{3}$ स्थितिः $^{1}_{1}$ इति*तत्-निवृत्ति-अर्थम् $^{1}_{1}$	=उपकार पुद्गलोंकी स्थिति ऐसा अर्थ होजाता है, उसके निषेधके लिये (इस सूत्रमें)
उपग्रह-वचनम् $^{1}_{1}$ क्रियते; आह धर्म-अधर्मयोः $^{6}_{2}$ यः $^{1}_{1}$	=उपग्रह वचन किया है (शिष्य) कहता है कि धर्म अधर्म द्रव्योंका जो
उपकारः $^{1}_{1}$ सः $^{1}_{1}$ आकशस्य $^{6}_{1}$ युक्तः $^{1}_{1}$ सर्व-गतत्वात् $^{5}_{1}$	=उपकार है सो(उपकार)आकाशके युक्त है क्योंकि(आकाश)सर्वत्र व्यापी है
इति*चेत्*तद् $^{1}_{1}$ अयुक्तम् $^{1}_{1}$ तस्य $^{6}_{1}$ अन्य-उपकार-	ऐसी शंका है(उत्तर)सो ठीक नहीं है क्योंकि तिस (आकाशके) दूसरे उपकारकी
सद्भावात् $^{5}_{1}$; सर्वेषाम् $^{6}_{3}$ धर्मादीनाम् $^{6}_{3}$ द्रव्याणाम् $^{6}_{3}$	=विद्यमानता है (अर्थात्) समस्त धर्मादिक द्रव्योंको
अवगाहनम् $^{1}_{1}$ तत्-प्रयोजनम् $^{1}_{1}$	=स्थान दान देना वा अवकाश दान देना उस(आकाश)का प्रयोजन है
एकस्य $^{6}_{1}$ अनेक-प्रयोजन-कल्पनायाम् $^{7}_{1}$	=एक (आकाश)के अनेक प्रयोजन माननेमें
लोक-अलोक विभाग-अभावः $^{1}_{1}$	=लोक अलोकके विभागका अभाव होता है। भावार्थ—यह है कि इस प्रश्नके होनेपर कि गमन और ठहरावका उपकार धर्म अधर्म द्रव्योंका न होना चाहिये

किन्तु आकाश जो सर्वत्र व्यापक है गतिस्थितिका उपकारी है उत्तर में आचार्य्य कहते हैं कि आकाशका असाधारण गुण द्रव्योंको स्थान दान देनेका है यदि उसका कोई दूसरा उपकार कल्पना करते हैं तो लोक अलोक का विभाग

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानामिति दर्शनावरणापेक्षया भेदनिर्देशः-चक्षुर्दर्शनावरणमचक्षुर्दर्शनावरणमवधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणमिति ॥ मदखेदक्लमविनोदनार्थं स्वापो निद्रा । तस्या उपर्युपरि वृत्तिर्निद्रानिद्रा । या क्रियाऽऽत्मानं प्रचलयति सा प्रचला शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका ।

प्रचलाप्रचलादर्शनावरणम् ¹''' =सो प्रचलाही फिर फिर प्रवर्ते सो प्रचला प्रचला है भावार्थ प्रचलाप्रचलादर्शनावरणकर्म प्रकृतिके उदयसे अत्यन्त घूमताहै अत्यन्त ऊंघता है मुहसे लार बहने लगती है अङ्ग उपांग चलायमान होतेहै कोई शरीरमें शलाका आदि चुभावे तो भी चेतना नहीं होती है

स्त्यानगृद्धिर्दर्शनावरणम् ¹''' जिसकरि सोवनेमें विशेष बल वा सामर्थ्यका प्रकटपना सो स्त्यानगृद्धि है भावार्थ जिस निद्राके आने पर चेतन्यसा होकर अनेक रौद्रकर्म करने लगता है बहुत पराक्रमकर लेता है और फिर अचेत हो जाता है फिर निद्रा छूटने पर वह नहीं जानताहै कि मैंने क्या क्या काम कर डाले उस निद्राका स्त्यानगृद्धिदर्शनावरण कर्मप्रकृति कहते है

एते¹'दर्शनावरणप्रकृतिविकल्पस्य¹'नवभेदा ¹'भवन्ति =ये दर्शनावरण प्रकृतिके नवभेद होते हैं

शब्दार्थ -चक्षुर्-अचक्षुर्-अवधि-केवलानाम्=चक्षुका, अचक्षुका-अवधिका, केवलका

दर्शन-आवरण-अपेक्षया¹'' भेदनिर्देशः¹' =दर्शनावरणकी अपेक्षासे भेद निर्देश है ।

चक्षुर्दर्शनावरणम्¹'' अचक्षुर्दर्शनावरणं¹'''अवधि=चक्षुर्दर्शनावरणम् अचक्षुर्दर्शनावरणम्-अवधि

दर्शनावरणम्¹'''केवलदर्शनावरणम्¹'''इति॰मद-=दर्शनावरण और केवलदर्शनावरण ऐसे हुये । मत्तता (=मद) चित्तकी उद्रेकता (=मद)

खेद-क्लम-विनोदन-अर्थं¹' स्वापः¹' निद्रा¹''=दुःख वा शोक (=खेद) थकावट(=क्लम)खंडन(=विनोदन) केलिये शयन वा सोवना सोनिद्रा है

तस्याः¹'' उपर्युपरि॰वृत्तिः¹'' निद्रानिद्रा¹'' =तिस निद्राकी पुनि पुनि (=उपर्युपरि) प्रवृत्ति सो निद्रानिद्रा है (=नींदपैनींद है)

या¹'''क्रिया¹''आत्मानं¹'प्रचलयति¹सा¹' प्रचला¹''=जो क्रिया चेतनको चलाती है वा चलायमान करतीहै सो प्रचला है

शोक-श्रम-मदादि-प्रभवा¹'' =शोक-खेद-मद-आदिकको उत्पादक अथवा उपजाने वाली है (=प्रभव¹'')

आसीनस्य¹ अपि॰नेत्र गात्र विक्रिया सूचिका¹'' =बैठे हुये के भी नेत्रमें शरीरमें विकार (=विक्रिया) की छेदनेवाली है

---

(१) प्रचलयति-यह वाक्य 'चल्' भ्वादि प्रथम गण परस्मैपदी अकर्मक धातुसे सहेतुक सकर्मकधातु ऐसे बनाया गया है कि चल् (=चलना)मेंश्रय

सैव पुनःपुनरावर्तमाना प्रचलाप्रचला। स्वप्नेऽपि यया वीर्यविशेषाविर्भावः सा स्त्यानगृद्धिः। स्त्यायतेरनेकार्थत्वात्स्वप्नार्थ इह गृह्यते। गृद्धिरभिदीप्तिः। स्त्याने स्वप्ने गृद्ध्यति दीप्यते यदुदयादात्मा रौद्रं बहुकर्म करोति सा स्त्यानगृद्धिः॥ इह निद्रादिभिर्दर्शनावरणं सामानाधिकरण्येनाभिसम्बध्यते—निद्रादर्शनावरणं निद्रानिद्रादर्शनावरणमित्यादि॥

तृतीयस्याः प्रकृतेरुत्तरप्रकृतिप्रतिपादनार्थमाह—

सदसद्वेद्ये॥८॥

सा ¹''एव*पुनः*पुनः* आवर्तमाना ¹'' प्रचलाप्रचला ¹''; =सो ही फिर फिर आवते वा लौट लौटकर आवे सो प्रचला प्रचला है।

स्वप्ने ⁷' अपि*यया ³''वीर्य-विशेष-आविर्भावः¹' सा ¹'' =सोवनेमें भी जिसकरि बल वा सामर्थ्यकी अधिक प्रगटता हो सो

(१)स्त्यानगृद्धिः¹''; स्त्यायतेः ⁶' अनेक-अर्थत्वात् ⁵''' =स्त्यानगृद्धि है, । स्त्यायति (धातु) के विविध अर्थ होनेसे

स्वप्न-अर्थः¹' इह*गृह्यते I; गृद्धिः¹'' =इस स्थान (अर्थात् इस सूत्र) में स्वप्न अर्थ लियागया है। गृद्धि है सो

अभिदीप्तिः¹''; =अभिदीप्ति है अर्थात् प्रशस्त वा विशेष (=अभि) कान्ति (=दीप्ति) को कहते हैं।

स्त्याने ⁷' स्वप्ने ⁷' गृद्ध्यति-दीप्यते T। =सोवनेमें(=स्त्याने)स्वप्नमें जो प्रकाश होता है, दिपता है (सो स्त्याने गृद्ध्यति है)

यद्-उदयात्⁵' आत्मा¹' रौद्रम्²' ''बहुकर्म ²'॥ करोति I सा¹'' =जिसके उदयसे जीव डरावने (=रौद्र) अनेक कार्य करता है सो

स्त्यानगृद्धिः¹' ;इह* दर्शनावरणम्¹''' निद्रा- =स्त्यानगृद्धि है। यहांपर (=इह) दर्शनावरण निद्रा-

आदिभिः³''' समानअधिकरण्येन³''' अभिसम्बध्यते T- =निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धिसे समान अधिकरणरूपमेंजोडाजाता है।

निद्रादर्शनावरणं¹''' निद्रानिद्रादर्शनावरणं¹''' इति* आदि¹''' =तब निद्रा दर्शनावरण-निद्रानिद्रादर्शनवरण-प्रचलादर्शनावरण प्रचलाप्रचला दर्शनावरण-स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण ऐसे होते हैं

तृतीयस्याः⁶''प्रकृतेः⁶॥उत्तर-प्रकृति-प्रतिपादन-अर्थम्¹'''आह=तीसरी (वेदनीय) प्रकृतिके उत्तर प्रकृति (केभेद) कहनेकेलिये कहते हैं कि

सदसद्वेद्ये = सद्वेद्यम् असद्वेद्यम् च वेदनीयम् द्विभेदः भवति। दोनों समाजमें सूत्रका एकपाठ है

हेतुक प्रत्यय लगाकर फिर प्र उपसर्ग जोड़ने से प्र+चल्+अय रूप हुआ पश्चात् प्रथम पुरुष एक वचन कर्तरि प्रयोग लट् वर्तमान काल द्योतक क्रियाका 'ते' चिन्ह लगाने से प्रचलयति बनाया। चल धातुके अकारको वृद्धिकरनेसे चाल् होजाता है, प्र+चाल्+अय+ति प्रचालयति बना, धातु जो स्वतः सकर्मक नहीं है, अक्षरों, मात्राओं के घटाने, बढाने वा पलटनेके कारण अकर्मकसे सकर्मक बनजाता है तब सहेतुक सकर्मक कहलाता है॥ (१) स्त्यानगृद्धि=स्त्यानेगृद्धि, स्त्याने=सोनेमें, गृद्धि=(पराक्रमरूप) दिपना, सोनेमें पराक्रम रूप दिपना वैसा स्त्यान गृद्धि वाक्यका शब्द है।

यदुदयाद्देवादिगतिषु शारीरमानससुखप्राप्तिस्तत्सद्वेद्यं प्रशस्त वेद्य सद्वेद्यमिति ॥ यत्फलदु.ख-
मनेकविध तदसद्वेद्यमप्रशस्त वेद्यमसद्वेद्यमिति॥चतुर्थ्या. प्रकृतेरुत्तरप्रकृतिविकल्पनिर्दर्शनार्थमाह

॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडश-
भेदाःसम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशो-
कभयजुगुप्सास्त्रीपन्नपुंसकवेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्या-
ख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ –सद्वेद्यम्॥''असद्वेद्यम्''''च*वेदनीयम्''''द्विभेदम्'''' =प्रशस्तवेदने योग्य और(=च)अप्रशस्त वेदनेयोग्य दो भेद वेदनीय (कर्म)के
भवति T =होतेहै अर्थात् सातावेदनीय और असातावेदनीय ऐसे दो प्रकारका वेदनीयहै

वृत्त्यनुवाद –यद्–उदयात्''देवादिगतिषु'' शारीर–मानस–=जिसके उदयसे देवादि गतियों में शारीरिक और मन सम्बन्धी वा मानसिक
सुखप्राप्ति ॥'' तत्''''सद्वेद्यम्''''प्रशस्तम्'''' =सुखकी प्राप्ति वा लब्धि होताहै वह सातावेदनीयहै,सराहनेयोग्य (=प्रशस्त)
वेद्यम्''''सद्वेद्यम्''''इति* ,यत्फलम्''' दु खम्''''अनेकविधम्''''=वेदनीय है सो सद्वेद्य है। जिसका फल नाना प्रकार क्लेश हो
तत्–मसद्वेद्यम्''''मप्रशस्तम्''' 'वेद्यम्''''असत्–वेद्यम्''''इति*,।=वह असाता वेदनीय है असराहने योग्य वेदनीय है, ऐसा असद्वेद्य है ॥
चतुर्थ्या ''प्रकृते ''उत्तर प्रकृति विकल्प निर्दर्शन अर्थम्''''आह T=चौथा (मोहनीय) प्रकृतिके उत्तर प्रकृतिकेभेद दिखानेके लिये कहते है कि

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदा' सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभ-
यान्यकषायकषायौहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपु सक वेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-
प्रत्याख्यानसज्वलनविकल्पाश्चैकश क्रोधमानमायालोभा' ॥ ९ ॥

सूत्रका पदच्छेद-दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीय-अकषायवेदनीय-कषायवेदनीय- आख्याः त्रि-द्वि-नव-षोडश भेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयानि-अकषाय-कषायौ-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुन्-नपुंसक-वेदा-अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाः च एकशः क्रोध-मान-माया-लोभाः (एते मोहनीयस्याष्टाविंशतिभेदाः भवन्ति) ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीय-अकषाय=दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीय-अकषाय

वेदनीय-कषायवेदनीय-आख्याः[३] त्रिद्वि-नव-षोडश-भेदाः=वेदनीय-कषाय वेदनीय नामवाले (मोहनीय कर्म) के (क्रमसे) तीन-दो-नौ-सोलह-भेद-हैं अर्थात् दर्शनमोहनीयके तीन भेद हैं-चारित्रमोहनीयके दो भेदहैं-अकषायवेदनीयके नौभेद हैं और कषाय वेदनीयके सोलह भेद हैं

सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयानि [३] =सम्यक्त्व, मिथ्यात्व-सम्यक् मिथ्यात्व-(तद्-उभय-वेदोंनों) (दर्शनमोहनीयके) हैं

अकषाय-कषायौ[२] हास्य-रति-अरति- =नोकषाय(=अकषाय=ईषत् कषाय) कषाय(चारित्र मोहनीय के) हैं- हास्य-रति-अरति-

शोक-भय-जुगुप्साः[३] स्त्री-पुन्-नपुंसक वेदाः[३] =शोक, भय, जुगुप्सा-स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसकवेद- (नोकषाय) हैं

च*अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान- =(और)=च अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-

संज्वलन-विकल्पाः[३] एकशः *क्रोध-मान-मायलोभाः[३]=संज्वलन (तिन) एक एक के क्रोध, मान, माया, लोभ [१६ कषाय के] भेद हैं

एते[३] मोहनीयस्य[६] अष्टाविंशतिभेदाः[३] भवन्ति T =इतने मोहनीय [कर्म]के अट्ठाईस भेद होते हैं अर्थात् (१) अनन्तानुबन्धी क्रोधकषाय (२) अनन्तानुबन्धीमानकषाय (३) अनन्तानुबन्धीमायाकषाय (४) अनन्तानुबन्धीलोभ कषाय (५) अप्रत्याख्यान क्रोधकषाय (६) अप्रत्याख्यान मानकषाय (७) अप्रत्याख्यानमाया कषाय (८)अप्रत्याख्यान लोभ कषाय (९) प्रत्याख्यान क्रोध कषाय(१०)प्रत्याख्यानमान कषाय(११) प्रत्याख्यानमाया कषाय १२-प्रत्याख्यान लोभ कषाय (१३) संज्वलन क्रोध कषाय (१४) संज्वलनमानकषाय (१५) संज्वलन माया कषाय-(१६) संज्वलन लोभ कषाय भावार्थ मोहनीय कर्मके दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय-ये दो तो मूल भेद हैं और दर्शन मोहनीय-, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, और सम्यग् मिथ्यात्व अर्थात् मिश्रमोहनीय ऐसे तीन प्रकार का है और चारित्र मोहनीयके अकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय दो भेद है।

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें अकषाय कषायके स्थानमें कषायनोकषाय है अकषायका वोही अर्थ है जो नो कषाय का है, क्योंकि सभाष्य०में कषायको प्रथम कहकर पश्चात् नो कषाय शब्द है इसी हेतु से क्रमानुसार अथवा यथासंख्यके नियमानुसार षोडश नव भेदाः वाक्य नव षोडश भेदाः वाक्यके स्थानमें लाये है आगे चल कर अर्थात् तदुभयानि के पीछे अकषाय कषायौ वाक्यके स्थानमे कषाय

पञ्चेन्द्रियाणां मनुष्यवत् ॥ [२] कायानुवादेन–पृथिवीकायादिवनस्पतिकायिकान्तानां सर्वलोकः। त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् ॥

पञ्च-इन्द्रियाणां ६। मनुष्यवत् *	=पांच इन्द्रियवाले जीवोंका [क्षेत्र] मनुष्य (के क्षेत्रके) समान है अर्थात् लोकके असंख्यातवां भाग है [म० सर्वा० पृष्ठ ३५ पंक्ति ३-४]
(२) काय-अनुवादेन ३।-पृथिवीकायिक-आदि	=[२] कायके कथनानुसारकरि-पृथिवीकायिकसे [लेकर]
वनस्पति-कायिक-अन्तानां ६। सर्वलोकः १।	=वनस्पति कायिक पर्यंतोंका [क्षेत्र] समस्त लोक है।
त्रसकायिकानां ६। पञ्च-इन्द्रियवत् *	=त्रसकायिकोंका [क्षेत्र] पांच इन्द्रियवाले जीवोंके सदृश है अर्थात् लोकके असंख्यातवां भाग है। भावार्थ यह स्पष्ट है कि लोकका यह असंख्यातवां भाग पंचेंद्रिय जीवोंके लोकके असंख्यातवां भागसे बड़ा होगा क्योंकि त्रस में पंचेंद्रिय जीव भी सम्मिलित हैं और द्वीन्द्रिय-त्रींद्रिय-चतुरिंद्रिय जीव भी अंतर्गत हैं (देखो टिप्पणी पृष्ठ ९९-१००]

(१) स्पर्शन, रसना (=जीभ) नासिका (=नाक) चक्षु (=नेत्र आंख, नयन) और कान (*कर्ण श्रवण*) सहित जीवोंको पंचेंद्रिय कहते हैं।

(२) भागहारभूतासंख्यातस्यानेकविधित्वेन क्षेत्रस्य तारतम्यसद्भावेऽपि लोकस्यासंख्येयभागत्वाविशेषात् मनुष्यवदिति वचनम्।

भागहार-भूतासंख्यातस्य ६। अनेकविधित्वेन ३।	=क्योंकि असंख्यात (भाज्य) का बहुत प्रकारसे भागहार होते हैं वा विभाग किया जा सक्ता है
क्षेत्रस्य ६।	=(इसलिये पंचेन्द्रियोंके) क्षेत्रका (मनुष्योंके क्षेत्रसे)
तारतम्यसद्भावे ७। अपि	=भेद वा न्यूनाधिक (=तारतम्य) होनेपर भी
लोकस्य ६। असंख्येयभागत्व+अविशेषात् ५।	=संक्षेपसे लोकका असंख्यातवां भाग होता है (=भागत्व)
मनुष्यवत् - इति वचनम् १।	=(इसकारण) मनुष्य सदृश ऐसा वाक्य है। भावार्थ यह है कि लोकके असंख्यात

अकषायवेदनीयं नवविधं, कषायवेदनीयं षोडशविधिमिति ॥ तत्र दर्शनमोहनीयं त्रिभेदं सम्यक्त्वं, मिथ्यात्वं, तदुभयमिति। तद्बन्धंप्रत्येकं भूत्वा सत्कर्मापेक्षया त्रिधा व्यवतिष्ठते॥ तत्र यस्योदयात्सर्वज्ञप्रणीतमार्गपराङ्मुखस्तत्त्वार्थश्रद्धाननिरुत्सुको हिताहितविचारासमर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वम्। तदेव सम्यक्त्वम्

अकषायवेदनीयम् २।।। नवविधम् २।।। कषायवेदनीयम् २।।। =अकषाय वेदनीय नौ प्रकार,कषाय वेदनीय
षोडशविधम् २।।। इति*; तत्रदर्शनमोहनीयम् २।।।त्रिभेदम् २।।।=सोलह प्रकार ऐसे हैं तहां दर्शनमोहनीय तीन प्रकार है,
सम्यक्त्वम् २।।।, मिथ्यात्वम् २।।।, तद्-उभयम्२।।।इति*। =सम्यक्त्व,मिथ्यात्व, दोनों(सम्यक्त्व मिथ्यात्व)अर्थात् मिश्रमोहनीयऐसे (तीन)है
तद्-बन्धम् २। प्रति* एकम् २।।। भूत्वा * सत्कर्म-- =वो (दर्शनमोहनीय)बन्ध अपेक्षासे एक(मिथ्यात्वरूप)होते हुये(उदय)सत्ताकर्मकी
अपेक्षया २।। त्रिधा* (१) व्यवतिष्ठते T ॥ =विवक्षासे तीन प्रकार विशेष रूपसे तिष्टता है वा रहता है (=व्यवतिष्ठते)
तत्र*यस्य २। उदयात् २। सर्वज्ञ--प्रणीत-मार्ग-पराङ्मुखः२। =तहां जिसके उदयसे (=उदयात्) सर्वज्ञकृत वा सर्वज्ञभाषित (मोक्ष) पथसे विमुख
तत्त्वार्थ-श्रद्धान-निरुत्सुकः२।हित-अहित-विचार-असमर्थः२।=तत्त्वार्थकेविश्वासमेंउत्साह रहित हित-अहितके निर्णयमें(=विचार)...मर्थहो
मिथ्यादृष्टिः२। भवति T तद्-मिथ्यात्वम्२।।।; =सो मिथ्यादृष्टि होता है, उस (उपर्युक्त) मिथ्यादृष्टीका भाव
सो मिथ्यात्व प्रकृति है अर्थात् जिसके उदयकरि सर्वज्ञके कहेहुए मोक्षमार्गसे विमुखपना तत्त्वार्थके विश्वासमें निरुत्सुकपना वा उद्यमरहितपना और हित अहित की परीक्षासेरहितपना सो मिथ्यात्व है।
तद्२।।। एव * =(दर्शनमोहनीय कर्मकी मिथ्यात्व प्रकृति है) वह (=तद्=मिथ्यात्व) ही (=एव)
(२) सम्यक्त्वम् २।।। =सम्यक्त्व है अर्थात् तिसही मिथ्यात्वके भेदको सम्यक्त्व मिथ्यात्व संज्ञा है ॥

---

(१)यह शब्दवि(=विशेषतासे,)+अव+स्थ+तेकरि बनाहै स्था का तिष्ठ विनाकिसी नियमके होजाता है। वि+अव+तिष्ठ्+अ+ते=व्यवतिष्ठते

(२)जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण
यंत्रेण कोद्रवं वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयन्त्रेण
} (मिथ्यात्व के ये तीन भेद गोम्मटसारके कर्मकाण्डकी इस २६वीं गाथा में कहे गये हैं) =कलकरि (=घरटीकरि) कोदों सदृश प्रथमोपशमसम्यक्त्वभाव वा परिणामरूप कलसे

मिच्छं दव्व तु तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा
मिथ्यात्वम् द्रव्यम् तु त्रिधा असंख्यगुणहीनद्रव्यक्रमात्
} =मिथ्यात्व (रूपी) कर्मद्रव्य-क्रमसेअसंख्यातगुणा हीन होताहुआ तीनप्रकार होजाताहै भावार्थ जैसे कोदों-धान्य विशेष दलने पर, भुसी तन्दुल और कण ऐसे तीन रूप हो जाताहै उसी प्रकार मिथ्यात्वरूप कर्मद्रव्य भीउपशम-सम्यक्त्वरूपी यन्त्रकेद्वारा मिथ्यात्व

दर्शनादयश्चत्वार। त्र्यादयोऽपि चत्वारः। तत्र यथासंख्येन सम्बन्धो भवति-दर्शनमोहनीय त्रिभेद, चारित्रमोहनीयं द्विभेद,

जिनमें से अकषायवेदनीय, हास्य, रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्रीवेद-पुरुषवेद-और नपुसकवेद-एसे नव प्रकार का है और (१) अनन्तानुबन्धी क्रोधकषाय (२) अनन्तानुबन्धी मानकषाय (३) अनन्तानुबन्धी मायाकषाय (४) अनन्तानुबन्धी लोभकषाय (५) अप्रत्याख्यान क्रोधकषाय (६) अप्रत्याख्यान मानकषाय (७) अप्रत्याख्यान मायाकषाय (८) अप्रत्याख्यान लोभकषाय (९) प्रत्याख्यान क्रोधकषाय-(१०) प्रत्याख्यान मानकषाय (११) प्रत्याख्यान मायाकषाय (१२) प्रत्याख्यान लोभकषाय (१३) सञ्ज्वलन क्रोधकषाय (१४) सञ्ज्वलन मानकषाय (१५ सञ्ज्वलन मायाकषाय (१६) सँज्वलन लोभकषाय-एसे सोलह प्रकार का कषायवेदनीय है एसे ३ दर्शनमोहनीयकी, ९ अकषायवेदनीयकी, १६ कषायवेदनीयकी सर्व मिलकर २८ मोहनीय कर्म की प्रकृतियें हुई

वृत्त्यनुवाद -दर्शन-आदय १' चत्वार १',=दर्शनादिक चारहैं अर्थात् दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीय अकषाय वेदनीय-औरकषायवेदनीय,

त्रि-आदय १' अपि० चत्वार १',तत्र* =तीन आदिक (गणनामें) भी चारहै अर्थात् (सूत्रमें) तीन दो नो सोलह है तहा (इससूत्रमें)

यथासख्येन१''' सम्बध १' भवति T =अनुक्रमसे अभिसम्बन्ध होताहै अर्थात् दर्शनमोहनीयको तीनके साथ चारित्र मोहनीयको दोके साथ,अकषाय वेदनीको नोकेसाथ,और कषाय वेदनीयको सोलहके साथ साथ जोड़ना चाहिये

दर्शनमोहनीय१''' त्रिभेद१''',चारित्रमोहनीय१'''द्विभेद १'''=(तब) दर्शनमोहनीय तीन प्रकार चारित्रमोहनीय दो प्रकार

पुनिहमारे यहा अकषाय के नव भेद हास्य रत्यरति इत्यादि कहके अनन्तानुबन्ध्य इत्यादि सोलह भेद कहकर सूत्र पूर्ण किया हे सभाष्य० में (चूकि प्रथम कषाय लाये हें उसी के अनुसार) प्रथम अनन्तानुबन्ध्य सोलह भेद कहे फिर हास्यरत्यरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री पु नपु सक वेदा वाक्य कहा क्योंकि वेदा शब्द अन्तमेंहै इसलिये विसर्गका लाना सभाष्य०में आवश्यकहुआ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें प्रत्याख्यान प्रत्याख्यानावरण है हमारे यहां केवल प्रत्याख्यानप्रत्याख्यान है अर्थात् सभाष्य० में आवरण शब्द अधिक है वह हमारे यहा नहीं है हमारे यहा सूत्रमें केवल १०० सौ अक्षर हें सभाष्य०में १०६ अक्षर हें अर्थ में भेद दोनों सम्प्रदायोंमें से किसीमे नहीं हे जब अर्थ भेद नहीं है और छह अक्षर भी न्यून होतेहें तो सूत्रका पाठ लघु होना चाहिये, सभाष्य० का पाठ हम नीचे लिखते है जिसको हमारे यहां के पाठ से अवश्य मिलाना चाहिये ॥ दर्शनचारित्रमोहनीयकषायनोकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विषोडशनवभेदा सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयानि कषाय नोकषायावनन्तानुबन्ध्य प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलनविकल्पाश्चैकश क्रोधमानमायालोभा हास्यरत्यरतिशोक,भय जुगुप्सास्त्रीपु नपु सकवेदा ॥ १० ॥ सभाष्य०में यह दशवा सूत्र है क्योंकि प्रथम सूत्र मिथ्या दर्शनादिक जो हमारे यहा एक सूत्र है सभाष्य० में दो हें इसलिये हमने भी इसे १० वाही लिखा है यहा पर किंचित् कषायको ईषत्कषाय नोकषाय तथा अकषाय वेदनीय कहते हें आत्माको कषैलेपितरूप करे उसको कषाय कहते हें यहा अकषाय शब्द का अर्थ कषाय रहित नहीं है किन्तु ईषत्कषाय है ॥

सम्यग्दृष्टिरित्यभिधीयते। तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषात्क्षीणाक्षीणमदशक्तिकोद्रववत्सामिशुद्धस्वरसं तदुभयमित्याख्यायते सम्यङ्मिथ्यात्वमिति यावत्। यस्योदयादात्मनोऽर्धशुद्धमदकोद्रवौदनोपयोगापादितमिश्रपरिणामवदुभयआत्मको भवति परिणामः

सम्यग्दृष्टिः[1] इति* =सम्यग्दृष्टि 'अर्थात् वेदकसम्यग्दृष्टि'है ऐसी (दर्शनमोहनीयकर्मकी) सम्यक्त्व प्रकृति
अभिधीयते T प्रक्षालन-विशेषात्[5] =कही जाती है, विशेषरूपसे जलकरिधोनेसे (=प्रक्षालन)
क्षीण-अक्षीण-मदशक्ति-कोद्रव-वत् * =कोदोंकी मादकताकी सामर्थ्य कुछ हीन होनेके, कुछ विद्यमान रहनेके सदृश
तद्[1]एव*मिथ्यात्वम्[1]समि-शुद्ध-स्वरसम्[1] =सोही मिथ्यात्व अपना रस आधा शुद्ध भया आधा मिथ्यात्व रहा
तद्-उभय[1]इति आख्यायतेTसम्यङ्मिथ्यात्वं[1]इतियावत् =एतद्-उभय अथवा मिश्र कहलाता है, ऐसा ही (=यावत्) सम्यङ्मिथ्यात्व है अर्थात् जैसे कोदों नामा मादक वस्तु को धोते २ उसका मद हीन करदेते हैं तैसे पूर्वोक्त मिथ्यात्वका रस आत्माके श्रद्धान रूपी वचसे आधाक्षीण होजाय और आधा बना रहे सो तदुभय मिश्र है अथवा सम्यग् मिथ्यात्वरूप है।
यस्य[6]उदयात्[5] आत्मनः[6]उभय-आत्मकः[1] =जिसके उदयसे आत्माका दोनों (सम्यक्त्व और मिथ्यात्व) रूप (=आत्मकः)
भवति T परिणामः[1]अर्ध-शुद्ध-मद-कोद्रव- =परिणाम वा भाव होताहै जैसे आधे शुद्ध वा स्वच्छ किये हुए मदकेकोदोंके
(ओदन) उपयोग-आपादित-मिश्र-परिणामवत् * =भातका=(ओदन) भोजन (=उपयोग) प्राप्त करि (=आपादित) मिश्र (कुछ उन्मत्त कुछ चेतसा) परिणाम (होजाता है)

दूसरे प्रकारसे इसी वाक्यका अनुवाद

यस्य[6] उदयात्[5] आत्मनः[6] अर्ध-शुद्ध-मद-कोद्रव— =जिसके उदय से जीवका आधे शुद्ध किये हुये मदके कोदोंके
ओदन-उपयोग-आपादित- =भातका (=ओदन) भोजन (=उपयोग) प्राप्तकरि (=अपादित)
मिश्र-परिणामवत्*उभय- =मिश्र (कुछ उन्मत्त सा कुछ चेतसा) भाव होने के सदृश दोनों (सम्यक्त्व-मिथ्यात्व)
आत्मकः[1] भवति T परिणामः[1]; =रूप (=आत्मकः) भाव होता है भावार्थ यह है कि जैसेवार वार धोने से

(१) अभिधीयते रूप 'धा' धातु जिसको बिना किसी नियमके कर्मणि प्रयोगमें (=कर्मप्रधान क्रियामें) 'धी' में पलट देते हैं, य कर्मणि प्रधान का चिन्ह और अभि उपसर्गके लगानेसे 'अभिधीय' बना, अभिधाका अर्थ कहना पुकारना है, पर 'धा' का अर्थ धारण करना, रखना है. ते प्रथम पुरुष एक वचन आत्मने पदी वर्तमान कालकी क्रियाका द्योतक प्रत्यय जोड़नेसे अभि+धी+य+ते=अभिधीयते=कहा जाता है, बना।

शुभपरिणामनिरुद्धस्वरसं यदौदासीन्येनावस्थितमात्मन श्रद्धान न निरुणद्धि । तद्वेदयमान.पुरुष·

शुभ-परिणाम-निरुद्ध-स्वरसम् ३'''	=शुभ परिणाम या विशुद्धता (के वल) से मिथ्यात्वकाविपाकरस रुक जाय
(१) यद्*औदासीन्येन ३'''अवस्थितम् २'''(२) आत्मनः ६'	=जिससे उदासीनता सहित ठहरे हुये या स्थितशीलआत्माके
श्रद्धानम्२''' न* (३) निरुणद्धि T	=विश्वास को (यह सम्यक् प्रकृतिरूप मिथ्यात्व) रोक नही सकता है अर्थात् उदासीनरूपसे स्थित आत्माके श्रद्धानको यह (सम्यक् प्रकृतिरूप मिथ्यात्व) बिगाड़ नहीं सकता है वरन् मल सहित करदेता है ।
तद्२'''वेदयमान १'पुरुष १'	=तिस (दर्शनमोहनीयकर्मकी मिथ्यात्व प्रकृतिके उदय)को वेदताहुआ पुरुष

(ख) ,सम्यग्त्व (=सम्यग्मिथ्यात्व)और(ग)सम्यक्त्वप्रकृति अथवा सम्यक्त्वप्रकृति मिथ्यात्व=तदुभयानि) तीनरूप परिणमन करता है। अत एक मिथ्यात्वरूप दर्शनमोहनीयकर्मके तीनभेद कहेहैं । सम्यक्त्वके भेदोंमेंसे उपशमसम्यक्त्व दोप्रकार हैं प्रथमोपशमसम्यक्त्व और द्वितीयोपशमसम्यक्त्व

(१) यद्-यहां अव्यय है (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३०७) जिससे (नकि जो के) अर्थमें आया है , जिससे अर्थात् जिस शुभ परिणामके कारणसे ।

(२) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकी प्रथमा तथा द्वितीयावृत्तिमें और तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें भी "अवस्थितमात्मान श्रद्धान पाठ है परन्तु तत्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३०४ में "अवस्थितमात्मान श्रद्धान" ऐसा पाठ है अर्थात् आत्मान एक वचन षष्ठी विभक्ति के स्थानमें द्वितीया विभक्ति एक वचन 'आत्मनम् राजवार्तिकमें है । दोनों पाठ ठीक हैं और दोनोंका एकसा तात्पर्य भी है ॥

(३) निरुणद्धियह शब्द रुधादि सातवा गणके परस्मैपदी सकर्मकधातु रुध् (=रोकना बन्दकरना, आच्छादन करना, दबाना) धातुमें न (=ण) जो सातवां गणका विकरणहै उसका रु और ध् के मध्यमें लाने से और ति प्रथम पुरुष एकवचन कर्तरिप्रधान परस्मैपदी लट् वर्तमानकाल द्योतक क्रिया का चिन्ह लगाने से पश्चात् निरअव्यय आदिमें लगानेसे इस प्रकार बनता है कि –

रुध विकरण ण जोड़नसे रुणध् हुआ पूर्वोक्त ति क्रिया का चिन्ह लगानेसे 'रुणध् + ति ऐसा हुआ इस 'ति"का धि नीचे लिखे हुये नियमसे हुआ झषस्तथोर्धोऽध । अष्टाध्यायी ८-२-४०, पदच्छेद करनेसे झष त-थो ध अध ॥ झष् पाणिनि मुनिके चौदह प्रसिद्ध सूत्रोंमें से एक है इसमें झ भ घ, ढ, ध गर्भित हैं त, थका, , ध हो जाता है यदि इस त-थ के पहिले झ, भ, घ, ढ, ध आवे परन्तु धा धातुके पश्चात् नहीं । इसलिये रुणध् + धिरूप हो गया इस रुणध् का ध नीचे लिखित नियमसे द् में पलट जाता है ङ्, ञ्, ण्, न् म् और य्, र्, ल्, व्, को छोड़कर कोई व्यञ्जन जिसके पीछे किसी वर्गका तीसरा वा चौथा अक्षर आवे तो यह व्यञ्जन अपने वर्गके तीसरे अक्षरमें पलट जाता है इसलिये रुणध् + धि, इस ध के पीछे चौथा अक्षर धि है ध् पलट गया द् में रुणद्धि हुआ इस रुणद्धि के आदिमें नि अव्यय लानेसे निरुणद्धि सिद्ध हुआ झरोझरि सवर्णे सूत्रसे (८-४-६५) ध् गिरजाता है "निरुणधि भी ठीक है ।

वेदयमान -विद्-यहा पर दशवा चुरादि गणका धातु वेदना अर्थमें है, दशवा गणका विकरण 'अय लगानेसे और विद्को गुण करनेसे वेद+अय=वेदय बना 'मान् आत्मने पदके वर्तमान कृदन्तके प्रत्ययके लगानेसे वेदयमान् हुआ इसका प्रथमाविभक्ति एक वचन पुंलिंग वेदयमान्+अस्=वेदयमान हुआ । विद् धातुकी पूर्ण टिप्पणी पृष्ठ ३०,३१ में दीगई है वहा देखलीजिये ॥

यदुदयादात्मदोषसंवरणमन्यदोषस्याधारणं सा जुगुप्सा। यदुदयात्स्त्रैणान्भावान्प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः। यस्योदयात्पौंस्नान्भावानास्कन्दति स पुंवेदः। यदुदयान्नापुंसकान्भावानुपव्रजति स नपुंसकवेदः॥ कषायवेदनीयं षोडशविधम्। कुतः?। अनन्तानुबन्ध्यादिविकल्पात्॥ तद्यथा—कषायाः क्रोधमानमायालोभाः। तेषां चतस्रोऽवस्थाः–

यद्-उदयात्[5/1] आत्मदोषसंवरणम्[1/1] अन्य-दोषस्य[6/1] =जिसके विपाकसे अपना दूषण आच्छादन करना वा ढंकना दूसरेके दोषका आधारणम्[1/1] सा[1/1] (१)जुगुप्सा[1/1]; यद् उदयात्[5/1] =आविर्भाव वा प्रगट करना[=आधारण] सोजुगुप्सा है। जिसके उदय से स्त्रैणान्[2/3] भावान्[2/3] प्रतिपद्यते T सः[1/1] स्त्रीवेदः[1/1]; =स्त्रीसम्बन्धी भावों को वा परिणामों को पाता है सोस्त्रीवेद है अर्थात् जिसके उदय से पुरुषसे [रमनेकी इच्छा हो सो स्त्रीवेद है।

यस्य[6/1] उदयात्[5/1] पौंस्नान्[2/3] भावान्[2/3] आस्कन्दति T =जिसके उद्धतसे पुरुषसम्बन्धी भावोंको वा परिणामोंको प्राप्त होता है स[1/1] पुंवेदः[1/1]; =सो पुरुषवेद है अर्थात् जिसके उदय से स्त्रीमें रमण करने की इच्छाहो सो पुरुषवेद है।

यद्-उदयात्[5/1] नपुंसकान्[2/3] भावान्[2/3] उपव्रजति T सः[1/1] =जिसके उदयसे नपुंसक सम्बन्धी परिणामों को प्राप्त होता है वा पाता है सो नपुंसकवेदः[1/1] ॥ =नपुँसकवेद है अर्थात् जिसके उद्धतसे स्त्री पुरुषमें रमण करनेका भावहो सो नपुंसकवेद है।

कषाय-वेदनीयम्[1/1] षोडशविधम्[1/1]; कुतः? *अनन्तानुबन्धी =कषाय वेदनीय सोलह प्रकार है, क्योंकर अनन्तानुबन्धी– आदिविकल्पात्[5/1], तद्यथा-कषायाः[1/3] क्रोध-मान-माया-लोभाः[1/3] =आदिक भेदसे जैसे क्रोध-मान-माया-लोभ ये कषाय हैं।

तेषाम्[6/3] चतस्रः[1/3] अवस्थाः[1/3] =तिन[कषायोंकी] अर्थात् तिन कषायोंमें से प्रत्येककी चार चार अवस्थायें हैं।

क्रमसे प्रत्येक का उदाहरण, (क) अब्राह्मणः=वहजो ब्राह्मण न हो यद्यपि ब्राह्मण सा हो अर्थात् नीच ब्राह्मण (ख) अभाव अर्थ में जैसे अघट घडाका अभाव वा अविद्यमानता, अपापम्=पाप वर्जित, पापरहित, (ग) भेद अर्थ में जैसे अघटः पटः अर्थात् घटको छोड़कर अन्य भावार्थ पट (घ) अल्पता जैसे अनुदरा अर्थात् वह कन्या जिसकी कटि छीन हो, पतली कमर वाली अविवाहित लडकी, अलोमिकाभेड़ी=वह भेड़ी जिसके बाल छोटे हों काटने योग्य न हों (ङ) बुरा जैसे अनाचारीहै अर्थात् बुरे आचरण वाला (च) विरोध अर्थ में जैसे असुर अर्थात् जो सुरका वा देवका विरोधी हो, वैरी हो, असित श्वेतका विरोधी अर्थात् काला॥ संज्ञा जिसके आरम्भ में अ जोडना है स्वरसे प्रारम्भ हो तो अ के स्थान में 'अन्' लाते हैं जैसे अनादि, अनन्त, यह नियम कभी कभी लागू उन शब्दोंके साथ न होगा जिनके आदिमें ऋ आवे जैसे अनृणिन् वा अऋणिन्॥

(१) यदुदयात्परदोषानाविष्करोत्यात्मदोषान्संवृणोति सा जुगुप्सा इत्यप्यन्यः पाठः॥

चारित्रमोहनीयं द्विधाअकपायकपायभेदात्। ईषदर्थेनञ.प्रयोगादीषत्कषायोऽकषायइति। अकषाय वेदनीयं नवविधम्। कुत? हास्यादिभेदात् ॥ यस्योदयाद्धास्याविर्भावस्तद्धास्यम्। यदुदयाद्विषया-दिष्वौत्सुक्य सा रति। अरतिस्तद्विपरीता। यद्विपाकाच्छोचनं स शोकः। यदुदयादुद्वेगस्तद्भयम् (१)

कोदोंका मद क्षीण होने पर उसका भात पकाकर खाया जाता है तब खाने वालेको कुछ उन्मत्तता कुछ चेतता होजाती है तैसे ही जिसके उदयसे आत्मा का मिश्ररूप परिणाम कुछ सम्यक्त्वरूप कुछ मिथ्यात्व रूप होजाता है।

चारित्रमोहनीयम् द्विधा * अकपाय-कपाय-भेदात्, =चारित्र मोहनीय दो प्रकार नोकपाय (वेदनीय) वा ईपत्कषाय (वेदनीय) =और कपाय(वेदनीय)भेदसे है। कपाय=कपति कण्टम्=जो कंठ कोषसै, पीड़े।

ईपत् * अर्थे (२) नञ प्रयोगात् =(इस सूत्रमें) किंचित् (=ईपत्) अभिप्रायमें नञ (अव्यय) का प्रयोग करनेसे

ईपत् * कपाय अकपाय इति *, अकपायवेदनीयम् =किंचित कपाय है, सो अकपाय है। नोकपाय वेदनीय

नवविधम् कुत.*? हास्य-आदि-भेदात्, =नौ प्रकार है। क्योंकर? (उत्तर) हसी आदिक भेदसे। जिसके

यस्य उदयात् हास्य आविर्भाव तद् हास्यम् =उद्रेकसे हसा प्रकट हो वह हास्य है। जिसके उद्रेकसे

यद्-उदयात् विपयादिपु औत्सुक्यम् सा रति =विपयादिकोंमें उत्सुकता वा आसक्तता सो रति है। उस (रति) कीउलटी

तद्-विपरीता अरति, =अरति है अर्थात् जिसके उदयसे विपयादिकोंमें लगन न हो सो अरति है

यद्-विपाकात् शोचनम् स शोक, =जिसके उदयसे (=विपाकात्) शोच वा चिंता हो सो शोक है।

यद्-उदयात् उद्वेग तद् भयम् ॥ =जिसके उद्योतसे(चित्त की)व्याकुलता हो सो डर है। (भय सातप्रकार)है।

(१) यद्-उदयात् त्रासलक्षणम् उपपद्यते तद् भयम् इति अन्य पाठ =जिसके उदय से शंकारूप चिह्न उपजता है सो भयहै ऐसा भिन्न पाठ है

(२) नञ्-(अव्यय)-व्याकरणमें एक पारिभाषिक अथवा सांकेतिक शब्द निषेध वाचक 'न' के लिये है। नञ शब्दको यहां पर थोडापन थोडा अर्थ में लिया है सो अकपाय शब्द में अका अर्थ थोडा है इसी प्रकार नो कपाय शब्दमें नो का अर्थ थोड़ा या किंचित् का है निषेध अथवा अभावका अर्थ नहीं है। अकार (=अव्यय अर्थात् नञ्) कैसे और किस किस अर्थमें आता है निम्न लिखित श्लोक से विदित है। 'तत्साद्रश्यमभावश्च तदन्यत्वतदल्पता। अप्राशस्त्य विरोधश्च नञर्था पट् प्रकीर्तिता ॥"

तत् साद्रश्यम् अभाव च तद् अन्यत्वम् तद् अल्पता। =समानता अभाव अविद्यमान, अन्यता-भेद थोडापन—अल्पता अप्राशस्त्यम्, विरोध च नञर्था पट प्रकीर्तिता ॥ =अप्रशस्त बुरा, और(=च) विरोध विपर्यय प्रतिकूलता ये छह नञ् के अर्थ प्रसिद्ध हैं।

प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः। समेकीभावे वर्तते। संयमेन सहवस्थानादेकीभूय ज्वलन्ति सयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः। त एते समुदिताः सन्तः षोडशकषाया भवन्ति॥ मोहनीयानन्तरोद्देशभाज आयुष उत्तरप्रकृति-निर्ज्ञापनार्थमाह—

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥

प्रत्याख्यानावरण[१/३] क्रोध-मान-माया-लोभाः[१/३]; सम् =प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ हैं। (संयमशब्दमें) सम् (उपसर्ग)

एकीभावे[७/१] वर्तते T संयमेन[३/१] सह *अवस्थानात्[५/१] =एकपन वा एकतामें प्रवर्तता है सयमके साथ स्थिति होनेसे (=सह अवस्थानात्)

एकीभूय *ज्वलन्ति T वा येषु[७/३] सत्सु[७/३] अपि * =एक होकर दैदीप्यमान होतेहैं, दिपतेहैं, वा जिनकें (=येषु) होनेपर (=सत्सु) भी (=अपि)

संयमः ज्वलति[१/१] इति *संज्वलनाः[१/३] क्रोधमानमायालोभाः[१/३]; =संयम दैदीप्यमान रहता है ऐसे संज्वलन क्रोध--मान--माया--लोभ हैं

ते[१/३] एते[१/३] समुदिताः[१/३] सन्तः[१/३] षोडश-कषायाः[१/३] भवन्ति T =ते इतने समुच्चित होकर सोलह कषाय होते हैं।

मोहनीय-अनन्तर-उद्देश-भाजः[६/१] आयुषः[६/१] =मोहनीय (कर्म प्रकृति) के निकट वा लगताई इच्छित विभाग आयु (कर्म) की

उत्तर-प्रकृति-निर्ज्ञापन-अर्थम्[१/१] आह T =उत्तर-प्रकति प्रकाशनेकेलिये अथवा जतावने केलिये (अग्रिम सूत्र) कहते हैं कि

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि = नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ताः एताः आयुषः चतुरुत्तर प्रकृतयः

नारक-तैर्यग्योन-मानुष-दैवानि[१/३] ताः[१/३] एताः[१/३] आयुषः[६/१] =नारक—तैर्यग्योन, मानुष और दैव ये आयु (कर्म) की

चतुर्-उत्तर-प्रकृतयः[१/३] =चार उत्तर प्रकृतियें हैं अर्थात् नरक आयु--तिर्यचआयु--मनुष्यआयु--देवायु ये आयुकर्मकी चार उत्तर प्रकृतियें हैं भावार्थ(क) जिसके सद्भावसे आत्मा नरकगतिमें जीवे और जिसके अभावसे मरणको प्राप्त होजाय उसे नारक आयुकर्म कहते हैं (ख) जिसकी विद्यमानतासे तिर्यचगतिमें आत्मा जीता है और जिसके अन्तहोनेपर मृत्युको प्राप्तहोता है वह तिर्यग्योनि आयुकर्म है॥ (ग) जिसके सद्भावसे मनुष्यगतिमें जीव जीता है और जिसके अभाव होने पर मरजाता है वह मनुष्य आयुकर्म है और (४) जिसके होने पर जीव देवगतिमें जीता है जिसके अभाव होने पर जीव मृत्यु को प्राप्तहोता है वह देव आयु कर्म है—

(१) इस सूत्र का पाठ और अर्थ दोनों दिगम्बर तथा श्वेताम्बर आम्नायों में एक है।

अनन्तानुबन्धिनोऽप्रत्याख्यानावरणा प्रत्याख्यानावरणा संज्वलनाश्चेति ॥ अनन्तसंसारकारणत्वान्मिथ्यादर्शनमनन्त तदनुबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिन क्रोधमानमायालोभा । यदुदयाद्देशविरति संयमासंयमाख्यामल्पामपि कर्तुं न शक्नोति, ते देशप्रत्याख्यानमावृण्वन्तोऽप्रत्याख्यानावरणा क्रोधमानमायालोभा । यदुदयाद्विरतिं कृत्स्ना संयमाख्या न शक्नोतिकर्तुं ते कृत्स्नं प्रत्याख्यानमावृण्वन्त

अनन्तानुबन्धिन ॥ अप्रत्याख्यानावरणा ॥ प्रत्याख्यानावरणा ॥ संज्वलना ॥ च ॥ इति ॥ =तीव्रतम (=अनन्तानुबन्धी कोप अहङ्कार-वञ्चना काङ्क्षा) तीव्र (रोष-गर्व-अनार्जव-इच्छा) मद (अमर्ष-दर्प-दगाई-अभिष्वङ्ग) और मदतम (क्रोध मान माया-लोभ-) इस प्रकार हैं ।
अनन्तसंसार कारणत्वात् ॥ मिथ्यादर्शनम् ॥ अनन्तम् ॥ =अनन्त संसारका हेतु होने से मिथ्यात्व है सोही अनन्त है अर्थात् अनन्त नाम मिथ्यात्वका है क्योंकि यह मिथ्यात्व अनन्त संसारका कारण है
तद् अनुबन्धिन ॥ =तिस (मिथ्यादर्शन) का सहचर अनुचर अनुसारिणी-अनुकरण करनेवाला
अनन्तानुबन्धिन ॥ क्रोध-मान-माया-लोभा ॥ =अनन्तानुबन्धी क्रोध मान-माया-लोभ हैं अर्थात् ये अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया-लोभ सम्यक्त्व को नहीं होने देते हैं ।
यद् उदयात् ॥ देशविरतिम् ॥ संयमासंयम आख्याम् ॥ =जिसके उदयसे एकदेश व्रतरूप संयमासंयम नामक (अर्थात् श्रावकव्रत) को
अल्पाम् ॥ अपि ॥ कर्तुम् ॥ न शक्नोति ॥ ते ॥ देश प्रत्याख्यानम् ॥ =किंचित् मात्र भी करनेको समर्थ नहीं होते वे ईषत् (=देश) प्रत्याख्यान को
आवृण्वन्त ॥ अप्रत्याख्यानावरणा ॥ क्रोध मान माया-लोभा ॥ =ढकनेवाले वा आच्छादन करनेवाले अप्रत्याख्यानावरण-क्रोध-मान-माया
यद् उदयात् ॥ विरतिम् ॥ कृत्स्नाम् ॥ संयम आख्याम् ॥ =लोभ हैं। जिसके उदयसे समस्त त्यागरूप (=विरति, संयम नामको अर्थात् महाव्रत
न शक्नोति कर्तुम् ॥ ते कृत्स्नम् ॥ प्रत्याख्यानम् ॥ आवृण्वन्त ॥ =करने को समर्थ नहीं होता है ते समस्त प्रत्याख्यानको आच्छादन करने वाले

[illegible] -निसके उदयसे दूसरों के दोषों को प्रगट करता है (और) अपने दोषों का [illegible] ढकता है अथवा आच्छादित करता है सो जुगुप्सा है ऐसा भी अन्य पाठ है
[illegible] समानार्थ तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १७७ ॥ [illegible]
[illegible] (पृष्ठ १३६) माया-प्रणधि -उपाधि निकृति -[illegible] [illegible] (समानार्थ तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १२०)

॥ गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्श-रसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहा-योगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेय-यशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥

(१) गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसङ्घातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ ११ ॥

पदच्छेदः—गति-जाति-शरीर-अंगोपाँग-निर्माण-बन्धन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गन्ध- वर्ण-आनुपूर्व्य-अगुरुलघु-उपघात-परघात-आतप- उद्योत-उच्छ्वास-विहायोगतयः १/३ प्रत्येकशरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिर-आदेय-यशःकीर्ति-सेतराणि १/३ तीर्थकरत्वं १/१ च, ते १/३ एते १/३ प्रकृतिबन्धस्य ६/१ षष्ठस्य ६/१ नामकर्मणः ६/१ द्वि-चत्वारिंशत्-उत्तरप्रकृतिभेदाः १/३ भवन्ति ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—गति-जाति-शरीर-अंगोपांग-निर्माण-बन्धन-संघात- =गति, जाति-शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बन्धन, संघात,
संस्थान—संहनन—स्पर्श—रस—गन्ध—वर्ण—(२)आनुपूर्व्य— =संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्व्य,

(१) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्नपाठके साथ उपर्युक्त पाठ पढ़ो, "गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसङ्घातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपराघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयःप्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तस्थिरादेययशांसिसेतराणितीर्थकृत्त्वं च ॥ १२ ॥"
(२) कहीं कहीं पर "वर्णानुपूर्व्यागुरु" पाठहै और कहीं कहीं पर जैसे 'जैन नित्य (सोलह) पाठसंग्रह" में तथा "सनातन जैनग्रन्थमाला" इत्यादिमे "वर्णानुपूर्व्यगुरु" ऐसा पाठ है दोनों ही पाठ शुद्ध है क्योंकि 'आनुपूर्वी और आनुपूर्व्य दोनों शब्द एकही अर्थ मे पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ५७ मे पाये जाते है, इसलिये वर्ण+आनुपूर्वी+अगुरु=वर्ण+आनुपूर्व्य, (इकोयणचि ६-१-७७ सूत्रकरि) +अगुरु=वर्णानुपूर्व्यगुरु ॥ वर्ण+आनुपूर्व्य+अगुरु=वर्णानुपूर्व्यागुरु और कोशके इसी पृष्ठमें 'आनुपूर्व' शब्द भी है इसलिये-वर्ण+आनुपूर्व+अगुरु=वर्णानुपूर्वागुरु ऐसा पाठ भी ठीक हो सक्ता है। "आनुपूर्व्यगुरु" छोटा होनेसे अच्छा है ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमे वर्णानुपूर्व्यागुरु के स्थानमे वर्णानुपूर्व्यगुरु है ॥

नारकादिषु भवसम्बन्धेनायुषो व्यपदेश क्रियते । नरकेषुभवं नारकमायु । तिर्यंग्योनिषु भवं तैर्यग्योन । मानुषेषुभवं मानुषं । देवेषु भवं दैवमिति ॥ नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु यन्निमित्तं दीर्घजीवनं तन्नारकम् ॥ एवं शेषेष्वपि ॥

आयुश्चतुर्विधं व्याख्यातं तदनन्तरमुद्दिष्ट यन्नामकर्म तदुत्तरप्रकृतिनिर्णयार्थमाह—

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इसदशवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

नरक आदिषु भवसम्बन्धेन आयुषः व्यपदेश =नरकादिकोंमें जन्मके प्रसगकरि आयुका कथन
क्रियते, नरकेषु भवं नारकं आयु, तिर्यग्=किया गया है, नरकमें उत्पत्तिका कारण (कर्म) सो नारक आयु है; तिर्यंच
योनिषु भवं तैर्यग्योन, मानुषेषु भवम् =योनियोंमें उपजनेका कारण (कर्म)सो तैर्यग्योन है, मनुष्योंमें जन्मका कारण (कर्म)
मानुषम्, देवेषु भवं दैवम् इति ॥ =सो मानुष है, देवविषै उपजने को कारण (कर्म) सो दैव है ॥
नरकेषु तीव्र-शीत-उष्ण-वेदनेषु यद् निमित्तं =नरकोंमें अतिशय ठड और तापके (दुख रूप) अनुभव करने पर जिसके निमित्तसे
दीर्घ जीवन तद् नारकम्, एवं शेषेषु अपि =बहुत(कालतक)जीवन हो सो नारक (आयुकर्म) है । ऐसे बचेहुए तीनआयुकर्म भी है

अर्थात् जिसके उदयसे क्षुधा-तृषा शीत उष्णादिकृत प्रचुर उपद्रव सहित तिर्यग्योनिमें वसनाहोय सो तिर्यगायु है, बहुरि जिसके उदयसे शरीर मन सम्बन्धी सुख दुःख करि व्याप्त मनुष्य पर्यायमें जन्महोय सो मनुष्य आयु है. और जिसके उदयसे शारीरिक मानसिक सुखादिसहित देवोंमें उत्पत्तिहोय सो देवायु है ॥

आयु चतुर्विधं व्याख्यातम् तद् अनन्तरम् =आयु चार प्रकार वर्णन की गई है । उस (आयु) के समीप
उद्दिष्टं यत् नामकर्म तद् उत्तर प्रकृति निर्णयअर्थं आह=कहाहुआ जो नामकर्म उस(नामकर्म)की उत्तर प्रकृतियोंके निर्णयकोकहतेहैंकि

नरक (पु० नृ + वुन्) पापियोंके दुःख भोगनेको एक स्थान । नारक निरय और दुर्गति नरकके नामहैं ॥ स्यान्नारकस्तु नरको निरयो दुर्गति स्त्रियाम् । स्यात् नारकः निरय दुर्गति स्त्रियाम् (अमरकोष नरकवर्ग) = नारक, नरक निरय (पुल्लिंगमें) और (=तु) दुर्गति स्त्रीलिंगमें नरकके नाम हैं ॥ नारक (पु०) र + वुञ् (भव)नरक नरके भव ' अण् नरकका । नरकवासीको नारकिक, नारकीय और नारकिन् कहते हैं ये तीनों शब्द पुल्लिंग हैं । उनमेंसे नारकिन् शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है 'नारके भोग्यत्वेन अस्ति अस्य इति =नरककी पीड़ाओंका भोगनहारा जीव ॥

(१) शेषेषु ' बचे हुये तीन मनुष्य आयु कर्म, तिर्यग् आयु कर्म, देव आयु कर्म, के लिये आयाहै इसलिये नपुंसक लिंग यहां पर है ।

(४) योगानुवादेन—वाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। काययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥

(४) योग-अनुवादेन ३। वाङ्-मानस-योगिनां ६।	=(४) योगकी अपेक्षा करि वचनयोग मनो (=मानस) योगवाले
मिथ्यादृष्टि-आदि-सयोगकेवलि-अन्तानां ६।	= मिथ्यादृष्टि आदि सयोगकेवली (तेरहवें गुणस्थानवर्ती) तकका
लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। काययोगिनां ६।	= [क्षेत्र] लोकके असंख्यातवा भाग है। काय योगवालोंका
मिथ्यादृष्टि—आदि—सयोगकेवलि—अन्तानाम् ६। च	= मिथ्यादृष्टिसे सयोगकेवली तक और [=च] [अर्थात्
अयोगकेवलिनां सामान्य—उक्तं १।। क्षेत्रम् १।।	= अयोग केवलियोंका संक्षेप (प्रकरण) में कथित (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है

क्षेत्रका भाज्य, अंगीकार करके पंचेन्द्रियोंके क्षेत्रका भाग दीजिये वा मनुष्योंके क्षेत्रका भाग दीजिये तो भजनफल वा लब्धि असंख्यात ही आवैगा इसकारण पंचेन्द्रियोंका क्षेत्र सामान्य अपेक्षा लोकका असंख्यातवा भाग मनुष्यक्षेत्रवत् कहा है।

जिस संख्यामें भाग देना है वह भाज्य जिसका भाग देना है वह भाजक और जो फल आवेगा वह लब्धि कहलाती है जैसे ५६ और ८ ये दो संख्या हैं और ५६ में ८ का भाग देना है (अर्थात् ५६ के आठ समान विभाग करने हैं तो ५६ भाज्य कहलावेगा तथा ८ भाजक कहलावेगा और ७ भजन फल वा लब्धि कहलावेगी और इस भजन—फल वा लब्धिके जाननेके प्रकारको भागहार वा भजन कहते हैं।

(१) वाङ्मानसयोगविशिष्टे सयोगकेवलिनि समुद्घातासम्भवोऽवगन्तव्यः। ओरालं दण्डदुगे कवाडजुगले य तस्स मिस्सं तु (मिस्सो दु) पदरे य लोगपूरे कम्मेव य होंदि णायव्वो (होइ कम्म इयम्) ॥ इत्यनेन तत्र काययोगस्यैव कथनात्। काययोगे तु स्वस्थानसमुद्घातसम्भवो भवति।

वाङ्-मानसयोग-विशिष्टे ७। सयोगकेवलिनि ७।	= वचन मनोयोग संयुक्त (=विशिष्ट) सयोग केवलियोंमें
समुद्घात-असम्भवः १। अवगन्तव्यः १।	= समुद्घात (का प्रारम्भ) असम्भव जानना चाहिये अर्थात्

अगुरुलघु-उपघात (१) परघात आतप-उद्योत-उच्छ्वास-	=अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास,
विहायोगतय ३।। प्रत्येकशरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-	=विहायोगति (=आकाशगमन), (ये इक्कीस तथा) प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग सुस्वर,
शुभ-सूक्ष्म (२)पर्याप्ति स्थिर आदेय यश.(३)कीर्ति	=शुभ-सूक्ष्म, पर्याप्ति, स्थिर, आदेय, यशस्कीर्ति (ये दश और इन दशोंके)
(४)स-इतराणि३।।।	=प्रतिपक्षी वा उलटी (=इतराणि)सहित (=स) अर्थात् साधारणशरीर, स्थावर, दुर्भग, दु स्वर, अशुभ, बादर, अपर्याप्ति, अस्थिर अनादेय, और अयशस्कीर्ति (ऐसे दश)
(५) तीर्थकरत्वम्१।।।च॥ते३।।।एते३।।। प्रकृतिबन्धस्य६।	=और (=च) तीर्थकरत्व (तीर्थ करपना) वे इतने प्रकृतिबन्धके

(१) परघात के स्थानमें सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पराघात है अथ 'पर त्रासप्रतिघातादिजनक पराघातनाम ऐसा लिखा है ॥

(२) पर्याप्तिके स्थानमें सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'पर्याप्त' है परन्तु अर्थमें कितनेही स्थानोंमें पर्याप्ति शब्द ही लाये हैं जैसे ' पर्याप्ति पञ्चविधा त यथा । आहारपर्याप्ति शरीरपर्याप्ति इन्द्रियपर्याप्ति प्राणापानपर्याप्ति भाषापर्याप्तिरिति" पर्याप्ति क्रियापरिसमाप्ति रात्मन इससे ज्ञात पड़ता है कि पर्याप्त शब्दके स्थानमें पर्याप्त मुद्रित हो गया है । कुछ भी हो अर्थमें भेद नहीं है परन्तु पर्याप्ति पाच मानी हैं पुनि लिखाहै कि किन्हीं आचार्योंका कथन है कि मन पर्याप्ति भी है हमारे यहा पर्याप्ति छह मानी हैं ॥ (३) यश कीर्ति अथवा यशस्कीर्ति (क्योंकि हमारे यहा ये दोनों ही पाठ हैं) के स्थान में सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यशांसि है । ' यशांसि यह शब्द यहा पर प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुसकलिंग यशस् शब्द का है ॥ द्वितीया (कर्म) विभक्तिमें भी यशांसि रूप है । सभाष्य०में विहायोगतय प्रथमा विभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंग तक वाक्य पूर्ण करनेके पश्चात् दो वाक्य (क) 'प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तस्थिरादेय यशांसि ख) सेतराणि (=स+इतराणि) में स्पष्ट प्रकारसे प्रगट करनेके लिये कि प्रत्येकशरीर त्रस इत्यादिक और इनके उलट दश ऐसे बीस नाम कर्म के भेद हैं दो न्यारी न्यारी विभक्तियों (यशांसि और सेतराणि) की हैं और इन दशों के साथ भाष्यकारने निर्वर्तक (=उत्पादक, उत्पन्न करने वाला, साधक जनक, सिद्ध करनेवाला) शब्द लगाकर जैसे हमारे यहा पूज्यपाद स्वामीने ' स्थिरभावस्य निर्वर्तक स्थिरनाम अभिप्रायको प्रगट किया है तैसे, ' यशोनिर्वर्तकं यशोनाम ' इससे अभिप्राय प्रगट करदिया है, हमारे यहां यश के पश्चात् कीर्ति शब्द "ख्यापन, सशब्दन (प्रगट करनेके) अर्थमें सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ३६१, तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३०६ में और शब्दन, शब्द तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ ४८० मुद्रित मे लाये हैं और उक्त दोनों वार्तिकों में प्रश्न करने पर कि यश और कीर्तिमें अन्तर नहीं है एकार्थ वाचीहैं, उत्तर दिया है कि सशब्दन वा शब्दन अर्थमें कीर्ति शब्द है और राजवार्तिकमें ' यशस कीर्ति यश कीर्तिरित्यस्त्यर्थ भेद "अर्थात् यशका ख्यापन वा प्रगटपना सो यशकीर्ति है ऐसा(=इति)है(अस्ति)अर्थान्तर (=अर्थ भेद) ॥ इस प्रकार यश कीर्ति समास का विग्रह किया है ॥ हमारी समझमें उपर्युक्त लेखसे स्पष्ट कि यशस् शब्द से भी वही अर्थ निकल आताहै जो यश कीर्तिसे इसलिये यशांसि शब्द पर्याप्त है वसहै ॥ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १०६ में कीर्ति (स्त्री) शब्दका अर्थ यश लिखा है ॥

(४) स-यह शब्दके पहिले सम्-सम-तुल्य-सह-सदृशके अर्थमें लगाया जाता है जैसे सपुत्र, सभार्य सतृष्णा, सधन, आदि (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३६६) यहांपर सह के अर्थ में अर्थात् प्रतिपक्षी सहित, भावार्थ इन दश भेदोंके उलटे सहित भेद भी लैनें ॥

(५) 'तीर्थकरत्व के स्थानमें सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'तीर्थकृत्त्व शब्द है ॥ तीर्थकृत्त्वका अर्थ 'तीर्थकरत्व निर्वर्तक तीर्थकरनाम" अर्थात् तीर्थकरत्वका सिद्ध करनवाला कर्महै वह तीर्थकर नाम(कर्म)है ऐसा किया है अत तीर्थकृत्व और तीर्थकरत्वमें अर्थ भेदनहीं है ॥

यदुदयादात्मा भवान्तर गच्छति सा गतिः। सा चतुर्विधा–नरकगतिस्तिर्यग्गतिर्देवगति–र्मनुष्यगतिश्चेति॥ यन्निमित्त आत्मनो नारको भावस्तन्नरकगतिनाम। एवं शेषेष्वपि योज्यम्॥ तासु नरकादिगतिष्वव्यभिचारिणा सादृश्येनैकीकृतोऽर्थात्मा जातिः॥ तन्निमित्तं

(१)षष्ठस्य|||नामकर्मणः|||उत्तर-प्रकृति–भेदाः| =छठवां नामकर्मके उत्तर प्रकृतिके भेद
द्वि-चत्वारिंशत्(२) भवन्ति T =बियालीस होतेहैं। इन ४२ के आगे नाम इतना जोड़के पढ़ो जैसे गति=गतिनाम

वृत्त्यनुवादः—यद्-उदयात्|आत्मा|भवान्तर|||गच्छतिT=जिसके उदयसे जीव अन्य भवको वा पर्यायको जाता है

सा||गतिः||;सा||चतुर्-विधा||नरकगतिः||तिर्यग्गतिः|| =सो गति है। वह (गति) चार प्रकार नरकगति, तिर्यंचगति
देवगतिः||मनुष्यगतिः||च*इति||यद्-निमितः|आत्मनः| =देवगति और(=च) मनुष्यगति ऐसे है। जिसके निमित्त जीवकी
(३)नारकः| भावः|तद्-नरकगतिनाम||| =नरककी (=नारकः)सत्ता (=भाव) हो सो नरक गति नाम (कर्म)है।
एवम्*शेषेषु(४)|||अपि*योज्यम्||| =इस प्रकार बचीहुई (तीन गति) योंमें भी लगायाजाता हैअर्थात् जिसके हेतु जीवके तिर्यंचमें उत्पत्तिहो सो तिर्यंच गतिनाम कर्म है जिसके कारण आत्मा के देवका भाव हो सो देव गति नाम कर्म है और जिसके निमित्तचेतनके मनुष्यका सत्ता हो सो मनुष्यगति नाम कर्म है

तासु''नरक-आदि-गतिषु''अव्यभिचारिणा''' =तिन नरकादिक गतियोंमें अव्यभिचारी
सादृश्येन'''एकीकृतः'अर्थ-आत्मा'जातिः'' =समान भावकरि (=सादृश्येन) एकता रूपभया जो अर्थका स्वरूप सो जाति है
तद्–निमित्तम्''' =तिस (अव्यभिचारी सादृश्य वा अव्यभिचाररूप समानताके होने) का कारण

(१) षष्ठस्य–यह शब्द त्रिलिंगी है(पद्मचंद्रकोष पृष्ठ|३९५) कर्मणःशब्दके साथ आयाहै इसीलिये नपुसक लिंगमे है क्योंकि कर्मणः शब्द कर्मन् शब्द की षष्ठी विभक्ति है और नपुसक लिंगीहै (२) इन बियालीस प्रकृतियोंमेंसे पहिली चौदह (अर्थात् गति–जाति शरीर–अंगोपांग–निर्माण–बन्धन संघात–संस्थान–संहनन–स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–आनुपूर्व्य) पिंड प्रकृति हैं(=जिस प्रकृतिके आवान्तर भेदहों वह पिंड प्रकृति कहलाती है) शेष २८ अपिंड प्रकृति हैं॥ इन १४ पिंड प्रकृतिके सर्व भेदोंकी गणना करनेसे ६५ होती है उनमे २८ अपिंड प्रकृति जोडदेनेसे सर्वयोग ९३ का होता है अथवा शरीर नामकर्मके मिलेहुये दश भेद जोडने से १०३ प्रकृतियां हैं॥ इसी अपेक्षासे कोई आचार्य सब कर्मोंकी १५८ प्रकृतियां कहतेहैं जो इन शरीरों के पन्द्रह भेदोंको पांच शरीरही में गर्भित करलेंतो १४८ ही प्रकृतियां हैं इनसब प्रकृतियोंकी परिभाषायें और भेद विशेषतासे आगे चलकर यथायोग्य स्थानोंमें कहेंगे (३)नारक=नरक की (पद्म चंद्र कोश पृष्ठ २१०) (४) शेषेषु=शेषेषु गतिषुः अतःशेषेषु को सप्तमी विभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंगमे रक्खाहै

जातिनामतत्पञ्चविधम्—एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरि-
न्द्रियजातिनाम, पञ्चेन्द्रियजातिनाम चेति॥ यदुदयादात्माएकेन्द्रिय इति शब्द्यते तदेकेन्द्रिय-
जातिनाम एवशेषेष्वपि योज्यम् ॥ यदुदयादात्मनः शरीरनिर्वृत्तिस्तच्छरीरनाम । तत्पञ्चवि-
धम्—औदारिकशरीरनाम, वैक्रियिकशरीरनाम, आहारकशरीरनाम,

जातिनाम१'''तद् पञ्च विधम्१'''एकेन्द्रियजातिनाम =सो जातिनामकर्म है, वह (जातिनामकर्म)पाचप्रकार है एकेन्द्रियजातिनामका (नामकर्म)
द्वि-इन्द्रिय-जातिनाम१''' त्रि इन्द्रियजातिनाम१''', =दो इन्द्रियजातिनाम (का नाम) कर्म–त्रीन्द्रियजातिनाम का नामकर्म
चतुर्-इन्द्रियजातिनाम१'''पञ्च इन्द्रियजातिनाम१'''चइति=चतुरिंद्रियजातिनामका नामकर्म पञ्चइन्द्रियजातिनामका नामकर्म ऐसे हैं
यद्-उदयात्१'आत्मा१'एकेन्द्रिय१'इतिशब्द्यते१तद् =जिसके उद्गतसे चेतन एकेन्द्रिय कहा जाता है वह(=तद्) वा वर्णन किया गया है(शब्द्यते)
एकेन्द्रिय-जातिनाम१'''एवम्* =एकेंद्रियजातिनाम (कर्म) इस प्रकार
शेषेषु १'''अपि * योज्यम् १''', =बचीहुई(इन्द्रियों)में भी लगाया जायहै अर्थात् जिसकेउदयसे जीव द्वीन्द्रिय होता है
वह द्वीन्द्रिय जातिनामकर्म कहा जाता है, जिसके उद्गतसे आत्मा त्रीन्द्रिय होता है वह
त्रीन्द्रिय जातिनामकर्म बोला जाता है, जिसके उद्योतसे चेतन चतुरिन्द्रिय होता है वह चौइंद्रियजातिनामकर्म
कहा जाता है और जिसके उद्रेकसे जीव पञ्चेंद्रिय होता है वह पचेन्द्रियजातिनामकर्म वर्णन किया जाता है
यद्-उदयात्१'आत्मन१'शरीर निवृत्ति१''' =जिसके उदयसे वा उद्योत से जीवके शरीरकी रचना (=निर्वृत्ति) वानिष्पत्ति हो
तत्१'''शरीर-नाम१'''तत्१'''पञ्च विधम् १''' =वह शरीरनामकर्म है वह (शरीर नामकर्म) पाच प्रकार है
औदारिकशरीरनाम १''', =औदारिकशरीरनामकर्म अर्थात् जिसके उदयसे स्थूल इन्द्रियोंसे देखने योग्य शरीर की रचना हो (वह औदारिकशरीरनामका नामकर्म है)
वैक्रियिकशरीरनाम १''', =वैक्रियिक शरीरनामकर्म अर्थात् जिसके उद्योतसे उसविधिके शरीरकी रचनाहो जिसमेंअनेकप्रकारके स्थूल सूक्ष्म हलका भारी इत्यादि विकार होनेकी योग्यता (सो वैक्रियिकशरीरनामकानामकर्म है)
आहारकशरीरनाम१''', =आहारक शरीर नाम कर्म अर्थात् जिसके उद्रेकसे उस शरीरकी उत्पत्ति वा बनावट हो जो सूक्ष्म पदार्थके निर्णय के लिये वा संयम पालनेकेलिये प्रमत्त (छठवा) गुणस्थान वर्तीमुनियों के प्रकट होता है (सो आहारकशरीरनामका नामकर्म है)

तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम चेति ॥ तेषां विशेषो व्याख्यातः ॥ यदुदयादङ्गोपांगविवेकस्त-दंगोपांगनाम । तत्त्रिविधम्-औदारिकशरीरांगोपाँगनाम, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, आहारक-शरीरांगोपांग नाम चेति ।

तैजसशरीरनाम १।।१, =तैजस शरीरनामकर्म अर्थात् जिसके उदयसे उस शरीरकी रचनाहो जिससे शरीरमें तेजका कारण होताहै (वह तैजसशरीरनामकानामकर्म है)

कार्मणशरीरनाम १।।१ च *इति* ॥ =और (=च) कार्मणशरीरनामकर्म[1] ऐसे है अर्थात् जिसके उदयसे कार्मण शरीरकी रचना हो (उसको कार्मणशरीरनामकानामकर्म कहते हैं)

तेषाम् ६।३ विशेषः १।१ व्याख्यातः १।१ ॥ =तिन (शरीरों) का विशेष कहागया है (देखो अध्याय २ सूत्र ३६)

यद्-उदयात्५।१ अङ्ग-उपाङ्ग-विवेकः१।१ तद्१।।१ अङ्गोपाङ्गनाम१।१=जिसके उदयसे शरीरके अवयवों (=अङ्ग)की, अप्रधान भागोंकी (=उपांग) अर्थात् शरीरके अवयवोंके अवयवोंका भेद प्रगट होना सो आङ्गोपांग[2] नामक नामकर्म है

तद् १।।१ त्रिविधम् १।१ औदारिक-शरीर-अंगोपांगनाम१।।१ =वह(अंगोपांग नामकर्म) तीन प्रकारहै औदारिकशरीर अंगोपांग नामका नामकर्म अर्थात् जिसके उदयसे औदारिक वा स्थूल शरीरके अंग तथा उपांगका हो ।

वैक्रियिकशरीरांगोपांगनाम १।।१, =वैक्रियिक शरीरांगोपांग नामका नामकर्म अर्थात् जिसके उदयसे उस शरीर के अंग तथा उपांगो का भेद प्रगट हो जिस (शरीर) में अनेक प्रकार के स्थूल सूक्ष्म हलका भारी इत्यादि विकार होनेकी योग्यता हो

आहारकशरीरांगोपांगनाम १।।१ च * इति * =और आहारकशरीरांगोपांग नामका नामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे उस शरीरके अंग तथा उपांगोंका भेद प्रगटहो जोसूक्ष्मपदार्थके निर्णयकेलिये वा संयम पालनेकेलिये प्रमत्त-(छठवां)गुणस्थानवर्ती मुनियोंके मस्तकमेंसे एक हाथका पुतला निकलता है ।

(१) ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मोंके समूहको कार्मणकहते हैं, जो कार्मण शरीररूप परिणमें उनको कार्मण वर्गणा कहते हैं (जैनसिद्धान्तप्रवेशिका)

(२) प्रथम अङ्गके नाम कहते हैं-शिरोनाम-उरो (छाती) नाम, पृष्ठ (पीठ) नाम, बाहुनाम, उदरनाम तथा पादनाम-उपाङ्ग नाम-भी अनेक प्रकार है जैसे स्पर्शनाम-रसननाम-घ्राणनाम-चक्षुर्नाम-तथा श्रोत्रनाम । और मस्तिष्क, कपाल, कृकाटिका, शंख, ललाट, तालु-कपोल-हनु-चिबुक [ठोड़ी] दशन [दांत] ओष्ठ-भ्रू [भोंह] नयन, कर्ण-नासा आदि शिरके उपाङ्गनाम है इसी रीतिसे सम्पूर्ण अंग तथा उपाङ्गोंके नाम जानना चाहिये ॥

यन्निमित्तात्परिनि ष्पत्तिस्तन्निर्माणम्॥ तद्द्विविधम्–स्थाननिर्माणं प्रमाणनिर्माणं चेति। तज्जातिनामोदयापेक्ष चक्षुरादीना स्थान प्रमाणं च निर्वतयति। निर्मीयतेऽनेनेति निमाणम्॥ शरीरनामकर्मोदयवशादुपात्तना पुद्गलानामन्योन्यप्रदेशसंश्लेषण यतो भवति तद्वन्धननाम। यदुदयादौदारिकादिशरीराणा—

यद्-निमित्तात्[५]'''परिनिष्पत्ति[१]'''तद्[१]'''निर्माणम्[१]''' ॥	=जिसके हेतुसे १ (अंगोपांगकी) निष्पत्ति वा उत्पत्ति हो वह निर्माणनाम कर्म है
तद्[१]'''द्वि-विधम्[१]'''–स्थाननिर्माणम्[१]'''	=वह (निर्माणनामकर्म) दो प्रकार है, स्थान निर्माण नाम (का नाम) कर्म
प्रमाणनिर्माणम्[१]''' च * इति * ॥	=तथा (=च) प्रमाणनिर्माण नाम (का नाम) कर्म ऐसे हैं अर्थात् जिनके उदयसे शिरो-उरो-पीठ-बाहु-उदर-पाद इत्यादिक अंग तथा ठोडी दशन-ओष्ठ-भौंह-नयन कर्ण-नासा-आदिक उपांगों की यथास्थान लिये हुये उत्पत्ति वा रचना (=स्थाननिर्माण) और यथा प्रमाणलिये हुये परिनिष्पत्ति वा उत्पत्ति (=प्रमाणनिर्माण) हो सो क्रम से स्थान निर्माणनाम कर्म तथा प्रमाणनिर्माण नाम कर्म हैं।
तद्–जाति–नाम–उदय–अपेक्ष[१]'''चक्षुरादीनां[६]'स्थानं[२]'''	=तिस प्रकारके (=जाति) नाम कर्मकी उदय अपेक्षा अर्थात् उस निर्माणनाम के नामकर्मकी विवक्षा से नेत्रादिकों के स्थानको
प्रमाणम्[२]'''च* निर्वर्तयति T	=तथा (=च) प्रमाणको (लिये हुये) निर्वर्तन करती है पूरा करताहै निष्पन्न करती है
निर्मीयते T अनेन[३]' इति * निर्माणम्[१]'''	=जिसकरि नियतकिया जाता है वा जिसकरि रचाजाता है ऐसा निर्माण (शब्दकाअर्थ है)
शरीर–नामकर्म-उदय–वशात्[५]' उपात्तानाम्[६]'	=शरीर नाम (के नाम) कर्मके उदय वशसे गृहीत (अर्थात् ग्रहणकिये हुये आहारवर्गणाके)
पुद्गलानाम्[६]'अन्योन्य प्रदेश-संश्लेषणम्[१]'''यतः* भवति T	=पुद्गलस्कन्धोंके प्रदेशों का परस्पर अनुप्रवेश वा मिलना जिससे होता है
[२]तद्-बन्धन-नाम[१]'''यद्-उदयात्[५]'औदारिकादि-शरीराणां[६]'''	=सो बन्धन नाम (कर्म) है–जिसके उदय से औदारिकादि (पांच) शरीरों के

(१) तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'अंगोपांगाना, वाक्यको अध्याहार करके इस वार्तिकका विवरण किया है इस लिये अनुवादमें 'अंगोपांगकी" इस वाक्यको कोष्ठकमें लिखकर अनुवाद किया है ॥ वह वाक्य तथा वार्तिक पाठ राजवार्तिक पृष्ठ ३०६ में ऐसे है कि "यन्निमित्तात्परिनिष्पत्तिस्तन्निर्माण ॥ ५=अंगोपांगाना यन्निमित्तात्परिनिष्पत्तिस्तन्निर्माणम् इति ज्ञायते" ॥ (२) बन्धननामकर्म पांच प्रकारका (क) औदारिकबन्धननाम कर्म (ख) वैक्रियिकबन्धननामकर्म (ग) आहारकबन्धननामकर्म (घ) तैजसबन्धन नामकर्म (ङ) और कार्मण बन्धन नामकर्म है अर्थात्

विवरविरहितान्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति तत्संघातनाम ॥ यदुदयादौरिकादिशरीराकृतिनिर्वृत्तिर्भवति तत्संस्थाननाम; तत् षोढा विभज्यते-समचतुरस्रसंस्थाननाम । न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननाम ।

विवरविरहित–अन्योऽन्य–प्रदेश–अनुप्रवेशेन[३।]	=प्रदेशोंका परस्पर छिद्ररहित (=विवरविरहित) अनुप्रवेशकरि
एकत्व–अपादनं[१।।।]भवतितद्[१।।।](१)संघातनाम[१।।।];	=एकता वा संघठनका ग्रहण (=अपादन) होता है सो संघात नामकर्म है
यद्–उदयात्-[५।]औदारिकादि-शरीर-आकृति-(२)निवृ'त्तिः[१।।]	=जिसके उद्गतसे औदारिकादिक (पांच)शरीरोंके आकारकीउत्पत्ति वा रचना।
भवति T तत्संस्थाननाम[१।।।];तत्[१।।।]षोढा*	=होती है वह संस्थान नामकर्म है। वह (संस्थानामकर्म) छह प्रकार से (=षोढा)
विभज्यते T (३)सम(४)चतुरस्र संस्थाननाम[१।।।]	=विभाजितहै समान वा ज्योंका त्यों (=सम) चतुष्कोण (=चतुरस्र=चतुरश्र) शरीरकाआकार (=संथान)सोसम चतुरश्र संस्थानहै औरजिसकेउदयसे शरीरका आकृति(=संस्थान) ऊपर नीचे मध्यमें और इधर उधर (=चतुरस्र) समान हो सो समचतुरस्रसंस्थान नाम (कर्म) है
न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननाम [१।।।]	=न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान नामकर्म अथवा वड़के पेड़के सदृश (न्यग्रोधसम) चारो ओर (=परि) गोल (=मण्डल) शरीर के आकार (=संस्थान) का उत्पादक वा निर्वर्तक

जिसके उदयसे औदारिक बन्ध हो सो औदारिकबन्धन नामकर्म है, जिसके उदयसे वैक्रियिक बन्ध हो वह वैक्रियिकबन्धन नामकर्म है, जिसके उदयसे आहारक बन्ध हो वह आहारकबन्धन नामकर्म है, जिसके उदयसे तैजस बन्ध हो वह तैजसबन्धन नामकर्म है, जिसके उदयसे कार्मण बन्ध हो वह कार्मणबन्धन नामकर्म है। ये भेद सर्वार्थसिद्धिसंस्कृतमें, राजवार्तिक और तत्वार्थश्लोकवार्तिकमे इस सूत्रके विवरण करनेमे नहीं कहे हैं परन्तु 'अर्थप्रकाशिका' इत्यादिकमे पाये जाते हैं (१) संघातनाम कर्म भी (क) औदारिकसंघातनामकर्म (ख) वैक्रियिक-संघातनामकर्म (ग) आहारकसंघात नामकर्म (घ) तैजससंघात नामकर्म (ङ) कार्मणसंघात नामकर्म ऐसे पांच प्रकारका हे अर्थात् जिसके उदयसे औदारिक शरीरमे छिद्र रहित संधि (जोड़) हो वह औदारिक संघात नामकर्म है, जिसके उद्गत से वैक्रियिक शरीरमें छिद्ररहित एकता वा संघठन हो वह वैक्रियकसंघात नामकर्म है, जिसके उदयसे आहारक शरीरमें छिद्ररहित एकता वा संघठन हो वह आहारकसंघात नामका नामकर्म है, जिसके उदयसे तैजसशरीरमें छिद्र रहित संधि (जोड़) हो वह तैजससंघात नामकर्म है और जिसके उदयसे कार्मणशरीरमें संघात हो वह कार्मण संघात नामका नामकर्म हैं। ये संघातके पांच प्रभेद सर्वार्थसिद्धि और दोनों वार्तिकोंमें नहीं है अर्थप्रकाशिका आदिमें पायेजाते हैं (२) निवृत्ति = हटना उपरम, विश्राम परंतु, निर्वृत्ति = उत्पत्ति, रचनाके हैं सर्वार्थसिद्धिकी दोनों मुद्रित आवृत्तियोंमें निवृत्ति शब्द 'निर्वृत्ति' के स्थानमें छप गया है, क्योंकि अन्य हस्तलिखित प्रतियोंमे तथा राजवार्तिक पृष्ठ ३०७ में 'निर्वृत्ति' शब्द है ॥ (३) पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४०८ में 'सम' शब्दका अर्थ साधु (भला) लिखा है यदि भला अथवा सुंदर शब्दका अर्थ यहां पर ले (जैसा कि सदासुखजीने तत्वार्थ सूत्रकी लघुटीकामे लिया है) तो आशय इस प्रकार होगा कि जिसके उदयसे शरीरका आकार ऊपर नीचे मध्यमें और इधर उधर सुंदर मर्यादरूप हो वह समचतुरस्रसंस्थान नामका नामकर्म है। [४] चतुरस्र अथवा चतुरश्र [= चतुष्कोण-चौकोन चार कोन वाला] पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ१४२ मेंदोनों रूप हैं ॥

स्वातिसस्थाननाम । कुब्जसँस्थाननाम । वामनसस्थाननाम । हुण्डसँस्थाननाम चेति । यस्यो-दयादस्थिवन्धनविशेषो भवति तत्सहननननाम ।[१]तच्छड्विधम्-वज्रवृषभनाराचसहनननाम ।

कर्म सो-न्यग्रोध परिमण्डल नामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे वटवृक्षके (=न्यग्रोध) समान नाभिके नीचे पतला और ऊपरिका स्थूल वा मोटी (=परिमण्डल) शरीरकी आकृति वा आकार हो तो न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननामका नामकर्म है

स्वातिसस्थाननाम है''', =स्वातिकसंस्थान नामकर्म, वल्मीकसंस्थाननामकर्म, अथवा वल्मिकिसंस्थाननामकर्म, वामी सस्थान नामकर्म अथवा वामीके सदृश शरीरके आकार वा आकृतिका उत्पादक अर्थात् जिसके उदयसे नीचे मोटी ऊपर पतली (स्वातिसम) शरीरकी आकृति हो वह स्वातिकसंस्थाननामकर्म है

कुब्जसस्थाननाम है''', =कुब्जकसंस्थान नामका नामकर्म, कुबड़े शरीरके आकारका निर्वर्तक कर्म अर्थात् जिसके उदयसे टेढ़ी कुबड़ी पीठकी आकृति हो सो कुब्जकसंस्थान नामका नामकर्म है

वामनसस्थाननाम है''', =बौनासंस्थाननामकर्म छोटे वा गड्डे शरीरके आकारका (=संस्थान) निर्वर्तक कर्म अर्थात् जिसके उदयसे शरीरका आकार अथवा शरीरके अवयव अधिक छोटे हों सो वामनसंस्थाननामकर्म है

हुण्डसस्थाननाम च * इति* =और (=च)हुडकसंस्थाननामकर्म ऐसे (=इति) (छह) हुये अर्थात् जिसके उदयसे शरीरके अंग तथा उपांगके आकार (=संस्थान) की रचना ऊंची नीची घट बढ बेडौल विषमरूप बुरी तथा भयानकहो सो हुण्ड वा हुण्डक संस्थान नामका नामकर्म है ॥

यस्य-उदयात् है'अस्थि-बन्धन-विशेष है'=जिसके उदयसे हाड़के बन्धनमें विशेषता

भवति।तत् है''' सँहनननाम है''',तत् है'''षड्- =होती है वह सहनननाम [का नाम] कर्म है। वह [सहनननामक नामकर्म] छह

विधम् है''' (२)वज्र(३)वृषभनाराचसहनननाम है''' =प्रकार है वज्रवृषभनाराचसँहनन [नामका] नामकर्म,

(१। षट् शब्दका षड् अथवा षट् प्रथमा विभक्ति बहुवचन है, तीनों लिंगोंमें इसका यही रूप रहता है (२) वज्र—हीरा हीरक॥ यह रत्न ऐसा कड़ा कठिन-दृढ होता है कि प्रसिद्ध है"हीरा वही घन चोटन टूटै" एक भाषा कोषमें वज्रका अर्थ कठिनका भी है तब इस अवस्थामें ऐसा अर्थ होगा कि कठिन या कड़ा (नसोंका) वेष्टन, कीला तथा हाड [निकासमूह] सो वज्रवृषभनाराचसहनन है (३) 'वृषभ और ऋषभका एकही अर्थ है। वज्रऋषभका वज्रर्षभ नीचे लिखेहुये संस्कृत नियमसे हो जाता है यदि पहिले कोई स्वर ए ऐ ओ औ को छोडकर आवे उसके पश्चात् ह्रस्व ऋ हो तो ऐसा ऋ विकल्प करिके स्वरके साथ मिलता है अर्थात् चाहे ऋ को स्वरके साथ मिलादो चाहे न मिलादो जैसे देव+ऋषि=देवऋषि, देव+ऋषि=देवर्षि, वज्र+ऋषभ=वज्रर्षभ हो गया। वृषभ अथवा ऋषभ=वेष्टन, वलय बन्धन, वेठन अर्थात् नसोंका

यस्योदयात्स्पर्शप्रादुर्भावस्तत्स्पर्शननाम। तदष्टविधम्—कर्कशनाम। मृदुनाम। गुरुनाम। लघुनाम। स्निग्धनाम। रूक्षनाम। शीतनाम। उष्णनाम चेति॥ यन्निमित्तो रसविकल्पस्तद्रसनाम

(च) जिसके उदयसे (आपसमें) नहीं मिले हों (=असम्प्राप्ति) (वरन् जुदे जुदे) सांपके (हाड़के) सदृश संहनन (सृपाटिकासंहनन) बंधेहुये हों वह असम्प्राप्तसृपाटिकाशरीरसँहनननामका नाम कर्म है भावार्थ जिस कर्मके उदयसे ऐसा शरीर हो जिसके हाड़ परस्पर कीले हुये न हौंउन हाड़ोंकी संधियोंमें अन्तर हो चारों ओर बड़ी छोटी नसें लिपटीहों मांसादिकसे भरीहों आच्छादित हों वहअसम्प्राप्तासृपाटिका शरीरसंहनन (नाम का) नामकर्म है

यस्य¹¹¹ उदयात्¹ स्पर्श-प्रादुर्भावः¹ तत्¹¹¹ स्पर्शननाम¹¹¹; =जिसके उदयसे स्पर्श वा छुहावटका प्रकाश हो वह स्पर्शन(नाम का)नाम कर्म है

तद्¹¹¹ अष्ट-विधम्¹¹¹ कर्कशनाम¹¹¹; मृदुनाम¹; गुरुनाम¹¹¹; =वह आठ प्रकार कठोर स्पर्शनामकर्म कोमल नामकर्म, भारी स्पर्श नाम कर्म,

लघुनाम¹¹¹; स्निग्ध नाम¹¹¹; =हलका(=लघु) स्पर्श नाम कर्म-चिकना स्पर्श नाम कर्म,

रूक्षनाम¹¹¹; शीतनाम¹¹¹; =रूखा वा अचिक्कण स्पर्शनामकर्म, ठंडास्पर्शनामकर्म

उष्णनाम¹¹¹ च इति ॥ =और (=च) तप्तस्पर्श नाम कर्म ऐसे हैं ॥

यद्-निमित्तः¹ रस-विकल्पः¹ तद्¹¹¹ रसनाम¹¹¹; =जिसके निमित्त स्वाद का भेद हो (=विकल्पः) वह रस (नामका)नाम कर्म है

यस्य उदयात् अवज्-अस्थीनि कीलितानि भवति =जिसके उदयसे वज्रहित(शरीरके)हाड़ [परस्पर-टोड़लमलअनुयादसे कीलेहुये होतेहै

तत् कीलित शरीर-संहनन-नाम =वह कीलित शरीर संहनन नामक नामकर्म है॥ कीलक शरीर = कीलिक शरीर ॥

कीलक संहनन और नाराच[=कील, कीला]संहनन में यह अंतर है कीलकमें संहनन को एक दूसरे में साल देते हैं जैसे वढ़ई चौखटों के थानोंको एक दूसरेमें फास देते हैं नाराच संहननमें बढ़ई जैसे फसे हुये थानों मे कीलें जड़ देते है तैसे फसे हुये हाड़ों मे अथवा लगे हुये हाडों में कीले होती है, अर्धनाराचमे कील आर पार नही होती ॥

(च) यस्योदयेन अन्योन्यासम्प्राप्तानि सरीसृप संहननवत्सिरावंधानि अस्थीनि भवति तदसम्प्राप्तसृपाटिका शरीर संहनननाम। कर्मकांडपृष्ठ२८सेउद्धृत

यस्य उदयेन अन्योन्य-असम्-प्राप्तानि- = जिसके उदयकरि परस्पर (=अन्योन्य) नही (=अ)एकत्रताको[=सम्]प्राप्तहुये(=प्राप्त)

सरीसृप संहननवत् सिरा - = वरन् भिन्न भिन्न] सांप[=सरीसृप]के हाडके समान[=संहननवत्] नसोंकरि(=सिरा)

बधानि अस्थीनि भवति, तद् अ-सम्-प्राप्त-सृपाटिका- =बधेहुये हाड [=अस्थीनि] (जिस शरीर के] होते हैं वह असम्प्राप्तसृपाटिका

शरीर संहनन नाम। =शरीर संहनननामका नाम कर्म है ॥

भावार्थ जिस कर्मके उदयसे ऐसा शरीर हो जिसके हाड़ परस्पर कीले हुये नहो उन [हाडों] की संधियों में अन्तर हो चारो ओर बड़ी छोटीनसे लिपटी हों मांसादिकसे भरी हों और आच्छादित हों वह असम्प्राप्तसृपाटिका शरीरसंहनन [नामका) नाम कर्म है ॥

तत्पञ्चविधम्-तिक्तनाम। कटुकनाम। कषायनाम। आम्लनाम। मधुरनाम चेति॥ यदुदयप्रभवो गन्धस्तद्गन्धनाम। तद् द्विविधम्-सुरभिगन्धनाम। असुरभिगन्धनाम चेति॥ यद्धेतुको वर्णविभागस्तद्वर्णनाम। तत्पञ्चविधम्-शुक्लवर्णनाम। कृष्णवर्णनाम। नीलवर्णनाम। रक्तवर्णनाम। हरिद्वर्णनाम चेति॥ पूर्वशरीराकारविनाशो यस्योदयाद्भवति तदानुपूर्व्यनाम। तच्चतुर्विधम्-नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम।

तत्१''' पञ्च-विधम्१''' तिक्तनाम१''', कटुकनाम१''',	=वो पाच प्रकार तीखारसनामकर्म वा चरपरारसनामकर्म, कडुआरसनामकर्म,
कषायनाम१''', आम्लनाम१''', मधुरनाम१''' च *इति* ॥	=कसैलारसनामकर्म, खट्टारसनामकर्म और मीठारसनामकर्म ऐसे (पाच) हैं
यद्-उदय-प्रभव १' गन्ध १' तद्-गन्धनाम१''', तद्१''' द्वि-	=जिसके उदयकी सामर्थ्यसे (देहमें) वासहो वह गन्धनामकर्म है, वह दो
विधम्१''' सुरभिगन्धनाम१''', असुरभिगन्धनाम१''' च *इति* ॥	=प्रकारसुगन्ध(=सुरभिवास-अच्छीवास)नामकर्म और खोटीवासनामकर्म ऐसेहै
यद्-हेतुक १' वर्णविभाग १' तद्१''' वर्णनाम१''', तत् पञ्चविधम्१'''	=जिसके निमितकर(शरीरमें)रंगका भेदहो वह वर्णनामकर्म है, वह पाच प्रकार-
शुक्लवर्णनाम १''' कृष्णवर्णनाम १''', नीलवर्णनाम १''',	=स्वेतवर्णनामकर्म, कालावर्णनामकर्म, नीलावर्णनामकर्म
रक्तवर्णनाम १''', हरिद्-वर्णनाम १''' च *इति* ॥	=अरुणवर्णनामकर्म और पीतवर्णनामकर्म ऐसे (पाच) है।
पूर्व-शरीर आकार अविनाश' १' यस्य१''' उदयात् १' भवति	=जिसके उदयसे पहिले शरीरकी आकृति वा मूर्तीका विनाश नही होता है
तद्-आनुपूर्व्यनाम १''',	=वह आनुपूर्व्यनामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे मृत्युके पश्चात् और जन्मसे पहिले नवीन शरीरके योग्यपुद्गल वर्गणाओंको आत्मा ग्रहण नहीं करता है वरन् पूर्वले शरीरके आकार आत्माके प्रदेश बने रहते हैं, इस कर्मका उदय विग्रहगति (=नवीन शरीरधारण करने केलिये जीव के गमन) में ही होता है अन्यकाल में नहीं होता है॥ इस कर्मका उदय काल जघन्य एक समय, मध्यम दो समय, उत्कृष्ट तीन समय मात्र है
तत्१''' चतुर्विधम्१'''-(१)नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम१''',	=वह(आनुपूर्व्य)नामकर्म चारप्रकार नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नामका नामकर्म
तिर्यग्-गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम१'''	=तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनामका नामकर्म,

(१) "नरकगति प्राप्त होनेको योग्य ऐसा पञ्चेन्द्री जीवके विग्रहगति विषैं पञ्चेन्द्री पर्याप्त शरीरका आकार जाके उदयतै रहै सो नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्य नाम है ऐसे ही सब जानना।" कर्मकाण्डगोम्मटसार गाथा ३३ का अर्थ पं० टोडरमलकृत देखो॥

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम । देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम चेति ॥ यस्योदयादयस्पिण्डवद् गुरुत्वान्नाधः पतति न चार्कतूलवल्लघुत्वादूर्ध्वं गच्छति तदगुरुलघुनाम ॥ यस्योदयात्स्वयंकृ-तोद्बन्धनमरुत्प्रपतनादिनिमित्त उपघातो भवति तदुपघातनाम ॥ यन्निमित्तः परशस्त्रादेर्व्या-घातस्तत्परघातनाम ॥ यदुदयान्निर्वृत्तमातपनं तदातपनाम ।

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम; च देवगति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम इति ॥ =मनुष्यगतिप्रायोग्यापूर्व्य नामकर्म और (=च) देवगति =प्रायोग्यानुर्व्य (नामका) नामकर्म ऐसे है · अर्थात् जिस समयमनुष्य वा तिर्यंचकी आयु पूर्ण हो और आत्मा शरीरसे पृथक् होकर नरकभव वा तिर्यंचभव प्रतिजानेको सन्मुख हो उस समय मार्गमें आत्माके प्रदेश पहिले (मनुष्य वा तिर्यंचके) शरीरकेआकारके ही रहते हैं सो क्रमसे नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य वा तिर्यंगति प्रायोग्यानुपूर्व्य है और जिस के उदयसे पूर्वोक्त शरीरका आकार विग्रहगतिमें बनारहता है उसको नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्य वा तिर्यंचगति प्रायोग्यानुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं ॥ ऐसे ही शेषको जानलो।

यस्य उदयात् अयस्-पिण्डवत् गुरुत्वात् =जिसके उदयसे लोहेके (=अयस्) पिंडके समान भारी होनेसे

न अधः पतति न च अर्क-तूलवत् लघुत्वात् =न नीचे गिरताहैऔर (=च) न आकके (=अर्क) रुईकेसदृश (=तूलवत्) हलकापनसे

ऊर्ध्वम् गच्छति तद् (१) अगुरुलघुनाम; =ऊपर को जाता है वह अगुरुलघुनाम (का नाम) कर्म है।

यस्य उदयात् स्वयंकृत-उद्बन्धन- =जिसके उदयसे अपनेआप कृत (=स्वयंकृत) फांसी लगाने (=उद्बन्धन)

मरुत्प्रपतन =देवतापर (=मरुत्) गिरने (=प्रपतन) वा वायुमें (=मरुत्) गिरपड़ने (=प्रपतन)

आदि-निमित्तः (२) उपघातः भवति तद् उपघातनाम । =आदिक निमित्तासे उपघात (=आत्मघात) होता है वह उपघात (नामका) नामकर्महै

यद्-निमित्तः पर-शस्त्र-आदेः व्याघातः तत् परघातनाम; =जिसकेनिमित्त परके शस्त्र आदिसे (अपना) घातहो वह परघात (नामका) नामकर्महै

यद्-उदयात् निर्वृत्तम् आतपनम् तद् आतपनाम =जिसके उदयसे प्रकाशन (=आतपन) निष्पन्न होता है वह आतपनाम कर्म है अर्थात् जिसके उदयतसे आतपकारी शरीर पावे सो आतपनाम है

(१) यहां शरीरसहित आत्माके सम्बन्धमें अगुरुलघु कर्मकी प्रकृतिहै सो शरीर सम्बन्धीहै अगुरुलघु स्वाभाविक जोद्रव्योंमें गुणहै उससे आशय नहीं।
(२) "उपेत्यघात इत्युपघात आत्मघात इत्यर्थः" =अपने आधीनकरि अर्थात् अपने आप घात ऐसा उपघात है आत्मघात अर्थहै गोम्मट०कर्म०३३ गाथा

केवल ज्ञान भये पीछे सयोगकेवली उत्कृष्ट करि आठ वर्ष और अन्तमुहूर्तहीन एक करोड पूर्व विहार कर सके हैं। जब अन्तमुहूर्त आयु अवशेष रहती है और वेदनीय, नाम, गोत्र कर्मोंकी स्थिति अधिक रहती है तब सयोगकेवली वचन और मनोयोगको निरोधकरि समुद्घात करते हैं इसलिये वचन और मनोयोग संयुक्त सयोगकेवलीके समुद्घात असम्भव है ॥

ओरालं ॥ दंडदुगे ॥ (=औदारं ॥ दण्डद्विके ॥) =औदारिक (काययोग) दण्ड (समुद्घात) युगल (दुगे) में होता है

कवाडजुगले ॥ य ० (=कपाटयुगले ॥ च) =और (य=च) कपाट (समुद्घात) युगल (जुगले=युगले) में

तस्स ॥ मिस्सं ॥ तु ० (=तस्य ॥ मिश्रं ॥ तु ०) =तिस (औदारिक—काययोग) का मिश्र है (=औदारिक काय मिश्रयोग है)

पदरे ॥ य लोगपूरे ॥ (=प्रतरे ॥ च लोकपूरे ॥) =और (=य) प्रतर (समुद्घात) में और (=य) लोकपूर्ण (समुद्घात) में

कम्मं ॥ एव ० य ० (=कार्मणम् ॥ एव ० च) =कार्माण (योग) ही

होदि ॥ णायव्वो ॥ (=भवति ॥ ज्ञातव्यः ॥) =होता है (ऐसा) जानना चाहिये ॥ तु पाद पूरणको है अत अनुवाद नहीं हो सका अर्थात् दण्ड समुद्घातके करने वा समेटने रूप युगलमें औदारिक शरीर पर्याप्ति काल है और कपाट समुद्घातके करने और सकोचनेरूप युगलमें औदारिक मिश्र शरीर काल है। प्रतर समुद्घातमें और लोक पूरण समुद्घातमें कार्माण काल है इस प्रकार आत्माके प्रदेशोंका विस्तार करने पर तो तीन ही काल हैं और संकोचनेमें मूल शरीरमें प्रवेश करनेके पहिले समयसे लगाय संज्ञी पंचेन्द्रियवत् अनुक्रमसे पर्याप्ति पूर्ण करते हैं इसलिये पांचो काल सम्भवे हैं ॥ ऐसा भी मत है कि प्रतररूप समुद्घातमें जब सयोगकेवली आत्माके प्रदेशोंको सकोंचते हैं उस समय औदारिक मिश्रयोग होता है जैसा कि द्यानतरायजीके कवित्तसे प्रगट है "पहले समयमें करे दण्ड आठमें सकरे, परदेश आतमा औदारिक प्रजानिये ॥ दूजेमें कपाट होय सातयें सकरे सोय सप्तरे प्रतर छठे मिश्र जोग जानिए। तीसर प्रतर, चौथे पूरण सर्व लोक, सकरे पांचवें पूरण कारमान मानिये ॥ आठ समे माहि जान केवल समुद्घात निर्जरा असंख्यगुणी देव सो प्रमानिये।" अब इसका भाव सुगमतासे समझमें आजानेके लिये सरल और स्पष्ट शब्दोंमें लिखते हैं। १२५

शरीरनामकर्मोदयान्निर्वर्त्यमानं शरीरमेकात्मोपभोगकारणं यतो भवति तत्प्रत्येकशरीर-नाम ॥ बहूनामात्मनामुपभोगहेतुत्वेन साधारणं शरीरं यतो भवति तत्साधारणशरीरनाम ॥ यदुदयाद् द्वीन्द्रियादिषु जन्म तत्त्रसनाम॥ यन्निमित्त एकेन्द्रियेषु प्रादुर्भावस्तत्स्थावरनाम ॥ यदुदयादन्यप्रीतिप्रभवस्तत्सुभगनाम ॥

शरीरनामकर्म उदयात् $^{5}_{1}$ निर्वर्त्यमानं $^{1}_{1}$ शरीरम् $^{1}_{1}$ एक-आत्म-उपभोग-कारणम् $^{1}_{1}$ यतः* भवति तत् $^{1}_{1}$ प्रत्येकशरीरनाम $^{1}_{1}$

=शरीर नामकर्म के उदयसे विद्यमान शरीर एक आत्माके
=भोगनेका निमित्त जिससे होता है वह प्रत्येक शरीरनाम(कानाम)कर्म है अर्थात् जिसके उदयसे एक एक आत्माके प्रति एक एक शरीर होता है सो है
=जिससे (अर्थात् शरीरनामा नामकर्मके उदयसे विद्यमान एक शरीर में)

यतः* बहूनाम् $^{6}_{3}$ आत्मनाम् $^{6}_{3}$ उपभोग-हेतुत्वेन $^{3}_{1}$ साधारणं $^{1}_{1}$ शरीरं भवति =बहुत आत्माओं के उपभोगसे हेतुपना करि साधारण शरीर होता है
तत् $^{1}_{1}$ साधारण शरीरनाम $^{1}_{1}$ =वह साधारण शरीर(नामका)नाम कर्म है अर्थात् एकही शरीरमें अनन्त जीव एक क्षेत्रमें अवगाहन रूप रहैं जिस कालमें आहार, शरीर इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास चार पर्याप्ति जन्म,मरण, उपकार, उपघात एकजीव ग्रहणकरता है उसीकालमें दूसरे भी अनन्त जीव ग्रहण करते हैं ऐसे जीव साधारण जीव कहलाते हैं ये साधारण जीव निगोदिया वनस्पति-कायमें होते हैं अन्य स्थावरोंमें नहीं होते और जिसके उदयसे एक शरीरमें ऐसे जीव होते हैं वह साधारण शरीरनामकर्म है

यद्-उदयात् $^{5}_{1}$ द्वि-इन्द्रिय-आदिषु $^{7}_{3}$ जन्म $^{1}_{1}$ तत् $^{1}_{1}$ =जिसके उदयसे दो इन्द्रिय आदिकमें उत्पत्ति अथवा भव हो, वह
त्रसनाम $^{1}_{1}$; =त्रस(नामका)नाम कर्म है।
यद्-निमित्तः $^{1}_{1}$ एकेन्द्रियेषु $^{7}_{3}$ =जिसके कारण एकेन्द्रिय(पृथिवीकायिक-जलकायिक अग्निकायिक-वायुकायिक,वनस्पतिकायिक) निर्में,
प्रादुर्भावः $^{1}_{1}$ तत् $^{1}_{1}$ स्थावरनाम $^{1}_{1}$ =आविर्भाव,प्रकाश-(अर्थात् उत्पत्ति वा जन्म) हो वह स्थावर नाम कर्म है
यद्-उदयात् $^{5}_{1}$ अन्य-प्रीति-प्रभवः $^{1}_{1}$ तत् $^{1}_{1}$ सुभगनाम $^{1}_{1}$ ॥ =जिसके उदयसेदूसरेको प्रीतिउत्पत्ति (=प्रभवः) हो वह सुभग(नामका) नाम कर्म है अर्थात् जिसके उदयसे देखते ही अन्य जनोंकेप्रीतिरूपभाव होजाय।

(१) जन्मन् शब्द नपुंसक लिंगी है इसकी प्रथम विभक्ति एक वचन नपुंसकलिंग जन्म है

तदादित्येवर्तते।यन्निमित्तमुद्योतनतदुद्योतनाम।तच्चन्द्रखद्योतादिषुवर्तते।यद्धेतुरुच्छ्वासस्तदुच्छ्वासनाम॥विहायआकाशम्। तत्र गतिनिर्वर्तकंतद्विहायोगतिनाम। तद्विविधम्-प्रशस्ताप्रशस्तभेदात्

तद् आदित्ये वर्तते ।

=वह(आतापन) सूर्यमें होता है(=वर्तते) (और इस कर्मका उदय भी जो सूर्यके विमानमें बादर पर्याप्तजीव पृथिवीकायिक मणी स्वरूपहैं उनकेंही होता है अन्यकें नहीं होता है)

यद् निमित्तम् (१)उद्योतनम् तद् उद्योतनाम

=जिसके कारण उजाला (=उद्योतन) होता है अर्थात् जिसके हेतु उद्योतरूप शरीर हो वह उद्योतनाम (का नाम) कर्म है ॥ हो भावार्थ आतप रहित चमकीला शरीरका हेतुक हो वह उद्योतनाम (का नाम) कर्म है ॥

तत् चन्द्र-खद्योत-आदिषु वर्तते ।

=वह(उद्योतन,उजाला)चन्द्रमाके विमानमें पटबीजना आदि(चौइन्द्रिय जीवों)में होता है

यद् हेतुः उच्छ्वास तद् उच्छ्वासनाम विहायः

=जिसके कारण(शरीरमें) (२) उच्छ्वास हो वह उच्छ्वास नाम कर्म है। विहाय (का अर्थ)

आकाशम्, तत्र गति निर्वर्तकं तद् विहायो-

=आकाश है वहा (आकाश)में गमनका जनक, साधक, वह विहायो

गतिनाम, तद् द्विविधम् -प्रशस्त-

=गति (नाम का) नामकर्म है, वह (आकाश गमन) दो प्रकार है शुभ वा मनोज्ञ-

अप्रशस्त-भेदात्

=और अशुभ, अमनोज्ञ वा अशोभनीक भेद से अर्थात् जैसे जो हस्ती-हस-वृषभ की गतिके समान सुन्दर गमनका कारण हो वह तो प्रशस्त विहायो गति नाम कर्म है और जो ऊंट गधे आदिकके समान असुन्दर गमनका कारणहोवहअप्रशस्त विहायो गति(नामका)नामकर्महै किन्तु मुक्त होनेपर जीवके तथा जड़ पुद्गलके जो गति होती है उसमें कर्म जनित कारण नहीं है ।

इस वाक्य में भी निर्वृत्तम् शब्द पूर्वोक्त वाक्य से आकर्षित हो

(१) इसके पहिले 'यदुदयान्निर्वृत्तमातपन' ऐसा वाक्य हे इससे जान पडता है कि इस वाक्य में भी निर्वृत्तम् शब्द पूर्वोक्त वाक्य से आकर्षित हो सका है इस अवस्थामें यह वाक्य इस प्रकार होगा यन्निमित निर्वृत्तमुद्योतन तब अनुवाद इस प्रकार होगा, यद् निमित्तम् निर्वृत्तम् उद्योतनम्= जिसके कारण उजालापन (=उद्योतन) उत्पन्न(=निर्वृत्तम्) होता है (२) इसमें निःश्वास (=अपान) भी गर्भितहै क्योंकि राज० मुद्रित पृष्ठ ३०८ वाक्यको१७वा वार्तिक नियतकर भाष्य लिखा है 'उच्छ्वसनमुच्छ्वास प्राणापानकर्मतयद्धेतुक तदुच्छ्वास नाम।

यद्धेतुरुच्छ्वासस्तदुच्छ्वासनाम

उच्छ्वसनम् उच्छ्वास प्राण-अपानकर्म- =उसासका लेना सो उच्छ्वास(अर्थात)प्राण(=उच्छ्वास)अपान(=निःश्वास)की क्रिया(=कर्म)है

तद् यद् हेतुकम् तद् उच्छ्वासनाम =उस (प्राण-अपानरूपकर्म)का निर्वर्तक वा उत्पन्न करनेवाला जो सो (=तद) उच्छ्वासनामकर्म है॥

'जिसकर्म के उदयसे श्वासोच्छ्वासहो उसे उच्छ्वास नामकर्म११५ कहतेहैं 'संक्षेप गोम्मटसारपृष्ठ२० "प्राणापानपुद्गलग्रहण सामर्थ्यजनकमुच्छ्वास नाम, सभाष्य० पृष्ठ१८३ ॥

प्राण-अपान-पुद्गलग्रहण- =प्राण (=उच्छ्वास) अपान(=श्वास=निःश्वास) पुद्गलग्रहण करनेकी

सामर्थ्य-जनकम् उच्छ्वास नाम। =शक्तिका जो उत्पादक वा उपजाने वाला है, । (वह) उच्छ्वास (नामका) नाम कर्म है ।

(२)ऊंचा लिया जो कोठेसे पवन सो उच्छ्वासहै। यह प्राणहै। आत्माकरि बाहिरका पवनभीतर कियाहुआ निःश्वास वा अपान है। अध्याय५सूत्र१९

पर्याप्तिनिर्वृत्तिः तत्पर्याप्तिनाम ॥ तत् षड्विधम्-आहारपर्याप्तिनाम । शरीरपर्याप्तिनाम । इन्द्रियपर्याप्तिनाम । प्राणापानपर्याप्तिनाम । भाषापर्याप्तिनाम । मनःपर्याप्तिनाम चेति ॥

पर्याप्ति-निर्वृत्तिः[१] =पर्याप्तिकी समाप्ति वा पूर्णता हो

तत्[१]पर्याप्तिनाम[१], तत्[१]षड्-विधम्[१] =सो पर्याप्तिनामकनामकर्म है ! वह (पर्याप्तिनामकनामकर्म) छह प्रकार

आहारपर्याप्तिनाम[१], शरीरपर्याप्तिनाम[१] =आहार पर्याप्तिनामकर्म शरीरपर्याप्तिनामकर्म,

इन्द्रियपर्याप्तिनाम[१],प्राणापानपर्याप्तिनाम[१], =इन्द्रिय-पर्याप्तिनामकनामकर्म, प्राण-अपानपर्याप्ति नामकनामकर्म,

भाषापर्याप्तिनाम[१],मनःपर्याप्तिनाम[१]च इति =भाषापर्याप्तिनामकर्म और (=च)मनःपर्याप्तिनामकर्म ऐसे हैं अर्थात् (क) एक शरीरको छोड़कर, नवीन शरीरको कारणभूत जिस नोकर्मवर्गणाको जीव ग्रहण करता है उसको खल रस भागरूप परिणमावनेके लिये जीवकी शक्तिके पूर्ण होजानेको आहारपर्याप्ति कहते हैं। (ख) खलभागको हड्डी आदि कठोर अवयवरूप तथा रस भागको लोहू आदि द्रव (नरम) अवयवरूप परिणमावनेकी शक्तिके पूर्ण होनेको शरीरपर्याप्ति कहते है ॥ (ग) उनही नोकर्मवर्गणाके स्कन्ध मेंसे कुछ वर्गणाओंको अपनी अपनी इन्द्रियके स्थानपर उस उस द्रव्येन्द्रियके आकार परिणमावने की शक्तिके पूर्ण होजानेको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं (घ) इस ही प्रकार कुछ स्कन्धोंको श्वासोच्छ्वास-रूप परिणमावनेकी जो जीवकी शक्तिकी पूर्णता होती है उसको श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं ॥

आठ कर्मोंके. अष्टकर्मोंके समूह रूप) परिणमै उनको कार्माण वर्गणा कहते है ॥ (१) पर्याप्ति.—गृहीत आहारवर्गणाको खल, रस भागादिरूप परिणमावनेकी जीवकी शक्तिके पूर्ण होजाने को पर्याप्ति कहते है ॥ जैसे घर घट वस्त्र आदिक अचेतन द्रव्य पूर्ण और अपूर्ण दोनों प्रकारके होते है। वैसे ही जीव भी पूर्ण और अपूर्ण दो प्रकारके होते हैं। जिस प्रकार घर, घट वस्त्रादिक द्रव्य बन चुकने पर पूर्ण और उससे पहिले अपूर्ण कहे जाते है उस ही प्रकार जिन जीवोंकी पर्याप्ति पूर्ण होजाती है। उनको पर्याप्त वा पूर्ण और जिनकी पर्याप्ति पूर्ण नही होती उनको अपर्याप्त वा अपूर्ण कहते हैं ॥ अपर्याप्त जीवोंके भी दो भेद हैं (क) निर्वृत्त्यपर्याप्त(ख)लब्ध्यपर्याप्तक जिनकी पर्याप्ति अभी तक पूर्ण नही हुई है किन्तु अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् नियमसे पूर्ण हो जायगी उनको निर्वृत्त्यपर्याप्ति कहते हे और जिनकी अभी तक भी पर्याप्ति पूर्ण नही हुई और पूर्ण होनेसे प्रथमही जिनका मरण भी हो जावेगा अर्थात् अपनी आयुके कालमे जिनकी पर्याप्ति कभी पूर्ण न होसकेगी उनको लब्ध्यपर्याप्तक जीव अथवा लब्ध्यपर्याप्तक कहते है (४) छह पर्याप्तियोंमेसे एकेन्द्रिय जीवके आदिकी (आहार-शरीर-इन्द्रिय-प्राणापान) चार पर्याप्तियें होती हैं द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय तथा असज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनः पर्याप्ति को छोडकर शेष पांचपर्याप्तियें होती है और सज्ञि पचेन्द्रिय जीव के सर्व ही पर्याप्तियें होती हैं ॥

यदुदयाद्रूपादिगुणोपेतोऽप्यप्रीतिकरस्तत् दुर्भगनाम । यन्निमित्त मनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं तत्सुस्वर-नाम । तद्विपरीत दुःस्वरनाम ॥ यदुदयाद्रमणीयत्वं तच्छुभनाम । तद्विपरीतमशुभनाम ॥ सूक्ष्मशरीरनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम ॥ अन्यबाधाकरशरीरकारणं बादरनाम ॥ यदुदयादाहारादि—

यद्-उदयात्॥ रूपादिगुण-उपेत ॥ अपि* =जिसके उदयसे सुंदरता आदि गुण सहित हो तोभी (=अपि) अप्रीतिकर ॥ तत्॥ दुर्भगनाम॥ यद् निमित्तम् =(अन्यजनोंको)प्रीतिका कारण न हो वह दुर्भगनाम कर्म है । जिसके कारण मनोज्ञस्वर-निर्वर्तनम्॥ तत्॥ सुस्वरनाम॥ =अच्छे प्रियशब्दकी रचना (=निर्वर्तक) हो वह मनोज्ञस्वरनामक नामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे किसीका शब्द प्रिय लगे वह सुस्वर(नामका)नामकर्म है ।

तद्-विपरीतम्॥ दुःस्वरनाम॥ ॥ =उस(सुस्वरनामकर्म)के प्रतिकूल वा उलटा दुःस्वरनामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे किसीका शब्द अप्रिय लगे वा जिसके उद्योतसे अमनोज्ञस्वरकी प्राप्तिहो वह दुःस्वरनामकर्म है ।

यद् उदयात्॥(१)रमणीयत्वम्॥ तत्॥ शुभनाम॥ =जिसके उदयसे(मस्तक मुख हस्त-आदि अवयवोंमें)सुंदरताहो वह शुभनाम(कानाम)कर्म है ।

तद्-विपरीतम्॥ अशुभनाम॥, =उस(शुभनामकर्म)के विरुद्ध अशुभनामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे शरीरमें सुंदरता न हो ॥

सूक्ष्म शरीर-निर्वर्तकम्॥ सूक्ष्मनाम॥, =सूक्ष्म (अर्थात् जीवोंका उपकारक वा अघातक और अघात्य अरोक्य)शरीरका जनक वा उत्पन्न करने वाला सूक्ष्म है सो नामकर्म है ॥

अन्य बाधाकर शरीर कारणम्॥ वादरनाम॥ =दूसरे को रोकनेवाला (बाधाकर)शरीरका कारण सो वादरनामकर्म है ।

यद्-उदयात्॥(२)आहार आदि- =जिसके उदयसे (जीवके) आहार आदिक

(१) शब्दकोश पृष्ठ ८०६ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३१०में रमणीय का अर्थ सुंदर है इसलिये रमणीयत्वको सुंदरताके अर्थ मे लेकरअनुवाद किया गया हो।

(२) जिसमें स्पर्श रस गंध और वर्ण पाया जाता है उसको पुद्गल कहते हैं, पुद्गल द्रव्य के दो भेद (क) परमाणु (ख) स्कन्ध हैं सबसे छोटे पुद्गल को परमाणु कहते हैं अनेक परमाणुके बंध (-अनेक वस्तुओंमें एकपनेका ज्ञान कराने वाले संबंध विशेष) को स्कन्ध कहते हैं ॥ स्कंधके आहार वर्गणा, तैजस वर्गणा, भाषा वर्गणा, मनो वर्गणा कार्माणवर्गणा आदि २३ भेद हैं ॥ संसारी वा अशुद्ध जीवके संबंधमे यहां पांच प्रकारकी वर्गणायें जिसको ग्राह्य वर्गणा कहते हैं काम मे आती हैं ॥ शेष १८ प्रकार की वर्गणायें काममे नहीं आती हैं औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीररूप जो परिणमे उनको आहारवर्गणायें कहते हैं । औदारिक और वैक्रियिक शरीरोंको कान्ति देते वाला तैजस शरीर जिन वर्गणाओं से बनता है उनको तैजसवर्गणा कहते हैं। जो शब्दरूप परिणमें उनको भाषा वर्गणा कहते हैं अथवा वचनरूप होनेके योग्य पुद्गल स्कन्धोंको भाषा वर्गणा कहते हैं। द्रव्यमनरूप होनेके योग्य पुद्गल स्कन्धोंको मनोवर्गणा कहते हैं। जो कार्माण(=ज्ञानावरणादि

तत्प्रत्यनीकफलमयशःकीर्तिनाम ॥ आर्हन्त्य कारणं तीर्थकरत्वनाम ॥ उक्तो नामकर्मण उत्तरप्रकृतिभेदः । तदन्तरोद्देशभाजोगोत्रस्यप्रकृतिभेदो व्याख्यायते—

॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥

गोत्रं द्विविधम् ॥ उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रमिति ॥ यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम् । यदुदयाद्गर्हितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम् ॥ अष्टम्याः कर्मप्रकृतेरुत्तरप्रकृतिनिर्देशार्थमाह

तत्-प्रत्यनीक-फलम् अयशःकीर्तिनाम;	=उस (यशःकीर्ति) के विरुद्ध फलदेनेवाला अर्थात् पापगुणोंकी ख्यातिका कारण अयशः कीर्ति नाम कर्म है भावार्थ ऐसा है कि जिसके उदयसे छते (विद्यमान) गुणभी प्रगट नहो सकें वरण अवगुण ही प्रगट हों सो अयशःकीर्ति नामकर्म है
आर्हन्त्य-कारणम् तीर्थकरत्वनाम ॥	= अरहन्तके होनेका (=आर्हन्त्य) निमित्त तीर्थंकरत्व नामकर्म है अर्थात् जिस प्रकृतिके उदयसे अचिन्त्य विभूति संयुक्त अरहतपना उत्पन्न हो वह है ॥
उक्तः नामकर्मणः उत्तरप्रकृतिभेदः तत्-अनन्तर-उद्देशभाजः गोत्रस्य प्रकृतिभेदः व्याख्यायते ।	=नामकर्मकी उत्तर प्रकृतिके भेद कहेगये उस (नामकर्म) के समीप (अनन्तर) =इच्छितविभाग गोत्र (कर्म) के प्रकृतिभेद कहेजाते हैं कि
उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२॥	= उच्चैर्नीचैश्च (गोत्रस्य द्विउत्तरः-प्रकृति-भेदौ भवतः)

सूत्रार्थ-उच्चैः नीचैः चगोत्रस्य द्विउत्तर-प्रकृति-भेदौ भवतः=ऊंच और (=च)नीच गोत्र (कर्म)के दो उत्तर प्रकृति भेद होते हैं

सूत्रस्यनुवाद-गोत्रं द्विविधम् उच्चैः गोत्रम् नीचैः=गोत्र (कर्म) दो प्रकार है ऊंचा अथवा बड़ा गोत्र (और) निंद्य

गोत्रम् इति, यस्य उदयात् लोकपूजितेषु	=गोत्र इस प्रकार(=इति)है। जिसके उदयसे संसारद्वारा पूजित वा प्रतिष्ठित
कुलेषु जन्म तद् उच्चैः गोत्रम्; यद् उदयात्	=कुलमें उत्पत्ति वह ऊंच गोत्र है । जिसके उदयसे
गर्हितेषु कुलेषु जन्म तद् नीचैः गोत्रम्	=निंदित कुलमें उत्पत्ति वह नीच गोत्र है ।
अष्टम्याः कर्मप्रकृतेः उत्तरप्रकृतिनिर्देश-अर्थम् आह	=आठवीं(अन्तराय) कर्म प्रकृतिके उत्तरप्रकृतियोंके कहनेके लियेकहते हैं कि

षड्विधपर्याप्त्यभावहेतुरपर्याप्तिनाम ॥ स्थिरभावस्य निर्वर्तकं स्थिरनाम ॥ तद्विपरीतमस्थिरनाम ॥ प्रभोपेतशरीरकारणमादेयनाम ॥ निष्प्रभशरीरकारणमनादेयनाम ॥ पुण्यगुणख्यापनकारणं यशःकीर्तिनाम ॥

(ङ) वचनरूप होनेके योग्य पुद्गल स्कन्धोंका (=भाषावर्गणाका) वचनरूप परिणमावनेकी जीवकी शक्तिके पूर्ण होनेको भाषा पर्याप्ति कहते हैं ॥ (च) और द्रव्यमनरूप होनेके योग्य पुद्गल स्कन्धोंको (=मनोवर्गणाको) द्रव्यमनके आकार परिणमावनेकी शक्तिके पूर्ण होनेको मन पर्याप्ति कहते हैं ॥

षड्विध-पर्याप्ति-अभाव-हेतुः, =छह प्रकार पर्याप्तिके न होने (=अभाव) का

अपर्याप्तिनामः, =कारण सो अपर्याप्त (नामका) नामकर्म है अर्थात् जिसके उदयसे जीव छह पर्याप्तियोंमेंसे एक भी पर्याप्ति पूर्ण करनेको समर्थ नहीं होताहै अपर्याप्ति अवस्थामें ही मरणको प्राप्त होजाताहै अथवा यों कहिये-जिस कर्मके उदयसे जीवको लब्ध्यपर्याप्तक अवस्था हो वह अपर्याप्ति नाम

स्थिर-भावस्य, निर्वर्तकं, =(शरीरके अङ्गोपाङ्गके) दृढताका (=स्थिरभावस्य=स्थिरताका) उत्पादक वा उत्पन्न

स्थिरनाम, =करनेवाला स्थिर नाम (का नाम) कर्म है भावार्थ जिसके उदयसे सात (रस-रुधिर मांस मेद हाड मज्जा-वीर्य) धातु और सात (वात-पित्त-श्लेषम-वार-शिरा-नस-स्नायु, चाम और जठराग्नि) उपधातु अपने अपने स्थानमें स्थिरताको प्राप्त हों, दुष्कर उपवासादिक तपश्चरणसे भी अङ्ग उपाङ्गोंमें भी स्थिरता बनी रहे वह स्थिर नामकर्म है ॥

तत्, विपरीतम्, अस्थिरनाम, =उस (स्थिरभाव) के विरुद्ध अस्थिर नाम (का नाम) कर्म है भावार्थ जिसके उदयसे किंचिन्मात्र शीत उष्णादिके कारण अङ्गोपाङ्ग कृश होजाय धातु उपधातुओंकी स्थिरता नहीं रहे तो अस्थिर नाम (का नाम) कर्म है। किंचित् उपवासादिक करनेमें तथा

प्रभा-उपेत-शरीर-कारणम्, आदेयनाम, =दीप्ति सहित वा चमक सहित शरीरका निमित्त सो आदेयनाम कर्म है।

निष्प्रभ-शरीर-कारणम्, अनादेयनाम, =प्रभारहित वा दीप्तिवर्जित शरीरका हेतु अनादेयनाम (का नाम) कर्म है।

पुण्यगुण-ख्यापन-कारणम्, =पवित्र वा उज्ज्वल (=पुण्य) गुणों की प्रगटताका, विख्यातताका हेतु सो

यशःकीर्तिनाम, =यश (=पवित्र गुण, उज्ज्वल गुण) कीर्ति (=प्रगटता) (नामका) नाम कर्म है।

अन्तरायापेक्षया भेदनिर्देशः क्रियते–दानस्यान्तरायो लाभस्यान्तराय इत्यादिदानादिपरिणाम व्याघातहेतुत्वात्तद्व्यपदेशः ॥ यदुदयाद्दातुकामोऽपि न प्रयच्छति, लब्धुकामोऽपि न लभते, भोक्तुमिच्छन्नपि न भुंक्ते, उपभोक्तुमभिवाञ्छन्नपि नोपभुंक्ते, उत्सहितुकामोऽपि नोत्सहते त एते पञ्चान्तरायस्य भेदाः ॥ व्याख्याताः प्रकृतिबन्धविकल्पाः ॥ इदानीं स्थितिबन्धविकल्पो वक्तव्यः ॥ सा स्थिति–

वृत्यनुवादः–अन्तराय–अपेक्षया भेद-निर्देशः क्रियते=विघ्न करनेकी अथवा अन्तराय करनेकी अपेक्षाकरि भेदरूप कथन कियागया है

दानस्य अन्तरायः लाभस्य अन्तरायः इत्यादि =जैसे दानका अन्तराय, लाभका अन्तराय, इत्यादिक (पाँच भेद कहे गये हैं)

दान-आदि-परिणाम-व्याघात-हेतुत्वात् =दानादि (करने) के भावोंकी रुकावट (=व्याघात) के कारण होनेसे

तद्-व्यपदेशः यद्-उदयात् दातु-कामः अपि*न*प्रयच्छति=उस (अन्तरायकर्म) का उपदेश वा कथन है (अर्थात्) दानदेनेकीइच्छा है तोभी (=अपि) जिसके उदयसे नहीं देसक्ता है (सोदानान्तराय कर्म है)

लब्धु-कामः अपि*न*लभते T =लेनेकी वांछा हो तोभी (=अपि) (जिसके उदयसे) नहीं प्राप्त करसकता है (सो लाभान्तराय कर्म है)

भोक्तुम् इच्छन् अपि*नभुंक्ते T =भोगनेको अभिलाषा करते हुयेभी(=अपि) (जिसके उदय से)नहीं भोग सक्ता है (सो भोगान्तराय कर्म है)

उपभोक्तुम् अभिवाञ्छन् न*अपि*न–उपभुंक्ते T =उपभोगनेको वांच्छा करते हुये भी (अपि) (जिसके उदयसे) नहीं उपभोग करसक्ता है सो उपभोगान्तरायकर्म है

उत्सहितु–कामः अपि* न* उत्सहते T =(किसी कार्यके लिये)उत्साह करने की इच्छा भी (=अपि)हो (जिसके उदयसे उत्साह नहीं कर सक्ता है अर्थात् बल प्रगट नहीं करसकता हैसोवीर्यान्तरायकर्म है

ते एते पंच–अन्तरायस्य भेदाः प्रकृतिबन्ध–विकल्पाः =ते इतने पांच अन्तराय (कर्म)के भेद हुये। प्रकृति बन्धके भेद

व्याख्याताः इदानीम् स्थिति-बन्ध-विकल्पः वक्तव्यः सा स्थितिः =कहे गयेहैं। अब स्थितिबन्धके भेद कहना चाहिये । वह स्थिति

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥ १२ ॥

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम्॥१२॥दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम तराय.एतेपञ्चा.तराय भेदा.॥

सूत्रार्थ —दान-लाभ-	=जो दान देनेमें प्रतिबन्धक हो सोदानका अन्तराय है जो लाभहोनेमें विघ्नकारक है सो लाभका अन्तरायहै
भोग-उपभोग-	=जो भोग(करने)में बाधक है जो भोगका अन्तराय जो उपभोग(करने)में रुकावट डाले सोउपभोगकाअन्तराय है
वीर्याणाम्॥ अन्तराय-	=जो शक्ति वा बलके प्रगट करनेमें अड़चन वा अटकाव डाले सो वीर्य अथवा शक्तिका अन्तराय है
एते॥पञ्चान्तरायस्य॥ भेदा ॥	=ये पाच अन्तराय(कर्म)के भेद है भोग जो बार बार भोगनेमें आवै जैसे वस्त्र उपभोग जो एक बार भोगनेमें आवे

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें इस सूत्र का पाठ "दानादीनाम्" केवल इतना ही है परन्तु अर्थ वही किया है जो हमारे यहा अर्थात् "अन्तराय पञ्चविध । तद्यथा । दानस्यान्तराय लाभस्यान्तराय भोगस्यान्तराय , उपभोगस्यान्तराय वीर्यान्तराय इति ॥ इसलिये इससूत्र का दोनों सम्प्रदायोंमें सूत्र पाठ तो एक नहीं है परन्तु अर्थ एक है ॥ श्वेताम्बर सम्प्रदाय वालोंने जैसे मतिश्रुतावधिमन पर्यय केवलानाम् इस अध्यायके ६ वा सूत्रके स्थानमें 'मत्यादीनाम्' ऐसा सूत्र मतिश्रुतावधि मन पर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥ प्रथम अध्याय के इस सूत्र के आधार पर किया है उसी प्रकार उन्होंने दूसरे अध्यायके 'ज्ञान दर्शनदानलाभभोगोपभोग वीर्याणि च" सूत्रके आधार पर इस सूत्र को "दानादीनाम् ऐसा किया है हमारे यहा तत्त्वार्थराजवार्तिकके कर्ता स्वामी अकलङ्कदेवने तथा तत्त्वार्थश्लोक वार्तिकके कर्ता स्वामी विद्यानन्दजीने "मत्यादीनाम्" को इस कारणसे नहीं माना कि इन पाचोंका आवरण एकही ठहरेगा पाच आवरण नहीं ठहरेंगे । (देखो टिप्पणी अध्याय ८ सूत्र ६ परन्तु उक्त स्वामीयों ने दानादीनाम् के न माननेके लिये कुछभी नहीं लिखा परन् उनके निम्नलिखित वाक्योंसे ज्ञात होता है कि उनको कुछ विरोध भी नहीं है जैसाकि निम्न उद्धृत वाक्यों और श्लोकसे प्रगट होता है ॥

दानादीनामंतरायापेक्षमर्थव्यतिरेकनिर्देश ॥ अंतराय इत्यनुवर्तनात् ॥ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ४८० ॥ तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें यह प्रथम वार्तिक है जिसका भाष्य निम्न है = अतराय इति वर्तते तदपेक्षया दानादीनामर्थव्यतिरेक क्रियते दानस्यातरायो लाभस्यातराय इत्यादि ।

दान आदीनाम् अतराय-अपेक्षया अर्थ-व्यतिरेकनिर्देश =दानादिकके अन्तरायकी अपेक्षासे अर्थका पृथक् पृथक् (=व्यतिरेक) कथन है ॥

अन्तराय इति वर्तते(= अन्तराय इति अनुवर्तनात् श्लोकवार्तिक) =दान, लाभ,भोग उपभोग,वीर्य शब्दोंमें अन्तराय शब्द ऐसे जुड़ जाता है कि =(दानातराय, लाभातराय, भोगातराय, उपभोगातराय, वीर्यान्तराय हो जाते है)

तद् अपेक्षया दान-आदीनाम् अर्थ-व्यतिरेक क्रियते =उस (अन्तराय)के अपेक्षासे दान लाभ भोग-उपभोग वीर्यका अर्थ भिन्न२किया गया है

दानस्य अन्तराय लाभस्य-अन्तराय-इत्यादि । =(अर्थात्)दानातराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगातराय वीर्या तराय ।

दानादीनांतुपचानामतराया प्रसूत्रिता पचदानादिविघ्नस्य तत्कार्यस्य विशेषत ॥१४॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ४८० से उद्धृत ॥

दान-आदीनाम् तुपचानाम् अन्तराया प्रसूत्रिता =और (=तु) दानादिकके पाच अन्तराय प्रकर्ष रूपसे (=प्र)सूत्रमें कहे गये हैं

पच दानादि विघ्नस्य तत्कार्यस्य विशेषत =उस(अन्तरायकर्म) का कार्य विशेषरूपसे पांच दानादिमें विघ्न (करन)का है कई स्थानोंमें में 'दानादीनाम्' लानेसे प्रगट है कि इन आचार्यों को विरोध नहीं है ॥

सूत्रार्थः–आदितः*तिसृणाम्[४] अन्तरायस्य[४] [६]च*=आदिसे(अर्थात् अध्याय ८ सूत्र ४केआरम्भ क्रमसे) तीन ज्ञानावर्णदर्शनावरण–वेदनीय कर्म प्रकृतियोंकी और (=च) अन्तराय(कर्म प्रकृति) की (१)त्रिंशत्सागरोपम–कोटीकोट्यः[३]''परा[२]''स्थितिः[१]''=तीस सागर प्रमाण कोड़ा कोड़ी (अर्थात् तीस कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण) (जीवके =साथ) अधिकसे अधिक अवस्थान वा ठहराव है भावार्थ उक्त चार कर्मकी उत्कर्ष वा अधिकतम स्थिति वा ठंहराव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीवके साथ तीस कोड़ा कोड़ी ३०×१००००००० × १०००००००=३०, ००००००००००००००अर्थात् तीन पद्मसागर प्रमाण है।

(१) (क) तीस सागर प्रमाण कोड़ा कोडी, सत्तर सागरोपम कोड़ा कोडी (सूत्र १५) और बीस सागरोपम कोटी कोट्यः इन वाक्यों का क्या आशय है बहुधा भाईयोंका यह विचार है वा समझ रक्खा है कि तीस करोड़को तीस करोड़से गुणा करनेसे जो फल आवे वह तीस कोड़ा कोड़ी प्रमाण होगा, इसी प्रकार सत्तर करोड़को सत्तर करोडसे गुणा करनेसे जो लब्धि आवै वह सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण है और इसी प्रकार बीस करोडको बीस करोड़से गुणा करनेसे जो लब्धि आवैगी वह बीस कोडा कोड़ी सागर प्रमाण होगी॥ यथार्थ मे यह बात नहीं है, ठीक यह है कि तीसको एक कोड़ा कोड़ी अर्थात् ३०×(एक करोड × एक करोड) = ३० × १००००००० × १००००००० = =३००००००००००००००००तीन पद्म॥७०×(१०००००००×१००००००००)=७००००००००००००००००सात पद्म सागर प्रमाण हुये इसी प्रकार २०×(१००००००० × १०००००००)=२००००००००००००००००=२ पद्म सागर प्रमाण हुये क्योंकि(१)एक कोड़ा कोड़ी का अर्थ स्पष्ट है कि एक करोडकी गणनाको एक करोड़की संख्यासे गुण करनेसे जो लब्धि वा गुणन फल आवेगा सो गुणन फल एक कोड़ा कोड़ी होगा अर्थात् १००००००० × १००००००० = १००००००००००००००दस नील संख्या होगी(ख) त्रिंशत्सागरोपम कोटी कोट्यः सप्ततिः सागरोपम कोटी कोट्यः (सूत्र १५) और विंशतिः सागरोपम कोटी कोट्यः' इन तीनों वाक्योंसे प्रगट है कि तीस सागर प्रमाण गुणित कोड़ा कोड़से, सत्तर सागर गुणित एक कोडा कोड़ीसे और बीस सागर गुणित एक कोड़ा कोड़ी से तात्पर्य है (ग) प्रबल प्रमाण यह है कि पं० टोडलमलजी ने गोम्मट सारके कर्मकाण्ड की गाथा १५६ का अर्थ केशव वर्णीकृत जीव तत्व प्रदीपिका संस्कृतके अनुसार अनुवाद करते हुये निम्नलिखित लेख दिया है "आयुविना सात कर्म निकी उदयकी अपेक्षा आबाधा एक कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिका एक सो वर्ष जानने। अवशेष स्थितिकी इसी प्रतिभागकरि आबाधा जाननी। सो कहिये है एक कोडा कोडी सागर स्थितिकी सौ वर्ष आबाधा होय तो सत्तर कोडा कोडी सागर स्थिति की आबाधा केती होइ ऐसे त्रैराशिक करिए। तहां प्रमाण राशि एक कोड़ा कोड़ी सागर, फल राशि सो वर्ष, इच्छा राशि सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर, तहां फल राशिकरि इच्छाकों गुणों प्रमाणका भाग दीए लब्धिराशिका प्रमाण सात हजार वर्ष आए सोई मिथ्यात्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट आबाधा जाननी ऐसेंही अपनी अपनी स्थिति प्रमाण इच्छा राशि कीएं अपना अपना आबाधाकाल का प्रमाण आवै है। जिनकी चालीस कोडा कोडी सागरकी स्थिति है तिनका चार हजार वर्ष प्रमाण आबाधा काल है। जिनकी तीस कोड़ा कोडी सागरकी स्थिति है तिनकी तीन हजार वर्ष प्रमाण आबाधाका काल है ऐसे और भी प्रकृतिनिका आबाधाकाल जानना। पं० टोडलमल कृत गोम्मट कर्म० पृष्ठ १९० ।

द्विविधा,उत्कृष्टा जघन्या च ॥ तत्र यासां कर्मप्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थितिः समाना,तन्निर्देशार्थमुच्यते

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः

द्विविधा[1]।उत्कृष्टा[1]।जघन्या[1]।च तत्र यासां[3]।कर्मप्रकृतीनाम्[3]।=दो प्रकार है उत्कर्ष और (=च)जघन्य तहां जिन कर्मप्रकृतियों की उत्कृष्टा[1]।स्थितिः[1]।समाना[1]।तद् निर्देश अर्थम्[1]।उच्यते।=उत्कृष्ट स्थिति तुल्य है।उस (उत्कृष्ट स्थिति)के उपदेशके लिये कहाजाता है कि

(१) (२)आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है (२) तिसृणाम्- तिसणाम्-यह शब्द स्त्रीलिंग में त्रि शब्दकी षष्ठीविभक्ति बहु वचन है ॥ हमने सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी चार हस्तलिखित प्रतियों का, राजवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखित पुस्तकोंका, श्लोकवार्तिक मुद्रित, हस्तलिखित प्रतियोंका और बारह तेरह और भी तत्त्वार्थसूत्रके श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीकाके पाठ मिलाये तो सबमें तिसृणाम् शब्द निकला,सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी दोनों मुद्रित प्रतियोंमें आठ दश स्थानोंमें और अर्थ प्रकाशिकामें 'तिसृणाम् शब्द निकला, तिसणाम् शब्द व्याकरणानुसार सर्वत्र प्रयोगमें आता है तिसृणाम् का प्रयोग नहीं करते है, इसका प्रयोग वेदोंमें मिलता है, वेदोंमें कहीं कहीं पर 'तिसृणाम् भी पाया जाता है जैसाकि निम्नसूत्रोंसे प्रगट है ॥ "त्रि चतुरो स्त्रियां तिसृचतसृ" अष्टाध्यायी ७ २-९९=(विभक्ती-सूत्र ८४ से अनुवर्तता है)त्रि, चतुरो, स्त्रियाम् 'तिसृचतसृ=विभक्ति परे हो, पश्चात् आवे तो स्त्रीलिंगमें (वर्तमान) त्रि-चतुर् शब्दोंको तिसृ-चतसृ(क्रमसे)आदेश हों ॥ नामि ।६।४।३=नामि अङ्गस्य दीर्घ)=नाम् परे हो तो अङ्गको दीर्घ हो जैसे कर्तृ+नाम् =कर्तॄणाम् परन्तु 'न तिसृचतसृ' ६।४।४-न, तिसृ चतसृ (नामि दीर्घ)=नाम परे हो तो तिसृ और चतसृ अङ्गका दीर्घ नहीं जैसे तिसृ+नाम्=तिसृनाम् और चतसृ+नाम्=चतसृणाम्(इनका न पलट गया णमें)इसलिये तिसृणाम् ठीक है। छन्दस्युभयथा।६।४।५ =छन्दसि उभयथा=नाम् परे हो तो छन्दो विषयमें (अर्थात् वेदोंमें) तिसृ और चतसृ अंगोको विकल्प करके दीर्घ हो तिसृणाम् तिसॄणाम् चतसृणाम् चतसॄणाम् ॥ अन्य व्याकरणोंमेंभी यही नियम माना गया है ॥ सुबन्तरूप कौमदीके पृष्ठ५१ से जहां स्त्रीलिंग त्रि शब्दके रूप दिये हैं नि न वाक्य उद्धृत हैं 'तिसृचतसृ इत्यनयो षष्ठीबहुवचने दीर्घो न भवति'=तिसृ-चतसृ इन दोनोंका षष्ठीविभक्ति बहुवचनमें दीर्घ नहीं होता है अर्थात् ऋ उक्त दो शब्दों का दीर्घ नहीं होता है। पूज्यपादस्वामी जो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और जैनेन्द्रव्याकरणके भी कर्ता हैं, इस विषय पर निम्न सूत्र देते हैं' नोम्यतिसृचतसृ ४-४-३ सूत्र तिसृ-चतसृ शब्दों को छोडकर 'नाम् परे होतो अंगको दीर्घ हो अर्थात् नाम् षष्ठी विभक्ति किसी अंगके पश्चात् आवे तो उस शब्दके अंगका दीर्घ हो जाता है परन्तु तिसृ चतसृ दो दीर्घ नहीं होते हैं जैसे सर्वज्ञ+नाम्=सर्वज्ञा+नाम् यहां 'ज्ञ' को दीर्घ किया परन्तु तिसृ+नाम्।चतसृ+नाम्=तिसृणाम् चतसृणाम् यहां ऋ स्वर दीर्घ न हुआ॥पाठक विचार करलें कि जब पूज्यपाद स्वामी के मतानुसार तिसृणाम् रूप बनता है तो वह अपनी वृत्ति में कैसे'तिसृणाम्' का प्रयोग कर सक्ते हैं इसलियेमुद्रित सर्वार्थ सिद्धिवृत्तिके पृष्ठ २६,२९६,२९८ और द्वितीयावृत्ति के पृष्ठ १६ इत्यादि पर जहां कहीं भी तिसृणाम्' शब्द का प्रयोग किया है वह पूज्यपाद स्वामीके मतके विरुद्ध है और ठीक नहीं है इसलिये हमने सबस्थानोंमें 'तिसृणाम्' शब्दका प्रयोग किया है ॥

[५] वेदानुवादेन-स्त्रीपुंवेदानां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिवादरान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । नपुंसकवेदानां मिथ्यादृष्ट्याद्यानिवृत्तिवादरान्तानाम्

[५] वेदानुवादेन ३। स्त्रीपुंवेदानां ६। मिथ्यादृष्टि आदि-	=वेदकी विवक्षाकरि स्त्री तथा पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टिसे
अनिवृत्तिवादर-अन्तानां ६।	=अनिवृत्तिवादर साम्पराय [गुणस्थानके पहले तीन वेदभागवालों] तकका
लोकस्य ६। असंख्येयभागः १।	=(क्षेत्र) लोकका असंख्यातवां भाग है
नपुंसकवेदानां ६। मिथ्यादृष्टि-आदि	=नपुंसकवेदवाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर
अनिवृत्तिवादर-अन्तानाम् ६।	=अनिवृत्तिवादरसाम्पराय (गुणस्थानके प्रथम तीन वेदभागवर्तीयों) तक

वे मुनि जिनकी आयु छह माह अवशेष रही हो और इसके पश्चात् केवलज्ञान हो तो वह अवश्य ही समुद्घात करते हैं जिनकी आयु केवलज्ञान उत्पन्न होनेसे छहमाससे अधिक शेप रही हो तो वे समुद्घात करें और नहीं भी करें । आयुकर्मके समान शेष तीन गोत्र, वेदनीय नामकर्मकी स्थिति होनेके अर्थ केवली भगवान वचन और मनोयोगोंका निरोधकर समुद्घात (अर्थात् मूल शरीरको न छोड़ते हुये आत्माके प्रदेश बाहर निकलनेकी क्रिया) का प्रारंभ इसप्रकार करते हैं कि

(क) प्रथम समयमें शरीरसे प्रदेश दंडाकार निकलते हैं और ए प्रदेश आठवें समयमें संकोचे जाते हैं-संवरे हैं वा समटे हैं यहांपर औदारिक काय योग है ।

(ख) दूसरे समयमें प्रदेश कपाट रूप फैलते हैं और इनका संकोच वा समेटना सातवे समयमें होता है यहां औदारिक मिश्रयोग है

(ग) और यही औदारिक मिश्र योग छठवें समयमें होता है जब प्रतर समुद्घातमें आत्माके प्रदेश संकोचे जाते हैं । इस प्रतर समुद्घात का प्रारंभ तीसरे समयमें होता है इसमें प्रदेश चिलोनी रईके फूल सम तीनों वात वलयके क्षेत्रको छोड़कर सब लोकमें फैल जाते हैं इस तीसरे समयमें कार्माण योग होता है।

(घ) चौथे समयमें लोक पूरण समुद्घातका प्रारम्भ होता है आत्माके प्रदेश सर्वत्र सर्वलोकाकाशमें सर्वतः व्याप्त हो जाते हैं और इन का सिमटना पांचवें समयमें होता है इस चौथे और पांचवे समयमें कार्माण योग है ॥ इस प्रकार सयोगकेवली भगवान आठ समयमें समुद्घात करके उक्त तीनों कर्मोंकी स्थिति आयुकर्मके बराबर करते हैं ॥

मध्येऽन्ते वा तिसृणा ग्रहणं माभूदिति आदित इत्युच्यते। अन्तरायस्येतिवचन व्यवहितग्रहणार्थम् ॥ सागरोपममुक्तपरिमाणम्।कोटीनां कोट्य. कोटीकोट्य।परा उत्कृष्टेत्यर्थ । एतदुक्त भवति-

वृत्त्यनुवाद 'मध्ये'[१]''अन्ते'[२]''वा तिसृणाम्'[३]''ग्रहणं'[४]''=मध्यमें अथवा अन्तमें तीन (कर्मों) का आदान अथवा ग्रहण
मा*भूत् T इति* आदित * =न(=मा)होजावै(=अभूत्)ऐसे आदित'(=आदिसे)(तिसृणा शब्दके प्रथम और निरन्तर)
इति* उच्यते T । =कहा गया है भावार्थ यदि सूत्रमें आदित शब्द न लाकर केवल 'तिसृणामन्तरायस्य च' इत्यादि सूत्र होता तो यह नहीं जान पड़ताकि मध्यके तीनकर्म वा अन्तके तीन कर्म(ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय,आयु,नाम,गोत्र,अन्तरायमेंसे किस)की अन्तराय सहित तीस कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण उत्कर्षस्थिति है इसलिये आदित शब्दसे स्पष्टकर दिया है कि "ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तराय" सूत्रसे आदिके तीन कर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण, और वेदनीय,अन्तराय सहितकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडा कोडी सागर प्रमाण है ॥

अन्तरायस्य[१]' इति*वचन[२]''व्यवहित-ग्रहण–अर्थम्[३]''=(सूत्रमें) 'अन्तरायका'ऐसा वाक्यका ग्रहण सयुक्तता(=व्यवहित)के लिये (अर्थम्)है अर्थात् ज्ञानावरण–दर्शनावरण–वेदनीय-तथा (=च) अन्तराय सयुक्त (प्रत्येककी) तीस तीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है

सागरोपमम्[१]''उक्त-परिमाणम्[२]'' । =सागरोपम है सो वर्णित सख्या (=उक्त-परिणाम) है (देखो अध्याय तीन सूत्र ३८)

(१) कोटीनाम्[३]'' कोट्य[२]''कोटीकोट्य[१]'', =किरोडोंके किरोड हैं सो कोटी कोट्य है भावार्थ एक करोडको एक करोड़से गुणा करनेसे जो लब्धि आवे, जो गुणनफल आवै सो एक कोड़ा कोड़ी है। जैसे १००००००० × १००००००० = १०००००००००००००० दसनील प्रमाण संख्या हुई ॥

परा[१]''उत्कृष्टा[२]''इति*अर्थ[३]'[४]''एतद्[१]''उक्त[२]''भवति=परा उत्कर्ष ऐसा तात्पर्य है (इसलिये) यह अर्थ (=उक्त) (इस सूत्रका) होता है कि

(१)(क) कोटी अथवा कोटि ये दोनों शब्दोंका अर्थ करोड है ॥ यहा पर कोटी शब्दका प्रयोग है न कि कोटि का (क्योंकि)दशशती और कोटी शब्दों के विभक्तियोंके वेही रूप हैं जो दासी शब्दके हैं दासी शब्दका बहुवचन प्रथमा विभक्ति में दास्य रूप है और षष्ठी विभक्ति बहुवचनमें दासीनाम् है इसी प्रकार कोटी शब्दका बहुवचन प्रथमा विभक्तिमें कोट्य रूप है और षष्ठी विभक्तिबहुवचनमें कोटीनाम् है(ख)कोटि [illegible] स्त्रीलिंग है इसक

ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणामुत्कृष्टा स्थिति स्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्य इति ॥ सा कस्य भवति ?। मिथ्यादृष्टेः सञ्ज्ञिनः पंचेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य ॥ अन्येषामागमात्सम्प्रत्ययःकर्तव्यः ॥ मोहनीयस्योत्कृष्टस्थितिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥

ज्ञानावरण–दर्शनावरण–वेदनीय–अन्तरायाणाम्	=ज्ञानावरण–दर्शनावरण–वेदनीय–तथा अन्तराय(कर्म) निका
उत्कृष्टा (१) स्थितिः त्रिंशत्सागरोपम–	=उत्कर्ष ठहराव (संसारी जीवके साथ)तीस सागर प्रमाण
कोटीकोट्यः इति। 'सा' 'कस्य' भवति ?	= कोड़ा कोड़ी है (प्रश्न) वह स्थिति किसकी होती है?
मिथ्यादृष्टेः संज्ञिनः पंचेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य;	(उत्तर) मिथ्यादृष्टि(प्रथमगुणस्थानवर्ती)संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तक जीवकी
(२)अन्येषाम् (३)आगमात् सम्प्रत्ययः कर्तव्यः;	=होती है। अन्य (जीवों)की स्थिति शास्त्रसे प्रतीत करना चाहिये।
मोहनीयस्य उत्कृष्ट–स्थिति–प्रतिपत्ति–अर्थम् आह	=मोहनीय कर्मकी उत्कर्ष स्थिति जानने के लिये (अग्रिम सूत्र) कहते हैं कि–

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥सप्ततिः (सागरोपमकोटीकोट्यःपराःस्थितिः)मोहनीयस्यकर्मणःभवति

रूप सब विभक्तियोंमें उन स्त्रीलिंग शब्दोंके सदृश हैं जिनके अन्तमें इ-हो जैसे मति-मति शब्दका प्रथमा विभक्ति बहुवचन मतयः है इसी प्रकार कोटि शब्दका कोटय. है परन्तु ऊपर वृत्तिमें हमको कोटयः रूप बहु वचनमें मिलता है इसलिये स्पष्ट है कि कोटी शब्दका प्रयोग है निःसन्देह दासीकी षष्ठीबहुवचन दासीनाम् है और मतिकी मतीनाम् है उसी भांति कोटी और कोटि दोनोंकी षष्ठी बहुवचनका एकही रूप कोटीनाम् है (१) बन्धके प्रथम समयसे लेकर जितने काल अवस्थान रहै सो स्थिति बन्ध है() अन्येषाम्–अन्य शब्दकी षष्ठी बहुवचन पुल्लिंग और नपुसंकलिंगमें यही एक रूप होताहै यहांपर पुल्लिंगमें इस हेतुसे लिखा है कि जीवोंसे सम्बन्ध रखताहै और जीव शब्द पुल्लिंग है(२)शास्त्रमे इस प्रकार अन्य जीवोंकी स्थिति बन्धकी स्थिति लिखी हैकि(क)एकेन्द्रिय पर्याप्तकके इनचार(ज्ञाना-वरण दर्शनावरण-वेदनीय-अन्तराय)कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपमके सप्तभाग कीजिये उनमें तीन भाग प्रमाणहै(ख)द्वीन्द्रिय पर्याप्तकके पचीस सागरोपमके सात भागमें तीन भाग प्रमाण है (ग)त्रीन्द्रिय पर्याप्तकके पचास सागरोपमके सात भागमें तीन भाग प्रमाणहै(घ)चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकके सोसागरोपमके सातभागमें तीन भाग प्रमाण है(ङ)असैनी पचेन्द्रिय पर्याप्तकके सहस्र सागरोपमके सात भागमें तीन भाग प्रमाणहै। संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकके अन्त कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण (अर्थात् एक कोटी सागरसे ऊपर और कोड़ाकोडी सागरसे नीचे इतने सागर प्रमाण) उत्कृष्ट स्थिति बन्ध है (छ) एकेन्द्रिय–द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय–असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकके उक्तचारकर्मों कीउत्कष्ट स्थिति अपनेर पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति कहीं तिनसे पल्यकाअसख्यातवांभागन्यूनहै

सागरोपमकोटीकोट्य परा स्थितिरित्यनुवर्तते॥ इयमपि परा स्थितिर्मिथ्यादृष्टे संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्यावसेया॥ इतरेषा यथागममवगमः कर्तव्य॥ नामगोत्रयोरुत्कृष्टस्थितिप्रतिप्रत्यर्थमाह—

विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ -सप्तति॰''सागरोपम–कोटीकोट्य॰'' =सत्तरि सागर प्रमाण कोड़ा कोड़ी
परा''स्थिति॰'' मोहनीयस्य''' कर्मण॰'''भवति ॥ =उत्कृष्ट स्थिति मोहनीय(कर्म)कीहै।।(दोनो आम्नायोंमें इससूत्रका पाठअर्थएक है)

वृत्त्यनुवाद -सागरोपम-कोटीकोट्य ''परा''स्थिति ''=(इस पन्द्रहवा सूत्रमें चौदहवा सूत्रसे) सागरोपम कोटीकोटय॰ परास्थितिः
(=सागर प्रमाण कोड़ाकोड़ी उत्कृष्ट स्थिति)
इति* अनुवर्तते। ,इयम्'' अपि* =ऐसा (वाक्य)आता है। यह भी(अर्थात् चौदहवा सूत्रमें स्थितिकही सो,यह भी)
परा''स्थिति '' मिथ्यादृष्टे '' संज्ञिन् पञ्चेन्द्रियस्य'' =उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यादृष्टी सैंणीपचेन्द्रिय
पर्याप्तकस्य'' अवसेया''',इतरेषाम्'(१)यथाआगमम्'' =पर्याप्तक(जीवों)कीजानना चाहिये। अन्य(जीवों)की(उत्कृष्टस्थिति) आगमकेअनुसार
अवगम ''कर्तव्य॰''।।नाम –गोत्रयो '''उत्कृष्ट– =बोध करना चाहिये। नाम तथा गोत्र दोनों (कर्मों)की उत्कर्ष
स्थिति–प्रतिपत्ति–अर्थम्''' आह ॥ =स्थिति॰कहनेके लिये (अग्रिम सूत्र) कहते हैं कि

विंशतिर्नामगोत्रयो ॥१६॥विंशति (सागरोपमकोटीकोट्य. परास्थिति॰)नामगोत्रयो कर्मणो॰भवति

सूत्रार्थ -विंशति''सागरोपम्–कोटी–कोटय॰''परा'' =बीस सागर प्रमाण कोड़ाकोड उत्कृष्ट वा अधिक से अधिक
स्थिति '' नाम–गोत्रयो '' कर्मणो''' भवति ॥ =स्थिति नाम तथा गोत्र दोनों कर्मों की होती है ॥

(१) यथाआगमम्–एकेन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरकी है (ख) द्वीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति पचीस सागर प्रमाण है (ग)त्रीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति पचास सागर है(घ)चतुरिन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सौसागर प्रमाण है(ङ)बहुरि पर्याप्तक असंज्ञि पचेन्द्रियकी एक सहस्र सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है(च)बहुरि एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तथा असंज्ञि पचेन्द्रिय अपर्याप्तककी अपनी अपनी पर्याप्तकी स्थिते कहीं तिनतिनसे पल्यके असंख्यातवा भाग न्यून जाननी (छ) और सेनी पचेन्द्रिय अपर्याप्तकके अंत कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति जाननी ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें नामगोत्रयोर्विंशति " पाठ है ॥ दोनों आम्नायोंमें अर्थ एक है ॥

सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिरित्यनुवर्तते ॥ इयमप्युत्कृष्टा स्थितिर्मिथ्यादृष्टेः सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य ॥ इतरेषां यथागममवबोद्धव्या अथायुषः कोत्कृष्टा स्थितिरुच्यते

॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥ पुनः सागरोपमग्रहणं कोटीकोटी

वृत्त्यनुवाद:-सागरोपम-कोटीकोटयः३'''परा१'''स्थितिः१''' =(इस सोलहवां सूत्रमें चौदहवां सूत्रसे) सागरोपमकोटीकोटयः परास्थिति (=सागर प्रमाण कोड़ाकोड़ी) (उत्कृष्ट स्थिति)

इति* अनुवर्तते T इयम्१''' अपि* =ऐसा(वाक्य)आता है। यह भी(अर्थात् १४,१५ सूत्रमें स्थिते कहीं वे भी,यहभी)

उत्कृष्टा१'''स्थितिः१'''मिथ्यादृष्टेः६'संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य६' =अधिकतम (=उत्कृष्ट) स्थिति मिथ्यादृष्टीसंज्ञी पंञ्चेन्द्रिय

पर्याप्तकस्य६';इतरेषां६।(१)यथा-आगमम्१'''अवबोद्धव्या१''' =पर्याप्त(जीव)कीहै।शेष(जीवों)की(उत्कृष्ट स्थिति) शास्त्रानुसार जानना चाहिये

अथ-आयुषः६'''का१'''उत्कृष्टा१''' स्थितिः१'''उच्यते T ॥ =अब आयु की प्रकर्ष स्थिति कितनी है (अग्रिमसूत्रमें)कही जाती है

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥१७॥ = त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणिआयुषः(परास्थितिः)भवति

सूत्रार्थः—त्रयस्त्रिंशत्–सगरो–पमाणि१'''आयुषः६''' =तेतीस सागरप्रमाण आयु

कर्मणः६'''परा१'''स्थितिः१'''भवतिT =कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति अर्थात् अधिकसे अधिक स्थिति होती है

वृत्त्यनुवादः-पुनः*सागरोपमग्रहणं१'''कोटीकोटी– =बहुरि(=पुनः) (इससूत्रमें) सागरोपम(शब्द)का ग्रहण कोटीकोटी (वाक्य) के

(१) यथा आगमम् (क) एकेन्द्रिय पर्याप्तककी (एक सागरका सात भागमें दो भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है (ख) द्वीन्द्रिय पर्याप्तककी पच्चीस सागरका सात भागमें दो भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है (ग) त्रीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति पचास सागरके सात भागमें से दो भाग प्रमाण है (घ) चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरके सात भागमें से दो भाग प्रमाण है (ङ) असंज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति हजार सागरके सात भागोंमें से दो भाग प्रमाण है (च) सञ्ज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति अन्तः कोडा कोड़ी सागर प्रमाण है और (छ,-ज-झ-ञ-ट) बहुरि एकेन्द्रिय,द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय असैनी अपर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थिति अपने अपने पर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थितिसे पल्योपमके असंख्यात वें भाग घाटि(स्थिति)जाननी ॥ (२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें आयुषः १७वां सूत्र वचनके स्थानमें आयुष्कस्य है शेष सूत्र पाठ एकही है आयुषः और आयुष्कस्य का एकही अर्थ आयुका ऐसा है क्योंकि आयुस् शब्दमें कन् प्रत्यय स्वार्थ में (=उसी अर्थमें, अपने अर्थ में) लगानेसे आयुष्क बनता है इसलिये, दोनों सम्प्रदायोंमें सूत्रका अर्थ एक है ॥

निवृत्त्यर्थम् । परा स्थितिरित्यनुवर्तते ॥ इयमपि पूर्वोक्तस्यैव ॥ शेषाणामागमतोऽवसेया ॥ उक्तोत्कृष्टा स्थिति·॥ इदानीं जघन्या स्थितिर्वक्तव्या॥ तत्र समानजघन्यस्थिती पञ्च प्रकृती रवस्थाप्य तिसृणा जघन्यस्थितिप्रतिपत्त्यर्थं सूत्रद्वयमुपन्यस्यते लघ्वर्थम्-

॥ अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥

अपरा जघन्या, वेदनीयस्य द्वादशमुहूर्ता· ॥

निवृत्ति-अर्थम् ,परा स्थिति इति	=छोड़ने वा न लानेके लिये है । परा स्थिति ऐसा (वाक्य चौदहवा सूत्रमे इस सूत्रमें)
अनुवर्तते T । इयम् अपि*पूर्व-उक्तस्य	=आता है । यहभी(उत्कृष्ट स्थिति) प्रथम कथित(सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों) की
एव*। शेषाणाम्(१)आगमत *अवसेया ॥	=ही(=एव) है । बचे हु (जीवों की उत्कृष्ट स्थिति) आगमसे जानना चाहिये ।
उक्ता "उत्कृष्टा" स्थिति·, इदानीम्*जघन्या	=उत्कर्ष स्थिति कही गई। अब जघन्य वा हीनसे हीन
स्थिति "वक्तव्या",तत्र समान-जघन्य स्थिती·	=स्थिति कहना चाहिये। तहा बराबर वा तुल्यन्यूनसे न्यून (=जघन्य) स्थितिये
पञ्च प्रकृती अवस्थाप्य —	=पाच(ज्ञानावरण-दर्शनावरण मोहनीय आयु-अन्तराय कर्म)प्रकृतियोंको(इससमय)छोड़कर
तिसृणाम्॥जघन्य स्थिति-प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥	=तीन (कर्म वेदनीय-नाम-गोत्र) की घाटि से घाटि स्थिति कहनेके लिये
सूत्र-द्वयम्॥उपन्यस्यते T लघु अर्थम्॥—	=युगल सूत्र सक्षेपके लिये रखाजाता है

अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य = अपरा (स्थिति) द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य कर्मण भवति।

सूत्रार्थ —(२) अपरा (३) द्वादश-मुहूर्ता	=हीनसे हीन (=अपरा) बारह मुहूर्त (=६ घटा) ॥
वेदनीयस्य कर्मण स्थिति· भवति T	=वेदनीय कर्मके अवस्थान वा ठहराव है । २ घटेका एक मुहूर्त होता है ।
वृत्त्यनुवाद·—अपरा "जघन्या" वेदनीयस्य	=न्यूनसे न्यून (=अपरा) घाटि से घाटि (=जघन्या) वेदनीय (कर्म) का
द्वादशमुहूर्ताः	=(अवस्थान वा ठहराव) बारह मुहूर्त है ।

(१)असञ्ज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तकके पल्यके असख्यातवा भाग प्रमाण है और एकेन्द्रियादिकके आयुका उत्कृष्ट स्थिति पूर्व कोटि पृथ जानना ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ३१२ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ४८१(२)दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ एक है(३)मुहूर्त —यह शब्द पुलिंग

नामगोत्रयोरष्टौ ॥१९॥

मुहूर्ता इत्यनुवर्तते । अपरास्थितिरिति च॥ अवस्थापितप्रकृतिजघन्यस्थितिप्रतिपत्त्यर्थमाह-

शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥२०॥

---

(१) नामगोत्रयोरष्टौ ॥१९॥ (अपरा स्थितिः) नामगोत्रयोःअष्टौ (२)(मुहूर्ताः) भवति

सूत्रार्थ:-अपरा$\frac{1}{1}$ स्थितिः$\frac{1}{1}$ नामगोत्रयोः$\frac{6}{2}$ अष्टौ$\frac{1}{3}$ मुहूर्ताः$\frac{1}{3}$=जघन्य स्थिति नाम तथा गोत्र दोनों कर्मों की आठ मुहूर्त (काल पर्यन्त) है।

वृत्त्यनुवाद:-मुहूर्ताः$\frac{1}{3}$ इति* अनुवर्तते। =मुहूर्ताः ऐसा (वाक्य अठारहवां सूत्रसे इस सूत्रमें) आता है अथवा प्रवर्तता है

अपरा$\frac{1}{1}$ स्थितिः$\frac{1}{1}$ इति* च* =(सूत्रमें) अपरा (शब्द १८वां सूत्रसे) और स्थिति ऐसा (शब्द सूत्रमें १४वां सूत्रसे) आता है

अवस्थापित– =ठहरे हुये अथवा रहे हुये (=अवस्थापित) (पांच ज्ञानावरण–दर्शनावरण–मोहनीय–आयु–अन्तराय कर्मकी)

प्रकृति–जघन्य–स्थिति–प्रतिपत्ति–अर्थम्$\frac{2}{1}$ आह– =प्रकृतियोंका हीनसे हीन अवस्थान वा स्थिति जतावनेके लिये कहते हैं कि

शेषाणामन्तर्मुहूर्ताः (३) ॥२०॥ =**शेषाणां (पंचानाम्) प्रकृतीनाम् अन्तर्मुहूर्ताः$\frac{1}{1}$ अपरास्थितिः**

सूत्रार्थः—शेषाणां$\frac{6}{3}$ पंचानाम्$\frac{6}{3}$ =अवशिष्ट वा बचेहुये पांच (ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीय-आयु अन्तराय कर्मों) की

प्रकृतीनाम्$\frac{6}{3}$ अन्तर्मुहूर्ता$\frac{1}{3}$ अपराः$\frac{1}{1}$ स्थिति.$\frac{1}{1}$ =प्रकृतियोंकी मुहूर्तसे हीन जघन्य स्थिति है प्रत्येक कर्मकी जघन्य स्थिति $\frac{4}{5}$ घंटे सेन्यून है

और नपुंसकलिंग दोनों हैं- यहां पर पुल्लिंगमें आया है ॥ $\frac{4}{5}$ घंटे का मुहूर्त होता है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "शेषाणामन्तर्मुहूर्ता" सूत्रका पाठ "शेषाणामन्तर्मुहूर्तम्" ऐसा है ॥ इस पाठ में अन्तर्मुहूर्तम् नपुंसकलिंगमें आया है॥ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३००और अमरकोश वर्ग ४ श्लोक ११ के अनुकूल यह शब्द (पु०न०,है 'मुहूर्तो द्वादशास्त्रियाम्", इत्यमरः अर्थात् मुहूर्त बारह क्षण का है और स्त्रीलिंग वर्जित (शेषलिंगोंमें) होता है।

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ एक है (२) अष्टौके स्थानमें अष्ट लानेसे सूत्र लघु होजाता अर्थात् "नामगोत्रयो रष्ट" ऐसा सूत्र होता सो क्यों नहीं किया ? क्योंकि अष्टन् शब्द यथार्थमें है उसका प्रथमा बहुवचन तीनों लिंगोंमें अष्ट-अष्टौ दोनों ही होता है। केवल बहुवचन ही इस अष्टन् का होता है, जिस संज्ञाके साथ आता है उसके अनुसार इसका वचन और विभक्ति होती है परन्तु तीनों लिंगोंमें एकही अष्ट वा अष्टौ होता है ॥

(३) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें अन्तर्मुहूर्ताःकेस्थानमें अन्तर्मुहूर्तम् है शेषपाठ वही है जो हमारेयहां है, हमारेयहां सूत्र पाठ दोप्रकार का है एकमें "अन्त-

शेषाणा पंचाना प्रकृतीनामन्तमुहूर्ताऽपरा स्थिति ॥ ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणा जघन्या स्थिति सूक्ष्मसाम्पराये। मोहनीयस्य अनिवृत्तिवादरसाम्पराये। आयुष. सख्येयवर्षायुष्कतिर्यक्षुमनुष्येषु च॥ आह–उभयी स्थितिरभिहिता ज्ञानावरणादीनामथानुभव·किं लक्षण इत्यत आह–

भावार्थ ज्ञानावरण कर्म प्रकृतिकी जघन्य अन्तर्मुहूर्त स्थिति है (२) दर्शनावरण कर्म प्रकृतिकी न्यूनसे न्यून अन्तर्मुहूर्त स्थिति है (३) मोहनीय कर्म प्रकृतिकी घाटि से घाटि अन्तर्मुहूर्त अवस्थान है (४) आयु कर्म प्रकृतिका भी हीन से हीन ठहराव एक मुहूर्तसे हीन है (५) और अन्तराय कर्मप्रकृतिकी भी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है ॥

खण्डान्वयानुवाद –शेषाणाम् पचानाम् प्रकृतीनाम् अन्तर्मुहूर्ता अपरा स्थिति, ज्ञान-दर्शन आवरण अन्तरायाणाम् जघन्या स्थिति सूक्ष्मसाम्पराये, मोहनीयस्य अनिवृत्तिवादरसाम्पराये, आयुष सख्येय–वर्ष–आयुष्क–तिर्यक्षु मनुष्येषु च ॥आह उभयी स्थिति ज्ञानावरणादीनाम् अभिहिता अथ अनुभव किं लक्षण इति अत आह T

=शेष पाच(ज्ञानावरण–दर्शनावरण–मोहनीय–आयु–अन्तराय कर्मोंमेंसे प्रत्येककर्म)की =प्रकृतियोंकी अन्तर्मुहूर्त जघन्य स्थिति है। =ज्ञानावरण-दर्शनावरण तथा अन्तराय (कर्मों) की हीन से हीन =स्थिति सूक्ष्मसापराय (दशवांगुण स्थान वर्ती) में है। =अनिवृत्तिवादरसाम्पराय (नवशा गुणस्थानवर्ती)मेंहै। मोहनीय (कर्म) की =सख्यात वरसकी आयु वाले तिर्यंचोंमें तथा मनुष्योंमें (वर्तती) है। आयु(कर्म) की(जघन्य–स्थिति) =दोनों (जघन्यतया उत्कृष्ट) स्थितिये आठकर्म ज्ञानावरणादिकोंकी कहींगई =अब अनुभवका क्या लक्षण है, इसलिये (अग्रिम सूत्र) कहते हैं कि

मुहूर्ता' है अर्थमें "अन्तर्मुहूर्ता है (जैसे सदा सुखजीकृत मुद्रित तत्वार्थसूत्रलघुटीका में तथा निर्णयसागरमुद्रित जैनपाठसग्रहमें मुहूर्ता है) इस अध्यायके अठारहवां सूत्रमें सिद्ध किया है कि मुहूर्त शब्द पुलिंगी और नपुसक लिंगी है, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसको नपुसक मानकर अन्तर्मुहूर्तम् पाठ है और हमारे यहां उन पाठोंमें जहा 'अन्तर्मुहूर्ता' पाठ है वहा 'आ' स्त्रीलिंगका चिन्ह लगा कर मुहूर्तका स्त्रीलिंग कर दिया है, स्त्री लिंग शब्द जिनके अन्तमें दीर्घ अकार होता है उनका स्त्रीलिंग भी दीर्घ अकारान्तही होता है जैसे शाला शब्द का स्त्री लिंग एक वचन शाला है दो वचन शालेहै और बहु वचन 'शाला' है ॥ और इसी प्रकार मुहूर्ता बहु वचन स्त्रीलिंग प्रथमा विभक्ति में यहा पर हो सका है यदि मुहूर्त शब्द को पुलिंग रक्खे तो भी बहु वचन – पुलिंग– प्रथमा विभक्ति में मुहूर्ता ही रूप होगा अन्तर्मुहूर्ता पाठ अन्तर्मुहूर्ता पाठ से और अन्तर्मुहूर्तम् दोनों पाठों से अच्छा है क्योंकि अन्त मुहूर्ता और अन्त मुहूर्तम् इन एक वचन शब्दों में यह अर्थ भी हो सका है कि शेष (पाच) किसी जघन्य स्थिति अर्थात् सब पाचों की मिल कर अन्तर्मुहूर्त मात्र है जब कि सूत्र कारका अभिप्राय है कि शेष पाच कर्मों मेंसे प्रत्येक की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है–ऐसा अभिप्राय अन्तर्मुहूर्त शब्दके बहु वचन–अन्तर्मुहूर्ता से ही स्पष्टतया निकल सका है। इसलिये "शेषाणाम् अन्तर्मुहूर्ता ऐसा पाठ लिया है ॥

विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥

विशिष्टोनानाविधोवापाकोविपाकापूर्वोक्तकषायतीव्रमन्दादिभावास्रवविशेषाद्विशिष्टःपाकोविपाकः॥

विपाकोऽनुभवः=विपाकःअनुभवःभवति ॥ "उदयो विपाकः" सर्वार्थसिद्धि अध्याय ६ सूत्र १४ ॥

सूत्रार्थः-(१)विपाकः[१/१] अनुभवः[१/१] =विशेषरूप वा विविध प्रकार, नाना प्रकार पचन (=पाक) सो विपाक है सोही (विपाक) अनुभव है अर्थात् "कर्मप्रकृति पचकर उदय आवैताका रस अनुभवमें" (भोगनेमें आवै) "सो अनुभव कहिये" सर्वार्थ०वचनिका॥

वृत्त्यनुवाद:-विशिष्टः[१/१] वा नानाविधः[१/१] =विशेषरूप =विशिष्ट) अथवा विविध प्रकार—अनेक प्रकार

पाकः[१/१] विपाकः[१/१] =पचन अथवा पाक सो विपाकहै अर्थात् विपाक(क)=विशिष्टपाक(ख)=नानापाक, (इनदोअर्थोंकोकहैहैं)

पूर्वोक्त–कषाय–तीव्र–मन्द–आदि–भाव– =पूर्व कथित कषायके प्रकर्ष, तीव्र अथवा तीक्ष्ण तथा धीमे आदिक भाव

आस्रव-विशेषात्[५/१] विशिष्टः[१/१] पाकः[१/१] विपाकः[१/१] =आस्रवके विशेषसे विशेषयुक्त (=विशिष्ट) पाक सो विपाक है अर्थात् उपकार, अपकार करनेक है स्वरूप जिनका ऐसे ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंकी प्रकृतियोंके पूर्व आस्रवके निमित्तसे तीव्र, मंद मध्यम भावकरि जो उदय सो विपाक है सो ही अनुभव (सूत्रमें) वर्णित है ॥

---

(१) हमारे यहां कहीं कहीं पर 'विपाकोऽनुभवः" पाठ है कहीं कहीं पर "विपाकोनुभवः"पाठ है । दोनों ठीक है ऐसेऽचिन्हके सम्बन्धमे देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ १० ॥ श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें "विपाकोऽनुभावः" पाठ है । कहीं कहीं पर विपाकोऽनुभागः पाठ है ॥ उदय,विपाक,अनुभव,अनुभाव,अनुभाग,एकार्थ वाची हैं ॥ "विपाक कूं अनुभव कहया अनुभव नाम भोगने का है" अर्थप्रकाशिका ॥ अब प्रश्न यह है कि विशेषरूपसे उदय, विविधप्रकारसे उदय, अनुभव, विपाक का अर्थ यथार्थमें अनुभव, अनुभाग का है वा अनुभाग बन्ध,अनुभव बन्धका है ॥ नम्रतापूर्वक निवेदन हैकि एक अर्थ नहीं है,सदासुखजी, जयचन्दजीने जो अर्थ किया है वह विपाक और अनुभवका लक्षण कहा है और सर्वार्थसिद्धिमें "अथानुभव. किं लक्षणः" ऐसा प्रश्न किया गया है उसका उत्तर दिया है कि "विपाकोऽनुभव." या यों कहिये कि उक्त दोनों अनुवादकों ने शक्ति में व्यक्तिका उपचार किया है अर्थात् अनुभागबन्ध शक्ति रूप है उसको व्यक्ति रूपमें कह दिया है, जिनगुणस्थानोंमें कषायका अभाव है वहाँ प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध होते हैं जो योगके द्वारा उत्पन्न होते हैं और स्थितिबन्ध तथा अनुभागबन्ध नहीं होते हैं ज्योंही प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध होते जाते हैं(त्योंही विना अवस्थान, ठहराव वा स्थितिके और विना फलदानके शक्ति के पड़े हुये झड़ते चल जाते हैं । "ततश्च निर्जरा" =उदय, विपाक, कर्मफल भोगने वा अनुभव के पश्चात् कर्म झड़जाते है यह सूत्र ज्ञापक है कि 'विपाकोऽनुभवः' सूत्रमें शक्तिमें व्यक्तिका उपचार किया है अन्यथा यह सूत्र अनुभव बंधसे सबंध नहीं रखता है क्योंकि अनुभवबंध का लक्षण ऐसे हैं कि "तीव्रमंद मध्यम रूप कर्मोंके उदय होने पर आत्माको सुख दुःखादि फल होता है सो कर्मोंमे उस फलदान शक्तिका पड़जानाहै उसे अनुभाग बन्ध कहते है" इस विषयपर विद्वान प्रकाश डालकर मुझको कृपया सूचित करेंगे ॥

अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभवभावलक्षणनिमित्तभेदजनितवैश्वरूप्यो (वैस्वरूपो) नानाविध पाको विपाक· । असावनुभव इत्याख्यायते ॥ शुभपरिणामाना प्रकर्ष भावाच्छुभप्रकृतीना प्रकृष्टोऽनुभव । अशुभप्रकृतीनानिकृष्ट ॥ अशुभपरिणामाना प्रकर्षभावादशुभप्रकृतीना प्रकृष्टोऽनुभव । शुभप्रकृतीना निकृष्ट ॥ स एव प्रत्ययवशादुपात्तोऽनुभवो द्विधा प्रवर्तते, स्वमुखेन परमुखेन च ॥ सर्वासां मूलप्रकृतीना स्वमुखेनैवानुभव ।

अथवा॰द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भाव-लक्षण-निमित्त- =अथवा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भावके लक्षण निमित्तके
भेदजनित-वैश्वरूप्य १' (वैस्वरूप १) =भेदसे उत्पन्न हुआ (=जनित)विचित्र रूप (वैश्वरूप्य =वैस्वरूप)
नानाविध १'पाक १'विपाक १',असौ१' =(वा)अनेक प्रकार उदय(=पाक॰)सो विपाक है, यह (असौविपाक) अर्थात् उदय
अनुभव १'इति॰आख्यायते१' ॥ =अनुभव है ऐसा प्रसिद्ध है (=आख्यायते)
शुभ-परिणामानाम्१'प्रकर्षभावात्१'शुभप्रकृतीनाम्१'' =भले परिणामोंके उत्कर्ष होनेसे (=भावात्) शुभ प्रकृतियोंका
प्रकृष्ट १'अनुभव १', अशुभ-प्रकृतीनाम्१''निकृष्ट १', =उत्कृष्ट अनुभव होता है। अशुभ प्रकृतियोंका हीन (=निकृष्ट) (अनुभव) होताहै
अर्थात् अशुभ प्रकृतियोंमें मन्द रस पडता है सो उदय मन्द होता है
अशुभपरिणामानाम्१' प्रकर्षभावात्१'अशुभ प्रकृतीनाम्१''=बुरे परिणामोंकी अधिक विद्यमानतासे (=भावात्) अशुभ प्रकृतियोंका
प्रकृष्ट १' अनुभव १', शुभप्रकृतीनाम्१'' निकृष्ट १', =उत्कृष्ट अनुभव वा उदय होता है भली प्रकृतियोंका हीन अनुभव होता है,
अर्थात् शुभ प्रकृतियों में मंदरस पड़ता है अशुभ प्रकृतियोंमें तीव्ररस पड़ता है ।
स १' एव॰ प्रत्ययवशात्१', उपात्त १' अनुभव १ द्विधा॰=वह इसप्रकार कारणके वशसे प्राप्तहुआ अनुभव दो प्रकार
प्रवर्तते १' स्वमुखेन१''' =प्रवर्तताहै अथवा दो प्रकार होताहै । स्वमुखकरिअर्थात् अन्यकर्म अन्यकर्म रूप होकर, उदयमें नहीं आवै अपने २ बंधके अनुसार उदय आता है ।
परमुखेन१''' च॰ =और परमुखकरि अर्थात् अन्यकर्म अन्यकर्मरूप होय उदय आता है व ध अन्य कर्म रूप होता है उदय दूसरे कर्म रूप प्रवर्तता है ।
सर्वासाम्१''मूल प्रकृतीनां१'' स्वमुखेन१'''एव॰अनुभव १'=सबमूल (ज्ञानावर्णादिक आठकर्मो की)प्रकृतियोंका स्वमुखकरिही=(एव)अनुभवहोताहै

उत्तरप्रकृतीनां तुल्यजातीयानां परमुखेनापि भवति (१)॥ आयुर्दर्शनचारित्रमोहवर्जानां

अर्थात् इन आठ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय, कर्म अपने अपने बंधके अनुसार हा उदय में आतेहैं, इन मूल आठ कर्मों में ऐसा नहीं हो सक्ता है कि ज्ञानावरणकर्म रूप होकर बंध होवै और दर्शनावरण रूपहोकर अथवा किसीऔर कर्म रूप होकर उदयमें आवै, पूर्वोक्त आठ कर्मोंमेंसे जो कर्म बन्धता है उसही कर्मरूप उदयमें आता है न कि अन्य कर्मरूप

उत्तरप्रकृतीनाम्''तुल्यजातीयानाम्'' =समानजातिके (कर्म) निकी उत्तरप्रकृतियोंका

परमुखेन'''अपि॰भवति ॥ =(परमुखकरि) भी(अनुभव) होता है अर्थात् उसी जातिके कर्मकी अन्यरूप उत्तरप्रकृति बंधती है परन्तु उसीजातिके कर्मकी दूसरी उत्तरप्रकृतिरूप उदयमें आती अथवा अनुभवमें आती है भोगनेमें आती है ॥ जैसे–ज्ञानावरण कर्मकी उत्तरप्रकृति मतिज्ञानावरणीय रूप बंधै और ज्ञानावरणकी अन्य उ रप्रकृति श्रुतज्ञानावरणीयरूप होकर उदयमें आती है। तथा जैसे वेदनीय कर्मकी उत्तर प्रकृति असाता वेदनीयरूप होकर बंधै परन्तु कारणके वशसे सातावेदनीयरूप होकर रस देवे वा उदय में आवै ॥

आयुःदर्शन-चारित्रमोह– =(तिन समान जातिकी उत्तरप्रकृतियोंमें भी) आयु तथा दर्शनमोह, चारित्रमोह

वर्जानाम्'– =(कर्मों) की (उत्तरप्रकृतियोंको) छोड़करके, त्यागकरके (अन्यतुल्य जातीय कर्मोंकी उत्तरप्रकृतियोंमें परमुखकरि अनुभव अथवा परमुखोदय होता है अर्थात् आयु कर्मकी उत्तरप्रकृतियोंके अन्यरूप होकर अनुभव वा उदय नहीं होता है जो आयु बन्धती है उसहीका उदय होता है (=आयुर्वर्जनस्य) और दर्शनमोह तथा चारित्रमोहके जो दर्शनमोहनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियें हैं उनका परस्पर परिवर्तन नहीं होता है (=दर्शनचारित्रमोहवर्जयोः) जो प्रकृति बंधता है सो ही उदय आती है ॥

(१) 'भवति' शब्द और 'आयुर्दर्शनचारित्रमोह वर्जानां' वाक्यके मध्यमें विराम का "॥" चिन्ह है इसकारण इनदोनों वाक्योंका अनुवाद बहुत बढगया है तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ३१२मे इन दोनों वाक्योंमे भवतिके पश्चात् विरामका चिन्ह नहीं है इसलिये नीचे दोनों वाक्योंका अर्थ सुगमतासे थोड़े में आजाता है "उत्तरप्रकृतीनां तुल्यजातीयानांपरमुखेनापि भवति-आयु दर्शन चारित्रमोह वर्जानां । नहि नरकायुर्मुखेन" इत्यादि

आयुः दर्शन-चारित्र-मोह वर्जानाम् =आयु-दर्शनमोह चारित्र मोह (की उत्तर प्रकृतियों को) वर्जकरके

तुल्य जातीयानाम् उत्तर प्रकृतीनाम् परमुखेन अपि भवति = समानजातिके (कर्मनिकी) उत्तर प्रकृतियोंका अन्यरूप होकर भी उदय होता है ॥

अपगतवेदानां च सामान्योक्त क्षेत्रम् ॥ (६) कषायानुवादेन—क्रोधमानमायाकषायाणां लोभकषायाणां च मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सूक्ष्मसाम्परायाणामकषायाणा च सामान्योक्त क्षेत्रम् ॥ (७) ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिना मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्त क्षेत्रम् । विभङ्गज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां लोकस्यासख्येयभागः ।

अपगतवेदाना ६। च = तथा वेदरहित [नवें गुणस्थानवालोंके अतके तीन भागसे अयोगी तक] का
सामान्य-उक्त ।१। क्षेत्रम् ।१। = सक्षेप (प्रकरण) में (पहिले) कथित (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है लोकका असख्यातवा भाग है असख्याते भाग है सर्वलोक भी है [दिखो पृष्ठ ११५से१२०]
(६) कषाय अनुवादेन ।१। क्रोधमानमाया कषायाणा ६। = कषायके कथनानुसारसे क्रोध मान माया कषाय वालेनिका
च लोभकषायाणां ६। = तथा लोभकषायवालेनिका
मिथ्यादृष्टि-आदि-अनिवृत्तिबादर-अन्ताना ६। = मिथ्यादृष्टिसे अनिवृत्तिबादरसाम्परायवालों तकका
सूक्ष्मसाम्परायाणाम् ६। = सूक्ष्मसाम्परायवालोंका [जहा केवल सूक्ष्म या सज्वलन लोभ है)
अकषायाणां ६। च = और कषायवर्जित [ग्यारहवेंसे चोदहवें गुणस्थान] वालोंका
सामान्य-उक्त ।१। क्षेत्रम् ।१। = सक्षेप (सम्बन्ध) में पूर्वे कहा हुआ (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है (देखो पृष्ठ ११४ से १२० तक)
[७] ज्ञान अनुवादेन ।१। मति अज्ञानि श्रुत अज्ञानिनां ६। = ज्ञानकी विवक्षासे कुमति अज्ञान, कुश्रुत अज्ञानवाले
मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टीनाम् ६। = मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टी (दूसरे गुणस्थानवर्ती)योंका
सामान्य-उक्त ।१। क्षेत्रम् ।१। = सक्षेप (प्रसग) मे [पहिले] कहे हुये [गुणस्थानवत्] क्षेत्र है अर्थात्
= मिथ्यादृष्टियोंका सब लोक है । सासादनका लोकका असख्यातवा भाग है
विभगज्ञानिनां ६। मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां ६। = विभग ज्ञानवाले मिथ्यादृष्टी तथा सासादनसम्यग्दृष्टीनका (क्षेत्र)
लोकस्य ६। असंख्येयभागः ।१। = लोकका असख्यातवां भाग है

इति ब्रूमहे ॥ कुतः यतः— ॥ स यथानाम ॥ २२ ॥

ज्ञानावरणस्य फलं ज्ञानाभावो दर्शनावरणस्य फलं दर्शनशक्त्युपरोध इत्येवमाद्यन्वर्थ सञ्ज्ञानिर्देशात्सर्वासां कर्मप्रकृतीनां सविकल्पानामनुभवसम्प्रत्यो जायते ॥

इति*(१) ब्रूमहे । (२) कुतः* ? यतः *	=ऐसा (=इति) हम कहते हैं (प्रश्न) कैसे ? (=कुतः) (उत्तर) क्योंकि (=यतः)
स यथानाम ॥ २२ ॥	**=सोऽनुभवो ज्ञानावरणदीनां यथानाम विपच्यते॥२२॥**
सूत्रार्थः—(३)सः[१/४] अनुभवः[१/४] ज्ञानावरणादीनाम्[६/४]	=वह (अनुभव, विपाक उदय अथवा परिपाक) ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों के
यथानाम * विपच्यते T	=नामके अनुकूल (=जैसा नाम तैसे) विपाकको प्राप्त होता है । अर्थात् जैसा कर्मकी प्रकृतिका नाम है तैसा ही ताका विपाक अथवा उदय है
वृत्त्यनुवादः—ज्ञान-आवर्णस्य[६/१] फलम्[१/१] ज्ञान-	=ज्ञानावरण (कर्मकी प्रकृति) का परिणाम (=फल) ज्ञानका
अभावः[१/१] दर्शनावर्णस्य[६/१] फलं[१/१] दर्शन-शक्ति-उपरोधः[१/१]	=न होना है दर्शनावरण (कर्म प्रकृति)का फल दर्शनकी सामर्थ्यका अवरोध वा रुकाव है
इत्येवम्*आदि[१] अनुअर्थ-संज्ञा-निर्देशात्[५/१]	=इत्येवं आदि सार्थक संज्ञाके कथनसे वा नामके अनुकूल अर्थवाली संज्ञाके उपदेशसे अर्थात् जैसा जिसकर्म प्रकृतिका नाम है वैसाही उस प्रकृतिका विषयरूप कथनसे
सर्वेसाम्[६/३] कर्मप्रकृतीनां[६/३] सविकल्पानाम्[६/३] अनुभव-	=सब कर्म प्रकृतियोंके भेद सहित अनुभवकी
सम्प्रत्ययः[१/१] (४) जायते T	=प्रतीति उत्पन्न होती है ।

(१)ब्रूमहे-ब्रू अदादि दूसरे गणका उभय (परस्मै और आत्मने) पदी धातु द्विकर्मक(जैसे माणवकं धर्मं ब्रूते=छोकड़ों को वह धर्म को कहता है) कहना अर्थ में आता है। इस गणमें विकरण कोई नहीं लगाया जाता है । महे उत्तम पुरुष बहुवचन आत्मनेपदी वर्तमान कालकी क्रियाका द्योतक चिन्ह ब्रू में जोड़नेसे ब्रूमहे (=हम कहते हैं) बनता है ॥

(२) कुतस् (=कुतः) (क) जहांसे (ख) जहां, जहां कहीं (ग) कैसे (घ)बहुत अधिक, बहुत न्यून अर्थों में आता है,यहां पर'कैसे' अर्थमें आया है (वैद्यकोश पृष्ठ १६४ देखो) (३) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ एकसा है ।

(४) 'जन्' (=जनन- उत्पन्न होना) यह दिवादि चतुर्थ गण का आत्मनेपदी अकर्मक धातु है इस जन् के स्थान में 'जा' आदेश हो जाता है और क्योंकि यह चतुर्थ गण का धातु है इस का विकरण 'य' है इस लिए जा+य=जाय, अब इस 'जाय' अंगमें अन्यपुरुष, एक वचन, कर्तरि प्रधान वर्तमान क्रिया का द्योतक आत्मने पदी चिन्ह 'ते' लगाकर जायते बना लेते है जिस का अर्थ उत्पन्न होता है ऐसा है ॥

नहि नरकायुर्मुखेन तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्वा विपच्यते। नापि दर्शनमोहश्चारित्रमोहमुखेन। चारित्रमोहो वा दर्शनमोहमुखेन॥ आह-अभ्युपेम प्रागुपचितनानाप्रकारकर्मविपाकोऽनुभव इति।इदं तु न विजानीम किमयं प्रसंख्यातोऽप्रसंख्यात इत्यत्रोच्यते प्रसंख्यातोऽनुभूयते

(१)नहि*नरक आयुर्मुखेन ३'''तिर्यग्आयु मनुष्य आयुर्वा =(जैसे) तिर्यंच आयु अथवा मनुष्य आयु नरक आयु रूप होकीर नहीं
विपच्यते। =भोगीजाती है, नहीं पचाई जाती है, नहीं उदय में आती है।
न*अपि* दर्शनमोह३'चारित्रमोह(२)मुखेन३''', =न दर्शन मोह भी (=अपि)चारित्र मोह रूप करि(भोगा जाताहै=विपच्यते)
चारित्रमोह ३' वा*दर्शनमोहमुखेन३'''(३)(विपच्यते)।=अथवा चारित्र मोह दर्शनमोह रूप करि(नहीं भोगी जाताहै,वा नहींउदयमें आती है)
आह।(४)अभि-उपेम प्राच्-उपचित-नानाप्रकार =प्रश्न करता है–स्वीकार करते हैं कि पहले संचयकिये हुये अनेक प्रकारके
कर्म विपाक ३'अनुभव ३'इति*इदं ३'''तुन(५)विजानीम =कर्मों का उदयहै (=विपाक') सो अनुभव है। परंतु (=तु) यह हम नहीं जानते है
किम्३''' अयम्३'''प्रसंख्यात ३' =कि यह (अनुभव)गणनाकी हुई प्रकृतिके स्वरूप हैजैसी प्रकृति है तिस स्वरूप है
अप्रसंख्यात ३' इति* अत्र* उच्यते। =कि संख्याकी हुई प्रकृतियें स्वरुप नहीं है ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां कहाजाता है कि
प्रसंख्यात ३' अनुभूयते। =(यह अनुभव वा विपाक) प्रसंख्यातरूप भोगा जाता है वा अनुभव किया जाता है
अर्थात् जैसी प्रकृतिगणना में आई है तिस रूपही भोगनेमें आती है।

(१) न हि दो अव्यय भिन्न भिन्न भी हैं और (कहीं कहीं नहि ऐसा भी पाठ है वहां) नहि एक अव्यय है ॥ निःसंदेह नहीं है दोनों रूपोंका अर्थ है (वैद्यकोश पृष्ठ ३७२ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २०६) ॥ (२) दोनों मुखेन शब्दोंके पश्चात् विपच्यते वाक्य गुप्त है॥
(३)पच्=पाक, पकाना, भ्वादि प्रथम गणका धातु यहां पर आत्मने पदी है व्यक्तीकार,प्रकट करनेके अर्थमें आया है। कर्मणि प्रधानमें य लगानेसे पच्य हो जाता है, पश्चात् अन्य पुरुष एकवचन, वर्तमान क्रियाद्योतक आत्मने पदका चिह्न ते लगानेसे पच्यते बन जाता है। पुनि विशेष प्रकार वा नाना प्रकारके अर्थमें वि' उपसर्ग जोडनसे विपच्यते बन जाता है, व्यक्त किया जाया है अर्थात् भोगा जाता है वा उदयमें आता है अर्थ है॥
(४) इण् अदादि दूसरे गणका धातु है। ण् इसलिये है कि नाना भांतिके पद वा गणोंका यह धातु है इ रह जाता है उसमें 'अभि' और "उप" उपसर्गोंके जोडनेसे अभि+उप+इ होजाता है। मस् उत्तमपुरुष, बहुवचन, वर्तमान क्रिया, आत्मनेपद, कर्तरिप्रधान क्रियाका चिह्न लगानेसे अभि+उप+इ+मस् होता है=अभिउपेमस्=अभ्युपेम =हम मानते हैं अंगीकार करते हैं।(५)विजानीम —ज्ञा क्र्यादि नववां गणका धातु है इसका'ना विकरण है। ना को नी कर देते हैंव्यञ्जनीय ङित् सञ्ज्ञक क्रिया प्रत्ययोंके पहिले–वि लगाकर ज्ञा पलट जाता है'जा में॥ तब विजानी रूप हुआ मस् उत्तम पुरुष बहुवचन कर्तरिप्रधान वर्तमान काल की क्रियाद्योतक चिह्न जोडकर विजानी+मस्=विजानीम बनालिया॥

कर्मणो निवृत्तिर्निर्जरा ॥ सा द्विप्रकारा-विपाकजा इतरा च ॥ तत्र चतुर्गतावनेकजातिविशेषावघूर्णिते संसारमहार्णवे चिरं परिभ्रमतः शुभाशुभस्य कर्मणः क्रमेण परिपाककालप्राप्तस्यानुभवोदयावलिस्रोतोऽनुप्रविष्टस्यारब्धफलस्य या निवृत्तिः सा विपाकजा निर्जरा॥ यत्कर्माप्राप्तविपाककालमौपक्रमिकक्रियाविशेषसामर्थ्यादनुदीर्णं बलादुदीर्योदयावलिं

कर्मणः ६/१'' निवृत्तिः १/१'' निर्जरा १/१'' ;सा १/१'' द्वि-प्रकारा १/१'' =कर्मका झड़जाना निर्जरा है। वह (निर्जरा) दो प्रकार है

विपाकजा १/१'' =विपाकजनित वा विपाकसे उपजी (अर्थात् फल देकर जो निर्जरा उत्पन्न हो)

इतरा १/१'' च* । =और (=च)भिन्न अर्थात् अविपाक जनित। (दोनों का स्वरूप निम्न लेख में है)

तत्र*चतुर्गतौ ७/१'' अनेक-जाति-विशेष-अवघूर्णिते ७/१' =तहां चार गतियेंमें बहुत जातिके विशेषोंकरि संयुक्त शब्दरूप ऐसे

ससार-महा-अर्णवे ७/१'' चिरम्* परिभ्रमत ६/१''' =संसाररूपी दीर्घ समुद्रमें सदा काल बार बार भ्रमणकरतेहुए(जीव)निके(=परिभ्रमतः)

शुभ-अशुभस्यकर्मणः ६/१''' क्रमेण ३/१' परिपाककालप्राप्तस्य ६/१''' =भले बुरे कर्मके क्रमकरि परिपाक समयको प्राप्त हुआ

अनुभव-उदय-आवालि स्रोतः ६/१''' =भोगनेके उदया वलिरूप (=नालामें उदय-आवालि-स्रोतः)

अनुप्रविष्टस्य ६/१''' आरब्ध-फलस्य ६/१''' =पेठकर वा प्रवेश होकर(=प्रविष्टस्य) फलको देय (=आरब्ध-फलस्य)

या १/१'' निवृत्ति १/१'' सा १/१'' विपाकजा १/१'' निर्जरा १/१'' ॥ =जो झड़ना है सो विपाकजा निर्जराहै अर्थात् एकेंद्रियादिक जाति विशेषसे फिरण रूप चतुर्गति भय ससार समुद्रमें चिरकालसे भ्रमते हुए जीवोंके अनेक प्रकारके शुभाशुभ कर्मोंका उदयकाल प्राप्त होने पर जिस प्रकारके परिणामोंसे तीव्र मंद रूप बन्ध किया था उसी प्रकार भोगते हुये जीवका उदयावली रूप नाली द्वारा जो कर्म रस फल देकर झड जाते हैं उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं संक्षेपतः—

कर्मोंका उदयकाल आने पर रस देकर अपने आप झड जाना सो सविपाक निर्जरा है। यह सविपाक निर्जरा चारों गतिमें रहने वाले सर्व संसारी जीवों के हुआ करती है

यत् १/१''' कर्म-अप्राप्त-विपाक-कालम् २/१''' =जो कर्म (अपनी स्थिति पूर्ण करि) उदय (=विपाक)काल को प्राप्त न होते हुए

औपक्रमिक-क्रिया-विशेष-सामर्थ्यात् ५/१''' =उपचार क्रिया (जैसे तपश्चरणादि) की विशेष शक्तिसे

अन्-उदीर्णम् १/१''' बलात् ५/१' उदीर्य उदयावलिम् २/१'' =विना उदय आयेहुए [कर्म] बलात् कारीसे उपायकरि [=उदीर्य]उदयावलीको

आह यदि विपाकोऽनुभव प्रतिज्ञायते,तत्कर्मानुभूतकिमाभरणवदवतिष्ठते, आहोस्विन्निष्पीतसारं प्रच्यवते इत्यत्रोच्यते— **ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥**

पीडानुग्रहावात्मने प्रदायाभ्यवहृतौदनादिविकारवत्पूर्वस्थितिक्षयादवस्थानाभावात्

आह। यदि॰विपाक १ अनुभव १ प्रतिज्ञायते १,=प्रश्न करता है कि जो "विपाकोऽनुभव" (देखो सूत्र २१) पहिले कहागया है(=प्रतिज्ञायते)
तत्कर्म अनुभूतम् १ किम्॰आभरणवत्॰ =सो(=तत्)कर्म क्या बीतगये(=भूत)पीछे(=अनु)अर्थात् भोगे पीछे, आभूषण के सदृश
अवतिष्ठते १,आहोस्वित् निष्पीतसारम् १ प्रच्यवते २=लगा रहता है अथवा (=आहोस्वित्) सार रहित होकर गिरपडता है वा झड़जाता है
इति॰अत्र॰उच्यते ।— =ऐसा [प्रश्न होनेपर] यहां [अग्रिम सूत्र] कहा जाता है कि

(३)ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥ = (५)ततश्चानुभवात्कर्मनिर्जरा भवति ॥ २३ ॥

सूत्रार्थ -तत ॰(४)च॰अनुभवात् १ कर्मनिर्जरा १ =तिस विपाक अनुभव उदय-परिपाक वा कर्मके फल प्राप्तिके पीछे भी कर्मकी निर्जरा
भवति । =होतीहै[संक्षेपतः]उदयकेपश्चात् कर्मझड़जातेहैअर्थात् किसीऔर कारणसे निर्जराहोतीहैऔर अनुभव वा उदयसे निर्जरा होती है। भावार्थ नवमें अध्यायका तीसरा सूत्र कि 'तपसा निर्जरा च'=तप से निर्जरा भी होती है, और विपाक वा उदयसे भी निर्जरा होती है।

वृत्त्यनुवाद -पीडा अनुग्रहौ १ आत्मने १ प्रदाय— =आत्माके लिये दुःख [पीडा] सुख प्रदानकर वा देकर
अभ्यवहृत-ओदन आदि- =खायेहुए वा भक्षित [=अभ्यवहृत] अनाज (=ओदन) आदिके [पचकर]
विकारवत्॰पूर्वस्थितिक्षयात् १ अवस्थान अभावात् १=परिणमनके सदृश पहली स्थितिके नाशसे ठहराव(=अवस्थान) के न रहनेसे

(१) निष्पीतसारम् = जिसका सार पीलियागया हो सार रहित अर्थ है (२) प्रच्यवते-च्यु भ्वादिगणका आत्मनेपदी धातु झड़जाना अर्थ में है च्यु का गुण करने से च्यो हुआ अ विकरण लानसे च्यो + अ = च्यव प्र और ते लगनेसे प्रच्यवते हुआ(३)सूत्रका पाठ तथा अर्थ दोनों सम्प्रदायों में एक है (४) सूत्रमें च' शब्द है सो नवमें अध्यायके तीसरे सूत्र (तपसा निर्जरा च = तपसे भी निर्जरा होती है) के अर्थको संग्रह करने के लिये है। (५) विशेषरूपसे सूत्रको ऐसे लिख सक्ते हैं तत विपाकात् अन्यथा च निर्जरा भवति ' =तिस विपाकसे और अन्य प्रकारसे भी(=च) निर्जरा होती है अर्थात् विपाकसे और तपसे (दोनों से) निर्जरा होती है, ॥ ततश्च निर्जरा" सूत्र २३ ' तपसा निर्जराच"(अध्याय ९ सूत्र ३) इन दोनों सूत्रोंके भेद कोध्यान में रखना चाहिये उस (विपाक) से भी निर्जरा होतीहै अर्थात् किसी अन्य हेतुसे भी निर्जरा होती है। तप से निर्जरा भी होती है-अर्थात् तपसे निर्जरा होती है और कुछ औरभी होता है(संवर भी होता है) अन्तर यह है कि निर्जरा होने के दो कारण हैं विपाक और तप २३ वे सूत्र सेयह बात निकलती हैं। तप दो बातका कारण है या तपके दो फल है निर्जरा,संवरयह नवमें अध्यायके३सूत्र सेहै

तत्र हि पाठे विपाकोऽनुभव इति पुनरनुवादः कर्तव्यः स्यात् ॥ आह अभिहितोऽनुभवबन्धः। इदानीं प्रदेशबन्धो वक्तव्यः। तस्मिंश्च वक्तव्ये सति, इमे निर्देष्टव्याः, किं हेतवः? कदा? कुतः? किंस्वभावाः? कस्मिन् ? किं परिमाणाश्चेति ॥ तदर्थमिदं क्रमेण परिगृहीतप्रश्नापेक्षभेदं सूत्रं प्रणीयते—

॥ नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्राव-गाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥२४॥

तत्र*हि*पाठे[७/१] 'विपाकोऽनुभवः'[१/१] =क्योंकि (=हि) तहां (अर्थात् संवर के पश्चात्) पाठ करने में "विपाकोऽनुभवः"
इति*पुनः*अनुवाद :[१/१] कर्तव्यः [१/१] स्यात् T =ऐसा(सूत्र) फिर व्याख्यान, कथन किये जाने योग्य होता ॥
आह अभिहितः[१/१] अनुभवबन्धः[१/१] इदानीं*प्रदेशबंधः[१/१] =पूछता है कि(१) अनुभवबन्ध कहागया अब प्रदेशबंध
वक्तव्यः[१/१], च*तस्मिन्[७/१] वक्तव्ये[७/१] सति[७/१], इमे[१/३](२)=कहना चाहिये और (=च) तिस (प्रदेशबन्ध) के कथन (=वक्तव्ये) होनेमें ये (=इमे)
निर्देष्टव्याः[१/३], किं[१/१] हेतवः[१/३] ? कदा* ? =कहेजाने चाहिये कि-(प्रदेशबन्ध का)क्या कारण है ? किस कालमें,अथवा कब होताहै ?
कुतः* ? किम्[१/१] स्वभावाः[१/३] ? कस्मिन्[७/१] ? =कहां से होताहै?क्या स्वभावहै?किस में होताहै?किस निमित्त करि होताहै?क्योंकरहोताहै?
किम्[१/१] परिमाणाः[१/३]? च*इति* ॥ =और(=च)क्या परिमाण वा सीमा है ? अर्थात् प्रदेशबंधके कितने प्रमाण परमाणु हैं।
तद्-अर्थम्[१/१] इदम्[१/१] क्रमेण[३/१] =उस (उत्तर) के लिए अनुक्रमसे
परिगृहीत-प्रश्न-अपेक्ष-भेदं[१/१] सूत्रम्[१/१] प्रणीयते T =प्रश्नके भेदकीअपेक्षा लेकर (=परिग्रहीत)(अग्रिम) सूत्र कहाजाता है कि

नामप्रत्ययाः सर्वतोयोगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः २४

(१) " अथानुभवः कि लक्षणः" ? तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धिवृत्ति सूत्र २०' अनुभवबन्धो व्याख्यातः राजवार्तिक,सर्वार्थसिद्धि वृत्तिसूत्र २३ ये दोनों वाक्य तात्पर्य्य में उस समय मेल खासकते हैं जब हम 'विपाकोऽनुभवः"सूत्रको शक्तिमें व्यक्तिका उपचार मानलें नहीं तो वृत्तिकारोंकेदोनों वाक्यों में विरोध आता है॥ विद्वान् प्रकाश डालकर सूचितकरें [२] इदम् शब्दका रूप प्रथमा विभक्ति बहुवचन, पुल्लिङ्ग में, इमे बनता है ॥ इस सूत्रका हमारी आम्नायमें सर्वत्र एक पाठहै ॥ श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में "एकक्षेत्रावगाह स्थिताः के स्थान में "एकक्षेत्रावगाढस्थिताः"है,उनकी भविष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीका के पत्र ८५८ "एकक्षेत्रावगाढाः स्थिताः" पाठ है शेषपाठ दोनों समाज में एक है ॥

प्रवेश्य वेद्यते आम्रपनसादिपाकवत् सा अविपाकजा निर्जरा ॥ चशब्दो निमित्तान्तरसमुच्चयार्थं । तपसा निर्जरेति वक्ष्यते ततश्च भवति अन्यतश्चेति ॥ किमर्थमिह निर्जरानिर्देश क्रियते संवरात्परा निर्देष्टव्या ॥ उद्देशवल्लघ्वर्थमिह वचनम्

सर्वार्थसिद्धि ९१ | अध्याय ८ सूत्र २३

प्रवेश्य–आम्र–पनस–आदि–पाकवत् वेद्यते ।	=प्रवेश किया जाकर आमके फल तथा कटहर आदिकके (भूसा आदिमें रखकर) =पकाय लेनेके तुल्य वेदा जाता है वा उदयमें लाया जाता है,
सा अविपाकजा निर्जरा ॥	=सो अविपाक निर्जरा है (अर्थात्) कर्मोका उदयकाल तो आया नहीं और तपश्चरणादि करके अनुदय अवस्थामें ही कर्मों को झडा देना सो अविपाक निर्जरा है ॥
चशब्द निमित्त-अन्तर समुच्चय–अर्थ ,	=(इस सूत्रमें) चशब्द (निर्जराके) अन्यहेतुके संग्रहके लिये है,
तपसा निर्जरा इति	=तपकरि निर्जरा होती है (=तपसा निर्जरा) ऐसा (नवम अध्यायके तीसरे सूत्र में)
वक्ष्यते । ततः च भवति ।	=कहे गे, तिस (विपाक=अनुभव=उदय) से भी (=च) निर्जरा होती है
अन्यत च इति, किम् अर्थम्	=और (=च) अन्य (=तप) करि (निर्जरा)होती है किसलिये
इह निर्जरा–निदश	=यहा (इस अध्यायमें वा इस स्थानमें] निर्जराका कथन (=निर्देश)
क्रियते । संवरात् परा निर्देष्टव्या ॥	=किया गया है (=क्रियते) संवरसे पश्चात् (निर्जरा) कहना चाहिये भावार्थ–प्रथम अध्यायका चौथा सूत्र 'जीव–अजीव–आस्रव–बंध–संवर–निर्जरा–मोक्षा' तत्त्वम्" में निर्जराका संवर (तत्त्व) के पश्चात् उपदेश किया है इसलिये क्रमानुसार संवरके कथनके पश्चात् निर्जरा का कथन करना योग्य था ॥ इस अध्यायमें तो बंध तत्त्वका प्रकरण और विषय है और निर्जरा तत्त्वके कथनका अभी तक अवसर नहीं आया है, फिर किसलिए इस बंध तत्त्वके अध्यायमें निर्जराका सूत्र क्रमको उल्लंघन करके कहा है ?
उद्देश–वत् लघु–अर्थम्	=[उत्तर] प्रयोजनके अनुसार (=वत्) लघु (करने) के लिए
इह वचनम्	=यहा (अर्थात् इस अध्यायमें) (इह) सूत्र [=वचनम्] है, । अर्थात् तत्त्वार्थसूत्रके रचनाका उद्देश हैकि थोड़े लेखमें बहुत आशय गर्भित हो जावे इसउद्देशके अनुकूल कि सूत्र पाठ लघु हो जाय इस सूत्रको इस अध्यायमें (अन्तर्गत वा गर्भित) हैकाय ॥

९१

(२) सर्वतः* योग-विशेषात्[६।] =समस्त भवोंमें (मन वचन कायके) योगोंके निमित्तसे(=विशेषित)

सूक्ष्म-एकक्षेत्र- =सूक्ष्म (जोइन्द्रिय गोचर न हों) जिस क्षेत्रमें आत्मा ठहरा हो उसी क्षेत्रमें (नीरक्षीरवत्)

अवगाह-स्थिताः[१।३] सर्वआत्मप्रदेशेषु[६।३] =अवगाहकरि वा व्याप्त होकर स्थितिरूप रहनेवाले आत्माके संपूर्ण प्रदेशोंमें

अनन्तानन्त-प्रदेशाः[१।३] ॥ =(ऐसे गुणों वाले) अनन्तानन्त पुद्गलके प्रदेश हैं ॥ भावार्थ-अनन्तानन्त पुद्गलके प्रदेश जो आत्माके साथ बन्धको प्राप्त होते है किन किन गुणोंकरि संयुक्त हैं ? सो कहते हैं (क)सर्व ज्ञानावरणादिकमूल प्रकृतिरूप उत्तरप्रकृतिरूप उत्तरोत्तरप्रकृतिरूप होनेके कारण हैं , [ख] समस्तत्रिकालवर्ती भवोंमें वा जन्मोंमें मन-वचन-कायके योगोंके निमित्तसे आते हैं , [ग] सूक्ष्म हैं-इन्द्रियगोचर नहीं है , [घ] आत्माके सम्पूर्ण प्रदेशोंके साथ दूध-पानीके समान एक क्षेत्रमें व्याप्त होजाते हैं अथवा दूध पानीके समान एकमेक होकर आत्माके प्रदेशोंमें ही व्याप्त हो जाते हैं ये पुद्गल प्रदेश एक क्षेत्रमें अवगाह रूपसे तिष्ठैं हैं न कि एक क्षेत्रमें भिन्न भिन्न रूपसे अर्थात् एकमेक होकर तिष्ठते हैं, [ङ] आत्माके सकल प्रदेशोंमें उक्तअनन्तानन्त पुद्गल प्रदेश तिष्ठै हैं अर्थात् आत्माके सर्व प्रदेशोंको ग्रसित कियेहुये स्थिर रूपसे रहते हैं , [च]एक आत्माके असंख्य प्रदेश हैं सो प्रत्येक प्रदेशमें अथवा एक एक प्रदेश में अनन्तानन्त पुद्गलके स्कन्ध विद्यमान हैं ॥ सारांश-ज्ञानावरणादि कर्मरूप होनेको कारण, सूक्ष्म कर्मरूप अनन्तानन्त पुद्गल प्रदेशोंका और आत्माके सर्व प्रदेशों का सव भवोंमें योगोंकी प्रवृत्तिसे दूध पानीके सम एकमेक होना है सो "प्रदेशबन्ध" है

वृत्त्यनुवादः-नाम्नः[६।१] प्रत्ययाः[१।३]=नामके(होनेको) कारण हो अथवा नाम निमित्तक,नाम हेतुक हों

नामप्रत्ययाः[१।३] =सो नामप्रत्ययाः है अर्थात् कर्मप्रकृति (=नाम) होनेको कारणभूत (ऐसे पुद्गलके स्कन्ध) वा कर्म प्रकृतिके रूप परिणमने योग्य(पुद्गलके स्कन्ध)हों वे नाम प्रत्ययाःहैं-भावार्थ-कर्मरूपमें होनेको कारणहैं ॥

नामनिमित्ताः नामहेतुकाः =नाम वा कर्म प्रकृति होने का निमित्त है प्रकृति होनेको हेतु हैं

नामकारणाः इति अर्थः =कर्म रूप हाने को कारण हैं ऐसा अर्थ (नाम।प्रत्ययका) है ॥

(२) सर्वतः- इसे शब्दका अर्थ हमारे यहां "सव भावोंमें वा सव जन्मोंमें" ऐसा किया है यह शब्द 'सर्व' और 'तस् प्रत्यय से बना है सर्वार्थसिद्धिके कर्त्ताने इस तस् प्रत्यय को सप्तमी अर्थ (अधिकरण)में लिया है,परन्तु सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इस'तस्' प्रत्यय को पंचमी विभक्तिमे लेकर "सर्वओरसे"अर्थात् तिर्यक् (इधर उधर चारों ओरसे) ऊर्ध्व भागसे, अधोभागसे वन्ध को प्राप्त होते हैं, हमारे अनुसार अनन्तानन्त पुद्गल प्रदेश जीवके सव जन्मोंमें वन्धको प्राप्त होते है, दोनों ही अर्थ हो सकते हैं और ठीक हैं क्योंकि 'गोम्मटसार कर्मकांड'

सूत्रार्थ (१) नामप्रत्यया = कर्म रूप होनेको (=नाम) कारणभूत (=प्रत्यया) वा ज्ञानावरणादिक कर्मों की प्रकृतियोंरूप परिणमने योग्य

अवगाहका अर्थ व्याप्त है और 'अवगाढ का अर्थ व्याप्तहुआ। जब 'एकक्षेत्र अवगाह' और 'एकक्षेत्रअवगाढ', स्थिता शब्दके साथ समास रूप होकर 'एकक्षेत्रअवगाहस्थिता और एकक्षेत्रअवगाढस्थिता हो जाते हैं, तब भावामें तात्पर्य दोनोंका एकसा होता है। जैसे "एकक्षेत्रावगाढस्थिता" = 'एकक्षेत्रअवगाही' = (एक क्षेत्रमें व्याप्त हुए तथा स्थितिशील पुद्गल बन्धको प्राप्त होते हैं) (सभाष्य० पृष्ठ १९०) 'एकक्षेत्रावगाहस्थिता' = 'एक क्षेत्रावगाहकरि तिष्ठै" (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ६३३, ६३४) अर्थात् अन्यक्षेत्रकाअभावजतावनेकेअर्थिहै "एकक्षेत्रावगाहस्थिता" = 'एक क्षेत्रमें अवगाहकार तिष्ठते 'आत्माके प्रदेश अर कर्मके प्रदेश क्षीर नीरकी ज्यों एक क्षेत्रमें अवगाहकरि तिष्ठैं हैं। सदासुखजीकृता तत्वार्थसूत्र टीका मुद्रित पत्र ९९ और सदासुखजी कृता अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ५८७)

अवगाह' शब्द- गाह् धातुमें अव उपसर्ग लगानेसे और घञ् (=अ) प्रत्यय लगानेसे (अव + गाह + घञ् = अवगाह) बनाया जाता है और पुलिङ्ग है। यहापर व्याप्ति अर्थमें है। अवगाढ भूत कृदन्त है-तीनों लिङ्गोंमें इसका प्रयोग होता है, अव उपसर्ग गाह् धातुमें लगानेसे तथा 'क्त' (=त) लगानेसे (अव + गाह + क्त = अवगाढ) व्याप्त हुआ यहां पर अर्थ है॥ शेष पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एकहै, एकक्षेत्रावगाढ (एकक्षेत्रअवगाढ एकक्षेत्रमें अवगाहनरूप॥ गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा १८५॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर 'अनन्तानन्त' ऐसा पाठ है-देखोटिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ५३९ ५४० ॥ इस सूत्रका अर्थ समझने के लिए ध्यान में रखना चाहिए "अनन्तानन्त प्रदेश से अभिप्राय "अनन्तानन्त पुद्गल प्रदेश से है। और इसके विशेषण-गुण वाचक (क) नाम प्रत्यया (ख) सूक्ष्म (ग) एकक्षेत्रअवगाह (घ) स्थिता ऐसे चार वाक्य हैं अर्थात् आत्माके समस्त प्रदेशोंमें वा सम्पूर्ण आत्म प्रदेशोंमें बन्धरूप होनेवाले अनन्तानन्त पुद्गलके प्रदेश कैसे है वा किन किन गुणोंकरि संयुक्त है उत्तर में कहते हैं कि (१) कर्म प्रकृतियोंरूपपरिणमन योग्य है (२) सूक्ष्म हैं इन्द्रिय गोचर नहीं हैं (३) आत्माके प्रदेशोंके साथ दूध पानीके समान एक क्षेत्रमें व्याप्त हो जाते हैं (४) बहुरि स्थितिशील हैं अर्थात् समस्त आत्माके प्रदेशोंमें तिष्ठेही हैं-चलते नहीं हैं, सब प्रदेशोंको ग्रसित किये हुए हैं॥

(१) इस वाक्यको समझानेके लिये निम्न टिप्पणी लिखते हैं॥ पुद्गलद्रव्य (=जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण पाया जाय) के दो भेद हैं एक 'परमाणु दूसरा स्कन्ध। सबसे छोटे पुद्गलको परमाणु कहते है और अनेक परमाणुओंके बन्ध (= अनेक वस्तुओंमें एकपनेका ज्ञान कराने वाला सम्बन्ध विशेष) को स्कन्ध कहते है स्कन्ध (क) आहार वर्गणा (ख) तैजस वर्गणा (ग) भाषा वर्गणा (घ) मनोवर्गणा (ङ) कार्मण वर्गणा आदि २२ प्रकारके होते है। समान अविभाग प्रतिच्छेदोंके धारक प्रत्येक कर्म परमाणुको 'वर्ग' कहते है और वर्गोंके समूहको वर्गणा कहते है (वर्गणाओंका समूह = स्पर्द्धक है) ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मोंका समूह है सो कार्मण शरीर है। गोम्मटसार-जीवकांड गाथा २५१ देखो॥ जो ज्ञानावरणादि अष्टकर्मोंके समूह रूप (कार्मण शरीर रूप) परिणमैं वा परिणमन करे वे कार्मण वर्गणा है अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मोंका समूह कार्मण वर्गणाओंकाकार्य है और कार्मण वर्गणा ज्ञानावरणादि कर्मके समूहके होनेको कारण है। ये ही कार्मण वर्गणा यहां पर नाम प्रत्यया' कहीगई ■ नामप्रत्यय, नामहेतुक नामनिमित्तक, नामकारणक एकार्थवाची वाक्य है॥

नामप्रत्यया = समस्त ज्ञानावरणादि मूल प्रकृति रूप, उत्तरप्रकृतिरूप उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप होनेको कारण है ऐसे अनन्तानन्त पुद्गलके प्रदेश हैं जो बन्धको प्राप्त होते है॥ नामप्रत्यया = इस वाक्यका अर्थ श्वेताम्बरसम्प्रदायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न वाक्य से भी यही अर्थ निकलता है॥ "नामप्रत्यया पुद्गला बध्यन्ते। नाम प्रत्यय एषा ते इमे नामप्रत्यया। नामनिमित्ता नामहेतुका नामकारणा इत्यर्थ"

नाम प्रत्यया पुद्गला बध्यन्ते = नाम वा कर्म (प्रकृति) होनेको जो कारण हैं ते पुद्गल बन्धको प्राप्त होते है।

नाम प्रत्यय एषाम् ते इमे नामप्रत्यया। = नाम वा कर्म (प्रकृति) होने को (=नाम) निमित्त जिनके है ते ये नाम 'प्रत्यय (वा नाम हेतुकहैं)

आगामिनः संख्येया असंख्येया अनन्ता वा भवन्तीति॥ योगविशेषान्निमित्तात्कर्मभावेन पुद्गला आदीयन्त इति निमित्तविशेषनिर्देशः कृतो भवति। सूक्ष्मादिग्रहणं कर्मग्रहणयोग्यपुद्गलस्वभावानुवर्तनार्थं ग्रहणयोग्याः पुद्गलाः सूक्ष्मा न स्थूला इति॥ एकक्षेत्रावगाहवचनं क्षेत्रान्तरनिवृत्त्यर्थम्।

आगामिनः संख्येयाः असंख्येयाः अनन्ताः वा भवन्ति = भविष्यत् (काल) के संख्यात असंख्यात अथवा (=वा) अनन्त (भव) होते जाते हैं
इति योगविशेषात् निमित्तात् कर्मभावेन = ऐसे (मन-वचन-कायके) योगके विशेषसे (अर्थात्) कारणसे, कर्म भावकरि-
पुद्गलाः आदीयन्ते = (अर्थात् जीव द्वारा कर्मरूप परिणामकरि) पुद्गल स्कन्ध ग्रहण किये जाते हैं।
इति (१) निमित्त-विशेष-निर्देशः (२) कृतः भवति = इस प्रकार हेतु विशेषका कथन पूरा (कृतः) होता है।
सूक्ष्म-आदि-ग्रहणम् कर्म- = (सूत्रमें) सूक्ष्म एकक्षेत्रअवगाह औरस्थितका आदान या लाना (ज्ञानावरणादि) कर्मके
ग्रहण-योग्य-पुद्गल-स्वभाव-(३) अनुवर्तन-अर्थम् = ग्रहण योग्य पुद्गल (स्कन्ध) नि के स्वरूपके पूरा करनेके (=अनुवर्तन) लिये हैं
ग्रहण-योग्याः पुद्गलाः = (ज्ञानावरणादिकर्मके) ग्रहणयोग्यपुद्गल अर्थात् ज्ञानावरणादिकर्मोंकीप्रकृतियोंमें परिणमन करने योग्य जो पुद्गलके स्कन्ध हैं वे—
सूक्ष्माः न स्थूलाः इति; एक-क्षेत्र-अवगाह-वचनम् = सूक्ष्म हैं (इन्द्रियों द्वारा गोचर नहीं हैं) वादर नहीं है। एकक्षेत्रमें व्याप्त ऐसा वाक्य
क्षेत्र-अन्तर-निवृत्ति-अर्थम् ॥ = अन्य क्षेत्रके अभाव, वा निषेधके लिए है। अर्थात् कर्मरूप पुद्गलोंके स्कन्ध नीर क्षीर के सदृश एकमेक होकर आत्माके प्रदेशोंमेंही विद्यमानहैं न्यारेन्यारे स्थानोंमें नहीं हैं

(१) पृष्ठ ४०२मे तीसरा प्रश्न यह है "कुतः" = क्योंकर ? अर्थात् किसकरि प्रदेशबन्ध) हो ता है, प्रथम प्रश्न यह है 'कि हेतवः' इन दोनोंमें अन्तर वा भेद यह है कि पहले प्रश्नके उत्तरमें तो प्रदेशबन्धका उपादान कारण बतलाया है कि' नामप्रत्ययाः" है और तीसरे प्रश्नके उत्तरमें यह दर्शाया है कि 'योगोंका निमित्त' प्रदेशबन्ध का निमित्त कारण है॥ निमित्तकारण, उपादान कारण, द्रव्यके बन्धका निमित्त कारण और द्रव्य बन्धका उपादान कारण क्या है सो कहते हैं ? (क) जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप न परिणमै किंतु कार्यकी उत्पत्तिमे सहायक हों। उनको निमित्त कारण कहते हैं जैसे घटकी उत्पत्तिमें कुंभकार, दंड, चक्र आदिक (ख) जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमै उसको उपादान कारण कहते हैं जैसे घड़के बननेमे मिट्टी (ग) आत्माके योग कषाय रूप परिणाम द्रव्यबन्धके निमित्त कारण हैं (घ) बंध होनेके पूर्वक्षणमें बंध होनेको सन्मुख कार्माणि स्कन्धको द्रव्यबंधका 'उपादान कारण' कहते हैं। इसलिये यह उत्तर कुतः तीसरे प्रश्नका हुआ कि योगोंके निमित्तसे पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं॥ (२) कृत. शब्दका अर्थ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ११४में 'पूरा' ऐसा लिखा है॥ (३) अनुवर्तन = पूरा करना (पद्म० कोश पृष्ठ २४)

नामेति सर्वा कर्मप्रकृतयोऽभिधीयन्ते,स यथानामेति वचनात्। अनेन हेतुभाव उक्त । सर्वेषु भवेषु सर्वतो दृश्यते अन्यतोऽपीति तसि कृते सर्वतः । अनेन कालोपादान कृतम् । एकैकस्य हि जीवस्यातिक्रान्ता अनन्तानन्ता भवा ।

स ११ यथानाम*	=स यथानाम (=सो विपाक कर्म की प्रकृतिके नामके अनुकूल होता है)
इति*वचनात्१११ नाम१११इति*	=ऐसे (=इति) सूत्र (के हेतु) से "नाम" इस मकार (के शब्द) से (=इति)
सर्वा ३११कर्मप्रकृतय ३११(१)अभिधीयन्ते।अनेन३१११	=सम्पूर्ण कर्म प्रकृतिया ग्रहणकी गई हैं (=अभिधीयन्ते)इस(नामप्रत्ययवचन)करि
(२)हेतुभाव १'उक्त १'सर्वेषु३'भवेषु३' सर्वतस्*	=(प्रदेश बन्धका)कारणपना कहा गया। सकल वा सम्पूर्णभवो में हो सो सर्वत है ॥
(३) दृश्यते–अन्यत.* अपि* इति*(४) तसि१'	=देखा जाता है कि अन्य अथवा भिन्न (विभक्ति अर्थात् सप्तमी विभक्ति)से भी 'तस्'(प्रत्यय)
कृते१' सर्वतस्* ।	=करनेमें 'सर्वतस्'(शब्द) होता है अर्थात् 'तस्' प्रत्यय पञ्चमी अपादान विभक्ति से-ओरसे इत्यादि अर्थोंमें(जैसे एकतस्=एक ओरसे, सर्वतस्=समस्त ओरसे)बहुधा आया करता है । इस सूत्रमें विशेष प्रकारसे सप्तमी विभक्ति वा अधिकरण विभक्ति में भी 'भवमें'ऐसे अर्थमें 'दृश्यतेअन्यतोऽपि' ऐसे व्याकरणके सूत्रकरि (तस् प्रत्यय)आया है
अनेन३१११(४)काल-उपादान१११कृतम्१११एकैकस्य६'	=इस(सर्वेषु भवेषु वाक्य)करि समयका ग्रहण कियागया है। यहा 'कदा?'दूसरे प्रश्नका उत्तरहुआ
हि*जीवस्य६'अतिक्रान्ता.३' अनन्तानन्ता ३ भवा ३'	=एक एकही जीवके अनन्तानन्त जन्म(=भवा)पार होगये वा बीत गये

की गाथा तीनके अर्थसे विदित है कि आत्मा योग सहित होकर सब ओरसे कर्म वर्गणा तथा नोकर्म वर्गणाओंको प्रत्येक समय ग्रहण करता है ॥

(१) 'अभिधीयन्ते'-यह वाक्य 'धा (=धारण करना-पकडना ग्रहण करना) जुहोत्यादि तृतीयगणके उभय पदी सकर्मक धातुसे ऐसे बना है कि धा का कर्मणि प्रधानमें'धी' हो जाती है धीमेंअभि'उपसर्ग तथा कर्मणि प्रधानका य चिन्ह लगाकर अभिधीय ऐसा अंग बना लेते हैं। पश्चात् अन्य पुरुष बहु वचन आत्मनेपदी,वर्तमान कालकी क्रियाद्योतकका अन्ते चिन्ह लगाकर अभिधीय+अन्ते, ऐसा बना लेते हैं ॥ क्रिया प्रत्ययके यदि आरम्भमें'अ हो और क्रिया प्रत्ययके पहले वाले शब्द अर्थात् अङ्गके अन्तमें अकार हो तो यह अकार गिर जाता है। अत अभिधीय+अन्ते =अभिधीय्+अन्ते=अभिधीयन्ते बनगया (२) प्रदेश बन्धके सम्बन्धमें छह प्रश्नोंमेसे पहला प्रश्न कि प्रदेशबन्ध "किं हेतव "का उत्तर हुआ ॥ (३) सूत्र "दृश्यतेऽन्यतोऽपि =दृश्यतेअन्यतोऽपि (=सप्तम्यर्थे) तसिकृते=देखा जाता है कि भिन्न (विभक्ति) से भी तस् प्रत्यय किया जाता है (सप्तमी अधिकरण विभक्तिमें) जैसे सर्वत ॥ 'सर्वत ' मे सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुसार 'तस् प्रत्यय पञ्चमी अपादान विभक्तिमें प्रयोग हुआ है जैसा कि निम्न अनुवादसे प्रगट है "सर्वत =सर्वतस्तिर्यगूर्ध्वमधश्च बध्यन्ते=सर्वत अर्थात् तिर्यक् इधर उधर चारो ओरसे उर्ध्वभागसे तथा अधो भागसे सब ओरसे पुद्गलबन्धको प्राप्त होते हैं' पृष्ठ १८६ १८० ॥ सूत्रमें 'दृश्यते शब्द इसबात का ज्ञापक है कि तस् (=तसिल्) प्रत्ययके सम्बन्धमें अन्य सूत्र लागू है और यह भी देखा गया है (=दृश्यते) ॥

आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिनामसंयतसम्यग्दृष्टयादीनां क्षीणकषायान्तानां, मनःपर्ययज्ञानिनां च प्रमत्तादीनां क्षीणकषायान्तानां केवलज्ञानिनां सयोगानामयोगानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् (८) संयमानुवादेन—सामायिकच्छेदोपस्थानाशुद्धिसंयतानां चतुर्णां परिहारविशुद्धिसंयतानां प्रमत्ताप्रमत्तानां सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतानां यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां चतुर्णां संयतासंयतानामसंयतानां च।

आभिनिबोधिक-श्रुत+अवधिज्ञानिनां ६।३	=मति (=आभिनिबोधिक) श्रुत अवधि ज्ञानवाले
असंयतसम्यग्दृष्टि+आदीनां ६।३ क्षीणकषाय अंतानां ६।३	=असंयत सम्यग्दृष्टीसे लेकर क्षीण कषाय (बारहवां गुणस्थानवर्ती) तक
च मनःपर्ययज्ञानिनां ६।३ प्रमत्त+आदीनां ६।३	=तथा मनःपर्ययज्ञानवाले प्रमत्तसंयमी (छठे गुणस्थानवर्तीन) से
क्षीणकषाय+अंतानां ६।३ च केवलज्ञानिनां ६।३	=क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थानवर्ती] तक और (च) केवलज्ञानवाले
सयोगानाम् ६।३ अयोगानाम् ६।३	=योगसहित (तेरहवें गुणस्थानवर्ती) अयोगी (चौदहवें गुणस्थानवर्ती) का
सामान्य+उक्तं १।१	=संक्षेप [प्रकरण] में [पहिले] कहा हुआ [गुणस्थानवत्]
क्षेत्रम् १।१	=क्षेत्र है (देखो पृष्ठ ११५-१२० तक)
संयम+अनुवादेन ३।१ सामायिकच्छेदोपस्थान—	=संयमके कथनानुसार करि सामायिक और छेदोपस्थापन
शुद्धिसंयतानां ६।३ चतुर्णां ६।३	=शुद्धि संयमी चार [छठवें, सातवें, आठवें, नववें गुणस्थानवर्ती] तकका
परिहारविशुद्धिसंयतानां ६।३ प्रमत्त—	=परिहार विशुद्धि संयमी प्रमत्त [छठवां गुणस्थानवर्ती]
अप्रमत्तानां ६।३ सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतानां ६।३	=अप्रमत्त (सातवां गुणस्थानवर्तीनका) सूक्ष्म साम्परायशुद्धिसंयमी
यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां ६।३	=यथाख्यातविहार शुद्धिसंयमी
चतुर्णां ६।३	=चार (ग्यारहवां बारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थानवर्ती) नका
संयतासंयतानाम् ६।३ च असंयतानां ६।३	=संयमासंयमी (पांचवां गुणस्थानवर्ती)नका और असंयमी

स्थिता इति वचनं क्रियान्तरनिवृत्त्यर्थं स्थिता न गच्छन्त इति । सर्वात्मप्रदेशेष्विति वचनमाधारनिर्देशार्थं नैकप्रदेशादिषु कर्मप्रदेशा वर्तन्ते, क्व तर्हि? ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् सर्वेष्वात्मप्रदेशेषु व्याप्य स्थिता इति ॥ अनन्तानन्तप्रदेशवचनं परिमाणान्तरव्यपोहार्थं न संख्येया न चासंख्येया नाप्यनन्ता इति ॥ ते खलु पुद्गलस्कन्धा अभव्यानन्तगुणा

[illegible]	=(इस सूत्रमें) स्थिता ऐसा वाक्य अन्य स्थानमें गमन क्रियाके अभावके लिये है।
[illegible]	=ठहरे हैं चलते नहीं। अर्थात् कर्मोदयरूप आगत पुद्गल स्थितिशील हैं। सम्पूर्ण आत्माके प्रदेशोंमें स्थित ही हैं आत्माके सब प्रदेशोंसे मिलित [illegible] रहते हैं
[illegible]	=सम्पूर्ण आत्म प्रदेशोंमें अर्थात् आत्माके सकल प्रदेशोंमें ऐसा वाक्य
[illegible]	=(कर्मप्रदेशों या कर्मयोग्य पुद्गल स्कन्धोंके) आधारके कथनके लिये है।
[illegible]	=कर्म प्रदेश, न (आत्माके केवल) एक आदिक प्रदेशों में रहते हैं—तब
[illegible]	=कहां (=क्व) (रहते हैं)? (उत्तर) ऊपर नीचे और (=च) इधर उधर (=तिर्यक्)
[illegible]	=सम्पूर्ण आत्म प्रदेशोंमें व्याप्त होकर या सर्वत्र प्रदेशोंमें प्रवेश होकर (स्थिररूप से)
[illegible]	=रहते हैं (=स्थिता)। (इस सूत्रमें) अनन्तानन्त प्रदेश (यह) वाक्य
[illegible]	=अन्य परिमाण या गणनाके त्याग (=व्यपोह) के लिये है। (वे प्रदेश) संख्यात नहीं हैं
[illegible]	=और (=च) असंख्यात नहीं हैं अनन्त भी नहीं हैं। (पुद्गल प्रदेश)
[illegible]	=निश्चय करके (=खलु) पुद्गलके स्कन्ध अभव्यराशिसे अनन्तगुणे

[illegible]

सिद्धानन्तभागप्रमितप्रदेशा घनांगुलस्यासंख्येयभागक्षेत्रावगाहिन एकद्वित्रिचतुःसंख्येया-संख्येयसमयस्थितिकाः पञ्चवर्णपञ्चरसद्विगन्धचतुःस्पर्शस्वभावा अष्टविधकर्मप्रकृतियोग्याः । योगवशादात्मसात्क्रियन्त इति प्रदेशबन्धः समासतो वेदितव्यः ॥ आह बन्धपदार्थानन्तरं पुण्यपापोपसंख्यानं चोदितं तद्बन्धेऽन्तर्भूतमिति प्रत्याख्यातं तत्रेदं वक्तव्यं कोऽत्र पुण्यबन्धः कः पापबन्ध इति ॥ तत्र पुण्यबन्धप्रकृतिपरिगणनार्थमिदमारभ्यते—

सिद्ध-अनन्तभाग-प्रमितप्रदेशाः $^{1}_{3}$ घन-अंगुलस्य $^{6}_{1}$ =सिद्धराशिके अनन्तवां भाग प्रमाण प्रदेश लियेहुए घनाङ्गुलके
असंख्येय-भागक्षेत्र-अवगाहिनः $^{1}_{3}$ एक-द्वि-त्रि-चतुर्- =असंख्यातवां भाग क्षेत्रमें रहनेवाले एक, दो, तीन, चार,
संख्येय-असंख्येय-समय-स्थितिकाः $^{1}_{3}$ =संख्यात, असंख्यात, समय (पर्यन्त) की स्थिति वा मर्यादा वाले
पञ्चवर्ण-पञ्चरस-द्विगन्ध-चतुः स्पर्शस्वभावाः $^{1}_{3}$ =पांच वर्ण, पांचरस, दोगंध, चार स्पर्श स्वभाव वाले वा गुण वाले (अर्थात् ये सोलह गुण रूप स्वभावको लियेहुये आने वाले)
अष्ट-विधि-कर्म-प्रकृति-योग्याः $^{1}_{3}$ । योगवशात् $^{5}_{1}$ =आठ प्रकारकी कर्मप्रकृतिके योग्य हैं । योगके वशसे (उक्त अनंतानंत प्रदेश)
(१) आत्मसात्* क्रियन्ते T =अपने आधीनमें (=आत्मसात्) अपने ग्रहणमें (आत्मसात्) किये जाते है ।
इति* प्रदेशबन्धः $^{1}_{1}$ समासतः* वेदितव्यः $^{1}_{1}$ ॥ आह T =ऐसे प्रदेशबन्ध संक्षेपसे जानना चाहिये । पूछता है कि
बन्ध-पदार्थ-अन्तर $^{1}_{1}$ पुण्यपाप-उपसंख्यान $^{1}_{1}$ चोदितं $^{1}_{1}$ =बन्धपदार्थके समीप पुण्यपापकी गणना प्रेरित वा उपदेशित
तद्-बन्धे $^{7}_{1}$ अन्तर्भूतम् $^{1}_{1}$ इति* =उस बन्ध(पदार्थ) में गर्भित वो अन्तर्गत ऐसे (वहां ही=तत्रैव) अर्थात् प्रथम अध्यायके चौथे सूत्र 'जीवाजीवास्रव" इत्यादिमें वहां ही
प्रत्याख्यातम् $^{1}_{1}$ तत्र* इदम् $^{1}_{1}$ वक्तव्यम् $^{1}_{1}$ =छूट जाती है वा रहजाती है तहां यह कहना चाहिये
कः $^{1}_{1}$ अत्र* पुण्यबन्धः $^{1}_{1}$ कः $^{1}_{1}$ पापबन्धः $^{1}_{1}$ इति* =यहां क्या पुण्यबन्ध है ? क्या पाप बन्ध है ?
तत्र* पुण्यबन्ध-प्रकृति-परिगणन-अर्थम् $^{1}_{1}$ इदम् $^{1}_{1}$ आरभ्यते =तहां पुण्यबन्ध प्रकृतियोंके संख्या करनेके लिये यह सूत्र प्रारम्भ किया जाता है

(१) आत्मसात्-अव्यय है पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ५५ में "अपने आधीन, किसीका, अपना," ऐसा अर्थ दिया है ॥

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥

शुभं प्रशस्तमिति यावत् । तदुत्तरैः प्रत्येकमभिसम्बध्यते-शुभमायुः शुभं नाम शुभं गोत्र-मिति ॥ शुभायुस्त्रितयं तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्देवायुरिति ॥ शुभं नाम सप्तत्रिंशद्विकल्पं तद्यथा-मनुष्यगतिर्देवगतिः पञ्चेन्द्रियजातिः

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ।=सद्वेद्य शुभआयु शुभनाम-शुभगोत्राणि-कर्मप्रकृतयः पुण्यम्

सूत्रार्थ – (१)सद्वेद्य-शुभ आयु -शुभनाम-गोत्राणि =साता वेदनीय शुभ आयु,शुभनाम,शुभगोत्र

पुण्यम् कर्म प्रकृतयः भवन्ति ॥ =पुण्यकर्मकी प्रकृतिये है ।(इनके नाम आगे वृत्त्यनुवादमें दियेगये है)

वृत्त्यनुवाद –शुभम् प्रशस्तम् इति यावत् =जो(=यावत्)सराहने योग्य है, ऐसा प्रशस्त है ।

तद् उत्तरैः प्रत्येकम् अभिसम्बध्यते– =वह(शुभ) अगले वा अग्रिम प्रत्येक(शब्द) को लगाया जाता है

शुभम् आयुः शुभं नाम शुभं गोत्रम् इति =ऐसे शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र, हुये ॥

शुभआयुः त्रितयं । तिर्यग् आयुः मनुष्यआयुः =शुभ आयु के तीन भेद, तिर्यञ्च आयु, नर आयु,

देवआयुः इति । शुभनाम 'सप्त त्रिंशत्-विकल्पम् =देवआयु ऐसे है। शुभ नाम सैंतीस प्रकार है । अर्थात् नाम कर्म की प्रकृतियों मेंसे सैंतीस प्रकृतिये शुभ है वा पुण्य रूप है ।

तद्यथा–मनुष्यगति देवगति पञ्चेन्द्रियजाति =जैसे (क) मनुष्यगति (ख) देवगति (ग) पञ्चेन्द्रियजाति

---

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें "सद्वेद्य शब्दके पश्चात् सम्यक्त्व हास्य-रति पुरुषवेद ये चार अधिक हैं। शेष पाठ वही है जो हमारे यहां है अर्थात् 'सद्वेद्य सम्यक्त्वहास्यरतिपुरुषवेदशुभायुनामगोत्राणि पुण्यम् ऐसा पाठ है। इसके पश्चात् संस्कृत भाष्यका अंतका वाक्य ऐसे है "इत्येतदष्टविध कर्म पुण्यम् अतोऽन्यत् पापम् ऐसे यह आठ प्रकार कर्म पुण्य है और इससे भिन्न पाप है अर्थात् उनके यहां 'अतोऽन्यत्पापम् इसको न्यारा सूत्र नहीं माना है हमारे यहां यह अंतका सूत्र है ॥ 'सम्यक्त्व वेदनीय , 'दर्शन मोहनीय' की प्रकृति होनके निमित्तसे तथा हास्यवेदनीय रतिवेदनीय पुरुषवेदनीय, चारित्र मोहनीय की प्रकृति होनसे और ये घातिया कर्मकी चारों प्रकृतिये हैं। आत्माके गुणको घात करनवाली हैं हमारे यहां इनको पाप (प्रकृतियों) में जो १०० हैं स्थान दिया है श्वेताम्बर समाजमें इनको पुण्य रूप माना है॥ यही दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रके सम्बन्धमें भेद है ॥

पंच शरीराणि त्रीण्यङ्गोपाङ्गानि समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराचसंहननं प्रशस्तवर्णरसगन्धस्पर्शाः, मनुष्यदेवगत्यानुपूर्व्यद्वयमगुरुलघुपरघातोच्छ्वासातपोद्योतप्रशस्तविहायोगतयस्त्रसबादरपर्याप्तिप्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तयो निर्माणं तीर्थंकरनाम चेति । शुभमेकमुच्चैर्गोत्रं सद्वेद्यमिति ॥ एता द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः पुण्यसंज्ञाः ॥

पञ्च[१/३] शरीराणि [१/३]	=पांच(औदारिक,वैक्रियिक,आहारक, तैजस और कार्मण) शरीर
त्रीणि[१/३] अङ्गोपाङ्गानि [१/३]	=तीन (औदारिक शरीर,वैक्रियिकशरारि और आहारक शरीर) अंगोपांग
समचतुरस्रसंस्थानम्[१/१] वज्रर्षभनाराचसंहननम्[१/१]	=(ठ) समचतुरस्रसंस्थान (ड) वज्रर्षभनाराचसंहनन,
प्रशस्तवर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शाः [१/३]	=(ढ) शुभवर्ण (ण) शुभरस (त) शुभगन्ध (थ) शुभस्पर्श
मनुष्यदेव-गत्यानुपूर्व्य द्वयम्[१/१] अगुरुलघु-परघात-	= (द) मनुष्यगत्यानुपूर्वी (ध) देवगत्यानुपूर्वी (ये दोनों)(न) अगुरुलघु(प)परघात
उच्छ्वास-आतप-उद्योत-प्रशस्तविहायोगतयः[१/३]	=(फ) उच्छ्वास (ब) आतप (भ) उद्योत (म)प्रशस्तविहायोगति
त्रस-बादर-पर्याप्ति-प्रत्येक शरीर-स्थिर-	=(य) त्रस (र) बादर (ल)पर्याप्ति (व) प्रत्येक शरीर (श) स्थिर
शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशः-कीर्तयः[१/३]	=(ष) शुभ (स)सुभग (ह) सुस्वर (च) आदेय (त्र) यशःकीर्ति
निर्माणम्[१/१] तीर्थकरनाम[१/१] च* इति*	=(ज्ञ)निर्माण और (का)तीर्थकर नाम कर्मकी प्रकृति एसे हैं
शुभम्[१/१] एकम्[१/१] उच्चैः*गोत्रम्[१/१] सद्वेद्यम्[१/१] इति*	=(खा) एक शुभ (प्रकृति) ऊंच गोत्र है (गा)साता वेदनीय ऐसे
एताः[१/३] द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः[१/३] पुण्यसंज्ञाः[१/३]	=ये ब्यालीस प्रकातियें पुण्य संज्ञक हैं=आयु ३+नाम३७+गोत्र१+वेदनीय१=४२

(१) यहां पर पुण्य प्रकृतियें ब्यालीस कही गई हैं, उत्तर सूत्रमें पाप प्रकृतियें ब्यासी कहेंगे इस प्रकार सर्व मिलकर एकसौ चौबीस(१२४) हुई सो यह कथन बन्धकी अपेक्षा जानना चाहिये । बन्ध प्रकृतियें एकसौ बीस (१२०) कही हैं तहां दर्शन मोहकी तीन प्रकृतियोंमें बन्ध एक मिथ्यात्व ही का है । पश्चात् तीन होती हैं तिससे दो तो यह घटी । बहुरि पांच बन्धन, पांच संघात, शरीरोंसे अविनाभावी है । तिससे शरीर ही मे गर्भित की गई हैं । इसलिये दश यह घटी ॥ बहुरि वर्णादिक बीस हैं तिनको संक्षेप करि चारही कहीं तिससे सोलह ये घटी ॥ इस प्रकार एकसौ अड़तालीस प्रकृतियोंमें से उपर्युक्त २८ प्रकतियों के घटने से एकसौ बीस (१२०) शेष रही सो स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण पुण्यरूप भी हैं पाप रूपभी हैं प्रशस्त भी हैं अप्रशस्त भी है । दो बार संख्यामें ये चारों आने से चार बढ गई अर्थात् एकसौ चौबीस हो गई इसलिये ४२ पुण्य प्रकतियें और ८० पाप प्रकतियें सब मिलकर हुई ॥ बहुरि आठ कर्म प्रकृतियोंका सत्ताकी अपेक्षा कथन करनेसे १४८के स्थान मे १६८ हो जाती हैं क्योंकि स्पर्श ८, रस ५, गन्ध २ वर्ण ५ ये प्रशस्त भी हैं और अप्रशस्त भी होती हैं किसी जीवके ये बीसो शुभ भी होते हैं किसी किसी जीवके अशुभ भी होते हैं इसलिये १६८ प्रकृति का सत्तामाना है इनमें से१०० प्रकृतियें पाप रूप हैं और शेष ६८ पुण्यरूप हैं ।

अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥

अस्मात्पुण्यसञ्ज्ञककर्मप्रकृतिसमूहादन्यत्कर्म पापमित्युच्यते। तत् द्व्यशीतिविधं तद्यथा· ज्ञानावरणस्यप्रकृतयः पंच, दर्शनावरणस्य नव, मोहनीयस्य षड्विंशति, पञ्चान्तरायस्य, नरकगतितिर्यग्गती,

सूत्रम्-अतोऽन्यत्पापम् = अस्मादन्यत्कर्मपाप भवति = अस्मात् अन्यत् कर्म पाप भवति । २६।

सूत्रार्थ -अस्मात्[१]'''अन्यत्*कर्म[१]'''पापम्[१]''भवति।' =इस(पुन्यकर्म)से भिन्न कर्म पाप है अर्थात् पच्चीसवा सूत्रमें वर्णित ब्यालीस पुन्य प्रकृतियोंमें शेष रही जो कर्म प्रकृतिये वे पापरूप हैं ॥

वृत्त्यनुवाद -अस्मात्[१]'''पुण्य सञ्ज्ञक कर्म प्रकृत्ति समूहात्[५]''अन्यत्*=इस पुन्य नामा (=सञ्ज्ञक) कर्म प्रकृतिके समूहसे अन्य-
कर्म[१]'''पापम्[१]'''इति*उच्यते।' =कर्म पाप है ऐसा कहा जाता है
। तद्-द्विअशीति विधम्[१]'''। वह (पापकर्म) बयासी भांति है
तद्यथा*-ज्ञानावरणस्य[६]'''प्रकृतयः[१]'''पञ्च[१] । =जैसे ज्ञानावरणकी प्रकृति पांच
दर्शनावरणस्य[१]'''नव[१]',मोहनीयस्य[६]'''षड्विंशति[१]॥ =दर्शनावरण की (प्रकृति) नौ, मोहनीयकी (प्रकृति) छब्बीस
पञ्च अन्तरायस्य[६]'नरकगति[१]'तिर्यग्-गति[१]'। =पांच अंतरायकी (प्रकृतिये) नरक गति, तिर्यञ्चगति

पुण्य प्रकृति ६८=ब्यालीस पूर्वोक्त प्रकृतिये पांच शरीरोंके न्यारे २ पांच व धन और पांच ही भिन्न भिन्न संघातअंत ४२+१०=५२
स्पर्श की आठ प्रकृतियोंमें से ४२ की गणनामें केवल एक आई है इसलिये अवशिष्ट अधिक =७
रस के गुणोंमें ५ है ४२ की गणनामें केवल एक ग्रहण हुई है इसलिये अवशिष्ट अधिक =४
गंधके गुणोंमें दो है ब्यालीस की संख्यामें केवल एक आई है इसलिये अवशिष्ट अधिक =१
वर्ण प्रकृतियों ५ में से ४२की संख्यामें सामान्य करि एक आईहै इसलिये अवशिष्ट अधिक चार संयोग अडसठ =४=६८

पाप प्रकृति १००= ८२ वे ही प्रकृतिय है जो छब्बीसवे सूत्रमें कहेंगे
१६ स्पर्श-रस-गंध-वर्णके ८+५+२+५=२०क्रमसे भेद मानने पर ४के स्थानमें २० हो जाती है १६अधिक है
२,सम्यक्त्व मिथ्यात्व,सम्यग् प्रकृति मिथ्यात्व मोह कर्मकी तीन प्रकृतियोंमेंसे एक मिथ्या लीथी=८२+१६+२=१००

(१)श्वेताम्बर आम्नायके समान्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसको सूत्र नही माना है । वरन् सूत्र२५के अंतमें 'अतोऽन्यत् पापम्' भाष्यरूपमें लिखा है ॥

चतस्रो जातयः, पंच संस्थानानि, पंच संहननान्यप्रशस्तवर्णरसस्पर्शा नरकगतितिर्यग्गत्यानुपूर्व्यद्वयमुपघाताप्रशस्तविहायोगतिस्थावरसूक्ष्मपर्याप्तिसाधारणशरीरास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशःकीर्तयश्चेति नामप्रकृतयश्चतुस्त्रिंशत् । असद्वेद्यं नरकायुर्नीचैर्गोत्रमिति एव व्याख्यातो बन्धपदार्थः सप्रपंचः ॥ अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानप्रत्यक्षप्रमाणगम्यस्तदुपदिष्टागमानुमेयः ॥ ॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायामष्टमोऽध्यायः ॥

चतस्रः[१/३] जातयः[१/३]	=चार (एकेन्द्रिय–द्वीन्द्रिय–त्रींद्रिय–चतुरिंद्रिय) जाति,
पंच[१/३] संस्थानानि[१/३],	=पांच (न्यग्रोधपरिमंडल–स्वाति–कुब्जक–वामन और हुंडक) संस्थान,
पचं[१/३] संहननानि[१/३]	=पाच (वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक, असम्प्राप्तासृपाटिका) संहनन
अप्रशस्त–वर्ण–गंध–रस–स्पर्शाः[१/३]	=अशुभ वर्ण, शुभ गंध, अशुभ रस, अशुभ स्पर्श
नरकगति-तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यद्वयम्[१/१] उपघात-अप्रशस्त-	=नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी दो, उपघात, अप्रशस्त
विहायोगति-स्थावर-सूक्ष्म–अपर्याप्ति-साधारणशरीर-	=विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्ति साधारण शरीर,
अस्थिर अशुभ-दुर्भग-दुस्वर-अनादेयच*अयश.कीर्तय.[१/३]	=अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और (=च) अयशःकीर्ति
इति* नाम-प्रकृतयः[१/३] चतुस्त्रिशत्[१/३] । असद्वेद्यम्[१/३]	=इस प्रकार नाम कर्मकी प्रकृतियें चौंतीस हुई ॥ असाता वेदनीय
नरकआयुः[१/१] नीचैः*गोत्रम्[१/१] इति*एवम्*	=नरकआयुः नीच गोत्र हुई । इस प्रकार-
व्याख्यातः[१/१] बन्ध-पदार्थः[१/१] सप्रपंचः[१/१]	=बंध पदार्थ विस्तार सहित वर्णन किया गया
अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञान-	=अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, और केवल ज्ञानकरि (ये सब कर्म)
प्रत्यक्ष-प्रमाण-गम्यः[१/१] तद्–उपदिष्ट–	=प्रत्यक्ष जाना जाता है । (उस प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा) उपदेश (किये हुये)
आगम–अनुमेयः[१/१]	=शास्त्रकरि अन्य मतिज्ञान, श्रुतज्ञान करिके (यहउभय रूप कर्म) जानाजाता है ॥
इति*तत्वार्थ वृत्तौ[७/१] सर्वार्थ सिद्धि-	= इस प्रकारतत्त्वार्थके विवरणमें सर्वार्थ सिद्धि -
सञ्ज्ञिकायाम्[७/१] अष्टमः[१/१] अध्यायः[१/१] ॥८॥	= नामा ग्रन्थमें आठवा अध्याय हुआ ॥८

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

बन्धपदार्थो निर्दिष्ट । इदानीं तदनन्तरोद्देशभाज संवरस्य निर्देश प्राप्तकाल इत्यत इदमाह—

आस्रवनिरोधः संवरः ॥१॥

अभिनवकर्मादानहेतुरास्रवो व्याख्यात । तस्य निरोध संवर इत्युच्यते । सद्विविधो भावसंवरो द्रव्यसंवरश्चेति ।

बन्ध-पदार्थ निर्दिष्ट, इदानीम् तद्	=बन्धतत्त्व (आठवा अध्यायमें) कहागया है, अब उस (बन्ध पदार्थ) के
अनन्तर-उद्देशभाज संवरस्य निर्देश	=समीप इच्छितभाग सवर (तत्त्व) का उपदेश (=निर्देश) है
प्राप्तकाल इति अत इदम् आह	=जिसके (कहनेका) अवसर प्राप्त है इसलिये(=अत)इस(सूत्र)को कहते हैं कि
आस्रवनिरोध सवर ॥१॥	**=यथोक्तस्य शुभाशुभास्रवस्य निरोध सवर भवति।**
सूत्रार्थ-यथा-उक्तस्य शुभ अशुभ आस्रवस्य निरोध	=वर्णन कियेहुये अनुसार शुभ और अशुभ नवीन कर्मके आवने(के कारण)कोरोकना
सवर भवति	=सो सवरहै(वह दो प्रकार है द्रव्यआस्रवोंकेरोकनेमें जो कारणरूपआत्माके भाव सो भाव सवर है,भावके निमित्तसे कर्म पुद्गलोंके आगमनका रुकाउ सो द्रव्य सवर है
वृत्त्यानुवाद-अभिनव-कर्म-आदान-हेतु आस्रव	=नवीन (=अभिनव) कर्मके ग्रहण करनेका कारण आस्रव
व्याख्यात,तस्य निरोध सवर इति उच्यते	=कहा जाता है, तिस (आस्रव)का रोकना सवर ऐसा कहाजाता है।
स द्वि-विध भावसवर द्रव्यसवर च इति	=वह (सवर) दो प्रकार भावसवर और (=च) द्रव्य सवर ऐसे है ॥

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है (२)आस्रव – यह शब्द संस्कृत ग्रन्थोंमें 'आस्रव' लिखाहुआ मिलता है परन्तु ज्ञानचन्द्रजामुद्रिततत्त्वार्थसूत्राणि प्रति में प्रथम अध्याय सूत्र ४ में और छठवा अध्यायके द्वितीय सूत्रमें 'आस्रव' पाठ है इसी पुस्तकके नवमा अध्यायके प्रथम सूत्रमें और सातवा सूत्र में 'आस्रव है। सदासुखजी कृत लघु सूत्र टीकामें तथा जयचन्दजीकी वचनिकामें (मुद्रित और हस्त लिखित दोनों में) उक्त सूत्रोंके अर्थ तथा छठवा अध्याय और नवमा अध्यायमें जहां कहीं "आस्रव शब्द का प्रयोग किया है वहां वहां बहुधा स्थानों में आस्रव है कहीं आस्रव है क्या आस्रव शब्द भी शुद्ध है? नहीं क्योंकि 'आस्रव (पु०) आस्रवति मनोऽनेन । करणे अप् जिससे मन बह जाता है ॥ 'भावे अप् निरंतर बहना, (पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ६५) यह शब्द स्रु (जाना, बहना) भ्वादि प्रथम गणके अकर्मक परस्मैपद धातुसे बना है। स्रु जाना और 'आस्रु-आना, अर्थ भी आस्रव का आगमन का है भावार्थ कर्मका आगमन परन्तु आश्रव (पु०) जो आ और श्रु (=सुनना) स्वादि पाचवा गण के धातु और अच् से बना है। आशृणोति वाक्यम्=वचनको भलो भांति सुनलता है अगाकार भी अर्थ है ॥

तत्र संसारनिमित्तक्रियानिवृत्तिर्भावसंवरः। तन्निरोधे तत्पूर्वककर्मपुद्गलादानविच्छेदो द्रव्य-संवरः ॥ इदं विचार्यते—कस्मिन् गुणस्थाने कस्य संवर इति ॥ उच्यते—मिथ्यादर्शनकर्मोदयवशीकृत आत्मामिथ्यादृष्टिः। तत्र मिथ्यादर्शनप्राधान्येन यत्कर्म आस्रवति तन्निरोधाच्छेषे सासादनसम्यग्दृष्ट्यादौ तत्संवरो भवति ॥

तत्र* संसार–निमित्त–क्रिया–निवृत्तिः' =तहां ससारके(परिभ्रमणको)कारणरूप (मिथ्यात्व-रागादि परणतिरूप) क्रियाकात्याग होना
भावसंवरः' । तत्-निरोधे'(१)तत्-पूर्वक- =सो भाव संवर है। तिस(संसार निमित्त क्रिया)के रोकनेमें तिस(क्रिया)के निमित्त से(आनेवाले)
कर्मपुद्गल—आदान-विच्छेदः' द्रव्यसंवरः'॥ =कर्मपुद्गलोंके ग्रहणका अभाव अथवा निवारण हो सो द्रव्य संवर है
इदम्''' विचार्यते(२)कस्मिन्'''गुणस्थाने''' =यह विचार कियाजाता कि किस गुणस्थानमें
कस्य'संवरः'इति।*उच्यते-मिथ्यादर्शन-कर्म-=किस (आस्रव)का संवर होता है— कहा गया है कि मिथ्यादर्शन कर्मके
उदयवशीकृतः'आत्मा'मिथ्यादृष्टिः';तत्र* =उदयकरि वशमेंहुआ जीव मिथ्यादृष्टि है। तहां [मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में]
मिथ्यादर्शन,प्राधान्येन'''यत्-कर्म-आस्रवति =मिथ्यात्वकी श्रेष्ठता वा मुख्यताकरि जो कर्म आता है,
तत्-निरोधात्' शेषे' सासादन–सम्यग्दृष्टि- =तिस (मिथ्यादर्शन के) निरोध वा अभाव करि शेष (गुणस्थान) सासादन सम्यग्दृष्टि
आदौ' तत्–संवरः'भवति । =आदिकमें उस[कर्म] का संवर होता है। अर्थात् उस कर्म प्रकृतियोंके आगमनका निरोध है।

(१) "तन्निरोधेन तत्पूर्वकर्मपुद्गलादानविच्छेदो द्रव्यसंवरः ॥" सर्वार्थसिद्धि प्रथमावृत्ति पृष्ठ ४०६, द्वितीयावृत्तिमें 'तन्निरोधेन' के स्थानमें 'तन्निरोधे' है॥ "तन्निरोधे तत्पूर्वककर्मपुद्गलादानविच्छेदो द्रव्यसंवरः" तीन हस्तलिखित प्रतियोंका, राजवार्तिक, वार्तिक ६ तथा श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४८८ में है, हमारी समझमें तीनों पाठ ठीक है क्योंकि प्रथम पाठमें 'तन्निरोधेन =तिसके रोकनेसे, तत्पूर्व=तत्पूर्वक(जैसे श्रुतं मतिपूर्वं =श्रुतंमतिपूर्वकं) यहां स्वार्थमें अर्थात् अपने अर्थमें कन् (=क)प्रत्यय है जैसे बाल+कन् (स्वार्थे)=बालक, यही अर्थ त्रितीय पाठका है जैसे तन्निरोधे=उसके निरोधमें अर्थात् उसके निरोध होने पर इत्यादि। हमने बहु मतानुसार तृतीय पाठ लिया है॥इसका तात्पर्य तत्त्वार्थ राजवार्तिक मे निम्नप्रकार लिखा है "तस्य ससारकारणस्य भावसंवरस्य निरोधे तत्पूर्वकस्य कर्मपुद्गलस्य निरासो द्रव्यसंवरः इति निश्चीयते।"
तस्य संसारकारणस्य भावसवरस्य निरोधे तत्-पूर्वकस्य=तिस ससारका कारण भावसंवरका रुकाउ होजाने पर उसके निमित्तसे
कर्म-पुद्गलस्य निरासःद्रव्य-संवरःइति निश्चीयते =उत्पन्नहोने वाली पुद्गल कर्म वर्गणाओं का अभाव, द्रव्य संवर ऐसा निर्णीत है
(२)विचार्यते यहवाक्य चर् प्रथम भ्वादिगण परस्मैपदके धातुमें वि उपसर्ग लगानेसे और चर् के अ की वृद्धि करनेसे विचार् ऐसा बना पश्चात् कर्मणि प्रधानका य चिन्ह लगानेसे विचार्+य ऐसा हुआ,कर्मणि प्रधानके बनानेका नियम यह है कि धातु मे य जोडनेके पश्चात् आत्मनेपदी प्रत्यय लगादेते हैं यहां पर प्रथम पुरुष एकवचन, आत्मनेपदी वर्तमानकाल की क्रिया द्योतक ते विचार्य में लगानेसे विचार्यते बना ॥ २

किंपुनस्तन्मिथ्यात्वं नपुंसकवेदनरकायुर्नरकगत्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिहुण्डसंस्थानासम्प्राप्तसृपाटिकासंहनननरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यातपस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तकसाधारणशरीरसंज्ञकषोडशप्रकृतिलक्षणम्॥ असंयमस्त्रिविध।अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानोदयविकल्पात्।तत्प्रत्ययस्य कर्मणस्तदभावे संवरोऽवसेय ॥ तद्यथा–निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृध्यनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभस्त्रीवेदतिर्यगायुस्तिर्यग्गतिचतुःसंस्थानचतुःसंहननतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यो-

किम्॥''''पुनः॥तत्॥''''मिथ्यात्वं॥''''नपुंसकवेद–नरकायु–=और (=पुनः) वह (=तत्) कर्म क्या है॥(उत्तर) मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकआयु,

नरकगति–एक–द्वि–त्रि–चतुरिन्द्रियजाति– =नरकगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति,

हुण्डसंस्थान–असम्प्राप्तसृपाटिकासंहनन– =हुण्डकसंस्थान, असम्प्राप्तसृपाटिकासंहनन,

नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य–आतप–स्थावर–सूक्ष्म =नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म,

अपर्याप्तक,साधारणशरीरसंज्ञक–षोडशप्रकृति लक्षणम्॥।=अपर्याप्तक, साधारण शरीर नामा सोलह (ये) प्रकृतियोंके लक्ष॰ हैं, सारांश–उक्त सोलह कर्मप्रकृतियोंका संवर (आस्रवका रुकाव) सासानादिक गुणस्थानोंमें हुआ।

अनन्तानुबन्धिन्–अप्रत्याख्यान–प्रत्याख्यान–उदय =अनन्तानुबन्धीके उदय, अप्रत्याख्यानावरणके उदय, प्रत्याख्यानावरणके उदय

विकल्पात्॥असंयम॥त्रिविधः॥ =भेदसे असंयम तीन प्रकार है

तत्प्रत्ययस्य॥''कर्मण॥'''तत् अभावे॥संवरः॥अवसेयः॥।=उस (असंयम)के न होनेमें उस (असंयम)के निमित्तिक कर्मका संवर जानना चाहिये अर्थात् असंयम तीन प्रकारका है अनन्तानुबंधीउदयकृत, अप्रत्याख्यानावरणका उदयकृत, प्रत्याख्यानावरणका उदयकृत सो इस असंयम के निमित्तसे जिन प्रकृतियोंका आस्रव होता है सो तिस असंयमके अभावसे तिनका संवर होता है

तद्यथा॰ निद्रानिद्रा–प्रचलाप्रचला–स्त्यानगृद्धि– =जैसे निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि

अनन्तानुबन्धिन्–क्रोध–मान–माया–लोभ– =अनन्तानुबंधी क्रोध, अनन्तानुबंधीमान, अनन्तानुबंधीमाया, अनन्तानुबंधीलोभ

स्त्रीवेद–तिर्यगायु –तिर्यग्गति–चतुर्– =स्त्रीवेद, तिर्यचआयु, तिर्यचगति, चार (न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्जक,वामन)

संस्थान–चतुर्–संहनन–तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी– =संस्थान,चार(वज्रनाराच,नाराच,अर्धनाराच,कीलक)संहननतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, ३

द्योताप्रशस्तविहायोगतिदुर्भगदुःस्वरानादेयनीचैर्गोत्रसंज्ञिकानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्तानुबन्धिकषायोदयकृतासंयमप्रधानास्रवाणामेकेन्द्रियादयः सासादनसम्यग्दृष्ट्यन्ता बन्धकाः । तदभावे तासामुत्तरत्रसंवरः ॥ अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभमनुष्यायुर्मनुष्यगत्यौदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गवज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम्नां दशानां प्रकृतीनामप्रत्याख्यानकषायोदयकृतासंयमहेतुकानामेकेन्द्रियादयोऽसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्ता बन्धकाः । तदभावादूर्ध्वं तासां संवरः ॥

उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचैर्गोत्र-=उद्योत अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नीचगोत्र,

संज्ञिकानाम्'' पंचविंशति-प्रकृतीनाम्'' =(ये) नामधारक पच्चीस प्रकृतियोंका

अनन्तानुबंधिकषाय-उदय-कृत-असंयम-प्रधान- =अनन्तानुबंधी कषायके उदयभूत, असंयमको मुख्यकरि

आस्रवाणाम्' बन्धकाः' एकेन्द्रिय-आदयः' =आस्रवोंके बांधने वाले एकेन्द्रिय आदिक

सासादनसम्यग्दृष्टि-अन्ताः'; =सासादनसम्यग्दृष्टि (दूसरे गुणस्थानवर्ती) पर्यंत जीव होते थे,

तद्-अभावे' तासाम्'' =उस (अनन्तानुबंधीकषाय उदयकृत असंयमके न होनेपर) तिन (पच्चीस प्रकृतियों) का

उत्तरत्र* संवरः', =संवर यहां (सासादनसम्यग्दृष्टि) से अगले (गुणस्थान)में हुआ ।

अप्रत्याख्यानावरणक्रोध-मान-माया- =अप्रत्याख्यानावरणक्रोध, अप्रत्याख्यानावरणमान, अप्रत्याख्यानावरणमाया,

लोभ-मनुष्यायुः-मनुष्यगति-औदारिकशरीर- =अप्रत्याख्यानावरणलोभ, मनुष्यआयुः, मनुष्यगति, औदारिक शरीर,

तद्-अंगोपांग-वज्रर्षभनाराच संहनन-मनुष्यगति+ =उस (औदारिक)के अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन, मनुष्यगति+

प्रायोग्यानुपूर्व्य-नाम्नाम्'' दशानाम्'' =प्रायोग्यानुपूर्वी नामकी दश

प्रकृतीनाम्'' अप्रत्याख्यानकषाय-उदयकृत-असंयम- =प्रकृतियोंका अप्रत्याख्यानकषाय उदयकृत असंयमके

हेतुकानाम्' बन्धकाः' एकेन्द्रिय-आदयः' असंयतसम्यग्दृष्टि=निमित्तक(आस्रवोंके)बांधनेवाले जीव(=बंधकाः)एकेन्द्रिय आदिक असंयत सम्यग्दृष्टि

अन्ताः', तद्-अभावात्' =पर्यन्त थे, उस (अप्रत्याख्यानावरणकृत असंयम) के न होनेसे

ऊर्ध्वम्* तासाम्'' संवरः' । =ऊपर(अर्थात् देश असंयत आदिगुणस्थानोंमें तिन(उक्त दश प्रकृतियों)कासंवरहोता है

चतुर्णां सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥ [९] दर्शनानुवादेन-चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासङ्ख्येयभागः। अचक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत् ॥ [१०] लेश्यानुवादेन-कृष्णनीलकापोतलेश्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। तेजःपद्मलेश्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः।

चतुर्णां ६।३	= चार (पहले दूसरे तीसरे चौथे गुणस्थानवर्ती) नका
सामान्य+उक्त १।१ क्षेत्रम् १।१	= सक्षेप (प्रसंगमें) कथित (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है अर्थात् मिथ्यादृष्टि का सर्वलोक सासादनसे अयोगी तक लोकका असंख्यातवां भाग वा असंख्याते भाग वा सर्वलोकका क्षेत्र हो सक्ता है।
(९) दर्शन+अनुवादेन ३।१	= दर्शनकी विवक्षाकरि
चक्षुर्दर्शनिनां ६।३ मिथ्यादृष्टि-आदि क्षीणकषाय—	= चक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थानवर्ती]
अन्तानां ६।३ लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१	= तकका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है
अचक्षुर्दर्शनिनां ६।३ मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय-	= अचक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय
अंतानां ६।३ सामान्य+उक्त १।१ क्षेत्रम् १।१	= पर्यंतनका सक्षेप [प्रसंग] में [पहिले] कथित [गुणस्थानवत्] क्षेत्र है
अवधिदर्शनिनां ६।३ अवधिज्ञानिन्+वत्*	= अवधिदर्शनवालोंका (क्षेत्र) अवधि ज्ञानवालोंके क्षेत्रके तुल्य है
केवलदर्शनिनां ६।३ केवलज्ञानिन्+वत्*	= केवल दर्शनवालोंका [क्षेत्र] केवल ज्ञानियोंके समान है
१०लेश्या+अनुवादेन ३।१ कृष्णनीलकापोतलेश्यानां ६।३	= लेश्याके कथनानुसारसे कृष्ण नील कपोत [तीन] लेश्यावाले
मिथ्यादृष्टि आदि असंयतसम्यग्दृष्टि+अंतानां ६।३	= मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत [चौथे गुणस्थानवर्ती] तकनका
सामान्य+उक्त १।१ क्षेत्रम् १।१	= सक्षेप [प्रकरण] में [पहिले] कहा हुआ क्षेत्र है।
तेजस्+पद्मलेश्यानां ६।३ मिथ्यादृष्टि+आदि—	= पीत पद्म [दो] लेश्यावाले मिथ्यदृष्टिसे लेकर
अप्रमत्त-अंतानां ६।३ लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१	= अप्रमत्त [सातवें गुणस्थानवाले] तकका लोकका असंख्यातवां भाग है।

शोकास्थिराशुभायशःकीर्तिविकल्पं ॥ देवायुर्बन्धारम्भस्य प्रमाद एव हेतुरप्रमादोऽपि तत्प्रत्यासन्नस्तदूर्ध्वं तस्य संवरः ॥ कषाय एवास्रवो यस्य कर्मणो न प्रमादादिस्तस्य तन्निरोधे निरासोऽवसेयः ॥ स च कषायः प्रमादादिविरहितः तीव्रमध्यमजघन्यभावेन त्रिषु गुणस्थानेषु व्यवस्थितः तत्रापूर्वकरणस्यादौ संख्येयभागे द्वे कर्मप्रकृती निद्राप्रचले बध्येते ।

शोक-अस्थिर-अशुभ-अयशः कीर्ति-विकल्पम्[६] =शोक,अस्थिर,अशुभ,अयशःकीर्ति विकल्प है, अर्थात् प्रमाद करि सहित जीवके असातावेदनीय, अरति,शोक,अस्थिर, अशुभ,अयशःकीर्ति ये छह प्रमादके निमित्तसे बंध होते थे सो प्रमादका अभाव होने पर तिनका संवर होता है, अप्रमत्त आदि अगले गुणस्थानोंमें तिन उक्त छह प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है

देव-आयुः-बन्ध-आरम्भस्य[६] प्रमाद-हेतुः[१] एव* =देव आयुके बन्धके आरम्भका कारण प्रमाद ही है

अप्रमादः[१] अपि* तत्-प्रत्यासन्न[१] =प्रमाद रहित भी उस (प्रमाद सहित) के अति निकटस्थ (=प्रत्यासन्न)है अर्थात् देव आयुका बन्ध प्रमत्त संयत (छठवाँ गुणस्थानवर्ती) और अप्रमत्त संयत (सातवां गुणस्थानवर्ती) निके होता है।

तद्-ऊर्ध्वम्* =उन(प्रमत्त संयत और अप्रमत्त संयत)के ऊपर(अपूर्व करणादि ८वांगुणस्थानवर्तीनिके)

तस्य[६] संवरः[१] ॥ यस्य[६] कर्मणः[६] आस्रवः[१] =तिस (देव आयुका) संवर होता है॥ जिस कर्मका आस्रव(का कारण)

कषायः[१] एव* न* प्रमाद्आदिः[१] तस्य[६] निरासः[१] =कषाय ही है (और) प्रमादादि (कारण) नहीं है तिस (कर्म)का परित्याग अर्थात् निरास्रव

तत्-निरोधे[७] अवसेयः[१] =उस(कषाय)के अभावमें वा रोकनेमें जानना चाहिये(कहीं निरास्रवः पाठहै कहीं निरासः)

सः[१] च* कषायः[१] प्रमाद-आदि-विरहितः[१] तीव्र- =वह कषायभी (=च) प्रमादादि (भाव) करि वर्जित तीक्ष्ण

मध्यम-जघन्य-भावेन[३] त्रिषु[७] =मध्यम, हीन परिणाम करि (यथासंख्य) तीन (अपूर्वकरण आठवां, अनिवृत्तिकरण नववां,सूक्ष्म साम्पराय दशवां)

गुणस्थानेषु[७] व्यवस्थितः[१] तत्र*, =गुणस्थानोंमें अवस्थित वा विद्यमान है तहां (उक्त तीन गुणस्थानोंमें से)

अपूर्वकरणस्य[६] आदौ[७] संख्येयभागे[७] =अपूर्वकरणके आदि विषैं संख्यात भागमें

द्वे[१] कर्म-प्रकृती[१] निद्रा-प्रचले[१] बध्येते। =२ कर्म प्रकृतियें निद्रा और प्रचला बंधती हैं

सम्यग्मिथ्यात्वगुणेनायुर्न बध्यते । प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभानां चतसृणां प्रकृतीनां प्रत्याख्यानकषायोदयकारणासंयमास्रवाणामेकेन्द्रियप्रभृतयः संयतासंयतावसाना बन्धकाः ॥ तदभावादुपरिष्टात्तासां संवरः ॥ प्रमादोपनीतस्य तदभावे निरोधः ॥ प्रमादेनापनीतस्य कर्मणः प्रमत्तसंयतादूर्ध्वं तदभावान्निरोधः प्रत्येतव्यः । किं पुनस्तदसद्वेद्यारति-

सम्यङ्मिथ्यात्व-गुणेन ३ आयु: १ न* बध्येत ।	=मिश्र अथवा सम्यग्मिथ्यात्व (तीसरे) गुणस्थानद्वारा आयु नहीं बांधीजाती है अर्थात् तीसरे गुणस्थानमें आयुका बन्ध नहीं होता है
प्रत्याख्यानावरणक्रोध-मान-माया-	=प्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरणमान, प्रत्याख्यानावरणमाया
लोभानाम् ६ (१)चतसृणाम् ६ प्रकृतीनाम् ६ प्रत्याख्यानकषाय-	=प्रत्याख्यानावरणलोभ चार प्रकृतियोंके प्रत्याख्यानावरणकषायके
उदय-कारण-असयम-आस्रवाणाम् ६ बन्धका १	=उदय निमित्तक जो असयम तिसकरि आस्रवोंके बांधनेवाले
एकेंद्रिय-(२)प्रभृतय १ सयतासयत-अवसाना १,	=एकेंद्रिय आदिक(=प्रभृतय) सयतासयत (पाचवाँ गुणस्थान)पर्यन्त जीवोंके
तद्-अभावात् ५ उपरिष्टात्*	=उस(असयम)के न होनेसेऊपरअर्थात्पाचवा गुणस्थानमे अग्रिम(गुणस्थान)में
तासाम् ६	=तिन (प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ चार प्रकृति)का
सवर १, प्रमाद-उपनीतस्य ६ तद्-	=सवर होता है ॥ प्रमाद सहितकें (=उपनीतस्य)उस (प्रमाद) के
अभावे ७ निरोध १, प्रमादेन ३ अपनीतस्य ६	=न होनेपर सवर (=निरोध)होता है । प्रमादकरि रहित (जीव)के
कर्मण ६ निरोध १, प्रमत्तसयतात् ५ ऊर्ध्वम्*	=कर्मका निरोध (सवर) प्रमत्तसयत (छठवा गुणस्थान) से ऊपर (=ऊर्ध्वम्)
तद्-अभावात् ५ प्रत्येतव्य: १	=उस(प्रमाद) के न होने (के निमित्त)से जानना चाहिये ।
किम्*पुन *तद् १ असद्वेद्य-अरति-	=(प्रश्न)पुनि वह (निरोध वा सवर)क्या है (उत्तर) असाता वेदनीय अरति

(१) तिसृणाम् और चतसृणाम्के सबन्धमे देखो टिप्पणी सूत्र १४ अध्याय ८ पृष्ठ ७५ पर

(२) प्रभृतय -प्रभृति,अव्यय है;तदारभ्य तबसे लेकर अर्थ है । बहुव्रीहि समासमे यह शब्द पीछे रहता है ॥ जैसे 'इन्द्र प्रभृतयो देवा ' इन्द्रादिक देवता हैं इसलिये , एकेंद्रियप्रभृतय ' यह वाक्य बहुव्रीहि समास है (पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ २५०)

(३)उपरिष्टात् औरउपरिअव्यय हैं=ऊपर ऊंचे,इनके साथ षष्ठी विभक्ति जैसे यहां पर और इनके साथ द्वितिया विभक्ति मिलती है पद्मच०कोषपृ०७८

बध्येते॥ तत ऊर्ध्वं शेषेषु संख्येयेषु भागेषु मानमायासंज्वलनौ बन्धमुपगच्छतः॥ तस्यैव चरमसमये लोभसंज्वलनो बन्धमेति। ता एताः प्रकृतयो मध्यमकषायास्रवास्तदभावे निर्दिष्टस्य भागस्योपरिष्टात्संवरमाप्नुवन्ति॥ पंचानां ज्ञानावरणानां चतुर्णां दर्शनावरणानां यशःकीर्तेरुच्चैर्गोत्रस्यपंचानामन्तरायाणां च मन्दकषायास्रवाणां सूक्ष्मसाम्परायो बन्धकः

बध्येते। ततः* ऊर्ध्वम्* शेषेषु संख्येयेषु भागेषु	=बांध्ये जाते हैं। तिन (संख्यात भागों)से ऊपर बचेहुये संख्यात भागोंमें
मानमायासंज्वलनौ बन्धम् उपगच्छतः।	=मानसंज्वलन, मायासंज्वलन बन्धको प्राप्त होते हैं।
तस्य एव* चरम-समये लोभ-	=तिस(अनिवृत्तिबादरसाम्परायगुणस्थान)के ही अन्त समयमें लोभ–
संज्वलनः बन्धम् एति। ता. एताः	=संज्वलन बन्धको प्राप्त होता है, ते इतनीं अर्थात् उपर्युक्त पांच पुरुषवेद, क्रोध–संज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन,लोभसंज्वलन
प्रकृतयः मध्यम-कषाय-आस्रवाः	=प्रकृतियें मध्यम कषाय आस्रववाली अथवा मध्यम कषायद्वारा आगमनवाली
तद्-अभावे निर्दिष्टस्य भागस्य उपरिष्टात्	=उस (मध्यम कषाय)के न होने पर कथित भागसे ऊपर (=उपरिष्टात्)
संवरम् आप्नुवन्ति। पंचानाम्	=संवरको प्राप्त होती हैं। पांच (मति-श्रुत-अवधि-मनः-पर्यय-केवल)
ज्ञानावरणानाम् चतुर्णाम् दर्शनावरणाम्	=ज्ञानावरण प्रकृतियोंका, चार (चक्षुःअचक्षुः अवधिः केवल) दर्शनावरण प्रकृतियोंका
यशः कीर्तेः उच्चैः* गोत्रस्य च* पंचानाम्	=यशःकीर्तिका, ऊंच गोतका और (=च)पांच (दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य)
अन्तरायाणाम् मन्द-कषाय–आस्रवाणाम्	=अन्तरायकी (कर्म प्रकृतियों)कें मन्द कषायकरि आस्रवोंका
सूक्ष्मसाम्परायः बंधकः	=बांधनें वाला सूक्षम साम्पराय दशवां गुणस्थान है अर्थात् दशवां गुणस्थानमें सूक्ष्म लोभके होनेके कारणसे उक्त सोलह प्रकृतियों का आस्रव होता है

(१) "यशः कीर्तिरुच्चैर्गोत्रस्य" सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी दोनों मुद्रित आवृत्तियोंमे तथा एक हस्त लिखित प्रतिके पत्र ७८ पर यह पाठ है सो अशुद्ध है शुद्ध पाठ "यशः कीर्तेरुच्चैर्गोत्रस्य" है जैसा कि दो हस्त लिखित प्रतियोंके और तत्वार्थराजवार्तिक (मुद्रित)के पत्र ९४,१७१,पृष्ठ ३१९पर क्रमसे है क्योंकि "यश कीर्ति रुच्चैर्गोत्रस्य = यशः कीर्तिः उच्चैः गोत्रस्य" और यशः कीर्तेरुच्चैर्गोत्रस्य = यशः कीर्तेःउच्चैः.गोत्रस्य। कीर्तिः प्रथमा विभक्ति कीर्ति शब्दको है और कीर्तेः षष्ठी विभक्ति कीर्ति शब्दकी है' पंचानां ज्ञानावरणां चतुर्णां दर्शनावरणानां उच्चैर्गोत्रस्य पंचानामन्तरायाणां च मन्द कषायास्रवाणां षष्ठी विभक्तियोंमें है, इनका अन्वय, सम्बन्ध और अनुवाद षष्ठी विभक्ति कीर्तेः शब्दके साथ बनताहै न कि कीर्तिः शब्द प्रथमा विभक्तिके साथ॥ (२) स च कषाय...बन्धक. पृष्ठ ६,७,८ तकका सारांश है (क) अपूर्वकरण आठवां गुणस्थानमे तीक्ष्ण

तत ऊर्ध्वं सङ्ख्येयभागे त्रिंशत् प्रकृतयो देवगतिपंचेन्द्रियजातिवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मण-शरीरसमचतुरस्रसंस्थानवैक्रियिकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गवर्णगन्धरसस्पर्शदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्या-गुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभगसु-स्वरादेयनिर्माणतीर्थकराख्या बध्यंते॥ तस्यैव चरमसमये चतस्रः प्रकृतयो हास्यरतिभयजुगुप्सा-सञ्ज्ञा बन्धमुपयान्ति॥ ता एतास्तीव्रकषायास्रवास्तदभावान्निर्दिष्टाद्भागादूर्ध्वं संव्रियन्ते॥ अनि-वृत्तिबादरसाम्परायस्यादिसमयादारभ्य सङ्ख्येयेषु भागेषु पुंवेदक्रोधसञ्ज्वलनौ

तत ऊर्ध्वम् सङ्ख्येयभागे त्रिंशत् =उस(अपूर्वकरण गुणस्थानके आदिके सख्यात भाग)से ऊपर सख्यात भागमें तीस

प्रकृतय देवगति पचेन्द्रियजाति-वैक्रियिक-आहारक- =प्रकृतियें देवगति,पचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर,आहारकशरीर,

तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसस्थान-वैक्रियिक =तैजसशरीर,कार्मणशरीर,समचतुरस्रसस्थान,वैक्रियिकशरीर,

आहारकशरीराङ्गोपाग-वर्ण-गध-रस-स्पर्श =आहारकशरीरआगोपाग,वर्ण,गध रस स्पर्श,

देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य अगुरुलघु-उपघात- =देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य,अगुरुलघु,उपघात,

परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर पर्याप्त =परघात,उच्छ्वास,प्रशस्तविहायोगति,त्रस,बादर,पर्याप्त,

प्रत्येकशरीर स्थिर शुभ-सुभग-सुस्वर आदेय निर्माण- =प्रत्येकशरीर,स्थिर शुभ सुभग सुस्वर आदेय,निर्माण

तीर्थकर-आख्या बध्यन्ते। ॥ =तीर्थकरनामा बाधी जाती हैं अर्थात् बन्ध को प्राप्त होती हैं

तस्य एव चरम-समये चतस्र प्रकृतय =तिस (अपूर्वकरणगुणस्थान) के ही अतके समयमें चार प्रकृतियें

हास्य-रति भय जुगुप्सासञ्ज्ञा बन्धम् उपयान्ति।॥ =हास्य रति भय-जुगुप्सा नामा बन्ध को प्राप्त होती हैं ॥

ता एता तीव्रकषाय आस्रवा तद्-अभावात् =वे इतनी(२+३०+४-प्रकृतियें)तीक्ष्णकषाय आस्रव वाली तीव्र कषायके अभावसे

निर्दिष्टात् भागात् ऊर्ध्वम्,संव्रियन्ते। =बतलायेहुये भागसे ऊपर विरोधी गई हैं वा सवर को प्राप्त होती हैं अर्थात् आठवा अपूर्व करण गुण स्थानमें ३६ प्रकृतियें तीव्र कषाय सबन्धी हैं सो जिस जिस भागमें जो जो प्रकृति बधती है उसके ऊपर ऊपर भागमें वोही वोही प्रकृतियें सवरको प्राप्त है

अनिवृत्तिबादरसापरायस्य आदिसमयात् =अनिवृत्तिबादर साम्पराय नववा गुणस्थानके आदि समयसे

आरभ्य – सङ्ख्येयेषु भागेषु पुवेद क्रोधसज्वलनौ =प्रारम्भ करि सख्यात भागोंमें पुरुष वेद क्रोध सज्वलन

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजय चारित्रैः ॥ २ ॥

यतः संसारकारणादात्मनो गोपनं भवति सा गुप्तिः । प्राणिपीडापरिहारार्थं सम्यगयनं समिति ।

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयचारित्रैः=सः गुप्ति-समिति-धर्म-अनुप्रेक्षा-परिषहजय—चारित्रैः ।

सूत्रार्थः—सः गुप्ति— =वह (संवर) गुप्ति करि अर्थात् संसार में परिभ्रमणके कारणोंसे आत्माका बचाव अथवा रक्षण करि,

समिति— =समितिसे अर्थात् प्राणियोंको दुःख न होनेदेनेके लिये यत्नाचाररूप प्रवर्तन द्वारा,

धर्म— =धर्मद्वारा अर्थात् शान्ति और सुखस्थानमें आत्माको धरनेवाला वा लेजाने वाला ऐसे दशलक्षणरूप धर्म करि

अनुप्रेक्षा— =भावनासे अर्थात् शरीरादि परद्रव्य,ज्ञानमय आत्मद्रव्यऔर अन्य२ धार्मिकद्रव्योंके स्वभावका वारवार चिंतवनसे

हरिषहजय— =परीसहोंके जीतनेकरि अर्थात् वाह्याभ्यन्तर कारणोंसे क्षुधा,तृषा शीत उष्ण इत्यादि दुःखोंके आने पर उनको शान्ति पूर्वक, क्लेशरहित परिणामों द्वारा सहन करतेरहनेसे

चारित्रैः भवति । =और चारित्रकरि अर्थात् संसारके परिभमणके कारणरूप वाहिर अभ्यन्तर क्रियाका त्याग द्वारा होती है

टीकानुवादः—यतः संसार- =जिससे (पांचपरिवर्त रूप)संसार परिभ्रमणके

कारणात् आत्मनः गोपनं =निमित्तसे अथवा हेतुसे आत्माका रक्षण अथवा बचाव

भवति । सा गुप्तिः ; =होता है सो गुप्ति है,(वह गुप्ति मनोगुप्ति, वचनगुप्ति कायगुप्ति तीन प्रकारकी होती है)

प्राणिन्-पीडा-परिहार-अर्थम् =जीवोंका दुःख, क्लेश वा पीडा दूरकरने के लिये, नाशकरने के लिये,

सम्यग् अयनम् समितिः =भले प्रकारसे (अर्थात् यत्नाचार रूपसे)आश्रय(=अयन)वा प्रवर्तन सो समितिहै । सम्यक् सम्यग्-सम्यग्रूपहैं

[१] इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एक है । व्याधि वा पीडाकी सहन झेलन है सो परिषह है यहां पर "षह" शब्दमें अकार है सो कर्मणि अकार है अर्थात् कर्मणिप्रयोगके अर्थ में है ऐसा ही अर्थ तत्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३२०में किया है कि "परिपूर्वात्सहेःकर्मण्य-कार. । परिषह्य इति परीषह" यही अर्थ तत्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४८७में किया है परिषह्य ते इति परीषहाः व्याधि वा पीड़ाका सहेजाना वाझेलजाना ऐसी परीषायें है "तेषांजयोऽन्यकार" तत्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ४८७तिन(परीषह)का तिरस्कार, अपमान,निरादर वा जीतना सो तेषांजयः है, (प्रश्न) पांच व्रतोंको भी संवरका कारण सूत्रमें क्योंनकहा ? (उत्तर) द्रव्य संग्रह ग्रन्थकी " वदसमिदी गुत्तीओ धम्माणुपिहा परीसहजओ य =व्रतसमितिगुप्तयः धर्मानुप्रेक्षाः परीषहजयश्च । " गाथा में व्रतोंको भी संवरका कारण कहा है यहां इस कारणसे सूत्रमें व्रतों को समावेश नहीं किया है कि (क) व्रतोंका कथन सातवें अध्यायमें करदिया है यहां द्वितीयवार कहना पड़ता (ख) लगभग सब व्रत दशधर्ममें भी अन्तर्गत हैं ॥

तद्भावात्तदुत्तरत्र तेषां संवरः ॥ केवलेनैव योगेन सद्वेद्यस्योपशान्तकषायक्षीणकषाय सयोगानां बन्धो भवति। तदभावादयोगकेवलिनस्तस्य संवरो भवति॥ उक्त संवरस्तद्धेतुप्रतिपादनार्थमाह

तद् अभावात् उत्तरत्र	=वहां (सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान) से ऊपर (=उत्तर) उस (मन्द कषाय)के न होनेसे
तेषाम् संवर । केवलेन एव योगेन सद्वेद्यस्य	=तिन (उक्त सोलह प्रकृतियों)का संवर होता है। अकेलेही योगकरि सातावेदनीयका
उपशान्तकषाय क्षीणकषाय-	=उपशान्तकषाय (ग्यारहवां गुणस्थान) क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थान)
सयोगानाम् बन्ध भवति ।	=सयोगकेवली (तेरहवां गुणस्थानवर्तियों)के बंध होता है अर्थात् उक्त तीन गुणस्थानोंमें केवल योगके निमित्तसे सातावेदनीय प्रकृतिका बंध होता है
तद् अभावात् अयोगकेवलिन तस्य संवर	=उस (योग)के अभावसे अयोग केवलीके तिस (सातावेदनीय का) संवर
भवति उक्त संवर तद्-हेतु प्रतिपादन अर्थम् आह	=होता है। संवर कहा गया है, उस (संवर)के कारण कहनेके लिये कहते है कि

कषायके निमित्त से या कारणसे कर्मकी प्रकृतिये बंधतीहैं। अनिवृत्तिकरण नवम गुणस्थानमें मध्यम कषाय के निमित्तसे अथवा हेतुसेकर्म की प्रकृतियें बंधको प्राप्त होती हैं और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में सूक्ष्मकषाय अर्थात् सूक्ष्म या मन्द लोभ कषायके निमित्तसे प्रकृतियोंका आस्रव होता है (ख) आठवां अपूर्वकरण गुणस्थानके सात भागोंमेंसे पहिले भागमें निद्रा,प्रचला दो प्रकृतियों की बंधसे व्युच्छित्ति होती हे पहले भागसे अगले भागोंमें इन दो प्रकृतियों का संवर होता है दूसरे भागसे पांचवां भाग तक शून्य, छठवां भागमें देवगति आदि उक्त तीस प्रकृतियों की बंधसे व्युच्छित्ति होती है, छठवां भागसे ऊपर सातवां भाग तथा नवमां,दशवां इत्यादिक अगले गुणस्थानोंमें उक्त तीस प्रकृतियें का संवर होता है और सातवां भागमें अर्थात् अंतके समय विषै चार हास्य रति भय जुगुप्सा प्रकृतियोंकी बंधसे व्युच्छित्ति होती हे ऐसे तीव्र कषाय निमित्तक ३६ प्रकृतियोंकी बंधसे अपूर्व करणमें व्युच्छित्ति होतीहे। गोम्मट० कर्म० [ग] नवमां गुणस्थानके आदि समयसे लगाय संख्यातभागमें पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध बंधको प्राप्त होते हैं, उक्त संख्यात भागोंसे ऊपरके भागोंमें तथाअगले गुणस्थानोंमें इनका संवर होता है उक्त संख्यात भागों से ऊपर शेष संख्यात भागोंमें संज्वलनमान संज्वलनमाया बंधतो है ॥ इन पश्चात्में कहे हुये संख्यात भागोंसे ऊपर तथा अगले गुणस्थानोंमें संज्वलनमान,संज्वलनमायाका संवर होता है,नवमें गुणस्थानके अंत समयमें संज्वलन लोभ बंधता है, इस समयसे ऊपर गुणस्थानोंमें इस संज्वलन लोभका भी संवर होता है जिस२ भागमें जो२ प्रकृतियें बंधती हैं तिस तिस भागके ऊपर२ भागोंमें उस२ प्रकृतिका संवर होता है उक्त पांच प्रकृतियें मध्यम कषायके निमित्तसे बंधती हैं। (घ)दशमें गुणस्थानमें सूक्ष्म लोभ कषाय या मन्द लोभ कषायके निमित्तसे उक्त १६ प्रकृतियोंका आस्रव होता है सो इस गुणस्थानके अंत समयमें इन सोलह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती हे इस गुणस्थानके आगे इन सोलह प्रकृतियोंका संवर होता है, ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थानोंमें किसी प्रकृति की व्युच्छित्ति नहीं होती है ॥

देवताराधनादयो निवर्तिता भवन्ति ॥ रागद्वेषमोहोपात्तस्य कर्मणोऽन्यथा निवृत्त्यभावात् ॥ संवरनिर्जराहेतुविशेषप्रतिपादनार्थमाह—॥ तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥

देवता आराधन-आदयः[1/3] (१)निवर्तिताः[1/3] भवन्ति[1] =देवताकी पूजा वा सेवा आदिक (संवरके कारणोंमेंसे) निराकरण (=निवर्तिता) होते हैं
राग-द्वेष-मोह-उपात्तस्य[6] कर्मणः[6] अन्यथा[4] =क्योंकि राग द्वेष और मोहद्वारा उपार्जित कर्मकी अन्य प्रकारसे
निवृत्ति–अभावात्[5] =निवृत्ति नहीं होती है । सारांश यह है कि आस्रवका निरोधरूप जो संवर वह गुप्ति-समिति-धर्म-अनुप्रेक्षा–परिषहजय और चारित्र द्वारा ही होता है तीर्थमें स्नानादिक करि नहीं होता है इस आशयका द्योतक "स" शब्द सूत्रमें है क्योंकि राग,द्वेष,मोह,कषाय आदिसे आत्मामें उत्पन्न हुये कर्मों की निवृत्ति संवरके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे नहीं होसक्ती है ॥

संवर-निर्जरा-हेतु-विशेष-प्रतिपादन-अर्थम्[3] आह[1] =संवर तथा निर्जरा के कारण विशेष जाननेके लिये कहते हैं कि

(२)तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥ = (३)तपसा निर्जरा च भवति ३ ॥

सूत्रार्थः—तपसा[3] निर्जरा[5] च[*] भवति[1] =तपकरि निर्जरा भी (=च) होती है अर्थात् भी (=च) से प्रगट है कि तपसे कुछ और भी होता है और निर्जरा भी होती है–भावार्थ–तपकरि संवर तो होता ही है निर्जरा भी होती है इसलिये सूत्रमें 'च' शब्द संवरके संग्रहके लिये है ॥

नही है अन्य तीन हस्त लिखित प्रतियोंके पत्र१७१,६९,७६ पर पाया जाता है,छपनेसे रह गया है क्योंकि अन्यथा अनुवाद, तात्पर्य नहीं हो सका है
(१) सर्वार्थसिद्धिकी दो मुद्रितप्रतियोंमें और एक हस्त लिखित प्रतिके पत्र १७१ पर 'निर्वर्तिता' पाठ है सो सर्वथा अशुद्ध है, निवर्तिता पाठ शुद्ध है क्योंकि निवर्तिता का अर्थ निराकरण, निषेधका है परन्तु निर्वर्तिता का अर्थ इससे उलटा पूर्ण वा समाप्तिका है,स्पष्ट है कि यहांपर निराकरणसे आशय है ॥ (२) संवरके समस्त कारणोंमें प्रधान वा श्रेष्ठ तप है इस प्रकार इसके कहनेके लिये चशब्द सूत्रमें पृथक् ग्रहण किया गया है
सर्वेषु संवरहेतुषु प्रधान तप इत्यस्य(=इति-अस्य) =समस्त संवरके कारणोंमेंसे तप प्रधान(कारण) है ऐसे इस (प्रधान कारण)के
प्रतिपत्त्यर्थं च पृथग्ग्रहणं क्रियते–तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ३२० ॥ =निरूपणके लिये(सूत्रमें)च भिन्न ग्रहण कियागया है(देखो राजवार्तिकपृष्ठ३२०)
(३)श्वेताम्बरआ०के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीकामें और सर्वत्र हमारे यहां इस सूत्रका एक पाठ और अर्थ है। तपसा निर्जरा च=तपसा संवरो भवति भवतिनिर्जरा च=तपसे संवर होता है निर्जरा भी होती है अर्थात् तपसा निर्जरा च=तपो संवरकारणं भवति, निर्जराकारणमपि (=निर्जराकारणम्-अपि) भवति=तप संवरका कारण होता है, निर्जराका कारण भी होता है ॥

इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्म । शरीरादीना स्वभावानुचिन्तनमनुप्रेक्षा । क्षुदादिवेदनोत्पत्तौ कर्म-निर्जरार्थं सहनं परिषह । परिषहस्य जय परिषहजय. । चारित्रशब्द आदिसूत्रे व्याख्या-तार्थ । एतेषां गुप्त्यादीना संवरक्रियाया साधकतमत्वात् करणनिर्देश । सवरोऽधिकृतोऽपि स इति तच्छब्देन परामृश्यते गुप्त्यादिभि साक्षात्सम्बन्धार्थं ॥ किं प्रयोजनमवधारणार्थं ? । स एष संवरो गुप्त्यादिभिरेव नान्येनोपायेनेति ॥ तेन तीर्थाभिषेकदीक्षाशीर्षोपहार-

इष्टे''' स्थाने''' धत्ते । इति धर्म ', शरीरादीनाम्' =(स्वर्ग मोक्षादि)वाछित सुखस्थानमें(आत्माको) धरता है ऐसा धर्म है। शरीरादिकोंके
स्वभाव अनुचितनम्''' अनुप्रेक्षा'', क्षुधा आदि-वेदना- =लक्षण वा स्वरूप वारम्वार चितवन सो अनुप्रेक्षा है। भूखादिकी पीडा वा व्याधि
उत्पत्तौ''कर्म निर्जरा अर्थम्''' सहनम्''' =आनेपर कर्म के क्षय होनेके लिये(वह वेदना)सहीजाय अथवा झेलीजाय
परिषह ', परिषहस्य 'जय 'परिषहजय ' । =सो परीषह है। उक्त वेदनाका त्यक्कार,अर्थात् निरादर करना सो परीषहजय हैअर्थात् पीड़ाके सहनेमें समभाव रखना, शोक क्लेश रहित परिणामोंसे सहना सो परीषहजय है
चारित्र शब्द आदि-सूत्रे''' =चारित्र शब्दका प्रथम सूत्र(सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:)में
व्याख्यात अर्थ ', एतेषां 'गुप्ति आदीनां 'सवर- =अर्थ कहा गया है। इन गुप्ति आदिकके सवरकी
क्रियाया '' साधकतमत्वात्'' करण निर्देश ' । =क्रियाका उत्कृष्ट साधकपनासे(इस सूत्रमें)हेतुरूप उपदेश अथवा कथन (कियागया) है।
सवर ' अधिकृत ' =(इस अध्यायके आरम्भमें)सवर(तत्त्व)अधिकृत है अर्थात् सवर तत्त्वका प्रकरण वा विषय है
अपि*(१)स 'इति*तत् शब्देन' परामृश्यते =तौ भी(सूत्रमें)स ऐसे तत् शब्द द्वारा(उस सवरको)परामर्श व विचार किया जाता है कि
गुप्ति आदिभि ' =(सशब्द) गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा-परिषहजय चारित्र करि(उस सवरके)
साक्षात्*सबध अर्थ '(२)किम्''' =प्रत्यक्ष सबधके लिये है(प्रश्न)सवरका स शब्दकरि गुप्तिआदिके साथ सबध करनेका क्या
प्रयोजनम्''' अवधारण अर्थम्'', स' एष 'सवर ' =प्रयोजन है?(उत्तर)नियम जतावनेके लिये (सूत्रमें स शब्द)है,सो यह सवर
गुप्तिआदिभि ''' एव*न*अन्येन' उपायेन' इति*तेन' =गुप्तादिकरि ही होता है न(कि किसी)दूसरे साधन करि,तिस (अवधारण वा नियम)से।
तीर्थ अभिषेक-दीक्षा शीर्षउपहार =तीर्थमेंस्नान करना(भेष मात्र)दीक्षाका लेना,देवी-देवता चडी आदि पर मस्तकका अर्पण

(१)स = स प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिग तत् शब्दका है इसलिये अनुवादमे स शब्दके लिये' तत् शब्द द्वारा'लाये हैं(२)किम् दोनों मुद्रित प्रतियोंमे

तथा तपोऽभ्युदयकर्मक्षयहेतुरित्यत्र को विरोधः संवरहेतुत्वादादावुद्दिष्टाया गुप्तेः स्वरूपप्रतिपत्त्यर्थमाह

॥ सम्यग्योगनिग्रहो गुप्ति ॥ ४ ॥

योगो व्याख्यातः कायवाङ्मनःकर्म योग इत्यत्र । तस्य स्वेच्छाप्रवृत्तिनिवर्तनं निग्रहः । विषयसुखाभिलाषार्थप्रवृत्तिनिषेधार्थं सम्यग्विशेषणम् ॥ तस्मात् सम्यग्विशेषणविशिष्टात् ।

तथा तपस्-अभ्युदय-कर्म-क्षय-हेतु इति अत्र कः =तैसे तपकी वृद्धि और कर्मके क्षयका कारण है । ऐसे (कथनमें) यहां क्या

विरोध; संवर-हेतुत्वात् आदौ =विरोध हुआ अर्थात् कुछ भी विरोध नहीं हुआ । संवरके कारणपनेमेंसे आदिमें

उद्दिष्टायाः गुप्तेः स्वरूप-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह T =उपदेश कियागया गुप्तिका स्वरूप जतावनेके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥ **=सम्यग्-योग-निग्रहः गुप्तिः भवति ॥४॥**

सूत्रार्थः—सम्यग् * योग- =भले प्रकार अर्थात् विषय सुखकी अभिलाषारहित मनवचन कायकी क्रियाका

निग्रहः =रोकना वा वशमें करना अर्थात् मन वचन कायकी यथेष्ट प्रवृत्तिका रोकना

गुप्तिः भवति T । =सो गुप्ति है (मनोगुप्ति-वचनगुप्ति-कायगुप्ति तीन हैं)

वृत्यानुवादः-काय-वाङ्मनः कर्म योगः इति * =शरीर, वचन, और मनकी क्रिया (है सो) योग है ऐसा

अत्र =इस स्थानमें (अर्थात् छठवाँ अध्यायके प्रथम सूत्रमें)

योगः व्याख्यातः । तस्य =योग कहागया है वा वर्णनकिया गया है । तिस (योग) की

स्व-इच्छा-प्रवृत्ति-निवर्तनम् निग्रहः । =स्वाभिलाषाकी प्रवृत्तिका मेटना निग्रह है अर्थात् मनको वचनको और कायको अपने २ भिन्न २ विषयोंकी बुरी प्रवृत्तियोंसे रोकना सो निग्रह है

विषय-सुख-अभिलाष-अर्थ-प्रवृत्ति-निषेध-अर्थम् =विषय सुखके वांछारूप प्रयोजन (=अर्थ) की प्रवृत्तिके अभावके लिये

सम्यग्-विशेषणम् ॥ तस्मात् सम्यग्विशेषण-विशिष्टात् =(इससूत्रमें) सम्यक् विशेषण वा गुणवाचक (शब्द) है तिस सम्यक् विशेषणयुक्तकरि

---

(१) दोनों आम्नायोंमे इससूत्रका पाठ एक है, श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०मे सम्यग् शब्दको सम्यग् दर्शनके अर्थमे लेतेहुये निम्न भाष्य०दियाहै सम्यग्दर्शन पूर्वक त्रिविधस्य योगस्य निग्रहोगुप्तिः = सम्यग्दर्शन पूर्वककाय वाग् तथा मनोरूपजो तीनप्रकारके योग पूर्वमें कहेउनकानिरोध सोगुप्तिहै

तपो धर्मेऽन्तर्भूतमपि पृथगुच्यते उभयसाधनत्वख्यापनार्थं संवरं प्रति प्राधान्यप्रतिपादनार्थं च ॥ ननु च तपोऽभ्युदयाङ्गमिष्टम् देवेन्द्रादिस्थानप्राप्तिहेतुत्वाभ्युपगमात्, कथं निर्जराङ्गं स्यादिति ॥ नैष दोष एकस्यानेककार्यदर्शनादग्निवत् । यथाऽग्निरेकोऽपि क्लेदनभस्माङ्गारादिप्रयोजन उपलभ्यते

वृत्यनुवाद —तप १ धर्मे ७ अंतर्भूतम् १ अपि* ='तप' धर्ममें (देखो सूत्र ६ अध्याय ९) गर्भित है तो भी

पृथग् *उच्यते १ उभयसाधनत्व—ख्यापन—अर्थम् १ =भिन्न कहागयाहै और दोनों [संवरऔर निर्जरा]का कारणपना(=साधनत्व)जतावनेकेलिये

संवरम् २ प्रति*प्राधान्य—प्रतिपादन—अर्थम् १ च* । =ओर (=च)संवर प्रति मुख्यता जतावनेके लिये(तप शब्दका सूत्रमें न्यारा प्रयोग किया)है।

=भावार्थइसका यह है कि—धर्मको संवर होनेका कारण दूसरे सूत्रमें कहा है और छठवा सूत्रसे विदित है कि तप धर्ममें अंतर्गत है तब फल अथवा परिणाम यह हुआ कि तप संवरके उत्पन्न होनेका कारण होगया फिर इस तीसरे सूत्रमें तपको संवरका कारण कहना निष्फल हुआ , उत्तरमें कहते है (क) यह कि तप संवर और निर्जरा दोनोंका कारण है (ख) यह कि तीन गुप्ति, पाच समिति, तप के अतिरिक्त अन्य नौ धर्म, बारह अनुप्रेक्षा और बाईस परीषहजय, और पाच चारित्र इन सर्व छप्पन (५६) संवरके कारणोंमेंसे तप संवरके होनेका सबसे मुख्य वा प्रधान कारण है इसलिये तपको न्यारा इस तीसरे सूत्र द्वारा कहा गया है ॥

ननु*च*देव इन्द्र आदि स्थान प्राप्ति हेतुत्व अभ्युपगमात् ५ =पुनि प्रश्न, देव इन्द्रादिक पदवियोंके प्राप्तिका कारणपना (तपको) माननेसे

तप—अभ्युदय—अंगम् १ इष्टम् १ ,निर्जरा—अंगम् १ =तपवृद्धिका प्रिय(=इष्टम्)अंग वा उपायहुआ,(कर्मके)क्षयका(=निर्जरा)अंग वा उपाय

कथम्*स्यात्१इति* । न*एष १ दोष.१ अग्निवत्* =कैसे हुआ,(उत्तर) यह दूषण नहीं है। अग्निके समान

एकस्य ६ अनेक—कार्य—दर्शनात् ५ =एक(वस्तु)के बहुतकार्य देखने से (तपकर्मक्षय और इंद्रादिक पदवियोंका कारण होताहै)

यथा*अग्नेः १ एक १ अपि*क्लेदन भस्म—अंग—आदि— =जैसे एक अग्निके भी(=अपि) वस्तुका पचाना अवयव(=अंग) आदिका भस्मकरना

प्रयोजन १ उपलभ्यते १ =कार्य प्राप्त किये जाते है । (प्रयोजन शब्द बहुव्रीहि समासमेंहै अतः पुल्लिंगमें है)।

शुक्ललेश्यानां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥ (११) भव्यानुवादेन—भव्यानां चतुर्दशानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। अभव्यानां सर्वलोकः ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेन—क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानामौपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तकषायान्तानां सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्।

शुक्ललेश्यानां ६/३ मिथ्यादृष्टि+आदि क्षीणकषाय-	=शुक्ल लेश्यावाले मिथ्यादृष्टीसे क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थानवर्ती)
अन्तानां ६/३ लोकस्य ६/१ असंख्येयभागः १/१	=तकका (क्षेत्र) लोकका असंख्यातवां भाग है।
सयोगकेवलिनां ६/३ अलेश्यानां ६/३ च	=सयोग केवलियोंका तथा लेश्यावर्जित (अयोग केवली)नका
सामान्य+उक्तं १/१ क्षेत्रम् १/१	=संक्षेप [प्रसंग] में [पूर्व] कथित (गुणस्थान तुल्य) क्षेत्र है
भव्य-अनुवादेन ३/१ भव्यानां ६/३ चतुर्दशानां ६/३ सामान्य	=[११] भव्यकी अपेक्षाकरि चौदह (गुणस्थानवर्ती) भव्यनका संक्षेप
उक्तं १/१ क्षेत्रम् १/१ अभव्यानां ६/३ सर्वलोकः १/१	=[प्रकरण] में कथित [गुणस्थानसम] क्षेत्र है। अभव्यनका समस्त लोक है
[१२] सम्यक्त्व-अनुवादेन ३/१ क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां ६/३	=[१२] सम्यग्दर्शनकी विवक्षासे क्षायिक सम्यग्दर्शनवाले
असंयतसम्यग्दृष्टि+आदि-अयोगकेवलि-अन्तानाम् ६/३	=असंयतसम्यग्दृष्टीनसे अयोग केवली पर्यंतनका [क्षेत्र और]
क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां ६/३ असंयतसम्यग्दृष्टि—	=वेदक सम्यग्दर्शनवाले असंयत सम्यग्दृष्टियों
आदि-अप्रमत्त अन्तानाम् ६/३	=से अप्रमत्त [सातवां गुणस्थानवालों] तकका [क्षेत्र तथा]
औपशमिकसम्यग्दृष्टीनाम् ६/३	=उपशम सम्यग्दर्शनवाले
असंयतसम्यग्दृष्टि+आदि+उपशान्तकषाय-अन्तानां ६/३	=असंयत सम्यग्दृष्टीसे उपशांत कषाय तकनका (क्षेत्र और)
सासादनसम्यग्दृष्टीनां ६/३ च	=सासादनसम्यग्दृष्टी (दूसरे गुणस्थानवर्ती) नका (क्षेत्र) और
सम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां ६/३ सामान्य-उक्तं-१/१ क्षेत्रम् १/१	=मिश्र गुणस्थानवालोंका संक्षेपसे (पूर्व) कथित [गुणस्थानवत्] क्षेत्र है

सक्लेशाप्रादुर्भावपरात्कायादियोगनिरोधेसति तन्निमित्तं कर्म नास्रवतीतिसवर प्रसिद्धिरवगन्तव्या सा त्रितयी कायगुप्तिर्वाग्गुप्तिर्मनोगुप्तिरिति। तत्राशक्तस्य मुनेर्निरवद्यप्रवृत्तिख्यापनार्थमाह—

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥

सक्लेश—अप्रादुर्भाव—परात् =सक्लेशकी अधिकतासे(=परात्) रहित(=अप्रादुर्भाव) अर्थात् जिससे अधिक सक्लेशन हो। काय—आदि—योग—निरोधे सति तत्—निमित्तम् =ऐसा काय आदिक योगोंके निरोध होनेपर उन (योगोंके निरोध) के कारण कर्म न आस्रवति इति सवर प्रसिद्धि अवगन्तव्या =कर्म नही आता है ऐसे सवरकी विख्याति जानना चाहिये भावार्थ मन वचनकायके योगोंके रोकनेमें इतना अधिक सक्लेश न सहे कि शरीर छूट जाय सम्यक् विशेषणकी विलक्षणताकरिसक्लेशकी अधिकतासे वर्जित काय आदि योगोंके निरोध होने पर उसके निमित्तसे कर्म नहीं आते हैं सो सवर जानो

सा त्रितयी कायगुप्ति वाग्गुप्ति मनोगुप्ति =सो गुप्ति तीन, काय गुप्ति—वचन गुप्ति—मनोगुप्ति =ऐसे हैं ॥ तत्र अशक्तस्य मुने =तहा (गुप्तिरूप रहनेमें) असमर्थ मुनिके निरवद्य प्रवृत्ति—ख्यापन—अर्थम् =निर्दोष प्रवृत्तिके प्रगट (करने) के लिये इति आह। (आचार्य अग्रिम सूत्र मे) कहते है कि

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गा समितय =ईर्या-भाषा एषणा-आदान-निक्षेप-उत्सर्गा समितय भवन्ति सम्यक् पदके लाने पर सूत्र ऐसे होगया कि सम्यगीर्या,सम्यग् भाषा,सम्यग् एषणा,सम्यग् आदाननिक्षेप,सम्यग् उत्सर्ग समितय भवन्ति ॥

सूत्रार्थ —सम्यग् ईर्या सम्यग् भाषा सम्यग् एषणा =यत्नसे चलना, यत्न से बोलना, यत्न से शुद्ध निर्दोष आहार लेना सम्यग् आदान—निक्षेपौ सम्यग् उत्सर्ग समितय =यत्नसे उपकरणादि उठावना धरना,यत्नसे मलमूत्रादि क्षेपण(पांच)समितियें हैं भावार्थ धर्मार्थ सूर्योदयके पश्चात मनुष्य तिर्यंचोके चलने से तुषारादि जिस मार्गमेंसे जातारहाहो ऐसे पथमें चार हाथ परिमाण आगेकी भूमिको देखकर मुनि धीरे २ चलें कि जीवोंकी हिंसा न हो सो सम्यगीर्या समिति है।[ख]हित मित (=थोडा) सदेह रहित प्रिय वचनोका बोलनासो सम्यग्भाषा समिति है [ग] दिनसे एकवार निर्दोष आहार लेना है सो सम्यगेषणासमिति है(घ)शरीर,पुस्तक कमण्डलु,पीछी आदिको नेत्रोंसे देखकर यत्नसे उठाना रखना सो सम्यगादान निक्षेपणसमिति है।(ड शुद्ध जतु रहित भूमिपर मल मूत्र क्षेपनकरैप्रासुक जलसे शोच क्रिया करना सो सम्यगुत्सर्गसमिति है

सम्यगित्यनुवर्तते तेनेर्यादयो विशेष्यन्ते । सम्यगीर्या सम्यग्भाषा सम्यगेषणा सम्यगादान-निक्षेपौ सम्यगुत्सर्ग इति । ता एताः पंच समितयो विदितजीवस्थानादिविधेर्मुनेः प्राणि-पीडापरिहाराभ्युपाया वेदितव्याः ॥ तथा प्रवर्तमानस्यासंयमपरिणामनिमित्तकर्मास्रवाभावात्संवरो भवति ॥ तृतीयस्य संवरहेतोर्धर्मस्य भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपःत्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणिधर्मः

वृत्त्यानुवादः—सम्यग्. * इति*अनुवर्तते T तेन३। ईर्या-	=सम्यग् ऐसा (शब्द चौथे सूत्रसे) आता है तिस (सम्यग् शब्दसे) ईर्या
आदयः१३। विशेष्यन्ते T ।	=आदिक (पांचों समितियें) विशेषणकी गई हैं अर्थात् प्रत्येकके प्रथम विशेषण वा गुणवाचक शब्द सम्यग् लगाया गया है ।
सम्यग्.* ईर्या १। सम्यग्.*भाषा१। सम्यग्. * एषणा१॥	=(तब) सम्यगीर्या, सम्यग् भाषा, सम्यग् एषणा
सम्यग्. * आदान-निक्षेपौ १। सम्यग्* उत्सर्गः१। इति ।	=सम्यग् आदान (=उठावना) निक्षेप(=रखना) सम्यग् उत्सर्ग ऐसे (५समिति) हुई
ताः१३। एताः१३। पंच१३।समितयः१३।विदित-जीवस्थानादि-विधेः६१।	=ते इतनी पांचसमितियें जीवके स्थान (योनि) आदिक भेदकी विधिके ज्ञाता
मुनेः६१। प्राणिन्-पीडा-परिहार-अभ्युपायाः१३। वेदितव्याः१३।	=मुनिके प्राणियोंकी पीडा दूर करनेका शुभ उपाय (=अभ्युपाय) जानना चाहिये
तथा* प्रवर्तमानस्य६१। असंयम-परिणाम-निमित्त-कर्म-	=तथा (सम्यक्) प्रवर्तमानके असंयम परिणामके निमित्तसे कर्मका
आस्रव-अभावात् ५१। संवरः १। भवति T	=आस्रव(=आगमन)होताथा तिस (असंयम परिणाम)के अभावसे संवरहोताहै
तृतीयस्य६१।संवर-हेतोः६१।धर्मस्य६१।भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम्२१।आह T	=तीसरा संवरका कारण धर्मके भेदजाननेके लिये [अग्रिम सूत्रमें] कहते हैं कि

(२ उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौच १) सत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'उत्तम. क्षमा' उत्तमक्षमा के स्थानमें है । उक्त भाष्योंमे, मुद्रित सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमे, तत्त्वार्थ राजवार्तिकोंमें, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकों में " शौचसत्य " पाठ है, हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें और अन्य अन्य प्रतियोंमें कहीं कहीं पर ' शौचसत्य ' पाठ है, कहीं हीपर 'सत्यशौच' पाठ है, पूज्यपादस्वामीकी संस्कृतवृत्ति अथवा संस्कृत-भाष्यमें सर्वत्र 'शौचसत्य' है अत. हमने भी ' शौच सत्य ' पूज्यपादस्वामीके अनुसार पाठ लिया है ॥

सूत्रकापदच्छेद= (१) उत्तमक्षमा-उत्तममार्दव-उत्तमआर्जव-उत्तमशौच-उत्तमसत्य उत्तमसयम उत्तमतप-उत्तमत्याग-उत्तमआकिंचन्य-उत्तमब्रह्मचर्याणि १।।। धर्मः १।

सूत्रार्थ —उत्तमक्षमा १।।, =शरीरकी स्थितिके लिये आहारके निमित्त मुनिदूसरोंके घरोंमें जावैं और दुष्टजन निंदा-हास्य अनादर मारन शरीरकाघात आदिक करैं तौभी मुनिके परिणामोंमें मलीनता का न होना सो उत्तमक्षमा है।

(२) उत्तममार्दवम् १।।, =(क) श्रेष्ठजाति (ख)प्रधानकुल (ग) रूप (सौन्दर्य),(घ)ऐश्वर्य (धनआदि विभूति),(ङ) विज्ञान अर्थात् अनेक पदार्थ विषयक आनुभविक ज्ञान (च) श्रुत अर्थात् शास्त्र सम्पत्ति, (छ) लाभ (ऐहिक वा पारलौकिक पदार्थ के लाभ) (ज)वीर्य इन आठमदके दवावसे प्रभाव से, वा लीनतासे जो अभिमान तिसका अभाव (सो उत्तममार्दव है।) संक्षेपत नम्रताका वर्तन तथा गर्व राहित्य होना यह मार्दवका लक्षण है।

(३) उत्तमआर्जवम् १।।, =(मन-वचन-कायके) योगोंकी सरलता, सिधाई, कपट राहित्य, कुटिलता का अभाव अथवा वक्रता का अभाव (सो उत्तम आर्जव है) अर्थात् धोखा देना वा मिथ्या भाषण, कपटादि वा मायाचार व्यवहारोंसे दूसरेको ठगनेका अभाव ऐसा आर्जवधर्मका लक्षण है।

(४) उत्तमशौचम् १।।, =उत्कृष्टपनै लोभसे उपराम, निवृत्ति, हटना वा छुटकारा सो शौच वा पवित्रता है भावार्थ जो अन्यके धन स्त्री आदिकमें अभिलाषाका (लोभका) अभाव तथा षट् कायके जीवोंका हिंसाका अभाव सो शौच है, अथवा जीने का लोभ, पाजे स्त्री पुत्र मित्रादिक के जीवितका लोभ,अर अपना आरोग्यपना चाहना तथा स्त्रीपुत्रादिक के आरोग्यता रहनेका लोभ, अपने इद्रिय प्रवल रहनेका लोभ तथा स्त्री पुत्रादिकों की इद्रियोंके प्रवलता रहने का लोभ अपने उपभोगकी सामग्री मिलनेका,स्थिर रहनेका लोभ ऐसेचार प्रकारके लोभका परिणाममें अभाव है और संतोष भावका प्रगट होना सो शौच है। १७

(१) इन धर्मों में 'उत्तम शब्द लगा है सो अपनी ख्याति, लाभ,पूजा, प्रतिष्ठा आदिकके लिये ये धर्म धारण करै तो उत्तम धर्म नहीं है इसलिये ख्याति लाभादिककी इच्छा रहित धर्मों का धारण करना ही उत्तम धर्म कहाजाता है। (२) नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ(=नीचै वृत्ति-अनुत्सेकौ) मार्दव लक्षणम् = नम्रताका प्रवर्त्तन तथा गर्वराहित्य होना यह मार्दवका लक्षण है (समाष्य० पृष्ठ १९५) मृदुका अर्थ कोमल है उस मृदु शब्दसे भाव या कर्म अर्थमें तद्धित अण् प्रत्यय होनेसे मार्दव बनता है। मृदोर्भावः कर्म वा मार्दवम् अर्थात् मृदुका जो भाव वा कर्म है वह मार्दव है (३) सरल अर्थ वाचक "ऋजु"शब्दसे भाव वा कर्म अर्थमें अण प्रत्यय होनेसे आर्जव बनता है (ऋजोर्भावः कर्म वा आर्जवम्) अर्थात् ऋजुका जो भाव या कर्म है वह आर्जव है अथवा सरल भाव वा सरल कर्म यह आर्जव है(समाष्य० पृष्ठ १९६)(४) अलोभः शौचलक्षणम् ।=लोभ का अभाव होना यह शौचका लक्षण है, शुचेर्भावः शुचि कर्म — शौचम् =शुचिका भाव वा शुचि(=पवित्र कर्म शौच है (सम... पृष्ठ १९६)

उत्तमसत्यम् ॥ , =अच्छे प्रशंसनीय जनोंमें यथार्थ ठीक ठीक ज्यों का त्यों (=साधु)वाक्यकहना सो उत्तम सत्य है(देखोपृष्ठ२०)

[१] उत्तमसंयमः ॥ , =संक्षेपतः संयम धर्म दो प्रकार है (क) (प्राणिसंयम) (ख) इन्द्रिय संयम, ईर्या समिति आदिकमें प्रवर्ततेहुए मुनिके जीवोंकी रक्षाके लिये एकेन्द्रियादि प्राणियोंकी पीड़ा करनेका त्याग सो प्राणि संयम है और शब्द रूप गंध रस और स्पर्शवाले इन्द्रियोंके विषयमें रागका अभाव सो इन्द्रिय संयम है ।

(२) उत्तमतपः ॥ , =कर्मके नाशके लिये तपाजाय(सो तप है) (वह बाह्य-अभ्यन्तर भेदोंसे बारह प्रकारका है(अध्याय ९सूत्र १९,२०)

(३) उत्तमत्यागः ॥ , =संयमीयोंके योग्य ज्ञानादिकका देना (सो त्याग धर्म है)अथवा चेतन अचेतनरूप परिग्रहका त्याग सो त्याग है, (परिग्रहनिवृतिस्त्यागः=परिग्रह-निवृत्तिः त्यागः=परिग्रहका छोड़ना सो त्याग हैराजवार्तिक पृष्ठ ३२५)

(४) उत्तमआकिंचन्यम् ॥ ,=विद्यमान शरीर तथा धर्म उपकरण (=धर्म साधन सामग्री) आदिमें भी कि मेरा यह है(=ममत्व) ऐसे अनुराग वा परिणामकी निवृत्ति (सो आकिंचन्य नवम धर्म है) अर्थात् आत्मस्वरूपसे भिन्न शरीरादिकमें ममत्वरूप परिणामोंका अभाव (सो उत्तमाकिंचन्य धर्म है)

(५) उत्तमब्रह्मचर्यम् ॥ =अपनी तथा परकी समस्त प्रकारकी स्त्रीयोंकी कथा वार्तालाप स्मरणादि रागादिको अभाव वा निषेध (=त्याग) और ब्रह्म (अपनी आत्मा)में ही रमण करना (सो ब्रह्मचर्य है । अथवा अपनी अपनी इच्छासे स्वच्छन्द प्रवृत्ति निवारणकरकें गुरुके निकट रहना सो ब्रह्मचर्य है अर्थात् ब्रह्म कहिये गुरु तिन विषैं चरण कहिये तिनके अनुसार प्रवर्तना सो ब्रह्मचर्य है ब्रह्मचर्या=अस्वतन्त्रता गुरुकी आधीनता अब्रह्मसे निवृत्ति, मैथुनमें निवृत्ति और व्रतोंकी भावना ॥ (पूर्व स्त्रियोंके भोग किये थे तिनको स्मरण न करने करि, स्त्रियोंकी कथाके श्रवण न करनेसे स्त्रियोंकी संगति जहां न हो तहां शयन आसन करनेसे ब्रह्मचर्य परिपूर्ण ठहरता है ।

---

(१) योगनिग्रह. सयमः =योगोंका जो निग्रह है अर्थात् काय वाक् तथा मनोरूप जो तीन प्रकारके योग हैं उनको अपने वशमे रखना (=निग्रहः)सो संयमः है(सभाष्य पृष्ठ १९७(२)यह शब्द नपुसकलिंगमें है और इसकी प्रथमा विभक्ति एक वचन पयस्-मनस् शब्दोंकी भांति तपस् वा तपः है जब पुलिंग होता है तब माघ महीने के अर्थ में आता है। जब पुल्लिंगनपुंसकलिंग होता है तब शिशिर वा हेमन्त वा ग्रीष्म ऋतुके अर्थमें आता है(३) तत्वार्थराजवार्तिकपृष्ठ ३२५मे इसका लक्षण ऐसा कहा है कि "परिग्रहनिवृत्तिस्त्यागः=चेतन अचेतनरूप परिग्रहसे हटना सो त्याग है ॥ (४) नही है कुछ जामें (=किंचन+अस्य) सो आकिंचन है तिसका भाव अथवा कर्म सो आकिंचन्य है॥(५) =ब्र(ब्र)ह्मचर्य्य(न०)=ब्रह्मणे(वदलाभाय)चर्य्यंते। चर+यत्(वेद पढनेके लिये आचरण करता है)। स्त्री संभोगसे रहित होना ।

किमर्थमिदमुच्यते ? आद्यं प्रवृत्तिनिग्रहार्थं, तत्रासमर्थानां प्रवृत्त्युपायप्रदर्शनार्थं द्वितीयम्। इदं पुनर्दशविधधर्माख्यानं समितिषु प्रवर्तमानस्य प्रमादपरिहारार्थं वेदितव्यम्। शरीरस्थितिहेतुमार्गणार्थं परकुलान्युपगच्छतो भिक्षोर्दुष्टजनाक्रोसप्रहसनावज्ञाताडनशरीरव्यापादनादीनां सन्निधाने॥ कालुष्यानुत्पत्तिः क्षमा॥ जात्यादिमदावेशादभिमानाभावो मार्दवं॥ माननिर्हरणम्। योगस्यावक्रता

वृत्यनुवाद –किम् "अर्थम्" "इदम्" "उच्यते ? =कौन अर्थ वा किसलिये य॰ (दश प्रकार धर्म)कहा गया है।

आद्यम् "प्रवृत्ति-निग्रह-अर्थम्"। तत्र	=(उत्तर) प्रवृत्तिके रोकनेके लिये प्रथम (गुप्ति कही गई है) तहां (गुप्तिविषैं)
असमर्थानाम् प्रवृत्ति-उपाय-प्रदर्शन-अर्थम्"	=असमर्थों की प्रवृत्तिके उपायके प्रगट करनेके लिये
द्वितीयम्।	=दूसरी (समिति)है अर्थात् पहिले तो गुप्ति कही सो तो सर्व प्रवृत्तिके रोकने को कही परचात् तिस गुप्ति विषैं असमर्थ होय तब प्रवृत्ति करी चाहिये तिससे भले प्रकार यत्नसे प्रवर्तनके लिये समिति कही।
इदम् "पुनः दशविधधर्म-आख्यानं" "समितिषु"	=बहुरि (=पुनः) यह दश प्रकारके धर्मका कथन समितियोंमें
प्रवर्तमानस्य "प्रमाद-परिहार अर्थम्" "वेदितव्यम्",	=प्रवर्तनेवाले मुनिके प्रमादके दूर करनेके लिये जानना चाहिये॥
शरीर-स्थिति-हेतु-मार्गणा-अर्थम्"	=शरीरकी विद्यमानताके कारण आहार (=मार्गणा)के लिये
पर-कुलानि "उपगच्छत " भिक्षो " दुष्टजन-	=अन्यके घरोंको जाते हुये मुनिके दुष्ट मनुष्य करि
आक्रोश-प्रहसन-अवज्ञा-ताडन-	=निंदा वा गाली(=आक्रोश) हास्य (=प्रहसन) अनादर (=अवज्ञा) मारन (=ताडन)
शरीर-व्यापाद-आदीनाम् सन्निधाने"	=शरीरका घात (=व्यापादान) आदिकोंके निकटहोनेपर
कालुष्य-अनुत्पत्ति "क्षमा", जाति-आदि-	=मलीनताका [भावो में]अभाव होना (=अनुत्पत्ति)सो(उत्तम)क्षमा है, जाति आदि
मद-आवेशात् "अभिमान-अभाव " मार्दवम्",	=(आठ)मदकी लीनतासे वा प्रभावसे अभिमानका अभाव (सो उत्तम मार्दव है।
मान-निर्हरणम्" योगस्य "अवक्रता"॥	=अहंकारका जड़से उखाड़ना(मन वचन-कायके) योगकी कुटिलता का अभाव, अथवा उपर्युक्त योगो को सरलता, सिधाई, अर्थात् मायाचार कपटसे रहितपना

आर्जवम् ॥ प्रकर्षप्राप्तलोभान्निवृत्तिः शौचम्॥ सत्सुप्रशस्तेषु जनेषु साधुवचनं सत्यमित्युच्यते॥ ननु चैतद्भाषासमितावन्तर्भवति ? नैष दोषः–समितौ प्रवर्तमानो मुनिः साधुष्वसाधुषु च भाषाव्यवहारं कुर्वन् हितं मितञ्च ब्रूयात् अन्यथा रागादनर्थ दण्डदोषः स्यादितिवाक्समितिरित्यर्थः ॥इह पुनः सन्तः प्रव्रजितास्तद्भक्ता वा एतेषु साधु सत्यं ज्ञानचारित्रलक्षणादिषु बह्वपि कर्तव्यमित्यनुज्ञायते, धर्मोपबृंहणार्थं ॥ समितिषु वर्तमानस्य प्राणीन्द्रियपरिहारस्संयमः ॥

आर्जवम्[१/१], प्रकर्षप्राप्त–लोभात्–निवृत्तिः[१/१]॥ =सो उत्तम आर्जव है उत्कृष्टपनैं लोभसे उपराम वा छुटकारा,हटना वा निवृत्ति

शौचम् [१/१] । सत्सु [७/३] प्रशंस्तेषु [७/३] जनेषु[७/३] साधु– =सो सौच अथवा पवित्रताहै। अच्छे प्रशंसनीय जनोंमें यथार्थ ठीकठीक(=साधु)

वचनम्[१/१] सत्यम्[१/१] इति* उच्यते T। ननु *च* =वाक्य कहना सत्य (=उत्तम सत्य धर्म) ऐसा कहागया है । बहुरि तर्क

एतद्[१/१] भाषासमितौ[७/१] अन्तर्भवति T। =यह (=एतद्[१/१]) (उत्तम सत्य धर्म) भाषा समितिमें गर्भित होता है

न*एषः[१/१] दोषः[१/१] समितौ[७/१] प्रवर्तमानः[१/१] =(उत्तर) यह दूषण नहीं है समितिमें प्रवर्तन वाला

मुनिः[१/१] साधुषु[७/३] असाधुषु[७/३] च*भाषा-व्यवहारं[२/१] =मुनि साधुपुरुषों में और (=च) असाधुपुरुषोंमें वचनका उच्चारण

कुर्वन हितम्[२/१] मितम्[२/१] च*ब्रूयात्T अन्यथा* =करते हुये हित और परिमित वा मर्यादा लिये हुये वचन बोले यदि ऐसा न करेतो

रागात्[५/१] अनर्थ-दण्ड-दोषः[१/१] स्यात् इति वाक्समितिः[१/१] इतिअर्थः[१/१] =रागसे अनर्थ दण्डका दूषण आवै ऐसा वचन समिति हैऐसा अभिप्राय हुआ

इह* पुनः* सन्तः[१/३] प्रव्रजिताः[१/३] =बहुरि यहां (=इह) अर्थात् सत्यधर्मविषैं मुनि शिष्यों वा शिष्यों(=प्रव्रजिताः[१/३])

तद्-भक्ताः[१/३] वा एतेषु[७/३] साधु[१/१] सत्यं[१/१] ज्ञान-चारित्र– =अथवा उनके भक्त अर्थात् श्रावक इनमें उत्तम (=साधु) सत्य ज्ञान-चारित्र

लक्षणादिषु[७/३] बहु–अपि*कर्तव्यम्[१/१] =लक्षणादिक(केसीखनेवा सिखाने)में बहुतभी(भाषा व्यवहार)किया जाना योग्यहोताहै

इति*अनुज्ञायतेTधर्म-उपबृंहण–अर्थम्[१/१], =इस प्रकार धर्मकी वृद्धिके लिये आज्ञा वा अनुमिति दीगई हैअर्थात्भाषासमिति का धारक मुनि सर्व प्रकारके मनुष्योंसे उनके हितरूप और सीमाको लिये हुये वचन बोलेगा परन्तु सत्य धर्ममें शास्त्र ज्ञान सीखनें तथा निर्णयके लिये मुनि श्रावकों में बहुत भी वर्तालाप होता है॥

समितिषु[७/३] वर्तमानस्य[६/१] =(ईर्या-भाषा-एषणा-आदान-निक्षेप) समितियोंमें प्रवर्तक मुनिकें

प्राण–इन्द्रिय–परिहारः[१/१] संयमः[१/१], =(एकेन्द्रियादिक) प्राणियोंकी पीड़ा करनेका त्याग वा परिहार है सो संयम है।

कर्मक्षयार्थं तप्यत इति तप ॥ तदुत्तरत्र वक्ष्यमाणद्वादशविकल्पमवसेयम्॥ संयतस्ययोग्यंज्ञाना- दिदानत्याग ॥ उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्कारापोहाय ममेदमित्यभिसन्धिनिवृत्तिराकिञ्च- न्यम्॥ नास्ति किचनास्याकिचन तस्य भाव.कर्म वा आकिचन्यम्॥ अनुभूताङ्गनास्मरणकथा- श्रवणस्त्रीससक्तशयनासनादिवर्जनाद् ब्रह्मचर्यं परिपूर्णमवतिष्टते॥स्वतन्त्रवृत्तिनिवृत्त्यर्थो वा

कर्म–क्षय–अर्थं ४।१ (१)तप्यते । इति (२)तप १।१ तद्–उत्तर*अत्र*	=कर्मके नाशके लिये तपाजाय ऐसा तप है, यहासे(अत्र)आगे(उत्तर)उस(तप)के
वक्ष्यमाण–द्वादशविकल्पम् १।१ अवसेयम् १।१,	=बारह भेद कहे जावेंगे अथवा निश्चय किये जावेंगे ।
सयतस्य ६।१ योग्यम् १।१ ज्ञानादिदानम् १।१ त्याग १।१ ॥	=सयमीको योग्य ज्ञानादिकका देना सो त्याग है ।
उपात्तेषु ७।३ अपि*शरीरादिषु ७।३ सस्कार–अपोहाय ४।१	=विद्यमान(=उपात्तेषु)शरीरादिकमें भी(=अपि)सस्कारके त्यागके लिये
मम ६।१ इदम् १।१ इति*अभिसधि–निवृत्ति १।१ आकिंचन्यम् १।१,	=मेरा(=मम)यह है(=इद)एसे अनुरागकी(=अभिसधि)निवृत्ति(सो)आकिंचन्यहै
न*अस्ति । किंचन*अस्य ६।१ आकिंचन १।१ तस्य ६।१ भाव १।१	=नहीं कुछ जाके (अर्थात् कुछ जामें) सो आकिंचन है तिसका भाव
कर्म १।१ वा* आकिंचन्यम् १।१,	=अथवा कर्म सो आकिचन्य है अर्थात् आत्म स्वरूपसे भिन्न शरीरादिकमें ममत्वरूप परिणामोंका अभाव सो उत्तम आकिंचन्य धर्म है।
अनुभूत–अगना–स्मरण–	=भोगी हुई(=अनुभूत) स्त्रियोंके(=अगना)(भोगोंकीकलाकी गुणोंकी)सुधि वर्जनेसे
(३) कथाश्रवण–स्त्रीससक्तशयन–	=(उनकी) कथाके सुननेके त्यागसे (वर्जनात्) स्त्रियोंके पास सोना
आसनादि–वर्जनात् ५।१ (४)ब्रह्मचर्यम् १।१ परिपूर्णम् १।१ अवतिष्ठते ।	=बैठने आदिकके निषे (=वर्सवर्जनात्) ब्रह्मचर्य परिपूर्ण ठहरताहै
स्वतन्त्र–वृत्ति निवृत्ति–अर्थ १।१ वा*	= अथवा (=वा) स्वाधीन(=स्वतन्त्र) स्वछद(=स्वतन्त्र)प्रवर्तनके रोकनेके लिये

(१) तप् = दाह = जलाना, भ्वादि प्रथमगणका, उभय (आत्मने तथा परस्मैपद) सकर्मक, सेट् धातु है (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १८७) इसमें य (=यक्) और ते लगानसे कर्मणि प्रयोग तप्यते"बनता है ॥(२)तप =प्रथमा विभक्ति, एक वचन, नपुंसकलिंग, तपस् शब्दका(पयस् शब्दके सदृश) है ॥ (३) तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३२५में 'तत्कथा श्रवण"कथाश्रवणके स्थानमें है इसलिये उनकी कथाके सुननके ऐसा अनुवाद किया गया है ॥ (४) ब्रह्मचय अथवा ब्रह्मचर्य दोनों प्रकारसे लिखा जाता है (देखो पद्मचन्द्रकोश, पृष्ठ २६७)

गुरुकुलावासो ब्रह्मचर्यम् ॥ दृष्टप्रयोजनपरिवर्जनार्थमुत्तमविशेषणम् ॥ तान्येवभाव्यमानानि धर्मव्यपदेशभाञ्जि स्वगुणप्रतिपक्षदोषसद्भावभावनाप्रणिहितानि संवर कारणानि भवन्ति ॥ आह क्रोधाद्यनुत्पत्तिः क्षमादिविशेषप्रत्यनीकालम्बनादित्युक्तं तत्रकस्मात्क्षमादीनयमवलम्बते नान्यथा प्रवर्तत इत्युच्यते । यस्मात्तप्तायःपिण्डवत्क्षमादि परिणतेनात्महितैषिणा कर्तव्याः—

गुरुकुल-आवासः[१]'ब्रह्मचर्यम[१]''' (१'दृष्ट-प्रयोजन-	=गुरुकुलमें रहना (सो) ब्रह्मचर्य है । लौकिक (=दृष्ट) मनोरथ (जैसे ख्याति लाभादिके)
परिवर्जन-अर्थम्[१]'' उत्ताम-	=निषेधके लिये (इस सूत्रमें) उत्ताम शब्द (क्षमा-मार्दव, आर्जव-शौच इत्यादिके साथ)
विशेषणम्[१]'''; तानि[१]'''एव*	=गुणवाचक (शब्द) है । ते (उत्ताम क्षमादि) ही
(२)भाव्यमानानि[१]''' धर्म-व्यपदेशभांजि[१]''	=विचारणीय वा भावनाके योग्य धर्म संज्ञक भेद (अर्थात् धर्मके भेद)
स्वगुण-प्रतिपक्ष-दोष-	=अपने (धर्मोंके) गुणकी और इनके प्रतिपक्षी (जे क्रोधादिक) तिनके दोषोंकी
सद्भाव-भावना-प्रणिहितानि[१]'''	=विद्यमानता (=सद्भाव)की भावनामें प्राप्त वा स्थापित (=प्रणिहितानि)
संवर--कारणानि[१]''' भवन्ति T ॥	=संवरके कारण होते है अर्थात् उत्ताम क्षमादिके गुण और उन उत्तम क्षमादि दश धर्मोंके विरुद्ध क्रोधादिक दोषोंका चिन्तवन किये क्रोधादिक दूषणोंकाअभाव होते सन्ते तिनके निमित्तसे कर्मोंका आस्रव होता था, तिस(आस्रव)कीनिवृत्तिहोते संवरहोता है।
आहT—क्रोध-आदि-अनुपपत्तिः[१]''क्षमादि-विशेष-	=प्रश्न करता है कि क्रोधादिकका न उपजना क्षमादिकके विशेषरूपकरि
प्रत्यनीक-आलम्बनात्[५]'	=जो क्रोधादिकोंके विरुद्ध हैं वा जो क्रोधादिकोंके शत्रु हैं(=प्रत्यनीक)आलम्बनसे होता है
इति* उक्तम्[१]'तत्र*कस्मात्*क्षमादीन्[२]'अयम्[१]'अवलम्बते	=ऐसा वर्णित है तहां किस प्रकारसे(=कस्मात् क्षमादिकको यह(आत्मा)ग्रहण करताहैकि
न*अन्यथा* प्रवर्ततेTइति*	=(यह आत्मा) अन्यथा वा उलटे प्रकारसे (अर्थात् क्रोधादिकरूप)न प्रवर्तै ऐसे (प्रश्न पर)
उच्यतेT । यस्मात्[५]'तप्त-अयस्-पिण्ड-	=कहा जाता हैकि जैसे (अग्निमें)तपाया हुआ(=तप्त)लोहेका (=अयस्) पिंड होताहै उसके
वत्*क्षमादि-परिणतेन[३]'आत्महितैषिणा[३]'	=सदृश(=वत्)क्षमादिकोंमें परिपक्व(=परिणतेन)आत्महितकी इच्छा करने वालेसे
कर्तव्याः[१]॥	=(निम्न द्वादश अनुप्रेक्षा)किया जाना चाहिये अर्थात् लोहेकापिंड तपाये हुये अग्निसे

(१) दृष्ट=लौकिक (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १६२ देखो) (२)भाव्यमान=विचारणीय, भावना किये जाने योग्य, बारंबार चिन्तवन किये जाने योग्य।

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधि-दुर्लभधर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥

तन्मय होजाता है तैसे आत्मा क्षमादिकमें तन्मय होजाता है तब क्रोधादिक नहीं उत्पन्न होते हैं, वह आत्मा अनित्यादिक निम्नालिखित बारह अनुप्रेक्षाओंको चिंतवन करता रहताहै। वे बारह भावना निम्न लिखित सातवा सूत्रमें आचार्य वर्णन करते हैं।।

(१)सूत्रम्–अनित्याशरणससारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यात-त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षा॥ ७ ॥

पदच्छेद –अनित्या अशरण-ससार एकत्व अन्यत्व(२)अशुचि आस्रव-संवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्म स्वाख्यातत्व-अनुचिन्तनम्[१।१] अनुप्रेक्षा[१।३] ॥७॥

(क) अनित्य–अनुचिंतनम्[१।१]	(ख)अशरण–अनुचिंतनम्[१।१]	=(क) अनित्य अनुप्रेक्षा[१।१]	(ख) अशरण अनुप्रेक्षा[१।१]
(ग) ससार अनुचिंतनम्[१।१]	(घ) एकत्व अनुचिंतनम्[१।१]	=(ग) ससार-अनुप्रेक्षा[१।१]	(घ) एकत्व अनुप्रेक्षा[१।१]
(ङ) अन्यत्व-अनुचिंतनम्[१।१]	(च) अशुचि अनुचिंतनम्[१।१]	=(ङ) अन्यत्व अनुप्रेक्षा[१।१]	(च) अशुचि अनुप्रेक्षा[१।१]
(छ) आस्रव अनुचिंतनम्[१।१]	(ज)सवर अनुचिंतनम्[१।१]	=(छ) आस्रव अनुप्रेक्षा[१।१]	(ज) सवर अनुप्रेक्षा[१।१]
(झ) निर्जरा अनुचिंतनम्[१।१]	(ञ) लोक अनुचिंतनम्[१।१]	=(झ)निर्जरा अनुप्रेक्षा[१।१]	(ञ) लोक अनुप्रेक्षा[१।१]
(ट) बोधिदुर्लभ–अनुचिंतनम्[१।१]	(ठ)धर्मस्वाख्यातत्त्व-अनुचिंतनम्[१।१]	=(ट)बोधिदुर्लभ-अनुप्रेक्षा[१।१]	(ठ. धर्मस्वाख्यातत्त्व अनुप्रेक्षा[१।१]

(१) इस सूत्रका हमारे यहा एकसा पाठ है, कहीं कहीं पर निर्जरा दुर्लभ पाठ है कहीं २ पर 'निर्जरा दुर्लभ पाठ है 'अचोरहाभ्याद्वेवा सूत्रसे दोनों पाठ ठीक हैं, कहीं पर 'तत्त्व पाठ है कहीं पर 'तत्व पाठ है दोनों ठीक है (देखो अध्याय १ पृष्ठ १२) (२) समा०प०में 'अशुचि'के स्थानमें 'अशुचित्व' पाठ है और धर्मस्वाख्यातत्त्व के स्थानमें 'धर्मस्वाख्याततत्व' पाठ है हमारे यहा अर्थ प्रकाशिकामें भी 'धर्मस्वाख्याततत्वानुप्रेक्षा' पाठ्य है। अर्थ ऐसे है कि 'धर्म अरहंतदेव स्वाख्यात कहिये भले प्रकार बहुत सुंदर कहा है अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ६४६ ''अन्तरके लिये देखो पृष्ठ २६ 'अशुचि शब्दमें प्रत्यय लगानेसे अशुचित्व बन जाता है। अशुचि=अपवित्र, अशुचित्व=अपवित्रता' अपवित्रपन, अपवित्र होना ॥

सूत्रार्थः—अनित्याअनुचिन्तनमनुप्रेक्षा॥ =इस प्रकार बार बार चिन्तवन करना कि इन्द्रिय विषय, धन, यौवन, जीवितव्य जलके बुंद बुंदोंके समान अथिर हैं अनित्य हैं (सो अनित्यानुप्रेक्षा है)

अशरण-अनुचिन्तनम्॥अनुप्रेक्षा॥, =ऐसे बार बार चिन्तवन करना कि जैसे बनके एकान्त स्थानमें सिंहकरि पकड़ेहुये मृगको कोई भी शरण नहीं है तैसे इस संसारमें इस जीवको संसार संबन्धी दुःखोंसे दूर करने वा कालके गालमें पड़ते हुयेको कोई भी रक्षा करनेवाला वा शरण नहीं है(सो अशरणानुप्रेक्षाहै)

संसार-अनुचिंतनम्॥अनुप्रेक्षा॥, =संसार नाम नाना प्रकारके जन्म मरण करते हुये परिभ्रमणका है सो यह जीव कर्मके वशसे निरन्तर एक देहसे दूसरी देहमें जन्म लेते लेते चतुर्गतिमें परिभ्रमण करता रहता है। संसार दुःखमय है (इत्यादि संसारके स्वरूपका वारवार चिन्तवन करना सो संसारानुप्रेक्षा है)

एकत्व-अनुचिंतनम्॥अनुप्रेक्षा॥, =इस प्रकार वारवार चिंतवन करना कि जन्म जरा मरण रोग वियोगादिक महा-दुःखोंमें मेरा कोई सहायक नहीं है, सुख दुःखको भोगनेवाला मैं ही हूं (सो एकत्वानुप्रेक्षा है)

अन्यत्व-अनुचिंतनम्॥अनुप्रेक्षा॥, =इस बातका वारवार चिंतवन करना कि संसारके जितने पदार्थ हैं और जितने जीव हैं वे सब मेरी आत्मासे भिन्न हैं न्यारे हैं पृथक् हैंयहां तककि शरीर जिसको प्रत्येक प्रकारसे पालन पोषण करते हैं वह भी साथ नहीं देता है तो अन्य पदार्थोंकातोकहना ही क्याहै(सोअन्यत्वअनुप्रेक्षा है)

अशुचि-अनुचिंतनम्॥अनुप्रेक्षा॥, =इस प्रकार वारवार चिंतवन करना कि यह शरीर अत्यन्त अशुचि है, अतिदुर्गंध रुधिर वीर्य से उत्पन्न हुआ है अशुचि आहारकरि वध्या है, मलवत् अशुचिका भाजन है चामकरि ढका हुआ है अतिदुर्गंधरसको नवद्वारकरि निकालता है। आश्रित वस्तुओंकोभी अंगारेके समान आप सदृश अशुचि करता है स्नान अनुलेपन धूप पुष्प मालादिक इस शरीरका अशुचिपना दूर करने को समर्थ नहीं होते हैं॥

आस्रव-अनुचिंतनम्॥अनुप्रेक्षा॥, =मिथ्यात्व,अविरत, योग कषायादिकोंसे कर्मोंका आगमन सो आस्रव है,ऐसे वार२ चिंतवन कि आस्रव ही संसारमें परिभ्रमणका कारण है। आत्माके गुणका घातक है सो आस्रव भावना है

संवर-अनुचिंतनम्॥अनुप्रेक्षा॥ =आस्रवका निरोध अथवा रोकना संवर है जैसें महान् समुद्रमें प्रवेश करती हुई नावके छिद्रोंका बंद करनेसे जल उस नावके भीतर नहीं आता है,और नावमें तिष्ठे हुये स्त्रीपुरुषों का

(१३) सञ्ज्ञानुवादेन—संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् । असंज्ञिनां सर्वलोकः । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्त क्षेत्रम् ॥ [१४] आहारानुवादेन—आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्त क्षेत्रम् । सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः । अनाहारकाणां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्ययोगकेवलिनां सामान्योक्त क्षेत्रम् । सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागाः सर्वलोको वा ॥ क्षेत्रनिर्णयः कृतः ॥

(१३) संज्ञा अनुवादेन ३। संज्ञिनां ३। चक्षु –	=सैनीके कथनानुसारकरि सैनियोंका (क्षेत्र) चक्षुः
दर्शनिवत् * असंज्ञिनां ३। सर्वलोकः १। तत्-उभय	=दर्शनवालोंके समान है असैनियोंका (क्षेत्र) समस्त लोक है उन दोनों
व्यपदेशरहितानां ३। सामान्य-उक्त १।। क्षेत्रम् १।।	=नामोंसे वर्जितों अयोगियोंका संक्षेपमें कथित (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है
(१४) आहार अनुवादेन ३।-आहारकाणां ३।	=[१४] आहारकी विवक्षाकरि आहारक
मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय अन्तानां ३। सामान्य	=मिथ्यादृष्टिसे क्षीणकषाय तकका संक्षेपसे
उक्त १।। क्षेत्रम् १।। सयोगकेवलिनां ३।	=(पहिले) कहा हुआ (क्षेत्र है) योगसहित केवलीनका (क्षेत्र)
लोकस्य ३। असंख्येयभागः १। अनाहारकाणां ३।	=लोकका असंख्यातवां भाग है । आहारवर्जित
मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि–असंयतसम्यग्दृष्टि	=मिथ्यादृष्टी सासादनसम्यग्दृष्टी असंयत सम्यग्दृष्टी (तथा)
अयोगकेवलिनां ३। सामान्य-उक्त १।। क्षेत्रम् १।।	=अयोकेवलिनका संक्षेपसे [पहिले] कहा हुआ (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है
सयोगकेवलिनां ३। लोकस्य ३।	=सयोगकेवलियोंका [क्षेत्र] [प्रतर समुद्घातकी अपेक्षासे] लोकके
असंख्येयभागाः १। सर्वलोकः १। वा।	=असंख्यात भागोंमेंसे बहुत भाग हैं अथवा (लोक पूरण समुद्घातकी विवक्षासे) समस्त लोक है ॥ (देखो पृष्ठ ११५–१२० तक इस अनुवादका)
क्षेत्रनिर्णय १। कृत. १।	=(इसप्रकार) क्षेत्रका निर्धारण किया गया है

(१) ये न संज्ञिनो नाप्यसंज्ञिनस्तेषाम् (२) समुद्घातरहितत्वादित्यर्थ ।

(क) धर्म–सु–आख्या–तत्त्व= =सम्यग् वा अच्छे (=सु) धर्मके (=धर्म) यथार्थ (=तत्व) ज्योंकात्यों(=तत्व) वास्तविक (=तत्व) अनुचिन्तनम्''' अनुप्रेक्षा''=बारबार चिंतवन करते रहना, बारबार मनन करते रहना सो धर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनभावना वा अनुप्रेक्षा है

(ख) धर्म–सु–आख्यात–तत्व– =भले प्रकार (=सु) भाषित वा कहे हुये (=आख्यात) धर्म का यथार्थ (तत्व) ज्योंका त्यों (=तत्व) वा सार (=तत्व) अनु–चिन्तनम्''' अनुप्रेक्षा''=बारबार चिन्तवन करते रहना (=अनुचिन्तनम्) सो धर्मस्वाख्याततत्वानुचिन्तन भावना है अर्थात् परमोपकारक धर्म के स्वरूपको जिसको भगवान् अरहंतदेवने अच्छे प्रकारसे और पूर्णरूपसे कथन किया है यथार्थ बारबार विचार करते रहना अथवा मनन करते रहनासो धर्मस्वाख्याततत्वानुचिन्तनअनुप्रेक्षा है)

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणाम् अप्राप्त – =पहिले नहीं मिले हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रका
प्रापणम् बोधि. तेषाम् एव =मिलना (=प्रापण) सो बोधि है । तिन (सम्यग्दर्शनादिक) का ही
निर्विघ्नेन भावान्तर प्रापणम् समाधि इति ॥ =निर्विघ्नतासे अन्यभवमें साथ लेजाना सो समाधि है, द्रव्य संग्रह३५वीगाथाकीसस्कृतटीकासे

(१) धर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनम्–अनुप्रेक्षा–इसभावनाके कई पाठ हैं, कई प्रकारसे पदच्छेद करके कई अर्थ किये गये हैं भावार्थ सबका एकसा है सु, आख्या आख्यात, तत्व शब्दोंके भिन्न भिन्न अर्थ लेकर अनुवाद किया गया है-अर्थ अनुवाद भावार्थ सब मनोरंजक हैं। पाठक ध्यानसे कृपया पढ़ें

(क) 'धर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनम्' =धर्म-सु-आख्या-तत्व-अनुचिन्तनम् अथवा धर्म-सु-आख्यातत्व-अनुचिन्तनम्, हमारे यहां बहुधा यह पाठहै

(ख) 'धर्म-स्वाख्याततत्वानुप्रेक्षा' =धर्म-सु-आख्यात-तत्व-अनुप्रेक्षा (अर्थप्रकाशिकामें इस सूत्रके अर्थके अन्तमें हैसूत्रपाठदोनोंटीकाओंमेंउपर्युक्त है

(ग) 'धर्मस्वाख्याततत्वानुचिन्तनम्' = धर्म-सु-आख्यात-तत्व अनुचिन्तनम् यह पाठ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पृष्ठ१६८परहै परन्तु उनकी भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका (जिसमें बाईस सहस्र श्लोकसे अधिक हैं उस) के पत्र ६८२, ६८५में पाठ हैकि

(घ) धर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनम् =धर्म-सु-आख्या-तत्त्व-अनुचिंतनम्, हमारे यहां यह भी पाठ है क्योंकि तत्व और तत्त्वमें भेद नहीं है परन्तु इस पाठके लेनेमें धर्म-सु-आख्यात-तत्व अनुचिन्तनम् पदच्छेद नहीं बन सका है क्योंकि 'आख्यात' में भाव मे प्रत्यय त्वन, ता, त्व हो सकते हैं न कि 'त्व' प्रथम इसके कि इस भावनाके भिन्न भिन्न अर्थ लिखे जावें सु-आख्या-आख्यात और तत्वके भिन्न २ अर्थ ये हैं कि सु-(अव्यय) (अ) अच्छा (आ) भले प्रकार (इ) सुंदर (ई) बहुत, अतिशय, (उ) सुगमसे, सुगमतासे ऊ) सर्वश., पूर्णरूपसे, पूर्णतया (वैद्यसंस्कृतआंग्लकोश पृष्ठ ७८२)॥ आख्या-(स्त्री०) (अ) आख्यायतेऽनया (आ+ख्या+अङ्) जिससे प्रसिद्ध हो। संज्ञा। नाम। (आ) "भावे अङ्" कहना (इ) किताबका नाम ॥धर्मस्वाख्यातत्वानुचिंतन = धर्म-सु-आख्या-तत्व-अनुचिंतन।

आख्यात = (तिलिंगी) गणना किया गया, सख्या किया गया (आ) जतलाया गया, प्रगट किया गया (इ) कथित, कहा गया, वर्णन कियागया, अमर०मे निम्नआर्याछंद है-उक्तंभाषितमुदितं जल्पितमाख्यातमभिहितंलपितम् = उक्त, भाषित, उदित, जल्पित, आख्यात, अभिहित, लपित ये सातनाम कहे हुये (कथित) केहैं॥ (ई) व्याकरणमें प्रसिद्धतिङन्तपद। व्याकरणमे धातुओंके आगे तिङ् प्रत्यय लगानेसे जो पद प्रकाशित होते हैं। आख्यात शब्दको भाव अर्थमें 'त्व' प्रत्यय लगानेसे आख्यातत्व बनता है॥ आख्यातत्व = "आख्याततना (णा)" जयचन्दजी वचनिका पृष्ठ६८१ "ऐसे धर्मका स्वाख्यातत्व कहिये भले प्रकार प्रगटपना" पं० पन्नालाल न्यायदिवाकरकी राजवार्तिकसे उद्धृत॥ अतः आख्यातत्व = प्रगटपना ॥

तत्व =(न०) सचाई, स्वरूप, परमात्मा, प्रज्ञापन, नाचना, बजाना, गाना, चित्त, वस्तु, सांख्यके २५ पदार्थ। यथार्थ अवस्था। जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरामोक्ष ये सात तत्त्व (तत्व) हैं संज्ञाके पहिले आनेपर तत्व शब्द विशेषण होजाता है, यथार्थ, ज्योंकात्यों, सार अर्थोंका द्योतकहोता है।

नाश नहीं होता है और वे वांछित देशको प्राप्त होते है तैसे कर्मके आवनेके द्वार जो आस्रव तिनके रोकनेसे महत् संवर होता है ऐसे वारवार चिन्तवन करना सो संवर भावना है ।

निर्जरा-अनुचिंतनम् ॥ अनुप्रेक्षा ॥ =कर्म को उदयमें आकर अपना तीव्र वा मन्दरस देकर आत्मासे पृथक् होजानेको निर्जरा कहते हैं । निर्जरा दो प्रकारकी है एक भाव निर्जरा दूसरी द्रव्य निर्जरा । भाव निर्जरा भी दो प्रकार की है एक सविपाक और दूसरी अविपाक । नियत स्थितिको पूरा करके कर्मों का झड़ना होता है (कर्मत्व शक्ति रहित होकर वे कर्म उसी क्षेत्रमें रहें अथवा अन्यत्र चले जावें) वह सविपाक (फल देकर झड़ने वाली) निर्जरा है । यह समस्त संसारी जीवोंके होती है । और जो तपश्चरण द्वारा उन कर्मों को उदय प्रणालीमें लाकर कर्मत्व शक्ति रहित कर देना है सो अविपाक निर्जरा है । कर्मोंकी निर्जरा किस प्रकार होती है इत्यादि निर्जराके स्वरूपको वारवार चिन्तवन करते रहना (सो निर्जरा भावना है) ॥

लोक-अनुचितनम् ॥ अनुप्रेक्षा ॥ =सर्व और अनन्त अलोकाकाशके वीचावीचमें विद्यमानलोकके संस्थानादि (=आकारादि) को कि यह (लोक) कितना बड़ा है इसकी क्या क्या अनादि रचना है इसमें कौन कौनजातिके जीवोंका कहां२ निवास है इत्यादि लोकके स्वरुपको चिंतवनकरना (सो लोकानुप्रेक्षा है)

वोधिदुर्लभ-मन चिन्तनम् ॥ अनुप्रेक्षा ॥ =सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र इस रत्नत्रयको बोधि कहते हैं, इस वोधिकी प्राप्ति होना अतिशय दुर्लभ है क्योकि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय, संज्ञी, पर्याप्त, मनुष्य, देश, कुल, रूप, इन्द्रियोमें पटुता (=चतुरता वा निपुणता) निरोग आयु, उत्तमबुद्धि, उत्तम धर्मका सुनना, ग्रहण करना, धारणकरना, श्रद्धानकरना, संयम सहित होना, विषय सुखोंसे रहित होना, क्रोध आदि कषायोंका दूर होना, ये जो पूर्वोक्त सब हैं, इनमें पूर्व पूर्वकी अपेक्षा पर पर अर्थात् एकेन्द्रियताकी अपेक्षा विकलेन्द्रियता आदि दुर्लभ है । यदि कथंचित् काकतालीय न्यायसे(अर्थात् अकस्मात् वा दैवात्)इन सवकी प्राप्ति भी होजाय तो भीइनकी प्राप्तिरूप जो ज्ञानहै उसमें फलभूत जो निजशुद्धआत्माके ज्ञानस्वरूप निर्मलधर्मध्यानशुक्लध्यान रूप परमसमाधिहै वह दुर्लभहै। इसकी दुर्लभताका वारवार चिन्तवनकरना सो(२)वोधिदुर्लभ भावनाहै

काकतालीयन्याय = किसी समय तालका(=ताडका)फल पककर गिरे और उसही समय काकका आगमन हो एवम् वह उस फलको आकाशमें मे ही पाकर खाने लगे ॥(२) सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणामप्राप्तप्रापणं बोधिः, निर्विघ्नेनभावान्तरप्रापणं समाधिरिति बृहद्द्रव्यसंग्रहगाथा३५से ॥

गर्भादिष्ववस्थाविशेषेषु सदोपलभ्यमानसंयोगविपर्ययाणि ॥ मोहादत्राज्ञो नित्यतां मन्यते ॥ न किञ्चित्संसारे समुदितं ध्रुवमस्ति आत्मनो ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावादन्यदिति चिन्तनमनित्यत्वानुप्रेक्षा । एवं ह्यस्य चिन्तयतस्तेष्वभिष्वङ्गाभावाद्भुक्तोज्झितगन्धमाल्यादिष्विव वियोगकालेऽपि विनिपातो नोत्पद्यते ॥१॥ यथा—मृगशावस्यैकान्ते बलवता क्षुदितेनामिषैषिणा व्याघ्रेणाभिभूतस्य न किञ्चिच्छरणमस्ति—तथा जन्मजरामृत्युव्याधि-

---

गर्भादिषु अवस्था–विशेषेषु सदा* =गर्भादिक अवस्थाके विशेषोंमें नित्य(शरीरोंमें जो इन्द्रियोंके विषयरूप उपभोग परिभोग भोग हैं।
उपलभ्यमान–संयोग–विपर्ययाणि । =(उनका) संयोग वियोग प्राप्यमान (=उपलभ्यमान) है अर्थात् पाया जाता है ।
मोहात् अत्र* अज्ञः नित्यताम् (१)मन्यते ।=मोह (के उदयके वश) से इनमें अज्ञानी (=अत्र) नित्यताको मानता है
आत्मनः ज्ञान–दर्शन-उपयोग-स्वभावात् =आत्माके ज्ञान-दर्शनरूप उपयोग स्वभावसे
अन्यत्*न*किंचित्*संसारे समुदितम् =अतिरिक्त (=अन्यत्) संसारमें एकत्रित (=विद्यमान इकट्ठे हुये पदार्थों)में कुछ (=किंचित्)
ध्रुवम् अस्ति T इति*चिन्तनम् =थिर अथवा नित्य नहीं है ऐसा चिन्तवन वा विचार सो
अनित्यत्व-अनुप्रेक्षा। एवं*हि*अस्य =अनित्यताअनुप्रेक्षा है । इस प्रकार ही (=हि) इस (अनुचिन्तन)के
चिन्तयतः तेषु अभिष्वंग–अभावात् =विचार करनेवाले (जीव) के तिन (शरीरादिक)में प्रीतिके अभावसे
भुक्तज्झित-गंधमालादिषु इव*वियोग-काले =भोगकर छोड़े हुये गंधमालादिकके समान वियोग समयमें
अपि*विनिपातः न*उत्पद्यते॥१॥यथा*मृग-=भी शोक उत्पन्न नहीं होता है ॥१॥ जैसे हरिणके
शावस्य एकान्ते क्षुदितेन अमिष(आमिष)=बच्चे (=शाव) को अकेले (उद्यान)में भूखे मांसके (=अमिष वा आमिष)
एषिणा बलवता व्याघ्रेण =अभिलाषी (=एषिणा) बलवान (=बलवता) नाहरद्वारा
अभिभूतस्य न* किंचित् * =पकड़े हुये अथवा दबाये हुये का (=अभिभूतस्य) कुछ भी नहीं
शरणम् अस्तितथा*जन्म-जरा-मृत्यु-व्याधि-=शरण है तैसे उत्पत्ति बुढ़ापा मरण, पीड़ा वा दुःख (=व्याधि)

मन्-यहांपर दिवादि चतुर्थगणका आत्मनेपदी सकर्मक अनिट्(रूपबनानेमें जिसके साथ इ न जोड़ा जावे)जानने अर्थमें धातु है।चतुर्थगणके धातुओं का विकरण य है, मन्+य=मन्य,ते अन्यपुरुष(=प्रथम पुरुष)एक वचन आत्मनेपदी वर्तमानकालकी द्योतक क्रियाका चिन्ह लगानेसे मन्यते बना ।

इमानिशरीरेन्द्रियविषयोपभोगपरिभोगद्रव्याणिसमुदायरूपाणिजलबुद्बुदवदनवस्थितस्वभावानि

(ग)धर्म–स्व–आख्या–तत्व–अनुचिंतनम्[१]'''अनुप्रेक्षा[१]'', =अपने (=स्व) नामकरिप्रसिद्ध (=आख्या) धर्मके तत्व अर्थात् धर्मोक्त तत्व जे है तिनका =वारवार चिंतवन करना, विचारते रहना, मनन करते रहना सो धर्मस्वाख्याततत्वानुचिंतनभावना है

(घ)धर्म–सु–आख्यात–त्व–अनुचिंतनम्[१]'''अनुप्रेक्षा[१]'', =धर्मका (=धर्म) भले प्रकार (=सु) आख्यात (=आख्यात) पणा (=त्व) है =तिनका चिंतवनकरै सो धर्मस्वाख्यातत्वानुचिंतन अनुप्रेक्षा है (प०जयचन्दजीकृत वचनिका) अर्थात् धर्मका भले प्रकार प्रसिद्धत्व अथवा प्रगटपन(जो सर्वज्ञ वीतरागने करदिया है)तिस(धर्म) के स्वरूपको वारवार विचार करते रहना, मनन करते रहना सो धर्मस्वाख्यातत्वानुचिंतन अनुप्रेक्षा है

(ङ)धर्म–सु–आख्यात–त्व–अनुचिंतनम्[१]''' अनुप्रेक्षा[१]'', =“ऐसे”(अर्थात् भले–सम्यक्)“धर्मका स्वाख्यातत्व कहिते भलेप्रकार प्रगटपना ताकरि जानिये तिनका =चिंतवन करै सो स्वाख्यातत्वानुप्रेक्षा है”प०पन्नालाल न्यायदिवाकर अनुवादित राजवार्तिक पत्र१४१६

(च)धर्म–सु–आख्यात–तत्त्व–अनुचिंतनम्[१]'''अनुप्रेक्षा[१]'', =धर्मसे (=धर्म)भले प्रकार (=सु) कथित (=आख्यात) तत्त्वको (=तत्त्व) =वारवार चिंतवन करना सो धर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिंतन अनुप्रेक्षा है(देखो सभाष्य०पृष्ठ१९८,२०७)

(छ)स्व–आख्या–तत्व–अनुचिंतनम्[१]''' अनुप्रेक्षा[१]'', =“अपने (=स्व) नामकरिप्रसिद्ध [=आख्या] तत्व जे हैं तिनका =अनुचिंतन जो है सो अनुप्रेक्षा है दूनीजो०अनुवादित राजवार्तिकसे,इसमें कोष्ठक मैंने लगा दिये हैं ॥

भावार्थ धर्म है सो वस्तुका स्वभाव है,आत्माका शुद्ध निर्मलस्वभाव ही अपना धर्म है तथा आत्माका दर्शनज्ञानचारित्र वा दश लक्षणरूप धर्म है वा अहिंसारूप धर्म है वा आत्माको इष्ट स्थानमें पहुचावे वो धर्म है (=इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्मः) ॥ इस कारण धर्म ही परमरसका रसायन है। धर्म ही निधियोंका निधान(=भण्डार) है। धर्म ही कल्पवृक्ष है,धर्म ही कामधेनु गाय है और धर्म ही चिंतामणि रत्न है। धर्म ही गुरु है। धर्म ही मित्र और स्वामी है। धर्म ही बाधव हितू परलोकमें रक्षक है और साथ जानेवाला है ऐसे धर्मके स्वरूपका वारवार चिंतवन करना सो धर्मस्वाख्याततत्वानु०है।

इमानि[३]'''शरीर इन्द्रिय विषय-उपभोग-परिभोग–द्रव्याणि[३]'''समुदाय-रूपाणि[३]''' =ये शरीर इन्द्रियोंके विषयरूप उपभोग (=वस्तु जो एकवार भोगनेमें आवै) =परिभोग (वह वस्तु जो वारवार भोगनेमें आवे) द्रव्य हैं ते समूह रूप है

जलबुद्बुदवत्*अनवस्थित-स्वाभावानि[३]''' =पानीके बुलबुलेके सदृश चचल स्वभाव वाले हैं अथवा प्रकृति वाले हे।

एवं ह्यस्याध्यवस्यतो नित्यमशरणोऽस्मीति भृशमुद्विग्नस्य संसारिकेषु भावेषु ममत्वनिरासो भवति॥ भगवदर्हत्सर्वज्ञप्रणीत एव मार्गे प्रतिपन्नो भवति ॥२॥ कर्मविपाकवशादात्मनो भवान्तरावाप्तिः संसारः । स पुरस्तात्पंचविधपरिवर्तनरूपेण व्याख्यातः । तस्मिन्ननेकयोनिकुलकोटिबहुशतसहस्रसंकटे संसारे परिभ्रमन् जीवः कर्मयन्त्रानुप्रेरितः पिता भूत्वा भ्राता पुत्रः पौत्रश्च भवति । माता भूत्वा भगिनी भार्या दुहिता च भवति । स्वामी भूत्वा दासो भवति। दासो भूत्वा स्वाम्यपि भवति नट इव रङ्गे ॥

एवम्*हि*अस्य६/१'''अध्यवस्यतः६/१' =इसप्रकार ही इस(अशरण–अनुचिंतन)को अध्यवसाय करनेवालेके अर्थात् निश्चय करनेवालेको

नित्यम्*अशरणः१/१'अस्मि T इति* भृशम्२/१'''=कि (मैं) सर्वथा (=नित्य) शरण रहित हूं, इस प्रकार बहुत (=भृशम्)

उद्विग्नस्य६/१'सांसारिकेषु७/३' =घबराये हुये (प्राणी)के संसार संबंधी (=सांसारिक) अथवा संसारके

भावेषु७/३'ममत्व–निरासः१/१'भवति T । भगवत्– =पदार्थोंमें (=भावेषु) ममत्वका अभाव होता है (तब) भगवान्

अर्हत्-सर्वज्ञ-प्रणीतः१/१'एव*मार्गे७/१'प्रतिपन्नः१/१'भवति=अर्हंत सर्वज्ञ कथित ही मार्गमें निश्चित (=प्रतिपन्न) होता है॥ २ ॥

कर्म–विपाक–वशात्५/१'आत्मनः६/१' =कर्मके उदयके वशसे जीवका

भव-अन्तरौ७/१'प्राप्तिः१/१''संसारः१/१';सः१/१'पुरस्तात्*=अन्य भवमें प्राप्ति होना (सो) संसार है । वह(संसार)पहले (=पुरस्तात्)

पंच–विध-परिवर्तनरूपेण३/१''व्याख्यातः१/१'; =पांच प्रकार परिवर्तनरूपसे वर्णनकीगई है (अध्याय २ पृष्ठ ३२ से ४४ तक देखो)

तस्मिन्७/१'अनेकयोनि–कुलकोटी-बहुशतसहस्र =तिस (संसार)में अनेक योनि–कुलकोटि लाखो (=बहुशतसहस्र)

संकटे७/१'सांसारे७/१'परिभ्रमन्जीवः१/१'कर्म– =पीड़ा (कष्ट-दुःख) सहनेपर संसारमें भ्रमण करता हुआ जीव कर्मरूपी

यन्त्र–अनुप्रेरितः१/१'पिता१/१'भूत्वा÷भ्राता१/१' =यंत्रका प्रेराहुआ पिता होकर भाई होता है,

पुत्रः१/१'पौत्रः१/१'च*भवतिTमाता१/१''भूत्वा÷भगिनी१/१''=और (=च) पुत्र होता है, पोता (नाती) होता है,मा होकर बहिन वा सहोदर होता है,

भार्या१/१''दुहिता१/१''च*भवतिT,स्वामी१/१'भूत्वा÷=स्त्री वा पत्नी होता है और(=च) पुत्री होता है, स्वामी होकर

दासः१/१'भवतिT;दासः१/१'भूत्वा÷स्वामी१/१'अपि*भवतिT;=सेवक होता है, सेवक होकर स्वामी भी होता है,

नटः१/१'इव* रंगे७/१' =नट समान स्वांगमें रंगे हैं अर्थात् जैसे नटअनेक स्वांग धर नाचता है तैसे अनेक भव धरता है।

प्रभृतिव्यसनमध्ये परिभ्रमतो जन्तो शरणं न विद्यते ॥ परिपुष्टमपि शरीरं भोजनं प्रति सहायी भवति न व्यसनोपनिपाते ॥ यत्नेन सञ्चितोऽर्थोऽपि न भवान्तरमनुगच्छति॥ संविभक्तसुखदुःखा सुहृदोऽपि न मरणकाले परित्रायन्ते ॥ बान्धवा समुदिताश्चरुजा परीतं न परिपालयन्ति॥ अस्ति चेत्सुचरितो धर्मो व्यसनमहार्णवे तरणोपायो भवति ॥ मृत्युना नीयमानस्य सहस्रनयनादयोऽपि न शरणम् ॥ तस्माद्भवव्यसनसङ्कटे धर्म एव शरणं सुहृदर्थोऽप्यनपायी, नान्यत्किंचिच्छरणमिति भावना अशरणानुप्रेक्षा ॥

प्रभृति-व्यसन-मध्ये परिभ्रमत जन्त =इत्यादिक विपत्तिके बीचमें भ्रमते हुये जीवका
शरणम् न विद्यते । परि-पुष्टम् =रक्षक नहीं है । वारबार (=परि) पोषाहुआ (=पुष्ट)
शरीरम् अपि भोजनम् प्रति सहायी भवति,=शरीर भी भोजन करते ताई (तक) सहाय करनेवाला होता है
न व्यसन-उपनिपाते, यत्नेन सञ्चित अर्थ अपि=न कि कष्ट आने पर । जतनकरि इकट्ठा किया हुआ धन भी
न भवान्तरम् अनुगच्छति, संविभक्त सुख-दुःखा=परलोकको नहीं जाता है । जो सुख दुःखमें भागीहोकरि(=संविभक्त) (भोगें भुगते ऐसे)
सुहृद अपि न मरणकाले परित्रायन्ते ॥ =मित्र भी मरण समयमें रक्षा नहीं करते हैं भावार्थ रक्षा नहीं कर सकते हैं ।
बान्धवा समुदिता च रुजा-परीतम् =और (=च) इकट्ठे हुये कुटम्बी रोग ग्रसित की
न परिपालयन्ति ॥ चेत् सुचरित =प्रतिपालना नहीं कर सकते है (शब्दार्थ नहीं करते है)॥यदि भलेप्रकार आचरण कियाहुआ
धर्म अस्ति, व्यसन महार्णवे तरण-उपाय भवति=धर्म (विद्यमान) है, तो विपत्तिरूपी बड़े समुद्रमें तरणेका उपाय होता है ।
मृत्युना नीयमानस्य सहस्र नयन-आदय =कालकरि ग्रहण किये हुए का इन्द्रादिक
अपि न शरणम्, तस्मात् भव-व्यसन-सङ्कटे=भी शरण नहीं होते हैं, जिससे भवरूपी विपत्तिमें वा कष्टमें
धर्म एव शरणम् सुहृद् अर्थ =धर्म ही शरण है, (धर्म ही)मित्र है , (धर्म ही) धन है,
अपि अनपायी न अन्यत् किंचित् शरणम्,=अविनाशी भी (=अपि) है, अन्य कुछ भी शरण नहीं है,
इति भावना अशरण-अनुप्रेक्षा ॥ =इस प्रकार वारवार चिंतवन करना(=भावना) सो अशरण अनुप्रेक्षा है ॥

न कश्चिन्मे स्वः परो वा विद्यते। एक एव जायेऽहम्। एक एव म्रिये। न मे कश्चित् स्वजनः परजनो वा व्याधिजरामरणादीनि दुःखान्यपहरति बन्धुमित्राणि स्मशानं नातिवर्तन्ते। धर्म एव मे सहायः सदा अनपायीति चिन्तनमेकत्वानुप्रेक्षा एवं ह्यस्य भावयतः स्वजनेषु प्रीत्यनुबन्धो न भवति परजनेषु च द्वेषानुबन्धो नोपजायते। ततो निःसङ्गतामभ्युपगतो मोक्षायैवघटते

न*कश्चित्*मे[६/१]'स्वः[१/१]'परः[१/१]'वा*विद्यतेT।	=न मेरा कोई स्वकीय वा अपना है अथवा (न मेरा कोई) परकीय वा अन्य है,
एकः[१/१]'एव*जाये')अहम्,एकः[१/१]'एव*म्रियेT,न*मे[६/१]'	=मैं (=अहम्) एकही जन्मा हूं, एक ही मरता हूं, न मेरा
कश्चित्*स्वजनः[१/१]' परजनः[१/१]'वा*	=कोई ज्ञाति (=स्वजन) नतैत (=स्वजन) है अथवा (न कोई मेरा) परजन है
व्याधि-जरा-मरणआदीनि[२/३]'''दुःखानि[२/३]'''	=जो दुःख (=व्याधि) बुढ़ापा मृत्यु आदिक दुःखोंको
अपहरतिTबंधु-मित्राणि[१/३]'''(१)स्मशानं[२/१]'न*अति-वर्तन्ते-	=मेटसके मेरे, बांधव मित्र स्मशाने लग (जाते हैं) आगे नहीं जाते हैं,
धर्मः[१/१]'एव*मे[६/१]'सहायः[१/१]'सदा*अन्-अपायी[१/१]'	=धर्म ही मेरा सहाय है (=साथ जाता है सहचर है) सदा अविनाशी है
इति*चिन्तनम्[१/१]''एकत्व-अनुप्रेक्षा[१/१]''	=इस प्रकार विचारना सो एकत्व-अनुप्रेक्षा वा एकत्व भावना है।
एवम्*हि*अस्य[६/१]'''भावयतः[६/१]'	=इस प्रकार ही इस (अनुचिंतन)का भावने वालाके
स्वजनेषु[७/३]'	=स्वजन (जे मित्र-बांधव-कुटुम्बी,स्त्री, पुत्र, माता-भ्राता-दुहितादिक)में
प्रीति-अनुबंधः[१/१]'न*भवतिTपरजनेषु[७/३]'च*	=स्नेहका संबंध नहीं होता है और (=च) परजन (जे शत्रु आदिक)निमें
द्वेष-अनुबंधः[१/१]' न*उपजायते T। ततः*	=द्वेषका अनुबन्ध उत्पन्न नहीं होता है तिस (प्रीतिद्वेषके अभाव)से
निसङ्गताम्[२/१]''अभ्युगतः[१/१]'मोक्षायः[४/१]'एव*घटतेT	=निसङ्गताको प्राप्त [जीव] मोक्षके लिये ही यत्न करता है (=घटते) ॥ ४ ॥

ऐसा नाम कहा है। सो यह संसार अभव्यकी अपेक्षा तथा भव्य सामान्यकी अपेक्षा तो अनादि निधन है, और भव्य विशेषकी अपेक्षाकरि सादि-सनिधन है। नो संसार है सो सादिसनिधन है,बहुरि असंसार सादि अनिधन है, तत्-त्रितयव्यपेत अयोग केवलीका अन्तर्मुहूर्तकाल है।

द्रव्याणि भूमौपशवश्च: (=पशवः च) गोष्ठे =(मृत्युके पश्चात् मरने वालेके भिन्न भिन्न प्रकारकी)द्रव्यें, वस्तुयें भूमिमें और पशुखूंटेपरबंधे रहजातेहैं

भार्या गृहद्वारि =स्त्री,गृहिणी (जब शव मृतक शरीर मरघटको लेजाया जाता है तब)घरके द्वारपर (रोती हुई)रहजाती है

(द्वार् स्त्रीलिंग और द्वार नपुंसकलिंगमें एकार्थवाचीहै यहांपर द्वारि सप्तमी एकवचन स्त्रीलिंगहै, द्वारकी सप्तमी द्वारे होगी)

जनः श्मशाने = (बांधव, मित्र, कुटम्बीजन और)साधारण मनुष्य मरघट,श्मशान वा मुर्दाघाटमें (तक)जाते हैं

अथवा किं बहुना स्वयमात्मन पुत्रो भवतीत्येवमादिसंसारस्वभावचिन्तनं ससारानुप्रेक्षा॥ एवं ह्यस्य भावयत ससारदु खभयादुद्विग्नस्य ततो निर्वेदो भवति । निर्विण्णश्च संसारप्रहणाय प्रतियतते ॥३॥ जन्मजरामरणानुवृत्तिमहादु खानुभव प्रति एक एवाहं

अथवा* किम्* बहुना॥	=अथवा बहुतकरि क्या (कहना) है,
स्वयम्*(१)आत्मन ॥पुत्र ॥भवति।इति*एवम्आदि	=आपही (=स्वयम्) आपकें पुत्र होता है, ऐसे (=इति) इत्यादिक (=एवमादि) -
ससार-स्वभाव-चिन्तनम्॥'''सम्मार-अनुप्रेक्षा॥ ।	=ससारके स्वभावका विचारना (सो) ससारानुप्रेक्षा है ।
एवम्* हि*अस्य॥भावयत ॥(२)ससारदु खभयात्॥''=ऐसे ही	(=हि) इस (ससार अनुचिंतन)के भावना करनेवालोंके ससारकेदु खोंके भयसे
उद्विग्नस्य॥ततो* निर्वेद ॥भवति ।' ।	=घबरायें हुये (प्राणी)के (=उद्विग्नस्य) तिस (ससार)से वैराग्य होता है,
निर्विण्ण ॥ च*ससार-प्रहणाय॥'''प्रतियतते।॥३॥	=और (=च) निर्वेद वा ससारसे ग्लानियुक्त होनेसे ससारके नाशके लिये जतन करता है
जन्म-जरा-मरण-अनुवृत्ति-	=जन्म-बुढापा-मृत्युके प्रवाहरूपसे पीछा करने वालेसे, बारबार आने वालेसें (=अनुवृत्ति)
महादु ख-अनुभवम्॥प्रति*एक॥एव*अहम्-	=अत्यन्त दु'खोंके भोगनेको में एक ही हू अर्थात् एकही अकेला हू,

(१)आजकलके वैज्ञानिकोंका यह सिद्धा त है कि आप ही आपके पुत्र नहीं हो सका है क्योंकि उनका मत है कि पुरुषके वीर्यमें बहुत छोटे छोटे ज तु होते हैं जो शीघ्रतासे हिलते झुलते रहते हैं उनमेंसे एक अथवा दो जब पुरुष स्त्रीका स भोग होता है स्त्री की योनिमें प्रवेश होजाते हैं औरवहां उनमें पलकर बढ़ते रहते हैं वही लगभग नौ मासमें पुत्र वा पुत्रीकेरूपमें एक वा जुगलिया उत्पन्न होते हैं । हम जैनियोंका यह सिद्धा त है कि स्त्रीके गर्भ रहनेके पश्चात् जीव पड़ता है अर्थात् जब बच्चा गर्भमें फडफडाता है तब उसमें जीव आता है ॥ एक वैज्ञानिकका वाक्य हैकि सूक्ष्म यन्त्रके द्वारा तुम वीर्यमें छोटे २ ज त जिनके अ डाकार सिर और लम्बी लम्बी पूछे होती हैं देख सकते हो ये ज तु जल्दी जल्दी फडफडाते हैं इनकी पू छ जो आगमी आदि और विशेष कारण है ध्यान देने योग्य है । ये जन्तु वायुमें १५ पलसे २५ पल तक अधिकसे अधिक जीवित रह सकते हैं । १५ पल घ टेका दसवा भाग और २५ पल घ टेका आठवा भाग होता है और पानीमें बहुत शीघ्र ही मरणको प्राप्त होते हैं । कुछ स्त्रिया जिनको स्वच्छताकी टेव होती है भोगके पश्चात् ही तत्काल अपने गुप्त भागको जलसे धोती हैं जिससे ये जन्तु उनकी अज्ञानतासे मृत्युको प्राप्त होजाते हैं और इस प्रकार उनका गर्भ रहनेसे प्राय रुक जाता है ॥ (२) इस सार भावना में ऐसा विशेष जानना चाहिये कि आत्मोकी चार अवस्थायें हैं ससार असंसार,नो ससार तत्त्रितयव्यपेत(क)तहां चार गति विषें अनेक योनिमें भ्रमण करना सो तो ससार है, (ख)चतुर्गतिसे रहित होना फिर न आवना मुक्त होना सो असंसार है,तहा शिवपद विषें परमआनंद अमृतरूप निर्पलीन हे(ग)सयोगकेवली नो स सारी है क्योंकि चतुर्ग तिके भ्रमणका तो अभाव हुआ और मुक्त हुए नाहीं। प्रदेशोंका चलना पाया जाता है, तिससे ईषत् ससार है इसको नो (=ईषत्) ससार कहते हैं (घ) अयोगकेवली चौदहवा गुणस्थान वालोंके तत्त्रितयव्यपेत है क्योंकि उनकेचतुर्गतिका भ्रमण नहीं हैऔर मुक्त हुये नहीं हैं तिससे अस सारी नहीं है और प्रदेशोंका चलना नहीं तिससे तीनों अवस्थासे जुदीही अवस्था है तिसको तत्त्रितय व्यपेत

ततस्तत्वज्ञानभावनापूर्वके वैराग्यप्रकर्षे सति आत्यन्तिकस्य मोक्षसुखस्याप्तिर्भवति ॥ ६ ॥ शरीरमिदमत्यन्ताशुचि शुक्रशोणितयोन्यशुचिसंवर्धितमवस्करवदशुचिभाजनं त्वङ्मात्रप्रच्छादितमतिपूतिरसनिष्यन्दिस्रोतोबिलमङ्गारवदात्मभावमाश्रितमप्याश्वेवापादयति। स्नानानुलेपनधूपप्रघर्षवासमाल्यादिभिरपि न शक्यमशुचित्वमपहर्तुमस्य । सम्यग्दर्शनादि पुनर्भाव्यमानं जीवस्यात्यन्तिकीं शुद्धिमाविर्भावयतीतितत्त्वतो

ततः*तत्व–ज्ञान–भावना–पूर्वके। =तिस (शरीर और आत्माके अन्यत्वरूप समाधान)से यथार्थ ज्ञान भावना निमित्तक

वैराग्य-प्रकर्षे।सति।आत्यन्तिकस्य।।।मोक्षसुखस्य।।।= वैराग्यकी वृद्धि होने पर अतिशय जात मोक्ष सुखकी

प्राप्तिः।।भवति।।शरीरम्।।।इदम्।।।अत्यन्तअशुचि।।।=प्राप्ति होती है ॥ यह शरीर बहुत अपवित्र

शुक्र–शोणित–यानि–अशुचि–सवर्धितम्।।। =वीर्य(=शुक्र)और रुधिर(=शोणित)के उपजनेकास्थान औरअशुचिवस्तुओंकरि बंधाहुआहै

अवस्करवत्*अशुचि–भाजनम्।।। =विष्टा (=अवस्कर)के समान अशुचिका स्थान है

त्वच्–मात्र–प्रच्छादितम्।।।अतिपूति–रस - =चाम (=त्वच्) मात्रकरि ढका हुआ है, अति दुर्गंध (=पूति) रसकरि

निष्यन्दि–(निस्यन्दि)स्रोतस्–विलम्।।।अंगारवत्*=झरते हुये (=निष्यन्दि वा निस्यन्दि)नोझरका (यह शरीर) विल है, अंगारेके समान

आत्मभावम्-आश्रितम्।।।अपि*आशु*एव' अपादयति।=आश्रित (वस्तु) कोभी 'अपनेसमान शीघ्रही (=आशु + एव=आश्वेव) अपवित्रकरता है

स्नान–अनुलेपन–धूप– =न्हानेकरि, अनुकूल अनुकूल वस्तुओंका लेपनकरि (=अनुलेपन) चंदन [=धूप]का

प्रघर्ष–वास - =घिसाघिसकरि लगावनेसे (=प्रघर्ष) मर्दनकरि(=प्रघर्ष) अन्यसुगंधित वस्तुओंकरि (=वास)

माल्यादिभिः।अपि* =पुष्प आदिककरि (=माल्यादिभिः) अथवा पुष्पोंकी मालादिकरि (=माल्यादिभिः)

अस्य।।।न*शक्यम्।।।अशुचित्वम्।।।अपहर्तुम्।।।=इस शरीरका(=अस्य) अशुचिपना नहीं हरा जा सक्ताहै अथवा नहींदूर किया जासक्ता है

"या शरीरके स्नान गंधका लेपन धूपकावास सुगंध माला आदिकरि भी याका अशुचिपना दूर न होय है" पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित राज०पृष्ठ१४१०सेउद्धृत

सम्यग्दर्शनादि।।।भाव्यमानम्।पुनः जीवस्य। =बहुरि (=पुनः) सम्यग्दर्शनादिक भावतेहुये अथवा वारवार विचारते हुये प्राणीके

आत्यन्तकीम्।।शुद्धिम्।।आविर्भावयति।इति*तत्त्वतः=अत्यन्त शुद्धताको प्रगट करता है, इस प्रकार यथार्थतासे (=तत्वतः)

शरीरादन्यत्वचिन्तनमन्यत्वानुप्रेक्षा । तद्यथा वन्धं प्रत्येकत्वे सत्यपि लक्षणभेदादन्योऽहमैन्द्रियकं
शरीरमनिन्द्रियोऽहमज्ञं शरीरं ज्ञोऽहमनित्यं शरीरं नित्योऽहमाद्यन्तवच्छरीरमनाद्यनन्तोऽहं बहूनि
मे शरीरशतसहस्राण्यतीतानि संसारे परिभ्रमत। स एवाहमन्यस्तेभ्य इत्येवं शरीरादप्यन्यत्वं
मे किमङ्ग पुनर्बाह्येभ्य परिग्रहेभ्य इत्येव ह्यस्य मन समादधानस्य शरीरादिषु स्पृहा नोत्पद्यते।

शरीरात् अन्यत्व-चिन्तनम् अन्यत्व-	=देहसे (आत्माका) पृथक्पनेका विचार करना सो अन्यत्व अथवा अन्यता
अनुप्रेक्षा ॥ तद्यथा॰वन्धम्	=अनुप्रेक्षा वा भावना है । जैसे (=तद्यथा) वधकी (=वध को)
प्रति॰एकत्वे सति अपि॰लक्षणभेदात्	=अपेक्षा (=प्रति) एकपना (आत्मा और शरीरके) होनेपर (=सति)भी, लक्षणभेदसे
अन्य अहम् ऐन्द्रियकम् शरीरम्	=मै भिन्न हू (=अन्य अहम्), इन्द्रियगोचर वा इन्द्रिय गम्य शरीर है अर्थात् शरीर इन्द्रियोंका विषय है, अथवा इन्द्रियोंकरि जाना जाता है क्योंकि मूर्तीक है
अनिन्द्रिय अहम् ,अज्ञम् शरीरम् ,	=मै अतीन्द्रिय हू (क्योंकिअमूर्तीक हू) शरीर अज्ञानी है अर्थात् जड है (=अज्ञ)
ज्ञ अहम्,अनित्यम् शरीरम् ,नित्य अहम्	=मै ज्ञानी हू,अर्थात् मैं ज्ञानस्वरूप चेतन हू,शरीर क्षणभगुर है, मै नित्य हू,
आदि-अन्त-वत् शरीरम् ,अनादिअनन्त अहम्	=शरीर आदि और अन्तवालाहै अर्थात् आदि अन्त सहित है,मैं अनादि अनत हू,
वहूनि मे शरीरशतसहस्राणि संसारे	=मेरे अनेक (=वहूनि) लक्ष (=शतसहश्राणि) शरीर ससारमें
अतीतानि परिभ्रमत ।	=परिभ्रमण करते व्यतीत होगये(=शरीर तो मेरे वहुत होगये मै वही एकउनसेभिन्न स्वरूप हू)
स एव॰अहम् अन्य तेभ्य इत्येवम्॰	=वह (=स) ही (=एव) मै तिन (शरीरों)से भिन्न हू, इस प्रकार
शरीरात् अपि॰अन्यत्वम्	=शरीरसे भी जब मेरा न्यारापन है
मे किं॰अग पुन ॰वाह्येभ्य परिग्रहेभ्य	=(तो) पुनि वाह्य परिग्रहोंसे मेरा क्या सबध (=अग) है
इत्येवम्॰हि॰अस्य मन समादधानस्य	=इस प्रकार ही इस मनको समभावोंमें धारण करनेवाले (जीव)के(=मनस्समादधानस्य)
शरीरादिषु स्पृहा न॰उत्पद्यते ॥	=शरीरादिकमें वाछा उत्पन्न नहीं होती है ।

देहश्चिताया(=देह चितायाम्)परलोक माग = शरीर चितापर(वा चितामें जलकर)रह जाता है,परलोकके पथमे अर्थात् अन्यभव धारणकरनेकेलिये
कर्मानुगो गच्छति जीव एक = कर्मके अनुसार अर्थात् जेसे कर्म किये हे उनके अनुकुल (बुरी भलीगतिमें)अकेला जीवही जाताहै

द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्-मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः* स्पृष्टः ।

तद् १।१	=(अब स्पर्शन कहाजाता है) वह
येन ३।१ विशेषेण ३।१ च । सामान्येन ३।१	=दो प्रकारका है संक्षेपकरि तथा भेदकरि । संक्षेपसे
ष्टिभिः ३।३ सर्वलोकः १।१ स्पृष्टः १।१	=प्रथम मिथ्यादृष्टियोंकरि समस्त लोक स्पर्शन किया जाता है
ज्ञिनः १।३ न अपि + असंज्ञिनः १।३ तेषाम् ६।३	=जो न सैनी हैं न असैनी हैं तिन अयोगकेवलीनका (सामान्य उक्त क्षेत्र है)
रहितत्वात् ५।१ इति + अर्थः १।१	=समुद्घात वर्जितपनाकरि ऐसा अभिप्राय है अर्थात् समुद्घातरहित सयोगकेवलीनका लोकका असंख्यातवांभाग क्षेत्र है

* असंख्यातयोजनकोट्याकाशप्रदेशः परिमाणरज्जुस्तावदुच्यते । तल्लक्षणसमचतुरस्त्ररज्जुत्रिचत्वारिंशदधिकशतत्रयपरिमाणो लोक उच्यते । स लोको मिथ्यादृष्टिभिः सर्वः स्पृष्टः । इत्युक्तलक्षणे लोके स्वस्थानविहारः परस्थानविहारो मारणांतिकसमुद्घातश्च प्राणिभिर्विधीयते ॥

असंख्यातयोजनकोटि-आकाशप्रदेशः १।१	=असंख्यात करोड योजन (ऊंचेमें जितने) आकाशके प्रदेश हैं तितने (तावत्)
परिमाणरज्जुः १।१ तावत्* उच्यते T	प्रमाणका राजू कहा जाता है अर्थात् असंख्यात करोड योजन ऊंची एक रेखा आकाशकी मान लो जितने इस रेखामें प्रदेश हैं उन आकाशके प्रदेशोको रेखा रूपमें राजू समझना चाहिये । जगत् श्रेणीके सातवां भागको राजू कहते हैं। अतः सात राजूकी एक जगत् श्रेणी होती है । जगत्श्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और जगत् श्रेणीके घनको लोक कहते हैं । यही तीन लोकके आकाश प्रदेशोंकी संख्या है ॥
तत् लक्षण—	=उस चिन्हवाला (लक्षण अर्थात् एक राजू ऊंचा)
समचतरस्त्ररज्जु—	=(और) समान चौकोर (राजूयुक्त अर्थात् एक राजू लम्बा एक राजू चौडा) भावार्थ—घनाकार राजूवाला (तल्लक्षणसमचतुरस्त्ररज्जू)
त्रिचत्वारिंशत् १।१ अधिकशतत्रयपरिमाणः १।१	=तैतालीस अधिक तीनसौके प्रमाण
लोकः १।१ उच्यते T	=लोक कहा गया है अर्थात् सब लोक तीनसौ तैतालीस घनाकार राजू है
सः १।१ लोकः १।१ मिथ्यादृष्टिभिः ३।३ सर्वः १।१ स्पृष्टः १।१	=वह लोक मिथ्यादृष्टियोंकरि समस्त स्पर्श किया जाता है ।

भावनमशुचित्वानुप्रेक्षा॥ एवं ह्यस्य सस्मरत॰ शरीरनिर्वेदो भवति । निर्विण्णश्च जन्मोदधित-रणाय चित्त' समाधत्ते॥६॥आस्रवसंवरनिर्जरा॰ पूर्वोक्ता अपि इहोपन्यस्यन्ते तद्गुणदोषभा-वनार्थ । तद्यथा-आस्रवा इहामुत्रापाययुक्ता महानदीस्रोतोवेगतीक्ष्णा इन्द्रियकषायाव्रतादय । तत्रेन्द्रियाणि तावत्स्पर्शनादीनि वनगजवायसपन्नगपतङ्गहरिणादीन् व्यसनार्णवमवगाहयन्ति

भावनम्॥'''अशुचित्व-अनुप्रेक्षा॥',एवम्॰हि॰अस्य॥'=विचारना अशुचित्व अनुप्रेक्षा वा अपवित्रत्व भावना है।इस प्रकारही इस(अशुचि तन)के
सस्मरत ॥'शरीर-निर्वेद ॥'भवति ।) =विचार करनेवालेको शरीरसे वैराग्य वा ग्लानि होती है ।
निर्विण्ण ॥'च॰जन्म-उदधि-तरणाय॥' =और (=च)वैराग्य और ग्लानि सहित होनेसे भवोदधि तरनेके लिये अर्थात् जन्म मरण रूप ससार समुद्रके पार करनेके लिये
चित्तम्॥'''समाधत्ते।''॥६॥आस्रव-सवर-निर्जरा ॥'' =चित्तको समाधान करता है ॥६॥आस्रव और सवर और निर्जरा
पूर्व-उक्ता ॥'' =पहिले कहे गये हैं (देखो अध्याय प्रथम सूत्र ४, अध्याय ६ सूत्र १, २, अध्याय ८ सूत्र १, देखो'ततश्च निर्जरा'सूत्र २३ अध्याय८ और इस सूत्रपर सस्कृतवृत्ति वा भाष्य)
अपि॰इह॰ तद्- =तौभी (=अपि) इस स्थानमें (=इह) उन (आस्रव-सवर-निर्जरा)के
गुण-दोष-भावना-अर्थम्॥'''उपन्यस्यन्ते । =गुण तथा दूषण विचारनेके लिये कहे जाते हैंकि
तद्यथा॰-आस्रवा ॥'इह॰अमुत्र॰ =जैसे-आस्रव इस लोकमें (=इह)और परलोकमें (=अमुत्र)
अपाययुक्ता ॥' =नाश (=अपाय) तथा दुःख (=अपाय) सहित हैं अर्थात् नाश तथा दुःखके कारण हैं
महानदी-स्रोतस्-वेग-तीक्ष्णा ॥' =बड़ी बड़ी नदियोंके प्रवाह (=स्रोतस्) के वेगको ज्यों (ये आस्रव) तीखे हैं
इन्द्रिय-कषाय-अव्रत-आदय ॥',तत्र॰ =(वे आस्रव) इन्द्रिय, कषाय, अव्रत आदिक है, तहां (=तत्र)
इन्द्रियाणि॥'''तावत्॰ स्पर्शनादीनि॥'॥ =इन्द्रियें तो (=तावत्) स्पर्शन, रसन-घ्राण-चक्षु श्रोत्र है
वनगज-वायस-पन्नग- =(वे स्पर्शनादिक इन्द्रियें) वनके हाथीको,कागको(=वायस) सर्पको (=पन्नग)
पतङ्ग-हरिणादीन्॥'व्यसन-अर्णव-अवगाहयन्ति।=शलभ वा पतंगको और हरिण आदिकोंको कष्टरूपी समुद्रमें प्रवेश करते है [शब्दार्थ कष्टरूपी समुद्रमें स्थान देते हैं वा कष्टरूपी समुद्रमें डुबकी देते है] भावार्थ ऐसेहै कि

तथा कषायादयोऽपीह वधबन्धपरिक्लेशादीन् जनयन्ति॥ अमुत्र च नानागतिषु बहुविधदुःख-प्रज्वलितासु भ्रमयन्तीत्येवमास्रवदोषानुचिन्तनमास्रवानुप्रेक्षा। एवं ह्यस्य चिन्तयतः क्षमादिषु श्रेयत्वबुद्धिर्न प्रच्यवते

भावार्थ [देखो!][१](क)स्पर्शन इन्द्रियके वशीभूत हुआ बनका हाथी बहुत बलवान है तो भी कामकरि पीड़ित कपटकी हथिनी को सांची हथिनी समझकरि खांदकमें जापड़ता है और वहां खांदकमें बंधन मार, पीट, अँकुश और भूख प्यासके दुःखको सहता है और अपने यूथमें स्वछन्द विहारको अपने वनवासको सदा स्मरण करता है और खेदको प्राप्त होता है।(ख)जिह्वा इन्द्रियके वशीभूत हुआ काक सो मरे हुये हाथीके शरीरके ऊपर तिष्टता था सो नदीके प्रवाहमें हस्ती चला तब काक भी चला समुद्रमें गिर पड़ा और वहांसे उड़कर निकलनेमें असमर्थ होता हुआ वहां ही कष्टमें मर जाता है इस प्रकार मांस तथा रसके लोभी जालमें फंस कर मरणको प्राप्त होते है (ग) बहुरि घ्राण इन्द्रियके वशीभूत सर्प औषधिकी सुगंधसे कष्टके स्थानमें जाकर पड़ता है तथा भ्रमर कमलमें दब कर मर जाता है (घ) तथा नेत्र इन्द्रिय के वशीभूत हुआ पतंग [जीव] दीपक की लौपर मरता है। (ङ) बहुरि श्रोत्र इन्द्रियके वशीभूत हरिण बधिकके गानेकी ध्वनि सुनिकर, खाना पीना विचरना विहार करना भूलकर बधिकसे पकड़ा जाता है और कष्टके समुद्रमें पड़कर प्राण खो बैठता है।

तथा*कषाय–आदय*अपि* इह*वध–	=वैसेही [=तथा] कषाय आदिक भी [=अपि] यहां वा इस संसारमें =[इह] मारण
बंधपरिक्लेश–आदीन्*जनयन्ति ॥	=बन्धन अति [=परि] दुःखादिकको उत्पन्न करते हैं ॥
अमुत्र*च*नानागतिषु*बहुविधदुःख-प्रज्वलितासु	=और [=च]परलोकविषैं [=अमुत्र]बहुतप्रकारके क्लेशोंकरि प्रज्वलित नानागतियोंमें
भ्रमयन्ति।इत्येवम्*आस्रव-दोष–अनुचिंतनम्	=भ्रमण कराते हैं। इस प्रकार ही आस्रवके दूषणोंको चिंतवन करना
आस्रवानुप्रेक्षा ॥ एवम्*हि*अस्य	=[सो] आस्रवानुप्रेक्षा है. इस प्रकार ही [=हि] इस [आस्रवके अनुचितन]के
चिन्तयतः*क्षमादिषु*श्रेयत्व-बुद्धिः*न*प्रच्यवते।	=विचार करने वालेकें क्षमादि [दश] धर्मोंमें कल्याणपनाकी बुद्धि नहीं जाती रहती है,

[१] छप्पय-रसनाके वश मीन प्राण पलमाहिं गमावे॥ अलिनासापरसग रैनि बहु संकट पावे॥ मृगसुनि श्रवण सनेह देह दुर्जनको दीनी॥ दीपक देख पतंग दृष्टिहित कैसी कीनी॥ फरस इन्द्रिय वश गज फस्यो सो कौन २ संकट सहै॥ एक एक विषवेलिसम तू पांचों सेवे सुख चहै॥

सर्व एते आस्रवदोषा कूर्मवत्संवृतात्मनो न भवन्ति ॥७॥ यथा महार्णवे नावो विवरापिधाने सति क्रमास्रुतजलाभिप्लवे सति तदाश्रयाणा विनाशोऽवश्यभावी, छिद्रपिधाने च निरुपद्रवम भिलषितदेशान्तरप्रापण, तथा कर्मागमद्वारसंवरणे सतिनास्ति श्रेय प्रतिबन्ध इति सवर गुणानुचिन्तनं संवरानुप्रेक्षा ॥ एव ह्यस्य चिन्तयत सवरे नित्योद्युक्तता भवति। ततश्चनि श्रयसपदप्राप्तिरिति ॥८॥ निर्जरा वेदनाविपाकजा इत्युक्तम् ॥

सर्व एते आस्रवदोषा कूर्मवत् =सर्व ये आस्रवके दूषण कच्छप अथवा कछुवा के समान
सवृत-आत्मन न भवन्ति ॥७॥ =सवररूप कया है आत्मा जिस (जीवनें) तिसके नही होते हैं ॥ ७॥
यथा महान् अर्णवे नाव विवर अपिधाने =जैसे वडे समुद्रमें नावके छिद्रके बद
सति क्रमात् स्रुत-जल अभिप्लवे =होनेपर क्रमसे बहे हुए (=स्रुत) जलके भराउ
सति तद् आश्रयाणाम् विनाश अवशम् =होनेपर (=सति) उस (नाव) के आश्रयवालोंका अवश्य विनाश
भावी छिद्र-पिधाने च निर्-उपद्रवम् =होतव्य है वा होने वाला है अर्थात् होजायगा और (=च) छेदके बद होनेपर उपद्रवरहित
अभिलषित-देशान्तर-प्रापण, तथा कर्म आगम=चाहे हुए दूसरे देशको प्राप्त होती है । तैसे कर्मके आनेके
द्वार-सवरणे सति न अस्ति श्रेयस प्रतिबध =द्वारके रोक होने पर (=सवरणे सति) मोक्ष (=श्रेयस्) के रोकने वाला (कर्म) नही आता ।
इति सवर गुण-अनुचि तनम् सवर अनुप्रेक्षा, =इस प्रकार सवरके गुणोंका वारवार (=अनु वा वीप्सा) चितवन (सो) सवर अनुप्रेक्षा है
एवम् हि अस्य चि तयत सवरे =इस प्रकार ही (=हि) इस (सवर अनुचितन) के विचार करनेवालेके सवरमें
नित्यउद्यमता भवति । तत च नि श्रेयस =नित्य उद्यमता होती है और (=च) तिस (मोक्ष पदकी संवर) से
प्राप्ति इति ॥ ८ ॥ निर्जरा =लब्धि होती है ॥ ऐसे (सवर) आठवी अनुप्रेक्षा हुई ॥ निर्जरा
वेदनाविपाकजा इति उक्तम् =वेदनाका विपाक है ऐसा (आठवें अध्याय के तेईसवा सूत्र में) कहा गया है

१ भाविन् शब्द पुलिंगका प्रथमा एक वचन भावी शब्द है। नपुसकलिंग नकारान्त का प्रथमा एक वचन में न् का लोप होकर ह्रस्व इकार हो जाता है जैसे दण्डिन् स दण्डि रूप बनगया ॥ (=भाविन् त्रि०-भाविनी स्त्री०)(क)भविष्यमें होना(ख)भविष्य (ग)होकर,होतेहुये(घ) होनहार जैसेयद्भावि(=यद् भाविन्)तद्भवति नात्रविचार हेतु =जो होनहार है सो होता है यहा विचारका कारण नही है,(ङ)अधिष्ठित(ञ)सुन्दर,उत्तम॥

सा द्वेधा—अबुद्धिपूर्वा कुशलमूला चेति॥ तत्र नरकादिषु गतिषु कर्मफलविपाकजा अबुद्धिपूर्वा सा अकुशलानुबन्धा ॥ परिषहजये कृते

सा[1/1] द्वेधा*—अबुद्धिपूर्वा[1/1] च*कुशल-	=वह (निर्जरा) दो प्रकार अबुद्धिपूर्वा वा अज्ञान पूर्वा तथा (=च) कुशल
मूला[1/1] इति*॥तत्र*नरक-आदिषु[7/3] गतिषु[7/3] कर्मफल-	=मूला, वा बुद्धिपूर्वा वा ज्ञान पूर्वा, इसप्रकार हैं (=इति)॥ तहां नरकादिगतियोंमें कर्मफलके
विपाकजा[1/1] अबुद्धिपूर्वा[1/1] सा[1/1] अकुशल-	=विपाकसे (निरन्तर स्वयमेव निर्जराका) उत्पन्न होना सो अबुद्धिपूर्वक है सो अकुशल
अनुबंधा[1/1]	=मूला (निर्जरा) है (क्योंकि इस अबुद्धि पूर्वा निर्जरासे कुछ आत्मकल्याण नहीं होता है)॥
परिषहजये[7/1] कृते[7/1]	=परिषहके जीतनेमें निर्जराका पूरा होना अर्थात् परिषह जीतकरि कर्मोंकी निर्जरा होना

निर्जरा

- भाव निर्जरा
  - सविपाक निर्जरा
    - =अबुद्धि पूर्वा (निर्जरा)
    - =अकुशलानुबंधा (निर्जरा)
    - =अज्ञान पूर्वा (निर्जरा)
    - अर्थात् फल देकर जो निर्जरा उत्पन्न हो
  - अविपाक निर्जरा
    - =बुद्धिपूर्वा (निर्जरा)
    - =कुशलमूला (निर्जरा)
    - =ज्ञानपूर्वा अर्थात् परीषहके जीतनेसे तप व्रत संयमके प्रभावसे जो निर्जरा हो
    - शुभानुबंधा (निर्जरा) अर्थात् शुभचारित्रसे संबंध रखने वाली (निर्जरा) जो आगामी शुभकर्मका बंध करती है (यहां ऐसा जानना कि जो निर्जरा कुछ रागके आशयसे हो तहां तो शुभकर्म बंधता है)॥
    - निरानुबंधा (निर्जरा) अर्थात् केवल निर्जराही आगामी कर्मोंका बंध नहीं करती है (यहां रागका आशय नहीं है केवल शुद्ध उपयोगही है तिससे बंधका अभाव है)॥
- द्रव्य निर्जरा

कुशलमूला सा शुभानुबन्धा निरनुबन्धा चेति॥ इत्येव निर्जराया गुणदोषभावनं निर्जरानुप्रेक्षा एव ह्यस्यानुस्मरत कर्मनिर्जरायै प्रवृत्तिर्भवति ॥९॥ लोकसंस्थानादिविधिर्व्याख्यात ॥ समन्तादनन्तस्यालोकाकाशस्य बहुमध्यदेशभाविनो लोकस्य सस्थानादिविधिर्व्याख्यात. ॥ तत्स्वभावानुचिन्तनं लोकानुप्रेक्षा ॥ एव ह्यस्याध्यस्यतस्तत्त्वज्ञानविशुद्धिर्भवति ॥ १० ॥

कुशलमूला "सा =कुशलमूला निर्जरा है सो (कुशलमूला निर्जरा, बुद्धिपूर्वा निर्जरा, ज्ञानपूर्वानिर्जरा)
शुभानुबधा =शुभानुबधा निर्जरा अर्थात् आगामी शुभकर्मका बध करनेवाली निर्जरा
निरनुबधा "च =और(=च)निरनुबधा (निर्जरा) अर्थात् आगामी बधन करनेवाली निर्जरा जहा केवल निर्जरा ही है क्योंकि आगामी बध नहीं होता है ।
इति ॥ =ऐसे (दो प्रकार) है । भावार्थ जहा कुछ रागके आशयसे निर्जरा हो तहा तौ शुभकर्म बधता है (=शुभानुबधा निर्जरा) और जहा रागका आशय न हो केवल शुद्धोपयोग ही है तहा बधका अभाव है (=निरनुबधा निर्जरा) और जहा जहा रागका आशय हीन तथा अधिक हो तहा तहा तैसा जानना ॥
इत्येवम् निर्जराया "गुण–दोष–भावनम् =ऐसे अथवा इस प्रकार (=इत्येवम्) निर्जराके गुण दोषोंका चितवन
निर्जरा–अनुप्रेक्षा ,एवम् हि अस्य =[सो] निर्जरानुप्रेक्षा है । इस प्रकार ही (=हि) इस [अनुचिंतनम्]के
अनुस्मरत "कर्म–निर्जरायै "प्रवृत्ति "भवति ॥९॥ =स्मरण करनेवालेके कर्मकी निर्जराके लिये प्रवृत्ति होती है ॥९॥
लोक–सस्थान–आदि–विधि =लोकका आकार वा आकृति(=सस्थान)आदिकी विधि(अध्याय ३ सूत्र १२,१३,१४,१५में)
व्याख्यात " ॥ समन्तात् अनन्तस्य =वर्णन की गई है सर्वओर [=समन्तात्) अनन्त
अलोकाकाशस्य बहुमध्यदेश–भाविन =अलोकाकाशके बीचाबीचमें (=बहुमध्यदेश) विद्यमान
लोकस्य सस्थान–आदि–विधि "व्याख्यात " ॥ =लोकके आकारादिक विधि व्याख्यान कीगई ।
तत्–स्वभाव–अनुचिन्तनम् "लोक–अनुप्रेक्षा "॥ =उस(लोक)के सस्थानादि (विधि)का वारवार विचारकरना लोकानुप्रेक्षावालोकभावना है
एवहिअस्य "अध्यवस्यत "तत्वज्ञान विशुद्धि " भवति=ऐसे ही इस लोक (अनुचिंतन)के अध्ययन करनेवालेके तत्त्वज्ञानकी शुद्धताहोती है

एकस्मिन्निगोतशरीरे जीवाः सिद्धानामनन्तगुणाः, एवं सर्वलोको निरन्तरं निचितः स्थावरैरतस्तत्र त्रसता वालुकासमुद्रे पतिता वज्रसिकताकणिकेव दुर्लभा। तत्र च विकलेन्द्रियाणां भूयिष्ठत्वात्पञ्चेन्द्रियता गुणेषु कृतज्ञतेव कृच्छ्रलभ्या। तत्र च तिर्यक्षु पशुमृगपक्षिसरीसृपादिषु बहुषु सत्सु मनुष्यभावश्चतुष्पथे रत्नराशिरिव दुरासदः। तत्प्रच्यवे च पुनस्तदुपपत्तिः

एकस्मिन्[७/१]'''निगोत-शरीरे[७/१]'''जीवाः[१/३]' सिद्धानाम्[६/३]'	=एक निगोदियेकी देहमें जीव सिद्धराशिके
अनन्त-गुणाः[१/३]', एवम्*सर्व-लोकः[१/१]'निरन्तरम्*	=अनन्तगुण हैं इस प्रकार समस्तलोक ठसाठस (=निरन्तरम्) वा गाढागाढ (=निरन्तरम्)
निचितः[१/१]'स्थावरैः[३/३]'अतः*तत्र*त्रसता[१/१]'	=स्थावरोंकरि पूरित है अर्थात् भराहुआ है इसलिये वहां (अर्थात् लोकमें त्रसपनेका पावना
वालुका(बालुका)समुद्रे[७/१]'पतिता[१/१]''वज्र-सिकता[६/१]''	=वा (बा) लूके समुद्रमें गिरी हुई हीरेकी लोप हुई (=सिकता)
कणिका[१/१]''इव*दुर्लभा[१/१]'' ॥	=कणोके समान दुर्लभ है। भावार्थ यह समस्त लोक स्थावरोंसे ठसाठस भरा हुआ है इस स्थावर पर्यायसे त्रस पर्यायका पाना उतनाही कठिनतासे होता है जितनी कठिनतासे बालू (वालू)के समुद्रमें हीरेकी कणीका पाना (हीरेकी कणोका वर्ण लगभग वैसाही होता है जैसा कि वालूके कण का)
तत्र*च*विकलेन्द्रियाणाम्[६/३]'	=तहां भी (=च) विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय—त्रीन्द्रिय—चतुरिन्द्रिय) निके
भूयिष्ठत्वात्[५/१]'''पचेन्द्रियता[१/१]''गुणेषु[७/३]'	=बहुत होने (के कारण) से पंचेन्द्रियका होना, गुणोंमें
कृतज्ञता[१/१]''इव*कृच्छ्रलभ्या[१/१]'' ।	=परउपकारताका न भूलनेके सदृश (=इव) कष्ट प्राप्य है वा कठिन पावना है। अर्थात् इस संसारमें त्रस जीवोंमेंसे विकलत्रय बहुत हैं पंचेन्द्रिय इतने थोड़े हैं कि जीवके लिये पंचेन्द्रिय पर्यायका पावना अत्यन्त और अतिशय कठिन है।
तत्र*च*तिर्यक्षु[७/३]'पशु-मृग-पक्षिन्-	=तहां भी (=च) (पंचेन्द्रिय) तिर्यंचनिमें पशु, मृग, पत्ती,
सरीसृप-आदिषु[७/३]'बहुषु[७/३]'सत्सु[७/३]'मनुष्यभावः[१/१]'	=सरीसृप आदिक बहुत (जीव) हैं; मनुष्य (अवस्था)का होना (=भाव)
चतुष्पथे[७/१]'रत्नराशिः[१/१]'इव*दुरासदः[१/१]'	=चौहरायेमें रत्नकी ढेरी पावनाके समान दुर्लभ अथवा कठिन है
तत्-प्रच्यवे[७/१]''च*पुनः*तद्-उपपत्तिः[१/१]''	=और जिस मनुष्य पर्यायके चले जाने पर फिर उस (मनुष्य अवस्थाकी प्राप्ति)

दग्धतरुपुद्गलतद्भावोपपत्तिवद् दुर्लभा। तल्लाभे च देशकुलेन्द्रियसम्पन्नीरोगत्वान्युत्तरोत्तरतोऽतिदुर्लभानि॥ सर्वेष्वपि तेषु लब्धेषु सद्धर्मप्रतिलाभो यदि न स्याद् व्यर्थं जन्म, वदनमिव दृष्टिविकलं। तमेवं कृच्छ्रलभ्यं धर्ममवाप्य विषयसुखे रञ्जनं भस्मार्थं चन्दनदहनमिव विफलम्॥ विरक्तविषयसुखस्य तु तपोभावनाधर्मप्रभावनासुखमरणादिलक्षण समाधिर्दुरवाप ॥तस्मिन् सति बोधिलाभ फलवान् भवतीतिचिन्तन बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा॥ एवं ह्यस्य भावयतो बोधिप्राप्य प्रमादो न कदाचिदपि भवति॥

दग्ध–तरु–पुद्गल–तद् भाव–उपपत्तिवत् दुर्लभा, =भस्म हुये पेड़के परमाणुओंका उसी अवस्था(पेड़की)के उपजनेके समान दुर्लभ है।
तत्–लाभे च देश–कुल–इन्द्रिय– =उस (मनुष्य पर्याय)के प्राप्त होने पर भी (उत्तम) देश(उत्तम) कुल (परिपूर्ण) इन्द्रिय
सम्पत्ति निरोगत्वानि उत्तरोत्तरत अति दुर्लभानि =सम्पदा निरोगता अग्रिमसे अग्रिम (=एकसे दूसरा, क्रमानुसार) अतिदुर्लभ है।
तेषु =तिन (पूर्वोक्त मनुष्य पर्याय उत्तमदेश, उत्तमकुल, परिपूर्ण इन्द्रिय सम्पत्ति, निरोगत्व)
सर्वेषु अपि लब्धेषु सद्–धर्म–प्रतिलाभ यदि =सबके प्राप्त होनेपर भी (=अपि) सच्चे धर्मकीलब्धि (=प्रतिलाभ) जो (=यदि)
न स्यात् व्यर्थं जन्म वदनं इव दृष्टि विकलं, =न हो तो (मनुष्य) जन्म व्यर्थ है, जैसे नेत्रकरि रहित मुख,
तम् एवम् कृच्छ्रलभ्यं धर्मं अवाप्य–विषय सुखे =इस प्रकार (=एवं) उस (=तम्) दुर्लभ(=कृच्छ्रलभ्य) धर्मको पाकरि विषय सुखमें
रंजन भस्मार्थम् चन्दनदहनम् इव विफलम् =आसक्तहोजायतौ(दुर्लभ धर्मकापावना भी)राखके लिये चन्दनको जलानेके तुल्य व्यर्थहै
विरक्त–विषयसुखस्य तु तपोभावना– =विषय सुखका विरक्ति हो तो भी (=तु) तपकी भावना,
धर्मप्रभावना–सुख–मरणादिलक्षण समाधि =धर्मकी प्रभावना, सुखसे मरणादि लक्षणरूपसमाधि
दुर्वाप । तस्मिन् सति बोधिलाभ =सो दुर्लभ है॥ तिस(समाधि मरण)केहोनेपर स्वभावकी प्राप्तिरूपबोधका लाभ हो तो
फलवान् भवति इति चिन्तनम् =फलवान् होता है (=भवति) ऐसा चिन्तवन
बोधि–दुर्लभ–अनुप्रेक्षा, एवम् =बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षा है वा बोधि दुर्लभ भावना है। इस प्रकार
हि अस्य भावयत बोधिम् =ही इस (बोधि दुर्लभ अनुचिन्तन) के भावने वाले [प्राणि]के बोधकी
प्राप्य–प्रमाद न कदाचित् अपि भवति । ॥११॥ =प्राप्त होकर प्रमाद कदाचित् भी नहीं होता है ॥ ११ ॥

अयं जिनोपदिष्टो धर्मोऽहिंसालक्षणः सत्याधिष्ठितो विनयमूलः क्षमाबलो ब्रह्मचर्यगुप्त उपशमप्रधानो नियतिलक्षणो निष्परिग्रहतालम्बनः। तस्यालाभादनादिसंसारे जीवाः परिभ्रमन्ति दुष्कर्मविपाकजं दुःखमनुभवन्ति ॥ अस्य पुनः प्रतिलम्भे विविधाभ्युदयप्राप्तिपूर्विका निःश्रेयसोपलब्धिर्नियतेति चिन्तनं धर्मस्वाख्याततत्वानुप्रेक्षा । एवं ह्यस्य चिन्तयतो धर्मानुरागात्सदा प्रतियत्नपरोभवति ॥१२॥ एवमनित्यत्वाद्यनुप्रेक्षासन्निधाने उत्तमक्षमादिधारणान्महान्संवरोभवति

अयं[1] जिन-उपदिष्टः[1] धर्मः[1] अहिंसा-लक्षणः[1] =यह जिन भगवान्‌का उपदेश कियाहुआ धर्म है, [वह] अहिंसा लक्षणकरि युक्त है

सत्य-अधिष्ठितः[1] विनय-मूलः[1] क्षमाबलः[1] =सत्यके आधेकारसेप्रवर्ततहै, विनय जिस (जिनकथित धर्म)का मूल है, क्षमा जिस (धर्म)में बल है,

ब्रह्मचर्य गुप्तः[1] उपशम-प्रधानः[1] =ब्रह्मचर्य जाकरि रक्षित है, कषायका अभाव (=उपशम) जिस [धर्म में] प्रधान है,

नियति-लक्षणः[1] =नियम (अर्थात् निवृत्ति) जिस धर्म का स्वरूप है,

निष्परिग्रहता-आलम्बनः[1], =ममत्व वा परिग्रहका त्याग वा निर्ग्रंथपना जिस [जिनभाषितधर्म]का अवलम्बन है,

तस्य[6] अलाभात्[5] अनादि-संसारे[7] =तिस (जिन वर्णित धर्म)की अलब्धिसे अनादिकालसे संसारमें

जीवाः[1] परिभ्रमन्तिT। दुष्कर्म-विपाकजम्[2] =जीव परिभ्रमण करते हैं, अर्थात् नाना प्रकारके जन्म धारण करते हैं, पापकर्मके उदयजनित

दुःखम्[2] अनुभवन्तिःT॥अस्य[6] पुनः* =दुःखोंको अनुभव करते हैं, बहुरि इस (धर्म) के

प्रतिलम्भे[7] विविध-अभ्युदयप्राप्तिपूर्विका[1] =लाभ होनेपर नाना प्रकारके (=विविध) स्वर्गादिककी प्राप्ति पूर्वक

निःश्रेयस्-उपलब्धिः[1] नियता[1] =मोक्षकी प्राप्ति नियमकरि होती है वा निश्चयसे होती है

इति* चिन्तनम्[1] धर्मस्वाख्याततत्वानुप्रेक्षा[1] =इस प्रकार चिंतवन सो धर्मस्वाख्याततत्वानुप्रेक्षा है ॥

एवम्* हि* अस्य[6] चिन्तयतः[6] =ऐसे ही (=हि) इस (धर्मस्वाख्याततत्वानुचिन्तन)के विचारनेवाले (प्राणी)के

धर्म-अनुरागात्[5] सदा * =धर्म विषैं बहुत (=अनु) प्रीतिसे सर्वकाल विषैं (=सदा)

प्रतियत्नपरः[1] भवतिT॥१२॥ एवम्* अनित्यत्व =अच्छा प्रयत्न होता है ॥ १२॥ ऐसे अनित्यत्व

आदि-अनुप्रेक्षा-सन्निधाने[7] उत्तमक्षमादि-=आदिक भावनाके निकटमें उत्तम क्षमादिक (पूर्वोक्त दश धर्मके)

धारणात्[5] महान्[1] संवरः[1] भवतिT ॥ =धारण करनेसे अतिशय वा बहुत संवर होता है ।

सर्वार्थसिद्धि ४३ | अध्याय ९ सूत्र ७,८

मध्ये अनुप्रेक्षावचनमुभयार्थम् ॥ अनुप्रेक्षा हि भावयन्नुत्तमक्षमादींश्च प्रतिपालयति । परीषहांश्च जेतुमुत्सहते ॥ के पुनस्ते परिषहा किमर्थं वा सह्यन्त इतीदमाह—

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परिषहाः ॥८॥

संवरस्यप्रकृतत्वात्तेनमार्गोविशिष्यते ।

मध्ये अनुप्रेक्षा-वचनम् उभय-अर्थम् । हि=बीचमें (बारह) भावनाओंका कथन (=वचन) दोनों अर्थके लिये है क्योंकि (=हि) अनुप्रेक्षा भावयन् उत्तम-क्षमादीन् च प्रतिपालयति=भावनाको चितवन करता हुआ (पुरुष) उत्तम क्षमादिक(धर्मो)को भी पालता है च परिषहान् जेतुम् उत्सहते पुन के ते परिषहा =और(=च)परिषहाओंको जीतनेको उत्साह करता है, बहुरि ते परिषह क्या है (=के) किम् अर्थम् वा सह्यन्ते इति इदम् आह ॥=वा किसलिये सही जाती है ऐसा (प्रश्न होनेपर)यह (अग्रिम सूत्रमें आचार्य)कहते है कि

मार्गाच्यवननिर्जरार्थ परिषोढव्या परिषहा ॥ ८ ॥

पदच्छेद -=मार्ग-अच्यवन-निर्जरा-अर्थम् परिषोढव्या परिषहा ॥८॥

सूत्रार्थ —मार्ग-अच्यवन-निर्जरा- =संवरके मार्गसे न गिरनेके लिये, न चिगनेके लिये, वा न डिगनेके लिये कर्मोंके नाशके

अर्थम् परिषहा परिषोढव्या =लिये परीषहायें(अनेक प्रकारके उपद्रवों वा पीडाओंको सहना) चाहिये, सहना योग्य है अर्थात् संवरके मार्गसे(क्योंकि यहा पर संवरका प्रकरण है) न गिरनेके अर्थ तथा कर्मोंकी निर्जरा(=एक देशीयनाश) के लिये वक्ष्यमाण (=कहे जाने वाली)क्षुधा तृषादिक द्वाविंसति [२२ वाईस] परीषहोंको सहन करना चाहिये

वृत्त्यनुवाद —संवरस्य प्रकृतत्वात् तेन =संवरका प्रकरण होने [के हेतु] से तिस [संवर शब्द] करि

मार्ग विशिष्यते । । =मार्ग (शब्द)विशेषणयुक्त किया गया है अर्थात संवर शब्दमार्ग शब्दका विशेषणहै

१-दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है ॥ परिषहा सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें परिषह के स्थानमें है ॥

संवरमार्ग इति ॥ तदच्यवनार्थं निर्जरार्थं च परिषोढव्याः परिषहाः। क्षुत्पिपासादिसहनम्। जिनोपदिष्टान्मार्गादप्रच्यवमानास्तन्मार्गपरिक्रमणपरिचयेन कर्मागमद्वारं संवृण्वन्त औपक्रमिकं कर्मफलमनुभवन्तः क्रमेण निर्जीर्णकर्माणो मोक्षमाप्नुवन्ति ॥ तत्स्वरूपसंख्यासम्प्रतिपत्त्यर्थमाह

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥९॥

संवरमार्गः इति* ॥ =संवरका मार्ग ऐसा है अर्थात् इस सूत्रमें मार्ग शब्द संवरका मार्ग अथवा संवररूपमार्ग इस अर्थमें आया है।

तद्–अच्यवन–अर्थम् निर्जरा–अर्थम् च* =उस (संवरके मार्ग)से न गिरनेके लिये और(=च) (कर्मोंके) झड़नेके लिये

परिषोढव्याः परिषहाः क्षुत्-पिपासादि-सहनम्; =परिषहायें सहना योग्य है. क्षुधा तृषा आदिक (बाईस परिषहोंका) सहना

जिन–उपदिष्टात् मार्गात् अप्रच्यवमानाः =(तब) अर्हत् भगवानकरि भाषित (सत्) मार्गसे न डिगते हुये

तत्–मार्ग–परिक्रमण–परिचयेन कर्म–आगम– =उस मार्गमें लगातार (=परिक्रमण) प्रवर्तनकरि कर्मके आवनेके

द्वारम् संवृण्वन्तः औपक्रमिकम् =द्वार (=आस्रव) को रोकतेसंते (आप) उद्यमकरि

कर्मफलम् अनुभवन्तः क्रमेण =कर्मके विपाकको भोगते हुये अनुक्रमसे

निर्जीर्ण–कर्म–अणाः मोक्षम् आप्नुवन्ति ॥ =कर्मके अणुओंको निर्जरा करते हुए (वे मुनि) मोक्षको प्राप्त होते हैं

तत्स्वरूप–संख्या–सम्प्रतिपत्ति–अर्थम् आह–, =उन(परिषहों) के स्वरूप तथा गणनाके उत्तरके लिये(=सम्प्रतिपत्ति अर्थ)कहते हैं कि

(१ क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें तथा हमारे यहां एक पाठ और लगभग एकसा अर्थ है ॥

अथवा झेलते रहना भावार्थ इस प्रकार है कि वीतराग मुनिके स्नानका, अवगाहनका और शरीर को जलसे सींचनेका तो यावत् जीवन त्याग है और पक्षीके सदृश एक स्थानमें स्थिर वा ध्रुव प्रकारसे नहीं बसते हैं और परके घर अति क्षार, सचिक्कन, रूक्ष, प्रकृति विरुद्ध आहार मिलनेके कारणों से तथा ग्रीष्म ऋतुके आतपसे, पित्त वा ज्वरसे, अनशनादि तपसे महानताको प्राप्त हुई जो शरीर अर इन्द्रियमें मथन करनेवाली तृषा तिसके उपायमें अथवा तिसके बुझानेमें और सन्तुष्ट करनेमें अनादर रूप है मन जिनका और ग्रीष्मके तीक्ष्ण सूर्यकी किरणोंकरि संतपित वन भूमिमें तिष्ठते हैं ॥ निकट तिष्ठता जलका ह्रद तिसओर मनको नहीं चलाते हैं, जलकायके जीवोंकी बाधाका परित्यागकी इच्छासे जलकी इच्छासे रहित हैं। जैसे जलके संबन्ध रहित वेलि मलीनताको प्राप्त होती है, तैसे मलीनताको प्राप्त जो शरीर लता तिसकी ओर लक्ष्य न देकर तपके परिपालनमें तत्पर हैं और आहारके अवसरमें भी अपनी चेष्टा—आकार—तथा समस्यादिकरि अपने पीवने योग्य जलादिकके लिये प्रेरणा वा याचना नहीं करते हैं ॥ तृषारूपी अग्निकी शिखाको धैर्यरूप कुम्भमें भरा हुआ शीतल सुगन्ध, ध्यानरूप वा समाधिरूप जल ताकरि बुझाते हैं॥ ऐसे साधुओंकी तृषापरीषहका सहन सराहने योग्य है ॥

(३) शीतपरीषहः३ परिषोढव्यः३=शीतके कष्टको सह लेना (सो शीतपरीषह जय है) अर्थात् शीतके कारण निकट होते तिसके प्रतिकार वा उपचारकी वांछा रहित संयम पालना सो शीत परीषह है। भावार्थ—वस्त्रोंके पहिरनेका है परित्याग जिनकें, और पक्षियोंके सदृश रहनेका स्थान नहीं है निश्चय जिनकें, और शरीर मात्र ही है आधार जिनकें और समस्त ही ऋतुमें वृक्षनिके नीचे तथा चौहटे तथा गुफादिक वा नदी जलाशय वा तडागके तटपर रात्रिको ध्यानादि सहित व्यतीत करनेकी है प्रतिज्ञा जिनके और शिशिर ऋतुमें पड़ते ओस,पालाके दूर करनेको अग्नि इत्यादिका चिन्तवन नहीं करते हैं ॥ शीतके भिन्न अथवा दूर करनेमें समर्थ विद्या

(३)सवैया इकतीसा—(क) "शीतकी सहाय पाय पानी जहां जम जाय, परत तुषार आय हरे वृक्ष झाड़े हैं ॥ महा कारी निशा मांहि घोर घन गरजहि, चपलाहू चमकाहि तहां दृग गाड़े हैं ॥ पौनकी झकोर चले पाथर हैं तेहू हिले ओरिनके ढेर लगें तामें ध्यान बाढ़ें हैं॥ कहालों बखान कहूं हेमाचल की समान तहां मुनिराय पांय जोर दृढ़ ठाढ़े हैं" ॥ १ ॥ (भैया भगवानदासकी बाईस परीषह पाठसे उद्धृत)

कविता खड़ीचाल—(ख) शीतकाल सब ही जनकंपै खडे जहां बन वृक्ष दहे हैं। झंझा वायु वहे वर्षा ऋतु वर्षत बादल झूम रहे हैं ॥ तहां धीर तटनी तट चौपट ताल पाल पर कर्म दहे हैं॥ सहैं सम्हाल शीतकी बाधा ते मुनि तारणतरण कहे हैं (भूधरदासकी२२परीषहपाठसे उद्धृत)

पदच्छेद —क्षुत्-पिपासा-शीत-उष्ण-दंशमशक-नाग्न्य-अरति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्या-आक्रोश-वध-याचना-अलाभ-रोग-तृण-स्पर्श-मल-सत्कारपुरस्कार-प्रज्ञा-अज्ञान-अदर्शनानि "एते" द्वाविंशतिः "परिषहाः" परिषोढव्याः ॥ ९ ॥

(१) क्षुत्परिषहः परिषोढव्यः=क्षुधा परिषह सहन योग्य है अर्थात् प्रथम तो साधुओंका भोजन गृहस्थों पर ही निर्भर है, भोजनके लिये कोई वस्तु उनके पास नहीं है यहां तक कि शरीर पर वस्त्रादिक भी नहीं है और शरीर मात्र उपकरणकरि संयुक्त है दूसरे यह कि अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान इत्यादिक तप करते दो दिन, चार दिन, आठ दिन, पक्ष मास व्यतीत होजाते हैं यदि शुद्ध आहार अन्तराय रहित योग्यकालमें योग्य क्षेत्रमें, न मिले तो भिक्षाको ग्रहण नहीं करते हैं, चित्तमें कुछ भी विषाद और खेद नहीं लाते हैं, धैर्य धारण करते हैं। यद्यपि मुनियोंके भूख तपसे हाड-चाम-नस कलेवर मात्र देह रह गई है, तो भी आवश्यक क्रियाओंको शिथिलमात्र भी नहीं घटाते हैं। अत्यन्त क्षुधारूपी अग्निको प्रज्वलित होने पर धैर्यरूपी जलसे शांत करदेते हैं ऐसे मुनियोंका क्षुधा परीषहका सहन होता है ॥

(२) पिपासापरिषहः परिषोढव्यः=प्यास परिषह, प्यासकी पीड़ा या कष्ट सहने योग्य है अर्थात् तृषा वेदनीकी उदीरणा (=जिताने)के कारण होते भी जो तृषाके वश नहीं होना, परन्तु उसको समभाव और धैर्यके साथ सहन करते रहना,

प्राचीन उद्धृत करना इस ग्रन्थका उद्देश नहीं है परन्तु कई मित्रोंके अनुरोधसे परीषहजयके निम्न प्रकार उक्त छन्द दिये जाते हैं ॥

(१) सवैया इकतीसा—(क) "अनसनके योग जिन्ह नर जीत लागे जिन्हके बल आगे सब बलवान हारे हैं। मारत मरारे नहीं छोरे खाना [illegible] [illegible] उदर भये हैं प्रचार हैं। आयाकी (=बड़वा आग) सी ज्वाला सी उराय डारे छाता क्षुधा दयाकों लागें, पशुपक्षी को विचार हैं। ऐसी क्षुधा बलवान जैसा कहिये कहां लों, ताहि जीत मुनिराज ध्यान थिर धारें हैं॥१॥ भैयाभगवतीदासकी२२ परि०से उद्धृत ॥

(ख) सवैया तेईसा— अनशन ऊनोदर तप पालत हैं पक्ष मास दिन बीत गये हैं। जो नहीं बने योग्य भिक्षा विधि मुनि अंग सब [illegible] [illegible] हैं। तब तहां दुःसह भूखकी वेदना सहत साधु नहीं [illegible] हैं। तिनके चरण कमल प्रति प्रति दिन हाथ जोड़ हम शीश नमें हैं ॥१॥

(२) सवैया इकतीसा—(क) पूरवी पवन परें आवतों शरीर नर उपचार (=उपाय) कौन करें सहें द्वार आनके। पानीकी पियास जाती [illegible] [illegible] तीनों [illegible] [illegible] [illegible] हैं॥ पर जिन साहसाहि पानीको परोसदे माहि प्राण जिन जारी जाहि सों सुखमाने ॥ ऐसे ध्यान मुनि करें तब जाय सुख लहें जैसा इस भांति कहे पवित्र विज्ञान है ॥ भैया भगवतीदासको बारस परीषह पाठसे उद्धृत ॥

(ख) पराधीन मुनिवरकी भिक्षा पररघर लेय कहें कछु नाहिं। प्रकृति (=स्वभाव) विरुद्ध पारणा(=आहार) भुंजत(=खाते हुए) बढ़त प्यासकी त्रास(=दुःख) तंहाहीं॥ ग्रीषम कालपित्त अति कोपे लोचन(=आंख) दोय फिरे जब नाहीं। नीर न चहें सहें तिस ते मुनि जयवतो वरतो जगमाहीं॥१॥

(८)स्त्री-परिषहः'परिषोढव्यः' =स्त्री (के अवलोकन-स्पर्शन) की पीडा सहने अर्थात् सुन्दर स्त्रियोंके हाव भावादिकसे विकृति (=चलायमान) न होना सो स्त्री परीषहका जीतना है ॥

(९) चर्या-परिषहः'परिषोढव्यः'=(साधुको) गमनके कष्टको सहना चाहिये अर्थात् मार्ग गमनके दोषोंका निग्रह वा परिहार करना जैसे मार्ग में चलते हुये कंकड़ चुभनेसे और सिंह इत्यादिके भयसे खेद खिन्न न होना। लगभग चार हाथ प्रमाण मार्गको देखकर इत उत दृष्टि न करते हुये गमन करना ।

(१०) निषद्या-परिषहः'परिषोढव्यः'=(मुनि)को आसनकी पीड़ा सहना योग्य है अर्थात् ध्यानके लिये संकल्प किये हुये आसनसे कितने ही उपसर्ग-रोग-विकार-बाधा-भयके आनेपर भी साधुका नियमित कालतक चलायमान न होना सो निषद्यापरिषहजय है ॥

भये जो दिवाने हैं' ॥ रसनाकी रति सब जगत सहत दुख, जानत हैं वे (संसारी जीव) सुख ऐसे भरमाने हैं । इन्द्रिनिको रति मान गति सब खोटी करैं ताहि मुनिराज जीतैं आप सुख माने हैं ॥

(८)(क) "नारीके निहारत विचार सब भूलि जात नारीके निहारे परिणाम फिर जात हैं ॥ नारीके निहारत अज्ञान भाव आय झुके ,नारीके निहारत हौ शीलगुण घात है। नारीके निहारत न शूर वीर धीर धार लोहनके मार जे अडिग ठहरात हैं। ऐसी नारी नागिनके नैनन को निमेष (=कटाक्ष) जीत, भये हैं अजीत मुनि जगत विख्यात हैं" ॥

(ख) "जे प्रधान केहरिको पकड़ैं पन्नग (=सांप) पकड़ पान (=हाथ)से चंपत (=उठाय लेना)। जिनकी तनक देख भौं (=भृकुटी; बांकी (=टेढ़ी) कोटिनसूर दीनता जंपत (=ग्रहण करते हैं) ॥ ऐसे पुरुष पहाड उठावन प्रलय पवन त्रिय [=स्त्री] वेद(=जानते ही) पय'तत (=आधीन हो जाते हैं) धन्य धन्य ते साधु साहसी मन सुमेरु जिनको नही कम्पत" ॥

९-(क) [छप्पय] "जब मुनि करहिं विहार, पंथ पग धरहिं परक्खत । ऊंट हाथ ,(=साढ़े तीन हाथ)'परवान, दृष्टि युग भूमि परक्खत ॥ चलत ईरया समिति, पंचइन्द्रिय वश कीने । दशहु दिशा मन रोक, एक करुणारस भीने, इम चलत पूज्य मुनिराज जब, होय खेद संकट विकट, तिहं सहहिं भाव थिर राखके, तब धावे भव उदधितट" ॥

(ख) "चार हाथ परिमाण निरख पथ चलत दृष्टि इतउत नहीं ताने । कोमल पाय कठिन धरती पर धरत धीर बाधा नहिं माने ॥ नाग तुरङ्ग पालकी चढ़ते तै स्वाद उर यादन आवै । यो मुनिराज सहे चर्य्या दु ख तब दृढ़ कर्म कुलाचल भाने ॥"

१०(क) "जब थिर होहिं मुनिंद, एक आसन दृढ़ धरई ।जब थिर होहिं मुनिंद अङ्ग एको नहिं टरई ॥ जब थिर होहिं मुनिंद, कष्ट किन आवहि केते । जब थिर होहिं मुनिंद,भावसों लहै जुतेते।। इम सहत कष्ट मुनिराज अति,राग द्वेष नहि धरत मन । उत्कृष्ट होहिं एक वेर जो सब उनईस परीसभन॥"

गुफा मसान शैल तरु कोटर निवसें जहां शुद्ध भू हेरें । परमित काल रहे निश्चल तन बारबार आसन नहिं फेरें ॥ मानुष देव अचेतन पशु कृत बैठे विपति आन जब घेरै । ठौर न तजै भजै थिरतापद ते गुरु सदा वसो उर मेरे ॥"

मन्त्र औषध, पत्र, वल्कल, त्वचा, तृण, घासादिकनिके सबधमें कदाचित् मनको नहीं चलाते हैं॥

(४) उष्णपरिषह "परिषोढव्य है" =ऊष्माका कष्ट वा पीडा सहन अर्थात् ग्रीष्मादि जनित दाहके प्रतिकारकी वाछाकी अभावते चारित्रकी रक्षा करनो सो उष्ण परिषह का सहन है।

(५) दशमशकपरिषह "परिषोढव्य है" =डास (=दश) मच्छर (=मशक) इत्यादिक (के काटने) की पीडाका सहन करना योग्य है॥

(६) नाग्न्यपरिषह "परिषोढव्य है" =नगे रहनेका कष्ट सहना चाहिये अर्थात् नग्न होते सबको लज्जा आती है सो नग्न होकर भी अपने अँगोंको विकाररूप न होनेदेना लज्जादिककों जीतलेना सो नाग्न्य परिषह सहना है।

(७) अरतिपरिषह "परिषोढव्य है" =सयममें अप्रीतिरूप कष्टको सहना चाहिये अर्थात् क्षुधा तृषाकी बाधासे सयममें अरति होने लगे तो उसका न होने देना, सयममें निरतर रति रखना, सो अरति परिषहका जीतना है॥

(४)सवैया इकतीसा—(क) 'ग्रीषमकी ऋतु माहि जल थल सूख जाहि परत परचड धूप आगिसी बलत है॥ दावा(=बनकी आग)कीसो ज्वाल माल बहत बयार अति लागत लपट काऊ धीर न धरत है॥ धरती तपत मानो नवासो तपाय राखी बडवा अनल(=बडवा अनल=समुद्रकी आग) सम शैल जो जरत हैं॥ ताके श्रृग शिलापर जोर युग पाव धर, करत तपस्या मुनि कर्म हरत हैं॥

पद्धिलछंदचाल—(ख)भूख प्यास पीडे उर(=छाती)अन्तर प्रजले(=बले)अति देही सब दागे॥ अग्नि स्वरूप धूप ग्रीषमकी ताती बाल झाल सी(=अग्निकी लौभी) लागे॥ तपै पहाड तापतन उपजे कोपे पित्त दाह ज्वर जागे॥ इत्यादिक गर्मीकी बाधा सहैं साधु धैर्य नहीं त्यागे॥

(५) (क)सवैया इकतीसा—सिह साप ससा, स्याल, सूअर औ, स्वान, भालू बाघ, बोली, बानर सु बाजने सताये है। चीता चील चरख चिरैया चटी चैंटा, चूहा गज गाह गाह जो गिलहरी बताये है॥ मृग मोर माकरी सु मच्छर जो माखी मिल भौरा भौरी देखके खजूरा सरपाय हैं॥ ऐसे डस मसकादि जीव है अनेक दुष्ट तिनकी परिषह जीते साधु जन कहाये हैं॥

(ख) दशमशक माखी तनु काटे पीडे बन पक्षी बहुतेरे। डसै व्याल विषहारे बिच्छू लगे खजूरे आन घनेरे। सिंह स्याल सुण्डाल(=हाथी) सतावैं रीछ रोझ दुख देय घनेरे॥ ऐसे कष्ट सहे समभावन तेमुनि राज हरो अघ मेरे॥ (खजूरे=कानखजूरे)(स्याल=गीदड)यहा दशमशक (शब्द)का ग्रहण उपलक्षण रूपमें है जैसे कोई पुरुष कहै कि कागसे घृतकी रक्षा करो इससे जानना चाहियेकि घृतकी रक्षा काग और सब पशुसे जो घी का नाश करने वाले है करना चाहिये तैसे यहा इस सूत्रमें दशमशकसे सिंह साप ससा स्याल इत्यादिक सब ही जीवोंसे कृत परीषह मुनि महाराज सहते है। यह नहीं कि दशमशक जनित परीषहोंको सहन करे और अन्य दूसरे जीवों कृत परीषहोंसे अपनेको बचावें॥

(६) अन्तर विषय वासनावर्त्त बाहिर लोक लाज भय भारी। (विषय=कामादिक वासना)तातैं परम दिगम्बर मुद्रा धर नहीं सके दीन ससारी।(मुर्खा=भय)। ऐसी दुद्धर नग्न परीषह जीते साधु शीलव्रत धारी॥ निर्विकार बालकवत् निर्भय तिनके पायन धोक हमारी॥

(७)(क)प्रकृति विरुद्ध अहार मिले मुनि जो दुख पावे। सोहि अरति परिणाम तहा समता रस भावे॥ औरहु परसयोग होत दुख उपजे तनमें। तहा अरतिपरिणाम त्याग थिरता धरैं मनमें॥ इम सहत साधुदुखपुज बहु तबहु क्षमा नहीं उर टरत॥ भैया त्रिकालमुनिराजसो अरति जीतशिवपदवरत॥

(ख)आंखनकी रतिमान दीपक पतग परे, नासिकाकी रति मान भ्रमर भुलाने है॥ कानकी रति मृग खोवतहै प्राण निज, फरसकी रति गज

भी लाभके समान संतुष्ट रहना, एक दिनमें एककाल भोजनके लिये एक ही नगर वा ग्राममें जाना—याचना नहीं करना—अयोग्य वचन नहीं कहना—अलाभ परिषहजय है ॥

(१६)रोग–परिषहः'परिषोढव्यः'=रोग जनित पीड़ा (मुनिको) सहना योग्य है अर्थात् नाना प्रकारके रोग अथवा व्याधि होनेपर भी उपाय वा उपचार वा प्रतीकार की इच्छा नहीं करना-रोगको पूर्वकृत फल जानि समभावसे सहना

(१७)तृणस्पर्श–परिषहः'परिषोढव्यः'=तिनका आदि लगने वा छूनेके कष्ट(मुनिको) सहना चाहिये अर्थात् मार्ग चलते तृण कंटक कंकरी आदि पांवोंमें चुभनेसे उत्पन्न हुई पीड़ाको सहलेना सो तृणस्पर्श वा तृणफासस्पर्श परिषहकाजय है,

(१८)मल–परिषहः'परिषोढव्यः' =(साधुको)मैल जनित कष्ट सहना योग्य है,अर्थात् अपने शरीरके मल(जैसे विष्टा-पसीना-श्लेष्मादि) के पृथक् करनेमें और परके मल देखि अपना मन मैला करने विषैं चित्त न लगाना ॥

---

(१६)छप्पय-(क)वात पित्त कफ कुष्ट स्वांस अरु खांस खैण गनि, शीत ताप शिरवाय, पेट पीड़ा जु शूल भनि। अतीसार (=संग्रहणी आंवका रोग) अधसीस, अरश (=बवासीर) जो होय जलन्धर ॥ एकांतर अरु रुधिर बहुत फोड़ा जु भगंदर (=फोड़ेकी प्रकार)। इम रोग अनेक शरीर महिं कहत पार नहीं पाइये,मुनिराज सबन जीतत रहें औषधभाव न भाईये ॥ १ ॥

कवित्त खड़ीचाल—(ख)वात (=वायु) पित्त कफ शोणित(=लोहू)चारों ये जब घटे वढ़े तनुमायीं। रोग सयोग शोक तब उपजत जगत जीव कायर हो जायीं। ऐसी व्याधि (=रोग) वेदना दारुण सहै सूर उपचार (=उपाय, प्रतीकार) नचाही। आत्मलीन विरक्त देहसे जैनयती निजनेम निबाही ॥ २ ॥

(१७)यहां तृण शब्दका ग्रहण उपलक्षण रूप है कोई वस्तु जो शरीरमें चुभे और वेदना उपजावै सो लेना अतः 'तिनकाआदि'शब्द अनुवादमें लाये हैं छप्पय(क)परत आंखि यह कछुक काढ़ि नहि डारत तिनको, चुभत फांस तनमाहिं सार नही करते जिनको। लागत चोट प्रचण्ड खेद नहीं कछु जनावत। वाणादिक बहु शस्त्र कहत कछु पार न पावत। इम सहत सकल दुःख देहदमि, रागादिक नहीं धरत मन। भैया त्रिकाल वदत चरण। धन्य धन्य जग साधु धन (=धन्य=उत्तम) ॥ १ ॥

कवित्तखड़ाचाल—सूखे तृण और तीक्ष्ण कांटे कठिन कांकरी पाव विदारैं। रज उड आन पड़े लोचनमे तीर फांस तनु (=तन) पीर विथारै ॥ तापर परसहाय नहीं बांछत अपने करसों काढि न डारैं। यों तृणफास परीषह विजयी ते गुरुभवभव शरण हमारे ॥

(१८)छप्पय लगत देहमें मैल, धोय नहीं तिनको झारत। देहादिकसे भिन्न शुद्ध निज रूप विचारत ॥ जल थल सब जिय जत, संतहै काहि सताऊं। सबही मोहि समान, देत दुख मे दुख पाऊं। इम जान सहत दुर्गंध दुख, तब गिलान विजयी भवत। भैया त्रिकाल तिहिं साधु के, इन्द्रादिक चरणन नमत ॥

कवित्तखडोचाल–(ख)यावज्जीव जल न्हौन तजो जिन नग्नरूप बन थान खडे है। चले पसेव धूपकी बरियां उड़त धूल सब अंग भरे है ॥ मलिन देहको देख महामुनि मलिन भाव उरनाहिं करैं है। यों मलजनित परीषह जीतें तिन्हें पाद हम शीश धरे हैं ॥

(११)शय्या-परिषह है'परिषोढव्य है' =(मुनिको) शयन—नींद वा सोनेका कष्ट सहना चाहिये, अर्थात् शास्त्रकी आज्ञानुसार शयनसेन चिगना, जित करवटसे सोये उसीसे सोते रहना भूमि चाहे ऊंची नीची कठोर सकड़ी ककड़याई इत्यादि हो।

(१२)आक्रोश परिषह है'परिषोढव्य है'=अनिष्ट वचन वा दुर्वचनकी पीड़ा (मुनिको) सहना चाहिये अर्थात् समपरिणामसे दुर्वचन सहना।

(१३) वध-परिषह है'परिषोढव्य है' =मारनेकी पीडा (मुनिको) सहना योग्य है अर्थात् मुनिको अपने मारने वालेमें राष नहीं करना, मारनेकी पीड़ाको समभावसे सहलेना सो वध परिषहका जीतना है।इसको वधबंधन परीषह भी कहतेहैं।

(१४) याचना-परिषह है'परिषोढव्य है'=मांगनेके कष्टको [मुनिको] सहना चाहिये अर्थात् प्राण जाते भी आहारादिकके लिये दीनतारूप प्रवृत्तिको नहीं करना सो याचना परीषहका जीतना है।

(१५) अलाभ-परिषह है'परिषोढव्य है'=(मुनिको आहारादिककी) प्राप्तिके अभावकी पीडा सहना चाहिये अर्थात् आहारादिके न मिलने पर

---

(११)—शय्या शब्दके दो अर्थ हैं (अ) खाट वा खट्वा (आ) नींद-निद्रा-सोना-शयन पिछला अर्थ यहां पर लिया गया है॥

कवित्त चालखडी—जेमहान सोनेके महलन सुन्दर सेज सोय सुख जोवे। ते अब अचल अंग एकासन कोमल कठिन भूमिपर सोवे पाहन (=पत्थर) खंड कठोर कांकरी गड़त कोर कायर नहीं होवें। ऐसा शयन(सोनेकी-नींदकी)परिषह जीतत ते मुनि कर्म कालिमा धोवे।

(१२)कवित्त चाल खडी—जगत जीव यावन्त (=जितने)चराचर सबके हित सबको सुखदानी। तिन्हें देख दुर्वचन कहें शठ पाखंडी ठग यह अभिमानी॥ मारो याहि पकड पापीको, तपसी भेष चोर है छानो। ऐसे वचन बाणकी बरियां क्षमा ढाल ओढें मुनि ज्ञानी॥ २॥

(१३)सवैया इकतीसा—(क)कोऊ बांधो कोऊमारो काऊ किन गह डारो सबनके सकट सुगोधते सहतु है (गह=हथकडी)।कोऊ शिर आगधरो कोऊ पील प्राणहरो,कोऊकाट टूक करो द्वेष न गहतु है(पील=पीडा)। कोऊ जल माहि बोरो कोऊ लेके अंग तोरो कोऊ कह चार मारो दु खदे वहतु है। ऐसे वध बंधन परीषहको नाते साधु भैया ताहि बारबार वंदन करतु हे॥ (भैयाभगवतीदासकी बाईस परीषह पाठसे उद्धृत)

निरपराध निर्वैर महामुनि तिनको दुष्ट लोग मिल मारें।केई खैंच खम्भसे बांधे केई पावकमें परिजारे। तहां कोप नहीं करें कदाचित् पूरव कर्मविपाक विचारें। समरथ होय सहें वध बंधन ते गुरु सदा सहाय हमारे॥ (भैया भगवतीदासकी २२ परीषह पाठसे उद्धृत)॥

१४—घोर वीर तप करत तपोधन भये क्षीण सूखी गल बांही,(तपोधन=जिनका तप ही धन है)॥अस्थि (=हड्डी) चाम अवशेष[=बचेहुये] रहे तनु नसा जाल झलके निस मांही॥ (नसा नाडियां)॥ औषधि अशन [=भोजन] पान [=जल] इत्यादिक प्राण जाय पर याचित नाहीं। दुद्ध अयाचिक व्रतको धारें करहिं न मलिन धर्म परछाहीं॥

(१५)(क)अंतराय [=विघ्न] कर्मके उदयते जो अलाभ होय, ताके भेद दोय कहे निश्चय व्यवहार है। निश्चय तो स्वरूपमें न थिरता विशेष रहे यह अंतराय जो रहे, न एकसार [=एक जैसा) है॥ व्यवहार अंतराय मिले न अहार योग औरहु अनेक भेद अकथ अपार हैं ऐसे तो अलाभको परीषह को जीत साधु भये हैं अतीत भैया वंद निरधार हैं॥ (भैयाभगवतीदासकी बाईस परीषह पाठसे उद्धृत)

(ख)एकबार भोजनकी बरियां मौनसाध वस्ती में आवें। जो नहीं बने योग भिक्षा विधि तो महन्त मन खेद न लावें॥ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीते तब तप वृद्धि भावना भावे। यों अलाभको परम परीषह सहें साधु सो ही शिव पावे॥ (भैया भगवतीदासकी बाईस परीषहपाठसे उद्धृत)

क्षुदादयो वेदनाविशेषा द्वाविंशतिः। एतेषां सहनं मोक्षार्थिना कर्तव्यम्॥ तद्यथा-भिक्षोर्निरवद्याहारगवेषिणस्तदलाभे ईषल्लाभे च अनिवृत्तवेदनस्याकाले

(क)अपनी अज्ञानतासे अपना तिरस्कार अन्य द्वारा कियेहुयेको सहना जैसे यह मुनि-वा साधु अज्ञानी है कुछ नहीं जानता है,पशुसमान है,
(ख) ज्ञानकी अभिलाषा, अध्ययनका प्रयत्न करनेपर भी ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो इन दुःखोंको सहना सो अज्ञान परीषहका जीतना है॥

[२२] अदर्शन- परिषहः[१'] परिषोढव्य:[१'] =श्रद्धानके अभावकी (=अदर्शन) पीड़ा(मुनिको)सहना योग्य है अर्थात् दीक्षा लियेहुये बहुत दिन होगये तप करनेवालोंमें मुख्य हूं तथापि मेरे ऋद्धि वा अवधिज्ञान आदिककी प्राप्ति नहीं हुई-ऐसी इच्छाको नहीं करना सो अदर्शन परीषहका जीतना है।

ते[३'] एते[३'] द्वाविंशतिः[३''] परिषहाः[३'] भवन्ति॥ =ते इतनी बाईस परीषह है॥

वृत्त्यनुवादः—क्षुधा-आदयः[३'] वेदना-विशेषाः[३'] =भूख आदिक पीड़ाके भेद

द्वा-विंशतिः[३''], एतेषाम्[६'] सहनम्[१'''] मोक्ष-अर्थिना[३'] =बाईस हैं। इन[बाईस परीषहों]का सहन मोक्षके इच्छुक द्वारा

कर्तव्यम्[१''']; तद्यथा*—भिक्षोः[६'] निरवद्य-आहार- =अवश्य कियाजाता है। जैसे मुनि निर्दोष आहार

गवेषिणः[६'] तद्-अलाभे[७'] च* =अन्वेषण करनेवालेकें उस[आहार]की प्राप्ति न होनेपर, और [अन्तराय आदिकारणोंसे]

ईषत्* लाभे[७'] अनिवृत्त-वेदनस्य[६'] अकाले[७'] =किंचित् मिलने पर नहीं मिटी है[=अनिवृत्त]भूखकी वेदना जिसकी तो असमयमें

२२-(छप्पय) (क)समयप्रकति मिथ्यातजासु डरते नहिं टरई। सो जियहै गुनवंत तथा वेदक पद धरई। दर्शन निर्मल नाहिं, मोहकी प्रकृति लखावै।सहै अदर्शन कष्ट कहत कैसे वन आवै। परिणाम खेद वहु विधि करत तोहू निर्मल होयनही। भैया त्रिकाल मुनिराज तिह जीतरहे निज आपमहिं॥१॥ (कवित्तखड़ीचाल)(ख)-में चिरकालघोर तप कीना अजहूं ऋद्धि अतिशय नहीं जागो। तपबल सिद्धि होय सब सुनिये सो कुछबात झूठसी लागे। यों कदापि चितमे नाहिं चिन्तत समकित शुद्ध शान्ति रसे पागे। सोई साधु अदर्शन विजयी, ताके दर्शनसे अघ भागे॥

२- भिक्षु शब्दका भिक्षोः, षष्ठी एक वचन पुंल्लिंग है। भिक्षा वृत्तिकरि परके घर आहार लेते हैं इसलिये मुनिवा साधुका नाम भिक्षु है॥ ३-गवेषिणः-वेदनस्य-निवृत्तोच्छस्य-असहमानस्य परस्य-अवमोदर्यस्य-नीरसआहारस्य-पानस्य-वेदनस्य-मन्यमान्यस्य-भिक्षु शब्दके विशेषण वागुणवाचकशब्द हैं॥

(१९) सत्कारपुरस्कार–परिषह "परिषोढव्य" =प्रशंसा (=सत्कार) तथा अग्रेसर करण (=पुरस्कार) वा निमंत्रण(=पुरस्कार)की पीड़ा–वेदना (मुनिको) सहना योग्य है अर्थात् मुनि सन्मान, अपमान विषै समबुद्धि समरूप वा समभाव होकर सत्कार पुरस्कारकी अभिलाषा नहीं करे सो सत्कार पुरस्कार विजय है भावार्थ ऐसा है कि साधु ऐसे परिणाम कदाचित् नहीं करते हैं कि मैंने चिरकाल से ब्रह्मचर्यका सेवन किया है, महा तपस्वी हू, स्वमत परमतके निश्चयका ज्ञाता हू, हितकारी उपदेशके देनमें तत्पर हूं, रत्नत्रय मार्गमें प्रवीण हू, और बहुत बार वादियों पर विजय प्राप्त चुका हू, तो भी लोग मेरी भक्ति नहीं करते है, हर्षसे खडे होकर उच्च आसनादि मुझे नहीं देते हैं मेरा आदर और वन्दना नहीं करते हैं।

(२०) प्रज्ञा–परिषह "परिषोढव्य" =(मुनिको) विद्वता वा विज्ञान (के मद) की पीड़ा सहना चाहिये अर्थात् बुद्धि अथवा विज्ञानका मद न करना सो प्रज्ञा परिषहका विजय है॥

(२१) अज्ञान–परिषह "परिषोढव्य" =(मुनिको) ज्ञानके अभाव (=अज्ञान) जनित कष्ट अथवा पीड़ा सहना योग्य है अर्थात्

(१९)कवित्त इकतीसासवैया(क) 'जहा होय मान तहा मानत महान सुरा अपमान होय तहा मृत्युके समान है। मानके गुमान आप महाराज मान रहे होत अपमान मान हरे दशो प्राण हैं॥ मान ही की लाज जग सहत अनेक दुःख, अपमान होत धरै नरक निदान हैं। ऐसे मान अपमान दोऊ दुष्ट भाव तजि, गनत समान मुनि रहै सावधान हैं' ॥

कवित्तखड़ीचाल—(ख) जे महान विद्या निधि विजयी चिर तपसी गुण अतुल भरे हैं। तिनको विनय वचनसों अथवा उठ प्रणाम जन नाहि करे है ॥ तौ मुनि तहा खेद नहीं मान उर मलीनता भाव हरे हैं। ऐसे परम साधुके अहो निशि हाथ जोड हम पाय परे हैं ॥

(२०)छप्पय(क) 'प्रज्ञाबल(=बुद्धि)नहीं होय तहा विद्या नहीं आवे। प्रज्ञाबल नहीं होय तहा नहीं पढे पढावे। प्रज्ञाबल नहीं होय तहा चर्चा नहीं सूझै प्रज्ञाबल नहीं होय तहां कछु अर्थ न बूझै॥इमबुद्धिविशेष न होय जित तित अनेक परीषह सहत। भैया 'तिकाल मुनिराज तिहं जीत शुद्धअनुभवलहत'

कवित खडीचाल— 'तर्क छन्द व्याकरण कलानिधि आगम अलङ्कार पढ जानें। जाकी सुमति देख परवादी विलखें होय लाज उर आने। जैसे सुनत नादकेहरिको वनगय द भाजत भय मानें ऐसी महा बुद्धिके भाजन ये मुनीश, मद रचत ठानं' ॥

(२१) छप्पय (क) "सम्यक् ज्ञान प्रमाण होहिं मुनिकोय तुच्छ मति। सुनहिं जिनश्वर वैन याद नहिं रहे हृदय प्रति ॥ ज्ञानावरण प्रसाद बुद्धि नहीं प्रगट ताकी। पूरव भवथिति बन्ध यहां कछु चलत न ताकी। इम सहत कष्ट मुनि ज्ञानका, होंहिं परीषह प्रबल जिय। तिहँ जीत प्रीति निज रूप सो लहत शुद्ध अनुभव हिय ॥

कवित्तखडीचाल—(ख)' सावधान वर्तें निशिवासर सयम सूर परम वेरागी। पालत गुप्ति गये दीरघ दिन सकल संग ममतापर त्यागी॥अवधि ज्ञान अथवा मन पर्यय केवल ऋद्धि अजहु नहीं जागी। यों विकल्प नहीं करै तपोधन सो अज्ञान विजयी वडभागी" ॥

मन्यमानस्य क्षुद्बाधां प्रत्यचिन्तनं क्षुद्विजयः ॥ १ ॥ जलस्नानावगाहनपरिषेकपरित्यागिनः पतत्रिवदनियतासनावसथस्यातिलवणस्निग्धरूक्षविरुद्धाहारग्रैष्मातपपित्तज्वरानशनादिभिरुदीर्णां शरीरेन्द्रियोन्माथिनीं पिपासां प्रत्यनाद्रियमाणप्रतिकारस्य पिपासानलशिखां धृतिनवमृद्घटपूरितशीतलसुगन्धिसमाधिवारिणा प्रशमयतः पिपासासहनं प्रशस्यते ॥२॥ परित्यक्तप्रच्छादनस्य पक्षिवदनवधारितालयस्य वृक्षमूलपथिशिलातलादिषु हिमानीपतनशीतलानिल-

मन्य-मानस्य६।१ क्षुत्-बाधाम्२।१ प्रति*	=पूज्य (=मन्य) अर्थात् आनंद माननेवाले (=मानस्य) (मुनि)के भूखकी बाधाके लिये
अचिन्तनम्१।१ क्षुत्-विजयः१।१ ॥ १ ॥	=चिन्तवन नहीं है सो क्षुधापर विजय है वा भूखका जीतना है ॥ १ ॥
जलस्नान-अवगाहन-	=पानीमें न्हान, (पानी में) प्रवेशन (=जल-अवगाहन), वा (पानीमें) पैठन (=जल-अवगाहन)
परिषेक-परित्यागिनः६।१ पतत्रि-वत्*	=(और पानीके) छिड़कनेका (जल-परिषेक) है त्याग जिसके, पक्षीके समान (=पतत्रि-वत्)
अनियत-आसन-आवसथस्य६।१	=अनियत है बैठना, वसना जिसका,
अतिलवण-स्निग्ध-रूक्ष-विरुद्ध-	=बहुत नुनखरा, चिकने, रूखे, प्रकृति विरुद्ध
आहार-ग्रैष्म-आतप-पित्त-ज्वर-अनशन-	=आहारकरि, ग्रीष्मके आतापकरि, पित्त, ज्वर, उपवास
आदिभिः३।३ उदीर्णाम्२।१ शरीर-इन्द्रिय-	=आदिक (तप) करि उपजी [जो] शरीर इन्द्रियोंमें महान् (=उदीर्णाम्)
उन्माथिनीम्२।१ पिपासाम्२।१ प्रति*	=मथन करनेवाली वा घवरा देनेवाली जल पीनेकी इच्छा (=पिपासा)के लिये
अन्-आद्रियमाण-प्रतिकारस्य६।१ पिपासा-अनल-	=नहीं आदर कियागया है उपाय जिसके, तृष्णारूपी अग्निकी
शिखाम्२।१ धृति नव-मृद्-घट-पूरित-शीतल-	=शिखाको धैर्यरूपी नवीन मिट्टीके घटमें भराहुआ [=पूरित] शीतल
सुगन्धि-समाधि-वारिणा३।१ प्रशमयतः६।१	=सुरभि समाधिरूपी जलसे शमन करनेवाले [मुनि]का
पिपासा-सहनम्१।१ प्रशस्यते T ॥ २ ॥	=तृष्णाका सहना अथवा झेलना सराहा जाता है अर्थात् प्रशंसा की जाती है।
परित्यक्त-प्रच्छादनस्य६।१ पक्षिवत् *	=वस्त्रोंका है परित्याग (जिसके) पक्षीके समान
अन्-अवधारित-आलयस्य६।१ वृक्षमूल-पथिन्-	=वसनेके स्थानका निश्चय नहीं हैं जिसका, पेड़की जड़ चौड़े मार्ग [=पथिन्]
शिलातल-आदिषु७।३ हिमानी-पतन-शीतल-अनिल	=शिलातल आदिकोंमें पालेके ढेर (हिमानी=हिमाना) पड़नेपर शीतल पवनके (=अनिल)

अदेशो च भिक्षा प्रति निवृत्तेच्छस्यावश्यकपरिहाणि मनागप्यसहमानस्य स्वाध्यायध्यानभावनापरस्य वहुकृत्व स्वकृतपरकृतानशनावमोदर्यस्य नीरसाहारस्य तप्तभ्राष्ट्रपतितजलविन्दुकतिपयवत्सहसा परिशुष्कपानस्य दीर्णक्षुद्वेदनस्यापि सतो भिक्षालाभादलाभमधिकगुण

अदेशे'च'भिक्षाम्'प्रति'निवृत्त-इच्छस्य' =तथा(=च) अयोग्य क्षेत्रविषै आहार लेनेकी (=भिक्षा प्रति) नहीं है(=निवृत्त)वाछा जिनकी अर्थात् मुनि ऐसा नहीं करते हैं कि जिस समय भूख लगे उसीकाल आहार को दौड़े जावैं और अयोग्यकालमें और अयोग्य क्षेत्रमें आहार ग्रहण करलें ॥

आवश्यक-परिहाणिम्'मनाक्'अपि' =आवश्यक क्रियाओंका घटाउ वा न्यूनता किंचित् भी

असहमानस्य' =सहन न करनेवाले अर्थात् क्षुधाके कारण चित्त न लगनेसे मुनि सामायिक आदि क्रियाओं को जैसे तैसे नहीं कर डालते और न वे ऐसा करते हैं कि क्रियायें जो दो वार तीनवार करना योग्य है उनको एकही वार भूखकी वेदनासे करे वा छोटीसी सामायिक करे अथवा और किसी प्रकारकी न्यूनता आवश्यक क्रियाओंमें करे।

स्वाध्याय-ध्यान-भावना-परस्य' =स्वाध्याय और ध्यानकी भावनामें तत्पर रहनेवाले

वहुकृत्व'स्वकृत-परकृत- =वहुतवार अपने थापेहुये तथा दूसरे(जे आचार्य तथा गुरु आदिक)निके कियेहुये नियत

अनशन-अवमोदर्यस्य'नीरस-आहारस्य' =उपवास, अवमोदर्य (तथा) नीरस आहारकरि युक्त है

तप्त-भ्राष्ट्रपतितजल विन्दु-कतिपय-वत्'सहसा'=तपाये हुये भूननेके पात्र(जैसे तवा कड़ाही)में कितनी पानीकी बूंदोंके गिरनेके समान तत्काल

परिशुष्क-पानस्य' =सूखगया है (ग्रहण किया हुआ)अन्नपान जिसका अर्थात् अनशन अवमोदर्य,नीरस आहार इन तपोंके निमित्तसे भूख प्यासकी ऐसी दाह उत्पन्न होती है कि जैसे तपाये हुयेपात्रमे पानी की बूंद तत्काल ही सूख जाती है तैसे आहार पानी मुनि ले तो तत्काल सूख जाता है।

उदीर्ण-क्षुद्-वेदनस्य' अपि'सत' =उठी हुई क्षुधाकी पीडा होनेपर भी

भिक्षा-लाभात्'अलाभम्'अधिक-गुणम्' =भिक्षाके लाभसे अलाभको अधिक गुणा

राजू सब लोक है उसमें चौदह राजू ऊंची एकराजू चौडी एक राजू लंबी नाल है उसमें ही त्रस जीव रहते हैं इसलिये इसको त्रसनाल कहते हैं इसके एकराजू ऊंचे एकराजू लंबे एकराजू चौडे भाग किये जावैं तो ऐसे चौदह भाग होंगे इस प्रत्येकको घानाकार रज्जूभाग कहते हैं संक्षेपसे इस प्रत्येक घनाकार राजूभागको श्रीपूज्य-पाद स्वामीने भाग माना है। इस त्रसनालके सबसे नीचले एक घनाकारराजूमें नित्यनिगोद पंचगोलक स्कंध अंडर इत्यादि हैं। इसके अनन्तर एक घनराजूमें माघवी सातवा नरक है, इसके लगता लगता ही एक एक घनाकार राजूमें मघवी छट्ठा, अरिष्टा पांचवां, अंजना चौथा, मेघा तीसरा नरक है इनके समीप ही एक घनाकार राजूमें वंशा दूसरा, धम्मा प्रथम नरक है फिर मध्यलोक है। मध्यलोकसे ऊपर तीनराजूमें प्रथम चार स्वर्ग हैं इनके अनन्तर एक घनाकार राजूमें ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर–लांतव–कापिष्ठ–चार स्वर्ग हैं, एकमें शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार हैं, एकमें आनत–प्राणत–आरण–अच्युत स्वर्ग हैं, एकमें नव ग्रीवक नव अनुदिश पंच अनुत्तर हैं॥ परस्थान विहारकी अपेक्षा सासादनगुणस्थानवर्ती देव तीसरे नरक तक विहार करै हैं सो मध्यलोकसे तीसरे नरक तक दो राजू हुये और ऊपर सोलह स्वर्गतक विहार करैं तब छह राजू ये हुये इसप्रकार आठराजू परस्थानविहार अपेक्षा स्पर्शनके हुये॥ मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानवर्ती जो केवल छठे नरक तकका मर सक्ता है यदि इस छठे नरकसे मारणातिक समुद्घात करै और बादर पृथिवीकायकादिमें लोकके अंत भागमें उत्पन्न हो तो छठे नरकसे मध्यलोक तक पांचराजू हुये और मध्यलोकसे लोकके अंततक स्पर्शनमें सात राजू ये हुये इसप्रकार मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानवर्ती त्रस नालके चौदह भागोंमेंसे बारह भाग स्पर्शे हैं॥

चतुर्दश ⁶।। भागाः ¹।। =चौदहराजू (=भागाः) (त्रसनाल) है

इति + अष्टौ ⁶।। द्वादश ⁶।। देशोनाः ⁶।। स्पृष्टाः ¹।। =(उसमेंसे) इसप्रकार कुछ हीन आठराजू अथवा कुछ हीन १२ राजू स्पर्शन किये [जाय हैं

द्वादशभागाः¹।। कथं स्पृष्टाः¹।। इति चेत् उच्यते =बारहराजू कैसे स्पर्शन किये जाय हैं ऐसे सदेह (=चेत्) होनेपर कहा जाता है

सप्तमपृथिव्या ⁵।। परित्यक्तः ¹।। सासादनादिगुणस्थान ¹।। =सातवां नरक करि वर्जित सासादन आदि गुणस्थानमें

एव मारणांतिकं ²।। विदधाति ᴵ इति नियमात् ⁵।। =ही मारणांतिक समुद्घातको जीव करता है ऐसे नियमसे।

सम्पाते तत्प्रतिकारप्राप्तिं प्रति निवृत्तेच्छस्य पूर्वानुभूतशीतप्रतिकारहेतुवस्तूनामस्मरतो ज्ञान भावनागर्भागारे वसत शीतवेदनासहनं परिकीर्त्यते।३।निवाते निर्जले ग्रीष्मरविकिरणपरिशुष्क-पतितपर्णव्यपेतच्छायातरुण्यटव्यन्तरे यदृच्छयोपनिपतितस्यानशनाद्यभ्यन्तरसाधनोत्पादित-दाहस्यदवाग्निदाहपरुपवातातपजनितगलतालुशोषस्यतत्प्रतिकारहेतून्बहूननुभूतानचिन्तयत प्राणिपीडापरिहारावहितचेतमश्चारित्ररक्षणमुष्णासहनमित्युपवर्ण्यते ॥ ४ ॥ दशमशकग्रहणम्

सम्पाते॰'तत् प्रतिकार-प्राप्तिं॰''प्रति॰ =चलनेपर उन (पालेके पड़ने और ठडी वायुके चलने) के उपायकी प्राप्तिके लिये
निवृत्त-इच्छस्य॰' पूर्व- =जाती रही है इच्छा जिसकी, पूर्वकाल (गृहस्थ अवस्था) में
अनुभूत-शीत प्रतिकार-हेतु-वस्तूनाम्॰''' =शीतके उपचारके (अर्थात् दवानेके) कारण जा पदार्थ भोगे थे तिनकी
अस्मरत॰'ज्ञान भावना गर्भ आगारे॰'वसत॰' =नहीं है सुधि जिसके ज्ञानभावनारूपी गर्भ गृहमें वसने वाले(मुनि)के
शीत-वेदना सहनम्॰''' परिकीर्त्यते ॥ ३ ॥ =शीत परीषहका सहना वा ठण्ड वेदनाकी जय प्रशंसा कीजाती है ॥ ३ ॥
निपाते॰ "निर्जले॰'''ग्रीष्मरवि किरण परिशुष्क- =वायु रहित (=निपाते) जल रहित (वनोंमें), उष्ण सूर्यकी किरणों द्वारा सूखकरि
पतितपर्ण-व्यपेतच्छाया तरुणि॰'''अटवी [वा अटवि] =गिरगये हैं पत्ते जिनके ऐसे छाया रहित पेडों सहित वनोंके
अन्तरे॰'यदा-ऋच्छय-उपनिपतितस्य॰' =अन्तरमें जहा इच्छा है [=यदा-ऋच्छय] तहा तिष्ठनेवाले मुनिके (तथा)
अनशनादि-अभ्यन्तर-साधन =अनशन आदि (तप) रूप अन्तरग कारण [साधन] करि
उत्पादित-दाहस्य॰'दव अग्नि दाह परुष =उपजा है दाह जिस[मुनि]के,वहुरि जलती (=दव) अग्निरूप जलती हुई [=दाह]कठोर
वात आतप जनित गल- तालु शोषस्य॰' =वायुके उष्णता [=आतप]से सूख गये है कंठ [=गल] और तालु जिस[मुनि]के
तत् प्रतिकार-हेतून्॰'बहून्॰'अनुभूतान्॰' =उस [आतप]के उपचार, वा उपायके कारण (पूर्वमें) बहुत भोगे हुये (भोगों)को
अचिन्तयत॰'प्राणिन्-पीडा-परिहार-अवहित- =स्मरण न करनेवाले, (मुनि) के, प्राणियोंके कष्टके निवारणमें लगा हुआ है(=अवहित)
चेतस॰ चारित्र-रक्षणम्॰'''उष्ण-सहनम्॰''' =चित्त जिस (मुनि)के, चारित्रकी रक्षाके लिये उष्णका सहना
इति॰उपवर्ण्यते ॥ ४ ॥ दश-मशक-ग्रहणम्॰''' =इस प्रकार वर्णन किया गयाहै॥४॥(इस सूत्रमें)दंश (=डांस) मशक(=मच्छर)का लाना

उपलक्षणं। यथा काकेभ्यो रक्ष्यतां सर्पिरिति उपघातोपलक्षणं काकग्रहणं, तेन दंशमशक-मक्षिकापिकशुकपुत्तिकामत्कुणकीटपिपीलिकावृश्चिकादयो गृह्यन्ते ॥ तत्कृतां बाधामप्रतिकारां सहमानस्य तेषां बाधां त्रिधाऽप्यकुर्वाणस्य निर्वाणप्राप्तिमात्रसंकल्पप्रावरणस्य तद्वेदनासहनं दंशमशकपरिषहक्षमेत्युच्यते ॥ ५ ॥ जातरूपवन्निष्कलङ्कजातरूपधारणम्

उपलक्षणम् =उदाहरणरूपसे अथवा बानिगीरूपसे अथवा दृष्टान्तरूपसे है ।

यथा*काकेभ्यः रक्ष्यताम् T सर्पिः =जैसे काकोंसे घी (=सर्पिस्) रक्षित कियाजाय

इति*काकग्रहणम् उपघात-उपलक्षणम् =इस प्रकार काकका ग्रहण (घीके) नाशमें दृष्टान्तरूप, उदाहरण वा बानगी रूपमें है अर्थात् घीकी नष्टता काक, कुत्ता, बन्दर, बिल्ली, चील, गिद्ध, इत्यादिक सबसे बचाई जाय

तेन दंश-मशक-मक्षिका- =तिस (दंश-मशक-ग्रहण) करि डांस (=दंश) मच्छर (=मशक)मक्खी (मक्षिका-मचीका)

पिक-शुक-पुत्तिका-मत्कुण- =कोयल-कोकिल[=पिक]तोता वा सुगा=शुक)छोटी मक्खी वा कीड़ा(=पुत्तिका)खटमल(=मत्कुण)

कीट-पिपीलिका-वृश्चिक-आदयः गृह्यन्ते।।=कृमि वा कीड़ा (=कीट) चिउंटी(=पिपीलिका)वीछी आदि ग्रहण कियेजाते हैं वा लिये जाते हैं

तत्-कृताम् बाधाम् अप्रतिकाराम् =तिन (दंश-मशक आदि) की कीहुई बाधाको बिना उपचार वा बिना उपाय किये हुये

सहमानस्य तेषाम् बाधाम् =सहनेवाले (साधु) के तिन (=दंश-मशक)की पीड़ाको

त्रिधा*अपि* अकुर्वाणस्य =तीन प्रकार [मन-वचन-काय] के भी नहीं है विकार जिसके [और]

निर्वाण-प्राप्तिमात्र-संकल्प-प्रावरणस्य =मोक्ष प्राप्ति की जो संकल्प तिस मात्र है [शरीर पर] आवरण जिसके

तद्-वेदना-सहनम् दंश-मशक- =उन [पूर्व कथित दंशमशक आदिक] की पीड़ाका सहना दंशमशक

परिषह-क्षमा इति*उच्यते T ॥ ५ ॥ =परिषहका सहना (क्षमा) ऐसा वर्णित है ॥ ५ ॥

जातरूपवत् * निष्कलंक- =जन्मित स्वरूपके सदृश अर्थात् जैसे बच्चा नंगाउपजता है वैसो नग्नता कलक रहित वा निर्दोष

जात-रूप-धारणम् =[मुनिका]नग्नपनेका धारण करना है भावार्थ जब बालक उत्पन्न होता है तब वह नग्नहोता है उसको जातरूप जन्मित स्वरूप वा नाग्न्य कहते हैं वह[=नग्नता किसी संसस्कारसे नहीं]स्वतः सिद्धहै, बालककी नग्नता निर्दोष होती है उसको नंगे रहनेमें राग,द्वेष,संकोच और हया नहीं होतीहै ॥

अशक्यप्रार्थनीयं याचनरक्षणहिंसनादिदोषविनिर्मुक्तं निष्परिग्रहत्वान्निर्वाणप्राप्तिंप्रत्येकंसाधनमनन्यबाधनं नाग्न्यं बिभ्रतोमनोविक्रियाविप्लुतिविरहात् स्त्रीरूपाण्यत्यन्ताशुचिकुणपरूपेणभावयतो

और न वह (बालक) स्त्री भोग इत्यादि जानता है, उसी बालकके समान दोष, कलक, सकोच, विषय वासना इत्यादिक रहित मुनि अवस्थामें (को) धारण की हुई नग्नता होती है,

अशक्य-प्रार्थनीयम्॥''' =(नग्नता) इच्छाकियेजानेयोग्य (=प्रार्थनीय वैद्यकोश पृष्ठ ४६१) नहीं हो सक्ती है (=अशक्यम्) अर्थात् नग्न होनेका कोई इच्छुक नहीं होता अथवा नग्नपना प्राथना किये जाने योग्य(=प्रार्थनीय) नहीं हो सक्ता है (=अशक्यम्) अर्थात् नगा होनेके लिये कोई प्रार्थना नहीं करता। यदि 'अ' को शक्य और प्राथनीय दोनों पर लगावें तो निम्न अनुवाद भी हो सक्ता है।

अशक्यम्॥''' =(नग्नता वा जातिरूप अन्यकरि)नहीं धारणकी जासक्ती है भावार्थ ऐसे जान पड़ता हैकि नग्नताको धारण वही मनुष्य कर सक्ता है जिसके विचार शुद्ध पवित्र निर्दोष और निष्कलक होवें और बालकके सदृश सकोच और विकार रहित हावें और स्त्रीके रूपको महाअशुचि और दुर्गन्ध देखै, ऊपरके कहे हुये पुरुषके अतिरिक्त दूसरे ऐसीनग्नताके रखनेमें असमर्थ हैं अशक्य हैं॥

अप्रार्थनीयम्॥''' =(नग्नता) प्रार्थना किये जाने योग्य नहीं है, अथवा वाछा किये जाने योग नहीं है अर्थात् नग्न होनेकी कोई भी प्रार्थना नहीं करता है और कोई भी नग्न रहना नहीं चाहता है

याचन-रक्षण हिंसन-आदि-दोष-विनिर्मुक्तम्॥'''निष्परिग्रहत्वात्॥''' =पालन, पोषण (जीवकी) हिंसा आदिक दोषोंसे (नग्नपना) =वर्जित है, निर्ग्रन्थपनासे अर्थात् बाह्य अभ्यन्तरकी परिग्रहके त्यागपनासे

निर्वाण-प्राप्तिम्॥''प्रति॰एकम्॥'' =मोक्षके प्राप्तिके लिये (=प्राप्तिम्-प्रति) एक अथवा अद्वैत (नग्नपना)

साधनम्॥'''अन्-अन्य-बाधनम्॥''' =कारण,उपाय वा साधन है,अन्यकी बाधासे रहित है अर्थात् "यामें किछु बाधा नाहीं है"वचनिका०

नाग्न्यम्॥'''बिभ्रत॥'मनो विक्रिया-विप्लुति-विरहात्॥'स्त्री- =नग्नपनाको प्राप्त होनेवाले वो धारण करनेवाले (मुनिके) मनो विकारका =व्यसन (=विप्लुति) न होनेके हेतुसे स्त्रियोंके वा नारियोंके

रूपाणि॥'''अत्यन्त अशुचि- =रूपोंको अत्यन्त अपवित्र शुद्धतासे रहित

कुणप-रूपेण॥''' भावयत॥' =तथा (अत्यन्त) दुर्गन्ध रूपकरि भावने वाले मुनिके तथा

रात्रिन्दिवं ब्रह्मचर्यमखण्डमातिष्ठमानस्याचेलव्रतधारणमनवद्यमवगन्तव्यम्॥६॥ संयतस्येन्द्रि-येष्टविषयसम्बधं प्रति निरुत्सुकस्य गीतनृत्यवादित्रादिविरहितेषु शून्यागारदेवकुलतरुकोटर-शिलागुहादिषु स्वाध्यायध्यानभावनारतिमास्कन्दतो दृष्टश्रुतानुभूतरतिस्मरणतत्कथाश्रवण-कामशरप्रवेशनिर्विवरहृदयस्य प्राणिषु सदासदयस्यारतिपरिषहजयोऽवसेयः॥७॥एकान्तेष्वारा-मभवनादिप्रदेशेषु नवयावनमदविभ्रममदिरापानप्रमत्तासुप्रमदासु बाधमानासु कूर्मवत्संहृतेन्द्रिय-हृदयविकारस्य ललितस्मितमृदुकथितसविलासवीक्षणप्रहसनमदमन्थरगमनमन्मथशर व्यापार-

---

रात्रिम्-दिवम्*ब्रह्मचर्यम्२/१'''अखंडम्२/१'''आतिष्ठमानस्य६/१'=निशिदिन [रात्रिदिवम्=रात्रिदिवा अव्यय है'] ब्रह्मचर्य अखंड पालनेवाले(मुनि)के
अचेल-व्रत-धारणम्१/१'''अनवद्य'१/१''अवगन्तव्यम१/१'''॥६॥=नाग्न्य (=अचेल)व्रतका पाप रहित धारण जानना चाहिये ॥६ ॥
संयतस्य६/१'इन्द्रिय-इष्ट-विषय-संबंधम२/१' =संयमी [मुनि] इन्द्रियोंके इष्ट भोगोंके सम्बन्धकी
प्रति-निरुत्सकस्य६/१',गीत-नृत्य-वादित्र- =ओर (=प्रति) उत्साह रहित है, गीत, नृत्य, बाजे
आदि-विरहितेषु७/३'शून्य-आगार-देवकुल-तरु-कोटर-शिला=आदिक वर्जित जे सूने स्थानमें मंदिर (=देवकुल)वृक्षोंके समूह (=कोटर) शिला
गुहादिषु७/३'स्वाध्याय-ध्यान-भावना-अरतिम्२/१'' =गुफा आदिकमें स्वाध्याय ध्यानकी भावनामें लगा है
आस्कन्दतः६/१'दृष्ट- =चित्तजिसका[शब्दार्थ स्वाध्याय और ध्यान भावनामें अरतिका कियाहैनिरादर जिसने]
श्रुत-अनुभूत-रतिस्मरण-तत्कथाश्रवण-काम-शर- =सुनीहुई भोगी हुई प्रीतिकी स्मृति,उस[रति]की कहानीका सुनना तथा कामबानके
प्रवेश-निर्विवर-हृदयस्य६/१'प्राणिषु७/३'सदा-सदयस्य६/१' =प्रवेशकरि नहीं छेदा गया है हृदय जिसका,जीवोंमें सदा दयान्वित [सदय](मुनि)के
अरति-परिषह-जयः१/१'अवसेयः१/१';७एकांतेषु७/३'आरामभवन=अरति परिषहका जीतना जानना चाहिये॥एकान्त उद्यान वा उपवन(=आरामभवन)
आदि-प्रदेशेषु७/३'नवयौवन-मद-विभ्रम-मदिरापानप्रमत्तासु=आदिस्थानोंमें(=प्रदेशेषु)तारुण्य, अहंकार(=मद)विभ्रम,सुरापीकरउन्मत्त [=प्रमत्त]
प्रमदासु७/३'बाधामानासु७/३''कूर्मवत्*संहृत-इन्द्रिय- =सुन्दर स्त्रियोंके(=प्रमदासु)बाधाकरनेपरकछवेके सदृशसंकोचरूप हुई हैं इन्द्रियऔर
हृदय-विकारस्य६/१'ललित-स्मित-मृदु-कथित-सविलास- =हृदयके विकार जिस(मुनि)के, मनोहर मंदहास्य(=स्मित) कोमलभणित विलास सहित
वीक्षण-प्रहसन-मद-मन्थर-गमन-मन्मथ-शर-व्यापार- =देखना (=वीक्षण) हसना मदमाती धीमी चाल कामके बाणरूप व्यापारको

विफलीकरणस्य स्त्रीबाधापरिषहसहनमवगन्तव्यम् ॥८॥ दीर्घकालमुषितगुरुकुलब्रह्मचर्यस्या-
धिगतबन्धमोक्षपदार्थतत्त्वस्य संयमायतनभक्तिहेतोर्देशान्तरातिथेर्गुरुणाऽभ्यनुज्ञातस्य पव-
नवन्निःसङ्गतामङ्गीकुर्वतो बहुशोऽनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागादिबाधापरिक्रान्त-
कायस्य देशकालप्रमाणोपेतमध्वगमनं संयमविरोधिपरिहरतो निराकृतपादावरणस्य परुषशर्क-
राकण्टकादिव्यथनजातचरणखेदस्यापि सतः पूर्वोचितयानवाहनादिगमनमस्मरतो यथाकाल-
मावश्यकापरिहाणिमास्कन्दतश्चर्यापरिषहसहनमवसेयम् ॥ ९ ॥

विफली-करणस्य, स्त्रीबाधा-परिषहसहनम्, अवगन्तव्यम्=विफल करनेवाले(मुनि)के स्त्री जनितपीड़ा वा परिषहका सहना जानना चाहिये।८।
दीर्घ-कालम्, उषित-गुरुकुल ब्रह्मचर्यस्य, =बहुत काल रहे हुये (=उषित) गुरुकुलमें ब्रह्मचर्य धारक(मुनि)के
अधिगत-बंध-मोक्षपदार्थ-तत्त्वस्य, संयम- =बंधमोक्ष पदार्थों के यथार्थ स्वरूप (=तत्त्व)का ज्ञानहुआ जिस [मुनि]के संयमके
आयतन-भक्ति-हेतो, देशान्तर-अतिथे, =मंदिर वा तीर्थस्थानकी भक्तिके कारणसे अन्यदेशमें(गमन करनेवाले) अतिथि(मुनि)के
गुरुणा, अभ्यनुज्ञातस्य, =गुरुद्वारा (=गुरुणा) आदेश कियेगये (मुनि)के अर्थात् गुरुके आज्ञाकारी(मुनि)के
पवनवत् निःसंगता, अंगीकुर्वत, बहुशस् =वायुके सदृश निःसंगपनेका स्वीकारकरनेवाले (मुनि)के बहुतवार (=बहुशस्)
अनशन-अवमोदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग आदि=अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्यागादिक (तप) की
बाधा-परिक्रान्त-कायस्य, देश काल-प्रमाण-उपेतम्, =पीडाकरि क्षीण हुआ है काय जिस(मुनि)का, देशकालके प्रमाण सहित
अध्वन्-गमनं, संयम विरोधिन्-परिहरत, निराकृत- =गमनको मार्गमें (ऐसा)कि संयम न विराधाजाय जिस (मुनि)का, त्याग हुआ है
पाद-आवरणस्य, परुष-शर्करा-कण्टक-आदि- =पादोंके(जोडे आदि)आवरण जिस(मुनि)के, कठोर कंकडकी भूमि तथा कांटे आदि
व्यथनजात-चरणखेदस्य, अपि सत, पूर्व-उचित- =छिदिकर पावोंको खेद हुआ है जिस(मुनि)के, तौभी (गृहस्थावस्थामें) योग्य
यान-वाहन-आदि-गमनम्, अस्मरत, =शिविका [=यान], रथ, मशोली[=वाहन]आदिमें गमनको सुधि न करनेवाले(मुनि)के
यथाकालम् आवश्यका-परिहाणिम्, आस्कन्दत, =समयानुसार आवश्यक क्रियाओंके घटाउ वा हीनतामें निरादर करनेवाले(मुनि)के
चर्या-परिषह-सहनम्, अवसेयम्, ॥ ९ ॥ =चर्या परिषहका सहन जानना चाहिये ॥ ९ ॥

श्मशानोद्यानशून्यायतनगिरिगुहागव्हरादिष्वनभ्यस्तपूर्वेषु निवसत आदित्यस्वेन्द्रियज्ञान-प्रकाशपरीक्षितप्रदेशे प्रकृतनियमक्रियस्य निषद्यां नियमितकालमास्थितवतः सिंहव्याघ्रादि-विविधभीषणध्वनिश्रवणान्निवृत्तभयस्य चतुर्विधोपसर्गसहनादप्रच्युतमोक्षमार्गस्य वीरासनोत्कु-टिकाद्यासनादविचलितविग्रहस्य तत्कृतबाधासहनं निषद्यापरिषहविजय इति निश्चीयते॥१०॥ स्वाध्यायध्यानाध्वश्रमपरिखेदितस्य मौहूर्तिकीं खरविषमप्रचुरशर्कराकपालसङ्कटातिशीतो-ष्णेषु भूमिप्रदेशेषु निद्रामनुभवतो

श्मशान-उद्यान-शून्य-आयतन-	=मरघट (=श्मशान) उपवन (=उद्यान) सूनी बैठक वा स्थान (=आयतन)
गिरिगुहा-गव्हरादिषु अन्-अभ्यस्त-पूर्वेषु	=पर्वतकी गुफा वा कंदरा, कुंज वा बेलोंके मंडप आदिमें जो प्रथम अभ्यासमें नहीं आये वा परिचय नहीं कियेगये अर्थात् जिनमें पहिले नहीं रहे
निवसतः आदित्य-स्व-इन्द्रियज्ञान-प्रकाश-	=(उनमें) निवास हुआ है जिस (मुनि) का, सूर्य तथा अपनी ज्ञान इन्द्रियके प्रकाशसे
परीक्षित-प्रदेशे प्रकृत-नियम-क्रियस्य	=परीक्षा किये हुये स्थानमें आरम्भ हुई है नियमकी क्रिया जिस मुनि) की
निषद्याम् नियमित-कालाम् आस्थितवतः सिंह-	=आसनको नियमित समयके लिये माढ़नेवाले (मुनि)को सिंह
व्याघ्र-आदि-विविध-भीषण-ध्वनि-श्रवणात्	=बघेरा आदिके नाना प्रकारके भयानक शब्द सुननेसे
निवृत्त-भयस्य चतुर्विध-	=जाता रहा है भय जिस (मुनि)का, चार प्रकार (देव, मनुष्य, पशु, अचेतनकृत)
उपसर्ग-सहनात् अप्रच्युत-मोक्ष-मार्गस्य वीरासन	=उपद्रवके सहनेसे नहीं छुटा है मोक्ष मार्ग जिसका, वीरासन,
उत्कुटिक-आदि-आसनात् अविचलितविग्रहस्य	=उत्कुटिक, आदि आसनसे अविचलित है काय (=विग्रह) जिस (मुनि)का
तत्-कृतबाधा-सहनम् निषद्या-परिषह-विजयः	=उन(शूरासन,उत्कुटिकादि आसन)की करीहुई पीड़ाका सहन,निषद्या परिषहका विजय
इति निश्चीयते ॥१०॥ स्वाध्याय-ध्यान-अध्वन्-	=इस प्रकार निश्चय किया गया है ॥१०॥ स्वाध्यायके,ध्यानके (तथा) के=अध्वन्)
श्रम-परिखेदितस्य मौहूर्तिकीम् खर-विषम-	=श्रम वा कष्टसेथकेहुये(मुनि)के मुहूर्त मात्र कठोर(=खर)ऊंची नीची वा असमान(विषम)
प्रचुर-शर्करा-कपाल-संकट-	=बहुत ककरारही(=शर्करा)ठिकारियाई(=कपाल) सिकड़ी हुई अर्थात् जहां शरीर पसरनसके
अतिशीत-उष्णेषु भूमिप्रदेशेषु निद्रां अनुभवतः	=बहुत ठंडी तथा बहुत उष्णभूमि प्रदेशोंमें नींदका अनुभव करनेवाले(मुनि)के

यथाकृतैकपार्श्वदण्डायतादिशायिन प्राणिबाधापरिहाराय पतितदारुवद्व्यपगतासुवदपरिवर्तमानस्य ज्ञानपरिभावनावहितचेतसोऽनुष्ठितव्यन्तरादित्रिविधोपसर्गादप्यचलितविग्रहस्यानियमितकाला तत्कृतबाधा क्षममाणस्य शय्यापरिषहक्षमा कथ्यते ॥ ११ ॥

यथाकृत-	=कियेहुयेके अनुसार अर्थात् आरम्भमें द्रव्य,क्षेत्र,काल,भावका विचारकर मुनि जैसा कुछ लेटनेका आसन वा अवस्था धारण करले उसके अनुसार
एक-पार्श्व दण्डायित-आदि शायिन ६ प्राणिन्-	=एक करवट (सीधा टेढ़ा) (अथवा)सीधे डंडाकार आदि सोनेवाले(मुनि)के, प्राणियोंकी
बाधा-परिहाराय४ पतितदारुवत्*व्यपगत-	=पीड़ा निवारणके लिये गिरेहुये वा परेहुये काठ सदृश (अथवा)छूट गये है [=विपगत]
असुवत्*अपरिवर्तमानस्य६ ज्ञान-परिभावना-	=प्राण[=असु]जिसके तिस समान परिवर्तन रहित (=अ-परिवर्तमानस्य) वा निश्चल-लेटे हुये (अ-परिवर्तमानस्य) (मुनि)के ज्ञानके,वारवार विचारनेमें (=परिभावना)
अवहित-चेतस ६ (१)अनुष्ठित व्यन्तरादि विविध-	=लगा है(=अवहित)चित्त जिस(मुनि)का,कियेहुये(=अनुष्ठित)व्यन्तरादिदेवोंके कई प्रकारके
उपसर्गात्५ अपि*अचलित-विग्रहस्य६ आ-नियमित-	=उपद्रवोंसे भी नहीं चलायमान हुआ है शरीर (=विग्रह) जिस (मुनि)का, नियमित
कालाम्२ तत्-कृत-बाधा२ क्षममाणस्य६	=समय लग [=आ] उस [काल] में कीगई पीड़ा को सहते हुये (मुनि)के
शय्या परिषह-क्षमा१ कथ्यते ॥ ११ ॥	=शयन पीड़ाका सहारना कहागया है ॥ ११ ॥

(१)"अनुष्ठितव्यन्तरादिविविधोपसर्गादप्यचलितविग्रहस्यानियमितकालात्तत्कृतबाधां क्षममाणस्य' यहपाठमुद्रितसर्वार्थसिद्धिवृत्तिकेप्रथमा वृत्तिमें है 'अनुष्ठितव्यन्तरादिविविधोपसर्गादप्यचलितविग्रहस्यानियमितकाला तत्कृतबाधाक्षममाणस्य" यह पाठ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके द्वितीयावृत्तिका है यह पाठ तीन हस्तलिखित प्रतियोंके पत्र ८९ ६६, १७६ पर क्रमसे है"विग्रहस्य। अनियमितकाला' विग्रहस्यानियमितकाला के स्थानमें उपर्युक्त हस्तलिखित प्रतियोंमें है ॥ प्रथम पाठके आ नियमित कालात् तत्कृतबाधाम् क्षममाणस्य = निश्चितकाल तक(=आ)उन(व्यन्तरादि)की बाधाको सहन करते हुये(मुनि)के॥ अनियमितकालात्तत्कृतबाधाम् क्षममाणस्य = अनिश्चितकालमें(को)उन(व्यन्तरादि)की बाधाको सहन करते हुये(मुनि)के।

'आ नियमित कालाम् तत्कृतबाधाम् क्षममाणस्य' = निश्चितकाल तक (=आ) उन(व्यन्तरादि)की बाधाको सहन करते हुये (मुनि)के क्योंकि श्रीयुत पाणिनिजीकी अष्टाध्यायी अध्याय२ पाद१ सूत्र १३से द्वितीया विभक्ति और पंचमी अपादान् विभक्ति दोनों आङ् उपसर्गके साथ अभिविधि और मर्यादा अर्थमें आती हैं॥ प० जयचन्दरायजीने प्रथम अर्थ ग्रहण किया है कि "व्यन्तरादिके उपसर्ग होते भी नहीं चलाया है शरीर ज्यां, जेते काल नियम कीया तेते काल जेती बाधा आवे तेतो सहै हैं" तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकमें तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकमें यह तथा इसके सदृश कोई वाक्य नहीं है इसलिये हमको प० पन्नालालदूनीवालेके अनुवादमें कुछ भी नहीं मिला है, प० पन्नालालन्यायदिवाकरजीने मूलमें संस्कृत वाक्य न होते हुये भी निम्नवाक्य पत्र १५२८पर दिया है "व्यन्तरादिकके उपसर्ग होते भी नहीं चलाया है शरीर जिन जेतेकाल नियम किया तेते

मिथ्यादर्शनोद्दप्तामर्षपरुषावज्ञानिन्दासभ्यवचनानि क्रोधाग्निशिखाप्रवर्धनानि शृण्वतोऽपि त-दर्थेष्वसमाहितचेतसः सहसा तत्प्रतिकारं कर्तुमपि शक्नुवतःपापकर्मविपाकमभिचिन्तयतस्ता-न्याकर्ण्य तपश्चरणभावनापरस्य कषायविषलवमात्रस्याप्यनवकाशमात्महृदयं कुर्वत आक्रोशपरि-षहसहनमवधार्यते॥१२॥ निशितविशसनमुशलमुद्गरादिप्रहरणताडनपीडनादिभिर्व्यापाद्यमानशरी-रस्य व्यापादकेषु

मिथ्यादर्शन–उद्दप्त–आमर्ष–परुष–अवज्ञा–	=मिथ्यादर्शनसे गर्वित(=उद्दप्त)(जीव)के क्रोधकेभरेहुये(=आमर्ष)कठोर(परुष)अनादर
निन्दा–असभ्य–वचनानि[३]'''	=निंदारूप,सभ्यतासे रहित(=असभ्य)अपात्र(=असभ्य)वा नीच (=असभ्य) वचनको
क्रोध-अग्नि-शिखा-प्रवर्धनानि[३]''' शृण्वतः[६]' अपि*	=जो सुननेवाले(=शृणवतः)के भी क्रोधरूपी अग्निकीज्वालाको बढ़ानेवाले होते हैं
तद्-अर्थेषु[७]' असमाहित–चेतसः[६]',	=उनकेप्रयोजन वा हेतुओंमेंचित्तको नहीं लगानेवाले (मुनि)के[अर्थात् उपर्युक्तशूल समान वचनोंको श्रवण करनेपर भी मुनिके शुद्ध परिणाम (=समाहित) रहते हैं]
सहसा*तत्–प्रतिकारम्[२]' कर्तुम्[२]' अपि*शक्नुवतः[६]'	=तत्काल उन(वचनों)का उपचार वा उपाय करनेकी सामर्थ्ययुक्त होते हुये भी
पाप–कर्म–विपाकम्[२]' अभिचिन्तयतः[६]' तानि[३]।''	=[अपने] पापकर्मके उदय [=विपाक]के विचार युक्त [मुनि]के, तिन [वचनों]को
आकर्ण्य÷तपश्चरण–भावना-परस्य[६]' कषाय–विष-	=सुनकर तपश्चरणकी भावनामें प्रवीण वा तत्पर (मुनि)के, क्रोध रूपी विषको
लवमात्रस्य[६]।।। अपि*अन्-अवकाशम्[२]' आत्महृदयम्[२]'''	=तनिकमात्र भी अवकाश अपने (=आत्म)हृदयको नहीं करनेवाले (मुनि)के,
कुर्वतः[६]', आक्रोश–परिषह–सहनम्[१]''' अवधार्यते ॥१२॥	=आक्रोश पीड़ाका सहना निश्चय किया जाता है ॥ १२ ॥
निशित–विशसन-मुशल-मुद्गरादि-प्रहरण-ताडन–	=तीक्ष्ण खड्ग(=विशसन) मूसल मोगरी वा मुगरा आदिक अस्त्र(प्रहरण)कर ताड़नेसे
पीडन-आदिभि[३]' व्यापाद्यमान–शरीरस्य[६]' व्यापादकेषु[७]'	=पीड़ने आदिकसे बाध्या है शरीर जिस (मुनि)का घात करनेवालोंमें

काल जेतो बाधा आवै तेतोसहै''अब हमको देखना यह है कि अनियमित कालका क्या अर्थ है कोशोंमे अनियमितका अर्थ अमित, अपरमित, मापा हुआ जो न होवे,बिना मर्यादा ऐसा है। श्रुतसागरी टीकाके पत्र २४० पर इस शब्दके स्थानमें अमितकाल लिया है जैसाकि निम्न वाक्यसे प्रगट है "भूत प्रेतादि विहित नानोपसर्गोऽपि अविलिनांग(अविलीनांग)अमितकाल तद्विहितबाधां क्षमते"।

भूत-प्रेतादि-विहित-नाना-उपसर्गः-अपिअमितकाल-	= व्यंतरादिकोंसे कियेहुये भांति २ के उपद्रव आनेपर भी अपरिमित, अनिश्चित समय लग
अविलनांग-तद्-विहित-	=नहीं चलायमान हुआ है(=अविलिन)शरीर(=अंग)जिसका उन(भूत-प्रेतादिकों)की कीहुई
बाधाम् क्षमते।	=बाधाको सहताहै नियमित कालसे विरुद्ध अमित कालहै,हमारा अर्थ जयचन्दजीकेअनुकूल है

वराका. किं कुर्वन्ति, शरीरमिदं ज-मनागपि मनोविकारमकुर्वतो ममपुराकृतदुष्कर्मफलमिदमिमे वराका. किं कुर्वन्ति, शरीरमिदं जलबुद्बुदवद्विशरणस्वभावं व्यसनकारणमेतैर्व्याबाध्यते, संज्ञानदर्शनचारित्राणि मम न केनचिदुपहन्यन्ते इति चिन्तयतो वासितक्षणचन्दनानुलेपनसमदर्शिनो वधपरिषहक्षमा मन्यते ॥१३॥ बाह्याभ्यन्तरतपोऽनुष्ठानपरस्य तद्भावनावशेन निस्सारीकृतमूर्तेः पटुतपनतापनिष्पीतसारतरोरिव विरहितच्छायस्य त्वगस्थिशिराजालमात्रतनुयन्त्रस्य प्राणवियोगे सत्यप्याहारवसतिभेषजादीनि दीनाभिधानमुखवैवर्ण्याङ्गसंज्ञादिभिरयाचमानस्य भिक्षाकालेऽपि विद्युदुद्योतवत्

मनाक् अपि मनस् विकारम् अकुर्वत मम पुरा-कृत = किंचित्‌भी चित्तमें विकारको न करनेवाले (मुनि)के [जो ऐसा विचारे हैकि]मेरे पूर्व
दुष्कर्म-फल इदं इमे वराका किं कुर्वन्ति। = खोटे कर्मों का यह फल है, ये (घात करनेवाले) रंक क्या करसकते हैं।
शरीर इदं जलबुद्बुदवत् विशरण-स्वभावम् = यह शरीर पानीके बुद्बुलेके समान विनाशीक (=विशरण) स्वभाव वाला है।
व्यसन-कारण एतैः व्याबाध्यते, = कष्ट वा (=व्यसन) कारण है, (सो यह शरीर) इन(दुष्ट मारनेवाले जीवों)करि बाधाजाताहै
सज्ञान-दर्शन-चारित्राणि मम न केन चित् = सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्‌चारित्र मेरे किसीकरि नहीं
उपहन्यन्ते इति चिन्तयन = हने जाते हैं, इस प्रकार विचार करनेवाले (मुनि)के
वासित क्षण चन्दन अनुलेपन-समदर्शिन वध-परिषह- = खड्गसे काटने,(=वासित) चन्दनके लेपनके समान देखनेवाले(मुनि)के वध परिषहका
क्षमा मन्यते॥१३॥ बाह्य अभ्यन्तर तपस् अनुष्ठान= सहना जाना जाता है वा माना जाता है ॥१३॥ बाहिर और अंतरंगके तपकरने में
परस्य तद् भावना-वशेन निस्सारी-कृत-मूर्तेः = तत्पर वा प्रवीण(मुनि)के [तप]के अनुचिंतनके वशसे साररहितहुई हैमूर्तिजिस(मुनि)की
पटु-तपन ताप निष्पीत सार-तरोः इव विरहितच्छायस्य = तीव्र(=पटु)सूर्यके (=तपन)तापकरि साररहित छाया वर्जित अर्थात्सूखे वृक्षसम
त्वक्-अस्थि-शिरा सिरा)-जालमात्र-तनु-यन्त्रस्य = चाम(=त्वक)हाड़(=अस्थि)नसा(=सिरा)जालमात्ररहगया है देहरूपीयन्त्रजिस(मुनि)का
[जैसे सूर्यकी उष्णतासे वृक्ष सूखजाते हैं तैसे तपसे मुनिके चाम,हाड़, नशा रह जाते है।]
प्राण-वियोगे सति अपि आहार-वसति-भेषज- = प्राणके वियोग वा विच्छेद होनेपर(=सति)भी भोजन रहनेका स्थान(=वसति) औषध,
आदीनि दीन-अभिधान-मुखवैवर्ण्य-अङ्गसंज्ञादिभि = आदिदीनवचनकरि-मुखकोविलखावनेकरि वा मुखकीविवर्णताकरिअंगकीसमस्याआदिसे
अ-याचमानस्य भिक्षा-काले अपि विद्युत उद्योतवत् = याचना न करनेवाले(मुनि)के भिक्षाके समयमें भी बिजलीके उद्योत सदृश

दुरुपलक्ष्यमूर्तेर्याचनापरिषहसहनमवसीयते ॥१४॥ वायुवदसङ्गादनेकदेशचारिणोऽभ्युपगतैक-कालसम्भोजनस्य वाचंयमस्य तत्समितस्य वा सकृत्स्वतनुदर्शनमात्रतन्त्रस्य पाणिपुटमात्र-पात्रस्य बहुषु दिवसेषु बहुषु च गृहेषु भिक्षामनवाप्याप्यसंक्लिष्टचेतसो दातृविशेषपरीक्षा-निरुत्सुकस्य लाभादप्यलाभो मे परमं तप इति सन्तुष्टस्यालाभविजयोऽवसेयः ॥ १५ ॥

दुर् -उपलक्ष्य-मूर्तेः६/१ याचना-परिषह-सहनम्१/१ =कठिनतासे देखनेमें आया है शरीर जिस(मुनि)का, याचना पीड़ाका सहना अथवा झेलना अवसीयते॥१४॥ वायुवत्* असंगात्५/१ अनेक-देश- =निश्चय किया जाता है ॥१४॥ पवनके सदृश निर्लेपतासे बहुत स्थानोंमें

चारिणः६/१ एककाल-अभ्युपगत-सम्-भोजनस्य६/१ =विचरनेवाला (मुनि)के, (दिनमें) एककाल विषैं शुद्ध(=सम्) भोजनका अंगीकार

वाचंयमस्य६/१ वा* तत्-समितस्य६/१ =मौनावलम्बित (मुनि)के अथवा उस (वाचा) समित वाले (मुनि)के

सकृत्-स्व-तनु-दर्शनमात्र-तंत्रस्य६/१ =(भोजनके लिये)एकबार अपना शरीरको दिखावने मात्रहै सिद्धांत (तन्त्र)हैजिस (मुनि)का अर्थात् एक दो तीन चार पांच आदिक उपवास करनेके पश्चात् नगर वा गांवमें दिनमें एकवार आहारके वास्ते मुनि आते हैं और अपने शरीरको एकवार दिखाकर फिर लौट जाते हैं और फिर उस दिन मुनि भोजनको नहीं जाते हैं।

पाणि-पुट-मात्र-पात्रस्य६/१ बहुषु७/३ दिवसेषु७/३ =दोनों (=पुट) हाथ मात्र हैं भाजन वा वासन जिस (मुनि)का बहुत दिनोंमें बहुषु७/३ च*(१ गृहेषु७/३ भिक्षाम्२/१ अनवाप्य÷अपि* =तथा [च] बहुत घरोंमें आहारको नं पाकर भी

असंक्लिष्ट-चेतसः६/१ दातृ-विशेष-परीक्षा-निरुत्सकस्य६/१ =क्लेश रहितहै चित्त जिस[मुनि]का, दाताके विशेष जानकारमें नहींहै उत्साह जिस मुनिका अर्थात् मुनि ऐसा नहीं विचार करते हैं कि अमुक पुरुष किसी अन्य पुरुषसे उदार वा श्रेष्ठ दातार है उसके यहां चलना चाहिये तो भोजन अवश्य मिलेगा ॥

लाभात्५/१ अपि* अलाभः१/१ मे६/१ परमम्१/१ तपः१/१ =लाभसे भी अलाभ मेरा उत्कृष्ट तप है अर्थात् आहारके न मिलनेमें परम आनंद मानते हैं कि यह आहारके न मिलनेसे हमारे तप हुआ ॥

इति *संतुष्टस्य६/१ अलाभ-विजयः१/१ अवसेयः१/१ ॥१५॥ =इस प्रकार संतोष मुनिके अलाभ [परीषह]का विजय जानना चाहिये ॥१५॥

(१)(क) ईंट मिट्टी आदिसे बना हुआ घर (ख)पत्नी, स्त्री (ग) घरके निवासी (घ) मेष आदि राशिका मंदिर (ङ) नाम ॥ एक घरके अर्थमें नपुंसक, बहुत घरोंके अर्थमें पुंलिङ्ग होता है, "इमे नो गृहाः" "तत्रागारं धनपतिगृहान्" स्त्रीके अर्थमें भी दारशब्दके समान बहुवचनान्त होता है ॥

सम्यङ्मिथ्यादृष्टिचसयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासख्येयभागाः अष्टौ वा चतुर्दशभागा देशोनाः।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि–असयतसम्यग्दृष्टिभिः ३।१	= सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टियों कर (स्वस्थान विहार अपेक्षासे)
लोकस्य ६।१ असख्येयभाग १।१	= लोकका असख्यातवा भाग स्पर्शा जाता है
वा चतुर्दश ६।१ भाग १।१	= अथवा [परस्थान विहार अपेक्षा] चौदहराजू [= चतुर्दशभागा] है उनमेंसे
अष्टौ १।१ देशोना १।१	= कुछहीन आठराजू (= भागाः) स्पर्शा जाय है अर्थात् मिश्र गुणस्थानवर्ती देव और असयतगुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवा स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करै तब कुछ न्यून आठ राजू स्पर्शते हैं।

षष्ठीत * मध्यलोके ७।१ पञ्चरज्जव १।३	= छठवा (नरक) से मध्यलोक विषें पाच राजू
सासादन १ मारणांतिक २।१ करोति	= सासादन (दूसरे गुणस्थान) वर्ती मरणातिक समुद्घात करता है
च मध्यलोकात् ५।१ लोक-अग्रे ७।१ (सासादन १।१)	= बहुरि मध्यलोकसे लोकके ऊपरभागमें (अग्रे) (सासादनवाले)
बादरपृथिवीकायिक + बादरअप्कायिक बादर—	= बादरभू कायिक, बादरजलकायिक, व बादर-
वनस्पतिकायिकेषु ७।३ उत्पद्यते इति सप्तरज्जव १।३	= वनस्पतिकायिक विषें उपजता है ऐसे सातराजू (और उपयुक्त पाचराजू मिलकर)
एव* द्वादशरज्जव १।३ भवन्ति	= इसप्रकार बारह राजू होते हैं (सो सासादनवाला मारणातिक अपेक्षा स्पर्शै है)
सासादनसम्यग्दृष्टि १।१ हि* वायुकायिकेषु ७।३	= क्योंकि (=हि) सासादन सम्यग्दर्शनवाला पवनकायिकमें
तेज कायिकेषु ७।३ नरकेषु ७।३ सर्वसूक्ष्मकायिकेषु ७।३	= अग्निकायिकमें (सब) नरकोंमें और समस्त (पृथिवी जल, अनल, पवन व वनस्पति) सूक्ष्मकायिकोंमे
चतुषु स्थानकेषु ७।३ न उत्पद्यते इति नियम १।१	= (इन) चार स्थानकमे नहीं उपजता है ऐसा नियम है

अर्थात् थावरकायिकके (१) सूक्ष्मपृथिवीकायिक (२) बादरपृथिवीकायिक (३) सूक्ष्म अप्कायिक [४] बादर अप्कायिक (५) सूक्ष्म तेज कायिक (६) बादरतेज कायिक (७) सूक्ष्मवायुकायिक (८) बादरवायुकायिक (९) सूक्ष्मवनस्पतिकायिक (१०) बादरवनस्पतिकायिक ये दश भेद हैं इनमेंसे सासादन गुणस्थानवर्ती केवल बादर पृथिवीकायिकमें बादरअप्कायिकमें और बादर वनस्पतिकायिकमे उपज सका है अवशेष सातमें नहीं और सातो नरकमें नहीं उपजता है॥

तृणग्रहणमुपलक्षणं कस्यचिद्व्यथनदुःखकारणस्य । तेनशुष्कतृणपरुषशर्कराकण्टकनिशित-मृत्तिकाशूलादिव्यथनकृतपादवेदनाप्राप्तौ सत्यां तत्राप्रणिहितचेतसश्चर्याशय्यानिषद्यासु प्राणि-पीडापरिहारे नित्यमप्रमत्तचेतसस्तृणादिस्पर्शबाधापरिषहविजयो वेदितव्यः॥ १७॥ अप्कायिक-जन्तुपीडापरिहारायामरणादस्नानव्रतधारिणः पटुरविकिरणप्रतापजनितप्रस्वेदात्तपवनानीतपां-सुनिचयस्य सिध्मकच्छूदद्रूदीर्णकण्डूयायामुत्पन्नायामपि कण्डूयनविमर्दनसङ्घट्टनविवर्जितमूर्तेः

तृण ग्रहणम्१।।।उपलक्षणम्१।।। =[इस सूत्रमें] तृण शब्दका लाना बानिगी, उदाहरण अथवा दृष्टान्त रूपमें है

कस्यचित्*व्यथन-दुःख-कारणस्य६।, =जो कुछ (=कस्यचित्) चुभकर दुःखका कारण हो [उससे यहांपर प्रयोजन है]

तेन३।।।शुष्क-तृण-परुष-शर्करा-कण्टक-निशित- =तिस[तृण]करि सूखा तिनका कठोर[परुष]कंकड़ो,कांटा तीखी[=निशित वा निशात]

मृत्तिका-शूलादि-व्यथन-कृत-पाद-वेदना-प्राप्तौ७।। =माटी शूलादिकके चुभनेकर पगोंमें पीड़ाके प्राप्त

सत्याम्७।।तत्र*अप्रणिहित-चेतसः६। =होनेपर(=सत्यां)वहां (=तत्र) नहीं लगा है चित्त जिस [मुनि]का अर्थात् पूर्वोक्त दुःखोंकीकुछ भी चिन्ता वा शोच न करतेहुये उन दुःखोंको कुछ भी नहीं मानते हैं

चर्या-शय्या-निषद्यासु७।।प्राणिपीडा-परिहारे७।नित्यं१।।।=चलने, सोवने, बैठनेमें प्राणियोंका कष्ट दूर करनेमें सदा (=नित्यम्)

अप्रमत्तचेतसः६ ,तृणादि-स्पर्श-बाधा-परिषह-विजयः१।=प्रमादरहितहैचित्त जिस(मुनि)का तिनका आदिके लगजानेकी बाधा परिषहका जीतना

वेदितव्यः१।।अप्कायिकजन्तु-पीडा-परिहाराय४।आ-मरणात्५।।=जानना चाहिये। जलके जीवोंका कष्ट निवारणके लियेमृत्युकेअंतलग(=आ)

अस्नान-व्रत-धारिणः६।,पटु-रवि-किरण-प्रताप- =स्नान त्याग व्रतके धारण करनेवाले[मुनि]के,तीव्र सूर्य की किरणोंके प्रभाव(=प्रताप)

जनित-प्रस्वेद-आत्त-पवन-आनीत-पांसु- =जनित पसेवमें ग्रहणकी हुई (=आत्त) पवनसे प्राप्त (=आनीत) रज (=पांशु=पांसु)

निचयस्य६। =संचय होगया है (शरीरपर) जिस (मुनि)केअर्थात् उष्णतासे उत्पन्न हुआ मुनिके शरीरमें पसेव तिसपर पवन द्वारा उड़कर रज इकट्ठी हो जाती है,

सिध्म-कच्छू-दद्रु-उदीर्ण-कण्डूयायाम्७।।उत्पन्नायाम्७।।=कोढ(=सिध्म) खाज(=कच्छू)दाद (=दद्रु)महान् खुजली(=कण्डूया)के उत्पन्नहोनेपर

अपि*कंडूयन-विमर्दन-संघट्टन-विवर्जित-मूर्तेः६। =भी खुजावना(=कण्डूयन)मलना व घिसने(की क्रिया)से रहित है मूर्ति जिस मुनि)की

सर्वार्थ सिद्धि ६५

अध्याय ९ सूत्र ९

सर्वाशुचिनिधानमिदमनित्यमपरित्राणमिति शरीरे नि सङ्कल्पत्वाद्विगतसंस्कारस्य गुणरत्नभाण्डसञ्चयप्रवर्धनसंरक्षणसन्धारणकारणत्वादभ्युपगतस्थितिविधानस्याक्षम्रक्षणवद् व्रणालेपनवद्वा बहूपकारमाहारमभ्युपगच्छतो विरुद्धाहारपानसेवनवैषम्यजनितवातादिविकाररोगस्य युगपदनेकशतसंख्याव्याधिप्रकोपे सत्यपि तद्वशवर्तितां विजहतो जल्लौषधिप्राप्त्याद्यनेकतपोविशेषर्द्धियोगे सत्यपि शरीरनिस्स्पृहत्वात्तत्प्रतिकारानपेक्षिणो रोगपरिषहसहनमवगन्तव्यम्

सर्व-अशुचि-निधानम्॥ इदम्॥ =(यह शरीर) समस्त अपवित्रताका भण्डार (=निधान) वा भाजन [=निधान] है

अनित्यम्॥ अपरित्राणम्॥ इति शरीरे॥ =अनित्य है, रक्षण (=परित्राण) नहीं किया जासक्ता है, इस प्रकार देहमें

नि सङ्कल्पत्वात्॥ विगत-संस्कारस्य॥ =नि सदेहपनेसे संस्कारका (मुनि)के निषेध है अर्थात् मुनि शरीरको अशुचि, अनित्य अरक्ष्य जानकर समालते नहीं है वा संस्कार नहीं किया करते है,

गुणरत्न-भाण्ड-सञ्चय- =(सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र) गुणरत्नरूप संचय भाण्डारका (=भाण्ड)

प्रवर्धन-संरक्षण-सन्धारण-कारणत्वात्॥ =बढावने रक्षा करने तथा स्थिति [=सन्धारण]के हेतुसे

अभ्युपगत-स्थिति-विधानस्य॥ अक्ष- =[शरीरको] मानते हुए [इस शरीरके] स्थिति विधान[के आहारादिक] क्रिया(=अक्ष)के

म्रक्षण[illegible] बहु-उपकारम्॥ आहारम्॥ =ओंगनेके सदृश अथवा घूमडाके लेपन सदृश आहारको बहुत उपकारी

अभ्युपगच्छतः॥ =माननेवाला(=अभ्युपगच्छत) (मुनि)के [illegible] रत्नत्रयकी वृद्धि रक्षा स्थितिके लिये मुनि शुद्ध आहार लेकर शरीरकी रक्षा करते है॥

विरुद्ध-आहार-पान-सेवन-वैषम्य-जनित-वातादि =विरुद्ध आहार पानी सेवनेसे विषमतासे उत्पन्न हुये वातादिक

[illegible] =[illegible] [मुनि]के, [illegible] अनेक सैकडो रोगोंके

[illegible] =[illegible] [मुनि]के

[illegible]

[illegible]

[illegible] ॥९॥

एवातीवभक्तिमन्तः किञ्चिदजानन्तमपि सर्वज्ञसम्भावनया सम्मान्य स्वसमयप्रभावनं कुर्वंति! व्यन्तरादयः पुरा अत्युग्रतपसां प्रत्यग्रपूजां निर्वर्तयन्तीति मिथ्याश्रुतिर्यदि न स्यादिदानीं कस्मान्मादृशां न कुर्वन्तीति दुष्प्रणिधानविरहितचित्तस्य सत्कारपुरस्कारपरिषहविजयः प्रतिज्ञायते॥१९॥अङ्गपूर्वप्रकीर्णकविशारदस्य शब्दन्यायाध्यात्मनिपुणस्य ममपुरस्तादितरे भास्करप्रभाभिभूतखद्योतोद्योतवन्नितरां नावभासन्त इति विज्ञानमदनिरासःप्रज्ञापरिषहजयःप्रत्येतव्यः

एव*अतीव-भक्तिमन्तः[१/३]'किंचित्*अजानन्तम्[२/३]'अपि*	=ही (=एव) अतिशय भक्ति करनेवाले वा सेवा करनेवाले हैं कुछ न जानने वाले भी
सर्वज्ञ-सम्भावनया[३/१]''सम्मान्य-स्व-समय-	=सर्वज्ञके (तुल्य) अभिप्रायसे (=सम्भावनया)सन्मानकर अपने मतका
प्रभावनं[२/१]'''कुर्वन्ति।व्यंतर-आदयः[१/३]'पुरा*अति-उग्र-	=उद्योत वा प्रकाशन करते हैं। व्यंतरादि देव पूर्वकालमें बहुत उत्कट वा कड़े
तपसां[६/३]'''प्रति-अग्र-पूजां[२/१]''निर्वर्तयन्तिइतिमिथ्याश्रुतिः[१/१]''	=तपकरनेवालेके आगेहोकर(=प्रत्यग्र)पूजा करते हैं ऐसी झूठी श्रुति है (सुननेमें आयाहै)
यदि*न*स्यात्इदानीम्*कस्मात्(१)मादृशाम्[६/३]'(प्रभावनं)	=जो 'यदि) (झूठी) न हो तो अब किस कारणसे (वे देव) मेरे सदृशोंकी(=प्रभावना)
न*कुर्वन्ति।इति*दुष्-प्रणिधान-विरहितचितस्य[६/१]'सत्कार-	=नहीं करते हैं, ऐसे खोटा(=दुष्)चिन्तवनसे रहित है चित्त जिस (मुनि) के-सत्कार
पुरस्कार-परिषह-विजयः[१/१]'प्रतिज्ञायते॥१८॥अंग-पूर्व-	=पुरस्कार पीड़ाका विजय जाना जाता है ॥१८॥(ग्यारह)अंग (चौदह) पूर्व
प्रकीर्णक-विशारदस्य[६/१]'शब्द-	=(चौदह) प्रकीर्णकोंके(देखो अ० १ पृष्ट ४०६से ४२७ तक)प्रवीण (मुनि)का,कोशमें
न्याय-अध्यात्म-निपुणस्य[६/१]'	=न्याय शास्त्रमें, अध्यात्म शास्त्रमें,अर्थात् आत्मतत्त्व विधानमें निपुण (मुनि)के,
नितराम्*न*अवभासन्तः[१/३]'मम[६/१]'पुरस्तात्*इतरे[१/३]'	=कभी (=नितरां)नहीं विचारते (न-अवभासतः)कि मेरे आगे (=पुरस्तात्)दूसरे(=इतरे)
भास्कर-प्रभा-अभिभूत-	=सूर्यके(=भास्कर) प्रकाशसे तिरस्कृत (=अभिभूत)
खद्योत-उद्योत-वत्*इति*विज्ञान-मद(२) निरासः[६/१]'	=पटवीजना(=खद्योत)के उद्योतके सदृश,ऐसे विज्ञान मदसे निराशा होनेवाले (मुनि)के
प्रज्ञा-परिषह-जयः[१/१]'प्रत्येतव्यः[१/१]' ॥२०॥	=प्रज्ञा परिषहका विजय जानना चाहिये ॥ २० ॥

(१)'मादृशाम्' यह 'मादृश' शब्दसे षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुंलिंगमें बना है। मादृश (=स्त्री०) मादृशी, मादृक्ष (स्त्री०) मादृक्षी'मेरे समान'अर्थहै
(२)"इति विज्ञान मदनिरासः प्रज्ञापरिषहजयःप्रत्येतव्यः"यह वाक्य तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २३७में भी आयाहै इसवाक्यमें प्रश्नयहहै कि निरासः (=निराकरण,परित्याग,हटाना,छोडना,निवारण)भाष्यमें षष्ठी विभक्ति एक वचन पुलिंग निरास् शब्दकीहै जिस (विभक्ति)को पूज्यपाद स्वामीने

स्वगतमलोपचयपरमलापचययोरसंकल्पितमनसः संज्ञानचारित्रविमलसलिलप्रक्षालेन कर्ममलपङ्कजालानराकरणाय नित्यमुद्यतमतेर्मलपीडासहनमाख्यायते ॥ १८ ॥

केशलुञ्चासंस्काराभ्यामुत्पन्नखेदसहनं मलसामान्यसहनेऽन्तर्भवतीति न पृथगुक्तम् सत्कारः पूजाप्रशंसात्मकः । पुरस्कारो नाम क्रियारम्भादिष्वग्रतः करणमामन्त्रणं वा, तत्रानादरामयि क्रियते । चिरोषितब्रह्मचर्यस्य महातपस्विनः स्वपरसमयनिर्णयज्ञस्य बहुकृत्व परवादिविजयिनः प्रणामभक्तिसम्भ्रमासनप्रदानादीनि मे न कश्चित्करोति । मिथ्यादृष्टय

स्व-गत-मल-उपचय पर-मल-	=अपने लगे हुए मलकी वृद्धिमें अर्थात् मेरी देही अधिक मैली है अन्यके लगे हुए मैलकी
अपचययो ईअसकल्पितमनस ई।	=हीनतामें (अर्थात् दूसरे मुनिको देहोमें मैल अल्प है)नहीं लगा है चित्तजिस(मुनि)का
सज्ञान-चारित्र-विमल सलिल-प्रक्षालेन'''कर्ममल-	=सम्यक्ज्ञान-सम्यक् चारित्ररूप निर्मल जलसे प्रक्षालनकरि कर्म मलरूपी
पङ्क-जाल-निराकरणाय'''नित्यम्'''उद्यतमते ई।	=कीच जालको दूरकरनेके लिये सदा उपस्थित है मन जिस(मुनि)का,
मल-पीडा-सहनम्'''आख्यायते ॥१८॥ केशलु च-	=(ऐसे मुनिके) मल पीड़ाका सहन वर्णन कियागया है ॥१८॥बालोंके उखाड़नेसे
असस्काराभ्याम्'उत्पन्न खेद सहनम्''मल-सामान्य	=और न समालनेसे उत्पन्न हुई पीड़ाका सहना, मल सामान्य (परिषह)के
सहने'''अन्तर्भवति इति*न*पृथक्-उक्तम्।।।,	=सहनेमें गर्भित है ऐसे (केश लुचन इत्यादि)व्याधिसे न्यारी परिषह वर्णन नहीं कीगई है
सत्कार ई'पूजा-प्रशंसा आत्मक ई',क्रिया आरम्भादिषु=	=सत्कार पूजा तथा प्रशसा स्वरूप है क्रियाके आरम्भादिकमें
अग्रत*करणम्'''	=अग्रेसर करना वा आगे करना अथवा (क्रियाके आरम्भमें)
आमन्त्रणम्'''वा*पुरस्कार ई'नाम'''', तत्र*	=निमन्त्रण देनावाबुलावना सो पुरस्कारनामहै तहा,(मुनि ऐसा विचारनहीं करतेहैंकि)
अनादर ई'मयि'क्रियते।चिरोषित	=मुझमें (अर्थात् मेरा) अनादर किया जाता है, बहुतकालसे अथवा चिरकालसे
ब्रह्मचर्यस्य'महान्-तपस्विन ई'स्व-परसमय-	=ब्रह्मचर्य युक्त हू, बड़ा तप करनेवाला हू अपने तथा परके सिद्धान्तका
निर्णयज्ञस्य'बहुकृत्व*पर-वादिन्-विजयिन ई।	=निर्णय करनेवाला हू, बहुतबार अन्यवादियोंका जीतने वाला हू और
प्रणाम-भक्ति-सम्भ्रम-आसन-प्रदान—	=नमस्कार सेवा (=भक्ति) आदर (=सम्भ्रम) उच्च आसन वा बैठक देना
आदीनि'''मे'न*कश्चित्*करोति।मिथ्यादृष्टय ई'	=आदिक मेरा कोई नहीं करता है (इनसे तो)मिथ्या दृष्टी

नित्यमप्रमत्तचेतसो मेऽद्यत्वेऽपि विज्ञानातिशयो नोत्पद्यत इति अनभिसन्दधतोऽज्ञानपरिषहजयोऽवगन्तव्यः ॥२१॥ परमवैराग्यभावनाशुद्धहृदयस्य विदितसकलपदार्थतत्त्वस्यार्हदायतनसाधुधर्मपूजकस्य चिरन्तनप्रव्रजितस्याद्यापि मे ज्ञानातिशयो नोत्पद्यते ! महोपवासाद्यनुष्ठायिनां प्रातिहार्यविशेषाः प्रादुरभूवन्निति प्रलापमात्रमनर्थकेयं प्रव्रज्या ! विफलं व्रतपरिपालनमित्येवमसमादधानस्य दर्शनविशुद्धियोगाददर्शनपरिषहसहनमवसातव्यम् ॥२२॥ एवं परिषहान् सहमानस्यासंक्लिष्टचेतसो रागादिपरिणामास्रवनिरोधान्महान्संवरो भवति ॥ आह

नित्यम्*अप्रमत्त–चेतसः'मे'अद्यत्वे*अपि*विज्ञान–	=तथा सदा प्रमाद रहित है चित्त जिस(मुनि)के,मेरे लिये अब (=अद्यत्वे) भी विज्ञानका
अतिशयः'न*उत्पद्यतेIइति*अन्–अभि–संदधतः'	=अतिशय नहीं उपजता है ऐसा अभिप्राय रखनेवाले (मुनि)के
अज्ञान–परिषह–जयः'अवगन्तव्यः' ॥२१॥	=अज्ञान परिषहका जीतना जानना चाहिये ॥२१॥
परम–वैराग्य-भावना–शुद्ध–हृदयस्य'विदित–सकल–	=परम वैराग्य भावनाकरि शुद्ध है मन जिसका जिसके प्रगट हुआ है समस्त
पदार्थ–तत्त्वस्य'आर्हत–आयतन–	=द्रव्योंका यथार्थस्वरूप (=तत्त्व),अर्हंतके(=आर्हत) जिनमंदिर के (=आयतन)
साधु–धर्म–पूजकस्य'चिरन्तन–प्रव्रजितस्य'अद्य*	=साधुके तथा धर्मके पूजनेवाले (मुनि)के, जिसके सन्यास बहुतकालसेलेकर आज तक है
अपि*मे'ज्ञान–	=तौ भी (=अपि) [जिसका विचार नहीं है कि] मेरे ज्ञानका
अतिशयः'न*उत्पद्यतेI,महान्–उपवास–आदि–	=विस्तार वा अधिकाई [=अतिशयः]नहीं उपजी है, महा अनशन आदिक
अनुष्ठायिनाम्'प्रातिहार्य–विशेषाः'प्रादुर्*अभूवन्I	=करनेवालेके प्रातिहार्यके विशेष प्रकाश होते हैं(अभूवन् लुङ् क्रिया है),
इति*प्रलापमात्रम्'''इयम्''प्रव्रज्या''अनर्थका''	=ऐसा कहने मात्र है, यह [=इयम्] सन्यास (=प्रव्रज्या) ,निष्प्रयोज (=अनर्थका) है
विफलम्'''व्रत–परिपालनं'''इत्येवंअसमादधानस्य'=व्रतका	धारण निष्फल है इत्यादि नहीं है विचार जिस(मुनि)के
दर्शन–विशुद्धि-योगात्'अदर्शन–परिषह–सहनम्'''	=दर्शन विशुद्धिके संयोगसे अदर्शन परिषहका सहन
अवसातव्यम्'''॥२१॥ एवम्*परिषहान्'	जानना चाहिये ॥२१॥ ऐसे [बाईस] परिषहोंका
सहमानस्य'असंक्लिष्ट–चेतसः'रागादि–परिणाम–	=चित्तके विना संक्लेश कियेहुये सहनेवालेके, रागादिक परिणाम जनित
आस्रव–निरोधात्'महान्'संवरः'भवतिI आहI	=आस्रवके अभावसे महान् संवर होता है । प्रश्न है (==आह=पूछता है) कि

अज्ञोऽयं न वेत्ति पशुसम इत्येवमाद्यवक्षेपवचन सहमानस्य परमदुश्चरतपोऽनुष्ठायिनो

अयम् अज्ञ न वेत्ति पशुसम इति एवम् आदि- =यह अज्ञानहै,पशुसम है,(कुछ)नहीं जानता है,ऐसे (=इति)इत्यादि(=एवमादि)
अवक्षेप-वचन "सहमानस्य परम दुश्चर-तपस्-अनुष्ठायिन =निंदाके वचन सहन करनेवाले(मुनि)के परम दुर्द्धर तपकरनेवाले(मुनि)के

निम्न २० परीषहोंमें लिखा है अथवा निरास प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग निरास शब्दकी है॥नीचे निरास का(न)अधिकृत संख्या छोडदीहै।
(क) मन्यमानस्य = आनन्दमानने वाले (मुनि)के (ख) प्रशमयत = अतिशमन करनेवाले (मुनि)के (ग) वसत वसनेवाले (मुनि)के
(घ)अवहित-चेतस = लगा हुआहैचित्त जिस(मुनि)का(ङ)प्रावरणस्य = (अङ्ग)आवरणजिस(मुनि)के (च)आतिष्ठमानस्य = पालने हुये(मुनि के
(छ) सदासदयस्य = सदा दया संयुक्त (मुनि)के (ज)विफलीकरणस्य = विफलकरनेवाले(मुनि)के(झ)आक्रन्दत = निरादरकरनेवाले(मुनि,के
(ञ) अवलितविग्रहस्य = नहींडिगो है देहजिस(मुनि)की(ट) क्षममाणस्य = सहन करते हुये (मुनि)के (ठ) न कुर्वत = नहीं करनेवाले(मुनि)के
(ड)समदर्शिन = समान देखनेवाले(मुनि)के (ढ) दुरुपलक्ष्यमूर्ते = कठिनसेदेख्याहैअङ्गजिसका(ण) संतुष्टस्य = संतोषी (मुनि)के
(त) अनपेक्षिण = आकांक्षा न करनेवाले(मुनि)के (थ)अप्रमत्तचेतस = प्रमादरहितहै चित्तजिसका (द)उद्यतमते = उपस्थितहैमनजिसमुनिका
(ध) निरहितचित्तस्य = रहित है चित्त जिस [मुनि]का (प) अनभिसन्दधत = अभिप्राय न रखनेवालेके (फ) असमाधानस्य = न विचारने वालेके

यह शब्द हमको अमरकोश, पद्मचन्द्रकोश इत्यादिमें नही मिला, वेदसंस्कृतआङ्गलकोशके पृष्ठ ३८६ पर पुल्लिंगमें तीन [अ] हटाना [आ] फूंकना [इ] खंडन करना, निरसन अर्थों में मिलता है हमने बहुत प्रयत्न किया परन्तु हमको निरास्' शब्द नहीं मिला कि निरास्+अस् = निरास षष्ठी विभक्तिमें हाजाता,हमको राजवार्तिक तथा छह प्रति सर्वार्थसिद्धिमें उपयुक्तही पाठ मिला है, राजवार्तिकको वार्तिक संख्या२८ प्रज्ञोपकार्यावलेपनिरास प्रज्ञाविजय '= विज्ञान कियेहुये अहंकारका [= अवलेप] निराकरण वा परित्याग [= निरास] सो प्रज्ञाविजयहै और तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकके ' प्रज्ञोत्कर्षावलेप निरास प्रज्ञाविजय " = प्रज्ञा-उत्कर्ष अवलेप-निरास प्रज्ञा विजय ' = विज्ञानके अतिशय अहंकार वा मदका छोडना सो प्रज्ञाविजय परीषह है, इन वाक्योंसे प्रगट है कि'निरास प्रथमा विभक्ति एक वचन पुंलिंग है॥श्रुतसागरीटीकामें इसके संबंध में कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ॥ पं०जयचन्द्रायजीने प्रथमा विभक्ति में उक्त वाक्यका"ऐसा विज्ञानका मद न करे, सो प्रज्ञापरीषहका जीतना कहिये ' अनुवाद किया है ॥ दूनीजी जिनका विमलस्यथ और शब्दश अनुवाद है'निरास 'का षष्ठी विभक्ति मानकर निम्न अनुवाद किया है॥ इति विज्ञान मद निरास प्रज्ञापरिषहजय प्रत्येतव्य ="ऐसा विज्ञान मदका।है निराश जाके ताके प्रज्ञा परिषहको जय जानने योग्य है ' न्यायदिवाकरजीने "प्रज्ञोपकार्यावलेपनिरास प्रज्ञाविजय "वार्तिकमें'निरास 'को प्रथमाविभक्तिमें यह अनुवाद किया है"तहां प्रज्ञाकहिये विज्ञान ताका मद न करनासो प्रज्ञा परिषहका जीतनाहै परन्तु 'इति विज्ञानमदनिरास प्रज्ञापरिषहजय = 'ऐसाविज्ञानकामदका है निरास जिनके तिन मुनिराजके प्रज्ञापरीषह का जीतना जानना अनुवादसे स्पष्ट है कि निरास को षष्ठी विभक्ति एक वचन पुंलिंग माना है। यदि निरास (हलन्त)निरास (स्वरान्त) दिश् [स्त्री०]दिशा(स्त्री०)की भांति दोनों शब्द हों तो षष्ठी विभक्ति और प्रथमा विभक्ति विकल्पसे दोनों हो सकतेहें,यदि निरास्(हलन्त)नहीं हैतो प्रथमा विभक्तिमें हा निरास 'का ग्रहण होता है ॥ हमने यह देखकर कि पूज्यपाद स्वामीने इक्कीस परीषहोंक उक्त उपान्त्य वाक्योंमें स्पष्टतया षष्ठी विभक्तिका प्रयोग किया है सब परीषहोंके उपान्त्य वाक्योंमें षष्ठी विभक्तियोंकी समानता व तुल्यता रखनेके लिये 'निरास को निरास्[हलन्त] शब्दकी षष्ठी विभक्ति एक वचन (पुंलिंग) [नपुंसकलिंगमें भी यही रूप होगा] ऐसे विज्ञानमदसे निराश होनेवाले जिस [मुनि]ने, ऐसा अनुवाद किया है ॥ ऐसे विज्ञानमदका,हुआ है त्याग वा निराकरण जिस[मुनि]केपाठकगण इस शब्दपर अधिक प्रकाश डालकर कृपया मुझे सूचित करेंगे ॥

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधालाभरोगतृणस्पर्शमलप्रज्ञाज्ञानानि । चतुर्दश इति वचनादन्येषां परिषहाणामभावो वेदितव्यः ॥ आह युक्तं तावद्वीतरागच्छद्मस्थे मोहनीयाभावाद्वक्ष्यमाणनाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याऽऽक्रोशयाचनासत्कारपुरस्कारादर्शनानि तत्कृताष्टपरिषहाभावाच्चतुर्दशनियमवचनम् । सूक्ष्मसाम्पराये तु मोहोदयसद्भावाच्चतुर्दशेति नियमो नोपपद्यत इति । तदयुक्तम् । सन्मात्रत्वात् ॥

वृत्त्यनुवाद—क्षुत्-पिपासा-शीत-उष्ण-दंशमशक-	=क्षुधा, तृषा अथवा तृष्णा, हिम, उष्ण, डांस (दंश) मच्छर (=मशक) (इत्यादि कीड़े)
चर्या-शय्या-वध-अलाभ-रोग-तृणस्पर्श-	=गति, शयन, मारन, प्राप्तिका अभाव, व्याधि, तिनुका आदिका लगना, छूना, वा चुभना
मल-प्रज्ञा-अज्ञानानि[१/३], चतुर्दश[१/३] इति* वचनात्[५/१]	=मैल, विद्वत्ता वा विज्ञानका मद, ज्ञानकी अप्राप्ति ऐसे (सूत्रमें) चतुर्दश वचनसे
अन्येषां[६/३] परिषहणाम्[६/३] अभावः[१/१] वेदितव्यः[१/१]; आह T	=अन्य वा बची हुईं (आठ) परीषहोंका अभाव जानना चाहिये। (शिष्य) पूछता है कि
तावत्* वीतराग-छद्मस्थे[७/१]	=वीतराग छद्मस्थ (ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती, बारहवां गुणस्थानवर्तीमें) तो (=तावत्)
मोहनीय-अभावात्[५/१] वक्ष्यमाण-	=मोहनीय कर्मकी अविद्यमानतासे (इस अध्यायके पन्द्रहवां सूत्रमें) कहे जानेवाली
नाग्न्य-अरति-स्त्री-निषद्या-	=(सात) नग्नता, (संयममें) अप्रीति, स्त्रियका अवलोकन वा स्पर्शन, स्थिति वा आसन
आक्रोश-याचना-सत्कार(१)पुरस्कार-अदर्शनानि[१/३]	=दुर्वचन, मांगना, मान, अपमान (परीषह), ऋद्धि वा अवधिज्ञानकी अलब्धि (सूत्र १४)
तत्कृत-अष्ट-परिषह-अभावात्[५/१] चतुर्दश-	=उस (मोहनीयकर्म) जनित आठ परीषहों के न होनेसे चौदह (परिषहों) का
नियम-वचनम्[१/१] युक्तम्[१/१]; सूक्ष्मसाम्पराये[७/१] तु*	=नियमित वा निश्चित वाक्य युक्त है, परंतु (=तु) सूक्ष्मसांपराय दशवां गुणस्थावर्तीमें
मोह-उदय-सद्भावात्[५/१] चतुर्दश[१/३] इति* नियमः[१/१]	=मोहके उदय होनेसे चौदह (परिषहका होना) ऐसा नियम
न* उपपद्यते T इति* । तद्[१/१]	=नहीं उत्पन्न होता है ऐसे वह अर्थात् (सूक्ष्मसांपरायमें १४ परिषहों का होनेका नियम)
अयुक्तम्[१/१] सत्-मात्रत्वात्[५/१]	=ठीक नहीं है। (उत्तर) (मोह) के सत् मात्रपनेसे वा [मोहनीयकर्म की] केवल विद्यमानतासे
	अर्थात् सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें मोहका उदय अत्यन्त अल्प है नाममात्र है तिससे उपर्युक्त चौदह परीषहोंकी विद्यमानताका (और शेष आठ परिषहोंके अभावका) वचन युक्त है।

(१) पुरस्कार = (क) आगे करना (ख) आदर, विनय (ग) साथ साथ रहना (घ) पारितोषिक [ङ] निंदा, आक्षेप, अपमान अर्थोंमेंसे अंतके अर्थमें है।

किमिमे परिषहा.सर्वे संसारमहाटवीमतिक्रमितुमभ्युद्यतमभिद्रवन्ति उत कश्चित्प्रतिविशेषइत्य-त्रोच्यतेअमीव्याख्यातलक्षणा क्षुदादयश्चारित्रान्तराणिप्रतिभाज्या नियमेन पुनरनयो.प्रत्येतव्या·

॥सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश॥१०॥

किम्*इमे'परिषहा'सर्वे'ससार महा–अटवीं'	=क्या(=किम्)समस्त ये(=इमे)परीषहाये ससाररूप महावनींको
अतिक्रमितुम्'अभि-उद्यतम्'अभि द्रवन्ति।उत*कश्चित्*	=हरनेको उद्यमी पुरुषको आती हैं अथवा कुछ
प्रतिविशेष'इति*अत्र*उच्यते।	=विशेष है, इस प्रकार (प्रश्न होनेपर,यहा(=अत्र)वा इस स्थानमें कहा जाता है कि
अमी'व्याख्यात–लक्षणा'क्षुदादय'	=ये वर्णित स्वरूपवाली (=लक्षणा) क्षुधादिक [बाईस परीषह]
चारित्र अतराणि''' प्रतिभाज्या'	=अन्यचारित्रों[सामायिक-छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि]कों भेदरूपआती हैं
नियमेन' पुन *अनयो'''	=और[बचेहुये]दो चारित्र(सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात]में(निम्नसूत्रद्वारा)नियमकरि
प्रत्येतव्या'	=प्रतीत करनी चाहिये अथवा जानना योग्य है ॥

सूत्रम्–[१]सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥

पदच्छेद—सूक्ष्मसाम्पराय- छद्मस्थवीतरागयो.' चतुर्दश.' परिषहा'भवन्ति ॥१०॥

सूत्रार्थ —

सूक्ष्मसाम्पराय–वीतरागे'	=सूक्ष्मसाम्परायवीतरागमें अर्थात् दशवा गुणस्थानवर्तीमें तथा
छद्मस्थवीतरागे'	=छद्मस्थवीतरागमें अर्थात् उपशातकषाय ग्यारहवा गुणस्थानवर्तीमें,तथाक्षीणकषाय बारहवा गुणस्थान वर्तीमें
चतुर्दश' परिषहा.' भवन्ति।	=चौदह परिषहाये होतीं हैं भावार्थ क्षुधा-तृषा-शीत-उष्ण-दशमशक चर्या-शय्या- वध-अलाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल प्रज्ञा-अज्ञान ये दशसे बारह गुणस्थानवर्तियोंतकमें होती हैं

[१]हमारी आम्नायके ग्रन्थोंमें बहुधा 'साम्पराय पाठ है कहीं कहीं पर 'सांपराय है दोनों पाठ ठीक हें। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सांपराय वा साम्परायकेस्थानमें 'सपराय' है, सम्पराय शब्दभी हो सका है सपराय तथा सम्पराय दोनोंही ठीक हें॥ ध्यान रहे कि सांपराय, सपराय निम्नलिखित पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ४१२,४२१ के अनुसार एक हैं "सम्पराय[पु०]सम्+परा+इण्+अच्। युद्ध, जंग, लडाई,आपदा। सम्परायिक [न०]सम्परायाय[=आपदे) हित, ठन्(इक),आपत्तिके लिये, हितकारी, युद्ध,जग,लडाई,साम्परायिक भीइसी अर्थमें आता है(पद्म०कोश पृष्ठ ४१२),४२१में साम्परायिक [न०]सम्परायाय[आपदे]परलोकाय वा हितम्। ठण्[इक],दु ख वा परलोकके लियेहितकारी।

आह यदि शरीरवत्यात्मनि परिषहसन्निधानं प्रतिज्ञायते अथ भगवति उत्पन्नकेवलज्ञाने कर्मचतुष्टयफलानुभवनवशवर्तिनि कियन्त उपनिपतन्तीत्यत्रोच्यते ॥ तस्मिन्पुनः-

एकादश जिने ॥ ११ ॥

सातवें नरक (=पृथिवी)के गमनकी सामर्थ्यका कथन है परन्तु उन देवोंको कहीं जानेका प्रयोजन नहीं है और राग भाव भी नहीं है जिससे गमन नहीं है तिस प्रकार इन(दशवां ग्यारहवां,बारहवां)गुणस्थानोंमें भी चौदह परिषहका कथन उपचारसे वा कल्पनामात्र है

आह१यदि-शरीरवति७आत्मनि७परिषह- =(शिष्य) पूछता है कि जो शरीरवान् आत्मामें परिषहका
सन्निधानम्१''प्रतिज्ञायते१ अथ*भगवति७ =निकट होना नियम कीजिये है तो अब [=अथ] भगवान् विषैं
उत्पन्न-केवलज्ञाने७कर्म-चतुष्टय-फल-अनुभवन-वश- =केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर और चार अघातिया कर्मके फल भोगने
वर्तिनि७कियन्तः१''उपनिपतन्तिइति*अत्र*उच्यतेतस्मिन्७पुनः* =वालेमें कितनी [परिषहायें] आती हैं ऐसे(प्रश्न पर)यहां कहा जाता है और तिसमें

एकादशजिने=एकादश(परिषहाः)जिनेसन्ति वा एकादश(परिषहाः)जिने(न सन्तिइतिवाक्यशेषः)

सूत्रार्थः—एकादश१''परिषहाः१''जिने७सन्ति१=ग्यारह परिषहायें जिन(भगवान्-केवलज्ञानी)में है अर्थात् छद्मस्थ जीवोंके वेदनीयकर्म के उदयसे क्षुधा तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक,चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल ये ग्यारह परिषहा होती हैं सो केवली भगवानकें भी वेदनीय कर्मका उदय है इस कारण केवलीके भी प्रदेश उदय अपेक्षासे ग्यारह परिषहका होना कहा गया है परन्तु मोहनीयकर्मके नष्ट होनेसे वेदनीयकर्मका उदय बल नहीं कर सकता है, ये ग्यारह परिषहा केवलीकें फलोदय रूपमें नहीं होतीं वेदनीयकर्मके सद्भाव होनेसे नाममात्र कही गई हैंवा कहनेमात्र कही गई हैं अथवा फलोदयकी अपेक्षा कथन किया जाय तो

अथवा*एकादश१''परिषहाः१''जिने७न*सन्ति १=ग्यारह परिषहा जिन[केवली-भगवान]में नहीं होती हैं (क्योंकि यहां तेरहवां गुणस्थान वाले जिनेन्द्रके मोहके उदयके अभावसे क्षुधादि परिषहाओंका अभाव) है।

तत्र हि केवललोभसञ्ज्वलनकषायोदय सोऽप्यतिसूक्ष्म ॥ ततो वीतरागछद्मस्थकल्पत्वा-च्चतुर्दशेति नियमस्तत्रापि युज्यते॥ ननु मोहोदयसहायाभावान्मन्दोदयत्वाच्च क्षुदादिवेदना-भावात्तत्सहनकृतपरिषहव्यपदेशो न युक्तिमवतरति ॥ तत्र किं कारणम् । शक्तिमात्रस्य विवक्षितत्वात् । सर्वार्थसिद्धिदेवस्य सप्तमपृथिवीगमनसामर्थ्यव्यपदेशवत् ॥

तत्र•हि•केवल–लोभसञ्ज्वलन–कषाय–	=क्योंकि [=हि]वहां(सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें) अकेले लोभ सज्वलनकषायका
उदय ¦'स ¦'अपि•अतिसूक्ष्म ¦',	=उदय है वह(=सज्वलन लोभ कषाय)भी बहुत ही अल्प हैअर्थात् कहने मात्र है।
तत•वीतराग–छद्मस्थ(१)कल्पत्वात्¦'''चतुर्दश¦'	=तिससे(सूक्ष्मसाम्परायके)वीतराग छद्मस्थको तुल्यतासे चौदह
इति•नियम ¦'तत्र•अपि•युज्यते T ॥	=ऐसा नियम तहां (सूक्ष्मसाम्परायमें)भी लगाया जाता है ।
ननु•मोह–उदय–सहाय–अभावात्¦'	=प्रश्न(सूक्ष्मसाम्पराय तथा छद्मस्थवीतरागमें)मोहकर्मकेउदयके सहायके न होनेसे
मन्द–उदयत्वात्¦'''च•(२)क्षुत्–आदि–वेदना–अभावात्¦'	=तथाधीमें उदय होनेसे क्षुधादि (उक्त चौदह)वेदनाका अभावहैतिससे[=अभावात्]
तत्–सहन–कृत–परिषह–व्यपदेश ¦'	=उन[क्षुधादि]की की हुई (=कृत)वेदना (=सहन) परीषह नामकी
न•युक्तिम्¦''अवतरति T ॥	=उचितता वा योग्यता को नहीं पहुचती है। प्रश्नका भावार्थ ऐसा है कि छद्मस्थ ग्यारहवां गुणस्थान तथा बारहवा गुणस्थानवर्तियोंके मोहके उदयका अभावहैऔर सूक्ष्मसाम्पराय दशवा गुणस्थानवालेके मोहका उदय बहुतही मद है इसलिये उपर्युक्त गुणस्थानमें चौदह वेदना नहीं हैं, तबयह कहना उचित नहीं है कि पूर्वकथितगुणस्थानोंमें परिषहये विद्यमान हैं क्योंकिपरिषह नामतोवेदनाकाहै
तत्(नत्)¦'' न•किम्¦'''कारणम्¦'''शक्तिमात्रस्य¦'	=(उत्तर)सो [=तत्] नहीं है क्योंकि (=किकारणम्)केवल सामर्थ्यकी
विवक्षितत्वात्¦'''सर्वार्थसिद्धिदेवस्य¦'सप्तमपृथिवी–	=अपेक्षासे (पूर्वोक्त कथनयुक्त है),सर्वार्थसिद्धिके देवके सातवें नरक =पृथिवी के
गमन–सामर्थ्य–व्यपदेशवत्• ।	=गमनकी सामर्थ्यके कथनके समान(यहां)है अर्थात् जिस प्रकार सर्वार्थसिद्धिदेवके

(१) सादृश्य अर्थमें कल्पप् प्रत्यय होता है जिसकी समानता देवे उसके पश्चात आता है जैसे पितृकल्प =पिताके समान गुरुकल्प =गुरुके समान, इसलिये छद्मस्थ कल्पात्वात् छद्मस्थकी तुल्यतासे ऐसा अनुवाद किया गया है। मूलके अर्थमें क्षुध् क्षुधा स्त्रीलिंगमें आतेहैं[पद्म०कोश१ २२]

संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। प्रमत्तसंयतादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम् ॥

संयत असंयतैः ३। = संयतासंयत (पांचवां गुणस्थान) वालोंकरि (स्वस्थान विहार अपेक्षासे)
लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। = लोकका असंख्यातवां भाग (स्पर्शन किया जाता) है
वा चतुर्दश ३। भागाः १। = अथवा (= वा) [त्रसनाल] चौदहराजू है (सो मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा अच्युत सोलहवां स्वर्ग पर्यन्तकी उत्पत्तिके कारणसे)
षट् ३। देशोनाः ३। [स्पृष्टा ३।] = कुछ हीन छह [राजू = भागाः] स्पर्शे जाय हैं
प्रमत्तसंयत—आदीनाम् ६। अयोगकेवलि—अन्तानां ६। = प्रमत्तसंयत [छठवां गुणस्थान] वालोंसे लेकर अयोगकेवलियों तकका
क्षेत्रवत् * स्पर्शनम् १।। क्षेत्रतुल्य स्पर्शन है (देखो पृष्ठ ११५ से १२० तक)

तथा च* उक्तम् १।। गाथा १। = जैसा कि (= तथा च) आर्या छंद (निम्नलिखितमें कहा गया) है

वज्जिअ ठाणचउक्कं तेऊ वाऊ य णरयसुहुमं च। अण्णत्थ सव्वठाणे उववज्जदे सासणो जीवो ॥ १ ॥

ठाणचउक्कं २।। तेऊ २।। य (स्थान-चतुष्कं २।। तेजः २।। च) = चारस्थान (वादर) तेजकायिक और (= य)
वाऊ २। च णरयसुहुमं २। (वायुम् २। च नरक-सूक्ष्मं २।) = (वादर) पवनकायिक और (= च) नरक, सूक्ष्म (पृथिवीकायिक जलकायिक अनलकायिक-पवनकायिक वनस्पतिकायिक)
वज्जिअ—अण्णत्थ (= वर्जयित्वा—अन्यत्र*) = छोडकर और ठौर अथवा अन्य ठांव
सासणो १। जीवो १। (सासादनः १। जीवः १।) = सासादन (दूसरे) गुणस्थानवर्ती जीव
सव्वठाणे ७।। उववज्जदे (सर्वस्थाने ७।। उत्पद्यते T) = सब स्थानोंमे उपजता है वा जन्म लेता है
देशोनाः ३। इति कथम् * केचित्-प्रदेशाः ३। सासादन— = कुछ हीन यह कैसे ? कितनेक प्रदेश सासादन
सम्यग्दर्शनयोग्याः ३। न भवन्ति-इति देशोनाः ३। = सम्यग्दर्शनवालोंके (स्पर्श) योग्य नहीं हैं इसलिये कितेक हीन हैं

१३६

निरस्तघातिकर्मचतुष्टये जिने वेदनीयसद्भावात्तदाश्रया एकादशपरिषहा सन्ति ॥ ननु मोहनी-
योदयसहायाभावात्क्षुदादिवेदनाभावे परिषहव्यपदेशो न युक्त । सत्यमेवमेतत्-वेदनाभावेऽपि
द्रव्यकर्मसद्भावापेक्षया परिषहोपचार क्रियते। निरवशेषनिरस्तज्ञानावरणे युगपत्सकलपदार्था-
वभासिकेवलज्ञानातिशये चिन्तानिरोधाभावेऽपि तत्फलकर्मनिर्हरणफलापेक्षया ध्यानोपचार-
वत् । अथवा एकादश जिने न सन्तीति वाक्यशेष कल्पनीय सोपस्कारत्वात्सूत्राणा ।

वृत्त्यनुवाद —निरस्त-घातिकर्म-चतुष्टये जिने =चार प्रकारके (=चतुष्टय) घातियाकर्मके नष्ट होनेपर जिन (तेरहवां गुणस्थानवर्ती) विषें

वेदनीय-सद्भावात् तद्-आश्रया एकादशपरिषहा =वेदनीय (कर्म)की विद्यमानतासे, उस(वेदनीय)के आश्रयीभूत ग्यारह परिषहायें

सन्ति । ननु*मोहनीय-उदय-सहाय अभावात् =होती है । प्रश्न मोहनीय कर्मके उदयके सहायके अभावसे

क्षुत् आदि-वेदना-अभावे परिषह व्यपदेश =भूख आदि-वेदनाके निषेध होनेपर परिषहका कथन(किजिन भगवानमें ११परिषहा होतेहैं)

न*युक्त । सत्य "वेदना अभावे अपि*एव*एतत् =ठीक नहीं है । हां (=एवम्)यह (=एतत्)सत्य है, वेदना वा पीड़ाके न होनेपर भी

द्रव्यकर्म-सद्भाव-अपेक्षया "परिषह-उपचार क्रियते =द्रव्यकर्मके विद्यमानताकी विवक्षाकरि परिषहाओंकी कल्पना कीगई है ।

निर्-अवशेष-निरस्त-ज्ञानावरणे =समस्त (=निरवशेष) ज्ञानावरणीयकर्मके नष्ट (=निरस्त) होनेपर

युगपत्*सकल-पदार्थ-अवभासिन्-केवलज्ञान- =एककाल (=युगपत्) समस्त वस्तुओंके जाननेवाले केवलज्ञानके

अतिशये चिन्ता-निरोध-अभावे अपि*तत्- =अभावमें चिन्ताका निरोध न होनेपर भी उस (चिंता निरोध वा ध्यान) का

फल-कर्म-निर्हरण-फल-अपेक्षया "ध्यान-उपचार- =फल जो कर्मका नाशकी सिद्धि (=फल)के विवक्षाकरि ध्यानकी कल्पनाके

वत्* =सम(ग्यारह परिषहकी कल्पना)है। साराश जैसे घातिया कर्मोंका नाश होनेपर केवलज्ञानमें युगपत् सर्वपदार्थ भासते है और चिंता निरोध(अर्थात् ध्यान) केवल ज्ञानकी अवस्थामें असम्भव है तौभी ध्यानका फल शेषकर्मोके खिपानेकाहै इससे ध्यानकी वहा भी कल्पना है तैसे केवल ज्ञानीके भी मोहके उदयके होनेसे ११परिषह कल्पनामात्रहैं

अथवा*सोपस्कारत्वात् "सूत्राणाम् "एकादश =वा (अन्य अक्षर वा शब्दों द्वारा) सूत्रोंका उपकार किये जाने से ग्यारह परिषहाये

जिने न*सन्ति [1] इति*वाक्य-शेष कल्पनीय । =जिन (भगवान)में नहीं हैं,"न सन्ति" वाक्यका (सूत्रमें)छोड़देना मानलेना चाहिये,

विकल्प्यो हि वाक्यशेषो वाक्याधीन इत्युपगमात्। मोहोदयसहायीकृतक्षुदादिवेदनाभावात् । आह यदि सूक्ष्मसाम्परायादिषु व्यस्ताः परिषहाः अथ समस्ताः क्वेति—

अर्थात् सूत्रोंकी पूर्णता अन्य शब्दोंकरि होती है इसलिये 'नसंति' वाक्यको 'एकादश जिने' में लगावनेसे अर्थ होता है कि जिन भगवानमें ग्यारह परिषहा भी फलोदय अपेक्षासे नहीं है ।

वाक्य-आधीनः1/4 'इति*उपगमात् 5/1 'विकल्प्यः 1/1 'हि*=वाक्य(वक्ताके) आधीन है ऐसा माननेसे दूसरे प्रकारका ही(=विकल्प्यः हि) अर्थात् उलटे प्रकार वा निषेध 'रूप न संति'

वाक्य-शेषः 1/1 ;मोह-उदय-सहायीकृत- =वाक्य शेष वा गुप्त वाक्य[सूत्रमें]आता है । मोहनीयकर्मके उदयके सहायसे उत्पन्न हुई

क्षुत्-आदि-वेदना-अभावात् 5/1' =क्षुदादिवेदनाके अभाव होनेसे(जिन भगवान्में ग्यारह परीषह भी नहीं है)ऐसा अर्थ भीहै ।

आह।यदि*सूक्ष्मसाम्पराय-आदिषु 7/3 'व्यस्ताः 1/3'=[प्रश्न करता है] जो सूक्ष्मसाम्पराय आदिक में भेद रूप (अर्थात् किसी गुणस्थानमें कोई और,अन्य अन्य गुणस्थानमें और और भिन्नभिन्न प्रकारकी)

परिषहाः 1/3 'अथ*समस्ताः 1/3 'क्व*इति* =परिषहायें होती हैं तो अब सर्व (परिषहायें) कहां होती हैंऐसे [प्रश्नपर कहा जाता] है कि

१—श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इसी सूत्रके आधारपर ग्यारह परिषहका जिन भगवान्में होना यथार्थरूपसे माना है इसलिये उनका कथन है कि महावीर स्वामी केवल ज्ञानकी अवस्थामें भी कवलाहार करते थे और रोगसे भी पीड़ित हुये इत्यादिक अनेक प्रकारसे कथन हैं ॥सदासुखजीने अर्थप्रकाशिकामें इस सूत्रके अर्थके नीचे इस प्रकार लिखा है(और रत्नकरण्डवचनिका श्लोकछहमें भी)केवली जिनकै हू वेदनीय कर्म का उदय है तातै कर्मकूं कारण देख केवलीकैं ग्यारह परीषह कहें । परन्तु मोहनीय कर्मके बलतैं वेदनीय कर्म प्रबल होई आहारादिककी इच्छारूप क्षुधादिक परीषह उपजावै था अब वेदनीयके मोहनीय कर्मके सहायका अभावतैं वेदना दैने रूप शक्ति नही रही तब क्षुधादिक वेदना कैसे उपजावे । अर असाता वेदनीयकी उदीरणा होय तदि क्षुधा उपजे है ॥ सो वेदनीय कर्मकी उदीरणा छठा गुणस्थान पर्यंत ही है उपरि नही है । तदि वेदनीयकी उदीरणा बिना केवलीके क्षुधादिक बाधाको कैसे होय अर्थात् केवलीके क्षुधादिक बाधा नहीं होय है । "जैसे मन्त्र औषधादिकके बलतैं क्षीण भई है मारण शक्ति जामें ऐसा विष द्रव्य मरणके अर्थि नहीं कल्पना करिये हैं, तैसे ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध किये हैं घाति कर्मरूप ईंधन जानै और प्रगट भया है अनंत ज्ञानादिक चतुष्टय जाके ऐसे केवली जिनके अंतराय कर्मको अत्यन्त अभाव तैं निरन्तर शुभ नोकर्म पुद्गलनिका सचय होनेतैं प्रक्षीण भया है सहायबल जाके ऐसा वेदनीय कर्म अपना वेदना रूप प्रयोजन उपजावनेकूं असमर्थ है । यातैं भगवान् जिनके वेदनीयका उदय होतहू क्षुधाका अभाव निश्चय करना.इस विषयको सदासुखजीने अर्थप्रकाशिकाके इसीसूत्रकी वचनिकामे और रत्नकरण्ड श्रावकाचार्यके छठवां श्लोक क्षुत्पिपासा इत्यादिमें प्रमाण दिया है कि केवलोके ११ परिषहा कहने मात्र हैं,

बादरसाम्पराये सर्वे ॥ १२ ॥

साम्पराय कषायः बादरः साम्परायो यस्य स बादरसाम्पराय इति॥ नेद गुणस्थानविशेष-ग्रहणम् । किं तर्हि अर्थनिर्देश.॥ तेन प्रमत्तादीना सयंताना ग्रहणं॥ तेषु हि अक्षीणकषाय-दोषत्वात्सर्वे सम्भवन्ति ॥ कस्मिन् पुनश्चारित्रे सर्वेषा सम्भव. ?

---

(१)वादरसाम्पराये सर्वे ॥ १२ ॥ =बादर-साम्पराये सर्वे(द्वाविशति-परिषहा संभवन्ति)

सूत्रार्थ.-बादर साम्पराये सर्वे द्वाविशति परिषहा सभवन्ति ॥ =स्थूल (=बादर) कषायवालेमें (=साम्पराये) सकल बाईस परीषहा =हो सकती हैं अर्थात् प्रमत्त छठवा गुणस्थानवर्तीमें, अप्रमत्त सातवा गुणस्थानवर्तीमें, अपूर्वकरण आठवा गुणस्थानधारकमें, अनिवृत्तकरण नवमा गुणस्थानवर्तीमें सब बाईस परिषहोंका होना सभव हैं ॥

वृत्त्यनुवाद.—साम्पराय कषाय (२)बादर साम्पराय यस्य =साम्पराय है सो कषाय है, स्थूल(=बादर)कषाय(=साम्पराय)जिसके है

स बादर-साम्पराय इति न इदम् गुणस्थान विशेष-ग्रहणम् =सो बादर साम्पराय है, यहा(=इदम्)गुणस्थान विशेषका आदान नहीं है अर्थात् बादरसाम्पराय वाक्यसेकिसीगुणस्थानका विशेषतासे ग्रहण नहीं है,

किम् तर्हि अर्थ-निर्देश. ॥ =परन्तु [=किन्तर्हि] प्रयोजन (मात्र)का कथन अथवा उपदेश है ।

तेन प्रमत- =तिस (बादर साम्पराय वाक्य)करि प्रमत्त (छठवा गुणस्थानवर्ती)

आदीनाम् सयतानाम् ग्रहणम् ॥ तेषु हि =आदि सयमीयोंकाग्रहण है, क्योंकि(=हि)तिन(प्रमत्त आदि सयमीयों)में

अक्षीण-कषाय-दोषत्वात् (३)सर्वे सम्भवन्ति ॥ =कषायके विद्यमानताके दोषतासे समस्त(परिषहा) हो सकते हैं,

कस्मिन् पुन चारित्रे सर्वेषाम् सभव ? =बहुरि किस चारित्रमें सब(परिषहा) का होना सभव है ?

---

(१) इस सूत्रका अर्थ दोनों आम्नायोंमें एक है (२) बादर अथवा बादर दोनों शब्द ठीक और शुद्ध हैं बहुधा पुस्तकोंमें 'बादर' पाठ है कहीं कहीं पर "बादर" पाठ भी है। (३) सर्वे शब्द प्रथमा विभक्ति, बहुवचन, पुलिंग सर्व शब्दका है और यह इसका सर्वत्र एकसा रूप है ॥

सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसंयमेष्वन्यतमे सर्वेषां सम्भवः ॥ आह गृहीतमेतत्परिषहाणां स्थानविशेषावधारणं, इदं तु न विद्मः कस्याः प्रकृतेः कः कार्यं इत्यत्रोच्यते

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥

इदमयुक्तं वर्तते । किमत्रायुक्तं ज्ञानावरणे सत्यज्ञानपरिषह उपपद्यते, प्रज्ञापरिषहः पुनस्त-दपायेभवतीति,

---

सामायिक–च्छेदोपस्थापन–परिहारविशुद्धि–संयमेषु =सामायिक, च्छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि संयमोंमें (तीनोंमें)से

अन्यतमे सर्वेषाम् सम्भवः, आह T एतत् =कोई एक (संयम)विषैं समस्त(परिषहों) का[होना]सम्भव है,(शिष्य)पूछता हैकि यह

परिषहाणाम् स्थानविशेष– =परिषहोंके स्थान विशेषका(अर्थात् किस किस गुणस्थानोंको कौनकौन परिषहकाहोना)

अवधारणम् गृहीतम् इदम् तु*न*विद्मः– =निश्चय(=अवधारण)किया गया है(=गृहीतं)परन्तु (=तु)यह हम नहीं जानते हैंकि

कस्याः प्रकृतेः कः कार्यं इति*अत्र*उच्यते T =किस (कर्म) प्रकृतिका (परिषहोंके संबंधमें) क्या कार्य है ऐसे यहां कहाजाता है कि

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ =ज्ञान-आवरणे उदये, प्रज्ञा–अज्ञाने–परिषहौ भवतः ॥१३॥

ज्ञान–आवरणे उदये प्रज्ञा-अज्ञाने परिषहौ भवतः T=ज्ञानावरणके उदयमें प्रज्ञा तथा अज्ञान दो परिषहायें होती हैं

वृत्त्यनुवादः-इदं अयुक्तं वर्ततेकिंअत्र*अयुक्तं =(प्रश्न)यह ठीक नहीं है,(=वर्तते)यहां क्या अयुक्त अर्थात् इसमें क्याअयुक्त है ।

ज्ञान-आवरणे सति अज्ञान–परिषहः उपपद्यते T=ज्ञानावरणके (उदय) होनेपर (=सति) अज्ञान परिषह उपजती है,

प्रज्ञा–परीषहः पुनः*तद्–अपाये भवति । इति* =बहुरि(=पुनः)प्रज्ञा परिषहउस(ज्ञानावरण कर्म)के अभावमें होती है अर्थात् ज्ञानके आच्छादन करनेवाले कर्मके उदय होते संते अज्ञान परिषह प्रगटहोती है,परन्तु विशेष ज्ञान वा बुद्धि (=प्रज्ञा) की प्रगटता ज्ञानके आच्छादन करनेवाले कर्मके अभावमें होती है,

---

(१) विद् द्वितीया अदादि गणका धातु है इसका अर्थ जानना है इसमें कोई विकरण क्रियाके प्रत्ययसे पहिले नही लगाया जाता है वरन् क्रियाको चिन्ह लगा दिया जाता है, सो यहां पर 'मस्' उत्तम पुरुष बहुवचन वर्तमानकालको द्योतक क्रियाका चिन्ह है, जानते हैं(हम) =विद्मः ऐसा अर्थ है ॥ (२) इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एकसा है ॥

कथं ज्ञानावरणे स्यादित्यत्रोच्यते-क्षायोपशमिकीप्रज्ञा अन्यस्मिन् ज्ञानावरणे सति मदं जनयति।न सकलावरणक्षये इति ज्ञानावरणे सतीत्युपपद्यते॥ पुनरपरयो.परिषहयोःप्रकृतिविषेशनिर्देशार्थमाह

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥

कथम्*ज्ञान-आवरणे७'''स्यात्।इति*अत्र*उच्यते। =ज्ञानावरण (केउदयमें कैसे[प्रज्ञा परिषह] होती है ऐसे(प्रश्न पर) यहां कहाजाता हैकि

क्षायोपशमिकी१'प्रज्ञा।१'अन्यस्मिन्७'''ज्ञानावरणे७'''=क्षायोपशजनित प्रज्ञा अन्यमें वा परमें ज्ञानावरण कर्मके

सति७'''मदम्२'जनयति।न*सकल-आवरण- =होनेपर मदको वा अहकारको उत्पन्न करता है न कि समस्त (ज्ञान) आवरणके

क्षये७' =क्षयमें (प्रज्ञा मदको उपजाती है) अर्थात् जहां मद प्रज्ञा है सो ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे होती है और मदको उत्पन्न करती है ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशम वालेके ज्ञानावरणकर्मकी विद्यमानता अवश्य ही होती है परन्तु वह प्रज्ञा विद्वत्ता वा विज्ञानकला जो समस्तज्ञानावरणकर्मके नाश होनेपर होतीहै केवलज्ञानीके उपजती है वहां मद वा अहकार किंचित् भी नहीं होता है ॥

इति*ज्ञानावरणे७'''सति७'''इति*उपपद्यते। =ऐसे ज्ञानावरण कर्मके होनेमें(=सति)ऐसी(मद प्रज्ञा) उत्पन्न होती है, इस समस्तका भावार्थ यह है कि ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई मद प्रज्ञा सो ही अहकार उपजाती है जिसके (अर्थात् तेरहवां वा चौदहवां गुणस्थानवर्तियोंके)सकल ज्ञानावरण का नाश होजावेगा, वहां प्रज्ञाका मद नहीं उपजेगा,प्रज्ञा वा विद्वत्ताका मद क्षयोपशमज्ञानीके होता है और क्षयोपशमज्ञानीके ज्ञानावरणका उदय विद्यमान है ही। इस लिये प्रज्ञा (परीषह) ज्ञानावरणकर्मके उदयमें होती है।

पुनः*अपरयोः६'परिषहयोः६'प्रकृति- =पुनि अन्य दो परिषहोंकी [कर्म] प्रकृतिके

विशेष-निर्देश-अर्थम्४'''आह। =विशेष कथनके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ = दर्शनमोह-अन्तराययो. अदर्शन-अलाभौक्रमेण भवत ॥१४॥

यथासंख्यमभिसम्बन्धः । दर्शनमोहे अदर्शनपरिषहः । लाभान्तराये अलाभपरिषह इति ॥

आह यद्याद्ये मोहनीयभेदे एकः परिषहः अथ द्वितीयस्मिन् कति भवन्तीत्यत्रोच्यते—

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः॥१५॥

सूत्रार्थः—दर्शनमोह—अन्तराययोः अदर्शन— =दर्शनमोह और अन्तराय दोनों [कर्मों] [केउदय]में अदर्शन [परिषह]

अलाभौ क्रमेण भवतः T ॥ =और अलाभ(परिषह) (क्रमसे) होती हैं अर्थात् दर्शन मोहनीयकर्मके उदय होनेपर अदर्शन परिषह होती है और अन्तरायकर्मके उदयमें अलाभ परिषह होती है ॥

वृत्त्यनुवादः—यथा-संख्यम्* =(दर्शन मोह और अन्तरायका अदर्शन और अलाभके साथ) क्रमानुसार वा अनुक्रमसे

अभिसम्बन्धः, दर्शनमोहे अदर्शनपरिषहः, =सम्बन्ध है, दर्शनमोह कर्म (केउदय)में अदर्शन परिषह वा दर्शनाभाव परिषह होती है,

लाभ-अन्तराये अलाभपरिषहः इति*; =और लाभान्तराय[कर्मके उदय]में अलाभ परिषह होती है ऐसे [सम्बन्ध] है,

आह T यदि*आद्ये मोहनीय—भेदे एकः =प्रश्न करता है कि जो [=यदि] प्रथम वा आदिमें मोहनीय (कर्म)के भेदमें (अदर्शन)एक

परिषहः अथ*द्वितीयस्मिन् कति भवन्ति T =परिषह होती है, अब (=अथ) दूसरे [मोहनीय कर्मके भेद]में कितनी (परिषहा) होती हैं

इति*अत्र*उच्यते T =ऐसे [प्रश्न होनेपर) इस स्थानमें (=अत्र) [अग्रिम सूत्रमें] कहाजाता है कि

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः। [दोनों समाजोंमें पाठ,अर्थ एक है]

= चारित्रमोहे-नाग्न्य-अरति-स्त्री-निषद्या-आक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्काराः (परिषहाः भवन्ति)

सूत्रार्थः—चारित्रमोहे—नाग्न्य—अरति— =चारित्र मोहनीयकर्म [के उदय होने]में निरावरणतन वा नग्नता, (संयममें) अप्रीति

स्त्री—निषद्या—आक्रोश—याचना— =स्त्रीका अवलोकन वा स्पर्शन, आसन, अनिष्ट वचन वा दुर्वचन, मांगना वा प्रार्थना,

सत्कारपुरस्काराः परिषहाः भवन्ति T ॥ =मानअपमान वा सत्कारतिरस्कार (ये सात)परिषहाये होती हैं अर्थात् चारित्रमोहनीय प्रकृति जब उदयको प्राप्त होती है तब(१)निरावरण तन परिषह (२)संयममें मुनिकी अप्रीति परिषह[३]स्त्रीकाअवलोकन वा स्पर्शन परिषह(४) आसनपरिषह[५] अनिष्टवचन वा दुर्वचन परिषह[६]मांगनेकीपरिषह [७]मानअपमान परिषह वा सत्कारतिरस्कार होती है।

पुंवेदोदयादिनिमित्तत्वान्नाग्न्यादिपरिषहाणां मोहोदयनिमित्तत्वं प्रतिपद्यामहे । निषद्यापरिषहस्य कथम् ? तत्रापि प्राणिपीडापरिहारार्थत्वात् । मोहोदये सति प्राणिपीडापरिणामः सञ्जायत इति ॥ अवशिष्टपरिषहप्रकृतिविशेषप्रतिपादनार्थमाह–**वेदनीये शेषाः ॥१६॥**

पुंवेद–उदय–आदि–निमित्तत्वात् नाग्न्य–आदि– =पुरुषवेदके उदय आदिके कारणपनेसे नाग्न्य अरति-स्त्री-आक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्कार परिषहाणाम् मोहउदय निमित्तत्वं (१)प्रतिपद्यामहे =परिषहोंके मोहनीय कर्मके उदयका निमित्तपनाको (हम) मानते हैं(=प्रतिपद्यामहे),

निषद्या–परिषहस्य कथम् ? =निषद्या परिषहके कैसे (मोह उदयका निमित्तपणा) है अर्थात् प्रश्नका आशय ऐसा है कि चारित्र मोहनीय कर्मके उदय होनेपर सात परिषहायें होती हैं उनमें पूर्वोक्त छह परिषहायें तो पुरुषवेद आदि चारित्र मोहनीयकर्मके भेदोंसे होती हैं परन्तु निषद्या परिषहा तो आसनकी परिषहा है इसके चारित्र मोहनीयकर्मके उदयका कारण कैसे है ।

तत्र अपि प्राणिन्–पीडा–परिहार–अर्थत्वात् =(उत्तर)यहां (निषद्या वा आसन परिषहमें) भी प्राणियोंके कष्टके निवारणका प्रयोजनहोनेसे(=अर्थत्वात्)

मोह–उदये सति प्राणिन्–पीडा–परिणाम सञ्जायते इति ॥ मोहनीयकर्मके उदय होनेपर प्राणियोंको कष्ट देनेका =भाव उत्पन्न होता है भावार्थ प्राणियोंको कष्ट देनेके परिणाम मोहके उदयसे होते हैं, आसनसे डिगना मोहके उदयके कारणसे है,अतः मोहनीय कर्मकी यहां मुख्यता है ।

अवशिष्ट परिषह प्रकृतिविशेष प्रतिपादन-अर्थम् आह =बची हुई (ग्यारह) परिषहोंके विशेष निमित्त(=प्रकृति)कहनेकेलिये (आगे)कहते हैं कि

वेदनीये शेषा ॥१६॥ =वेदनीये शेषा (एकादश परिषहा) भवन्ति ॥१६॥

वेदनीये शेषाः एकादश परिषहाः भवन्ति । =वेदनीय (कर्मके उदय)में बचीहुई ग्यारह परिषहायें होती हैं अर्थात् क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल ये ग्यारह परिषहायें वेदनीय कर्मके उदय होनेपर होती हैं ॥ १६ ॥

---

(१)पद् दिवादि चौथेगणका धातु है। पद् धातुका जाना अर्थ है परन्तु प्रतिके लगानेसे प्रतिपद् =मानना वा स्वीकार करना अर्थ होजाता है, य चौथेगणका विकरण है, महे उत्तम पुरुष बहुवचन, आत्मनेपद वर्तमान क्रियाका चिन्ह है प्रति+पद्+य+महे =प्रतिपद्यामहे क्योंकि उत्तम पुरुषके वे प्रत्यय जो म् व् से प्रारंभ हों,इनके पहिले आया हुआ अकार दीर्घ होजाता है अतः प्रति+पद्+य+महे=प्रति+पद्या+महे=प्रतिपद्यामहे ।

उक्ता एकादश परिषहाः । तेभ्योऽन्ये शेषा वेदनीये सति भवन्तीति वाक्यशेषः ॥ के पुनस्ते ? क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलपरिषहाः ॥ आह—व्याख्यातनिमित्तलक्षणविकल्पाः प्रत्यात्मनि प्रादुर्भवन्तः कति युगपदवतिष्ठन्त इत्यत्रोच्यते—

(प्रथम पाठ)एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ॥१७॥

वृत्त्यनुवादः—एकादश'' =ग्यारह(प्रज्ञा-अज्ञान-अदर्शन-अलाभ-नाग्न्य-अरति स्त्री-निषद्या-आक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्कार/
परिषहाः''उक्ताः'',तेभ्यः''अन्ये''शेषाः'' =परिषहायें कही गईं, तिन(ग्यारह परिषहाओं)से भिन्न बचे हुये वा अवशेष(परिषहायें)
वेदनीये'''सति'''भवन्ति T =वेदनीय (कर्मकी प्रकृतिके उदय)के होनेपर (=सति)होती हैं,
इति* वाक्यशेषः''; =ऐसा (अर्थात् तेभ्यो अन्ये सति भवन्ति)गुप्त वाक्य वा छिपा हुआ वाक्य(वेदनीये शेषाः—१६वां सूत्रमें)है अर्थात् "वेदनीय शेषा" इससूत्रमें "तेभ्यो ऽन्ये सति भवन्ति" जोड़ना चाहिये
के''पुनः* ते''क्षुत्–पिपासा–शीत–उष्ण– =और (=पुनः)ते (ग्यारह परिषहायें)कोन हैं (उत्तर) क्षुधा वा भूख, प्यास, हिम,धूप वा उष्ण
दंशमशक–चर्या–शय्या–वध–रोग–तृणस्पर्श– =डांस मच्छर आदिका काटना, गमन, शयन, मारन, रोग, तिनका आदिकका चुभना,
मल–परिषहाः'' ॥ आह T– =मल परिषहायें हैं॥ (शिष्य वा वादी) प्रश्न करता है कि (परिषहाओंके ज्ञानावरणादिक)
व्याख्यात–निमित्त–लक्षण–विकल्पाः'' =निमित्त लक्षण और भेद कहे गये हैं अर्थात् कौनकौन परिषह किनकिन कर्मोंकी प्रकृतियों के निमित्त वा हेतुसे होती हैं, इसके स्वरूप [=लक्षण] तथा भेद[विकल्पाः]कहे गये
प्रति*आत्मनि''प्रादुर्भवन्तः''कति''युगपद्* =[परन्तु हमने यह नहीं जाना कि] एक जीवमें कितने [परिषह] एकसाथ वा एक कालमें प्रगट
अवतिष्ठन्ते T इति* अत्र* उच्यते T– =हो(रुक)ते हैं ऐसा [प्रश्न होनेपर] इस स्थानमें [अगले सूत्रमें]कहा जाता है कि

[1](प्रथम पाठ) एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ॥ १७ ॥

[१]इस सूत्रके पाठ भिन्न भिन्न प्रतियोंमें पृथक् पृथक् हैं कुछ व्याकरणकी रीतिसे शुद्ध हैं कुछ अशुद्ध हैं,प्रथम इसके कि हम उन पाठोंको लिखकर उनपर समालोचनाकरैं एकस्मिन्नैकोन विंशतेः(=एकस्मिन्+ऐकोनविंशतेः)=एकस्मिन्+आ+एकोन विंशतेः=एकस्मिन्+आ+एक+ऊनविंशतेः एकस्मिन्नैकान्नविंशतेः(=एकस्मिन्+ऐकान्नविंशतेः)=एकस्मिन+आ+एकान्नःविंशतेःवाक्योंपर टिप्पणी लिखदे कि सूत्रसरलतासे समझमें आजावै

=एक आद्य·भाज्या·युगपद् एकस्मिन् आत्मनि ऐकोन(आ–एकोन)विंशते परिपहा सम्भवन्ति।

अर्थात् एकस्मिन्(इस दूहरे हल त न का पदच्छेदमें एक हलन्त न् कैसे रह गया)आ,एकोन,एकाग्र, और एकाग्रविंशति,किस २ अर्थमें आतकहैं
(घ) जब ङ्,ण्,न् मेंसकोई शब्द अथवा पदके अन्तमें हो और उसके पहले कोई ह्रस्व स्वर आवे और उक्त ङ् ण् न्के पश्चात् कोई स्वर होतो ङ् ण् न् दूहरा हो जाता है इसलिये एकस्मिन्+ऐकोन और एकस्मिन्+ऐकाग्रके, एकस्मिन्नैकोन और एकस्मिन्नैकाग्र क्रमसे होगये।

(आ) आ-सामान्यरूपमें अव्यय है( )ब्रह्मालाका दूसरा स्वर ( )अनुकम्पा,दया( )वाक्य ( ) समुच्चय[ ]मेल [ ]अंगीकार[ ] कष्ट, शोक [ ] स्मृति स्मरण [पुलिंगमें इसका अर्थ महादेव है ॥ वाक्य और स्मरणसे भिन्न यह ङित् होता है अर्थात् वाक्य और स्मरण अर्थमें ङित् नहीं होता है परन्तु इसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है। ङित् वह है जिसके अन्तमें ङ् हो, आ जब ङित् होता है तब 'आङ्' ऐसा रूपहोता है, इस ङ् को अनुबन्ध कहते हैं, धातु,प्रत्यय, आगम और आदेशमें गुण, वृद्धि आदि कार्य विशेषके लिये लगाया गया कोई वर्ण अक्षर जो कि पदकी सिद्धिकालमें इत् होकर लोप होजाता है इसीको अनुबन्ध कहते हैं, पदकी सिद्धिमें इत्(=सूत्र शब्द, अथवा वाक्यका अंतिम केवल व्यंजन, अकेला व्यंजनमात्र)का लोप हो जाता है ॥ व्याकरणमें स्वर सन्धि न होने योग्य पदको प्रगृह्य कहते हैं अर्थात् सन्धिके नियमोंको बिना पालन किये हुये किसी शब्दका लिखना अथवा उच्चारण कर देना सारांश ये स्वर जिनकी संधि न होवे ॥ उपर्युक्तसे प्रगट है कि उक्त अव्यय का विशेष जो कि प्रगृह्य नहीं है आङ् रूपमें है और जो प्रगृह्य है आ रूप में शोच, शोक, स्मरण इत्यादि प्रगट करनेमें आता है ॥ हमारा संबंध यहां आङ्से है अर्थात् जो प्रगृह्य नहीं है और जिस पर स्वरसंधिके नियम लागू हैं इसका प्रयोग निम्न चार अर्थों में होता है ॥

(क) जब संज्ञा,गुण वाचक इत्यादि शब्दोंके साथ जोड़ा जाताहै तब थोड़ा,अल्प,ईषत् या किंचित् अर्थमेंआताहै॥जैसे कम्प=कपकपी,थरथराहट आकम्प=थोड़ी कपकपी,अल्प थरथराहट,पाण्डु=श्वेत,आपाण्डु=किंचित् शुक्ल उष्ण=तपा हुआ,आ+उष्ण=आोष्ण=थोड़ातप्त, ईषत्तपा हुआ,
(ख) क्रिया या धातुके पहले लगाया जाय तो पास,समीप और सबओरसे का अर्थ देता है, जैसे आने ऐरिन्द्रयेतु=आ मे ऐ: इन्द्र येतु=इन्द्र चारोंतरफ मार्गोंद्वारा(यज्ञमें)प्राप्त हो अर्थात् इन्द्र यज्ञमें जी चाहे जिसओरसे आसका है,जब उन धातुओंके प्रथम लगाया जाय जो जाना,देना, लेना, इत्यादि अर्थों में आते हैं तो क्रियाके अर्थको उलट देता है जैसे याति=वह जाता है आयाति=वहआता है, गच्छति=वहजाता है, आगच्छति=वह आता है ददाति=वह देता है, आदत्ते=वह लेता है, वह ग्रहण करता है, गृह्यते=वह पकड़ता है, आगृह्यते=वह छोड़ता है
(ग) या आङ् मर्यादाभिविध्योः=आङ् मर्यादा अभिविध्या (समास अव्ययीभाव विभाषा पञ्चम्या सह)अष्टाध्यायी २ १ १३ सूत्र=मर्यादा(अर्थात् उसके बाहर बाहर और अभिविधि अर्थात् जो सीमा कहै उसको मिलाकर, अभिव्याप्ति करके, शमिल करके, अन्तर्गतकरके,) अर्थोंमें वर्तमान जो आङ् (=आ)वह पंचमी अपादान विभक्तिके साथ विकल्पसे (=विभाषा) समासको प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभाव संज्ञक हो, पञ्चमी विभक्तिके साथ समास न करें तो द्वितीया विभक्तिके साथ अव्ययीभाव समास हो ॥ प्रथमा तृतीया आदि आङ्के साथ नहीं आसक्ती।

(ग) मर्यादा अर्थमें जैसे आमुक्ते संसार मुक्तिकी सीमासे (बाहर) संसार है अर्थात् मुक्तिकी सीमाके बाहर संसार है, एक मुक्तिकी सीमा मानलो और एक संसारकी दोनो सीमायें एक दूसरसे चिपटी हुई हैं यहां आङ् अव्ययका यह प्रभाव है कि मुक्तिकी सीमासे संसारकी सीमा को बाहर बाहर रखता है जिस शब्दके पहले यह मर्यादाका अर्थमें आता है तो उस वस्तुकोनिकाल देता है छोड़देता है, उस वस्तुसे बाहर बाहर अन्य वस्तुका प्रगट करता है उस वस्तुके इधर किसीकी विद्यमानताको प्रगट करता है ॥ अत अर्थ हुआ कि मोक्षसे बाहर संसार है, मोक्षको छोड़कर संसार है मोक्षके इधर इधर संसार है,मोक्षसे हटकर संसार है सारांश मोक्षसे पहिले संसार है। द्वितीया विभक्तिके साथ "आमुक्तिम् संसारः" का भी यही अर्थ है। मर्यादा, अभिविधिके अर्थ में पंचमी या द्वितीयाविभक्तिके अतिरिक्त आङ्के साथ और विभक्ति नहीं आसक्ती है।

(द्वितीय पाठ)एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकान्नविंशतिः ॥१७॥

(द्वितीय पाठ) एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकान्नविंशतेः ॥ १७ ॥

=पदच्छेद–एक-आदयः भाज्याः युगपद् एकस्मिन्(आत्मनि)एकान्नविंशतेः(परिषहाःसम्भवन्ति)

दूसरा उदाहरण—आपाटलिपुत्रात् वृष्टो देवः=पटनासे निकट वर्षा हुई अर्थात् पटनाकी सीमाको छोड़कर पटनासे बाहर, पटनाके इधर इधर वर्षा हुई ॥ द्वितीया विभक्तिके साथ 'आपाटलिपुत्र' वृष्टो देवः' वाक्यका भी यही अर्थ है ॥

(घ)अभिविधि वा अभिव्याप्ति अर्थमें अर्थात् जिसके पहिले आङ्(आ)शब्द आता है उसको अपनेमें सम्मिलित करलेता है अपनेमें अन्तर्गतकरता है, जैसे आकुमारं (द्वितीया विभक्ति) आकुमारेभ्यो (पञ्चमी विभक्ति) यशः पाणिनेः=(मनुष्योंसे) बालकों तक पाणिनि मुनिका यश वा नाम है जैसे आबालं (द्वितीया विभक्ति) आबालेभ्यो (पञ्चमी विभक्ति) हरिभक्तिः =(पुरुषोंसे) छोकरे तक वा छोकडे पर्यन्त हरिकीभक्तिमें(लगेहुये) हैं हमारा प्रयोजन आङ्के अभिविधि अर्थसे (तत्त्वार्थ सूत्रके समस्त सूत्रोंमें) है और श्री उमास्वामीने सब सूत्रोंमें जहां आङ् का प्रयोगकिया है तथा पूज्यपाद स्वामीनेभी समस्त सर्वार्थसिद्धिकीवृत्ति(भाष्य)मे जहां आङ् का प्रयोग किया है इसी अभिविधि अर्थमें लिया है जैसाकि निम्नमेंहै

( )एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः(=युगपद्एकस्मिन्आचतुर्भ्यः)=एकज्ञानको आदिलेकरभाज्यरूपएकसाथएकजीवमें चारज्ञानतकहो

( )तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः(=युगपद्एकस्मिन्आचतुर्भ्यः)=उन(तैजस, कार्मण)को आदि लेकर विकल्परूप कियेहुये वा विभाजित किये हुये एककालमें एक [जीव]में चार[शरीर] तक (चार शरीर पर्यन्त) होते हैं

( ) आ आकाशादेकद्रव्याणि (अध्याय५ सूत्र६) =(प्रथम सूत्रके धर्म द्रव्यसे लेकर)आकाश पर्यन्त अर्थात् धर्म अधर्म आकाश एकएकद्रव्य हैं

( ) एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः(एकस्मिन् आ+एकोनविंशतेः)=एकको आदि लेकर एककालमें वाएकसाथ एक(जीव)मेंएकन्यून बीसं (परिषहायें)तक,(=आ)पर्यंत(=आ)अर्थात् उन्नीस परिषहायें तक भाज्यरूप करना चाहिये

( ) उत्तम संहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधोध्यानमान्तर्मुहूर्तात् (आ'अन्तर्मुहूर्तात्)'=उत्तमसंहनन (वज्रऋषभनाराच-वज्रनाराच-नाराच)वालेका ध्यान अर्थात् अन्य पदार्थोंसे चित्तको रोककर एक ही विषयमें मनका लगाउ है सो अन्तर्मुहूर्त तक है

( ) तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् [''' गच्छति आ-लोकान्तात्]=उन(सबकर्मोंके नाश)के पीछे मुक्तजीव ऊपरको लोकके अंततक जाता है

जब निपात 'आ' चार पूर्वोक्त अर्थोंमेंसे किसीमें न आया हो और जब उसका प्रयोग शोक,शोच, स्मरण इत्यादि प्रकाश करनेमें कियाजाता है तब वह प्रगृह्य है जैसे आ एव किलासीत्=आ-एवम्-किल-आसीत्=ओहो एकवार[वहां]ऐसा था (=आसीत्)यहां स्मरणमेंआकीङित् संज्ञा नहीं हुई अतः(निपातएकाजनाङ् अष्टाध्यायी १-१-१४सूत्रसे)प्रगृह्य संज्ञा हुई और'आ'की'एव के साथ संधि नही हुई ज्योंकात्योंही बना रहा (अष्टाध्यायी ६-१-१२५)। वाक्यमें आङ्को ङित् संज्ञा नहीं होतो जैसे आ एव नु मन्यसे=ओहो[=आ]क्या[=नु=प्रश्न]ऐसा(=एवम्)आपमानते हैं, यहां वाक्यमें आङ्कीङित् संज्ञा न हुई तो १-१-१४ सूत्रसे प्रगृह्य संज्ञी हुई और अष्टाध्यायी ६-१-१२५सूत्रसे वैसाही रूप बना रहा अर्थात् आ की एवम्के साथ संधि नहीं हुई [इ)एकोन=एक–ऊन=एक न्यून एक घाटि [ई]एकान्न–त्रिलिंगी है=एककालमेवान्न भक्ष्यं यत्र=जहां एक बार ही भोजन किया जाता है, इकट्ठा खाने हारा, एकभक्त व्रत, एकबार खानेका व्रत, [पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ८५] [ऊ] परन्तु एकान्नविंशतिः [स्त्री लिंग है]=एकेन न विंशतिःएक+न-आदुक् दस्य वा न। एकन्यूनबीस। उन्नीसकी संख्या[पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १८५ देखो]

विशेषेण (१) गत्यनुवादेन—नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकैश्चतुर्गुणस्थानैर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः। द्वितीयादिषु प्राक्सप्तम्या मिथ्यादृष्टिभिः सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः एकः द्वौ त्रयः चत्वारः पञ्च चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः।

विशेषेण ॥ (१) गति-अनुवादेन ॥—	=भेदकरि (१) गतिके कथनानुसारसे
नरकगतौ ॥ प्रथमायां ॥ पृथिव्यां ॥	=नरकगतिविषैं पहले नरकमें
नारकैः ॥ चतुर्गुणस्थानैः ॥	=चार (पहले दूसरे तीसरे चौथे) गुणस्थानवर्ती नारकियों करि
लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ स्पृष्टः ॥	=लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन किया जाता है (नारकियोंके प्रथमसे चौथे तक चारही गुणस्थान हो सकते हैं)
द्वितीयादिषु ॥ प्राक्सप्तम्याः ॥	=दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवींसे पहिली (पृथिवी) तमे अर्थात् (दूसरे नरकसे छठे नरकतकनि विषैं)
मिथ्यादृष्टिभिः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ॥	=मिथ्यादृष्टी [तथा] सासादनसम्यग्दृष्टी नारकियोंकरि
लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ (स्पृष्टः ॥)	=लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शन किया जाता] है [अपेक्षा
वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥	=अथवा चौदह राजू [लोककी त्रसनालके] हैं (सो मारणान्तिक समुद्घात
एकः ॥ द्वौ ॥ त्रयः ॥	=[कुछहीन] एकराजू (कुछ घाटि) दो राजू (कुछ न्यून) तीनराजू
चत्वारः ॥ पञ्च ॥ देशोनाः ॥	=(कुछघाटि) चारराजू कुछ न्यून पांचराजू स्पर्शनयोग्य है क्योंकि दूसरे नरकसे मध्यलोक एक राजू है तीसरेसे दो राजू, चौथेसे तीन राजू पांचवेंसे चार राजू और छठें नरकसे मध्यलोक पांच राजू हैं [सम्यग्दृष्टियोंसे
सम्यग्मिथ्यादृष्टि+असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ॥	=[दूसरे नरकसे छठे नरक तकके नारकी] मिश्रगुणस्थानवर्ती और असंयत
लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥	=(स्वस्थान विहार अपेक्षा) लोकका असंख्यातवां भाग (स्पर्शा जाता) हैं

आङभिविध्यर्थः।तेन एकोनविंशतिरपि क्वचित् युगपत्सम्भवतीत्यवगम्यते।तत्कथमितिचेदुच्यते

वृत्त्यनुवादः—आङ्‌¹अभिविधि-अर्थः²;तेन³ =(सूत्रमें) आङ् (उपसर्ग)अभिविधि अर्थमें है, तिरा [आङ् उपसर्ग] करि एक-ऊन-विंशतिः⁴ अपि*क्वचित्*युगपत्*सम्भवति†=उन्नीस परिषह भी कहीं कहीं एक साथ हो सक्ती हैं इति*अवगम्यते†। तत्⁵ कथम्*इति*चेत्*उच्यते†=ऐसा जताया गया है, सो कैसे है ? ऐसा संशय(=चेत्)होनेपर कहाजाता है कि

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामे इस सूत्रके पाठमे 'एकस्मिन्' शब्द नहीं है और पेकोनविंशतेः के स्थानमें एकोनविंशतेः वाक्य है परन्तु सभाष्य०में इस सूत्रका अर्थ जो संस्कृतमें किया है उसमें'आएकोनविंशतेः' जो पेकोनविंशतेः के तुल्य है लिखा है क्योंकि आ+ए=ऐ, इससे जान पड़ता है कि छापेकी मूलसे"युगपदैकोनविंशतेः" वाक्यके स्थानमें "युगपदेकोनविंशतेः" छप गया है इसलिये सभाष्यका पाठ यह होता है, "एकादयोभाज्या युगपदैकोनविंशतेः" और प्रथम पाठ जो हमने दिया है ऐसा है "एकादयोभाज्यायुगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः" दोनों पाठोंको मिलानसे प्रगट हैकि सभाष्य०के पाठमें एकस्मिन् शब्द नही है शेष पाठएक है परन्तु अर्थ करनेमे सभाष्य०के कर्ताने 'एकस्मिन्जीवे,वाक्य मिलायाहै हमारे यहां आत्मनि शब्दजोडकर अर्थ कियाहै अतःअर्थ भी दोनों सम्प्रदायोंमेंएकहै। "एषांद्वाविंशतेः परीषहाणामेकादयो भजनीया युगपदेकस्मिन् जीवे आ एकोन विंशतेः"सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २१०से उद्धृत ॥

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ २१०से उद्धृत

एषाम् द्वाविंशतेः परीषहाणाम्=इन बाईस परीषहोंके
एक-आदयः भजनीयाः =एक आदिका विभाग करना उचित है(तब)
युगपद् एकस्मिन् जीवे =एककालमे एक जीव वा एक आत्मामें
आ-एकोन(=एक+ऊन)विंशतेः=उन्नीस(परीषहा)तक(=आ)हो सक्ते हैं

"तात्पर्य यह कि किसीमे एक परीषह होता है किसीमें दो,किसीमें तीन, इस क्रमसे उन्नीस पर्यंत हो सकते हैं" "एककालमें एकही पुरुषमें शीत परीषह तथा उष्ण परिषह ये दोनों नहीं होते "एक होगा" चर्या,शय्या, निषद्या इन तीन परीषहमें से जब एककी सत्ताको सम्भव होता है तब शेषदोनोंका अभाव ही रहता है ॥

दिगम्बर आम्नायका प्रथम पाठ अर्थ सहित नीचे लिखा है

एकादयः भाज्याः =एक आदि(परिषह)लेकर विभाग करना चाहिये
युगपद् एकस्मिन्आत्मनि=(तब)एककालमें एकआत्मा वा एक जीवमें
आ-एकोन(=एक+ऊन)विंशतेः=उन्नीस(परिषहायें)तक(=आ) हों

तात्पर्य यह कि एक जीवके एक साथ उन्नीस परीषह हो सक्ती हैं, क्योंकि शीत उष्णमेंसे एककालमें एकही परीषह होगी, शय्या,चर्या, निषद्या,इन तीनोंमेसे एक साथ एकही हो सक्ती है इसलिये बाईस परीषहोंमेसे तीन परीषहोंका एककाल जीवोंके अभाव होनेसे उन्नीस परीषह ही एक साथ उदय हो सक्ती हैं ॥

श्वेताम्बर समाजकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका, श्रीसिद्धसेनसूरिरचित जिसमें बाईस सहस्र श्लोकसे भी अधिक हैं उसका पाठ हमारे द्वितीय पाठसे मिलता है उसके सूत्र पाठमें 'एकस्मिन्' शब्द नही है, 'एकस्मिन्' शब्दके स्थानमें भाष्यकारने भाष्यके पत्र ७०२मे 'एकस्मिन्यतौ' (=एक यतिमें)दियाहै जैसा कि निम्न पाठोंसे प्रगट है"एकादयो भाज्या युगपदैकान्नविंशतेः"युगपदैकान्नविंशतेः=युगपद्+आएकान्नविंशतेः= एक साथ एक घाटिबीस तक। 'युगपदेकस्मिन्यतौ तत्र कस्यचिदेक कस्यचिद्द्वौ ....."=युगपद् एकस्मिन् यतौ तत्र कस्यचित्एकः कस्यचितद्वौ एक साथ एक मुनिमें किसीके एक किसीके दो। उपर्युक्त सब टिप्पणी सूत्र पाठों और भाष्योंमें स्पष्ट हैकि दोनोंआम्नायोंमें इससूत्रका पाठएकसाहै

सूत्रार्थ —एक-आदय ³युगपद्⁴एकस्मिन्²आत्मनि¹=एकको आदिलेकर [=एक आदय] एककालमें वा एकसाथ एक जीव वा आत्मामें
आ+एक+ऊन विंशते (=ऐकोनविंशते) परिषहा ³=एक हीन वीस (परिषह)तक (=आ] अर्थात् उन्नीस परिषह लग उन्नीसपरिषह पर्यंत
भाज्या ³ सम्भवति ॥ =भाज्यरूप सम्भव है अर्थात् इनवाईस परिषहोंके मध्यमें एकही कालमें किसी मुनिमें एक
परिषह होती है, किसीमें दो, किसीमें तीन, इस क्रमसे उन्नीस पर्यंत हो सक्ती हैं परंतु यहांपर यह भी जानना योग्य है कि एककालमें
एकही ऋषिमें शीत परिषह तथा उष्ण परिषह ये दोनों नहीं हो सक्ते हैं क्योंकि शीत तथा उष्णका परस्पर अत्यंत विरोध है । ऐसे ही
चर्या, शय्या, तथा निषद्या इन तीन परिषहोमेंसे जब एकका अस्तित्व होता है तब शेष दोनोंका अभाव ही रहता है क्योंकि चर्या
[गति]शय्या (शयन) और निषद्या (स्थिति) इनमें भी विरोध होनेसे, गमन होगा तब शयन तथा स्थिति वा निषद्या (खड़ा होना)नहीं
हो सक्ता, इसी प्रकार जब शय्या होगी तब निषद्या तथा चर्या न होगी, जब चर्या होगी तब निषद्या तथा शय्या न होगी ॥
(द्वितीया पाठकाअर्थ,एकआदय ³भाज्या ³युगपद्*=एकको आदि लेकर अर्थात् एकको,दोको, तीन इत्यादिको लेकर विभाग रूप एकसाथ
एकस्मिन्²आत्मनि²आएकान्नविंशते ²परिषहा ³=एक जीवमें वीस [में]से केवल एक नहीं (=एकान्नविंशते) अर्थात् उन्नीस परिषह तक
सम्भवति T ॥ =सभव हैं अर्थात् एक आत्मामें एक, दो, तीन,आदि एककालमें उन्नीसपरिषहा तक होसक्ती हैं।

(१) हमारी सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें शुद्ध और अशुद्ध इस सूत्रके इतने पाठ हैं कि प्रत्येकके सबधमें उल्लेख करना हमारी शक्तिसे बाहर है टिप्पणियोंसे विदित है कि दो पाठ जो हमने दिये हैं, वे शुद्ध हैं प्रथम पाठ प्राचीन बडे बडे भाष्य जैसे सर्वार्थसिद्धिवृत्तिये (हस्तलिखित), तत्त्वार्थराजवार्तिक और श्लोकवार्तिक मुद्रित और हस्तलिखित श्रुतसागरीटीका इत्यादिमेंसे लेकर दिया है,अन्य पुस्तकोंमें भी प्राय यही पाठ है द्वितीय पाठ सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति के दोनों मुद्रित संस्करणोंसे और एक हस्तलिखित प्रति जो लगभग तीनसो पचास वर्षकी लिखी हुई है उसके पत्र ८४ से और दूसरा पुस्तक जो सम्वत् १८७५की लिखी हुई है उसके पत्र १०१ परसे लिया है ॥

भाषाके बडे २ टीकाओंमें जो"युगपदेकस्मिन्नेकानविंशति "है यहां विंशति प्रथमा विभक्तिके स्थानमें 'विंशते पचमी होना चाहिये क्योंकि आङ् अव्ययके साथ अष्टाध्यायी २ १ १३ उक्त सूत्रानुसार पञ्चमी विभक्ति अथवा द्वितीया विभक्ति होना चाहिये, प्रथमा इत्यादि अन्य विभक्तियें लाना अशुद्ध है द्वितीया विभक्ति उमास्वामीका रचनाशैलीके अनुसार नहीं हो सकती है क्योंकि हमने पृष्ठ ८४में इस सूत्रके अतिरिक्त पांच सूत्र दिये हैं जिनमें आङ्का प्रयोगहै,सबमें उमास्वामीने पञ्चमी विभक्तिका प्रयोग किया है इसलिये उक्त पाठमें विंशति व्याकरणके अनुसार ठीकनहींहै

( ) भाषाके किन्हीं किन्हीं टीकाओंमें युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशति पाठ है, विंशति के स्थानमें विंशते होना चाहिये जैसा कि हम अभी सिद्ध कर चुके हैं और एकोन के स्थानमें ऐकोन चाहिये, क्योंकि एकोन=एक+ऊन अर्थात् एकन्यून, और ऐकोन=आ+एक+ऊन अर्थात् एक न्यूनतक या एकन्यून पर्यन्त भावार्थ प्रथम पदच्छेदमें आङ् अव्यय नहीं निकलता है दूसरे ऐकोनके पदच्छेदमें आङ् निपात निकलता है और आङ्का लाना आवश्यक है क्योंकि श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायके बडे २ सब भाष्योंमें आङ् उपसर्गका अस्तित्व सूत्रमें स्वीकार कियाहै,और दूसरा हेतु यह भी हैकि बिना आङ् अव्ययके सूत्रका अर्थ ठीक ठीक नहीं बनता है,आङ्के लानेसे अर्थ होता है कि उन्नीस परिषहायें तक एक, दो, तीन चार, पांच, छह सात आदिको लेकर एक साथ वा एककालमें मुनिको हो सकती हैं, बिना आङ्के अर्थ होता है कि उन्नीस परिषहायें एक साथ होती हैं हीनाधिक नहीं होती है यह आशय सूत्रकारका नहीं है सूत्रकारका तो यह आशय है कि बाईस परिषहोंमेंसे एक कालमें एक मुनिके एक परिषह हो, दोहो, तीनहो, चारहो, पांचहो, इत्यादि क्रमसे होती हुई अधिकसे अधिक उन्नीस परिषह तक होना संभव है ॥

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परराययथा-ख्यातमिति चारित्रम् ॥ १८ ॥

सूत्रम्—(१)सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परराययथाख्यातमितिचारित्रम् ॥१८॥

पदच्छेदः—सामायिक—च्छेदोपस्थापना—परिहारविशुद्धि—सूक्ष्मसाम्पराय—यथाख्यातम् "इति" चारित्रम्" ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—(क) (२)सामायिक(ख)च्छेदोपस्थापना (ग) परिहारविशुद्धि (घ) सूक्ष्मसाम्पराय(ङ) यथाख्यात ऐसे[ये पांच]चारित्र हैं अर्थात

(१)श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकामें च्छेदोपस्थापनाके स्थानमे च्छेदोपस्थाप्य है,सूक्ष्मसाम्परायके स्थानमें'सूक्ष्मसंपराय,'यथाख्यातमितिके स्थानमे 'यथाख्यातानि'है शेष पाठ और अर्थ एकसा है ॥ च्छेदोपस्थाप्य शब्द नपुंसक लिंगी है। हमारी समाजकी पुस्तकोंमें बहुधा च्छेदोपस्थापना मिलता है. कहीं कहीं छेदोपस्थापना भी पाठ है दोनों शब्द शुद्ध हैं। कहीं २ छेदोपस्थापन (संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ४३५)कहीं च्छेदोपस्थापन भी पाठ है। स्थापना और स्थापन दोनों पाठ शुद्ध हैं। (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ४३८) अतः च्छेदोपस्थापना, छेदोपस्थापना, च्छेदोपस्थापन, छेदोपस्थापन चारोंशब्द ठीक हैं, स्थापन शब्द नपुंसकलिंगी है और स्थापना शब्द स्त्री लिंग है॥ चारित्र और संयम एक हैं क्योंकि"दशविधे धर्मे संयम उक्तः स एव चारित्रमिति॥""चारित्रं संयम इत्यभेदम्"(भाष्यानु० पत्र ७०३)

व्रतोंका धारण, समितिका पालन, कषायोंका निग्रह, मन वचन, कायकी अशुभप्रवृत्तिरूप अनर्थ दण्डोंका त्याग करना, इन्द्रियोंका विजय सो संयम है॥ सामायिक दो प्रकार है (अ) नियत काल (आ) अनियतकाल (अ) तहां निश्चित वा नित्य समयमें स्वाध्याय आदिक करना सो नियतकाल (सामायिक) है (आ) ईर्यापथ आदिकमे अनियतकाल (सामायिक) है ॥ सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो चारित्र प्रमत्त छठवां गुणस्थानमें, अप्रमत्त सातवां गुणस्थानमें, अपूर्वकरण आठवां गुणस्थानमें, अनिवृत्ति करण नवमा गुणस्थानमें होते हैं ॥ परिहार-विशुद्धि चारित्र छठवां और सातवां गुणस्थानमें ही होता है। सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र दशवें गुणस्थानमें होता है, और यथाख्यातचारित्र उपशांत मोह ग्यारहवां गुणस्थानमें, क्षीण मोह बारहवां गुणस्थानमें, सयोगकेवली तेरहवां गुणस्थामे अयोग केवली चौदहवां गुणस्थानमें होता है, चारित्रके भेदशब्दको अपेक्षासे तो संख्यात हैं, बुद्धिके विचारसे असंख्यात हैं और अर्थसे अनन्त भेद हैं ॥

(क)(२)सामायिक चारित्रम्—हमको निम्न वाक्योंमें 'समयिक''सामयिक' 'सामायिक'तीन शब्द'सम्'अव्ययसे बने हुये मिलते हैं ॥ (अ०६सूत्र४०मे) साम्प्रतिककस्यैक समयिकत्वेऽपि अतीता अनागताश्च समया अनन्ताः = साम्प्रतिकस्य-एकसमयिकत्वे अपि अतीताः च अनागताः,समयाःअनन्ताः (ख)"एकत्वेन अयनं गमनं समयः समय एव सामयिकं,समयः प्रयोजनमस्येति वा विगृह्य सामयिकम्" (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति अध्याय ७ सूत्र २१)

शीतोष्णपरिषहयोरेक शय्यानिषद्याचर्याणामन्यतम एव भवति एकस्मिन्नात्मनि ॥ कुत. ? विरोधात्॥ तत्त्रयाणामपगमे युगपदेकात्मनीतरेषा सम्भावादेकोनविंशतिविकल्पा बोध्यव्या ॥ ननु प्रज्ञाज्ञानयोरपि विरोधाद्युगपदसम्भव ? । श्रुतज्ञानापेक्षया प्रज्ञापरिषह अवधिज्ञानापेक्षया अज्ञानपरिषह इति नास्ति विरोध ॥ आह उक्ता गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजया संवरहेतव. पञ्च । संवरहेतुश्चारित्रसंज्ञो , वक्तव्य इति तद्भेदप्रदर्शनार्थमुच्यते–

शीत-उष्ण-परिषहयो ।'एक ।'शय्या-निषद्या- =हिम, उष्ण,[इन]दो परिषहोंमेंसे एक [सम्भव] है, शयन,स्थिति
चर्याणाम् ।'''अन्यतम ।'एव'भवति।एकस्मिन् ।' आत्मनि ।',=गमनके बहुतोंमेंसे एक ही [अर्थात् तीनोंमेंसे एकही] एक आत्मामें होती है ।
कुत • ? =(प्रश्न) क्योंकर[शीत उष्णके आपसमें तथा शय्या निषद्या चर्याके आपसमें]
विरोधात् ।',तत्-त्रयाणाम् ।'अपगमे ।' युगपत्'एक- =विरोध होनेसे (दोका पाचोंमेंसे होना सम्भव है) उन(शीत-उष्णमेंसे एक तथा शय्या निषद्या-चर्यामेंसे दो) तीनकी हीनतामें[=अपगमे]एकसाथ एक
आत्मनि ।'इतरेषा ।'सम्भवात् ।'एकोन-विंशति विकल्पा ।' =जीवमें[शेष]अन्य[परिषहों]के सम्भव होनेसे उन्नीस भेद[अर्थात् जहा एक परिषह है वहा एक विकल्प हुआ,जहा दो परिषहायें हैं वहादो विकल्प हुये,जहा तीन परिषहायें एकसाथ है वहा तीन विकल्प हुये इत्यादि ऐसे उन्नीस विकल्प
बोध्यव्या ।;ननु•प्रज्ञा-अज्ञानयो ।'''अपि•विरोधात् ।' =ज्ञात किये जाने योग्य है प्रश्न-प्रज्ञा और अज्ञानमें भी (आपसमें) विरोध होनेसे
युगपत्•असम्भव ।' श्रुतज्ञान अपेक्षया ।'''प्रज्ञा-परिषह ।'=एक साथ(आना)सम्भव नहीं है(उत्तर)श्रुत ज्ञानकी विवक्षासे प्रज्ञा परिषह होताहै,
अवधिज्ञान अपेक्षया ।''अज्ञान-परिषह ।' =अवधिज्ञानकी अपेक्षासे (अर्थात् अवधिज्ञानावरणोदय जनित) अज्ञान परीषह है,
इति•न•अस्ति।विरोध ।';आह T गुप्ति-समिति =ऐसे (एक दूसरेके साथ २ होनेमें) विरोध नहीं है[कोई] पूछता है कि गुप्ति समिति,
धर्म-अनुप्रेक्षा-परिषह जया ।'संवरहेतव ।'पञ्च ।',उक्ता =धर्म,भावना, परिषहजय, पाच संवरके कारण कहे गये
संवरहेतु ।'चारित्र-संज्ञ ।'वक्तव्य ।'इति •, =चारित्रनामा संवरका कारण कहना चाहिये ऐसा (प्रश्न होनेपर)
तत्-भेद-प्रदर्शन-अर्थम् ।'' उच्यते T- =उस (चारित्र)के भेद प्रगट करनेके लिये [अग्रिम सूत्रमें]कहा जाता है कि

समय एव 'सामयिक' में स्वार्थ में इक प्रत्यय हुआ अर्थात् शब्दका विना तात्पर्य पलटे हुये, उसी अर्थको रखतेहुये इक प्रत्यय जोड देते हैं, (दूसरे वाक्यमें) वा समयः प्रयोजनं अस्य इति विगृह्य सामयिकं अर्थात् समय शब्दमे प्रयोजन अर्थ में इकप्रत्यय लगा, ('इक' ठक्, ठन्, ठण्, ठञ्के स्थानमे होता है) । व्याकरणमें इक प्रत्ययका प्रभाव है कि शब्दके प्रथम स्वरको वृद्धि करता है और स्वयम् शब्दमें प्रवेश भी करजाता है जैसे समय + इक = सामयिक, अतःसमय एवसामयिक = (किसी वस्तुमे-यहांपर जैसे निजस्वरूपमें वा धर्म क्रियामें)एकताकरि वा क्षीर नीर सदृश एकमेक होकर लीन हो जाना, सो सामयिकहै, समय है प्रयोजन जिसका सो सामयिक है अर्थात् किसीवस्तुमे जैसे आत्म स्वभाव में वा धर्मक्रियामें, एकत्वकरि वा एकमेक होकर लीन हो जाना तन्मय होजाना, रचिजाना, लिप्त हो जाना नियुक्त कालपर भावार्थ उचित और नियुक्त कालपर आत्मस्वरूप वा शुभ क्रियामे चित्तकी एकताकरि निमग्न होजाना, तन्मय होजाना, डूबजाना ॥ हमने समयका अर्थ आचार, धर्मक्रिया और नियम भी वैद्यकोशसे दिये हैं, यदि हम समयमें इक प्रत्यय प्रयोजन अर्थ में लगा देवें तो भी समय + इक = सामयिक रूप होगा और आचार, वा धर्मक्रिया अथवा नियम है प्रयोजन जिसका यह तात्पर्य सामयिक शब्दका होगा ॥ अष्टाध्यायी, जैनेन्द्र व्याकरण और शाकटायन व्याकरणोंके निम्नसूत्रों द्वारा भी सामयिक रूपही, सम् + अय (= समय) इक प्रत्यय जोड़नेसे बनेगा (न कि समयिक रूप बनेगा) जैसे

( ) समयस्तदस्य प्राप्तम् (= ठञ्) = समयःतत् अस्य प्राप्तम् (ठञ् = इक) = इक (प्रत्यय) प्रथमा समर्थ (= तत् वह अर्थात् अर्थ द्योतक प्रथमा विभक्ति समय (शब्द) के पश्चात् जो षष्ठ्यर्थमें (= अस्य) प्राप्त हुआ है, उपस्थित हुआ है वा आनपहुँचा है लगाया जाता है जैसे समय + इक = सामयिक = अर्थात् किसी (कार्य)के लिये उचित समय आन पहुँचा है, उपस्थित हुआ है ॥ अष्टाध्यायी अध्याय ५ पाद १ सूत्र १०४

( ) समयात् प्राप्तात् । = समयात् प्राप्त विशिष्टात् ठञ् स्यात्, विशेष समयसे प्राप्त अर्थमें ठञ् (= इक) प्रत्यय हो। अर्थात् विशेष समयमें जिसकी प्राप्त हो इस अर्थमे समय शब्दके पश्चात् ठञ् (= इक)प्रत्यय लगाया जावे जैसे समयः प्राप्तो यस्य सामयिकंकार्यं समय आन पहुंचा है (= प्राप्त) समय उचित है जिस (वस्तु)के लिये सो सामयिक कार्य है अर्थात् जिसके करनेके लिये योग्य समय आन पहुँचा है सो सामयिक कार्य है (जैनेन्द्र व्याकरण ३ अ० ४ पाद १२० सूत्र)

समयात्प्राप्तात् = समयादस्य प्राप्त इत्यस्मिन्नर्थे ठण् भवति = समयसे जिसकी प्राप्त है ऐसे इस अर्थ में ठण् (= इक) प्रत्यय होता है अर्थात् जिसकी प्राप्तिके लिये अनुकूल समय हो इस तात्पर्य में समय शब्दके पीछे इक प्रत्यय हो जैसे समयः प्राप्तो यस्य सामयिकं कार्यम् = समय योग्य आन पहुँचा है जिस (कार्य)को सो सामयिक कार्य है । (देखो शाकटायन व्याकरण अध्याय ३ पाद २ सूत्र ११३) ॥ उपर्युक्त से सिद्ध है कि सामयिक शब्द बनता है न कि समयिक ॥

(ग) अब प्रश्न है कि उमास्वामीने और अन्य अन्य आचार्योंने सामायिक शब्दका प्रयोग बहुलतासे किया है वह व्याकरणकी रीतिसेकैसे शुद्ध है? "अयंतीत्यायाः अनर्थाः, सत्वव्यपरोपणहेतवः, संगता आयाः समायाः, सम्यग्वा आयाः समायास्तेषु भवं, ते वा प्रयोजनमस्येति सामायिकमवस्थानं । सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानपर (राजवार्तिकसे)।" "अयंतीत्यायाः सत्वघातहेतवोऽनर्थाःसंगता आयाः समायाःसम्यग्वा आयाःसमायास्तेषु भव सामायिकं, समायाः प्रयोजनमस्येति च सामायिकमिति समासविग्रहत्वं सामायिकस्याख्यानस्य। तच्च सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानपरं । तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४९४से उद्धृत ॥ दोनों ग्रन्थोंका लगभग एक पाठ है । निम्न भागमें श्लोकवार्तिकका अनुवाद दिया गया है ॥

अयतिइति आयाःसत्वघातहेतवःअनर्थाः = प्राप्त होते हैं (= अयंति) ऐसे आयाहैं, प्राणियोंके घातके कारण जे अनर्थ वा अनुचितकार्य वे आया हैं,

संगताः आयाः समायाः = आया जे प्राणियोंके घातके कारणरूपअनर्थ तिनसे सकोच, भय, डर (= संगताः) समाया हैं

(वैद्यसंस्कृत आंगलकोशके पृष्ठ ७४७में संगतके दश अर्थोंमेसेएक अर्थ संकोच, सिकुडना, डरका भीदिया है)

समस्त सावद्ययोगका भेद रहित जिसमें त्याग हो वह सामायिक चारित्र है

सामायिक-चारित्रम्''' =समस्त सावद्ययोगका भेद रहित जिसमें त्याग हो वह सामायिक चारित्र है सामायिकछेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायययथाख्यातमिति चारित्रम् ॥ १८ ॥ (सर्वार्थसिद्धि अध्याय ९ सूत्र १८)

(ग) सामायिक शब्दके स्थानमें सामयिक और समयिक नहीं बोला जाता है, सम् (अव्यय) = साथ, इकट्ठा, एकता, इण् = जाना धातुके साथ अच् प्रत्यय लगाने पर सम्+इण्+अच् = सम्+इ+अ = समि+अ = समे+अ = समय्+अ = समय बना, वैद्यकोष पृष्ठ ७५८ पर समयके उन्नीस अर्थ दिये हैं उनमेंसे हमारा सम्बन्ध काल, (अर्थात् क्षण घड़ी आदि समय) आचार, धर्मक्रिया, नियम अर्थोंसे है। (क) साम्प्रतिकस्य एक समयिकत्वे = वर्तमानकालका (= साम्प्रतिकस्य) एक समय (= छोटेसे छोटा कालके विभाग) पनमें अर्थात् कालके होने पर अपि अतीता च अनागता समया अनन्ता = भी भूत अर्थात् बीते हुये और भविष्यत् अर्थात् आगामीकालमें आनेवाले अनंत सूक्ष्मतम क्षण हैं, उपर्युक्त अवतरणसे प्रगट है कि समयिक शब्द समयके लिये अर्थात् सूक्ष्मतम क्षणके लिये आया है, वा मुद्रित तथा तीन हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तियोंमें, मुद्रित तथा हस्तलिखित तत्वार्थ राजवार्तिक की तीन प्रतियोंमें हमको यही पाठ मिला। समायक शब्द व्याकरणकी रीतिसे ठीक नहीं है, क्योंकि स्वार्थमें अथवा प्रयोजन अर्थमें इक प्रत्यय लानेसे समय+इक = सामयिक शब्द स्व वा प्रयोजन अर्थमें बन जाता है अर्थात् समय है प्रयोजन जिसका, समव है कि समयिक शब्द आर्ष प्रयोगमें आता हो क्योंकि बहुतसे शब्द ऐसे भी हैं जो व्याकरणके किसी नियमसे नहीं बन परन्तु बोल चालमें आते हैं। कहा भी है-पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् = पृषोदर-आदीनि यथा उपदिष्टम् = पृषोदर = (पृषत् + उदर) जिसके पेट पर बिंदियां हों॥ यह शब्द वैयाकरणोंने पृषत् और उदरसे निकाला है पृषत् का त् समासमें गिरा दिया गया है यह शब्द व्याकरणके नियमोंसे सिद्ध बनाया गया है॥अ०-६|३|१०९ आदिक जैसे पढ़े गये (वैसे शुद्ध हैं), जैसे-सिंह् धातुसे सिंह शब्द भी व्याकरणके नियमसे प्रतिकूल है, वैसे ही समय शब्दसे 'समयिक' बना है ॥'समयिकत्वे' के स्थानमें 'समयत्वे' शब्द का प्रयोग हो तो भी यही अर्थ निकल आता॥

(घ) सातवें अध्यायके इक्कीसवें सूत्रमें सामायिक शब्दका उमास्वामीने प्रयोग किया है परन्तु हमको इस शब्दकी व्युत्पत्तिके सिद्धि करनेमें सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'कहीं पर सामायिक शब्द पाया जाता है कहीं पर सामयिक, मुद्रित तत्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ २८१ पर सामायिक के स्थानमें सामयिक शुद्ध है, तत्वार्थश्लोकवार्तिक हस्तलिखित तथा मुद्रितमें हमको सामयिक शब्द ही मिला है और इसकी व्युत्पत्तिके उल्लेखसे जो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और तत्वार्थराजवार्तिकमें लगभग एकसे शब्दों द्वारा की गई है और तत्वार्थश्लोकवार्तिकमें जो व्युत्पत्ति दी है उससे सामयिक सिद्ध होता है न सामायिक जैसा कि निम्नसे प्रगट है स्थानोंमें हैं परन्तु शुद्धाशुद्ध विवरणमें उल्लेख है कि सामायिकके स्थानमें सामयिक शुद्ध है,

"समेकीभावे वर्तने। तद्यथा सङ्गतं घृतं सङ्गतं तैलमित्युच्यते एकीभूतमिति गम्यते। एकत्वेन अयनं गमनं समयः, समय एव सामयिकं समयः प्रयोजनमस्येति वा विगृह्य सामयिकम् ॥ सर्वार्थसिद्धि अध्याय ७ सूत्र २१से) "समेकीभावे वर्तते तद्यथा सगतं घृतं सगतं तैलं इत्युक्ते एकीभूतमिति गम्यते एकत्वेन गमनं समयः। समय एव सामयिकं, समयः प्रयोजनमस्येति वा सामयिकं" (तत्वार्थराजवार्तिकसे उद्धृत) 'समय एव सामयिकः समयः प्रयोजनमस्येति वा" (श्लोकवार्तिक अध्याय ७ सूत्र इक्कीससे उद्धृत)

सम्—एकीभावे वर्तते। तद्यथा = सम् (अव्यय) एकताके भावमें वा एकताके अर्थ में प्रवर्तता है अर्थात् आता है जैसे (किसी वस्तुमें)

सगतम् घृतम् = घीकी एकता हो, घीका साथ हो अर्थात् उसमें घी मिलाकर नीरक्षीरके सदृश एकमेक होजाय सो सगतघृत है

सगतम् तैलम् = (वस्तुमें) तेलकी एकता हो, तेलका इकट्ठापन हो अर्थात् उसमें तेल मिलाकर एकमेक होजाय सो सङ्गत तैल है

इतिउच्यते एकीभूतम् इति गम्यते = ऐसा कहा जाता है, एक हुआ ऐसा जाना जाता है

एकत्वेन अयनम् गमनम् समय समय एव = एकपनकरि लीन (= अयनम्) गमन (= अयनम्) सो समय है, समय ही है अर्थात् एक एकरितीनहीहो सामयिक वा समय प्रयोजनमस्य इति विगृह्य सामयिकं = सो सामयिक है वा समय है प्रयोजन जिसका ऐसे विग्रहसे सामयिक शब्द बना लिया

(ख) छेदोपस्थापनाचारित्रम्॥'''=प्रमादके वशसे अनर्थ सावद्यकर्मके होनेसे निरवद्य क्रियाके रुकजानेपर प्रायश्चित्त लेकर सावद्य व्यापारसे उत्पन्न हुये दोषको छेदकर फिरसे आत्माको व्रत धारणादिरूप संयममें धारण करनेकी प्रतिक्रिया (छेदोपस्थापना चारित्र है) अथवा हिंसादिक सावद्य कर्मोंका विभाग करके त्याग करना (सो छेदोपस्थापनाचारित्र है)वा व्रत समिति गुप्तिआदिका भेदरूपचारित्र (सो छेदोपस्थापना चारित्रहै)

(ग) परिहारविशुद्धिचारित्रम्॥'''=जीवोंकी पीड़ाका परित्याग करनेसे विशेष विशुद्धिका होना परिहार विशुद्धिचारित्र है अर्थात् जिससंयममें परिहारके साथ विशुद्धि हो उसको परिहारविशुद्धिसंयम कहते हैं, प्राणि पीड़ाके त्यागको परिहार कहते हैं। इस संयमवाला जीव जीवराशिमें विहार करता हुआ भी जलसे कमलके सदृश हिंसासे लिप्त नहींहोता है, भावार्थ जन्मसे तीस वर्ष तक सुखी रहकर दीक्षा ग्रहण करके श्री तीर्थंकरके पाद मूलमें आठ वर्ष तक प्रत्याख्यान नामक नौमें पूर्वका अध्ययन करनेवाले जीवके यह संयम होता है, जीवोंकी उत्पत्ति, मरणके ठिकाने, कालकी मर्यादा, जन्म योनिके भेद द्रव्य–क्षेत्रके स्वभाव, विधान वा विधिका जाननहारा प्रमाद रहित महावीर्यवान् हो,जाके विशुद्धता के वलसे कर्मकी प्रचुर निर्जरा होती हो,अति कठिन आचरणका धारणे वाला हो उसके यह संयम होता है, इस संयमवाला जीव तीनकाल सन्ध्या कालोंको छोड़कर दो कोस पर्यन्त गमन करता है किन्तु रात्रिको गमन नहीं करता है और वर्षाकालमें गमन करनेका नियम नहीं है, वर्षाकालमें समयानुसार गमन करे अथवा गमन नहीं भी करे, इनके शरीरसे जीवकी विराधना नहीं होती है, ऐसे साधुके परिहार विशुद्धि होती है अन्यके नहीं होती है, परिहार विशुद्धि संयमका वा चारित्रका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है, प्रमत्त छठवां गुणस्थानमें और अप्रमत्त सातवां गुणस्थानमें यह संयम होता है जो अन्तर्मुहूर्तमें गुणस्थान पलटि जाय तो संयम छूटिजाय और उत्कृष्ट काल अड़तीस वर्ष घाटि एक करोड़ पूर्व है. किस प्रकारसे है सो कहते हैं कि मनुष्यकी उत्पत्तिके दिवससे तीस वर्षका दीक्षित होकर आठ वर्ष तीर्थंकरके निकट रहनेके पश्चात् यह परिहारविशुद्धि संयम उपजता है। एक कोटि (=करोड़) पूर्वकी आयु होती है उसमेंसे अड़तीस वर्ष निकालनेसे उत्कृष्ट काल एक करोड़ पूर्व अड़तीस वर्ष घाटि परिहार विशुद्ध संयम अवशेष रहता है ॥

(घ) सूक्ष्मसाम्परायचारित्रम्॥'''=उपशम श्रेणी अथवा क्षपक श्रेणीमें अतिसूक्ष्म (लोभ) कषायके उदयसे सूक्ष्मसाम्पराय दशवां गुणस्थान में जो संयम हो वह सूक्ष्म साम्पराय चारित्र है। इस संयममें यथाख्यातचारित्र परिणामोंसे कुछ हीन परिणाम होते हैं क्योंकि यह संयम दशवां गुणस्थानमें होता है, और किसी गुणस्थानमें सूक्ष्म साम्पराय

= अथवा उक्त अनर्थों से (=आया)विभिन्न (=सम्यग)पृथक् (=सम्यग) सो समाया हैं
(उक्त कोशके पृष्ठ ७६५ पर सम्यच्के बारह अर्थोंमेंसे एक अर्थ पृथक्, विभिन्न भी लिखा है)
वा सम्यग् आया समाया
=तिन (समाया अर्थात् प्राणियोंके घातक कारण अनर्थों से संकोच पृथक् वा विभिन्न) में होना,रहना
तेषु भवम्
सामायिक च समाया अस्य प्रयोजनसामायिक =सो सामायिक है च समाया(अर्थात् अनर्थों से सकोच पृथक्,)है प्रयोजन जिसका सो सामायिक है
इति सामायिकस्य अवस्थानस्य समासविषयत्वम् =ऐसे सामायिक(शब्द) की स्थिति वा ठहराव अथवा अवस्थान समास विषयमें है।
तत् च सर्व सावद्य-योग प्रत्याख्यानपरम् =बहुरि वह(सामायिक)समस्त पापरूपयोगका त्याग है॥श्वेताम्बरआम्नायकी भाष्यानु
सारिणी तत्त्वार्थटीकामें भी समाय शब्दके स्वार्थमें ठक्(इक)प्रत्यय और प्रयोजन अर्थमें यही प्रत्यय लगाकर सामायिक शब्दकी व्युत्पत्तिकीहैकि
'रागद्वेष विरहित सम अया गमन सकलक्रियोपलक्षणमेतत्सर्वं च क्रियासाधारणरकह्रिणस्य निर्जरा फलासमस्याय समाय समाय एव
सामायिकमिति स्वार्थिक ठक् समये वाऽऽर्तव सामायिकं सामायेन निर्वर्तित समायस्य व्यतिकारस्त मय समाय स प्रयोजनमस्येति वा
सर्वत्र यथाप्रतेयं ठक्" (भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीकाके पत्र ७०३से उद्धृत)॥ सामायिक शब्दकी व्युत्पत्ति विद्यार्थियों को लाभदायक और
उपयोगी है अत पं०जयचन्द्ररायजीकी व्युत्पत्ति, पन्नालालदूनीजो,पन्नालाल न्यायदिवाकरके उक्त वाक्यके अनुवादोंका शब्दश उद्धृत करते हैं॥

'प्राणीनिके घातके कारण जे अनर्थं तिनकू आय ऐसा नाम कहिये सम् ऐसा उपसर्ग देने तै एकीभूत अर्थ भया। तातै अनर्थ इकट्ठे भये होय तिनकू समाय ऐसा कहिये ते समाय जाका प्रयोजन होय सो सामायिक कहिये तात ऐसा अर्थ सिद्धि होय है, सो सब पापका सामान्य इकट्ठा ही त्याग जहां होय सो सामायिक चारित्र है।' यह समझमें नहीं आया त्याग शब्द कैसे और यहां से आये क्योंकि उक्त व्युत्पत्तिसे सामायिकका अर्थ यह हुआ कि अनर्थों के समूह ही प्रयोजन जिसका सो सामायिक है। क्योंकि "सामायिक चारित्र अन्तमें वाक्य दियाहै, चारित्र और संयम एक हैं और संयमका अर्थ है रोकना अर्थात् मन और इन्द्रियोंको निग्रहकरना है इसलिये सामायिक संयमका(नकि सामायिकका)अर्थ हुआकि अनर्थों के समूहकेनिग्रह(=संयम)वात्याग(=संयम) का है प्रयोजन जिसका सो सामायिकसंयम है॥

'अयति कहिए प्राप्त होय वे आय कहिये अर्थात् प्राणिनिका विनाशका कारण अनर्थ, अर भले प्रकार प्राप्त भया जे आय ते समाय कहिये अथवा सम्यक् आय ते समाय कहिये अथवा तिनके दूर करने निमित्त होय सो सामायिक कहिये, ऐसे सामायिक पदका अर्थ तिष्ठै हैं उपर्युक्तसे स्पष्ट है कि'सगता का अर्थ भले प्रकार लिया है और सम्यगका अर्थ सम्यक् तथ दूरि शब्द संस्कृतके किस शब्दका अनुवाद हुआ समझमें नहीं आया है॥

"अथवा सत्वजे प्राणी तिनके व्यपरोपणमें कारण ऐसे रागादिक परिणाम तिनके त्यागतै शुद्ध चेतनाके स्वरूपमें उपयोगकी प्राप्ति सो आय कहिये ऐसे उपयोगाकार परिणमनका चेतनारूप परिणमनतैं अभेदरूप परिणमना तथा बाह्य पदार्थनिन राग द्वेषके त्यागतै साम्य भावका अवलम्बनकरि अपने चेतनामें उपयोगका प्रवर्तावना, ताके विषैं जो प्रवृत्ति होय अथवा सोई प्रयोजन जाका होय ताकू सामायिक कहिये ऐसे उपयोगकी चेतना परणतिमें अवस्थान है सो सामायिक है' उक्त अनुवाद राजवार्तिकके भाष्यका नहीं है सामायिकका विशेषरूपमें अभिप्राय दर्शाया है, निम्न वाक्यके लगभग वे शब्द हैं जो जयचन्दजीके हैं अर्थात् 'अथवा प्राणनिके घातके कारणजे अनर्थ तिनकू (आया) ऐसा कहिये बहुरि सम् ऐसा उपसर्ग देनेतें एकीभून अर्थ भया। तातै अनर्थ इकट्ठे भय होय तिनकू समाय ऐसा कहिये ते समाय जाका प्रयोजनहोय सो सामायिक कहिये, या व्युत्पत्तितै ऐसा अर्थ सिद्धि होय है जो सर्व पापका सामान्य इकट्ठा ही त्याग जहांहोय सो सामायिक चारित्रहै'

विलोपे सम्यक्प्रतिक्रिया च्छेदोपस्थापना, विकल्पनिवृत्तिर्वा ॥ परिहरणं परिहारः प्राणि-वधान्निवृत्तिः। तेन विशिष्टा शुद्धिर्यस्मिंस्तत्परिहारविशुद्धिचारित्रम् ॥ अतिसूक्ष्मकषायत्वात्सू-क्ष्मसाम्परायचारित्रम् ॥ मोहनीयस्य निरवशेषस्योपशमात्क्षयाच्च आत्मस्वभावावस्थापेक्षा-लक्षणं यथाख्यातचारित्रमित्याख्यायते ॥ पूर्व-

विलोपे"सम्यक्-प्रतिक्रिया" =लोप होनेपर भली प्रतिक्रिया वा शुभ उपाय (जैसे प्रायश्चित्त आदिक) करना

च्छेदोपस्थापना", वा*विकल्प- =सो च्छेदोपस्थापना है अथवा [=वा] विभाग करके (=विकल्प)

निवृत्तिः"; =(हिंसादि सावद्य कर्मों का) त्याग करना (=निवृत्तिः)(सो च्छेदोपस्थापना है),

परिहरणम्"परिहारः"प्राणिवधात्"निवृत्तिः"; =जीवकी पीड़ासे परित्याग सो परिहरण वा परिहार है,

तेन"विशिष्टा"शुद्धिः"यस्मिन्"तत्" =तिस (प्राणिवधात् निवृत्ति) से विशेषरूप विशुद्धता जिसमें हो वह (=तत्)

परिहारविशुद्धि-चारित्रम्", =परिहारविशुद्धिचारित्र है अर्थात् जीवोंकी पीड़ाका परित्याग करनेसे विशेष विशुद्धिका होना सो परिहारविशुद्धिचारित्र है।[यह चारित्र तीर्थंकरके समीप रहनेसे होता है]

अतिसूक्ष्मकषायत्वात्"सूक्ष्मसाम्पराय-चारित्रम्";=बहुत हीन वा अस्थूल कषाय होनेसे सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र है अर्थात् अतिसूक्ष्म [लोभ] कषायके उदयसे सूक्ष्मसाम्पराय दशवां गुणस्थानमें जो चारित्र हो सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहते हैं।यहां यथाख्यातचारित्रके लगभग विशुद्धता है।

मोहनीयस्य"निर्-अवशेषस्य"उपशमात्"क्षयात्"च*=मोहनीय कर्मके समस्त वा सम्पूर्ण उपशमसे तथा (=च) नाशसे अर्थात् द्रव्य कर्मका सत्तामेंसे चलेजानेसे अथवा उठजानेसे और सम्पूर्णतया दबजानेसे

आत्म-स्वभाव-अवस्था-अपेक्षा- =जिस(उपशम वा क्षय)से आत्माके (वीतराग-निर्विकार शुद्ध स्वभावकी अपेक्षासे दशा

लक्षणम्"यथाख्यातचारित्रम्"इति*आख्यायते। =जतलाई जाती है अर्थात् प्रगट होती है सो यथाख्यात चारित्र है, ऐसा प्रसिद्ध है संक्षेपतः सम्पूर्ण मोहनीय कर्मके उपशम तथा नाशसे यथावस्थित आत्मस्वभावकी उपलब्धि वा प्राप्ति है सो यथाख्यात चारित्र है।

पूर्व- =पहिले (सामायिक-च्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय)

अत्र चोद्यते—दशविधे धर्मे संयम उक्त. स एव चारित्रमिति पुनर्ग्रहणमनर्थकमिति ॥ नानर्थकम्-धर्मेऽन्तर्भूतमपि चारित्रमन्ते गृह्यते मोक्षप्राप्ते साक्षात्कारणमिति ज्ञापनार्थम् ॥ सामायिकमुक्तं । क ? दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकमित्यत्र ॥ तद्द्विविधम् नियतकालम-नियतकालञ्च । स्वाध्यायादि नियतकालम् । ईर्यापथाद्यनियतकालम् ॥प्रमादकृतानर्थप्रबन्ध-

(५) सूक्ष्मसाम्परायचारित्रम्

अत्र चोद्यते। दशविधे धर्मे संयम उक्त
स एव चारित्रम् इति पुन ग्रहणम्
अनर्थकम् इति, न अनर्थकम् धर्मे
अन्तर-भूतम् अपि चारित्रम् अन्ते गृह्यते।
मोक्षप्राप्ते साक्षात् कारणम् इति ज्ञापन-अर्थम्

सामायिक उक्त, क ? दिग्देशानर्थदण्ड-
विरति-सामायिकम् इति अत्र ।। तद्
द्वि विधम् नियतकालम् अनियतकालम् च
स्वाध्याय-आदि नियतकालम् ईर्यापथ-
आदि-अनियतकालम् प्रमाद-कृत-अनर्थ-
प्रबन्ध-

चारित्र नहीं होता है और यथाख्यात चारित्र ग्यारहवां गुणस्थानमें आरम्भ होता है ॥
=चारित्र मोहनीय कर्मके सर्वथा उपशम होजानेसे ग्यारहवें गुणस्थानमें अथवा चारित्र मोहनीयकर्मके सर्वथा क्षीण होजानेसे बारहमें,तेरहमें तथा चौदह(गुणस्थान)में यथावस्थित वीतराग निर्विकार आत्म स्वभावकी उपलब्धि वा प्रगटता सो। यथाख्यातचारित्र वा सँयम है।
=यहां तर्क की जाती है कि दश प्रकार धर्ममें सयम कहा गया है (देखो अध्याय९ सूत्र ६)
=सो (सयम) ही (=एव)चारित्र है इसप्रकार फिर (इस सूत्रमें चारित्रका)ग्रहण अर्थात् कथन
=निष्प्रयोजन है(उत्तर)[इस सूत्रमें चारित्रका कथन]निरर्थक नहीं है,धर्ममें(सयम वा चारित्र)
=अन्तरगत है तो भी अन्तमें चारित्र ग्रहण किया गया है कि
=(वह)मोक्षकीप्राप्तिका प्रत्यक्षहेतु है ऐसा जतावनेके लियेहै अर्थात् चौदहवा गुणस्थानके अत चारित्रकी पूर्णता हुये, लगताही मोक्ष होती है, तिससे मोक्षकी लब्धिके लिये प्रत्यक्ष निमित्त है ऐसा जतावनेके लिये (इस सूत्रमें) चारित्र न्यारा कहा गया है।
=सामायिक वर्णित हुआ (प्रश्न)कहां (उत्तर) "दिग्देशानर्थदण्ड-
=विरतिसामायिकम्" ऐसा इस स्थानमें(अर्थात् सातवां अध्यायका २१वा सूत्र) है। वह
=सामायिक दो प्रकार है, नियतकाल और (=च) अनियतकाल,
=(तहांनिश्चितवानियतकालमें)स्वाध्यायआदिक[करना]सो नियतकाल(सामायिक)है।ईर्यापथ आदि अनियतकाल (सामायिक)है,प्रमाद(के वश) से उत्पन्न हुये (=कृत) दोष [=अनर्थ]द्वारा
=[सयमका] प्रबन्ध वा सदर्भ (सार वचन श्रेष्ठता-अच्छापन इत्यादिक)

सप्तम्यां पृथिव्यां मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। शेषैस्त्रिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चां तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः। सप्त चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-

सप्तम्यां ७।१ पृथिव्यां ७।१ मिथ्यादृष्टिभिः ३।३	=सातवीं पृथिवीविषै (स्वस्थान विहार अपेक्षा) मिथ्यादृष्टी [नारकी] योंकरि
लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ वा	=लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शन किया जाता है] वा [मारणान्तिक समुद्घातसे]
चतुर्दश ६।१ भागाः १।३	=चौदहराजू [लोकत्रसनालके] हैं सो [राजू हैं
षट् १।३ देशोनाः १।३	=कुछ हीन छः राजू स्पर्शे जाते हैं क्योंकि सातवें नरकसे मध्यलोक छह
शेषैः ३।३ त्रिभिः ३।३	=[सातवें नरक विषैं] बाकी तीन [सासादन, मिश्र, असंयतगुणस्थान वाले नारकियों] करि
लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१	=(स्वस्थान विहार अपेक्षा) लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शा जाता है
तिर्यग्गतौ ७।१ तिरश्चां ६।३ तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिभिः ३।३	=तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमेंसे मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों करि
सर्वलोकः १।१ स्पृष्टः १।१ सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ३।३	=समस्त लोक स्पर्शा जाता है॥ सासादनसम्यग्दृष्टी [तिर्यंच] निकरि
लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ [स्पृष्टः १।१]	=लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शा जाता] है।
वा चतुर्दश ६।१ भागाः १।३	=अथवा (लोककी त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो मारणान्तिक समुद्घात अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टी तिर्यंचोंकरि)
सप्त १।३ देशोनाः १।३ (स्पृष्टाः १।३) सम्यङ्मिथ्यादृष्टिभिः ३।३	=कुछ हीन सात राजू स्पर्शे (जाते) हैं मिश्रगुणस्थानवर्ती (तिर्यंचोंमें)

(१) यहां पर षष्ठी निर्णय वा निर्धारण (=जाति, गुण, क्रिया और नामरूप समुदायमें एक देश को पृथक करना) अर्थमें है॥ इसी अर्थमें सप्तमी बहुवचन तिर्यक्षु (=तिर्यङ्क्षु=तिर्यङ्+सुप्) भी जा सक्ते हैं "क्योंकि यतश्च निर्धारणम्"=जिससे (=यतः) निर्णय वा निर्धारण है उससे भी (=च = षष्ठी और सप्तमी विभक्ति) हों। अष्टाध्यायी २-३-४१ जैसे मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः अथवा मनुष्येषु क्षत्रियः शूरतमः =मनुष्योंमें क्षत्रिय जाति सबसे शूर है॥ ऐसे ही तिर्यंचोंमेंसे मिथ्यादृष्टि (गुणस्थानवाले) तिर्यंचोंकरि इत्यादि अर्थ किया है। तिरश्चाम् अथवा तिर्यंचाम् दोनों षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुल्लिंगके रूप हैं॥

चारित्रानुष्ठायिभिराख्यातं न तत्प्राप्तं प्राङ्मोहक्षयोपशमाभ्यामित्यथाख्यातम् ॥ अथशब्दस्यानन्तरार्थवर्तित्वान्निरवशेषमोहक्षयोपशमानन्तरमाविर्भवतीत्यर्थः ॥ अथाऽऽख्यातमिति वा यथात्मस्वभावोऽवस्थितस्तथैवाख्यातत्वात् ॥ इतिशब्दः परिसमाप्तौ द्रष्टव्यः ॥ ततोयथाख्यातचारित्रात्सकलकर्मक्षयपरिसमाप्तिर्भवतीति ज्ञाप्यते ॥ सामायिकादीनामानुपूर्व्यवचनमुत्तरोत्तरगुणप्रकर्षज्ञापनार्थम् ॥

चारित्र–अनुष्ठायिभि ''आख्यातम्''।	=चारित्रके [आचरण] करनेवाले करि [इसका] व्याख्यान किया गया
प्राक्–मोहक्षय–(मोह)उपशमाभ्याम्''	=(परन्तु) मोहकर्मके नाश तथा [मोहकर्मके] उपशमसे प्रथम वा पहिले
न•तत्'''प्राप्तम्'''इति•अथ–	=वह [–तत्–अथाख्यातचारित्र] प्राप्त नहीं हुआ इस प्रकार अथ
आख्यातम्''',अथ•शब्दस्य''अनन्तर–अर्थ–	=कहा गया है '=आख्यातम्), अथ शब्दका लगताही अर्थ
वर्तित्वात्'''निर्_अवशेष मोहक्षय-उपशम अनन्तर	=होनेसे [=वर्तित्वात्]समस्त मोहके नाश तथा उपशमके लगताही (=अनन्तर)
आविर्भवतिइइति•अर्थ ''अथ–आख्यातम्'''इति•	=प्रगट होता है ऐसा अभिप्राय है (तातें) अथाख्यातचारित्र ऐसा [नाम सार्थक] है
(१)वा•यथा•आत्मस्वभाव ''अवस्थित ''तथा•एव	=अथवा जैसा आत्माका स्वभाव विद्यमान [अवस्थित] है वैसा ही
आख्यातत्वात्''',	=कथन किये जानेसे (=आख्यातत्वात्) (यथाख्यात ऐसा व्याख्यान किया गया है)
इति•शब्द ''परिसमाप्तौ''	=(सूत्रमें) इति शब्द परिपूर्णताके अर्थमें
द्रष्टव्य.'',तत •यथाख्यात–चारित्रात्'''	=देखना चाहिये अर्थात् जानना चाहिये अथवा लेना चाहिये, तिस यथाख्यात चारित्रसे
सकल–कर्म–क्षय परिसमाप्ति''भवतिइति•ज्ञाप्यते,	=समस्त कर्मके नाशकी परिपूर्णता होती है ऐसा (इति शब्द करि)जताया गया है
सामायिक-आदीनाम्''आनुपूर्व्य-वचनम्'''	=सामायिक,छेदोपस्थापना,परिहारविशुद्धि,सूक्ष्मसाम्पराय यथाख्यातकाक्रमसेकथनहै सो
उत्तर–उत्तर–गुण–प्रकर्ष-ज्ञापन-अर्थम्''',	=अगले अगले चारित्रमें एक (दूसरेसे अधिकमें) गुणकी वृद्धिके जतावनेके लिये है,

'वा यथात्मस्वभावो ऽवस्थितस्तथैवाख्यातत्वात्" इस वाक्यके पश्चात् "यथाख्यातम् इति आख्यायते"इतना वाक्यशेष है अर्थात् ऊपरके वाक्यमें यह नीचेका वाक्य जोड़ देने से तब वाक्य पूरा होगा और अर्थ भी पूरा प्राप्त होगा जैसा कि तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३४१की पंक्ति २५, २६,के निम्ननेराससे चित्रित है "अथवा यथात्मस्वभावोऽवस्थित । तथैवाख्यातत्वाद्यथाख्यातमित्याख्यायते" ॥

आह उक्तं चारित्रं तदनन्तरमुद्दिष्टं यत् तपसा निर्जरा चेति तस्येदानीं तपसो विधानं कर्तव्यमित्यत्रोच्यते। तत् द्विविधम् बाह्यमभ्यन्तरं च॥ तत्प्रत्येकं षड्विधिम्॥ तत्र बाह्यभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह

(प्रथमपाठ)अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः॥१९॥(द्वितीयपाठ)अनशनावमौदर्य्यवृत्तिपरिसङ्ख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः॥१९॥

अर्थात् सूत्रके क्रमसे सामायिकादिकी उत्तरोत्तर अनंतगुणी विशुद्धता एकदूसरेसे है

आहT उक्तम्१'''चारित्रम्१'''तद्-अनन्तरम्१''' =(कोई) पूछता है कि चारित्र कहा गया उस[चारित्र] के लगताही (=अनन्तर)
उद्दिष्टम्१'''यत्१'''तपसा३'''निर्जरा१'''च*इति* =उपदेश किया गया जो(=यत्)"तपसा निर्जरा च"ऐसा(अध्याय ९ का तीसरासूत्र)
तस्य६'''इदानीम्*तपसः६'''विधानम्१'''कर्तव्यम्१''' =तिस तप का अब विधान प्रकार अथवा भेद किया जाना चाहिये,
इति*अत्र*उच्यते T । तत्१'''द्वि-विधम्१''' =इस प्रकार [प्रश्न होने पर] यहां कहा जाता है कि वह (तप) दो प्रकार है,
बाह्यम्१'''अभ्यन्तरम्१'''च*तत्प्रत्येकम्१'''षड्विधम्१'''=बाह्य और [=च] अन्तरंग, वह प्रत्येक (तप) छह प्रकार है,
तत्र-बाह्य-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम्१'''आहT =तहां बाह्यके भेद कहनेके लिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

(प्रथमपाठ)अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यम् तपः =अनशन-आवमोदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रसपरित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेशाः बाह्यम् तपः॥ अनशनावमौदर्य्यवृत्तिपरिसङ्ख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यमतपः=अनशन-अवमौदर्य्य(आवमौदर्य्य)-वृत्तिपरिसङ्ख्यान-रसपरित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेशा बाह्यम् तपः ९६

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायको भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पत्र ७०६पर हमारे यहांका प्रथम पाठ है और उनके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके

पृष्ठ ३१० पर हमारे यहांका द्वितीय पाठ है॥ अर्थात् दोनों समानोंमें स्थूलरूपसे एकसा है॥ हमारे यहां प्रथम पाठ मुद्रित सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति का दोनों आवृत्तियोंका है, यही पाठ दो हस्तलिखित प्राचीन प्रतियोंके पत्र ८५ और १०२ पर क्रमसे है तासरी हस्तलिखित प्रतिके पृष्ठ १८५पर द्वितीय पाठ मिलता है,राजवा०में प्रथम, श्लोकवा०मेंद्वितीयपाठहै हस्तलिखित प्रतियोंमें किसीमें प्रथम पाठ है,किसीमें द्वितीय पाठ है,भाषाके बने य टीकाओंमें और साधारण टीकाओंमें इस सूत्रके द्वितीय तपके सम्बन्धमें शुद्ध और अशुद्ध इतने भिन्न भिन्न पाठ हैं कि उन सबका उल्लेख करना हमारी शक्तिसे बाहर है अब प्रश्न यह है कि अवमोदर्य आवमोदर्य और आवमौद्य अवमोद , भिन्न भिन्न प्रतियों में ये चार शब्द मिलते हैं इनमेंसे कौन कौन शुद्ध हैं और क्या। इन चारों शब्दोंमें कहीं कहीं एक 'य' है कहीं कहीं दुहरा 'र्य' है जैसे अवमोदर्य और अवमौद्य इत्यादि यह एक साधारण बात है क्योंकि 'अचोरहाभ्यां द्वे' सूत्रसे (जिसको हम कई बार लिख चुके हैं) दोनों ही रूप 'य' के सबमें ठीक हैं॥ अवमोदर्य शब्द व्याकरणके नियम विरुद्ध है और आवमोदर्य और आवमौद्य और अवमौदर्य शब्द निम्न हेतुओंसे ठीक हैं॥ अष्टाध्यायी अध्याय ५ पाद १ सूत्र १२४ ऐसा है कि गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च=गुणवचन—ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च (=भाव जिसकी अनुवृत्ति सूत्र ११९ तस्यभावस्त्वतलौ से आती है और ष्यञ्-इस शब्दकी अनुवृत्ति १२३ सूत्रसे आती है)इसलिये सूत्र=गुणवचन ब्राह्मणादिभ्य कर्मणिभावे ष्यञ् हुआ

गुणवचन =गुणवाचक शब्दोंसे (अर्थात् वे शब्द जो किसीके गुणोंको कहने वाले हों उनके पीछे)

ब्राह्मणादिभ्य =और ब्राह्मण आदि (एकसौ छह शब्द जो आकृतिगणमें गिनाये गये हैं और अन्य भी जिनकी आकृति, रूप अथवा आकार इन शब्दोंसे मेल करते हों कौन शब्द आकृतिगणमें सम्मिलित करना चाहिये? (उत्तर) ऐसे जाना जाता है कि किसी प्रमाणीक लेखकके लेखमें अमुकरूपमें या आकारमें उस शब्दका प्रयोग हुआ हो) शब्दोंसे(परे पीछे पश्चात्)

कर्मणिभावे ष्यञ् =(ये सब शब्द पश्चात् सम हों तो)कर्म अर्थ और भाव अर्थमें भी (=च)ष्यञ्(=य) प्रत्यय हो जैसे जड़स्य (गुणवाचक शब्दमें) कर्म वा भाव=जाड्यम् (=मूर्खका कर्म अथवा मूर्खका भाव), (मूढस्य गुणवाचक शब्दमें) कर्म वा भाव= मौढ्यम्(मूर्खका भाव अथवा आचरण) अर्थात् ष्यञ् (=य) का यह प्रभाव है कि शब्दके प्रथम स्वरको वृद्धि कर देताहै, ऐसे ही ब्राह्मण+य=ब्राह्मण्यम् (ब्राह्मणका कर्म वा भाव)॥ अवम (गुणवाचक शब्द है)= ऊन अर्थात् खाली उदर=पेट अवम+उदर=अवमोदर अर्थात् खाली है पेट जिसका वह अवमोदर है, और अवमोदरका जो भाव है वह आवमोदर्य है भावार्थ अवमोदरमें उक्त सूत्र द्वारा ष्यञ् (=य) प्रत्यय लगानेसे अवमोदर+ष्यञ्=आवमोदर+य, अ गिरजाता है इसलिये आवमोदर्य बना स्मरण रहे कि सूत्रके प्रथम पाठमें अनशनावमोदर्य का पदच्छेद अनशन=आवमोदर्य है (न कि अनशन-अवमोदर्य)। तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३५२ तथा दो हस्तलिखित प्रतियोंमें तीसरी वार्तिक तथा उसकी वृत्तिमें और ग्यारहवीं वार्तिककी वृत्तिके अन्तिम वाक्यमें स्पष्टरूपसे आवमोदर्य शब्द का ग्रहण इस प्रकारसे है कि संयमप्रजागरदोषप्रशमसंतोषस्वाध्यायसुखसिद्ध्यर्थमावमोदर्यम्॥ तीसरी वार्तिक॥अवममूनं उदरमस्यावमोदर अवमोदरस्य भावः,कर्म वा आवमोदर्यम्॥ संयम-प्रजागरदोष=संयमकी वृद्धिके लिये निद्राके अभावके लिये (=प्रजागर)वात पित्त कफादिके =दोष) प्रशम संतोष-स्वाध्याय सुखसिद्धि अर्थम् आवमोदर्यम्=ध्यानके लिये संतोषस्वाध्यायकी सुखसिद्धिके लिये,न्यूनआहारता सो(सम्यग्)आवमोदर्य है शब्द यही वाक्य सर्वार्थ सिद्धिवृत्तिमें है परन्तु मुद्रित और तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें अन्तमें अवमोदर्य है सो अशुद्ध है॥ अवमम् ऊनम्-उदर अस्य असौ अवमोदर अवमोदरस्य=खाली है ऊन है पेट जिसका सो (=असौ) अवमोदर है अवमोदरका भाव वा कर्म आवमोदर्यम् =भाव है अथवा अवमोदरका कर्म है अर्थात् उदरका भारीपन न होना सो आवमोदर्य है आवमोदर्यरसपरित्यागाभ्यवहार्यैकदेशनिवृत्तिपरावितिमद १२ — आवमोदर्य—रसपरित्याग अभ्यवहर्तव्य एकदेशनिवृत्तिपरौइति महा भद

आवमोदर्य-रसपरित्याग-अवभ्यवहर्तव्य-एकदेश-निवृत्ति-परो = आवमोदर्य रसपरित्याग है सो भक्षण करने योग्यकाही एक देशकी निवृत्तिमेंतत्परहै
पं० पन्नालाल दूनीजीने और न्यायदिवाकरजीने इसी सूत्रके अनुवाद करनेमें कई स्थानोंपर 'आवमोदर्य' शब्दका प्रयोग किया है अतः व्याकरणके उक्त सूत्रानुसार, पूज्यपादस्वामी तथा राजवार्तिकके कर्ताके प्रयोगोंसे 'आवमोदर्य' शब्द शुद्ध है और 'अनशनावमोदर्य'का पदच्छेद अनशन-आवमोदर्य है

( ) आवमौदर्य—हमको कई स्थानोंपर 'आवमौदर्य' शब्दका प्रयोग मिला है जैसे प० पन्नालालजीन्यायदिवाकर अनुवादित राजवार्तिककी नवमीं वार्तिककी वृत्ति वा भाष्यका अनुवाद करनेमे पत्र १२४३ की पंक्ति ३०में लिखते हैं "यानैं अनशनआवमौदर्य्य रसपरित्याग इन तीनिनिका वृत्तिपरिसंख्यानकरिही गर्भितपना है इत्यादि। आवमौदर्य में अवम (गुणवाचक) शब्दके प्रथमस्वर और उदरके 'उ' की वृद्धिकी है इसको 'द्विपदवृद्धि' कहते हैं अष्टाध्यायीके उक्त सूत्र अर्थात् अष्टाध्यायी, अध्याय५पाद १ सूत्र१२४ और अध्याय ७ पाद ३ सूत्र २०से यह ठीक है क्योंकि अनुशतिकादीनां च = अनुशतिकादीनाम्, च (वृद्धिः-पाद २ सूत्र ११४से,-ञ्णि-पाद २ सूत्र११५से-क् पाद २ सूत्र ११८से, उत्तर पदस्य-पाद ३ सूत्र १०, पूर्वपदस्य-पाद ३ सूत्र १९से अनुवृत्तियां लेकर सूत्र इस रूपमें हो जाता है कि)

= अनुशतिकादीनाम् पूर्व पदस्य च उत्तर पदस्य वृद्धिः भवति ञ्णित् कित् परे

= ञित्णित् कित् तद्धित परे हों तो गणपठित अनुशत आदि शब्दोंके पूर्वपद उत्तर पदोंके अचोंके (= स्वरोंमें) आदि स्वरको वृद्धि हो ॥ अनुशतिकसे आनुशातिकम्, सर्वलोकसे सार्वलौकिक अर्थात् सर्व + लोक + ठञ् (इक) = सार्वलौकिक भावार्थ वृद्धि दोनोंपदकी हुई परन्तु इक प्रत्यय समासके अंत भागमें लगा, अर्थ है सब लोकोंमें जाना हुआ, अनुशतकादिमें यह १६वां शब्द है ॥ इहलोक = इहलोक + ठञ् (= इक) = ऐहलौकिक = इस लोकका, यह चौदहवां शब्द है परलोक = परलोक + ठक् (= इक) = पारलौकिक – दूसरे लोकके लिये हितकारी काम यह १५वां शब्द है इत्यादि २१ शब्द हैं, तात्पर्य ऐसा है कि अनुशतकादीनि सूत्रसे उभयपद वृद्धि होतीहै अनुशतकादीनिकी गणना दी है वहाँ सब शब्द नहीं हैं जहां उभयपद वृद्धिरूप शब्द मिलें वहांमानलो कि अनुशतिकादीनिका आकृतिवाला वा स्वरूपवाला शब्द है अतःअवमोदरमें ष्यञ् (य)प्रत्यय लगानेसे आवमौदर्य बना, और उक्त सूत्रोंसे ठीक है॥

( ) अवमौदर्य - मुद्रित तत्वार्थश्लोकवार्तिकमें चारस्थानोंमें और हस्तलिखित प्रतिमें एक स्थानपर आया है और सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ २१०पर दो स्थानोंपर और पृष्ट २११ पर चौदह स्थानोंपर यह शब्द आया है, भाष्यकारने व्युत्पत्ति, प० ठाकुरप्रसाद व्याकरणाचार्यने अर्थ दियाहै कि "अवमौदर्यम् अवममित्यूननाम । अवममुदरमस्य अवमोदरः अवमोदरस्यभावः अवमौदर्यम्॥" अवमोदर्य्य अवम यह न्यून(कम) वाचीनाम अर्थात् अवम इसकाअर्थन्यून है इसलिये अवम(न्यून)अर्थात् खाली हैं उदर पेट जिसका वह अवमोदर है और अवमोदरका जो भाव है वह अवमौदर्य है अर्थात् उदरका भारीपन न होना" जब भाव अर्थमें ष्यञ् (= य)तद्धित प्रत्यय 'अवमोदर' समासमें लगाया तब उक्त सूत्र ५-१-१२४से गुणवचन शब्द 'अवम' की वृद्धि होनी चाहिये उदर शब्दके उ की वृद्धि व्याकरणके किस नियमसे कीगई समझमें नहीं आया, यदि इस समासको 'अनुशतकादीनाम् च'के आकृति वाला समास मानलें तो उभयपद वृद्धिहोना चाहिये तो 'आवमौदर्य' रूप बनेगा जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, परन्तु चूंकि यह आर्ष प्रयोगमें आया है इसलिये हम भी इसको ठीक माने लेते हैं ॥ अब रहा 'अवमोदर्य' शब्द वह व्याकरणके किसी सूत्रसे सिद्धि नहीं होता है ऐसा जान पडता है और हमारा भी अनुभव है कि 'अवमोदर्य' का उच्चारण सरल और सुगम है अतः बोलचालमें अवमोदर्य अधिक आने लगा हैं अतः बहुतसी पुस्तकोंमें बिना विचारे हुये इसी शब्दको लेखकोंने भी लिखमारा है और मुद्रित होता चला आता है ॥ पाठकगण इस शब्द पर अवश्य ही अधिक प्रकाश डाल कर अनुगृहीत करेंगे ॥

दृष्टफलानपेक्षं संयमप्रसिद्धिरागोच्छेदकर्मविनाशध्यानागमावाप्त्यर्थमनशनम् ॥ संयमप्रजागरदोषप्रशमसन्तोषस्वाध्यायादिसुखसिध्यर्थमावमोदर्यम्॥ भिक्षार्थिनो मुनेरेकागारादिविषयसङ्कल्पचित्तावरोधो वृत्तिपरिसंख्यानमाशानिवृत्यर्थमवगन्तव्यम् ॥

'सम्यग्योगनिग्रहोगुप्तिः' अ०९सूत्र४ से,इस सूत्रमें अनुवृत्ति आती है,राजवा०३४२ श्लोकवा० ४९५ सभाष्य०२१४ अतः उहाँ तपामें 'सम्यग्'जोड़ा है,आवमोदर्यका प्रयोग सर्वत्र किया है॥

सूत्रार्थ —सम्यग्•अनशनम्॥ =भले प्रकारसे भोजनका त्याग अथवा उत्तम उपवास,

सम्यग्•आवमोदर्यम्॥ ='अवम=न्यून ...ली,उदर=पेट,सो अवमोदर है उदरका खालीपना=आवमोदर्य) उत्तमरीतिसे अल्पआहरता।

सम्यग्•वृत्तिपरिसङ्ख्यानम्॥ =श्रेष्ठ विधिसे जीविकाका[=वृत्ति]नियम[=परिसंख्यान]सम्यग् भोजनकी विधिको परिमितकरना,

सम्यग्•रसपरित्यागः॥ =स्वादिष्ट वा रसरूपपदार्थोंका उत्तमरीतिसे त्याग अर्थात् उत्तमतासे घृत,दुग्ध,तेल,गुड-लवण दही- इनछह रसोंका वा इन छह रस संयुक्तवस्तुओंका त्याग(सदासुखजी कृत अर्थप्रकाशिकासे)

सम्यग्•विविक्तशय्यासनम्॥ =निरुपद्रव एकान्त,वा संसर्ग रहित शून्य स्थानमें भलेप्रकारशयन और आसन और स्थिति करना।

सम्यक्•काय-क्लेशः॥ बाह्यम्॥ तपः॥ =शरीरमें ममत्वको त्यागकर(=सम्यक्)शरीरको क्लेश देना [ये छह]बाह्यतप है[विशेष नीचेहैं]

वृत्त्यनुवाद—दृष्ट-फल- =लौकिक(=दृष्ट परिणाम =फल) जो ख्याति लाभ-मन्त्रसाधन रोग भयादि)की

अनपेक्षम्॥ संयम-प्रसिद्धि-राग-उच्छेद- =इच्छा रहित =अनपेक्ष) संयमकी सिद्धिके लिये रागभावोंके विनाशके अर्थ,

कर्म-विनाश-ध्यान आगम-अवाप्ति अर्थं॥ =कर्मोंके क्षयके लिये ध्यान और स्वाध्यायकी प्राप्तिके लिये(भोजनाभाव वा उपवास) सो

अनशनम्॥ संयम-प्रजागर- =(सम्यग्)अनशन (तप) है । संयम (की वृद्धि)के लिये, निद्राके अभावके लिये(=प्रजागर]

दोष-प्रशम-संतोष-स्वाध्याय-आदि- =वात-पित्त-खखार (=दोष)के प्रशमनके लिये, सन्तोष स्वाध्याय आदिकी,

सुखसिद्धि-अर्थम्॥ आवमोदर्यम्॥,भिक्षा- =सुखसे सिद्धिके लिये, न्यून आहारता सो (सम्यग्) आवमोदर्य है आहारके

अर्थिनः॥ मुनेः॥ एक-आगार आदि-विषय- =इच्छुक साधुके एक गृह [=आगार] वा स्थान आदि [=आगार] विषय

संकल्प-चित्त-अवरोधः॥ वृत्तिपरिसंख्यानम्॥ =संकल्पकरि [अन्यसे] चित्तको रोक लेना सो [सम्यग्] वृत्तिपरिसंख्यान

आशा-निवृत्ति-अर्थम्॥ अवगन्तव्यम्॥ =आशाके अभावके लिये जानना चाहिये भावार्थ यह है कि जब मुनि अहारके लिये मनसे

इन्द्रियदर्पनिग्रहनिद्राविजयस्वाध्यायसुखसिद्ध्यर्थो घृतादिवृष्यरसपरित्यागश्चतुर्थं तपः॥ शून्यागारादिषु विविक्तेषु जन्तुपीडाविरहितेषु संयतस्य शय्यासनमाबाधात्ययब्रह्मचर्यस्वाध्यायध्यानाद्यप्रसिध्यर्थं कर्तव्यमिति पञ्चमं तपः॥ आतपस्थानं वृक्षमूलनिवासो निरावरणशयनं

चलें तो ऐसी प्रतिज्ञा करे कि एक वा दो वा पांच घरमेंही भोजनके लिये जाना वा एक वा दो ही पाड़ामें जाना रस्ते तथा चौहटेमें हो भोजन मिले तो लैना नगरमें नहीं जाना विशेष प्रकारके भोजन वा भाजनका नियम करना, विशेष दातार जैसे स्त्री अथवा पुरुषके हाथसे ही भोजन मिलैगा तो करेंगे नहीं तो नहीं इत्यादि ऐसे नियमकरे और नियमानुसार आहारकी विधी नहीं मिले तो वनमें आकर उपवास धारणकरै सो वृत्तिपरिसंख्यानतप है ॥

इन्द्रिय–दर्प–निग्रह–निद्राविजय– =इन्द्रियका उन्नतपना वा अभिमानके रोकनेके लिये नींद न आवनेके लिये
स्वाध्याय-सुखसिद्धि–अर्थः घृत–आदि वृष्यरस =स्वाध्यायका सुखसे होनेके लिये, घी आदिक पुष्ट रसोंका
परित्यागः चतुर्थम् तपः ;विविक्तेषु =छोड़ना सो चौथा (सम्यग् रस परित्याग) तप है, एकान्त [=विविक्तेषु]
जन्तु–पीडा–विरहितेषु शून्य–आगारादिषु =प्राणियोंकी पीड़ासे वर्जित, संसर्ग रहित [=शून्य] गुप्तस्थानादिकोंमें (=आगारादिषु)
संयतस्य शय्या-आसनम् आबाधा–अत्यय– =संयमीका शयन तथा आसन बाधाके अभावके लिये (आबाधा अत्यय)
ब्रह्मचर्य–स्वाध्याय–ध्यानादि–प्रसिद्धि–अर्थम् =ब्रह्मचर्य स्वाध्याय तथा ध्यानादिककी सिद्धिके लिये
कर्तव्यम् इति पञ्चमं तपः, आतप- =ऐसा (=इति) कर्तव्य पांचवां (सम्यग् विविक्तशय्यासन) तप है आतपके
स्थानम् वृक्षमूलनिवासः निरावरण-शयनम् =स्थान, तथा वृक्षकी जडमें निवास वा वसना, छाया रहित चौहटे स्थानमें शयन

तत्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३४२मे तथा तत्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४६४में इस विविक्तशय्यासन तपको इसप्रकार लिखा है कि "आबाधात्ययब्रह्मचर्यस्वाध्यायध्यानादि प्रसिध्यर्थ विविक्तशय्यासन' और ऊपरकी पक्तिका अर्थ वा विवरण तत्वार्थराजवार्तिकमेंयह दिया है कि 'शून्यागारादिषु विविक्तेषु जन्तुपीडाविरहितेषु संयतस्य शय्यासनं वेदितव्य। तत्किमर्थं ? आबाधात्ययब्रह्मचर्यस्वाध्याय ध्यानादि प्रसिद्ध्यर्थं',

शून्यागारादिषु विविक्तेषु जन्तुपीडाविरहितेषु =संसर्गरहित गुप्त स्थानादिकमें एकान्त प्राणियोंकी पीड़ासे रहित
संयतस्य शय्यासनम् वेदितव्यम् तत् किम्-अर्थम् =संयमीका शयन आसन जानना चाहिये। वह (शयन आसन) किस लिये है ?
आबाधा अत्यय-ब्रह्मचर्य–स्वाध्याय-ध्यानादि प्रसिद्ध्यर्थम् =बाधाके अभावके लिए ब्रह्मचर्य स्वाध्याय तथा ध्यानादिककी सिद्धिके लिये जानो

बहुविधप्रतिमास्थानमित्येवमादिः कायक्लेश षष्ठं तप. ॥ तत्किमर्थम्? देहदु खतितिक्षासुखानभिष्वङ्गप्रवचनप्रभावनाद्यर्थम् ॥ परिषहस्यास्य च को विशेष·—यदृच्छयोपनिपतित· परिषह ! स्वयंकृत कायक्लेश ॥ बाह्यत्वमस्य कुत -बाह्यद्रव्यापेक्षत्वात्परप्रत्यक्षत्वाच्च बाह्यत्वम् ॥ अभ्यन्तरतपोभेदप्रदर्शनार्थमाह–

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥

बहुविध–प्रतिमास्थानम् इत्येवम् आदि	=बहुत प्रकारके पद्मासनोंका (पलट पलटकर तप) करना इत्येवम् आदि
कायक्लेश षष्ठम् तप· तत् किम् अर्थम् ?	=(सम्यक्) कायक्लेश छठा तप है, (प्रश्न) वह (कायक्लेश तप) किसलिये है ?
देहदु ख–तितिक्षा–सुख–	=(उत्तर) शरीरको दु ख देने, क्षमा करने(=तितक्षा)अर्थात् परिषहके सहने, सुखकी
अनभिष्वङ्ग अङ्ग–	=अभिलाषा मेटने विषैं(=अनभिषु), (मोक्षके) उपाय (=अग) अर्थात् मोक्ष मार्गकी
प्रवचन–प्रभावना–	=[प्रभावना] तथा प्रवचन प्रभावना अर्थात् सर्वज्ञ कथित आगमकी प्रभावना
आदि–अर्थम् ,परिषहस्य अस्य च·	=आदिके लिये (यह कायक्लेश तप) है, परिषहके तथा (=च) इस (कायक्लेश)के
क विशेष –यदृच्छया	=क्या अ तर वा भेद है (=विशेष·)(उत्तर) स्वयमेव वा अचानक (=यदृच्छया)
उपनिपतित परिषह स्वयकृत कायक्लेश ,	=आजाय सो परिषह है, आप द्वाराकी हुई कायक्लेश है ॥
बाह्यत्वम् अस्य कुत ·बाह्यद्रव्य–अपेक्षत्वात्	=बाह्यपना इस (तप)के कहासे है, बाह्यद्रव्यके सम्बन्ध होनेसे
पर–प्रत्यक्षत्वात् च· बाह्यत्वम्	=तथा (=च) अन्यको ज्योंका त्यों दीखनेके (हेतुसे)बाह्यपना है अर्थात् अनशनादि बाह्य तपकी अपेक्षासे ये तप हैं तथा बाह्यइन्द्रियोंके ग्रहणमें आते हैं तथा गृहस्थ भी इनको करते हैं तथा बाह्य लोगोंको ये प्रत्यक्ष दीखते हैं तिससे इनकें बाह्यपना है
अभ्यन्तर–तप –भेद–प्रदर्शन–अर्थम् आह T	=अन्तरंग तपके प्रगट करनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें)कहते हैं कि

प्रायश्चित्तविनय वैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥

(१) दोनों आम्नायोंमें सूत्र पाठ और अर्थभी एकसा है। क्या सूत्र ४ से इसमें भी सम्यक् अनुवर्तता है? नहीं तो नाटकादिका पढनाभी स्वाध्यायहोगा

कथमस्याभ्यन्तरत्वम् । मनोनियमनार्थत्वात् ॥ प्रमाददोषपरिहारः प्रायश्चित्तम् ॥ पूज्येष्वादरो विनयः ॥ कायचेष्टया द्रव्यान्तरेण चोपासनं वैयावृत्त्यम्॥ ज्ञानभावनाऽऽलस्यत्यागः स्वाध्यायः॥ आत्माऽऽत्मीयसङ्कल्पत्यागो व्युत्सर्गः॥चित्तविक्षेपत्यागोध्यानम्॥तद्भेदप्रतिपादनार्थमाह

नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः—प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानानि उत्तरम्(तपः)उच्यते ॥२१॥

सूत्रार्थः—प्रायः चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-	=अपराधकी (=प्रायस्)शुद्धि (=चित्त)नम्रता वा शिष्टाचार, सेवा वा टहल,ज्ञानका अध्ययन,
व्युत्सर्ग—ध्यानानि३'''उत्तरम्४'''	=(परिग्रहमें ममत्वका)त्याग, एक विषयको ग्रहणकरि दूसरोंसे चिन्ता वा विचारोंको निरोध
तपः१'''उच्यते ॥	=(ये छह)वचाहुआ, शेष तप कहा गया है अर्थात् १९वां सूत्रके क्रमानुसार अभ्यन्तर तप है
वृत्त्यनुवादः—कथम्*अस्य३'''अभ्यन्तरत्वम्४''',	=(प्रश्न) कैसे इस (तप) के अन्तरङ्गपना है ?
मनस्-नियम-न-अर्थत्वात्४''';	=अन्तःकरणके नियमसे नकि बाह्य पदार्थकेप्रवर्तनसे [=(अर्थत्वात्) इस तपके अंतरंगपना है]
प्रमाद-दोष-परिहारः३'प्रायश्चित्तम्४''';	=प्रमादद्वारा (व्रतमें लगेहुये) दूषणका निवारण सो प्रायश्चित (तप) है ॥
पूज्येषु३'आदरः१'विनयः२';काय-चेष्टया३''	=पूजने योग्य(पुरुषों)में सन्मान अथवा प्रतिष्ठा सो विनय है । शरीरके यत्नसे वा उद्योगसे
द्रव्यान्तरेण३'''च*उपासनं४'''वैयावृत्त्यम्४''';	=और (=च) द्रव्यान्तर वा अन्य द्रव्यसे सेवा वा टहल (करना) सो वैयावृत्त्य है ।
ज्ञान-भावना-आलस्य३'''त्यागः४'स्वाध्यायः३';	=ज्ञानके आराधनमें आलसका परिहार सो स्वाध्याय है ।
आत्मा४'आत्मीय-संकल्प-त्यागः१'	=मैंहूं (=आत्मा) ये अपना है (=आत्मीय) (ऐसे) मनके व्यापार (=संकल्प)की निवृत्ति
व्युतसर्गः१';	=सो व्युतसर्ग तप है अर्थात् पर द्रव्यविषैं यह मेरा है,यह मैं हूं,ऐसे संकल्पका निवारणसोहै
चित्त-विक्षेप-त्यागः३'ध्यानम्४''',तद्-भेद-	=चित्तके चलाचलपनका वा व्याकुलता का त्याग सो ध्यान है. उस(अभ्यन्तर तप)के भेद
प्रतिपादन-अर्थम्१''' आह ॥	=कहने को (आचार्य अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥

श्वेताम्बर आम्नायमे तथा हमारेयहांबड़े २ भाष्योंमें भी कहीं पञ्च भेदा पाठ हे कही पञ्चभेदं पाठ है॥अतः दोनोंसमाजमें पाठएक है अर्थ भी एकसाहै

यथाक्रममिति वचनान्नवभेदं प्रायश्चित्तम् ॥ विनयश्चतुर्विध. ॥ वैयावृत्यं दशविधम् ॥ स्वाध्याय पञ्चविध ॥ द्विविधो व्युत्सर्ग इत्यभिसम्बध्यते ॥ प्राग्ध्यानादितिवचनं ध्यानस्य बहुवक्तव्यत्वात्पश्चाद्वक्ष्यत इति ॥ आद्यस्य भेदस्वरूपनिर्ज्ञानार्थमाह—

नव-चतुर्-दश पञ्च-द्वि-भेदा भवन्ति यथाक्रमम् प्राग्-ध्यानात् ॥ २१ ॥

पदच्छेद —नव-चतुर्-दश पञ्च-द्वि-भेदा।[१] भवन्ति =नौ, चार, दश, पांच दो भेद हैं (=भवन्ति) जिनके ऐसे

सूत्रार्थ —नव–चतुर्–दश पञ्च–द्वि–भेदा।[१] भवन्ति यथाक्रमम्[१] प्राग्ध्यानात्[१] =क्रमसे ध्यानसे पहिले पांच तप है अर्थात् प्रायश्चित्त तपके नौ, विनय तपके चार, वैयावृत्त्यतपके दश, स्वाध्यायतपकेपांच, व्युत्सर्गतपके दोभेद क्रमसेहै ॥ [सूत्र२०में ध्यानहै]

वृत्त्यनुवाद —यथाक्रमम्[५] इति[६] वचनात्[७] नवभेदं[१] =[इस सूत्रमें] यथाक्रमम् ऐसे वाक्यसे नौ भेदरूप प्रायश्चित्तम्[२] विनय[१] चतुर्विध[२], वैयावृत्यं[१] दश-विधम्[२] स्वाध्याय[१] पञ्चविध[२] द्विविध[१] व्युत्सर्ग[२] इति =प्रायश्चित्त [तप] है, विनय [तप] चार प्रकार है, वैयावृत्त्य [तप] दश प्रकार है, स्वाध्याय [तप] पांच प्रकार है, दो भेदरूप व्युत्सर्ग [तप] है ऐसे, (२०वासूत्रकेध्यानकेपहिलेवालेपांचतपोंका२१वा सूत्रके नव, चतुर्, दश, पञ्च, द्वि, गणनाके साथ यथासंख्य अर्थात् पहिले तपका नवके साथ, दूसरे तपका चतुर्के साथ, तीसरे तपका दशके साथ, चौथे तपका पञ्चके साथ, पांचवा तपका द्विके साथ] अभिसम्बध्यते[१] =सम्बंध किया जाता है वा जोड़ा जाता है, प्राग्-ध्यानात्[१] इति[२] वचनम्[३] [इस सूत्रमें] प्राग् वाक्य ऐसा ध्यानस्य[१] बहुवक्तव्यत्वात्[२] पश्चात्[३] वक्ष्यते[४] इति[५], =ध्यान [तप] की बहुत कथनीय होने [के हेतु] से पीछे (अट्ठाईसवा सूत्रमें) कहेंगे, आद्यस्य[१] भेद-स्वरूप निर्ज्ञान अर्थम्[२] आह[३] =आदिके (प्रायश्चित तप)के विकल्प तथा स्वरूपके निर्णयके लिये कहते है कि

(१) प्राग् यह शब्द यथा।[१] में "प्राच् [त्रिलिंगी है] प्र + अच् + क्विन्। पहिला समय और देश" यह देश अर्थात् स्थानके अर्थमें आया है॥ [पद्म०को०१२५७] च् घोष अक्षर अर्थात् ग् घ ङ्। ज् झ् ञ्। ड् ढ ण्। द् ध् न्, ब् भ-म्। य् र् ल् व् ।ह। के पहिले ग में और अघोष अक्षर अर्थात् क् ख् च् छ्। ट् ठ।त्-थ्। प् फ। श् ष-स्।) के प्रथम क में परिवर्तन होजाता है, इसलिये च् ध्यानके ध् अक्षरके पहिले गमें पलटकर प्राग् होगया, और "चिग्रहयती च स सोरिण प्राक् चतुर्ण" सूत्रमें प्राच् का च् चतुर्ण के च् अघोष अक्षरके पहिले है, अत च् का परिवर्तन कमें होकर 'प्राक्' होगया॥

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेक[१]व्युत्सर्ग[२]तपश्छेद[३]परिहारोपस्थापनाः ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—आलोचन—प्रतिक्रमण—तदुभय—=अपराधोंको प्रगट करना, कृत अपराध मिथ्या होउ, वे दोनों(आलोचन और प्रतिक्रमण) करना
विवेक—व्युत्सर्ग-तपः—छेद—परिहार— =आहारादिका त्यागकरादेना, कायोत्सर्गादिक करना, तप करना, दिक्षाका विच्छेद, संघसे निकालना
उपस्थापनाः"प्रायश्चित्तस्य"नव-भेदाः"=दिक्षाको छेदकर फिरसे देना, प्रायश्चित्त तपके (ये) नौ भेद हैं अर्थात् (क) दश दोष रहित गुरुके निकट जाकर लगेहुए अपराधोंको प्रगट करना सो आलोचन है (दश दोषका विवरण वृत्तिके अर्थमें देखो) (ख) मैंने जो अपराध किये हैं, सो मिथ्या होउ, निष्फल होहु इत्यादि प्रगट करना सो दूसरा प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त है॥(ग)कोई दोषतो आलोचनमात्रसे शुद्ध होजाता है और कोई दोष प्रतिक्रमण करनेसे शुद्ध होजाता है, कोई दोष दोनों आलोचना तथा प्रतिक्रमण करनेसे शुद्ध होता है उसको तदुभय [तद्=वो, उभय=दोनों वो दोनोंकरि]प्रायश्चित्त कहते हैं (घ) दोषकरि सहित जो आहार—पानी उपकरण तिनका संसर्ग हुआ होय तो तिनका त्याग करना भावार्थ किसी वस्तुका सदोषका संदेह हो, सदोष वस्तु विषैं निर्दोषका ज्ञान भया, जिस वस्तुका त्याग किया था उसका पुनि ग्रहण होजाय, तिस वस्तु वा तिन वस्तुओंका फिर त्याग करना सो विवेक प्रायश्चित्त है (ङ) जिनेन्द्र भगवान्के गुणोंकी भावना सहित शरीरमें ममत्वका त्याग सो कायोत्सर्ग है (मूलचार गाथा २८) कायोत्सर्गादिकालका नियमकरि करना सो व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है ॥ (च) अनशन-आवमोदर्य, आदिक तप वेला पंचोपवासादि करना सो तप प्रायश्चित्त है (देखो इस अध्यायका सूत्र १९,२०तपके सम्बन्धमें) (छ) दिन, मास संवत्सरकी दीक्षाका छेदकरना सो छेदनामका प्रायश्चित्त है[ज]पक्ष मासादिकके नियमसेमुनिकोसंघसे निकाल देना सो परिहार है [झ] समस्त दीक्षाको छेदकर फिरसे दीक्षा देना सो उपस्थापना प्रायश्चित्त है ॥

(१) प्रायः प्रतियोंमें 'व्युत्सर्ग'है कहीं व्युत्सर्ग है दोनों शुद्ध हैं क्योंकि 'अचोरहाभ्याम् द्वे वा' सूत्रसे विकल्पकरि दुहरा ग होजाता है। (२)'तपश्छेद' शुद्धहै जहां 'तपश्च्छेद'है अशुद्ध है वो यदि विसर्गको स्वर न माने तो अशुद्ध है क्योंकि छ में च् तबआता है जब छ् से पहिले कोई स्वर हो, छ् सेपहिले विसर्ग है [३] श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'परिहारोपस्थापना'के स्थानमे 'परिहारोपस्थापनानि है

भिर्लोकस्यासंख्येयभागः। असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागाः वा देशोनाः। मनुष्यगतौ मनुष्यैर्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः सप्त चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम्॥ देवगतौ देवैर्मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ

लोकस्य ।६। असंख्येयभागः ।१। (स्पृष्टः ।१।) =लोकका असंख्यातवां भाग (स्पर्शा जाता) है
असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ।३। संयतासंयतैः ।३। =असंयतसम्यग्दृष्टी (तथा) संयमासंयमी तिर्यंचोंकरि
लोकस्य ।६। असंख्येयभागः ।१। (स्पृष्टः ।१।) =लोकका असंख्यातवां खंड (स्पर्शा जाता) है
वा चतुर्दश ।१। भागाः ।१। =अथवा (लोकत्रसनालके) चोदह राजू हैं
षट् ।१। देशोनाः ।१। (स्पृष्टाः ।१।) =(सो मारणांतिकसमुद्घात अपेक्षा) कुछ घाटि छह राजू स्पर्शे जाते है
मनुष्यगतौ ।७। मनुष्यैः ।३। मिथ्यादृष्टिभिः ।३। =नरगतिमें मिथ्यादृष्टी मनुष्योंकरि
लोकस्य ।६। असंख्येयभागः ।१। =लोकका असंख्यातवां अंश स्पर्शा जाता है
वा सर्वलोकः ।१। स्पृष्टः ।१। =अथवा [मारणान्तिक समुद्घात अपेक्षा] सब लोक स्पर्शा जाता है।
सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ।३। लोकस्य ।६। असंख्येयभागः ।१। =सासादन सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) नरकरि लोकका असंख्यातवा अंश [स्पर्शा जाता] है
वा चतुर्दश ।१। भागाः =अथवा [लोकत्रसनालके] चौदहराजू हैं सो (मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा)
सप्त ।१। देशोनाः ।१। (स्पृष्टाः ।१।) सम्यङ्मिथ्यादृष्टि- =कुछ हीन सातराजू (स्पर्शे जाते) हैं। मिश्रगुणस्थानसौंन
आदीनाम् ।६। अयोगकेवलि अन्तानां ।६। क्षेत्रवत् स्पर्शनम् =ले लेकर अयोगकेवली पर्यंतनका स्पर्शन क्षेत्रसदृश या तुल्य है
देवगतौ ।७। देवैः ।३। मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिः ।३। =देवगतिविषैं मिथ्यादृष्टि (और) सासादनसम्यग्दृष्टी देवोंकरि
लोकस्य ।६। असंख्येयभागः ।१। =लोकका असंख्यातवां अंश (स्पर्शा जाता) है
वा चतुर्दश ।१। भागाः ।१। अष्टौ ।१। =अथवा (लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं सो परस्थान विहार अपेक्षा कुछ

अर्थात् गुरु वा आचार्य अनुग्रह रूप होकर अल्प प्रायश्चित्त देवेंगे,उनकी भेट पोछी कमंडल अथवा अन्य उपकरण करके इस लोभको प्राप्त हुआ(=आकम्पित-पद्मचन्द्र कोशपृष्ठ ५२ के अनुसार)आलोचना करै सो प्रथम आकम्पित दोष सहित आलोचना है (२) मैं दुर्बल हूं-रोगी हूं- उपवासादिक करने को असमर्थ हूं, मुझको अल्प प्रायश्चित्त देदेवेंगे तो मैं भी दोषों की आलोचना वा प्रकटन करूं इस प्रकार आचार्य वा गुरू को अपने स्वरूप का वा अवस्थाका अनुमान कराय आलोचना करना सो दूसरा अनुमानित (=अनुमान कराया गया) दोष सहित आलोचना है (३) अन्य करि नहीं देखेहुये दोष को तो मायाचार करि छिपावना और प्रत्यक्ष वा प्रकट हुये (=दृष्ट) दोष की आलोचना वा प्रकाशन करना सो तीसरा दृष्ट (=प्रत्यक्ष वा देखे हुये) दोष सहित आलोचना है (४) आलस्यसे और प्रमादसे अल्प दोष को न गिने और उसके जतावनेका उत्साहन करै स्थूल दोष की आलोचना करै सो चौथा बादर (=स्थूल) दोष सहित आलोचना है (५) महान् दुस्तर प्रायश्चित्त देनेके भयसे वड़े दोषको छिपावना और अल्प दोषकी आलोचना करना सो पांचवा सूक्ष्म(=अल्प) दोष सहित आलोचना है (६) अमुक व्रतके अतीचार होते क्या प्रायश्चित्त होता है इस अभिप्रायसे प्रायश्चित्त को जाननेके लिये गुरु वा आचार्यकी उपासना वा टहल करनी दोष न कहना सो छठवां प्रच्छन्न (=गुप्त) दोष सहित आलोचना वा प्रकाशन है (७) पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिकादि प्रतिक्रमणके दिवसमें जब वहुत मुनि इकट्ठे होवें और आलोचनाके शब्द वहुत होवैं तब आपभी अपना दोष इस आशय वा अभिप्रायसे कि वहुतसे शब्दोंके होनेसे कुछ सुनाई पड़ेगा कुछ नहीं(सुनाई पड़ैगा) कहै सो सातवां शब्दाकुलित (ध्वनिव्याकुलित, ध्वनि में गड़ बड़ाये हुये वा ध्वनिमें घवरायेहुये) दोष सहित आलोचना वा आख्यान है (८) गुरु वा आचार्यका दिया हुआ प्रायश्चित्त है सो योग्य है कि नहीं तथा आगममें है कि नहीं इसप्रकार शंकाकरि अन्य मुनियों वा साधुओं से पूछना सो आठवां वहुजन (=जनता=मनुष्यगण वा अनेक व्यक्ति) दोष सहित आलोचना अथवा प्रादुष्करण है (९) कुछ प्रयोजन विचार आपसमान हो उसको अपना अपराध वा दोष कहै गुरु वा आचार्य से न कहै और प्रायश्चित्त आपही लेलेवै सो नवमा अव्यक्त(अप्रगट वा अप्रकाशित)दोष सहित आलोचना है। इसमें वड़ा प्रायश्चित्त भी लेलेवे वा धारण करै सो भी फलकारी नहीं है ॥ (१०) गुरुके सामने आलोचना न करै किसी मुनिने वैसाही दोषरूप आचरण किया हो जैसा अब स्वयम् ने कियाहै तो यह विचारकर कि जैसा अमुक मुनिको पायश्चित्त दियाहै वैसाही मुझको भी लेलैना चाहिये ऐसे अपने दोषको छिपावना सो दशवां तत्सेवी वा तत्सम दोष सहित आलोचना है॥

तत्र गुरवे प्रमादनिवेदन दशदोषविवर्जितमालोचनम् ॥ आकम्पियमणुमणियं जं दिट्ठं
बादर च सुहुम च ॥ छण्णु सद्दाउलय बहुजणमवत्तसस्सेवि ॥ १ ॥

=तहां गुरूको दशदूषण रहित सो आलोचना(१)प्रायश्चित्तहै।
=प्रमाद(द्वारा लागे दोषों)का सविनय कहना(=निवेदन)

तत्र॰गुरवे॰दशदोषविवर्जितम् ॥	=तहां गुरूको दशदूषण रहित
प्रमाद निवेदनम् ॥ आलोचनम् ॥	=प्रमाद(द्वारा लागे दोषों)का सविनय कहना(=निवेदन)सो आलोचना(१)प्रायश्चित्तहै।
आकम्पियमणुमणिय ज दिट्ठ बादर च सुहुम च =(आकंपित अनुमानित यद् दृष्ट बादरं च सूक्ष्मं च	=आकंपित, अनुमानित, दृष्ट और (=च) बादर और (=च) सूक्ष्म
छण्ह सद्दाउलय बहुजणमवत्तसस्सेवि ॥१॥ =छन्न शब्दाकुलितं बहुजन अव्यक्तसस्सेवि	=प्रच्छन, शब्दाकुलित, बहुजन, अव्यक्त, सस्सेवि वा तत्सेवी (दोष) हैं ॥

श्वेताम्बर समाजके भाष्योंमें 'उपस्थापना' है, उपस्थापना' स्त्री लिंगमें है उसका बहुवचन स्त्रीलिंग प्रथमा विभक्तिमें 'उपस्थापना' है, स्थापन और स्थापना दोनों शब्द शुद्ध और ठीक हैं (पद्मचन्द्र अर्थात् हमारे यहां उपस्थापना' स्त्री लिंगमें है उसका बहुवचन'उपस्थापनानि' हुआ उप अव्यय है स्थापन और स्थापना दोनों शब्द शुद्ध और ठीक हैं (पद्मचन्द्र उपस्थापन नपुंसकलिंगमें है जिसका बहुवचन'उपस्थापनानि' हुआ, हमारे यहां की बहुधा प्रतिओंमें आलोचन शब्द पाया जाता है कहीं कहीं पर आलोचना शब्द भी है ॥ कोश पृष्ठ ४३८)शेष पाठ और अर्थ एक है, हमारे यहां की बहुधा प्रतिओंमें आलोचन शब्द पाया जाता है कहीं कहीं पर आलोचना शब्द भी है ॥ दोनों शब्दोंका प्रयोग ठीक है। आलोचन ' का प्रयोग प्रथमा विभक्ति एक वचन नपुंसक लिंग में है 'आलोचना' प्रथमा विभक्ति स्त्रीलिंग में है ॥ (१) आलोचना प्रकट (लोगों को अपना कृत्य प्रगट करदेना) प्रकाशन, आख्यान, प्रादुष्करण एकार्थवाचक शब्द हैं। (देखो सभाष्यतत्त्वार्था धिगमसूत्र पृष्ठ२१३(क) प्रायः कहिये साधु लोकका समूह तिनकाचित्त जिस कार्यमें प्रवर्त सो प्रायश्चित्त कहिये (राजवार्तिकसे) (ख)प्राय कहिये अपराध उसकी चित्त कहिये शुद्धि करना अपराध की शुद्धि करना सो प्रायश्चित्त है अथवा अपराधो वा प्रायस्तेन विशुद्ध्यते इति=तिसकरि अपराध या दोष (=प्रायस्) शुद्ध किया जाता है सो प्रायश्चित्त है (ग) प्रायश्चेतयति येन तत्प्रायश्चित्तम्=जिससे या जिस द्वारा (=येन) अपराधसे चेत जाता है या सावधान हो जाता है या दोष को जान जाता है यह प्रायश्चित्त है (और जानकर अपराध या निषिद्ध आचरण को नहीं करता है ऐसा भाव झलकता है) अथवा चिती संज्ञानविशुद्ध्योः=चिती सम्यग्ज्ञान और विशुद्ध अर्थोंमें धातु है, उस (चिती) धातुसे निष्ठा त (=त) प्रत्यय करनेसे अथवा उणादि 'त' प्रत्यय करने से (चित्+त) चित्त यह शब्द सिद्ध होता है तो इससे यह अभिप्राय सिद्ध होता है कि इन पूर्वोक्त आलोचन आदि नौ प्रकारके क्लेशरूप प्रायश्चित्त नामक विशेष तपोंसे जिसको अप्रमाद अर्थात् सावधानता प्राप्त हुई ऐसा पुरुष तिन व्यतिक्रम या निषिद्धाचरण (=प्राय) को जानजाय और जानकर पुन उन(=निषिद्धाचरण, अपराध, प्रमाद, असावधानता दोष) जिसके द्वारा नहीं करता उसको प्रायश्चित्त कहते हैं। (घ) पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २५८ में प्रायश्चित्त शब्दको व्युत्पत्ति ऐसे हैं"प्रायश्चित्त, (न०)प्रायस्+चित्+क। प्रायस्=तपस्या, चित=निश्चय है, निश्चय संयुक्त तपस्या को प्रायश्चित्त कहतेहैं" ॥ प्रायश्चित्त के पर्याय वाचक शब्द मूलाचारग्रन्थ की ३६२ गाथामें ऐसे हैं कि पुराने कर्मों का नाश,क्षेपण, निर्जरा,शोधन, धावन (=शोधन), पुच्छन,[निराकरण] उत्क्षेपण, छेदन [द्वैधी करण] ॥"

दूरतः परिवर्जनं परिहारः ॥ पुनर्दीक्षाप्रापणमुपस्थापना ॥ विनयविकल्पप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥

विनय इत्यधिकारेणाभिसम्बन्धः क्रियते ॥ ज्ञानविनयो दर्शनविनयश्चारित्रविनय उपचारविनयश्चेति ॥ सबहुमानं मोक्षार्थं ज्ञानग्रहणाभ्यासस्मरणादिर्ज्ञानविनयः। शङ्कादिदोषविरहितं तत्त्वार्थश्रद्धानं दर्शनविनयः। तद्वतश्चारित्रसमाहितचित्तता चारित्रविनयः। प्रत्यक्षेष्वाचार्यादिषु

दूरतः॰परिवर्जनम् १/१॥ परिहारः १/१, =दूरसे वर्जना सो परिहार(प्रायश्चित्त) है अर्थात् संघसे निकालदेना सो परिहार प्रायश्चित्त है।

पुनर् ॰दीक्षा-प्रापणम् १/१॥उपस्थापना १/१, =फिर दीक्षाका ग्रहण (=प्रापण)सो उपस्थापना (प्रायश्चित्त) है अर्थात् गुरु पहिलेकी दीक्षा च्छेदकर नवीन दीक्षा को देते हैं सो उपस्थापना (प्रायश्चित्त) है।

विनय-विकल्प-प्रतिपत्ति-अर्थम् १/१॥ आह T— =विनय (तप) के भेद कहनेके लिए (आचार्य्य अग्रिम वा अगला सूत्रमें) कहते हैं कि

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥२३॥ =ज्ञान-दर्शन-चारित्र-उपचाराः १/३(विनयस्यचतुर्भेदाः १/३)॥२३॥

सूत्रार्थः-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-उपचाराः १/३ विनयस्य ६/१ =ज्ञान-दर्शन-चारित्र-उपचार विनय (तप) के चतुर्भेदाः १/३ भवन्ति T =चार भेद हैं अर्थात् ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारि त्रविनय, उपचार विनय हैं।

वृत्त्यनुवादः-विनयः १/१ इति॰अधिकारेण ३/१ =(इस सूत्रमें)विनय शब्द ऐसा प्रकरण होनेसे(प्रत्येक ज्ञान,दर्शन,चारित्र,उपचार के साथ) अभिसंबन्धः १/१ क्रियते T ॥ =संयोग किया जाता है ॥

ज्ञानविनयः १/१ दर्शनविनयः १/१ चारित्रविनयः च उपचार =(तब) ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय तथा उपचार विनयः १/१ इति॰सबहुमानं १/१॥मोक्षार्थं १/१॥ज्ञान-ग्रहण— =विनयऐसा(परिपूर्णवाक्य) हुआ ॥ बहुतमानसहित मोक्षकेलिए ज्ञानका ग्रहण अभ्यास-स्मरण-आदिः १/१ ज्ञानविनयः १/१, =(ज्ञानका)चिन्तन वा साधन(=अभ्यास) तथा(ज्ञानकी)सुधि वा स्मृति आदि ज्ञान विनय है

शङ्का-आदि-दोष-विरहितं १/१॥तत्त्वार्थश्रद्धानं १/१॥दर्शन- =शङ्काआदिक (आठ) दोष वर्जित तत्त्वार्थश्रद्धान सो दर्शन विनयः १/१, तद्वतः ६/१ चारित्र—समाहित— =विनयहैउन(ज्ञान,दर्शन)वाला होकर अर्थात् ज्ञानदर्शन सहित होकर,चारित्र में समाधान रूप चित्तता १/१॥चारित्रविनयः १/१ प्रत्यक्षेषु ७/३ आचार्यादिषु ७/३ =चित्तको करना सो चारित्रविनय है। प्रत्यक्ष आचार्य्यादिकोंके होने पर

इति दस दोसा ॥ मिथ्यादुष्कृताभिधानादभिव्यक्तप्रतिक्रिय प्रतिक्रमणम् ॥ संसर्गे सति विशोधनात्तदुभयम् ॥ संसक्तान्नपानोपकरणादिविभजन विवेक ॥ कायोत्सर्गादिकरणं व्युत्सर्ग॥ अनशनावमोदर्यादिलक्षणं तप ॥ दिवसपक्षमासादीना प्रव्रज्याहापनं छेद ॥पक्षमासादिविभागेन

इति०अन्ना॥ दोषा॥, मिथ्या०दुष्कृत- =इस प्रकार (=इति) दश दूषण हैं, (मेरे) खोटे कियेहुये काम (=दुष्कृत)असत्य(=मिथ्या) होउ, निष्फल (=मिथ्या) होउ अथवा निष्परिणाम (=मिथ्या)होउ

अभिधानात् ॥ अभिव्यक्त-प्रतिक्रियम् ॥ =(ऐसे) कहनेकरि प्रत्यक्ष वा प्रगट रूपसे प्रतिकार वा शोधन (दोषका हटाना) प्रतिक्रमणम्॥, संसर्गे॥ सति ॥ =सो प्रतिक्रमण है, (आलोचना तथा प्रतिक्रमण के) सम्बन्ध होनेपर विशोधनात् ॥ तद्-उभयम् ॥, =दोष वा अपराध के जाते रहनेसे तद्-उभय (प्रायश्चित्त होता) है अर्थात् कोई दोष तो आलोचना मात्रसे शुद्ध होजाता है और कोई दोष प्रतिक्रमण करनेसे शुद्ध होजाता है और कोई दोष दोनों आलोचना तथा प्रतिक्रमण करनेसे शुद्ध होजाता है उसको तदुभय (=तद्-उभय) प्रायश्चित्त कहते हैं।

संसक्त अन्न-पान उपकरण आदि- =मिलित अर्थात् दोषकरि संयुक्त अन्न-पान सामिग्री (=उपकरण) आदिका विभजनम् ॥ विवेक ॥, =(संसर्ग होनेपर) पृथक् करना सो विवेक(प्रायश्चित्त)हैं यहां तात्पर्य ऐसाहै कि किसी वस्तुमें सदोषका सदेह पड़ता हो,सदोष वस्तुविषैं निर्दोषका ज्ञानहुआ हो,जिस वस्तुका त्याग किया था उसका फिर ग्रहण होजाय तिस वस्तु वा तिन वस्तुओंको फिर त्याग करना सो विवेकप्रायश्चित्तहै।

काय उत्सर्ग आदि करणम्॥ व्युत्सर्ग ॥, =कायोत्सर्गादिका अनुष्ठान सो व्युत्सर्ग है अर्थात् कालका नियमकरि जिन भगवान्के गुणोंकी भावना सहित देहमें ममत्वका छोड़ना [=कायोत्सर्ग]सो कायोत्सर्ग है इस प्रकार कायोत्सर्गादिकका करना सो व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है।

अनशन-अवमोदर्य आदि-लक्षणम्॥तप ॥,=[सम्यग्]उपवास तथा न्यून आहारता आदिक स्वरूप संयुक्त(=लक्षण)तप[प्रायश्चित्त]है दिवस-पक्ष मास आदीनां॥प्रव्रज्या हापनम् ॥ =दिन,पाख, महीने आदिक की दीक्षा [=प्रव्रज्या] घटाना[=हापन] छेद ॥, पक्ष मास आदि विभागेन ॥ =सो छेद [प्रायश्चित्त] है। पाख महीने आदिका विभागकरि

वैयावृत्यं दशधा भिद्यते । कुतः ?। विषयभेदात्॥आचार्यवैयावृत्यमुपाध्यायवैयावृत्यमित्यादि ॥ तत्र आचरन्ति तस्माद्व्रतानीत्याचार्यः। मोक्षार्थं शास्त्रमुपेत्य तस्मादधीयत(ते)इत्युपाध्यायः। महोपवासाद्यनुष्ठायी तपस्वी॥शिक्षाशीलः शैक्षः॥ रुजादिक्लिष्टशरीरो ग्लानः॥ गणः स्थविरसन्तति।

सूत्रार्थः—आचार्यवैयावृत्यं उपाध्यायवैयावृत्यं तपस्वि वैयावृत्यं शैक्षवैयावृत्यं, ग्लानवैयावृत्यं गणवैयावृत्यं कुलवैयावृत्यम् संघवैयावृत्यम् साधुवैयावृत्यम् मनोज्ञ वैयावृत्यम् इति*वैयावृत्यम् दशविधम् उच्यते ।, =आचार्यकी वैयावृत्य, उपाध्यायकी टहल, तपस्वीकी उपासना (=टहल, सेवा), शैक्षकी सेवा, रोगी यतीकी वैयावृत्य, वृद्ध मुनियोंके समुदायकी सेवा, कुलकी वैयावृत्य, संघकी उपासना, साधुकी टहल, मनोज्ञकी सेवा ऐसे वैयावृत्य दशप्रकार कही गई है [विशेषके लिये देखो वृत्तिअनुवादमें]

वृत्त्युनुवादः—वैयावृत्यम् दशधा* भिद्यते ।, =वैयावृत्य दश प्रकारसे भेदरूप किया गया है अर्थात् वैयावृत्यके दश भेद हैं

कुतः* ? विषय—भेदात्, =[प्रश्न] क्योंकर ?[उत्तर]प्रकरणके भेदसे(वैयावृत्यके दश विकल्प हैं जैसे)

आचार्यवैयावृत्यम् उपाध्यायवैयावृत्यम् =आचार्य की शुश्रूषा—उपाध्यायकी वैयावृत्य,

इत्यादि =तपस्वीकी सेवा, शैक्षकी उपासना, ग्लानकी सेवा, गणकी टहल, कुलकी वैयावृत्य, संघकी शुश्रूषा, साधुकी उपासना, मनोज्ञकी सेवा वा टहल ऐसे है

तत्र*आचरन्ति—तस्मात्*वृतानि इति*आचार्यः; =तहां जिससे (प्राणी) व्रतोंको आचरण करते हैं ऐसा आचार्य है

[१]उपेत्य—मोक्ष—अर्थं शास्त्रम् तस्मात्*अधीयते इति* =(जिसके) निकट जाकर(=उपेत्य)मोक्षके लिये शास्त्र जिससे पढ़ा जाता है ऐसा उपाध्यायः । महान्-उपवासादि—अनुष्ठायी तपस्वी =उपाध्याय है। महान् अनशन आदिक तप करने वाला तपस्वी है,

शिक्षाशीलः शैक्षः ॥ =विद्या(=शिक्षा) की है बान वा अभ्यास(=शील) जिसको सो शैक्ष है अर्थात् विद्या(=शिक्षा)के पढ़ने वाला वा सीखने वाला सो शैक्ष, शैक्षक वा शैक्ष्य है, 'जो श्रुतज्ञानके सीखनेमें तत्पर अर निरन्तर प्रभावनामें निपुण है सो शिष्य है,

[२]रुज्—आदि (रुजा-आदि) क्लिष्टशरीरः ग्लानः, गणः =रोग आदिक कर (ग्रसित) क्लेशरूप देह संयुक्त सो ग्लान है ॥ स्थविरसन्ततिः =बूढ़े (=स्थविर) मुनिका गोत्र (=सन्तति) वा परिपाटीका नाम सो (गण) है,

(१)उप=निकट, पास, इत्य=जाकर,प्राप्तहोकर, उपेत्य=पास प्राप्त होकर, निकट जाकर । [२] रुज् वा रुजा दोनों शब्द स्त्री लिंगी हैं और

अभ्युत्थानाभिगमनाञ्जलिकरणादिरुपचारविनयः । परोक्षेष्वपि कायवाङ्मनोभिरञ्जलिक्रिया गुणसंकीर्तनानुस्मरणादि ॥ वैयावृत्यभेदप्रतिपादनार्थमाह—

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम् ॥२४॥

अभ्युत्थान–अभिगमन–अञ्जलिकरणादि:१ उपचार–=उठ खडा होना, सन्मुख आना अञ्जुली करना (अर्थात् हाथ जोडना) आदि उपचार विनय:१ ॥ परोक्षेषु२ अपि काय-वाङ्-मनोभि:३ =विनय है ॥ उन आचार्यादिकके) परोक्षमें भी मन वचन कायकरि अञ्जलि क्रिया१ गुणसंकीर्तन अनुस्मरणादि १, =हाथ जोडना, गुणोंका स्तवन करना, वारवार स्मरणादि (करना उपचार विनय है) वैयावृत्य भेद–प्रतिपादन–अर्थं२ आह १ =वैयावृत्य (तीसरे अभ्यन्तर तप)के भेद जनलानेके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते है कि

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसङ्घसाधुमनोज्ञानाम् ॥ २४ ॥

पदच्छेद —[१]आचार्य उपाध्याय -[२] तपस्विन्[३]शैक्ष-ग्लान-गण-कुल[४]सङ्घ-साधु[५] मनोज्ञानाम् इति वैयावृत्यम् दशविधम् उच्यते ॥ २४ ॥

(१) बहुधा पुस्तकोंमें "आचार्य पाठ है कहीं कहीं पर 'आचार्य्य" भी पठन है 'अचोरहाभ्याम् द्वे वा' = ४ ४६वां सूत्रसे दोनों शब्द ठीक हैं ॥ (२) बहुतसी प्रतियोंमें तपस्वि' शब्द आया है कहीं कहीं पर (जैसे सदासुखजी लघुटीका तथा ज्ञानचन्द्रजी मुद्रित प्रतिमें "तपस्वी" शब्द है यह अशुद्ध है क्योंकि समस्त सूत्र एक समासमें है और यथार्थ शब्द 'तपस्विन् है समासमें 'न्' का लोप होजाता है तपस्वि रह गया। परन्तु तपस्वी' प्रथमा एक वचन पुल्लिंग 'तपस्विन् का है, समासमें बीचमें विभक्ति नहीं होना चाहिये ॥(३) 'शैक्ष' अधिकतर पुस्तकोंमें पाठ मिलता है शैक्षसे कुछ न्यून पुस्तकोंमें शैक्ष्य मिलता है दोनों ठीक हैं । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'शैक्ष' शब्दके स्थानमें शैक्षक है और 'मनोज्ञानाम् के स्थानमें 'समनोज्ञानाम्' है शेष पाठ एक है और अर्थ भी एकसा है ॥

(४) अधिकतर प्रतियोंमें संघ' पाठ है इससे कुछ घाटि 'सङ्घ' पाठ है। संघ' और सङ्घ' दोनों ठीक हैं (टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ५४०,५४१) संघ समूहके अर्थमें शब्द द्र कोश पृष्ठ ३६६में आया है॥ कहीं कहीं पर सग, और सङ्ग पाठ भी देखनेमें आया है । 'मेलके सङ्गसगमौ' अमरकोश सकीर्ण २२ वग श्लोक २६४। अर्थात् 'मेलक, सग, सगम ये तीन (पु०) नाम सगम (मेल) के हैं इसलिए संघ, सग सङ्ग और सङ्घ चारों ही पाठ ठीक हैं।इसके लिए कि सङ्घ या सग और सङ्ग और संघ दोनों दोनों रूपसे लिखे जाते हैं(देखो टिप्पणी, अध्याय१ पृष्ठ ५४०, ५४१)

(५) अधिकतर प्रतियोंमें "मनोज्ञानाम् 'पाठ आया है इससे कुछ हीन पुस्तकोंमें 'मनोज्ञाना'पाठ है यह पाठ कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अनुसार शुद्ध है (देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ६) परन्तु अष्टाध्यायीके अनुसार अशुद्ध है (देखो अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४१) ॥

वाचनाप्रच्छनाऽनुप्रेक्षाऽऽम्नायधर्मोपदेशाः ॥ २५ ॥

निरवद्यग्रन्थार्थोभयप्रदानं वाचना। संशयच्छेदाय निश्चितबलाधानायवा परानुयोगः प्रच्छना। अधिगतार्थस्य मनसाऽभ्यासोऽनुप्रेक्षा । घोषशुद्धं परिवर्तनमाम्नायः ॥ धर्मकथाद्यनुष्ठानं धर्मोपदेशः। स एष पञ्चविधः स्वाध्यायः किमर्थः। ?

वाचनाप्रच्छनाऽनुप्रेक्षाऽऽम्नायधर्म्मोपदेशाः ॥ २५ ॥

पदच्छेदः—वाचना-प्रच्छना-अनुप्रेक्षा-आम्नाय-धर्मोपदेशाः (इति*स्वाध्यायः पञ्चविधिः उच्यते)

सूत्रार्थः—वाचना-प्रच्छना-अनुप्रेक्षा-आम्नाय- =[शास्त्रका] पढ़ाना वा अध्यापन, अर्थ वा पाठका पूछना, मनन करना, शुद्ध घोकना धर्म्मोपदेशाः इति*स्वाध्यायः पञ्चविधः उच्यते=धर्मका उपदेश ऐसे स्वाध्याय (तप) पांच प्रकार कहागया है ॥

वृत्त्यनुवादः—निरवद्य-ग्रन्थ-अर्थ-उभय- =निर्दोष (=निरवद्य) शास्त्र और (उसके) अर्थ दोनों,(प्राणियों को)

प्रदानम् वाचना, =पढ़ाना, सिखाना(=प्रदानं), सुनाना (=प्रदानं) सो वाचना (स्वाध्यायनामातप) है॥

संशय-च्छेदाय निश्चित-बलाधानाय वा* =संदेहके दूर करनेको अथवा (=वा)निश्चय कियेहुये समर्थन वा दृढ़ करनेके लिये

पर-अनुयोगः प्रच्छना, =दूसरेसे प्रश्न (=अनुयोग) करना सो प्रच्छना है, भावार्थ—यदि अपनीउच्चता प्रगट करनेकेलिए, अन्यको ठगनेके लिए, किसीको पराजय करनेके लिये दूसरेकी हास्य करनेके अर्थ इत्यादि खोटे परिणामोंसे प्रश्न किया जावै तो वह प्रच्छना स्वाध्याय नामा तप नहीं है वरन् अपने संशयके दूर करनेको ज्ञानीसे प्रश्नकरना सो प्रच्छना स्वाध्याय है॥

अधिगत- अर्थस्य मनसा अभ्यासः अनुप्रेक्षा, =जानेहुये अर्थका वा पदार्थका मनकरि बारम्बार चिन्तवन सो अनुप्रेक्षा [स्वाध्यायतप है]

घोषशुद्धम् परिवर्तनम् आम्नायः, =(शब्द वा पाठको) शुद्ध घोकना, बोलना, फेरना [=परिवर्तन] सो आम्नाय है ।

धर्म-कथा-आदि-अनुष्ठानम् धर्मोपदेशः, =धर्मकी कथा आदिका करना अर्थात् उपदेश करना सो धर्मोपदेश[स्वाध्याय तप] है

सः एषः पञ्चविधः स्वाध्यायः किम् अर्थः ? =[प्रश्न] सो यह [=एषः] पांच प्रकार स्वाध्याय किस लिए है ? [उत्तर]

---

(१) इस सूत्रका पाठ, अर्थ दोनों आम्नायोंमें एक है। हमारी सम्प्रदायकी पुस्तकोंमें अधिकतर 'पृच्छना' पाठ है 'इसपाठसे गणनामें कुछ हीन प्रच्छना है दोनों ठीक हैं क्योंकि पृच्छा(स्त्री०)पृच्छन (न०)वैद्यकोश पृष्ठ ४५१, प्राते आंगलकोश पृष्ठ२१२,२१३,प्रच्छन(न०) प्रच्छना(स्त्री०)सब ठीक हैं॥

दीक्षकाचार्यशिष्यसन्ततय कुलम् चातुर्वर्ण्यश्रमणनिवह· सङ्घ ॥ चिरप्रव्रजित साधु· । मनोज्ञो लोकसम्मत ॥ तेषा व्याधिपरिषहमिथ्यात्वाद्युपनिपाते कायचेष्टया द्रव्यान्तरेण वा तत्प्रतिकारो वैयावृत्यं समाध्याध्यानविचिकित्साभावप्रवचनवात्सल्याद्यभिव्यक्त्यर्थ॥स्वाध्याय विकल्प विज्ञापनार्थमाह—

दीक्षक–आचार्य शिष्य–सन्ततय ३' 'कुलम् १' '' =दीक्षा देनेवाले आचार्यका शिष्यसमूह [=(१)सन्ततय·]सो कुल है,
चातुर्वर्ण्य श्रमण–निवह ४' सङ्घ' ५', =चार जातिका सन्यासी (=श्रमण) समूह (=निवह) सो संघ है [ ] क,ऋषि(ऋद्धि-धारी सन्यासी)(ख)यति इन्द्रियोंका वश करने वाला सन्यासी(ग)मुनि अवधिज्ञानी, मन-पर्यय ज्ञानी सन्यासी (घ) अनागार सामान्य घरके त्यागी, ये सब संघमें आगये ।
चिर–प्रव्रजित ४' साधु ५', =बहुत काल (=चिरम्) का दीक्षित(=प्रव्रजित) सो साधु है ।
मनोज्ञ १' लोकसम्मत १', =मनोज्ञ वो है जो लोकमान्य वा लोक स्वीकृत हो तात्पर्य ऐसा है कि जिसका उपदेश =मनोज्ञ वो है जो लोकमान्य वा लोक स्वीकृत हो तात्पर्य ऐसा है कि जिसका उपदेश लोकमान्य हो वा उपदेश विना ही स्वय लोकनिमें पूज्य हो प्रशंसावान् हो,सो मनोज्ञ है वा समस्तलोक जिसको महा विद्यवान कहै,प्रशस्त वक्ता कहै,महाकुलवत कहै ऐसा लोकमान्यहो, जिन मारगके गौरवकी उत्पादनका कारणहो सो मनोज्ञ है वा असयत सम्यग्दृष्टि भी मनोज्ञ है,
तेषाम् ३' व्याधि–परिषह–मिथ्यात्व–आदि– =तिन (दश प्रकारके पूर्वोक्त मुनियों)के रोग वेदना (=परिषह) मिथ्यात्व आदिकके
उपनिपाते ४' कायचेष्टया ३' ' द्रव्य अन्तरेण ३' वा* =आपड़ने पर शरीरके प्रयत्नसे अथवा अन्य वस्तुओंकरि
तत्–प्रतिकार १' वैयावृत्यम् १' '' समाधि– =उस (=व्याधि परिषह–मिथ्यात्वादिका) उपाय वा उपचार सो वैयावृत्य है । समाधिका
आध्यान–विचिकित्सा–अभाव–प्रवचन– =धारण वा स्मरण (=आध्यान)ग्लानिका अभाव, आगममें
वात्सल्य–आदि–अभिव्यक्ति अर्थ १' '', =प्रीति आदि प्रगट वा प्रत्यक्ष प्रयोजन [इस वैयावृत्यके]हैं ॥
स्वाध्याय विकल्प विज्ञापन अर्थम् १' '' आह१=स्वाध्यायके भेद प्रदर्शन करनेके लिये (आचार्य अग्रिम वा उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

* रुजादिका पदच्छेद रुज्+आदि अथवा रुजा+आदि, दोनों ही हो सकते हैं, दोनोंका अर्थ 'रोग' है, (देखोपद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३२३),इसलिये वृत्ति वा भाष्यका पाठ केवल "रुजादि" है। (१) सन्ततिका स्त्रीलिङ्ग बहुवचन "सन्ततय" है तिससे ऊपर दोनों प्रकारके पदच्छेद दियेगये हैं ।

सर्वार्थ-सिद्धि ११४ | अध्याय ९ सूत्र २६

व्युत्सर्जनं व्युत्सर्गस्त्यागः। स द्विविधः—बाह्योपधित्यागोऽभ्यन्तरोपधित्यागश्चेति ॥ अनुपात्तं वास्तुधनधान्यादि बाह्योपधिः। क्रोधादिरात्मभावोऽभ्यन्तरोपधिः। कायत्यागश्च नियतकालो यावज्जीवं वाऽभ्यन्तरोपधित्याग इत्युच्यते। स किमर्थः ? निस्सङ्गत्वनिर्भयत्वजीविताशाव्युदासाद्यर्थः॥ यद्बहुवक्तव्यं ध्यानमिति पृथग्व्यवस्थापितं तस्येदानीं भेदाभिधानं प्राप्तकालं। तदुल्लंघ्य तस्य प्रयोक्तृस्वरूपकालनिर्द्धारणार्थमुच्यते—

वृत्त्यनुवादः—व्युत्सर्जनं[१/१] व्युत्सर्गः[१/१] त्यागः,[१/१] सः[१/१]	=वृत्ति वा भाष्यका अनुवाद व्युत्सर्जन, व्युत्सर्ग है सो त्याग है, वह
द्विविधः[१/१] बाह्य-उपधि-त्यागः[१/१] अभ्यन्तर-उपधि-त्यागः[१/१] च*	=दो प्रकार है, बहिरंग परिग्रह[=उपधि]का त्याग और अन्तरंग परिग्रहका त्याग
इति*। अन्-उपात्तम्[१/१] वास्तु-धन-धान्य-	=ऐसे है, अग्रहीत वा अप्राप्त अर्थात् आपसे पृथग् वास्तु, धन, धान्य,
आदि[१/१] बाह्य-उपधिः[१/१], क्रोध-	=क्षेत्र, हिरण्य, सुवर्ण, दासी, दास, कुप्य, भांड(=आदि) बहिरङ्ग परिग्रह हैं ॥ क्रोध
आदिः[१/१]	=मिथ्यात्व, स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद, राग, द्वेष, हास्य. रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मान, माया, लोभ (=आदि) [कर्मके निमित्तसे]
आत्म-भावः[१/१] अभ्यन्तर-उपधिः[१/१], काय-त्यागः[१/१] च*	=आत्माके परिणाम अंतरङ्ग परिग्रह है। शरीरका त्याग भी (=च) जो
नियतकालः[१/१] यावज्जीवम्* वा* अभ्यन्तर-	=कालका नियमकरि अथवा [=वा] जीवन पर्यन्त होता है। अन्तरङ्ग
उपधि-त्यागः[१/१] इति* उच्यते। सः[१/१] किम्[१/१] अर्थः[१/१]?	=परिग्रहका त्याग है ऐसा वर्णित है। वह व्युत्सर्ग किस लिए हैं ?
निस्सङ्गत्व-निर्भयत्व-जीवित-आशा-व्युदास-आदि-	=निस्सङ्गपना, निडरता, जीवितकी आशाका अभाव आदिक [प्रयोजनों]
अर्थः[१/१], यद्[१/१] बहु-वक्तव्यम्[१/१] ध्यानम्[१/१] इति*	=के लिये (व्युत्सर्ग) है ॥ जो (=यद्) बहुत (भेद) कहे जाने योग्य ऐसा ध्यान
पृथग्-व्यवस्थापितं[१/१] तस्य[६/१] इदानीं* भेद-अभिधानं[१/१]	=न्यारा रक्खा गया था, अब तिस (ध्यान)के भेदोंके कहनेका
प्राप्तकालम्[१/१], तद्-उल्लंघ्य-तस्य[६/१]	=समय प्राप्तहै, तिस कालको उलंघकरि वा लांघकरि अर्थात् छोड़कर तिस(ध्यान)के
प्रयोक्तृ-[निर्द्धारण]स्वरूप-[निर्द्धारण]काल-	=करने वालेका[निश्चय] तथा (ध्यानके) स्वरूपका (निर्द्धारण) और (ध्यानके) कालके
निर्द्धारण-अर्थम्[१/१] उच्यते।—	=निश्चय (करने)के लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहा जाता है कि

प्रज्ञातिशयः प्रशस्ताऽध्यवसायः परमसंवेगस्तपोवृद्धिरतिचारविशुद्धिरित्येवमाद्यर्थं ॥ व्युत्सर्गभेदनिर्ज्ञानार्थमाह— बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥

प्रज्ञा–अतिशय १' प्रशस्त–अध्यवसाय १' परम–संवेग १', तपो–वृद्धि १'' अतिचार विशुद्धि १'' एवम्' इत्यादि १''' अर्थं १' व्युत्सर्ग-भेद-निर्ज्ञान-अर्थम् १''' ।

=बुद्धिकी अधिकाई, प्रशसनीय अभिप्राय वा आशय, उत्कृष्ट उदासीनता, =तपकी बढती, अतीचार शोधने, इसप्रकार[=एवम्]इत्यादिके लिये [=अर्थं] है =व्युत्सर्ग [तप]के भेद निर्णयके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥

=बाह्याभ्यन्तरोपध्योः व्युत्सर्गो द्विविधः भवति ॥२६॥

सूत्रार्थ —बाह्य-अभ्यन्तर-उपध्योः ३' व्युत्सर्गः १' द्विविधः १' भवति ।

=बहिरङ्ग तथा अंतरंग परिग्रह(=उपधि)में व्युत्सर्ग वा त्याग[नामक अभ्यंतरतप] =दो प्रकार है। अर्थात् दश प्रकार (क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी दास, कुप्य, भांड) बहिरंग परिग्रहका त्याग (=व्युत्सर्ग) और चौदहप्रकार [मिथ्यात्व,स्त्री पुरुष नपुंसक-वेद,राग, द्वेष,हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा,मान,माया,लोभ,अंतरंग परिग्रह वा उपधिका परित्याग (=व्युत्सर्ग) ऐसे दो प्रकार है ॥ संक्षेपतः—बाह्य तथा अभ्यन्तर[परिग्रहका त्याग]सो व्युत्सर्ग तपहै

(१)दोनों जैन सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ तथा पाठ एक है। केवल इतना अंतर है कि हमारे यहा बाह्य परिग्रहके दश भेद हैं (देखो इस सूत्रके अर्थको) परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यमें बाह्य "द्वादशरूपक उपाधिसबंधी है" ॥ देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ २१६। उत्सर्ग या व्युत्सर्गका अर्थ त्याग छोडना क्षेपण करना है और इन सर्व शब्दोंका अर्थ एकसा है। जहां कहीं किसी सूत्रमें ये शब्द आये हैं, वहा उसीप्रकरणसे संबंध रखने वाली किसीवस्तुका त्याग छोडनेके अर्थमें आते हैं। जैसा कि निम्नलिखित उदाहरणोंसे प्रगट है ॥

(क) मोक्ष शास्त्रमें पहिले ही पहले "उत्सर्ग शब्द सातवे अध्यायके ३४वें सूत्रके प्रोषधोपवासके अतीचारोंमें आया है वहांपर इस शब्दका अर्थ मल मूत्र खखार थूक नाक आदिके मैलका त्याग वा क्षेपण करना वा फेंकना उत्सर्ग है ॥(ख)दूसरी वार समितिके सम्बन्धमें अध्याय ९ सूत्र ५में मल मूत्र खखार थूक नाक कान इत्यादिके मैलका क्षेपण करना, फेंकना वा त्यागना (=उत्सर्ग) इस अर्थमें उत्सर्ग है ॥

(ग) इस अध्यायके २०वे तथा २६वे सूत्रमें तपके संबंधमें आया है–२०में परिग्रहमें ममत्वका त्याग (=व्युत्सर्ग) सामान्य रीतिसे है तथा २६वे में बहिरंग उपधिका त्याग (=व्युत्सर्ग) और अंतरंग उपधि (=परिग्रह)का त्याग (=व्युत्सर्ग) अर्थमें आया है। (घ) इसी अध्यायके बाईसवा सूत्रमें (व्युत्सर्ग शब्द प्रायश्चित्तके नौ भेदोंमेंसे पांचवा भेद है कायोत्सर्ग=काय+उत्सर्ग, वि जोडनेसे=काय व्युत्सर्ग=शरीरमें ममत्वका त्याग, अतः सब स्थानोंमें उत्सर्ग वा व्युत्सर्ग =(किसी अधिकृत वस्तुके)त्याग, छोडना, परित्याग, क्षेपण अर्थोंमें आया है ॥

नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः॥ (२) इन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रियैः सर्वलोकः स्पृष्टः। विकलेन्द्रियैर्लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा॥ पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा

हीन [आठराजू] अर्थात् दो राजू तीसरे नरक तक व छः राजू अच्युत सोलहवें स्वर्गतक स्पर्शे जाते हैं

नव ॥ देशोनाः ॥ = मरणांतिक समुद्घात अपेक्षा कुछ घाटि नौ [राजू तीसरे नरकसे लोकके ऊपर तकके मध्यका क्षेत्र नौराजू हुआ सो नौराज कुछ घाटि स्पर्शे जाते] हैं

सम्यङ्मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ॥ = मिश्रगुणथानवाले [तथा] असंयतसम्यग्दृष्टी (देव) नकरि

लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ [स्पृष्टः ॥] = लोकका असंख्यातवांखंड [छुआजाता] है

वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥ = अथवा (लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं [सो परस्थान विहार अपेक्षा]

अष्टौ ॥ देशोनाः ॥ [स्पृष्टाः ॥] = कुछ हीन आठभाग [स्पर्शन किये जाते] हैं अर्थात् नीचे जावे तो तीसरे नरक तक दो राजू ऊपर जावे तो अच्युत सोळहवें स्वर्गतक छः राजू ऐसे आठ राजू हुये

[२] इन्द्रिय—अनुवादेन ॥ एकेन्द्रियैः ॥ सर्वलोकः ॥ = इन्द्रियनके कथनानुसारसे एकेन्द्रियनकरि समस्त लोक

स्पृष्टः ॥ विकल-इन्द्रियैः ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ = स्पर्शा जाता है दो तीन चार (= विकल) इन्द्रियवाले जीवोंकरि लोकका असंख्यातवां भाग [स्पर्शा जाता] है

वा सर्वलोकः ॥ (स्पृष्टः ॥) = अथवा [मारणान्तिक समुद्घात अपेक्षा] समस्त लोक [स्पर्शा जाता] है

पंचेन्द्रियेषु ॥ मिथ्यादृष्टिभिः ॥ लोकस्य ॥ असंख्येय = पांच इन्द्रियवालोंमें मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां

भागः ॥ वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥ = अंश (स्पर्शा जाता) है [लोकत्रस नालके] चौदह राजू हैं [सो परस्थान विहार अपेक्षा]

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥ २७ ॥

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥ २७ ॥

=उत्तम-संहननस्य-एकाग्र-चिन्ता-निरोध-ध्यानम्-(१)आ अन्तर्मुहूर्तात् भवति ॥ २७ ॥

सूत्रार्थ -(२)उत्तमसंहननस्य	=उत्कृष्ट (वज्रवृषभनाराच,वज्रनाराच, नाराच) संहनन वालेका
आ-अन्तर्मुहूर्तात्	=अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अर्थात् मुहूर्त २ घटीके समयसे न्यून समय तक
(३) एक-अग्र-	=(अन्य क्रियाओंसे खींचकर वा हटाकर) एक (विषय वा पदार्थ) को अवलम्बन वा ग्रहण (=अग्र) करि
चिन्ता-निरोध	=चित्तकी वृत्तिका (उस एकमें) निरोध वा ठहराव

(१) अन्तर्मुहूर्तात् तथा अन्तर्मुहूर्तात् (अचारहाभ्याम् द्वेवा) (अष्टाध्यायी ८-४-४६)सूत्र से दोनों ही पाठ ठीक हैं ॥

(२) श्वेताम्बर आम्नायमें तथा हमारे यहां 'उत्तम ध्यानम् तक एक पाठ है पश्चात् आन्तर्मुहूर्तात् वाक्यके स्थानमें 'आमुहूर्तात् है और सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इस एक सूत्रके दो सूत्र करदिये हैं परन्तु आङ् (=आ)उपसर्गके अर्थकी विचित्रतासे दोनों आम्नायोंमें अभिप्राय एकसा है। आङ् अव्ययके सम्बन्धमें हम संक्षेप टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ७३ ७४ पर देचुके हैं और विशेषरूपसे अध्याय नौ पृष्ठ ८३, ८४पर उक्त टिप्पणियोंमें क्रमसे हमने 'आकुमारेभ्यो यशः सीतायाः आकुमारं यशः सीतायाः' =(मनुष्योंसे लेकर) छोकरों तक सीताका यश (प्रसिद्ध) है और आकुमारेभ्यो यशः पाणिनेः आकुमारं यशः पाणिनेः =(मनुष्योंसे लेकर) लडकोंतक पाणिनिका यश (प्रसिद्ध) है दृष्टान्त दिये हैं उक्त उदाहरणोंमें 'आकुमारं' का एक वचनमें क्यों प्रयोग है और 'आकुमारेभ्यः' में बहुवचन क्यों है ॥ निम्न सूत्रके अनुसार अपादान पञ्चमी विभक्तिका छोडकर अव्ययीभाव समासके अन्तमें म् आता है। 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः। २-४ ८३। =न,अव्ययीभावात् अतः अम् तु अपञ्चम्याः (सुपः लुक्) =अत् (=अ) है अन्तमें जिसके ऐसे अव्ययीभाव(समास)से परे सुप्का लुक् न हो और पञ्चमीभिन्न सुप्को अम्आदेशहो अब यहां पाठकोंको विशेष ध्यान आकर्षण करता हूं कि हमारे यहां आ+अन्तर्मुहूर्तात् वाक्यका लाये है उसमें आ शब्दको अभिविधि अर्थमें लिया है अर्थात् से तक चिन्ताका निरोध करने (के आरम्भके समय)के अन्तर्मुहूर्त तक रहता है और श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें आमुहूर्तात् जो २८वां सूत्र भिन्न किया है उसमें आङ् को मर्यादा अर्थमें लिया है अर्थात् चिन्ताका निरोध मुहूर्तके इधर इधर न कि मुहूर्त पर्यन्त या मुहूर्त तक और मुहूर्तसे परे भी नहीं ऐसा अर्थ हुआ और ऐसा ही अर्थ अनुवादक सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रने किया है वह अक्षरशः यह है 'वह ध्यान अन्तर्मुहूर्तके अभ्यन्तरमेंही होता है न कि परे" (सभाष्य० पृष्ठ २१७) अतः दोनों आम्नायोंमें एकसा अर्थ हुआ।

(३) एकाग्र — स्वार्थेऽण् ऐकाग्र इसी अर्थमें होता है (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ८५) एकं अग्रं विषयो यस्य=जिसका विषय एक हो (पद्मचन्द्रकोश८५) =और विषयको छोड़कर एकही ओर मन याने एकाग्र शब्दमें उसी अर्थमें अण् (=अ)प्रत्यय लगादेवे अर्थात् एकाग्र+अण् करदे तो एकी वृद्धि होकर ऐकाग्र बन जाता है और अर्थ एकाग्रका ही देता है ॥ एकाग्र=एकाग्रतासे वा एकरूपसे(सभाष्य०पृष्ठ २१७) एकको आगे [रख]करि, मुख्य या प्रधानकरि अर्थात् एकको ग्रहणकरि भावार्थ एक विषयको ग्रहणकरि। अग्र=प्रधान, आश्रय, सहारा ग्रहण, अवलम्बन, मुख्य, सम्मुख॥

आद्यं त्रितयं संहननमुत्तमं वज्रर्षभनाराचसंहननं वज्रनाराचसंहननं नाराचसंहननमिति ॥ तत्त्रितयमपि ध्यानस्य साधनं भवति॥ मोक्षस्य तु आद्यमेव॥तदुत्तमसंहननं यस्य सोऽयमुत्तमसंहननस्तस्योत्तमसंहननस्येत्यनेन प्रयोक्तृनिर्देशःकृतः॥

ध्यानम्=सो ध्यान है, संक्षेप तथा स्पष्टतया अर्थ यह है कि उत्तम संहनन वालेका ३/४ घंटेसे कुछहीन काल तक एक (विषयको) आगे रखकर वा एक (विषय) को ग्रहण करि चित्तको (उस ही में) लगाना है सो ध्यान है ॥ भावार्थ—छह संहननोंमेंसे पहिलेके वज्रवृषभनाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन, और नाराचसंहनन ये तीन उत्तम वा श्रेष्ठ संहनन हैं, ये ही तीन संहनन ध्यानके कारण हैं। उत्तम संहनन वालोंकें ही मुख्यपनाकरि चिन्ताका रुकना होसक्ता है,या संसारमें गमन,भोजन, शयन, अध्यायन (=अध्ययन), अध्यापन आदिक अनेक क्रिया हैं तिनमें नियम सहित वर्ते है तहां ध्याननहीं जानना, जहां एकके सन्मुख होय चिन्ताका रुकना वा चित्तकी वृत्तिको अन्य क्रियाओंसे खींचकर वा हटाकर एक विषयमें ही रोकना सो एकाग्र चिन्तानिरोध है, सो ही ध्यान है और जहां एकाग्रता नहीं तहां भावना है ऐसे ध्यान नामक अभ्यन्तर छठवां तप है सो उत्कृष्टपनेसे अन्तर्मुहुर्त तक ही रहता है और मोक्ष होनेके कारणभूत एक वज्र वृषभनाराच संहनन ही है, अन्य संहननसे मोक्ष प्राप्त नहीं होसक्ती है ॥ सूत्रमें ध्याता, ध्यान, ध्येय, ध्यानकाकाल चार वर्णित हैं ॥

वृत्त्यर्थः—आद्यं'''त्रितयं'''संहननं'''उत्तमं'''वज्रर्षभ-=आदिके वा प्रथमके (तीनों)संहनन उत्तम हैं। वज्रवृषभ

नाराच-संहननं'''वज्रनाराचसंहननं'''नाराचसंहननं'''इति=नाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन नाराचसंहनन ऐसे [ये तीन] हैं

तत्'''त्रितयम्'''अपि*ध्यानस्य'''साधनम्'''भवति ॥ =वह तीनों (=त्रितयम्)ही (=अपि) [संहनन] ध्यानके कारण होते हैं।

मोक्षस्य'तु*आद्यम्'''एव*, =परन्तु(=तु) मोक्षका(साधन) आदिका (वज्रर्षभनाराचसंहनन) ही होता है

तद्'''उत्तमसंहननम्'''यस्य'सः'अयम्'उत्तमसंहननः' =वह उत्तम संहनन जिसके है सो यह (=अयम्) उत्तमसंहनन है ॥

तस्य'उत्तमसंहननस्य'इति*अनेन'प्रयोक्तृ- =तस्य उत्तम संहननस्य ऐसे इस [वाक्य] करि (ध्यानका) प्रयोग करने वालेका

निर्देशः'कृतः' । =(अर्थात् ध्याता, ध्यानी, वा ध्यानकरने वालेका)उपदेश वा कथन कियागया है

(१) एक विषयको ग्रहणकरि (अन्यसे) चिन्ताका निरोध सो ध्यान है॥ एक पदार्थके सन्मुख चिन्तवनका रुकना सो ध्यान है, जा संसारमें गमन भोजन शयन अध्ययन अध्यापनआदि अनेक क्रिया है तिनमें नियम रहित वर्ते है तहां ध्यान नही जानना चाहिये।जहां एकके सन्मुख होय चिन्ताका रुकना और जहां एकाग्रता नहीं तहां भावना होती है॥ एकाग्र चिंतवनका रुकजाना अन्तर्मुहूर्तते अधिक काल उत्तम संहनन वालेकेभी नहीं रहता है। उसके ही मुख्यपनाकरि चिन्ताका रुकना होता है ॥ (सदासुखजी कृत रत्नकरण्ड श्रावकाचार पृष्ठ२०४)ध्यानके प्रकरणकोदेखो॥

अग्रमुखम् । एकमग्रमस्येत्येकाग्र (ग्रं)। नानार्थावलम्बनेन चिन्ता परिस्पन्दवती, तस्या अन्याशेषमुखेभ्यो व्यावर्त्य एकस्मिन्नग्रे नियम एकाग्रचिन्तानिरोध इत्युच्यते । अनेन ध्यानस्वरूपमुक्तं भवति ॥ मुहूर्त इति कालपरिमाणम् । अन्तर्गतो मुहूर्तोऽन्तर्मुहूर्तं ॥ आ अन्तर्मुहूर्तादित्यनेन कालावधि कृत ॥ तत परं दुर्धरत्वादेकाग्रचिन्ताया॥ चिन्ताया निरोधो यदि ध्यानंनिरोधश्चाभावस्तेन ध्यानमसत्खरविषाणवत्स्यात् ॥ नैष दोष —अन्यचिन्तानिवृत्त्यपेक्षयाऽसदिति

अग्रम् ।। मुखम् ।।, =(इस सूत्रमें) अग्र है सो (ही) मुख है अर्थात् अग्र [शब्द] का मुख, सहारा, अवलम्बन, आश्रय, प्रधान, वा सन्मुख अर्थ है ॥

एकम् ।। अग्रं ।। अस्य ।। इति* एकाग्रः (ग्र) ।।, नाना-अर्थ —एक है अवलम्बनमें इसके ऐसा एकाग्र है, अनेक प्रकारके विषयोंको (=अर्थ)
अवलम्बनेन । चिन्ता ।। परिस्पन्दवती ।। तस्या ।। =अवलम्बनकरि अथवा आश्रयकरि विचार चलायमान होता है । तिस (चिंता) का
अन्य अशेष मुखेभ्य ।। व्यावर्त्य— एकस्मिन् ।। =इतर समस्त (=अशेष) अवलम्बनोंसे छुड़ाय कर एक (वस्तु, विषय वा पदार्थ) के
अग्रे ।। नियम ।। एक अग्र चिंता निरोध ।। इति* उच्यते ।, =गृहणमें (=अग्रे) रोक [=नियम] सो एकाग्रचिन्ता निरोध ऐसा वर्णित है ॥
अनेन ।। ध्यान स्वरूपम् ।। उक्तम् ।। भवति । =इस [एकाग्र चिन्ता निरोध] करि ध्यानका स्वरूप कथन (=उक्तम्) होता है ॥
मुहूर्त ।। इति* कालपरिमाणम् ।। अन्तर्गत ।। मुहूर्त ।। =मुहूर्त ऐसा [शब्द] कालका परिमाण वा माप है। अधूरी मुहूर्त है सो
अन्तर्मुहूर्त ।।, =अन्तर्मुहूर्त है अर्थात् मुहूर्तके भीतर भीतर समय सो अन्तर्मुहूर्त है,
आ अन्तर्मुहूर्तात् ।। इति* अनेन ।। काल- —अन्तर्मुहूर्त पर्यंत अथवा अतर्मुहूर्ततक इस (वाक्य) करि कालकी
अवधि ।। कृत ।।, तत* परम् * =सीमा कीजाती है, क्योंकि उस [आ+अन्तर्मुहूर्तात्] से परे वा अधिक
दुर्धरत्वात् ।। एकाग्र चिन्ताया ।।, चिन्ताया ।। निरोध ।। =एकाग्र चिन्ताका निरोध दुर्द्धर है अर्थात् नहीं हो सक्ता है [प्रश्न] चिंताका रोकना
यदि* ध्यान ।। निरोध ।। च* अभाव ।। तेन ।। ध्यानम् ।। =जो ध्यान है और (=च) निरोध है सो अभाव है । तिस (अभाव) करि ध्यान
असत् ।। खर विषाणवत् * स्यात् ।। न* एष ।। दोषः ।। =असत् है गधे के सींग सदृश है ॥ [उत्तर] यह दूषण नहीं है,
अन्य चिन्ता निवृत्ति अपेक्षया ।। असत् ।। इति* =दूसरे विचारों की निवृत्ति वा उपरम की अपेक्षा से अभाव है, इस प्रकार

चोच्यते, स्वविषयाकारप्रवृत्तेः सदिति च । अभावस्य भावान्तरत्वाद्धेत्वङ्गत्वादिभिरभावस्य वस्तुधर्मत्वसिद्धेश्च ॥ अथवा, नायं भावसाधनः "निरोधनं निरोध इति" । किं तर्हि ? कर्मसाधनः "निरुध्यत इति निरोधः" ॥ चिन्ता चासौ निरोधश्च चिन्तानिरोध इति ॥ एतदुक्तं भवति—ज्ञानमेवापरिस्पन्दमानमपरिस्पन्दाग्निशिखावदवभासमानं ध्यानमिति ॥

न* उच्यते T, =भी (=च) कहा गया है। (यहां चकारका प्रयोग प्रकार अर्थमें किया गयाहै)।

च* स्व-विषय-आकार-प्रवृत्तेः [५/१]॥ सद् [१/१]। इति*, =बहुरि(=च)अपने (=स्व)विषयके आकार वा स्वरूपकी प्रवृत्तिसे सद्भाव रूपहै अर्थात् चिंतानेजिस विषयका अवलम्बन कियाहै तिसके स्वरूपकी अपेक्षासे ध्यान विद्यमानतारूपहै

अभावस्य [६/१]। भावान्तरत्वात् [५/१]॥। =अभावके प्रकारान्तरतासे वा अन्यभांतिपनसे

हेतु-अङ्गत्व -आदिभिः [३/३]। -(१) अभावस्य[६/१]।च* =(विद्यमानता वा स्वभाव रूपता) हेतु के अंगादि करि है। क्योंकि अभावके भी (=च)

वस्तु-धर्मत्व-सिद्धेः [५/१]॥, =वस्तुका धर्मत्व सधता है॥ संक्षेपतः-अभाव है सो प्रकारान्तर से स्वभावरूप है तिस से वस्तुका धर्म्म है, हेतु का अंग है, अभावसे भी वस्तु ही सधती है॥

अथवा* 'निरोधनम्[१/१]॥। निरोधः[१/१]। इति*' अयम्[१/१]॥। =अथवा निरोध है सो निरोधन है ऐसा (=इति) यह (निरोध शब्द)

न* भावसाधनः [१/१]।, =भाव साधन न हो अर्थात् सूत्रमें निरोध शब्द जो आयाहै उसका प्रयोग भावमें न मानैं भावार्थ इस प्रकार है कि निरोध शब्दका अर्थ निरोधन न मानैं

किम्* तर्हि * ? कर्म-साधनः[१/१]। "निरुध्यते T =(प्रश्न) तो क्या (मानैं वा मानना चाहिये) (उत्तर) कर्ममें प्रयोग (मानैं) निरोध्याजाय

इति* निरोधः[१/१]।",चिन्ता[१/१]।च*असौ[१/१]।निरोधः[१/१]।च* =ऐसा निरोध है, और (=च) वह (=असौ) चिन्ता ही (=च) निरोधी जाय

चिंतानिरोधः[१/१]। इति*। एतद्[१/१]॥।उक्तम्[१/१]॥।भवति T- =ऐसा चिंता निरोध (का कर्म प्रयोगमें- कर्मसाधनमें अर्थ)हुआ(अतः)यहअर्थ होताहै कि

ज्ञानम्[१/१]॥।एव*अ-परिस्पन्दमानम्[१/१]॥।-अग्निशिखावत्*=ज्ञान ही चलाचलपनासे रहित (=अ) आगकी शिखाके समान

अपरिस्पन्द अवभासमानम्[१/१]॥। इति* ध्यानम्[१/१]॥।; =अचल प्रकाश मान वा दैदीप्यमान (=अवभासमानम्) होता है ऐसा (=इति) ध्यानहै,

---

(१) सपक्ष-सत्व-आदि-रूपै विपक्ष- =(ध्यान है सो) समान पक्षमें सद्भावादिरूप करि है, विरुद्ध वा प्रतिकूल पक्षमें
असत्वादिभि. अभावैः =अविद्यमानताकरि अभाव (रूप) से है अर्थात् चिंता वा विचार जिस पदार्थको ग्रहण करताहै उसकी अपेक्षासे सद्भावरूप है और अन्य समस्त अवशेष विषय वा पदार्थोंकी अपेक्षासे अभावरूप है क्योंकि ध्येयके अतिरिक्त अन्य समस्त पदार्थोंसे वा विषयोंसे ध्यान अवस्थामें निरोध किया जाता है॥

तन्नेदप्रदर्शनार्थमाह— ॥ आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥

ऋतं दुःखं, अर्दनमर्तिर्वा, तत्र भवमार्तम् । रुद्रः क्रूराशयस्तस्य कर्म तत्र भवं वा रौद्रम् ।

तद्-भेद-प्रदर्शन-अर्थम् ॥ आह । — =उस (ध्यान) के भेद प्रगट करनेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

[1]आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥२८॥ =आर्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि (चत्वारि विधानि) ध्यानानिभवन्ति।२८।

सूत्रार्थ —आर्त-रौद्र [2]धर्म्य-शुक्लानि ॥ =(इस सूत्रका हिंदी तात्पर्य) आर्त, रौद्र, धर्म्य, शुक्ल

चत्वारि ॥ विधानि ॥ ध्यानानि ॥ भवन्ति । =चार प्रकार ध्यान होते हैं अर्थात् (क) अर्ति जो दुःख, पीड़ा ताविषै जो चिंतवन (=ध्यान) उपजे सो आर्त ध्यानहै, (ख) रुद्र जो निर्दय अभिप्राय तिसमें जो चितवन (=ध्यान) उत्पन्नहो सो रौद्र ध्यान है, (ग) धर्म सहित जो चिंतवन (ध्यान) सो धर्म्य ध्यान है (घ) कषाय मल रहित उज्ज्वल शुद्ध परिणाम रूप अथवा विशुद्ध भाव रूप चिंतवन (=ध्यान) सो शुक्ल ध्यानहै ॥

वृत्त्यनुवाद ऋतं ॥ दुःखं ॥ वा *अर्दनं ॥ =(सर्वार्थ सिद्धिके संस्कृत वृत्ति वा भाष्यका अनुवाद) ऋतहै सो दुःखहै अथवा (=वा) अर्दनहै

अर्तिः ॥, तत्र* भवम् ॥, =सो पीड़ा (=अर्ति) है । तिसमें (=तत्र) उत्पत्ति (=भवम्) वा होना (=भवम्) उपजना (=भवम्)

[3]आर्तम् ॥, =सो आर्तहै भावार्थ ऐसाहै कि ऋत-अर्ति जो पीड़ा तिसमें जो उत्पन्न हो सो आर्त है ॥

रुद्रः ॥ क्रूर-आशयः ॥ तस्य ॥ कर्म ॥ वा *तत्र* =रुद्र जो निर्दय (=क्रूर) अभिप्राय तिसकी क्रिया (=कर्म) अथवा (=वा) तिसमें

भवम् ॥ रौद्रम् ॥, =उत्पत्ति सो रौद्र है भावार्थ निर्दय (=क्रूर) अभिप्रायवाली क्रिया वा उक्तक्रियामें उत्पत्ति सो रौद्रहै

(१) इस सूत्रमें ध्यान शब्दकी अनुवृत्ति सत्ताईसवा सूत्र से आती है, और 'चत्वारि विधानि' तथा 'भवन्ति' वाक्योंका सूत्रमें अध्याहार किया गया है ॥ आत आर्त्त धम-धर्म्म पाठ 'अचो रहाभ्याम् द्वे' या' पाणिनिकृता अष्टाध्यायी अध्याय ८, पाद ४, ४६ सूत्रसे शुद्ध हैं ।

(२) हमारे यहा प्रतियोंमें प्राय 'धर्म्य' शब्द है कहीं कहीं धर्म, धम्म है, तीनों पाठ ठीक हैं ॥

(३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "आर्तरौद्रधर्मशुक्लानि" पाठ है उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें "आर्त-रौद्रधर्म्यशुक्लानि पत्र ७०८ पर पाठ है अतः दोनों समाजोंमें एकसा पाठ हुआ अर्थ भी एकसा है । "इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्मः" (सर्वार्थ-सिद्धि अध्याय ९ सूत्र २) =(स्वर्ग-मोक्षादि) वाञ्छित वा सुख स्थानमें आत्माको धरताहै ऐसा धर्महै । धर्म्यम् =" धर्मादनपेतं धर्म्यम् (सर्वार्थसिद्धि अध्याय ९ सूत्र २८) =धर्मात् अनपेतम् धर्म्यम् =धर्मसे वर्जित (=अपेत) न (=अन) हो अर्थात् "धर्म सहित होय" जय-चंदजी वचनिका मुद्रित पृष्ठ ७३९ भावार्थ धर्म वाला हो, सो धर्म्यम् है ॥

धर्मो व्याख्यातो धर्मादनपेतं धर्म्यम् । शुचिगुणयोगाच्छुक्लम् ॥ तदेतच्चतुर्विधं ध्यानं द्वैविध्यमश्नुते । कुतः? । प्रशस्ताप्रशस्तभेदात् ॥ अप्रशस्तमपुण्यास्रवकारणत्वात् । कर्मनिर्दहनसामर्थ्यात्प्रशस्तम् ॥ किं पुनस्तदिति चेदुच्यते— ॥ परे मोक्षहेतू ॥२९॥

परमुत्तरमन्त्यं तत्सामीप्याद्धर्म्यमपि परमित्युपचर्यते ।

धर्मः व्याख्यातः धर्मात् अन्-अपेतम् = धर्म वर्णन किया गया (अध्याय ९ सूत्र २) धर्मसे वर्जित (=अपेत) न (=अन) हो, धर्मसहित हो धर्म्यम्; शुचि-गुण-योगात् शुक्लम्; =सो धर्म्य है। शुद्ध पवित्र वा उज्ज्वल गुणके संयोगसे शुक्ल (कहा जाता) है अर्थात् कषाय मल रहित उज्ज्वल परिणाम संयुक्तको शुक्ल कहते हैं ॥

तद् एतद् चतुर्विधं ध्यानं द्वै-विध्यं =सो [=तद्] यह [एतद्] चार प्रकार ध्यान, दो विधको अश्नुते । कुतः? प्रशस्त-अप्रशस्त-भेदात्, =प्राप्त होता है । [प्रश्न] क्योंकर ? [उत्तर] शुभ और अशुभ भेद से अर्थात् आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान अप्रशस्त हैं तथा धर्म्य ध्यान और शुक्ल ध्यान प्रशस्त हैं ।

अप्रशस्तम् अपुण्य-आस्रव-कारणत्वात्, =पाप आस्रवका हेतु होनेसे अप्रशस्त वा अशुभ [ध्यान] है, कर्म-निर्दहन-सामर्थ्यात् प्रशस्तम् पुनः =कर्मोंकी विनाशकी शक्ति होने (के निमित्त) से शुभ है। बहुरि [=पुनः] किम् तद् इति चेत् उच्यते ।— =सो [=तद्] [प्रशस्त] क्या है, ऐसे प्रश्न वा शंका होने पर कहा जाता है कि

[1]परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥ =परे (धर्म्यशुक्ले ध्याने) मोक्षहेतू (भवतः) ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः परे धर्म्यशुक्ले ध्याने मोक्षहेतू =सूत्रका अर्थ अगले दो (=परे) धर्म्य ध्यान तथा शुक्लध्यान मोक्षके कारण हैं भावार्थ ऐसा है कि उक्त चार ध्यानोंमेंसे अगले दो धर्म्यध्यान तथा शुक्लध्यान मोक्षके कारण हैं और अवशेष प्रथम दो आर्त्त ध्यान और रौद्रध्यान संसारके कारण हैं।

वृत्त्यनुवादः-परम् उत्तरम् अन्त्यम् =(संस्कृतवृत्ति वा भाष्यका अनुवाद) पर है सो अग्रिम वा अंतका (=अन्त्यम्) (एक) है तत् सामीप्यात् धर्म्यं अपि परं इति उपचर्यते =उस [शुक्लध्यान]के निकट होनेसे धर्म्य (ध्यान) भी पर है ऐसी कल्पना की जाती है ।

---

(1) श्वेताम्बरआम्नायकेसभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें, भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकामें तथा हमारेयहां इससूत्रका सर्वत्रएकपाठ और एकसा अर्थ है ॥

द्विवचनसामर्थ्याद्गौणमपि गृह्यते ॥ परे मोक्षहेतू इति वचनात्पूर्वे आर्तरौद्रे ससारहेतू इत्युक्तं भवति॥ कुत ?। तृतीयस्य साध्यस्याभावात् ॥ तत्रार्तं चतुर्विधम् ॥ तत्रादिविकल्पलक्षणनिर्देशार्थमाह—

आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगायस्मृतिसमन्वाहारः ॥ ३०॥

द्वि–वचन–सामर्थ्यात्॥गौणम्॥अपि*गृह्यते T	=(इस सूत्रमें)दो वचनकी शक्तिसे गौण(जो धर्म्म ध्यान) भी ग्रहण कियागया है
परे॥मोक्ष–हेतू॥इति*वचनात्॥	=“परे मोक्षहेतू”ऐसे वाक्यसे(=दो पीछेके अर्थात् धर्मध्यान,शुक्ल ध्यान मोक्षके कारणहैं)
पूर्वे॥आर्त–रौद्रे॥ससारहेतू॥इति*उक्तम्॥	=पहिले,आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान ससारके कारण हैं। ऐसा कथन वा आशय वा अर्थ
भवतिT । कुत ? तृतीयस्य॥साध्यस्य॥	=होता है । (प्रश्न) क्योंकर ? क्योंकि (संसार, मोक्षके बीचमें) तीसरा साधने योग्य
अभावात्॥,	=(पदार्थ) नहीं है भावार्थ मोक्ष तथा ससारके अतिरिक्त कोई साधनोय तीसरा पदार्थ नहीं है अत 'परेमोक्षहेतू' ज्ञापक है कि शेष दो आर्त्त रौद्र ध्यान ससारके कारण है,
तत्र*आर्तम्॥चतुर्विधम्॥,तत्र*आदि-	=जिसमें (=तत्र) आर्त्तध्यान चार प्रकार है । तहा आदिके अर्थात् आर्त्तध्यानके
विकल्प–लक्षण–निर्देश–अर्थम्॥आह T	=भेदोंके स्वरूपके कहनेके (आचार्य अगले सूत्रमें)कहते है कि

आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति समन्वाहार. ॥ ३० ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें और भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीकामें“आर्तममनोज्ञस्य”के स्थानमें'आर्तममनोज्ञानाम् है अर्थात् 'अमनोज्ञस्य' षष्ठी एक वचनके स्थानमें अमनोज्ञानाम् षष्ठी बहुवचन है शेष पाठ एक है,अर्थ भी सामान्य रूपसे दोनों समाजोंमें एक है । आर्तं आर्त्त दोनों पाठअष्टा०८ ४ ३६ सूत्रसे शुद्ध हैं सप्रयोगे और सम्प्रयोगे दोनों पाठ ठोक हैं [देखो अध्याय १ पृष्ठ ५४०, ५४१)॥ सम्प्रयोगे वा सप्रयोगेके स्थानमें हमारे यहा किसी किसी पुस्तकमें [जैसे जयचन्दजीकृत वचनिका मुद्रित तथा हस्तलिखितमें सम्प्रयोगाय वा सप्रयोगाय है सो अशुद्ध है क्योंकि सप्रयोगायके पाठमें सूत्रका तात्पर्य नहीं निकलता जैसे आर्तम् अमनोज्ञस्य सम्प्रयोगाय तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहार =अप्रिय (वस्तु)के सयोग होनके लिये [वा सयोग होनेको] उसके लिये=वारम्वार चिन्तवन करना सो [अनिष्ट सयोगज प्रथम भेद] आर्त (ध्यानका] है ॥ 'विपरीत मनोज्ञस्य' ३१वा सूत्रमें 'सम्प्रयोगाय' का ऐसे अध्याहार किया है 'मनोज्ञस्य विप्रयोगे तत्सम्प्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहार" ॥ सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्राचीन प्रतियोंके पत्र १८८, १०४, ८६ पर क्रमसे और तत्वार्थराजवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखित प्रतियोंमें तथा तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखित प्रतियोंमें सप्रयोगे (सम्प्रयोगे) पाठ है ॥

अमनोज्ञमप्रियं विषकण्टकशत्रुशस्त्रादि, तद्बाधाकारणत्वादमनोज्ञमित्युच्यते ।

पदच्छेदः—अमनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्-विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः आर्तम् भवति ॥३०॥

सूत्रार्थः—(१)अमनोज्ञस्य (२)सम्प्रयोगे =अप्रिय, अनिष्ट वा बुरी (वस्तु)के संयोग होजाने पर, आजानेपर

तद्-(३)विप्रयोगाय स्मृति- =उस(अप्रिय,असुहावने पदार्थ)के,पृथक् होजानेके लिये,अभावके लिये,चिन्ताका(=स्मृति)

सम्-अनु-आहारः(=समन्वाहारः) =एकसा (=सम्) बारम्बार (=अनु=वीप्सा) ग्रहण करना [=आहार]

आर्तम् भवति । =सो(अनिष्टसंयोगज) आर्त (ध्यान) है भावार्थ अनिष्टके संयोगपर निवारणको बार२ चिंतन।

वृत्त्यनुवादः—अमनोज्ञम् अप्रियम् =(संस्कृतवृत्ति वा भाष्यका अनुवाद)अमनोज्ञ है सो अनिष्ट [=अप्रिय]

विष-कण्टक-शत्रु-शस्त्र-आदि तद्- =हलाहल (=विष) कांटा, वैरी, आयुध और प्रहरण आदिक हैं उन(विष-कंटकआदि) की

बाधा-कारणत्वात् अमनोज्ञम् इति उच्यते । =पीडाके निमित्तपनासे अमनोज्ञ है ऐसा कथन किया गया है ।[अमनोज्ञपु०।न०।]दोनोंहै

अमनोज्ञ=अप्रिय,अनिष्ट,अरमणीय, असुंदर, अप्यारी, अमनोहर, ।सम्प्रयोगे=संयोग होनेपर, मिलजाने पर, आप ने पर आजाने पर ॥
(३) तद्विप्रयोगाय=उसके वियोग होनेके लिये, उसके जाते रहनेके लिये, उसके अभावके लिये, उसके पृथक् होनेके लिये, उसके जानेके लिये
"तस्य सम्प्रयोगे स कथं नाम मे न स्यादिति सङ्कल्पश्चिन्ता प्रबन्धः स्मृति समन्वाहार" संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्ति (भाष्य)से उद्धृत ॥
तस्य सम्प्रयोगे सः कथम् नाम मे न स्यात् इति=तिस (अमनोज्ञ)के संयोग होने पर सो किसी प्रकार (=कथं) मेरे (=मे)नाम न हो ऐसा
सङ्कल्पः चिन्ता प्रबन्धः स्मृति-समन्वाहारः="संकल्प होय सो ही चिंताका प्रबन्ध ताकूं स्मृतिसमन्वाहार कहिये" जयचन्दजी वचनिका ॥
भृशमर्थान्तरचिंतनादाहरणं समन्वाहारः।।२।।अर्थान्तरचिंतनादाधिक्येनाहरणमेकत्रावरोधःसमन्वाहारः॥स्मृतेःसमन्वाहारः स्मृतिसमन्वाहारः।
अमनोज्ञस्योपनिपाते स कथं नाम मे न स्यादिति संकल्पश्चिंता प्रबंधः आर्तमित्याख्यायते।(तत्त्वार्थराजवार्तिक तथा श्लोकवार्तिकसे उद्धृत)॥
भृशम् अर्थान्तर-चिन्तनात् आहरणम् समन्वाहारः॥२॥=अन्य पदार्थका (=अर्थान्तर)चिन्तवनसे बहुतायतसे रोक, निरोधसो समन्वाहारहै ।२
अर्थान्तर चिन्तनात् आधिक्येन आहरणम् एकत्र - =अन्य वस्तुके चिंतवनसे अधिकाईकरि पृथक्ता और एक स्थानमें(=एकत्र)अर्थात् विषयमें
अवरोधः समन्वाहार. । स्मृतेः समन्वाहारः =रोकना, ठहराव, लगाव (=अवरोध) समन्वाहार है, चिन्ताका एकत्र अवरोध सो
स्मृतिसमन्वाहारः।अमनोज्ञस्य उपनिपाते सःकथं नाममे =स्मृति समन्वाहार है।अमनोज्ञ वस्तुके आजानेपर किसी प्रकारसे मेरे नाम (मात्रको)
न स्यात् इति संकल्पः चिंता प्रबन्धः आर्तम् =न हो ऐसा सङ्कल्प है सो चिन्ताका प्रबन्ध आर्त (ध्यानका अनिष्टसंयोगज भेद) है
इति आख्यायते =ऐसा वर्णित है॥ उपर्युक्त प्रगटहै कि स्मृतिसमन्वाहारका अर्थ चिन्ताका पुनि पुनि प्रबन्ध,
एकत्र अवरोध अर्थात् (विशेषरूपसे अन्य वस्तुओंसे चित्तको हटाकर) एक विषयमें (चित्तका) ठहराव वा लगाव है ॥ एकत्र अवरोध, एकाग्रता
समानार्थक हैं स्मृतिसमन्वाहारका अर्थ सभाष्य०के २१८पर तीन स्थानोंमें 'जिसकी एकाग्रताकिया है और २१८ पृष्ठ पर चिन्ताका निरोध किया है

तस्य सम्प्रयोगे स कथं नाम मे न स्यादिति सङ्कल्पश्चिन्ताप्रबन्धः स्मृतिसमन्वाहारः प्रथमः मार्तमित्याख्यायते॥ द्वितीयस्य विकल्पस्य लक्षणनिर्देशार्थमाह **विपरीतं मनोज्ञस्य ३१**

कुतो विपरीतं? पूर्वोक्तात् ॥ तेनैतदुक्तं भवति–मनोज्ञस्येष्टस्य स्वपुत्रदारधनादेर्विप्रयोगे

तस्य॥ सम्प्रयोगे स कथम् न मे न स्यात्, =तिस [अमनोज्ञ]के संयोग होनेपर सो किसी प्रकार(=कथम्) मेरे[=मे]नाम न हो
इति सङ्कल्प चिन्ता–प्रबन्ध स्मृति–समन्वाहार, =ऐसा सङ्कल्प है सो चिन्ताका प्रबन्ध अर्थात्चित्तकी एकाग्रता स्मृतिसमन्वाहार
प्रथमम् आर्तम् इति आख्यायते।— =पहिला(अनिष्ट संयोगज)आर्त[ध्यान]है, ऐसा विवरण कियागया है
द्वितीयस्य विकल्पस्य लक्षण–निर्देश–अर्थम् आह=[आर्तध्यानके]दूसरे भेदके लक्षण कहनेके लिये[आचार्य अग्रिम सूत्रमें]कहते हैं कि

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥ =मनोज्ञस्य (विप्रयोगे तत्सम्प्रयोगाय)स्मृतिसमन्वाहार आर्तम्

सूत्रार्थ— विपरीतम् =पहिले (तीसवां सूत्रमें) कहे हुयेसे प्रतिकूल (अर्थात्)
मनोज्ञस्य विप्रयोगे तत्सम्प्रयोगाय =मनोज्ञ पदार्थके चले जानेपर, उसके संयोगके लिये वा उसके मिलजानेके लिये
स्मृति–समन्वाहार आर्तम् भवति =चिन्ताका प्रबन्ध, चिन्ताका वारवार करना सो आर्त[दूसरा ध्यान इष्टवियोगज

वृत्त्यनुवाद—कुत विपरीतम्? पूर्वउक्तात् =(प्रश्न)कहांसे प्रतिकूल है वा क्योंकर विरुद्ध है?(उत्तर)प्रथम कहेहुयेसे[प्रतिकूल] है,
तेन एतद् उक्तम् भवति— =तिस (पहिले कहे हुएसे विपरीत) करि यह कथन वा तात्पर्य वा अर्थ होता है कि
मनोज्ञस्य इष्टस्य स्वपुत्रदार–धनआदे विप्रयोगे =प्रिय इच्छित अपना पुत्र स्त्री धन आदिके वियोग होनेपर अर्थात् न रहनेपर

इससूत्रका पाठ हमारे यहांके ग्रन्थोंमें सर्वत्र एक है।श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में,भाष्यानुसारिणी०में हमारे यहांके तीसवां सूत्रमें(आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्वि प्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः) और इक्तीसवां [विपरीतं मनोज्ञस्य]सूत्रके मध्यमें ' वेदनायाश्च ' सूत्र है इसके पश्चात् विपरीतं मनोज्ञानाम् 'सूत्र है अर्थात् पाठ भेद केवल इतना है कि मनोज्ञस्य षष्ठी विभक्ति एक वचन पुंलिंगके स्थानमें षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुंलिंग मनोज्ञानाम् शब्दकाप्रयोग है। इसप्रकार सूत्रक्रमसे उक्त समाजन यह लाभ समझा है कि वेदनाया अर्थात् अप्रिय अमनोज्ञ वेदनाको भी अनुवृत्ति विपरीतं मनोज्ञानाम्'सूत्रमेंआनातीहै नेसा कि' मनोज्ञानां विषयाणां मनोज्ञायाश्च वेदनाया विप्रयोगे तत्सम्प्रयोगायस्मृतिसमन्वाहारआर्तम्सेप्रगटहै
मनोज्ञानाम् विषयाणाम् मनोज्ञाया च वेदनाया =मनोज्ञ अर्थात् सुन्दर रमणीय तथा प्रिय विषयोंके मनोज्ञ प्रिय वेदनाके भी (च=)
विप्रयोगे तत्सम्प्रयोगाय–स्मृतिसमन्वाहार आर्तम् =वियोग होनेपर उनको संयोगके लिये जो चित्तकीएकाग्रतारूप ध्यान है वह आर्त ध्यान है३१॥

तत्सम्प्रयोगाय सङ्कल्पश्चिन्ताप्रबन्धो द्वितीयमार्तमवगन्तव्यम् ॥ तृतीयस्य विकल्पस्य लक्षणप्रतिपादनार्थमाह—

वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥

वेदनाशब्दः सुखे दुःखे च वर्तमानोऽपि, आर्तस्य प्रकृतत्वात् दुःखवेदनायां प्रवर्तते, तस्या वातादिविकारजनितवेदनाया उपनिपाते तस्या अपायः कथं नाम मे स्यादिति वि(सं)कल्पश्चिन्ताप्रबन्धस्तृतीयमार्तमुच्यते ॥ तुरीयस्यार्तस्य लक्षणनिर्देशार्थमाह—

तत्-सम्प्रयोगाय सङ्कल्पः चिन्ताप्रबन्धः द्वितीयम् =उस [मनोज्ञ वस्तु]के संयोगके लिये, संकल्प हो सो निरन्तर चिंता दूसरा
आर्तम् अवगन्तव्यम् ; तृतीयस्य =(इष्ट वियोगज) आर्त (ध्यान) जानना चाहिये ॥ तीसरे
विकल्पस्य लक्षण-प्रतिपादन-अर्थम् आह । =भेदका लक्षण वा विशेषस्वरूप (=लक्षण) कहनेके लिये(अगले सूत्रमें)कहते हैंकि

वेदनायाश्च=वेदनायाश्च(अमनोज्ञायाः,सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगायस्मृतिसमन्वाहारःआर्तम्)भवति

सूत्रार्थः—वेदनायाः च*अमनोज्ञायाः सम्प्रयोगे तत्-=और[=च]अप्रिय वेदनाके अर्थात पीड़ाके संयोग होनेपर उस(अमनोज्ञ वेदना)के
विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः आर्तम् भवति । =अभावके लिये बारबार चिन्तवन सो (वेदना जनित) आर्त ध्यान है ॥

वृत्त्यर्थःवेदनाशब्दः सुखे दुःखे च*वर्तमानः अपि* =वेदना शब्द सुख (अर्थ)में तथा दुःख अर्थमें विद्यमान होता है तो भी [=अपि]
आर्तस्य प्रकृतत्वात् दुःख-वेदनायाम् प्रवर्तते । =आर्त (ध्यान)का प्रकरण होनेसे दुःख रूप वेदना (अर्थ) में प्रवर्तता है ॥
तस्याः वात-आदि-विकार-जनित-वेदनायाः उपनिपाते =तिस- वातादिक रोग (=विकार) जनित वेदनाके आजाने पर
तस्याः अपायः कथम् नाम मे स्यात् इति* =तिस (रोग जनित वेदना)का किसी प्रकार मेरे नाम नाश [=अपाय]हो ऐसा
वि (सं)कल्पः चिन्ताप्रबन्धः तृतीयम् आर्तम् =विकल्प वा संकल्प हो सो चिन्ता का प्रबन्ध तीसरा (पीड़ा जनित) आर्त ध्यान
उच्यते।तुरीयस्य आर्तस्य लक्षण-निर्देश-अर्थं आह=कहाजाताहै ॥ चौथे आर्त (ध्यान)के लक्षण कहनेके लिये कहते हैं कि

---

(१) सूत्र पाठ दोनों समाजोंमें एक है, अर्थके सबधमें देखो टिप्पणी पृष्ठ १२३, तीसवां सूत्र इसमें सब आता है जैसा कि पंक्ति दशसे प्रगट है ॥

देशोनाः सर्वलोको वा। शेषाणां सामान्योक्तं स्पर्शनम्॥ (३) कायानुवादेन—स्थावरकायिकैः सर्वलोकः स्पृष्टः॥ त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् स्पर्शनम्॥ (४) योगानुवादेन—वाङ्मानसयोगिनांमिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागःअष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा। सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्त स्पर्शनम्। सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः॥

अष्टौ ॥ देशोनाः ॥ (स्पृष्टाः ॥) वा सर्वलोकः ॥ =कुछ घाटि आठ राजू हैं अथवा (मारणांतिक अपेक्षा) सारा लोक स्पर्शै
शेषाणां ॥ सामान्य+ =शेष (सासादन आदि समस्त गुणस्थानवर्तीन) के संक्षेप (प्रकरण) में
उक्त ॥ स्पर्शनम् ॥ =[पहिले] कहा हुआ [गुणस्थानवत्] स्पर्शन है [देखो पृष्ठ १२२,१२६]
३ काय–अनुवादेन ॥ स्थावरकायिकैः ॥ सर्वलोकः ॥ =कायके कथनानुसारकरि स्थावर कायिकनकरि समस्तलोक
स्पृष्टः ॥ त्रसकायिकानां ॥ पञ्चेन्द्रियवत् =स्पर्शा जाता है॥ त्रसकायिकनका पचइन्द्रिय जीवनके समान
स्पर्शनम् ॥ =स्पर्शन है अर्थात् लोकका असंख्यातवा भाग है असंख्याते भाग है और सर्व लोक भी है॥
[४] योग–अनुवादेन ॥ वाङ्मानसयोगिनां ॥ =(४) योगकी विवक्षासे वचन मन योगवाले
मिथ्यादृष्टिभिः ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ =मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवा अंश स्पर्शा जाता है
वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥ =अथवा (लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं [सो]
अष्टौ ॥ देशोनाः ॥ (स्पृष्टाः ॥) =कुछ हीन आठ राजू (स्पर्शे जाते) हैं
वा सर्वलोकः ॥ (स्पृष्टः ॥) सासादन सम्यग्दृष्टि =अथवा सारालोक (स्पर्शा जाता) है। सासादन सम्यग्दर्शन वालोंसे
आदीनां ॥ क्षीणकषाय–अंतानाम् ॥ स्पर्शनम् ॥ =लेकर क्षीणकषाय वर्तियों तकका स्पर्शन
सामान्य उक्त ॥ =संक्षेप (प्रकरणमे) कथित (गुणस्थानवत्) स्पर्शन
लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ सयोगकेवलिनाम् ॥ =लोकका असंख्यातवा खंड है॥ योगसहित केवलीनका

अविरता असंयतसम्यग्दृष्ट्यन्ताः देशविरताः संयतासंयताः। प्रमत्तसंयताः पञ्चदशप्रमादोपेताः क्रियानुष्ठायिनः॥ तत्राविरतदेशविरतानां चतुर्विधमार्तं भवति। असंयमपरिणामोपेतत्वात्॥ प्रमत्तसंयतानां तु निदानवर्ज्यमन्यदार्तत्रयं प्रमादोदयोद्रेकात्कदाचित्स्यात्॥ व्याख्यातमार्तं संज्ञादिभिः॥ द्वितीयस्यसंज्ञाहेतुस्वामिनिर्द्धारणार्थमाह—

हिंसाऽनृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः॥ ३५॥

वृत्त्यनुवाद अविरताः[१।३]असंयत-सम्यग्दृष्टि- =अविरत[मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे] अविरत सम्यग्दृष्टी [चौथागुणस्थानके रहने वाले]
अन्ताः[१।३] देशविरताः[१।३] संयतासंयताः[१।३], =पर्यन्त हैं। देशविरत संयमासंयम वाले [श्रावक] हैं
प्रमत्तसंयताः[१।३], पञ्चदश-प्रमाद-उपेताः[१।३] =प्रमत्तसंयमी पन्द्रह प्रमाद सहित[आचार्यपदकी तथा मुनिपनाकी आहार विहारादि]
क्रिया-अनुष्ठायिनः[१।३], तत्र* अविरत- =क्रियाके आचरण वाले हैं, तहां पहिले गुणस्थानसे चौथा गुणस्थानवर्तियोंके
देश-विरतानाम्[६।३] चतुर्विधम्[१।१।१] =[तथा]संयमासंयमी पांचवां गुणस्थान धारकोंके, चारप्रकार
[अनिष्टयोगज-इष्टवियोगज-वेदनाजनित-तथा निदान नामके]
आर्तम्[१।१।१]असंयम-परिणाम-उपेतत्वात्[५।१।१]भवति।,=आर्त (ध्यान) असंयम परिणामके विद्यमानता (के कारण)से होता है [=भवति।
प्रमत्त-संयतानाम्[६।३]तु*निदान-वर्ज्यम्[१।१।१]अन्यत्* =परन्तु(=तु) प्रमत्तसंयमी[छठवां गुणस्थानवाले] निके निदानको छोड़कर अन्य तथा
आर्तत्रयम्[१।१।१]प्रमाद-उदय-उद्रेकात्[५।१] कदाचित्*स्यात्-=शेषतीन(अनिष्टयोगजइष्टवियोगजवेदनाजनितआर्त प्रमादकेउदयकीतीव्रतासेकभीकभीहोतेहै
व्याख्यातम्[१।१।१]आर्तम्[१।१।१] सञ्ज्ञादिभिः[३।३],द्वितीयस्य=आर्तम्[ध्यान]संज्ञादि करि कहागया है,दूसरे[ध्यान] के
संज्ञा-हेतु-स्वामिन्-निर्द्धारण- अथम्[१।१।१] आह।- =नाम और कारण तथा स्वामीके निर्णयके लिये [आचार्य उत्तर सूत्रमें]कहते हैं कि

हिंसाऽनृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यः रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥३५॥

=हिंसा-अनृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यः (स्मृतिसमन्वाहारः) रौद्रम्-अविरत-देशविरतयोःभवति॥

इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ दोनों आम्नायोंमे एक है॥ (२) अविरत-देशविरतयोः-पुंलिंगषष्ठी-द्विवचनमें भी लिया जासक्ता है तब अर्थहोगा कि अविरत तथा देशविरत गुणस्थानवालोंके, षष्ठीके अर्थमें जयचन्द्रजी तथा सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके अनुवादकने उक्त वाक्यको लिया है

निदानं च ॥ ३३ ॥

भोगकाङ्क्षातुरस्यानागतविषयप्राप्तिं प्रति मनःप्रणिधानं सङ्कल्पश्चिन्ताप्रबन्धस्तुरीयमार्तं निदानमित्युच्यते ॥ तदेतच्चतुर्विधमार्तं किंस्वामिकमिति चेदुच्यते—

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥ ३४ ॥

निदान च ॥ ३३ ॥ =निदान आर्त च =निदानविषयः स्मृतिसमन्वाहारः आर्त च उच्यते ॥

सूत्रार्थ —निदान–विषय॰॥स्मृतिसमन्वाहार॰॥आर्तम्॥च॰=और निदानविषय चिंताका वारवार प्रबन्ध सो (चौथा) आर्त[ध्यान]है

अर्थात् भोगोंकी वाञ्छाकरि आतुर (=व्याकुल–अस्थिर) पुरुषके भविष्यत्कालमें विषयोंकीप्राप्तिकेलिये वारवार चिंतवन सो निदानचौथाआर्त ध्यान है

वृत्त्यनुवाद—भोग–कांक्षा–आतुरस्य॥अनागत– =भोगोंकी वाञ्छाकरि पीडित अथवा व्याकुल (चित्त, पुरुष)के आगामी

विषय–प्राप्तिम्॥मनःप्रणिधानम्॥सकल्प॥ =विषयोंकी प्राप्तिके लिये मनका प्रयत्न वा ढुलाउ (ऐसा) सकल्प

चिंता–प्रबन्ध॥तुरीयम्॥आर्तं॥निदानम्॥इति॰उच्यते॥=चिंताका प्रबन्ध चौथा आर्त (ध्यान) निदान ऐसा वर्णित है।

तत्॥एतत्॥चतुर्विधम्॥आर्तम्॥किम्॰स्वामिकम्॥ =सो(=तत्)यह(=एतत्)चार प्रकार आर्त(ध्यान)का कौन स्वामी होता है।

इति॰चेत्॰उच्यते॥— =ऐसा प्रश्न होनेपर (अग्रिम सूत्रमें) कहा जाता हैकि

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम्॥३४॥(दोनों समाजोंमें इन दोनो सूत्रोंके पाठ अर्थएकहैं)

सूत्रार्थ—तत्॥अविरत– =वह(आर्त ध्यान) अविरतियोंकें अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवर्तियोंकें, द्वितीय गुणस्थान वालोंकें मिश्र तृतीय गुणस्थान धारियोंकें,चौथे गुणस्थानवर्तियोंकें

देशविरत–प्रमत्त–संयतानाम्॥ =देशविरत पांचवागुणस्थान वालोंकें और प्रमत्त संयमी छठवागुणस्थानधारकोंकें

भवति॥ ॥ ३४ ॥ =होता है। (किंतु प्रमत्त संयमियोंके निदान नामका आर्त ध्यान नहींहोताहै)॥

अविरतस्य भवतु रौद्रध्यानं देशविरतस्य कथम् ?। तस्यापि हिंसाद्यावेशाद्वित्तादिसंरक्षणतन्त्रत्वाच्चकदाचिद्भवितुमर्हति । तत्पुनर्नारकादीनामकारणं सम्यग्दर्शनसामर्थ्यात्संयतस्य तु न भवत्येव । तदारम्भे संयमप्रच्युतेः ॥ आह परे मोक्षहेतू उपदिष्टे । तत्राद्यस्य मोक्षहेतोर्ध्यानस्य भेदस्वरूपस्वामिनिर्देशः कर्तव्य इत्यत आह—

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥ ३६ ॥

अविरतस्य भवतु रौद्र–ध्यानम्	=मिथ्यात्व-सासादन–मिश्र-अविरत-सम्यग्दृष्टीके रौद्रध्यान होने योग्य है,होय(=भवतु)
देश–विरतस्य कथम् ?, तस्य अपि हिंसादि–	=संयतासंयत पाचवां गुणस्थानवर्तीके कैसे (होय),तिस (देशविरत)के भी हिंसादिकके
आवेशात् वित्त-आदि-संरक्षण-तन्त्रत्वात् च कदाचित्	=आविर्भावसे तथा (=च) धन आदिककी रक्षाके प्रबन्धसे कभी कभी (रौद्र ध्यान)
भवितुम् अर्हति । तत् पुनः नारकादीनाम्	=होनेको योग्य है। बहुरि वह (रौद्र ध्यान) नरकादिक (दुर्गति) का
अ-कारणम् सम्यग्दर्शन–सामर्थ्यात्, संयतस्य	=कारण,साधन सम्यग्दर्शनकी शक्तिसे नहीं होता है । संयमी (छठवांगुणस्थान वाले)के
तु न भवति एव,तत्–	=तो (रौद्र ध्यान) होता ही नहीं है क्योंकि उस (रौद्र ध्यान)के
आरम्भे संयम–प्रच्युतेः,	=प्रारम्भ होनेपर संयम नहीं रहता(वा उसके प्रारम्भ होनेपर संयम के चले जानेसे) अर्थात् रौद्र ध्यान के प्रारम्भ होनेपर संयमके न रहने के कारणसे प्रमत्त छठवांगुण-स्थानवर्तीके रौद्र ध्यान होता ही नहीं है ॥
आह परे मोक्षहेतू	=प्रश्न करता है कि (२९वां सूत्रमें)अगले दो (धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान)मोक्षके कारण
उपदिष्टे तत्र आद्यस्य मोक्षहेतोः ध्यानस्य भेद-	=उपदेशे तहां आदिके मोक्ष कारण (धर्म्य) ध्यानका भेद लक्षण,
स्वरूप–स्वामिन्–निर्देशः कर्तव्यः इति अतः आह	=स्वामीका कथन करना चाहिये ।ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये कहते हैं कि

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयायधर्म्यम् ॥ ३६ ॥

(१) हमारे यहां कहीं धर्म्यम् धर्म्य, कहीं धर्मम्, धर्म,कहीं धर्म्मम्,धर्म्म पाठ हैं धर्म्य-धर्म-धर्म्म भी ठीक हैं[देखोअध्याय१पृष्ठ६,पृष्ठ५४०,५४१]

हिंसादीन्युक्तलक्षणानि, तानि रौद्रध्यानोत्पत्तेर्निमित्तीभवन्तीति हेतुनिर्देशो विज्ञायते। तेन हेतुनिर्देशेनानुवर्तमानः स्मृतिसमन्वाहारोऽभिसम्बध्यते। हिंसायाः स्मृतिसमन्वाहार इत्यादि॥ तद्रौद्रध्यानमविरतदेशविरतयोर्वेदितव्यम्॥

सूत्रार्थ – हिंसा-अनृत-स्तेय- =हिंसा (के निमित्त)से असत्य,झूठ वा मिथ्या भाषण (के कारण)से चोरी(के हेतु)से

विषय-संरक्षणेभ्य "स्मृति-समन्वाहार" "रौद्रम्" =विषय(परिग्रह)के संरक्षण(के निमित्त)से चिंताका वारवार प्रबन्ध सो रौद्र(ध्यान)है,

अविरत-देशविरतयो: =(वह रौद्रध्यान)प्रथम गुणस्थानसे चतुर्थगुणस्थान तकमें, संयतासंयत गुणस्थानमें है अर्थात् हिंसा करनेमें आनंद मानकर उसके साधनेका चिंतनकरता रहे सो हिंसानंदी रौद्रध्यान है, झूठ बोलनेमें आनंदमाने और झूठका चिंतवन करे वह मृषानन्दी रौद्र ध्यान है, चोरी करनेमें आनन्द मानें उसीका चिंतवनादिक करे तहां चौर्यानन्दी रौद्र ध्यान है, परिग्रहकी रक्षाका चिंतवन करता रहे सो परिग्रहानन्दी रौद्र ध्यान

टीकार्थ – हिंसादीनि "उक्त-लक्षणानि" "तानि" =हिंसादिक [पूर्व] कहेहुये लक्षण संयुक्त है, वे [हिंसादिक]

रौद्र-ध्यान-उत्पत्ते "निमित्ती-भवन्ती" इति* =रौद्र ध्यानके उपजनेके कारण होते हैं, इसप्रकार

हेतु-निर्देश: विज्ञायते। =(इस सूत्रमें पंचमीअपादान विभक्ति-भ्यस् करि) हेतुका कथन जतायागया है।

तेन "हेतु-निर्देशेन" अनुवर्तमान: =तिस (हेतुका कथन)करि (इस अध्यायके तीसवा सूत्र से) अनुवृत्ति रूपमें आने वाला

स्मृति-समन्वाहार: =स्मृति समन्वाहार'(वाक्य इस सूत्रकेविषय संरक्षणेभ्यो और रौद्रम् शब्दके बीचमें)

अभिसम्बध्यते।हिंसाया: "स्मृतिसमन्वाहार" इत्यादि=जोड़ा जाता है,[तब]हिंसाका स्मृति समन्वाहार इत्यादि चार भाग होजाते है अर्थात् हिंसाया स्मृतिसमन्वाहार रौद्रमविरत देशविरतयो , अनृतात् स्मृतिसमन्वाहार रौद्रमविरत-देशविरतयो , स्तेयात् स्मृति समन्वाहार' रौद्रमविरतदेशविरतयोः विषय संरक्षणात् स्मृतिसमन्वाहार रौद्रमविरतदेशविरतयो:, चार सूत्र एक सूत्रसे विभागकी रीतिसे हुये।

तद् रौद्र-ध्यानअविरत देश विरतयो "वेदितव्य =वह रौद्रध्यान अविरतगुणस्थानोंमें तथा देशविरत पाचवा गुणस्थानमेंजानना चाहिये॥

विचयःस्मृतिसमन्वाहार इत्यनुवर्तते, स प्रत्येकं सम्बध्यते आज्ञाविचयाय स्मृतिसमन्वाहार इत्यादि तद्यथा–उपदेष्टुरभावान्मन्दबुद्धित्वात्कर्मोदयात्सूक्ष्मत्वाच्च पदार्थानां हेतुदृष्टान्तोपरमे सति सर्वज्ञप्रणीतमागमं प्रमाणीकृत्य इत्थमेवेदं नान्यथावादिनो जिना इति गहनपदार्थश्रद्धानमर्थावधारणमाज्ञाविचयः । अथवा–स्वयं विदितपदार्थतत्त्वस्य सतः परंप्रति पिपादयिषोः स्वसिद्धान्ताविरोधेन तत्त्वसमर्थनार्थं तर्कनयप्रमाणयोजनपरः स्मृतिसमन्वाहारः सर्वज्ञाज्ञाप्रकाशनार्थत्वादाज्ञाविचयः इत्युच्यते ॥

विचयः, स्मृतिसमन्वाहारः इति*अनुवर्तते । =विचय (समासरूपमें) है (तीसवां सूत्रसे) स्मृतिसमन्वाहारः ऐसा (वाक्य इस सूत्रमें) आता है
सः प्रत्येकम् सम्बध्यते । =वह (स्मृतिसमन्वाहार) प्रत्येक [आज्ञा-अपाय-विपाक-संस्थान] को जोड़ाजाता है
आज्ञाविचयाय स्मृतिसमन्वाहारः इत्यादि ॥ =(तब) आज्ञाविचयाय स्मृतिसमन्वाहारः अपायविचयायस्मृतिसमन्वाहारः विपाकविचयाय स्मृतिसमन्वाहारः, संस्थानविचयायस्मृतिसमन्वाहारः ऐसे हुये ॥
तद्यथा*उपदेष्टु. अभावात् मंदबुद्धित्वात् =जैसे उपदेशदाताके न होनेसे (अपनी) मंदबुद्धिपनासे
कर्म-उदयात् सूक्ष्मत्वात् च*पदार्थानां हेतुदृष्टान्तः–=कर्मके उदय (के वश) से तथा (=च) सूक्ष्मता [के निमित्त] से पदार्थोंका हेतु और दृष्टान्त
उपरमे सति सर्वज्ञ–प्रणीत–आगमं प्रमाणीकृत्य÷=न . जानते संते सर्वज्ञके कहेहुये आगमको प्रमाण करके अर्थात् प्रमाण मानकर
इत्थं*एव*इदम् न*अन्यथा*वादिनः जिनाः इति*=यह ऐसे (=इत्थं) ही [=एव] है, जिन भगवान् अन्यथा वादी नहीं हैं इस प्रकार
गहन–पदार्थ–श्रद्धानम् अर्थ–अवधारणम् =दुष्प्रवेश वा दुर्गम पदार्थका श्रद्धान, अर्थका निश्चय करण
आज्ञाविचयः, अथवा*स्वयम्*विदितपदार्थतत्वस्य =सो आज्ञा विचय है, अथवा आपको प्रकट हुआ है पदार्थका यथार्थ (=तत्त्वस्य)
सतः, परम् प्रति*पिपादयिषः =स्वरूप जै । परको (=परं प्रति) वैसा ही कहने की है इच्छा जिसकी (ऐसे पुरुषके)
स्व–सिद्धान्त–अविरोधेन तत्वसमर्थनअर्थम् ॥ =अपने सिद्धांन्तके अनुसार तत्वके समर्थनका है प्रयोजन जिस (पुरुष) में (वा जिसके)
तर्क–नय–प्रमाण–योजन–परः =बहुरि तर्क नय प्रमाणकी योजनाके विषैं प्रवीण
स्मृतिसमन्वाहारः, सर्वज्ञ–आज्ञा– =(ऐसा जो) स्मृतिसमन्वाहार वा वारवार चिन्तवन सो। सर्वज्ञ की आज्ञाके
प्रकाशन–अर्थत्वात् आज्ञाविचयः इति*उच्यते । =प्रकाशनेके हेतुपनासे "आज्ञाविचय" ऐसा वर्णित है ॥

पदच्छेद –आज्ञा-अपाय-विपाक-संस्थान-विचयाय (स्मृतिसमन्वाहार) धर्म्यम् ध्यानम्॥३६॥

=आज्ञाविचयाय स्मृतिसमन्वाहार॰ धर्म्यं ध्यानम्, अपायविचयाय स्मृतिसमन्वाहार धर्म्यं ध्यानम्, विपाकविचयाय स्मृतिसमन्वाहार धर्म्यं ध्यानम्, संस्थानविचयाय स्मृतिसमन्वाहार धर्म्यं ध्यानम्॥ ३६ ॥

सूत्रार्थ –(क)आज्ञाविचयाय॰ स्मृति–समन्वाहार॰ =आगमकी प्रमाणतासे अर्थके विचारके लिये चिंताका पुन पुन वारवार प्रबन्ध
धर्म्यम् ध्यानम् =सो (आज्ञाविचयाय) धर्म्य ध्यान है ॥

(ख)अपाय–विचयाय॰ स्मृतिसमन्वाहार॰ =(सन्मार्गके)अभावके विचारके निमित्त चिंताका वारवार प्रबन्ध सो(अपायविचयाय)
धर्म्यम् ध्यानम् =धर्म्य ध्यान है अर्थात् मिथ्यादृष्टियोंके कहेहुये उन्मार्गसे ये प्राणी कैसे फिरेंगे, इनके अनायतन सेवाका कैसे अभाव होगा, ये कब सन्मार्गमें आवेंगे, समीचीन मार्गका तो प्राय॰ अभावसा होगया है इत्यादि सन्मार्गके अभावका चिंतवन करना सो अपायविचयधर्म्यध्यान है ॥

(ग)विपाक–विचयाय॰ स्मृति–समन्वाहार॰ =(कर्मके) फलानुभवके लिये चिंताका वारवार प्रबन्ध सो (विपाकविचयाय)
धर्म्यम् ध्यानम् =धर्म्य ध्यान है अर्थात् कर्मके फलाउभवनको गुणस्थान और मार्गणाके स्थानोंमें चिंतवन करना तथा उदीरणाको चिंतवन करना सो विपाकविचय धर्म्यध्यान है

(घ)संस्थानविचयाय॰ स्मृति–समन्वाहार॰ =आकार तथा स्वभावोंके विचारार्थ चिंताका फिर फिर प्रबन्ध सो (संस्थानविचयाय)
धर्म्यम् ध्यानम् =धर्म ध्यान है, अर्थात् लोकके संस्थानोंका, द्रव्योंके स्वभावों का तथा द्वादश भावनाओंका चिंतवन करना सो संस्थानविचयधर्म्यध्यान है

वृत्त्यनुवाद –विचयनम् विचय विवेक =(इस सूत्रमें) विचय है सो विचयन, विचार (=विवेक) वा
विचारणम् इति॰अर्थ, आज्ञा अपाय–विपाक–विचारण ऐसा अभिप्राय (में है आज्ञाका विचय, अपायका विचय, विपाकका विचय संस्थानाम् विचय आज्ञा–अपाय–विपाक संस्थान =संस्थानका विचय है सो आज्ञा–अपाय–विपाक–संस्थान–

श्वेताम्बरसम्प्रदायके सभाष्य॰में धर्म्यम् के स्थानमें धर्मम् पाठ है परन्तु उनकी भाष्यानुसारिणी॰में धर्म्यम् है, उन दोनों भाष्योंमें अप्रमत्त संयतस्य (=अप्रमत्त संयमीके धर्म ध्यान होताहै) वाक्य अधिक है और इस सूत्रके पश्चात् और 'शुक्लेचाद्ये सूत्रके पहिले 'उपशान्तक्षीणकषायोश्च [=उपशांतकषाय और क्षीणकषाय गुणस्थानवालोंके भी (=च) धर्म ध्यान होता है],हमारे यहांसे सभाष्य॰में अधिक सूत्र है, भाष्यानुसारिणी॰में इसका पत्र ७३८ पर भाष्यरूपमें लेख है अत फल यह हुआ कि उनके यहां धर्म ध्यान अप्रमत्त, उपशान्तकषाय क्षीणकषाय गुणस्थानोंमें होता है, हमारे यहां अविरत संयत, देशविरत प्रमत्त संयत और अप्रमत्त संयत गुणस्थानोंमें होता है अर्थात् हमारे यहां उपशम श्रेणी औरक्षपकश्रेणीके आरम्भ होने पर शुक्ल ध्यान होता है, इन श्रेणियोंसे पहिले सातवां, छठवां, पांचवां, चौथे गुणस्थानों तक धर्म ध्यान होता है ॥

त्रयाणां ध्यानानां निरूपणं कृतम् । इदानीं शुक्लध्यानं निरूपयितव्यम्। तद्वक्ष्यमाणचतुर्विकल्पम् ॥तत्राद्ययोःस्वामिनिर्देशार्थमिदमुच्यते—**शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७ ॥**

त्रयाणां६।३'''ध्यानानां६।३'''निरूपणम्१।१'''कृतम्१।१''',इदानीं	=तीन (आर्त–रौद्र-धर्म्य) ध्यानोंका वर्णन किया गया ।अब
शुक्लध्यानम्१।१'''निरूपयितव्यम्१।१''' । तत्–	=शुक्ल ध्यान कहा जाना चाहिये ॥ उस [शुक्ल ध्यान]के (भविष्यमें)
वक्ष्यमाण–चतुर्विकल्पम्१।१''',तत्र*आद्ययोः६।२'''	=कहेजाने वाले चार भेद हैं, तहां आदिके दो [पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क]के
स्वामिन्–निर्देश-अर्थम्१।१'''इदम्'''उच्यते T	=अधिकारी वा स्वामीके कहनेके लिये यह [अग्रिम सूत्रमें] कहा जाता है कि

(१)शुक्लेचाद्ये (२)पूर्वविदः॥३७॥=शुक्लेआद्ये (द्वेध्यानेपृथक्त्ववितर्कैकत्ववितर्के)चपूर्वविदः(भवतः)

सूत्रार्थः–पृथक्त्ववितर्क–एकत्ववितर्के१।२''' 'आद्ये१।२'''द्वे१।२'''	=पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्क आदिके दो
शुक्ले१।२'''ध्याने१।२'''च*पूर्ववेदः१।२।भवतः T ।	=शुक्ल ध्यान भी[=च]पूर्वके ज्ञाता अर्थात् श्रुत केवलीके होते हैंभावार्थ ऐसाहैकि

(१) दिगम्बर आम्नायमे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ।श्वेताम्बर समाजके ग्रन्थोंमें "शुक्ले चाद्ये" पाठ है(अर्थ भेदके लिये देखो टिप्पणी२)

(२)पूर्वविदः-इसवाक्यका अर्थ दोनों समाजोंके ग्रन्थोंमें जैसे सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र, भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका, सर्वार्थसिद्धि वृत्ति, तत्त्वार्थराजवार्तिक,तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, श्रुतसागरीटीका, सर्वार्थसिद्धिवचनिका, अर्थप्रकाशिका इत्यादिमें "श्रुतकेवली" लिखा है, इसपद का अर्थ प्रत्यक्षरूपसे पूर्वके जानने वाला, पूर्वकावेत्ता, पूर्वकाज्ञाता,पूर्वका विज्ञ है॥ समस्त द्रव्यश्रुतज्ञान बीस अक्षर प्रमाण है अर्थात् अक्षरात्मक श्रुतज्ञान अंगप्रविष्ट (=बारह अंग, द्वादशांग)और अंग बाह्य (अर्थात् चौदह प्रकीर्णक)रूप है॥ ग्यारह अंग चौदह पूर्वके ज्ञाताओंसे द्वादशांग मे चूलिका छुट जाती है, और अंग बाह्य छुट जाते हैं, तब प्रश्न यह है कि पूर्वके वेत्ताका अर्थ श्रुतकेवली कैसे होगया ? ॥ (बीस अक्षर प्रमाण श्रुतज्ञान क्यों और कैसे है? देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ३९९से ४२४ तक । पूर्वविदः=श्रुतकेवली, देखो अध्याय १ पृष्ठ ४२५से ४२८ तक ॥ श्वेताम्बर समाजमे हमारे यहाके'शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः'सूत्रके स्थानमे'शुक्ले चाद्ये'पाठ है और इस सूत्रका भाष्य और भावार्थ ऐसे किया हैकि शुक्ले आद्ये="आद्ये शुक्ले ध्याने पृथक्त्ववितर्कैकत्ववितर्के पूर्वविदो भवतः"='आद्य अर्थात् आदिके जो पृथक्त्ववितर्क और एकत्व वितर्क शुक्ल ध्यानके भेद हैं वे पूर्वविद् अर्थात् श्रुतकेवलीको होते हैं" ॥

च =शुक्ले चाद्ये ध्याने	='शुक्लध्यानके चार भेद आगे (अध्याय ९ सूत्र ४१)कहेंगे,उनमेसे
पृथक्त्ववितर्कैकत्ववितर्के (पृथक्त्ववितर्क–एकत्ववितर्क)	=पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्व वितर्क जो आदिके भेद हैं वे

चोपशान्तक्षीणकषाययोर्भवतः(-चउपशान्तकषाय-क्षीणकषाययोःभवतः)=उपशांतकषाय और क्षीणकषाय पुरुषोंको होतेहै॥(सभाष्य०२१९से) भावार्थ ऐसा है किआदिके दो शुक्ल ध्यान पूर्वके वेत्ता अर्थात् श्रुतकेवलीके होते हैं और उपशांतकषाय ग्यारहवांगुणस्थानवर्तीके और क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानवर्तीके ये दोशुक्ल ध्यान भी होते हैं,कुछ और भी होता है वह क्या है ? उक्त गुणस्थानवर्तियोंके धर्मध्यान भी होता है ॥

जात्यन्धवन्मिथ्यादृष्टयः सर्वज्ञप्रणीतमार्गाद्विमुखा मोक्षार्थिन सम्यङ्मार्गापरिज्ञानात्सु-
दूरमेवापयन्तीति सन्मार्गापायचिन्तनमपायविचय अथवा मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रेभ्य· कथ
नाम इमे प्राणिनोऽपेयुरिति स्मृतिसमन्वाहारोऽपायविचयः । कर्मणा ज्ञानावरणादीनां द्रव्य-
क्षेत्रकालभवभावप्रत्ययफलानुभवनं प्रति प्रणिधानं विपाकविचय ॥ लोकसंस्थानस्वभाव-
विचयाय स्मृतिसमन्वाहार संस्थानविचय॥ उत्तमक्षमादिलक्षणो धर्म उक्त· । तस्मादनपेतं
धर्म्यं ध्यान चतुर्विकल्पमवसेयम् ॥ तदविरतदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तसंयताना भवति ॥

जाति-अन्धवत्*मिथ्यादृष्टय ॥सर्वज्ञ-प्रणीत-मार्गात्' =जन्मसे अन्धेके सदृश मिथ्यादृष्टी सर्वज्ञभाषित मोक्ष मार्गसे
विमुखा 'मोक्षअर्थिन 'सम्यड्मार्ग-अपरिज्ञानात्''' =विमुख और मोक्ष अर्थी हैं,(परन्तु)सम्यग्ज्ञानकेपरिज्ञानसे रहित (=अपरिज्ञानात्)
सुदूरम्'''एव*अपयन्ति I इति*सत्- =बहुत दूर (=सुदूर) ही (=एव) भवर्तते हैं(=अपयन्ति), ऐसे समीचीन
मार्ग-अपाय-चिन्तनम्'''अपायविचय ',अथवा* =मार्गका अभाव[=अपाय] चिन्तवन सो अपाय विचय है ।। अथवा
मिथ्यादर्शन-ज्ञानचारित्रेभ्य '''कथम्*इमे'प्राणिन ' =मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्रसे कैसे ये प्राणी
नाम'''अपेयु Iइति*स्मृति समन्वाहार 'अपाय विचय ' =नाम रहित हों । ऐसा चिन्ताका बारबार प्रबन्ध सो अपायविचय है
कर्मणा'''ज्ञानावरणादीना'''द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भाव =ज्ञानावरणादिक कर्मो का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावके
प्रत्यय-फल-अनुभवन' प्रति* =निमित्तसे (उत्पन्न हुये) परिणाम वा फलके अनुभवका (=प्रति)
प्रणिधानम्'''विपाक-विचय ', =चिन्तवन (=प्रणिधान) वा ध्यान [=प्रणिधान]सो विपाक विचय है ।।
लोक-सस्थान-स्वभाव-विचयाय'स्मृतिसमन्वाहार ' =लोकके आकार तथा(लोकका)स्वभाव विचारनेके लिये चिन्ताका पुन· पुन प्रबन्ध
सस्थान विचय ',उत्तम-क्षमा-आदि-लक्षण 'धर्म 'उक्त '=सो सस्थान विचय है । उत्तम क्षमा आदि लक्षण सयुक्त धर्म कहा गया
तस्मात्'अनपतम्'''धर्म्यम्'''ध्यान'''चतुर्विकल्पम्'''=तिस (उत्तम क्षमादि लक्षण युक्त धर्म) से लगा हुआ धर्म्य ध्यान चार प्रकार
अवसेयम्''',तद्-अविरत-देशविरत- =जानना चाहिये,वह(धर्मध्यान)चौथे गुणस्थानवालोंके,देशविरत वा सयमासयमीके
प्रमत्त-अप्रमत्त-सयतानाम्'भवति I ॥=प्रमत्त सयमी छठवागुणस्थानवर्ती तथा अप्रमत्तसयमी सातवा गुणस्थानवर्ती मुनियोंके होता है॥

वक्ष्यमाणेषु शुक्लध्यानविकल्पेषु आद्ये शुक्लध्याने पूर्वविदो भवतः श्रुतकेवलिन इत्यर्थः॥ चशब्देन धर्म्यमपि समुच्चीयते ॥

परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमें "शुक्लेचाद्ये" सूत्रमें चकारसे पृथक्त्ववितर्क और एकत्ववितर्क आदिके दो शुक्लध्यानका उपशांतकषाय और क्षीणकषाय गुणस्थानोंमें अस्तित्व समुच्चय किया है क्योंकि उक्त समाजमें "शुक्लेचाद्ये" सूत्रके पहिले "उपशान्तक्षीणकषाययोश्च" सूत्र है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २१९ सूत्र ३८, ३९)

वृत्त्यनुवादः—

वक्ष्यमाणेषु शुक्लध्यान-	=[इस अध्यायके ३९वां सूत्रमें] कहेजानेवाले शुक्लध्यानके
	(चार प्रथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति तथा व्युपरतक्रियानिवर्ति)
विकल्पेषु आद्ये शुक्लध्याने पूर्वविदः	=भेदोंमें(से) आदिके दो (पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्क) शुक्लध्यान पूर्वके जाननेवालेके
भवतः T श्रुतकेवलिनः इति* अर्थः	=होते हैं, (यहां पूर्वविद् शब्दकरि) श्रुतकेवलीकें [होते हैं] ऐसा अभिप्राय है ॥
चशब्देन धर्म्यम् अपि* समुच्चीयते T ॥	=(इस सूत्रमें) चशब्दकरि धर्म्य(ध्यान) भी (=अपि) संग्रह वा समुच्चय किया गया है ॥

अब प्रश्न यह हैकि गृहस्थअवस्थामें तीर्थंकरके पूर्ण श्रुतज्ञान है वा नहीं (उत्तर) "मतिश्रुतअवधिविराजत जिन जबजन्मियो" यह वाक्य इस अपेक्षासे है कि तीर्थंकरोंके जन्मनिमित्तक अथवा भवप्रत्यय अर्थात् जन्मके साथ ही अवधिज्ञान होता है, वैसे तो मनुष्यगतिके समस्तजीवोंके न्यूनाधिक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अपने २ मतिज्ञानावरणकर्मके, श्रुतज्ञानावरणकर्मकेक्षयोपशमकी मर्यादाके अनुकूल होता है, तीर्थंकरोंके दशगुण जो जन्मकेसाथ उत्पन्न होते हैं, उनमें श्रुतज्ञानके सम्बन्धमें कोई गुण नहीं है, इसपर कई विद्वानोंकी सम्मति भी लो गई है और कई शास्त्रोंमें अन्वेषन कियागया हमको "प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनिभी पूर्वकेवेत्ता होय है" जयचन्दजीवचनिका मुद्रित पृष्ठ ७४८ सूत्र३७के अतिरिक्त कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ, इससे प्रगट है कि श्रुतकेवली प्रमत्त छठवांगुणस्थानसे नीचेका जीव नहीं हो सक्ता है, तीर्थंकरोंके चौथा और पांचवां गुणस्थान गृहस्थ अवस्थामे होते है इसलिये पूर्ण द्रव्य श्रुतज्ञान तीर्थंकरोंके गृहस्थ अवस्थामें नहीं होता है, भूल होतो कृपया शुद्ध करलें॥

( ) उपर्युक्तसे दोनों आम्नायोंके सूत्रोंके अंतरका सारांश यह है कि दिगम्बरआम्नायके अनुकूल धर्मध्यान चौथे गुणस्थानसे सातवे तक है, श्रेणीके आरम्भसे शुक्लध्यान होता है, धर्मध्यान नहीं रहता है, श्रुतकेवली (जो छठवांगुणस्थानसे बारहवां गुणस्थान तक होते हैं) के ही आठवां, नववां, दशवां, ग्यारहवांगुणस्थानोंमें पहला शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्क होता है, और श्रुतकेवलीके ही बारहवां गुणस्थानमे एकत्ववितर्क शुक्लध्यान होताहै, श्वेताम्बर आम्नायके अनुकूल धर्मध्यान सातवां, उपशांतकषाय ग्यारहवां, क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानोंमें होता है, आदिके दो शुक्लध्यान अर्थात् पृथक्त्ववितर्क और एकत्ववितर्क उपशान्तकषाय तथा क्षीणकषाय गुणस्थानवालोंके होते है तथा येही दो ध्यान पूर्वविद् अर्थात् श्रुतकेवलीके होते हैं परन्तु हमको यह ज्ञात नहीं है कि श्रुतकेवली किस गुणस्थानसे किस गुणस्थान तकके मनुष्य उक्तसमाजकेसिद्धान्तमेंहोतेहैं॥

पूर्वके वेत्ताके आदिके दो शुक्ल ध्यान होतेहैं औरभी[=च] कुछ होता है, वह कुछ क्या है जो होता है पूर्वकथित धर्म ध्यान होता है सूत्रमें 'च'के प्रभावसे धर्म ध्यान पूर्व विदके औरसमुच्चय कियागया है, अधिक लियागया है वा ग्रहण कियागया है जैसाकि सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ७४८से प्रगट है, "तातैं चशब्दकरि श्रुत केवलीकै प्रमत्तअप्रमत्त विषैं धर्म ध्यान होय है, ऐसा समुच्चय कीजिये ॥

इस प्रकार भिन्न अर्थ करनेका कारण यह है कि 'आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय' सूत्रके पश्चात् श्वेताम्बर सम्प्रदायमें 'उपशान्तक्षीणकषायोश्च' यह सूत्र हमारे यहांसे अधिक है अर्थात् आज्ञापायविपाक इत्यादि तथा 'शुक्लचाद्ये" इस सूत्रके मध्यमें "उपशान्तक्षीणकषायोश्च' हमारे यहांसे अधिक सूत्र है और इस 'उपशान्तक्षीणकषायोश्च' सूत्रका अर्थ 'आज्ञापायविपाकसंस्थानविचायधर्ममप्रमत्तसंयतस्य" सूत्रमें से 'धर्ममप्रमत्तसंयतस्य' वाक्यको अनुवृत्तिरूपमें लेकर यह अर्थ किया है कि उपशान्तकषाय तथा क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीवोंके भी धर्म ध्यान होता है ॥ इस समस्तका फल वा परिणाम यह हुआ कि श्वेताम्बरसम्प्रदायके अनुकूल धर्मध्यान, अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती, उपशान्तकषायगुणस्थानवर्ती तथा क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीवोंको होता है और पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान तथा एकत्ववितर्क शुक्लध्यान उपशान्तकषायगुणस्थानवर्ती, क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती जीवोंमें तथा श्रुतकेवलीके होते हैं संक्षेपतः-अप्रमत्तसंयमी, उपशान्तकषाय तथा क्षीणकषायवर्तियोंको धर्म ध्यान होता है। उपशान्तकषाय क्षीणकषायगुणस्थानवर्तियोंके तथा श्रुतकेवलीके पृथक्त्ववितर्क-एकत्ववितर्क शुक्लध्यान होते हैं ॥ (प्रश्न) इस सम्प्रदायमें पूर्वविद् वा श्रुत केवली किन किन गुणस्थानवर्ती जीव होते हैं ? ॥ हमारी सम्प्रदायके अनुसार धर्म ध्यान तथा आदिके दो पृथक्त्व वितर्क एकत्ववितर्क शुक्ल ध्यान और पूर्ण श्रुतज्ञान निम्नलिखित गुणस्थानोंमे होता है (क) तद्द अविरत देशविरत-प्रमत्त अप्रमत्तसंयतानां भवति(सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ ४५२) यह (धर्म्य ध्यान) चौथे अविरतसेअप्रमत्तक होताहै (ख) यह' (अर्थात् धर्म्यध्यान) 'अविरतसम्यग्दृष्टि-देशविरत प्रमत्तसंयत अर अप्रमत्तसंयतकै" होय है (जयचन्दवचनिका मुद्रित पृष्ठ ७४६] (ग) 'सो' (अर्थात् धर्म्य ध्यान) 'असंयत संयतासंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त संयत इन चारि गुणस्थानमें होय है । (अर्थप्रकाशिका अ०९सूत्र ३६) धर्म्यध्यान' मिथ्या दृष्टिके नहीं होय है चौथेसे सातवे गुणस्थान तक धर्म्य ध्यान होता है (सदासुखदासजी अनुवादित रत्नकर० पृष्ठ २१६) पूर्वविद्,श्रुतकेवली, पूर्वकवेत्ता परिपूर्ण श्रुतज्ञानी, पूर्व वेत्ता, द्वादशांगऔर अंग बाह्यके ज्ञाता एकार्थवाची हैं प्रमत्तअप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि भी पूर्वकेवेता होय हैं ' अर्थात् श्रुतकेवली होते हैं तिनकैं धर्म्य ध्यान भी होता है, जाते श्रेणीके चढनेके पहिले तो धर्म ध्यान है और श्रेणी चढे तब शुक्ल ध्यान होय है ॥ जयचन्दजी वचनिका मुद्रित पृष्ठ ७४८ तत्त्वार्थराजवार्तिक, पृष्ठ ३५४ मुद्रितकी १४वीं वार्तिकसे तथा तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ मुद्रित ५०३ पंक्ति ४से भी यह प्रकट होता है कि असंयत, संयत,प्रमत्तसंयत अप्रमत्त संयत पर्यन्त धर्म्य ध्यान होता है ॥

'श्रेणीके चढने पहले तो धर्म्य ध्यान है। अर श्रेणी चढै तब शुक्ल ध्यान होय है, ऐसा व्याख्यान है। [जयचन्दजीवचनिकापृष्ठ ७४८] आठवां अपूर्व करणगुणस्थान, नववां अनिवृत्तकरण, दशवा सूक्ष्मसाम्पराय, ग्यारहवा उपशांत कषाय गुणस्थानमें पृथक्त्व वितर्क शुक्लध्यान है और क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानमें एकत्ववितर्क (विचार रहित) शुक्लध्यान है, सयोगकेवली तेरहवां गुणस्थान में सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान और अयोगकेवली चौदहवां गुणस्थानमें व्युपरतक्रियानिवर्ति चौथा शुक्लध्यान है, (देखो चौबीसठाना ग्रन्थ) प्रथम कहचुके हैं कि प्रमत्तअप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि भी पूर्वकेवेता होय है अर्थात् श्रुतकेवली होते हे(जयचन्दजी वचनिका पृष्ठ७४८) उपर्युक्त दोनोंवाक्योंसे झलकता है कि प्रमत्त छठवा गुणस्थानसे क्षीणकषाय बारहवा गुणस्थान पर्यन्त श्रुतकेवली हो सकते हैं ॥

काययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादीनां सयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ [५] वेदानुवादेन–स्त्रीपुंवेदैर्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः अष्टौ नव चतुर्दश भागा वा देशोनाः सर्वलोको वा । सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः सम्यग्मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टीनां सासादनसम्यग्दृष्टीनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥

काययोगिनां ६।१ मिथ्यादृष्टि–आदीनां ६।१ सयोगकेवलि– = काययोगवाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवली
अन्तानाम् ६।१ च अयोगकेवलिनां ६।१ = पर्यंतनका तथा [= च] अयोगकेवलीयोंका
सामान्य–उक्तं १।१ स्पर्शनम् १।१ वेद–अनुवादेन–३।१ = स्पर्शन संक्षेपसे कहा हुआ (गुणस्थानवत्) स्पर्शन है। वेदकी अपेक्षाकरि
स्त्रीपुंवेदैः ३।१ मिथ्यादृष्टिभिः ३।१ लोकस्य ६।१ असंख्येय = स्त्री (और) पुरुष वेदी मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां
भागः १।१ स्पृष्टः १।१ वा चतुर्दश १।१ भागाः १।१ = भाग स्पर्शा जाता है अथवा [लोकत्रस नालके] चौदह राजू हैं
अष्टौ १।१ नव १।१ देशोनाः १।१ [स्पृष्टाः १।१] वा सर्वलोकः १।१ = (सो] कुछ घाटि आठ कुछहीन नौ राजू (स्पर्शे जाते) हैं, वा समस्तलोक
(स्पृष्टः १।१) सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ३।१ लोकस्य ६।१ = (स्पर्शा जाता) है। सासादन सम्यग्दर्शनवालोंकरि लोकका
असंख्येयभागः १।१(स्पृष्टाः) वा चतुर्दश १।१ भागाः १ = असंख्यातवां अंश स्पर्शा जाता है वा (लोकत्रस नाड़ीके) चौदह राजू हैं
अष्टौ १।१ नव १।१ देशोनाः १।१ (स्पृष्टाः १) = (सो) कुछ घाटि आठ राजू कुछ हीन नौराजू (छुए जाते) हैं
सम्यङ्मिथ्यादृष्टि+आदि– = (स्त्री पुरुषवेदी) मिश्रगुणस्थानवर्तीनसे
अनिवृत्तिवादर+अन्तानां ६।१ = अनिवृत्तिवादर (नववां गुणस्थानके प्रथम तीन वेद भाग वालों) तकका
सामान्य+उक्तं १।१ स्पर्शनम् १।१ = संक्षेप [प्रकरण] में [पहिले] कथित [गुणस्थान सदृश] स्पर्शन है
देखो पृष्ठ १२६, ११५ से १२० तक।
नपुंसकवेदेषु ७।१ मिथ्यादृष्टीनां ६।१ च, सासादन– = नपुंसक वेदविषैं मिथ्यादृष्टि तथा [= च] सासादन
सम्यग्दृष्टीनां ६।१ सामान्य+उक्तं १।१ स्पर्शनम् १।१ = सम्यग्दर्शनवालोंका संक्षेप (संबन्ध) में [पहिले] कहा हुआ (गुणस्थानवत्) स्पर्शन है। देखो इसी प्रतिका पृष्ठ १३२,१३३,१३४।

क्योंकि प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि भी श्रुतकेवली वा पूर्ववेत्ता होते हैं, उन (श्रुतकेवली)के प्रमत्त अप्रमत्त विषै धर्मध्यान भी होता है। चशब्द करि ऐसा समुच्चय कीजिये। [जयचन्द्रजीवचनिका सूत्र३७]

तत्र०व्याख्यानत० =तहां(सूत्रके वा गूढ वाक्यके)व्याख्यानसे,विवरणसे,वर्णनसे, व्याख्यासे,भाष्य करनेसे अथवा टीका करनेसे

विशेष-प्रतिपत्तिः[1] =विशेष वा ज्योंके त्यों वा यथार्थ तात्पर्यकी प्रवृत्ति (=प्रतिपत्ति) वा प्राप्ति (=प्रतिपत्ति) होती है॥

(१)"धर्म्यमप्रमत्तस्येति चेन्न पूर्वेषां विनिवृत्तिप्रसंगात्॥' राजवार्तिक १४,"धर्म्यमप्रमत्तस्येति चेन्न पूर्वेषां निवृत्तिप्रसंगात् श्लोकवार्तिक सूत्र३६से

धर्म्यम् अप्रमत्तस्य =धर्म्यध्यान अप्रमत्त सातवां गुणस्थानवर्तीके होता है।

इति०चेत्०न० =ऐसा प्रश्न होनेपर (=चेत्)वा संदेह होनेपर (=चेत्) (उत्तर है कि धर्म्यध्यान अप्रमत्तमें ही)नहीं[होता]

पूर्वेषाम् विनिवृत्ति-प्रसंगात् =क्योंकि पहिले (कहे हुए चौथे, पांचवें छठे गुणस्थानवर्ति) निके निवृत्ति का प्रसंग आता है भावार्थ ऐसे है कि असंयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवर्ती, संयमासंयमी सम्यग्दृष्टि पांचवां गुणस्थानवर्ती, प्रमत्तसंयमी छठवां गुणस्थान धारकके भी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे धर्मध्यान होता है,यदि धर्मध्यान अप्रमत्तसंयमी सातवे गुणस्थानवालेके ही कहा जाय तो तिन चौथा गुणस्थानवालोंसे छठवां गुणस्थानवर्तियोंके निषेध होजाता है॥ इसलिये धर्मध्यान असंयत चौथे गुणस्थानसे आठवां गुणस्थानमें उपशम वा क्षपक श्रेणी चढनेसे पहिले हुए है वा होता है। उपशम श्रेणी वा क्षपकश्रेणीके प्रारम्भमें शुक्लध्यान होता है और धर्मध्यान नहीं होताहै॥

"उपशान्तक्षीणकषाययोश्चेति चेन्न शुक्लाभाव प्रसंगात्॥' राजवार्तिक॥१५॥'उपशान्तक्षीणकषाययोश्चेति चेन्न शुक्लाभाव प्रसंगात् श्लो०॥

उपशान्त क्षीणकषाययोः च० =उपशान्तकषाय ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती, और क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानवर्तियोंके (धर्मध्यान) होता है [और असंयत सम्यग्दृष्टिके संयतासंयतके, प्रमत्त संयतके अप्रमत्तसंयतके, धर्म्यध्यान नहीं होता है]

इति०चेत्०न० =ऐसा प्रश्न (=चेत्) होनेपर (उत्तर है कि) यह (धर्म्यध्यान=तत् उपशान्त और क्षीणकषाय वालोंके)

न०शुक्ल-अभाव-प्रसंगात् =नहीं होता है,क्योंकि शुक्लध्यानके अभावका प्रसंग आता है और उपशान्त कषाय ग्यारहवांगुणस्थानवर्तीके तथा क्षीणकषाय बारहवांगुणस्थान वालोंके शुक्लध्यानका होना इष्ट है॥

'तदुभयं तत्रेति चेन्न, पूर्वस्यानिष्टत्वात्' तत्त्वार्थराजवार्तिक, वार्तिक ॥१६॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक सूत्र३६मुद्रित पृष्ठ ५०४

तत्र =तहां (=तत्र) अर्थात् उपशान्तकषाय तथा क्षीणकषाय गुणस्थानवर्तियोंके

तत्-उभयम् इति०चेत्० =ये दोनों (धर्म्यध्यान तथा शुक्लध्यान) होते हैं ऐसा संदेह (=चेत्) होने पर

न =(उत्तर है) कि (उपशान्त तथा क्षीण कषायमें धर्म्यध्यान और शुक्ल ध्यान दोनों) नहीं होते हैं॥

पूर्वस्य अनिष्टत्वात् =क्योंकि पूर्व (अर्थात् धर्म्यध्यान) का (उपशान्त तथा क्षीणकषायमें) होना अनिष्ट है॥ धर्म्यध्यान उपशम वा क्षपक श्रेणीके चढनेसे पहिले पहिले होता है। ऐसा ऋषिप्रणीत शास्त्रोंमें भी देखा गया है।

इति श्रेण्यारोहणात्प्राग्धर्म्यं श्रेण्योः शुक्ले इति व्याख्यायते॥अवशिष्टे कस्य भवत इत्यत्रोच्यते-

परे केवलिनः ॥ ३८ ॥

(१) इति* =इस प्रकारसे (अर्थात् पूर्वोक्त-वैयाकरणों तथा शास्त्रकारों द्वारा दी हुई परिभाषासे)

(२) श्रेणी-आरोहणात्''' प्राग् *धर्म्यम्''' =(उपशम वा क्षपक) श्रेणीके चढ़नेसे पहिले धर्म्य (ध्यान) होता है ॥

श्रेण्योः''शुक्ले''' =श्रेणी चढ़नेपर दो शुक्ल ध्यान होते हैं अर्थात् आठवां अपूर्वकरण गुणस्थानमें श्रेणीके प्रारम्भसे उपशान्तकषाय ग्यारहवांगुणस्थानपर्यन्त -तो पृथक्त्ववितर्क(विचार) शुक्ल ध्यान होता है और क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानमें एकत्ववितर्क(अवीचार)दूसरा शुक्लध्यानहै॥

इति*व्याख्यायतेT। अवशिष्टे''' =ऐसे सूत्रकी व्याख्या की गई है। बचे हुये दो [शुक्ल ध्यान]

कस्य' भवतःTइति*अत्र * उच्यते T ॥ =किसके होते हैं ? ऐसा (प्रश्न होनेपर) यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहा जाता है कि

परे केवलिनः ॥ ३८ ॥=परे (द्वे शुक्ले ध्याने) केवलिनः भवतः॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः—परे''' शुक्ले''' द्वे''' ध्याने''' =(इस सूत्रका पाठ औरअर्थ दोनों समाजोंमें एक है)अगले वा उत्तरके दो शुक्ल ध्यान

केवलिनः' भवतः T ॥ केवलीके होते हैंअर्थात् सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति तीसरा शुक्लध्यान सयोगकेवली तेरहवें गुण-स्थानवर्तीके होता है और व्युपरतिक्रियानिवर्ति चौथा शुक्ल ध्यान अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानवर्तीके होता है। इनमेंसे कोई भी ध्यान छद्मस्थके नहीं होता है

(१) इति—यह परिभाषा पूर्णरूपसे इस प्रकार है 'व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्तिर्न हि संदेहादलक्षणम्' (श्रीशचन्द्र अनुवादितअष्टा०पृष्ठ२से)
व्याख्यानतः* विशेष-प्रतिपत्तिः = (सूत्र वा गूढ वाक्यकी)व्याख्या करनेसे अथवा भाष्य करनेसे, यथार्थ अर्थ वा ठीकर तात्पर्यकी प्राप्तिहोती है
न हिसंदेहात् अलक्षणम् =क्योंकि (=हि) सूत्र वा गूढ वाक्यसे अलक्षणको प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् किसी नियममे कोई शब्द संदेहात्मक हो तो भी वह [नियम] किसी निश्चित वा परिमित वस्तुका बोधक होता है न किअपरमित वा निरर्थकका।
[२] "बहुरि जब श्रेणी चढै, तब अष्टम अपूर्व करण गुणस्थान हो है। तहां मोहके अतिमंद उदय होनेतैं इच्छा भी अव्यक्त होय जाय है ॥तहां शुक्लध्यानका पहिला भेद प्रवर्ते है। इच्छाके अव्यक्त होनेतैं कषायका मल अनुभवमें रहै नाहीं उज्ज्वल होय याहीतैं याकानाम शुक्लहैकह्यो(जय०७५८)

प्रक्षीणसकलज्ञानावरणस्य केवलिन सयोगस्यायोगस्य च परे उत्तरे शुक्लध्याने भवत यथासख्यम् ॥ तद्विकल्पप्रतिपादनार्थमिदमुच्यते—

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥३९॥

पृथक्त्ववितर्कमेकत्ववितर्कं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति व्युपरतक्रियानिवर्ति चेति चतुर्विध शुक्लध्यान

वृत्त्यनुवाद -प्रक्षीण-सकल- ज्ञानावरणस्य॑'केवलिन ॑'सयोगस्य॑'अयोगस्य॑' च॰ परे॑'''उत्तरे॑'''शुक्लध्याने॑'''यथासख्यम्॰ =पूर्णरूपसे (=प्र)वा प्रकर्षतासे (=प्र) नाश हुये हैं (=क्षीण) समस्त =ज्ञानावरणीय कर्म जिनके ऐसे सयोग तथा (=च)अयोग केवली (भगवान्)के =अगले दो(=परे)वा अग्रिम दो(=उत्तरे)शुक्लध्यानअनुक्रमसे हैं अर्थात् तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति सयोगकेवलीके तथा व्युपरतिक्रियानिवर्ति अयोगकेवलीके भवत T,तद्-विकल्प-प्रतिपादन-अर्थम्॑'''इदम्॑'''उच्यते T।=होते हैं।उस(शुक्लध्यान)के भेद कहनेकेलिये यह(अग्रिमसूत्रमें)कहा जाता हैकि

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥ ३९ ॥

=पृथक्त्वैकत्ववितर्क सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-व्युपरतक्रियानिवर्तीनि चतुर्विधं शुक्लध्यानम्॥३९॥

सूत्रार्थ -पृथक्त्ववितर्क ॑'''एकत्ववितर्क ॑'''सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति॑'''=पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरत-क्रियानिवर्ति॑'''च॰चतुर्विधम्॑'''शुक्लध्यानम्॑'''भवतिT =और (=च) व्युपरतिक्रियानिवर्ति, चार प्रकार शुक्लध्यान है ॥

वृत्त्यनुवाद॰—पृथक्त्ववितर्क ॑'''एकत्ववितर्क ॑'''सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति=पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रियानिवर्ति॑ ''च॰इति॰चतुर्विधम्॑'''शुक्लध्यानम्॑''' =और (=च) व्युपरतक्रियानिवर्ति ऐसे चार प्रकार शुक्लध्यान है।

(१) दिगम्बर आम्नायमें कहीं कहीं निवर्तीनि के स्थानमें 'निवर्त्तीनि' है अचोरहाभ्यामद्वेवा अष्टाध्यायी८ ४ ४६ सूत्रसे दोनों शब्द ठीक हैं॥
(२) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणीमें निवर्तीनिके स्थानमें 'निवृत्तीनि' ऐसा पाठ है। शेषपाठ एकहै निवर्तीनि और निवृत्तीनि दोनों नपुंसकलिंग बहुवचनमें हैं और दोनोंका अर्थभी एक है। इसलिये दोनों सम्प्रदायमें अर्थभेद, कुछभी नहीं है, और यदि 'ताम्रपत्र पुस्तकका (जो दिगम्बर आम्नायकी है)पाठ "निवृत्तीनि" को ग्रहण करे तो दोनों सम्प्रदायोंका पाठभी एक होजाता ॥

वक्ष्यमाणलक्षणमुपेत्य सर्वेषामन्वर्थमवसेयम् ॥ तस्यालम्बनविशेषनिर्धारणार्थमाह—

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥ ४० ॥

वक्ष्यमाण-लक्षणं२।।।उपेत्य÷ =आगे कहेजानेवाले स्वरूपोंको प्राप्तकर[अर्थात् कहेजानेवाले स्वरूपोंकी अपेक्षाकर]

सर्वेषाम्६३'''अन्वर्थम्१।।।अवसेयम्१।।।, =सब[शुक्लध्यानों]के सार्थकपना जानना चाहिये अर्थात् जैसा जैसा इन शुक्लध्यानोंकानाम है वैसा वैसाही इनका अर्थ है॥

तस्य६।।।आलम्बन-विशेष-निर्धारण-अर्थम्१।।।आह=तिस(शुक्लध्यान)के अवलम्बन वा आश्रयकी भिन्नता निर्णयके लिये कहते हैं कि

(१)त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम्=(पृथक्त्वैकत्ववितर्क-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानि-वर्तीनि)त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् (यथाक्रमम् भवति)

=पृथक्त्ववितर्कम्-एकत्ववितर्कम्-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-व्युपरतक्रियानिवर्ति च त्रियोग-एकयोग-काययोग-अयोगानाम्-यथाक्रमम् भवति ॥४०॥

सूत्रार्थः—पृथक्त्ववितर्क१'''एकत्ववितर्क१''' =पृथक्त्ववितर्क श्वेतध्यान, एकत्ववितर्कश्वेतध्यान,

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति१'''च*व्युपरतक्रियानिवर्ति१।।। =सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति श्वेतध्यान, और (=च) व्युपरतक्रियानिवर्ति श्वेतध्यान

त्रि—योगस्य६।एकयोगस्य६। =तीन योगवालेकें, एकयोग प्रवर्तने वालेकें अर्थात् तीनों मन, वचन, कायकेयोगोंमेंसे कोई एक योग प्रवर्तनेवालेकें

काययोगस्य६।अयोगस्य६।च* =काययोग प्रवर्तने वालेकें और योगरहित (केवली भगवान्)कें

यथाक्रमम्* भवति। =क्रमसे अर्थात् पहिलेको पहिला, दूसरेको दूसरा,तीसरेको तीसरा, चौथेको चौथा होताहै

(१)इस सूत्रमें ३९वां सूत्र समस्त की तथा २१ वां सूत्रसे यथाक्रमम् वाक्यकी अनुवृत्ति आती है। हमारी सम्प्रदायमें सर्वत्र एकसा पाठ है कहीं कहीं पर'‘योगानाम्'’के स्थानमें (अंतमें) 'योगानां' है वहभी कातंत्रमालारूपव्याकरणसे शुद्ध है(देखो अध्याय १ पृष्ठ६) [२]श्वेताम्बर सम्प्रदायके समाष्यतत्वार्थधिगमसूत्रमे,तत् शब्द इस सूत्रसे अधिक है। और 'योग'शब्द नहीं है शेष पाठ एक है, अर्थात् सूत्र ऐसे है कि तत्त्र्येककाययोगायोगानाम् = तत्-त्रि-एक-काययोग-अयोगानाम्-" इसमें 'एकयोग'के स्थानमें "एक" है, इस तत् शब्दके अधिक होनेपर भी तथा योग शब्दके न होनेपर अर्थ सर्वत्र एक है तत्शब्दके आदिमें लानेसे समस्त ३९वां सूत्रकी अनुवृत्ति लानेकी अवश्यक्ता नहीं रहती है । इन दोनों अर्थात् 'तत्-योग' शब्दोंके न होनेसे सूत्र लघुतररूपमें होजाताहै अर्थात्सूत्रऐसा होजाता है कि "त्र्येककाययोगायोगानाम्" ॥

योगशब्दो व्याख्यातार्थः कायवाङ्मनःकर्म योग इत्यत्र ॥ उक्तैश्चतुर्भिः शुक्लध्यानविकल्पैस्त्रियोगादीनां चतुर्णां यथासंख्येनाभिसम्बन्धो वेदितव्यः॥ त्रियोगस्य पृथक्त्ववितर्कं, त्रिषु योगेष्वेकयोगस्यैकत्ववितर्कं काययोगस्य सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, अयोगस्यव्युपरतक्रियानिवर्तीति ॥ तत्राद्ययोर्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिद यते—

एकाश्रये सवितर्कविचारे पूर्वे ॥ ४१ ॥

उक्त शुक्लध्यानके चारों भेदोंमेंसे पृथक्त्ववितर्क नामका प्रथम शुक्लध्यान तो मनवचनकाय इन तीनों योगोंके धारकके होता है । दूसरा एकत्ववितर्क नामका शुक्लध्यान तीनोंमें से किसी एक योग वालेके होता है। तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नामका शुक्लध्यान काययोग वालेके ही होता है और चौथा व्युपरतक्रियानिवर्ति नामका शुक्लध्यान अयोगकेवलीके होताहै॥

अन्वयानुवाद —काय-वाङ्-मन कर्म "योग "इति॰अत्र॰=काय, वचन, मनकी क्रिया है सो योग है । ऐसे इस स्थानमें(=अत्र अर्थात्)

योगशब्द "व्याख्यात-अर्थ ",	=(छठे अध्यायके "कायवाङ्मन कर्मयोग" सूत्रमें)योग शब्दका अर्थ कहागया
उक्तै "चतुर्भि "शुक्लध्यानविकल्पै "त्रियोग-आदीनां"	=(पूर्व) कहेहुये चार शुक्लध्यानके भेदोंसे तीनयोग,एकयोग, काययोग, अयोग
चतुर्णां "यथासंख्येन" "अभिसम्बन्ध "वेदितव्य ",	=(इन) चारोंका अनुक्रमसे सम्बन्ध वा लगाउ जानना चाहिये [तब]
त्रियोगस्य "पृथक्त्ववितर्कं" ,त्रिषु योगेषु"	=तीन योगवालेके पृथक्त्ववितर्क (श्वेतध्यान) होता है । तीन योगोंमेंसे
एकयोगस्य "एकत्ववितर्कम्"	=किसी एकयोग वालेके एकत्ववितर्क (श्वेतध्यान) होता है।
काययोगस्य "सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति",	=काय योगवाले (सयोगकेवली)के सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति (शुक्लध्यान)होता है।
अयोगस्य "व्युपरतक्रिया-निवर्ति "इति॰ । तत्र॰	=अयोगवाले(केवली)के व्युपरतक्रियानिवर्ति ऐसे [चौथा शुक्लध्यान] होता है तहां
आद्ययो "विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्" "इदम्" "उच्यते	=आदिके दो (श्वेतध्यानके) विशेष कथनके लिये यह कहा जाता है कि

एकाश्रये सवितर्कविचारे पूर्वे=एकाश्रये सवितर्कविचारेपूर्वे(पृथक्त्वैकत्ववितर्केशुक्लेध्याने)

एक आश्रयो ययोस्ते एकाश्रये। उभे अपि परिप्राप्तश्रुतज्ञाननिष्ठेनारभ्येते इत्यर्थ ॥

सूत्रार्थः—एक—आश्रये ... =एक है आश्रय जिन (दोनों) को ते वा एक आसरे में रहनेवाले वा आश्रयीभूत

पूर्वे ... पृथक्त्व—एकत्ववितर्के ... स—वितर्क— =पहिले दो पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्क शुक्लध्यान, वितर्क सहित

विचारे ... प्रवर्तेते । =तथा विचार सहित प्रवर्ते हैं, अर्थात् अकेले परिपूर्ण श्रुतज्ञानी वा श्रुतकेवलीके आश्रयीभूत पहिले दो पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्क शुक्लध्यान वितर्क तथा विचार सहित प्रवर्ते हैं भावार्थ पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्क शुक्लध्यानोंको श्रुतकेवलीही आरम्भ करसक्ता है और वितर्क, विचार करि सहित हैं (४२वां सूत्र अपवाद है)

वृत्त्यनुवादः एकः ... आश्रयः ... ययोः ... ते ... एकाश्रये ... =एक है आश्रय जिन दोनोंका (=ययोः) ते एकाश्रय हैं,

उभे ... अपि* परिप्राप्त— =दोनों (शुक्लध्यान पृथक्त्व वितर्क तथा एकत्ववितर्क) भी [=अपि] सम्पूर्ण (परिप्राप्त)

श्रुतज्ञान—निष्ठेन ... आरभ्येते ... इति* अर्थः ... =श्रुतज्ञानमें तत्पर द्वारा (=निष्ठेन) आरम्भे जाते हैं अर्थात् इनदोनों शुक्लध्यानोंको (परिपूर्ण श्रुतज्ञानी ही आरम्भ कर सकता है) ऐसा तात्पर्य हुआ ॥

दिगम्बर आम्नायके ग्रन्थोंमें सर्वत्र एकसा पाठ है कहीं कहीं पर 'विचारे' शब्द है और कहीं २ पर 'वीचारे' शब्द है दोनों ठीक हैं॥ कहीं कहीं पर पूर्वे शब्द है और कहीं२पर पूर्व्वे शब्द है "अचोरहाभ्यां द्वेवा" अष्टाध्यायी ८-४-४६ सूत्रसे दोनों रूप ठीक और शुद्ध हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणीतत्वार्थटीकामें "एकाश्रये सवितर्के पूर्वे" पाठ है और दोनों सम्प्रदायोंमें इससूत्रके पश्चात् "अविचारं द्वितीयम्" यह सूत्र है जिसका अर्थ 'दूसरा एकत्ववितर्क ध्यानविचार रहित है होता है और एकाश्रयेसवितर्के पूर्वेका अर्थ एकके आश्रयीभूत पहिले दो (शुक्ल ध्यान) वितर्क सहित होते है ऐसा है, दोनों सम्प्रदायोंमें प्रथम सूत्रमें पाठ भेद होनेपर भी दोनों सूत्रोंका भाव और एकसाथ पढ़कर लिया जाय तो एक ही है क्योंकि दोनों सूत्रोंको मिलाकर अर्थ ऐसा है कि-एकहीके आश्रयीभूत प्रथम शुक्लध्यान वितर्क और विचारसहित है, द्वितीय शुक्लध्यान वितर्क सहित है पर विचार रहितहै हमारे यहां यह अर्थ ऐसे निकाला है कि पहिले दो वितर्कसहित और विचार सहित हैं, द्वितीय शुक्लध्यान विचार रहित है अर्थात् केवलवितर्क सहित है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इस अर्थको, इसप्रकार निकाला है कि पहिले दो वितर्क सहित हैं, परन्तु दूसरा विचार रहित है यह सूत्र इस बातका ज्ञापक है कि प्रथम ध्यान विचार सहित है अन्यथा 'अविचारं द्वितीयम्' सूत्र व्यर्थ हुआ जाता है जब दोनों सम्प्रदायमें दोनों २ सूत्रोंका अर्थ एक ही आता है और सभाष्यतत्वार्थ-धिगमसूत्रके युगलसूत्रोंमें तीन अक्षरका लाभ है तो क्या यह लघु पाठवाला सूत्र उमास्वामीका पाठ होना चाहिये ? अथवा दीर्घ पाठवाला

वितर्कश्च विचारश्च वितर्कविचारौ सह वितर्कविचाराभ्यां वर्तेते इति सवितर्कविचारे ॥ पूर्वे पृथक्त्वैकत्ववितर्के इत्यर्थः ॥ तत्र यथासंख्यप्रयो(सं)गेऽनिष्टनिवृत्त्यर्थमिदमुच्यते-

अविचारं द्वितीयम् ॥ ४२ ॥

वितर्क ‌ः।च॰विचार ‌ः।च॰ =बहुरि (=च) वितर्क तथा (=च) विचार मिलकर (वा समासरूपमें)
वितर्कविचारौ‌ः।सह॰वितर्कविचाराभ्यां‌ः।वर्तेते ।=वितर्कविचारौ होजाते हैं, वितर्क तथा विचारकरि सहित (=सह) (ये दोनों) प्रवर्तते हैं,
इति॰सवितर्कविचारे‌ः।,पूर्वे‌ः। =एस। सवितर्क विचार है, पूर्वे अथवा पहिलेके दो हैं सो(चार शुक्लध्यानोंमेंसे)
पृथक्त्व-एकत्ववितर्के‌ः।इति॰अर्थः।, =पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क हैं, ऐसा तात्पर्य [पूर्वे शब्दका] हुआ,
तत्र॰ =तहां (सवितर्क तथा सविचारका पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्कके साथ)
यथासंख्य-प्र [सं] योगे‌ः।अनिष्ट- =क्रमानुसार अभिसम्बन्धमें (=प्रयोगे-संयोगे) अनिष्टताके
निवृत्ति-अर्थम्‌ः।इदम्‌ः।उच्यते । =निषेधके लिये यह (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है अर्थात् सवितर्कका सम्बन्ध पृथक्त्ववितर्कके साथ हुआ जाता है और सविचारका सम्बन्ध एकत्ववितर्कके साथ हुआ जाता है, इस अनिष्ट सम्बन्धके रोकनेके लिये अग्रिम सूत्र कहते हैं यहां भावार्थ ऐसा जानना कि पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान वितर्क सहित है, और एकत्ववितर्क शुक्लध्यान विचार सहित है ऐसा यथासंख्य सम्बन्ध निवारणके लिये उत्तर सूत्रमें कहते हैंकि

अविचार द्वितीयम=अविचारं(सवितर्क)द्वितीयम् एकत्ववितर्कं शुक्लध्यानं प्रवर्तते ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थ -अविचारम्‌ः। =विचाररहितअर्थातअर्थ,वचन योगका पलटाउ,वा परिवर्तनसे वर्जित मणिके दीपकसमअचल
सवितर्कम्‌ः।द्वितीयम्‌ः।एकत्ववितर्कम्‌ः। =और वितर्क सहित दूसरा एकत्ववितर्क
शुक्लम्‌ः।ध्यानम्‌ः।प्रवर्तते । =शुक्लध्यान प्रवर्तता है, ४१-४२ सूत्रोंका भावार्थ ऐसा है कि जिसमें वितर्क और विचार दोनोंहो वह पृथक्त्ववितर्क प्रथम शुक्लध्यान है,विचार[=पलटाउसे]रहित और वितर्क सहित दूसरा एकत्ववितर्क मणिके दीपकके समान अचल दूसरा शुक्लध्यान है और इन दोनों शुक्लध्यानोंको परिपूर्ण श्रुतज्ञानीही आरम्भ करसक्ता है ॥

पूर्वयोर्यत् द्वितीयं तदविचारं प्रत्येतव्यम् ॥ एतदुक्तं भवति, आद्यं सवितर्कं सविचारं च भवति द्वितीयं सवितर्कमविचारं चेति॥अथ वितर्कविचारयोः कः प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते

वितर्कः श्रुतम् ॥ ४३ ॥

विशेषेण तर्कणमूहनं वितर्कः श्रुतज्ञानमित्यर्थः ॥ अथ को विचारः ?

विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ॥ ४४ ॥

वृत्त्यनुवादः—पूर्वयोः'''यत्''' =पहिलेके दो (पृथक्त्ववितर्क तथा एकत्ववितर्क शुक्लध्यानों)मेंसे जो

द्वितीयम्'''तद्—अविचारम्''' =दूसरा (शुक्लध्यान) है उस (शुक्लध्यान)के अविचार अर्थात् परिवर्तनका निषेध

प्रत्येतव्यम्''',एतद्'''उक्तम्'''भवतिT =प्रतीति करना वा जानना चाहिये, (तब) यह कथन (अर्थात् तात्पर्य) होता है कि

आद्यम्'''सवितर्कम्'''सविचारम्'''च*भवतिT=आदिका (पृथक्त्ववितर्क श्वेतध्यान) वितर्क और [=च] विचार सहित होता है,

द्वितीयम्'''सवितर्कम्'''अविचारम्'''च*इति*=दूसरा [एकत्ववितर्क शुक्लध्यान] वितर्क सहित और पलटाउ वा परिभ्रमण वा संक्रान्ति रहित मणिके दीपकके समान अचल (अर्थात् दूर भया है अर्थ—वचन—योगका पलटना जहां और मणिके दीपके सदृश निश्चलता लिये हुये) ऐसा है,

अथ*वितर्क-विचारयोः'''कः'''प्रतिविशेषः'''इति*अत्र*उच्यते=अब वितर्क और विचार दोनोंमें क्या विशेष है ऐसे(प्रश्नपर) यहां कहाजाता हैकि

वितर्कः श्रुतम् ॥४३ ॥=वितर्कःश्रुतम् (भवति)॥दोनोंसमाजोंमें दोनोंसूत्रोंका पाठ अर्थ एकसाहै

सूत्रार्थः—वितर्कः'''श्रुतम्''' भवति T =विशेष प्रकारसे तर्क सो वितर्क है वही श्रुतज्ञान है अर्थात् वितर्कनाम श्रुतज्ञानका है

विशेषेण'''[१] तर्कणम्'''ऊहनम्'''वितर्कः'''=(वृत्ति वा भाष्यका अनुवाद) विशेषकरि अथवा स्पष्टतासे तर्कण है ऊहन है सो वितर्क है,

श्रुतज्ञानम्'''इति*अर्थः'''अथ*कः'''विचारः''' =(वही) श्रुतज्ञान है ऐसा अर्थ हुआ, अब विचार अथवा वीचार क्या है ?

विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः=अर्थसंक्रान्तिः·व्यञ्जनसंक्रान्तिः योगसंक्रान्तिःविचारःउच्यते।

---

(१)"इहां श्रुतज्ञान शब्द श्रवण पूर्वक ज्ञानका ग्रहण है। अर मतिज्ञानका भेदचिंताका नामभी तर्क है,ताका ग्रहणनाही है"सर्वार्थसिद्धिवचनिकासूत्र४३

अर्थो ध्येय द्रव्य पर्यायो वा। व्यञ्जनं वचनम्। योग कायवाङ्मन कर्मलक्षण । सक्रान्तिः परिवतनम् ॥ द्रव्य विहाय पर्यायमुपैति पर्याय त्यक्त्वा द्रव्यमित्यर्थसंक्रान्ति ॥ एकं श्रुत-वचनमुपादाय वचनान्तरमालम्बते तदपि विहायान्यदिति व्यजनसक्रान्ति ॥काययोग त्यक्त्वा

अर्थ-सक्रान्ति, =(ध्यानमें ध्येय) पदार्थको छोड़कर उसकी पर्यायको ध्यावना तथा पर्यायको छोड़कर द्रव्यको ध्यावना सो अर्थसक्रान्ति अथवा अर्थपरिवर्तन है,

व्यञ्जन-सक्रान्ति, =श्रुतके एकवचन वा शब्दको अवलम्बन करके अपका अवलम्बन करना और उसको छोड़कर दूसरे श्रुतके वचनको ग्रहणकरना सो व्यञ्जनपरिभ्रमण अर्थात् व्यजनसंक्राति है,

योग-सक्राति, =काय योगको छाड़कर मनोयोग वा वाग्योगको अवलम्बन करना और मनोयोग वा वाग्योगको छोड़कर काययोगको ग्रहण करना सो योगोंकी पलटन वा सक्रमण है, (इस प्रकारके पदार्थ श्रुतवचन -मनवचनकायकी क्रियाओंका परिवर्तन वा पलटना है)

विचार भवति । =सो विचार वा वीचार है

वृत्त्यनुवाद अर्थ ध्येय द्रव्यम् पर्याय वा, =ध्यानकरने योग्य (=ध्येय) द्रव्य वा पर्याय है सो अर्थ है,

व्यञ्जनम् वचनम्, काय- =व्यञ्जन है सो [श्रुतका] वचन वा शब्द है, काय

वाग्-मन कर्म-लक्षण योग, सक्रान्ति =वचनमनकी क्रिया स्वरूप [=लक्षण] है सो योग है । सक्रान्ति पलटना

परिवर्तनम्, द्रव्यम् विहाय-पर्यायम् उपैति । =परिवर्तन वा सक्रमण है, द्रव्यको छोड़कर पर्यायको प्राप्तकरता है,

पर्याय त्यक्त्वा-द्रव्यम् इति अर्थ-सक्रान्ति =पर्यायको छोड़कर द्रव्यको [प्राप्त करता है] ऐसा अर्थसक्रान्ति है,

एकम् श्रुतवचनम् उपादाय-वचनान्तरम् =एक श्रुत वचनको ग्रहण कर ["फिरताकू छोड़"]दूसरे वचनको

आलम्बते । तद् अपि विहाय- =अवलम्बन करताहै, उस(दूसरे ग्रहणकियेहुये श्रुतवचन' को भी (=अपि) छोड़कर

अन्यत् इति व्यञ्जन- =अन्य (श्रुत वचन) को (अवलम्बन करता है) इस प्रकार व्यञ्जन

संक्रान्ति, काययोगम् त्यक्त्वा- =सक्रान्ति (=श्रुत वचनकी पलटना) है, काययोगको परित्यागकर

योगान्तरं गृह्णाति योगान्तरं त्यक्त्वा काययोगमिति योगसंक्रान्तिः ॥ एवं परिवर्तनं विचार इत्युच्यते ॥ संक्रान्तौ सत्यां कथं ध्यानमिति चेत्–ध्यानसन्तानमपि ध्यानमुच्यते इति न दोषः ॥ तदेतत्सामान्यविशेषनिर्दिष्टं चतुर्विधं धर्म्यं शुक्लं च पूर्वोदितगुप्त्यादि-बहुप्रकारोपायं संसारनिवृत्तये मुनिर्ध्यातुमर्हति कृतपरिकर्मा ॥

योगान्तरम्[२/१]'गृह्णातिT,योगान्तरम्[२/१]'''	=अन्य(मनो अथवा वाग्) योगको ग्रहण करता है,(अन्य मनो अथवा वाग्)योगको
त्यक्त्वा÷काय–योगम्[२/१]'इति*योग–संक्रान्तिः[१/१]'',	=छोड़कर काययोगको(ग्रहण करता हैगृह्णाति)ऐसे योगोंका संक्रमण वा योगसंक्रान्तिहै
एवम्*परिवर्तनम्[१/१]'''विचारः[१/१]'	=ऐसे(पूर्वमें विशेषरूपसे कहा हुआ) संक्रमण है वा संक्रान्ति है सो विचार
इति*उच्यते T संक्रान्तौ[७/१]''सत्यां[७/१]''	=ऐसा वर्णित वा भाषित है। संक्रमण वा परिवर्तन होनेपर (=सत्यां)
कथम्*ध्यानम्[१/१]'''इति*चेत्*	=कैसा ध्यान है (अर्थात् ध्यान तो एकाग्र कहा है) ऐसा संदेह वा संशय[=चेत्]होनेपर
ध्यान–सन्तानम्[१/१]'''अपि*ध्यानम्[१/१]'''उच्यते T	=(उत्तर है कि) ध्यानकी सन्तान भी ध्यान कहलाती है
इति* न* दोषः[१/१]।	=इस प्रकार [संक्रान्ति होने पर भी ध्यान कहनेमें] दोष नहीं अर्थात् ऐसा प्रश्न होनेपर कि संक्रमण वा पलटाउ वा परिवर्तन होते संते कैसे ध्यान हो सक्ता है क्योंकि २७वां सूत्रमें कहा है कि एकाग्र चिन्ताका निरोध सो ध्यान है उत्तरमें कहते हैं कि एकको अवलम्बन एकवार ठहरा हुआ, पश्चात् दूसरेको ग्रहण कर तहां ठहरा हुआ। ध्यान तौ ठहरनेको कहते है, यहां प्रथम बार ठहराव हुआ पश्चात् द्वितीयवार ठहराव हुआ इस प्रकार ध्यानकी सन्तान है,सो भी ध्यान ही है ॥
तद्[१/१]'''एतद्[१/१]'''सामान्य–विशेष–निर्दिष्टम्[१/१]'''	=सो [=तद्] यह [=एतद्] संक्षेपरूप तथा प्रभेद रूप कहा हुआ
चतुर्विधम्[१/१]'''धर्म्यम्[१/१]'''शुक्लम्[१/१]'''च* पूर्व–	=चार प्रकार धर्म्यध्यान और [=च] (चार प्रकार) शुक्ल ध्यान और पहिले
उदित–गुप्ति–आदि–बहु–प्रकार–उपायम्[२/१]'''	=कहे हुये (=उदित) गुप्ति आदि (तिन स्वरूप जो) बहुत प्रकार ध्यानके उपाय
कृत–परिकर्मा[१/१]'मुनिः[१/१]'	=(तिनकरि)अन्तःकरण(हृदय-मन)को संस्कार(शुद्ध) करता हुआ मुनि[वैद्यकोशपृष्ठ४१५]
संसार–निवृत्तये[४/१]''ध्यातुम्[२/१]'''अर्हतिT	=संसारके नाशके अर्थ ध्यान करनेको समर्थ वा योग होता है ॥

(१) सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित, दो मुद्रित प्रतियोंमें 'कृतपरिकर्मा' मुनिका विशेषण है. कृतपरिकर्म पाठ अशुद्ध है(२)ध्यातुम-हेत्वर्थकृदन्त

सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः। असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। प्रमत्ताद्यनिवृत्तिबादरान्तानामपगतवेदानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्॥ (६) कषायानुवादेन—चतुष्कषायाणामकषायाणां च सामान्योक्त स्पर्शनम्॥ (७) ज्ञानानुवादेन—मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां

सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिः ३। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १।	= मिश्र गुणस्थानवालोंकरि लोकका असंख्यातवां, अंश
स्पृष्ट १। असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ३।	= छुआ जाता है असंयत सम्यग्दृष्टियोंकरि [तथा]
संयतासंयतैः ३। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १।	= संयमासंयमियोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश [छुआ जाता] है
वा चतुर्दश १। भागाः १। षट् १। देशोनाः १।	= वा (लोकत्रस नालके) चौदह राजू हैं (सो मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे) कुछ हीन छः राजू स्पर्शे जाते हैं।
प्रमत्त+आदि अनिवृत्तिबादर+अन्तानाम् ६।	= प्रमत्त संयमीनसे अनिवृत्तिबादर [नवमां गुणस्थान वालोनके प्रथम तीन वेद भागों] तक [गियों तकका
अपगतवेदानां ६। च	= तथा वेदरहित [नवमां गुणस्थानके अंतके तीन वेदरहित भागोंसे अयो-
सामान्य+उक्त १।। स्पर्शनम् १।।।	= स्पर्शन संक्षेप (प्रकरण) में [पहिले] कहा हुआ (गुणस्थानवत्) है॥ (देखो पृष्ठ १३६, ११५, से १२० तक इस अनुवादका)
कषाय-अनुवादेन ३। चतुष्कषायाणाम् ६।	= कषायके कथनानुसारकरि चार [क्रोध मान माया लोभ] कषाय वालेनके
अकषायाणाम् ६। च	= और कषायवर्जित [ग्यारहवां गुणस्थानवर्तीनसे चौदहवां गुणस्थानवाले
स्पर्शनम् १।	= तक] नका स्पर्शन [११५-१२०
सामान्य+उक्तम् १।।	= संक्षेपसे (प्रथम) कथित [गुणस्थान सदृश] है [देखो पृष्ठ १३६-
ज्ञान-अनुवादेन ३। मति-अज्ञानि श्रुत-अज्ञानिनाम् ६।	= ज्ञानकी विवक्षासे मतिअज्ञान, श्रुत अज्ञान,
मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनाम् ६।	= मिथ्यादृष्टि तथा सासादन सम्यग्दृष्टीयोका

स एव पुनः समूलतलं मोहनीयं निर्दिधक्षन्ननन्तगुणविशुद्धियोगविशेषमाश्रित्य बहुतराणां ज्ञानावरणसहायीभूतानां प्रकृतीनां बन्धं निरुन्धन् स्थितिह्रासक्षयौ च कुर्वन् श्रुतज्ञानोपयोगे निवृत्तार्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिःअविचलितमनाःक्षीणकषायो वैडूर्यमणिरिव निरुपलेपो ध्यात्वा

होय तितना काय कियाही करै बैठ न रहै तैसे जितना मनका बल होय तितना ध्यानकी पलटनि होवेही करै बैठि नरहै और जैसे कोई वृक्षको काटनेलगा तिसके पास शस्त्र[कुल्हाड़ी आरा इत्यादि]तीक्ष्ण नहीं तब थोड़ा२ अनुक्रमसे काटै तैसे इस ध्यानमें मनकी पलटनि वा परिवर्तन है सो धीरे धीरे अनुक्रमसे है सो इस प्रकारके मनकरि ध्यावता संता मुनि मोहकी प्रकृतियोंको क्रमसे उपशम करता संता और क्षय करता संता पृथक्त्ववितर्कविचार ध्यानका धारी होता है भावार्थ बाह्य अभ्यन्तर द्रव्य,पर्यायोंकोध्यावता श्रुतज्ञानकी सामर्थ्यको अंगीकार करता साधु है सो अर्थका और व्यंजनको और कायको और वचनको पृथक् पृथक् पनाकरि परिभ्रमण वा परिवर्तन करता मनकरिकें जैसे कोई पुरुष परिपूर्ण बलका उत्साह रहित और निश्चलतारहित हुआ मन ताकरि जैसे तीक्ष्णता रहित मोथरे शस्त्र[कुल्हाड़ी-आरा इत्यादि]करिकें बहुत कालमें सचिक्कन काष्ठको छेदता है तैसे अष्टम नवम दशम गुणस्थानके भावका धारक साधु भी संज्वलन कषायका उदयसे परिपूर्ण परिणामोंके बलके उत्साहको नहीं प्राप्त हूआ भावोंके कषायके उदयके धक्कासे दृढ़ निश्चलता को प्राप्त नहीं होनेसे अर मोहनीयकर्मके सब उदयके नाश न होनेसे धीरे२ करणरूप परिणामनकी सामर्थ्यसे मोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंको अनुक्रमसे धीरे२ उपशम करता वा क्षय करता संता पृथक्त्ववितर्क विचारका धारक होता है

सः१' एव*पुनः*समूल-तलम्२''' मोहनीयम्२''' =बहुरि[=पुनः]सो[=सः]हो[एव-ध्यानी]मूलतलसहित[अर्थात्समस्त] मोहनीयकर्मको
(१)निर्दिधक्षन्१' =दग्ध करनेका इच्छुक होकर वा नहिं धारण करनेका उत्साहित होकर
अनन्त-गुण-विशुद्धि-योग-विशेषम्२'।आश्रित्य÷बहुतराणां=अनन्तगुण विशुद्धियोग विशेषको आश्रयकर अधिकतर अथवा विपुलतर
ज्ञानावरण-सहायीभूतानाम्६''प्रकृतीनाम्६''बन्धम्२' =ज्ञानावरणीय कर्मको सहायता करनेवाली प्रकृतियोंका बन्ध
निरुन्धन्१'स्थिति-ह्रास-क्षयौ२'' च*कुर्वन्१'श्रुतज्ञान- =रोकता हुआ और स्थितिको घटावता हुआ तथा क्षय करताहुआ श्रुतज्ञानके
उपयोगे७'निवृत्त-अर्थव्यंजन- =उपयोगरूप हुआसंता वा श्रुतज्ञानके उपयोगमें(लीन),दूरभया है अर्थ व्यंजन
योग-संक्रान्तिः१''अविचलितमनाः१'क्षीण- =योगका पलटना[जिसके]निश्चल वा अचल हुआ है मन जिसका क्षीणभया है
कषायः१'वैडूर्य-मणिः१'।इव*निर्-उपलेपः१'ध्यात्वा÷=कषायजिसका वैडूर्य मणिके सदृश कर्मरूपीलेपसे रहित हुआ, ध्यानकरि

[१]निर्दिधक्षन् शुद्ध है न कि निर्दिधिक्षन् क्योंकि इसका सन्नन्त अर्थात् इच्छार्थकरूप दिधक्षति =[वह जलाना चाहता है, नाश करना चाहता है] बनता है,दिधक्षत् वर्तमान कृदन्त है दिधक्षन् प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग दह् धातुसे है,निस् निषेध,निश्चय,साकल्य,पूरापूरा,व्यतीत अर्थोंमेंसे

तत्र द्रव्यपरमाणुं भावपरमाणुं वा ध्यायन्नाहितवितर्कसामर्थ्यादर्थव्यंजने कायवचसी च पृथक्त्वेन सङ्क्रामता मनसाऽपर्याप्तबालोत्साहवदव्यवस्थितेनानिशितेनापि शस्त्रेण चिरात्तरुं छिन्दन्निव मोहप्रकृतीरुपशमयन्क्षपयंश्च पृथक्त्ववितर्कवीचारध्यानभाग्भवति ।

तत्र*द्रव्यपरमाणुं'भावपरमाणुं'वा[२]ध्यायन्'	=तहां द्रव्य परमाणुओंको अथवा भावपरमाणुओंको ध्यावताहुआ
वितर्क–सामर्थ्यात्'''पृथक्त्वेन'''संक्रामता'''	=श्रुतज्ञानकी सामर्थ्यसे भिन्नभिन्नपनाकरि पलटते वा परिवर्तन करते
(१)मनसा'''अपर्याप्त–बाल–उत्साहवत्*	=मनद्वारा नहीं पूर्ण हुआ है बालकाउत्साह वा उद्योग जिसका तिस(पुरुष)के सदृश
आहित–अर्थ–व्यंजने'''काय–वचसी'''च*	=ग्रहण कियेगये हैं अर्थ–व्यंजन तथा (=च) काय-वचन
अव्यवस्थितेन'''अनिशितेन'''अपि*शस्त्रेण'''	=और अनिश्चल तथा भुथरे वा अतीक्ष्ण भी (=अपि) शस्त्रद्वारा
चिरात्* तरुं'(२)छिन्दन्'इव*मोहप्रकृतीः''	=बहुतकालमें छेदेगये अथवा काटेगये वृक्षके समान मोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंको
(२)उपशमयन्'(२)क्षपयन्'च*पृथक्त्ववितर्क–	=उपशम करताहुआ तथा (=च) क्षय करता हुआ (मुनि) पृथक्त्ववितर्क
वीचार–ध्यानभाग्'भवति'१ ।	=वीचार (शुक्ल) ध्यानका भजनेवाला वा धारक होता है अर्थात् बाह्य और अभ्यन्तर

व्य पर्यायोंकोध्यावताहुआ ग्रहणकिया है वा अंगीकारकी है श्रुतज्ञानकी वचनस्वरूप वितर्ककी सामर्थ्य जाने ऐसे अर्थ और अक्षर=(व्यंजन) तथा काय और वचनकी भिन्न रूपनाकरि पलटता जो मन सो कैसा है मन? जैसे कोई पुरुष कार्य करनेको उत्साह करे सो जितना अपनाबल

(२)ध्यै शम भ्वादि प्रथम छिद् रुधादि सातवा क्षप् चुरादि दशवें गणोंके धातुओंके ध्यायत् शमयत् छिन्दत्, क्षपयत् वर्तमान कृदन्तोंसे ध्यायन् शमयन्,छिन्दन् क्षपयन्,प्रथमा एकवचन पुल्लिंगरूप क्रमसे हुये ॥वर्तमान कृदन्त,उनसे पुल्लिंगमें प्रथम विभक्ति बनानेके लिये देखो भांडारकर११,६८ (१)"मनसाऽपर्याप्तबालोत्साहवत्"यह पाठ एकहस्तलिखित प्राचीन प्रतिके पत्र १०५ पर, दोलिखिततत्त्वार्थराजवार्तिक तथा मुद्रित राजवार्तिकमेंहै है, इसी पाठके अनुकूल प० सदासुखजी, पन्नालालजी दूनी, न्यायदिवाकरजीने अनुवाद किया है इसी पाठको हृदय भी स्वीकार करता है, अत हमने भी इसी पाठके अनुसार अनुवाद किया है। दो मुद्रित सर्वार्थसिद्धि प्रतियोंका पाठ 'मनसा पर्याप्तबालोत्साहवत्' है जिसका अनुवाद 'मन द्वारा बालकके उत्साह वा उद्योगकी योग्यता (=पर्याप्त) को लिये हुयेके सदृश' हो सका है॥दो अन्य लिखित प्रतियोंके पत्र८८ और १९१ पर क्रमसे मनसा अपर्याप्तबालोत्साहवत् पाठ है मन द्वारा उस बालकके सदृश जिसका उत्साह पूर्ण नहीं हुआ है अर्थात् जिस बालक में अभी उद्योग करनेका उत्साह अवशेष है उसके सदृश मनकरि ऐसा अनुवाद हो सका है । जयचन्दजीका अनुवाद हैकि' मन सो कैसाहै मन? जैसे कोई पुरुष कार्य करनेको उत्साह करै सो जेता अपना बल होय तेते किया ही करै नेठि नरहै तैसे मनका बल होय तेते ध्यानकी पलटनी होयो करै नेठि नरहै ॥ (५)ध्यानभाज् यह जो ध्यानको भजता है, वा धरता है अर्थात् ध्यानी, जैसो सुखभाज्=सुख भोक्ता, सुख भोगनेवाला

स्थितिशेषकर्मत्रयो भवति सयोगी तदाऽऽत्मोपयोगातिशयस्य सामायिकसहायस्य विशिष्टकरणस्य महासंवरस्य लघुकर्मपरिपाचनस्याशेषकर्मरेणुपरिसातनशक्तिस्वाभाव्याद्दण्डकवाटप्रतरलोकपूरणानि स्वात्मप्रदेशविसर्पणतश्चतुर्भिः समयैःकृत्वा समुपहृतप्रदेशविसरणः समीकृतस्थितिशेषकर्मचतुष्टय पूर्वशरीरप्रमाणो भूत्वा सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानं ध्यायते । ततस्तदनन्तरं समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिध्यानमारभते । समुच्छिन्नप्राणापानप्रचारसर्वकायवाङ्मनोयोगसर्वप्रदेशपरिस्पन्दक्रियाव्यापारत्वात्समुच्छिन्नक्रियानिवर्तीत्युच्यते

स्थिति-शेष-कर्म-त्रयः१/१'भवति।सयोगी१/१'तदा* =स्थितिवाले अवशेष तीन(वेदनीय-नाम-गोत्र)कर्म होतेहैं,तब सयोगी(भगवान्)
आत्मन्-उपयोग-अतिशयस्य६/१'सामायिकसहायस्य६/१'विशिष्ट-=अपनाउपयोगका अतिशययुक्त(कैसाहै उपयोग)सामायिक सहायहैजिसके,विशेष
करणस्य६/१'महान्-संवरस्य६/१'लघुकर्मपरिपाचनस्य६/१'अशेषकर्म-=है परिणमन जिसका, महासंवररूप है, शीघ्र कर्म पचावनेकी समस्त कर्म-
रेणु-परिसातन-शक्ति-स्वाभाव्यात्५/१'''दण्ड-कवाट- =रजके झाड़न वा विनाशनकी(सातन=शातन)सामर्थ्यकेस्वभावसे दंड कपाट
प्रतर-लोकपूरणानि२/३'''स्व-आत्म-प्रदेश-विसर्पणतः* =प्रतर(बिछौनो रुईका फूल सम) लोकपूर्ण अपने आत्माके प्रदेशोंके फैलानेसे
चतुर्भिः३/३'समयैः३/३'कृत्वा÷ =[चारक्रियारूप]चार समय द्वारा करकर(=कृत्वा)फिरभीउतनेही चारसमयद्वारा
समुपहृत-प्रदेश-विसरणः१/१'समीकृत-स्थिति-शेष-कर्म-चतुष्टयः१/१' =संकोची है प्रदेशोंकी फैलावट जिसने,समानकीहै स्थिति शेष चारकर्मोंको जिसने
अर्थात् वेदनीय-नाम-गोत्र-कर्मोंकीस्थितिको अन्तर्मुहूर्त आयुकी स्थितिकेतुल्यकर
पूर्व-शरीर-प्रमाणः१/१'भूत्वा÷सूक्ष्मकाययोगेन३/१' =पहिलेके शरीरके प्रमाण होकर (=भूत्वा) सूक्ष्मकाय योगकरि
सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानम्२/१'ध्यायते ।। =सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानको ध्यावे है अर्थात्(उक्तध्यान)को प्राप्त होता है
ततः*तद्-अन्तरं१/१'''समुच्छिन्नक्रिया-निवर्तिध्यानम्२/१''' =तहांसेउस(केवलसमुद्घात)केलगताही,अत्यन्तनिकट समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिध्यानको
आरभते ।',प्राण-अपान-प्रचार-सर्व-काय-वाग्- =प्रारम्भ करता है, श्वासोश्वासके प्रवर्तनसे सब काय वचन
मनोयोग-सर्व-प्रदेश-परिस्पन्दक्रिया-व्यापारत्वात्५/१''' =मन योगका तथा समस्त प्रदेशोंका हलन चलन रूप क्रियाके व्यापार पनासे
सम्-उच्छिन्नम्१/१'''समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिः१/१''इति*उच्यते।=अत्यन्त वा पूर्णरूपसे दूर है सो समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति शुक्लध्यान ऐसाकहागयाहै

पुनर्न निवर्तत इत्युक्तमेकत्ववितर्कम् । एवमेकत्ववितर्कशुक्लध्यानवैश्वानरनिर्दग्धघातिकर्मेन्धन प्रज्वलितकेवलज्ञानगभस्तिमण्डलो मेघपञ्जरनिरोधनिर्गत इव घर्मरश्मिर्वा भासमानो भगवास्तीर्थंकर इतरो वा केवली लोकेश्वराणामभिगमनियोऽर्चनीयश्चोत्कर्षेणायुप पूर्वकोटीं देशोना विहरति। स यदाऽन्तर्मुहूर्तशेपायुष्कस्तत्तुल्यस्थितिवेद्यनामगोत्रश्च भवति तदा सर्वं वाङ्मानसयोगं बादरकाययोगं च परिहाप्य सूक्ष्मकाययोगलम्बन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानमास्कन्दितुमर्हतीति ॥ यदा पुनरन्तर्मुहूर्तशेपायुष्कस्ततोऽधिक–

पुनः॰न॰निवर्तते॰इति॰ =फिर(तिससे)पलटने नहीं हैं ऐसे (मणिके दीपक समान अचल वा निश्चल)
उक्तम्॰ एकत्ववितर्कम्॰, =एकत्ववितर्क (अवीचार) शुक्लध्यान कहा गया है,
एवम्॰एकत्ववितर्क–शुक्लध्यान–वैश्वानर–निर्दग्ध– =ऐसे एकत्ववितर्क शुक्लध्यानरूप अग्निद्वारा (=वैश्वानर) नाश किया है
घातिकर्म–इन्धन॰प्रज्वलित–केवलज्ञान– =(चार) घातियाकर्मरूपी ईंधन जाने, देदीप्यमान हुआ है केवलज्ञानरूप
गभस्ति–मण्डल॰ =किरणोंका[=गभस्ति] मण्डल जिसके (अर्थात् केवलज्ञानरूप सूर्य जिसके)
मेघपञ्जर–निरोध–निर्गत॰इव॰घर्म–रश्मि॰वा॰ =बादलके पींजरकी रोक निकली हुई, घाम अथवा किरणके सदृश
भासमान॰भगवान्॰तीर्थंकर॰इतर॰वा॰केवली॰ =दीप्तिमान वा प्रकाशमान भगवान् तीर्थंकरकेवली अथवा अन्यसामान्य केवली
लोकेश्वराणाम्॰अभिगमनीय॰अर्चनीय॰च॰ =इन्द्रोंके आवने योग्य तथा (=च) पूजने योग्य
उत्कर्षेण॰आयुप॰पूर्वकोटीं॰देशोना॰विहरति। स॰ =उत्कृष्टकरि आयुके कुछ हीन कोटि पूर्व (तक) विहार करता है ॥
यदा॰अन्तर्मुहूर्त–शेप–आयुष्क॰च॰ =(तीर्थंकरकेवली वा अन्य सामान्यकेवली)जब अन्तर्मुहूर्त आयु बचरहै और
तत्–तुल्य–स्थिति–वेद्य–नाम–गोत्र॰भवति, =उस(अन्तर्मुहूर्त अवशिष्टआयु)के सम स्थितिवाला वेदनीयनामगोत्रकर्म होजावे,
तदा॰सर्वम्॰वाग्–मानसयोगम्॰बादरकाययोगम्॰च॰परिहाप्य– =तब समस्त वचन योग,मनयोग, तथा (=च) बादरकाय योगको निरोधकर
सूक्ष्म–काय–योग–लम्बन॰सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानम्॰ =सूक्ष्मकाययोगको अवलम्बनकर ऐसे सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिशुक्लध्यानको
आस्कन्दितुं॰अर्हतिइति,यदापुन॰अन्तर्मुहूर्त-शेप आयुष्क॰तत अधिक =प्राप्तकरनेयोग्यहोता है,जब अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट आयु है,उससेअधिक

निश्चय अर्थमें है ॥ कुर्वत् वर्तमान कृदन्तका कुर्वन् प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिंग है ॥ भांडारकर प्रथम पुस्तक ६१,६७,६८ अष्टा० ३-१-७

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः॥ ४५॥

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाःक्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः॥४५॥(इस सूत्रका दोनों समाजोंमें पाठ तथा अर्थ एकसाहै)

=सम्यग्दृष्टि–श्रावक-विरत-अनन्तवियोजक-दर्शनमोहक्षपक-उपशमक-उपशान्तमोह-क्षपक-क्षीणमोह–जिनाः क्रमशः असंख्येयगुण-निर्जराःभवन्ति॥

सूत्रार्थः सम्यग्दृष्टि-श्रावक-=अविरतसम्यग्दृष्टिकें अर्थात् चौथे गुणस्थानवर्तीकें, देशव्रतीकें अथवा पंचमगुणस्थानवर्तीकें अर्थात् श्रावककें,

विरत–अनन्तवियोजक– =सकलसंयमी महाव्रतीमुनिके,अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजनकरनेवालेकें अर्थात् अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबंधीमान, अनन्तानुबंधीमाया,अनन्तानुबन्धी लोभ जिनका अविरतसम्यग्दृष्टि चौथा गुणस्थान, देशविरत पांचवा गुणस्थान,प्रमत्त विरत वा प्रमत्त संयत छठवां गुणस्थान, और अप्रमत्तविरत वा अप्रमत्त संयत सातवां गुणस्थानोंमेंही विसंयोजन वा घात होता है ऐसा घात करनेवालेकें[अर्थप्रकाशिका सूत्र ४५]

दर्शनमोहक्षपक– =दर्शनमोहनीय कर्मकी तीन मिथ्यात्व, मिश्रमिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका (जिनकी क्षपणाकरणत्रयकी सामर्थ्यसे केवली वा श्रुतकेवलीके निकट मनुष्यहीकें अविरत-देशविरत-प्रमत्तविरत-अप्रमत्त विरत गुणस्थानोंमें होती है) छपावनेवाले अथवा नष्टकरनेवालेकें

उपशमक– =अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण- सूक्ष्मसाम्पराय तीन गुणस्थानीय कषायके उपशम करनेवालेकें अर्थात् क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर श्रेणीकोचढ़नेको सन्मुख होय तब चारित्र मोहको उक्ततीन गुणस्थानोंमें उपशम करनेवालेकें

उपशान्तमोह– =उपशान्तमोह ग्यारवां गुणस्थानवर्तीकें अर्थात् समस्तचारित्र मोहनीयकर्मके उपशमकरनेवाले,उपशान्तकषायककें

क्षपक– =अपूर्वकरण आठवां, अनिवृत्तिकरण नववां,सूक्ष्मसाम्परायदशवां गुणस्थानवर्ती क्षपक श्रेणी चढ़नेवाले मुनिकें

क्षीणमोह– =क्षीणमोह बारहवां गुणस्थानवर्तीकें अर्थात् समस्त मोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंको नाश करनेवालेकें

जिनाः– =जिनेन्द्र भगवान्-केवलीकें अर्थात् समस्त घातिया कर्म ईन्धनको एकत्ववितर्क अवीचार द्वितीय शुक्लध्यानरूपी

तस्मिन्समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिनि ध्याने सर्वबन्धास्रवनिरोध सर्वाशेषकर्मसातनसामर्थ्योपपत्तेरयोगिन केवलिन सम्पूर्णयथाख्यातचारित्रज्ञानदर्शनं सर्वसंसारदुःखजालपरिष्वङ्गोच्छेदजननं साक्षान्मोक्षकारणमुपजायते। स पुनरयोगकेवली भगवांस्तदा ध्यानातिशयाग्निनिर्दग्धसर्वमलकलङ्कबन्धनो निरस्तकिट्टधातुपाषाणजात्यकनकवल्लब्धात्मा परिनिर्वाति॥ तदेतद् द्विविधं तपोऽभिनवकर्मास्रवनिरोधहेतुत्वात्संवरकारणं, प्राक्तनकर्मरजोविधूननिमित्तत्वान्निर्जराहेतुरपि भवति॥ अत्राह सम्यग्दृष्टय किं सर्वे समनिर्जरा आहोस्वित्कश्चिदस्तिप्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

तस्मिन् समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिनि ध्याने =तिस समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति ध्यानमें
सर्व-बन्ध-आस्रव-निरोध सर्व-अशेष-कर्म-सातन- =सर्वबन्ध तथा सर्व आस्रवका निरोधहोताहै औरसमस्तअवशेषकर्मकीविनाश(=सातन)
सामर्थ्य-उपपत्ते अयोगिन केवलिन सम्पूर्ण- =शक्तिके उत्पत्तिहोनेसे अयोगकेवलीके परिपूर्ण-
यथाख्यातचारित्र-ज्ञान-दर्शनं सर्व-संसार-दुःख- =यथाख्यातचारित्र ज्ञानदर्शन हुआ है, (वो ज्ञानदर्शनचारित्र)सब संसारके दुःखके
जालपरिष्वङ्ग-उच्छेद-जननं साक्षात् मोक्ष-कारणम् =जालके सम्बन्धका नाश करनेवाला है, साक्षात् मोक्षके कारणको
उपजायते। स पुन अयोगकेवली भगवान् तदा =उपजाता है, बहुरि सो। अयोगकेवली भगवान् तिस अवसरमें वा तिसकालमें
ध्यान-अतिशय-अग्नि-निर्दग्ध-सर्व मल- =(समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति) ध्यानके प्रभावरूपी अग्निकरि दग्धकियेहैंसबकर्मरूपीमल
कलङ्क-बन्धन निरस्त किट्ट धातु पाषाण जात्य- =कलङ्कका बन्धनजाने,नष्ट भयाहैकीट धातुऔरपाषाण जिससे ऐसे जातिवान्‌वाश्रेष्ठ
कनकवत् लब्ध आत्मा परिनिर्वाति ॥ =स्वर्णके सदृश आत्मा[की शुद्धता]प्राप्तकरि निर्वाणको प्राप्त होता है,
तद् एतद् द्विविधम् तपस् अभिनव- =सो [=तद्] यह [=एतद्] दो [बाह्य तथा अंतरंग] प्रकार तप नवीन
कर्म आस्रव निरोध-हेतुत्वात् संवर-कारणं प्राक्तन =कर्मके आगमनके निरोधका कारण होनेसे संवरका निमित्त होता है, पहिले
कर्म रज विधूनन निमित्तत्वात् निर्जरा हेतु अपि भवति =कर्मरूपी धूलिके उड़ावनेके हेतुताते निर्जराका कारण भी (=अपि)होता है।
अत्र आह-सम्यग्दृष्टय किम् सर्वे समनिर्जरा आहोस्वित् =यहां प्रश्न है कि क्या सब सम्यग्दृष्टि समान निर्जरा वाले हैं अथवा
कश्चित् अस्ति प्रतिविशेष इति अत्र उच्यते ॥ =असाधारण भेद है, ऐसा प्रश्न (होनेपर) यहां (अग्रिमसूत्र) कहाजाता है कि

स एव पुनश्चारित्रमोहकर्मविकल्पाप्रत्याख्यानावरणक्षयोपशमनिमित्तपरिणामप्राप्तिकाले विशुद्धिप्रकर्षयोगात् श्रावको भवन् ततोऽसंख्येयगुणनिर्जरो भवति । स एव पुनः प्रत्याख्यानावरणक्षयोपशमकारणपरिणामविशुद्धियोगाद्विरतव्यपदेशभाक् सन् ततोऽसंख्येयगुणनिर्जरो भवति । स एव पुनरनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभानां वियोजनपरो भवति यदा तदा परिणामविशुद्धिप्रकर्षयोगात्ततोऽसंख्येयगुणनिर्जरो भवति। स एव पुनर्दर्शनमोहप्रकृतित्रयतृणनिचयं निर्दिधक्षन् परिणामविशुद्ध्यतिशययोगाद्–

स: एव*पुनः*चारित्र-मोह-कर्म-विकल्प-अप्रत्याख्यान-आवरण- =और सो (चेतन) ही चारित्र मोहनीयकर्मके भेद अप्रत्याख्यानावरणीय(क्रोधादि)के
क्षयोपशम-निमित्त-परिणाम-प्राप्ति-काले विशुद्धि-प्रकर्ष- =क्षयोपशमकारणक परिणामोंकी प्राप्तिके कालविषैं अतिशय विशुद्धिताके
योगात् श्रावकः भवन् ततः*असंख्येय-गुण- =संयोगसे श्रावक होता हुआ उस (सम्यग्दृष्टि)से असंख्येयगुणी
निर्जरः भवति। सः एव*पुनः*प्रत्याख्यान-आवरण- =निर्जरावाला होता है, बहुरि सो (जीव) ह प्रत्याख्यानावरणीय(क्रोधादि)के
क्षयोपशम-कारण-परिणाम-विशुद्धि-योगात् विरत- =क्षयोपशम-निमित्तक भावोंकी निर्मलताके योगसे विरत अर्थात् प्रमत्तसंयमी
व्यपदेश-भाज् सन् ततः*असंख्येय-गुण- =नामका धारक होता संता उस (श्रावक)से असंख्येयगुण
निर्जरः भवति। सः एव*पुनर*अनन्तानुबन्धिन्- =निर्जरावाला होता है, फिर सो [जीव] ही (=एव) अनन्तानुबन्धी-
क्रोध-मान-माया-लोभानां [१]वियोजनपरः भवति यदा*=क्रोध-मान- माया-लोभके घात वा विसंयोजनमें तत्पर जब (=यदा)(अविरत-देशविरत-प्रमत्तसंयत-अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें वा इनमेंसे किन्हीं गुणस्थानोंमें)
तदा*परिणामविशुद्धि-प्रकर्ष-योगात् ततः* =होता है तब(=तदा)परिणामकी निर्मलताके अतिशय योगसे उस(अप्रमत्तविरत)से
असंख्येय-गुण-निर्जरः भवति। सः एव*पुनः*दर्शनमोह-=असंख्येयगुणी निर्जरावान् होता है, फिर वो (जीव) ही(=एव)दर्शनमोहसे
प्रकृतित्रय-तृण- =तीन (मिथ्यात्व-मिश्रमिथ्यात्व-सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व) प्रकृतिरूपी तिनकोंके
निचयम् निर्दिधक्षन् परिणाम-विशुद्धि-अतिशय-योगात् =समूहको दग्ध करताहुआ परिणामको पवित्रता वा निर्मलताके प्रकर्षयोगसे

---

(१) "अविरतादिचतुर्षु" इत्यधिकःपाठस्तालपत्रपुस्तके वर्तते ॥ अविरत-आदि-चतुर्षु इति अधिकः = अविरत आदि चार(गुणस्थानों)में ऐसा अधिक पाठः ताल-पत्र-पुस्तके वर्तते = पाठ ताड़के पत्तोंपर लिखी हुई पुस्तकमें विद्यमान है।

त एते दश सम्यग्दृष्ट्यादय क्रमशोऽसख्येयगुणनिर्जरा ॥ तद्यथा-भव्यः पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक पूर्वोक्तकाललब्ध्यादिसहाय परिणामविशुद्ध्या वर्द्धमान क्रमेणापूर्वकरणादिसोपान-पङ्क्त्योत्प्लवमानो बहुतरकर्मनिर्जरो भवति । स एव पुन प्रथमसम्यक्त्वप्राप्ति निमित्तसन्नि धाने सति सम्यग्दृष्टिर्भवन्नसंख्येयगुणनिर्जरो भवति ।

अग्निद्वारा दग्धकरनेवाले जिनेन्द्र भगवान् केवलज्ञानीके,

क्रमश** =अनुक्रमसे(अर्थात् एकसे दूसरेकें दूसरेसे तीसरेकें इत्यादि जिनेन्द्र भगवान् तक दश स्थानोंमें आयुकर्मके अतिरिक्त प्रति समय अवशेष सातकर्मोंका)

असख्येयगुण-निर्जरा॰॰भवन्ति ॥ =असख्यातगुणी निर्जरा वाले होते हैं (जैसे अविरत सम्यग्दृष्टिसे असख्यातगुणी निर्जरा देशविरत पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावककें और उक्त पचम गुणस्थानवर्ती श्रावकसे असख्यातगुणी निर्जरा समयसमयप्रति प्रमत्तविरतमुनिकें इत्यादि ऐसे प्रत्येकके उत्तरत्र वढती हुई जिनेन्द्र भगवान् तक दशस्थानोंमें असख्यातगुणी निर्जरा होतो है)॥

वृत्त्यनुवाद॰—ते॰'एते॰'दश॰'सम्यग्दृष्टि-आदय ॰' =(संस्कृत वृत्ति वा भाष्यका अनुवाद) वे इतने दश सम्यग्दृष्टि आदिक

क्रमश *असख्येय-गुण-निर्जरा ॰' ॥ =अनुक्रमसे असख्यातगुणी निर्जरावाले होते हैं अर्थात् अविरतसम्यग्दृष्टि चौथा गुणस्थानवर्ता से जिनेन्द्र भगवान् केवलो पर्यंत इन दशोंकें एकसेदूसरेकें और दूसरेसे तीसरे इत्यादिकेंं(आयुकर्मके अतिरिक्त वा आयुकर्मका छोड़कर प्रति समय अवशेष सात कर्मों की) प्रत्येककें उत्तरत्र वढती हुई असख्यातगुणी निर्जरा क्रमानुसार होती हैं,

तद्यथा*भव्य ॰'पञ्चेन्द्रिय ॰'सञ्ज्ञी॰'पर्याप्तक ॰'पूर्व-उक्त-काल-लब्धिआदि सहाय ॰'परिणाम विशुद्ध्या॰''=जैसे (=तद्यथा) भव्य पचेंद्रिय सज्ञी पर्याप्तक पहिले वर्णित काललब्धि आदिक हैं सहाय जिसके परिणामकी निर्मलताकरि

वर्द्धमान ॰ क्रमेण॰'अपूर्वकरण-आदि-सोपान-पङ्क्ति-=वढोहुआ अनुक्रमसे अपूर्वकरण आदिकके परिणामरूप सीढोकी[=सोपान]पक्तीद्वारा

उत्प्लवमान ॰'वहुतर-कर्म-निर्जर ॰'भवति,पुन *स ॰'=चढतेहुयेके अधिकतर कर्मों की निर्जरा होती है, वहुरि सो [जीव]

एव*प्रथम सम्यक्त्व प्राप्ति-निमित्त सन्निधाने॰''सति॰''=ही [=एव] प्रथमसम्यक्त्वकी लब्धिके कारण निकट होत सते

सम्यग्दृष्टि॰'भवन्॰'असख्येय-गुण-निर्जर ॰'भवति।=सम्यग्दृष्टि होकर असख्यातगुण निर्जरावान् होता है,

असंख्येयगुणनिर्जरो भवति स एव द्वितीयशुक्लध्यानानलनिर्दग्धघातिकर्मनिचयः सन् जिनव्यपदेशभाक् पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति ॥ आह सम्यग्दर्शनसन्निधानेऽपि यद्यसंख्येयगुणनिर्जरत्वात्परस्परतो न साम्यमेषां, किं तर्हि श्रावकवदमी विरतादयो गुणभेदान्न निर्ग्रन्थतामर्हन्तीत्युच्यते ॥ नैतदेवम् । कुतः ?। यस्माद्गुणभेदादन्योऽन्यविशेषेऽपि नैगमादिनयव्यापारात्सर्वेऽपि हि भवन्ति—

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥ ४६॥

असंख्येय–गुण–निर्जरः'भवति T सः'एव* =असंख्येयगुण निर्जरावाला होता है, सो(जीव)ही(क्षीणकषायके व्यपदेशवाला)
द्वितीय–शुक्लध्यान–अनल– =दूसरा (एकत्ववितर्क अवीचार) शुक्लध्यानरूपी अग्नि द्वारा
निर्दग्ध–घातिकर्म–निचयः' =[चार,ज्ञान-दर्शनावरण-मोहनीय-अन्तराय]घातियाकर्मोंके समूहको विनाशकरता
सन्'जिन–व्यपदेशभाज्'पूर्व–उक्तात्' =संता (=सन्) जिन नामको धारक पूर्वभाषित [क्षीणकषाय वा क्षीणमोह] से
असंख्येय–गुण–निर्जरः'भवति T ॥ आह T =असंख्यातगुणा निर्जरावान्' होता है ॥ प्रश्न करता है कि
सम्यग्दर्शन–सन्निधाने'''अपि*यदि*असंख्येय-गुण-निर्जर- =सम्यग्दर्शनके सामीप्य वा निकट होनेपर भी यदि असंख्येयगुण कर्मोंकीनिर्जरा
त्वात्'''परस्परतः*न*साम्यम्'''एषाम्'किं*तर्हि*श्रावकवत्*=होनेसे परस्परकरि समानता न हुई तो [=तर्हि] क्या श्रावकके समान
अमी'विरत–आदयः' =ये विरत आदिक(अर्थात् प्रमत्तविरत वा प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तविरत इत्यादि)
गुण–भेदात्'न*निर्ग्रन्थताम्'''अर्हन्ति T, =गुणोंमें अन्तर (एक दूसरेकें) होने [के निमित्त]से निर्ग्रन्थता के योग्य नहीं हैं
इति*उच्यतेTन*एतद्'''एवम्*कुतः* ? =ऐसा(सन्देह होनेपर)कहाजाता है कि ऐसे(=एवम्)यह नहीं है[प्रश्न क्योंकर ?]
यस्मात्*गुण–भेदात्'अन्योऽन्य–विशेषे' =(उत्तर) इस कारणसे कि गुणके भेदसे परस्पर विशेष होनेपर भी
अपि*नैगम–आदि–नय–व्यापारात्'सर्वे'अपि* हि*भवन्ति-=नैगमादिक नयके व्यवहारसे सबही (=अपि)(=संयमीमुनि-निर्ग्रन्थ)ही हैं [जैसे]

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः॥४६॥इस सूत्रका दोनोंसमाजोंमें एक पाठ है।

दर्शनमोहक्षपकव्यपदेशभाक् तेष्वेव पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति। एवं स क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा श्रेण्यारोहणाभिमुखश्चारित्रमोहोपशमं प्रति व्याप्रियमाणो विशुद्धिप्रकर्षयोगादुपशमकव्यपदेशमनुभवन् पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति। स एव पुनरशेषचारित्रमोहोपशमनिमित्तसन्निधाने परिप्राप्तोपशान्तकषायव्यपदेश पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति स एव पुनश्चारित्रमोहक्षपणं प्रत्यभिमुख परिणामविशुद्ध्या वर्द्धमान क्षपकव्यपदेशमनुभवन्पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति। स यदा निःशेषचारित्रमोहक्षपणकारणपरिणामाभिमुख क्षीणकषायव्यपदेशमास्कन्दन्पूर्वोक्ताद्

दर्शनमोहक्षपक-व्यपदेशभाक्;"तेषु;" =दर्शनमोह क्षपकनामका धारक तिन[उक्त तीन प्रकृतियोंके नाश करने] में
एव;पूर्व उक्तात्;"असंख्येय-गुण-निर्जरः;"भवति, =ही पहिले कथित[अप्रमत्त विरत] से असंख्यातगुणा निर्जरावान् होता है,
एवम्;स;"क्षायिक सम्यग्दृष्टि;"भूत्वा-श्रेणि आरोहण- =इस प्रकार सो[जीव] क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर श्रेणीके चढनेके
अभिमुखः;चारित्रमोह उपशमं;"प्रति;व्याप्रियमाण;" =सन्मुख हो चारित्र मोहनीयकर्मके उपशमके प्रति व्यापाररूप होताहुवा
विशुद्धि प्रकर्ष योगात्;"उपशमक-व्यपदेशम्;"अनुभवन्;" =[परिणामोंकी]निर्मलताके अतिशय योगसे उपशम करनेवाला नाम पावताहुवा
पूर्व उक्तात्;"असंख्येय गुण निर्जरः;भवति। =पहिले कथित[दर्शनमोह क्षपक]से असंख्येयगुण निर्जरावान् होता है
स;"एव;पुनः;अशेष चारित्र मोह उपशमनिमित्त- =बहुरि सो[जीव]ही समस्त चारित्रमोहनीय कर्मके उपशम करनेके हेतुके
सन्निधाने;"परिप्राप्त-उपशान्तकषाय-व्यपदेशः;"पूर्व =निकट होनेपर उपशान्तकषाय नामको प्राप्तहोकर पहिले
उक्तात्;असंख्येय-गुण निर्जरः;"भवति। स;"एव;पुनः =वर्णित[उपशमक]से असंख्येयगुण निर्जरावान् होता है, सो[जीव]ही पुनि
चारित्रमोह-क्षपणं;"प्रति;अभिमुखः;"परिणाम =चारित्र मोहनीयकर्मके क्षपणके लिये अर्थात् नाश करनेकेलिये सन्मुखहो भावोंकी
विशुद्ध्या;"वर्द्धमान;क्षपक-व्यपदेशम्;अनुभवन्;" =निर्मलता पवित्रताकरि वृद्धिशील वा बढताहुवा क्षपक नामको अनुभवकरताहुवा,
पूर्व उक्तात्;" असंख्येय गुण निर्जरः भवति। =पहिले वर्णित (उपशान्तकषाय,से असंख्येयगुण निर्जरावान् होताहै,
स;यदा;निःशेष चारित्र मोह-क्षपण-कारण-परिणाम- =सो[जीव]जब समस्त चारित्रमोहनीय कर्मके विनाशके कारणरूप परिणामके
अभिमुखः;"क्षीणकषाय-व्यपदेशम्;"आस्कन्दन्;"पूर्व;उक्तात्;"=सन्मुख हो क्षीणकषाय अभिधानको प्राप्त होकर पूर्व वर्णित(क्षपक)से

सामान्योक्तं स्पर्शनम् । विभंगज्ञानिनां मिथ्यादृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा । सासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । (८) संयमानुवादेन–संयतानां सर्वेषां संयतासंयतानाम्

सामान्य उक्तं ॥ स्पर्शनम् ॥	=स्पर्शन संक्षेप प्रकरणमें [पहिले] कहा हुआ [गुणस्थानवत्] है [देखो पृष्ठ १३२–१३३–१३४]
विभंगज्ञानिनाम् ॥ मिथ्यादृष्टीनाम् ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥	=[विभंगज्ञानी] कुअवधिवाले मिथ्यादृष्टियोंका [स्पर्शन] लोकका असंख्यातवांखंड है अथवा [लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं
अष्टौ ॥ देशोनाः ॥ वा सर्वलोकः ॥	=सो कुछ हीन आठ [राजू] हैं अथवा समस्त लोक है
सासादनसम्यग्दृष्टीनां ॥ समान्य–उक्तम् ॥	=सासादनसम्यग्दर्शनवालों [विभंगज्ञानी] नका संक्षेपसे [पहिले] कहा हुआ गुणस्थानवत् स्पर्शन है [देखो पृष्ठ १३३–१३४
स्पर्शनम् ॥ आभिनिबोधिक श्रुत-अवधिमनःपर्यय	= मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी
केवलज्ञानिनां ॥ सामान्य उक्तम् ॥ स्पर्शनम् ॥	=[तथा] केवलज्ञानीनका स्पर्शन संक्षेपसे कहा हुआ [गुणस्थानवत] है =[देखो टिप्पणी पृष्ठ ८८, ८९ और ११५ से १२० १३३–१३६ तक
८ । संयम–अनुवादेन ॥ संयतानां ॥ सर्वेषां ॥	=संयमकी विवक्षासे समस्त संयमी अर्थात् छठवां गुणस्थानवर्तीनसे चौदहवागुणस्थानवर्तीन तक का और
संयत असंयतानाम् ॥	=संयमासंयमी (पांचवा गुणस्थानवाले) नका

१ मनुष्यतिर्यग्विभङ्गज्ञानिभिः ॥ क्रियमाणमारणान्तिकापेक्षया सर्वलोकः इति वचनम् ॥ देवानां नव चतुर्दशभागा इति पूर्वमुक्तत्वात् ॥

मनुष्यतिर्यग्विभङ्गज्ञानिभिः ॥ क्रियमाण-	=नर (और) तिर्यचकुअवधिज्ञानवालोंकरि किये जानेवाले (=क्रियमाण)
मरणान्तिक+अपेक्षया ॥ सर्वलोकः ॥ इति ॥ वचनं ॥	=मारणांतिकसमुद्घात विवक्षासे समस्त लोक (स्पर्शाजाता) है ऐसा वाक्य है
चतुर्दश ॥ भागाः ॥ देवानां ॥ नव ॥	=(लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं सो देवोंका (स्पर्शन) नौ (राजू) है
इति पूर्वम् ॥ उक्तत्वात् ॥	=क्योंकि इसप्रकार पहिले कथन हुआ है देखो इस अनुवादका पृष्ठ १४०

=पुलाकनिर्ग्रन्थ, बकुशनिर्ग्रन्थ कुशीलनिर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थनिर्ग्रन्थ स्नातकनिर्ग्रन्थ च भवन्ति।

सूत्रार्थ –पुलाकनिर्ग्रन्थ हैं, =[सूत्रका अर्थ] जैसे प्याल वा पराल संयुक्त धानको वा शालिको (अधम वस्तु घास वा परालके मेलसे) पुलाक कहते हैं तैसे उत्तरगुणोंके चिन्तवन वा विचार रहित तथा किसीकाल वा क्षेत्रमें मूलगुणमें विराधना स्वरूप पराल सहित तथा अल्प विशुद्धता (=अविशुद्धता) युक्त सम्यग्दृष्टि निष्परिग्रही(=निर्ग्रन्थ)कोपुलाक निर्ग्रन्थ कहते हैं,

बकुशनिर्ग्रन्थ हैं, =वह साधु है जो निष्परिग्रह होनेमें उद्यमी रहै, मूलगुणकरि परिपूर्ण हो, शरीर उपकरण (जैसे पीछी कमण्डलु शास्त्र आदि)की सुन्दरताका अनुरागी हो,मुनिरूपी परिवारकरि संयुक्त हो ऐसे मोह वा अनुमादरूपी रंगबिरंग [=बकुश]वा कर्बुरित(=बकुश आचरण)(अर्थात उज्वल वा निर्मलमें किंचित् मलिनआचरण) करि संयुक्त हो,

कुशीलनिर्ग्रन्थ हैं, =प्रति सेवना कुशील निर्ग्रन्थ (२) कषाय कुशील निर्ग्रन्थ दो प्रकार हैं अर्थात् (१) प्रतिसेवना कुशील जो (शरीर–पीछी-कमण्डल-पुस्तक–उसके वचन और शिष्यरूपी) परिग्रहसे अविरक्त दोनों मूलगुण तथा उत्तरगुण करि परिपूर्ण कथंचित् उत्तरगुणके विराधना करनेवाला होता है (२) कषायकुशील=वह है जिसने सज्वलन-कषायके अतिरिक्त अन्य कषायोंको जीत लिया हो,

(१)निर्ग्रन्थनिर्ग्रन्थ हैं च, =वह निर्ग्रन्थ निष्परिग्रही (=निर्ग्रन्थ) है जिसकें मोह कर्मका अभाव हो और जैसे जलमें दण्ड ताडनेसे लहरि उत्पन्न होती है और शीघ्र ही विलयमान हो जाती है तैसे अन्य अवशेष कर्मोंका उदयमंद हो जो (=उदय) अप्रगट है और अनुभव गोचर नहीं है, और (=च)

(२)स्नातकनिर्ग्रन्थ हैं भवन्ति, =वह निर्ग्रन्थ है जो परिपूर्णज्ञानी(=स्नातक)निष्परिग्रही मुनि हो अर्थात् जिसके चार(ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय अन्तराय) घातिया कर्म अत्यन्त नाशको प्राप्त हुये हों ऐसे तेरहवा गुणस्थानवर्ती सयोगकेवली सर्वज्ञ वीतराग जिन तथा चौदहवा गुणस्थानका धारक अयोगकेवली सर्वज्ञ वीतराग से तात्पर्य है ॥

(१)निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थ इसमें पहिला निर्ग्रन्थ शब्द जातिवाचक नाम है अर्थात् निर्ग्रन्थ जाति(उपशान्तकषाय ग्यारहवागुणस्थानवर्ती तथा क्षीणकषाय बारहवांगुणस्थानवर्ती)समस्त मुनियोंका द्योतक है और दूसरा निर्ग्रन्थ शब्दका अर्थ निष्परिग्रही है निर्ग्रन्थ जातिके मुनियोंका विशेषण है अर्थात् वे निर्ग्रन्थ जातिके मुनि(=प्रथम शब्द निर्ग्रन्थ)जो परिग्रह रहित हैं या निर्ग्रन्थता युक्त(=दूसरा निर्ग्रन्थ)॥(२)स्नातक –स्नातवेदसमाप्तौ ज्ञानसंपूर्ण होनाय अथार् संयम होनाय उससे स्नातक शब्दसे प्रयोजन है॥'स्नातक'शब्दकी व्युत्पत्ति पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ४३८में ऐसे है स्नातक(पु०) स्ना+भावक । स्नानं अस्य अस्ति कन् वेद पढनके अनन्तर गृहस्थाश्रममें लौटनेके लिये अंगभूत स्नान (न्हाना) करने द्वारा ॥ गुरुके पास विद्यासमाप्त करके घरमें आनके लिये स्नान करने वाला ॥ इससे भी यही भाव झलकता है कि जैसे विद्यार्थी विद्या समाप्त करनेके पश्चात् घरके लिये उपस्थित होता है ऐसे ही मुनि परिपूर्ण ज्ञानको प्राप्तकर मोक्षरूपी घरको जानेके लिये उपस्थित होता है ॥

उत्तरगुणभावनाऽपेत मनसो व्रतेष्वपि क्वचित्कदाचित्परिपूर्णतामपरिप्राप्नुवन्तो ऽविशुद्धाः पुलाकसादृश्यात्पुलाका इत्युच्यन्ते । नैर्ग्रन्थ्यं प्रतिस्थिता अखण्डितव्रताः शरीरोपकरणविभूषानुवर्तिनोऽविविक्तपरिवारा मोहशवलयुक्ता बकुशाः ।

(क)उत्तर-गुण-भावना-अपेत-मनसः६/१'व्रतेषु७/३'''अपि* =उत्तरगुणका चिन्तवन (=भावना)करि रहित हैं मन जिनके व्रतोंमें वा मूलगुणोंमें

क्वचित्*कदाचित्*परिपूर्णतां२/१''अपरिप्राप्नुवन्तः१/३' =भी कहीं (=क्वचित्) किसीकालमें (=कदाचित्) निष्पन्नता वा समाप्तताको नहीं पावनेवाला

(१)अविशुद्धाः१/३'पुलाक– =ईषत् (वा थोड़ी वा अल्प)विशुद्धताकरि सहित, पराल(प्याल वा घास)सहित शालि वा धानकी

सादृशस्यात्५/१'''पुलाकाः१/३' =समानता वा तुल्यता (के हेतु) से (=सादृश्यात्), पुलाक (निर्ग्रन्थ)

इति*उच्यते T । =ऐसे कहेजाते हैं अर्थात् जैसे पलाल वा न्यार संयुक्त धानको पुलाक कहते हैं तैसे उत्तरगुणके चिन्तवन वा विचार रहित तथा किसी देश वा कालमें मूल गुणमें विराधना मलरूप पराल सहित तथा अल्प विशुद्धता सहित सम्यग्दृष्टि निष्परिग्रहीको (=निर्ग्रन्थ) पुलाक कहते हैं

(ख)नैर्ग्रन्थ्यम्२/१'''प्रति*स्थिताः१/३' =(बहिरंग तथा अन्तरङ्गरूप)निष्परिग्रहता वा निर्ग्रन्थताके प्रति उद्यमी, उद्योगी वा परिश्रमी हैं अर्थात् परिग्रहके अभावके लिये तौ निरन्तर उद्यमी हैं [और]

अखण्डित–व्रताः१/३'शरीर– =अदूषित व्रती हैं अर्थात् मूलगुण खंडितनहीं करते हैं, शरीर तथा

उपकरण– =प्रधान साधन वा सामिग्री(जैसे कमण्डलपिच्छिका-पुस्तक तिसकेपथापरे और बन्धन इत्यादि)की

विभूषा–अनुवर्तिनः१/३'अविविक्त–परिवाराः१/३'=शोभा वा सुन्दरताके अनुरागी (संघके मुनि शिष्य-उपाध्याय-आचार्यरूपी)परिवारकरि संयुक्त

मोह–शवल–युक्ताः१/३' =हर्ष वा अनुमोदरूपी(=मोह) चितैलावर्ण वा रंगविरंगवर्ण(=उज्वलमें किंचित् मलिन)आचरणवाले

वकुशाः१/३' =सो वकुश [निर्ग्रन्थ मुनि] है अर्थात् वीतरागता सरागतारूपी चित्रलावर्ण वा चितकवरावर्ण आचरणकरि संयुक्त सो वकुश(निर्ग्रन्थ साधु) हैं भावार्थ ऐसा है जैसे चित्रवर्ण,कर्बुरवर्ण, वा कर्बुरित वस्तु (शवल वस्तु) भांति भांतिके उज्वल मलिन रंगोंकरि संयुक्त होती हैं तैसे ही

---

(१) अविशुद्धाः-तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ५०७में अविशुद्धका अर्थ विशुद्धता रहित नहीं किया, वरन् कषायशब्दमें जैसे 'अ'ईषद्-अल्प वा थोड़े के अर्थमें आया है तैसे अविशुद्धाःके अकारको ईषद् अर्थमें लिया है "ईषद्विशुद्धिपुलाकसादृश्यात्" श्लोकवार्तिक ॥"स्यात्पुलाकस्तुच्छधान्ये" यह अमरकोश वर्ग २३वां (नानार्थवर्ग)के पांचवें श्लोकसे लिया है-पुलाक (पु०) =तुच्छधान अर्थात् भूसीसहित धानके है ॥

शबलपर्यायवाची बकुशशब्द ॥ कुशीला द्विविधा । प्रतिसेवनाकुशीलाः कषायकुशीला इति ॥ अविविक्तपरिग्रहाः परिपूर्णोभयाः कथञ्चिदुत्तरगुणविरोधिनः प्रतिसेवनाकुशीलाः । वशीकृतान्यकषायोदयाः सञ्ज्वलनमात्रतन्त्राः कषायकुशीलाः ॥ उदकदण्डराजिवदनभिव्यक्तोदयकर्माण ऊर्ध्वं मुहूर्तादुद्भिद्यमानकेवलज्ञानदर्शनभाजो निर्ग्रन्थाः ॥

बकुश मुनि परमार्थकी अपेक्षासे रागमल सहित आचरणकरि उज्ज्वलमें किंचित् मलिन आचरणकरि युक्त होता है।

शबल-पर्यायवाची' बकुशशब्द ', कुशीला '	=शबल (शब्द)का एकार्थवाची वा समानार्थक बकुश शब्द है, कुशील (निर्ग्रन्थमुनि)
द्विविधा ', प्रतिसेवना-कुशीला ' कषायकुशीला '	=दो प्रकार प्रतिसेवनाकुशील (निर्ग्रन्थ) कषायकुशील (निर्ग्रन्थ)
इति*, अविविक्त (१) परिग्रहा '	=ऐसेहैं(शरीर पीछी-कमण्डल पुस्तक शिष्य उपाध्याय आचार्यादि सघरूप)परिग्रहसेअविरक्त
परिपूर्ण-उभया ' कथञ्चित्*	=दोनों(मूलगुण तथा उत्तरगुण)करि निष्पन्न वा परिपूर्ण किसी प्रकारसे(=कथञ्चित्)
उत्तर-गुण-विरोधिन ' प्रतिसेवना-कुशीला ',	=उत्तरगुणके विराधनेवाले हैं [सो] प्रतिसेवना कुशील (निर्ग्रन्थमुनि) हैं,
वशीकृत-अन्य-कषाय-उदया '	=जीत लिये हैं अन्य कषायोंके उदय जिनने अर्थात् अन्यकषायके उदयको वश करनेवाले हों
सज्वलनमात्र-तन्त्रा ' कषाय-कुशीला ',	=और केवल सज्वलन कषायके आधीन हों अर्थात् जिन्होंने सज्वलनकषायके अतिरिक्त अन्य समस्त कषायोंको जीत लिया हो(और जिनकें "सज्वलनकषायके स्थानक जिनकरि प्रमाद व्यक्त होय ऐसा जाके उदय न होय"-जय०वचनिका)वे कषायकुशील (निर्ग्रन्थ मुनि)हैं
(२)उदक-दण्ड राजिवत्* अनभिव्यक्त-उदय कर्माण '	=जलदण्डद्वारा रेखा वा लहरिके (=राजि) सदृश अव्यक्त वा अप्रगट है (अवशेष) कर्मोंका उदय जिनकें [अर्थात् जिनकें मोह कर्मके उदयका अभाव हो और जैसे जलमें दण्ड ताड़नेसे लहरि उत्पन्न होती है और शीघ्रही विलयमान होजातीहै तैसे अन्य अवशेष कर्मोंका उदय मंद और अव्यक्त होताहै तथा अनुभवमें नहीं आता है और आत्माके प्रदेशोंका तथा उपयोगका चलना मंद२ होता है जो व्यक्त अनुभव गोचर नहीं है]
ऊर्ध्वं ' मुहूर्तात् ' उद्भिद्यमान-केवलज्ञानदर्शनभाज '	=(और)मुहूर्तसे ऊपर प्रगट होनेवाले (=उद्भिद्यमान) केवलज्ञानदर्शनके जो धारक हों
निर्ग्रन्था '	=वे निर्ग्रन्थ(निर्ग्रन्थमुनि)हैं अर्थात् जिनके मुहूर्तके पश्चात् केवलज्ञानदर्शन होंगे वे है॥

(१) यहां परिग्रह शब्दका अर्थ गृहस्थाचार नहीं लेना चाहिये, मुनियोंके कमण्डल पीछी पुस्तकका अवलम्बन है गुरु शिष्यपनाका सम्बन्ध है सो यही परिग्रह है, इनसे पृथक्पना नहीं होय, इससे परिग्रह सहित ही कहिये (२) उपशान्तकषाय वर्ती तथा क्षीणकषायवर्ती मुनियोंसे प्रयोजन है ॥

प्रक्षीणघातिकर्माणः केवलिनो द्विविधाः स्नातकाः ॥ त एते पञ्चापि निर्ग्रन्थाः ॥ चारित्र-परिणामस्य प्रकर्षाप्रकर्षभेदे सत्यपि नैगमसंग्रहादिनयापेक्षया सर्वेऽपि ते निर्ग्रन्था इत्युच्यन्ते ॥ तेषां पुलाकादीनां भूयोऽपि विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

प्रक्षीण–घाति–कर्माणः केवलिनः द्विविधाः =(ज्ञानदर्शनावरण मोहअन्तराय)घातियाकर्मों के अत्यन्त नाशकरनेवाले केवली दो प्रकार

स्नातकाः, ते एते पञ्च अपि* निर्ग्रन्थाः, =सो स्नातक (निर्ग्रन्थ) हैं, वे (=ते) इतने (=एते) पांचों भी निष्परिग्रही निर्ग्रन्थहैं,

भावार्थ यद्यपि पूर्वोक्त पांच प्रकारके मुनि वस्त्र, आवरण, आयुध, गृह, कंटक, धन धान्यादिके रहितपनासे सर्व निर्ग्रन्थही हैं तद्यपि मोहनीयकर्मके सद्भावसे समस्तमुनि निर्ग्रन्थ नहीं है व्यवहारकरि निर्ग्रन्थ हैं परमार्थकी अपेक्षासे तो समस्तमोहनीयकर्मका नाश होते संते क्षीणकषाय बारहवांगुणस्थानवर्ती ही निर्ग्रन्थ वा निष्परिग्रही है और चार घातिया कर्मोंके नाश करने पर सयोगकेवली तथा अयोगकेवली स्नातक निर्ग्रन्थ होते हैं ॥

चारित्र-परिणामस्य प्रकर्ष–अप्रकर्ष–भेदे सति अपि* =चारित्र परिणामकी वृद्धि हानिके भेद होनेपर भी

नैगम–संग्रह–आदि–नय–अपेक्षया सर्वे अपि* ते =नैगम संग्रह आदिक नयोंकी अपेक्षाकरि सब ही वे

निर्ग्रन्थाः इति* उच्यन्ते T तेषां पुलाकादीनां भूयस्* =निर्ग्रन्थ हैं ऐसे कहे गये हैं, तिन पुलाकादिककी फिर (=भूयस्)

अपि* विशेष* प्रतिपत्ति–अर्थम् आह T ॥ =भी विशेष प्रवृत्ति वा प्राप्तिके लिये(आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थ-लिङ्ग-लेश्या-उपपाद-स्थान-विकल्पतःपुलाकादयः साध्याः भवन्ति॥

सूत्रार्थः—संयम–श्रुत–प्रतिसेवना–तीर्थ–लिङ्ग– =संयम, श्रुत वा श्रुतज्ञान, प्रतिसेवना वा विराधना, तीर्थ वा हितशासनकाल, लिङ्ग वा चिन्ह,

लेश्या–उपपाद–स्थान–विकल्पतः* =लेश्या, (मृत्युकेपीछे) उत्पत्ति वा जन्म और [संयमके]स्थान भेदसे (=विकल्पतः)

पुलाक–आदयः साध्याः भवन्ति T ॥४७॥ =पुलाकादिमुनि साधने योग्य हैं अर्थात् उक्त आठ कारणोंसे पुलाकादिके विशेष भेदहैं

त एते पुलाकादय. संयमादिभिरष्टाभिरनुयोगैः साध्या व्याख्येया ॥तद्यथा पुलाकवकुशप्रतिसेवनाकुशीला द्वयो संयमयो सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्वर्तन्ते। कषायकुशीला द्वयोः संयमयो परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययो पूर्वयोश्च। निर्ग्रन्थस्नातका एकस्मिन्नेवयथाख्यात संयमे सन्ति॥श्रुत-पुलाकवकुशप्रतिसेवनाकुशीला उत्कर्षेणाभिन्नाक्षरदशपूर्वधरा कषायकुशीला.

वृत्त्यनुवाद.—ते 'एत 'पुलाक—आदय 'संयम—आदिभि 'अष्टाभि 'अनुयोगै 'साध्या. 'व्याख्येया 'तद्यथा*—पुलाक—वकुश—प्रतिसेवनाकुशीला. 'द्वयो 'सयमयो 'सामायिक—च्छेदोपस्थापनयो 'वर्तन्ते।, कषायकुशीला. 'द्वयो 'सयमयो 'परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसाम्परायो '(१)पूर्वयो ' च* निर्ग्रंथ—स्नातका 'एकस्मिन् 'एव* यथाख्यातसयमे 'सन्ति।श्रुत 'पुलाक—वकुश—प्रतिसेवनाकुशीला. 'उत्कर्षेण 'अभिन्न—अक्षर—दशपूर्वधरा. 'कषायकुशीला '

=वे (=ते) इतने पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ, स्नातक (मुनि) सयम,
=श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिङ्ग,लेश्या, उपपाद, (=सयमके)स्थान आठ कथनोंकरि
=साधनेयोग्य है सिद्ध कियेजानेयोग्य हैं,वा व्याख्यान कियेजाने योग्य हैं(=व्याख्येय)
=जैसे पुलाक[निर्ग्रन्थमुनि]वकुश[निर्ग्रन्थमुनि]प्रतिसेवना कुशील (निर्ग्रन्थ) साधु दो
=सयम सामायिक तथा छेदोपस्थापनमें प्रवर्तते हैं,
=कषायकुशील निर्ग्रन्थमुनि दो सयम परिहारविशुद्धि,
=सूक्ष्मसाम्परायमें और पहिलेके दो(सामायिक,छेदोपस्थापन)में भी (=च)(प्रवर्तते हैं) अर्थात् कषायकुशील निर्ग्रन्थ मुनिके सामायिक—छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसाम्पराय चारों सयम होते है ।
=निर्ग्रंथ (निर्ग्रंथमुनि) और स्नातक (पूर्णतया निष्परिग्रहीमुनि) एक ही [=एव]
=यथाख्यातसयममें प्रवर्तते है ॥श्रुतज्ञान है सो पुलाक निर्ग्रंथमुनि वकुशनिर्ग्रंथमुनि
=प्रतिसेवनाकुशील [निर्ग्रंथमुनि] उत्कृष्टतासे वा अधिक से अधिक
=अभिन्न अक्षर (जिसमेंसे एक अक्षर भी पृथक् नहीं) अर्थात् समस्त वा सम्पूर्ण
=दश पूर्वकेधारी वा ज्ञाता होते है । (=उत्कृष्टकरि) कषायकुशील(निर्ग्रन्थमुनि)

(१) पूर्वयो -श्वेताम्बरआम्नायके समाष्य०में "पूर्वयो नहीं हैं उनको भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पत्र७४८के अनुसार कषायकुशील निर्ग्रंथमुनिके भाष्यकारकेमतानुकूल सामायिक—च्छेदोपस्थापन दो सयमी वर्तते हैं।"श्रुतज्ञानकी अपेक्षासे दोनों सम्प्रदायोंमें अर्थ भेद नहीं है ॥

निग्रन्थाश्चतुर्दशपूर्वधराः । जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु। बकुशकुशीलनिर्ग्रन्थानां श्रुतमष्टौ प्रवचनमातरः । स्नातका अपगतश्रुताः केवलिनः॥ प्रतिसेवना—पञ्चानां मूलगुणानां रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगाद्बलादन्यतमं प्रतिसेवमानः पुलाको भवति॥बकुशो द्विविधःउपकरणबकुशः शरीरबकुशश्चेति ॥ तत्रोपकरणबकुशो बहुविशेषयुक्तोपकरणाकांक्षी शरीरसंस्कारसेवी शरीरबकुशः ॥ प्रतिसेवनाकुशीलो मूलगुणानविराधयन्नुत्तरगुणेषु काञ्चिद्

निर्ग्रन्थाः१/३'चतुर्दश—पूर्वधराः१/३';जघन्येन३/१'पुलाकस्य६/१' =[और] निर्ग्रन्थ[निर्ग्रन्थमुनि]चौदह पूर्वके ज्ञाता होते हैं, न्यूनतासे पुलाकमुनिका

श्रुतम्१/१'''आचार—वस्तु१/१''', =श्रुतज्ञान (द्वादशांगवाणीका पहिला अंग आचारांगमें) आचार वस्तु तक है,

बकुश—कुशील—निर्ग्रन्थानाम्६/३'श्रुतम्१/१''' =[जघन्यकरि]बकुश(निर्ग्रन्थमुनि)का,कुशील[निर्ग्रन्थमुनि]का औरनिर्ग्रन्थरमुनिकाश्रुत

अष्टौ१/३'प्रवचन—मातरः१/३'' =आठ प्रवचन मातृका है अर्थात् द्वादशांगवाणीमें प्रथम आचारांग १८०००पदोंकाहै उसमें इन साधुओंका ज्ञान पांच समिति औरतीनिगुप्तिके व्याख्यान पर्यन्त होताहै॥

स्नातकाः१/३'अपगतश्रुताः१/३'केवलिनः१/३';प्रतिसेवना१/१'' =स्नातक [निर्ग्रन्थमुनि] केवलीभगवान् श्रुतज्ञानसे रहित हैं । प्रतिसेवना है सो

पञ्चानाम्६/३'मूलगुणानाम्६/३'च*रात्रि—भोजन— =पांच[अहिंसा-अनृत वा सत्य-अस्तेय-ब्रह्म-अपरिग्रह)महाव्रतोंके और रात्रिके भोजनका

वर्जनस्य६/१'''पर—अभियोगात्५/१'बलात्५/१' =त्याग वा निषेधका अन्यकी प्रेरणासे[=पर-अभियोगात्](अन्य)के शरीरकी सामर्थ्य से

अन्यतमम्२/१। =इन छह (=पांचमहाव्रत तथा रात्रिभोजननिषेध) में से किसी एक की [=अन्यतम]

प्रतिसेवमानः१/१'पुलाकः१/१'भवति T ॥ =विराधना करनेवाला वा उलंघन करनेवाला पुलाक होता है,

बकुशः१/१'द्विविधः१/१'उपकरण—बकुशः१/१'शरीरबकुशः१/१' =बकुश (निर्ग्रन्थमुनि) दो प्रकार है उपकरण बकुश और [=च] शरीर बकुश

च*इति* । तत्र*उपकरणबकुश—बहु—विशेषयुक्त— =ऐसे हैं । तहां उपकरणबकुश बहुत प्रकारकी (=विशेषयुक्त) वा बहुत प्रकार वाली

उपकरण—आकांक्षी१/१' =सामग्रीका इच्छुक है अर्थात भांतिरको सामिग्रीकी रखनेकी इच्छा यही विराधना है

शरीर—संस्कार—सेवी१/१'शरीर—बकुशः१/१'; =देहके सजाउकासेवकसोशरीर बकुशहै अर्थात् शरीरके सजाउका भाव सो विराधनाहै॥

प्रतिसेवनाकुशीलः१/३'मूलगुणान्२/३'अविराधयन्१/१। =प्रतिसेवना कुशील(निर्ग्रन्थमुनि)[पांच]महाव्रतोंको न विराधताहुआ घात न करताहुआ

उत्तर गुणेषु७/३। काञ्चित्* =उत्तरगुणोंमें कोई एक—किसी एक [=काञ्चित्] की

विराधना प्रतिसेवते ॥ कषायकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकाना प्रतिसेवना नास्ति ॥ तीर्थमिति सर्वे सर्वेषां तीर्थकराणा तीर्थेषु भवन्ति ॥ लिङ्ग द्विविधम् द्रव्यलिंगं भावलिङ्ग चेति ॥ भावलिङ्ग प्रतीत्य पञ्च निर्ग्रन्था लिगिनो भवन्ति । द्रव्यलिग प्रतीत्य भाज्या ॥ लेश्या – पुलाकस्योत्तरास्तिस्र । वकुशप्रतिसेवनाकुशीलयो षडपि । कृष्णलेश्यादि–

विराधनाम्''प्रतिसेवते T ।
कषायकुशील निर्ग्रन्थ-स्नातकानाम् प्रतिसेवना''न*
अस्तिT । तीर्थम्'''इति*सर्वे'सर्वेषाम्'
तीर्थकराणाम्'तीर्थेषु''भवन्तिT,लिङ्गम्'''
द्वि-विधम्'''द्रव्यलिङ्गम्'''भावलिङ्गम्'''च"इति*
भावलिंगम्'''प्रतीत्य—पञ्च'
निर्ग्रन्था 'लिङ्गिन 'भवन्ति T ।

द्रव्य-लिंगम्'प्रतीत्य—भाज्या '

लेश्या''पुलाकस्य''उत्तरा '''तिस्र '''
वकुश–प्रतिसेवनाकुशीलयो '
षट्' 'अपि*,कृष्णलेश्या-आदि–

=विराधनाका प्रतिसेवता है अर्थात् उत्तरगुणोंमें किसी एक गुणको उल्लंघन करता है, =कषायकुशील,निर्ग्रन्थ(=निर्ग्रन्थमुनि). तथा स्नातक(निर्ग्रन्थमुनि)के विराधना नहीं =है, तीर्थ ऐसा है कि सब (पुलाक,वकुश, कुशील,निर्ग्रन्थ,स्नातकमुनि) समस्त =तीर्थ करोंकेतीर्थों में अर्थात् उनके धर्मशासन कालमें होते है, लिंग,लक्षण,गुण, वा चिन्ह =दो प्रकार ऐसे हैंकि द्रव्यलिंग अर्थात् सम्यक्त्व रहित और भावलिंग सम्यक्त्व सहितहैं =भावलिंगको निमित्तमानकर(=प्रतीत्य)पाचों(पुलाक-वकुश-कुशील निर्ग्रन्थ-स्नातकमुनि) =निष्परिग्रही(भाव) लिंगी होते हैं अर्थात् पाचों ही सम्यग्दर्शन सहित हैं और मुनिपनामें पाचो निर्ग्रन्थमुनियोंमेंसे किसीके निरादर भाव नहीं है, =द्रव्य लिंगको निमित्त मानकर (=प्रतीत्य) (पाचोंही) भेद रूप हैं अर्थात् जैसे केई आहार करते हैं, केई अनशनादिक तप करते हैं, केई उपदेश करते हैं, केई अध्ययन करते हैं, केई तीर्थमें विहार करते हैं, केई अनेक आसनरूप ध्यान करते हैं, केईको दूषण लगता है सो प्रायश्चित लेते है, केई दूषण नहीं लगाते है, केई आचार्य हैं, केई उपाध्याय हैं, केई प्रवर्तक है (काममें लगानेवाले),केई निर्यापक हैं, केई वैयावृत्त्य करते हैं, केई ध्यानमें श्रेणीका प्रारम्भ करते हैं, केईके केवल ज्ञान उपजता है, इत्यादि मुनिगणमें बाह्य प्रवृत्तिकी अपेक्षा लिंग भेद है ॥ =लेश्या है सो पुलाक(निर्ग्रन्थमुनि)के अग्रिम(पीतलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या) तीन हैं, =वकुश(निर्ग्रन्थ मुनि) तथा प्रतिसेवना कुशील (निर्ग्रन्थ) [इन दोनों] मुनिके, =छह(कृष्णलेश्या,नीललेश्या,कापोतलेश्या,पीत पद्म शुक्ललेश्या)भी हैं,कृष्णलेश्यादिकका

त्रितयं तयोः कथमिति चेदुच्यते तयोरुपकरणासक्तिसंभवादार्तध्यानं कदाचित्सम्भवति, आर्तध्यानेन च कृष्णादिलेश्यात्रितयं सम्भवतीति । कषायकुशीलस्य चतस्र उत्तराः । सूक्ष्मसाम्परायस्य निर्ग्रन्थस्नातकयोश्च शुक्लैव केवला । अयोगा अलेश्याः ॥ उपपादः—पुलाकस्योत्कृष्ट उपपाद उत्कृष्टस्थितिदेवेषु सहस्रारे । बकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोर्द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिषु आरणाच्युतकल्पयोः । कषायकुशीलनिर्ग्रन्थयोस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिषु सर्वार्थसिद्धौ । सर्वेषामपि जघन्यः सौधर्मकल्पे द्विसागरोपमस्थितिषु स्नातकस्य निर्वाणमिति

त्रितयम्'''तयोः'कथम्*इति*चेत्* =त्रिसमूह (=त्रितयं) दोनों (बकुश-प्रतिसेवनाकुशील)के कैसेहैं ऐसा संदेह होनेपर
उच्यते T तयोः'उपकरण- =(उत्तरमें)कहाजाता है कि दोनों(बकुश-प्रतिसेवनाकुशील)के उपकरण वा सामिग्रीकी
आसक्ति-सम्भवात्'आर्तध्यानम्'''कदाचित्* =लगन(=आसक्ति)के सम्भव होनेसे(=सम्भवात्)आर्तध्यान किसीसमयमें(=कदाचित्)
सम्भवतिTआर्तध्यानेन'''च*कृष्ण-आदि-लेश्या- =हो सक्ता है और (=च) आर्तध्यानसे कृष्ण आदि लेश्याओंका,[कृष्ण-नील-कापोत]
त्रितयम्'''सम्भवति Iइति*कषायकुशीलस्य'चतस्रः''' =त्रिसमूह होसक्ताहै, कषायकुशील (निर्ग्रन्थमुनिके) चार(कापोत-पीत-पद्म-शुक्ल)
उत्तराः'',सूक्ष्मसाम्परायस्य'निर्ग्रन्थ-स्नातकयोः' =अगली(लेश्या) हैं, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्तीके और निर्ग्रन्थस्नातक(मुनियों)के
च*शुक्ला'''एव*केवला'',अयोगाः'अलेश्याः', =केवल(=केवला) अर्थात् अकेली शुक्ल(लेश्या)ही है, अयोगकेवली लेश्या रहित हैं॥
उपपादः'—पुलाकस्य'उत्कृष्टः'उपपादः। =उपपाद, उत्पत्ति वा जन्म है सो पुलाक (निर्ग्रन्थ मुनि)का उत्कर्ष जन्म वा उत्पत्ति
उत्कृष्ट-स्थिति-देवेषु'सहस्रारे', =सहस्रार बारहवांकल्पमें उत्कर्ष[अठारह सागर] आयुके धारक देवोंमें होती है।
बकुश-प्रतिसेवनाकुशीलयोः' =बकुश (निर्ग्रन्थमुनि) और प्रतिसेवना कुशील (निर्ग्रन्थमुनि) का(उत्कृष्ट उपपाद)
द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिषु''आरण-अच्युत-कल्पयोः'=बाईस सागर प्रमाण स्थितिमें आरण(पन्द्रहवां)अच्युत (सोलहवां)स्वर्गोंमें होता है,
कषाय-कुशील-निर्ग्रन्थयोः'त्रियस्त्रिंशत्सागरोपम- =कषायकुशील और निर्ग्रन्थ[निर्ग्रन्थमुनि]का(उत्कृष्ट उपपाद)तेतीस सागर प्रमाण
स्थितिषु''सर्वार्थसिद्धौ'',सर्वेषाम्'अपि*जघन्यः' =आयुमें सर्वार्थसिद्धिमें होता है,समस्त(छहोप्रकारके मुनियों)का भी जघन्य(उपपाद)
सौधर्म-कल्पे'द्वि-सागरोपमस्थितिषु'',स्नातकस्य' =सौधर्मस्वर्गमें दो सागरप्रमाण आयुमें होता है, स्नातक(निर्ग्रन्थमुनि)का[उपपाद]
निर्वाणम्'''इति* =अर्थात् केवली भगवान्का(उपपाद),निर्वाण वा मोक्ष है, ऐसा [वर्णनकियागया] है

स्थानम्-असंख्येयानि संयमस्थानानि कषायनिमित्तानि भवन्ति । तत्र सर्वजघन्यानि लब्धिस्थानानि पुलाककषायकुशीलयोस्तौ युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छतस्तत पुलाको व्युच्छिद्यते। कषायकुशीलस्ततोऽसंख्येयानि स्थानानि गच्छत्येकाकी। तत कषायकुशीलप्रतिसेवनाकुशीलबकुशा युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छन्ति । ततो बकुशो व्युच्छिद्यते । ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा प्रतिसेवनाकुशीलो व्युच्छिद्यते

स्थानम्;'''असंख्येयानि;'''संयमस्थानानि;''' =(संयमकी लब्धिका) स्थान है सो असंख्यात संयम(की लब्धिके)स्थान

कषाय-निमित्तानि;'''भवन्ति, =कषाय के मंद तथा तीव्र होने)के कारणक हैं अर्थात् उन कषायोंके निमित्तसे होते है

तत्र-सर्वजघन्यानि;'''लब्धिस्थानानि;'''पुलाक- =वहां सबसे निकृष्ट वा न्यून संयमके लब्धि स्थान पुलाक (निर्ग्रन्थमुनि)के

कषायकुशीलयो;'''तौ; =और कषायकुशील [निर्ग्रन्थमुनि]के होते है, वे दोनों (पुलाक और कषायकुशील)

युगपद्-असंख्येयानि;'''स्थानानि;'''गच्छतः; =एक कालमें असंख्यात संयमलब्धि स्थानोंको जानेवाले हैं अर्थात् प्राप्त करनेवाले हैं,

ततः =वहांसे (अर्थात् संयमकी लब्धिके असंख्यात स्थानोंमें पहुंचकर वहांसे)

पुलाकः;'''व्युच्छिद्यते, =पुलाक (निर्ग्रन्थमुनि) व्युच्छित्तिको प्राप्त होता है अर्थात् इन असंख्यात स्थानोंके आगेके संयमलब्धिस्थान पुलाकके नहीं होते है, वा पुलाक उनको प्राप्त नहीं करसक्ता है

कषायकुशीलः;'''ततः =कषाय कुशील (निर्ग्रन्थमुनि) वहां (ऊपर कहेहुये असंख्यात संयम स्थानों)से

असंख्येयानि;'''स्थानानि;'''गच्छति;'''एकाकी;, =असंख्यात संयमलब्धि स्थानोंको अकेला जाता है. अर्थात् अन्य मुनिके नहीं होतहैं

ततः =वहां (अर्थात् दूसरी बार कहेहुये असंख्यात संयमलब्धि स्थानों)से

कषाय-कुशील-प्रतिसेवनाकुशील-बकुशाः; =कषायकुशील(निर्ग्रन्थमुनि)प्रतिसेवना कुशील(निर्ग्रन्थमुनि)और बकुश(निर्ग्रन्थमुनि)

युगपद्-असंख्येयानि;'''स्थानानि;'''गच्छन्ति =साथ साथ असंख्यात संयमलब्धिस्थानोंको जाते है अर्थात्उक्तस्थानोंको प्राप्त करते हैं

ततः-बकुशः;'''व्युच्छिद्यते । =वहां (तीसरी बार कहेहुये संयमलब्धि स्थानों)में बकुशमुनि पृथक् कियाजाता है

ततः-अपि-असंख्येयानि;'''स्थानानि;' गत्वा-प्रतिसेवना=वहांसे भी असंख्यात संयमलब्धि स्थानों [=में] जाकर प्रतिसेवना

कुशीलः;'''व्युच्छिद्यते । =कुशील[निर्ग्रन्थमुनि]व्युच्छित्तिको प्राप्त होताहै अर्थात्आगके स्थान उसके नहीं होतेहैं

ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा कषायकुशीलो व्युच्छिद्यते । अत ऊर्ध्वमकषायस्थानानि निर्ग्रन्थः प्रतिपद्यते। सोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा व्युच्छिद्यते । अत ऊर्ध्वमेकं स्थानं गत्वा स्नातको निर्वाणं प्राप्नोति । तेषां संयमलब्धिरनन्तगुणा भवति ॥

॥इति तत्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसाञ्ज्ञिकायां नवमोऽध्यायः॥

ततः*अपि* =वह (अर्थात् चौथीवार कहेहुये असंख्येय संयमलब्धि स्थानों)से भी

असंख्येयानि'''स्थानानि'''गत्वा ÷ =(कषायकुशील निर्ग्रन्थमुनि)असंख्यात संयमलब्धि स्थानोंको जाकर,अर्थात् प्राप्त होकर

कषायकुशीलः''व्युच्छिद्यतेT,अतः*ऊर्ध्वम्'' =(वोही) कषायकुशील मुनि व्युच्छित्तिको प्राप्त होता है । इससे ऊपर [अर्थात् उन संयमलब्धि स्थानोंके आगे जहां कि कषायकुशील निर्ग्रन्थमुनिकी व्युच्छित्तिहुई है)

अकषाय-स्थानानि'''निर्ग्रन्थः'प्रतिपद्यते T । =कषायरहित संयमलब्धिस्थानोंको निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थमुनि प्राप्त होता है

सः'अपि*असंख्येयानि'''स्थानानि'''गत्वा÷ =वह [निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थ मुनि] भो असंख्यात[कषाय रहित]संयमलब्धि स्थानोंकोजाकर

व्युछिद्यते T ॥ =पृथक् किया जाता है वा रोका जाता है वा व्युच्छित्तिताको प्राप्त होता है,

अतः* =इन[कषाय रहित निर्ग्रन्थ मुनिद्वारा प्राप्त कियेहुये असंख्यात संयमलब्धिस्थानों)से

ऊर्ध्वं'' एकं'''स्थानम्''।।गत्वा÷स्नातकः''निर्वाणं'''=ऊपर एक(संयमलब्धि) स्थान को प्राप्त होकर(=गत्वा)स्नातक मुनि निर्वाणको

प्राप्नोति T तेषाम्'''संयमलब्धिः''अनन्तगुणा''=प्राप्तहोताहै॥तिन(स्थानों=संयमकी लब्धिके स्थानों)के संयमकी प्राप्ति अनन्तगुणी

भवति T॥ =है अर्थात उपर्युक्त असंख्यात संयमकी लब्धिके स्थानोंमेंसे(=तेषाम्)प्रत्येक उक्तस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षासे संयमकी प्राप्ति अनन्तगुणी होती है॥ "अर इनिकै संयमकी लब्धि अनन्तगुणी अनन्तगुणी है"(दूनीजी अनुवादित राजवार्तिकसे उद्धृत) ॥

इति तत्वार्थ-वृत्तौ सर्वार्थसिद्धि=एसे तत्वार्थकी व्याख्यामें सर्वार्थसिद्धि-संज्ञिकानाम्नवमःअध्यायः=नामाटीकाकानवमाअध्याय(समाप्त)हुआ

असंयतानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ [९] दर्शनानुवादेन—चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां पञ्चेन्द्रियवत्। अचक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानामवधिकेवलदर्शनिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ (१०) लेश्यानुवादेन-कृष्णनीलकापोतलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः।

असंयतानाम् ॥ च	= तथा। = च] असंयमी [पहिले दूसरे तीसरे चौथे गुणस्थानवाले] नका
सामान्य—उक्तम् ॥ स्पर्शनम् ॥	= स्पर्शन संक्षेपसे कथित [गुणस्थानवत्] है देखो पृष्ठ १३२—१३५, ११५ से १२० [इसी अनुवादका]
। ९ । दर्शन—अनुवादेन ॥ चक्षुःदर्शनिनाम् ॥	= [९] दर्शनके कथनानुसारकरि चक्षुः दर्शनवाले
मिथ्यादृष्टि—आदि—क्षीणकषाय—अन्तानाम् ॥	= मिथ्यादृष्टीसे लेकर क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थान] वर्तीनका
पञ्च—इन्द्रियवत् *	= [स्पर्शन] पचइन्द्रियजीवोंके सदृश है देखो पृष्ठ १३२ से १३६ तक और १४१
अचक्षुःदर्शनिनाम् ॥ मिथ्यादृष्टि—आदि—क्षीणकषाय	= अचक्षु' दर्शनवाले मिथ्यादृष्टीसे क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थानवाले]
अन्तानाम् ॥ अवधिकेवलदर्शनिनाम् ॥ च	= पर्यंतोंका अवधिदर्शनी और [= च] केवल दर्शनवालोंका
सामान्य—उक्तम् ॥ स्पर्शनम् ॥	= स्पर्शन संक्षेपसे [पहिले] कहा हुआ [गुणस्थानवत्] है [पृष्ठ १३२ से १३६—११५ से १२० देखो]
१० लेश्या—अनुवादेन ॥ कृष्णनील—कापोत—लेश्यै ॥	= १० लेश्याकी अपेक्षासे कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले
मिथ्यादृष्टिभि ॥ सर्वलोक ॥ स्पृष्ट ॥	= मिथ्यादृष्टी जीवोंकरि सारा लोक स्पर्शा जाता है
सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ॥	= [कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले] सासादन सम्यग्दर्शनवालोंकरि
लोकस्य ॥ असंख्येयभाग ॥	= लोकका असंख्यातवां अंश [छुआ जाता] है

(१) मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानाम्

मिथ्यादृष्टि—असंयतसम्यग्दृष्टि—अन्तानाम् ॥	= मिथ्यादृष्टिसे असंयत सम्यग्दृष्टी (पहले दूसरे तीसरे चौथे गुणस्थानवर्ती) पर्यंतनके (स्पर्शनसे अभिप्राय है)

इह वृत्तिकरणं न्याय्यम्। कुतः। लघुत्वात्। कथम्। क्षयशब्दस्याकरणात्। विभक्त्यन्तरनिर्देशस्य चाभावाच्चशब्दस्य चाप्रयोगाल्लघुसूत्रं भवति मोहज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयात्केवलम्" इति ॥ सत्यमेतत् ॥ क्षयक्रमप्रतिपादनार्थो वाक्यभेदेन निर्देशः क्रियते—

अर्थात् मोहनीय कर्मके क्षय होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालमें क्षपकश्रेणी चढ़ाहुआ जीव क्षीणकषाय नामका बारहवां गुणस्थान पाकर दर्शनावरणीय कर्मकी बारहवां गुणस्थानके उपांत्य समयमें (=अन्त्य समय तिससे पहिले समयमें) निद्रा, प्रचला दो प्रकृतियोंको क्षयकरि और बारहवां गुणस्थानके अन्त्य समयमें पांच ज्ञानावरणीय कर्म, चारदर्शनावरणीय कर्म, पाँचअन्तराय कर्मकी प्रकृतियोंको क्षयकरि तिसके अनन्तर ही केवल ज्ञानरूपी आत्माकी अचिन्त्य विभूतवाली पर्य्यायको प्राप्त करता है ॥

वृत्यनुवादः-इह*वृत्तिकरणम्[1]॥न्याय्यम्[1]॥,=इस स्थानमें (अर्थात् इस सूत्रमें) समास करना उचित था।

कुतः *। लघुत्वात्[5]॥, कथम्*,	=क्योंकर ? (उत्तर) (सूत्र) छोटा होजाने (के हेतु)से (प्रश्न)कैसे ? (सूत्र छोटा होजाता)
क्षयशब्दस्य[6]अकरणात्[5]॥,च*विभक्ति-अन्तर-	=(मोहक्षयात् इस वाक्यके) 'क्षय' शब्दके न लानेसे और (=च) बीचकी (=अंतर)
निर्देशस्य[6]। अभावात्[5]।	=(पंचमी विभक्ति वा अपादान कारकके) निर्देश वा उपदेशके अभावसे
च*शब्दस्य[6]। च*अप्रयोगात्[5]।	=और (=च) चशब्दके प्रयोग न करनेसे अर्थात् (सूत्रमें) चशब्दके न लानेसे
लघुसूत्रम्[1]॥भवति। इति 'मोहज्ञानदर्शनावरणा-	=छोटा सूत्र हो जाता है ॥ इस प्रकार कि "मोहज्ञानदर्शनावरणा-
न्तरायक्षयात्केवलम्" । सत्यम्[1]॥एतत्[1]॥,	=न्तराय क्षयात्केवलम्"-(उत्तर) यह (=एतत्) सत्य है (परन्तु)
क्षय-क्रम-प्रतिपादन-अर्थः[1]। वाक्यभेदेन[3]।	=(इस सूत्रमें क्षय(शब्द)क्रम जतावनेके लिये पृथक् २ वा भिन्न २ वाक्य भेदकरि
निर्देशः[1]। क्रियते ।—	=उपदेश किया गयाहै अर्थात् दो होनेवाली वातोंको कि एक होनेके पश्चात् दूसरी होगी यह अनुक्रम जतावनेके लिये सूत्रमें क्षयशब्द दोवार भिन्न २ दो वाक्योंमें लायागया है

"मोहक्षयात् च ज्ञानदर्शनावरणांतराय क्षयात् केवलम्" यह पृथक २ दो स्थानों में तो पचमी अपादान विभक्तिको हेतु अर्थमें निर्देश किया है सो उस कर्मकी प्रसिद्धिके अर्थ किया है, कि जिससे यह अर्थ स्पष्ट रूपसे भान हो कि प्रथम सम्पूर्ण मोहनीय कर्मका क्षय होता है उसके पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण अन्तराय इन तीनों प्रकृतियों का क्षय होता है। नहीं तो सूत्र ऐसे होता "मोहज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयात्केवलम्"

॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥

आह—अन्ते निर्दिष्टस्य मोक्षस्येदानी स्वरूपाभिधानं प्राप्तकालमिति । सत्यमेवं, मोक्षप्राप्ति केवलज्ञानावाप्तिपूर्विकेति केवलज्ञानोत्पत्तिकारणमुच्यते—

मोहक्षयात्ः ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥१॥

अथ*दशमः[१] अध्याय[१] =दशवां अध्याय आरम्भ (=अथ)है ॥

आह । =(कोई) पूछता है कि (जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्)

अन्ते॥निर्दिष्टस्य॥मोक्षस्य॥ इदानीम् स्वरूप- =(इस सूत्रके) अन्तमें उपदेश कियाहुआ मोक्षके स्वरूपके अब (=इदानीम्)

अभिधानम्॥प्राप्तकालम्॥इति* । सत्यम्॥एवं* =कहनेका अवसर वा समय मिला है (उत्तर) सत्य ही है (परन्तु)

मोक्ष प्राप्ति॥केवलज्ञान–अवाप्ति–पूर्विका॥ =मोक्षकी लब्धि केवलज्ञानकी प्राप्ति निमित्तक है अर्थात् केवल ज्ञान है निमित्त मोक्षकी प्राप्तिके लिये भावार्थ पहिले केवलज्ञान हो तो मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥

इति*केवल–ज्ञान–उत्पत्ति–कारणम्॥ उच्यते । =ऐसे केवलज्ञानके उपजनेका हेतु(निम्नलिखित सूत्रमें)कहा जाता है कि

मोहक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥ १ ॥

सूत्रार्थ—मोह–क्षयात्॥ च*ज्ञान–दर्शन–आवरण– =मोहनीय कर्मके नाश होने(के)हेतुसे औरउसके(२)पश्चात्ज्ञानावरणीय,दर्शनावरणीय,

अन्तराय–क्षयात्॥केवलम्॥भवति । =अन्तराय (कर्मों)के क्षय होने (के निमित्त)से केवल ज्ञान होता है ।

१) हमारे यहां के बहुधा पुस्तकोंमें और श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें मोहक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्' पाठ है, उनके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें और कहीं कहीं पर हमारे यहां भी जहां प्रथम और द्वितीय वाक्यकी सन्धि करदीगई है वहां मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्" पाठ है । 'मोहक्षयात्'के त् का परिवर्तन द् में होगया (देखो अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ १५ की) पश्चात् द् पलट जाता है ज् में अर्थात् जब तु वर्ग(=त्–थ् द् ध् न्)चु वर्गके किसी अक्षरके साथ आवे तो वह अक्षर च वर्गके यथासंख्य अक्षरमें पलट जावे । अत द् का ज् । ज्ञ—ज+ञ ॥(२)अनुवादमें पश्चात्' शब्द इस कारणसे लायागया हैकि पदच्छेदके पीछे यहसूत्र ऐसा होजाता हैकि

भव्यः सम्यग्दृष्टिः परिणामविशुध्द्या वर्धमानो असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तगुण-
स्थानेषु कस्मिंश्चिन्मोहस्य सप्त प्रकृतीः क्षयमुपनीय क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा क्षपकश्रेण्यारो-
हणाभिमुखोऽधःप्रवृत्तिकरणमप्रमत्तस्थाने प्रतिपद्यापूर्वकरणप्रयोगेणापूर्वकरणक्षपकगुणस्थान-
व्यपदेशमनुभूय तत्राभिनवशुभाभिसन्धितनूकृतपापप्रकृतिस्थित्यनुभागो विवर्धितशुभकर्मा-
नुभवोऽनिवृत्तिकरणप्राप्त्यानिवृत्तिबादरसाम्परायक्षपकगुणस्थानमधिरुह्य तत्र कषायाष्टक

भव्यः(१/१)। सम्यग्दृष्टिः(१/१)। परिणाम-विशुद्धया(३/१)।। =भव्य हो सम्यग्दृष्टि हो भावोंकी विशुद्धता करि
वर्द्धमानः(१/१)। असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत- =वृद्धिशील हो या बढ़ा हुआ हो। अविरतिसम्यग्दृष्टि(चौथा)देशविरत(पाँचवां)
प्रमत्त-अप्रमत्त-गुणस्थानेषु(७/३)।कस्मिंश्चित्* =प्रमत्तविरत(छठवां)अप्रमत्त विरत(सातवां)गुणस्थानोंमेसे किसी एक(गुणस्थान)मे
मोहस्य(६/१)। सप्त- =मोहकर्मकी सात (मिथ्यात्व-सम्यङ्मिथ्यात्व-सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व,
अनन्तानुबन्धीक्रोध, अनन्तानुबन्धीमान,अनन्तानुबन्धीमाया,अनन्तानुबन्धीलोभ)
प्रकृतीः(२/३)।।क्षयं(२/१)।उपनीयक्षायकसम्यग्दृष्टिः(१/१)।भूत्वाक्षपकश्रेणि=प्रकृतियोंको विनाश प्राप्तकरि क्षायकसम्यग्दृष्टि होकर क्षपकश्रेणीके
आरोहण-अभिमुखः(१/१)।अधःप्रवृत्तिकरणम्(२/१)।।अप्रमत्त- =चढ़नेको सन्मुख होनेवाला अधःप्रवृत्तिकरणको, अप्रमत्त (सातवें)
स्थाने(७/१)।।प्रतिपद्य ÷ अपूर्वकरण-प्रयोगेण(३/१)। =गुणस्थानमें पाकरि अपूर्वकरण प्रयोगका परिणामकरि
अपूर्वकरण-क्षपकगुणस्थान-व्यपदेशम्(२/१)। =अपूर्वकरणनाम (=व्यपदेश) (आठवा)क्षपक श्रेणीके गुणस्थानको
अनुभूय ÷ तत्र*अभिनव-शुभ-अभिसन्धि-- =भोगकरि तहां (आठवां गुणस्थानमें) नवीन शुभ परिणामोसे(=अभिसंधि)
तनूकृत-पापप्रकृति-स्थिति-अनुभागः(१/१)। =क्षीण किये हैं (=तनूकृत) पाप प्रकृतियोके स्थिति अनुभाग जिमने
विवर्धित-शुभ-कर्म-अनुभवः(१/१)। =बढ़ाया है शुभ प्रकृतियोंका अनुभाग जिसने (ऐसा होय)
अनिवृत्तिकरण-प्राप्त्या(३/१)।।अनिवृत्तिबादरसांपराय— =अनिवृत्तिकरण (परिणामोंको) प्राप्तकरि अनिवृत्तिबादरसांपराय
क्षपक-गुणस्थानम्(२/१)।।अधिरुह्य ÷ तत्र* =[नवमा]क्षपक श्रेणीगुणस्थानको चढ़करतहां(नवमें क्षपकश्रेणीगुणस्थानमें)
कषाय—अष्टकम्(२/१)।। =आठ कषाय (अप्रत्याख्यानक्रोध-अप्रत्याख्यानमान-अप्रत्याख्यानमाया अप्र-
त्याख्यानलोभ-प्रत्याख्यानक्रोध-प्रत्याख्यानमान-प्रत्याख्यानमाया प्रत्याख्यानलोभ)को

प्रागेव मोहं क्षयमुपनीयान्तर्मुहूर्तं क्षीणकषायव्यपदेशमवाप्य ततो युगपत् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणां क्षयं कृत्वा केवलमवाप्नोतीति ॥ तत्क्षयहेतुः केवलोत्पत्तिरिति हेतुलक्षणो विभक्तिनिर्देशः कृतः ॥ कथं प्रागेव मोहं क्षयमुपनीयते इति चेदुच्यते—

प्राग्*एव *मोहम्२। क्षयम्२। उपनीय — अन्तर्मुहूर्तम्२।	=पहिल हा (=एव) माहनीय कर्मको विनाश प्राप्तकरि अन्तर्मुहूर्तमें
क्षीणकषाय-व्यपदेशम्२। अवाप्य —	-क्षीण कषाय नामको प्राप्तकरि अर्थात् वारहवा क्षीण कषाय गुणस्थानका प्राप्तकरि
ततः * (१)युगपत्*	=वहा (वारहवा गुण स्थान) से (२)एक साथ (एक काल-एक वार-एकदा)
ज्ञान-दर्शन-आवरण-अन्तरायाणाम् ६।	=ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अतराय कर्मा क
क्षयम्२। कृत्वा — केवलम्२। आप्नोति T इति * ॥	=क्षयको करि (=कृत्वा) केवलज्ञानको प्राप्त करता हे-ऐसे-(दो वारक्षयात् शब्द वा दो वार पचमी विभक्ति तथा चकार का प्रयोग वा निर्देश किया है)
तत्-	=उन (मोहका क्षय-पश्चात् ज्ञानदर्शनावरण तथा अतराय) के
क्षय-हेतु १। केवल-उत्पत्ति १॥	=विनाशका कारण केवलज्ञानका उद्भव वा उपजना है।
इति* हेतुलक्षण-	=ऐसे हेतु लक्षण सयुक्त (अर्थात् हेतु द्योतक पचमी अपादान)
विभक्ति-निर्देश १। कृत १। ॥ कथम्* ? प्राग्*एव*	=विभक्तिकरि उपदेश अथवा कथन किया गया है। कैसे ? प्रथम ही
मोहम्२। क्षयम्२। उपनीयते। इति* चेत्* उच्यते T	=मोहनीय कर्म विनाशको पहुचाया जाताहे ऐसे सशय होने पर कहा जाताहे कि

(१) युगपत्-यहा यह स्पष्टरूपसे समझ में नहीं आता है कि ज्ञानावरण-दर्शनावरण-तथा अतराय कर्मोंका एक साथ वा एक काल में कैसे क्षय किया क्योंकि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धि-ये तीन दर्शनावरणीय कर्मकी प्रकृतियोका नाश तो नवमें गुणस्थानमें ही हो जाताहै। पश्चात् भी वारहवा गुणस्थानमें जो सोलह प्रकृतियो का नाश होता है वह भी युगपद् (एक साथ) नहीं होता वरन् वारहवे गुण स्थान में जब दो समय अवशेष रह जाते हैं तब अतसमयमेंसे एक समयमें निद्रा और प्रचला ये दो दर्शनावरण कर्म की प्रकृतियों का नाश होता है और (क्षीणमोह वारहवें-गुणस्थानके) अतसमयमें मतिज्ञानावरण-श्रुतज्ञानावरण-अवधिज्ञानावरण मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण और चक्षुदर्शनावरण-अचक्षुदर्शनावरण-अवधिदर्शनावरण- केवलदर्शनावरण तथा दानअतराय लाभअतराय भोगअतराय-उपभोगअतराय—वीर्यअतराय ऐसे चौदह दर्शनावरणीय कर्मकी प्रकृतियोंका नाश होता है। जैसाकि निम्न वाक्यसे प्रगट है कि क्षीणकषाय वारहवा गुणस्थानके "उपान्त्य एकसमये निद्राप्रचले प्रलयमुनीय पञ्चाना ज्ञानावरणाना चतुर्णां दर्शनावरणाना पञ्चानाम तरायाणामन्तमन्ते समुपगमय्य तदनन्तर ज्ञानदर्शनस्वभाव केवलपर्यायमप्रतर्क्यविभूतिविशेषमवाप्नोति ॥' युगपत्, युगपद् अव्ययहै =एककाल एकवार ही (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३१०), एकदा-एककाल (अमरकोश) एक कालमें (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १८७) उसी समय (जैनकोश पृष्ठ ५६८)

क्रमेण बादरकृष्टिविभागेन विलयमुपनीय लोभसंज्वलनं तनूकृत्य सूक्ष्मसाम्परायक्षपकत्वमनुभूय

क्रमेण[१](१) बादरकृष्टिविभागेन[१] विलयम्[२] उपनीय — = अनुक्रमसे बादरकृष्टिका विभागकरि क्षयको प्राप्तकरि (= उपनीय) अर्थात् क्षयकरि

(अनिवृत्तिबादरसांपरायक्षपकभावम्[२] अवाप्य —) = (अनिवृत्ति बादरसांपरागके भावको प्राप्त होकर— राजवार्तिकसे उद्धृत)

लोभसंज्वलनम्[२] तनूकृत्य — सूक्ष्मसाम्परायक्षपकत्वम्[२]॥ = लोभसंज्वलनकोसूक्ष्मकरि, सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकभावको (= क्षपकत्वम्)

अनुभूय — = अनुभवकरि अर्थात् सूक्ष्मसापराय गुणस्थानमें क्षपक परिणामका धारक होकर

'क्रमेण'के स्थानमे तत्त्वार्थराजवार्तिकमें किसी किसी प्रतिमे 'सक्रमक्रमेण' है किसी किसीमें 'संक्रमणक्रमेण' है। संक्रम (पु०) = परिवर्तन (वैद्य कोश पृष्ठ७४६मे ५ अर्थ और भी है। संक्रमण (न०) एक वस्तुका दूसरी वस्तुमें परिवर्तन(वैद्यकोशमें चार अर्थ और भी दिये है) परन्तु यहां पर संक्रम और संक्रमण एकार्थवाची है॥ संक्रमण पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ "संक्रमण पररूप, उदीरण विन उपशम मत" अर्थात् जो प्रकृति बांधी तिसका परिणाम निमित्त पाय दूसरे प्रकृतिमे मिलावै" सो संक्रमण है और जो प्रकृति बांधी तिसकी उदीरणा (= तपादिके बलसे खिपना) न हो सो उपशमबन्ध है॥ अतः संक्रमणक्रमेण = 'संक्रमण विधानकरि अनुक्रमतै॥(२)कृष्टि अर्थ-अन्तर्मुहूर्तमात्र अनिवृत्तिकरणकेकालमेंसे आदि वा मध्य वा अंतके एक समयवर्ती अनेक जीवोमे जिस प्रकार शरीरकी अवगाहन आदि बाह्य कारणासे तथा ज्ञानावरणादिककर्मके क्षयोपशमादि अन्तरङ्ग कारणोंसे परस्परमें भेद पाया जाता है, उस प्रकार जिन परिणामोके निमित्तसे परस्परमे भेद नही पाया जाता उनको अनिवृत्तिकरण परिणाम कहते हैं। और अनिवृत्तिकरणका जितना काल है उतने ही उसके परिणाम है इसलिये उसके कालके प्रत्येक समयमें अनिवृत्तिकरणका एक २ ही परिणाम होता है। तथा ये परिणाम अत्यन्तनिर्मल ध्यानरूप अग्निकी शिखाओंकी सहायतासे कर्मवनको भस्म करदेते हैं। भावार्थ—अनिवृत्तिकरणका जितना काल है उतने ही उसके परिणाम है, इसलिये प्रत्येक समयमें एक ही परिणाम होता है। अतएव यहांपर भिन्न समयवर्ती परिणामोमे सर्वथा विसदृशता और एक समयवर्ती जीवोके परिणामोमें सर्वथा सदृशता ही होती है। इन परिणामोसेही आयुकर्मको छोडकर शेष सात कर्मोंको गुणश्रेणिनिर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिखण्डन, अनुभागकाण्डकखण्डन होते है और मोहनीय कर्मकी बादरकृष्टि सूक्ष्मकृष्टि आदि होती है। नवमें गुणस्थानके संख्यात भागोंमेसे अन्तके भागमें होनेवाले कार्यको कहते है।

पूर्वस्पर्धकसे अपूर्वस्पर्धकके और अपूर्वस्पर्धकसे बादरकृष्टिके तथा बादरकृष्टिसे सूक्ष्मकृष्टिके अनुभाग क्रमसे अनन्तगुणे २ हीन हैं। और ऊपरके (पूर्वपूर्वको) जघन्यसे नीचेका (उत्तरोत्तरका) उत्कृष्ट और अपने २ उत्कृष्टसे अपना २ जघन्य अनन्तगणा २ हीन है। भावार्थः-अनेक प्रकार की अनुभाग शक्तिसे युक्त कार्मण वर्गणाओके समूहको स्पर्धक कहते हैं। जो स्पर्धक अनिवृत्तिकरणके पूर्वमे पाये जांय उनको पूर्वस्पर्धक कहते हैं। जिनका अनिवृत्तिकरणके निमित्तसे अनुभाग क्षीण हो जाता है उनको अपूर्वस्पर्धक कहते है। तथा जिनका अनुभाग अपूर्वस्पर्धकसे भी क्षीण हो जाय उनको बादरकृष्टि, और जिनका अनुभाग बादरकृष्टिकी अपेक्षा भी क्षीण हो जाय उनको सूक्ष्मकृष्टि कहते है। पूर्वस्पर्धकके जघन्य अनुभागसे अपूर्वस्पर्धकका उत्कृष्ट अनुभाग भी अनन्तगुणाहीन है। इसी प्रकार अपूर्वस्पर्धकके जघन्यसे बादरकृष्टिका उत्कृष्ट और बादरकृष्टिके जघन्यसे सूक्ष्मकृष्टिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा अनन्तगुणाहीन है। और जिस प्रकार पूर्वस्पर्धकके उत्कृष्टसे पूर्वस्पर्धकका जघन्य अनन्तगुणा हीन है उसी प्रकार अपूर्व स्पर्धक आदिमें भी अपने अपने उत्कृष्टसे अपना अपना जघन्यअनुभाग अनन्तगुणा अनन्तगुणा हीन है।

नष्टं कृत्वा, नपुंसकं वेदनाशं समापाद्य, स्त्रीवेदमुन्मूल्य, नोकषायषट्कं पुंवेदे प्रक्षिप्य[1], क्षपयित्वा पुंवेदं क्रोधसंज्वलने, धसंज्वलनं मानसंज्वलने, मानसंज्वलनं मायासंज्वलने, मायासंज्वलनं लोभसंज्वलने

नष्टं॥ कृत्वा, नपुंसकं वेदनाशं॥ समापाद्य — स्त्रीवेदम्॥	=नाश करि (=कृत्वा), नपुंसक वेदको नाशको प्राप्त करि, स्त्रीवेदको
उन्मूल्य — नो-कषाय-षट्कम्॥	=निर्मूल करि वा उखाड करि, ईषत् छह (हास्य रति-अरति शोक-भय-जुगुप्सा) कषायको
पुंवेदे॥ प्रक्षिप्य —, क्षपयित्वा — पुंवेदं॥ क्रोधसंज्वलने॥,	=पुरुषवेदमें प्रक्षेपण करि, पुरुषवेदको क्रोधसंज्वलनमें क्षपणकरि (=क्षपयित्वा)
(क्षपयित्वा) क्रोधसंज्वलनम्॥ मानसंज्वलने॥	=क्रोधसंज्वलनको मानसंज्वलनमें (क्षेपण करता हुआ=क्षपयित्वा)
(क्षपयित्वा) मानसंज्वलनम्॥ मायासंज्वलने॥	=मानसंज्वलनको मायासंज्वलनमें (क्षेपणकरता हुआ—क्षपयित्वा)
(क्षपयित्वा) मायासंज्वलनम्॥ लोभसंज्वलने॥	=मायासंज्वलनको लोभसंज्वलनमें (क्षेपणकरता हुआ=क्षपयित्वा)

(1) प्रक्षिप्य — क्षिप् तुदादि छठवागणका उभय (परस्मै और आत्मने) पदी सकर्मक अनिट (=जिस धातुके रूप बनानेमें इ न जोडा जावे) धातुमें प्र उपसर्ग लगाकर प्र+क्षिप्+य सम्बन्ध सूचकभूत कृदन्त प्रक्षिप्य=किसी चीजमें क्षेपण करना, किसी चीजमें डालना या फेंकना बनालिया परन्तु क्षपयित्वा—चुरादि दशवागणका उभय (परस्मै और आत्मने) पदी सकर्मक सेट् (=जिस धातुके रूप बनानेमें इ जोडा जावे) क्षप् धातुमें उसका विकरण अय् जोडकर क्षप्+अय् बना लिया, पश्चात् इ लगाकर क्षपयि हुआ त्वा सम्बन्धसूचकभूत कृदन्तका चिह्न लगाकर क्षपयित्वा बना, क्षपयित्वा=क्षेपणकर क्षेपता हुआ, प्रक्षिप्य और क्षपयित्वा दोनोंका एकसा अर्थ है। (सम्बन्धक भूत कृदन्तके बनानेके नियमके लिये देखो पृष्ठ ७) प्रक्षिप्यका अन्वय या सम्बन्ध नोकषाय षट्कके साथ है क्षपयित्वाका सम्बन्ध पुंवेद, क्रोध संज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलनके साथ है, अर्थात् नोकषायषट्क प्रक्षिप्य क्रियाका कर्म (कारक) है और शेष पुंवेद आदि चार क्षपयित्वाके कर्म (कारक) हैं इन पांचों वाक्योंका विलयमुपनीय=विलय को प्राप्त करिके साथ अन्वय या सम्बन्ध है अर्थात् क्षयकरि, क्षय प्राप्तकरि॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका नोकषाय षट्क से विलयमुपनीय तक" शब्दश एक पाठ है राजवार्तिकमें क्रमेणके स्थानमें संक्रमक्रमेण है॥ पं० जयचन्द्ररायजीने तथा पन्नालालजी न्यायदिवाकरने नोकषायषट्कं पुंवेदे प्रक्षिप्य' के अनुवाद करनेमें विलयम् उपनीय' अर्थात् क्षयकरै' शब्दका लगादिया है और शेष चार वाक्यों के साथ न्यारा क्षय शब्द लगाकर अनुवाद किया है परन्तु पं० पन्नालाल दूनीजीने और हमने उक्त पांचों वाक्योंके साथ एक बार ही विलयमुपनीय' का लगाकर अनुवाद किया है जैसा कि निम्न उद्धृत वाक्यसे प्रगट है। नोकषायषट्क पुंवेदे प्रक्षिप्य="नो कषायका षट्क हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा इनकू पुरुषवेदविषै क्षेपणकरि क्षय करै"॥ जयचन्दजी वचनिका मुद्रित पत्र ७७५॥ "नोकषायषट्क पुंवेदे प्रक्षिप्य' नो कषाय षट्क कहिये हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा इनकू पुरुष वेद विषै क्षेपनकरि क्षयकरै" पं० पन्नालालजी अनुवादित राजवार्तिक पत्र १५२१॥ नो कषायका षट्कनैं पुरुष वेदकैविषै क्षेपकरि क्षपायकरि पुरुषवेदनैं क्रोध संज्वलनकै विषै अर क्रोधसंज्वलननैं मान संज्वलनकै विषै अर मान संज्वलनैं माया संज्वलनकै विषै अर मायासंज्वलननैं लोभ संज्वलनकै विषै संक्रमणका क्रमकरि यादरकृष्टि विभाग नै अनुक्रम रचना गोम्मटसार आदि ग्रन्थनिमें प्रसिद्ध है ताकरि विभागकरि विलयनैं प्राप्तकरि" दूनीजी अनुवादित राज०वा० १०पत्र३॥

तदनन्तरं ज्ञानदर्शनस्वभावं केवलपर्यायमप्रतर्क्यविभूतिविशेषमवाप्नोति॥ आह कस्माद्धेतोर्मोक्षः किंलक्षणश्चेत्यत्रोच्यते- **बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः**

मिथ्यादर्शनादिहेत्वभावादभिनवकर्माभावः पूर्वोदितनिर्जराहेतुसन्निधाने चार्जितकर्मनिरासः।

तद्—	=उस (क्षय अर्थात् अन्तिम अन्तराय कर्मकी प्रकृतियोंके क्षय)के
अनन्तरम्[२/१] ज्ञानदर्शनस्वभावम्[२/१] अप्रतर्क्य-	=अनन्तर वा लगताही ज्ञानदर्शनरूपलक्षणसंयुक्त, अचिंत्य(=अप्रतर्क्य)
विभूतिविशेषम्[२/१] केवल-पर्यायम्[२/१]	=ऐश्वर्य, विभूति वा विभव गुणवाला केवलनामा (आत्माका) पर्यायको
अवाप्नोति T। आह T कस्मात्[५/१] हेतोः[५/१] मोक्षः[१/१]	=प्राप्त होता है वा प्राप्त करता है(शिष्य)प्रश्न करता है कि किस निमित्तसे मोक्षहोती है
किं* लक्षणः[१/१] च*इति*अत्र*उच्यते [–	=और (=च) क्या लक्षण है (ऐसा प्रश्न होनेपर)यहां(अग्रिम सूत्रमें)कहाजाता हैकि

(१)बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—बन्धहेतु-	=बन्धके निमित्त (मिथ्यात्व-अविरति-प्रमाद-कषाय- योग)निका
अभाव-निर्जराभ्यां[३/२] कृत्स्नकर्म-विप्रमोक्षः[१/१] मोक्षः[१/१]	=अभाव होनेसे और निर्जरा(केहेतु)से समस्त कर्मकाअत्यन्तनाश(=विप्रमोक्षः)सो मोक्षहै
वृत्त्यनुवादः–मिथ्यादर्शन-आदिहेतु–अभावात्[५/१]	=मिथ्यादर्शन-अविरति-प्रमाद-कषाय-योग(बन्ध)हेतुके अभावसे अथवा निषेधसे
अभिनवकर्म–अभावः[१/१] च *	=नवीन कर्मके (आगमन)का निराकरण होता है और (=च)
पूर्व–उदित–निर्जरा–हेतु–सन्निधाने[७/१]	=प्रथम कहेहुये निर्जराके कारण (जे तप और विपाक)के निकट होने पर
अर्जित–कर्म–निरासः[१/१]	=(पहिले) उपार्जित कियेहुये अथवा बंधेहुये कर्मका अभाव होजाता है।

सम्मतिसे उपर्युक्त पाठ लिया है॥ दो मुद्रित प्रतियोंका पाठ 'उपांत्य प्रथमे' समये वाक्यमे प्रथमे शब्द क्यों है समझमें नही आया है इसका शब्दार्थ होगा अंतसे पहिले होने वाला पहिला समय कुछ भी तात्पर्य नहो हुआ, किसी भी पुस्तकमें 'प्रथमे' शब्द नहीं है, हां उपांत्यसमये का अर्थ स्पष्ट है कि 'अंतसे पहिले होने वाला समये';एक बहुत कालीन प्रतिके पृष्ठ ६०से हमने निम्नपाठलिया है।"उपांतिमे समये निद्राप्रचले प्रलय-मुपनीय पंचानां ज्ञानावरणानां चतुर्णां दर्शनावरणानां पंचानां चांतरायाणां मन्तमन्ते समुपनीय॥"चार प्रतियोंमें समुपनीय"है तीनमें समुपगमय्य है है एकमे'समुपगम्य' है। (१)श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्य०में इससूत्रको दो सूत्रोंमें न्यारा न्यारा ऐसे लिखा है कि"बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां॥२॥ कृत्स्न कर्मक्षयोमोक्षः"॥३॥इस तीसरे सूत्रमे"क्षयो"शब्द है हमारे यहां इसके स्थानमें "विप्रमोक्षो"है'क्षयो'का अर्थ नाश है और 'विप्रमोक्षो'का अर्थ अत्यन्तनाश वा अत्यन्त अभावका है साधारणरीतिसे अर्थ भी दोनों आम्नायोंमे एक है॥ उनकी भाष्यानुसारिणी०में ३ सूत्रको भाष्यमाना है जैसा कि निम्नपंक्तियोंसे प्रगट है "कृत्स्नकर्मक्षयलक्षणो मोक्षोभवतीत्यादिभाष्य कृत्स्नकर्मक्षयोलक्षणं यस्य मोक्षस्य कृत्स्नकर्मवियमुक्तयांआत्मा मुक्तइति

निरवशेषमोहनीयं निर्मूलकापं कपित्वा क्षीणकषायतामधिरुह्यावतारितमोहनीयभार उपान्तिमसमये-
निद्राप्रचले प्रलयमुपनीय पञ्चानां ज्ञानावरणानां चतुर्णां दर्शनावरणानां पञ्चानां चान्तरायाणामंतमंते समुपनीय

निरवशेषम्[२] मोहनीयम्[२] निर्मूलकापम्[२] कपित्वा[१]	= तहां समस्त मोहनीयको मूलतक (=निर्मूल) घर्षण करता हुआ नाश करि (= कपित्वा
क्षीणकषायताम्[२] अधिरुह्य — अवतारित मोहनीयभार[१]	= क्षीणकषाय परिणामको (में) चढकरि उतारा है मोहनीयकर्मका भार जिसने अर्थात् सूक्ष्मसांपराय दशवागुणस्थानवर्ती क्षपकभावका धारक मुनि समस्त मोहनीयकर्मको नाश करके क्षीणकषाय भावमें चढकरि वा क्षीणकषाय वारहवागुणस्थानके चढकरि
उपान्तिमे[७] समये[७] निद्राप्रचले[२] प्रलयम्[२]	= (उस वारहवा गुणस्थानके) अंत (= चरम) से पहिले समयमें निद्रा और प्रचलाको क्षय
उपनीय — पञ्चानाम्[६]	= पहुंचकरि पांच (मति–श्रुत–अवधि मन पर्यय–केवल)
ज्ञानावरणानाम्[६] चतुर्णाम्[६] दर्शनावरणानाम्[६]	= ज्ञानावरणीयकर्मकी, चार (चक्षु–अचक्षु–अवधि–केवल) दर्शनावरणीयकर्मकी
पञ्चानाम्[६] च[०] अन्तरायाणाम्[६] अन्तम्[२]	= और (= च) पांच (दान–लाभ–भोग–उपभोग–वीर्य) अन्तराय कर्मका नाश (= अन्तम्)
अन्ते[७] समुपनीय —	= अन्त (समय) में एक साथ प्राप्त करि (= समुपनीय)

(१ (क) 'निर्मूलकापं कपित्वा' यह पाठ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी दोनों मुद्रित आवृत्तियोंमें है । (ख) "निर्मूलकाप कपित्वा" यह पाठ तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें है दोनों ठीक हैं क्योंकि (क) निर्मूल (स्त्रीलिंगमें निर्मूला) = जड तक जड पर्यंत जैसे निर्मूलकापं कषति = (वह) जडतक घषराकर (= काप मर्दनकर (= काप) चूर्ण कर (= काप) मारता है (वैद्य कोश पृष्ठ ३८१), काप (पु०) = चूर्ण करना, मर्दन करना, रगडना, जिस पर कोई वस्तु रगडी जाती है, यहां प्रथम अर्थमें ग्रहण है [वैद्यकोश पृष्ठ १८७] कपित्वा यह सर्वधसूचक भूतकृदंत, कष् भ्वादि प्रथमगणके सकर्मक परस्मैपद सेट् [जिसमें इ जोडा जाता है] धातुसे निम्न नियमसे बनाया गया है, नाशकरि अर्थ है धातुमें त्वा लगानेसे, सेट् धातुओंमें त्वा, इ जोडनेके पीछे जैसे यहां] बनता है जैसे श्रु = सुनना श्रुत्वा = सुनकर कषमें इ जोडनेसे कषि हुआ, त्वा से कषित्वा बना लिया धातुके पहिले उपसर्ग लाया जावे तो त्वाके स्थानमें य आता है जैसे अनु + भू + य = अनुभूय = अनुभव करके, यदि धातुके अंतमें, ह्रस्व स्वर हो तो य के पहिले त् लाते हैं जैसे अनु + कृ + त् + य = अनुकृत्य = अनुकरण करके, विजित्य = विजय करके, जीत करके, विस्मृत्य = विस्मरण करके इत्यादि अन्य उदाहरण हैं, अतः निर्मूलकापं कपित्वा = जडपर्यंत [= निर्मूल] मर्दन वा घर्षणकरकरि विनाशकर, [ख] निर्मूलका अर्थ है जडसे इसलिये निरवशेषं मोहनीयं निर्मूलकाप कपित्वा = समस्तमोहनीय [कर्म] को जडसे घर्षण अथवा घिस घिसकरि नाशकरके [= कपित्वा), प्रथम पाठ लिया है (२) उपान्त्य (त्रि०) उपान्ते भव यत् = अन्तसे पहला (शब्दकल्पद्रुमकोश पृष्ठ ७६) अन्त्य (त्रि०) अन्ते भव यत् = अंतमें होनेहारा, अन्तिम । उपान्तिम अंतिमका भी अर्थ क्रमसे अंतसे पहला होने वाला और अन्तमें होनेहारा है ॥ आठदश हस्तलिखित और मुद्रित प्रतियां देखी गई किसीमें उपान्त्य–अन्त्य किसीमें उपान्ते–अन्ते और किसीमें उपान्तिमे, अन्तिमे देखा गया छहों शब्द पक्से तात्पर्यको प्रगटकर सक्ते हैं हमने कई विद्वानोंकी

निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिनरकगतितिर्यग्गत्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिनरकगतितिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यातपोद्योतस्थावरसूक्ष्मसाधारणसंज्ञिकानां षोडशानां कर्मप्रकृतीनामनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने युगपत्क्षयः क्रियते ॥ ततः परं तत्रैव कषायाष्टकं नष्टं क्रियते। नपुंसकवेदः स्त्रीवेदश्च तत्रैव क्षयम्

मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व ये तीन दर्शनमोहनीयकर्मकी प्रकृतियें हुई, अनन्तानुवन्धीक्रोध, अनन्तानुवन्धीमान, अनन्तानुवन्धीमाया, अनंतानुबंधी लोभ ये चार चारित्र मोहनीयकर्मकी प्रकृतियें हुई सब मिलकर ये सातप्रकृतियें हुई।

निद्रानिद्रा–प्रचलाप्रचला–स्त्यानगृद्धि– =निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि (दर्शनावरणकी ये तीन)

नरकगति–तिर्यग्गति-एक-द्वि-त्रि- =नरकगति-तिर्यंचगति-एकेन्द्रियजाति, द्विइन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति,

चतुर्-इन्द्रियजाति-नरकगतितिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्य- =चतुरिन्द्रियजाति । नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी

आतप-उद्योत-स्थावर सूक्ष्म-साधारण-संज्ञिकानाम्॥ =आताप-उद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणनामा (=संज्ञिकानां)

षोडशानाम्॥कर्मप्रकृतीनाम्॥अनिवृत्तिबादरसाम्पराय- =सोलह कर्मप्रकृतियोंका अनिवृत्तिबादरसाम्पराय

स्थाने॥युगपत्*क्षयः॥क्रियते । ततः * =(नवमा गुण) स्थानमें एकसाथ नाश किया जाता है। तहां (नवमागुणस्थानमें)

परम्॥ =(उपर्युक्त १६ प्रकृतियोंके नाशहोने) से आगे (=परम्)

तत्र*एव*कषाय-अष्टकम्॥ =वहां(नवमें गुणस्थानके दूसरे भागमें)ही आठ कषायका समूह अर्थात् अप्रत्याख्यानक्रोध-अप्रत्याख्यानमान-अप्रत्याख्यानमाया-अप्रत्याख्यानलोभ-प्रत्याख्यानक्रोध-प्रत्याख्यानमान–प्रत्याख्यानमाया–प्रत्याख्यानलोभ

नष्टम्॥क्रियते । नपुंसकवेदः॥ स्त्रीवेदः॥च* =नाश कियाजाता है । नपुंसकवेद और (=च) स्त्रीवेद

तत्र*एव *क्षयम्॥ =तहां (नवमां गुणस्थानके तीसरे और चौथे भागमें यथासंख्य) ही क्षयको

---

(१) अनिवृत्तिबादरसांपराय नवमां गुणस्थानके नवभाग हैं इसके प्रथम भागमें निद्रानिद्रा–प्रचलाप्रचला–स्त्यानगृद्धि ये तीन दर्शनावरणकर्म और ऊपर कहीं हुई १३ नामकर्मकी प्रकृतियें ऐसे १६ प्रकृतियोंका नाश होता है (२) शब्दशः अनुवाद होगा "क्षयको प्राप्त होता" है।

ताभ्यां बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यामिति हेतुलक्षणविभक्तिनिर्देशः। ततो भवस्थितिहेतुसमीकृतशेषकर्मावस्थितिस्य युगपदात्यन्तीकृतकृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः प्रत्येतव्यः ॥ कर्माभावो द्विविधः-यत्नसाध्योऽयत्नसाध्यश्चेति। तत्र चरमदेहस्य नारकतिर्यग्देवायुषामभावो न यत्नसाध्यः असत्त्वात्॥ यत्नसाध्य इत ऊर्ध्वमुच्यते-असंयतसम्यग्दृष्ट्यादिषु चतुर्षु गुणस्थानेषु कस्मिंश्चित्सप्तप्रकृतिप्रक्षयः क्रियते॥

ताभ्याम्॥ बन्ध-हेतु-अभाव-निर्जराभ्याम्॥ इति =तिन दोनों बन्धके कारणका अभाव तथा कर्मकी निर्जरा होनेसे ऐसी
हेतु-लक्षण-विभक्ति- =निमित्तलक्षणवाली वा हेतुद्योतक (अपादान पांचवी) विभक्तिकरि
निर्देशः, =(सूत्रमें)कथन है अर्थात् 'बन्धहेत्वभाव' और 'निर्जरा' शब्दके पीछे 'भ्याम्' लाये है
ततः =वहांसे अर्थात् बन्धके हेतुका अभाव तथा निर्जरा होनेसे वा होनेके पश्चात्
भव-स्थिति-हेतु-समीकृत- =पर्याय (=भव)के स्थितिके कारणके(अर्थात् आयु कर्मके) समान किये है
शेष-कर्म-अवस्थितिस्य॥ =अवशेष (नाम गोत्र वेदनीय)कर्मकी अवस्था जाने(ऐसे केवली भगवानके)
युगपत् आत्यन्तीकृत-कृत्स्न कर्म-विप्रमोक्षः मोक्षः =एकसाथ अत्यन्ततासे किया है समस्तकर्मका अतिशयअभाव सो मोक्ष
प्रत्येतव्यः ॥ कर्म अभावः द्विविधः यत्नसाध्यः =जानना चाहिये ॥ कर्मका अभाव दो प्रकार, यत्न साध्य
अयत्नसाध्यः च इति । तत्र चरम-देहस्य॥ =और(=च)अयत्नसाध्य ऐसे है। तहां अन्त(=चरम)शरीरी आत्माके अर्थात् वह पुरुष जिसका वर्तमानशरीर संसारमें अन्तिमशरीर है, विद्यमान शरीरके पश्चात् कोई अन्यशरीर जगतमें धारण नहीं करेगा, भावार्थ तद्भव मोक्षगामी होनेके हेतुसे
नारक-तिर्यग्-देव-आयुषाम्॥ असत्त्वात्॥ =नरक-तिर्यंच देव आयुओंके सत्तामें न होने (के हेतु)से
अभावः न यत्नसाध्यः ॥ =अभाव है सो अयत्नसाध्य (=न यत्न साध्य) (कर्म अभाव है) ।
यत्नसाध्यः इतः ऊर्ध्वम् उच्यते ।- =यत्न साध्य वा जतन साध्य(कर्म अभाव)यहांसे(=इतस्)आगे कहा जाता है कि
असंयत सम्यग्दृष्टि-आदिषु॥ चतुर्षु॥ =अविरत सम्यग्दृष्टि आदिक चार अर्थात् अविरतसम्यग्दृष्टि, देशविरत-सम्यग्दृष्टि, प्रमत्तविरतसम्यग्दृष्टि, अप्रमत्तविरतसम्यग्दृष्टि
गुणस्थानेषु॥ कस्मिंश्चित् सप्त-प्रकृति-प्रक्षयः क्रियते।=गुणस्थानोंमेंसे किसी एकमें सात कर्मप्रकृतियोंका विनाश कियाजाता है

पंञ्च चत्वारो द्वौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः।

वा चतुर्दशभागाः १/३। पंञ्च १/३। =वा [लोकत्रसनालके] चौदह राजू हैं।

(सो मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे) कुछ घाटि पांच

चत्वारः १/३। देशोनाः १/३। द्वौ १/२। =कुछ हीन चार कुछ न्युन दो राजू छुये जाते हैं अर्थात्

सासादन गुणस्थानवर्तीका सातवें नरकमें मरण नहीं होता है अतः मारणान्तिक समुद्घात भी उसके सातवें नरकमें नहीं हो सक्ता है मध्यम कृष्णलेश्यासे युक्त छठवां नरकमें मरण करे और मध्यलोकमें जन्म लेवै तब मारणान्तिक समुद्घात करै उस मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे कुछ हीन पांच राजू स्पर्श है क्योंकि छठवां नरकसे मध्यलोक तक पांच राजूकी ऊंचाईमें है, इसीप्रकार पांचवां नरकसे उत्कृष्ट नील लेश्यावाला सासादन गुणस्थानवर्ती मरकर मारणांतिक समुद्घात करै और मध्यलोकमें जन्म लेवै तो मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ न्यून चारराजू क्षेत्र छूता है क्योंकि पांचवा नरकसे मध्यलोक चार राजू ऊंचा है, वैसे ही तीसरे नरकसे मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा उत्कृष्ट कापोतलेश्यावाले सासादन गुणस्थानवर्ती कुछ घाटि दो राजू छूते हैं क्योंकि तीसरे नरकसे मध्यलोक दो राजू ऊंचा है।

---

(१) एक द्वि त्रि चतुर पञ्चन् षष् सप्तन् अष्टन् नवन् दशन् एकादशन् द्वादशन् त्रयोदशन् चतुर्दशन् पञ्चदशन् षोडशन् सप्तदशन् अष्टादशन् नवदशन् तक विशेषण समझे जासक्ते हैं उनके वचन और विभक्ति वही होती हैं जो संज्ञाकी होती हैं जिनके साथ वे आती हैं और एक द्वि त्रि चतुर्का लिंग भी संज्ञाके समान होता है शेष संख्या तीनों लिंगोंमें मानी जा सक्ती हैं अतः पञ्च त्रिलिंगी भी हो सक्ता है।

(२) काऊ, काऊ, काऊ, णीला, णीला य णील किरहा य। किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादिपुढवीणं ॥ गोम्मट्टसारे कर्मकाण्डलेश्यामार्गणायामियं गाथा ५२९ दृश्यते ॥ अस्या गाथाया अर्थः कथ्यते—प्रथमायां पृथिव्यां नारकाणां जघन्या कपोतलेश्या भवति, द्वितीयायां मध्यमा। तृतीयायामधेन्द्रकेषु उत्कृष्टा। सैव चरमेन्द्रके उत्कृष्टा तत्रैव केषांचिन्नारकाणां जघन्या नीललेश्या भवति। चतुर्थ्यां तस्यां मध्यमा नीला। पंचम्यां पृथिव्यां उपरिमेषु चतुर्ष्विन्द्रकेषु उत्कृष्टा सैव। चरमेन्द्रकेषु उत्कृष्टा नीललेश्या जघन्या कृष्णलेश्या च भवति ॥ षष्ठ्यां मध्यमा कृष्णलेश्या। सप्तम्यां पृथिव्यां उत्कृष्टा कृष्णलेश्या। ततः षष्ठपृथिवीतः मारणान्तिकं कुर्वाणान् कृष्णलेश्या सासादनान्प्रति पंचचतुर्दशभागाः कथिताः ॥

उपयाति । नोकषायषट्क च सहैकेनैव प्रहारेण विनिपातियति । तत पुंवेदसञ्ज्वलनक्रोध-मानमाया क्रमेण तत्रैवात्यन्तिकं ध्वंसमास्कन्दन्ति । लोभसञ्ज्वलन सूक्ष्मसाम्परायान्ते यात्य-न्त । निद्राप्रचले क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थस्योपान्त्यसमये प्रलयमुपव्रजत ॥ पचानां ज्ञानावरणाना चतुर्णां दर्शनावरणाना पचानामन्तरायाणा च तस्यैवान्त्यसमये प्रलयो भवति।

उपयाति १ । नो-कषाय-षट्कम् ॥ च*	=प्राप्त होते है । और (=च) छह(हास्य रति-अरति शोक-भय जुगुप्सा)कषायकासमूह
सह एकेन एव प्रहारेण विनिपातयति । ।	=एकवारही(=सह)एकही प्रहार द्वारा(एकेन एव प्रहारेण)निपात वा पतनको प्राप्तहोताहै अर्थात् नवमगुणस्थानके पाचवा भागमे छह नो कषायका नाश होता है
तत *पुवेद-सञ्ज्वलनक्रोधमानमाया ॥क्रमेण	=वहासे पुरुषवेद सञ्ज्वलनक्रोध सञ्ज्वलनमान सञ्ज्वलनमाया क्रमानुसार (अर्थात् नवम गुणस्थानके छठवा भागमें पुरुषवेद, सातवाभागमें सञ्ज्वलनक्रोध,आठवा भागमें सञ्ज्वलनमान, नवमा भागमें सञ्ज्वलनमाया)
तत्र*एव*आत्यन्तिकम् (१) ध्वसम्	=तहा ही अत्यन्त ध्वस वा नाश को
आस्कन्दन्ति ।,लोभसञ्ज्वलन सूक्ष्मसापराय-	=प्राप्त होते है । लोभसञ्ज्वलन, सूक्ष्मसाम्पराय (दशवा गुणस्थान)के
अन्ते याति । अतम् ,निद्राप्रचले ॥	=अन्तमें नाश वा क्षयको(=अतम्)प्राप्त होताहै,निद्रा, प्रचला(दर्शनमोहकी दो प्रकृतिये)
क्षीणकषाय-वीतरागच्छद्मस्थस्य उपान्त्य-	=क्षीण कषाय (बारहवा गुणस्थानवर्ती) वीतराग छद्मस्थके अन्तसे पहिला(उपान्त्य)
समये प्रलय उपव्रजत पञ्चानाम् ॥ज्ञानावरणानाम् ॥	=समयमें विनाशको प्राप्त होतोहैं पाच(मति श्रुत अवधि-मन पर्यय केवल)ज्ञानावरणीय कर्मको
चतुर्णाम् ।दर्शनावरणानाम् ॥च *पञ्चानाम्	=चार(चक्षु-अचक्षु अवधि केवल)दर्शनावरणीयकर्मको औरपाच(दान,लाभ,भोग,उपभोग,वीर्य
अन्तरायाणाम् तस्य एव *अन्त्यसमये प्रक्षय.	=अन्तरायकर्मकी तिस(क्षीणकषाय बारहवा गुणस्थान) के ही अन्त्य समयमें विनाश)
भवति ।	=होती है अर्थात् यहाँ तक ६३ प्रकृतियोका विनाश कर केवल ज्ञान प्रगट हुआ है ।

(१) ऐसे चार अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ और चार प्रत्याख्यान क्रोध, मान माया, लोभ नपुसकवेद-स्त्रीवेद छह नोकषाय पुरुषवेद संज्वलन क्रोध मान माया ऐसे वीसचारित्र मोहनीय कर्मकी प्रकृतिया नवमें गुणस्थानके दूसरेभागसे नवम भागतक पूर्वोक्तक्रमसे नाशको प्राप्तहोताहै

अन्यतरवेदनीयदेवगत्यौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरपंचबंधनपंचसंघात संस्थान-षट्कौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गषट्संहननपञ्चप्रशस्तवर्णपञ्चाप्र शस्तवर्ण गन्धद्वय-

अन्यतर-वेदनीय-देवगति- =दोनोमेंसेएक (=अन्यतर) वेदनीयकर्मकी प्रकृति-देवगतिनामकर्म-

औदारिक-वैक्रियिक-आहारक- =औदारिकशरीरनामकर्म, वैक्रियिकशरीरनामकर्म, आहारकशरीरनामकर्म,

तैजस-कार्मणशरीर-पञ्चबन्धन- =तैजसशरीरनामकर्म, कार्मणशरीरनामकर्म-शरीरके बंधन पांच (औदारिकबंधन-नामकर्म, वैक्रियिकबन्धननामकर्म, आहारकबन्धननामकर्म, तैजसबन्धननामकर्म, और कार्मणबन्धननामकर्म)

पञ्चसंघात— =(शरीरके) संघात पांच (औदारिकसंघातनामकर्म, वैक्रियिकसंघातनामकर्म, आहारकसंघातनामकर्म, तैजससंघातनामकर्म,कार्मणसंघातनामकर्म)

संस्थानषट्क— = (शरीरके) संस्थान छह अर्थात् (समचतुरस्रसंस्थाननामकर्म, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननामकर्म, स्वातिसंस्थाननामकर्म,कुब्जकसंस्थाननामकर्म, वामनसंस्थाननामकर्म, हुंडकसंस्थाननामकर्म)

औदारिक-वैक्रियिक-- =औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्गनामकर्म, वैक्रियिकशरीरआंगोपांगनामकर्म,

आहारकशरीरआंगोपांग-षट्संहनन-- =आहारकशरीरआंगोपांगनामकर्म । (शरीर)के संहनन छह अर्थात् (वज्रवृषभनाराचसंहनननामकर्म, वज्रनाराचसंहनननामकर्म, नाराचसंहनननामकर्म, अर्द्धनाराचसंहनननामकर्म, कीलकसंहनननामकर्म -असंप्राप्तसृपाटिकासंहनननामकर्म,

पञ्च-प्रशस्तवर्ण - =पांच अच्छे वर्ण अर्थात् प्रशस्त शुक्लवर्णनामकर्म, अच्छापीतवर्णनामकर्म, भलाकृष्णवर्णनामकर्म, चोखानीलवर्णनामकर्म, प्रशस्तरक्तवर्णनामकर्म,

पञ्च-अप्रशस्तवर्ण— =पांचअप्रशस्तवर्ण अर्थात् अप्रशस्तशुक्लवर्णनामकर्म, बुरापीतवर्णनामकर्म,बोथाकृष्णवर्णनामकर्म, अप्रशंसनीयनीलवर्णनामकर्म, अप्रशस्तरक्तवर्णनामकर्म,

गन्धद्वय =दो गन्ध नामकर्म अर्थात् सुरभिगन्ध नामकर्म और असुरभिगन्ध नामकर्म,

पञ्चप्रशस्तरसपञ्चाप्रशस्तरसस्पर्शाष्टकदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वास-प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्यपर्याप्तकप्रत्येकशरीरस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगसुस्वरदुःस्वरानादेयायशःकीर्तिनिर्माणनामनीचैर्गोत्राख्याद्वासप्ततिप्रकृतयोऽयोगकेवलिन उपान्त्यसमये विनाशमुपयान्ति। अन्यतरवेदनीयमनुष्यायुर्मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजाति-

पञ्च-प्रशस्तरस-	=पांच प्रशस्तरसनामकर्म अर्थात् प्रशसनीय तिक्तरसनामकर्म, अच्छा कटुरसनामकर्म, भला कषायलारसनामकर्म, चोखा आम्लरसनामकर्म, प्रशस्त मधुररसनामकर्म,
पञ्च-अप्रशस्तरस-	=पांच अप्रशस्तरसनामकर्म अर्थात् अप्रशसनीय तिक्तरसनामकर्म, बुरा कटुरसनामकर्म, अप्रशस्त कषायलारसनामकर्म, अप्रशसनीय आम्लरसनामकर्म, बुरामधुररसनामकर्म,
स्पर्श अष्टक-	=स्पर्शके आठ भेद अर्थात् कर्कश स्पर्शनामकर्म, मृदु स्पर्शनामकर्म, गुरु स्पर्शनामकर्म, लघुस्पर्शनामकर्म, स्निग्ध स्पर्शनामकर्म, रूक्ष स्पर्शनामकर्म, शीतस्पर्शनामकर्म, उष्णस्पर्शनामकर्म,
देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य अगुरुलघु उपघात-	=देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनामकर्म, अगुरुलघुनामकर्म, उपघातनामकर्म,
परघात उच्छ्वास-प्रशस्त-	=परघातनामकर्म, उच्छ्वासनामकर्म, प्रशस्त विहायोगतिनामकर्म,
अप्रशस्तविहायोगति-अपर्याप्तक-	=अप्रशस्त विहायोगतिनामकर्म, अपर्याप्तकनामकर्म-
प्रत्येकशरीर स्थिर अस्थिर-	=प्रत्येकशरीरनामकर्म-स्थिरनामकर्म, अस्थिरनामकर्म,
शुभ-अशुभ दुर्भग सुस्वर	=शुभनामकर्म, अशुभनामकर्म, दुर्भगनामकर्म, सुस्वरनामकर्म,
दुःस्वर-अनादेय- अयश कीर्ति-	=दुःस्वर नामकर्म, अनादेयनामकर्म, अयशःकीर्तिनामकर्म-
(१)निर्माणनाम नीचैर्गोत्र-आख्याः॥ (२)	=निर्माणनामकर्म, नीचगोत्रनामकर्म नामा वा नामक वा संज्ञिक [अर्थात् नीचगोत्र
द्वासप्तति प्रकृतयः॥	=इत्यादिक दियेगये है नाम जिनको ऐसी] बहत्तर प्रकृतियें [नामकर्म की] है
अयोग केवलिनः॥ उपान्त्यसमये॥ विनाशम्॥	=अयोगकेवलीके अंतसे पहिले [=उपान्त्य] समयमें प्रलय वा प्रलय को
उपयान्ति। अन्यतर-वेदनीय-	=प्राप्त होती है। दोयोंसेएक [=अन्यतर] वेदनीय कर्मकी प्रकृति
मनुष्य आयुस् मनुष्यगति पञ्चेन्द्रियजाति-	=मनुष्यआयु नामकर्म-मनुष्यगति नामकर्म, पञ्चेंद्रियजाति नामकर्म-

(१) नाम=नामकर्म अर्थात् देवगतिसे निर्माणतक वृत्तिमेंप्रत्येक प्रकृतिपर "नाम" शब्दलगेगा जिसका अर्थ है 'नामकर्म" जैसा कि हमने प्रत्येक प्रकृति पर अनुवादमें 'नामकर्म" ऐसाशब्द जोडा है। (२) आख्या=नामासंज्ञाकी गई-नाम रक्खागया आख्या शब्द प्रत्येक प्रकृति

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यत्रसबादरपर्याप्तकसुभगादेययशःकीर्तितीर्थकरनामोच्चैर्गोत्रसञ्ज्ञिकानां त्रयोदशानां प्रकृतीनामयोगकेवलिनश्चरमसमये विच्छेदो भवति ॥ आह किमासां पौद्गलिकीनामेव द्रव्यकर्मप्रकृतीनां निरासान्मोक्षोऽवसीयते उत भावकर्मणोऽपीत्यत्रोच्यते—

॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य–त्रस-	=मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनामकर्म्म, त्रसनामकर्म्म,
बादर-पर्याप्तक–सुभग–आदेय–	=बादरनामकर्म, पर्याप्तकनामकर्म, सुभगनामकर्म, आदेयनामकर्म,
यशःकीर्ति-तीर्थकरनाम-	=यशःकीर्तिनामकर्म, तीर्थकरनामकर्म अथवा तीर्थंकरनामकर्म,
उच्चैः*गोत्रसञ्ज्ञिकानाम्॥त्रयोदशानां॥प्रकृतीनाम्॥	=ऊंचगोत्रनामवाली, (=संज्ञिकानाम्) (ये) तेरह प्रकृतियोंका
अयोगकेवलिनः॥चरम-समये॥विच्छेदः॥ भवति T॥	=अयोगकेवली (चौदहवां गुणस्थानवर्ती) के अन्तसमयमें विनाश होता है
आह T किम्*आसाम्॥पौद्गलिकीनाम्॥एव*	=प्रश्न करता है कि (=आह) क्या इन पुद्गलमयी ही
द्रव्यकर्मप्रकृतीनाम्॥निरासात्॥मोक्षः॥अवसीयते T	=द्रव्यकर्म प्रकृतियोंके अभाव वा विनाशसे मोक्ष निश्चय वा प्रतीति की गई है
उत*भावकर्मणः॥अपि*? इति*अत्र*उच्यते T	=अथवा भाव कर्म के(विनाश से) भी ? ऐसा(प्रश्न होने पर) यहां कहाजाताहै कि

औपशमिकादि भव्यत्वानां च॥३॥ (१)=औपशमिकादिभव्यत्वानांच (भावानामभावान्मोक्षोभवति)

=औपशमिकादिभव्यत्वानांच भावानाम् अभावात् मोक्षःभवति।

पर लगेगा बहत्तर स्थानोंमें हमने अनुवादमें केवल अतमें लगाया है जिससे बहत्तर पर भी समझलेना चाहिए जैसे देवगति = देवगतिनामानामकर्म वा देवगतिनामक नामकर्म । नीचैर्गोत्र = नीचगोत्रसंज्ञिक नामकर्म (कोप्रकृति)। निर्माण = निर्माणनामानामकर्म ऐसे अन्यमें भी लगावना ॥

[१] इस सूत्रका तथा चौथे सूत्रका पाठ हमारे यहां सर्वत्र एक है,परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें हमारे यहांके तीसरे और चौथे सूत्रका जो पाठ है उनके यहांका वह पाठ चौथे सूत्रका ऐसे है कि "औपशमिकादिभव्यत्वाभावाच्चान्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥" = औपशमिक-आदि- भव्यत्व-अभावात्-च-अन्यत्र केवल-सम्यक्त्वज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥ हमारे यहांका चौथा सूत्र इस प्रकार है कि "अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शन सिद्धत्वेभ्यः॥ ७ ॥ दोनों सम्प्रदाययोंके पाठ मिलानेसे जान पड़ता है कि सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पाठ में "अभावात्" शब्द अधिक है । हमारे यहां 'अभावात्"की अनुवृत्ति "बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्म विप्रमोक्षो मोक्षः सूत्रसे

सूत्रार्थ - औपशमिकादि भव्यत्वानाम् = और (=च) औपशमिकादि भव्यत्व
भावानाम् अभावात् मोक्ष भवति ॥ = भावोंके अभावसे मोक्ष होती है। अर्थात् औपशमिकादि भावोंका (अध्याय २ सूत्र १) पारिणामिक भावोंमेंसे भव्यत्व भावका (अध्याय २ सूत्र ७) और पुद्गल कर्मोंकी समस्त प्रकृतियोंके अत्यन्त नाशहोने पर (अध्याय १० सूत्र २)किन्तु अग्रिम सूत्रमेंकहेजानेवाले भावों सहित (देखो अध्याय १० सूत्र ४) मोक्ष होती है ॥

ली है। इसलिये हमारे यहाके तीसरे और चौथे सूत्रोंका और सभाष्य० के केवल चौथे सूत्रका पाठ विशेषतासे लगभग एक है। जैसे
{ औपशमिक-आदि भव्यत्व-अभावात् च अन्यत्र केवलसम्यक्त्व-ज्ञान दर्शन सिद्धत्वेभ्य मोक्षो भवति ।(सभाष्य० के ३ सूत्रसे "मोक्षो भवति" लिया है
{ औपशमिक-आदि भव्यत्वानाम् च अभावात् (की अनुवृत्ति २ सूत्र से लीगई है) अन्यत्र केवलसम्यक्त्व ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्य मोक्षो भवति,'
मोक्षो भवति की अनुवृत्ति हमारे यहां दूसरे सूत्रसे लीगई है प्रथम इसके कि हम दोनों सम्प्रदायोंके सूत्रोंके क्रम तथा अर्थों के सम्बन्ध में कुछ लिखें और सूत्रोंके तात्पर्यके विषयमें अपने कुछ विचार प्रगट करें यह आवश्यक जान पडताहै कि औपशमिकादि भावोंके विषयमें जो दोनों सम्प्रदायोंमें सूत्रों द्वारा प्रगट किये गये है कुछ निवेदन करद (क) दोनों सम्प्रदायोंमें दूसरे अध्यायके १ सूत्रसे ४ तक का पाठ तथा अर्थ एक है। (ख) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें क्षायोपशमिक भावोंके विषयमें जो ५ वा सूत्र है उसमें हमारे यहा के पांचवें सूत्रसे 'ज्ञानाज्ञानदर्शन" वाक्य के लगाही 'दानादि" शब्द अधिक है, शेष सूत्रका पाठ दोनों आम्नायोंमें एक ही है परन्तु अर्थ में भेद किंचित् भी नहीं है क्योंकि हमारे यहा 'लब्धय " शब्दका अर्थ क्षायोपशमिकदानलब्धि-क्षायोपशमिकलाभलब्धि-क्षायोपशमिकभोगलब्धि-क्षायोपशमिकउपभोगलब्धि-क्षायोपशमिकवीर्यलब्धि किया है और श्वेताम्बर आम्नायमें दानादि लब्धय वाक्य का वही तात्पर्य लिया है जो हमारे यहा लब्धय शब्दका इसलिये दोनोंमें अर्थ भेद कुछ भी नहीं है॥ (ग) छठवां सूत्रमें दोनों सम्प्रदायके २१ औदयिकभावोंका कथन है "संयतासिद्ध" हमारे यहा पाठ है 'संयतासिद्धत्व" सभाष्य० में है। परन्तु अर्थ में कुछ भी भेद नहीं है, क्योंकि हमारे यहा 'असिद्ध" का अर्थ 'असिद्धत्व' किया है अत इस सूत्रके अर्थमें भी कुछ भेद नहीं हुआ। (४) 'जीवभव्याभव्यत्वानिच" (सर्वार्थसिद्धि सूत्र ७ अध्याय २) 'जीवभव्याभव्यत्वादीनिच' (सभाष्य० अध्याय २ सूत्र ७) इस सातवा सूत्रमें 'आदि" हमारे यहासे अधिक है परन्तु इस पर भी अर्थ भेद नहीं है क्योंकि सभाष्य० के पाठमें आदि शब्द करि जीवके सामान्य वा साधारण पारिणामिक भावोंको ग्रहण किया है हमारे यहा साधारण वा सामान्य पारिणामिक भावोंको च" शब्द करि ग्रहण किया है। असाधारण पारिणामिक भाव वा असामान्य पारिणामिक भाव अथवा विशेष पारिणामिक भाव वे है जो केवल जीवमें ही पाये जावें और किसी द्रव्य में न पाये जावें और वे केवल तीन ही भव्यत्व अभव्यत्व-तथा जीवत्व हैं अधिक नहीं हैं ये अनादि काल सिद्ध है और साधारण पारिणामिक भाव वा सामान्य पारिणामिक भाव वा विशेष रहित पारिणामिक भाव वे है जो जीवमें भी होते है और अन्य अचेतन धर्मादिक द्रव्यों में भी होते है वे [सामान्य गुण] अनेक है। और ये भी अनादि काल सिद्ध हैं [सभाष्य० पृष्ठ ४० देखो] ॥ साधारण पारिणामिक भावोंमें कितने ही के नाम इस प्रकार है कि [१] अस्तित्व = जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो।
[२] वस्तुत्व अर्थात् जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थ क्रिया हो जैसे — "घडे" की अर्थ क्रिया "जलआदिककाधारण" है ॥

(३) द्रव्यत्व अर्थात् जिसशक्तिके निमित्तसे सर्वदा एकसा न रहै और जिसकी पर्यायें (अवस्थायें) सदा पलटती रहैं।
(४) प्रमेयत्व-अर्थात् जिस शक्ति के निमित्तसे द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय हो॥
(५) अगुरुलघुत्व अर्थात् जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता दृढ रहै-एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमै और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमे तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्तगुण बिखरकर पृथक् पृथक् न हो जावें॥
(६) प्रदेशवत्व-अर्थात् जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकर अवश्य हो (७) मूर्तत्वम् (८) अमूर्तत्वम् (देखो सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १५३ अध्याय २ सूत्र ७) अस्तित्व-अन्यत्व-कर्तृत्व-भोक्तृत्व-पर्यायवत्व-असर्वगतत्व-अनादि संततिबन्धनबद्धत्व-प्रदेशवत्व-अरूपत्व-नित्यत्व-(देखो तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ७७ तथा ७८) यहां पर प्रत्येक इन साधारण पारिणामिक भावोंकी परिभाषा दीगई है॥
(चशब्द समुच्चितास्तु साधारणा असाधारणाश्च) अस्तित्व अन्यत्व-कर्तृत्व-हृत्व-पर्यायवत्व-असर्वगतत्व-अनादिसंततिबधत्व-प्रदेशवत्व अरूपत्व-नित्यत्व आदिक, इन के विवरण के लिए देखो तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३१६, ३१७,॥
अस्तित्व-अन्यत्व-कर्तृत्व-भोक्तृत्व-गुणवत्व-असर्वगतत्व-अनादि कर्म संतान बद्धत्व-प्रदेशत्व-अरूपत्व-तथा नित्यत्व इत्यादि और भी अनादि कालसिद्ध पारिणामिक (साधारण) भाव जीव के है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ४०)।
इस समस्तका निचोड़ यह है कि दोनों सम्प्रदायमें दूसरे अध्यायके प्रथम सूत्रसे सातवां सूत्र तकके अर्थोंमें कुछ भेद नहीं है श्वेतांबर सम्प्रदायके किसी किसी सूत्रके पाठमें दो एक अक्षर अधिक हैं॥ जैसा कि अध्याय दोमें जहां सातो सूत्रका कथन है भिन्न भिन्न लिख चुके है॥
☞ हमारे यहांके ३ और ४ सूत्रको एक सूत्र मानें वा एक सूत्र समझें जैसाकि सभाष्य० में इन दोनों सूत्रों को एक ही नियत किया है तो (क) मोक्षके स्वरूपके समझनेमे सुगमता होती है (ख) अर्थके करनेमें सुगमता होती है (ग) पुद्गल कर्मोंकी समस्त प्रकृतियोंके नाशका द्योतक इस अध्याय का दूसरा सूत्र होता है और भावोंके अभाव तथा विद्यमानताके सम्बन्धमें यह सूत्र हो जाता है। फिर हमको इस सूत्रके अर्थ करनेमें इस बात पर बाध्य नहीं होना पडता कि हम इसी सूत्रके अर्थ करनेमें यह भी लिखदें कि क्षायक भावोंका मोक्षमें नाश नहीं होता है जैसा कि किसी किसी टीका कारने किया है। इन तीनोंकी पुष्टता नीचे के अर्थ से होती है :—

बन्ध-हेतु-अभाव-निर्जराभ्याम्-कृत्स्नकर्म-	=बन्धके हेतुके अभावसे और निर्जराके द्वारा समस्त पुद्गल कर्मोंकी प्रकृतियोंका
विप्रमोक्षः च अन्यत्र केवलसम्यक्त्व-	=अत्यन्तनाश (सूत्र २ अध्याय १०) और (=च) पूरा (=केवल) सम्यक्त्व-
ज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः,	=सर्व(=केवल) ज्ञान,पूर्ण (=केवल) दर्शन, केवल सिद्धत्व (अकेलाजीवत्व) केविना
औपशमिक आदि-भव्यत्वानां अभावः	=औपशमिक, क्षायिक-मिश्र-औदयिक (=आदि) भव्यत्वका अभाव
मोक्षः	=सो मोक्ष है (अध्याय १० सूत्र ३-४) भावार्थ—बन्ध के कारण

मिथ्यात्व-अविरति-प्रमाद-कषाय-योगनिका अभाव होनेसे और निर्जरा (के हेतु) से समस्त कर्मका अत्यन्त नाश और (=च) पूरा (=केवल) सम्यक्त्व, सर्व (=केवल) ज्ञान, पूर्ण (=केवल) दर्शन-इन ज्ञानदर्शनके अविनाभावी अनत वीर्य, अनंत सुख, अकेला (=केवल) सिद्धत्व वा जीवत्व के विना वा अतिरिक्त औपशमिक,क्षायिक, मिश्र-औदयिक (=आदि) तथा(अनेक साधारण पारिणामिक जैसे अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-प्रमेयत्व-अगुरुलघुत्व-प्रदेशवत्व इत्यादि भावोंमेंसे बहुरि तीन असाधारण पारिणामिक भावों में से) केवल भव्यत्व का (क्योंकि अभव्यत्व तो मोक्षगामी के है ही नहीं) विनाश सो मोक्ष है॥ सारांशः-मोक्ष जीवके समस्त पुद्गल कर्म प्रकृतियोंका विनाश

कि, मोक्ष इत्यनुवर्तते । भव्यत्वग्रहणम्

इस वृत्ति वा भाष्यको समझनेके लिये इस सूत्रकी टिप्पणी पृष्ठ १४से१८ तक अवश्य २ समझलो

टीकाऽनुवाद —किम्?'''मोक्ष ?'इति॰ =(प्रश्न) क्या(वात) ? (उत्तर) मोक्ष ऐसा (शब्द इस सूत्रमें ऊपरके द्वितीय सूत्रसे)

अनुवर्तते। । भव्यत्व-ग्रहणम्?''' =आता है अथवा अनुवर्तमान है ॥ (इस सूत्रमें) भव्यत्वका लाना

होना है और सिद्धत्व या जीवत्व तथा अनेक साधारण पारिणामिक भावोंके विना और केवल सम्यक्त्व-केवल ज्ञान केवल दर्शन-इनके अविनाभावी अनंतसुख-अनंतवीर्यके विना अवशेष समस्त भावोंका मोक्ष जीवके अभाव होता है ॥ (प्रश्न) नौ क्षायिक भावोंमसे मोक्षजीव अर्थात् सिद्धके कौन २ भाव होते हैं और कैसे?(उत्तर)क्षायिकज्ञान,क्षायिकदर्शन,अर्थात्क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकवीर्य,जो क्षायिकज्ञान तथा क्षायिकदर्शनके अविनाभावी हैं सूत्र ■ अध्याय १० के अनुसार हैं। 'दान-लाभ-भोग-उपभोग वीर्य-लब्धिका प्रतिपक्षी जो अंतराय कर्म ताके अभाव तै शक्ति तो प्रगट है ही परंतु शरीरविना तिनकी प्रवृत्ति होय नहीं,तातें ऐसा जानना जो परम उत्कृष्ट अनंतवीर्य अव्याबाध स्वरूपकरिही तिनकी तहां प्रवृत्ति है। जैसे केवलज्ञानरूपकरि तीनलोक तीनकालके अनंत द्रव्य गुण पर्यायनिके युगपत् ग्रहण करनेका सामर्थ्यकरि ही अनंत वीर्यकी प्रवृत्ति होयहै तैसे यह भी जानना अर्थ प्रकाशिका अध्याय २ सूत्र ४ की व्याख्या से उद्धृत ॥ चारित्र मोहनीय कर्मके नाशसे क्षायिक चारित्र होताहै इसको क्षायिक यथाख्यात चारित्र भी कह सकते हैं जो "पूर्व बारमें गुणस्थान ही मे होगया ॥ परंतु चारित्रकी परिपूर्णता जो चौरासी लाख उत्तरगुण अर अठारह हजार शील इनकी परिपूर्णता चौदमा गुणस्थानके ही अंतमें होय है । तातें यथाख्यातचारित्रकी इहां लिखिये है॥ अर यथाख्यात चारित्ररूप ज्ञानदर्शन ही का परिणमन हुवा है ॥ अर जो पहली ही रत्नत्रय परिपूर्ण होगया होय तो मोक्ष उसही कालमें भया चाहिए।तातें इहां रत्नत्रयकी पूर्णता भई तिसही समयमें मोक्षहोय ऐसे जानना ' ऐसे सिद्धोंके क्षायिक चारित्र है ॥ अर्थ प्रकाशिका अध्याय ९ सूत्र ४? की व्याख्यासे उद्धृत ॥ सयोगकेवलीके क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन,क्षायिकदान,क्षायिकलाभ,क्षायिकभोग,क्षायिकउपभोग क्षायिकवीर्य क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र इस प्रकार हैं कि ज्ञानावरणकर्मके, अत्यंत क्षय होनेसे केवल ज्ञान अर्थात् क्षायिकज्ञान उत्पन्न होताहै इसी प्रकार दर्शनावरणकर्मके अत्यंत क्षय होनेसे केवल दर्शन अर्थात् क्षायिक दर्शनकी प्राप्ति होती है अथवा उपलब्धि होती है । "अर दानांतराय नामकर्मके अत्यंतक्षयतें अनंतप्राणीनिकैं उपकार करने वाला दिव्यध्वनिकू आदि लय क्षायिक अभयदान होय है ॥ बहुरि लाभांतरायका अत्यंतक्षयतें कवलाहारक्रियाकरि रहित भगवान् केवलीके शरीरमें बलाधानका कारण अर अन्य मनुष्यनितैं असाधारण पर मशुभ सूक्ष्म नोकर्म पुद्गल समयसमयप्रति सम्बन्धकूं प्राप्त होय हैं ॥ तिन पुद्गलनितैं औदारिक शरीर की किंचित् ऊन कोटीपूर्ववर्षनिकी स्थिति रहै है ॥ सो ही क्षायिक लाभ है ॥ बहुरि भोगांतरायके अत्यंत अभावतें अतिशयवान् पंचवर्णके सुगंधपुष्पनिकी वर्षा तथा चरणारविंदके नीचे क्रममें पचास कमलनिकी रचना तथा सुगंध धूप मंद सुगंध पवन इत्यादिक अनेक विशेषनिकी लोए क्षायिक भोग है ॥ बहुरि उपभोगांतरायकर्मके अत्यंतक्षयतें सिंहासन छत्रत्रय चौसठ चमर अशोकवृक्ष प्रभामंडल अतिगंभीर देवदुंदुभी इत्यादि विभूति प्रकट होय, ते क्षायिक उपभोग है ॥ बहुरि वीर्यांतरायकर्मके अत्यंतक्षयतें अनंतवीर्य प्रकट होय है ॥ बहुरि मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व , सम्यक्त्व अर

अविनाभावित्वादनन्तवीर्यादीनामविशेषः।अनन्तसामर्थ्यहीनस्यानन्तावबोधवृत्त्यभावाज्ज्ञानमय-पर्यायत्वाच्च सुखस्येति॥ अनाकारत्वान्मुक्तानामभाव इति चेन्न–अतीतानन्तरशरीराकारत्वात्।

अविनाभावित्वात् [५।१]	=अविनाभावी होनेसे अथवा व्याप्ति होनेसे वा एकमेक होनेके हेतुसे
अनंतवीर्य–आदीनाम् [६।३] अविशेषः [१।१],	=(इस सूत्रमें) अनंत वीर्यादिकका विशेपनहींहै अर्थात् अनंतवीर्यादिकका निर्देशनहींकियाहै
अनंत–सामर्थ्य–हीनस्य [६।१] अनन्त अवबोध-वृत्ति-	=क्योंकि अनंतवीर्य हीनके अनंत ज्ञानकी प्रवृत्तिका
अभावात् [५।१] ज्ञानमयपर्यायत्वात् [५।१] च* सुखस्य [६।१] इति*	=अभाव है। और (=च) सुखकी ज्ञानमय पर्याय है (सुखमें और ज्ञानमें भिन्नता नहीं है)।
अनाकारत्वात् [५।१] मुक्तानाम् [६।३] अभावः [१।१]	=मोक्ष गये हुए (जीव)निके आकार न होने (केनिमित्त)से अभाव वा अविद्यमानता होतीहै
इति* चेत्* न*	=ऐसा संशय होने पर (कहते हैं कि) नहीं
अतीत–अनन्तर–शरीर–	=क्योंकि अत्यन्त समीपवर्ती (=अनन्तर) व्यतीत गातका (मोक्षमें)
आकारत्वात् [५।१]	=आकारहोनेसे (उक्त अभाव) नहीं है (=न) अर्थात् क्योंकि व्यवधान, बीच अथवा अन्तर रहित मोक्षगये हुये समयमें (=चौदहवें गुणस्थानकी द्वितीय समये में) जो शरीर विद्यमान रहगया है उस शरीरका आकार मोक्षमें है। अयोग केवली चौदहवां गुणस्थानवर्तीके द्वितीय (=अंतसमयमें) जो शरीर भूमिपर रहगया है उस शरीरका मोक्षमें आकार है अतः मोक्षमें जीवका अभाव नहीं है भावार्थ यह प्रश्न होनेपर कि मुक्त जीवका कोई आकार नहीं है इसलिये मोक्ष गयेहुए जीवका कोई अस्तित्व नहीं है उत्तरमें कहते हैंकि मोक्ष जीवके अस्तित्वका नाश (मोक्षमें) नहीं होता है क्योंकि चौदहमें गुणस्थान के द्वितीय समयमें जिस शरीरको छोड़कर जीव मोक्ष हुआ है उस शरीरके आकार आत्माके असंख्यात अमूर्तीक प्रदेशोंको लिये हुए शुद्ध जीव मोक्षमें तिष्ठता है

"जिस शरीरतैं मुक्त होय है तिस शरीरके आकार जीवके अमूर्तीक प्रदेशनिका आकार है॥" प०पन्नालाल न्याय०। चरमशरीर = "अतीत अनन्तर शरीर" पं०पन्नालाल दूनी॥ राजवार्तिक, वार्तिक११, सर्वार्थसिद्धिकी दोनों मुद्रित प्रतियोंमें अतीतानन्तशरीराकार पाठ है, राजवार्तिक मुद्रित तथा हस्त लिखित तीन प्रतियोंकी और हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ ५०६ में अतीतानतर शरीर" पाठ है॥ यत्र चरम शरीराकारास्तेवर्तन्ते श्रुत० पत्र २६२, अतीतानन्त पाठ अशुद्ध है, अतीतान्त पाठ होसक्ता है तब अर्थ होगा पिछले कालमें अन्तका स्थितिरूप शरीर अर्थात् चोदहवें गुणस्थानकी दूसरी समय जो मोक्षमे जानेकी अंतिम समय है उस समयमें जो शरीर विद्यमान पृथिवीपर रहगया है सोहै॥

सर्वार्थ- सिद्धि २१

स्यान्मत यदि शरीरानुविधायी जीव· तदभावात्स्वस्वाभाविकलोकाकाशप्रदेशपरिमाणत्वात्तावद्विसर्पणं प्राप्नोतीतिनैष दोष ॥ कुत –कारणाभावात्॥ नामकर्मसम्बन्धो हि सहरणविसर्पणकारण तदभावात्पुन सहरणविसर्पणाभाव ॥ यदि कारणाभावान्न संहरणं न विसर्पणं तर्हि गमन कारणाभावादूर्ध्वगमनमपि न प्राप्नोति ।अधस्तिर्यग्गमनाभाववत्। ततो यत्र मुक्तस्तत्रैवावस्थानं प्राप्नोतीत्यत्रोच्यते—**तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥५॥**

अध्याय १० सूत्र ४,५

स्यात् मतम् यदि* शरीर–अनुविधायी जीव	=यदि ऐसा मत है कि जीव शरीरकी रचनाकेआकारकेअनुसार(=अनुविधायिन्) था अर्थात् जीव शरीरके बन्धनमें था तब शरीरके आकारके अनुकूल था
तद्–अभावात् स्वाभाविक–	=तो उस (शरीर)के नाश होनेसे स्वभावसिद्ध (=स्वाभाविक)
लोकाकाश–प्रदेश–परिमाणत्वात्	=लोकाकाशके प्रदेशोंके बराबर (जीवके प्रदेश) होनें (के हेतु) से
तावत्* विसर्पणम् प्राप्नोति इति*	=उस (लोक)के बराबर (=तावत्) (जीवकी) फैलावट प्राप्त होती है,ऐसा(प्रश्न)है
न*एष दोष । कुत * कारण–	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है (प्रश्न) क्योंकर ? (उत्तर) (विसर्पणके) कारणके
अभावात्,नामकर्म–सम्बन्ध हि*सहरण–	=अभावसे क्योंकि (=हि) नाम कर्मका (जीवके साथ) सयोग, सकोच और
विसर्पण–कारणम् तद्–अभावात्	=फैलावटका कारण था उस (नामकर्मरूपी कारण)के विनाशसे
पुन * सहरण–विसर्पण–अभाव , यदि*	=फिर (=पुन) सकोच विस्तारका अभाव होगया, जो (=यदि)
कारण–अभावात्न*सहरणम्न*विसर्पण तर्हि*	=कारणके अभावसे न सकोच रहा न विस्तार तो (=तर्हि)
गमन-कारण अभावात्	=गमनके कारण (यह नामकर्म) के नाशसे (कर्म रहित जीवों) के
ऊर्ध्वम् गमनम् अपि*अधस *तिर्यग्*गमन अभाव-	=ऊपरको गमन भी नीचे इधर उधर (=तिर्यग्) गमनके निषेधके
वत्*न* प्राप्नोति तत * यत्र *	=समान प्राप्त नहीं होता । तिस [कारण]से [=तत.] जहा [=यत्र]
मुक्त तत्र *	=मोक्ष हुआ अर्थात् जिस स्थान पर जीवने कर्मोंका विनाश किया तहा
एव* अवस्थानम् प्राप्नोति इति*अत्र*उच्यते –	=ही स्थिति वा ठहराव प्राप्त होता है ऐसे (प्रश्न पर) यहा कहा जाता है कि

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्=तद् अनन्तरम् (मुक्त· जीव)ऊर्ध्वम् गच्छति आ लोकान्तात्

२१

तस्यानन्तरं। कस्य? सर्वकर्मविप्रमोक्षस्य । आङभिविध्यर्थः । ऊर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्।
अनुपदिष्टहेतुकमिदमूर्ध्वगमनं कथमध्यवसातुं शक्यमित्यत्रोच्यते—

(१)सूत्रार्थः-(२) तद्- =उन (समस्त पुद्गलकर्म प्रकृतियोंके अत्यन्त विनाश तथा औपशमिक आदि भव्यत्व भावोंके अत्यन्त विनाश(सम्यक्त्वज्ञान-दर्शन-सिद्धत्व स्वतत्त्व भावों को छोड़ कर-)के
अन्तरम्॥ ऊर्ध्वम्॥(मुक्तःजीवः वा मुक्तजीवः) =लगताही वा अत्यन्त समीप (=अनन्तर) ऊपरको (मुक्तजीव)
गच्छति T आ-लोकान्तात्॥ =लोकके अन्ततक (=आ) गमन करता है वा चला जाता है।

वृत्यनुवादः-तस्य॥ अनन्तरम्॥ कस्य॥ ? =(२)उसके पश्चात् वा अत्यन्त निकट (प्रश्न) किसके (पश्चात् वा लगता ही)
सर्व-कर्म-विप्रमोक्षस्य॥ =(उत्तर) समस्त पुद्गलकर्म की प्रकृतियोंके अत्यन्त नाशके (पश्चात्) ॥
आङ्॥ अभिविधि-अर्थः॥; =(इस सूत्रमें) आङ् (=आ उपसर्ग) का अभिविधि अर्थात् तक-पर्यन्त अर्थ है
ऊर्ध्वम्॥गच्छति T आ- लोकान्तात्॥अन्-उपदिष्ट- =(मुक्तजीव) लोकके अन्ततक (=आ) ऊपरको जाता है-विना कहा हुआ है
हेतुकम्॥इदम्॥ ऊर्ध्वगमनम्॥कथम् * =कारण जिसका ऐसा यह ऊर्ध्वगमन कैसे
अध्यवसातुम्॥शक्यम्॥इति*अत्र*उच्यते T- =[विना ऊर्ध्वगमन हेतुके कहें] निश्चय कियाजासक्ता है अतःयहां कहा जाता है कि

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। 'जैननित्य सोलह पाठ संग्रह मुम्बई गुटकामें "गच्छन्ति" पाठ भी है यह भी ठीक है, 'मुक्तजीवः' के स्थानमें "मुक्तजीवाः" ऐसा बहुवचन में कर्ता होगा॥ (२)—तद्-पूज्यपाद स्वामीने इस वृत्तिमें तथा अकलंक देव स्वामीने तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३६४ में तथा श्रुत सागरी टीकामें "तद्" का अर्थ एक वचन में "उसके"ऐसा लिया है "उसके" इस शब्द का अर्थ "सर्व कर्म विप्र मोक्षस्य" "कृत्स्नकर्म विप्रमोक्षस्य"="सब कर्म का अत्यन्त छुटकारेका" लिया है-इसीलिए मैंने वृत्तिके अनुवाद करने में यही अर्थ लिया है। परन्तु तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ५१० में"तद् ग्रहणं मोक्षस्य प्रति-निर्देशार्थः"=तद् शब्द का ग्रहण मोक्ष के प्रति कथन के लिए है ऐसा अर्थ किया है अर्थात् "तद्" शब्द का अर्थ "मोक्ष" ऐसा लिया है, और मोक्ष कब होती है जब "सब पुद्गलकर्म प्रकृतियो का अत्यन्त विनाश तथा केवल सम्यक्त्व ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्व भावोंके विना अवशेष भावोंका औपशमिकादि भव्यत्वका अभाव हो जाताहै। श्री उमास्वामीने जो सूत्रों का क्रम दिया है उससे भी मुझको श्लोकवार्तिककारका अर्थ श्रेष्ठ प्रतीत होता है क्योंकि दूसरा सूत्र सब पुद्गल कर्मोंके नाशके संबन्धमें है। तीसरा चौथा भावोंके नाश और विद्यमानताके सम्बन्धमें यथा संख्य हैं उसके पश्चात् यह सूत्र इस बात का द्योतक है कि ऊर्ध्वगमन कब होता है जब पहले केवल ज्ञान हो लेता है-पश्चात्-अवशेष समस्त पुद्गल कर्म नाश होते हैं और कुछ भावोंको छोड़कर सब भावोंका भी नाश हो जाता है तब ऊर्ध्वगमन होता है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "तदनन्तरमिति" का अर्थ इस प्रकार है "कृत्स्नकर्म क्षयानन्तरमौपशमिकाद्यभावानन्तरं चेत्यर्थः""उन सब कर्मोंके क्षयके अनन्तर और औपसमिकादि भावोंके नाशके अनतर" इसलिये

काऊ ।।। काऊ ।।। (=कापोता ।।। कापोता ।।।) = (यथासंख्य या अनुक्रमसे) कापोतलेश्या, कापोतलेश्या,

काऊ ।।। णीला ।।। णीला ।।। य (=कापोता ।।। नीला ।।। नीला ।।। च) =कापोत नीललेश्या और (=य=च) =नीललेश्या

णीलकिण्हा ।।। य, किण्हा ।।। य (=नीलकृष्णा ।।। च कृष्णा ।।। च) =और (=य) नीलकृष्णलेश्या और (=य) कृष्णलेश्या

परम किण्हा ।।। लेस्सा ।।। (=परमकृष्णा ।।। लेश्या ।।। =(तथा) उत्कृष्ट कृष्णलेश्या

पढमादि-पुढवीण ।।। (=प्रथमादि—पृथिवीनाम् ।।।) =पहिले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवे, छठे, सातवें नरककी (पृथिवीना) है अर्थात् यहांपर नारकियोंके भाव लेश्याकी अपेक्षासे कथन है घम्मा प्रथम नरकमें कापोतलेश्या का जघन्य अंश है वशा दूसरे नरकमें कापोतलेश्याका मध्यम अंश है । मेघा तीसरी पृथिवीमें कापोतलेश्याका उत्कृष्ट अंश और नीललेश्याका जघन्य अंश है, अजना चौथे नरकमें नीलका मध्यम भाग है पांचवी पृथिवी अरिष्टामें नीललेश्याका उत्कृष्ट अंश और कृष्णलेश्याका जघन्य अंश है । छठा नरक मघवीमें कृष्णलेश्याका मध्यम अंश है माघवी सातवें नरकमें कृष्णका उत्कृष्ट अंश है । प्राकृत भाषामें इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंको तृतीया विभक्तिसे लेकर सप्तमी विभक्ति तकके सवरूप रुचि शब्दके रूपोंके सदृश हैं और रुचि शब्दकी षष्ठी विभक्ति बहुवचन " रुईण " है अत पृथिवीण षष्ठी बहुवचनमें लिखा गया है प्राकृत सुबन्तकौमुदी पृष्ठ १७७-१७८

गोमट्टसारे ।।। कर्मकाण्डे ।।। लेश्यामार्गणायाम् ।।। =गोमट्टसार कर्मकाण्डमें लेश्यामार्गणा (प्रकरण) में

इयम् ।।। गाथा ।।। ५२६ दृश्यते =यह गाथा ५२६ वीं देखी जाती है ॥

अस्या ।।। गाथाया ।।। अर्थ ।।। कथ्यते प्रथमायां ।।। =इस आर्या छंदका अर्थ कहा जाता है-पहिले

पृथिव्यां ।।। नारकाणां ।।। जघन्या ।।। कापोतलेश्या ।।। =नरक (=पृथिवी)में नारकियोंके जघन्य कापोत लेश्या होती है ॥

(क) आविद्धकुलालचक्रवत् * (१), =कुम्भकार (=कुलाल) के घुमाये हुये(=आविद्ध) चाकके समान ऊपर जाताहै अर्थात् जैसे कुम्हारका हाथ, डंडा, चाक द्वारा घुमाउ (चाकमें) उत्पन्न करता है और हाथ, डंडा हटा लेनेपर घुमाउ कुछ समय तक बना रहता है तैसे मोक्ष जीव गमनके लिये जतन तथा अभ्यास करता रहाथा सो जतन तथा अभ्यास के छूटनेपर भी पूर्व संस्कारसे गमन करता रहता है।

(ख) व्यपगतलेप--अलाबुवत् * (२), =पृथक् हो गया है (=व्यपगत) (मिट्टी का) लेप जिस से ऐसे तुम्बेके फलके सदृश ऊपरको जाता है अर्थात् जैसे मिट्टी के लेपसे लिप्त तितलौकी वा लौआ पानीमें डूब जाता है और लेपके न्यारे होनेपर पानीके नीचे तथा इधर उधर न जाकर ऊर्ध्वगमन करके पानीके ठीक उपरले भागपर ठहर जाता है तैसे आत्मा कर्मरूपी कीचड़ वा मिट्टीके लेपसे छुटकारा पाकर ऊर्ध्वगमन करता है।

(ग) एरण्ड--बीजवत् * =अण्डीके बीजके समान ऊपरको जाता है अर्थात् जैसे अण्डीका बीज टोंटेके फटने पर वा टूटने पर ऊपरको उछलता है तैसे आठ कर्मरूपी डोड़ाके फटजाने वा टूट जाने से (मुक्त जीव) ऊपरको जाता है।

(घ) अग्नि--शिखावत् * च *, =और(=च) (वायुके आवेशसे रहित) आगकी शिखा वा चोटीके समान (मुक्तजीव) ऊपरको जाता है अर्थात् जैसे इधर उधरसे टेढ़ी पवन न आवे तो दीपककी चोटी वा शिखा ऊपर को ही जाती है उसी प्रकार मनुष्य नारकादि गतियोंमें गमन करानेवाले कर्मोंका अभाव होनेसे आत्माका ऊर्ध्वगमन स्वभाव होनेके कारण मुक्त जीव नियमसे ऊपरको जाता है।

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है। कही कही पर एरंड पाठ है कही २ पर एरण्ड पाठ है, दोनों ठीक हैं (अध्याय १ पृष्ठ ५४०,५४१) श्वेताम्बरसम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें यह सूत्र रूपमे नही है इसका तात्पर्य उनके यहां पूर्व प्रयोगात् इत्यादि सूत्रमें इस प्रकार दिया है ॥ आविद्ध कुलालचक्रवत् 'पूर्वप्रयोगात्''के भाष्य करनेमें दिया है और ''गतिपरिणामात्''के भाष्य करनेमे ''व्यपगतलेपअलाबुवत्'' इस वाक्यका तात्पर्य दिया है ॥ ''बन्धच्छेदात्''के भाष्य करनेमें 'एरण्ड बीजवत्'' का तात्पर्य दिया है, 'अग्निशिखावत्'' वाक्यका तात्पर्य असङ्गत्वात्के भाष्य करनेमे दिया है (देखो सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २२८ तथा २२९)
(२) ''पूर्वप्रयोगात्'' छठे सूत्रके वाक्यका ''आविद्धकुलालचक्रवत्'' के साथ संबध होता है-यह दृष्टान्त ऊर्ध्व गमनका नही है केवल पूर्व संस्कारसे गमन बना रहता है॥ इस बातका है। क्योंकि चाकका घुमाउ ऊपरको नही है वरन् अपनी ही परिधिमे स्वभावसे होता है। इसी प्रकार मुक्त जीवका भी स्वभावके अनुकूल पूर्व प्रयोगसे गमन रहता है। जीवका स्वभाव ऊर्ध्व गमनका है इस लिये पूर्व प्रयत्नसे मोक्षगामी जीवका ऊर्ध्व गमन होता है॥ शेष तीन उदाहरण ऊर्ध्व गमन के है॥ (२)अलाबु=अलाबू=अलावु=अलावू=लौआफल. तुम्बीफल,तुंबेकाफल।

॥ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६॥

आह—हेत्वर्थ पुष्कलोऽपि दृष्टान्तसमर्थनमन्तरेणाभिप्रेतार्थसाधनाय नालमित्यत्रोच्यते—आ-
विद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च

[१] सूत्र —

पदच्छेद — पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च

सूत्रार्थ -पूर्व-प्रयोगात् असङ्गत्वात् बन्धच्छेदात् तथा-गति-परिणामात् च ऊर्ध्वम् गच्छति । -पूर्वप्रयोगात्-असङ्गत्वात्- बन्धच्छेदात्-तथा गतिपरिणामात् च (ऊर्ध्वम् गच्छति) ॥ ६॥

=पहले प्रयत्न वा उद्योग(केहेतु) से, सम्बन्ध वा संयोग के न रहने (केहेतु) से

=वेष्टन वा बन्धनके टूट जाने वा नष्ट हो जाने (केहेतु) से

=और (=च) वैसेही वा उसी प्रकार [=तथा] गमनका स्वभाव होने (केहेतु) से

अर्थात् ऊर्ध्व गमनका स्वाभाविक गुणहोने (के हेतु) से

=(मुक्त जीव) ऊपरको जाता है ॥

वृत्त्यनुवाद -आह । हेतु अर्थः पुष्कलः अपि =पूछता है कि [ऊर्ध्वगमनके] हेतुका विषय पुष्ट है तौ भी [=अपि]

दृष्टान्त समर्थन अन्तरेण अभिमत- =उदाहरण तथा समर्थन वा पुष्टकरने के विना[=अन्तरेण]अभिभूत[=अभिमेत]

अर्थ-साधनाय न अलम् =पदार्थके साधनके लिए पूरा नही है,साध्य पदार्थके सिद्धकरनेके लिए पर्याप्त नही है

इति अत्र उच्यते— =ऐसा[प्रश्न होने पर] यहाँ[दृष्टान्तरूपमे अग्रिम सूत्रमें]कहा जाता है कि

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥

मैने सूत्रका अर्थ करने में यही भाव लिया है परन्तु संस्कृत वृत्तिका अनुवाद पूज्यपाद स्वामीके शब्दार्थ के अनुकूल करना पडा है । स्मरण रहेकि सब कर्मोंके नाश होनेपर देह वियोग-सिध्यमानगति और लोकान्तप्राप्ति येसब मुक्त जीवको एक साथ एक समय करि होतेहैं(सभाष्य० पृष्ठ२२८)

(१) हमारी सम्प्रदायमें इस सूत्र का पाठ सर्वत्र एक है कहीं कहीं पर 'बन्ध" शब्द है कहीं कहीं पर 'बंध" शब्द है दोनों ठीक हैं ॥ इस सूत्र में ऊर्ध्वंगच्छति वाक्य की अनुवृत्ति इस अध्यायके पाचवे सूत्र से आती है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "तद्गति " इतना वाक्य अधिक है शेष पाठ सूत्र का वही है जो हमारे यहां है । तद्गति =तद्-गति (ऊर्ध्वं) भवति=उस (मुक्त जीव) का (ऊपरिको) गमन होता है । हमारे यहा 'तद्गति ' के स्थान में "ऊर्ध्वंगच्छति" वाक्य की अनुवृत्ति है ॥'तद्गति ' और 'ऊर्ध्वंगच्छति' का एकसा आशय है ॥

जलक्लेदविश्लिष्टमृत्तिकाबन्धनं लघुसदूर्ध्वमेव गच्छति । तथा कर्मभाराक्रान्तिवशीकृत आत्मा तदावेशवशात्संसारे अनियमेन गच्छति। तत्सङ्गविप्रमुक्तौ तूपर्येवोपयाति॥ किं च बन्धच्छेदात् यथा बीजकोशबन्धच्छेदादेरण्डबीजस्य गतिर्दृष्टा तथा मनुष्यादि भवप्रापकगतिजातिनामादि-

जल-क्लेद-विश्लिष्ट-मृत्तिका-बन्धनम् १/१॥	=पानीके गीलापनरो माटीका बंधन[वा वेष्टन] विमुक्त वा पृथक् हो[=विश्लिष्ट] [तौ]
लघु-सत् ऊर्ध्वम् २/१ एव*गच्छति।तथा*कर्म-भार-	=[तुम्बो]अल्पभार(=लघु)होकर[=सत्]ऊपरको ही जाती है तैसे कर्मके बोझकरि-
आक्रान्ति-वशीकृतः १/१ आत्मा १/१ तद्-आवेश-वशात् ५/१ संसारे ७/१	=दबा परवश हुआ आत्मा उस [कर्म] के सम्बन्धके वशसे जगतमें
(१) अ-नियमेन ३/१ गच्छति T।	=नियमकरि रहित(इधर,उधर,ऊपर नीचे आकाशके प्रदेशोंके श्रेणीरूप पंक्तिमे)जाता है
तत्-सङ्ग-विप्रमुक्तौ ७/१ तु*उपरि*एव*उपयाति T॥	=उस[कर्म]के संयोगका अत्यन्त नाशहोनेपर तौ ऊपर कोही जाता है[=उपयाति]
किं*च*बन्धच्छेदात् ५/१	=कुछ और है-बन्धनके नष्ट होजाने[के हेतु] से अथवा वेष्टनके छूटजानेसे अर्थात् बंधनके विच्छेद हो जानेसे [ऊपर को ही जाता है]
यथा*बीज-कोश-बन्ध—	=जैसे गुच्छरूप बीजके कोश वा भंडार [=कोश] के बन्धनके
च्छेदात् ५/१ एरण्ड-बीजस्य ६/१ गतिः १/१॥	=टूट जानेसे अथवा फट जानेसे अंडीके बीजका गमन
दृष्टा १/१॥	=(स्वाभाविक ऊपरि को) देखा जाता है अर्थात् जैसे अंडी के बीजोंके डोडा वा टांटा के सूखजानेसे अंडीका बीज ऊपरको ही उछलता है
तथा*मनुष्य-आदि-भव-प्रापक-गतिजाति-नाम-आदि-	=तैसे मनुष्यादिक जन्मोंके प्राप्त करानेवाले गति जाति नाम आदि

(१)अनियमेन-दोनों मुद्रित सर्वार्थसिद्धि प्रतियोमें तथा तीन हस्तलिखित प्रतियोंके क्रमसे पत्र ८१,११०,१८८ पर यही पाठहै परन्तु प० जयचन्द्रजी की मुद्रित और हस्त लिखित वचनिकाओं में "नियमकरि पडया है" ऐसा अनुवाद है जिसका तात्पर्य्यहै निश्चयकरि पड़ा है अर्थात् कर्मके वशहुआ आत्मा संसार मे निश्चयरूपसे वा अवश्यकरि भ्रमण करता है॥ इसके दो कारण हो सक्ते हैं संभव है जिस सर्वार्थसिद्धिकी पुस्तकसे उनने अनुवाद किया है उसमें 'अनियमेन' के स्थान में 'नियमेन' पाठ हो अथवा उनने तत्त्वार्थराजवार्तिककी तीसरी वार्तिक की वृत्ति (=भाष्य) का अनुवाद कर दिया हो॥ उक्तवृत्ति और सर्वार्थसिद्धिका पाठ लगभग एक है जैसा कि निम्न पाठ से प्रगट है" यथा मृत्तिका लेपजनित गौरव-मलाबूद्रव्य जलेऽधः पतति तद्वरलेदविश्लिष्टमृत्तिकाबन्धनं लघुसदूर्ध्वमेव गच्छति तथा कर्मभाराक्रांतिवशीकृतआत्मा तदावेशवशात्संसारे नियमेन गच्छति तत्सङ्गविमुक्तो तूपर्येव याति" पदच्छेद और अनुवाद इसका वही है जो हमने ऊपर सर्वार्थसिद्धिमें इस वाक्य का किया है'नियमेन' का अनुवाद निश्चयकरि'अनियमेन' के स्थान में भिन्न समझतो॥ प० पन्नालालन्याय दिवाकर जीने निम्न अनुवाद किया है "बहुरि जैसे मृत्तिका

पूर्वसूत्रे विहितानां हेतूनामत्रोक्तानां दृष्टान्तानां च यथासंख्यमभिसम्बन्धो भवति । तद्यथा-कुलालप्रयोगापादितहस्तदण्डचक्रसंयोगपूर्वकं भ्रमणमुपरतेऽपि तस्मिन्पूर्वप्रयोगादासंस्कारक्षयाद् भ्रमति । एवं भवस्थेनात्मनाऽपवर्गप्राप्तये बहुशो यत्प्रणिधानं तदभावेऽपि तदावेशपूर्वकं मुक्तस्य गमनमवसीयते ॥ किं च-असङ्गत्वाद्यथा मृत्तिकालेपजनितगौरवमलाबुद्रव्यं जलेऽधःपतितं

वृत्त्यनुवाद -पूर्वे सूत्रे॥विहितानाम्॥ हेतूनाम्॥	=पहले सूत्रमें बोधित (=विहित) वा जतलायेगये (=विहित) कारणोंका
अत्र*उक्तानाम्॥च*	=और [=च] यहां (अर्थात् इस स्थानमें वा इस सूत्रमें) कथित-
दृष्टान्तानाम्॥ यथासंख्यम्*	=उदाहरणोंका यथासंख्य वा अनुक्रमसे (अर्थात् पूर्व सूत्रके प्रथम हेतुका इस सूत्रके प्रथम उदाहरणके साथ-पूर्व सूत्रके दूसरे कारणका इस सूत्रके दूसरे दृष्टान्तके साथ, पहिले सूत्रके तीसरे निमित्तका इस सूत्रके तीसरे उदाहरणके साथ और पूर्वसूत्रके चौथे हेतुका इस सूत्रके चौथे उदाहरणके साथ)
अभिसम्बन्धः॥भवति ॥ तद्यथा*कुलाल-	=संयोग वा सम्बन्ध होता है, जैसे कुम्हारके (=कुलाल)
प्रयोग आपादित हस्त दण्ड चक्र संयोगपूर्वकम्॥	=प्रयत्नसे वा उद्योगसे जनित (=आपादित) (जो)हाथ, दंड, चाक, के संबंधसे
भ्रमणम्॥ उपरते॥ अपि*तस्मिन्॥	=घुमाव सो (कुम्भकार के प्रयोगके) हटने पर(=उपरते)भी तिस(=चाक) में
पूर्व प्रयोगात्॥ आ संस्कार क्षयात्॥	=पहले प्रयत्न(के हेतु) से (भ्रमणके) संस्कारके विनाश पर्यंत (=आ)
भ्रमति ॥ एवम्*([1])भवस्थेन॥आत्मना॥अपवर्ग प्राप्तये॥	=घुमाव रहता है,इसी प्रकार संसारमें(=भव) तिष्ठते आत्मद्वारा मोक्षके प्राप्तिके लिए
बहुशः*यत्॥ प्रणिधानम्॥तद् अभावे॥	=बहुत बार वा अनेकवार जो प्रयत्न था उस(प्रयत्न)के अभाव पर(वा न रहनेपर)
अपि*तद्-आवेश-पूर्वकम्॥ मुक्तस्य॥	=भी उस (प्रणिधान वा प्रयत्न) के अभ्यास निमित्तक मुक्त जीव का (अथात् उस प्रणिधान वा जतनका है निमित्त जिस का ऐसे मुक्त जीवका)
गमनम्॥ अवसीयते ॥ किं*च*	=गमन निश्चय किया जाता है ॥ कुछ (=किम्)और(=च) है कि
असङ्गत्वात्॥ यथा*मृत्तिका लेप-जनित-	=बंधन के न रहनेसे[ऊर्ध्व गमन होताहै]। जैसे[=यथा]माटीके लेपसे उत्पन्न भई
गौरवम्॥अलाबु द्रव्यम्॥ जले॥अधः*पतितम्॥	= भारीतुम्बी वस्तु सो पानी में डूबजाती है (और)

(१)भव (पु०)भू+भावे अप् । जन्म । उत्पत्ति । आधारे अप् संसार । और भी केई अर्थोंमें आताहै परन्तु यहां संसार अर्थमहे(पद्मचन्द्रकोशपृष्ठ२७०)

॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥

गत्युपग्रहकारणभूतो धर्मास्तिकायो नोपर्यस्तीत्यलोके गमनाभावः । तद्भावे च लोकालोकविभागाभावः प्रसज्यते ॥

धर्मास्तिकायाभावात् (१) ॥८॥ =(मुक्तजीवः)धर्मास्तिकायाभावाद् ऊर्ध्वङ्गच्छतिआलोकान्तात्

=मुक्तजीवः धर्मास्तिकाय-अभावात्- ऊर्ध्वम्-गच्छति-आ-लोकान्तात् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—धर्म-अस्तिकाय-अभावात् =धर्मास्तिकाय द्रव्यके न होने (के कारण) से वा धर्मास्तिकायके निषेधसे

मुक्तजीवः ऊर्ध्वम् गच्छति आ-लोक-अन्तात् =(मुक्तजीव)लोकके अन्ततक ऊपरको चला जाता है, भावार्थ इसका इसप्रकार है कि लोकान्त वा लोकाकाशके ऊपर धर्मास्तिकाय पदार्थका अभाव है और वह धर्मास्तिकाय जीव और पुद्गलोंकी गतिमें सहकारी (=उपग्रह) कारण है। धर्मास्तिकाय के सहारे विना मुक्तजीव ऊर्ध्वगमन करि लोकाकाशके बाहर अलोकाकाशमें गमन नहीं कर सकता है किन्तु माटीके लेपसे रहित तुंवी के समान लोकान्तमें अनुश्रेणि गतिसे निःक्रिय कर्म रहित होकर स्थिर रहता है ॥

वृत्यनुवादः-गति-उपग्रह कारणभूतः धर्मास्तिकायः =गमनको सहकारी (=उपग्रह) कारणभूत धर्मास्तिकाय द्रव्य

न उपरि अस्ति अलोके गमन-अभावः =(लोकान्त से) ऊपरि नहीं है (ऐसे) अलोकमें गतिका अभाव है

तद्-अभावे च लोक-अलोक- =और (=च)उस (धर्मास्तिकाय) के अभाव (मानने) में लोक तथा अलोकके

विभाग-अभावः प्रसज्यते ॥ =बंटवारे में निषेध संबंध्या जाताहै अर्थात् लोक अलोकके विभागमें निषेध आता है

(१) इस सूत्रका हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ है श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में इसको सूत्ररूप में नहीं लिखा है और न सूत्र माना है बरन् "पूर्व प्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च" सूत्रके भाष्यके अंतमें "लोकान्तादप्यूर्ध्वम् मुक्तस्य गतिः किमर्थं न भवतीति अत्रोच्यते= लोकके अन्तसे भी ऊपरको मुक्त (जीव) का गमन किस लिए नहीं होताहै ऐसा प्रश्न करके "धर्मास्तिकाय भावात्"यह उत्तर दे दियाहै अर्थात् धर्मास्तिकायके न होने (केहेतु) से मुक्तजीवका लोकान्त से ऊर्ध्व गमन नहीं होता है लोकके अंततक धर्म द्रव्य है वहां तक मुक्तजीव जाताहै ॥

सकलकर्मबन्धच्छेदान्मुक्तस्योर्ध्वं गतिरवसीयते ॥ किं च तथागतिपरिणामात्-यथा तिर्यक्प्लवनस्वभावसमीरणसम्बन्धनिरुत्सुका प्रदीपशिखा स्वभावादुत्पतति तथा मुक्तात्माऽपि नानागतिविकारकारणकर्मनिरावरणे सत्यूर्ध्वगतिस्वभावत्वादूर्ध्वमेवारोहति ॥ आह यदि मुक्त ऊर्ध्वगतिस्वभावो लोकान्तादूर्ध्वमपि कस्मान्नोत्पततीत्यत्रोच्यते—

सकल-कर्म-बन्धच्छेदात् ॥ मुक्तस्य ॥ ऊर्ध्वम् ॥ गति ॥ अवसीयते । किम् च
तथा ॥ गति-परिणामात् ॥
यथा ॥ तिर्यक् ॥
प्लवन स्वभाव समीरण सम्बन्ध निरुत्सुका ॥ प्रदीप
शिखा ॥ स्वभावात् ॥ उत्पतति । तथा-
मुक्त आत्मा ॥ अपि ॥ नाना गति विकार कारण-
कर्म निरावरणे ॥ सति ॥
ऊर्ध्व गति स्वभावत्वात् ॥ ऊर्ध्वम् ॥ एव ॥ आरोहति ।
ऊर्ध्वगति-स्वभाव ॥
आह । यदि ॥ मुक्त ॥ ऊर्ध्वगति-स्वभाव ॥
लोकान्तात् ॥ ऊर्ध्वम् ॥ अपि ॥ कस्मात् ॥ न ॥
उत्पतति । इति ॥ अत्र ॥ उच्यते ।

=समस्त (आठ) कर्मोंके बन्ध रूपी टोटेके फटजानसे-
=मुक्त (जीव) का ऊपरका गमन निश्चय किया जाता है। कुछ और-
=वैसे ही (=तथा) गमन के स्वभाव (केहेतु) से (ऊपर को जाता है) अथवा
उसी (पूर्व प्रयोगात्-असंगत्वात्-बन्धच्छेदात् की) गति गमनका स्वाभाविक
गुण होने (केहेतु) से (ऊपर को जाता है)
=जैसे तिछा ओर अर्थात् इधर उधर दायें वायें ओर—
=चलनेके स्वभाव वाली वायुकेसंयोग से रहित दीपक की
=चोटी वा (दियाकी) लौ स्वभावसे ऊपर को जाती हे उसी भांति
=मुक्त जीव भी अनेक गति के विकार के कारण—
=कर्मके आवरणके पृथक् होनेपर (=निरावरणे सति)
=ऊर्ध्व गमनके स्वभावपनसे ऊपरको ही चढता हे ॥
=पूछता है कि मुक्त जीवका ऊपर गमनका स्वभाव है तो
=लोकके अन्तसे ऊपर भी को किस कारणसे नहीं
=चढता है। ऐसे (प्रश्न होने पर) (अग्रिम सूत्रमें) यहा कहा जाता है कि

हे पीछे जलके सबघत मृत्तिका का सम्बन्ध छूटि जाय तब
पे लेप जनित भारा होय आलव कहिये तूवा सो जल विप पडा अधोगमन करै हे पीछे जलके सबघत मृत्तिका का सम्बन्ध छूटि जाय तब हलका होय जल के ऊपर ही आवै हे तेसै कर्म के भारकरि दबा परवशभया आत्मा तिस कर्म के सम्बन्ध ते संसार विप नियमकरि पडै हे प्राप्त होय हे जब कर्म का मिलाप दूर होय तब ऊर्ध्वही गमन होय है,ऐसा जानना ॥ दूनी जीके अनुवादका भी आशय यकसा हे ॥"नियमतैं पड़ा हे"अ०प्र०

(ख) कोई अवसर्पिणी और कोई उत्सर्पिणी कालमें सिद्ध हुए हैं।

(ग) कोई सिद्धगति वा मनुष्यगतिसे सिद्ध हुए हैं।

(घ) वास्तव में तो अलिङ्ग से ही सिद्ध होते हैं अथवा द्रव्य पुलिंङ्ग से ही सिद्ध होते हैं किंतु भाव लिङ्ग की अपेक्षासे तीनों भावलिङ्गके धारक क्षपक श्रेणी चढ़कर सिद्ध होते हैं।

(ङ) कोई तीर्थंकर सिद्ध होते हैं और कोई विना ही तीर्थंकर हुए सिद्ध होते हैं।

(च) चारित्रके अभावसे मोक्ष है, वा एक यथाख्यात चारित्रसे मोक्ष है। चार-सामायिक, छेदोपस्थापना, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात चारित्रोंसे मोक्ष है। पांच सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय, यथाख्यात चारित्रोंसे मोक्ष है।

(छ) कोई विनाउपदेशके ज्ञानप्राप्तकरके मोक्ष हुएहैं, कोई उपदेशसे वा कोई प्रत्येकबुद्ध सिद्धहैं, कोईबोधितबुद्धसिद्धहैं॥

(ज) कोई एक केवलज्ञानसे सिद्ध हुए हैं. कोई मतिज्ञान श्रुत ज्ञान से केवलज्ञान उपजाय मोक्ष पाते हैं, कोई मति- श्रुत-अवधि ज्ञानोंसे केवल ज्ञान उपजाय मोक्ष पाते हैं, वा मति-श्रुत-मनःपर्य्यय ज्ञानोंसे केवल-ज्ञान प्राप्तकरके सिद्ध हुएहैं। कोई मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यय ज्ञानोंसे केवलज्ञान उपजाय सिद्ध हुयेहैं॥

(झ) कोई उत्कृष्ट अवगाहना पांचसै पचीस धनुष कुछ न्यूनसे सिद्ध हुए हैं, कोई मध्यम अवगाहना, अपने अपने शरीर से कुछ न्यून से सिध्द हुये हैं कोई जघन्य कुछ न्यून साढ़े तीन हाथ अवगाहनासे सिद्धहुए हैं।

(ञ) एक सिद्धसे दूसरे सिद्ध होनेका अन्तर जघन्य दो समयका है उत्कृष्ट छह मासका है।

(ट) संख्याः- जघन्य एक समय में एक ही सिद्ध होगा उत्कृष्ट एकसौ आठ(१०८) सिद्ध हो सकते हैं।

(ठ) अल्प बहुत्वतः- समुद्रादि जल भागसे थोड़े सिद्ध होते हैं और विदेह आदि स्थूल भागों से अधिक सिद्ध होते हैं (इनका विशेष वरणन आगे संस्कृतवृत्तिके अनुवाद में किया है वहां देखना चाहिये)

वृत्त्यनुवाद —क्षेत्र-आदिभिः[३]=क्षेत्र, काल, गति, लिङ्ग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बुद्ध बोधित, ज्ञान, अवगाहना, अंतर, गणना, न्यून-अधिकत्व द्वादशभिः[३] अनुयोगै[३] सिद्धाः[३] =बारह व्याख्या करि (=अनुयोगैः) सिद्ध जीव साध्याः[१३] विकल्पाः[१३] इति अर्थः[१] =भेद रूप(=विकल्पाः) साधने योग्य है वा साधनीय है। ऐसा तात्पर्य्य है

आहअमीपरिनिर्वृता गतिजात्यादिभेदकारणाभावादतीतभेदव्यवहारा एवेत्यस्ति कथञ्चिद्भेदोऽपि

कुतः— क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥

आह।अमी॥'परिनिर्वृता ॥'गति जाति–	=पूछता है कि ये निर्वाण प्राप्त जीव (=परिनिर्वृता) गति–जाति
आदि–भेद–कारण–अभावात्॥'	=आदिक भेद करनेवाले कारणोंके न होनेसे
अतीत–भेद–व्यवहारा ॥' एव॥	=भेदरूप व्यवहार ही (इन मुक्त जीवोंमें) नहीं (=अतीत) है कि
इति॥अस्ति। कथञ्चित्॥भेद ॥' अपि॥कुत ॥ ?	=किसी न किसी प्रकारसे (=कथञ्चित्) भेद भी है और क्योंकर ?
	(ऐसा प्रश्न होनेपर यहा अग्रिमसूत्रमें कहा जाता है कि

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वत साध्या ॥९॥

पदच्छेद —क्षेत्र काल–गति–लिङ्ग–तीर्थ–चारित्र प्रत्येक बुद्ध–बोधित ज्ञान अवगाहन–अन्तर सख्या–अल्प बहुत्वत सिद्धा॥साध्या भवति ॥

सूत्रार्थ —क्षेत्र काल गति लिङ्ग–तीर्थ चारित्र =क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र,

प्रत्येकबुद्धबोधित ज्ञान अवगाहन–अन्तर–सख्या =प्रत्येकबोधित सिद्ध,बुद्धबोधितसिद्ध, ज्ञान, अवगाहन, अंतर, सख्या, ;

अल्पबहुत्वत ॥'''सिद्धा ॥'साध्या ॥'भवति।॥९॥= यूनत्वअधिकत्व[इन बारह विवरणों वा व्याख्यानों]मे सिद्धजीव साधने योग्य हैं अर्थात्

(क)अनेक भरत क्षेत्रसे सिद्ध हुये है अनेक विदेह क्षेत्रसे सिद्ध हुये हैं।

(१) इस सूत्रका दोनों आम्नायोंमें एक पाठ है। हमारे यहा कहीं कही पर 'लिंग सख्या'' पाठहै कहीं कही पर ' लिङ्ग सङ्ख्या ' पाठ है कहीं २पर अन्तरपाठ है कहीं२ अन्तर पाठ है वही पाठ ठीक है देखो अध्याय१ पृष्ठ ५४०,५४१ इन बारह अनुयोगोंमेसे दोनों सप्रदायके किसीकिसीमे अर्थ भेद है सो जिस अनुयोगकी वृत्तिका अनुवाद किया है उसके नीचे की टिप्पणीमें [अन्तर] दिया गया है परन्तुसबसे प्रथम इस बातका प्रगट कर देना आवश्यक जान पडता है कि दिगम्बर आम्नायमे भाव स्त्री–भाव पुरुष–भाव नपुसक–तीनों ही क्षपक श्रेणी चढकर मोक्ष पाते हैं परन्तु द्रव्य पुरुष ही मोक्ष पाता है द्रव्य स्त्री तथा द्रव्य नपुसक मोक्षको प्राप्त नहीं कर सकता है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायके अनुकूल तीनों भाव स्त्री भावपुरुष–भावनपुसक तथा तीनों ही द्रव्य स्त्री, द्रव्यपुरुष तथा द्रव्यनपुसक भी सिद्ध होते है (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३३, २३७)

सिध्यन्ति ? प्रत्युत्पन्नग्राहिनयापेक्षया सिद्धिक्षेत्रे स्वप्रदेशे आकाशप्रदेशे वा सिद्धिर्भवति । भूतग्राहिनयापेक्षया जन्मप्रति पञ्चदश—

सिध्यन्ति ? । प्रत्युत्पन्नग्राहिनय-अपेक्षया(१)सिद्धिक्षेत्रे स्वप्रदेशे आकाशप्रदेशे वा (२)सिद्धिः भवति । भूत-ग्राहिनय-अपेक्षया जन्म प्रति पञ्चदश— =सिद्ध होते हैं।। वर्तमानकालके उत्पन्न (भाव वा विषय)के ग्रहण करनेवाली नयकी =अपेक्षासे सिद्धि क्षेत्रमें अपने आत्माके प्रदेशमें अथवा(=वा) =आकाशके प्रदेशमें मोक्ष होतो है । अतीतकालके (=भूतपदार्थको)ग्राहकनयकी =विवक्षासे जन्मकी अपेक्षासे पन्द्रह (जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र संबन्धो एक,जम्बूद्वीपके ऐरावतक्षेत्र संबंधीएक, जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्र संबंधीएक, धातुकीखंडकेदो भरत क्षेत्र संबंधी दो, धातुकी खंडके दो ऐरावतक्षेत्र संबंधी दो, धातुकी खंडके दो विदेह क्षेत्र संबंधी दो,

(घ) भूत-पूर्व-नय-अपेक्षया, =अतीतकाल (=भूतपूर्व) के (विषय) नयकी अपेक्षासे (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ४७३-४७४)
(ङ) भूत-अनुग्रह-तन्त्र-नय-अपेक्षया, =अतीतकालके सिद्धान्त (=तन्त्र) को ग्राहक नयकी अपेक्षा करि (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ३६५)
(च) भूत-अनुग्रह-तन्त्र-नय-विवक्षायां, =पूर्व वा भूतकालके सिद्धान्त वा विषयको ग्रहण करनेहारी नयके विवक्षामें
(छ) भूत-भाव-प्रज्ञापन-नय-अर्पणया, =पूर्व वा अतीतकालके भावोंको जतलाने वाली नयके समर्पणकरि (राजवार्तिक पृष्ठ ३६६)
(ज) भूत-विषय-नय-अपेक्षया, =व्यतीतकालके विषयको (ग्रहण करने वाली) नयकी अपेक्षाकरि तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ३६६)
(झ) अतीत-गोचर-नय-अपेक्षया, =भूतकालके (पदार्थ वा विषय वा भाव) को समझाने वाली (=गोचर) नयकी अपेक्षा करि
(ञ) भूत-विषय-नय-आदेशेन, =अतीत समयके विषयकी (=द्योतक) नयके वशकरि वा उपदेश करि, आज्ञाकरि (राज० ३६६)
(ट) पूर्व-भाव-प्रज्ञापन-नय-अपेक्षया, =पहले वा बीते हुए कालके भावोंको जतानेवाली नय की विवक्षाकरि
(ठ) भूत-विषय-नय-आश्रयणे, =अतीत समयके विषयकी (द्योतक) नयके आश्रय वा आसरेमें (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ३६७)
(ड) पूर्वभावप्रज्ञापनस्य (नय), =अतीत कालके विषयको जतानेहारी नयके
(ढ) भूत-प्रज्ञापनात्, =अतीतकालके [विषयको] जताने से (श्लोकवार्तिक पृष्ठ ५५१)
(ण) पूर्व-भाव-प्रज्ञापनीय-नय, =पूर्वकालके भाव जतानेके योग्य नय [सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३१]
(त) भूतनय-अपेक्षया, =भूतनय अपेक्षाकरि [पं० जयचन्दजी कृतावचनिकामुद्रित पृष्ठ ७७८]

ये सबवाक्य (क)से [त]तकसमानार्थक हैं—(२)—दोनों आम्नायोंमें क्षेत्रकी अपेक्षासे सामान्यतासे एकसा अर्थ है (सभाष्य० पृष्ठ २३१)

(१)सिध्यन्ति-सिध्यति-सिध्[षिधु-अनिट्]दिवादि चौथे गणका परस्मैपद धातु है इसमे क्रियाके प्रत्ययके पहले य विकरण जोडा जाता है तबसिध्+य ऐसा शब्द बना पश्चात् "ति" एक वचन और "अन्ति" बहु वचन अन्यपुरुष [=प्रथम पुरुष] परस्मैपद वर्तमान कालकी द्योतक क्रियाके चिन्ह जोडे जाते है तब 'सिध्यन्ति' 'सिध्यति' बने क्योंकि "अन्ति" प्रत्यय "अ" से आरम्भित है सिध्यका अकार गिर जाता है सिध्यन्ति शब्द बना ॥ सिध्यति=सिद्ध होता है, निष्पन्न होता है, पूर्ण होता है मुक्त होता है, और सिध्यन्ति सिद्ध होते है-मुक्त होते है अथवा निष्पन्न होते है ॥ ३२

प्रत्युत्पन्नभूतानुग्रहतन्त्रनयद्वयविवक्षावशात् । तद्यथा–क्षेत्रेण तावत्कस्मिन्क्षेत्रे

(१)प्रत्युत्पन्न अनुग्रह-तन्त्रनयविवक्षावशात्¹ =प्रत्युत्पन्नअनुग्रहतन्त्रनयकी अपेक्षावशसे अर्थात् वर्तमान कालके उत्पन्नविषय वा सिद्धान्त (=तन्त्र) ग्राही नयकी अपेक्षा से और

(२)भूत अनुग्रह तन्त्रनयद्वय विवक्षावशात्² , =भूत-अनुग्रहतन्त्रनयद्वयविवक्षावशात् अर्थात् अतीत कालके (=भूत) सिद्धान्त वा विषय (=तन्त्र) को ग्रहण करने वाली(इन) दो नयके अपेक्षावशसे(भेद साधने योग्य है)

तथा•—क्षेत्रेण ¹तावत् ²कस्मिन्³ क्षेत्रे⁴ =जैसे(प्रश्न)प्रथम(=तावत्)क्षेत्र करि वा क्षेत्रकी अपेक्षासे किस क्षेत्रमें वा किस स्थानमें

---

(१)(क)प्रत्युत्पन्न-अनुग्रह-तन्त्रनय-विवक्षा-वशात्,=वर्तमान समयके उत्पन्न विषय वा सिद्धान्त(=तन्त्र)ग्राही नयकी अपेक्षासे(वृत्ति पृष्ठ ४७३)
=वर्तमान कालके उत्पन्न (पदार्थ) को ग्रहण करनेवाली नयकी विवक्षासे(वृत्ति पृष्ठ ४७४)

(ख) प्रत्युत्पन्नग्राहिनय-अपेक्षया =वर्तमानकालके उत्पन्न (विषय) की नयकी अपेक्षासे(वृत्ति पृष्ठ ४७४ राजवार्तिक पृष्ठ३६५)

(ग) प्रत्युत्पन्ननय-अपेक्षया प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षातें (सदासुखजी लघुटीका पृष्ठ ६५) ।
=वर्तमान कालके उत्पन्न विषय वा सिद्धान्तग्राहीनयकी अपेक्षासे(राजवार्तिक पृष्ठ ३६५)

(घ) प्रत्युत्पन्न अनुग्रह तन्त्रनयअपेक्षया =वर्तमान कालके उत्पन्न विषय को ग्रहण करनेवाली नयके समर्पणसे

(ङ) प्रत्युत्पन्नविषयग्राही नयार्पणेन =वर्तमान समयके उत्पन्न (भाव) के नयके आसरेकरि (राजवार्तिक पृष्ठ३६६)

(च) प्रत्युत्पन्ननय आश्रयेण =विद्यमान कालके विषयकी विवक्षामें वा अपेक्षाविषै

(छ) वर्तमान विषय-विवक्षायाम् =वर्तमान कालके उत्पन्न (भाव) के नयके वशसे ।

(ज) प्रत्युत्पन्ननयवशात् =वर्तमान समयके उत्पन्न(भाव)को ग्रहणकरनेवाली नयके निरूपणसे या निर्णयसे(राज०पृष्ठ३६६)

(झ) प्रत्युत्पन्नग्राहिनयनिरूपणया =वर्तमान कालके उत्पन्नभावको जतलानेकरि

(ञ) प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापनेन =वर्तमान समयके उत्पन्नभावको जतलानेवाली नयके

(ट) प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापननयस्य =वर्तमान कालके उत्पन्न(भाव)को ग्रहण करनेहारी(=ग्राहक)नय(जयचंद्रजी वचनिका पृष्ठ७८६)

(ठ) प्रत्युत्पन्नग्राहकनय =प्रत्युत्पन्न नयकरि(जय० वचनिका पृष्ठ ७८०) प्रत्युत्पन्न नयसे(सदासुखजी लघु टीका पृष्ठ ६५)

(ड)प्रत्युत्पन्ननयकरि =वर्तमान समयमें उत्पन्नभाव जताने वाल्यनय (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३१, २३२)

(ढ) { प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापनीयनय / प्रत्युत्पन्नभावज्ञापनीयनय } ये सब वाक्य एकार्थ वाची है ।"इहां प्रत्युत्पन्न ग्राहीनय वर्तमान मात्र पदार्थ कूं ग्रहण करै है सो ऐसानय ऋजुसूत्रहै तथा शब्द समभिरूढ एवंभूत भी याही नयका परिवार है बहुरि भूतनय नैगम है। (पंडितजयचन्द्रजी कृतावचनिका मुद्रित पृष्ठ ७८६)

(२ (क) भूतानुग्रहतन्त्रनयविवक्षावशात् =भूत या अतीत कालके सिद्धान्त(=तन्त्र)वा विषयको ग्रहण करनेवालीनयके अपेक्षाके वशसे

(ख) भूत-ग्राहि-नय-अपेक्षया =व्यतीत काल के(=विषय को) ग्राहक वा गृहणकरने हारी नयकी विवक्षासे

(ग) भूत-प्रज्ञापन-नय अपेक्षया =बीते हुए समयके जतानवाली वा बोधकराने वाली नयकी विवक्षासे (सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ४७४)

द्वितीयायां ७।१। मध्यमा १।१। तृतीयायाम् ७।१।	=दुसरे (नरक) में मध्यम कापोत लेश्या होती है तीसरे (नरक) में
अष्टसु ७।३। इन्द्रकेषु ७।३। उत्कृष्टा १।१।	=आठ इन्द्रक बिल (=पटलके मध्यके बिलन) में उत्कृष्ट कापोत होती है
सा १।१। एव * चरम-इन्द्रके ७।१। उत्कृष्टा १।१।	=वह (कापोत लेश्या) ही अंतके इन्द्रक बिलमें उत्कृष्ट है
च तत्र एव केषांचित् * नारकाणां ६।३।	=और वहां (तीसरे नरकमें) ही कितने नारकियोंके
जघन्या १।१। नीललेश्या १।१। भवति T	=जघन्य नील लेश्या होती है ॥
चतुर्थ्याम् ७।१। तस्याम् ७।१। मध्यमा १।१। नीला १।१।	=तिस (=तस्याम्) चौथी (पृथिवी अथवा नरक) में मध्यम नील लेश्या है
पंचम्याम् ७।१। पृथिव्याम् ७।१। उपरिमेषु ७।३। चतुर्षु ७।३।	=पांचवें नरकविषैं ऊपरमें चार
इन्द्रकेषु ७।३। उत्कृष्टा १।१। सा १।१। एव। चरम-इन्द्रकेषु ७।३।	=इन्द्रक बिलनमें उत्कृष्ट (वही नील) है अंतके इन्द्रक बिलमें
उत्कृष्टा १।१। नीललेश्या १।१। जघन्या १।१। कृष्णलेश्या १।१।	=उत्कृष्ट नील लेश्या है तथा जघन्य कृष्णलेश्या
च भवति षष्ठ्यां ७।१। मध्यमा १।१। कृष्णलेश्या १।१।	=होती है। छठवीं (पृथिवी) विषैं मध्यम कृष्णलेश्या है
सप्तम्यां ७।१। पृथिव्याम् ७।१। उत्कृष्टा १।१। कृष्णलेश्या १।१।	=सातवी पृथिवीमें उत्कर्ष कृष्ण लेश्या है
चतुर्दश १।३। भागाः १।३। ततः षष्ठपृथिवीतः*	=(लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) तहा छठवां नरकसे
मारणान्तिकं २।१। कुर्वाणान् २।३।	=मारणान्तिक समुद्घात करते हुये
कृष्णलेश्यासासादनान् २।३। प्रति *	=कृष्णलेश्यावाले दुसरे गुणस्थानवर्तीनके (स्पर्शनके)
पंच १।३। कथिताः १।३।	=पांच (राजू) कहे गये हैं ॥ "मारणान्तिकोऽस्ति" वाक्यमें मारणांतिक शब्द पुलिंगमें है अतः हमने भी पुलिंग माना है

सप्तमपृथिवीपरित्यागः कुत इति चेत् "तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंतीति " वचनेन तत्रत्यसासादनानां मरणाभावात् । मरणाभावेऽपि मारणान्तिकाभावप्रतीतिः कथमिति चेत्—कृष्णलेश्यापेक्षया पञ्चचतुर्दशभागा इति वचनान्यथानुपपत्तेः । पञ्चमपृथिवीचरमेंद्रकात् नीललेश्यो-

कर्मभूमिषु संहरण प्रति मानुषक्षेत्रे सिद्धिः ॥ कालेन कस्मिन्काले सिद्धिः ? प्रत्युत्पन्ननयापेक्षया एकसमये सिध्यन् सिद्धो भवति ॥ भूतप्रज्ञापननयापेक्षया जन्मतोऽविशेषेणोत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्जात सिध्यति ॥ विशेषेणावसर्पिण्या सुषमदुःषमाया अन्त्ये भागे दुःषमसुषमायां च जात सिध्यति ॥ न तु दुःषमाया जातो दुःषमाया सिध्यति ॥ अन्यदा नैव सिध्यति ॥

कर्मभूमिषु॥ संहरणम् प्रति॥ मानुषक्षेत्रे॥ सिद्धि॥, (ख) कालेन॥ कस्मिन्॥ काल॥ सिद्धि॥ ?

=कर्मभूमियोंमें (देवादिक द्वारा) हरणकी अपेक्षा मानुषक्षेत्रमें अर्थात् जम्बूद्वीप, धातकीखंड तथा पुष्करार्द्ध ऐसे ढाई द्वीपमें पुष्करार्धद्वीपके दो भरतक्षेत्र सम्बन्धी दो, पुष्करार्धद्वीपके दो, ऐरावतक्षेत्रके दो, और पुष्करार्धद्वीपके दो विदेह क्षेत्र सम्बन्धी दो) =मोक्ष होती है । कालकरि किस समयमें मोक्ष (=सिद्धि) होती है ॥

प्रत्युत्पन्न नय अपेक्षया॥ =वर्तमानकालके उत्पन्न (भाव) की (ग्रहणकरनेहारी) नय अपेक्षासे

एकसमये॥(१) सिध्यन् सिद्ध॥ भवति । ॥ =एक समयमें सिद्ध होकर वा निष्पत्ति होकर सिद्ध होता है

भूतप्रज्ञापननय अपेक्षया॥ जन्मतः अविशेषेण॥ =अतीतकालके जतानेवाली नयकी विवक्षामें ("दोय प्रकार है कि एक जन्मतैं है एक संहारते है तिनमें") जन्म से (ऐसे हैं कि) सामान्यतासे वा संक्षेपतासे

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो॥ जात॥ सिध्यति ॥ =उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी (कालों) में उत्पन्न हुआ (जीव) सिद्ध होता है

विशेषेण॥ अवसर्पिण्याम्॥ सुषमदुःषमाया॥ अन्त्ये॥ =विशेषकरि अवसर्पिणीमें सुषम दुःषमा (तीसरा काल) के अन्तके (=अन्त्य)

भागे॥ दुःषमसुषमायाम्॥ च॥ जात॥ =भागमें और (=च) दुःषमसुषमा (चौथे काल) में उत्पन्न भया (जीव)

सिध्यति । =सिद्ध होता है भावार्थ अवसर्पिणीके तीसरे कालके अन्त भागमें जन्मा जीव और दुःषमसुषमा चौथे काल में सिद्ध होता है और चौथे सबकालका जन्मा जीव चौथे कालमें सिद्धहोताहै और दुःषमा पांचवेंकालमें भी सिद्धहोता है वा मोक्षहोता है

न॥ तु॥ दुःषमायाम्॥ जात॥ दुःषमायाम्॥ =परन्तु दुःषमा(पांचवा काल) में उत्पन्न भया(जीव)दुःषमा(पांचवें काल)में नहीं(=न)

सिध्यति । अन्यदा॥ न॥ एव॥ सिध्यति । =सिद्ध होता है । और समय में(=अन्यदा)न(=न) ही (=एव) सिद्ध होता है ।

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें कालकी अपेक्षासे सिद्धगतिका होना लगभग एकसा है । हमारे यहां 'प्रत्युत्पन्ननयापेक्षया एक समये सिध्यन् सिद्धो भवति' ॥

संहरणतःसर्वस्मिन्काले उत्सर्पिण्यामवसर्पिण्यां च सिध्यति ॥ गत्या कस्यां गतौ सिद्धिः? सिद्धगतौ मनुष्यगतौ वा ॥

भावार्थ दुःषमा, पांचवा कालमें उपजा जीव छठवां दुःषम दुःषमा कालमें सिद्ध नहीं होता है और दुःषम दुःषमा, छठवां कालमें उत्पन्नभया जीव छठवां कालमें भी सिद्ध नहींहोता है।

संहरणतः* =सहरण(अपेक्षा)से भावार्थ विदेह क्षेत्रके उपजे जीवको देवादि लेगयाहो तिसकी अपेक्षासे

सर्वस्मिन्काले उतसर्पिण्याम् अवसर्पिण्यां च =सबकाल उत्सर्पिणीमें और (=च) अवसर्पिणीमें

सिध्यति ।(ग)गत्या कस्याम् गतौ सिद्धिः! =सिद्ध होता है ॥ (प्रश्न)गति(की अपेक्षा)करि किस गतिमें निष्पत्ति वा मोक्ष है।

सिद्धगतौ मनुष्यगतौ वा* । =(उत्तर)सिद्धगतिमें अथवा (=वा) मनुष्य गतिमें (सिद्ध पदकी सिद्धि होती है) अर्थात् प्रत्युत्पन्न ग्राही नयकी अपेक्षासे सिद्धगतिमें सिद्ध होता है और भूतग्राहीनयके आश्रयसे मनुष्य गतिसे सिद्ध गति होती है ॥

=।वर्तमानकालके उत्पन्न (भाव) को(ग्रहण करनेवाली; नयकी अपेक्षासे एक समयमे सिद्धहोकर वा निष्पत्ति होकर सिद्ध होता है" ऐसा वाक्य है श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रपृष्ठ २३२ मे निम्न वाक्य है "प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापनीयस्य अकाले सिध्यति (=प्रत्युत्पन्नभाव-ज्ञापनीय नयके विषयसे अकालमें सिद्धहोता है") उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पत्र ७६२ मे इसका विवरण इस प्रकार किया है कि "कस्मिन्काले सिध्यतीति तत्र प्रत्युत्पन्न भाव प्रज्ञापनीयस्य अकाले, अविद्यमान काले सिध्यति" अर्थात् किसी समयमें सिद्ध हो सक्ता है ॥
(ग) दोनों सम्प्रदायोंमेंगति भेदसे जो सिद्ध होते हैं उनकी अपेक्षा यदि श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र का अर्थ हमारे यहां के तत्त्वार्थराजवार्तिक के अर्थ से मिलान कियाजाय तो कुछभी अर्थ भेद नहीं है जैसा कि दोनों सम्प्रदायकेउक्त ग्रन्थोके निम्न उद्धृत वाक्योंसे प्रगटहै

गत्याम् कस्याम् गतो सिद्धिः? सिद्धगतौ मनुष्यगतौवा =गति(केविषय)में किसगतिमें सिद्धि वा मोक्ष होतीहै-सिद्धिगतिमें वा मनुष्यगति में(होतीहै)

प्रत्युत्पन्न-नय-आश्रयेण सिद्धगतो सिद्ध्यति =वर्तमानकालके विषयको ग्रहणकरनेवाली नयके आश्रयकरि सिद्धगतिमें सिद्धि होती है।

भूतविषय-नय-अपेक्षया द्विधा कल्पनाअनन्तरगतौ- =भूतकालके पदार्थ की द्योतकनयकी अपेक्षाकरि दो प्रकार कल्पना है अनन्तर गतिमें

एकान्तरगतो च,तत्र-अनन्तरगतोमनुष्यगतौसिध्यति =और(=च)एकान्तर गति मे [सिद्ध] हैं-तहां अनन्तर गति विषै मनुष्यगति में सिद्ध होता है।

एकान्तरगतो चतसृषु गतिषु जातःसिद्ध्यति T =एकान्तरगति विषै चारगतियोंमें उत्पन्न भया(जीव)सिद्धहोताहै (तत्त्वार्थराज० पृष्ठ ३६६से)

प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापनीयस्यसिद्धगत्यामसिध्यतिशेषा तुनयाः =प्रत्युत्पन्नभाव ज्ञापनीयनयकी अपेक्षा सिद्धगतिमें सिद्धहोता है।और (=तु) शेषनय

द्विविधाःअनन्तरपश्चात्-कृतगतिकः च एकान्तर पश्चात्- =दो प्रकारके हैं, अनन्तर पश्चात् जिसनेगति कियाहै वह और एक अतर करकेजिसने

कृतगतिक चअनन्तरपश्चात्कृतगतिकस्यमनुष्यगत्यामसिध्यति =गति किया है वह, अनन्तर पश्चात् गति करने वाला मनुष्यगतिमें सिद्ध होता है।

एकान्तरपश्चात् कृतगतिस्य अविशेषेणसर्वगतिभ्यःसिध्यति =और एकान्तर पश्चात् कृतगतिकी गतिमें तो अविशेषरूपसे सबगतिसे सिद्ध है।

लिङ्गेन केन सिद्धि ?अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्य सिद्धिर्भावतो न द्रव्यतः। द्रव्यत पुंल्लिङ्गेनैव । अथवा निर्ग्रन्थलिंगेन सग्रन्थलिंगेन वा सिद्धिर्भूतपूर्वनयापेक्षया॥तीर्थेन केन तीर्थेन सिद्धि ?

(च)(१)लिंगन॑ केन॑ सिद्धि ॑ ? । अवेदत्वेन॑ =(प्रश्न)किस लिंगकरि सिद्धि वा मोक्ष हाती हे (उत्तर) अवेदपनासे
त्रिभ्यो॑वावेदेभ्य ॑सिद्धि॑भावत.*न*द्रव्यत.* । =वा तीन भाववेदसे(=भावत*वेदेभ्य) नकि द्रव्य(वेद)से सिद्धि निष्पत्तिवा मोक्षहाती है
द्रव्यत * पुल्लिङ्गेन ॑ एव * । =द्रव्य (=लिंग) की अपेक्षासे पुरुप लिंग करि ही (मोक्ष वा सिद्धि होती है)

भावार्थ मत्युत्पन्ननय की विवक्षास अवेदपनासे अथवा वेद रहित सिद्ध गति है और भूत-विपयनयकी अपेक्षा से तीनों ही भाव वेद करि(क्षपकश्रेणीचढ)मोक्ष होतीहै। तीनों द्रव्यवेदसे सिद्धगति नहीं हाती। द्रव्यवेदसे तौ केवल पुरुपवेद द्वारा मोक्ष होती है ।

अथवा*निर्ग्रन्थ लिङ्गेन॑ सिद्धि॑ =दूसरे प्रकार(=अथवा)मत्युत्पन्ननय के आश्रयकरि निर्ग्रंथलिंगकरि सिद्धिवामोक्ष होती है
सग्रन्थ लिङ्गेन॑वा*भूत पूर्व नय-अपेक्षया ॑॥ =वा अतीत काल के विपय की ज्ञापकनयकी विवक्षास सग्रन्थ लिंगकरि (सिद्धि वा माक्ष होती है) अर्थात् भूत पूर्वनय की अपेक्षास जिसके पहिले सग्रन्थपना था तिस ही के मोक्ष होती हे । सवका साराश यह है कि लिङ्ग- स्त्रीवेद–पुरपवेद–नपुंसकवेद तीन मकार हैं और लिङ्ग सग्रथ निर्ग्रंथ दो मकार भी हे । मथम मकारमें वर्तमान विपय अपेक्षासे वेद रहित सिद्धि है। अतीत गोचरनयसे तीनो भाव वेदी क्षपक श्रेणीचढि मोक्ष पाते है,द्रव्यवेदकरि केवल पुरपवेदसे ही सिद्ध होता है । दूसरे मकारमें मत्युत्पन्ननयसे निर्ग्रन्थ लिंगसे मोक्ष हे । भूतकालके पदार्थको द्योतक नयसे पूर्वे जिसके सग्रन्थ पनाथा तिस ही के मोक्ष वा सिद्धि हाती हे ।

(छ)(१) तीर्थेन॑ केन॑ तीर्थेन॑ सिद्धि॑ =तीर्थ(की अपेक्षा)करि किस तीर्थकरि सिद्धि वा माक्ष हे ?

(सभाष्य० पृष्ठ २३२ स उद्धृत) भावार्थ अनन्तर पश्चात्कृतगतिक =उसी(मनुष्य) गतसे मोक्ष हाना एकान्तर पश्चात्कृतगतिक =मनुष्यगति से पहिले की गति से मोक्ष होना । (१) श्वेताम्बर समाजमें द्रव्यस्त्री द्रव्यनपुंसक भी सिद्ध होते हें हमारे यहा केवल द्रव्यपुरुप की मोक्ष है । (२) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें द्रव्यस्त्रीकी मोक्ष हे और तीर्थङ्कर भी होती हे इसलिये इस प्रकारका अर्थ हमारे यहाके सिद्धान्तसे नहीं मिलता है । सन्ति तीर्थंकरसिद्धा तीर्थंकरतीर्थे नोतीर्थंकरसिद्धा =तीर्थंकरसिद्ध तीर्थंकर तीर्थमें हें नोतीर्थकर सिद्ध वा ईषत् तीर्थंकर सिद्धअर्थात् जिनके पाच कल्याणक न हों यून कल्याणक हुए हों।
तीर्थंकरतीर्थे अतीर्थकरसिद्धा तीर्थकरतीर्थे । =तीर्थंकर तीर्थमेंहे अतीर्थकर सिद्धतीर्थंकर तीर्थ में हाते हें अर्थात् जिनका कोईकल्याणक न हो
एवम्*तीर्थंकरीतीर्थे सिद्धा अपि* ॥ =इसी प्रकार तीर्थंकरी तीर्थमें भी (=अपि) सिद्ध होते हें (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र २३२)

द्वेधा तीर्थङ्करेतरविकल्पात् । इतरे द्विविधाः सति तीर्थंकरे सिद्धाः असति चेति ॥ चारित्रेण केन सिध्यति ? अव्यपदेशेनैकचतुः पञ्चविकल्पचारित्रेण वा सिद्धिः ॥

द्वेधा तीर्थङ्कर-इतर-विकल्पात् ।
=तीर्थंकर और दूसरे (अर्थात् विनातीर्थंकरहुये) भेदसे दोप्रकार (=द्वेधा) (सिद्धि) है भावार्थ कोई तीर्थंकर होकर सिद्ध होता है, कोई तीर्थंकर विना सामान्य केवली होकर सिद्ध होता है ।

इतरे द्विविधा. ॥
=इतर केवली वा सामान्य केवली दोप्रकार है अर्थात् तीर्थंङ्कर केवलीसे भिन्न केवली दोप्रकार हैं

सति तर्थिकरे सिद्धाः असति च इति ॥
=तीर्थङ्कर (=विद्यमान) होनेपर (=सति) सिद्ध होते हैं और (विद्यमान) न होने पर (सिद्ध होते हैं ।)

(३) चारित्रेण केन सिध्यति ?
=(प्रश्न) किस (=केन) चारित्रकरि सिद्ध होता है ?

अव्यपदेशेन ।
=(उत्तर) (चारित्र की) अविद्यमानता करि, अभाव करि (=अव्यपदेशेन) (सिद्धि, वा मोक्ष होती है

एक- चतुः-
=एक (यथाख्यात चारित्रका भेद से) चार (सामायिक, छेदोपस्थापना, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात)

पञ्च—वा
=अथवा (=वा) पांच (सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात)

—विकल्प—चारित्रेण सिद्धिः ॥
=चारित्रके भेदकरि सिद्धि-निष्पत्ति वा मोक्ष होती है-भावार्थ- चारित्र विषैं प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षासे चारित्रके अभावमें मोक्ष होती है, तहां सिद्धगतिमें चारित्र का नाश ही नहीं ॥ अतीतकालके भाव द्योतक नयके आश्रयसे अनन्तर और अन्तर दो भेद हैं । अनन्तर की अपेक्षासे यथाख्यात चारित्र कर ही मोक्ष पावें हैं । और अन्तरकी अपेक्षासे सामायिक, छेदोपस्थापना सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, इन चार चारित्रकरि ही मोक्ष पाते हैं तथा केइक सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म सांपराय, यथाख्यात, इन पांचों चारित्र द्वारा सिद्ध होते हैं ।

(३) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें द्रव्यस्त्री चारित्र वाली को मोक्ष कही है । हमारे यहां केवल द्रव्य पुरुष चारित्र सहितको मोक्ष है ॥
अत्र अपि नयौ द्वौ प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापनीयःच पूर्वभावप्रज्ञापनीय च, = यहां भी दोनय प्रत्युत्पन्न भाव प्रज्ञापनीय तथा (=च) पूर्वभाव प्रज्ञापनीय आती है
प्रत्युत्पन्न भाव प्रज्ञापनीयस्य नो चारित्री ना अचारित्री = प्रत्युत्पन्न भाव प्रज्ञापनीय की [अपेक्षासे] नो चारित्र [पुरुष] नो चारित्री (स्त्री) वा नो अचारित्री
सिध्यति । पूर्वभाव प्रज्ञापनीय. द्विविध = सिद्ध होताहै [सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३३, २३७] पूर्वभाव प्रज्ञापनीय दो प्रकार है
अनन्तर पश्चात्कृतिकः च परम्परपश्चात्कृतिक. च । = बहुरि [=च] अनन्तरपश्चात्कृतिक तथा (=च) परम्पर पश्चात्कृतिक
अनन्तर पश्चात्कृतिकस्य यथाख्यातसंयतःसिध्यति = अनन्तरपश्चात्कृतिकके [अनुरोधसे] यथाख्यातसंयमवाला सिद्ध होता है
परम्पर पश्चात्कृतिकस्य व्यञ्जिते अव्यञ्जिते च । अव्यञ्जिते = परम्पर पश्चात्कृतिक व्यञ्जित और (=च) अव्यञ्जित [दो भेद] में है । अव्यञ्जितमें है
त्रिचारित्रपश्चात्कृत. चतुश्चारित्रपश्चात्कृत पञ्चचारित्र पश्चात्कृत. = त्रिचारित्रपश्चात्कृत, चतुश्चारित्रपश्चात्कृत पञ्चचारित्रपश्चात्कृत सिद्ध है

स्वशक्तिपरोपदेशनिमित्तज्ञानभेदात् प्रत्येकबुद्धबोधितविकल्पाः ॥ ज्ञानेन केन ? एकेन द्वित्रिचतुर्भिश्च ज्ञानविशेषैः सिद्धिः ॥

(छ) (प्रत्येकबुद्धबोधित —) =(प्रत्येकबुद्धसिद्ध बोधितबुद्धसिद्ध)
स्वशक्ति निमित्त-ज्ञान-भेदात् प्रत्येक-बुद्ध- =अपनी सामर्थ्य पूर्वक वा अपनी शक्ति जनित ज्ञानके भेदसे (सिद्धोंके) प्रत्येक बुद्ध-
विकल्पाः परोपदेश निमित्त-ज्ञान भेदात् =विकल्प अथवा भेद हैं और दूसरोंके उपदेशसे उत्पन्न हुये ज्ञानके भेदसे
बोधित-बुद्ध विकल्पाः =बोधितबुद्ध(सिद्धोंके) भेद हैं अर्थात् जो अपनी शक्तिसे(बिना किसी उपदेशके निमित्तसे) ज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हुये हैं वे प्रत्येक बुद्ध सिद्ध हैं और जो दूसरोंके उपदेश द्वारा ज्ञान प्राप्तकर सिद्ध हुये हैं वे "बोधितबुद्धसिद्ध "हैं ॥

(ज) ज्ञानेन केन एकेन द्वि त्रि चतुर्भिश्च =(प्रश्न) किस ज्ञानकरि (सिद्ध) होता है (उत्तर)एक(ज्ञान)करि और (=च) दो, तीन, चार
ज्ञान-विशेषैः सिद्धिः ॥ =ज्ञानके भेदकरि सिद्धि वा मोक्ष होती है भावार्थ प्रत्युत्पन्न नय अपेक्षासे एक केवल-ज्ञानकरि सिद्ध होता है,और भूत ग्राही नयकी अपेक्षामे मतिज्ञान श्रुतज्ञान करिकेवलज्ञान उपजाय सिद्ध होता है । केई मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान,अवधिज्ञानकरि केवल ज्ञानप्राप्तकर मोक्ष पावैहैं अथवा मतिज्ञान,श्रुतज्ञान,मनःपर्यय ज्ञानकरि केवल ज्ञान उपजाय मोक्षपातेहै । केई मतिज्ञान श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञानकरि केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष पाते हैं

व्यञ्जिते, सामायिक सूक्ष्मसांपरायिक यथाख्यातपश्चात्कृतसिद्धा ,=व्यञ्जित(भेद)में सामायिक सूक्ष्मसांपरायिक यथाख्यात पश्चात्कृतसिद्ध हैं
छेदोपस्थाप्य सूक्ष्मसांपराय-यथाख्यातपश्चात्कृतसिद्धा , =छेदोपस्थाप्य,सूक्ष्मसांपराय यथाख्यातपश्चात्कृत सिद्ध होतेहैं
(व्यञ्जित भेदमें येसब त्रिचारित्र पश्चात्कृतसिद्धहुये)
सामायिक छेदोपस्थाप्य सूक्ष्मसाम्पराय यथाख्यात पश्चात्कृतसिद्धा ,=सामायिक, छेदोपस्थाप्य सूक्ष्मसंपराय,यथाख्यातपश्चात्कृतसिद्ध होते हैं
छेदोपस्थाप्य परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसाम्पराय यथाख्यातपश्चात्कृतसिद्धा , =छेदोपस्थाप्य,परिहारविशुद्धि,सूक्ष्मसांपराययथाख्यातपश्चात्कृतसिद्धहैं
(व्यञ्जित भेद में ये सब चतुश्चारित्र पश्चात्कृत सिद्ध हुये)
सामायिक छेदोपस्थाप्य परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसम्पराय- =सामायिक,छेदोपस्थाप्य,परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसांपराय
यथाख्यातपश्चात्कृतसिद्धा =यथाख्यातपश्चात्कृत सिद्ध होते हैं(ये व्यञ्जितभेदमेंपञ्चचारित्रपश्चात्कृतसिद्ध हुये)
(छ)सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें स्वयं बुद्ध सिद्ध और बुद्ध बोधित सिद्ध येदो भेद है ॥ यह हमारे यहा के प्रत्येक बुद्ध सिद्धसे तथा बोधितबुद्ध सिद्धसे मेल खाते हैं (ज) ज्ञानके विषय में दोनों आम्नायोंका एकसा तात्पर्य है इस पृष्ठकी समस्त टिप्पणोके लिये (देखो सभाष्य०पृष्ठ २२३) ॥

आत्मप्रदेशव्यापित्वमवगाहनम् । तत् द्विविधम् ! उत्कृष्टजघन्यभेदात् । तत्रोत्कृष्टं पञ्चधनुः-शतानि पञ्चविंशत्युत्तराणि । जघन्यमर्धचतुर्थारत्नयो देशोनाः । मध्ये विकल्पाः। एकस्मिन्न-वगाहे सिध्यति ॥ किमन्तरं ? सिध्यतां सिद्धानामनन्तरं जघन्येन द्वौ समयौ उत्कर्षेणाष्टौ । अन्तरं जघन्येनैकः समयः उत्कर्षेण षण्मासाः ॥ संख्या-जघन्येन एकसमये एकः सिध्यति । उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः ॥ क्षेत्रादिभेदभिन्नानां परस्परतः

(क) आत्मन्-प्रदेश-व्यापित्वम्[१।१] अवगाहनम्[१।१], =आत्माके प्रदेशोंका फैलाव (=व्यापित्व) है सो अवगाहन है ॥

तत्[१।१] द्विविधम्[१।१] उत्कृष्ट-जघन्य-भेदात्[५।१] तत्र* =वह (अवगाहन) दो प्रकार उत्कृष्ट और जघन्य वा निकृष्टभेदसे है । तहां

उत्कृष्टं[१।१] पञ्चधनुःशतानि[१।३] पंचविंशतिउत्तराणि[१।३]; =उत्कृष्ट पांचसौ धनुष पच्चीस अगले हैं (सभाष्य०में पृथक्त्व धनुष अधिक पांचसौ है ।

जघन्यं[१।१] अर्धचतुर्थ-अरत्नयः[१।३] देश-ऊनाः[१।३]; =न्यून से न्यून साढ़े तीन हाथ कुछ घाटि वा हीन है,

मध्ये[७।१] विकल्पाः[१।३], एकस्मिन्[७।१] अवगाहे[७।१] सिध्यति I ॥ =मध्यमें [बहुत] भेद हैं। इनमेंसे एक [=एकस्मिन्] अवगाहनामें सिद्ध होता है ॥

[ञ][1] किम्* अन्तरं[१।१] सिध्यताम्[६।३] सिद्धानां[६।३] अनन्तरं[१।१] =[प्रश्न] अन्तर क्या है? [उत्तर] सिद्धभये [जीव] को सिद्ध होने वाले [जीव] निका अनन्तर-

जघन्येन[३।१] [2] द्वौ[१।२] समयौ[१।२] उत्कर्षेण[३।१] अष्टौ[१।३]; =निकृष्टकरि दो क्षण वा समय है, उत्कृष्ट करि [=अनन्तर] आठ [समय] है-अर्थात् अन्तर रहित सिद्ध होते हैं वे जघन्य तो दो समय पर्यंत सिद्ध होते जांय और उत्कृष्ट आठ समय निरंतर वा लगातार सिद्ध होते जांय ।

अन्तरम्[१।१] जघन्येन[३।१] एकः[१।१] समयः[१।१] =अन्तर जघन्यकरि एक समय है अर्थात् निकृष्टकरि एक समय तक कोई सिद्ध नहीं होगा

उत्कर्षेण[३।१] षण्मासाः[१।३] ॥ =उत्कृष्टकरि [अन्तर] छहमास है अर्थात् उत्कृष्ट करि छह मास तक कोई सिद्ध न होगा ॥

[२] संख्या[१।१] जघन्येन[३।१] एक समये[७।१] एकः[१।१] सिध्यति I । =गणना न्यूनता करि वा निकृष्ट करि एक समयमें एक सिद्ध होता है,

[३] उत्कर्षेण[३।१] अष्टोत्तरशत-संख्याः[१।३] =उत्कृष्टकरि [एक समय वा क्षण में] आठ अगले सौ संख्या में [सिद्ध] होते हैं ।

[ट][4] क्षेत्र-आदि-भेद-भिन्नानाम्[६।३] परस्परतः* =क्षेत्रआदिक (एकादश) भेद भिन्नों की [अर्थात् भिन्न भिन्न भेदों की] आपस में

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा अर्थ है । (२) श्लोक वार्तिक पृष्ठ ५११में "द्वौ क्षणौ"-"दो समय" के अर्थ में ग्रहण किया है इसलिये हमने भी अनुवाद समय के अर्थमें "क्षण" किया है । (३) "उत्कृष्टेनाष्टोत्तरं शतमिति" भाष्यानुसारिणी० पत्र ७६५, परन्तु सभाष्य० पत्र २३५ में इसवाक्यकेस्थानमें "उत्कृष्टेनाष्टशतम्" अशुद्ध छपगया है॥ अतः यह विषय दोनों आम्नायोंमें एकसा है (४) इस १२ वां अनुयोग का अर्थ दोनों आम्नायोंमें एक है (देखो सभाष्य० पृष्ठ २३६)

संख्याविशेषोऽल्पबहुत्वम् । तद्यथा-प्रत्युत्पन्ननयापेक्षया सिद्धिक्षेत्रे सिध्यतां नास्त्यल्पबहुत्वं । भूतपूर्वनयापेक्षयोच्यते । क्षेत्रसिद्धा द्विविधा जन्मतः संहरणतश्च । तत्राल्पे संहरणसिद्धाः । जन्मसिद्धाः संख्येयगुणाः ॥ क्षेत्राणां विभागः कर्मभूमिरकर्मभूमिः समुद्रो द्वीप ऊर्ध्वमधस्तिर्यगस्ति । तत्र स्तोका ऊर्ध्वलोकसिद्धाः । अधोलोकसिद्धाः संख्येयगुणाः ॥ तिर्यग्लोकसिद्धाः संख्येयगुणाः । सर्वतःस्तोकाः समुद्रसिद्धाः द्वीपसिद्धाः संख्येयगुणाः ॥एवंतावदविशेषेण सर्वतः स्तोकाः लवणोदसिद्धाः । कालोदसिद्धाः संख्येयगुणाः । जम्बूद्वीपसिद्धाः संख्येयगुणाः। धातकीखण्डसिद्धाः

संख्या विशेषः अल्पबहुत्वम् । =गणनाका विशेष है सो अल्पबहुत्व अथवा न्यूनअधिकत्व है।
तद्यथा प्रत्युत्पन्ननय अपेक्षया सिद्धिक्षेत्रे सिध्यतां =जैसे प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षासे सिद्धक्षेत्रमें सिद्धभये (जीव) के
न अस्ति अल्प-बहुत्वं, भूतपूर्वनय अपेक्षया उच्यते। =न्यून अधिकत्व नहीं है । भूतपूर्वनयकी अपेक्षासे कहाजाता हैं कि
क्षेत्र सिद्धा द्विविधा =क्षेत्र सिद्ध(अर्थात् जिसक्षेत्रसे जीवोंने मोक्षपदकी प्राप्तिकी है वे(मुक्तजीव)दोप्रकार,
जन्मतः संहरणतः च, =जन्मसे और(=च) संहरण से हैं अर्थात् देवादिक द्वारा अन्यक्षेत्रमें लेजाये गये प्राणियोंने सिद्धगति उस अन्यक्षेत्रसे प्राप्तकी वे सिद्ध,
तत्र अल्पे संहरण-सिद्धाः । जन्मसिद्धाः =तहां अन्यक्षेत्रसे हरेगये जीव सिद्ध हुए थोड़े हैं।(संहरण सिद्धोंसे)जन्म सिद्ध
संख्येयगुणाः क्षेत्राणाम् विभागः कर्मभूमिः =संख्यातगुणे हैं। क्षेत्रोंके भाग कर्मभूमि
अकर्मभूमिः समुद्रः द्वीपः ऊर्ध्वम् अधः तिर्यग् =अकर्मभूमि,समुद्र द्वीप,ऊंचा(लोक)नीचा (लोक)दांये बायें(भाग)वा इधर उधर (भाग)
अस्ति तत्र स्तोका ऊर्ध्वलोक सिद्धाः, अधोलोकसिद्धाः =है,तहां ऊर्ध्वलोकसे हुये सिद्धथोड़े हैं। अधोलोक सिद्ध (इनसे)
संख्येयगुणाः तिर्यग्लोकसिद्धाः संख्येयगुणाः =संख्यातगुणे हैं, तिर्यग् लोकसिद्ध (इनअधोलोक सिद्धों से) संख्यातगुणे हैं ।
सर्वतः स्तोकाः समुद्रसिद्धाः द्वीपसिद्धाः संख्येयगुणाः, =सबसे अल्प समुद्रसे हुएसिद्धहैं।द्वीपसेभये सिद्ध(इनसमुद्रसिद्धोंसे)संख्यातगुणे हैं
एवं तावत् अविशेषेण सर्वतः स्तोकाः लवणोद- =ऐसे इतना(=तावत्)सामान्यकरि(कहा)है(विशेषकरि,सबसे थोड़े लवण समुद्रसेभये
सिद्धाः कालोदसिद्धाः संख्येयगुणाः जम्बूद्वीप- =सिद्धहैं,कालोदधिसे हुएसिद्ध(लवण समुद्रसे हुये सिद्धोंसे)संख्यातगुणे हैं।जम्बूद्वीपसेहुये
सिद्धाः संख्येयगुणाः धातकीखण्ड-सिद्धाः =सिद्ध (इन कालोदधिसे हुए सिद्धों से) संख्यात गुणे हैं । धातकीखण्डसे भयेसिद्ध ३९

संख्येयगुणाः। पुष्करद्वीपार्धसिद्धाः संख्येयगुणाः। एवं कालादिविभागेऽपि यथागममल्पबहुत्वं वेदितव्यम् ॥ १० ॥

संख्येयगुणाः; पुष्करद्वीपार्ध-सिद्धाः =(इन जम्बूद्वीपसे हुये सिद्धोंसे) संख्यातगुणे हैं। पुष्करद्वीपके आधेमें भये सिद्ध
संख्येयगुणाः। एवम्*काल- =(इन धातकी खन्ड द्वीपमें भये सिद्धोंसे) संख्यातगुणे हैं- इसी प्रकार काल
(१) आदि- =गति,लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्ध, बोधित, ज्ञान, अवगाहन, अन्तर,संख्या के
विभागे अपि*यथाआगमम्*अल्पबहुत्वम्॥=विभागमें भी शास्त्रके अनुकूल न्यूनत्व तथा अधिकत्व (=न्यूनअधिकत्व=अल्पबहुत्व)
वेदितव्यम् ॥ =जानना चाहिये-(इस वाक्यका विशेषताके साथ तात्पर्य निम्न लिखित प्रकार है ॥

(आ) कालकी अपेक्षा से अल्पबहुत्व-उत्सर्पिणीकालमें सिद्धभये तिनसे अवसर्पिणीमें भये विशेष करि अधिक हैं,उत्सर्पिणी अवसर्पिणी विना सिद्ध भये ते अवसर्पिणीमें सिद्धहुए (तिनसे)संख्यात गुणे हैं—क्योंकि विदेह क्षेत्रमें उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोऊ काल नहीं प्रवर्तते हैं॥ प्रत्युत्पन्न नय अपेक्षासे एक समय सिद्ध भये इस अपेक्षामें अल्पबहुत्व नहीं है (दोनों आम्नायोंमें एकतात्पर्य है)
अवसर्पिणी=नीचेकी ओर आनेवाली कालकीगति। उत्सर्पिणी=ऊपरकी ओर चढनेवाली कालकीगति ॥

(इ) गतिकी अपेक्षा अल्पबहुत्व-गतिविषैं प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षासे तौ अल्प बहुत्व नहीं है। बहुरि भूतनय अपेक्षासे अनंतर अपेक्षा तौ मनुष्य गतिसे सिद्ध गति है तहाँ अल्प बहुत्व नहीं है। बहुरि एकगति की अंतर अपेक्षा तिर्यंच गतिके आये मनुष्य होकर सिद्धि भये ते सबसे स्तोक हैं। तिनसे संख्यात गुणे मनुष्य गतिसे मनुष्य होकर सिद्ध हुए हैं ॥ तिनसे संख्यातगुणे नरक गतिसे मनुष्य होकर सिद्ध हुये हैं ॥ तिनसे संख्यातगुणे देवगतिसे मनुष्य होकर सिद्ध हुए हैं ॥इस अपेक्षामें दोनों सम्पदायोंमें एक तात्पर्य्य है ॥

(ई) लिङ्गकी अपेक्षा अल्प बहुत्व-वेदकरि प्रत्युत्पन्न नयकी अपेक्षाकरि वेदरहित सिद्ध होते हैं तहां अल्पबहुत्व नहीं हैं, भूतनयकी विवक्षासे सबसे थोड़े नपुंसक वेदसे क्षपक श्रेणी चढ़कर सिद्ध हुए हैं,तिनसे संख्यात गुणे स्त्री वेदसे क्षपक श्रेणी चढ़ सिद्ध भये हैं, तिनसे संख्यातगुणे पुरुष वेदसे क्षपक श्रेणी चढ़कर सिद्ध हुये हैं ॥ (लिङ्ग की अपेक्षा दोनों आम्नायों में भेद नहीं है) ॥

(१) इन बारह अनुयोगोंकरि सिद्धों में भेद है परन्तु सिद्धो के स्वरूप में भेद नहीं है। साध्य=साधने योग्य,अनुगम्य=जानने योग्य, चिन्त्य=विचारने योग्य, व्याख्येय=व्याख्या करने योग्य, ये एकार्थ वाची शब्द हैं। (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३१)

(उ)तीर्थकी अपेक्षा अल्पबहुत्व —बहुरि तीर्थंकर आ तीर्थंकर होकर सिद्ध हुये हैं वे थोडे हैं तिनतें सख्यात गुणे समान्य केवली सिद्ध हैं।
(यह श्वेताम्बर सम्प्रदायसे कुछ कुछ मिलता है देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३७)

(ऊ) चारित्रकी अपेक्षा अल्पबहुत्व —प्रत्युत्पन्न नयकी अपेक्षासे चारित्र बिना ही सिद्ध हुये हैं । तहां अल्पबहुत्व नहीं है और भूतनय की विवक्षासे अनंतर चारित्र यथाख्यातसे सिद्ध होते हैं। यहां भी अल्पबहुत्व नहीं है. बहुरि अंतर सहित चारित्र की अपेक्षासे पांच सामायिक छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि,सूक्ष्मसांपराय,यथाख्यात चारित्रोंसे हुए सिद्ध अल्प हैं। इनसे सख्यात गुणे चार सामायिक, छेदोपस्थापना, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यातचारित्रोंसे भये सिद्ध होते हैं
(श्वेताम्बर सम्प्रदायसे यह प्रकरण कुछ मिलता है विशेषरूपसे अंतर जाननेके लिये देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रपृष्ठ २३७,२३८),

(ऋ) प्रत्येक बुद्ध बोधितकी अपेक्षासे अल्पबहुत्व —प्रत्येक बुद्ध सिद्ध अल्प हैं,इनसे सख्यात गुणे बोधितबुद्ध सिद्ध हैं ॥
(इसका विषय दोनों सम्प्रदायों में लगभग सामान्यरूपसे मिलता है देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३८)

(ऋ) ज्ञानकी अपेक्षासे अल्पबहुत्व —प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षासे केवल ज्ञानसे सिद्ध हुये हैं, तिनमें अल्पबहुत्व नहीं है और मतिज्ञान श्रुतज्ञानसे केवल ज्ञान प्राप्तकर जो सिद्ध हुये हैं वे थोडे हैं, तिनसे सख्यातगुणे चार (मति,श्रुत, अवधि, मन पर्यय) ज्ञानसे केवल ज्ञान उपजाय सिद्ध हुये हैं बहुरि तिन चार ज्ञान पूर्वक सिद्धोंसे सख्यात गुणे तीन (मति,श्रुत, अवधि अथवा मति, श्रुत मन पर्यय)ज्ञानसे केवल ज्ञान उपजाय सिद्ध हुये हैं (श्वेताम्बर आम्नायसे इस प्रकरणका तात्पर्य मिलता है देखो सभाष्यतत्वार्था० पृष्ठ २३९)

(लृ)अवगाहनाकी अपेक्षाकरि अल्पबहुत्व —जघन्य अवगाहनासे हुये सिद्ध सबसे थोडे हैं ॥ इनसे सख्यातगुणे सिद्ध उत्कृष्ट अवगाहनासे हुये हैं।इनसे सख्यातगुणा मध्य अवगाहनासे हुये सिद्ध हैं॥ इसका आशय दोनों श्वेता०तथादिग०आम्नायोंमें एक है ॥

(ए) अंतरकी अपेक्षा अल्पबहुत्व —सबसे थोडे छह मास अंतरवाले सिद्ध हैं-इनसे सख्यात गुणे एक समय अंतर सिद्ध हैं ॥
[इसका अनुवादकने सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ २३९से लिया है और इसकी आम्नायके अनुकूल जान पड़ता है ॥]

(ऐ) सख्याकी अपेक्षा अल्प बहुत्व —सख्याविषै एक समयमें उत्कृष्टरूपसे एकसौ आठ सिद्ध होते हैं । ये तो सर्वसे स्तोक हैं । तिनसे अनंतगुणा निचीतक्रमसे एकसौ आठ सिद्धसे लेकर पचास पर्यन्तकी सख्यासे एकसमयमें भये सिद्ध है। तिनसे असख्यातगुणा उनचासतें लगाय पचीसकी सख्याताई एक समयमें हुये सिद्ध हैं । बहुरि तिनसे सख्यातगुण चौबीससेलगाय एकताईकी सख्यातरु एक समयमें हुये सिद्ध हैं [श्वेताम्बर सम्प्रदायसे यह विषय भी स्थूल रूपसे मिलता है(देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २३९ और २४०)॥
सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ २४० पर यह अधिक है कि "और विपरीतरूपसे हानि, जैसे सर्व स्तोक अनन्तगुण हानि सिद्ध होते हैं असख्येय गुण हानि सिद्ध अनन्तगुण होते है, तथा सख्येयगुण हानि सिद्ध सख्येय गुण होते है"॥

स्वर्गापवर्गसुखमाप्तुमनोभिरार्यैं । जैनेन्द्रशासनवरामृतसारभूता ॥ सर्वार्थसिद्धिरिति सद्भिरुपात्तनामा । तत्त्वार्थवृत्तिरनिशं मनसा प्रधार्या ॥ १ ॥

तत्त्वार्थवृत्तिमुदितां विदितार्थतत्त्वाः । शृण्वन्ति ये परिपठन्ति च धर्मभक्त्या ॥ हस्ते कृतं परमसिद्धिसुखामृतं तैः । मर्त्यामरेश्वरसुखेषु किमस्ति वाच्यम् ॥ २ ॥

आगे सर्वार्थसिद्धिनामा संस्कृतवृत्तिके कर्ताकृत तीनों श्लोकोंका शब्दशः हिंदीअनुवाद लिखते हैं

(१) स्वर्ग-अपवर्ग-सुखम्२'''आप्तु-मनोभिः३'आर्यैः३	=स्वर्गमोक्ष(=अपवर्ग)के सुखको प्राप्त करनेको मनवाले महंत पुरुषोंकरि[=आर्यैः],
जैनेन्द्र-शासन-वर-अमृत-सार-भूता१''	=जिनेन्द्र भगवान्के उपदेश(मत-आज्ञा वा मार्ग)रूपी श्रेष्ठ अमृतका है सारभूतजिसमें,
सर्वार्थ-सिद्धिः१''इति*सद्भिः३'उपात्तनामा१''	=और सत्पुरुषों द्वारा पाया है सर्वार्थसिद्धि नाम जिसने ऐसी (=इति)
तत्त्वार्थवृत्तिः१''अनिशम*मनसा३'''प्रधार्या१'' ॥१॥	=तत्त्वार्थवृत्ति निरंतर (=अनिशम्) मनकरि धारने योग्य है अर्थात् स्वर्ग मोक्षके सुखके लिये उद्यत महंत पुरुषोंद्वारा। तत्त्वार्थवृत्ति जिसमें जिनेन्द्रके उपदेशरूपी अमृतका सार गर्भित है और जिसने सत्पुरुषोंसे सर्वार्थसिद्धि नाम पाया है निरन्तर मनकरि [मनन करने योग्य, विचारने योग्य और]धारणे योग्य है ॥
तत्त्वार्थ-वृत्तिम्२''उदितां२''ये१'धर्म-भक्त्या३''शृण्वन्ति T	=कथित(=उदिता)तत्त्वार्थवृत्तिको जो धर्ममें भक्ति कर सुनते हैं
परिपठन्ति T च*विदित-अर्थ-तत्त्वाः१	=और(=च)पढ़ते हैं॥ (और) जाना है तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप जिनने
हस्ते७कृतम्१'''परमसिद्धि-सुख-अमृतम्१'''तैः३	=तिन करि(=तैः) जब मोक्षका(=परमसिद्धि)सुखरूपी अमृत हाथोंमें किया गया तो
मर्त्य-अमर-ईश्वर-सुखेषु७'''	=चक्रवर्ति(=मर्त्येश्वर)और इन्द्र(=अमरेश्वर)के सुखोंमें अर्थात् सुखोंकी प्राप्तिकरनेमें
किम्१'''अस्ति T वाच्यम्१''' ॥ २ ॥	=क्या कहा जाता है(कुछ भी नहीं) अर्थात् चक्रवर्ती तथा इन्द्रके सुख उनके लिये सुगम है सारांशः—तत्त्वार्थ ज्ञाता जो भक्तिकर इस सर्वार्थसिद्धि तत्त्वार्थवृत्तिको सुनते हैं, मनन करते हैं, और पढ़ते हैं जब मोक्षको भी पा जाते हैं तो चक्रवर्ती और इन्द्रके सुखोंका(उनके लिये) पाना एक तुच्छ सरल वा सुलभ वस्तु है ॥

र इस्या गत् मरणान्तिक कुर्वद्भिः सासादनैश्चत्वारश्चतुर्दशभागा स्पृष्टा । ४।१४ । तृतीयपृथ्वीचरमेंद्रकात्कपोतलेश्योत्कृष्टस्थाना मारणान्तिक कुर्वाणैः द्वौ चतुर्दशभागौ स्पृष्टौ ,२।१४ । देशोनत्व भोगभूमिषु प्रणिधायस्पर्शनात् ॥ -

सप्तमपृथिवीपरित्याग ॥ कुत *	=सातवां नरकका छोड़ना (सासादनोंकरि) क्योंकर हो
इति चेत् *	=ऐसे सदेह पर (कहते हैं)
च * तमतमगुण (=च तमस्तमोगुण)	=और (=च) महातम प्रभा पृथिवी (=सातवें नरक) के (सम्यक्त्व) गुण
पडिवण्णा (=प्रतिपन्ना ॥)	=वाले "सासादन-मिश्र-असयत नारकी" (दूसरे-तीसरे-चौथे गुणस्थानोंके),
न * मरति T (=न म्रियन्ते T)	=नहीं मरते हैं साराश कि सातवें नरकमें सम्यक्त्वसहित जीव मरता नहीं है
इति वचनेन ॥ तत्रत्य*	=ऐसे (गोम्मट्टसार कर्मकाण्डके ५६० वे गाथाके वत) वाक्यकरि वहावाले
सासादनानाम् ॥ मरण-अभावात् ॥	=दूसरे गुणस्थानवर्तीनका मृत्युके न होनेसे (सातवा नरकका परित्याग किया है)
मरण-अभावे ॥ अपि मारणान्तिक-अभावप्रतीति	=मौतके न होने पर भी मारणांतिक समुद्घातके न होनेका विश्वास वा समाधान
कथम * इति* चेत् *	=कैसे ? इसप्रकार सदेह होनेपर (कहा जाता है)
चतुर्दश ॥ भागा ॥ कृष्णलेश्या—अपेक्षया ॥	= क्योंकि (लोक त्रसनालके) चौदह भाग हैं सो कृष्णलेश्याकी विवक्षाकरि
पञ्च ॥ इति-	=पांच (राजू मारणान्तिक अपेक्षासे छूये जाते) हैं इस
वचन-व्यवस्था-	=वाक्यकी दूसरे प्रकार (अर्थात् मरणके अभाव होनेपर मारणातिकका अभाव न
अनुपपत्ते ॥	=होता तो) यथार्थता न बनती
पञ्चमपृथिवीचरम + इन्द्रकात् ॥	=पांचवां नरकके अन्तके इन्द्रकविलेसे
नीललेश्या + उत्कृष्टस्थानात् ॥ सासादनै ॥	=नीललेश्याके उत्कर्षस्थानसे दूसरे गुणस्थानवर्तीनसे
मारणांतिक ॥ कुर्वद्भि ॥	=मारणांतिक समुद्घातकरनेकरि
चत्वार ॥ चतुर्दश ॥ भागा ॥ स्पृष्टा ॥	= (लोक त्रसनालके) चौदहराजू हैं सो चार राजू स्पर्श जाते हैं

प्रतापीतपतिदिनकरोदेवनाथोऽभिमानी।कामःकायेनहीनोवलयतिपवनोविश्वकर्मादरिद्री।भस्माङ्गो नीलकंठःसभवतिगहनोव्याकुलोगोपनाथः।शक्राद्यादुःखपूर्णाःसुखनिधिरहिताःपातुवः श्रीजिनेन्द्रः

श्री— =अनंत चतुष्टयके धारक (=श्री) अर्थात् अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख अनन्तवीर्य सहित

जिनेन्द्रः पातु वः =जिनेश भगवान् तुम्हारी रक्षाकरैं क्योंकि निम्नदोषोंसे ग्रसित अन्य देव रक्षाकरनेको असर्थ हैं

चन्द्रः क्षीणः प्रतापी तपति दिनकरः =चन्द्रमा क्षीण अर्थात् प्रभाव रहित वा कलंकित है,सूर्य प्रतापी है पर प्राणियोंको संतप्त करता है

देवनाथः अभिमानी कामः कायेन हीनः =इन्द्र देवोंका स्वामी अहंकारी है, कामदेव शरीर रहित है इसीसे इसको अनंग कहते हैं,

वलयति पवनः विश्वकर्मा दरिद्री =पवन थिर नहीं है,इधर उधर चंचलरूपसे फिरती है,विश्वकर्मा चिंताओंसे व्याकुल है,कङ्गाल है (क्योंकि जानोजात दरिद्र बहुत तृष्णा है जिनकें, जिनकें तृष्णा नाहि बहुत संपति है तिनकें)

भस्मांगः नीलकण्ठः =महादेव अंगमें भस्म लगाये रहते हैं (खोपड़ी हाथमें लिये भिक्षा मंगानेके दुःखसे ग्रासत है)

सः भवति गहनः व्याकुलः गोपनाथः =कृष्णजी दुःखसे व्याकुल रहते है(क्योंकि प्रसिद्ध है कि वे गोपियों और कुब्जासे रमण करते हैं

शक्र-आद्याः दुःखपूर्णाः सुखनिधिर-हिताः =इन्द्र आदिकोलेकर(समस्त देवी देवता) दुःखोंसे पूर्ण है, सुख रूपी भंडार से वर्जित हैं (क्योंकि तप आदिकसे स्वर्ग गये तेहू डर मानत,इन्द्र आदि सब देव अवधि अपनीको जानत। ब्रह्मा और सुरेश सबनकों जन्म मरन डर.विष्णू दश अवतार गर्भमें संकट पायो इत्यादि ॥

[पातुवः श्रीजिनेन्द्रः] =उपर्युक्त कारणोंमेंसे अन्य देवी देवता रक्षा करनेमें असमर्थ हैं।। श्री जिनेन्द्र तुम्हारी रक्षा करें

"तेज सूरसम कहूं, तपत दुखदायक मानो । कांति चन्द सम कहं,कलंकित मूरतिमानी॥ वारिधिसम गुण कहं खारमें कौन भलप्पन । पारस सम जस कहं आप सम करै न परतन।।इन आदि पदारथ लोकमें,तुम समान को दीजिये,तुम महाराज अनुपम दशा मोहि अनोपम कीजिये"

(१)भाषाकारकीप्रार्थना—डम्बरसिंहनृपराज तासु दीवान रायचंदतिनके पुत्र जुचार एकक्षत्रपतिगुणकन्द,पतिकें तोताराम,नवलचंदभयाश्रुतगामी। तोताराम दु पुत्र ज्येष्ठ श्रीपाल सुनामी। तिनके जु पुत्र अठ एकमें अनुवादक भी जाईये । पुत्र महेश सु तासकी मात विटोला बाई है॥

(२) सरनऊ पन्नालाल जनक बाईजी चोनी । तिस संपादन ग्रन्थ सहायता घनी जु कीनी ॥ वरष चतुर्दशपूर्ण इमन अनुवाद जु कीना । संपादनमें चार सहित मुद्रणमें ऌीना ॥ कलकत्ता अधवरष रहि देहली तीन बखानिये । त्याग विकालत कार्यको,संपादन उर आनिये॥

(३) पद्मावति पुरवाल गोत्र अनुवादक जानो । तिसही में सर्वार्थसिद्धिके कर्ता मानो॥पूज्यपाद था नाम उनन जैनेन्द्र(व्याकरण) बनाया । तीन शतक अठ जन्म विक्रमो संवत गाया॥ उनईस सतक पंचास पर पेंतिस और बढ़ाईये । यह संवत पूरक ग्रन्थको पढ़कर अघजु नशाईये ॥

(४) दोहा— 'यामें जो कुछ न्यूनता होवे मूल विरुद्ध । सो सुधारि पढ़ियें सुजन,करि निज भाव विशुद्ध'॥ ४ ॥शुभ भवतु सर्वेषाम् ॥ इति ।

येनेदमप्रतिहतं सकलार्थतत्त्व- । मुद्योतितं विमलकेवललोचनेन भक्त्या तमद्भुतगुणं प्रणमामि वीर- । मारान्नरामरगणार्चितपादपीठम् ॥ ३ ॥

॥इति तत्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां दशमोऽध्यायः॥

अमरनरफणीन्द्रैर्वन्द्यपादाब्जयुग्मम्। कृतशिवपदसौख्यं भव्यसार्थाधिपानाम्॥ जिनमवृजिनमीशं वीतरागस्पृहाणाम्। वृषभमुरुवृषाङ्कं नौमि कर्त्तारमाद्यम् ॥ ४ ॥ चन्द्र. क्षीण.,

---

येन³ इदम्¹ अप्रतिहतम्² सकल-अर्थ-तत्त्वम्³ =जिसकरि यह निर्बाध (=अप्रतिहत) समस्त पदार्थका यथार्थस्वरूप (=तत्त्व)
उद्योतितम्³ विमल-केवल-लोचनेन³ ॥ =निर्मल केवल ज्ञानरूपी नेत्रद्वारा प्रगट किया गया है,
भक्त्या³ तम्³ अद्भुतगुणम्³ प्रणमामि T वीरम्³ =भक्तिकर तिस आश्चर्य(कारी) गुणसंयुक्त महावीर स्वामीको नमता हू, (कैसेहैं)
आरात् नर-अमर-गण-अर्चित-पादपीठम्³ ॥३॥ =नर और देवोंके निकट वर्ती (=आरात्) समूहकरि पूजित है सिंहासन जिसका

साराश -निर्बाध सर्व पदार्थोके यथार्थ स्वरूपको केवल ज्ञान द्वारा प्रकाश करने वाले आश्चर्यकारी गुण संयुक्त और नर देवोंके निकट वर्ती समूहकरि पूजित ऐसे महावीर स्वामीको नमस्कार करता हू, भावार्थ सर्वदेवनिके देव हैं।" जय०व०

इति तत्वार्थ वृत्तौ सर्वार्थ सिद्धि- =इस प्रकार तत्वार्थके विवरणमें सर्वार्थसिद्धि
सञ्ज्ञिकायां दशम अध्याय =नामा(ग्रन्थमे) दशमा अध्याय समाप्त हुआ ॥

अमर नर-फणीन्द्रैः वन्द्य-पाद-अब्ज-युग्मम्³, =अमरेन्द्र,नरेन्द्र, नागेन्द्र वा भुवनेन्द्रकरि पूजनीक वा सेवनीय है चरणकमल जिनके,
वीतराग-स्पृहाणाम्³ भव्य-सार्थ अधिपानाम्³ कृतशिवपद- =वीतरागकी इच्छा करनेवाले श्रेष्ठभव्य समूह(=भव्य-सार्थ)को दिया है मोक्ष पदका
सौख्यम्³ । जिनम्³ "अवृजिनम्³" =सुख जिस (भगवान्)ने, (कैसे है जिन भगवान्)कर्म कलंकसे रहित[=अवृजिनम्]
ईशम्³, वृषभम्³ उरु-वृष-अङ्कम्³ =ईश्वर है, बैलकरि चिन्हित(=अङ्कम्) है ऊरु वा घुटनेके ऊपरका भाग जिनका,
नौमि । कर्त्तार-आद्यम्³ =आदिमें तीर्थके करने वाले (वृषभजिनेश) को, मैं नमस्कार करता हू ॥

एटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १

ङ)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३०	२०, २१	धातु मॅर,अक्त	धातुमें, अक्तर
४३२	२,४	निमित्तत्वं, निमित्तत्वम्	निमित्तत्व न, निमित्तत्वम् न
४३५	८,१५	निरक गति, कराड़	नरकगति, करोड़
४३८	१३,१८	ज्ञानम् , शेषाणाम्	ज्ञानं, शेषाणा
४३९	१३,१८	तिर्यञ्च, त, सैना,	तिर्यञ्चः, न, सैनी,
४४२	३,१६	असंख्येय,असख्येयभणात्	आसख्येय, असख्येयभागात्
४५०	९,११	अनृजकाय, हातसंता	अनृजुकाय, होतसंता,
४५१	३,७	लब्ध वृत्ति, उक्तभेद	लब्धवृत्ति, उक्त १। भेद
४५३	१२,१८	शरीर वा, शक्तिअपेक्षा	शरीरका, मनका सम्बन्ध
४५४	८,१५	आदिभिः, ३१। आदिभिः ३१।	आदिभिः ३१।, आदिभिः ३१।
४५५	४,७	मानषात्तर, विशुद्ध,	मानषोत्तर, विशुद्धय,
४५८	५,	विशुद्ध्या १॥, तावत	विशुद्धया १।, तावत्
४५९	३,८	स्वामिना, विपयत्वात	स्वामिनां, विषयत्वात्
४५९	१०	प्रसग, अर्थात	प्रसंग, अर्थात्
४५९	१३,	अप्रतिपातेन ३१, स्वामिनाम	अप्रतिपातेन ३१। स्वामिनाम्
४६१	९,२२	भावान् , विशुद्ध हैः॥	भावान् . विशुद्ध है,
४६२	२,४	विशेषो, विपयत्वात,	विषयो, विषयत्वात ,
४६४	४,६,२२	अन्यतम् , केपुचित,लचा	अन्यतम, केषुचित् चला,
४६५	१३,	स्वामी विशेष, संयम ग्रहणं	स्वामी–विशेष, सयम–ग्रहणं,
४६५	१४,	"प्रकृष्ट चारित्र गुणोपेतेषु'	"प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु 'वाक्य
४६७	३,१४	निवन्धो,झाल,!	निर्वन्धो, झलि,
४६७	२०	यशानस् + इ, यशासि	यशान्स् + इ, यशांसि,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६९	२०,२१	श्रुत (नो इन्द्रिय), आवाय	(श्रुत) नो इन्द्रिय, अवाय
४७०	४,१३	ततस, नहीं है	ततस् , ही है
४७०	१७	श्रुतमति पूर्वं द्वयनेकद्वादशभेदं	श्रुत मतिपूर्वं द्वयनेक द्वादशभेदम्
४७१	४,१७	अवधः "रूपिष्ववधे":	अवधेः 'रूपिष्ववधेः'
४७३	९, ०	विपुल, विभक्त्यर्थ	विपुल, विभक्त्यर्थ,
४७४	१६	(अन्यअर्थं)	(अन्यअर्थ)
४७५	४,५	सब, ननतजन्त,	सब, अनन्तानन्त,
४७५	१०,१३	ट्टियाद्दु, ट्टिया	ठ्ठया द्दु, ठ्ठया
४७५	१७,१८	(परन्तु, खण्डात्मक	(परन्तु), खण्डात्मकत्व
४७६	९,१४	भी, केवल ज्ञान, कं	(भी) , (केवल ज्ञान) , के
४७८	९,	(अथवा,	(अथवा यदि सूत्र में 'एक' शब्द को असख्या असहाय. प्रधानअर्थो में न लें तो
४७९	६,७,१४	यहीं,अनेकार्थ ये हैं, अर्थमें	यही।अनेकार्थ नीचे लिखतेहैं,अर्थोमे,
४८०	१३,१४,	यहां पर. अर्थ में है	यहां पर, अर्थ में भी हो सक्ता है
४८१,	१७,२१,१८५,१८१,	वह	१८५, १८६, यह
३८३	३, १७,	ज्ञानव्यपदेशम् १ ।।। ,य	१ज्ञानव्यपदेशम् १।।।, यह
४८४	१३,१९	च शद, अव्य, अव्य के	च शब्द, अव्यय, अव्ययके
४८६	९,	सवध में, कथन है	संबन्ध से, कथन है
४८८	१८	विपर्ययकी, लीग है,	विपर्यय की, ली गई है
४८९	७,११	क ी, अध्यवसति	कभी, अध्यवस्यति
४८९	१३,१५	जनना एसा, स, उसक	जननी, ऐसा, से, उसके

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	११	बावन करोड	पल्यके असंख्या तवां भाग है
१०४	१२	प.सौ चार करोड	पल्यके असंख्यातवाँ भाग है
१०४	१२	सातअरब है	पल्यके असंख्यातवां भाग है
११०	११	यथा संख्य बावन, करोड पकसौ चार करोड़, सात सौ करोड, तेरह करोड़	इन प्रत्येकगुणस्थानोंकी जीवों की संख्या पल्यके असंख्यावाँ भाग है
११२	१६	सातअरब, तेरहकरोड़	प्रत्येक में पल्यके असंख्यातवेंभाग
११३	११	बावन करोड,	पल्यके असंख्यातवां भाग
११३	११	एक सौ चार करोड़	पल्यके असंख्यातवां भाग.
११४	१०	बावन करोड़	पल्यके असंख्यातवा भाग
११४	११	सातसौ करोड	पल्यके असंख्यातवां भाग
१३३	२१	अपेक्षया $\frac{3}{9}$ III	अपेक्षया $\frac{3}{9}$ II
१३७	२०	असंयत	असयत करि,
१५८	११	अभावात् $\frac{6}{9}$ I	अभावात् $\frac{5}{9}$ I
१५९	३	काथनम् $\frac{3}{9}$ III	कथनम् $\frac{1}{9}$ III
१६०	१५,१६	तिट्ठाणे,षट्चतुर्दशहीनः	तिट्ठाणे पढमो, षट् चतुर्दशहीनाः
१६३	६,१२]	कथनात् $\frac{1}{9}$ III	] इति, कथनात् $\frac{5}{9}$ III
१६४	२१	देवाना $\frac{6}{3}$ I	देवाना $\frac{6}{3}$ I विहारवत्
१७५	६	परिणते स्तावत्	परिणतेस्तैस्तावत्
१७६	१६	मिथ्या त्वकाल $\frac{1}{9}$ I	मिथ्यात्वकालः $\frac{1}{9}$ I अभव्येषु $\frac{7}{3}$ I
१८१	११	उत्कृष्टस्य $\frac{2}{1}$ I	उत्कृष्टस्य $\frac{6}{1}$।
१८२	२१	त्रणि, अधिक सप्तति	त्रीणि, त्र्यधिकसप्तति,
१८३	५,१६,	वेदगसम्यक्त, अयम् $\frac{1}{2}$ I	वेदगसमाप्त, अयम् $\frac{1}{1}$।
१८६	६,२०,	मिथ्यात्वं, मिथ्यात्वं,	मिथ्यात्वे, मिथ्यात्वे
१८७	१२,१४,	णगु,सम्भवति,तद्भुमतः	गुण, सम्भवति इति*, अतः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८८	५	एकजीवम् $\frac{1}{1}$ I प्रति	एकजीवम् $\frac{2}{1}$। प्रति*
१८९	६	एक जीवम् $\frac{1}{1}$ I प्रति	एकजीवम् $\frac{2}{1}$। प्रति*
१९१	५	तियग्गतौ $\frac{7}{9}$ I	तिर्यंग्गतौ $\frac{7}{1}$॥
१९४	१४,१५,	देवगतौ $\frac{7}{9}$,सर्वाः $\frac{1}{3}$ III	देवगतौ $\frac{7}{1}$॥। सर्वाः $\frac{3}{3}$।
१९६	४	परिणामानि $\frac{1}{3}$ III सः	परिणामानि $\frac{3}{1}$॥।
१९७	१४	पयक्खे $\frac{1}{9}$ I एकान्ते $\frac{1}{9}$ I	पयक्खे $\frac{7}{1}$। एकान्ते $\frac{7}{1}$।
२०१	५	पल्योपमपृथक्त्वम्	पल्योपमशतपृथक्त्वम्
२०१	२०	पल्य + उपम पृथक्त्वम्	पल्य + उपमशतपृथक्त्वम्
२०१	२०	पल्य के बराबर है	सौ पल्प के बराबर है
२०३,	७,१२,	वेदोत्पद, बाद	वेदोत्पाद, पीछे
२०६	१६	मतिज्ञानी	मतिअज्ञानी
२११	१४	से, कुज	स, कुछ
२१२	१६	अपेक्षया $\frac{7}{3}$ II	अपेक्षया $\frac{3}{1}$॥
२१६	२	नांजीवापेक्षया	नानाजीवापेक्षया
२२०	३	असंख्येयाः संख्येया	असंख्येयासंख्येया
२२१	४	शेपाणां $\frac{6}{9}$ I	शूपाणां $\frac{6}{2}$।
२२२	६	समयाः $\frac{1}{3}$ I	समयः $\frac{3}{1}$।
२२३	१०,१६	अपेक्षया $\frac{3}{9}$ III जाती हैं	अपेक्षया $\frac{3}{1}$॥जातीहैंकिसीलिंगकीहो
२२३	१७	विंसति ब्राह्मणा $\frac{1}{3}$ I	त्रिंसतिं ब्राह्मणाः $\frac{3}{1}$।
२२४	६,१५,	पल्योपमका.अन्ताना $\frac{6}{9}$ I	पल्यो पमः अन्तानां $\frac{6}{1}$।
२२४	१६,	अपक्षया $\frac{3}{9}$ I	अपेक्षया $\frac{3}{1}$॥
२२५	१७	असंयतसम्यद्दृष्ट्यो $\frac{6}{2}$ II	असंयत सम्यग्दृष्टयोः $\frac{6}{2}$ I
२२६	१७;२०,	तिर×चां, अन्तो	तिरश्चां, अतो
२२७	११,१२	प्रायुक्तः $\frac{1}{9}$ I, (=च)	आयुष्कः $\frac{1}{9}$ I, (=च)
२२९	२,१०	मानुष्याणां, मिथ्यादृष्टः $\frac{6}{3}$ I	मनुष्याणां, मिथ्या दृष्टेः $\frac{6}{1}$।

एटा निवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विषयदर्पण सहित सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः हिंदी अनुवाद अध्याय १ सूत्र १ से ८८ तक

शुद्धाशुद्ध विवरण (स्वाध्याय से पहिले इन अशुद्धियों को शुद्ध कर लीजिये)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१	ऊ॰	ऊँम्
११	१३	५	४
१३	६	अशुद्ध	भी शुद्ध
१८	१२	० १०८ के पश्चात्	'मुनिपरिषण्णमध्ये सन्निषण्ण'
१८	१४	निग्रन्थाचार्य्यं परम् य पाँच	ये पाच
२०	१	विशेषण	विशेष लक्षण
२५	२०	ताथै	यतार्थ
२७	८	श्रद्धान	श्रद्धान मात्र
२७	६	अनेन ३ ॥	अनेन ३ ॥
२७	१२	चयते अनेन ३ ॥	चर्यते अनेन ३ ॥
२७	१५	तत्	तत् च
२८	७	विवक्षायां	भेद विवक्षाया
२८	१४	अपि	अपि अर्थे ३।
२८	१५	अग्नौ ३ ॥	अग्नौ ३।
२६	४,८	व्यक्तिवत, वा	व्यक्तिवत, —
३०	६	पूर्वकालात् ३।	पूर्वकालात् ३॥
३१	८	अर्थाः ३ ॥, अवस्थित,	अर्थाः ३।, अवस्थितरूप
३३	१७	पहिल	पश्चात्
३४	१४	=एकपना,	=या एकपना
३४	१४	अयम् ३।	अर्थाम् ३॥
३५	१२	सम्यग्दर्शनम् ३ ॥	सम्यग्दर्शनम् ३ ॥
३८	१३	अर्थाः ३ ॥	अयम् ३।
४४	५,२०	अर्थ ३ ॥ क्रिया	अयम् ३।, क्रिया
५१	६	ना कर्म द्रव्य जीव है	ना कम ना आगम द्रव्य जीव है
५२	२१	स्थिर	स्थिर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	७	क,(विस्तारकाद्यादि)	(सम्यग्दर्शनादि और सात तत्वों) क विस्तार का
५४	२०	अपेक्षा से	अपेक्षा से स्वे॰दिग॰ सम्प्रदायों में
५५	१०,११,	अ तपत्व स्थाय	अ तपस्यं, स्थार्य
५७	३ १५	] स्तरयां ३ ॥	] परिणाम के, स्तरयां ३ ॥
६१	२, १६	औपशमिक, उच	पशमिकं, उच
७२	७, १७	अलब्धयानां ३ । आहारकवके	अलब्धयानां ३।, आहारकों के
७७	२०	प्रभृतिभिः ।	प्रभृतिभिः
८३	१७,१८	। , नयविषयाः ३।	। इति ० , नयविषया: ३।
८१	१३	आदीनि ३ ॥	आदीनि ३ ॥
६३	५,	विशेषेण ३।,	विशेषेण ३।
६३	७	मिथ्यादृष्टि जीवाः ३।	जीवाः ३। मिथ्यादृष्टय ३।
६३	१७,१८ (जीव) (जीव)		(मनुष्य) (मनुष्य)
६८	२१	जीवों की	मनुष्यों की
६६	६	जीव हैं	मनुष्य हैं
१०१	२,१३	भाग-(जीव)	भाग-(मनुष्य)
१०२	१४	भावाय—नहीं होसकी	इसको मत पढ़ो क्योंकिमूमरूप है
१०३	१०	अर्थात्—कालमें न रहे	इसको न पढ़िये क्योंकि भूमरूप है
१०४	१५	बावन तेरह करोड़ है	[और दूसरेसे पाँचवां तक प्रत्येक
१०५	६से ८	वा न तेरह करोड़	[मैं पल्यका असंख्यातवां भाग है
१०५	२१	बावन करोड़ हैं	पल्य का असंख्यातवां भाग है
१०६	/	बावन करोड़ हैं	इसको न पढ़िये
१०६	११,१६	सात। असंख्य हैं, तेरहकरोड़	प्रत्येकपल्यके असंख्यातवां भाग है
१०८	६	तेरह करोड़ हैं	पल्यके असंख्यातवां भाग है
१०८	१५	बावनकरोड़, एकसौचार करोड़, बावनसौ करोड़	और प्रत्येक गुणस्थान में पल्य का असंख्यातवां भाग है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६४	२,१८	अवगृहीते, ग्रामाण्य	अवगृहगृहीते, प्रामाण्य
३६५	१६	वचनम् १/१॥	वचनम् १॥ तु* ।
३६८	२,३	विक्षपादि, सैवेय,	विक्षेपादि, सैवेयं
३७८	२,	(जो छूट गई है,वहऐसे है)	अवग्रहादयः क्रिया विशेषाः प्रकृताः। तदपेक्षोऽयं कर्म निर्देशः। बह्वादीनां सेतराणामिति ।
३८०	४,१४	बहनाम्, ग्रहेण	बहूनाम्, ग्रहणेन
३८१	३,१४	ध्रवस्य, इहा	ध्रुवस्य, ईहा
३८२	१०	आदौ ६/१।	आदौ ७/१।
३८६	१३-१५	सत्यम् १/१। विशिष्टस्य यहां ॥	सत्यम् १/१, विशिष्टस्य ॥ यहां
३६१	१५,१८,१६	विशेयः, त्रिशत्रिंशत	विशेषः,त्रिंशत् त्रिंशत, त्रिंशत्त्रिंशत
३६२	२०	ईहा-आदय १/१, इहा,	ईहा-आदयः १/३, ईहा
३६४	१०,१३,१७	ईहा, नग्न, व्यंजन,	ईहारूप, निम्न, व्यञ्जनका
३६६	४,१६,	कथमध्य, त्व+पन	कथमध्य, त्व=पन,
३६६	१६	(स्त्रीलिंग)+क्रिया,	(स्त्रीलिंग)=क्रिया,
३६७	१३,१६,	'पश्य' जनोती	'पश्य्' जनोर्जा
३६८	२,३,	वसेयम्,वजयित्वा,निादष्ट	वसेयम्, वर्जयित्वा, निर्दिष्ट,
३६८	८,१६	मनावत्, वक्तव्यः १/३।	मनोवत्, वक्तव्यः १/१।
३६८	१६	श्रतज्ञान	श्रुतज्ञान
३६८	१७,१८,	वार्य, व्याधि, वृष्टि,	वर्यि, व्यधि, वष्टि,
३६८	१८	विरति	विचति
३६८	२१	गृह्+ना-यात, गृहणायात्,	गृह+नी=यात्, गृह्णीयात्
३६६	५,६,१०	श्रतम्, श्रतज्ञान,अंगवाह्य	श्रुतम्, श्रुतज्ञान, वे अङ्गबाह्य,
३६६	१४,२१,	रूढि, कार्यं,	रूढ़ि, कार्य
३६६	२३	स्याख्यान, दशव,	प्रत्याख्यान दशवै
४००	२,४	कस्मि ५, ताति.	कस्मिश्च, तीति,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४००	७	कुश ल न. द्राभ, काश।	कुशल-वन, दाभ, कांश
४०१	६,६	मतिपूर्वम्, आत्मकम् १/१॥	मतिः १/१॥ पूर्वम्, आत्मकम् १/१॥
४०२	२०	अप्रामाण्यम १/१॥	पुरुषकृतत्वात् ५/१॥, अप्रामाण्यम् १/१॥
४०३	३,१२	मति, अपेक्षया ३/१॥	मिति, अपेक्षया ३/१॥
४०३	१७,२२	करतेवाला, अर्पणति	करनेवाला, अर्पणात्
४०४	४,८	श्रतमिष्यते,सम्यक्त्वस्य	श्रुतमिष्यते, सम्यक्त्वस्य ६/१॥
४०५	११	सम्बन्ध अन्तरम्	सम्बन्धि-अन्तरम्
४०५	६	पुदगलप,	पुद्गल
४०५	७।	वाक्यादि* भावात् ५/१।	वाक्यादि-भावात् ५/१।
४०५	११	अन्यसंयोग	अन्यसंयोग,
४०८	२,२,४	समम्नाय, त्र,प्लत,	समाम्नायः, सूत्र, प्लुत,
४०६	७,८,१३,	अदि,पयोयवरण,आभृत,	यदि, पर्यायावरण, प्राभृत,
४११	१२,१६	त्रिसंतोगी, पद्म	त्रिसंयोगी, एक
४१४	२५,२६	एकही, २[६४]	एकट्ठी २[६४] ॥
४१६	८,१०	दडन शालिभ्याँ, सांख्या	दण्डेन शालिभ्योगाम्, संख्यया
४१६	१८	प्रमाण पदकाकीपें हैं,	कीपे हैं,
४१६	१६	ओर में, अक्षरों,	और प्रमाणपद में, अक्षरों का,
४१७	८	२०६४३६१८५७,	२०६८४३६१८५७
४१७	१२	१२६६३६२३६१४६	१३६६३६२३६१४६
४१८	६,१७	पुद्गल, ज्ञातृधर्मकथ १/१॥	पुद्गल, ज्ञातृधर्म कथा १/१॥
४२०	१३,१६	(क) चन्द्र प्रज्ञप्ति, रबूद्वीप	(क) चन्द्रप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप
४२१	४	पृष्ठ ४२१,४२२	पृष्ठ ४२१, ४२२, ४२३,
४२६		चूलिका (३)	चूलिका (ङ)
४२७	६	=श्रेष्ठ	श्रेष्ठ,
४२८	३	च*आरातीयः १/१। इति*=	(इतनेको)चोथी पंक्तिके बाईमें लिखो,
४२८	७	विशेषेण ३/१।	विशेषेण ३/१।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३०	१	त्रीणि॥, पल्योपमानि॥	त्रीणि ।॥, पल्योपमानि॥
२३०	४	कोटि	कोटी
२३१	१६	मिथ्यादृष्टेः॥ नानाजीव	मिथ्यादृष्टेः ॥
२३१	१७	अपेक्षया ॥सामान्यवत् ०	नानाजीव अपेक्षया॥ सामान्यवत् ०
२३४	१४,	सागरोपमसहस्र,	सागरोपमसहस्र ॥
२३४	१५	पूर्वकोट	पूर्वकोटी
२३६	४,१५	नहीं, कायिकाना॥	ही कायिकानां ॥
२३८	२	मानसयोगिनां,	मानसयोगिनां,
२०८	१४	नानाजीव ॥	नानाजीव—
२१०	६	नानाजीव॥	नानाजीव
२४१	७	जघन्यम् ॥	जघन्यम् ॥च
२६४	२१	जघन्यम् ॥	जघन्यम् ॥च ०
२७१	१६	४१३४१२६३०३०८०	४१३४१२६३०३०८२०
२७६	२३	भागका, दिया जाता है	भागका, किया जाता है
२७८	१,	केवलिनां, औदइओ	केवलिनां, औदइओ
२८०	१६,२०	गुणस्थान,मोहनीयकर्म	गुणस्थान में, मोहनीय कर्मका
२८३	११,१३	औदयिक भावः॥, यत	औदयिकः ॥ भावः ॥, यत्
२९२	२३	द्रव्यम् ॥	भागम्॥ अनुयोगस्य॥ द्रव्यम्
२९६	१४,२०	॥ चार, मिश्रमिश्र।	॥, मिश्रमिश्रा
२९६	११	असंख्यातगुणे	संख्यातगुणे
२९६	२०	संख्यातगुणे	असंख्यातगुण
२९९	६, १०	, वर्ती	गुणस्थानवर्ती, से प्रमत्तसंयमी
३०८	८,९,२०	। अयोग,केवलिनः हैंकहते	।, अयोग के वलिना, कहते हैं
३१५	१७,	मत्त, क्षपक, उपशम	मत्त, क्षपक, उपशम
३१५	१८	क्षयक	क्षपक
३१५	२०	अमत, सयमेमियो,	अप्रमत्त, संयमियों,
३१६	४	औपशमिक सम्यग्दृष्टिनां	औपशमिक सम्यग्दृष्टीनां
३१६	१२	सम्यग्दृष्टयः	सम्यग्दृष्टय
३२२	४,११	श्रुत, जानता (है=मनुते)	श्रुत, जानता है(=मनुते)
३२३	२,५	श्रूयते, श्रूयते	श्रूयते, श्रूयते
३३०	८	अथ (=अथ)	अथ (=अथ)
३३१	११	फलम् ॥ इष्ट ॥	फलम् ।॥ इष्ट ॥
३३१	११	प्रमाणकाफलहै	(प्रमाणका) फल इष्ट है
३३२	७,	वस्तुकाज्ञान	वस्तुका ज्ञान (=अधिगम),
३३७	२,४	उपमानार्थापत्त्या, अर्थापत्ति	उपमानार्थापत्त्या, अर्थापत्ति
३३७	६,१२	अन्तरभावात्॥,प्रत्यक्षम्॥	अन्तर्भावात्॥ प्रत्यक्षम्॥
३३८	१८	द्वयोः॥	द्वयोः॥
३४१	६,२०	प्रत्यक्षम्॥, उत्पन्न हो	प्रत्यक्षम् ॥, उत्पन्न हो
३४२	११,१४	प॥, प्राप्नोति T	पदः॥प्राप्नोति T
३४३	५	पृथक्पेयज्ञानं कल्पते,	पृथक् मेयज्ञानं कल्प्यते
३४३	८	उदयात	उदयात्
३४५	११,२३	दिव्यम्॥, स्यात?	दिव्यम्॥ स्यात् ?
३५३	४,१८	भावार्थ, स्मृति	भावार्थ, स्मृति
३५८	१६,२०	तत्, स्पर्शन—आदि॥	तत्–स्पर्शन ,आदि ॥
३५९	६,२१	(=अत्) तथा,	(=अन्) न तथा
३५९	२१	लिङ्गम् ॥, तैसे,	लिङ्गम्॥ अपि०सन्॥,नहीहैतैसे
३६०	६,१७	न०, नहीं है, प्रतिषेधः॥	(न), नहीं है) प्रतिषेधः॥नाइति
३६०	११	अन्त करणम् ॥	(अन्तःकरणम् ॥)
३६०	११	या अंत करण या मन,	(या अन्तः करण या मन)
३६१	५,१४,२०	अर्थम, तद, तो	अर्थम्, तद्, जो
३६२	११	आपाय,	अपाय

"द्वादशभागाः कुतो न लभ्यन्ते इति चेत् तत्रावस्थितलेश्यापेक्षया पञ्चैव। अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादशभागा न दत्ताः।"

द्वादशभागाः कुतः* न* लभ्यन्ते T इति चेत्* = बारह राजू क्योंकर नहीं लिये गये हैं ऐसी तर्क [= चेत्] पर कहते हैं कि
तत्र* अवस्थित-लेश्या-अपेक्षया = तहां [नरकमें] नियमित (= अवस्थित) लेश्या (होने) की विवक्षासे
पञ्च एव* = (चौदहराजू त्रसनालमेंसे) पांच ही राजू [छठे नरकवाले सासादन गुणस्थानवर्ती जीव कृष्ण नील कापोत लेश्याओंके धारकोंसे] छुए जाते हैं॥
अथवा* येषाम् मते सासादनः एकेन्द्रियेषु = वा जिनके मतमें सासादन गुणस्थानवर्ती एकेन्द्रिय (जीवों) में
न* उत्पद्यते T तद्-मत-अपेक्षया = नहीं उपजता है उनकी सम्मतिकी विवक्षासे
द्वादशभागाः न दत्ताः = बारहराजू (= भागाः) नहीं दिये गये हैं अर्थात् जो आचार्य मानते हैं कि सासादन गुणस्थानवर्ती एकेन्द्रियोंमें जन्म लेता है उनकी अपेक्षासे कुछ हीन बारहराजू भी स्पर्श हो सकता है और जिनका मत है कि एकेन्द्रियमें जन्म नहिं लेता है उनके मतानुसार केवल कुछ न्यून पांचराजू स्पर्श है

३४३ = समस्त लोकके एकराजू लंबे, एकराजू चौडे एकराजू ऊंचे खंड किये जांय तो तीनसौ तेतालीस घनाकार भाग होंगे ऐसे चौदह घनाकार राजूओंको त्रसनाल है उसके चार घनाकार राजू लिये हैं अतः चार बटे हुये तीनसौ तेतालिस हैं।

तृतीयपृथ्वीचरम+इन्द्रकात् कपोतलेश्या- = तीसरे नरकके अन्तके इन्द्रकबिलेसे कपोत लेश्याके
उत्कृष्टस्थानात् मरणान्तिकम् कुर्वाणैः = उत्कृष्ट स्थानसे (दूसरे गुणस्थानवर्तीनसे) मारणांतिक समुद्घातकरनेवालोंकरि
द्वौ चतुर्दश भागौ स्पृष्टौ = (लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं (मेंसे) दो राजू स्पर्शे जाते हैं
३४३ = तीनसौ तेतालिस घनाकार राजूओंमेंसे (त्रसनालके) दो घनाकार राजू लिये हैं।
भोगभूमिषु प्रणिधौ अस्पर्शनात् = भोगभूमियोंके प्रणिधि (कोने) में स्पर्शन न होनेसे
देश-ऊनत्वम् = कुछ न्यूनपना (पांच, चार तथा दो घनाकार राजू क्षेत्रमेंसे) है

तेजोलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः। अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः।

तेजोलेश्यैः मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिः	= पीत लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि (पीतलेश्यावाले) सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे
लोकस्य असंख्येयभागः वा चतुर्दश भागाः	= लोकका असंख्यातवां अंश है वा [लोक त्रसनालके] चौदह राजू हैं (सो)
अष्टौ नव देशोनाः	= कुछ घाटि आठ [वा] कुछ हीन नौ (राजू) छुए जाते हैं
सम्यग्मिथ्यादृष्टि–असंयतसम्यग्दृष्टिभिः	= (पीत लेश्यावाले) मिश्र गुणस्थानवर्ती और असंयत गुणस्थानवर्तीनकरि
लोकस्य असंख्येयभागः	= लोकका असंख्यातवां अंश (छुआ जाता) है
वा चतुर्दश भागाः	= अथवा (लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो)
अष्टौ देशोनाः (स्पृष्टाः)	= कुछ घाटि आठ राजू छुए जाते हैं

(१) विहारवत्स्वस्थानापेक्षया अष्टौ चतुर्दशभागाः। $\frac{8}{343}$ ॥ विहारवन्तस्तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिदेवास्तृतीयपृथिवीतोऽष्टमपृथिवीबादरपृथिवीकायिकत्वेनोत्पत्त्यर्थं मारणान्तिकं कुर्वन्ति तदपेक्षया नव चतुर्दशभागाः $\frac{9}{343}$ ॥

विहारवत् *	= (तेज लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानवर्तीयों करि) विहारवत्
स्वस्थान + अपेक्षया चतुर्दश भागाः अष्टौ	= स्वस्थान अपेक्षासे (त्रसनालीके) चौदह राजू हैं उनमेंसे आठ राजू स्पर्शे जाते हैं
$\frac{8}{343}$	= तीनसौ तेतालीस राजू घनाकार सब लोक है तिसमें आठ राजू लिये हैं ॥
विहारवन्त, तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिदेवाः	= विहार करनेवाले तेज लेश्याके (धारक) मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती देव
तृतीयपृथ्वीतः अष्टमपृथिवी—	= तीसरे नरकसे मोक्षस्थान वा लोक पर्यन्त (=अष्टम पृथिवी) में
बादरपृथिवीकायिकत्वेन उत्पत्त्यर्थम्	= बादर पृथिवी कायिकमें जन्मके लिये
मारणान्तिकम् कुर्वन्ति तद् अपेक्षया	= मारणांतिक समुद्घात करते हैं तिस (मारणांतिक समुद्घातकी) विवक्षासे
चतुर्दश भागाः नव	= (लोकत्रस नालके) चौदह राजू हैं (सो) नौ (राजू स्पर्शे जाते) हैं
$\frac{9}{343}$	= तीनसौ तेतालीस घनाकार समस्त लोक है तिसमें नौ राजू ग्रहण किये हैं

(२) विहारवत्स्वस्थानापेक्षया $\frac{8}{343}$ = परस्थान विहार अपेक्षासे तीनसौ तेतालिस घनाकार राजू लोकमेंसे आठराजू त्रसनालके लिये हैं

सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः ।

सम्यङ्मिथ्यादृष्टि- = (कृष्णनील-कपोतलेश्यावाले) मिश्रगुणस्थानवर्ती और
असंयतसम्यग्दृष्टिभि ३। लोकस्य ६। असंख्येयभाग १। = (कृष्ण-नील-कपोतलेश्याके धारक) असंयत सम्यग्दृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शा जाता है]

---

(१)षष्ठपृथ्वीपर्यन्तस्थितानामशुभलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टीनां मरणमस्ति । अतो लोकस्यासंख्येयभाग कथमिति चेत् तेषां मनुष्यक्षेत्रे एवोत्पत्तिसद्भावेन एकरज्जुविष्कंभे सर्वत्र स्पर्शाभावादिति ब्रूम । श्रेणिबद्धप्रकीर्णकवर्तिनामपि स्वकीयस्वकीयपृथिव्यामेव इन्द्रकपर्यन्त तिर्यगागत्य पुनरूर्ध्वागमनात्तावानेव । अन्यथा लोकासंख्येयकथनानुपपत्ते ॥

(१) षष्ठपृथ्वीपर्यन्तस्थितानाम् ६। अशुभ- = छठवां नरकतकके रहनेवाले कृष्ण-नील कपोत (= अशुभ)
लेश्याअसंयतसम्यग्दृष्टीनाम् ६। मरणम् १।१ अस्ति = लेश्यामें चतुर्थगुणस्थानवर्तीनकी मृत्यु है ।
अत * लोकस्य ६। असंख्येयभाग १। कथम् * = इसलिये लोकका असंख्यातवा खंड कैसे (स्पर्शा जाता है)
इति* चेत्* = ऐसे संदेहपर (कहते हैं कि)
तेषाम् ६। मनुष्यक्षेत्रे ७।१ एव + उत्पत्तिसद्भावेन ३। = तिन (असंयतसम्यग्दृष्टियों) का ढाईद्वीपविषै (= मनुष्यक्षेत्रे) ही जन्म होनेसे
एकरज्जुविष्कम्भे ७। सर्वत्र स्पर्श-अभावात् ५। = एकराजू विस्तारमें सबजगह स्पर्शनके न होनेसे (असंख्यातवा भाग है)
इति ब्रूम T = इसप्रकार हम कहते हैं (वर्तमानकाल उत्तमपुरुष बहुवचन परस्मैपद अदादिगणमें ब्रू धातुका ब्रूम होता है)
श्रेणीबद्धप्रकीर्णकवर्तिनाम् ६। अपि* = श्रेणीबद्धबिलोंके रहनेवाले (तथा) प्रकीर्णक बिलोंके रहनेवालोंकेभी
स्वकीयस्वकीयपृथिव्याम् ७।१ एव इन्द्रकपर्यन्त ३।१ = अपनी अपनी (स्वकीय) पृथिवीविषै ही इन्द्रकबिल (= मध्यका बिल) तक
तिर्यक् * आगत्य पुन ऊर्ध्वागमनात् ५।१ तावान् १। एव* = तिरछे आकर फिर ऊपरको गमन करनेसे उतना ही (असंख्यातवा भाग है)
अन्यथा * लोक + असंख्येयकथन + अनुपपत्ते ५।१ = दूसरे प्रकार असंख्यातका कहना सम्बन्ध (प्रसंग) रहित है अर्थात् दूसरे प्रकारसे असंख्यातवा भागका स्पर्श नहीं बन सक्ता है

प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः ॥

प्रमत्त-अप्रमत्तैः ३।	=(पीतलेश्याकाले) प्रमत्त गुणस्थानवर्ती और अप्रमत्त गुणस्थानवर्तीनसे
लोकस्य ६। असंख्येयभागः १।	=(स्वस्थान विहार अपेक्षासे) लोकका असंख्यातवांभाग छुआ जाता है

इति॥ चोदनायां ७। गोम्मटसारे ७। जीवकाण्डे ७। =ऐसी तर्कणापर (=चोदनायां) गोम्मटसार ग्रन्थमें जीवके कथनके अध्यायमें

लेश्यामार्गणायां ७। स्पर्श-अधिकारे ७। =लेश्यामार्गणा (के वर्णन) में स्पर्शनके प्रकरण विषे (नीचेके गाथामें)

परिहारः १।—॥ "एवं॥ (=एवम्॥) =समाधान है कि-"इस प्रकार ही है (=एवं) अर्थात् तेज्योलेश्याके विहारवत् स्वस्थानकी भांति "वेदना समुद्घात अर कषायसमुद्घात अर वैक्रियिक समुद्घात विषे स्पर्श किछु घाटि चौदह भागोंमें आठ भाग प्रमाण है"

तु समुग्घादे ७। चोद्दस-(तु समुद्घाते ७। चतुर्दश-) =और (=तु) मारणांतिक समुद्घातमें (=समुद्घादे) चौदह

भागयं १।। णव १।। किंचूणं १।। (भागाः१। नव १। किंचित्ऊनं) भाग (लोकत्रसनालके) हैं (सो) नौ राजू (=भागाः) कुछ हीन है

य उववादे ७।। (=च उपपादे ७।।) =और (=य-तेजो वा पद्मलेश्यावाले जीवके) उपपाद (अवस्था)में

पढ़म-पदं १।। (=प्रथम-पदं १।।) =(स्पर्शन योग्य) उत्कृष्ट (=पढ़म=प्रथम) स्थान (=पदं=पद)

दिवड्ढचोद्दस १। च॥ (=द्व्यर्धचतुर्दश १। च॥ =(त्रसनालके राजू) चौदहमेंसे डेढ (राजू) भी (=च)

किंचूणं १।। ॥ (=किंचित् ॥ ऊनम् १।।) ॥ १ ॥ =कुछ घाटि होता है ॥ १ ॥ यहां च इस बातके समुच्चयके लिये है कि कितेक आचार्योंके मतानुसार तेजोलेश्याका अस्तित्व सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंतक (जो मध्य लोकसे तीन राजू है) होनेके हेतुसे तेजोलेश्यावालोंका स्पर्शन कुछ न्यून तीन राजू उपपादकी अपेक्षासे है। गाथाकार अपने मतानुसार कहते हैं कि स्पर्शनयोग्य उत्कृष्ट स्पर्श स्थान (=पढ़मपदं) डेढ़राजूसे कुछ घाटि है उपर्युक्त अर्थके प्रमाणमें टोडरमलजीके अर्थका कुछ भाग शब्दशः इसप्रकार है—

"तेजोलेश्याका विहारवत्स्वस्थान अर वेदना समुद्घात अर कषाय समुद्घात अर वैक्रियिक समुद्घातविषे स्पर्श किछू घाटि चौदह भागमें आठ भाग प्रमाण है। काहेतें? सो कहिये है—

संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः अध्यर्धचतुर्दशभागा वा देशोनाः ॥

संयतासंयतैः ३। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। = (पीत लेश्य वाले) देश संयमियोंकरि लोकका असंख्यातवां खंड है
वा अधि-अर्ध चतुर्दशभागाः १। देशोनाः १। = वा [त्रस नालके] चौदह राजू हैं (सो मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा प्रथम स्वर्ग) कुछ घाटि डेढ राजू [छुआ जाता] है [अध्यर्ध=अधि+अर्ध=अधिक अर्ध यस्य बहुव्रीहि समास है अर्थात् कोई वस्तु जो अपने आधेके साथ हो डेढसे अभिप्राय है)

विहारवत्स्वस्थानापेक्षया ,६, ॥ यह वही टिप्पणी है जो पृष्ठ १५२ में दोकी संख्या पर लिखी है ।
(तेजो लेश्यावाले मिश्र गुणस्थानवर्ती और तेजो लेश्यावाले असंयत सम्यग्दृष्टिके)
विहारवत्स्वस्थान-अपेक्षया ३। ,६, = विहार करने योग्य क्षेत्र लोकके तीनसौ तेतालीस घनाकार राजूमेंसे आठ राजू (प्रमाण) है ।

(१) तेजोलेश्या—देशसंयतै क्रियमाणमारणांतिकसमुद्घातापेक्षयाऽध्यर्धचतुर्दशभाग चतुर्दशभागैस्त्रिभिर्भवितव्यम् ,३,॥ सनत्कुमार माहेन्द्रपर्यन्त तेजोलेश्यासद्भावादिति चोदनायां परिहारो गोम्मटसारे जीवकांडे लेश्यामार्गणायां स्पर्शाधिकारे "पर तु समुग्घादे णव चोद्दस भागय च किंचूणम् । उववादे पढमपदं दिवड्ढ चोद्दस य किंचूणं ॥ १ ॥" इति गाथायास्तुरीयपादव्याख्यान दृष्ट्वा ज्ञातव्यः ॥
तेजोलेश्यादेशसंयतैः ३। =पीतलेश्या (वाले) संयमासंयमियों करि
क्रियमाणमारणांतिकसमुद्घात+अपेक्षया ३। =किये जानेवाले मारणांतिक समुद्घातकी विवक्षासे
अध्यर्धचतुर्दशभाग १। =(लोक त्रसनालके) चौदह (राजू) हैं (सो) डेढ राजू (भागः) स्पर्शा जाता है
सनत्कुमारमाहेन्द्रपर्यन्त ३। =(परंतु वह) सनत्कुमार (तीसरे स्वर्ग) माहेंद्र (चौथे स्वर्ग) तक
तेजस्+लेश्या सद्भावात् ५। =पीत लेश्याके विद्यमान होनेसे
,३, =तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू सब लोकके क्षेत्र फलमेंसे तीन घनाकार राजू
चतुर्दशभागैः ३। त्रिभिः ३। भवितव्यम् ३। =(वा लोक त्रसनालके) चौदह राजुओंमेंसे तीन (राजू) होना चाहिये

पद्मलेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः पञ्च चतुर्दशभागा वा देशोनाः॥ प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः

पद्मलेश्यैः ३। मिथ्यादृष्टि–आदि–असंयतसम्यग्दृष्टि- = पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टीसे असंयत चौथे गुणस्थानवर्तीयों
अन्तैः ३। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। = तिनकरि लोकका असंख्यातवां अंश (स्वस्थान अपेक्षासे) छुआ जाता है
वा चतुर्दश ६। भागाः ३। अष्टौ ३। देशोनाः १ = वा लोकत्रसनालके चौदहराजू हैं (सो) कुछ हीन आठ (राजू छुए जाते) हैं
संयतासंयतैः ३। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। = (पद्मलेश्यावाले) संयतासंयमीयोंसे लोकका असंख्यातवां अंश (छुआ जाता) है
वा चतुर्दश ६। भागाः ३। पञ्च ३। देशोनाः १। = अथवा (लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं (सो) कुछ हीन पांच (राजू मारणांतिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षासे छुये जाते हैं) [जाता है)
प्रमत्त+अप्रमत्तैः ३। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। = प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानवालों करि लोकका असंख्यातवांभाग अंश (छुआ

(१) विहारवत्स्वस्थानवेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घातापेक्षया अष्टचतुर्दशभागाः॥ ६६७॥

विहारवत्स्वस्थान–वेदना–कषाय— = परस्थान विहार (= विहारवत्स्वस्थान) वेदनासमुद्घात कषाय समुद्घात,
वैक्रियिक-समुद्घात-अपेक्षया ३। अष्टचतुर्दश = वैक्रियिक समुद्घात अपेक्षासे (लोकत्रसनालके) चौदह मेंसे आठ
भागाः १। ६६७ = राजू, (कुछ हीन, पद्मलेश्यावाले देवोंका स्पर्शन हो सक्ता है) अर्थात् प्रथम स्वर्गसे तीसरे नरक तक दो राजू हुये और पहिले स्वर्गसे अच्युत सोलहवां स्वर्गतक छहराजू ये हुये इसप्रकार आठ राजू भये॥ "मारणांतिक समुद्घात विषै भी तैसे ही किंचित् ऊन आठ चौदहवां भाग मात्र स्पर्श जानना जातै पद्म-लेश्यावाले भी देव पृथ्वी अप् वनस्पति विषैं उपजे हैं। गोम्मटसार पृष्ठ ६७७

(२) पद्मलेश्यादेशसंयतैः क्रियमाणमारणान्तिकापेक्षया पञ्चचतुर्दशभागाः सहस्रारकल्पादुपरि पद्मलेश्याभावात्।

पद्मलेश्यादेशसंयतैः ३। क्रियमाणमारणान्तिक+ = (पद्मलेश्यावाले) संयतासंयमियोंके किये जानेवाले मारणांतिक समुद्घातकी
अपेक्षया ३। चतुर्दश ६। भागाः १। पञ्च ३। = विभक्ताकरि (लोकत्रसनाडीके) चौदहराजू हैं (सो) पांच (राजू कुछघाटि)

लोक चौदह राजू ऊचा है। त्रसनाळी अपेक्षा एक राजू लंबा चौडा सो तहां चौदह राजूविर्षे सनत्कुमार माहेंद्रकेवासी उत्कृष्ट तेजोलेश्यावाले देव ऊपरि अच्युत सोलहा स्वर्ग पर्यंत गमन करैं हैं अर नीचें तीसरी नरक पृथ्वीपर्यंत गमन करैं है सो अच्युत स्वर्गतें तीसरा नरक आठ राजू है तातें चोदह भागमें आठ भाग कहे अर तिसमें तिस तीसरा नरककी पृथिवीकी मोटाईविर्षे जहां पटल न पाइए ऐसा हजार योजन घटावने तातें किंचित् ऊन कहे हैं। इहां जो चौदह घनरूप राजूनिकी एक शलाका होइ तौ आठ घनरूप राजूनिकी केती शलाका होइ? ऐसे त्रैराशिक कीयें आठ चोदहा भाग आवे है। अथवा भवनत्रिक देव ऊपरि वा नीचे स्वयमेव तौ सोधर्म ईशान स्वर्गपर्यंत वा तीसरा नरक पर्यंत गमन करै हैं अर अन्य देवके लेगए सोलहा स्वर्गपर्यंत विहार करे हैं तातें भी पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श संभवे है बहुरि तेजोलेश्याका मारणांतिकसमुद्घातविर्षे स्पर्श चौदह भागमें नव भाग किछू घाटि संभवे है । काहेतें ? भवनत्रिक देव वा सौधर्मादिक च्यारि स्वर्गनिकेवासी देव तीसरे नरक गए अर तहाँ ही मरण समुद्घात कीया बहुरि ते जीव आठवीं मुक्ति पृथ्वीविर्षे बादरपृथ्वीकायके जीव उपजते हैं तातें तहां पर्यंत मरण समुद्घातरूप प्रदेशनिका विस्तारकरि दंड कीया । तिस आठः पृथ्वीतें तीसरा नरक नव राजू है अर तहां पटलरहित पृथिवीकी मोटाई घटावनी तातें किंचित् ऊन नव चौदहा भाग संभवे है। बहुरि तैजस समुद्घात अर आहारक समुद्घातविर्षे संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना जातें ए मनुष्य लोकविर्षे ही हो हैं बहुरि केवलिसमुद्घात इस लेश्यावाळेके होता नाहीं। बहुरि उपपादविर्षे स्पर्श चौदह भागनिविर्षे किछू घाटि डेढ़भागम त्र जानना सो मध्यलोकतें तेजोलेश्यानें मरिकरि सौधर्म ईशानका अंत पटलविषे उपजें तीहि अपेक्षा संभवै। इहां काऊ कहै कि तेजोलेश्याके उपपादविर्षे सनत्कुमार माहेंद्रपर्यंत देवका स्पर्श पाइए है सो तीन राजू ऊचा ताते चौदह भागनिविर्षे किंचित् ऊन तीन भाग क्यों न कहिए? ताका समाधान-सोधर्म ईशानतें ऊपरि संख्यात योजन जाइ सनत्कुमार माहेन्द्रका प्रारंभ हो है तहां प्रथम पटल है अर डेढ़ राजू जाइ अंतिम पटल है सो अंत पटलविर्षे तेजोलेश्या नाहीं है ऐसा केई आचार्यनिका उपदेश है तातें अथवा चित्राभूमिविर्षे तिष्ठता तिर्यंच मनुष्यनिका उपपाद ईशान पर्यंत ही संभवे है तात किंचित् ऊन डेढ़ भागमात्र ही स्पर्श कहा है। बहुरि गाथाविर्षे चकार कहा है ताते तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरैं तिनके सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्गका अंतका चक्र नामा इंद्रकसंबंधी श्रेणीबद्धविमाननिविर्षे उत्पत्ति केई आचार्य कहे हैं तिनिका अभिप्रायकरि यथासंभवे तीन भागमात्र भी स्पर्श संभवे है किछू नियम नहीं। इस ही वास्ते सूत्रविर्षे चकार कहा। गोमट्टसार बडी टीका जीवकाण्ड मुद्रित पृष्ठ ६७६—६७७

१५५

अर्थात् उपपाद (=पहले जो पर्याय धारता था ताको छांडि पहिले समय अन्य पर्यायरूप होइ अंतरालविषैं जो प्रवर्तना " उस अवस्था) में " बहुरि विहारवत्स्वस्थानविषैं अर वेदना कषाय वैक्रियिक मारणांतिक समुद्घातनिविषैं स्पर्श चौदह भागनिविषैं छह भाग किछू एक घाटि स्पर्श जानना। जातैं अच्युत स्वर्गके ऊपरि देवनिके स्वस्थान छोडि अन्यत्र गमन नाहीं है तातैं अच्युत पर्यंत ही ग्रहण कीया " गोमट्टसार वृहद्टीका पृष्ठ मुद्रित ९७८, ९७९

शुक्ललेश्या —देशसंयतस्य ६। मारणान्तिक—	=शुक्ल लेश्यावाले संयमासंयमियोंका (स्पर्शन) मारणांतिक समुद्घातकी
अपेक्षया ३। षट्—चतुर्दश-भाग —कथनं १।। सुगमं १।।	=अपेक्षासे चौदह राजू (त्रसनाड़ी) मेंसे छह (राजू) का कथन स्पष्ट है
अच्युत— कल्पात् ५। उपरि * तस्य ६। उत्पत्ति-	=क्योंकि अच्युत सोलहवां स्वर्गसे ऊपर उस (देश संयमी) की उत्पत्ति
अभावात् ५।	=नहीं है अर्थात् मध्यलोकसे अच्युत सोलहवां स्वर्ग छह राजू है तहां तक ही पांचवां गुणस्थानवर्ती मरकर जन्म ले सकता है नव ग्रैवेयक और उनसे ऊपर नहीं ॥
इतरेषां ६। अपि मिथ्यादृष्टि-आदि-असंयत-अन्तानां ६।	=अन्य वा बचे हुये (शुक्ललेश्यावाले) मिथ्यदृष्टियोंसे असंयमी पर्यंतोंका भी (स्पर्शन)
षट्-चतुर्दशभागाः १। इति वचनात् ५।।	=चौदह भागोंमेंसे छः भाग हैं इसी वाक्यसे
शुक्लेश्यादेवानां ६। मध्यलोकात् ५। अधः * विहारः १।	=शुक्लेश्याके धारक देवोंका मध्यलोकसे नीचे विहार वा गमन
न * अस्ति इति* युक्त्या ३।। अवगम्यते T अन्यथा *	=नहीं होता है ऐसा जुगत वा युक्तिसे जाना जाता है । नहीं तो (अर्थात् मध्यलोकसे नीचे शुक्लेश्यावाले देवोंका गमन होता तो) स्पर्शनके
अष्टौ १। चतुर्दशभागाः १। इति	=आठ (राजू लोक त्रसनालके) चौदह राजुओंमेंसे होते हैं ऐसा
कथयेरन् T खलु * शास्त्रकाराः १। ननु * तेषां ६।	=निश्चय वा अवश्य शास्त्रकार कहते। प्रश्न (= ननु) उन (शुक्लेश्यावाले
मध्यलोक—पर्यन्तं २।। अपि विहारः १। न * अस्ति T	=देवोंका मध्यलोक तक भी तो गमन नहीं है

शुक्ललेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः॥

शुक्ललेश्यैः मिथ्यादृष्टि-आदि-संयतासंयत अन्तैः = शुक्ललेश्याके धारक मिथ्यादृष्टियोंसे संयमासंयमी पर्यंतोंकरि
लोकस्य असंख्येय-भाग = लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शा जाता] है अर्थात् "शुक्ललेश्यावाले जीवनिके स्वस्थानस्वस्थानविषैं तेजोलेश्यावत् लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श है
वा चतुर्दशभागाः षट् देश ऊनाः = वा [लोकत्रसनाडीके] चौदह [घन] राजू हैं सो कुछघाटि छः राजू स्पर्शे जाते हैं

सहस्रारकल्पात् उपरि पद्मलेश्या-अभावात् = सहस्रारकल्प (बारहवास्वर्ग) से ऊपर पद्मलेश्याके न होनेके कारणसे स्पर्शे जाते हैं।

उपपादविषं स्पर्श चौदह भागविषैं पंचभाग किछू घाटि जानना जातें पद्मलेश्या शतार सहस्रार पर्यंत संभवै है सो शतार सहस्रार मध्य लोकतें पांचराजू ऊंची है।" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ २७८

(४) शुक्ललेश्यादेशसंयतस्य मारणान्तिकापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनं सुगमम्। अच्युतकल्पादुपरि तस्योत्पत्त्यभावात्। इतरेषामपि मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतान्तानां षट्चतुर्दशभागा इति वचनात्, शुक्ललेश्यादेवानां मध्यलोकादधो विहारो नास्तीति युक्त्याऽवगम्यते। अन्यथा अष्टौ चतुर्दश भागा इति कथयेरन् खलु शास्त्रकाराः। ननु तेषां मध्यलोकपर्यन्तमपि विहारो नास्ति। केवलं मारणान्तिकोपपादापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनमिति च न मन्तव्यम्। सम्यग्मिथ्यादृष्टेस्तदभावात्॥ 'मिस्साहारस्सयया खवगा चडमाणपढमपुव्वा य। पढमुवसम्मा (पढमुवसमया) तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति।' इति वचनेन, 'मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्हि' इति वचनेन च तदवगमः। लेखकदोषोऽयं षट्चतुर्दशभागा इति न च शास्त्रकारवचनमिति च नाशङ्कनीयम्। नेमिचन्द्रसैद्धान्तिकचक्रवर्तिभिरपि लेश्याधिकारे तथैवोक्तत्वात्। 'सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छच्चोद्दसा हीणा॥ णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा'॥१॥ सव्वो वा खलु लोगो फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो इति। ननु पञ्चानुत्तरपर्यन्तं शुक्ललेश्यासद्भावेन ततोऽध शुक्ललेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिभिरुपपादपरिणतैः स्पृष्टत्वात् देशोनसप्तचतुर्दशभागा इति वचनं युक्तं। न युक्तं मनुष्यक्षेत्रवर्तिमनुष्याणामेव तत्रोत्पत्तेः। ततः अच्युतानामपि मनुष्यक्षेत्रे एवोत्पत्तेर्लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावात्। एकरज्जुविष्कम्भे सप्तम स्पर्शाभावात्। कल्पातीतानां विहाराभावाच्च। ननु " सदर सहस्सारगो त्ति तिरियदुग। तिरियाऊ उज्जोवं अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ' इति गोम्मटसारकर्मकाण्डबन्धोदयसत्वाधिकारगाथया सहस्रारकल्पादुपरितनदेवानां तिर्यगायुष्याद्यभावकथनात्तेषां तिर्यक्षूत्पत्त्यभावोऽवगम्यते? तथा च, मनुष्येष्वेवोत्पत्तावपि स्वयम्भूरमणद्वीपवर्तितिरश्चामच्युतपर्यन्तमुत्पत्तिसद्भावात्। अन्यथा सामान्यस्पर्शकथनावसरे देशसंयतापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनानुपपत्तेर्लोकासंख्येयभागकथनप्रसङ्गात् क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतवत्, आनताद्यच्युतपर्यन्तदेवानां विहारपरत्र कल्पातीतानामेव क्रमः नास्तीति लोकासंख्येयभाग एवेत्यवगन्तव्यम्॥

इति * वचनेन ३।१ च =इस वाक्य (गाथा) से और (=च)
य मरणंतसमुग्घादो १।१ (=च मारणान्तिकसमुद्घातः १।१ =पुनः (=य) मारणांतिक समुद्घात
वि * ण * मिस्सम्मि ७।१ (अपि * न * मिश्रे ७।१ =भी (=वि अपि) मिश्रगुणस्थानमें नहीं होता है
इति * वचनेन ३।१ तद्—अवगमः १।१ =ऐसे वाक्यसे उनका ज्ञान (कि मिश्र तीसरे गुणस्थानमें मारणांतिक समुद्घात और उपपादका अभाव हैं) होता है
(अपने उपर्युक्त प्रश्नको पुष्टि करते हुये कहता है कि तो)
लेखक—दोषः १।१ अयम् १।१ =लिपिकार वा लिखने वालेकी यह चूक वा भूल है कि
(संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके लोकस्यासंख्येयभागः इस वाक्यके पश्चात्)
षट्चतुर्दशभागाः १।१ इति न च शास्त्रकार-वचनं १।१ ="षट् चतुर्दश भागाः ऐसा (वाक्य लिख दिया) है न कि शास्त्रकारका वचन
इति * च * न * आशङ्कनीयम १।१ =ऐसा है (उत्तर) निश्चयसे (=च) यह बात आशंका योग्य नहीं है अर्थात् लेखककी भूल नहीं है
नेमिचन्द्रसैद्धान्तिकचक्रवर्तिभिः ३।१ अपि * =क्योंकि नेमिचन्द्रसैद्धांतिक चक्रवर्ती द्वारा भी (गोम्मट्टसारके)
लेश्या—अधिकारे ७।१ तथा * एव * उक्तत्वात् ५।१ =लेश्या अधिकारमें वैसा (=तथा) ही (निम्नआर्या छंदोंमें) कहा गया है

सुक्कस्स य तिट्ठाणे छच्चोदसा हीणा ॥ णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा । सव्वो वा खलु लोगो फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो ५५०
शुक्लस्य च त्रिस्थाने प्रथमः षट्चतुर्दशहीनः ॥ नवरि समुद्घाते च संख्यातीता भवन्ति भागा वा । सर्वो वा खलु लोकः स्पर्शो भवतीति निर्दिष्टः

सुक्कस्स ६।१ य * (शुक्लस्य ६।१ च *) =शुक्ल लेश्यावाले (जीव)न का भी (=च) है अर्थात् ' शुक्ल लेश्यावाले जीवनिके स्वस्थान स्वस्थानविषे तेजो लेश्यावत् लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श है"
(और शुक्ल लेश्यावाले जीवोंका) तीन
ति-(=त्रि) =(१ विहारवत्स्थान २ वेदना-कषाय वैक्रियिक मारणांतिक समुद्घात ३ उपपाद)
ट्ठाणे ७।१ पढमो १।१ (स्थाने ७।१ प्रथमः १।१) =स्थानमें उत्कृष्ट (= पढमो प्रथमः, स्पर्श)
छच्चोदसा १।१ हीणा १।१ (षट् चतुर्दशहीनाः १।१) =(लोक त्रसनालके) चौदह भागों (राजुओं) मेंसे कुछ घाटि छह भाग है।

केवल ।।। मारणांतिक-उपपाद-अपेक्षया ।। = (अत) केवल मारणांतिक समुद्घातकी और उपपाद (अवस्था) की अपेक्षासे
षड्-चतुर्दशभाग-कथनम् ।।। = चौदहभागोंमेंसे छहभागका कथन है
इति च न मन्तव्यम् ।।। सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ।। = यह मानने योग्य नहीं है क्योंकि मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्तीके
तद्-अभावात् ।। = उन (मारणांतिक समुद्घात और उपपाद समुद्घात) का अभाव है (जैसा कि निम्नलिखित आर्याछंदोंसे प्रमाणित है)

मिस्साहारस्सयया खवगा चडमाणपढमपुव्वा य। पढमुवसम्मा (पढमुवसमया) तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥
मिश्राहाराश्रयका क्षपका चटमानप्रथमपूर्वाश्च। प्रथमोपशमसम्यक्त्वा (प्रथमोपशमका) तमस्तमोगुणप्रतिपन्नाश्च न म्रियन्ते ॥

मिस्सा ।। (= मिश्रा ।।) = "मिश्रगुणस्थानवर्तिन" (= मिस्सा ।। = मिश्रा ।।) वा मिश्रगुणस्थानवाले
आहारस्सयया ।। (= आहार-आश्रयका ।।) = आहारक मिश्रकाययोगी वा निवृत्त्यपर्याप्त अवस्थारूप मिश्रकाययोगी (अर्थात् जो शरीर पर्याप्ति पूरी करनेवाला है उस शरीर पर्याप्तिके पहिले जैसे औदारिकमिश्र—वैक्रियिकमिश्र—आहारकमिश्र)
खवगा ।। (= क्षपका ।।) = क्षपकश्रेणिवाले (अर्थात् अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले)
य * चडमाण—(= च चटमान-) = और (= य = च) (उपशमश्रेणी) चढे जानेमें (= चडमाण = आरोहमाण)
पढमपुव्वा ।। (प्रथमपूर्वा ।।) = अपूर्वकरणका प्रथमभागवाले (= पढमपुव्वा ।। = प्रथमभाग-अपूर्वकरणा) अर्थात् उपशमश्रेणी चढ़नेमें अपूर्वकरण नामा आठवें गुणस्थानके पहिले भागवाले

{ पढमुवसम्मा ।। (= प्रथमोपशमसम्यक्त्वा ।।) = प्रथम उपशम सम्यक्त्व संयुक्त वा प्रथम उपशमसम्यक्त्वके धारक
{ पढमुवसमया ।। (= प्रथमोपशमका ।।) = अथवा पहिली बारके उपशम सम्यक्त्ववाले

य * तमतमगुण (= च तमोस्तमोगुण-) = और (= य) महातमप्रभा पृथिवी (= सातवें नरक) के (सम्यक्त्व) गुण
पडिवण्णा (= प्रतिपन्ना ।।) = वाले "सासादन मिश्र असंयतनारकी (दूसरे तीसरे चौथे गुणस्थानोंके)
ण * मरंति T (= न म्रियन्ते) = नहीं मरते हैं। (सातवीं नरकमें सम्यक्त्व सहित जीव मरता नहीं है)

ननु * पञ्च-अनुत्तर- =तर्क—पांच (विजय-वैजयन्त-जयंत-अपराजित-सर्वार्थसिद्धि) अनुत्तर
पर्यन्तं ।२।। शुक्ललेश्या-सद्भावेन ।३। ततः * अधः* =(विमान) तक शुक्ललेश्याके अस्तित्वसे तिन (पंचानुत्तर) से नीचे
शुक्ललेश्या-असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ।३। =शुक्ललेश्याके धारक असंयत सम्यग्दृष्टि (चौथेगुणस्थानवर्ती) करि
उपपादपरिणतैः ।३। स्पृष्टत्वात् ।५।। देशोन- =उपपाद (अवस्था) के परिणमन द्वारा स्पर्शन करनेसे कुछ घाटि
सप्तचतुर्दशभागाः ।१। इति * वचनं ।१।। =चौदहमेंसे सात राजू होते हैं ऐसा वाक्य (उनके स्पर्शके संबंधमें)
युक्तं ।१।। न युक्तं ।१।। मनुष्यक्षेत्र- =होना चाहिये (=युक्तं) । (उत्तर) न होना चाहिये । क्योंकि मनुष्यक्षेत्र(ढाईद्वीप)के
वर्तिमनुष्याणाम् ।६। एव * तत्र * उत्पत्तेः ।५।। ततः * =रहनेवाले मनुष्यकी ही तहां (पांच विमानोंमें) उत्पत्ति है । तहां (पचानुत्तर)से
प्रच्युतानाम् ।६। अपि* मनुष्य-क्षेत्रे ।७।। एव उत्पत्तेः ।५।। =च्युत होनेवाले देवोंका भी ढाई द्वीपमें ही (मनुष्यका) जन्म होनेसे
लोक-असंख्येय-भागे ।७। अन्तर्भावात् ।५। =लोकके असंख्यात भागमें (उनका स्पर्शन) गर्भित हो जाता है ।
एकरज्जु-विष्कम्भे ।७। सर्वत्र* स्पर्श-अभावात् ।५। =इससे एकराजूके विस्तारमें सवस्थानमें स्पर्श नहीं होता है
कल्प-अतीतानां ।६। =कल्पसे ऊपर नवग्रैवेयक-नवअनुदिश पंचानुत्तरके (रहनेवालोंके)
विहार-अभावात् ।५। च =गमनका अभाव भी है (=च) । आनतसे सर्वार्थसिद्धितकका देव मनुष्य ही होता है । (नव अनुदिश और पांच अनुत्तरवासी देव सब असंयतसम्यग्दृष्टि होते हैं)

ननु–"कप्पत्थीसु ण तित्थ सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं । तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ ॥ ११२ ॥

प्रश्न–कल्पस्त्रीषु न तीर्थं शतारसहस्रारग इति तिर्यग्द्विकम् । तिर्यगायुः उद्योतः अस्ति ततो नास्ति शतारचतुष्कम् ॥ ११२ ॥

कप्पत्थीसु ।७।। ण* तित्थं ।१।। (=कल्पस्त्रीषु ।७।। न तीर्थं ।१।।)=(प्रश्न) कल्प (वासिनी) स्त्रियोंमें तीर्थंकर (प्रकृतिका बंध) नहीं होता है
सदरसहस्सारगो ।१। (=शतारसहस्रारगः ।१।) =शतार-सहस्रार (ग्यारहवां बारहवां स्वर्ग) के रहने वालों
इति * तिरिय-दुगं ।१।। (इति* तिर्यग्द्विकम् ।१।।) =तक (=इति) तिर्यंच-युग्म वा तिर्यंचयुगल अर्थात् तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानुपूर्वी (=तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी–तिर्यंचकी आयु पूर्ण होनेपर आत्मा शरीरसे पृथक् हो कर किसी भव प्रति जानेको सन्मुख हो उस

य ☆ यायरि ✱ समुग्घादम्मि ¦। (च ✱ केवलसमुद्घाते ¦।) =और केवल समुद्घातमें अर्थात् सयोग केवलीके प्रतर समुद्घातमें

सखातीदा ¦। भागा ¦। या ✱ (= सख—अतीता ¦। भागा ¦। वा ✱) =(लोकके) सख्यारहित भाग अर्थात् असख्याते भाग (स्पर्शमें)

हुयति T वा सव्वो ¦। खलु✱ (=भवन्ति वा सर्व ¦। खलु) =होते हैं अथवा (= वा) नियमसे (=खलु) सब

लोगो ¦। फासो ¦। होदि Γ (लोक ¦। स्पश ¦। भवति T) =लोक (लोकपूरण समुद्घातमें) होता है

इत्ति (इदि) ✱ णिद्दिट्ठो ¦। (इति✱ निर्दिष्ट ¦।) =इसप्रकार कथन किया गया है ॥ (यावरि प्राकृतका अव्यय है अथ केवल है) प्रथम 'वा' पाद पूरणके लिये है। हमने आवश्यकता अनुसार शब्दश स्पष्ट अर्थ किया है ॥ विशेष जानने लिये इसी अनुवादका पृष्ठ ११६ से १२१ तक देखो।

मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानसे सयतासयत पाचवां गुणस्थान तकके शुक्लेश्यावाले जीवोंके (१) स्वस्थानस्वस्थानमें स्पश (=स्वस्थान विहार अपेक्षासे स्पश) (२) विहारवत्स्वस्थानमें स्पश (=परस्थान विहार अपेक्षासे स्पश (३) आहारक समुद्घातमें स्पश (४) तैजस समुद्घात में स्पर्श (५) केवल समुद्घातमें स्पश (६) उपपाद अवस्थामें स्पश (७) मारणांतिक समुद्घातमें स्पश (८) कषाय समुद्घातमें स्पर्श (९) वेदना समुद्घातमें स्पश (१०) वैक्रियिक समुद्घातमें स्पर्शमेंसे कौन कौन किस किस पांचों गुणस्थानवर्तियोंमेंसे होते हैं उसका मान चित्र नीचे देते हैं—

शुक्लेश्यावालेके गुणस्थान	आहारक स० तेजस स० केवल समुद्घात	स्वस्थान स्वस्थान	विहारवत्स्वस्थान, वेदना कषाय-वैक्रियिक समुद्घात	उपपाद मारणांतिक समुद्घात
मिथ्या० शुक्ल	कोई भी नहीं	लोकका असख्यातवांभाग	उत्कृष्ट छह राजूसे कुछहीन	उत्कृष्ट छहराजूसे कुछ घाटि
सासा० शुक्ल०	" "	" "	" "	"
मिश्र० शुक्ल०	" "	" "	" "	"
असयत शुक्ल०	" "	" "	" "	"
देशसयत शुक्ल०	"	"	?	"

हमने यह मानचित्र "सुक्कस्स य तिट्ठाणे इत्यादि गोमट्टसारकी ५४६ गाथाके अनुसार बनाया है। पाठकगण उक्त गाथाके अर्थसे मिलान करलें" (देखो टोडरमलजीकृत गोमट्टसार मुद्रित पृष्ठ ६७८-६७६ और खूबचन्दजी कृत गोम्मट्टसार गाथा ५४८ पृष्ठ १६७ ।

तथा च *	=उसपर भी (=तथा च) अर्थात् (सहस्रारसे ऊपरके देवोंका मनुष्यक्षेत्रमें)
मनुष्येषु ७। एव * उत्पत्तौ ७। अपि स्वयंप्रभाचल-	=मनुष्योंमें ही (=एव) जन्म होनेपर भी स्वयंप्रभाचलसे
बहिस् *	=बाहिर
वर्ति-तिरश्चाम् ६। अच्युत-पर्यन्तम् २। उत्पत्तिसद्भावात् ५।	=रहनेवाले तिर्यंचोंका अच्युत (सोलहवें स्वर्ग) तक जन्म होता है अर्थात् बारहवें स्वर्गसे ऊपर आनत स्वर्गके देवका मनुष्यमें ही जन्म लेनेसे यह न समझना चाहिये कि मध्यलोकका तिर्यंच भी बारहवां स्वर्गसे ऊपरका देव नहीं हो सक्ता है यहां मध्यलोकका तिर्यंच सोलहवां स्वर्ग तकका देव हो सक्ता है इस अपेक्षासे उपपाद अवस्थामें चौदहराजूमेंसे छहराजू स्पर्शन बनता है॥
अन्यथा *	=उलटा माननेमें (यदि बाहरके तिर्यंचोंका जन्म १३ से १६ तक न हो तो)
सामान्य-स्पर्श-कथन-अवसरे ७।	=संक्षेपसे (गुणस्थान अपेक्षासे कथित) स्पर्शनके कथनके प्रसंगमें
देशसंयत-अपेक्षया ३।	=(देखो इस प्रतिका पृष्ठ १३६ पंक्ति २ से ८ तक) संयतासंयतकी अपेक्षासे
षट्चतुर्दशभाग-कथन-अनुपपत्तेः ५।	=चौदहराजूमेंसे छह (राजूके स्पर्श) का उपदेश न बननेसे
क्षायिकसम्यग्दृष्टि-देशसंयतवत् *	=क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयमियोंके सदृश (जो ढाईद्वीप मनुष्य क्षेत्रमें हैं)
लोक-असंख्येयभाग-कथन-प्रसङ्गात् ५।	=(केवल) लोकके असंख्यातवें भाग के स्पर्शनके कथनका प्रसंग आता है (उपपाद और मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे छहराजूका स्पर्शन जो गुणस्थानके कथनमें संयतासंयत गुणस्थानवर्तीका पृष्ठ १३६ में कहा है वह नहीं ठहरता है जो संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यंच स्वयम्भूरमण समुद्र तक न होते जिस स्वयंभूरमणका व्यास सुमेरुमें होता हुआ एकराजूसे कुछ न्यून लम्बाईमें है
च-आनत-आदि-	=और (=च) आनत तेरहवां प्राणत चौदहवां आरण पन्द्रहवां स्वर्ग और
अच्युत-पर्यंत देवानां ६।	=अच्युत सोलहवां स्वर्ग तकके शुक्लतेश्या धारक देवोंके विहारवत् (स्पर्शन) ठहरता है (मध्यलोकसे १३वां १४वां १५वां १६वां स्वर्ग छठवें राजूमें है, शुक्ललेश्यावाले असंयत देव जो मध्यलोकसे नीचे नहीं जाते हैं परस्थान विहार अपेक्षा कुछ हीन छहराजू स्पर्शते हैं। देवोंके प्रथमसे चार तक गुणस्थान हो सक्ते हैं)

	समय मागमें जिसके उदयसे आत्माके प्रदेशोंका पहिले तियच शरीरके आकार
	रहना । इस कमका उदय विग्रह गतिमें ही होता है और अघन्य काल एक समय
	मध्यम दो समय और उत्कृष्ट तीन समयमात्र होता है) 'इति' तक समाप्ति अर्थमें है
तिरयाऊ ॥ उज्जोवो ॥ (=तियगायु ॥ उद्योतः ॥	=तिर्यंच आयु (और) उद्योत (प्रकृतियोंका बन्ध)
अत्थि T तदो * सदर-(अस्ति तत शतार)	=होता है । तिन (शतार-सहस्रार स्वर्गों)से (ऊपर) शतार
चऊ ॥ (=चतुष्कम् ॥)	=चोकडी (अर्थात् शतार युगल तक बंधनेवाली चार तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानु पूर्वी तिर्यंच आयु और उद्योत नाम कर्मकी प्रकृतियें)
॥ * णत्थि T (न * अस्ति T)	=नहीं होती हैं इस (गोमटसारके कर्मकाण्डकी ११२ वीं गाथा) से
सहस्रारकल्पात् ॥ उपरितन—देवाना ॥ तिर्यग्-	=सहस्रार (बारहवां) स्वर्गसे ऊपर रहनेवाले देवोंके तिर्यंच
आयुष्य—आदि—बन्ध—अभाव-	=आयु तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और उद्योत (प्रकृतियोंके) बन्ध न होनेके
कथनात् ॥ तेषां ॥ तिर्यक्षु ॥	=उपदेशसे तिन (सहस्रार बारहवा स्वर्गसे ऊपरवालों) का तिर्यंचोंमें
उत्पत्ति—अभाव ॥ अवगम्यते T	=उपजनेका अभाव जाना जाता है ॥ अर्थात् बारहवां स्वर्गसे ऊपरका देव हाई द्वी
	पमें मनुष्य ही होता है । शिष्यके प्रश्न करने पर कि उपपादव रि पाच अनुत्तर तक
	कुछ घाटि सात राजू स्पर्शने योग्य कहना था उत्तर था कि नहीं, क्योंकि अढ़ाई द्वीप
	(मनुष्य क्षेत्र)के मनुष्य ही सोलह स्वर्गसे ऊपर उत्पन्न होते हैं और सोलह स्वर्गसे
	ऊपरके देव मनुष्य क्षेत्र हीमें जन्म लेते हैं और भ्रमण भी वेकरते नहीं इससे उनका
	स्पर्शन असंख्यात भागमें गर्भित हो गया ॥ शिष्यने यह सुनकर कि सोलह स्वर्ग
	से ऊपरके देव मनुष्य क्षेत्रमे उत्पन्न होते हैं प्रश्न कर दिया कि बारह स्वर्गसे ऊपरके
	सर्व देव ही मनुष्य क्षेत्रमें जन्म लेते हैं तो १३ स्वर्गसे सोलहवें स्वर्ग तकके उपपाद
	विवक्षासे चौदह भागोंमेंसे छह भाग न ठहरे ॥ अब उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि—

किंतु संयतासंयतानां लोकस्यासंख्येयभागः।

किंतु * संयतासंयतानां ६। लोकस्य ६। =परंतु (क्षायिक सम्यग्दृष्टि) देश संयमियोंका (स्पर्श) लोकका
असंख्येयभागः १। = असंख्यातवां भाग है।

(१) प्राक्सामान्यकथनावसरे देशसंयतस्य षट् चतुर्दशभागा इत्युक्तम्। इदानीं क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतापेक्षया लोकासंख्येयभाग इति कथ्यते। तत्कुत इति चेत्—मानुषोत्तरपर्वतबहिर्वर्तितिर्यक्षु सर्वत्र क्षायिकसम्यक्त्वाभावात्। तत्र तदभावश्च "दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो॥ तित्थयरपादमूले केवलिसुदकेवलीमूले॥" इत्यागमादवगम्यते। प्राग्बद्धतिर्यगायुषां पश्चाद्गृहीतक्षायिकसम्यक्त्वानामपि उत्तमभोगभूमितिर्यक्ष्वेवोत्पत्तेस्तत्र क्षायिकसम्यक्त्वाभाव एव "चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं। अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगमोत्तुं॥ इति वचनात्तिर्यगायुर्बन्धेऽपि सम्यक्त्वग्रहणमस्तीत्यवगन्तव्यम्॥

प्राक्सामान्यकथन-अवसरे ७। देशसंयतस्य ६। =पहिले संक्षेप व्याख्यानके प्रसंगविषै संयमासंयमीयोंका (स्पर्शन)
षट् १। चतुर्दश १। भागाः १। इति उक्तम् १॥ =(लोकत्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) छह (राजू) ऐसा कहा गया है
इदानीम् * क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयत+अपेक्षया ३॥ =अब क्षायिक सम्यग्दर्शनवाले संयमासंयमीयोंकी विवक्षासे
लोक-असंख्येयभागः १। इति कथ्यते T =लोकका असंख्यातवां अंश (का स्पर्शन है) ऐसा कहा गया है
तत्+कुतः* इति* चेत्* =सो (लोकका असंख्यातवांभाग) क्योंकर है? ऐसे संदेह (=चेत्, होनेपर कहते हैं)
मानुषोत्तरपर्वत— =मानुषोत्तर पहाड़के (जो पुष्कर द्वीपके मध्य गोलाकार पड़कर उसके
बहिर्वर्तितिर्यक्षु ७। सर्वत्र * =दो भाग करता है) बाहिर रहनेवाले तिर्यचनिविषै सब स्थानोंमें
क्षायिकसम्यक्त्व+अभावात् ५। तत्र* =क्षायिक सम्यग्दर्शनके न होनेसे तहां (मानुषोत्तर पर्वतके बाहर)
तद्-अ-भावः १। च* =उस (क्षायिक सम्यग्दृष्टी देशसंयमी) का भी (=च) अभाव है।
जैसा कि—नीचेकी गाथासे प्रगट है॥

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो। तित्थयरपादमूले केवलिसुदकेवलीमूले॥ इसकी संस्कृत छाया नीचे लिखते हैं—
दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजः मनुष्यः तीर्थकरपादमूले केवलि-श्रुतकेवलिमूले॥ इसका निम्न लिखित शब्दशः अनुवाद—
दंसणमोह- (=दर्शनमोह-) =दर्शन मोह (की मिथ्यात्व प्रकृति- सम्यक्त्वप्रकृति-सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति) के

प्रमत्तादिसयोगकेवल्यन्तानां अलेश्यानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ (११) भव्यानुवादेन-भव्याना मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां समान्योक्त स्पर्शनम् । अभव्यैः सर्वलोकः स्पृष्टः ॥ [१२] सम्यक्त्वानुवादेन-क्षायिकसम्यग्दृष्टीनाममयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्ताना सामान्योक्तम् ।

प्रमत्त-आदि-सयोगकेवलि-अन्तानाम् ३।	=(शुक्ललेश्यावाले) प्रमत्त गुणस्थानवर्तीनिसे सयोगकेवली तकोंका
अलेश्यानाम् ३। च स्पर्शनम् ३।। सामान्य-उक्तम् ३।।	=और लेश्यारहित [= अयोगकेवलियों] का स्पर्शन सामान्य (प्रकरण)में =कथित (गुणस्थनवत्) है [पृष्ठ १३६,११५ से १२० तक इसी पुस्तक का देखो)
भव्य-अनुवादेन ३। भव्यानाम् ३। मिथ्यादृष्टि-आदि-अयोगकेवलि-अन्ताना ३। सामान्य उक्त ३।। स्पर्शनम् ३।।	=(११) भव्योंके कथनके अनुसारकरि भव्य मिथ्यादृष्टिसे लेकर =अयोगकेवली पर्यन्तोंका सक्षेप [प्रसग] में कहा हुआ (गुणस्थानवत्) =स्पर्शन है। पृष्ठ ११५से १२० तक, पृष्ठ १३२ से १३६ तक इसी प्रतिका देखो।
अभव्यै ३। सर्वलोक ३। स्पृष्ट ३। सम्यक्त्व-अनुवादेन ३।	=अभव्य करि समस्तलोक छुआजाता है। [१२] सम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे
क्षायिकसम्यग्दृष्टीनाम् ३। असयतसम्यग्दृष्टि-आदि-अयोगकेवलि-अन्तानाम् ३। सामान्य-उक्तम् ३।।	=क्षायिक सम्यग्दर्शनवाले असयत सम्यग्दृष्टि [चौथे गुणस्थानवाले) निसे =अयोगकेवली तकोंका (स्पर्शन) सक्षेप (प्रकरण) में कहा हुआ (गुणस्थानवत्) है। पृष्ठ ११५ से १२० तक, पृष्ठ १३५, १३६ इसी पुस्तक का देखो।

ऊर्ध्व अतीतानाम् ३। एष ३। क्रम ३। न अस्ति	=(सोलह) स्वर्ग (= कल्पा) से ऊपरके रहनेवालोंके यह नियम (=क्रम) नहीं है अर्थात् नवग्रैवेयकोंमें नव अनुदिशोंमें पाचअनुत्तरोंमें मनुष्यक्षेत्र (ढाईद्वीप)से मनुष्य ही जन्म लेते हैं और वहासे च्युत होकर अढाईद्वीपमें मनुष्य ही होते हैं ॥ उक्त स्थानोंसे विहारका अभाव है
इति लोक असख्येय भाग ३। एव इति अवगन्तव्य ३।।	=ऐसे लोकके असख्यातवेंभाग (का स्पर्श) ही (इनके) जानना चाहिये

आयुबधने पीछे सम्यक्त्वका होना निम्न गोमटसारकी गाथासे ज्ञात होता है—

चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं । अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥ गोम्मटसारजी कर्मकांड ३३४, जीवकांड ६५६ ।

चत्वारि अपि क्षेत्राणि आयुष्कबन्धेन भवति सम्यक्त्वं । अणुव्रतमहाव्रतानि न लभते देवायुष्कं मुक्त्वा ॥

चत्तारि २।॥ खेत्ताइं २।॥ (=चत्वारि २।॥ क्षेत्राणि २। =चारो गतियोंको (=क्षेत्राणि २।॥)

आयुगबंधेण ३। वि* (=आयुष्क-बन्धेन ३। अपि *) =आयुका बंध होकरि भी (=अपि)

होइ T सम्मत्तं १।॥ अणुवद-(=भवति सम्यक्त्वं अणुव्रत)=सम्यक्त्व (जिसके पहले किसी आयुका बंध हो चुका है) हो सक्ता है। अणुव्रत

महव्वदाइं २।॥ लहइ T (=महाव्रतानि २।॥ लभते T) =और महाव्रतोंको प्राप्त वा धारण

देव-आउगं २।॥ मोत्तुं-(=देव-आयुष्कं २।॥ मुक्त्वा-) =देव आयुके बंधको छोडकर वा वर्जकर नहीं कर सक्ता है अर्थात् चारो गतिमेंसे किसी भी गतिमें रहनेवाले जीवके चार प्रकारकी आयुमेंसे किसी भी आयुका बंध होनेपर भी सम्यक्त्वकी उत्पत्ति हो सक्ती है किन्तु सम्यक्त्व ग्रहण होनेके अनन्तर यदि तिर्यंच हो तो अणुव्रत और मनुष्य हो तो अणुव्रत वा महाव्रत उसी जीवके हो सकते हैं जिसके चार आयुकर्मोंमेंसे केवल देवायुका बंध हुआ हो । नरकायु तिर्यगायु मनुष्य आयुका बंध करनेवाले सम्यग्दृष्टिके अणुव्रत वा महाव्रत नहीं होते क्योंकि वहां व्रतके कारण भूत विशुद्ध परिणाम नहीं होसक्ते हैं ॥

इति * वचनात् ५।॥ तिर्यक्-आयुस्-बन्धे ७। अपि * =(आगमके) ऐसे (उपर्युक्त) वाक्यसे तिर्यंचकी आयुके बंध जाने पर भी

सम्यक्त्व-ग्रहणम् १।॥ अस्ति-इति--अवगन्तव्यम् १।॥ =सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है इसप्रकार जानना चाहिये ॥

(१) चत्तारि—खत्ताइं । चतुर् शब्दकी द्वितीया बहुवचन चउरो, चत्तारो, चत्तारि है (प्रा० सु० को १८०) क्षेत्रशब्दकी द्वितीया बहुवचन नपुंसक लिंग खेत्ताइं है (प्रा० सु० पृ० १७८) गोम्मटसारकी तीन प्रतियोंमें इनकी संस्कृत छाया भी चत्वारि-क्षेत्राणि है । वेही हमने लिखी हैं अनुवाद भी शब्दशः द्वितीयामें किया है । किसी किसी प्रतिमें चतुर्णाम्, क्षेत्राणाम्, षष्ठीविभक्ति-बहुवचन नपुंसक लिंगमें चत्तारि खेत्ताइंकी संस्कृत छाया लिखी है वह समझमें नहीं आई । अनुवाद षष्ठीविभक्तिमें भी बन जाता है क्योंकि हिंदी अनुवाद प्रायः षष्ठी-द्वितीया दोनोंमें लगभग एकसा होता है ॥

क्खवणा पट्ठवगो ॥१ (क्षपणा-प्रस्थापक ॥१) =क्षपणका या नाशका प्रारम्भ करनेवाला
कम्मभूमिजा ॥१ मणुसा ॥१ (=कर्मभूमिज ॥१ मनुष्य ॥१) =कर्मभूमिका उत्पन्न हुवा मनुष्य या पुरुष
तित्थयर पादमूले ॥७ (तीर्थकर—पादमूले ॥७) =तीर्थंकरके चरणोंके समीपमें (=मूले ॥७) और
केवलि सुदकेवली मूले ॥७ (केवलि श्रुतकेवलिमूले ॥७) =केवली (सयोग केवली) श्रुतकेवलीके निकटमें (=मूले ॥७) होता है अर्थात् दर्शन मोहनीय कर्मके क्षय होनेका जो क्रम है उसका प्रारम्भ तीर्थंकर, केवली अथवा श्रुतकेवलीके समीप ही होता है और उस दर्शन मोहका प्रारम्भक केवल कर्मभूमिका उत्पन्न हुवा मनुष्य ही होता है ॥ यदि पूर्ण क्षय होनेसे पहिले ही प्रारम्भक मृत्युको प्राप्त हो जाय तो उस क्षपणकी समाप्ति चारों गतिमेंसे किसी भी गतिमें हो सक्ती है ॥ गोम्मटसारजीमें यह गाथा ऐसे हैं कि–

(गाथा) दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु । मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ॥ ६४८ ॥

(छाया) दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजातो हि मनुष्यः केवलिमूले निष्ठापको भवति सर्वत्र ॥ ६४८ ॥

(अर्थ) दर्शन मोहनीय कर्मके नाशका प्रारम्भ करनेहारा कर्मभूमिका जन्मा पुरुष ही केवली वा श्रुतकेवलीके निकटमें होता है । (यदि क्षयकी समाप्तिके प्रथम वह मनुष्य मर जावे तो क्षयकी समाप्ति सर्व गतिमें हो सकी है) दर्शन मोहके क्षयका "विधान होतें होतें मरण हो जाय तौ जहां संपूर्ण दर्शन मोहके नाशका कार्य होइ निवरै तहा ताकौं निष्ठापक कहिये" सो निष्ठापक "च्यारो गतिविषै हो है" गोम्मटसारजी मुद्रित पृष्ठ १०१८—१०११ जीवकांड ॥

इति * आगमात् ॥५ अवगम्यते T प्राक्-बद्ध— =ऐसा शास्त्रसे जाना जाता है (क्षायिक सम्यक्त्व प्रारंभ होनेके) पहिले बांधी हुई
तिर्यग् आयुषां ॥६ पश्चात् * गृहीत—क्षायिक- =तिर्यंच आयुके पीछे प्राप्त हुये क्षायिक
सम्यक्त्वानाम् ॥६ अपि उत्कृष्टभोगभूमि-तिर्यक्षु ॥७ =सम्यक्त्ववालोंके भी उत्कृष्ट भोगभूमिके तिर्यंचोंमें
एव * उत्पत्तेः ॥५ तत्र * क्षायिक— =ही जन्म होने (के हेतु) से तहां (मानुषोत्तर पर्वतके बाहिर) क्षायिक
सम्यक्त्व-अभावः ॥१ एव * =सम्यग्दर्शनका अभाव ही है । किसी जीवने तिर्यंच आयु बांधी हो पश्चात् क्षायिक सम्यक्त्व हो तो वह सम्यक्त्वके कारण उत्तम भोगभूमिमें (ढाई द्वीपमें ही) जन्म लेगा।

लोकस्यासंख्येयभागः।

लोकस्य ।६। असंख्येयभागः ।१। =(स्पर्शन) लोकका असंख्यातवां अंश है

मरणरहितानां मारणान्तिकभावोऽप्यवगम्यते। अन्यथा तदपेक्षया षट् चतुर्दशभागा इति कथयन्ति। मनुष्यक्षेत्रवर्तिद्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टीनां मरणमस्ति। मारणान्तिकोऽस्ति नास्तीत्यत्र नास्माकं निश्चयः। उपदेशाभावात्। यद्यस्ति तदपिलोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावः। मनुष्यक्षेत्राद्बहिरभावात्॥

शेषाणाम् ।६। =(उपशम सम्यक्त्वके) बचे हुये (गुणस्थानवालेनि)का (स्पर्शन)
लोक असंख्येयभागः ।१। इति* अनेन ।३। =लोकका असंख्यातवां खंड है ऐसे इस (वाक्य) करि
उपशमसम्यग्दृष्टि-देशसंयत+अपेक्षया ।३। अपि* =उपशम सम्यग्दर्शनवाले संयमासंयमीनकी विवक्षासे भी
लोक-असंख्येयभागकथनात् ।५। =लोकके असंख्यातवा भागके व्याख्यानसे
मनुष्यक्षेत्रबहिर्* वर्ति-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ।६। =मनुष्य क्षेत्र (अढाई द्वीप) से बाह्य रहनेवाले उपशम सम्यग्दर्शनवाले
मरणरहितानाम् ।६। मारणान्तिक-अभावः ।१। अपि* =मृत्यु वर्जितनके मारणांतिक समुद्घातका न होना भी
अवगम्यते T अन्यथा* =जाना जाता है। दूसरे प्रकार(यदि मारणांतिक समुद्घातका होना माना जाय तो)
तद्-अपेक्षया ।३। =उस (मारणांतिक समुद्घातकी) अपेक्षासे
षट् ।१। चतुर्दश ।१। भागा ।१। इति* कथयन्ति T =(लोक त्रसनालके) चौदह राजू है (सो) छह (राजू हुये जाते) है ऐसा कहते हैं पृष्ठ १३६ इसी पुस्तकका देखो।
मनुष्यक्षेत्रवर्तिन्-द्वितीय-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ।६। =अढाई द्वीपमें रहनेवाले द्वितीय उपशम सम्यग्दर्शनके धारकोंकी
मरणम् ।१। अस्ति। मारणान्तिकः ।१। अस्ति न अस्ति इति =मृत्यु है। मारणांतिक समुद्घात है (अथवा) नहीं है ऐसे
अत्र* न अस्माकम् ।६। निश्चयः ।१। उपदेश-अभावात् ।५। =इसमें (=अत्र) शिक्षा (=उपदेश) न होनेके कारणसे हमको निर्णय नहीं है।
यदि अस्ति-तद् अपि लोक-असंख्येयभागे ।७। =जो (मारणांतिक समुद्घात) है तो भी लोकके असंख्यात खंड (के स्पर्शन)में
मनुष्य-क्षेत्रात् ।५। बहिर्* =अढाई द्वीपसे बाहर (द्वितीय उपशम सम्यक्त्व तथा उसमें मारणांतिक समु-
अभावात् ।५। अन्तर्भावः ।१। =द्घात) न होनेके हेतुसे—गर्भित है। (टिप्पणी) मनुष्य और तिर्यञ्च अढाई द्वीप तक हैं और तिर्यञ्च अढाई द्वीपसे बाहिर भी हैं तिर्यंचोंके पांचवां गुणस्थान तक हो सक्ता है और द्वितीय उपशम आठवे गुणस्थानमें होता है इसलिये तिर्यंचनके नहीं हो सका है इस कारणसे मनुष्य क्षेत्रसे बाहिर द्वितीय उपशम नहीं है

क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् ॥ औपशमिकसम्यक्त्वानामसंयतसम्यग्दृष्टीना सामान्योक्तम्। शेषाणां

क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टीनां ६।। = वेदकसम्यग्दर्शनवालोंका (जो असयतसे अप्रमत्त गुणस्थानतक है)
सामान्य-उक्तम् १।।। = सक्षेप [प्रसग] में कहा हुआ [गुणस्थानवत् स्पर्शन] है अर्थात् (१) असयत क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टिका (स्वस्थान विहार अपेक्षासे) लोकका असख्यातवा भाग है अथवा लोक त्रसनालके चौदहभागोंमेंसे आठ भाग कुछ हीन है जबकि असयत गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यक्त्वका धारक देव अच्युत सोलहवे स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करता है ॥ अच्युतस्वर्गसे मध्यलोक छहराजू है मध्यलोकसे तीसरा नरक दो राजू है ऐसे आठ राजू हुये ॥ १३५ पृष्ठानुसार [२] सयतासयत वेदक सम्यक्त्ववालोसे स्वस्थान विहारकी अपेक्षासे लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है अथवा चौदहराजू लोकत्रसनालमेंसे कुछ हीन छहराजू मारणातिक समुद्घात अपेक्षासे स्वयप्रभाचल पर्वतके बाहिरके तिर्यंचोकी उत्पत्ति सोलहवें अच्युत स्वर्गतक होनेके कारणसे छुए जाते हैं (३) प्रमत्तसयत वेदक सम्यक्त्ववालोका ओर अप्रमत्त वेदक सम्यग्दर्शनवालोंका स्पर्शन पृष्ठ १३६ के अनुकूल क्षेत्रसदृश है जो पृष्ठ ११६ के अनुसार लोकका असख्यातवां भाग [स्पर्शन] होता है ॥
औपशमिकसम्यक्त्वाना ६।। = उपशम सम्यग्दर्शनवाले
असयतसम्यग्दृष्टीना ६।। = असयत सम्यग्दृष्टियोंका
सामान्य-उक्तम् १।।। = सक्षेप प्रकरणमे कथित (गुणस्थानवत् स्पर्शन) है अर्थात् १३५ पृष्ठके अनुसार लोकके असख्यातवा भाग स्वस्थान विहार अपेक्षासे है और परस्थान विहार अपेक्षासे कुछ हीन आठराजू (जबकि अच्युत सोलहवा स्वर्गका देव तीसरे नरक तक गमन करता है पृष्ठ १३५) स्पर्शन होता है ॥
शेषाणाम् ६।। = (उपशम सम्यग्दर्शनके) शेष पाचवा से ग्यारहवा गुणस्थान तकका

(१) शेषेणां लोकासख्येयभाग इत्यनेन उपशमसम्यग्दृष्टिदेशसयतापेक्षयाऽपि लोकासख्येयभागकथना मनुष्यक्षेत्रबहिर्वर्त्युपशमसम्यग्दृष्टीनां

१३ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत्।

सञ्ज्ञा—अनुवादेन इ। =सैनीके कथनानुसार करि अर्थात् मनसहित जीवोंकी अपेक्षासे

सञ्ज्ञिनां इ। चक्षुर्दर्शनिवत् * =सैनी वा मनसहित जीवोंका [स्पर्शन] चक्षुर्दर्शनवालोंके समान है अर्थात् चक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर क्षीणकषायवालोंका स्पर्शन पंच इन्द्रिय जीवोंके सदृश है [पृष्ठ १४५] और पंचेन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश छुआ जाता है। लोकत्रसनालके चौदहराजूओंमेंसे परस्थान विहार अपेक्षासे कुछ घाटि आठ राजू हैं और मारणांतिक अपेक्षासे स्पर्शनका सर्व लोक है। [पृष्ठ १४०–१४१] सासादन गुणस्थानमें पंचेन्द्रिय जीवोंका स्पर्श स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग है। परस्थान विहार अपेक्षासे त्रसनालके चौदह राजूओंमेंसे आठ राजू कुछ हीन है और मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे चौदह राजूओंमेंसे कुछ न्यून बारह राजू है (विशेषके लिये पृष्ठ १३३.१३४) सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रियोंकरि स्वस्थानविहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग छुआ जाता है परस्थान विहार अपेक्षासे चौदह राजुओंमेंसे कुछ घाटि आठ राजू स्पर्शा जाता है [मिश्रगुणस्थानवर्ती देव और असंयत गुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करें तब कुछ न्यून आठ राजू स्पर्शते हैं पृष्ठ १३५] संयतासंयत गुणस्थानमें पञ्चेन्द्रियोंकरि स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है अथवा लोकत्रसनालके चौदह राजुओंमेंसे मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे अच्युत सोलहवां स्वर्गतक उत्पत्ति होनेके कारणसे कुछ हीन छह राजू स्पर्शा जाता है (पृष्ठ १३६) जैसे स्वयम्भूरमणाचलके बाहिरका देशसंयमी तिर्यंच अच्युत सोलहवें स्वर्ग पर्यंत जन्म लेनेसे मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे कुछहीन छः राजू स्पर्श करता है [पृष्ठ १५७] प्रमत्त संयतसे क्षीणकषाय तक सर्व गुणस्थानोंमें पंचेन्द्रिय जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रवत् है (पृष्ठ १३६) क्षेत्रवत् स्पर्शन प्रमत्तसंयत छठे गुणस्थानसे बारह तक लोकका असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ ११६)॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीना सामान्योक्तम्॥

सासादनसम्यग्दृष्टि—	=सासादन सम्यग्दर्शनवालेनिका,
सम्यग्मिथ्यादृष्टि–	=मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवर्तीनिका
मिथ्यादृष्टीना ६।	=और मिथ्यादृष्टियोंका [स्पर्शन]
सामान्य-उक्तम् १॥	=संक्षेपमें [पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवा भाग स्पर्शन किया जाता है। तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू लोकमें चौदह राजू लोकत्रसनाल है सो सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि कुछ हीन आठ राजू परस्थान विहार अपेक्षासे और मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे कुछ हीन बारह राजू छुए जाते हैं जैसे विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती देव तीसरे नरक तक विहार करते हैं सो मध्य लोकसे तीसरे नरक तक दो राजू हुए और ऊपर सोलह स्वर्ग तक विहार करते हैं तब छह राजू ये हुये इस प्रकार आठराजू परस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्शन हुये। कुछ भाग छूट जाता है अतः कुछ हीन आठराजू हुये। मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती जो केवल छठे नरक तकसे मर सक्ता है [क्योंकि सम्यक्त्व गुण सहित किसी जीवका मरण सातव नरकसे नहीं हो सक्ता है] यदि इस छठे नरकसे मारणांतिक समुद्घात करे और बादर पृथिवी कायादिक लोकके अंत भागमे उत्पन्न हो तो छठे नरकसे-मध्य लोक तक पांच राजू हुये और मध्यलोकसे अंत तक स्पर्शनमें सात राजू ये हुये कुछ [किंचित्] भाग छूनेसे रह जाता है अत. कुछ हीन बारह राजू हुये। पृष्ठ १३३, १३४ इसी अनुवादका (२) मिश्र गुणस्थानवर्ती स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनालके चौदह राजुओंमेसे कुछ हीन आठ राजू जैसे मिश्र गुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवा स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करे तब कुछ न्यून आठराजू स्पर्शते हैं पृष्ठ १३५। (३) मिथ्यादृष्टियोंकरि सर्वलोक छुआ जाता है। पृष्ठ १३२॥

सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः ॥ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः।

और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ घाटि आठ भाग छूते हैं (विशेष पृष्ठ १३५) ॥ [५] संयमासंयमी आहारक स्वस्थान स्वस्थान अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग छूते हैं और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनाडीके चौदह राजुओंमेंसे कुछ न्युन छह राजू छूते हैं॥ [६-१२] प्रमत्त संयमी छठे गुणस्थानवाले आहारकोंसे लेकर क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानवर्ती आहारकों तकका स्पर्शन क्षेत्रवत् है [पृष्ठ १३६] यह क्षेत्र सदृश स्पर्शन पृष्ठ ११६ के अनुकूल लोकका असंख्यातनां अंश होता है॥

सयोग-केवलिनाम् ६।३ = योगसहित केवलीका (जो स्वस्थानविहार और परस्थानविहार दण्ड कपाट समुद्घातोंमें आहारक और प्रतर लोक पूर्ण समुद्घातोंमें अनाहारक होते हैं)

लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ = लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन है अर्थात् सयोगकेवली आहारक और अनाहारक दोनों अवस्थाओंमें होते हैं इनका भी स्पर्शन क्षेत्रवत् है [पृष्ठ १३६] यह क्षेत्र समान स्पर्शन आहारक अवस्थामें स्वस्थान विहार अपेक्षासे और परस्थान विहार अपेक्षासे दंड-कपाट समुद्घातोंमें असंख्यातवा भाग है (विशेष पृष्ठ ११५ से १२०) और अनाहारक सयोग केवली हैं प्रतर समुद्घातमें लोकके असंख्यात भागोंमेंसे एक भाग न्यून (तीनोंवात वलयोंके क्षेत्रके बराबर न्यून) स्पर्शन करते हैं (एक भाग घाटि सर्वही लोक स्पर्शते हैं) और लोक पूर्ण समुद्घातमें अनाहारक सयोगकेवलीके आत्माके प्रदेश सर्वत्र लोकमें व्याप्त हो जाते हैं अतः सर्वलोक स्पर्शन है॥

अन्+आहारकेषु ७।३ = अनाहारक (मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-सयोगकेवली-अयोग-केवलीनिमें)

मिथ्यादृष्टिभिः ३।३ सर्वलोकः १।१ स्पृष्टः = मिथ्यादृष्टियोंकरि समस्त लोक स्पर्श्या जाता है

असञ्ज्ञिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तम्। [१४] आहारानुवादेन-आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तम् ॥

असञ्ज्ञिभिः ३। सर्वलोकः १। स्पृष्टः १। =असैनी (मनरहित)निकरि समस्तलोक स्पर्शा जाता है ॥

तद्-उभयव्यपदेश-रहितानां ६। =उन दोनो [मनसहित मनरहित] नामसे वर्जित अर्थात् सयोगकेवली अयोगकेवलीनिका स्पर्शन

सामान्य-उक्तम् १॥। =सक्षेप [प्रकरण] में कथित गुणस्थानवत् है अर्थात् एक समयमे होनेवाले उत्कृष्ट=८९=५०२ सयोगकेवलियोंका स्वस्थान स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षासे लोकका असख्यातवाभाग स्पर्श है। दडसमुद्घात और कपाट समुद्घातोंकी अपेक्षासे भी लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श है प्रतर समुद्घातमे लोकके असख्याते भागोंमेंसे एक भाग हीन [वातवलयोंके क्षेत्रके प्रमाण घाटि] सर्वलोक है और लोक पूरण समुद्घातकी अपेक्षासे सर्व ही लोकमे सयोगकेवलीके प्रदेश व्याप्त हो जाते हैं। और अयोगकेवलीनिका स्पर्शन लोकका असख्यातवाभाग स्वस्थान स्वस्थान अपेक्षासे है पृष्ठ १३९ पक्ति २,३ पृष्ठ ११८ से १२०

आहार-अनुवादेन ३। आहारकाणां=[१४] आहारके कथनानुसारकरि आहारक

मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय- =मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर क्षीणकषाय (बारहवां) गुणस्थानवर्ती

अन्तानां ६। सामान्य-उक्तम् १॥। =तकनिका (स्पर्शन) सक्षेप (प्रकरणमें) कथित (गुणस्थानवत्) है ॥ अर्थात् आहारक अवस्था जीवकी प्रथमसे तेरह गुणस्थान तक हो सकी है सो [१] मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थान-वर्ती आहारकोंकरि सब लोक छुआ जाता है (पृष्ठ १३२) (२) सासादन सम्यग्दृष्टि आहारक वाले स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असख्यातवा भाग स्पर्शन करते हैं, परस्थानविहार, अपेक्षासे लोक त्रसनाडीके चौदह राजुओंमेसे आठ राजू कुछ घाटि स्पर्शन करते हैं और मार-णातिक समुद्घातकी अपेक्षासे लोक त्रसनालके चौदह राजुओंमेसे बारह राजू कुछ न्यून छूते हैं (विशेष पृष्ठ १३३-१३४) ॥ [३-४] मिश्र गुणस्थानवर्ती आहारक और असयत सम्य-ग्दृष्टि चोथे गुणस्थानवर्ती आहारक स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असख्यातवा भाग छूते हैं

उत्पत्तिः १/१ अस्ति तथापि * लोकासंख्येयभागे ७/१ =जन्म है तब भी लोकके असंख्यात अंश (के कथन) विषैं

अन्तर्भावः १/१ मनुष्याणाम् ६/३ एव ग्रैवेयकेषु ७/३ उत्पत्तिः १/१ =गर्भित है (क्योंकि) नरोंका ही जन्म (नव) ग्रैवेयक विषैं हैं

ननु * सामान्यकथन-अवसरे ७/१ सासादन अपेक्षया ३/१ =प्रश्न-संक्षेप व्याख्यानके प्रसंगमें दूसरे गुणस्थानवर्तीनिकी विवक्षासे

द्वादश १/१ चतुर्दश १/१ भागाः १/३ इति * उक्तम् १/१ (लोकत्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) बारह (राजूका स्पर्शन है) ऐसा कहा गया है

तत्सम्भवः १/१ कथम् * इति * चेत् * =तिस (चौदह राजूमें बारह राजूके स्पर्शन) का होना कैसे है ऐसे संशय (पर कहते हैं कि)

सासादनाः १/३ अष्टमपृथिवीपर्यन्तम् २/१ =सासादनसम्यग्दृष्टी मोक्ष क्षेत्र लग (=अष्टमपृथिवीपर्यन्तम्)

मारणान्तिकम् २/१ कृत्वा-मिथ्यत्वपरिणामेन ३/१ म्रियन्ते =मारणान्तिक समुद्घात करके मिथ्यात्व स्वभावसे मरते हैं

ततः * आहारकैः ३/३ सासादनैः ३/३ अच्युतात् ५/१ =इसकारणसे (=ततः) आहारक सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि सोलहवां स्वर्गसे

उपरि * अष्टमपृथिवीपर्यन्तम् १/१ क्षेत्रम् १/१ स्पृष्टम् १/१ =ऊपर मोक्षतक (=अष्टमपृथिवीपर्यन्तम्) क्षेत्र स्पर्शा जाता है अतः बारह हुये

अच्युतात् ५/१ अधस् * षष्ठपृथिवीपर्यन्तम् २/१ =अच्युत (सोलहवां स्वर्ग) से नीचे छठवां नरक (=पृथिवी) लग

तैः ३/३ आहारकैः ३/३ अनाहारकैः ३/३ अपि =तिन (दूसरे गुणस्थानवर्ती) आहारकनिकरि (तथा) अनाहारकनसे भी

स्पृष्टम् १/१ =(कुछहीन ग्यारह राजू अर्थात् अच्युतसे छठवां नरक तक) छुआ जाता है

एतद् अपेक्षया ३/१ तद्सम्भवः १/१ भवति ॥ =इस (उत्पाद) अपेक्षासे वह (कुछ हीन ग्यारह राजूका स्पर्शन) संभव है ।

अष्टमपृथिव्याम् ७/१ उत्पद्यमानसासादनः १/१ =आठवी भूमिविषै उत्पन्न होनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टी

मिथ्यापरिणामेन ३/१ एव * (म्रियते इति) =केवल (=एव) मिथ्यास्वभावकरि मरण करते हैं (ऐसा)

कुतस् * नियमः १/१ इति * चेत् * — =कहांसे नियम है इसप्रकार संदेह (=चेत्, होनेपर कहते हैं)

एतैः ३/३ आचार्यैः ३/३ एकविकल-इन्द्रियेषु ७/३ =इन (=एतैः) आचार्योंकरि एक इंद्रिय दोइन्द्रिय त्रीन्द्रिय चारइन्द्रियमें

सासादन-अन्-उत्पत्तिपक्ष-अङ्गीकरणात् ५/१ =सासादन वालोंका जन्म न होनेकी पक्ष ग्रहण करनेसे (व्यक्त है कि आठवी पृथिवीमें पैदा होनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टि मिथ्यापरिणामसे ही मरते हैं)

कथम् * एषा १/१ प्रतीतिः १/१ =यह विश्वास (कि सासादन सम्यग्दृष्टी विकल इन्द्रियनविषै जन्म नहीं लेते) कैसे (हुआ)

सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः । एकादश चतुर्दशभागा वा देशोनाः ।

सासादन-सम्यग्दृष्टिभिः ॥	=[अनाहारक वाले] सासादन सम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती)निकरि
लोकस्य ॥ असंख्येयभाग ॥	=लोकका असंख्यातवां अंश छुआ जाता है
एकादश ॥ चतुर्दश ॥ भागाः ॥ वा देशोना ॥	=(लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं (सो) कुछ घाटि ११ स्पर्शे जाते हैं

(१) षष्ठपृथ्वीपर्यन्तवर्तिसासादनानां मध्यलोके उत्पत्तिरस्ति । मध्यलोकवर्तिनामच्युतकल्पपर्यन्तमुत्पत्तिरस्ति । तत उपपादपरिणतैस्तावत् क्षेत्रं स्पृष्टम् । तत एकादश चतुर्दशभागा अनाहारकसासादनापेक्षयेति सुगमम् । यदि ग्रैवेयकपर्यन्तं तेषामुत्पत्तिरस्ति तथापि लोकासंख्येय [illegible] । मनुष्याणामेव ग्रैवेयकेषूत्पत्तिः ॥ ननु सामान्यकथनावसरे सासादनापेक्षया द्वादश चतुर्दशभागा इत्युक्तं तत्सम्भवः कथमिति चेत्— सासादनाः सप्तमपृथिवीपर्यन्तं नारकाः [illegible] मिथ्यात्वपरिणामेन म्रियन्ते । तत आहारके सासादनैरच्युतादुपरि सप्तमपृथ्वीपर्यन्तं क्षेत्रं स्पृष्टम् । अच्युतादूर्ध्वं षष्ठपृथ्वीपर्यन्तमाहारकैरनाहारकैरपि ते स्पृष्टम् । एतदपेक्षया तत्सम्भवो भवति ॥ सप्तमपृथिव्यामुत्पद्यमानसासादना मिथ्यात्वपरिणामेनैव म्रियन्त (इति) पुनः नियम इति चेत्—एतेषाचार्यैरेकविकलेन्द्रियेषु सासादनानामुत्पत्तिपक्षाङ्गीकरणात् ॥ कथमेषा प्रतीति [illegible] चेत्—एवमेव विकलेन्द्रियं एकमेव मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमित्युक्तत्वात्पूर्वं तिर्यङ्मनुष्यसासादनापेक्षया मता चतुर्दशभागा इत्युक्तं तदप्यत्रो [illegible] सापेक्षमवगन्तव्यम् ॥

षष्ठपृथ्वीपर्यन्तवर्तिसासादनानाम् ॥	=छठवांनरक तकके रहनेवाले सासादन गुणस्थानवर्ती (नारकिनिका)—
मध्यलोके ॥ उत्पत्तिः ॥ अस्ति ॥	=मध्यलोकविर्षे जन्म है (सो छठवें नरकसे मध्यलोकतक कुछहीन पांच राजू हुये)
मध्यलोकवर्तिनाम् ॥ अच्युतकल्पपर्यन्तम् ॥	=मध्यलोकके रहनेवाले दूसरे (गुणस्थानवर्ति)निके अच्युत (सोलहवां) स्वर्ग तक
उत्पत्तिः ॥ अस्ति ततः ० उपपादपरिणतैः ॥	=(कुछहीन छ राजू) जन्म है यहां (छठे नरक) से (उपपाद) में परिणत हुये
तैः ॥ तावत् ०	=तिन (दूसरे गुणस्थानवर्तिनि) करि उतना (कुछहीन ग्यारहराजू = तावत्)
क्षेत्रं ॥ स्पृष्टम् ॥ । ततः ० एकादश ॥ चतुर्दश ॥ भागाः	=क्षेत्र स्पर्शा जाता है । तिसतें (लोकत्रसनालके) चौदहराजू मेंसे ग्यारहका स्पर्शन
अनाहारक-सासादन अपेक्षया ॥ इति सुगमम् ॥	=अनाहारक दूसरे गुणस्थानवर्तिनिकी अपेक्षासे है इसप्रकार स्पष्ट या व्यक्त है-
यदि ० ग्रैवेयकपर्यन्तम् ॥ तेषाम् ॥	=जो (सोलह स्वर्गसे ऊपर) ग्रैवेयक लग तिन अनाहारक सासादनवालोंका

सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा। अयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः ॥ स्पर्शनं व्याख्यातम्। कालः प्रस्तूयते।

सयोगकेवलिनां ६।३ लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१	= सयोग केवलियोंका [स्पर्शन] लोकका असंख्यातवां भाग (आहारक अवस्थामें स्वस्थान विहार अपेक्षासे परस्थान विहार अपेक्षासे दण्ड समुद्घात अपेक्षासे और कपाट समुद्घात अपेक्षासे) होता है
वा	= अथवा [अनाहारक अवस्थामें प्रतर समुद्घातमें एक भाग न्यून और]
सर्वलोकः १।१	= (लोक पूर्ण समुद्घातमें) समस्तलोक है [देखो पृष्ठ ११५ से १२० तक]
अयोग-केवलिनां ६।३ लोकस्य-असंख्येयभागः १।१	= अयोगकेवलियोंका [स्पर्शन] लोकका असंख्यातवां भाग है।
स्पर्शनं १।१ व्याख्यातम् १।१। कालः १।१ प्रस्तूयते।	= स्पर्शन [प्ररूपणाका] वर्णन किया गया। कालका वर्णन किया जाता है

(१) विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुग्घदा अजोगी य। सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ॥ गोम्मटसार जीवकांड गाथा ६६६

विग्रहगतिमापन्नाः केवलिनः समुद्घाताः अयोगिनः च। सिद्धाः च अनाहाराः शेषाः आहारकाः जीवाः ॥ गाथाकी यह संस्कृत छाया है।

विग्गहगदिमावण्णा १।३ (=विग्रहगतिमापन्नाः १।३)	= विग्रहगति (= नवीन जन्म धारण करनेके लिये गमन) को प्राप्त हुये जीव
केवलिणो १।३ समुग्घदा १।३ (=केवलिनः १।३ समुद्घाता १।३)	= (प्रतर, और लोक पूरण) समुद्घात प्राप्त सयोगकेवली
अजोगी १।३ य* सिद्धा १।३ य*(अयोगिनः १।३ च सिद्धाः १।३ च)	= और (= य च) अयोगी जिन और (= य = च) सिद्ध भगवान
अणाहारा १।३ सेसा १।३ (=अनाहाराः १।३ शेषाः १।३)	= अनाहारक (जीव) हैं अवशेष वा बचे हुये
आहरया १।३ जीवा १।३ (=आहारकाः १।३ जीवाः १।३)	= आहारक जीव हैं (देखो पृष्ठ ६२ आहार और आहारकके लिये)

(२) प्रस्तूयते-स्तु अदादि द्वितीयगणका परस्मैपद और आत्मनेपदी धातु प्रशंसा अर्थमे आता है ॥ कर्मणि प्रयोग बनानेमें यदि धातुके अंतमें इ अथवा उ होवे तो उसको दीर्घ करके य प्रत्यय लगा देते हैं पश्चात् आत्मनेपद प्रत्यय लगा देते हैं ॥ स्तु धातुमें उपसर्ग लगाकर स्तुके उ को दीर्घ करके य कर्मणि प्रत्यय जोड़कर प्रस्तूय बना लिया पश्चात् ते अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपदी वर्तमान कालका प्रत्यय जोड़ा तो प्रस्तूयते बन गया ॥

अमयतसम्यग्दृष्टीनां लोकस्यासख्येयभागः। पद् चतुर्दशभागावा देशोना' ॥

अर्थात् अनाहारक सासादन सम्यग्दृष्टि " छठा पृथिवीतैं मध्यलोकमें उपजे ताकै उत्पाद अपेक्षा तो पाच राजू अर अच्युततैं मध्यलोकमें आय उपजै, ताके उत्पाद अपेक्षा छह एसें ग्यारह राजू रह । मारणांतिक अपेक्षा बारह राजू होय हैं । परन्तु मारणांतिकमे अनाहारक नाहीं । तातैं उत्पाद अपेक्षा ग्यारह हैं ॥" सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ८८ ॥

असयतसम्यग्दृष्टीना ।६। लोकस्य ।६। असख्येयभाग' ।१	=(अनाहारक) अत्र गुणस्थानवर्तीनिका (स्पर्शन) लोकका असख्यातवा अश है ।
पद् ।१ चतुर्दशभागा ।१ वा देशोना' ।१	=वा (लोक त्रसनालीके) चौदह राजू हैं (सो) कुछ हीन छह हुए जाते हैं
इति चेत्	=इसप्रकार सशय (=चेत्) (होनेपर कहते हैं)
पूर्वम् ।७। एकविकलइन्द्रिये ।७। एकम् ।७। एव	=पहिले (देखा पृष्ठ १४० पंक्ति ३) एक इन्द्रिय विकल इन्द्रीमें एक ही
मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् ।१। इति उक्तत्वात् ।५। पूर्वम् ।७।	=मिथ्यात्व गुणस्थान है ऐसे कथन होनेसे प्रथम (देखो पृष्ठ १३८ पंक्ति ४)
तिर्यग्-मनुष्यसासादन-अपेक्षया ।३।	=(दूसरे गुणस्थानवर्ती) तिर्यंच तथा मनुष्यनकी अपेक्षासे
सप्त ।१ चतुर्दश ।१ भागा ।१ इति उक्तम् ।१।	=(लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) सात (राजू स्पर्शे जाते । है ऐसे कहा गया है
तद् न अपि	=पहिले कहा हुआ (=तद्) भी (चौदह राजूमेंसे बारह राजूका स्पर्शन तथा)
अत्र उक्तम् ।१।	=यहा (=अत्र) कहा हुआ (चौदह राजूमसे सासादन तिर्यंच और नरनका सात राजू स्पर्शन)
मारणान्तिक अपेक्षया ।३। इति	=मारणान्तिक समुद्घातकी विवक्षाकरि है ऐसें—
अवगन्तव्यम् ।१।	=जानने योग्य है (चौदह राजूमें ग्यारह राजू उत्पाद अपेक्षासे हैं बारह राजू मारणांतिक अपेक्षासे हैं परन्तु मारणांतिकमें अनाहारक नहीं है, आहारक ही है)

तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः । उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्त्तो देशोनः ॥

तत्र स+आदिः ।१। सपरि+अवसानः ।१।	=तहां आदिसहित अन्तसहित अर्थात् सादिसान्त
जघन्येन ।३। अन्तर्मुहूर्त्तः ।१।	=जघन्य [अपेक्षा] करि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।३। अर्धपुद्गलपरिवर्तः ।१। देशोनः।१।	=अतिशयकरि कुछ हीन अर्धपुद्गल परावर्तन है

कश्चित्+तु गृहीतसम्यक्त्वः ।१।	=परतु (=तु) कोई (जीव) सम्यग्दर्शन प्राप्तकरि
मिथ्यात्वम् ।२।। प्राप्नोति । तस्य ।६। तद्+मिथ्यात्वम् ।१।।	=मिथ्यात्वको ग्रहण करता है (प्राप्नोति)=तिस (जीवकै) वह मिथ्यात्व
सादिः ।१। सपरि+अवसानम्।१।।	=आदिसहित (तथा) अन्तसहित अर्थात् सादिसान्त है

(२) यः कश्चित् गृहीतवेदकोपशमसम्यक्त्वो मिथ्यात्वं प्राप्य संसारे परिभ्रमति स नियमेनार्धपुद्गलपरिवर्तनकालपरिसमाप्तौ संसारे न तिष्ठति किंतु मुक्तो भवति तदुक्तम्-पुद्गलपरिवर्तार्धं परितो व्यालीढवेदकोपशमौ । वसतः संसाराब्धौ क्षायिकदृष्टिर्भवचतुष्कः ॥ इति सम्यक्त्व-ग्रहणम् । पुनः अर्धपुद्गलपरिवर्तनपरिसमाप्तेः प्रागेव भवति । अन्यथा तदा मुक्त्यनुपपत्तिस्ततः सादिपर्यवसानमिथ्यात्वकालस्योत्कृष्टस्य देशोनार्धपुद्गलपरिवर्तत्वं युक्तमेव ॥

यः ।१। कश्चित्*गृहीतवेदक+उपशमसम्यक्त्वः ।१।	=जो कोई जीव क्षायोपशमिकसम्यग्दर्शन(=वेदक,तथा)उपशमसम्यग्दर्शन ग्रहणकरि
मिथ्यात्वम् ।२।। प्राप्य –	=(पश्चात्) मिथ्यात्वको प्राप्त होकर
संसारे ।७। परिभ्रमति सः ।१। नियमेन ।३।	=जगतविषै परिभ्रमण करता है वह निश्चयसे
अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनकालपरिसमाप्तौ ।७। संसारे ।७।	=आधापुद्गलपरिवर्तन समय परिपूर्ण होनेपर संसारमें
न तिष्ठति किंतु * मुक्तः ।१। भवति ।३।	=नहीं रहता है परन्तु मुक्त हो जाता है
तद्+उक्तम् ।१।।	=सो (ही निम्न लिखित आर्याछंदमें) कहा गया है
व्यालीढवेदक+उपशमौ ।१।	=क्षायोपशमिक (और) उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त करके
पुद्गलपरिवर्त+अर्धं ।२।। परितः*वसतः ।संसार+ अब्धौ।७।	=अर्द्धपुद्गलपरावर्तन काल सर्वत्र संसाररूप समुद्रमें बसते हैं (और)
क्षायिकदृष्टिः ।१। भवचतुष्कः ।१।	=क्षायिकसम्यग्दर्शनवालोंकरि चार जन्म (=भव) (धारण किये जाते) हैं

अर्थात् वेदक और उपशम सम्यक्त्व होनेके पश्चात् मिथ्यात्व ग्रहण होनेपर जीव उत्कृष्ट अर्द्धपुद्गल परावर्तन संसारमें भ्रमण करके पीछे मोक्ष प्राप्ति करता है और क्षायिक सम्यग्दृष्टी उत्कृष्ट चार भवको धारण करके मोक्ष प्राप्त करता है ।

स द्विविधः । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्–मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एक-जीवापेक्षया त्रयो भङ्गाः । अनादिरपर्यवसानः[1] अनादिसपर्यवसानः सादिसपर्यवसानश्चेति ॥

सः ॥ द्विविधः ॥ सामान्येन ॥ विशेषेण ॥ च	= वह [काल] दो प्रकारका है संक्षेपसे और भेदसे
सामान्येन ॥ तावत् मिथ्यादृष्टेः ॥	= संक्षेपकरि प्रथम मिथ्यादृष्टिका
नानाजीव+अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥	= अनेक जीवोंकी अपेक्षासे समस्त काल है
एक-जीव+अपेक्षया ॥ त्रयः ॥ भङ्गाः ॥	= एक आत्माकी विवक्षाकरि तीन भंग हैं
अनादिः ॥ अपरि-अवसानः ॥	= (अभव्यका) अनादि अन्त (= अवसान) रहित [= अपरि] = अर्थात् अनादि अनन्त (काल) है
अनादिः ॥ सपरि+अवसानः ॥	= (भव्यका) अनादि अन्त (= अवसान) सहित (= सपरि) अर्थात् अनादिसान्त (काल) है
स+आदिः ॥ सपरि+अवसानः ॥ च इति	= बहुरि [भव्यका] आदिसहित अन्त [= अवसान] सहित [= सपरि] सादिसान्त [काल] है ऐसे तीन भंग हैं,

(1) अनादिरपर्यवसानो मिथ्यात्वकालः अभव्येषु । अनादिमिथ्यादृष्टिः कश्चन प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृहीष्यति तस्य प्राक्तनमिथ्यात्वकालः अनादिः सपर्यवसानः कश्चित्तु गृहीतसम्यक्त्वो मिथ्यात्वं प्राप्नोति तस्य तन्मिथ्यात्वं सादिसपर्यवसानम् ।

अनादिः ॥ अपरिअवसानः ॥ मिथ्यात्वकालः ॥	= अनादि अन्तरहित मिथ्यात्वकाल अभव्य जीव हैं अर्थात् अभव्य मिथ्यादृष्टियों का काल अनादि अनन्त है
अनादिमिथ्यादृष्टिः ॥ यः ॥ कश्चन ॥	= अनादि मिथ्यादृष्टी जो (= यः) कोइ (= कश्चन)
प्रथम+उपशमसम्यक्त्वम् ॥ गृहीष्यति ॥	= प्रथम उपशम सम्यग्दर्शनको धारण करैगा
तस्य ॥ प्राक्तन-	= तिस (प्रथम उपशम सम्यग्दर्शनवाले) का पहिलेका (= प्राक्तन)
मिथ्यात्वकालः ॥ अनादिः ॥ सपरि+अवसानः ॥	= मिथ्यात्वका समय अनादि अन्त सहित (= सान्त) है

जीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण षडावलिकाः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः ॥ एकजीवं प्रति जघन्यः उत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः "तिण्णि सहस्सा सत्त य सदाणि तेहत्तरि च उस्सासा ॥ एसो हवइ मुहुत्तो सव्वेसिं चेव मणुयाणं ॥ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि

जघन्येन ३। एकः ३। समयः ३। उत्कर्षेण ३। षट्+आवलिकाः ३। = जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि छह आवली है
सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ३। नानाजीव+अपेक्षया ३। जघन्येन ३। = मिश्रगुणस्थानवालेका अनेक जीवोंकी अपेक्षासे जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्त्तः ३। उत्कर्षेण ३। पल्य+उपम+असंख्येयभागः ३। = अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां अंशके बराबर है
एक-जीवम् ३। प्रति ※ = (मिश्रगुणस्थानवर्तीका) एक एक (=प्रति) जीवका
जघन्यः ३। च उत्कृष्टः ३। अन्तर्मुहूर्तः ३ = जघन्य तथा उत्कर्ष (काल) अन्तर्मुहूर्त है
असंयतसम्यग्दृष्टेः ३। = असंयत सम्यग्दर्शन [चौथे गुणस्थान]वालेका
नानाजीव–अपेक्षया ३। सर्वः ३। = अनेक आत्माओंकी विवक्षाकरि समस्त
कालः ३। एकजीवम् ३। प्रति※ जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः ३। = काल है प्रत्येक जीवके जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है
[जिस मुहूर्तका प्रमाण निम्नलिखित आर्या छंदमें कहते हैं]
सव्वेसिं ३। चेव ※ मणुयाणं ३। (सर्वेषां ३। च एव मानवानां ३।) = समस्त मनुष्योंके ही
तिण्णि ३। सहस्सा ३। सत्त ३। य [त्रीणि ३। सहस्राणि ३। सप्त ३। च] = तीन सहस्र और (=च) सात
सदाणि ३। तेहत्तरिं ३। च उस्सासा [३। शतानि ३। त्रिसप्तति: ३। च उच्छ्वासाः ३।] = सौ तथा तेहत्तरि उच्छ्वास होतो
एसो ३। हवइ मुहुत्तो [= एषः मुहूर्तः भवति] ३। = यह मुहूर्त होता है
उत्कर्षेण ३। त्रयस्त्रिंशत् ३। सागरोपमाणि ३। = उत्कृष्टकरि तेतीस सागरके बराबर [=उपम]
स+अतिरेकाणि ३। = [कुछ] अधिक सहित है अर्थात् तेतीस सागरसे अधिक है

१ त्रीणि सहस्राणि सप्तशतानि अधिक सप्ततिरुच्छ्वासा मुहूर्त्तः कथ्यते ३७७३ ॥ सैतीससौ तेहत्तरि उच्छ्वासोंका एक मुहूर्त्त होता है

सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक: समयः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः ॥ एक-

सासादनसम्यग्दृष्टेः ६। नानाजीव+अपेक्षया ३।। =सासादन [दूसरे गुणस्थान]वालेका अनेक जीवकी विवक्षासे
जघन्येन ३। एक १। समय १। =जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ३। पल्य+उपम+असंख्येयभाग: १। =उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां अंश बराबर [=उपम] है
एकजीवम् २। प्रति* =[सासादन सम्यग्दृष्टि] एक जीवकी अपेक्षासे [=प्रति]

इति सम्यक्त्वग्रहणम् १।। पुन अर्धपुद्गल- =इस प्रकार सम्यग्दर्शनका ग्रहण है फिर आधा पुद्गल
परिवर्तनपरिसमाप्त ५।। प्राक् * एव भवति =परावर्तन परिपूर्ण होनेसे पहिले ही (जीवके सम्यक्त्व) हो आता है
अन्यथा =दूसरे प्रकार यदि अर्ध पुद्गलपरावर्तनके पूरे होनेसे पहिले सम्यक्त्व न हो
तदा मुक्ति + अन्+उपपत्ति १।। तत ' =तौ (=तदा) मोक्षका (प्राप्तिका ' प्रसंग नहीं बनता है तिससे
स+आदि+परि-अवसानमिथ्यात्वकालस्य ६। उत्कृष्टस्य ६। =आदि सहित अन्त (=अवसान) सहित (=परि) अर्थात् सादिसान्त उत्कृष्ट मिथ्यात्वका काल
देशोन+अर्धपुद्गल परिवर्तनम् १।। युक्तम् १।। एव =कुछ हीन आधा पुद्गलपरिवर्तन समय परिपूर्ण होना ठीक ही है

आवलिका चासंख्यातसमयलक्षणा भवति । गोमट्टसारे जीवकाण्डे सम्यक्त्वमार्गणायां तथा चोक्तम् । आवलि असंखसमया संखेज्जावलिसमूह उस्सासो । सत्तुस्सासा थोवो सत्तत्थोवा लवो भणियो ॥ ५७४ ॥ आवलिरसंख्यसमया संख्येयावलिसमूह उच्छ्वास । सप्तोच्छ्वासा' स्तोक सप्त स्तोका लवो भणित ।

च+असंख्यातसमयलक्षणा १।। आवलिका १।। भवति तथा च* =बहुरि (=च) असंख्यात समय लक्षणवाली एकआवली होती है जैसा कि
गोमट्टसारे जीवकाण्डे सम्यक्त्वमार्गणायां ७।। उक्तम् =गोमट्टसार जीवकाड सम्यक्त्व मार्गणामें कहा गया है
आवलि १।। असंखसमया १। (=आवलि १।। असंख्यसमया १।)=असंख्यात समयवाली (एक) आवली है
संखेज्जावलिसमूह १। (=संख्येय-आवलि-समूह १।) =संख्यातआवलीके समूह रूप या संख्यात आवलियोंका समुदाय
उस्सासो १। सत्तुस्सासा १। (उच्छ्वास १। सप्तोच्छ्वासो१।) = (एक) उच्छ्वास होता है ॥ सात उच्छ्वासवाला
थोवो १। सत्तत्थोवा १। (=स्तोक १। सप्तस्तोका १।) =(एक) स्तोक होता है ॥ सात हैं स्तोक जिसके ऐसा
लवो १। भणियो १। (लव १। भणित) =(एक) लव होता है

सायर-उवमा १।१ णिद्दिट्ठा १।१ (सागर-उपमा १।१ निर्दिष्टा १।१) =सागर प्रमाण (=उपमा) कहा गया है
मणुव-देवहवे T (=मानवः देवः-भवेत् T) =(वेदक सम्यक्त्वकी अवस्थामें जीव) मनुष्य वा देव होता है
इति =ऐसा (प्रश्न होनेपर) कि असंयत सम्यग्दृष्टीके (जिसका काल तेतीस सागरसे कुछ अधिक कहा है) वेदक सम्यक्त्व भी होता है उस वेदकका समय उत्कर्ष अपेक्षा छ्यासठि सागर है सो असंयत काकाल छ्यासठि सागर क्यों न कहा, उत्तर
गाथा + उदितप्रकारेण ३।१ वेदकसम्यक्त्वस्य ६।१ =आर्या छंदसे कहे हुये प्रकारसे क्षायोपशम सम्यग्दर्शनका
उत्कर्षेण ३।१ षट्षष्टिसागर+उपमपर्यन्तम् २।१ =उत्कृष्टकरि छ्यासठि सागर तक
स्थितिसम्भवे ७।१ अपि* असयमेन ३।१ सह*तावत्* =टिकाव होनेपर भी असंयम सहित इतने (छ्यासठि सागर)
कालम् २।१ तस्य ६।१ अवस्थान–असम्भवात् ५।१ =समय तक तिस (असंयतसम्यग्दृष्टी) की स्थिति अवस्थान असम्भव है क्योंकि
मध्ये ७।१ देशसंयमसकलसंयमयोः ६।२ =(अन्तर्मुहूर्त और चौतीस सागरके) बीचमें (असंयतसम्यग्दृष्टीके) अणुव्रतवा महाव्रतकी
प्राप्तिसम्भवात् ५।१ इह * तस्य ६।१ =प्राप्ति हो जाती है। यहां (इस प्रकरणमें) तिस (असंयत सम्यग्दृष्टिके)
उत्कृष्टत्वेन ३।१ अग्रहणम् १।१ इह* =उत्कर्षपने (छ्यासठि सागर कालका) ग्रहण नहीं है किंतु यहां नियमसे (=खलु)
असंयतसम्यग्दृष्टिकालः १।१ खलु* =असंयमीसम्यग्दर्शनवालेका समय कहा जा रहा है
न* तु* सम्यक्त्वकालः १।१ =(=तु) न (कि) सम्यग्दर्शनका काल
परीक्षितुम् =परीक्षा या निरूपण करनेके लिये (परीक्षितुम्, हेत्वर्थ कृदंत है)
उपक्रान्तः १।१ =आरम्भ किया गया है। उत्तरका भावार्थ यह है कि वेदक सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति छियासठि सागर है और असंयत सम्यग्दृष्टिके वेदक सम्यक्त्व भी होता है परंतु असंयम अवस्थामें जीव केवल तेतीस सागरसे कुछ अधिक ही उत्कृष्टकरि रह सकता है पश्चात् वही जीव संयमी या सकल संयमी हो जाता है इस कारण प्रकरणके अनुसार असंयत सम्यग्दृष्टिका समय कुछ अधिक तेतीस सागर कहा है सम्यक्त्वका समय नहीं कहा, न ऐसा समझना चाहिये ॥

(२) त्रीणि ।। सहस्राणि ।। सप्त ।। शतानि ।। =तीन हजार सात सौ
त्रि+अधिकसप्तति ।। उच्छ्वासा ।। मुहूर्त ।। कथ्यते =तेहत्तरि उच्छ्वासें है (सो) मुहूर्त कही गई है ॥ ३७७३ ॥

(१) य कश्चित्संयमी सम्प्राप्तमृति सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नस्तत्र स्वस्थितिं जीवित्वा मृतो मनुष्यगतावुत्पन्ना यावद्देशसंयम सकलसंयम वा गृह्णाति तावत्साधिक त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालोऽयमसंयतसम्यग्दृष्टेरुत्कृष्टकालोवेदितव्य ॥ ननु ॥ "वेदगसम्मत्तट्ठिदिजहण्णमंतोमुहुत्तमुक्कस्स । छासट्ठिसायरसमा णिद्दिट्ठा मणुयदेवहवे" ॥ इति गाथोदितप्रकारेण वेदकसम्यक्त्वस्य उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमपर्यंत स्थितिसम्भवेऽपि असंयमेन सह तावत्कालं तस्यावस्थानासम्भवात् । मध्ये देशसंयमसकलसंयमयो प्राप्तिसम्भवादिह तस्योत्कृष्टत्वेनाग्रहणम् । इह खल्वसंयतसम्यग्दृष्टिकालः परीक्षितुमुपक्रान्तो न तु सम्यक्त्वकाल ॥

य ।। क + चित् संयमी ।। सम्प्राप्तमृति ।। =जो कोई संयम धारण करनेवाला मरण पाकर
सर्वार्थसिद्धौ ।। उत्पन्न ।। =सर्वार्थसिद्धिविमानविषें जन्म धारण करता है (सो)
तत्र स्वस्थितिम् ।। =वहांसे अपने कालकी मर्यादा भर
(जो तेतीस सागर है क्योंकि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य आयु नहीं होती है)
जीवित्वा मृत ।। मनुष्यगतौ ।। उत्पन्न ।। =जीवित रहकर मरता है, मनुष्यगतिमें जन्म लेता है (और)
यावत् देशसंयम ।। वा सकलसंयम ।। गृह्णाति T =जब तक अणुव्रत या महाव्रत धारण करता है
तावत् स ।। अधिक-त्रयस्त्रिंशत्सागर+उपमकाल ।। =तबतक कुछ अधिक तेतीस सागरके बराबर समय होता है
अयम् ।। असंयतसम्यग्दृष्टे ।। काल ।। =यह (=अयम् काल) असंयत सम्यग्दर्शनवालेका
उत्कृष्टकाल ।। वेदितव्य ।। ॥ ननु =उत्कृष्ट समय जानना चाहिये (प्रश्न)

वेदगसम्मत्तट्ठिदि जहण्ण अंतोमुहुत्तमुक्कस्स । छासट्ठिसायरसमा णिद्दिट्ठा मणुयदेव हवे ।

वेदकसम्यक्त्वस्थितिजघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्टा । षट्षष्टिसागरोपमा निर्दिष्टा मानवदेव भवेत् ।

वेदगसम्मत्तट्ठिदि-(वेदकसम्यक्त्वस्थिति) =वेदक या क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनका ठहराव या टिकाव
जहण्ण ।। अंतोमुहुत्त ।। (जघन्य ।। अन्तर्मुहूर्त ।।) =जघन्य अन्तर्मुहूर्त है (३ घटेके भीतर भीतर (=अंतर) होता है
उक्कस्स—छासट्ठि-(उत्कृष्ट—षट्षष्टि—) =अधिकसे अधिक (=उत्कृष्ट) छासठ

एटानिवासी जगरूपसहायवकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद। अध्याय १ सूत्र ८

एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥

एकजीव-अपेक्षया ३। च जघन्येन ३। एकः १। समयः १।	=तथा (=च) एकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	=उत्कृष्ट करके अंतर्मुहूर्त है

(१) नन्वेवं मिथ्यादृष्टेरप्येकसमयः कस्मान्न सम्भवतीत्यनुपपन्नम्। कोऽर्थः? मिथ्यादृष्टेरेकसमयः कालो न घटते इत्यर्थः। कस्मान्न? प्रतिपन्नमिथ्यात्वस्यान्तर्मुहूर्तमध्ये मरणासम्भवात्॥ तदुक्तम्—"मिथ्यात्वं दर्शनात्प्राप्ते नास्त्यनन्तानुबन्धिनाम्। यावदाकालिका पाकान्तर्मुहूर्ते मृतिर्न च॥१॥" सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः परिमाणकाले तद्गुणस्थानत्यागान्नैकसमयः सम्भवतीति प्रतिपन्नासंयतसंयतासंयतगुणोऽप्यन्तर्मुहूर्तमध्ये न म्रियते। अतोऽसंयतसंयतासंयतयोरप्येकसमयो न भवति॥

एवम्* मिथ्यादृष्टेः ६। अपि एकसमयः १।	=ऐसे ही मिथ्यादृष्टीका एक समय
कस्मात् ५। न* सम्भवति इति ननु	=किस कारणसे नहीं सम्भवै है ऐसे प्रश्न (=ननु होनेपर कहते हैं कि)
अन्+उपपन्नम् १।१।	=(मिथ्यादृष्टीके जघन्य एक समयका काल) पाया नहीं जाता है (=अनुपपन्न—पद्माकोष पृष्ठ ७७)
कः १। अर्थः १।	=(अनुपपन्न अथवा पाया नहीं जाता है इस वाक्यका) क्या अभिप्राय है?
मिथ्यादृष्टेः ६। एकसमयः १। कालः १। न घटते T	=(उत्तर) मिथ्यादृष्टीका एक समय काल नहीं होता है (=घटते)
इति* अर्थः १। कस्मात् ५। न	=ऐसा अभिप्राय है किस हेतुसे (एक समय) नहीं (होता है)? (क्योंकि सम्यक्त्वके पीछे)
प्रतिपन्नमिथ्यात्वस्य ६।१। अन्तर्मुहूर्तमध्ये ७।१।	=प्राप्त वा लब्ध मिथ्यात्ववाले वा मिथ्यादृष्टीका अन्तर्मुहूर्तके भीतर
मरण—असम्भवात् ५।	=मृत्यु नहीं हो सक्ती है॥
तद् उक्तम् १।१। दर्शनात् ५।१।	=सो (निम्नलिखित श्लोकमें) कहा गया है। सम्यक्त्वसे (सम्यग्दर्शनके पीछे)
मिथ्यात्वं २।१। प्राप्ते ७।१। अनन्तानुबन्धिनाम् ६।३।	=मिथ्यात्वको प्राप्त होने पर अनंतानुबंधी (क्रोध-मान-माया—लोभ) का
यावत्* अकालिका १।१। न अस्ति	=जब तक असमय वा उदयका अभाव (अकालिका) नहीं होता है
तावत् पाक-अन्तर्मुहूर्ते ७। मृतिः १।१। न* च*	=(तब तक मिथ्यादृष्टिका उस) पाक वा उदयके अन्तर्मुहूर्तमें मरण भी (=च) नहीं

सयतासयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः ॥ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया

सयतासयतस्य ६। नानाजीव अपेक्षया ३।। सर्व १।	=देशसयमा (पाचवा गुणस्थानवर्तीनि) का अनेक जीवकी अपेक्षासे सब
काल १। एकजीव २। प्रति * जघन्येन ३।।।	=काल है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य करके अन्तर्मुहूर्त है [पांचवागुण
अन्तर्मुहूर्त, १। उत्कर्षेण ३। पूर्वकोटी १।। देशोना १।।	=स्थानवर्तीका) उत्कृष्टकरि कुछ हीन करोड पूर्व है (एकपूर्व चौरासी लाख पूर्वांगका है और एक पूर्वांग चौरासी लाख वरसका होता है)
प्रमत्त अप्रमत्तयोः ६।	=प्रमत्तसयमी (छठा गुणस्थानवर्ती) अप्रमत्त सयमी [सातवांगुणस्थानवर्ती]का
नानाजीव-अपेक्षया ३।। सर्व १। कालः १।	= अनेक जीवकी विवक्षाकरि समस्त काल है
एकजीव २। प्रति जघन्येन ३।।। एकः १। समयः १।	=एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ३। अन्तर्मुहूर्त १।	=(प्रमत्त तथा अप्रमत्तका समय) उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है ॥
चतुर्णाम् ६।	=चार अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय उपशांत मोह
उपशमकानाम् ६। नानाजीव-अपेक्षया ३।।	=उपशम (गुणस्थान वर्तीनिका अनेक जीवोंकी विवक्षाकरि

(१) यथाष्टक शैशवमतीत्य गृहीतदेशसयम पूर्वकोट्यायुर्यो जीव आमरणाद्देशसयम पालयति तदपेक्षया देशोनपूर्वकोटी देशसयतकालः ।

यथ अष्टकम् १।। शैशवम् १।। अतीत्य-	=आठ वरस बाल अवस्थाको प्राप्त करके वा पहुच करके (अति इत्य)
गृहीतदेशसयम १।	=अणुव्रत धारण करने वाला (इत्य = प्राप्य, अति = लाघना)
पूर्व+कोटी—आयु १।।य १। जीव १। आमरणात् ५।।	=एक कराड़ पूर्व आयुका धारक जो आत्मा मृत्यु होने तक (आ = तक)
देशसयमम् २। पालयति T तद् अपेक्षया ३।।	=अणुव्रतको पालन करता है उस (जीव) की विवक्षासे
देशोनपूर्वकोटी १।। देशसयतकाल १।	=कुछ हीन कराड पूर्व सयमासयमा का काल (होता) है

मुहूर्तः॥ सयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना॥

सयोगकेवलिनाम् ३। नानाजीव-अपेक्षया ३। सर्वः	=योगसहित केवलीनिका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः १। एकजीवम् २। प्रति	=काल है एक जीव [अर्थात् एक सयोगकेवली] की अपेक्षासे
जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	=जघन्य करि अन्तर मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। पूर्वकोटी १। देशोना १।	=उत्कर्ष करि कुछ हीन करोड पूर्व है [निम्नलिखित टिप्पणी अवश्य देखो]

च अन्तरे ७। मरण असम्भवात् ५। =निश्चय (=च)(आयुके) बीचमें वा भीतर मृत्युके सम्भव न होनेसे (जघन्य और उत्कर्षकरि अंतर्मुहूर्त है)

(१) सयोगकेवलिगुणस्थानानन्तरमन्तर्मुहूर्तमध्ये अयोगकेवलिगुणस्थानप्राप्तेः।

सयोगकेवलिगुणस्थान—अनन्तरम् १। =सयोगकेवलि (तेरहवां) गुणस्थानके अत्यन्त समीप वा लगतेही (अनन्तरम्)

अंतर्मुहूर्तमध्ये ७। अयोगकेवलिगुणस्थानप्राप्तेः ५। =अंतर्मुहूर्तमें (=मध्ये) अयोग केवली गुणस्थानकी प्राप्ति होनेसे (एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अंतर मुहूर्तकाल सयोगकेवलिका है), भावार्थ-क्षीणकषाय गुणस्थानसे जीव तेरहवां गुणस्थानमें आकर एक अंतर्मुहूर्त रहकर उस मुहूर्तके भीतर ही भीतर चौदहवां गुणस्थानमें आनेकी अपेक्षासे तेरहवांका समय जघन्यपने एक अंतर्मुहूर्त है॥

(२) अष्टवर्षानन्तरं तपो गृहीत्वा केवलमुत्पादयतीति कियद्वर्षहीनत्वात्पूर्वकोटी वेदितव्या

अष्टवर्ष-अनन्तरं १। तपः २। गृहीत्वा— =(जन्मसे घाटिसे घाटि) आठ वरस पीछे (=अनन्तरं) तप धारण करके (जीव)

केवलं २। उत्पादयति १ इति =केवलज्ञानको प्राप्त करता है इसलिये

कियत् * वर्षहीनत्वात् ५। पूर्वकोटी १। वेदितव्या १। =कुछ वर्ष हीनपनाकरि करोड़ पूर्व जानना चाहिये।

"बारै मास वर्ष लाख चउरासी पूरवांग गुणा करो सो पूरव आगें भेदरास है॥" द्यानत द्रव्य पचीसी १२। बारह महीनेका एक वर्ष, चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग, चौरासी लाख वर्षको चौरासी लाख वर्षसे गुणा करो सो पूरव है॥ अतः ८४०००००×८४००००० वर्ष अर्थात् सात नील छप्पन खर्व वर्षका ७०५६ ००००० ००००० का अथवा चौरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है॥

चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्त-

चतुर्णाम् ६।	=चार (आठवा, नववां, दशवा तथा बारहवां) गुणस्थानवर्तीनिके
क्षपकाणाम् ६। अयोगकेवलिनाम् ६। च	=क्षपक श्रेणीवालोंका तथा [=च] अयोगकेवलियोंका [काल]
नानाजीव-अपेक्षया ३। एकजीवअपेक्षया ३। च-	=अनेक जीवकी विवक्षाकरि तथा एक जीवकी विवक्षासे
जघन्यः च उत्कृष्टः १। च अन्तर्मुहूर्तं १।	=जघन्य और [=च] उत्कर्ष भी (=च) अतर्मुहूर्त है

है। भावार्थ-यह है कि यदि जीवके सम्यग्दर्शन छूट जाय और मिथ्यात्व हो जाय तो उस जीवके अनन्तानुबधी (क्रोध मान माया लोभ)का पाक वा उदय अन्तर-मुहूर्त तक रहता है और उस अन्तरमुहूर्त तक मिथ्यात्वम मरण नहीं होता है इसलिये मिथ्यादृष्टिका एक समय काल नहीं है

सम्यङ्मिथ्यादृष्टे ६। परिमाणकाले ७।	=मिश्र गुणस्थानवर्तीनका नियमित या परिमित कालविषें
तद्गुणस्थानत्यागात् ५। एकसमय १। सम्भवति	=उस गुणस्थानके छोडनेसे एक समय सम्भवे है
प्रतिपन्नअसयत-सयतासयत—गुण	=असयत तथा देशसयत प्राप्त (=प्रतिपन्न) गुणस्थानवाले
अपि अन्तमुहूर्तमध्ये ७। न म्रियते तद् अतः असयत	=भी अन्तमुहूर्तके भीतर नहीं मरते हैं इसलिये (=अत) असयमी
सयतासयतयो ६। अपि एकसमय १। न भवति	=(तथा) सयमासयमियोंका भी एक समय (काल) नहीं है

(१) तत्कथम् चतुर्णां क्षपकाणामपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायक्षीणकषायाणामयोगकेवलिनां च मोक्षगामित्वेन चान्तरे मरणासभवात् ।

तद् कथम् ?	=वह (=जघन्य उत्कृष्ट करके अन्तरमुहूर्त) कैसे है ?
चतुर्णाम् ६। क्षपकाणाम् ६। अपूर्वकरण-	=चार क्षपकश्रेणी अपूर्वकरण
अनिवृत्तिकरण—सूक्ष्मसाम्पराय-क्षीणकषायाणाम् ६।	=अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय क्षीणकषाय (वाले) निका
अयोगकेवलिनाम् ६। च मोक्षगामित्वेन ३।।।	=तथा (=च) अयोगकेवलीनिका (काल) (उसीभवसे) मुक्तगामी होनेसे

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण उक्त एवोत्कृष्टो देशोनः॥

स्थानवाले नारकियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है। एक नारकीकी अपेक्षासे उत्कृष्ट और जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है॥

असंयतसम्यग्दृष्टेः १। नानाजीव-अपेक्षया २। सर्वः ३। = असंयतसम्यग्दर्शनवाले [नारकिन] का अनेक जीवकी विवक्षासे सब
कालः ४। एकजीवम् ५। प्रति जघन्येन ६। अन्तर्मुहूर्तः ७। = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ८। उक्तः ९। एव उत्कृष्टः १०। देशोनः ११। = उत्कृष्टकरि कुछ हीन [पहिले] कही हुई ही उत्कर्ष (आयु प्रमाण) है॥

"उत्कृष्ट आयुः प्रमाण किछु घाटि" जयचन्द्रकृत वचनिका पृष्ठ मुद्रित ९०। (एक वा तीन वा सात वा दश वा सत्रह वा बाईस वा तेतीस सागरसे कुछ हीन क्रमसे पहले नरकसे सातवें तक है)

---

(१) प्रथमपृथिव्यामपि देशोनत्वकथनात्तत्र गृहीतवेदकक्षायिकसम्यक्त्वानामुत्कृष्टायुष्येणोत्पत्त्यभावोऽवगम्यते॥

प्रथमपृथिव्याम् १। अपि देशोनत्व—कथनात् २। = पहिले नरकविषै भी कुछ हीनपनाके व्याख्यान करनेसे (यह अभिप्राय है कि—
गृहीतवेदकक्षायिक—सम्यक्त्वानाम् ३। = क्षयोपशम (तथा) क्षायिकसम्यग्दर्शनप्राप्त (गृहीत वेदक-क्षायिक) सम्यग्दृष्टियोंका
उत्कृष्ट- आयुष्येण ४। तत्र उत्पत्ति + अभावः ५। अवगम्यते। = उत्कृष्ट आयु सहित (= आयुष्येण) तहां (पहिले नरकविषै भी) जन्म लेनेका अभाव जाना गया है। भावार्थ—दूसरे तीसरे नरकोंका तो कहना ही क्या है जिस जीवने वेदक वा क्षायिक सम्यग्दर्शनसहित मरण किया है और पहिले नरकमें गया है वह वहां भी आयु उत्कृष्ट नहीं पाता अर्थात् एक सागरसे कम आयुवाला नारकी होता है इसलिये देशोन है।

विशेषेण (१) गत्यनुवादेन–नरकगतौ नारकेषु सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण यथासंख्यं एक–त्रि–सप्त–दश–सप्तदश–द्वाविंशति–त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः ।

विशेषेण ।३। (१) गति+अनुवादेन ।३। = भेदकरि (१) गतिके कथनानुसारसे
नरकगतौ ।७। नारकेषु ।७। = नरकगतिविषैं नारकिनमें
सप्तसु ।७। पृथिवीषु ।७। मिथ्यादृष्टेः ।६। नानाजीवअपेक्षया ।३। = सातों भूमिमें (= नरकमें) मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षासे
सर्वः ।१। कालः ।१। = समस्त काल है
एकजीवं ।२। प्रति जघन्येन ।३। अंतर्मुहूर्तः ।१। = एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।३। यथासंख्यम् ।१। एक–त्रि–सप्त–दश = उत्कृष्टकरि यथाक्रम—एक–तीन–सात–दश
सप्तदश–द्वाविंशति–त्रयस्त्रिंशत्सागर उपमाणि = सत्रह बाईस तेतीस सागरकी बराबर (उपमाणि) काल है
सासादनसम्यग्दृष्टेः ।६। च * सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ।६। = सासादन सम्यग्दर्शनवालेका और मिश्रगुणस्थानवर्ती (नारकिन) का
सामान्य+उक्तः ।१। कालः ।१। = संक्षेप (प्रकरण) में (पहिले) कहा हुआ (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन गुणस्थानवर्ती नारकियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवा भाग प्रमाण है । एक नारकीकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अपेक्षासे छः आवली है ॥ मिश्रगुण

---

(१) पश्चात्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानत्यागसंभवात् ॥

पश्चात्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानत्यागसंभवात् ।५। = (अन्तर्मुहूर्त) पीछे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका छोड़ना सम्भव होनेसे जघन्यकाल एक जीव अपेक्षासे अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि ॥ मनुष्यगतौ मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वैरभ्यधिकानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ।

असंयतसम्यग्दृष्टेः ।। नानाजीव-अपेक्षया ।।। सर्वः ।। = असंयत सम्यग्दृष्टी तिर्यंचोंका अनेक जीवकी विवक्षासे सब
कालः ।। एकजीवं ।। प्रति जघन्येन ।। अन्तर्मुहूर्तः ।। = काल है एक जीव तिर्यंच असंयमीके लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।। त्रीणि ।।। पल्योपमानि ।।। मनुष्यगतौ ।।। = उत्कृष्टकरि तीन पल्यके बराबर है । मनुष्यगतिमें
मनुष्येषु ।। मिथ्यादृष्टेः ।। नानाजीवपेक्षया ।। सर्वः ।। = मनुष्यनिमें मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः ।। एकजीवम् ।। प्रति जघन्येन ।। अंतर्मुहूर्तः ।। = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।। त्रीणि ।।। पल्योपमानि ।।। = उत्कृष्टकरि तीन पल्यके बराबर (और)
पूर्वकोटिपृथक्त्वैः ।।। अभ्यधिकानि ।।। = पृथक्त्व (तीनसे ऊपर नवसे नीचे) करोड पूर्वकरि अधिक हैं
सासादनसम्यग्दृष्टेः ।। नानाजीव-अपेक्षया ।।। = सासादन सम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे
जघन्येन ।। एकः ।। समयः ।। = जघन्यकरि एक समय (काल) है
उत्कर्षेण ।। अन्तर्मुहूर्तः ।। = उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है

सः ।। तिर्यग्गतौ ।।। उत्कर्षेण ।। = वह (जीव) तिर्यंच गतिविषै उत्कृष्टकरि
अनंतकालम् ।। असंख्येयान् ।। पुद्गलपरिवर्तान् ।। = अनंतकाल वा असंख्याते पुद्गल परावर्तन
तिष्ठति T ततः* ऊर्ध्वं* गति अंतरम् ।।। प्राप्नोति T = ठहरता है वा रहता है (और) वहांसे आगे अन्यगतिको प्राप्त होता है
ततः* तद् अपेक्षया ।।। तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिकालः ।। = इसलिये (ततस्) उस (= तद्) अपेक्षासे तिर्यंच मिथ्यादृष्टी जीवका काल
अनंतः ।। कालः ।। असंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ।। इति— = अनतकाल (वा) असंख्याते पुद्गल परिवर्तन है ऐसा
उक्तम् ।।। = कहा गया है

तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टीनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयतासंयतानां सामान्योक्तः कालः॥

तिर्यग्गतौ ७। तिरश्चाम् ६। मिथ्यादृष्टीनाम् ६। = तिर्यंच गतिविषैं तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका
नानाजीव-अपेक्षया ३। सर्वः १। कालः एकजीव २। = अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है। एक जीव
प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। = केलिये जघन्यकरि अंतर मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि
अनन्तकाल १। असंख्येयाः १। पुद्गलपरिवर्ताः १। = अनन्त काल है सो (अनन्तकाल) असंख्याते पुद्गलपरावर्तन है
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-संयता— = सासादन सम्यग्दर्शनवाले मिश्रगुणस्थानवर्ती (तथा) संयमा-
संयतानां ६। सामान्येन ३।। उक्तः १। कालः १। = संयमी [तिर्यंच]निका संक्षेप [प्रकरण] करि कथित [गुणस्थानवत्] काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका नाना तिर्यंचोंकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है॥ एक तिर्यंच जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है॥ मिश्र गुणस्थानवर्ती नाना तिर्यंचोंकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टतासे पल्योपमके असंख्यातवा भाग है॥ एक तिर्यंच मिश्रगुणस्थानवर्तीकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है॥ संयतासंयतगुणस्थानवर्ती भांति भांतिके तिर्यंचोंकी अपेक्षासे सब काल है एक तिर्यंच-संयमासंयमीके लिये जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और एक संयमासंयमी तिर्यंचके लिये उत्कृष्टकाल कुछ हीन एक करोड पूर्व है॥

(१) 'यः' कश्चिदनादिमिथ्यादृष्टिर्जीवो गत्यन्तरे स्थितः तिर्यग्गतिं प्रविष्टः स तिर्यग्गतावुत्कर्षेणानन्तकालमसंख्येयान्पुद्गलपरिवर्तान् तिष्ठति ततः ऊर्ध्वं गत्यन्तरं प्राप्नोति ततस्तदपेक्षया तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिकालः अनन्तः कालः असंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः इत्युक्तम्॥
१ यः १। कश्चित्* अनादिमिथ्यादृष्टिः १। = जो कोई अनादि मिथ्यात्वसहित
जीवः १। गति अंतरे ७। स्थितः १। तिर्यग्गतिम् २। प्रविष्टः १ = जीव अन्यगतिमें स्थित होकर तिर्यंचगतिमें प्रवेश करता है

शेषाणां सामान्योक्तः कालः ॥ देवगतौ देवेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः ॥

शेषाणाम् १। =(मनुष्यगतिविषैं मनुष्यनमें) अवशिष्ट [पांचवासे चौदहवां गुणस्थानतकनिका]
सामान्य-उक्तः २। कालः ३। = संक्षेपसे [पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] काल है अर्थात्
संयमासंयमिनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है। एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ न्यून एक करोड पूर्व है। प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंमें नानाजीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है। एक जीवका जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ चार (अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांत कषाय) उपशम श्रेणीवालेका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-काल है ॥ चार [आठवां-नववां-दशवां-बारहवां] क्षपकश्रेणी चढनेवालोंका और अयोगकेवलीनिका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सयोग केवलीनिका नाना जीवकी अपेक्षासे सब काल है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टकरि कुछ घाटि एक करोड पूर्व है ॥
देवगतौ ४। देवेषु ५। मिथ्यादृष्टेः ६। = सुरगतिविषैं सुरनमें मिथ्यादृष्टीका
नानाजीव-अपेक्षया ७। सर्वः ८। कालः ९। = नानाजीवकी विवक्षासे समस्त काल है
एकजीवम् १। प्रति जघन्येन २। अन्तर्मुहूर्तः ३। उत्कर्षेण ४। = एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि
एकत्रिंशत्सागरोपमाणि ५। सासादनसम्यग्दृष्टेः ६। = इकतीस सागरके बराबर है सासादन सम्यग्दर्शनवाले देवका
सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ७। च सामान्य+उक्तः ८। कालः ९। = तथा मिश्रगुणस्थानवर्ती [देवका] संक्षेपसे कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टी देवका नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक

यतः * विग्रहगतौ १। अपि* = क्योंकि (=यतः) विग्रहगति (वा नयाशरीर धारण करनेके लिये गमनमें) भी
मनुष्यगतिनामकर्म-उदय-उपेतत्वेन २। = मनुष्यगति (नामा) नामकर्मके उदय होनेसे
मनुष्यत्व-अपरित्यागत्वात् ३। = मनुष्यपनेका (जीवके) त्याग नहीं होता है

एकजीव प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण षडावलिकाः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एक जीव प्रतिजघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि सातिरेकाणि ॥

एकजीवम् ३। प्रति* जघन्येन ३॥ एक ३। समयः १। =(सासादन सम्यग्दृष्टिका) एक जीवके लिये जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ३। षट् आवलिकाः १। सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ६। =उत्कृष्टकरि छह आवली हैं। मिश्रगुणस्थानवर्तीका
नानाजीव-अपेक्षया ३॥ एकजीव-अपेक्षया ३॥ च =अनेकजीवकी विवक्षासे तथा एकजीवकी अपेक्षासे
जघन्यः १। च उत्कृष्टः १। च अन्तर्मुहूर्तः १। =जघन्य और उत्कर्ष भी अन्तर्मुहूर्त (काल) है
असंयतसम्यग्दृष्टेः ६। नानाजीव-अपेक्षया ३॥ सर्वः =असंयतसम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः १। एकजीवम् २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तं १। =काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (काल) है
उत्कर्षेण ३। त्रीणि १॥ पल्योपमानि स अतिरेकाणि १॥ =उत्कृष्टकरि तीन पल्योपम कुछ अधिक है

---

(१) य कश्चिन्मनुष्यो बद्धमनुष्यायुष्क पश्चात् गृहीतसम्यक्त्व उत्तमभोगभूमावुत्पद्यते तदपेक्षया सातिरेकाणि त्रिपल्योपमानि प्राक्तन-मनुष्यभवसम्बन्धिना सम्यक्त्वग्रहणोत्तरकालवर्तिनायुषा अधिकानि यतो विग्रहगतावपि मनुष्यगतिनामकर्मोदयापेतत्वेन मनुष्यत्वापरित्याग त्वात् ॥

य १। कश्चित्* मनुष्य १। बद्धमनुष्य-आयुष्क १। =जो कोई मनुष्य नरआयु बांधकरि
पश्चात् * गृहीतसम्यक्त्व १। उत्तमभोगभूमौ ७॥ =पीछे सम्यग्दर्शन प्राप्तकरि उत्कृष्ट भोगभूमिविषै
उत्पद्यते T तत् अपेक्षया ३॥ स- अतिरेकाणि १॥ =जन्म लेता है उस विवक्षासे कुछ अधिक
त्रिपल्योपमानि १॥ प्राक्तनमनुष्यभवसम्बन्धिना ३॥ =तीनपल्यके बराबर (=उपम) (काल) है पहिले नर भवसम्बन्धी
सम्यक्त्वग्रहण-उत्तरकालवर्ति-आयुषा ३॥ =सम्यग्दर्शनके प्राप्त करनेके पश्चात् समयवर्ती आयु
अधिकानि १॥ =अधिक है अर्थात् तीनपल्य है और सम्यग्दर्शनके पश्चात्का काल और विग्रह गतिका काल अधिक है

उक्तलक्षणमुहूर्तमध्ये॥	=कही हुई लक्षणवाली मुहूर्तके बीचमें वा भीतर अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमें
तावत्*एक+इन्द्रियः १। भूत्वा कश्चित् * जीवः१।	=कोई चेतन प्रथम (=तावत्) एकेंद्रिय होकर
षट्षष्टिसहस्र-द्वात्रिंशत्+अधिकशतपरिणामानि ३॥ सः	=छ्यासठि हजार बत्तीस अधिक (और) एकसौके प्रमाण
६६१३२ जन्ममरणानि ३॥ अनुभवति T तथा* सः१।	=६६१३२ जन्म मरणोंको धारण करता है बहुरि (=तथा) वह (=स)
एव* जीवः १। तस्य ६ एव*मुहूर्तस्य ६। मध्ये ७।	=ही (=एव) चेतन्य उस ही मुहूर्तके बीचमें अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमें
द्वि त्रि-चतुस्-पञ्च+इन्द्रियः १। भूत्वा—	=द्वींद्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय होकर
यथासंख्यम् २॥ अशीतिषष्टिचत्वारिंशत्—	=यथाक्रम वा क्रमानुसार अस्सी साठ चालीस
चतुर्विंशति-जन्ममरणानि ३॥ अनुभवति	=(और) चौवीस जन्म मरणोंको ग्रहण करता है

अर्थात् द्वींद्रिय अस्सीवार त्रींद्रिय साठवार चतुरिंद्रिय चालीस वार पंचेंद्रिय चौवीसवार होता है।

सर्वे १॥ अपि* एते १॥ समुदिताः १॥ क्षुद्रभवाः १॥	=ये (=एते) सब ही (=अपि) सूक्ष्म भव मिले हुए (=समुदिताः)
एतावन्तः १॥ एव भवंति T ६६३३६	=इतने (=एतावन्तः) ही अर्थात् ६६३३६ होते हैं ॥
गोम्मटसारे ७। जीवकाण्डे ७। पर्याप्ति-अधिकारे ७।	=गोम्मटसार ग्रन्थमें जीवकांडविषैं पर्याप्तिके प्रकरणमें
गाथयोः ७॥ ॥ १२३—१२४ उक्तं १॥ च*	=आर्याछंद १२३—१२४ में कहा भी (=च) गया है कि
तिण्णि (तिंणि) १॥ सया १॥ छत्तीसा१ (=त्रीणि१॥ शतानि १॥ षट्त्रिंशत् १॥)	=तीनसौ छत्तीस
छावट्ठिसहस्सगाणि १॥ मरणाणि १॥ (षट्षष्ठिसहस्रकाणि १॥ मरणानि १॥)	=छ्यासठ हजार (वार) मरण
अन्तोमुहुत्तकाले ७। तावदिया १। च (अन्तर्मुहूर्तकाले ७। तावन्तः १।)	=और (=च) अन्तर्मुहूर्तमें इतने
एव*खुद्दभवा (एव* क्षुद्रभवाः १।)	=ही सूक्ष्म जन्म एक लब्ध्यपर्याप्तक जीवके होते हैं
सीदी १॥ सट्ठी १॥ तालं १॥ वियले ७। (=अशीतिः १॥ षष्टिः १॥ चत्वारिंशत् १॥ विकले ७।)	=अस्सी, साठ, चालीस, विकल इन्द्रियवालो अर्थात् द्वीन्द्रिय त्रींद्रिय और चतुरिंद्रियवाले (लब्ध्यपर्याप्तकों) में (भव) होते हैं और
चउवीस १॥ होंति T पंचक्खे ७। (=चतुर्विंशतिः १। भवंतिTपंच-अक्षे ७)	=चौवीस (जन्म) पंचेंद्रियवाले (लब्ध्यपर्याप्तको) मे होते हैं

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ॥ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् ।

समय १। उत्कृष्टकरि पल्योपमके असंख्यातवा भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली है ॥ मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि पल्यका असंख्यातवा भाग है। एक जीवका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

असंयतसम्यग्दृष्टे ६। नानाजीव+अपेक्षया ३। सर्वः १। = असंयत [चौथेगुणस्थान] वर्ती [देव]का अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः १। एकजीवम् २। प्रति*जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त [काल] है
उत्कर्षेण ३। त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ३।। = उत्कृष्टकरि तेतीस सागरके तुल्य [उत्तम] है
[२] इन्द्रिय+अनुवादेन ३। एक+इन्द्रियाणाम् ६। नानाजीव = [२] इन्द्रियके कथनानुसारकरि एक इन्द्रियनके अनेक जीवकी
अपेक्षया ३।। सर्वः १। कालः १। एकजीवम्२। प्रति*जघन्येन३। = अपेक्षासे समस्त काल है एकजीवके लिये जघन्यकरि
क्षुद्रभवग्रहणम् १।। = क्षुद्रभवका (काल) लिया गया है

२ तत्कीदृशमिति चेत्—एकाजन्तर्मुहूर्तमध्ये तावदेकेन्द्रियो भूत्वा कश्चिज्जीव षट्षष्टिसहस्रद्वात्रिंशदधिकशतपरिमाणानि जन्ममरणान्यनुभवति ६६१३२। तथा स एव जीव तस्यैव मुहूर्तस्य मध्ये द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियो भूत्वा यथासंख्यमशीतिषष्टिचत्वारिंशच्चतुर्विंशतिजन्ममरणान्यनुभवति। सर्वेऽप्येते समुदिता क्षुद्रभवा एतावन्त एव भवन्ति ६६३३६ ॥ गोमट्टसारे जीवकाण्ड पर्याप्त्यधिकारे गाथाया १२३-१२४ उक्त च—

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि। अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥ १२३ ॥

संस्कृत छाया, त्रीणि शतानि षट्त्रिंशत् षट्षष्टिसहस्रकाणि मरणानि अ तन्मुहूर्तकाले तावन्तश्चेव क्षुद्रभवा।

सीदी सट्ठी ताल वियले चउवीस होंति पंचक्खे। छावट्ठि च सहस्सा सय च बत्तीसमेयक्खे ॥ १२४ ॥

संस्कृत छाया अशीति षष्टि चत्वारिंशद्विकले चतुर्विंशतिर्भवन्ति पञ्चाक्षे। षट्षष्टिश्च सहस्राणि शतं च द्वात्रिंशदेकाक्षे ॥

यदा चैव मुहूर्तस्य मध्ये एतावन्ति जन्ममरणानि भवन्ति तदैकस्मिन्नुच्छ्वासे अष्टादश जन्ममरणानि लभ्यन्ते ॥ तत्रैकस्य क्षुद्रभवसंज्ञा ॥

तद् १।। कीदृशम् १।। इति*चेत्* = (वह क्षुद्रभव) कैसा है ऐसा (=इति) सदेह (=चेत्) (करनेपर कहते हैं)

उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ शेषाणां सामान्योक्तः कालः ॥

उत्कर्षेण ३ सागरोपम-सहस्रम् १।। =उत्कृष्टकरि हजार सागर प्रमाण और
पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ३।। अभ्यधिकम् १।। =पृथक्त्व [तीनसे ऊपर नवसे नीचे] करोड़ पूर्व अधिक है
शेषाणाम् ६।। =अवशिष्ट (सासादनगुणस्थानसे लेकर अयोगकेवलीतक)नका
सामान्य-उक्तः १। कालः १। =संक्षेपसे कहाहुआ [गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टीका नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छःआवली काल है ॥ मिश्रगुणस्थानवर्तीनिका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ असंयत सम्यग्दृष्टीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्यकाल अतंर्मुहूर्त है ॥ उत्कृष्टकाल तेतीस सागरसे कुछ अधिक है । संयमासंयमीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकाल कुछ न्यून एक करोड़ पूर्व है ॥ प्रमत्तसंयमीनिका और अप्रमत्तसंयमीनिका नाना जीव अपेक्षासे सर्व काल है । एक जीवका काल जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । आठवां गुणस्थानसे ग्यारहवें तकके उपशम श्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ चार क्षपक श्रेणी चढनेवालोंका और अयोगकेवलिनका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । सयोगकेवलीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड़ पूर्व है ॥

परावर्तनलक्षणः ३। निरन्तरं ३।। एकेन्द्रियत्वेन ३।। =परावर्तन लक्षणवाला है बराबर वा लगातार एकेन्द्रिय होकरि (पश्चात्)
मृत्वा — ततः ※ पुनर् ※ भवात् ५। =मरकरि वहां (एकेन्द्रिय) से फिर (=पुनर्) जन्म लेकरि
विकलेन्द्रियः १। पचेन्द्रियः १। वा भवति T =विकल (द्वि-त्रि-चतुः) इन्द्रिय अथवा पंचेन्द्रिय होता है

उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ॥ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेण संख्येयानि वर्षसहस्राणि ॥ पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ।

उत्कर्षेण ३। अनन्त ३। काल. ३। असंख्येया ३। =उत्कृष्टकरि (एकेन्द्रिय जीवका) अनंतकाल है (सो) असंख्यात
पुद्गलपरिवर्ता ३। विकल इन्द्रियाणाम् ३। नानाजीव– =पुद्गल परावर्तन है विकल (द्वि त्रि चतुः) इन्द्रिय जीवनका अनेक जीवकी
अपेक्षया ३। सर्व. ३। काल ३। एकजीव ३। प्रति * =विवक्षासे समस्त काल है एक जीवकेलिये
जघन्येन ३। क्षुद्रभवग्रहणम् ३। =जघन्यकरि सूक्ष्म भव [का काल] लिया गया है।
उत्कर्षेण ३। संख्येयानि ३। वर्षसहस्राणि ३। =उत्कृष्टकरि संख्यात हजार वरस हैं॥
पञ्चेन्द्रियेषु ७। मिथ्यादृष्टेः ३। नानाजीव अपेक्षया ३। =पांच इन्द्रीवाले जीवनमें मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे
सर्व ३। काल ३। एकजीवम् ३। प्रति* जघन्येन ३। =सब काल है। एक जीवके लिये जघन्यकरि
अंतर्मुहूर्त ३ =अंतर्मुहूर्त है

च* छासट्ठि ३। सहस्सा ३। सय ३। (च षट्षष्टि ३। सहस्राणि ३। शत ३।) =और छासठ सहस्र एकसौ और(=च)
च* बत्तीस ३। एयक्खे ३। —(=च द्वात्रिंशत् ३। एकाक्षे ३।) =बत्तीस (सूक्ष्मभव)एकेंद्रियवाले (लब्ध्यपर्याप्तकों)में होते हैं।
च एव* यदा* मुहूर्तस्य ३। मध्ये ३। एतावन्ति ३। =बहुरि जब ही मुहूर्तके बीचमें ही इतने अर्थात् अन्तमुहूर्तमें ही
जन्ममरणानि ३। भवन्ति तदा एकस्मिन् ३। उच्छ्वासे ३। =जन्म मरण होते हैं तब एकही उच्छ्वासमें
अष्टादश ३। जन्म मरणानि ३। लभ्यन्ते T =अठारह जन्म मरण प्राप्त किये जाते हैं (गणित करनेसे $\frac{\text{६६३३६ जन्म मरण}}{\text{३६८५}\frac{1}{3}\text{स्वास}}$

अर्थात् यह अन्तर मुहूर्त ३६८५$\frac{1}{3}$ स्वासोंका है
तत्र एकस्य ३। क्षुद्रभवसंज्ञा ३। =वहां एक (जन्म मरण) की क्षुद्रभव संज्ञा है

(१) उत्कर्षेण अनन्तकालोऽसंख्यातपुद्गलपरिवर्तनलक्षणो निरन्तरमेकेन्द्रियत्वेन मृत्वा पुनर्भवात्ततो विकलेन्द्रिय पञ्चेन्द्रियो वा भवति ॥
उत्कर्षेण ३। अनन्तकाल ३। असंख्यातपुद्गल— =उत्कृष्टकरि अनंतकाल जो असंख्यात पुद्गल

(४) योगानुवादेन—वाङ्मानसयोगिषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः॥ चतुर्णामुपशमकानां क्षपकाणां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च।

(४) योग-अनुवादेन ३।	= योगकी विवक्षाकरि
वाङ्मानसयोगिषु ७। मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-	= वचन मन योगानिविषैं मिथ्यादृष्टी असंयत सम्यग्दर्शनवालेनिका
संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त—	= संयमासंयमी प्रमत्त [छठे गुणस्थानवर्ती] अप्रमत्त [गुणस्थानवर्ती]
सयोगकेवलिनां ६। नानाजीव-अपेक्षया ३। सर्वः १।	= (तथा) योगसहित केवलिनका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः १। एकजीव अपेक्षया ३। जघन्येन ३। एकः १।	= काल है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक
समयः १। उत्कर्षेण ३। अन्तर्मुहूर्तः १। सासादन—	= समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है सासादन सम्यग्दृष्टि (दूसरे गुणस्थानवर्ती)
सम्यग्दृष्टेः ६। सामान्य उक्तः—	= का संक्षेपसे कहाहुआ (गुणस्थानवत्)
कालः १।	= काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टीका नानाजीवको अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है
सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः नानाजीव-अपेक्षया ३। जघन्येन ३।	= मिश्र गुणस्थानवालेका अनेक जीवकी विवक्षासे जघन्यकरि
एकः १। समयः १। उत्कर्षेण ३। पल्योपम-असंख्येय-	= एक समय है उत्कृष्टकरि पल्योपमके असंख्यातवां
भागः १। एकजीवम् २। प्रति॰ जघन्येन ३। एकः १।	= अंश है। एक जीवके लिये (मिश्रगुणस्थानवर्तीका) जघन्यकरि एक
समयः १। उत्कर्षेण ३। अन्तर्मुहूर्तः १। चतुर्णाम् ६।	= समय है उत्कृष्टकरि अन्तरमुहूर्त है। चार
उपशमकानाम् ६।	= उपशम श्रेणी (आठवां नववां दशवां ग्यारहवां गुणस्थान) वालेनिका
क्षपकाणाम् ६। च	= तथा क्षपक श्रेणी (आठवां नववां दशवां और बारहवां गुणस्थान) वालेनका
नानाजीव-अपेक्षया ३। एकजीव-अपेक्षया ३। च॰	= अनेक जीवकी विवक्षासे और [=च] एक जीवकी अपेक्षासे

(३) कायानुवादेन-पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। उत्कर्षेणासंख्येयः कालः॥ वनस्पतिकायिकानामेकेन्द्रियवत्॥ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके। शेषाणां पञ्चेन्द्रियवत्॥

काय अनुवादेन ३। पृथिवी अप् तेज वायु = कायके कथनानुसारकरि भूमि, जल, अग्नि पवन
कायिकानाम् ६। नानाजीव अपेक्षया ३। सर्व १। कालः १। = कायिकनका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है।
एकजीवम् २। प्रति* जघन्येन ३। क्षुद्रभवग्रहणम् १॥ = एक जीवके लिये जघन्यकरि सूक्ष्म भवका [काल] लिया गया है
उत्कर्षेण ३। असंख्येय १। कालः १। = उत्कृष्टकरि असंख्यात [लोक परिमाण] काल है
वनस्पतिकायिकानाम् ६। एकेन्द्रियवत्* = वनस्पति कायिकनिका (काल) एकेन्द्रियके सदृश है अर्थात् एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि क्षुद्र भवम जितना काल लगे उतना (=श्वासके अठारहवां भाग) उत्कृष्टकरि अनंत काल है जो असंख्यात पुद्गल-परावर्तोंके तुल्य है॥
त्रसकायिकेषु ७। मिथ्यादृष्टेः ६। नानाजीव अपेक्षया ३। = त्रसकायिकनिमें मिथ्यादृष्टियोंका अनेक जीवकी विवक्षासे
सर्व १। काल १। एकजीवम् २। प्रति जघन्येन ३। = सब काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। द्वे १॥ सागरोपमसहस्रे १॥ = अंतर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि दो हजार सागरके बराबर [और]
पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ३॥ अभि अधिके १॥ = पृथक्त्व [तीनसे ऊपर नवसे नीचे] क्रोड पूर्वकरि अधिक है
शेषाणाम् ६। पञ्चेन्द्रियवत्* = बचे हुये [गुणस्थानोंके त्रसकायिकोंका] पचेन्द्रियके सदृश (काल) है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टोकी नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक इत्यादि से कुछ घाटि करोड पूर्व है॥ यहां तक पृष्ठ १९२ का लेख देखो॥

सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः किं तु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः।

सासादनसम्यग्दृष्टि–आदि = सासादनसम्यक्त्ववाली [स्त्रीवेदी] से
अनिवृत्तिबादर–अन्तानां ६।३ = अनिवृत्ति बादर गुणस्थानवर्ती तकनिका
सामान्य–उक्तः १।१ कालः १।१ = संक्षेप [प्रकरण] में (पहिले) कथित [गुणस्थानवत्] काल है

अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टी स्त्रीवेदीनिका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है, उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवा भाग है। एक जीवका काल जघन्य एक समय है–उत्कृष्ट छः आवली है॥ मिश्रगुणस्थानवर्ती स्त्री-वेदियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है॥ असंयमी चौथे गुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदियोंका इसके नीचे सर्वार्थसिद्धिमें न्यारा कहा है॥ संयमासंयमी स्त्रीवेदीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड पूर्व है। प्रमत्त छठे अप्रमत्त सातवें गुणस्थानवाले स्त्रीवेदियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है॥ अपूर्व करण उपशमश्रेणी स्त्री (भाव) वेदीका और अनिवृत्तिकरण उपशम श्रेणी स्त्री (भाव) वेदीका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अपूर्व करण क्षपक श्रेणी स्त्री (भाव) वेदीका और अनिवृत्तकरण क्षपक-श्रेणी स्त्री [भाव] वेदीका नाना जीवोंकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

किंतु असंयत सम्यग्दृष्टेः ६।१ = परंतु असंयत सम्यग्दृष्टी (स्त्री वेदियों) का
नानाजीव+अपेक्षया ३।१ = अनेक जीवकी अपेक्षासे
सर्वः १।१ कालः १।१ = समस्त काल है

जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥ काययोगिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ॥ शेषाणां मानसयोगिवत् ॥ अयोगानां सामान्यवत् ॥ (५) वेदानुवादेन—स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रतिजघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पल्योपमपृथक्त्वम् ॥

जघन्येन ३। एकः १। समयः १। उत्कर्षेण ३। अन्तर्मुहूर्तः १। = जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है ।
काययोगिषु ७। मिथ्यादृष्टेः ६। = काययोगीनिमें मिथ्यादृष्टीका
नानाजीव+अपेक्षया ३। सर्वः १। कालः १। = अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है ।
एकजीवम् २। प्रति*जघन्येन ३। एकः १। समयः १। = एक जीवके लिये जघन्यकरि एक समय है ।
उत्कर्षेण ३। अनन्तः १। कालः १। असंख्येयाः १। = उत्कृष्टकरि अनन्त काल है (सो) असंख्यात
पुद्गलपरिवर्ताः १। शेषाणाम् ६। = पुद्गलपरिवर्तन हैं । अवशेष(दूसरेसे तेरहवा गुणस्थानवाले)निका काल
मानस+योगिवत्* = मनयोगीनके [कालके] सदृश है [देखो पृष्ठ २००)
अयोगानाम् ६। सामान्यवत्* = अयोगकेवलीनिका संक्षेप [प्रकरणमें कथित गुणस्थान]वत् (काल) है अर्थात् अयोग केवलनिका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल है (पृष्ठ १८७ देखो)
(५) वेद+अनुवादेन ३ स्त्रीवेदेषु ७। मिथ्यादृष्टेः ६। = वेदके कथनानुसारकरि स्त्री वेदविषै मिथ्यादृष्टी (स्त्री) का
नानाजीव+अपेक्षया ३। सर्वः १। कालः १। = अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है
एकजीवम् २। प्रति * जघन्येन ३।+अन्तर्मुहूर्तः १। = एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है ।
उत्कर्षेण ३। पल्य+उपमपृथक्त्वम् १।। = उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (=तीनसे ऊपर नवसे नीचे) पल्यके बराबर है २०१

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यानिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः॥ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्यवत्। किं त्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः।

एकजीवम् २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। = एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है।

उत्कर्षेण ३। सागर-उपम-शत-पृथक्त्वम् १।। = उत्कृष्टकरि पृथक्त्व सौ सागरके तुल्य है अर्थात् तीनसौ सागरसे अधिक नवसौ सागरसे नीचे है ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि आदि अनिवृत्तिबादर-अन्तानां ६। = [पुरुषवेदविषैं] सासादनसम्यग्दर्शनवालेसे लेकर अनिवृत्तिबादर तकनिका

सामान्य उक्तः १। कालः १। = संक्षेपसे कथित [गुणस्थानवत्] काल है। यह काल वही है जो २०२ पृष्ठका है परंतु असंयमीका एक जीवकी अपेक्षासे उत्कृष्टकरि तेतीस सागरसे कुछ अधिक है॥

नपुंसकवेदेषु ७। मिथ्यादृष्टेः ६। नानाजीव अपेक्षया ३। = नपुंसक वेदविषै मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे

सर्वः १। कालः १। एकजीवं २। प्रति*जघन्येन ३। = समस्त काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि

अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। अनन्तः १। कालः १। = अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि अनन्त काल है [सो]

असंख्येयाः १। पुद्गलपरिवर्ताः १। = असंख्याते पुद्गल परावर्तन हैं

सासादनसम्यग्दृष्टि आदि— = [नपुंसक वेदविषैं] सासादन सम्यग्दर्शनवालेसे लेकर

अनिवृत्तिबादर-अन्तानां ६। सामान्यवत् * = नववां गुणस्थानवर्ती तकनिका संक्षेपसे (कथित गुणस्थानवत् काल) है॥

किम्* तु* असंयतसम्यग्दृष्टेः ६। = परंतु असंयत सम्यग्दर्शनवालेका

नानाजीव-अपेक्षया ३। सर्वः १। कालः १। = नानाजीवकी विवक्षासे समस्त काल है

एकजीवम् २। प्रति जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। = एक जीवके लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है

एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहुर्तः । उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि देशोनानि ॥ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ।

एकजीव ३। प्रति॥ जघन्येन ३॥। अन्तर्मुहूर्तः १। = एक जीवकी जघन्यकरि अंतरमुहूर्त है।
उत्कर्षेण ३। पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि १॥। देशोनानि१॥। = उत्कर्षकरि कुछ हीन पचपन पल्यके बराबर है।
पुंवेदेषु ७। मिथ्यादृष्टे'६। नानाजीव अपेक्षया ३। सर्वः काल' = पुरुष वेदविषैं मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे सब काल है।

(१) देशोनानि कथमिति चेत् स्त्रीवेदासयतेकजीव प्रति उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि गृहीतसम्यक्त्वस्य स्त्रीवेदोत्पदाभावात् पर्याप्त स सम्यक्त्व गृहीष्यतीति पर्याप्तिसमापकान्तमुहूर्तहीनत्वाद्देशोनानि तानि पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि स्त्रीवेदे षोडशस्वर्गे सम्भवन्तीति वेदितव्यम्

देश ऊनानि १॥ कथम्- इति- चेत्॥ = कुछ हीन कैसे ? इसप्रकार संदेह है।
स्त्रीवेद असयत एकजीवम् २। प्रति॥ = (उत्तर) स्त्रीवेदीमें चौथे गुणस्थानवर्ती एक जीवके लिये
उत्कर्षेण ३। पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि १॥ = उत्कृष्टकरि पचपन पल्यके तुल्य है
गृहीतसम्यक्त्वस्य ६। स्त्रीवेद उत्पाद— = सम्यग्दर्शनसहित (जीव) के स्त्रीवेदविषे उत्पन्न होनेका वा जन्म लेनेका
अभावात् ५। = अभाव होनेसे
पर्याप्त १। सन् सम्यक्त्वम् २॥ गृहिष्यति T इति- = पर्याप्त होनेपर (= सन्) सम्यग्दर्शन धारण करता है इसप्रकार
पर्याप्तिसमापक अन्तर्मुहूर्तहीनत्वात् ५॥ = पर्याप्ति अवस्थाको पूरण करनेवाले अंतरमुहूर्तके हीन होनेसे
देशोनानि १॥ तानि १॥ पञ्चपञ्चाशत्॥ पल्योपमानि१॥ = कुछ हीन ते पचपन पल्योपम
स्त्रीवेदे ७। षोडशस्वर्गे ७। सम्भवन्ति T इति वेदितव्यम् १॥ = स्त्रीवेदमें सोलहवा स्वर्गविषे सम्भवै हैं इसप्रकार जानना योग्य है (सब वर्तमान शब्दन्त है) अर्थात् जो जीव सम्यग्दर्शनसहित मरता है वह स्त्री नहीं होता है इसलिये सोलह स्वर्गकी स्त्री भी कोई जीव हो जिसकी उत्कृष्ट आयु पचपन पल्यकी होतो वह स्त्री असंयत सम्यग्दृष्टी केवल अन्तर्मुहूर्त घाटि पचपन पल्य ही रहैगी क्योंकि अंतर्मुहूर्तमें पर्याप्त होनेपर सम्यक्त्व धारण करेगी सो यही अन्तर्मुहूर्त न्यून हो जावेगी। इसके बाद मरकर तो वह पुरुषवेदी हो जायगी।

सामान्योक्तः कालः ॥ (७) ज्ञानानुवादेन–मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्योः सामान्यवत् ॥

सामान्य-उक्तः ३१ कालः ३१ =संक्षेपसे कथित [गुणस्थानवत] काल है अर्थात् अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण उपशम श्रेणीवाले कषाय सहितोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणीवाले कषायसहितोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है॥ सूक्ष्मसाम्पराय उपशमश्रेणीवालोंका एक जीव और नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकका एकजीवकी और अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल है उपशांत कषायवालोंका नानाजीव और एकजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ क्षीणकषायवालोंका नानाजीव और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य तथा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ सयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे समस्त काल है एकजीवका जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है उत्कृष्ट काल कुछ घाटि एक करोड पूर्व है ॥ अयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे उत्कृष्ट काल और जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त है ॥

७ ज्ञान+अनुवादेन ३१ =७ ज्ञानके कथनानुसारकरि

मति+अज्ञानि+श्रुत+अज्ञानिषु ७१ =मतिअज्ञानी श्रुतअज्ञानियोंविषै

मिथ्यादृष्टि+सासादनसम्यग्दृष्ट्योः =मिथ्यादृष्टि [तथा] सासादन सम्यग्दर्शनवालेका (काल)

सामान्यवत्* =संक्षेप [प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थानवत] है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानीका नाना जीव अपेक्षासे सर्व काल है। एक जीव अपेक्षासे तीन भेद हैं [१] अनादि अपर्यवसान [२] अनादि सपर्यवसान और सादिसपर्यवसान तहां सादिसपर्यवसान काल जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन अर्धपुद्गल परावर्त है ॥ मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी सासादन सम्यग्दृष्टियोंका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट छह आवली है ॥

उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ अपगतवेदानां सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन चतुष्कषायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां मनोयोगिवत् द्वयोरुपशमकयोर्द्वयोः क्षपकयोः केवललोभस्य च अकषायाणां च

उत्कर्षेण ३। त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ३।। देशोनानि = उत्कृष्टकरि कुछ हीन तेतीससागरके बराबर है

अपगतवेदानाम् ३। = वेदरहित [दशवा, ग्यारहवां, बारहवा तेरहवा चौदहवा गुणस्थानवर्तीनि) का

सामान्यवत् * = (काल) संक्षेप [प्रकरणमे कहाहुआ गुणस्थानवत्) है अर्थात् सूक्ष्मसाम्पराय, उपशांतकषाय दोय उपशम श्रेणीवालोंके नानाजीव और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल है। सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक श्रेणीवालोंका और क्षीणकषाय अयोगकेवलियोका नानाजीवकी अपेक्षा से और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक सयोगकेवलीकी अपेक्षासे जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट काल कुछ घाटि एक करोड पूर्व है।

(६) कषाय अनुवादेन ३। = (६) कषायके कथनानुसार करि

चतुष्कषायाणा ३। मिथ्यादृष्टि आदि = च्यार [क्रोध मान माया लोभ) कषाय वाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर

अप्रमत्त अन्ताना ३। मनस् योगिवत् * = अप्रमत्त तकोंका (काल) मनोयोगीके सदृश है [पृष्ठ २०० पंक्ति दूसरीसे १३ तक वही शब्दशः यहांका काल पढ़लो)

द्वयोः ३। उपशमकयो ३। द्वयोः ६। = दो उपशमश्रेणी (आठवा नववा गुणस्थान वालेनिका) दो

क्षपकयो ३। केवललोभस्य ६। च* = क्षपकश्रेणीनवालेनिका और केवल लोभवालेका दशवें गुणस्थानवर्तीनका (जहां एक सज्वलन लोभ है अन्य कषाय कोई नहीं है)

अकषायाणाम् ३। च* = तथा कषायरहित [ग्यारहवा बारहवा तेरहवा चौदहवा गुणस्थानवर्तिनि]का

८ संयमानुवादेन–सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातशुद्धिसंयतानां सँयतासंयतानामसंयतानां च

प्रमाण इस भांति है कि असंयत सम्यग्दृष्टी मतिज्ञानियों श्रुतज्ञानियों और अवधिज्ञानियोंका नाना जीवकी अपेक्षासे सर्व काल है एक जीवका काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट तेतीस सागरसे कुछ अधिक है। संयमासंयमी मतिज्ञानियोंका श्रुतज्ञानियोंका अवधिज्ञानियोंका नानाजीव अपेक्षासे सर्व काल है एक जीवका जघन्य अंतर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ घाटि एक करोड पूरव है। प्रमत्त संयमी अप्रमत्तसंयमी मतिज्ञानियोंका श्रुतज्ञानियोंका अवधिज्ञानियोंका और मनःपर्ययज्ञानियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है। एक जीवका जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। चार उपशमश्रेणीवाले मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। चार क्षपकश्रेणीवाले मति-श्रुत-अवधि मनःपर्यय ज्ञानियोंका और अयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है सयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सव काल है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट [काल] कुछ न्यून एक करोड पूर्व है ॥

[८]संयम+अनुवादेन ३ = (८) संयमके कथनानुसारसे
सामायिकच्छेदोपस्थापन- = सामायिक और छेदोपस्थान संयमी (छठा सातवां आठवां नववां गुणस्थानवर्ती)निका
परिहारविशुद्धि- = परिहारविशुद्धि संयमी (छठे सातवें गुणस्थानवाले) निका
सूक्ष्मसाम्पराय- = सूक्ष्मसाम्पराय संयमी (दशवें गुणस्थानवर्ती)निका
यथाख्यातशुद्धिसंयतानां = यथाख्यात शुद्धिसंयमी [ग्यारहवां वारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थानवाले] निका
संयतासंयतानाम् ६ा = संयमासंयमी (पांचवें गुणस्थानवर्ती)निका
असंयतानाम् ६ा च = तथा [=च] असंयमी (पहलेसे चौथे गुणस्थानवाले] निका

विभङ्गज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः ॥ आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्योक्तः कालः ॥

विभङ्गज्ञानिषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नानाजीव+अपेक्षया ॥ = कुअवधि ज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टीका अनेक आत्माकी विवक्षासे
सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = समस्त काल है एक आत्माके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ देशोनानि ॥ = उत्कर्षकरि कुछ हीन तेतीस सागरके बराबर है (त्रयस्त्रिंशत्को सागरोपमके साथ समासमे अथवा भिन्न भी ला सक्ते है)
सासादनसम्यग्दृष्टेः ॥ = (कुअवधि ज्ञानियोंमें) सासादन सम्यग्दर्शन वालेका
सामान्य+उक्तः ॥ कालः ॥ सक्षेप(प्रकरण)से कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है, उत्कृष्ट पल्यके असख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट छ आवली है॥
आभिनिबोधिकश्रुत+अवधिमनःपर्यय = मतिज्ञानी (= आभिनिबोधिक) श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी मनःपर्यय
केवलज्ञानिनाम् ॥ च सामान्य+उक्तः ॥ कालः ॥ = और केवल ज्ञानीनका सक्षेपकरि कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् मति–श्रुत–अवधि ये तीन ज्ञान चारसे बारह गुणस्थान तक होते है, मनःपर्ययज्ञान छठेसे बारह तक होता है अत कालका

(१) देशोनानीति कथम्—विभङ्गज्ञानिमिथ्यादृष्टयेकजीवं प्रति उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । पर्याप्तश्च विभङ्गज्ञानं प्रतिपद्यत इति पर्याप्तिसमापकान्तर्मुहूर्तहीनत्वात् देशोनानि ॥

देशोनानि ॥ इति कथम् = कुछ हीन (यह) कैसे
विभङ्गज्ञानिमिथ्यादृष्टि एकजीवम् ॥ प्रति = कुअवधिज्ञानी मिथ्यादृष्टी एक चेतनके लिये
उत्कर्षेण ॥ त्रयस्त्रिंशत् ॥ सागर+उपमाणि ॥ = उत्कृष्टकरि तेतीस सागर (के) तुल्य (काल) है (टिप्पणी पृष्ठ १२१)
पर्याप्त ॥ च विभङ्ग+ज्ञानम् ॥ प्रतिपद्यते ॥ इति = पर्याप्त जीव ही (= च) खोटी अवधिको प्रारम्भ करता है इस प्रकार
पर्याप्तिसमापक+अन्तर्मुहूर्तहीनत्वात् ॥ देश+ऊनानि ॥ = पर्याप्तिका पूरण करनेवाला अन्तर्मुहूर्त हीन होनेसे कुछ हीन (तेतीस सागर) है

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ॥ तेजः पद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ।

असंयत-सम्यग्दृष्टेः ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥	=(कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले) असंयत सम्यग्दृष्टिका नाना जीवकी अपेक्षासे
सर्वः १। कालः १। एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३॥	=सर्वकाल है । एक चेतनके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। देशोनानि १॥ त्रयस्त्रिंशत्-†	=अन्तर्मुहूर्त (काल) है । उत्कृष्टकरि कुछ हीन तेतीस
सप्तदश-सप्त-सागरोपमाणि १॥	=सत्रह सात सागर प्रमाण (काल) है ।
तेजः—पद्मलेश्ययोः ७॥ मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ६।	=पीत-पद्म लेश्यायों में मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दर्शनवाले का
नाना-जीव अपेक्षया ३॥ सर्वः १। कालः १।	=अनेक चेतनकी विवक्षासे समस्त काल है

दोनो कालोंको जोड़ने से कुछ अधिक तेतीस, कुछ अधिक सत्रह, वा कुछ अधिक सात सागर काल उत्कृष्टकरि होता है. यद्यपि यह नियम नहीं है कि नरक से जन्म लेने के पश्चात् उस जीवके कोनसी लेश्या होगी।

† उक्त लेश्यायुक्तासंयत सम्यग्दृष्ट्येकजीवं प्रति उत्कर्षेण नारकापेक्षया उक्तान्येव सागरोपमाणि । पर्याप्तिसमापकान्तर्मुहूर्त सप्तम्यां मारणान्तिके च सम्यक्त्वाभावाद्देशोनानि ॥

उक्त-लेश्या-युक्त-असंयत-सम्यग्दृष्टि एकजीवं १।	=कथित (कृष्ण-नील-कापोत) लेश्याओं सहित असंयत सम्यग्दृष्टिका एकजीवके
प्रति* उत्कर्षेण १। नारक अपेक्षया ३॥ उक्तानि १॥	=लिये उत्कृष्टकरि नरककी अपेक्षासे कहे हुये
एव* सागरोपमाणि १॥	=ही सागर प्रमाण काल है अर्थात् सातवां नरक में तेतीस और पांचवां नरक में सत्रह और तीसरे नरक में सात सागर काल है (परन्तु) सत्रह और तीसरे नरक में सात सागर काल है (परन्तु)
पर्याप्तिसमापक-अन्तर्मुहूर्त	=पर्याप्ति अवस्थाको पूरी करने वाली अन्तर्मुहूर्त (तीसरे पांचवें सातवें नरक में)
च सप्तम्याम् ७॥ मारणान्तिके ७।	=और (=च) सातवां (नरक) में मृत्युके समीप में (भी)
सम्यक्त्व-अभावात् ५। देशोनानि १॥	अर्थात् सातवां नरक में मरते समय अवश्य मिथ्यात्व आ जाता है । =सम्यग्दर्शन के अभाव होने से कुछ हीन (तेतीस सागर सत्रह सागर सातसागर काल क्रमसे सातवां पांचवां तीसरे नरक में) है। तीसरे पांचवें सातवें नरकों में पर्याप्ति पूरी करनेके पीछे सम्यक्त्व होता है ।

सामान्योक्तः काल ॥ (९) दर्शनानुवादेन–चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्त काल ॥ अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्ताना सामान्योक्त काल ॥

सामान्य-उक्त ॥ काल ॥ =संक्षेप (प्रकरण) द्वारा कथित (गुणस्थानवत्) काल है (देखो पृष्ठ १७९ से १८८)
(९) दर्शन-अनुवादेन ॥ चक्षुर्दर्शनिषु ॥ मिथ्यादृष्टे ॥ =(९) दर्शनकी विवक्षा करि चक्षुर्दर्शनवालोंमें मिथ्यादृष्टीका
नाना-जीव-अपेक्षया ॥ सर्व ॥ काल ॥ एकजीव ॥ प्रति =अनेक जीवकी विवक्षासे सब काल है। एक चेतनके लिये
जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्त ॥ उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ सागरोपम =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि सागरोपम दो
सहस्रे ॥ सासादन सम्यग्दृष्टि-आदीना ॥ क्षीणकषाय =सहस्र है। सासादन सम्यग्दृष्टि आदिकोंका क्षीणकषाय (बारहा गुणस्थानवर्ती)
अन्ताना ॥ सामान्य-उक्त ॥ काल ॥ =पर्यंतोंका संक्षेप (प्रकरण) से कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात्

चक्षुर्दर्शनवाले सासादन सम्यग्दृष्टिनिका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवा अंश है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छ आवली है। मिश्रगुणस्थानवर्ती चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवा भाग है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। असंयत सम्यग्दृष्टि चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट तेतीस सागर से कुछ अधिक काल है। संयमासंयमी चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षा से सर्वकाल है एक जीव की अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ न्यून एक कोड पूर्व है। प्रमत्त छठे गुणस्थानवर्ती चक्षुर्दर्शन वालेनिका और अप्रमत्त सातवा गुणस्थानवर्ती चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। चार उपशमक चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। चार क्षपक श्रेणीवाले चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे और एक जीव की अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

अचक्षु दर्शनिषु ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय– =अचक्षुर्दर्शनवालेनि में मिथ्यादृष्टिसे लेकर (=आदि) क्षीणकषाय
अन्ताना ॥ सामान्य-उक्त ॥ काल ॥ =पर्यन्तनिका संक्षेपसे कहा हुआ गुणस्थानवत् काल है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः सामान्योक्तः कालः ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ॥ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥ शुक्ललेश्यानां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ६।	=(पीतपद्मलेश्याओं में) सासादनसम्यग्दृष्टी और मिश्रगुणस्थानवालों का
सामान्य-उक्तः १। कालः १।	=संक्षेपकरि (पहिले) कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि पीत-पद्मलेश्या धारको का नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्प का असंख्यातवां भाग है एक जीव प्रति जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट छह आवली है ॥ पीत-पद्मलेश्या वाले मिश्रगुणस्थान वालों का नाना जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल है उत्कृष्ट पल्पका असंख्यातवां भाग है । एक जीव की अपेक्षा-से जघन्य औरउत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥
संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रत्तानां ६। नाना-	=(पीत-पद्म-लेश्या वालों में) देशसंयतनिका प्रमत्त अप्रमत्त वालों का अनेक
जीव-अपेक्षया ३॥ सर्वः १। काल १। एकजीवं २। प्रति*	=जीवकी अपेक्षासे सब काल है । एक जीव के लिये
जघन्येन ३॥ एकः १। समयः १। उत्कर्षेण ३। अन्तर्मुहूर्तः	=जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है
शुक्ललेश्यानां ६। मिथ्यादृष्टेः ६। नाना-जीव-अपेक्षया३॥	=शुक्लुलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि का अनेक जीवकी विवक्षा से
सर्वः १। कालः १। एकजीवं २। प्रति जघन्येन ३॥	=सर्व काल है । एक जीव के लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। स-अतिरकाणि १॥	=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ अधिक
एकत्रिंशत् १॥ सागरोपमाणि १॥	=इकतीस सागर प्रमाण है अर्थात् मिथ्यादृष्टि शुक्ल श्याका धारक

---

* ग्रैवेयकदेवापेक्षया तेषां नामानि मारणान्तिकोत्पादावस्थायामपि शुक्ललेश्यासम्भावात्सातिरेकाणि ॥

ग्रैवेयक-देव-अपेक्षया ३॥ तेषां ६ नामानि १॥	=(नवम) ग्रैवेयक (मिथ्यादृष्टि) देवों की अपेक्षासे तिनके नाम
मारणान्तिक	=मारणांतिक समुद्घातमें अर्थात् पूर्वभव वर्तमानतद्पुद्गलमें) और
उपपादअवस्थायाम ७।अपि* शुक्ललेश्या-	=उपपाद अवस्था में भी (अर्थात् उतर भव के प्रारम्भ में भी) शुक्लेश्या के
सम्भवात् ५। स-अतिरेकाणि १॥	=संभव होने (के हेतु) से कुछ अधिक (इकतीस सागर उत्कृष्ट काल) है मिथ्यादृष्टि शुक्ल लेश्या वाले जीव का

एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

एकजीव ;। प्रति* जघन्येन ;।।। अन्तर्मुहूर्तः ;।	=एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तमुहूर्त है
उत्कर्षेण ;।	=उत्कृष्टकरि (सौधर्म ऐशान स्वर्गोके पीत-पद्म लेश्यावाले देवोंका काल)
द्वे ;।।। सागरोपमे ;।।। स-अतिरेकाणि ;।।। च*	=कुछ अधिक दो सागर प्रमाण है और
अष्टादश ;।। सागर-उपमाणि ;।। (स-अतिरेकाणि)	=कुछ अधिक अठारह सागर प्रमाण (सतार और सहस्रार स्वर्गोके पीत-पद्म लेश्याके धारक देवोंका काल) है

(१) द्वे सागरोपमे =दो सागर प्रमाण (काल) है परन्तु सम्यग्दृष्टि हो और घातायुष्क हो तो उस जीवकी आयु उत्कृष्ट आयुसे कुछ न्यून आधसागर अधिक होती है और जीव दो सागर आयु पावै तो घातायुष्क अन्तर्मुहूर्त न्यून अढाइ सागर आयु पावै घातायुष्क वालेका उत्पाद बारहवें स्वर्ग तक है उसके ऊपर नहीं है।

घातायुष्क =पूर्व भवम किसी जीवने विशुद्ध परिणामोंसे आयुका बंध अधिक किया था, पश्चात् संक्लेश परिणामों के वशसे आयु घटाय थोड़ी रक्खी तिस जीवको घातायुष्क कहिये। जैसे कोई मनुष्य ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गका आयु दशसागर प्रमाण बंधकिया फिर उसही मनुष्य भवमें संक्लेश परिणामोंके बधने से आयुकी स्थितिका घात करके सौधर्म ईशानमे जाय उपजा सो घातायुष्क है सो अन्य देवोंकी दो सागर प्रमाण आयु ते अंतर्मुहूर्त न्यून आधा सागर अधिक आयु पावै है। आयुका घात दो प्रकार है। एक अपवर्त्तन घात दूजा कदली घात। तहां बध्यमान आयुका घटावना सो अपवर्त्तन घात है अरभुज्यमान आयुका घटावना कदलीघात है। देवोंमें कदलीघात संभव नहीं है।

तत्-लेश्यायुक्तानां ;। मारणान्तिक =उन (पीतलेश्या और पद्मलेश्या) सयुक्तोंके मारणान्तिक समुद्घात और
उपपाद सम्भयात ;। सातिरेकत *च सागरोपम =उपपाद अवस्थाके होनेसे कुछ आयु बढ़ जाने (के हेतु)से और (क्रमसे दो और अठारह) सागरोपम
गुणत्वात् ;।।। सातिरेकाणि ;।।। किंचित् अधिकानि इति अर्थ =सहित कुछ अधिक (सातिरेकाणि) हुई। कुछ अधिक है ऐसा अर्थ है। सो जिस पर्यायको छोड़कर देव या नारकी उत्पन्न हो उस पर्यायके अन्तके अन्तमुहूर्तमें तथा देव नारक पर्यायको छोड़कर जिस पर्यायमें उत्पन्न हो उस पर्यायके आदिके अन्तमुहूर्तमें वही लेश्या होती है। प्रथमको पूर्वभव चरमांतर्मुहूर्त और द्वितीयको उत्तरभव प्रथमांतर्मुहूर्त कहते हैं। (छहों लेश्याओंके उत्कृष्टकाल प्रमाणमें दो दो अन्तमुहूर्त का काल अधिक अधिक समझना) इसलिये पीत पद्मलेश्यावाले एकजीव घातायुष्कवाले का सौधर्म ईशान स्वर्गोंमें उत्कृष्टकाल =दो सागर+अंतर्मुहूर्त न्यून आध सागर (घातआयुष्क)+पूर्वभव चरमांतर्मुहूर्त+उत्तरभव प्रथमांतर्मुहूर्त ॥ सतार सहस्रार स्वर्गोंके पीतपद्मलेश्यावाले घातायुष्क जीवका उत्कृष्टकाल =१८सागर+अंतर्मुहूर्त घाटि आधसागर+मारणांतिकअन्तमुहूर्त+उपपाद अंतर्मुहूर्त।

११ भव्यानुवादेन—भव्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ॥ एकजीवापेक्षया द्वौ भङ्गौ । अनादिः सपर्यवसानः सादिः सपर्यवसानश्च । तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः ॥

(११) भव्य-अनुवादेन ३। भव्येषु ७। मिथ्यादृष्टेः ६। नाना	=भव्यके अनुवादकरि भव्यजीवों में मिथ्यादृष्टिका अनेक
जीव-अपेक्षया ३। सर्वः १। कालः १। एकजीव-	=जीवकी अपेक्षासे समस्तकाल है । एक जीवकी
अपेक्षया ३। द्वौ १ भङ्गौ १।	=विवक्षासे दो भेद हैं
अनादिः १। सपरि-अवसानः १।	=आदिरहित (=अनादि) अन्त (=अवसान) सहित (=सपरि) अर्थात् अनादि सांत है
च॥स-आदि १। सपरि-अवसानः १।	=(और दूसरा) आदि सहित (=सादि) अन्त (=अवसान) सहित अर्थात् सादि सांत है
तत्र॥सादिः १। सपरि-अवसानः १। जघन्येन ३।	=तहां सादिसांत (काल) जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। देशोनः १।	=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछहीन
अर्द्धपुद्गलपरिवर्तः १। सासादनसम्यग्दृष्टि-आदि	=अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन (काल) है । सासादनसम्यग्दृष्टीसेलेकर
अयोगकेवलि-अन्तानाम् ६।	=अयोगकेवली (चौदहवें गुणस्थानवर्ती) पर्यन्तोंका
सामान्य-उक्तः १। कालः १।	=संक्षेप (प्रकरण) करि कहाहुआ (गुणस्थानवत्) काल है (देखो पृष्ठ १८१ से १८८ तक इस मुद्रित पुस्तकका)

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामलेश्याना च सामान्योक्त काल । किं तु संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्व काल । एकजीव प्रति जघन्येनैक समय । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त ॥

मरकर नव ग्रैवेयक तक उत्पन्न होसका हैं जहा उत्कृष्ट आयु इकतीस सागर है मारणान्तिक समुद्घातके अन्तर्मुहूर्त में और उपपाद अवस्था के अन्तर्मुहूर्त में भी शुक्ल लेश्या रहती है अत उत्कृष्टकाल इकतीस सागरसे पूर्वभवचरमान्र्मुहूर्त और उत्तरभवप्रथमान्र्मुहूर्त के बराबर अधिक है

सासदनसम्यग्दृष्टि-आदि-सयोग-केवलि अन्तानाम् =(शुक्ल लेश्या वाले) सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर सयोग केवली तकनिका

च अलेश्याना ॥ सामान्य- =और (च) लेश्या रहित (अयोगकेवलि) निका सक्षेप (प्रकरण) करि

उक्त ॥ काल ॥ =(प्रथम) कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात्

वही काल है जो पृष्ठ १८१ से १८८ तकमें लिखा है। इसमेंसे पृष्ठ १८५ मेंसे "सयतासयतस्य नानाजीवापेक्षयासर्व. काल । एक जीव प्रति जघन्येन अन्तर्मुहूर्त उत्कर्षण पूर्वकोटीदेशोना" छोडदो क्योकि सयमासयमियोंका काल नीचे लिखा जाता है

किन्तु* सयतासंयतस्य ॥ नाना-जीव अपेक्षया ॥ =परन्तु सयमासयमियोका अनेक जीवकी अपेक्षा से

सर्व ॥ काल ॥ एकजीवम् ॥ प्रति* जघन्येन॥ =सब काल है । एक जीवके लिये जघन्य करि

एक ॥ समय ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्त ॥ =एक समय है । उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है

(१३) सञ्ज्ञानुवादेन – संज्ञिषु मिथ्यादृष्टयाद्य निवृत्तिबादरान्तानां पुंवेदवत् ॥

सासादनसम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः आवली है। मिश्र गुणस्थानवालोंका नाना जीवों की प्रति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कर्ष पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है। मिथ्या दृष्टियोंका नाना जीव अपेक्षा से सर्व काल है। एक जीव प्रति तीन भेद हैं (१) अनादि अनंत काल (२) अनादि सान्त काल (३) सादि सान्त काल। तहां सादि सान्त काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कर्ष कुछ न्यून आध पुद्गल परावर्त है ॥

(१३) सञ्ज्ञा-अनुवादेन ३। =संज्ञी के कथनानुसार करि
संज्ञिषु ७। मिथ्यादृष्टि– =(प्रथम गुणस्थानवर्ती) सैनियोंमें मिथ्यादृष्टी–
आदि अनिवृत्तिबादर– =से लेकर (= आदि) अनिवृत्तिबादरसाम्पराय नवमां गुणस्थानवर्ती
अन्तानां ६। पुंवेदवत् =पर्यन्तनिका पुरुषवेद समान (काल) है ॥ इसलिये पुरुष वेद के अनुकूल मिथ्या दृष्टि सैनियों का नानाजीव अपेक्षासे सब काल है। एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कर्ष तीन सौ सागर से ऊपर और नौ सौ सागर से नीचे काल है। सासादन सम्यग्दृष्टी सैनियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है ॥ मिश्र गुणस्थानवर्ती सैनियोंका काल नाना जीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवां भाग है एक जीव की अपेक्षा से जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ असंयत सम्यग्दृष्टी सैनियों का काल नाना जीव अपेक्षा से सब काल है एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट तेतीस सागर से कुछ अधिक है ॥ संयमासंयमी सैनियों का काल नाना जीव अपेक्षासे सर्व है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ घाटि एक करोड पूर्व है ॥ प्रमत्तसंयमी सैनियों का और अप्रमत्त संयमी संनियों का नाना जीव अपेक्षा से सर्व काल है एक जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है ॥ अपूर्वकरण और अनिवृत्ति करण उपशमश्रेणीवाले संज्ञियों

मर्वार्थ- सिद्धि २१७

अभव्यानामनाद्यपर्यवसानः ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेन-क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां चतुर्णां सामान्योक्तः कालः ॥ औपशमिकसम्यक्त्वेषु असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः ॥ प्रमत्ताप्रमत्तयोश्चतुर्णामुपशमकानां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तः कालः ।

अभव्यानाम् ॥ अनादि-अपरि* अवसानः ॥	=अभव्योंका अनादि अन्त (=अवसान) रहित (=अपरि) अर्थात् अनादि अनंतकाल है
(१२) सम्यक्त्व-अनुवादेन ॥ क्षायिक-सम्यग्दृष्टीनां ॥	=(१२)सम्यग्दर्शन के कथनानुसारकरि क्षायिकसम्यग्दर्शनवालोंका
असंयतसम्यग्दृष्टि-आदि-अयोगकेवलि-अन्तानां ॥	=असंयत (चौथे गुणस्थान) वर्ती से अयोगकेवली पर्यन्तनिका
सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥	=संक्षेपकरि (पहिले) कहा हुआ (गुणस्थानवत्) काल है (पृष्ठ १८२ से १८८ तक)
क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टीनां ॥ चतुर्णां ॥	=वेदक सम्यग्दर्शनवाले चारों (चारसे सातवां गुणस्थानवर्ती) निका
सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥	=संक्षेपसे कथित (गुणस्थानवत्) काल है (पृष्ठ १८२ पंक्ति ३ से १८५ पंक्ति ३ तक)
औपशमिकसम्यक्त्वेषु ॥ असंयतसम्यग्दृष्टि-	=उपशमसम्यग्दर्शनमें असंयमसम्यग्दर्शन वाले और
संयतासंयतयोः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥	=देशसंयमीनिका अनेक चेतनकी अपेक्षासे
जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ पल्योपम-	=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (काल) है उत्कृष्टकरि पल्योपमके
असंख्येयभागः ॥ एकजीवं ॥ प्रति* जघन्यः ॥ च	=असंख्यातवांभाग है और एक जीव के लिये जघन्य
उत्कृष्टः ॥ च अन्तर्मुहूर्तः ॥ च प्रमत्त-अप्रमत्तयोः ॥	=और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (काल) है। और प्रमत्त (छठे) अप्रमत्त (सातवें) गुणस्थानोंका
च चतुर्णां ॥	=और चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती)
उपशमकानां ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ च	= उपशमश्रेणीवालों का नाना जीवकी अपेक्षासे और
एक-जीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥	=एक जीवकीविवक्षा से जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ -सासादनसम्यग्दृष्टि-	=उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है । सासादन सम्यग्दृष्टि
सम्यङ्मिथ्यादृष्टि मिथ्यादृष्टीनां ॥ सामान्य-उक्तःकाल	=मिश्र और मिथ्यादृष्टियों का संक्षेप में कथित (गुणस्थानवत्) काल* है अर्थात्

पुद्गलपरिवर्ताः । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तः कालः ॥ (१४) अहारानुवादेन -- आहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभाग असंख्येयाः सख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ।

पुद्गलपरिवर्ताः १। तद्-उभय-व्यपदेश-रहितानां ३।	=पुद्गल परावर्तन हैं । उन (सैनी असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित
सामान्य- उक्तः १। कालः १।	=(सयोग-अयोग केवली) निका संक्षेप से कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सयोग केवलियोंका नाना जीवकी प्रति सब काल है एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त हैं उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड़ पूर्व है । अयोग केवलियों का काल नाना जीव की और एक जीवकी प्रति जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है
(१४) आहार-अनुवादेन ३। आहारकेषु ३। मिथ्यादृष्टेः ६।	=आहार के कथनानुसार करि आहारकनि में मिथ्यादृष्टी का
नाना जीव अपेक्षया ३।। सर्वः १। कालः १। एकजीवं २।	=अनेक जीवकी अपेक्षासे सब काल है । एक जीव के
प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३।	=लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि
अंगुल-असंख्येय-भागः-१। असंख्येया संख्येयाः १।	=(सूची अंगुल के असंख्यातवां अंश है सो असंख्यातासंख्यरत
उत्सर्पिणि-अवसर्पिण्यः १।	=उत्सर्पिणी (काल) अवसर्पिणी काल (परिमाण) है अर्थात अंगुल के प्रदेश और इनके समय समान है ।। भावार्थ सूच्यंगुलके असंख्यातवां भाग के प्रदेशोंकी संख्याके बराबर आहारक का समय है ।

(१) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप छह कालों से भरत और ऐरावत क्षेत्रों में मनुष्यो की आयु काय भोगोपभोग सम्पदा वीर्य बुद्धयादिक का बढ़ना और घटना होता है । उत्सर्पिणी के छह कालों में वृद्धि और अवसर्पिणी के छह कालोंमें दिनों दिन ह्रास होता जाता है । अवसर्पिणी काल के (१) सुखमसुखमा (२) सुखमा (३) सुखमदुःखमा (४) दुःखमसुखमा (५) दुःखमा (६) अति दुःखमा ऐसे छह भाग है । इसी प्रकार उत्सर्पिणीके भी (१) अति दुःखमा (२) दुःखमा (३) दुःखमसुखमा (४) सुखमदुःखमा (५) सुखमा (६) सुखमसुखमा ये छह हैं ।। अवसर्पिणी काल दश कोडा कोडी सागर का है अर्थात् १०००००००० × १०००००००० = १०००००००० ००००००० (दशनील सागर को) × १० (दशसे गुणा करो) तो १०००००००० ००००००० ० सौ नीलसागर हुये । और उत्सर्पिणी काल भी दश कोडा कोडी सागर अर्थात सौ नीलसागर का है । इन दोनो कालों को मिलाकर बीस कोडा कोडी सागर को एक कल्प कहते हैं ।। (२) देखो टिप्पणी मुद्रित पृष्ठ २६९ से २७६ तक

शेषाणा सामान्योक्त कालः ॥ असंज्ञिना मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व कालः। एकजीव प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् ॥ तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठी सहस्सगाणि मरणाणि। अतोमुहुत्तमेत्ते तावदिया चेव होंति खुद्दभवा ॥ ६६३३६ ॥ उत्कर्षेणान्त कालोऽसख्येयाः

का नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण क्षपक श्रेणी वाले सज्ञियो का नाना जीवऔर एक जीव अपेक्षा से जघन्य और उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त काल है

शेषाणा ॥ =बचेहुये (सैनी दशवा-ग्यारहवा-बारहवा गुण स्थानवर्ती) निका

सामान्य उक्त ॥ काल ॥ =सक्षेप (प्रकरण) में कहा हुआ (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् शेष उशम श्रेणीवाले दशवा-ग्यारहवा गुणस्थानवर्ती सज्ञियो का नाना जीवकी और एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है और शेष क्षपक श्रेणीवाले दशवा बारहवा गुणस्थानवर्ती सेनियो का नाना जीव ओर एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ सज्ञी प्रथमसे बारह गुणस्थान तक होते है ॥ असज्ञी केवल मिथ्यात्व गुणस्थानमें होते है ॥

असज्ञिना ॥ मिथ्यादृष्टे ॥ नाना जीव अपेक्षया ॥ =मन रहित (= असज्ञिना) मिथ्यादृष्टीका अनेक चेतनकी अपेक्षासे

सर्व ॥ काल ॥ एकजीव ॥ प्रति जघन्येन ॥ =समस्त काल है एक जीव कलिये जघन्यकरि

क्षुद्रभव-ग्रहणम् ॥ =सूक्ष्मभव (का काल) लिया गया है [सो श्वास के अठारहवा भाग होता है]

तिण्णि ॥ सया ॥ छत्तीसा ॥ (=त्रीणि शतानि षट् त्रिंशत्=तीन सौ छत्तीस

छावट्ठी ॥ सहस्सगाणि ॥ (=षटषष्टि ॥ सहस्राणि)=छासठ सहस्र

मरणाणि ॥ अतोमुहुत्त-(=मरणानि ॥ अन्तर्मुहूर्त-)=मरण अन्तर्मुहूर्त

मत्ते ॥ तावन्दिया ॥ च (मात्रे ॥ तावन्त ॥ च) =मात्र में और (= च) इतने (अर्थात् ६६३३६)

एव होति ॥ खुद्दभवा ॥ (=एव भवन्ति क्षुद्रभवा) =ही सूक्ष्म भव (एक लब्ध्य पर्याप्तक जीव के) होते है ॥

उत्कर्षेण ॥ अनन्त ॥ काल ॥ असख्येया ॥ =(मन रहित मिथ्यादृष्टी का) उत्कृष्ट करि अनत काल है। सो असख्याते

सासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणावलिकाया असंख्येय- भागः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण द्वौ समयौ ॥ सयोगकेवलिनो नानाजीवापेक्षया जघन्येन त्रयः समयाः । उत्कर्षेण संख्येयाः समयाः । एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्च त्रयः समयाः ॥ अयोगकेवलिनां सामान्योक्तः कालः ॥ कालो वर्णितः ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि-असँयतसम्यग्दृष्ट्यो : ६। नाना जीव अपेक्ष ा ३॥ जघन्येन ३। एकः १। समयः १। =(अनाहारकोंमें) सासादन सम्यग्दृष्टीका असंयत सम्यग्दृष्टीका नाना जीव की अपेक्षा से जघन्य करि एक समय (मात्र) है

उत्कर्षेण३। आवलिकायाः६॥ असंख्येय-भागः१। =उत्कृष्टकरि आवलीका असंख्यातवां भाग है

एक जीवं २। प्रति* जघन्येन३। एकः१। समयाः१। =एक जीव के लिये जघन्यकरि एक समय है

उत्कर्षेण३। द्वौ १। समयौ १। सयोग-केवलिनः६। =उत्कृष्ट करि दो समय हैं । सयोगकेवलीका

नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ जघन्येन ३। त्रयः १। =अनेक आत्माओं की अपेक्षासे जघन्यकरि तीन

समयाः१। उत्कर्षेण३। संख्येयाः१। समयाः१। =समय हैं । उत्कृष्टकरि संख्याते समय हैं ।

च*एक जीवं २। प्रति* जघन्यः १। उत्कृष्टः १। च त्रयः १। समयाः १। =और (सयोगकेवली का ही) एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य और (-१) उत्कृष्ट =तीन समय हैं अर्थात् एक सयोगकेवली भगवानको अपेक्षा से जब तीसरे समय में प्रतर समुद्घात करते हैं और चौथे समय में लोकपूर्ण समुद्घात को करते हैं, फिर इस लोकपूर्ण समुद्घात को पांचवीं समय में संकोचते हैं तब इन तीसरे चौथे पांचवें समयों में कार्माण योग होता है और अनाहारक अवस्था होती है ॥ "ओगलंदण्ड दुगे" इत्यादि गाथा पृष्ठ १२५ से प्रतर समुद्घात के संकोचने में छठी समय में भी कार्माण योग होता है अतः चार समय अनाहारक हो जाते हैं ॥ कितेक आचार्य तीन समय ही मानते हैं (११६ से १२६ तक)

अयोगकेवलिनां६ सामान्य-उक्तः१। कालः१। =अयोगकेवलीयोंका संक्षेप (प्रकरण) में कथित (गुणस्थानवत) काल है अर्थात् नाना जीवकी और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है (पृष्ठ १८७ के अनुसार)

कालः१। वर्णितः१। =काल (इस प्रकार) वर्णन किया गया है

शेषाणां सामान्योक्त काल ॥ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व कालः । एकजीव प्रति जघन्येनैक समय. । उत्कर्षेण त्रयः समया ॥

शेषाणां ॥ =(आहारकनिमें) अवशिष्ट (दूसरेसे तेरहवें गुणस्थानवाले) निका
सामान्य-उक्त ॥ काल ॥ =सक्षेपमें कथित (गुणस्थानवत) काल है अर्थात १८१ से १८८ पृष्ठ तक देखो और पृष्ठ १८७ मेसे अयोगकेवलियो का काल जो नाना जीव की और एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त ह मत पढो ॥
अनाहारकेषु ॥ मिथ्यादृष्टे ॥ नाना-जीव-अपेक्षया॥ =अनाहारकनिमे मिथ्यादृष्टीका अनेक चेतनकी अपेक्षा से
सर्व ॥ काल ॥ एकजीव ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥ =सब काल है । एक जीवके लिये जघन्यकरि
एक ॥ समय ॥ उत्कर्षेण ॥ त्रय ॥ समया ॥ =एक समय (मात्र) है । उत्कृष्टकरि तीन समय (तक विग्रहगति में) ह अनाहारक अवस्था जीव की पहले दूसर-चौथे-तेरहवें-चौदहवे गुणस्थानो म है

(२) अगुल असख्येय भागा देखापृष्ट २२० यह वाक्य सर्वार्थ सिद्धि के दोनो प्रकरणों म अशुद्ध (छप गया) है यह वाक्य इस प्रकार होना चाहिये कि अगुल असख्येय भाग इत्यादि और अगुल न सूच्यगुल समझना चाहिये क्योंकि पडित टोडरमल जो कृत गो० टसार की गाथा ६७० इस प्रकार कि ' अगुल असख भागा कालो आहारयस्स उक्कस्सा (अगुलासख्यभाग काल आहारकस्योत्कृष्ट) ॥ जीव तत्त्व प्रदीपिका टीका म इस का अर्थ ऐसे किया है कि ' आहार काल उत्कृष्ट सूच्यगुलासख्यातेकभाग " भाषा टोडरमल जी आहार का काल उत्कृष्ट सूच्यगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है ॥ सूच्यगुल का असख्यातवां भाग के जेते प्रदेश होंहि तितने समय प्रमाण आहारक का काल है ॥ जयचन्द्र रायजी ने भी असख्यातवा भाग अनुवाद किया है न कि असख्यातभाग' उत्कृष्ट अगुल के असख्यातवा भाग है सो असख्यातासख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी परिमाण है । अगुल के प्रदेश और इन के समय समान हैं ॥"सर्वार्थ सिद्धि वचनिका पृष्ठ मुद्रित ९७ ॥ इस का साराश यह है कि आहार की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टी का एक जीव की विवक्षा से उत्कृष्ट काल सूच्यगुल के असख्यातवा भाग है इस सूच्यगुल के असख्यातवा भाग के प्रदेश सख्या व गणना मे इतने हैं कि जितने पूर्वोक्त टिप्पणी म कथित उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के समय गणना म होते ॥ (सूच्यगुल कथा है पृ० २६९ से २७६)

(१) एक द्वौ त्री वाऽनाहारक इति व क्ष्यमाणत्वात् ॥ (नया भव अथवा तन म धारण करने के लिये गमन में जीव)
एक ॥ द्वौ ॥ त्रीन ॥ वा ॥ =एक (समय तक) क लिये दो (समय तक) को अथवा तीन (समय तक) को
अन् आहारक ॥ =अनाहारक है अर्थात् नोकर्म वर्गणा का आहार वा ग्रहण नहीं करता है
इति वक्ष्यमाणत्वात् ॥ =क्योंकि ऐसा (अध्याय २ सूत्र ३० म) कहा जायगा ।

जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागः उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तरं नानाजीवापेक्षया सासादनवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्

जघन्येन ३।१ एकः १।१ समयः १।१ उत्कर्षेण ३।१ पल्योपम-	=जघन्यकरि एक समय है। उत्कृष्टकरि पल्योपमके
असंख्येय-भागः १।१ एकजीवं २।१ प्रति जघन्येन ३।१	=असंख्यातवें भाग है। एक जीव के लिये जघन्यकरि
पल्योपम का असंख्येय-भागः १।१ उत्कर्षेण ३।१ देशोनः १।१	=पल्योपम का असंख्यातवां खंड है। उत्कृष्ट करि कुछ न्यून
अर्ध-पुद्गल-परिवर्तः १।१ सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ६।१	=अर्ध पुद्गल परावर्तन है॥ मिश्रगुणस्थान वर्तीनिका
अन्तरं १।१ नाना-जीव अपेक्षया ३।१ सासादनवत्*	=विरह काल अनेक जीवकी विवक्षा से सासादन (दूसरे गुणस्थान)सम है अर्थात् जघन्य अतर एक समय है उत्कर्ष पल्य के असंख्यातवां भाग है
एकजीवं २।१ प्रति* जघन्येन ३।१ अन्तर्मुहूर्तः १।१ उत्कर्षेण ३।१	=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कर्ष करि
अर्ध-पुद्गल परावर्तः १।१ देशोनः १।१ असंयत-	=कुछ घाटि आधे पुद्गल परावर्तन है। असंयमी
सम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अन्तानां ६।३ नानाजीव-	=सम्यग्दर्शन वाले से अप्रमत्त गुणस्थानतकनिका अनेक जीव की
अपेक्षया ३।१ न* अस्ति T अन्तरम् १।१	=विवक्षा से वियोग काल (कुछ) नहीं है॥ (चौथे से सातवें गुणस्थान वालोंका)
एकजीवं २।१ प्रति* जघन्येन ३।१ अन्तर्मुहूर्तः १।१ उत्कर्षेण ३।१	=एक आतमा के लिये जघन्य करि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट करि
अर्ध-पुद्गल परिवर्तः १।१ देशोनः १।१	=कुछ न्यून आधे पुद्गल परावर्तन (अन्तर) है
चतुर्णाम् ६।३ उपशमकानाम् ६।३	=चार उपशम श्रेणी (आठवें से ग्यारहवां गुणस्थान) वालेनिका (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया ३।१ जघन्येन ३।१ एकः १।१ समयः १।१	=अनेक जीव की विवक्षा से जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ३।१ वर्ष-पृथक्त्वम् १।१	=उत्कृष्ट करि पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) वर्ष है

सर्वार्थ सिद्धि

२२३ अन्तरं निरूप्यते– विवक्षितस्य गुणस्य गुणान्तरसंक्रमे सति पुनस्तत्प्राप्तेः प्राङ्मध्यमन्तरम् । तत् द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्- मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे षट्षष्ठी देशोने सागरोपमाणाम् सासादनसम्यग्दृष्टेरन्तरं नानाजीवापेक्षया

अन्तर॥॥ निरूप्यते॥ विवक्षितस्य॥ गुणस्य॥	=अन्तर अर्थात् विरह वा बिछोहकाल निरूपण किया जाता है अपेक्षितगुणका
गुणान्तर-संक्रमे॥ सति॥ पुनः* तत्-प्राप्तेः॥ प्राक्*	=अन्यगुणमें पलटन होनेपर (=सति)फिर उसी (गुणकी) प्राप्तिसे पहिले
मध्यम्॥॥ अन्तरम्॥॥	=मध्य वा बीच (का काल) सो अन्तर है अर्थात् एक गुणको छोडकरि फिर उसी गुणके ग्रहण करने में विलम्ब वा देरी हो सो अन्तर है ॥
तत्॥॥ द्वि विधम्॥॥ सामान्येन॥॥ विशेषेण॥ च*	=वह (अन्तर) दो प्रकार है संक्षेपकरि और (=च) भेदकरि
सामान्येन तावत्* मिथ्यादृष्टेः॥ नानाजीव-अपेक्षया॥॥	=संक्षेपसे प्रथम (=तावत्) मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षा से
न-अस्ति अन्तरम्॥॥ एकजीव॥ प्रति* जघन्येन॥॥	=अन्तर नहीं है । एक जीव के लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्त ॥—उत्कर्षेण॥ देशोने॥॥ द्वे॥॥	=अन्तर्मुहूर्त (अन्तर) है । उत्कृष्टकरि कुछ न्यून दुगुणे
षट्षष्ठी॥ सागरोपमाणाम्॥॥	=छयासठि (अर्थात् एकसौ बत्तीस) सागरोपमका (अन्तर) है
सासादनसम्यग्दृष्टेः॥ अन्तर॥॥ नानाजीव-अपेक्षया॥॥	=सासादन सम्यग्दर्शन वालेका (विरहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षा से

(१) एकोनविंशति (उन्नीस) से नवनवति (निन्यानवे) तक अर्थात् अस्सी संस्कृत की संख्याओं को संज्ञा मान सकते हैं ये सब अस्सी स्त्री लिङ्ग में हैं। संज्ञा जिन के साथ ये लाई जाती हैं। बहु वचन संज्ञा के साथ ये एक वचन में लाई जा सकती हैं जैसे षट्षष्टि ॥ केवलिन ॥ षट्षष्टि ॥ अहानि ॥ छयासठ दिवस सप्तषष्टि स्मृतय ॥ । विंशति ॥ ब्राह्मणा ॥ अथवा विंशति ब्राह्मणा ॥ (बीस ब्राह्मण) दूसरी संज्ञाओं के समान ये द्वि वचन और बहु वचन में भी लाई जा सकती हैं परन्तु उस समय में संज्ञाय जिन के साथ ये लाई जाती हैं षष्ठी विभक्ति में होती हैं जैसे ब्राह्मणानां ॥ विंशती ॥ (दो कोडी वा दो बीसी ब्राह्मणों) की ब्राह्मणानां ॥ विंशतय ॥ बहुत कोडी ब्राह्मणों की ॥ इसी प्रकार द्वे ॥ षट्षष्टी ॥ सागरोपमाणाम् ॥ दो गुणे छयासठि सागर । इन अस्सी संख्याओं में से किसी का भी एक वचनमें लानेपर भी संज्ञाय जिनके साथ ये संख्याय लाई जावें षष्ठी विभक्तिमें भी लाई जासकती हैं जैसे ब्राह्मणाम् ॥ विंशति ॥ पच्चीसी ब्राह्मण ॥

द्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः ।उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण एक-त्रि-सप्त- दश- सप्तदश-द्वाविंशति- त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणिपल्योपमानि देशोनानि ॥

द्वा-विंशति—त्रयस्त्रिंशत्-सागरोपमाणि ;॥ देशोनानि ;॥ =(छठे नरकमें कुछ न्यून) बाईस (सातवां में) कुछ न्यून तेतीस सागर प्रमाण है
सासादन सम्यग्दृष्टि—सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ;। =सासादन सम्यग्दर्शनवाले और मिश्र गुण स्थानवाले (नारकिनिका)
नानाजीव—अपेक्षया;॥ जघन्येन एकः ;। समयः ;। =अनेक जीव की विवक्षा से जघन्यकरि एक समय (अन्तर है)
उत्कर्षेण ;। पल्योपम—असंख्येय—भागः ;। एकजीवं ;। =उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां भाग है । एक (नारक) जीवके
प्रति जघन्येन ;॥ पल्योपम—असंख्येय—भागः ;। च* =लिये जघन्यकरि पल्यके असंख्यातवां भाग प्रमाण है ॥ और (च)
अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। एक—त्रि— =अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि (प्रथम नरकमें कुछ घाटि) एक (दूसरे नरकमें कुछ न्यून) तीन
सप्त—दश— =(तीसरे नरकमें कुछ हीन) सात (चौथे नरकमें कुछ न्यून) दश
सप्तदश—द्वाविंशति— =(पांचवां नरकमें कुछ घाटि) सत्रह छठे (नरकमें कुछ न्यून) बाईस
त्रयस्त्रिंशत् सागर उपमाणि ;॥ देशोनानि ;॥ =[सातवां नरकमें] कुछ न्यून तेतीस सागर प्रमाण [विरह काल] है [नारकीयों के प्रथम मिथ्यात्व से असंयत चौथे गुणस्थान तक चारही हो सकते हैं]
तिर्यग्गतौ ;। तिरश्चां ;। मिथ्यादृष्टेः ;। नानाजीव— =तिर्यंच गति में तिर्यंच मिथ्यादृष्टियों का अनेक जीवों की
अपेक्षया ;॥ न* अस्ति अन्तरम् एकजीवं ;। प्रति जघन्येन=अपेक्षा से विरहकाल नहीं है । एक (तिर्यंच) जीव के लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि ;॥ देशोनानि ;॥=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछहीन तीन पल्य प्रमाणहै

---

(१) अधिकमपि कस्मान्नेति चेत् क्षपणारम्भकवेदकयुक्तस्य तिर्यक्षूत्पादाभावात् । तद्युक्तो हि देवेष्वेवोत्पद्यते । अन्तो मिथ्यात्वयुक्तस्त्रिपल्योपमायुष्को भोगभूमिषूत्पद्यते । तत्र चोत्पन्नानां तिर्यङ्मनुष्याणां किञ्चिदभ्यधिकाष्टचत्वारिंशद्दिनेषु सम्यक्त्वग्रहणयोग्यता भवति । नियमादेतावद्दिनेषु मिथ्यात्वं परित्यागात् सम्यक्त्वं गृह्णाति । त्रिपल्योपमायुः शेषे पुनर्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते । इति गर्भकाले किंचिदधिकाष्टचत्वारिंशद्दिनैरवसानकाले ऽन्तर्मुहूर्तेन च हीनत्वाद्देशोनानि ज्ञातव्यानि ॥

एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं। उत्कर्षेण पुद्गल परिवर्तो देशोन ॥ चतुर्णां क्षपकाणामयोग केवलिनां च नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण षण्मासा। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सयोगकेवलीनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ विशेषेण (१) गत्यनुवादेन-नरकगतौ नारकाणां सप्तसु पृथ्वीषु मिथ्यादृष्ट्य-यतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं। उत्कर्षेण एक-त्रि-सप्त दश-सप्तदश-

---

एकजीवं ॥ प्रति+जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥	=(चार उपशम श्रेणीवालेनिका) एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ देशोन ॥ अर्द्धपुद्गल-परिवर्तं ॥	= उत्कृष्टकरि कुछ घाटि अर्द्ध पुद्गल परावर्तन (विरह काल) है
चतुर्णां ॥ क्षपकाणां ॥	=चार(आठवें से दशवें तक-बारहवें गुणस्थानवर्ती)क्षपक श्रेणीवालेनिका
च*अयोगकेवलीनां ॥ नानाजीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥	=और(=च) अयोग केवली निका अनेक जीवको विवक्षासे जघन्यकरि
एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ षण्मासा ॥	=एक समय(विरहकाल) है। उत्कृष्टकरि छह महीना अन्तर है
एकजीवं ॥ प्रति * न* अस्ति * अन्तरम् ॥	=(उक्त क्षपक श्रेणियों का) एक जीव के लिये(कुछ) विरहकाल नहीं है
सयोगकेवलीनां ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ च *	=सयोगकेवलीनिका अनेक जीवो की विवक्षासे और(=च)
एक-जीव-अपेक्षया ॥ न * अस्ति अन्तरम् ॥	=एक जीव की अपेक्षासे (कुछभी) विरह काल नहीं है
विशेषेण ॥ (१) गति अनुवादेन ॥ नरक-गतौ ॥	=भेदकरि (१) गति के कथनानुसारकरि-नरक गति में
नारकाणां ॥ सप्तसु ॥ पृथ्वीषु ॥ मिथ्यादृष्टि-	=नारकिनका सातवें नरकमें(=पृथ्वीषु ॥) मिथ्यादृष्टि और
असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ॥ नाना जीव अपेक्षया ॥	असंयत सम्यग्दर्शनवालेनिका नानाजीव की अपेक्षा से
न अस्ति अन्तरम् ॥-एकजीवं ॥ प्रति * जघन्येन	=(कुछ) विरह काल नहीं है। एकजीवकेलिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तं ॥ उत्कर्षेण ॥ एक-	=अन्तर्मुहूर्त (अन्तर) है। उत्कृष्ट करि (प्रथम नरक में कुछ हीन) एक
त्रि-सप्त-	=(दूसरे नरकमें कुछ न्यून) तीन (तीसरे नरकमें कुछ न्यून) सात
दश-सप्तदश-	=(चौथे नरक में किंचित् घाटि) दश (पांचवा नरक में कुछ घाटि) सत्रह

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां चतुर्णां सामान्योक्तमन्तरम् ॥

सासादन सम्यग्दृष्टि-आदिनाम् ६। चतुर्णाम् ६।	=सासादन सम्यग्दृष्टि आदिक चार (दूसरेसे पांचवां गुणस्थान वाले) निंका
सामान्य-उक्तम् १॥। अन्तरम् १॥।	=संक्षेप से कथित (गुणस्थानवत्) विरहकाल, अर्थात् सासादन गुणस्थान वाले तिर्यंचनिका (विरहकाल) अनेक जीवों की अपेक्षा से जघन्यकरि एक

च • अवसानकाले ७। शेषेण ३।	=और (=च) अंतम (मरण) काल में (आयुका) बचाहुआ काल अर्थात् भोगभूमि के मनुष्य तिर्यंच के मरने से पहिले आयु के बचे हुए काल में सम्यक्त्व नहीं रहता
हीनत्वात् ५॥। देशोनानि १॥।	=[उक्त तीन प्रकारके कालोंको उत्कृष्ट आयु तीनपल्य में से] घटाने से कुछ हीन
ज्ञातव्यानि १॥।	[तीनपल्यउत्कृष्ट अन्तरकाल मिथ्यात्व छोड़कर सम्यक्त्वको प्राप्तकर फिर मिथ्यात्व में आनेका] जानना चाहिये अथवा जानो

इस टिप्पणीका भावार्थ लिखनके प्रथम इस बातका लिखदेना उचित समझते हैं कि मिथ्यादृष्टी तिर्यंचोंका वही अन्तर है जो मिथ्यादृष्टी मनुष्यों का "मनुष्य गतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्टिस्तिर्यग्वत्" पृष्ठ २२९ के अनुकूल अब प्रश्न इसरूपमें होगया कि मिथ्यादृष्टि तिर्यंच वा मिथ्यादृष्टि मनुष्यके मिथ्यात्वका अन्तर क्या है अर्थात् पहिलेमनुष्य वा तिर्यंच मिथ्यात्व सहित था पश्चात् मिथ्यात्व छोड़कर सम्यक्त्व ग्रहण किया और पुनः मिथ्यात्व में आगया तो पहिलीवार मिथ्यात्वमे दूसरीवार मिथ्यात्व ग्रहण करने में कितना काल व्यतीत हुआ वही अन्तर वा विछोह काल मिथ्यात्व का है। उत्तरमें कहते है कुछ न्यून तीन पल्य प्रमाण हैं सो कैसे ? (उत्तर) दर्शन मोहनीयकर्म की तीन मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व के क्षयका प्रारम्भक वेदकसम्यक्त्वसहित जीवका जन्म देवों में ही होता है अतः मिथ्यात्ववाले जीवका जन्म भोगभूमिके तिर्यंच वा मनुष्य में हो सक्ता है। भोगभूमि में उत्कृष्ट आयु तीन पल्यकी हो सक्ती है जिसमें मिथ्यात्वका अंतर होता है अर्थात् तीन पल्यतक सम्यक्त्व रहता परन्तु उन तीन पल्यों मे से (१) गर्भमें रहने का काल (२ भोगभूमिके मनुष्य वातिर्यचमें जन्म होने से अढ़तालीस दिनसे कुछ अधिक समय तक जिसमें उक्त मनुष्य वा तिर्यंचमें सम्यक्त्व ग्रहण करने की योग्यता नहीं होती है (३) मरणसे पहिले कुछ कालतक सम्यक्त्व नहीं रहता ऐसे ये तीन प्रकारका समय तीन पल्यसे घटाकर अन्तरकाल तीन पल्यसे कुछ आदि ही रहता है इस लिये उक्त अन्तरकाल तीन पल्यसे कुछ न्यून ही कहा ॥

अधिकम् ।। अपि * कस्मात् । (कस्मात् ।॥) ?	— (मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्चका उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्यसे) अधिक किस तरह
न * इति * चेत् * क्षपणा आरम्भक-	= नहीं है ऐसी शंकापर =चेत्-कहते हैं कि) क्षपणका प्रारम्भ करने वाले अर्थात् दर्शनमोहनीयकर्मकी तीन मिथ्यात्व(= अतत्व श्रद्धान)सम्यक्त्व मिथ्यात्व (जिस कर्म प्रकृति के उदय से मिश्र परिणाम हों जिनको न तो सम्यक्त्वरूपही और न मिथ्यात्वरूपही कह सकते हैं) और सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व (जिसके उदय से सम्यक्त्व का मूलघात तो न हो परन्तु चल मलादि दोष हों) के क्षपणका आरम्भ करने वाला
वेदक युक्तस्य ।। तिर्यक्षु ।। उत्पाद अभावात् ।।	= क्षयोपशम सम्यक्त्व सहित (जीव) का तिर्यञ्चों में जन्मका अभाव होनेसे
तद् युक्तः ।। हि* देवेषु ।। एव * उत्पद्यते T	= उस क्षपणप्रारम्भक वेदक सम्यक्त्व सहित जीव देवों में ही उपजता है
अतः * मिथ्यात्वयुक्त ।। त्रिपल्योपम प्रायुक ।।	= इसलिये मिथ्यात्ववाला तीन पल्यप्रमाण आयुसहित
भोगभूमिषु ।। उत्पद्यते T तत्र * च * उत्पन्नाना ।।	= भोगभूमियों में जन्म धारण करता है और (= च) वहां उपजने वाले
तिर्यङ्-मनुष्याणां ।। किञ्चित् * अभ्यधिक - अष्ट-	= तिर्यञ्च और मनुष्यों की कुछ अधिक अड़
चत्वारिंशत् ।॥ दिनेषु ।॥ सम्यक्त्व ग्रहण योग्यता ।।	= तालीस दिनमें सम्यग्दर्शन प्राप्तिकी योग्यता या सामर्थ्य
भवति नियमात् ।। एतावत् * दिनेषु ।। मिथ्यात्व	= होती है क्योंकि नियमसे इतने दिनों में मिथ्यात्व
परित्यागात् ।। सम्यक्त्व ।॥ गृह्णाति T त्रि पल्योपम	= छोड़देता है और सम्यग्दर्शनका ग्रहण करता है तीन पल्य प्रमाण
आयु शेषे ।। पुन मिथ्यात्व ।॥ प्रतिपद्यते T इति	= आयु के कुछ शेष रहने पर फिर मिथ्यात्वका ग्रहण करता है इस प्रकार
गर्भकाले ।। किंचित् * अधिक अष्टचत्वारिंशत् ।॥	= गर्भ (के रहने के) कालमें, कुछ अधिक अड़तालीस दिनसहित (काल में
दिनै ।।	= अर्थात् जब भोगभूमिकी मनुष्य तिर्यञ्च बाल अवस्था से तरुणाई को पहुंच के सम्यक्त्व के प्राप्त करने के योग्य होजाता है वह समय

एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ।

एक-जीवं ३। प्रति* =(सासादन और मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्ती मनुष्यनिका) एकजीवके लिये
जघन्येन ३।।। पल्योपम-असंख्येयभागः अन्तर्मुहूर्तः १। च =जघन्यकरि पल्योपम के असंख्यातवांभाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥
उत्कर्षेण३ त्रीणि ३।। पल्योपमानि १।।पूर्वकोटिपृथक्त्वैः३।।। =उत्कृष्टकरि तीन पल्य प्रमाण पृथक्त्व (तीनसे ऊंचे नौसे नीचे) करोड़ पूर्वकरि
अभ्यधिकानि १।।। असंयतसम्यग्दृष्टेः ६ नानाजीव– =अधिक है असंयमी सम्यग्दर्शनवाले (मनुष्य) निका अनेक जीवकी
अपेक्षया३।। न* अस्ति अन्तरम्१।।। एक-जीव-अपेक्षया३।। =अपेक्षा से विरह काल नहीं है एक जीव के कथनानुसार से
जघन्येन ३।।। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। त्रीणि ३।।। पल्यो =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि तीन पल्य
पमानि ३।।। पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ३।।। अभ्यधिकानि ३।।। =प्रमाण और पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) करोड पूर्वकरि अधिक है ॥
संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्तानां ३। नानाजीव– =संयमासंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्तसंयमी (मनुष्य) निका नानाजीव
अपेक्षया ३॥न अस्ति अन्तरम् १।।। एक-जीवं ३। प्रति* =अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक आत्मा के लिये
जघन्येन ३।।। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। पूर्वकोटी- =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि तीन करोड़ पूर्व के
पृथक्त्वानि १।।। चतुर्णाम् ३। =ऊपर नव के नीचे (= पृथक्त्वानि) है । चार (आठ से ग्यारह गुणस्थानवर्ती तक)
उपशमकानां ३। नाना-जीव-अपेक्षया ३।। =उपशम श्रेणी चढ़ने वालेनिका नाना जीवो के कथनानुसारकरि
सामान्यवत्* =संक्षेप (प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान) वत (विरह काल) है अर्थात् नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट तीन और नव वर्ष के मध्य है
एकजीवं ३। प्रति* जघन्येन ३।।। अन्तर्मुहूर्तः १।। =(चार उपशम श्रेणी वालेनिका) एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्टेस्तिर्यग्वत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ॥

समय है ॥ उत्कृष्टकरि पल्य के असंख्यातवा भाग है। एक जीवके लिये जघन्यकरि पल्यका असंख्यातवां भाग है उत्कृष्टकरि कुछ न्यून अर्द्ध पुद्गल परावर्तन है। मिश्र तीसरे गुणस्थान वर्तीय तिर्यंचनिका विरहकाल अनेक जीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है। उत्कर्ष पल्यके असंख्यातवा भाग है। एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि आधे पुद्गल परावर्तन है। असंयमी सम्यग्दर्शन वाले तिर्यंचो का और संयमा संयमी पाचवें गुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंका अनेक जीवकी अपेक्षा से वियोगकाल (कुछ) नहीं हैं। एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि कुछ न्यून आधे पुद्गल परावर्तन (अंतर) है (तिर्यंचों में पाच ही गुणस्थान होवे हैं)

मनुष्यगतौ॥ मनुष्याणां॥ मिथ्यादृष्टे ॥ तिर्यग्वत्॥ =मनुष्यगति में मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंका तिर्यंच सदृश (अन्तर) है अर्थात् मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका नाना जीवकी अपेक्षा से कुछ भी अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि कुछ हीन तीन पल्य है (मनुष्य भोग भूमि में वैसे ही उत्पन्न होवे हैं जैसे तिर्यंच टिप्पणी २२७-२२८)

सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टयो ॥ =सासादन गुणस्थानवर्ती (मनुष्य) निका मिश्र गुणस्थानवर्ती (मनुष्य) निका

नानाजीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत्॥ =अनेक जीवकी अपेक्षा से (अन्तर) संक्षेप (प्रकरण) में कथित (गुणस्थानवत्) है अर्थात् दूसरे गुणस्थान वालोंका जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग है ॥ मिश्रका भी (सासादनवत्) जघन्य एक समय उत्कर्ष पल्यके असंख्यातवां भाग है ॥ (पृष्ठ २२३, २२४ देखो)

एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेनएकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः एवमिन्द्रियं प्रत्यन्तरमुक्तम् ।

देशोनानि॥ एकत्रिंशत्॥ सागरोपमाणि॥	=कुछ हीन इकतीस सागर प्रमाण (अन्तर वा विरह काल) है
(२) इन्द्रिय-अनुवादेन । एक-इन्द्रियाणां । नानाजीव	=(२)इन्द्रियों के कथनानुसारकरि एकेन्द्रियों के अनेक जीवकी
अपेक्षया । न अस्ति अन्तरम्॥ एक-जीव-अपेक्षया॥	=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक आत्माकी अपेक्षा से
जघन्येन ॥ क्षुद्रभव-ग्रहणम् ॥	=जघन्यकरि सूक्ष्मभव (का काल-श्वासके अठारहवां भागके बराबर) लिया गया है
उत्कर्षेण । द्वे ॥ सागरोपमसहस्रे ॥ पृथक्त्वैः ॥	=उत्कृष्टकरि दो हज़ार सागर प्रमाण और पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे)
पूर्व कोटी, अभ्यधिके ॥	=करोड पूर्व अधिक है (जैसे एकजीव एकेन्द्रिय था, एकेन्द्रिय की अवस्था को छोड़ कर अन्य इन्द्रिय धारण की तो शीघ्र से शीघ्र वही जीव फिर एकेन्द्रिय हो तो श्वास के अठारहवां भाग काल के पश्चात् एकेन्द्रिय होजावैगा और यदि देरी से देरी करे तो वही जीव दो हजार सागर, तीनसे ऊपर और नौसे नीचे करोड़ पूर्व काल तक अन्य इन्द्रियों वाला होकर पश्चात् फिर एकेन्द्रियही हो जावैगा)
विकल-इन्द्रियाणां । नाना-जीव-अपेक्षया ॥ अन्तरं ॥	=विकलत्रय (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय) निका नाना जीव अपेक्षा से अंतर
न अस्ति एक-जीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ क्षुद्रभव-	=नहीं है । एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि सूक्ष्मभव (१/१८ श्वांसवत्काल)
ग्रहणम् ॥ उत्कर्षेण । अनन्तः । कालः ।	=लिया गया है । उत्कृष्टकरि अनन्तकाल है
असंख्येयाः । पुद्गलपरिवर्ताः ॥ एवम्॥ इन्द्रियं ॥	=[सो असंख्याते पुद्गलपरावर्तन [काल के तुल्य] है ऐसे इन्द्रियों की
प्रति॥ अन्तरम् ॥ उक्तम् ॥	=[अर्थात् एकेन्द्रिय और विकलत्रय की] अपेक्षा से विरहकाल कहा गया है

सर्वार्थ- उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि । शेषाणां सामान्यवत् ॥ देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यो- सिद्धि
नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥
२३१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येय-
भागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण

उत्कर्षेण ॥ पूर्वकोटी पृथक्त्वानि ॥ शेषाणां ॥ — उत्कृष्टकरि तीन से उपर नवसे नीचे (=पृथक्त्व) करोड पूर्व है अवशेष (चार अपूर्वकरण आठवा अनिवृत्तिकरण नववा सूक्ष्मसांपराय दशवा क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थानवर्ती सयोग केवली और अयोग केवली) निका

सामान्यवत् ॥ (विरह काल) सक्षेप [प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान] सदृश है अर्थात् चार क्षपक श्रेणीवाले और अयोगकेवलियों का (अन्तर) नाना जीव की अपेक्षासे जघन्य एक समय व उत्कृष्टकरि छह मास है । एकजीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है । सयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है [देखो पृष्ठ २२५]

देवगतौ ॥ देवानां ॥ मिथ्यादृष्टि असंयत सम्यग्दृष्ट्यो ॥ — देवगति में सुर मिथ्यादृष्टि और असंयमी सम्यग्दर्शनवाले (देव) निका

नानाजीव अपेक्षया ॥ न अस्ति अंतरं ॥ एकजीवं ॥ — नानाजीव की अपेक्षा से विरह काल नहीं है । एक जीव के लिये

प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ — जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि

एकत्रिंशत् ॥ सागरोपमाणि ॥ देशोनानि ॥ — कछ कम इकतीस सागर प्रमाण है

सासादन सम्यग्दृष्टि सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यो ॥ नाना जीव — सासादन [द्वितीय] गुणस्थानवर्ती [देव] मिश्र [तीसरा] गुणस्थानवाले [देव] निका

अपेक्षया ॥ सामान्यवत् ॥ — (विरह काल) नानाजीव की अपेक्षा से संक्षेप [विषय में पूर्वकथित गुणस्थान]

— सदृश है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवा भाग है [देखो पृष्ठ २२३, २२४

एकजीवं ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥ पल्योपम — [सासादन मिश्रवर्ती देवोंका] एकजीव की अपेक्षा से जघन्यकरि पल्योपम के

असंख्येय भाग ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ च—उत्कर्षेण ॥ — असंख्यातवा भाग है और अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि

२३१

पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम्॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम्॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्।

पञ्चन्द्रियेषु, मिथ्यादृष्टेः, सामान्यवत्*	=पंचेन्द्रिय जीवों में मिथ्यादृष्टिका संक्षेप (विषय में कथित गुणस्थान) सम है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका नाना जीव अपेक्षासे कुछ अन्तर नहीं है एक जीव की अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट एकसौवत्तीस सागर से कुछ हीन है
सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः, नाना-	=सासादन सम्यग्दर्शनवाले और मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्तीनिका अनेक
जीव-अपेक्षया, सामान्यवत्*	=जीवों की अपेक्षा से संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पल्यका असंख्यातवां भाग है
एक जीवं, प्रति* जघन्येन, पल्योपम-असंख्येय-	=एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि पल्योपमके असंख्यातवां
भागः, च अन्तर्मुहूर्तः, उत्कर्षेण, सागरोपमसहस्रं	=भाग और अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि एक सहस्र सागर प्रमाण (और)
पूर्वकोटि पृथक्त्वैः, अभ्यधिकम्, असंयत-	=पृथक्त्व (तीनसे ऊपर नवसे नीचे) करोड़ पूर्वकरि अधिक है ॥ असंयमी
सम्यग्दृष्टि-आदि अप्रमत्त-अन्तानां, नानाजीव-	=सम्यग्दर्शनवालेसे अप्रमत्त गुणस्थानवालेनितक अनेक जीवकी
अपेक्षया, न अस्ति T अन्तरम्, एकजीवं, प्रति	=अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एक जीवकी अपेक्षासे
जघन्येन, अन्तर्मुहूर्तः, उत्कर्षेण, सागरोपम-	=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि सागरोपम
सहस्रं, पूर्व कोटी पृथक्त्वैः, अभ्यधिकं, चतुर्णां,	=हज़ार और पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक है। चार [अपूर्वकरणसे उपशांतकषाय तक]
उपशमकानां, नाना-जीव-अपेक्षया, सामान्यवत्*	=उपशम श्रेणीवालेनिका [अन्तर] नाना जीवकी अपेक्षासे संक्षेप [कथन] वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीनसे ऊपर नव वर्षसे नीचे है

सर्वार्थ सिद्धि

गुणं प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम् ॥

गुणं ॥ प्रति॥ उभयतः॥	=गुणस्थान की (=गुणं) अपेक्षा से (=प्रति) दोनों (एकेन्द्रिय विकलत्रय) का
अपि॥ न॥ अस्ति ॥ अन्तरम् ॥॥	=भी अंतर नहीं है (क्योंकि दोनों के मिथ्यात्व ही गुणस्थान होता है)

(१) एकेन्द्रियविकलेन्द्रियतोऽपीत्यर्थः । यतस्ते एकेन्द्रियविकलेन्द्रिया मिथ्यादृष्टय एव । एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणां चतुर्णां गुणस्थानान्तरासम्भवात् । पञ्चेन्द्रियाणां तु तत्सम्भवात् । मिथ्यात्वादि सम्यक्त्वादिना अन्तरं द्रष्टव्यम् ॥

एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियत ॥ अपि॥ इति॥	=(वृत्ति में ' उभयतोऽपि" वाक्य का) एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय से भी ऐसा
अर्थः ॥ यतः॥ ते ॥ एकेन्द्रिय विकल-	= अर्थ है । क्योंकि (= यत) वे एकेन्द्रिय जीव और विकल (दो तीन चार)
इन्द्रियाः ॥ मिथ्यादृष्टय ॥ एव॥ चतुर्णां ॥ एकेन्द्रिय-	= इन्द्रिय धारक जीव मिथ्यादृष्टी ही हैं । क्योंकि चार एकेन्द्रिय जीव के और
विकलेन्द्रियाणां ॥ गुणस्थानान्तर-	= द्वीन्द्रिय जीव त्रीन्द्रिय जीव चतुरिन्द्रिय जीवों के अन्य गुणस्थान
असम्भवात् ॥ तु॥ पञ्चेन्द्रियाणां ॥	= नहीं हो सकता है । परन्तु (= तु) पञ्चेन्द्रिय जीवों के
तत्-सम्भवात् ॥ मिथ्यात्व आदे ॥	= वह (द्वितीयादि गुणस्थानान्तर) सम्भव होने से मिथ्यात्व आदि (गुणस्थानों) का
सम्यक्त्व आदिना ॥ अन्तरं ॥॥ द्रष्टव्यम् ॥॥	= सम्यक्त्व आदि (शेष गुणस्थानों) से (अग्रिम पृष्ठों में) अन्तर देखना चाहिये । सारांश यह है कि इन्द्रियों का गुणस्थानों से सम्बन्ध करने पर अन्तर या विरह काल ऐसे है कि एकेन्द्रिय वाले जीवों से चार इन्द्रिय धारक जीवों तक के सदैव मिथ्यात्व

गुणस्थान ही रहता है अत उन के नाना जीव के अपेक्षा से कभी विरह काल नहीं होता है । सदा उक्त चारों इन्द्रिय वाले जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में बने ही रहते हैं । पञ्चेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व गुणस्थान भी होता है और सासादन आदि अयोगकेवली तक शेष तेरह गुणस्थान भी होते हैं । इन पञ्चेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व गुणस्थान वाले जीवों के नाना जीव की अपेक्षा से कुछ विरह काल (= अन्तर) नहीं है क्योंकि पञ्चेन्द्रिय जीव भी सदा प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में बने ही रहते हैं । पञ्चेन्द्रिय मिथ्यात्व वाले एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ घाटि एकसौ बत्तीस सागर है । सासादन आदि शेष तेरह गुणस्थानों का अन्तर आगे कहते हैं ॥

जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। उत्कर्षेणासंख्येया लोकाः॥ एवं कायं प्रत्यन्तरमुक्तम्। गुणं प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम्॥ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्॥

जघन्येन ;॥ क्षुद्रभव-ग्रहणम् ;॥	=जघन्यकरि सूक्ष्मभव (१/१८ श्वासकेकाल के बराबर अन्तर) लिया गया है।
उत्कर्षेण ;। असंख्येयाः ;। लोकाः ;।	=उत्कृष्टकरि असंख्याते लोक हैं अर्थात् "इहां असंख्यात लोक के प्रदेश हैं तेते कालके समय ग्रहण हैं" सर्वार्थ सिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ १०१
एवं* कायं;। प्रति* अन्तरम्;॥ उक्तम्;॥ गुणं;॥	=इस प्रकार कायकी अपेक्षा से अन्तर कहा गया। गुणस्थान की
प्रति * उभयतः * अपि *	=अपेक्षा से दोनों (पृथिवी-जल-अग्नि-पवन कायिकों में और वनस्पतिकायिकानि) में भी
न * अस्ति T अन्तरम् ;॥	=अन्तर नहीं है (क्योंकि उनके मिथ्यात्व गुणस्थान नहीं है)
त्रस-कायिकेषु ;। मिथ्यादृष्टेः ;।	=त्रस (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रिय) कायिको में मिथ्यादृष्टी का
सामान्यवत् *	संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है (नाना जीवकी अपेक्षा) अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन१३२सागर है॥

(१) गुण शब्द यथार्थ में पुल्लिङ्ग है परन्तु यहाँ पर गुणस्थानके लिये श्रुतिकार लाये हैं अतः गुणस्थान के सदृश हमने नपुंमक माना है

(२) पृथिव्यादि चतुर्णां वनस्पतिकायिकानां चान्तरं नास्ति यतःपृथिव्यतेजोवायुकायिकास्तथा वनस्पतिकायिका उभयेऽपि मिथ्यादृष्टयो वर्तन्ते॥

पृथिवी आदि-चतुर्णां ;। वनस्पति कायिकानां ;। च*	=पृथिवी जल-अग्नि-पवन (कायिकानि) चारोका तथा वनस्पतिकायिकोका
अन्तरं ;॥ न अस्ति यतः * पृथिवी-अप् तेजः वायु	=विरहकाल नहीं है क्योंकि भूमि (कायिक) जल (कायिक) अनल (कायिक) पवन
कायिकाः। तथा* वनस्पतिकायिकाः;। उभये ;। अपि	=कायिक और =तथा) वनस्पति कायिक, दोनों (पृथिव्यादि चार और वनस्पति) में ही
मिथ्या दृष्टयः वर्तन्ते T	मिथ्यादर्शनवाले जीव होते हैं अर्थात् पृथिवीकायिक,जलकायिक,अग्नि कायिक, पवन कायिक और वनस्पतिकायिको में गुणस्थानकी अपेक्षासे कुछ अन्तर नहीं है क्योंकि सदीव इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही वर्तता है अथवा होता है॥

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ शेषाणां सामान्योक्तम् ॥ (३) कायानुवादेन-पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् ॥ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ॥ वनस्पतिकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया

एक जीवं ।। प्रति* जघन्येन ।।। अन्तर्मुहूर्तं ।।	=[चार उपशमश्रेणी वालोंका] एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण।। सागरोपम-सहस्र ।।। पूर्वकोटी-	=उत्कर्षकरि हजार सागर प्रमाण और तीनक्रोड पूर्व से ऊपर
पृथक्त्वैः ।।। अभ्यधिकम् ।।। शेषाणाम् ।।	=नोक्रोड [पूर्वसे] नीचे अधिक है । [पचेन्द्रियो में] बचेहुये निका अर्थात् अपूर्वकरण क्षपक अनिवृत्तिकरण क्षपक, सूक्ष्मसांपरायक्षपक, क्षीणकसायक्षपक अयोगकेवली और सयोगकेवलिनिका [विरहकाल]
सामान्य-उक्तम् ।।।	=सामान्य [प्रकरणमें पहिले] कहा हुआ [गुणस्थान सदृश] है अर्थात चार क्षपक श्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियो का नाना जीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है, उत्कृष्टकरि छह महीने हैं । एक जीवकी अपेक्षा से अंतर नहीं है । सयोग केवलियोका नानाजीव की अपेक्षा से और एक जीवकी अपेक्षा से विरहकाल नहीं है ॥ [पृष्ठ २२५]
[३] काय-अनुवादेन ।। पृथिवी-अप्-तेज -	=(३) कायके कथनानुसारकरि भूमिकायिककें जलकायिककें, अग्निकायिककें
वायुकायिकानां ।। नानाजीव-अपेक्षया ।।। अन्तरं ।।।	=वायुकायिककें नानाजीवकी अपेक्षा से अन्तर
न-अस्ति T । एकजीवं ।। प्रति * जघन्येन ।।। क्षुद्रभव-	=नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि सूक्ष्मभव ;- स्वासका काल
ग्रहण ।।। उत्कर्षेण ।। अनन्तकाल ।। असंख्येया ।।	=ग्रहण कियागया है । उत्कृष्टकरि अनन्तकाल है सो असंख्यात
पुद्गलपरिवर्ता ।। वनस्पतिकायिकानां ।। नानाजीव-	=पुद्गल परिवर्तन है । वनस्पति कायिकोंके नानाजीवकी
अपेक्षया ।।। अन्तरं ।।। न अस्ति एकजीव ।। अपेक्षया।।	=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एकजीवकी अपेक्षा से

शेषाणां पञ्चेन्द्रियवत ॥ (४) योगानुवादेन–कायवाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्टयसंयत सम्यग्दृष्टि-संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ सासादन-सम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ।

शेषाणां₆। पञ्चेन्द्रियवत्* =[त्रसकायों में] बचे हुये [गुणस्थानवर्ती] निका अर्थात् चार क्षपक श्रेणीवालोंका, सयोगकेवलियोंका और अयोगकेवलियोंका [अन्तर] [पहिले कहा हुआ] पञ्चेन्द्रिय सदृश है अर्थात् पंचेन्द्रियोंका अंतर पृष्ट २३५ के अनुसार संक्षेप में कथित गुणस्थान सदृश है इसलिये शेष उपर्युक्त त्रसकायोंका अन्तर गुणस्थान सदृश है सो अंतर पृष्ट २२५ के अनुकूल चार क्षपक श्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे एक समय है उत्कृष्ट करि छः मास है। एकजीवकी अपेक्षासे अंतर नहीं है सयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥

[४] योग-अनुवादेन₃। काय-वाङ्-मानस योगिनां ₆। मिथ्यादृष्टि-असंयत-सम्यग्दृष्टि संयतासंयत-प्रमत्त अप्रमत्त-सयोगकेवलिनां₆। नानाजीव-₃॥ अपेक्षया₃॥ एकजीव अपेक्षया₃॥ च अंतरम् ₁॥। न अस्ति। सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्टयोः नानाजीव-अपेक्षया₃॥ सामान्यवत्* [४]योगकी अपेक्षा से काय-वचन-मनो योगी मिथ्यादर्शनवाले, असंयमी सम्यग्दर्शनवाले, देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्तसंयमी, सयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और [=च] एकजीवकी अपेक्षासे अंतर नहीं है। सासादन सम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवर्तीनिका अनेकजीवकी विवक्षासे संक्षेप (विषयमें कथित गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है (पृ० २२३)

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ।। =(उस काथि की अपेक्षा से) सासादन सम्यग्दृष्टि का और मिश्र गुणस्थान वालोंका
नानाजीव अपेक्षया ;।। सामान्यवत्* =अनेक जीवों की अपेक्षा से संक्षेप में (कथित गुणस्थान) सम (अन्तर) है दोनों गुणस्थानोंका नानाजीव प्रति जघन्य एक समय उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवांभाग है)
एकजीव ;। प्रति* जघन्येन ;।।। पल्योपम असंख्येय- -एक जीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि पल्योपम के असंख्यातवें
भाग।। च अन्तर्मुहूर्त ;। उत्कर्षेण;। द्वे;।। सागरो =भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि दो हजार सागर
पमसहस्रे;।।। पूर्व कोटी पृथक्त्व ;।।। अभि-अधिके।।।=प्रमाण (और) तीन से ऊपर नव से नीचे (=पृथक्त्व) करोड पूर्वकरि अधिक है ।
असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अंतानां ;। =असंयमी सम्यग्दर्शनवालो से लेकर अप्रमत्तसंयमी तकनिका
नानाजीव अपेक्षया;।। न अस्तिअन्तर;।।। एकजीव;।=अनेक जीव की अपेक्षा से (कुछ) अंतर नहीं है एक जीव के
प्रति जघन्येन;।।। अन्तर्मुहूर्त उत्कर्षेण;। द्वे ;।।। =लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि दो
सागरोपमसहस्रे;।।।पूर्वकोटी-पृथक्त्वै ;।।।अभि-अधिके;।। हजार सागर प्रमाण (और) तीन नौ के बीच (=पृथक्त्व) करोड पूर्व करि अधिक है
चतुर्णां ;। =चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशांतकषाय)
उपशमकानां;, नाना-जीव-अपेक्षया;।। सामान्यवत्*=उपशमश्रेणीवालों का नाना जीव की अपेक्षा से संक्षेप (से कथित अंतर) (वत) है जघन्य एक समय नाना जीव प्रति है उत्कृष्ट तीन से ऊपर नौ वर्ष से नीचे है
एकजीवं;। प्रति* जघन्येन ;।।। अन्तर्मुहूर्तं ;। =एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण;। द्वे;।।। सागरोपमसहस्रे।।। =उत्कृष्टकरि दो हजार सागर प्रमाण (और)
पूर्वकोटीपृथक्त्वै ;।।। अभि-अधिके =पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) करोड पू[illegible] अधिक है ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् ॥ द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् ॥ द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया

सासादन सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः६।	=(स्त्रीवेदी) सासादनसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवालोंका (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया३॥ सामान्यवत्*	=अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप में (कथित गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ २२३)
एकजीवं२। प्रति* जघन्येन३। पल्योपम-असंख्येय-	=एकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि पल्योपमके असंख्यातवां
भागः१। च अन्तर्मुहूर्तः१। उत्कर्षेण३। पल्योपम-	=भाग और अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि पल्योपम
शत-पृथक्त्वम्१॥ असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदि-	=तीनसौ से ऊपर और नौसौ के भीतर है। असंयत सम्यग्दृष्टी से
अप्रमत्त अन्तानां६। नाना-जीव-अपेक्षया अन्तरं१॥	=अप्रमत्त संयमी तकनिका अनेक जीवकी अपेक्षासे अंतर
न-अस्ति एकजीवं२। प्रति* जघन्येन३। अन्तर्मुहूर्तः१।	नहीं है। एकजीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण३। पल्योपम-शत पृथक्त्वम् १॥	उत्कृष्टकरि पृथक्त्व शत (तीनसौसे ऊपर नौसौसे न्यून) पल्योपम है
द्वयोः६। उपशमकयोः६। नानाजीव-अपेक्षया३॥	दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) उपशमश्रेणी वालोंका नानाजीव प्रति
सामान्यवत्*	संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) तुल्य (अन्तर) है अर्थात् नानाजीव प्रति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन और नौ वर्ष के भीतर है
एकजीवम्२। प्रति* जघन्येन३। अन्तर्मुहूर्तः१।	एकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण३। पल्योपम-शत-पृथक्त्वम् १॥ द्वयोः ६।	उत्कृष्टकरि तीनसौ पल्यसे ऊपर नौसौसे नीचे है (स्त्रीवेदी) दो
क्षपकयोः६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥	(अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) क्षपकश्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षा से

एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलीना च सामान्यवत्॥ (५) वेदानुवादेन-स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त। उत्कर्षेण पचपञ्चाशत्पल्योपमानि देशोनानि॥

(सासदन सम्यग्दृष्टी और मिश्रगुणस्थान वाले मन-वचन-काय योगवाले की)

एक जीव ;। प्रति* न अस्ति-अन्तर ;॥। चतुर्णा ;। =एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल नहीं है॥ चार

(अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्म साम्पराय-उपशातकषाय)

उपशमकाना । नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्* =उपशम श्रेणीवालोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सक्षेप (में पूर्वकथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वर्ष से ऊपर नौसे नीचे है (पृ०२२४)

एक जीवम् ;। प्रति* न* अस्ति T अन्तरम्;॥। =एक जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है

चतुर्णाम् ;। =चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसापराय क्षीणकषाय)

क्षपकाणाम् ;। च* अयोगकेवलिनाम् ;। =क्षपकश्रेणी वालो का और (=च) अयोगकेवलियो का (अन्तर)

सामान्य-वत्* =सक्षेप (प्रकरण) में (पूर्व कथित गुणस्थान) तुल्य है अर्थात् नानाजीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीवकी अपेक्षासे कुछ विरहकाल नहीं है [पृष्ठ २२५]

[५] वेद-अनुवादेन ;। स्त्री वेदेषु ;। मिथ्यादृष्टे ;। =[५] वेदकी अपेक्षा से स्त्री वेदमें मिथ्या दृष्टीका

नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ न अस्तिअन्तर ;॥। एक जीव ;। =अनेक जीवकी अपेक्षा से अतर नहीं है। एक जीवकी

प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्त ;। उत्कर्षेण । =अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि

देशोनानि ;॥। पञ्चपञ्चाशत ;॥ पल्योपमानि ;॥। =कुछहीन पचपन पल्यके तुल्य है॥

जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् ॥ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ पूर्वेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ।

जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ वर्ष-पृथक्त्वम् ॥ एकजीवं ॥ प्रति॰अन्तरम् ॥ न॰ अस्ति ॥ पूर्वेषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ सामान्यवत्॰	=जघन्यकरि एक समय है । उत्कर्षकरि वर्ष =तीन से ऊपर नौ से हीन है । एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल =नहीं है । पूर्वोक्त में मिथ्यादृष्टी का सर्वोक्त (में पूर्व उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात मिथ्यादृष्टी पूर्वोक्त का नाना जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है एक जीव के लिए जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है (देखो पृष्ठ २२२)
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ सामान्यवत्॰	=(पूर्वोक्तमें) सासादन गुणस्थान और मिश्र गुणस्थान वालों का (अन्तर) =अनेक जीव की अपेक्षा से सर्वोक्त (में कथित गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग है (पृ० २२२, २२३)
एकजीवं ॥ प्रति॰जघन्येन ॥ पल्योपम-असंख्येय-भागः ॥ च अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ सागरोपम-शतपृथक्त्वम् ॥	=(पूर्वोक्त सासादन मिश्र का) एक जीव के लिए जघन्यकरि पल्योपम के =असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि (अन्तर) =तीन सौ सागर प्रमाण से अधिक और नौ सौ से नीचे (शतपृथक्त्व) है
असंयतसम्यग्दृष्टि आदि-अप्रमत्त-अन्तानां ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ न॰ अस्ति ॥ अन्तरम् ॥ एकजीवं ॥ प्रति॰ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥	=(पूर्वोक्त) असंयमी सम्यग्दर्शनवाले से अप्रमत्त गुणस्थान तकनिका =अनेक जीव की अपेक्षा से विरह काल नहीं है =एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्॥ शेषाणां सामान्यवत्॥
(६) कषायानुवादेन – क्रोधमानमायालोभकषायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्त्युपशमकान्तानां मनोयोगिवत्॥

उपशान्तकषायस्य ; नानाजीव-	=(वेद वर्जितों में) उपशान्तकषाय (ग्यारहवां) गुणस्थानवालेका अनेक जीव की
अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्*	=अपेक्षासे (विरहकाल) संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्ववर्ष है (देखो पृष्ट २२४)
एक जीवं ;। प्रति* न* अस्ति T अन्तरम् ;॥।	=एक जीवके लिये विरहकाल अथवा अन्तर नहीं है
शेषाणां ;।	=(वेदरहितोंमें) शेष वा बचेहुये (क्षपकश्रेणीके अनिवृत्ति नवम गुणस्थान के छहभागों में से अन्तके वा पिछले तीन वेदरहित भागवाले—सूक्ष्म साम्पराय क्षपक, क्षीणकषाय क्षपक, सयोगकेवलि और अयोगकेवलि) निका (विरहकाल)
सामान्यवत्*	=संक्षेप (प्रसंग में पूर्वकथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् चारक्षपक श्रेणीवालों-का और अयोगकेवलियों का नानाजीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छहमास है एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है सयोगकेवलियों का नानाजीव अपेक्षा से और एक जीव प्रति अन्तर नहीं है
(६) कषाय-अनुवादेन ;। क्रोध-मान-माया लोभ-	=(६) कषायके कथनानुसारकरि-क्रोध-मान-माया (=कपट) लोभ
कषायाणां ; मिथ्यादृष्टि-आदि-अनिवृत्ति-उपशमक-	=कषायोंवालों का मिथ्यादर्शनवाले से अनिवृत्तिकरण उपशमवाले
अन्तानां ;। मनः (=मनस) योगिवत्*	=(नवमां गुणस्थान) तकनिका मनोयोगी सदृश है अर्थात

सामान्योक्तम् ॥ द्वयो क्षपकयो स्त्रीवेदवत् ॥ अपगतवेदेषु अनिवृत्तिबादरोपशमक सूक्ष्मसाम्परायोपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्योक्तम् । एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तं ॥

सामान्य-उक्तम् ।॥	=संक्षेप (विषय) में कथित (गुणस्थानवत) है अर्थात् अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि तीन वर्ष से अधिक नौ वर्ष से घाटि है। एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन है
द्वयोः॥ क्षपकयोः॥	=(नपुंसक वेद में) दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) क्षपकश्रेणीवालोंका
स्त्री वेदवत्॥	=स्त्रीवेद (में कथित क्षपक श्रेणी वालो के विरहकाल के) सदृश है अर्थात नानाजीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (=तीन से ऊपर नौ से नीचे) वर्ष है एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है
अपगतवेदेषु॥ अनिवृत्तिबादर-उपशमक-	=वेदवर्जितनि में अनिवृत्तिबादर (नवम गुणस्थान) उपशम वाले
सूक्ष्मसाम्पराय-उपशमकयो ॥ नानाजीव-	=(तथा) सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान वालोंका (विरहकाल) अनेक जीवकी
अपेक्षया॥ सामान्य-उक्तम्॥	=विवक्षा से संक्षेप से कथित (गुणस्थानवत) है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है उत्कर्षकरि पृथक्त्व वर्ष है (पृष्ठ २२४) ॥ यहा पर नवमें गुणस्थान के अन्त के तीन वेदरहित भागो की अपेक्षा से है (देखो पृष्ठ ८७)
एकजीवं॥ प्रति जघन्यम् ॥ उत्कृष्ट च॥ अन्तर्मुहूर्तं॥	=एकजीव की अपेक्षा जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (अन्तर) है

(१) जघन्य शब्द पृष्ठ २२१ में " जघन्य श्चोत्कृष्टश्च त्रय समया वाक्यमे पुल्लिंग है इसमे नपुंसक अत हमने कहीं नपुंसकमे कहीं पुल्लिंगमें लिखा है

अकषायेषु उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्॥ शेषाणां त्रयाणां सामान्यवत्॥ [७] ज्ञानानुवादेन–मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया

जघन्य एक समय उत्कृष्ट छैमास है। एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है।

अकषायेषु ३। उपशान्तकषायस्य ६। नानाजीव-अपेक्षया ३॥ सामान्यवत् ※ =कषाय वर्जतनि में उपशांत कषायगुणस्थानवालेका अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वकथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है (देखो पृष्ठ २२४)

एक जीवं २। प्रति ※ न अस्ति अन्तरम् १॥ =एक जीवके लिये वियोगकाल नहीं है।

शेषाणां ६। त्रयाणां ६। =बचे हुए अथवा अवशेष तीन (क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानवर्ती तेरहवां गुणस्थान में सयोग-केवली और चौदह गुणस्थानविषें अयोग केवली) निका

सामान्य-वत् ※ =(विरहकाल) संक्षेप (प्रसंगमें पहले कथित गुणस्थान) वत है अर्थात् क्षीणकषाय (बारहवां) गुणस्थान वालोंका और अयोग केवलियों का नाना जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट छैमास है। इन्हीं गुणस्थानों में एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है। सयोग केवलियों का नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है (पृ० २२५)

[७] ज्ञान-अनुवादेन ३। मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान-विभंग-ज्ञानिषु ७। =[७] ज्ञानके अनुवादकरि मति-अज्ञान, श्रुतअज्ञान, कुअवधि-ज्ञानियोंमें

मिथ्यादृष्टेः ६। नाना जीव-अपेक्षया ३॥ च =मिथ्यादृष्टीका नानाजीनकी अपेक्षासे और (=च)

एक जीव-अपेक्षया ३॥ न ※ अस्ति ※ अन्तरम् १॥ =एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल नहीं है

सासादनसम्यग्दृष्टेः ६। नानाजीव-अपेक्षया ३॥ =(उक्ततीन कुज्ञानियोंमें) सासादनसम्यग्दर्शनवालेका नानाजीव अपेक्षासे

द्वयो क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण सवत्सर सातिरेक ॥ केवललोभस्य सूक्ष्मसाम्परायोपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ क्षपकस्य तस्य सामान्यवत् ॥

(क्रोध-मान-माया-लोभ कषायवाले) मिथ्यादृष्टि असयत सम्यग्दृष्टि (चौथा) सयतासयत (पाचवा) प्रमत्त (छठा) अप्रमत्त (सातवा) गुणस्थानवालोका नानाजीव अपेक्षासे और एकजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है। (चार कषायवाले) सासादन-सम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवाले (दोनो) का अनेक जीवके लिये जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असख्यातवा भाग है (पृष्ठ २२३) एक जीवकी अपेक्षासे (इन दोनो गुणस्थानोमे) अन्तर नहीं है। (क्रोध-मान-माया-लोभ कषायवाले) अपूर्वकरण उपशमक और अनिवृत्तिकरण उपशमकका अन्तर अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वर्षसे ऊपर और नौ वर्षसे नीचे है (पृष्ठ २२४) एकजीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है (पृष्ठ २३८,२३९)

द्वयो ॥ क्षपकयो॰॥ नाना-जीव-अपेक्षया॥॥ जघन्येन॥ एक समय उत्कर्षेण॥ सवत्सर ॥ स-अतिरेक ॥ केवल-लोभस्य ॥ सूक्ष्मसाम्पराय उपशमकस्य॥ नाना-जीव-अपेक्षया॥॥ सामान्यवत्॥ एकजीव॥ प्रति॥ न॥ अस्ति॥ अन्तरम्॥॥ तस्य॥ क्षपकस्य॥ सामान्यवत्॥

=(क्रोध-मान माया-लोभ कषायवाले) दो (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण) =क्षपक श्रेणीवालोका अनेकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि =एक समय है। उत्कृष्टकरि कुछ अधिक एक वरस है =केवल (सज्वलन) लोभकषायधारी सूक्ष्मसाम्पराय उपशम श्रेणीवालेका =अनेकजीवकी अपेक्षासे सक्षेप (प्रकरणमें कथित गुणस्थान) वत् है अर्थात जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीनसे ऊपर नौसे नीचे वर्ष है (पृष्ठ २२४) =एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। तिस (सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान) =क्षपक श्रेणीवालेका सक्षेप (प्रकरणमें कहा हुआ गुणस्थान) वत् है अर्थात

उपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत । किं तु अवधिज्ञानिषु नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । मनःपर्ययज्ञानिषु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥

उपशमकानाम् ;। नाना-जीव अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्॥	=उपशम श्रेणीवर्तीयों का नाना जीवकी अपेक्षा से संक्षेप (में उक्त) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है (पृष्ट २२४)
एकजीवं ;। प्रति॥ जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;	=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि
स-अतिरेकाणि ;॥ षट्षष्टि-सागरोपमाणि ;॥	=कुछ अधिक छ्यासठि सागर प्रमाण है
चतुर्णां ;। क्षपकाणां ;।	=(मति श्रुतज्ञानियोंमें) चार क्षपकश्रेणी (आठवां अपूर्वकरण नवमां अनिवृत्तिकरण, दशवां सूक्ष्मसाम्पराय, बारहवां क्षीणकषाय गुणस्थान) वालों का
सामान्यवत्॥	=(विरहकाल) संक्षेप (प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात अनेक जीव कीअपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीव की अपेक्षा से कुछ विरह काल नहीं है (देखो पृष्ठ २२५)
किन्तु॥ अवधिज्ञानिषु ;। नाना-जीव-	=परन्तु अवधिज्ञानियों में (क्षपक श्रेणियोंका विरह काल)अनेक जीवकी
अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः;। समयः;। उत्कर्षेण;।	=अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि
वर्ष-पृथक्त्वम् ;॥ एकजीवं ; प्रति न अस्ति अन्तरम्	=पृथक्त्व (मध्य तीन और नव) वर्ष है एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है
मनः पर्यय-ज्ञानिषु ;। प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतयोः ;।	=मनः पर्यय ज्ञानियों में प्रमत्तसंयमी और अप्रमत्तसंयमियों का
नानाजीव-अपेक्षया ;॥ न अस्ति अन्तरम् एकजीवं ;।	=अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ एक जीव की
प्रति॥ जघन्यम् ;॥ उत्कृष्टः ;। च अन्तर्मुहूर्तः ;।	=अपेक्षासे (= प्रति) जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है

सामान्यवत् ॥ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिषु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नाना जीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णाम्

सामान्य-वत् ॐ	=संक्षेप (प्रसगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है उत्कर्षकरि पल्यका असख्यातवाभाग है पृ० २२३
एक जीव ॥ प्रति ॐ न ॐ अस्ति ॥ अन्तरम् ॥॥	=एक जीवकी अपेक्षा (=प्रति) विरहकाल वा अन्तर नहीं है
आभिनिबोधिक श्रुतअवधिज्ञानिषु ॥ असंयत-	=मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानियो में अविरत
सम्यग्दृष्टे ॥ नाना-जीव-अपेक्षया॥ न अस्ति अन्तरम् ॥॥	=सम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे विरहकाल नहीं है
एकजीवं ॥ प्रति॥ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥	=एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण॥ पूर्वकोटी ॥ देशोना ॥ संयतासंयतस्य ॥	उत्कर्षकरि कुछ हीन करोड पूर्व है । (उक्त तीनो ज्ञानियोंमें) देश संयमीका
नाना जीव-अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥॥ एकजीव ॥	=अनेक जीव की अपेक्षा से अन्तर (विरहकाल) नहीं है । एक जीवकी
प्रति॥ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥ उत्कर्षेण ॥	=अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि
स-अतिरेकाणि॥॥ षट् षष्टि-सागरोपमाणि ॥॥ प्रमत्त-	=कुछ अधिक छासठि सागर प्रमाण है । (उक्त तीनोज्ञानियो में) प्रमत्त
अप्रमत्तयो ॥ नाना-जीव-अपेक्षया॥ अन्तरम् ॥॥	=और अप्रमत्त गुणस्थानवालोंका नानाजीव की अपेक्षा से अन्तर
न अस्ति एकजीव ॥ प्रति॥ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥	=नहीं है । एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ सातिरेकाणि ॥॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥॥	=उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर प्रमाण है
चतुर्णाम् ॥	=(मति-श्रुत अवधि ज्ञानियो में) चार (आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिकरण, दशवा सूक्ष्मसाम्पराय),(ग्यारहवा उपशान्तकषाय गुणस्थान)

शुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना द्वयोः क्षपकयोः सामान्यवत् ॥

(१) शुद्धिसंयतेषु ;। प्रमत्त-अप्रमत्तयोः ;। नाना- = शुद्धिसंयमियों में प्रमत्त (छठा) अप्रमत्त (सातवां) गुणस्थानवालोंका अनेक
जीव-अपेक्षया ;॥ न*अस्ति अन्तरम् ;॥ एकजीवं ;। = जीवकी अपेक्षा में विरहकाल (अन्तर) नहीं है एकजीव के
प्रति*जघन्यम् ;॥ उत्कृष्ट ;॥ च*अन्तर्मुहूर्तः ;। =लिये जघन्य और (=च) उकृष्ट अन्तर्मुहूर्त है
द्वयोः ;। उपशमकयोः ;। = (सामायिक और च्छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमियों में) दो उपशमश्रेणी (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान) वालों का (विरहकाल)
नानाजीव ;॥ अपेक्षया;॥ सामान्यवत्* =नाना जीव की विवक्षासेसंक्षेप (विषय में ऊक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट मध्यतीग और नौ वर्ष के है (पृष्ठ २२४)
एक-जीवं ;। प्रति*जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। =एक जीव कीअपेक्षासे (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ;। पूर्वकोटी ;॥ देशोना ;॥ = उत्कृष्टकरि कुछहीन (एक) करोड पूर्व है । (उपर्युक्त दो शुद्धिसंयमियों में)
द्वयोः ;। क्षपकयोः ;। =दो क्षपक श्रेणि (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान) वर्तियों का
सामान्यवत्* =(वियोगकाल) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् नानाजीव केलिये जघन्य एकसमय है उत्कृष्ट छे मास है । एकजीवके लिये अन्तर नहीं है

(१)सामायिक और च्छेदोपस्थापन संयम, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, गुणस्थानों में होते हैं । परिहार विशुद्धि संयम, प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानों में, सूक्ष्म साम्पराय संयम दशवां सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में और यथाख्यात संयम उपशांतकषायसे अयोग केवलि तक चार गुणस्थानों में होता है ॥

चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्पेण पूर्वकोटी देशोना ॥ चतुर्णां क्षपकाणामवधिज्ञानिवत् ॥ द्वयो· केवलज्ञानिनो· सामान्यवत् ॥ (८) सयमानुवादेन-सामायिकच्छेदोपस्थापन

चतुर्णाम् ॥ उपशमकाना ॥	=(मन पर्यय ज्ञानियो में) चार उपशम श्रेणी (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण
नानाजीव-अपेक्षया ॥	=सूक्ष्मसाम्पराय-उपशातकषाय गुणस्थान) वर्तियों का अनेक जीव की अपेक्षा से
सामान्य-वत्*	=सक्षेप (प्रकरण में पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश (विरहकाल) है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्ववर्प है (पृष्ठ २२४)
एकजीव ॥ प्रति* जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्त ॥	=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्पेण ॥ पूर्वकोटी ॥ देशोना ॥ चतुर्णां ॥	=उत्कृष्टकरि कुछ हीन कराड पूर्व है। (मन पर्यय ज्ञानियों में) चार
क्षपकाणाम् ॥	=क्षपकश्रेणी (अपूर्वकरणसे सूक्ष्मसाम्परायतक और क्षीणकपाय गुणस्थान) वालों का
अवधिज्ञान-वत्*	=(विरह काल) अवधिज्ञानियों के सदृश है अर्थात् अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्ववर्प है एक जीव प्रति अन्तर नहीं है (देखो पृष्ठ २४८)
द्वयोः ॥ केवलज्ञानिनोः ॥ सामान्य-वत्*	=दो (सयोग और अयोग) केवलज्ञानियों का सामान्य (में उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् अयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीव प्रति कुछ विरह काल नहीं है। सयोग केवलियोका नाना जीव और एक जीव अपेक्षा से कुछ भी अन्तर नहीं है (पृष्ठ २२५)
[८] संयम अनुवादेन ॥ सामायिक—च्छेदोपस्थापन-	=(८) सयम के कथनानुसारकरि सामायिक और च्छेदोपस्थापन

संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ असंयतेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ शेषाणां त्रयाणां सामान्यवत् ॥

(अकषायेषु) शेषाणां त्रयाणां सामान्य (गुणस्थान) वत् (पृष्ठ २४६) इस वाक्य का भावार्थ यह है कि कषायरहितनिमें क्षीणकषाय गुणस्थानवर्तीका और अयोग केवलियों का (अन्तर)नाना जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मास है । उपर्युक्त दो गुणस्थानों में एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है । कषाय वर्जितनि में सयोगकेवलियों का नाना जीवकी अपेक्षा से और एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है (देखो पृष्ठ २२५) ॥

संयतासंयतस्य ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ च	=संयमासंयमी (पांचवां गुणस्थान वाले) का अनेक जीवकी अपेक्षासे और (=च)
एकजीव-अपेक्षया न-अस्ति अन्तरम् असंयतेषु ७।	=एक जीवकी अपेक्षा से विरह काल अथवा अन्तर नहीं है । असंयमियों में
मिथ्यादृष्टेः नानाजीव-अपेक्षया न अस्ति अन्तरम् ६॥।	=मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है
एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। त्रयस्त्रिंशत् १॥ सागरोपमाणि देशोनानि	=उत्कृष्टकरि कुछ हीन तेतीस सागर प्रमाण है
शेषाणां ६। त्रयाणां ६।	=(असंयमियों में) वचे हुये तीन (सासादन-मिश्र-असंयत गुणस्थान वाले) निका
सामान्यवत्*	=(वियोगकाल=अन्तर) संक्षेप (प्रकरण में प्रथम कहा हुआ गुणस्थान) सम है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टी का अन्तर अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है । एक जीवके लिये जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवांभाग है उत्कृष्ट कुछहीन अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन है (पृष्ठ २२३) मिश्रगुणस्थानवर्ती का अन्तर (असंयमियों में) नाना जीवकी अपेक्षा से

परिहारशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तं ॥ सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषूपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ तस्यैव क्षपकस्य सामान्यवत् ॥ यथाख्याते अकषायवत् ॥

परिहार विशुद्धिसंयतेषु: प्रमत्त-अप्रमत्तयो:: =परिहारविशुद्धिसंयमियोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानवर्तियोंका
नाना जीव अपेक्षया:: न* अस्तिअन्तरम्:: =अनेक जीवकी विवक्षासे विरहकाल वा अन्तर नहीं है।
एकजीव प्रति जघन्यम्:: उत्कृष्ट :: अन्तर्मुहूर्त =एकजीवकी अपेक्षा (=प्रति) जघन्य और उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु: उपशमकस्य:: =सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयमियोंमें उपशमश्रेणीवालेका (विरहकाल)
नानाजीव-अपेक्षया:: सामान्यवत्* =अनेकजीव प्रति संक्षेप (विषयमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कर्ष पृथक्त्ववर्ष है (देखो पृष्ठ २२४)
एकजीव: प्रति* न* अस्ति अन्तरम्:: =एकजीवकी अपेक्षा (=प्रति=अपेक्षासे) वियोगकाल नहीं है
तस्य:: क्षपकस्य:: एव* =तिस (सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयमी) क्षपकश्रेणी वालेका ही (अन्तर)
सामान्य-वत्= =संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् नानाजीव प्रति जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट छै मास है एकजीव प्रति अन्तरनहीं है
यथाख्याते:: अकषायवत्* =यथाख्यातसंयममें (विरहकाल) कषाय (वर्जित) (उपशान्तकषाय क्षीणकषाय सयोगकेवली अयोगकेवली) निके समान है अर्थात् कषाय रहितमें उपशान्तकषायवालेका नानाजीव प्रति गुणस्थानवत् है (पृष्ठ २४६) (=जघन्य अन्तर एक समय है। उत्कृष्ट अन्तर पृथक्त्ववर्ष है (पृष्ठ २२४) एकजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने ॥ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्योक्तम् ॥ अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टयादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तमन्तरम् ॥

न अस्ति एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	=नहीं है एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त।
उत्कर्षेण ३। देशोने १॥ द्वे १॥ सागरोपमसहस्रे १॥	=उत्कृष्टकरि कुछ न्यून दो हज़ार सागर प्रमाण है
चतुर्णाम् ६। उपशमकानां ६।	=(चक्षुर्दर्शनवालों में) चार उपशमश्रेणी अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय (उपशांतकषाय) वालों का
नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ सामान्यवत्*	=(अन्तर) अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में पूर्व उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व (मध्य तीन और नौ) वर्ष है (पृ० २२४)
एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	=एक जीवके लिये (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। देशोने १॥ द्वे १॥ सागरोपमसहस्रे १॥	=उत्कृष्टकरि कुछ हीन दो सहस्र सागर प्रमाण है
चतुर्णां ६। क्षपकाणां ६।	=(चक्षुर्दर्शनवालों में) चार क्षपक श्रेणी अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-(क्षीणकषाय)वालोंका
सामान्य-उक्तम् १॥	=(अन्तर) संक्षेप (प्रकरण में) वर्णित (गुणस्थानवत्) है अर्थात् नाना जीव की अपेक्षा जघन्य एकसमय है। उत्कृष्ट छैमास है एकजीव प्रति अन्तरनहीं है (पृ० २२५)
अचक्षुर्दर्शनिषु७। मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय-अन्तानां ६। सामान्य-उक्तम् १॥ अन्तरम् १॥	=अचक्षुर्दर्शन वालों में मिथ्यादृष्टि से (=आदि) क्षीणकषाय गुणस्थानवाले पर्यन्तनिका संक्षेप (प्रसंग में पहिले) कहा हुआ (गुणस्थानवत्) अन्तर है अर्थात् मिथ्यादृष्टी अचक्षुर्दर्शनवालोंका अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है

(१) चक्षुर्दर्शन वाले जीव और अचक्षुर्दर्शन वाले जीव भी प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से क्षीणकषाय तक बारह गुणस्थानों में होते हैं।

(९ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टे सामान्यवत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नाना जीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने ॥ असयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्ताना नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

	जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असख्यातवा भाग है । एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन से कुछ घाटि है । असयत-सम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है । एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछहीन अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन है(देखो पृष्ट २२३-२२४)
दर्शन-अनुवादेन ॥ चक्षुर्दर्शनिषु ॥ मिथ्यादृष्टे ॥	= (९) दर्शन के कथनानुसारकरि चक्षुर्दर्शन वालोमें मिथ्यादृष्टीका (अन्तर)
सामान्यवत्*	= सक्षेप (प्रकरण म कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् नाना जीवकी अपेक्षासे कुछ भी अन्तर नहीं है एक जीव के लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन एकसौबत्तीस सागर प्रमाण है (देखो पृष्ठ २२२)
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यो ॥	= (चक्षुर्दर्शन वालोमें) सासादन सम्यग्दर्शनवाले और मिश्र गुणस्थानवालोका
नाना-जीव अपेक्षया ॥ सामान्यवत्*	= (विरहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षासे सक्षेप में (पूर्व उक्त गुणस्थान) सम हैं अर्थात् अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एकसमय है उत्कृष्ट पल्यके असख्यातवाभाग है (देखो पृष्ठ २२३)
एकजीव ॥ प्रति जघन्येन ॥ पल्योपम असख्येयभाग ॥	= एकजीव की अपेक्षा (=प्रति) जघन्यकरि पल्यके असख्यातवाभाग
च अन्तर्मुहूर्त ॥ उत्कर्षेण ॥ देशोने ॥ द्वे ॥	= और (=च) अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछघाटि दो हजार
सागरोपमसहस्रे ॥ असयतसम्यग्दृष्टि-आदि-	= सागर प्रमाण है । (चक्षुर्दर्शनवालो मे) अविरतसम्यग्दृष्टि से
अप्रमत्त-अन्ताना ॥ नाना-जीव अपेक्षया ॥ अन्तर ॥	= अप्रमत्त (सातवें गुणस्थानवर्तियो तक) तिनका अनेकजीवकी अपेक्षासे अन्तर

 केवलदर्शनिनः केवलज्ञानिवत ॥ (१०) लेश्यानुवादेन–कृष्णनीलकापोतलेश्येषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्य-
ग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

कुछ अधिक छयासठि सागर प्रमाण है ॥ (अवधि दर्शनवाले) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानवर्तियोंका नाना जीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर प्रमाण है। (अवधिदर्शनवाले वा अवधिज्ञानवाले) चार उपशम श्रेणीवालोका नानाजीव अपेक्षासे गुणस्थानवत् है (जो पृष्ठ २२४ के अनुकूल) जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वरससे ऊपर और नौ वर्षके नीचे (=पृथक्त्व वर्ष) है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ अधिक छयासठि सागर प्रमाण है (अवधिदर्शनवालोंमें-अवधिज्ञानवालोंमें) चार क्षपक श्रेणीवालोका अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्व वर्ष है। एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। (देखो पृष्ठ २४७-२४८)

केवलदर्शनिनः ३। केवलज्ञानिवत्* =केवल दर्शनवालोंका (वियोगकाल) केवलज्ञानी (सयोग केवली और अयोग केवली) समान है अर्थात सयोगकेवलीका नानाजीव अपेक्षासे और एकजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है। अयोग-केवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि छेमास है एक जीवकी अपेक्षासे कुछ भी अन्तर नहीं है ॥ (देखो पृष्ठ २२५)

[१०] लेश्या-अनुवादेन३। कृष्ण-नील- =लेश्याके कथनानुसारकरि कृष्ण-नील-
कापोत-लेश्येषु ३। मिथ्यादृष्टि- =कापोत लेश्याधारकों में मिथ्यादर्शन प्रथम गुणस्थानवाले और
असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ३। नाना-जीव- =असंयमी वा अविरत चौथे गुणस्थानवालोंके अनेक जीवकी
अपेक्षया॥ न अस्ति अन्तरम् ।॥ =अपेक्षासे अन्तर (अर्थात विरहकाल-वियोगकाल-विछोहकाल) नहीं है

(१) कृष्ण नील कापोत लेश्यायें मिथ्यात्वसे असंयत तक, पीत-पद्म लेश्यायें मिथ्यात्वसे अप्रमत्त गुणस्थान तक, शुक्ल मिथ्यात्वसे सयोगी तक है।

अवधिदर्शनिनोऽवधिज्ञानिवत् ॥

एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछघाटि एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है। अचक्षुर्दर्शनवाले सासादन सम्यग्दृष्टिका अन्तर नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवा भाग है। एक जीवका जघन्य पल्यके असंख्यातवा भाग है। उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्ध पुद्गलपरिवर्तन है। अचक्षुर्दर्शनवाले मिश्रगुणस्थानवर्तियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवा भाग है। एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है॥ अचक्षुर्दर्शनवाले अविरत सम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्त गुणस्थानतकनिका नानाजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है॥ अचक्षुर्दर्शनवाले चार उपशम श्रेणी (आठवा-नवमा-दशमा-ग्यारहवा-गुणस्थान) वालोका अन्तर नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है। एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट कुछ घाटि अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है॥ चार क्षपक श्रेणी (अपूर्वकरण आठवा अनिवृत्तिकरण नवमा सूक्ष्मसाम्पराय दशमा क्षीणकषाय बारहवा गुणस्थान) वालोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट छह मास है एकजीवके लिये अन्तर नहीं है।

अवधि-दर्शनिन ॥ =अवधि दर्शनवालोंका (विरहकाल अर्थात् अन्तर)

अवधि-ज्ञानिवत्* =अवधि-ज्ञानियोंके सदृश है अर्थात् अवधिदर्शन वाले (=अवधिज्ञानवाले) असंयत सम्यग्दृष्टीका नानाजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एकजीवके प्रति जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि एक करोड पूर्व है॥ अवधि दर्शनवाले संयमा संयमीका अनेक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एकजीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि

(१) मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, कुअवधिज्ञान, मिथ्यात्वप्रथम, सासादन दूसर गुणस्थानोंमें होता है। मिश्रगुणस्थानमें तीन अज्ञान और तीनज्ञान नीरक्षीर सम मिले हुये हैं (पृष्ठ ८८, ८९ की टिप्पणी देखो) ॥ अवधिज्ञान और अवधिदर्शन चौथेसे बारहवां गुणस्थान तक हैं और मनःपर्ययज्ञान छठेसे बारहवां गुणस्थान तक है॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ॥ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ शुक्ललेश्येषु मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टयो-

---

सासादन- =(पीत-पद्मलेश्यावर्तियों में) सासादन
सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टयोः ६। =सम्यग्दृष्टीका और मिश्र (तीसरे) गुणस्थानवर्तियोंका (अन्तरकाल)
नाना-जीव-अपेक्षया ३।। सामान्य-वत्* =अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ २२३)
एक-जीवं २। प्रति* जघन्येन ३। पल्योपम-असंख्येय- =एक जीवके लिये जघन्यकरि पल्योपमके असंख्यातवां
भागः १। च अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। द्वे १।।। =भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि (कुछ अधिक) दो सागर
सागरोपमे १।।। च सातिरेकाणि अष्टादश १।।। सागर =प्रमाण और (कुछ अधिक) अठारह सागर
उपमाणि १।।। संयतासंतय-प्रमत्त- =प्रमाण है । (पीत-पद्मलेश्यावालों में) देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी और
अप्रमत्त संयतानां ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३।। =अप्रमत्तसंयमियोंका नानाजीव अपेक्षासे
च एक-जीव-अपेक्षया ३।। न* अस्ति अन्तरम् १।।। =और एकजीवकी विवक्षासे अन्तर नहीं है
शुक्ललेश्येषु ७। मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयोः ६। =शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादर्शनवाले और असंयमीसम्यग्दृष्टियोंका
नाना-जीव-अपेक्षया ३।। न अस्ति अन्तरम् १।।। एक- =अनेकजीवकी विवक्षासे विरहकाल (=अन्तरकाल) नहीं है । एक
जीवं २। प्रति जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। =जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कर्षकरि
देशोनानि १।।। एकत्रिंशत् १।। सागर-उपमाणि १।।। =कुछघाटि इकतीस सागर प्रमाण है
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टयोः ६। =(शुक्ललेश्याके धारक) सासादन सम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवालोंका

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ॥ तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

एक-जीवं ,। प्रति*जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तं ,।	=एकजीवके लिये जघन्यकरि (अंतर) अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। त्रयस्त्रिंशत् ३॥	=उत्कृष्टकरि (सातवा नरककी अपेक्षासे कुछ न्यून) तेतीस (सागर प्रमाण)
सप्तदश ,॥ (सप्तन् ३।-सप्तदश ,।)	=(और पाचवा नरककी अपेक्षासे कुछ हीन) सत्रह (सागर प्रमाण)
सप्त ३॥ (सप्त ,॥ सप्त ३।) सागरोपमाणि ,॥ देशोनानि	=(और तीसरे नरककी विवक्षासे) कुछघाटि सात सागर के बराबर है
सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यो' ३।	=(कृष्ण नील कापोत लेश्यावर्तियोंमें) सासादनसम्यग्दृष्टी, मिश्रगुणस्थान वालोंका
नाना जीव-अपेक्षया '॥ सामान्य-वत*	=(विरहकाल) अनेक जीव प्रति संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व उक्त गुणस्थान) तुल्य है अर्थात् जघन्य अन्तरकाल एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवा भाग है
एकजीवं ३। प्रति* जघन्येन ३।पल्योपम-असंख्येय-	=एकजीवके लिये जघन्यकरि पल्यके असंख्यातवा
भाग ३। च*अंतर्मुहूर्तं ३। उत्कर्षेण ३।	=भाग और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि (सातवा नरकमें कुछ हीन)
त्रयस्त्रिंशत सप्तदश	=तेतीस (सागर प्रमाण) और (पाचवा नरक प्रति कुछ न्यून) सत्रह (सागर)
सप्त सागरोपमाणि ,॥ देशोनानि ३॥	=(तीसरे नरककी अपेक्षा से) कुछ घाटि सात सागर प्रमाण (विरहकाल) है
तेज पद्मलेश्ययो' ३। मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्यो ३।	=पीत पद्म लेश्यावालो में मिथ्यादृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टियो में
नाना-जीव-अपेक्षया ३।न*अस्ति T अन्तरम् ३॥	=अनेक जीव की अपेक्षा से अंतर काल नहीं है
एक-जीवं ३। प्रति*जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तं ३।	=एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। द्वे '॥ सागरोपमे '॥ च स-अतिरेकाणि ३॥	=उत्कृष्टकरि दो सागर प्रमाण है । और =च) कुछ अधिक
अष्टादश ३॥ सागरोपमाणि ३॥	=अठारह सागर प्रमाण है ॥

(१) टिप्पणि पृष्ठ १२१ पर देखा (२) टिप्पणि पृष्ठ १४६ पर देखा ॥ (३) इस सब को समास मानकर अन्तमें समस्त वाक्य प्रथमा विभक्ति

सुक्कलेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥ १ ॥ त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥

सुक्कलेस्स।अजोगि-सुक्कलेस्सा ;, अजोगि- = शुक्कलेश्याअयोगि-	= शुक्कलेश्या है । अयोगी
ठाणं अलेस्संतु (ठाणं;॥ अलेस्सं;॥ तु*स्थानं अलेश्यंतु)	= गुणस्थान लेश्या (कपाय मिश्रित योग की प्रवृत्ति) रहित है (क्योंकि वहां योग और कपायका अभाव है) अर्थात् कृष्ण-नील- कापोत लेश्यायें मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-अविरत गुणस्थानों तक है । पीत (= तेजो) पद्म लेश्यायें मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-असंयत-संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानों तक हैं और शुक्क-लेश्या , मिथ्यात्व–सासादन–मिश्र–अव्रत–अणुव्रत–प्रमत्त-अप्रमत्त-अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकपाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली गुणस्थानों तक है परन्तु योग और कपाय के न होने से अयोग केवली के कोई भी लेश्या नहीं है ॥
त्रयाणाम् ;।	= (शुक्कलेश्या में) तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय)
उपशमकानां ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥	= उपशमश्रेणीवालोंका (विरहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षासे
सामान्य-वत्*	=संक्षेप (प्रकरण में पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि तीन वर्ष से ऊपर नौ वर्ष से नीचे है ॥
एकजीवं ;। प्रति जघन्यम् उत्कृष्टं च अन्तर्मुहूर्तः ;।	=एक जीव के लिये जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है (पृष्ठ २२४)
उपशांतकपायस्य ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥	=(शुक्कलेश्या में) उपशांतकपाय वाले का (अन्तर काल) नाना जीवकी अपेक्षासे
सामान्यवत्*	=संक्षेप (विपय में पहिले कहा हुआ गुणस्थान) समान वा सदृश है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कर्ष पृथक्त्व (तीन से अधिक नव के नीचे) वर्ष है
एकजीवं ;। प्रति* न* अस्ति T अन्तरम् ;॥	=एक जीवकी अपेक्षा से विरहकाल (=अन्तर) नहीं है

नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तमुहूर्तश्च । उत्कर्षेणैकत्रि ॰ त्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ संयतासंयतप्रमत्तसंयतयोस्तेजोलेश्यावत् ॥ अप्रमत्तसंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तं ॥ अंयदोत्ति छलेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये ॥ तत्तो दु

नाना-जीव-अपेक्षया:॥ सामान्य वत्*	=नानाजीवकी विवक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवां भाग है
एक-जीव :। प्रति* जघन्येन :। पल्योपम-असंख्येय-	=एक जीव के लिये जघन्यकरि पल्यके असंख्यातवा
भाग :। च* अन्तर्मुहूर्त :। उत्कर्षेण :। देशोनानि:॥।	=भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ घाटि
एकत्रिंशत् :॥ सागरोपमाणि ॰॥। संयतासंयत-	=इकतीस सागर प्रमाण है । (शुक्ललेश्यावाले) देशसंयमी और
प्रमत्तसंयतयो॰ :। तेज लेश्यावत्*	=प्रमत्तसंयमियों का (विरहकाल) पीतलेश्यावालों के सदृश है अर्थात् नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव प्रति कुछ अन्तर नहीं है (पृष्ठ २५८)
अप्रमत्तसंयतस्य :। नाना-जीव-	=(शुक्ललेश्यावाले) अप्रमत्तसंयमी (सातवा गुणस्थानवर्तीका) अनेक जीवकी
अपेक्षया :॥ न* अस्ति। अन्तरम् :॥ एकजीव :।	=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक जीवके
प्रति* जघन्यम् :॥। उत्कृष्ट ॰॥। च अन्तर्मुहूर्त :।	=लिये जघन्य और (=च) उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है ॥
अयदोत्ति (=अयदो :। त्ति* =असंयत :। इति*)	=असंयत(मिथ्यात्व-सासादन सम्यग्मिथ्यात्व अविरत चार गुणस्थानो)तक (=इति)
छलेस्साओ (=छ लेस्साओ :॥ =षड् :॥ लेश्या :॥)	=छहो (कृष्ण-नील-कापोत-पीत-पद्म-शुक्ल) लेश्या हैं ॥
सुहतियलेस्सा (=सुहतियलेस्सा :॥ =शुभत्रयलेश्या:॥)	=शुभ अथवा प्रशस्त तीन (पीत-पद्म-शुक्ल) लेश्या
हु देसविरद-(=हु* देसविरद- =हि* देशविरत-)	=ही (=हु =हि) देशविरत वा संयतासंयत (पाचवें)
तिये॥ तत्तो दु(=तिये:॥। तत्तो*दु*=त्रये:॥तत *तु)	=प्रमत्त विरत (छठे) अप्रमत्त विरत (सातवा इन) तीन गुणस्थानों में है । किन्तु (=दु=तु) तहा (अप्रमत्त) से (आगे अपूर्वकरण आदि असयोगकेवली तक

जेम रमाओ रमा रमाऊ प्रथमाविभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंगमें रमा शब्दके रूप है वैसेही लेस्सा शब्द के लेस्साओ लेस्सा तथा लेस्साऊ रूप हैं ॥

अभव्यानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादनक्षायिक-सम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

भव्य जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टी से अप्रमत्तसंयमी तकनिका नानाजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है । एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि आधा पुद्गल परिवर्तन है ॥

भव्य जीवों में चार उपशमश्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है । एक जीव के लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट कुछ न्यून अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन है ॥ भव्य जीवोंमें चार क्षपक श्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मास है । एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ भव्य जीवोंमें सयोग केवलियों का नाना जीव और एक जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥

(पृष्ठ २२२—२२५)

अभव्यानाम् ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ च एक-जीव-	=अभव्य जीवों का अनेक जीवकी विवक्षा से और एक जीवकी
अपेक्षया ३॥ न अस्ति अन्तरम् [१२] सम्यक्त्व-अनुवादेन	=अपेक्षा से अन्तर (विरहकाल) नहीं है ॥ (१२) सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा से
क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु ७। असंयतसम्यग्दृष्टेः ६। नाना-	=क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दर्शनवालेका अनेक
जीव-अपेक्षया ३॥ न अस्ति अन्तरम् १॥। एकजीवं प्रति*	=जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है । एक जीवके लिये
जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। देशोना १॥	=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि
पूर्व-कोटी १॥ संयतासंयत-प्रमत्त-	=एक करोड पूर्व है । (क्षायिक सम्यग्दर्शनविषै) संयमासंयमी प्रमत्तसंयमी
अप्रमत्त-संयतानाम् ६। नाना-जीव अपेक्षया ३॥	=अप्रमत्तसंयमियोंका नानाजीवकी अपेक्षा से
न*अस्ति T अन्तरम् १॥।	=विरहकाल नहीं है ॥

चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्यवत् ॥ (११) भव्यानुवादेन–भव्येषु मिथ्यादृष्ट्य-द्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् ॥

चतुर्णाम् ६।	=(शुक्ललेश्यामें) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय क्षीणकषाय गुणस्थान)
क्षपकाणाम् ६। सयोगकेवलिनाम् ६। अलेश्यानाम् ६। च ●	=क्षपकश्रेणीवालोंका सयोगकेवलियोंका और लेश्या रहित (अयोगी) निका
सामान्य-वत्*	=सक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात चार उपर्युक्त क्षपकश्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय (अन्तर) है उत्कृष्ट छै मास है। एकजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥ सयोगकेवलियोका अनेक जीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है (देखो पृष्ठ २२५)
[११] भव्य-अनुवादेन ३। भव्येषु ७। मिथ्यादृष्टि-आदि–	=(११) भव्यजीवोके कथनानुसारकरि भव्यजीवोंमें मिथ्यादर्शनवालेसे (आदि)
अयोगकेवलि-अन्तानाम् ६। सामान्य-वत्*	=अयोगकेवली पर्यंतोका (अन्तर) सक्षेप (विषयमें पूर्व उक्त गुणस्थान) वत् है अर्थात् भव्यजीवोमें मिथ्यादृष्टिका नानाजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एक जीव प्रति जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि कुछ न्यून एकसो बत्तीस सागर प्रमाण है। भव्यजीवोंमें सासादन सम्यग्दृष्टिका अन्तर नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्यके असख्यातवा भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य पल्यके असख्यातवा भाग है। उत्कृष्ट आधा पुद्गल परिवर्तनसे कुछ घाटि है ॥ भव्य जीवोंमें मिश्रगुणस्थानवर्तीका अन्तर नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असख्यातवाभाग है। एक जीवके लिये जघन्य एक समय है उत्कृष्ट कुछ न्यून अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है ॥

क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ॥ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि देशोनानि ॥ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टे र्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण सप्त रात्रिदिनानि ॥ एकजीवं प्रति जघन्यम्

क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ७। असंयतसम्यग्दृष्टेः ६।	=वेदक सम्यग्दर्शनवालों में अविरत सम्यग्दृष्टी का
नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ न अस्ति अन्तरम् १॥	=अनेक जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है
एकजीवम् २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	=एक जीवके लिये (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (विरहकाल) है
उत्कर्षेण ३। पूर्वकोटी १॥ देशोना १॥	=उत्कृष्टकरि कुछहीन एक करोड़ पूर्व है ॥
संयतासंयतस्य ६। नाना-जीव अपेक्षया ३॥	=(वेदकसम्यग्दृष्टियों में) देशसंयमी का अनेक जीव की अपेक्षा से
न अस्ति अन्तरम् १॥ एकजीवम् २। प्रति जघन्येन ३।	=विरहकाल नहीं है । एकजीव के लिये (=प्रति) जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३ देशोनानि १॥ षट्षष्टि-	=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछहीन छयासठि
सागरोपमाणि१॥ प्रमत्त-	=सागर प्रमाण है ॥ (वेदक सम्यग्दर्शनवालों में) प्रमत्त और
अप्रमत्तसंयतयोः ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥	=अप्रमत्त संयमियों का अनेक जीवकी अपेक्षा से
न अस्ति अन्तरम् १॥ एक-जीवम् प्रति* जघन्येन ३।	=विरहकाल नहीं है । एक जीवके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। स-अतिरेकाणि १॥	=अन्तर्मुहूर्त हैं । उत्कृष्टकरि कुछ अधिक
त्रयस्त्रिंश त्सागरोपमाणि १॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ७।	=तेतीस सागर के बराबर (अन्तर काल) है । उपशमसम्यग्दृष्टियों में
असंयत-सम्यग्दृष्टेः ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥	=अविरत सम्यग्दृष्टी का (विछोहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षा से
जघन्येन ३। एकः १। समयः १। उत्कर्षेण ३। सप्त १॥	=जघन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि सात
रात्रिदिनानि १॥ एक-जीवम् प्रति* जघन्यम् १॥	=रात दिवस है । एक जीवके लिये जघन्य और (=च)

एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ शेषाणा सामान्यवत् ।

एक-जीवम् ॥ प्रति॥जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥	=एक जीवकी अपेक्षासे (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ स-अतिरेकाणि ॥॥ त्रयस्त्रि -सागर-	=उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर
उपमाणि ॥॥ चतुर्णाम् ॥	=प्रमाण (=उपम) है ॥ (क्षायिक सम्यग्दर्शन में) चार (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशातकषाय गुणस्थान)
उपशमकानाम् ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥	=उपशमश्रेणीवालोका अनेक जीवकी अपेक्षासे
सामान्य-वत्॥	=सक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान)सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समयहै उत्कृष्ट तीन वर्षसे उपर नौ से नीचे(वर्ष) है (पृष्ठ २२४)
एक-जीवम् ॥ प्रति॥जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्त ॥	=एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ स-अतिरकाणि ॥॥ त्रयस्त्रिंशत्सागर-	=उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर
उपमाणि ॥॥ शेषाणाम् ॥	=प्रमाण (=उपम) है ॥ अवशेष अथवा बचेहुये (चार क्षपकश्रेणी वाले सयोग केवली और अयोग केवली) निंका
सामान्यवत् ॥	= सक्षेप (प्रसगमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) समान (अन्तर) है अर्थात् चार क्षपकश्रेणी वालोका और अयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मासहै । एक जीव प्रति अन्तर नहीं है ॥ सयोग केवलियोका नानाजीव और एक जीव प्रति अन्तर नहीं है ॥

(१) उपशमसम्यक्त्व मे चार से ग्यारह गुणस्थान तक है। वेदक सम्यक्त्व चार से सात गुणस्थान तक है और क्षायिक चार से चौदह तक है ॥

एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ (१३) सञ्ज्ञानुवादेन--संज्ञिषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥

एक जीवम् ;। प्रति॰ न॰ अस्ति अन्तरम् ;॥	=एक जीवके लिये वियोगकाल (=अन्तर) नहीं है।
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ;।	=सासादनसम्यग्दर्शनवाले और मिश्रगुणस्थानवालेका (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;।	=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है ॥
उत्कर्षेण ;। पल्योपम-असंख्येय-भागः ;। एकजीवं ;।	=उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां अंश है। एक जीवकी
प्रति न अस्ति अन्तरम् ;॥ मिथ्यादृष्टेः ;। नानाजीव-	=अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥ मिथ्यादर्शनवालेका अनेक जीवकी
अपेक्षया ;॥ च एक-जीव-अपेक्षया ;॥ न अस्ति अन्तरम्	=अपेक्षासे और (=च) एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर (काल) नहीं है।
[१३] सञ्ज्ञा-अनुवादेन ;। संज्ञिषु ;। मिथ्यादृष्टेः ;।	=(१३) सैनी (=मन सहित जीव) निकी अपेक्षासे सैनियोंमें मिथ्यादृष्टिका
सामान्यवत् *	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात्। सैनियोंमें मिथ्यादृष्टीका नाना जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ न्यून एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है (पृष्ठ २२३ देखो)
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ;।	=(सैनी जीवोंमें) सासादन सम्यग्दर्शनवालेका और मिश्रगुणस्थानवालेका
नानाजीव-अपेक्षया ;॥ सामान्यवत् *	=(अन्तर) अनेक जीव प्रति संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व उक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है (२२३-२२४)
एक जीवम् ;। प्रति॰ जघन्येन ;। पल्योपम-	=एक जीवके लिये जघन्यकरि पल्योपमके
असंख्येय-भागः ;। च अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;।	=असंख्यातवां भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि
सागरोपम-शतपृथक्त्वम् ;॥	=तीनसौ सागरसे ऊपर नौसौ सागरके नीचे प्रमाण है ॥

उत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण चतुर्दश रात्रिदिनानि। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पञ्चदश रात्रिदिनानि। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टंचान्तर्मुहूर्तः ॥ त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्।

उत्कृष्टम् ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ संयतासंयतस्य ॥	=उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (विरह काल) है। (उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) देश संयमीका
नाना-जीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥	=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय (अन्तरकाल) है
उत्कर्षेण ॥ चतुर्दश ॥ रात्रिदिनानि ॥ एकजीवम्	=उत्कृष्टकरि चौदह रात्रि दिवस है। एक जीवकी
प्रति* जघन्यम् ॥ च उत्कृष्टम् ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥	=अपेक्षासे जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है
प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतयोः ॥	=(उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) प्रमत्त और अप्रमत्तसंयमियोंका (अन्तर)
नाना-जीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥	=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ॥ पञ्चदश ॥ रात्रि दिनानि ॥ एकजीवम्	=उत्कृष्टकरि पन्द्रह रात्रि दिवस है। एक जीवकी
प्रति* जघन्यम् ॥ च उत्कृष्टम् ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥	=अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट विरहकाल अन्तर्मुहूर्त है।
त्रयाणाम् ॥	=(उपशम सम्यग्दृष्टियों में) तीन (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय)
उपशमकानाम् ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥	=उपशमश्रेणियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि
एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ वर्षपृथक्त्वम् ॥	=एक समय है। उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) वर्ष है
एकजीवम् ॥ प्रति* जघन्यम् ॥ च उत्कृष्टम् ॥	=एक जीवकी अपेक्षा से (=प्रति) जघन्य और (=च) उत्कृष्ट
अन्तर्मुहूर्तः ॥ उपशान्तकषायस्य ॥	=अन्तर्मुहूर्त है ॥ (उपशम सम्यग्दर्शनवालोंमें) उपशान्तकषाय वालेका
नाना-जीव-अपेक्षया ॥ सामान्य-वत्*	=(विरहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में पूर्व उक्त गुणस्थान)सम है अर्थात्‌जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व बरस है (पृष्ठ २२४)

व्यपदेशरहितानां सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन-आहारकेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। सासादन-सम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च ।

व्यपदेश-रहितानाम् ३।	=नामों से वर्जित (सयोगकेवली और अयोगकेवली) निका (विरहकाल)
सामान्य-वत्॥	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) समान है अर्थात् सयोगकेवलियों का नाना जीवकी अपेक्षासे और एक जीव की अपेक्षासे अन्तर नहीं है अयोग केवलियोंका नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मास है एकजीव प्रति अन्तर नहीं है (पृष्ठ २२५)
(१४)आहार-अनुवादेन ३। आहारकेषु ३। मिथ्यादृष्टेः ३।	=आहारके कथनानुसारकरि आहारकोंमें मिथ्यादृष्टीका (अन्तर)
सामान्यवत्॥ .	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) समान है अर्थात् आहारक मिथ्यादृष्टिका नाना जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है एक जीवके प्रति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट एकसौ बत्तीस सागर से कुछ न्यून है
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ३।	=(आहारकों में) सासादनसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवालोंका
नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ सामान्यवत्॥	=नाना जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व-उक्त गुणस्थान) वत् (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवांभागहै (पृष्ठ २२३)
एकजीवम् ३। प्रति जघन्येन ३। पल्योपम-	=एक जीव के लिये जघन्यकरि पल्योपमके
असंख्येयभागः १। च अन्तर्मुहूर्तः १।	=असंख्यातवांभाग और(=च) अन्तरमुहूर्त है ॥

(१) अहारक जीव मिथ्यात्व से सयोगकेवली गुणस्थान तक १३ स्थानो में होते हैं अनाहारक जीव, मिथ्यात्व सासादन, असंयत सम्यग्दृष्टि, सयोगकेवली और अयोगकेवली इन पांच स्थानों में (और सर्वसिद्ध) होते हैं अर्थात् विग्रहगतिको प्राप्तहोनेवाले चारो गति संबंधी जीव, प्रतर और लोक पूर्ण समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली, अयोगकेवली, सर्वसिद्ध (भगवान), इतने जीवतो अनाहारक होतेहैं। अन्य शेष जीव अहारक होते हैं ॥ गोम्मटसार जीव कांड गाथा ६६६ ॥

असयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्ताना नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्॥ चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। चतुर्णां क्षपकाणा सामान्यवत्। असज्ञिना नानाजीवापेक्षयैकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्॥ तदुभय-

असयतसम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अन्तानाम् ॥	=(सैनी में) असयमी सम्यग्दर्शन वालेसे अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती तकनिका
नानाजीव अपेक्षया ॥ न* अस्ति T अन्तरम् ॥	=अनेक जीवकी विवक्षासे विरहकाल (= अन्तर) नहीं है
एक जीवम् ॥ प्रति* जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥	=एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ सागरोपम शतपृथक्त्वम् ॥	=उत्कृष्टकरि तीनसा सागरसे ऊपर और नौसौ सागर के नीचे प्रमाण है
चतुर्णाम् ॥	=(सैनियो में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ-उपशान्तकषाय)
उपशमकानाम् ॥ नानाजीव अपेक्षया ॥ सामान्यवत्*।	=उपशम श्रेणीवालोका अनेक जीवकी अपेक्षासे सक्षेप (में गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष अन्तर है (२२४)
एक जीवम् ॥ प्रति* जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥	=एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ सागरोपम शत पृथक्त्वम् ॥	=उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (= तीन से ऊपर नौसे नीचे) सौ सागर प्रमाण है
चतुर्णाम् ॥	=(सैनियोंमें) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मलोभ क्षीणकषाय)
क्षपकाणाम् ॥ सामान्यवत्*	=क्षपक श्रेणीवालों का अन्तर सक्षेप (विषयमें पूर्व उक्त गुणस्थान) सदृश है —अर्थात नानाजीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मास है एक जीव प्रति विरह काल नहीं है (पृष्ठ २२५ देखो)
असज्ञिनाम् ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ च एकजीव-अपेक्षया ॥ न • अस्ति अन्तरम् ॥ तद्-उभय-	=असज्ञियोका (जो मिथ्यात्वगुणस्थानमें हैं) नाना जीवकी अपेक्षा से और एक जीवकी विवक्षा मे अन्तर नहीं है ॥ उन (सैनीमनसहित असैनी मनरहित) दोनों

(१) सैनी अथवा मनसहित जीव मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान से क्षीणकषाय बारहवा गुणस्थानतक होते हैं असैनी केवल मिथ्यात्व गुणस्थान मे है॥

(टिप्पणी) २ असंख्यात और ३ अनंत। असंख्यातके तीन भेद हैं १ परीतासंख्यात २ युक्तासंख्यात और ३ असंख्यातासंख्यात। अनंतके भी ३ भेद है —१ परीतानंत २ युक्तानंत ३ अनंतानंत ! संख्यात का एक भेद ही है। ऐसे संख्यात का एक भेद, असंख्यात और अनंत के तीन तीन भेद सब मिल कर संख्यामान के ७ भेद हुए। इन सातो मे से प्रत्येक के जघन्य (सब से छोटा , मध्यम , बीच के) और उत्कृष्ट (सबसे बड़ा) की अपेक्षा से तीन तीन भेद है इस प्रकार संख्यामान के २१ भेद हुए अर्थात् (1) जघन्य संख्यात, मध्यम संख्यात, उत्कृष्ट संख्यात

(2) जघन्य परीतासंख्यात, मध्यम परीतासंख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात, मध्यम युक्तासंख्यात, उत्कृष्ट युक्तासंख्यात- जघन्य असंख्यातासंख्यात, मध्यम असंख्यातासंख्यात, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात,

(3) जघन्य परीतानन्त, मध्यम परीतानन्त, उत्कृष्ट परीतानन्त ; जघन्य युक्तानन्त, मध्यम युक्तानन्त, उत्कृष्ट युक्तानन्त ; जघन्य अनन्तानन्त, मध्यम अनन्तानन्त- उत्कृष्ट अनन्तानन्त ॥

एकमें एकका भाग देने से अथवा एकको एकसे गुणाकारकरने से कुछभी हानि वृद्धि नहीं होती। अतः संख्याका आरम्भ दो के अङ्क से ग्रहण किया है। और एक को गणना (गिनती) शब्द का वाच्य (कहने वाला) माना है, इस लिये जघन्य संख्या का प्रमाण दो (२) है। तीन चार पांच इत्यादि एक हीन उत्कृष्ट संख्यात पर्यंत मध्यम संख्यात के भेद है। एक न्यून जघन्य परीतासंख्यात को उत्कृष्ट संख्यात कहते हैं

अब आगे जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण कितना है सो लिखते हैं। अलौकिक गणित का स्वरूप लौकिक गणित से कुछ विलक्षण है लौकिक गणित से स्थूल और स्वल्प (थोड़े) पदार्थों का परिमाण किया जाता है, किन्तु अलौकिक गणित से सूक्ष्म और अनन्त पदार्थों की हीनाधिकता का बोध कराया जाता है। जघन्य परीतासंख्यात का स्वरूप समझाने के लिये जो उपाय लिखा जाता है वह किसी ने किया नहीं था किन्तु बड़े गणित का परिमाण समझाने के लिये एक कल्पित उपाय मात्र है ॥

कल्पना कीजिये कि अनवस्था, शलाका, प्रति शलाका, और महा शलाका, नाम के चार गोल कुंड हैं। जिन में से प्रत्येक का व्यास (=गोल पदार्थ की एकतट से दूसरे तट तक की चौडाई) एक लक्ष योजन (योजन का प्रमाण यहां दो सहस्र कोस का समझना) और गहराई (ओंडाई) का प्रमाण एक सहस्र योजन है। इनमें से अनवस्था कुंडको गोल सरसो से शिखाऊ (पृथ्वी पर अन्नकी राशिके भांति) भरना। इस अनवस्था कुंड में १९९७११२९ ३८ ४५ १३१६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ,, सरसों छियालीस अंक प्रमाण गणित शास्त्रके अनुसार समाई। यहां अपूर्णांक का ग्रहण नहीं करना। २७०

उत्कर्षेणाङ्गुलासङ्ख्येयभाग असङ्ख्येयासङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य । असयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमतान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त ॥

उत्कर्षेण ॥ अंगुल-असङ्ख्येयभागं' ॥	=उत्कृष्टकरि (सूचीरूप) अंगुल के असंख्यातवां भाग है अर्थात् सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग के बराबर आकाश में वा आकाश के जितने प्रदेश गणना में हैं उतने समयों के बराबर विरह काल वा अंतरकाल है
असङ्ख्येयासङ्ख्येयाः ॥ उत्सर्पिणि-अवसर्पिण्यः ॥	=(वे पूर्वोक्त समय) असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल हैं अर्थात् सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग में जितने आकाशके प्रदेश संख्या में हैं उतनी ही (गणना अन्तर काल) के समयों की है और ये समय गिनती में उन समयों के बराबर हैं जितने कि समय असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालो (असंख्यातासंख्यात कल्प कालों) में है
असयत-सम्यग्दृष्टि-आदि अप्रमत्त-अन्ताना ॥	=असंयतसम्यग्दृष्टी से अप्रमत्तसंयमी (सातवां गुणस्थान वर्ति) नि तक
नानाजीव अपेक्षया ॥ न अस्ति-अन्तरम् ॥	=अनेक प्राणियों की अपेक्षा से अन्तर नहीं है
एकजीव ॥ प्रति॰ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्त ॥	=एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है ॥

(१) "असङ्ख्येया" पृष्ठ ८६ (द्वितीय संस्करण के पृष्ठ ४९) में दो बार आया है ॥ यह छापे की अशुद्धि है । पृष्ठ ८७ (पृष्ठ ४९) में असंख्येयासंख्येया आया है वह शुद्ध है क्योंकि जय चन्द्रजी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १११ और हस्तलिखित वचनिका में भी दोनों स्थानों में असंख्यातासंख्यात वाक्य है और अर्थ भी यही है कि सूच्यंगुलके असंख्यातवां भागके आकाश प्रदेशोंकी गणना असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी (न कि असंख्याते उत्सर्पिणी अवसर्पिणी) कालों के समयों के बराबर है ॥

(२) पृष्ठ ८६, ८७ (द्वितीय संस्करण के पृष्ठ ४९) में दोनों स्थानोंमें "असंख्येयभाग" (= असंख्यातवाँभाग) के स्थान में 'असंख्येभागा' असंख्यातेभाग अशुद्ध छप गया है क्योंकि सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग (न कि असंख्याते भाग) के आकाश के प्रदेशों की संख्या असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालोंके समयोंके बराबर गणनामें हैं । क्योंकि "अंगुल असंखभागा" इत्यादि गाथा तथा टिप्पणी (२) पृष्ठ२२१में देखो ॥ ' सूच्यंगुलासंख्यतेकभाग

(३) "अंगुल" पृष्ठ ८६, ८७ व ६८ में जहाँ जहाँ पर अंगुल शब्द आये हैं वहां वहां सूच्यंगुलसे प्रयोजन है न कि प्रतर (वर्ग) अंगुलसे वा घनअंगुल से अर्थात् एक प्रमाण अंगुल (न कि उत्सेध अंगुल वा आत्मांगुल) लंबे और एकप्रदेश चौड़े और ऊंचे आकाश में जितने प्रदेश होते हैं उने सूच्यंगुल कहते हैं सूच्यंगुल के कथन में सूची, जघन्ययुक्त संख्यात प्रमाण इत्यादि शब्द आये हैं अत अलौकिक गणित के (१) संख्यामान और उपमामान दोनों भेद जो तत्वार्थ सूत्र के अगले अध्यायों के सूत्रों से भी सम्बन्ध रखते हैं नीचे के पृष्ठ २७० से २७६ तक लिखे जाते हैं ॥ अलौकिक गणित के मुख्य दो भेद हैं एक

र [illegible] भी हैं अर्थात् १ संख्यात

सबसे बड़े अंतके अनवस्थाकुंडमें जितनी सरसों समाई उतनाही जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण है ।

संख्यामान के मूलभेद सात कहेथे इन सातोंके जघन्य मध्यम उत्कृष्टकी अपेक्षासे इकीस भेद कहे । यहांपर आगेके मूलभेद के जघन्य भेदमें से एक घटाने से पिछले मूल भेदका उत्कृष्ट भेद होता है, जैसे जघन्य परीतासंख्यात में से एक घटाने से उत्कृष्ट संख्यात तथा जघन्य युक्तासंख्यात में से एक घटाने से उत्कृष्ट परीतासंख्यात होता है । इसी प्रकार अन्य स्थानोमें भी जानना । जघन्य और उत्कृष्ट भेदो के बीचके सब भेद मध्यम भेद कहलाते हैं । इस प्रकार मध्यम और उत्कृष्ट केस्वरूप जघन्य के स्वरूप को जानने से ही ज्ञात होसक्ते हैं इसलिये अब आगे जघन्य भेदोंका ही स्वरूप लिखाजाता है । जघन्यसंख्यात और जघन्य परीतासंख्यात का स्वरूप ऊपर लिखा जाचुका है अब आगे जघन्य युक्तासंख्यात का प्रमाण लिखते हैं ।

जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण दो राशि लिखना, एक विरलनराशि और दूसरी देयराशि, विरलनराशिका विरलन करना अर्थात् विरलनराशिका जितना प्रमाण है उतने एके लिखना और प्रत्येक एकेके ऊपर एक एक देयराशि रखकर समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणन करने से जो गुणन फल हो उतना ही जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण है भावार्थ यदि जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण चार मानाजाय तो चार का विरलनकर १,१,१,१, प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि चार चार रखकर ४/१ ४/१ ४/१ ४/१ चारों चौकोंका परस्पर गुणन करनेसे गुणनफल २५६ जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण होगा । इसही जघन्य युक्तासंख्यातको आवलीभी कहते हैं क्योंकि एक आवली में जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण समय होते हैं । जघन्य युक्तासंख्यातके वर्ग (एक राशिको उसी से गुणा कार करने से जो गुणनफल होता है उसको वर्ग कहते हैं जैसे ५ का वर्ग २५) को जघन्य असंख्यातासंख्यात कहते हैं । अब आगे जघन्य परीतानंतका प्रमाण कहते हैं—

जघन्य असंख्यातासंख्यातप्रमाण तीनि राशि अर्थात् १ विरलनराशि २ देयराशि ३ शलाका लिखना । विरलनराशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रखकर समस्त देयराशियोका परस्पर गुणाकार करना, और शलाकाराशि में से एक घटाना, इस पाये हुये गुणनफल प्रमाण

इस अनवस्था कुडके भरनेपर दूसरी एक सरसों अनवस्था कुडोंकी गिनती करने के लिये शलाका कुडमें डालनी। मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। जिनमें सबके बीचमें जम्बूद्वीप है। इसका व्यास एक लक्षयोजन है उसके चारों ओर लवण समुद्र है। उसको चारों ओरसे घेरकर धातकीखंड है। इस प्रकार द्वीपके आगे समुद्र समुद्र के आगे द्वीप क्रमसे असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। चौड़ाई दूनी दूनी होती गई है। किसी द्वीप या समुद्र की परिधि (गोलाई) के एक तट से दूसरे तट तक की चौड़ाई का सूची कहते हैं। जैसे लवण समुद्रकी सूची ५ लाख योजन है।

अब अनवस्था कुड में से समस्त सरसोंको निकालकर किसी देव के द्वारा एक सरसों द्वीपमें एक सरसों समुद्रमें अनुक्रम से डालते चलिये जिस द्वीप या समुद्रमें सब सरसों पूर्ण कर अतकी सरसो डालो उसी द्वीप या समुद्रकी सूची के समान सूची वाला और एक सहस्रयोजन गहराईवाला, दूसरा अनवस्थाकुड बनाइये और उसको भी सरसों से शिखाऊ भर एक दूसरी सरसों शलाका कुडमें डालिये इस दूसरे अनवस्था कुडकी सरसों को भी निकालकर जिस द्वीप या समुद्र मे पहिले समाप्त हुई थी उसके आगे एक सरसों द्वीपमे और एक (सरसों) समुद्र में डालते चलिये जहां ये सरसों भी समाप्त हो जायें वहाँ उसी द्वीप या समुद्र की सूची प्रमाण चौड़ी और एक सहस्र योजन गहरा तीसरा अनवस्था कुड बनाकर उसे सरसों से शिखाऊ भरिये और शलाका कुड में तीसरी सरसों डालिये इस तीसरे कुड की भी सरसों निकालकर आगेके द्वीप समुद्रों में एक एक सरसों डालते डालते जब सरसों समाप्त हो जाय तब पूर्वोक्तानुसार चौथा अनवस्था कुड भरकर चौथी सरसों शलाका कुडमें डालिये इसी प्रकार एक एक अनवस्था कुड की एक एक सरसों शलाका कुड में डालते डालते जब शलाका कुड भी शिखाऊ भरजाय तब एक सरसों प्रति शलाका कुड में डालिये इसी प्रकार एक एक अनवस्था कुड की एक एक सरसों शलाका कुड मे डालते डालते जब दूसरी बार भी शलाका कुड (शिखाऊ) भर जाय तो दूसरी सरसों प्रतिशलाकाकुण्ड में डालिये, एक एक अनवस्था कुण्ड की एक एक सरसों शलाकाकुड मे और एक एक शलाकाकुडकी एक एक सरसों प्रतिशलाकाकुडमें डालते डालते जब प्रतिशलाकाकुण्डभी भर जाय तब एक सरसों महाशलाकाकुण्डमें डालिये। जिस क्रमसे एक बार प्रति शलाकाकुड भरा है उसी क्रमसे दूसरी बार भरने पर दूसरी सरसों महाशलाका कुण्डमे डालिये। इसी प्रकार एक एक प्रतिशलाका कुडकी सरसों महाशलाका कुडमें डालते डालते जब महाशलाका कुड भी भरजाय उस समय

विरलन-देय-शलाका ये तीनिराशि स्थापन करना और पूर्वोक्त क्रमानुसार शलाकात्रय निष्ठापन करना। इस प्रकार शलाकात्रय-निष्ठापन करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसको जघन्य परीतानंत कहते है। जघन्य परीतानंतका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर जघन्य परीतानंतरख सब जघन्य परीतानतोंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसको जघन्य युक्तानंत कहते है। अभव्य जीवोंका प्रमाण जघन्य युक्तानंत समान है। जघन्य युक्तानंतके वर्गको जघन्य अनंतानंत कहते हैं।

अब आगे केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाण स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंतका स्वरूप कहते है— जघन्य अनंतानंत प्रमाण विरलन देय शलाका ये तीनि राशि स्थापनकर शलाकात्रय निष्ठापन करना। इस प्रकार शलाकात्रय निष्ठापन करनेसे जो महाराशि उत्पन्न हो वह अनंतानंतका एक मध्यम भेद है। अनंतके दूसरे दो भेद है, एक सक्षय अनंत और दूसरा अक्षयअनंत। यहां तक जो संख्या हुई वह सक्षयअनंत है इससे आगे अक्षयअनंतके भेद हैं। क्योंकि, इस महाराशिमे आगे छह राशि अक्षय अनंत मिलाई जाती है। नवीन वृद्धि न होने पर भी व्यय करते करते जिस राशिका अंत नहीं आवै उसको अक्षयअनंत कहते है। इस महाराशिमे जीवराशिके अनंतवें भाग सिद्धराशि, सिद्धराशिसे अनंतगुणी निगोधराशि, वनस्पतिकायिकराशि, जीवराशिसे अनंतगुणी पुद्गलराशि, पुद्गलसे भी अनंतगुणे तीनिकालके समय और अलोका काशके प्रदेश ये छह राशि मिलानेसे जो योगफल हो उस प्रमाण विरलन देय शलाका ये तीनिराशि स्थापनकर शलाकात्रयनिष्ठापन करना। इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसमें धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यके अगुरुलघु गुणके अनंतानंत अविभागप्रतिच्छेद मिलाकर योगफल प्रमाण विरलन-देय-शलाका स्थापनकर फिर शलाकात्रयनिष्ठापन करना। इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे मध्यम अनंतानंतका भेदरूप जो महाराशि उत्पन्न हुई उसको केवल ज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोके समूहरूप राशिमेंसे घटाना और जो शेषबचे उसमे पुनः वही महाराशि मिलानेसे केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाणस्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत होता है। उक्त महाराशिको केवलज्ञानमेसे घटाकर फिर मिलानेका अभिप्राय यह है कि, केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण उक्त महाराशिसे बहुत बड़ा है। उस महाराशिको किसी दूसरी राशिसे गुणाकार करने पर भी केवल ज्ञानके प्रमाणसे बहुत न्यून रहता है इसलिये केवल ज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणका महत्व दिखलानेके लिये उपर्युक्त विधान किया है। इस प्रकार संख्या मानके इक्कीस भेदोंका कथन समाप्त हुआ।

१८ विरलन और एक देय इस प्रकार दो राशि करना। विरलनराशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रखकर समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणाकार करना और शलाकाराशिमेंसे एक और घटाना। इस दूसरीवार पाये हुये गुणनफल प्रमाण पुनः विरलन और देयराशि करना और पूर्वोक्तानुसार समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणाकार करना तथा शलाकाराशियों में से एक और घटाना इसही अनुक्रमसे नवीन नवीन गुणनफल प्रमाण विरलन और देयके क्रमसे एक एक बार देयराशियों का गुणाकार होने पर शलाकाराशि म से एक एक घटाते घटाते जब शलाकाराशि समाप्त होजाय उस समय जो अन्तिम गुणनफलरूप महाराशि होय उस प्रमाण फिर विरलन देय शलाका ये तीनि राशि लिखनी। विरलन राशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रख देयराशिका परस्पर गुणाकार करते करते पूर्वोक्तक्रमानुसार एक बार देयराशियोंका गुणाकार होनेपर शलाकाराशिम से एक एक घटाते घटाते जब यह द्वितीयवार स्थापनकी हुई शलाकाराशिभी समाप्त होजाय उस समय इस अन्तकी गुणनफलरूप महाराशि प्रमाण पुन विरलन देय शलाका, ये तीनिराशि लिखनी। पूर्वोक्त क्रमानुसार जब यह तीसरीवार स्थापना की हुई शलाकाराशि भी समाप्त होजाय उस समय जो अन्तिम गुणनफलरूप जो महाराशि हुई वह असंख्यातासंख्यातका एक मध्यम भेद है।

कथित क्रमानुसार तीनिवार तीनितीनि राशियों के गुणन विधानको शलाकात्रयनिष्ठापन कहते हैं आगे भी जहां "शलाकात्रयनिष्ठापन" ऐसा पद आवे वहां ऐसाही विधान समझ लेना। इस महा राशि में लोक प्रमाण (जिसका कथन उपमामान के कथन म कहा जायगा) लोकप्रमाण धर्मद्रव्यके प्रदेश, लोक प्रमाण अधर्मद्रव्यके प्रदेश, लोक प्रमाण एक जीव के प्रदेश, लोक प्रमाणलोकाकाशके प्रदेश, लोकसे असंख्यात गुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण और उनसे भी असंख्यात लोक गुणा तथापि सामान्यतासे असंख्यात लोक प्रमाण प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण-ये छह राशि मिलाना। इस योगफलप्रमाण विरलन देय शलाका ये तीनि राशि स्थापनकर पूर्वोक्तानुसार शलाकात्रय निष्ठापन करना। इसप्रकार करने से जो महाराशि उत्पन्न हो उस में बीसकोडाकोडी सागर प्रमाण कल्पकालके समय, असंख्यात लोक प्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान (स्थितिबंधको कारण भूत आत्मा के परिणाम) इनसे भी असंख्यात गुणे तथापि असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान और इनसे भी असंख्यात गुणे तथापि असंख्यात लोक प्रमाण मन वचन काय योगों के अविभाग प्रतिच्छेद (गुणोंके अंश) ये चार राशि मिलाना। इस दूसरे योगफल प्रमाण फिर –

उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागः असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागः असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ॥

उत्कर्षेण ३। अंगुल-असंख्येय-भागः १। =उत्कृष्टकरि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग है (इस भागके प्रदेशों के तुल्य है)

असंख्येयासंख्येयाः १॥ उत्सर्पिण्यसर्पिण्यः १। =(येप्रदेश संख्यामें) असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके समयोंके तुल्य है

चतुर्णाम् ६। उपशमकानाम् ६। =चार उपशमश्रेणी (आठवेंसे ग्यारहवां गुणस्थान) वालेनिका (अन्तर)

नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ सामान्यवत्* =अनेक जीव की विवक्षासे सामान्य (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सम है अर्थात जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (तीनसे ऊपर नौसे नीचे) वर्ष है (पृष्ठ २२४)

एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। =(चार उपशम श्रेणी वालों का) एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण ३। अंगुल-असंख्येयभागः १। =उत्कृष्टकरि सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग (के अकाश प्रदेशों के तुल्य) है

असंख्येयासंख्येयाः १॥ उत्सर्पिण्यसर्पिण्यः १॥ =(ये प्रदेश गिनतीमें) असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके समयोंके तुल्य हैं

कर्मोंकी स्थिति अद्धापल्यसे वर्णन को गई है पल्यको दश कोडाकोडी से गुणा करनेपर सागर होता है अर्थात् दशकोडाकोडी व्यवहार पल्यका एक व्यवहार सागर दशकोडाकोडी उद्धारपल्यका एक उद्धार सागर और दशकोडाकोडी अद्धापल्यका एक अद्धा सागर होता है किसी राशिको जितनी बार आधा आधा करने से एक शेष रहै उसको अर्धच्छेद कहते हैं जैसे ४ को दोबार आधा आधा करनेसे एक होता है अत चार के अर्धच्छेद २ हैं। आठ के तीन है। सोलह के अर्धच्छेद चार हैं। इसही प्रकार सर्वत्र लगा लैना अद्धापल्यको अर्द्धच्छेदराशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर अद्धापल्य रखकर सब अद्धा पल्योंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसको सूच्यंगुल कहते हैं अर्थात् एक प्रमाणांगुल लंबे और एक प्रदेश चौड़े और ऊंचे आकाशमे इतने प्रदेश हैं। सूच्यंगुलके वर्ग को प्रतरांगुल और घन (एक राशि को तीनवार परस्पर गुणाकरने से जो गुणनफल हो उसे घन कहते है। जैसे दोका घन आठ और तीन का घन सत्ताइस है) को घनांगुल कहते है पल्यको अर्द्धच्छेद राशिके असंख्यातवां भागका विरलनकर प्रत्येक एक एकके ऊपर घनांगुल रख समस्त घनांगुलोंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो गुणन फल हो उसको जगच्छ्रेणी कहते है जगच्छ्रेणीका सातवां भाग राजू कहा गया है अर्थात् सात राजूको एक जगच्छ्रेणी होती है। जगच्छ्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और जगच्छ्रेणीके घनको लोक कहते है। यही तीनों लोकके आकाश प्रदेशोंकी संख्या है।

इस उपमामानके भेदोंसे द्रव्य क्षेत्र काल और भावका परिमाण दिया जाता है भावार्थ जहां द्रव्य का परिमाण कहाजाय वहाँ उतने प्रथक २ पदार्थ जानना जहां क्षेत्रका परिमाण कहा जाय वहां उतने प्रदेश जानने, जहां कालका परिमाण कहाजाय वहाँ उतने समय जानने और जहां भाव परिमाण कहाजाय वहां उतने अविभाग प्रतिच्छेद जानने ॥

अब आगे उपमामानके आठ भेदोंका स्वरूप लिखते हैं। जो प्रमाण किसी पदार्थकी उपमा देकर कहा जाता है उसे उपमामान कहते हैं। उपमामानके ८ भेद हैं, १ पल्य (अर्थात् नाज भरनेको जो खत्ती उसकी उपमा है) २ सागर (यहां लवण समुद्रकी उपमा है) ३ सूच्यंगुल ४ प्रतरांगुल ५ घनांगुल ६ जगच्छ्रेणी ७ जगत्प्रतर और ८ लोक। इनमेंसे पल्यके तीनि भेद हैं, १ व्यवहारपल्य २ उद्धारपल्य और ३ अद्धा पल्य। व्यवहारपल्यका स्वरूप पूर्वाचार्योंने इसप्रकार कहा है कि पुद्गलद्रव्यके सबसे छोटे खंडको (टुकडेको) परमाणु कहते हैं। अनंतानंत परमाणुओंके स्कंधको (समूहरूप पिंडको) अवसन्नासन्न कहते हैं, ८ अवसन्नासन्नका एक सन्नासन्न, ८ सन्नासन्नका एक त्रुटरेणु ८ त्रुटरेणुका एक त्रसरेणु, ८ त्रसरेणुका एक रथरेणु ८ रथरेणुका एक उत्तम भोग भूमिवालोंका बालाग्रभाग, ८ उत्तम भोग भूमिवालोंके बालाग्रका एक मध्यमभोग भूमिवालोंका बालाग्र, ८ मध्यमभोग भूमिवालोंके बालाग्रका एक जघन्यभोगभूमिवालोंका बालाग्र, ८ जघन्यभोगभूमिवालोंके बालाग्रका एक कर्मभूमिवालोंका बालाग्र, ८ कर्मभूमिवालोंके बालाग्रकी एक लीख, ८ लीखोंका एक सरसों ८ सरसोंका एक जौ, और ८ जौका एक अंगुल होता है। इस अंगुलको 'उत्सेधांगुल' कहते हैं। चारों गतियोंके जीवोंके शरीर और देवोंके नगर तथा मन्दिरादिकका परिमाण इसी अंगुलसे वर्णन किया जाता है इस उत्सेधांगुलसे पांचसौ गुणा प्रमाणांगुल (भरत क्षेत्रके अवसर्पिणीकालके प्रथम चक्रवर्तिका अंगुल) है। इस प्रमाणांगुलसे महापर्वत, नदी द्वीप, समुद्र इत्यादिकका परिमाण कहा जाता है। भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने अपने कालमें जो अंगुल है उसे आत्मांगुल कहते हैं इससे झारी कलश धनुष ढोल हल मूसल, छत्र, चमर इत्यादिकका प्रमाण वर्णन किया जाता है। छह अंगुलका एक पाद, दो पादका एक बिलस्त, दो बिलस्तका एक हाथ चार हाथका एक धनुष, दो सहस्र धनुषका एक कोस, चार कोसका एक योजन होता है। प्रमाणांगुलसे निष्पन्न एक योजन प्रमाण गहरा और एक योजन प्रमाण व्यासवाला एक गोलगर्त (गड्ढा) बनाना उस गर्तको उत्तम भोगभूमिवाले मेढेके बालोंके अग्रभागोंसे भरना। गणित करनेसे उसगर्तके रोमकी संख्या ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००० हुई (अध्याय ३ सूत्र ३८की टिप्पणी गणितके लिये देखो) इसगर्तके एक एक रोमको सौ सौ बरस पीछे निकालते निकालते जितने कालमें वे सब रोम समाप्त होजाय उतने कालको व्यवहार पल्यका काल कहते हैं। उपर्युक्त रोम संख्या का सौवरस के समयसमूह से गुणा करने पर व्यवहार पल्यके समयोंका प्रमाण होता है।

[१ वर्षके २ अयन, १ अयनको तीन ऋतु, १ ऋतुके २ मास, १ मासके ३० अहोरात्रि १ अहोरात्रिके ३० मुहूर्त १ मुहूर्तकी संख्यात आवली और आवलीके जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय होते हैं] व्यवहार पल्यके एक एक रोम खंडके असंख्यात कोटि वर्षके समय समूह प्रमाण खंड करनेसे उद्धार पल्यके रोम खंडोंका प्रमाण होता है जितने उद्धारपल्यके रोम खंड हैं उतने ही उद्धार पल्य के समय जानने। एक कोटीके वर्गको कोडाकोडी कहते हैं द्वीप समुद्रों की संख्या उद्धारपल्य से है अर्थात् उद्धार पल्यके समयोंको पच्चीस कोडाकोडीसे गुणा करने से जो गुणनफल होता है उतनेही सब द्वीप समुद्र हैं। उद्धार पल्यके प्रत्येक रोमखंडके असंख्यात वर्षके समय समूह प्रमाण खंड करने से अद्धापल्यके रोम खंड होते हैं। जितने अद्धापल्यके रोमखंड हैं उतने ही अद्धापल्यके समय हैं।

नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ अयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण पण्मासाः । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ अन्तरमवगतम् ॥ भावो विभाव्यते ॥ स द्विविधः । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्-मिथ्यादृष्टिरित्यौदयिको भावः । सासादनसम्यग्दृष्टिरिति पारिणामिको भावः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टिरिति क्षायोपशमिकोभावः ॥

नानाजीव-अपेक्षया ३॥ जघन्येन ३। एकः १। समयः १।	=(अन्तर काल) अनेक जीव की अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ३। वर्ष पृथक्त्वम् १॥। एकजीवम् २।	=उत्कृष्टकरि तीनसे ऊपर नौसे न्यून (=पृथक्त्व) बरस है ॥ एक जीव के
प्रति* न अस्ति अन्तम् १॥। अयोगकेवलिनाम् ६।	=लिये विरह काल नहीं है। (अनाहारकों में) अयोगकेवलियों का
नानाजीव अपेक्षया ३॥ जघन्येन ३। एकः १। समयः १।	=(अन्तरकाल) अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ३। पण्मासाः १। एकजीवम् २। प्रति अन्तरम्१॥।	=उत्कृष्टकरि छह मास है। एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर
न* अस्ति T अन्तरम् १॥। अवगतम् १॥।	=नहीं है ॥ अन्तर (का कथन) जाना अथवा ज्ञात हुआ ॥
भावः१। विभाव्यतेT सः १। द्विविधः१। सामान्येन ३॥।	=भाव (प्ररूपणा) प्रारंभ की जाती है। सो भाव दो प्रकार संक्षेप से
विशेषेण ३। च सामान्येन ३॥। तावत्*	=और (=च) विस्तारकरि है। संक्षेपसे प्रथम (तावत्)
मिथ्यादृष्टिः १। इति* औदयिकः १। भावः १।	=" मिथ्यादृष्टि तौ औदयिक भाव हैं " क्योंकि यहां मिथ्यात्व का उदय है
सासादनसम्यग्दृष्टिः १। इति* पारिणामिकः १। भावः १।	=सासादन सम्यग्दृष्टी पारिणामिक भाव है अर्थात् सासादन दूसरे गुणस्थान में दर्शनमोहका उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम नहीं होती है
सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः १। इति* क्षायोपशमिकः १। भावः १।	=सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशमिक भाव है (क्योंकि यहां दर्शनमोहकी सर्वघाती मिथ्यात्व प्रकृति का उदयाभावीक्षय और उपशम तथा सम्यक्त्व मिथ्यात्व का उदय रहता है ॥ देखो जी. कां. गाथा ११ की म. प्र. सं० टीका

---

(१) मिथ्यात्व गुणस्थान से अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान तक दर्शन मोह की अपेक्षा से भावो का कथन जानना चाहिये ॥

(२) द्रव्यक्षेत्र काल भावके निमित्त से कर्म जब अपना रस (फल) देता है वो उदय है कर्मोके उदय से जो आत्माके भाव होते हैं वे औदयिक भाव है

चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनां च सामान्यवत्। अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः उत्कर्षेण मासपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सयोगकेवलिनां

चतुर्णाम् ॥	=(आहारको में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ क्षीणकषाय)
क्षपकाणाम् ॥ च* सयोगकेवलीनाम् ॥	=क्षपकश्रेणीवाले और सयोगकेवलियोका (विरहकाल)
सामान्यवत्*	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् अहारकोंमें चार क्षपकश्रेणीवालोका अन्तरकाल अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है। एक जीवके लिये अन्तर नहीं है आहारकोमें सयोग-केवलियोका नानाजीव और एक जीवके प्रति अन्तर नहीं है
अनाहारकेषु ॥ मिथ्यादृष्टे ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥	=(अनाहारकोमें) मिथ्यादर्शनवालेका अनेक जीवकी अपेक्षासे
च*एक-जीव अपेक्षया ॥ न*अस्ति अन्तरम् ॥	ओर एक जीवकी विवक्षासे अन्तर (काल) नहीं है
सासादनसम्यग्दृष्टे ॥ नाना-जीव अपेक्षया ॥	=(अनाहारकोमें) सासादनसम्यग्दर्शनवालेका अनेक जीवकी अपेक्षासे
जघन्येन ॥ एक ॥ समय ॥ उत्कर्षेण ॥ पल्य	=जघन्यकरि एक समय है। उत्कृष्टकरि पल्यके
उपम असंख्येयभाग ॥ एकजीव ॥ प्रति*	=असंख्यातवा भाग प्रमाण (=उपम) है। एक जीवकी अपेक्षासे
न अस्ति अन्तरम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टे ॥	=अन्तर नहीं है ॥ (अनाहारकोंमें) असंयमी सम्यग्दृष्टीका (विरहकाल)
नानाजीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एक ॥ समय ॥	=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ॥ मास पृथक्त्व ॥ एकजीव ॥	उत्कृष्टकरि तीन से ऊपर नौ से नीचे (=पृथक्त्व) मास है एक जीवकी
प्रति* न अस्ति अन्तरम् ॥ सयोगकेवलीनाम् ॥	=अपेक्षासे (=प्रति) अन्तर नहीं है ॥ (अनाहारक अवस्थामें) सयोगकेवलियोका

असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥ सँयतासंयतः प्रमत्तसयतोऽप्रमत्तसंयत इति च क्षायोपशमिको भावः ॥ चतुर्णामुपशमकानामित्यौपशमिको भावः ॥ चतुर्षु क्षपकेषु सयोगायोगकेवलिनोश्च क्षायिको भावः ॥ विशेषेण (१) गत्यनुवादेननरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्टयन्तानां

असंयतः १। पुनः॰औदयिकेन ३। भावेन ३। =और (यहां चौथे गुणस्थानमें) असंयतपना है सो औदयिक भावसे है
संयतासंयतः १। प्रमत्तसंयतः १। च अप्रमत्त- =देश संयतगुणस्थान प्रमत्तसंयत गुणस्थान और अप्रमत्त-
संयतः १। इति॰ क्षायोपशमिकः १। भावः १। =संयत गुणस्थान "वालोंके क्षायोपशमिक भाव है" चारित्र मोह विशेष का क्षयोपशम (होने से)
चतुर्णाम् ६। =चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशांतकशाय)
उपशमकानाम् ६। इति ॰ औपशमिकः १। भावः १।=उपशमवालोंके औपशमिकभाव है (चारित्रमोहका उपशम होने से)
चतुर्षु ७। क्षपकेषु ७। =चार (अपूर्वकरण से क्षीणकपाय तक) क्षपक श्रेणी में (चरित्र मोह क्षयसे)
च सयोग-अयोगकेवलिनोः ७। क्षायिकः १। भावः १।=और (=च) सयोग-अयोगकेवलियों में (भी) क्षायिक भाव है
विशेषेण ३।(१) गति-अनुवादेन ३। नरकगतौ ७॥ =विशेषकरि (१) गतिके कथनानुसार से नरक गति में
प्रथमायाम् ७॥ पृथिव्याम् ७॥ नारकाणाम् ६। मिथ्या-=पहिली भूमि (नरक) में नारकियोंके मिथ्या-
दृष्टि-आदि-असंयतसम्यग्दृष्टि-अन्तानाम् ६। =दर्शनवाले से असंयमी सम्यगदर्शन वाले पर्यतोंका

(१) असंयतसम्यग्दृष्टौ सम्भवतो ऽसंयतत्वस्यौदयिकत्वं प्राहुः असंयतत्वस्य चारित्र मोहोदय हेतुत्वात् ॥
असंयत सम्यग्दृष्टौ ? असंयतत्वस्य ६॥ सम्भवतः ॰ = असंयमी सम्यग्दर्शनवाले में असंयमपना के (सम्भव) होने से
औदयिकत्वम् २॥ प्र-आहुः T असंयतत्वस्य ६॥ = औदयिकभावको (कारण) वतलाते हैं (क्योंकि) असंयम का होना
चारित्र-मोह-उदय-हेतुत्वात ५॥ = चारित्र मोहनीयकर्मके उदय होने (के हेतु) से है भावार्थ यह है कि चौथे गुणस्थान में औदयिक भावके कारण असंयम होता है क्योंकि वहां चारित्र मोहनीयकर्म अप्रत्याख्याना-वरण का उदय है (२) यहां असंयतः असंयतत्व के अर्थ में है ॥
(२) पांचवां संयत गुणस्थानसे क्षीण कषाय बारहवां गुणस्थान तक चारित्र मोहनीयकर्म की अपेक्षा से यह कथन किया है ॥

असयतसम्यग्दृष्टिरिति औपशमिको वा क्षायिको वा क्षायोपशमिको वा भाव ॥ उक्तं च मिच्छे खलु आदइओ विदिए पुण परिणामिओ भावो। मिस्से खओवसमिओ अविरदसम्मम्मि तिण्णेव ॥१॥

असयत सम्यग्दृष्टि ;। इति * औपशमिक ;। वा * =अविरत सम्यग्दृष्टी यह औपशमिकभाव सहित है अर्थात् दर्शनमोहके उपशम होनेसे (=उदयनहोनेसे) आत्माके दर्शन गुणकी विशुद्धता है

क्षायिक ;। वा* =अथवा क्षायिक भाव सहित है क्योकि दर्शन मोहका सर्वथा नाश होने से आत्मा के दर्शनगुणकी अत्यन्त विशुद्धि होजाती है

क्षायोपशमिक ;। वा भाव ;। =वा क्षायोपशमिकभाव सहित है अर्थात् मिथ्यात्व सम्यक्त्वमिथ्यात्व और सर्वघाती प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षय (=उदयमें आकर-फलनदेकर-खिरजाना)ओर उपशम होने से तथा देशघाति सम्यक्त्व के उदय होने से दर्शन मोह का क्षायोपशम है

उक्तम् ;॥ च* =(जैसा कि निम्न लिखित गाथा में) कहा भी है

मिच्छे खलु (=मिच्छे;॥खलु*=मिथ्यात्वे;॥खलु*) =मिथ्यात्व (प्रथम गुणस्थान) में नियमसे (=खलु) वा " प्रकटपन " (=खलु)

ओदइओ (=ओदइओ ;। =औदायिक ;।) =औदयिक (=कर्मके उदयसे आत्माके जो परिणाम हों सो भाव) होता है

विदिए पुण (=विदिए;॥पुण*=द्वितीये;॥ पुन *) =और (=पुण) दूसरे (सासादन गुणस्थान) में

पारिणामिओ (=परिणामिओ;। =परिमाणिक ;।) =पारिणामिक (=जिसमें कर्म के उदय उपशमादिक की कुछ भी अपेक्षा न हो सो।

भावो ॥ मिस्से (=भावो;।मिस्से;॥=भाव ;।मिश्रे;॥=भाव वा परिणाम होता है ॥ मिश्र अथवा सम्यग्मिथ्यात्व (तीसरे गुणस्थान) में

खयोवसमिओ (=खओवसमिओ;। =क्षायोपशमिक ;)=क्षायोपशमिक (सर्वघाति स्पर्धकों के वर्तमान निषेकों के विना फल दियेही निर्जरा होनपर ओर उनही सर्वघाति स्पर्धकों के आगामि निषेकोंके सदवस्था रूप उपशम होनेपर ओर देश घाति स्पर्धकोंके उदय पर आत्मा का) भाव होता है ॥

अविरद— (=अविरद— =अविरत—) =अविरत अथवा असयत

सम्मम्मि (=सम्मम्मि;॥ =सम्यक्त्वे;॥) =सम्यग्दर्शन (चतुर्थ गुणस्थान) में

तिण्णेव (=तिण्ण+एव* =त्रय ;। एव*) =तीनों (औपशमिक भाव, क्षायिक भाव, क्षायोपशमिक भाव) ही होते हैं

(१) जैसे मलिन जल मे निर्मली वा फिटकड़ी डालने से कीचड़ नीचे बैठ जाती है ओर ऊपर से जल निर्मल हो जाता है उसही प्रकार कर्मोंके उपशम

तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसँयतासंयतान्तानां सामान्यवत् ॥ मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् ॥

तिर्यग्गतौ ७।१ तिरश्चाम् ६।३ मिथ्यादृष्टि-आदि-संयता-संयत-अन्तानाम् ६।३ सामान्यवत्*

=तिर्यचगतिमें तिर्यचों के मिथ्यादृष्टी से संयमा-
=संयमी तकनिकें (भाव) संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवाले तिर्यचों के औदायिक भाव है ॥ सासादन गुणस्थानवर्ती तिर्यचों के पारिणामिक भाव है। मिश्रगुणस्थानवर्ती तिर्यचोंकेक्षायोपशमिक भाव है। असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती तिर्यचो कें औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयमासयमी तिर्यचों के क्षायोपशमिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८ से २८०) तिर्यच गतिमें मिथ्यात्व सेसंयतासंयत तक पांच ही गुणस्थान होते हैं

मनुष्यगतौ ७।१ मनुष्याणाम् ६।३ मिथ्यादृष्टि-आदि-अयोगकेवलि-अन्तानाम् ६।३ सामान्यवत्*

=मनुष्यगति में मनुष्यों के (भाव) मिथ्यादृष्टीसे लेकर (=आदि)
=अयोगकेवलितकनिके संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टी मनुष्यों के औदयिक भाव है। सासादन सम्यग्दर्शनवाले मनुष्यों के पारिणामिक भाव है। मिश्र गुणस्थानवर्ती मनुष्यों के क्षायोपशमिक भाव है। असंयमी सम्यग्दृष्टी मनुष्योंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयमासंयमी से अप्रमत्त संयमी तक क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशम श्रेणी वालों के औपशामिक भाव है। चार क्षपक श्रेणियों के और सयोग और अयोगकेवलियों कें क्षायिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८, २७९, २८०) ॥
मनुष्यों के सर्व चौदह गुणस्थान होते हैं ॥

सामान्यवत् ॥ द्वितीयादिष्वा सप्तम्या मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टीना सामान्यवत् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको वा क्षायोपशमिको वा भाव । असयत: पुनरौदयिकेन भावेन ॥

सामान्यवत्* =सक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि नारकियोंके औदयिक भाव है । सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोके पारिणामिक भाव है । मिश्रगुणस्थानवर्ती नारकियोंके क्षायोपशमिक भाव है और असयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती नारकियोके ओपशमिक वा क्षायिक अथवा क्षायोपशमिक भाव ह

द्वितीय-आदिषु ॥ आ-सप्तम्याः ॥ मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनाम् ॥ =दूसरी (भूमि) आदिमे सातवीं (भूमि)तक (= आ) (छेनरकोंमें) मिथ्यादर्शनवाले =सासादनसम्यग्दर्शनवाले और मिश्रगुणस्थानवर्ती (नारकि) निके

सामान्यवत्* =सक्षेप (विषयमें पहिले कहहुये गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् दूसरे नरकसेलेकर सातवें नरक तकके मिथ्यादर्शनवाले नारकियोके औदयिक भाव है उक्त छहो नरकोंमें सासादनसम्यग्दर्शनवाले नारकियोके पारिणामिक भाव है और इनही छह नरकोके मिश्रतीसरे गुणस्थानवर्ती नारकियोके क्षायोपशमिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८)

असयतसम्यग्दृष्टे ॥ =(दूसरे नरकसे सातवा नरक तकके) असयमी सम्यग्दृष्टि (नारकी) के

औपशमिक ॥ वा॥ क्षायोपशमिक ॥ वा भाव ॥ =ओपशमिक वा क्षायोपशमिक भाव है। (नारकियोके प्रथमसे चौथतक गुणस्थान है)

पुन =और (इन दूसरे नरकसे सातवा नरक तकके असयमी सम्यग्दृष्टी चौथ गुणस्थानवर्तीनारकियोंके)

असयत ॥ औदयिकेन ॥ भावेन ॥ =असयतपना ओदयिक भावकरि है ॥

[३] कायानुवादेन—स्थावरकायिकानामौदयिको भावः। त्रसकायिकानां सामान्यमेव ॥ [४] योगानुवादेन—कायवाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्टयादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्यमेव ॥

[३[काय-अनुवादेन ।। स्थावर-कायिकानाम् ।। औदयिकः ।। भावः ।। त्रस—कायिकानाम् ।। सामान्यम् ।।। एव॥

=(३) कायके कथनानुसारकरि स्थावर (पृथिवी-अप्-तेजो-वायु-वनस्पति) =कायिकोंके औदयिक भाव है। त्रस (अर्थात् चलने फिरने वाले) =कायधारी (जीव) निके संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (=एव) है अर्थात् मिथ्यादृष्टी जीव स्थावर भी हैं और त्रस भी हैं उन दोनोंके औदयिक भाव है। दूसरे से चौदहवां गुणस्थान तक त्रस पञ्चेन्द्रिय जीव हैं ॥ उन में सासादन सम्यग्दृष्टीके-पारिणामिक भाव है। मिश्रगुणस्थानवर्तीके क्षायोपशमिक भाव है। असंयत सम्यग्दृष्टीके औपशमिक क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है ॥ संयतासंयत से अप्रमत्त संयत तक क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशमश्रेणी वालोंके औपशमिक भाव है। चार क्षपकश्रेणी वालों के, सयोगकेवलियोंके और अयोगकेवलियों के क्षायिक भाव है (देखा पृष्ठ २७८ से २८० तक)

[४] योग-अनुवादेन ।। काय-वाङ्-मानस-योगिनाम् ।। मिथ्यादृष्टि-आदि— सयोगकेवलि-अन्तानाम् ।। च अयोग-केवलिनाम् ।। सामान्यम् ।।। एव॥

=योग की अपेक्षा से काय-वचन-मनोयोगीनिकें =मिथ्यादर्शन वाले से सयोगकेवली पर्यंतों का और (=च) =अयोगकेवलियोंका संक्षेप (प्रकरण में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (एव) है अर्थात् मिथ्यात्वमें औदयिक भाव है। सासादनमें परिणामिक है। मिश्रमें क्षायोपशमिक है। असंयतमें औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है ॥ देशव्रतीसे अप्रमत्त-तक क्षायोपशमिक है। चार उपशमकके औपशमिक है। चार क्षपकोंके, सयोग-अयोग केवलियोंके क्षायिक भाव है (पृष्ठ २७८—२८० तक देखो)

देवगतौ देवाना मिथ्यादृष्ट्याद्यसयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां सामान्यवत् ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन-एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामौदयिको भाव । पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्ताना सामान्यवत् ॥

देवगतौ ९। देवानाम ६ मिथ्यादृष्टि-आदि— असयत-	=देवगतिमें देवोके मिथ्यादृष्टिसे असयमी
सम्यग्दृष्टि-अन्तानाम् ६। सामान्यवत॰	= सम्यग्दर्शनवालेतकनिके सक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम (भाव) हैं अर्थात मिथ्यादृष्टि देवोके औदयिक भाव है । सासादन दूसरे गुणस्थानवर्ती देवोके पारिणामिक भाव हे । मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोके क्षायोपशमिक भाव है । असयत सम्यग्दृष्टी देवोके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है ॥ देवो के प्रथम से चोथे तक चारही गुणस्थान हैं ॥
इन्द्रिय-अनुवादेन ३। एकेन्द्रिय-	=(२) इन्द्रियके कथनानुसारकरि एकेन्द्रियवालेजीव और
विकल-इन्द्रियाणाम्६। औदयिक भाव' १।	=विकल (दो-तीन-चार) इन्द्रियधारक जीवोके औदयिक भाव है
पञ्चेन्द्रियेषु ७। मिथ्यादृष्टि आदि— अयोगकेवलि-	=पाचइन्द्रियवाले जीवोमें मिथ्यादृष्टिसे अयोगकेवली
अन्तानाम् ६। सामान्य वत॰	=पर्यंतोंका सक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् *मिथ्यादृष्टि पचेंद्रिय जीवोके औदयिक भाव है ॥ (सासादनसे अयोगीतक* के पाचो इन्द्री होती हैं अत इन्द्रिय शब्द लिखनेकी आवश्यकता नहीं है) सासादन सम्यग्दृष्टिके पारिणामिक भाव होताहै । मिश्रगुणस्थानवर्तीके क्षायोपशमिक भावहै । असयत सम्यग्दृष्टीके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भावहै । देशसयतसे अप्रमत्तसंयततक क्षायोपशमिक भावहै । चार उपशमश्रेणीवालोके औपशमिक भावहै । चार क्षपकश्रेणीवालोंमें और सयोगकेवली- अयोगकेवलियोके क्षायिक भाव है । (देखो पृष्ठ २७८से२८० तक)

(८) सँयमानुवादेन--सर्वेषां सँयतानां सँयतासँयतानामसँयतानां च सामान्यवत (९) दर्शनानुवादेन--चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शनिनां सामान्यवत् ॥

[८] संयम-अनुवादेन ३। सर्वेषाम् ३। संयतानाम् ३। =(८) संयमके कथनानुसारकरि सब संयमी (प्रमत्तसे अयोग केवली) निका

संयतासंयतानाम् ३। च* असंयतानाम् ३। =देशसंयमियोंका और असंयमी (मिथ्यात्वसे अविरत गुणस्थान तक) निका

सामान्यवत* =(भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें औदयिकभाव है। सासादनमें पारिणामिक भाव है। मिश्रमें क्षायोपशमिक है। असंयतमें औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। संयतासंयतसे अप्रमत्ततक क्षायोपशमिक, चार उपशमकके औपशमिक, चार क्षपकके, सयोगकेवलि, अयोगकेवलियोंके क्षायिक भाव है॥

[९] दर्शन-अनुवादेन ३। चक्षुर्दर्शन-अचक्षुर्दर्शन- =(९) दर्शनकी अपेक्षासे चक्षुर्दर्शन और अचक्षुर्दर्शन वालोंके (ये दोनों मिथ्यात्व-प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकषाय गुणस्थान तक १२ मेंहोते हैं)

अवधिदर्शन- =अवधिदर्शन (असंयतसे क्षीणकषाय गुणस्थान तक) निके (भाव)

केवलदर्शनिनाम् ३। =केवलदर्शनवाले (सयोगकेवली और अयोगकेवली) निके (भाव)

सामान्य-वत्* =संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदृश हैं अर्थात् शब्दशः वही भाव प्रत्येक गुणस्थानमें पढ़लो जो इस पृष्ठकी पंक्ति सातसे दशतक दिया है।

(१) सामायिक-छेदोपस्थापना दो संयम प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण गुणस्थानोंमें होते हैं। परिहार विशुद्धि संयम प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानोंमें होता है। सूक्ष्मसाम्पराय संयम सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें होता है। यथाख्यात संयम उपशांतकषाय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली, अयोगकेवली गुणस्थानोंमें होता है। संयमासंयम देशविरत गुणस्थानमें होता है और असंयम मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और असंयत गुणस्थानोंमें होता है॥

(५) वेदानुवादेन- स्त्रीपुन्नपुंसकवेदानामवेदानां च सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन -क्रोधमानमाया लोभकषायाणामकषायाणां च सामान्यवत् (७) ज्ञानानुवादेन- मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिविभङ्गज्ञानिनां मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्यवत् ॥

---

(५) वेद-अनुवादेन ।। स्त्री-पुम् नपुंसक-वेदानाम् ।।	=(५) वेदके कथनानुसारसे स्त्री पुरुष नपुसक वेद वाले (जीव) निके
च॥अवेदानाम् ।।	=और वेदरहित जीव (सूक्ष्मसापरायसे अयोगकेवली गुणस्थान वर्ती) निके
सामान्यवत्॥	=संक्षेप (प्रकरणमें कहाहुआ गुणस्थान) सदृश (भाव) है अर्थात् मिथ्यात्वमें औदयिक भावहै। सासादनमें पारिणामिक। मिश्रमें क्षायोपशमिक। असंयतमें औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है । संयतासंयतसे अप्रमत्ततक क्षायोपशमिक भाव है । चार उपशमक के औपशमिक भाव और चार क्षपकके, सयोगकेवलि-अयोगकेवलियोंके क्षायिक भाव है। (२७८से२८०)
(६) कषाय अनुवादेन ।। क्रोध मान माया-लोभ-कषायाणाम् ।।	=(६) कषायकी विवक्षा से क्रोध-मान-कपट (=माया) लोभ कषाय
च॥अकषायणाम् ।।	=वालोंके और (=च) कषायवर्जित (उपशांतकशायसे अयोगकेवली तक) निका
सामान्यवत्॥	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृशहै (पृष्ठ २७८ से २८०)
[७] ज्ञान अनुवादेन ।। मतिअज्ञानि श्रुतअज्ञानि	=ज्ञानके कथनानुसारकरि कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान
विभङ्गज्ञानिनां ।।	=कुअवधिज्ञान [ये तीन कुज्ञान मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान वाले और तीन कुज्ञान तीन मति श्रुत-अवधिज्ञान मिश्रतसम्यग्मिथ्यात्व वाले] निके
च॥मति श्रुत-अवधि-	=और [=च] मति श्रुत-अवधि [असंयतसे क्षीण कषाय वर्ती]
मन पर्यय केवलज्ञानिनाम् ।।	=मनः पर्यय [प्रमत्त संयमीसे क्षीणकषाय वाले] और केवल ज्ञानि निकें
सामान्य-वत्॥	= संक्षेप [प्रकरणमें पहिले कहाहुआ] सदृश भाव हैं [देखो २८५ पंक्ति ७से१३]

(१२) सम्यक्त्वानुवादेन–क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असँयतसम्यग्दृष्टेः क्षायिको भावः। क्षायिकं सम्यक्त्वम्। असंयतत्वमौदयिकेन भावेन ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः। क्षायिकं सम्यक्त्वं च ॥ चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः। क्षायिकं सम्यक्त्वम् ॥ शेषाणां सामान्यवत् ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः

[१२] सम्यक्त्व-अनुवादेन ;। क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु ;। =(१२) सम्यग्दर्शन के अनुवादकरि क्षायिक सम्यग्दर्शनवालों में
असंयतसम्यग्दृष्टेः ;। क्षायिकः ;। भावः ;। =" असंयत सम्यग्दृष्टी के क्षायिक भाव तो
क्षायिकम् ;॥ सम्यक्त्वम् ;॥ असंयतत्वम् ;॥ =क्षायिक सम्यक्त्व है अर असंयतपणा है सो
औदयिकेन ;। भावेन ;। =औदयिक भाव करि है " जयचंदजीकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ११४।
संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त- =(क्षायिक सम्यग्दर्शन वालों में) देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्त-
संयतानाम् ;। क्षायोपशमिकः ;। भावः ;। च ;(१) =संयमियोंकें क्षायोपशमिक भाव है और (=च)
क्षायिकम् ;॥ सम्यक्त्वम् ;॥ ="सम्यक्त्व क्षायिक है (सो क्षायिक भावकरि है" जयचंदजी व वचनिका ११४
चतुर्णाम् ;। उपशमकानाम् ;। =(क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें) च्यार उपशम श्रेणी
(अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय) वालोंकें
औपशमिकः ;। भावः ;। क्षायिकम् ;॥ सम्यक्त्वम् ;॥=औपशमिकभाव है। क्षायिक सम्यक्त्व (यहां) है (सो क्षायिक भाव करि है)।
शेषाणाम् ;। =(क्षायिक सम्यग्दृष्टीयोंमें) अवशेष (च्यार क्षपक श्रेणीवाले-सयोगी-अयोगी) निका
सामान्य-वत् ;(२) =संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान समान भाव) हैं, इन सबकें क्षायिक भावहै)
क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ;। असंयतसम्यग्दृष्टेः ;। =वेदकसम्यग्दर्शनवालोंमें असंयमी सम्यग्दर्शवाले (चौथे गुणस्थानवर्ती) के

(१) क्षायिक सम्यक्त्व असंयत चौथे गुणस्थानसे अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थान तक है। क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व असंयत चौथे गुणस्थान से अप्रमत्त संयत सातवें तक है। उपशमसम्यक्त्व असंयत चौथे गुणस्थान से उपशांतकषाय ग्यारहवां तक है ॥
(२) क्षायिक सम्यग्दृष्टी जीव भी उपशम श्रेणी माड सकता है

(१०) लेश्यानुवादेन–षड्लेश्यानामलेश्याना च–सामान्यवत् ॥ (११) भव्यानुवादेन भव्याना मिथ्यादृष्ट्या-द्ययोगकेवल्यन्ताना सामान्यवत् । अभव्याना पारिणामिको भाव ॥

(१०) लेश्या अनुवादेन ;, षड्-लेश्यानाम् ;। च* अलेश्यानाम्।। सामान्य-वत्* =(१०) लेश्याके कथनानुसारकरि छै (कृष्ण-नील-कपोत पीत-पद्म-शुक्र) =लेश्यावालोके और लेश्यारहित (अयोगकेवलि)निके (भाव) =सक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) समान हैं अर्थात् छहोलेश्या मिथ्यात्व सासादन-मिश्र-असयत गुणस्थानोंमें हैं वहा क्रमसे औदयिक-पारिणामिक क्षायोपशमिक और औपशमिक-क्षायिक क्षायोपशमिक भाव हैं। पीत पद्म शुक्र लेश्यायें देशविरतसे अप्रमत्त तक हैं वह क्षायोपशमिक भाव है। शुक्ललेश्या चार उपशमक में हैं वहा औपशमिक भावहै। शुक्ललेश्या चार क्षपक के और सयोगकेवली-अयोगकेवलीके हैं वहा क्षायिक भाव है ॥

(११)भव्य-अनुवादेन ;, भव्यानाम् ;, मिथ्यादृष्टि आदि– अयोगकेवलि अन्तानाम् ;। सामान्यवत्* =(११)भव्य जीवोकी अपेक्षासे भव्योके मिथ्यादृष्टिसे =अयोगकेवलीतकनिका सक्षेप (प्रसगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम भावहै अर्थात मिथ्यात्व गुणस्थानमें औदयिक भाव है। सासादनमें पारिणामिक है। मिश्र में क्षायोपशमिक है असयतमें औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है सयतासयतसे अप्रमत्ततक क्षायोपशमिक है चार उपशमकके औपशमिक है। चार क्षपक के और सयोगकेवली–अयोगकेवलियों के क्षायिक भाव है।

अभव्यानाम् ;। पारिणामिकः ;। भावः ;। =अभव्योके पारिणामिक भाव है (वो भाव जिसमें कर्मकी कुछभी अपेक्षा नहीं है) भावार्थ अभव्यत्व धर्मकी मुख्यतासे पारिणामिक है पर मिथ्यात्वकी मुख्यतासे औदयिकही है ॥

चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः औपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः पारिणामिको भावः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः क्षायोपशमिको भावः ॥ मिथ्यादृष्टेरौदयिको भावः । (१३) संज्ञानुवादेनसंज्ञिनां सामान्यवत् । असंज्ञिनामौदयिको भावः ॥ तदुभयव्यपदेशरहितानां

चतुर्णाम् ।। उपशमकानाम् ।।	=(उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) चार उपशमश्रेणीवाले (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय) निकें
औपशमिकः ।। भावः ।। औपशमिकम् ।।। सम्यक्त्वम् ।।।	=औपशमिक भाव है। (सो) उपशम सम्यग्दर्शन है॥
सासादन-सम्यग्दृष्टेः ।। पारिणामिकः ।। भावः ।।	=सासादन सम्यग्दर्शनवालेके पारिणामिक भाव है।
सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ।। क्षायोपशमिकः ।। भावः ।।	=मिश्र (तीसरे गुणस्थान) वर्तीके क्षायोपशमिक भाव है।
मिथ्यादृष्टेः।। औदयिकः।। भावः।। [१३] संज्ञा-अनुवादेन	=मिथ्यादृष्टि (प्रथम) गुणस्थानवर्तीके औदयिक भाव है (१३) सैनीकी अपेक्षासे
संज्ञिनाम् ।। सामान्य-वत्।※	=सैनी (=मनसहितजीव) निकें संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् मिथ्यादृष्टी संज्ञियोंकें औदयिक भाव है। सासादनसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके पारिणामिक भाव है। मिश्र गुणस्थनवर्तीसंज्ञियोंकें क्षायोपशमिक भाव है। असंयतसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयतासंयतसे अप्रमत्तवर्ती संज्ञियोंकें क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशमक संज्ञीयोंकें औपशमिक भाव है। चार क्षपक श्रेणीवाले संज्ञियोंके क्षायिक भाव है।
असंज्ञिनाम् ।। औदयिकः ।। भावः ।।	=असंज्ञियोंके (जो मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमें ही हैं) औदयिक भाव है।
तद्-उभय-व्यपदेशरहितानाम् ।।	=उन (सैनी-असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित (सयोगकेवली-अयोगकेवली) निका

(१) संज्ञीजीव मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकषाय बारहवें तक हैं। असंज्ञी मिथ्यात्वमें हैं। संज्ञी असंज्ञीसे रहित सयोग अयोग केवली हैं॥

क्षायोपशमिको भाव। क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम्। असंयत पुनरौदयिकेन भावेन॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः। क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम्॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको भाव औपशमिकं सम्यक्त्वम्। असंयत पुनरौदयिकेन भावेन॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भाव। औपशमिकं सम्यक्त्वम्॥

क्षायोपशमिक ।। भाव ।। क्षायोपशमिकम् ।।।।	=क्षायोपशमिक भाव है (सो तो) क्षायोपशमिक
सम्यक्त्वम् ।।।। असंयत ।। पुन *	=सम्यग्दर्शन है। और (=पुन) असंयतपना (=असंयत =असंयतत्वम्) है
औदयिकेन ।। भावेन ।। संयत-असंयत-	=(सो) औदयिक भावकरि है। (वेदक सम्यग्दर्शनवालो में) देशसंयमी,
प्रमत्त अप्रमत्त संयतानाम् ।। क्षायोपशमिक ।।	=प्रमत्त और अप्रमत्त विरतियोंके क्षायोपशमिक
भाव ।। क्षायोपशमिकम् ।।।। सम्यक्त्वम् ।।।।	=भाव है सो वेदक सम्यग्दर्शन है॥
औपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ।।	=उपशमसम्यग्दर्शनवालो में
असंयत-सम्यग्दृष्टे ।। औपशमिकभाव ।।	=असंयमी सम्यग्दर्शनवाले के औपशमिक भाव है
औपशमिकम् ।।।। सम्यक्त्वम् ।।।। पुन * असंयत ।।	=(सो) उपशम सम्यक्त्व है और असंयमपना है
औदयिकेन ।। भावेन ।।	=(सो) औदयिक भावकरि है॥ (असंयत =असंयमपना)
संयत-असंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-संयतानाम् ।।	=(उपशमसम्यग्दर्शनवालो में) देशसंयमी, प्रमत्त-अप्रमत्त संयमियों के
क्षायोपशमिक ।। भाव ।। सम्यक्त्वम् ।।।। औपशमिकम् ।।।।	=क्षायोपशमिक भाव है। सम्यक्त्व औपशमिक है॥

(१) अत्र औदयिको भाव इत्येक पाठ। औपशमिको भाव इत्येक पाठ॥

अत्र औदयिक ।। भाव ।। इति एक ।। पाठ ।। =यहां औदयिक भाव है ऐसा एक पाठ है अर्थात् किसी किसी पुस्तक के पाठानुसार देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी, और अप्रमत्तसंयमीनिकें औदयिक भाव है।

औपशमिक ।। भाव ।। इति एक ।। पाठ ।। =औपशमिक भाव है ऐसा और (=एक-पन्नालाल काश पृष्ठ ८४) पाठ है अर्थात् इस पाठानुकूल औपशमिक भाव है भावार्थ ऐसा है कि भिन्न भिन्न पाठानुकूल संयमासंयमियों के, प्रमत्तसंयमियों के, अप्रमत्तसंयमियों के औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक तीनों ही भाव संभव हैं॥

तत् द्विविधं सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्-त्रय उपशमकाः सर्वतः स्तोकाः स्वगुणस्थान-कालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्याः ॥ उपशान्तकषायास्तावन्त एव ॥

तत् १।॥ द्वि-विधम् १।॥ सामान्येन ३।॥ विशेषेण ३। च	=वह (अल्प-बहुत्व प्ररूपणा) दो प्रकार संक्षेपकरि और विस्तारकरि है ।
सामान्येन ३।॥ तावत्* त्रयः १।	=प्रथम (=तावत) संक्षेपकरि तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ)
उपशमकाः १। सर्वतः* स्तोकाः १। स्व-	=उपशमश्रेणीवाले सबसे थोड़े हैं । (वे तीन उपशम श्रेणी वाले) अपने २
गुणस्थान-कालेषु ७। प्रवेशेन ३। तुल्यसंख्याः १।	=गुणस्थान कालों में प्रवेशकरि समान वा बराबर संख्यावाले होते हैं अर्थात् प्रत्येक उक्त तीन गुणस्थान में कोई आचार्य तीनसौ (३००) कहते हैं । कोई तीन सौ चार (३०४) कहते हैं । कोई दो सौ निन्यानवे (२९९) कहते हैं ॥ (देखो गोम्मटसारगाथा ६२६ तिसयं भणंतिकेई इत्यादि)
उपशान्तकषायाः १। तावन्तः १। एव*	=उपशान्तकषाय ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणीवाले उतने ही हैं अर्थात् उक्त गाथा के अनुकूल २९९, वा ३०० अथवा ३०४ उत्कृष्ट हैं

(१) अष्टसु समयेषु प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा इत्यादि जघन्याः ॥ उत्कृष्टास्तु १६ । २४ । ३० । ३६ । ४२ । ४८ । ५४ । ५४ । स्वगुणस्थान कालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्याः ॥ संख्याकथनावसरे प्रोक्ताः 'तत्र द्रष्टव्यम् ॥ पृष्ठानि ९३, ९४, ९५, अस्यमनुवादस्य ॥

अष्टसु ७। समयेषु ७। प्रवेशेन ३। एकः १। वा* द्वौ १।	=आठ समय में प्रवेश होकर एक अथवा दो
वा त्रयः १। वा इत्यादि* जघन्याः १॥ उत्कृष्टाः १॥ तु	=अथवा तीन इत्यादि जघन्य (=न्यून से न्यून) संख्या है । और (=तु) उत्कृष्ट (संख्या)
१६ । २४ । ३० । ३६ ।	=(प्रथम समय से आठ समय तक यथा संख्य) सोलह-चौबीस-तीस-छत्तीस-
४२ । ४८ । ५४ । ५४ । स्व-गुणस्थान-	=बयालीस-अड़तालीस-चौवन-चौवन अपने अपने गुणस्थान
कालेषु ७। प्रवेशेन ३।	=समयों में प्रवेश होकरि (आठ से ग्यारह गुणस्थान उपशमश्रेणी) के
तुल्यसंख्याः १।	=समान संख्यावाले (प्रत्येक गुणस्थान में) हैं अर्थात् ३०४ मुनि प्रत्येक प्रत्येक उपशम श्रेणी वाले गुणस्थान में उत्कृष्टकरि हैं । (देखो पृष्ठ ९३, ९४)
संख्या-कथन-अवसरे ७। प्रोक्ताः १।	=संख्या (प्ररूपणा) का कथन (जो पहले कर चुके हैं उस के) प्रसंग में कह चुके हैं
तत्र* पृष्ठानि १।॥ ९३, ९४, ९५ द्रष्टव्यम् १।॥	=तहाँ पृष्ठ ९३, ९४, ९५ (इस अनुवादके देखना चाहिये)

सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन–आहारकाणामनाहारकाणा च सामान्यवत् ॥ भाव परिसमासः ॥ अल्पबहुत्वमुपवर्ण्यते ॥

सामान्य-वत्* =सक्षेप (प्रसगमें पूर्वोक्तगुणस्थान) सम है अर्थात् क्षायिक भाव केवलियोंके हैं

(१४) आहार–अनुवादेन ।। आहारकाणाम् ।। =(१४) आहारकोकी विवक्षासे आहारक (जीव) निके(जो मिथ्यात्वसे सयोगी तकहैं)

च*अन्-आहारकाणाम् ।। सामान्य-वत्* =और अनाहारकोके (भाव) सक्षेप (प्रसगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) समहै अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोके औदयिक भाव है सासादनसम्यग्दर्शन-वाले आहारक जीवोके पारिणामिक भाव है । मिश्र गुणस्थान— वाले आहारक जीवोंके क्षायोपशमिक भाव है। असयत सम्यग्दृष्टि आहारकोंके औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भावहै। सयतासयतसे अप्रमत्त-गुणस्थानवर्ती आहारको के क्षायोपशमिक भाव है ॥

चार उपशमश्रेणी वाले आहारकोंके औपशमिक भाव है। चार क्षपक श्रेणी-वाले आहारकोंके क्षायिक भाव है ॥ अनाहारक जीवोंमें जो पहिले दूसरे, चौथे, चौदवें गुणस्थानमें और सयोगकेवलीजो प्रतर समुद्घात और, लोक पूर्णसमुद्घातमें अनाहारक, होते हैं, मिथ्यात्व में औदयिक भाव, सासादन में पारिणामिक, असयतमें औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिकभाव और सयोगी अयोगी के क्षायिक भाव होते हैं ॥

भाव. ।। परि-समाप्त' ।। =भाव (प्ररूपणा) परिपूर्ण कीगई अर्थात् भावका निरूपण मोह कर्मकी अपेक्षा से उदाहरणरूप समाप्त कियागया

अल्प-बहुत्वम् ।।।। उपवर्ण्यते T =एक वस्तुको अन्य की अपेक्षासे थोड़े-बहुतके कथनका वर्णन किया जाताहै।

सयोगकेवलिनः स्वकालेन समुदिताः संख्येयगुणाः । ८९८५०२ ॥ अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । २९६९९१०३ । प्रमत्तसँयताः संख्येयगुणाः । ५९३९८२०६ ॥ सँयतासंयता असंख्येयगुणाः ॥

तेरहवें गुणस्थानमें ८९८५०२ जीव उत्कृष्टकरि होसकते हैं और चौदहवें गुणस्थानमें उत्कृष्टकरि ५९८ अथवा ६०० वा ६०८ जीव हो सकते हैं ॥ देखो अवश्य इस अनुवादके पृष्ठ ३०८ की टिप्पणी संख्या (२)

सयोगकेवलिनः १।। स्वकालेन ३।। समुदिताः १।। =सयोगकेवली अपनेकालकरि समुचय अथवा इकठे हों

संख्येयगुणाः १।। ८९८५०२ =(तब अयोगकेवलियोंसे) संख्यातेगुणे हैं । (सयोगकेवली) ८९८५०२ हैं अयोगकेवली ५९८ अथवा ६०० वा ६०८ तक भिन्न २ आचार्योंके मतानुसार उत्कृष्टकरि होसकते हैं (इसके पृष्ठ ३०८ की टिप्पणी (२) देखो)

अप्रमत्तसंयताः १।। =अप्रमत्तसंयमी (सातवें गुणस्थानवर्ती-इन सयोगकेवलियोंसे)

संख्येयगुणाः १।। २९६९९१०३ =संख्यातगुणे हैं । दो करोड़ छियानवैलाख निन्यानवै सहस्र एकसौ तीन हैं

प्रमत्त संयताः १।। =प्रमत्त संयमी (छठवांगुणस्थानवर्ती-इन अप्रमत्त संयमियोंसे)

संख्येयगुणाः १।। ५९३९८२०६ =संख्यातगुणे हैं । "पांच करोड़ तिरानवै लाख हज़ार अठानवै दोसौ छ जानो"

संयतासंयताः असंख्येयगुणाः १।। =संयमासंयमी (प्रमत्तसंयमियोंसे) असंख्यातगुणे हैं " तेरह करोड़ मनुष्य हैं ॥ और पल्यके असंख्यातवें भाग तिर्यंच हैं ।

(१) संयतासंयताः संख्येयगुणाः । संयतासंयतानां नास्त्यल्पबहुत्वम् । एक गुणस्थानवर्तित्वात् । संयतासंयतानामिवगुणस्थानभेदात् १३०००००० ॥

संयतासंयताः १।। संख्येयगुणाः १।। एकगुणस्थान-वर्तित्वात् ५।।। =देशसंयमी वा संयमासंयमी संख्यात गुणे हैं । एक गुणस्थानवर्ती होने (के हेतु) से

संयतासंयतानाम् ६।। अल्प-बहुत्वम् १।।। =संयमासंयमियो के अल्प बहुत्व (का मिलान वा उपमा)

न * अस्ति T =नहीं (हो सक्ती) है क्योंकि जब एक प्रकार की वस्तुये दो स्थानों में विद्यमान हैं

त्रय क्षपकाः सख्येयगुणाः ॥ क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थास्तावन्त एव ॥ सयोगकेवलिनोऽयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन तुल्यसख्या ॥

त्रयः ;। =तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय-)

क्षपका ;। सख्येयगुणा' ;। =क्षपकश्रेणीवाले (उक्त तीन उपशमश्रेणीवालोंसे) सख्याते गुणेहैं अर्थात् प्रत्येक गुणस्थानवर्ती क्षपकश्रेणी प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणीवालोंसे दूने हैं (गोम्मटसार जीव काड गाथा ६२६) ॥ प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानमें कई आचार्योंके मतानुसार २९९ हे केईके ३०० हैं केईके ३०४ हैं अत' प्रत्येक क्षपकश्रेणी गुणस्थानम केई आचार्योंके मतानुसार ५९८ हुये, केईके ६०० हुये केईके ६०८ मुनिहुये ॥

क्षीणकषाय-वीतरागच्छद्मस्था' ;। तावन्त ;। =क्षीणकषाय वीतरागच्छद्मस्थ बारहवागुणस्थानवर्ती उतने

एव* =ही (=एव) हैं अर्थात् ५९८ हैं अथवा ६०० अथवा ६०८ मुनिहैं

सयोगकेवलिन ;। च अयोग-केवलिन ;। =सयोगकेवली और (=च) अयोगकेवली (=चौदहवें गुणस्थानवर्ती)

प्रवेशेन ;। तुल्यसख्या ;। =प्रवेशहो (नेकी अपेक्षा) करि समानगणनावाले हैं अर्थात् सयोगकेवली, अयोग-केवली गुणस्थानोंमें जघन्यपनासे जीव प्रवेश करे तो एक समयमें एक वा दो वा तीन इत्यादि जीव (पृथक् पृथक् गुणस्थान) में प्रवेश करें और उत्कर्षकरि एकसौ आठ जीव तक एक समयमें प्रवेश होसक्ते हैं(देखो इसके पृष्ठ९४, ९५) । स्मरण रहे कि यह तुल्य सख्या केवल तेरहवें गुणस्थानमें प्रवेश होनेवाले जीवों की, चौदहवें गुणस्थान में प्रवेश होनेवाले जीवोंके तुल्य प्रवेश होनेकी अपेक्षासे ही तुल्य है । तेरहवें गुणस्थानमें रहने वाले जीवोंकी सख्या चौदहवें गुणस्थान में रहने वाले जीवोंकी सख्याके कदापि तुल्य नही है क्योंकि

मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः॥ विशेषेण (१) गत्यनुवादेन—नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चां सर्वतः स्तोकाः संयतासंयताः । इतरेषां सामान्यवत् ॥

मिथ्यादृष्टयः ;। अनन्तगुणाः ;। विशेषेण ;। गति—	=मिथ्यादृष्टी (असंयत सम्यग्दृष्टियोंसे) अनन्तगुणे हैं ॥ विशेषकरि गतिके
अनुवादेन ;। नरकगतौ ;।। सर्वासु ;।। पृथ्वीषु ;।।	=कथनानुसारकरि नरकगतिमें सब भूमियों (नरकों) में
सर्वतः * स्तोकाः ;। सासादन—सम्यग्दृष्टयः ;।	=सबसे थोड़े सासादनसम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती) हैं
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ;।	=(उन सासादनसम्यग्दृष्टी नारकियों से) मिश्रगुणस्थानवर्ती (नारकी)
संख्येयगुणाः ;। असंयतसम्यग्दृष्टयः;।	=संख्यातगुणा है। (मिश्रगुणस्थानवर्ती नारकियोंसे) असंयतसम्यग्दृष्टि(नारकी)
असंख्येयगुणाः ;। मिथ्यादृष्टयः ;।	=असंख्यातगुणे हैं। (असंयमी सम्यग्दृष्टीनारकियोंसे) मिथ्यादृष्टी (नारकी)
असंख्येयगुणाः ;। तिर्यग्गतौ ;।। तिरश्चाम् ;। सर्वतः	=असंख्यातगुणे हैं ॥ तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें सबसे
स्तोकाः ;। संयतासंयताः ;।	=अल्प संयमासंयमी(तिर्यंच) हैं अर्थात पल्यके असंख्यातवां भागहैं(देखो टिप्पणी)
इतरेषाम् ;।	=अन्य (असंयतसे मिथ्यादृष्टी तक तिर्यंचों) का
सामान्यवत् *	=संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (अल्पबहुत्व) है नीचेकी टिप्पणी देखो

अर्थः—मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं। श्रावक पल्यके असंख्यातवें भाग हैं सासादन गुणस्थानवर्ती श्रावकोंसे असंख्यात गुणे हैं। मिश्रसासादनवालोंसे संख्यातगुणे हैं असंयतसम्यग्दृष्टि मिश्रजीवोंसे असंख्यातगुणे हैं। इनमें संयमासंयमीमें, सासादनगुणस्थानमें, मिश्रमें असंयतगुणस्थानमें कुछ २ अधिक जानलो अर्थात् संयतासंयतगुणस्थान के धारक मनुष्य और तिर्यंच ही गति के जीव होते हैं सो इनमें तेरह करोड़ मनुष्य हैं पल्य के असंख्यातवां भाग तिर्यंच हैं। सासादनगुणस्थानमें चारों गति के जीव होते हैं। इनमें बावन करोड़ मनुष्य हैं और नारकी तिर्यंच और देव संयतासंयतसे असंख्यातगुणे हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव भी चारों गति में होते हैं सो एकसौचार करोड़ मनुष्य हैं और सासादनवालोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन नरक, तिर्यंच, देवगति के जीव हैं। असंयतगुणस्थानमें भी चारोंगति के जीव हैं इनमें सातसौकरोड़ मनुष्य हैं मिश्रवालोंमे संख्यातगुणे अवशेष तीनगतिके जीव हैं॥

सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टय संख्येयगुणा । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥

सासादनसम्यग्दृष्टय ॥ असंख्येयगुणा ॥	=सासादनसम्यग्दृष्टि (देशसंयमियोंसे) असंख्यात गुणेहै ।
सम्यग्मिथ्यादृष्टय ॥ संख्येयगुणाः ॥	=मिश्रगुणस्थानवर्ती (सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे) संख्यात गुणेहैं ।
असंयत - सम्यग्दृष्टय ॥ असंख्येयगुणा ॥	=अविरतसम्यग्दृष्टी (सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे) असंख्यात गुणे हैं ।

तब कहते हैं कि अमुक प्रकारकी वस्तुए अमुक जात की वस्तुओंसे थोड़ी वा घनी हैं। संयमासंयमी एक ही गुणस्थानमे होते हैं। इसमे अल्प बहुत्व नहीं है ॥ असंयमियोंमें अल्प बहुत्व है क्योंकि वे मिथ्यात्व सासादन मिश्र और असंयत गुणस्थानोंमें हैं ऐसेही संयमियोंमे अल्प बहुत्व है क्योंकि वे छठेसे १४ गुणस्थान तक है

संयतासंयतानाम् ॥ गुणस्थान भेदात् ॥ इव॰	=संयमासंयमीकी (गणना) गुणस्थानभेदसे बराबर (=इव)
१३०००००००। इति श्रुतसागर ॥	=तेरह करोड़के है। ऐसे (श्री) श्रुतसागरसूरि (श्रुतसागरीटीकामे) कहते हैं
(१) सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=सासादनसम्यग्दर्शनवाले (देशसंयमियोंसे) संख्यातगुणे हैं (अर्थात्)
५२०००००००॥ (२) सम्यग्मिथ्यादृष्टय ॥	=बावनकरोड़ है ॥ मिश्रतीसरेगुणस्थानवर्ती (सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे)
संख्येयगुणा ॥ १०४०००००००	=संख्यातगुणे हैं (अर्थात्) एकसौचारकरोड़ है ॥ चार
(३) असंयतसम्यग्दृष्टय ॥ संख्येयगुणा ॥	=अविरतसम्यग्दृष्टि (सम्यग्मिथ्यादृष्टि तीसरे गुणस्थानवालों से) संख्यातगुणे है
७०००००००००। इति श्रुतसागर ॥	=सातअरब हैं ॥ ऐसे श्रुतसागरसूरि (का वचन श्रुतसागरीटीकाम है)

टिप्पणी १ पृष्ठ २९४ और टिप्पणी१,२ पृष्ठ २९५म श्रुतसागर सूरिने चार गुणस्थानोम जो गणना लिखी है वह केवल मनुष्योंकी समझना क्योंकि गोम्मटसार जीवकांड गाथा ६२३ (टोडरमल ६२४) में मिथ्यात्व गुणस्थानसे संयतासंयतकी सर्व संख्या ऐसे लिखी है कि

मिच्छा सावयसासणमिस्साविरदा दुवारणंता य। पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखसंखगुणं ॥६२४॥ मिथ्या श्रावकसासनमिश्राविरता द्विवारानंता च। पल्यासंख्येयमसंख्येयगुणं संख्यासंख्यगुणम् ॥छाया॥

इंद्रियं प्रत्युच्यते।
(२) इन्द्रियानुवादेन--एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु गुणस्थानभेदो नास्तीत्यल्पबहुत्वाभावः ॥ इंद्रियं प्रत्युच्यते।
पंचेद्रियाद्येकेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तरं बहवः ॥पंचेन्द्रियाणां सामान्यवत्।

(असंयत सम्यग्दृष्टीदेवोंसे) मिथ्यादृष्टी (देव) असंख्यातगुणे हैं।

(२) इन्द्रिय-अनुवादेन॥ एकेन्द्रिय-विकल-इन्द्रियेषु ॥ गुणस्थान-भेदः ॥ न॰अस्ति T इति॰अल्प-बहुत्व-अभावः ॥ इन्द्रियम्॥॥ प्रति॰ उच्यते T पंचेन्द्रिय-आदि-एकेन्द्रिय-अन्ताः ॥ उत्तरोत्तरम् ॥॥ बहवः ॥

=(२) इंद्रियकी अपेक्षासे एकइन्द्रिय (जीव) और विकल (दो-तीन-चार)
=इन्द्रियवाले (जीवों) में गुणस्थान विशेष नहीं है
=(इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है) ऐसे (गुणस्थान प्रति) अल्प बहुत्व नहींहै
=इन्द्रियोंकी अपेक्षासे (=प्रति) (अल्प बहुत्व) कहा जाता है
=पांच इन्द्रियवाले जीवोंसे (=आदि) एक इन्द्रियवाले जीवों तक आगे आगे
=अधिक हैं अर्थात् पांच इन्द्रियवालेजीवोंसे चार इन्द्रियवाले जीव अधिक हैं। चार इन्द्रियवालोंसे तीन इन्द्रियवाले बहुत हैं॥ तीन इन्द्रियवालोंसे दो इन्द्रियवाले अधिक हैं दो इंद्रियवालोंसे एक इंद्रियवाले जीव अधिक हैं एसे आगे आगे बहुलता है॥

पंचेन्द्रियाणाम् ॥ सामान्य-वत्॰

=पांच इंद्रियवालोंका (परस्पर अल्प बहुत्व) संक्षेपमें (कथित गुणस्थान)
=सदृश है। अर्थात् चार अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशान्त-कषाय उपशमश्रेणीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें २९९ वा (केईक आचार्योंके मतमें) ३०० अथवा (अन्य आचार्योंके मतमें)३०४ मुनि हैं और इन प्रत्येक प्रत्येक गुणस्थानकी संख्या शेष प्रत्येक गुणस्थानोंके जीवोंकीअपेक्षा सबसे अल्प वा थोड़ीहै। और चार अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-क्षीणकषायक्षपकश्रेणीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ वा (केईकके मतमें)

मनुष्यगतौ मनुष्याणामुपशमकादिप्रमत्तसंयतान्तानां सामान्यवत् ॥ ततः संख्येयगुणाः संयतासंयताः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः ॥ असंयतसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः ॥ मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ देवगतौ देवानां नारकवत् ॥

मनुष्यगतौ ॥ मनुष्याणाम् ॥ उपशमक-आदि-प्रमत्तसंयत अन्तानाम् ॥ सामान्यवत्* मनुष्यगतिमें मनुष्योंका (अल्प-बहुत्व) उपशम श्रेणीवालोंसे =प्रमत्तसंयमीतकनिका संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय उपशांतकषाय इन उपशमश्रेणीवाले गुणस्थानोंमें प्रत्येकमें २९९, केई आचार्योंके मतमें ३०० अथवा केईकके मतमें ३०४ जीव हैं और अप्रमत्त गुणस्थानमें २९६९९१०३ जीव हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवालेसे अप्रमत्तमें संख्यातगुणा जीवहुये और प्रमत्तगुणस्थानवर्ती ५९३९८२०६ जीव हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवालेसे, और अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीसे भी प्रमत्तगुणस्थानमें संख्यातगुणे जीव हैं॥

ततः* संख्येयगुणाः ॥ संयतासंयताः ॥ =तिन (प्रमत्त संयमीयों) से संख्यातगुणे संयमासंयमी (मनुष्य तेरह कोटि) हैं

सासादन सम्यग्दृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥ =(उन देशव्रतियोंसे) सासादन सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) संख्यातगुणे (बावन) करोड हैं

सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥ =(सासादनवालोंसे) मिश्रगुणस्थानवर्ती (नर) संख्यातगुणे (एकसौचार कोटि) हैं

असंयत-सम्यग्दृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥ =(मिश्रवालोंसे) असंयमी सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) संख्यातगुणे (सातसौकरोड) हैं।

मिथ्यादृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥ =(असंयमी सम्यग्दृष्टीयोंसे) मिथ्यादृष्टी (मनुष्य नकि सर्वजीव) असंख्यातगुणे हैं

देवगतौ ॥ देवानाम् ॥ नारकवत्* =देवगतिमें देवोंका (परस्पर अल्प बहुत्व) नारकियोंके तुल्य है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि देव सबसे थोडे हैं। उनसे संख्यातगुणे मिश्रगुणस्थानवर्ती देव हैं। इन (मिश्रवालोंसे) असंयमी सम्यग्दृष्टी देव असंख्यातगुणे हैं।

कायानुवादेन--- स्थावरकायेषु गुणस्थानभेदाभावादल्पबहुत्वाभावः ॥ कायं प्रत्युच्यते। सर्वतस्तेजःकायिका अल्पाः। ततो बहवः पृथिवीकायिकाः। ततोऽप्कायिकाः ततो वातकायिकाः। सर्वतोऽनन्तगुणा वनस्पतयः ॥ त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत ॥ [४] योगानुवादेन--- वाङ्मानसयोगिनां पञ्चेन्द्रियवत्।

---

[३] काय-अनुवादेन ;। स्थावर-कायेषु ;। = (३) कायके कथनसे स्थावर (पृथिवी अप्-तेजो-वायु-वनस्पति) कायोंमें

गुणस्थानभेद-अभावात ; अल्प-बहुत्व-अभावः ;। = गुण स्थानमें भेद न होने (के हेतु) से थोड़े बहुतपनेका अभाव है (क्योंकि समस्त स्थावर कायोंके एक मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान ही होता है) (अतः गुणस्थानकी अपेक्षासे कुछभी अल्प बहुत्व नहीं हो सक्ता है)

कायम् ;। प्रति* उच्यते। सर्वतः* अल्पाः ;। = कायकी अपेक्षासे (अल्प बहुत्व) कहाजाता है। सबसे थोड़े

तेजःकायिकाः ;। ततः* बहवः ; पृथिवी कायिकाः ;। = अनल कायिक हैं। तिन (अनल कायिक)से भूमिकायिक बहुत हैं।

ततः* अप्कायिकाः ;। ततः वातकायिकाः ;। = उन (भूमिकायिकोंसे) जल कायिक (बहुत) हैं। तिन (जलकायिकसे) पवन कायिक (बहुत) हैं

सर्वतः* अनन्त-गुणाः ;। वनस्पतयः ;। = सबसे अनन्तगुणे वनस्पति (कायिक) हैं

त्रसकायिकानाम् ;। पञ्चेन्द्रियवत्* = त्रसकायिकोंका (अल्प-बहुत्व) पञ्चेन्द्रिय समान है अर्थात् ५. इन्द्रियवाले जीवोंसे चार इन्द्रियवाले जीव अधिक हैं। चारइन्द्रियवालेजीवोंसे तीन इन्द्रिय वाले जीव घने हैं। तीन इन्द्रियवाले जीवोंसे दो इन्द्रियवाले बहुत हैं ॥ पांच इन्द्रियवालोंका परस्पर अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है ॥ (देखो-चारअपूर्वकरण इत्यादि लेखसे ''पृष्ठ २९८में और २९९ के अन्ततक)

[४] योग अनुवादेन ;। वाङ्मानस-योगिनाम् ;। = [४] योगके कथनानुसारसे वचन मन योगियोंका [अल्प-बहुत्व]

पंचेन्द्रियवत् * = पांच इन्द्रियवाले जीवोंके अल्प-बहुत्वके सदृश है ॥ अर्थात् पांच इन्द्रियवालोंका अल्प-बहुत्व गुणस्थानवत् [पृष्ठ २९८से२९९ के अन्त तक] है

---

(१) वाङ्=वाक् (चोः कु ८-२-३० से)=वाङ् (८-४-४५ से) ॥ देखो पृष्ठ १४ टिप्पणी ४ और पृष्ठ ३६ टिप्पणी ४ वास्ते व्युत्पत्ति के ॥

अय तु विशेष –मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ (३)

छसौ अथवा (केइक आचार्योके मतानुसार) ६०८ मुनि हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले गुणस्थान से प्रत्येक क्षपकश्रेणीवाले गुणस्थानके मुनियोकी सख्या सख्यातगुणी हैं। अयोगकेवलीकी संख्या५९८ वा ६०० वा ६०८ है (जी.का. गाथा.६२६और इस अनुवादके पृष्ठ २०८की टिप्पणी सख्या २ देखो) सो भी प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानवालोसे एक प्रकारसे सख्यातगुणी हैं और प्रत्येक क्षपकश्रेणीवाले गुणस्थान वर्तियों के बराबर है॥ सयोगकेवलियोकी सख्या आठ लाख अठानवै सहस्र पाचसौ दो (८९८५०२) है सो प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानवालोसे सख्यातगुणी है और प्रत्येक क्षपकश्रेणी गुणस्थानवालोसे भी सख्यातगुणी है। इन सयोगकेवलियोसे अप्रमत्त सयमी सातवा गु॰ नवर्ती सख्येयगुणे हैं क्योकि इनकी सख्या २९६९९१०३ है। और इन अप्रमत्तसयमियो ·

सख्यात गुणे हैं क्योंकि ये ५९३९८२०६ हैं॥ उक्त प्रमत्तसयमियोसे सयमासयमी असख्या॰ हैं क्योकि मनुष्य और तिर्यंच गतियो में ही यह देशसयम गुणस्थान होता है इनमें तेरह करोड मनुष्य हैं और तिर्यंच पल्यके असख्यातवें भाग हैं। इन सयमासयमियोसे सासादन सम्यग्दृष्टी असख्यात गुणे हैं क्योंकि यह गुणस्थान चारो गतियो में होता है इन में बावन करोड मनुष्य हैं और श्रावको से असख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं। इन सासादन वालोसे सख्यात गुणे मिश्रगुणस्थानवर्ती हैं क्योकि इनमें एकसौ चारकरोड मनुष्य हैं और सख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं। और असयत गुणस्थान भी चारो गतिमें होता है इनमें सातसौ करोड मनुष्य हैं और मिश्रवालोसे असख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोम्मटसार गाथा ६२४, ६२५, ६२६ और पृष्ठ २९२ से २९५ तक देखो) स्मरण रहे कि पंचेन्द्रिय जीव सञ्जीकेही क्रमसे बारह गुणस्थान हो सक्ते हैं। असञ्जी जीवके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है॥

अयम् ॥ तु॥ विशेष ॥ मिथ्या- =परन्तु (=तु) यह विशेष है कि पचेन्द्रिय मिथ्या
दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥ =दृष्टी जीव (अन्य किसी गुणस्थान के पचेन्द्रिय जीवो से) असख्यात गुणे हैं॥

और अनिवृत्ति करण उपशमश्रेणीवाले जीव भाव पुरुषवेदी और भाव स्त्रीवेदी सबसे थोड़े हैं २९९ वा ३०० वा ३०४ प्रत्येकगुणस्थानके मेंसे भाव नपुंसकवेदी घटादिये जावैं तो भाव पुरुषवेदी और भाव स्त्रीवेदी शेष रह जावैंगे । इनसे संख्यातगुणे प्रत्येक अपूर्वकरण क्षपकश्रेणी और अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणी होंगे क्योंकि इन प्रत्येक दोनों गुणस्थानोंमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ जीव उत्कृष्टकरि तीनों वेदवाले हो सक्ते हैं । अप्रमत्त संयमी इनसे संख्यातगुणे हैं क्योंकि इनकी संख्या तीनों वेदवालोंकी २९६९९१०३ हो सक्ती है । इनसे अधिक प्रमत्तसंयमी हैं क्योंकि तीनों वेदवालोंकी संख्या ५९३९८२०६ जीव हैं ॥ शेषके लिये देखो उक्त प्रमत्तसे···अन्त तक पृष्ठ २९९

बहुरि निर्माण नामका उदय संयुक्त स्त्रीवेदरूप आकारका विशेष लीए अंगोपांगनामा नामकर्मके उदयतै रोमरहित मुख स्तन योनि इत्यादि चिह्नसंयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतै लगाइ अंतसमयपर्यंत द्रव्य स्त्री होइ है बहुरि निर्माण नामका उदयतै संयुक्तनपुंसकवेदरूप आकारका विशेष लिए अंगोपांगनामा नामप्रकृतिके उदयतै मूछ डाढ़ी इत्यादि वा स्तन योनि इत्यादिक दोऊ चिन्ह रहित शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतै लगायू अंतसमयपर्यंत द्रव्य नपुंसक हो है । सो प्रायेण कहिए बहुलताकरि तौ समान वेद होहै जैसा द्रव्यवेद होइ तैसाही भाववेद होइ बहुरि कहीं समान वेद न हो है द्रव्यवेद अन्य होइ भाव वेद अन्य होइ । तहां देव अर नारकी अर भोगभूमियां तिर्यंच मनुष्य इनिकै तौ जैसा द्रव्यवेद है तैसा ही भाववेद है बहुरिकर्म भूमियां तिर्यंच अर मनुष्यविषै कोई जीवनिकै तौ जैसा द्रव्यवेद हो है तैसाही भाव वेद हैं बहुरि केई जीवनिकैं द्रव्यवेद अन्य हो है अर भाववेद अन्य हो है द्रव्यतै पुरुष है अर भावतै पुरुषका अभिलाषरूप स्त्रीवेदी है वा स्त्री अर पुरुष दोऊनिका अभिलाषरूप नपुंसकवेदी है । ऐसे ही द्रव्यतै स्त्री वेदो है भावतै स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुषवेदी है वा दोऊनिका अभिलाषरूप नपुंसक वेदी है । बहुरि द्रव्यतै नपुंसक वेदी है भावतै स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुषवेदी है वा पुरुषका अभिलाषरूप स्त्रीवेदी है । ऐसा विशेष जानना, जातै आगमविषै नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावतै तीन वेद हैं अर द्रव्यतै एक पुरुषवेद ही है ऐसा कथन करया है गोम्मट० जीव० मुद्रित पृष्ठ ५९२, ५९३ ॥

पुरुषवेदीका परिणाम तृणकी अग्नि समान है । स्त्री वेदीका परिणाम कारीषकी अग्नि समान है नपुंसक वेदीका परिणाम पजावाकी अग्नि समान है ऐसे तीनोंही जातिके परिणामनिकी जो पीड़ा तोहिंकरि जे रहित भए है ऐसे भाववेद अपेक्षा अनिवृत्तिकरणका अपगत वेद भागतै लगाय अयोगी पर्यंत अर द्रव्य भाववेद अपेक्षा गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान जानने ॥ गो०जीव० मुद्रित पृष्ठ ५९८

काययोगिना सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन-- स्त्रीपुवेदाना पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय योगिनाम् ॥ सामान्यवत् * =काययोगियोका (अल्प बहुत्व) सक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) वत् है अर्थात् अयोगकेवलियोंको छोडकर पृष्ठ २९८, २९९ में चार अपूर्व पचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टीजीव असख्यात गुणे हैं (२९९के अन्त तक पढलो)

[५] वेद-अनुवादेन ॥ स्त्री-पुम् वेदानाम् ॥ =[५] वेद(स्त्री पुरुष-नपुसक) की अपेक्षासे स्त्री–पुवेद वालोका

पचेन्द्रियवत * = (अल्प-बहुत्व) पाचइन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् पृष्ठ २९८ में पचेन्द्रियो का अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है और "आगमविषें नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावतें तीन वेद हैं और द्रव्यतें एक पुरुष वेदही है" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ गाथा २७१ ॥ नवमा गुणस्थानके प्रथम तीनभाग भाववेदसहित है। अन्तके तीनभाग (जिनको अपगतभाववेद कहते हैं) भाववेद रहित हैं। इसलिये नवमा गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री पुरुष वेदीयोंका अल्पबहुत्व होगा ॥ वह ऐसै है कि अपूर्वकरण

(१) "चारित्र मोहनीयका भेद नोकषाय तीहरूप पुरुषवेद स्त्रीवेद नपु सकवेद नामा प्रकृति तिनके उदयतें भाव जो चैत य उपयोग तींहि विषै पुरुष स्त्री नपु सकरूप जीव हो हैं। बहुरि निर्माण नामा नाम कर्म के उदयकरि सयुक्त अगोपागका विशेषरूप नाम कर्मकी प्रकृतिके उदयतें द्रव्य जो पुद्गलीक पर्यायतीहि विर्षे पुरुष स्त्री नपुसक हो है। सो ही कहिए है पुरुष वेदके उदयतें स्त्रीका अभिलाषरूप मैथुन सज्ञाका धारी जीव सो भाव पुरुष हो है। बहुरि स्त्रीवेद के उदयतें पुरुष का अभिलाषरूप मैथुन सज्ञाका धारक जीव भाव स्त्री हो है बहुरि नपुसकवेद के उदयतें पुरुष अरु स्त्री दोउनका युगपत् अभिलाषरूप मैथुन सज्ञाका धारक जीव सो भाव नपुसक हो हैं बहुरि निर्माण नाम कर्मका उदय सयुक्त पुरुष वदरूप आकारका विशेष लिग अगोपाग नामे नाम कर्मका उदयतैं——— मूछ डाढी लिंगादिक चिह्न सयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतें लगाय अन्त समय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है ॥

संख्येयगुणाः । सूक्ष्मसाम्पराय शुध्द्युपशमकसंयता विशेषाधिकाः । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः । शेषाणां सामान्यवत् ॥

संख्येय-गुणाः ॥	=(अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमां गुणस्थानवाले) संख्यातगुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें२९९ मुनि हैं वा कईक आचार्यों के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षपक श्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षपक में संख्यात गुणे हुए
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-उपशमक-संयताः ॥	=सूक्ष्मसांपराय शुद्धसंयत उपशमश्रेणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती
विशेष-अधिकाः ॥	=विशेषकरि अधिक हैं
सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपकाः ॥	=(उन सूक्ष्मसांपराय उपशमकसे) सूक्ष्मसांपराय क्षपकश्रणीवाले
संख्येय-गुणाः ॥	संख्यातगुणे हैं क्योंकि उपशमक सूक्ष्मसांपराय २९९ वा ३०० वा ३०४ हैं और सूक्ष्मसांपराय क्षपक ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
शेषाणाम् ॥	=बचे हुये (उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती) निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)
सामान्यवत्॥	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात उपशांतकषाय गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं । क्षीण-कषाय में इन से दूने हैं अतः उपशांतकषाय से क्षीणकषायमें संख्यात गुणे हैं ॥ सयोगकेवली ८९८५०२

नपुसकवेदानामवेदाना च सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन-क्रोधमानमायाकषायाणा पुंवेदवत। अय तु विशेष. मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः ॥ लोभकषायाणा द्वयोरुपशमकयोस्तुल्या सख्या। क्षपका

नपुसकवेदानाम् ६। अवेदानाम् ६। च	=नपुसक वेद वालोका तथा (=च) वेद (भाववेद) वर्जित (सूक्ष्मसाम्परायसे अयोगकेवली गुणस्थानवर्ति) निका (अल्पबहुत्व)
सामान्यवत्*	=सक्षेप (प्रसगमें पहिले कथित गुणस्थान) समान है अर्थात् नपुसक भाववेदी मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे अनिवृत्तिकरण नवमें गुणस्थान तक है। और भाववेद रहित दशवा गुणस्थानसे चौदहवा तक ह ॥ देखो पृष्ठ २९८ चार अपूर्वकरण मिश्रवालोसे असख्यात गुणे शेष तीन गतिके जीव ह। मिथ्यादृष्टीजीव नपुसकलिंगी अनतगुणे हैं क्योकि स्त्रीलिंग पुल्लिंगजीव पचेन्द्रिय होते हैं। और सैनी (मनसहित) होते हैं (देखो चौबीसस्थाना ग्रथ) परन्तु नपुसक लिंगी जीव एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय सैनी असैनी दोनो होते हैं (देखो चौबीसस्थानाग्रन्थ)
कषाय अनुवादेन-क्रोध मान माया-कषायाणाम् ६।	=(६) कषायके कथनानुसारसे क्रोध मान-कपट कषायवालोका (अल्प बहुत्व)
पुंवेदवत्*	=पुरुष वेद समान है (और पुरुषवेदका अल्प बहुत्व पचेन्द्रिय वत् है अत: क्रोध मान-माया कषाय वालोका अल्पबहुत्व पचेन्द्रियवत् है) पचेन्द्रिय जीवोंके अल्प बहुत्व के लिये "चार अपूर्व २९८ से २९९ पृष्ट के अन्त)
अयम् १। तु* विशेष १। मिथ्यादृष्टय: १। अनन्तगुणा	=परन्तु भेद यह है कि मिथ्यादृष्टि (प्रत्येक गुणस्थानवालोंसे) अनन्त गुणे ह
लोभकषायाणाम्॥ द्वयो ६। उपशमकयो: ६।	=लोभकषायवाले दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) उपशमश्रेणीवालोंकी
तुल्या १। सख्या १। क्षपका १।	=समान गणना है। (उन दो उपशमश्रेणीवालो से) क्षपकश्रेणी

मतिश्रुतावधिज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाश्चत्वारः क्षपकाः संख्येयगुणाः । अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । प्रमत्तसंयता संख्येयगुणाः ।

मति-श्रुत-अवधिज्ञानिषु ७। सर्वतःस्तोकाः १। चत्वारः १।	=मति-श्रुत-अवधिज्ञानियोंमें सबसे अल्प चार (आठसे ग्यारह गुणस्थानतक)
उपशमकाः १। चत्वारः १।	=उपशमश्रेणीवाले हैं। (उन चार उपशमश्रेणीवालोंसे) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-क्षीणकषाय)
क्षपकाः १। संख्येयगुणाः १।	=क्षपक श्रेणीवाले संख्यातगुणे हैं अर्थात् भिन्न भिन्न मतानुसार चार उपशम श्रेणीवाले ११९६ वा १२०० वा १२१६ हैं और चार क्षपकश्रेणीवाले इस प्रकार २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं अतः संख्यातगुणे हैं
अप्रमत्तसंयताः १।	=(मति-श्रुत-और अवधिज्ञानियोंमें क्षपक श्रेणीवालोंसे) अप्रमत्त संयमी
संख्येयगुणाः १।	=संख्याते गुणे हैं अर्थात् क्षपक श्रेणीवाले २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं परन्तु अप्रमत्त सातवां गुणस्थानवर्ती २९६९९१०३
प्रमत्तसंयताः १।	=(उन मति-श्रुत-अवधिज्ञानि अप्रमत्तसंयमियोंसे) प्रमत्त संयमी
संख्येयगुणाः १।	=संख्यातगुणे हैं अर्थात् अप्रमत्त संयमी २९६९९१०३ हैं और प्रमत्त

होते हैं ॥ (देखो चौवीस स्थान चरचा ग्रंथ) मिथ्यात्व गुणस्थान के जीवो की संख्या इसी ८ वें सूत्र की संख्या प्ररूपणामें अनंतानंत कही है (देखो पृष्ठ ९३) और गोम्मटसार जीवकांडकी गाथा ६२४ "मिथ्या...दुवारणंताय" में मिथ्यादृष्टि अनंतानंत है । और "इसी गाथामें सासादन गुणस्थान में बावन करोड़ मनुष्य और श्रावकों से असंख्यातगुणे इतर तीन गतिके जीव है ऐसी गणना लिखी है ॥ इससे स्पष्ट है कि कुमति कुश्रुत ज्ञानियों सासादन गुणस्थानवर्तियों से मिथ्यादृष्टि कुमति कुश्रुतज्ञानी अनंत गुणे ही हैं नकि असंख्यात गुणे ॥ (३) तीसरा हेतु यह भी है कि कुवधि ज्ञानी भी मिथ्यात्व और सासादन दो गुणस्थानोंमें होते हैं (देखो चौवीस स्थान चरचा) और यदि हम संस्कृत सर्वार्थसिद्धि का पाठ शुद्धमान लें तो मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानवर्तियों का प्रकरण कुवधिज्ञानियोंकी अपेक्षासे सर्वथा छूटजाता है ॥ अतः हमने जो उपर्युक्त पाठ लिखा है वह शुद्ध है ॥ मिथ्यादृष्टयः अनन्तगुणाः अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि अनन्त गुण है ॥ (पृष्ठ ३११) भी उपर्युक्त टिप्पणीका समर्थन करता है ॥

[७] ज्ञानानुवादेन-मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । विभङ्गज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥

	से उपशान्तकषायसे और क्षीणकषायसे संख्यात गुणे हैं अयोगकेवली भिन्न भिन्न मतानुसार ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
	(देखो अवश्य इस अनुवादके पृष्ठ३०८की टिप्पणी संख्या (२)
	ये उपशातकषायवालोंसे तो संख्यात गुणे हैं ॥ क्षीणकषायवालोंके उपर्युक्त अयोगकेवली समान हैं । इनसे सयोगकेवली संख्यात गुणे हैं
ज्ञानानुवादेन ॥ मति अज्ञानि श्रुतअज्ञानिषु ॥	=(७) ज्ञानके कथनसे कुमति और कुश्रुत ज्ञानियों में
सर्वतः स्तोकाः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥	=सबसे थोडे (=स्तोक) सासादनसम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती) हैं
	(उन कुमति-कुश्रुत ज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे)
मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्तगुणाः ॥	=मिथ्यादृष्टी अनन्त गुणे हैं वा "तिनतें अनतगुणा मिथ्यादृष्टि हैं" जय० वच० ११७
विभङ्गज्ञानिषु॥सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्-	=कुअवधिज्ञानियोंमें सबसे थोडे सासादन सम्यग्-
दृष्टयः ॥	=दर्शनवाले हैं (तिन कुअवधिज्ञानी सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे)
मिथ्यादृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=(कु अवधिज्ञानी) मिथ्यादृष्टी असंख्यात गुणे हैं

"सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः विभङ्गज्ञानिषु सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः" इस वाक्यके स्थान में संस्कृत सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियोंकी प्रतियोंमें सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयो ऽसंख्येयगुणाः ॥ भूलसे छपगया है अर्थात् "मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः विभङ्ग ज्ञानिषु सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥ वाक्य छूट गया है क्योंकि १)जयचन्दजी की वचनिका हस्त लिखित और मुद्रित (पृष्ठ११७ में "सर्वतें स्तोक सासादनसम्यग्दृष्टि हैं । तीनितें अनत गुणां मिथ्यादृष्टि है । विभंग ज्ञानीनि विषै सर्वतें थोरा सासादन सम्यग्दृष्टि है । तिनितें असंख्यातगुणां मिथ्यादृष्टि है" ऐसी भाषा वचनिका है यह शब्दशः उपर्युक्त संस्कृतके प्रथम वाक्य का अनुवाद है ॥ (२) दूसरा हेतु यह है कि संसार में मिथ्यात्व गुणस्थानमें जितने भी जीव हैं सब इन्द्रियवालोंके, सर्वगतियों, सर्व कायवालोंमें कुमति ज्ञान और कुश्रुत ज्ञान होते हैं और मिथ्यात्व सासादन ये दो ही गुणस्थान इन कुमति कुश्रुत ज्ञानियोंके

संख्येयगुणाः । प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः ॥ केवलज्ञानिषु अयोगकेवलिभ्यः सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः ॥

संख्येय-गुणाः ;।	=संख्यात गुणे हैं । (अप्रमत्तसंयमी मनः पर्ययज्ञानियोंसे)
प्रमत्तसंयताः ;। संख्येयगुणाः ;।	=प्रमत्तसंयमी (मनः पर्ययज्ञानी) संख्यात गुणे हैं । मनः पर्यय ६ से १२ तक है
केवल-ज्ञानिषु ;। अयोगकेवलिभ्यः ;। सयोगं-	=केवल ज्ञानियोंमें अयोगकेवलियोंसे सयोग
केवलिनः ;। संख्येयगुणाः ;।	=केवली संख्यात गुणे हैं अर्थात् अयोगकेवली भिन्न भिन्न मतमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं और सयोगकेवली ८९८५०२ तक हो सक्ते हैं

(१) अयोगकेवलिनः एको वाद्वौ वा त्रयौ वा उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः स्वकालेन समुदितास्तेभ्यः संख्येयाः सयोगकेवलिनः ॥ ८९८५०२ । अयोग-

केवलिन ;। एकः ;। वा*द्वौ ;। वा* त्रयः ;।	= अयोगकेवली (जघन्यकरि) एक अथवा दो अथवा तीन (प्रवेशहोकरि)
वा* उत्कर्षेण ;। अष्टोत्तरशतसंख्याः ;। स्वकालेन ;।	= वा उत्कृष्टकरि एकसौआठकी संख्यामें (प्रवेशहोकरि) अपने अपने कालसे
समुदिताः ;। तेभ्यः ;। संख्येयाः ;। सयोगकेवलिनः ;।	= समुच्चयहोकर उन (अयोगकेवलीनि) से संख्याते (गुणे) सयोगकेवली हैं
८९८५०२	= (अर्थात् तेरहमें) आठ लाख हजार अठानवै पांचसौ दोय (बखाने)

(२) उपर्युक्त टिप्पणं से यह बात झलकती है कि चौदह गुणस्थानमें उत्कृष्ट संख्या ६० ८तकअयोगकेवलीकी हो सक्ती है । क्योंकि इस अनुवादके पृष्ठ ९४और९५के वाक्य कि "चत्वारः क्षपका अयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा । उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसख्या । स्वकालेन समुदिताः संख्येयाः ॥ से प्रगट हैंकि क्षपकश्रेणी वालोंके प्रवेश होनेके तुल्य अयोगकेवलियों का भी प्रवेश होना है और क्षपकश्रेणीवाले जीव (गोम्मटसार जीवकांड-गाथा ६२८ बत्तीसं अडदालं इत्यादि के अनुसार) अन्तराय रहित आठ समय पर्यतोमे से प्रथम समयमें ३२, दूसरे समयमें ४८ तीसरे समयमें ६०, चतुर्थ समयमें ७२, पांचमे समयमे ८४, छठे समयमें ९६, सातमे समयमें, १०८ आठमे समयमें १०८ होते है ॥ सर्वयोग ६०८ हुये ॥ किसी किसी आचार्यका मत है कि क्षपक श्रेणीवाले ५९८ प्रत्येक २ गुणस्थानमें उत्कृष्ट समुच्चय हो सक्ते है केईकके मतमें ६०० केईकके मतमें ६०८ होते है गोम्मसार०जीव० गाथा ६३१ अन्तादी अद्धंता इत्यादिमें जो क्षप कश्रेणी प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ माने है वे उन आचार्योके मतानुसार है जो हैं कहते कि प्रत्येक उपशामक २९९ और-प्रत्येक क्षपक ५९८ हो सक्ते है इस गाथामें तीन घाटि नो करोड़ मुनिकी संख्या का वर्णन है ॥

(क) अयोगकेवलिनः तावन्त एव पृष्ठ ३१०

संयतासंयताः असंख्येयगुणा । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ मन पर्ययज्ञानिषु सर्वत स्तोका श्चत्वार उपशमका । चत्वार' क्षपका संख्येयगुणाः । अप्रमत्तसंयता

संयमी ५९३९८२०६ है । अतः प्रमत्तसंयमी सख्यात गुणे हैं ॥

संयता संयता ;। =(उन मति श्रुत अवधिज्ञानवाले प्रमत्त संयमियों से) संयमा संयमी

असंख्येयगुणा. ;। =असंख्यातगुण ह अर्थात् 'मनुष्य और तियंच इन दो गतियो में ही देश संयम गुणस्थान होता है । इन में तरह करोड मनुष्य और पल्य के असख्यातम भाग तिर्यंच ह ॥ गोम्मट० जीव० गाथा० ६२४ ॥' मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान चोथसे बारह गुणस्थान तक ९ स्थानो में है ॥ इन में मति-श्रुत ज्ञान चार से बारह गुणस्थान तक सब जीवो के होता है ॥ अवधिज्ञान यह आवश्यकता नहीं कि सबके हो किसीके होता है किसीके नहीं ।

-असंयत सम्यग्दृष्टय. ;। असंख्येयगुणाः ;। =(देशसंयमियोसे) असंयत सम्यग्दृष्टि असख्यात गुणे ह अर्थात् इन में सात सौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालोसे असख्यात गुणे शेष तीन गति के जीव हैं

मन पर्यय ज्ञानिषु ;। सर्वतः* स्तोकाः ;। चत्वार' ;। =मन पर्यय ज्ञानियोंमें सबसे अल्प अथवा सबसे थोडे चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय उपशांतकषाय)

उपशमका ;। चत्वार ;। =उपशम श्रेणीवाले होत ह (मन पर्यय ज्ञानिया में) चार (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय क्षीणकपाय)

क्षपका ;। संख्येयगुणा ;। =क्षपक श्रेणी वाले (उक्त चार उपशम श्रेणीवालोंसे) सख्यात गुणे हैं ॥

अप्रमत्त संयताः ;। =(उक्त चार क्षपक श्रेणीवालो से) अप्रमत्त संयमी (मन. पर्यय ज्ञानी)

सर्वार्थ- क्षपकाः संख्येयगुणाः ॥ यथाख्यातविहारशुद्धिसँयतेषु उपशांतकषायेभ्यः क्षीणकषायाः संख्येयगुणाः ॥ अयोगकेवलिनस्तावन्त एव । सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः ॥ सँयतासँयतानां नास्त्यल्पबहुत्वम् । असँयतेषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । सम्यङ्मिथ्यादृष्टय संख्येयगुणाः । सिद्धि

३१० क्षपकाः ;। संख्येयगुणाः ;। =क्षपक श्रेणीवाले (सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसंयमी) संख्यातगुणे हैं

यथाख्यात-विहार शुद्धि-संयतेषु ;। उपशांत-कषायेभ्यः ;। क्षीणकषायाः ;। =यथाख्यात विहार शुद्धिसंयमियोंमें उपशांत कषाय ग्यारहवां गुणस्थानवालोंसे क्षीणकषाय (यथाख्यात संयमी)

संख्येय-गुणाः ;। =संख्यातगुणे हैं अर्थात् ग्यारहवेंमें २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं और क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थानमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

अयोगकेवलिनः ;। तावन्तः ;। एव* =अयोगकेवली (जितने क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती हैं) उतने ही हैं अर्थात् ५९८ वा ६०० अथवा ६०८ हैं

सयोगकेवलिनः ;। संख्येय-गुणाः ;। =सयोगकेवली (अयोगकेवलियोंसे) संख्यातगुणे हैं (८९८५०२ सयोगी हैं)

संयतासंयतानाम् ;। न अस्ति अल्प-बहुत्वम् ;॥ =संयमासंयमी वा देशसंयमियोंका अल्पबहुत्व नहीं है क्योंकि गुणस्थान तीन भागोंमें विभक्त हैं असंयत (प्रथमसे चार गुणस्थान तक), संयत छठेसे चौदह गुणस्थानतक और संयतासंयत एक ही है इससे अल्पबहुत्व नहीं है (देखो टिप्पणी (?) पृष्ठ २९४-२९५)

असंयतेषु ;। =असंयमियोंमें अर्थात् प्रथमगुणस्थान वालोंसे चौथा गुणस्थानवालोंमें

सर्वतः* स्तोकाः ;। सासादन-सम्यग्दृष्टयः ;। =सबसे थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी हैं । अर्थात् सासादनगुणस्थान चारों गतियोंमें होता है । इनमें बावन करोड़ मनुष्य और श्वानकोंसे असंख्यातगुणे उत्तरतीनिगति के जीव हैं ॥ गोमट्ट०जीव०गाथा ६२४

सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः ;। संख्येय-गुणाः ;। =(उन सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे) मिश्रगुणस्थानवर्ती संख्यातगुणे हैं ३१०

(८) संयमानुवादेन–सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतेषु द्वयोरुपशमकयोस्तुल्यसंख्या। ततः संख्येयगुणौ क्षपकौ। अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः। प्रमत्ताः संख्येयगुणाः॥ परिहारविशुद्धिसंयतेषु अप्रमत्तेभ्यः प्रमत्ताः संख्येयगुणाः। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु उपशमकेभ्यः

[८] संयम-अनुवादेन ॥ सामायिक च्छेदोपस्थापन-शुद्धिसंयतेषु ॥ द्वयोः ॥	=(८) संयमके कथनानुसारकरि सामायिक च्छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयमियों में दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण)
उपशमकयोः ॥ तुल्य संख्या ॥ ततः ॥	=उपशमश्रेणीवालोंकी समान गणना है। उन (दो उपशमश्रेणीवालों) से
संख्येय गुणौ ॥ क्षपकौ ॥	=संख्यात गुणे दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) क्षपक श्रेणीवाले (सामायिक-च्छेदोपस्थापना शुद्धि संयमी) है अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणी वालो की संख्या २९९ वा ३०० वा ३०४ है और प्रत्येक क्षपकश्रेणीवालोकी संख्या ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
अप्रमत्ताः ॥	=अप्रमत्त संयमी (सामायिक और च्छेदोपस्थापन शुद्धि संयमी)
संख्येय गुणाः ॥	=(उक्त दो क्षपक सामायिक और च्छेदोपस्थापन शुद्धि संयमियोंसे) संख्यातगुणे हैं अर्थात क्षपक श्रेणी प्रत्येक गुणस्थानवर्ती ५९८ वा ६०० वा ६०८ है और अप्रमत्तसंयमी गणना में २९६९९१०३ है
प्रमत्ताः ॥	=प्रमत्तसंयमी (सामायिक और च्छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमी) (उन अप्रमत्तसंयमी सामायिक-च्छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमियो से)
संख्येय गुणाः ॥ परिहारविशुद्धि-संयतेषु ॥	=संख्यात गुणे हैं ॥ परिहार विशुद्धिसंयमियों में
अप्रमत्तेभ्यः ॥ प्रमत्ताः ॥ संख्येय-गुणाः ॥	=अप्रमत्तसंयमियोंसे प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे हैं
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु ॥ उपशमकेभ्यः ॥	=सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसंयमियो में उपशमश्रेणी वालोंसे

अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत् ॥ केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत् ॥ (१०) लेश्यानुवादेन- कृष्णनील-कापोतलेश्यानां असंयतवत् ॥

क्योंकि चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यात्वसे क्षीणकषाय तक होते हैं ॥

अवधिदर्शनिनाम् ६। अवधिज्ञानिवत्* =अवधि दर्शनवालों का (अल्प-बहुत्व) अवधि ज्ञानियों के सदृश है अर्थात पृष्ठ ३०६ अवधि ज्ञानियोंमें······ ······असयत सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं । पृष्ठ ३०७ में देखो ॥ अवधिज्ञान चौथेसे बारहवें गुणस्थानतक है ॥

केवल दर्शनिनाम ६। केवल ज्ञानिवत्* · केवल दर्शन (तेरहवें चौदहवें गुणस्थान) वालों का केवल ज्ञानियोंवत् है । अर्थात् केवल ज्ञानियोंमें सयोग केवली अयोग केवलियों से संख्यात गुणे हैं अयोग केवली ५९८ केइक के मत में ६०० अथवा केइक के मतानुसार ६०८ हैं और सयोग केवली ८९८५०२ हो सक्ते हैं ॥

(१०) लेश्या-अनुवादेन-कृष्ण-नील-कापोतलेश्यानाम् ६। असंयतवत्* =लेश्या के कथनानुसार से कृष्ण-नील-कापोत लेश्यावालों का (अल्प-बहुत्व) =असंयमी (मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-अविरत गुणस्थानवर्ती) नि सम है ॥ अर्थात् ये तीन अशुभ लेश्यायें उक्त चार गुणस्थान तक ही हैं। भावार्थ सासादन गुणस्थान चारों गतियों में होता है । इनमें बावन करोड़ मनुष्य और श्रावकोंसे असंख्यात गुणे इतर तीन गतिके जीव हैं । ये इन चारों गुणस्थानोंमें सबसे थोड़े हैं । मिश्रगुणस्थानमें १०४ करोड़ मनुष्य हैं। और सासादनवालोंसे संख्यातगुणे शेष तीन गतियोंके जीव हैं। अविरत गुणस्थान भी चारों गतियोंमें होता है इनमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं । और मिश्रवालोंसे असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं ॥ मिथ्यादृष्टि इन असंयत सम्यग्दृष्टियोंसे अनंतगुणे हैं (पृष्ठ ३११) वैसे अनंतानंत है ॥ (गाथा ६२४)

असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः ॥ (९) दर्शनानुवादेन-चक्षुर्दर्शनिना मनोयोगिवत् ॥ अचक्षुर्दर्शनिनां काययोगिवत् ॥

अर्थात् मिश्रगुणस्थान भी चारो गतियोंमें होता है इसमें एकसौ चार करोड मनुष्य ओर सासादनवालोसे सख्यात गुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोम्मट० जीव० गाथा ६२४) सस्कृत सर्वार्थसिद्धि मुद्रित की दोनो आवृत्तियोंमें सख्येयके स्थानमें असख्येय अशुद्ध छपगया है ॥

असयत-सम्यग्दृष्ट ;। असख्येय-गुणाः ;। =(उन मिश्रगुणस्थानवर्तियोसे) असयमी सम्यग्दर्शनवाले असख्यात गुणे हैं अर्थात अव्रत गुणस्थान चारो गतियोमें होता है। इनमें सातसो करोड मनुष्य हैं ओर मिश्रवालोसे असख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव है (गोम्मट०जीव० गाथा ६२४ देखो)

मिथ्यादृष्टयः ;। अनन्तगुणाः ;। =मिथ्यादर्शनवाले (इन असयमी सम्यग्दर्शनवलोसे) अनन्तगुणे हैं ॥

(९) दर्शन अनुवादेन ;। चक्षुष्-दर्शनिनाम् ;। =(९) दर्शनकी विवक्षासे चक्षुर्दर्शनवालोका (अल्प बहुत्व)

मनस्-योगिन्-वत्* =मनयोगीवालोके सदृश है अर्थात पञ्चेन्द्रियवत् है क्योकि पृष्ठ ३०० के अनुकूल मनयोगियोका पञ्चेन्द्रियवत् है जिसके कथन के लिये पृष्ठ २९८ चार अपूर्वकरण पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव (अन्य किसी गुणस्थानके ? पञ्चेन्द्रिय जीवोसे) असख्यात गुणे हैं पृष्ठ २९९ के अन्ततक शब्दशः पढलो

अचक्षुष्दर्शनिनाम् ;। काययोगिवत्* =अचक्षुर्दर्शनवालोका (अल्प-बहुत्व) काययोगियोके सदृश है और काय योगियो का गुणस्थान तुल्य है (सयोगी अयोगीको छोडकर पृष्ठ) २९८अपूर्व-२९९तक)

(१) यथार्थमें यह शब्द चक्षुष्दर्शन है इसका ष् का परिवर्तन र म होकर चक्षुर्दर्शन होगया। स् और विसग ( ) का परिवतन र् मे होनेके लिये पृष्ठ ३३ की टिप्पणी [१] देखो ॥

शुक्लेश्यानां सर्वतः स्तोका उपशमकाः । क्षपकाः संख्येयगुणाः । सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः । अप्रमत्तसँयताः संख्येयगुणाः । प्रमत्तसँयताः संख्येयगुणाः । सँयतासँयताः असंख्येयगुणाः । सासादनसम्यग्दृष्टयः असंख्येयगुणाः । सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । असँयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येय गुणाः । (११) भव्यानुवादेन –

	कापोत–शुक्ललेश्यावालों को घटाने से शेष* पीत-पद्म लेश्यावाले रह जाते हैं
शुक्लेश्यानाम् ॥ सर्वतः स्तोकाः ॥ उपशमकाः ॥	=शुक्लेश्यावालों में सबसे अल्प (चार) उपशम श्रेणी वाले हैं
क्षपकाः ॥ संख्येय–गुणाः ॥	=(चार उपशम श्रेणी वालोंसे) (चार) क्षपक श्रेणीवाले संख्यात गुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशम श्रेणी वाले गुणस्थान में २९९ वा ३०० वा ३०८ हैं और प्रत्येक क्षपक श्रेणी वाले गुणस्थान में ५९८ वा ६०० वा ६०८ जीव हैं
सयोगकेवलिनः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=(उन चार क्षपक श्रेणी वालोंसे) सयोगकेवली संख्यात गुणे हैं । ८९८५०२ हैं॥
अप्रमत्तसँयताः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=(सयोगकेवलियों से) अप्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं । २९६९९१०३ हैं ॥
प्रमत्तसंयताः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=(अप्रमत्त संयमियों से) प्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं । ५९३९८२०६ हैं ॥
संयता संयताः ॥ असंख्येय–	=(प्रमत्त संयमी शुक्लेश्यावालों से) संयमासंयमी (शुक्लेश्यावाले) असंख्यात
गुणाः ॥ सासादन–सम्यग्दृष्टयः ॥	=गुणे हैं ॥ (देशासंयमी शुक्लेश्यावालों से) सासादनसम्यग्दृष्टि (शुक्लेश्या) वाले
असंख्येयगुणाः ॥	=असंख्यात गुणे हैं । (सासादन सम्यग्दृष्टि शुक्ललेश्यावालों से)
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=मिश्रगुणस्थानवर्ती (शुक्ललेश्यावाले) संख्यात गुणे हैं
मिथ्यादृष्टयः ॥	=(मिश्रगुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावालों से) मिथ्या दृष्टि (शुक्ललेश्यावाले)
असंख्येयगुणाः ॥ असंयत–सम्यग्दृष्टयः ॥	=असंख्यात गुणे हैं । मिथ्या दृष्टि शुक्लले श्यावालों से) असंयत सम्यग्दृष्टि
असंख्येयगुणाः ॥ [१२] भव्य अनुवादेन ॥	=(शुक्ललेश्यावाले) असंख्यात गुणे हैं । भव्य (जीवों) के कथन करि

*शुक्लेश्यानाम शब्द में षष्ठी विभक्ति अष्टाध्यायी २, ३, ४१, सूत्रसे सप्तमी विभक्ति के अर्थ में है । पृष्ट १३८ में यह टिप्पणी पूर्ण रूप से है ॥

तत सयतासयता सख्येयगुणा· । असयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वत स्तोका अप्रमत्ता । प्रमत्ता सख्येयगुणाः । सयतासयताः असंख्येयगुणाः । असयतसम्यग्दृष्टयोऽसख्येयगुणा ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टीना सर्वत स्तोकाश्चत्वारः उपशमका अप्रमत्ताः सख्येयगुणा । प्रमत्ता सख्येयगुणा· ॥ सयतासंयता सख्येयगुणा ॥

तत संयता सयता' ॥	=उन (प्रमत्त सयमियों] से देश सयमी [क्षायिक सम्यग्दृष्टी]
सख्येय–गुणा ॥ असयत–सम्यग्दृष्टय ॥	=सख्यात गुणे हैं । [उन सयमासयमियोसे] असयमी सम्यगदृष्टी
असख्येयगुणा ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ॥	=असख्यातगुणे हैं । वेदक सम्यग्दर्शनवालोंमें
सर्वत * स्तोका ॥ अप्रमत्ता ॥	=सबसे थोडे अप्रमत्त सयमी [सातवागुणस्थानवर्ती] हैं [उनसे]
प्रमत्ता ॥ सख्येयगुणा ॥	=प्रमत्त सयमी [वेदक सम्यग्दर्शनवाले] सख्यातगुणे हैं
सयतासयता ॥	=[उन प्रमत्त सयमी वेदकसम्यग्दर्शनवालोंसे] सयमा सयमी
असख्येयगुणा ॥	=[वेदकसम्यग्दृष्टि] असख्यातगुणे हैं । [देश सयमी वेदक सम्यग्दृष्टियोंसे]
असयत–सम्यग्दृष्टय ॥ असख्येयगुणा ॥	=असयत सम्यग्दृष्टी असख्यात गुणे हैं ।
औपशमिक-सम्यग्दृष्टी नाम् ॥ सर्वत स्तोका' ॥	=उपशम सम्यग्दर्शन [१] वालो में सब से थोडे
चत्वार ॥	=चार [अपूर्व करण-अनिवृतिकरण-सूक्ष्म सांपराय-उपशांतकषाय ।
उपशमका ॥ अप्रमत्ता ॥	=उपशम श्रेणी वाले हैं । (चार उपशम श्रेणी वालो से] अप्रमत्त सयमी
सख्येयगुणा ॥	=सख्यात गुणे हैं । [अप्रमत्त सयमी उपशम सम्यग्दृष्टियों से]
प्रमत्ता ॥ सख्येयगुणा ॥	=प्रमत्त सयमी [उपशम सम्यग्दर्शन वाले] सख्यात गुणे हैं
सयतासयताः ॥ असख्येयगुणा ॥	=[प्रमत्त सयमी उपशम सम्यग्दर्शन वालो से] सयम सयमी असख्यात गुणे हैं

* यहा षष्ठी विभक्ति सप्तमी विभक्ती के अर्थमें आई है अत हिंदी अनुवाद "वालोंके" स्थानमे "वालोंमे" किया है (देखो टिप्पणी पृष्ठ १३८ ॥

ततः संयतासंयताः संख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ क्षायोपशामिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोकाः अप्रमत्ताः । प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । संयतासंयताः असंख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ औपदायिकसम्प्रग्दृष्टीनां सर्वतः स्तोकाश्चत्वारः उपशमकाः अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः । प्रमताः संख्येयगुणाः ॥ संयतासंयताः संख्येयगुणाः ॥

ततः संयता संयताः १/३।	=उन (प्रमत्त संयमियों] से देश संयमी [क्षायिक सम्यग्दृष्टी]
संख्येय–गुणाः १/३। असंयत–सम्यग्दृष्टयः १/३।	=संख्यात गुणे हैं। [उन संयमासंयमियोंसे] असंयमी सम्यगदृष्टी
असंख्येयगुणाः १/३। क्षायोपशामिकसम्यग्दृष्टिषु ७/३।	=असंख्यातगुणे हैं। वेदक सम्यग्दर्शनवालोंमें
सर्वतः* स्तोकाः १/३। अप्रमत्ताः १/३।	=सबसे थोड़े अप्रमत्त संयमी [सातवांगुणस्थानवर्ती] हैं [उनसे]
प्रमत्ताः १/३। संख्येयगुणाः १/३।	=प्रमत्त संयमी [वेदक सम्यग्दर्शनवाले] संख्यातगुणे हैं
संयतासंयताः १/३।	=[उन प्रमत्त संयमी वेदकसम्यग्दर्शनवालोंसे] संयमा संयमी
असंख्येयगुणाः १/३।	=[वेदकसम्यग्दृष्टि] असंख्यातगुणे हैं। [देश संयमी वेदक सम्यग्दृष्टियोंसे]
असंयत–सम्पादृष्टयः १/३। असंख्येयगुणाः १/३।	=असंयत सम्यादृष्टी असंख्यात गुणे हैं।
औपशमिक-सम्यग्दृष्टी नाम् ६/३। सर्वतः स्तोकाः १/३।	=उपशम सम्पादर्शन [१] वालों में सब से थोड़े
चत्त्वारः १/३।	=चार [अपूर्व करण-अनिवृतिकरण-सूक्ष्म सांपराय-उपशंतकषाय।
उपशमकाः १/३। अप्रमत्ताः १/३।	=उपशम श्रेणी वाले हैं। (चार उपशम श्रेणी वालों से] अप्रमत्त संयमी
संख्येयगुणाः १/३।	=संख्यात गणे हैं। [अप्रमत्त सयमी उपशम सम्पादृष्टियों से]
प्रमत्ता : १/३। संख्येयगुणाः १/३।	=प्रमत्त संयमी [उपशम सम्यग्दर्शन वाले] संख्यात गुणे हैं
संयतासंयताः १/३। असंख्येयगुणाः १/३।	=[प्रमत्त संवमी उपशम सम्यग्दर्शन वालों से] संयम संयमी असरव्यात गुणे हैं

* यहां षष्ठी विभक्ति सप्तमी विभक्ती के अर्थमें आई है अतः हिन्दी अनुवाद "वालोंके" स्थानमें "वालोंमें" किया है (देखो टिप्पणी पृष्ठ १३८ ॥

भव्याना सामान्यवत् । अभव्याना नास्त्यल्पबहुत्वम् ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेन -क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वत स्तोकाश्चत्वार उपशमका । इतरेषा प्रमत्तान्ताना सामान्यवत् ॥

भव्यानाम् ॥ सामान्यवत् * =भव्यजीवों का (अल्प-बहुत्व) सक्षेप (विषय में पूर्वोक्तगुणस्थान) सदृश है अर्थात् भव्यजीव मिथ्यात्वगुणस्थानमे अयोगकेवली गुणस्थानों तक सब चौदहों गुणस्थनों में हैं अतः पृष्ट २९२ "प्रथम से पृष्ठ २९३, २९४, २९५ समस्त २९६ में मिथ्या दृष्टी असख्यात गुणे हैं यहा तक शब्दशः पढलो ॥

अभव्यानाम् ॥ न * अस्ति । अल्प-बहुत्वम् ॥॥ =अभव्यो के (अल्प-बहुत्व) नहीं है क्योंकि अभव्यजीव केवल मिथ्यात्व पहिले गुणस्थान में ही हैं

(१२) सम्यक्त्व - अनुवादेन ॥ क्षायिक-सम्यग्दृष्टिषु ॥ =(१२) सम्यग्दर्शनके कथन करि क्षायिकसम्यग्दर्शनवालो में

सर्वत * स्तोकाः ॥ चत्वार' ॥ उपशमका ॥ =सब से थोडे चार उपशम श्रेणी [अपूर्वकरण–अनिवृत्तिकरण–सूक्ष्मसापराय–उपशातकषाय] वाले हैं

इतरेषाम् ॥ अवशेष [अपूर्वकरण–अनिवृत्तिकरण–सूक्ष्मसापराय–क्षीणाकषाय गुणस्थानवर्ती क्षपकश्रेणी, सयोग केवली, अयोगकेवली अप्रमत्त सयमी येसर्व क्षायिक सम्यक्त्वधारक और]

प्रमत्त–अन्तानाम् ॥ सामान्य–वत * =प्रमत्तसयमीयो तकनिका [अल्प बहुत्व [सक्षेप विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान ॥ =सदृश है अर्थात् चार क्षयक श्रेणी वाले चार उपशम श्रेणी वालोमे सख्यात गुण हैं अयोग केवली क्षयक श्रेणी वालो के तुल्य हैं । सयोग केवली उक्त पाचो गुण स्थान वर्तियों से सख्यात गुणे हैं । इन से अप्रमत्त संयमी सख्यात गुणे है । अप्रमत्त सयमियो से प्रमत्त सयमी सख्यात गुण हैं ।

---

(१) क्षायिक सम्यक्त्व चोथे गुणस्थान से अयोग केवली तक, उपशमसम्यक्त्व चौथे से ग्यारहतक, वेदकसम्यक्त्व चौथे से साततक होता है ।

असंज्ञिनां नास्त्यल्पबहुत्वम्। तदुभयव्यपदेशरहितानां केवलज्ञानिवत्॥ (१४) आहारानुवादेनआहारकाणां कायवोगिवत्।

अल्पबहुत्व पंचन्द्रियवत् है (पृष्ट ३११ और पृष्ठ ३०१ - ३०२ को क्रम से देखो) इसलिये संज्ञियों का अल्प बहुत्व पंचेन्द्रियों के सदृश हुआ (संज्ञी मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान से क्षीणकपाय बारहवां गुणस्थान तक होते हैं) पंचेन्द्रियों का अल्पबहुत्व गुणस्थानसदृश है इसलिये अंतमें संज्ञियोंका अल्पबहुत्व मिथ्यात्व गुणस्थान से क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती जीवों के अल्प बहुत्व के सदृश हुआ॥ चार अपूर्व करण······पृष्ठ २९८ से २९९ कोअंत तक॥

असंज्ञिनाम् ;। अल्प-बहुत्वम् न * अस्ति T =मन रहित जीवो के अल्प-बहुत्व नहीं है (क्योंकि ये सब मिथ्यादृष्टी हैं)

तद्-उभय-व्यपदेश-रहितानाम् ;। केवलिज्ञानिवत् * =उन (सैनी-असैनी) दोनों नामों से वर्जित (जीव) तिर्के केवल ज्ञानियों के =समान (अल्प-बहुत्व) है अर्थात् अयोगकेवलियों से सयोगकेवली संख्यातगुणे हैं अयोग केवली उत्कृष्टकरि ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं और सयोग केवली उत्कृष्ट करि आठलाख अठानवैहज़ार पांचसो दो हैं

(१४) आहारक-अनुवादेन ;। अहारकाणाम् ;। =(१४) आहारक की अपेक्षा से आहारकों का (अल्प-बहुत्व)

काय योगिवत् * =काय योगियों के सदृश है (और काययोगियों का अल्प-बहुत्व गुणस्थानवत्) है अतः आहारकों का अल्पबहुत्व गुण स्थान सदृश हुआ। काययोगी प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान से सयोग केवली तेरहवां गुणस्थान तक हैं अतः अयोग केवलियों को छोड़ कर पृष्ठ २९८ में चार अपूर्व करण से······२९९ पृष्ठ के अंत तक शब्दशः पढ़लो तो वही आहारकों का अल्पबहुत्व होवेगा।

असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा । शेषाणां नास्त्यल्पबहुत्वम् । विपक्षे एकैकगुणस्थानग्रहणात् ॥ (१३) सञ्ज्ञानुवादेन-संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् ।

असंयत	=[देशसंयमी उपशम सम्यग्दर्शनवालोंसे] असंयमी [उपशम]
सम्यग्दृष्टय ‡। असंख्येयगुणा ‡। विपक्षे ‡।	=सम्यग्दर्शनवाले असंख्यात गुणे हैं । पक्षान्तरमें वा अन्य ओर में
एक-एक-गुणस्थान-ग्रहणात् ‡। ॥	=एक एक गुणस्थान को (भिन्न भिन्न) मान लेनेसे वा निरक्षित एक एक गुणस्थान होने से
शेषाणाम् ‡।	=बचे हुये (मिथ्यात्व-सासादन मिश्र असंयत सम्यग्दृष्टिवालेनिके-
अल्प-बहुत्वम् ‡।‡। न ‡ अस्ति ‡	=थोडा और अधिकपना नहीं है (क्योंकि जब एक प्रकार की वस्तुयें कई स्थानों में हों तब कहते हैं कि अमुक स्थानकी वस्तुयें इतर स्थान की वस्तुओं से अल्प बहुत्व है । मिथ्यादृष्टि एक प्रथम गुणस्थान में ही है ॥ सासादन सम्यग्दृष्टि दूसरे में ही है सम्यग्मिथ्यादृष्टी मिश्र तीसरे गुणस्थान में ही है और असंयमी सम्यग्दृष्टी एक अविरत गुणस्थान में ही है इसलिये इन चारों गुणस्थानों में सम्यक्त्वकी अपेक्षा से अल्प बहुत्व नहीं है परन्तु असंयमकी अपेक्षा से प्रथम गुणस्थान से चतुर्थ तक (असंयम होने से) है और वह असंयमकी अपेक्षा से अल्प बहुत्व इस प्रकार है कि असंयमियोंमें सबसे थोडे सासादन सम्यग्दृष्टी हैं । इनसे मिश्रगुणस्थानवर्ती संख्यात गुणे हैं । इनसे अविरत सम्यग्दर्शन वाले असंख्यात गुणे हैं । इनसे मिथ्यादर्शनवाले अनंत गुणे हैं । (विशेष जानने के लिये पृष्ठ ३१० ३११ देखो ।
(१३) संज्ञा अनुवादेन ‡। संज्ञिनाम् ‡। चक्षुर्दर्शनिवत्	=(१३) संज्ञा की अपेक्षासे सैनीनिका (अल्प बहुत्व) चक्षुदर्शनवालों के सम है और चक्षुर्दर्शनवालों का अल्प बहुत्व मन योगी के समान है और मनयोगियों का

एवं सम्यग्दर्शनस्यादावुद्दिष्टस्य लक्षणोत्पत्तिस्वामिविषयन्यासाधिगमोपाया निर्दिष्टाः। तत्सम्बन्धेन च जीवादीनां सञ्ज्ञापरिणामादि निर्दिष्टम्। तदनन्तरं सम्यग्ज्ञानं विचारार्हमित्याह-

एवम्* आदौ ७। उद्दिष्टस्य ६।।। सम्यग्दर्शनस्य ६।।।	=इसप्रकर प्रथममें उपदेश कियागया सम्यग्दर्शनका
*लक्षण	=लक्षण (देखो सूत्र २ पृ० ३१)
उत्पत्ति	=(उस सम्यग्दर्शनके) उत्पन्न होनेका निमित्त (देखो सूत्र ३ पृष्ठ ३६)
स्वामि-विषय	=(सम्यग्दर्शनका) अधिपति (जीव); (सम्यग्दर्शनका) विषय (सूत्र ४ पृष्ठ ४०)
न्यास	=(सम्यग्दर्शनका) न्यास वा निक्षेप वा लोकव्यवहार (सूत्र ५ पृष्ठ ४४ देखो)
अधिगम-उपायाः १।	=(सम्यग्दर्शनके) ज्ञान वा स्वरूप (जानने) के उपाय (सूत्र ६ पृष्ठ ५४, सूत्र ७ पृष्ठ ५८, सूत्र ८ पृष्ठ ८१ को देखो)
निर्दिष्टाः १। च* तत् सम्बन्धेन ३। जीवादीनाम् ६।	=कहे गये हैं। और (च) उस (सम्यग्दर्शन) के संबंधकरि जीवादिक (तत्त्वों) के
सञ्ज्ञा-परिणाम-आदि १।।।	=नाम (देखो सूत्र ४) परिणामादिक अथवा भावादिक (देखो सूत्र ६, ७, ८)
निर्दिष्टम् १।।।	=कहे गये हैं
तत् ५।।। अनन्तरम् १।।। सम्यग्ज्ञानम् १।।। विचार	=तिस (सम्यग्दर्शन) के निकट वा समीप सम्यग्ज्ञान (है सो) विचारने
अर्हम् १।।। इति* आह--	=योग्य है। सो (आचार्य) इसप्रकार कहते हैं कि

(*) व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्ति हेतुर्लक्षणम्

व्यतिकीर्ण-वस्तु-	=परस्पर वा आपसमें मिलीहुई (व्यतिकीर्ण) वस्तुओंमें
व्यावृत्ति-हेतुः १। लक्षणम् १।।।	=जो उनके भेद करानेमें (व्यावृत्ति) हेतु है सो लक्षण है

अनाहारकाणां सर्वत स्तोका सयोगकेवलिन । अयोगकेवलिन· सङ्ख्येयगुणा·। सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसङ्ख्येयगुणाः । असँयतसम्यग्दृष्टयोऽसङ्ख्येयगुणा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणा· ॥ एव मिथ्यादृष्टियादीनाम् गत्यादिषु मार्गणा कृता सामान्येन ॥ तत्र सूक्ष्मभेद आगमाविरोधेनानुस्मर्तव्य· ॥

अनाहारकाणाम् ॥ सर्वत· * स्तोका· ॥ सयोग-केवलिन· ॥ =अनाहारकों में सब से थोड़े सयोग- केवली हैं (अर्थात् यद्यपि संयोग केवलियो की संख्या ८९८५०२ तक उत्कर्षकरि होसक्ती है और अयोग केवलियों की सख्या ५९८ वा ६०० ६०८ तक हो सक्ती है परतु सयोगकेवलियों की अनाहारक अवस्था पूतरसमुद्घात और लोकपूर्ण समुद्घात में ही होती है दड समुद्घात और कपाटसमुद्घात में आहारक ही अवस्था होती है इस अपेक्षा से सयोग केवली अनाहारकों की सख्या सर्व से अल्प है ॥ जीवों की अनाहारक अवस्था मिथ्यात्व-सासादन-असयत और अयोग केवली गुणस्थानों में ही होती है। सयोग केवली उक्त समुद् घातो में ही अनाहारक होते हैं।

अयोगकेवलिन ॥ सङ्ख्येयगुणा ॥ =(सयोग केवलि अनाहारकों से) अयोग केवली सख्यात गुणे हैं

सासादन-सम्यग्दृष्टय· ॥ असङ्ख्येयगुणा ॥ =(अनाहारक अयोगकेवलियो से) सासादन सम्यग्दृष्टी असख्यात गुणे हैं

असयत-सम्यग्दृष्टय ॥ असङ्ख्येय गुणा ॥ =(सासादन सम्यग्दृष्टियो से) असयमी सम्यग्दृष्टि असख्यात गुणे हैं

मिथ्यादृष्टय· ॥ अनन्त-गुणा ॥ =(असयमी सम्यग्दर्शन वालों से) मिथ्यादृष्टी अनन्तगुणे हैं

एवम् * मिथ्यादृष्टि आदीनाम् ॥ गति-आदिषु ॥ =ऐसे मिथ्यादर्शन वाले आदिकनिकें गति आदिकों में

सामान्येन ॥ मार्गणा ॥ कृता तत्र * सूक्ष्म भेदः ॥ =सक्षेप कथन करि मार्गणा (निर्देश की गई। तहा (इनके) सूक्ष्मभेद

आगाम-अविरोधेन ॥ अनुस्मर्तव्य ॥ =शास्त्र के अनुसार करि अगीकारकरना वा अनुस्मरण करना योग्य है

ज्ञानशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते । मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं अवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमिति ॥ इन्द्रियैर्मनसा च यथास्वमर्थान्मन्यते अनया मनुते मननमात्रं वा मतिः ॥

ज्ञानशब्दः १।१ प्रत्येकम् १।१	=ज्ञानशब्द प्रत्येक (मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय-केवल) को
परिसमाप्यते T मतिज्ञानम् १।१ श्रुतज्ञानम् १।१	=लगाया गया है। (तत्र) मतिज्ञान-श्रुतज्ञान
अवधिज्ञानम् १।१ मनः पर्ययज्ञानम् १।१	=अवधिज्ञान-मनःपर्ययज्ञान-
केवलज्ञानम् १।१ इति*इन्द्रियैः ३।३ मनसा ३।१ च	=केवल ज्ञान ऐसे हैं। पांच इन्द्रियोंकरि और (=च) मनकरि
यथास्वम्*अर्थान् २।३ मन्यतेT	=अपनी (शक्ति) के अनुकूल (=यथास्वम्) पदार्थोंको जानता है अर्थात् पांच इन्द्रियोंकरि और मनकरि अपने योग्य देश में स्थित वर्तमान पदार्थ को जो पहचानता है वा जानता है सो मतिज्ञान है
अनया ३।१ मनुते T	=(अथवा) जिसकरि जानता (है=मनुते)
वा*मननमात्रम् १।१ मतिः १।१	=(सो मतिज्ञान है) वा जानने मात्र मतिज्ञान है ॥

(१) परिसमाप्यते यह शब्द आप् (=प्राप्त होना) स्वादि पांचवें गणके परस्मैपद धातुमें परि और सम् उपसर्ग लगाने से और 'य'कर्मणि प्रधान प्रत्यय और ते अन्य पुरुष, वर्तमानकाल, आत्मनेपद-एकवचनके प्रत्ययको जोड़कर ऐसे बना लेते हैं कि परि+सम्+आप्+य+ते=परिसमाप्यते

(२) मन्यते-मन=जानना, दिवादि चतुर्थगणके आत्मनेपदी, सकर्मक, अनिट् धातुमें य चतुर्थगणका विकरण जोड़कर मन्य बना लिया पश्चात् ते वर्तमानकालका एकवचन अन्य पुरुष, आत्मनेपदी प्रत्यय जोड़नेसे (मन्य+ते) मन्यते (=जानता है) बनगया ॥

(३) मनुते-मन्=जानना, (यहाँपर) तनादि आठवें गणका आत्मनेपदी, सकर्मक सेट् धातुमें उ आठमें गणका विकरण जोड़नेसे (मन्+उ)=मनु बनगया पीछे, ते वर्तमान कालका एकवचन, अन्यपुरुष, आत्मनेपदी प्रत्यय, जोड़ने से मनुते (=जानता है) बनगया ॥ मानयते-मन्=अहंकार करना चुरादि दशवे गणका आत्मनेपदी अकर्मक सेट् धातु है। इस गणके अय विकरण धातुमें लगाने से पहिले अन्तके स्वर और उपान्त अ की वृद्धि संज्ञा होजाती है अतः मान्+अय् प्राप्त हुआ, ते उक्त आत्मनेपदी वर्तमानकालकरि मानयते हुआ ॥ मनति-मन्=भ्वादि प्रथमगणका धातुपूजा करने के अर्थ में सकर्मक परस्मैपद है। और अहंकार करने के अर्थ में अकर्मक भ्वादिगण परस्मैपद है ॥

॥ मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥

मति-श्रुत-अवधि मन: पर्यय-केवलानि;॥॥ज्ञानम्;॥॥=मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यय और केवल ऐसे ज्ञान (पाच प्रकार) है अर्थात् (१) जो पाच इन्द्रियो से और मनसे पदार्थ को जाने सो मति ज्ञान है,
(२) मति ज्ञानके द्वारा जाने हुये पदार्थ की सहायतासे उसी पदार्थ के भेदोंको वा अन्य पदार्थों को जाने सो श्रुतज्ञान है। इसका लक्षण अन्य प्रकारसे भी है॥
(३) क्षेत्रकाल भाव तथा द्रव्यकी मर्यादालिये रूपी पदार्थ को प्रत्यक्ष रूपसे जाने सो अवधि ज्ञान है (४) अन्यके मनमें तिष्ठे हुए रूपी पदार्थोंको प्रत्यक्ष जाने सो मनःपर्यय ज्ञान है (५) समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल भावको प्रत्यक्ष रूप से जानै अर्थात् भूत-भविष्यत वर्तमानमें होनेवाली पदार्थोंकी समस्त पर्यायोंको एकही समयमें जाने सो केवल ज्ञान है॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थ सिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद।

(१) दिगंबर आम्नायमे किसी किसी पुस्तकमे "मन पर्य्यय" पाठ है और किसी किसीमे "मन पर्यय" है। श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमे "मन पर्याय" मनःपर्यय अथवा मन पर्य्ययके स्थानमे है। शेष पाठ इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। अर्थ भी दिगम्बर आम्नाय और श्वेताम्बर आम्नाय में एकसा है। मन पर्याय और मन पर्यय दोनोंका एक अर्थ है। मन पर्यय और मन पर्य्यय दोनों ठीक है क्योंकि किसी शब्दमें र् अथवा ह् से प्रथम कोइ स्वर आवै और (र् वा ह् के) पश्चात् ह् को छोड़कर कोइ व्यंजन आवे तो वह व्यंजन विकल्पकरि अर्थात् लेखक की इच्छानुसार अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद ४ सूत्र ४६ (अचो रहाभ्या द्वे=अचो रहोभ्याँ द्वे वा) से द्वित्व होजाता है- चाहे उस व्यंजन को दुहरा करदो चाहे न दुहराओ। जैसे अर्क वा अर्क्क मर्क वा मर्क्क-धर्म वा धर्म्म-कर्म वा कर्म्म ब्रह्मा वा ब्रह्म्मा-अपह्नुते वा अपह्न्नुते। ऐसेही सूर्य वा सूर्य्य-मन पर्यय वा मन, पर्य्यय दोनों ही ठीक और शुद्ध है॥ (२) यहा ज्ञान शब्द के साथ सम्यक् शब्दकी अनुवृत्ति है (पृष्ठ ३४२)

अवाग्धानादवच्छिन्नविषयाद्वा अवधिः ॥

(अवधिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादासे)

अवाग्-धानात् ¹⁄₅। वा* अवच्छिन्न- =पुद्गलको (प्रत्यक्षपने करि) जाननेसे अथवा रूपी पदार्थ (=अवच्छिन्न)

विषयात् ¹⁄₅। अवधिः ¹⁄₁। =(जिसका) विषय होने (के हेतु) से अवधि (ज्ञान कहाता) है । अर्थात् मर्यादा लिये हुये रूपी पदार्थ को जो प्रत्यक्षपनेसे जाने सो अवधिज्ञान है ॥

(१)अवाग्-यथार्थमें वाच् शब्द है। अ जोड़नेसे अ+वाच् (=अवाक्=अवाग् देखो टिप्पणी १४, १५) वचन वा बोल रहित अर्थात् जड़ पदार्थ वा पुद्गल है।

अवायन्ति व्रजन्तित्यवायाः पुद्गलाः । तान् दधातिजानातात्यवधिः अवाग्धानात्पुद्गल परिज्ञानादित्यर्थः ॥

अवायन्ति T व्रजन्ति T इति अवायाः ¹⁄₁। पुद्गलाः ¹⁄₁। =नही बोलते है (वा नहीं) हिलते चलने हैं ऐसे वचन वर्जित जड़ वस्तु हैं ॥

तान् ²⁄₃। दधाति T जानाति T इ तिक्ष अवधिः ¹⁄₁। =तिन (पुद्गलो) को ग्रहण करता है जानता है ऐसा अवधि (ज्ञान) है ॥

अवाग्धानात् ¹⁄₅। पुद्गल-परिज्ञानात् ¹⁄₅॥ इति अर्थः ¹⁄₁। =अवाग्धानात् (वाक्य)से जड़ पदार्थका विशेषरूप ज्ञानसे अभिप्राय है ॥

(२) द्रव्य क्षेत्रकाल भावे नियतत्वेनावधीयते नियम्यते प्रमीयते परिच्छिद्यत् (ते) इत्यर्थः ॥

द्रव्य-क्षेत्र-कालभावैः ³⁄₃। नियत त्वेन ¹⁄₃॥ अवधीयते T =द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे मर्यादाकरि सीमाकिया गया है

नियम्यते T प्रमीयते T परिच्छिद्यते T =नियम किया गया है परिमित किया गया है विशेष रूप से सीमा किया गया है ॥

इति*अर्थः =इस प्रकार अभिप्राय है

(३) अवधानं अवधिः । कोऽर्थः । अधस्ताद्बहुतर विषय ग्रहणादवधिरुच्यते । देवाः खलु अवधिज्ञानेन सप्तम नरक पर्यन्तं पश्यन्ति । उपरिस्तोकं पश्यन्ति । निजविमानध्वजदणुपर्यन्तमित्यर्थः ॥ अवच्छिन्न विषत्वादवधिः । कोऽर्थः रूपित लक्षणविषयत्वादवधि

अवधानम् ¹⁄₁॥ = अवधान अर्थात् प्राय नीचले वा पाताल का (=अव)(विषयों का)ग्रहणं(=धान)है ।

अवधि ¹⁄₁। कः ¹⁄₁। अर्थः ¹⁄₁। अधस्तात्*बहुतर = सो अवधि है । (इस वाक्य से) क्या अभिप्राय है । नीचले वा पाताल के अधिकतर

विषय-ग्रहणात् ¹⁄₅॥ अवधिः ¹⁄₁। उच्यते T देवाः ¹⁄₁। =विषय ग्रहण करनेसे अवधि कहा गया है । देव

खलु*अवधिज्ञानेन ¹⁄₃॥ सप्तम-नरक-पर्यन्तम् ²⁄₁। =निश्चयकरि (=खलु) अवधिज्ञान से सातवां नरक तक

तदावरणक्षयोपशमे सति निरूप्यमाणं श्रूयते अनेनेति तत् शृणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम् ॥ अनयोः प्रत्यासन्ननिर्देशः कृतः कार्यकारणभावात्। तथा च वक्ष्यते "श्रुतं मतिपूर्वमिति" ॥

तद्-आवरण क्षयोपशमे ७। सति ७।	=उस (श्रुत ज्ञान) आवरणीयकर्मके क्षयोपशम होने पर (=सति)
निरूप्यमाणम् १।१ अनेन ३।१ श्रूयते T इति*	=कथित वस्तु का नाम (=निरूप्यमाण) जिससे सुनकरि जाना जाता है ऐसा (श्रुतज्ञान) है।
तत् २।१ शृणोति T	=वा उस (निरूप्यमाण वस्तु) को (=तत्) सुनकरि जानता है (सो श्रुतज्ञान है)
वा* श्रवणमात्र १।१ श्रुतम् १।१	=अथवा (=वा) जो सुनकरि जानने मात्र (सो) श्रुतज्ञान है ॥
कार्य कारण भावात् ५।	=(दोनों मतिज्ञान-और श्रुतज्ञान का आपस में) कार्य-कारणभाव होने से
अनयोः ६।२ प्रत्यासन्न निर्देशः १। कृतः १।	=इन दोनों(मतिज्ञान और श्रुतज्ञानों)का अति निकट उपदेश किया गया है ॥ अर्थात् मतिज्ञान कारणरूप है और श्रुतज्ञान कार्यरूप है।
तथा च* वक्ष्यते T	=जैसा कि (=तथा च-आगे इसी अध्याय के तीसरा सूत्र में) कहेंगे (टिप्पणी पृष्ठ ४१)
श्रुतम् १।१ मतिपूर्वम् १।१ इति*	=श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है-श्रुतज्ञान मतिज्ञान के पश्चात् होता है। अर्थात् श्रुत ज्ञान के उत्पन्न होने को मतिज्ञान कारण है। और श्रुतज्ञान कार्य है

(१) सति—यथार्थमें सत् शब्द त्रिलिंगी है। यहा पर क्षयोपशमे सप्तमी विभक्ति एक वचन पुल्लिंगमें है अत सति शब्द भी सप्तमी एकवचन पुल्लिंगमें ही है। यहाँ पर विद्यमानता अर्थमें है। सदाचारी, पूज्य बहुत उत्तम, यथार्थ (ठीक) सत्य इन अर्थोंमें भी आता है (देखो टि.ण. पृष्ठ =') ब्रह्म (न०) पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४०९ जैसे ओ३म् तत्सत् =मंगल मय (= ओ३म्) वह (=तत) ब्रह्म (= सत्)

(२) श्रु—भ्वादि प्रथम गणका परस्मैपदी जाना वा हिलना अर्थ में आता है। इस गणके धातु का अंतिम स्वर और धातु का उपान्त्य ह्रस्व प्रथमगण के विकरण अके पहिले पहिले गुण संज्ञा को प्राप्त हो जाता है। अत श्रु = श्रो श्रो = श्रव्+अ (विकरण जोडकर टिप्पणी पृष्ठ १३ द्वारा) =श्रवति, अ य पुरुष एक वचन परस्मैपद वर्तमानकाल का ति प्रत्यय जोडने से श्रव+ति=श्रवति (जाताहै) बन गया ॥ यदि श्नु =नु विकरण स्वादि पाचवा गण का श्रु धातु में जोडा जावे तो यह धातु पाँचवा स्वादि गणका हो जाता है और श्रु का शृ हो जाता है। शृ+णु (=नु) देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४ ॥ शृणु – शृणो (पृष्ठ ५६) उक, ति जोडो =शृणोति =सुनकरि जानता है। श्रुवः शृ च ३ १ ७४ यह सूत्र, ६७ व ६८ व ७३ सूत्रों से अनुवर्त्तियों द्वारा श्रुवः । शृ । च (सार्वधातुके कर्त्तरि श्नु) श्रु के स्थान में शृ हो और उसके पश्चात् श्नु विकरण हो यदि कर्त्ता में सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो

स्वपरमनोभिर्व्यपदिश्यते । यथा अभ्रे चन्द्रमसं पश्येति ॥ बाह्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो मार्गं केवन्ते सेवन्ते तत्केवलम् । असहायमिति वा ॥

स्व-पर-मनोभिः ३।।। व्यपदिश्यते T =अपने और परके मनों (की अपेक्षा) करि निर्देश किया गया है । अर्थात् इसकी मनःपर्यायज्ञान संज्ञा इस हेतुसे रक्खी है कि इसमें अपने और परके मनकी अपेक्षा मात्र है नकि मतिज्ञानकी भांति इसमें (इन्द्रिय और) मनके द्वारा रूपीपदार्थका ज्ञान होता है ॥

यथा* अभ्रे ७। चन्द्रमसम् २। पश्यति T इति* =जैसे बादलमें चंद्रमाको देख अर्थात् जैसे इस वाक्यमें बादल शब्द केवल अपेक्षामात्र लाये हैं चंद्रमा बादलसे उत्पन्न नहीं हुआ है तैसे मनः पर्यय वाक्यमें मन शब्द अपेक्षामात्र है मनः पर्ययज्ञान मनद्वारा उत्पन्न नहीं हुआ है ॥

बाह्येन ३।।। अभ्यन्तरेण ३।।। च* तपसा ३।।। यद्-अर्थम् २। =बाह्य और (=च) अंतरंग तपकरि जिस वस्तुको (=यद् अर्थम्)

मार्गम् २। अर्थिनः १। केवन्ते T सेवन्ते T =जिस पथको तपस्वी उपासना करते हैं (केवन्ते=सेवन्ते) सेवन करते हैं

तत् १।।। केवलम् १।।। वा* असहायम् १।।। इति* =सो (तत्) केवल (ज्ञान) है अथवा (यह केवल ज्ञान) असहाय ऐसा है बाह्य किसीका सहाय नहीं चाहता है अर्थात् जैसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान इन्द्रियों और प्रकाशादिककी सहायतासे पदार्थको जानते हैं वैसे यह ज्ञान नहीं है तथा अवधि ज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान अपनी अपनी उत्पत्तिमें यथासंख्य अवधिज्ञानावरण और मनः पर्यय ज्ञानावरण कर्मकी अपेक्षा रखते हैं वैसे भी केवल ज्ञान नहीं है यह ज्ञान एकमात्र आत्मासे ही प्रवर्तता है इसीसे इसको केवल (ज्ञान) कहते हैं ॥

व्यपदिश्यते—यह शब्द दिश् तुदादि छठेगणके उभय परस्मैपद और आत्मनेपद सकर्मक अनिट् धातुसे वि और अप उपसर्गोंके जोड़नेसे वि+अप+दिश् रूप बना यत् कर्मणि प्रत्यय जोड़कर और ते अन्यपुरुष, एकवचन, वर्तमानकाल, आत्मनेपदी प्रत्ययको जोड़नेसे व्यपदिश्यते बनालिया ॥ केवृ धातु जिसका अर्थ सेवा करना है "केवल" शब्द निकला है ॥

परकीयमनोगतोऽर्थो, मन इत्युच्यते साहचर्यात्तस्य पर्ययण परिगमन मन पर्यय । मतिज्ञानप्रसग इति चेन्न । अपेक्षामात्रत्वात् । क्षयोपशमशक्तिमात्रविजृम्भितं तत्केवल

परकीय-मनस्-गत, ३।	=परसम्बन्धी (=परकीय) वा अन्यके (=परकीय) मनमें प्राप्त वा तिष्ठे हुये
अर्थ ।। साहचर्यात् ।।।	=रूपी पदार्थ (=अर्थ) की साहचर्यासे-अनुरूपतासे-समवायसे वा समागमसे
मन ।।। इति उच्यते T तस्य ।।	=मन ऐसा (नाम) कहा गया है अर्थात् तिस (अन्यके मनमें चितमन किये हुये) पदार्थका
पर्ययणम् ।।। परिगमनम् ।।। मन पर्ययः १।	=ज्ञान वा जानना (=पर्ययणम् =परिगमनम्) सो मन पर्यय है अर्थात् जो मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे परके मनमें तिष्ठे हुये रूपी पदार्थको जाने सो मन पर्यय ज्ञान है ॥
मतिज्ञान प्रसगः ।। इति * चेत् *	=(मन पर्यय ज्ञानके) मतिज्ञानका सयोग वा मेल होता है ऐसं सदेहपर (=चेत्)
न* अपेक्षा मात्रत्वात् ।।।	=(उत्तर है कि) नहीं क्योंकि (मन पर्यय ज्ञानमें मन) अपेक्षामात्र है कार्य कारण भाव नहीं है अर्थात् मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति का कारण मन नहीं है जैसाकि मतिज्ञान के उत्पन्न होने का कारण मन है।
क्षयोपशम-शक्ति मात्र-	=(मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके) क्षयोपशमकी शक्ति मात्रसे
विजृम्भितम् ।।। । तत् ।।। केवलम् ।।।	=विकसित वा प्रकाशित (=विजृम्भितम्) हुआ है ॥ वह (मन: पर्यय ज्ञान) केवल

पश्यन्ति T उपरि* स्तोकम् ।। पश्यन्ति T	=देखते हैं। ऊपर अल्प वा थोड़ा देखते हैं।
निजविमान ध्वज दण्ड पर्यन्तम् ।।। इति* अर्थ ।।	=अपना विमान ध्वजा दड पर्यंत (देखते हैं) ऐसा अभिप्राय है।
अवच्छिन्न विषयत्वात् ।।। अवधिः ।। क ।। अर्थ ।।	=अवच्छिन्न विषयत्व सहित अवधि ज्ञान है (इस वाक्यका) क्या अर्थ है।
रूपित लक्षण विषयत्वात् ।।। अवधि ।।	=रूपी लक्षणवाला (पदार्थ) है विषय जिसका सो अवधि ज्ञान है ॥

(१) विजृम्भित, (त्रि॰) वि+जृभि+क। विकसित। खिला हुआ। भावेक॥ प्रकाश। चमक। पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३५१ देखो॥

प्रत्यक्षात्परोक्षं पूर्वमुक्तं सुगमत्वात्। श्रुतपरिचितानुभूता हि मतिश्रुतपद्धतिः सर्वेण प्राणिगणेन प्रायः प्राप्यते यतः॥ एवमेतत्पञ्चविधं ज्ञानम्॥ तद्भेदादयश्च पुरस्ताद्वक्ष्यन्ते॥ प्रमाणनयैरधिगम इत्युक्तम्। प्रमाणं च केषाञ्चित् ज्ञानमभिमतम्। केषाञ्चित् सन्निकर्षः।

प्रत्यक्षात् ;॥ परोक्षम् ;॥	=प्रत्यक्ष (अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानों)से परोक्ष (मति-श्रुतज्ञान)
सुगमत्वात् ;॥ पूर्वम् ;॥ उक्तम् ;॥	=स्पष्ट या सुगमहोने (के हेतु) से (इस नवमें सूत्रमें) प्रथम कहेगये हैं
यतः श्रुत-परिचिता-अनुभूता ;॥ हि*	=क्योंकि (=यतः) श्रुतकरि जानागया (=परिचिता) और अनुभवकियागया ही।
मति-श्रुतपद्धतिः ;॥ सर्वेण ;॥ प्राणि-गणेन ;॥ प्रायस्*	=मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका मार्ग (=पद्धति) सबजीवोंके समूहद्वारा बहुधा
प्राप्यते ¶	=प्राप्त किया जाता है। भावार्थ मति-श्रुतज्ञान परिचय किये जाते हैं, अनुभवमें आते हैं इसकी पद्धति सुनी जाती है समस्त प्राणियोंके बाहुल्यपनेकरि वा बहुतायतकरि पायेजाते हैं और (मतिज्ञान-श्रुतज्ञान) सुगम है अतः ये दोनों परोक्षज्ञान तीन प्रत्यक्ष ज्ञानोंसे पहिले कहे हैं
एवम् एतत् ;॥ पञ्च-विधम् ;॥ ज्ञानम् ;॥ च तद्-भेद आदयः ;॥ पुरस्तात्*वक्ष्यन्ते ¶	=इस प्रकार यह पांच भांति ज्ञान है। और उस (=तद्-ज्ञान) के =भेद आदिक आगे कहे जायेंगे॥
प्रमाण-नयैः ;॥	=(सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और जीव-अजीवादि सात तत्वों का) प्रमाण-नयोंसे
अधिगमः ;॥ इति*उक्तम् ;॥	=ज्ञान होता है ऐसा (सूत्र ६ में) कहागया है
प्रमाणम् ;॥ च*केषाञ्चित्*ज्ञानम् ;॥ अभिमतम् ;॥	=और(=च) कितनेककरि प्रमाण ज्ञान माना गया है (अभिमतम्)
केषाञ्चित्*सन्निकर्षः ;॥	=कितनेकके (प्रमाण) सन्निकर्ष (मानागया है) अर्थात् कितनेक मतावलम्बी विषय और इन्द्रियका सम्बन्ध वा व्यापार को प्रमाण मानते हैं

(१) श्रुतपरिचितानुभूता = श्रुतेन परिचिता सा चानुभूता च = श्रुतेन परिचिता सा च अनुभूता च

श्रुतेन ;॥ परिचिता ;॥ सा ;॥ च*अनुभूता ;॥ च* =जो श्रुतकरि जानाजाता है,और अनुभव कियाजाता है सो श्रुतपरिचितानुभूत है

(२) सौगतानाम् =सुगत बुद्धदेवके मानने वालोंके (३) यौगानाम् = योगमतवालोंके

तदन्ते प्राप्यते इति अन्ते क्रियते । तस्य प्रत्यासन्नत्वात्तत्समीपे मन पर्ययग्रहणम् । कुत प्रत्यासत्ति ? । सयमैकाधिकरणत्वात् । तस्य अवधिर्विप्रकृष्टः । कुत ' विप्रकृष्टतरत्वात् ॥

तत् ॥॥ अन्ते ॥ प्राप्यतेT इति* अन्ते ॥ क्रियतेT	=वो (केवलज्ञान) अन्तमें प्राप्त किया जाता है सो इस (सूत्रके) अन्तमें लाया गया है
तस्य ॥॥ प्रत्यासन्नत्वात् ॥॥ तत्-समीपे ॥	=तिस (केवलज्ञान) के निकट उत्पन्न होनेसे उस (केवलज्ञान) के पास में
मन' पर्यय ग्रहणम् ॥॥ कुत'*	=मन' पर्यय (ज्ञान) का ग्रहण है। (प्रश्न) कहासे (= कुत) वा क्योकर (कुतः)
प्रत्यासत्ति ॥ एक -	=(मन. पर्यय ज्ञान केवल ज्ञानके) अति निकट है। केवल (= एक)
सयम-अधिकरणत्वात् ॥॥	=सयमके आश्रयपना से (मन पर्ययज्ञान केवल ज्ञानके अति निकट) है अर्थात् मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये दोनो सयमी मुनिके होते हैं अत. मन' पर्ययज्ञानको सयमकी अपेक्षा से केवल ज्ञानकी निकटता प्राप्त है
तस्य ॥॥ अवधि ॥ विप्रकृष्ट' '।	=तिस (केवलज्ञान) के अवधिज्ञान दूर है (अत' इसको मन' पर्ययज्ञानके समीप कहा)
कुत *	=(प्रश्न केवलज्ञान से अवधिज्ञान) क्योकर (=कुत') (दूर है — उत्तर)
विप्रकृष्टतरत्वात् ॥॥	=क्योकि (केवलज्ञानकी अपेक्षासे) दूरवर्ती (तीनज्ञानो)मेंसे (यह अवधिज्ञान) एक है

(१) केवलज्ञानापेक्षया विप्रकृष्टेषु मतिश्रुतावधिष्वन्यतमत्वात् ॥

केवलज्ञान अपेक्षया ॥ विप्रकृष्टेषु ॥ मति श्रुत	= क्योकि केवलज्ञानकी अपेक्षा से दूरवर्ती मतिज्ञान श्रुतज्ञान
अवधिषु ॥ अन्यतमत्वात् ॥॥	= अवधिज्ञानों मे से (यह अवधिज्ञान एक है)

(२) 'तस्य' = 'केवलज्ञानस्य' के लिये आया है क्योंकि यदि मन पर्ययज्ञानके लिये आता तो वृत्तिकर्ता प्रत्यासत्ति या इसी अर्थ का कोइ शब्द देते

(२) " समीपे " त्रिलिंगी शब्द है यहाँ पर इसको सप्तमी एक वचन पुल्लिंग में या सप्तमी एकवचन नपुंसक लिंग में मान सकते हैं ।

तान्निवृत्यर्थं तादित्युच्यते। तदेव मत्यादि प्रमाणं नान्यदिति॥ अथ सन्निकर्षप्रमाणे सति इन्द्रिये वा को दोषः? यदि सन्निकर्षः प्रमाणं, सूक्ष्मव्यवहिताविप्रकृष्टानामर्थानामग्रहणप्रसंगः। नहि ते इन्द्रियैः सन्निकृष्यन्ते। अतःसर्वज्ञत्वाभावः स्यात्॥ इन्द्रियमपि यदि प्रमाणं, स एव दोषः। अल्पविषयत्वात् चक्षुरादीनां। ज्ञेयस्य चापरिमाणत्वात्। सर्वेन्द्रियसन्निकर्षाभावश्च चक्षुर्मनसोः प्राप्यकारित्वाभावात्।

तद्-निवृत्ति-अर्थम् ;॥ तद्-इति*	=उन (सन्निकर्ष प्रमाण और इन्द्रिय प्रमाणादि) के निषेध के लिये तद् ऐसा शब्द
उच्यते T तद् ;॥ एव मति-आदि ;॥ प्रमाणम् ;॥	=कहागया है। वोही (=एव) मतिज्ञान आदिक ज्ञान प्रमाण है।
न*अन्यत्*इति अथ*सन्निकर्ष-प्रमाणे ;॥ सति ;॥	=दूसरा कोई प्रमाण नहीं है। अथ (=अथ) सन्निकर्ष के प्रमाण होने पर
वा*इन्द्रिये ;॥ कः ;। दोषः ;।? यदि*सन्निकर्षः ;।	=अथवा इन्द्रिय (प्रमाण) मानने में क्या दूषण है? जो (=यदि) सन्निकर्ष
प्रमाणम् ;॥ सूक्ष्म-	=प्रमाण हो तो सूक्ष्मपदार्थ (परमाणु आदिक) निका
व्यवहित-	=अन्तरित वा पहिले (=व्यवहित) पदार्थ (राम-रावणादिकों का)
विप्रकृष्टानाम् ;। अर्थानाम् ;।	=दूरवर्ती पदार्थ (मेरु-पर्वतादिक) निके (सन्निकर्षको प्रमाण माननेमें)
अग्रहण-प्रसङ्गः ;।	=ग्रहण का अवसर नहीं आता है। क्योंकि
ते ;। इन्द्रियैः ;॥ न*हि*	=वे (सूक्ष्म पदार्थ-अन्तरितपदार्थ-दूरवर्ती पदार्थ) इन्द्रियों द्वारा नहीं
सन्निकृष्यन्ते T अतः सर्वज्ञत्व-अभावः ;। स्यात् T	=सन्निकर्ष वा स्पर्श किये जासकते हैं॥ इसलिये सर्वज्ञपना का अभाव होगा (क्योंकि सन्निकर्ष जब प्रमाण होगा, वही प्रमाण सर्वज्ञके मानना पड़ैगा, सन्निकर्ष सूक्ष्म अन्तरित-दूरीवर्ती पदार्थों को जानता नहीं अतः सर्वज्ञभी न जान सकैगा अतः असर्वज्ञत्व हुआ)
इन्द्रियम् ;॥ अपि* प्रमाणम् ;॥	=इन्द्रिय प्रमाण होतो भी (वही असर्वज्ञताका दूषण आता है)
चक्षुष्-आदीनां ;। अल्प-विषयत्वात् ;॥ च ज्ञेयस्य ;॥	=क्योंकि नेत्र आदिका थोड़ा विषय होने (के हेतु)से व-ज्ञानके ग्रहण करने योग्य पदार्थोंका
अपरिमाणत्वात् ;॥ सः ;। एव*दोषः ;।	=अपरिमित होनेसे (वा अनन्त होनेसे) वो (=स) एव (=ही) दोष (असर्वज्ञत्वका) आता है (असर्वज्ञताका दोष होनेके अतिरिक्त यह बात भी कि)
चक्षुष्-मनसोः ;॥ प्राप्यकारित्व-अभावात् ;।	=नेत्र मनके पदार्थोंको प्राप्त होनेके अभावसे(=वस्तुओंके साथ भिड़न न होनेपरभी ग्रहण)
सर्व-इन्द्रिय-सन्निकर्ष-अभावः ;। च*	=समस्त (ही) इन्द्रियों के पदार्थसे स्पर्शन वा सन्निकर्ष भी (=च) नहीं है।

केषांचिदिन्द्रियमिति। अतोऽधिकृतानामेव मत्यादीनां प्रमाणत्वख्यापनार्थमाह-

॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥

तद्वचनं किमर्थं? प्रमाणान्तरपरिकल्पनानिवृत्त्यर्थम्। सन्निकर्षः प्रमाणमिन्द्रियं प्रमाणमिति केचित्कल्पयन्ति

केषांचित्॥ इन्द्रियम्॥ इति॰	=किसीके इन्द्रिय ऐसे (प्रमाण माना गया) है—इस मतका भावार्थ है कि सुगत (बुद्धदेव) के माननेवाले ज्ञानको प्रमाण मानते हैं और योग मत वाले इन्द्रिय और पदार्थका जोडरूप सन्निकर्षको प्रमाण मानते हैं और सांख्य मत वाले इन्द्रियोंको प्रमाण मानते हैं। इत्यादि ज्ञानके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न मतावलम्बियोंकी भिन्न भिन्न अनेक कल्पनायें हैं
अतः॰ अधिकृतानाम्॥	=इस हेतुसे (=अतः) अधिकार कियेगये वा प्रकरणमें लायेगये
मत्यादीनाम्॥ एव॰	=मति श्रुत अवधि मनःपर्ययकेवलज्ञानोंके ही (=एव)
प्रमाणत्वख्यापनार्थम्॥ आह॰	=प्रमाणताकीप्रसिद्धिके लिये कहते हैं कि
	॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥
तत्	=वे (मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान)
प्रमाणे॰	=दो (परोक्ष और प्रत्यक्ष) प्रमाण हैं। उन ज्ञानोंको ही प्रमाण माना है। अर्थात् उपर्युक्त पांच ज्ञान ही दो प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण हैं। अन्य प्रकार नहीं है॥

पदच्छेद और विशेषार्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद॥

तद्वचनम्॥ किमर्थम्॥	=तत् पद (इस प्रकरणमें सूत्रमें) किस लिये है?॥
प्रमाणान्तरपरिकल्पनानिवृत्त्यर्थम्॥	=(इस सूत्रमें तत् पद) दूसरे दूसरे प्रमाणोंकी अनेक कल्पनाओंके निषेध करनेके लिये है
सन्निकर्षः॥ प्रमाणम्॥ इन्द्रियम्॥ प्रमाणम्॥	=सन्निकर्ष प्रमाण (अर्थात् इन्द्रिय और पदार्थोंका मेल) और इन्द्रिय प्रमाण
इति॰ केचित्॰ कल्पयन्ति॰	=ऐसे कितनेक (मतवाले) कल्पना करते हैं

सन्निकर्षे इन्द्रिये वा प्रमाणे सति, अधिगमः फलमर्थान्तरभूतं युज्यते इति तदयुक्तम् ॥ यदि सन्निकर्षः प्रमाणं, अर्थाधिगमः फलं, तस्य द्विष्ठत्वात्तत्फलेनाधिगमेनापि द्विष्ठेन भवितव्यमिति अर्थादीनामप्यधिगमः प्राप्नोति ।

भावार्थ यदि ज्ञानको प्रमाण मानोगे तो उस प्रमाणका कुछ फल नहीं होगा क्योंकि यदि अधिगम फल कहोगे तो ज्ञान-प्रमाण-अधिगम सब एकार्थवाची होनेसे कुछ फल वा लाभ नहीं है और प्रमाणका फल अवश्य होना ही चाहिये

सन्निकर्षे ७। इन्द्रिये ७। वा प्रमाणे ७। सति ७। अधिगमः १। =सन्निकर्ष वा इन्द्रिय के प्रमाण होते संते अर्थका ज्ञान-वस्तु का ज्ञान
फलम् १। अर्थान्तर- =(=अधिगम) (उस प्रमाण का फल है। जो (फल) पदार्थ वा द्रव्यसे भिन्नरूप (=अर्थान्तर)
भूतम् १। युज्यते T इति तद् १। अयुक्तम् १। =हुआ (=भूतम्) ऐसा युक्त-उचित वा ठीक है। वो युक्त नहीं है ॥
यदि* सन्निकर्षः १। प्रमाणम् १। अर्थ-अधिगमः १। =क्योंकि जो सन्निकर्ष प्रमाण हो (और) पदार्थ का ज्ञान (=अधिगम)-
फलम् १। तस्य ६। =(उस सन्निकर्ष का वा ऐसे प्रमाण का) फल हो तो उस (सन्निकर्ष) के
द्विष्ठत्वात् ५। =द्विष्ठपना से अर्थात् इन्द्रिय और स्पर्शे हुये पदार्थ दोनों में तिष्ठने से
तत्-फलेन ३। अधिगमेन ३। अपि* =उस (सन्निकर्ष) का फल पदार्थ का ज्ञान भी
द्विष्ठेन ३। भवितव्यम् १। =प्रमाता और प्रमेय (पदार्थ) दोनों को होना चाहिये (अर्थात् सन्निकर्ष द्विष्ठ होने के कारण प्रमेय को भी पदार्थ का ज्ञान होना चाहिये)
इति* अर्थादीनाम् ६। अपि* अधिगमः १। =ऐसे पदार्थ आदिकों को भी (जो अचेतन हैं) अधिगम वा वस्तु का ज्ञान
प्राप्नोति T =प्राप्त होता है। भावार्थ यह है कि सन्निकर्ष से पदार्थ का ज्ञान होता है और सन्निकर्ष इन्द्रिय और पदार्थ के जोड़ रूप है। तब उक्तपदार्थ का ज्ञान इस इन्द्रिय और पदार्थके जोड़रूपसे हुआ, इस प्रकार सन्निकर्ष वाले पदार्थ को भी अन्य पदार्थ का ज्ञान होना, यह दोपरूप है ॥ क्योंकि जड़ रूप पदार्थ को दूसरे पदार्थ का ज्ञान मानना दोपरूप है अतः सन्निकर्ष प्रमाण नहीं हो सक्ता।

अप्राप्यकारित्व च उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ यदि ज्ञान प्रमाण, फलाभाव । अधिगमो हि फलमिष्टं न भावान्तरम् । स चेत्प्रमाण, न तस्यान्यत्फल भवितुमर्हति । फलवता च प्रमाणेन भवितव्यम् ॥

साराश —इन्द्रियको प्रमाण मानै तो (१) इद्रियोका विषय अल्प और परिमित है । ज्ञेय पदार्थ अनत और अपरमित हैं अत' असर्वज्ञता दोप आता है (२) सन्निकर्षको प्रमाण मानैं तो अतरित-सूक्ष्म दूरवर्ती पदार्थोंका इन्द्रियद्वारा सन्निकर्प न होनेसे असर्वज्ञता दोप आता है (३) नेत्र और मन (पदार्थके साथ) भिडन न होने से नेत्र और मनके साथ सन्निकर्प नहीं बनता ॥

अप्राप्यकारित्व ;॥ च*	=और(नेत्र तथा मनको) अप्राप्यकारित्व (वस्तुओके साथ भिडन न होनेमें भी ग्रहण)
उत्तरत्र* वक्ष्यते T	=आगे (उन्नीसवा सूत्र " न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्" में) कहा जायगा
यदि* ज्ञान ;॥ प्रमाणं ;॥ फल-अभाव' ;। हि*	=(प्रश्न) जो ज्ञान प्रमाण होगा तो फलका अस्तित्व नहीं होगा क्योकि =हि)
अधिगम ;। फलम् ;॥ इष्ट ;॥ न*	=ज्ञान वा अधिगम ही प्रमाणका फल है नकि
भावान्तरम् ;॥ स ;। चेत्* प्रमाण ;॥	=अन्यवस्तु भावान्तर (वाछित फल) है यदि (=चेत्) अधिगम (=स.) प्रमाण हो तो
तस्य ॰। अन्यत्* फलम् ;॥ भवितुम्-न अर्हति T	=तिस (अधिगम) का दूसरा फल होनेको (=भवितुम्) समर्थ नहीं है
फलवता ;॥ च* प्रमाणेन ;॥ भवितव्यम् ;॥	=(अधिगमका अन्यफल नही हो सक्ता है) और प्रमाण फलसहित होना चाहिये-

---

(१) न चक्षुर निन्द्रियाभ्यामिति सूत्र व्याख्यानावसरे ॥ =(व्यञ्जनस्य अवग्रह) न चक्षुस् अनिन्द्रियाभ्याम् इति सूत्र-व्याख्यान अवसरे

(व्यञ्जनस्य ;॥ अवग्रह ;।) चक्षुस्— =(अप्रगटरूप शब्दादिक पदार्थोंका अवग्रहरूप ज्ञान) नेत्र और

अनिन्द्रियाभ्याम् ;॥ न* =मनसे नहीं होता है । इसलिये उनका ईहा आवाय धारणारूप ज्ञान भी नहीं हो सक्ता है क्योंकि जिस पदार्थका अवग्रह नहीं होता है उसके ईहादि भी नहीं होते हैं

अन्य (चार स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र) इन्द्रियोंसे व्यजन (अप्रगटरूप वस्तुओं) का केवल मात्र अवग्रहरूप ज्ञान ही होता है । ईहा आवाय धारणनहीं होता है ।

इति* सूत्र व्याख्यान अवसरे ;। =इस प्रकार (उपयुक्त) सूत्रके अवसर पर " अप्राप्यकारित्वे " कहा है ॥

ननु, चोक्तं, ज्ञाने प्रमाणे सति फलाभावः इति । नैप दोपः । अर्थाधिगमे प्रीतिदर्शनात् । ज्ञस्वभावस्यात्मनः कर्ममलीमसस्य करणालम्बनादार्थनिश्चये प्रीतिरुपजायते । सा फलमित्युच्यते । उपेक्षा अज्ञाननाशो वा फलम् ॥ रागद्वेषयोरप्रणिधानमुपेक्षा । अन्धकारकल्पाज्ञानाभावः अज्ञाननाशो वा फलमित्युच्यते ॥ प्रमिणोति प्रमीयतेऽनेन

ननु*च*उक्तम् ;॥ =पुनः प्रश्न कहा जाचुका है कि (अर्थात् शंकाकार कहता है कि मैं कहचुका हूं कि)

ज्ञाने ;॥ प्रमाणे ;॥ सति ;॥ फल-अभावः ;। इति* =ज्ञानको प्रमाण होने पर फलका अभाव होगा अर्थात् शंकाकार कहता है कि मैं पहले कह चुका हूं कि ज्ञान को प्रमाण मानने में उसका कुछ भी फल न होगा (उत्तर)

एपः ;। दोपः ;। न* अर्थ-अधिगमे ;। प्रीति-दर्शनात् ;॥ =यह दूपण नहीं है क्योंकि पदार्थ के ज्ञानमें प्रीति उपजती है। (अर्थात्) पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होने पर आनन्द(=प्रीति)और सन्तोप(=प्रीति)होता है यह आनन्द, संतोपही फलहै।

ज्ञ-स्वभावस्य ;। कर्ममलीमसस्य ;। आत्मनः ;। करण- =ज्ञान स्वभाववाले कर्मकरि मलीन चेतनके इन्द्रियों के

आलम्बनात् ;। अर्थनिश्चये ;। प्रीतिः ;॥ उपजायते T =अवलम्बन वा आश्रयसे वस्तुके ज्ञानमें प्रीति उपजती है ॥

सा ;॥ फलम् ;॥ इति*उच्यते T । उपेक्षा ;॥ =सो (यह प्रीति उस प्रमाणका) फल है ऐसा कहा गया है। मध्यस्थ भाव (=उपेक्षा)

अज्ञान-नाशः ;। वा * =और (=वा) अज्ञानका लोप, अज्ञान का नाश (उस प्रमाणका क्रमसे दूसरा तीसरा)

फलम् ;॥ =फल वा परिणाम है। (उपेक्षा और अज्ञाननाशका विवरण नीचेकी पंक्तियों में ऐसेहै)

राग-द्वेपयोः ;। अप्रणिधानम् ;॥ उपेक्षा ;॥ =रागद्वेप में प्रयत्न रहित मध्यस्थ स्वभावका वा उदासीन होना सो उपेक्षा है।

अन्धकार-कल्पा ;॥ =अन्धकार की प्रलय (=कल्पा अर्थात् अज्ञानका विलाना) अज्ञानका न होना

अज्ञान-अभावः ;। अज्ञान नाशः ;। वा* =अज्ञानका ध्वंस, अज्ञानका मिटजाना वा अज्ञानकी शून्यता

फलम् ;॥ इति*उच्यते T =(प्रमाण का तीसरा) फल ऐसे कहागया है।

सारांश इस सबका यह है किप्रीति-उपेक्षा-अज्ञानका नाश ये तीन प्रमाण के फल हैं।

प्रमिणोति T प्रमाणम् ;॥ =(पदार्थ का) सच्चा ज्ञान करता है सो प्रमाण है (कर्तरि प्रयोग वा कर्तृ साधन है)

प्रमीयते T अनेन ;॥ प्रमाण ;॥ =जिससे सच्चाज्ञान (वस्तुओं का) किया जाता है सो प्रमाण है। (यहां पर कर्मणि प्रयोग वा करण साधन हुआ)

आत्मनश्चेतनत्वात्तत्रैव समवाय इति चेन्न । ज्ञस्वभावाभावे सर्वेषामचेतनत्वात् । ज्ञस्वभावाभ्युपगमे वा आत्मन । स्वमतविरोध स्यात् ॥

	(ऊपर यह सिद्ध किया है कि सन्निकर्षको प्रमाण माननेमें अन्य अचेतन पदार्थ के भी अर्थ का ज्ञान आता है इसके प्रत्युत्तरमें अन्यवादी कहता है कि)
आत्मनः ६। चेतनत्वात् ५। तत्र* एव• समवाय' १।	= आत्माको चेतन होनेसे वहा (आत्मामें) ही ज्ञानका) नित्यसम्बन्ध (=समवाय) है (अन्य जड पदार्थ के वस्तुका ज्ञान नहीं होता है)
इति॰ चेत्॰ न•	=ऐसी युक्ति देने पर (=चेत्) (उत्तरमें कहते हैं कि यह तुम्हारी युक्ति ठीक) नहीं
ज्ञ-स्वभाव-अभावे ७। सर्वेषाम् ६।	=क्योंकि (आत्माके) ज्ञानस्वरूपताका अभाव होनेमें सब (आत्मा और अन्य पदार्थों) को
अचेतनत्वात् ५।।। वा॰ आत्मन' ६। ज्ञस्वभाव-	=जडता (समानरूपसे आजाती) है । और (=वा) आत्माके ज्ञानस्वरूपत्व
अभ्युपगमे ७। स्व-	=मानने पर आप के (अर्थात् नैयायिकोंके)
मतविरध' १। स्यात् T	=सिद्धान्तका (कि गुण गुणीसे भिन्न है) विरोध हो जावैगा ॥

(१) नैयायिक लोग कहते हैं कि आत्मा चेतन होनेसे उसमें ज्ञानका नित्य सबध वा समवाय रहता है इसलिये आत्माके अतिरिक्त जड़ पदार्थके ज्ञानका प्रसग नहीं आसक्ता परतु यह कथन उनका ठीक नहीं है क्योंकि उनके सिद्धान्त (मत)मे किसी पदार्थको स्वय ज्ञानरूपता नहीं मानी है ऐसी अवस्थामें सब पदार्थ अचेतन ही ठहरते हैं तब आत्मामेंही ज्ञानका समवाय किस प्रकार कहा जा सक्ता है । यदि नैयायिक लोग आत्माको ज्ञानस्वरूप मानेंगे तो स्वय उनके सिद्धान्त का (कि गुण सदैव गुणीसे भिन्न रहते हैं) व्याघात (नाश) हो जावेगा । क्योंकि आत्माको यहांपर उन्होंने स्वय ज्ञान गुणसे अभिन्न अङ्गीकार कर लिया है ॥ योग=साख्य अर्थात् साख्यमतवाले ॥ योग=नैयायिक (मतवाले) ॥

तदभावाद्व्यवहारलोपः स्यात् ॥ वक्ष्यमाणभेदापेक्षया द्विवचननिर्देशः । वक्ष्यते हि "आद्येपरोक्षं प्रत्यक्षमन्यदिति" स च द्विवचननिर्देशः प्रमाणान्तरसंख्यानिवृत्त्यर्थः ॥

तद्-अभावात् ५।१ व्यवहारलोपः १।१	=उस (स्मृति) की शून्यतासे व्यवहार वा लोक की प्रवृत्ति वा लोकाचारका अभाव
स्यात् T	=होगा (अतः प्रमाणको अपना प्रकाशक और अन्यका प्रकाशक मानना योग्य है)
वक्ष्यमाण-भेद-अपेक्षया ३।१ द्वि-वचन-	=आगे कहेजाने वाले (प्रमाणके) भेदोंकी विवक्षासे ("प्रमाणे" ऐसा) दो वचनका
निर्देशः १।१ हि* वक्ष्यते T	=उच्चारण वा उपदेश है। क्योंकि (=हि) (अग्रिमसूत्र दशवें ग्यारहवेंमें) कहेंगे
आद्ये १।२ परोक्षम १।१ अन्यत् १।१ इति	=कि पहिले दो =आद्ये-(मतिज्ञान श्रुतज्ञान) परोक्ष (प्रमाण) है। अन्य वा बचेहुये
प्रत्यक्षम् १।१	=प्रत्यक्ष प्रमाण (तीन अवधिज्ञान-मनः पर्ययज्ञान-केवलज्ञान) है ॥
सः १।१ च* द्वि-वचन-	=और (=च) वो (प्रमाणे शब्दका नवमें सूत्रमें प्रथमा विभक्ति) दो वचनमें
निर्देशः १।१ प्रमाणान्तर-	=उपदेश वा उच्चारण ज्ञानकी भिन्न (भिन्न) (=प्रमाणान्तर)
संख्या-	=गणना (एक-दो तीन-चार-छह आदि अन्य मतावलम्बियों स्वीकृत प्रमाणोंके)
निवृत्ति-अर्थः १।१	=निषेधके लिये भी है अर्थात् इस नवमें सूत्रमें "प्रमाणे" शब्द दोवचनमें (१) दशवांसूत्र आगे परोक्षमूके आद्ये (शब्द जो दो वचनमें है उस)के लिये है (२)अन्यवादियोंके कल्पेहुये वा मानेहुये एकदो तीन, चार, छह इत्यादिक प्रमाणों की संख्याके निराकरणके लिये है

(१) "चार्वाक तौ एक प्रत्यक्ष प्रमाण ही माने है। बहुरि बौद्ध और वैशेषिक प्रत्यक्ष अनुमान ये दोय प्रमाण माने है सांख्य प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम तीन मानते हैं बहुरि नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान ऐसैं च्यारि प्रमाण माने है। बहुरि मीमांसक च्यारि तौए अरु अर्थापत्ति अभाव, ऐसे छह प्रमाण माने है। सो प्रत्यक्ष परोक्ष ए दोय संख्या कहने तें ए सर्व प्रमाण इनिमें गर्भित होय है" पं० जयचंदजी वचनिका मुद्रित पृष्ठ १२८

प्रमितिमात्रं वा प्रमाणम् ॥ किमनेन प्रमीयते ? जीवादिरर्थः ॥ यदि जीवादेरधिगमे प्रमाणं, प्रमाणाधिगमे अन्यत्प्रमाणं परिकल्पयितव्यम् । तथा सत्यनवस्था । नानवस्था । प्रदीपवत् ॥ यथा घटादीनां प्रकाशने प्रदीपो हेतुः, तत्स्वरूपप्रकाशनेऽपि स एव, न प्रकाशान्तरमस्य मृग्यं, तथा प्रमाणमपीति अवश्यं चैतदभ्युपगन्तव्यम् ॥ प्रमेयवत्प्रमाणस्य प्रमाणान्तरपरिकल्पनायां स्वाधिगमाभावात् स्मृत्यभावः ।

वा॥ प्रमितिमात्रम् १॥। प्रमाणम् १॥।	=अथवा (पदार्थका) सच्चा ज्ञान मात्र ही प्रमाण है (यहां भावप्रयोग वा भावसाधन वा क्रिया साधन हुआ)
किम् १॥। अनेन ३॥। प्रमीयते T जीव-आदिः १। अर्थः १।	=इस (प्रमाण) करि क्या ज्ञान कराया जाता है। (उत्तर) जीवादि पदार्थ (जाने जाते हैं)
यदि॥ जीव आदे ६। अधिगमे७ प्रमाणम्१॥। प्रमाण-	=यदि जीवादिक (पदार्थ) के ज्ञान (कराने) में प्रमाण (हेतु) है तो प्रमाणके
अधिगमे७। अन्यत्१॥। प्रमाणम्१॥। परिकल्पयितव्यम्१॥।	=ज्ञान (कराने) में भिन्न प्रमाण कल्पना करना चाहिये
तथा॰ सति७। अनवस्था१।	=तिस प्रकार (=तथा) होने पर अवस्थाका अभाव होगा (अर्थात् अनवस्था दोष आवेगा)
न॥ अनवस्था१।	=(अथवा पूर्वोक्त तर्कका अन्त न होगा) (उत्तर) अनवस्था (दोष) न होगा
प्रदीपवत्॰ यथा॥ घट-आदीनाम्६।	=(क्योंकि) दीपक (के प्रकाश) के समान (अवस्था) है (अर्थात) जैसे घटादिकके
प्रकाशने ७। प्रदीप १। हेतु १। तत्-स्वरूप प्रकाशने ७।	=प्रकाश करने में दीपक (=प्रदीप) कारण है उस (दीपक) के रूप प्रकाशने में
अपि॰ स १। एव॰ अस्य ६।	=भी वह (दीपक) ही (कारण) है। इस (दीपक) के (=अस्य) (प्रकाशके लिये)
प्रकाशान्तरम् १॥। न॰ मृग्यम् १॥।	=अन्य प्रकाश (=प्रकाशान्तर) नहीं अन्वेषण किया जाता है (=न मृग्यम्)
च॰ तथा॥ एतद् १॥। प्रमाणम् १॥। अपि अवश्यम् १॥।	=और (=च) वैसेही (=तथा) यह (=एतद्) प्रमाण भी अवश्य
अभ्युपगन्तव्यम् १॥। इति प्रमेय-	=(स्व परस्वरूपका प्रकाशक) मानना योग्य है। यदि प्रमेय(=सामान्य विशेषात्मकवस्तु)
वत्॥ प्रमाणस्य ६॥। प्रमाणान्तर परिकल्पनायाम्७॥	=सदृश प्रमाण को अन्य प्रमाणकी (=प्रमाणान्तर) कल्पना करने पर
स्व अधिगम अभावात् ५। स्मृति-अभाव १।	=(प्रमाणकी) अपना (स्वरूपके) जाननेके अभावसे स्मरणका अभाव होजावैगा ॥३३५

आर्हं

॥ आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आदिशब्दः प्राथम्य (प्रथम) वचनः । आदौ भवमाद्यम् ॥ कथं द्वयोः प्रथमत्वं ?

(अर्थात् बौद्ध और वैशेषिक पृत्यक्ष तथा अनुमान ऐसे दो प्रमाण मानते हैं उनके निषेधार्थ तथा अपने माने हुये दो प्रमाण समर्थन करने के लिये)

आह T =कहते हैं कि

आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आद्यम् च आद्यम् च आद्ये मतिश्रुते ज्ञाने परोक्षम् प्रमाणम् भवतः

आद्यम् १।।। च॰ आद्यम् १।।। च॰ =(पांच ज्ञानों में) आदि में जो हो तथा प्रारम्भ में जो हों वे

आद्ये १।।। मति-श्रुते १।।। ज्ञाने १।।। =दो आदि वाले (=आद्ये) अथवा पहिले दो (=आद्ये) मतिज्ञान श्रुतज्ञान

परोक्षम् १।।। प्रमाणम् १।।। भवतः T =परोक्ष (इन्द्रिय मन तथा परका उपदेश प्रकाशआदि जन्य) प्रमाण हैं अर्थात् वह मतिज्ञान नेत्र आदि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय मन इनसे उत्पन्न होता है। वह आत्मा से भिन्न निमित्त की अपेक्षा रखता है अतः परोक्ष है और मति पूर्वक होनेसे तथा परोपदेश जन्य होनेसे श्रुतज्ञान भी परोक्ष ही है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

आदिशब्दः १। प्राथम्य-वचनः १। आदौ ७। =(इस सूत्र में) आदिशब्द पहिलेका (=प्राथम्य) वाचक है। आरम्भ में (=आदौ)

भवम्१।।। आद्यम्१।।। कथम्॰ द्वयोः १।।। प्रथमत्वम् =हुआ है सो आद्य है। दोके आदिपना (=प्रथमत्व) कैसे है अर्थात् आदि प्रथम वा पहिला ये शब्द आरम्भ को प्रगट करते हैं और एकही वस्तु को (बहुतों में से) प्रथम वा पहिली कह सक्ते हैं यहां आद्ये दो वचन में लाये हैं तो दो वस्तुओं के प्रथमपना कैसे आसक्ता है। सारांश—पांच ज्ञान नवमें सूत्रमें कहे हैं आद्य वचन में मतिज्ञान आसक्ता है श्रुतज्ञान भी कैसे आगया ॥

(१) इस सूत्रका दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय दोनों में पाठ और अर्थ एक सा है ॥

उपमानार्थापत्त्यादीनामत्रैवान्तर्भावादुक्तस्य पञ्चविधस्य ज्ञानस्य प्रमाणद्वयान्तःपातित्वे प्रतिपादिते प्रत्यक्षानुमानादिप्रमाणद्वयकल्पनानिवृत्त्यर्थमाह—

उपमान-अर्थापत्ति— =क्योंकि उपमान (=सादृश्यज्ञान) अर्थापत्ति अर्थात् न कहे गये अर्थको समझना (जैसे देवदत्त जीता है पर घरमें नहीं, तो समझ सक्ते हैं बाहर अवश्य है)

आदीनाम् ६। अत्र * एव * अन्तरभावात् ५। =आदिका यहां (अर्थात् तत्प्रमाणे—आद्येपरोक्ष प्रत्यक्षमन्यत्में) ही गर्भित हैं

उक्तस्य ६। पञ्च विधस्य ६। ज्ञानस्य ६। प्रमाणद्वय =कहे हुए पांच प्रकारके ज्ञानका दो प्रमाणमें

अन्तःपातित्वे ७। प्रतिपादिते ७। प्रत्यक्ष-अनुमानादि =गर्भित (=अन्तःपातित्वे) कहनेमें (=प्रतिपादिते) प्रत्यक्ष और अनुमानादि

प्रमाणद्वय-कल्पना-निवृत्ति अर्थम् २। =(अन्य प्रकारके) दो प्रमाणोंकी कल्पनाके निषेधके लिये

प्रत्यक्ष चानुमानं च शाब्दं चोपमया सह। अर्थापत्तिरभावश्च षट् प्रमाणानि जैमिने ॥ जैमिने षट् प्रमाणानि चत्वारि न्यायवादिनः। सांख्यस्य त्रीणि वाच्यानि द्वे वैशेषिक बौद्धयो ॥ २ ॥ इत्यप्यधिकः पाठः तालपत्रपुस्तके वर्तते ॥ (=च

प्रत्यक्षम् १। च अनुमानम् १। च शाब्दम् १। च =प्रत्यक्षप्रमाण और (=च) अनुमानप्रमाण और (=च) आगम या शाब्दप्रमाण और

उपमया ३। सह *अर्थापत्ति १। =उपमान प्रमाण सहित, (और) अर्थापत्ति प्रमाण (=न कहे गये अर्थका समझने वाला)

च * अभाव १। षट् १। प्रमाणानि १। जैमिने ६। =और (=च) अभाव प्रमाण छह प्रमाण जैमिनी मुनि (पूर्वमीमांसा के रचक) के हैं

जैमिने ६। षट् १। =जैमिनीमुनि के छह (प्रत्यक्ष अनुमान आगम-उपमान-अर्थापत्ति-अभाव)

प्रमाणानि १। चत्वारि १। =प्रमाण हैं। चार (प्रत्यक्ष अनुमान आगम उपमान) प्रमाण

न्यायवादिन ६। सांख्यस्य ६। =न्यायवादी (गौतममुनि के न्याय शास्त्रके मानने वाले) के हैं। सांख्य अर्थात्

त्रीणि १। =(कपिलमुनि के दर्शनशास्त्रके मानने वालेके) तीन (प्रत्यक्ष अनुमान-आगम)

वाच्यानि १। द्वे १। कहे हैं। दो (प्रत्यक्ष और अनुमान) दो (प्रत्यक्ष और अनुमान)

वैशेषिक-बौद्धयो ६। =वैशेषिक (कणादमुनि के बनाये हुये शास्त्रके मानने वाले) के और बौद्ध के हैं ॥

इति* अपि* अधिक १। पाठ १। तालपत्रपुस्तके ७। वर्तते = ऐसा भी अधिक पाठ ताड वृक्ष के पृष्ठों की (से बनी हुइ) पुस्तक में वर्तता है ॥

मति ज्ञानमिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमिति वक्ष्यते श्रुतमनिन्द्रियस्येति च। अतः पराणीन्द्रियाणि मनश्च प्रकाशोपदेशादि च बाह्यनिमित्तं प्रतीत्य तदावरणकर्मक्षयोपशमापेक्षस्यात्मन उत्पद्यमानं मतिश्रुतं परोक्षमित्याख्यायते। अत उपमानागमादीनामत्रैवान्तर्भावः ॥

मतिज्ञानम् १।१॥ इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम् १।१॥	= मतिज्ञान (बाह्यमें पांच) इन्द्रिय (और) मन जन्य, निमित्तक वा कारणक है अर्थात मतिज्ञान पांच इन्द्रिय और अंतःकरण छह बाह्य निमितोंसे उत्पन्न होता है
इति* वक्ष्यते T च* श्रुतम् १।१॥	= ऐसा (तदिन्द्रियानिन्द्रिय निमित्तम। चौदहवां सूत्रमें) कहैंगे। और श्रुतज्ञान
अनिन्द्रियस्य ६।१॥ (अर्थः १।१)	= मनका विषय वा अर्थ है अर्थात् श्रुतज्ञान मनसे उत्पन्न होता है
इति*	= ऐसा (दूसरे अध्यायके इक्कीसवांसूत्र "श्रुतमनिन्द्रियस्य" में कहैंगे)
अतः* पराणि १।३॥ इन्द्रियाणि १।३॥ च* मनस् १।१॥	= इस हेतुसे (=अतः) पर (जे पांचों) इन्द्रियें और (=च) मन (=अंतःकरण)
च* प्रकाश-उपदेशादि १।१॥ बाह्यनिमित्तम् २।१॥	= और (=च) प्रकाश उपदेशादिक बाहिरके कारणको
प्रतीत्य – तद्-आवरण-कर्म-	= सहाय लेकर (=प्रतीत्य) उन (मतिज्ञान और श्रुतज्ञान) के ढकने वाले कर्मके
क्षयोपशम-अपेक्षस्य ६।१ आत्मनः ६ उत्पद्यमानम् १।१॥	= क्षयोपशम संयुक्त (=अपेक्षस्य) जीवके उत्पन्न हुये
मतिश्रुतम् १।१॥ परोक्षम् १।१॥ इति* आख्यायते T	= मतिश्रुतज्ञान परोक्ष हैं ऐसा कहा गया है अर्थात् जीवकें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान उत्पन्न होनेकेलिये बहिरंग कारण इन्द्रियें-मन-प्रकाश और पर उपदेशादिक हैं इससे इन दोनों ज्ञानोंको परोक्ष कहते हैं और अंतरंग कारण इनदोनों ज्ञानोंके उत्पन्न होनेका आत्माकें मतिज्ञानावरणीय और श्रुतज्ञानावरणीय कर्मोंका क्षयोपशम ही है ॥ (प्रतीत्य=सम्बन्ध सूचक भूतकृदन्त है)।
अतः* उपमान-आगम-आदीनाम् ६।३॥ अन्तर्भावः १।१	= इसलिये उपमानप्रमाण, आगम (=शाब्द) प्रमाण आदिका गर्भित होना
अत्र* एव*	= इस(परोक्षज्ञान) में ही (=एव) है (अन्योंके मानेहुये प्रमाण इनमें गर्भित हैं) ॥

मुख्योपचारपरिकल्पनया । मतिज्ञान तावन्मुख्यकल्पनया प्रथमम् । श्रुतमपि तस्य प्रत्यासत्त्या प्रथममित्युपचर्यते । द्विवचननिर्देशसामर्थ्याद्गौणस्यापि ग्रहणम् । आद्य च आद्य च आद्ये मतिश्रुत इत्यर्थ । तदुभयमपि परोक्ष प्रमाणमित्यभिसम्बध्यते ॥ कुतोऽस्य परोक्षत्व ? परायत्तत्वात् ॥

मुख्य-उपचार-परिकल्पनया ३॥	=मुख्य उपचार वा व्यवहारके मानलेनेसे (दोनो के आदिपना कहा है क्योकि)
मतिज्ञानम् १॥ तावत्*मुख्य-कल्पनया ३॥ प्रथमम् १॥	=मतिज्ञान तो (=तावत) प्रधान माने जानेसे आदिमें व प्रथम है
श्रुतम् १॥ अपि*तस्य ६॥ प्रत्यासत्त्या ३॥ प्रथमम् इति	=श्रुतज्ञान भी उस (मति ज्ञान) के अतिनिकट होनेसे प्रथम ऐसा
उपचर्यते T	=मानलियागया है । उपचार कियागया है अर्थात् उपचारसे प्रथम कहा है
द्वि-वचन निर्देश-सामर्थ्यात् ५॥ गौणस्य ६॥ अपि	=दो वचनके निरूपण वा उच्चारणकी शक्तिसे अप्रधान (श्रुतज्ञान) का भी
ग्रहणम् १॥	=ग्रहण है । (सूत्रमें आद्ये वाक्यका समास यह है कि)
आद्यम् १॥ च* आद्यम् १॥ च* आद्ये १॥	=आदि में जो हो और (=च) आरम्भ में जोहो सो दो आदिमें आनेवाले (- आद्ये)
मति श्रुत १॥ इति* अर्थ १।	=मतिज्ञान-श्रुतज्ञान हैं ऐसा अभिप्राय है । (आद्य च आद्य च वाक्यमें पहिला च संस्कृतकी बोलचाल के लिये आया है । अत इस च का अनुवाद नही हो सक्ता)
तद्-उभयम् १॥ अपि*परोक्षम् १॥ प्रमाणम् १॥	=वे (मति-श्रुत) दोनो ही परोक्ष प्रमाण है
इति अभिसम्बध्यते T	=ऐसा सम्बन्ध कियागया है (तब सूत्र मतिज्ञान परोक्ष श्रुतज्ञान परोक्ष च है)
कुत *अस्य ६॥ परोक्षत्वम् १॥	=(प्रश्न) इस मतिज्ञान वा श्रुतज्ञान) के परोक्षपना क्योकर (=कुत.) है
पर आयत्तत्वात् ५॥	=अन्यके आधीनपना वा वशीभूतपना से (मति श्रुतज्ञानो के परोक्षपना है)

(१) कैयट का मत है कि उभय का द्विवचन नहीं होता है किन्तु प० हरदत्त और पूज्यपाद स्वामी के मत मे दो वचन होता है ।

(२) पर अपेक्षत्वात् ५॥ इति*अपि*पाठ अ तरम् १॥ =पर अपेक्षत्वात् (=अन्यकी आवश्यकता से) ऐसा भी अन्य वा भिन्न पाठ है

अवधिदर्शनं केवलदर्शनमपि अक्षमेव प्रतिनियतमतस्तस्यापि ग्रहणं प्राप्नोति । नैष दोषः । ज्ञानमित्यनुवर्तते, तेन दर्शनस्य व्युदासः । एवमपि विभंगज्ञानमपि प्रतिनियतमतोऽस्यापि ग्रहणं प्राप्नोति । सम्यगित्याधिकारात्। ततस्तन्निवृत्तिः ॥ सम्यगित्यनुवर्तते, तेन ज्ञानं विशिष्यते,

---

	अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान तो विकल (=अधूरा-अपूरा) प्रत्यक्ष हैं और केवल ज्ञान सकल (सम्पूर्ण) प्रत्यक्ष है ॥
अवधिदर्शनम् ;।।। केवलदर्शनम् ;।।। अपि अक्षम् ;।।।	=(प्रश्न) अवधिदर्शन (और) केवलदर्शन भी (=अपि) आत्मा (=अक्षम्)
एव* प्रतिनियतम् ;।।। अतः *	=ही जनित वा आश्रित (=प्रतिनियत) वा व्यवस्थित (=प्रतिनियत) है इसलिये
तस्य ;।।। अपि* ग्रहणम ;।।। प्राप्नोति T	=तिस (अवधिदर्शन-केवलदर्शन) का भी ग्रहण प्राप्त होता है (अर्थात् अवधिदर्शन और केवलदर्शन भी प्रमाण ठहरेंगे ऐसा प्रश्न है)
न* ष ;। दोषः ;। ज्ञानम् ;।।। इति अनुवर्तते T	=(उत्तर) यह दोष नहीं है । (क्योंकि इस सूत्र में) ज्ञान ऐसा अधिकार-प्रकरण है
तेन ;।।। दर्शनस्य ;।।। व्युदासः ;।	=तिस (ज्ञानके अनुवर्तनसे) दर्शन का निराकरण वा निवारण है अर्थात् यहां ज्ञान का प्रकरण होनेके हेतुसे ज्ञानका ग्रहण किया है दर्शन का निषेध है
एवम्* अपि विभङ्ग ज्ञानम् ;।।। अपि प्रतिनियतम् ;।।।	=(प्रश्न) ऐसाही (=अपि) कुअवधिज्ञान भी (=अपि) व्यवस्थित वा (आत्माके) आश्रित है
अतः* अस्य ;।।। अपि* ग्रहणम् ;।।। प्राप्नोत्ति T	=इस लिये इस (कुअवधिज्ञान) का भी प्रसंग वा ग्रहण प्राप्त होता है अर्थात् प्रश्न का आशय यह है कि यदि ज्ञान का प्रकरण है तो तो कुअवधिज्ञानको भी यहां ग्रहण करके प्रत्यक्ष प्रमाण कहना चाहिये क्योंकि कुअवधिज्ञान भी आत्मासे विना किसी इन्द्रिय-मन-प्रकाश और पर उपदेशादिक द्वारा उत्पन्न होता है
सम्यक् ;।।। इति* आधिकारात् ;।।। ततम्* तत्-निवृत्तिः ;।।	=(उत्तर) सम्यक् (प्रशस्त) ऐसा प्रकरण होनेसे वहां (=ततः) उस (विभंगज्ञान) का =निषेध है ॥
सम्यक् ;।।। इति* अनुवर्तते T	सम्यक् ऐसा (पद) अनुवर्तना है उपस्थित है
तेन ;।।। ज्ञानम् ;।।। विशिष्यते T	=तिस (सम्यक् पदकी अनुवृत्ति) से ज्ञान विशेषित किया गया है

अभिहितलक्षणात्परोक्षादितरस्य सर्वस्य प्रत्यक्षत्वप्रतिपादनार्थमाह-

॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा । तमेव प्राप्तक्षयोपशम प्रक्षीणावरण वा प्रतिनियत प्रत्यक्षम् ॥

अभिहित-लक्षणात ५॥। परोक्षात ५॥। इतरस्य ६॥। =कथित वा कहे हुये (=अभिहित) लक्षण सहित परोक्ष (ज्ञान) से अन्य

सर्वस्य ६॥। प्रत्यक्षत्व प्रतिपादन अर्थम् २॥। आह T =सब (ज्ञान) के प्रत्यक्षपना के कहने के लिये (आचार्य) कहते हैं कि

प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥

पदच्छेद और सूत्रार्थ -अन्यत् १॥। =(मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से) भिन्न अथवा अवशेष (=अन्यत्)

प्रत्यक्षम् १॥ =(अवधिज्ञान मन' पर्ययज्ञान और केवलज्ञान) प्रत्यक्ष प्रमाण है अर्थात् आत्मा के ही आश्रय से विन (=बिना) मन और किसी इन्द्रिय की सहायता से उत्पन्न होवे हैं । अत' ये तीनों ज्ञान अतीन्द्रिय ह । उक्त तीनो ज्ञानोंमें से अवधिज्ञान और मन' पर्ययज्ञान तो परिमित वस्तु विषय करने से विकल (=सीमावद्ध) पृत्यक्ष है और केवलज्ञान समस्त द्रव्य व पर्यायको ग्रहण करने से सकल (सम्पूर्ण) पृत्यक्ष पृमाण है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद ॥

अक्ष्णोति T व्याप्नोति T जानाति T =पहचानता है वा बोध करता है (अक्ष्णोति) व्याप्त होता है जानता है ।

इति*अक्ष' १। आत्मा १। प्राप्त-क्षयोपशमम् १। वा =ऐसा अक्ष (अर्थात्) आत्मा है वा चेतन है । कर्मका क्षयोपशम प्राप्त अथवा

प्रक्षीण-आवरणम् १। तम् २। एव* =कर्मके आवरण के नाश प्राप्त तिस (आत्मा) के ही (=एव)

प्रतिनियतम् १। प्रत्यक्षम् १॥। =आश्रय से (बिना किसी अन्य की सहायता लिये हुये) उत्पन्न हो सो प्रत्यक्ष है अर्थात् कर्मके क्षयोपशम और क्षय के अनुसार बिना किसी इन्द्रिय, मन, प्रकाश, पर उपदेशादिक की सहायता लिये हुये आत्मा के आश्रय से ही उत्पन्न हो और विशेष रूप से पदार्थों को जाने वे प्रत्यक्ष (अवधि मनः पर्यय-केवलज्ञान) है। उनमें

ज्ञानस्य सर्वज्ञत्वाभावएव

ज्ञानस्य ६॥। सर्वज्ञत्व-अभावः १। एव *	=ज्ञानके सर्वज्ञपनाका लोप ही [=एव] आता है अर्थात् यदि मनजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष माना जाय तो भी सर्वज्ञपना नहीं बनता है [निम्नटिप्पणीमें विशेष है]

---

(१) युगपत् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गमिति परैरभ्युपगमात्सर्ववस्तुषु युगपन्मनः प्रणिधानं न घटते। ततः सर्वज्ञत्वाभावः। एकं ज्ञानमनेकार्थं न जानातीति । प्रतिज्ञासद्भावाच्च क्रमेण सर्ववस्तुज्ञानं च न घटते। वस्तूनामानन्त्यादेकवस्तु परिज्ञानावसरे अन्यवस्तुपरिज्ञानाभावाच्च सर्वज्ञत्वाभावः सुघटः ॥

युगपत् * ज्ञान-अनुत्पत्तिः १॥	=एक बार ही व एक साथ (=युगपत्) ज्ञानका सम्बन्ध वा सङ्गत न होना
मनसः ६॥ लिङ्गम् १॥ इति परैः ३। अभि-उपगमात् ५।	=मनका लक्षण ऐसा है। दूसरों करि मानने से
सर्व-वस्तुषु ७॥ युगपत् * मनस्-प्रणिधानम् १॥	=समस्त पदार्थों में एक साथ मनका चिंतवन वा उद्योग वा व्यापार
न घटते T	=नहीं बनता है अर्थात् अन्यमतके सिद्धान्त अनुसार भी मन सर्व पदार्थों को एक साथ ग्रहण नहीं कर सकता है।
ततः सर्वज्ञत्व-अभावः १। एकम् १॥ ज्ञानम् १॥ अनेक-	=तिससे सर्वज्ञपने का अभाव है। (और) एक ज्ञान अनेक वा नाना
अर्थम् २। न जानाति T इति प्रतिज्ञा-सद्भावात् ५।	=पदार्थों को नहीं जानता है। ऐसी प्रतिज्ञा की विद्यमानता से अर्थात्
क्रमेण ३ सर्ववस्तुज्ञानम् १। च न * घटते T	=अनुक्रमसे सब पदार्थों का ज्ञान होना भी नहीं बनता है
वस्तूनाम् ६। आनन्त्यात् एक वस्तु-परिज्ञान-अवसरे ७।	=पदार्थों के अनन्त होने (के हेतु) से एक पदार्थ के ज्ञानके प्रसंग में
च * अन्य वस्तु-परिज्ञान-अभावात् ५।	=और भिन्न पदार्थ के परिज्ञान की शून्यतासे सर्वज्ञता का अभाव
सर्वज्ञत्व-अभावः १। सुघटः १।	=भले प्रकार घटता है वा बनता है भावार्थ यह है कि

ततो विभङ्गज्ञानस्य निवृत्तिः कृता। तद्धि मिथ्यादर्शनोदयाद्विपरीतार्थविषयमिति न सम्यक्॥ स्यान्मतमिन्द्रियव्यापारजनितं ज्ञानं प्रत्यक्षं, व्यतीतेन्द्रियविषयव्यापारं परोक्षमित्येतदविसंवादिलक्षणमभ्युपगन्तव्यमिति। तदयुक्तम्। आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानाभावप्रसङ्गात्॥ यदि इन्द्रियनिमित्तमेव ज्ञानं प्रत्यक्षमिष्यते, एवं प्रसक्त्या-आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानं न स्यात्। नहि तस्येन्द्रियपूर्वोऽर्थाधिगमः॥ अथ तस्यापि करणपूर्वकएवज्ञानं कल्पते तस्या सर्वज्ञत्वस्यात्॥ तस्य मानसं प्रत्यक्षमिति चेत् मनः प्रणिधान पूर्वकत्वात्

तत ✱ विभङ्ग ज्ञानस्य ।।।। निवृत्ति' ।।। कृता ।।। = तिससे कुअवधिज्ञानका (प्रत्यक्ष ज्ञानमें ग्रहण करनेका) निषेध किया गया।
तद् ।।।। हि✱ मिथ्यादर्शन-उदयात ।। विपरीत- = क्योंकि (= हि) यह (= तद्) मिथ्यादर्शनके उदयसे प्रतिकूल
अर्थ विषयम् ।।। इति✱ न✱ सम्यक् ।।। = पदार्थका ग्रहण करता है। ऐसे (कुअवधिज्ञान) प्रशस्त (= ज्ञान) नहीं है
स्यातT मतम् ।।। इन्द्रिय व्यापार- = (वैशेषिकके मतानुसार-प्रश्न) मत है (= स्यात) कि इन्द्रियोंके व्यवसायसे उद्योगसे
जनितम् ।।। ज्ञानम् ।।। प्रत्यक्षम् ।।। = उत्पन्न हुआ ज्ञान प्रत्यक्ष है
व्यतीत इन्द्रिय विषय-व्यापारम् ।।। परोक्षम् ।।। इति = इन्द्रियोंके विषयके उद्योग (=व्यापार) वर्जित (ज्ञान) परोक्ष है ऐसा
एतद् ।।। अविसवादि-लक्षण ।। अभ्युपगन्तव्य ।। इति = यह बाधारहित स्वरूप मानना योग्य है
आप्तस्य । प्रत्यक्ष-ज्ञान-अभाव-प्रसङ्गात ।। = (उत्तर) आप्तके प्रत्यक्ष ज्ञानके लोपका प्रसंग आने (के हेतु) से
तद् ।।। अयुक्त ।। । यदि इन्द्रिय निमित्तम् ।। एव✱ = वह (=इन्द्रियजनित ज्ञानको प्रत्यक्ष मानना) ठीक नहीं है। जो इन्द्रिय जनित ही
ज्ञान ।। प्रत्यक्षम् ।। इष्यतेT एवं प्रसक्त्या ।।। = ज्ञान प्रत्यक्ष (प्रमाण) माना जाय तो ऐसे प्रसंगसे
आप्तस्य ।। प्रत्यक्ष ज्ञान ।। न स्यात् T = आप्तके प्रत्यक्षज्ञान नहीं होता (=होगा)।
नहि✱ तस्य ।। इन्द्रिय-पूर्व' ।। अर्थ अधिगमः ।। = क्योंकि नहीं है तिस (आप्त) के इन्द्रिय पूर्वक वा इन्द्रिय जनित वस्तुका ज्ञान
अथ✱ तस्य ।। अपि✱ करण-पूर्वकम् ।। एव✱ = यदि (=अथ) तिस (आप्त)के भी इन्द्रिय पूर्वक वा इन्द्रिय निमित्तक ही
ज्ञान कल्प्यते T तस्य ।। असर्वज्ञत्वम् ।।। स्यात् T = ज्ञान माना जाय तो तिस (आप्त)के असर्वज्ञता होगी॥
तस्य ।। मानसम् ।।। प्रत्यक्षम् ।।। = तिस (आप्त) के मानसिक वा मनसा (=मानसम्) ज्ञान प्रत्यक्ष मानाजाय 'कल्प्यते'
इति✱ चेत्✱ मनस् प्रणिधान पूर्वकत्वात् ।।। = ऐसी शंका होनेपर (उत्तर है कि) मनके चिंतवन वा उद्योग जनित होनेसे

किञ्च सर्वज्ञत्वाभावः प्रतिज्ञाहानिर्वा । तस्य योगिनो यज्ज्ञानं तत्प्रत्यर्थवशवर्ति स्यात ? अनेकार्थग्राहि वा ? यदि प्रत्यर्थवशवर्ति, सर्वज्ञत्वमस्य नास्ति योगिनः, ज्ञेयस्यानन्त्यात् ॥ अथानेकार्थग्राहि,या प्रतिज्ञा "विजानाति न विज्ञानमेकमर्थद्वयम् यथा । एकमर्थं विजानाति न विज्ञानद्वयं तथा" इति सा हीयते ॥ अथवा क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति प्रतिज्ञा हीयते । अनेकक्षणवर्त्येकविज्ञानाभ्युपगमात् ॥

सर्वज्ञत्व-अभावः १।१ किञ्च*	=(अलौकिक ज्ञानको प्रत्यक्ष स्वीकार करनेमें) सर्वज्ञताका अभाव, भी(=किञ्च) है
वा* प्रतिज्ञाहानिः १।१ तस्य ६।१ योगिनः ६।१ यत् १।१	=अथवा प्रतिज्ञा भंग वा प्रणकी क्षति हो जावेगी क्योंकि तिस योगीके जो (=यत्)
ज्ञानम् १।१ तत् १।१ प्रति-अर्थ- वशवर्ति १।१ स्यात् T	=ज्ञान है सो एक पदार्थ के (=प्रत्यर्थ) वशीभूत है । अर्थात् योगीश्वर का यह ज्ञान एक एक पदार्थ अथवा एक एक वस्तुको क्रमानुसार ग्रहण करैगा
वा*अनेक-अर्थग्राहि १।१ यदि *	=अथवा बहुत पदार्थोंका ग्रहण करने वाला होगा । जो (योगीश्वर का ज्ञान)
प्रति-अर्थ-वशवर्ति १।१ सर्वज्ञत्वम् १।१ अस्य ६।१	=एक वस्तु का ग्रहण करने वाला हो तो सर्वज्ञपना इस
योगिनः ६।१ न अस्ति T ज्ञेयस्य ६।१	=योगीकें नहीं (होसक्ता) है। क्योंकि ज्ञानमें ग्रहण होने योग्य पदार्थकें (=ज्ञेयस्य)
अनन्त्यात् ५।१	=अनंतता है (और सर्वज्ञ तवहीं हो जव सव पदार्थों को एक कालमें जान सकै)
अथ*अनेक-अर्थ-ग्राहि १।१	=जो (=अथ)(इस योगीश्वरका ज्ञान)अनेक पदार्थका जाननेवाला हो वा ग्राहीहो तो
या १।१ प्रतिज्ञा १।१	=(निम्नलिखित श्लोकमें) जो (=या) पण अथवा नियम है कि
विजानाति T न * विज्ञानमेकमर्थद्वयम् २।१ यथा*	=जैसे (=यथा) एक विज्ञान दो पदार्थोंको नहीं जानता है (=विजानाति)
एकमर्थम्: २।१ विजानाति T न विज्ञानद्वयं १।१ तथा*	=तैसे (=तथा) दो विज्ञान एक अर्थ वा वस्तुको नहीं जनाते हैं
इति* सा १।१ हीयते T अथवा*सर्वसंस्काराः १।१	=ऐसी प्रतिज्ञा (=सा) क्षति की जाय है। अथवा सब संस्कार (=ज्ञानक्षण)
क्षणिकाः १।१ इति*प्रतिज्ञा १।१ हीयते T अनेक-	=एक समयवर्ती हैं ऐसा प्रण वा नियम क्षता जाय है क्योंकि अनेक
क्षणवर्ति-एक-विज्ञान अभ्युपगमात् ५।१	=क्षणवर्ती एक विज्ञान मानागया है वा स्वीकार कियागया है ।

आगमतस्तत्सिद्धिरिति चेन्न । तस्य आगमस्य प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वात् ॥ योगिप्रत्यक्षमन्यज्ज्ञानं दिव्यमप्यस्तीति चेत्,न तस्य प्रत्यक्षत्वं, इन्द्रियनिमित्ताभावात् । अक्षमक्षं प्रति यद्वर्तते तत्प्रत्यक्षमित्यभ्युपगमात् ॥

आगमत * तत्सिद्धि :॥ इति* चेत्* न*	=शास्त्रसे उस (सर्वज्ञपना) की सिद्धि है ऐसी शंका (=चेत्) है। (उत्तर) यह ठीक नहीं है।
तस्य ! आगमस्य : प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वात् :॥	=क्योंकि उस शास्त्र को प्रत्यक्ष ज्ञान निमित्त वा कारण है अर्थात वही आगम माना जाता है जो प्रत्यक्षप्रमाण जन्य है भावार्थ यह है कि प्रत्यक्ष ज्ञानी ही प्रमाणभूत आगम कह सकता है परंतु इन्द्रिय जनित प्रत्यक्ष ज्ञान सब पदार्थोंको ग्रहण नहीं करसक्ता, नहीं जानसक्ता तब उससे बनाहुआ आगम भी सर्व पदार्थों का ज्ञान कैसे करा सक्ता है जिस (आगम) से आप्तके ज्ञानको सर्वज्ञता मानीजाय ॥
योगिन् प्रत्यक्षम् :॥ अन्यत् :॥ ज्ञानम् ,॥	=(बौद्धमतवाले) योगियोंका प्रत्यक्ष एक जुदा ज्ञान (=अन्यत् ज्ञान)
दिव्यम् :॥ अपि* अस्ति T इति* चेत्*	=अलौकिक (=दिव्य) ही (=अपि) है यदि (=चेत्) ऐसा है ?
तस्य :॥ प्रत्यक्षत्वम् :॥ न*	(उत्तर) =(तो) तिस (अलौकिक) ज्ञान को साक्षातपना नहीं हो सकैगा
इन्द्रिय निमित्त अभावात् :, अक्षम :॥ अक्षम :॥	=क्योंकि वह इन्द्रियोंके निमित्तसे नहीं होता है। (और आपने) इन्द्रिय इन्द्रिय
प्रति* यद् ,॥ वर्तते 1 तत् ,॥ प्रत्यक्षम् :॥	=प्रति जो प्रवर्तता है सो (ही) प्रत्यक्ष अथवा साक्षात् है
इति अभ्युपगमात् :।	=ऐसा माना है (अत) अलौकिक ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो सकता) भावार्थ अलौकिक ज्ञान वही है जिसका इन्द्रियों से कुछ किसी प्रकारका संबंध नहीं है और प्रत्यक्ष प्रमाण वही माना गया है जो इन्द्रिय जन्य है अत दिव्यज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है॥

मन एक साथ सब पदार्थों का ग्रहण नहीं कर सक्ता है और क्रमकरि सब पदार्थोंका ज्ञान होता नहीं। क्योंकि पदार्थ अनन्त हैं युगपत् जबतक अनन्त पदार्थों का न जाने तबतक सर्वज्ञ नहीं इसलिये मनद्वारा युगपत् सब पदार्थों के जाननेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सक्ता इसलिये सर्वज्ञता का अभावही हुआ

(१) तस्य और आगमस्य शब्दों के पुल्लिंग और नपुंसक लिंग दोनों हो सके हैं ॥

प्रदीपवदिति चेन्न । तस्याप्यनेकक्षणविषयतायां सत्यामेव प्रकाश्यप्रकाशनाभ्युपगमात् ॥ विकल्पातीतत्वात्तस्य शून्यताप्रसङ्गश्च ॥

प्रदीपवत् *	=दीपक (के प्रकाश) सदृश (विज्ञान) है अर्थात् बौद्ध कहते हैं कि विज्ञानकी दीपकके समान उत्पत्ति तथा परपदार्थका प्रकाश वा बोध करा देंना दोनों बातें युगपत् एकही समयमें बन जावेगी
इति * चेत * न *	=ऐसी (इति) शंका (होने) पर (=चेत) ; (उत्तर है कि उक्तशंका ठीक) नहीं है
तस्य ६। अपि अनेकक्षण-विषयतायां ७॥ सत्यां ७॥ एव	=क्योंकि उस (दीपक) का भी अनेकक्षणवर्ती होने पर (=सत्याम्) ही (=एव)
प्रकाश्य-प्रकाशन-अभ्युपगमात् ५।	=प्रकाश किये जाने योग्य (पदार्थ) का प्रकाशन कर दैना माना जाता है ॥ प्रश्नोत्तर का सारांश;दीपकके समान ज्ञानकी एक ही समयमें उत्पत्ति और विषय ग्राहकता मानना ठीक नहीं है दीपक भी स्वयम् अनेक समयवर्ती होकर पदार्थों का प्रकाश करता है अतः पूर्वोक्त नियममें (कि सब संस्कार क्षणिक हैं) भंग (दोष) बना रहता है
च * तस्य ६॥। विकल्प-अतीतत्वात् ५॥।	=और (=च) तिस (विज्ञान) के निर्विकल्पता होनेके हेतुसे (=अनिश्चय आत्मक होनेसे)
शून्यता—प्रसङ्गः १।	=अभावका प्रसंग (भी) आता है अर्थात् बौद्ध प्रत्यक्ष ज्ञानको

(१) स्वस्मिन्सकलविकल्पाभावात्सकलविकल्पाविषयत्वाच्च योगिप्रत्यक्षस्य शून्यताप्रसंगः ॥ तत्त्वं विशुद्धं सकलैर्विकल्पै- । र्विश्वाभिलाषास्पदतामतीतम् ॥ न स्वस्य वेद्यं न च तन्निगाद्यं । सुषुप्त्यवस्थं भवदुः खवाह्यम् ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥

स्वस्मिन ७॥। सकल-विकल्प-अभावात् ५।	=(क्योंकि बौद्धों के अनुसार-विज्ञान) अपने स्वरूप में संपूर्ण विकल्पो वा भेदों से रहित है
च सकलविकल्प-अविषयत्वात् ५॥।	=और (=च) (दूसरे) संपूर्ण विकल्पों द्वारा (वह विज्ञान) विषय वा ग्रहण किये जाने योग्य नहीं है अर्थात् और विकल्प वा भेद उसका ग्रहण और निश्चय नहीं कर सक्ते
योगिप्रत्यक्षस्य ६॥। शून्यता-प्रसङ्गः १।	=(अतएव) योगीके प्रत्यक्ष ज्ञानको शून्यता वा अविद्यमानता का प्रसंग आता है तात्पर्य यह है कि जब योगी का ज्ञान स्वयं अपने स्वरूप में निश्चय रहित है तथा

अनेकार्थग्रहण क्रमेणेति युगपदेवेति ॥ चेत्, योऽस्यजन्मक्षण स आत्मलाभार्थं एव । लब्धात्मलाभ हि किञ्चित्स्वकार्यं प्रति व्याप्रियते,

अनेक-अर्थ ग्रहणम् ;।।। क्रमेण ;। इति*	=(और) बहुत पदार्थोंका ग्रहण अनुक्रमसे होता है भावार्थ बौद्धोका सिद्धान्त है कि पदार्थको पहिले क्षणमें उत्पत्ति होती है उसी पदार्थका दूसरे क्षणमें नाश होजाता है और यह भी कहते है कि एक विज्ञान एकवार एकही पदार्थको जानता है तो अनेक पदार्थोंका ज्ञान क्रमसे हो सकनेके कारण एक विज्ञानको अनेक क्षणवर्ती होनेसे सब संस्कारोके एक क्षणवर्ती होनेमें दूषण आगया ।
युगपत्* एव*	=एकसाथ वा एककालमें (अनेक पदार्थोंका ग्रहण एक क्षणवर्ती विज्ञानके ही है
इति॰ चेत्* य ;। अस्य ;।।। जन्म क्षण' ;।	=ऐसा यदि (चेत्) हो तो ? (उत्तर) जो (=य) इस (ज्ञान)के उत्पन्न होनेका क्षण है
स ;। आत्म लाभार्थं ;। एव॰	=वह क्षण (उस ज्ञानके) स्वरूपके उपार्जनके लिये (=अर्थ) ही है
ल॰ध आत्म-लाभम् ,। हि*	=क्योकि (=हि) स्वरूपके लाभको प्राप्तकरि अर्थात् स्वरूपको प्राप्त करनेके पीछे
किञ्चित्* स्वकार्यम् ;।।। व्याप्रियते[1]	=कुछ अपने कार्य (=पदार्थोंके ग्रहण) की ओर प्रवृत्त होता है वा व्यापार करता है अर्थात् यदि बौद्ध कहे कि नाना पदार्थोंका ग्रहण एक क्षणवर्ती विज्ञानके एक साथ होता है सो असम्भव है क्योकि जिस क्षणमें विज्ञान उत्पन्न हुआ है वह क्षण उस विज्ञानके होनेमें लगगई । उसके पीछे वह विज्ञान पदार्थके ज्ञान वा ग्रहण करनेमें लगेगा।

(१) व्याप्रियते—यहापर पृ तुदादि छठवां गणका आत्मनेपदी अकर्मक अनिट् धातु व्यापार करना वा काम करनेके अर्थमे है। छठवां गणके धातुओं की अंत की ह्रस्व ऋ म रिका आदेश होता है पश्चात् रि को रियू कर देते हैं और अ छठवां गण के विकरणको जोड़कर और वि आङ् उपसर्ग प्रथम लाकर वि+आङ्+प्रिय् =व्याप्रिय बना, पश्चात् ते, एक वचन, आत्मने पदी, अन्यपुरुष वर्तमान कालका प्रत्यय लगानेसे 'व्याप्रियते' बनगया ॥

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

=मतिः १।। स्मृतिः १।। संज्ञा १।। चिन्ता १।। अभिनिबोधः १। इति-अन्-अर्थ-अन्तरम् १।।। ॥१३॥

सूत्रार्थः— मतिः =मति अर्थात् मन और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालवर्ती पदार्थको अवग्रहादि रूप साक्षात् जानना सो मति (ज्ञान) है ॥

स्मृतिः १।। =स्मृतिज्ञान अर्थात् अनुभवित पदार्थोंका कालान्तरमें वा और समयमें स्मरण होना वा सुधि आना सो स्मृति (ज्ञान) है ॥

संज्ञा १।। =संज्ञा ज्ञान अर्थात् वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर यह वही है जो पहिले देखा था इस प्रकार जोड़ रूपका ज्ञान होना सो संज्ञा–ज्ञान है वा प्रत्यभिज्ञान है उसके अनेक भेद हैं उनमेंसे मुख्य चार हैं। अर्थात् (१) एकत्व प्रत्यभिज्ञान (२) सादृश प्रत्यभिज्ञान (३) तद्विलक्षण प्रत्यभिज्ञान (४) तत्प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान ॥ एकत्व प्रत्यभिज्ञान स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थमें एकता दिखाते हुये जोड़रूप ज्ञान जैसे किसी पुरुषको देखकर जानले कि-यह प्रथम देखा था सो ही पुरुष है ॥ सादृश प्रत्यभिज्ञान स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थों में सादृश्य दिखाते हुये जोड़रूपज्ञान जैसे किसीने वनमें गवयनाभा तिर्यच, नीलगाव, रोझ, देखकर जाना सो यह गौको देखा था तैसा है। तद्विलक्षण प्रत्यभिज्ञान-स्मृति और प्रत्यक्षके विषय भूत पदार्थों में विलक्षणता दिखाते हुए जोड़रूपज्ञान– जैसे किसी भैंसेको देखकर जानना कि प्रथम जो बैल देखा था उससे विलक्षण ये भैंसा है ॥ तत्प्रतियोगि प्रत्यभिज्ञान किसी वस्तुको निकट देखकर अन्य किसी वस्तुको ऐसा जानना जो यह इससे दूर है ॥

चिन्ता १।। =चिन्तवन ज्ञान अर्थात् किसी चिन्हको देखकर "वहांपर इस चिन्ह वाला अवश्य होगा" ऐसा विचार सो चिंतन ज्ञान है। इसको ऊह, ऊहा, तर्क वा व्याप्ति ज्ञान भी कहते हैं ॥ व्याप्तिके ज्ञानको—

(१) दिगम्बर जैन सम्प्रदाय तथा श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय दोनोंमे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥

(२) ऽजिस शब्दके पीछे ऽ ऐसा चिन्ह आवे उस शब्दके अन्तमेंसे एक अकार ली जाती है। जैसे ऊपर चिन्ता शब्दसे एक अकार ली जावेगी ऽऽऐसे दो चिन्ह हो तो ऐसे चिन्होके पहिले शब्दके अन्तसे दो अकार ली जावेंगी ॥ जैसे शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छाया ऽऽतपो द्योतवन्तश्च ॥ अध्याय ५ सूत्र २४ यहां आतप शब्द छायाके पश्चात् है ॥

अभिहितोभयप्रकारस्य प्रमाणस्य आदिप्रकारविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

निर्विकल्प (=निश्चयरहित तथा भेद विवक्षारहित) मानते हैं। अत उसके द्वारा किसी भी पदार्थका निश्चय नही होसक्ता तब स्वयम् उसयोगीके ज्ञानका भी निश्चय न होनेसे उस (विज्ञानकी) शून्यताका प्रसग आता है। क्योकि किसी भी पदार्थका अस्तित्व निश्चय आत्मक ज्ञानके विना सिद्ध नहीं हो सक्ता है॥

अभिहित-उभय प्रकारस्य ;॥ प्रमाणस्य ;॥	=भाषित वा कहे हुये दोनों (परोक्ष तथा प्रत्यक्ष) प्रकारके प्रमाणके
आदि प्रकार विशेष प्रतिपत्ति-अर्थम् ;॥ आह T	=प्रथम (परोक्ष ज्ञान) के भेदों के विशेष ज्ञानके लिये कहते हैं कि

दूसरे विकल्पों (=निश्चयात्मक ज्ञान) से नहीं जाना जा सक्ता है तब उसका अस्तित्व कैसे माना जा सक्ता है अत

विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार बौद्धोंका मत शून्य ही है ॥ उपर्युक्त श्लोकका अनुवाद —

तत्वं ;॥ विशुद्ध ;॥ सकले ;। विकल्पे ;। (अतीतम् ;॥)=	(वह विज्ञान) तत्व सपूर्ण कल्पनाओ (भेदों)से रहित (=अतीतम्) विशुद्ध वा विशद है अर्थात् विज्ञानमें ग्राह्य ग्राहक, वाच्य वाचक, वेद्य वेदक और ज्ञेय ज्ञायक कल्पनायें नहीं होनेसे वह विशुद्ध है निर्मल है।
विश्व अभिलापा आस्पदताम् ;॥ अतीतम् ;॥	=सब (=विश्व) (वक्ताओंके बालनेकी) इच्छाकी (=अभिलापा) योग्यतासे (=आस्पदताम्) रहित है अर्थात् विज्ञान तत्व ससार ॥ अनिर्वचनीय है वा अवक्तव्य है
न स्वस्य ;॥ वेद्यम् ;॥	=(वह विज्ञान तत्व) अपने का नहीं जानता है (=वेद्यम्) अथात् अपना भी ज्ञेय नहीं है।
न च तत् ;॥ निगाद्यम् ;॥	=और (=च) वह (=तत्=विज्ञानतत्व) (किसी शब्दद्वारा) कहे जाने योग्य (भी) नहीं है।
सुषुप्ति अवस्थ्यं ;॥	=शयन (=सुषुप्ति) अवस्थावाला है (=अवस्थ्यम्) अर्थात् स्वप्नदशाम रहनेवाले चैतन्य के सदृश है
भव दुःख-बाह्यम् ;॥	=ससारके दुःख (और विकल्पोंसे) रहित है (=बाह्यम्) ॥१॥ समस्त श्लोकका भावार्थ यह है कि वह विज्ञानतत्व सपूर्ण कल्पनाओंसे रहित होनेसे विशद है तथा विश्वका कोई भी वचन कथन करने को समर्थ नहीं है (=अनिर्वचनीय है) अपनेको नहीं जानता है अर्थात् स्वरूपमें ज्ञाता ज्ञेय भाव रहित है ओर न वह कथन कियेजाने योग्य है। स्वप्नदशाम रहनेवाले चैतन्यके सदृश है। ससारसबधी सर्व क्लेशोंसे रहितहै वा वर्जितहै
इति वचनात् ;॥	=ऐसे (वचन)से विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार बौद्धोंका विज्ञानतत्व शून्य ही सिद्ध हुआ

अनुमानः— "साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते हैं" जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पृष्ठ ८॥ "साधन कहिए हेतु तातैं साध्य कहिए साधने योग्य वस्तु ताका विज्ञान सो अनुमान प्रमाण है" साध्यके तीन विशेषण हैं (१) अबाधित वा शक्य—"तहां प्रमाणकरि अबाधित पणाकरि साधिवेकूं शक्य होय सोही साध्य होय है जामें साधने की योग्यता नहीं सो साध्य नाहीं। जैसे आकाशका फूल साधनेकू शक्य नाहीं॥" अग्नि का ठंडापन प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है इस कारण यह ठंडापन साध्य नहीं हो सक्ता है॥ (२) अभिप्रेत वा इष्ट—वादी जिसको सिद्ध करना चाहै अथवा जिसको साधनेवाला पुरुष अभिप्रायमें ले, सो ही साध्य है जिस अभिप्रेत विना जगतमें अनेक वस्तु हैं वे साध्य नहीं हैं॥ (३) असिद्ध—जो प्रतिवादीको दूसरे प्रमाणसे सिद्ध न हो अथवा जिसका निश्चय न हो अर्थात् जो पहिले सिद्ध नहीं हुवा है सो साध्य है जो प्रथमही सिद्ध होचुका है उसको क्या साधेगा ? सिद्ध हुए को साधन निष्फल है जिसमें कुछ संदेहादिक हो सो असिद्ध है सो ही साधने योग्य है। इस प्रकार के विशेषण युक्त साध्य के सन्मुख जो पूर्वोक्त साधनकरि नियमरूप ज्ञान होय तातैं याकूं अभिनिबोध कहिये॥ साधनके संक्षेपसे दो भेद हैं (१) उपलब्धि (२) अनुपलब्धि॥ अभावके ग्रहणको अनुपलब्धि कहते हैं॥ इन्द्रियमनकरि वस्तुके सद्भावका ग्रहण हो सो उपलब्धि है उसके तीन प्रभेद हैं कार्योपलब्धि जैसे इस पर्वतमें अग्नि है क्योंकि अग्निका कार्य धूम दीखै है। (२) "कारणोपलब्धि जैसे वर्षा होगी जातैं याका कारण बादल सघन दीखै है"॥ (३) स्वभावोपलब्धि जैसे वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप सहित है॥ (अर्थात् वस्तु उत्पत्ति-विनाश अस्तित्व वा विद्यमानता स्वभाववाली है अध्याय ५ सूत्र ३०) क्योंकि सत्व स्वरूप है। सत्वका स्वभाव ऐसाही है। इत्यादिक साधनके अनेक भेद श्लोकवार्तिक में कहे हैं॥

तर्क कहते हैं, और अभिनाभाव सम्बन्ध को व्याप्ति कहते है ॥ जहा जहा साधन (=हेतु) होय, वहा वहा साध्य (=सिद्ध करने की इच्छा किया गया वा साधने योग्य वस्तु,) का होना, और जहा जहा साध्य नहीं होय, वहा वहा साधन के भी न होने को अविनाभाव सम्बन्ध कहते है । जैसे जहा जहा धूम है, वहा वहा अग्नि है और जहा जहा अग्नि नहीं है वहा वहा धूम भी नही है ॥ अथवा "व्याप्तिज्ञान को तर्क कहिए है । जहा अन्वय व्यतिरेककरि नियम होय सो व्याप्तिज्ञान है । यह याकू होते सते होई यो तो अन्वय ""र नहीं होते सते नहीं होय ऐसा व्यतिरेक ऐसैं दोऊनितैं व्याप्तिज्ञान होय है ॥ जैसे अग्नि के होते सतें ही धूम होय अर अग्नि का अभाव होतैं धूम नाहीं होय इत्यादि निश्चय करने का नाम तर्क है सो प्रमाण है" ॥ अर्थ प्रकाशिका में इसी सूत्र को देखो

अभिनिबोध १। =आभिनिबोधिकज्ञान वा "स्वार्थानुमान" (ज्ञान) जय० वचनिका पान १४० वा "अनुमान" (ज्ञान-अर्थप्रकाशिका) अर्थात् सन्मुख लिंगादि (=चिन्हादिक) देखकर उस लिंगी वा चिन्हवाले आदिका निश्चय करना सो अभिनिबोध है ॥ जैसे धूम को देखकर अग्नि का निश्चय करना काचली देखकर सर्पका बोध करना साधन कहिये लिंग चिन्ह तातैं साध्य कहिये जानने योग्य वस्तु लिंगी-चिन्हवान् ताका निश्चय करना सो स्वार्थानुमान है । तहा साधन ताकू कहिये, जाकी जहा साध्य वस्तु न हो तहा प्राप्ति न होय "जैसे जहा साध्य वस्तु (अग्नि न हो) तहा धूम (अग्निके साधनकी प्राप्ति न होगी "तथा जहा साधन होय तहा साध्य होयही होय" जैसे जहा जहा धूम (अग्निका साधन) होगा वहा २ अग्नि (धूमका साध्य) अवश्य ही होगा ॥ देखो सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ १४२-१४३ ॥

(१) अभिनिबोधिक—,सशाम प्रत्यय मिलाकर अथ वदलें देते हैं उसीका तद्धित कहते हैं) यहां सम्ब धके अथमें अभिनिबोधमें ठक् (=अक्) प्रत्यय लाकर और उसे (इक) से बदलकर आदि में वृद्धि कर देते है जैसे अभिनिबोध-शब्द =अभिनिबोध+ठक् शब्द+ठक् =अभिनिबोध+इक शब्द+इक, वृद्धि करने से आभिनिबोधिक और शाब्दिक रूप बनाये ।

आदौ यदुद्दिष्टं ज्ञानं तस्य पर्यायशब्दा एते वेदितव्याः। मतिज्ञानावरणक्षयोपशमान्तरङ्गनिमित्तजनितोपयोगविषयत्वात्। एतेषां श्रुतादिष्वप्रवृत्तेश्च ॥ मननं मतिः। स्मरणं स्मृतिः। सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा। चिन्तनं चिन्ता।

"ऐसैं स्मृति आदिक च्यार कहे ते सर्व मतिज्ञान है सो परोक्ष प्रमाण है" बहुरि आगमनामा परोक्ष प्रमाण है सो श्रुतज्ञानरूप है॥ "बहुरि इहां अन्यवादी अर्थापत्यादिक प्रमाण न्यारा माने हैं ते सर्व इस मतिज्ञानमें अन्तर्भूत होय हैं" ॥ अर्थप्रकाशिका मुद्रित पृष्ठ ४३ ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस (तेरहवें) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद ॥

आदौ ७। यद् १।१। उद्दिष्टम् १।१। ज्ञानम् १।१।	=पहिले जो (इस तेरहवां सूत्र में) उपदेशकियागयाज्ञान (अर्थात् मतिज्ञान)
तस्य ६।१। पर्यायशब्दाः १।	=तिस (मतिज्ञान) के पर्यायशब्द-नामान्तर-अनर्थान्तर-वा अभिधेयार्थवाची
एते १। वेदितव्याः १। ; मतिज्ञान–	= ये (स्मृति-संज्ञा-चिता-अभिनिबोध) जानने चाहिये । मतिज्ञान
आवरण–	=आवरणीय कर्मका
क्षयोपशम-अन्तरंगनिमित्त–	= क्षयोपशम अन्तरंग कारणसे
जनित-उपयोग-विषयत्वात् ५।१।	= जन्य वा उत्पन्न हुआ जो उपयोग तिस सम्बन्धी (ये मति-स्मृति-संज्ञा-चिता-अभिनिबोध) हैं
च एतेषां ६। अप्रवृत्ते: ५।१। श्रुत–	= और (=च) क्योंकि इन (मति-स्मृति-सज्ञा-चिता-अभिनिबोध) की अप्रवृत्ति श्रुतज्ञान
आदिषु ७।१। मननम् १।१।	= आदिकज्ञानोंमें है ॥ मानना (=मननं) अर्थात् मन, और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालवर्ती पदार्थ के अवग्रहादिरूप साक्षात् जानना सो)
मतिः १।१। स्मरणम् १।१। स्मृतिः १।१।	=मतिज्ञान है। सुध (=स्मरण) (अर्थात् अनुभवित पदार्थोंका कालान्तरमें स्मरण होना) सो स्मृति है
सञ्ज्ञानम् १।१।	=जोड़रूपज्ञान वा प्रत्यभिज्ञान (स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थोंमें जोड़रूप ज्ञान) (अर्थात् वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर यह वही है जो पहिले देखा था ऐसाजोड़रूप ज्ञान)
सञ्ज्ञा १।१। चिंतनम् १।१।	=सो सञ्ज्ञाज्ञान है॥ चिंतवन (=किसी चिन्हको देखके वहां इस चिन्हवाला अवश्य होगा ऐसा विचार)
चिंता १।१।	=सो चिंता वा तर्क वा व्याप्तिज्ञान वा ऊहा वा ऊह ज्ञान है ॥

इति अन्-अर्थान्तरम् ॥ =इस प्रकार (इस मतिज्ञानके) अनर्थान्तर वा नामान्तर (मति· स्मृति· संज्ञा चिंता-अभिनिबोध) हैं अर्थात मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध, इनके शब्दभेद (के हेतु)से वा नामभेदसे अर्थभेद होते सते भी रूढिप्रसिद्धके बलसे मतिके नामान्तर ही हैं। भावार्थ जैसे इन्द्र (ऐश्वर्य क्रियावाला शचीपति) शक्र (शक्तिरूप क्रियावाला शचीपति) पुरन्दर (पुरका फाडनेहारा शचीपति) ऐसे इन तीन शब्दोंमें ऐश्वर्य-शक्ति-फाडनेवाले क्रियायोंके भेद होने पर भी एक शचीभर्ताका नाम समभिरूढनय (=नाना अर्थको छोडकर एकही अर्थमें स्थापित करने वाली नीति वा रीति) की अपेक्षा (इन्द्र) ही है तैसे मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध, शब्दोंका भिन्न भिन्न अर्थ होने पर भी एक मतिज्ञानके नामान्तर ही माने गये है क्योंकि ये सर्व एक मतिज्ञानावर्णकर्मके क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं तिससे ये मतिज्ञानही हैं अन्य (पदार्थ) नहीं है ॥ साराश यह है कि जैसे इन्द्र शक्र पुरन्दर न्यारी न्यारी क्रियायोंके करनेवाले को प्रकट करने परभी एक शचीपति काही नाम है तैसेही मति स्मृति संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध अन्य अन्य अर्थबोधक होने परभी एक मतिज्ञान केही नाम है क्योंकि सब मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते है ॥

(१) 'सूत्र विर्षे इति शब्द प्रकारवाची है, सो बुद्धि तौ मतिका प्रकार जानना। जाते पदार्थके ग्रहणके शक्ति स्वरूपकू बुद्धि कहिये है। बहुरि मेधा स्मृतिका प्रकार है। जातें शब्दके स्मरणकी शक्ति कू मेधा कहिये है। बहुरि प्रज्ञा चिंताका प्रकार है। जातैं वितकरणाका निषेध स्वरूप है। बहुरि प्रतिभा उपमा ये संज्ञाका प्रकार है। जातें सामान्य पदार्थ को सादृश्य दिखावने रूप है। बहुरि संभव अर्थापत्ति अभाव ए स्वार्थानुमानके प्रकार है जातें ये सब लिंगही तें जानिये हैं।' जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १४१ ॥

(२) कइएक मतावलम्बियोंके अनुसार "ज्ञान दोप्रकारका है वस्तुमात्रको प्रकाश करनेहारा निर्विकल्पक, संज्ञा (नाम) आदिका प्रकाश करनेहारा सविकल्पक है। यह (सविकल्पक) संकल्प, संशय, भ्रांति, सहति सादृश, निश्चय और अनुभव आदि भेदसे कई प्रकारका है" दर्श० कोष पृष्ठ१६१

मत्यादिष्वपि स क्रमो विद्यत एव। किंतु मतिज्ञानावरणाक्षयोपशमनिमित्तोपयोगं नातिवर्तत इति अयमत्रार्थो विवक्षितः। इतिशब्दः प्रकारार्थः। एवंप्रकारा अस्य पर्यायशब्दा इति। अभिधेयार्थो वा। मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ता अभिनिबोध इत्येतैर्योऽर्थोऽभिधीयते स एक एव इति ॥

मति-आदिषु ७।३ अपि॰ सः १।१ क्रमः १।१ विद्यते T =मति आदिकमें भी वह नियम रीति-वानय (=क्रम) विद्यमान

एव॰ किंतु॰ मति-ज्ञान-आवरण— =ही है क्योंकि (=किंतु) (मति-स्मृति संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) मतिज्ञानावरणकर्मके

क्षयोपशमनिमित्त-उपयोगम् २।१ न॰ अति-वर्तते T =क्षयोपशम जनित उपयोगको उलंघकरि नहीं वर्तते हैं वा नहीं छोड़ते हैं अर्थात् इन पांचोंके अर्थ तो भिन्न हैं परंतु मतिज्ञानावरणकर्मके क्षयोपमसे ये सब उपजते हैं। अतः सब मतिज्ञान के ही पर्याय वाची शब्द वा नामान्तर माने जाते हैं ॥

सारांशः—जैसे इन्द्र-शक्र-पुरंदर न्यारी न्यारी क्रियाके करनेवालेको प्रगट करने पर भी समभिरूढनयकी अपेक्षा से शचीपति के ही नाम हैं तैसेही मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध अन्य अन्य अर्थोंके बोधक होनेपरभी एक मतिज्ञानकेही नाम उक्तनयसे हैं क्योंकि पांचों मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं ॥

इति॰ अत्र॰ अयम् १।१ अर्थः १।१ विवक्षितः॰ =ऐसे यहां यह अर्थ अपेक्षा से किया गया है (विवक्षितः)

इतिशब्दः १।१ प्रकार-अर्थः १।१ =(इस सूत्रमें) इति शब्द प्रकारके निमित्त (=अर्थ) है अर्थात् भेदोंका वाचक है

एवम्॰ अस्य ६।१ प्रकाराः १।३ पर्याय-शब्दाः १।३ इति॰ =ऐसे (=एवम्) इस (मतिज्ञान) के (=अस्य) भेद हैं (=प्रकाराः) नामान्तर हैं

वा॰ अभिधेय-अर्थः १।१ =अथवा (=वा) (इति शब्द सूत्रमें) अभिधेय अर्थवाची है अर्थात्

मतिः १।१ स्मृतिः १।१ संज्ञा १।१ चिंता १।१ अभिनिबोधः १।१ =मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध

इति॰ एतैः ३।३ यः १।१ अर्थः १।१ अभिधीयते T =इस प्रकार इन (शब्दों) करि जो अर्थ कहा गया है (अभिधीयते)। सो (अर्थ)

सः १।१ एकः १।१ एव॰ इति॰ =एक ही है अर्थात् मतिज्ञानकेही पर्याय शब्द वा नामान्तर हैं ॥

विद्यत एव और नातिवर्तत इति = विद्यते एव और नातिवर्तते इति ॥ लोपःशाकल्यस्य ८।३।१९ सूत्रसे इनदोनों वाक्योंके यूका लोप होगया है ॥

अभिनिबोधनमाभिनिबोधः । इति यथासम्भव विग्रहान्तर विज्ञेयम् ॥ सत्यपि प्रकृतिभेदे रूढिवललाभात पर्यायशब्दत्वम् । यथा—इन्द्र शक्र पुरन्दर इति, इन्दनादिक्रियाभेदेऽपि शचीपतेरेकस्यैव संज्ञा । समभिरूढनयापेक्षया तेपामर्थान्तरकल्पनाया

अभिनिबोधनम् ;॥	=साधन (=लिंग वा चिन्ह वा हेतु)से साध्य (सिद्ध करने योग्य वस्तु)का ज्ञान (अर्थात् सन्मुख चिन्हादिक देखकर उस चिन्हवालेका निश्चय करलेना सो)
अभिनिबोध ;।	=अभिनिबोधज्ञान वा स्वार्थानुमान ज्ञान वा अनुमान ज्ञान है (यहा मति स्मृति-सज्ञा चिंता-अभिनिबोध शब्दोका भाव साधनमें अर्थ किया है)
इति* यथासम्भवम् ;॥ विग्रह-अन्तरम् ;॥	=ऐसे योग्यता पूर्वक वा योग्यतानुसार (=यथासम्भव) अन्य विग्रह (समासके अर्थको जनानेवाले अन्यवाक्य जैसे इनके करण साधन कर्तृ साधन)
विज्ञेयम् ;॥ प्रकृतिभेदे ;।	=जानना योग्य है। (मति-स्मृति-सज्ञा-चिंता-अभिनिबोधके) अर्थ (=प्रकृति) भेद
सति ;। अपि* रूढि-बल-लाभात् ;।	=होनेपर (=सति) भी (=अपि) रूढि (=प्रसिद्ध) की सामर्थ्य प्राप्तिसे
पर्याय शब्दत्वम् ;॥ यथा* इन्द्र ;।	=(मतिके) पर्यायशब्द वा नामान्तर है। जैसे इन्द्र (=ऐश्वर्य क्रियावाला शचीपति)
शक्र ;। पुरन्दर ;।	=शक्र (शक्तिरूप क्रियावाला शचीपति) पुरन्दर (=पुरके फाडनेवाला शचीपति)
इति इन्दन-	=ऐसे (इन तीन इन्द्र शक्र-पुरन्दर शब्दोमें) ऐश्वर्य होनेरूप
आदि क्रिया भेदे ;। अपि*	=शक्ति होनेरूप, फाडने (यथासख्य) क्रियायोंके भेद होनेपर भी
एकस्य ;। शची पते ;। एव सज्ञा ;॥ समभिरूढनय-	=एक शची भर्ताके ही नाम समभिरूढनय (नाना अर्थको छोडकर एक ही अर्थमें स्थापित करनेवाली नीति वा रीति)की
अपेक्षया ;॥ तेषाम् ;। अर्थ अन्तर कल्पनायाम् ;॥	=अपेक्षा । तिन (इन्द्र शक्र पुरन्दर)के भिन्न भिन्न अर्थ माननेमें

अथवा लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम्। आत्मनः सूक्ष्मस्यास्तित्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम्। यथा इह धूमोऽग्नेः॥ एवमिदं स्पर्शनादिकरणं नासति कर्तर्यात्मनि भवितुमर्हतीति ज्ञातुरस्तित्वं गम्यते॥ अथवा इन्द्र इति नामकर्मोच्यते। तेन सृष्टमिन्द्रियमिति। तत्स्पर्शनादि उत्तरत्र वक्ष्यते॥ अनिन्द्रियं मनःअंतःकरणमित्यनर्थान्तरम्॥

आत्मामें प्रगट हुई परन्तु वही आत्मा बाह्य उपकरण विना जाननेको समर्थ नहीं हो सक्ता है अतः पदार्थोंके जनावनेके लिये बाह्य कारणको इन्द्रिय कहते हैं॥

अथवा* लीनम् २। अर्थम् २। गमयति T इति*	=अथवा गूढ़ वस्तुको जताता है (—गमयति-बोधयति) ऐसा
लिङ्गम् १।। आत्मनः ६। सूक्ष्मस्य ६। अस्तित्व-अधिगमे ७।	=लिंग वा चिन्ह है। चेतनकी गूढ़ वा अदृष्ट विद्यमानता जाननेमें
लिङ्गम् १।। इन्द्रियम् १।। यथा* इह* धूमः १। अग्नेः ६।	=चिन्ह वा लिंग है सो इन्द्रिय है। जैसे यहां (=इह) अनलका धूम (लिंग) है
एवं* इदम् १।। स्पर्शन-आदि-करणम् १।। आत्मनि ७।	=ऐसे यह स्पर्शन आदिक (पांच इन्द्रिय) करण वा साधन हैं सो चेतन
असति ७। कर्तरि ७। भवितुम्-अर्हति T न*	=कर्ताके न होने पर अस्तित्व वा होनेको (=भवितुम्) समर्थ नहीं है (न-अर्हति)
इति* ज्ञातुः६। अस्तित्वम् १।। गम्यते T	=ऐसे ज्ञाता (जो आत्मा तिस) की विद्यमानता इन्द्रियों करि जानी जाती है अर्थात् स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र इन पांचों इन्द्रियोंका अस्तित्व यदि आत्मा न हो तो असम्भव है क्योंकि आत्मा कर्ता है और पाचों इन्द्रियें करण हैं कर्ता विना करण नहीं हो सक्ता है॥ इस प्रकार ये पांचों इन्द्रियें ज्ञाता जो आत्मा हैं तिसका अस्तित्व प्रकट करती हैं
अथवा* इन्द्रः १। इति* नामकर्म १।। उच्यते T	=अथवा इन्द्र ऐसा नामकर्म कहा गया है
तेन ३। सृष्टम् १।। इन्द्रिम् १।। इति* तत्-	=तिस (नामकर्म) करि रचीगई है सो इन्द्रिय इसप्रकार है॥ सो स्पर्शन
स्पर्शन-आदि १।। उतरत्र * वक्ष्यते T	=रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र यहांसे आगे (अध्याय २ सूत्र १९में) कहेंगे
अनिन्द्रियम् १।। मनस् १।। अंतकरणम् १।। इति *	=अनिन्द्रिय-मन, अंतःकरण ये
अन्-अर्थ-अन्तरम् १।।	=अन्य पदार्थ नहीं हैं (पर्यायवाची शब्द हैं, एकार्थ वाची शब्द हैं, समानार्थक हैं)

अथास्यात्मलाभे किं निमित्तमित्याह ॥

तदिन्द्रियाऽनिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

इन्दतीति इन्द्र आत्मा तस्य स्वभावस्य तदावरणक्षयोपशमे सति स्वयमर्थान् गृहीतुमसमर्थस्य यदर्थोपलब्धि निमित्त लिङ्ग तदिन्द्रस्य लिंगमिन्द्रियमित्युच्यते ॥

अथ* अस्य ६॥ आत्म-लाभे ७। किम् १॥ निमित्तम् १॥	=अब (=अथ) इस (मतिज्ञान) के स्वरूपके (=आत्म) उपार्जनमें क्या हेतु है
इति* आह T	=ऐसा (प्रश्न होने पर) कहते हैं कि

तदिन्द्रियाऽ निन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

तद्-	=वह (पूर्वोक्त मति स्मृति-संज्ञा चिंता अभिनिबोध इत्यादि शब्दरूप मतिज्ञान)
इन्द्रिय अनिन्द्रिय-निमित्तम् १॥	=(बहिरंग में) पांच इन्द्रिय और मननिमित्तके, वा मनजनित वा मनजन्य है अर्थात् उस मतिज्ञानके उत्पन्न होनेके लिये स्पर्शन-रसन-घ्राण चक्षु श्रोत्र मन ये छै बाह्य कारण हैं पर अंतरंग मतिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम है ॥ मन, अतः करण, अनिन्द्रिय (=किंचित् वा ईषद् इन्द्रिय, न कि इन्द्रिय रहित) है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस (चौदहवें) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

इन्दति T इतिइन्द्र १। आत्मा १।	=परम ऐश्वर्यरूप प्रवर्तता है (=इन्दति) ऐसा इन्द्र है वा (अर्थसे) चेतना है आत्मा है ॥
तस्य- ६। स्वभावस्य ६। तद्-आवरण क्षयोपशमे ७।	=तिस (आत्मा) के (ज्ञान) स्वभाव को उस ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम
सति ७। स्वयम्* अर्थान् २। गृहीतुम्०	=होनेपर आपही आप (=स्वयम्) पदार्थों को ग्रहण (करने) के लिये
असमर्थस्य ६। यद्-अर्थ-उपलब्धि निमित्तम् १॥	=असमर्थ (आत्मा) को जो पदार्थ को जनावने का कारण है
लिङ्गम् १॥ तद् इन्द्रस्य ६। लिङ्गम् १॥ इन्द्रियम् १॥	=सो लिंग वा चिन्ह है । वह आत्मा का चिन्ह इन्द्रिय
इति* उच्यते T	=कहा जाता है ॥ भावार्थ यह है कि चेतनके अंतरंग मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम से पदार्थों के जाननेकी अंतरंग शक्ति तो

---

(१) दोनो सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है । बाह्य कारणोंके स्पार्शन रासन घ्राणज चाक्षुष श्रावण मानस छै भेद हैं (२)दिवर्थमूल कृदन्तहै

देशविषयं कालान्तरावस्थायि च। तदन्तःकरणमिति चोच्यते। गुणदोषविचारस्मरणादिव्यापारेषु इन्द्रियानपेक्षत्वाच्चक्षुरादिवद् बहिरनुपलब्धेश्च अन्तर्गतं करणमित्युच्यते॥ तदिति किमर्थम्? मतिज्ञाननिर्देशार्थम्॥ ननु च तदनन्तरं अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति, तस्यैव ग्रहणं भवति।

देशविषयं ।॥ च कालान्तर-	=स्थानवाला (और प्रतिनियत) विषयवाला और कालान्तरमें वा अन्य अन्य कालमें
अवस्थायि ।। न* तद् ।॥	=अवस्थित रहनेवाला नहीं है अर्थात् मन चंचल है। वह (=तद्=अनिंद्रिय=मन)
अन्तःकरणम् ।॥ इति* च* उच्यतेT	=अन्तःकरण वा अभ्यन्तर इन्द्रिय ऐसा भी (नाम) है।
गुण-दोष-विचार-स्मरण-आदि-व्यापारेषु ।। इन्द्रिय-	=गुण-दोषके विचारण और स्मृति आदि व्यवसाय वा उद्योगमें इन्द्रियोंकी
अन्-अपेक्षत्वात् ।॥ च* चक्षुरादि-वत्*	=अपेक्षा न-होनेसे तथा (=च) नेत्रादिकके सदृश (मन अन्य मनुष्यों द्वारा)
बहिस् अन्-उपलब्धेः। अन्तर्गतम् ।॥ करणम् ।॥	=बाह्यसे न-देखे जानेसे (=अनुपलब्धेः) वा न-जानेजानेसे अन्तर्गत इन्द्रिय
अन्तःकरणम् ।॥ इति उच्यते T	=(वा) अंतःकरण वा मन ऐसा कहा गया है (ऐसे ईषत् अर्थ अन्में सम्भव है)
तद् ।॥ इति* किमर्थम् ।॥ मतिज्ञान-निर्देश-	=(इस सूत्रमें) तद् ऐसा शब्द किस लिये है॥ (तत् शब्द) मतिज्ञानके कथनके
अर्थम् ।॥ ननु* च* तद्-अनन्तरम् ।॥	=लिये है। और (=च) प्रश्न (=ननु)। वह (मतिज्ञान शब्द इस सूत्रके) लगता ही है (अर्थात् इस सूत्रके अत्यन्त समीप लगता ही मतिस्मृतिसञ्ज्ञाचिन्ताभिनिबोधः इत्यादि सूत्र कह चुके हैं तिस सूत्रका मति शब्द इस सूत्रके लगता ही है जब एक सूत्र के पीछे दूसरा सूत्र आवै तौ दूसरे सूत्रसे पहिले सूत्रकी)
अनन्तरस्य ।॥ विधिः ।। वा* भवतिT प्रतिषेधः ।।	=अत्यन्तसमीपवर्ती (वस्तु) का विधान होता है वा निषेध ऐसा (परिभाषा सूत्र) है
तस्य ।॥ एव* ग्रहणम् ।॥	=(अतः इस सूत्रमें बिना तत् शब्द लाये हुये) तिस (मतिज्ञान) का ही आदान
भवति T	=होता है (इसलिये इस सूत्रमें तत् शब्द निरर्थक ही है)।

कथ पुनरिन्द्रियप्रतिषेधेन इन्द्रलिङ्गे एव मनसि अनिन्द्रियशब्दस्य प्रवृत्ति ?। ईषदर्थस्य नञ प्रयोगात्। ईषदिन्द्रियमनिन्द्रियमिति। यथा अनुदरा कन्या इति॥ कथमीषदर्थः ?। इमानीन्द्रियाणि प्रतिनियतदेश-विषयाणि कालान्तरावस्थायीनि च। न तथा मन इन्द्रस्य लिङ्गमपिसत्प्रतिनियत-

पुन * इन्द्रिय प्रतिषेधेन ;। अनिन्द्रिय शब्दस्य ;।	=(प्रश्न) और (=पुन) इन्द्रियका निषेध करनेसे अनिन्द्रियशब्दकी
प्रवृत्ति ;॥ इन्द्र लिङ्गे॥॥ एव* मनसि ;॥। कथम् *	=प्रवृत्ति आत्माका चिन्ह मन (अर्थ) में ही कैसे है अर्थात् जो इन्द्रिय न हो सो अनिन्द्रिय है तौ मन अनिन्द्रिय कैसे हैं।
ईषत् *	=(उत्तर) (इन्द्रिय रहित वा वर्जित अनिन्द्रिय नहीं है किन्तु) अल्प वा किञ्चित्
अर्थस्य ;। नञ प्रयोगात् ;।	=अर्थमें (इन्द्रिय शब्दके) नञ् (=अन्) समासके प्रयोग से
ईषत् * इन्द्रियम् ,॥ अनिन्द्रियम् ;॥ इति* यथा *	=ईषत् इन्द्रिय सो अनिन्द्रिय है। जैसे
अन् उदरा ;॥ कन्या ,॥ इति *	=अन् पेट वाली कुमारी ऐसे (यहापर-अन्-नञ्समास निषेध अर्थमें नहीं है किन्तु ईषद् वा किञ्चित् अर्थमें है अनुदरा उस कन्या को नहीं कहते हैं जिसके पेट न हो परन्तु उस कन्या को कहते हैं जिसका पेट पतलाहो, क्षीणहो, कृशहो और जो गर्भधारणमें असमर्थ हो)
कथम् * ईषत् * अर्थ ;। इमानि ;॥ इन्द्रियाणि ;॥	=(प्रश्न) किञ्चित् अर्थ कैसे है (उत्तर) ये (=इमानि) (पाचो) इन्द्रियें
प्रति नियत-देश विषयाणि ;॥ च*	=नियमित स्थान वाली (वस्तु को) विषय करतीं हैं और (=च)
कालान्तर अवस्थायीनि ;॥	=कालान्तरमें (=अन्य २ कालमें) ठहरनेवाली हैं अर्थात् स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु, श्रोत्र पाचो इन्द्रियोंके एक दूसरे से भिन्न भिन्न स्थान हैं और भिन्न भिन्न विषय हैं और जिसकालमें अपने अपने विषयों से उपयुक्त न हों उसकालमें भी अवस्थित रहती हैं
तथा * मनस् ;॥ इन्द्रस्य ;॥ लिङ्गम् ;। प्रतिनियत-	=तैसे मन आत्मा का (=इन्द्रस्य) लिंग होने पर भी (सत्-अपि) प्रतिनियत

एवं निर्ज्ञातोत्पत्तिनिमित्तमनिर्णीतभेदमिति तद्भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥

इस श्रुतकी अनुवृत्ति १५वें सूत्रमें जाकर इस१५वें सूत्रका अर्थ होजाता कि अवग्रह ईहा-अवाय-धारणारूप श्रुतज्ञान है, ऐसे अर्थ विरुद्ध हो जाता अतः तत् शब्द लाये हैं ॥

एवम् ॥ निर्ज्ञात-उत्पत्ति-निमित्तम् ॥ =ऐसे (मतिज्ञानके) उत्पन्न होने का हेतु जानागया (परन्तु मतिज्ञानके)

अनिर्णीत-भेदम् ॥ इति॥ तद्- =भेद वा विधान नहीं जाने गये इस प्रकार (प्रश्न होने पर) उस (मतिज्ञान) के

भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ आह ॥ =भेदोंको जाननेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्- अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः (पूर्वोक्त पांच इन्द्रिय और अनिन्द्रिय जनित मतिज्ञानके एक होने पर भी)

अवग्रह- =अवग्रह (पदार्थके सत्तामात्र जाननेके पीछे श्वेत कृष्णादि विशेष विकल्परूप ज्ञान)

ईहा- =ईहा (अवग्रह से जाने हुये पदार्थके विशेष जाननेकी आकांक्षा रूप ज्ञान)

अवाय- =अवाय वा अपाय (ईहासे जानी हुई वस्तुका अवधारणरूप वा निश्चयरूप ज्ञान)

धारणाः ॥ =धारणा (अवायसे जानेहुये पदार्थको अन्य कालमें न भूलना, सुध रखना (ये चार भेद) हैं

भावार्थः—जो इन्द्रिय और इन्द्रियके ग्रहण योग्य विषय के संयोग होते ही जो वस्तु के सत्तामात्र का ग्रहण सो दर्शन है जैसे दृष्टिके पडते ही वस्तुका प्रकाश मात्र निर्विकल्प ग्रहणमें आया सो चक्षुर्दर्शन है। ऐसेही कर्णादिक चार इन्द्रियोंके द्वारे सामान्य विकल्प रहित ग्रहण होय सो अचक्षुर्दर्शन है। और तिस (दर्शन) के लगता ही जो देखेहुये पदार्थ का वर्णन संस्थानादिक विशेष ग्रहण में आवै सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके "सभाष्य तत्वार्थाधिगम सूत्रमें 'अवाय और अपाय' दोनो पाठ है॥ शेष पाठ दोनो आम्नायोंमें एक है अर्थ भी एक है॥

(२) ईहादिक ज्ञान विना अवग्रह के नहीं हो सकते किंतु अवग्रह पूर्वकही होते हैं इसलिये अवग्रह आदि चारों भेदोंमें सबसे पहिले अवग्रह का उल्लेख है अवाय और धारणा ईहा पूर्वक होते हैं इस लिये अवग्रहके पश्चात् ईहाका कथन है धारणा ज्ञान अवाय पूर्वक होता है इस लिये ईहाके पीछे अवायका कथन है। धारणा ज्ञान सबसे अंतमें होता है इसलिये सबके अंतमें धारणा ज्ञान रक्खागया है। इसप्रकार उत्पत्तिके क्रमकी अपेक्षा-से अवग्रह आदिका क्रमसे उल्लेख है ॥

इहार्थमुत्तरार्थं च तदित्युच्यते ॥ यन्मत्यादिपर्यायशब्दवाच्यं ज्ञानं तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं तदेवावग्रहेहावायधारणा इति। इतरथा हि प्रथमं मत्यादिशब्दवाच्यं ज्ञानमित्युक्त्वा इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं श्रुतम्। तदेवावग्रहेहावायधारणा इत्यनिष्टमभिसम्बध्येत ॥

इह * अर्थम ;॥ च * उत्तर-	=(उत्तर) यहाके लिये अर्थात् इस सूत्रके लिये और (=च) पश्चात् वा पिछले
अर्थम् ,॥ तद् ;॥ इति*	=(सूत्र) के लिये (अर्थात् कहे जाने वाले पद्रहवा सूत्र के लिये) तद् (शब्द) है॥ ऐसे
उच्यते ॥ यद् ;॥ मति आदि पर्याय शब्द-	=कहा गया है (कि) जो मति स्मृति सज्ञा चिंता अभिनिवोध समानार्थक शब्दोंकरि
वाच्यम् ;॥ ज्ञानम् ;॥ तद् ,॥ इन्द्रिय-	=वाच्य (कहे जाने वाला) ज्ञान है सो (ज्ञान) इन्द्रिय
अनिन्द्रिय निमित्तम् ;॥ तद् ,॥	=तथा अन्तः करण जनित है (और) वो (मतिज्ञान)
एव * अवग्रह ईहा-आवाय धारणा ;॥ इति*	=ही अवग्रह-ईहा-आवाय धारणा रुप (देखो सूत्र १५) है क्योंकि (=हि)
इतरथा * हि * प्रथम ;॥ मति आदि-	=अन्यथा (तत् शब्द न लाया जाय तो) पहिले मति स्मृति-सज्ञा चिंता अभिनिवोध
शब्द-वाच्यम् ;॥ ज्ञानम् ;॥ इति* उक्त्वा–	=शब्दोकरि वाच्य (=कहेजानेवाला) मतिज्ञानहै ऐसा कहकर वा कथन करि
इन्द्रिय-अनिन्द्रिय निमित्तम् ,॥ श्रुतम् ;॥	=इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त (=इन्द्रिय और मन जनित) श्रुत ज्ञान है ऐसा सबध होजाता
तद्-एव* अवग्रह ईहा-आवाय धारणा ;॥ इति*	=सोयह (श्रुतज्ञान) ही अवग्रह ईहा आवाय धारणा (सूत्र १५) रूप है ऐसा
अनिष्टम् ,॥ अभिसम्बध्येत ॥	=विरुद्ध वा प्रतिकूल सम्बन्ध वा प्रसग हो जाता यदि इस सूत्रमें तद् शब्द न लाते)

साराश.—"इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त" ऐसा सूत्र होता तौ तद् शब्द का लाभ होजाता (उत्तर) आदिके दो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं (देखो सूत्र ११) मति स्मृति-सज्ञा-चिंता अभिनिवोध ये मतिके पर्यायशब्द हैं (सूत्र १३) अब यदि तत् शब्द न लाते तो (यथा सख्य के नियम से) इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त का सबध श्रुतज्ञान तो११वा सूत्रमें है) उससे होकर यह अर्थ होजाता कि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय जन्य श्रुतज्ञान है पश्चात्

यथा--चक्षुषा शुक्लं रूपमिति ग्रहणमवग्रहः ॥ अवगृहीतेऽर्थे तद्विशेषाकाङ्क्षणमीहा । यथा--शुक्लं रूपं किं बलाका पताकेति ॥

भावार्थः– किसी पदार्थका इन्द्रिय और मनके संबंध होने से उस वस्तुके होने वा सत्ता मात्रको जानना सो दर्शन है। दर्शनके पश्चात् ही वा लगता ही वस्तुका श्वेत अरुणादिरूप विशेषज्ञान सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है

यथा ॐ चक्षुषा ३। शुक्लम् १॥ रूपम् १॥ इति गृहणम्	=जैसे नेत्रकरि श्वेतरूप इसप्रकार आदान वा ग्रहण
अवग्रहः १। अवग्रह-गृहीते ७। अर्थे ७। तद्-	=सो अवग्रह है। अवग्रहकरि ग्रहण किये हुये पदार्थ में उस पदार्थ के
विशेष-आकाङ्क्षणम् १॥ ईहा १॥	=अधिक वा विशेष (जानने) की अभिलाषा वा वांछा रूप ज्ञान सो ईहा है
यथा ॐ शुक्लम् १॥ रूपम् किम् बलाका १॥ पताका १॥ इति	=जैसे यह श्वेत रूप क्या बक श्रेणी होना चाहिये (अथवा) ध्वजा।

(१) ईहा और संशय ज्ञानमें यह अन्तर है कि संशय ज्ञान तो दोय पक्षमें अनिश्चित ज्ञान है अप्रमाण है बहुरि ईहा एकही पक्षमें वांछारूप ज्ञान है जो बक पंक्ति है तो उसहीकी जाननेकी इच्छा है जो पताका है तो उसहीकी जाननेकी अभिलाषा है। बहुरि संशय ज्ञानमें न जाने बगुलाकी पांती है अथवा न जाने पताका है ॥

१ ननु ईहा संशयज्ञानं भवितुमर्हति, किं बलाका पताकेति उभयकोटीपरामर्शप्रत्ययत्वात्, प्रसिद्धसंशयज्ञानवत् ॥ तथा च कथमस्याः प्रामाण्यमिति न शंकितव्यम्। हेतोरसिद्धेः। तस्या भवितव्यताप्रत्ययरूपत्वेन उभयकोटीपरामर्शिप्रत्ययरूपत्वाघटनात्। किं बलाका पताकेति वचनं तु निदर्शनद्वयोपदर्शनार्थमुक्तम्। तथा च किं बलाकेत्यत्र बलाकया भवितव्यमिति तात्पर्यम्। किं पताकेत्यत्र च पताकया भवितव्यमिति तात्पर्यम् ॥ कथमेषा प्रतीतिरिति चेत् प्ररूपणशास्त्रे ज्ञानमार्गणायां मतिज्ञानव्याख्यानावसरे श्रीमदभयसूरिवर्यैस्तथैव निरूपितत्वात् ॥ यथाहि तद्ग्रन्थः- अवग्रहेण इदं श्वेतमिति ज्ञातेऽर्थे विशेषस्य बलाकारूपस्य पताकारूपस्य वा यथावस्थितस्य आकांक्षा, बलाकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा बलाकायामेव संजायमाना ईहाख्यं द्वितीयं ज्ञानंभवेत् ॥ अथवा पताकारूपं विषयमालम्ब्य उत्पद्यमाना अनया पताकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा

विषयविषयिसन्निपातसमयानन्तरमाद्यग्रहणमवग्रह । विषयविषयिसन्निपाते सति दर्शनं भवति तदनन्तर-मर्थस्य ग्रहणमवग्रह ।

जैसे नेत्र इन्द्रियके ग्रहणमें आया जो ये श्वेत है ॥ (२) बहुरि श्वेत रूप जाने हुये पदार्थ में विशेष जाननेकी आकाक्षा जो यह श्वेत है सो बकपक्ति होना चाहिये अथवा श्वेत धुजा होना चाहिये इस प्रकार इच्छा होना सो ईहा मतिज्ञान है। ऐसै ही शब्दादिकोमें अन्य इन्द्रियो द्वारा ईहा होती है ॥ (३) ईहाकरि जाने हुये पदार्थका विशेष निर्णय होनेसे जैसा पदार्थ हो तिसमें तैसा ही निश्चय होना सो अवाय मतिज्ञान है ॥ जैसे बगुला (=बगला बग बक)की पक्तिमें बगलोकी पक्तिहीकी जाननेरूप इच्छा थी परतु धजाका निषेध नही किया था ऐसा तो ईहा ज्ञान था। अब ऊचा नीचा आवना परोका हलावना इत्यादि क्रिया चिन्हकरि ऐसा निश्चय हुआ जो ये बक पक्तिही है अन्य धुजादिक कुछ भी नहीं है ऐसा निश्चय ज्ञान अवाय है (४) अवायकरि निश्चय वा निर्णय किया जो वस्तु उसका ऐसा दृढज्ञान होना जो भिन्न भिन्न कालमें वा कालान्तरमें भूलना नहीं सुधबनी रहै उसको धारण ज्ञान वा धारणा मतिज्ञान कहते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद ॥

विषय विषयिन्-	=विषय (शब्दरूपादि) अथवा इन्द्रियार्थ और विषयी वा विषयवाले (पाचइन्द्रिय और मन) तिनके
सन्निपात-समय-अनन्तरम् ।।।।	=सबध होनेके समयसे लगताही (=अनन्तर)
आद्य-ग्रहणम् ।।।। अवग्रह ।।	=प्रथम ग्रहण अथवा जो पहिलेही ग्रहणमें आवै (सो) अवग्रह है (अर्थात्)
विषय विषयि-	=(स्पर्श-रस गध-रूप शब्द जे) विषय और विषयको ग्रहण करने वाले पाच इन्द्रिय और मन.
सन्निपाते ।।।। सति ।। दर्शनम् ।।।।	=सबध वा सयोग होने पर (=सति) (किसी वस्तुके) सत्ता वा होने मात्रका ग्रहण दर्शन
भवति । तद्-अन्तरम् ।।।।	=होता है। उस (दर्शन)के लगता ही अथवा अत्यत निकट (अनन्तर)
अर्थस्य ।। ग्रहणम् ।।।। अवग्रह. ।।	=पदार्थका ग्रहण सो अवग्रह है ॥

तथा * च * किम ।।। बलाका ।। इति * अत्र * बलाकया ।।	=जैसा कि (=तथा च) क्या बगुलों की पंक्ति ऐसा है यहां बकपंक्ति
भवितव्यम ।।। इति * तात्पर्यम ।।।; च * किम् ।।।	=अवश्य होनी चाहिये (=भवितव्यम्) ऐसा आशय है । और (= च) क्या
पताका ।। इति * अत्र * पतकया ।। भवितव्यम् ।।।	=ध्वजा ऐसा है यहां पताका अवश्य होनी चाहिये ।
इति * तात्पर्यम ।।।	=ऐसा आशय है भावार्थ जो बगुलों की पांति है तो उसहीकी जानने की इच्छा है जो पताकाहै तो उसहीकी जाननेकी वाञ्छाहै ऐसा एकपक्ष ग्रहण ईहाज्ञानमें है ।
कथम् * एषा ।। प्रतीति ।। इति * चेत् *	=कैसे यह विश्वास हो (कि ईहा ज्ञान एकपक्ष ग्रहण करता है) ऐसा संदेह है ॥
प्ररूपणाशास्त्रे ।।। ज्ञानमार्गणायाम् ।।। मतिज्ञान-	=(उत्तर) प्ररूपणा ग्रंथमें ज्ञान मार्गणा विषैं मतिज्ञान के
व्याख्यान-अवसरे ।। श्रीमद् -अभयसूरि-वर्यैः ।।	= वर्णन के प्रसंग मे श्रीमद् अभयसूरि श्रेष्ठ द्वारा
तथा * एव * निरूपितत्वात् ।।। यथाहि * तद्-	=तैसा ही व्यख्यान वा वर्णन किये जाने से (प्रतीत होती है) जैसा कि वह
ग्रन्थः ।। अवग्रहेण ।। इदम् ।।। श्वेतम् ।।। इति *	=शास्त्र है । अवग्रहज्ञान करि यह शुक्ल है ऐसा
ज्ञाते ।। अर्थे ।। विशेषस्य ।। बलाकारूपस्य ।।	= विदित वा जानलेने पर अर्थमें वा स्वरूपमें विशेष बक श्रेणी रूपकी
वा * पताकारूपस्य ।। यथा-अवस्थितस्य ।। आकांक्षा ।।	= अथवा (विशेष) ध्वजा रूप की अवस्था के अनुसार (जानने की) इच्छा
बलाकया ।। भवितव्यम् ।।। इति* भवितव्यता ।।	= सो बलाका होनी चाहिये । ऐसी (एक पक्ष) की संभावनात्मक
प्रत्ययरूपा ।। बलाकायाम् ।। एव * संजायमाना ।।	=प्रतीतिरूप है, बगुला की पांती होने पर ही उत्पद्यमान (= संजायमाना) वा उपजने वाला
ईहा-आख्यम् ।।। द्वितीयम् ।।। ज्ञानम् ।।। भवेत् T	=ईहा नाम (=आख्या) दूसरा ज्ञान होता है ॥
अथवा * पताकारूपम् ।।। विषयम् ।। आलम्ब्य-	=अथवा ध्वजारूप विषय को ग्रहण करि वा अवलम्ब करि
उत्पद्यमाना ।। अनया ।। पताकया ।। भवितव्यम् ।।। इति *	= संजायमान यह पताका होनी चाहिये ऐसी
भवितव्यता-प्रत्ययरूपा ।। आकांक्षा ।।	= संभावना की प्रतीतिरूप अभिलाषा (= अकांक्षा) है
ईहानाम् ।।। द्वितीयम् ।।। ज्ञानम् ।।। भवेत् T	= सो ईहा नामक दूसरा ज्ञान है ॥

आकांक्षा ईहानाम द्वितीय ज्ञान भवत् ॥ पञ्चमिन्द्रियान्तर विषयेषु मनोविषये च अवग्रहगृहीते यथा वस्थितस्य विशेषस्य आकांक्षारूपा ईहेति निश्चेतव्यम् ॥ मतिज्ञानावरण क्षयोपशमस्य तारतम्यभेदेन अवग्रहेहाज्ञानयोर्भेद सम्भवात् ॥ अस्मिन् सम्यग्ज्ञानप्रकरणे बलाका वा पताका वा इति संशयस्य बलाकया पताकया भवितव्यमिति विपर्ययस्य च मिथ्याज्ञानस्यानवतारात् ॥

ननु ॥ ईहा ॥ संशयज्ञानम् ॥ भवितुम्-अर्हति	=प्रश्न, ईहा संदेहज्ञान होना चाहिये या होना योग्य है । (भवितुम् हेत्वर्थभूत कृदन्त है)
किम् ॥ बलाका ॥ पताका ॥ इति उभयकोटिपरामर्श	=क्योंकि, बक श्रेणी (वा) ध्वजा ऐसा दोनों पक्ष का अवलम्बन करने वाले
प्रत्ययत्वात् ॥ प्रसिद्धसंशय ज्ञानवत् ॥	=ज्ञान होने वा प्रतीति होनेसे प्रगटकरि संशयज्ञान सदृश है ॥
तथा च उभयत्र अस्या ॥ प्रामाण्यम् ॥	=उभयपरभी (=तथाच) अर्थात् दोनों पक्षमें होनेपरभी इस (ईहा) के प्रमाणका होना कैसे है
इति न शङ्कितव्यम् ॥	=ऐसा संदेह (आचार्य कहते हैं) न होना चाहिये । प्रश्नका भावार्थ यह है कि ईहाज्ञानको बक पंक्ति है या ध्वजा है ऐसा विचार होनेसे संशयज्ञान कहना चाहिये, उत्तर यह है कि दोनों पक्षमें विचार होनेपर भी ईहाको संशयज्ञान न कहना चाहिये ।
हेतोः ॥ असिद्धेः ॥	=(क्योंकि) हेतु (=साधन) की सिद्धि नहीं होती भावार्थ यह है कि ईहाज्ञानको संशयज्ञान बनाने के लिये जो हेतु "दो कोटि परामर्शी ज्ञान होनेसे" दिया है वह असिद्ध है, हेत्वाभास है
तस्या ॥ भवितव्यता-प्रत्ययरूपत्वेन ॥	=क्योंकि तिस (ईहा) के होनेकी (भवितव्यता) प्रतीति रूपपना से
उभय कोटि परामर्शि प्रत्ययरूपत्वअघटनात् ॥	=दोनों पक्ष अवलम्बी ज्ञानरूपका होना नहीं घटता है या नहीं बनता है ॥
किम् ॥ बलाका ॥ पताका ॥ इति वचनम् ॥	=क्या बगुलाकी पंक्ति है (वा) ध्वजा है ऐसा वाक्य तो (=तु)
निदर्शनप्रदर्शन- अर्थम् ॥ उक्तम् ॥	=(ईहाके) का उदाहरण (=निदर्शन) दिखलाने के लिये कहा गया है ॥

विशेषनिर्ज्ञानाद्याथात्म्यावगमनमवायः उत्पतननिपतनपक्षविक्षेपादिभिर्बलाकैवेयं न पताकेति ॥ अथैतस्य कालान्तरेऽविस्मरणकारणं धारणा । यथा–सैवेय बलाका पूर्वाह्णे यामहमद्राक्षमिति ॥ एषामवग्रहादीनामुपन्यासक्रमः उत्पत्तिक्रमतः कृतः ॥

विशेष-निर्ज्ञानात् ५/१।।।	=(ईहासे जाने हुये पदार्थका) अधिक निर्णय (होने) से
याथात्म्य-अवगमनम् १/१।।। अवायः १/१।	=वास्तविक वा ज्योंका त्यों स्वरूपका (=याथात्म्य) निश्चित ज्ञान सो अवाय है ।
उत्पतन-निपतन-पक्षविक्षेप-आदिभिः ३/३।	=ऊंचा चढ़ना (=उत्पतन) नीचे आवना (=निपतन) पंख फैंकना हिलावना आदिसे
बलाका १/१।। एव* इयम् १/१।। न* पताका १/१।। इति*	=बगुलोंकी पांतीही (=एव) यह है पताका नहीं है ॥
अथ* एतस्य ६/१।।। काल-अन्तरे* अविस्मरण-	=उपरान्त, पश्चात् वा पीछे (=अथ) इस (अवाय ज्ञान) के अन्यकालमें न भूलनेका
कारणम् १/१।।। धारणा १/१।।	=कारण धारणा ज्ञान है अर्थात् अवाय ज्ञानकरि निश्चय की हुई वस्तुका ऐसा दृढ़ ज्ञान होय जो उस वस्तुको अन्य अन्य कालमें भूलने न देवै सो धारणा है
यथा* सा १/१।। एव* इयम् १/१।। बलाका १/१।। याम् २/१।।	=जैसे वो (=सा) ही (=एव) यह (=इयम्) बक पंक्ति है जिसको (=याम् २/१।।)
पूर्व-अह्णे ७/१।।। अहम् १/१ अद्राक्षम् T इति*	=प्रातःकालमें वा प्रभातमें मैंने देखा था ।(इसप्रत्यभिज्ञानका कारण धारणा है)॥
एषाम् ६/३। अवग्रह-आदीनाम् ६/३। उपन्यास-क्रमः १/१।	=इन अवग्रह आदिकोंका कहनेका (=उपन्यास) अनुक्रम (इनके)
उत्पत्ति-क्रमतः* कृतः १/१।	=उत्पत्तिके क्रमानुसार किया गया है अर्थात् जिस जिस क्रमसे ये सूत्रमें वर्णित हैं उसी उसी क्रमसे ये जीव कें उत्पन्न होते हैं ॥ इस सबका भावार्थ यह है कि

जो वस्तु सामान्य विशेष स्वरूप है उस (वस्तु) कें और इन्द्रियों कें संबंध होने पर प्रथम तो सामान्य अवलोकनरूप निराकार दर्शन होता है । पश्चात् उसी (वस्तु) का सामान्य विशेष रूप साकार ग्रहण होता है उस को अवग्रह कहते हैं । तिस के पीछे उक्त वस्तुमें विशेष बहुत हैं उन विशेषोंमें से किसी एक विशेषरूप जाननेकी अभिलाषारूप जो ज्ञान प्रवर्तता है जो यह अमुक विशेष होना चाहिये तिसको ईहा कहते हैं । पश्चात् उसी विशेपकी क्रिया चिन्ह देखकर यह निश्चय हुआ कि जो यह अभिलाषामें ग्रहण हुई थी सो ही है । सो अवाय है । पश्चात् उस विशेष में ऐसा ज्ञान दृढ़ हुआ जो अन्य काल में उसका नहीं भूले उस को धारणा कहिये ॥ (१) अवाय वा अपायके संबन्ध में देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ ३६७॥

एवम्॰ इन्द्रियान्तरविषयेषु ॐ।	=इस प्रकार अन्य (स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्र) इन्द्रियों के विषयोंमे
मनस् विषये ॐ। च॰	=और (=च) अनिन्द्रिय विषयमें वा अन्तःकरण गोचर (वस्तु) में
अवग्रहगृहीते ॐ। यथावस्थितस्य ॐ।	=अवग्रह ज्ञानसे ग्रहण किये हुये वा जाने हुये (पदार्थ) मे यथा अवस्थित (पदार्थ) के
विशेषस्य॰।आकांक्षारूपा॰। ईहा॰। इति॰ निश्चेतव्यम्॰।।।	=अधिक (जानने) की वाञ्छारूप ईहा ज्ञान है इस प्रकार निर्णय किया जाना चाहिये (था)
मतिज्ञान-आवरणक्षयोपशमस्य ॐ। तारतम्यभेदेन ॐ।	=मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमके न्यूनाधिक्य भेदकरि
अवग्रह ईहा ज्ञानयो ॐ।।। भेदसम्भवात् ॐ। अस्मिन् ॐ	=अवग्रह ईहा ज्ञानोंके भेद सभव है इस
सम्यग्ज्ञानप्रकरणे ॐ। बलाका ॐ।। वा॰ पताका ॐ।।	=सुज्ञानके अधिकार में बगुलोंकी पाती है अथवा ध्वजा है
वा॰ इति॰ संशयस्य ॐ। च॰ बलाकायाम् ॐ।।	=ऐसे संदेह की तथा बक श्रेणी ॥
पताकया ॐ।। भवितव्यम् ॐ।।। इति विपर्ययस्य ॐ।।।	=पताका होनी चाहिये ऐसे विपर्यय
मिथ्याज्ञानस्य ॐ।।। अन्+अवतरात् ॐ।।।	=मिथ्या ज्ञानका अवतार (प्रसग) नहीं होसक्ता ॥ प्रश्न और उत्तरका सारांश यह है कि ध्वजा है वा बक पक्ति है यह तो संशय ज्ञान हुआ ॥ उत्तर में कहते हैं

कि ईहा ज्ञान के दो उदाहरण दिये हैं ईहाज्ञानवाला उनको देखकर यह नहीं कहता है कि ध्वजा है वा बक पक्ति है वह यह कहता है वा विचारता है कि यह श्वेत वस्तु ध्वजा होना चाहिये, बक पक्ति होना चाहिये ॥ उसका ज्ञान दो ओर नहीं जाता है कि न जाने ध्वजा है कि न जाने बक पक्ति है उक्त दो ओर जाने वाले ज्ञानको संशय ज्ञान कहते हैं ध्वजा होना चाहिए, बक पक्ति होना चाहिये ऐसी इच्छाको ईहा कहते हैं (२) दूसरी बात यह है कि यहा सम्यग्मतिज्ञान का प्रकरण है और ईहा सम्यग्ज्ञान का भेद है,संशय जो मिथ्याज्ञान है उसका अवतरण का प्रसग नहीं आता ॥

(२) स्मरण रहे कि अग्रिम पृष्ठ ३६८ में अपाय और अवाय दोनो शब्द के पाठोंके मानने में कोई दोष नहीं क्योंकि 'यह पुरुष दक्षिणी नहीं है' जिस समय ऐसा अपाय निषेध किया जाता है उससमय 'उत्तरी है' इस अर्थसे अवाय ज्ञानसे ग्रहण होता है और जिस समय 'यह उत्तरी है' इस रूपसे पदार्थका ग्रहण होता है उस समय 'यह दक्षिणी नहीं है' इस पदार्थ का निषेध हो जाता है इस लिये अवाय और अपाय यह दोनों प्रकार का पाठ इष्ट है । और यह भी स्मरण रहे कि जिस पदार्थ को जाना जाता है वह विषय है और जिसके द्वारा जाना जाता है वह विषयी कहा जाता है इन्द्रियोंके द्वारा पदार्थ जाने जाते हैं इस लिये यहां विषयी शब्दसे इन्द्रियों का ग्रहण है और विषय का अर्थ घट पट आदिक हैं ॥

बहु-बहुविध- =(१) अनेक (पदार्थों) का अथवा ढेर (पदार्थ) का (२) अनेक प्रकार के वा नाना भांति के (पदार्थों) का,
क्षिप्र-अनिःसृत- =(३) शीघ्र गमन करते हुये (पदार्थ) का (=क्षिप्रस्य) (४) छिपे हुये (पदार्थ) का वा अल्पभाग दीखते हुये (पदार्थ) का
अनुक्त (=अन्-उक्त)- =(५) विना कहे हुये (अभिप्राय से ही) (पदार्थ) का वा वचनसे सुने विना (अभिप्राय से ही पदार्थ) का
ध्रुवाणाम् ६। =(६) स्थिर (पदार्थों) का, निश्चल (पदार्थों) का, अथवा बहुत काल तक जितनाका तितना निश्चलरूप (पदार्थों) का
स-इतराणाम् ६। =इन छहोंसे विरुद्धोके प्रतिपक्षीयोंके वा विपरीतों के सहित अर्थात (७) एक पदार्थका वा अल्प (पदार्थ) का (८) एक प्रकार के (पदार्थों) का (९) अक्षिप्रका वा मंद गमन करते हुए (पदार्थ) का (१०) निःसृत का वा समस्त वाह्य निकले हुये (पदार्थ) का (११) उक्त पदार्थ का, कहे हुये (पदार्थ) का, वा शब्द सुनकरि के (पदार्थ) का (१२) अध्रुवका, अस्थिर (पदार्थ) का, चलायमान (पदार्थ) का, अथवा क्षणमात्र स्थिर रहने वाले (विजली सदृश) का-इन बारहों में से—

एकशः*अवग्रह-ईहा-अवाय-=प्रत्येकके वा भिन्न भिन्नके वा पृथक् पृथकके (उक्त बारह प्रकारके पदार्थोंके) अवग्रह और ईहा और आवाय (=अवाय)
धारणाः १॥ भवन्ति T एते १। =और धारण होते हैं और (इन अड़तालीस में से)
प्रत्येकं १।इन्द्रिय-अनिन्द्रियैः ३॥=प्रत्येक स्पर्शन-रसन घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र- और ईषद् इन्द्रिय (मन, अनिन्द्रिय) द्वारा
प्रादुर्भाव्यन्ते T =(समुच्चय होकर दोसो अठासी मति ज्ञानके भेद) प्रगट किये जाते हैं वा प्रकाश किये जाते हैं कि
(१) स्पार्शन (अथवा स्पर्शनइन्द्रियजन्य) बहु पदार्थ (=अर्थ) का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२) स्पार्शन अल्पपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३) स्पार्शन बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५) स्पार्शन क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६) स्पार्शन अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (७) स्पार्शन अनिःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(८) स्पार्शन निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (९ स्पार्शन अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१०) स्पार्शन उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (११) स्पार्शन ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१२) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान॥

उक्तानामवग्रहादीना प्रभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह ॥

वहुवहुविधक्षिप्राऽनि सृताऽनुक्तध्रुवाणा सेतराणाम् ॥ १६ ॥

उक्तानाम् ६। अवग्रह-आदीनाम् ६। प्रभेद- =वर्णित अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा के (आदीनाम) विशेष भेदोकी
प्रतिपत्ति-अर्थम् ४॥। आह T =प्राप्ति (=प्रतिपत्ति-यह अर्थ प॰जयचदजीने किया है)के लिये (अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्- वहु वहुविधं क्षिप्राऽनि सृताऽनुक्तध्रुवाणा सेतराणाम् ॥ १६ ॥

पदच्छेद — वहु वहुविध-क्षिप्र अनि सृत-अनुक्त-ध्रुवाणाम् सेतराणाम्
(अवग्रह-ईहा अवाय-धारणा भवन्ति एवश एते इन्द्रिय-अनिन्द्रियैः प्रत्येक प्रादुर्भाव्यन्ते) ॥

(१) इस सूत्र का दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायों मे एक अर्थ है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय म इस सूत्रका पाठ ऐसे है कि " वहुवहुविधक्षिप्रानिश्रितानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ अर्थात् निसृत क स्थान मे ' निश्रित ' है S ऐसे दो स्थानों म चिन्ह नहीं है शेष पाठ एक है।
(२) अधिकतम पाठों में हमारे यहा ऽ ऐसा चिन्ह नहीं है। यह चिन्ह इस बात का द्योतक है कि 'क्षिप्रा' और "अनिसृता" मे से केवल लघु अकार ग्रहण किया है॥ (देखो पृष्ठ ३५०)
(३) विसर्ग के पश्चात् श् ष् अथवा स् आवे तो इस विसर्गका विसर्गही बना रहता है अथवा यह विसर्ग श् ष् स् म यथासख्य परिवर्तन होजाता है अत हमारे यहा कहीं कहीं 'नि सृत' पाठ है और कहीं कहीं 'निस्सृत' भी पाठ है ॥ (इस अनुवाद के पृष्ठ ४८ में भी यही नियमदिया है)
(४) किसी किसी प्रति म हमारे यहा 'सेतराणा' भी पाठ है वह श्रायुत पाणिनि शाकटायन और जैनेन्द्र प्रक्रिया के रचयिता के मतानुसार अशुद्ध है परन्तु कातन्त्ररूपमाला व्याकरण क अनुसार शुद्ध है जैसा कि हम इस पुस्तक के आरम्भ मे सिद्ध कर चुके हैं ॥ (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और ६)
(५) यहां छहो वहु वहुविध क्षिप्र अनि सृत अनुक्त ध्रुव शब्दों म षष्ठी विभक्ति है सो द्वन्द समासके होनेसे अतके शब्द ध्रुव मे और उनके प्रतिपक्षी इतर शब्द मे लगाइ गई है अर्थात् वहुका, वहुविधिका, क्षिप्रका, अनि सृतका, अनुक्तका, ध्रुवका (अवग्रह ईहा अवाय और धारणा होता) है और इनके प्रतिपक्षीयों अल्पका अल्पविधका अक्षिप्रका-नि सृतका उक्तका अध्रुवका (अवग्रह ईहा अवाय धारणा होता है) ॥ इस सूत्रमे 'वहु' शब्द (१) सख्या, गणना वा गिनती के अर्थ म है जैसे एक दो तीन-चार-पाच छह इत्यादि वहुत ये तो सख्या हुई दूसरे विपुल अथवा समूहपना के अर्थमें आया है जैसे भात वहुत है दाल वहुत है यहा विपुलताही कही। सूत्रमे वहु शब्द दोनों अर्थो मे है ॥
(६) वहुविध =वहुत प्रकार (के पदार्थो) का, अनेक प्रकार (की वस्तुओं) का, नानाभाति (की द्रव्यों) का जैसे सैनामे हस्ती, घोड़े, ऊट, बैल, भैंसा इत्यादिक अनेक जातिका ग्रहण करनेवाला वहुविध है ॥

(४९) श्रावण बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५०) श्रावण अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(५१) श्रावण बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५२) श्रावण अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(५३) श्रावण क्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५४) श्रावण अक्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५५) श्रावण अनिस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५६) श्रावण निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५७) श्रावण अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५८) श्रावण उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५९) श्रावण ध्रुव पदार्थका अवहग्रूरूप मतिज्ञान (६०) श्रावण अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६१) मानस बहुपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (६२) मानस अल्पपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६३) मानस बहुविधपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (६४) मानस अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६५) मानस क्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (६६) मानस अक्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६७) मानस अनिस्सृतपदार्थका अवगृहरूप मतिज्ञान (६८) मानस निःसृत पदार्थका अवगूहरूप मतिज्ञान
(६९) मानस अनुक्त पदार्थका अवगूहरूपमतिज्ञान (७०) मानस उक्त पदार्थका अवगूहरूप मतिज्ञान
(७१) मानस ध्रुव पदार्थका अवगूहरूप मतिज्ञान (७२) मानस अध्रुव पदार्थका अवगूहरूप मतिज्ञान
(७३) स्पार्शन बहुपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (७४) स्पार्शन अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७५) स्पार्शन बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (७६) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७७) स्पार्शन क्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (७८) स्पार्शन अक्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७९) स्पार्शन अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८०) स्पार्शन निसृतपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८१) स्पार्शन अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८२) स्पार्शन उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८३) स्पार्शनध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८४) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(१) अवग्रह के ७२ भेदो में अर्थावग्रहसे तात्पर्य्य रक्खा है क्योकि अवग्रह ज्ञान व्यक्त पदार्थ और बंजन (अव्यक्त) पदार्थ दोनोका होता है। ईहा ज्ञान, अवायज्ञान, धारणा ज्ञान ये व्यक्त पदार्थके ही होते हैं व्यंजन पदार्थके नहीं होने हैं इसलिये अवगूह ज्ञानकेही अर्थावगूह और व्यंजनावगूह ऐसे दो भेद होते हैं अन्यके नहीं॥ तिसपर भी स्मरण रहे कि व्यंजनका अवगूह नेत्र और मनके पदार्थ से भिड़न न होनेके हेतु से केवलचार इन्द्रियो द्वारा होता है॥

(१३) रासन बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (१४) रासन अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१५) रासन बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (१६) रासन अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१७) रासन क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (१८) रासन अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१९) रासन अनि सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (२०) रासन निस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२१) रासन अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (२२) रासन उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२३) रासन ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (२४) रासन अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(२५) घ्राणज बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (२६) घ्राणज अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२७) घ्राणज बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (२८) घ्राणज अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२९) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३०) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३१) घ्राणज अनिस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३२) घ्राणज निस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३३) घ्राणज अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३४) घ्राणज उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३५) घ्राणज ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३६) घ्राणज अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

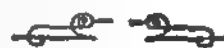
(३७) चाक्षुप बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३८) चाक्षुप अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३९) चाक्षुप बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (४०) चाक्षुप अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४१) चाक्षुप क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (४२) चाक्षुप अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४३) चाक्षुप अनिस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (४४) चाक्षुप निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४५) चाक्षुप अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (४६) चाक्षुप उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४७) चाक्षुप ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (४८) चाक्षुप अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१) तेरह भेदसे चौवीस भेद तक 'रासन' शब्दके स्थानमें 'रसनेन्द्रिय जन्य (बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान) ऐसा भी वाक्य लासकते हैं इसी प्रकार पचीस भेदसे छत्तीस तक और सतीससे अड़तालीस तक 'घ्राणज' के स्थानमें घ्राणेन्द्रियज और 'चाक्षुप' के स्थानमे चक्षुइन्द्रियजन्य लासकते हैं॥

(८५) रासन बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८६) रासन अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८७) रासन बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८८) रासन अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८९) रासन क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९०) रासन अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९१) रासन अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९२) रासन निस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९३) रासन अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९४) रासन उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९५) रासन ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९६) रासन अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान



(९७) घ्राणज बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९८) घ्राणज अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९९) घ्राणज बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१००) घ्राणज अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०१) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०२) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०३) घ्राणज अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०४) घ्राणज निस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०५) घ्राणज अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०६) घ्राणज उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०७) घ्राणज ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०८) घ्राणज अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान



(१०९) चाक्षुष बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११०) चाक्षुष अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१११) चाक्षुष बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११२) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११३) चाक्षुष क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११४) चाक्षुष अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११५) चाक्षुष अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११६) चाक्षुष निस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११७) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११७) चाक्षुष उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११९) चाक्षुष ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१२०) चाक्षुष अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(२२९) रासन बहुपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२३०) रासन अल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३१) रासन बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२३२) रासन अल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३३) रासन क्षिप्र पदार्थकाधारणारूप मतिज्ञान (२३४) रासन अक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३५) रासन अनिसृत पदार्थकाधारणारूपमतिज्ञान (२३६) रासन निसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३७) रासन अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२३८) रासन उक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३९) रासन ध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४०) रासन अध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२४१) घ्राणज बहुपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४२) घ्राणज अल्प पदार्थका धारणारूपमतिज्ञान
(२४३) घ्राणज बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४४) घ्राणज अल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२४५) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४६) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२४७) घ्राणज अनिसृतपदार्थका धारणारूपमतिज्ञान (२४८) घ्राणज निसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२४९) घ्राणज अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५०) घ्राणज उक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५१) घ्राणज ध्रुवपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५२) घ्राणज अध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२५३) चाक्षुष बहुपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५४) चाक्षुष अल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५५) चाक्षुष बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५६) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५७) चाक्षुष क्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५८) चाक्षुषअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५९) चाक्षुष अनिसृत पदार्थका धारणारूपमतिज्ञान (२६०) चाक्षुष निसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६१) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६२) चाक्षुष उक्तपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६३) चाक्षुष ध्रुवपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६४) चाक्षुष अध्रुवपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

बहुशब्दस्य सङ्ख्यावैपुल्यवाचिनो ग्रहणमविशेषात् । सङ्ख्यावाची यथा--एक द्वौ बहव इति । वैपुल्यवाची यथा--बहुरोदनो बहुः सूप इति । विधशब्दः प्रकारवाची । क्षिप्रग्रहणमचिरप्रतिपत्त्यर्थम् । अनिःसृतग्रहणं असकलपुद्गलोद्गमार्थम्

बहु शब्दस्य ६। सङ्ख्यावैपुल्य वाचिन ६। =बहु शब्दका (जो) गणना वा गिनती तथा समूह का वाचक है (=वाचिन्)

अविशेषात् ५। ग्रहणम् १।१। =अभेदपना से ग्रहण किया गया है अर्थात् दोनों गणना और ढेर (समूह) में भेद नहीं माना है सामान्य रूप से सख्या तथा ढेर अर्थों में बहु शब्द को ग्रहण है ।

सख्यावाची१। यथा* एक१। द्वौ१। बहव १। इति* =गणना वाचक जैसे एक दो बहुत इस प्रकार है

वैपुल्यवाची१। यथा* बहु १। ओदन १। बहु १। =समूह वाचक जैसे अधिक भात बहुत

सूप १। इति* । विधशब्द १। प्रकारवाची १। =दाल (=सूप) ऐसे है ॥ विध शब्द प्रकार वाची है वा भेद वाचक है (जैसे हस्ती-ऊट, घोडा, बैल, गाय, बकरी, बन्दर इत्यादि अनेक जाति का ग्रहण करने वाला बहुविध अवग्रह, बहुविध ईहा, बहुविध अवाय, बहुविध धारणा है)

क्षिप-ग्रहणम् १।१। अचिर-प्रतिपत्ति अर्थम् १।१। =(सूत्रमें) क्षिप्र (शब्द) का लाना शीघ्रता (=अचिर) के प्राप्ति के लिये है अर्थात् शीघ्रता से पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान होना, ईहारूप ज्ञान होना, अवायरूप ज्ञान होना, धारणारूप ज्ञान होना सो क्षिप्र ग्रहण है

अनिःसृत-ग्रहणम् १।१। असकल पुद्गल-उद्गम-अर्थम् १।१। =(सूत्र में) अनिस्सृत (शब्द) का ग्रहण असमस्त पुद्गल वा असमस्त शरीर के प्रगटके =लिये है अर्थात् समस्त वस्तु बाह्य प्रगट नहीं निकली हो जैसे जलमें डूबे हुये हस्ती मनुष्यादिक का एक देश जानने से सपूर्ण पदार्थका अवग्रह रूप ज्ञान होना, ईहारूप ज्ञान होना, अवायरूप ज्ञान होना, धारणारूप ज्ञान होना सो अनिःसृत ग्रहण है ॥

तत्र वह्ववग्रहादयः मतिज्ञानावरणक्षयोपशमप्रकर्षात् प्रभवन्ति । नेतर इति । तेषामभ्यर्हितत्वादादौ ग्रहणं क्रियते ।। बहुबहुविधयोः कः प्रतिविशेषः ? । यावता बहुषु बहुविधेष्वपि बहुत्वमस्ति ।

तत्र* बहु-अवग्रह-आदयः ;। =यहां (सूत्रमें) वहु अवग्रह आदि (=बहु-विध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव)
मतिज्ञान आवरण-क्षयोपशम-प्रकर्षात ;। =मतिज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमकी अधिकतासे वा उत्कर्षतासे
प्रभवन्ति T इतरे ;। =उपजैं हैं । अन्य वा अवशेष अर्थात् अल्प, एकविध, चिर, निःसृत, उक्त, अध्रुव
न* इति* =ऐसे नहीं हैं अर्थात् ये मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमकी उत्कर्षता से नहीं होते हैं वरन थोडे क्षयोपशमसे होते हैं अतः ये छै पीछे कहे गये हैं
तेषाम् ; अभ्यर्हितत्वात् ;।।। =तिन (वहु, वहुविध, क्षिप्र, अनिस्सृत, अनुक्त, ध्रुव) का प्रधान होनेके हेतुसे
आदौ ;। ग्रहणम् ;।।। क्रियतेT वहु-वहुविधयोः ;। =आदि में वा प्रारम्भ में ग्रहण किया गया है । (प्रश्न) वहु और वहुविध में
कः ;। प्रतिविशेषः ;। यावता ;। वहुषु ;। =क्या भेद वा अन्तर है (क्योंकि) यथार्थ में (=यावता) वहु में और
बहुविधेषु ;। अपि* बहुत्वम् ;।।। अस्ति T =वहुविध मे भी (=अपि) वहुतपना है

---

(१) आदि शब्देन बहुविधावग्रहादयो गृह्यन्ते ॥

आदि-शब्देन ;। बहुविध-अवग्रह-आदयः ;।=आदि शब्दसे वहुविध अवग्रह आदि अर्थात् क्षिप्रअवग्रह,अनिस्सृतअवग्रह, अनुक्तअवग्रह, ध्रुवअवग्रह
गृह्यन्ते T =ग्रहण किये गये हैं

(२) सूत्रे इतरशब्दगृहीता ऽ वह्ववग्रहादयः ॥

सूत्रे ;।। इतरशब्द-गृहीताः ;। अवहु-अवग्रह- =इस सोलहवां सूत्रमें इतर शब्दसे लिये गये हैं अवहु अवग्रह
आदयः ;। =आदिक अर्थात् अल्पअवग्रह (वा अवहुअवग्रह) अल्पविधअवग्रह, अक्षिप्रअवग्रह, निःसृतअवग्रह, उक्तअवग्रह, अध्रुवअवग्रह ॥

क्षिप्रमवग्रह । चिरेणावग्रह । अनिःसृतस्यावग्रह । निःसृतस्यावग्रह । अनुक्तस्यावग्रह । उक्तस्यावग्रहः । ध्रुवस्यावग्रह । अध्रुवस्यावग्रहश्चेति अवग्रहो द्वादशविकल्पः ॥ एवमीहादयोऽपि । ते एते पञ्चभिरिन्द्रियद्वारैर्मनसा च प्रत्येक प्रादुर्भाव्यन्ते ॥

क्षिप्रम् ।॥ अवग्रह ॥	=क्षिप्र अवग्रह अर्थात् शीघ्रता से पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान होजाना
चिरेण * अवग्रह ॥	=देरी से वा चिरकालकरि वा बहुत कालकरि अवग्रह अर्थात् वस्तुका धीरे धीरे बहुत कालमें जानना (सो चिर अवग्रह है)
अनिःसृतस्य॥ अवग्रह॥ निःसृतस्य॥ अवग्रहः॥	=सर्व प्रगट न हो ताका अवग्रह, बाह्य निकले हुये प्रगटरूप का अवग्रह
अन्-उक्तस्य॥ अवग्रह॥ उक्तस्य॥ अवग्रहः॥	=विना कहे हुये (पदार्थ) का अभिप्राय से अवग्रह, कही हुई वस्तुका अवग्रह
ध्रुवस्य॥ अवग्रह ॥ च* अध्रुवस्य॥ अवग्रहः॥	=ध्रुवका अवग्रह और (=च) अध्रुवका अवग्रह वा अध्रुवका ग्रहण
इति* अवग्रह ॥ द्वादशविकल्प ॥ एवम्*	=इस प्रकार अवग्रह बारह प्रकार है । (और) इस भांति (=एवम्)
ईहा ।॥ आदय ॥ अपि*	=ईहा अवाय-धारणा (=आदय) भी (अपि) (बारह बारह प्रकार) है अर्थात् सब मिलकर अडतालीस भेद हुये
ते ॥ एते ॥	=वे (अवग्रह बारह प्रकार और) ये (ईहा, अवाय, धारणा छत्तीस प्रकार में से)
प्रत्येकम्॥पञ्चभिः॥इन्द्रियद्वारैः॥मनसा॥ च*	=प्रत्येक पांच इन्द्रियों द्वाराकरि और (=च) मनसे
प्रादुर्भाव्यन्ते T	=आविर्भाव वा प्रगट वा प्रकाश किये जाते है अर्थात् अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा प्रत्येक के बारह बारह भेद हैं सो इन अडतालीस भेदो को पांच और छठा मन पर लगाने से सब दोसो अठासी भेद हुये

दृष्टान्त वा उदाहरण को यों भी ले सक्ते हैं कि बहुत गायों में काली श्वेत कावरी ढाढा मुडी अनेक प्रकार की हैं बहुविध तो इन गायों मे से नाना प्रकारकी गायों का ग्राही है और एकविध केवल एक वर्णकी गायका ग्रहण करने वाला है ॥ एकविध और बहुविध में यही भेद वा अन्तर है ॥

एकप्रकारनानाप्रकारकृतो विशेष ॥ उक्तनिःसृतयो कः प्रतिविशेषः ? । यावता सकलनिःसरणान्निःसृतम् । उक्तमप्येवंविधमेव ॥ अयमस्ति विशेष –अन्योपदेशपूर्वकं ग्रहणमुक्तम् । स्वत एव ग्रहणं निःसृतम् ॥ अपरेषां क्षिप्रनिःसृत इति पाठः ॥ त एवं वर्णयन्ति–श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दमवगृह्यमाणं मयूरस्य वा कुररस्य वेति कश्चित्प्रतिपद्यते । अपरः स्वरूपमेवानिःसृत इति ।

एक प्रकार नाना प्रकार कृत ः। विशेष ः। =एक प्रकार अनेक पकार से किया हुआ भेद अथवा अंतर है

उक्त निःसृतयो ः। कः ः। प्रतिविशेष ः। =उक्त और निःसृत में क्या भिन्नता (=प्रतिविशेष) है

यावता* सकलनिःसरणात् ः।। निःसृतम् ः।। =ज्योंका त्यों समस्त प्रगट होनेसे निःसृत है अर्थात् पूरा व्यक्ति हो सो निःसृत है

उक्तम् ः।। अपि* एवम् * विधम् ः।। एव* =उक्त भी इसी (=एवम्) प्रकार ही है अर्थात् उक्तमें भी समस्त प्रगटता है

अयम् ः। अस्ति ः। विशेष ः। अन्य-उपदेश- =(परंतु अनिःसृत और उक्त में) यह भेद है कि दूसरे के उपदेश

पूर्वकम् ः।। ग्रहणम् ः।। उक्तम् ः।। स्वतम्* एव* =निमित्तक ग्रहण सो उक्त है। अपनेआप (=स्वतस्) ही

ग्रहणम् ः।। निःसृतम् ः।। अपरेषाम् ः। क्षिप्र =ग्रहण सो निःसृत है। अन्य वा दूसरे (आचार्य) निका क्षिप्र

निःसृत ः। इति* पाठ ः। =निसृत पाठ है अर्थात् सोलहवा सूत्र बहु बहुविध इत्यादिमें "क्षिप्रानिःसृत" के स्थानमें क्षिप्रनिःसृत पढते है अतः निःसृत शब्द पहले छै शब्दों में आता है

ते ः। एवम्* वर्णयन्ति ः। श्रोत्र इन्द्रियेण ः।। =वे (आचार्य) इस प्रकार कहते हैं कि कर्ण इन्द्रिय से

शब्दम् ः। अवगृह्यमाण ः। मयूरस्य ः। वा कुररस्य ः। वा* =अवग्रह किया हुआ शब्द मोरका वा कुरचि (कुरर-कूज) पक्षीका (शब्द) है

इति* कश्चित्* प्रतिपद्यते । =ऐसा कोई प्रतिपादन करते है (=कश्चित प्रतिपद्यते) (सो निःसृत है)

अपर ः। स्वरूपम् ः।। एव* अनिःसृत ः। इति* =दूसरा रूपही अनिःसृत है अर्थात् सूत्रमें जब प्रथम छै शब्दोंमें निःसृत माना तब उससे भिन्न अथवा उलटा शब्द अनिःसृत सोलहवा सूत्र बहुबहुविध इत्यादिमें ग्रहण होवेगा

सर्वार्थ- सिद्धि

३८५

यद्यवग्रहादयो बह्वादीना कर्मणामाक्षेसार॰, बह्वादीनि पुनर्विशेषणानि कस्येत्यत आह--

॥ अर्थस्य ॥ १७ ॥

भावार्थ क्षयोपशमकी प्राप्तिके कालविषें शुद्ध परिमाणके सतानकरि पाया जो क्षयोपशम तातैं पहले समय जैसा अवग्रह भया तैसाही द्वितियादिक समयनिविषैं होय है किंतु कम भी नाहीं होय अरु अधिक भी नाहीं होय है ताकू तो ध्रुवावग्रह कहिये । बहुरि धारणा है जो जा पदार्थकू ग्रह्या ताकू नाहीं भूलनेका कारण रूपज्ञान है।" ऐसे ध्रुवावग्रह और धारणा में बडा अन्तर वा भेद है ॥ प० जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १५१, १५२

यदि॰ अवग्रह-आदय॰ ,। बहु-आदीनाम् ;। =जो अवग्रह ईहा अवाय-धारणा (=आदय) बहु आदिक (बारह)
कर्मणाम् ;।।। आक्षेसार॰;। पुनर्॰बहु आदीनि ;।।। =कर्मोके ग्रहण करने वाले हैं फिर (=पुन॰) बहु आदिक (बारह)
कस्य ;। विशेषणानि ,।।। इति॰ अत॰ आह T =किसके विशेषण है । ऐसा (प्रश्न होने पर) इस लिये कहते है कि

अर्थस्य ॥ १७ ॥ =अवग्रहादयो मतिज्ञान विकल्पा अर्थस्य भवन्ति

अवग्रह-आदय ,। मतिज्ञान- =अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, (=आदय) जो (पूर्वोक्त २८८) मतिज्ञान के
विकल्पा॰ ;। अर्थस्य ;। भवन्ति T =भेद हैं सो अर्थ, पदार्थ, द्रव्य वा वस्तु के होते है भावार्थ

ये बहु, अल्प, बहुविध, अल्पविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनिःसृत, निःसृत, अनुक्त, उक्त, और ध्रुव-अध्रुव बारह है ते द्रव्य, वस्तु, अर्थ वा पदार्थके विशेषण हैं और अर्थ (पदार्थ-वस्तु-द्रव्य) इन बहु आदिकका विशेष्य है और अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा बहु आदिक (बारह) कर्मोके ग्रहण करने वाले है जैसे अल्प पदार्थका अवग्रह बहुवस्तु वा पदार्थका अवग्रह इत्यादि अवग्रहके बारह, अल्प पदार्थ का ईहा, बहु पदार्थका ईहा इत्यादि ईहा के बारह, बहुद्रव्य वा अर्थका अवाय, अल्प अर्थ वा पदार्थका अवाय ऐसे अवायके बारह; इसी प्रकार बहुवस्तुका धारणा अल्प वस्तु वा अर्थ का धारणा इत्यादि बारह, ऐसे ४८ हुये पाच इन्द्रिय और छठे

* दोनों सम्प्रदायों म इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

सूत्रम्— मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु	=मतिश्रुतयो विषयस्यनिबन्धः द्रव्येषु असर्व-पर्यायेषु भवति
सूत्रार्थ मतिश्रुतयो ः॥ विषयस्य॥ निबन्धः॥	=मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके विषयका सम्बन्ध वा नियम (=निबन्ध)
द्रव्येषु ॥॥	=द्रव्य (जीव-अजीव-धर्म अधर्म-आकाश काल) निकेविषैं
असर्व-पर्यायेषु ॥॥ भवति T	=कुछ एक, कतिपय, कितनेक, (न कि सब) पर्यायोंमें होता है अर्थात् मतिज्ञान और श्रुत ज्ञानके जानने (=विषय) का सबन्ध सब (छहो) द्रव्योंके कुछ पर्यायों में होता है—छहो द्रव्यों को तो जानते हैं परतु उनकी थोडी सी पर्यायोंको ही जान सकते हैं ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्वार्थाधिगमसूत्रमें 'द्रव्येष्व' के स्थानमें 'सर्वद्रव्येष्व' है । शेष पाठ एक है अर्थ भी एकसा है क्योंकि हमारे यहां 'द्रव्येषु' का अर्थ सर्वद्रव्येषु लिया है ॥ उक्त सभाष्य०में इस सूत्रकी सख्या सत्तारसवीं है क्योंकि हमारे यहाके इकीसवां सूत्रके सभाष्य०में दो सूत्र कर दिये हैं ॥

(२) हमारे यहांकी बहुधा पुस्तकोंमें 'निबन्ध' शब्दका उल्लेख है किसी किसी प्रतिमें 'निबंध' है । अष्टाध्यायीके निम्न सूत्रोंसे निबंध भी ठीक है ॥ पद्मचन्द्रकाश पृष्ठ२१४में "निबन्ध, (पु०) नि+बन्ध्+घञ्" ऐसा उल्लेख है अब प्रश्न यह है कि इस अपदान्त 'न्'का अनुस्वारमें कैसे परिवर्तन हुआ ॥ अपदान्त म्-न्॥ नश्चापदान्तस्य झलि" यह अष्टाध्यायीके आठवा अध्यायका तीसरे पादका चौवीसवा सूत्र है । इस सूत्रसे पहिलेका' मुम' "मोऽनुस्वार " तेईसवा है । इससे अनुस्वारकी अनुवृत्ति चौवीसवां सूत्रमे आती है । तब चौवीसवां सूत्रका रूप इसप्रकार होजाता है कि "नः च अपादन्तस्य झलि (अनुस्वार) । च से तेइसवा सूत्रके मो (=म) का आकर्षण होता है । इसलिये ऐसा रूप हुआ कि "न ! म ! अपादन्तस्य ! झलि! अनुस्वार) झलि प्रत्याहार है और उसमें झल्के मध्यके अक्षर झ सहित सर्व आजाते हैं । अर्थात् क् ख् ग् घ् । च् छ् ज् झ् । ट् ठ् ड् ढ् । त् थ् द् ध् । प् फ् ब् भ् । श् ष् स् ह्—झलिका अर्थ है इन चौवीस अक्षरोंके पहिले आने वाला । अपादन्त=विभक्ति वा कारक जिसके अतमें नहो। सूत्रका अर्थ यह हुआ कि अपदान्त न् अथवा अपदान्त म् के स्थानमें अनुस्वार होवे यदि म् अथवा न् पूर्वोक्त चौवीस अक्षरोंमसे किसी अक्षरके पहिले हो । इसलिये निबन्धके न् का अनुस्वार होकर निबंध'होगया क्योंकि न् के पीछे ब् है ॥ अन्य उदाहरण,जैसे यशान्स्+इ य० ।सि, यह यशांसि, यश नपुंसक लिंगीका बहुवचन है यहां अपदान्त न् का अनुस्वार होगया, यशांसि का अर्थ है बहुत यश ॥ आ+क्रम्+स्यते, क्रम धातुके म् का अनुस्वार होकर आक्रंस्यते (=वह पकडैगा विजय, करेगा, जीतेगा) होगया ॥ देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और ६, पृष्ठ ५४०, ५४१)

उपजायते ततस्तत्पूर्वं श्रुतज्ञानं तद्विषयेषु स्वयोग्येषु व्याप्रियते ॥ अथ मतिश्रुतयोरनन्तरनिर्देशार्हस्यावधेः को विषयनिबन्ध इत्यत आह--

उपजायते T ततस॰ तत्-पूर्वम् ;।।। श्रुतज्ञानम् ;।।। स्वयोग्येषु ;। तद्-विषयेषु ;। व्याप्रियते T
=उपजता है। पश्चात (ततः देखो वैध कोश पृष्ठ ३००) उस (अवग्रह आदिरूप उपयोग) के
=निमित्तक (अर्थात अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणारूप उपयोग है कारण जिसको ऐसा)
=श्रुतज्ञान अपने योग्य उन धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय पदार्थों के
=विषयोंमें (अर्थात ग्रहण करनेमें) प्रवर्तता है ॥ सारांश यहहै :— प्रश्न करनेपर कि धर्मास्तिकाय पदार्थ इन्द्रिय गोचर नहीं है इन्द्रयोंकी अपेक्षा रखने वाले मतिज्ञानकी उनके जानने में प्रवृत्ति नहीं हो सकती इसलिये सब द्रव्यों को मतिज्ञान जानता है, यह कहना ठीक नहीं है उत्तरमें कहतेहैं कि धर्मास्तिकाय आदि पदार्थोंके ज्ञानमें मन कारण है श्रुतज्ञानावरण (=नोइन्द्रियज्ञानावरण) कर्मकी क्षयोपशम लब्धिरूप विशुद्धिके रहनेपर उससे धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थों का अवग्रह ईहा अवाय धारणा स्वरूप उपयोग प्रथम ही होलेता है उसके पीछे श्रुतज्ञान की अपने योग्य धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय विषयोंमें प्रवृत्ति होती है इसलिये धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान जब मनसे होता है तब यह मतिज्ञान नहीं है क्योंकि मनसे भी मतिज्ञान होता है ॥

अथ॰ मतिश्रुतयोः ;।।। अनन्तर-निर्देश-अर्हस्य ;। अवधेः ;। कः ;। विषयनिबन्धः ;। इति॰ अतः॰ आह T
=अब मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके निकट अथवा लगताही
=निरूपण वा कथन करने (=निर्देश) योग्य (=अर्हस्य) अवधिज्ञानके क्या
=विषयका नियम है ऐसा (प्रश्न) है ॥ इसलिये कहते हैं कि

(१) "तत्पूर्वं" वाक्यमें 'पूर्व'शब्दका प्रयोग उसही भांति है जैसेकि 'श्रुतमति पूर्व द्व्यनेक द्वादश भेदम्' सूत्रमें अर्थात् पूर्वम् =पूर्वकम्
(२) व्याप्रियते– पृ तुदादि छठे गणका यहां पर अकर्मक आत्मने पदी धातु है इसके साथ बहुधा वि, आ (अर्थात् व्या) उपसर्ग आते हैं पृ का प्रिय् हो जाता है व्या और छठे गणका 'अ' विकरण जोड़नेसे 'व्याप्रिय' होजाता है पश्चात् एकवचन अन्य पुरुष आत्मने पदी वर्तमान कालका 'ते' प्रत्यय लगाकर कर्तरिप्रयोगमें "व्याप्रियते" बनता है। कर्मणिप्रयोग में 'पृ' का 'प्रि' होजाता है 'य' कर्मणिप्रयोगका प्रत्यय जोड़ो, व्या+प्रिय, पीछे उक्त 'ते' जोड़ो, व्याप्रियते हो जाता है ॥ यहां वृत्ति में कर्तरि प्रयोग में इस शब्द को लाये हैं।

ग्रहणम् ॥ तानि द्रव्याणि मतिश्रुतयोर्विषयभावमापद्यमानानि कतिपयैरेव पर्यायैर्विषयभावमास्कन्दन्ति न सर्वपर्यायैरनन्तैरपीति ॥ अत्राह-धर्मास्तिकायादीन्यतीन्द्रियाणि तेषु मतिज्ञान न प्रवर्तते । अतः सर्वद्रव्येषु मतिज्ञान वर्तत इत्युक्तम् ॥ नैष दोष । अनिन्द्रियाख्य करणमस्ति तदालम्बनो नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमलब्धि-पूर्वक उपयोगोऽवग्रहादिरूप प्रागेव-

ग्रहणम् १॥	=ग्रहण है अर्थात् द्रव्येषु शब्द विशेष्य है और असर्वपर्यायेषु विशेषण है
तानि १॥ द्रव्याणि १॥ मतिश्रुतयो ६॥ विषयभावम् २।	=वे द्रव्य मति श्रुतज्ञानके विषय भावको
आपद्यमानानि १॥ कतिपयै ३। एव* पर्यायै ३।	=प्राप्त हुये (अपने अपने) कितनेकही पर्यायोकरि
विषयभावम् २। आस्कन्दन्ति T न*	=विषयभावको प्राप्त होते ह न कि
सर्वपर्यायैः ३। अनन्तै ३। अपि* इति*	=अनन्त सब पर्यायो सहित ही (=अपि) (मतिश्रुतज्ञानके विषय भावको प्राप्त होते हैं)
	साराश-मतिज्ञान श्रुतज्ञान सब द्रव्यो की कुछ ही पर्यायोको विषय करते हैं सर्व वा अनत पर्यायोको विषय नही करते हैं ॥
अत्र* आह T धर्मास्तिकायादीनि १॥	=यहा प्रश्न करता है (=आह) कि धर्मास्तिकाय आदिक (अधर्म आकाश काल मोक्षजीव)
अतीन्द्रियाणि १॥	=अतीन्द्रिय (पदार्थ) है अर्थात् इन पदार्थोको इन्द्रियें ग्रहण नहीं कर सकती है
तेषु ७॥ मतिज्ञानम् १॥ न* प्रवर्तते T	=तिन (धर्मास्तिकायादिक) में मतिज्ञान (जो इन्द्रियो द्वारा होता है) नहीं प्रवर्तता है
अतः* सर्वद्रव्येषु ७॥ मतिज्ञानम् १॥ वर्तते T	=इसलिये सब (छहो) द्रव्योमें मतिज्ञान प्रवर्तता है
इति* अयुक्तम् १॥ न* एष १। दोष १। अनिन्द्रिय-	=ऐसा (कथन) ठीक नहीं है। (उत्तर) यह दूषण नहीं है। (क्योकि) मन (अनिन्द्रिय)
आख्यम् १। करणम् १॥ अस्ति T तद्-	=नामा (=आख्य) (अतरग) करण वा इन्द्रिय है (द्रव्यमन है) उस (मन) के
आलम्बन १।	=निमित्तक वा कारणक (तद्-आलम्बन अर्थात् मन है निमित्त वा हेतु जिसको ऐसा)
नो इन्द्रिय-आवरण-क्षयोपशम लब्धि पूर्वक १।	=श्रुत(नोइन्द्रिय)ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमकी प्राप्तिपूर्वक(लब्धिहै निमित्त जिसको ऐसा)
उपयोगः १। अवग्रह-आदिरूप १। प्राक्* एव*	=उपयोग (है सो) अवग्रह-ईहा आवाय धारणा (चतुष्टय) स्वरूप पहिले ही

रूपिष्वित्यनेन पुद्गलाः पुद्गलद्रव्यसम्बन्धाश्च जीवाः परिगृह्यन्ते । रूपिष्वेवावधेर्विषयनिबन्धो नारूपेष्विति नियमः क्रियते । रूपिष्वपि भवन्न सर्वपर्यायेषु स्वयोग्येष्वेवेत्यवधारणार्थमसर्वपर्यायेष्वित्यभिसम्बध्यते ॥ अथ तदनन्तरनिर्देशभाजो मनःपर्ययस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह—

रूपिषु ७/३। इति* अनेन ३/१। पुद्गलाः १/३। च* पुद्गलद्रव्य-	=रूपी (पदार्थ) निमें ऐसे इस (शब्द) करि पुद्गल और पुद्गल द्रव्यके
सम्बन्धाः १/३। जीवाः १/३। परिगृह्यन्ते T रूपिषु ७/३। एव*	=संयोगी जीव लिये गये हैं वा ग्रहण किये गये हैं । रूपी (पदार्थ) निमें ही
अवधेः ६/१। विषयनिबन्धः १/१। न* अरूपिषु ७/३।	=अवधिज्ञानके विषयका (सम्बन्ध) है न कि अमूर्तियों में
इति* नियमः १/१। क्रियते T रूपिषु ७/३। अपि* भवत्[1] १/१।	=ऐसा नियम कियागया है। रूपी (पदार्थ) निमेंभी (अवधिज्ञानका विषय) होता हुआ
न* सर्वपर्यायेषु ७/३। स्वयोग्येषु ७/३। एव*	=असमस्त (कितनेक) पर्यायोंमें अपने योग्यही है अर्थात् पुद्गल द्रव्यके कतेकपर्यायों में और पुद्गल संयोगी जीवके औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक परिणामों को ही अवधिज्ञान को विषय करनेकी योग्यता है (देखो सूत्रार्थ पृष्ठ ४७१)
इति* अवधारण-अर्थम् १/१॥ असर्वपर्यायेषु ७/३।	=ऐसा निश्चय करने के लिये (=अवधारण-अर्थम्) असर्वपर्यायेषु
इति* अभिसम्बन्ध्यते T	=ऐसा (वाक्य सूत्रमें) लगाया गया है अर्थात् विषय शब्दकी अनुवृत्ति पचीसवां और 'निबन्ध' शब्दकी और 'असर्वपर्यायेषु' वाक्यकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे लीगई तब सूत्र ऐसा हुआ कि 'असर्वपर्यायेषुरूपिष्ववधेः विषयस्यनिबन्धः'
अथ* तद्-अनन्तर निर्देशभाजः ६/१।	=अब उस (अवधिज्ञान) के लगता ही (=अनन्तर) कहने योग्य (=निर्देशभाजः)
मनः पर्ययस्य ६/१। विषयनिबन्धः १/१। कः १/१। इति अतः आह	=मनः पर्यय (ज्ञान) के विषयका नियम क्या है इसलिये कहते हैं कि

(१) 'भवत्'-'भू' धातुका वर्तमान कृदन्त है। बहुधा वर्तमान कृदन्त ऐसे बनाये जाते हैं कि धातुका वह रूप लेलो जो अन्यपुरुष बहुवचन वर्तमान कालके प्रत्यय लगाने से पहिले बन जाता है । इसके पश्चात् वर्तमान कृदन्तका अत् यदि धातु परस्मैपदमें हो और (वर्तमान कृदन्तका) मान प्रत्यय यदि धातु आत्मने पदमें हो, जोड़ा जाय । अब भू को गुणसंज्ञा भो हुआ, भव्···हुआ प्रथम गणका अ विकरण लगाने से भव हुआ, अत् जोड़ने से भव+अत् हुआ, यदि प्रत्यय के आरम्भमें अ हो तो उससे पहला 'अ' गिरा देते है अतः भवत् हुआ ॥

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

विषयनिबन्ध इत्यनुवर्तते।

रूपिष्ववधेः	=रूपिषु (असर्व-पर्यायेषु) अवधेः (विषय निबन्ध भवति)
रूपिषु ७। असर्व पर्यायेषु ७।	=मूर्तीक (पदार्थ) निके (विषै) कितनेक या थोडे (नकि सब) पर्यायों में
अवधेः ५। विषय निबन्ध १, भवति T	=अवधि ज्ञानके विषयका सम्बन्ध होता है - सारांश यह है कि पुद्गल द्रव्यके अनंते पर्याय अवधिज्ञानके विषयभूत नहींहै किन्तु उसके कतिपय पर्यायोंको और जीवके औदयिक-औपशमिक क्षायोपशमिक परिणामोंको ही (अवधिज्ञान) विषय करताहै क्योंकि रूप रस गंध स्पर्श विशिष्टही पदार्थ अवधिज्ञानके विषय होवे हैं अतः जीवके क्षायिक और पारिणामिक भाव तथा धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य अरूपीपदार्थ होनेके निमित्त अवधिज्ञान के विषयभूत नहीं होसकते

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सत्ताईसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंन्दी अनुवाद

विषयनिबन्ध १। इति० अनुवर्तते T	=विषयका निबन्ध ऐसी अनुवृत्ति (इस सूत्रमें) पच्चीसवा और छब्बीसवा सूत्रसे यथासंख्य आतीहै तबसूत्र "रूपिष्ववधेः विषयनिबन्धः" ऐसा हुआ

(१) [illegible] रूप रस गंध स्पर्शका ग्रहण समझना चारोंही अविनाभावी हैं। अतः एकके ग्रहणसे चारोंका ग्रहण होता है। [illegible] की भांति शब्दहै।
(२) इस सूत्रका का पाठ हमारे यहां [illegible] और दिगम्बर आम्नायके समान तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें एकहै और अथभी दोनों सम्प्रदायमें एकसा है।
(३) 'रूपिष्ववधेः' सूत्रमें रूपशब्द उपलक्षण है। इसलिये रूप शब्दके पढनेसे उसके अविनाभावी (=जुदे न रह सकने वाले) रस गंध स्पर्शका भी ग्रहण है॥ "[illegible]", उपलक्षणम्। [illegible] (=अपने अर्थको न छोडकर) जो दूसरे पदार्थों का ग्रहण कराहै उसका नाम उपलक्षणहै जिस प्रकार 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' कागोंसे दहीकी रक्षा करो। यहां पर काक शब्द उपलक्षण है इसलिये जितने भी [illegible] है उन सबका काक शब्दसे ग्रहण है उसी प्रकार प्रकृतमें रूप शब्दको उपलक्षण माननेसे जितने उस रूपके अविनाभावी रस [illegible] गुण हैं उन सबका रूप शब्दसे ग्रहण है॥

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥

द्रव्याणि च पर्यायाश्च द्रव्यपर्याया इति इतरेतरयोगलक्षणो द्वन्द्वः ॥ तद्विशेषणं सर्वग्रहणं प्रत्येकमभिसम्बध्यते

सूत्रम्–सर्वद्रव्यपर्यायेषुकेवलस्य
सर्वद्रव्यपर्यायेषु ७।३। केवलस्य ६।१॥ विषयस्य ६।१।
निबन्धः १।१। भवति T

=सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य (विषयस्य निबन्धः भवति)
=सम्पूर्ण द्रव्योंकी सम्पूर्ण पर्यायोंमें केवलज्ञानके विषयका
=नियम है भावार्थ एक एक द्रव्यकी त्रिकालवर्ती अनन्तानंत पर्यायें हैं सो
छहों द्रव्योंकी समस्त अवस्थाओंको केवलज्ञान युगपत् एक साथ जानता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उनतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः अनुवाद

द्रव्याणि १।३॥ च* पर्यायाः १।३। च* द्रव्यपर्यायाः १।३। इति*
इतरेतरयोगलक्षणः १।१। द्वन्द्वः १।१।
तद्-विशेषणम् १।१॥ सर्वग्रहणम् १।१॥
प्रत्येकम्* अभिसम्बध्यते T

=द्रव्यें और पर्यायें (मिलकर) 'द्रव्य पर्यया:' ऐसा वाक्य
=परस्पर (इतरेतर) योगलक्षणवाला वा अन्योन्ययोग नामका द्वन्द्व समास है
=उस (द्रव्यपर्याया द्वन्द्व समास) का विशेषण "सर्व" (ऐसे शब्द) का ग्रहण
=प्रत्येक (द्रव्य शब्द और पर्याय शब्द) पर लगाया गया है (=अभिसम्बध्यते)

यतः* मनः पर्ययस्य ६।१। अवधि-विषय-अनन्त-
भागे ७।१। अन्यत्र* अपि* दर्शिता १।१॥ वृत्तिः १।१॥
प्रवर्तते T इति* पाठ-अन्तरम् १।१॥ इत्यप्यधिकः पाठः

=क्योंकि (=यतः) मनः पर्यय ज्ञानका (विषय) अवधिके विषयसे अनन्तवां
=भागमें है। दूसरे स्थानमें भी (इस संस्कृत सर्वार्थसिद्धिकी) प्रकाशित वृत्ति में
=प्रवर्तता है वा विद्यमान है (देखो पृष्ठ४५८में वृत्तिसूत्र२४की) ऐसा अन्य पाठ है ॥
(अन्य अर्थ) क्योंकि मनः पर्ययज्ञानकी प्रवृत्ति (=वृत्ति) अवधिज्ञानके ज्ञेयके अनंतवां भागमें
तथा (=अपि) अवधिज्ञानके ज्ञेयसे भिन्न वस्तुओंमें भी (अन्यत्र) (आगम में) बताई गई है
(=दर्शिता)। ऐसा अन्य पाठ है। ऐसा अधिक पाठ भी है

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है ॥ (२) द्रव्यके अवस्था विशेष धर्मोंका नाम पर्याय है द्रव्यकी व्यवस्था विशेष जो हैं सो पर्याय है। स्वपर्यायान् द्रवति द्रूयते वा तैः इति द्रव्यम्=(जो) अपनी पर्यायोंको प्राप्त हो वा तिन (पर्यायो)करि (=तैः) प्राप्ति की जाय ऐसा द्रव्य है ॥ द्रु धातुसे यत् प्रत्यय करनेपर (द्रु=द्रो=द्रव्य्) द्रव्य शब्दकी सिद्धि हुई है। (३) दो तीन आदि पद अपनी अपनी विभक्ति त्यागकर जो शब्द बनावें उस शब्दको समास कहते हैं। "और" से जो पहले हो वह समुच्चित तथा पीछेका शब्द समुच्चय कहाता है जो समुच्चित तथा समुच्चय मिलकर बना हो उसको द्वन्द्व समास कहते हैं ॥

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥ २८ ॥

※ यदेतद्रूपिद्रव्यं सर्वावधिज्ञानविषयत्वेन समर्थितं तस्यानन्तभागीकृतस्यैकस्मिन्भागे मनःपर्ययः प्रवर्तते ॥ ※

अथान्ते यन्निर्दिष्टं केवलज्ञानं तस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह—

सूत्रम्–तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य =तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य (विषयस्य निबन्धः भवति)

तद्-अनन्तभागे ७। मनःपर्ययस्य ६। =उस (सर्वावधिज्ञेय) के अनंतवां अंश (सूक्ष्मतर) में मनःपर्यय ज्ञानके

विषयस्य ६। निबन्धः १। भवति T =विषयका सम्बन्ध है भावार्थ जो परमावधिज्ञानके विषयभूत पुद्गल स्कन्धमें अनन्तका भाग दीजिये तो एक परमाणु मात्र सर्वावधिका विषय होय है बहुरि तिसमें अनन्तका भाग दीजिये तब ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानका विषय होताहै तिसमेंभी अनन्तका भाग दें तब विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानका विषय होता है (पं० जयचंद जी)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अट्ठाईसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः अनुवाद

(२)यद् १॥। एतद् १॥। रूपि द्रव्यम् सर्वावधिज्ञानविषयत्वेन ३॥।	=जो यह रूपी पदार्थ सर्वावधिज्ञानका विषय होने से
समर्थितम् १॥। तस्य ६॥।	=समर्थन किया है वा सिद्ध किया है। तिस (सर्वावधिके विषयभूतरूपी पदार्थ) के
अनन्तभागीकृतस्य ६॥। एकस्मिन् ७। भागे ७।	=अनन्त भाग किये जाय तो उसके एक अंश में
मनःपर्ययः १। प्रवर्तते T ॥ अथ※ अन्ते ७।	=मनःपर्यय (ज्ञान) प्रवर्तता है। अब अन्त में
यत् १॥। निर्दिष्टम् १॥। केवलज्ञानम् १॥। तस्य ६॥।	=कथित (=निर्दिष्ट) जो (=यत्) केवलज्ञान है तिस (केवलज्ञान) के
विषय-निबन्धः १। कः १। इति※ अतः ※ आह T	=विषयका नियम क्या है। इस लिये (आचार्य) कहते हैं कि

(१) श्वेताम्बर आम्नायके समाष्यभ्में मनःपर्ययस्य'के स्थानमें 'मनःपर्यायस्य' है। शेष पाठ और अर्थभी दोनों आम्नायोंमें एकसा है॥ मनःपर्ययस्य ६।

(२) अवधेर्मनःपर्ययस्य सूक्ष्मविषयत्वदर्शनार्थं सूत्रमिदं न तु विषयनिबन्धनार्थम्। यतो मनःपर्ययस्यावधिविषयानन्तभागेऽन्यत्रापि दर्शितावृत्तिः प्रवर्तते इति पाठान्तरम्॥ सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीयावृत्तिमें "इति पाठान्तरम्" के स्थानमें "इत्यप्यधिकः पाठः" ऐसा वाक्य है॥ ऐसा अधिक पाठ भी है॥

अवधेः ५। मनःपर्ययस्य ६। सूक्ष्मविषयत्व दर्शन =अवधि (ज्ञान) से मनःपर्यय (ज्ञान) का सूक्ष्म विषयताके समझानेके वा बताने के

तेषां पर्यायाश्च त्रिकालभुवः प्रत्येकमनन्तानन्तास्तेषु द्रव्यं पर्यायजातं वा न किञ्चित्केवलज्ञानस्य विषयभावमतिक्रान्तमस्ति ॥ अपरिमितमहात्म्यं हि तदिति ज्ञापनार्थं सर्वद्रव्यपर्यायेष्वित्युच्यते ॥

आह विषयनिबन्धोऽवधृतो मत्यादीनां, इदं तु न निर्ज्ञातमेकस्मिन्नात्मनि स्वनिमित्तसन्निधानोपजनितवृत्तीनि ज्ञानानि यौगपद्येन कति भवन्तीत्यत उच्यते—

च❀ तेषाम् ॥ त्रिकालभुवः । =और तिन (सर्वद्रव्यनि) के (अतीत अनागत वर्तमान) तीन कालमें होने वाले
प्रत्येकम्[1]❀ अनन्तानन्ताः । पर्यायाः । तेषु ॥ =प्रत्येकके अनन्तानन्त पर्याय हैं। उन (द्रव्यों) में
वा द्रव्यं पर्यायजातं ॥ केवल ज्ञानस्य ॥ विषय-भावम् । =या द्रव्य पर्यायों का समूह केवल ज्ञान के विषय भाव को
अतिक्रान्तम् । न❀ किञ्चित्❀ अस्ति T हि❀ तद् ॥ =उल्लंघन करनेको किंचित भी समर्थ नहीं है क्योंकि (=हि) पूर्वोक्त (=तद्) केवलज्ञान
अपरिमित-माहात्म्यं ॥ इति❀ ज्ञापन-अर्थम् ॥ =अपरिच्छिन्न वा असीम महत्वरूप है। ऐसा (=इति) जनावने के लिये
सर्वद्रव्यपर्यायेषु । इति❀ उच्यते T =समस्तद्रव्योंकी समस्तपर्यायों में (केवल ज्ञानके विषयका नियम) है ऐसा कहागया है
आह T विषयनिबंधः । अवधृतः[2] । मतिआदीनाम्[3] ॥ =(शिष्य-अत्र) पूछता है कि मति (ज्ञान) आदिकनिके विषयोंके नियम कहेगये
इदम् ॥ तु❀ न❀ निर्ज्ञातम् ॥ एकस्मिन् । =परंतु यह (=इदम्) ज्ञात नहीं हुआ (कि) एक
आत्मनि । स्व-निमित्तसन्निधान-उपजनितवृत्तीनि ॥ =जीवमें अपने अपने कारणों के निकट होते (=उपजनित) प्रवर्तनेवाले
ज्ञानानि ॥ यौगपद्येन[4] ॥ कति[5] । भवन्ति T इति❀ =ज्ञान एक काल अथवा एक बार करि कितने होते हैं ऐसे (प्रश्न पर)
अतः❀ उच्यते T =इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

---

१ प्रत्येकम् - यह वैद्य संस्कृत-अङ्गलभाषा कोष पृष्ठ ४६२ में अव्यय लिखा है। इसलिये हमने भी इसको अव्यय लिखा है॥
२ अवधृतः :— विवृतः । इति❀ अपि❀ पाठान्तरम् ॥ =विवृतः (=व्याख्यात) ऐसा भी अन्य पाठ है
३ मति+आदीनाम्=मत्यादीनाम्-आदि समासोंके अंतिम अवयववत् 'इस सदृश' 'और अन्य' 'और अन्य वैसे ही' इन अर्थोंमें आता है। भ्वादयः धातवः यहां पर आदयः शब्द बहुवचन पुल्लिंगमें है ऐसे ही मत्यादीनाम् को षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुल्लिंगमें लिखा है (देखो उक्त कोश पृष्ठ ९९)
४ यौगपद्य वा यौगपद-नपुंसक लिंग है (वैद्य कोश पृष्ठ ६०१) दोनों समकालता, एककालता अर्थमें हैं अतः हमने नपुंसक लिखा है। और पुल्लिंगमें इसका यहां प्रयोग हुआ है॥
५ कति-सर्वनाम सदा बहुवचनमें आता है

सर्वेषु द्रव्येषु सर्वेषु पर्यायेष्विति ॥ जीवद्रव्याणि तावदनन्तानन्तान, पुद्गलद्रव्याणि च ततोऽप्यनन्तानन्तानि अणुस्कन्धभेदेन भिन्नानि, धर्माधर्माकाशानि त्रीणि, कालश्चासंख्येयः

इति* सर्वेषु ७॥ द्रव्येषु७॥। सर्वेषु ७। पर्यायेषु ७। =इस प्रकार समस्त द्रव्यों की ॥ पर्यायोंमें (केवलज्ञानके विषयका नियम) है
तावत्* जीव द्रव्याणि १॥। अनन्तानन्तानि १॥ च* =प्रथम (=तावत्) जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं और (=च)
पुद्गलद्रव्याणि १॥। तत. * अपि * अनन्तानन्तानि१॥।=पुद्गलद्रव्यें उन (जीवों) से भी (=तत: अपि) अनन्तानन्तगुणे
अणुस्कन्धभेदेन ३। भिन्नानि १॥।, धर्म-अधर्म- =अणु स्कन्धके भेदकरि जुदे जुदे वा पृथक् पृथक् हैं। धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य
आकाशानि१॥। त्रीणि१॥। च* काल:१। असंख्येयः१। =और आकाशद्रव्य तीन हैं अर्थात् ये तीन एक एक द्रव्य हैं और काल असंख्यात हैं
अर्थात् "कालद्रव्यके कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं" वे गिने जाने योग्य नहीं हैं

(१) लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का ॥ रयणाण रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥१॥ इति गाथोक्त प्रकारेण कालद्रव्यस्याणुरूपत्वान्नानात्वं धर्माधर्माकाशानामनेकप्रदेशत्वेऽपिखण्डात्मकत्वाभावादेकैकत्वमवबोद्धव्यम्

लोगागास पदेसे ७। एक्केक्के ७। जे १। (=लोकाकाश प्रदेशे७। एकैकस्मिन्७। ये१।) =लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें जे
ट्ठिया १। हु* एक्केक्का १। रयणाण ६॥। (स्थिता १। हि* एकैका १। रत्नानाम् ६॥।) =एक एक ही (हु=खलु) स्थित हैं। रत्नोंकी
रासी १। इव* (राशि १। इव*) =राशि वा समूहके सदृश (परस्पर भिन्न भिन्न)
ते कालाणू मुणेयव्वा (ते १। काल अणव १। मन्तव्या १।) =वे कालके अणू समझना चाहिये ॥ वे असंख्यद्रव्य हैं
इति* गाथा-उक्त-प्रकारेण ३। कालद्रव्यस्य ६॥। अणुरूपत्वात् ५॥। =ऐसे गाथा मे कहे हुये भेद करि कालद्रव्य के अणुरूप होने से
नानात्वम् १॥। धर्म अधर्म आकाशानाम् ६। अनेक प्रदेशत्वे ७॥। =अनेकता है। (परन्तु धर्म अधर्म आकाशद्रव्यों के बहुत प्रदेश होने पर
अपि खण्डात्मक अभावात् ५। एकैकत्वम् १॥। अवबोद्धव्यम् १॥ =भी खंडरूप नहोने (के हेतु) से पृथक् पृथक् पना जानना चाहिये।

भावार्थ—जिस प्रकार रत्नोंका ढेर एकत्र होनेपर भी उसमे प्रत्येक रत्न जुदाहै वैसेही कालके अणु जुदे जुदे एकके पश्चात् एक लोकाकाशके के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक कर क्रमसे तिष्ठे हुये परन्तु धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य के असंख्यात असंख्यात प्रदेशहैं ये प्रदेश ऐसे मिले हुये हैं कि कभी जुदे जुदे नहीं होसकते हैं इससे ये तीनों एक एक द्रव्य ही हैं। धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकमे तिलमे तेल की भांति व्याप्तहैं और आकाशके जिन प्रदेशोंमें स्थित हैं उनहीं प्रदेशोंमें स्थितरहते हैं इनके प्रदेश अकम्प हैं॥ देखो सर्वार्थसिद्धि वृत्ति. अध्याय ५ सूत्र १९ पर

परः १। आह T असंख्यासहाय- =दूसरा कहता है (अर्थात् अन्य अन्य आचार्योंका मत है) कि असंख्या असहाय
प्रधान्यवचने७। एकशब्दे७। सति७। एकादीनि१॥। =प्रधान अर्थका वाचक (इस सूत्रमे आये हुये) 'एक' शब्दके होते 'एकादीनि' है
केवलादीनि१॥। इति॥ अर्थः एकस्मिन् आत्मनि क्षायिकत्वात् =सो केवल (ज्ञान) आदीनि ऐसे अर्थमें है कि एक आत्मामें क्षायिकपनासे
एकम् १॥। केवलज्ञानम् १॥। मतिश्रुते १॥। =एक केवल ज्ञान होता है। (दो होय हैं तहां) मतिज्ञान श्रुतज्ञान होते हैं
इत्यादिपूर्ववत् ॥ =इत्यादि पहिले (कथित) सदृश है भावार्थ ऐसा है कि और और आचार्य कहते हैं कि

इस सूत्रमें 'एक' शब्दका असंख्या असहाय और प्रधान अर्थमें प्रयोग कियागया है अतः इस (एक शब्द) का अर्थ केवल ज्ञान है क्योंकि अन्य चार ज्ञान असहाय और प्रधान नहीं होसकते हैं ये चारो क्षायोपशमिक ज्ञान हैं इस रीतिसे एक जीवकें एक साथ केवलज्ञानको आदि लेकर चार ज्ञान तक होना संभवहै यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान होगा (अथवा अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी अपेक्षासे एक आत्मामें अकेला मतिज्ञान भी हो सकता है)। यदि दो एक साथ होंगे तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होंगे, यदि तीन एक कालमें होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान वा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनः पर्ययज्ञान होंगे, यदि चार ज्ञान होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान होंगे॥ (देखो तत्त्वार्थ-राजवार्तिक पृष्ठ ६३)॥ श्वेताम्बर आम्नायमें भी यही है कि मतिज्ञान भी अकेला होसक्ता है और केवलज्ञान भी अकेला होसक्ता है जैसा कि निम्न लिखितसे प्रगट है (देखो सभाष्य तत्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ २८)

निम्न लिखितसे प्रगट है (देखो सभाष्य तत्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ २८)

सहभावः १। =किन्तु (यह अवश्य जानना उचित है) श्रुतज्ञानका मतिज्ञानसे सहभाव अवश्य है
श्रुतज्ञानस्य६॥। तु॥ मतिज्ञानेन३॥। नियतः१। (अर्थात् जहां जहां श्रुतज्ञान है वहां वहां मतिज्ञानका अस्तित्व अवश्य ही है)
तद् पूर्वकत्वात् ५॥। =क्योंकि उस (मतिज्ञान) द्वारा (श्रुतज्ञान) होता है श्रुतज्ञानके होनेको मतिज्ञान कारण है॥
यस्य ६। तु मतिज्ञानं तस्य श्रुतज्ञानं स्यात् T वा न वा इति =परंतु जिसके मतिज्ञान है तिसके अक्षरात्मक श्रुतज्ञान हो अथवा (=वा) न हो ऐसा है
अत्र॥ आह T केवलज्ञानस्य६॥। पूर्वैः३॥। मतिज्ञानादिभिः =यहां प्रश्न करता है कि केवलज्ञानके पहिले होने वाले मतिज्ञान आदिकसे
किम् १॥। सहभावः १। भवति T न इति॥ उच्यते T =क्या सहभाव होता है? (उत्तर) नहीं ऐसा कहागया है अर्थात् जहाँ केवलज्ञान है वहां पर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञानका अस्तित्व नहीं है

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्य =एकादीनि (ज्ञानानि) भाज्यानि युगपदेकस्मिन् (जीवे) आ चतुर्भ्य (ज्ञानेभ्य) सम्भवन्ति

एकादीनि ;॥। ज्ञानानि ;॥। भाज्यानि ;॥। =एक ज्ञानको आदि लेकर (=एकादीनि)भाज्यरूप वा विभाग किये (=भाज्यानि)
युगपद्* एकस्मिन् ;। जीवे ;। आ* चतुर्भ्यः ;॥। ज्ञानेभ्य =एक साथ (=युगपद्) एक जीवमें चारज्ञान तक (=आ)
सम्भवन्ति T =सम्भवहैं, अर्थात् यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान, दो होगे तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान, तीन होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान वा मतिज्ञान श्रुतज्ञान मनः पर्ययज्ञान होगे यदि चार होगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान होगे

---

१ इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायों मे एक है और अर्थ भी दोनों आम्नायोमे एक है जैसाकि अगली टिप्पणियोंसे प्रगट होगा।
२ वार्तिक -सख्या वचनोवैकशब्द =(वृत्ति) अथवा सख्या वचनोऽयमेकशब्द =अथवा(सूत्रमें)यह एक शब्द सख्यावाचीहै॥ एक=एकत्वसख्या।
एकम् आदि एषाम् तानि इमानि एकादीनि कथम् ?* =एक है आदि जिनके ते ये एकादि हैं। (प्रश्न) कैसे ?
एकस्मिन् ;। आत्मनि ;। मतिज्ञानम् ;॥। एकम् ;॥। =(उत्तर) एक आत्मामे एक (ज्ञान) मतिज्ञान होय है (श्रुतज्ञान दो प्रकार है एक अक्षरात्मक श्रुतज्ञान दूसरा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान)
यद् अक्षर श्रुतम् ;॥। द्वि+अनेक+द्वादशभेदम् ;॥। =जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो दो अनेक द्वादश भेदरूप है
उपदेशपूर्वकम् ;॥। =(वह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान) उपदेश द्वारा होता है (जेसाकि इस अध्यायका वीसवा सूत्र है)
तद् भजनीयम् ;॥। स्यात् T वा =वह (अक्षरात्मक श्रुतज्ञान) भजनीय है वा भाज्य रूप है किन्हीं जीवोंके होता है
न * वा * इति * =किन्हींके नहीं(अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी अपेक्षा एक आत्मामें अकेला मतिज्ञान भी हो सका है)
इतरत् ;॥। पूर्ववत् * =अन्य पूर्व (पहिले) सदृश होय है अर्थात् दो ज्ञान हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान हों तीन ज्ञान हों तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान हों अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान मन पर्ययज्ञान हों, चार हों तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान हों

एकआदिर्येषां तानि इमान्येकादीनि भाज्यानि विभक्तव्यानि यौगपद्येनैकस्मिन्नात्मनि ॥ आ कुतः ? आ चतुर्भ्यः ॥ तद्यथाएकं तावत्केवलज्ञानं न तेन सहान्यानि क्षायोपशमिकानि

एकः१। आदिः१। येषाम्६। तानि१॥ इमानि१॥ एकादीनि =एक है आदि जिनकें (=येषाम्) ते (=तानि) इतने (=इमानि) एकादीनि हैं
भाज्यानि १॥ विभक्तव्यानि १॥ =सो भाज्यानि (कहिये) है भेदरूप करने पर वा विकल्परूप करने पर(=विभक्तव्यानि)
अर्थात् एक ज्ञानको आदिलेकर(=एकादीनि)भाज्यरूप वा विकल्परूप(=विभक्तव्यानि)

यौगपद्येन३॥ एकस्मिन्७। आत्मनि७। आ* चतुर्भ्यः५॥ =एक कालविषैं एक (=एकस्मिन्) आत्मामें चार (ज्ञान) तक हो (सक) ते हैं
आ* कुतः ? * =(प्रश्न) (सूत्रमें) आ (अव्यय) क्योंकर (=कुतः) है (उत्तर-सीमा वा अभिविधिके लिये है
कि एक साथ एक आत्मामें चार पर्यंत ही ज्ञान होसक्ते हैं सब पांचो नहीं होवे)

तद्यथा* एकं १॥ तावत्* केवलज्ञानं १॥ न तेन ३॥ =जैसे (=तद्यथा) एक हो तो (=तावत्) केवलज्ञान हो । नहीं तिस (केवलज्ञान) करि
सह* अन्यानि १॥ क्षायोपशमिकानि १॥ =सहित (=सह) अन्य (चार) क्षायोपशमिकज्ञान

अब 'एक' शब्दका प्रथम अर्थ और 'आदि' शब्दका अवयव अर्थ लेकर "प्रथमका अवयव" यह अर्थ "एकादि" वाक्यका हुआ ॥ (प्रश्न) किस (प्रथम) का (अवयव वा भाग) । (उत्तर) परोक्षज्ञानका (प्रथम अवयव) अर्थात् मतिज्ञान ॥ अतः एकादिका अर्थ मतिज्ञान हुआ यहां पर स्मरण रहै कि सूत्रमें 'एकादीनि' वाक्य है सो "एकादिरादीनि" (=एकादिको आदि लेकर जो ज्ञान हैं वे एकादीनि कहेजाते हैं) इस अर्थमें है क्योंकि– वार्तिक–"ततोन्यपदार्थे वृत्तावेकस्यादिशब्दस्य निवृत्तिरुष्ट्रमुखवत्=ततः अन्यपदार्थे वृत्तौ एकस्यादिशब्दस्य निवृत्तिःउष्ट्रमुखवत्" =अन्यपदार्थ वृत्तिमें (=समासमें) एक "आदि" शब्दकी निवृत्ति वा निषेध "उष्ट्रमुख" (बहुव्रीहि समासरूप वाक्यके) सदृश है अर्थात् जैसे जिसका मुख ऊंट सरीखा हो वह उष्ट्रमुख (पुरुष) कहा जाता है और जिसका मुख ऊटके मुख सदृश पुरुष सरीखा हो वहभी उष्ट्रमुखही कहा जाता है यहांपर जैसे उष्ट्रमुख शब्दका बहुव्रीहि समास करते समय दो मुखशब्दोंका उल्लेख रहताहै और समासमें एकही मुखशब्द रह जाताहै एक मुखशब्दकी निवृत्ति होजातीहै अर्थात् एक मुखशब्द न्यून हो जाता है वैसेही एकादीनि यहां परभी दो "आदि" शब्दोंमें एकही "आदि" शब्द रह जाता है एक 'आदि' शब्दका लोप होजाता है ॥ आदि शब्दका अर्थ समीप भी है मतिज्ञानके समीप श्रुतज्ञान है अतः 'एक' शब्द जो सूत्रमें है उससे मतिज्ञान और आदि शब्दके उल्लेखसे श्रुतज्ञानका ग्रहण हुआ ॥ मतिज्ञान श्रुतज्ञानको आदि लेकर एसा अर्थ "एकादीनि" वाक्यका हुआ ॥ एक+आदि+आदि=एकादि+आदीनि=एकादीनि

एकशब्द सख्यावाची, आदिशब्दोऽवयववचन

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित तीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

ऐकशब्दं १। सख्यावाची, १। आदिशब्द १। अवयववचन १। =(सूत्रमें) 'एक' शब्द गणनाका वाचक है आदि शब्द टुकडा (=टूक) के अर्थमें है

[१] पृष्ठ ४७७ की दूसरी टिप्पणीम हम दिखाचुके हैं कि तत्वार्थराजवार्तिक के कर्ता के मतानुसार एक शब्द सख्यावाचक भी है और अन्य आचार्योंके मतम यहीं 'एक' शब्दअसख्या असहाय प्रधान अथ का वाचक है अब तत्वार्थ राजवार्तिकके अनुकूल अनेक अर्थ सभव होने पर (भी) वक्ताकी इच्छासे (= विवक्षात) प्रथमवाचाची 'एक' शब्दहै (= अनेकार्थ सम्भवे विवक्षात प्राथम्यवचन एकशब्द) अनेकाथ ये हैं कि कहीं सख्या (अर्थ) म प्रवतता है जेसे 'एको द्वौ बहव ' एक दो बहुत ॥ कहीं अन्य (अथ) मे जेसे 'एके आचार्या = अन्ये आचार्या =दूसरे आचार्य कहीं असहाय (अथ) म जैसे 'एकाकिनस्ते विचरन्ति वीरा ' ते शूरवीर अकेले विचरतेहैं। कहीं प्रधान अथ मे जेसे एकहर्ता सेना करोमि = प्रधानहता सेनां करोमि इति अथ =प्रधान द्वारा सेनाको नष्ट करता हू ऐसा अथ है और कहीं पर प्रथम अर्थ मे जैसे -एकमागमन = प्रथमागमनम् इति = पहिला आना हुआ ॥ सूत्रम 'प्रथम या पहिले' के अथमें 'एक' शब्द लाये हैं और नवमा सूत्र 'मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलानिज्ञानम् " है तव एकादीनि" वाक्य का अथ प्रथम या पहिले ज्ञानको आदि लेकर" हुआ अर्थात् मतिज्ञान आदि लेकर विकल्परूपसे वा भाज्यरूप से एक आत्मा में एक साथ चार ज्ञान तक विवक्षित हैं ॥

[२] तत्वार्थराजवार्तिक के रचयिताने "आदि" शब्दके अनेक अर्थ होने पर भी'अवयव' और सामीप अर्थ मे लियाहै "आदि शब्दश्चावयववचन " "सामीप्यवचनो वा" =आदि शब्द (इस सूत्रमें) टुकड़े का वाची है अथवा निकटता का वाचक है ॥ कहीं पर व्यवस्था (अथ) म (आदि शब्द) वतता है जैसे ब्राह्मणादयश्चत्वारो वर्णा (=ब्राह्मणादिक चार वर्ण हैं) ब्राह्मणव्यवस्था (=कि ब्राह्मणत व्यवस्था है) ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रा इत्यर्थ कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र है ऐसा अथ है) अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंकी ब्राह्मण वर्णके आधीन व्यवस्था या रचना है। कहीं पर (आदि शब्द) प्रकार (अथ) में प्रवतता है जैसे भुजगादय परिहर्तव्या (भुजगादिक परिहार करने योग्य हैं) भुजगप्रकारा विषवत इत्यर्थ (= भुजगका प्रकार कहिये भुजग सदृश विषवान सवनोर त्यागने योग्य हैं) ऐसा अथ है भावार्थ सर्पआदि विषवाले (सब) जीवोंका दूरसे ही छोड़ देना चाहिये ॥ कहींपर (आदि शब्द) अवयव, टुकडा, टूक, वा भाग अर्थ म वततोहै जैसेकि ऋगादिमधीते ऋगवयव मधीते इति अथ =ऋग्वेदके (=ऋग्) कुछ भाग को (=अवयवम्) पढ़ता है (=अधीते) ऐसा अथ है ॥

और इसको कर्मोंके क्षयोपशमकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रहती हैं अतः
केवल ज्ञानीकें मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय ज्ञान नहीं होते हैं

केवलज्ञान क्षायिकज्ञान है और असहायज्ञान है इससे पांचो ज्ञान नहीं होते हैं ठीक नहीं है ? ॥(उत्तर)जैसे जब कोई स्थान सर्वथा और सर्व प्रकारसे शुद्ध होचुका है कोई भागभी उस स्थानका अशुद्ध नहीं कहा जासकता हैं वैसेही जब सर्व ज्ञानावरणीयकर्मकी प्रकृतियोंका सर्व प्रकार नाश होचुका है तब उन कर्मकी प्रकृतियोंका क्षयोपशम कहना और अत्यन्त नाश होनाभी कहना ये एक दूसरेके विरुद्ध हैं और नहीं कहे जासकते हैं इसलिये एक साथ आत्मामे मतिज्ञानको आदि लेकर चार तक ज्ञानोंका जो नियम है वह निर्बाध और निर्दोष है ॥

इस विषयमें अब हम श्वेताम्बर आम्नायका मत लिखते हैं ॥ (प्रश्न) केवलज्ञानका मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके साथ सद्भाव है कि नहीं है ? (उत्तर) "केवलज्ञानके साथ मतिज्ञानादिका सद्भाव नहीं है। परंतु कोई कोई आचार्य कहते हैं कि केवलज्ञानकी सत्ता दशामें मतिज्ञानादि ज्ञानोंका अभाव नहीं है किन्तु केवलज्ञानसे वे मत्यादिज्ञान अभिभूत (पराजित) होनेसे ऐसे अकिंचित्कर हैं जैसेकि नेत्रादि इन्द्रियां। केवलज्ञानकी दशामे मतिश्रुतादि अन्यज्ञान अभिभूत होकर ऐसे अकिंचित्कर हैं जैसे मेघरहित आकाशमें सूर्यके उदित होनेपर अधिक तेजके कारण सूर्यसे अभिभूत अग्नि मणि चन्द्रमा तथा नक्षत्रादिके तेज, प्रकाश करनेमें अकिंचित्कर हैं। और कोई ऐसा कहते हैं कि अपाय सद्द्रव्यता अर्थात् श्रोत्रादि इन्द्रियोसे उपलब्ध पदार्थके निश्चयार्थ मतिज्ञानकी प्रवृत्ति होती है।, श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक है। अवधिज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान भी रूपी द्रव्यके विषयमें अपाय सद्द्रव्यतासेही प्रवृत्त होता है अतः उनकी सत्ता में मतिज्ञान रह सकता है और केवलज्ञानी को इन्द्री द्वारा पदार्थोपलब्धि नहीं होती, इस कारणसे केवलज्ञानीको मतिज्ञानादि ज्ञान नहीं हैं ॥ किं चान्यत्। औरभी यह बात है कि मतिज्ञानादि चारो ज्ञानोमें पर्याय वा क्रमसे उपयोग होता है न कि एक ही कालमें और मिलित है ज्ञानदर्शन जिसका ऐसे भगवान केवली को तो एकही कालमें सर्वभावके ज्ञापक वा ग्राहक और अन्य ज्ञाननिरपेक्ष केवलज्ञान तथा केवलदर्शन होते हैं और प्रतिक्षण वा प्रति समय ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोग होता है। और यहभी है कि पूर्व मतिज्ञानादि चार ज्ञान तो ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं। और केवलज्ञान क्षयसेही उत्पन्न होता है। इसलिये भी केवलज्ञानीको मतिज्ञानादि शेष चार ज्ञान नहीं होते ॥" सभाष्य० पृष्ठ ३८, २९॥ हमारा हृदय भी इस बातको स्वीकार नहीं करता कि केवलज्ञान की विद्यमानतामें

युगपदवतिष्ठन्ते । द्वे मतिश्रुते । त्रीणि मतिश्रुतावधिज्ञानानि, मतिश्रुतमनःपर्ययज्ञानानि वा । चत्वारि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानानि । न पञ्च सन्ति केवलस्यासहायत्वात् ॥

युगपद्* अवतिष्ठन्ते T द्वे ;॥। मतिश्रुते ;॥।	=एक काल में तिष्ठते हैं । दो हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान हों ।
त्रीणि;॥। मतिश्रुत-अवधिज्ञानानि;॥। वा* मति-श्रुत-	=तीन हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान हों । अथवा (=वा) मतिज्ञान श्रुतज्ञान
मनःपर्ययज्ञानानि;॥। चत्वारि ;॥। मति-श्रुत-अवधि-	=मनःपर्ययज्ञान हों । चार हों तो मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान
मनःपर्ययज्ञानानि ;॥। न* पञ्च ;॥। सन्ति T	=मनःपर्ययज्ञान हो ॥ नहीं होवे हैं (एक काल में) पांच ज्ञान
केवलस्य ;॥। असहायत्वात् ;॥।	=क्योंकि केवल ज्ञान असहाय रूप है अर्थात् अन्य चार ज्ञान तो ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशम से होते हैं केवल ज्ञान उक्त कर्म के क्षय से ही होता है

(१) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान है अर्थात् ये चारों ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्मकी प्रकृतियों के क्षयोपशम से होते हैं । (प्रश्न) ये "क्षायोपशमिकज्ञान तौ एक काल एकही प्रवर्तता कहा है । इहां च्यारी कैसें कहे ? ताका उत्तर जो ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होतें च्यारी ज्ञानकी जानन शक्तिरूप लब्धि एक काल होय है । बहुरि उपयोग इनिका एक काल एकही होय है । ताको एक ज्ञेयतें उपयुक्त होनेकी अपेक्षा स्थितिभी अन्तर्मुहूर्तकी कही है । पीछे ज्ञेयांतर उपयुक्त होयजाय है क्षयोपशम जिनिका होयहै ते लब्धिरूप एककालही है । इहां कोई कहे उपयोग अपेक्षाभी सांकलीके (=पड़ीपुरी) भक्षण करतें रूपादिक पांचका ज्ञान एककालही दीखे है वर्णसांकलीका दीखे है स्वाद लेही है । गंध वाका आवे ही है ॥ स्पर्श भी सचीकणा आदि जानें ही है । भक्षण करतें शब्द होय है ऐसें पांचका ज्ञान एक काल भी देखिये है । ताकूं कहिये, जो इहां उपयोगका फिरण की शीघ्रता होतें काल भेद न जान्या जाय है । जैसे कमलका पत्र दोय च्यारि में सुईका प्रवेश होते काल भेद जान्या न जाय अर काल भेद है ही । तैसे इहां भी जानना ॥ पं० जयचंदजी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १८५, १८६ ॥

(२) उक्त पांचों ज्ञानोंमेंसे केवलज्ञान असहायज्ञान है वह कर्मोंके क्षयोपशमकी अपेक्षा नहीं रखता है मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानों को कर्मोंके क्षयोपशमकी अपेक्षा रहती है इस लिये ये चार ज्ञान असहाय नहीं हैं ॥ इस भांति उक्त चार ज्ञानोंमें और केवलज्ञान में विरोध रहनेके हेतुसे पांचों ज्ञानोंका एक साथ होना असम्भव है ॥ (प्रश्न) जैसे जिस काल सूर्यका प्रकाश पृथ्वी मंडल पर पड़ता है उस समय नक्षत्रों का प्रकाश दब जाताहै । वहांपर यह नहीं कहा जासका कि नक्षत्रोंकी विद्यमानताही नहींहै वैसेही जिस समय आत्मामें अत्यन्त जाज्वल्यमान केवलज्ञानका प्रकाश होगा उस समय मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानका प्रभाव दब जायगा नकि उक्त चार ज्ञानोंका अस्तित्वही नष्ट होजावेगा फिर यह कहना कि

॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥

विपर्ययो मिथ्येत्यर्थः। कुतः ?। सम्यगधिकारात्॥ चशब्दः समुच्चयार्थः। विपर्ययश्च सम्यक्चेति॥

सूत्रम्--मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च =मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च (भवति ज्ञानम्)

मति-श्रुत-अवधयः १/३। विपर्ययः १/१। च भवति ज्ञानम् =मति-श्रुत-अवधि विपर्यय, उलटे वा मिथ्याज्ञान भी (=च) होते हैं॥

अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ये तीन ज्ञान विपरीत भी होते हैं मति आदि पांचों ज्ञानोंको जिनको सम्यग् ज्ञान कह आये हैं उनमें आदि के तीन ज्ञान मिथ्या, वा विपरीत ज्ञान भी होते हैं और सम्यग् ज्ञान भी होते हैं।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इकतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

विपर्ययः १/१। मिथ्या* इति* अर्थः १/१। =(इस सूत्रमें) विपर्यय (शब्द) अयथार्थ अन्यथा वा मिथ्या ऐसा अर्थ (में) है

कुतः ?* सम्यग्-अधिकारात् ५/१। =(प्रश्न) क्योंकर (विपर्यय शब्द मिथ्या अर्थ में है) (उत्तर) सम्यक् अधिकारसे

अर्थात् इस सूत्र में सम्यक् शब्दकी अनुवृत्ति "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणिसे आरही है"

चशब्दः १/१। समुच्चय-अर्थः १/१। =(सूत्र में) चशद वा अव्यय समुच्चय के लिये अथवा समुदाय के लिये है

विपर्ययः १/१। च* सम्यक्* च* इति* =अयथार्थ अन्यथा (विपर्यय) भी (=च) है यथार्थ (=सम्यक्) भी (=च) है

(१) इस सूत्रका श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें पाठ और अर्थ एक है। ज्ञान शब्दकी अनुवृत्ति नवम सूत्रसे आतीहै॥ (२)च अव्ययके बहुतसे अर्थ हैं उनमें से यह समुच्चयके लिये ग्रहण किया है इसलिये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान सम्यग् ज्ञान भी होते हैं और मिथ्याज्ञान भी होते हैं ऐसा अर्थ है। तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिकमें 'चशब्द समुच्चयार्थः'से यह अभिप्राय लिया है कि उससे सूत्रमें मुख्य और व्यवहार दोनों प्रकार के सम्यक्त्वोंका ग्रहण है यदि सूत्रमें च अव्यय न होता तो मतिश्रुतावधयो विपर्ययः' ऐसा सूत्र होता और उसका अर्थ यह होता कि मति-श्रुत-अवधि मिथ्या (ज्ञान) होते हैं॥ (प्रश्न) 'मतिश्रुत अवधि मिथ्या ज्ञान होते हैं' इससे यह बात नहीं निकलती कि 'मतिश्रुतावधि' सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकते हैं फिर चशब्द सूत्रमें व्यर्थ है। (उत्तर) श्लोक वार्तिक के रचयिता कहते हैं कि यदि सूत्रका अर्थ विना च अव्ययके यह मानलें कि उससे मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान दोनों प्रगट होते हैं तब सूत्रमें विपर्ययका अर्थ मिथ्याज्ञान है चशब्दसे संशय और अनध्यवसायका ग्रहण है अर्थात्

यथोक्तानि मत्यादीनि ज्ञानव्यपदेशमेव लभन्ते, उतान्यथापीत्यत आह—

यथोक्तानि॥। मत्यादीनि॥। ज्ञानव्यपदेशम्॥। एव*	=कथनानुसार (=यथोक्त) मति आदिक ज्ञान ज्ञान नामही
लभन्ते T उत* अन्यथा* अपि*	=पाते हैं। अथवा (=उत) अन्यथा भी हैं अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान ये ज्ञान संज्ञा से ही जाने जाते हैं कि ये किसी और
इति* अतः* आह T	=नाम से भी कहे जाते हैं॥ ऐसा (प्रश्न होने पर) इस लिये कहते हैं कि

अन्य चार ज्ञानका अकिंचित्कर रूपमें भी अस्तित्व रहता है क्योंकि यदि हम ऐसा मानें तो इस सूत्रका "आचतुर्भ्यः" वाक्य व्यर्थ हुआ जाता है। और पांचो ज्ञानका अस्तित्व युगपद् हुआ जाता है॥

(प्रश्न) असंज्ञी पंचेंद्रियसे लेकर अयोगकेवली पर्यंत सब जीव पंचेन्द्रिय हैं। जिनके केवलज्ञान है वे भी जीव जब पंचेन्द्रिय हैं और पांचों इन्द्रियें उनके विद्यमान हैं तब इन्द्रियोंके कार्य मतिज्ञान आदि क्षायोपशमिकज्ञान होने चाहिये क्योंकि समर्थकारण इन्द्रियोंके रहते कार्य ज्ञान अवश्य भावी है। अतः यह कहना कि केवलज्ञानके अस्तित्व समयमें मतिज्ञान आदि नहीं होसकते यह कथन निर्मूल है (उत्तर) सयोगकेवली और अयोगकेवली को जो पंचेन्द्रिय बतलाया है वह द्रव्येन्द्रियकी अपेक्षासे है भावेंद्रियकी अपेक्षासे नहीं है क्योंकि भावेन्द्रियकी विद्यमानता में समस्त ज्ञानावरणीय-कर्मका क्षय नहीं होसक्ता है और ज्ञानावरणकर्मके निर्मूल क्षयके विना सर्वज्ञपना भी नहीं होसक्ता है यदि सयोगकेवली और अयोगकेवलीके भावें-द्रियकी सत्ता मानी जायगी तो उनके ज्ञानावरणकर्मका क्षय निर्मूल न होसकेगा अतः वे सर्वज्ञ नहीं कहे जासकेंगे॥ जहां पर भावेन्द्रिय है वहीं पर मतिज्ञानादिक क्षायोपशमिकज्ञानोंका आविर्भाव होता है केवल द्रव्येन्द्रियके अस्तित्व कालमें नहीं क्योंकि द्रव्येन्द्रियकी सत्ताको निःशक्तिक माना है वह ज्ञानोंकी उत्पत्तिमें कारण नहीं है। इस लिये जब केवलज्ञानके उदय रहने पर भावेन्द्रियका अस्तित्व नहीं रहता तब केवलज्ञानके साथ, कारण भावेन्द्रियके अभावमें कार्य मतिज्ञानादि नहीं हो सकते। अतः एक आत्मामें भाज्य रूप मतिज्ञान से लेकर चार ज्ञान तक एक साथ हो सकते हैं यह बात निर्बाध है किन्तु पांचों ज्ञान एक साथ नहीं हो सकते हैं॥

मिथ्यादर्शनेन सहैकार्थसमवायात सरजस्ककटुकालाबुगतदुग्धवत् ॥

मिथ्यादर्शनेन३।।। सह※ =(उत्तर) मिथ्यात्व (के उदयकरि) सहित (=सह) (आत्मा और मतिज्ञानादिक का)

एकार्थ-समवायात् ५। =एकमेकतारूप (=एकार्थ) संबंध, सम्मेलन, वा संश्लेष (के हेतु) से (=समवायात्) (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के विपरीतता होजाती है)

सरजस्क-कटुक-आलाबु-गत-दुग्धवत्※ =जैसेकि गिरी वा रज सहित कड़वी (=कटुक) तुम्बीमें (=अलाबु) क्षेपा हुआ (=गत) दूध अर्थात् जैसे गिरी सहित वा रज सहित (=सरजस्क) कड़वी तुम्बीमें दूध रखनेसे कड़वा होजाता है तैसेही दर्शन मोहनीय कर्म के उदयसे आत्माका जो मिथ्यादर्शन परिणाम होता है उसके साथ मति आदि ज्ञान भी एक स्थानमें रहते हैं — दोनों (मिथ्यादर्शन परिणाम और मति आदि ज्ञान) एक साथ आत्मामें रहते हैं इस लिये मिथ्यात्व के संबंधसे मति आदि ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहे जाते हैं ॥

(उत्तर) क्योंकि दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे जो आत्माका मिथ्यादर्शन परिणाम होता है उसके साथ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान भी एक स्थानमें रहते हैं। उक्त मतिज्ञान और आत्माका मिथ्यादर्शन परिणाम दोनों एकसाथ आत्मामें रहते है इसलिये मिथ्यात्वके संबंधसे मतिज्ञान आदि मिथ्याज्ञान कहे जाते हैं। परंतु मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानका आत्मामें मिथ्यादर्शनके कारणोंके सर्वथा नष्ट होजाने पर सम्यक्त्व गुणकी प्रगटता से जिस समय आत्मा विशुद्ध होजाता है उस समय उदय होता है। बिना सम्यक्त्वगुणके उदय नहीं होसकता इस लिये मिथ्यात्वके संबंधसे सर्वथा दूर रहनेके कारण मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान कभी मिथ्या नहीं होसकते। उन दोनों ज्ञानोंमें जिस समय दर्शन मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय हो जाता है और चारित्र मोहनीय कर्मका उपशम (अर्थात् मन पर्ययज्ञान छठे गुणस्थानमें भी होजाता है अतः यह प्रत्याख्यानादिके उपशमकी अपेक्षा कथन है) होजाता है उस समय आत्मामें मनःपर्ययज्ञानका उदय होता है इसलिये मिथ्यात्वके साथ संबंध न रहनेके कारण वह मिथ्याज्ञान नहीं होसक्ता तथा ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों के सर्वथा नष्ट होजाने पर आत्मामें केवलज्ञान का उदय होता है। उस समय परिपूर्ण विशुद्धता केवलज्ञानमें प्रगट होजाती है इसलिये वह भी मिथ्याज्ञान नहीं कहा जा सकता ॥

कुतः पुनरेषांविपर्ययः ?

कुतः ॥ पुनः ॥ एषाम् ६॥। विपर्ययः १। ? — अर्थात् मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मिथ्याज्ञान भी हैं और सम्यग्ज्ञान भी हैं =(प्रश्न) बहुरि इन (ज्ञानों) कें विपरीतता (=विपर्यय) क्योंकर है ?

मतिज्ञानादि संशय अनध्यवसाय स्वरूप भी हैं इस अर्थके करनेमें 'च शब्द' का सूत्रमें लाना व्यर्थ नहीं है ॥ श्लोक वा० पृष्ठ २५५ श्लोक ९, १०, ११ देखो ॥ यहां पर स्मरण रहे कि मतिज्ञान इन्द्रिय और मनसे होता है अतः उसके विपरिणाम संशय विपर्यय और अनध्यवसाय तीनों मिथ्याज्ञान हैं और श्रुतज्ञान मनकी सहायतासे होता हैं इसलिये उस के भी विपरिणाम संशय विपर्यय और अनध्यवसाय तीनों मिथ्याज्ञान हैं किन्तु अवधिज्ञानके विपरिणाम विपर्यय और अनध्यवसाय ही हैं संशय नहीं क्योंकि यह 'स्थाणु है या पुरुष है ?' ऐसे अनेक कोटियोंको स्पर्श करनेवाले ज्ञान का नाम संशय है और जहां पर अंधकार रहनेसे दूरमें स्थित पदार्थ स्थाणु है या पुरुष है ऐसा स्पष्ट ज्ञान न होनेसे उन दोनोंमें रहने वाले ऊर्ध्वता सामान्यका प्रत्यक्ष है वक्र कोटर आदि स्थाणुके विशेष एवं शिर हाथ आदि पुरुषके विशेषों का प्रत्यक्ष नहीं किन्तु पहले उनका ज्ञान हो चुका है इसलिये मनके द्वारा उनका स्मरण है इस रीतिसे सामान्यप्रत्यक्ष विशेषाप्रत्यक्ष और विशेष स्मरण है वहीं पर संशयज्ञान होनेके कारण इन्द्रियों के आधीन इसकी उत्पत्ति मानी है परंतु अवधिज्ञानमें इन्द्रियोंके व्यापारकी कोई अपेक्षा नहीं न मनके व्यापारकी कोई अपेक्षा है क्योंकि अवधिज्ञानको इन्द्रिय और मनसे अजन्य माना है किन्तु अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमकी विशुद्धता रहने पर वह सामान्य विशेष स्वरूप अपने विषयभूत पदार्थोंको जानता है इसलिये अवधिज्ञानका विपरिणमन संशय स्वरूप नहीं होसकता लेकिन हां! मिथ्यात्व नाम कर्मके विपरीत श्रद्धान स्वरूप मिथ्यादर्शनके साथ अवधिज्ञान रहता है इसलिये वह विपरीत स्वरूप है तथा जिस पदार्थकी ओर अवधिज्ञानका उपयोग लगा हुआ है कारण वश उसका पूरा ज्ञान नहोनेके पहिले ही दूसरे किसी ज्ञानके विषयभूत दूसरेही पदार्थ की ओर उपयोग लग जाय उस समय मार्गमें जाते हुये पुरुष को तृण स्पर्शके ज्ञानके समान अनिश्चयात्मक अवधिज्ञान होजाता है इसलिये अवधिज्ञानका विपरिणमन अनध्यवसाय स्वरूप भी है किंतु जिस समय जिस पदार्थ को अवधिज्ञान विषय कर रहा है उस समय यदि वह उपयोग दृढ़ होगा तो अवधि ज्ञानका अनध्यवसाय स्वरूप विपरिणमन नहीं हो सकता ॥ (देखो श्लोक वार्तिक श्लोक १२, और १३ पृष्ठ २५६)

(१) सामान्यरूपसे विपर्ययका अर्थ मिथ्याज्ञान है तो भी संशय विपर्यय और अनध्यवसाय इन तीनों प्रकारकेज्ञानोंका यहां ग्रहण है परंतु स्मरण रहे कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, और अवधिज्ञान येही तीनों ज्ञान विपरीत वा मिथ्याज्ञान होसक्ते हैं न कि मनःपर्यय और केवलज्ञान (प्रश्न) क्यों ?

सर्वार्थ-

४८८

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

सद्विद्यमानमसदविद्यमानमित्यर्थः। तयोरविशेषेण यदृच्छया उपलब्धेर्विपर्ययो भवति ॥

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् (विपर्ययो भवति ज्ञानम्)

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् =सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् =सत् असत् का वा प्रशस्त (भले) अप्रशस्त (बुरे) का
=विद्यमान और अविद्यमान (पदार्थों) का वा प्रशस्त (भले) अप्रशस्त (बुरे) का

सत्-असतोः ६। =विद्यमान और अविद्यमान (पदार्थों) का वा ज्योंका त्यों विवेक न होने (के हेतु) से
अविशेषात् ५। =विशेषरूप वा प्रभेदरूप ज्ञान वा ज्योंका त्यों विवेक न होने (के हेतु) से
यदृच्छ-उपलब्धेः ५।। उन्मत्तवत्* =अपनी यद्वातद्वाइच्छा द्वारा ग्रहण करने से उन्मत्त (पुरुष) के समान
विपर्ययः १। भवतिT ज्ञानम् १।। =विपरीत वा मिथ्याज्ञान होता है भावार्थ जिस प्रकार मदमाता वा उन्मत्त पुरुष भार्याको माता और माताको भार्या समझता है यह उसका ज्ञान मिथ्याज्ञान है परंतु किसी समय वह भार्याको भार्या और माताको माता कहता है तौ भी उसका यह जानना सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता क्योंकि उसको भार्या और माताके भेदका यथार्थ विवेक वा ज्योंका त्यों ज्ञान और विचार नहीं उसी प्रकार मिथ्यात्वके उदयसे सत् और असत् पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान न होनेके हेतु से कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान कुअवधिज्ञान (विभङ्ग अवधिज्ञान) भी मिथ्या ज्ञान है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित बत्तीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद ॥

संत् १।।। विद्यमानम् १।।। असत् १।।। अविद्यमानम् १।।। =सत् विद्यमान वा वर्तमान (वस्तु) है असत् अविद्यमान वा अनछती (वस्तु) है
इति* अर्थः १। तयोः[२] ६।।। अविशेषेण ३। =ऐसा तात्पर्य है इन दोनों (सत् असत्) का यथार्थ विवेक न होने से
यदृच्छया ३। उपलब्धेः ५।। विपर्ययः १। भवति T =अपनी मनमानी इच्छाकरि (=यदृच्छया) ग्रहण करनेसे विपरीत वा मिथ्या (ज्ञान) है

ज्ञान शब्दकी नौवां और विपर्ययकी ३१वां सूत्रसे अनुवृत्ति लीग है ४८८

(१) इस सूत्रका दोनो श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमे पाठ और अर्थ एक है ॥ ज्ञान शब्दकी नौवां और विपर्ययकी ३१वां सूत्रसे अनुवृत्ति लीग है।
(२) तयोः शब्द सत् और असत् शब्दके लिये है और सत् असत् विद्यमान अविद्यमानके कारण नपुंसकलिंगी हैं अतः तयोः नपुंसकलिंगी है ॥
(३) सत्=प्रसंशा=प्रशस्त तत्वज्ञान (ख) विद्यमान। असत्=अप्रशस्त अर्थात् अप्रशस्त तत्वज्ञान (ख) अविद्यमान (देखो तत्वार्थ राज वार्तिक पृष्ठ६४)

ननु च तत्राधारदोषात् दुग्धस्य रसविपर्ययो भवति; न च तथा मत्यज्ञानादीनां विषयग्रहणे विपर्ययः ॥ तथाहि, सम्यग्दृष्टिर्यथा चक्षुरादिभिः रूपादीनुपलभते, तथा मिथ्यादृष्टिरपि मत्यज्ञानेन ॥ यथा च सम्यग्दृष्टिः श्रुतेन रूपादीनि जानाति निरूपयति च तथा मिथ्यादृष्टिरपि श्रुताज्ञानेन ॥ यथा चावधिज्ञानेन सम्यग्दृष्टिः रूपिणोऽर्थानवगच्छति तथा मिथ्यादृष्टिर्विभङ्गज्ञानेनेति ॥ अतोऽत्यते—

ननु* च* तत्र* आधार-दोषात् ॥ दुग्धस्य ॥॥	=फिर (=च) प्रश्न (=ननु) वहां (तुंबीमें) आधारके दूषणसे दूधका
रस-विपर्ययः ॥ भवतिT न* च* तथा*	=स्वाद उलटा हो जाता है (अर्थात् कडुआ होजाता है) बहुरि (=च) नहीं है तैसे
मति-अज्ञान-आदीनां ॥॥ विषय-ग्रहणे ॥॥ विपर्ययः ॥	=मतिअज्ञानादिकोंकें विषय ग्रहण (करने) में विपरीतिता अर्थात् ज्ञानमें तौ विषय का ग्रहण सम्यक्त्वमें और मिथ्यात्वमें समान होता है
तथाहि* सम्यग्दृष्टिः ॥ यथा* चक्षुरादिभिः ॥॥	=उदाहरण (=तथाहि) सम्यग्दर्शनवाला जैसे नेत्र आदिक इन्द्रियोंसे
रूपादीन्॥ उपलभतेT तथा* मिथ्यादृष्टिः॥ अपि*	=रूपादिकों को जानता है (=उपलभते) तैसे मिथ्यादर्शनवाला भी
मति-अज्ञानेन॥॥ ; यथा* च* सम्यग्दृष्टिः॥ श्रुतेन॥॥	=कुमतिज्ञानकरि (जानता है) और (=च) जैसे सम्यग्दर्शनवाला श्रुतज्ञानकरि
रूपादीनि ॥ जानातिT निरूपयतिT च* तथा*	=रूपादिकों को जानता है तथा (=च) कथन करता है तैसे
मिथ्यादृष्टिः ॥ अपि* श्रुत-अज्ञानेन ॥॥ यथा* च*	=मिथ्यादृष्टि भी कुश्रुतज्ञान द्वारा (जानता है और व्याख्यान करता है) और जैसे
अवधिज्ञानेन॥॥ सम्यग्दृष्टिः॥ रूपिणः॥ अर्थान्॥	=अवधिज्ञानकरि सम्यग्दर्शनवाला रूपी वा मूर्तीक वस्तुओं को
अवगच्छतिT तथा* मिथ्यादृष्टिः॥ विभंगज्ञानेन॥॥	=जानता है (=अवगच्छति) तैसे मिथ्यादर्शनवाला कुअवधिज्ञानकरि (जानता है)
इति* अत्र* उच्यते T	=ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां कहते हैं कि

(१) जानाति T निरूपयति T इति* अपि* पाठान्तरम् ॥॥ =जानता है कथन करता है ऐसा भी अन्य पाठ है

कारणविपर्यासस्तावत्- रूपादीनामेकं कारणममूर्त्तं नित्यमिति केचित्कल्पयन्ति ॥ अपरे पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परमाणवश्चतुस्त्रिद्व्येकगुणास्तुल्यजातीयानां कार्याणामारम्भका इति ॥

तावत्॥ कारणविपर्यासः ;। रूपादीनाम् ;। एकम् ;॥ =प्रथम कारण विपर्यास (कहा जाता) है । रूपादिकों का एक (ही)
कारणम्;॥अमूर्त्तम्;॥नित्यम्;॥इति केचित्॥कल्पयन्तिT =कारण अमूर्तीक नित्य है ऐसी कितनेक (वादी) कल्पना करते हैं अर्थात् ब्रह्माद्वैतवादी मानते हैं कि रूपादिकोंका कारण एक अमूर्तीक नित्य ब्रह्मही है ब्रह्महीसे हुये हैं । सांख्यमती कहते हैं कि रूपादिकों का कारण अमूर्तीक नित्य प्रकृति है प्रकृतिसे ही ये रूपादिक उपजे हैं ॥ (यद्यपि नेत्रोंको ये जैसे हैं तैसे ही दीखे हैं)
अपरे ;। पृथिवी-आदि- =दूसरे अर्थात् नैयायिक और वैशेषिक मानते हैं कि पृथिवी जलअग्निवायुकी (=आदि)
जातिभिन्नाः ;। परमाणवः ;। चतुर्- =जातिरूप जुदी जुदी (=भिन्नाः) परमाणुं (यथाक्रम वा क्रमसे) गंधरसरूपस्पर्श चार
त्रि-द्वि-एक-गुणाः;। =रस रूप स्पर्श तीन (गुणवाली) रूप स्पर्श (दो गुणवाली) स्पर्श एक गुणवाली हैं
तुल्य-जातीयानां;। कार्याणाम् ;॥ आरम्भकाः;। इति॥ =(सो अपने अपने)समान जातियोंके (स्कंधरूप) कार्योंको आरम्भ करनेवाली हैं अर्थात् पृथवी आदि चारों अपनी अपनी जातिके भिन्न भिन्न स्कंधरूप कार्योंको उपजाते हैं

---

(१) पार्थिवपरमाणुषु गन्धरसरूपस्पर्शाः । आप्येषु रसरूपस्पर्शाः । तैजसेषु रूपस्पर्शौ । वायवीयेषु स्पर्शः ॥
पार्थिवपरमाणुषु ;। गन्धरसरूपस्पर्शाः ;। =पृथिवी से होने वाले परमाणुओ में गन्ध-रस-वर्ण-स्पर्श (ये चार गुण) हैं
आप्येषु ;। रस-रूप स्पर्शाः ;। =जल से होने वाले (परमाणुं) नि में रस, वर्ण और स्पर्श (ये तीन गुण) होते हैं ॥
तैजसेषु ;॥ रूप-स्पर्शाः ;। =अग्नि से होने वाले (परमाणुं) नि में रूप और स्पर्श (ये दो गुण) होते हैं (और)
वायुवीयेषु ;। स्पर्शः ;। =पवन से होने वाले (परमाणुं) नि में स्पर्श (एक गुण) होता है ॥
आप्येषु और वायुवीयेषु पुल्लिंगी नपुंसकलिंगी दोनों हैं ॥

कदाचिद्रूपादि सदप्यसदिति प्रतिपद्यते, असदपि सदिति, कदाचित्सत्सदेव, असदप्यसदेवेति मिथ्यादर्शनोदयादध्यवस्यति ॥ यथा पित्तोदयाकुलितबुद्धिर्मातरं भार्येति, भार्यामपि मातेति मन्यते । यदृच्छया मातरं मातैवेति भार्यामपि भार्यैवेति च ॥ तदपि न तत्सम्यग्ज्ञानम् ॥ एवं मत्यादीनामपि रूपादिषु विपर्ययो वेदितव्यः ॥ तथा हि कश्चिन्मिथ्यादर्शनपरिणाम आत्मन्यवस्थितः रूपाद्युपलब्धौ सत्यामपि कारणविपर्यासं भेदाभेदविपर्यासं स्वरूपविपर्यासं च जनयति ।

कदाचित्* रूपादि ;॥ सत् ;॥ अपि* असत् ;॥	=कभी (=कदाचित्) रूपादिक छती वा विद्यमान (वस्तु) को भी अविद्यमान है
इति* प्रतिपद्यते T असत् ;॥	=ऐसा कहता है(=प्रतिपद्यते)वा अंगीकार करता है(=प्रतिपद्यते)अविद्यमान(वस्तु) को
अपि* सत्;॥ इति* कदाचित्* सत्;॥ सत्;॥ एव*	=भी विद्यमान है ऐसा (कहता है) कभी विद्यमान को विद्यमानही
असत्;॥ अपि* असत्;॥ एव* इति* मिथ्या-	=अविद्यमान को भी अविद्यमान ही ऐसा मिथ्या-
दर्शन-उदयात् ;। अध्यवस्यति T यथा* पित्त-उदय-	=दर्शनके उद्रेकसे वा उदयसे निश्चय करता है (=अध्यवस्यति) जैसे पित्तके उदयसे
आकुलितबुद्धिः;। मातरम्;॥ भार्या;॥ इति* भार्याम्;॥	=घबराई हुई है बुद्धि जिसकी (ऐसा पुरुष) जननीको भार्या वा पत्नी ऐसा पत्नीको
अपि* माता ;॥ इति* मन्यते T यदृच्छया ;॥	=भी जननी ऐसा मानता वा जानता है अपनी मनमानी इच्छा से
मातरम् ;॥ माता ;॥ एव* इति च भार्याम् ;॥ अपि*	=माताको माता ही ऐसा और (=च) भार्या को भी
भार्या;॥ एव*इति*तदपि*न* तत्सम्यग्ज्ञानं;॥ एवं*	=भार्याही (मानता है) वहभी (=तदपि) उसके (=तद्) सम्यग्ज्ञान नहीं है इस प्रकार
मति-आदीनां;॥अपि*रूपादिषु;॥विपर्ययः;।वेदितव्यः;।	=मतिज्ञान आदिकोंका भी रूपादिकमें विपरीतता जानना योग्य है (सो ही कहते हैं कि)
तथा हि* कश्चित्* मिथ्यादर्शन-परिणामः;।आत्मनि;।अवस्थितः	=जैसें (=तथा हि) किसी आत्मामें ठहरा हुआ मिथ्यात्वपरिणाम
रूपादि-उपलब्धौ ;॥	=(नेत्रादि करि) रूपादिकों के जानने में (सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि कें)
सत्याम् ;॥ अपि*	=जैसाका तैसा(=सत्याम्)यथार्थ वा समान(=सत्याम्)(ज्ञान)होने परभी(=अपि)
कारणविपर्यासम् ;। भेदाभेदविपर्यासम् ;।	=कारण विपर्यास को भेदाभेद विपर्यासको
च* स्वरूप-विपर्यासम् ;। जनयति T	=और (=च) स्वरूप विपर्यास को उपजाता है।

(१) आकुलितबुद्धिः (=घबराई हुई है बुद्धि जिस की) बहुव्रीहि समास होने के कारण पुल्लिंग में यह वाक्य लिखा गया है ॥

अनर्थान्तरभूतमेवेति च परिकल्पना॥ स्वरूपाविपर्यासः रूपादयो निर्विकल्पाः सन्ति न सन्त्येव वा। तदाकारपरिणतं विज्ञानमेव। न तदालम्बनं वस्तु बाह्यमिति॥ एवमन्यानपि परिकल्पनाभेदान् दृष्टेष्टविरुद्धा-न्मिथ्यादर्शनोदयात्कल्पयन्ति तत्र च श्रद्धानमुत्पादयन्ति। ततस्तन्मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं अवध्यज्ञानं च भवति॥ सम्यग्दर्शनं पुनस्तत्त्वार्थाधिगमे श्रद्धानमुत्पादयति। ततस्तन्मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं भवति आह प्रमाणं

अनर्थान्तरम्॥ भूतम्॥ एव॥ इति॥ च॥ परिकल्पना॥ =और (=च)(कारणसे कार्य) अभिन्न पदार्थ ही होताहै इस प्रकार (किसी किसीकी) कल्पना या मानना है। जैसे घट पटादिक और ग्राम वन पर्वतादिक ब्रह्मसे उत्पन्न हुये हैं वा ब्रह्मही हैं जुदे नहीं हैं॥ (इत्यादि भेदाभेद विपर्यास है जहां भेद होय तहां अभेदही कल्पना जहां अभेद होय तहां भेदही कल्पना, ऐसे विपर्यय यौगियोंकी है)

स्वरूपविपर्यासः। रूपादयः। निर्विकल्पाः। सन्तिT =स्वरूप विपर्यास जैसे रूपादिक निर्विकल्प हैं अर्थात् इनकी कल्पना नहीं होसक्तीहै (ऐसी वैभाष्यक मतवालों की कल्पना है)

न॥ सन्ति T एव॥ वा॥ =अथवा रूपादिक कोई पदार्थ नहीं हैं

तद्-आकार-परिणतम्॥ विज्ञानम्॥ एव॥ =उन (रूपादिक) के आकारपरिणया विज्ञान ही है

न॥ तद्-आलम्बनम्॥ वस्तु॥ बाह्यम्॥ इति॥ =तिन (विज्ञान) के आश्रयभूत वा अवलम्बनरूप बाह्यद्रव्य (रूपादिक) नहीं हैं (विज्ञान अद्वैतवादियोंका जो बौद्धमतका एक भेद है ऐसी ऊपर कही हुई कल्पना है)

एवम्॥ अन्यान्। अपि॥ परिकल्पनाभेदान्। =इस प्रकार भिन्न भिन्न बहुत (=परि) कल्पना के भेदों को भी

दृष्टेष्टविरुद्धान्। मिथ्यादर्शनउदयात्। =जो प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण से विरुद्ध हैं मिथ्यात्व के उदय से

कल्पयन्तिT तत्र॥ च॥ श्रद्धानम्॥ उत्पादयन्तिT =मानते हैं। और (=च) तहां प्रतीति वा रुचि (=श्रद्धान) को उत्पन्न करते हैं

ततः॥ तत्॥ मतिअज्ञानम्॥ श्रुत्-अज्ञानम्॥ =तिससे वह (=तद्) कुमतिज्ञान (वह) कुश्रुतज्ञान

च॥ अवधिअज्ञानम्॥ भवतिT पुनः॥ सम्यग्दर्शनम्॥ =और (वह) कुअवधिज्ञान वा विभंग अवधिज्ञान होता है॥ और सम्यक्त्व

तत्त्व-अर्थ-अधिगमे। श्रद्धानम्॥ उत्पादयतिT =यथार्थ वा यथावस्थित (=तत्त्व) वस्तु वा पदार्थके (=अर्थ) जाननेपर प्रतीति उपजाता है

ततः॥ तद्॥ मतिज्ञानम्॥ श्रुतज्ञानम्॥ =तिससे वो मतिज्ञान (वह) श्रुतज्ञान

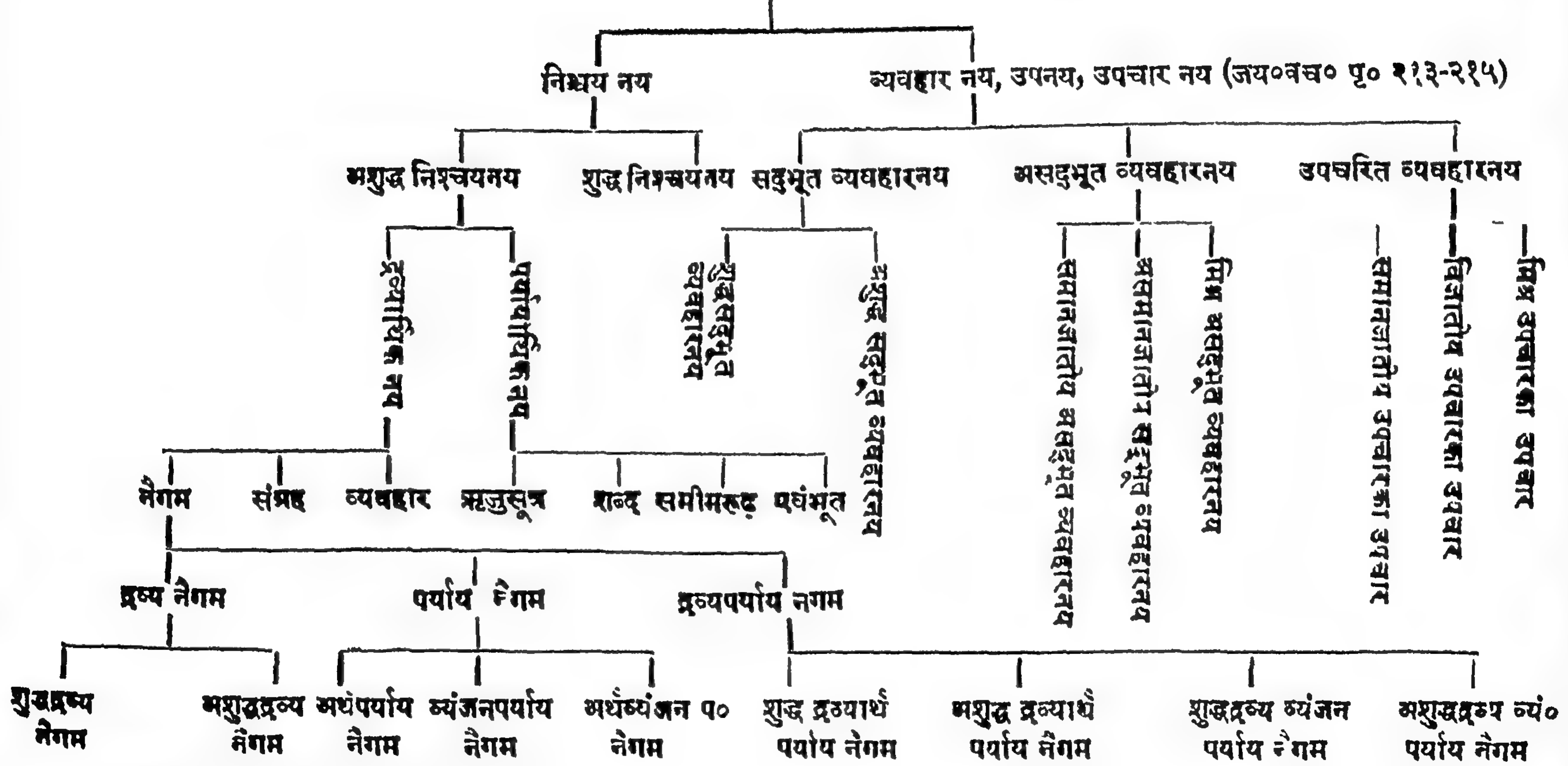
अवधिज्ञानम्॥ भवतिT आहT प्रमाणम्॥ =(वह) अवधिज्ञान होता है। पूंछता है कि प्रमाण (प्रत्यक्ष और परोक्ष)

अन्ये वर्णयन्ति--पृथिव्यादीनि चत्वारि भूतानि, भौतिकधर्मा वर्णगन्धरसस्पर्शाः, एतेषां समुदायो रूपपरमाणुरष्टक इत्यादि॥ इतरे वर्णयन्ति--पृथिव्यप्तेजोवायवः काठिन्यादिद्रवत्वाद्युष्णत्वादीरणत्वादिगुणा जातिभिन्नाः परमाणवः कार्यस्यारंभकाः॥ भेदाभेदविपर्यासः कारणात्कार्यमर्थान्तरभूतमेवेति

अन्ये ॥ वर्णयन्ति T पृथिवी-आदीनि ;॥ =दूसरे (अर्थात् बौद्धमती) वर्णन करते हैं कि पृथिवी जल-तेज-वायु (=आदि)
चत्वारि ;॥ भूतानि ॥ भौतिकधर्माः ;। =चार विशेष गुणवाले द्रव्य हैं (=भूतानि) इन विशेष द्रव्योंके स्वभाव और धर्म
वर्णगन्धरसस्पर्शाः ;। एतेषाम् ॥ =रूप, गंध, रस, स्पर्श हैं इन (पृथिवी, जल, तेज, वायु, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श) का
समुदायः ;।रूपपरमाणुः ;। अष्टकः ;। इत्यादि ;॥ =समूह रूप परमाणु अष्टक है ऐसें और (बातें भी मानते) हैं
इतरे ;। वर्णयन्तिT पृथिवी-अप्-तेजस्-वायवः ;। =अन्य (अर्थात् चार्वाक मती) कहते हैं कि भूमि, जल, अग्नि, पवन, (क्रमसे)
काठिन्यादि-द्रवत्वादि-उष्णत्वादि-ईरणत्वादि- =कठोरतादि, बहनापनादि, तप्तादि, प्रेरणत्वादि (=ईरणत्वादि)
गुणाः ;। जातिभिन्नाः ;। परमाणवः ;। =गुण वाले भिन्न भिन्न जातिवाले परमाणुं हैं।
कार्यस्य ;॥ आरम्भकाः ;। =(वे भिन्न भिन्न जाति वाले परमाणु पृथिवी आदिक स्कंध रूप) कार्य के
=आरम्भ करने वाले हैं। (इस सबका भावार्थ यह है कि) भूमि के परमाणुं के काठिन्यादिगुण और जलके परमाणुओंके द्रवत्वादिगुण और अग्निके परमाणुओंके ऊष्णत्वादिगुण और पवनके परमाणुओं के ईरणत्वादिगुण हैं वे भिन्न भिन्न परमाणुं पृथिवी आदिक भिन्न भिन्न स्कन्ध अपनी अपनी जातिरूप उत्पन्न करते हैं। (इस प्रकार तो पृथिवी आदिक पदार्थों के कारण में विपर्यय मानते हैं)
भेदाभेदविपर्यासः ;। कारणात् ;॥ कार्यम् ;॥ =भेदाभेद विपर्यासः जैसे कारणसे कार्य
अर्थान्तरभूतम् ;॥ एव॥ इति॥ =भिन्न पदार्थ (=अर्थान्तर) ही होता है अर्थात् पृथिवी आदिक परमाणूं नित्य हैं तिनसे स्कन्धरूप जो कार्य उत्पन्न होते हैं वे उन परमाणुंओंसे भिन्न हैं वा गुणसे गुणी भिन्न ही है वा द्रव्यसे गुण पृथक् ही है

वस्तुमें अनेक धर्म (=स्वभाव) होते हैं उनमेंसे किसी एक धर्मकी मुख्यता लेकर

नय (इन नयोंकी परिभाषा और व्याख्याके लिये देखो टिप्पणी पृष्ठ ४९५-४९८



पदार्थका व्यवहार भेद और उपचार दोनोंका ग्रहण करने वाली उपनय वा उपचारनय है अर्थात् वह व्यवहार नय है जहां नयके 'निश्चय नय और व्यवहार नय' दो भेद किये हैं सूत्र (३३)में वर्णित व्यवहारनय वह है जो संग्रह नयके द्वारा ग्रहणकिये हुये पदार्थके भेद प्रभेद करती है ॥

द्विप्रकारं वर्णितम् । प्रमाणैकदेशाश्च नयास्तदनन्तरोद्देशभाजो निर्देष्टव्या इत्यतआह ॥

सर्वार्थ ४६३

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्र शब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः ॥३३॥

सिद्धि

द्विप्रकारम्;॥।वर्णितम्;॥।प्रमाण-एक-देशाः;।च नयाः;।	=दो प्रकार वर्णन किया गया है और (=च) प्रमाणके एकदेश (जे) नय (ते)
तद्-अनन्तर-	=(प्रमाणनयैरधिगमः इस सूत्र में) उस (प्रमाण) के अत्यन्तसमीप (=अनन्तर)
उद्देश-भाजः ;। निर्देष्टव्याः ;। इति* अतः* आह T	=नाममात्र कहे (=उद्देशभाज) (अब) कथन किये जाने योग्यहैं । इसलिये कहतेहैं कि

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्द समभिरूढैवम्भूता नयाः ॥३३॥

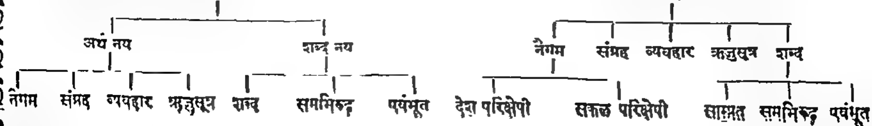
=नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता (:सप्त) नया) : (भवन्ति) ॥३३॥

नैगम-संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्र-शब्द-	=नैगम संग्रह (=सङ्ग्रह), [1]व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द,
समभिरूढ़-एवम्भूताः ;। सप्त ;। नयाः ;। भवन्ति T	=समभिरूढ, और एवम्भूत सात नय विद्यमान हैं (=भवन्ति) अर्थात

(१) व्यवहारर्जुसूत्र =व्यवहार+ऋजुसूत्र (दोनों वाक्य ठीक हैं देखो टिप्पणी पृष्ठ ७४)॥ (२) एवम्भूत = एवंभूत (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और नीचे की टि०)। म् पदान्त हो वा किसी प्रत्यय के अंतमें हो और इस म् के पश्चात् कोई व्यंजन आवे तो म् का विकल्पकरि अनुस्वारमें परिवर्तन होजाता है यदि इस म् के पश्चात् श्-ष्-स्-र्-ह् आवे तो म् अवश्य ही अनुस्वार में पलट जायेगा। यदि हम इस म् को अनुस्वार में न पलटें तो उस अनुनासिक ङ्-ञ्-ण्-न्-म् में परिवर्तन होगा जिस वर्ग का व्यंजन इस म् के पीछे आवे और यदि इस म् के पश्चात य्-व्-ल् में से कोई आवे तो म् अनुनासिक य्-व्-ल् में क्रमानुसार वा यथायोग्य पलट जवेगा। अतः एवम्+भूतानयाः शब्द का म अनुस्वार में पलटकर एवं भूतानयाः ऐसा शब्द बना। इसलिये एवम्भूतानया और एवंभूतानया दोनों वाक्य ठीक हैं॥ (भाण्डारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ १३) (३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य में हमारे यहां के तेतीसवां सूत्रके स्थान में " नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दा नयाः" चौंतीसवां सूत्र है । इस चौंतीसवां सूत्रके लगता ही "आद्यशब्दौ द्वित्रिभेदौ" (=आदिकी नैगमनय) के दो (भेद। शब्द (नय) के तीन भेद हैं) ऐसा सभाष्य० में पेंतीसवां सूत्र है॥ (देखो पृष्ठ ४९४)॥

नय (देखो प० जयचंद की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १९५) दोनों अम्नायों की ये वंशावली मिलतीसी हैं।

नय (देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रम् पृष्ठ ११)



४९३

(१) जितने द्रव्य हैं—वे अपनी भूत, भविष्यत, वर्त्तमान काल की समस्त पर्यायों से

( ) एक अखंडद्रव्यको भेदरूप विषय करनेवाले ज्ञानको सदुभूत व्यवहार नय कहतेहैं । जैसे-जीवके केवलज्ञानादिक वा मतिज्ञानादिक गुण हैं॥
(जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पृष्ठ २३) उक्तनयके शुद्धसदुभूत व्यवहार और अशुद्धसदुभूत व्यवहार ये दो भेद हैं ॥

( ) शुद्धगुण और शुद्धगुणीका भेद कहना जिस प्रकार जीवके केवलज्ञानादि गुण हैं अथवा शुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्यायीका भेद कहना जिस प्रकार सिद्ध जीवकी सिद्ध पर्याय है यह शुद्ध सदभूत व्यवहार है ॥ () अशुद्धगुण और अशुद्ध गुणीका भेद कहना जैसे जीवके मतिज्ञानादिक गुण है अथवा अशुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्यायीका भेद कहना जैसे संसारी जीवकी देव आदि पर्याय है यह अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय है ॥

( ) "अन्य वस्तुका गुण अन्यके कहै सो असदभूत व्यवहार है" जय० पृष्ठ २१४ जिसके द्वारा स्वजाति संबंधी असत् व्यवहार होता हो वह स्वजात्य सदुभूतव्यवहारनय है जैसे परमाणु बहु प्रदेशी हैं । यहां पर बहुप्रदेशी पुद्गल द्रव्य परमाणुका सजातीय है परंतु परमाणु बहु प्रदेशी नहीं वह एक प्रदेशीही है इसलिये एक प्रदेशीके स्थानमें बहु प्रदेशी कहनेसे 'परमाणुको बहु प्रदेशी कहना" समान जातीय असदुभूत व्यवहारनयका विषय है । ( ) जिस नयके द्वारा विजाति संबंधी असद व्यवहार होता हो वह विजात्यसद्भूत व्यवहार है जैसे जहां एकेन्द्रियादिक देह सो पुद्गल स्कध हैं तिनको जीव कहना सो असमान जातीय असद्भूत व्यवहारनयका विषय है ॥

( ) जिस नयके द्वारा स्वजाति विजाति संबंधी असद व्यवहार हो वह स्वजाति विजात्यसद्भूत व्यवहारनय हैं जैसे जहां मतिज्ञानको मूर्तीक कहना क्योंकि मूर्तीकसे उपजे है तथा रुके है । तहां मतिज्ञान तो अमूर्तीक जीवका धर्म हैं और मूर्तीकपना पुद्गलका धर्म है यह मिश्र असद्भूत व्यवहार हुआ ॥ (अन्य उदाहरण) जैसे ज्ञान ज्ञेयमें रहता है यहां पर ज्ञेयमे जीव अजीव दोनों प्रकारके ज्ञेय पदार्थोंका ग्रहण है उनमें जीव पदार्थ ज्ञानका सजातीय है और अजीव पदार्थ ज्ञानका विजातीय है दोनोंको ज्ञानका आधार कहना स्वजातिविजात्यसद्भूत व्यवहारनयका विषय है ॥

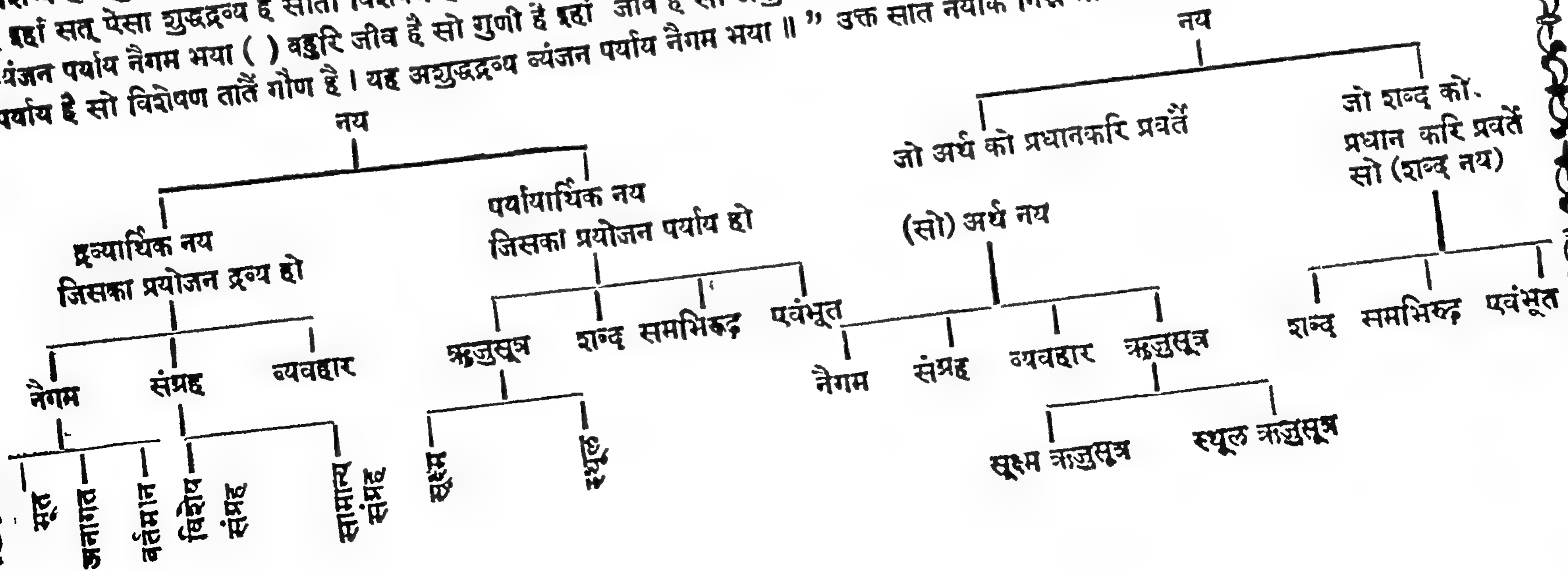
( ) अत्यन्त भिन्न पदार्थोंको जो अभेदरूप ग्रहण करै उसको उपचरित व्यवहारनय अथवा उपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं । जैसे हाथी घोडा, गृह मेरे हैं इत्यादि । इसके भी तीन भेद (१) स्वजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा समान जातीय उपचारका उपचार (२) विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा विजातीय उपचारका उपचार (३) स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा मिश्र उपचारका उपचार है ॥ जिस नयके द्वारा स्वजाति संबंधी आरोपित असत् व्यवहार हैं जैसे स्त्री, पुत्र, पुत्री, माता, पिता आदि मेरे हैं यहां पर स्त्री पुत्र, पुत्री, माता, पिता आत्मा की

अविरोधरूप साध्य पदार्थ को जानै सो नय है। उसके उपर्युक्त सातभेद हैं॥

(१) नय—वस्तुके एक देश को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं॥ (२) वस्तु के किसी सत्य या यथार्थ अंशके ग्रहण करने वाले ज्ञानको निश्चय नय कहते हैं। जैसे मिट्टीके घटको मिट्टीका घट कहना॥ (३) किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको दूसरे पदार्थरूप जाननेवाले ज्ञानको व्यवहारनय कहते हैं। जैसे मिट्टी के घड़े को घीके रहने के निमित्तसे घी का घड़ा कहना॥ (४) "भाव क्रोध आदिक रागादिक नय अशुद्ध निहचैं परवान" द्यानतरायजी अनुवादित द्रव्य संग्रह॥ "तहां जीवकूं मतिज्ञानादिक का कर्त्ता कहिए सो अशुद्ध निश्चयनय है" अर्थ प्रकाशिका॥ जीवको क्षयोपशमरूप मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान चार ज्ञानों का कर्त्ता कहना सो तो अशुद्धनिश्चय नय है और (५) शुद्ध दर्शन ज्ञानका अर्थात् केवल दर्शन और केवलज्ञानका कर्ता कहना सो शुद्ध निश्चयनय है॥ "निहचै (नयसे) शुद्ध बुद्ध निजगुनमें केवल दर्शन ज्ञान सरूप"॥ द्रव्य संग्रह॥ (६) जो द्रव्य अर्थात् सामान्य को ग्रहण करे सो द्रव्यार्थिक नयहै (७) जो विशेष अर्थात् गुण अथवा पर्याय का विषय करे सो पर्यायार्थिक नयहै(८) नैगम, संग्रह, व्यवहार, द्रव्यार्थिक नयहैं और ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत ये पर्यायार्थिक नयहैं इनकी परिभाषा हमने सूत्रार्थ में दी हैं यहां पर केवल इतना दिखाना है कि व्यवहार शब्द जो इनसात नयके प्रसंगमें हैउसका अर्थ "संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थोंको विधि पूर्वक भेद प्रभेद जहांतक करै" "फिर किसी प्रकारका विभाग न हो सकै" "सो जहां ऋजुसूत्रका विषयहै ताके पहलैं ताई संग्रह व्यवहार दोऊ नय चले आय हैं" ऐसा है अर्थ० पृष्ठ २०१ परन्तु नयवंशावलीमें (पृष्ठ ४२४) निश्चयनयके निकट जो व्यवहार नय दीहै जिसको उपनय और उपचार नय भी कहतेहैं और जिसके आठ भेद कहे हैं वह "किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको दूसरे पदार्थ रूप जाननेवाले ज्ञानका नामहै" जैसाकि इस पृष्ठकी संख्या (३)में कहाहै इसका विशेष ऐसेहै कि "जहां अन्य पदार्थके भावको अन्य पदार्थविर्षें आरोपण करैं तथा परनिमित्ततैं भए जे नैमित्तिक भाव ताकूं ही वस्तु का निजभाव कहै। तथा आधार आधेयभाव आदि प्रयोजनके वशतैं आरोपण कीजिए तथा एक देशमें सर्वदेश का उपचार करै तथा कारणविर्षें कार्यका उपचार करै इत्यादि सर्वही व्यवहार (नय) कहावे है, अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ८६। हमारी समझमें व्यवहारनय जो सातनयोंमें गर्भित है और उपचारनय, उपनय या व्यवहारनय जो निश्चय नयके निकट वंशावलीमें दी है इन दोनोंमें यही उपर्युक्त दिया हुआ अंतर है यदि हम विचारलें कि संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थ का भेद प्रभेद व्यवहारनयसे न करैं तो व्यवहार नहीं चल सकताव और उपचार नय उपनय (या निश्चयनयके निकटस्थ वाली व्यवहारनय) से भी व्यवहार चलता है तो इस अवस्था में दोनों नय व्यवहार की चलाने वाली सामान्यरूप से एकभी कही जा सकती हैं॥

नैगमनय
अतीत पर्यायोंकों को, भविष्यत पर्यायोंको तथा वर्तमान पर्यायों को वर्तमानकालमें संकल्प करै ऐसे ज्ञानको तथा वचनको नैगमनय कहते हैं। उसके तीनभेद हैं (१) भूत नैगमनय (२) भावी वा भविष्यत नैगमनय (३) वर्तमान नैगमनय । जहांपर अतीतकालमें वर्तमानका आरोपण किया जाता है उसको भूत-नैगमनय कहते हैं। जैसे "अद्य दीपोत्सव दिने श्री वर्द्धमान स्वामी मोक्षं गतः"

( ) बहुरि पुरुषविषै चैतन्य है सो सत् है इहां सत् नामा व्यंजन पर्याय है सो विशेषणहै बहुरि चैतन्य नामा व्यंजन पयाय है सो विशेष्यहै
तातै मुख्य है। यहु व्यंजन पर्याय नैगमहै ॥ ( ) बहुरि धर्मात्माविषै सुख जीवीपणां है। इहां सुख तौ अर्थपर्याय है सो विशेषणहै। बहुरि जीवित
व्यंजन पर्याय है सो विशेष्य है तातै मुख्य है। यहु अर्थव्यंजनपर्याय नैगम है ॥
( ) बहुरि संसार विषै सत् विद्यमान सुख है सो क्षणमात्रहै। इहां सत् शुद्ध द्रव्य है सो विशेषण है। सुखहै सो अर्थ पर्याय है सो विशेष्य
है, तातै मुख्य है। यह शुद्धद्रव्य अर्थ पर्याय नैगम भया ॥ ( ) बहुरि विषयी जीव है सो एक क्षण सुखीहै इहां जीव है सो अशुद्ध द्रव्य है सो
विशेष्य है। सुख है सो अर्थ पर्याय है सो विशेषण है तातैं गौण है यहु अशुद्धद्रव्य अर्थपर्यायनैगम भया ॥ ( ) बहुरि चित् सामान्य है सो सत्
है इहां सत् ऐसा शुद्धद्रव्य है सोतो विशेषण है तातैं गौण है। चित् है सो व्यंजन पर्याय है सो विशेष्य है तातैं मुख्य है। ताका यहु शुद्धद्रव्य
व्यंजन पर्याय नैगम भया ( ) बहुरि जीव है सो गुणी है इहां जीव है सो अशुद्धद्रव्य है, सो विशेष्य है सो मुख्य है। बहुरि गुण है सो व्यंजन
पर्याय है सो विशेषण तातैं गौण है। यह अशुद्धद्रव्य व्यंजन पर्याय नैगम भया ॥" उक्त सात नयोंके निम्न मान चित्र भी है



अन्वयरूप (=जोड़रूप) हैं अपनी किसी भी पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है । सो

अपेक्षा से स्वजातीय हैं । उनको मेरा कहना स्वजातीय आरोपित असत् है इसलिये वह स्वजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नयका विषय है अथवा समान जातीय उपचारका उपचारहै ॥ ( ) जिसके द्वारा विजाति संबंधी आरोपित असत व्यवहार हो वह विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नयहै । जैसे वस्त्र आभरण आदि मेरेहैं । यहांपर वस्त्र आभरण आदि अचेतन पदार्थ आत्माके विजातीयहैं । उनको मेरा कहना विजातीय आरोपित असत् है इसलिये वह विजात्युपचरितासद्भूत् व्यवहार नय का विषय है अथवा विजातीय उपचारका उपचार है ( ) जिस नयके द्वारा स्वजाति विजाति दोनों संबंधीआरोपति असत् व्यवहार हो वह स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नयहै जैसे देश, राज्य, गढ आदि मेरे हैं यहां पर देश आदिके कहनेसे उनमें रहने वाले मनुष्य तिर्यंच आदि जीव और ग्रह, कूप आदि अजीव दोनों प्रकारके पदार्थों का ग्रहण है । उनमें मनुष्य आदि आत्माके स्वजातीय, और ग्रह, कूप आदि विजातीय हैं अतः राज्य, पुर, देश, गढ़ आदि मेरे हैं इस स्थान पर स्वजातीय विजातीय दोनों प्रकार के पदार्थों को मेरा कहना स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहारनय का विषय है अथवा मिश्र उपचार का उपचार है । ऐसे व्यवहार नय अनेक प्रकार प्रवर्ते है ॥

"या नेगमके भेद तीन हैं । द्रव्यनैगम, पर्यायनैगम, द्रव्यपर्यायनैगम । तहां द्रव्य नेगमके दोय भेद हैं । शुद्धद्रव्यनैगम, अशुद्धद्रव्यनैगम । बहुरि पर्यायनैगमके तीन भेद अर्थपर्यायनैगम, व्यंजनपर्यायनैगम, अर्थव्यंजनपर्यायनैगम । बहुरि द्रव्यपर्यायनैगमके च्यारि भेद शुद्धद्रव्यार्थपर्याय नैगम, अशुद्धद्रव्यार्थपर्यायनैगम, शुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायनैगम, अशुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायनैगम ऐसे नेगमनयके नवभेद भये । तहां उदाहरण- जो, संग्रह नय का विषय सन्मात्र (=सत् मात्र) शुद्धद्रव्य है ताका यहु नेगमनय संकल्प करे है जो सन्मात्र द्रव्य समस्तवस्तु है, ऐसे कहै तहां सत् तौ विशेषण भया तातें गौणहै । बहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातें मुख्य है यहु शुद्धद्रव्यनैगम है । बहुरि जो पर्यायवान् है सो द्रव्य है, तथा गुणवान् है सो द्रव्य है ऐसा व्यवहारनय भेद करि कहै है । ताका यहु नेगमनय संकल्प करे है । तहां पर्यायवान् तथा गुणवान् यहतौ विशेषण भया तातें गौण है बहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातें मुख्य है । ऐसैं अशुद्ध द्रव्य नेगमनय भया" ॥

( ) बहुरि प्राणीके सुखसंवेदन है सो क्षण ध्वंसी है ऐसे क्षणध्वंसी ऐसा तौ सत्ताका अर्थ पर्याय है सो विशेषण है बहुरि सुख है सो संवेदनका अर्थपर्यायहै सो विशेष्य भया तातें मुख्य है । तातें यहु अर्थपर्याय नैगम भया ॥

(५) जो व्याकरण संबंधी लिंग, संख्या (वचन), साधन (पुरुष), काल, पुरुष, उपसर्ग, उपग्रह (=परस्मैपद, आत्मनेपद) आदिक के व्यभिचारोंको (=दोषोंको) दूर करके जाने वा कहै उसे शब्दनय कहते हैं (इसके उदाहरण वृत्तिके अनुवादमें वहुत दिये हैं)

(६) अनेक अर्थोंको छोडकर प्रधानतासे जो एकही अर्थमें रूढ (=प्रसिद्ध) हो उसी अर्थको विषय करने वाला हो अर्थात् उसी अर्थको जानै वा कहै सो समभिरूढनय है। जैसे—गो शब्दके वाणी पृथिवी गमन आदि अनेक अर्थ होते हैं तथापि मुख्यता से गो नाम गाय नामा पशुका ही ग्रहण किया जाता है। यहां पर यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि सोती, उठती, बैठती, चलती, फिरती, किसी भी अवस्था में वह क्यों न हो सब लोग उसको गायही कहते हैं। सो यह समभिरूढनय है।

(७) जिस कालमें जो क्रिया करता हो उसको उस कालमें उसही नामसे जाने वा कहै उसको एवं भूत नय कहते हैं ॥ जैसे देवों के पतिको परम ऐश्वर्य सहित हो, उसी अवस्थामें इंद्र कहना पूजन, अभिषेकादि करते हुये इन्द्र नहीं कहना तथा जिस कालमें वह शक्तिरूप क्रियाको करे उसी समय 'शक्र' कहना अन्य समयमें शक्र नहीं कहना ॥ यहां पर "एवंभूयत"=ऐसा होना इस एवंभूत नय के अर्थ की प्रतीति (=निश्चय) शब्द से होती है इस लिये शब्द ही एवंभूत नय माना है कारणमें कार्य का उपचार है अर्थात् एवंभूत नय के अर्थकी प्रतीति में कारण शब्द है और कार्य एवंभूतनय है ॥

(१) समभिरूढ और एवंभूत नयोंमें यह भेद वा अंतर है कि व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ क्या है (अर्थात् व्याकरणकी रीतिसे शब्दके साधनमें क्या अर्थ होता है) इस वातका कुछ भी विचार नकर प्रसिद्ध अर्थका जान लेना समभिरूढनयका विषय है 'गो' शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ 'जो गमन करे सो गाय है यह है इसका तो विचार न करना किंतु उसके स्वर्ग, किरण,वज्र, जल,मयंक,वायु, सूर्य्य,दृष्टि, वाणी, दिशा,माता, वाणी, भूमि इत्यादि अनेक अर्थोमें प्रसिद्ध अर्थ 'गाय' लेना और सव अर्थोंको छोड कर उस गायको सोती उठती, बैठती, चलती सब अवस्थाओमें गाय कहना यह समभिरूढ नयका विषय है। ऐसेही इन्द्र शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका भोगना है इसका तो विचार न करना किंतु शक्तिमान होना पुरोका विदारण करना इत्यादि अनेक अर्थोको छोडकर प्रसिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका भोगनाही लैना, एवं उस इन्द्रको परमैश्वर्यका भोग कर रहा हो, वा न कर रहा हो पूजा करते समय, अभिषेक करते समय इत्यादि सव अवस्थाओंमें इन्द्र कहना यह समभिरूढनयका विषय है। परंतु जहांपर केवल व्युत्पत्ति सिद्ध ही अर्थ विषय हो वा ग्रहण हो वह एवंभूत नय है जैसे गमन करने वालीको ही गाय कहना खडी रहने वाली वा सोने वालीको गाय न कहना वा जिस समय इन्द्र परमैश्वर्यका भोग कर रहा हो उसी समय इन्द्र कहना अन्य समय इन्द्र न कहना यह एवंभूत नयका विषय है ॥

आज दिवालीके दिन श्री वर्द्धमान भगवान् मोक्षको गये। यहां पर यद्यपि भगवान् को मोक्ष गये सहस्रों वर्ष बीत गये परंतु संसारमें वैसा व्यवहार होता है अर्थात् उस सहस्रों वर्ष पहलेके दिनका संकल्प आजके दिनमें किया जाता है। भूत नैगम नयकी अपेक्षासे ही ऊपरका वाक्य ठीक समझा जाता है (२) जहां पर होने वाले पदार्थमें होचुकनेके समान संकल्प किया जाता है वा कथन किया जाता है उसको 'भावी वा भविष्यत् नैगम कहते हैं। जैसे अर्हन् सिद्ध एव अर्थात् अरहंत भगवान सिद्धही हैं। यद्यपि अरहंत आगे सिद्ध होंगे अभी सिद्ध हुये नहीं हैं होने वाले हैं तथापि होचुकनेके समान कथन किया गया है इसलिये इसको भावि नैगम कहते हैं॥ (३) जहांपर कोई काम करना आरंभ कर दिया हो चाहै वह थोडा बना हो चाहै थोडा भी न बना हो तथापि उसको बने हुयेके समान कहना यह वर्तमान नैगमनय है। जैसे कोई पुरुष रोटी बनानेकी सामग्री इकट्ठी कर रहा है और उसे किसीने पूछा क्या करते हो? वह उत्तर देता है कि रोटी बनाता हूं किन्तु यहां रोटी बनानेरूप पर्याय अभीतक प्रगट नहीं हुई केवलमात्र लकडियें जल और अन्य सामान रख रहा है तथापि वर्तमान नैगम नयसे ऐसा वचन कह सकता है कि 'रोटी बना रहा हूं।

(२) जो एक वस्तुकी समस्त जातिकी और उसकी सब पर्यायोंको संग्रहरूप करके एक स्वरूप कहै, उसको संग्रहनय कहते हैं जैसे 'घट' कहनेसे सब घटोंको समझना अथवा द्रव्य कहनेसे जीव अजीवादि तथा उनके भेद प्रभेदादि सबको समझना सो है॥

(३) जो संग्रहनयसे ग्रहण किये पदार्थोंका विधि पूर्वक (व्यवहारके अनुकूल) व्यवहरण अर्थात् भेद प्रभेद करै सो व्यवहारनय है। जैसे संग्रहनयसे 'द्रव्य' कहनेसे समस्त भेद प्रभेदरूप द्रव्योंका सामान्यतासे ग्रहण होता है। परन्तु द्रव्य दो प्रकारके हैं जीव और अजीव। जीव देव नारकी मनुष्य तिर्यंच चार प्रकारके हैं। अजीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ये पांच प्रकारके हैं। इस प्रकार व्यवहारके साधक जितने भेद प्रभेद होसकैं उनको जाने सो व्यवहारनय है। सारांश—संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थोंका लोकव्यवहारके अनुसार वा विधिसे भेद प्रभेद जहांतक करेकि फिर किसी प्रकारका विभाग न होसकै। सो जहां ऋजु सूत्रका विषय है तिसके पहलेतक संग्रह और व्यवहार दोनों नय चले जाय हैं॥

(४) अतीत अनागत दोनों पर्यायोंको छोड़कर वर्तमान पर्याय मात्रको ग्रहण करे सो ऋजुसूत्रनय है॥ अर्थात् द्रव्यकी पर्याय समय समय (=कालका सबसे छोटे भाग) में परिणमती (पलटती) रहती है। सो एक समयवर्ती पर्याय को अर्थ पर्याय कहते हैं। अर्थ पर्याय ही ऋजुसूत्रनयका विषय है। ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समय मात्रकी पर्यायको कहता वा ग्रहण करता है। अतीत अनागत समयकी पर्यायका ग्रहण नहीं करता। जैसे कोई पुरुष कहींसे आकर बैठा है किसी दूसरे ने पूछा कहो भाई कहांसे आरहे हो? उस समय उसका यह कहना कि कहींसे नहीं आरहा हूं क्योंकि उस समय गमन क्रियाका सर्वथा अभाव है अतः शुद्ध वर्तमानकी अपेक्षा 'इस समय कहींसे नहीं आरहा हूं' यह ऋजुसूत्रनय का विषय है और ठीक है।

द्रव्यं सामान्यमुत्सर्गः अनुवृत्तिरित्यर्थः । तद्विषयो द्रव्यार्थिकः ॥ पर्यायो विशेषोऽपवादो व्यावृत्तिरित्यर्थः । तद्विषयः पर्यायार्थिकः ।

द्रव्यम् ;॥ सामान्यम् ;॥ उत्सर्गः ;। अनुवृत्तिः ;॥ इति* अर्थः ;। =द्रव्य, सामान्य, उत्सर्ग, और अनुवृत्ति ये एकार्थ हैं (=अर्थ)

तद्विषयः ;। द्रव्यार्थिकः ;। =द्रव्य है विषय जिसका सो द्रव्यार्थिक है अर्थात् यह द्रव्यार्थिकनय केवल द्रव्यका ही विषय करती है । पदार्थोंके विकार (=पर्याय) और अभाव को विषय नहीं करती क्योंकि द्रव्य से अन्य पर्याय और अभाव कोई पदार्थ नहीं

पर्यायः ;। विशेषः ;। अपवादः ;। व्यावृत्तिः ;॥ इति* अर्थः ;। =पर्याय, विशेष, अपवाद और व्यावृत्ति ये एकार्थ हैं

तद्विषयः ;। पर्यायार्थिकः ;। =पर्याय है विषय जिसका सो पर्यायार्थिक है अर्थात् यह नय केवल जन्म मरण आदि पर्यायों को ही विषय करती है द्रव्यको विषय नहीं करती है क्योंकि पर्यायों से भिन्न कोई द्रव्य पदार्थ नहीं ॥

पदार्थोंके एक देश का भेद प्रभेदरूप कथन है वह संशय आदि सब प्रकार के दोषों से रहित है ॥ इसरूप से नयका यह सामान्य लक्षण निर्दोष है ॥

(१) यह नयका प्रकरण बहुत महत्वका और कार्यकारी है, अतः उचित है कि तत्त्वार्थ राजवार्तिक से इनकी निरुक्ति भाषा अनुवाद सहित दी जावे ॥

द्रव्यम् अस्ति इति मतिः अस्य सः द्रव्यास्तिकः द्रव्य-भवनम्=द्रव्यहै ऐसी है बुद्धि(=मति) जाकी सो द्रव्यास्तिक है (अर्थात्)द्रव्यका होना

एव* न* अतः * अन्ये ;। भावविकाराः ;। अपि* अभावः ;। =ही है इस (द्रव्य) से अन्य पदार्थके विकार (=भावविकार) कहिये पर्याय नहीं है और अभाव भी (कोई पदार्थ)

न*तद्-व्यतिरेकेण ;। अनुपलब्धेः ;॥ इति* द्रव्यास्तिकः ;। =नहीं है क्योंकि द्रव्य विना (=तद्-व्यतिरेकेण) पर्यायकी प्राप्ति नहीं है ऐसे द्रव्यास्तिकहै

पर्यायः एव अस्ति इति मतिः ;॥ अस्य सः पर्यास्तिकः ;। जन्मादि-=पर्याय ही है ऐसी है मति जिसकी सो पर्यास्तिक है । जन्म मरण आदि

भावविकारमात्रम् ;॥ एव भवनं ;॥ न ततः अन्य द्रव्यम् ;॥ =पर्यायमात्र (=भावविकारमात्र) हो होना (भवनं) है तिस (पर्यायमात्र) से अन्यद्रव्य नहीं

अस्ति तद्-व्यतिरेकेण ;। अनुपलब्धेः ;॥ इति पर्यायास्तिकः ;। =है । क्योंकि उस (पर्याय) विना (=व्यतिरेकेण)(द्रव्यकी) अनुपलब्धिहै ऐसें पर्यास्तिकहै

एतेषां सामान्यविशेषलक्षणं वक्तव्यम् । सामान्यलक्षणं तावद्वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्यविशेषस्य याथात्म्यप्रापणप्रवणप्रयोगो नयः । स द्वेधा द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित तेतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

एतेषाम् ६। सामान्य-विशेष-लक्षणम् १।। वक्तव्यम् १।।	=इन (नयों) का संक्षेपस्वरूप और ब्योरा वार (=विशेष) स्वरूप कहने योग्य है
तावत्* सामान्य-लक्षणम् १।। अनेकान्त-आत्मनि ७।	=प्रथम (=तावत्) सामान्य स्वरूप (यह है कि) अनेक धर्म स्वरूप वा स्वभाव वाला
वस्तुनि ७। अविरोधेन ३। हेतु-अर्पणात् ५।।	=वस्तुमें अविरोधकरि (=निर्दोषतासे) अविरुद्धतासे हेतुरूप समर्पण करनेसे
साध्य-	=साध्य (पदार्थ) के (जिस पदार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं उसका वा साधनीय वस्तुके) ६
विशेषस्य ६। याथात्म्य-प्रापण-	=विशेषका वा ब्यौरेवारका यथार्थ स्वरूप (=याथात्म्य) प्राप्त करने को
प्रवण-प्रयोगः १। नयः १	=व्यापाररूप प्रयोग सो नय है भावार्थ वस्तुमें अनेक धर्म वा स्वभाव होवे हैं उनमेंसे किसी एक धर्मकी मुख्यताकरि अविरोधरूप (=बिना किसी दोषके) जिसकरि साध्य (साधनीय वा सिद्ध किये जाने योग्य पदार्थ) जाना जाय सो नय है

सः १। द्वेधा* द्रव्यार्थिकः १। च पर्यायार्थिकः १। इति* =वह (नय) दो प्रकार द्रव्यार्थिक और (=च) पर्यायार्थिक ऐसे हैं

(१) नयकी परिभाषा भले प्रकार समझ में आवें अतः तत्त्वार्थ राज वार्तिक से लेते हैं "प्रमाण प्रकाशितार्थ विशेष प्ररूपको नयः" प्रमाणकरि प्रकाश रूप किये पदार्थ। विशेष प्ररूपण करने वाला (=निर्दोष ब्यौरावार कथन करने वाला) जो ज्ञान है सो नय है भावार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व आदि अनंत धर्म स्वरूप वा अनंत स्वभाव वाले जीव अजीव आदि पदार्थों को एक देश रूप से निरूपण करने वाला है उसको नय कहते हैं ॥ व्याख्या ॥ प्रकृष्टमान वा प्रकृष्ट ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। वह एक धर्म द्वारा पदार्थके सब धर्मोंको जान लेता है इसलिये सकलको जाननेके हेतुसे उसका अर्थ सकलादेश है ॥ "प्रमाण प्रकाशितार्थेत्यादि" नयके लक्षणमें जो 'प्रमाण प्रकाशित' पदका उल्लेख है उसका यह तात्पर्य है कि जो पदार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित है उसीके एकदेश को भेद प्रभेद रूपसे निर्दोष कथन करने वाला नय है किन्तु जिन पदार्थों का प्रकाश प्रमाणाभास से है (=सदोष ज्ञान द्वारा है) उनका प्रकाशक नय नहीं है मिथ्यानय (प्रकाशक) है तथा उक्त नयके लक्षण में रूपक शब्दके स्थान में जो प्ररूपक शब्दका उल्लेख किया है उसका तात्पर्य यह है कि प्रमाण प्रकाशित अनंत धर्मस्वरूप

तेषां विशेषलक्षणमुच्यते

नैगम, संग्रह, व्यवहार ये द्रव्यार्थिक नयके भेद हैं और ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ, एवंभूत ये पर्यायार्थिक नयके भेद हैं॥ नीचे की टिप्पणी देखो॥

तेषाम् ॥ विशेष-लक्षणम् ॥॥ उच्यते T =उन (नैगमादि सातों नयों) का विस्तारसे (=विशेषण) लक्षण कहा जाता है

इतिक्ष पर्यायार्थिकः ॥; अथवा॥ अर्थन॥ ॥॥ अर्थः ॥ = ऐसा पर्यायार्थिक है। अथवा अर्थ शब्दका (=अर्थनम्) अभिप्राय (=अर्थ)
प्रयोजनम्॥॥द्रव्यम्॥॥एव॥ अर्थः॥ अस्य॥इति॥ द्रव्यार्थिकः॥ =प्रयोजन है। द्रव्य ही है प्रयोजन जिस (नय) का यह द्रव्यार्थिक है
प्रत्यय आभिधान- =क्योंकि (द्रव्यकी) प्रतीति (=प्रत्यय=विश्वास, निश्चय ज्ञान,) नाम (=अभिधान)
अनुप्रवृत्ति-लिंग-दर्शनस्य- =(द्रव्य के अनुकूल) प्रवर्तन रूप (इन) चिन्होंसे (=लिंग) देखे जाने वाले (द्रव्य) के
निह्नोतुम्-अशक्यत्वात् ॥॥ =छिपाने को असमर्थ है अर्थात् संसार में जो द्रव्यकी प्रतीति होती है, जो संज्ञा है। एवं द्रव्यके अनुकूल प्रवृत्ति रूप चिन्ह हैं उनका लोप नहीं हो सकता—सारांश-द्रव्यका ज्ञान, द्रव्यका नाम, और द्रव्योंमें प्रवृत्ति इन चिन्होंसे देखे जाने वाले द्रव्य का अपलाप वा अभाव नहीं कहा जा सक्ता है॥

पर्यायः॥ अर्थः॥ प्रयोजनम्॥॥ अस्य॥ इतिक्षपर्यायार्थिकः॥ =पर्याय है अर्थ कहिये प्रयोजन जिस (नय) का ऐसी पर्यायार्थिक है
वाक्+ =क्योंकि (यह नय केवल पर्याय को विषय करती है इस कारण से) शब्द (=वाक्)
विज्ञान-व्यावृत्ति- =और जानन भाव (=विज्ञान) वा ज्ञानकी निवृत्ति और प्रवृत्ति (=व्यावृत्ति) के
निबन्धव्यवहारप्रसिद्धेः ॥॥ =आधीन (=निबन्ध) वा कारणभूत (=निबन्ध) जो व्यवहार हैं उसकी प्रसिद्धि है अर्थात् मृद् पिंडसे घट पर्यायकी उत्पत्ति होती हैं तहां मृद् शब्दकी और मृद्ज्ञान की निवृत्ति है और घट शब्दके और उसके ज्ञानकी प्रवृत्तिरूप जो व्यवहार है वह होता है। यदि पर्यायको विषय करने वाला पर्यायार्थिक नय न होता तो संसारसे घट, पट, मढ, पुत्र पिता आदि व्यवहारो का लोप ही होजाय॥

(१) अथवा अर्थनय और शब्दनय ऐसे भी दो भेद होते हैं अर्थात् नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र ये चार अर्थ वा प्रयोजनको प्रधानकरि प्रवर्तती हैं इससे इनका अर्थनय कहते हैं और शब्द, समभिरूढ, एवंभूत शब्दको प्रधान करि प्रवर्तती हैं अतः इनको शब्दनय कहते है॥

वर्तमान काल की समस्त पर्यायों से अन्वय रूप (=जोड़रूप) है अपनी किसी भी

( ) जो अतीत पर्यायोंमें वर्तमानवत् आरोपण करै वा संकल्प करै सो भूतनैगमनय है जैसे "अद्य दीपोत्सवदिने श्रीवर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतः"
आज दिवालीके दिन पर श्री महावीर स्वामी मोक्ष पधारे हैं यहां पर यद्यपि भगवानको मोक्ष गये हुये सहस्रों वर्ष व्यतीत होगये अर्थात्
२४५२ साल वीत गये परंतु संसारमें एसा व्यवहार होता है अतः नैगमनय की अपेक्षा ऐसा वचन वाधित नहीं वरन ठीकही समझा जाता है॥
( ) जो आगामी पर्यायों को वर्तमानवत् संकल्प करै सो भविष्यत नैगमनय है जैसे एक मनुष्य काठसे इन्द्रकी प्रतिमा वनाना चाहता है अभी वह
केवल इन्द्रकी प्रतिमा वनानेकी योजना कर रहा है यदि उससे पूंछा जाता है भाई क्या कर रहे हो ? तो उत्तर मिलता है कि मै इन्द्र वना रहा हूं
यद्यपि अभी इन्द्रकी प्रतिमा उपस्थित नहीं है किंतु इन्द्रकी मूर्ति वनानेका संकल्पहै तौभी में इन्द्र वनारहा हूं यह वचन नैगमनयकी अपेक्षा ठीकहै॥
( ) " कर्तुमाराब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते " = कर्तुम् आराब्धम् ईषत् निष्पन्नं वा अनिष्पन्नं वस्तु निष्पन्नवत्
कथ्यते = (वर्तमानमें पर्याय वा) वस्तु आरम्भ करने पर कुछ पूर्ण भया कुछ पूर्ण नहीं हुआ (लगभग परिपूर्ण होने परही है) उसको परिपूर्ण
कहा जाय सो वर्तमान नैगमनय है (" जैसे ओदनः पच्यते " =भात पक गया है) देखो आलाप पद्धति॥ अर्थात् वर्तमान मे जो कार्य करने के
लिये हाथमें लिया है सो पूर्ण भया तथा परिपूर्ण नहीं हुआ अत्यन्त निकट समयमें परिसमाप्त होगा उसको परिपूर्ण रूप संकल्प कर लेना वर्तमान
नैगमनय का विषय है अथवा यों भी कह सकते हैं कि जो कार्य वर्तमान कालमें हाथमें लेलिया है वह होते होते ऐसी अवस्था में पहुच गया है कि
उसको व्यवहारमें कहते हैं कि वह पूर्ण है यद्यपि उसकी परिपूर्णतामें अत्यन्त न्यूनता अवशेष है जैसे एक समाज यात्राको गई हुई है सबकी
संमिलित रसोई में दाल भात हो रहा है दाल भात ऐसे पक्क हैं कि केवल एक दो पलमें वह अग्निसे नीचे उतारे जाने को ही हैं रसोईया
पुकारता है कि चलो भाइयो खालो दाल भात निष्पन्न हैं अब कुछ भी देरी वा विलम्ब नहीं है (वास्तविकमें केवल सड़सी वा कपड़ा द्वारा आग
से पृथिवी पर उतारने की देरी है योंहीं कि रसोईया ने सड़सी लगा कर दाल वा भातको अग्निसे उचका दिया) वस इतनेही में दाल भात
पूर्णतया परिपक्क होगये और नैगमनयका विषय जाता रहा॥ हमारी समझमें वर्तमान नैगमनय भी सूक्ष्म दृष्टिसे भविष्यत नैगमनय में ही गर्भित हो
जाती है यह दोनों भेद उक्त वृत्ति की परिभाषा में अन्तर्गत होजाते हैं केवल भूतनैगमनय अन्तर्गत नहीं होती अतः वृत्तिकार की परिभाषा
सीमावद्ध है जैसा हमारी समझ में आया है सो लिखा।

संकल्पमात्रविषयो नैगमस्य गोचरः ॥१॥ स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय पर्यायानाक्रान्तभेदानविशेषेण समस्तग्रहणात्संग्रहः ॥

संकल्पमात्रविषयः १/१। नैगमस्य ६/१। गोचरः १/१।	=संकल्पमात्र ग्रहण करने वाला नैगम (नय) का विषय है
स्वजाति-अविरोधेन ३/१। एकध्यम् २/१॥ उपनीय÷	=अपनी जातिके वस्तुओं को अविरोधकरि एक प्रकारपनाको प्राप्तकर
पर्यायान् २/३। आक्रान्तभेदान् २/३। अविशेषेण ३/१।	=पर्यायोंको वा प्राप्त होने वाले भेदोंको सामान्य रूपसे (=अविशेषेण)
समस्तग्रहणात् ५/१॥	=समस्तको ग्रहण करनेके हेतुसे वा समस्तको विषय करनेके कारणसे
संग्रहः १/१।	=संग्रह (नय कही जाती) है अर्थात् अपनी जातिके सब पदार्थोंको बिना किसी विरोधताके (एक जातिके कितने ही पदार्थोंमें भी विरोध नहीं होता परंतु उसका भिन्न जातिके पदार्थों से विरोध होता है)

(१) बुद्धि, नाम,अनुकूल प्रवृत्ति इन चिन्होंकी समानता रखने वाला जो सादृश्य है वही जाति है अर्थात् जिन पदार्थोंकी प्रतीति समान होगी, नाम भी समान होगा, अनुकूल प्रवृत्ति भी समान होगी ऐसे पदार्थोंके समूहका नाम जाति है अथवा जहां स्वरूपका अनुगम है (=ग्रहण) है जिस प्रकार गोत्व स्वरूप समस्त संसारकी गौओंमें रहता है इस लिये वह जाति है वह जाति चेतन अचेतन आदि पदार्थ स्वरूप है चेतन आदि पदार्थों से भिन्न नहीं। तथा उसकी प्रवृत्तिमें कारण गोत्व, घटत्व, द्रव्यत्व,सत्व आदि अनेक शब्द हैं इस लिये जहां जो शब्द होगा उसीके अनुसार उसका नाम भी भिन्न होगा तथा प्रवृत्ति भी उसी नियत शब्द के अनुसार होगी।

(२) उक्त संस्कृत वृत्तिमें जो अविरोध शब्दहै उसका अर्थ स्वरूपसे नचिगना है वा स्वरूपसे न प्रच्यवन होना है॥ अपनी जाति है सो स्वजाति है। नहीं चिगना है वा नहीं डिगना है सो अविरोध है, अपनी जातिसे नही चिगना (जो) है सो स्वजात्यविरोध है। अपनी जातिसे नहीं चिगने द्वारा एक प्रकारपनाको प्राप्त होना है सो "स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय" है। ऐसे सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें आये हुये "स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय" वाक्यकी निरुक्ति है। (=प्रकृति धातु प्रत्यय आदि अवयवोंके अर्थ को कह कर समास के अर्थ को जतलाना) सो निरुक्ति है।

(३) तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें संग्रहनयका लक्षण ऐसे कहा है "स्वजात्यविरोधेनैकत्वोपनयात्समस्त ग्रहण संग्रहः" उपर्युक्त वृत्तिमें दी हुई संग्रह नयकी परिभाषा से जब इस परिभाषा की तुलना करते हैं तो "पर्यायान् आक्रान्तभेदान् अविशेषेण" वाक्य राजवार्तिक से अधिक पाते हैं शेष पाठ दोनोंका लगभग एकसा है परंतु तात्पर्य दोनों परिभाषाओं का एकसा है क्योंकि अधिक वाक्यका अर्थ "पर्यायोंको अविशेषकरि" ऐसा है॥

कञ्चित्पुरुषं परिगृहीतपरशुं गच्छन्तमवलोक्य कश्चित्पृच्छति किमर्थं भवान्गच्छतीति। स आह प्रस्थमानेतुमिति। नासौ तदा प्रस्थपर्यायः सन्निहितः। तदभिनिर्वृत्तये संकल्पमात्रे प्रस्थव्यवहारः॥ तथा एधोदकाद्याहरणे व्याप्रियमाणं कञ्चित्पृच्छति किं करोति भवानिति। स आह ओदनं पचामीति। न तदौदनपर्यायः सन्निहितः। तदर्थे व्यापारे स प्रयुज्यते॥ एवम्प्रकारो लोकसंव्यवहारः अनभिनिर्वृत्तार्थ

पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है सो भविष्यत् पर्यायोंका, उन पर्यायों का जो अभी परिपूर्ण नहीं हुई हैं वर्तमानकालमें संकल्प करै ऐसा ज्ञान तथा वचन नैगमनयहै॥ इसमें भूतनैगम अन्तर्गत नहीं हुई। देखो टिप्पणी ५०६, ४९९। पृष्ठ

कञ्चित् * पुरुषम् ः। परिगृहीत परशुम् ः। =किसी मनुष्य को कुल्हाड़ा लिये हुये
गच्छन्तम् ः। अवलोक्य ÷ कश्चित्* पृच्छतिT किम् ः।।=जाते हुए देख कर कोई पूछता है किस-
अर्थम् ः।। भवान् ः। गच्छतिT इति*सः आह प्रस्थम् ः।=लिये आप जाते हो। वह कहताहै धान्यमापनेका लकड़ीका परिमाण (=प्रस्थ)
आनेतुम् इति * ; असौ ः। तदा * प्रस्थपर्यायः ः। =लेनेको (जाताहूं)। उस समय वह (=तदा) प्रस्थ पर्याय
सन्निहितः ः। न * ; तद्-अभि- =निकटस्थ नहीं है। उस (प्रस्थ) को आगे वा भविष्यत् में (=अभि)
निर्वृत्तये ः।। सङ्कल्पमात्रे ः।।। =निष्पन्न करनेके लिये अर्थात् लकड़ी काटकर बनानेके लिये केवलमनकी इच्छामें
प्रस्थव्यवहारः ः। तथा एधस्-उदक-आदि- =प्रस्थका उद्योग वा व्यवहार हैं। वैसे ही (=तथा) लकड़ी जल आदिक
आहरणे ः।। व्याप्रियमाणम् ः।।। कञ्चित्*पृच्छति T =लाने में (=आहरण) लगेहुयेको कोई पूछता है
किम्ः।। करोतिT भवान्ः। इति*सःः। आहT ओदनम्ः।=आप क्या करते हो। वह कहताहै भातको
पचामि T इति तदा* ओदन पर्यायःः। सन्निहितःः। न*=पकाताहूं। उस समय भातका पर्याय निकटस्थ नहीं है
तद्-अर्थे ः। व्यापारे ः। सः ः। प्रयुज्यते T एवम् * =उस (भात) के लिये व्यवहार वा उद्योगमें वह (पुरुष) लगा हुआहै इसी (=एवम्)
प्रकारः ः। लोक संव्यवहारः ः। अभिनिवृत्त-अर्थ- =प्रकार संसारका व्यवहार है। अनुपस्थित (=अनभिनिर्वृत्त) पदार्थ को

(१) अवलोक्य। सम्बन्ध सूचक भूतकृदन्त है (देखो पृष्ठ १६) (२) 'आनेतुम्' हेत्वर्थ भूतकृदन्त है।
(३) प्रयुज्यते-युज् यहां दिवादि चौथे गणका अकर्मक आत्मनेपदी धातु है। इसमें य विकरण और प्र उपसर्ग लगाने से प्रयुज्य हुआ, ते जोड़कर प्रयुज्यते बना लिया।

भिधानानुगमलिंगानुमितसकलार्थसंग्रहः । एवम्प्रकारोऽन्योऽपि संग्रहनयः ॥२॥ संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः ॥ को विधिः ? । यः संग्रहगृहीतोऽर्थस्तदानुपूर्व्येणैव व्यवहारः प्रवर्तत इत्ययं विधिः ।

अभिधान-अनुगमलिंग-	=नामके अन्वयरूपचिन्हकरि (=अनुगमलिंग) वा जोड़रूप चिन्ह करि (=अनुप्रवृत्तिलिंग)
अनुमित-सकल-अर्थ-संग्रहः १।१।	=अनुमान कियेहुये (=अनुमित) सब घटरूप पदार्थका (=अर्थ) संग्रह होता है
एवम्* प्रकारः १।१। अन्यः १।१। अपि *	=इसप्रकार अन्य भी (अर्थात् उपर्युक्त कहे हुये उदाहरणोंके अतिरिक्त) और भी (जैसे मठ, पट, गृह, इत्यादि एक जातिकी सब वस्तुओं का कथन करने वाला)
संग्रहनयः १।१।	=संग्रह नय है ॥ (संग्रह नयके सामान्यसंग्रह-विशेषसंग्रह दो भेद हैं (देखो निम्नटिप्पणी)
(२) संग्रहनय-आक्षिप्तानाम् ६।३। अर्थानाम् ६।३।	=संग्रहनय से विषय कियेगये वा ग्रहण किये गये (=आक्षिप्तानाम्) पदार्थों का
विधिपूर्वकम् २।१।। अवहरणम् १।१।। व्यवहारः १।१।	=क्रमानुसार वा अनुक्रमसे वा विधिपूर्वक भेद करना सो व्यवहार (नय) है
कः १।१। विधिः १।१। यः १।१। संग्रह-गृहीतः १।१। अर्थः १।१। तद्-	=विधि क्या है ? जो संग्रह (नय) द्वारा ग्रहण किया हुआ पदार्थ है उसका (=तद्)
आनुपूर्व्येण ३।१।। एव * व्यवहारः १।१। प्रवर्तते T	=मूलसे लेकर क्रम पूर्वक (=आनुपूर्व्येण) ही व्यवहरण होता है वा भेद किया जाता है =ऐसी यह विधि (=संग्रहनयसे ग्राह्य पदार्थको आदिसे लेकर भेद करै सो) है ॥
इति* अयम् १।१। विधिः १।१।	

---

(१) संग्रहो द्विविधः १।१। सामान्य संग्रहो यथा सर्वाणि १।३।। द्रव्याणि =संग्रह (नय) दो प्रकार है । सामान्यसंग्रह जैसे सब द्रव्यें =आपसमें (स्वरूपसे) चिगने वाली नहींहैं (=अविरोधीनि)। (और) विशेष संग्रह जैसे परस्परमविरोधीनि । विशेष संग्रहो यथा =समस्त जीव परस्पर अविरोधीहैं अर्थात् (अपने स्वरूपसे) प्रच्यवन होनेवाले नहींहै सर्वेजीवाः परस्परमविरोधिनः" आलाप पद्धतिसे लिया हैं । (२) "अतो विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः" इस (संग्रहनय) से (ग्रहण किये हुये पदार्थका) अनुक्रमसे (=विधिपूर्वक) भेद करना (=अवहरण) सो व्यवहार है यह परिभाषा व्यवहारनयका तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें से लियाहै और "उपर्युक्त संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां"का यही तात्पर्यहै जो इसकाहै (३) विधिपूर्वक=आनुपूर्वीकरि, आनुपूर्व्यकरि, आनुपूर्वकरि अर्थात् क्रमानुसार, क्रमानुकूल, अनुक्रमसे क्रमपूर्वक ॥ मूलसे लेकर क्रमपूर्वक =आनुपूर्व्येण) देखो पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ५७) (४) अवहरण =व्यवहरण=भेद किया जाना, देखो पं०जयचंदजी कृत सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ१०१

सत् द्रव्यं घट इत्यादि। सदित्युक्ते सदिति वाग्विज्ञानानुप्रवृत्तिलिङ्गानुमितसत्ताधारभूतानामविशेषेण सर्वेषां संग्रहः। द्रव्यमित्युक्तेऽपि द्रवति गच्छति तांस्तान्पर्यायानित्युपलक्षितानां जीवाजीवतद्भेदप्रभेदानां संग्रहः। तथा घट इत्युक्तेऽपि घटबुध्य-

एक रूपसे पर्यायोंके भेदोंको व्यक्तकर समस्त भेदोंका ग्रहण करने वाला ऐसा संग्रहनय है। सारांश यह है कि अपनी जाति को प्रगट करके पर्यायका भेद न करके समस्तका समुदाय रूप ग्रहण करने वाला संग्रहनय है॥

सत् ;॥ द्रव्यम् ;॥ घटः ;। इत्यादि ;॥	=सत्, द्रव्य, घट इत्यादिक (संग्रहनयके उदाहरण) हैं॥
सत् ;॥ इति* उक्ते ;॥ सत् ;॥ इति* वाग्-विज्ञान-	=सत् ऐसा कहने में सत् ऐसा वचनकरि तथा ज्ञानकरि
अनुप्रवृत्तिलिङ्ग-	=अन्वयरूप चिन्हसे (=अनुप्रवृत्तिलिंग) वा जोड़रूप चिन्हसे (=अनुप्रवृत्तिलिंग)
अनुमित-सत्ता-आधारभूतानाम् ;। सर्वेषाम् ;।	=अनुमान किये हुये (=अनुमित) सत्ताको आश्रयभूत सब (वस्तु) निका
अविशेषेण ;। संग्रहः ;।	=सामान्य रूपसे (=अविशेषेण) संग्रह है अर्थात् ऐसे सब वस्तुयें सत्ता रूप हैं तात्पर्यः—सत् ऐसा उच्चारण करने पर द्रव्य, पर्याय और उसके भेद प्रभेद सब सत्तासे अभिन्न हैं अतः एक सत्व धर्मसे उन सबका ग्रहण होजाता है
द्रव्यम्;।.इति उक्ते;॥ अपि तान्;।तान् पर्यायान्;।द्रवति T	=द्रव्य ऐसा कहनेमें भी (जो) जिन जिन पर्यायोंको प्राप्त होता है (=द्रवति)
गच्छति T इति उपलक्षितानां ;। जीव-अजीव-	=अथवा (जिन जिन पर्यायोंको) पाता है ऐसे उपलक्षित जीव और जड़
तद्-भेद-प्रभेदानाम् ;। संग्रहः ;।	=तथा उन (जीव अजीव) के भेद और प्रभेदोंका संग्रह है अर्थात् द्रव्य कहने में गुण पर्यायों सहित जीव अजीव उनके भेद प्रभेद सबको समझ लेना चाहिये
तथा* घटः ;। इति* उक्ते ;॥ अपि* घटबुद्धि-	=वैसेही (=तथा) घट (=घड़ा) ऐसा उच्चारण करने में भी घड़ाका ज्ञान तथा

(१) द्रव्य ऐसा उच्चारण करने पर जीव अजीव और उनके भेद प्रभेद जितने भी द्रव्य कहे जाने वाले हैं उन सबमें द्रव्यत्व अभेदरूपसे रहता है-जीव आदि कोई भी द्रव्यत्वसे भिन्न नहीं अतः एक द्रव्यत्व धर्मसे सबका ग्रहण होजाता है॥

जीवाजीवावपि संग्रहाक्षिप्तौ नालं संव्यवहारायेति प्रत्येकं देवनारकादिर्घटादिश्च व्यवहारेणाश्रीयते। एवमयं नयस्तावद्वर्तते यावत्पुनर्नास्ति विभागः

जीव-अजीवौ ;। अपि*	=(और इस अवस्था में) जीव और अजीव भी
संग्रह-आक्षिप्तौ ;।	=जो संग्रहनयके विपयभूत हैं संग्रहनय गोचर हैं वा ग्रहण संग्रहनयसे कियेगये हैं
संव्यवहाराय ;। अलम्* न* इति* प्रत्येकम् ;॥।	=व्यवहार (प्रवर्तावने) के लिये समर्थ नहीं है। प्रत्येक (जीव और अजीव)
देवनारकादिः ;। च* घटादिः ;। व्यवहारेण ;।	=(यथा संख्य वा क्रमसे) देवनारकादिक तथा घट आदिक व्यवहारनय करि
आश्रीयते T	=आश्रय किये गये हैं अर्थात् यहां संग्रहनय का विषय जीव और अजीव माने गयेहैं परंतु जीवके देव, नारक, मनुष्य, तिर्यंच, सिद्ध भेद माने विना संसारका व्यवहार नहीं चल सकता इसलिये लोक व्यवहारकी सिद्धि के लिये जीव द्रव्यके देव नारक आदि भेद व्यवहार से मानने पड़ते हैं। और अजीव के घट, पट, मठ, गृह इत्यादि भेद मानें विनाभी संसार का व्यवहार नहीं हो सक्ता है इसलिये अजीव के घट, पट, मठ, गृह आदि भेद व्यवहार नय से मानते हैं
एवम्* अयम् ;। नयः ;। तावत् * वर्तते T	=इसप्रकार यह व्यवहार नय तबतक चला जाता है
यावत् * पुनः * न * अस्ति T विभागः ;। ॥३॥	=जबतक फिर विभाग नहीं हो (सक्) ता है अर्थात् ऋजुसूत्र नय के विषयके

(१) "व्यवहारोऽपि द्वेधा। सामान्यसंग्रह भेदको व्यवहारो =व्यवहारनय भी दो प्रकार है - सामान्य संग्रहभेदक व्यवहार अर्थात् सामान्य संग्रह नय की भेद करने वाली व्यवहारनय
यथा-द्रव्याणि जीवाजीवाः। विशेषसंग्रह भेदको व्यवहारो =जैसे द्रव्यहैं सो जीवरूप और अजीवरूप हैं। विशेषसंग्रहभेदकव्यवहार अर्थात् विशेषरूप संग्रहनयके भेद करने वाली व्यवहारनय
यथा-जीवः संसारिणो मुक्ताश्च" =जैसे जीव हैं सो संसारी और मुक्तरूप हैं॥ (आलापपद्धति से उद्धृत)

(२) नाम स्थापना द्रव्य ये तीन निक्षेप संग्रहात्मकहैं उनसे संग्रहआत्मक वस्तुका ग्रहण होताहै उनसे भिन्न भिन्न व्यवहार नहीं होसक्ता क्योंकि वे तीनोंही जाति वाचक हैं व्यक्तिवाचक नहीं है। इसलिये व्यवहारके लिये वर्तमान पर्याय भाव निक्षेप ही समर्थ है उसीका यहां ग्रहण है। इस रीतिसे इस व्यवहार नयका वहींतक विषय समझना जहांतक फिर किसी प्रकार का भी विभाग नहोसकै॥

तद्यथा—सर्वसंग्रहेण यत्संगृहीतं तच्चानपेक्षितविशेषं नालं संव्यवहारायेति व्यवहारनय आश्रीयते । यत्सत्तत् द्रव्यं गुणो वेति । द्रव्येणापि संग्रहाक्षिप्तेन जीवाजीवविशेषानपेक्षेण न शक्यः संव्यवहार इति जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति वा व्यवहार आश्रीयते ।

तद्यथा* सर्वसंग्रहेण १। सत्संगृहीतम् १।।	=सो (=तद्) ऐसें हैं (=यथा) कि सर्वका संग्रहकरि सत् ग्रहण किया गया है
च* तत् १।। अन्-अपेक्षितविशेषम् १।।	=और (=च) वह (=तद्) अर्थात् सत् विशेषकी विवक्षा रहित है
संव्यवहाराय १। न* अलम्*	=सो योग्य व्यवहार (प्रवर्तावने)के लिये समर्थ (=अलं) वा योग्य (=अलं) नहीं है
इति* व्यवहारनयः १। आश्रीयते T	=ऐसें व्यवहारनय अवलंबन कीगई है वा आश्रय कीजाती है (तब कहैं हैं कि)
यत् १।। सत् १।। तत् १।। द्रव्यम् १।। वा* गुणः १। इति*	=जो सार (=सत्) है सो द्रव्य है और गुण है भावार्थ यह है कि जैसे (=तद्यथा) संग्रहनयका विषय सत् पदार्थ है किंतु सत् शब्दसे संसारका व्यवहार हो नहीं सकता अतः जो सत् है वह द्रव्य और गुण है यह व्यवहार नयसे मानना पड़ता है ऐसे सत् विषैं भेद करैं तब संसार का व्यवहार चलता है ॥
द्रव्येण १।। अपि* संग्रह-आक्षिप्तेन १।। जीव-अजीव-विशेष-अन्-अपेक्षेण १।। संव्यवहारः १। न* शक्यः १।	=(और यहां) द्रव्य (शब्द) करि भी संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये जीव अजीव के भेदकी (=विशेष) अपेक्षा न होने से योग्य व्यवहार नहीं होसकता है
इति* जीवद्रव्यम् १।। वा* अजीवद्रव्यम् १।। इति*	=ऐसें जीव द्रव्य है और (=वा) अजीव द्रव्य है ऐसे
व्यवहारः १। आश्रीयते T	=व्यवहारनय आश्रय कीगई है अर्थात् जब हमने सत्के दो भेद किये तौ यहां पर भी संग्रहनयका विषय द्रव्य हुआ उसके जीव और अजीव भेद माने विना संसारका व्यवहार नहीं होसकता है इसलिये वह द्रव्य जीव और अजीव है यह व्यवहारसे कहना पडता है

(१) सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियोंमें 'यत्संग्रहीतम्' है अर्थ यह होगा कि सर्वका संग्रहकरि जो (सत्) ग्रहण किया गया है परंतु सत् तत्त्वार्थ राजवार्तिक में है तथा जयचंद रायजीने और अन्य भाषा अनुवादकों ने 'यत्' के स्थानमें सत् मानकरि अनुवाद किया है इस लिये हमने 'सत्संग्रहीतम्' पाठ दिया है यद्यपि 'यत्' से भी वही अर्थ निकल सकता है जो सत् से परंतु हमने वृत्तिमें ' यत्संगृहीतं ' ही पाठ रक्खा है ॥

ननु संव्यवहारलोपप्रसंग इति चेन्नास्य नयस्य विषयमात्रप्रदर्शनं क्रियते । सर्वनयसमूहसाध्यो हि लोक-संव्यवहारः सर्वनयसमूहसाध्यः

ननु॰ संव्यवहारलोप-प्रसंगः १।	=प्रश्न (=ननु) लोकव्यवहार के अभावका प्रसंग आता है अर्थात् लोकमें अतीत अनागत का व्यौपार भी प्रवर्तता है सो किस प्रकार चलैगा जो ऋजु सूत्रनय केवल वर्तमान पर्याय मात्र को ही ग्रहण करैगी
इति॰ चेत॰ न॰	=ऐसी शंका (=चेत-होने पर उत्तर में कहते हैं कि) (यह बात) नहीं है
अस्य६।नयस्य६।विषयमात्र-प्रदर्शनम्१।।।क्रियते	=इस (ऋजुसूत्रनय) का केवल विषय (=विषयमात्र) दिखाया गया है
हि॰ लोकसंव्यवहारः १। सर्वनयसमूहसाध्यः १।	=क्योंकि (=हि) लोकका व्यवहार वा कार्य सबनयोंके समूह द्वारा साधने योग्य है अर्थात लोक व्यवहार में जिस नयका जो कार्य है उसी नयको काममें लाना चाहिये

(१) ऋजुसूत्रो द्विविधः सूक्ष्मर्जुसूत्रो यथा एक समय-अवस्थायी पर्यायः स्थूलर्जुसूत्रो यथा मनुष्यादि पर्यायास्तदायुः प्रमाणकालं तिष्ठन्ति	=ऋजुसूत्र (नय) दो प्रकार है सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय जैसे एक समय तक-ठहरने वाली पर्याय और स्थूलऋजुसूत्रनय जैसे मनुष्य आदि पर्याय हैं वे (=तद्) आयुपरिमाणकाल तक रहती हैं ॥

आलाप पद्धतिसे उद्धृत

( ) जिस प्रकार सूतका गिरना सरल होता है उसी प्रकार जो सरल विषयको सूचित करता है उसका नाम ऋजुसूत्रनय है ॥ यह नय त्रिकाल संबधी विषयोंमें से वर्तमान कालीन विषयोंको ग्रहण करता है क्योकि जो पर्याय बीत चुकी अथवा जो पर्याय अभी उपस्थित नहीं हुई आगे जाकर उपस्थित होगी उन दोनो पर्यायोसे व्यवहार नहीं चल सकता है इसलिये शुद्ध एक समय मात्र ही ऋजुसूत्र नयका विषय माना गया है ॥ ऋजुसूत्र नयके कुछ अच्छे अच्छे उदाहरण ऐसे है कि (क) 'कषायो भैषज्य' काढा औषध है यहां पर जिन पदार्थोका काढा है उन पदार्थोका रस निकाल कर जिस समय साक्षात् औषध स्वरूप काढा बन जाता है वही शुद्ध वर्तमान कालीन एक समयवर्ती ऋजुसूत्रनयका विषय है किन्तु पहिले ही पहिले जिसका रस अभी तक प्रगट नहीं हुआ आगे जाकर प्रगट होने वाला है अतः जो साक्षात् औषध नहीं है वह ऋजुसूत्रनयका विषय नहीं है क्योंकि वह वर्तमान एक समयवर्ती नहीं-भविष्यत् कालकी अपेक्षा रखता है ॥

॥३॥ ऋजुं प्रगुणं सूत्रयति तन्त्रयत इति ऋजुसूत्रः । पूर्वान्परांस्त्रिकालविषयानतिशय्य वर्तमानकालविषयानादत्ते अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात् । तच्च वर्तमानं समयमात्रं तद्विषयपर्यायमात्रग्राह्योऽयमृजुसूत्रः ॥

पहिले पहिले संग्रहनय और व्यवहारनय दोनों चले जाते हैं

ऋजुम् १ प्रगुणम् १ सूत्रयति T =सीधे (=ऋजु) और सरल (=प्रगुण) (विषय वा वस्तु) को सूचित करता है (सूत्रयति)
तन्त्रयते T इति* ऋजुसूत्रः १। =फैलाता है (तन्त्रयते) ऐसा ऋजुसूत्रनयहै (तंत्रयति भी आता है, देखो राजवा० पृ० ६६)
त्रिकालविषयान् १। पूर्वान् २। परान् २। =तीन कालके विषय (अर्थात् पर्याय वा भाव) निर्मे से अतीत–अनागत (विषयों) को
अतिशय्य ÷ वर्तमान-काल-विषयान् २।आदत्ते T =उलंघकरि वा छोड़कर विद्यमानकालके विषयोंको (ऋजुसूत्रनय) ग्रहण करता है
अतीत-अनागतयोः ६। विनिष्ट– =क्योंकि भूत और भविष्यत् (विषयों) को (यथासंख्य) विनाश होनेसे और
अनुत्पन्नत्वेन ३।।। व्यवहार-अभावात् ५। तच्च* =न उत्पन्न होनेसे व्यवहार नहीं होता है । तात्कालिक (=तच्च-वैद्यकोश पृ० ३०१)
वर्तमानम् १।।। समयमात्रम् १।।। तद्-विषय- =विद्यमान केवल एक समयवर्ती उस (ऋजुसूत्रनय) का विषय
पर्यायमात्र-ग्राह्यः १। अयम् १। ऋजुसूत्रः १। =पर्यायमात्रका ग्रहण करनेवाला है सो यह ऋजुसूत्रनय है अर्थात् द्रव्यकी पर्याय समय समय में परिणमती (पलटती) रहती है

सो एक समयवर्ती पर्यायको अर्थपर्याय कहते हैं । अर्थपर्याय ही ऋजुसूत्रनयका विषय है । ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समयमात्र की पर्याय को कहता है वा ग्रहण करता है अतीत अनागत समयकी पर्यायको ग्रहण नहीं करता है ॥

(१) ऋजुम् १ —यह ऋजुशब्द त्रिलिंगी है (ऋज्+कु) स्त्री लिंग में विकल्प से ङीप् होता है जैसे ऋज्वी १।। ऋजुः १।। ॥ द्वितिया, पुल्लिंग नपुंसक लिंग में यहां आया है
(२) प्रगुणम्-यह त्रिलिंगी है ॥ प्रगुणा १॥ रूपस्त्रीलिंगमें है ॥ यहांपर द्वितीया एकवचन पुल्लिंग अथवा नपुंसकलिंगमें ऋजु शब्दवत् जानना चाहिये

(च) पच्यमान— जो रंध रहा है और पक्व— जो रंधचुका है यह ऋजुसूत्र नय का विषयहै। यहां पच्यमान और पक्वका अर्थ कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व यह समझ लेना चाहिये। (प्रश्न) पच्यमान यह वर्तमान पर्याय और पक्व यह अतीत पर्याय है, इन दोनो का एक स्थान में कैसे समावेश होगा? (उत्तर) पहिले ही पहिले जब समयका कोई विभाग नही है उस समय भातका कुछ अंश रंधाहै सीझा है, वा नहीं रंधा है नहीं सीझा है यदि नहीं सीझा है तब द्वितीयादि समयोमे भी वह नहीं सीझ सकता इसलिये पाकका अभाव ही कहना होगा। परन्तु प्रति क्षण वह सीझता अवश्य है इसलिये बटलोई में रक्खे हुये चांवलोमे सीझे और वे सीझे की अपेक्षा ऋजुसूत्र नयका कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व यह विषय बाधित नहीं यदि यहांपर यह अपेक्षा न मानी जायगी और पच्यमान अवस्था और पक्व अवस्था का सर्वथा विरोध माना जायगा तो पच्यमान (मिश्रित) कथंचित् पच्यमान और पक्व इस प्रकारसे विषयोके तीन भेद होजानेसे समय भी तीन प्रकार का मानना होगा परन्तु तीन भेदो को सर्वथा विरुद्ध मानने से एक समय मे वे तीनो भेद नहीं रहसक्ते हैं इसलिये कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्वमें सर्वथा विरोध नहीं माना जासक्ता। इसलिये यहां यह बात समझलेनी चाहिये किसी रसोईयाका यह अभिप्राय हो कि जो चांवल भली प्रकार से सीझ गये है कोई भी कच्चा शेष नहीं रहा है उस (रसोईया) की अपेक्षा तो भलेप्रकार रंधे हुये चांवल ही पक्व हैं। और जिस रांधने वाले का यह अभिप्राय हो कि वह कुछ सीझे और कुछ न सीझे कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व ऐसे पच्यमान चावलों को ही पक्व कहना चाहता है उसकी अपेक्षा पच्यमान ही पक्व है। क्योंकि वह पच्यमानों को ही पक्व मानना सुखप्रद समझता है इसलिये यह बात निश्चित हो चुकी कि ऋजुसूत्र नयका पच्यमान अर्थात् कथंचित् पच्यमान कथंचित् पक्व उदाहरण निर्दोष है तथा पक्व रंध चुकने के पश्चात् एक समय वर्ती पदार्थ भी ऋजुसूत्र नयका विषय है। ऐसेही क्रियमाण कृत (कथंचित् क्रियमाण कथंचित् कृत), भुज्यमान भुक्त (कथंचित् भुज्यमान कथंचित् भुक्त) बध्यमान बद्ध (कथंचित् बध्यमान कथंचित् बद्ध) और सिध्यत् सिद्ध (कथंचित् सिध्यत् कथंचित् सिद्ध) आदि भी ऋजुसूत्र नयके उदाहरण समझलेने चाहियें। अर्थात् जो किया जारहा है और जो किया जा चुका है और जो भोगा जारहा है और जो भोगा जाचुका है जो सिद्ध किया जारहा है और जो सिद्ध किया जाचुका है ये सब ही ऋजुसूत्र नयके विषय पड़ते हैं, क्योंकि इन सबो में भी कुछ अंशोंमें वर्तमान पर्यायका ग्रहण होता है; जितने अंशों में वर्तमान पर्यायका ग्रहण है उतने ही अंशों में ऋजुसूत्र नयकी विषयता है इसलिये कथंचित पदसे कहागया है। यहां पर विरोधादि बातों का विस्तार और समाधान पच्यमान पक्वके समान है तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ६७ से अनुवादित॥

(ख) ऋजुसूत्र नय का विषय प्रस्थ भी है परंतु जिस समय अन्न आदि पदार्थ सेर नाप द्वारा तुल रहा है उसी समय प्रस्थ ऋजुसूत्र नय का विषय हो सकता है परन्तु जिस से धान्य तुलचुका अथवा आगे जाकर तुलेगा वह ऋजुसूत्र नय का विषय नहीं हो सकता क्योंकि जो तुल चुका वह भूतकाल का विषय है जो आगे तुलेगा वह भविष्यत् कालका विषय है भूतकाल की पर्याय और भविष्यत् कालकी पर्याय ऋजुसूत्र नयका विषय है नहीं किन्तु वर्तमानकाल की एक समय वर्ती पर्याय ही उसका विषय है इसलिये भूतकाल या भविष्यत् काल की अपेक्षा होनेवाला प्रस्थरूप ऋजुसूत्र नयका विषय होना असंभव है ॥

(ग) कुंभकारका अभाव ऋजुसूत्र नयका विषय है क्योंकि कुंभको करने वाला कुंभकार कहा जाता है जिस समय कुंभकार पुरुष कुंभ-घड़ा न बनाकर उसकी शिविक छत्रक आदि पर्याय बना रहा है उस समय वह ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा घड़ेका बनाने वाला नहीं कहा जा सक्ता क्योंकि शिविक छत्रक आदि पर्यायोंके आगे जाकर घट पर्याय बनने वाली है इसीलिये भविष्यत् कालका विषय है वर्तमान काल का नहीं एवं जिस समय वह घड़ा बना रहा है उस समय घट की उत्पत्ति उसके विशेष अवयवोंसे हो रही है और वही शुद्ध वर्तमान काल ऋजुसूत्र नयका विषय है किन्तु उस समय कुंभकार कुछ नहीं कर रहा है इसलिये ऋजुसूत्र नयका विषय कुंभकार नहीं हो सक्ता किन्तु कुंभकार का अभाव उसका विषय है। तथा —

(घ) कोई पुरुष कहीं से आकर बैठा है किसी दूसरे ने पूछा — कहो भाई कहां से आ रहे हो? उस समय उसका यह कहना कि कहींसे नहीं आरहा हूं क्योंकि उस समय सर्वथा गमन क्रिया का अभाव है इसलिये शुद्धवर्तमान की अपेक्षा 'इस समय कहींसे नहीं आ रहाहूं' यह ऋजुसूत्र नयका विषय है ॥

(ङ) किसी बैठे आदमी को देखकर यह पूछना कि भाई! इस समय तुम किस स्थान पर हो? उस समय वर्तमान में वह जितने जितने आकाशके प्रदेशों में विद्यमान है उतने ही प्रदेशोंका नाम लेकर कहै कि मैं यहां पर हूं, किसी पुरी, ग्राम, घर आदिका नाम नहीं ले, वह शुद्ध वर्तमान कालकी अपेक्षा कथन होनेसे ऋजुसूत्रनय का विषय है। अथवा उस समय जितने आत्मप्रदेशोंके आकारमें उसका रहना हो उतने ही प्रमाण आत्म प्रदेशों का उल्लेख कर वह यह कहे कि मैं यहां पर हूं वह ऋजुसूत्र नयका विषय है क्योंकि उसकी स्थिति का शुद्ध वर्तमान समयमें वही आकार है, अन्य नहीं ॥

आम्रा वनं वरणा नगरमिति ॥ कारकव्यभिचारः सैना पर्वतमधिवसति ॥ साधनव्यभिचारः पुरुषव्यभिचारः

आम्राः ; । वनम् ; ॥। =आम्रा (=आमके वृक्ष) बहुवचनको वनम् एकवचन (कहना और)
वरणाः ; । नगरम् ; ॥। इति* =वरणा (प्राकार या कोट) बहुवचनको नगर एकवचन ऐसे (कहना)
कारकव्यभिचारः ; । सैना ; ॥ पर्वतम् ; । अधिवसति T=कारक व्यभिचारः—जैसे सैना पर्वतको (=पर्वतमें वा पर्वत पर) वसे है
साधनव्यभिचारः ; । पुरुषव्यभिचारः ; । ="साधनव्यभिचार ताकूं पुरुषव्यभिचार भी कहिये" पं० जय० वचनिका पृष्ठ २०३

(=आपस) "स्त्रियाम् बहुत्वे च नित्यम्" तहां 'आपस' शब्द स्त्रीलिंगमें और बहुवचनमें सदैव आता है ॥ इस अप् शब्द का एकवचन और द्विवचन नहीं होते है इसकी सर्व विभक्तियां बहुवचन में ऐसे है कि आपः (=आपस् प्रथमा विभक्ति); अपः (द्वितिया विभक्ति); अद्भिः (तृ०वि०); अद्भ्यः (च०वि०, अद्भ्यः पं०वि०), अपाम् (ष०वि०); अप्सु (स०वि०) ॥

(१) कारक व्यभिचारका अन्य उदाहरण तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७३ में इस प्रकार दिया है "तथा करोति क्रियते इति कारकयोः कर्तृकर्मणोर्भेदेऽप्यभिन्नमर्थत एवाद्रियते। स एव करोति किंचित् स एव क्रियते केनचिदिति प्रतीतेरिति तदपि न श्रेयः परीक्षायां। देवदत्तः कटं करोतीत्यत्रापि कर्तृकर्मणोर्देवदत्त कटयोरभेद प्रसगात् ॥"

तथा* करोतिT क्रियतेT इति* कारकयोः ॥। कर्तृकर्मणोः ॥। भेदे ; । अपि* अभिन्नम् ; ॥। अर्थतः* एव* आद्रियतेT =और करोति (=करताहै) क्रियते (=किया जाताहै) ऐसे कर्ता और कर्म कारकोंमें =भेद होनेपर भी अभिन्न अर्थमें ही (वैयाकरणों द्वारा) आदर किये जाते हैं अर्थात् करोति कर्तामें प्रत्यय है और क्रियते यह कर्ममें प्रत्यय है इन कर्ता और कर्म कारकोंमें भेद है तौ भी व्याकरणवाले उनको एक मानकर कहतेहैं कि

सः ; * एव* करोतिT किंचित्* सः एव* क्रियतेT केनचित्* इति =वो ही कुछ करता है और वो ही किसीसे (=केनचित्) किया जाता है ऐसी ॥ और कर्म दोनो एक ही हैं।
प्रतीतेः ; ॥ इति* =क्योंकि (संसारमें) ऐसी प्रतीति है ॥ (इसलिये कर्ता कर्म दोनो एक ही हैं।
परस्पर एक दूसरेकी पर्याय हो सकते हैं ऐसे कारक दोष जाता रहता है)

तद् ; ॥। अपि* न* श्रेयस् ; ॥। परीक्षायाम् ; ॥ =तौ भी परीक्षा करने पर (यह) श्रेष्ठ नहीं है। (यदि कर्त्ता कर्मका अभेद मानै तो)
अत्र* अपि* देवदत्तः ; । कटं ; । करोतिT इति* =देवदत्तः कटं करोति' देवदत्त चटाई बनाता है ऐसे यहां पर भी
कर्तृ-कर्मणोः ॥। देवदत्त कटयोः ; । अभेद-प्रसगात् ; । =कर्ता देवदत्त और कर्म चटाई में अभेदका वा एकता का संयोग आता है
(अतः कर्ता कर्मको एक मानकर कारक दोषको दूर करना बाधित और अयुक्त है)

(२) इस टिप्पणीसे हमको यह बात सिद्ध करनी है कि साधन व्यभिचारको और पुरुष व्यभिचारको एक ही माना है और तत्त्वार्थ राजवार्तिक

॥ ४ ॥ लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिपरः शब्दनयः ॥ तत्र लिङ्गव्यभिचारः — पुष्यस्तारका नक्षत्रमिति ॥ संख्याव्यभिचारः — जलमापो वर्षा ऋतु

लिङ्ग-संख्या-साधन-आदि-व्यभिचार-निवृत्ति- =लिङ्ग, वचन (=संख्या) साधनादि अन्याय वा दोषोंके (=व्यभिचार) दूर करनेमें (=निवृत्ति)
परः ;। शब्दनयः ;। =लगा हुआ (=परः) वा तत्पर (=परः) है सो शब्दनय है अर्थात् लिंग, वचन, साधन, कारक काल, उपग्रह 'आदि व्यवहारनयसे माना हुआ दोष है उसके दूर करनेको यह शब्दनय है' । पुल्लिंग स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंगके भेदसे लिंग तीन प्रकार है ।एकवचन, द्विवचन और बहुवचनसे संख्या तीन प्रकार है ॥ साधनका अर्थ (पद्म चन्द्र कोश पृष्ठ ४१९ और वैद्य संस्कृतांगल कोष पृष्ठ ७७१ के अनुसार) करण तृतीया विभक्ति का है परंतु यहां पर (तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७ और श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७३ और सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके अनुसार) प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष अथवा युष्मद् और अस्मद् शब्द साधन माने गये हैं । साधन व्यभिचार को पुरुष व्यभिचार भी कहते हैं वा मानते हैं जैसा कि आगे जाकर (टिप्पणी संख्या दो पृष्ठ ५१८ से ५२१ तक में) सिद्ध करेंगे कारक संस्कृतमें कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण माने हैं संबंधको कारक नहीं माना है क्योंकि संज्ञा और क्रियामें परस्पर यह किसी प्रकारके संबंधका प्रादुर्भाव नहीं करता है । भूतकाल, भविष्यतकाल, वर्तमानकाल ये तीन काल हैं "उपग्रह का अर्थ परस्मैपद वा आत्मनेपद है परस्मैपदके स्थानमें आत्मनेपद कह देना और आत्मनेपदके स्थानमें परस्मैपद कह देना उपग्रह व्यभिचार है "उपग्रह" व्यभिचार "कहिये उपसर्ग व्यभिचार है" पं० पन्नालालजी दूनी० अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २६४ और पं० गजाधर लालजी अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४८० की टिप्पणी देखो ।

तत्र* लिंग व्यभिचारः ;। पुष्यः ;। तारका ;॥ =वहां लिंगदूषणः—(जैसे) पुष्य पुल्लिंग है उसको तारका स्त्रीलिंग
नक्षत्रम् ;॥। इति*; संख्याव्यभिचारः ;। =(वा) नक्षत्र नपुंसकलिंग ऐसा कहना । वचन दूषणः—(जैसे)
जलम् ;। आपस् ;॥ वर्षाः ;॥ ऋतुः ;। =जलम् एकवचन को आप् बहुवचन वर्षा बहुवचन को ऋतु एकवचन

(१) "स च लिंगसंख्यासाधनादि व्यभिचार निवृत्ति परः" तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ६७ ॥ सः=शब्दनय । सर्वार्थसिद्धि की परिभाषा से यह परिभाषा शब्दशः मिलती है (२) 'वर्षाः' स्त्रीलिंग, नित्य बहुवचन है (३) आपस्—'आपस्' शब्द प्रथमा बहुवचन स्त्रीलिंग अप् शब्दका है । 'अप्' शब्द भी सदा बहुवचन और स्त्रीलिंग होता है (वैद्य संस्कृतआंग्ल कोष पृष्ठ ३५, पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३०) ॥ 'आपः स्त्री' इत्यमरः ॥ 'तत्र आपः'

और मध्यम पुरुष के स्थान में उत्तम पुरुष लाना, अस्मद् (=मैं) के स्थान में युष्मद् लाना और युष्मद् (=तू) के स्थानमें अस्मद् लाना (जैसा कि नीचे के दृष्टान्तसे ज्ञात हैं)

साधनकारकव्यभिचारः—(साधनकारकव्यभिचार) ये दोनों वाक्य, वाक्यशेष पूरा कर देने से अर्थात् 'साधन व्यभिचारमें कारक शब्द जोड़ने से और कारक व्यभिचारमें साधन शब्द लगानेसे एक होजाते हैं ॥ परंतु उक्त उदाहरण (सेनापर्वत मधिवसति)में तो साधनकारक व्यभिचारका कुछ भी अंश नहीं है ॥ हमारी समझमें साधनकारक व्यभिचारके दो अर्थ हैं ( ) साधन (तृतीया करण) कारक द्वारा जो दोष उत्पन्न हो सो साधन व्यभिचार है अर्थात अन्य कारकका प्रयोग होना ठीक होता उसके स्थानमें करण कारक (=तृतीया विभक्तिका) प्रयोग पाया जाना। ( ) साधन कारकमें (का) दोष अर्थात् करण कारक (=तृतीया विभक्ति) के स्थानमें अन्य कारकका प्रयोग पाया जाना सो साधनकारक व्यभिचार वा करण कारक व्यभिचार हो सकता है ॥ इसलिए हमारी समझमें संस्था द्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुवाद पृष्ठ ४७८ के नीचे जो निम्न टिप्पणी दी है वह असावधानीसे लिखी है "१ सर्वार्थसिद्धिमें साधनव्यभिचारः (कारकव्यभिचारः) सेनापर्वतमधिवसति। पुरुषव्यभिचारः एहि मन्ये रथेन यास्यसि नहि यास्यसि यातस्ते पिता, अर्थात् साधनका अर्थ कारक माना है और साधन व्यभिचार सेना पर्वत मे रहती है यह उदाहरण दिया है। पुरुषव्यभिचार एक भिन्न व्यभिचार माना है और उसका एहि 'मन्ये रथेनत्यादि उदाहरण दिया है" ॥

सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, तत्वार्थ श्लोकवार्तिक, जयचदजी कृत वचनिका और अर्थ प्रकाशिका मे जिस क्रमसे उक्त व्यभिचारोंके नाम दिये हैं उसी क्रमसे उनकी भिन्न भिन्न व्याख्या की है और क्रमानुसार ही उदाहरण दिये हैं इससे यह बात झलकती है कि "कारकव्यभिचारः सेनापर्वतमधिवसति ॥" इस वाक्यका स्थान "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति" के पश्चात् होना चाहिये और "काल-व्यभिचारः" इत्यादि वाक्यके पहिले होना चाहिये अर्थात् "कारक व्यभिचारः--सेना पर्वतमधिवसति ॥ साधनव्यभिचारः, पुरुषव्यभिचारः—एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति ॥ कालव्यभिचारः" इतने लेखके स्थानमें "कारकव्यभिचारः- सेना पर्वतमधिवसति" इस इतने लेखके स्थानको परिवर्तन करते हुये ऐसा पाठ होना चाहिये "साधन व्यभिचारः पुरुषव्यभिचार-एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति ॥ कारकव्यभिचारः- सेना पर्वतमधिवसति ॥ कालव्यभिचारः इत्यादि" क्योंकि सर्वार्थसिद्धिमें "लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचार निवृत्तिपरः" ऐसी परिभाषा 'शब्दनय' की दी है। इसके 'आदि' शब्दमें कारकव्यभिचार कालव्यभिचार और उपग्रह व्यभिचार गर्भित हैं ॥

(२)एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति(१) ॥

एहि T मन्ये T रथेन ३ यास्यसि T = (तू) आउ, (मैं) मानता हूं वा समझता हूं, (तू) रथ (चढ़) करि जायगा, (सो)
न*हि * यास्यसि T यातः १ ते ६ पिता १ इति = (तू) नहीं जायगा, इस प्रकार (=इति) तेरा पिता (चला) गया ॥

(सभ्य शब्दों में उक्त वाक्य का अनुवाद ऐसे होगा कि) तुम आओ मैं मानता हूं वा समझता हूं तुम रथ चढ़ करि जावोगे सो नही जावोगे, इस प्रकार (तो) तुम्हारे पिता चले गये ॥ उपर्युक्त संस्कृतवाक्य में और तदानुसार शब्दार्थ हिंदी अनुवाद में भी 'एमि' उत्तम पुरुष एक वचन के स्थान में "एहि" मध्यम पुरुष एकवचन लाया गया है। "मन्यसे" मध्यम पुरुष एक वचन के स्थान में "मन्ये" उत्तम पुरुष एकवचन लाया गया है और "यास्यामि" उत्तम पुरुष एकवचन के स्थान में "यास्यसि" मध्यम पुरुष एकवचन लाया गया है ॥ (मैं) के स्थान मे "तू" और "तू" के स्थान में "मैं" फिर 'मैं' के स्थान में 'तू' लाया गया है हिन्दी अनुवाद में इन तीनों को मिलाके ऐसे साधन वा पुरुष व्यभिचार हुआ।

(१) इस वाक्य का पाठ सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियों मे, तत्वार्थराजवार्तिक तथा राजवार्तिक दोनों अनुवादों में एकला है ॥ श्लोकवार्तिक में एक 'न' अधिक है और 'पितेति' वाक्य की संधि नहीं की 'पिता इति' ऐसे रूप में है अर्थात् "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि न यातस्ते पिता इति" ऐसा पाठ है ॥ पं० जयचन्द जी की वचनिकामें "न" अधिक है और 'इति' नहीं है, अर्थात् "एहि मन्ये रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि, न यातस्ते पिता" है ॥

(२) "एहि" अदादि द्वितीय गण के इ वा ई गमन अर्थवाली धातु से लोट लकार वा आज्ञाद्योतक क्रिया के मध्यम पुरुषका एकवचन रूप है इसका अर्थ "एहि कहिये तू आइ" (=तू आउ) पन्ना० दूनीवाले पृष्ठ २६४ 'एहि त्वमागच्छ" (=तू आउ) सर्वार्थ प्र० संस्करण पृ० १३८ टिप्पणी, द्वितीय आवृत्ति पृ० ८० टिप्पणी ॥ "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता। अर्थात् जाओ मैं ऐसा समझता हूं कि तुम रथसे जाओगे परन्तु अब न जाओगे तुम्हारा पिता चलागया। इस वाक्य के शब्दोंका अर्थ तो यह होना है। पं०गजाधरलालजी अनुवादित तत्वार्थराजवार्तिक पृ० ४७८ ॥अब हमको यह बात निश्चय करनाहै कि "एहि"वाक्य का अर्थ कौनसा ठीक है अर्थात् 'तू आउ' अथवा तू 'जाओ'॥

( ) इ भ्वादि प्रथम गण परस्मैपद और आत्मने पद का धातु 'जाना' अर्थ में आता है ॥ इ की गुणसंज्ञा ए है अ विकरण जोडकर = अय् + अ बनता है पश्चात् ति-ते अन्य पुरुष, एकवचन, वर्तमान कालके परस्मैपद वा आत्मनेपदका प्रत्यय क्रमसे लगाकर अयति, अयते = जाताहै बने।

( ) इ और ई भ्वादि प्रथम, अदादि द्वितीय, दिवादि चतुर्थ गणों में भिन्न भिन्न अर्थ लिये हुये आते हैं उन सर्व को छोड कर यहां पर इ-ई अदादिगण के जाना वा गमन अर्थ में आये है (वैयकोश १५,१७ पृ०)अङ्ग के अन्त का स्वर और अङ्ग के उपांतक ह्रस्व स्वरके गितसङ्गक्

उक्त शब्दनय की परिभाषा के क्रमानुकूल प्रथम लिंगव्यभिचार को उदाहरण सहित कहा, पश्चात् संख्याव्यभिचार को दृष्टान्त सहित कहा तत्पश्चात् साधनव्यभिचार क्रमानुकूल अवश्य ही कहना चाहिये। यह बात कितनी क्रम विरुद्ध है कि लिंगव्यभिचार और संख्याव्यभिचार को कहकर और साधनव्यभिचार को छोड़ कर "आदि" शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारोंमेंसे कारकव्यभिचार को ग्रहण करना, पश्चात् "आदि" शब्द में अन्तर्गत कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को भी छोड़ कर फिर साधनव्यभिचार का कथन आरम्भ कर देना। "आदि" शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारों को स्पष्ट कहे हुये व्यभिचारों से पीछे ही कहना पड़ता है क्योंकि संभव है कि आदि शब्द में कारक व्यभिचार कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार के अतिरिक्त अन्य अन्य व्यभिचार भी संमिलित हों जैसा कि तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७, ६८ में "आदि" शब्द करि कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को लेते हुए "एवमादयः व्यभिचारा अयुक्ताः" (=ऐसे काल उपग्रह आदिक व्यभिचार अयुक्त हैं) कथन किया है। ( ) उपर्युक्त वार्तिक के पृष्ठ ६७, ६८ में लिंगसंख्या साधनादि" वाक्य के पीछे क्रमसे लिंगव्यभिचार, संख्याव्यभिचार, साधनव्यभिचार का कथन दृष्टान्तों सहित किया है और "आदि" शब्द में कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को उदाहरणों सहित निर्देश कर प्रकट किया है कि ऐसे 'आदि' शब्द में और और व्यभिचार भी हैं ये सर्व अयुक्त हैं। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ट २७२, २७३ में "कालकारक लिंगसंख्या-साधनोपग्रहभेदाद्भिन्नमर्थं शपतीति शब्दो नयः" यह वाक्य देकर इसही क्रम से शब्द नय की अपेक्षा से इन सबका कथन उदाहरणों और तर्क वितर्क सहित दिया है। यही क्रम तत्त्वार्थराजवार्तिक के दोनों अनुवादकों ने ग्रहण किया है ॥ पं० गजाधरजी ने २७२, २७३ उक्त पृष्ठों का अनुवाद दिया है उसमें भी यही क्रम रक्खा है (देखो पृष्ट ४८३ से ४८८ तक) ॥ पं० जयचन्द जी ने वचनिका पृष्ट २०२ से २०५ तक में लिंगव्यभिचार, संख्याव्यभिचार, "साधनव्यभिचार ताकूं पुरुष व्यभिचार भी कहिये "कालव्यभिचार, उपग्रहव्यभिचार कारक व्यभिचार इस क्रम से उक्त व्यभिचार देकर उनकी व्याख्या उदाहरणों सहित अनुक्रम से की है ॥ पं० सदासुख जी ने अर्थ प्रकाशिका पृष्ट ८४, ८५ में पं० जयचन्द जी के सदृश उक्त व्यभिचारों का उदाहरण सहित उल्लेख किया है परन्तु उनने कारकव्यभिचारका कथन छोड़दिया है। पृष्ट ४८० से पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर लिंग संख्या के व्यभिचारों के पीछे 'साधनव्यभिचार याकूं पुरुषव्यभिचार भी कहिये इसका कथन करते हैं फिर कालव्यभिचार इत्यादिका। हमने पाठ तो सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शुद्ध कर दिया है परन्तु कारकव्यभिचार को संख्याव्यभिचार और साधनव्यभिचार के (=पुरुष व्यभिचार के) मध्य में ही रक्खा है क्योंकि हमारे निकट कोई ऐसी प्राचीन प्रति नहीं है जिसके आधार पर हम 'कारकव्यभिचार' को 'साधन व्यभिचार (=पुरुष व्यभिचार) के पश्चात् रक्खें ॥ विचार में आया वही लिखा आगे पाठक महोदय भूल चूक सम्हार लेवें ॥

चला गया है ॥ श्रीयुत श्रीश्चन्द्र अनुवादित अष्टाध्यायी पृष्ठ २११ देखो ॥ "एहि मन्ये (१) रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति" ॥ यह संस्कृत वाक्य हंसी में कहा गया है ॥ वह व्याकरण और व्यवहार नय दोनों के अनुकूल शुद्ध है और लोक व्यवहार में ऐसा प्रयोग होता है और वह ठीक समझा जाता है परन्तु शब्द नय की प्रधानता से उक्त संस्कृत वाक्य का प्रयोग ठीक नहीं है, अयुक्त है दूषित है व्यवहारनय और व्याकरण से वह भले ही ठीक हो। यहां पर तो शब्द नय का प्रकरण है इस से हम उसको दूषित मानते हैं।

---

(१) हमको इस टिप्पणी में इस बात को सिद्ध करना है कि पाणिनीयकृत अष्टाध्यायी और जैनेन्द्र व्याकरण के भी अनुसार और व्यवहार नय से भी "एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति" यह वाक्य ठीक है और यदि शब्द नय के अनुकूल "मन्ये" उत्तम पुरुष के स्थान में 'मन्यसे मध्यम पुरुष कर दिया जावै और 'यास्यसि' मध्यम पुरुष के स्थान में 'यास्यामि' उत्तम पुरुष करदिया जावै तो उक्त वाक्य का सीधा सादा साधारण अर्थ होजावैगा और उपहास वा परिहास का प्रसंग जाता रहैगा. परन्तु शब्द नय से जिसको हम यहां पर प्रधान मानते हैं उक्त वाक्य ठीक नहीं है व्याकरण और व्यवहार नय कुछ भी सिद्ध क्यों न करता हो॥ प्रथम हम अष्टाध्यायी के सूत्र का उल्लेख करते है। "प्रहासे च मन्योपपदे मन्यते रुत्तमः एकवच्च" १।४।१०६ ॥ =प्रहासे ?। च॥मन्य-उपपदे ?॥ धातोः ?। (सूत्र ८० से लिया है) मध्यमः ?। (१०५ वां सूत्र से लिया है) (मन्यति की) मन्यतेः ?। उत्तमः ?।एकवत्॥ च॥ ॥

प्रहासे ?। च * = और (=च) प्रहास वा हंसी (अर्थ) में अर्थात् जब किसी क्रिया के सम्बन्ध में किसी से प्रहास करने का अभिप्राय हो।

मन्योपपदे ?। धातो ?। मध्यम ?। = मन्य-उपपद (मन्य धातु जिसके साथ हो ऐसे) धातु से (= धातोः = ऐसी धातु के पीछे) मध्यम पुरुष हो अर्थात् जिस धातु के साथ में मन्य (धातु) उपपद रूप में आई हो तो वह प्रकृतिभूत वा विषयभूत धातु अथवा वह क्रियाद्योतक धातु मध्यम पुरुष में लाई जाती है।

मन्यतेः ? उत्तमः ? = और मन्य धातु से (=मन्यतेः यह मन्यति की पंचमी अपादान विभक्ति एकवचन है) उत्तम पुरुष हो।

एकवत्* च* = वह एकवचन भी (=च)हो ॥ सारांश यह है कि जब किसी प्राणी से किसी क्रिया जैसे खाना,जाना चले जानाइत्यादि के सम्बन्धमें हंसी करना हो और मन्य धातु उक्त विषयभूत क्रियाके पास आवै, वा पहिले आवै अथवा प्रथम बोला जाय तो इस क्रिया के पीछे मध्यम पुरुष का प्रत्यय लाया जायगा, और उक्तमन्य

हिंदी अनुवाद में यदि उक्त पुरुष दूषण हम दूर करदें तो भी हंसीका प्रसंग बना रहैगा जैसे मैं जाताहूं तू समझता है "मैंरथ चढ़ करि जाऊंगा" तू रथ चढ़ करि नहीं जावेगा, तेरा बाप (दादा भी कभी) ऐसे गया है? भावार्थ जो महत्व का कार्य तेरे बाप दादा से नहीं हुआ है तुझ से कैसे हो सकता है कदापि नहीं हो सक्ता है ॥ परन्तु संस्कृत में यदि इस शब्द नयके अनुकूल पुरुष दूषण दूर कर के "एमि मन्यसे रथेन यास्यामि नहि यास्यसि यातस्ते पितेति" करदें तो प्रहास जाता रहेगा और सीधा साधारण संस्कृत वाक्य का यह अर्थ हो जावेगा ॥ जैसे किसी बहुत बूढ़ेमनुष्य कोकोई बच्चा मिला और दोनों को किसी बरात में जाना है तो उक्त वृद्ध पुरुष कहता है। (बच्चे तू मेरे साथ चलता है तो चल) 'मैं (तो) जाता हूं तू समझता है 'मैं रथ चढ़ करि जाऊंगा' (सो अब) तू (रथ चढ़ करि) नहीं जावेगा। (क्योंकि तू तो अभी ग्राम से आया है, घर भी नहीं पहुंचा है इससे तुझको जानकारी नहीं है कि जो रथ वस्तुतः तेरे घरमें था उस पर तो) तेरा पिता (चढ़ कर बरात को)

(मि-सि ति। अम्-त्-तु। आनि-आव-आम-तु परस्मैपदी और ऐ-आवहै-आम है। आत्मनेपदी) प्रत्यय के पहिले गुण संज्ञक आदेश हो जाता है परन्तु और ङित् संज्ञक प्रत्यय वस्-थस्-तस्......हि-तम्-ताम्-त-अन्तु इत्यादि के पहिले गुण संज्ञा नहीं होती (धातुचन्द्रिका पृष्ठ७२)इसलिये इ—ई धातुओं का मि,पित् संज्ञक प्रत्यय के पहिले गुण संज्ञा होकर ए—ए ऐसा रूप बना। अदादि द्वितीय गण के धातु के साथ कोई विकरण नहीं लगता है इसलिये पुरुषगत प्रत्यय धातुओं के साथ तत्क्षण लगाये जाते हैं॥ एमि—इ धातु का और एमि (हो!) ई धातु का उत्तम पुरुष एक वचन, परस्मैपद, वर्तमान काल का क्रिया का रूप हुआ, जिस 'एमि' का अर्थ है (मैं) जाता हूं जोकि जब हम एहि के स्थान में एमि करेंगे तब यह अर्थ काम देगा ॥ हि प्रत्यय ङित् संज्ञक है और वह मध्यम पुरुष एक वचन परस्मैपद, लोट या आज्ञा द्योतक क्रिया का है इसके पहिले अङ्ग के अंत के स्वर और अङ्ग के उपान्तक ह्रस्व स्वर का गुण संज्ञक आदेश नहीं होता है इसलिये इ+हि, ई+हि=इहि=तू आउ, ई+हि=तू आउ रूप बने और अर्थ हुआ ॥ (देखो धातु चन्द्रिका पृष्ठ ७६) ॥ अब प्रश्न यह है कि इन इहि-ईहि रूपों का एहि कैसे बना और क्या अर्थ होगा ॥ आङ् उपसर्ग के कई अर्थ होते हुये जब आङ् (=आ) उन क्रियाओं के पहिले आता है जो हलन-चलन-ग्रहण करने इत्यादि अर्थों की द्योतक होती हैं तो उनका अर्थ विपरीत हो जाता है जैसे गम्=जाना, आगम्=आना ॥ इसी प्रकार आ+इ, आ+ई का आद्गुणः सू० (६-१-८७) से ए-ए रूप बने क्योंकि इ-ई की गुण संज्ञा ए है इसमें उपर्युक्त ही प्रत्यय लगाने से एहि-एहि रूप बने। इसलिये 'तू आउ' यह अर्थ हुआ। इससे हमने अनुवाद में तू जाओ अर्थ न लिखकर एहि का अर्थ तू आउ अथवा तुम आओ ऐसा किया है ॥

कालव्यभिचारः—विश्वदृश्वाऽस्य पुत्रो जनिता । भाविकृत्यमासीदिति ॥

कालव्यभिचारः १। विश्वदृश्वा १।	=कालव्यभिचार (जैसे) समस्त लोक को जिसने देखलिया है वा जान लिया है ऐसा
पुत्रः १। अस्य ६। जनिता	=पुत्र इसके उत्पन्न होगा (=जनिता) अर्थात् यहां समस्त ब्रह्मांडका देख लैना भविष्यत् कालका कार्य है उसका भूतकालमें होना मान लिया गया है अतः यहां भविष्यत्काल में होनेवाले कार्यके स्थानमें भूतकालमें हुआ कार्य कहदैना कालव्यभिचार है ॥
भावि-कृत्यम् १।१। आसीत् इति	=होनहार (=भाविन्) कार्य (कृत्यम्) हुआ ऐसें यहां होनहार कार्य इतनावाक्य आगामी कालका वाचक है और आसीत् (=हुआ) यह वाक्य अतीतकालका वाचक है इसलिये यहां अनागत कालमें वा आगे होनेवाले कालमें भूतकालकी (प्रकाशक) विभक्ति वा क्रियाका प्रत्यय लगाया है (=भविष्यत्कालेऽतीतकालविभक्तिः) ॥

क्योंकि संसारमें हम उक्त प्रहासका वाक्यों द्वारा प्रचार वा व्यवहार देखते हैं इसलिये व्यवहारनयसे भी 'एहि मन्ये रथेन' इत्यादि वाक्य ठीक है। अब हम शब्दनयकी प्रधानता मानकर और व्यवहारको गौण करके यह दिखाना चाहते हैं कि यदि युष्मद् मध्यम पुरुषके स्थानमें अस्मद् उत्तम पुरुष करदिया जावै और अस्मद् उत्तम पुरुषके स्थानमें युष्मद् मध्यम पुरुष करदिया जावे तो वह शब्दनयसे ठीक न होगा क्योंकि साधनका भेद रहते भी पदार्थोंको एक माना जावेगा तो 'अहं पचामि त्वं पचसि' (मैं रांधता हूं, तू रांधता है) यहांपर भी युष्मद् अस्मद् रूप साधनोंका भेद है इसलिये यहांपर भी एक मानना पड़ैगा फिर भिन्न भिन्न रूपसे जो दो प्रयोग होते हैं वे न हो सकेंगे अतः साधन व्यभिचारके दूर करनेके लिये जो वैयाकरणोंने समाधान दिया है वह अयुक्त है॥ (देखो तत्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७३)

(१) इस वाक्यमें विश्वदृश्वा जो पुत्रका विशेषण है इसके द्वारा भूतकाल प्रगट किया है और द्वितीय वाक्यमें आसीत्, अनद्यतनभूत क्रिया द्वारा अतीतकाल प्रगट किया है॥ दृश्वा शब्द दृश्वन्‌का प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग है॥

(२)जनिता—जन्—उत्पन्न होना, दिवादिगण, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट् धातु है, जन+इ और ता लुट् भविष्यत् काल प्रथम पुरुष, एक वचन आत्मनेपदी क्रियाका प्रत्यय लगानेसे 'जनिता' (=उत्पन्न होगा) यह बना॥ (३) आसीत्—अस् अदादि द्वितीयगण, अकर्मक, परस्मैपदी, सेट् धातु 'होना' अर्थ में यहां आया है अनद्यतनभूत कालकी क्रियामें 'अ' जोड़ा 'ई' आगम आया, फिर 'त्' प्रथम पुरुष, एक वचन, उक्त भूतकालका परस्मैपद प्रत्यय लगाने से (अ+अस्+ई+त्)=आसीत् (=हुआ) बना॥

धातु के पश्चात् प्रथम पुरुष का प्रत्यय लाया जायगा, वह प्रत्यय एक वचन भी (=च) होगा ॥ जैसेः— "एवं मन्ये ओदनं भोक्ष्यसे इति; नहि भोक्ष्यसे; भुक्तः सोऽतिथिभिः" इस वाक्यमें 'भुज्' धातु है जिसका अर्थ 'भक्षण करना' है इस 'खाना' क्रिया के संबन्ध में किसी प्राणीसे परिहास या हंसी करना है और उक्त वाक्य में मन्य (मन्=समझना, दिवादिगणका य विकरण है) धातु विषयभूत या प्रकरणमें लाई गई 'भुज्' धातुसे पहिले आई है, प्रथम बोली गई है, इसलिये इस 'भुज्' धातु के पश्चात् स्यसे (=भुज्+स्यसे=भोक्+स्यसे=भोक्+ष्यसे=भोक्ष्यसे) मध्यम पुरुषका प्रत्यय लाया गया है और 'मन्य' धातु जो वाक्यका उपपद (=अप्रधान, गौण, अनुगामी) है उसके पीछे इ (=मन्+य, विकरण+इ=मन्ये) उत्तम पुरुष एक वचन प्रत्यय लाया गया है। बस यही इस सूत्रका ज्योंका त्यों अर्थ और आशय है ॥ अब इसमें प्रहास यह हुआ मान लीजिये कि एक वृद्ध पुरुष के यहां भात अबतक भी नहीं बना है और एक न्यून वय.स्क को भात खाने की बहुतही इच्छा है परस्पर उनमें उपहास भी होता रहता है तो वह बुड्ढा पुरुष हंसी में कहता है तू ऐसा समझता है "मैं भात खाऊंगा" तू नहीं खायगा, वह भात तो महमानों द्वारा खा लिया गया" यहां भात खीर इत्यादि कुछ भी विद्यमान नहीं है न था केवल प्रहास और उपहास ही है ॥ ध्यान रहे कि यह हंसीरूप अर्थ जब तक ही संस्कृत वाक्य का रहेगा तब तक हम शब्दनयके प्रतिकूल 'मन्ये' धातुमें मध्यम पुरुषके स्थानमें जो उत्तम पुरुष है और भोक्ष्यसे उत्तम पुरुषके स्थान में मध्यम पुरुष है बना रहने दें यदि शब्दनयके अनुसार हम उक्त उदाहरण को ऐसा करदे एवं मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये इति; नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः अर्थात् मन्ये उत्तम पुरुषके स्थान में मन्यसे मध्यम पुरुष करदें और भोक्ष्यसे मध्यम पुरुष के स्थान मे भोक्ष्ये उत्तम पुरुष करदें तो हंसीका विषय जाता रहेगा और उक्त वाक्यका सीधा साधा साधारण अर्थ होजावेगा वह अर्थ यह होजावेगा कि उक्त उदाहरणमें जब उस पुरुषके यहां भात यथार्थमें हुआ था और महमान उस भातको सबका सब वास्तविकमें खागये तो यह सच्ची बात बिना किसी हंसीके कह सका है कि ऐसा तू मानता है 'मैं भात खाऊंगा; नहीं खायगा, वह (भात तो) महमान खागये ॥ उक्त सूत्र अन्य प्रकारसे ऐसा भी है "प्रहासे मन्य वाचे युष्मन्मन्यतेरस्मदेकवच्च" अर्थात् प्रहास (अर्थ) में मन्यवाच (मन्य धातु जिसके वाचन या पठनमें हो ऐसे) धातुसे युष्मद् (मध्यम पुरुष) हो और मन्य धातुसे अस्मद् (उत्तम पुरुष) हो और वह (अस्मद्) एक वचन भी हो ॥

वार्तिक के पृष्ठ २७२, २७३ से सिद्ध है जिसका शब्दशः अनुवाद हम टिप्पणी में देते हैं

आसीत Tरावणः ¦राजा ¦शंखचक्रवर्ती ¦भाविष्यतिT इति*
शब्दयोः ¦ भिन्नविषयत्वात् ¦॥ एकार्थता ¦॥
न* इति* चेत्*

तत् ¦॥ एव*
विश्वदृश्वा ¦॥ जनिता T इति*
अनयोः ¦
अपि* मा* भूत् T
विश्वं ¦॥ दृष्टवान् ¦।
इति* नहि*
विश्वदृशित्व ¦ — इति* शब्दस्य ¦।यः ¦।अर्थः ¦।अतीतकालस्य ¦।
जनिता ¦॥ इति* शब्दस्य ¦। अनागतकालः ¦।
पुत्रस्य ¦। भाविनः ¦। अतीतत्व-विरोधात् ¦।
अतीतकालस्य ¦। अपि* अनागतत्व-आध्यरोपात् ¦।

एकार्थता ¦॥ अभिप्रेता ¦॥ इति* चेत्*
तर्हि* न* परमार्थतः* कालभेदे ¦। अपि*
अभिन्न-अर्थ-व्यवस्था ¦॥

=(प्रश्न) रावण राजा हो चुका शंखचक्रवर्ती भविष्यत् कालमें होगा ऐसे
=दोनों (रावण और शंख) शब्दोंके भिन्न भिन्न विषय होने से एक पदार्थपनासे
=रहित (=न) हैं ऐसा ही (=इति) यदि (=चेत्) माने तो अर्थात् रावण और शंखको
भिन्न २ मानना चाहिये एक मानना बाधित है ॥
=(उत्तर) तैसेही (=तत् एव)
=विश्वदृश्वा (जो होचुका) और जनिता (जो आगे होगा) ऐसे
=दोनों (शब्द जो एक दूसरे से भिन्न भिन्न हैं एकार्थतारूप - एक अभिप्राय वाले)
=भी (=अपि) नहीं (=मा) हो (सक) ते (=भूत्)
=(विश्वदृश्वा वाक्यका अर्थ) विश्वको आगामी कालमे देखने वाला (=विश्वं दृष्टवान्)
=ऐसा (अर्थ) कदापि नहीं होसक्ता है(=नहि)वा किसी प्रकारसे नहीं होसक्ता है(=नहि)॥
=विश्वदशित्व ऐसे शब्दका जो अर्थ है सो अतीतकालका वाचक है
=जनिता ऐसे शब्दका (अर्थ) अनागतकाल है (दोनों शब्दोंका भिन्न भिन्न अर्थ है)
=अतः भविष्यत्कालका होनेवाला (=भाविनः) पुत्र अतीतकालमें हुआ (यह) विरोध है
=(प्रश्न) भूतकालके भी भविष्यत्कालपना आरोप करनेसे
(भविष्यत्कालमें होने वाला पुत्ररूप कार्य अतीतकालमें हुआ दोनोंके)
=एक पदार्थपना है यदि (=चेत्) ऐसा मान लिया जाय (=अभिप्रेता) तो । (उत्तर)
=उस (उपचार की) अवस्था में (=तर्हि) कालभेद रहने पर भी यथार्थतः (=परमार्थतः)
=एक पदार्थरूप (=अभिन्नार्थ) वा अभेदरूप व्यवस्था नहीं (मानी जा सकती) अर्थात
उपचारसे कालका अभेद मानकर भविष्यत् कालके कार्य को भूत कालका कार्य मान
भी लिया जाय तब भी,वह पदार्थ रूपसे एक नहीं माना जासका औपचारिक ही रहेगा॥

काल व्यभिचारके दोनों उदाहरण व्याकरण और व्यवहारनय से ठीकहैं परंतु शब्दनयसे दूषित हैं जसाकि तत्त्वार्थ श्लोक

ते ।। हि• वैयाकरणाः व्यवहारनय-अनुरोधेन ।।।। =ये व्याकरणवाले व्यवहारनयके अनुसरणसे '(पाणिनीय अष्टाध्यायी ३-४-१)
'धातुसंबन्धे ।। प्रत्ययाः ।।' इति सूत्रम् ।।।। आरभ्य÷ =ऐसे सूत्रको कि "धात्वर्थ संबन्ध में अयथाकालोक्त भी प्रत्यय हों" आरम्भकरि अर्थात् धात्वर्थ संबन्धी प्रत्यय जिस कालमें कहे गये हैं उनसे भिन्न कालमें भी होते हैं ऐसे अर्थवाले सूत्रका निर्माण कर
विश्वदृश्वा अस्य ।। पुत्रः ।। जनिता ।। भाविकृत्यम् ।।।। आसीत् ।। =विश्वको जिसने देख लिया है ऐसा इसके पुत्र उत्पन्न होगा, होनहार कार्य हुआ
इति अत्र कालभेदे ।। अपि एकपदार्थम् ।। आदृताः ।।। यो ।। विश्वं ।। =इस प्रकार यहां काल भेद (होने) पर भी एक पदार्थ को मानतेहैं । जो विश्व को
द्रक्ष्यति ।। सः ।। अपि पुत्रः ।। जनिता ।। इति भविष्यत्कालेन =देखेगा सो ही (=अपि) पुत्र उत्पन्न होगा ऐसा अनागत कालकरि
अतीतकालस्य ।। अभेदः ।। अभिमतः ।। तथा• =अतीत कालका अभेद माना गया है और (=तथा)
व्यवहार-दर्शनात् ।।।। इति• =लोक व्यवहारमें ऐसा देखना होता है अर्थात् संसारमें ऐसा देखा जाता है भावार्थ धात्वर्थ संबन्धी प्रत्यय जिस कालमें कहे गये हैं उनसे भिन्न कालमें भी होते हैं ऐसे अर्थवाले सूत्रका निर्माण कर 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता, भाविकृत्यमासीत्' यहां पर जो भविष्यत् कालके कार्य को भूतकालमें मानने से कालका भेद रहने पर भी भविष्यत् और अतीतकाल को वैयाकरण एक मानते है और दोनों कालोंके अभेद मानने में यह हेतु देते हैं कि संसार में ऐसा व्यवहार होता है । (परंतु)
तत् ।।।। न• श्रेयस् ।।।। (तन्न श्रेयः) =यह (व्यवहाराधीन भविष्यत् और अतीतकालोंका अभेदरूप सिद्धांत) अच्छा नहीं है
(पाठान्तरम्-तत्र• यः ।।) =[अन्य पाठ-तहां जो (व्यवहाराधीन भविष्यत् और अतीतकालोंका अभेदरूप सिद्धांतहै सो)]
परीक्षायां ।।। मूलक्षतेः ।।। कालभेदे ।। अपि अर्थस्य ।। =परीक्षा (करने)से जड़से जाता रहता है । क्योंकि कालभेद रहने पर भी (भिन्न २) पदार्थका
अभेदे ।। अति प्रसंगात् ।। =एक माननेमें नियमके अतिविरुद्ध आजाता है (=अतिप्रसंगात्-(देखो पंचकोश पृ० १०) कि
रावणशंखचक्रवर्तिनोः ।। अपि• =रावण और शंखचक्रवर्तीके भी (जो यथा संख्य और अनुक्रम से)
अतीत-अनागतकालयोः ।। एकत्व-आपत्तेः ।।। =अतीत और भविष्यत् कालमें (हुआ और होने वाला है दोनोंमें) एकता आपड़ती है अर्थात् दोनोंमें एकता हुई जाती है अथवा दोनों एक हुए जाते है

धातुभ्वादि प्रथमगण (यहां पर) परस्मैपदका है । इस धातुका रूप बहुधा प्रयोगोंमें प्रथमपुरुष, एकवचन, परस्मैपद, वर्तमानकालकी क्रिया का 'ति' प्रत्यय जोड़कर 'तिष्ठति' बन जाता है ॥

अष्टाध्यायी ३॥ १-३-२२ इति* =अष्टाध्यायी के अध्याय प्रथम, पादतीन, सूत्र बाईसवें से हो ऐसे (यह)

व्यभिचार-सूत्रम् ३॥ =व्यभिचाररूप सूत्र है अर्थात् एक नियत नियम को उलटने वाला सूत्र है भावार्थ 'स्था' धातु से नियमकरि परस्मैपदका प्रयोग होता है उस नियम को इस सूत्र ने उक्त धातु के प्रथम सम्—अव—प्र—वि उपसर्ग लाकर पलट दिया और आत्मने पद का प्रयोग नियुक्त किया ॥ (इसही प्रकार)

सम्—वि—अव—प्रात् ५ स्थः ६ (आत्मने पदम्) =सम—वि—अव प्र पूर्वक 'स्था' धातुके परे आत्मने पद

जैनेन्द्र व्याकरणम् १—२—२१ =जैनेन्द्र व्याकरण के प्रथम अध्याय, द्वितीय पाद, इक्कीसवाँ सूत्र से हो

इति व्यभिचार-सूत्रम् ॥ =ऐसे यह (भी) नियत नियम को पलटने वाला (=व्यभिचाररूप) सूत्र है

(१) "सतिष्ठते प्रतिष्ठते, विरमत्युपरमत्युपग्रह व्यभिचारः" (राजवार्तिक पृष्ठ ६८)=उपग्रह व्यभिचारः संतिष्ठते प्रतिष्ठते विरमति उपरमति बस यही पाठ सर्वार्थसिद्धिमें हैं केवल अन्तमें 'इति' अधिक है सो पाद पूरण के लिये है इसका कोई अर्थ विशेष रूप से नहीं है इसका अर्थ (पं० पन्नालाल दूनी के अनुवाद पृष्ठ २६४ में ऐसे हैं कि 'अर संतिष्ठते की स्थान में प्रतिष्ठते कहै तथा विरमति के स्थान में उपरमति कहै सो उपग्रह कहिये उपसर्ग व्यभिचार है ॥ इस अनुवाद से उनका यह अभिप्राय जान पड़ता है कि उपसर्ग जो क्रिया के साथ बोलने में कोई मनुष्य जोड़ता है वा लगाता है वो ठीक नहीं लगाता है अशुद्ध उपसर्ग लाता है अर्थात् जहां सम् उपसर्ग लाना चाहिये वहां प्र उपसर्ग लगाता है और रम् धातु के साथ भी जहां वि उपसर्ग लाना चाहिये वहां उप उपसर्ग लाता है ऐसे एक उपसर्ग के स्थान में दूसरा भिन्नार्थक उपसर्ग लाने के कारण उपसर्ग व्यभिचार हुआ वा उपसर्ग सम्बन्धीय दूषण हुआ, कोई किसी प्रकार का उल्लेख उक्त अनुवादक ने परस्मैपद और आत्मनेपद के सम्बन्ध में नहीं किया । आगे पाठकगण विचारलैं ॥

इसी प्रकार 'संतिष्ठते अवतिष्ठते इति' (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ २७३) वाक्य का अनुवाद पं० गजाधर जी ने पृष्ठ ४८७ में यह किया है कि "संतिष्ठते की जगह पर अवतिष्ठते कहना उपग्रह व्यभिचार है ॥ 'संतिष्ठेतावतिष्ठेतेत्याद्युपग्रहभेदने' तत्त्वार्थश्लोक वार्तिक २७२

उपग्रहव्यभिचारः-सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते

उपग्रह व्यभिचारः १[1]	= उपग्रह दूषण अथवा उपसर्ग व्यभिचारः-(जैसे)
संतिष्ठते T	= संतिष्ठते (= वह अपनी प्रतिज्ञानुसार चलता है वा प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहता है)
प्रतिष्ठते T	= प्रतिष्ठते (= वह चल देता है अथवा वह गमन करता है अर्थात् 'स्था'

(१) हमको इस टिप्पणी में यह दिखलाना है कि यहाँ पर 'उपग्रह' शब्द का अर्थ 'उपसर्ग' कैसे हुआ। उपग्रह शब्द के सात अर्थ हैं (क) कारागार, कारागृह, बन्धनागार, बन्दीगृह, बन्धनालय, (ख) बन्दीगृह में डालना (ग) बन्दीगृह में रहने वाला, बन्धुआ (घ) दया (ङ) धूमकेतुग्रह, राहुकेतुग्रह, (देखो पद्मचन्द्रकोश ७६, वैद्यकोश १३६ पृ०) (च) सहायता (छ) किसी वस्तु को किसी वस्तुके साथ जोड़ना या लगाना (वैद्यकोश १३६ पृ०)उपग्रह शब्द इस अन्तके अर्थमें मेरी समझमें लिया गया है अर्थात् यहाँ एक वस्तु जो उपसर्ग है उसको दूसरी वस्तु जो'स्था' धातु है उसके साथ जोड़ना अथवा लगाना। क्योंकि निपातोंमेंसे प्र—परा—अप—सम्—अव—अनु—निस्—निर्—दुस्—दुर्—वि—आङ् नि—अधि—अपि—अति—सु—उत्—अभि—प्रति—परि—उप बाईस निपात उपसर्ग जब ही कहलाते हैं जब किसी क्रिया के साथ आवें नहीं तो इन निपातों को उपसर्ग कदापि नहीं कह सकते इसलिये इस समानता के हेतु से "उपग्रह" का अर्थ 'उपसर्ग' मान लिया है या ले लिया है, यही अर्थ निम्न उल्लेखित वाक्यों से निकला है, "सो उपग्रह कहिये उपसर्ग (व्यभिचार) है "पं० पन्नालाल दूनी वाले राजवार्तिक पृ० २१५॥ ऐसे उपसर्ग के बलते आत्मनेपदी धातु का परस्मैपद वचन भया। बहुरि परस्मैपदीका आत्मनेपदी भया। ऐसे उपग्रह व्यभिचार है" 'पं० जय०वचनि० पृष्ठ २०४ "बहुरि आत्मनेपदीकूं परस्मैपद भया ऐसे ही उपसर्ग व्यभिचारकूं व्यवहारनय न्याय मानै है तथापि शब्द नय का यही विषय है" अर्थ प्रकाशिका पृ० ८१ (भावार्थ दूसरे तीसरे वाक्य का यह है कि व्यवहार नय उपसर्ग व्यभिचार को न्याय मानती है परंतु शब्द नय उसको अन्याय ठहराता है परन्तु हमारी समझ में यह नहीं आया कि संस्थानुवादित राजवार्तिक पृष्ठ ४३१ में " उपग्रह का अर्थ परस्मैपद या आत्मने पद है "ऐसा अर्थ उपग्रह शब्द का कहाँ से लिया है और कैसे हो गया॥

(२) स्था (ष्ठा) गति निवृत्तौ इति अत्र परस्मैपदोपग्रहः। समवप्रविभ्यः स्थः अष्टाध्यायी १-३-२२। इति व्यभिचार सूत्रम्॥ संव्यप्रात् स्थः। जैनेन्द्र व्याकरणम् १ अध्यायः २ पादः २१तम सूत्रम्॥ इति व्यभिचार सूत्रम्॥

स्था २ गतिनिवृत्तौ इति अत्र परस्मैपद-उपग्रहः = स्था धातु से गमन निवृत्ति(= ठहरना) अर्थमें परस्मैपदका लगाना होता है।
सम्-अव—प्र—विभ्यः २ स्थः २ (आत्मने पदम्) = (परन्तु)—सम्—अव—प्र—वि पूर्वक 'स्था' धातु से आत्मनेपद।

एवम्प्रकारं व्यवहारनयमन्याय्यं मन्यते । अन्यार्थस्यार्थेन सम्बन्धाभावात् ।

एवम्‌प्रकारम् २/१ = इसप्रकार (शब्द नय वा शब्द नय का अनुयायी वा शब्द नयका मानने वाला,)
व्यवहार नयम् २/१ अन्यायम् २/१ मन्यते T = व्यवहारनयको अन्याय वा अनुचित वा न्यायवर्हिर्भुत मानता है
अन्य-अर्थस्य ६/१ अन्य-अर्थेन ३/१ सम्बंध-अभावात् ५/१ = क्योंकि भिन्न पदार्थ का भिन्न पदार्थ से संयोग वा मेल नहीं हो सकता है

[यह सिद्धांत सिद्धि बात है]॥ भावार्थ उक्त छहो व्यभिचार और इस प्रकार के और भी व्यभिचारों को व्यवहारनयतो ठीक समझता है उस नय की अपेक्षा से वैसे प्रयोग किये जा सकते हैं व्याकरण भी उन्हीं प्रयोगों के अनुसार सिद्धि करता है परंतु शब्द नय की प्रधानता से वे प्रयोग ठीक नहीं है शब्द नय उनको अन्याय वा अयुक्तरूप मानता है॥ क्योंकि यदि अन्य पदार्थ का अन्य पदार्थ के साथ सम्बंध हो जाय तो घट का पट हो जाय पट का गृह हो जाय वा मठ हो जाय इत्यादि।

[परस्मैपदम्] = परस्मैपद हो [८३, ८४ सूत्रों में ७८ वां सूत्र से परस्मैपदम् अनुवर्तता है]
अष्टाध्यायी प्रथम—अध्याये तृतीय पादे ८३।८४ = अष्टाध्यायी के पहिले अध्याय में तीसरे पाद में ८३ वां ८४ वां सूत्र है
इति व्यभिचार सूत्रे = ऐसे दोनों सूत्र [=सूत्रे] व्यभिचार रूप हैं [=नियत नियम के विरोधक हैं]
वि-आङः च रमः । उपात् (रमः परस्मैपदम्) = वि—आङ्—परि (=च) उप (उपसर्गों) पूर्वक रम् धातु से परस्मैपद हो
जैनेन्द्र व्याकरण प्रथमाध्याये तृतीय पादे । ९५ = जैनेन्द्रव्याकरण के पहिले अध्यायके तीसरे पाद में ९५ वां
९६ । इति व्यभिचार सूत्रेऽपि = ९६ वां (सूत्र) हैं। ऐसे दोनों सूत्र भी (=सूत्रेऽपि) व्यभिचार रूप हैं॥
देवदत्तम् उपरमति = देवदत्त को हटाता हैं अर्थात् देवदत्त को (विषयों से वा किसी ऐसी ही वस्तु से) रोकता है॥ यहां परस्मैपद क्रिया हेतु अर्थ में है। उपरमति के सदृश अर्थ देती है। यह एक प्रकार का क्रिया का उदाहरण है जिसमें हेतुद्योतक प्रत्ययणिच् (इ का अभाव सम्मिलित हो॥

(१) इस "एवम्प्रकारं व्यवहारनयम् अन्याय्यं मन्यते" वाक्य का अर्थ स्पष्ट है परन्तु हमको यह टिप्पणी इस लिये लिखनी पड़ती है कि सर्वार्थसिद्धि के द्वितीय संस्करण के एवम्प्रकारं व्यवहारनयं न्याय्यं मन्यते' पाठ पर समालोचना करें; यद्यपि प्रथमावृत्ति में 'एवम्प्रकारं व्यवहार नयमन्याय्य' मन्यते' ऐसा पाठ वर्तमान है॥ प० जयचन्दजी ने पृष्ठ २०५ में इस वाक्य की यह वचनिका की है कि "या प्रकार व्यवहार नय है ताहि अन्याय मानै हैं"=या प्रकार व्यवहारनय है (तिस (व्यवहारनय) को =ताहि) अन्याय माने है (प्रश्न) कौन अन्याय माने है? (उत्तर) शब्दनय वा शब्दनय का अनुयायी प्राणी।

विरमत्युपरमतीति ॥

'स्था धातु के ग्यारह अर्थों में से यहां हम 'तिष्ठति' के अर्थ वह ठहरता है वा वह रहता है केवल दो लेते हैं। सम् और प्र उपसर्गोंके बलसे उस 'तिष्ठति' परस्मैपदका (अष्टाध्यायी १-३-२२ वां सूत्र से) आत्मने पद होकर सम्—तिष्ठते और प्र—तिष्ठते, सन्तिष्ठते और प्रतिष्ठते दोनों रूप क्रम से बन गये। ऐसे सम् और प्र दो उपसर्गों द्वारा परस्मैपद 'स्था' धातु का आत्मने पदी होकर उक्त धातु व्यभिचरित (=नियत नियमसे भ्रष्ट) हो गया। अतः इस को उपसर्ग व्यभिचार कहते हैं। ऐसे ही

विरमति T उपरमति T इति * =वह ठहरता है (वा विश्राम करता है) ॥ वह (इंद्रियों के विषयों से) हटाता है अर्थात् रम् प्रथम गण का आत्मने पदी धातु है उसमें अ विकरण और ते आत्मनेपदी वर्तमान काल का प्रत्यय लगाने से रमते (=वह रमता है) बनता है परन्तु वि और उप लगाने से परस्मैपद हो जाता है।

संतिष्ठेत अवतिष्ठेत इत्यादि उपग्रह भेदने ॥ =संतिष्ठेत (=वचन के अनुसार चले) अवतिष्ठेत (=वह दृढ़ रहे) इत्यादिक =उपग्रह (व्यभिचार) के भेद हैं। अतः एक उपसर्ग के स्थान में दूसरा भिन्नार्थक उपसर्ग लाना भी उपसर्ग व्यभिचार है ऐसे दो अर्थ उपग्रह व्यभिचार के हुए।

(१) विरमति उपरमति के अनुवाद के सम्बन्ध में और अन्य अन्य बातों के सम्बन्ध में भी हमारी वही समालोचना है जिसको कि हमने संतिष्ठते प्रतिष्ठते के सम्बन्ध में पृष्ठ ५२६, ५३० में दी है ॥ विरमति उपरमति वाक्य श्लोक वार्तिक में हमको कहा पर नहीं मिले अतः "श्लोक वार्तिक कार भी 'प्रतिष्ठते स्थान पर 'अवतिष्ठते कहना और विरमति जगह पर उपरमति, कहना उपग्रह व्यभिचार मानते हैं" संस्था के राज० पृष्ठ ४८० की यह टिप्पणी ठीक नहीं है (देखो श्लोक वा० पृष्ठ २७३) जहां 'तथा संतिष्ठते अवतिष्ठते इति" यह उल्लेख है जिसका अनुवाद अनुवादक महाशय ने स्वयं पृष्ठ ४८७ पर "तथा संतिष्ठते की जगह पर अवतिष्ठते कहना उपग्रह व्यभिचार है" ऐसा किया है ॥

(२) रमुक्रीडायामित्यत्रात्मनेपदोपग्रहः ॥ व्याङ्परिभ्यो रमः । उपाच्च ॥ अष्टाध्यायी प्रथमाध्याये तृतीयःपादे ८३।८४ सूत्रे इति व्यभिचारसूत्रे ॥ व्याङ्श्च रमः ।१।२।६५। उपात् ।१।२।६६ जैनेन्द्र व्याकरणम् इति व्यभिचारसूत्रेऽपि ॥ देवदत्तमुपरमति ॥

रमु-क्रीडायाम् इति अत्र आत्मनेपद-उपग्रहः =रम् (भ्वादि प्रथमगण के) धातु से क्रीड़ा (अर्थ) में यहां आत्मनेपद का जोड़ना होता है

वि-आङ-परिभ्यः च उपात् रमः =(परन्तु) वि—आङ्—परि और (=च) उप (उपसर्गों) से आगे रम् धातु रहने पर

लोकसमयविरोध इति चेत्। विरुध्यताम्। तत्वमिह मीमांस्यते न भैषज्यमातुरेच्छानुवर्ति।

लोक-समय-विरोधः १।१ इति* चेत्*	=जगत वा संसार और शास्त्रमें यदि (=चेत) ऐसा है तो विरोध आवैगा? अर्थात् जो प्रयोग व्यवहारनय और व्याकरणके अनुकूल हैं परंतु शब्दनयसे वे दूषित हैं उनको यदि दोषरूप मानोगे तो ऐसा मानना संसार और शास्त्रके विरुद्ध होगा। उत्तरमें कहतेहैं कि:—
विरुध्यताम्T तत्वम् १।११ इह* मीमांस्यतेT	=विरोध किया जाउ। इहां तो=यथार्थस्वरूप (तत्त्वम्) विचारा गयाहै परीक्षा किया गयाहै
न* भैषज्यम् १।११ आतुर-इच्छा-अनुवर्ति १।११	=क्योंकि औषधि रोगी की इच्छा के अनुसार नहीं होती है

कई कोशोमें हमको 'प्रकार' 'व्यवहारनय' 'न्याय' (नकि न्याय्य जो त्रिलिंगी है) पुल्लिंग ही मिले बहुत सी टटोल की परतु नपुंसक लिंगी नहीं मिले (देखो:—प्रकारः अमर कोष वर्ग २३ श्लोक १६२; आप्ते-आङ्गल संस्कृत कोष पृष्ठ २२८, पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ २४८; वैद्यसंस्कृताङ्गल कोष ५५६; नीति=(नाय) नयः अमरकोष वर्ग २२ श्लोक ९; इसी सूत्रमें सात आठ स्थानों पर नय शब्द आया; पद्म० पृष्ठ २०८; वैद्य० पृष्ठ ३७०) उक्त वाक्यमें 'प्रकारम' व्यवहारनयम (=व्यवहारनयको) दोनों शब्द द्वितीया विभक्ति वा कर्मकारकमें है॥ मन् दिवादि चतुर्थ गणका धातु आत्मने पदी है य् इस गणका विकरण है 'ते' अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी वर्तमान क्रियाका द्योतक प्रत्यय है अत मन्यते बना अर्थ मानता है यहां पर कर्तरि प्रयोग है। बस यही तीन विशेष शब्द हैं जिससे वाक्यका अर्थ निकलता है अत शब्दशः अर्थ हुआ कि "इस प्रकार (वह) व्यवहारनयको अन्याय मानती है॥ प्रथम इसके कि हम द्वितीय आवृत्ति के पाठ पर कुछ समालोचना करें इस बातको दिखाना चाहते हैं कि सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके नीचेके चार वाक्योंके अर्थका कैसा घनिष्ट संबन्ध वा प्रसंग मिलता है "इस प्रकार (शब्दनय) व्यवहारनयको अन्याय मानता है" इसके लगता ही वाक्यमें इस प्रथम वाक्यका हेतु दिया है कि अन्य पदार्थका अन्य पदार्थकरि सबन्ध नहीं होसक्ता है॥ तीसरे वाक्य में इस हेतु पर प्रश्न करदिया कि यदि शब्दनय व्यवहारनयको अन्याय मानैगो तो लोक (व्यवहार)के विरोध और शास्त्र (=समय अर्थात व्याकरण) के विरोध होगा क्योकि उक्तलिंग, संख्या, साधन, कारक, काल और उपसर्गके संबन्धमे जो उदाहरण दिये हैं और उनको शब्दनयकी अपेक्षासे व्यभिचार माना है वे समस्त ही लोक व्यवहारकी अपेक्षासे ठीक हैं उन सबका लोकमें व्यवहार होता है प्रयोग होता है बोलचालमें आते हैं और व्याकरणके नियमोंके अनुकूल है॥ इसके उत्तरमें चौथा वाक्य दिया कि "विरुध्यताम्" लोक और शास्त्रके विरुद्ध होने दो कुछ चिंता नहीं। फिर इस कहनेका भी हेतु दिया कि इस स्थानमें तत्व (पदार्थके यथार्थ स्वरूप) का निर्णय है लोक विरुद्ध और व्याकरणशास्त्र वा अन्य शास्त्रके विरुद्ध हुआ करो क्योकि औषधि चाहे खट्टी हो-मीठी हो-कडवी हो-कषैली इत्यादि हो रोग को दूर करने वाली गुण की

अतः समान लिंग समान वचन समान साधनादि शब्दों का ही आपस में संबंध होता है। इस बातका ज्ञापक शब्दनय है

इस संबंधमें पं० जयचंद जी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ २०५, हस्तलिखित पृष्ठ ८५ का पूर्ण लेख शब्दशः ऐसे हैं "बहुरि कारकव्यभिचार 'सेनापर्वतमधिवसति' इहां सैना पर्वतके समीप वसै है ऐसा आधार है, सो सप्तमी विभक्ति चाहिये, तहां द्वितीया कही। तातैं कारकव्यभिचार भया) या प्रकार व्यवहारनय है ताहि अन्याय माने है। जातैं अन्य अर्थ का अन्य अर्थकरि संबंध होय नाहीं। जो अन्य अर्थका अन्यतै संबंध होय, तो घटका पट होय जाय पटका महल होय जाय। तातैं जैसा लिंग आदि होय तैसाही न्याय है। इहां कोई कहै। लोक विषै तथा शास्त्र विषैं विरोध आवैगा। ताकूं कहिये, विरोध आवै तौ आवौ, इहां तो यथार्थस्वरूप विचा.रये है। औषधी रोगीके इच्छा के अनुसार तौ है नां ही॥

ऊपर के लेख में वाह्यरूपसे 'ताहि' शब्द कारकव्यभिचार की ओर संकेत करने वाला मानकर कह सके हैं कि ताहि अर्थात् तिस कारक व्यभिचार को तब अर्थ हुआकि या प्रकार व्यवहारनय है तिस (कारकव्यभिचार) को अन्याय माने है" इस अर्थके समर्थनमें हमारे एक मित्र अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ८५ के इस वाक्य को कि "ऐसेही उपसर्ग व्यभिचारकूं व्यवहारनय अन्याय माने हैं" हमारे समक्ष रखते हैं; और कहते हैं कि पं० जयचंदजीने कारकव्यभिचार अंतमें कहा है और पं० सदासुखजीने 'उपसर्गव्यभिचारका वर्णन अंतमें किया है इसलिये पं० जयचंद जी ने ताहि (=तिसको) का अर्थ कारकव्यभिचार लिया है और अर्थप्रकाशिका में उपसर्गव्यभिचार लिया है इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है॥ और यह भी कहते हैं कि भाव भी ठीक है इस हेतु से कि 'कारक व्यभिचार को और उपसर्ग व्यभिचार को' अर्थात् "सेना पर्वतमधिवसति' 'सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते' विरमति उपरमति इन वाक्यों को दोषरूप कहना, व्यभिचार इनका नाम रखना व्यवहारनयके अनुकूल वा अपेक्षासे अन्याय है अयुक्त है और ऐसे प्रयोग व्यवहार में तो आते ही हैं॥

(उत्तर) अर्थप्रकाशिकाके पृष्ठ ८५ में न्याय शब्दके स्थानमें अन्याय शब्द अशुद्ध मुद्रित होगया है। सदासुखजी का शुद्ध पाठ ऐसे है कि "बहुरि आत्मने पदीकूं परस्मैपद भया ऐसेही उपसर्गव्यभिचारकूं व्यवहार नय न्याय माने है तथापि शब्दनयका यही विषय है।" इसका तात्पर्य यह है कि आत्मने पद धातु में उपसर्ग लग जाने से प्रयोगमें परस्मैपद धातु होजाती है और परस्मैपद धातुमें उपसर्ग लग जाने से आत्मने पदी (धातु) हो जाती है इसको व्याकरण, लोक प्रयोग, व्यवहारनय न्याय मानते हैं तो भी शब्दनयका यही विषय है कि इन सब प्रयोगोंको जो व्यवहार में प्रचलित हैं व्यभिचरित वा दूषित माने॥ अतः आपका कथन ठीक नहीं है॥ उपर्युक्त कारकव्यभिचार और उपसर्गव्यभिचार व्यवहारनय की अपेक्षासे अयुक्त हैं अन्याय रूप है, आपकी यह धारणा ठीक नहीं है वरन ये व्यभिचार व्याकरणके अनुकूल और व्यवहार करके अनुकूल हैं इनसे व्यवहार चलता है परन्तु शब्दनय इनको दूषित मानती है॥"

नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः ।

नाना-अर्थ-समभिरोहँणात् ५।१। समभिरूढः १।१। =बहुत अर्थोंमेंसे एक अर्थको प्राप्त होनेसे (=समभिरोहणात्) समभिरूढ है

---

(१) समभिरूढनयकी उपर्युक्त परिभाषा तथा तत्वार्थ राजवार्तिकमे दी हुई परिभाषा दोनोंका पाठ शब्दशः एक है ॥

सम-अभि-रोहणात्-रोहण (पु०एक पर्वत-पहाड़ (न०) चढ़ना, उगना (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ३२६, वैद्यकोश पृष्ठ६१६)में है,यहांपर नपुंसक लिंगमें आया है ॥

(२) अर्थसमभिरोहणात्— "नानार्थसमभिरोहणात्" इस वाक्य का अनुवाद "नानाअर्थान्समतीत्यैकमर्थम् रूढः" ऐसा वाक्य है । (प्रश्न) 'समतीत्य=छोड़करि, उल्लंघकरि' ऐसा अनुवाद समभिरोहणात् वाक्यका कैसे हुआ ? (उत्तर) पाणिनीय अष्टाध्यायीके प्रथम अध्याय चतुर्थपादके इकतीसवां सूत्र "भुवः प्रभवः" =भुवः कर्तुः प्रभवः अपादानम्-अपादानकी अनुवृत्ति चौवीसवां और कर्तुः की तीसवांसूत्रसे ली है =भू=होना, धातुके कर्ताका जो प्रभव (=उत्पत्तिस्थान) वह कारक अपादान संज्ञक हो । जैसे हिमवतः गङ्गा प्रभवति=हिमालय (पर्वत,से गंगाजी निकलती है । के नीचे निम्न उल्लेखित वार्तिक दी हुई है उसके निमित्तसे 'उल्लंघकरि' ऐसा अनुवाद हुआ ॥ "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" =ल्यब्लोपे कर्मणि अधिकरणे च पञ्चमी विभक्तिर्भवति=पांचवीं विभक्ति (का प्रत्यय) कर्म (कारक) और (=च) अधिकरण कारकके सूचित करनेमे वा निर्देश करनेमें आता है जबकि ल्यपन्त (ल्यप्=य, अन्त) संबन्धक सूचक भूतकृदन्त का (देखो पृष्ठ १६) अर्थात् वह संवन्धसूचक भूतकृदन्त का जिसके अन्तमें य हो (जैसे अनुभूय) लोप किया जावे जैसे प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते (राजभवनको (पै) चढ़कर देखता है)=प्रासादात् प्रेक्षते=राजभवनसे देखता है ॥ अधिकरणका हदाहरण, आसने उपविश्य प्रेक्षते (आसनपर प्रवेश होकर देखता है)=आसनात् प्रेक्षते=आसनसे देखता है ॥

(प्रश्न) ऊपरके प्रथम उदाहरणमें 'प्रासादम्' कर्मकारकके सूचित करनेमें उसी शब्द प्रासाद को अपादान कारकमें लाये हैं तैसे "नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमाभिमुख्येन रूढः समभिरूढः" विग्रह वाक्यमें समभिरोहण शब्दको कर्मकारकमें नहीं लाये इसलिये अष्टाध्यायीका वार्तिक लागू नहीं है ॥

(उत्तर) पूज्यपाद स्वामीने 'नानार्थसमभिरोहणात्'का इसके लगता ही वाक्यमें तात्पर्य दे दिया है । उपर्युक्त वार्तिकके अनुकूल विग्रह इस प्रकार हो सका है 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य समभिरूढः'=नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः" अर्थात् नाना अर्थकी प्राप्तिको (=समभिरोहणम्) वा ग्रहणको (=समभिरोहणम्) उल्लंघनकर (=समतीत्य) वा छोड़कर (=समतीत्य) एक ही अर्थमें रूढ हो (=समभिरूढ) एक ही अर्थमें प्रसिद्ध हो (=समभिरूढ) सो नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढ है ॥ इसलिये 'प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते=प्रासादात् प्रेक्षते' है अर्थात् प्रासादम् आरुह्यके स्थानमें 'प्रासादात्' पंचमी विभक्ति हो गई इसी प्रकार 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य समभिरूढः' वाक्यके 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य' के स्थानमें 'नानार्थसमभिरोहणात्' पंचमी विभक्ति होगई अतः उक्तवार्तिक और उसका कर्मकारक का उदाहरण सर्व प्रकारसे लागू होगया ॥

५३५ श्री जायेगी न कि रोगीकी इच्छाके अनुकूल इसके समर्थनमें देखो पं०जयचंदजीका लेख पिछला पृष्ठ५३३, राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ६८, संस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिक पृष्ठ ४८०,४८१, पं०पन्नालालजी वाले अनुवादि राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २६४, अब यह समझमें नहीं आता कि "एवम्प्रकारं व्यवहारनय न्याय्यं मन्यते" इस वाक्यका ऐसा किस प्रकारका अनुवाद करें कि जो शब्दार्थ हो और विभक्त्यर्थ सहित हो और वृत्तिके उपर्युक्त चार वाक्योंसे संबंध भी कर जाय और साथ ही साथ द्वितीयावृत्तिके संपादक की "जलं पततीति वक्तव्ये आपः पतन्तीति व्यवहारो जायते···इत्यादि" टिप्पणीके भी अनुकूल होजाय यद्यपि यह टिप्पणी सर्वार्थसिद्धिके प्रथम संस्करण में नहीं है और वृत्ति पाठमें भी "न्याय्यं" के स्थानमें प्रथम आवृत्तिमें "अन्याय्यं" है ॥

उपर्युक्त वाक्यका शब्दार्थ और विभक्त्यर्थ अनुवाद यह है कि 'इस प्रकार (यह) व्यवहारनयको न्याय या उचित मानता है" कौन और किस प्रकार व्यवहारनयको न्याय मानता है । वैयाकरण 'सन्तिष्ठते, प्रतिष्ठते, विरमति उपरमति, ऐसे प्रयोगों को जो लोक व्यवहार में भी आते हैं व्याकरण और व्यवहारनयकी अपेक्षा न्याय मानता है यदि यह अर्थ लिया जावे तो सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके नीचेके दो से पांच संख्या तकके वाक्योंका संबंध उपर्युक्त अनुवादसे मेल नहीं खाता है ॥ इस लिये हमारी समझ में प्रथमावृत्तिका पाठ ठीक और शुद्ध है द्वितीय संस्करणमें व्यर्थ 'अन्याय्यम' शब्दके स्थानमें 'न्याय्यम' कर दिया है ॥ उपर्युक्त पूर्ण टिप्पणी का अनुवाद यह है कि:—

() जलं पततीति वक्तव्ये आपः पतन्तीति व्यवहारो जायते अत्राप्शब्दोत्तरं बहुत्वाभिधायक प्रत्ययोपनिबन्धनं वस्तुतो निरर्थकमेव, बहुत्वस्य जले अन्वयायोगात् । तथापि शब्दानुशासनं शास्त्रमहिम्ना बहुत्ववाचकप्रत्ययसमभिव्याहारः कर्तव्यएवभवति,

जलम् ¦। पततिT इति० वक्तव्ये ¦। आपः ¦।। पतन्तिT इति०	=पानी गिरता है इस प्रकार कहने पर आपः (बहुत से जल) गिरते हैं ऐसा
व्यवहारः ¦। जायतेT अत्र० अप् शब्दोत्तरं बहुत्वाभिधायक-	=व्यवहार होता है । यहां अप् शब्द के आगे बहुततावाचक
प्रत्यय-उपनिबन्धनं ¦। वस्तुतः० निरर्थकम् ¦। एव० जले ¦।	=प्रत्यय का लगाना यथार्थतः वा यथार्थरूपसे अर्थरहित ही है क्योंकि जलविषै
बहुत्वस्य ¦।।। अन्वय-अयोगात् ¦। तथापि० शब्दानुशासनं-	=बहुत्वका संबन्ध या जोड़ अयुक्त है । तो भी व्याकरण (=शब्द अनुशासन)
शास्त्रमहिम्ना ¦। बहुत्ववाचक-प्रत्ययसमभिव्यहारः ¦।	=शास्त्र के प्रभावसे बहुवचन वाची प्रत्ययका संबन्ध (अर्थात् प्रयोग)
कर्तव्यः ¦। एव० भवति T	=करना ही होता है

इति नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढः ॥ इन्दनादिन्द्रः शकनाच्छक्रः पूर्दारणात्पुरन्दर इत्येवं सर्वत्र ॥

कहा जाय कि एक अर्थ के प्रतिपादन करने वाले अनेक शब्द भी होते हैं इसलिये अर्थ एक ही रहता है परंतु शब्द भेद वहां रहता है उसका उत्तर यह है कि यदि शब्द भेद होगा तो अर्थ भेद भी नियम से होगा क्योंकि जितने शब्द भेद हैं उतने ही उनके अर्थ हैं यह नियम है। उक्तंचः—"जित्तिय मित्ता सद्दा तित्तिय मित्ताणि होंति परमत्था" यावन्मात्राः शब्दाः तावन्मात्राः परमार्था भवन्ति जितने शब्द होते हैं उतने ही उनके उचित (=परम) अर्थ होते हैं ॥

इति नाना-अर्थ-समभिरोहणात् ५।१। समभिरूढः १।१। =ऐसे नाना अर्थोंमें से एक अर्थ को प्राप्त होने से (=समभिरोहणात्) समभिरूढ है (और अनेक अर्थोंमें से एक विशेष गृहीत अर्थ को कहने वाला अथवा जानने वाला है सो समभिरूढनय है ॥ जैसे

इन्दनात् ५।१।¹ इन्द्रः १।१। =परम ऐश्वर्यरूप क्रिया करने (के हेतु) से इन्द्र है अर्थात् जब परमैश्वर्यरूप क्रिया करै तब इन्द्र है।

शकनात् ५।१।¹ शक्रः १।१। पूर्-दारणात् ५।१।¹ =समर्थरूप प्रवर्तने से शक्र है, पुर (नगरादि) के भेदन करने से

पुरन्दरः १।१। इत्येवम्* सर्वत्र* =पुरन्दर है ॥ इस प्रकार ही सब स्थानोंमें (जाना जाता) है (ऐसे समभिरूढनय इन अर्थोंमेंसे एक ही अर्थ को ग्रहण करि प्रवर्तती है)

भावार्थः— यद्यपि इन्द्र शक्र पुरंदर आदि शब्द एक ही शचीपति-इन्द्र अर्थके कहने वाले हैं तथापि परमैश्वर्यका भोक्ता होनेसे इन्द्र सामर्थ्यवान् होनेसे शक्र और पुर नगरादिका विदारण करनेसे पुरंदर इस प्रकार इन भिन्न भिन्न शब्दोंके भिन्न भिन्न अर्थ हैं। इस रीतिसे पर्यायोंके अनुसार इन्द्र शब्दके अनेक अर्थ रहते भी वह रूढ इन्द्र (शचीपति) अर्थ में ही है और इस रूढ़ अर्थ को ही समभिरूढ नय विषय करता है यहां पर यह बात समझलेनी चाहिये कि चाहै इन्द्र परमैश्वर्यका भोग करै वा न करै किसी भी अवस्थामें हो तब भी वह समभिरूढ नयका विषय है।

(१ दारण शब्द वैद्यकोश पृष्ठ ३२० में नपुंसकलिंगमें दिया है इससे इन्दन, शकन भी भाव द्योतक होने से नपुंसक लिंगमें हैं।

यतो नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमाभिमुख्येन रूढः समभिरूढः ॥ गौरित्ययं शब्दो वागादिषु अर्थेषु वर्तमानः पशावभिरूढः । अथवा अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः । तत्रैकस्यार्थस्यैकेन गतार्थत्वात्पर्यायशब्दप्रयोगोऽनर्थकः ॥ शब्दभेदश्चेदस्ति अर्थभेदेनाप्यवश्यं भवितव्यम्

यतः॥ नानार्थान्॥ सम्-अतीत्य÷एकम्॥ अर्थम्॥	=(अर्थात्) जहां (=यतः) अनेक अर्थों को उल्लंघन करि एक अर्थ को (अर्थ में)
अभिमुख्येन ॥ रूढः ॥ समभिरूढः ॥	=प्रधानता से (=अभिमुख्येन) रूढ हो - प्रसिद्ध हो सो समभिरूढ है ॥ (इसलिये शब्दके अनेक अर्थोंमेंसे एकही अर्थको जो जाने वा कहे सो समभिरूढनय है)
गौः॥ इति॥ अयम्॥ शब्दः॥ वाग्-आदिषु॥	=गो ऐसा यह शब्द वचन (पृथिवी, वाणी, गमन, तारे, आकाश, हीरा, किरण) आदि
अर्थेषु ॥ वर्तमानः ॥ पशौ ॥ अभिरूढः ॥	=अर्थोंमें विद्यमान है (तोभी) चौपाये (अर्थ) में अति प्रसिद्ध (=अभि-रूढ) है अर्थात् गो बैलनामा पशुके अर्थ में चलते फिरते सोवते बैठते उठते खाते पीते, अकडते, जगते इत्यादि सब अवस्थाओंमें ग्रहण किया जाता है ॥
अथवा॥ शब्दप्रयोगः ॥ अर्थगति-	=वा शब्दोंका प्रयोग (किया जाता)है सो अर्थज्ञान (=अर्थगति)के वा अर्थप्राप्ति (=अर्थगति)के
अर्थः ॥ तत्र॥ एकस्य ॥ अर्थस्य ॥ एकेन ॥	=लिये (=अर्थ) है । तहां एक अर्थका एक (शब्दके प्रयोग) से
गतार्थत्वात् ॥ पर्याय-	=अभिप्राय सिद्ध होजानेसे (=गतार्थत्वात्-गतार्थपणासे) (दूसरे) समानार्थ बोधक
शब्दप्रयोगः ॥ अनर्थकः ॥	=शब्दका अनुष्ठान, वा काममें लाना निष्प्रयोजन है भावार्थ शब्दोंका जो प्रयोग किया जाता है वह अर्थज्ञानके लिये किया जाता है यदि वह अर्थज्ञान एकही शब्दके प्रयोगसे सिद्ध हो जाय तो फिर दूसरे पर्याय शब्दका कहना व्यर्थ है
शब्दभेदः॥ चेत्॥ अस्ति॥ अर्थभेदेन॥ अपि॥	=(प्रश्न) जो (=चेत्) शब्द भेद है तो ? (उत्तर) अर्थभेद (सहित) भी
अवश्यम् ॥ भवितव्यम् ॥	=अवश्य होना चाहिये । उपर्युक्त प्रश्नोत्तरका तात्पर्य यह है कि यदि यह

(१) समतीत्यः-यह संबंधसूचक भूतकृदन्त है (२) अभिमुख्येन-यह पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों में होसकता है ॥

इस बात पर हम एक पूर्ण टिप्पणी लिखते हैं कि पदान्त म्-न् और अपदान्त म्-न् की अवस्था मे क्या क्या परिवर्तन होते हैं और दोनों प्रकार के अनुस्वार पदान्त और अपदान्त में क्या क्या परिवर्तन होते हैं

(१) पदान्त म्—मोऽनुस्वारः (अष्टाध्यायी ८। ३। २३) इस सूत्रमें 'पदस्य' की अनुवृत्ति अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद १ सूत्र १६ वें (पदस्य) से है और हलि शब्दकी अनुवृत्ति 'हलि सर्वेषाम्' ८। ३। २२सूत्रसे लीगई है इसलिये 'मोऽनुस्वारः' (=पदस्य ; मः ; अनुस्वार ; हलि ;) का अर्थ मकारान्त पदको अनुस्वार हो यदि कोई हल् (अर्थात् व्यंजन) पश्चात् में हो तो (ऐसा होता है)॥ जैसे हरिम् वन्दे में म् पदान्त है और व्यंजन पश्चात् में है इसलिये हरिं वन्दे हुआ ऐसेही एवम्भूतः में म् पदान्त है म् उसके पीछे व्यंजन है अतः एवंभूतः होगया इसलिये एवम्भूत और एवंभूत दोनों रूप ठीक हैं (इस सूत्रकी विशेष व्याख्या के लिये देखो पृष्ट ५, ६)॥ 'गम्यते' (=वह गया है) यहां म् अपदान्त है इस से अनुस्वार न हुआ॥

(२) पदान्त न्—अन्तका न् जब उसके पश्चात् च्-छ्-त्-थ्-ट्-ठ् आवै तौ (यह न्) अनुस्वार और विसर्ग में पलट जाता है जैसे बिडालान् ताडयति पुरुषः (=वह मनुष्य बिल्लियों को मारता है) =बिडालांः ताडयति पुरुषः अब यह विसर्ग निम्न उल्लेखित नियमसे स् में परिवर्तित होजाता है अतः बिडालांस्ताडयति पुरुषः ऐसा हुआ (नियमः—विसर्ग के पश्चात् यदि च्-छ् हो तौ श् मे यदि त्-थ् हो तो स् मे यदि ट्-ठ् हो तौ ष् में यह विसर्ग पलट जाता है)

(३) अपदान्त म्-न्॥ "नश्चापदान्तस्य झलि" यह अष्टाध्यायी के आठवां अध्याय का तीसरे पादका चौवीसवां सूत्र है ८-३-२४। इस सूत्रसे पहिले का सूत्र 'मोऽनुस्वार" उपर्युक्त तेईसवां है इससे अनुस्वारः की अनुवृत्ति चौवीसवां सूत्र में आती है तब चौवीसवां सूत्रका रूप इस प्रकार होजाता है कि "नः च अपदान्तस्य झलि (अनुस्वारः)' च से तेईसवां सूत्र के मो (=मः) का आकर्षण होता है इसलिये ऐसा रूप हुआ कि "नः मः अपदान्तस्य झलि अनुस्वारः" झलि प्रत्याहारहै और उसमें झल्के मध्यके अक्षर झ सहित सर्व आजातेहैं अर्थात् क् ख्-ग्-घ्। च्-छ्-ज्-झ्। ट्-ठ्-ड्-ढ्। त्-थ्-द्-ध्-। प्-फ्-ब्-भ्। ष्-श्-स्-ह्। 'झलि' का अर्थ है इन चौवीस अक्षरोंके पहिले आने वाला। अपदान्त=विभक्ति वा कारक जिसके अंतमें न हो। सूत्र का अर्थ यह हुआ अपदान्त न् अथवा अपदान्त म् के स्थान में अनुस्वार होवै यदि म् अथवा न् पूर्वोक्त चौवीस अक्षरों में से किसी अक्षर के पहिले हो इसलिये 'अन्तराय' के न् का अनुस्वार होकर अंतराय होगया और 'वन्दे' का 'वंदे' होगया क्योंकि दोनों के न् के पश्चात् क्रमसे त्-द् है॥

अथवा यो यत्राभिरूढः स तत्र समेत्याभिमुख्येनारोहणात्समभिरूढः। यथा क्व भवानास्ते। आत्मनीति। कुतः। वस्त्वन्तरे वृत्त्यभावात्॥ यद्यन्यस्यान्यत्र वृत्ति स्यात्, ज्ञानादीनां रूपादीनां चाकाशे वृत्तिःस्यात्॥६॥ येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीति एवम्भूतः॥

अथवा* यः;। यत्र अभिरूढः;।सः; तत्र अभिमुख्येन;।	=अथवा जो जहां (=यत्र) अभिरूढ है वा प्राप्त है सो तहां प्रधानतासे
आरोहणात ;॥ संमेति। (सम-एति)	=प्राप्तहोकरि (=आरोहणात) वसता है (=समेति) वर्तता है (=समेति) रहता है
समभिरूढः;। यथा*क* भवान्;। आस्ते?T आत्मनि;।	=(तिससे) समभिरूढ है॥ जैसे कहां आप तिष्ठते हैं? आत्मामें (तिष्ठता हूं)
इति* कुतम् ?*	=ऐसे (समभिरूढ) है। (प्रश्न) क्योंकर (आत्मामें वा निजरूपमें तिष्ठते हो)
वस्तु-अन्तरे* वृत्ति-अभावात ;।	=(उत्तर) अन्य वस्तुमें प्रवृत्तिका वा स्थितिका अभावसे अर्थात भिन्न वस्तुका भिन्न वस्तुमें ठहरना नहीं होसकता है। प्रधानतासे आत्माका रहना आत्मामें ही है दूसरे पदार्थोंमें उसका रहना नहीं हो सकता है (और)
यदि* अन्यस्य ;॥ अन्यत्र* वृत्तिः ;॥ स्यातT	=जो (=यदि) अन्य (पदार्थ) का अन्य स्थानविषैं स्थिति वा प्रवृत्ति वा रहना हो
ज्ञानादीनाम् ;। रूपादीनाम् ;। च*	=तो ज्ञानादिकोंका (जो आत्मगुण हैं) और रूपादिकोंका (जो पुद्गलके गुण हैं)
आकाशे ;। वृत्तिः ;॥ स्यात T	=आकाशमें प्रवृत्ति वा स्थिति वा प्रवर्तना वा रहना होजाय(सो आकाशमें है नहीं)
( ) येनं ;। आत्मना ;। भूतः ;।	=जिस स्वरूपकरि (अर्थात् अर्थ क्रियासे कोई पदार्थ परिणत) हो
तेन ;। एव* अध्यवसाययतिT	=उस ही (स्वरूप अर्थ क्रिया परिणाम) से निश्चय कराता है वा प्रतीति कराता है
इति* एवम्भूतः ;।	=ऐसा एवम्भूत (नय) है॥ (एवंभूतः भी ठीक है देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४०,५४१)

(इसी एवंभूत की परिभाषाका भाव इसके लगता ही वाक्यमें दिया है (देखो पृष्ठ ५४२)

(१) समेति=सम्+एति 'इ' अदादि दूसरेगण परस्मैपदका धातु यहां जाना अर्थमें आया है। 'ति' 'पत् संज्ञक प्रत्ययके (देखो पृष्ठ ५२२, ५२३) पहिले 'इ' धातुको गुणसंज्ञा होकर 'ए' हो जाताहै। 'ए'में'ति' प्रथम पुरुष एक वचन परस्मैपद वर्तमान कालका प्रत्यय जोड़नेसे एति=बन जाताहै उसमें 'सम' उपसर्ग लगानेसे (सम्+एति) समेति बन जाताहै॥ समेति=वह साथ साथ रहताहै अर्थात् आत्मा आत्मामें रहता है वसताहै तिष्ठताहै

(२) पूज्यपाद स्वामी की इसी एवंभूतनयकी परिभाषाको शब्दशः तत्त्वार्थ राजवार्तिकके रचयिताने ग्रहण कीहै (देखो त०रा० मुद्रित पृष्ठ ६८)

स्वाभिधेयक्रियापरिणतिक्षणे एव स शब्दो युक्तो नान्यदेति । यदैवेन्दति तदैवेन्द्रो नाभिषेचको न पूजक इति। यदैव गच्छति तदैव गौः ।

स्व–अभिधेय–क्रिया परणतिक्षणः एव * =(जो शब्द) अपने अर्थ (=अभिधेय) क्रियासे जिस समय ही (=एव) परिणत हो

सः शब्दः युक्तः न * अन्यदा * इति * =वह शब्द (प्रयोग उस ही समय) उचित है न कि और समय (=अन्यदा)

भावार्थ जिस वस्तुको जिस नामकरि कहै उसही अर्थ की क्रियारूप वह वस्तु परिणमती हो तो तिसही काल उस वस्तुको उस नाम से कहै अन्य काल वही वस्तु अन्य परिणतिरूप परिणमें तौ पूर्व उक्त नाम से उस वस्तुको न कहै.

यद्द एव * इन्दति T तद्द एव * इन्द्रः। =जैसे जब ही परमैश्वर्यरूप क्रिया करता है तब ही इन्द्र है।

न*अभिषेचकः। न * पूजकः इति *। =न कि (वह ही प्राणी) अभिषेक करने वाला न पूजा करने वाला ऐसा (इन्द्र) है

अर्थात् इन्द्र शब्द का अर्थ परमेश्वर है जिस समय वह परमैश्वर्य का भोग कर रहा हो उसी समय उसका इन्द्र कहना यह एवं भूतनयका विषय है किंतु जिसका केवल नाम मात्र इन्द्र है (नाम निक्षेप) वा जहां पर किसी पदार्थमें इन्द्रको स्थापना है (स्थापना निक्षेप) वा जो इस समय इन्द्र नहीं आगे जाकर इन्द्र होने वालाहै(=द्रव्य निक्षेप)वह एवं भूतनयका विषय नहीं क्योंकि उपर्युक्ततीनों अवस्थाओंमेंपरमैश्वर्यका भोग नहीं हो रहा है। इसी प्रकार गो इत्यादि अन्य शब्दों में भी जिस जिस क्षणमें उनकी जिस जिस अर्थ क्रियाका परिणमन हो रहा है उस उस क्षणके उस उस परिणमनकी अपेक्षा से एवं भूतनयकी योजना कर लेनी चाहिये यदि अर्थ क्रियाकी परणतिका दूसरा दूसरा काल होगा तौ वे एवंभूतनयके विषय नहीं हो सक्ते(देखोनीचे गोकादृष्टान्त)

यद्द एव * गच्छति तद्द एव * गौः =जब(=यद्द) ही (=एव) गमन करता है तब ही गो है (बैल है)

(१) गो–इस शब्द के बीस अर्थ से भी अधिक हैं यह पुलिंग और स्त्रीलिंग में आता है (वैद्यकोश पृष्ठ २५० देखो) गो पुल्लिंग में बैल–वृषभ (पशु) के अर्थमें यहां लिया गयाहै और उस की प्रथमा विभक्ति एक वचन पुलिंग गौः है और गो जब गऊ–गाय के अर्थ में स्त्रीलिंग है तब भी उसका प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंगकारूपपुरुष लिंग केसदृश गौः' (ही) होताहै इस लिये प्रश्न यह उठताहै कि वृत्ति में दियेहुयेगोः

जैसे यशान्स्+इ = यशांसि, यह यशांसि यश् नपुंसकलिंगीका बहुवचन है यहां पर अपदान्त न्का अनुस्वार होगया॥ बहुत यश = यशांसि
आक्रंस्यते = आ+क्रम्+स्यते, क्रम् धातुके म्का अनुस्वार होगया॥ आक्रंस्यते = वह पकड़ेगा, (वह) विजयकरेगा, जीतैगा॥

(४) अपदान्त अनुस्वारः—अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ।८।४।५८ = अनुस्वारस्य परसवर्णः ययि=अनुस्वार के स्थान में परसवर्ण हो यदि (उक्त अनुस्वार के) परे में यय् प्रत्याहार के अक्षरों में से कोई भी आवै अर्थात् अनुस्वार के पश्चात् में क्-ख्-ग्-घ्-ङ्। च्-छ्-ज-झ्-ञ्। ट्-ठ् ड्-ढ्-ण्। त्-थ्-द्-ध्-न्। प-फ्-ब्-भ्-म्। य्-र्-ल् व् अक्षरों में से कोई भी एक अक्षर आवै तो उक्त अनुस्वार के स्थान में परसवर्ण (=ङ्-ञ्-ण् न्-म् य-वँ-लं) हो जावै जैसे शाम्तः यहां "नश्चापदान्तस्य झलि" उपर्युक्त सूत्र से म्का अनुस्वार होकर शांतः ऐसा हुआ फिर इस सूत्र से परअक्षर तः उस तकार का सवर्णीय न् होकर शान्तः रूप बना॥ ऐसैही अङ्कितः = चुयगया, गढ़गया,॥ अञ्चितः = पूजाकिया गया आदर किया गया, सिकोड़ लिया गया। कुण्ठितः = प्रतिघात किया गया, गुम्फितः = गूथागया, रचागया, गांठागया, रूपबनगये॥ शान्तः का अर्थ शामयुक्त या शान्त वाला है कुर्वन्ति = वे करते हैं। वृषन्ति – वे उत्पन्न करने के योग्य हैं, वे सोचते हैं॥ इन दोनों शब्दों के न् पहिले नश्चापदान्तस्यझलि उक्त सूत्र से अनुस्वार में परिवर्तित हो जाते हैं पश्चात् इस सूत्र से उन के पश्चात् त् होने के कारण न् परसवर्ण त्के में पलट जाते हैं॥

(५) पदान्त अनुस्वारः—"वा पदान्तस्य" ८।४।५९ =(पदान्तस्य अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) वा इस सूत्र में अट्ठावनवां सूत्रकी अनुवृत्ति आती है॥ पदान्तस्य अनुस्वारस्य परसवर्णः वा ययि = पदान्त अनुस्वारका परसवर्ण विकल्पसे हो (चाहे परसवर्ण करो मनन चाहै मतकरो) यदि (उक्त पदान्त अनुस्वारके) पश्चात् ऊपर कहे हुये २६ व्यजनों में से कोई एक व्यंजन आवै तो॥जैसे त्वम् करोषि, यहां "मोऽनुस्वार" सूत्र से म् को अनुस्वार किया तो त्वं करोषि बना, फिर जब सवर्ण हुआ तो त्वङ्करोषि, तू करता है। ऐसा रूप बना नहीं तो त्वं करोषि रूपही बना॥ ऐसेही त्वम् चिनोषि से त्वंचिनोषि रूप हुआ, फिर त्वञ्चिनोषि रुप बना, नही त्वं चिनोषि रहा तू चुनता है॥ () त्वम् डीयसे=तू उड़ताहै,=त्वं डीयसे, फिर वा पदान्तस्य से त्व ण्डीय से रुप बना॥ डी चौथेगणका आत्मने पदी, अकर्मक धातु है॥त्वम् पण्डितः (तू पंडित है) त्वं पडितः 'मोऽनुस्वार से हुआ, फिर "वा पदान्तस्य" से त्वम्पण्डितः रुप बना, नहीं तो त्वं पण्डितः ही, रुप रहा॥ () त्वम् धनाढ्यः (तू धनवान् है) 'मोऽनुस्वारः सूत्र से त्वं धनाढ्यः रूप हुआ, अब "वा पदान्तस्य" द्वारा त्वन्धनाढ्यः रुप बना, नहीं त्वं धनाढ्यः॥ () तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभः स्थं पुरुषोऽवधीत् = तङ्कथञ्चित्र पक्षण्डयमानन् नभः स्थम्पुरुषोऽवधीत्। आकाश में(=नभः स्थं) उड़ते हुये (=डयमानं) उस (=तं) चित्र विचित्र पर वाले पखेरु को (चित्र पक्षं) पुरुष ने कैसे मारा (=अवधीत्) ८॥

उक्ता नैगमादयो नयाः। I उत्तरोत्तरसूक्ष्मविषयत्वात्

नैगम – आदयः नयाः।	=नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ़, (१) एवंभूत (ये सात) नय
उक्ताः। उत्तरोत्तर–सूक्ष्मविषयत्वात्।	=कहेगये हैं॥ आगे आगेकी (नय एक दूसरेसे) अल्प विषय (वाली) होने से

टिप्पणी–यदि अग्नि ज्ञानसे परिणत आत्माको एवंभूतनयकी अपेक्षासे अग्नि कहा जायगा तो जलाना, रान्धना, पकाना आदि जितने धर्म अग्नि में है वे सब आत्मा में भी मानने पड़ेंगे इस लिये आत्मा अग्नि नहीं कहा जा सकता १ (उत्तर) नाम था स्पना आदि जिस स्वरूप से कहे जाते हैं वे उस से अभिन्न रहते हैं और जिस पदार्थ के जो जो धर्म होते हैं वे नियमित रूप से उसी में रहते हैं। आत्मा का जो अग्नि नाम है उसका आत्मा के साथ अभेद है परंतु अग्निके जो जलाना पकाना आदि धर्म हैं वे अग्निमें ही रहतेहैं आत्मा में नहीं हो सकते इस लिये नो आगम भाव अर्थात् साक्षात् अग्नि में रहने वाला दाहकपना आगमभाव अर्थात् औपचारिक अग्नि में नहीं हो सकता। इस रीतिसे यदि आत्मा का नाम अग्नि माना जायगा तो अग्नि दाहकत्व आदि धर्म आत्मा में मानने पड़ेंगे यह जो ऊपर शका की गई थी वह निर्मूल सिद्ध हो चुकी।

(१) यहां पर 'एवंभूयत इति' 'ऐसा होना' इस एवंभूतनय के अर्थकी प्रतीति या निश्चय शब्द से होती है इसलिये शब्द ही एवंभूतनय माना है कारणमें कार्यका उपचार है अर्थात् एवंभूतनयके अर्थकी प्रतीति में कारण शब्दहै और कार्य एवं भूतनय है

(I नैगमात्संग्रहोऽल्पविषयः तन्मात्रग्राहित्वात्। नैगमस्तु भावाभावविषयाद्बहुविषयः। यथैव हि भावे सङ्कल्पस्तथाऽभावे नैगमस्य सङ्कल्पः। एवमुत्तरत्रापि योज्यम्॥

नैगमात् संग्रहः अल्पविषयः।	=नैगम नयसे संग्रहनय थोड़ी विषय वाली है
तन्मात्र (= तद – मात्र) ग्राहित्वात्।	=क्योंकि केवल उतने विषयकी अर्थात् केवल स्वल्पविषयकी (= तन्मात्र) ग्राही है
नैगमः तु * भाव - अभाव विषयात्।	=और (=तु) नैगमनय सत् (रूप) और असत् (रूप) ग्रहण करने (केहेतु) से
बहु विषयः	=महाविषय वाली वा बहुत विषयक है। (बहुविषय=बहुत है विषय जिसका)
यथा * एव * हि * भावे सङ्कल्पः।	=क्योंकि (=हि) जैसा ही सत् (रुप) में सङ्कल्प है अर्थात् सत् रूप में मानना है
तथा * अभावे नैगमस्य सङ्कल्पः।	=वैसा असत् (रूप) में नैगमनयका सङ्कल्प वा मानना है भावार्थ।

न स्थितो न शयित इति ॥ अथवा येनात्मनायेन ज्ञानेन भूतः परिणतस्तेनैवाध्यवसाययति। यथेन्द्राग्निज्ञानपरिणत आत्मैवेन्द्रोऽग्निश्चेति ॥

न ० स्थितः न ० शयितः इति ०	=न बैठा हुआ वा न ठहरा हुआ गो (बैल) है (और) न शयन करता हुआ गो (बैल) है
अथवा ०	=अथवा (एवम्भूतनयकी उक्त परिभाषा में आये हुये शब्द)
येन आत्मना येन ज्ञानेन भूतः।	="येनात्मना भूतः"(कहिये किसी पदार्थके) ज्ञानयुक्त (=ज्ञानेन) हुआ
परिणतः तेन एव ० अध्यवसाययति T	=परिणया (आत्माको) तिस (ज्ञान) युक्त ही निश्चय कराता है वा प्रतीतिकराता है (=ऐसा एवम्भूत-नयहै) अर्थात् उक्त परिभाषा में 'आत्मन्' शब्दका अर्थ पहिले'अभिधेय क्रिया लिया' अब 'ज्ञान' अर्थ लिया (आत्मना =ज्ञानेन) इसलिये आत्मा जिस क्षण में जिस पदार्थ के ज्ञान से युक्त हो उसे वही कहना एवम्भूतनयका विषय है ॥
यथा०इन्द्रज्ञानपरिणतः अग्निज्ञानपरिणतः	=जैसे इन्द्र(का आकाररूप) ज्ञान और अग्नि(का आकाररूप) ज्ञान परिणया
आत्मा एव ० इन्द्रः च ० अग्निः इति ०	=आत्माही इन्द्र और अग्नि ऐसे (क्रमसे)है अर्थात् जैसे जिस क्षणमें आत्मा इन्द्र पदार्थके ज्ञान से परिणत हो रहा है उसे इन्द्र कहदेना वा जिस समय अग्नि पदार्थ के ज्ञान से परिणत हो रहा है उसे अग्नि कह देना एवं भूत नयका विषय है ॥

ऐसे व्याकरणके करका अनुवाद बैल होना चाहिये वा गऊ होना चाहिये "न स्थितो न शयितः इस वाक्य में स्थितः शब्द और शयितः शब्द पुल्लिंग में आये हैं इस से स्पष्ट है कि बैल से तात्पर्य है अतः "गौः" का अनुवाद गौ (बैल) किया है यदि स्थितः के स्थान में 'स्थिता' होता जो स्त्रीलिंग है और शयितः के स्थान में 'शयिता' स्त्री लिंग होता तो अनुवाद गौः रूप का गाय (गऊ) होता।

(१) इन्द्र ज्ञान परिणत आत्मा इन्द्र उच्यते। अग्नि ज्ञान परिणत स्यादात्मा अग्नि श्चेति एवम्भूतनयलक्षणम् ॥

इन्द्र ज्ञान परिणतः आत्मा इन्द्रः उच्यते T = इन्द्रका (आकार रूप) ज्ञान परिणया आत्मा इन्द्र कहा जाता है

च०अग्निज्ञान परिणत स्यात् आत्मा अग्निः= और अग्निके ज्ञान परिणमन से आत्मा अग्नि (कहलाता) है

इति ० एवम्भूतनयलक्षणम् = ऐसा एवम्भूतनयका विषय (=लक्षण) है ॥ अब शंका यह है कि

एषा क्रमः पूर्व पूर्वा हेतुकत्वाच्च ।

च*पूर्व पूर्वहेतुकत्वात्	=और (=च) पहिली पहिली (नय अगली अगली नयका) कारणरूप होने से
एषाम् क्रमः	=इन (सातों नयनि) के (पठनका नैगम संग्रहादि सूत्रमें) अनुक्रम है अर्थात्

समभिरूढनय विषय करता है। समभिरूढनय किसी नियत अर्थको ही द्योतन करता है। अतः शब्दनयसे समभिरूढ अल्प विषयी है

एकही पदार्थ अनेक क्रियारूप जुदे जुदे कालमे प्रवर्तता है सो जो वस्तु जिसनामकरि कही गई है तिस ही अर्थकी क्रियारूप परिणमती होय तो उसही काल उस वस्तुको उसनामकरि ग्रहण करनेवाला एवम्भूतनय है अन्यकाल में अन्य परिणतरूप परिणमें तौ तिसको उसनामकरि न कहै जैसे गो को समभिरूढनयकी अपेक्षासे बैठते, उठते, सोवते, चलते, फिरते, अकड़ते इत्यादि सबही अवस्था में गऊ-गाय कहते हैं परन्तु एवम्भूतनयकी अपेक्षासे उक्त गो जिस समय गमन करती हो उसी समय गो-गऊ गाय कहै यदि वह बैठो हो सोती हो लेटी हो पड़ी हो तो उसको गो न कहै। अतः समभिरूढ़नयसे एवम्भूतनय अल्प विषयी है यहां पं०जयचंद जी की वचनिकासे एक उदाहरण उद्धृत करते हैं जिससे पूर्वपूर्व नयका विषय उत्तरोत्तर नय से अल्प है स्पष्ट हो जाता है (१) एक मनुष्य ने कहा नगरमें पक्षी बोल रहा है नैगम (२) दूसरे ने कहा कि इस नगरमें एक वृक्ष है उसपै पक्षी बोल रहा है-सग्रह (३) तीसरे ने कहा इस वृक्ष की एक बड़ी डाली पै पक्षी बोल रहा है-व्यवहार (४) चौथेने कहा इस डालीमें एक छोटी डाली है तापै बोल रहा है-ऋजुसूत्र (५) पांचवें ने कहा छोटी डाली के एक भागपर बोल रहा है-शब्द नय (६) छठेने कहा पक्षी अपने शरीरमें बोल रहा है-समभिरूढ (७) सातवे ने कहा कि पक्षी के शरीर में कठ है सो कठमें पक्षी बोल रहा है-एवम्भूतनय-ऐसे उत्तरोत्तर विषय छूटता गया। ग्रामे वृक्षे विटपे शाखायां तत्प्रदेशे काये कठे च रौति शकुनिः यथा तथा नैगमादीनाम्। अन्य दृष्टान्त.-नैगमनयने वस्तुके सत्-असत् दोनों ग्रहण किये, सग्रह ने सत् ही लिया, व्यवहारनयने सत्का एक भेद लिया, ऋजुसूत्र ने वर्तमान सत् ही को लिया शब्दनयने वर्तमान सत्में भी भेदकरि एक कार्य पकड़ा, समभिरूढनेउस कार्यके अनेक नामथे उनमेंसे एक नामको ग्रहण किया, एवम्भूत-नयने उपर्युक्त एक नामको भी जिस क्रियारुप जिसकालमें परिणमें तिसको ग्रहण किया। ऐसे ही जिस पदार्थ को साधनाहै उस पदार्थ पै इन सातों नयोंको लगालैना योग्य है॥

(१) नैगम्-सग्रहस्य हेतुः ।संग्रहो व्यवहारस्य हेतु.। व्यवहारः ऋजुसूत्रस्य हेतुः। ऋजुसूत्रः शब्दस्यः हेतुः।

नैगमनयके पीछे संग्रहनय कही गई है सो इसका विषय सद् द्रव्यत्व आदिही है इसके परस्पर निषेधरूपअसत्आदि यह विषय नहीहैं इसलिये नैगमनयसे संग्रहनय अल्प विषयक वा थोड़ी विषय वाली है

एवम्*उत्तरत्र*अपि*योज्यम् =इस प्रकार यहां से आगे (=उत्तरत्र) भी लगाओ या लगाने योग्य है अर्थात् संग्रहनयके पश्चात् व्यवहार नय है सो इसका विषय संग्रहनयके विषयका भेद है तहाँ अभेद विषय रहगये अतः संग्रहनयसे व्यवहारनय अल्प विषय वाली है व्यवहारनय के पश्चात् ऋजुसूत्र है सो इसका विषय वस्तुका वर्तमान पर्याय मात्रहै अतीत अनागत पर्यायें रहगई अतः व्यवहारनयसे ऋजुसूत्रनयका थोड़ा विषय है ॥

ऋजुसूत्रनय लिंग संख्या साधन कारक उपग्रह आदिका भेद नकरके केवल वर्तमान पर्यायको विषय करता है परन्तु शब्दनय उस एक पर्यायमें भी लिंग संख्या साधन कारक उपग्रह काल आदिके भेदसे अर्थका भेद प्रकाशन करता है इसलिये ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे शब्दनयका अल्प विषय है अर्थात् ऋजुसूत्रनय अर्थ पर्याय और शब्दपर्याय सबको ही विषय करता है परन्तु शब्दनय केवल शब्द पर्याय को ही विषय करता है इसलिये ऋजुसूत्रनयका विषय शब्दनयसे अधिकतर है ॥

इसके पश्चात् समभिरूढ़ नय कहागया है सो एक वस्तु के अनेक नाम हैं तिनको पर्यायशब्द कहते हैं जिन पर्याय शब्दोंका एकही अर्थ मानने वाली तो शब्द नय है परन्तु समभिरूढ़नय जिस शब्दको ग्रहण करता है तिसही अर्थरूपको कहता है क्योंकि उन पर्याय शब्दोंके जुदे जुदे अर्थ भी हैं ॥ जैसे इन्द्र, शक्र, पुरन्दर आदि ये तीन शब्द एक ही शचीपति अर्थके कहने वाले हैं तथापि परमैश्वर्यता का भोग होने से इन्द्र सामर्थ्यवान् होनेसे शक्र और पुर-नगर विदारण करने से पुरंदर इस प्रकार इन भिन्न भिन्न शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थ हैं इस रीतिसे पर्यायों के अनुसार इन्द्र शब्दके अनेक अर्थ रहते भी वह रूढ इन्द्र (शचीपति) अर्थ में ही है और इस रूढ अर्थको ही

त एते गुणप्रधानतया परस्परतन्त्राः सम्यग्दर्शनहेतवः पुरुषार्थक्रियासाधनसामर्थ्यात्तन्त्वादय इव यथोपायं विनिवेश्यमानाः पटादिसँज्ञाः स्वतन्त्राश्चासमर्थाः ॥

पुरुषार्थ क्रिया-साधनसामर्थ्यात् इव *	=पुरुषार्थरूप क्रियाके साधनस्वरूप शक्तिसे जैसे
तन्तु-आदयः यथा-उपायम् *विनिवेश्यमानाः	=सूतके तारआदिक यथायोग्य उपायद्वारा नियतकिये हुये वा पायेहुये
पटादि संज्ञाः च *	=वस्त्रादिक नाम पानेवाले होते है और (=च)
स्वतन्त्राः	=(सूतके) स्वतन्त्रतार अर्थात् परस्पर अपेक्षारहित न्यारे न्यारे तार
असमर्थाः ते एते	=(वस्त्रादि नाम पानेवाले) नहीं होसक्ते हैं। (तैसे) ते इतने (नय)
गुण प्रधानतया	=गौण मुख्यपनाकरि वा प्रधान अप्रधानरूपसे
परस्परतन्त्राः	=आपसमें सापेक्षरूप हुये वा परस्पर एकदूसरेके आधीन रूप हुये (आश्रय)
सम्यग्दर्शन-हेतवः	=सम्यग्दर्शन [के उत्पन्न होने] का कारण होते हैं
	[और यदि वे उक्त नय परस्पर अपेक्षारहित हों तो सम्यक्त्वके उत्पत्तिका कारण कदापिनहीं होसक्ते भिन्नभिन्नसूतके तारोंके सदृश कार्यकारी नहीं होते]

भावार्थ जिसप्रकार आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा करनेवाले सूतकेतार जिस समय बुनजाते हैं उस समय उनकी पटादि संज्ञा हो जाती है और प्राणियोंके शीत निवारण उष्णनिवारण आदि प्रयोजनीय कार्योंके सिद्ध करने में समर्थ होजाते हैं किन्तु वेही तार जब भिन्न भिन्न रहते हैं तब किसी भी प्रयोजनीय कार्यको सिद्ध नहीं करसक्ते उसी प्रकार परस्पर सापेक्ष-आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा रखनेवाले और कहीं गौण तो कहीं प्रधानरूपसे विवक्षित ही नय सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण हैं। यदि वे [नय] परस्पर सापेक्ष न होंगे तो भिन्न भिन्न वा न्यारे न्यारे सूतके तारोंके समान कभी भी कार्यकारी न होंगे और सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण भी नहीं होंगे ॥

(१ गुणः--ज्ञान विनय आदि गुण,तन्त आदि वे दह अर्थोंसे अधिक अर्थोंमें यह शब्द आताहै यहांपर अप्रधान वा गौण अर्थमें है(पद्म०कोश१३३)

(२ निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् देवागम १०८) परस्पर निरपेक्षनय मिथ्या हैं परस्पर सापेक्ष नय कार्यकारी हैं ॥

एवमेते नयाः पूर्वपूर्वविरुद्धमहाविषया उत्तरोत्तरानुकूलाल्पविषयाः। द्रव्यस्यानन्तशक्तेः प्रतिशक्तिभिद्यमाना बहुविकल्पा जायन्ते॥

यथाक्रम एक नय दूसरी नयसे अल्प विषय वाली हैं और पहिली पहिली नय कारण रूप है अगली अगली नय कार्यरूप है सो सूत्रमें इन सातों नयों का इसही क्रमसे पाठ है वा उल्लेख है

एवम् एते नयाः पूर्वपूर्वविरुद्ध-महाविषयाः =ऐसे ये (सात) नय पहिले पहिले विरुद्धरूप महाविषय वाले हैं

उत्तर-उत्तर-अनुकूल-अल्पविषयाः =(और) आगे आगेकी (नय) अनुकूल रूप अल्प विषय वाली है; अर्थात् पहिले नयने जितने पदार्थको विषयकररक्खा है उसको आगेका नय विषय नहीं करता इसलिये पहिला नय विरुद्ध महाविषयवाला है तथा आगेके नयका जो विषय है वह पहिलेके नयमें गर्भित है इसलिये आगेका नय पहिले नयके अनुकूल अल्पविषयवालाहै।(ऐसे नयके भेद क्यों होतेहैं सो कहतेहैं)

द्रव्यस्य अनन्तशक्तेः प्रतिशक्ति भिद्यमानाः —क्योंकि द्रव्यकी अनन्त शक्ति है,(इससे)शक्ति शक्तिप्रति भेदको प्राप्त भये(नय)

बहु विकल्पाः जायन्ते =बहु विकल्परूपउत्पन्न होते हैं अर्थात् उक्त नय अनन्त शक्तिरूप द्रव्यकी प्रतिशक्तिकी अपेक्षा भिन्न भिन्न होते जाते हैं अतः नयोंके बहुसे भेद हैं

शब्दः समभिरूढस्य हेतुः। समभिरूढः एवम्भूतस्य हेतुः। इत्यर्थः

संग्रहस्य हेतुः नैगमः। व्यवहारस्य हेतुः संग्रहः। =संग्रहनयका हेतुः नैगमनय है व्यवहारनय का हेतु संग्रहनय है

ऋजुसूत्रस्य हेतुः व्यवहारः। शब्दस्य हेतुः ऋजुसूत्रः। =ऋजुसूत्रनयका हेतु व्यवहारनय है। शब्दनयका हेतु ऋजुसूत्रनय है

समभिरूढस्य हेतुः शब्दः। एवम्भूतस्यहेतुः समभिरूढ- =समभिरूढनयका हेतु शब्दनय है। एवम्भूतनयका हेतु समभिरूढ है

इति अर्थः =ऐसा अर्थ "उत्तरोत्तर सूक्ष्म विषयत्वादेषां क्रमः पूर्वपूर्व हेतुकत्वाच्च" का है

(१) जन् दिवादि चौथेगण आत्मनेपदी अकर्मकधातु उत्पन्न होना अर्थ में है सार्वधातुक प्रत्यय इ,से,ते इत्यादिकेपहिले इसका रुप जा हो जाता है य विकरणहै अन्ते प्रथमपुरुष बहुवचन आत्मनेपदी वर्तमान काल क्रिया का प्रत्यय है जा+य+न्ते हुआ प्रथम अ उस प्रत्यय के पहिले गिरजाता है जिस प्रत्यय के अ आरम्भमें हो इसलिये जा+अन्ते=जायन्ते॥ जन्यते कर्मणि रुप है॥ जायते प्रथमपुरुष एकवचन वर्तमानकाल आत्मनेपदी है॥

एतदुक्तं निरपेक्षेषु तन्त्वादिषु पटादिकार्यं नास्तीति ॥ यत्तु तेनोपदर्शितं न तत्पटादिकार्यं, किं तर्हि केवलं तन्त्वादिकार्यं; तन्त्वादिकार्यमपि तन्त्वाद्यवयवेषु निरपेक्षेषु नास्त्येवेत्यस्मत्पक्षसिद्धिरेव ॥ अथ तन्त्वादिषु पटादिकार्यशक्त्यपेक्षया अस्तीत्युच्यते । नयेष्वपि निरपेक्षेषु बुद्ध्यभिधानरूपेषु कारणवशात्सम्यग्दर्शन-

---

एतद् १/१ ।।। उक्तम् १/१ ।।। निरपेक्षेषु ७/३ । तन्त्वादिषु ७/३	=यह कहा है (कि) परस्पर अपेक्षा रहित तारादिकों में
पट-आदिकार्यम् १/१ ।।। न* अस्ति । इति *	=वस्त्रादिक कारज (अर्थात् वस्त्र-निवाड़-इत्यादि बुनने रूप कार्य) नहीं होता है
यत् १/१ ।।। (=यद् १/१ ।।।) तु* तेन ३/१ । उपदर्शितम् १/१ ।।।	=और (=तु) जो (कार्य) तिस (तार) करि (वादीद्वारा) बतलाया गया है
न* तत् १/१ ।।। पटादिकार्यम् १/१ ।।। किंतर्हि*	=वह वस्त्रादि कार्य नहीं है परन्तु (=किं तर्हि) वा किन्तु (=किं तर्हि)
केवलम् १/१ ।।। तन्त्वादिकार्यम् १/१ ।।।; तन्त्वादिकार्यम् १/१ ।।।	=केवल तारा दिकोंका (न्याराही) कार्य है। तारादिकोंका (वादीद्वारा उपदर्शित) कार्य
अपि तन्त्वादि-अवयवेषु ७/३ । निरपेक्षेषु न अस्ति एव	=भी तारादिकोंके अंशोमें परस्पर अपेक्षारहित ही (=एव) नहीं है अर्थात् तारादिकोंका (वस्त्रादिक बुननेके कार्यसे न्यारा वादीद्वारा वर्णित) कार्य भी कितने ही धागे वा तार परस्पर यथा योग्य मिलतेहैं तभी होताहै अन्यथा नहीं ॥
इति* अस्मद्-पक्ष (=अस्मत्पक्ष)-सिद्धिः १/१ ।। एव*	=इस प्रकार हमारा (=अस्मद्) पक्ष (कि सापेक्ष ही कार्य उत्पन्न करते हैं परस्पर निरपेक्ष रहने पर कोई भी कार्य नहीं हो सक्ता) सिद्धि ही (=एव) है
अथ* तन्त्वादिषु ७/३ । पटादि-	=प्रश्न (=अथ) (निरपेक्ष) तन्तु आदिक (के अवयवनि)में वस्त्रादिक (बुनेजाने) का
कार्यम् १/१ ।।। शक्ति-अपेक्षया ३/१ ।। अस्ति । इति उच्यते ।	=कार्य शक्तिकी विवक्षा से है ऐसें कहिये है
निरपेक्षेषु ७/३ । अपि * बुद्धि-	=(उत्तर) परस्पर अपेक्षारहित नयों में भी (उनके भिन्न भिन्न) ज्ञान और
अभिधान रूपेषु ७/३ । कारणवशात् ५/१ । सम्यग्दर्शन-	=(उन के न्यारे न्यारे) नाम के कारण वशसे सम्यगदर्शन के

"तन्त्वादय इवेति विषम उपन्यासः। तन्त्वादयो निरपेक्षा अपि काश्चिदर्थमात्रां जनयन्ति। भवति हि कश्चित्प्रत्येकं तन्तुस्त्वक्त्राणे समर्थः। एकश्च वल्वजो बन्धने समर्थः। इमे पुनर्नया निरपेक्षाः सन्तो न काश्चिदपि सम्यग्दर्शनमात्रां प्रादुर्भावयन्तीति॥" नैष दोषः। अभिहितानवबोधात्। अभिहितमर्थमनवबुध्य परेणेदमुपालभ्यते।

"तन्त्वादय इव ···" इति* विषमः१। उपन्यासः१।	=(प्रश्न) "तन्त्वादय इव ··" ऐसा (उपर्युक्त) उदाहरण अनमेल है
तन्त्वादयः १। निरपेक्षाः १। अपि *	=(क्योंकि) तारादिक (एक दूसरेकी) अपेक्षारहित भी (एक तार दूसरे से भिन्न
काश्चित्* (=कान्+चित्) अर्थ-मात्राम् २॥	=भिन्न रहने परभी) केई एक (= काश्चित्) प्रयोजनमात्राओंको·(=अर्थमात्रान्)
जनयन्ति I कश्चित्* प्रत्येकम्* तन्तुः १।	=उत्पन्नकरतेहैं। कोई एक (= कश्चित्) पृथक् पृथक् (=प्रत्येकम्) तार
त्वच् – त्राणे ७॥। समर्थः १। भवति I हि*	=त्वचाके रक्षा करने में (अर्थात् सीवनें इत्यादि में) समर्थ होता ही (=हि) है
एकः १। च * वल्कजः १।	=और (=च) कोई एक (तार) जो वकलसे उपजाहै वा जन्माहै अर्थात् वकलका तार
बन्धने ७॥। समर्थः १।	=(भार-मनुष्य आदिक के) बांधने में समर्थ है
पुनः * इमे १। नयाः १। निरपेक्षाः १। सन्तः १।	=बहुरि (=पुनः) ये (=इमे-परस्पर) अपेक्षारहित विद्यमान (=सन्तः) नय
काश्चित् * अपि * सम्यग्दर्शनमात्राम् २॥	=किन्हीं भी (=अपि) सम्यक्तकी मात्राओंको वा सम्यग्दर्शन के अंशोंको
न*प्रादुर्भावयन्ति I इति* I न * एषः १। दोषः १।	=प्रकाश वा प्रगट नहीं करती हैं ऐसी (शंकापर कहतेहै कि) यह दूषण नहीं है।
अभिहित–अनवबोधात् ५। अभिहितम् २।	=कथितका बोध न होने (के हेतु) से (अर्थात्) कहे हुये के (=अभिहितम्)
अर्थम् २। अनवबुध्य ÷ परेण ३। इदम्* उपालभ्यते I	=तात्पर्य को न समझ करि प्रत्यर्थीसे (=परेण) यह उलहना दिया गया है

(१) भवति हि कश्चित्प्रत्येकं तन्तुस्त्वक्त्राणे समर्थः=होता ही है कोई एक भिन्न भिन्न तन्तु त्वचाके रक्षाकरने (सीवने आदि) में समर्थ॥ प्रश्नकर्ता अपने प्रश्नकी दृढ़ता में पूर्णतया विश्वास करके शब्दों पर अत्यन्त बल देकर उपर्युक्त वाक्यको कहता है और इस गौरव उच्चारण में 'भवति हि' को प्रथम लाकर 'समर्थः' अन्त में लाता है अतः इस वाक्य का शब्दशः अनुवाद जो टिप्पणी में दिया है वही होगा।

(२) वल्क, वल्कल (पु०न०) वल्कुट (न०)=छाल; वल्कज, वल्कलज, वल्कुटज=छाल से उपजा, छालका; वल्व वा वल्वजकोशमें नहीं मिला अतः द्वितीया वृत्तिमें अशुद्ध छपगयाहै॥ (३) अन्-अवबुध्य, संबन्ध सूचक भूतकृदन्तहै। पर (पु०) शत्रुके अर्थमें है परंतु यहां 'वादी'के अर्थमें आयाहै॥

ज्ञानदर्शनयोस्तत्त्वं । नयानां चैव लक्षणम् ॥ ज्ञानस्य च प्रमाणत्व- । मध्यायेऽस्मिन्निरूपितम् ॥ १ ॥ ॥ इति तत्त्वार्थवृतौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञायां प्रथमोऽध्यायः ॥

ज्ञानदर्शनयोः ६॥। तत्त्वम् १॥। नयानाम् ६। च* एव* लक्षणम् १॥। ज्ञानस्य ६॥। च *प्रमाणत्वम् १॥।	=ज्ञान और दर्शनका यथार्थ स्वरूप वा ज्यों कात्यों स्वरूप और(=च) नयोंका =ही (=एव) लक्षण, और (=च) (पांच) ज्ञानके प्रमाणता (ज्ञान को ही प्रमाणता सिद्ध करना)
अध्याये ७। अस्मिन् ७। निरूपितम् १॥। ॥१॥	=इस (प्रथम) अध्याय में वर्णन कियेगये हैं ॥ दोहा, "दर्शन बोध यथार्थता नयलक्षण वरणाय ॥ ज्ञान पंचकै मानता। कही आदि अध्याय" जय०२२१
इति* सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञायाम् ७॥ तत्त्वार्थ-वृतौ ७॥ प्रथमः १। अध्यायः १।	=इस प्रकार सर्वार्थ सिद्धिनाम (ग्रन्थ) में =तत्त्वार्थके विवरण में पहिला अध्याय (समाप्त वा पूर्ण) हुआ

परतु समभिरूढनय उस शब्द से प्रगट होने वाले अर्थको ही ग्रहण करताहै जैसे ऋजुसूत्रनय उत्पन्न होने से मरण पर्यन्त इन्द्र पद धारण करने वाले शची पतीको इन्द्र कहताहै परन्तु समभिरूढनय इन्दन शील ऐश्वर्यवान होतेहुये कोही इन्द्र कहताहै इन्द्र जिस समय पूजा करता है उस समय ऋजसूत्रनय से इन्द्र है परन्तु समभिरूढ नय से इन्द्र नहीं है ॥

ऋजु सूत्र और एवम्भूतनयों में यह अन्तरहै कि ऋजु सूत्र नय वस्तुकी वर्तमान कालकी पर्याय को ग्रहण करताहै परन्तु एवम्भूतनय जिस कालमें जो क्रिया करता हो वा क्रिया कर रहा हो उसको उस काल में उसी नाम से प्रगट करताहै वा कहताहै जैसे ऋजु सूत्र नय उत्पन्न होने से मरण पर्यंत इन्द्र पद धारण करने वाले शची पतिको इन्द्र कहताहै चाहे वह किसी समय कोई भी कार्य कर रहा हो परन्तु एवम्भूतनय देवों के पतिको परम ऐश्वर्य सहित हो उसी अवस्था में इन्द्र कहताहै पूजन, अभिषेकादि करते हुये को इन्द्र नहीं कहैगा इसी प्रकार जिस समय वह शक्तिरूप क्रिया को करे उसी समय शक्र कहैगा अन्य समय में शक्र नहीं कहैगा। न इन्द्र कहैगा जब कि वह शक्ति रूप क्रिया कर रहा हो ॥

( ) ऋजसूत्र-समभिरूढ और एवम्भूत नयों मे यह अन्तरहै कि ऋजुसूत्रनय वस्तुकी एक समय मात्र पर्यायको अथवा आरम्भसे अन्त तक एक पर्यायका ग्राही है, समभिरूढनय नाना अर्थको उलघन करके जो एक ही अर्थ में रूढ (प्रसिद्ध) हो उसका ग्राही है परन्तु एवम्भूतनय जो जिस समय जो क्रिया कर रहा हो उसको उस कालमें उस क्रिया ही के सबध वा सयोग से प्रगट करता है जैसे गाय पर्याय लीजिये तो ऋजुसूत्रनय जन्म से लेकर मरण पर्यंत उसको गाय समझताहै। समभिरूढनय गाय शब्दके पृथिवी माता वचन इत्यादि अनेक अर्थोंको छोड़कर जिसमें चलने की शक्ति हो ऐसे गाय (पशु) को लेताहै वह चलती हो बैठी हो सोती हो खारही हो सब अवस्था में समभिरूढनयकी अपेक्षा से वह गाय (पशु)ही है परन्तु एवम्भूतनय जिस समय वह चले फिरै उस समय गाय कहैगी सोते बैठी हुई को गाय न कहैगी चाहै उसमें चलने फिरनेकी शक्ति हो परन्तु उस समय चलती फिरती नहो तो एवम्भूत उसका गाय नहीं कहैगा ॥

हेतुत्वपरिणतिसद्भावात् शक्त्याऽऽत्मनाऽस्तित्वमिति साम्यमेवोपन्यासस्य ॥

हेतुत्व-परिणति-सद्भावात् ५।	=कारण रूपका विशेष रूप परिण मनके सद्भाव से
शक्त्या ३ ॥ आत्मना ३। अस्तित्वम् १॥।	=शक्ति(=शक्त्या) रूप (=आत्मना) करि अस्तित्वहै-सर्वांश-निरपेक्ष नयों में भी उन के नाम और ज्ञान के कारण से सम्यक्त्व के कारण पनेका शक्तिरूप से अस्तित्व है
इति० उपन्यासस्य ६।	=ऐसे दृष्टान्तकी (कि जैसे पुरुषके उद्योगसे तन्तु आदि परस्पर मिलने पर पटादि वस्तुओंको उपजाते हैं वैसे ही उक्त सात नय परस्पर सापेक्ष होकर
साम्यम् १॥ एव ०	=सम्यक्त्व को उपजाती हैं। समानताही है (विषमता वा अनमेलता नहीं है) ॥

"अथ तन्त्वादिषु······न्यासस्य" वाक्य का तात्पर्यः—वादीको इस शंकापर कि निरपेक्ष तंतुओं में शक्तिकी अपेक्षा पटादि कार्य करनेकी सामर्थ्य है इस लिये निरपेक्षतंतु वस्त्रादि कार्य स्वरूप कहे जा सकतेह (तैसे नयों की निरपेक्ष रूप में शक्ति नहीं है) इस के समाधानमें कहते हैं कि निरपेक्ष नयोंका भिन्न भिन्न नाम और उन का न्यारा न्यारा ज्ञान भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति में कारण रूप शक्ति रखता ही है ॥ इस लिये निरपेक्ष नय भी सम्यक्त्वके कारण पन सकते हैं इस रीति से दृष्टांत और दार्ष्टांत दोनों में समानता रहने से तंतुओंके उक्त उदाहरणको विषम वा अनमेल उदाहरण बतलाना असंगत है ॥

ध्यान रहे कि यथार्थ में किसी अभिप्राय विशेषको नय कहते हैं जितने अभिप्राय हो सकतेहैं उतने ही नय कहे जा सक्ते हैं अंतः अभिप्रायों के भेद अनंत होने से नयवाद भी अनंत हैं। वे स्थूल रूपसे परिगणित किये जाते हैं इसलिये संख्याते नय हैं ॥

(१) जिस पदार्थको जाना जाताहै वह विषयहै और जिसके द्वारा जाना जाताहै वह विषयीहै। निक्षेप विषय हैं नय विषयी हैं। नाम स्थापना-द्रव्य निक्षेप द्रव्यार्थिक नयके विषय भूतहैं अर्थात् ग्रहण किये जातेहैं और भाव निक्षेप पर्यायार्थिक नयका विषय भूत है ॥ समभिरूढ नय और एवंभूत के अन्तर या भेदके लिये देखो पृष्ठ१००॥अतीत अनागत दोनो पर्यायोंको छोड़कर वर्तमान पर्यायोंको ग्रहणकरे सो ऋजु सूत्र नयहै। यह सूक्ष्म ऋजुसूत्र और स्थूलऋजु सूत्रसे दो भेद रूपहै ॥ एक समय वर्ती पर्याय जो अवाच्यहै और जिसको अर्थ पर्याय कहतेहैं (क्योंकि वस्तु समय समय परिणमैहै)सूक्ष्म ऋजुसूत्र नयका विषयहै॥और एक पर्यायके आरम्भसेअंत तक ग्रहण करैसो स्थूल ऋजुसूत्रहै जैसे मनुष्यादि पर्यायहैंसो अपने अपने आयु परिमाण रहती हैं ॥ ऋजुसूत्र नय और समभिरूढनय में भेद यह है कि ऋजुसूत्रनय वर्तमान उक्त पर्यायोंको ही ग्रहण करता है ॥

आत्मनि कर्मणः स्वशक्तेः कारणवशादनुद्भूतिरुपशमः। यथा कतकादिद्रव्यसम्बन्धादम्भसि पङ्कस्य उपशमः॥ क्षयः आत्यन्तिकी निवृत्तिः॥ यथातस्मिन्नेवाम्भसि शुचिभाजनान्तरसंक्रान्ते पङ्कस्यात्यन्ताभावः॥ उभयात्मको मिश्रः। यथा तस्मिन्नेवाम्भसि कतकादिद्रव्यसम्बधात्पङ्कस्य क्षीणाक्षीणवृत्तिः॥ द्रव्यादिनिमित्तवशात्कर्मणां फलप्राप्तिरुदयः॥ द्रव्यात्मलाभमात्रहेतुकःपरिणामः॥

पदच्छेद और विभक्तयर्थ सहित प्रथम सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद॥

आत्मनि ७।१ कर्मणः ६।१ स्वशक्तेः ६।१ कारणवशात् ५।१ =आत्मा में कर्म की निज सामर्थ्य के निमित्त के वश से वा आश्रय से
अनुद्भूतिः १।१ उपशमः १।१ यथा * कतकादिद्रव्यसम्बन्धात् ५।१ =उदय न होना (सो) उपशम है। जैसे निर्मली आदिक वस्तु के संयोग से
अम्भसि ७।१ पङ्कस्य ६।१ उपशमः १।१ =जलमें कीचका शान्ति वा समता होना अर्थात् कीचड़ का नीचे बैठ जाना ऊपर से जल का निर्मल होना सो उपशम है

क्षयः १।१ आत्यन्तिकी १।१ निवृत्तिः १।१ =कर्मोंका अत्यंत नाश सो क्षय है (कर्मका सत्ता से उठजाना सो क्षय है)
यथा* तस्मिन् ७।१ एव* अम्भसि ७।१ शुचिभाजनान्तरसंक्रान्ते ७।१ =जैसे उसी जल को निर्मल अन्य पात्र में लेनेपर
पङ्कस्य ६।१ अत्यन्तअभावः १।१ उभयआत्मकः १।१ मिश्रः १।१ =कीचड़ का अत्यन्त अभावहोजाताहै। उपशम क्षयका मिलाहुआस्वरूप मिश्रहै
यथा* तस्मिन् ७।१ अम्भसि ७।१ कतकादिद्रव्यसंबन्धात् ५।१ =जैसे उसी जल में निर्मली आदि वस्तु के संयोग से
पङ्कस्य ६।१ क्षीण-अक्षीण वृत्तिः १।१ =कर्दम की क्षीण अक्षीण स्थिति हो जाती है अर्थात् कुछ कीचड़ पैदे में बैठ जातीहै कुछ गदली रह जाती है। कुछ बाहर निकल जाती है

(तैसे क्षयोपशम है) भावार्थ कोदों एक जाति का धान्य विशेष है वह मादक पदार्थ है। जिस समय उसे जल से धो दिया जाता है उस समय धोने से कुछ मादकशक्तिके क्षीण हो जाने पर और कुछ के तदवस्थ रहने पर जिस प्रकार कोदो पदार्थ मिश्र मादक शक्ति का धारक कहा जाता है। उसी प्रकार कर्मों के क्षय करने वाले कारणों के उपस्थित होने पर कर्म की कुछ शक्ति के नष्ट हो जाने पर और कुछ के सत्ता में मोजूद रहने पर एव कुछ के उदय रहने पर जो आत्मा की (दही गुड़ के समान) मिली हुई भावों की अवस्था होती है उस अवस्था का नाम मिश्र है॥

द्रव्यआदिनिमित्तवशात् ५।१ कर्मणाम् ६।३ फल प्राप्तिः १।१ =द्रव्य क्षेत्र काल भाव के कारण वश से कर्मो के रसका लाभ
उदयः १।१ द्रव्यात्म लाभमात्र-हेतुकः १।१ परिणामः १।१ =सोउदय है वस्तुकेनिजस्वरूप(आत्म)की प्राप्तिमात्रमेंनिमित्तकसोपरिणामहै

अथ द्वितीयोऽध्यायः॥ आह सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपदिष्टेषु जीवादिष्वादावुपन्यस्तस्य जीवस्य किं स्वतत्त्वमित्युच्यते—

॥ औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

अथ * द्वितीयः१ अध्यायः१ आह I सम्यग् दर्शनस्य६ = दूसरा अध्याय प्रारम्भ (अथ) है। (शिष्य) पूछता है कि सम्यग् दर्शनका

विषयभावेन ३ उपदिष्टेषु ७ जीवादिषु ७ = विषयभावकरि उपदेश किये गए जीवादिक तत्त्वों के

आदौ ७ उपन्यस्तस्य ६ जीवस्य ६ स्वतत्त्वम् १ = आदि में कहेगये (उपन्यस्तस्य) जीवका निजभाव (स्वतत्व)

किम् * इति * उच्यते I = क्या है ऐसा (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाता है कि,

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

औपशमिकक्षायिकौ १ भावौ १ मिश्रः १ च * = औपशमिकभाव, और क्षायिक भाव और क्षायोपशमिक (भाव)

जीवस्य६ स्वतत्त्वम्१ औदयिक पारिणामिकौ१ च * = जीव के निज भाव वा निज स्वभाव हैं औदयिक तथा पारिणामिक भी हैं

अर्थात् जीव के औपशमिक और क्षायिक और मिश्र तथा औदयिक और पारिणामिक ये पांच भाव हैं। और ये पांचों ही भाव जीव के निजतत्व निजभाव हैं क्यों कि ये जीव में ही होते हैं? जैसे मलिन जल में निर्मली वा फिटकड़ी डालने से कीचड़ नीचे बैठ जाती है और ऊपर से जल निर्मल हो जाता है उसी प्रकार कर्मों के उपशम होने से (उदय न होने से) जीव के परिणाम जो शुद्ध हो जाते हैं उनको औपशमिक भाव कहते हैं। कर्मोंके सर्वथा नाश होने से जो आत्मा के शुद्धभाव होते हैं। उनको क्षायिक भाव कहते हैं। सर्वघाती कर्मों के उदयाभावीक्षय और उन्ही सर्वघातीस्पर्द्धकोंका सत्तामें उपशम होने तथा देशघाती कर्मोंके उदय होने से जो भाव होते हैं उनको मिश्र भाव अथवा क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। द्रव्यक्षेत्र काल भाव रूप निमित्तसे कर्म जो अपना रस (फल) देता है उसको उदय कहते हैं। उन कर्मों के उदय से जो आत्माकेभाव होते हैं उनको औदयिक भाव कहते हैं। और जिन भावो में कर्मों की उदय उपशम क्षायोपशम कुछ भी अपेक्षा नहीं है उन भावोंको पारिणामिक भाव कहते हैं

संसार्यपेक्षया द्रव्यतस्ततोऽसंख्येयगुणत्वाच्च । तत उत्तरं मिश्रग्रहणं तदुभयात्मकत्वात्ततोऽसंख्येय गुणत्वाच्च । तेषां सर्वेषामनन्तगुणत्वादौदयिकपारिणामिकग्रहणमन्तेक्रियते ।

संसार्यपेक्षया द्रव्यतः * ततः* असंख्येय गुणत्वात् च=और संसारी जीव की विवक्षाकरि द्रव्य अपेक्षासे तिस औपशमिक-वाले जीव से (क्षायिक वालेजीव) असंख्यात गुणेभी हैं

ततः* उत्तरम् मिश्र ग्रहणम् तदुभयात्मकत्वात् =तिस(क्षायिक)सेपीछे (=उत्तरम्)मिश्रका ग्रहणहैवोक्षायोपशमिकाग्रहणहै क्योंकि उस (मिश्र) के दोनों (क्षायिक और उपशम) स्वरूप हैं

ततः * असंख्येयगुणत्वात् च * =और उस (क्षायिक) से असंख्यात गुणें जीव भी हैं।

तेषां सर्वेषाम् अनन्तगुणत्वात् =तिन सब(औपशमिक क्षायिक, मिश्र) के अनन्त गुण (जीव) होने से

औदयिक-पारिणामिक-ग्रहणम् अन्ते क्रियते । =औदयिक पारिणामिक का ग्रहण अन्त में किया गया है

---

(१) उपशम सम्यक्त्व का काल अन्तर मुहूर्त मात्र है तिस से जीव अल्प ही इकट्ठे होने पाते हैं और क्षायिक सम्यक्त्व का काल तेतीस सागर से कुछ अधिक है अर्थात् उपशम से क्षायिक काल असख्यात गुणा है। तिस से उस मे जीवों की सख्या भी असख्यात गुणी हुई। क्षायोपशमिक का काल छयासठ सागर है तिस से क्षायिक सम्यग् दृष्टियों से द्रव्य अपेक्षा से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि असख्यात गुणे हैं। स्मरण रहे कि क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि द्रव्य की अपेक्षा असख्येय गुणे है भाव की अपेक्षानहीं क्योंकि विशुद्धी की अधिकता से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की अपेक्षा क्षायिक सम्यक्त्व अनंत गुणा माना है इस लिए भाव की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यग्दृष्टियो से असख्यात गुणे नहीं माने जा सकते। तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का सचय काल छयासठि सागर प्रमाण है और उस में प्रथम समय से आदि लेकर समय समय काल की समाप्ति पर्यत इकट्ठे होने वाले वहुत से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होते रहते है इस लिए यहां पर भी आवली के असख्यातवें भाग प्रमाण गुणा कार मानने से क्षायिक सम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि उस गुणकार प्रमाण हैं। इस प्रकार क्षायिक की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टियों के अधिक होने से सूत्रमे क्षायिक के पीछे मिश्र शब्द का उल्लेख है। (प० जयचद वचनिका२२४)

२ उपशमः प्रयोजनमस्येत्यौपशमिकः । एवं क्षायिकः, क्षायोपशमिकः, औदयिकः, पारिणामिकश्च ॥ त एते पञ्च भावा असाधारणा जीवस्य स्वतत्त्वमित्युच्यन्ते ॥ सम्यग्दर्शनस्य प्रकृतत्वात्तस्य त्रिषु विकल्पेषु, औपशमिकमादौ लभ्यत इति तस्यादौ ग्रहणं क्रियते । तदनन्तरं क्षायिकग्रहणं तस्य प्रतियोगित्वात्

अर्थात् जिससे द्रव्य के निज का पावना होय सो पारिणामिक है।

उपशमः१ प्रयोजनम् १।। अस्य६। इति*औपशमिकः१=उपशम है प्रयोजन जिसका ऐसा औपशमिक है।

एवम्*क्षायिकः१। क्षायोपशमिकः१। औदयिकः१। =उसी प्रकार क्षायिक, क्षायोपशमिक औदयिक

परिणामिकः१।च* =और पारिणामिक है अर्थात् इन सब में प्रयोजन अर्थ में इक् प्रत्यय है।

ते १। एते १। पञ्च १। भावाः१। असाधारणाः१।जीवस्य६। =ये पांचों भावअसाधारण जीवके अर्थात् जीव हीमें होतेहैं अन्यकिसीमेंनहींहोतेहैं

स्वतत्त्वम् १।। इति * उच्यन्ते T =निज भाव हैं ऐसे कहेगये हैं।

सम्यग्दर्शनस्य ६।। प्रकृतत्वात् ५।। तस्य ६।। त्रिषु ७। =सम्यग्दर्शन का प्रकरण वा अधिकार होने से तिससम्यग्दर्शन के तीन

विकल्पेषु ७। औपशमिकम् १।। आदौ ७। लभ्यते T =भेदोंमें औपशमिक आदि में वा पहिले प्राप्त किया जाता है

इति तस्य ६।। आदौ ७। ग्रहणम् १।। क्रियते T =इस प्रकार तिस (औपशमिक) का सूत्र में प्रथम आदान(ग्रहण) किया गया है

अर्थात् अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के प्रथम ही उपशम सम्यक्त्व होता है इस लिए सूत्र में पहिले वही कहा गया है

तदनन्तरम् १।। क्षायिक ग्रहणम् १।। तस्य ६।। =तिस(औपशमिक)के अत्यन्त समीप क्षायिकका ग्रहणहै क्योंकि तिसऔपशमिककी

प्रतियोगित्वात् ५।। =(निर्मल ताई में)प्रतियोगी है बरोबरी होड़ वा स्पर्द्धा करने वाला क्षायिक है

भावार्थ मिथ्यात्व,सम्यङ् मिथ्यात्व और सम्यक प्रकृति मिथ्यात्व ये सम्यग्दर्शन की विरोधी प्रकृतियें हैं इन तीनों के सर्वथा नाश होने पर क्षायिक सम्यक्त्व होता है अतः क्षायिक सम्यक्त्व की विशुद्धता उपशम सम्यक्त्व की विशुद्धता से अधिक है इस लिए सूत्र में औपशमिक के पश्चात् क्षायिक का ग्रहण किया है।

(१) लभ् -डुलभष् भ्वादि प्रथम गण का सकर्मक आत्मने पदी धातु है कर्मणि प्रधान प्रयोग में यक् (=य) प्रत्यय जोड़ कर ते प्रथम पुरुष एक ... प्रत्यय ने से लभ्यतेवना है।

तर्हि क्षायोपशमिकग्रहणमेव कर्तव्यमिति चेन्न। गौरवात्॥ मिश्रग्रहणं मध्ये क्रियते उभयापेक्षार्थम्। भव्यस्य औपशमिकक्षायिकौ भावौ। मिश्रः पुनरभव्यस्यापि भवति औदयिकपारिणामिकाभ्यां सह भव्यस्यापीति॥

किंतु उनसे भिन्न अन्य ही दो भावों की मिली हुई अवस्था मिश्र कही जायगी जोकि निरुद्ध है इसलिए द्वंद्वगर्भित सूत्र न कहकर जैसा सूत्रकार ने सूत्र बनाया है वही ठीक है और उसमें च शब्दसे औपशमिक और क्षायिक भावों की मिली हुई अवस्था ही से मिश्रभाव का अर्थ लिया जासकता है अन्य का नहीं।

तर्हिक्षायोपशमिकग्रहणम्॥एव कर्तव्यम्॥इति चेत्=(प्रश्न)तो(सूत्र में) क्षयोपशमिक (शब्द)का ग्रहण ही करना चाहिए ऐसी शंका है

न * =(उत्तर)(मिश्र शब्द के स्थान में क्षायोपशमिक शब्द का ग्रहण)(नहींकरना चाहिए)

गौरवात्॥ मिश्रग्रहणम्॥ मध्ये॥ =क्योंकि (सूत्र) गौरव होजाता वा बढ़जाता। मिश्र(शब्द) का आदान बीचमें

उभयापेक्षार्थम्॥ क्रियते भव्यस्य। =दोनों (पहिले पिछले) की विवक्षाके लिए कियागया है। भव्य(जीव) के

औपशमिकक्षायिकौ। भावौ। =औपशमिक क्षायिक (दोनों) भाव हैं

मिश्रः। पुनः*अभव्यस्य। अपि भवति T =बहुरि मिश्र(भाव) अभव्य के भी होता है

औदयिकपारिणामिकाभ्याम्।सह*भव्यस्य। =औदयिक पारिणामिक(भावों) सहित भव्य(जीव)

अपि इति =भी है(अभव्य भी है) तीनों वाक्यों की व्याख्या ऐसे हैं कि औपशमिक और क्षायिक यह युग्म और औदयिक एवं पारिणामिक यह युगल,इन दोनों युगलोंके बीचमें मिश्र भाव पाठ रक्खा है ऐसा करनेसे इतना ही प्रयोजन समझ लेना चाहिए कि भव्यके औपशमिक आदि पांचों भाव होते हैं अर्थात्(१)औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिक चारित्र (२)क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र(३)क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और ज्ञान एवं क्षायोपशमिक चारित्र(४)औदयिक और(५) पारिणामिक ये पांचों भाव भव्यकेही होते हैं और अभव्यों के क्षायोपशमिक औदयिक और पारिणामिक ये तीन ही भाव होते हैं। औपशमिक और क्षायिक ये दो भाव अभव्यके नहीं होते हैं

अत द्वन्द्वनिर्देशः कर्तव्यः । औपशमिकक्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिका इति। तथा सति द्विश्चशब्दो न कर्तव्यो भवति ॥ नैवं शंक्यम् । अन्यगुणापेक्षया मिश्र इति प्रतीयेत । वाक्ये पुनः सति चशब्देन प्रकृतोभयानुकर्षः कृतो भवति ॥

अतः * द्वन्द्व निर्देशः १। कर्तव्यः १। औपशमिक-	=(प्रश्न) अतः द्वन्द्व समासका उच्चारण(=निर्देश)करना चाहिये। औपशमिक
क्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिकाः १॥ इति *	=क्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिका ऐसा (सूत्र) होता
तथा * सति ७। द्विः १। च शब्दः १। न कर्तव्यः १। भवति T	=ऐसा होने पर दो 'च' शब्द न करने होते अर्थात् सूत्र में दो चकार न्यूनहोजाते
न एवं शंक्यम् १॥ — अन्य गुण-	=(उत्तर) एसी शंका न करो (औपशमिक और क्षायिकसे)अन्य (दो)भावोंकी
अपेक्षया ३॥ मिश्रः१। इति प्रतीयेत T	=अपेक्षासे मिश्र ऐसा निर्णय वा प्रतीति कियाजाय
	(यदि मिश्र शब्द के पश्चात् सूत्र में च शब्द न होता तो)
वाक्ये ७॥ पुन * सति ७॥ च * शब्देन ३।	=और "चशब्द" सहित सूत्र (=वाक्ये) होने पर (=सति)
प्रकृतः१। उभयानुकर्षः १। कृतः १। भवति T	=अधिकार किये गये वा विषयभूत दोनों(औपशमिक क्षायिक)का ग्रहणकियाहै

इस समस्तप्रश्नोत्तरकाभाव यहहै(प्रश्न)सूत्रकारने'औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्वमौदयिक पारिणामिकौ च' ऐसा पढा है परन्तु उतने लम्बे चोड़े सूत्रके स्थान पर 'औपशमिक क्षायिक मिश्रौदयिक पारिणामिकाः' ऐसा सूत्र बनाना ठीक था । ऐसे सूत्र के बनाने में दो जगह दो च शब्द कहने पड़े हैं वे भी न कहने पड़ते बड़ा भारी लाघव होता जोकि सूत्र कारों के मत में महान लाभ माना गया है इसलिए वैसा लम्बा चौड़ा सूत्र नहीं बनाना चाहिए (उत्तर) औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्चेत्यादि जैसा सूत्र कार ने सूत्र पढा है उस में च शब्द से पहिले कहे गये औपशमिक और क्षायिक भावों का अनुकर्षण होता है और उस से औपशमिक और क्षायिक भावों की मिली हुई अवस्था मिश्रभाव लिया जाता है किंतु अब वैसा सूत्र न कह कर यदि औपशमिक क्षायिक मिश्रेत्यादि द्वंद्वगर्भित सूत्र किया जायगा तो च शब्द के अभाव में औपशमिक और क्षायिक का अनुकर्षण न होने पर औपशमिक और क्षायिक की मिली हुई अवस्था तो मिश्र भाव कही नहीं जायगी ॥

प्रतीयेत । प्रति उपसर्ग है । इ=अदादिगणका धातु जाना अर्थ में है प्रति+इ=प्रती, कर्मणि प्रधानका य जोड़ कर और विधिलिङ्ग अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी ईत प्रत्यय जोड़ कर प्रती+य+ईत=प्रतीयेत रूप बना जिस का अर्थ " जानाजाय " है

॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्[१] ॥२॥

द्व्यादीनां संख्याशब्दानां कृतद्वन्द्वानां भेदशब्देन सह स्वपदार्थेऽन्यपदार्थे वा वृत्तिर्वेदितव्या ॥

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

=औपशमिकादीनां भावानां द्विनवाष्टदशैक विंशति त्रिभेदा यथाक्रमम् भवन्ति ॥२॥

पदच्छेद =औपशमिकादीनां भावानां द्वि–नव–अष्टादश–एकविंशति – त्रिभेदाः यथाक्रमम् भवन्ति

सूत्रार्थ =औपशमिकादीनाम् [६]। भावानाम् [६]। =औपशमिक क्षायिक मिश्र औदयिक पारिणामिक भावों के

द्विनव–अष्टादश–एकविंशति–त्रिभेदाः [१]। =दो, नव, अठारह इक्कीस और तीन भेद

यथाक्रमम् * भवन्ति T =अनुक्रम से होते हैं अर्थात् औपशमिक भाव दो प्रकार का है क्षायिक भाव नव प्रकार का है मिश्र भावअठारह प्रकार का है औदयिक भाव इक्कीस प्रकार का है और पारिणामिक भाव तीन प्रकार का है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित द्वितीय सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति का शब्दशः हिन्दी अनुवाद

द्व्यादीनाम्[६]। संख्याशब्दानाम्[६]। कृतद्वन्द्वानाम्[६]। =दो आदिक गिनती शब्दों का वनाहुआद्वन्द्व समास (कृतद्वन्द्वानांवृत्ति)

भेदशब्देन[३]। सह * स्वपदार्थे[७]। अन्यपदार्थे[७]।वा * =और भेद शब्द के सहित(=सह) स्वपदार्थ में अथवा अन्य पदार्थ में

वृत्तिः [१]॥ वेदितव्या [१]॥ =वृत्ति जानना योग्य है भावार्थ दो नव अठारह आदि संख्याओं का द्वन्द्व =समास और सूत्रमेंभेदशब्दके स्वपदार्थ वृत्ति वा अन्यपदार्थवृत्ति जानना ८

इस सूत्र का दोनों श्वेताम्बर आम्नाय और दिगम्बर आम्नाय मे पाठ और अर्थ एकसा है ।

भावापेक्षया तल्लिङ्गसंख्याप्रसङ्गः स्वतत्त्वस्येति चेन्न । उपात्तलिङ्गसंख्यात्वात् ॥ तद्भावस्त. त्त्वम् । स्वं तत्त्वं स्वतत्त्वमिति ॥ अत्राह तस्यैकस्यात्मनो ये भावा औपशमिकादयस्ते किं भेदवन्त उताभेदा इति । अत्रोच्यते भेदवन्तः । यद्येवं, भेदा उच्यन्तामित्यत आह—

क्षायोपशमिक भावों में भी ज्ञान और दर्शन दो ही भाव होसकते हैं ज्ञान दर्शन से मिथ्या ज्ञान और मिथ्या दर्शन समझना चाहिये क्योंकि सम्यग्दर्शन के विना सम्यगज्ञान आदि नहीं होते ॥

भावापेक्षया॥ तत् ॥ लिङ्ग संख्या-प्रसङ्गः ॥ =(प्रश्न)भाव(शब्द)की अपेक्षासे उस(भावशब्दके लिङ्ग और संख्या का संयोग

स्वतत्वस्य ॥ इति चेत्* =स्वतत्व (शब्द) के होता है ऐसी शंका है (=चेत्)

प्रश्न का भावार्थ यह है कि भावशब्द पुल्लिङ्ग है इसलिए स्वतत्व शब्द भी पुलिङ्ग चाहिए और भावों की गणना बहुत है इसलिए स्वतत्व शब्द के भी बहु वचन चाहिए, स्वतत्व शब्द नपुंसकलिङ्ग और एक वचन है सो न चाहिए

न*उपात्तलिङ्ग संख्यात्वात् ॥ =(उत्तर)नहीं होता॥क्योंकि (स्वतत्व शब्द के) गृहीतलिङ्ग संख्या है अर्थात् स्वतत्व शब्द की लिङ्ग और संख्या पलटती नहींहै यह भाववाची होनेसे एक वचन और नपुंसकलिङ्ग होता है ॥

तद्भावः॥तत्वम् ॥ स्वम् ॥ तत्वम्॥स्वतत्वम् ॥इति=जिसका भाव सोतत्वहै । निजभाव(सो)स्वतत्व ऐसे (स्वतत्व शब्दकी व्युत्पत्तिहै)

अत्र*आहItस्य॥ एकस्य॥ आत्मनः॥ =यहां (शिष्य)पूछता है (कि)उस एक चेतन के

ये ॥ भावाः॥औपशमिक आदयः॥ते किम् भेदवन्तः =ये (पांच)भाव औपशमिक आदिक हैं ते भेद सहित हैं

उत॥*अभेदाः॥इति*अत्र*उच्यतेIभेदवन्तः॥ =अथवा (=उत) भेद रहित हैं(उत्तर) यहां कहा जाता है कि भेद सहित हैं

यदि*एवम् भेदाः॥उच्यताम्Iइतिःअतः* आह I =(प्रश्न) जो ऐसे हैं (तो उनके) भेद कहा जाना चाहिये। अतः कहते हैं कि

इति ॥ यद्येवमौपशमिकस्य कौ द्वौ भेदावित्यत आह—

॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

१० व्याख्यातलक्षणे सम्यक्त्वचारित्रे ॥ औपशमिकत्वं कथमिति चेदुच्यते। चारित्रमोहो द्विविधः कषायवेदनीयो नोकषायवेदनीयश्चेति ॥ तत्र कषायवेदनीयस्य भेदा अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमान-मायालोभाश्चत्वारः,

इति *	=ऐसे (यथासंख्य वा क्रमसे दो नव अठारह आदिक संख्यायें औपशमिक क्षायिक मिश्र आदिकों पर लगाये जाते हैं)
यदि * एवम् * औपशमिकस्य ६। कौ १। द्वौ १। भेदौ १।	=(प्रश्न) जो इस प्रकार है (तो) औपशमिकके कौनसे दो भेद हैं
इति * अतः * आह T	=इसलिये कहते हैं कि

सम्यक्त्वचारित्रे[1] ॥ ३ ॥

=सम्यक्त्व चारित्रे द्वावौपशमिकौ भावौ भवतः ॥३॥

सम्यक्त्वचारित्रे १॥द्वौ औपशमिकौ १। भावौ १। भवतः T=सम्यक्त्व तथा चारित्र दो औपशमिक भावहैं-औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिकचारित्रहैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित तृतीय सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

व्याख्यातलक्षणे १॥। सम्यक्त्वचारित्रे १॥।	=पूर्व जिन के स्वरूपकहे हैं वे सम्यक्त्व और चारित्र हैं
औपशमिकत्वम् १॥। कथम् * इति * चेत् * उच्यते T	=औपशमिकपना कैसे है ऐसा(=इति) संदेह(=चेत्)होनेपर कहागयाहै(=उच्यते) कि
चारित्रमोहः १। द्विविधः १। कषायवेदनीयः १।	=चारित्रमोह दो प्रकारका है कषायवेदनीय
नोकषायवेदनीयः १। च * इति *	=और नोकषायवेदनीय इस प्रकार है। (किंचित् कषाय=ईषत्कषाय)
तत्रकषायवेदनीयस्य ६। भेदाः१। अनन्तानुबन्धिनः १।	=तहां कषायवेदनीयके भेद अनन्तानुबन्धी
क्रोध मान-माया-लोभाः १। चत्वारः १।	=क्रोध-मान-माया-लोभ चार हैं ॥ १०

(१) इस सूत्रका दोनो दिगम्बर और श्वताम्बर आम्नायों में पाठ और अर्थ एकसा है (२) आत्माको कषै वा क्लेशितरूप करै उसे कषाय कहते हैं (३) आत्मामें पहिले सम्यक्त्व पर्याय की प्रकटता होती है पीछे चारित्र पर्याय का उदय होता है इस लिए सम्यक्त्वकी प्रकटता चारित्र से पहिले होने के कारण सम्यक्त्व चारित्र इस सूत्र में सम्यक्त्व शब्द का पहिले प्रयोग किया गया है ॥

द्वौ च नव च अष्टादश च एकविंशतिश्च त्रयश्च द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयस्त एव भेदा येषामिति वा वृत्तिर्द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा इति ॥ यदा स्वपदार्थे वृत्तिस्तदा औपशमिकादीनां द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयो भेदा इत्यभिसम्बन्धः क्रियते अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति ॥ यदाऽन्यपदार्थे वृत्तिस्तदा निर्दिष्टविभक्त्यन्ता एवाभिसम्बध्यन्ते। औपशमिकादयो भावा द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा इति ॥ यथाक्रमवचनं यथासंख्यप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ औपशमिको द्विभेदः। क्षायिको नवभेदः मिश्रोऽष्टादशभेदः। औदयिक एकविंशतिभेदः। पारिणामिकस्त्रिभेदः

द्वौ:१। च*नव१। च*अष्टादश१। च*एकविंशतिः१॥ च =बहुरिदो और नव तथा अठारह और इक्कीस
त्रयः१।च*द्विनवअष्टादशैकविंशतित्रयः१। =और तीन दो–नव–अठारह इक्कीस और तीन(ये द्वन्द्ववृत्तिवाद्वन्द्वसमासहुआ)
ते१। एवभेदाः१। येषाम्६। इति*वा*वृत्तिः१॥ =तेही हैं भेद जिनके ऐसी (अन्यपदार्थवृत्ति हुई) अथवा
द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदाः१। इति* =दो–नव–अठारह–इक्कीस तीन भेद ऐसे हैं (येस्वपदार्थवृत्ति हुई)
यदा*स्वपदार्थे७।वृत्तिः१॥तदा*औपशमिकआदीनाम्६। =जब स्वपदार्थमें वृत्ति है तब औपशमिक आदिकों के
द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयः१।भेदाः १। =दो–नव–अठारह इक्कीस–तीन भेद हैं
इति अभिसम्बन्धः१। क्रियते T =ऐसा सम्बन्ध किया गया है (अर्थात् भेद शब्द संख्याही का सम्बन्धी हुआ और पांचों भावों का बहुवचन षष्ठीविभक्ति करि कहना जो ये भेद पांच भावों के हैं
अर्थवशात्५। विभक्ति परिणामः१। इति* =अर्थ के आधारसे वा प्रयोजन के आश्रय से विभक्ति का भिन्नपनावा परिणमन है
यदा*अन्यपदार्थे७। वृत्तिः१॥ तदा*निर्दिष्ट =जब अन्यपदार्थ में वृत्ति है(जैसे ते ही हैं भेद जिनके)तब(सूत्रमें) कही हुई
विभक्त्यन्ताः१। एवाभिसम्बध्यन्ते T =अन्तवाली विभक्तिसमझीजाय है अर्थात् भावोंके वही विभक्तिरहीजोसूत्रमेंकही
औपशमिकादयः१। भावाः १। द्विनवाष्टादश– =औपशमिक आदि भाव हैं दो–नव–अठारह
एकविंशतित्रिभेदाः१। इति*यथाक्रमवचनम्१॥ =इक्कीस तीन ऐसे(=इति)भेद हैं॥ (सूत्रमें)यथाक्रम वाक्य
यथासंख्यप्रतिपत्त्यर्थम्१॥ औपशमिकः१। =संख्यानुसारकी प्राप्ति (=प्रतिपत्ति) के लिए है अर्थात् औपशमिक
द्विभेदः१।क्षायिकः१। नवभेदः१।मिश्रः१। अष्टादशभेदः१। =दो भेद रूप है क्षायिक नो भेद रूप है क्षायोपशमिक अठारह भेद रूप है
औदयिकः१। एकविंशतिभेदः१। पारिणामिकः१। त्रिभेदः१। =औदयिक इक्कीस भेद रूप है पारिणामिक तीन भेद रूप है

नाधिके इति इयमेका काललब्धिः॥ अपरा कर्मस्थितिकाललब्धिः। उत्कृष्टस्थितिकेषु कर्मसु जघन्यस्थितिकेषु च प्रथमसम्यक्त्वलाभो न भवति॥ क्व तर्हि भवति?। अन्तः कोटीकोटी सागरोपमस्थितिकेषु कर्मसु बन्धमापद्यमानेषु विशुद्धपरिणामवशात्सत्कर्मसु च ततः संख्येयसागरोपमसहस्रोनायामन्तःकोटीकोटीसागरोपमस्थितौ स्थापितेषु प्रथमसम्यक्त्वयोग्यो भवति॥

न*अधिके ७।१ इति* इयम् १।१ एका १।१ काललब्धिः१।१ =न कि अधिक (संसार काल के अवशेष रहने) पर इस प्रकार एक काल लब्धि है

अपरा १।१ कर्मस्थितिकाललब्धिः १।१ =दूसरी कर्मस्थिति काललब्धि अर्थात् यह काल लब्धि जिसका लाभ कर्मोंकी विशेषस्थिति पर निर्भर है वह कर्म स्थिति आगे कहते हैं

उत्कृष्टस्थितिकेषु७।३ कर्मसु७।३ जघन्यस्थितिकेषु७।३ च* =उत्कर्षस्थितिवाले कर्मों में तथा (=च) जघन्यस्थिति वाले कर्मों में

प्रथमसम्यक्त्वलाभः १।१ न* भवति I =प्रथम उपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिवाले वा जघन्य स्थितिवाले कर्मोंके विद्यमान रहते प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहण की योग्यता नहीं होती।

क्व*तर्हि*भवति I अन्तःकोटीकोटीसागरोपमस्थितिकेषु७।३ =(प्रश्न) तो (प्रथम सम्यक्त्व की लब्धि, कहां होती है (एक) कोड़ी कोड़ी सागरोपमके भीतर २ (=अन्त) स्थितिलिये

कर्मसु ७।३ बन्धम् २।१ आपद्यमानेषु ७।३ =कर्मोंके बन्धभाव को प्राप्त होने पर (आपद्यमानेषु)

विशुद्धपरिणामवशात् ५।१ सत्कर्मसु ७।३ च* ततः* =और (वहां) निर्मल परिणाम के आश्रय से सत्तामें संचित कर्मोंकी स्थिति

संख्येयसागरोपमसहस्र+ऊनायाम् ७।१ =संख्यातेहजारसागरोपमहीन

अन्तः कोटीकोटीसागरोपमस्थितौ ७।१ स्थापितेषु ७।३ =अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपमस्थितिमेंसे) रह जानेपर (स्थापितेषु)

प्रथमसम्यक्त्वयोग्यः १।१ भवति I =प्रथम सम्यक्त्व के (ग्रहण) योग्य (जीव) होता है

(भावार्थ) आयुकर्मके विना घुणाक्षरन्यायसे अंतः कोटिकोटिसागरप्रमाणकर्म

दर्शनमोहस्य त्रयोभेदाः सम्यक्त्वं, मिथ्यात्वं, सम्यङ्मिथ्यात्वमिति, आसां सप्तानां प्रकृतीनामुपशमादौपशमिकंसम्यक्त्वम् ॥ अनादिमिथ्यादृष्टेर्भव्यस्य कर्मोदयापादितकालुष्ये सति कुतस्तदुपशमः। काललब्ध्यादिनिमित्तत्वात्॥ तत्र काललब्धिस्तावत् कर्माविष्ट आत्मा भव्यकालेऽर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तनाख्येऽवशिष्टे प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य योग्यो भवति,

दर्शनमोहस्य ६। त्रयः १। भेदाः १। सम्यक्त्वम् (१) १॥। =दर्शनमोहनीयके तीन भेद सम्यग्दर्शन
मिथ्यात्वम् १॥। सम्यक् मिथ्यात्वम् १॥। इति * =मिथ्यादर्शन और सम्यङ्मिथ्यादर्शन ऐसे
आसाम् ६॥। सप्तानाम् ६॥। प्रकृतीनाम् ६॥ उपशमात् ५। =इन सातप्रकृतियों के उपशम से
औपशमिकम् १॥। सम्यक्त्वम् १॥। अनादि मिथ्यादृष्टेः६। =औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है (प्रश्न) अनादिमिथ्यादृष्टि
भव्यस्य६। कर्म+उदय+आपादित+कालुष्ये७॥। सति७॥। =भव्यजीवके कर्मके उद्रेककरि कलुषताहोतेसंते
कुतः * तद्+उपशमः १। =क्यों कर (पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंका) उसके उपशम होता है
काललब्धि-आदि निमित्तत्वात् ५॥। =(उत्तर) काललब्धि आदिके कारण से
तत्र काललब्धिः १॥ तावत् * =तहां प्रथम (=तावत्) काललब्धि
,कर्म+आविष्टः १। आत्मा १। भव्यः १। =कर्मकरि दवायागया भव्यजीव (=आत्मा) अर्थात् कर्मसहित भव्यजीव
काले ७। अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनाख्ये ७। अवशिष्टे ७। =संसारकालमें अर्द्धपुद्गल परिवर्तननाम (काल) अवशेष रहने पर
प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य ६॥। योग्यः १। भवति T =पहिले उपशम सम्यग्दर्शन के ग्रहणकरने योग्य होता है

(१) जिस कर्म के उदय से सम्यक्त्वगुणका मूल घात तो हो नहीं परन्तु चल मल अगाढ़ ये दोष उत्पन्न हो जाय वह सम्यक्प्रकृति है। जिस कर्मके उदयसे सम्यग्दर्शनका सर्वथा घात स्वरूप जीव के अतत्त्वश्रद्धान हो वह मिथ्यात्व प्रकृति है। और जिस कर्म के उदय से सम्यग्दर्शन के सर्वथा घात स्वरूप मिले हुए परिणाम हों जिनको कि न सम्यक्त्वरूप कहसके और न मिथ्यात्वरूप कहसकें वह सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति है यह मिश्र परिणाम भी वैभाविक भाव ही है॥

॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥ [१]

चशब्दः सम्यक्त्वचारित्रानुकर्षणार्थः॥ ज्ञानावरणस्यात्यन्तक्षयात्केवलज्ञानंक्षायिकं तथा केवलदर्शनम् दानान्तरायस्यात्यन्तक्षयादनन्तप्राणिगणानुग्रहकरं क्षायिकमभयदानम्॥लाभान्तरायस्याशेषस्य निरासात्परित्यक्त—

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४॥

=ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि सम्यक्त्वचारित्रे च

=ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्याणि, सम्यक्त्व-चारित्रे च ते एते क्षायिकभावस्य नव भेदाः भवन्ति

ज्ञान-दर्शन- =क्षायिक ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान, क्षायिकदर्शन अर्थात् केवलदर्शन,

दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्याणि १॥। च =क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य और

सम्यक्त्व-चारित्रे१॥। ते१।एते१।क्षायिकभावस्य ६। =क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, ये क्षायिकभावके

नव भेदाः१। भवन्ति । =नव भेद होते हैं। ये ही नव जीवके निज क्षायिक भाव हैं।

चशब्दः१। सम्यक्त्वचारित्र-अनुकर्षण-अर्थः१। =(सूत्रमें) चशब्द सम्यग्दर्शन तथा (सम्यक्) चारित्र के ग्रहणके लिये है॥

ज्ञान-आवरणस्य६॥।अत्यन्त-क्षयात्५। केवलज्ञानम् १॥।=ज्ञानावरणीयकर्म के अतिशय नाशसे केवलज्ञान

क्षायिकम् १॥। तथा ० केवलदर्शनम् १॥। =क्षायिक होता है दर्शनावरणीयकर्म के (अत्यन्तनाशसे) केवलदर्शन (क्षायिक होताहै)

दान+अंतरायस्य६।अत्यन्त-क्षयात्५।अनन्तप्राणिगण=दान अन्तराय के अतिशय नाश (होने) से अनन्तजीवोंका

अनुग्रहकरम् १॥।क्षायिकम्१॥। अभयदानम् १॥।० =उपकार करनेवाला क्षायिक अभयदान होता है।

लाभ+अन्तरायस्य६।अशेषस्य६।निरासात्५।परित्यक्त=लाभ अंतराय नामा कर्मके सम्पूर्ण अभावसे किसी प्रकार से नहींहै(परित्यक्त)

---

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥

अपरा काललब्धिर्भवापेक्षया । भव्यः पञ्चेन्द्रियः सञ्ज्ञी पर्याप्तकः सर्वविशुद्धः प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयति ॥ आदिशब्देन जातिस्मरणादिः परिगृह्यते॥ कृत्स्नस्य मोहनीयस्योपशमादौपशमिकंचारित्रम् ॥ तत्र सम्यक्त्वस्यादौ वचनं तत्पूर्वकत्वाचारित्रस्य ॥

यः क्षायिको भावो नवविध उद्दिष्टस्तस्य भेदस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

उसी काल में बंधे होंय और पहिले के सत्ता में विद्यमान समस्तकर्म परिणामोंकी विशुद्धतासे संख्यात् हजार सागरोपम घाटि अंतः कोड़ा कोडी सागर प्रमाण होगये हैं उस समय प्रथम सम्यक्त्व की योग्यता होती है

अपरा ॥ काल लब्धिः ॥ भव–अपेक्षया ॥ =अन्य काल लब्धि भवकी अपेक्षासे है

भव्यः॥ पञ्चेन्द्रियः॥ संज्ञी ॥ पर्याप्तकः॥ सर्वविशुद्धः॥=भव्य जीव पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त अवस्था वाला सर्वसे विशुद्ध परिणामवाला

प्रथमसम्यक्त्वम् ॥ उत्पादयति T =प्रथम सम्यग्दर्शनको उपजाता है ॥

आदिशब्देन ॥ जातिस्मरणादिः ॥ परिगृह्यते T =(काल लब्ध्यादि वाक्यमें) आदि शब्द करि जाति स्मरणादिकका ग्रहणकियागयाहै

कृत्स्नस्य॥मोहनीयस्य॥उपशमात्॥औपशमिकम्॥=समस्त मोहनीय कर्मके उपशमसे उपशम

चारित्रम् ॥ तत्र सम्यक्त्वस्य॥आदौ॥वचनम्॥ =चारित्रहोताहैतहां(सम्यक्त्वचारित्रेसूत्रमें)सम्यक्त्वकीआदिमेंवापहिलेकथन(=वचनं)है

तत्–पूर्वकत्वात् ॥ चारित्रस्य॥ =क्योंकि चारित्रका होना उस सम्यक्त्व के निमित्त से है अर्थात् आत्मा प्रथम सम्यक्त्व अवस्थारूप होताहै फिर चारित्र अवस्थारूप

यः॥ क्षायिकः॥ भावः॥ नवविधः॥ उद्दिष्टः॥ तस्य॥ =जो क्षायिक भाव नौ प्रकार कहा गया है तिस (क्षायिक भाव) के

भेदस्वरूप–प्रतिपादन+अर्थम् ॥ आह T =भेद स्वरूप के कहने के लिए (=कहते)हैं कि

(१) नारकियोंके जातिस्मरण धर्मश्रवण वेदनासे पीडित होकर प्रथमउपशमसम्यक्त्व उपजावें हैं। चौथे नरक से सातवां नरक तक वेदना और जातिस्मरण दो ही कारण हैं। पशुकें जातिस्मरण, धर्मश्रवण, जिनबिंब दर्शन तीन कारण हैं यही मनुष्य के हैं। भवनवासी देवों से लेकर बारहवां स्वर्गतक जातिस्मरण धर्मश्रवण जिनबिंब दर्शन देवोंकी ऋद्धिका देखना चार कारण हैं। तेरहवेंस्वर्गसे सोलहस्वर्गतक देवऋद्धि विना तीन ही कारण हैं। इससे ऊपर जातिस्मरण, धर्मश्रवण दो कारण हैं॥

पूर्वोक्तानां सप्तानां प्रकृतीनामत्यन्तक्षयात्क्षायिकं सम्यक्त्वम् ॥ चारित्रमपि तथा ॥ यदि क्षायिकदानादिभावकृतमभयदानादि, सिद्धेष्वपि तत्प्रसङ्गः । नैष दोषः । शरीरनामतीर्थकरनामकर्मोदयाद्यपेक्षत्वात्तेषां तदभावे तदप्रसङ्गः ॥ कथं तर्हि तेषां सिद्धेषु वृत्तिः? । परमानन्तवीर्याव्याबाधसुखरूपेणैव तेषां तत्र वृत्तिः । केवलज्ञानरूपेणानन्तवीर्यवृत्तिवत् ॥ य उक्तः क्षायोपशमिको भावोऽष्टादशविकल्पस्तद्भेदनिरूपणार्थमाह—

पूर्वोक्तानाम् ६॥ सप्तानाम् ६॥ प्रकृतीनाम् ६॥ अत्यन्तक्षयात् ५॥= पहिले कही हुई (मोहनीयकर्मकी) सातप्रकृतियोंका अशेष नाशसे
क्षायिकम् १॥ सम्यक्त्वम् १॥ चारित्रम् १॥ अपि*तथा* =क्षायिकसम्यग्दर्शनहोताहै तैसेही (चारित्रमोहकेअभावसे) क्षायिकचारित्रभीहै
यदि*क्षायिकदानादिभावकृतम् १॥ अभयदानादि १॥ =(प्रश्न)जो क्षायिक दानादिकभावकरि कियेहुए अभयदानादिक हैं।,
सिद्धेषु ७॥ अपि-तत्-प्रसङ्गः १॥ न एषः १॥ दोषः १॥ =तो सिद्धोंमें भी उन(अभयदानादिक)का संयोग है (उत्तर)यह दूषण नहीं है
शरीरनामतीर्थकरनामकर्म उदयादिअपेक्षत्वात् ५॥ =(अरहंतनिके)शरीरनामानामकर्म तीर्थकरनामकर्मके उद्रेकविवक्षा से है
तेषाम् ६॥ तद्*अभावे ७॥ तत्-अप्रसङ्गः १॥ =तिन(सिद्धनि)के उन(कर्मों)के अभावहोनेपर उन(अभयदानादिक)काप्रसङ्गनहीं
कथम्*तर्हि*तेषाम् ६॥ सिद्धेषु ७॥ वृत्तिः १॥ =(प्रश्न)तो(=तर्हि)कैसे तिन(अभयदानादिक भावोंकी)सिद्धोंमें प्रवृत्तिवास्थितिहै
परम*अनन्तवीर्य-अव्याबाध-सुखरूपेण ३॥ =(उत्तर)उत्कृष्ट अनन्तवीर्य अव्याबाध आनंदस्वरूपसे
एव*तेषाम् ६॥ तत्र*वृत्तिः १॥ =तिन(अभयदानादिक भावों की)तहां (सिद्धो में) प्रवृत्ति है।
केवलज्ञानरूपेण ३॥ अनन्तवीर्य वृत्तिवत्* =केवलज्ञानरूपकरिअनन्तवीर्यप्रवृतिके सदृश(सिद्धनिके अभयदानादिकभावहैं
यः १॥ उक्तः १॥ क्षायोपशमिकः १॥ भावः १॥ अष्टादशविकल्पः १॥ =जो कहा क्षायोपशमिक भाव अठारह प्रकार
तद्*भेद-निरूपणार्थम् १॥ आह॥ =तिसके भेद कहने के लिए(आचार्य अग्रिमसूत्रमें)कहते हैं कि

कवलाहारक्रियाणां केवलिनां यतःशरीरबलाधानहेतवोऽन्यमनुजासाधारणाः परमशुभाःसूक्ष्मा अनन्ताः प्रतिसमयं पुद्गलाः सम्बन्धमुपयान्ति स क्षायिको लाभः॥ कृत्स्नस्य भोगान्तरायस्यात्य न्ताभावादाविर्भूतोऽतिशयवाननन्तो भोगः क्षायिकः। यतः कुसुमवृष्ट्यादयो विशेषाःप्रादुर्भवन्ति॥ निरवशेषस्योपभोगान्तरायस्य प्रलयात्प्रादुर्भूतोऽनन्त उपभोगः क्षायिकः। यतः सिंहासनचामर- च्छत्रत्रयादयः विभूतयः॥ वीर्यान्तरायस्य कर्मणोऽत्यन्तक्षयादाविर्भूतमनन्तवीर्यं क्षायिकम्॥

कवल+आहारक्रियाणाम्। केवलिनाम्। =कवला हार की क्रिया जिनके ऐसे केवली भगवानके (=केवलिनाम्)
यतः शरीरबलाधानहेतवः। अन्य मनुज+असाधारणाः। =जिससे (यतः) शरीर केवलाधानके कारण अन्य मनुष्योंमें न रहने वाली
परमशुभाः। सूक्ष्माः। अनन्ताः। प्रतिसमयं * =अत्यन्त शुभ सूक्ष्म समय समय प्रति अनन्ते
पुद्गलाः। सम्बन्धम्। उपयान्ति T =पुद्गल के परमाणु (पुद्गलाः) सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं
सः। क्षायिकः। लाभः। कृत्स्नस्य। भोगान्तरास्य। =सो क्षायिक लाभ है। समस्त भोगान्तराय नामा कर्म के
अत्यन्त–अभावात्। आविर्भूतः। अतिशयवान्। अनन्त- =अशेषक्षय से प्रगटरूप अतिशयवान अनन्त
भोगः। क्षायिकः। यतः–कुसुमवृष्टि–आदयः। =क्षायिक भोग हैं अर्थात् जिससे (=यतः)पुष्प वृष्टि आदिक
विशेषाः। प्रादुर्भवन्ति T निरवशेषस्य। उपभोग- =विशेष प्रगट होते हैं वेसमस्त उपभोग
अन्तरायस्य। प्रलयात्। प्रादुर्भूतः। अनन्तः। =अन्तराय नामा कर्म के नाशसे प्रकाशरूप अनन्त
उपभोगः। क्षायिकः। यतः* सिंहासन–चामर– =क्षायिक उपभोग हैं अर्थात् जिससे सिंहासन चामर
छत्रत्रय–आदयः। विभूतयः। वीर्यान्तरायस्य। कर्मणः। =छत्रत्रय आदिक विभूतियें (प्रगट)होती हैं। (और)वीर्यान्तराय नामा कर्म के
अत्यन्त क्षयात्। आविर्भूतम्। अनन्तवीर्यम्। क्षायिकम्। =अत्यन्त नाशसे क्षायिक अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है।

चत्वारश्च त्रयश्च त्रयश्च पञ्च च चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदा यासां ताश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः ॥ यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेनाभिसम्बन्धाच्चतुरादिभिर्ज्ञानादीन्यभिसम्बन्ध्यन्ते । चत्वारि ज्ञानानि, त्रीण्यज्ञानानि, त्रीणि दर्शनानि, पञ्च लब्धय इति ॥ सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमाद्देशघातिस्पर्द्धकानामुदये क्षायोपशमिको भावो भवति ॥ तत्र ज्ञानादीनां वृत्तिःस्वावरणान्तरायक्षयोपशमाद्व्याख्यातव्या ॥ सम्यक्त्वग्रहणेन वेदकसम्यक्त्वं गृह्यते । अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य

चत्वारः १।३ च त्रयः १।३ च त्रयः १।३ च पञ्च १। च चतुः-त्रि =चार तथा तीन और तीन बहुरि पांचका द्वन्द्व समास चार तीन
त्रि-पञ्चभेदाः १।३ यासाम् ६।३ ताः १।३ चतुः त्रि-त्रि-पञ्चभेदाः=तीन पांच हुआ। ये हैं भेद जिनके ते चार तीन तीन पांच भेद हुये ॥
यथाक्रमम्*इति* अनुवर्तते । तेन ३।१ =यथाक्रमम् ऐसी अनुवृत्ति (दूसरे सूत्रसे)निकलती है तिस(यथाक्रमअनुवृत्ति)के
अभिसम्बन्धात् ५।१ चतुरादिभिः ३।३ =संयोग से चार तीन तीन पाँच(ये संख्याओं के साथ)
ज्ञानादीनि १।३ अभिसम्बन्ध्यन्ते । =ज्ञान अज्ञान दर्शन लब्धि यथासंख्य लगाई जाती हैं
चत्वारि १।३ ज्ञानानि १।३ =अर्थात् चार ज्ञान है(मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय)
त्रीणि १।३ अज्ञानानि १।३ त्रीणि १।३ दर्शनानि १।३ =तीन अज्ञान(कुमति,कुश्रुति,कुअवधि) हैं तीन (चक्षुः,अचक्षुः, अवधि) दर्शन हैं,
पञ्च १।३ लब्धयः १।३ इति* =पाँच (दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्य)लब्धि (ऐसे सब पन्द्रह हैं)
सर्वघाति स्पर्द्धकानाम् ६।३ उदयक्षयात् ५।१ तेषाम् ६।३ एव* =सर्वघाति स्पर्द्धकनि के उदयाभावी क्षयसे(=विना रसदीये खिरजाना)औरतिनकेही
सत्*उपशमात् ५।१ देशघाति-स्पर्द्धकानाम् ६।३ उदये ७।१ =सत्तारूप उपशमसे और देशघाति स्पर्द्धकनि के उदय होने पर
क्षायोपशमिकः १।१ भावः १।१ भवति । तत्र* =क्षायोपशमिक भाव होता है तहां
ज्ञानादीनाम् ६।३ वृत्तिः १।१ स्व-आवरण-अन्तराय- =ज्ञानादिक की प्रवृत्ति अपने अपने आवरण तथा अन्तराय-
क्षायोपशमात् ५।१ व्याख्यातव्या १।१ सम्यक्त्व ग्रहणेन ३।१ =क्षायोपशमसे वर्णन की गई है वा कही गई है(सूत्रमें) सम्यक्त्व लानेसे
वेदकसम्यक्त्वम् १।१ गृह्यते । =वेदकसम्यक्त्व(=क्षायोपशमिकसम्यक्त्व)ग्रहण किया गया है
अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य ६।१ =अनन्तानुबन्धी कषायके चतुष्क (क्रोध-मान-माया-लोभ) का

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसँयमासँयमाश्च ॥ ५ ॥

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाःसम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥५॥

=ज्ञा०।ज्ञा० द० लब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाःयथाक्रमम् सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाः(इत्येतेऽष्टादश क्षायोपशमिक भावाःचभवन्ति)॥५॥

पदच्छेदः–ज्ञान–अज्ञान–दर्शन–लब्धयःचतुःत्रि–त्रि–पंच भेदाः(यथाक्रमम्-इसअध्यायकेदूसरेसूत्रसे लियागयाहै)सम्यक्त्व–चारित्र-संयमा-संयमाः इति एते अष्टादश क्षायोपशमिकाः भावाः भवन्ति च ॥५॥

ज्ञान–अज्ञान–दर्शन–लब्धयः॥चतुर्-त्रि–त्रि–पञ्च–भेदाः॥ =ज्ञान, कुज्ञान, दर्शन, लब्धि, चार,तीन,तीन और पांच प्रकार

यथाक्रमम्॥सम्यक्त्व,–चारित्र– =अनुक्रमसे हैं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र (सराग चारित्र)

संयमासंयमाः॥इति॥एते॥अष्टादश॥च॥ =संयमासंयम (देशव्रत) ऐसे ये अठारह भी (=च–जीवके)

क्षायोपशमिकाः ॥भावाः॥भवन्ति T =क्षायोपशमिक भाव हैं अर्थात् मतिज्ञान,श्रुतज्ञान,अवधिज्ञान, मनः पर्यय ज्ञान ये चार ज्ञान कुमति कुश्रुत,कुअवधि ये तीन कुज्ञान,चक्षुः दर्शन,अचक्षुः दर्शन, अवधिदर्शन ये तीन दर्शन, और क्षायोपशमिकदान,क्षायोपशमिकलाभ,क्षायोपशमिकभोग,क्षायोपशमिकउपभोग,क्षायोपशमिक–वीर्य ये पांचप्रकार लब्धि, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिकचारित्र, क्षायोपशमिक संयमासंयम ये सर्व अठारह भाव भी आत्मा में कर्मों के क्षयोपशम से होते हैं ॥ स्मरण रहै कि सूत्रमें च शब्द समुच्चयके लिये है इस लिये जितने क्षायोपशमिक भावों का सूत्र में उल्लेखनहीं किया गया है इस च शब्दसे उनका समुच्चय करलेना चाहिये ॥ अतः हमने च शब्द का अनुवाद'भी' ऐसा किया है ॥

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें क्षायोपशमिक भावोंके विषयमें जो यह पांचवा सूत्र है उसमें हमारे यहां के पांचवां सूत्रसे 'ज्ञानाज्ञान दर्शन' वाक्य के लगता ही "दानादि" वाक्य अधिक है शेष पाठ सूत्रका दोनों आम्नायोंमें एक है। 'दानादि' शब्द के अधिक होने पर भी अर्थ भेद दोनों सम्प्रदायों में नहीं है क्योंकि हमारे यहां "लब्धयः" शब्दका अर्थ क्षायोपशमिकदानलब्धि, क्षायोपशमिक लाभलब्धि क्षायोपशमिक भोगलब्धि, क्षायोपशमिक उपभोगलब्धि, क्षायोपशमिक वीर्यलब्धि किया है और श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में दानादि लब्धयः वाक्यका यही तात्पर्य लिया है जो हमारे यहां लब्धयः शब्दका। अतः दोनों में अर्थ भेद कुछ भी नहीं रहा। दानादि शब्द के न होने से सूत्र लघु हो जाता है ॥

य एकविंशतिविकल्प औदयिको भाव उद्दिष्टस्तस्य भेदसञ्ज्ञासङ्कीर्तनार्थमिदमुच्यते ॥

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासँयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥

यः १।एकविंशतिविकल्पः१। औदयिकः१।भावः१। उद्दिष्टः१। =जो इक्कीस भेदरूप औदयिक भाव कहा है

तस्य ६। भेदसंज्ञासङ्कीर्तन–अर्थम् २।। इदम् १।। उच्यते ः =तिसके भेद और नाम कहनेके लिए यह कहा जाता है कि

गतिकषाय(२)लिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासँयतासिद्धलेश्या(३)श्चतुश्चतुस्त्र्ये कैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥

=गति कषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतु स्त्र येकैकैकैकषड् भेदाः(यथाक्रमम् इत्येते एकविंशतिऔदयिक भावाःभवन्ति ॥

सूत्रार्थः–गति–कषाय–लिङ्ग–मिथ्यादर्शन–अज्ञान– =गति,कषाय, (४)भावलिङ्ग(भाववेद), मिथ्या दर्शन,अज्ञान,

असंयत–असिद्ध–लेश्याः१॥ चतुः–चतुः–त्रि–एक– =असंयम असिद्धत्व तथा लेश्या चार,चार,तीन तथा एक

एक–एक–एक–षड्–भेदाः१। यथाक्रमम्*इति एताः१। =एक,एंक,एक और छः प्रकार(=भेदाः) क्रमसे इस प्रकार ये

एक विंशतिः१॥ औदयिक भावाः१। भवन्ति =इक्कीस औदयिक भाव होते हैं अर्थात् मनुष्यगति, देवगति नरकगति, और तिर्यचगति ये चार गति,क्रोध,मान,माया,लोभ,

ये चार कषाय, स्त्रीवेद पुवेद,नपुसक वेद, ये तीन लिङ्ग,मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, कृष्ण, नील, कापोत. पीत, पद्म, शुक्ल ये छः लेश्या। असिद्धत्व ये भाव समस्त आठों कर्मोंके उदय से होते हैं ॥

---

(१) श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्य०में असिद्धत्व है हमारे यहां पाठ में असिद्ध है शेष पाठ एक है। हमारे यहां असिद्धका अर्थ असिद्धत्व किया है अतः अर्थ एक है (२) आत्मा को कसे विपरिणवैसो कषाय है ॥ (३) कषायोदयसे अनुरंजित योगों की प्रवृत्तिका नाम लेश्या है ॥ (४) स्त्री आदि वेदों के उदयसे स्त्रीको पुरुषके साथ पुरुषको स्त्रीके साथ और नपुसक को स्त्री और पुरुष दोनों के साथ रमण करनेकी जो इच्छा हो उसका नाम लिंग है। वह लिग दो प्रकारका है एक द्रव्यलिग दूसरा भाव लिंग। नाम कर्म के उदयसेहोनेवाले बाह्य रचना विशेषका नाम द्रव्य लिग है यह पुद्गलका परिणाम है और यहां पर आत्माके परिणामों का प्रकरण चल रहा है इसलिये जो सूत्रमें लिंग शब्दका उल्लेख किया गया है उसका अर्थ द्रव्य लिंग नहीं लिया जा सकता किंतु आत्मा का परिणाम स्वरूप भावलिग है। वह भाव लिग स्त्री पुरुष और नपुंसक तीनों का आपसमें रमणकरनेकी इच्छा रूप है और नो कषायरूप चारित्र मोहनीयके उदयसे एव स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुसक वेदके उदयसे उसकी प्रकटता होती है इसलिए भावलिङ्ग औदयिक भाव है

मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोश्चोदयक्षयात्सदुपशमाच्च सम्यक्त्वस्य देशघातिस्पर्द्धकस्योदये तत्त्वार्थश्रद्धानं क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानद्वादशकषायोदयक्षयात्सदुपशमाच्च सञ्ज्वलनकषायचतुष्टयान्यतमदेशघातिस्पर्द्धकोदये नोकषायनवकस्य यथासम्भवोदये च निवृत्तिपरिणामः आत्मनः क्षायोपशमिकं चारित्रम् ॥ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानकषायाष्टकोदयक्षयात्सदुपशमाच्च प्रत्याख्यानकषायोदये सञ्ज्वलनकषायदेशघातिस्पर्द्धकोदयेनोकषायनवकस्य यथासम्भवोदये च विरताविरतपरिणामःक्षायोपशमिकः सँयमासँयम इत्याख्यायते ॥

मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोः॥च* उदयक्षयात् ॥ =और मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वोंके उदयक्षयसे
सत्*उपशमात् ॥ च* सम्यक्त्वस्य ॥ =तथा सत्तारूप उपशमसे और सम्यक्त्व प्रकृतिके
देशघातिस्पर्द्धकस्य ॥ उदये ॥ तत्त्वार्थश्रद्धानम् ॥ =देशघाति स्पर्द्धकका उदय होनेपर (जो)तत्त्वार्थ श्रद्धान (होता है)
क्षायोपशमिकं॥सम्यक्त्वम्॥अनन्तानुबन्धि–अप्रत्याख्यान=(वो)क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन है॥ बहुरिअनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान
प्रत्याख्यानद्वादशकषाय–उदयक्षयात् ॥ =प्रत्याख्यान बारह कषायोंका उदयाभावी क्षयसे औरइनही बारह कषायोंका
सत्*उपशमात् ॥ च*संज्वलन कषायचतुष्टयअन्यतम– =सत्तारूप उपशमसे और संज्वलन कषायके चतुष्क में से किसी एक कषायके
देशघाति-स्पर्द्धक उदये ॥ च*नो कषाय नवकस्य ॥ =देशघाति स्पर्द्धनिका उदय होने पर बहुरि नवईषत्कषायोंके
यथासम्भव–उदये ॥ च* निवृत्तिपरिणामः॥ आत्मनः॥ =यथासम्भव उदय होनेपर(जो)आत्मा का त्यागरूप परिणाम(है सो)
क्षायोपशमिकं॥ चारित्रम् ॥ अनन्तानुबन्धि- =क्षायोपशमिक चारित्र है (और) अनन्तानुबंधी
अप्रत्याख्यानकषाय–अष्टक–उदयक्षयात् ॥ =अप्रत्याख्यान कषायोंके अष्टकके उदयाभावीक्षयसे(=विना रस दिये खिरना)
सत्*उपशमात् ॥ च*प्रत्याख्यानकषाय–उदये ॥ =सत्तारूप उपशमसे और प्रत्याख्यान कषायके उदय होने पर
संज्वलनकषाय देशघातिस्पर्द्धक उदये॥नोकषायनवकस्य॥=(और)संज्वलन कषायके देशघातिस्पर्द्धकके उदय होनेपर व नोकषायकेनवकका
यथा सम्भव उदये ॥ च*विरत–अविरत–परिणामः॥ =यथासम्भव उदय होने पर (आत्मा के) विरता विरत परिणाम (होय है सो)
क्षायोपशमिकः॥ संयमासयमः॥ इति*आख्यायते T =क्षायोपशमिक संयमासंयम है ऐसा वर्णन किया गया है

मिथ्यादर्शनकर्मण उदयात्तत्त्वार्थाश्रद्धानपरिणामो मिथ्यादर्शनमौदयिकम्॥ ज्ञानावरणकर्मण-उदयात्पदार्थानवबोधो भवति तदज्ञानमौदयिकम्॥ चारित्रमोहस्य सर्वघातिस्पर्द्धकस्योदयादसंयत औदयिकः॥ कर्मोदयसामान्यापेक्षोऽसिद्ध औदयिकः॥ लेश्या द्विविधा, द्रव्यलेश्या भावलेश्या चेति॥ जीवभावाधिकाराद्द्रव्यलेश्या नाधिकृता। भावलेश्या कषायोदयरञ्जिता योगप्रवृत्तिरिति कृत्वा औदयिकीत्युच्यते॥ सा षड्विधा कृष्णलेश्या, नीललेश्या कापोतलेश्या, तेजोलेश्या पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या चेति॥ ननुच उपशान्तकषाये क्षीणकषाये

मिथ्यादर्शनकर्मणः॥ उदयात्॥ -मिथ्यादर्शन कर्मके उदयसे (अर्थात् मिथ्यात्वनामा मोहनीयकी प्रकृति उदयसे
तत्त्वार्थ-अश्रद्धान-परिणामः॥ मिथ्यादर्शनम्॥ -तत्त्वोंके स्वरूपका श्रद्धानरूप परिणाम न होना सो मिथ्यादर्शन
औदयिकम्॥ ज्ञानावरणकर्मणः उदयात्॥ पदार्थानाम्॥ -औदयिक भाव है। ज्ञानावरणनामा कर्मके उदयसे पदार्थोंका
अनवबोधः॥ भवति तत्॥ अज्ञानम्॥ औदयिकम्॥ ज्ञान नहीं होने पाता है वह अज्ञाननामा औदयिक भाव है
चारित्रमोहस्य॥ सर्वघाति स्पर्द्धकस्य॥ उदयात्॥ -चारित्रमोहके सर्वघातिक स्पर्द्धकनिके उदयसे
असंयतः॥ औदयिकः॥ कर्म उदय सामान्य असंयत होय है वह औदयिक भाव है। तहां सामान्य कर्मनिके उदयकी
अपेक्षः॥ असिद्धः॥ औदयिकः॥ अपेक्षासूं असिद्धत्व औदयिक भाव है
लेश्या॥ द्विविधा॥ द्रव्यलेश्या॥ भावलेश्या॥ च इति लेश्या दो प्रकार है द्रव्यलेश्या और भाव लेश्या
जीवभाव-अधिकारात्॥ द्रव्यलेश्या॥ न-अधिकृता॥ जीवके भावके प्रकरण होने से द्रव्यलेश्या अधिकृत नहीं है या विवक्षित नहीं है
अर्थात् द्रव्यलेश्याका यहां प्रकरण नहीं है [illegible]
भावलेश्या॥ कषायउदयरञ्जिता॥ योगप्रवृत्तिः॥ इति कृत्वा भावलेश्या कषायके उदयकरि रंजित योगनिकी प्रवृत्ति है ऐसा करके
औदयिकी॥ इति उच्यते॥ सा॥ षड्विधा॥ कृष्णलेश्या॥ औदयिकी कहलाती है सो छह प्रकार की है अर्थात् कृष्णलेश्या
नीललेश्या॥ कापोतलेश्या॥ तेजोलेश्या॥ पद्मलेश्या॥ नीललेश्या कापोतलेश्या पीतलेश्या पद्मलेश्या
शुक्ललेश्या॥ च इति॥ ननु॥ उपशान्तकषाये॥ क्षीणकषाये॥ और शुक्ललेश्या॥ प्रश्न॥ उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय गुणस्थानोंमें

यथाक्रममित्यनुवर्तते, तेनाभिसम्बन्धात् । गतिश्चतुर्भेदा नरकगतिस्तिर्यग्गतिर्मनुष्यगतिर्देवगतिरिति ॥ तत्र नरकगतिनामकर्मोदयान्नारको भावो भवतीति नरकगतिरौदयिकी । एवमितरत्रापि ॥ कषायश्चतुर्भेदः, क्रोधो मानो माया लोभइति ॥ तत्र क्रोधनिर्वर्तनस्य कर्मण उदयात्क्रोध औदयिकः । एवमितरत्रापि ॥ लिङ्गं त्रिभेदं, स्त्रीवेदःपुंवेदो नपुंसकवेद इति ॥ स्त्रीवेदकर्मण उदयात्स्त्रीवेद औदयिकः । एवमितरत्रापि ॥ मिथ्यादर्शनमेकभेद,

वृत्त्यनुवादः— यथाक्रमम् ॥ इति* अनुवर्तते =(यथाक्रमम्)ऐसी अनुवृत्ति(इस अध्यायके दूसरे सूत्रसे)आती है ॥
तेन। अभिसम्बन्धात्। गतिः॥ चतुर्*भेदाः। =तिस(अनुवृत्ति)द्वारा संयोगसे गति चार प्रकार है ॥
नरकगतिः॥तिर्यग्गतिः॥मनुष्यगतिः॥देवगतिः॥=नरकगति–तिर्यचगति–नरगति–देवगति
इति*तत्र नरकगतिनामकर्म उदयात् नारकः। =ऐसे है तहां नरकगतिनामा नामकर्मके उदयसे नरकका
भावः।भवति।इति नरकगति–औदयिकी ॥एवम्*= भाव होता है ऐसे नरकगति नाम औदयिक भाव है
इतरत्र*अपि*कषायः।चतुर्–भेदः। =ऐसे अन्यत्रभी हैं (तिर्यचगति इत्यादि)। कषाय चार भेद रूप है
क्रोधः। मानः। मायाः। लोभः। इति* =क्रोध–मान–माया–लोभ–इस प्रकार है
तत्र*क्रोधनिर्वर्तनस्य ॥कर्मणः॥ उदयात्। =तहां क्रोध सम्पादन कर्मके उदयसे
क्रोधः। औदयिकः।एवम्*इतरत्र*अपि* =क्रोध औदयिक भाव है इस प्रकार अन्यत्र भी है(अर्थात् मान माया लोभ)
लिङ्गम्त्रिभेदम्॥स्त्रीवेदः।पुंवेदः।नपुंसकवेदः।इति=लिङ्ग तीनभेद स्त्रीवेद पुंवेद नपुंसकवेद इस प्रकार हैं
स्त्रीवेदकर्मणः॥ उदयात् ।स्त्रीवेदः। औदयिक।=स्त्रीवेद कर्मके उद्रेक से नारीवेद औदयिक भाव है
एवम्*इतरत्र*अपि* =ऐसे अन्यत्र भी हैं (अर्थात् पुरुषवेद और नपुंसक वेद कर्मो के उदयसे क्रमानुसार पुरुष वेद और नपुंसक वेद औदयिक भाव हैं)
मिथ्यादर्शनम् ॥एकभेदम् ॥ =मिथ्यादर्शन एक प्रकार है ॥

तद्भावादयोगकेवल्यलेश्य इति निश्चीयते ॥ यः पारिणामिको भावस्त्रिभेद उक्तस्तद्भेदस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

जीवत्वं भव्यत्वमभव्यत्वमिति त्रयो भावाः परिणामिका

तद्-अभावात् ५। अयोगकेवली १। =(और)उस (योग)के न होने से अयोग केवली (चौदहवां गुणस्थानवर्त्ती)

अलेश्यः १। इति* निश्चीयते यः १। पारिणामिकः भावः =लेश्या रहित है निश्चयकीजिए है जो पारिणामिक भाव

त्रिभेदः १। उक्त : १ तद्-भेदस्वरूपप्रतिपादनअर्थम् १।।। आह = तीन प्रकार कहा है उसके भेद और स्वरूप के लाभके अर्थ कहते हैं कि

॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—जीवभव्याभव्यत्वानि १।।। च* =जीवत्व भव्यत्व अभव्यत्व भी(च) पारिणामिक भाव जीवके हैं अर्थात् ,ये तीन भाव भी अन्य द्रव्यसे असाधारण जीवके पारिणामिक भावहैं जहा कर्म की अपेक्षा नहीं द्रव्य का आत्म स्वरूप ही, आत्म परिणाम ही जिसको निमित्त हो सो पारिणामिक भाव है

जीवत्वम् १।।। भव्यत्वम् १।।। अभव्यत्वम् १।।। =जीवपना वा चेतनपना भव्यपना अभव्यपना

इति*त्रयः १। भावाः १। पारिणामिकाः १। =इस प्रकार तीन भाव पारिणामिक हैं

जीवभव्याभव्यत्वादीनिच (सभाष्य० अध्याय २ सूत्र, ७) दोनो पाठोंके मिलानेसे जान पड़ता है कि इस सातवां सूत्रमे हमारे यहांके सूत्रसे "आदि" शब्द अधिक है परंतु इस पर भी दोनों आम्नायों में अर्थ भेद नहीं है क्योंकि सभाष्य० के पाठ में आदि शब्दकरि जीवके सामान्य वा साधारण पारिणामिक भावोंका जैसे अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-प्रमेयत्व आदि (देखो टिपणी अध्याय १० सूत्र ३) का ग्रहण किया है हमारे यहां जीवके साधारण पारिणामिक भावोंका ग्रहण च शब्द करि किया है ॥ असाधारण पारिणामिक भाव वा असामान्य पारिणामिक भाव अथवा विशेष पारिणामिक भाव जीव के वे हैं जो केवल जीव में हीं पाए जावें अन्य किसी द्रव्य में न पाये जावें और वे केवल तीन ही जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व हैं अधिक नहीं हैं। ये तीनों भाव अनादिकाल सिद्ध हैं और साधारण पारिणामिकभाव वा सामान्य पारिणामिक भाव अथवा विशेष रहित पारिणामिक भाव वो है जो जीव में होते हैं और अचेतन अन्यद्रव्य जैसे धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य इत्यादिक में भी होते हैं वे समस्त पारिणामिक गुण अनेक हैं और अनादिकाल सिद्ध हैं ॥

सयोगकेवलिनि च शुक्लेश्याऽस्तीत्यागमः तत्र कषायानुरञ्जनाभावादौदयिकत्वं नोपपद्यते॥ नैषदोषः। पूर्वभावप्रज्ञापननयापेक्षया याऽसौ योगप्रवृत्तिः कषायानुरञ्जिता सैवेत्युपचारादौदयिकीत्युच्यते।

सयोग केवलिनि॥ च*शुक्लेश्या॥ अस्ति T इति* =और सयोग केवली (तेरहवां गुणस्थानवर्ती) में शुक्लेश्याहै। ऐसा
(२) आगमः॥ तत्र* कपाय–अनुरंजन—अभावात्॥ =शास्त्रका वचन है। (उपरोक्त गुणस्थान में) कषायमें लिप्तपनाके न होनेसे
औदयिकत्वम्॥ न*उपपद्यते T न*एषः॥ दोषः॥ =औदयिकपना नहीं पाया जाता है (=उत्तर) यह दूषण नहीं है
(३) पूर्वभावप्रज्ञापननयापेक्षया॥ या असौ॥ योगप्रवृत्तिः॥=(यहां) पहिले भाव जतावने की विवक्षाकरि जो यह योगप्रवृत्ति
कपाय अनुरञ्जिता॥ सा॥ एव* इति* =कपायों करि अनुरञ्जित (पहिले वा पूर्वे) थी वो(=सा) ही(=एव)इसप्रकार(इति)
उपचारात्॥ औदयिकी॥ इति उच्यते T =उपचार से औदयिक (लेश्या) कही जाती है यहां ऐसा भावार्थ जानना

कि उपरोक्त गुणस्थानोंमें कपायनिका अभाव होते भी शुक्ल लेश्या कही है वह पूर्व भावों की अपेक्षा से कही है पहिले कषायनकरि संयुक्त योग थे तहां समस्त कपायनिकातो इन तीनों गुणस्थानों में अभाव हुआ परन्तु योग ग्यारहवां और बारहवां गुण स्थान में वहीं रहे और तेरवेंमें ७ योग रहे इसलिए उपचार करि औदयिक लेश्या कही है जैसे कसूम करि रंगा हुआ वस्त्र धोने पर भी कसम्मल कहलाता है तैसे ही कपायों के दूर होने पर भी लेश्या कहलाती है॥

(१) जोगपउत्ती लेस्सा कसाय उदयाणु रंजिया होइ =योगप्रवृत्तिलेश्या कपायोदयानुरंजिता भवति
कसाय-उदयाणु-रंजिया॥ जोग पउत्ती॥ लेस्सा॥ होइ =कषायके उदयसे अनुरक्त जो योग प्रवृत्ति सो लेश्या है।
(२) अयदोत्ति छ लेस्साओ सुहतियलेस्साहु देसविरदतिये। तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु॥
असयत. * इति पड्॥ लेश्याः॥ शुभत्रयलेश्या॥ हि* देशविरत त्रये॥ । तत शुक्ला॥ लेश्या॥ अयोगिस्थानम्॥ अलेश्यं॥ तु*॥
=असंयत चौथे गुण स्थान तक छहले श्याहैं। पीत–पद्म–शुक्ल ये शुभ लेश्या देशविरत, प्रमत्तविरत,अप्रमत्त विरत, तीन गुण स्थानोंमें हैं अप्रमत्त से तेरह सयोगी तक शुक्ला है अयोगी लेश्या रहितहै (३) नैगमनयका एक पूर्वभाव प्रज्ञापन भेद माना है और जो बात पहिले थी किंतु वर्तमान में नहीं है उस का वर्तमान में होना मान लेना यह उस नयका विषय है। यद्यपि उपर्युक्त तीनो गुण स्थानोंमें योगों की प्रवृति कपायोंसे अनुरंजित नहीं है तथापि पूर्व भाव प्रज्ञापननयकीअपेक्षा जो पहिले योगों की प्रवृत्ति कपायों से अनुरंजित थी वह अब भी है ऐसा उपचार से मान लिया जाताहै इस रीति से उपशान्त कपाय,क्षीण कपाय, और संयोग केवली गुण स्थानों में होने वाली शुक्ल लेश्यामें भी जब लेश्या का लक्षण घटजाता है तब कोई दोष नहीं। चौदहवें अयोग केलवी गुण स्थान में लेश्या का अभाव है क्योंकि वहां पर योगों की प्रवृत्ति नहीं है॥

असाधारणा जीवस्य भावाः पारिणामिकास्त्रय एव ॥ अस्तित्वादयः पुनर्जीवाजीवविषयत्वात्साधारणा इति चशब्देन पृथग्गृह्यन्ते॥ आह औपशमिकादिभावानुपपत्तिरमूर्तत्वादात्मनः। कर्मबन्धापेक्षा हि ते भावाः। न चामूर्तेः कर्मणां बन्धो युज्यत इति॥ तन्न, अनेकान्तात् ॥

असाधारणाः ३।जीवस्य६। भावाः १।	=(क्योंकि) असमान वा जो औरमेंनपाएजावें सो जीवके भाव
पारिणामिकाः १। त्रय १।एव*अस्तित्वादयः१।पुनर्*	=पारिणामिक तीन ही हैं। बहुरि (=पुनर्) अस्तित्व, आदिक (दशभाव)
जीव—अजीव-विषयत्वात् ५॥ साधारणाः १।	=चेतन और जड़ विषैं होनेसे साधारण हैं (अर्थात्जीवमेंऔर अजीवमेंभीपाएजाते हैं)
इति*चशब्देन३।पृथक्*ग्रह्यन्ते। आह।	=इसप्रकार चशब्दकरि न्यारे ग्रहणकियेगये हैं (शिष्य)प्रश्नकरता है कि
औपशमिकआदिभावअनुपपत्तिः१॥अमूर्तत्वात्आत्मनः	=औपशमिक आदिभावोंकी चेतनके अमूर्तीक होने(के कारण)सेसिद्धिनहींहोतीहै
कर्मबन्ध-अपेक्षा १॥ हि*	=क्योंकि(=हि) कर्मबन्धकी अपेक्षारूप
ते१।भावाः१। न*च*अमूर्तेः६॥	=ते(औपशमिक आदि)भाव हैं। बहुरि(=च) नहीं है अमूर्तीकके
कर्मणाम् ६॥बन्धः१।युज्यते। इति*तद्	=कर्मोंका बन्धन युक्त वा उचित (उत्तर) वह(आत्मा)
न*अनेकान्तात् ५।	=अनेकान्त(नयकी अपेक्षा) से(प्रत्येक अवस्थामें)अमूर्तीक नहीं हैं

अस्तित्व वस्तुत्व द्रव्यत्व प्रमेयत्वमगुरुलघुत्व नित्यप्रदेशत्व मूर्तत्वममूर्तत्व चेतनत्वमचेतनत्व चैते दशभावाः ॥
(१) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो, उसको अस्तित्व गुण कहते है ॥२॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रिया हो उसको वस्तुत्व गुण कहते है जैसे—घड़ेकी अर्थक्रिया जल धारण है ॥३॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य सर्वदा एकसा न रहे और जिसकी पर्यायें (अवस्थाय) सदा पलटती रहेसो द्रव्यत्व है ॥४॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसी के ज्ञानका विषय हो उसको–प्रमेयत्व गुण कहते हैं ॥५॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता थिर रहे अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमें और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्त गुण बिखर कर जुदे २ न हो जावें उसको अगुरुलघु गुण कहते हैं। ॥६॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकार अवश्य हो उस को प्रदेशत्व गुण कहते है ॥
(७) मूर्तत्व = आकारता (८) अमूर्तत्व = निराकारता वा अमूर्तपना—(९) चेतनत्वम् = चेतनता = (१०) अचेतनत्वम् = अचेतनता अथवा जड़ता ॥

अन्यद्रव्यासाधारणा आत्मनो वेदितव्याः ॥ कुतः पुनरेषां पारिणामिकत्वम्। कर्मोदयोपशमक्षयक्षयोपशमानपेक्षित्वात् ॥ जीवत्वं चैतन्यमित्यर्थः । सम्यग्दर्शनादिभावेन भविष्यतीति भव्यः । तद्विपरीतोऽभव्यः । त एते त्रयो भावा जीवस्य पारिणामिकाः ॥ ननु चास्तित्वनित्यत्वप्रदेशत्वादयोऽपि भावाः पारिणामिकाः सन्ति तेषामिह ग्रहणं कर्तव्यम् । न कर्तव्यम् । कृतमेव । कथं चेच्चशब्देन समुच्चितत्वात् ॥ यद्येवं, त्रय इति संख्या विरुध्यते । न विरुध्यते ।

अन्यद्रव्य–असाधारणा।आत्मनः।वेदितव्याः।	=अन्यद्रव्यसे असाधारण वा भिन्नद्रव्यसे असमान आत्माको जाननाचाहिए
कुतः*पुनः*एषाम्। पारिणामिकत्वम्॥	=बहुरि इन(तीनों भावों)के कहांसे पारिणामिकपना है(इन तीनों भावोंमें)
कर्मोदय–उपशम–क्षय–क्षयोपशम–अपेक्षित्वात्॥	=कर्मका उदय उपशम क्षय क्षयोपशम की विवक्षा नहीं है
जीवत्वं॥चैतन्यं॥इति अर्थः सम्यग्दर्शनादि–भावेन।	=(तहां)जीवत्व चैतन्य है ऐसा आशय है। सम्यग्दर्शनादिक भावकरि
भविष्यति।इति*भव्यः।तद्–विपरीतः।अभव्यः।	=होयगा अर्थात् परिणमैगा ऐसा भव्य है उसके विरुद्ध अभव्य है अर्थात् सम्यग्दर्शनादिक जिसके न होवेंगे वो अभव्य है
ते। एते।त्रयः।भावाः।जीवस्य।पारिणामिकाः।	=ते इतने तीन भाव जीवके पारिणामिक हैं
ननु*च*अस्तित्वनित्यत्वप्रदेशत्वादयः। अपि *	=(प्रश्न)अस्तित्व नित्यत्व प्रदेशत्व आदिक भी
भावाः।पारिणामिकाः।सन्ति। तेषाम्। इह *	=भाव पारिणामिक हैं तिनका इस जगह में(=इह) अर्थात् इस सूत्रमें
ग्रहणम्॥कर्तव्यम्॥ न * कर्तव्यम्॥	=ग्रहण करना योग्य है। (तिन दशभावोंकाइससूत्रमें) ग्रहण करना योग्यनहीं
कृतम्॥ एव *	=(इससूत्रमें अस्तित्व नित्यत्व आदिक दशभावोंका ग्रहण) किया भी=(एव)है
कथम्*चेत् *च*शब्देन।	=सो(चेत्)कैसे वा किसप्रकार(=कथम्) किया है। (सूत्रमें) चशब्दके
समुच्चितत्वात्॥यदि*एवम्*त्रयः।इति*संख्या॥	=समुच्चितहोनेसे (लानेसे) ।(प्रश्न) यदि ऐसा है तो तीन ऐसी गिन्ती
विरुद्धयते। न * विरुद्धयते।	=विरोधी जाय है (उत्तर) (उपरोक्त तीनकी संख्या) नहीं विरोधी जाय है

(१) अत्रासाधारणवचनं-वक्ष्यमाणोस्तित्वादि साधारणपारिणामिकभावापेक्षम्

अत्र * असाधारण-वचनम्॥ वक्ष्यमाण- =यहां (संस्कृत सर्वार्थसिद्धिः वृत्तिमें) असाधारण वाक्य (=शब्द) कहेजानेवाले अस्तित्व-आदि-साधारण--पारिणामिक--भाव-अपेक्षम् =अस्तित्व आदिक (दश) साधारण वा समान पारिणामिक भावों की अपेक्षा है ॥

॥ उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोगः ॥ तेन बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यप्यात्मा लक्ष्यते। सुवर्णरजतयोर्बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यपि वर्णादिभेदवत् ॥ तद्भेददर्शनार्थमाह

(३) (४) (१) (२)

सूत्रम्—उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥ =उपयोगः (जीवस्य) लक्षणम् (भवति)

सूत्रार्थः— उपयोगः१। =चैतन्यकेसाथ रहने वाले आत्माके परिणाम का नाम उपयोग है। (वहउपयोग)

जीवस्य६।लक्षणम् १।।।भवति T=जीवका लक्षण है अर्थात् वाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके कारणोंका यथासंभव सन्निधान रहनेपर चैतन्यगुणके साथरहनेवाला जोकोई आत्माका परिणाम है उसका नाम उपयोग है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस आठवे सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

उभय–निमित्तवशात् ५। उत्पद्यमानः१। =दोनों(वाह्य आभ्यन्तर) कारणोंके आश्रयसे (चैतन्यके) उपजा

चैतन्य–अनुविधायी१।परिणामः१। उपयोगः१। =जुड़ाहुआ चैतन्य(ही)का परिणाम(सो) उपयोग है

तेन३।बन्धम् २।प्रति*एकत्वे७।।। सति७।।।अपि*आत्मा१। =तिस(लक्षण)करि बन्ध अपेक्षा(जीवऔर कर्म में) एकताहोनेपर भी चैतन्य

लक्ष्यते T सुवर्णरजतयोः६।बन्धम्२।प्रति एकत्वे७।।।सति७।।। =जुदालखाजाता है ॥ जैसे सौना चांदीके पिंड(बन्ध)से(=प्रति)एकपन होनेपर

अपि*वर्णादिभेदवत्*तद्भेददर्शन–अर्थम् १।।।आह T =भी(पीत–शुक्ल)रूपादिक भेदवत् है॥ उसके भेद दिखानेके लिये कहते हैं कि

(१) इस सूत्रमें इस दूसरे अध्यायके प्रथम सूत्रसे जीवस्य शब्दकी अनुवृत्ति आती है। (२) व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्तिहेतुर्लक्षणमुच्यते व्यतिकीर्णवस्तु–व्यावृत्तिहेतुः १। =परस्पर मिलेहुये पदार्थोंमें जो उनके भेद–ज्ञान करानेमें हेतु है वा पहचान करानेवाला कारण है लक्षणम् १।।।उच्यते T =सोलक्षण कहा जाताहै भावार्थ परस्पर मिली हुई वस्तुओंमेसे किसीएकवस्तुको भिन्न करनेमे जो कारण हो उसका नाम लक्षण है। जिस प्रकार अग्नि उष्ण है यहां पर पदार्थ समूहसे अग्निको जुदा करनेवाला उष्णत्वहै अत. वह लक्षण है (३) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है

(४) उपयोग=आत्माका चैतन्यस्वभाव, आत्माका परिणाम, आत्माकी परिणति, आत्माका परिणमन ॥

नायमेकान्तः अमूर्तिरेवात्मेति। कर्मबन्धपर्यायापेक्षया तदावेशात्स्यान्मूर्तः। शुद्धस्वरूपापेक्षया स्यादमूर्तः॥ यद्येवं कर्मबन्धावेशादस्यैकत्वे सत्यविवेकः प्राप्नोति। नैष दोषः। बन्धं प्रत्येकत्वे(ऽविवेके) सत्यपि लक्षणभेदादस्य नानात्वमवसीयते॥ उक्तं च-बन्धपडि एयत्तं लक्खणदो हवइ तस्स णाणत्तं। तह्मा अमुत्तिभावोऽणेयंतो होइ जीवस्स॥ १॥ इति॥ यद्येवं तदेव लक्षणमुच्यतां, येन नानात्वमवसीयत। इत्यत आह—

२७

न॥अयम्॥एकान्तः॥अमूर्तिः॥एव॥आत्मा॥इति॥ =यह(=अयम्)एकान्त नहीं है कि चेतन अमूर्तीक ही (=एव) है
कर्म-बन्धपर्याय-अपेक्षया॥तद्-आवेशात्॥ =कर्म बन्धनरूप पर्यायकी विवक्षाकरि उस (कर्म बन्धन) के प्रवेशहोनेसे
स्यात् मूर्तः॥शुद्ध स्वरूप-अपेक्षया॥स्यात्। अमूर्तः॥ =कथंचित् मूर्तीक है (और) शुद्ध स्वरूपकी विवक्षाकरि कथंचित् (स्यात्)अमूर्तीक है
यदि॥एवम्॥कर्म बन्ध-आवेशात्॥अस्य॥ =(प्रश्न)जो इस प्रकार है तो कर्मबन्धनके बन्धनसे उस (आत्मा)के
एकत्वे॥सति॥अविवेकः॥प्राप्नोति। न एषः॥दोषः॥ =एकपना होनेपर अज्ञानपना प्राप्ति होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है
बन्धम्॥प्रति॥एकत्वे॥(अविवेके॥)सति॥अपि॥ =कर्मबन्धन पर्यायज्ञान अपेक्षासे एकपना(=एकत्वे)अर्थात् अविवेकपना होनेपर भी
लक्षण-भेदात्॥अस्य॥नानात्वम्॥अवसीयते। =लक्षण भेदसे उस(चेतन)के अनेकपना निश्चय किया जाता है
उक्तम्॥च॥बन्धं॥पडि॥(-बन्ध॥प्रति॥) =और कहा भी है। बन्धकी अपेक्षासे
एयत्तं॥लक्खणदो॥(एकत्वम्॥लक्षणतः॥) =(जीव और कर्मके) एकत्व वा एकता है और लक्षण (भेद) से
हवइ। तस्स॥णाणत्तम्॥(भवति तस्य नानात्वम्)=तिस(जीव)के अनेकपना है
तह्मा॥अमुत्तिभावो॥(तस्मात्॥अमूर्तिभावः॥) =तिस कारणसे (तस्मात्-तह्मा)अमूर्तीकभाव
अणेयंतो॥होइ। जीवस्स॥(अनेकान्तः भवति जीवस्य)=अनेकान्त (नय)से जीवके होय है अर्थात् जीवके अमूर्तीक भाव सिद्ध होता है
इति॥ =इस प्रकारसे सात सूत्रोंकरि जीवके पांच भाव वर्णन किये।
यदि॥एवम्॥ =(प्रश्न)जो इसप्रकार है अर्थात् बन्धप्रति (जीव और कर्मके)एकत्वपना है तो
तद्॥एव॥लक्षणम्॥उच्यताम्। येन॥नानात्वम्॥ =वही(-तद्एव) लक्षण कहेजाने योग्य है किजिस(लक्षण)द्वारा अनेकपना
अवसीयते। इति॥अतः॥आह। =निश्चय किया जाता है इसलिए(आचार्यनिम्न सूत्रमें) कहते हैं कि

२७

निरावरणेषु युगपत्। पूर्वकालभाविनोऽपि दर्शनात् ॥ ज्ञानस्य प्रागुपन्यासोऽभ्यर्हितत्वात् ॥ सम्यग्ज्ञानप्रकरणात्पूर्वं पंचविधो ज्ञानोपयोगो व्याख्यातः ॥ इह पुनरुपयोगग्रहणाद्विपर्ययोऽपि गृह्यते इत्यष्टविध उच्यते ॥ यथोक्तेनानेनाभिहितपरिणामेन सर्वात्मसाधारणेनोपयोगेन ये उपलक्षिता योगिनस्ते द्विविधाः— ॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

निरावरणेषु ७। =कर्मरूपआवरण रहित सर्वज्ञजीवोंमें अर्थात् केवलज्ञानियोंमें
युगपत्*पूर्वकालभाविनः६।अपि*दर्शनात्५।। =(ज्ञान-दर्शन)एककालमें होते हैं ॥ प्रथम होनेवाले दर्शनोपयोगसे भी
ज्ञानस्य६।।।प्राक्*उपन्यासः१।अभ्यर्हितत्वात् ५।। =(सूत्रमें) ज्ञानका पहिले कहना प्रधानपना अथवा श्रेष्ठताके कारणसे है अर्थात् ज्ञान प्रधान है इससे इस सूत्रमें दर्शनसे पहिले ज्ञानको कहा है
सम्यग्ज्ञान-प्रकरणात् ५।।। =सम्यग्ज्ञानकेविषय में वा सम्यग्ज्ञानकेप्रकरणमें
पूर्वम् १।।। पंचविधः१। ज्ञानउपयोगः१। व्याख्यातः१। =पहिले(प्रथम अध्याय सूत्र ९में) पांच प्रकार ज्ञान उपयोग कहागया है
इह*पुनः*उपयोगग्रहणात् ५।।। विपर्ययः१। अपि* =बहुरि यहां(=इह)उपयोग शब्द लानेसे विपर्ययज्ञान भी
गृह्यतेTइति*अष्टविधः१। उच्यते T =ग्रहणकियागया है इस प्रकार (ज्ञानोपयोग) आठ प्रकार कहागया है।
अनेन३। अभिहित-परिणामेन ३। =(अब दशवांसूत्रकी उत्थानिका कहते है कि)ग्रहणकिया है परिणाम इसने
सर्वात्मसाधारणेन३।यथोक्तेन३।उपयोगेन३। =(और) सर्वआत्मामें साधारण(प्रधान) यथोक्त जो उपयोग है ताकरि
ये १। उपलक्षिताः१। योगिनः१।ते १। द्विविधाः१। =उपलक्षित ये योगी(=उपयोगी जो आत्मा है)ते दो प्रकार हैं अर्थात् आठवां नवमां दो सूत्रोंमें कथित यह परिणाम वा उपयोग जो समस्तजीवोंमें साधारणतः दिखाया गया है ते जीव निम्नकथित सूत्रानुसार दो प्रकार हैं

॥ (१)संसारिणो मुक्ताश्च(२) ॥ १०॥=ते जीवाःसंसारिणो मुक्ताश्च द्विविधाः भवन्ति

ते १।जीवाः१।संसारिणः१।मुक्ताः१।च द्विविधाःभवन्ति=तेजीवसंसारीऔर(=च)मुक्त दोप्रकारहोते हैं। अर्थात्जोजीवकर्मसहितहैं

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ (२)चशब्दः-(प्रश्न) 'संसारिणो मुक्ताश्च' यहांपर

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ६ ॥

स उपयोगो द्विविधः। ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति ॥ ज्ञानोपयोगोऽष्टभेदः। मतिज्ञानं, श्रुतज्ञानं, अवधिज्ञानं, मनःपर्ययज्ञानं, केवलज्ञानं, मत्यज्ञानं, श्रुताज्ञानं, विभङ्गज्ञानं चेति ॥ दर्शनोपयोगश्चतुर्विधः। चक्षुर्दर्शनं, अचक्षुर्दर्शनं, अवधिदर्शनं, केवलदर्शनं चेति ॥ तयोः कथं भेदः?। साकारानाकारभेदात्। साकारं ज्ञानमनाकारं दर्शनमिति ॥ तच्छद्मस्थेषु क्रमेण वर्तते।

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—सः॥द्विविधः॥अष्टचतुर्भेदः॥ =वह (उपयोग) दो प्रकार है(उनमेंसे) एक आठप्रकारहै दूसरा चारप्रकार है
वृत्त्यनुवादः–सः॥उपयोगः॥द्विविधः॥ज्ञान–उपयोगः॥ =वह चैतन्यस्वभाव दो प्रकार है ज्ञान उपयोग
दर्शन–उपयोगः॥ च*इति*ज्ञान–उपयोगः॥ =और (=च) दर्शन उपयोग इस प्रकार हैं ज्ञान उपयोग
अष्टभेदः॥ मतिज्ञानम्॥॥श्रुतज्ञानम्॥॥ =आठ प्रकार है (अर्थात्) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान,
अवधिज्ञानम्॥॥मनःपर्ययज्ञानम्॥॥ केवलज्ञानम्॥॥ =अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, (तथा)
मतिअज्ञानम्॥॥श्रुतअज्ञानम्॥॥विभङ्गज्ञानं॥॥ च*इति*=मतिअज्ञान वा कुमति,श्रुतअज्ञान वा कुश्रुतऔर विभंगज्ञान वाकुअवधि इसप्रकारहैं
दर्शन–उपयोगः॥चतुर्विधः॥चक्षुर्दर्शनम्॥॥ =दर्शन उपयोग चार है (अर्थात्) चक्षुर्दर्शन
अचक्षुर्दर्शनम्॥॥अवधिदर्शनं॥॥केवलदर्शनम्॥ च* =अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन,और केवलदर्शन
इति तयोः॥॥ कथम्*भेदः॥ ? =इस प्रकार हैं इन दोनों (ज्ञान तथा दर्शनउपयोग) में कैसे भेद है
साकार–अनाकार भेदात्॥साकारम्॥॥ ज्ञानम्॥॥ =(उत्तर) साकार और निराकार के भेदसे(अर्थात्)आकार सहित ज्ञान है
अनाकारम्॥॥दर्शनम्॥॥ इति* =निराकारदर्शन है इसप्रकारहैं(अर्थात्) दर्शनसत्तामात्रआकाररहितका ग्रहणहै
तद्॥॥छद्मस्थेषु॥॥क्रमेण॥ वर्तते। =वे(ज्ञान दर्शन)छद्मस्थ असर्वज्ञजीवोंमें क्रम(प्रथमदर्शनपीछे ज्ञान) से वर्तते हैं

स एषामस्ति ते संसारिणः॥ तत्परिवर्तनं पञ्चविधं द्रव्यपरिवर्तनं, क्षेत्रपरिवर्तनं,कालपरिवर्तनं,भवपरिवर्तनं,भावपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनं द्विविध नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं कर्मद्रव्यपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम,त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन एकस्मिन्समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीताननन्तवारानतीत्य मिश्रकांश्चानन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीतांश्च

जे कर्म तिनके वशहोकरि भवसे भवांतरकी प्राप्तिको संसार कहते हैं

सः१। एषाम्६। अस्ति।ते१। संसारिणः१। तत् परिवर्तनम्१॥ =वह(संसार)जिनकेहै,ते संसारी हैं। वह परिवर्तन संसरण वा परिभ्रमण

पंचविधं१॥ द्रव्यपरिवर्तनं १॥ क्षेत्रपरिवर्तनं १॥ =पाँच प्रकार है द्रव्यसंसरण, क्षेत्रसंसरण

कालपरिवर्तनम् १॥ भवपरिवर्तनम् १॥ च * =कालसंसरण, भवसंसरणऔर

भावपरिवर्तनम् १॥ इति* तत्र*द्रव्यपरिवर्तनम् १॥ =भावसंसरण इस प्रकार हैं तहाँ द्रव्यपरिभ्रमण

द्विविधं १॥ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं१॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनं१ च इति =दो प्रकार(द्विविधम्) है नोकर्मद्रव्यसंसरण और कर्मद्रव्यसंसरण इसप्रकार हैं

तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् १॥ नाम १॥ =तहाँ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन नाम(इसप्रकार है कि) [श्वासोश्वास–भाषा–मन

त्रयाणाम् ६॥ शरीराणाम् ६॥ षण्णाम् ६॥ =तीन(औदारिकवैक्रियकआहारक)शरीर और छह (आहार-शरीर-इन्द्रिय-

पर्याप्तीनाम् ६॥ योग्याः १।ये १। पुद्गला १। एकेन ३।जीवेन ३। =पर्याप्तिके योग्य जे पुद्गल परमाणुके स्कंध एक चेतन करि

एकस्मिन् ७। समये ७। गृहीताः १। स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिः ३। =एक समयमें ग्रहणकिये (ते) स्निग्धरूक्षवर्णगंध आदिकरि

तीव्रमन्दमध्यमभावेन ३। च यथावस्थिताः१।द्वितीयादिषु ७। =और तीव्र मन्द मध्यम भावकरि जैसे तिष्ठते द्वितीयादिक

समयेषु७। निर्जीर्णाः १। अगृहीतान् २। =समय में खिरे (बहुरिद्वितीयादिक समयमें) विनाग्रहे (परमाणु) ३२

अनन्तवारान् २। अतीत्य÷मिश्रकान् २। च* =अनन्तवार ग्रहणकियेका उलंघकरि और मिश्रपरमाणुओंको

अर्थात् पहिले ग्रहेथे तिनमेंके ग्रहीत भी बहुरि नये ग्रहणकिये तेभी

अनन्तवारान् २।अतीत्य÷मध्ये७। गृहीतान् २।च* =अनन्तवार(ग्रहणमेंआएहुओंको)उल्लंघ करि और बीचमेंग्रहीतपरमाणु

ससरणं संसारः परिवर्तनमित्यर्थः।

कर्मों की पराधीनताके कारण अनेक जन्म मरणोंको करते हुए संसारमें भ्रमण करते रहते हैं वे संसारी कहे जाते हैं और जो समस्त कर्मोंको काटकर मुक्तहोगये हैं उनको मुक्त जीव वा सिद्धजीव कहते हैं

संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस आठवे सूत्रपर

सूत्रर्थः-संसरणम् ।।।।संसारः।।परिवर्तनम् ।।।। इति॰अर्थः।। =परिभ्रमणरूप संसारहै वही परिवर्तनहै ऐसाअर्थहै अर्थात्अपनेभावकरिबांधे

वाक्यरूपसे सूत्रका उल्लेख न कर संसारिणश्च मुक्ताश्च 'संसारिमुक्ताः' ऐसा द्वंद्व समास मानना चाहिये लाभ यह है कि चशब्द कहना न पड़ेगा इसलिये लाघव होगा तथा सूत्रका जो अर्थ है उसअर्थमें किसो प्रकारकी बाधा भी न होगी (उत्तर) संसारी और मुक्त दोनों शब्दोंमें मुक्त शब्द पूज्य और अल्पाक्षर है इसलिए द्वंद्वसमास करने पर मुक्तशब्दका ही पूर्व निपात होनेसे मुक्तसंसारिणःऐसा सूत्रकरना पड़ेगा तथा "मुक्तः संसारो येन भावेन स मुक्तसंसारःतद्वतो मुक्तसंसारिणः" अर्थात् जिस स्वरूपसे संसारकाछूट जाना हो वह मुक्तसंसार और उससे विशिष्ट वा सहित मुक्त संसारी है यह मुक्तसंसारी शब्दका अर्थ होगा एवं उससे ज्ञानदर्शनस्वरूप उपयोगवान मुक्तसंसारी अर्थात् सिद्धजीव ही कहे जांयगे ससारी जीव न कहे जांयगे इस रीतिसे द्वंद्व समास मानने पर इस दूसरे अर्थकी प्रतीतिसे विपरीत अर्थ होगा अतः द्वंद्वसमास न मानकर "संसारिणो मुक्ताश्च" यह वाक्यार्थ ही उपयुक्त है ॥ यदि यहां पर फिर ये शंकाकी जाय कि संसारिणो मुक्ताश्च यहां पर च शब्द का अर्थ समुच्चय माना है तथा "आपस में विशेषणविशेष्य रूपकी अपेक्षा न कर अनेक शब्दोंका वाक्य में भिन्न भिन्न रूपसे रहना" यह समुच्चय शब्दका अर्थ है यहां पर भी संसारी और मुक्त दोनों शब्द भिन्न भिन्न हैं यह बात बतलाने के लिये सूत्रमें 'च' शब्दका उल्लेख किया है परन्तु जिस प्रकार'पृथिव्यप्तेजोवायुः'इस वाक्यमें पृथिवी आदि शब्दों में आपसमें विशेषणविशेष्य भाव नहीं है तथा अर्थभी भिन्न भिन्न है इस लिये वे भिन्न भिन्न माने जाते हैं उसी प्रकार'संसारिणोमुक्ता'यहां पर भी आपस में विशेषण विशेष्य भाव नहीं तथा अर्थभी भिन्न है इसलिये संसारी और मुक्त दोनों शब्द भिन्न भिन्न हैं अतः उनमें भेद प्रकट करनेके लिये समुच्चयार्थक चशब्द का उल्लेख करना व्यर्थ है (उत्तर) च शब्दके समुच्चय और अन्वाचय ये दोनों अर्थ हैं तथा एकको प्रधान और दूसरों को गौण बतलाना यह अन्वाचय शब्द का अर्थ है सूत्रमें जो चशब्द है उसका अर्थ यहां अन्वाचय है और एकस्थान में उपयोग गौणरूप से रहता है और दूसरे स्थान में मुख्यरूपसे रहता है यह यहांपर चशब्द द्योतन करता है इसरीतिसे "भैक्ष्यं चर देवदत्तचानय" अर्थात् भिक्षा का आचरण करो और देवदत्त को लेआओ इस अन्वाचय के प्रसिद्ध उदाहरण में जिस प्रकार भिक्षाका आचरण करना प्रधान है और देवदत्तका लाना गौण है उसी प्रकार संसारी और मुक्तजीवों में संसारीजीव प्रधानतासे उपयोगवान हैं और मुक्तजीव गौणरूप से उपयोगवान है यह चशब्दसे प्रदर्शित अर्थ है। इस लिये सूत्रमें 'चशब्द' व्यर्थ नहीं है ॥

सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण । असइ अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥१॥ क्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते-- सूक्ष्मनिगोदजीवोऽपर्याप्तकः सर्वजघन्यप्रदेशशरीरो लोकस्याष्टमध्यप्रदेशान्स्वशरीरमध्यप्रदेशान् कृत्वोत्पन्नः क्षुद्रभवग्रहणं जीवित्वा मृतः स एव पुनस्तेनैवावगाहेन द्विरुत्पन्नस्तथा त्रिस्तथा चतुरित्येवं यावद्घनांगुलस्यासंख्येयभागप्रमिताकाशप्रदेशास्तावत्कृत्वस्तत्रैव ॥

सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण । असइ अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥ १ ॥

=पुग्गलपरियट्टसंसारे असइ अणंतखुत्तो सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण ॥ १ ॥

पुग्गलपरियट्टसंसारे ३। (पुद्गलपरिवर्तनसंसारे ३।)असइ ७।	=इस (=असइ=अस्मिन्) पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें
अणंतखुत्तो * (अनंतकृत्वः*)	=अनंत (=अणंत) कृत्वः (=बार)
सव्वे ३। अवि* पुग्गला ३। (सर्वे ३। अपि* पुद्गलाः ३।)	=सबही पुद्गल
खलु* कमसो* (खलु* क्रमशः*)	=निश्चयकरि अनुक्रमसे
भुत्तुज्झिया ३।।य*जीवेण३। (भुक्तोज्झिता ३।।च जीवेन३।)	=जीवद्वारा ग्रहण किये जाकर छोड़ दिये गये हैं अर्थात् "इस पुद्गलपरिवर्तन रूप संसार विषै इस जीवनैं सर्व ही पुद्गल निश्चयकरि अनंतवार अनुक्रमसे ग्रहण करि करि छोड़े हैं' जयचंद वचनिका पृष्ठ २४६
क्षेत्रपरिवर्तनम् १।।। उच्यते T सूक्ष्मनिगोदजीवः१।	=क्षेत्र परिवर्तन कहा जाता है (जब) कोईजीव सूक्ष्मनिगोदिया
अपर्याप्तकः १। सर्वजघन्यप्रदेशशरीरः १। लोकस्य ६।	=अपर्याप्तक समस्त जघन्य (अवगाहनारूप) शरीरवाला लोकके
अष्टमध्यप्रदेशान् २।स्वशरीरमध्यप्रदेशान्३।कृत्वा—उत्पन्नः१।	=आठ मध्यके प्रदेशोंको अपने शरीरके मध्य प्रदेश करि उपजा अर्थात् लोकके अष्टमध्यप्रदेशोको अपनेशरीरका अष्टमध्यप्रदेशबनाकरउत्पन्नहुआऔर
क्षुद्रभवग्रहणम् ३। जीवित्वा—मृतः१।	=क्षुद्रभव (स्वासके अठारहवां भागस्थिति रहने वाला) पाय जीकर मरा
सः१। एव*पुनर्*तेन३।एव*अवगाहेन ३। द्विः	=बहुरि वो(जीव)ही तिस ही अवगाहनकरि दूसरी बार
उत्पन्नः१।तथा*त्रिः तथा*चतुर् इति*	=तथा तीसरीबार तथा चौथीबार जन्मा (और मरा इस प्रकार)
एव*यावत्*घनांगुलस्य ६।।। असंख्येयभागप्रमिता—	=ही जितने घनांगुलके असंख्यातवां भाग प्रमाणित(=प्रमिता)
आकाश—प्रदेशाः१। तावत्*कृत्वः* तत्र*एव*	=आकाश प्रदेश हैं तितने बार (=कृत्वः) तहांही वा उस स्थानमें ही

(३) क्रिया विशेषण बार बार के अर्थ प्रकाशक द्वि, त्रि, और चतुर् अंको में स् लगादेनेसे और शेषमें कृत्वस् लगादेनेसे बनते हैं और कृत्वस्

अनन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम्॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते--एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्मभावेन पुद्गला ये गृहीताः समयाधिकामावलिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णाःपूर्वोक्तेनैव क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च

अनन्तवारान् ३।अतीत्य ÷ ते३।एव*तेन ३।एव*	=अनन्तवार ग्रहणमें आयेहुओंको उलंघिकरि (जब) तेही तिसही
प्रकारेण३।तस्य६।एव*जीवस्य६।नोकर्मभावम्२। आपद्यन्ते T	=प्रकारकरि तिसही जीवके नोकर्मभावको प्राप्त होते हैं अर्थात् वही जीव जिसने पहिले समयमें परमाणुग्रहे थे तेही तैसे स्पर्शादिकके अविभागप्रतिच्छेदनिकी संख्या लिये तथा तितने ही परमाणु को लिये समयप्रबद्ध ग्रहण करे।
यावत्*तावत्*समुदितम्१॥ नोकर्म द्रव्य-	=सारा(=यावत्) इतना(=तावत्)(काल)इकट्ठा होय है(तब)नोकर्म द्रव्य-
परिवर्तनम् १॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् १॥ उच्यते T	=परिवर्तन होता है। (अब) कर्मद्रव्यपरिवर्तन कहा जाता है
एकस्मिन् ७।समये७।एकेन३।जीवेन३।अष्टविधकर्म-	=(तहां) एक समयमें एकजीवकरि आठप्रकार कर्म-
भावेन ३।पुद्गलाः१। ये १।गृहीताः१।	=स्वभावकरि जे पुद्गल ग्रहणकिये (ते)
समय-अधिकाम् २।आवलिकाम् २। अतीत्य ÷	=समय अधिक आवलीकालको उल्लंघकर
द्वितीयादिषु७। समयेषु७। निर्जीर्णाः१। पूर्वोक्तेन ३।	=द्वितीयादिक समयोंमें निर्जीर्ण भये (फिर) पहिले कथित
एव *क्रमेण ३।	=(नोकर्मद्रव्यपरिवर्तकीज्यों)हीक्रमकरि(अर्थात् अगृहीतऔरमिश्रगृहीत और मध्यगृहीतपरमाणुओंका ग्रहण करते करते जब कोई समय ऐसाहोय जिसमें)
ते१।एव*तेन३। एव*प्रकारेण३।तस्य ६। जीवस्य ६।	=तेही(कर्म योग्य पुद्गल) तिस ही प्रकारकरि तिस जीवके (जब)
कर्मभावम् २।आपद्यन्ते T यावत्*तावत्*	=कर्मभावको प्राप्तहोते हैं(तब)सारा(यावत्)इतना(=तावत्)
कर्मपरिवर्तनम् १॥ उक्तम् १॥च*	=(काल)कर्म परिवर्तन है ॥ कहा गया भी (च) है

(२) नोकर्मद्रव्य परिवर्तनका और कर्म द्रव्यपरिवर्तनका समान ही काल है और कर्मद्रव्यपरिवर्तन में समस्त विधि नोकर्मद्रव्य परिवर्तन कीभांति है॥ केवल अंतर इतना है कि नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनमें नोकर्मवर्गणाओंका ग्रहण है और कर्मद्रव्यपरिवर्तनमें कर्म वर्गणाओंका ग्रहण है॥

कालपरिवर्तनमुच्यते–उत्सर्पिण्याः प्रथम समये जातः कश्चिज्जीवः स्वायुषः परिसमाप्तौ मृतः स एव पुनर्द्वितीयाया उत्सर्पिण्या द्वितीयसमये जातः स्वायुषः क्षयान्मृतः स एव पुनस्तृतीयाया उत्सर्पिण्यास्तृतीयसमये जात एवमनेन क्रमेणोत्सर्पिणी परिसमाप्ता, तथा अवसर्पिणी च। एवं जन्मनैरन्तर्यमुक्तं मरणस्यापि नैरन्तर्यं तथैव ग्राह्यम्

कालपरिवर्तनं॥ उच्यते॥ उत्सर्पिण्याः॥ प्रथमसमये॥ जातः॥ =कालपरिवर्तन कहा जाता है उत्सर्पिणीकालके पहिले समयमें उपजा
कश्चित्* जीवः॥ स्व–आयुषः॥ परिसमाप्तौ॥ मृतः॥ =कोई जीव अपनी आयुके परिपूर्णहोनेपर मरा।
सः॥ एव पुनः द्वितीयायाः॥ उत्सर्पिण्याः॥ द्वितीयसमये॥ जातः॥ =बहुरि वोही (जीव) दूसरे उत्सर्पिणीकालके दूसरेसमयमें उत्पन्न हुआ (और)
स्व–आयुषः॥ क्षयात्॥ मृतः॥ सः॥ एव* पुनः* तृतीयायाः॥ =अपनी आयु पूर्णकरि (=क्षयात्) मरा। बहुरि वोही (जीव) तीसरे
उत्सर्पिण्याः॥ तृतीयसमये॥ जातः॥ एवम्* अनेन॥ =उत्सर्पिणी(काल)के तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ इसप्रकार इस
क्रमेण॥ उत्सर्पिणी॥ परिसमाप्ताः॥ =क्रमसे (दसकोड़ाकोड़ी सागरका) उत्सर्पिणी काल परिपूर्ण किया

अर्थात् उत्सर्पिणी कालके दश कोड़ा कोड़ी सागर के जितने समय हैं उन समस्त समयोंमें क्रमानुसार उसी जीवने जन्म लिया क्रमको छोड़कर और समयोंमें जन्म लिया सो गिनतीमें नहीं आवे हैं॥

तथा* अवसर्पिणी॥ च* एवम्* =बहुरि(तथा) अवसर्पिणी (काल) भी (=च) इसीप्रकार(एवम्)
जन्म–नैरन्तर्यम्॥ उक्तम्॥ =लगातार वा अविच्छेद (=नैरन्तर्यम्) जनमलेनेमें कहागया है

अर्थात् अवसर्पिणी काल के दश कोड़ा कोड़ी सागरके जितनेसमय हैं उन समस्तसमयोंमें क्रमानुसार उसी जीव ने जन्म लिया क्रमको छोड़कर और समयोंमेंजन्म लिया सोगणनामेंनहींआवैहै

मरणस्य॥ अपि* नैरन्तर्यं॥ तथा* एव* ग्राह्यम्॥ =तैसेही(उसीजीवका)मरणभी अविच्छेद वा लगातार ग्रहणयोग्यहैअर्थात्बीस कोड़ा कोड़ी सागरके उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके जितने समय हैं उन समस्त समयोंमें वही जीव जिसने अनुक्रमसे बीसकोड़ाकोड़ी सागरके उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके सर्वसमयोंमें जन्म लिया है क्रमनुसार ही मरण करता है क्रमको छोड़कर और और समयोंका मरण गणनामें नहीं लिया जाता है।

जनित्वा पुनरेकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वो लोक आत्मनो जन्मक्षेत्रभावमुपनीतो भवति याव-त्तावत्क्षेत्रपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च– सव्वं हि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं । ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे ॥ १ ॥

अर्थात् बीच में अनंतवार अन्य अवगाहना तथा अन्य क्षेत्र में उपजा वह इस परिवर्तन के प्रमाण रहित

जनित्वा÷पुनः॥ एक–एक प्रदेश–अधिकभावेन ॥ =उपजकर बहुरि(पश्चात्उसक्षेत्रसे लोकके)एक एक प्रदेश अधिकमें(क्रमसेजन्मलेकर)

सर्वः ॥ लोकः ॥ आत्मनः ॥ =समस्त लोक (तीनसेतैंतालीस घनराजू प्रमाण)आत्मा वा अपने (=आत्मनः)

जन्मक्षेत्रभावम् ॥ उपनीतः ॥ भवति T =जन्म क्षेत्रपनको वा जन्मक्षेत्ररूप को प्राप्त किया हुआ (=उपनीतः) होता है

अर्थात् वही जीव उस क्षेत्रसे पश्चात् लोकके एक एक प्रदेश अधिकमें जन्म लेकर समस्त लोकके सब प्रदेशोंको क्रमानुसार ही (अनुक्रम विना जन्मले वहन गिनियें) स्पर्शकरि अपना जन्म क्षेत्र करता है वा बना लेता है ॥

यावत्॥तावत्॥क्षेत्रपरिवर्तनम् ॥॥ उक्तं ॥॥ च॥ =(तब) सारा (=यावत्)इतना(=तावत्)क्षेत्रपरिवर्तन है । बहुरि कहा गया हैकि

सव्वंहि लोयखेत्त कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं। ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे॥१॥

सव्वंहि लोयखेत्त कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं

खेत्तसंसारे । सव्वंहि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं

=ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो

ओगाहणेण ॥॥बहुसो॥(अवगाहनेन ॥॥बहुशः॥) =अनेक(=बहुश)अवगाहना(रूपशरीर को प्राप्तकरि

परिभमिदो॥खेत्तसंसारे॥(परिभ्रमतः॥ क्षेत्रसंसारे॥) =चारों ओरसे(=परि)भ्रमताहुआ (इस) क्षेत्र संसारमें

सव्वम्हि ॥लोयखेत्ते॥॥(=सर्वस्मिन्॥॥लोकक्षेत्रे ॥॥) =सर्वलोक क्षेत्रमें

कमसो॥तं ॥॥ण॥त्थि T(क्रमशः॥तत्॥॥ न॥अस्ति) =अनुक्रमसे वहां ऐसा स्थान नहीं है

जं॥॥ण॥उप्पण्णं॥॥(यत्॥॥न॥उत्पन्नम् ॥॥) =जहां(यहजीव)नहीं जन्मा है अर्थात् इसक्षेत्र संसार विषै भ्रमता यहजीव सोअनेक अवगाहनरूपशरीरकूंपायइस सर्वलोकका क्षेत्रविषै अनुक्रमतेउपजा तहांऐसाक्षेत्र न रहा जहां न उपजा ।

कृत्वसुच् प्रत्यय संख्या वाचक शब्दों में और पञ्चन् से पञ्चकृत्वः तावत् से तावत्कृत्वः अर्थात् तितनी बार ॥

लगाने पर अंतका न् गिर जाता है जैसे द्विः, त्रिः चतुः और पञ्चन् से पञ्चकृत्वः तावत् से तावत्कृत्वः अर्थात् तितनी बार ॥

ततःप्रच्युत्य तिर्यग्गतावन्तर्मुहूर्तायुःसमुत्पन्नः पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त्रीणि पल्योपमानि तेन परिसमापितानि,एवं मनुष्यगतौ च तिर्यग्वत्, देवगतौ नारकवत्,अयं तु विशेषः—एकत्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमापितानि यावत्तावद्भवपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च—

अन्यगत्यादि विषैं भ्रमण करते करते फिर कोई काल विषैं तिस ही आयु को पाय तिस पाथड़े में उपजा ऐसे ही दशसहस्र वरस के जितने समय होंय तितनीवार तो तिस ही आयुसहित तहां ही उत्पन्न होतारहा बीचमें अन्य स्थानमें उत्पन्न हुआ सो गणना में नहीं आता है ॥ पीछे एक समय अधिक दशसहस्र वर्षकी आयु पाय उपजा ॥ पश्चात् दश हजार वरस दो समय अधिककी आयु पाय उपजा इसही अनुक्रमसे जितने तेतीस सागरके समय हैं तितने जन्मसे तथा मरणसे पूर्ण करता है क्रम रहित बीच बीच अन्यगति तथा अन्य आयुकरि उपजै सो तिस गिनती में नहीं आते हैं॥

ततः*प्रच्युत्य ÷ तिर्यग्गतौ७॥अन्तर्मुहूर्तआयुः१॥ =वहाँ (नरक) से निकलकरि तिर्यंचगतिमें अन्तर्मुहूर्तआयुवाला

समुत्पन्नः १। पूर्वोक्तेन ३। एव * क्रमेण ३। =उत्पन्न होता है पहिले कहे हुए ही क्रमकरि

त्रीणि १॥ पल्योपमानि १॥ तेन ३। परिसमापितानि १॥ =तीन पल्य प्रमाण तिस(जीव) करि परिपूर्ण होते हैं अर्थात् वही जीव तिर्यंचगतिमें जघन्य आयुअन्तर्मुहूर्तकी पाय फिर समाप्तकरि अंतर्मुहूर्तके जितने समय होय तितनीबार जघन्य आयुधारि पीछे एक एक समय अधिक अनुक्रमकरि तीन पल्य पर्यंत समस्त स्थितिविषैं जन्मधारिपरिपूर्ण करै है

एवम्*मनुष्यगतौ ७।च*तिर्यग्वत्* =इस प्रकार नरगति में भी(=च)तिर्यंच सदृश है

देवगतौ ७। नारकवत्*अयम् १। तु*विशेषः१। =देवगतिविषैं नरकके सदृश है परतु(=तु) भेद यह है (कि)

एकत्रिंशत्सागरोपमाणि१॥ परिसमापितानि १॥(करोति)=इकतीस सागर प्रमाण(पूर्वोक्तक्रमसे) परिपूर्ण करता है(अर्थात्) इकतीस सागरसे अधिक आयुके धारक नौ अनुदिश पांच अनुत्तर ऐसे चौदह विमानों में उपजे देवोंके परिवर्तन नहीं होता है क्योंकि वे सम्यग्दृष्टी हैं

यावत्*तावत्*भवपरिवर्तनम् १। उक्तम् १॥ च * =सारा (=यावत्) इतना(=तावत्) भवपरिवर्तन है। कहा भी है

एतावत्कालपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च उवसप्पिणिअवसप्पिणिसमयावलियासु णिरवसेसासु । जादो मुदो य वहुसो भमणेण दु कालसंसारे ॥ १ ॥ भवपरिवर्तनमुच्यते–नरकगतौ सर्वजघन्यमायुर्दशवर्षसहस्राणि, तेनायुषा तत्रोत्पन्नः पुनः परिभ्रम्य तेनैवायुषा तत्रैव जातः, एवं दशवर्षसहस्राणां यावन्तः समयास्तावत्कृत्वस्तत्रैव जातो मृतः पुनरेकैकसमयाधिक भावेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमापितानि,

एतावत्*कालपरिवर्तनम् ॥ उक्तम् ॥ च * =इतना काल परिवर्तन है और कहाँ भी है कि

उवसप्पिणिअवसप्पिणिसमयावलियासु णिरवसेसासु । जादो मुदो य वहुसो भमणेण दु कालसंसारे ॥१॥

उवसप्पिणिअवसप्पिणिसमयावलियासु णिरवसेसासु । भमणेण दु कालसंसारे जादो मुदो य वहुसो ॥१॥

=उवसप्पिणिअवसप्पिणि(उत्सर्पिणि॥अवसर्पिणि॥)=उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी(काल)के

उवसप्पिणि॥अवसप्पिणि॥(उत्सर्पिणि॥अवसर्पिणि॥) =समस्त

णिरवसेसासु ॥(=निरवशेषासु॥) =समय और आवलियों में

समय–आवलियासु ॥ (समय–आवलियासु ॥)=भ्रमण वा पर्यटनकरि(यहजीव) कालपरिवर्तनरूप संसारमें

भमणेण॥दु*कालसंसारे॥(भ्रमणेन॥तु*कालसंसारे॥)=बहुतवार अर्थात् अनंतवार जन्मा और (=य=च) मरा है ॥

जादो॥मुदो॥य*वहुसो*(जातः॥मृतः॥य*बहुशः*) =भवपरिवर्तन कहाजाता है, नरकगतिविषै

भवपरिवर्तनम् ॥ उच्यते T नरकगतौ ॥ =सबसे कम आयु दशहजार वरसकी है

सर्वजघन्यम् ॥आयुः॥दशवर्षसहस्राणि ॥ =तिस आयु(को प्राप्त) करि तहां उत्पन्न हुआ (जीव) बहुरि परिभ्रमनकरि

तेन॥आयुषा॥तत्र*उत्पन्नः॥पुनः*परिभ्रम्य÷ =तिस ही आयुकरि तहांही उत्पन्न होता है इस प्रकार

तेन॥एव*आयुषा॥तत्र*एव*जातः॥एवम्* =तिस ही आयुकरि तहांही उत्पन्न होता है इस प्रकार

दशवर्षसहस्राणाम् ॥यावन्तः॥ समयाः॥तावत्कृत्वः* =दशहजारवरसकेजितनेसमयहैंतितनीवार(दशदशहजारवरसकीआयुप्राप्तकरि)

तत्र*एव*जातः॥मृतः॥पुनः*एक–एक–समय– =तहांही उत्पन्न होता है(और) मरता है बहुरि एक एक समय

अधिक–भावेन॥त्रयस्त्रिंशत्सागर– =अधिक (आयु)वाला(एक एकवारमें)जन्मलेकरि(=भावेन)तेंतीससागरकेसमयं

उपमाणि॥परिसमापितानि ॥ (करोति) T =प्रमाण परिपूर्ण करता है भावार्थ यह है कि नरकगति विषैं सर्वजघन्य आयु दश सहस्र वरसकी है। तिस आयुको पाय तहां प्रथम नरक के पहिले पाथड़े में उपजा जीव पीछे

तत्र सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थाननिमित्तान्यनुभागाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि भवन्ति, एवं सर्वजघन्यां स्थितिं सर्वजघन्यं च कषायाध्यवसायस्थानं सर्वजघन्यमेवानुभागबन्धस्थानमास्कन्दतस्तद्योग्यं(एकं)सर्वजघन्यं योगस्थानं भवति, तेषामेव स्थितिकषायानुभागस्थानानां द्वितीयमसंख्येयभागवृद्धिसंयुक्तं योगस्थानं भवति, एवं च तृतीयादिषु योगस्थानेषु

तत्र॰सर्वजघन्यकषाय-अध्यवसायस्थाननिमित्तानि१।।। =तहां समस्त जघन्यकषायभावस्थान हैं कारण जिनको ऐसे

अनुभागअध्यवसायस्थानानि१।।।असंख्येयलोक- =अनुभागबंध अध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक

प्रमितानि १।।। भवन्ति। =परिमाण हैं अर्थात् इनसर्वजघन्यकषाय अध्यवसाय स्थानके एक एक विषै अनुभाग बंधको कारण जे परिणाम(=अनुभागबंधअध्यवसायस्थान) ते असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं तितने गणनामें हैं

एवम्॰सर्वजघन्याम् २।। स्थितिम् २।। सर्वजघन्यम् २।।। च =इस प्रकार सर्वजघन्यस्थितिको और सर्वजघन्य

कषायअध्यवसायस्थानम् २।।।सर्वजघन्यम् २।।। एव॰ =कषायभावस्थानको सर्वजघन्य ही

अनुभागबंधस्थानम् २।।।आस्कन्दतः६। =अनुभागस्थानकोप्राप्तहोनेवाले

तद्॰योग्यम् १।।।(एकम् १।।।)सर्वजघन्यं१।।।योगस्थानम् १।।।=तिसके योग्य एक सर्वजघन्य योगस्थान

भवति। तेषाम्६।।।एव॰स्थिति-कषाय- =होता है तिनही(अर्थात् जिनातनके हुए सर्वजघन्य ही)स्थिति कषाय

अनुभागस्थानानाम् ६।।। द्वितीयम् १।।। =अध्यवसाय और अनुभाग बंध अध्यवसाय स्थानों के दूसरा

असंख्येयभागवृद्धिसंयुक्तम्१।।।योगस्थानम्१।।।भवति। =असंख्यातभागवृद्धिसहित योगस्थान होता है अर्थात् अनुभाग कषाय स्थिति ये तीनों तो जघन्यही बंधे परन्तु योगस्थान पलटि दूसरा होय है और ये जघन्य योगस्थान तो श्रेणीके असंख्यातवांभाग परिमाण हैं गणना में असंख्यात हैं और ये योगस्थान अविभाग प्रतिच्छेदनि करि असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि सहित चतुस्थान रूप ही हैं ॥

एवम्॰च॰तृतीयादिषु७।।।योगस्थानेषु ७।।। =बहुरि इस प्रकार तीन आदिक योगस्थानोंमें

णिरयादिजहण्णादिसु जावदु उवरिल्लिया दु गेवेज्जा। मिच्छत्तसंसिदेण हु बहुसो वि भवठिदी भमिदो ॥१॥ भावपरिवर्तनमुच्यते—पञ्चेन्द्रियः सञ्ज्ञी पर्याप्तको मिथ्यादृष्टिः कश्चिज्जीवः सर्वजघन्यां स्वयोग्यां ज्ञानावरणप्रकृतेः स्थितिमन्तःकोटीकोटीसंज्ञिकामापद्यते, तस्य कषायाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि तत्स्थितियोग्यानि भवन्ति,

---

णिरयादिजहण्णादिसु॥ (नरकादिजघन्यादिषु॥) =नरककी जघन्यसे लगाय
उवरिल्लिया * दु* (उपरिम् * तु *) =उपरिम् वा उत्कृष्ट तो (=द=तु)
जावदु * गेवेज्जा॥ (यावत् * ग्रैवेयकाः॥) =ग्रैवेयक तक
मिच्छत्तसंसिदेण॥ हु * (मिथ्यात्वसंसर्गेण॥ तु*) =मिथ्यात्वके संसर्ग सहित (यह जीव)
बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदो(बहुशःअपिभवस्थितिभ्रमितः॥)=भवों की स्थिति वा आयु पाय पायकर अनेकबार भ्रम्या है
भावपरिवर्तनम्॥।उच्यते।पञ्चेन्द्रियः॥ सञ्ज्ञी॥ =भवपरिवर्तन कहा जाता है। पंचेन्द्रिय संज्ञक
पर्याप्तकः॥ मिथ्यादृष्टिः॥ कश्चित्*जीवः॥ =पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि कोई जीव
सर्वजघन्याम्॥।स्वयोग्याम्॥।ज्ञानावरणप्रकृतेः॥। =अपने उचित सबसे जघन्य ज्ञानावरण कर्मकी प्रकृतिको
स्थितिम्॥। अन्तःकोटीकोटीसञ्ज्ञिकाम्॥। आपद्यते। =कोड़ा कोड़ी सागरके नीचे और कोड़िके ऊपर संज्ञावाली स्थितिकोप्राप्तहोय है
तस्य॥कषाय-अध्यवसायस्थानानि॥। =तिस(जीव)के कषायभावस्थान
असंख्येयलोकप्रमितानि॥।षट्स्थानपतितानि॥। =असंख्यात लोक प्रमाण छहस्थान प्रति (अर्थात्हानिवृद्धिरूप) सहित
तत्स्थितियोग्यानि॥। भवन्ति। =उस स्थितिके योग्य होते हैं अर्थात् उस अन्तःकोड़ा कोड़ी सागर की जघन्य स्थिति बंधनेका कारण कषाय भावके स्थान हैं और वे गणनामें असंख्यात लोकके जितने प्रदेश होते हैं तितने हैं॥ तिस एक एक स्थान विषै अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद हैं जिनमें अनन्तभागहानि असंख्यातभागहानि संख्यातभागहानि संख्यातगुणहानि असंख्यातगुणहानि अनंतगुणहानि औरअनंतभागवृद्धि असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि अनंतगुणवृद्धि इसप्रकार छह स्थान प्रति हानि वृद्धि संभवे है॥

अनुभवाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च पूर्ववद्वेदितव्यानि । एवं तृतीयादिष्वपि कषायाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येयलोकपरिसमाप्तेर्वृद्धिक्रमो वेदितव्यः। उक्ताया जघन्यायाः स्थितेः समयाधिकायाःकषायादिस्थानानि पूर्ववदेकसमयाधिकक्रमेण आ उत्कृष्टस्थितेस्त्रिंशत्सागरोपम कोटीकोटीपरिमितायाःकषायादिस्थानानि (पूर्ववत्) वेदितव्यानि ॥

अनुभव–अध्यवसायस्थानानि॥।योगस्थानानि॥।च* =अनुभाग अध्यवसाय स्थान और योग स्थान
पूर्ववत्*वेदितव्यानि॥। =पहिलेकी भांति जानना योग्य है।

भावार्थ ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थाननिविषैं एक एकविषैं योगस्थान श्रेणीके असंख्यातवां–भाग असख्यातप्रमाण गणनामे अनुक्रमसे होते जांय और अनुभागस्थान असंख्यात लोकप्रमाण अनुक्रमसे होयचुकें तब एक कषाय स्थान पलटता है (दूसरा कषाय स्थान होता है)

एवम्*तृतीयादिषु॥। अपि*कषायअध्यवसायस्थानेषु॥।=इस भांति तीन आदिक भी कषायअध्यवसायस्थान होते होते
आ*असंख्येयलोकपरिसमाप्तेः॥ वृद्धिक्रमः॥ वेदितव्यः॥=असंख्यात लोकपरिपूर्णतक (=आ) क्रमानुसार वृद्धि जानना योग्य है

अर्थात् तीसरे कषायस्थानविषैं असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थान अनुक्रमसे होय और अनुभाग स्थाननि एक एक विषैं श्रेणीके असख्यातवां भाग प्रमाण अनुक्रमसे योग स्थान होते जांय है इसी प्रकार चौथा कषाय स्थान पलटे और पांच आदिक कषाय स्थान क्रमानुसार होते होते असंख्यात लोक प्रमाण होजाय तबपूर्वकथितअंतःकोड़ा कोड़ी सागर स्थितिसे एक समय अधिक ज्ञानावर्णीयकर्मकी स्थिति बंधे हैं ॥

उक्तायाः॥।जघन्यायाः॥।स्थितेः॥।समयअधिकायाः॥ =कही हुई जघन्य स्थितिसे समय अधिकके
कषाय–आदिस्थानानि॥।पूर्ववत्* =कषायभावस्थान,अनुभागअध्यवसायस्थान,योगस्थान,क्रमानुसारपहिलेकीभांतिहोते
एकसमयअधिकक्रमेण॥।आ*उत्कृष्टस्थितेः॥। =(होते) एक(एक)समय अधिक क्रमसे उत्कर्ष स्थिति पर्यन्त
त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीपरिमितायाः॥। =तीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण (=प्रमितायाः) तक (अनुक्रमसे)
कषायआदिस्थानानि॥।(पूर्ववत्)वेदितव्यानि॥। =कषायभावस्थान,अनुभागअध्यवसायस्थान,योगस्थान पहिले की भांति जानो

चतुःस्थानपतितानि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति। तथा तामेवस्थितिं तदेव कषायाध्यवसायस्थानं च प्रतिपद्यमानस्य द्वितीयमनुभवाध्यवसायस्थानं भवति, तस्य च योगस्थानानि पूर्ववद्वेदितव्यानि। एवं तृतीयादिष्वपि अनुभवाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येय-लोकपरिसमाप्तेः। एवं तामेव स्थितिमापद्यमानस्य द्वितीयं कषायाध्यवसायस्थानं भवति, तस्यापि

चतुःस्थानपतितानि३।।।श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि ३।।। =चार स्थानपति हानि सहित श्रेणीका असंख्यातवांभागप्रमाण
योगस्थानानि ३।।। भवन्ति T =योगस्थान(अनुक्रमसे होते हैं)अर्थात् दूसरे जघन्य योगस्थान
के पश्चात् तीसरा योगस्थान होय परन्तु अनुभागस्थान, कषायस्थान, स्थितिस्थान, येतीनों जघन्य ही बंधते हैं ॥
पीछे चौथा पांचवां छठवां सातवां आठवांइत्यादिक योगस्थान होते होते श्रेणीके असंख्यातवांभागतक असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसे पलटिजाय परन्तु अनुभाग कषाय स्थिति ये तीनों जघन्य ही रहें और कोई दो जघन्य योगस्थानके बीचमें अन्य कषायस्थान अन्य अनुभागस्थान अन्ययोग स्थान होते जांय ते गणना में न आवें हैं
तथा*ताम्२।।एव*स्थितिम् २।।तद्२।।एव* च* =तथा वो ही स्थिति और(=च) वोही
कषायाध्यवसायस्थानम्२।।प्रतिपद्यमानस्य६। =कषायभावस्थानको प्राप्तकरनेवाले (जीव) में
द्वितीयम्१।।।अनुभव-अध्यवसायस्थानम् १।।।भवतिT =दूसरा अनुभाग अध्यवसाय स्थान होता है
तस्य६।।च*योगस्थानानि१।।। पूर्ववत्* =और तिस(दूसरे अनुभागभावस्थान)के योगस्थान पहिलेकी भांति
(श्रेणीके असंख्यातवांभाग प्रमाण-असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसेहोना)
वेदितव्यानि१।।।एवम्*तृतीयादिषु७।।।अपि* =जानना चाहिए इस प्रकार तीन आदिक भी
अनुभवअध्यवसायस्थानेषु ७।।। आ* =अनुभागबंध अध्यवसाय स्थान(अनुक्रमसे) होते होते
असंख्येयलोक-परिसमाप्तेः५। एवम्*ताम् २।। एव* =असंख्यात लोक परिपूर्ण तक होते हैं (तब) वास्तविक (=एवम्) वोही
स्थितिम् २।। आपद्यमानस्य ६।द्वितीयम् १।।। =स्थितिस्थान को प्राप्तकरनेवाले जीव के (=आपद्यमान) दूसरा
कषाय-अध्यवसायस्थानम्१।।।भवति तस्य६।।अपि* =कषाय अध्यवसाय स्थान होताहै तिस(द्वितीय कषायाध्यवसाय भावस्थानके) भी

सव्वा पयडिट्ठिदिओ अणुभागपदेसबंधठाणाणि। मिच्छत्तसंसिदेण य भमिदा पुण भावसंसारे ॥ १ ॥ उक्तात्पञ्चविधात्संसारान्निवृत्ता ये ते मुक्ताः। संसारिणां प्रागुपादानं तत्पूर्वकत्वान्मुक्तव्यपदेशस्य ॥ य एते संसारिणस्ते द्विविधाः—

सव्वा $\frac{१}{३}$।। पयडि–ठिदिओ $\frac{१}{३}$।। (सर्वाः$\frac{१}{३}$।। प्रकृति–स्थितयः $\frac{१}{३}$।।) =समस्त प्रकृति बंध(और) स्थितिबंध

अणुभाग–पदेस–बंध-(=अनुभाग–प्रदेशबन्ध-) =अनुभाग बन्ध(और) प्रदेश बन्धके

ठाणाणि$\frac{१}{३}$।।। मिच्छत्तसंसिदेण$\frac{३}{१}$। (स्थानानि मिथ्यात्वसंसर्गेण) =स्थान मिथ्यात्वके संसर्गकरि

य *भमिदा$\frac{१}{३}$।।पुण*भावसंसारे$\frac{७}{१}$।(च भ्रमिताः$\frac{१}{३}$।।पुनःभावसंसारे$\frac{७}{१}$।)=ही(=य=च)निश्चय(=पुनः)भाव संसार में

=भ्रमे जाते हैं भावार्थ इस जीवने भाव संसार विषैं भ्रमण करि करि प्रकृति–बंध,स्थितिबन्ध,अनुभागबन्ध और प्रदेश बंधके समस्त स्थानोंको निश्चय करके प्राप्त किया है ॥

उक्तात्$\frac{५}{१}$। पञ्चविधात्$\frac{५}{१}$। संसारात्$\frac{५}{१}$। निवृत्ताः $\frac{१}{३}$। =कथित (वा उपर्युक्त) पांच प्रकारके संसारसे रहितहुये

ये$\frac{१}{३}$। ते$\frac{१}{३}$। मुक्ताः$\frac{१}{३}$। संसारिणाम्$\frac{६}{३}$। प्राक्(१) *उपादानम्$\frac{१}{१}$।।। =जे (जीव) ते मुक्त (=सिद्ध हैं)संसारियोंका (इस सूत्र में) पहिले ग्रहणहै

तत्पूर्वकत्वात्$\frac{५}{१}$।।। मुक्तव्यपदेशस्य$\frac{६}{१}$। =क्योंकि मोक्षका कथन वा उपदेश उस (संसार)पूर्वक वा संसार निमित्तक है अर्थात् मोक्षके व्यपदेशका संसार कारण है ॥

(यदि संसार न होता तो मोक्षभी न होती क्योंकि मोक्ष संसारी जीवोंकी होती है जब वेही नहीं तो मोक्ष किसकी होती और जब मोक्ष गमन न होता अथवा मोक्षका अस्तित्व न होता तो फिर व्यपदेश मोक्षका कैसे सम्भव होता)

ये$\frac{१}{३}$। एते$\frac{१}{३}$। संसारिणः$\frac{१}{३}$। ते$\frac{१}{३}$। द्विविधाः$\frac{१}{३}$। =जो ये संसारी (जीव) हैं वे दो प्रकार(निम्नलिखित सूत्रानुसार)हैं

संसारियोंके भेद बहुत हैं और मोक्ष जीवोंके कोई भेद नहीं है तथा संसारी जीव अनुभव गोचर हैं और मोक्ष जीव अत्यन्त परोक्ष हैं इन दो कारणोंसे भी संसारियोंका प्रथम ग्रहण है ॥ पश्चात् मोक्ष जीवोंका ग्रहण है ॥

अनन्तभागवृद्धिःअसंख्येयभागवृद्धिः संख्येयभागवृद्धिः संख्येयगुणवृद्धिःअसंख्येयगुणवृद्धिःअनन्तगुणवृद्धिः इमानि षट्स्थानानि, वृद्धिर्हानिरपि तथैव। अनन्तभागवृद्धिःअनन्तगुणवृद्धिरहितानि चत्वारि स्थानानि ज्ञातव्यानि। एवं सर्वेषां कर्मणां मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च परिवर्तनक्रमो वेदितव्यः। तदेतत्सर्वं समुदितं भावपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च—

अर्थात् श्रेणीके असंख्यातवांभाग प्रमाण असंख्यातगणनामें जब योगस्थान क्रमसे पलटि जांय तब एकअनुभाग स्थानपलटे और असंख्यात लोकप्रमाण जब अनुभागस्थान एक एक करि क्रमानुसार पलटि जांय तब ऐक कषायस्थानपलटे और जब असंख्यात लोक प्रमाण (कषायस्थानों विषैं एक एक विषैं असंख्यातलोक प्रमाणअनुभागस्थान क्रमानुसार होते होते ये समस्त असंख्यातलोक प्रमाण) कषायस्थान क्रमानुसार पलटि जांय तब एक समय अधिक होकरि स्थिति पलटै ॥

अनन्तभागवृद्धिः१।। असंख्येयभागवृद्धि :१।।	=(यद्यपि) अनन्तभागवृद्धि असंख्येयभागवृद्धि
संख्येयभागवृद्धिः१।। संख्येयगुणवृद्धि :१।।	=संख्येयभागवृद्धि संख्येयगुणवृद्धि
असंख्येयगुणवृद्धिः१।।अनन्तगुणवृद्धिः१।।इमानि१।।।षट्स्थानानि वृद्धिः	=असंख्येयगुणवृद्धिअनन्तगुणवृद्धि ये छहस्थानप्रतिवृद्धि (औरअनन्तभाग असंख्येयभाग, संख्येयभाग,संख्येयगुण असंख्येयगुण,अनन्तगुण)
हानिः१।।अपि*तथा*एव*अनन्तभागवृद्धिः १।।	=हानिभी है तो भी अनन्तभागवृद्धि
अनन्तगुणवृद्धि :१।।	=अनन्तगुणवृद्धि (और अनन्तभागहानि अनन्तगुणहानि)[प्रतिच्छेदोंमें
रहितानि१।।।चत्वारि१।।।स्थानानि१।।।	=वर्जित शेषचारस्थानप्रति(वृद्धिहानिइनजघन्ययोगस्थानोकेअविभाग
ज्ञातव्यानि१।।।एवम्*सर्वेषाम् ६।।। कर्मणाम्६।।।	=जानना चाहिये इस प्रकार समस्त कर्मों की
मूलप्रकृतीनाम्६।।उत्तरप्रकृतीनाम् ६।।परिवर्तनक्रमः१	=मूलप्रकृतियोंका बहुरि उत्तरप्रकृतियोंकी पलटनक्रम
वेदितव्यः१तद्१।।।एतद्१।।।सर्वम्१।।।समुदितम्१।।।	=जानना चाहिये(=तद्)यह(=एतद्)समस्त इकट्ठा होय तब
भावपरिवर्तनम् १।। उक्तं १।। च*	=भावपरिवर्तन होता है। कहा भी है

एवं मनसो भावाभावाभ्यां संसारिणो द्विविधा विभज्यन्ते । समनस्काश्चामनस्काश्च समनस्कामनस्का इति ॥ अभ्यर्हितत्वात्समनस्कशब्दस्य पूर्वनिपातः॥कथमभ्यर्हितत्वं ? । गुणदोषविचारकत्वात् ॥ पुनरपि संसारिणां भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

एवम्*मनसः[६/१]॥भाव–अभावाभ्याम्[३/२] =इस प्रकार मनकी विद्यमानता अविद्यमानता करि वा सद्भाव अभाव करि

संसारिणः[१/३]द्विविधाः[१/३] विभज्यन्ते। समनस्काः[१/३]च*=संसारी(जीव) दो प्रकारमें विभाजित हैं वाविकल्पनीय हैं और (च)समनस्का

अमनस्काः[१/३] च* समनस्कामनस्काः[१/३] इति* =और (=च) अमनस्का पदोंका द्वंद्वसमासमें समनस्कामनस्का ऐसा(वाक्य)हुआ

अभ्यर्हितत्वात्[५/१]॥ =पूज्यपनासे वा श्रेष्ठपनासे वा प्रधानपन (केहेतु) से (अभ्यर्हित्वात्)(सूत्र मे)

समनस्कशब्दस्य[६/१]पूर्वनिपातः[१/१]कथम्*अभ्यर्हितम्[१/१]॥=समनस्क शब्दका पहिले ग्रहणहै (प्रश्न)कैसे,श्रेष्ठपना वा पूज्यपना (समनस्कशब्दके)है

गुणदोषविचारकत्वात्[५/१]॥ =(उत्तर) समनस्क गुण दोष का विचारवाला होनेसे अमनस्कसे श्रेष्ठ वा पूज्य है

पुनः*अपि*संसारिणाम्[६/३] भेदप्रतिपत्त्यर्थम्[२/१]॥आह। =फिर भी संसारी जीवोंके भेद जाननेके लिये कहते हैं कि

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

संसारिणः[१/३] त्रसस्थावराः[१/३] भवन्ति। =संसारी (जीव) त्रस और स्थावर हैं अर्थात् द्वीन्द्रिय (स्पर्शन और रसना सहित) त्रीन्द्रिय (स्पर्शन, रसना और नासिका सहित) चतुरिन्द्रिय (स्पर्शन,रसना, नासिका, चक्षुःसहित)और पंचेन्द्रिय(स्पर्शन,रसना,नासिका, चक्षु,और कान सहित),जीवोंको त्रस कहते हैं और एकेन्द्रिय (त्वकमात्र सहित) जीवोंको स्थावर कहते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस बारहवां सूत्रपर सर्वार्थ सिद्धि वृत्तिकाः शब्दशः हिन्दी अनुवाद

---

(१) इस सूत्रका पाठ दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एक है और अर्थ भी एक है(२)संसारिणस्त्रसस्थावराः अर्थात् संसारी जीव त्रस तथास्थावर हैं ऐसा कहने से यह फलित हुआ कि मुक्त जीव नतो त्रस हैं और न स्थावर है देखो 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ४२ ॥

॥ समनस्कामनस्काः ॥ ११ ॥

मनो द्विविधं,द्रव्यमनो भावमनश्चेति ॥ तत्र पुद्गलविपाकिकर्मोदयापेक्षं द्रव्यमनः ॥ वीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमापेक्षया आत्मनो विशुद्धिर्भावमनः ॥ तेन मनसा सह वर्तन्त इति समनस्काः। न विद्यते मनो येषां त इमे अमनस्काः॥

समनस्का(१)ऽमनस्का(२)ः ॥ ११ ॥

संसारिणः॥समनस्काः॥ अमनस्काः॥च * =ससारी(जीव)संज्ञीवासैनी(=समनस्क) और(=च) असंज्ञीवाअसैनीअमनस्कहैं अर्थात् जो मनसहित है वे समनस्क संज्ञी वा सैनी हैं और जो मनरहित हैं वे अमनस्क असंज्ञी असैनी हैं भावार्थ जो हितमें प्रवर्तने और अहितसे दूर रहनेकी शिक्षाग्रहण करता है वहसंज्ञी है और जो शिक्षा क्रिया उपदेश इत्यादिकाग्रहण नहीं करता है वह असंज्ञी है ॥

मनस्॥द्विविधम्॥द्रव्यमनः॥भावमनः॥च*इति* =मन दो प्रकार है द्रव्यमन और भावमन

तत्र*पुद्गल–विपाकिकर्म उदय–अपेक्षम्॥द्रव्यमनः॥ =तहां पुद्गल विपाकीकर्मप्रकृतिके उदयकी अपेक्षा जिसको सो द्रव्यमन है अर्थात् जो हृदयस्थानविषैं अष्ट पांखुड़ीका फूलकमलके आकार सूक्ष्मपुद्गलका प्रचयरूप तिष्ठता है सो द्रव्यमन है

वीर्यान्तरायनोइन्द्रिय–आवरणक्षयोपशम–अपेक्षया॥आत्मनः॥विशुद्धिः॥भावमनः॥तेन॥ =वीर्यांतराय तथा नोइन्द्रियावरणनामा (ज्ञानावरणीयकर्मके)क्षयोपशमके कारणसे आत्माकी विशुद्धि सो भावमन है। उस

मनसा॥सह*वर्तन्त।(=वर्तन्ते।)इति*समनस्काः॥ =मनकर सहित हैं(=वर्तन्ते) इस प्रकार (=इति)समनस्क हैं

न*विद्यते।मनः॥येषाम्॥त॥(=ते)इमे॥अमनस्काः॥ =नहीं है विद्यमान वा वर्तमान(=विद्यते)मन जिनकें ते इतने अमनस्का हैं

---

(१) समनस्काऽमनस्काः यह वाक्य द्वंद्व समास है इसमें समुचाई उपसर्ग 'और' दूर कर दियाजाता है समासको खोलदेनेसे ऐसा वाक्य हो जाताहै (समनस्काः च अमनस्काः च)इसी कारणसे भाषा अनुवादमें'और'शब्द लाये हैं (२) इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकहै।

संसारिणो द्विविधाः(१)। त्रसाःस्थावराःइति॥ त्रसनामकर्मोदयवशीकृतास्त्रसाः। स्थावरनामकर्मोदयवशवर्तिनःस्थावराः॥ त्रस्यन्तीति त्रसाःस्थानशीलाःस्थावरा इति चेन्न। आगमविरोधात्॥ आगमे हि कायानुवादेन त्रसा द्वीन्द्रियादारभ्य आ अयोगकेवलिन इति। तस्मान्न चलनाचलनापेक्षं त्रसस्थावरत्वम्। कर्मोदयापेक्षमेव॥ त्रसग्रहणमादौ क्रियते। अल्पाच्तरत्वादभ्यर्हितत्वाच्च। सर्वोपयोगसम्भवादभ्यर्हितत्वम्॥ एकेन्द्रियाणामपिबहुवक्तव्याभावात्

संसारिणः द्विविधाः त्रसाः स्थावराः इति*	=संसारी जीव दो प्रकार हैं त्रस हैं स्थावर हैं
त्रसनामकर्मोदय–वशीकृताः त्रसाः स्थावरनामकर्म–	=त्रसनामकर्मकी प्रकृतिकेउदयकेवशसे हुए त्रसहैंस्थावरनामानामकर्म कीप्रकृतिके
उदयवशवर्तिनः स्थावराः त्रस्य–अन्ति(त्रस्यान्ति)इति*	=उदयकेवशसे हुए स्थावर हैं(प्रश्न)डरते है वा भयभीत होते हैं ऐसे(=इति)
त्रसाः स्थानशीलाः स्थावराः इति*चेत् *	=त्रस(और) तिष्ठनेका है स्वभावजिनका (ऐसे)स्थावर हैं ऐसी शंका (=चेत्)है
न*आगमविरोधात् आगमे हि*काय–अनुवादेन	=(उत्तर)शास्त्रकेविपरीतहोनेसे ऐसानहींहैक्योंकि(=हि)शास्त्रमें कायकीअपेक्षासे
त्रसाः द्वि–इन्द्रियात् आरभ्य –:– आ*अयोगकेवलिनः इति	=त्रस जीव दो इन्द्रियसे प्रारम्भकर अयोगकेवलीपर्यंत (=आ) हैं
तस्मात् न*चलनाचलन–अपेक्षं त्रसस्थावरत्वम्॥	=तिससे चलने न चलनेकी अपेक्षासे त्रस स्थावरपना नहीं है
कर्मउदय–अपेक्षम् एव*त्रसग्रहणम्	=कर्मउदयकी अपेक्षासे ही(त्रसस्थावरपना)है(इससूत्रमें)त्रसकाउपादान
आदौ क्रियते। अल्पाच्तरत्वात् अभ्यर्हितत्वात् च*	=पूर्वमें कियाहै क्योंकि(त्रसशब्दके स्थावरशब्दसे) स्वर थोड़े हैंऔरप्रधानपनाहै
सर्व–उपयोगसम्भवात् अभ्यर्हितत्वम्॥	=क्योंकि(त्रसके)समस्त उपयोग सम्भवहोनेसे पूज्यपनाहैअर्थात्त्रसकेप्रधानपना सर्व उपयोग संभव हैं उस उपयोगकी अपेक्षासे है
एकइन्द्रियाणाम् अपि*बहुवक्तव्य–अभावात्	=एकेइन्द्रियोंके भी बहुतकथन वा भेद(वक्तव्य)नहोनेके कारणसे

(१) द्विशब्दके साथ विधा स्त्रीलिंग बहुवचन इस कारण लाए है कि स्थावरों की भी बहुत जाते हे और त्रस भी अनेक प्रकार के हे

(२) त्रस् दिवादि चतुर्थ गणका धातु है य विकरण वर्तमानकालके चिन्ह के प्रथम आता है उस प्रकार'त्रिस्'का'त्रस्य'हुआ इसके पहिले 'अन्ति'प्रत्यय लगानेसे त्रस्य–अन्ति होता है परंतु अन्ति के'अ'के पहिले'अ'का लोप होजाता है अर्थात् गिरजाता है इसलिये त्रस्यन्ति वर्तमान काल परस्मैपद बहुवचन इस सूत्रमें है अर्थ डरते हैं वा भयभीत होते हैं। आरभ्य सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त है॥

संसारिग्रहणमनर्थकं,प्रकृतत्वात् ॥ क प्रकृतं? । संसारिणो मुक्ताश्चेति । नानर्थकम् । पूर्वापेक्षार्थं,ये उक्ताः समनस्कामनस्काश्चेति संसारिण इति॥ यदि हि पूर्वस्य विशेषणं न स्यात् समनस्कामनस्कग्रहणं संसारिणो मुक्ताश्चेत्यनेन यथासंख्यमभिसंबंध्येत । एवं च कृत्वा संसारिग्रहणमादौ क्रियमाणमुपपन्नं भवति। तत्पूर्वापेक्षं सदुत्तरार्थमपि भवति ॥

प्रकृतत्वात् ५।। =(आचार्यसे शिष्यका प्रश्न) प्रकरण वा प्रसंग वा प्रबंधके कारण से (इस सूत्र में)

संसारिग्रहणम् १।। अनर्थकम् १।। क ? प्रकृतम् १।। =संसारीका उपादान (=ग्रहण) निरर्थकहै (शिष्यके प्रश्नपर आचार्य) कहां प्रकरण है ?'

संसारिणः१। मुक्ताः१। च* इति* =(शिष्यका उत्तर) संसारिणो मुक्ताश्च ऐसा दशवें सूत्रमें प्रकरण है (आचार्यकाउत्तर)

न*अनर्थकम् १।। पूर्व-अपेक्षा-अर्थम् १।। =(इस सूत्रमें ससारीका ग्रहण) निरर्थक नहींहै(इससे) पहिले(सूत्रके) सम्बन्धकेलियेग्रहणहै

ये१।उक्ताः१।समनस्कामनस्काः१।च*इतिसंसारिण१।इति*= कि ये कथित समनस्क और अमनस्क सँसारी (जीव) हैं

यदि*हि*पूर्वस्य६।। विशेषणम्१।। न स्यात् ।समनस्क=क्योंकि (=हि) जो (यदि) पहिले ११ वें सूत्रका विशेषण न होता तो समनस्क

अमनस्कग्रहणम्१।।संसारिणः१।मुक्ताः१।चइतिअनेन३।।=अमनस्का (इससूत्र) के ग्रहणको संसारिणो मुक्ताश्च इस (सूत्र) से (=अनेन)

यथासंख्यम् १।।अभिसम्बन्ध्येत । =यथासंख्य सम्बन्ध होजाता (भावार्थ) यदि इसबारहवां सूत्रसे ग्यारहवां सूत्रकाविशेषण संसारी शब्द लाकर नकिया जाता तो दशमें सूत्रके संसारी शब्दका ग्यारहवां सूत्रके समनस्का शब्द से और मुक्त शब्दका अमनस्का शब्द से सम्बन्ध होकर ऐसा अनिष्ट अर्थ होजाता है कि संसारी जीव हैं वे मनस्का वा मन सहित हैं और मुक्त जीव हैं ते अमनस्का व मन रहित हैं ॥

एवम्*च*कृत्वा संसारिग्रहणम्१॥आदौक्रियमाणम्१।।=ऐसे करके(इससूत्रमें)संसारीका उपादान वा ग्रहण आदिविषैकरना (क्रियमाणं)

उपपन्नम् १।। भवति । =युक्ति युक्त वा प्रमाणसे भरा हुआ (=उत्पन्नं) होता है

तत्-पूर्व-अपेक्षम् १।। सत् । =उस(संसारी शब्द) का (ग्रहण) प्रथम (ग्यारहवां सूत्रके) अपेक्षा होकर

उत्तर-अर्थम् १।। अपि* भवति । =अगले (बारहवां सूत्र) के लिये भी होता है कि

तदुदय निमित्ता अमी इति जीवेषु पृथिव्यादयः संज्ञा वेदितव्याः ॥ प्रथनादिप्रकृति निष्पन्ना अपि रूढिवशात्प्रथनाद्यनपेक्षा वर्तन्ते ॥ एषां पृथिव्यादीनामार्षे चातुर्विध्यमुक्तम् । प्रत्येकं तत्कथमिति चेदुच्यते ॥ पृथिवी । पृथिवीकायः । पृथिवीकायिकः । पृथिवीजीव इत्यादि ॥ तत्र अचेतनावैश्रसिकपरिणामनिर्वृत्ता काठिन्यगुणात्मिका पृथिवी । अचेतनत्वादसत्यपि पृथिवीकाय-नामकर्मोदये प्रथनक्रियोपलक्षितैवेयम् । अथवा पृथिवी सामान्यम्—

तद्-उदय-निमित्ताः। अमी। इति *जीवेषु।	=उस (स्थावरनामा नामप्रकृति) के उदयके कारण इनजीवोंमें
	=पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजःकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक (=आदयः)
पृथिवी-आदयः।	=पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजःकायिक, वायुकायिक, वनस्पति ये पांचों शब्द) प्रथन
सञ्ज्ञाः। वेदितव्याः। प्रथन-	=सज्ञा वा नाम जानो(पृथिवी, अप्, तेजः, वायु, वनस्पति ये पांचों शब्द) प्रथन
आदि-प्रकृति-निष्पन्नाः। अपि*रूढिवशात्।	=आदिक(भिन्नभिन्न) धातुओंसे(=प्रकृति)निकले हैं। फिरभी(=अपि)रूढिके आश्रयसे
प्रथन-आदि-अनपेक्षाः। वर्तन्ते ।	=(इनपांचों शब्दोंकी)प्रथनादिक अर्थात् विस्तारादिक (अर्थ)की विवक्षा नहीं है
एषाम्। पृथिवी-आदीनाम्। आर्षे। चातुर्विध्यम्।	=इन पृथिवी आदिकोंके ऋषियों रचित धर्मशास्त्रमें (=आर्षे) चार चार भेद
उक्तम्। प्रत्येकम्। तत्। कथं*इति*चेत्*उच्यते ।	=कहेगये हैं वह(=तत्)प्रत्येक कैसे हैं? ऐसी शंका होने पर कहाजाता है कि
पृथिवी। पृथिवीकायः। पृथिवीकायिकः। पृथिवीजीवः इति	=पृथिवी, पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, पृथिवीजीव ऐसें
आदि ॥	=और भी हैं अर्थात् अप्-अप्काय, अप्कायिक, अप्जीव; तेजः, तेजःकाय, तेजःकायिक, तेजोजीव; वायु-वायुकाय-वायुकायिक-वायुजीव; वनस्पति-वनस्पतिकाय-वनस्पतिकायिक-वनस्पतिजीव हैं
तत्र*अचेतना-वैश्रसिक-परिणाम-निर्वृत्ता।	=तहां अचेतन स्वभावसिद्ध (=वैश्रसिक) परिणामसे रचित
काठिन्यगुण-आत्मिका। पृथिवी। अचेतनत्वात्।	=अपने(=आत्मिक) कठिनतागुणकरि सहित पृथिवी है। जड़पनासे
असति अपि, पृथिवीकायनामकर्मउदये। प्रथन-क्रिया-	=पृथिवीकायनामा नामकर्मकी प्रकृतिके उदय न होनेपरभी प्रथन वा फैलावक्रिया
उपलक्षिता-एव*इयम्। अथवा*पृथिवी। सामान्यम्	=आदिसे युक्त (=उपलक्षित)यह(पृथिवी)है ही ॥ वा पृथिवी सामान्य(शब्द) है

उल्लंघ्यानुपूर्वीं स्थावरभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥

स्थावरनामकर्मभेदाः पृथिवीकायिकादयः सन्ति,

उल्लंघ्य—आनुपूर्वीं॥स्थावर—भेद—प्रतिपत्ति—अर्थम्॥आह=(कथनकरनेका)क्रम(=आनुपूर्वी)छोड़कर स्थावरके भेद कहनेके लिये कहते हैं कि

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥

पृथिवी–अप्–तेजस्–वायु–वनस्पतयः॥स्थावराः॥=पृथिवी कायिक,अप्कायिक,तेजःकायिक,वायुकायिक और वनस्पतिकायिक स्थावर(जीव) हैं

वृत्त्यनुवादः–स्थावरनामकर्मभेदाः॥पृथिवीकायिक–=स्थावरनामा नामकर्मकी प्रकृतिके भेद पृथिवीकायिक

आदयः॥ सन्ति।=अप्कायिक, तेजः कायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक (=आदयः) हैं

---

(१) दोनों आम्नायोंके १३, १४ सूत्रका पाठ भेद और अर्थ भेद एकसाथ लिखनेसे सुगम होगा। इसलिये नीचे दोनों आम्नायोंके चारों सूत्र लिखते हैं पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयःस्थावराः॥१३॥ अर्थ ऊपर देखो॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः॥१४॥ दोइन्द्रिय,तीनइन्द्रिय चारइन्द्रिय पांचइन्द्रियवाले त्रस हैं पृथिव्यब्वनस्पतयः स्थावराः॥१३॥ सभाष्यतत्त्वार्थ.धिगमसूत्र पृष्ठ॥ ४१॥ तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः सभाष्य० में १४ वां सूत्र पृष्ठ ४२ पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक (ये)स्थावर जीव हैं॥ तेजः कायिक,वायुकायिक और =च, दो इन्द्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले चारइन्द्रियवाले पांच इन्द्रियवाले त्रस जीव हैं॥ दोनों आम्नायोंके १३ वां और १४वां सूत्रोंके मिलानसे प्रगट है कि तेजस्-वायु दो शब्द हमारे यहां के १३ वां सूत्रके श्वेताम्बर आम्नाय के १४वां सूत्रमें अन्तर्गत हैं यह तो दोनोंके१३वां सूत्रमेंपाठभेद हुआ। सभाष्य० के १४ वां सूत्रमें हमारे यहां के १४ सूत्रसे 'तेजो-वायु' 'च' अधिक हैं शेष पाठ एकसा है। हमारे यहां तेजकायिक और वायुकायिक दोनों को स्थावर जीव माना है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमें इनको त्रस जीव माना है जैसा कि सभाष्य० के १४ वाँ सूत्र और हमारे यहाँ के १३ वां सूत्र से प्रकट है। अवशेष तात्पर्य दोनों आम्नायके दोनों दोनों सूत्रों का एक है अर्थात् पृथिवी कायिक, अप् (जल)कायिक,वनस्पति कायिक को स्थावर दोनोंमें माना है और दो इन्द्रियवालेजीव,तीन इन्द्रियवाले जीव,चार इन्द्रियवाले जीव पांच इन्द्रियवाले जीवोंको दोनोंमें त्रस माना हैं।

(२) 'कायादयः' सर्वार्थसिद्धिकी एकप्रति हस्त लिखितमें, दोनों मुद्रित आवृत्तियोंमें, तथा राजवार्तिकमें पाते हैं। जिसका 'जीव' निकलगयाहो सो काय है। जीव सहित हो सो कायिकहै। यहां पर जीवसहित से अभिप्रायहै। तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३२५ के निम्न वाक्यमें कायिक'शब्द लाये हैं।"पृथिवी कायिकादि नामकर्मोदयवशात्पृथिव्यादयो जीवाःपृथिवी कायिकादयः स्थावराः प्रत्येतव्या न पुनर जीवास्तेषामप्रस्तुतत्वात्"॥

उक्तं च—पुढवी पुढवीकायो पुढवीकाइयं पुढविजीवो य । साहारणोपमुक्को सरीरगहिदो भवंतरिदो ॥ १ ॥ एवमबादिष्वपि योज्यम् ॥ एते पञ्चविधाः प्राणिनःस्थावराः । कति पुनरेषां प्राणाः? । चत्वारः। स्पर्शनेन्द्रियप्राणःकायबलप्राणःउच्छ्वासनिःश्वासप्राणःआयुःप्राणश्चेति ॥ अथ त्रसाः के ते?इत्यत्रोच्यते ॥

उक्तं च । पुढवी१/१ पुढवीकायो१/१(पृथिवी१/१ पृथिवीकायः१/१) =बहुरि कहागया है कि पृथिवी, पृथिवीकाय,

पुढवीकाइय१/१ पुढविजीवो१/१ य(पृथिवीकायिकः१/१ पृथिवीजीवः च) =पृथिवीकायिक और (=य=च) पृथिवीजीव है [पृथिवी काय है

साहारणोपमुक्को१/१(साधारण—उपमुक्तः१/१) =(सो यह पृथिवी)साधारण है । जिससे जीव अभी निकला है (सो

सरीरगहिदो१/१ (शरीरगृहीतः१/१) =शरीरग्रसित वा शरीर सहित जीव है (सो पृथिवी कायिक है)

भवंतरिदो १/१ (भवान्तरितः१/१) =भवान्तर अवस्थावाला वा विग्रहगतिसहितजीवहै(सो पृथिवी जीव है)

भावार्थ पृथिवी,पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक और पृथिवीजीव ये चार भेद पृथिवीके हैं। उनमेंसे अचेतन स्वभावसिद्ध परिणामसे रचित और कठिनता आदिगुण स्वरूप पृथिवी कहीजाती है इसलिये पृथिवी यह एक साधारण और सामान्यनाम ही है ॥ (२) कायका अर्थ शरीर है पृथिवीकायिक जीवने जिस शरीर को छोड़ दिया है वह पृथिवीकाय कहाजाता है यह मरे हुये मनुष्यादिक कीकाय(काया)के समान है, (३) शरीर गृहीत वा शरीर ग्रसित जीव अर्थात् वह पृथिवी जिसमें इस समय जीव विद्यमान है वह पृथिवीकायिक है ॥ (४) जिस जीवके पृथिवीकायिक नामकर्मकाउदय है परंतु पृथिवीको काय स्वरूपसे ग्रहण न कर वह कार्माणकाय योगमेंही विद्यमान है अर्थात् विग्रहगति अवस्था में है वहपृथिवीजीव है ॥

एवम्*अप्—आदिषु७/३ अपि*योज्यम् १/१॥ =ऐसे अप् आदिकमेंभी(चार चार भेद) लगाना योग्य है

एते१/३। पञ्चविधाः१/३ प्राणिनः१/३ स्थावराः कति१/३ पुनः एषां६/३ प्राणाः?=ये पांच प्रकार प्राणवाले स्थावर हैं । पुनि इनके कितने प्राण हैं ?

चत्वारः१/३। स्पर्शनेन्द्रियप्राणः१/१ कायबलप्राणः१/१ =(उत्तर)चार प्राण हैं(अर्थात्)स्पर्शन इन्द्रियप्राण, कायबलप्राण,

उच्छ्वासनिःश्वासप्राणः१/१ आयुःप्राणः१/१ च*इति* =उच्छ्वासनिःश्वासप्राण, और आयुप्राण

अथ*त्रसाः१/३ के१/३ ते१/३? इति*अत्र*उच्यते T =अब त्रसजीव हैं ते कोन हैं ऐसा प्रश्न होनेपर यहां कहाजाता है कि

उत्तरत्रयेऽपि सद्भावात्। कायः शरीरं पृथिवीकायिकजीवपरित्यक्तः पृथिवीकायः। मृतमनुष्यादिकायवत्। पृथिवीकायः अस्यास्तीति पृथिवीकायिकः। तत्कायसम्बन्धवशीकृत आत्मा समवाप्तपृथिवीकायनामकर्मोदयः कार्मणकाययोगस्थो यो न तावत्पृथिवीं कायत्वेन गृह्णाति स पृथिवीजीवः

उत्तरत्रये अपि *	=क्योंकि अगले तीनों भेद (पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, पृथिवीजीव)में भी (यहशब्द)
सद्भावात् कायः शरीरम् पृथिवीकायिकजीव-	=विद्यमान है। काय वा शरीर जो पृथिवी कायिक जीवकरि
परित्यक्तः	=त्यागित होगया है अर्थात् जिसमेंसे पृथिवी कायिक जीव मरकर निकल गया है
पृथिवीकायः मृत–मनुष्यादिकायवत् *	=सो पृथिवी काय है। मरेहुये मनुष्यादिकके शरीर सदृश (पृथिवी काय) है
पृथिवीकायः अस्य अस्ति इति पृथिवी कायिकः	=पृथिवीकाय जिस (जीव)के है ऐसा (जीव) पृथिवी कायिक है ॥ "सो यहु" जीव "पृथिवी शरीरके संबंध सहित है" जय०वचनिका पृष्ठ २५६. अर्थात् जिस जीवका उस पृथिवी कायसे संबंध है वह पृथिवी कायिक है ॥
तत्काय–संम्बन्धवशीकृतः आत्मा	=उस (पृथिवी) शरीरके संबंध वशीभूत आत्मा (अन्य कायके शरीरसे छूटकर)
समवाप्त(सम्-अव-आप्त) पृथिवीकायनामकर्मोदयः	=पृथिवीकाय नामा नामकर्मकी प्रकृतिका उदय प्राप्त हुआ जिसको
कार्मणकाययोगस्थः यः	=(जितने अंतरालमें) कार्माण काययोगमें तिष्ठा हुआ जो (जीव जब तक)
नतावत्पृथिवीम् कायत्वेन गृह्णातिसःपृथिवीजीवः	=पृथिवीको कायपनाकरि ग्रहण नहीं करता तब तक (=तावत्) वह पृथिवी जीव है अर्थात् जिस जीवकें पृथिवी कायिक नामकर्मका उदय है परंतु पृथिवीको काय–स्वरूपसे ग्रहण न कर वह कार्माणकाययोगमें ही विद्यमानहै वह पृथिवी जीवं है

भावार्थ कोई जीव किसी शरीर में था उसने अपनी आयु पूर्ण करने पर उस शरीर को त्यागकर पृथवी काय नामा नामकर्मकी प्रकृतिके उदयसे पृथिवी कायिक होने वाला है तौ उस जीवको विग्रहगति (=नया शरीर धारण करने के लिये गमन अवस्था)में कार्माण योगहै जितने काल तक विग्रहगति है तब तक वह जीवपृथिवी काय वा शरीरको ग्रहणकरनेमें असमर्थ है उस काल तक उसको पृथिवी जीव कहेंगे। उक्त विग्रह काल किसी जीवका एक समय,किसीजीवका दो समय,किसी जीवका तीन समय तक होता है तीन समय से अधिक नहीं हो सक्ता है ॥ और विग्रह गति में (जीवकें) कार्मण योग रहता है ॥

कति पुनरेषां प्राणाः?। द्वीन्द्रियस्य तावत् षट् प्राणा पूर्वोक्ता एव रसनवाक्प्राणाधिकाः ।त्रीन्द्रियस्य सप्त त एव घ्राणप्राणाधिकाः । चतुरिन्द्रियस्याष्टौ त एव चक्षुः प्राणाधिकाः । पंचेन्द्रियस्य तिरश्चोऽसंज्ञिनो नव त एव श्रोत्रप्राणाधिकाः ।सञ्ज्ञिनो दश त एव मनोबलप्राणाधिकाः ॥ आदिशब्देन निर्दिष्टानामनिर्ज्ञातसंख्यानामियत्तावधारणं कर्तव्यमित्यत आह

त्रिइन्द्रिय, चतुः इन्द्रिय पंचेन्द्रिय, को भी त्रस जीवोंके भेदोंमें गिना दिया ॥

कति।पुनः*एषाम्।प्राणाः ? =(प्रश्न)पुनि कितने इन(प्रत्येक द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय–चतुरिन्द्रिय–पंचेन्द्रिय)के प्राणहैं

द्वि–इन्द्रियस्य। तावत्*षट्।प्राणाः।पूर्वोक्ताः।एव* =प्रथम(=तावत्)द्वीन्द्रियजीवकें छैप्राण हैं । प्रथम कथित ही(चार स्पर्शनेन्द्रियप्राण, कायबलप्राण,उच्छ्वासनिःश्वासप्राण,औरआयुप्राणजोएकेन्द्रियजीव कैंहोते हैं) हैं

रसन–वाक्प्राण–अधिकाः। =रसनाइन्द्रिय,वचनबल प्राण, अधिक हैं

त्रीन्द्रियस्य।सप्त।ते।एव*घ्राणप्राण–अधिकाः। =तीनेन्द्रियजीवके सात(प्राण)हैं । वे ही(छहऔर) नासिका इन्द्रियजिनकें अधिकहैं

चतुरिन्द्रियस्य।अष्टौ।ते। एव*चक्षुप्राण– =चतुरिन्द्रियजीवके,आठ (प्राण) हैं वे(=ते)ही(=एव–सात) (और)चक्षुप्राणजिनकें

अधिकाः।पञ्चेन्द्रियस्य।तिरश्चः।असज्ञिनः।नव। =अधिक हैं । पंचेंद्रिय तिर्यंच असैनीकें नो (प्राण) हैं

ते।एव*श्रोत्रप्राण–अधिकाः।सञ्ज्ञिनः।दश। =वेही(आठ)(और)कर्ण इन्द्रियप्राण जिनकें अधिक हैं।(पंचेंद्रिय)सैनीके दस(प्राण)हैं

ते।एव*मनोबलप्राण–अधिकाः।आदिशब्देन। =वेही(नौऔर)मनबलप्राण जिनकें अधिक हैं ।(इससूत्रमें) आदि शब्दकरि

निर्दिष्टानाम्।।निर्ज्ञातसंख्यानाम्।।इयत्ता— =उपदेशकीहुई(=निर्दिष्टानाम्) (परन्तु) बिनाजानी हुई गणनाओंकी मर्यादा

अवधारणम्।।।कर्तव्यम्।।।इति* अतः*आह =निश्चय करना(=अवधारणम्)कर्तव्य है वा निश्चकरना चाहिये अतः कहते हैं कि

---

(२) मर्यादावाची । तेन । पंचेन्द्रियात् । ऊर्ध्वम्* =मर्यादावाचक(=व्यवस्थावाची)है तिस(आदि शब्द)करि पञ्चइन्द्रियसेऊपर
षष्ठइन्द्रियादिजीवः । न*भवति।इति*अभिप्रायः । =छेइन्द्रियादिजीव नहीं होतेहै । ऐसाअभिप्रायसूत्रमें आदिशब्दकाजोव्यवस्थावाचीहै, है

(३) तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासे।उदाहरणम्।।लम्बकर्णः। =बहीगुणव्यापकबहुव्रीहि समासमें दृष्टान्त, लम्बकर्ण है वा लम्बेकानवाला है
अतद्गुणसंविज्ञाने ।।। बहुधनः। =(और)अतद्गुणसंविज्ञान(बहुव्रीहिसमासमें)बहुत हैधनजिसकेंऐसा(उदाहरण) है।

।द्वीन्द्रियस्य से पंचेन्द्रियस्य तक एकवचनमें है अतःअनुवाद एकवचनमें है औरपांचप्रकारकेप्राणोंमें अधिकाः शब्दबहुवचनमें है इससेअनुवादबहुवचनमें है ॥

॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

द्वे इन्द्रिये यस्य सोऽयं द्वीन्द्रियः, द्वीन्द्रियः आदिर्येषां ते द्वीन्द्रियादयः ॥ आदिशब्दो व्यवस्थावाची। क्व व्यवस्थिताः। आगमे। कथम्। द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रियःपञ्चेन्द्रियश्चेति॥ तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात् द्वीन्द्रियस्याप्यन्तर्भावः ॥

सूत्रम्[1]— द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः[2][3] ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—द्वि-इन्द्रिय-आदयः।३।त्रसाः।१। =दो इन्द्रियोंको आदिलेकर(पंचेन्द्रियतक)त्रस (जीव) हैं अर्थात् दोइन्द्रिय तीनइन्द्रिय,चारइन्द्रिय,पंचेइन्द्रिय जीव आगममें त्रसनामसे व्यवस्थित हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—द्वे।१।।।इन्द्रिये।१।।।यस्य।६।।।सः।१ अयम्।१।द्वीन्द्रियः।१। =दो हैं इन्द्रिय जिसके सो यह दो इन्द्रिय है (और)

द्वीन्द्रियः।१ आदिः।१।येषां।६।ते।१।द्वीन्द्रिय-आदयः।१। =दो इन्द्रिय हैं आदिमें जिनके ते द्वीन्द्रिय आदि हैं

आदिशब्दः।१।व्यवस्थावाची।१। =(सूत्रमें)आदिशब्द मर्यादावाची है अर्थात् इन्द्रियोंकी गणनाको परमितकरताहै।

क्व*व्यवस्थिताः।१।आगमे।७। कथम्* =(प्रश्न)कहां व्यवस्था वा मर्यादा है। (उत्तर)शास्त्रोंमें है (प्रश्न) कैसे हैं

द्वीन्द्रियः।१।त्रीन्द्रियः।१।चतुरिन्द्रियः।१।च*पंचेन्द्रियः।१।इति* =(उत्तर)दो इन्द्रिय,तीन इन्द्रिय,चार इन्द्रिय,और पांच इन्द्रिय,वाले जीव हैं

तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात्।५।।। =तदगुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासके उपादानके निमित्तसे है

द्वीन्द्रियस्य।६।अपि*अन्तर्भावः।१। =दो इन्द्रियवालेका भी(आदिशब्दविषैं)ग्रहण(=अन्तर्भाव)हैअर्थात् इस समास में जिस पदार्थके पीछे आदिशब्द आता है तो वह अपने पहलेके पदार्थको ग्रहण करते हुये दूसरी शेष वस्तुओंको भी गिना देता है जैसे इस सूत्रमें आदि शब्दने अपने पहिलेकी संख्या द्विइन्द्रियकी गणना करतेहुये

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रके पाठ और अर्थमें जो भेद है वह इस अनुवादके तेरहवां सूत्रमें दियागया है ॥ (२) मर्यादावाची,तेन पञ्चेन्द्रियादूर्ध्वं षडिन्द्रियादिर्जीवो न भवतीत्यभिप्रायः ॥ (३) तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासे उदाहरणं लम्बकर्णः। अतद्गुणसंविज्ञाने बहुधनः ॥

तेषामन्तर्भेदप्रदर्शनार्थमाह

द्विविधानि ॥ १६ ॥

विधशब्दः प्रकारवाची, द्वौ विधौ येषां तानि द्विविधानि, द्विप्रकाराणीत्यर्थः ॥ कौ पुनस्तौ द्वौ प्रकारौ?। द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियमिति ॥

जो पदार्थ ज्ञान और दर्शन स्वरूप उपयोगमें कारणहों उसीकानाम इन्द्रिय मानाहै। स्पर्शनआदि पांच इन्द्रियां उपयोगमें कारण हैं इसलिये उन्हे इन्द्रिय मानना युक्त है। वाक् पाणि पांव गुदा और लिंग उपयोगमें कारणनहीं,इसलिये उन्हें इन्द्रिय नहीं कहाजासकता यदि यहांपर जो क्रियाके साधनहों वे भी इन्द्रिय हैं यह इन्द्रिय सामान्यका लक्षण किया जायगा तो यद्यपि बोलना आदि क्रियाओंके कारणहोनेसे वाक् आदिइन्द्रियां कहीजावेंगीं परंतु क्रियाके साधन तो मस्तक आदि सबही अंग उपांग हैं। सबोकों इन्द्रिय कहना पड़ेगाफिर किसको इन्द्रिय कहना किसको न कहना अथवा वाक् पाणि आदिपांचको कर्मेन्द्रिय कहना औरोंको न कहना यह अवस्थाही न बन सकैगी इस लिये जो क्रियाकेसाधन हों वे इन्द्रियहैं यह इन्द्रिय सामान्यका लक्षण न मानकर'जो उपयोगमें कारण हों वेइन्द्रियहैं'यही इन्द्रियका लक्षण मानना चाहिये॥अतःजो सूत्रमें कहींहै वे उपयोगमें कारण हैं और वे हीइन्द्रियें हैं॥

तेषाम्॥ अन्तर्भेद–प्रदर्शन–अर्थम्॥ आह। =उन(इन्द्रियों) के प्रभेद दिखानेके लिये (निम्नलिखित सूत्रमें आचार्य)कहते हैं कि

सूत्रम्—द्विविधानि=द्विविधानीन्द्रियाणिभवन्ति॥१६॥('इन्द्रिय'शब्दकीअनुवृत्तिपंद्रहवांसूत्रसेली

सूत्रार्थः–इन्द्रियाणि॥ द्विविधानि॥ भवन्ति। =इन्द्रियेंदोभेदरूपहैंअर्थात्पांचोंइन्द्रियोंमेंसेप्रत्येकइन्द्रियकेदोद्रव्येन्द्रियऔरभावेन्द्रियभेदहैं

वृत्त्यर्थः–विधशब्दः॥ प्रकारवाची॥ द्वौ॥ विधौ॥ येषाम्॥(=इससूत्रमें)'विध'शब्द प्रकारअर्थ में है। दो हैं भेदजिनके

तानि॥ द्विविधानि॥ द्विप्रकाराणि॥ इति॥ अर्थः॥ =ते द्विविधानि है अर्थात् दोदो प्रकार सब इन्द्रियें हैं। ऐसाआशय है

कौ॥ पुनः॥ द्वौ॥ प्रकारौ॥ द्रव्येन्द्रियं॥ भावेन्द्रियम्॥ इति =फिर कौन दो प्रकार हैं द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय ऐसे हैं

॥ पंचेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥

इन्द्रियशब्दो व्याख्यातार्थः। पञ्चग्रहणमवधारणार्थं, पञ्चैव नाधिकसंख्यानीति ॥ कर्मेन्द्रियाणां वागादीनामिह ग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्। उपयोगप्रकरणात् ॥ उपयोगसाधनानामिह ग्रहणं कृतं, न क्रियासाधनानामनवस्थानाच्च ॥ क्रियासाधनानामङ्गोपाङ्गनामकर्मनिर्वर्तितानां सर्वेषामपि क्रियासाधनत्वमस्तीति न पंचैव कर्मेन्द्रियाणि ॥

सूत्रम्— पंचेन्द्रियाणि=पंचेन्द्रियाणि (नाधिकानि) भवन्ति

सूत्रार्थः-पंचेन्द्रियाणि।।।न-अधिकानि।।।भवन्ति।=इन्द्रियें(सब)पांच हैं अधिक नहीं होती हैं अर्थात् इससूत्रका आरम्भनियमकेलियेहै, औरछह आदिकी संख्याकेनिषेधके लिये है। जो"इन्द्रकहिये आत्मा(=संसारीजीव)ताकालिंगकहिये जनावनेका चिन्हतथा इन्द्रजोनामकर्म ताकरि रचे जेआकार ते इन्द्रिय हैं"पं०जय०वचनिकापृष्ठ२५८।

वृत्त्यर्थः—इन्द्रियशब्दः।व्याख्यातअर्थः।पञ्चग्रहणम्।।।=इन्द्रिय शब्दका अर्थ पहिले विवरण कियागया है। पंचशब्दका उपादान अवधारणअर्थं।।।पञ्च।।।एव न-अधिक-संख्यानि।।।इति=निश्चयके लिये है। पांचही(इन्द्रियां) हैं अधिक संख्या वा गणना नहीं है

कर्म-इन्द्रियाणाम्।।।वाग्-आदीनाम्।।।इह॰ग्रहणम्।।। =कर्मइन्द्रियें वचन,हाथ-पांव-गुदा-लिंग(=आदीनाम्)का यहां ग्रहण

कर्तव्यम्।।।न॰कर्तव्यम्।।।उपयोग-प्रकरणात्।।। =करनाचाहिये। (कर्मइन्द्रियोंकाग्रहण)नहींचाहिये। क्योंकि(यहां)उपयोगकाविषयहै

उपयोग-साधनानाम्।।।इह॰ग्रहणं।।। कृतम्।।। =(अतः)उपयोगके कारणोंका यहां ग्रहण किया गया है [वस्यामसंग . मातारे

च॰न॰क्रियासाधनानाम्।।।अनवस्थानात्।।। =औरनकिक्रियाकेसाधनोंका क्योंकि(यदि क्रियाकेसाधनोंको इन्द्रियकहैं तो)अन-

क्रियासाधनानाम्।।।अङ्गोपाङ्गनामकर्मनिर्वर्तितानाम्।।। =क्योंकि क्रियाकेसाधन अंगोपांगनामा नामकर्म करिरचित हैं

सर्वेषाम्।।। अपि॰क्रियासाधनत्वम्।।।अस्ति।इति॰ =इसलिये(=अपि-देखो वैद्यकोशपृष्ठ४१)समस्तकें क्रियाका साधनपना है

न॰पञ्च।।।एव॰कर्मइन्द्रियाणि।।। =नकि पांचोंही कर्मइन्द्रियोंके (क्रिया साधनपना है) भावार्थ ऐसा है कि

---

(१) दोनों आचार्योंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥(२)सांख्यमती चक्षु-श्रोत्र-घ्राण-रसना-त्वक् ये पांच बुद्धीन्द्रियां;वचन,हाथ,पांव, गुदा,लिंग येपांच कर्मेन्द्रियां,और मन ऐसे ग्यारह इन्द्रियां मानतेहैं। कोईछै इन्द्रियांमानते हैं उनकेखंडनार्थ औरसंख्याकी इयत्ता के लियेय.ह सूत्र है

शुद्धानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचक्षुरादीन्द्रियसंस्थानेनावस्थितानां वृत्तिरभ्यन्तरा निर्वृत्तिः। तेष्वात्मप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेशभाक्षु यः प्रतिनियतसंस्थानो नामकर्मोदयापादितावस्थाविशेषः पुद्गलप्रचयः सा बाह्या निर्वृतिः। येन निर्वृते रूपकारःक्रियते तदुपकरणम्॥ पूर्ववत्तदपि द्विविधम् तत्राभ्यन्तरं कृष्णशुक्लमण्डलम् बाह्यमक्षिपत्रपक्ष्मद्वयादि॥ एवं शेषेष्विन्द्रियेषुज्ञेयम्॥

शुद्धानाम्[६।३] आत्मप्रदेशानाम्[६।३] प्रति- =शुद्धचेतना वा आत्माके प्रदेशोंकी(=केवल आत्माके प्रदेशोंकी)न्यारे न्यारे(=प्रति)

नियतचक्षुःआदिइन्द्रियसंस्थानेन[३।१] अवस्थितानां[६।३] वृत्तिः=निश्चितनेत्रआदिकइन्द्रियोंके आकारकरि अवस्थितवृत्ति(अर्थात् तिष्ठनेकी दशा)

अभ्यन्तरा[१।१] निर्वृत्तिः[१।१] =सो अभ्यन्तर निर्वृत्ति है। अर्थात् उत्सेधअंगुलके असंख्यातवांभागप्रमाण विशुद्धआत्मप्रदेशोंका जो भिन्न भिन्न रूपसे नेत्र इन्द्रियकेमसूरकेआकार,कर्ण इन्द्रियके जवकी मध्यनालीके आकार सदृश, नासिका इन्द्रियके तिल पुष्प आकार समान,रसना इन्द्रियके अर्द्ध चन्द्रके आकारसम, स्पर्शन इन्द्रियके अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न आकारके समान,और इन सवका प्रमाण स्वरूप परिणत होना है वह अंतरंग निर्वृत्ति है॥

तेषु[७।३] आत्मप्रदेशेषु[७।३] इन्द्रियव्यपदेशभाक्षु[७।३] =तिन आत्माके(विशुद्ध) प्रदेशनिमें इन्द्रियनामके दियेजानेपर वा धारनेपर

यः[१।१] प्रतिनियत-संस्थानः[१।१] नामकर्म-उदय-आपादित- =जो प्रतिनियत(=न्यारे न्यारे वा विधित)आकार सहित नामकर्मकेउदयजनित

अवस्थाविशेषः[१।१] पुद्गलप्रचयः[१।१] सा[१।१] बाह्या[१।१] निर्वृत्तिः[१।१] =विशेष दशा वा अवस्थासहित पुद्गलके समूह सो बहिरंग निर्वृत्ति है। अर्थात् उन्हीं आत्माके विशुद्ध प्रदेशोंमें इन्द्रियोंके नामसे कहेजानेवाले भिन्नभिन्न आकारोंके धारक संस्थान नामकर्मकेउदयसे होनेवाले अवस्था विशेपसे युक्त जो पुद्गलपिंड है वह बाह्य-निर्वृत्ति है॥

येन[३।१] निर्वृतेः[६।१] उपकारः[१।१] क्रियते T तद्[१।१] =जिससे निर्वृत्तिका उपकार क्रियाजाता है वा सहायता कीजाती है वह

उपकरणम्[१।१] पूर्ववत्* तद्[१।१] अपि* द्विविधम्[१।१] =उपकरण है। पहलेकी भांति(अर्थात् जैसे निर्वृत्ति दो प्रकारहै)वहभीदोप्रकार है

तत्र* अभ्यन्तरम्[१।१] कृष्ण-शुक्ल-मण्डलम्[१।१] बाह्यम्[१।१] =तहां(नेत्रविषैं)अतरंग(उपकरण)काला शुक्ल(वर्ण)मंडल है। बाह्य (उपकरण)

अक्षिपत्र-पक्ष्म- =वाफनी(=भावणी)वा बिन्नी(=अक्षिपत्र)और आंखके पलक (=अक्षि-पक्ष्मना)

द्वय-आदि[१।१] एवम्* शेषेषु[७।३] इन्द्रियेषु[७।३] ज्ञेयम्[१।१] =दो आदिक हैं। ऐसे शेष(स्पर्शन-घ्राण-रसना-श्रोत्र)इन्द्रियोंमें जानना चाहिये॥

तत्र द्रव्येन्द्रियस्वरूपप्रतिपत्त्यर्थ (निर्ज्ञापनार्थं) माह—

॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥

निर्वर्त्यते निष्पाद्यते इति निर्वृत्तिः ॥ केन निर्वर्त्यते? कर्मणा ॥ सा द्विविधा बाह्याभ्यन्तरभेदात् । उत्सेधांगुलासंख्येयभाग प्रमितानां

तत्र द्रव्येन्द्रियस्वरूपप्रतिपत्तिअर्थ (निर्ज्ञापन-अर्थ)म् ॥ आह=तहां द्रव्येन्द्रियकेस्वरूपके निर्णय वा जाननेके लिये कहते हैं कि सूत्रम्—

[1] निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥

=निर्वृत्त्युपकरणे (इन्द्रिये-द्विविधे)द्रव्येन्द्रियम् =निर्वृत्ति-इन्द्रियम्-उपकरणेन्द्रियम् च द्विविधं द्रव्येन्द्रियम् भवति ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—निर्वृत्ति-इन्द्रियम् ॥ च उपकरणेन्द्रियम् ॥ =निर्वृत्ति-इन्द्रिय और उपकरणेन्द्रिय

द्विविधम् ॥ द्रव्येन्द्रियम् ॥ भवति । =दोप्रकार द्रव्येन्द्रिय है अर्थात् निर्वृत्तिऔरउपकरणके भेदसे द्रव्येन्द्रिय दो प्रकार है ॥

शब्दानुवादः—निर्वर्त्यते । निष्पाद्यते । इति निर्वृत्तिः ॥ =रचागया है बनायागया है यह निर्वृत्ति है

केन ॥ निर्वर्त्यते । कर्मणा ॥ =(प्रश्न)किससे रचगया है । (उत्तर) कर्मकरि [विशेपहो सो निर्वृत्ति है)

सा ॥ द्वि-विधा ॥ बाह्य-अभ्यन्तर-भेदात् ॥ =वह(निर्वृत्ति)बाह्यअभ्यन्तर भेदसे दो प्रकार है(नामकर्मके उदयसे जोरचना-

उत्सेध-अंगुल-असंख्येयभागप्रमितानाम् ॥ =उत्सेध अंगुलके असंख्यातवांभागप्रमाण

(१) सूत्र १६,१७ का पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमें एक है ॥ 'इन्द्रिय' और 'विधि' शब्दोंकी अनुवृत्ति क्रमसे १५,१६ सूत्रोंसे इस सूत्रमेंलीगई है ॥

(२) उत्सेधांगुलमिति व्यवहारांगुलं घनरूपं तदेवात्र गृह्यते । परमागमे देहगेहग्रामनरकादिप्रमाणमुत्सेधांगुलेनैवेति नियमितत्वात् ॥

उत्सेध-अंगुलम् ॥ इति व्यवहार-अंगुलम् ॥ घनरूपं = उत्सेधअंगुल(=आठआड़ेजौप्रमाण)हैसोव्यवहारअंगुलहै। घनरूप(लंबाई-चौड़ाईउचाईमेंसम)

तद् एव अत्र गृह्यते । परमागमे ॥ देह-गेह-ग्राम- =वही (उत्सेधअंगुल)यहां लियागया है । शास्त्रमें शरीर,गृह ग्राम,

नरक-आदि-प्रमाणम् ॥ उत्सेध-अंगुलेन ॥ एव =नरकादिकका प्रमाण उत्सेध अंगुलसे ही है ॥

इति नियमितत्वात् ॥ =क्योंकि ऐसा नियमित वा विधित है ॥ इस उत्सेधअंगुलसे पांच सौ गुणा प्रमाणांगुलहै इससे महापर्वत,नदी,समुद्रादिकका परिमाण कहाजाता है । भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने २ कालमें जो अंगुल है उसे आत्मांगुल कहते हैं इससे झारी कलश,धनुषादिका प्रमाण होता है ॥

उपयोगः तस्य कथमिन्द्रियत्वम्?कारणधर्मस्य कार्ये दर्शनात्। यथा घटाकारपरिणतं विज्ञानं घट इति ॥ स्वार्थस्य तत्र मुख्यत्वाच्च। इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियमिति यः स्वार्थः स उपयोगो मुख्यः। उपयोगलक्षणो जीव इति वचनात्। अत उपयोगस्येन्द्रियत्वं न्याय्यम्॥ उक्तानामिन्द्रियाणां संज्ञानुपूर्वीप्रतिपादनार्थमाह:—

उपयोगः१।१ तस्य६।१ कथम्* इन्द्रियत्वम्१।१॥ =उपयोग है। तिस (उपयोग)के इन्द्रियपना कैसे है

कारणधर्मस्य ६।१ कार्ये७।१॥ दर्शनात् ५।१॥ =(उपयोगको इन्द्रियका कार्य होतेसंते) कार्यमें कारणधर्मके देखनेसे वा व्यवहारसे (उपयोगकें इन्द्रियपनेका उपचार किया गया) है अर्थात् जो कारणका धर्महो तिसको कार्य विषैं भी देखिये है

यथा*घटाकारपरिणतं१।१॥विज्ञानं१।१॥घटः१।१इति*=जैसे घड़ाके आकार परिणम्याज्ञान घट ऐसा (कहा जाता) है

स्व-अर्थस्य६।१तत्र* मुख्यत्वात् ५।१॥च* =और क्योंकि तहां स्वअर्थके प्रधानपना है अर्थात् कार्यभी लोकमें कारण मानागया है जिस प्रकार घटाकार परिणत ज्ञान घटसे जो समान होनेसे घटका कार्य है तथापि उस विज्ञानको घठ कहदिया जाता है इसी प्रकार उपयोग यद्यपि इंद्रियोंसे जायमान होनेसे उनका फल है तथापि वह(उपयोग)इन्द्रिय कहाजासकता है इसलिये उपयोगको भावेन्द्रिय मानने में कोई आपत्ति नहीं

इन्द्रस्य६।१लिङ्गम्१।१॥इन्द्रियम्१।१॥इति*यः१।१स्वार्थः१।१=आत्मा(=इन्द्र)का लिंग इन्द्रिय है। ऐसा जो स्व-अर्थ है

सः१।१उपयोगः१।१मुख्यः१।१ उपयोगलक्षणः १।१ जीवः=सो उपयोग मुख्य है। उपयोग है लक्षण जिसका वह जीव है

इति*वचनात् ५।१॥अतः*उपयोगस्य ६।१इन्द्रियत्वम्=क्योंकि ऐसा वचन है॥ इसलिये उपयोगकें इन्द्रियपना

न्याय्यम्१।१॥उक्तानाम्६।१॥इन्द्रियाणाम्६।१॥सञ्ज्ञा-=यथार्थ वा ठीक है। कथित इन्द्रियोंके नाम (और उनका)

आनुपूर्वी(-अनुपूर्वी-)प्रतिपादनअर्थम्१।१॥आह=क्रम(अनुपूर्वी वा आनुपूर्वी)कहने के लिये कहते हैं कि

भावेन्द्रियमुच्यते—

॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

लम्भनं लब्धिः। का पुनरसौ?। ज्ञानावरणक्षयोपशमविशेषः ॥ यत्सन्निधानादात्मा द्रव्येन्द्रिय-निर्वृतिंप्रति व्याप्रियते तन्निमित्त आत्मनः परिणाम उपयोगस्तदुभयं भावेन्द्रियमिन्द्रियफलम्

भावेन्द्रियम् १ उच्यते २ = भावइन्द्रिय कहीजाती है कि

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—लब्धि-उपयोगौ१।भाव-इन्द्रियम् १।। =लब्धि और उपयोग (ये दो) भाव इन्द्रिय हैं

वृत्त्यनुवादः–लम्भनम्१।।लब्धिः१।।का१।पुनः*असौ१।।=लाभ है(वही) लब्धि है ।(प्रश्न)फिर वह(लब्धि) क्या (=का) है

ज्ञानावरण-क्षयोपशम-विशेषः१। =(उत्तर)ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमरूप व्यक्ति वा प्रकाश है (सोलब्धि)है। अर्थात्ज्ञानावरणीयकर्मकेविशेषक्षयोपशमसेआत्माकेजोविशुद्धतारूपीशक्तिहैसोलब्धिहै

यत्सन्निधानात्१।।आत्मा१।द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्तिम्२।प्रति*=जिस(लब्धि)केनिकटहोकरिआत्माद्रव्येन्द्रियरूप निर्वृत्ति प्रति

व्याप्रियते तत्-निमित्तः१।आत्मनः६।परिणामः उपयोगः=व्यापारकरताहै,प्रवर्ताहै उस लब्धिनिमित्तकआत्माका(विषयप्रति)परिणमन उपयोगहै अर्थात् जो ज्ञेयके आकार परिणमनरूप ज्ञानहो सो उपयोग है

तद्१।।उभयम्१।।भावेन्द्रियम्१।।इन्द्रिय-फलम्१।। =वह दोनों भाव इन्द्रिय हैं। इन्द्रियका फल वा कार्य जो

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों संप्रदायोंमें एक है। इस १८ वां सूत्र और स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु-श्रोत्राणि उन्नीसवां सूत्रके मध्यमें श्वेताम्बरआम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र 'पृष्ठ ४४ में "उपयोगः स्पर्शादिषु" ऐसा सूत्र अधिक है॥ स्पर्शादिषु मतिज्ञानोपयोगः इत्यर्थः। स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्द(इन्द्रियोंके विषयमें)मतिज्ञानका उपयोग होताहै। ऐसा अर्थ इस सूत्रका है। हमारे यहां इसको मूलसूत्र नहीं माना है। सभाष्य०के अनुवादकने यह टिप्पणी इस सूत्रमें दी है कि किसी किसीके मतमें यह मूलसूत्र नहीं है कोई कोई कहते हैं,यह मूल सूत्र है। हैभाष्यनहीं॥ (२)जैसे किसी जीवकी सुननेकी शक्ति है परंतु उपयोग जो चैतन्यका परिणमन है सो अन्यत्रहो,अन्य वस्तुओंमें लगरहा हो तोसुनतानहीं। और कोई जाननाचाहताहै और क्षयोपशम शक्ति नहीं है तो जान नहीं सकता इसलिये लब्धि और उपयोग जब दोनों हीं मिलें तब ज्ञानकीसिद्धि होती है॥

(अ)ङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भात् आत्मना स्पृश्यतेऽनेनेति स्पर्शनम्।रस्यतेऽनेनेति रसनम्। घ्रायतेऽनेनेति घ्राणम्। चष्टेऽनेकार्थत्वाद्दर्शनार्थविवक्षायां चष्टे अर्थान्पश्यत्यनेनेति चक्षुः। श्रूयतेऽनेनेति श्रोत्रम॥ स्वातन्त्र्यविवक्षायां च दृश्यते।इदं मे अक्षि सुष्ठु पश्यति। अयं मे कर्णः सुष्ठु शृणोति। ततःस्पर्शनादीनां कर्तरि निष्पत्तिः। स्पृशतीति स्पर्शनम्। रसतीति रसनम्। जिघ्रतीति घ्राणम्। चष्टे इति चक्षुः।

अङ्गोपाङ्गनामलाभअवष्टम्भात्[५/१] आत्मना[३/१]	=अंगोपांग नामा नामकर्मके (उदयके) लाभके आलम्बनकरि आत्मासे
स्पृश्यते I अनेन[३/१]इति*स्पर्शनम्[१/१]।।	=जिस (इन्द्रिय)करि स्पर्श्याजाये है ऐसी स्पर्शन (इन्द्रिय) है।
रस्यते I अनेन[३/१]।।इति*रसनम्[१/१]।।घ्रायते I अनेन[३/१]।।	=जिसद्वारा रसलिया जायहै ऐसी रसना(इन्द्रिय)है। जिससे सूंघाजाय है
इति*घ्राणम्[१/१]।।चष्टे I	=ऐसी घ्राण(इन्द्रिय)है। चक्ष्(धातु)के(कहना–छोड़ना-समझाना-देखनाइत्यादि)
अनेक-अर्थत्वात्[५/१]।।दर्शन–अर्थ–विवक्षायाम्[७/१]।।	=बहुत अर्थहोनेसे(इससूत्रमें) अवलोकन अर्थकी अपेक्षामें (=आया है) कि
चष्टे I अर्थान्[२/३]पश्यति I अनेन[३/१]।।इति*चक्षुः[१/१]।।	=पदार्थोंको देखता है (=चष्टे)। जिसकरि(=आत्मा)देखता है ऐसा चक्षुः है
श्रूयते I अनेन[३/१]।। इति*श्रोतम्[१/१]।। .	=जिसकरि(आत्मा)सुनता है ऐसा श्रोत्र है।। (इन्द्रियोंकीकरणसाधनव्युतपत्तिहुई)
च*स्वातन्त्र्यविवक्षायाम्[७/१]।।दृश्यते I इदं[१/१]।।मे[६/१] अक्षि[१/१]।।	=और(=च)(इन्द्रियोंकी)स्वतन्त्रयतारूप अपेक्षामें देखा जाताहै कि यह मेरी आंख
शुष्टु*पश्यति I अयं[१/१]।।मे[६/१]कर्णः[१/१]सुष्टु*शृणोति I	=भले प्रकार देखती है। यह मेरा कान भले प्रकार सुनता है।
ततः*स्पर्शनादीनां[६/३]कर्तरि[७/१]निष्पत्तिः[१/१]।।	=तहां त्वचा आदिक(इन्द्रियों)कीकर्ताप्रयोगमें सिद्धिहै।(इन्द्रिय कर्तृ साधनभी हैंजैसे)
स्पृशति I इति*स्पर्शनम्[१/१]।।रसति I इति*रसनम्[१/१]।।	=छूता है-स्पर्शन करता है ऐसा स्पर्शन है, चखता है ऐसा रसन है।
जिघ्रति I इति*घ्राणम्[१/१]।।;चष्टे I इति*चक्षुः[१/१]।।	=सूंघता है एसी घ्राण वा नासिका है देखता है ऐसा नेत्र है

(१) 'चक्ष्' अदादि द्वितीयगणका आत्मने पदी (यहां) सकर्मक धातु है। इसमें क्रियाके प्रत्यय विना किसी विकरणके लगाये जाते हैं॥ 'चक्ष्'=चकूष् 'क्''स्कोःसयोगाद्योरन्ते च(झलि)' अष्टाध्यायी ८-२-२९ वां सूत्र से गिरजाता है और'चष्'में'ते' अन्य पुरुष एकवचन आत्मनेपदी वर्तमान कालकी क्रियाका प्रत्यय लगानेसे=चष्+ते हुआ। 'ते'का'(स्तोः) ष्टुना ष्टुः'८।४।४१ वां सूत्रसे टे में परिवर्तनहोकर 'चष्टे'बनगया॥

॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥

लोके इन्द्रियाणां पारतन्त्र्याविवक्षा दृश्यते । अनेनाक्ष्णा सुष्ठु पश्यामि, अनेन कर्णेन सुष्ठु श्रृणोमीति।ततःपारतन्त्र्यात्स्पर्शनादीनां करणत्वं। वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमा-

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षुःश्रोत्राणि (एतानि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति) । (पंद्रहवां सूत्र अनुवृत्ति रूपमें इस सूत्र में आताहै)

	=स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि
स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षुःश्रोत्राणि ‖ एतानि ‖	=त्वचा(त्वक्) जीभ,नाक(नासिका),नेत्र और कान ये
पञ्चेन्द्रियाणि ‖ भवन्ति ।	=पांच इन्द्रियां हैं अर्थात् ज्ञानकरानेमें सहायक होनेसे इनको इन्द्रिय कहतेहैं
दृश्यनुवादः–लोके ‖ इन्द्रियाणाम् ‖ पारतन्त्र्या–विवक्षा ‖ दृश्यते ।	=लोक वा संसारमें इन्द्रियोंकें पराधीन विवक्षा वा अपेक्षा देखीजाती है।
अनेन ‖ अक्ष्णा ‖ सुष्ठु ✻ पश्यामि ।	इसनेत्रसे भलेप्रकार देखताहूं॥(अक्ष्णा ‖ 'अक्षि' शब्दका है)
अनेन ‖ कर्णेन ‖ सुष्ठु ✻ श्रृणोमि । इति ✻ ततः ✻ पारतन्त्र्यात् ‖	=इस कानसे नीके सुनताहूं । तहां पराधीनतासे
स्पर्शनादीनां ‖ करणत्वम् ‖	=त्वचा(इन्द्रिय)आदिकैं करणपना है अर्थात् लोकमें

इन्द्रियोंके स्वकार्य करनेमें परतंत्रता अनुभवमें आती है इसलिये स्पर्शन आदि करणसाधन हैं क्योंकि जिस समय इन्द्रियोंकी परतंत्ररूपसे विवक्षाकी जाती है और आत्माको स्यातंत्र्य मानाजाता है उस समय'मैं इस आंखद्वारा भले प्रकार देखता हूं'।'मैं इस कान द्वारा भले प्रकार सुनताहूं'। 'मैं इस नासिका द्वारा भले प्रकार सूंघताहूं'।'मैं इस जीभ द्वारा भले प्रकार चखताहूं'। मैं'इस हाथ द्वारा वा शरीर के किसी अन्य अवयव द्वारा भले प्रकार स्पर्शनकरताहूं'ऐसा व्यवहार होता है । यदि इन्द्रियोंको करणसाधन न माना जावै तो संसारमें व्यवहार नहीं होसकता ॥ (आचार्य करण साधनको नीचे विशेपरूपसे समझाते हैं)

वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशम– =वीर्यान्तरायनामा मतिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम और

(१) श्वेताम्बर आम्नायके'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में यह सूत्र शब्दशःवही है जो हमारे यहां है अर्थभी एक है परंतु सभाष्य०में इस सूत्रकी संख्या बीसवींहै क्योंकि अठारहवां सूत्रकेपीछे सभाष्य०में "उपयोगः स्पर्शादिषु" ऐसा उन्नीसवां सूत्रहै । और हमारे यहां ऐसा उन्नीसवां सूत्र नहीं है ॥

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥

द्रव्यपर्याययोःप्राधान्यविवक्षायां कर्मभावसाधनत्वं स्पर्शादिशब्दानां वेदितव्यम् ॥ द्रव्यप्राधान्यविवक्षायां कर्मनिर्देशः । स्पृश्यत इति स्पर्शः । रस्यत इति रसः । गन्ध्यत इति गन्धः । वर्ण्यत इति वर्णः । शब्द्यत इति शब्द ॥ पर्यायप्राधान्यविवक्षायां

सूत्रम्— स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्था:[१] ॥ २० ॥

=स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाःतद्-अर्थाः(यथाक्रमम्)[२] ॥२०॥

सूत्रार्थः—स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दाः१।३। यथाक्रमम्※=स्पर्श,रस,गंध,वर्ण,और शब्द (ये पांच) क्रमसे
तद्-अर्थाः१।३। =उन(पांचो इन्द्रियों)के विषय हैं अर्थात् इनमें स्पर्शन इन्द्रियका विषय स्पर्श वा छूना है,रसना इन्द्रियका विषय स्वाद लेना है,घ्राणइन्द्रियका विषय सुगंध और दुर्गंध सूंघना है । नेत्र इन्द्रियका विषय वर्ण अर्थात् रंग है और श्रोत्र इन्द्रियका विषय शब्दोंका सुनना है ॥

वृत्त्यनुवादः–द्रव्यपर्याययोः६।२प्रधान्यविवक्षायाम्७।१कर्म –=द्रव्य और पर्यायकी मुख्य अपेक्षामें कर्म (साधनपना और)
भाव-साधनत्वम्१।१स्पर्शादिशब्दानाम्६।३वेदितव्यम्१।१ =भाव साधनपना(यथासंख्य)स्पर्शादिक शब्दोंके जानना चाहिये ।
द्रव्य-प्राधान्यविवक्षायाम्७।१कर्म-निर्देशः१।१ ।स्पृश्यते I =द्रव्यप्रधान विवक्षाविषैं कर्मणि प्रयोग है । जो स्पर्श्या जाता है
इति※स्पर्शः१।१ रस्यते I इति※रसः१।१ =ऐसा स्पर्श है । जो आस्वादा जाता है ऐसा रस है
गन्ध्यते I इति※गन्धः१।१वर्ण्यते I इति※वर्णः१।१ =जो सूंघाजाता है ऐसागंध है । जो देखा जाता है ऐसा वर्ण है
शब्द्यते I इति※शब्दः१।१पर्याय-प्राधान्यविवक्षायाम्७।१ =जो सुनाजाता है ऐसा शब्द है । पर्यायकी मुख्य अपेक्षासे

---

(१)"तदर्था."वाक्यके स्थानमे श्वेताम्बरआम्नायके'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'मे'तेषामर्थाः"वाक्य आया है । इससे अर्थमे कुछ भेद नही पड़ता क्योंकि'तदर्थाः'का तात्पर्य 'तिनकेविषय' है, ऐसा है । यही अर्थ "तेषाम् अर्थाः" वाक्यका है । अर्थात् क्रमसे तिन पाच इन्द्रियोंके विषय हैं ॥
(२) इस सूत्रमें'यथाक्रमम्' शब्दकी अनुवृत्ति इसी अध्यायके द्वितीय अथवा दूसरे सूत्रसे लीगई है ॥

श्रृणोतीति श्रोत्रम्। एषां निर्देशक्रमःएकैकवृद्धिक्रमप्रज्ञापनार्थः। तेषामिन्द्रियाणांविषयप्रदर्शनार्थमाह

शृणोति।इति॥श्रोत्रम्१॥। =सुनता है ऐसाकान है,कर्ण है। 'श्रणोति' अशुद्ध है (देखोटिप्पणी अध्याय१पृष्ठ३२३)

भावार्थ संसारमें इंद्रियोंकी स्वकार्यके प्रति स्वतंत्रता रूपसेभी विवक्षा है अतःवे कर्तृ साधन भी हैं क्योंकि यह नाक मेरी भलेप्रकार पदार्थोंको सूंघतीहै,यह जीभ मेरी भलेप्रकार चखतीहै इत्यादि ऐसेही अन्य इन्द्रियों के संबंध में व्यवहार होता है। इन्द्रियावर्णकर्मके क्षयोपशमसे एवं अंगोपांग नामक नामकर्मके बलसे जो स्वयं पदार्थोंको स्पर्श करै वह स्पर्शन है, स्वयं रसोंको चखै वह रसना,स्वयं पदार्थोंको सूंघे वह घ्राण, स्वयं पदार्थोंको देखे वह चक्षु और स्वयं शब्दोंको सुने वह श्रोत्र है।ऐसे पांचों इन्द्रियोंकी यह कर्तृ साधन व्युत्पत्तिहै

एषाम्६॥निर्देशक्रमः१॥ =इन(इन्द्रियों)का(इस सूत्रमें)कथन वा उपदेशका क्रम

एक-एक-वृद्धिक्रम-प्रज्ञापन- अर्थः१॥ =एक एक(इन्द्रियके)बढ़नेके अनुक्रम वा आनुपूर्वी जनावने के लिये है।

(एक इन्द्रियादिक जीवोंके)

भावार्थः-एक इन्द्रिय जीवकें एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है इससे सूत्रमें स्पर्शन प्रथम कही क्योंकि इसी अध्यायके बाईसवां सूत्रमें कहा है कि 'वनस्पत्यंतानामेकम्' अर्थात् पृथिवीको लेकर वनस्पतिपर्यंत समस्त जीवोंकें एकही स्पर्शन इन्द्रिय होती है। समस्त संसारी जीवों के स्पर्शन इन्द्रिय होती है इससे सूत्रमें स्पर्शन पहिले कहा गया, दो इन्द्रिय जीवकें केवल रसना और होती है इससे सूत्रमें स्पर्शनके लगताई रसना कही। इसी प्रकार तीन इन्द्रियवाले जीवकें स्पर्शन,रसन,घ्राण इसी क्रमसे होयं अन्य एर फेर नहीं होता है इसकारण सूत्रमें रसनके अनन्तर घ्राण कही, चौ इन्द्रिय जीवकें स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः इन चारही इन्द्रियोंका ग्रहण होय अन्य नहीं होय इस हेतुसे सूत्रमें घ्राण के निकटही चक्षुः कही। श्रोत्र इन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवकें होती है अन्य किसी जीवकें नहीं होती और श्रोत्र इन्द्रिय उसी जीवकें होगी जिसकें स्पर्शन रसन घ्राण और चक्षु ये चारो इन्द्रिय पहिलेसे ही विद्यमानहैं इससे सूत्रमें चक्षुके लगताही श्रोत्र इन्द्रिय कही इस वृत्तिक्रमको जनावनेके लिये सूत्रमें स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र ऐसा क्रम है॥

तेषाम्६॥इन्द्रियाणां६॥विषय-प्रदर्शन-अर्थम्१॥आह=उन(स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र)इन्द्रियोंके विषय दिखानेकेलियेकहतेहैं कि

॥ श्रुतमानिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥

श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्। स विषयोऽनिन्द्रियस्य। परिप्राप्तश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमस्यात्मनः श्रुतस्यार्थे

वहा पर यह शंका उठती है कि वह अनिन्द्रिय स्वरूपमन ज्ञान दर्शन स्वरूप उपयोगका उपकारक है अथवा नहीं? यदि यह कहा जायगा कि मनका सहारा विना लिये इन्द्रियोंकी अपने २ विषयमें प्रयोजनीय प्रवृत्ति नहीं हो सक्ती इसलिये मन उपयोगमें अवश्यही उपकारी है तब वहां यह कहना है कि अपने २ विषयोंमें इन्द्रियोंकी सहायता मात्र करना ही मनका कार्य है वा और कुछभी उसका कार्य है? उत्तरमें (इन्द्रियोंके उपकारके अतिरिक्त अन्य भी मनका कार्य है) मनके अन्य कार्य को कहते है कि—

सूत्रम्[१]—श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥ =श्रुतमनिन्द्रियस्य (अर्थ[२]:भवति)

सूत्रार्थः—श्रुतम्१।१। अनिन्द्रियस्य६।१। अर्थः१।१। भवति I =श्रुतज्ञान (=श्रुतम्) मनका विषय है अर्थात् श्रुतज्ञानका विषय पदार्थ हैं वा श्रुतज्ञान गोचर पदार्थ हैं सो मनका (=अनिन्द्रियस्य) विषय (अर्थ) हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—श्रुतज्ञानविषयः१।१। अर्थः१।१।श्रुतम्१।१। =श्रुतज्ञानका विषयभूत जो पदार्थ (=अर्थ) सो श्रुत है अर्थात् श्रुतज्ञानगोचर पदार्थ है वह श्रुत है। (यहां श्रुत, अनिन्द्रिय, नोइन्द्रिय एकार्थ वाची हैं)

सः१।१। विषयः१।१। अनिन्द्रियस्य६।१। परिप्राप्तश्रुतज्ञान- =सो श्रुत अनिंद्रिय वा मनका विषय है(क्योंकि) प्राप्तहुआ है श्रुतज्ञान

आवरण–क्षयोपशमस्य६।१। आत्मनः६।१। श्रुतस्य६।१।अर्थे७।१ =आवरण कर्मका क्षयोपशम जिसके ऐसा आत्माके श्रवनकिये पदार्थ(केविचारने)में

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ हमारे यहां कहीं पर 'मनिन्द्रियस्य' है कहीं पर मनिद्रियस्य पाठ है दोनों पाठ ठीकहै। सूत्रमें जो श्रुत शब्द है उससे श्रुत ज्ञानके विषय भूत पदार्थकाज्ञानहै। उसको मन विषय करता है क्योंकि जिसने श्रुत ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम प्राप्त कर लिया है ऐसे आत्माके मनके आश्रयसे जायमान ज्ञानकी श्रुतज्ञानके विषयभूत पदार्थमें प्रवृत्ति होती है अथवा श्रुतशब्दका अर्थ श्रुतज्ञान है यह मनसे होता है इसलिये मनपूर्वक होनेसे वह श्रुत ज्ञानही मनका कार्य है ऐसे इन्द्रियोंके व्यापारकी अपेक्षा नकर श्रुतज्ञानका उत्पन्न करना मनका स्वतत्र प्रयोजन वा कार्य है अर्थात् श्रुतज्ञानमन पूर्वकही होता है॥

(२)इस सूत्रमें 'अर्थ' शब्दको अनुवृत्ति इस अध्यायके २०वीसवां सूत्र से आती है॥ श्रुत, अनिन्द्रिय, नोइन्द्रिय एकार्थ वाची शब्द है॥

भावनिर्देशः स्पर्शनं स्पर्शः रसनं रसः। गन्धनं गन्धः। वर्णनं वर्णः शब्दनं शब्दः एषां क्रम इन्द्रियक्रमेणैव व्याख्यातः अत्राह यत्तावन्मनोऽनवस्थानादिन्द्रियं न भवतीति प्रत्याख्यातं तत्किमुपयोगस्योपकारी उत नेति?तदप्युपकार्येव तेन विनेन्द्रियाणां विषयेषु स्वप्रयोजनवृत्त्यभावात् किमस्यैषां सहकारित्वमात्रमेव प्रयोजनमुतान्यदपीत्यत आह—

भावनिर्देशः॥ =भावे प्रयोगहै अर्थात् व्याकरणमें कर्मवाच्यं,कर्तृवाच्यं और भाववाच्यं तीनप्रकारके धातुओंके प्रयोग है। सूत्र उन्नीसवांमें बहुत विशेषरूपसे कर्मवचनका अनुवाद पृष्ठ६१ के पंक्ति ६से १८ तक और पृष्ठ ६२ के पंक्ति ७ से १३ तक और कर्तृवचनका पृष्ठ६२ के पंक्ति १४से १८तक और पृष्ठ६३ के पंक्ति ३ से ८ तक उल्लेख किया है॥ भावसाधन,भाववचन, अथवा भावप्रयोग अर्थात् क्रियाको इसप्रकारसे वाक्यमें लाना कि जिससे उसकी भावरूपी अवस्था वा दशा प्रगट होजावै,इस पृष्ठ ६५ की पंक्ति ११,१२ नीचे में कहते हैं कि

स्पर्शनं॥स्पर्शः॥रसनं॥रसः॥ =स्पर्शना वा छूना सो स्पर्श है। रसना सो रस है

गन्धनं॥गन्धः॥वर्णनं॥वर्णः॥शब्दनम्॥शब्दः॥ =सूंघना सो गंध है। देखना सो वर्ण है। शब्दहोना सो शब्द है

एषाम्॥क्रमः॥इन्द्रियक्रमेण॥एव॥व्याख्यातः॥ =इन(विषयों)का अनुक्रम इन्द्रियोंके क्रमकरिही कहा गया है

अत्र॥आह। यत्॥तावत्॥मनोऽवस्थानात्॥इन्द्रियं॥ =यहां पूछता है कि जो मन तो (=तावत्) अनवस्थित होनेसे इन्द्रिय

न॥भवति। =नहीं है अर्थात् मनके अवस्थान वा स्थिति नहीं है इससे इन्द्रिय नहीं है

इतिप्रत्याख्यातं॥तद्॥किम्॥उपयोगस्य॥उपकारी॥=ऐसे(मनके इन्द्रियपना) निषेध्या है। क्या (वह मन) उपयोगका उपकारी है

उत॥न॥इति॥तद्॥अपि॥उपकारी॥एव॥तेन॥विना॥ =वानहीं।(जोकहोकि)तबभी(=तद्अपि)(वहमन)उपकारीही हैक्योंकितिस(मन)विना

इन्द्रियाणां॥विषयेषु॥स्वप्रयोजनवृत्ति–अभावात्॥ =इन्द्रियोंके विषयोंमें अपने अपने प्रयोजनरूप प्रवृत्तिका अभाव है

किम्॥अस्य॥एषाम्॥सहकारित्वमात्रम्॥ =क्या इन(इन्द्रियों)के इस(मन)का सहकारिपन मात्र

एव॥प्रयोजनम्॥उत॥अन्यत्॥अपि॥अतः॥आह। =ही प्रयोजन है, अथवा और भी (कुछ प्रयोजन) है॥ इसलिये कहते हैं भावार्थ स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके समान मनका कोई निश्चित स्थाननहीं इसलियेवह इंद्रिय नहीं कहा जासकता इसरूपसे ऊपरके लेखमें मनके इन्द्रियपनेका निषेध किया गया है

एकं प्रथममित्यर्थः। किं तत्। स्पर्शनम्। तत्केषाम्। पृथिव्यादीनां वनस्पत्यन्तानां वेदितव्यम् ॥ तस्योत्पत्तिकारणमुच्यते ॥ वीर्यान्तरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति शेषेन्द्रियसर्वघातिस्पर्धकोदये च शरीरनामलाभावष्टम्भे एकेन्द्रियजातिनामोदयवशवर्तितायां च सत्यां स्पर्शनमेकमिन्द्रियमाविर्भवति ॥ इतरेषामिन्द्रियाणां स्वामित्वप्रदर्शनार्थमाह—

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥ २३ ॥

वृत्त्यनुवादः—एकम्[१/१]॥प्रथमम्[१/१]॥इति*अर्थः[१/१]॥किम्[१/१]॥तत्[१/१]॥=(सूत्रमें)एक शब्दका) पहिला,प्रथम ऐसा अभिप्राय है। वह(पहिला) क्या है ?
स्पर्शनम्[१/१]॥तत्[१/१]॥केषाम्[६/३]। पृथिवी—आदीनाम्[६/३]। =स्पर्शन अर्थात् त्वचा(इन्द्रिय)है। वह(स्पर्शन इन्द्रिय)किनके है। पृथिवी आदिक
वनस्पति—अन्तानाम्[६/३]।वेदितव्यम्[१/१]॥तस्य[६/१]॥ उत्पत्ति- =वनस्पति पर्यंतनिकैं जानना चाहिये। तिस (स्पर्शन इन्द्रिय) का उत्पत्तिका
कारणम्[१/१]॥उच्यते।वीर्यान्तराय—स्पर्शनेन्द्रिय— =कारण कहाजाता है। वीर्यान्तराय और स्पर्शन इन्द्रिय
आवरणक्षयोपशमे[७/१]। सति[७/१]।च* शेष— =आवरणनामा(ज्ञानावरण)कर्मके क्षयोपशम होनेपर और रसना आदिअवशेष
इन्द्रिय-सर्वघातिस्पर्धक—(१)उदये[७/१]। =इन्द्रिय संबंधी(ज्ञानावरणकर्मका)सर्वघाति स्पर्द्धकोंका उदय (होने) पर
शरीर(२)नामलाभ—अवष्टम्भे[७/१]।च* =शरीर नामा नामकर्मके उदयके लाभका अवलम्बन(होने) पर और(=च)
एकेन्द्रियजातिनाम—उदय-वशवर्तितायाम्[७/१]॥ =एकेन्द्रिय जाति नामक नामकर्मके उदयके वशवर्तिपना वा वशीभूतपना
सत्याम्[७/१]॥स्पर्शनम्[१/१]॥एकम्[१/१]॥इन्द्रियम्[१/१]॥आविर्भवति। =होनेपर(=सत्याम्) (जीवकें) एक स्पर्शन इंद्रिय प्रगट होती है ॥
इतरेषाम्[६/३]॥इन्द्रियाणाम्[६/३]॥स्वामित्व-प्रदर्शन-अर्थम्[१/१]॥आह=अन्य इन्द्रियोंकें स्वामीपना दिखावनेके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्[३]-कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि।('स्पर्शनइन्द्रिय'कीअनुवृत्ति १९, १९सूत्रोंसेहै)

सूत्रार्थः—कृमि—पिपीलिका—भ्रमर—मनुष्यादीनाम्[६/३]। =लट,गिड़ार(=कृमि)आदिककें,चिउटीआदिककें,भौंराआदिककें,मनुष्य आदिकोंकें

(१) "उदये" शब्दके आगे ऐसा जान पड़ता है कि 'सति' वाक्यशेष है क्योंकि इससे 'वीर्यान्तराय—स्पर्शनेन्द्रिय—आवरणक्षयोपशमसति" वाक्यका मिलानकरो ॥ (२) 'शरीरनामलाभअवष्टम्भे"वाक्यके स्थानमें राजवार्तिक में'शरीरांगोपांगनामोपष्टम्भे' पाठ है इससेप०पन्नालालजीने अर शरीर अंगोपांग नामा नामकर्मका लाभकी प्राप्तिनेहोता सता ऐसाअनुवाद किया है। सस्थाके अनुवादकोंने"शरीर और अंगोपांगनामकर्मके लाभ रहनेपर" ऐसा अनुवाद किया है ॥ (३) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक सा है ॥

ऽनिन्द्रियालम्बनज्ञानप्रवृत्तेः॥ अथवा श्रुतज्ञानं श्रुतं तदनिन्द्रियस्यार्थः प्रयोजनमिति यावत्। स्वातन्त्र्यसाध्यमिदं प्रयोजनमनिन्द्रियस्य ॥ उक्तानामिन्द्रियाणां प्रतिनियतविषयाणां स्वामित्वनिर्देशे कर्तव्ये यत्प्रथमं गृहीतं स्पर्शनं तस्य तावत्स्वामित्वावधारणार्थमाह—

॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥

अनिन्द्रिय-आलम्बन-ज्ञान-प्रवृत्तेः६। =मनके आलम्बन स्वरूप ज्ञानको प्रवृत्ति है भावार्थ ऐसा है कि कर्ण इन्द्रियसे श्रवणमात्र किया सो तो मतिज्ञान है परंतु तिस पूर्वक पदार्थका विचार सो श्रुतज्ञान है

अथवा श्रुतज्ञानम्१।।।श्रुतम्१।।।तद्१।।।यावत्* =अथवा श्रुतज्ञान श्रुत है वह(श्रुतज्ञान) निश्चय(=यावत्) मनका अर्थ

अनिन्द्रियस्य६।।।अर्थः१।प्रयोजनम्१।।।इति*इदम्१।।। =वा प्रयोजन है यह मनका (=अनिन्द्रियस्य) प्रयोजन स्वाधीन ही साध्यरूप है

अनिन्द्रियस्य६।।।प्रयोजनम्१।।।स्वातन्त्र्यसाध्यम्१।।। =अर्थात् यह मनका प्रयोजन किसीभी अन्य इन्द्रियके आधीन नहीं है स्वतंत्र है।

उक्तानाम्६।।।इन्द्रियाणाम्६।।।प्रतिनियतविषयाणाम्६।=कथित इन्द्रियोंके नियमित (अर्थात् न्यारे न्यारे) विषयोंका

स्वामित्व-निर्देशे७। कर्तव्ये७। यत्१।।।प्रथमम्१।।। =स्वामीपना वा अधिपतिपना निर्देश करनेमें जो पहिले

गृहीतम्१।।।स्पर्शनम्१।।।तस्य६।।। तावत्* =ग्रहणकिया स्पर्शन इन्द्रिय तिस (स्पर्शन इन्द्रिय) का प्रथम (=तावत्)

स्वामित्व-अवधारण-अर्थम्१।।। आह। =स्वामीपना-अधिपतिपनाके नियमके अर्थ कहते हैं कि

वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥ =वनस्पत्यन्तानामेकम् (इन्द्रिय भवति)

सूत्रार्थः-वनस्पति-अन्तानाम् ६। =(तेरहवां सूत्रमें) वनस्पति है अन्त में जिन (जीवों)के उनके, अर्थात् =पृथिवी कायिक,जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, और वनस्पतिकायिको के

एकम् १।।।इन्द्रियम् १।।। भवति। =पहिली(स्पर्शन)इन्द्रिय है। ये पांच स्थावर जीव हैं एकमात्र स्पर्शन इन्द्रियके धारक

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में इस सूत्रका पाठ 'वाय्वन्तानामेकम्'= वायु अन्तानाम्-एकम् ॥ २३ ॥ सभाष्य०का १३ वां १४ वां सूत्र 'पृथिव्यब्वनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥ तेजो वायु द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः' ॥ १४ ॥ तेरहवें चौदहवें सूत्रको २३ वां सूत्रके साथ मिलाने से २३ वां सूत्रका अर्थ यह होता है कि वायु है अन्तमें जिनके (अर्थात् पृथिवीकायिक-अप् वा जलकायिक-वनस्पतिकायिक-तेजोकायिक वा अग्निकायिक-वायुकायिकके) प्रथम स्पर्शन इन्द्रिय है। ऊपरके अर्थ से प्रगट है कि दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रके पाठ भेद होनेपर भी अर्थ एक है ॥ सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर ज्ञातहोता है कि श्वेताम्बर आम्नायमें 'पृथिवीकायिक-अप्कायिक-वनस्पतिकायिक इनतीनको थावर मानकर और अग्निकायिक (=तेजोकायिक) वायुकायिक इन दोको त्रस मानकर पांचोंके स्पर्शन इन्द्रिय मानी है। हमारे यहां पांचोंको थावर मानकर स्पर्शन इन्द्रिय मानी है॥

भ्रमरादीनां स्पर्शनरसनघ्राणानि चक्षुरधिकानि । मनुष्यादीनां तान्येव श्रोत्राधिकानीति यथासंख्येनाभिसम्बन्धो व्याख्यातः ॥ तेषां निष्पत्तिः स्पर्शनोत्पत्त्या व्याख्याता उत्तरोत्तर-सर्वघातिस्पर्धकोदयेन ॥ एवमेतेषु संसारिषु द्विभेदेषु

भ्रमर–आदीनाम् ६/३। चक्षुः अधिकानि १/३।। स्पर्शन–रसन–घ्राणानि १/३।। =भौंरा आदिकोंके नेत्रकरि अधिक त्वचा–जीभ और नासिका हैं अर्थात् स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षुः हैं।

मनुष्यादीनाम् ६/३। श्रोत्र–अधिकानि १/३।। तानि १/३।। एव*इति* यथासंख्येन ३/१।। अभिसम्बन्धः १/१। व्याख्यातः १/१। =वे ही (स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षु) हैं। मनुष्यादिकोंके श्रोत्र करि अधिक हैं। ऐसे क्रमानुसार संबन्ध वर्णित हुआ

तेषाम् ६/३।। निष्पत्तिः १/१।। स्पर्शन–उत्पत्त्या ३/१।। व्याख्याता १/१।। =तिन (रसनादिक इन्द्रियों) की उत्पत्ति स्पर्शन इन्द्रियकी उत्पत्तिके सदृश =(कर्मोंके निमित्तसे) कही गई है। (स्पर्शन, इन्द्रियसे) आगे आगे

उत्तरोत्तर— (जिन जीवोंकें जो जो इन्द्रिय नहीं हैं तिनजीवोंकैं उन उन इन्द्रिया वरणकर्मके)

सर्वघातिस्पर्द्धक–उदयेन ३/१। न* =सर्वघाति स्पर्द्धकोंके उदय होनेपर (विवक्षित इन्द्रिय) नहीं हैं अर्थात् रसना–घ्राण–चक्षुः—श्रोत्र इन्द्रियों की उत्पत्ति स्पर्शन इन्द्रियके समान है और

"तहां आगै आगै जे इन्द्रिय जिनकै नाहीं, तिनकै तिनि इन्द्रियावरण कर्मका सर्वघाति स्पर्द्धकनिका उदय जानि लैना" वच०२६५

( ) वीर्यांतराय और रसनेन्द्रिया वरण कर्मका क्षयोपशम, घ्राणादि इन्द्रिय संबंधी सर्वघातिया स्पर्द्धकोंका उदय शरीर और अंगोपांग नामक नामकर्मका लाभ रहनेपर एवं द्वींद्रिय जाति नामकर्मके उदय रहनेपर रसना इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है ॥

( ) वीर्यांतराय और घ्राणेन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम चक्षुआदि इन्द्रिय संबंधी सर्वघातिया स्पर्द्धकोंका उदय, शरीर और अंगोपांग नामा नामकर्मका लाभ रहने पर एवं त्रींद्रिय जाति नामकर्मके उदय रहने पर घ्राण इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है ॥

( ) वीर्यांतराय और चक्षुः इन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम श्रोत्रेन्द्रिय संबंधी सर्वघातिया स्पर्द्धकोंका उदय, शरीर और अंगोपांग नामक नामकर्मका लाभ रहनेपर एवं चतुरिंद्रिय जाति नामक नामकर्मके उदय रहनेपर चक्षुःइन्द्रियकी उत्पत्ति होती है

( ) वीर्यांतराय और श्रोत्रेंद्रियावरण कर्मका क्षयोपशम शरीर और अंगोपांग नामक नामकर्मका लाभ रहनेपर और पचेंद्रिय जाति नामक नामकर्मके उदय रहने पर श्रोत्र इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है ॥

एवम्*एतेषु ७/३। संसारिषु ७/३। द्वि–भेदेषु ७/३ =इस प्रकार ये संसारी जीव दो भेद (संसारिण त्रसस्थावराः) में

एकैकमिति वीप्सायां द्वित्वम् । एकैकेन वृद्धानि एकैकवृद्धानि ॥ कृमिमादिं कृत्वा, स्पर्शनाधिकारात् स्पर्शनमादिं कृत्वा एकैकवृद्धानीत्यभिसम्बन्धः क्रियते ॥ आदिशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते । कृम्यादीनां स्पर्शनं रसनाधिकम् । पिपीलिकादीनां स्पर्शनरसने घ्राणाधिके ।

एक-एकम् १।।। वृद्धानि १।।। =(स्पर्शन इन्द्रिय पश्चात्) एक एक(इन्द्रिय)बढ़ती है अर्थात् लट इत्यादिकोंके स्पर्शन और रसना दो इन्द्रिय हैं । चिउटी इत्यादिकोंके स्पर्शन,रसन, घ्राण ये तीन इन्द्रियें हैं भौंरा,मक्खिका,टीडी,इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः ये चार इन्द्रिये हैं और, मनुष्य,मत्स्य गौ, सर्प इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र ये पांचों ही इन्द्रियां हैं

इत्यनुवादः—एकैकम्१।।। इति*वीप्सायां१।।द्वित्वम्१।।।=एक-एक ऐसा वारवारके अर्थमें (=वीप्सायाम्) दो वार (सूत्रमें) है

एक-एकेन३।।।वृद्धानि१।।। =एकएक(क्रमानुसार दो इन्द्रियसे पांच इन्द्रियतक)बढ़तीहै वा अधिक होती जातीहै

एकैकवृद्धानि१।।। स्पर्शन-अधिकारात्५।। =सो"एकैकवृद्धानि"है।(बाईसवांसूत्रमें) स्पर्शनइन्द्रियका प्रकरणहोनेसे वा विषयहोनेसे

कृमिम्२।आदिम्२।कृत्वा÷स्पर्शनम्२।।।आदिम्२।।।कृत्वा=(इससूत्रमें) कृमिको आदिकर और (इन्द्रियनिमें)स्पर्शन को आदिकर (क्रमसे)

एक-एक-वृद्धानि१।।।इति*अभिसम्बन्धः१।क्रियते। =एक एक (इन्द्रिय) बढ़ती है। इसप्रकार सम्बन्ध (इस सूत्रमें) किया है

आदिशब्दः१। प्रत्येकम्*परिसमाप्यते। =आदिशब्द(कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्य)प्रत्येकको लगाया गया है वा जोड़ागयाहै

इस समस्त उपर्युक्तका सरांश यह है'कि वनस्पत्यन्तानामेकम्'सूत्रसे स्पर्शन(=एकम्)कीअनुवृत्ति इस सूत्रमें लेकर इन्द्रियोंकी अपेक्षासे स्पर्शन इन्द्रियको प्रथम ग्रहणकरि पश्चात्'स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि' इस सूत्रसे क्रमानुसार एक एक इन्द्रियकी वृद्धि रसना से श्रोत्र पर्यंत प्रत्येक कृमिआदिकके, प्रत्येक पिपिलिका आदिकके, प्रत्येक भ्रमर आदिकके और प्रत्येक मनुष्य आदिकके यथासंख्य होतीजाती है जैसाकि वृत्तिमें निम्न लिखित उदाहरणों से प्रगट है ॥

कृमिआदीनाम्६।स्पर्शनम्१।।।रसना(रसन)अधिकम्१।।।=कृमि आदिकें रसनाकरि अधिक स्पर्शन इन्द्रियहै।अर्थात्कृमिआदिकें स्पर्शन-रसन है

पिपीलिका-आदीनाम् घ्राण-अधिके१।।।स्पर्शन-रसने१।।।=चिउटीआदिकोंकेंनासिकाकरि,अधिकत्वचा,रसनाहै।अर्थात्त्वचा,रसन,औरघ्राणहैं

संज्ञा नामेत्युच्यते । तद्वन्तः सञ्ज्ञिन इति सर्वेषामतिप्रसङ्गः ॥ सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा ज्ञानमिति चेत् सर्वेषां प्राणिनां ज्ञानात्मकत्वादतिप्रसङ्गः ॥ आहारादिविषयाभिलाषः सञ्ज्ञेति चेत्तुल्यम् तस्मात्समनस्का इत्युच्यते ॥ एवं च कृत्वा गर्भाण्डजमूर्च्छितसुषुप्त्याद्यवस्थासु

सञ्ज्ञा॥नाम॥इति*उच्यते। तद्वन्तः॥सञ्ज्ञिनः॥ इति*सर्वेषाम्॥ अतिप्रसगः॥ =(जैसे) संज्ञा नाम है ऐसा कहागया है। उस (नाम) वाले संज्ञी हैं =ऐसे समस्त(जीवों)कै अति प्रसंगहुआ अर्थात् सञ्ज्ञाका अर्थ नाम है किसीका। नामरूप संज्ञा जिसकें हो सो संज्ञी ऐसे कहनेसे सर्वही प्राणी नाम सहित हैं अतःमनसहित प्राणी भी संज्ञीहुये और मनरहितभी संज्ञीहुये अतःअतिप्रसंगहुआ

संञ्ज्ञानम्॥संज्ञा॥ज्ञानम्॥इति* चेत्* सर्वेषाम्॥प्राणिनाम्॥ज्ञान–आत्मकत्वात्॥अतिप्रसङ्गः॥ =यदि(=चेत्)संज्ञान(=भलाज्ञान)संज्ञा ज्ञान हो तो =समस्तजीवोंकें ज्ञानस्वरूप होनेसे अतिप्रसंग (आता) है

आहार–आदिविषय–अभिलाषः॥सञ्ज्ञा॥ इति*चेत्* तुल्यम्॥ =यदि(=चेत्)आहार आदिक भोगोंकी(=विषय) कामना (=अभिलाष) संज्ञा है =(तौभी)तुल्यहै वा समान है अर्थात् तौभी वहीबात है भावार्थ तौभी अतिप्रसंग आता है क्योंकि भोगोंकी अभिलाषा तौ सैनी असैनी सबही जीवोंकें होती है॥तीनोंकाभावार्थ ऐसाहै कि(१)यदि सञ्ज्ञा शब्दका अर्थ रूढि'नाम'माना जायगा तौ वह सैनी असैनी समस्त प्राणियोंमें पाया जाता है क्योंकि नाम विना कोई भी प्राणी नहींहै। तौ असैनी जीवोंको भी संज्ञी कहना पड़ेगा(२) 'सञ्ज्ञानं संज्ञा' भलाज्ञानही संज्ञाहै तौ वह ज्ञानभी सैनी असैनी सब प्रकारके जीवोंमें विद्यमान है इसलिये असैनी जीवोंकोभी संज्ञी मानना पड़ैगा (३) यदि आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञी शब्दका अर्थ माना जाय तो ये चारो आहार–भय–मैथुन-परिग्रह संज्ञायें भी समस्त संसारी जीवोंकें विद्यमान हैं इसलिये संज्ञा शब्दका आहार आदि अर्थ मानने परभी असैनी जीवोंको व्यावृत्ति नहीं होसक्तो इसलिये असैनी जीवोंकी व्यावृत्तिके लिये सूत्रमें'समनस्का'पदका उल्लेख सार्थक है

तस्मात्*समनस्काः॥इति*उच्यते। एवम्* च* =तिससे (सूत्रमें) समनस्काःऐसा(पद) कहा गया है। और (=च) इस प्रकार

कृत्वा–गर्भ–अण्डज-मूर्च्छित-सुषुप्तिआदिअवस्थासु॥=(सूत्रमेंसमनस्काःविशेषणकाग्रहण)करकेगर्भ,अंडज,मूर्च्छित,शयन,आदिकदशाओंमे

(१)अतिप्रसग=प्रसंगको छोड़कर जिसका सबन्ध दूसरेकेसाथ रहै।लक्ष्यमेंजोलक्षणका सब रहोनाहै उसे प्रसगकहतेहजोइसके विपरीत वहअतिप्रसगहै॥

इन्द्रियभेदात्पंचविधेषु ये पञ्चेन्द्रियास्तद्भेदस्यानुक्तस्य प्रतिपादनार्थमाह—

॥ सञ्ज्ञिनःसमनस्काः ॥ २४ ॥

मनो व्याख्यातम् । सह तेन ये वर्तन्ते ते समनस्काः । सञ्ज्ञिन इत्युच्यन्ते । पारिशेष्यादितरे संसारिणः प्राणिनोऽसञ्ज्ञिन इति सिध्दम् ॥ ननु च सञ्ज्ञिन इत्यनेनैव गतार्थत्वात्समनस्का इति विशेषणमनर्थकम् । यतो मनोव्यापारो हिताहितप्राप्तिपरिहारपरीक्षा । सञ्ज्ञाऽपि सैवेति ॥ नैतद्युक्तम् । सञ्ज्ञाशब्दार्थव्यभिचारात् ।

इन्द्रिय-भेदात् पंचविधेषु ये पञ्चेन्द्रियाः =(और) इन्द्रिय भेदसे पांच भेदों (२२, २३ सूत्र) में हैं ॥ ये पंचेन्द्रियजीव

तद्-भेदस्य अनुक्तस्य प्रतिपादन-अर्थम् आह । =तिनके (=तद्) अकथित भेद के कहने के लिये उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ (दोनों आम्नायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहै)

सूत्रार्थः-संज्ञिनः समनस्काः =जो जीव मनकरि सहित हैं(=समनस्काः)वेसंज्ञी हैं,सैनी हैं अर्थात् जिन्हें अपने हित अहितका वा गुण दोषादिका विचार हो तथा शिक्षा क्रिया आलापके ग्रहण करनेरूप संज्ञा हो उनको संज्ञी पंचेन्द्रियं कहते हैं ॥

वृत्त्यनुवादः-मनः व्याख्यातम् सह तेन ये =मन (इसीअध्यायके११वांसूत्रमें) वर्णन किया गया है । तिस(मन) सहित, जो

वर्तन्ते । ते समनस्काः सञ्ज्ञिनः इति उच्यन्ते । =प्रवर्तते हैं वे समनस्क हैं । सैनी इसप्रकार कहेगये हैं

पारिशेष्यात् इतरे =इन(मनसहित सैनी जीवों) से अवशेष अर्थात् संज्ञी समनस्कको छोड़कर अन्यशेष

संसारिणः प्राणिनः असंज्ञिनः इति सिद्धम् ॥ =संसारीजीव असैनी हैं ऐसा सिद्धहुआ

ननु च सञ्ज्ञिनः इति अनेन एव गत-अर्थत्वात् =बहुरि प्रश्न संज्ञी (सैनी) इस (शब्द) द्वाराही (सूत्रमें) अर्थ प्राप्तहोने (केहेतु) से

समनस्काः इति विशेषणम् अनर्थकम् =‘समनस्काः’(संज्ञीका) ऐसा विशेषण निष्प्रयोजन है

यतः मनस्‌व्यापारः हितप्राप्तिपरीक्षा =क्योंकि(यतः) मनका व्यापार हितके प्राप्तिकी परीक्षा और

अहितपरिहार-परीक्षा संज्ञा अपि सः एव इति =अहितकेपरिहारकी परीक्षा(करना)हैसंज्ञाभी सोहीहैअर्थात्संगीकेमनःऔरबुद्धिअर्थ हैं

न एतद् युक्तम् संज्ञाशब्द-अर्थ-व्यभिचारात् =(उत्तर)यह ठीक नहीं है क्योंकि संज्ञा शब्दके अनेक अर्थ हानेसे दोष आता है।

विग्रहो देहः । विग्रहार्था गतिर्विग्रहगतिः ॥ अथवा विरुद्धो ग्रहो विग्रहः व्याघातः कर्मादाने ऽपि नोकर्मपुद्गलादाननिरोध इत्यर्थः। विग्रहेण गतिः विग्रहगतिः ॥ सर्वशरीरप्ररोहणबीजभूतं कार्मणं शरीरं कर्मेत्युच्यते । योगो वाङ्मानसकायवर्गणानिमित्त आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः। कर्मणा कृतो योगः कर्मयोगः। विग्रहगतौ भवतीत्यर्थः ॥ तेन कर्मादानं देशान्तरसंक्रमश्च भवति ॥ आह जीवपुद्गलानां गतिमास्कन्दतां

वृत्त्यनुवादः—विग्रहः१/१ देहः१/१ विग्रह—अर्था१/१ गतिः१/१ विग्रहगतिः१/१ अथवा*विरुद्धः१/१ ग्रहः १/१ विग्रहः१/१ व्याघातः१/१ कर्म-आदाने७/१ अपि*नोकर्म—पुद्गल—आदान-निरोधः१/१ इति*अर्थः१/१ विग्रहेण३/१ गतिः१/१ विग्रहगतिः१/१ सर्वशरीरप्ररोहणबीजभूतम्१/१ कार्मणम्१/१ शरीरम्१/१ कर्म१/१ इति*उच्यते । योगः१/१ वाङ्मानसकायवर्गणानिमित्तः१/१ आत्म—प्रदेश-परिस्पन्दः१/१

कर्मणा३/१ कृतः१/१ योगः१/१ कर्मयोगः१/१ विग्रहगतौ७/१ भवति । इति*अर्थः१/१ तेन३/१ कर्म—आदानम्१/१ देशान्तर—संक्रमः१/१ च* भवति ।

=विग्रहका अर्थ शरीर है । नवीन शरीरके लिये गमन(वह)
=विग्रहगति है अथवा विरुद्ध ग्रहण है सो विग्रह है अर्थात्
=व्याघात वा रोकना है । कर्मका आस्रव होनेपरभी नोकर्म पुद्गलके
=आस्रव वा ग्रहणकी रोक ऐसा आशय वा अभिप्राय है । विग्रहकरि गमन
=सो विग्रहगति है । समस्त शरीरोंका उत्पन्नकरने वाला बीजभूत
=कार्मण शरीर है सो (सूत्रमें) कर्म ऐसा कहागया है ॥ योग (वह है कि)
=वचन मन कायके पुद्गल वर्गणा है निमित्त जिसको (इनवर्गणाओंके द्वारा)
=ऐसै आत्माके प्रदेशोंका चलाचलहोना है अर्थात् कायवर्गणा भाषाऔरमनो वर्गणा आदिके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंके अंदर जो हलनचलन होना सो योग है ॥
=कार्मण शरीरसे क्रियायोग कर्मयोग है । नवीन शरीरके लिये गमनकरनेमें
=(कार्मण शरीर हीयोग)होता है ऐसा अभिप्राय है । तिस (योग) से कर्मका ग्रहण
=और देशांतरका जाना वा संक्रमण होता है अर्थात् आत्माके प्रदेशोंके भीतर हलनचलनरूप योग विग्रहगतिमें कार्मण शरीरकें द्वारा होता है उसीयोगके द्वारा विग्रहगतिमें आत्माकें कर्मोंका आदान तथा मनसे रहितभी उस आत्माकी नवीन शरीर धारण करनेके लिये गति ये दोनों कार्य होते हैं ॥

आह । जीव-पुद्गलानाम्६/३ गतिम्२/१ आस्कन्दताम्६/३ =(शिष्य) पूंछता है कि जीव पुद्गल गतिको प्राप्त-होनेवालोंके

हिताहितपरीक्षाभावेऽपि मनः सन्निधानात्सञ्ज्ञित्वमुपपन्नं भवति ॥ यदि हिताहितादिविषयपरिस्पन्दः प्राणिनां मनःप्रणिधानपूर्वकः अथाभिनवशरीरग्रहणं प्रत्यागूर्णस्य विशीर्णपूर्वमूर्तेर्निर्मनस्कस्य यत्कर्म, तत्कुत इत्युच्यते—

॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

हित–अहित–परीक्षा–अभावे॥ अपि॥ =(जीवोंकी) हित अहितकी परीक्षाके अभाव होनेपर भी
मनः–सन्निधानात्॥ सञ्ज्ञित्वम्॥ उपपन्नम्॥ भवति। =मनके सद्भावसे सैनीपन सिद्ध (=उपपन्न)होता है अर्थात्
सूत्रमें यदि समनस्क शब्द न लाया जाता केवल संज्ञी शब्दका ही उल्लेख होता और संज्ञी शब्दका अर्थ हित-अहितकी परीक्षा करनेवाला माना जायगा तो जो जीव गर्भ वा अंडेके भीतर हैं वा मूर्च्छित वा सोये हुये हैं वेभी यद्यपि मन उनकें विद्यमान हैं हित अहित की परीक्षासे शून्य हैं इसलिये वेभी संज्ञी न कहेजावेंगे इसलिये सूत्रमें समनस्क शब्दका उल्लेख सार्थक है ॥

यदि॥ हित–अहित–आदि–विषय–परिस्पन्दः॥ =(प्रश्न) जो हित अहित आदिक विषयोंकी रचना वा हिलन (=परिस्पन्दः)
प्राणिनाम्॥ मनः–प्रणिधान–पूर्वकः॥ अथ॥ =जीवोंके मनके प्रयत्न (=प्रणिधान) निमित्तक है तौ अव (=अथ)
अभिनव–शरीर–ग्रहणम्॥ प्रति॥ आगूर्णस्य॥ =नया शरीर ग्रहण(करने)को (=प्रति) उद्यमी
विशीर्णपूर्व–मूर्तेः॥ निर्मनस्कस्य॥ =और प्रथम शरीरके छूटजानेसे वा अभावहोजाने से(=विशीर्ण)मनरहित(आत्माके)
यत्॥ कर्म॥ तत्॥ कुतः॥ इति॥ उच्यते। =जोकर्म(काआस्रव)हैवह कहांसे(=कुतः)वा क्योंकर(=कुतः)हैऐसेप्रश्नपरकहागयाहैकि

विग्रहगतौ[1] कर्मयोगः[2] ॥ २५ ॥

सूत्रार्थः–विग्रह–गतौ॥ =नवीन शरीर (ग्रहण वा धारण करने) के लिये गमन करनेमें (=गतौ)
कर्मयोगः॥ =कार्मण(शरीर ही)योग है अर्थात् कार्मण शरीर द्वारा आत्माके प्रदेश सकंप होतेहैं।यहकार्मण शरीर समस्तकर्म ग्रहणाकरनेका वीजहैऔर विग्रहगतिसेअन्यत्रतौकाय,वाग्औरमनोयोगहोताहै॥

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक साहै ॥ (२)कर्मयोग=कार्मणि शरीरयोग

श्रेणेरानुपूर्व्येणानुश्रेणीति जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवतीत्यर्थः॥ अनधिकृतानां पुद्गलानां कथं ग्रहणमिति चेत्गतिग्रहणात्। यदि जीवानामेव गतिरिष्टा स्यात् गतिग्रहणमनर्थकमधिकारात्तत्सिद्धेः। उत्तरत्र जीवग्रहणाच्च पुद्गलसम्प्रत्ययः॥

श्रेणेः॥आनुपूर्व्येण॥अनुश्रेणि॥इति*जीवानाम्॥ =श्रेणीके अनुकूल सो अनुश्रेणि है। ऐसे जीवोंका

च*पुद्गलानाम्॥गतिः॥भवति।इति*अर्थः॥ =और पुद्गलोंका गमन(श्रेणिके अनुकूल) होता है ऐसा आशय है अर्थात् जीवोंकीमृत्युहोनेपर नवीनशरीर धारणकरनेकेलिये गमन,मुक्तजीवोंकाऊर्ध्वगमन, जीवोंका ऊर्ध्वलोकसे अधोलोकजाना, अधोलोकसे ऊर्ध्वलोकजाना, तिर्यग्लोकसे अधोलोकगमन वा ऊर्ध्वलोक गमन श्रेणीके अनुकूल होगा, पुद्गलके शुद्ध परमाणुका एक समयमें चौदह राजूगमन आकाशके श्रेणिके अनुकूलही होगा अन्य अवस्थाओंमें जीव और पुद्गलोंका गमन भजनीय है श्रेणिके अनुकूल भी गमन करसक्ते हैं। प्रतिकूल भी, कोई नियम नहीं है॥

अनधिकृतानाम्॥पुद्गलानाम्॥कथम्*ग्रहणम्॥ =प्रकरण रहित पुद्गलोंका(यहां) कैसे ग्रहण है॥

इति*चेत्*गतिग्रहणात्॥ =ऐसी शंकाहोनेपर (उत्तरमें कहते हैं किसूत्रमें) गतिके आदानसेजो

यदि*जीवानाम्॥एव*गतिः॥इष्टा॥स्यात्।गतिग्रहणम्॥अनर्थकम्॥ =गमन इच्छितहोता तौ(इससूत्रमें)'गतिः'शब्दका लाना निष्प्रयोजन होजाता

अधिकारात्॥ तत्॥ सिद्धेः॥ =क्योंकि (विग्रहगतौ कर्मयोगः सूत्रमें गमनकरनेके) प्रकरणसेउस('गतिः') कीसिद्धिहै (फिरइससूत्र'अनुश्रेणिःगतिः'मेंगतिशब्दनहीलाते यदिपुद्गलगमनका आशयनहोतातौ)

च*उत्तरत्र*जीवग्रहणात्॥ =और(=च)क्योंकिइससूत्रसे(=अत्र) अगलेसूत्र'अविग्रहा जीवस्य'मेंजीवकेग्रहणकरनेसे

पुद्गलसम्प्रत्ययः॥ =(इससूत्रमें)पुद्गलका ग्रहण(भी) प्रतीति वा प्रत्यय होताहै इससबका भावार्थयहहैकि किसीकेतर्क करनेपर कि यहां तौ जीवका प्रकरण वा विषय है पुद्गलका गमन 'अनुश्रेणिः गतिः' सूत्रमें कैसे आसकता है उसके उत्तरमें कहते हैं कि'विग्रहगतौ कर्मयोगः''सूत्रसे प्रगटहैकि यहांपर गतिका अधिकार है क्योंकि गतिका विषयहै और गति जीव तथा पुद्गल दोनोंके होती है इसी कारण इस''अनुश्रेणिःगतिः''में गतिःशब्द लाये हैं यदि केवल जीवकी गति सेही सूत्रका अभिप्राय होता हैतो यहसूत्र''अनुश्रेणिः''इतनाहीहोता क्योंकि गति शब्द'विग्रहगतौ कर्मयोगः' सूत्रमें विद्यमान है उसकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आजाती॥

देशान्तरसंक्रमः किमाकाशप्रदेशक्रमवृत्त्या भवति, उताविशेषेणेत्यत आह—

॥ अनुश्रेणिगतिः ॥ २६ ॥

लोकमध्यादारभ्य ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च आकाशप्रदेशानां क्रमसन्निविष्टानां पंक्तिः श्रेणिरित्युच्यते । अनुशब्दस्यानुपूर्व्येण वृत्तिः ।

देशान्तरसंक्रमः[१] किम्[१] आकाश-प्रदेश-क्रम-	=देशान्तर-गमन (गति) क्या आकाशके प्रदेशोंकेक्रम-
वृत्त्या[३] भवति	=वर्तनकरि होता है अर्थात् आकाशके प्रदेशोंके अनुसार श्रेणीबद्ध होता है
उत* अविशेषेण[३] इति* अतः* आह	=अथवा अविशेषकरि होता है इसलिये कहते हैं कि

[१]अनुश्रेणिगति.=(आकाशप्रदेशानाम्)अनुश्रेणिः (जीवानाम् पुद्गलानाम् च)गतिः(भवति)

सूत्रार्थः-आकाशप्रदेश-अनुश्रेणिः[१]	=आकाशके प्रदेशोंके श्रेणीरूप वा सीधी पंक्तिमें
जीवानाम्[६] च*	=(मृत्युहोनेपर नवीन शरीर धारण करनेके लिये) जीवोंका तथा
पुद्गलानाम्[६]	=(जब चौदहराजू शुद्ध परमाणू एक समयमें गमन करै तब ऐसे) पुद्गलोंका
गतिः[१] भवति	=गमन होता है ॥(आकाशप्रदेशानुश्रेणि जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवति)
वृत्त्यनुवादः-लोकमध्यात्[५] आरभ्य ÷ ऊर्ध्वम्* अधः* तिर्यक्* च*	=लोकके बीचसे लगाय ऊपर नीचे और तिर्यक् (इधर उधर)
आकाशप्रदेशानाम्[६] क्रमसन्निविष्टानाम्[६] पंक्तिः[१]॥	=आकाशके प्रदेशोंका अनुक्रमसे पंक्तिरूप अवस्थान.
श्रेणिः[१]॥ इति* उच्यते । अनुशब्दस्य[६] अनुपूर्वेण[३] वृत्तिः[१]॥	=ऐसी श्रेणी कहीगई है । अनुशब्दका अर्थ (=वृत्ति) यथा क्रमकरि है

(१) विग्रहका अर्थ शरीरहै । उस शरीरके लिये जो गमन कियाजाताहै वह विग्रहगति कही जाती है । जीव जिस समय दूसरा नवीन शरीर धारण करनेके लिये प्रवृत्त होता है उस समय पहिले शरीरका परित्याग करिही प्रवृत्तहोता है॥ तत्त्वार्थसार श्लोक९६। योगोंकी चंचलता हुयेविना शरीर संबधी कुछभी हीनाधिकता नहीं होनेपाती इसलिये विग्रहगतिमेंभी कोई योग होना चाहिये।विग्रहगतिमें कर्मादान अर्थात्कर्मबंधकाकार्य और नवीन शरीर धारणकरनेकाकार्य ये दोकार्य होतेहैंजोकि किसीयोगकीअपेक्षा रखतेहैं।दूसरा कोईयोग वहांहो नहीं सकता इसलिये उक्त दोनों कार्योंका साधक कार्मण योगहीहै ऐसा भगवान जिनेश्वरने कहा है कर्मोकेपिंडकानाम कार्मण शरीहै उसका अवलंबनलेकर आत्मा वहां उक्त दोनों कार्य करता है श्लोक ९७ ॥ (२) दोनों आम्नायोंमें इससूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ यहांश्रेणि से आकाशके प्रदेशोंकी पंक्ति लीगई है इससे इससूत्रमें "आकाशप्रदेशा" वाक्यका अध्याहार किया है ॥ जीवानाम् की अनुवृत्ति प्रथम सूत्रसे है । गतिः शब्द सूत्रमें आया है इससे पुद्गलानाम् का अध्याहार किया है जीवानाम् और पुद्गलानाम् को मिलानेके लिये च समुच्चायी उपसर्गका अध्याहार किया है ॥

इतरा गतिर्भजनीया ॥ पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यर्थः। स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गतिः ॥ कस्य?। जीवस्य॥ कीदृशस्य?। मुक्तस्य ॥ कथं गम्यते मुक्तस्येति?। उत्तरसूत्रे संसारिग्रहणादिह मुक्तस्येति विज्ञायते ॥ ननु च अनुश्रेणि गतिरित्यनेनैव श्रेण्यन्तरसंक्रमाभावो व्याख्यातः। नार्थोऽनेन।

इतरी॰॥गतिः॰॥भजनीया॰॥ =अन्य गमन नियम रहित है अर्थात् सीधागमन भी होता है वक्र भी होता है

पुनः*अपि*गति–विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॰॥आह।=फिरभी गमनके प्रभेद कथनके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्--अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ =अविग्रहा(गतिः) मुक्तजीवस्य (भवति)

सूत्रार्थः—अविग्रहा॰॥गतिः॰॥मुक्तजीवस्य॰॥भवति।=वक्रतारहित,मोड़ारहित गमन मुक्त आत्माका होता है अर्थात् मुक्त जीव एक समयमें सीधासात राजू गमन करता हुआ सिद्ध क्षेत्रमे चला जाता है इधर उधर मुड़ता नहीं है

वृत्त्यनुवादः-विग्रहः॰॥व्याघातः॰॥कौटिल्यम्॰॥इति*=विग्रह है सो व्याघात, वक्रता वा कुटिलता ऐसा

अर्थः॰॥सः॰॥यस्यां॰।न*विद्यते।असौ॰॥अविग्रहा॰॥=अर्थमें है। वह (विग्रह वा वक्रता)जिसमें विद्यमान नहीं है सो अविग्रह

गतिः॰॥कस्य॰। ? जीवस्य॰॥ =गमन है। (वह मोड़ारहित गति) किसकी है? ।(वह वक्रतारहित गति) चेतनकी है

कीदृशस्य॰॥मुक्तस्य॰॥ कथं*गम्यते।मुक्तस्य॰॥इति* =किस प्रकारके(जीव)की है। मोक्षजीवकी है। मुक्तजीवका नाम कैसे जानाजाय?

उत्तरसूत्रे॰॥संसारिन् ग्रहणात्॰॥ इह* =अग्रिम(२८वां)सूत्रमें संसारी शब्दके ग्रहणकरनेसे यहां (इस सूत्रमें)

मुक्तस्य॰॥इति*विज्ञायते। ननु*च*अनुश्रेणिः॰॥गतिः=मोक्षजीवका (ग्रहण) ऐसा जानाजाता है॥ अन्य प्रश्न'अनुश्रेणिगतिः'

इति*अनेन॰॥एव*श्रेणि–अन्तर-संक्रम-अभावः॰॥ =इस (सूत्र)करिही श्रेणीसे विरुद्धगमनका अभाव

व्याख्यातः॰॥न*अर्थः॰॥ अनेन॰॥ =वर्णित है(इसलिये) इस(सूत्र) से(=अनेन) प्रयोजन नहीं है अर्थात्

इस सत्ताईसवां सूत्रका बनाना निष्फल वा अभिप्राय रहित है क्योंकि

'अनुश्रेणिगतिः'इस छब्बीसवां सूत्रमेंही श्रेणीके अनुकूल मुक्तजीवका गमनसिद्ध है।

ननु चन्द्रादीनां ज्योतिष्काणां मेरुप्रदक्षिणाकाले विद्याधरादीनां च विश्रेणिगतिरपि दृश्यते तत्र किमुच्यते अनुश्रेणिगतिरिति? कालदेशनियमोऽत्र वेदितव्यः ॥ तत्रकालनियमस्तावज्जीवानां मरणकाले भावान्तरसंक्रमे मुक्तानां चोर्ध्वगमनकाले अनुश्रेण्येव गति॥देशनियमोऽपि ऊर्ध्वलोकादधोगतिः।अधोलोकादूर्ध्वगतिः। तिर्यग्लोकादधोगतिः।ऊर्ध्वा वा। तत्रानुश्रेण्येव ॥ पुद्गलानां च या लोकान्तप्रापिणी सा नियमादनुश्रेण्येव ।

और "अविग्रहा जीवस्य" सूत्रभी यदि इस छब्बीसवां सूत्रमें केवल जीवकी गतिसे अभिप्राय होताती 'अविग्रहाः' ऐसे होता जीवस्य शब्द न होता अतःइनतीनों सूत्रोंको मिलाकर पढ़ने और विचार करनेसे यह फल हुआकि 'विग्रहगतौ कर्मयोगः' में केवल जीवकीगतिहै 'अनुश्रेणिःगतिः' में गति शब्दलायागयाहैइससे जीव और पुद्गल दोनोंकीगतिलीगईहै पश्चात् 'जीवस्य' वाक्यका प्रयोग २७वां सूत्रमें होनेसे केवल शुद्ध अर्थात् मुक्तजीवकी ही गति वा गमनसे अभिप्राय है ॥

ननु*चन्द्रादीनाम्(६/३)ज्योतिष्काणाम्(६/३)मेरु-प्रदक्षिणा-कालेः(७/१)विद्याधरादीनाम्(६/३)च*विश्रेणि-गतिः(१/१)॥अपि*दृश्यते।तत्र*किम्(१/१)॥अनुश्रेणि-गतिः(१/१)।इति*उच्यते।कालदेशनियमः(१/१)अत्र*वेदितव्यः(१/१)
=प्रश्न(=ननु)शशि आदिक ज्योतिषी (देव) निका मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणाके =समयमें और (=च) विद्याधर आदिकोंका आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तिके विरुद्ध =गमन भी देखागया है वहां(अर्थात्२६वां सूत्रमें) क्योंकर श्रेणीके क्रमानुसार =गमन ऐसा कहागया है॥(उत्तर)यहां(इससूत्रमें)कालनियम तथा देशनियम जानो ॥

तत्र*कालनियमः(१/१)तावत्*जीवानाम्(६/३)मरणकाले(७/१)भवान्तर-संक्रमे(७/१)च*मुक्तानाम्(६/३) ऊर्ध्वगमनकाले(७/१)अनुश्रेणी(१/१)॥एव*गतिः(१/१)॥।देशनियमः(१/१) अपि*ऊर्ध्वलोकात्(५/१)अधोगतिः(१/१)॥अधोलोकात्(५/१)ऊर्ध्व-गतिः(१/१)॥तिर्यग्लोकात्(५/१) अधोगतिः(१/१)॥ऊर्ध्वा(१/१)॥ वा*तत्र*अनुश्रेणी(१/१)॥एव*च*पुद्गलानाम्(६/३)या(१/१)॥लोकअन्त-प्रापिणी(१/१)॥सा(१/१)॥नियमात्(५/१)अनुश्रेणी(१/१)॥एव*
=तहां कालनियम है कि समस्त (=तावत्) संसारी प्राणियोंका मृत्युसमयमें =अन्यभवको जानेपर और मुक्तजीवोंका ऊर्ध्वगतिकालमें =(आकाशके प्रदेशोंकी) पंक्तिरूपही गमन है। तत्र नियम भी है कि =ऊर्ध्वलोकसे अधोलोक गमन,अधोलोकसे ऊर्ध्वलोक =गमन(और)तिर्यग्लोकसे अधोलोक गमन अथवा ऊर्ध्व (गमन) =तहां श्रेणीके अनुसारही है तथा(=च)पुद्गलोंकी जो =लोकका अन्त प्राप्तकरनेवाली (शुद्धपरमाणु) है सो नियमसे श्रेणीके अनुकूल है अर्थात् जब पुद्गलकी शुद्ध परमाणु एक समयमें चौदह राजू गमन करती है तब वह आकाशके प्रदेशोंके पंक्ति रूपही सीधी गमन करती है अन्यथा श्रेणीरूप गमनका नियम नहीं है ॥

॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥ २८॥

विग्रहवती[1] [2] च[3] संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

=विग्रहवती(गतिः) अविग्रहा गतिः(=च) संसारिणः प्राक्–चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः–विग्रहवती॥गतिः॥अविग्रहा॥गतिः॥च* =मोड़ेरूपगति वा विग्रहसहित गमन और विग्रहरहित गमन भी (=च)
संसारिणः॥ प्राक्*चतुर्भ्यः॥ =संसारी जीवका चार समयसे पहिले २ होता है भावार्थ विग्रहगतिमें

सीधीगति, एक मोड़ावालीगति दो मोड़ावालीगति, तीन मोड़ावालीगति ऐसे ये चारगतियां होती हैं। आगममें क्रमसे इन गतियोंकी इषुगति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति, और गोमूत्रिका गति इसप्रकार चार संज्ञामानी हैं। चारोंगतियोंमें इषुगति मोड़ारहित है और शेष गतियां मोड़ासहित हैं॥ इन चारो गतियोंका स्पष्ट अर्थ ऐसे है कि जिस प्रकार अपने लक्ष्य स्थानतक बाणकी गति सीधी होती है उसी प्रकार संसारी और सिद्ध जीवोंकी जो मोड़ारहित सीधीगति होती है उसको इषुगति कहते हैं। इस इषुगति विषैं एक समय लगता है अर्थात् एकही समयमें शरीर छोड़ना और दूसरा शरीर ग्रहण करना ये सब कार्य होजाते हैं॥ इसलिये इषुगतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं होताहै।जिस प्रकार हाथसे तिरछी ओर फेंके हुये पदार्थकीगति एक मोड़ालेकर होती है। उसी प्रकार संसारी जीवकी जो गति एक मोड़ालेकर हो वह पाणिमुक्तागति कहलाती है और उसगतिमें दो समय लगते हैं। ( )जिस प्रकार लांगल हलमें दो जगह मोड़रहती है उसी प्रकार जिस गतिमें दो मोड़लेनेपड़े उसे लांगलिकागति कहते हैं। और उसके होनेमें तीन समय लगते हैं॥ ( ) तथा जिस प्रकार गौके मूत्रमें बहुत मोड़ेरहते हैं

(१) विग्रहवती=मोड़ेरूप, मोड़ेवाली, मोड़ेसहित, वक्रतासहित. विग्रहसहित कुटिलगति (२) दोनों आम्नायोंमें इससूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है
(३) सूत्रमें जो 'च' शब्द है वह उपपादक्षेत्रमें जानेके लिये संसारी जीवोंकी सीधी भी गति होती है और मोड़ेवाली कुटिलगति भी होती है इस प्रकार दोनों भांतिकी गतियोंके समुच्चयके लिये है अर्थात् संसारी जीवकी अविग्रहगति भी होती है और विग्रहगति भी होतीहै परन्तु मुक्तजीवकी केवल अविग्रहगति होती है और 'एक समया विग्रहा' सूत्रके अनुकूल इस अविग्रहगतिका काल एक समय है मुक्तजीवका भी और संसारी जीवकाभी। संसारीजीव अविग्रह गति में (ऋजुगति, सीधीगति, इषुगति में) एकही समयमें शरीर त्यागकर जन्म लेलेताहै और ऐसी अवस्था में अनाहारक नहीं होता आहारक बना रहता है॥ बहुतसे महाशयोंकी जैसा कि हमको अनुभव है यह धारणा है कि संसारीजीव जन्म लेनेमें अवश्यही एक वा दो वा तीन समय तक अनाहारक 'एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः' सूत्रके अनुकूल रहता ही है कोई संसारी जीव उनकी धारणाके अनुसार ऐसा नहीं है जो अनाहारक न होताहो विग्रहगतिमें आहारकही बना रहताहो, उनके इस भ्रमको दूरकरनेके लिये यह टिप्पणी विशेष रूप से पृष्ठ नं मेंलिखतेहैं॥

पूर्वसूत्रे विश्रेणिगतिरपि क्वचिदस्तीति ज्ञापनार्थमिदं वचनम् ॥ ननु तत्रैव देशकालनियम उक्त किं न? अतस्तत्सिद्धेः ॥ यद्यसङ्गस्यात्मनोऽप्रतिबन्धेन गतिरालोकान्तादवधृतकाला प्रतिज्ञायते, सदेहस्य पुनर्गतिः किं प्रतिबन्धिनी, उत मुक्तात्मवदित्यत आह—

पूर्व-सूत्रे॥॥ क्वचित्* विश्रेणि-गतिः॥॥अपि अस्ति इति ज्ञापनअर्थंइदम्॥॥वचनं=(उत्तर) पहिले(छव्वीसवां)सूत्रमें(अनुश्रेणिगतिः) है परंतु कहीं श्रेणीके विरुद्ध (जीवऔर पुद्गलोंका)गमन भी है। ऐसा सूचितकरनेके लिये यह सूत्र है

ननु*तत्र*एव*देशकालनियमः॥उक्तः॥ =प्रश्न वहां (अनुश्रेणिगतिःसूत्रमें) ही क्षेत्र तथा कालका नियम कहा गया है अर्थात्'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रमें काल और देशके नियमको ग्रहण कियाहै और उसकाल नियममें मुक्तजीवोंके ऊर्ध्व गमन करतेसमय श्रेणिके अनुकूल गति बतलाई है इसलिये मुक्तजीवोंकी मौड़ारहित गति'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रसे सिद्ध होनेपर पुनः 'अविग्रहाजीवस्य' इस सूत्रका निर्माण वा प्रतिपादन निरर्थक ही है ॥

किम् ॥॥ न* ? =(उत्तर)क्या ? (पिछले सूत्रमें देश,कालका नियम कहा कहागयाअर्थात्) नहीं (कहागया)

अतः*तत्-सिद्धेः॥ =इसलिये उस(देश,कालके नियम)की सिद्धिका (यहसूत्र)है अर्थात् आचार्य उत्तरमें कहते हैं कि काल और देशका नियम''अनुश्रेणिगतिः''सूत्रमें तो कहा नहीं गया किंतु' अविग्रहा जीवस्य ' इसी सूत्रके द्वारा वहांपर काल,देशके नियमकी सिद्धिहै॥, "किम् " निंदा वा तिरस्कारके अर्थमें आया जान पड़ता है

यदि*असङ्गस्य॥आत्मनः॥अप्रतिबन्धेन॥गतिः॥॥=यदिकर्म रहित(=असंगस्य)आत्माका बन्धकरि रहित गमन आ-लोकान्तात्॥ अवधृतकाला॥॥प्रतिज्ञायते। =लोकके अंत तक(=आ) एकसमयमात्र कालवानगति प्रतिज्ञारूप करिये है वा लोकके अंततक एकसमय मात्र कालकेनियम रूप विदित (=प्रतिज्ञायते) है तो

पुनः*सदेहस्य॥गतिः॥॥किम्॥॥ प्रतिबन्धिनी॥॥=फिर(=पुनः) शरीरसहित (आत्मा)का गमन क्या अटकाव सहित वा मौड़ासहित है उत*मुक्त-आत्मवत्*इति*अतः*आह। =वा (=उत) मुक्तआत्मा सदृश है इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

कालावधारणार्थं प्राक्चतुर्भ्य इत्युच्यते। प्रागितिवचनं मर्यादार्थं, चतुर्थात्समयात्प्राग्विग्रहवती गतिर्भवति न चतुर्थे इति ॥ कुत इति चेत्--सर्वोत्कृष्टविग्रहनिमित्तनिष्कुटक्षेत्रे उत्पित्सुः प्राणी निष्कुटक्षेत्रानुपूर्व्यनुश्रेण्यभावादिषुगत्यभावे निष्कुटक्षेत्रप्रापणनिमित्तां त्रिविग्रहां गतिमारभते नोर्ध्वाम्। तथाविधोपपादक्षेत्राभावात् ॥

इषुगति संसारी और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके होती है परंतु शेष गतियां केवल संसारी जीवोंके होती हैं ॥

वृत्त्यनुवादः-काल-अवधारण-अर्थं प्राक्-चतुर्भ्यः इति=कालके निश्चय करने के लिये चार (समय) से पहिले ऐसा (वाक्य सूत्रमें)
उच्यते। प्राक् इति वचनम् मर्यादा-अर्थम् =कहा गया है। प्राक् ऐसा वाक्य सीमा के लिये है
चतुर्थात् समयात् प्राक् विग्रहवती गतिः भवति। =चौथे समयसे पहिले विग्रह गति होती है
न चतुर्थे इति। कुतः इति चेत् =चौथे (समय) विषैं (विग्रह कहिये मोंड़ा) नहीं है। ऐसा क्योंकर होता है ?
सर्वोत्कृष्ट-विग्रह-निमित्त-निष्कुट-क्षेत्रे उत्पित्सुः =(उत्तर) सर्वोत्कृष्ट विग्रह है कारण जिसको ऐसे निष्कुट क्षेत्रमें उपजनेवाला
प्राणी निष्कुट-क्षेत्र-आनुपूर्वी-अनुश्रेणि-अभावात् =जीव निष्कुट क्षेत्र (=लोकका अग्रकोण) आनुपूर्वी सहित अनुश्रेणीके नहोनेसे
इषुगति-अभावे निष्कुटक्षेत्र-प्रापण-निमित्ताम् =बाणगति वा सीधीगतिके अभाव होने पर निष्कुट क्षेत्र में पहुंचनेके लिये
त्रि-विग्रहाम् गतिम् आरभते। न ऊर्ध्वाम् =तीन मोड़ेवाली गतिको प्रारम्भे है न कि अधिक (मोड़ेवाली गति) को (आरम्भे है)
तथाविध-उपपादक्षेत्र-अभावात् =क्योंकि इसप्रकारसे (=तथाविध) उपजनेका अन्यक्षेत्र विद्यमान नहीं है अर्थात् निष्कुट क्षेत्रके उपरांत कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें जीव तीन मोड़ेसे अधिकलेके उपजे

सं धी होती है उसी प्रकार संसारी और सिद्ध जीवोंकी जो मोड़ा रहित सीधी गति है होती है उसे इषुगति वा बाणगति कहते हैं इस इषुगतिमें एक समय लगता है अर्थात् एक ही समय में शरीर छोडना और दूसरा शरीर ग्रहण करना ये सब कार्य हो जाते हैं। इसीलिये इषु गतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं है आहारक ही रहता है उक्त चारों गतियों में पहिली इषुगति संसारी और मुक्त दोनो प्रकारके जीवोंके होती है परंतु अवशेष तीन गतियां केवल संसारी जीवोंके होती हैं ॥

( ) यही बात कि संसारी जीव और मुक्त जीव दोनों के अविग्रह गति होती है और अविग्रह गतिका एक समय है। अविग्रह गतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं रहता है श्लोकवार्तिकके पृष्ठ ३३३,३३४से,और सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके ३०वां सूत्रके इनवाक्योंसे["कर्मादानहि निरन्तर,कार्मणशरीर सद्भावे उपपाद क्षेत्रं प्रति ऋज्व्यां गतौ आहारकः। इतरेषु त्रिषु समयेषु अनाहारकः"=कर्म वर्गणाओंका ग्रहण लगातार ही है,कार्मण शरीरकी विद्यमानतामें उपजनेके क्षेत्रकी ओर मोड़ारहितगमन (=ऋजुगति) में जीव आहारक है अन्य तीन समयोंमें (जिनमें एक मोडा, दो मोड़ा वा तीन मोड़े लिये जाते हैं) जीव अनाहारक है] स्पष्ट है कि ऋजुगति वाला संसारी जीव विग्रहगति में भी आहारक है ॥

उसी प्रकार जिसगतिमें तीन मोड़ेलेनेपड़े वह गो मूत्रिकागति है, और उसके होनेमें चार समय लगते है। चारोंगतियोंमें पहिली

और सिद्धकरते हैं कि ऋजुगतिमें संसारी जीव आहारक बना रह सकता है॥ टोड़लमलजीकृत गोम्मटसार गाथा ६७० के नीचे निम्न लेख है॥ "आहारका काल उत्कृष्ट सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण है। सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागके जेते प्रदेश होंहि तितने समय प्रमाण आहारकका काल है। इहां प्रश्न जो मरण तौ आयु पूरी भएं पीछैं होइ ही होइ तहां अनाहार होइ इहां आहारका काल इतना कैसे कह्या ? ताका समाधान-जो मरण भए जिस जीवके वक्ररुप विग्रहगति न होइ सूधी एक समयरूप गति होइ ताकै अनाहारकपणा न होहै आहारकपणा ही रहैहै तातैं आहारकका पूर्वोक्त काल उत्कृष्टपनैकरि कह्या है। बहुरि आहारकका जघन्यकाल तीन समय घाटि सांसका अठारहवां भाग जानना जातैं क्षुद्रभव विषैं विग्रहगतिके समय घटाय इतना काल हो है बहुरि अनाहारकका काल कार्मण शरीर विषैं उत्कृष्ट तीन समय जघन्य एक समय जानना जातैं विग्रहगति विषैं इतने काल पर्यंतही नो कर्म वर्गणानिका ग्रहण न हो है॥टोड़लमलजी अनुवादित गोम्मटसार गाथा ६७०॥"

( )इस अट्ठाईसवांसूत्रमें "च शब्दःसमुच्चयार्थः। विग्रहवती चाविग्रहवती चेति" (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति इसी सूत्रके नीचे देखो) = चशब्द समुदय या समूहके लिये है।(संसारी जीवकीगति क्योंकि यह अट्ठाईसवां सूत्रकेवल संसारी जीवोंसे संबन्ध रखताहै)विग्रहसहित भी(=च)और विग्रहरहितभी(=च है॥

( )' तहां इषुगति तौ विग्रहरहितहै। ताकादृष्टांत जैसे इषु कहिये तीर चालै सो सूधा ठिकाणैं पहुचै तैसे इषुगतिहै॥ याका काल एक समय ही है सोसंसारीनिकैं भी होहै बहुरि मुक्तजीवकैं भी हो है। बहुरि पाणिमुक्ताविषैं एक मोड़ा होहै।याका काल दोय समयहै.,...जयचंद्रजीकृता वचनिकापृष्ठ२७८

( )"चशब्दःसमुच्चयार्थः-॥ २॥ चशब्द उपपाद क्षेत्रं प्रति ऋज्वी गतिरविग्रहा, कुटिला विग्रहवती" तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ९७॥ इस अट्ठाईसवां सूत्रमें चशब्द समुदय के लिये है अर्थात् चकार उपपाद क्षेत्र प्रति ऋज्वीगति कहिये अविग्रहागति और कुटिलागति कहिये विग्रहवतीगति जे हैं तिनके समुच्चयके लियेहै भावार्थ इस अट्ठाईसवा सूत्रमें जो केवल संसारी जीवोंके कथनमेंहैसर्वगति(विग्रहागति औरअविग्रहगति)काग्रहणके अर्थ"च"है॥

( )"आसां चतसृणां गतीनामार्षोक्ताःसंज्ञाः इषुगतिःपाणिमुक्ता = ये आर्षोक्त चारगतियोंके नाम हैं कि इषुगति, पाणिमुक्तागति, लांगलिका,गोमूत्रिका,च इति। तत्राविग्रहा प्राथमिकी, =लांगलिकागति,और गोमूत्रिकागति ऐसेहैं।तहांप्रथमकीइषुगति जोहैसोतौ अविग्रहागतिहै

शेषा विग्रहवत्यः अर्थात् मोड़ारहितगति इषु जो बाण तिसके समान सरलहैसीधीगति है ऋजुगतिहैऔर

इषुगतिरिवेषुगतिः (=इषुगतिःइव इषुगतिः) क उपमार्थः? =अवशेष तीन(पाणिमुक्तागति,लांगलिकागति,गोमूत्रिकागति)विग्रहवानहैमोड़ासहितहैं

यथेषोर्गतिरालक्ष्यदेशादृज्वी,तथासंसारिणांसिध्यतांचजीवानां =तिनमें इषुगतिके समान जो है सो इषुगतिहै। यहां उपमाअर्थ क्या है॥

ऋज्वीगतिरेकसमयिकी" तत्त्वार्थराजवार्तिकम् पृष्ठम् ९७ =जैसे बाणकीगति लक्ष्यस्थानपर्यंत सरल है तैसे संसारिनिकैं तथा सिद्धहुये जीवनिकैं =सरलगतिहै सो एक समयकीहै भावार्थ जिस प्रकार अपने लक्ष्यस्थानतक बाणकीगति

अनादिकर्मबन्धसन्ततौ मिथ्यादर्शनादिप्रत्ययवशात्कर्माण्यादानो विग्रहगतावप्याहारकः प्रसक्तस्ततो नियमार्थमिदमुच्यते—

॥एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः॥ ३० ॥

अनादिकर्मबन्धसन्ततौ७।१ मिथ्यादर्शनादि-प्रत्यय-	=अनादिकर्मबन्धकी संतानविषैं मिथ्यादर्शनादिकके कारण (=प्रत्यय)
वशात्५।१ कर्माणि२।३ आदानः१।१ विग्रहगतौ७।१ अपि*	=वशसे (यहजीव) कर्मोंको ग्रहण करता है। विग्रहगतिमें भी
आहारकः१।१ प्रसक्तः१।१ ततः* नियमार्थं१।१ इदम्१।१ उच्यते।	=आहारक(का)प्रसंग आता है तिस(हेतु)से नियमके अर्थ यह कहा जाता है कि
(१)एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः(२)	=जीवो विग्रहगतौ एकं द्वौ त्रीन् वा समयाननाहारकःभवति
सूत्रार्थः—जीवः१।१ विग्रहगतौ७।१ एकम्२।१	=जीव नवीन शरीर धारण करनेके लिये गमनकरनेमें एक समय
द्वौ२।२ त्रीन्२।३ वा* समयान्२।३ अनाहारकः१।१ भवति।	=दो समय अथवा तीन समयतक अनाहारक(=नोकर्मवर्गणाके ग्रहणरहित)है।

भावार्थ जो जीव सीधा जाय उपजै है आहारक है। यह जीव उसी समय शरीर त्याग करताहैऔर उसी समयमें ऋजुगति द्वारा जन्म लेलेताहैअनाहारक नहीं होता है आहारकही बना रहता है और जो एक मोड़ालेकर उपजता है सो एक समय अनाहारक है दूजेसमय आहारक है जो दोय मोड़ालेकर उपजता है सो दोय समय अनाहारक है तीजे समय आहार ग्रहण करता है और जो तीन मोड़ालेकर उत्पन्न होता है सो तीन समय तक अनाहारक है चौथे समय आहारक है अर्थात् चौथे समयमें शरीर प्राप्तिको ग्रहण करके आहारक होजाता है॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में" एकं द्वौ वानाहारकः" ऐसा पाठ इस सूत्रका है। हमारे यहां के पाठसे"त्रीन्" शब्द न्यून है। इस पाठके ही अनुकूल उनके यहां -एक वा दो समय तक जीव अनाहारक रहता है" ऐसा अर्थ किया है हमारे यहांके अनुसार 'एकसमय दोसमय वा तीनसमयतक जीव विग्रहगति में अनाहारक रहता है यही अर्थभेद है। जब दोनों सम्प्रदायका ' विग्रहवती च संसारिणःप्राक् चतुर्भ्यः" इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है तब श्वेताम्बरोंके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इससूत्रके पाठमें त्रीन् शब्द होना चाहिये नहीं तो'विग्रहवती च संसारिण प्राक् चतुर्भ्यः 'और इससूत्रका अर्थ आपसमें मेल नहीं खाता संभव है कि त्रीन् शब्द रहगया हो॥

(२) 'प्रश्न-एक दो तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है' यहां पर आहार क्रियाका अधिकरण काल है। जहां अधिकरण अर्थ होता है वहां पर सप्तमी विभक्ति होती है इसलिये 'एक द्वौ त्रीन्' यहांपर 'एकस्मिन् द्वयोः त्रिषु ' यह सप्तमी विभक्ति होनी चाहिये? (देखो सप्तम्यधिकरणेच २।३।३६ अष्टाध्यायी=अधिकरण अर्थमें सप्तमी विभक्ति होतीहै। आधारो अधिकरणम् ।१। ४। ४५। अधिकरणका अर्थ आधारहै॥(उत्तर)यहांपरकालाकृत

चशब्दः समुच्चयार्थः। विगूहवती चाविगूहवती चेति ॥ विगूहवत्या गतेः कालोऽवधृतः। अविगूहायाः कियान् काल इत्युच्यते—

॥एकसमयाऽविग्रहा॥२९॥

एकः समयो यस्याः सा एकसमया। न विद्यते विगूहो यस्याः सा अविगूहा ॥ गतिमतां हि जीवपुद्गलानामव्याघातेनैकसमयिकी गतिरालोकान्तादपीति ॥

चशब्दः १/१। समुच्चय-अर्थः १/१ =(इस सूत्रमें) चकार समुदय (=समुच्चय) के लिये है अर्थात् संसारी जीवकी(गति)

विग्रहवती १/१॥ च अविग्रहवती १/१॥ च इति =विग्रह सहित भी (=च) है विग्रह रहित भी इस प्रकार है

विग्रहवत्याः ६/१। गतेः ६/१। कालः १/१ अवधृतः १/१ =विग्रहवाले (जीव) निका गमनका काल निश्चय वा निर्णीत किया

अविग्रहायाः ६/१॥ =विग्रहराहेत(जीव) निका(अर्थात् उन संसारी जीवोंका जो विग्रहगतिमें ऋजुगति धारण करते हैंएक ही समयमें शरीर छोड़कर उसी समय में जन्म धारण करलेते हैंऔरविग्रहगतिमें भी अनाहारक नहीं होते आहारक ही वने रहतेहैंऔर मुक्तजीवोंकाजो सीधेमोक्षकोपधारतेह

कियान् १/१ कालः १/१ इति उच्यते T ॥ =क्या काल है इस प्रकार(प्रश्न होने पर)कहा जाता है कि

एकसमयाऽविगूहा(२) ॥ २९ ॥ =एक समयाऽविगूहा (गतिः भवति) ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—एकसमया१/१॥अविग्रहा१/१॥ गतिः१/१॥ भवतिT =एक समय है काल जिसका एसी मोड़ारहित गति,ऋजुगति वा इषुगति है अर्थात् मोड़ा रहित गति एक समय मात्र ही होती है। मोड़ा रहित गति लोक के अग्रभाग पर्यंत भी एक ही समय में निष्पन्न हो जाती है। गतिवान जीव और पुद्गल की

टीकार्थः—एकः१/१।समयः१/१।यस्याः६/१॥सा१/१॥एकसमया१/१॥न=एक है समय जिसका सो एक समया है। नहीं है

विद्यते T विग्रहः १/१ यस्याः६/१॥ सा १/१॥ अविग्रहा १/१॥ =विद्यामान वा वर्तमान विग्रह जिसके सो अविग्रह है

गतिमताम् ६/३।हि जीव–पुद्गलानाम् ६/३ अव्याघातेन ३/१=गतिवान (=गतिसहित) ही जीव और पुद्गलोंको विग्रह शून्य वा अविग्रहकरि

एकसमयिकी१/१॥गतिः१/१॥आ-लोकअन्तात्५/१॥अपि इति=एक समय मात्र गमन क्षेत्रकी अपेक्षा से लोक पर्यंत भी हैं

१ श्वेताम्बरआम्नायके'सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र'में"एक समयोऽविग्रहः"=विगूह रहित गति एक ही समयमें होती है। दोनों आम्नायोंमें एकअर्थहै

ऽभिनवमूर्त्यन्तरनिर्वृत्तिजन्मप्रकारप्रतिपादनार्थमाह—

॥ सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म ॥ ३१ ॥

त्रिषु लोकषूर्ध्वमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छनं सम्मूर्च्छनमवयवप्रकल्पनम्। स्त्रिया उदरे शुक्रशोणितयोर्गरणं

अभिनवमूर्ति-अन्तर-निर्वृत्ति-जन्म- =नवीन अन्य शरीरकी रचना(=निर्वृत्ति) को और जन्मके

प्रकार-प्रतिपादन-अर्थम् २।१।।आह T =भेद जनावनेके लिये वा कहनेके लिये कहते हैं कि

(१)सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म॥३१॥=सम्मूर्च्छनात्-गर्भात्-उपपादात्(२)-जन्म ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः-सम्मूर्च्छनात् ५।१।। =सम्मूर्च्छन(अर्थात् तीनलोकमें जहां तहां अवयव सहित शरीरके बनने) से

गर्भात् ५।१ =गर्भ (अर्थात् माताकेरज और पिताके वीर्यके संयोग वा संबन्ध) से

उपपादात् ५।१ =उपपाद (अर्थात् जिस स्थानमें आकार उत्पन्नहों वहां) से—उपपादशय्यासे अथवा उपपाद स्थानसे। (उपपाद=देवऔरनारिकियोंके उत्पन्न होनेके स्थान)

जन्म १।१।। =(जीवके) नवीन शरीरका धारण(=जन्म) है ॥ इस सूत्रका सारांश यह है कि सम्मूर्छनजन्म,गर्भजन्म,उपपादजन्म ये ही तीन भेद जन्मके हैं ॥

सूत्रकाअन्यपाठः--सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः-सम्मूर्च्छन-गर्भ-उपपादाः १।३जन्म१।१।। =सम्मूर्च्छन,गर्भ और उपपादशय्यारुप (जीवकेये) तीन जन्म हैं

वृत्त्यनुवादः-त्रिषु७।३लोकेषु७।३ऊर्ध्वम्*अधस्*तिर्यक्*च=तीनलोकमें ऊपर नीचे और (=च) तिर्यक्

देहस्य६।१।। समन्ततः*मूर्च्छनम्१।१।।सम्मूर्च्छनम् १।१।।=चारों ओर वा जहां तहां (=समन्ततः) शरीरका बनजाना (=मूर्च्छनं)सो सम्मूर्च्छन है

अवयव-प्रकल्पनम् १।१।। =(अर्थात् देहके)अवयवकी (सर्वत्र) रचना वा उत्पत्ति(प्रकल्प) है सो सम्मूर्च्छन है ॥

स्त्रियाः६।१।।उदरे७।१।।शुक्र-शोणितयोः६।२।।।गरणम्१।१।।=नारीके उदरमें वीर्य (=शुक्र) और लोहू (=शोणित) मिलना (=गरणं)

१ श्वेताम्बरस०के सभाष्य०में''उपपादा''वाक्यके स्थानमें'उपपाता'लाये हैं अर्थात् 'सम्मूर्च्छनगर्भोपपाता जन्म''ऐसा पाठ है अर्थदोनोंकाएकहै॥

(२) यहांपर जैसेकि' उपपादाः' बहुवचनमें हैं'उपपादेभ्यः पचमी बहुवचनमें यह शब्द क्योंनहीं है॥हमारे यहां पूर्वोक्त दोनो पाठ विद्यमान हैं ॥

अधिकारात्समयाभिसम्बन्धः। वाशब्दो विकल्पार्थः। विकल्पश्च यथेच्छातिसर्गः॥ एकं वा द्वौ वा त्रीन्वा समयाननाहारको भवतीत्यर्थः॥ त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्यपुद्गलग्रहणमाहारः। तदभावादनाहारकः॥ कर्मादानं हि निरन्तरं, कार्मणशरीरसद्भावे॥ उपपादक्षेत्रं प्रति ऋज्व्यां गतौ आहारकः। इतरेषु त्रिषु समयेषु अनाहारकः॥ एवं गच्छतो

इत्यनुवादः-अधिकारात्। समय-अभिसम्बन्धः। वाशब्दः। विकल्प-अर्थः। विकल्पः। च॰यथा-इच्छा-अतिसर्गः। एकम्। वा॰द्वौ। वा त्रीन्। वा समयान्। अनाहारकः। भवति। इति॰अर्थः। त्रयाणाम्॥ शरीराणाम्॥ षण्णाम्॥ पर्याप्तीनाम्॥ योग्य-पुद्गल-ग्रहणम्॥ आहारः। तद्-अभावात्। अनाहारकः। कर्म-आदानम्॥ हि॰निरन्तरम्। । कार्मणशरीरसद्भावे। उपपादक्षेत्रम्॥ प्रति॰ ऋज्व्याम्॥ गतौ॥ आहारकः। इतरेषु। त्रिषु। समयेषु। अनाहारकः। । एवम्॰ गच्छतः।

=प्रकरण(वश)से (इससूत्रमें) समयका संबन्ध है। (सूत्रमें) वा शब्द
=विकल्पके लिये है। और(=च) विकल्प है सो इच्छानुकूल (चलना) है
=(उक्त विकल्प है सोही) अतिसर्ग है (=जो चाहो सो करो)
=एकको अथवा दोको अथवा तीन समयको (जीव)
=अनाहारक होता है ऐसा आशय है। तीन (औदारिक-वैक्रियिक-आहारक)
=शरीर,छह(आहार-शरीर-इन्द्रियश्वासोच्छ्वास-भाषा-मन)पर्याप्तोंके
=योग्य पुद्गल(वर्गणाओं) का आदान सो आहार है उसके विद्यमान न होनेसे
=अनाहारक है। कर्मवर्गणाओंका ग्रहण लगातार ही है।
=कार्मणशरीरके रहनेपर उपजनेके क्षेत्रकी ओर
=मोड़ारहितगमन(=ऋजुगति)में(जीव)आहारक है। अन्य तीन
=समयोंमें(जीव) अर्थात् एक विग्रहागतिमें, दो विग्रहागतिमें,तीन विग्रहागतिमें
=(नोकर्मकी अपेक्षा) अनाहारक है। ऐसे (भवान्तरप्रति) गमन करतेहुये जीवको

अत्यन्त संयोगकी विवक्षा है अर्थात् एक समय दो समय तीन समयोंमें अखंडरूपसे अनाहारक रहता है किसी एक खंडमें नहीं यह यहां पर विवक्षा है तथा यह नियम है कि जहांपर कालकृत अत्यन्त संयोग रहता है वहांपर अधिकरण अर्थके विद्यमान होते संतेभी सप्तमी विभक्तिकी बाधक द्वितीया विभक्ति ही होती है इसलिये सूत्रमें 'एकं द्वौ त्रीन्' द्वितीया विभक्तियोंका प्रयोग ही ठीक है॥ द्वितीया विभक्तिका प्रमाण यह है कि अष्टाध्यायी२·३·५ कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे(द्वितीया)अत्यन्त संयोग गम्यमानहो तो काल और अध्ववाची(मार्गवाची) शब्दोंमें द्वितीया विभक्ति हो॥ मासमधीते(=मासम् अधीते)=अखंडरूपसे मासभर पढ़ता है। यहां मासेके स्थानमें मासम् द्वितीया विभक्ति लाये हैं। मासस्य द्विरधीते=मासमें दोवार पढ़ता है क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः=कोशके एक भागमें पर्वत है यहां दोनोंउदाहरणोंमें अत्यन्त संयोग नहीं है अतः द्वितीया विभक्ति नहीं है॥

॥ सचित्तशीतसंवृताःसेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥

[१]सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः-सचित्त-शीत-संवृताः॥ =सचित्त,शीत,संवृत(और सचित्त-शीत-संवृत्त इन एक एकके)

सा—इतराः॥ =प्रतिपक्षी,विपक्षी वा उलटे(जो अचित्त-उष्ण-विवृत) सहित (=सा)

च॰एकशः॰मिश्राः॥ =और(सचित्त-शीत-संवृत)एकएकके मिश्र (जैसेसचित्ताचित्त,शीतोष्ण,संवृतविवृत)सहित

तद्-योनयः॥ =उन(सम्मूर्च्छनादि जन्मों)की योनियें वा उत्पत्तिस्थान हैं(=योनयः) अर्थात्

(१) सचित्तयोनि जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जो चेतना सहित हो जैसे असाधारण शरीर वाले जीवोंके एकही शरीरमें बहुत जीव हैं तिससे परस्पर आश्रयसे सचित्त हैं

(२) अचित्त योनि-जीवका वह उत्पत्तिस्थानहैजहांपुद्गलस्कन्धवापुद्गलप्रचय अचित्त हों जैसेदेवनारिकीयोंके उपजनेकेस्थानअचित्त हैं

(३) सचित्ताचित्त-जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां चेतना और अचेतन पुद्गलके स्कन्धहों जैसे जो जीव गर्भसे जायमान हैं गर्भज हैं वे सचित्ताचित्तस्वरूप मिश्रयोनिके धारक हैं क्योंकि उनके उत्पत्तिके स्थानस्वरूप माताके उदरमें वीर्य, और रज(लोहू) अचित्त पदार्थ है उनका सम्बन्ध सचेतन माताके आत्माके साथ है ॥

(४) शीतयोनि-जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां शीत स्पर्शरूप पुद्गलहों जैसे किसी किसी देव और नारिकियोंके शीतरूप पुद्गलकेस्कन्धही उत्पत्तिकास्थान है (किसी किसी देव नारकियोंके उष्णरूपही पुद्गलके स्कन्ध उत्पत्तिका स्थान है) देवनारकियोंकेबहुतोंकेउपपादस्थान उष्णहोते हैंबहुतोंकेशीतरहते हैंअतःवेशीतयोनिवालेभीहोते हैंऔरउष्ण योनिवालेभीहोते हैं

(५) उष्णयोनि-जीवकावहउत्पत्तिस्थानहैजहांउष्णस्पर्शरूपपुद्गलहोंजैसेअग्निकायिकवात्रसकायिकोंकेउत्पत्तिस्थानउष्णरूप ही हैं

(६) शीतोष्णयोनि-जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां शीतोष्णके मिश्ररूप पुद्गलहों अर्थात् देव और नारकी और अग्निकाय जीवोंसे भिन्न जो जीव हैं उनमें बहुतसे शीत योनिवाले होते हैं बहुतसे उष्णयोनिवाले होते हैंऔर बहुतसे शीतोष्णस्वरूप मिश्रयोनिवाले होते हैं इसप्रकार उनमें शीत,उष्ण,और शीतोष्णतीनों प्रकारकी योनियोंका होना संभव है ॥

(१) हमारे यहां की बहुधा पुस्तकोंमें 'संवृता' पाठ है कहीं कहीं पर (संवृत्ता) पाठ है जहां हमारे यहां (संवृत्ता) पाठ है उसके अनुकूल दोनो आम्नायोंका पाठ एक है अर्थ भी एक है संवृत=ढका हुआ छिपाहुआ, । संवृता और संवृत्ता दोनों पाठ ठीक है ॥

मिश्रणं गर्भः । मात्रोपभुक्ताहारगरणाद्वा गर्भः । उपेत्युपपद्यतेऽस्मिन्निति उपपादः । देवनारकोत्पत्तिस्थानविशेषसञ्ज्ञा ॥ एते त्रयः संसारिणां जीवानां जन्मप्रकाराः शुभाशुभपरिणामनिमित्तकर्मभेदविपाककृताः ॥

अथाधिकृतस्यसंसारिविषयोपभोगोपलब्ध्याधिष्ठानप्रवणस्यजन्मनोयोनिविकल्पावक्तव्याइत्यतआह

मिश्रणम्॥ गर्भः॥ मातृ०मात्र-उपभुक्त-आहार-	=मिश्रित होना(=मिश्रणं) सोगर्भ है । अथवा मातासे खायेहुये (उपभुक्त) आहारके
गरणात्॥ गर्भः॥	=निगलनेसे होना सोगर्भहै अर्थात् माताके आहारको अपना आहार बनाया जाय
उपेत्य[1] उपपद्यते[2] अस्मिन्॥ इति०उपपादः॥	=जिसमें पहुंचता है(=उपैति)वा जिसमें उपजता है (=उपपद्यते) ऐसा उपपाद है अर्थात् जिसमें पहुंचकरि या जिसको प्राप्तहोकर उपजता है सो उपपाद है
देव-नारक-उत्पत्ति-स्थान-विशेष-सञ्ज्ञा ॥	=देव और नारकियोंके उपजनेके स्थानका(उपपाद यह) विशेष नाम है
एते त्रयः॥ संसारिणां॥ जीवानां॥ जन्म-प्रकाराः॥	=ये तीन भेद संसारी प्राणियोंके जन्मके हैं वा भवधारण करनेके हैं ।
शुभ-अशुभ-परिणाम-निमित्त-कर्मभेद-	=(येतीनों जन्म)अच्छे बुरे भावोंके कारणसे कर्मोंके भेदोंके
विपाककृताः॥	=उदयसे किये जाते हैं अर्थात् परिणामोंके कार्य कर्म बन्धके भेद हैं और कर्म बन्धोंके फल जन्म भेद हैं क्योंकि कारणके अनुकूलही लोकमें कार्य दीख पड़ताहै । शुभअशुभ जिसप्रकारका कर्म होता है उसीके अनुकूल जन्मोंकी उत्पत्ति होती है ।
अथ०अधिकृतस्य॥	=अब जिस(जन्मका)ऊपरसे अधिकार वा प्रकरण चलाआरहाहै और
संसारि-विषय—उपभोग—उपलब्धि—	=जो संसारीजीवोंको विषयभोगोंकी (संसारि-विषयोपभोग) प्राप्ति(=उपलब्धि) के
अधिष्ठान—प्रवणस्य॥ जन्मनः॥	=आधारभूत शरीरकी उत्पत्तिमें(=अधिष्ठान)कारण है वा प्रवीणहै (=प्रवणस्य) उसजन्मके
योनि-विकल्पाः॥ वक्तव्याः॥ इति०अतः०आह।	=योनियोंके भेद(=विकल्पाः)कहना चाहिये । इस लिये कहते हैं कि

(1) उपैति - उप उपसर्ग समीपके अर्थमें है एति में ए गुण इका है । इ अदादि द्वितीय गणका धातु परस्मैपद "जाना" के अर्थमेंहै अध्याय१पृष्ठ ५६ के अनुसार इ का गुण ए हो कर ति अन्य पुरुष एक वचन,परस्मैपद, वर्तमान कालको जोड़ो एति बना उप०एति=उपैति=समीप (=उप) जाता है=एति शब्दार्थ समीप जाताहै अर्थात् पहुंचता है ॥(2)उपपद्यते=उप-पद्-य-ते ॥ उप=आरम्भ(पद्मचन्द्र०कोशपृष्ठ७४) पद् दिवादि चतुर्थ गणका आत्मने पदी धातु जिसका अर्थ प्राप्ति होना—है । य विकरण है जो चतुर्थ गणकी धातुओं के पीछे औरए-से-ते इत्यादि प्रत्ययो के पहिले जोड़ा जाताहै और ते आत्मनेपद एक वचन अन्य पुरुष वर्तमान कालका प्रत्ययहै ॥ उपपद्का शब्दार्थ आरम्भता को (संसारमें) प्राप्त होता है ऐसा है अर्थात् उपजता है ॥

उभयात्मको मिश्रः। सचित्ताचित्तः शीतोष्णःसंवृतविवृत इति ॥ चशब्दः समुच्चयार्थ । मिश्राश्च योनयो भवन्तीति॥ इतरथा हि पूर्वोक्तानामेव विशेषणं स्यात् ॥ एकश इति वीप्सार्थः॥ तस्य ग्रहणं क्रममिश्रप्रतिपत्त्यर्थम्॥यथैवं विज्ञायेत। सचित्तश्च अचित्तश्च शीतश्च उष्णश्च संवृतश्च विवृतश्चेति।मैवं विज्ञायि सचितश्च शीतश्चेत्यादि। तद्ग्रहणं जन्मप्रकारप्रतिनिर्देशार्थम्।तेषां सम्मूर्च्छनादीनां जन्मनां योनय इति त एते नव योनयो वेदितव्याः॥योनिजन्मनोरविशेष इति चेत्

उभय-आत्मकः ११। मिश्रः ११। सचित्ताचित्तः ११। शीतोष्णः११
संवृतविवृतः११। इति*चशब्दः ११। समुच्चय-अर्थः ११।
मिश्राः १३। च* योनयः १३। भवन्ति T इति*इतरथा * हि*
पूर्व-उक्तानाम् ६३। एव*विशेषणम् ११॥ स्यात् T
एकशः*इति*वीप्सा-अर्थः ११तस्य ६१। ग्रहणम् ११॥
क्रम-मिश्र-
प्रतिपत्ति-अर्थम्११॥यथा*एवम्*विज्ञायेत T
सचित्तः११। च*अचित्तः११। च*शीतः११। च*उष्णः११। च*
संवृतः११। च*विवृत ११। च*इति*मा*एवम्*विज्ञायि T
सचितः११। च*शीतः११। च*इत्यादि११॥तद्-ग्रहणम्११॥
जन्म-प्रकार-प्रति-निर्देश-अर्थम्११॥ तेषाम् ६३।
सम्मूर्च्छनादीनाम् ६३। जन्मनाम् ६३॥ योनयः१३। इति*
ते १३। एते१३। नव १३। योनयः१३। वेदितव्याः१३।
योनि-जन्मनोः६२॥ अविशेषः११इति*चेत्*

(सचित्त–शीत–संवृत को यथासंख्य अचित्त–उष्ण–विवृतसे मिलाओ तो)
=दोनों रूप मिश्र हैं ॥ (वे) सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, और
=संवृतविवृत इस प्रकार(मिश्र)हैं । चकार समुच्चय केलिये है
=(अर्थात्) मिश्र भी (=च) योनियें होती हैं क्योंकि (=हि)अन्यथा होतो अर्थात्
(यदि च शब्द समुच्चय वा समाहारके लिये न हो तोऔर मिश्रयोनियेंनहोंतो)
=पहिले कहे हुये (सचित्त–शीत-संवृत) का ही (मिश्रशब्द) विशेषण हो जाय॥
=एकएक(=एकशः)ऐसा(शब्द)वारवारकेलियेहै। तिस(एकशःशब्द)काआदान
=क्रमसे(सचित्त-शीत-संवृतका यथासंख्य अचित्त-उष्ण-विवृतके साथ) मिश्रकी
=प्राप्ति वा प्रवृत्तिके लिये है । जैसे इसप्रकार जानो कि
=सचित्त और अचित्त और (=च) शीत और (=च)उष्ण
=और(=च)संवृत और(=च)विवृत ऐसे(इनकामिश्र)है। ऐसे मतिजानो कि
=सचित्त और शीत इत्यादिका(मिश्र) है । (इससूत्रमे)तद्(शब्द) का आदान
=जन्मके भेदोंके जनावनेके लिये है । तिन
=सम्मूर्च्छन आदिक जन्मकी(येनव)योनियें वा उत्पत्तिस्थान हैं
=ते इतनी नव योनियें जानना चाहिये
=योनि और जन्ममें भेदनहीं(=अविशेष) ऐसी शंकाहोनेपर (उत्तरमें कहते है कि)

आत्मनश्चैतन्यविशेषपरिणामश्चित्तम्। सह चित्तेन वर्तत इति सचित्तः॥शीत इति स्पर्शविशेषः। शुक्लादिवदुभयवचनत्वात्तद्युक्तं द्रव्यमप्याह॥ सम्यग्वृतः संवृतः। संवृत इति दुरुपलक्ष्यःप्रदेश उच्यते॥ सह इतरैर्वर्तन्त इति सेतराः। सप्रतिपक्षा इत्यर्थः॥के पुनरितरे?। अचित्तोष्णविवृताः॥

---

(७) संवृतयोनि–जीवका वह उत्पत्ति स्थान है जिसके पुद्गल आच्छादित वा ढके हों जैसे देव, नारकी और एकेन्द्रियजीव संवृत योनि वाले हैं–जिस स्थान पर इनकी उत्पत्ति होती है वह स्थान ढका हुआ रहताहै उघड़ा हुआ नहीं रहता है।

(८) विवृत वा निवृतियोनि } जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जिसके पुद्गलरूप स्कन्ध प्रगट दीखें—जैसे जो जीव दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय और चौ इन्द्रिय हैं वे विवृत योनि वाले हैं—उनकी उत्पत्ति का स्थान उघड़ाहुआ वा खुलाहुआ रहता है॥

(९) संवृतविवृतयोनि—जीवका वह उत्पत्ति स्थानहै जिसके पुद्गलके स्कंध कितने ही गूढ़ हों कितने ही उघड़े रूप हों जैसे जो जीव गर्भजहैंवे संवृतविवृतरूप मिश्रयोनि वाले हैं।उनकी उत्पत्तिका स्थान कुछ ढकाहुआ तो कुछ उघड़ा हुआ रहताहै॥

वृत्त्यनुवादः आत्मनः६।१ चैतन्य-विशेष-परिणामः१।१ चित्तं१।१	=आत्माका चैतन्यका विशेषरूप परिणाम सो चित्तहै
सह*चित्तेन ३।१ वर्तते । इति*सचित्तः१।१	=चित्तकरि सहित(=सह)होता है ऐसा सचित्त है
शीतः१।१ इति*स्पर्शविशेषः१।१ शुक्लादिवत्*उभय-	=शीत ऐसा स्पर्शका भेदहै। श्वेतादिक(वर्णकेभेद)सदृश दोनों(द्रव्यऔरगुण)का
वचनत्वात्५।१ तद्-युक्तम्२।१ द्रव्यम्२।१	=वाचक होनेसे उस(शीत)मिलित(=युक्त)द्रव्य (अर्थात् शीतलद्रव्य) को
अपि*आह ।	=भी(शीत)कहते हैं अर्थात् शीतगुणवचन और द्रव्यवचन दोनों हैं इसलिये शीत शीतलद्रव्यको भी कहते हैं॥
सम्यग्वृतः१।१ संवृतः१।१	=भले प्रकार घिराहुआ आच्छादित वा आवृत है सो संवृत है
दुर्-उपलक्ष्यः१।१ प्रदेशः१।१ इति*संवृतः१।१ उच्यते ।	=नहींदेख्याऔरनहींलख्यागयाहै जिसका(=दुरुपलक्ष्यः)प्रदेशऐसासंवृतकहाजाताहै
सह* इतरैः३।३ वर्तन्ते । इति* सेतराः १।३	=उलटा करि सहित प्रवर्तता है ऐसा सेतरा(शब्दका अर्थ) है
स-प्रतिपक्षा १।३ इति*अर्थः १।१ के१।३ पुनः*इतरे १।३ ?	=विपक्षी वा विरोधवालीपक्षि का है ऐसा अभिप्राय है। और इतर कोन हैं
अचित्त-उष्ण-विवृताः १।३	(=उत्तर)अचित्त और उष्ण और विवृत(यथासंख्य सचित्त-शीत-संवृत से उलटे)हैं

मिश्रयोनयश्च ॥ शीतोष्णयोनयो देवनारकाः तेषां हि उपपादस्थानानि कानिचिच्छीतानि, कानि चिदुष्णानीति ॥ उष्णयोनयस्तेजस्कायिकाः ॥ इतरे त्रिविकल्पयोनयः केचिच्छीतयोनयः केचिदुष्णयोनयः अपरे मिश्रयोनय इति ॥ देवनारकैकेन्द्रियाः संवृतयोनयः॥ विकलेन्द्रिया विवृतयोनयः ॥ गर्भजा मिश्रयोनयः ॥ तद्भेदाश्चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या आगमतो वेदितव्या ॥ उक्तं च ।

णिच्चिदरधादु सत्तय तरुदस वियलिंदिएसु छच्चेव।सुरणिरयतिरिय चउरो चोद्दस मणुए सदसहस्सा।

मिश्रयोनयः${}^{1}_{3}$।च*शीत–उष्ण–योनयः${}^{1}_{3}$।देवनारकाः${}^{1}_{3}$।=और(=च) सचित्ताचित्त योनिज हैं । देव और नारकी शीतोष्ण योनिज हैं

तेषाम्${}^{6}_{3}$।हि*उपपादस्थानानि${}^{1}_{3}$।।कानिचित्* =क्योंकि(=हि) तिन (देव–नारकिन) के उपजनेके ठिकाने कितने

शीतानि${}^{1}_{3}$।।कानिचित्*उष्णानि${}^{1}_{3}$।। इतितैजः कायिकाः${}^{1}_{3}$।=शीत हैं कितने उष्ण हैं । तैजसकायके जीव

उष्ण-योनयः${}^{1}_{3}$।इतरे${}^{1}_{3}$।त्रिविकल्प-योनयः${}^{1}_{3}$।केचित्* =उष्णयोनिवाले हैं । भिन्न प्राणी तीन प्रकारके योनिवाले हैं । केई

शीतयोनयः${}^{1}_{3}$।केचित्*उष्णयोनयः${}^{1}_{3}$।अपरे${}^{1}_{3}$। =शीत योनिज हैं । केई उष्ण योनिज हैं । अन्य

मिश्रयोनयः${}^{1}_{3}$। इति*देव–नारकएकेन्द्रियाः${}^{1}_{3}$। = मिश्र(शीतोष्ण) योनिवाले हैं । देव और नारकी और एकेन्द्रिय जीव

संवृतयोनयः${}^{1}_{3}$।विकल–इन्द्रियाः${}^{1}_{3}$। =संवृतयोनिवाले हैं । विकलइन्द्रिय जीव अर्थात् द्विइन्द्रियसे चौइन्द्रियतक

विवृतयोनयः${}^{1}_{3}$गर्भजाः${}^{1}_{3}$।मिश्रयोनयः${}^{1}_{3}$। =विवृत वा निवृत योनिज हैं । गर्भज मिश्रयोनिज हैं अर्थात् गर्भसे उत्पन्न हुये जीवोंकी संवृत विवृत योनि है भावार्थ योनिके केते प्रदेशगूढ़ हैं केतेप्रदेश उघड़े हैं

तद्भेदाः${}^{1}_{3}$।चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या ${}^{1}_{1}$॥ =तिन(नवयोनियों)के भेद चौरासीसो सहस्र गणना अर्थात् चौरासीलाख गिनती

आगमतः*वेदितव्याः${}^{1}_{1}$॥ उक्तम्${}^{1}_{1}$।।। च* =शास्त्रसे जानना चाहिये । कहाभी है

णिच्चिदरधादु(=नित्य–इतर- धातु) =नित्यनिगोद,इतरनिगोद,धातु(पृथिवीकायिक,अप्कायिक,अग्निकायिक,वायुकायिक)की

सत्त${}^{1}_{3}$। य*तरुदस${}^{1}_{3}$। च(=सप्त${}^{1}_{3}$। च तरुदश${}^{1}_{3}$। च) =सात सात और (=य=च) वनस्पतिकायिककी, दश और (=च)

वियलिंदिएसु${}^{7}_{3}$। छच्${}^{1}_{3}$। एव(विकलेन्द्रियेषु${}^{7}_{3}$। षट्${}^{1}_{3}$। एव)=विकलेन्द्रिय जीवविषैं छह ही अर्थात् द्वीन्द्रियमें दो,त्रीन्द्रियमें दो,चतुरिन्द्रियमें दो

सुर-णिरिय-तिरिय-चउरो${}^{1}_{3}$।(सुर-निरय-तिर्यक् चतस्रः${}^{1}_{3}$।।)=सुर–नारक और तिर्यंचोंकी चार चार(और)

चोद्दसमणुए सदसहस्सा(चतुर्दश${}^{1}_{3}$।मनुष्ये शतसहस्राणि)=चोदहलाख मनुष्यविषैं हैं(अर्थात्४२+१०+६+१२+१४ सब चौरासीलाख हैं)

न आधाराधेयभेदात्तद्भेदः ॥ न एते सचित्तादयो योनयः आधारा । आधेया जन्मप्रकाराः ॥ यतः सचित्तादियोन्यधिष्ठाने आत्मा सम्मूर्च्छनादिना जन्मना शरीराहारेन्द्रियादियोग्यान्पुद्गलानुपादत्ते ॥ देवनारका अचित्तयोनयः । तेषां हि योनिरुपपाददेशपुद्गलप्रचयोऽचित्तः ॥ गर्भजा मिश्रयोनयः । तेषां हि मातुरुदरे । शुक्रशोणितमचित्तं, तदात्मना चितवता मिश्रणान्मिश्रयोनिः॥सम्मूर्च्छनजास्त्रिविकल्पयोनयः । केचित्सचित्तयोनयः ।अन्ये अचित्तयोनयः।अपरे मिश्रयोनयः ॥ सचित्तयोनयःसाधारणशरीराः । कुतः । परस्पराश्रयत्वात् ॥इतरे अचित्तयोनयो-

---

न॰ आधार–आधेय–भेदात् तद्–भेदः ते एते सचित्त–आदयः योनयः आधाराः । आधेयाः जन्म–प्रकाराः यतः॰ सचित्त–आदि–योनि–अधिष्ठाने आत्मा सम्मूर्च्छन–आदिना जन्मना शरीर–आहार–इन्द्रिय–आदि योग्यान् पुद्गलान् उपादत्ते । देव–नारकाः अचित्त–योनयः तेषाम् हि॰ योनि–उपपाददेश–पुद्गल–प्रचयः अचित्तः गर्भजाः मिश्रयोनयः तेषाम् हि॰ मातुः उदरे शुक्र–शोणितम् अचित्तम् तद्–चितवता आत्मना मिश्रणात् मिश्रयोनिः सम्मूर्च्छनजाः त्रि–विकल्पयोनयः केचित्॰ सचित्त–योनयः अन्ये अचित्त–योनयः अपरे मिश्र–योनयः सचित्त–योनयः साधारणशरीराः कुतः॰ परस्पर–आश्रयत्वात् इतरे अचित्त–योनयः

=नहीं, (योनि और जन्ममें भेदहै)। आधार और आधेय के भेद से =उन(योनि और जन्म)में भेद है । वे इतनी(=एते)सचित्त आदिक (योनियें) =आधार वा आश्रय हैं । जन्मके भेद हैं वे आधेय वा आश्रितहैं। क्योंकि सचित्त =आदिक योनियोंके आधारविषैं चैतन्य (आत्मा) सम्मूर्च्छन आदिक =जन्मकरि शरीर आहार इन्द्रिय आदिक योग्य =पुद्गलोंको ग्रहण करता है । देव और नारिकी अचित्त योनिवाले हैं =क्योंकि तिन(देव-नारकियों)कीयोनि उपजनेकास्थान(=उपपाददेश)पुद्गलकास्कंध =अचित्तहै।गर्भसेउत्पन्नहुयेजीवमिश्र(अचित्ताचित्त)योनिवाले हैंक्योंकितिनकीमाताके =उदरमें वीर्य और लोहू(रज)अचित्त है । उस(माता)का चितवान् =आत्मासे(शुक्र-शोणितअचित्तके) मिलापसे मिश्रयोनिहै । सम्मूर्च्छनजन्मवाले =तीन प्रकारके योनिवाले हैं । कितने सचित्त योनिवाले हैं । दूसरे =अचित्तयोनिज है।(इनतें)भिन्न मिश्रयोनिवाले अर्थात् सचित्ताचित्त योनिवाले हैं =सचित्तयोनिज साधारणशरीरवाले हैंअर्थात् जिनकेंएकहीशरीरमेंबहुतजीवहोते हैं =क्योंकर(साधारणशरीरवाले सचित्तयोनिज हैं)क्योंकि आपसमें(एकजीवदूसरेके) =आश्रयसे वा आधारसे है ।(साधारण शरीरसे) भिन्न(सम्मूर्च्छनजीव)अचित्त =योनिवाले हैं अर्थात् उनके उपजनेका स्थान अचेतन पुद्गलके स्कन्धही हैं ॥

यज्जालवत्प्राणिपरिवरणं विततमांसशोणितं तज्जरायुः । यन्नखत्वक्सदृशमुपात्तकाठिन्यं शुक्रशोणितपरिवरणं परिमण्डलं तदण्डम् । किञ्चित्परिवरणमन्तरेण परिपूर्णावयवो योनिनिर्गतमात्र एव परिस्पन्दादि सामर्थ्योपपेतः पोतः॥ जरायौ जाता जरायुजाः। अण्डे जाता अण्डजाः। जरायुजाश्च अण्डजाश्च पोताश्च जरायुजाण्डजपोताः गर्भयोनयः॥ यद्यमीषां जरायुजाण्डजपोतानां गर्भोऽवध्रियते, अथोपपादः केषां भवतीत्यत आह—

वृत्त्यनुवादः—यद् १/१॥ जालवत्*प्राणि-परिवरणं १/१॥ वितत-मांस-शोणितम् १/१॥ तद्- जरायुः १/१ यद् १/१॥ नख- त्वक्-सदृशम् १/१॥ उपात्त-काठिन्यम् १/१॥ शुक्र-शोणित-परिवरणम् १/१॥ परिमण्डलम् १/१॥ तद् १/१॥ अण्डम् १/१॥

किञ्चित्-परिवरणम् १/१॥ अन्तरेण*परिपूर्ण-अवयवः १/१ योनि-निर्गतमात्रः १/१ एव*परिस्पन्द-आदि-सामर्थ्य- उपपेतः १/१ पोतः १/१

जरायौ ७/१ जाताः १/३ जरायुजाः १/३ अण्डे ७/१॥ जाताः अण्डजाः १/३ जरायुजाः १/३ च*अण्डजाः १/३ च*पोताः १/३ च* जरायुज-अण्डज-पोताः १/३ गर्भ-योनयः १/३ यदि*अमीषाम् ६/३ जरायुज-अंडज-पोतानाम् ६/३ गर्भः १/१ अवध्रियते T अथ*उपपादः १/१ केषाम् ६/३ भवति T इति* अतः*आह T

=जो जालके सदृश जीवका आच्छादन (=परिवरण) =जो मांस और रुधिर(=शोणित)करि व्याप्तहो सो जरायु है। जो नौं (=नख) के =त्वचा वा छिलकेकेसमान कठोरता वा कड़ापन गृहीत (=उपात्त) हो =जिस (त्वचा)में वीर्य लोहू वेष्टित हो गोलाकारसा हो =सो अंड है अर्थात् जो नखकी छालके समान कठिनहो, वीर्य और रजसे आच्छादितहो और गोलाकारहो उसको अंडकहते हैं

=कोई वस्तु (=किञ्चित्) आवरण विना (=अन्तरेण) संपूर्ण अवयव सहित =योनिसे निकलने परही हलन चलन आदि सामर्थ्य =सहितहो सो पोत है अर्थात् जिसके ऊपर जरा वा अंड कुछभी आवरण नहीं होता है माताके उदरसे निकलतेही चलने फिरने लगताहै उसे पोत कहते हैं

=जरायुमें उत्पन्नहुये जरायुज हैं। अंडेविषैं उपजैं सो अंडज हैं =और जरायुसे उपजनेवाले और अंडेसे उत्पन्न होनेवाले और पोत =(यथासंख्य) जरायुज-अंडज-पोत हैं (और ये सब) गर्भयोनिवाले हैं =जो इन (=अमीषाम्) जरायुज-अंडज-पोतोंका (उपजनेका स्थान) =गर्भ निश्चयकियागया है तौ अब उपपाद (जन्म) किन (जीवों) कें =होताहै इसलिये (आचार्य अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

एवमेतस्मिन्नवयोनिभेदसङ्कटे त्रिविधजन्मनि सर्वप्राणभृतामनियमेन प्रसक्ते तदवधारणार्थमाह—

॥ जरायुजांण्डजपोताना गर्भः ॥३३॥

भावार्थः-नित्यनिगोद,इतरनिगोद, पृथिवीकायिक,जलकायिक, अग्निकायिक, और वायुकायिक, इन छहकी सात सात लाख योनियें[१]ऐसे४२लाखहुई;वनस्पतिकायिकी दशलाख योनियें,दोइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख, तीनइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख,चारइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख ऐसे इनविकलेन्द्रियोंकी छहलाख योनियें हुई। देवोंकी चारलाख नारकियोंकी चारलाख पंचेन्द्रिय तिर्यचोंकी चारलाख ऐसे ये बारहलाखयोनियें हुईं मनुष्योंकी चोदहलाख योनियें मिलकर ऐसर्व (४२+१०+६+१२+१४) चौरासीलाख हुईं

एवम्[१]एतस्मिन्[२] नवयोनि-भेदसङ्कटे[३] =ऐसें तिस नवभेदरूपयोनि संकट विषैं
त्रिविधजन्मनि[४]।सर्वप्राणभृताम्[५] अनियमेन[६]=तीन प्रकार जन्म समस्त संसारी जीवोंकें नियमकरिरहित
प्रसक्ते[७]।तद्-अवधारण-अर्थम्[८]। आह[९] =प्राप्तहोनेपर उस(नियम)के निश्चय करणके लिये अर्थात् निश्चये करनेके लिये कहते हैं कि

[२]सूत्रम्-जरायुजाण्ड उपोतानां गर्भः=जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः (जन्म) ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः-जरायुज-अण्डज =जरायुमें उत्पन्नहोनेवाले(जीव)निका,और अंडेमें उपजनेवाले (जीव) निका, और
पोतानाम्[३]। गर्भः[२]। जन्म:[३]। =पोत(जीव) निकागर्भजन्महै अर्थात् जोजीव जालके समान मांस और रुधिर से व्याप्त एक प्रकारकी थैलियोंसे लिपटेहुए पैदा होते हैं उनको जरायुज कहते हैं जैसे मनुष्य

(क) माताकेरुधिर पिताकेवीर्यसे नखकी त्वचाकेसमान कठिनसेगोल २ आवरणको अंडा कहते हैं और जो अंडेसे जो उत्पन्नहोंउन्हें अंडजकहते हैं जैसे कुकट (ख)जिसकेऊपरजरा वा अंडा कुछभी आवरण नहीं होता, माताके उदरसे निकलतेही चलने फिरने लगताहै वह पोतज है जैसे हाथी, बिल्ली,सिंह,वंदर इत्यादि

(१) आकार योनि और गुण योनिके भेदसे योनि दो प्रकारकी है यहांपर ये भेद गुण योनिकी अपेक्षासे कहे हैं आकार योनिके तीन भेद हैं शंखावर्त कूर्मोन्नत और वंशपत्र। शंखावर्त योनिमें गर्भ नहीं ठहरता। कूर्मोन्नत योनिमें तीर्थंकर,चक्रवर्ती, बलभद्र और उनके भाईयोंके अतिरिक्त कोई उत्पन्न नहीं होता और वंशपत्र योनिमें शेषगर्भ जन्मवाले सर्व जीव उत्पन्न होते हैं।

(२)हमारे यहां कहीं कहीं पर जरायुजाण्डज और कहीं कहीं पर जरायुजांडज पाठ है दोनों पाठ ठीकहैं॥ देखो अध्याय१ पृष्ठ ५४०,५४१की टिप्पणी॥ इस सूत्रमें 'जन्म'शब्दकी अनुवृत्ति सूत्र ३१ यांसे आती है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०का पाठ"जराय्वण्ड पोतजानां गर्भः"ऐसा है॥हमारे यहांके पाठमें जकार जरायु और अंड के साथ है सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पाठमें 'पोत' के साथ है जो तीनों जरायु-अंड-पोत पर लागू है अर्थात् जरायुजस्यगर्भः जन्म, अंडजस्य गर्भः जन्म, पोतजस्य गर्भः जन्म, ऐसे रूप होजाते हैं जिससे प्रगट है कि दोनों आम्नायोंमें अर्थ एकसा है॥

उभयतो नियमश्चद्रष्टव्यः॥जरायुजाण्डजपोतानामेव गर्भः। गर्भ एव च जरायुजाण्डजपोतानाम्॥ देवनारकाणामेवोपपादः। उपपाद एव देवनारकाणाम्॥ शेषाणामेव सम्मूर्च्छनम्। सम्मूर्च्छनमेव शेषाणामिति॥ तेषां पुनः संसारिणां त्रिविधजन्मनामाहितबहुविकल्पनवयोनिभेदानां शुभाशुभनामकर्मविपाकनिर्वर्तितानि बन्धफलानुभवनाधिष्ठानानि शरीराणिकानीत्यत आह—

च * उभयतः * नियमः १/१। द्रष्टव्यः १/१।
जरायुज–अण्डज–पोतानाम् ६/३। एव* गर्भः १/१।
च* गर्भः १/१। एव* जरायुज–अण्डज–पोतानाम् ६/३।

देव–नारकाणाम् ६/३। एव* उपपादः १/१।
उपपादः १/१। एव* देवनारकाणाम् ६/३।
शेषाणाम् ६/३। एव* सम्मूर्च्छनम् १/१।
सम्मूर्च्छनम् १/१। एव* शेषाणाम् ६/३। इति*
पुनः त्रिविध-जन्मनाम् ६/३। तेषाम् ६/३। आहित-बहु-विकल्प-नवयोनिभेदानाम् ६/३। संसारिणाम् ६/३। शुभ-अशुभ-नामकर्म-विपाक-निर्वर्तितानि १/३। वन्ध-फल-अनुभव अधिष्ठानानि १/३। शरीराणि १/३। कानि १/३। इति अतः* आह

=और (=च) (इन गर्भज, औपपादिक और सम्मूर्च्छनोंकें) दोनों ओर नियम जानो
=(सो उपर्युक्त नियम दोनों लग एसे है कि) जरायुज, अंडज, पोतनिकें ही गर्भ है
=और (च) गर्भ ही है (जन्म) जरायुज, अंडज, पोतनिके भावार्थ दोनों वाक्योंका यहहै कि जरायुज, अंडज और पोतनिकें ही गर्भ जन्म है दूसरे प्रकारके जीवोंकें गर्भ जन्म नहीं है वा गर्भ जन्म ही न कि और कोई जन्म है जिनकें ऐसे जरायुज-अंडज पोतज हैं।
=देव और नारकियोंकें ही उपपाद (जन्म) है (नकि किसी और जीवोंकें)
=उपपाद ही है (जन्म न कि कोई और जन्म) जिनकें ऐसे देव नारकी हैं
=वचे हुये (जीव) निकें ही सम्मूर्च्छन (जन्म) है (न कि किसी और जीवोंकें)
=सम्मूर्च्छन जन्म (नकि कोई अन्य जन्म) है वचे हुये जीवोंकें ॥
=और तीन प्रकारके हैं जन्म जिनकें और ग्रहण किये हैं (=आहित) वहुत विकल्प रूप
=नव योनिके भेद जिनने ऐसे संसारी जे हैं तिनकें शुभ, अशुभ
=नाम कर्म करिरचे और वंधको जो फल है तिसके अनुभव करने के
=स्थान वा आधार शरीर (ते) कितने हैं। इस लिये कहते हैं कि अर्थात् गर्भ आदि तीन प्रकारके जन्म और अनेक भेदोंसे युक्त नौ प्रकारकी योंनियोंके धारक संसारीजीवोंकेशुभ-अशुभ नाम कर्मों से रचित और कर्म वन्धके फलके अनुभव के स्थान शरीर कितने हैं सूत्रकार उन्हें गिनाते हैं कि

॥ देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

देवानां नारकाणां च उपपादो जन्म वेदितव्यम् ॥ अथान्येषां किं जन्मेत्यत आह--

॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥

गर्भजेभ्यःऔपपादिकेभ्यश्चान्ये शेषाः। तेषां सम्मूर्छनंजन्मेति॥एते त्रयोऽपि योगा नियमार्थाः।

सूत्रम्— (१)देवनारकाणामुपपादः	=देवनारकाणामुपपादः (जन्म भवति) ॥३४॥
सूत्रार्थः-देव-नारकाणाम् ६।३	=(भवनवासी आदि चारों प्रकारके)देव और नारकियोंके
उपपादः १।१ जन्मः १।१ भवति T	=उपपाद जन्म होता है। (जन्म शब्दकी अनुवृत्ति इकतीसवां सूत्रसे इसमें आती है)
वृत्त्यनुवादः-देवानाम् ६।३ नारकाणाम् ६।३ च	=देव और (=च) नारकियोंके
उपपादः १।१ जन्म १।१ वेदितव्यम् १।१ अथ* अन्येषाम् ६।३	=उपपाद जन्म जानना चाहिये। अब दूसरे(जीव)निकें अर्थात् जरायुज अंडज और पोतोंको और देवनारिकियोंको छोड़कर अवशेष जीवोंका
किम्* जन्म १।१ इति* अतः* आह T	=कौन जन्म है इस लिये(अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
सूत्रम्— (२)शेषाणां सम्मूर्च्छनम्	=शेषाणां सम्मूर्च्छनम् (जन्म भवति) ॥ ३५ ॥
सूत्रार्थः-शेषाणाम् ६।३	अवशेष(जीव)निकें अर्थात् गर्भज और उपपाद जन्मोंके अतिरिक्त
सम्मूर्च्छनम् १।१ जन्म १।१ भवति T	=सम्मूर्च्छन जन्म होताहै।(जन्म शब्दकी अनुवृत्ति इकतीसवां सूत्रसे इससूत्रमें आतीहै)
वृत्त्यर्थः गर्भजेभ्यः ५।३ औपपादिकेभ्यः ५।३ च अन्ये १।३ शेषाः १।३	=गर्भजजीवोंसे उपपाद जन्मवाले(देव नारकियों) से भिन्न शेष (जीव रहते) हैं
तेषाम् ६।३ सम्मूर्च्छनम् १।१ जन्म १।१ इति*	=तिन (गर्भज और औपपादिकों से अतिरिक्तजीवोंकें) सम्मूर्च्छन जन्म होता है
एते १।३ त्रयः १।३ अपि* योगाः १।३ नियमार्थाः १।३	=ये तीनों ही युक्तियें अर्थात् तेतीसवां,चौतीसवां,पैतीसवां सूत्र) नियमके लिये हैं

(१) हमारे यहां इस सूत्र का शुद्ध पाठ सर्वत्र एक है।"नारकदेवानामुपपातः"ऐसा पाठ सभाष्य० का है दोनों आम्नायों में अर्थ एक सा है॥

(२) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहै। तत्त्वार्थसूत्रकी प्रतियोंमें सम्मूर्च्छन, संमूर्च्छन, सम्मूर्छन, संमूर्छन, ये चार पाठ प्राप्त हैं चारो ठीक हैं (अध्याय १ पृष्ठ ५४०, ५४१,७०;) सूत्रके अंतमें जहां"संमूर्च्छन"हैवह पाणिनि और शाकटायनकेमतमें अशुद्ध है॥संमूर्च्छनम् चाहिये॥

॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥३६॥

विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तीनि शीर्यन्त इति शरीराणि ॥ औदारिकादिप्रकृतिविशेषदयप्राप्त-वृत्तीनि औदारिकादीनि ॥ उदारं स्थूलम् । उदारे भवमौदारम् । औदारं प्रयोजनमस्येति औदारिकम् ॥ अष्टगुणैश्वर्ययोगादेकानेकाणु-

---

सूत्रम्— [(१)]औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥ [योग्यताहो;

सूत्रार्थः-औदारिक-वैक्रियिक- =इन्द्रियोंसेदेखनेयोग्यस्थूलशरीर, जिसमेंएकअनेकस्थूलसूक्ष्महलकाभारीइत्यादिविकारहोनेकी-
आहारक- =जोसूक्ष्मपदार्थकेनिर्णयकेलिये वा ऋद्धिविशेषका सद्भाव जाननेकेलिये वा असंयमके दूरकरनेके लिये प्रमत्त ही गुणस्थानवर्ती मुनियोंकें प्रगटहो [वा उन कर्मोंका समूहहो
तैजस-कार्मणानि३।।। =जो तेजका कारणहो वा जिसमें तेज रहता हो,ज्ञानावरणादि आठकर्मोंका जो कार्य हो
शरीराणि ३।।। =(संसारी जीवोंकें ये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक,तैजस,कार्मणि,क्रमसे पांच)शरीर हैं॥
वृत्त्यर्थः-विशिष्ट-नामकर्म-उदय-आपादित-वृत्तीनि३।।।=शरीर नामा नामकर्मके (=विशिष्टनामकर्म) उदयसेजो प्राप्त हुये (=वृत्तीनि)
शीर्यन्ते ।इति*शरीराणि३।।।औदारिक- =सो गलते हैं-सड़ते हैं वा झड़ते हैं (शीर्यन्ते) ऐसे शरीर हैं जो औदारिक
आदि-प्रकृति- =वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, (शरीरनामा नामकर्मकी) प्रकृतियोंके
विशेष-उदय-प्राप्त-वृत्तीनि३।।। =विशेषरूप उदयकरि(=उदय प्राप्त)प्रवर्तते हैं (=वृत्तीनि) ते(क्रमानुसार)
औदारिक-आदीनि३।।।उदारम् १।।।स्थूलम्१।।। =औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,तैजस,कार्मण हैं (=आदीनि)। उदार है सो स्थूल है
उदारे७।।।भवम्१।।।औदारम्१।।। औदारम्१।।। =स्थूलविषैं हो सो औदार है। स्थूलहोना व स्थूलपना है
प्रयोजनम्१।।।अस्य६।।। इति*औदारिकम् १।।। =प्रयोजनजिसका ऐसा औदारिक है
अष्टगुण-ऐश्वर्य-योगात्५। एक-अनेक-अणु- =[(२)]आठगुण वा विभूतियोंके ईश्वरपनेके संयोगसे वा सम्बन्धसे एक अनेक छोटा

---

(१) हमारेयहां जहां शुद्ध लेख है वहां सर्वत्र इस सूत्रका एक ही पाठ है । सभाष्य० में"वैक्रियिक"शब्दके स्थान में"वैक्रिय"शब्द है । दोनों आम्नायोंमें शेष पाठ और अर्थ एक है।(२)आठ प्रकारकी सिद्धियां और विभूतियोंके नाम अमरकोश स्वर्गवर्गःश्लोक३०में ऐसें हैं कि"अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिःप्राकाम्यमीशित्वं। वशीत्वं चाष्टसिद्धयः (य) अणिमन् (पु०) छोटापन अर्थात् जिससे जीव छोटासा रूपधर सब स्थानोंमें

महच्छरीरविविधकरणं विक्रिया, सा प्रयोजनमस्येति वैक्रियिकम् ॥ सूक्ष्मपदार्थनिर्ज्ञानार्थमसँयमपरिजिहीर्षया वा प्रमत्तसँयतेनाह्रियते निर्वर्त्यतेतदित्याहारकम् ॥ यत्तेजोनिमित्तं तेजसि वा भवं तत्तैजसम् ॥ कर्मणां कार्यं कार्मणम् ॥ सर्वेषां कर्मनिमित्तत्वेऽपि

महत्–शरीर–विविधकरणम् १।१ विक्रिया १।१ =बड़ा शरीर अनेक प्रकार(=विविध) करना सो विक्रया है
सा १।१ प्रयोजनम् १।१ अस्य ६।१ इति* वैक्रियिकम् १।१ =विक्रिया (=सा) है प्रयोजन जिसका ऐसा वैक्रियिक है
सूक्ष्म–पदार्थ–निर्ज्ञान–अर्थम् १।१ वा असंयम– =सूक्ष्म पदार्थोंके निर्णयके लिये अथवा असंयमके
परिजिहीर्षया ३।१ प्रमत्तसंयतेन ३।१ =दूरकरनेकी इच्छासे प्रमत्तविरत छठवां गुणस्थानवर्ती मुनिकरि
आह्रियते T निर्वर्त्यते T =रचाजाता वा प्रगट किया जाता है परिपूर्ण किया जाता है वा सिद्धि किया जाताहै
तद् १।१ इति * आहारकम् १।१ =सो ऐसा आहारक(शरीर)है।सारांशयहहैकि छठवें गुणस्थानवर्ती ही मुनिकोंतत्त्वोंमेंकोई शंका होनेपर केवली वा श्रुतकेवलीके निकट जानेके लियेमुनिके मस्तकमेंसे जो एक हाथका पुतला निकलता है उसको आहारक शरीर कहते हैं ॥
यद् १।१ तेजस्–निमित्तम् १।१ वा तेजसि ७।१ भवम् १।१ =जो तेजका कारण अर्थात् देहको दीप्ति रूप करनेको निमित्त अथवा तेजकेविषैंभया
तद् १।१ तैजसम् १।१ कर्मणाम् ६।३ कार्यम् १।१ कार्मणम् १।१ =सो तैजस है। कर्मोंका कार्य सो कार्मण है
सर्वेषाम् ६।३ कर्मनिमित्तत्वे ७।१ अपि* =सर्व (शरीरों) का कर्म कारण होनेपर भी अर्थात् कर्मके कारण सर्व शरीर हैं तौभी

(१) धातुमें य जोड़कर आत्मनेपद प्रत्यय" लगाने से कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग बनाये जाते हैं" यदि धातुके अंतका अक्षर ऐसा ऋ हो जिसके पहिले संयोग व्यंजन नहीं हो तो ऋ के स्थानमें "रि होताहै जैसे=हृ=हि अतःआ+हि+य+ते=आह्रियते॥निर्+वर्त्+य+ते=निर्वर्त्यते॥ (ल) गरिमन् (पुलिंग) भारीपन जासकै वा गमन करसकै (र) महिमन् (पुल्लिग) महत्व, वडापन, जिससे जीव वड़ी मूर्तिवन स्थानोंमें जासकै (व)लधिमन=लघुत्व,हलकापन(श) प्राप्तिः (स्त्री०)=जिससे मन मांगी वस्तु मिलती है (व) प्राकाम्य (न०) प्राकाम, इच्छानभिघात रूप ऐश्वर्य, ॥ (स) ईशित्व (न०) ईशिता, अण मादि आठ ऐश्वर्यों मेंसे सवपर मालिक पना (ह) वशित्व (न०) = वशिता, स्वाधीनता अर्थात् .जितेन्द्रिय स्वातन्त्र्य,जिसने इन्द्रियजीतली है दूसरा श्लोक पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ६ में यह है"अणिमा लघिमा प्राप्तिः। प्राकाम्य महिमा तथा। ईशित्वच वशित्वच तथा कामा वसायिता ॥ दोनों श्लोकोंके मिलानेसे प्रगट होता है कि इस श्लोकमें गरिमन् के स्थानमें "कामवाशा (सा) यता"है ॥ कामावशायिता = (स्त्री०) अणमादि आठ प्रकारके ऐश्वर्यमें सत्य सल्पता (जो इच्छा करै सो पूरी हो जाय) रूप ऐश्वर्य ॥ पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ १०५ ॥

॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥३६॥

विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तीनि शीर्यन्त इति शरीराणि ॥ औदारिकादिप्रकृतिविशेषदयप्राप्त-वृत्तीनि औदारिकादीनि ॥ उदारं स्थूलम् । उदारे भवमौदारम् । औदारं प्रयोजनमस्येति औदारिकम् ॥ अष्टगुणैश्वर्ययोगादेकानेकाणु-

---

सूत्रम्— [1]औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥ [योग्यताहो;

सूत्रार्थः-औदारिक-वैक्रियिक-	=इन्द्रियोंसेदेखनेयोग्यस्थूलशरीर, जिसमेंएकअनेकस्थूलसूक्ष्महलकाभारीइत्यादिविकारहोनेकी-
आहारक-	=जोसूक्ष्मपदार्थकेनिर्णयकेलिये वा ऋद्धिविशेषका सद्भाव जाननेकेलिये वा असंयमके दूरकरनेके लिये प्रमत्त ही गुणस्थानवर्ती मुनियोंके प्रगटहो [वा उन कर्मोंका समूहहो
तैजस-कार्मणानि॥	=जो तेजका कारणहो वा जिसमें तेज रहता हो,ज्ञानावरणादि आठकर्मोंका जो कार्य हो
शरीराणि ॥	=(संसारी जीवोंके ये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक,तैजस,कार्मण,क्रमसे पांच)शरीर हैं॥
वृत्त्यर्थः-विशिष्ट-नामकर्म-उदय-आपादित-वृत्तीनि॥	=शरीर नामा नामकर्मके (=विशिष्टनामकर्म) उदयसेजो प्राप्त हुये (=वृत्तीनि)
शीर्यन्ते इति०शरीराणि॥ औदारिक-	=सो गलते हैं-सड़ते हैं वा झड़ते हैं (शीर्यन्ते) ऐसे शरीर हैं जो औदारिक
आदि-प्रकृति-	=वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, (शरीरनामा नामकर्मकी) प्रकृतियोंके
विशेष-उदय-प्राप्त-वृत्तीनि॥	=विशेषरूप उदयकरि(=उदय प्राप्त)प्रवर्तते हैं (=वृत्तीनि) वे(क्रमानुसार)
औदारिक-आदीनि॥ उदारम्॥ स्थूलम्॥	=औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,तैजस,कार्मण हैं (=आदीनि)। उदार है सो स्थूल है
उदारे॥ भवम्॥ औदारम्॥ औदारम्॥	=स्थूलविषैं हो सो औदार है। स्थूलहोना व स्थूलपना है
प्रयोजनम्॥ अस्य॥ इति०औदारिकम्॥	=प्रयोजनजिसका ऐसा औदारिक है
अष्टगुण-ऐश्वर्य-योगात्॥ एक-अनेक-अणु-	=[2]आठगुण वा विभूतियोंके ईश्वरपनेके संयोगसे वा सम्बन्धसे एक अनेक छोटा

---

(१) दशाध्यायी जहां शुद्ध लेख है वहां सर्वत्र इस सूत्रका एक ही पाठ है। सभाष्य० में "वैक्रियिक" शब्दके स्थान में "वैक्रिय" शब्द है। दोनों आम्नायोंमें और पाठ और अर्थ एक है।(२,आठ प्रकारकी सिद्धियां और विभूतियोंके नाम अमरकोश स्वर्गवर्ग श्लोक३०में ऐसे हैं कि "अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिःप्राकाम्यमीशित्वं। वशीत्वं चाष्टसिद्धयः (य) अणिमन् (पु०) छोटापन अर्थात् जिससे जीव छोटासा रूपधर सब स्थानोंमें

पृथग्भूतानां शरीराणां सूक्ष्मगुणेन वीप्सानिर्देशः क्रियते परम्परमिति ॥ औदारिकं स्थूलं, ततः सूक्ष्मं वैक्रियिकं, ततः सूक्ष्ममाहारकं, ततः सूक्ष्मं तैजसं, तैजसात्कार्मणं सूक्ष्ममिति ॥ यदि परम्परं सूक्ष्मं, प्रदेशतोऽपि नूनं परम्परं हीनमितिविपरीतप्रतिपत्तिनिवृत्त्यर्थमाह—

॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

पृथक्* भूतानाम् ॥	= { संज्ञा(नाम) लक्षण(स्वरूप) प्रयोजन आदिके भेदसे } पृथग् भूत
शरीराणाम् ॥ सूक्ष्मगुणेन॥ वीप्सानिर्देशः॥	=(औदारिक आदिक) शरीरजे है तिनको सूक्ष्मगुणकरि वीप्सारूपनिर्देश
क्रियते । परम्परम्॥	=कियागया है कि परे परे सूक्ष्म हैं अर्थात् नाम स्वरूप प्रयोजन आदिके भेदसे भिन्न जो औदारिकआदिक शरीर हैं उनका यहां सूक्ष्मगुणके साथ वीप्साका निर्देश है कि आगे आगे के शरीर सूक्ष्म सूक्ष्म है
इति*औदारिकं॥स्थूलं॥ततःसूक्ष्मं॥वैक्रियिकम्॥	=इसप्रकारकि औदारिक शरीर स्थूल है। तिस (औदारिक)से सूक्ष्म वैक्रियिक है
ततःसूक्ष्मम्॥ आहारकम्॥ ततः*सूक्ष्मम्॥	=तिस (वैक्रियिक शरीर)से सूक्ष्म आहारक (शरीर)है। तिस(आहारक)से सूक्ष्म
तैजसम्॥ तैजसात्॥ कार्मणं॥ सूक्ष्मम्॥ इति*	=तैजसशरीर है। तिस तैजस(शरीर) से सूक्ष्म कार्मण (शरीर) है
यदि*परम्परं॥ सूक्ष्मम्॥ प्रदेशतः*	=जो अगले अगले(शरीरपूर्वपूर्वकी अपेक्षासे) सूक्ष्म है तो परमाणुओंकी अपेक्षासे
अपि*नूनम्*परम्परम्॥ हीनम्॥	=भी निस्सदेहकरि (=नूनं)उत्तर उत्तर शरीर हीनहोंगें अर्थात् प्रत्येक अग्रिमअग्रिम शरीरमें पहिले पहिले शरीर से थोड़े थोड़े प्रदेश होंगें
इति*विपरीत-प्रतिपत्ति-निवृत्ति-अर्थम्॥ आह ।	=ऐसी विरुद्ध प्रवृत्तिके दूर करनेके लिये कहते हैं कि

(१) प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्=परं परं प्रदेशतः असंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः-परं॥ परं॥प्रदेशतः*प्राक्*तैजसात्॥	=अग्रिम अग्रिम (शरीर) प्रदेशोंकी अपेक्षासे, तैजससे पहिलेके (शरीर)
असंख्येयगुणम्॥	=असंख्यात गुणेहैं अर्थात् औदारिक शरीरमें जितने परमाणु हैं उनसे संख्यातगुणे

(१)दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहै ॥ परं परं' वाक्य की अनुवृत्ति सैंतीसवां सूत्रसे इससूत्रमें आतीहै ॥

(२)पाठक यह न समझें कि यहांपर न्यूनम् शब्दहै क्योंकि न्यूनके अर्थमें हीनम् शब्द आगे है नूनम् का अर्थ निसदेह है देखो वैद्यकोश पृष्ठ३९१

रूढिवशाद्विशिष्टविषये वृत्तिरवसेया ॥ यथौदारिकस्येन्द्रियैरुपलब्धिस्तथेतरेषां कस्मान्न भवतीत्यत आह—

॥ परम्परं सूक्ष्मम्॥३७॥

परशब्दस्यानेकार्थवृत्तित्वेऽपि विवक्षातो व्यवस्थार्थगतिः ॥

रूढिवशात्५। विशिष्ट-विषये ७। =रूढिके वशसे विशेषपनामें([1]कार्मणशरीर ही को कर्मका कार्यरूप)
वृत्तिः१।।अवसेया१।।यथा*औदारिकस्य६।।।इन्द्रियैः३।।।=निरुक्ति बतलाई गई है। जैसे औदारिक (शरीर) का इन्द्रियोंकरि
उपलब्धिः१।। तथा*इतरेषाम् ६।।। =ग्रहण है (=उपलब्धिः) तैसेअन्य(वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्मण शरीर) निका
कस्मात् ५। न*भवति T इति*अतः*आह T =क्योंकर वा किसलिये(इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण)नहीं होता है। इसलिये कहते हैं कि

सूत्रम्-परम्परंसूक्ष्मम्[2] =(तेषाम्औदारिकादिशरीराणाम्परंपरंसूक्ष्मम्(भवन्ति)।३७

सूत्रार्थः-[3]तेषाम् ६।।। परम् १।।। परम् १।।। =उन(औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,तैजस,कार्मण)मेंसे अगले अगले
सूक्ष्मम्१।।। भवन्ति T =(पूर्वपूर्वकी अपेक्षासे)सूक्ष्म वा अस्थूलहैं अर्थात् औदारिककीअपेक्षासेवैक्रियिकसूक्ष्महै, वैक्रियिककीअपेक्षासेआहारकसूक्ष्महै,आहारकसेतैजससूक्ष्महै, तैजससेकार्मणसूक्ष्महै,॥

वृत्त्यनुवादः-परशब्दस्य६। अनेक-अर्थ-वृत्तित्वे७।।।अपि=परशब्दके बहुतसे अर्थ होनेपर (=वृत्तित्वे) भी
विवक्षातः*व्यवस्था[4]-अर्थ-गतिः१।। =विवक्षासे(यहां पर) व्यवस्था (अर्थात् विशेष अवस्था)के अर्थमें प्राप्तिहै वा प्रवर्ते है ॥

(१)अन्य शरीरको कार्मण निमित्त है तो कार्मणको क्या निमित्त है?कार्मणको कार्मणही निमित्तहै वा जीवके परिणाम मिथ्यादर्शनादिकनिमित्तहैं॥
(२)श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्य०में तेषाम्'शब्द हमारे यहांके पाठसे अधिकहै॥ शेषपाठ एकहै और अर्थभी एकहै॥हमारे यहां बहुतसी पुस्तकोंमें परं परं सूक्ष्मम् ऐसा पाठ है कहीं कहीं पर"परं परं सूक्ष्म' पाठ है ॥ कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अनूकूल यह पाठ भी शुद्ध है परंतु पाणिनिमुनि तथा शाकटायनमुनि इत्यादिके मतमेंअशुद्धहै॥(देखोटिप्पणीअध्याय१ पृष्ठ६)(३)यहांषष्ठीविभक्ति सप्तमीकेअर्थमेंआईहै(देखोटिप्पणीअध्याय१ पृष्ठ१३८)
(४)पूर्वापेक्षया परत्वमिति परशब्दो व्यवस्थार्थः ॥
पूर्व-अपेक्षया३॥ परत्वम् १।।। =पहिले (शरीर) की विवक्षाकरि अगले (शरीर) का (सूक्ष्म) होना (=परत्वम्)
इति*परशब्दः१।व्यवस्था-अर्थः१। =ऐसे(सूत्रमें) पर शब्द विशेष अवस्थाके अर्थ है (व्यवस्थाके अर्थमें आया है)

औदारिकादसंख्येयगुणप्रदेशं वैक्रियिकम् ॥ वैक्रियिकादसंख्येयगुणप्रदेशमाहारकमिति ॥ कोगुणाकारः? पल्योपमासंख्येयभागः ॥ यद्येवं, परम्परं महापरिमाणं प्राप्नोति । नैवम् । बन्धविशेषात्परिमाणभेदाभावः। तूलनिचयायःपिण्डवत्॥ अथोत्तरयोः किं समप्रदेशत्वमुतास्ति कश्चिद्विशेष इत्यत आह—

औदारिकात्[५/१]॥।असंख्येयगुण-प्रदेशं[१/१]॥।वैक्रियिकं[१/१]॥।=(इसलिये) औदारिकशरीरसे असंख्यातगुणे प्रदेशवाला वैक्रियिक शरीर है

औदारिकात्[५/१]॥।असंख्येयगुण-प्रदेशं[१/१]॥।वैक्रियिकं[१/१]॥। इति* =वैक्रियिक शरीरसे असंख्यातगुणे हैं परमाणुं जिसके ऐसा

वैक्रियिकात्[५/१]॥। असंख्येयगुणप्रदेशम्[१/१]॥। इति* =आहारक शरीर है। (प्रश्न) क्या गुणक है अर्थात् जब असंख्यातके असंख्याते

आहारकम्[१/१]॥। कः[१/१]। गुणाकारः[१/१]। ? भेद है फिर किस प्रकारके असंख्यातको गुणाकार वा गुणक यहां पर मानें

पल्योपम-असंख्येय--भागः[१/१]। यदि*एवम्* =पल्योपमके असंख्यातवां भागजो है (सो गुणक यहां लेना) यदि ऐसा है अर्थात्

एकएक अग्रिम अग्रिम शरीरके परमाणु उसके पूर्व पूर्व शरीरसे असंख्यात गुणे हैंतो

परम्[१/१]॥।परम्[१/१]॥।महान्-(१)परिमाणम्[१/१]॥। प्राप्नोति T =अग्रिम अग्रिम(=परंपरं)शरीर महान् आकार वा स्थूलताको प्राप्तहोता है

न* एवम्* =(उत्तर) ऐसा नहीं हैं (कि अगले अगले शरीरके परमाणुं असंख्यात गुणे

पूर्व पूर्व शरीरसे होनेसे उन अग्रिम अग्रिम शरीरमें स्थूलपनाका प्रसंग आवे)

वन्ध-विशेषात्[५/१]। परिमाण-भेद–अभावः[१/१]। =क्योंकि वन्धके विशेपतासे वा वन्धकेढंगसे डीलडौलके भेदका अभाव होजाता है

तूल-निचय-अयस्–पिण्डवत्* =रुईका समूह और लोहेके पिंडके सदृश अर्थात् रुईके समूहमें परमाणुं थोड़े हैं

परंतु परिमाणमें वड़ा है उसलोहेके पिंडसे जिसमें परमाणुं उस रुईके

गठेसे वहुत अधिक हैं परंतु डीलडौलमें छोटा है

अथ*उत्तरयोः[६/२]॥।किम्[१/१]॥।समप्रदेशत्वम्[१/१]॥। अस्ति T =अब(=अथ)अगले दो (तैजसशरीरऔर कार्मणशरीर) में क्या समान प्रदेशता है?

उत*कश्चित्*विशेपः[१/१]। इति*अतः*आह T =अथवा(=उत)कुछ(=कश्चित्)भेद है। इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) संस्कृतसर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें 'महागुणाकार' शब्द है, परन्तु उसके द्वितीयसंस्करणमें, और हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'महापरिमाण' शब्द है। तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें कईस्थानोंमें 'परिमाण' शब्द आया है इसलिये 'परिमाण' शब्द हमनेभी पाठमें लिया है।

प्रदिश्यन्त इति प्रदेशाः परमाणवः। संख्यामतीतोऽसंख्येयः। असंख्येयो गुणोऽस्य तदिदमसंख्येयगुणम्॥ कुतः?प्रदेशतः नावगाहतः। परम्परमित्यनुवृत्तेराकार्मणात्प्रसङ्गे तन्निवृत्त्यर्थमाह प्राक्तैजसादिति।

परमाणू वैक्रियिक शरीरमें हैं और वैक्रियिक शरीरसे असंख्यात गुणे परमाणुं आहारकशरीरमें हैं

शब्दानुवादः-प्रदिश्यन्ते। इति*प्रदेशाः१परमाणवः१ =जो अविभाज्यहोकर प्ररूपण कियेगये हैं ऐसे प्रदेश हैं वा परमाणुं हैं॥ वा जिनकरि प्रमाणकरिये है ऐसे प्रदेश हैं अर्थात् जिनके द्वारा भिन्न भिन्न अंशकिये जायं सो प्रदेश हैं॥

संख्याम्२॥अतीतः१असंख्येयः१असंख्येयः१गुणः१ =जो गणनासे बाहिरहों वे असंख्यात हैं असंख्यात हैं गुणाकार(१)वा(१) गुणक

अस्य६। तद्१॥ इदम्१॥असंख्येयगुणम् १॥ कुतः*?=जिसका सो यह असंख्येयगुणा है क्योंकर वा कहांसे (असंख्येयगुणा) है.

प्रदेशतः * अवगाहतः * =परमाणुंओं (की अपेक्षा)से (असंख्येयगुणा) है अवगाहना (की विवक्षा) से

न* =(असंख्येयगुणा) नहीं है अर्थात् औदारिकसे वैक्रियिक शरीर असंख्यातगुण है और वैक्रियिकसे आहारक असंख्यातगुण है सो औदारिकसे गणनामें वैक्रियिककी परमाणुंओंकी गणना असंख्यातगुणा) है नकि उसकी अवगाहना असंख्यातगुणी अधिक है इसी प्रकार वैक्रियिकसे आहारकके परमाणुंओंकी गिनती वा संख्या असंख्यातगुणी है नकि आहारक शरीरकी अवगाहना वैक्रियिक शरीरसे असंख्यातगुणी अधिक है

परम्१॥परम्१॥इति*अनुवृत्तेः५॥ =(पूर्व सैंतीसवां सूत्रसे इससूत्रमें)"परं परं" ऐसी अनुवृत्ति(के कारण) से

आ*कार्मणात्५॥ प्रसङ्गे ७॥ =कार्मण (शरीर) पर्यन्त(=आ) (इस परं परं की अनुवृत्तिका) संबंधहोनेपर

तद्-निवृत्ति-अर्थम् २॥ =तिस (प्रसंग) के निषेधके लिये वा निवारणके लिये (इससूत्रमें)

प्राक्*तैजसात् ५॥ इति*आह T =तैजस शरीरसे पहिले पहिले (=प्राक् तैजसात्) ऐसा वाक्य कहा है

(१) गुण्य=जिसअंकको गुणिये जैसे यदि १६ को ९ से गुणाकरना होतो १६ गुण्य है॥ गुणक वा गुणाकार जिसअंकसे गुणाकरो यहां ९ गुणक या गुणाकार है १६×९=१४४ को गुणनफल कहते हैं। गुणाकरनेकी क्रियाको गुणन कहते हैं॥

निरोधप्रसङ्ग इति । तन्न । किं कारणम् । यस्मादुभेऽप्येते—

अप्रतीघाते ॥ ४० ॥

निरोध-प्रसङ्गः ११ इति * =रुकावटका प्रसंग होता होगा ॥ अर्थात् वाण मूर्तिमान द्रव्योंका पिंडस्वरूपहै इसलिये जिस प्रकार पर्वत आदि से उसकी गतिका निरोध हो जाताहै—वह आगे नहीं जा सकता है उसी प्रकार तैजस शरीर और कार्मण शरीर भी अनंते अनते मूर्तिमान परमाणुओंके पिंड हैं और संसारी जीवकें सदाकाल उनका संबंध रहता है (यह संबंध आगे सूत्र ४१ में कहा जायगा) इसलिये उनके संबंधसे संसारी जीवोंकें भी जाने योग्य गतिका निरोध होगा ॥

तद्-न* =उस (अभिप्रेत गति) में (रुकावट) नहीं होती है।(प्रश्न)क्या कारणहै (कि रुकावट नहीं होती)

किम्*कारणम्११।यस्मात्१५।उभे१२।अपि*एते१२।=(उत्तर) इस कारणसे कि (तैजस और कार्मण शरीर) ये दोनों ही (अप्रतीघात हैं)

सूत्रम्-[1]अप्रतीघाते ॥४० ॥=अप्रतीघाते (परे) भवतः

सूत्रार्थः- परे १२। अप्रतीघाते १२। भवतः T=(तैजस शरीर और कार्मण शरीरये)शेषदो वा अंतिम दो अप्रतिघात हैं अरोक हैं अर्थात्बलवान भी मूर्तिमान पदार्थोंसे इनका रुकना नहीं होता भावार्थ मूर्तीक पदार्थसे मूर्तीक पदार्थका रुकजाना प्रतीघात है। अग्निका परिणमन सूक्ष्म है इसलिये कठिन भी लोहेके पिंडमें सूक्ष्म परिणमनके कारण जिस प्रकार अग्निका प्रवेश नहीं रुकता उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीरका परिणमन भी सूक्ष्म है इसलिये वज्र पटल आदि कैसे भी कठिन पदार्थ क्यों न पड़े दोनों शरीरोंका रुकना नहीं होता वे निरवच्छिन्न रूपसे प्रवेशकर जाते हैं इसलिये वे तैजस और कार्मण दोनों शरीर अप्रतिघात कहे जाते हैं ॥

(१) दोनो आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ एक है॥ 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'मे अप्रतिघात शब्दका अर्थ न रोकना और नरुकना ऐसा कियाहै जैसाकि निम्न वाक्यसे प्रगट है॥ तैजस और कार्मण ''ये अन्तिम दो शरीर अप्रतिघात अर्थात् प्रतिघात शून्य हैं। तात्पर्य्य यह है कि ये दो तैजस और कार्मण कहीं किसीसे नही रुकते, और न ये किसीको रोकनेहैं पृष्ठ ५२॥' प्रतिघात (दूसरेसे रुकनेवाला वा दूसरोंको रोकनेवाला) होकर अप्रतिघाति हो, तथा अप्रतिघाति होकर प्रतिघाति हो॥ यह वैक्रियक शरीरके सबन्धमें लेखहै॥ सभाष्य० पृष्ठ ५७ उक्त शरीर न किसीको रोकतेहै ऐसा अर्थ इससूत्रका इस सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, जयचद्जी कृतावचनिका अर्थ प्रकाशिका, सदासुखजीकृत तत्त्वार्थलघु टीका में नहीं कियाहै और न तत्त्वार्थ राजवार्तिकके दो अनुवादो मे से किसी में ऐसा अर्थहै॥ प० पन्नालाल जी अनुवादित मोक्षशास्त्र का अर्थ सभाष्य०केअर्थसे मिलताहै जैसे उक्त मोक्षशास्त्रके पृष्ठ३१८ में तैजस और कार्मण शरीर भी वज्रमय पटलोंसे नही रुकतेहैं और न किसी अन्य पदार्थको रोक सकते हैं'' संस्कृत कोशोंसे भी यह आशय निकलताहै, हमारी समझमें ठीक है क्योंकि दूसरेके रोकनेके समय भर वह स्वयम् भी रुका रहेगा नहीं तो रोकैगा कैसे॥

॥ अनन्तगुणे परे ॥ ३९ ॥

प्रदेशत इत्यनुवर्तते, तेनैवमभिसम्बन्धः क्रियते-आहारकात्तैजसं प्रदेशतोऽनन्तगुणं, तैजसात्कार्मणं प्रदेशतोऽनन्तगुणमिति ॥ को गुणाकारः? अभव्यानामनन्तगुणः । सिद्धानामनन्तोभागः॥ तत्रैतत्स्याच्छल्यकवत् । मूर्तिमद्द्रव्योपचितत्वात्संसारिणोजीवस्याभिप्रेतगति-

सूत्रम्— "[1]अनन्तगुणे परे =(प्रदेशतः परं परं) अनन्तगुणे परे (भवतः) ॥ ३९ ॥

सूत्रार्थ :- परम् १।१ परम् १।१ परे १।२ =अग्रिम अग्रिम (=परं परं) अवशेष वा अन्य दो (तैजस और कार्मण शरीर)

प्रदेशतः * अनन्तगुणे १।२ भवतः T =प्रदेशोंकी अपेक्षासे (पूर्व पूर्व शरीरोंसे) अनन्तगुणे हैं अर्थात् आहारक शरीरसे तैजसशरीरमें अनन्तगुणे प्रदेश अधिक हैं और तैजस शरीरसे कार्मण शरीरमें अनन्त गुणे प्रदेश अधिक हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—प्रदेशतः * इति * =(अड़तीसवां सूत्रसे इससूत्रमें) प्रदेशतः (=प्रदेशोंकी अपेक्षासे) ऐसा (वाक्य)

अनुवर्तते T तेन ३।१ एवम् * =अनुवर्तताहै वा आकर्षित होता है । तिस (प्रदेशतः वाक्य) करि इस प्रकार

अभिसम्बन्धः १।१ क्रियते T आहारकात् ५।१ तैजसम् १।१ =संयोग कियागया है कि आहारकशरीरसे तैजसशरीर

प्रदेशतः* अनन्तगुणम् १।१ तैजसात् ५।१ कार्मणम् १।१ =परमाणुओंकी अपेक्षासे अनन्तगुण है तैजसशरीरसे कार्मणशरीर

प्रदेशतः * अनन्तगुणम् १।१ इति * =प्रदेशोंकी विवक्षासे अनन्तगुण है ॥

कः १।१ गुणाकारः १।१ =गुणाकार वा गुणक कौन अनन्त है (क्योंकि अनन्तके अनन्त भेद हैं)

अभव्यानाम् ६।३ अनन्तगुणः १।१ सिद्धानाम् ६।३ अनन्तः १।१ =(उत्तर) अभव्य राशिका अनन्तगुणा है सिद्धराशिका अनन्तवां-

भागः १।१ शल्यकवत् * =भाग है (सो अनन्त गुणक है) (प्रश्न) भाल वा तीरके फाल (=शल्यक) के सदृश

तत्र*एतत् १।१ स्यात् T॥ मूर्तिवत्*द्रव्यउपचितत्वात् ५।१ =तहां यह होता होगा कि मूर्तिमान् वस्तुके संचय होनेसे

संसारिणः ६।१ जीवस्य ६।१ अभिप्रेत–गति– =(तैजस और कार्मण शरीर सहित) संसारी जीवके जानेयोग्य (=अभिमेत) गमनमें

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहै ॥ हमारे यहा कहीं कहीं पर "अनन्तगुणे परे"पाठ है और कहीं कहीं पर"अनंतगुणे परे"पाठ है दोनों पाठ ठीकहैं(अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४१.)॥ परं परं की अनुवृत्ति३७ वां सत्र से और प्रदेशतःकी३८वांसेआतीहै

आह किमेतावानेव विशेष उत कश्चिदन्योऽप्यस्तीत्याह—

॥ अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥

चशब्दो विकल्पार्थः । अनादिसम्बन्धे सादिसम्बन्धे चेति ॥

मुनिके आहारक शरीरकी प्रकटता होती है और जहां केवली वा श्रुतकेवली विराजते हैं वहांतक जाकर फिर आहारक शरीर लौट आता है। केवलियोंकी स्थिति ढाई द्वीपसे बाहिर नहीं होती इसलिये आहारक शरीरका गमन अधिकसे अधिक ढाई द्वीप पर्यंत ही है। मनुष्योंका वैक्रियिक शरीर मनुष्यलोक(=ढाईद्वीप) पर्यंत ही गमन करता है तथा देवोंका वैक्रियिक शरीर त्रसनाली पर्यंत गमन करता है अधिक नहीं इसलिये ये दोनों शरीर तैजस और कार्मण शरीरोंके समान सर्वत्र अप्रतिघात नहीं हैं॥ अतः इस सर्वत्र गमनकी विशेष अपेक्षासे तैजस और कार्मण शरीरोंको इससूत्रमें अप्रतिघात कहा है॥

आह I किम्* एतावान्1/1 एव* विशेषः1/1 =पूछता है कि क्या(इन तैजस और कार्मण शरीरोंके विषयमें)इतना ही विशेष है
उत* कश्चित्* अन्यः1/1 अपि* अस्ति I इति* आह I =अथवा(=उत) कुछ और (=अन्य) भी है। (निम्नसूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— [(१)]अनादिसम्बन्धे च॥४१॥=(परे जीवस्य) अनादि सम्बन्धे च भवतः ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थः-परे1/2॥ जीवस्य 6/1 =अन्य दो (=परे=तैजस और कार्मण शरीर) जीवके
अनादि-सम्बन्धे 1/2॥ च* भवतः I =अनादिकालसे भी(और मोक्ष होनेतक)संबंध रखनेवाले हैं अर्थात् तैजस औरकार्मण ये दो शरीर जीवकेसाथ अनादिकालसे भी संबंधवाले हैं सादिकालसे भी संबन्धवाले हैं

वृत्त्यनुवादः-चशब्दः1/1 विकल्प अर्थः1/1 =(इससूत्रमें) चशब्द विविध कल्पनकेलिये है (अर्थात्) अनादि संबन्धवाले
अनादिसंबंधे1/2॥ च* सादिसम्बन्धे1/2॥ इति* =भी(=च)हैं और सादिसम्बन्ध वालेहैं भावार्थ सूत्रमें चशब्द है उसका अर्थ विकल्प है और तैजस और कार्मण इनदोनों शरीरोंका आत्माके साथ अनादिऔर

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर 'सबन्धे'पाठ है और कहीं कहीं पर 'सम्बन्धे' पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं(देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५४०,५४१ और टिप्पणी पृष्ठ ५, ६,)॥

मूर्तिमतो मूर्त्यन्तरेण व्याघातः प्रतीघातः । स नास्त्यनयोरित्यप्रतीघाते ॥ सूक्ष्मपरिणामादयःपिंडे तेजोऽनुप्रवेशवत्तैजसकार्मणयोर्नास्ति वज्रपटलादिषु व्याघातः ॥ ननु च वैक्रियिकाहारकयोरपि नास्ति प्रतीघातः । सर्वत्राप्रतीघातोऽत्र विवक्षितः । यथा तैजसकार्मणयोरालोकान्तात् सर्वत्र नास्ति प्रतीघातः । न तथा वैक्रियिकाहारकयोः ॥

वृत्त्यनुवादः-मूर्तिमतः॥ मूर्ति-अन्तरेण॥ व्याघातः॥ =मूर्तिमानका (=मूर्तिमतः) अन्य मूर्तिमानकरि रुकावट (=व्याघात) है सो
प्रतीघातः॥ सः॥ न॥ अस्ति॥ अनयोः॥ =प्रतिघात है। सो (प्रतिघात=प्रतीघात) दोनों (तैजस और कार्मण शरीरोंके नहीं) हैं
इतिअप्रतीघाते॥ सूक्ष्मपरिणामात्॥ अयस-पिण्डे॥ तैजस्-=ऐसें दोनों प्रतिघात रहित हैं। सूक्ष्मपरिणमन(केकारण) से लोहेके पिंडमें अग्निका
अनुप्रवेशवत्॥ तैजस-कार्मणयोः॥ =क्रमसेप्रवेश(=अनुप्रवेश) के समान तैजस और कार्मण(शरीरों)का (प्रवेश)है ॥
न॥ अस्ति॥ वज्रपटलादिषु॥ व्याघातः॥ =नहीं है (इन दोनों शरीरोंका)प्रतिघात वा रुकावट वज्रपटलादिकोंमें अर्थात् अग्निका परिणमन सूक्ष्म है ॥ इसलिये कठिन भी लोहेके पिंडमें सूक्ष्म परिणमनके कारण जिसप्रकार अग्निका प्रवेश नहीं रुकता उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीरोंका परिणमन भी सूक्ष्महै इसलिये वज्रपटल आदि कैसेभी कठिन पदार्थ क्योंन बीचमें आपड़ें दोनोंशरीरोंका रुकना नहीं होता वे निरवच्छिन्नरूपसे प्रवेश करजाते हैं
ननु॥ च॥ वैक्रियिकआहारकयोः॥ अपि॥ न॥ अस्ति॥ प्रतीघातः॥ =बहुरि प्रश्न वैक्रियिक और आहारक(शरीर) निकैं भी व्याघात वा रुकावट नहीं है
सर्वत्र॥ अप्रतीघातः॥ अत्र॥ विवक्षितः॥ =(उत्तर) सब स्थानोंका अव्याघात यहां (इससूत्रमें) अपेक्षित है अर्थात् इससूत्रमें इस अप्रतिघातका कथन है जो सब स्थानोंमें संबंध रखताहो
यथा॥ तैजस-कार्मणयोः॥ आ॥ लोकान्तात्॥ सर्वत्र॥ =जैसे तैजस और कार्मण(शरीरों)का लोकके अन्ततक(=आ-लोकान्तात्)सब स्थानोंमें
न॥ अस्ति॥ प्रतीघातः॥ न॥ तथा॥ वैक्रियिक-आहारकयोः॥ =व्याघात नहीं है॥ तैसे नहीं है वैक्रियिक और आहारक (शरीरों) का (व्याघात) अर्थात् लोकके अन्त पर्यंत तैजस और कार्मणशरीरोंका कहीं भी प्रतिघात नहीं होता वैक्रियिक और आहारक शरीरोंका वैसा अप्रतिघात नहीं किंतु उनका प्रतिघात ऐसे होजाता है कि केवली और श्रुत केवलीके विना जिसका समाधान न हो सकै ऐसी तत्त्वविषयक गूढ शंका हो जानेपर उसकी निवृत्तिके लिये प्रमत्त गुणस्थान वर्ती संयमी

नित्यसम्बन्धिनी हि ते आसंसारक्षयात्। न एते तैजसकार्मणे किं कस्यचिदेव भवत उताविशेषेणेत्यत आह

॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥

सर्वशब्दो निरवशेषवाची। निरवशेषस्य संसारिणो जीवस्य ते द्वे अपि शरीरे भवत इत्यर्थः॥ अविशेषाभिधानात्तैरौदारिकादिभिः सर्वस्य संसारिणो यौगपद्येन सम्बन्धप्रसङ्गे

---

(१) नित्यसम्बन्धिनी[१/२]॥ हि॥ ते[१/२]॥ आ॥ संसारक्षयात्[५/१]। =क्योंकि(=हि)वेदोनों(=ते)नित्य संबंधवाले(जीवकें)संसारकेनाश होनेतक(=आ) हैं॥

ते[१/२]॥ एते[१/२]॥ तैजस-कार्मणे[१/२]॥ किम्॥ कस्यचित्॥ =वे (ये) तैजस और कार्मण शरीर क्या किसी (जीव) कें

एव॥ भवतः(२)। उत॥ अविशेषेण[३/१]। इति॥ अतः॥ आह। =ही होते हैं(=भवतः)अथवा(=उत)विशेषरहित(सबजीवोंकें)। इसलिये कहते हैं कि

सूत्रम्- सर्वस्य(३) **=सर्वस्य(संसारिणो जीवस्य)(परे-तैजसकार्मणेशरीरेभवतः)**

सूत्रार्थः-सर्वस्य[६/१]। संसारिणः[६/१]। जीवस्य[६/१]। परे[१/२]॥ =समस्त संसारी जीवकें परेके दो

तैजस-कार्मणे[१/२]॥ शरीरे[१/२]॥ भवतः। =तैजस और कार्मण शरीर होते हैं अर्थात् तैजस और कार्मण ये दोनों शरीर

=तैजस और कार्मण शरीर होते हैं यदि किसीकें वे दोनों शरीर न होंगे

सामान्यरूपसे सब संसारी जीवोंकें होते हैं यदि किसीकें वे दोनों शरीर न होंगे

तौ वह जोव संसारीही नहीं कहा जा सकता ॥

सर्व-शब्दः[१/१]। निर्-अवशेष-वाची[१/१]। निरवशेषस्य[६/१]। =(इससूत्रमें)सर्वशब्द निर्विशेष वा निःशेषका वाचक है। निखिल वा समस्त

संसारिणः[६/१]। जीवस्य[६/१]। ते[१/२]॥ द्वे[१/२]॥ अपि॥ शरीरे[१/२]॥ भवतः =संसारी जीवकें(=अपि)ही वे दो(तैजस और कार्मण)शरीर होते हैं

इति॥ अर्थः[१/१]। अविशेष-अभिधानात्[५/१]। =ऐसा आशय वा अभिप्राय है। सामान्यरूप (=अविशेष) कहनेसे (=अभिधानात्)

तैः[३/३]॥ औदारिक-आदिभिः[३/३]॥ सर्वस्य[६/१]। =उन औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस कार्मण शरीरोंके साथ, सब

संसारिणः[६/१]। (४)यौगपद्येनसम्बन्ध-प्रसङ्गे[७/१]। =संसारी(जीव)कें एककालमें (समकालमें=यौगपद्येन) संबंधका प्रसंग आनेपर

---

(१)सम्बन्धिन् शब्द त्रिलिंगीहै पुल्लिङ्ग में प्रथमा विभक्ति एक वचन सम्बन्धिनीहै यहां ते शब्द नपुंसकलिंग द्विवचन तद् शब्दकाहै और तैजस कार्मण दोनों शरीरोंके लियेआयाहैअतःयहांपर सम्बन्धिनी प्रथमाद्विवचन नपुंसक लिंगहै क्योंकि सम्बन्धिन्का प्रथमाविभक्ति द्विवचननपुंसक सम्बन्धिनीहै

(२)भवतः(भू=होना) धातुका अन्यपुरुष द्विवचन वर्तमान कालकी क्रिया है॥भवतः=दोनों होतेहैं॥(३) इससूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमेंएकहै

(४)यौगपद्येन,युगपत् क्रियाविशेषण हैं। एककालमें,ऐसा अर्थहै॥ यौगपद्य,यौगपद्=समकालता,एककालता ॥ यौगपदिक=एककालिक,(यहां विशेषणहै)

कार्यकारणभावसन्तत्या अनादिसम्बन्धे, विशेषापेक्षया सादिसम्बन्धेऽपि च वीजवृक्षवत् ॥
यथौदारिकवैक्रियिकाहारकाणि जीवस्य कादाचित्कानि, न तथा तैजसकार्मणे ।

सादिकालसे दोनों प्रकारका संबन्धहै यह उस चशब्दका प्रयोजनहै । चशब्दका ऐसा अर्थ प्रश्नोत्तर रूपमें
उसका शब्दशःअनुवादलेनेमें यों निकल आताहै कि अनादिसम्बन्धवाले भी(=च)हैं तो प्रश्नउठता है कि कोई
और प्रकारका संबंधवालेभी तैजसऔर कार्मण शरीरहैंवह संबंधक्याहै?वोसादि संबंधहै।चशब्दकायह प्रभावहै॥

कार्य-कारणभाव-सन्तत्या॥अनादि-सम्बन्धे॥=कार्यकारणके होनेरूप(=भाव)संतान (कीअपेक्षा) से अनादि सम्बन्धवाले हैं
च*विशेष-अपेक्षया॥सादिसम्बन्धे॥ अपि* =और(=च) विशेष विवक्षासे सादि संबंधवाले भी
वीजवृक्षवत्* =वीज और वृक्षके सदृश हैं अर्थात् जिस समय वीजसे वृक्ष,वृक्षसेवीज,वीजसेवृक्ष,वृक्षसे वीज, इस प्रकार सामान्यरूपसे कार्यकारणरूप संबंधकी विवक्षाकी जाती है उस समय वीज और वृक्षका कार्यकारणरूप अनादि संबंध माना जाताहै और जिस समय अमुक वीजसे अमुकवृक्ष,अमुकवृक्षसे,अमुकवीज इसप्रकार विशेषरूपसे कार्यकारणकी विवक्षा मानी जाती है उस समय वीज और वृक्षका यह सम्बन्ध सादि माना जाता है उसी प्रकार जिस समय आत्माके साथ तैजस कार्मण शरीरके निमित्त नैमित्तक सम्बन्धकी समान्यरूपसे विवक्षा कीजाती है उस समय आत्मा और तैजस,कार्मण शरीरोंका अनादि संबन्धहै क्योंकि अनादिकालसे ऐसा कोई भी समय नहीं वीता जिसमें तैजस कार्मणकी आत्मासे पृथक्ता हुई हो और जिस समय अमुक तैजस कार्मणका अमुक अवस्थापन्न आत्माके साथ संबन्ध है पुरातन अनंत परमाणुं दोनों शरीरोंकी समय समय निर्जरै हैंऔर नवीन नवीन अनंत परमाणु संचयरूप होतीहैइस विशेपकी अपेक्षासे ये तैजस और कार्मण दोनों शरीर सादि संबन्धवाले हैं । इसप्रकार विशेष विवक्षा है उस समय उनकी आपसमें निमित्तनैमित्तक सम्बन्ध सादि है । इस प्रकार सामान्य और विशेपकी अपेक्षा आत्मा और तैजस कार्मणका अनादि सादि दोनों प्रकारका संबंध सिद्ध है ॥ १०७

यथा*औदारिकवैक्रियिकआहारकाणि॥जीवस्य=जैसे औदारिक,वैक्रियिक और आहारक शरीर जीवके
कादाचित्कानि[1]॥न*तथा*तैजस-कार्मणे॥ =कभी कभी होनेवाले होते हैं नहीं है तैसे(कभी कभी होनेवाले) तैजस कार्मण शरीर

(१) कादाचित्क पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ१०३ में त्रिलिंगी है इसका अन्यपुरुष (=प्रथम पुरुष,) बहुवचन,नपुंसकलिंग'कादाचित्कानि' है ।

तानि तदादीनि। भाज्यानि विकल्पानि आ कुतः। आ चतुर्भ्यः। युगपदेकस्यात्मनः॥ कस्यचित् द्वे तैजसकार्मणे। अपरस्य त्रीणि औदारिकतैजसकार्मणानि, वैक्रियिकतैजसकार्मणानि वा। अन्यस्य चत्वारि औदारिकाहारकतैजसकार्मणानीति विभागः क्रियते॥ पुनरपि तेषां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

तानि$^{१}_{३}$। तदादीनि$^{१}_{३}$॥	=ते(=तानि)तदादीनि अर्थात् तिन (तैजस-कार्मण शरीरों) को आदिमें लेकर है
भाज्यानि$^{१}_{३}$॥ विकल्पानि$^{१}_{३}$॥ आ*कुतः*	=भाज्य है सो विकल्पतारूप वा विभागरूप करना है।(विभागरूप)कहां तक (=आ) है
(२) आ-चतुर्भ्यः$^{५}_{३}$॥युगपत्*एकस्य$^{६}_{१}$आत्मनः$^{६}_{१}$	=चार पर्यन्त एककालमें एक जीवकें हैं।
कस्यचित्*द्वे$^{१}_{२}$॥तैजस-कार्मणे$^{१}_{२}$॥अपरस्य$^{६}_{१}$	=किसी (जीव) कें दो तैजस और कार्मण (जो विग्रहगतिमेंहोते) हैं। दूसरे (जीव) कें
त्रीणि$^{१}_{३}$॥औदारिक-तैजस-कार्मणानि$^{१}_{३}$॥	=तीन(अर्थात्प्रायःमनुष्य-तिर्यंचोंकें)औदारिक,तैजस और कार्मण शरीर हैं
वा*वैक्रियिक-तैजस-कार्मणानि$^{१}_{३}$॥	=अथवा(देव-नारकियोंकें) वैक्रियिक,तैजस,कार्मण (ये तीन शरीर) होते हैं
अन्यस्य$^{६}_{१}$ चत्वारि$^{१}_{३}$॥	=अन्य(जीव-अर्थात् प्रमत्त संयमी छठवां गुणस्थानवर्ती किसीकिसीमुनि) कें चार
औदारिक-आहारक-तैजसकार्मणानि$^{१}_{३}$॥इतिविभागः	=औदारिक,आहारक, तैजस,कार्मण हैं इसप्रकार विभाग वा बांट
क्रियते। पुनः*अपि*तेषाम्$^{६}_{३}$॥	=कियाजाता है। फिरभी उन(औदारिक-वैक्रियक-आहारक-तैजस-कार्मण शरीरों)कें
विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्$^{१}_{१}$॥ आह।	=विशेष जाननेकेलिगे (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्(१)-निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥ =अन्त्यम् कार्मणम् निरुपभोगम् भवति॥४४॥

सूत्रार्थः-	(औदारिक-वैक्रियिक-आहारक-तैजस, कार्मण छत्तीसवांसूत्रमें कहेहुये शरीरों में)
अन्त्यम्$^{१}_{१}$॥ निर्-उपभोगम्$^{१}_{१}$॥	=अन्तिम कार्मण शरीर (मन और इन्द्रियों द्वारा शब्दादिके) उपभोगसे रहित है।

अर्थात् जैसेऔदारिक,वैक्रियिक,आहारक,शरीर आत्माको मन और पांच इन्द्रियोंद्वारा उपभोगकाकारण होतेहैंतैसे कार्मण शरीर पांच इन्द्रियऔर मनकीसहायता से जीवको उपभोगकाकारण नहीं है

जीवकें पाचों शरीर नहीं होते हैं॥ और वैक्रियिक तथा आहारक भी एककालमें नहीं होते क्योंकि वैक्रियिक तथा आहारकके स्वामीमें विशेषभेदहै

(१)दोनोंआम्नायोंमें इससूत्रकापाठ,अर्थ एकहै॥हमारे यहांकहीं कहींपर मन्त्यम्'केस्थानमें मन्त्य'है सोकातन्त्ररूपमाला व्याकरणकेमतकेअतिरिक्तअशुद्ध है

(२)यहांआङ्'(=आ)काअर्थअभिविधिहैऽतःचारतक शरीर होसकते हैं।यदिमर्यादा अर्थ मानाजाताता चारसेभीनरकेशरीरअर्थात्तीनतकहोने जोअनिष्टहै॥

सम्भविशरीरप्रदर्शनार्थमिदमुच्यते—

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥

तच्छब्दः प्रकृततैजसकार्मणप्रतिनिर्देशार्थः । ते तैजसकार्मणे आदिर्येषां

सम्भवि-शरीर-प्रदर्शन-अर्थम्।इदम्।उच्यते । =(एक जीवमें)एकसाथहोनेवाले(=सम्भविन्)शरीरोंके दिखावनेकेलिये यह कहा जाताहै कि

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः=[1]तद्-आदीनि भाज्यानि युगपद् एकस्मिन्ना-चतुर्भ्यः

सूत्रार्थः–तद्-आदीनि। भाज्यानि। =उन(तैजस,कार्मण)को आदिलेकर विभाजितकिये हुये वा विकल्परूप कियेहुये

युगपद्(युगपत्)एकस्मिन्आ-चतुर्भ्यः।भवन्ति । =एककालमें एक(जीवों)में चार(शरीर)तक होते हैं अर्थात् दो शरीर होंतौ तैजस और कार्मण होते हैं। तीन हों तौ औदारिक तैजस और कार्मण होते हैं वा वैक्रियिक,तैजस और कार्मण ये तीन भी होते हैं परन्तु ये देव तथा नरक गतियोंमें हीहोते हैं। यदि किसीकें एक साथ चार शरीर हों तौ औदारिक, आहारिक, तैजस, और कार्मण अथवा औदारिक, वैक्रियिक,तैजस और कार्मण होते हैं। यह नियम है कि जिसकें वैक्रियिक होता है उसकें आहारक नहीं होता और जिसकें आहारक होता है उसकें वैक्रियिक नहीं होता है ॥ एक शरीर वाला कोई भी जीव संसारमें नहीं है ॥

त्यनुवादः-तद्-शब्दः।प्रकृत-तैजस-कार्मण-प्रति निर्देश-अर्थः।ते।तैजस-कार्मणे।आदिः।येषाम्। =(इससूत्रमें)तद् शब्दहै सो प्रकरण कियेहुये वा विषयभूत तैजस और कार्मणको प्रगट करनेके लिये है। वे तैजस और कार्मण शरीर हैं आदि जिनकें

(१) हमारे यहां बहुधा पुस्तकों में उपर्युक्त पाठ है किसी किसी पुस्तक में(जैसे पं० पन्नालालजी बाकलीवाल अनुवादित मोक्ष शास्त्र पृष्ठ १६ में) एकस्मिन् शब्दके स्थानमें " एकस्य " शब्द है परंतु इस पाठ से अर्थ भेद नहीं हुआ। क्योंकि एकस्मिन्+आ-चतुर्भ्यः=एक (जीव) में चार तक होते हैं यही तात्पर्य रखता है जो एकस्य-आ-चतुर्भ्यः=एक (जीव) कें चार तक होते हैं रखता है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में' एकस्याऽऽचतुर्भ्यः" पाठहै सो हमारे यहां के एक पाठ से मिलताहै। अर्थ भी जब उनके यहां तैजसको अनादि मानाहै तब एक है। परंतु सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ५३में यह भी लेखहै कि "तैजसके अनादि सम्बन्धताके खंडन पक्षमें, एक ही शरीर का जब अनादि संबंध है तब केवल कार्मण ही एक हो सकता है। दो की सत्तामें कार्मण और औदारिक होसकते हैं अथवा कार्मण और वैक्रियिक हो सकते हैं। तथा तीनकी योग्यता में कार्मण औदारिक और वैक्रियिक हो सकते हैं या कार्मण, औदारिक और आहारक हो सकते हैं और चारकी योग्यता में कार्मण तैजसऔदारिक और वैक्रियिक होसकतेहैं या कार्मण,तैजस,औदारिक और आहारक होसकतेहैं। परंतु कदाचित् भी एक कालमेंएककें पांचोंनहींहोते।

तैजसं शरीरं योगनिमित्तमपि न भवति, ततोऽस्योपभोगविचारेऽनधिकारः ॥

एवं तत्रोक्तलक्षणेषु जन्मसु अमूनि शरीराणि प्रादुर्भावमापद्यमानानि किमविशेषेण भवन्ति, उत कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—

तैजसं[1]॥शरीरं[1]॥योगनिमित्तम्[1]॥अपि*न*भवति। ततः*अस्य[6]। उपभोग-विचारे[7]। अनधिकारः[1]।

=(उत्तर)[1] तैजस शरीर (मनःवचन कायके) योगका कारण भी नहीं होता है तिससे(ततः) इस(तैजस)का उपभोगके निर्णयमें प्रकरण वा अधिकार नहीं है

भावार्थ योगके पन्द्रह भेदहैउनमें औदारिक,औदारिकमिश्र,वैक्रियिक,वैक्रियिकमिश्र आहारक,आहारकमिश्र और कार्मण ये सात भेद काययोगके मानेगये हैं इनमें तैजस योग नामका कोई भी भेद नहीं है इसलिये तैजस शरीर योगका कारण नहीं मानागया है और यहां पर उपभोगके विचारमें केवल वे शरीर प्रकरणमें लियेगये हैं वा वे शरीर विषयभूत हैं जो योगका कारण हैं अतः तैजस शरीर उपभोगके विचारमें अधिकृत वा प्रकरणभूत नहींहै। इसीहेतुसे औदारिक वैक्रियिक आहारक और कार्मण योगनिमित्त शरीरोंमें से अन्तमें रहनेवाला कार्मण शरीरको निरुपभोग कहा है। ऐसाअर्थ यहांविवक्षित है॥

एवम्*तत्र*उक्त-लक्षणेषु[7]॥जन्मसु[7]॥अमूनि[1]॥ शरीराणि[1]॥किम्[1]॥ अविशेषेण[3]॥प्रादुर्भावम्[2]॥ आपद्यमानानि[1]॥भवन्ति। उत*कश्चित्*अस्ति प्रतिविशेषः[1]॥ इति*अतः*आह।

=इसप्रकार तहां कहेगये हैं लक्षण जिनके ऐसे जन्मजे हैं तिनमें ये (=अमूनि) =शरीर क्या विशेषकरिरहित प्रगटपना को =प्राप्त होते हैं (अर्थात् उत्पन्न होते हैं) अथवा (=उत) कुछ विशेष है ॥ उत्तर =(तीनों प्रकारके जन्मोंमें इन पांचों शरीरोंकी उत्पत्तिमेंविशेषहै)अतःऐसे कहतेहैंकि

(१) निरुपभोगमिति वचनात् अर्थादापन्नमेतदितराणि सोपभोगानीति= निरुपभोगम् इति वचनात्, अर्थादापन्नम् एतद् इतराणि स-उपभोगानि =निरुपभोगम् ऐसे वचनसे अर्थापत्ति प्रमाण तें यह सिद्ध होता है कि और शरीर उपभोग सहित हैं ॥
इति ॥ तत्त्वार्थ राज वार्तिक पृष्ठ १०६= सामर्थ्यादन्यत्सोपभोग गम्यते= सामर्थ्यात् अन्यत् स-उपभोग गम्यते= सगतअर्थतासे अन्य शरीर उपभोग सहित जानेजाते हैं तत्त्वार्थ श्लोक-
वार्तिक पृष्ठ ३४० में और अन्य अनुवादकोंने भी यही लिखा है कि अन्य शरीर उपभोग सहित है ॥ मेरी समझमें इन सबका यह अभिप्राय
है कि योगके कारणकी विवक्षासे तीन औदारिक, वैक्रियिक आहारक शरीर उपभोग सहित हैं (=सोपभोग हैं)और कार्मण शरीर उपभोगरहित
है अब रहा तैजस सो योगका कारण नहीं है इससे सूत्रमें उसको विषय प्रकरण वा अधिकारसे बाहर समझकर उसका विशेषरूपसे कथन नहीं
किया है॥ सदासुखजीकृत 'अर्थप्रकाशिकामें' तैजस शरीरके सम्बन्धमें निम्नलेख है "तैजस शरीर योगका निमित्त भी नाहीं है यातैं तैजस शरीर
निरुपभोग है ही यातैं याकू सूत्रमें नहीं कह्या यातौ विना कह्याही निरुपभोग है ॥ तैजस कार्मण शरीरकै अंगोपांग भी नाहीं है यातैं वचनका
बोलना सुनना इत्यादिक नहीं ॥ तातै ए दोऊही शरीर निरुपभोग हैं। परन्तु सभाष्यपृष्ठ५४० में चत्वारि "शेषाणि तु सोउपभोगानि" ऐसालेख है

अन्ते भवमन्त्यम् । किं तत्? कार्मणम् ॥ इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामुपलब्धिरुपभोगः। तदभावान्निरुपभोगम् ॥ विग्रहगतौ सत्यामपि इन्द्रियलब्धौ द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्त्यभावाच्छब्दाद्युपभोगाभाव इति ॥ ननु तैजसमपि निरुपभोगम् । तत्र किमुच्यते निरुपभोगमन्त्यमिति ॥

वृत्त्यनुवादः–अन्ते। भवम्॥ =(छत्तीसवां सूत्रमें औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, के)अन्तमें जो है
अन्त्यम्॥ किम्॥ तत्॥ कार्मणम्॥ =सो अंतिम वा अंतका(=अन्त्यम्) है । वह क्या है? (वह) कार्मण (शरीर) है ।
इन्द्रिय-प्रणालिकया॥शब्द-आदीनाम्॥उपलब्धिः॥=इन्द्रियोंके द्वारकरि(=प्रणालिकया)शब्द,स्पर्श,रस,गन्ध,वर्णोंका(=आदीनाम्)ग्रहण है
उपभोगः॥ तत्-अभावात्॥ निर्-उपभोगम्॥ =सो उपभोग है । उस(उपभोग)की अविद्यमानतासे 'निरुपभोग' है ॥
विग्रह–गतौ॥ इन्द्रिय– =नवीन शरीर(ग्रहण वा धारणकरने)के लिये गमनमें(जीवकें)इन्द्रियोंकी
लब्धौ। सत्याम्॥ अपि* =(क्षयोपशमरूप)लब्धि होनेपर भी अर्थात् क्षयोपशमरूप लब्धिके निमित्तसे भावस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना और उनके विद्यमान रहनेपर भी
द्रव्य-इन्द्रिय-निर्वृत्ति-अभावात्॥शब्द-आदि-उपभोग-=द्रव्यइन्द्रियोंकी रचनाके(=निर्वृत्ति) न होने (केहेतु) से शब्दादिक उपभोगका
अभावः॥इति* =अभाव है अर्थात् विग्रहगतिमें भावस्वरूप इन्द्रियोंके रहतेभी(देखो सूत्र १८) द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना (देखो सूत्र १७) का अभाव है इसलिये शब्दादिका अनुभव न होनेसे कार्मणशरीर निरुपभोग ही है(सोपभोग नहीं है=स–उपभोगनहींहै)
ननु*तैजसम्॥अपि*निर्-उपभोगम्॥तत्र* =प्रश्नः-तैजस(शरीर)भी उपभोगसे रहित है । तहां (विग्रहगतिमें भावस्वरूप इन्द्रियोंके रहनेपर और द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंके रचनाके अभावमें)
किम्॥उच्यते। निर्-उपभोगम्॥अन्त्यम्॥इति* =अन्तका(कार्मण शरीर)उपभोगरहित ऐसा क्यों कहागयाहै?प्रश्नका आशय यह है कि विग्रहगतिमें जैसे इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके ग्रहणरूप उपभोगसे कार्मण शरीर भावइन्द्रियों के रहनेपर भी निरुपभोग है वैसेही तैजस शरीर भी विग्रहगतिमें भावइन्द्रियोंके होनेपर भी इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके ग्रहणरूप उपभोगसे रहित है । जब दोनोंकी अवस्था एकसी है फिर कार्मण शरीर ही निरुपभोग क्यों कहागया, तैजसभी उसके साथ साथ क्योंन निरुभोग कहागया ॥

सर्वं वैक्रियिकं वेदितव्यम् ॥ यद्यौपपादिकं वैक्रियिकं, अनौपपादिकस्य वैक्रियिकत्वाभाव इत्यत आह-

॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥

चशब्देन वैक्रियिकमभिसम्बध्यते। तपोविशेषादृद्धिप्राप्तिर्लब्धिः। लब्धिः प्रत्ययः कारणमस्य लब्धिप्रत्ययम्। वैक्रियिकं लब्धिप्रत्ययं च भवतीत्यभिसम्बध्यते ॥ किमेतदेव लब्ध्यपेक्षमुतान्यदप्यस्तीत्यत आह-

॥ तैजसमपि ॥ ४८ ॥

सर्वम्१।।।वैक्रियिकम्१।।।वेदितव्यम्१।।।;यदि* =समस्त वैक्रियिक(शरीर)ज्ञात कियेजाना चाहिये। जो
औपपादिकं१।।। वैक्रियिकम्१।।।अन्-औपपादिकस्य६। =उपपादजन्म वैक्रियिक (शरीर) होता है तो उपपादजन्म न होनेवालेकें
वैक्रियिकत्व-अभावः१इति*अतः*आह T =वैक्रियिकपना का अभाव होगा। इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्-(१)लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७॥ =लब्धिप्रत्ययं च(वैक्रियिकं भवति)॥ ४७ ॥

सूत्रार्थः-लब्धि-प्रत्ययम्१।।।च*वैक्रियिकम्१।।।भवति T=तपोविशेषरूपऋद्धिकी प्राप्ति(=लब्धि)हैकारणजिसको ऐसाभीवैक्रियिक(शरीर)होताहै
अर्थात् तपकेद्वाराउत्पन्नहुई ऋद्धिके निमित्तसेभी वैक्रियिक शरीर मनुष्य,तिर्यंचकें होताहै

वृत्त्यनुवादः-च-शब्देन३।वैक्रियिकम्१।।।अभिसंबध्यते T=(इससूत्रमें)च शब्दकरि वैक्रियिक शरीर संबंधित है वा लियागया है
तपस्-विशेषात्५।ऋद्धिप्राप्तिः१।।लब्धिः१।। ॥ लब्धिः१।।=तपके विशेषसे ऋद्धिकी प्राप्ति सो लब्धि है। लब्धि है
प्रत्ययः१।कारणम्१।।।अस्य६।लब्धि-प्रत्ययम् १।।। =निमित्त कारण जिसका सो लब्धिप्रत्यय है
वैक्रियिकम्१।।। लब्धिप्रत्ययम्१।।। च*भवति T इति*=वैक्रियिक (शरीर) लब्धि निमित्तक भी (=च) होता है ऐसा
अभिसम्बध्यते T किं१।।।एतद्१।।।एव*लब्धि-अपेक्षम्=सम्बंध कियागया है। क्या वह(वैक्रियिक शरीर) ही लब्धिके निमित्तसे है
उत*अन्यत्*अपि*अस्ति T इति*अतः*आह T =वा और भी(कोई शरीर लब्धिप्रत्यय)है इसलिये(अग्रिम सूत्रमें)कहते हैं कि

सूत्रम्-तैजसमपि(२) ॥ ४८ ॥ =तैजसमपि (शरीरं लब्धिप्रत्ययं भवति) ॥ ४८ ॥

(१)इस सूत्रका श्वेताम्बर और दिगम्बर दोना आम्नायोंमें पाठ और अर्थ एकसाहै॥इस सूत्रमें'वैक्रियिक'शब्दकी अनुवृत्ति छयालीसवांसूत्रसेलीगईहै॥
(२)सभाष्य०मे यहसूत्र, सूत्ररूपमें नहीं दियाहै॥शुभविशुद्धम् इत्यादि सूत्रकी व्याख्यामें "तैजसमपि शरीरं लब्धिप्रत्ययं भवति" ऐसावाक्यपायाजाताहै

॥ गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥

सूत्रक्रमापेक्षया आदौ भवमाद्यम्। औदारिकमित्यर्थः॥ यद्गर्भजं यच्च सम्मूर्च्छनजं तत्सर्वमौदारिकं द्रष्टव्यम्॥ तदनन्तरं यन्निर्दिष्टं, तत्कस्मिन् जन्मनीत्यत आह—

॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥

उपपादे भवमौपपादिकम्। तद्-

सूत्रम्—[1]गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् =गर्भजम् सम्मूर्च्छजम् च आद्यम् भवति ॥ ४५॥

सूत्रार्थः-गर्भजम्॥ सम्मूर्च्छजम्॥ =जो गर्भसे उत्पन्नहोता है और सम्मूर्च्छनसे उत्पन्न होता है

आद्यम्॥भवति। =सो(छत्तीसवां सूत्रमें वर्णित)आदिका वा पहिला(औदारिक शरीर)है अर्थात् वह आदिका औदारिक शरीर गर्भरूप और सम्मूर्च्छनरूप जन्ममें उत्पन्न होता है अथवा जिसकी उत्पत्ति गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मसे है वह औदारिक शरीर है

वृत्यनुवादः-सूत्र-क्रम-अपेक्षया आदौ॥भवम्॥आद्यम्=(औदारिक,वैक्रियिक आदिछत्तीसवां)सूत्रकीक्रम विवक्षासे आदिमें हो सो आद्य है

औदारिकम्॥इति*अर्थः॥यद्॥गर्भजम्॥ =औदारिक(शरीर)है ऐसा अभिप्राय है। जो गर्भ से उत्पन्न होता है

यद्॥च*सम्मूर्च्छनजम्॥तत्-सर्वम्॥औदारिकं द्रष्टव्यम् =और जो सम्मूर्छनसे उपजता है सो सब औदारिक (शरीर) समझना चाहिये

तद्-अनन्तरम्॥ यद्॥निर्दिष्टम्॥ =(उस औदारिक शरीर)के अत्यन्त समीप जो वर्णन कियागया(वैक्रियिक शरीर)

तद्॥कस्मिन॥जन्मनि॥इति*अतः*आह। =सो किस जन्म में है। इस लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्--औपपादिकं वैक्रियकम्॥४६॥=औपपादिकं वैक्रियिकम् भवति ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थः-औपपादिकम्॥ वैक्रियिकम्॥ भवति। =उपपाद जन्ममें हो सो वैक्रियिक (शरीर) होता है॥

वृत्यनुवादः-उपपादे॥भवम्॥औपपादिकम्॥तद् =उपपाद (जन्म) विषैं हो सो औपपादिक है। सो (उपपाद जन्म में)

---

(१) इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एक है। आद्यम् के स्थानमें जहां 'आद्य' है वह कातंत्र रूपमाला व्याकरणमतके अतिरिक्त अशुद्ध है (अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ ५ देखो)(२)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यमें "वैक्रिय मौपपातिकम्" पाठ है।पाठ भिन्न होने पर भी दोनों का अर्थ एकसा है॥

शुभकारणत्वाच्छुभव्यपदेशः । शुभकर्मणः आहारककाययोगस्य कारणत्वाच्छुभमित्युच्यते । अन्नस्य प्राणव्यपदेशवत् ॥ विशुद्धकार्यत्वाद्विशुद्धव्यपदेशः । विशुद्धस्य पुण्यस्य कर्मणः अशबलस्य निरवद्यस्य कार्यत्वाद्विशुद्धमित्युच्यते ।

च॰ विशुद्धम् १।१ =विशुद्ध है अर्थात् विशुद्ध या निर्दोष कर्मका कार्य है और (=च)

अव्याघाति १।१ =किसीदूसरेद्वारा रुकनेवाला नहींहैअन्यकिसी दूसरेको रोकनेवाला भी नहींहै (और)

प्रमत्तसंयतस्य६।१ मुनेः६।१ एव॰भवति T =प्रमत्तसंयमी छठवां गुणस्थानवर्ती मुनिकेंही (=एव) होता है । अन्य किसी दूसरे गुणस्थानवर्ती मुनिकें नहीं होता है । उक्तमुनिकें औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर तो होते ही हैं । परंतु सब प्रमत्तसंयमी मुनियोंके आहारक नहीं होता है

वृत्त्यनुवादः—शुभ—कारणत्वात्५।१शुभ-व्यपदेशः१।१=शुभका कारण होनेसे (आहारक-शरीर इससूत्रमें) शुभ-ऐसा नाम है (अर्थात्)

शुभ-कर्मणः६।१आहारककाययोगस्य६।१कारणत्वात्५।१=आहारककाययोगकें शुभकर्मका निमित्त होनेसे

शुभम्१।१इति॰उच्यते T =(इसके होते) शुभ प्रकृतिहीका वन्ध होता है (तिससे) शुभ ऐसा कहागया है

अन्नस्य६।१ प्राण—व्यपदेशवत्॰ =अन्नको प्राण कहनेके समान है अर्थात् जैसे अन्न है सो प्राण यथार्थमें नहीं है वरन प्राणके रखनेका कारण है तैसेही आहारक शरीर वास्तविकमें शुभ नहीं है शुभका कारण है अन्नको प्राण कहना और आहारक को शुभ कहना दोनों स्थानोंमें कारणमें कार्यका उपचार वा व्यवहार किया है

विशुद्ध-कार्यत्वात्५।१ विशुद्ध—व्यपदेशः १।१ =निर्दोष(=विशुद्ध)कार्यहोनेसे (इससूत्रमें) विशुद्धऐसा नाम (आहारक शरीरका) है ।

विशुद्धस्य६।१ अशबलस्य६।१ निरवद्यस्य६।१ =विशुद्ध, विशदवा निर्मल (=अशबलस्य) दोष रहित (निरवद्यस्य)

पुण्यस्य६।१कर्मणः६।१कार्यत्वात्५।१विशुद्धम्१इतिउच्यते=पुन्यकर्मका (आहारक काययोगकें)कार्यहोनेसे विशुद्ध ऐसा कहा जाता है

उक्त सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में जहां आहारक शरीर के स्वामी का कथन किया है वहां "आहारक के स्वामी चोदह पूर्वके धारक संयत मनुष्य है" ऐसा वाक्य पृष्ठ ५= में लाये हैं इस से प्रगट है कि श्वेताम्बर समाज में प्रमत संयमी और अप्रमत सयमी दोनों गुण स्थान वर्तियों मुनियोंकें आहारक शरीर होता है हमारे यहां केवल प्रमत्त संयमी छठवें गुण स्थानवर्ती मुनिकें ही मस्तक से उत्पन्न होता है ॥

अपिशब्देन लब्धिप्रत्ययमभिसम्बध्यते । तैजसमपि लब्धिप्रत्ययं भवतीति ॥

वैक्रियिकानन्तरं यदुपदिष्टं तस्य स्वरूपनिर्द्धारणार्थं स्वामिनिर्देशार्थं चाह—

॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥

सूत्रार्थः-[1]तैजसं१।१ अपिशरीरं१।१ लब्धिप्रत्ययम्१।१=तैजस शरीर भी (=अपि) तपोविशेषरूपऋद्धि प्राप्तिके निमित्तसे
भवति T =होताहै अर्थात् तैजस शरीर भी ऋद्धिहोनेसे प्राप्तहोताहैअतः वहभी[2]लब्धिकारणक है

वृत्त्यनुवादः-अपिशब्देन३।१लब्धिप्रत्ययं२।१अभिसंबध्यते=(इससूत्रमें)अपि शब्दकरि"लब्धिप्रत्यय" वाक्य (इसीसूत्रमें) लगाया जाता है
तैजसं१।१ अपि*लब्धिप्रत्ययं१।१ भवति T इति* =तैजस(शरीर)भी ऋद्धिकेप्राप्ति-निमित्तक-(वा ऋद्धिकी प्राप्तिके कारणसे) होताहै
वैक्रियिक-अनन्तरम्१।१यद्१।१उपदिष्टम्१।१तस्य६।१=वैक्रियिक (शरीर)के अत्यन्त समीप निर्देश कियागया (आहारकशरीर) तिसके
स्वरूप-निर्धारणार्थं१।१चस्वामिन्-निर्देशार्थं१।१आह=स्वभाव निर्णय वा निश्चयकेलिये और(तिसके)अधिपति के निरूपणके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्— शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥
=शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव[3]मुनेर्भवति

सूत्रार्थः-आहारकम्१।१शुभम्१।१ =आहारक शुभहै-शुभकर्मका कारण है-इसकेहोते शुभ प्रकृतिहीका बन्ध होता है

(१) "तैजसके दोय भेद हैं । एक निः सरण स्वरूप । दूसरा अनिः सरण स्वरूप ॥ तहां निःसरण तैजस शुभाशुभ भेदकरि दोय प्रकार है । तिनमें जो तपश्चरणके धारक मुनिकैं कोऊ क्षेत्रमें रोग मारी दुर्भिक्षादिकरि लोकनिकैं दुःखी देखि जो करुणा अत्यन्त उपजिआवै तदि दक्षिणस्कंधमें तैं तैजसपिंड निकलिकरि द्वादश योजन प्रमाण क्षेत्रके जीवनिका दुःख मेटि आत्मा में प्रवेश करै सो शुभ तैजस है ॥ अर कोऊ क्षेत्रके लोकनि ऊपर अत्यंत क्रोधित होय तदि ऋद्धिके प्रभावतैं वामस्कंधतैं सिंदूर समान रक्तवर्ण अग्निरूप आत्माके प्रदेश निकलैं सो आदि में तौ सूच्यंगुलके असंख्यातवांभाग प्रमाण अर अंत पर्यंत क्रमतैं वधता काहलके (=बिलावके) आकार निकसि द्वादश योजन प्रमाण समस्त जीव पुद्गलनिकूं भस्मकरि उलटा शरीरमें प्रवेश करि मुनिकूं दग्ध करै है सो मुनि तो नरककूं प्राप्त होय है" ॥ ऐसा शुभ अशुभ निः सरण स्वरूप तैजस शरीर है ॥ अर अनिः सरण स्वरूप तैजस समस्त संसारी जीवनिकैं देहकी दीप्तिका कारण है सो लब्धि प्रत्यय नहीं है॥"देखो अर्थप्रकाशिकामें सूत्र४९ ॥
(२ छत्तीसवां सूत्रके क्रमसे तैजसके कथन से पहिले आहारकका कथन होना चाहिये,परंतु लब्धिप्रत्ययकी अनुवृत्ति लेनेके लिये"तैजसमपि"प्रथम कहा पीछे आहारक (३) हमारे पाठ सर्वत्र एक है ॥ सभाष्य० में "प्रमत्त संयतस्यैव" के स्थान में "चतुर्दशपूर्वधरस्यैव"वाक्य है । शेष पाठ एक है ।

आहारकमिति प्रागुक्तस्य प्रत्याम्नायः॥यदाऽऽहारकशरीरं निर्वर्तयितुमारभते,तदा प्रमत्तोभवतीति प्रमत्तसंयतस्येत्युच्यते॥इष्टतोऽवधारणार्थमेवकारोपादानम्।यथैवं विज्ञायेत प्रमत्तसंयतस्यैवाहारकं नान्यस्येति।मैवं विज्ञायि,प्रमत्तसंयतस्याहारकमेवेति।माभूदौदारिकादिनिवृत्तिरिति॥एवं विभक्तानि शरीराणि बिभ्रतां संसारिणां प्रतिगति किं त्रिलिङ्ग-

---

वहां उनके जानेकी इच्छा होजाय और यदि मैं औदारिक शरीरसे जाऊंगा तो जीवोंका विघातरूप महा-असंयम होगा ऐसा विचारकर वह मुनि औदारिक शरीरसे जाना उचित न समझें उस समय वह संयमकी रक्षाके लिये आहारक शरीरका निर्माण करते हैं,इसलिये संयमकी रक्षाभी आहारक शरीरका प्रयोजन है ॥

प्राग्–उक्तस्य[६/१]॥आहारकम्[१/१]॥इतिप्रत्याम्नायः[१/१]=पहिले वा उपर्युक्त कहेहुये(शुभ-विशुद्ध-अव्याघाति)को(केलिये सूत्रमें)आहारकऐसापाठहै

अर्थात् आहारकशरीर शुभ,विशुद्ध,अव्याघाति है यह बतानेको सूत्रमें 'आहारक'काग्रहण है

यदा*आहारकशरीरम्[२/१]॥ निर्वर्तयितुम्[२/१]॥ =जिस समय (मुनि) आहारक शरीर रचनेको (=निर्वर्तयितुम्—हेत्वर्थकृदन्त है)

आरभते। तदा*प्रमत्तः[१/१]भवति। इति* =आरम्भ करता है। तब (वह मुनि) प्रमादसहित वा प्रमादयुक्त होता है ॥

(क्रियारूप प्रवर्तनेको यहां प्रमादकहा है नकि अविरतकीज्यों प्रमादहोता है तिसकोकहा)

प्रमत्तसंयतस्य[६/१]इति*उच्यते। =(इसलिये) प्रमत्तसंयमीमुनिकें (=प्रमत्तसंयतस्य)ऐसा (वाक्य सूत्रमें) कहा गया है

इष्टतः*अवधारण-अर्थम्[१/१]॥एवकारः उपादानम्[१/१]॥ =वाञ्छित नियमकेलिये (सूत्रमें) 'एव'शब्दका ग्रहण है

यथा*एवम्*विज्ञायेत। प्रमत्तसंयतस्य[६/१] =क्योंकि (=यथा) ऐसा जानो (विज्ञायेत) कि प्रमत्तसंयमी(मुनि) कें

एव*आहारकम्[१/१]॥न*अन्यस्य[६/१]इति* =ही आहारक शरीर होता है नकि और किसी (गुणस्थानवर्ती) मुनिकें

मा*एवम्*विज्ञायि। प्रमत्तसंयतस्य[६/१] =इस प्रकार न जानो कि प्रमत्तसंयमी(छठवांगुणस्थानवर्ती) मुनिकें

आहारकम्[१/१]॥एव*इति*(१)माभूत्। =केवलएक(=एव) आहारक शरीर है। (क्योंकि उक्तमुनिकें) नहीं होगया है (माभूत्)

औदारिक-आदि-निवृत्तिः[१/१]॥ इति* =औदारिक शरीर,तैजस कार्मण शरीरोंका (=आदि) निषेध ॥

एवम्*विभक्तानि[१/३]॥शरीराणि[१/३]॥बिभ्रताम्[६/३]। =इसप्रकार भिन्न भिन्न वा पृथक् पृथक् शरीर धारणकरनेवाले(=बिभ्रताम्)

संसारिणाम्[६/३]। प्रतिगति*(२)किम्*त्रिलिङ्ग– =संसारी (जीव) निकी प्रत्येकगतिमें क्या तीनोंवेद (स्त्री–पुरुष-नपुंसक) के

---

(१)'मा'निषेध वाची अव्ययहै.लुङ्(अद्यतनीभूत क्रिया)केसाथ आनेपर लुङ् के'अट्'(अ,कोलोप होताहै'भू'का लुङ् एकवचन अभूत् है।उसका'अ'जातारहा

(२)'प्रतिगति'अव्ययीभाव समास है। अकारांत शब्दोंमें अम्(=म्)का आदेश होताहै। इकारान्त,उकारान्त हलन्त शब्दोंकी विभक्तियोंका लोप होजाताहै

तन्तूनां कार्पासव्यपदेशवत् ॥ उभयतो व्याघाताभावादव्याघाति ॥ न ह्याहारकशरीरेणा-न्यस्य व्याघातः। नाप्यन्येनाहारकस्येति। तस्य प्रयोजनसमुच्चयार्थःचशब्दःक्रियते ॥ तद्यथा कदाचिल्लब्धिविशेषसद्भावज्ञापनार्थं,कदाचित्सूक्ष्मपदार्थ,निर्द्धारणार्थं संयमपरिपालनार्थं च ।

तन्तूनाम्॥कार्पास-व्यपदेशवत्* =(कपासके) धागे वा डोरोंको कपास कहनेके सदृशहै भावार्थ जैसे तंतु कपासके कार्य हैं और कपास कारण है तथापि उपचारसे कार्यको कारणमानकर तंतुओंको कपास कहदिया जाता है और'कार्पासाःतांतवः'तंतु कपासहैं ऐसा संसारमें व्यवहार होताहै वैसेही (=अशबलस्य)निर्दोप(=निरवद्यस्य)पुन्यकर्मका कार्य है आहारक शरीर भी विशुद्ध निर्मल वा स्वच्छ(=अशवलस्य)निर्दोप(=निरवद्यस्य)पुन्यकर्मका कार्य है इसलिये वह आहारक शरीरभी उपचारसे विशुद्ध कहदिया गया है ॥

उभयतः*व्याघात-अभावात्॥ अव्याघाति ॥ =दोनों रीतिसे रुकनेके अभावसे (आहारक शरीर) अव्याघाति है

न*हि*आहारक-शरीरेण॥अन्यस्य॥व्याघातः॥ =क्योंकि (=हि) नहीं है आहारक शरीरसे दूसरेका रुकाव

न*अपि*अन्येन॥आहारकस्य॥ इति* =(और)न दूसरेकरि आहारक शरीरकाभी (रुकावट वा प्रतिघात)होता है

तस्य॥प्रयोजन-समुच्चय-अर्थः॥चशब्दः॥क्रियते। =तिस (आहारक)के प्रयोजनोंके समुदायके लिये (सूत्रमें) चकार लायागया है

तद्यथा*कदाचित्*लब्धि-विशेप-सद्भाव-ज्ञापन-अर्थम्॥ =जैसे कभी ऋद्धि(=लब्धि) विशेपकी विद्यमानता (=सद्भाव) जाननेके लिये। कभी सूक्ष्म वस्तुके निर्णय वा निश्चयकरनेके लिये

कदाचित्*सूक्ष्म-पदार्थ-निर्द्धारण-अर्थम्॥ =(कभी) समयकी रक्षाकेलिये

च*संयम-परिपालन-अर्थम् ॥ =और(=च)

अर्थात् किसी समय कोई विशेप लब्धि प्राप्त होजाय उस समय उसकी सत्ता जाननेके लिये आहारक शरीर प्रयोजनीय होताहै।किसी समय सूक्ष्म-पदार्थके निर्धारणके लिये आहारक शरीरका प्रयोजन पड़ताहै, असंयम दूर करनेके लिये अथवा संयमको पालनेके लियेभी उसका प्रयोजनहै ॥ संयमकी रक्षाके लिये आहारक शरीर इस भांति प्रयोजनीय होता है कि जिस समय भरत और ऐरावत क्षेत्रोमें तीर्थंकरोंकी विद्यमानता न हो और प्रमत्त संयमी मुनिको ऐसी तत्त्व विपयक शंकाहो जाय कि जिसका समाधान केवली वा श्रुतकेवलीके विना न होसके इसलिये महाविदेह क्षेत्रोंमें जहांकि केवली विर

नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकान्येवेति नियमः ॥ तत्र हि स्त्रीपुंसविषयमनोज्ञशब्दगन्धरूप-रसस्पर्शसम्बन्धनिमित्ता स्वल्पाऽपिसुखमात्रा नास्ति ॥ यद्येवमवधियते, अर्थादापन्नमेत-दुक्तेभ्योऽन्ये संसारिणस्त्रिलिङ्गा इति॥ यत्रात्यन्तं नपुंसकलिङ्गस्याभावस्तत्प्रतिपादनार्थमाह-

दो प्रकारका है एक दर्शन मोहनीय दूसरा चारित्रमोहनीय । दर्शन मोहनीयके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व तीन भेद हैं और चारित्र मोहनीयके भी कपाय वेदनीय और नो कपायवेदनीय दो भेद हैं । नोकपाय वेदनीयके हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुंवेद और नपुंसक वेद ये नौभेद है उन में नपुंसक वेद और अशुभनामा नामकर्म (इन दोनों) के उदय से जो जीव न स्त्री हों और नपुरुप हों वे नपुंसक होते हैं

नारक-सम्मूर्च्छिनः$\frac{1}{3}$।नपुंसकानि$\frac{1}{3}$।।एव*इति*नियमः$\frac{1}{1}$। =नारकजीव और सम्मूर्च्छिन जीव नपुंसकही हैं ऐसा नियम (स्वरूप कथन) है
तत्र * हि *स्त्री-पुंसविपय- =क्योंकि(=हि)उस अवसर में(=तत्र)अर्थात् नपुंसक भवमें,स्त्रीपुरुपसंबंधी(=विपय)
मनोज्ञ-शब्द-गन्ध-रूप- =मनोज्ञशब्द(कासुनना)मनोज्ञगन्ध(कासूंघना)मनोहर(=मनोज्ञ) रूप (कादेखना)
रस-स्पर्श-सम्बन्ध- =इष्ट (=मनोज्ञ) रस(काचाखना)और इष्ट(=मनोज्ञ)स्पर्श(कास्पर्शनकरना)रूप(संबंध)
निमित्ता$\frac{1}{3}$।स्वल्प*अपि*सुखमात्रा$\frac{1}{1}$।।न*अस्ति* =कारणोंसे होनेवाला थोड़ा भीसुख(नारकी और सम्मूर्च्छिन जीवोंको) नहीं है
यदि*एवम्* अवधियते T =जो इसप्रकार निश्चय कियागया है(किनारक और सम्मूर्च्छिन नपुंसक हैं तो)
अर्थात्$\frac{5}{1}$।आपन्नम् $\frac{1}{1}$।।। एतद्$\frac{1}{1}$।।। =अर्थसे यह(=एतद्)प्राप्तहोता है(=आपन्नं)कि भावार्थ अर्थापत्तिप्रमाणसे (नकहेगये अभिप्रायको समझनेवाले ज्ञानसे)यह निकलता है कि
उक्तेभ्यो $\frac{5}{3}$।अन्ये $\frac{1}{3}$। =कहेहुये(नारक और सम्मूर्च्छिन जीवों)सिसे अवशेप वा बचेहुये (=अन्य)
संसारिणः$\frac{1}{3}$।त्रि-लिङ्गाः$\frac{1}{3}$।इति*;यत्र*अत्यन्तं $\frac{1}{1}$।।। =संसारीजीव तीन लिंगवाले हैं । जहां (जिसजन्ममें) अत्यन्त वा अतिशय
नपुंसकलिङ्गस्य $\frac{6}{1}$। अभावः $\frac{1}{1}$। तत्- =नपुंसकलिंगका अस्तित्व नहीं है। तिस (अत्यन्त नपुंसक लिंगके अभाव)के
प्रतिपादन-अर्थम् $\frac{1}{1}$।।। आह T =समर्थनके लिये वा स्पष्टीकरनेके लिये(अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सन्निधानं, उत लिङ्गनियमःकश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥

नरकाणि वक्ष्यन्ते, नरकेषु भवा नारकाः। सम्मूर्च्छनं सम्मूर्च्छः स येषामस्तीति सम्मूर्च्छिनः। नारकाश्च सम्मूर्च्छिनश्च नारकसम्मूर्च्छिनः ॥ चारित्रमोहविकल्पनोकषायभेदस्य नपुंसकवेदस्याशुभनाम्नश्चोदयान्न स्त्रियो न पुमाँस इति नपुंसकानि भवन्ति ॥

सन्निधानम् १।।। =संनिकर्पण वा निकट है अर्थात् प्रत्येक गतिमें तीनों तीनों लिंग होते हैं

उत*लिङ्गनियमः१।कश्चित्*अस्तिइति*अतः आह। =अथवा कोई और लिङ्गोंका नियम है इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्-नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि =नारकाश्च सम्मूर्च्छिनश्च नपुंसकानि भवन्ति ॥ ५० ॥

सूत्रार्थः-नारकाः१।च*सम्मूर्च्छिनः१। च* =नारकी जीव और सम्मूर्च्छन जीव भी

नपुंसकानि१।।।भवन्ति। =नपुंसक होते हैं। (उनमें कोईभीजीव स्त्रीलिंग और पुल्लिंग नहीं होता है)

वृत्त्यनुवादः-नरकाणि१।।।वक्ष्यन्ते। नरकेषु१।।। =नरक(तीसरे अध्यायके प्रथमसूत्रमें)कहेजावेंगे। नरकविषै

भवाः१। नारकाः१। =जन्में वा उपजें वा होवें(=भवाः)वे नारक हैं॥

सम्मूर्च्छनम्१।।। सम्मूर्च्छः१। =अवयवसहितशरीरका जहांतहां वा सर्वत्र वनजाना (=संमूर्च्छन) सम्मूर्च्छ है

सः१।येषाम्६।अस्ति।इति*सम्मूर्च्छिनः१। =सो(सम्मूर्च्छ=अवयवसहित सर्वत्र रचाहुआ शरीर) जिनकेहो ऐसे सम्मूर्च्छिन हैं

नारकाः१।च*सम्मूर्च्छिनः१।च*नारकसम्मूर्च्छिनः१। =तथा नारकी और सम्मूर्च्छिन हैं सो नारकसम्मूर्च्छिनः (द्वंद्वसमास पद सूत्रमें) है

चारित्रमोह–विकल्प–(२)नोकषाय-भेदस्य६। =चारित्र मोहनीय कर्मकाभेद (=विकल्प) जो नो कषाय तिस (नोकषाय) का भेद

नपुंसकवेदस्य६।च*अशुभनाम्नः६।।।उदयात्५। =नपुंसकवेद जो है तिसके और (=च) अशुभनामक नामकर्मके उदयसे

न*स्त्रियः१।।।न*(४)पुमांसः१।इतिनपुंसकानि१।।।भवन्ति=न स्त्रियां हैं नपुरुप हैं ऐसे नपुंसक होते हैं भावार्थ मोहनीयकर्म

(१) दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ (२)नोकपाय वेदनीय=ईपत्कपाय वेदनीय=अकपाय वेदनीय एकार्थवाची वाक्यहैं (३) स्त्री शब्दका वहुवचन, स्त्रीलिंग स्त्रियः है॥ (४) पुंस् (मनुष्य) शब्दका पुलिंग बहुवचन पुमांसः है॥

त्रयो वेदा येषां ते त्रिवेदाः॥ के पुनस्ते वेदाः। स्त्रीत्वं, पुंस्त्वं नपुंसकत्वमिति॥ कथं तेषां सिद्धिः। वेद्यत इति वेदः। लिङ्गमित्यर्थः॥ तद् द्विविधं द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गंचेति॥ द्रव्यलिङ्गं योनिमेहनादिनामकर्मोदयनिर्वर्तितम्॥ नोकषायोदयापादितवृत्ति भावलिंगम्॥ स्त्रीवेदोदयात् स्त्यायत्यस्यां गर्भ इति स्त्री। पुंवेदोदयात् सूते

त्रि-वेदाः$\frac{1}{3}$। भवन्ति I

वृत्त्यनुवादः-त्रयः$\frac{1}{3}$।वेदाः$\frac{1}{3}$।येपाम्$\frac{6}{3}$। ते$\frac{1}{3}$।त्रिवेदाः$\frac{1}{3}$।

के$\frac{1}{3}$।पुनः*ते$\frac{1}{3}$।वेदाः$\frac{1}{3}$।स्त्रीत्वम्$\frac{1}{1}$।।। पुंस्त्वम्$\frac{1}{1}$।।।

नपुंसकत्वम्$\frac{1}{1}$।।।इति*कथम्*तेपाम्$\frac{6}{3}$।सिद्धिः$\frac{1}{1}$।।

वेद्यते I इति*वेदः$\frac{1}{1}$।

लिङ्गम्$\frac{1}{1}$।।।इति*अर्थः$\frac{1}{1}$।तत्$\frac{1}{1}$।।।द्विविधम् $\frac{1}{1}$।।।

द्रव्यलिंङ्गं$\frac{1}{1}$।।।भावलिङ्गं$\frac{1}{1}$।।।चइति*द्रव्यलिंगम्$\frac{1}{1}$।।।

योनि-

मेहन-आदि-नामकर्म-उदय-निर्वर्तितम्$\frac{1}{1}$।।।

नोकपाय-उदय-आपादित-

वृत्तिः$\frac{1}{1}$।। भावलिंगम्$\frac{1}{1}$।।।

स्त्रीवेद-उदयात्$\frac{5}{1}$।स्त्यायति I यस्याम्$\frac{7}{1}$।।गर्भः$\frac{1}{1}$।

इति*स्त्री$\frac{1}{1}$।।;पुंवेद-उदयात्$\frac{5}{1}$।सूते$\frac{1}{1}$।

=तीनों लिंगवाले वा तीनों लिंगवान होते हैं (परन्तु भोगभूमिके उपजे मनुष्य और तिर्यंचोंकें और मलेच्छखंडके स्त्रीपुरुषोंकें पुरुषलिंग और स्त्रीलिंग ये दो वेदही होते हैं। देखो अर्थप्रकाशिकासूत्र५१)

=तीनहैंलिंग वा वेद जिनकें वे त्रिवेदाहैं।(यह त्रिवेदापदकाविग्रह वा समासकेअर्थकाद्योतकवाक्यहै)

=पुनि वे लिंग कोन हैं, स्त्रीपन अर्थात् स्त्रीलिंग, पुरुषपन अर्थात् पुल्लिग

=नपुंसकपन वा क्लीवत्व ऐसे हैं। उन (वेदों) की कैसे निष्पत्ति वा व्युतपत्ति है

=जो "वेदिये" ऐसा वेद है अथवा "जो अनुभवक्रियाजाय" (=वेद्यते) ऐसा वेद है

=लिङ्ग ऐसा अर्थ वा अभिप्राय है। वह लिंग दो प्रकार है

=द्रव्यलिंग और(=च)भावलिंग ऐसा है। द्रव्यलिंग वह है [रचित हैं

=जो(तिर्यंचनी वा स्त्रीके) भग और

=(मनुष्य वा तिर्यंचके)लिंग(=मेहन)आदि (शरीरके आकार) नामकर्मके उदयसे निष्पादित वा अर्थात् नामकर्मके उदयसे योनि, लिंग रज, वीर्य, आदिका रचना द्रव्यलिंग है

=(स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसकवेद)नो कपाय(चारित्र मोहनीयकर्म)के उदयसे प्राप्तहुआ(=आपादित)

=आत्माके अंतःकरण परिणामकी प्रवृत्ति (=वृत्तिः) सो भावलिंग है अर्थात् नोकपाय कर्मके उदयसे स्त्री आदि लिंगोंके अनुकूल इच्छाका होना सो भावलिंग है

=स्त्रीवेदके उदयसे इकठाहोता है तिष्ठता है वा ठहरता है (=स्त्यायति)गर्भ जिसमें

=ऐसी स्त्री है। पुरुषवेदके उदयसे उदरमें (=सूते)

॥ न देवाः ॥ ५१ ॥

स्त्रैणं पौंस्नं च यन्निरतिशयं सुखं सुर(शुभ)गतिनामोदयापेक्षं, तद्देवा अनुभवन्तीति न तेषु नपुंसकलिङ्गानि सन्ति ॥ अथेतरे कियल्लिङ्गा इत्यत आह—

॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥

सूत्रम्—[1]नदेवाः ॥ ५१ ॥ =न देवाः (नपुंसकानि भवन्ति) ॥५१॥

सूत्रार्थः-न*देवाः। नपुंसकानि।भवन्ति T =(भवनवासी, व्यन्तर,ज्योतिषी,और कल्पवासी) देव नपुंसक लिंगी नहीं होते हैं अर्थात् सब प्रकारके देवोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेद केवल दोही वेद होते हैं

वृत्त्यनुवादः-स्त्रैणं।पौंस्नं।च यत् निरतिशयं।सुखम्।=स्त्री संबंधी तथा पुरुष संबंधी जो परमोत्कृष्ट(=निरतिशय पद्मकोश२१५)सुख है और

सुर(शुभ)[2]गतिनाम-उदय-अपेक्षम् ।=जो(भली वा अच्छी)सुरगति नामक (नामकर्मकी प्रकृतिके) उदयकी विवक्षासे है

तद्।देवाः।अनुभवन्ति T इति*तेषु। =तिस (सुख)को देव भोगते हैं वा अनुभव करते हैं। उन (देवों) में

नपुंसकलिङ्गानि।न*सन्ति T =नपुंसकलिङ्ग नहीं है (केवल स्त्रीवेद और पुरुषवेद दोही वेद होते हैं)

अथ*इतरे। [3] कियत्-लिङ्गाः। इति*अतः*आह T =अब अन्य(नारक,सम्मूर्च्छिन,देवोंके अतिरिक्त)कितने लिङ्गवाले हैं।इसलिये कहतेहैंकि

सूत्रम्-शेषास्त्रिवेदाः[4] ॥ ५२ ॥ =शेषाः जीवाः त्रिवेदाः भवन्ति ॥ ५२ ॥

सूत्रार्थः-शेषाः। जीवाः। =बचेहुये जीव (अर्थात् नारक, सम्मूर्च्छिन और चारों प्रकारके देवोंके अतिरिक्त जो कर्मभूमिके गर्भज मनुष्य,गर्भज तिर्यंच ते स्त्री-पुरुष-नपुंसक)

---

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है (२) तत्त्वार्थराजवार्तिकमें तथा हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिमें "शुभगतिनामोदयापेक्ष" इत्यादि पाठ है'सुर'शब्द नहीं है पं० पन्नालाल दूनीवालोंने 'शुभगतिका अर शुभनामकर्मका उदयकी है अपेक्षा जाविषैं"इत्यादि अनुवाद किया है अर्थात् शुभगति और शुभनाम कर्म दोके उदय की अपेक्षा मानीहै॥'सुर'शब्द होनेसे हमने केवल सुरगति जो शुभ होती है उसके उदयकी अपेक्षा मानी है मुद्रित वृत्तिके द्वितीय संस्करणमें"गति नामोदयापेक्षं"पाठ है॥ (३) कियत् त्रिलिंगी शब्द है कियान् प्रथमाविभक्ति पुल्लिंग एक वचन है कियती प्रथमा एक वचन स्त्रीलिंग है और कियत् प्रथमा एक वचन नपुंसक लिंग है यहां पर बहुवचन में प्रयोग है अर्थात् "कियल्लिङ्गाः"कितने लिङ्गधान हैं इसलिये हमने इस'कियल्लिङ्गा'को समास मानकर अनुवाद किया है ॥ (४) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में यह सूत्र नहीं है ॥ भाष्यकारने भाषा में इस सूत्रका आशय देदिया है ॥ 'शेषस्त्रिवेदः'ऐसासूत्रपं० सदासुखजी कृत सूत्रभाषा में अशुद्ध है ॥

तद्भावात्स्त्रीत्वादिव्यपदेशो नस्यात्

तद्-अभावात् ५। =उस (गर्भधारण और सन्तान उपपादन क्रिया) के अभावसे वा सामर्थ्य न होनेसे

स्त्रीत्व-आदि-व्यपदेशः१। =स्त्रीपणा और पुंसपनाका नाम वा कथन (स्त्री-पुंस्की व्युत्पत्ति पृष्ट १२२, १२३ में देखो)

नञ् स्यात् T =नहोसकैगा भावार्थ इसका यह है स्त्यायति यस्यां गर्भःइति स्त्री=स्थितिहोता है गर्भ जिसमें वह स्त्री है और सूते जनयति अपत्यम् इति पुमान्= उदरमें संतानको उपजावै सो पुमान् है (पुंस् का प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिग पुमान् है (=पुरुष, मनुष्य) उक्त अर्थ केवल व्युत्पत्तिके लिये है प्रधानतासे नहीं है, यदि उन्हें मुख्यतासे माना जायगा तो जिस समय गर्भधारण क्रिया और संतान-उत्पादन क्रिया आदि होंगी उसी समय स्त्री पुस् आदि उनको कह सकते हैं किन्तु बालक, बालिकायें, वृद्ध पुरुष, वृद्ध तिर्यंच, वृद्ध तिर्यंचनी, तिर्यंच तिर्यंचनियोंके बच्चे और देवी देवताओंको और विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंको जिनमें कि गर्भधारण संतान उत्पादन आदिकी सामर्थ्य नहीं स्त्रीवेदी वा पुरुषवेदी आदि नहीं कहसकते इसलिये स्त्री, पुरुष, गौआदिक शब्द रूढि हैं (१) यौगिक(=व्युत्पन्न व्युत्पत्तिसहित सामासिक) शब्द नहीं हैं ॥ और इन तीनों स्त्री पुरुष और नपुंसक वेदोंमें स्त्रीवेदको अगर समान माना है। पुरुषवेदको फूंसकी अग्नि सदृश माना है और

"कौओं से दही बचाया जाये" इसका यह सारांश है कि दही की रक्षा केवल कौओं से ही न कीजाय वरन् जितने भी कुत्ते-बिल्ली-वदर और इतर जीव जो दही को बिना किसी स्वत्वके खाजाय सब से उसको बचाया जाय ॥ इसी प्रकार उक्त वाक्य में तिर्यंच, तिर्यंचनी उनके बच्चे, मनुष्य, मनुष्यणी, उनके बच्चे, देवी, देव, इत्यादि और अन्य जितने शब्द व्युत्पत्ति को ध्यानमें न रखकर रूढ़ि मे बोले जाते हैं और उक्त सूत्रसे सबंधित हैं सर्व आजाते हैं ॥ जयचंदराय जीने "रूढि शब्दाश्चैते" से ·····व्यपदेशो न स्यात्" तक की (इस अनुवाद के देखो पृष्ट १२३ १२४) वचनिका में मनुष्य और तिर्यच और देव शब्दोंको ध्यान मे न रखकर उनकी स्त्रियों पर वाक्यों को ऐसे सबध किया है कि स्त्री, पुरुष, नपुसक "इनिकी सज्ञा है सो रूढि शब्द रूप है। रूढि शब्द की व्युत्पत्ति कीजिये है सो तिस व्युत्पत्तिमात्र प्रयोजनके अर्थि ही है। जैसे गऊ शब्द की निरुक्ति करिये, जो चालै ताकू गऊ कहिये। सो यहां निरुक्ति रूढ़िहीत जाननी। जातें बैठा सोवता गऊको भी गऊही कहिये। ऐसै रूढि जाननी। जो ऐसे न मानिये तो गर्भ धारण क्रियाहीकू प्रधान मानिये तो बाल स्त्री तथा वृद्धस्त्री तिर्यंचनी मनुष्यणी तथा देवांगना तथा कार्मण काययोग विषे अतरालमे तिष्ठती स्त्रोनिकें गर्भ धारण नाहीं, तब स्त्री पणाका नाम न ठहरै। तथा पुत्रादिक उपजाये विना इनिका पुरुष पणाका नाम न ठहरे। तातें उहां नाम विषै रूढी ही प्रधान है ॥ वचनिका पृष्ठ २६४ (१) यौगिक-धातु और प्रत्यय से समझ पड़ने योग्य अर्थको बतलाने हारा शब्द अर्थात् जो दो या अधिक शब्दो से मिलकर बना हो जैसे शिवालय,जीवधारी, जलचारी, दयासागर, उसके तद्धित, कृदन्त, समास तीन भेद हैं रखने वालेका ज्ञान जिससे हो। जैसे "कौओसे दही बचाया जाय" यहां कौआ पद अपने और अपने से भिन्न कुत्ते, बिल्ली आदिका भी बोधक है॥

जनयत्यपत्यमिति पुमान् । नपुंसकवेदोदयात्तदुभयशक्तिविकलं नपुंसकम् ॥ रूढिशब्दाश्चैते । रूढिषु च क्रिया व्युत्पत्त्यर्थैव। यथा गच्छतीति गौरिति ॥ इतरथा हि गर्भधारणादिक्रियाप्राधान्ये, वालवृद्धानां तिर्यङ्मनुष्याणां देवानां कार्मणकाययोगस्थानां च

जनयति। अपत्यम्।।। इति* पुमान्। । नपुंसक- =संतानको (=अपत्यम्) उत्पन्न करता है (=जनयति) ऐसा पुरुष है । नपुंसक
वेद-उदयात्। तद्–उभय- =वेदके उदयसे जो दोनों (उदरमें गर्भकीस्थिति और संतान उत्पन्नकरनेकी)
शक्ति-विकलम्।।। नपुंसकम्।।। रूढि-शब्दाः। च एते। =शक्तिसे रहित,वा शक्तिसे विहीन नपुंसक है और ये (स्त्री–पुंस्–नपुंसक) रूढि शब्द हैं
(१) रूढिषु। च* क्रिया।। व्युत्पत्ति–अर्थ–एव* =और(=च)रूढि(शब्दों)में क्रिया (अर्थात् धातुका अर्थ) है सो निरुक्तिमात्र (-एव)के लिये है
यथा* गच्छति। इति* गौः।। इति* =जैसे गमन करतीहै ऐसी गायहै भावार्थ यदि'गो' शब्दकी निरुक्ति पूर्णतासे ग्रहणकी जावै तो गाय(पशु)जिससमय चलै फिरै उसकाल ही गौ कहना चाहिये और वही(पशु) जिस काल सोता हो, खड़ाहो, लेटाहो, वैठाहो, उस समय वुत्पत्तिके अनुसार गौ नहीं कहना चाहिये परन्तु ऐसा लोक व्यवहारमें नहीं होता सर्वकालमें रूढ़ि वा प्रसिद्धके वशसे उस पशुको गौ कहते हैं अतः क्रियाका अर्थ शब्दोंमें केवल व्युतपत्ति मात्र ही है ॥
इतरथा* हि* =क्योंकि अन्यथा अर्थात् यदि नामोंमें रूढिकी प्रधानता न मानी जावें तो
गर्भ-धारण-आदि–क्रिया-प्रधान्ये ।।। =गर्भधारणक्रियाका तथा सन्तान उत्पादन क्रियाको (=आदि) मुख्यमाननेमें (अर्थात् यही वातमानें कि जब गर्भधारणकी सामर्थ्य है तव स्त्री है चलते-फिरते-वैठते-उठते-रसोई वनाने इत्यादि क्रियामें स्त्री नहीं हैं और जव संतान उत्पादनकी सामर्थ्य है तवहीपुंस् वेदीहै अन्य अवस्थाओंमें वा अन्यक्रिया जैसे व्यौपार इत्यादिकमें पुरुषवेदी नहींहैतो
वालवृद्धानाम्। (२) तिर्यङ्मनुष्याणाम् देवानाम्। च* =वाल-वृद्ध तिर्यंचोंकें और वालवृद्ध मनुष्योंकें और देवोंकें और (=च)
कार्मणकाययोगस्थानाम्। =कार्मणकाययोगमें स्थिति जीवोंकें अर्थात् विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंकें

(१) रूढि शब्द स्त्रीलिंग है परंतु यहां पर "शब्दों" ऐसा इसके आगे छिपा हुआ है ॥ अर्थ है'रूढि शब्दों' में इसलिये हमने पुलिंग में रक्खा है ॥
(२)'तिर्यङ्मनुष्याणां देवानां'ये शब्द हमारी समझमेंयहां पर उपलक्षणरूपमें प्रयोग किये गयेहैं ॥ उपलक्षण=पास रहनेहारे और अपनेसे संम्बन्ध-

संख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः॥५३॥

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

सूत्रम्—औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः

(द्वितीयपाठ[1])औपपादिकचरमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः[2]

(१) सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति प्रथम सस्करण पृष्ठ १६३, १६४ और द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ११३ मे" चरमदेहा इति वा पाठः"अर्थात् "चरमोत्तम देहाः" के स्थानमें विकल्पकरिके " चरमदेहाः" ऐसा पाठ है। शेषपाठ एक है। तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १११ में " चरमदेहा इति केषांचित् पाठः" अर्थात् "चरमदेहाः"ऐसा पाठ कितनोंका है। 'चरमोत्तमदेहेति अस्मिन् स्थाने चरमदेहेति केचित् पठतीति' ='चरमोत्तमदेहाः'ऐसे इस स्थानमे चरमदेहा ऐसा केईएक पाठ मानते है। श्रुतसागरीटीका ॥ भावार्थ"चरमोत्तमदेहाः"के स्थानमें "चरमदेहाः"उपर्युक्त सूत्रमें पढ़ा जावेगा इसलिये शेषपाठ एक ही रहा ॥ द्वितीय पाठ वही हुआ जो हमने ऊपर लिखा है।

(२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमे 'औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषासंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः" ॥ ५३ ॥ ऐसा पाठ है। सूत्र सख्या ५२ वीं है॥ 'औपपादिक' के स्थानमें 'औपपातिक' है।'चरमोत्तमदेहाः' वा 'चरमदेहाः' के स्थानमें 'चरमदेहोत्तमपुरुषाः' है। शेषपाठ एकसा है ॥ इससूत्रके तीन पाठ होनेपर भी अर्थ अन्तमें सबका एकसा है पाठ भेद होनेसे अर्थ भेद नहीं हुआ क्योंकि उपर्युक्त दो पाठोंमें"चरमदेहाः" और ' चरमोत्तमदेहा." मेंसे "चरमदेहा " का अर्थ,चरमशरीरी,अन्तिमशरीरवाले, उसीदेहसे मोक्षजानेवाले, तद्भवमोक्षगामी, जो वर्तमान शरीर है वह ससारमें रहनेका चरम (=अन्तिम) शरीर है अर्थात् इसी देह वा शरीरसे मोक्षकोजावेंगे, इसी शरीरसे सिद्ध होजावेंगे ऐसा है ॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ३४३ मे"उत्तमग्रहण चरमस्यानुत्तमत्वव्युदासार्थं,,=सूत्रमे उत्तम (शब्द) का ग्रहण है सो चरमी की अश्रेष्ठताके निवृत्तिके लिये है अर्थात् जो चरमी होगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा भावार्थ चरमीकें वा तद्भवमोक्षगामीकें सदैव उत्तम (वज्रवृषभनाराचसहनन और समचतुरस्र सस्थानयुक्त)शरीर अवश्यहोगा इससे यहपरिणाम निकला कि चरमदेहधारी(=चरमदेहाः)सदैव उत्तम शरीरका धारक होगा। प०गजाधरलालजी पृष्ठ ७६५ तत्त्वार्थराजवार्तिक संस्थाद्वारा प्रकाशितमे लिखते है कि"वास्तवमे चरम शरीरका अर्थ यही है कि अब दूसरा शरीर धारण नहीं करना होगा उसी शरीरसे मोक्ष प्राप्तहोजायगी इसीलिये जो शरीर मोक्षका साक्षात कारण है वह स्वय उत्तम है उसकी उत्तमता प्रगट करनेके लिये किसी भी शब्दकी आवश्यकता नहीं इसलिये वार्तिककारने 'चरमदेहाः इति केषांचित् पाठ ऐसाभी कहा है ॥ इसलिये सूत्रमें जो 'उत्तम' शब्दका उल्लेख कियागया है वह केवल चरम शरीरके स्वरूप प्रगट करनेके लिये है" ॥ 'चरमोत्तमदेहाः' वाक्यमे उत्तम शब्द उसी प्रकारसे अधिक है जैसे कि 'प्रकाश्यमान' शब्द 'प्रकाश्यमान सूर्य' मे व्यर्थ है क्योंकि सूर्य तो स्वयम् ही सप्रकाशहै उसी प्रकार चरमदेह तो स्वयम् ही उत्तमहै ऐसा कोई चरम देह है ही नहीं जो अनुत्तम होता हो॥ इसलिये हमने अधीकतर विद्वानोंके मतानुकूल 'उत्तम' शब्दको अनावश्यकीय माना है ॥

"एभ्य औपपातिकचरमदेहासंख्येयवर्षायुर्भ्यः शेषा मनुष्यास्तिर्यग्योनिजा : सोपक्रमा निरुपक्रमाश्चापवर्त्यायुषोऽनपवर्त्यायुषश्च भवन्ति" =इनऔपपातिक,चरमदेह,और असख्येयवर्ष आयुष्वालोंसे शेष मनुष्य तथा तिर्यग्योनिज जो उपक्रमसहित तथा उपक्रमरहितहैं वे अपवर्त्य आयुष्वाले और अनपवर्त्य आयुष्वाले भी होते हैं ॥ सभाष्य०पृष्ठ ६१ ॥ इससे ये फलनिकला कि जैसे हमारे यहां देवनारकी,चरमशरीरी,भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोगभूमियां ये अकाल मृत्युवाले नहीं होते आयुको परिपूर्णकरके ही वर्तमान शरीरका त्यागन करतेहैं उसीप्रकार श्वेताम्बर आम्नायके

त एते त्रयो वेदाः शेषाणां गर्भजानां भवन्ति ॥ य इमे जन्मयोनिशरीरलिंगसम्बन्धाहितविशेषाः प्राणिनो निर्दिश्यन्ते देवादयो विचित्रधर्माधर्मवशीकृताश्चतसृषु गतिषु शरीराणि धारयन्तस्ते किं यथाकालमुपभुक्तायुषो मूर्त्यन्तराण्यास्कन्दन्ति, उतायथाकालमपीत्यत आह-

नपुंसक वेदको ईटकी अग्निके अर्थात् अवेकी अग्निके समान मानाहै सारांश यहहैकि पुरुषकी कामाग्नि फूंसकी अग्निके समान जल्दी शांत होजाती है। अंगारकी अग्नि गुप्त और कुछ ठहरनेवाली होती है। इसलिये स्त्रीकी कामाग्नि कुछ कालतक ठहरनेवाली होती है। जहां पर ईंट पकाई जाती है उस भट्टेकी आग बहुत कालतक रहती है और सर्वदा धधकती रहती है इसलिये नपुंसककी कामाग्नि अधिक कालतक रहती है।

ते एते त्रयः वेदाः शेषाणाम् गर्भजानाम् भवन्ति । =सो ये तीन (स्त्री-पुरुष-नपुंसक) लिंग अवशेष जे गर्भज उनकें होते हैं ॥

ये इमे जन्म-योनि-शरीर-लिंग-सम्बन्ध-आहित-विशेषाः प्राणिनः देव-आदयः =जो ये जन्म, उत्पत्तिस्थान (=योनि), शरीर और वेदोंका सम्बन्धकरि ग्रहणकिये हैं (=आहित)भेद प्रभेद (=विशेष) जिननें ऐसे प्राणी देवादिक

निर्दिश्यन्ते । विचित्र-धर्म-अधर्म-वशीकृताः =दिखाये गये हैं वा उल्लेख किये गये हैं ते नानाप्रकारके पुन्य और पापोंके वशीभूत

चतसृषु गतिषु शरीराणि धारयन्तः =चारोगतिमें शरीर धारणकरनेवाले

ते किम् उपभुक्त-आयुषः यथाकालम् =क्या वे पूर्ण भुज्यमान आयुवाले होते हैं और ठीक समयपर (=यथाकालम्).

मूर्त्यन्तराणि आस्कन्दन्ति । =अन्य वा दूसरे शरीरोंको धारणकरते हैं अथवा ग्रहणकरते हैं अर्थात् वे देव, मनुष्य, तिर्यंच नारकी,आदि जितनी आयु बांध चुके हैं उतनी आयुके पूर्णहोजानेपर वर्तमान शरीरको छोड़कर-मृत्युपानेपर दूसरे शरीरोंको धारण करते हैं

उत अयथाकालम् अपि इति अतः आह । =वा विना आयु पूर्णकिये भी(अन्य शरीरोंको धारण करते हैं) इसलिये[१]कहते हैं कि १२५

(१) स्मरण रहे कि त्रेपनवां सूत्र का अर्थ कठिन है बड़े ही परिश्रम और अन्वेषण से लिखा गया है उस को बहुत ध्यान पूर्वक पाठकों को पढ़ना चाहिये नहीं तो कुछ इच्छित परिणाम न होगा ॥ कोई पाठक यदि इसपर भिन्न प्रकाश डालें तो वे मुझको कृपया सूचितकरें ॥

(क)"चरम उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहाः" सर्वार्थसिद्धिःपृष्ठ१९३,तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३४३, तत्त्वार्थराजवार्तिकम् पृष्ठ १११ वार्तिक ७

"ऐसा चरम उत्तम देह जिनकै होय ते चरमोत्तम देह कहिये" जयचदजी वचनिका पृष्ठ २९४. चरमोत्तम है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देह वाले हैं। (चरमोत्तम ये देहके विशेषण है अकेला उत्तम शब्द देह का विशेषण नहीं है क्योंकि यदि उत्तम शरीर वाले अनपवर्त्य आयुवाले होते तो ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति और वासदेव अर्द्धचक्रीकी अकाल मृत्यु न होती

(ख) चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वप्रदर्शनार्थमुत्तम-ग्रहण नार्थान्तरविशेषोऽस्ति ॥ सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ१९३ तस्य (=चरमस्य-देहस्य) उत्तमत्वप्रतिपादनर्थत्वात् (उत्तमग्रहणम्) राजवार्तिकम्पृष्ठ०१११वार्तिक ८ देखो

"इहां चरमदेहका उत्तम विशेषणहै सो उत्कृष्टपनाके अर्थि है,अन्य अर्थ नाही है"जय०वच०२९५ अन्तके शरीरकी श्रेष्ठताके प्रतिपादनके लिये उत्तम (शब्दकासूत्रमें)ग्रहण है अन्यअर्थविशेषके लिये नहींहै,"उस चरमदेहकें उत्तम पणांको प्रतिपादनार्थ पनाहैयाते"(सूत्रमेंउत्तमशब्दकाग्रहणहै अर्थात् वो चरम देह ही सबमे उत्तिम है सो अर्थ कहिये है॥ भावार्थ चरम देह समस्त देहोंमें उत्तम देह है इस तात्पर्यके प्रगट करनेके लिये सूत्रमें उत्तम शब्दका ग्रहणकियागयाहै॥

उत्तमग्रहण चरमस्य-अनुत्तमत्व-व्युदासार्थम् (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकम् पृष्ठ ३४३)

=(सूत्रमे)उत्तम(शब्द)का ग्रहण है सो चरमीकें अश्रेष्ठताके निवृतिके लिये है अर्थात् जो चरम-शरीरीहोगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा, चरमीकें वा तद्भव मोक्ष गामीकें उत्तम शरीर अवश्य होगा भावार्थ चरम देहधारीकें अनुत्तमपना होताही नहीं इसलिये उत्तम शब्द सूत्रमें लाये हैं। इसलिये यहां 'उत्तम' शब्द विशेषणहै 'चरमदेह' विशेष्यहै।

(ग) चरमविशेषणमुत्तमस्याचरमस्य निवृत्त्यर्थं, चरमविशेषणम्-उत्तमान्य-अचरमस्य-निवृत्ति-अर्थम्। तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकम् पृष्ठ ३४३

चरम विशेषण उत्तम शब्दका है सो अचरम के निवारण के लिये है अर्थात् उत्तम देहधारी हो =और चरम देहधारी न हो तो वह अनपवर्त्य आयुवाला न होगा जैसे सुभौमचक्रवर्ति और अन्तका ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति और अन्तके अर्द्धचक्री वासदेव (कृष्णजी) तथा इनके समान और भी जिनका उत्तम शरीर तो था परतु चरम शरीर नथा उनकी बाह्य कारणोंसे अकाल मृत्यु हुई आयुका अपवर्तन होगया॥ यहां 'चरम' शब्द विशेषणहै उत्तम' शब्द विशेष्य है

(घ)अन्त्यचक्रधरवासुदेवादीनामायुषोऽपवर्तदर्शनादव्याप्तिः (तत्त्वार्थराजवार्तिकम् सूत्र५३ वार्तिक, ६ पृष्ठ १११)

('उत्तम देहधारी अनपवर्त्य आयुवाले होते हैं' इसपर प्रश्न करताहै कि यह ब्रह्मदत्त अतिम चक्रवर्ति और कृष्ण अर्द्धचक्रवर्ति सुभौमचक्रवर्तिइत्यादिमें नही घटताहै नहीं लागूहोताहै क्योंकि तीनों उत्तम देहके धारी होने पर भी अकाल मृत्युको प्राप्तहुये उत्तरमें कहते हैं कि

नवा चरमशब्दस्योत्तमविशेषणत्वात् ॥७॥ (देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकम् सूत्र ५३, वार्तिक ७ पृष्ठ१११)

=यह दोष नहीं क्योंकि चरम शब्दका उत्तम शब्द विशेषण है। इसलिये जो चरम और उत्तम देहका धारक होगा वही अनपवर्त्य आयुवाला हो सकताहै किन्तु जो केवल उत्तम देहका धारक होगा वह अनपवर्त्य आयुवाला नहीं हो सकता सुभौमचक्रवर्ति, ब्रह्मदत्त-चक्रवर्ति कृष्णजी आदि उत्तम देहके धारी थे चरम शरीरी नहीं थे इससे तीनोंकी अकालमृत्यु हुई॥

सूत्रार्थः-औपपादिक- =उपपाद जन्मसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् चारों प्रकारके देव और समस्त नारकी

चरम-उत्तम १-देहाः ११- =अन्तिम उत्कृष्ट शरीर वाले,अन्तिम श्रेष्ठशरीरकेधारक,अंतकी पर्यायवाला उत्तम शरीर वा देह अर्थात् चरमोत्तम शरीरी,तद्भवमोक्षगामी,पूर्ण होगा संसार जन्म जिनका उसी उत्तम देहसे उसी जन्ममें,चरमोत्तम शरीरी,

असंख्येय-वर्ष-आयुषः ११=असंख्यात वर्षकी आयुवाले, अर्थात् उत्तम,मध्यम,और जघन्य भोग भूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोग भूमियां

अन्-अपवर्ति-आयुषः ११=परिपूर्ण आयुवाले होते हैं अर्थात् देवनारको,चरमोत्तम शरीरी, भोगभूमियां कुभोगभूमियां इन सबकी आयु विष,शस्त्र, कंटक,अग्नि,जल,सर्प,अजीर्ण भोजन,वज्रपात,शूली,हिंसक जीव और वज्रादिके अभिघात आदिसे तथा द्वन्द्वसे (=उपद्रवसे) आरम्भहोनेवाले क्षुत् पिपासा और शीतोष्णसे भी न्यून नहीं होती है अकाल मृत्यु इनकी नहीं होती है ॥

द्वितीयपाठः-औपपादिक- =उपपाद संज्ञक जन्ममें उत्पन्न होनेवाले अर्थात् समस्त देव और समस्त नारकी

चरमदेहाः ११ (इत्यादि) =अन्तिम शरीर वाले,उसीभवसे मोक्ष जानेवाले (जिस देहसे सिद्ध होते हैं वह चरम देह वा शरीर कहलाताहै) (उपर्युक्त अर्थोंसे प्रगट है कि "चरमदेहा" का वही अर्थ है जो "चरमोत्तमदेहा" का है क्योंकि उत्तम शरीर वाले ही तद्भव मोक्षगामी हो सक्ते हैं अन्य नहीं और चरमदेहवाले कर्मभूमिके मनुष्य ही होते हैं अन्य देवादिक नहीं हो सक्ते हैं। शेष दोनों पाठ एक हैं अतः उनका अर्थ भी एक है ॥ चरम=अंतकी पर्याय, चरमदेह=अंतिम पर्याय वाला शरीर वा देह।

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुकूल येही अनपवर्त्य आयुष्वाले होते हैं॥ इसमें संदेहनहीं कि इसी भाष्यमें 'औपपातिक, चरमदेह अर्थात् अन्तिम शरीरवाले उत्तमपुरुष और असंख्येयवर्ष आयुष्वाले ये चारों अनपवर्त्य (अपवर्तन न करने योग्य) आयुष्वाले होते हैं ॥ ऐसा उल्लेख है परंतु इस वाक्यके नीचे उपर्युक्तभाष्य दिया है उससे इसका निषेध होता है क्योंकि जो पश्चात् कहा जाता है वही ठीक समझाजाता है और यह भी है कि सुभौमचक्रवर्ति और अंतिम ब्रह्मदत्त-चक्रवर्ति और वासुदेव अंतिम अर्द्धचक्री तीनोंकी आयु अपवर्त्यहोकर अर्थात् घटकर न्यूनहोकर अकाल मृत्यु हुई थी और ये तीनों उत्तमपुरुष थे ॥

(१) हम अभी लिखचुके हैं कि 'उत्तम' शब्द सूत्रमें लानेसे वही अर्थ होता है जो न लानेसे इसलिये 'उत्तम' शब्दकी सूत्रमें आवश्यकता नहीं है इस'उत्तम' शब्दके कारण भाष्यकारोंको, अनुवादकोंको तथा टीकाकारोंको बहुतकुछ अपने अपने भाष्य टीका और अनुवादोंमें इस 'उत्तम' शब्दके संबंधमें लिखना पड़ा है। प्रथम इसके कि हम इसपर अपने स्वतंत्रविचार तथा शास्त्रानुकूल कुछ उल्लेख कर इसबातको लिखदें कि किन किन महानुभावों ने इसको किस किस शब्दका विशेषण और विशेष्यमाना है ॥

(क) चरम-उत्तम विशेषण हैं देह शब्द विशेष्य है (ख) में उत्तम शब्द विशेषण है चरमदेह विशेष्य है ॥ (ग) में चरम शब्द विशेषणहै उत्तम शब्द विशेष्य है (घ) में उत्तम शब्द विशेषण है चरम शब्द विशेष्य है ॥

(चरमदेहाः; चरमोत्तमदेहाः, चरमदेहोत्तमपुरुषाः)पाठो मे से कौनसा पाठ उमास्वामी कृत है। वास्तवमें हम इस प्रश्नका उत्तर देनेमे असमर्थ है क्योंकि इसके ढूढनेके लिये हमारे पास न तो साधन ही है और न समय ही है परतु निम्न लिखित हेतुओंसे यह जान पड़ताहै कि दोनों आम्नायोंमे "चरमदेहाः"सब पाठोंसे उत्तम और सूत्रके वनानेकी विधिके अनुकूल है और यही पाठ उमास्वामी कृत होना चाहिये—क्योंकर

(च)'चरमदेहाः'इस पाठ का हमारे यहां सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थराजवार्तिक, श्रुतसागरीटीका तथा जयचदजीकृता वचनिकामें भी उल्लेख है और हम सिद्ध करचुके है कि"चरमदेहाः" का वही अर्थ है जो"चरमोत्तमदेहाः"का श्वेताम्बर आम्नायकी नीचेकी टिप्पणीसे प्रतिभास होताहै कि उनके यहां भी यथार्थमें"चरमदेहाः' पाठ था नकि 'चरमदेहोत्तमपुरुषाः" जव'चरमदेहा': का वही अर्थ है जो 'चरमोत्तमदेहा.' का तव आचार्य 'उत्तम'शब्दका प्रयोग निष्कारण क्यों करते ॥इस औपपातिक इत्यादि सूत्रमें(श्वेताम्बरीय टिप्पणी यहहैकि)"उत्तम पुरुषसे यहां तीर्थंकर चक्रवर्ती वलदेव, तथा वासुदेव आदिकका ग्रहण है। कोई कहते है कि सूत्रमें उत्तमपुरुषका ग्रहण नहीं है तो तीर्थकरादिकका ग्रहण कैसे होगा ? इसपर कहते है कि चरमदेह ग्रहणसे तीर्थंकरादिकका ग्रहण होगा। क्योंकि चरमशरीरी उत्तमपुरुष अवश्य होते है और उत्तम पुरुषोंको चरमदेह प्राप्य है। इस हेतुसे उत्तम पुरुष ग्रहण अनार्ष है। दोनों प्रकारके भाष्य है। अनिन्दित होनेसे प्रथम उत्तम पुरुष ग्रहण किया और तीर्थंकरादि उसका विवर्णकिया और पुनः उत्तर कालमें उत्तम पुरुषका ग्रहण किया, परन्तु निरुपक्रम सोपक्रम कथनसे यह संदेह भाष्यसे होता है, अतएव उसी भाष्यकारके श्रावक प्रज्ञप्तिमे उत्तम पुरुष ग्रहण किया है। यहां भी यही समझना चाहिये "

(छ)श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंका चरमदेहा'पाठ मिलता है,और"चरमोत्तमदेहाः"और"चरमदेहोत्तमपुरुषाः" पाठ मिलान नहीं करते ॥

(ज) 'उत्तम' शब्दके लानेसे अर्थमें वहुत कठिनता होजाती है और अभिप्राय वा परिणाम कुछ भी नहीं निकलता क्योंकि केई ( )'चरम उत्तम' शब्दोंको देहका विशेषण करते है, ( ) केई उत्तम शब्दको 'चरम देह'शब्दोंका विशेषण कहते हैं ( ) केई चरम शब्दको उत्तम शब्दका विशेषण वतलाते है ( ) केई उत्तम शब्दको चरम शब्दका विशेषण कहते है (देखो पृष्ठ १२८)इतनी कठिनाईयां उमास्वामी'उत्तम' शब्दलाकर क्योंउपजाते

(झ) असख्येयसमायुष्काश्चरमोत्तममूर्त्तयः। देवाश्च नारकाश्चैषामपमृत्युर्न विद्यते॥ श्री अमृतचन्द्रसूरिकृत तत्त्वार्थसारकाश्लोक ॥ १३५ वां ॥ प० वशीधर शास्त्रीजीने उपर्युक्त श्लोकका अनुवाद करनेमे हमारी संमतिके अनुकूलकि 'चरमदेह वाले' सव अनपवर्त्यआयुवाले होते है इस प्रकार अनुवाद किया है कि 'असख्यात वर्षके आयुवाले भोगभूमिज मनुष्य व तिर्यंच, कर्म भूमिके उसी जन्मसे मुक्त होनेवाले मनुष्य तथा, देव,नारकी,-इतने जीवोंकाजो आयु नियत हुआ हो उसका शस्त्रादि निमित्तों से अपघात नहीं हो सकता है। यद्यपि अन्तकृत केवली आदि कुछ ऐसे हुए है कि जिनका शरीर उपसर्गों से विदीर्ण किया गया था परन्तु उन्हें हम अनपवर्त्यायुवाले ही मानतेहैं। सूत्रकारने तथा इस ग्रंथके कर्ताने भी उन चरमशरीरी जीवों के आयुको अनपवर्त्य लिखा है कि जो उत्तम हों। परन्तु उत्तमका अर्थ चरमशरीरी की केवल प्रशसा है। अधिक कुछ भी नियम नहीं समझना चाहिये मोक्षगामी जीव सव ही अनपवर्त्यायुवाले मानने चाहिये ॥ शेषजीवों का घात हो सकता है ॥ जो लोग उत्तमका अर्थ मोक्षगामियोंमेंसे त्रिषष्टिशलाकावाले अथवा कामदेवादि पदवी युक्त ऐसा करते है वह ठीक नहींहै क्योंकि "चरमांगधरावेतो नानयोः काचन क्षतिः"यह वचन श्री जिनसेनाचार्यके महापुराण पर्व ३६ में लिखाहै। इसका अर्थ यह है कि भरत और वाहुवली ये दोनों मोक्षगामी जीव हैं। इनका कुछ नहीं विगड सकता है। केवल चरमशरीरी होनेका कारण दिखाकर अक्षय वतानेसे भी यही वात सिद्ध होती है कि यावत् चरमशरीरी जीव कीअनपवर्त्यायुही होनी चाहिये। विष,वेदना, रक्तक्षय,भय,शस्त्रघात,श्वासावरोध,तथा आहार निषेध ये असमय मरनेके कारण हैं (प०)वशीधर अनुवादित तत्त्वार्थसार मुद्रित पृष्ठ ३२.९३ ॥'उत्तम' शब्द के सवध में विद्वज्जन विशेष खोज करके कृपया मुझे सुचित करें। औरभी

प्रथम इसके कि हम इस बातपर विचार करैं कि सूत्रका यथार्थ पाठ क्या है विद्वद्वर्य पं० भूदरदासजीने इससूत्रका अर्थ अपने रचित 'चर्चा समाधान में 'कियाहैउसपर कुछ समालोचना करैंशब्दशः उनका लेख इसप्रकार है कि"औपपादिक चरमोत्तमदेहा असंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः' अर्थ-एते अनपवर्त्यायुषा भवन्ति। इतने अनपवर्त्यायुवाले जानना। जिनकी आयुका अपवर्तन कहिये फेरफार न होय समय समयसौं पूरी होइ। विष शस्त्रादिके योगकरि उपक्रमसौं पूरी न होइ ते अनपवर्त्यायुवाले जानना। ते कोन हैं? औपपादिक चरमोत्तमदेहा असंख्येय वर्षायुषः-औपपादिक कहिये देव नारकी चरमोत्तमदेह कहिये तीर्थंकर असंख्येयवर्षायुषः कहिये भोग भूमिके तथा कुभोगभूमिके जीव। भावार्थ चरमोत्तमदेहवाले तीर्थंकर यातैं कहे कि चरमदेहवाले गुरदत्त पाडवादिक उपसर्गकरि मुक्त हुये। उत्तमदेहवाले सुभौमचक्री तथा ब्रह्मदत्तचक्रीकी अकाल मृत्यु हुई। जरत्कुमारके बाणसूं कृष्णजी की अपमृत्यु हुई। इत्यादि सकल चक्री अर्धचक्रीनिके भी अनपवर्त्यायुका नियम नाहीं। यह कथन न्याय कुमुद चन्द्रोदय नाम शास्त्रहै तथा राजवार्तिकालंकार शास्त्र है तहां कहा है। यातैं चरमोत्तमदेह तीर्थंकरकी ही है। इस सूत्रविषैं यह सिद्धान्त हुआ – देव नारकी तीर्थंकर भोगभूमिके जीव इनकैं विष शस्त्रादिक योग से आम्रफलके पाकवत् आयुकी उदीरणा न होइ। इन विना कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिविषैं होइ। जैसे प्रदीप तेलसे भरा होइ पवनके जोगसे बुझ जाय तैसे पूर्ण आयुकी स्थितिका च्छेद निमित्तान्तरसे होइ जाय" ॥ राजवार्तिकमें 'चरमोत्तमदेह' से तीर्थंकर लिये गये हैं यह लेख हमको नहीं मिला है॥

उपर्युक्त लेखसे तथा हमसे अन्य अन्य विद्वानोंसे जो वार्तालाप हुआ उससे यह परिणाम अथवा फल निकलताहै कि'चरमदेह'के अर्थके संबंधमें विद्वानोंके दो मत हैंकुछ कहते हैं कि चरमदेह वाले तद्भव मोक्ष गामी तो होते हैं परंतु उनकी अकाल मृत्यु हो जाती है जैसे अर्जुन,भीम,युधिष्ठर, इससे इस सूत्रमें'उत्तम'विशेषण'चरम'का है कि'चरमोत्तम'देह वालोंकी अकाल मृत्यु नहीं होतीहै,परंतु'चरमदेह' वालों की अकाल मृत्यु हो जाती है ॥ अन्य विद्वज्जनों का मत है कि जब सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १६४ और तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १११ 'चरमदेहा इति वा पाठः' 'चरमदेहा इति केषांचित्पाठः' इस सूत्रके अन्य पाठ क्रमसे दिये हैं तब यदि हम 'चरमदेह' वालोंकी अकाल मृत्यु मानलैं तो उपर्युक्त पाठ व्यर्थ हुये जाते हैं और कहते हैं कि यदि चरमदेहवालोंकी अकाल मृत्यु मानें तो समुद्घात तो वह कर नहीं सकते, हैं क्योंकि एक साथ वा तत्कालही उपसर्ग उपद्रव इत्यादिसे अकाल मृत्यु हो जाती है और यह नियम है कि "आयुके छह मास शेष पीछे केवल ज्ञान उपजै तेते मुनी नियमथकी समुद्घात करै हैं और जिनके छह मास पूर्वं केवल ज्ञान उपजा हो ते समुद्घात करै भी और नहीं भी करै करनेको सर्वथा नियम नाहीं" और बलदेकर कहते हैं कि जब समुद्घातनकरैंगें तो क्या विना वेदनीय, गोत्र और नामकर्मके खिपायेहुये मोक्षपदको प्राप्त होंगे (उत्तर में कहते है कि) उपसर्गमें केवल ज्ञानके पश्चात् केवलि समुद्घातके लिये कोई बात बाधक नहीं जान पड़ती है ॥ उक्त समुद्घातमें आठ ही समय लगतेहैं जो बहुत थोड़ा, काल है क्योंकि "असंख्यात समय एक आवली वखानी ज्ञानी संख्य आवली मिलें तें होत एक स्वांस है" ॥ यदि 'चरमदेहा इति वा पाठः (='चरमोत्तमदेहाः'के स्थानमें चरमदेहा ऐसा पाठ विकल्पसेहै) भाष्यकारोंके मतमें न होता तो"पं०भूदरदासजीका समाधान हृदयको बहुत चुवता हुआ होता क्योंकि 'चरमदेहवालोंमें उक्ततीन पांडवोंकी उपसर्गसहनकर मोक्षहुई अकाल मृत्युहुई यद्यपि वे चरम शरीरीथे और उत्तमदेहधारीयोंमें श्रीकृष्ण ब्रह्मदत्तचक्रवर्ति सुभौमचक्रवर्ति इत्यादिकी अकाल मृत्युहुई इससे न तो केवल चरमदेहवाले और न केवल उत्तमदेहधारी अनपवर्त्य आयु वाले होसके है केवल वेही अनपवर्त्य आयुवाले होसकते है जिनमें दोनों गुणका (चरमदेहत्व और उत्तमदेहत्वका) समावेश हो ऐसे तीर्थंकर और अन्य भी जीव तीर्थंकरोंके अतिरिक्त होसके हैं क्योंकर यदि तीर्थंकरोंसेही उमास्वामीका अभिप्राय होता तो सूत्र ऐसाहोता और साथही लघु और स्पष्टता लिये हुये भी होजाता कि" औपपादि... करा ऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः" ॥ इसलिये यहांपर अब प्रश्नयह है कि तीनों

आयुर्येषां त इमे असंख्येयवर्षायुषस्तिर्यङ्मनुष्या उत्तरकुर्वादिषु प्रसूताः ॥ औपपादिकाश्च चरमोत्तमदेहाश्च असंख्येयवर्षायुषश्च औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषः॥ बाह्यस्योपघातनिमित्तस्य विषशस्त्रादेः सति सन्निधाने ह्रस्वं भवतीत्यपवर्त्यम्। अपवर्त्यमायुर्येषां ते इमे अपवर्त्यायुषः । न अपवर्त्यायुषःअनपवर्त्यायुषः॥ न ह्येषामौपपादिकादीनां बाह्यनिमित्तवशादायुरपवर्त्यते इत्ययं नियमः। इतरेषामनियमः॥ चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वप्रदर्शनार्थमुत्तमग्रहणं नार्थान्तरविशेषोऽस्ति ॥

आयुष्[१/१]।।।येषाम्[६/३]।ते[१/३]।इमे[१/३]।असंख्येय–वर्ष–आयुषः[१/३]। =आयु जिनकी ते ये असंख्यात वर्षकी आयुवाले

तिर्यङ्–मनुष्याः[१/३]। उत्तर–कुरु–आदिषु[७/३]। प्रसूताः[१/३]। =तिर्यंच और मनुष्य उत्तर कुरु आदि (भोगभूमि)विषैं उत्पन्न होते हैं(=प्रसूताः)

च*औपपादिकाः[१/३]।च*चरमोत्तमदेहाः[१/३]।च*असंख्येय-=और औपपादिक और चरमोत्तमदेहाः और असंख्येय

वर्षायुषः[१/३]।औपपादिकचरमोत्तमदेहा– =वर्षायुष हैं । सो (सूत्रमें) औपपादिकचरमोत्तमदेह–

असंख्येयवर्षायुषः[१/३]। बाह्यस्य[६/१]।।।उपघात- =असंख्येयवर्षायुषः(इनका ऐसा द्वन्द्वसमास) हुआ । बाहिरके अभिघात (घातक)

निमित्तस्य[६/१]।।।विषशस्त्रादेः[६/१]।सति[७/१]।।।सन्निधाने[७/१]।।।ह्रस्वम्[१/१]।।।=निमित्तजे माहुर और शस्त्रादिकके वशमेंहोनेपर घटजाती

भवति I इति*अपवर्त्यम्[१/१]।।।अपवर्त्यम्[१/१]।।।आयुः– =है । ऐसा अपवर्त्य है । न्यून होजाती है आयु

येषां[६/३]।ते[१/३]।इमे[१/३]।अपवर्त्य–आयुषः[१/३]। =जिनकी ते इतने अपवर्त्य आयुवाले हैं

न*अपवर्ति-आयुषः[१/३]। अन्-अपवर्तिआयुषः[१/३]। =न्यून आयुके धारी नहीं हैं सो अनपवर्त्य आयुवाले हैं

न*हि'येषाम्[६/३]।औपपादिक-आदीनाम्[६/३]। =निश्चयसे(=हि)नहीं इन औपपादिक,चरमोत्तमदेहधारी,भोगभूमियोंकी,कुभोगभूमियोंकी

बाह्य-निमित्त-वशात्[५/१]।आयुः[१/१]।।। अपवर्त्यते I इति* =बहिरंग कारणोंके वशसे आयु न्यून होती है ऐसा

अयम्[१/१]।नियमः[१/१]। इतरेषाम्[६/१]। अनियमः[१/१]। =यह नियमहै।अन्य(जीवोंकी आयु)का नियम नहींहै अर्थात् देवनारकी,चरमोत्तमदेहधारी भोगभूमियोंके,कुभोगभूमियोंके अतिरिक्त अन्य जीवोंकीसमयपर मृत्युहो वा अकालमृत्युहोजावै कोई नियम नहींहै।।

चरमस्य[६/१]।देहस्य[६/१]।उत्कृष्टत्व–प्रदर्शन–अर्थम्[१/१]।।। =अन्तके शरीरकी श्रेष्ठताके प्रतिपादनके लिये

उत्तम-ग्रहणम्[१/१]।।। न*अर्थान्तर-विशेषः[१/१]।अस्ति I =उत्तम(शब्द)का(इससूत्रमें)उपादान है,अन्य(किसी) विशेष प्रयोजनके लिये नहीं है

औपपादिका व्याख्याताः देवनारका इति ॥ चरमशब्दोऽन्त्यवाची । उत्तम उत्कृष्टः । चरम उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहाः। विपरीतसंसारास्तज्जन्मनिर्वाणार्हा इत्यर्थः॥ असंख्येयमतीतसंख्यानमुपमाप्रमाणेन पल्यादिना गम्यम्

वृत्त्यनुवादः-औपपादिकाः१/३ व्याख्याताः१/३ देव-नारकाः१/३ इति*=उपपाद जन्मसे उत्पन्नहोनेवाले(४६वांसूत्रमें)कहेगये हैं (वे) देव नारकी हैं

चरमशब्दः १/१ अन्त्यवाची १/१, उत्तमः१/१ उत्कृष्टः १/१ =(सूत्रमें)चरम शब्द अन्तका(=अन्त्य) बोधकहै उत्तम है सो उत्कृष्टहै, श्रेष्ठहै

चरमः १/१ उत्तमः १/१ देहः१/१ येषाम् ६/३ ते चरमोत्तम-देहाः१/३ =अन्तिम श्रेष्ठ है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देहवाले हैं अर्थात् चरमोत्तम है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देहके धारी हैं।देहके विशेषण'चरमउत्तम'शब्द हैं॥

विपरीत-संसाराः १/३ तत्-जन्म-निर्वाण-अर्हाः १/३ =छूटनेवाला हैसंसार जिनका उसीजन्ममेंवाभवमें मोक्षहोने योग्यहैं(=अर्हाः१/३)जे

इति*अर्थः१/१; अतीत-संख्यानम्१/१।।। असंख्येयम् १/१।।। =ऐसा अभिप्राय है । गणनासे रहित है सो असंख्यात है

उपमा-प्रमाणेन ३/१।।। पल्यादिना ३/१।।। गम्यम् १/१।।। =उपमाप्रमाण(=उत्कृष्टप्रमाणित)पल्यआदिसेअर्थात्अद्धापल्यादिकसेजानीजायहै

(अ)जिसमें थोड़े अक्षर हों जो संदेहरहित अर्थवाला हो सारगर्भित और वृथा शब्दसे रहित हो उसको सूत्र कहतेहैंजैसाकि निम्न लिखित श्लोकसे विदित है और वैयाकरणको यदि सूत्रके रचनेमें आधा वा एक मात्राका भी लाभ होजावे तो उसको पुत्रके जन्म सदृश हर्ष होता है अब जैसाकि, निम्न सूत्र उल्लेख करता है जितने उपर्युक्त गुण सूत्रमें होना चाहिये वे समस्त सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर "चरमदेहा." पाठमें गर्भित हैं क्योंकि 'उत्तम' शब्दके नलानेसे सूत्रका प्रथम गुण"थोड़े अक्षर" की निष्पत्ति होजाती है ॥ इसी शब्दको पाठमें न लानेसे सूत्रका अर्थ सर्वथा संदेहरहित, सीधा साधा,स्पष्ट और सरल होजाता हैअर्थ करनेमें दूसरोंको समझानेमें कुछ भी संदेह नहीं रहता । एवं 'चरमदेहाः'पाठ सूत्रका द्वितीय गुण कि संदेहरहित अर्थ वाला हो पूर्ण करता है । उत्तम शब्दके निकालदेनेसे सार-सत गर्भित सूत्ररहजाता है इसप्रकार सूत्रका तीसरा गुण पूर्ण हुआ जब उत्तमशब्द पाठसे पृथक् करदिया तब व्यर्थ और निष्प्रयोजनीय भाग निकल जाताहै और सूत्रके चौथेगुणकी कि सूत्रव्यर्थ शब्दोंसे रहितहो पूर्णता हो जाती है ॥

श्लोक ॥ १ ॥ अल्पाक्षरमसंदिग्धं (=अल्पअक्षरम् १/१॥ असंदिग्धम् १/१॥)=थोड़े अक्षरहों- संदेहरहित (अर्थयुक्त) हों

सारवद्विश्वतो मुखं (=सारवान् १/१ विश्वतः*मुखम् १/१॥)=सत वा सार गर्भितहो सर्वतः(=विश्वतः)श्रेष्ठ (=मुख्य) हो

अस्तोभमनवद्यं च (=अ-स्तोभं १/१॥ अनवद्यम्१/१॥ च*)=निरर्थक शब्द(=स्तोभ)रहित [=अ] और[=च]दूषण वर्जितहो

सूत्रं सूत्रविदो विदुः [=सूत्रं२/१॥ सूत्रविदः१/३ विदुः T]=सूत्रज्ञाता [उसको] सूत्रकहते हैं ॥ १ ॥

श्लोक ॥ २ ॥ एको वाअर्द्धमात्रायाः[=एकः१/१ वा अर्द्धमात्रायाः६/१॥]=एक अथवा आधी मात्राका

सूत्रस्य कृतिलाघवे [=सूत्रस्य६/१॥कृति७/१॥लाघवे ७/१॥]=सूत्रकी रचनामें लाभहोनेपर वा न्यूनहोनेपर

पुत्रजन्मोत्सवस्तुल्यो[=पुत्र-जन्म-उत्सवः १/१ तुल्यः १/१]=पुत्रके जन्मके हर्षसमान वा पुत्रके जन्ममें हर्षहोनेके सदृश

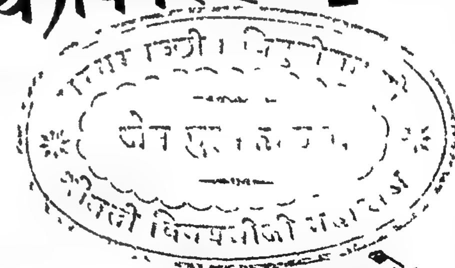
वैयाकरणो मन्यते [=वैयाकरणः १/१ मन्यते T]=व्याकरणज्ञाता वा व्याकरण को जाननेवाला मानता है ॥ २ ॥

गतिजन्मयोनिदेहलिङ्गानपवर्तितायुष्कभेदाश्चाध्यायेऽस्मि-न्निरूपिता भवन्तीति सम्बन्धः॥इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धि-सञ्ज्ञिकायां द्वितीयोऽध्यायः॥

च॥गतिभेदाः [१/३]
जन्मभेदाः [१/३]
योनिभेदाः [१/३] देहभेदाः [१/३]
लिङ्गभेदाः [१/३]
अनपवर्तित—आयुष्कभेदाः [१/३]
अध्याये[७/१] अस्मिन्[७/१] निरूपिताः[१/३]
भवन्ति T इति॥सम्बन्धः [१/१]

=(=च) और (जीव पुद्गलके) गमनके भेद (२५ से ३० सूत्र पर्यंत)
=(जीवके) नया शरीर धारण करनेके भेद (३१, ३३, ३४, ३५ सूत्र)
=(जीवके) उत्पत्तिके स्थान(नौभेद)वत्तीसवांसूत्र । शरीरोंकेभेद (३६से ४९सूत्र पर्यंत)
=लिङ्ग वा वेदोंके भेद (५०, ५१, ५२, सूत्र)
=नहीं घटनेयोग्य वा न्यून होनेयोग्य आयुवालोंके भेद(देखो सूत्र५३)
=इस (=अस्मिन्) (दूसरे) अध्यायमें वर्णित वा कहेगये
=है (=भवन्ति) ऐसा संबंध अथवा संयोग है अर्थात् इस दूसरे अध्यायमें उपर्युक्त
वस्तुओं वा विषयोंका कथन है॥

इतितत्त्वार्थ-वृत्तौ[७/१] =इसप्रकारतत्त्वोंकेस्वरूप(=अर्थ)विवरणमें[=वृत्तौ]
सर्वार्थसिद्धि- =सर्वार्थसिद्धि
संज्ञिकायाम्[७/१] =नामक(ग्रन्थ)में
द्वितीयः[१/१] अध्यायः[१/१] =दूसरा अध्याय(समाप्त)हुआ॥ * मंगलहो *



चरमदेहा इति वा पाठः ॥ २ ॥

जीवस्वभावलक्षणसाधनाविषयस्वरूपभेदाश्च

चरम-देहाः³इति*वा*पाठः¹।	=अथवा('चरमोत्तमदेहाः'केस्थानमें)'चरमदेहाः'ऐसा(भीसूत्रका अन्य प्रकारका)पाठ है
जीवस्वभावः¹। जीवस्वभावभेदाः³।	=चेतनके निजभाव वा स्वतत्वभाव (सूत्र१) चेतनके निजभावकेभेद (दूसरे से सातवां सूत्र तक)
जीवलक्षणम् ¹॥	=जीवका लक्षण अर्थात् वह चिन्ह जो जीवका भेदज्ञान अन्य पदार्थोंसे करासके(देखो आठवां सूत्र)
जीवलक्षणभेदाः³।	=जीवका उपयोगरूप लक्षणके प्रभेद अर्थात् ज्ञानके आठ भेद और दर्शनके चार भेद(देखो सूत्र ९)
जीवसाधनम् ¹॥	=जीवोंकी मर्यादा अथवा प्रमाण अर्थात् जीवोंकी संसाररूप और मोक्षरूप मर्यादा करना(देखोसूत्र१०)
जीवसाधनभेदाः³।	=जीवके साधन वा उपकरणकेभेद अर्थात् दो मर्यादा जो ऊपर कहींगई हैं तिनके भेद (देखो सूत्र ११, २४, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८,१९, २२, २३)
जीवविषयः¹।	=जीव (की इन्द्रियाँ) के विषय (देखो सूत्र २० और २१)
जीव-विषय-भेदाः³।	=जीव(की इन्द्रियों)के विषयभेद अर्थात्(i) शीत,उष्ण;रूक्ष, सचिक्कन; कठोर, कोमल; हलका, भारी; ये स्पर्शविषयके आठ भेद हैं। (ii)तिक्त,कटु,कषायला, खट्टा और मीठा ये पांच रस विषयकेभेद हैं (iii)सुगंध,दुर्गंध दो गंधविषयके भेद हैं(iv)स्वेत,पीत,नील,अरुण,और कृष्ण वर्णविषयके पांच भेद हैं (v)अच्छी-बुरी-प्रिय-अप्रिय इत्यादिध्वनिऔरनादादिकयेशब्दविषयकेभेद हैं येसबसूत्र२०,२१मेंगर्भित हैं
जीवस्वरूपं(१)¹॥च*जीवस्वरूपभेदाः(२)³	=चेतनके निजभाव वा स्वतत्वभाव(सूत्र१)और(=च,)चेतनके निजभावके भेद (दूसरेसे सातवां सूत्र तक)

(१)"जीवस्वभावलक्षणसाधनविषयस्वरूपभेदाश्च गतिजन्मयोनिदेहलिङ्गानपवर्तितायुष्कभेदाश्चाध्यायेऽस्मिन्निरूपिता भवन्ति इति सम्बन्धः" ये दोनों वाक्य कठिन और गंभीररूपमें हैं इससे इनके पृथक् पृथक् पदच्छेद करके अर्थ किये गये हैं॥ (२) हमारी समझमें 'स्वरूप'शब्द इस वाक्यमें व्यर्थ और अधिक भूलसे छपगयाहै क्योंकि"स्वरूपं च स्वभावश्च निसर्गश्चाथ वेपथुः"अमरकोश वर्ग ८ श्लोक ३८ वां के प्रथमपादसे प्रगट है कि स्वभाव, स्वरूप और निसर्ग तीनों शब्द समानार्थक है और वेपथु' का अर्थ थरथराना या कांपनेका है। हस्त लिखित प्रतिमें भी यही पाठहै,उक्त 'जीवस्वरूप,जीवस्वरूपभेद'के वेही अर्थहैं जो इस जीवस्वभाव और जीवस्वभावभेद'के अर्थहैं जैसाकिअनुवादसे प्रगट है।यदि पूज्यपादस्वामी ने ही ऐसी रचना की है तो जब'स्वभाव'शब्द आरम्भमेंही ग्रहण कियाहै तो फिर स्वरूप'शब्द क्यों लाये और किस अर्थ में लाये?॥पाठक निर्णयकरें

रत्नं च शर्करा च वालुका च पङ्कश्च धूमश्च तमश्च महातमश्च रत्नशर्करावालुकापङ्कधूम-तमोमहातमांसि । प्रभाशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते ।

घनाम्बुवात-(१) = घन (= स्थूल) उदधि (= अम्बु, जल) वात (= पवन) अर्थात् घनोदधि वातवलय।

घनवात- = घन (सघन, स्थूल) वात (= पवन, बयार) अर्थात् घनवातवलय।

(तनु) वात-आकाश-प्रतिष्ठाः १। भवन्ति T = तनुपवन वा सूक्ष्मवायु अर्थात् सूक्ष्मवातवलय, और आकाश के आधार वा आश्रय हैं।

भावार्थ ये भूमियें घनोदधिवातवलय जो सघन पवन और जलमिश्रित है, आधार है, घनोदधिवातवलय घनवातवलय के जो स्थूल-सघन वायुका है आश्रय है, घनवातवलय तनुवातवलय के जो सूक्ष्मवायुका है आधार है और तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश अपने आधार है और स्वयं आधेय है उसका कोई अन्य आधार नहीं इसलिये वह अपने आप आधार है।

सप्त १।। अधः * अधः * = (ये भूमियें सब) सात (ही) हैं (और क्रम से एक दूसरे के) नीचे नीचे ही हैं।

वृत्त्यनुवादः—रत्नं १।।। च शर्करा १।। च वालुका १।। च = और रत्न और शर्करा (कंकरीली) तथा वालुका

पङ्कः १। च धूमः १। च तमः १।।। च महातमः १।।। च = बहुरि पंक अर धूम और तम तथा महातम (शब्द आपस में)

रत्न-शर्करा-वालुका-पङ्क-धूम-तमः-महातमांसि १।।। ; = रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमांसि रूप में इतरेइतर योगद्वंद्व समास हैं।

प्रभाशब्दः १। प्रत्येकं १।७। परिसमाप्यते T = प्रभा शब्द पृथक् पृथक् रत्न, शर्करा, वालुका इत्यादि पर जोड़ा जाता है।

हुई छतरी उसके नीचे की विशाल विशाल छतरी के सम हैं। तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ११३ वार्तिक ११ के अनुकूल हमारे यहां भी किसी किसी आचार्य के मत में "पृथुतराः" पाठ भी है अतः दोनों आम्नायों में पाठ और अर्थ एकसा हुआ ॥ परन्तु वार्तिककार का मत है कि रत्नप्रभा भूमि में तरप् प्रत्यय का अर्थ लागू नहीं होसकता उसका पृथुतर नाम नहीं बन सकता क्योंकि उससे अन्य कोई नरक भूमि विस्तार वेदना वा आयु की अपेक्षा न्यून हो तब तो रत्न प्रभा से पृथुतर कहा जासकता है किन्तु सो तो है नहीं इसलिये "पृथुतरा" शब्द के उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं।

(१) वातश्च वातश्च वातौ यह यहां पर एकशेष समास माना है । एकशेष समास का यह नियम है कि समान अनेक शब्दों में एक ही शब्द अवशिष्ट रह जाता है अन्य का लोप हो जाता है इसलिये यहां पर एक वात शब्द का लोप होगया है इसलिये घनाम्बुवात शब्द से यहां पर घनोदधि वात और घनवात समझना चाहिये तथा घन शब्द सामान्य है वह तनुरूप विशेष की आकांक्षा रखता है इसलिये वात शब्द से यहां तनुवात का भी ग्रहण है इसप्रकार घनाम्बुवात शब्द घनोदधिवात, घनवात और तनुवात इन तीन वातवलयों का वाचक है।

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणामित्येवमादिषु नारकाः श्रुतास्ततः पृच्छति के ते नारका इति । तत्प्रतिपादनार्थं तदधिकरणनिर्देशः क्रियते ॥

॥ रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ १ ॥

अथ ॰ तृतीयः ॥ अध्यायः ॥ = (मोक्ष शास्त्र वा तत्वार्थ सूत्र का) तीसरा अध्याय आरम्भ (= अथ) है
भवप्रत्ययः ॥ अवधिः ॥ देवनारकाणां ॥ इति एवम् = जन्मनिमित्तक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है ऐसेही (= एवम्)
आदिषु ॥ नारकाः ॥ श्रुताः ॥, = प्रथम (अध्याय १ सूत्र २१, अध्याय २ सूत्र ३१, ३४, ४६, ५०, ५३) में नारकी सुनेगये हैं
ततः ॰ पृच्छति ॥ के ॥ ते ॥ नारका ॥ इति ॰ तत्- = उस कारण से (= ततः) पूछता है कि वे नारकी कौन हैं। उन (नारकियों) के
प्रतिपादन-अर्थं ॥ तत्-अधिकरण-निर्देशः ॥ क्रियते ॥ = जनानेवा बतला देने के लिये, उनके आधार (= निवासस्थान) का कथन किया जाता है

सूत्रम्—रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ।

पदच्छेदः—रत्नप्रभा—शर्कराप्रभा—वालुकाप्रभा—पङ्कप्रभा—धूमप्रभा—तमःप्रभा—महातमःप्रभा—भूमयः घनवात—अम्बुवात—(तनु)वात—आकाश—प्रतिष्ठाः(भवन्ति) सप्त अधस् अधस् ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा-वालुकाप्रभा = रत्न के समान दीप्ति, शर्करा के सदृश चमक, वालू के सम झलक,
पङ्कप्रभा-धूमप्रभा-तमः प्रभा- = कीचड़ के सदृश झलक, धूमवत् प्रभा, अंधकार के समान आकृति,
महातम-प्रभाः ॥ भूमयः ॥ = महा अंधकार के समान झलक (यथा गुण तथा नाम की) भूमियें (नारकस्थान)
(जिनके रूढिनाम घम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी हैं)

(१) रत्नाकरकी 'पृथुतरा' शब्द से अधिक है जिसका अर्थ पृथु अतिपृथुतर अधिक २ विस्तार होती गई हैं अर्थात् ऊपर और चौड़ी चौड़ी तरां

४

तासां भूमीनामालम्बननिर्ज्ञानार्थं घनाम्बुवातादिग्रहणं क्रियते ॥ घनाम्बु च वातश्च आकाशं च घनाम्बुवाताकाशानि । तानि प्रतिष्ठा आश्रयो यासां ता घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः ॥ ❋ घनं च घनो मन्दो महान् आयतः इत्यर्थः । अम्बु च जलं उदकमित्यर्थः । वातशब्दोऽन्त्यदीपकः । ततः एवं सम्बन्धनीयः । घनो घनवातः ।

तासां [६]॥ भूमीनां [६]॥ आलम्बन–निर्ज्ञान–अर्थम् [१]॥	= तिन भूमियों के अवलम्बन के निर्णय के लिये अर्थात् जो भूमि नरकोंका अवलम्बन बतलाई गई हैं उन का अवलम्बन क्या है। यह प्रगट करने के लिये
घन–अम्बु–वात आदि ग्रहणं [१]॥ क्रियते ।	= (सूत्र में) घन–अम्बु–वातादि (वाक्य) का आदान किया गया है ।
घन– अम्बु [१]॥ च ❋ वातः [१]। च ❋ आकाशं [१] च ❋	= बहुरि घन–अम्बु (= महान् उदक, और वात और आकाश शब्दोंका द्वंद्व समास
घनअम्बुवातआकाशानि [१]॥ ; तानि [१]॥	= घनाम्बु–वात–आकाशानि है । ते (घनाम्बुवात–आकाश)
प्रतिष्ठाः [१]॥ आश्रयः [१]। यासां [६]॥ ताः [१]॥ घनाम्बु-वाताकाशप्रतिष्ठाः [१]॥	= आधार वा आश्रय जिन (भूमियों) को है ते घनाम्बुवाताकाश = प्रतिष्ठा (कहलाती) हैं अर्थात् सात नरकोंकी भूमियें महान्जलपवनआकाशकेआश्रयहैं
घनं❋ [१]॥ च ❋ घनः [१]। मन्दः [१]। महान् [१]। आयतः [१]।	= बहुरिघन है सो गाढ़ा = घन) मोटा (= मन्द) बड़ा (महान्) लम्बाचोंड़ा आयत है
इति–अर्थः [१]। ;	= ऐसा आशय है, अर्थात् घन, मन्द, महान् और आयत समानार्थकवाची शब्द हैं ॥
अम्बु [१]॥ च ❋ जलं [१]॥ उदकम् [१]॥ इति❋ अर्थः [१]।	= और अम्बु है सो पानी, नीर ऐसा अभिप्राय है (अम्बु–जल–उदक एकार्थी हैं)।
वात–शब्दः [१]। अन्त्य–दीपकः [१]।	= (सूत्र में) वात शब्द (घन–अम्बु के) अन्त का प्रकाशक है अर्थात् घन और अम्बु प्रत्येक शब्दके अन्तमें रहनेवाला है उसको प्रत्येकके साथजोड़दो ।
ततः❋ एव❋ सम्बन्धनीयः [१]। घनः [१]। घनवातः [१]।	= तिस से ऐसे सम्बन्ध होना चाहिये, कि (घनाम्बुवात वाक्यमें) घन है सो घन वातहै अर्थात् घनवात(वलय) है सो गाढ़ेवा स्थूलवा सघनपवनका है ।

❋ चतुष्कोणकंसस्थः पाठः तालपत्र पुस्तके एव वर्तते = चौकोन रूप में स्थित वा निविष्ट ऐसा पाठ ताडपत्र पर लिखित पुस्तकमें विद्यमान है ।

साहचर्यात्ताच्छब्द्यम् ॥ चित्रादिरत्नप्रभासहचरिता भूमिः रत्नप्रभा, शर्कराप्रभासहचरिता भूमिः शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभासहचरिता भूमिः वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभासहचरिता भूमिःपंकप्रभा,धूमप्रभासहचरिता भूमिः धूमप्रभा, तमःप्रभासहचरिता भूमिः तमःप्रभा, महातमः प्रभासहचरिता भूमिः महातमःप्रभा इति॥ एताः सञ्ज्ञा अनेनोपायेन व्युत्पाद्यन्ते॥ भूमिग्रहणमधिकरणविशेषप्रतिपत्त्यर्थम्॥ यथा स्वर्गपटलानि भूमिमनाश्रित्य व्यवस्थितानि, न तथानारकावासाः। किं तर्हि, भूमिमाश्रिता इति॥

साहचर्यात् ५॥।	=(रत्न-शर्करा-वालुका आदिकी प्रभा के) सदृश होनेसे वा सहचारी होने से
तात्-शब्द्यम् १॥। ;	=उन (भूमियों) के (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा आदि) नाम धरेगये हैं
चित्र-आदि-रत्नप्रभा-सहचरिता १॥ भूमिः १॥ रत्नप्रभा१॥	=चित्रादिक रत्नों की दीप्ति सदृश पृथिवी सो रत्नप्रभा है।
शर्करा-प्रभा-सहचरिता १॥ भूमिः १॥ शर्कराप्रभा १॥	=कंकरकी दीप्ति सदृश पृथिवी सो शर्कराप्रभा है।
वालुकाप्रभा-सहचरिता १॥ भूमिः १॥ वालुकाप्रभा १॥	=वालुका की चमक सम पृथिवी सो वालुका प्रभा है।
पङ्कप्रभा १॥ सहचरिता १। भूमिः १॥ पङ्कप्रभा१॥	=कीचड़ अथवा कर्दम की झलक सम पृथिवी सो पंकप्रभा है।
धूमप्रभा १॥ सहचरिता १॥ भूमिः १॥ धूमप्रभा१॥	=धूंवां की दीप्ति तुल्य पृथिवी सो धूमप्रभा है।
तमःप्रभा १॥ सहचरिता १॥ भूमिः १। तमःप्रभा १॥	=अन्धकार की झलक सम पृथिवी सो तमःप्रभा है।
महातमःप्रभा १॥ सहचरिता १। भूमिः १॥	=अत्यन्त अन्धकार की प्रभा तुल्य पृथिवी
महातमः प्रभा १॥ इति ॥ एताः १॥ संज्ञाः १॥ अनेन ३।	=सो महातमः प्रभा है। (ये रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि) नाम। इस (=अनेन)
उपायेन ३। व्युत्पाद्यन्ते ॥	=साधनकरि निरुक्ति कियेगयेहैं अर्थात् व्याकरणकी रीतिसे सिद्ध कियेगयेहैं।
भूमि-ग्रहणं १॥। अधिकरण-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् १॥।	=(इस सूत्र में) भूमि (शब्द) का आदान आधार विशेषके जतलाने के लिये है।
यथा स्वर्ग पटलानि १॥। भूमिम्२॥ अनाश्रित्य॥व्यवस्थितानि १॥।	=जैसे स्वर्गपटल भूमि को आधार न कर के पृथक्२व्यवस्थित याठहरे हुएहैं
न* तथा * नारक-आवासाः १॥	=तैसें नारकियोंके वासस्थान नहीं हैं अर्थात् उनके वासस्थान भूमिके आधार हैं
किम् * तर्हि * भूमिम् २॥ आश्रिता १। इति *	=तो (=तर्हि) भूमिको क्या आधार-अधिकरण है अर्थात् किसपर तिष्ठी है

सर्वा एता भूमयो घनोदधिवलयप्रतिष्ठाः । घनोदधिवलयं घनवातवलयप्रतिष्ठम् । घनवातवलयं तनुवातवलयप्रतिष्ठम् । तनुवातवलयमाकाशप्रतिष्ठम् । आकाशमात्मप्रतिष्ठं, तस्यैवाधाराधेयत्वात् ॥ त्रीण्यप्येतानि वलयानि प्रत्येकं विंशतियोजनसहस्रबाहुल्यानि ॥ सप्तग्रहणं संख्यान्तरनिवृत्यर्थम् । अधोऽधोवचनं सप्त भूमयो नाष्टौ न नव चेति ॥

सर्वाः१/३॥ एताः१/३॥ भूमयः१/३॥ घनोदधिवलय-
प्रतिष्ठाः१/३॥ घनोदधिवलयम् १/१॥ घनवातवलय-
प्रतिष्ठम्१/१॥ घनवातवलयं१/१॥ तनुवातवलय-
प्रतिष्ठं१/१॥ ; तनुवातवलय१/१॥ आकाश-प्रतिष्ठं१/१॥
आकाशं१/१॥ आत्म-प्रतिष्ठं१/१॥ तस्य६/१॥ एव * आधार-
आधेयत्वात्५/१॥
त्रीणि१/३॥ अपि*एतानि१/३॥ वलयानि१/३॥ प्रत्येकम् १/१॥
विंशति-योजन-सहस्र-बाहुल्यानि१/३॥ सप्तग्रहणम् १/१॥
संख्या-अंतर-निवृत्ति-अर्थम्-१/१॥ सप्त१/३॥ भूमयः१/३॥
न-अष्टौ१/३॥ न नव१/३॥ च*इति-अधः * अधः*वचनं१/१॥

= समस्त ये पृथिवीं घनोदधिवलय के (जो जल और पवन मिश्रत है)
अर्थात् घनोदधिवात जिसकी गीली वा आर्द्रवायु है।
= आधार है (= प्रतिष्ठा) घनोदधिवलय घनवातवलयके (जो सघन पवनका है)
= आश्रय है ॥ घनवातवलय तनुवातवलयके (जो सूक्ष्म, पतली वायुका है)
= आधार है ॥ तनुवातवलय आकाशके आधार है
= आकाश अपने (= आत्मन्) आधार है क्योंकि तिस (आकाश) के ही आधार
= और आधेयभाव है अर्थात् वह स्वयं ही आधार और स्वयं ही आधेय है
= ये तीनों ही वातवलय पृथक् पृथक्
= बीस हजार योजन मोटे है। सूत्र में 'सप्त' शब्द का उपादान
= अन्य संख्या के निराकरण के लिए है ॥ सात ही पृथिवी हैं
= न आठ और न नौ। सूत्र में अधो अधो (नीचे नीचे) वाक्य है सो

"भूमयः घनोदधिवलय प्रतिष्ठा." तत्वार्थश्लोक वार्तिकके रचयिता और श्रुतसागरि सूरिके मतमें ये भूमियां घनवातवलयके आधार हैं और घनवातवलय अम्बुवातवलय (अर्थात् घनोदधिवातवलय) के आधार है और अम्बुवातवलय तनुवातवलय के आधार है भावार्थ तत्त्वार्थराज-वार्तिककारके, सर्वार्थसिद्धिकेकर्त्ताके, श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुसार तथा प० जयचन्द्रराय जी, सदासुख जी इत्यादिके अनुसार तो ये समस्त पृथिवी घनोदधिवातवलय के आधार है और घनोदधिवातवलय घनवातवलय के आधार है, और घनवातवलय तनुवातवलयके आधार है तनुवातवलय आकाशके आधार है परन्तु श्लो० वा० और श्रुतसागरीटीकाके अनुसार भूमियां घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय घनोदधिवातवलयके आधार है जैसा निम्नलिखित वाक्यों से प्रगट है ॥ (क) "स च तनुवात प्रतिष्ठोम्बुवातो घनवातस्य स्थितिहेतु सोपि भूमेर्नकूर्मादिः

अम्बु अम्बुवातः¹। वातस्तनुवातः । इति महदपेक्षया तनुरिति सामर्थ्यगम्यः । अन्य पाठः ॥ सिद्धान्तपाठस्तु घनाम्बु च वातं चेति वातशब्दः सोपस्क्रियते । वातस्तनुवात इति वा ॥]

अम्बु॥। अम्बुवातः॥	= अम्बु है सो अम्बुवात है अर्थात् सूत्र में "घनाम्बुवात" वाक्य में जो अम्बु शब्द है उसको अम्बुवातके समान वातशब्द के अन्त्यदीपक होनेसे समझना चाहिये यह वायुमंडल जल मिश्रत है अतः इसको घनोदधि वातवलय कहते हैं ॥
वातः॥ तनुवातः॥ इति * महत्-अपेक्षया॥	= वात है सो तनुवात है ऐसे (सूत्र में घन-सघन की (= महत्) अपेक्षा से
तनुः॥ इति * सामर्थ्यगम्यः॥	= सूक्ष्म (= तनु) संगत अर्थता से प्राप्य है अर्थात् 'तनु' शब्दकी प्राप्ति यहां आशय के प्रसंग से हुई है क्योंकि जब सूत्र में घन (सघन) वर्तता है तो घन तो जबही विद्यमान होसकता है और उसी समय सूत्र में लासकते हैं जब उसका विरोधक सूक्ष्म वा तनु हो ॥ तनुवात सूक्ष्म वा पतले वायुमंडल को कहते हैं ॥
अन्यः॥ पाठः॥;	= (घनं च घनो इत्यादि सामर्थ्यगम्यः पर्यन्त) दूसरा वा भिन्न पाठ हुआ
सिद्धान्त-पाठः॥ तु * घन-अम्बु॥। च वातं॥। च इति	= परन्तु (= तु) सिद्धान्त का पाठ घनाम्बु और (= च) वात ऐसा है
वातशब्दः॥ सोपक्रियतेT	= (घनाम्बु में) वात शब्द ऊपर से जोड़ागया है (तब) घनाम्बुवात, घनवात हुए
वा * वातः॥ तनुवातः॥ इति * ॥]	= और (= वा) वात है सो तनु (सूक्ष्म) वात है ये सब मिलकर घनाम्बुवात घनवात तनुवात हुये । 'घनाम्बुवात' वाक्य का यही विग्रह है जो सिद्धान्तके पाठ के अनुकूल लेकर सूत्र का अर्थ किया गया है (देखो ३ अध्याय पृष्ठ २)

तिर्यक्प्रचयनिवृत्त्यर्थम् ॥

किं ता भूमयो नारकाणां सर्वत्रावासा आहोस्वित्क्वचित्क्वचिदिति तन्निर्धारणार्थमाह—

॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

तिर्यक् * प्रचय-निवृत्ति-अर्थम् ¹₁॥। = चौरस (तिर्यक्) वा तिरछा (तिर्यक्) फैलाव (= प्रचय) के निषेध के लिये अर्थात् ये पृथिवी एक दूसरेके नीचे २ अवस्थित हैं तिरछे, चौरस, फैलाव वा ऊर्ध्व में नहीं हैं

किम् * ताः ¹₃॥ भूमयः ¹₃॥ नारकाणाम् ⁶। सर्वत्र * आवासाः ¹₃। = (प्रश्न) क्या वे भूमियें नारकियोंके सर्वत्र वासस्थान हैं

आहोस्वित् * क्वचित् * क्वचित् * इति * तद्- = अथवा (= आहोस्वित्) कहीं कहीं पर हैं। इस (बात) के

निर्धारण-अर्थम् ¹₁॥। आह। = निर्णयके लिये (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि—

तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

= तासु त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि पंचविंशतिनरकशतसहस्राणि, पंचदशनरकशतसहस्राणि, दशनरकशतसहस्राणि, त्रिनरकशतसहस्राणि, पंचोनएकनरकशतसहस्राणि, च, पंच एव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—तासु ³₃॥ त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि ¹₃॥। = उन (भूमियों) में तीस लाख बिल (= नरक)

पञ्चविंशतिनरकशतसहस्राणि ¹₃॥। पंचदश- = पच्चीस लाख बिले, पंद्रह

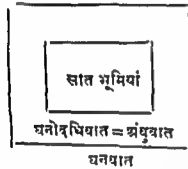
नरकशतसहस्राणि ¹₃॥। दशनरकशतसहस्राणि ¹₃॥। = लाख बिले (= आवास) दश लाख बिले (= निवासस्थान)

श्वेताम्बर आम्नायक 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' मे इस सूत्रके स्थानमें " तासु नारका " केवल इतना सूत्र है इसका अर्थ है कि उन (रत्नप्रभादि भूमियों) में नरक हैं और उक्तसभाष्य०के भाष्यकारने इस कथनका कि प्रथम भूमिमें तीसलाख बिले हैं दूसरीमें पच्चीसलाख तीसरीमें पंद्रह लाख चौथीमें दशलाख, पांचवीमें तीनलाख छठीमे पांचघाटि एकलाख और सातवीं भूमिमें केवल पांच नरक बिले वा निवासस्थान हैं भाष्यमें अन्तर्गत करदिया है और इसी सूत्रके भाष्यमें यह कथन कि पहिले नरकभूमिमें तरह, दूजामें ग्यारह, तीसरीमें नव, चौथीमें सात, पांचवींमें पांच, छठवींमें तीन, सातवीमें एकही प्रतर है गर्भित है। पूज्यपाद स्वामीने प्रतरको गणनाका कथन इसी सूत्रकी वृत्तिमें करदिया है यथार्थमें हमारे

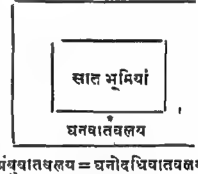
७

अर्थः—अम्बुवातवलय (=घनोदधिवातवलय) यह तनुवातवलय के आधार है (कैसा है अम्बुवातवलय कि) घनवातवलय की स्थिति का कारण है और यह घनवात (वलय) भूमिकी स्थिति का हेतु है। भूमि की स्थिति का हेतु कछुवा इत्यादि नहीं हैं ॥ तत्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३४५ ॥

(ख) सर्वाः सप्त भूमयः घनवात प्रतिष्ठा वर्तन्ते स च घनवात अम्बुवातप्रतिष्ठोऽस्ति। स च अम्बुवात तनुवातप्रतिष्ठो वर्तते। स च तनुवात आकाशप्रतिष्ठो वर्तते इत्यादि इसी सूत्र के नीचे श्रुतिसागरि टीका पृष्ठ ८९ से उद्धृत॥ सर्वार्थ सिद्धिवृत्तिकारका मत पृष्ठ ६ में उल्लेख करदियाहै ॥



सर्वाप्येता भूमयः घनोदधिवलयप्रतिष्ठाः; घनोदधिवलयं घनवातवलयप्रतिष्ठं; 'घनवातवलयं तनुवातवलयप्रतिष्ठं, तनुवातवलयमाकाशप्रतिष्ठम्" राजवार्तिकपृष्ठ ११२ ॥ " तदेवं खरपृथिवी पङ्कप्रतिष्ठा पङ्को घनोदधिवलयप्रतिष्ठो, घनोदधिवलयं घनवातवलयप्रतिष्ठं ॥ ततो महातमो भूतमाकाशम् ॥ सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ६४ ॥



"तीनसौ तेताल राजु घनाकार सब लोक घनोदधि, घन(वात) तनुवात के आधार हैं। कविवर द्यानतरायके चरचाशतकसे उद्धृत। कैसा है ? सर्वलोक घनोदधिवातवलय (जो जल और पवन मिश्रित है) ताके आधार है और घनोदधिवातवलय घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय तनुवातवलयके आधारहै " ॥

"ए भूमि तो घनोदधिवातवलय के आधार हैं। बहुरि घनोदधिवातवलय घनवातवलय के आधार है बहुरि घनवातवलय तनुवातवलयके आधार है। तनुवातवलय आकाशके आधारहै ॥ पं० जयचन्द्रायजी कृता वचनिका पृष्ठ मुद्रित २६६ ॥

"तहां ते समस्त पृथिवी तो घनोदधिवातवलयके आधार है। और घनोदधिवातवलय है सो घनवातवलयके आधारहै। अर घनवातवलय है सो तनुवातवलय केआधारहै' सदासुखजी कृता अर्थप्रकाशिका पृष्ठ १४३॥

ततोऽधः आसप्तम्या द्वौ द्वौ नरकप्रस्तारौ हीनौ ॥ इतरो विशेषो लोकानुयोगतो वेदितव्यः ॥
अथ तासु भूमिषु नारकाणां कः प्रतिविशेष इत्यत आह—

॥ नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

ततः * अधः * आसप्तम्याः[५/१]॥ द्वौ[१/२]। द्वौ[१/२]। नरक-प्रस्तारौ[१/२]। हीनौ[१/२]। = तिस (प्रथम भूमि) से नीचे सातवीं (भूमि) तक दो दो नरक पटल = न्यून हैं अर्थात् सातवीं भूमि में एक, छठी में तीन, पांचवीं में पांच, चौथी में सात, तीसरी में नौ, दूसरी में ग्यारह, पहली में तेरह पटल वा पाथड़े हैं

इतरः[१/१]। विशेषः[१/१]। लोक-अनुयोगतः * वेदितव्यः[१/१]। = (सात नरकोंके) अन्य भेद (विशेष) लोक नियुक्त वा नियोजित शास्त्रसे जानना चाहिये

अथ * तासु[७/३]॥ भूमिषु[७/३]॥ नारकाणां[६/३]। कः[१/१]। = आगे (= अथ) उन भूमियों में नारकियोंके क्या

प्रति-विशेषः[१/१]। इति * अतः * आह[1] = अन्य भेद प्रभेद (= प्रतिविशेष) हैं। इसलिए (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

= नारकाः नित्य अशुभतरलेश्याः, नारकाः नित्य अशुभतर परिणामाः; नारकाः नित्य अशुभतर देहाः; नारकाः नित्य अशुभतरवेदनाः, नारकाः नित्य अशुभतर विक्रियाः ॥

(१) हमारे पास तत्त्वार्थ सूत्रकी बहुतसी प्रतियोंके अतिरिक्त एक प्रति तत्त्वार्थ सूत्रकी ज्ञानचन्द्रजी वैद्य द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित है इस पुस्तक में दूसरे सूत्रके पीछे "प्रथमायाम्प्रतरास्त्रयोदशाधोऽधो द्विहीना" ऐसा सूत्र अधिक है इसके पश्चात् 'नारका नित्या इत्यादि' सूत्र है इसका अर्थ यह है कि पहली भूमि में तेरह प्रतर हैं और नीचे २ की भूमियोंमें दो दो घाटि हैं अर्थात् प्रथम नरक भूमि में तेरह प्रतर है दूसरी में ग्यारह, तीसरी में नौ, चौथी में सात, पांचवीं में पांच, छठीमें तीन, और सातवींमें एक प्रतर है। अन्य ग्रन्थोंमें इसे सूत्र नहीं माना है परन्तु सर्वार्थसिद्धि वृत्ति, तत्वार्थराजवार्तिक, प० जयचन्द्रजीकी वचनिका तथा अर्थप्रकाशिका इत्यादि ग्रन्थों में इसी सूत्रकी वृत्तिमें अथवा टीकामें उक्त सूत्रका आशय गर्भित कर दिया है देखो सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १६८, राजवार्तिक पृष्ठ ११४, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ६५, ६६, वचनिका पृष्ठ २०२, २०३, अर्थप्रकाशिका पृष्ठ १४७, इन सबमें उक्त तेरह पटलोंका कथन है ॥

हमारे यहां इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्य० में नारका शब्द नहीं है शेष पाठ दोनों आम्नायोंमें एकसा है ॥ उक्त सभाष्य० के 'तासु नरका' इस दूसरे सूत्रसे तीसरे सूत्रमें अनुवृत्ति आती है तब 'नरका' शब्द जोडने से पाठ लगभग एकसा होजाता है, तात्पर्य दोनोंका एक है ॥

लेश्यादयो व्याख्यातार्थाः ॥ अशुभतरा इति प्रकर्षनिर्देशः । तिर्यग्गतिविषयाशुभलेश्याद्यपेक्षया, अधोऽधः स्वगत्यपेक्षया च वेदितव्यः ॥ नित्यशब्द आभीक्ष्ण्यवचनः ॥ नित्यमशुभतरा लेश्यादयो येषां ते नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया नारकाः ॥

विक्रिया हैं; धूमप्रभा से तमः प्रभामे अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया हैं; और तमःप्रभासे महातमः प्रभामें (सातवीं भूमिमें) अशुभतरलेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया हैं ॥

वृत्त्यर्थः—लेश्या-आदयः१३। = लेश्या, परिणाम-देह वेदना-विक्रियाँ (आदयः) हैं
व्याख्यात-अर्थाः१३। = उनके अर्थ (दूसरे अध्याय के ६, ८, ३६ सूत्रों की वृत्तिमें क्रमसे) कहेगये हैं
अशुभतराः१३। इति *प्रकर्ष-निर्देशः११।; तिर्यंच- = (इस सूत्र में) अशुभतर ऐसा (विशेषण) अधिकपनाके अर्थ है । तिर्यंच-
गतिविषय-अशुभलेश्या-आदि-अपेक्षया३१।। चअधः*अधः = गतिविषय, अशुभलेश्यादिकोंकी अपेक्षासे तथा (=च) नीचे २ (नरकों में)
स्वगति-अपेक्षया ३१।। = अपनी गति (अर्थात् नरकगति) की अपेक्षासे (अशुभतर लेश्याओं की प्रधानता)
वेदितव्यः११। = जाननी चाहिये भावार्थ जैसे तिर्यंचोंके अशुभलेश्यादि हैं उनकी अपेक्षासे नरकगति में अशुभतर लेश्या है और नारकियों के परस्पर की अपेक्षासे ऊपर के नारकियोंसे नीचे नीचेके नारकियोंकें अशुभतरलेश्या, अशुभतरपरिणाम, अशुभतरदेह, अशुभतरवेदना, अशुभतर विक्रियां हैं
नित्य-शब्दः११। आभीक्ष्ण्य-वचनः११। नित्यम्२१।।। = (इस सूत्रमें) नित्य शब्द वारंवार अथवा निरन्तर होनेका वाचक है निरन्तर
अशुभतराः१३। लेश्या-आदयः१३। येषाम्६३। = अशुभतर हैं लेश्या, परणति, शरीर, पीड़ा, और विक्रिया (= आदयः) जिनके
ते१३। नित्य-अशुभतर-लेश्या-परिणाम- = ते नित्य अशुभतर लेश्या वाले तथा निरन्तर अशुभतरपरणतियुक्त और
देह-वेदना- = सदा अशुभतर शरीर सहित तथा निरंतर अशुभतर वेदना वा पीड़ा सहित
विक्रियाः१३। नारकाः१३। = और सर्वकाल अशुभतर विक्रियासहित नारकी जीव हैं ॥

सूत्रार्थः——नारकाः१। नित्य-अशुभतर-लेश्याः१। = नारकी जीव हैं वे निरन्तर अशुभतर लेश्याओं सहित अर्थात् अशुभतर कापोत नील और कृष्ण लेश्याओं सहित

नित्य-अशुभतर-परिणामाः१। नित्य-अशुभतर देहाः१। = निरन्तर अशुभतर परणतियुक्त, सदा अशुभतर शरीरवाले

नित्य-अशुभतर-वेदनाः१। नित्य-अशुभतर-विक्रियाः१। = सदैव अशुभतर पीड़ा सहित, सदा अशुभतर विक्रिया करने वाले होते हैं क्योंकि उनके सदा अशुभ कर्मका उदय है इस कारण निरन्तर उनके लेश्या परिणाम, देह और वेदना और विक्रिया अशुभ ही होते हैं ॥ इस सूत्र का भावार्थ यह है कि तिर्यंच गतिसे अशुभतर लेश्याओंकी अपेक्षासे रत्नप्रभा प्रथम भूमिमें अशुभतर लेश्या हैं। रत्नप्रभासे शर्कराप्रभा में अशुभतर लेश्या, परिणाम, देहवेदना, विक्रिया हैं, शर्कराप्रभा से वालुकाप्रभा में अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना विक्रिया हैं वालुकाप्रभासे पङ्कप्रभामें अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया हैं; पंकप्रभासे धूमप्रभामें अशुभतरलेश्या, परिणाम, देहवेदना,

(१) "अशुभतर" तर=कुछ अधिक, तम=बहुत अधिक। यदि दो वस्तुओंमेंसे एकके शुभ गुण अथवा अशुभ गुणकी अधिकता प्रगट करनी हो तो उस शब्द के अन्त में 'तर' प्रत्यय लाते हैं जैसे इस सूत्र में "अशुभतर लेश्या"। और यदि बहुतसी (दो से अधिक) वस्तुओंमेंसे एकके शुभ गुण अथवा अशुभ गुणकी अधिकता उन सबके ऊपर प्रगट करनी हो तो 'तम' प्रत्यय लाते हैं "जैसे अशुभतम लेश्याः" इत्यादिसे जानना।

(२) लेश्या शब्दका एकवचन स्त्रीलिंग 'लेश्या' शब्द है, उसका बहुवचन स्त्रीलिंग 'लेश्याः' ऐसा है। परन्तु समासमें "नित्याशुभतर लेश्याः" आया है जिसका अर्थ यह है कि निरन्तर अशुभतर हैं लेश्या जिनके (ऐसे नारकी हैं) अर्थात् 'नारकाः' शब्द का विशेषण है, अतः पुलिङ्ग बहुवचनमें रक्खा है।

(३) वेदना और विक्रिया शब्दों का क्रम से एकवचन स्त्रीलिङ्ग वेदना और विक्रिया हैं उनके बहुवचन स्त्रीलिङ्ग क्रमसे 'वेदनाः, विक्रियाः' होते हैं परन्तु समास में 'नित्यअशुभतरवेदना' 'नित्यअशुभतरविक्रिया' आये हैं जिनके क्रम से अर्थ हैं 'निरन्तर अशुभतर है वेदना जिनके,' और 'निरन्तर अशुभतर हैं विक्रिया जिनके' अर्थात् 'नारकाः' शब्दका गुणवाचक हैं अतः 'वेदनाः' 'विक्रियाः' शब्दों को बहुवचन पुलिङ्ग में रक्खा है ॥

अधोऽधोद्विगुणाद्विगुणा उत्सेधः ॥ अभ्यन्तरासद्वेद्योदये सति अनादिपारिणामिकशीतोष्णबाह्यनिमित्त-जनिताः सुतीव्रा वेदना भवन्ति नारकाणाम् ॥ प्रथमाद्वितीयातृतीयाचतुर्थीषु उष्णवेदनान्येव नरकाणि पंचम्यामुपरि उष्णवेदने द्वे नरकशतसहस्रे । अधः शीतवेदनमेकं शतसहस्रम् । षष्ठीसप्तम्योःशीत-वेदनान्येव ॥ शुभं करिष्याम इति अशुभतरमेव विकुर्वन्ति, सुखहेतूनुत्पादयाम इति दुःखहेतूनेवोत्पादयन्ति । त एते भावा अधोऽधोऽशुभतरा वेदितव्याः ॥

किमेतेषां नारकाणां शीतोष्णजनितमेव दुःखमुतान्यथापि भवतीत्यत आह—

अधस् अधः* द्विगुण-द्विगुणाः[1/3]। उत्सेधः[1/1]। अभ्यन्तर-
असत्-वेद्य-उदये[7/1]।सति[7/1]।अनादि-पारिणामिक-
शीत-उष्ण-बाह्य-निमित्त-जनिताः[1/3]॥सुतीव्राः[1/3]॥वेदनाः[1/3]॥
भवन्ति T नारकाणां[6/3]। प्रथमा-द्वितीया-तृतीया-
चतुर्थीषु[7/3]॥उष्णवेदनानि[1/3]॥एव*नरकाणि[1/3]॥
पंचम्याम्[7/1]॥उपरि*उष्णवेदने[1/2]॥द्वे[1/2]॥
नरकशत-सहस्रे[1/2]॥अधः* शीतवेदनम्[1/1]॥
एकम्[1/1]॥ शत-सहस्रम्[1/1]॥ षष्ठी-सप्तम्योः[7/2]॥
शीत-वेदनानि[1/3]॥ एव*;शुभम्[2/1]॥ करिष्यामः T इति*
अशुभतरम्[2/1]॥ विकुर्वन्ति T सुखहेतून्[2/3]। उत्पादयामः T
इति* दुःखहेतून्[2/3]। उत्पादयन्ति T
ते[1/3]। एते[1/3]। भावाः[1/3]। अधः* अधः* अशुभतराः[1/3]।
वेदितव्याः[1/3]। किम्*एतेषाम्[6/3]। नारकाणाम्[6/3]।
शीत-उष्ण-जनितम्[1/1]॥ एव* दुःखम्[1/1]॥ उत*
अन्यथा * अपि * भवति T इति * आह T

= नीचे २ (ऊपरके नरकसे प्रत्येक नरकमें) दूनी २ उंचाई है। अन्तरंग
= असाता वेदनीय कर्मके उदय होनेपर अनादिकाल परिणमनरूप (भूमिका)
= बाह्यनिमित्तक-शीत-उष्णकरि (नारकियोंके) तीव्र पीड़ा
= होती है। नारकियोंके पहिली (भूमि)में दूसरी (शर्करामभा)में तीसरी (वालुकामभा)में
= चौथी (पङ्कप्रभा पृथिवी)में उष्ण वेदना रूप ही बिल है
= पांचवी (धूमप्रभाभूमि,में ऊपरके उष्णवेदनारूप दो
= लाख बिले है। (पांचवीं भूमिके शेष) नीचेके शीतवेदनारूप
= एक लाख (बिले) है। छठी (तमःप्रभा भूमि) में और सातवीं (महातमःप्रभा भूमि)में
= शीतवेदना ही है। अच्छी (विक्रिया) हम करैंगे ऐसे (नारकी विचारे हैं)
= परन्तु अशुभतर ही करते है। सुख के कारण हम पैदा करैंगे।
= इस प्रकार (नारकी जीव विचार करते है परन्तु) दुःखके कारणही उपजाते हैं
= ते ये परिणाम (एक नरककी अपेक्षासे दूसरेमें) नीचे नीचे अशुभतर
= जानना चाहिये ॥ (प्रश्न) क्या इन नारकियोंके
= शीत और उष्णसे उत्पन्न हुआ ही दुःख है अथवा
= अन्य प्रकार भी (नारकी जीवोंको दुख) होता है अतः(अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि

प्रथमाद्वितीययोः कापोती लेश्या, तृतीयायामुपरिष्टात्कापोती अधो नीला, चतुर्थ्यां नीला, पञ्चम्यामुपरि नीला अधःकृष्णा, षष्ठ्यां कृष्णा, सप्तम्यां परमकृष्णा। स्वायुषः प्रमाणावधृता द्रव्यलेश्या उक्ताः॥ भावलेश्यास्तु अन्तर्मुहूर्तपरिवर्तिन्यः॥ परिणामाः स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाः क्षेत्रविशेषनिमित्तवशादतिदुःखहेतवोऽशुभतराः॥ देहाश्च तेषामशुभनामकर्मोदयादत्यन्ताशुभतरा विकृताकृतयो हुण्डसंस्थाना दुर्दर्शनाः॥ तेषामुत्सेधः॥ प्रथमायां सप्त धनूंषि, त्रयो हस्ताः षडंगुलयः।

प्रथमा-द्वितीययोः ७॥ कापोती १॥ लेश्या १॥ तृतीयां ७॥ = पहिली (रत्नप्रभा) तथा दूसरी (शर्कराप्रभा) में कापोतलेश्या है। तीसरी (वालुकाप्रभा) में
उपरिष्टात् * कापोती १॥ = ऊपर (के बिलोंके रहनेवाले नारकियोंके) कापोत लेश्या है।
अधः * नीला १॥ चतुर्थ्याम् ७॥ = (इस तीसरी वालुकाप्रभा भूमिके) नीचें नील लेश्या है। चौथी (पंकप्रभा भूमि) में
नीला १॥; पञ्चम्याम् ७॥ उपरि * = नील लेश्या हैं। पांचवीं (धूमप्रभा भूमि) में ऊपर (बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके)
नीला १॥ ; अधः * कृष्णा १॥ = नीललेश्या है। (इसके) नीचे (के बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके) कृष्णलेश्या है
षष्ठ्याम् ७॥ कृष्णा १॥ सप्तम्याम् ७॥ परम कृष्णा १॥ = छठी (तमःप्रभाभूमि) में कृष्ण लेश्या है; सातवीं (महातमःभूमि) में उत्कर्ष कृष्णलेश्या है
स्व-आयुषः ६। प्रमाण-अवधृता १॥ द्रव्य लेश्या १॥ उक्ताः १॥ = अपनी २ आयुके परिमाण द्वारा निश्चित कीगई द्रव्य लेश्यायें कही गई हैं
अर्थात् नारकियोंके उपर्युक्त क्रमसे कही गई द्रव्य लेश्यायें आयुतक एकसी रहती हैं।
भावलेश्याः १॥ तु * अन्तमुहूर्त-परिवर्तिन्यः १॥ = परन्तु भावलेश्या अन्तर्मुहूर्त में पलटती रहती हैं।
परिणामाः १। स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दाः १॥; क्षेत्र-विशेष = परिणाम-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-और शब्द हैं। स्थानभेदके
निमित्त-वशात् ६। अतिदुःखहेतवः १। अशुभतराः १। = निमित्तके वशसे (वे परिणाम) अति दुखःके कारण अशुभतर हैं।
देहाः १। च * तेषां ६। अशुभ-नामकर्म-उदयात् ६। = और (= च) उन (नारकी जीवों) के शरीर अशुभ नामकर्मके उदयसे
अत्यन्त-अशुभतराः १। विकृत-आकृतयः १। हुंड— = अतिशय अशुभतर हैं (और) बुरी आकृतिवाले, हुंडक—
संस्थानाः १। दुर्दर्शनाः १।; तेषां ६। उत्सेधः १। प्रथमायां ७॥ = संस्थानरूप कुदर्शनीय (= देखनेमें बुरे) हैं उन (नारकियों) की उंचाई प्रथम भूमिमें
सप्त १॥ धनूंषि १॥ त्रयः १। हस्ताः १। षड् १। अंगुलयः १। = सात चाप तीन हाथ छै अंगुल है। अर्थात् सवा इकतीस हाथ है

स्वविक्रियाकृतासिवासिपरशुभिण्डिमालशक्तितोमरकुन्तायोघनादिभिरायुधैः स्वकरचरणदशनैश्च छेदनभेदनतक्षणदंशनादिभिः परस्परस्यातितीव्रं दुःखमुत्पादयन्ति ॥

किमेतावानेव दुःखोत्पत्तिकारणप्रकारः उतान्योपि कश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

स्व-विक्रिया-कृत-असि-वासि-परशु-
भिण्डि-माल-शक्ति-तोमर-कुन्त-
अयस्घन-आदिभि--३/३|||आयुधैः३/३|||च*स्व-कर-
चरण-दशनैः३/३। छेदन-भेदन-तक्षण-दंशन-
आदिभिः३/३। परस्परस्य६। अतितीव्रं२|||दुःखम्२|||
उत्पादयन्ति T किम्* एतावान्१। एव दुःख-उत्पत्ति-
कारण-प्रकारः१। उत*अन्यः१। अपि*कश्चित्* अस्ति इति*
अतः आह T

= अपनी कीहुई विक्रियासे तरवार(= असि) कुल्हाड़ा(= वासि) फरसा (परशु)
= बन्दूक(= भिण्डि) चक्र(= माल) शक्ति बर्छी लोहेके डंडे(तोमर)भाला सेल(= कुन्त)
= लोहेके घन आदिक अस्त्र शस्त्र द्वारा(= आयुधैः) और (= च) अपने हाथ
= पग दांतोंकरि छेदनाभेदना छीलना(= तक्षण) काटना (दंशन)
= आदिक (क्रिया) से आपसकी अतितीव्र पीड़ाको
= उत्पन्न करते हैं। क्या इतने ही दुःख उत्पन्नहोनेके
= हेतु अन्यभेद हैं अथवा कुछ दूसरा (= अन्य)भी है
= इस लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि—

सूत्रम्—संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्चप्राक्चतुर्थ्याः = नारकाःसंक्लिष्ट-असुर-उदीरित-दुःखाश्चप्राक्-चतुर्थ्याः

सूत्रार्थः— नारकाः १/३। प्राक्*चतुर्थ्याः५/१॥
संक्लिष्ट—असुर-
उदीरित—दुःखाः१/३। च*

= नारकीजीव चौथी (पंकप्रभा भूमिसे पहिले) तीसरी भूमि पर्यंत
= क्लेश (परिणामोंकरि) युक्त असुरोंद्वारा वा क्लेश भावोंके धारक असुरोंकरि
= उत्पादित (= उदीरित) दुःख भी सहते हैं

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ और पाठ एकसा है। (२) अनुवादक के पास इस समय मूल सूत्रों की बहुत सी प्रतियें हैं। उनमेंसे सदासुखजीकी दो प्रतियोंमें और ज्ञानचन्द्रजी लाहौरकी एक प्रतिमें "प्राक् चतुर्भ्यः" ऐसा पाठ है और शेष प्रतियोंमें "प्राक् चतुर्थ्याः" ऐसा पाठ है। इन तीन प्रतियोंका पाठ अनुचित जान पड़ता है क्योंकि एक, द्वि, त्रि, चतुर् से नवन् दशन् इत्यादि उन्नीस पर्यन्त ए संख्यायें जिस संख्यासे सम्बन्ध रखती हैं उस संज्ञा का विशेषण कहलाती हैं। एक द्वि, त्रि, चतुर् तक संख्याओंका वही विभक्ति वही बचन और वही लिङ्ग

॥ परस्परोदीरितदुःखाः[1] ॥ ४ ॥

कथं परस्परोदीरितदुःखत्वं नारकाणाम् । भवप्रत्ययेनावधिना मिथ्यादर्शनोदयाद्विभङ्गव्यपदेशभाजा च दूरादेवदुःखहेतूनवगम्योत्पन्नदुःखाःप्रत्यासत्तौ परस्परालोकनाच्च प्रज्वलितकोपाग्नयः पूर्वभवानुस्मरणाच्चातितीव्रानुबद्धवैराश्च शृगालादिवत्स्वाभिघाते प्रवर्तमानाः

सूत्रम्—परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥ = (नारकाः)परस्पर-उदीरित-दुःखाः (भवन्ति) ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ—नारकाः॥ परस्पर-उदीरित-दुःखाः॥ भवन्ति	= नारकीजीव परस्पर उत्पन्नकियाहुआ दुःख (एक दूसरेको) देनेवाले होते हैं। अर्थात् कुत्तोंकी भांति निरन्तर एक दूसरेके साथ लड़ते झगड़ते रहते हैं।
वृत्त्यनुवादः—कथं*परस्पर-उदीरित—	= (प्रश्न) कैसे आपसमें (एक दूसरे को) कियाहुआ अथवा उपजायाहुआ
दुःखत्वं॥ नारकाणाम्॥ मिथ्या-दर्शन-उदयात्॥	= नारकीजीवोंके दुख होता (= दुखत्वं) है। मिथ्या दर्शनके उदय होनेसे
विभंग-व्यपदेश-भाजा॥ भवप्रत्ययेन॥ अवधिना॥ च*(४)	= विभंगनामक वा विभंग नामकाधारक भवनिमित्तक अवधिज्ञानकरि
दूरात्[2]॥ एव* दुःखहेतून्॥ अवगम्य[3]—	= दूरसे ही (नारकी जीव) दुःखके कारणोंको जानकर
उत्पन्न-दुःखाः॥ च*प्रति-आसत्तौ॥ परस्पर-	= पीड़ा उपजावें हैं और (= च)अति निकट होनेपर आपसमें (एक दूसरे को)
आलोकनात्॥ प्रज्वलित-कोप-अग्नयः॥ च*	= देखनेमे कोपरूपी अग्नि प्रज्वले है जिनकें अर्थात् तीव्र क्रोधयुक्तहोजाते हैं॥ तथा
पूर्व-भव-अनुस्मरणात्॥ अतितीव्र-	= पहिले जन्मके बुरे वा निकृष्ट (= अनु[5]) स्मरणसे अतितीव्र और
अनुबद्धवैराः॥ च* शृगाल-आदिवत्*	= दृढ़(= अनुबद्ध) वैररूप होय है और (= च)सियार अथवा गीदड़ आदिके सदृश
स्व-अभिघाते॥ प्रवर्तमानाः॥	= अपने घात (करने) में प्रवर्तते हैं अर्थात् जैसे गीदड़ कुत्ते आदि अन्य गीदड़-कुत्ते आदिको देख कर निर्दयता पूर्वक क्रोध करते हैं तथा परस्पर दांतोंका प्रहार करते हैं तैसेही नारकी-जीव एक दूसरेके और अपने घात करनेमें प्रवर्तते हैं।

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। (२) दूरात् शब्द त्रिलिंगी है। (३) अवगम्य शब्द सम्बन्धक भूत कृदंत है। (४) च शब्द भूषणके लिये है। (५) अनु शब्दका अर्थ पद्मचन्द्रकोशमें निकृष्ट दिया है 'निकृष्ट स्मरणसे' अभिप्राय है कि नारकी जीवोंको कुअवधिसे पूर्व भवकी बुरी बातोंको सुधि आती है भली बातों की नहीं।

देवगतिनामकर्मविकल्पस्यासुरत्वसंवर्तनस्य कर्मण उदयादस्यन्ति परानित्यसुराः। पूर्वजन्मनि सम्भावितेनातितीव्रेण संक्लेशपरिणामेन यदुपार्जितं पापकर्म तस्योदयात्सततं क्लिष्टाः संक्लिष्टाः। संक्लिष्टा असुराः संक्लिष्टासुराः। संक्लिष्टा इति विशेषणान्न सर्वे असुरा नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति। किंतर्हि, अम्बावरीषादय एव केचनेति ॥

देवगति-नामकर्म-विकल्पस्य[६/१]।।। असुरत्व-संवर्तनस्य[६/१]।।। = देवगति नामक नामकर्मका भेद जो असुरत्वसंवर्तन तिस
कर्मणः[६/१]।।। उदयात्[५/१]। अस्यन्ति परान्[२/३]। इति असुराः[१/३]। = कर्मके ऊदयसे दूसरोंको फैंकते हैं अर्थात् दुख देते हैं ऐसे असुर हैं
पूर्व-जन्मनि[७/१]।।। सम्भावितेन[३/१]। अतितीव्रेण[३/१]। = पहिले भवमें होसकने योग्य बहुत तीव्र
संक्लेशपरिणामेन[३/१]। यद्[१/१]।।। उपार्जितं[१/१]।।। पापकर्म[१/१]।।। = संक्लेश भावकरि जो पापकर्म उपार्जन किया है
तस्य[६/१]।।।उदयात्[५/१]। सततं[१/१]।।। क्लिष्टाः[१/३]। संक्लिष्टाः[१/३]।; = तिसके उदय से निरन्तर क्लेशयुक्त वा क्लिशित (= क्लिष्ट) ते संक्लिष्टा हैं
संक्लिष्टाः[१/३]। असुराः[१/३]। संक्लिष्टा-असुराः[१/३]। = निरन्तर क्लेशयुक्त परिणामवाले (= संक्लिष्टाः) असुर (हैं वे) संक्लिष्टा असुर हैं
संक्लिष्टा इति * विशेषणात्[५/१]।।। = संक्लिष्टा ऐसे विशेषण से अर्थात् असुरा शब्दके पहिले जो 'संक्लिष्टा' विशेषण है उससे (अभिप्राय है कि)
सर्वे[१/३]। असुराः[१/३]। नारकाणां[६/३]। दुखम्[२/१]। न*उत्पादयन्ति[T] = सब असुरकुमार नारकियोंकी पीड़ा नहीं उत्पन्न करते हैं
किम् * तर्हि * = तो (नारकियोंको) कौन (असुर कुमार पीड़ा देते) हैं
अम्ब-अवरीष-आदयः[१/३]। एव * केचन * इति * = अम्ब, अवरीप (= अम्बरीप) आदि (जातिके असुर) ही कोई ऐसें पीड़ा देतेहैं

(१) "अम्बावराषादय" के स्थान में सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें अम्बाबरीषादय है।
अम्ब अम्बरीष श्याम शवल-रुद्र-उपरुद्र काल-महाकालस्य असिपत्रवन = अम्ब, अम्बरीप, श्याम, शवल, रुद्र, उपरुद्र, काल, महाकालस्य, असिपत्रवन,
कुम्भी-वालुका-वैतरणी-खर-स्वर-महाघोषा = कुम्भी, वालुका, वैतरणी, खर, स्वर और महाघोष
पचदश[१/१]। एते संक्लिष्टा[१/३]। असुराः[१/३]। = ये पंद्रह जाति के क्लेश परिणाम के धारक असुर
नारकीणाम्[६/३]। वेदनाः[२/३]। समुदीरयन्ति = नारकियोंको वेदना (पीड़ा) उत्पन्न करतेहैं (सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रपृ०७१,७२)

व्याकरणोंके सूत्रोंके अनुसार होता है जो सम्बन्धित संख्याका होता है जैसे त्रीणि वलयानि इस वाक्य में वलयानि शब्द प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिङ्गमें है। त्रीणि शब्द भी जो वलियानि शब्द का विशेषण है प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंगमें है परन्तु पञ्चन् से नवदशन् (उन्नीस) तक की विभक्ति और वचन वही होता है जो संज्ञा का, लिङ्ग वही होने की आवश्यकता नहीं है जैसे "सप्त भूमयो न अष्टौ न नव चेति" (संस्कृत पृष्ठ १६०) यहां पर सप्त अष्टौ नव तीनों शब्दों का बहुवचन प्रथमा विभक्ति (कारक) ही है जो भूमि शब्दका है परन्तु भूमि शब्द का बहुवचन स्त्रीलिङ्ग भूमयः है, लिंग-सप्त-अष्टौ-नव-शब्दों का कोई भी समझलो क्योंकि ये तीनों शब्द बहुवचन ही होते हैं और तीनों लिंगों में एकसे ही रूप धरते हैं चतुर्थ. शब्द भूमि के लिये सूत्र में आया है न कि नरक शब्द के लिये। अब प्राक् शब्द के साथ पञ्चमी विभक्ति है सो चतुर्थ्याः पंचमी विभक्ति एकवचन स्त्रीलिंग चतुर्थी शब्द का है परन्तु चतुर्भ्यः पंचमी विभक्ति बहुवचन और पुल्लिंग अथवा नपुंसक लिंग है। नरक शब्द पुल्लिंग है इस अध्यायके किसी सूत्रमें दूसरे सूत्रको छोड़कर नरक शब्द नहीं लाये हैं नरक शब्द दूसरे सूत्रमें बिलोंके अर्थमें है रत्नप्रभा शर्कराप्रभा वालुकाप्रभा पंक-प्रभा धूमप्रभा तमःप्रभा महातमःप्रभाके अर्थ में नहीं है। नारका शब्द तीसरे सूत्र में लाये हैं उसका अर्थ नरकके दुःख सहन करनेवाले नारकी जीवोंके है। इससे नरक शब्दकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें लेना अयुक्त है पहिले सूत्रमें भूमि शब्द लाये हैं इससे भूमि शब्द की अनुवृत्ति पांचवां सूत्रमें आती है न कि नरक शब्दकी।

यदि हम चतुर्भ्यः ऐसा पाठ पढ़ें तो अर्थमें भिन्नता होगी अर्थात् भूमिके स्थानमें नरक(=नारकियोंके रहनेकाबिल) ऐसा अर्थ होजावेगा जो आगम विरुद्ध है, सूत्र व्याकरणके अनुसार अशुद्ध भी होजायगा। प्राक् चतुर्थ्याः=चौथी पंकप्रभा भूमिसे पहिले अर्थात् तीसरी दूसरी और पहिली भूमि तक

प्राक् चतुर्भ्यः=चार(नरकों)से पहिले अर्थात् तीन चार बिलोंके पहले पहले॥

चतुर्भ्यः यह वाक्य पहिले अध्याय के तीसवां सूत्र में "एकस्मिन् आ चतुर्भ्यः" दूसरे अध्याय के अट्ठाईसवां सूत्रमें "संसारिणः-प्राक् चतुर्भ्यः" और ४३वां सूत्रमें "आ चतुर्भ्यः" लाये हैं आङ् (=आ)का अर्थ तक वा पर्यन्त है और प्राक् का अर्थ पहिले पहिले हैं आ चतुर्भ्यः, पहिला "ज्ञान शब्द का विशेषण है जो नपुंसकलिंग है। दूसरा 'आ-चतुर्भ्यः' शरीरोंका विशेषण है जो नपुंसकलिंग है। तीसरा 'प्राक-चतुर्भ्यः' समय शब्दका गुणवाचक है समय शब्द पुल्लिंगहै। स्मरण रहे कि चतुर्भ्यः चतुर् शब्दकी पंचमी विभक्ति बहुवचन नपुंसकलिंग और पुल्लिंग है अर्थात् चतुर शब्दकी पंचमीविभक्ति नपुंसक और पुल्लिंगमें एकही रूप "चतुर्भ्यः "धारण करती है॥अतः "प्राक्चतुर्भ्यः" स्त्रीलिंग नहीं होसकता है इसलिये यह अशुद्धहै।

ऽवसेचनायःकुम्भीपाकाम्बरीषभर्जनवैतरणीमज्जनयन्त्रनिष्पीडनादिभिर्नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति ॥ एवं छेदनभेदनादिभिः शकलीकृतमूर्तीनामपि तेषां न मरणमकाले भवति। कुतः? अनपवर्त्यायुष्कत्वात्॥ यद्येवं, तदेव तावदुच्यतां नारकाणामायुःपरिमाणमित्यत आह–

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

अवसेचन-अयस्-कुम्भी-पाक-अम्बरीष-भर्जन-	= सींचनेकरि लोहेके घड़ोंमे पकानेसे भूभलमे भूजनेसे
वैतरणी-मज्जन-यन्त्र-निष्पीडन-आदिभिः३।	= वैतरणीनदीमें डुवानेसे, (कोल्हू आदि) कलों (यन्त्र)मे पेलनादि करि
नारकाणाम् दुखं२।।।उत्पादयन्ति;एवंछेदन-भेदनादिभिः	= नारकीनकें वेदना उपजाते है। इस प्रकार छेदन भेदनादिक करि
शकलीकृत-मूर्तीनाम्६।।अपि*तेषाम्६।	= शरीरके खंडखंड कियेजानेपर(=कृत)भी तिन(नारकियों)की (विना आयु पूर्णकिये)
न*मरणम्१।।। अकाले१। भवति।'कुतः*?	= अकालमें वा अधवरमें मृत्यु नहीं होतीहै। (प्रश्न)क्योंकर(नारकियोंकीअकाल मृत्यु नहीं)
	(उत्तर) क्योंकि (दूसरे अध्यायके त्रेपनवां सूत्रके अनुसार नारकीजीव)
अनअपवर्त्य-आयुष्कत्वात्१।।।	= परिपूर्ण आयुवाले होतेहैं अर्थात् नारकीजीव अपनी आयु परिपूर्ण कियें विना मृत्युको प्राप्त नहीं होते हैं
यदि*एवम्*तद्-एव-तावत्-नारकाणाम्६।आयुष्—	= जो ऐसे है(नारकी पूर्णआयुवालेहै) तो(=तावत्)वो(तद्)ही(एव)नारकियोंकी आयुकी
परिमाणं१।।। उच्यताम्,'T' इति अतः*आह	= मर्यादा कहीजाय (=उच्यताम्) इसलिये (आचार्य उत्तरसूत्रमें) कहते है कि...

सूत्रम्–तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥ २०

= तेषु-एकसागरोपमा-त्रिसागरोपमा-सप्तसागरोपमा-दशसागरोपमा-सप्तदशसागरोपमा-द्वाविंशतिसागरोपमा-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा-सत्त्वानां परा स्थितिः (यथाक्रमम्) ॥ ६ ॥

(१) दोनों आम्नाओंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है। 'यथाक्रमम्'की अनुवृत्ति इस अध्यायके दूसरे सूत्रसे लीगई है देखो टिप्पणी पृष्ट २१

अवधिप्रदर्शनार्थं प्राक्चतुर्थ्या इति विशेषणम् ॥ उपरि तिसृषु पृथ्वीषु संक्लिष्टासुरा बाधाहेतवो नातःपरमिति प्रदर्शनार्थम् ॥ चशब्दः पूर्वोक्तदुःखहेतुसमुच्चयार्थः ॥ सुतप्तायोरसपायननिष्टप्ताय-स्तम्भालिङ्गनकूटशाल्मल्यारोहणावतरणायोधनाभिघातवासीक्षुरतक्षणक्षारतप्ततैल-

अवधि-प्रदर्शन-अर्थम्-[२]॥ प्राक्चतुर्थ्याः[५]॥	= मर्यादा दिखावनेके लिये (इस सूत्रमें) प्राक् चतुर्थ्याः (अर्थात्-चौथी पंकप्रभाभूमिसे पहिले पहिले तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी पर्यंत)
इति*विशेषणम्[१]॥ उपरि*तिसृषु[७]॥	= ऐसा गुणवाचक (वाक्य) है । ऊपरकी तीन (रत्नप्रभा,शर्कराप्रभा,वालुकाप्रभा)
पृथ्वीषु[७]॥ संक्लिष्टा-असुराः[१]। बाधा-हेतवः[१]।	= भूमियोंमें संक्लिष्ट परिणामवाले असुर (नारकियोंको) पीड़ा (उपजाने) के कारण हैं
न*अतः* परम्*	= नहीं हैं इस (तीसरी वालुकाप्रभाभूमि)से आगेके(पंकप्रभा,धूमप्रभा, तमःप्रभा महातमः प्रभा भूमियोंमें इन असुरों द्वारा पीड़ा उपजावनेका हेतु)
इति*प्रदर्शन–अर्थम्[१]॥	= ऐसा दिखावने के लिये (प्राक्-चतुर्थ्याः वाक्य सूत्रमें) है ।
च-शब्दः[१]। पूर्व-उक्त-	= (इस सूत्रमें) चशब्द पहिले कहेगये (= तीसरे और चौथे सूत्रोंमें कि अशुभतर— लेश्या परिणामादिसे उत्पन्न तथा परस्पर कारणसे उत्पन्न)
दुःख-हेतु-समुच्चय-अर्थः[१]।	= दुखोंके कारणोंके संचयके लिये हैं तात्पर्य यह है कि अशुभतर लेश्या परिणामादिकसे उत्पन्न वेदना तथा परस्पर कारणसे उत्पन्न पीड़ा और असुरोंके द्वारा (तीसरे नरक तक) उत्पन्न बाधा इसप्रकार नारकी जीवोंको तीन प्रकारके दुःख होते हैं ।
सुतप्त-अयस्-रस-पायन-निष्टप्त-अयस्–	= अति संतप्त लोहे (अयस्)के रसके पिलानेसे, अति संतप्त लोहेके
स्तम्भ-आलिंगन-कूट-	= खम्भसे आलिंगन करानेसे, माया रचित अथवा मिथ्याभूत
शाल्मलि (शाल्मली)-आरोहण-अवतरण-	= संभलके वृक्ष अर्थात् शूलीपर चढ़ानेसे, और उतारनेसे,
अयस्-घन-अभिघात-वासी–	= लोहेके (अयस्)घनसे ताड़नादि करि(अभिघात),कुल्हाड़ा(वासी) वसूला(वासी)तथा
क्षुर-तक्षण-क्षार-तप्ततैल-	= छुराद्वारा काटने(= तक्षण)छोलना(तक्षण)से, खारेपानी(= क्षार)तथा अतिउष्णतेलसे

यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेषु नरकेषु भूमिक्रमेण यथासंख्यमेकादयः स्थितयोऽभिसम्बन्ध्यन्ते ॥ रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरेकसागरोपमा । शर्कराप्रभायां त्रिसागरोपमा । वालुकाप्रभायां सप्तसागरोपमा । पङ्कप्रभायां दशसागरोपमा । धूमप्रभायां सप्तदशसागरोपमा ।

सूत्रार्थः—तेषु॥ एकसागरोपमा॥ त्रिसागरोपमा॥ = तिन (नरकों) में एकसागर प्रमाण तीनसागर प्रमाण
सप्तसागरोपमा॥ दशसागरोपमा॥ सप्तदशसागरोपमा॥ = सात सागर प्रमाण, दश सागर प्रमाण, सत्रह सागर प्रमाण
द्वाविंशतिसागरोपमा॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा॥ = बाईस सागर प्रमाण और तेतीस सागर प्रमाण
नारकाणां॥सत्वानां॥ परा॥ स्थितिः॥ यथाक्रमम्* = नारकी जीवोंकी उत्कृष्ट आयु यथासंख्य अथवा क्रमानुसारहै अर्थात् पहिली रत्नप्रभा भूमिमें एकसागरकी उत्कृष्ट (नारकीजीवों)की आयु है ।

दूसरी शर्कराप्रभा पृथिवीमें तीन सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है तीसरी वालुकाप्रभा भूमिमे सातसागरकी उत्कृष्ट स्थिति है । चौथी पङ्कप्रभा भूमिमें दश सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है, पांचवीं धूमप्रभा पृथिवीमें सत्रह सागरकी उत्कृष्ट आयु है, छठवीं तमः प्रभा भूमिमें बाईस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है और सातवीं महातमः पृथिवी विषैं तेतीस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है ॥

वृत्त्यानुवादः—यथाक्रमम्*इति-अनुवर्तते[T] = (इस सूत्रमें दूसरे सूत्रसे) 'यथाक्रमं' ऐसा अनुकर्षण है अथवा अनुवृत्ति आती है अर्थात् दूसरे सूत्रसे इस सूत्रमें यथाक्रम शब्द लियागया हैं
तेषु॥ नरकेषु॥ भूमि-क्रमेण॥ = तिन नरकोंमें (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, इत्यादिक) पृथिवीयोंके क्रमसे
यथासंख्यम्*एकादयः॥ स्थितयः॥ = एक आदिक (सागरोपमा) स्थिति यथासंख्य अर्थात् संख्याके अनुसार
अभिसम्बन्ध्यन्ते[T] रत्नप्रभायाम्॥ उत्कृष्टा॥ = लगाईजाती है जोड़ीजाती है (इसलिये) रत्नप्रभा पहिली पृथिवीमें उत्कर्ष
स्थितिः॥ एकसागरोपमा॥ शर्कराप्रभायाम्॥ = आयु एक सागरोपमा है । शर्कराप्रभा (दूसरी भूमि) में (उत्कृष्ट स्थिति)
त्रिसागरोपमा॥ वालुकाप्रभायाम्॥ = तीन सागरोपमा है । वालुकाप्रभा (तीसरी पृथिवी) में (उत्कृष्ट स्थिति) २२
सप्तसागरोपमा॥ पङ्कप्रभायाम्॥ दशसागरोपमा॥ = सातसागरोपमा है। पंकप्रभा (चौथी भूमि)में (उत्कर्ष आयु) दशसागरोपमा है
धूमप्रभायाम्॥ सप्तदश-सागरोपमा॥ = धूमप्रभा (पांचवीं भूमि) में (उत्कृष्टआयु) सत्रह सागरोपम है ।

इस सूत्रमें नरक शब्दकी अनुवृत्ति सप्तमी विभक्ति बहुवचन पुलिंगमें ली है और सत्त्वानां शब्द षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुलिंग वा नपुंसकलिंगमें लाये हैं जिसका अर्थ जीवोंकी है और पूज्यपादस्वामीकृत संस्कृतवृत्तिमें सत्त्वानां शब्दको सूत्रमें लानेका यह कारण बताया है कि "एक तीन सप्त इत्यादिक" सागरोंकी स्थिति "भूमयः" शब्दसे सम्बन्ध न करजाय अर्थात् ऐसा अर्थ रोकनेके लिए लाये हैं कि एक तीन सप्त इत्यादिक सागरोंकी स्थिति भूमियों वा पृथ्वीयोंकीहै। इसका यह आशय निकला कि एक-तीन-सप्त इत्यादि सागरोंकी स्थिती जीवोंकी है 'पृथिवी अथवा भूमि'की नहीहै।

(क) स्थितिका सम्बन्ध भूमि शब्दके साथ न होजावे (ख) तेषु (ग) सत्त्वानां इनके संबंधमें जो विचार और भाव मेरे हृदयमें उत्पन्न हुए हैं उनका उल्लेख पाठकोंकी सेवामें नम्रतापूर्वक इस प्रकार है कि—

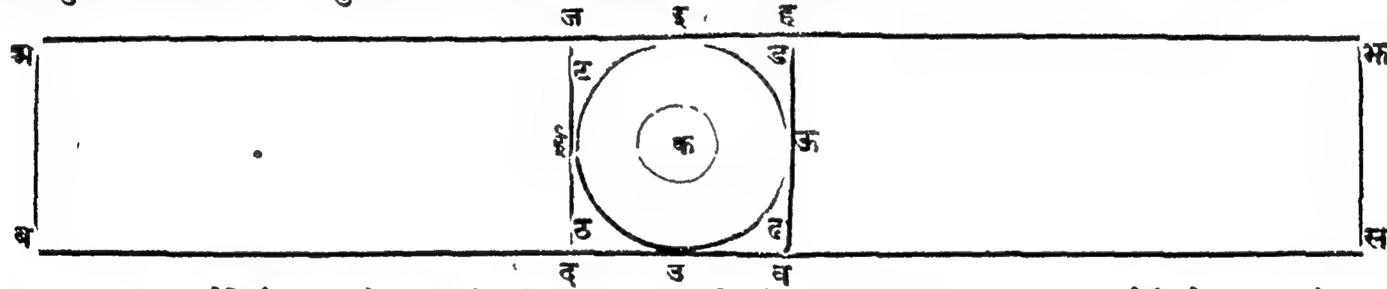
(क) 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणम्'=(वाक्यका) यथार्थ आशय(=विशेषप्रतिपत्तिः) व्याख्यानसे (अर्थात् परस्पर शब्दोंका संबंध वा अन्वय करनेसे) निकलता है क्योंकि (वाक्योंमें) संदेहरूप वा संदिग्धार्थ शब्दसे (=संदेहात्) अलक्षणता अर्थात् अनिश्चितभाव वा अर्थ (=अलक्षणम्) नहीं (नहि) होती है इस परिभाषाके अनुसार नारकियोंसे स्थिति शब्दका संबंध होजाता है नकि भूमि शब्दसे।

(ख) तेषु (=तिनमें, उनमें)=नरकेषु (=नरकोंमें) ॥ पूज्यपाद स्वामीने 'तेषु'का यही अर्थ लिया है। नरक शब्द उमास्वामी दूसरे सूत्रमें 'बिलों'के अर्थमें अर्थात् नरक (=निवासस्थान) के अर्थमें लाये हैं प्रथम रत्नप्रभा भूमिमें ऐसे तीसलाख बिलें वा निवासस्थान हैं। और इस अध्यायके किसी सूत्रमें नरक शब्द नहीं आया है पश्चात् पूज्यपाद स्वामीने 'भूमि'का अर्थ लेलियाहै जैसाकि "तेषु नरकेषु भूमिक्रमेण यथासंख्यमेकादयःस्थितयोऽभि सम्बन्ध्यन्ते॥ रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरेक सागरोपमा" इत्यादि सात वाक्योंसे संस्कृतवृत्तिमे प्रगट है ॥ स्मरण रहे कि प्रथम भूमिमें तीसलाख, दूसरीमें पचीसलाख इत्यादि नरक हैं। तब अर्थ यह हुआ कि तीसलाख नरकोंमें एकसागरकी उत्कृष्ट स्थिति नारकजीवोंकी है। पचीसलाख नरकोंमें नारकीजीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीनसागरकी है इत्यादि। 'तास्वेक' (=तासुएक=तिन भूमियोंमें एकसागर इत्यादि) पाठसे सब क्लिष्टता जाती रहती है और पूज्यपाद स्वामीके अनुकूल सीधासाधा अर्थ निकल आता है कि तिन भूमियोंमें क्रमसे उत्कृष्ट स्थिति एक तीन इत्यादि सागरों की है ॥ तासु=तासु भूमिषु ॥ तासु शब्द दूसरे सूत्रमें भी आया है। 'तासु' शब्दकी अनुवृत्तिभी इस सूत्रमे लेसकते हैं परन्तु तेषु(=तासु) स्पष्टताके लिये है।

(ग) सत्त्वानां=जीवोंकी, तीसरे नरकतक असुरकुमारदेव, स्वर्गके देव इत्यादि भी जाते हैं।। इसलिये 'सत्त्वानां'से आशय 'नारकाणांसत्त्वानां' वाक्यसे है अर्थात् नारकी जीवोंकी भावार्थ 'नारकाः' शब्द इस अध्यायके तीसरे सूत्रमें आया है और उसकी अनुवृत्ति चौथे और पांचवें सूत्रमें लीहै। इस सूत्रमें भी षष्ठी विभक्ति बहुवचनके रूपमें ('नारकाः' शब्दकी अनुवृत्ति) आती है। 'नारकाणां' की अनुवृत्तिसे भी विना 'सत्त्वानां' शब्दके लायेहुये काम चल सकता था परन्तु उमा स्वामीने 'सत्त्वानां' शब्दका प्रयोग इसकारणसे किया है कि सूत्र स्पष्ट होजावे और सत्त्वानां शब्दको देखकर पाठक सरलतासे समझलें कि इसमें 'नारकाणां' की अनुवृत्ति अवश्य आती है 'सत्त्वानां' से केवल काम नहीं चल सकता क्योंकि भ्रम उत्पन्न होता है कि 'जीवोंकी' उत्कृष्ट स्थिति है कि नारकी जीवोंकी(उत्कृष्ट स्थिति है)॥ हमारे कई मित्रोंका विचार है कि यदि 'सत्त्वानां' शब्द न लाते तौभी ज्ञापकरूपसे और उपर्युक्त परिभाषासे पाठक समझ लेते कि नारकियोंकी स्थितिसे प्रयोजन है।

जिसको घनोदधिवातवलय घनवातवलय और तनुवातवलय घेरे हुए है लोक कहते हैं। इसही क्षेत्रको तिर्यंचलोक कहते हैं क्योंकि तिर्यंचलोक वह है जिसमें तिर्यंच रहते हों। अब लोककी त्रसनाडीमें जो एकराजू लम्बी है और एकही राजू चौडी है और चौदहराजू ऊंची है त्रस और स्थावरोंके रहने का स्थान है और शेष भाग लोकमें तीनसौउनतीस घनाकार राजुओंमें स्थावर रहते हैं स्थावर भी तिर्यंच संज्ञामें अन्तर्गत हैं अतः लोक, सामान्यलोक और तिर्यंचलोक (क्योंकि लोकमें लगभग सब स्थानोंमें तिर्यंच रहते हैं) ये तीनों समानार्थ वाचक कहे जासकते हैं। त्रसनाडीमें स्थावर भी हैं तो भी क्योंकि प्रधानता से इसमें त्रस पायेजाते हैं इससे त्रसनाडी कहते है। "सर्वलोकव्यापित्वात्तेषां क्षेत्रविभागोनोक्तः" सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २५२, राजवार्तिक सूत्र २७, वार्तिक ४, ५, और श्लोकवार्तिक सूत्र २७ देखो॥ सर्व लोकमें फैले हुए होनेसे तिर्यंचोंका क्षेत्र विभाग नहीं कहागया है।

पूरब पश्चिम एक राजू चौड़ा और उत्तर दक्षिण ७ राजू लम्बे और मेरुकी जड़से एक लाख चालीस योजन (चूलिका तक) ऊंचे क्षेत्रको मध्यलोक कहते हैं॥ जम्बूद्वीपसे लेकर स्वयम्भूरमण समुद्रतक तिर्यक् प्रचयरूपकरि अर्थात् गोल वृत्ताकार रूपमें फैले हुए असंख्याते द्वीप समुद्रोंको अन्तर्गत करनेवाला क्षेत्र एकराजू है व्यास जिसका सो तिर्यग्लोक (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २०२ के अनुसार द्वितीय संस्करण पृष्ठ ११७के अनुसार)है॥ ढाई द्वीपके क्षेत्रको मनुष्यलोक कहते हैं॥ उपर्युक्त परिभाषाओं का प्रमाण इस प्रकार है कि



पुनः समान्याध ऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकान् पंचसंस्थाप्यालाप क्रियते—=पुनः सामान्य-अध ऊर्ध्व-तिर्यग्-मनुष्यलोकान् पंचसंस्थाप्य-आलापः क्रियते (गोम्मटसार जीव काण्ड सट्ठाण समुद्घादे इत्यादि ५४३ गाथा पृष्ठ ६४०) =पुनि सामान्यलोकको, अधोलोकको, ऊर्ध्वलोकको, तिर्यग्लोकको, मनुष्यलोकको, (ये) पांच स्थापनकर सम्भाषण वा कथन कियागया है॥ "समस्त जो लोक सामान्य लोक है। मध्यलोक तैं नीचे सो अधोलोक है। मध्यलोकके उपरि ऊर्ध्वलोक है। मध्यलोक विषैं एकराजू चौडा लाख योजन ऊंचा तिर्यक्लोक है। पैंतालीस लाख योजन चौड़ा लाख योजन ऊंचा मनुष्यलोक हैं" गोम्मटसार जीवकाण्ड पृष्ठ ६२५॥ पं० टोडरमलजीके ये शब्द कि "मध्यलोकविषैं"(मध्यलोकमें)तिर्यक्लोक है प्रगट करते हैं कि तिर्यग्लोक छोटीवस्तु है जो मध्यलोकमें है। बस यह वही तिर्यक्लोक है जिसका व्यास एकराजू है। चौडा एकराजू परिधिके किसी बिन्दुसे सामनेके ठीक दूसरे बिन्दु तक है और एक लाख योजन मेरुकी जड़से मेरु की ऊंचाई तक है। शिष्यके प्रश्न करनेपर (सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २०२ द्वितीयसंस्करण पृष्ठ ११७) कि "कथं पुनस्तिर्यग्लोक." उत्तरमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं कि "यतोऽसंख्ययाः स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तिर्यक्प्रचय विशेषेणावस्थिता द्वीप-

प्रा उत्कृष्टेत्यर्थः ॥ तमःप्रभायां द्वाविंशतिसागरोपमा। महातमःप्रभायां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा इति॥ परा उत्कृष्टेत्यर्थः ॥ सत्त्वानामिति वचनं भूमिनिवृत्त्यर्थम् ॥ भूमिषु सत्त्वानामियं स्थितिः । न भूमीनामिति ॥ उक्तः सप्तभूमिविस्तीर्णोऽधोलोकः ॥ इदानीं तिर्यग्लोको वक्तव्यः । कथं पुनस्तिर्यग्लोकः । यतोऽसंख्येयाः स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तिर्यक्प्रचयविशेषेणावस्थिता द्वीपसमुद्रास्ततस्तिर्यग्लोक इति ॥ के पुनस्तिर्यग्व्यवस्थिता इत्यत आह–

तमःप्रभायां७।। द्वाविंशति-सागरोपमा१।। = तमःप्रभा (छठवीं पृथिवी) में उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागर प्रमाण है ॥
महातमःप्रभायां७।। त्रयस्त्रिंशत्-सागरोपमा१।। इति* = महातमःप्रभा (सातवीं भूमि) में उत्कृष्ट आयुः तेतीस सागरप्रमाण है
परा१।। उत्कृष्टा१।। इति*अर्थः१। सत्त्वानां६ इति*वचनं१।।। = (इस सूत्रमें) परा (शब्द) उत्कृष्ट ऐसे अर्थमें हैं। सत्त्वानां ऐसा वाक्य
भूमि-निवृत्ति-अर्थम्१।।। = भूमिका (स्थितिके साथ सम्बन्ध हो इस) निषेधके लिये है
भूमिषु७।। सत्त्वानां६। इयम्१।। स्थितिः१।। न भूमीनां६।। इति* = भूमियों विषैं जीवोंकी यह आयु है नकि (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा इत्यादि) भूमियोंकी एक तीन इत्यादिक सागरोंकी स्थिति है
सप्त-भूमि-विस्तीर्णः१। अधस्* = सात (रत्नप्रभा शर्कराप्रभा इत्यादिक) भूमिरूप है विस्तार जिसका ऐसा अधो-
लोकः१।उक्तः१।इदानीं*तिर्यग्लोकः वक्तव्यः१। कथं*पुनः* = लोक कहागया है अब तिर्यग्लोक कहना चाहिये । बहुरि कैसा
तिर्यग्लोकः१। यतः * स्वयम्भूरमणपर्यन्ताः१। = तिर्यग्लोक है अर्थात् तिर्यग्लोक ऐसा नाम कैसे हुआ। क्योंकिस्वयम्भूरमणसमुद्र तक
असंख्येयाः१। तिर्यक्-प्रचय-विशेषेण३। अवस्थिताः१। = असंख्यातें तिर्यक् प्रचयरूप विशेषकार (गोल वृत्ताकारमें फैलेहुए) स्थापित
द्वीप-समुद्राः१। ततः।* तिर्यग्लोकः१। इति*के१। पुनः * = द्वीप और समुद्र हे तिससे तिर्यग्लोक ऐसा (नाम) है। बहुरि कौन
तिर्यग्व्यवस्थिताः१। इति * अतः * आह T = तिर्यग् रूप अवस्थित (द्वीप तथा समुद्र) हैं। इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

तिर्यग्लोक, मध्यलोक, तिर्यग्लोक मनुष्यलोक किसको कहते हैं ? तिर्यग्लोक और मध्यलोकमें क्या अन्तर है ? प्रथम परिभाषा दीगई है पश्चात् शास्त्र द्वारा प्रमाण दिया गया है।

(उत्तर) तीनसौतेतीस घनाकर राजू क्षेत्र को अर्थात् एक राजु लम्बे एक राजू चौड़े एक राजू ऊंचे ऐसे तीनसौतेतालीस भागवाले क्षेत्रको

॥ जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥

जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः। लवणोदादयः समुद्राः। यानि लोके शुभानि नामानि तन्नामानस्ते ॥ तद्यथा— १ जम्बूद्वीपो द्वीपः। लवणोदः समुद्रः। २ धातकीखण्डो द्वीपः। कालोदः समुद्रः। ३ पुष्करवरो द्वीपः।

जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥

= जम्बूद्वीप–आदयः १।३। लवणोद–आदयः १।३। शुभ-नामानः १।३। द्वीपसमुद्राः १।३। ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—जम्बूद्वीप-आदयः१।३। लवणोद-आदयः१।३। च* = (इस चित्रा पृथिवीपर) जम्बूद्वीप आदिक तथा लवण समुद्र आदिक

शुभनामानः १।३। द्वीप-समुद्राः १।३। = उत्तम नामके धारक द्वीप और समुद्र हैं अर्थात् सबके बीचमें जम्बूद्वीप है उस (जम्बूद्वीप) के चारों ओर लवण समुद्र है। उसके चारों ओर धातुकी खंड द्वीप है उसके चारों ओर कालोदधि समुद्र है (आगे आगे जैसेजैसे द्वीपका नाम है वैसे२ समुद्रका नाम है) उस (कालोदधि समुद्र)के चारोंओर पुष्करवर द्वीप है और उसके चारों ओर पुष्करवर समुद्र है उसके पश्चात् चारों ओर वारुणीवर द्वीप है और उस वारुणीवर द्वीपके चारों ओर वेष्टित वारुणीवर समुद्र है ऐसेही एकदूसरेको वेढेहुए अन्तके स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यंत असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं।

जम्बूद्वीप-आदयः१।३। द्वीपाः१।३। लवणोद–आदयः१।३। समुद्राः १।३। = जम्बूद्वीप आदिक द्वीप है। लवणोदधि आदिक समुद्र हैं

यानि १।३।। लोके ७।१ शुभानि १।३।। नामानि १।३।। = जो लोक विषें उत्तम उत्तम (=शुभानि) नाम है

तद्-नामानः १।३। ते १।३। तद्यथा*जम्बूद्वीपः १।१। द्वीपः १।१। = ते (द्वीप और समुद्र) उन नामोंसे युक्त हैं जैसे जम्बूद्वीप द्वीप है

लवणोदः १।१। समुद्रः १।१। = लवणोदधि समुद्र है अर्थात् लवण वा नोन सारिखा जलके योगसे लवणोद नाम है

धातुकी खण्डः१।१। द्वीपः१।१। कालोदः१।१। समुद्रः१।१। पुष्करवरद्वीपः १।१। = धातुकी खण्ड द्वीप है कालोदधि समुद्र है। पुष्करवर द्वीप है

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्वार्थाधिगमसूत्रमें "लवणोदादय" वाक्यके स्थानमें लवणादय है। शेष पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है अर्थ
श्री पृ० के (·) उद २=जल (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ७२) नोन वा लूनके स्वादयुक्त जलके योगसे जो समुद्र सो लवणोद है

समुद्रास्ततः स्तिर्यग्लोक इति ॥ अर्थात् (जंबूद्वीपसे) स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत गोल वृत्ताकारमें फैले हुए स्थापित असंख्याते द्वीप तथा समुद्र हैं तिससे तिर्यग्लोक ऐसा है ॥ तिर्यंचत्रस शब्दका अर्थ देव-नारकी-मनुष्योंको छोड़कर अवशेष जीवोंका है और 'तिर्यग्लोक' इस शब्दका अर्थ गोल-वलयाकार-वृत्ताकार ऐसा लिया गया है ॥ पृष्ठ २४ के चित्रमें भसको पूरवमें एकराजू माना है अव को पश्चिममें एकराजू माना है। अभ को उत्तरमें सात राजू माना है दक्खिनमें सात राजू वसको माना है तो "अवसभ" समस्त चित्र मध्यलोक होगा जिसमें जदयह क्षेत्रभी सम्मिलित है। और उसके कोन ट-ठ-ड-ढ (देखो पृष्ठ २५) जो स्वयम्भूरमण समुद्रके बाहर हैं सम्मिलित हैं ("अंतिम स्वयम्भूरमण द्वीपके उत्तरार्द्धमें तथा समस्त स्वयम्भूरमण समुद्रमें और चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें कर्मभूमिकी सी रचना है देखो श्रीमाघनंदिकृत श्रावकाचार तथा जैनसिद्धान्तप्रवेशिका पृष्ठ१३४) परन्तु तिर्यग्लोकमें केवल इईउऊ वृत्त ही सम्मिलित होगा जिसमें "क" जम्बूद्वीप और उसको वलयाकार घेरे हुए लवनोदधि-धातुकीखंड, कालोदधि और पुष्करार्द्ध आदि असंख्यात द्वीप समुद्र स्वयम्भूरमण समुद्र तक (घेरे हुए) सम्मिलित हैं ॥

कितने ही महाशयोंने मध्यलोक और तिर्यग्लोककी उचाई मेरुकी जड़से एक लाख योजनकी लिखी है कितने ही महाशयों ने एक लाख चालीस सहस्रका उल्लेख किया है। जिन्होंने मेरुपर्वतकी चूलिकाकी उचाई ग्रहण की है उनकी अपेक्षासे एकलाख मय जड़के सुमेरुपर्वतकी उचाई होती है और चालीस सहस्र चूलिकाकी उचाई होजाती है। इसमें कोई बात सन्देह या शंकाकी नहीं उत्पन्न होतीहै ॥ समस्तलोककी उचाई चौदह राजू है ॥ सुमेरुकी जड़से ऊपर सात राजू है मध्यलोककी उचाई निकालनेसे चूलिकासे लोक अंत पर्यंत सात राजूमे कुछ न्यून हो जाता है परन्तु एक राजूकी लम्बाई इतनी अधिक है कि एक लाख चालीस योजन उसके समीप कुछ भी नहीं होते इसलिए सामान्यरूपसे स्वर्गके प्रथम पटलसे उचाई लोक पर्यंत सातराजू ही कही है। मेरुकी जड़से नीचे सातराजू अधोलोक है जिसका क्षेत्रफल १९६ घनरूप राजू हैं अर्थात् एकराजू लंबे एकराजू चौड़े एकराजू ऊंचे ऐसे १९६राजुओंके टुकड़े हैं॥ मेरुकी जड़से सिद्धालय पर्यंत १४७घनाकार राजू हैं अर्थात् मेरुकी जड़से ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गतक७२३/४ घनाकारराजू हैं और ब्रह्मब्रह्मोत्तरसे ऊपर सिद्धालय पर्यंत ७२३/४ घनाकारराजू और हैं १९६+७२३/४+७२३/४ सर्वयोग ३४३ राजूका हुआ॥ बहुतसे साधारण भोले भाले महाशय "तिर्यंच लोक" कहा है। कहते हैं मध्यलोक है इसका कारण यह है कि यथार्थमें "तिर्यग्लोक" का अपभ्रंश करते करते तिर्यंचलोक कहने लगे और तिर्यग्लोकको मध्यलोकके अर्थमें समझने लगे। 'तिर्यग्लोक' जैसा कि हम सिद्ध कर चुके हैं मध्यलोकका भाग है ॥ पारत्रिक तिर्यंचलोक यही है जिसका उल्लेख कर चुके हैं ॥

समुद्रास्ततः स्तिर्यग्लोक इति ॥ अर्थात् (जंबूद्वीपसे) स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत गोल वृत्ताकारमें फैले हुए स्थापित असख्याते द्वीप तथा समुद्र है तिससे तिर्यग्लोक ऐसा है ॥ तिर्यंच इस शब्दका अर्थ देव-नारकी-मनुष्योंको छोडकर अवशेष जीवोंका है और 'तिर्यग्लोक' इस शब्दका अर्थ गोल-वलयाकार-वृत्ताकार ऐसा लिया गया है ॥ पृष्ट २४ के चित्रमें भसको पूरबमें एकराजू माना है अब को पश्चिममें एकराजू माना है। अभ को उत्तरमें सात राजू माना है दक्खिनमें सात राजू बलको माना है तो "अबसभ" समस्त चित्र मध्यलोक होगा जिसमें जदघह क्षेत्रभी सम्मिलित है। और उसके कोन ट-ठ-ड-ढ (देखो पृष्ठ २४) जो स्वयम्भूरमण समुद्रके बाहर हैं सम्मिलित है ("अंतिम स्वयम्भूरमण द्वीपके उत्तरार्द्धमें तथा समस्त स्वयम्भूरमण समुद्रमें और चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें कर्मभूमिकी सो रचना है देखो श्रीमाघनंदिकृत श्रावकाचार तथा जैनसिद्धान्तप्रवेशिका पृष्ट१३४) परन्तु तिर्यग्लोकमें केवल इईउऊ वृत्त ही सम्मिलित होगा जिसमें "क" जम्बूद्वीप और उसको वलयाकार घेरे हुए लवनोदधि-धातुकीखंड, कालोदधि और पुष्करार्द्ध आदि असख्यात द्वीप समुद्र स्वयम्भूरमण समुद्र तक (घेरे हुए) सम्मिलित हैं ॥

कितने ही महाशयोंने मध्यलोक और तिर्यक्लोकको उचाई मेरुकी जडसे एक लाख योजनकी लिखी है कितने ही महाशयों ने एक लाख चालीस सहस्रका उल्लेख किया है। जिन्होंने मेरुपर्वतकी चूलिकाकी उचाई ग्रहण की है उनकी अपेक्षासे एकलाख मय जडके सुमेरुपर्वतकी उचाई होती है और चालीस सहस्र चूलिकाकी उचाई होजाती है। इसमें कोई बात सन्देह वा शकाकी नहीं उत्पन्न होतीहै ॥ समस्तलोककी उचाई चौदह राजू है ॥ सुमेरुकी जडसे ऊपर सात राजू है मध्यलोककी उचाई निकालनेसे चूलिकासे लोक अंत पर्यंत सात राजूसे कुछ न्यून हो जाता है परन्तु एक राजूकी लम्बाई इतनी अधिक है कि एक लाख चालीस योजन उसके समीप कुछ भी नहीं होते इसलिए सामान्यरूपसे स्वर्गके प्रथम पटलसे उचाई लोक पर्यंत सातराजू ही कही है। मेरुकी जड़से नीचे सातराजू अधोलोक है जिसका क्षेत्रफल १९६ घनरूप राजू है अर्थात् एकराजू लंबे एकराजू चौड़े एकराजू ऊंचे ऐसे १९६राजुओंके टुकड़े है॥ मेरुकी जड़से सिद्धालय पर्यंत १४७घनाकार राजू है अर्थात् मेरुकी जडसे ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गतक७३½ घनाकारराजू है और ब्रह्मब्रह्मोत्तरसे ऊपर सिद्धालय पर्यंत ७३½ घनाकारराजू और है १९६ + ७३½ + ७३½ सर्वयोग ३४३ राजूका हुआ॥ बहुतसे साधारण भोले भाले महाशय "तिर्यंच लोक" कथा है। कहते है मध्यलोक है इसका कारण यह है कि यथार्थमें "तिर्यग्लोक" का अपभ्रंश करते करते तिर्यंच-लोक कहने लगे और तिर्यग्लोकको मध्यलोकके अर्थमें समझने लगे। 'तिर्यग्लोक' जैसा कि हम सिद्ध कर चुके है मध्यलोकका भाग है ॥ वास्तविक तिर्यंचलोक वही है जिसका उल्लेख कर चुके है ॥

विद्यार्थियोंको विशेषरूपसे मध्यलोकका स्वरूप जानना उचित है अतः इसप्रकार है कि मध्यलोकके अत्यन्त बीचमें एकलाख योजन चौड़ा, गोल (थालीके आकार) जंबूद्वीप है। जंबूद्वीपके बीचमें एक लाख योजन ऊंचा सुमेरु पर्वत है। जिसका एक सहस्र योजन भूमिके भीतर मूल है निन्याणवे हजार योजन पृथिवीके ऊपर है। और चालीस योजनकी चूलिका (चोटी) है। जंबूद्वीपके बीचमें पश्चिम पूर्वकी ओर लम्बे छह कुलाचल पर्वत पड़े हुए हैं। जिनसे जंबूद्वीपके सात खंड हो गये हैं। इन सातों खंडोंके नाम इस प्रकार हैं-भरत १, हैमवत २, हरि ३, विदेह ४, रम्यक ५, हैरण्यवत ६, और ऐरावत ७। विदेह क्षेत्रमें मेरुसे उत्तरकी ओर उत्तरकुरु और दक्षिणकी ओर देव कुरु हैं। जंबूद्वीपके चारों ओर खाईकी भांति घेढे हुए दो लाख योजन चौड़ा लवण समुद्र है। लवण समुद्रको चारों ओरसे घेढ़े हुए चार लाख योजन चौड़ा धातकी खंडद्वीप है। इस धातकी खंड द्वीपमें दो मेरुपर्वत हैं और क्षेत्र कुलाचलादिकी सब रचना जंबूद्वीपसे दूनी है धातकी खंडको चारों ओरसे घेढ़े हुए आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधिसमुद्र है। और कालोदधिको घेढे हुये सोलहलाख योजन चौड़ा पुष्करद्वीप है। पुष्करद्वीपके बीचों बीच वलयके आकार चौड़ाई पृथिवीपर एकहजार बाईस योजन, बीचमें सातसो तेईस योजन, ऊपर चारसौचौवीस योजन, ऊंचा सतरहसौइकईस योजन और पृथिवीके भीतर चारसौसवा-तीस योजन जिसकी जड़ है ऐसा मानुषोत्तरनामा पर्वत पड़ा हुआ है। जिससे पुष्कर द्वीपके दो खंड हो गये हैं। पुष्करद्वीपके पहिले अर्द्ध भागमें जंबूद्वीपसे दूनी २ अर्थात् धातकी खडद्वीपके बराबर सब रचना है जंबूद्वीप धातुकी खंड द्वीप और पुष्करार्द्ध द्वीप तथा लवणोदधि समुद्र और कालोदधि समुद्र इतने क्षेत्रको नरलोक कहते हैं। पुष्करद्वीपसे आगे परस्पर एकदूसरेको बेढ़ेहुए दूने२ विस्तारवाले मध्यलोकके(पूर्वपश्चिम)अंतपर्यंत द्वीप और समुद्र हैं पांच मेरु सम्बन्धी पांच भरत, पांच ऐरावत, देवकुरु और उत्तर कुरुको छोड़कर पांच विदेह इसप्रकार सब मिलकर १५ कर्मभूमि हैं। पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत इन दश क्षेत्रोंमें जघन्य भोगभूमि हैं। पांच हरि और पांच रम्यक इन दशक्षेत्रोंमें मध्यम भोगभूमि हैं॥ और पांचदेव कुरु और पांच उत्तर कुरु इन दश क्षेत्रोंमें उत्तम भोग भूमि हैं। जहांपर असि, मसि, कृषि, सेवा, शिल्प और वाणिज्य इन षट् कर्मोंकी प्रवृत्ति हो उसको कर्मभूमि कहते हैं जहां इनकी प्रवृत्ति न हो उसको भोग भूमि कहते हैं। मनुष्यक्षेत्रसे बाहरके समस्त द्वीपोंमें जघन्य भोग भूमिकी सी रचना है। किंतु अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीपके उत्तरार्द्धमें तथा समस्त स्वयंभूरमण समुद्रमें और चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें कर्मभूमिकी सी रचना है लवण समुद्र और कालोदधि समुद्रमें ९६ अंतर्द्वीप हैं जिनमें कुभोग भूमिकी रचना है। वहां मनुष्य ही रहते हैं। उनमें मनुष्योंकी आकृति नाना प्रकारकी कुत्सित है। यदि इन टिप्पणी पृष्ठ २१, २४, २५, २६ में किसी प्रकारकी भूल हो तो पाठकगण कृपया मुझको सूचित करें।

तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो जलधिरिति॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भो येषां ते द्विर्द्विर्विष्कम्भाः॥ पूर्वपूर्वपरिक्षेपि-वचनं ग्रामनगरादिवद्विनिवेशो मा विज्ञायीति॥ वलयाकृतिवचनं चतुरस्रादिसंस्थानान्तरनिवृत्त्यर्थम्॥

तद्-द्विगुण-विष्कम्भः१।१ द्वितीयः१।१ जलधिः१।१ इति*	=तिस (धातु की खंड द्वीप) से दुगना व्यास खंडका धारक दूसरा समुद्र (कालोदधि) है
द्विः द्विः विष्कम्भः१।१ येषां६।३ ते द्विः द्विः विष्कम्भाः१।३	=दूना दूना विष्कम्भ है जिनका ते दूने दूने विष्कम्भ वाले हैं
पूर्व-पूर्व-	=(इस सूत्रमें) पहिले पहिले (द्वीप तथा समुद्र एक दूसरे को)
परिक्षेपिन्-वचनम्१।१	=चारों ओर से अथवा सर्वतः वेढे हुए इस वाक्य(=वचन) से प्रगट है कि
ग्राम-नगर-आदिवत्*विनिवेशः१।१मा*विज्ञायि T इति*	=ग्राम तथा नगरादिकके सदृश अवस्थान (इन द्वीप तथा समुद्रोंको) मत जानो
वलय-आकृति-वचनं१।१ चतुरस्र-आदि-संस्थान-	=वृत्ताकार वा वलयाकार वाक्य चौकोर आदिक आकार (=संस्थान) की
अन्तर-निवृत्ति-अर्थम् १।१	=अवधिके निषेधके लिये है

द्यानतराय आगरा निवासीके जिन्होंने धर्मविलासग्रन्थ संवत् १७८०में पूर्ण किया उसके प्रकरण "द्रव्यादि पचीसी"के निम्नलिखित सवैया इकतीसासे प्रगट है। जम्बू एक लाख दो दो दोनों ओर लोनोदधि, सब पांच सूची गुनी पचीस फलाइये। द्वीप एक लोनिकार चौबीस समुद्रधार, जम्बू सों चौबीस गुणो उदधि बताइये॥ धात खड चार चार सब सूची तेरह की, गुनो सौ उनहत्तरि पच्चीस घटाइये। जम्बू सेती एकसौ चवाल गुनो धात खड-आगे दधि दीप यों ही जिनवानी गाइये॥ १०॥ एक समुद्र वा द्वीपके सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक की रेखाके प्रमाणको जो कि केन्द्रमें होकर जाती है सूची कहते हैं। इस प्रकार १ लाख जम्बूद्वीप दोनों ओर दो दो लाख लवण समुद्र सब मिलकर पांच लाख इसको इसीसे गुणनेसे पच्चीस हुए इसमें जम्बूद्वीप एक लाख को घटाने पर जम्बूद्वीप से लवण समुद्र चौबीस गुणा भया। इसी प्रकार लवण समुद्र के दोनों ओर चार चार धात,की खड है सब मिल कर १३ हुए। इसको इसीसे गुणनेसे १६९ हुए इसमें से पच्चीस घटाने से १४४ गुना जम्बूद्वीप से धातकी खंड भया इसी प्रकार सर्वत्र जानना॥

द्विर्द्विर्विष्कम्भा — पूर्वोक्त वर्णित "एक ओर का व्यास खड" की लम्बाई दूनी दूनी एक द्वीप से उसके निकटके समुद्र की है उसके पश्चात्के द्वीप की वैसा ही व्यास खड उस समुद्रके व्यास खड से दूना है जैसे जम्बूद्वीप पटल रूप अथवा प्रस्तर रूप वृत्त है और उसका पूर्ण व्यास एक लाख योजन का है लवण समुद्रका एक ओरका व्यासखड दो लाख योजन लम्बा है॥ इसी प्रकार धातुकी खड द्वीपका एकओरका व्यास-खड़ जो लवणोदधि और धातुकी खड की परिधियों पर एक सीधमें दो विन्दुओं के मिलने से बनता है चार लाख योजन है और कालोदधिका एक ओरका व्यासखड जो धातुकी खड और कालोदधिकी परिधियों पर एक दूसरे के सीधमें दो विन्दु लेकर मिलानेसे बनता है आठलाख योजन का है इसी प्रकार अन्तके स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यंत जानना॥ ऐसा अभिप्राय द्विर्द्विर्विष्कम्भ. वाक्य का है॥

द्विर्द्विरिति वीप्सायां वृत्तिवचनं विष्कम्भद्विगुणत्वव्याप्त्यर्थम् ॥ आद्यस्य द्वीपस्य यो विष्कम्भः तद्द्विगुणविष्कम्भो लवणजलधिः । तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो द्वीपः ।

२६

वलय-आकृतयः[१]	=वलयाकार अथवा वृत्ताकार हैं अर्थात् लवण समुद्रके एक ओरके व्यासखंड जम्बूद्वीपके व्याससे दुगणे हैं और जम्बूद्वीपको चारों ओरसे वेढेहुए हैं ऐसेही धातुकीखंडके एक ओरके व्यासखंडका प्रमाण लवणसमुद्रके व्याससे दुगना है और सर्वतः लवणसमुद्रको लपेटेहुए हैं ऐसेही कालोदधि पुष्करवर इत्यादि असंख्यातद्वीपसमुद्रोंको स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यंत जानना
[१]द्विः#द्विः#इति#वीप्सायां[७]॥ वृत्ति- वचनम्[१]॥=द्विः द्विः (दुगुण दुगुण) ऐसा वार वारके अर्थमें समासरूपमें द्विः द्विः वाक्य है	
विष्कम्भ-द्विगुणत्व-	=सो विस्तार अर्थात् व्यास एक ओरके खंडके प्रमाणका (=विष्कम्भ) दूनापनाके फैलानेके
व्याप्ति-अर्थम्[१]॥आद्यस्य[६]द्वीपस्य[६]यो[१]विष्कम्भः[२]	=लिये है प्रथम द्वीपका जो व्यास प्रमाण है
तद्-द्विगुण-विष्कम्भः[१] लवणजलधिः[१]	=उससे दुगुण व्यासभागप्रमाण वाला लवण समुद्र है अर्थात् जम्बूद्वीपकी परिधि पर एक विन्दु लेकर उसीकी सीधमें दूसरा विन्दु लवण समुद्र की परिधि पर लेकर यदि दोनों विन्दुओंको मिलाकर सीधी रेखा खींच दें तो इस रेखाकी लम्बाई दो लाख योजनकी होगी
तद्-द्विगुण-विष्कम्भः[१] द्वितीयः[१] द्वीपः[१]	=उस (लवणोदधि) से दूने व्यास भागवाला (=विष्कम्भ)दूसरा (धातुकी खंड) द्वीप है

(१) यह बहुव्रीहि समास है। बहुव्रीहिसमास तीन प्रकारका है (क) उत्तर पदार्थ प्रधान (ख) उभय पदार्थ प्रधान (ग) अन्यपदार्थ प्रधान यहाँ पर प्रथमभेद उत्तर पदार्थ प्रधान है। जैसे द्विदशाः। द्वौवारौ दश इति विग्रहः दो वार दश जिसमें हो ऐसा विग्रह है जिसका अर्थ बीस है। उभय पदार्थ प्रधान वह है जिसमें दोनों ही पद प्रधान हों जैसे द्वित्राः द्वौ वा त्रयो वा इति विग्रहः भावार्थ दो या तीन। अन्य पदार्थ प्रधान वह है जिसमें अन्य अर्थात् अन्तिम पद प्रधान हो जैसे उपविंशाः उपसमीपम् गता विंशतिर्येषामिति विग्रहः=समीपको प्राप्त होगये हैं बीस जिन्होंके लगभग बीस अर्थ है।

(२) विष्कम्भः-इसका अर्थ पद्मचन्द्र कोषके पृष्ठ ३६१ में "विस्तार फैलाव"का है विस्तार वा फैलावका अर्थ क्षेत्रफल भी समझा जासके है परन्तु यहाँपर यह आशय नहीं है क्योंकि जम्बूद्वीपसे लवणोदधि का क्षेत्रफल लगभग चोवीस गुणा अधिक होता है यहां पर विष्कम्भ का आशय यह एक ओरका व्यासखंड है जो जम्बूद्वीपकी परिधिपर एक विन्दु लेकर उसकी सीधमें दूसरा विन्दु लवणोदधिकी परिधि परसे लेकर दोनों विन्दुओंको मिलानेसे बनता है॥ जम्बूद्वीपसे लवणोदधि लगभग चौबीस गुणा है और धातुकी खंड जम्बूद्वीपसे लगभग एकसौ चवालीस गुणा है जैसा कि २६

तेषां मध्ये तन्मध्ये । केषां ? पूर्वोक्तद्वीपसमुद्राणाम् । नाभिरिव नाभिः । मेरुर्नाभिर्यस्य सः मेरुनाभिः । वृत्तः आदित्यमण्डलोपमानः । शतानां सहस्रम् शतसहस्रम् । योजनानां शतसहस्रं योजनशतसहस्रम् । योजनशतसहस्रं विष्कम्भो यस्य सोऽयं योजनशतसहस्रविष्कम्भः ॥ कोऽसौ ? जम्बूद्वीपः ॥ कथं जम्बूद्वीपः ? । जम्बूवृक्षोपलक्षितत्वात् ॥ उत्तरकुरूणां मध्ये जम्बूवृक्षोऽनादिनिधनः पृथिवी परिणामो

वृत्त्यनुवादः— तेषां[६/३]।मध्ये[७/१]।तन्मध्ये[७/१]।केषाम्[६/३]। =तिन(द्वीप-समुद्रों)के बीचाबीचमें है सो तन्मध्ये है (प्रश्न) किनके (मध्य में) है ॥
पूर्व-उक्त- द्वीपःसमुद्राणाम्[६/३]।नाभिः[१/१]।इव*नाभिः[१/१]। =(उत्तर) प्रथम वर्णित द्वीप तथा समुद्रोंके टूण्डी अथवा टूंडीके सदृश है सो नाभि है
मेरुः[१/१]। नाभिः[१/१]।यस्य[६/१]।सः[१/१]।मेरुनाभिः[१/१]। =मेरु पर्वत है टूंडीके सदृश (जिस जम्बूद्वीप) का सो मेरुनाभि है ॥
(१)वृत्तः[१/१]।आदित्य-मण्डल-उपमानः[१/१]। =वृत्त सूर्यके विमान (आदित्य) सदृश(उपमान) गोल (=मण्डल) है
(२)शतानां[६/३]।।सहस्रं[१/१]।।शतसहस्रम्[१/१]।।योजनानां शतसहस्रं =सौ हजार सो शत सहस्र है योजनों के सौ हजार सो
योजन-शत-सहस्रं[१/१]।।योजन-शत-सहस्रं[१/१]।।विष्कम्भःयस्य=योजन शतसहस्र है अर्थात् लक्ष योजन है । सौ हज़ार योजन है विस्तार जिसका
सः[१/१]।अयम्[१/१]।योजन-शत सहस्र विष्कम्भः[१/१]। कः[१/१]। ? =सो यह योजन शत सहस्र विष्कम्भ है वह (सौ योजन विस्तारवाला) कौन है
असौ[१/१]।जम्बूद्वीपः[१/१]।कथं*जम्बूद्वीपः[१/१]। ? जम्बू- =यह जम्बूद्वीप है जम्बूद्वीप नाम कैसे है ॥ (इस क्षेत्र में) जम्बूनामा
वृक्ष-उपलक्षितत्वात्[५/१]।। =वृक्ष की विद्यमानता के सहारे अथवा संयोगसे (यह जम्बूद्वीप नाम) है
उत्तर-कुरूणां[६/३]।मध्ये[७/१]। =उत्तर कुरुभोग भूमि के बीच में अर्थात् ईशानकोण में वा पूर्व उत्तरकोण में
जम्बूवृक्षः[१/१]।अनादिनिधनः[१/१]।पृथिवीपरिणामः[१/१]। =जम्बू वृक्ष आदि अन्त रहित (=अनादिनिधन) पृथिवीकायरूप

(१) यहां पर वृत्त कहना इस नियम के अर्थ है कि लवण से आदि लेकर द्वीप समुद्र वलयाकार वृत्त है ॥ और जम्बूद्वीप प्रतर वृत्त है ॥

(२) शत, सहस्र, अयुत (=१००००) लक्ष, प्रयुत=(दश लक्ष) अर्बुद(=दशकोटि) अब्ज(=अर्ब) खर्व, निखर्व(दशखर्व) अन्त्य (दशनील) मध्य(पद्म) परार्ध (दशपद्म) दशपरार्ध (=शंख) ये सब नपुंसक लिंगी है ॥ और वन शब्द वत् इनके रूप सर्व विभक्तियों में होते हैं ।

अत्राह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसंस्थानविष्कम्भा वक्तव्यास्तन्मूलत्वादितरविष्कम्भादिविज्ञानस्येत्युच्यते

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

अत्र*आह, जम्बूद्वीपस्य, प्रदेशसंस्थान-विष्कम्भाः वक्तव्याः = यहाँ प्रश्न है कि जम्बूद्वीपका ठिकाना (=प्रदेश) आकार, व्यासप्रमाण कहना चाहिए

तद्मूलत्वात् = उस (जम्बूद्वीप के) स्थित आदिक होने से अर्थात् निर्णय आदिक होने से

इतर-विष्कम्भादि-विज्ञानस्य इति*उच्यते = दूसरे (द्वीप तथा समुद्र) के विस्तारादिक जाननेको इसप्रकार (अग्रिमसूत्रमें) कहाजाताहै कि

(१)सूत्रम्—तन्मध्ये(२) मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—तद्मध्ये मेरुनाभिः = उन (सर्वद्वीप समुद्रों) के बीचाबीचमें मेरुपर्वत है नाभि जिसकी अथवा मेरु पर्वत जिसकी नाभि (=मध्य) में है ऐसा

(३)वृत्तः = वलयाकार (सूर्य के मंडल सदृश वा कुलाल के चक्र सदृश आकारवान्)।

(४)योजन-शतसहस्र-विष्कम्भः (५) जम्बूद्वीपः = एकलक्ष योजन व्यासधारक जम्बूद्वीप है अर्थात् जम्बूद्वीप प्रतर पटल वृत्त है शेष समुद्र और द्वीप स्वयम्भूरमण समुद्र तक वलयाकार चूड़ी, चक्र, अथवा कड़े के आकारवत् हैं सो इस जम्बूद्वीपके प्रत्येक व्यासकी लम्बाई एक लाख योजन है और उस जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार दोसौ सत्ताइस योजन तीन कोश एक सौ अट्ठाइस चाप साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है (योजन २००० कोशका है)

---

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायों में इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है ॥ कहीं कहीं पर हमारे यहां जंबूद्वीप भी पाठ ठीक है ॥

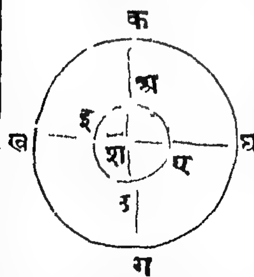
(२) मेरुनाभिः-इस वाक्य के दो प्रकार के समास हैं (१) मेरुपर्वत है नाभि जिसकी (२) मेरु पर्वत जिसकी नाभिमें है दोनों रीतिके समासों का यह आशय है कि मेरु जिस (जम्बूद्वीप) के बीच में हैं ॥

(३) वृत्त = कुलालके चक्र सदृश वृत्त होता है, उसके बीचाबीच में एक विन्दु कल्पित करे तो उस विन्दुको केन्द्र कहेंगे ॥ इस वृत्तकी किनारेका चौगिरदा गोल रेखाको परिधि कहतेहैं इस परिधि पर दो बिंदु एकदूसरेके सामने लेकर केन्द्रमें होकर जो रेखा जाती है उसको व्यास वा सूची कहते हैं ॥ (४) यहां योजन दो सहस्र कोशका जानना चाहिये (५) व्यासका अर्थ (क) विस्तार (ख) फैलाव (ग) सूचीके हैं इसलिए यह शब्द विष्कम्भ शब्दके अनुवाद के लिए बहुत योग्य है ॥

हिमवतोऽद्रेस्त्रयाणां च समुद्राणां मध्ये आरोपितचापाकारो भरतवर्षः। विजयार्द्धेन गङ्गासिन्धुभ्यांच विभक्तः षट्खण्डः ॥ क्षुद्रहिमवन्तमुत्तरेण दक्षिणेन, महाहिमवन्तं पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये २ हैमवतवर्षः ॥ निषधस्य दक्षिणतो महाहिमवत उत्तरतः पूर्वापरसमुद्रयोरन्तराले ३ हरिवर्षः ॥ निषधस्योत्तरान्नीलतो दक्षिणतः

हिमवतः[६/१] अद्रेः[६/१] त्रयाणाम्[६/३] च*समुद्राणाम्[६/३]	=हिमवान्-पर्वतके (अद्रेः) ओर (=च) तीन ओर (लवण) समुद्रके
मध्ये[७/१] आरोपित-चाप-आकारः[१/१] भरतवर्षः[१/१]	=मध्यमें चढ़ायेहुये धनुपके आकार भारतवर्ष है
विजयार्द्धेन[३/१] गङ्गासिन्धुभ्याम्[३/२] च*विभक्तः[१/१]	=वैताड्यपर्वतसे तथा गंगा और सिंधु नदियों से पृथक् किये हुये (=विभक्तः)
षट्खण्डः[१/१] क्षुद्रहिमवन्तं[२/१] उत्तरेण[३/१]	=छह खंड हैं छोटे हिमवान् कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और)
दक्षिणेन[३/१] महाहिमवन्तं[२/१] पूर्व-अपर-	=महाहिमवान् कुलाचलकी दक्षिण दिशासे पूर्व पश्चिमके दोनों ओर
समुद्रयोः[६/२] मध्ये[७/१] २ हैमवत वर्षः[१/१]	=लवण समुद्रके बीचमें दूसरा हेमवत वर्षधर क्षेत्र है
निषधस्य[६/१] दक्षिणतः*महाहिमवतः[६/१] उत्तरतः*	=निषध कुलाचलकी दक्षिण दिशासे और महाहिमवान् कुलाचलकी उत्तर दिशासे
पूर्व-अपर-समुद्रयोः[६/२] अन्तराले[७/१] ३ हरिवर्षः[१/१]	=पूर्व पश्चिम दोनों ओरके लवण समुद्रके बीचमें (अन्तराले) तीसरा हरि वर्ष है ॥
निषधस्य[६/१] उत्तरात्[५/१] नीलतः*दक्षिणतः*	=निषध कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और) नील कुलाचलकी दक्षिण दिशासे

जम्बूद्वीप तथा लवण समुद्र आदि द्वीप और समुद्रोंका क्षेत्रफल निम्न लिखित गणितके नियमानुसार निकल आता है ॥



अइउए एक वृत्त है जिसके बीचोबीच श एक बिंदु है इस बिंदुको उक्त वृत्तका केन्द्र कहते है अउ रेखा और इए रेखाको व्यास कहते हैं। शअ,शउ,शइ,शए इन प्रत्येक बराबरकी रेखाको त्रिज्या, जीवा, वा व्यासार्ध कहते है अइउए गोल रेखाकोवृत्तकी परिधि कहते हैं। इस अइउए क्षेत्रको हमने जम्बूद्वीप माना है जिसका व्यास एक लाख योजन लम्बाईमें है और अइउए और कखगघके बीचके क्षेत्रको लवण समुद्र माना है। व्यासार्ध वा जीवाके वर्गको $\frac{२२}{७}$ से गुणा करनेसे जो गुणनफल हो वही क्षेत्र होता है। जैसे जम्बूद्वीपकी जीवा पचास सहस्र योजन लम्बी है $(५००००)^२ \times \frac{२२}{७} = २५०००००००० \times \frac{२२}{७} = \frac{५५००००००००००}{७} =$ ७८५७१४२८५७$\frac{१}{७}$ अर्थात् जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल सातअरब पचासीकरोड इकहत्तरलाख ब्यालीससहस्र आठसौसत्तावन एकबटाहुये सात वर्गयोजन हुआ ऐसेही कखगघ वृत्तका क्षेत्र फल निकाल कर उसमेंसे जम्बूद्वीपका क्षेत्र घटानेसे लवण समुद्रका क्षेत्रफल निकल आवैगा ॥

ऽकृत्रिमः सपरिवारस्तदुपलक्षितोऽयं द्वीपः ॥

तत्र जम्बूद्वीपे षड्भिः कुलपर्वतैर्विभक्तानि सप्त क्षेत्राणि कानि तानीत्यत आह ॥

॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

भरतादयः सञ्ज्ञा अनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्ताः॥ तत्र१ भरतवर्षः क्वसन्निविष्टः? । दक्षिणदिग्भागे

अकृत्रिमः¹। स-परिवारः¹। =अकृत्रिम परिवार (अर्थात् अपने चारों ओर आधे आधे प्रमाण लिये एक सौ आठ छोटे जम्बूवृक्षों सहित

तद्-उपलक्षितः*अयं¹।द्वीपः¹। =उस (प्रधान वृक्ष)के योगसे (=उपलक्षितः) यह द्वीप है

तत्र*जम्बूद्वीपे⁷।षड्भिः³।कुलपर्वतैः³।विभक्तानि¹।।। =तहां जम्बूद्वीप विषै छह कुलाचलनिकरि (=कुल पर्वतैः) विभाग कियेगये

सप्त¹।।।क्षेत्राणि¹।।।कानि¹।।।तानि¹।।।इति*अतः*आह=सात क्षेत्र हैं ते कौन हैं इसलिये (उत्तर सूत्र में) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥

=(जम्बूद्वीपे)भरतवर्षः, हैमवतवर्षः, हरिवर्षः, विदेहवर्षः, रम्यकवर्षः, हैरण्यवतवर्षः, ऐरावतवर्षः, क्षेत्राणि भवन्ति॥ १० ॥

सूत्रार्थः—(जम्बूद्वीपे⁷।)भरतवर्षः¹।हैमवतवर्षः¹। =(जम्बूद्वीप विषैं) भारतवर्ष, हैमवतवर्ष,

हरिवर्षः¹।विदेहवर्षः¹।रम्यकवर्षः¹। =हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष,

हैरण्यवतवर्षः¹।ऐरावतवर्षः¹।क्षेत्राणि¹।।।भवन्ति ᶜ =हैरण्यवतवर्ष, ऐरावतवर्ष(ये सात) क्षेत्र हैं

वृत्त्यनुवादः-भरत-आदयः¹।।सञ्ज्ञाः¹।।अनादिकालप्रवृत्ताः¹।।=भरतादिक नाम अनादिकालसे प्रवर्तते हैं

अनिमित्ताः¹।।तत्र*भरतवर्षः¹। =निमित्तरहित अर्थात् स्वयम् (प्रश्न) तहाँ (जम्बूद्वीपमें) पहिला भारतवर्ष (=भरतवर्ष)

क्व सन्निविष्टः¹।? दक्षिण-दिग्भागे⁷। =कहां स्थिति है (उत्तर)जम्बूद्वीपके दक्षिण दिशाके विभागमें

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ और अर्थ सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें भरत, हैमवत, इत्यादि के पहिले 'तत्र' शब्द अधिक है जिस 'तत्र' शब्द का अर्थ है "तहाँ" अर्थात् जम्बूद्वीपलवणोदादय इत्यादि" इस सातवां सूत्र से "जम्बूद्वीप" ऐसी अनुवृत्ति इस सूत्रमें लीगई है। दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका अर्थ एक है ॥

॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मि-शिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥

तानि क्षेत्राणि विभजन्त इत्येवंशीलास्तद्विभाजिनः ॥ पूर्वापरायता इति पूर्वापरकोटिभ्यां लवण-जलधिस्पर्शिन इत्यर्थः ॥ हिमवदादयोऽनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्तसञ्ज्ञाः वर्षविभागहेतुत्वाद्वर्षधर-पर्वता इत्युच्यन्ते ॥ तत्र क हिमवान् ? । भरतस्य हैमवतस्य च सीमनि व्यवस्थितः॥ क्षुद्रहिम-वान् योजनशतोच्छ्रायः॥हैमवतस्य हरिवर्षस्य च विभागकरो महाहिमवान् द्वियोजनशतोच्छ्रायः ॥

सूत्रम्—तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ११

सूत्रार्थः—तद्द-विभाजिनः $^{1}_{3}$ पूर्व- =तिन (भरत, हैमवत, इत्यादिक सात क्षेत्रों) को पृथक् करनेवाले पूर्व
अपर-आयताः $^{1}_{3}$ हिमवत्-महाहिमवत्-निषध- =पश्चिम लवणोदधितक लम्बे हिमवान्-, महाहिमवान्, निषिध,
नील-रुक्मि-शिखरिणः $^{1}_{3}$ वर्षधरपर्वताः $^{1}_{3}$ =नील, रुक्मि (रुक्मी वा रूपी) शिखिरी (छह)वर्षधर पर्वत, कुलपर्वतवा कुलाचल हैं
वृत्त्यर्थः-तानि $^{2}_{3}$ क्षेत्राणि $^{2}_{3}$ विभजन्ते इति एवं शीलाः $^{1}_{3}$ =तिन (भरत हैमवत इत्यादि) क्षेत्रोंको पृथक् करते हैं ऐसे स्वभाव वा प्रकृति वाले हैं॥
तद्विभाजिनः $^{1}_{3}$ पूर्व-अपर-आयताः $^{1}_{3}$ इति* =ते तद्विभाजन हैं (वा विभाग करने वाले हैं) (सूत्रमें) पूर्व पश्चिम लम्बे हैं ऐसे
पूर्व-अपर-कोटिभ्याम् $^{3}_{2}$ लवण-जलधि-स्पर्शिनः $^{1}_{3}$ =पूर्व पश्चिमकी अटनीयों करि (=कोटिभ्यां) लवणोदधिको छूने वाले छै कुलाचल हैं॥
इति*अर्थः $^{1}_{1}$ । हिमवत्-आदयः $^{1}_{3}$ अनादिकालप्रवृत्ताः $^{1}_{3}$ =ऐसा अभिप्राय है ॥ हिमवान आदिक (पट्कुलाचल) अनादिकालसे प्रवर्ती
अनिमित्तसञ्ज्ञाः $^{1}_{3}$ वर्षविभागहेतुत्वात् $^{5}_{1}$ =निमित्तरहित नाम वाले वा स्वयं नाम धारक क्षेत्रोंको पृथक् २ करनेके कारणसे
वर्षधर-पर्वताः $^{1}_{3}$ इतिउच्यन्ते, तत्र*क*हिमवान् $^{1}_{1}$? =वर्षधर पर्वत ऐसे कहे जाय हैं । (प्रश्न) तहां हिमवान् (पर्वत) कहां है ।
भरतस्य $^{6}_{1}$ हैमवतस्य $^{6}_{1}$ च—सीमनि $^{7}_{1}$ व्यवस्थितः $^{1}_{1}$ =(उत्तर) भरत क्षेत्रकी वहुरि हेमवत वर्षकी सीमामें अवस्थित हैं
क्षुद्र-हिमवान् $^{1}_{1}$ योजन-शत-उच्छ्रायः $^{1}_{1}$ =क्षुद्र हिमवान् है (क्षुद्र=छोटा) जिसकी योजन सौ उचाई (=उच्छ्राय) है ॥
हैमवतस्य $^{6}_{1}$ हरिवर्षस्य $^{6}_{1}$ च*विभागकरः $^{1}_{1}$ =हैमवत क्षेत्रका तथा हरिवर्षका विभाग करने वाला
महाहिमवान् $^{1}_{1}$ द्वि-योजन-शत-उच्छ्रायः $^{1}_{1}$ =महाहिमवान् है जिसकी योजन दो सौ की ऊंचाई है ॥

पूर्वापरसमुद्रयोरन्तरे ४ विदेहस्य सन्निवेशो द्रष्टव्यः ॥ नीलत उत्तरो रुक्मिणो दक्षिणः पूर्वापर-समुद्रयोर्मध्ये ५ रम्यकवर्षः ॥ रुक्मिण उत्तराच्छिखरिणो दक्षिणात्पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये सन्निवेशे ६ हैरण्यवतवर्षः॥शिखरिण उत्तरतस्त्रयाणां समुद्राणां मध्ये ७ ऐरावतवर्षः । स विजयार्द्धेन रक्तारक्तो-दाभ्यां च विभक्तः षट्खण्डः॥षट्कुलपर्वता इत्युक्तं, के पुनस्ते, कथं वा व्यवस्थिता इत्यत आह—

पूर्व-(१)अपर-समुद्रयोः ६/२। अन्तरे ७/१। ४ विदेहस्य ६/१।	=पूर्व पश्चिम (लवण) समुद्रके भागोंके मध्यमें चौथा विदेह क्षेत्रकी
सन्निवेशः १/१। द्रष्टव्यः १/१।, नीलतः * उत्तरः १/१।	=सम्यक् स्थिति जानना योग्य है अथवा देखने योग्य है ॥ नील कुलाचलसे उत्तर
रुक्मिणः (२ ५/१। दक्षिणः १/१। पूर्व-अपर-समुद्रयोः ६/२।	=रुक्मी वा रूपीकुलाचलसे दक्षिण (और) पूर्व और पश्चिम दोनों ओरके लवण समुद्रके
मध्ये ७/१। ५ रम्यक-वर्षः १/१।, रुक्मिणः ५/१। उत्तरात् ५/१।	=बीचमें पांचवां रम्यक वर्ष है ॥ रुक्मि कुलाचलके उत्तर दिशासे और
शिखरिणः ५/१। दक्षिणात् ५/१। पूर्व-अपर-समुद्रयोः ६/२।	=शिखरी कुलाचलके दक्षिण दिशासे पूर्व और पश्चिम दोनों ओरके लवण समुद्रके
मध्ये ७/१। सन्निवेशे ७/१। ६ हैरण्यवतवर्षः १/१। ।	=अन्तराल स्थितिमें छठवां हैरण्यवत वर्षः है ॥
शिखरिणः ५/१। उत्तरतः * त्रयाणाम् ६/३। समुद्राणां ६/३।	=शिखिरी कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और) तीन ओर लवण समुद्रके
मध्ये ७/१। ७ ऐरावतवर्षः १/१।, सः १/१। विजयार्द्धेन ३/१।	=बीचमें सातवां ऐरावत वर्ष है ॥ वह (ऐरावत क्षेत्र) वैताढ्य पर्वतकरि
रक्तारक्तोदाभ्याम् ३/२। च * विभक्तः १/१। षट्खण्डः १/१।	=तथा (च) रक्ता रक्तोदा दोनों नदियोंकरि छह खंडरूपमें बटा हुआ है ॥
षट्-कुलपर्वताः १/३। इति * उक्तं १/१। के १/३। पुनः * ते १/३।	=छह कुलाचल पर्वत ऐसा कहा गया है अथवा वर्णित है । बहुरि (=पुनः) ते कौन हैं ॥
कथं * वा * व्यवस्थिताः १/३। इति * अतः * आह	=अथवा किस प्रकार व्यवस्थित हैं । इसलिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) लवण समुद्र वलयाकार सर्वतः जम्बूद्वीपको घेरे हुए एक ही है "समुद्राणाम्" बहुवचन और "समुद्रयोः" द्विवचन इस कारणसे लाये हैं कि "समुद्राणाम्" शब्दसे लवण समुद्रके तीन ओरके भागोंसे आशय है और समुद्रयोः शब्दसे लवणोदधिके पूर्व और पश्चिमकी सीमाओंके भागोंसे अभिप्राय है इसीलिए अनुवादमें भाग शब्द लाए हैं ॥ (२) रुक्मिणः ५/१ अथवा ६/१ दोनों हो सकते हैं पंचमी विभक्तिमें अर्थ रुक्मी कुलाचलसे दक्षिण ऐसा होगा और षष्ठी विभक्तिमें (रुक्मी कुलाचलके) दक्षिण ऐसा अर्थ है ॥

त एते हिमवदादयः पर्वता हेमादिमया वेदितव्या यथाक्रमम्॥ हेममयो हिमवान् चीनपट्टवर्णः। अर्जुनमयो महाहिमवान् शुक्लवर्णः। तपनीयमयो निषधस्तरुणादित्यवर्णः। वैडूर्यमयो नीलो मयूरग्रीवाभः। रजतमयो रुक्मी शुक्लः। हेममयः शिखरी चीनपट्टवर्णः॥ पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

सूत्रार्थः— वर्षधरपर्वताः $\frac{1}{3}$ हेममयः $\frac{1}{1}$ अर्जुनमयः $\frac{1}{1}$ =कुलाचल पर्वत स्वर्ण सदृश अर्थात् पीतवर्ण शुभ्रसम अर्थात् श्वेतवर्ण

तपनीयमयः $\frac{1}{1}$ वैडूर्यमयः $\frac{1}{1}$ =तप्तसुवर्णसरीखा अर्थात् रक्तवर्ण वैडूर्य मणिवत् अर्थात् नीलवर्ण

रजतमयः $\frac{1}{1}$ हेममयः $\frac{1}{1}$ च*यथाक्रमम् $\frac{1}{1}$ ॥ =रूपा वा चांदी सम अर्थात्, शुक्लवर्ण और कंचन सदृश अर्थात् पीतवर्ण क्रमसे हैं ॥

तात्पर्य यह है कि हिमवान् पर्वत पीत वर्ण है महाहिमवान् पर्वत श्वेतवर्ण है निषिध पर्वत रक्तवर्ण है, नीलपर्वत नीलवर्ण है, रुक्मि (रुक्मी, रूपी) पर्वत शुक्लवर्ण है। और शिखिरी पर्वत, पीत वर्ण है ॥

वृत्त्यनुवादः-ते $\frac{1}{3}$ एते $\frac{1}{3}$ हिमवत्-आदयः $\frac{1}{3}$ पर्वताः $\frac{1}{3}$ हेम-आदि- =ते इतने हिमवान, आदिक पर्वत अर्थात् षट्कुलाचल स्वर्ण आदिक

मयाः $\frac{1}{3}$ वेदितव्याः $\frac{1}{3}$ यथाक्रमम्*हेममयः $\frac{1}{1}$ =सदृश-क्रमानुसार जानना चाहिये। स्वर्ण सरीखा (=मय)

हिमवान् $\frac{1}{1}$ चीन-पट्ट-वर्णः $\frac{1}{1}$ अर्जुनमयः $\frac{1}{1}$ =हिमवान् पर्वत पीला (=चीन) पाट (सम) वर्ण है। शुभ्र सम

महाहिमवान् $\frac{1}{1}$ शुक्लवर्णः $\frac{1}{1}$ तपनीयमयः $\frac{1}{1}$ निषिधः $\frac{1}{1}$ =महाहिमवान पर्वत श्वेत रंग है। तप्त वा ताये हुए सुवर्ण सदृश निषध पर्वत

तरुण-आदित्य-वर्णः $\frac{1}{1}$ वैडूर्यमयः $\frac{1}{1}$ नीलः $\frac{1}{1}$ =दुपहरी वा मध्याह्नके सूर्य वर्ण अर्थात् रक्त है। वैडूर्यमणि समान नील पर्वत

मयूर-ग्रीवा-आभः $\frac{1}{1}$ रजतमयः $\frac{1}{1}$ रुक्मी $\frac{1}{1}$ =मोरकेकंठसदृश(=आभस्) 'नीला' है। चांदी वा रूपा सरीखा रुक्मि,(रुक्मी, रूपी), पर्वत

शुक्लः $\frac{1}{1}$ हेममयः $\frac{1}{1}$ शिखिरी $\frac{1}{1}$ चीन-पट्ट-वर्णः $\frac{1}{1}$ =श्वेत है। सुवर्णवत्(शिखिरी) पर्वत पीले पट्ट वर्ण हैं ॥

पुनर्*अपि*तद्-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् $\frac{1}{1}$ ॥ आह T =फिर भी तिन (षट्कुलाचलों) का विशेष प्रतिपादनके लिए अग्रिमसूत्रमें कहते हैं कि

यह टिप्पणी दी है कि "इस विषयमें बहुतसे विद्वान् स्वय और भी अनेक सूत्रोंकी रचना करके उनका व्याख्यान करते हैं। विस्तार न हो, इस लिये आचार्यने संक्षेपसे यह तत्व संग्रह किया है, और इसी हेतुसे शास्त्रनिपुणजन विस्तार रूपसे जो सूत्रोंका कथन है वह प्राचीन नहीं है ऐसा कहते हैं। और विस्तार ही इष्ट है तो लक्षग्रन्थकी, परिभाषारूपसे जम्बूद्वीपका विस्तार करें तो भी क्या विस्तार हुआ? अर्थात् कुछ नहीं अथवा विस्तारार्थीको उन आचार्योंके रचित सूत्रोंसे बहुत गुणयुक्त सिद्धान्त क्या निकल आता है? इस हेतु उनका अभिप्राय उपेक्षाके योग्य है ॥

विदेहस्य दक्षिणतो हरिवर्षस्योत्तरतो निषधो नाम पर्वतश्चतुर्योजनशतोच्छ्रायः ॥ उत्तरे त्रयोऽपि पर्वताः स्ववर्षविभाजिनो व्याख्याताः ॥ उच्छ्रायश्च तेषां चत्वारि द्वे एकं च योजनशतं वेदितव्यम् ॥ सर्वेषां पर्वतानामुच्छ्रायस्य चतुर्भागोऽवगाहः॥ तेषां वर्णविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥

विदेहस्य॥दक्षिणतः॥हरिवर्षस्य॥उत्तरतः॥	=विदेह क्षेत्रकी दक्षिणदिशासे हरिवर्षक्षेत्रके उत्तरदिशासे
निषधः॥नाम॥पर्वतः॥चतुर्योजन-शत-उच्छ्रायः॥	=निषधनाम पर्वत है जिसकी चारसौ योजन ऊंचाई है ॥
उत्तरे॥त्रयः॥अपि॥पर्वताः॥स्व-वर्ष —	=उत्तरदिशामें तीनोंही (नील, रुक्मि, शिखरी) पर्वत अपने(अपने) क्षेत्रोंके
विभाजिनः॥व्याख्याताः॥उच्छ्रायः॥च॥तेषां॥चत्वारि॥	=विभाग करने वाले कहे गये हैं बहुरि तिनकी ऊंचाई चार
द्वे॥एकं॥च॥योजन-शतं॥वेदितव्यम्॥	=दो तथा एक सौ, योजन (क्रमसे) जानना चाहिए अर्थात् नील पर्वतकी चारसौ योजन ऊंचाई है रुक्मि पर्वतकी दोसौ योजन है व शिखरी पर्वतकी सौ योजन है
सर्वेषां॥पर्वतानाम्॥उच्छ्रायस्य॥चतुर्भागः॥	=समस्त पर्वतोंकी ऊंचाईका चौथाई भाग (क्रमानुसार) पृथिवीमें
अवगाहः॥	प्रविष्ट है या भूमिमें अवगाह है। (तात्पर्य यह है कि हिमवान् पर्वतकी नींवपचीस

योजनकी है और सौ योजन भूमिके ऊपर है। महाहिमवान् ५० योजन पृथिवीमें प्रविष्ट है २०० योजन धरासे ऊंचाई। निषध पर्वतकी १०० योजन नींव है। और ४०० योजन धरातलके ऊपर है। इसीप्रकार नील पर्वतकी पृथिवीमें १०० योजन नींव है। ४०० योजन भूमिके ऊपर है रुक्मी पर्वत ५० योजन पृथिवीमें अवगाढ है २०० योजन पृथिवीके है ऊपर और शिखरी पर्वत २५ योजन पृथिवीमें है १०० योजन भूमिसे ऊंचाई है ॥

तेषां॥वर्ण-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह	=तिन (षट् कुलाचलों) के, रंगोंके प्रभेद कहनेके लिए (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः। १२।हेमार्ज्जुन वैडूर्य्य पाठ भी "अचोरहाभ्याम् द्वे वा" सूत्रसे शुद्ध है

=(वर्षधर पर्वताः) हेममयः, अर्जुनमयः, तपनीयमयः, वैडूर्यमयः, रजतमयः हेममयः, च (यथाक्रमम्) ॥ १२ ॥

(१)इस बारहवां १२ सूत्रसे "भरतस्य आदि" २२ वां सूत्रतक २१ सूत्र श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्रमें नहीं है ॥ सभाष्यके पृष्ठ ८ ३॥

॥ पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

पद्मः महापद्मः तिगिञ्छः केसरी महापुण्डरीकः पुण्डरीक इति तेषां हिमवदादीनामुपरि यथाक्रममेते ह्रदा वेदितव्याः ॥ तत्राद्यस्य संस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥ १५ ॥

सूत्रम्—(१) पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—पद्म-महापद्म-तिगिंछ-केसरि-महापुण्डरीक- =पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक, और
पुण्डरीकाः[१/३] ह्रदाः[१/३] तेषाम्[६/३] उपरि*यथाक्रमम्* =पुण्डरीक (ये छह) द्रह उन(छह कुलाचलों)के ऊपर अनुक्रमसे हैं
वृत्त्यनुवादः—पद्मः[१/१] महापद्मः[१/१] तिगिञ्छः[१/१] केसरी[१/१] =पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी,
महापुण्डरीकः[१/१] पुण्डरीकः[१/१] इति*तेषां[६/३] हिमवत्- =महापुण्डरीक, पुण्डरीक इसप्रकार तिन हिमवान्
आदीनां[६/३] उपरि* यथाक्रमं*एते[१/३] ह्रदाः[१/३] वेदितव्याः[१/३] =आदिक (छह कुलाचलों) के ऊपर क्रमानुसार ये द्रह जानना चाहिये ॥
अर्थात् हिमवान पर्वतपर पद्मसरोवर है महाहिमवान् पर्वतपर महापद्म सरोवर है निषधपर्वतपर तिगिंछ ह्रद है नीलपर्वतपर केसरी द्रह है रुक्मिपर्वतपर महापुण्डरीक सरोवर है और शिखिरी पर्वतपरपुण्डरीकद्रह है
तत्र*आद्यस्य[६/१] संस्थान-विशेष प्रतिपत्ति-अर्थं[२/१] आह =तहाँ प्रथम (सरोवर पद्म) के आकार विशेषके कहनेके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्—(१) प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्ध[२] विष्कम्भो ह्रदः ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—प्रथमः[१/१] योजन-सहस्र-आयामः[१/१] =पहिला (पूर्व पश्चिम एक) हज़ार योजन लम्बा (और)
तद्-अर्द्ध-विष्कम्भः[१/१] ह्रदः[१/१] =उससे आधा (अर्थात् पांचसो योजन उत्तर दक्षिण) चौड़ा सरोवर है

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें ये दोनों सूत्र नहीं हैं (२) हमारे यहां कहीं कहीं पर अर्ध पाठ है कही २ पर अर्द्ध पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं अर्ध का धकार "अचोरहाभ्याम् द्वे वा" पूर्वोक्त सूत्रसे दोहरा होगया तब अ र् ध् ध ऐसा रूप बना, यह प्रथम ध् 'झलांजश्झशि'

॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥

नानावर्णप्रभादिगुणोपेतैर्मणिभिर्विचित्राणि पार्श्वाणि येषां ते मणिविचित्रपार्श्वाः ॥ अनिष्टस्य स्थानस्य निवृत्त्यर्थमुपर्यादिवचनंक्रियते ॥ चशब्दो मध्यसमुच्चयार्थः ॥ य एषां मूले विस्तारः स उपरि मध्ये च तुल्यः ॥ तेषां मध्ये लब्धास्पदा ह्रदा उच्यन्ते—

(१)सूत्रम्—मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १२ ॥

=(वर्षधरपर्वताः)मणिविचित्र-पार्श्वाः उपरि मूले च तुल्य-विस्ताराः॥१३॥

सूत्रार्थः—वर्षधर-पर्वताः ३ मणि-विचित्र- = वर्षधरपर्वत मणियोंकरि विचित्र हैं वा रंग बरंगी हैं ॥
पार्श्वाः ३ उपरि* मूले ३ च* = (दोनो दोनों)पार्श्वभाग वा पसवाड़े जिनके (प्रत्येक पर्वत) ऊपर नीचे मध्य में (=च)
तुल्य-विस्ताराः ३ = समान (भीत वा भित्ति) चौड़ाई वाले हैं
वृत्त्यनुवादः—नाना-वर्ण-प्रभादि-गुण-उपेतैः३ = अनेक रंग और दीप्ति आदि गुणोंकरि सहित
मणिभिः३ विचित्राणि ३ पार्श्वाणि३ येषां३ ते ३ = मणियोंकरि विचित्र हैं अथवा रंग बरंगे हैं।(दोनों दोनों)पसवाड़े जिनके ते
मणि-विचित्र-पार्श्वाः३ अनिष्टस्य ६ = मणिविचित्र-पार्श्वा हैं। अनिच्छित, अथवा अप्रमाणित(जो प्रमाण से माना नहीं गया)
संस्थानस्य ६ निवृत्ति-अर्थम् ३ उपरि-आदि-वचनं = आकार के (=संस्थानस्य)निराकरण के लिये उपरि आदि वाक्य (सूत्र में)
क्रियते च* शब्दः३ मध्ये-समुच्चय-अर्थः३ = लाया गया है (इस सूत्र में)च शब्द बीचके (चौड़ाउ) के समाहार के लिये है
ये३ एषां३ मूले७ विस्तारः१ सः१ उपरि*च मध्ये७ = वे जिनके जड़ में (नीचे)चौड़ाई है वह(चौड़ाई) ऊपर और (च) बीच में
तुल्यः १ = समान है (अर्थात् ये छ हो हिमवान्, महाहिमवान्, निषिध, नील, रुक्मी, शिखिरी पर्वत नीचे मध्यमें तथा ऊपर समान चौड़े भीत के सदृश हैं)
तेषां३ मध्ये ७ = तिन (षट् कुलाचलों) के मध्यमें अर्थात् पूर्व पश्चिम की सीमा के बीचाबीचके भाग में
लब्ध-आस्पदाः३ ह्रदाः३ उच्यन्ते = जिनने स्थान (=आस्पदाः) लाभ (प्राप्त) कियेहैं ते द्रह(उत्तर सूत्र में) कहेजाते हैं कि

(१)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ इस सूत्र का हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ और अर्थ है परन्तु तत्त्वार्थ-श्लोकवार्तिकमें "मणिविचित्र पार्श्वाः॥१३॥वां और उपरि मूले च तुल्य विस्ताराः॥१४॥ वा सूत्र माना गया है ॥

द्वयोर्द्वयोः सरितोरेकैकं क्षेत्रं विषय इति वाक्यविशेषाभिसम्बन्धादेकत्र सर्वासां प्रसंगनिवृत्तिः कृता॥ पूर्वाः पूर्वगा इति वचनं दिग्विशेषप्रतिपत्त्यर्थम्॥ तत्र पूर्वा याः सरितस्ताः पूर्वगाः। पूर्वं जलधिं गच्छन्तीति पूर्वगाः॥ किमपेक्षं पूर्वत्वं? सूत्रनिर्देशापेक्षम्॥ यद्येवं गंगासिन्ध्वादयः सप्त पूर्वगा इति प्राप्तम्। नैष दोषः। द्वयोर्द्वयोरित्यभिसम्बन्धात्॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगा इति वेदितव्याः॥ इतरासां दिग्विभागप्रतिपत्त्यर्थमाह—

द्वयोः६/२ द्वयोः६/२ सरितोः६/२ एक-एकं१/१ क्षेत्रं१/१ विषये७/१ = (सात युगल) नदियोमें से दोदो एकएक क्षेत्र विषैं (क्रमसे) हैं
इति* वाक्यविशेष-अभिसम्बन्धात्५/१ एकत्र* सर्वासां६/३ = ऐसा वचन विशेष जोड़नेसे एक स्थानमें सबके
प्रसंग-निवृत्तिः१/१ कृता१/१ पूर्वाः१/३ पूर्वगाः१/३ = संयोगका निराकरण किया जाय है(सूत्रमें) पहिली पहिली गमन करनेवाली
इति* वचनं१/१ दिक्-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्१/१ = ऐसा वाक्य दिशाके विशेषके कहनेके लिये है॥
तत्र* पूर्वाः१/३ याः१/३ सरितः१/३ ताः१/३ पूर्वगाः१/३ = तहां(सूत्रमें) पहिलीपहिली जो नदियां हैं ते पूर्व दिशाको जानेवालीं हैं
पूर्व-जलधिं२/१ गच्छन्ति इति* पूर्वगाः१/३ पूर्वत्वं१/१ = पूर्व समुद्रको गमन करती हैं ऐसी पूर्वगा(नदियें)हैं(प्रश्न) पूर्वपन
किम्* अपेक्षं१/१ पूर्वत्वम्१/१ सूत्र-निर्देश- = क्या अपेक्षा है अर्थात् किसकी अपेक्षानुसार पहिली हैं(इस) सूत्रके कथनकी
अपेक्षम्१/१ = विवक्षा है अर्थात् सूत्रके पाठमें जो पहिले कहीं तिसकी विवक्षा से पहिली हैं॥
यदि* एवम्* = जो ऐसे हैं (अर्थात् जो नदियां सूत्रपाठ मे पहिले कथित हैं सो पहिली हैं) तो
गंगा-सिन्धु-आदयः१/३ सप्त१/३ पूर्वगाः१/३ इति* प्राप्तम्१/१ = गंगासिन्धु रोहित-रोहितास्या आदि सातपूर्वदिशाको वहनेवाली ऐसा अर्थ प्राप्त हुआ
न* एषः१/१ दोषः१/१ = यह पदूण नहीं है अर्थात् सूत्रमें पूर्वा शब्द जाननेसे गंगा-सिन्धु-रोहित्-रोहितास्या हरित्-हरिकान्ता-सीता-ये समझी जा सकती हैं॥
द्वयोः६/२ द्वयोः६/२ इति* सम्बन्धात्५/१ = क्योंकि युगल-युगलमेंसे ऐसा(पूर्व शब्दके साथ) जोड़नेसे वा सम्बन्धकरनेसे
द्वयोः६/२ द्वयोः६/२ पूर्वाः१/३ पूर्वगाः१/३ इति* वेदितव्याः१/३ = युग्म-युग्ममेंसे पहिली पहिली पूर्व समुद्रको जानेवाली है इसप्रकार जानना चाहिये
इतरेसां६/३ दिक्-विभाग-प्रतिपत्ति-अर्थम्१/१ आह = अन्य(नदियों)के दिशा विभक्तिके कहनेके लिये(आचार्य अगले सूत्र में) कहते है कि

प्राक्प्रत्यक् योजनसहस्रायामः उदगवाक् पञ्चयोजनशतविस्तारो वज्रमयतलोविविधमणिकनकविचित्रततटः पद्मनामा ह्रदः ॥ तस्यावगाहप्रकृत्यर्थमिदमुच्यते—

॥ दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अवगाहोऽधःप्रवेशो निम्नता । दशयोजनान्यवगाहोऽस्य दशयोजनावगाहः ॥ तन्मध्ये किम् ?

वृत्त्यर्थः प्राक् प्रत्यक् योजन-सहस्र-आयामः उदक् = पूर्वदिशा(=प्राक् और) पश्चिम दिशा(=प्रत्यक्) हज़ार योजन लम्बा उत्तरदिशा(=उदक्) अवाक् पञ्चयोजनशत-विस्तारः वज्र-मय-तलः = (तथा) दक्षिण दिशा (=अवाक्) पांचसौ योजन चौड़ा वज्र सम जिसका तल
विविध-मणि-कनक-विचित्रत-तटः = नाना प्रकार के (=विविध) मणियों और सुवर्णकरि जिसका किनारा विचित्रित ऐसा
पद्मनामा ह्रदः तस्य अवगाह-प्रकृति- = पद्मनामा सरोवर है। तिस(पद्मनामाद्रह)की गहराई के स्वरूप(=प्रकृति)के
अर्थम् इदम् उच्यते = लिये यह(उत्तर सूत्र में)कहा जाता है कि

(१)**सूत्रम्—दशयोजनावगाहः॥ १६॥** = (प्रथमो ह्रदः)दश-योजन-अवगाहः ॥१६॥

सूत्रार्थः—प्रथमः ह्रदः दश-योजन-अवगाहः = पहिला(पद्मनामा)द्रह है जिसकी गहराई दश योजन है॥
वृत्त्यनुवादः—अवगाहः अधः*प्रवेशः निम्नता = अवगाह है सो नीचेको गमन अर्थात् गहराई वा गहरापनहै (=निम्नता)
दश-योजनानि अवगाहः अस्य = दशयोजन है गहराई जिसकी सो
दश-योजन-अवगाहः तद्-मध्ये किम्* = दशयोजन अवगाह है तिस(पहिले पद्मद्रह)के बीच में क्या है?

सूत्र द्वारा द् में पलट गया है॥ यहसूत्र पाणिनिकृत अष्टाध्यायीके अध्याय ८ पाद ४ का ५३वां(सूत्र)है॥ अष्टाध्यायीके प्रारम्भमें १४ सूत्र दिये हैं (देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ २)पूर्वोक्त सूत्र झलां जश् झशि से बना है झल्(अक्षरों)के स्थान में जश् अक्षर आते हैं यदि झश् अक्षर(परिवर्तनीय अक्षरके) पश्चात् आवें॥ क्योंकि झल् = झ-भ-घ-ढ-ध-ज-ब-ग-ड-द-ख-फ-छ-ठ-थ-च-ट-त-क-प-श-ष-स-ह इन चौबीस अक्षरोंमें से जो कोई अक्षर हो उसके स्थान मेंजश्-(=ज-ब-ग-ड-द)अक्षरों में से अपने अपने वर्ग के अनुसार हो जाते हैं यदि झश् = झ-भ-घ-ढ-ध-ज-ब-ग-ड-द-)में से कोई अक्षर उसके पश्चात् आवे यहां पर अर्ध्ध अथवा अर्ध (अचोरहाभ्यां द्वेवा) सूत्र से दोनों शुद्ध हैं प्रथम ध् अर्ध्ध का झल् प्रत्याहार के चौबीस अक्षरोंमेंसे एक अक्षर है और उसके पश्चात् झश् प्रत्याहार के दश अक्षरों में से एक ध् अक्षर आया है इसलिये प्रथम ध् (अर्ध्धका)जश् प्रत्याहार के ज-ब-ग-ड-द् अक्षरों में से द् में जो उसके वर्ग में से है पलट जाता है अद्ध । अर्द्ध॥

(१) यह सूत्र श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें नहीं है । हमारे यहां इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है ॥

संज्ञिकास्तेषु पद्मादिषु यथाक्रमं वेदितव्याः॥ पल्योपमस्थितय इत्यनेनायुषः प्रमाणमुक्तम् ॥ समाने स्थाने भवाः सामानिकाः। सामानिकाश्च परिषदश्च सामानिकपरिषदः। सह सामानिकपरिषद्भिर्वर्तन्त इति ससामानिकपरिषत्काः ॥ तस्य पद्मस्य परिवारपद्मेषु प्रासादानामुपरि सामानिकाः परिषदश्च वसन्ति ॥ यकाभिः सरिद्भिस्तानि क्षेत्राणि प्रविभक्तानि, ता उच्यन्ते—

संज्ञिकाः$^{1}_{3}$। तेषु$^{7}_{3}$। पद्मादिषु$^{7}_{3}$। यथाक्रमं*वेदितव्याः$^{1}_{3}$। =नाम है जिनके तिन पद्मादिक(द्रहों)में क्रमानुसार जानना चाहिये(अर्थात् पद्मद्रह कमलके श्रेष्ठ गृहमें श्री देवी महापद्मह्रद पुष्करके उत्तम गेह (प्रासाद)में ही देवी, तिगिंछ सरोवर कमलके प्रासादमें धृति देवी और केसरि द्रह कमलके उत्तम घरमें कीर्ति देवी महापुंडरीक ह्रद पुष्करके भवनमें बुद्धि देवी और पुंडरीकद्रह कमलके प्रासादमें लक्ष्मी देवी रहती है ॥

पल्योपम-स्थितयः$^{1}_{3}$।।इति*अनेन$^{3}_{1}$।।। आयुषः$^{6}_{1}$। = पल्योपम स्थितिवालीं इस(वाक्य) करि(=अनेन) आयुकी

प्रमाणम्$^{1}_{1}$।।।उक्तम्$^{1}_{1}$।।।समाने$^{7}_{1}$।।।स्थाने$^{7}_{1}$।।।भवाः$^{1}_{3}$। = मर्यादा वा परिमाण कहा गया है समान स्थानमें होनेवाले अर्थात् ऐश्वर्य में बराबर हो

सामानिकाः$^{1}_{3}$। सामानिकाः$^{1}_{3}$।च परिषदः$^{1}_{3}$।च = सो सामानिक हैं और सामानिका बहुरि परिषदका द्वंद्व समास

सामानिक-परिषदः$^{1}_{3}$।सह* सामानिक- = सामानिक परिषद्व है सामानिक जाति के देव(अथवा समान ऐश्वर्य वाले देव) तथा

परिषद्भिः$^{1}_{3}$।वर्तन्तेT = पारिषद जाति के देवों(अर्थात् सभा में प्रधान वा सभासद) करि सहित वर्ते हैं

इति*ससामानिक- परिषत्काः$^{1}_{3}$।तस्य$^{6}_{1}$।।।पद्मस्य$^{6}_{1}$।।। = ऐसे(सूत्र में) ससामानिक परिषत्का(देवियां) हैं ॥ तिस कमल के

परिवार-पद्मेषु$^{7}_{3}$।।।प्रसादानाम्$^{6}_{3}$।उपरि-सामानिकाः$^{1}_{3}$।= परिवार कमलों विषैं भवनों के ऊपर सामानिक

परिषदः$^{1}_{3}$।च वसन्ति यकाभिः$^{3}_{3}$।।सरिद्भिः$^{3}_{3}$।। = जाति के देव तथा परिषद जाति के देव वसते हैं जिन नदियों करि

तानि$^{1}_{3}$।।।क्षेत्राणि$^{1}_{3}$।।।प्रविभक्तानि$^{1}_{3}$।।।ताः$^{1}_{3}$।।उच्यन्तेT= ते(सात) क्षेत्र विभाजित है ते(नदियां आगे के सूत्र में)कही जाती हैं कि

(१) या, स्त्रीलिंग यद् शब्द में क न् (=क) प्रत्यय उसी अर्थ में लगाया है अर्थात् क न्(=क) लगभी जाता है अर्थ भी शब्द का नहीं पलटता है ॥

॥ गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदा सरितस्तन्मध्यगा ॥ २० ॥

सरितो न वाप्यः । ताः किमन्तरा उत समीपाः ? इत्यत आह तन्मध्यगाः । तेषां क्षेत्राणां मध्यं, तन्मध्यं तन्मध्येन वा गच्छन्तीति तन्मध्यगाः ॥ एकत्र सर्वासां प्रसङ्गनिवृत्त्यर्थं दिग्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह-

॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥

सूत्रम्—[1]गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—गंगा-सिन्धु-रोहित्-रोहितास्या-हरित्-हरिकान्ता-सीता- =गंगा, सिंधु, रोहित्-रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता
सीतोदा-नारी-नरकान्ता-सुवर्णकूला-रूप्यकूला-रक्ता- =सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता
रक्तोदाः॥सरितः॥तद्-मध्यगाः॥ =और रक्तोदा नदियें उन सातों क्षेत्रों)के बीचमें गमनकरनेवालीवा बहनेवाली हैं
वृत्त्यनुवादः—सरितः॥न*वाप्यः॥ =(सूत्रमें सरितः शब्द लानेसे यह अभिप्राय है कि चौदह नदियें हैं नकि बावड़ियें
ताः॥किम्*अन्तरा*उत*समीपाः॥इति*अतः* =वे(नदियें)क्या अन्तराल-दूर दूर हैं(अन्तरा)वा पास २(इनक्षेत्रोंके) हैं इसीलिए
आह॥ तेषां॥क्षेत्राणां॥मध्यं॥तन्मध्यं॥तन्मध्येन॥ =कहते हैं कि तिन क्षेत्रोंके बीच सो तन्मध्य है ॥ (तिन क्षेत्रों)के मध्यमेंसे हैं
वा*गच्छन्ति॥ इति* तन्मध्यगाः॥एकत्र*सर्वासां॥ =अथवा गमन करती हैं ऐसी तन्मध्यगा है । एक ठौर सब (नदियों) के
प्रसंग-निवृत्ति-अर्थम्॥, दिग्विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह॥ =संयोगके निषेधके लिये और दिशाके भेद कहनेके लिये(अग्रिमसूत्रमें)कहतेहैं कि

सूत्रम्—द्वयोर्द्वयो पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ =द्वयोः द्वयोः सरितोः पूर्वाः कथिताः (सूत्रे) पूर्वगाः गच्छन्ति

सूत्रार्थः—द्वयोः॥द्वयोः॥सरितोः॥सूत्रे =(नदियोंके प्रत्येक युगल युगलमेंसे वा युग्म-युग्म-मेंसे [बीसवां] सूत्रमें
पूर्वाः॥कथिताः॥पूर्वगाः॥गच्छन्ति =पहिली पहिली वर्णित नदी) पूर्व समुद्रको जाती हैं अर्थात् गंगा, रोहित,
हरित्-सीता नारी-सुवर्णकूला और रक्ता ये सातनदियें पूर्वकी ओर बहकर लवण समुद्रमें मिलती हैं॥

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ कहीं कहीं पर "सिन्धू" शब्द भी सूत्रमें लाये हैं दोनों ठीक हैं ॥

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

स च तच्च ते, तयोर्द्विगुणा द्विगुणास्तद्द्विगुणद्विगुणा इति द्वित्वं व्याप्तिज्ञानार्थम्॥ केन द्विगुणाः? आयामादिना॥ पद्महृदस्य द्विगुणायामविष्कम्भावगाहो महापद्महृदः। तस्य द्विगुणायामविष्कम्भावगाहस्तिगिञ्छह्रदः। पुष्कराणि च किं? द्विगुणानि द्विगुणानीत्यभिसम्बन्ध्यन्ते ॥

(१)सूत्रम्—तद्द्विगुणद्विगुणाह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—तद्-द्विगुण-द्विगुणाः[१/३] = उन (प्रथमपद्मद्रह और कमल)से दुगने दुगने(लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई में अगले दो महापद्म और तिगिंछ)

ह्रदाः[१/३] पुष्कराणि[१/३]।।। च* = सरोवर है और (दुगने दुगने अग्रिम दो)कमल हैं भावार्थ पद्मनामाद्रहसे दुगुण-महापद्मद्रह है ।। और महापद्म से दूना तिगिंछ सरोवर है इन तीनो द्रहो के वरावर ही उत्तरओरके तीनों पर्वतों के तीनो द्रह है तथा ह्रदों के कमलों के वरावर कमल हैं

वृत्त्यनुवादः—सः[१/१]च*तद्[१/१]।।।च*ते[१/२]।।। = बहुरि वह(पद्मद्रह)तथा(=च)वुह(=तद्)(पुष्कर)वे दोनों(=ते)(सूत्रमें तद् शब्दकरिगृहणकिये हैं)

तयोः[६/२] द्विगुणाः द्विगुणाःतद् द्विगुणद्विगुणाः[१/३] = उन(पद्मद्रह और पुष्कर)का दुगुना दुगुना है सो तद्द्विगुणद्विगुणा(सूत्रमे)

इति*द्वित्वम्[१/१]।।। व्याप्ति-ज्ञान-अर्थम्[१/१]।।। = ऐसा द्वित्व अथवा दूना २ पना व्याप्ति वोधक के है अर्थात् सूत्र में दो वार द्विगुण द्विगुण ह्रदों और कमलों का विस्तार जनावने के लिये ग्रहण किया है

केन[३/१]द्विगुणाः[१/३]आयामआदिना[३/१] पद्मह्रदस्य[६/१] = किस से दो गुना है । लम्बाई आदिक से पद्मद्रह की

द्विगुण-आयाम-विष्कम्भ-अवगाहः[१/१]महापद्मह्रः[१/१] = दुगुणी लम्बाई(=आयाम)चौडाई(=विष्कम्भ)गहराई (=अवगाह)का महापद्म सरोवर है

तस्य[६/१]द्विगुण-आयाम-विष्कम्भ-अवगाहः[१/१] = तिस(महापद्मद्रह)की दूनी लम्बाई चौड़ाई गहराई का

तिगिंछह्रदः[१/१]पुष्कराणि[१/१]।।।च*किम्*द्विगुणानि= तिगिंछ द्रह है (प्रश्न)"पुष्कराणि च" ऐसा वाक्य सूत्र में क्यों दुगुने

द्विगुणानि[१/३]।।। इति* अभिसम्बन्ध्यन्ते ॥ = दुगुने ऐसा(पुष्करों के साथ) लगाया जाय अथवा जोड़ा जाय है अर्थात्

(१) इस सूत्रका हमारे यहां एकसा पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है(इस अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ ३७,३८)

तन्निवासिनीनां देवीनां सञ्ज्ञाजीवितपरिवारप्रतिपादनार्थमाह—

॥तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपारिषत्काः ॥ १९ ॥

तेषु पुष्करेषु कर्णिकामध्यदेशनिवेशिनः शरद्विमलपूर्णचन्द्रद्युतिहराः क्रोशायामा क्रोशार्द्धविष्कम्भा देशोनक्रोशोत्सेधाः प्रासादास्तेषु निवसन्तीत्येवंशीलास्तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मी-

पद्मद्रहके कमलसे दूनी लम्बाई चौड़ाई और मोटाई आदिका महापद्म द्रहका कमल है और महापद्मद्रहके पुष्करसे दूनी लम्बाई चौड़ाई मोटाई आदिका तिगिंछद्रहका कमल है ॥ इन तीनों ह्रदोंके बराबर ही उत्तर ओरके तीनों पर्वतोंके तीनों ह्रद हैं और तीनों ह्रदोंके कमलोंके बराबर कमल हैं ॥

तद्-निवासिनीनां॥देवीनां॥संज्ञा-जीवित-परिवार-	=तिन (कमलोंमें)निवासकरनेवालीं देवियोंके नाम आयु और परिवार
प्रति-पादन-अर्थम्॥आह	=कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—तन्निवासिन्योदेव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयःससामानिकपरिषत्काः १९

सूत्रार्थः-तद्-निवासिन्यः॥देव्यः॥	=तिन(पद्मरत्नमयी पुष्करोंके प्रसादों)में(क्रमसे) निवास करनेवाली(छह)देवियां
श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः॥पल्योपम-स्थितयः॥	=श्री,ह्री,धृति,कीर्ति,बुद्धि,लक्ष्मी,(प्रत्येक)पल्योपम आयुकी धारक हैं (और)
स-सामानिक-परिषत्काः॥	=सामानिक जातिके देव और पारिषद जातिके देवों सहित वर्तें हैं अर्थात् रहती हैं
वृत्त्यनुवादः-तेषु॥पुष्करेषु॥ कर्णिका-मध्यदेश-निवेशिनः॥	=तिन कमलोंमें कर्णिकाके मध्य भागमें (=देश)स्थिति(निवेशिनः)
शरत्-विमल-पूर्ण-चन्द्र-द्युति-हराः॥	=शरत् ऋतुके अथवा कुंवार कार्तिकके निर्मल पूर्ण शशिकी कान्ति जीतनेवाले
क्रोश-आयामाः॥क्रोशअर्द्ध-विष्कम्भाः॥देश-ऊन-क्रोश-	=(एक) कोशकी लम्बाईके आधे कोशकी चौड़ाईके कुछ हीन कोशकी
उत्सेधाः॥प्रसादाः॥तेषु॥निवसन्ति इति*एवम्	=ऊंचाईके श्रेष्ठगृह तिनमें रहती हैं ॥ इस प्रकार
शीलाः॥तद्-निवासिन्यः॥श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्मी—	=अच्छे स्वभाववाली तिनमें निवास करनेवाली श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी हैं

* श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है अर्थात् इसको सूत्र नहीं माना है। (देखो टिप्पणी पृष्ठ ३७, ३८ पर)

प्राक्प्रत्यक् योजनसहस्रायामः उदगवाक् पञ्चयोजनशतविस्तारो वज्रमयतलोविविधमणिकनकविचित्रततटः पद्मनामा ह्रदः ॥ तस्यावगाहप्रकृत्यर्थमिदमुच्यते—

॥ दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अवगाहोऽधःप्रवेशो निम्नता । दशयोजनान्यवगाहोऽस्य दशयोजनावगाहः ॥ तन्मध्ये किम् ?

वृत्त्यर्थः प्राक् ॥ प्रत्यक् ॥ योजन-सहस्र-आयामः । उदक् ॥ =पूर्वदिशा(=प्राक् और)पश्चिम दिशा(=प्रत्यक्)हज़ार योजन लम्बा उत्तरदिशा(=उदक्)
अवाक् ॥ पञ्चयोजनशत-विस्तारः । वज्र-मय-तलः । =(तथा) दक्षिण दिशा (=अवाक्)पांचसौ योजन चौड़ा वज्र सम जिसका तल
विविध-मणि-कनक-विचित्रत-तटः । = नाना प्रकार के (=विविध)मणियों और सुवर्णकरि जिसका किनारा विचित्रित ऐसा
पद्मनामा । ह्रदः । तस्य । अवगाह-प्रकृति- = पद्मनामा सरोवर है। तिस(पद्मनामाद्रह)की गहराई के स्वरूप(=प्रकृति)के
अर्थम् ॥ इदम् ॥ उच्यते = लिये यह(उत्तर सूत्र में)कहा जाता है कि

(१)**सूत्रम्—दशयोजनावगाहः॥ १६ ॥**= (प्रथमो ह्रदः)दश-योजन-अवगाहः ॥१६॥

सूत्रार्थः—प्रथमः । ह्रदः । दश-योजन-अवगाहः । = पहिला(पद्मनामा)द्रह है जिसकी गहराई दश योजन है॥
वृत्त्यनुवादः—अवगाहः । अधः*प्रवेशः । निम्नता ॥ = अवगाह है सो नीचेको गमन अर्थात् गहराई वा गहरापनहै (=निम्नता)
दश-योजनानि ॥ अवगाहः । अस्य । = दशयोजन है गहराई जिसकी सो
दश-योजन-अवगाहः । तद्-मध्ये । किम्* = दशयोजन अवगाह है तिस(पहिले पद्मद्रह)के बीच में क्या है?

सूत्र द्वारा द् में पलट गया है॥यहसूत्र पाणिनिकृत अष्टाध्यायीके अध्याय ८ पाद ४ का ५३वां(सूत्र)है॥ अष्टाध्यायीके प्रारम्भमें १४ सूत्र दिये है (देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ २)पूर्वोक्त सूत्र झलां जश् झशि से बना है झल्(अक्षरों)के स्थान में जश् अक्षर आते है यदि झश् अक्षर(परिवर्तनीय अक्षरके) पश्चात् आवें॥ क्योंकि झल् = झ् भ्- घ्-ढ्- ध्-ज व् ग ड्-द् ख् फ् छ ठ्-थ् च् ट् त क्-प् श्-ष् स्-ह इन चौबीस अक्षरोंमें से जो कोई अक्षर हो उसके स्थान मेंजश्-(=ज् व् ग्-ड्- द्)अक्षरों में से अपने अपने वर्ग के अनुसार हो जाते है यदि झश् = झ्-भ्-घ्-ढ्-ध् ज् व् ग् ड् द्)में से कोई अक्षर उसके पश्चात् आवे यहां पर अध्धं अथवा अर्धं (अचोरहाभ्यां द्वेवा) सूत्र से दोनों शुद्ध है प्रथम ध् अध्धं का झल् प्रत्याहार के चौबीस अक्षरोंमेंसे एक अक्षर है और उसके पश्चात् झश् प्रत्याहार के दश अक्षरों में से एक ध् अक्षर आया है इसलिये प्रथम ध् (अध्धंका)ज् श् प्रत्याहार के ज्-व्-ग्-ड्-द् अक्षरों में से द् में जा उसके वर्ग में से है पलट जाता है अद्ध । अर्द्धं॥

(१) यह सूत्र श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें नहीं है । हमारे यहां इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है ॥

॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ १७ ॥

योजनप्रमाणं योजनं, क्रोशायामपत्रत्वात्क्रोशद्वयविष्कम्भकर्णिकत्वाच्च योजनायामविष्कम्भम् ॥ जलतलात्क्रोशद्वयोच्छ्रायनालं तावद्बहुलपत्रप्रचयं पुष्करमवगन्तव्यम् ॥

इतरेषां ह्रदानां पुष्कराणां चायामादिनिर्ज्ञानार्थमाह—

सूत्रम्—तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥

सूत्रार्थः—तद्-मध्ये॥ योजनं॥॥ पुष्करं॥॥ = उस(पद्मनामाद्रह)के बीच में एक योजन(लंबा चौड़ा रत्नमयी)कमल है

वृत्त्यनुवादः—योजन-प्रमाणं-॥॥ योजनं॥॥क्रोश- = योजन भर माप है सो योजन है। (एक एक)कोशकी(दोनों ओर आमने सामनेके)

आयाम-पत्रत्वात्-क्रोश-द्वय-विष्कम्भ-कर्णिकत्वात् च=लम्बाई पत्रोंकी होनेसे और दो कोशकी चौड़ाईकी कर्णिका अर्थात् (कमल के बीच का) कुंडल होने से

योजन-आयाम-विष्कम्भम्॥॥ = ऐसे एक योजन लंबाई(=आयाम) चौड़ाई(=विष्कम्भ)है अर्थात् कमलके एकओर के कमल के पत्ते की लम्बाई एक कोश और उसके सामने के पत्ते की लंबाई एक कोश और इन दोनों पातोंके बीच के कुंडल(कमल की कर्णिका) की लंबाई चौडाई दो कोश ऐसे चार कोश अथवा एक योजन का व्यास होगा इस प्रकार सर्व आमने सामने के पत्ते और बीच की कर्णिका को मिलाकर एक वृत्ताकार बनता है जिसका प्रत्येक व्यास चार कोश वा एक योजन का होगा। एकयोजन लम्बा, एक ही योजन चौड़ा सूर्यके मंडलके सदृश वलयाकार प्रतर वृत्तरूप पद्मद्रहके मध्यमें कमल है

जल-तलात्॥॥ क्रोश-द्वय-उच्छ्रायनालं॥॥ = नीरके तल दो कोशकी ऊंचाईकी(उच्छ्रास) (कमल की)नाल अथवा नली है

तावत्*बहुल-पत्र-प्रचयं॥॥ = इतनी(अर्थात् दो कोश की) मोटाई (के बहुल,बहुल)पत्रोंका समूह(=प्रचय) वाला

पुष्करम्॥॥ अवगन्तव्यम्॥॥ इतरेषां॥ ह्रदानां॥ = कमल जानना चाहिये अन्य(शेष बचे हुये पांच)सरोवरों की

पुष्कराणां॥॥च*आयाम-आदि-निर्ज्ञान-अर्थं॥॥आह= तथा(=च)कमलों की लंबाई आदिक निर्णयके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

श्वेताम्बर आम्नायकतभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है॥ (देखो इस अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ ३७, ३८ पर)

किमर्थं गङ्गासिन्ध्वादिग्रहणं क्रियते ? नदीग्रहणार्थम् । प्रकृतास्ता अभिसम्बन्ध्यन्ते, नैवं शङ्क्यम् । अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति अपरगाणामेव ग्रहणं स्यात् ॥ गङ्गादिग्रहणमेवास्तीति चेत्पूर्वगाणामेव ग्रहणं स्यात् । अतः

भिन्न भिन्न एक एक लाख बारह बारह सहस्र हैं इनसे उत्तरकी तीन नदियोंकी क्रमसे दक्षिणके तीन क्षेत्रोंके समान परिवारकी नदियें हैं अर्थात् नारीनरकान्ताकी छप्पन छप्पन सहस्र नदियें, सुवर्णकूला और रूप्यकूलाकी अठाईस २ सहस्र तथा रक्ता रक्तोदा की चौदह चौदह सहस्र परिवारि की नदियें हैं ॥

वृत्त्यर्थः—किम्*अर्थम् १/१।।।गङ्गा-सिन्धु-आदि-ग्रहणं १/१।।।क्रियते T= प्रश्न (इससूत्रमें) किसलिये गङ्गासिन्धु आदिकका आदान(ग्रहण) कियागयाहै

नदी-ग्रहण-अर्थम्- १/१।।।प्रकृताः १/३।। =(उत्तर) नदियों के ग्रहण के लिये (प्रश्न) अधिकृत अथवा प्रकरणकीहुई

ताः १/३।।अभि-सम्बन्ध्यन्ते T =ते (नदियें) (अत्यन्तसमीप अर्थात् २२वां सूत्र से) अध्याहारित वा अनुकर्षित हैं

न*एवम्*शंक्यम् १/१।।। =(अर्थात् २२वां सूत्र से लेकर समझी जासकी हैं)(उत्तर) ऐसीशंकानकरनीचाहिये

अनन्तरस्य ६/१।।। =(क्योंकि व्याकरणकी परिभाषानुसार) अत्यंत समीपकी

विधिः १/१।वा*भवति T प्रतिषेधः १/१।वा*इति* =विधि होती है अथवा निषेध (होता है) इस प्रकार (यदि पहिले सूत्रमें कथित नदियों के साथ सम्बन्ध इस सूत्र में करलेते तो)

अपरगाणाम् ६/३।।एव*ग्रहणं १/१।।।स्यात् T =पश्चिमको बहने वाली नदियोंका ही ग्रहण होता भावार्थ-२२वां सूत्रमें नदियोंका कथन है वहां से नदियों का इस सूत्रके लिये सम्बन्ध करलेतेगंगा सिन्ध्वादि क्यों लाये (उत्तर) यदि पूर्वोक्त सम्बन्ध करलेते तो केवल पश्चिम की बहने वाली नदियें समझी जाती पूर्वकी ओर जाने वाली नदियें छुट जाती इसलिये गंगासिन्धु आदिक से पूर्वगा और अपरगा समस्त दोनों ओरकीनदियें ग्रहणहोगई

गंगादि-ग्रहणं १/१।।।एव*अस्ति T इति*चेत्* =(प्रश्न)"गंगादिक"का आदानही यदि =चेत्) ऐसा (है=इति)(अस्ति)तो(उत्तर)

पूर्वगाणां ६/३।।एव*ग्रहणम् १/१।।।स्यात् T अतः* =पूर्व दिशामें जानेवाली नदियोंका ही ग्रहण होगा ॥ इसलिये

तोरणद्वारनिर्गता सीता ॥ उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता नरकान्ता ॥ महापुण्डरीकहृदप्रभवा दक्षिणद्वारनिर्गता नारी ॥ उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता रूप्यकूला ॥ पुण्डरीकहृदप्रभवा अवाच्यतोरणद्वारनिर्गता सुवर्णकूला ॥ पूर्वतोरणद्वारनिर्गता रक्ता ॥ अपरतोरणद्वारनिर्गता रक्तोदा ॥

तासां परिवारप्रतिपादनार्थमाह—

॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः ॥ २३ ॥

तोरण-द्वार-निर्गता।१।सीता।१। =तोरणद्वारसे निकली हुई सीता है ॥

उदीच्य-तोरणद्वार-निर्गता।१।नरकान्ता।१। =(उसकेसरीद्रहके) उत्तरके तोरणद्वारसे निकली हुई नरकान्ता नदी है ॥

महापुण्डरीकहृद-प्रभवा।१।दक्षिण-द्वार-निर्गता।१।नारी।१। =महापुण्डरीकद्रह उद्भवस्थानके दक्षिण द्वारसे निकली हुई नारी नदी है

उदीच्य-तोरण-द्वार निर्गता।१।रूप्यकुला।१। = उस महापुंडरीकद्रहके(उत्तरके तोरण द्वारसे निकली हुई रूप्यकूला नदी है।

पुण्डरीक-हृद-प्रभवा-।१।अवाच्यतोरण-द्वार निर्गता।१।सुवर्णकूला।१। =पुंडरीकद्रहके दक्षिणके तोरणद्वारसे निकली हुई सुवर्ण कूला नदी है ॥

पूर्व-तोरण-द्वार-निर्गता।१।रक्ता।१। =(उस पुंडरीकद्रहके) पूर्व तोरण द्वारसे निकली हुई रक्ता नदी है ॥

अपर-तोरण-द्वार-निर्गता-।१।रक्तोदा।१। =(उस पुंडरीकद्रहके) पश्चिमद्वारसे निकली हुई रक्तोदा नदी है

तासां।६।परिवार-प्रतिपादन अर्थम्।१।आह T =[उन[नदियों]केकुटुम्बकी नदियोंके जाननेके लिए[अग्रिमसूत्रमें]कहतेहैं कि

सूत्रम्—(१)चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः—चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृताः।३।गंगासिन्धु- =चौदह सहस्र नदियों करि परिवारित गंगा तथा सिंधु

आदयः।३।नद्यः।३। =आदिक नदियें हैं अर्थात् गंगामें छोटी२चौदह सहस्र नदियें आकर मिलीहैं और सिन्धुमें भी छोटी २ चौदह सहस्र नदियें मिली हैं। रोहित् तथा रोहितास्या प्रत्येककी अट्ठाईस २ सहस्र परिवारकी नदियें हैं ॥ इसीप्रकार हरित और हरिकान्ताकी छप्पन छप्पन सहस्र है ॥ सीता और सीतोदाकी

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥

षडधिका विंशातिः षड्विंशतिः । षड्विंशतिरधिकानि येषु तानि षड्विंशानि । षड्विंशानिपञ्चयोजनशतानि विस्तारो यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः ॥ भरतः किमेतावानेव, नेत्याह । षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्यविस्ताऽरोऽस्येत्यभिसम्बध्यते ॥

सूत्रार्थः—भरतः। षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः।	=भारतवर्ष (दक्षिण उत्तर में) पांचसौ छब्बीस योजन विस्तारवाला वाचौड़ाईरूप
षट् ॥ च॥ एक-ऊन विंशति-भागाः। योजनस्य॥	=और छहभाग योजनके उन्नीस भागों में से औरहैं अर्थात् भारत क्षेत्रकी दक्षिण उत्तरकी चौड़ाई ५२६$\frac{6}{19}$ है
वृत्त्यनुवादः—षड्-अधिकाः॥ विंशतिः॥ षड्विंशतिः॥	=छह ऊपर बीस सो छब्बीस (=षड्विंशतिः) हैं ॥
षड्विंशतिः॥ अधिकानि॥ येषु॥ तानि॥ षड्विंशानि॥	=छब्बीस बढती वा अधिक हैं जिनमें ते षड्विंश (=षड्विंशानि) हैं
षड्विंशानि॥ पञ्चयोजनशतानि॥ विस्तारः। यस्य।	=छब्बीस और पांचसो योजन है विस्तार वा चौड़ाई जिसकी
षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः॥ भरतः।	=सो पांचसौ छब्बीस योजन चौड़ाईवाला वा विष्कम्भरूप है (प्रश्न) भरतक्षेत्र
किम्॥ एतावान्। एव॥ न॥ इति॥ आह। षट्॥ च॥	=क्या इतनाही है ॥ (उत्तर) ऐसा नहीं हैं कहते हैं कि और छह भाग
एक-ऊन-विंशतिभागाः। योजनस्य॥ अभिसम्बध्यते।	=योजनके उन्नीसभागोंमेंसे मिलायेजाय हैं अथवा जोड़े जाय हैं ॥

"भरतः षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तार." यह ।पाठ सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियों में है और मुद्रित तत्त्वार्थराजवार्तिकमें है । 'ति' अधिक छपगया है क्योंकि जो 'वृत्ति' इसके नीचे दी हुई है वह 'विंश' शब्द की है और शब्दश. वही है जो सर्वार्थसिद्धिमें दीहै'षड्विंशानि'एक शब्द घाटि है और 'यस्य' के स्थान में 'अस्य' है उससे विग्रह में और अर्थ में कोई भेद नहीं होता । हमारी समझ में यही पाठ उमा स्वामी कृत होना चाहिये क्योंकि (१) इस पाठमें "न्" एक अक्षर और इकार का लाभ है । और पूज्यपाद स्वामीकी कृति अनुपलब्ध'गन्धहस्त महाभाष्य'के अतिरिक्त सबसे प्राचीन है उनका जन्म संवत् ३०८ में हुआ था जैसा उल्लेख कर चुके हैं उनने जिस प्रति से पाठ लिया होगा वह बहुत ही प्राचीन प्रति होगी ॥

बहुधा पुस्तकों में "षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य" यह पाठ है तत्त्वार्थवार्तिक में "षट्चैकान्नविंशतिभागा योजनस्य" भी पाठ है अर्थात् दोनों पाठ है ॥ ये दोनों ही पाठ ठीक हैं क्योंकि "एकान्नविंशति (स्त्री०) एकेन न विंशतिः एक न-आदुक् दस्य वा न उन्नीस की संख्या" एक न्यूनबीस (पद्मचन्द्रकोश प्रष्ठ ८५) में 'एकान्नविंशति' का ऐसा विग्रह और व्युत्पत्ति की है परन्तु स्मरण रहे कि "एकान्न" का अर्थ (जो त्रिलिंगी है) एककालमेवान्नं भक्ष्यं यत्र जहां एकबारही भोजन कियाजाता है । इकट्ठा खानेवाला एकभक्तव्रत । एकबार खाने का व्रत ऐसा अर्थ है इस सूत्रके होते हुये बत्तीसवें सूत्रकि जंबूद्वीपका १९० हिस्सा भरतहै आवश्यकता नहीं ५२६-$\frac{10000}{19}$ = $\frac{100000}{190}$ अथवा इस २४ वां सूत्रको निकाल कर ३२ वां सूत्र इसके स्थानमें करदेतेतो वह बहुतबड़ा सूत्र बचजाता और ५२६$\frac{6}{19}$ यों निकलआतेकि १००००० ÷ १९०—$\frac{10000}{19}$ ५२६$\frac{6}{19}$

उभयीनां ग्रहणार्थं गङ्गासिन्ध्वादिग्रहणं क्रियते ॥ नदीग्रहणं द्विगुणा द्विगुणा इत्यभिसम्बन्धार्थम् ॥ गंगा चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता । सिन्धुरपि ॥ एवमुत्तरा अपि नद्यः(१) प्रतिक्षेत्रं द्विगुणा द्विगुणा भवन्ति, आविदेहात्॥तत उत्तरा अर्द्धार्द्धहीनाः॥ उक्तानांक्षेत्राणांविष्कम्भप्रतिपत्त्यर्थमाह—

भरतःषड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य

उभयीनां॥ग्रहण-अर्थम्॥(-उभयस्यस्त्रीलिंगम्'उभयी') =दोनों(पूर्व तथा पश्चिम को बहने वाली नदियों)केउपलब्धिके लिये (सूत्रमें)
गंगा-सिन्ध्वादि-ग्रहणं॥क्रियतेT नदी-ग्रहणं॥ =गंगा सिन्ध्वादिका उपादान किया गया है (सूत्रमें)नदी शब्दका ग्रहण
द्विगुणाः॥द्विगुणाः॥इति*अभिसम्बन्ध-अर्थम्॥ =दुगुना दुगुना ऐसे सम्बन्धके लिये हैं ॥
गङ्गा॥चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता॥ =गंगा चौदह सहस्र नदियोंकरि परिवारित है
सिन्धुः॥अपि*एवं*उत्तराः॥अपि* =सिन्धु भी (चौदह सहस्र नदियोंकरि परिवारित) है ऐसे अगली भी (परिवारिक)
नद्यः॥प्रति-क्षेत्रं॥द्विगुणाः॥द्विगुणाः॥आ-विदेहात्॥=नदियें प्रत्येक क्षेत्रको दूनी दूनी विदेह पर्यंत (=आ)
भवन्तिT =होती है अर्थात् रोहित् रोहितास्याकी परिवारकी नदियें अट्ठाईस अट्ठाईस सहस्र हैं॥ हरित् तथा हरिकान्ताकी छप्पन छप्पन सहस्र परिवारकी नदियें हैं सीताकी एकलाख बारहसहस्र हैं ऐसे सीतोदाकीभी इतनीहीहैं
ततः*उत्तराः॥अर्द्ध-अर्द्ध-हीनाः॥ =उस(विदेह)से अग्रिम आधी आधी घटती हैं(अर्थात् नारी तथा नरकान्ताकी छप्पन२ हजार परिवारकी नदियें हैं सुवर्णकूला और रूप्यकूलाकी अट्ठाईस २ सहस्र छोटी २ नदिये हैं और रक्ता व रक्तोदाकी चौदह २ सहस्र पारिवारिक नदियें हैं)
उक्तानां॥क्षेत्राणां॥विष्कम्भ-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आहT=कथित क्षेत्रोंकी चौड़ाई जाननेके लिये(आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—(१)भरतःषड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारःषट्चैकोनविंशतिभागायोजनस्य ॥ २४ ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ हमारे यहां इस सूत्रके प्रथम भागके तीन पाठ पाये जाते है और द्वितीयके दो "भरत.षड्विंशतिःपञ्चयोजनशत विस्तार:"(देखो ज्ञानचन्द्रजी मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र पृष्ट ११)इसमें "षड्विंशतिः" "पञ्चयोजनशतविस्तार:" दो समास हैं पाठ ठीक नहीं है॥"बहुधा पुस्तकोंमें भरतःषड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तार:" है यह पाठ ठीक है क्योंकि संस्कृतकी बोलचालमें ऐसा वाक्य लाते हैं ।

नेत्याह, विदेहान्ता इति ॥ अथोत्तरेषां कथमित्यत आह—

॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

न*इति*आह।विदेह-अन्ताः१।३इति*	=ऐसा नहीं है-कहते हैं कि (आठ) विदेह क्षेत्रतक (भारतवर्षसे पर्वत और क्षेत्र एक दूसरे से उत्तरोत्तर दुगने दुगने) हैं अर्थात् भरत क्षेत्र ५२६$\frac{6}{19}$ योजन चौड़ा है (१) हिमवान् कुलाचल=१०५२$\frac{12}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ (२) हैमवत् क्षेत्र=२१०५$\frac{5}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ (३) महाहिमवान् कुलाचल=४२१०$\frac{10}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ (४) हरिक्षेत्र=८४२१$\frac{1}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ (५) निषध-कुलाचल=१६८४२$\frac{2}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ (६) विदेहक्षेत्र=३३६८४$\frac{4}{19}$ योजन चौड़ा है ॥
अथ*उतरेषां६।३कथं*इति*अतः*आह।	=अब (विदेहक्षेत्र से) उत्तर दिशाओं का (विस्तार) कैसे है इसलिये (अगला सूत्र में)कहतेहैं कि

(१)सूत्रम्— उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

इस सूत्र में यदि २५वां सूत्रसे "वर्षधर वर्षा" और "विदेह" वाक्योंका अनुकर्षण करें तो पाठ और अर्थ निम्नलिखित (१)के अनुकूल होता है और यदि केवल "विदेह" शब्दकी अनुवृत्ति लें तो पाठ और अर्थ (२) के अनुसार होता है पिछला अर्थ पूज्यपाद स्वामीकी सर्वार्थसिद्धिवृत्ति के अनुसार है और पहिला अर्थ बहुत विस्तृत भी है जैसा कि दोनों भांति के अर्थ जो नीचे लिखे जाते हैं उनसे प्रगट है ॥

(१) वर्षधरवर्षा विदेहोत्तरा दक्षिणतुल्याः ।

वर्षधरवर्षाः१।३विदेह-उत्तरा*दक्षिण-	=पर्वत और क्षेत्र विदेह से उत्तर दिशा के दक्षिण दिशाके (पर्वत और क्षेत्रों के)
तुल्याः१।३	=समान हैं अर्थात् विदेह क्षेत्रसे उत्तरदिशाके तीन नील रुक्मी और शिखरी पर्वत और तीन रम्यक, हैरण्य और ऐरावत क्षेत्र विदेहसे दक्षिणदिशाके तीन निषिध, महा-हेमवत् हेमवत् पर्वत और तीन हरिहैमवत् भरतक्षेत्रोंके बराबर विस्तारवाले हैं ।

(१) हमारे यहां इस सूत्र का पाठ एक है । उत्तरा दक्षिणतुल्यः कहींकहीं पर पाठ है वह अशुद्ध है । श्वेताम्बर आम्नायमें इसको सूत्र नहीं माना है ।

विस्तारोऽस्येति इतरेषां विष्कम्भविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ तद्‌द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥

ततो भरतात् द्विगुणो द्विगुणो विस्तारो येषां त इमे तद्‌द्विगुणद्विगुणविस्ताराः ॥ के ते ? वर्षधर-वर्षाः ॥ किं सर्वे ?

विस्तारः अस्य इति* =ऐसा इस(भरतक्षेत्र) का विस्तार है अर्थात् भरतक्षेत्रका दक्षिण उत्तर विस्तार ५२६ $\frac{6}{19}$ योजन है

इतरेषाम् विष्कम्भ-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं ॥ आह=अन्य (क्षेत्रों तथा कुलाचलों) के विस्तारके भेद जनावनेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहतेहैंकि

सूत्रम्—तद्‌द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥

तद्-द्विगुण-द्विगुण-विस्ताराः =उस (भरत क्षेत्र) से दुगुनी दुगुनी (दक्षिणमें) चौड़ाई वाले

वर्षधर-वर्षाः विदेह-अन्ताः =क्षेत्र तथा पर्वत विदेह क्षेत्र पर्यंत हैं अर्थात् भरतक्षेत्र ५२६ $\frac{6}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ हिमवत् कुलाचल एक सहस्र बावन योजन बारहकला ($\frac{12}{19}$) है। हैमवत क्षेत्र दो सहस्र एकसौ पांच योजन और पांचकला है। महा हिमवान कुलाचल चार सहस्र दोसोदश योजन दशकला है। हरिक्षेत्र आठ सहस्र चारसौ इक्कीस योजन एक कला है ८४२१ $\frac{1}{19}$ योजन है। निषध कुलाचल सोलह सहस्र आठसौ बया-लीस योजन दो कला है १६८४२ $\frac{2}{19}$ है, विदेहक्षेत्र तेतीस सहस्र छसौ चौरासी योजन चारकला है (३३६८४ $\frac{4}{19}$ योजन)

ततः* भरतात् द्विगुणः द्विगुणः =तिस भरतक्षेत्र से दुगुनी दुगुनी है (दक्षिण उत्तर में)

विस्तारः येषां ते इमे तद्‌द्विगुण-द्विगुण- =चौड़ाई जिनकी ते ये (सूत्रमें) तद्‌द्विगुण-द्विगुण

विस्ताराः के ते =विस्तार वाले हैं (अर्थात् भरत क्षेत्र से दूने २ चौड़ाई वाले हैं (प्रश्न) ते कौन है ?

वर्षधर-पर्वताः किं* सर्वे =(उत्तर) पर्वत और क्षेत्र हैं। क्या सब (शेषके पर्वत और क्षेत्र भारतवर्षसे दूने२ चौड़ाईमें) हैं ॥

तेन ह्रदपुष्करादीनां तुल्यता योज्या ॥ अत्राह, उक्तेषु भरतादिषु क्षेत्रेषु मनुष्याणां किं तुल्योऽनुभवादिः। आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥ २७॥

वृद्धिश्च ह्रासश्च वृद्धिह्रासौ । काभ्यां ? षट्समयाभ्याम् । कयोः ? भरतैरावतयोः ।

तेन३/१। =तिस (विशेष अर्थात् उत्तरा दक्षिण तुल्या) करि
ह्रद-पुष्कर- =द्रह, कमल (पर्वत, क्षेत्र, नदियें, परिवारकी नदियें)
आदीनाम्६/३।तुल्यता१/१।।योज्या१/१।। । अत्र*आह T =आदिकोंकी समानता लगाई जाय है। यहाँ (शिष्य) पूछता है कि
उक्तेषु७/३।।।भरतादिषु७/३।।।क्षेत्रेषु७/३।।।मनुष्याणां६/३।किं* =कथित भरतादिक क्षेत्रोंमें मनुष्योंका क्या
तुल्य-अनुभव-आदिः१/१।आहोस्वित्*कश्चित्* =तुल्य अनुभव आदिक हैं अथवा कुछ
अस्तिTप्रतिविशेषः१/१।इति*अत्र*उच्यतेT =भिन्नता(=प्रतिविशेष है) इसलिये (=इति)यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाय है कि ॥

सूत्रम्—(१)भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्(२)॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—भरत-ऐरावतयोः७/२। =भारतवर्ष और ऐरावतवर्षमें
(निवास करनेवाले मनुष्य और तिर्यंचोंकी आयु, काय, अनुभव, संपदा, वीर्य, बुद्ध्यादिका)
वृद्धि-ह्रासौ१/२।उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीभ्याम्३/२।। =बढ़ना घटना उत्सर्पिणीरूप अवसर्पिणीरूप
षट्-समयाभ्याम्३/२।। =छै छै कालोंके हेतुसे (यथासंख्य) होता है ॥
वृत्त्यनुवादः।वृद्धिः१/१।।चह्रासः१/१।चवृद्धि-ह्रासौ१/२।काभ्यां३/२।। =और बढ़ना तथा घटना है सो वृद्धि ह्रासौ है (प्रश्न) किन दो हेतुसे बढ़ना घटना है ।
षट्-समयाभ्याम्३/२। =(उत्तर—उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीके)युगल छः कालोसे(बढ़ना तथा घटना)है ॥
कयोः६/२।भरत-ऐरावतयोः६/२। =(प्रश्न)किन दोका [बढ़ना घटना है] (उत्तर)भारत ऐरावतका ॥

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ इस अध्यायके पृष्ठ ३७, ३८की टिप्पणी देखो ॥
(२) र्पिणीभ्याम्के स्थानमेंजहां(र्पिणीभ्यां)वाक्य है वह एक प्रकारसे अशुद्ध है(देखो टिप्पणी अध्याय प्रथमपृष्ठ५,६)शेष पाठ हमारे यहां एकहै॥

उत्तरा ऐरावतादयो नीलान्ता भरतादिभिर्दक्षिणैस्तुल्या द्रष्टव्याः। अतीतस्य सर्वस्यायं विशेषो वेदितव्यः।

पहले पचीसवां सूत्रमें दक्षिणके पर्वत तथा क्षेत्रोंका पृथक् पृथक् विस्तार कहा है सो ही उत्तरके पर्वत तथा क्षेत्रोंका समझना चाहिये॥

(२) विदेह-उत्तरा दक्षिण-तुल्याः॥

विदेह-उत्तरा*	=विदेहक्षेत्रसे उत्तरदिशाके (३ पर्वत, ३ क्षेत्र ३ द्रह ३कमल छह नदियें और पारिवारिक नदियें आदि)
दक्षिण-	=दक्षिण दिशाके (३ पर्वत ३ क्षेत्र ३ द्रह ३ पुष्कर छः नदियें और पारिवारिक नदियें आदिके)
तुल्याः१/३	=समान हैं अर्थात् बराबर विस्तारवाले और बराबर गणना वाले हैं॥

चतुर्दश नदियोंमेंसे सीतानदी केसरी द्रहसे निकलकर पूर्वी विदेहोंके विभाग करती हुई लवणसमुद्रमें पूर्वकी ओर जाकर मिलतीहै और सीतोदा नदी तिगिंछद्रहसे निकलकर पश्चिमी विदेहोंके विभाग करती हुई लवणोदधिमें पश्चिमकी ओर जाकर मिलती है॥ पर्वत, क्षेत्र, ह्रदों, पुष्करों आदिका विस्तार और गणना प्रथम कह चुके हैं वही जानना॥

वृत्त्यनुवादः-उत्तरा*ऐरावत-आदयः१/३	=(विदेह क्षेत्रसे) उत्तरदिशाके ऐरावत आदि (३पर्वत,३क्षेत्र,३द्रह, ३ पुष्कर, छः नदियें और इनकी परिवारकी नदियें आदि)
नील-अन्ताः१/३भरतादिभिः३/३	=नीलकुलाचल तक भरतादिक(तीन क्षेत्र, तीन कुलाचल, तीन द्रह, तीन कमल, छः नदियों और इन नदियोंकी परिवारकी नदियें आदि)
दक्षिणैः३/३तुल्याः१/३द्रष्टव्याः१/३अतीतस्य६/१	=दक्षिण दिशासे समान जानना चाहिये॥ अतीत अर्थात् प्रथम वर्णित
सर्वस्य६/१अयम्१/१विशेषः१/१वेदितव्यः१/१	=सब(वस्तुओं)केयह विशेष(कि उत्तर दिशाके पर्वतादिक दक्षिण दिशाके तुल्यहैं) जानना चाहिये

(१) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ७१में 'उत्तरा' शब्दका अर्थ अक्षरशः ऐसे है"(स्त्री०)प्रेतकी पितृत्वप्राप्ति होनेपर सपिण्डीकरणके अनन्तर जो पितृसम्बन्धी क्रिया की जाती है, सपिण्डीकरणके पीछेकी श्राद्धक्रियायें। उत्तर दिशा, काल, दश(अव्य०)"इसलिये अनुवादमें उत्तर दिशाके अर्थमें अव्यय माना है॥

जीवितपरिमाणं, शरीरोत्सेध इत्येवमादिभिर्वृद्धिह्रासौ मनुष्याणां भवतः ॥ किंहेतुकौ पुनस्तौ ? कालहेतुकौ ॥ स च कालो द्विविधः । उत्सर्पिणी अवसर्पिणी चेति ॥ तद्भेदाः षट् ॥ अन्वर्थसञ्ज्ञे चैते ॥ अनुभवादिभिरुत्सर्पणशीला उत्सर्पिणी । तैरेवावसर्पणशीला अवसर्पिणी ॥ तत्रावसर्पिणी षड्विधा—सुषमसुषमा । सुषमा । सुषमदुष्षमा । दुष्षमसुषमा । दुष्षमा । अतिदुष्षमा । उत्सर्पिण्यपि अतिदुष्षमाद्या सुषमसुषमान्ता

जीवितपरिमाणं[१/१]||शरीर-उत्सेधः[१/१]|	=जीवनकालका परिमाण (और) शरीरकी ऊंचाई
इत्येवम्*आदिभिः[३/३]|वृद्धिह्रासौ[१/२]|मनुष्याणां[६/३]|भवतः।	=इत्यादिक करिही (=इत्येवमादिभिः) उन्नती और घटती मनुष्योंकी होती है ॥
पुनः*तौ[१/२]|किम्*हेतुकौ[१/२]| ?	=(प्रश्न) बहुरि वे (वृद्धिह्रास) कौन निमित्तक अथवा जनित हैं ।
काल-हेतुकौ[१/२]|सः[१/१]|च*कालः[१/१]|	=(उत्तर) समयकारणक हैं अर्थात् समृद्धि और क्षतिका हेतुकाल है । वहऔर[=च]काल
द्विविधः[१/१]|उत्सर्पिणी[१/१]||अवसर्पिणी[१/१]||च*इति*।	=दो प्रकार है । उत्सर्पिणी और (=च) अवसर्पिणी ऐसे हैं ।
तद्-भेदाः[१/३]|प्रत्येकं[१/१]||षट्[१/३]|	=उन (उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी) के भेद पृथक् पृथक् (प्रत्येक) छह हैं
अन्वर्थ-सञ्ज्ञे[१/२]||च*एते[१/२]|| ।	=बहुरि(=च)ये(उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी)जैसा अर्थ वैसा (=अन्वर्थ) नामधारक हैं
अनुभव-आदिभिः[३/३]|उत्सर्पण-शीला[१/३]|	=(पूर्वोक्त) अनुभव आदिक सहित आगेबढनेका (=उत्सर्पण) है स्वभाव जिसका अर्थात् वृद्धि करनेकी है प्रकृति जिसकी सो
उत्सर्पिणी[१/१]||तैः[३/३]|एव*अवसर्पण-शीला[१/३]|	=उत्सर्पिणी है तिन (अनुभव, आदि) से ही (=एव) पीछेहटनेका (=अवसर्पण) है स्वभाव जिसका अर्थात् ह्रास करने की है प्रकृति जिसकी सो
अवसर्पिणी[१/१]||तत्रअवसर्पिणी[१/१]||षड्विधा[१/१]||सुषमसुषमा[१/१]||	=अवसर्पिणी है तहां अवसर्पिणी छह प्रकार है सुखमसुखमा
सुषमा[१/१]||सुषमदुष्षमा[१/१]||दुष्षमसुषमा[१/१]||	=सुखमा, सुखमदुःखमा, दुःखमसुखमा
दुष्षमा[१/१]||अतिदुष्षमा[१/१]|| । उत्सर्पिणी[१/१]||अपि*	=दुःखमा अतिदुःखमा उत्सर्पिणी [काल] भी है
अतिदुष्षमा[१/१]||आद्या[१/१]||सुषमसुषमा[१/१]||अन्ता[१/१]||	=जिसका अति दुःखमा(काल)पहिला है और सुखमसुखमा(काल)सबसेपिछला(अन्ता) है

न तयोः क्षेत्रयोर्वृद्धिह्रासौ स्तः। असम्भवात् । तत्स्थानां मनुष्याणां वृद्धिह्रासौ भवतः॥ अथवा अधिकरणनिर्देशः भरते ऐरावते च मनुष्याणां वृद्धिह्रासाविति॥ किंकृतौ वृद्धिह्रासौ? अनुभवायुःप्रमाणादिकृतौ॥ अनुभवः उपभोगः, आयुः

न*तयोः६।।।क्षेत्रयोः६।।।वृद्धिह्रासौ१।स्तः। =न उन (भरत, ऐरावत) के क्षेत्रफल अथवा विस्तार की बढ़ती घटती है॥

असम्भवात्५।तत्-स्थानाम्६।मनुष्याणां६।वृद्धि-ह्रासौ१।भवतः। =क्योंकि (विस्तारका बढना घटना) असम्भव है। तिन (भरत ऐरावत) में ठहरनेवाले मनुष्योंकी बढ़ती घटती होती है॥

अथवा अधिकरणनिर्देशः१।भरते७।ऐरावते७।च* =अथवा (षष्ठी निर्देश छोड़कर) सप्तमी विभक्तिके निरूपनमें भरतमें तथा ऐरावतमें (रहने वाले)

मनुष्याणां६।वृद्धि-ह्रासौ१।इति* =मनुष्योंकी बढती घटती है ऐसा है "भावार्थ ऐसा है कि" सूत्र में "भरतैरावतयोः" यह वाक्य षष्ठी वा सप्तमी विभक्तिमें एक ही रूप धारण करता है इस वाक्य के साथ वृद्धिह्रासौ वाक्य के जोड़देने से षष्ठी में यह अर्थ होता है कि भरत तथा ऐरावत की वृद्धि और ह्रास अर्थात् उत्सर्पिणीकाल तथा अवसर्पिणीकालमें होती है इस प्रकारसे ऐसा आशय समझा जासका है कि भरत और ऐरावत के विस्तारकी बढ़ती तथा घटती होती है इस पूर्वोक्त संदेहको दूर करनेके लिये आचार्य "भरतैरावतयोः" वाक्यको सप्तमीमें लेकर ऐसा कथन करते हैं कि भरत तथा ऐरावतमें (निवास करने वाले मनुष्यों की) बढ़ती और घटती होती है न कि भारतवर्ष तथा ऐरावतवर्षके विस्तार अथवा क्षेत्रफलकी बढती तथा घटती होती है॥

किम्*कृतौ१।वृद्धि-ह्रासौ१। =(प्रश्न) वृद्धि-ह्रास कौन कृत वा जनित हैं। अर्थात् बढना घटना किसके किये हुये हैं

अनुभव-आयुस्-प्रमाण-आदि-कृतौ१। =(उत्तर) अनुभव जीवनकालका परिमाण आदिकी की हुई (बढ़ती घटती) हैं

अनुभवः१।उपभोगः१।आयुः१।।। =अनुभव अर्थात् उपभोग वा विषयों का सुखास्वादन आयु अर्थात्

(१) यह 'आयुः' शब्द अमरकोश वर्ग १८ श्लोक १२० में "आयुस्' इस रूपमें नपुंसक लिंगमें पाया जाता है इसकी प्रथमा विभक्ति एक वचन "आयुः" नपुंसक लिंगमें पयस् शब्द के रूप[illegible] बनेगी॥

ततः क्रमेण हानौ सत्यां सुषमदुष्षमा भवति द्वे सागरोपमकोटीकोट्यौ । तदादौ मनुष्या हैमवतकमनुष्यसमाः ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां दुष्षमसुषमा भवति एकसागरोपमकोटीकोटीद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोना । तदादौ मनुष्या विदेहजनतुल्या भवन्ति ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां दुष्षमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां अतिदुष्षमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ॥ एवमुत्सर्पिण्यपि विपरीतक्रमा वेदितव्या ॥ अथेतरासु भूमिषु काऽवस्थेत्यत आह—

ततः*क्रमेण[३/१]।हानौ[७/१]।।सत्याम्[७/१]।।सुषमदुष्षमा[१/१]।।	=तहां से क्रमसे हानि होनेपर सुखमदुःखमाकाल
भवतिT द्वे[१/२]।।सागरोपमकोटीकोट्यौ[१/२]।।तद्-(१)आदौ[७/१]।।	=दो कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण होता है। तिस (सुखम दुःखम) की आदिमें
मनुष्याः[१/३]।हैमवतक-मनुष्य-समाः[१/३]।	=मनुष्य हैमवतक जघन्य भोगभूमिके मनुष्योंके सारिखे हैं (अर्थात् एककोश शरीर, एकपल्य आयु, एकदिन पीछे आहार इत्यादि)
ततः*क्रमेण[३/१]।हानौ[७/१]।।सत्याम्[७/१]।।	=तहांसे क्रमकरि हानि होनेपर
दुष्षमसुषमा[१/१]।।एकसागरोपमकोटी-कोटी-	=दुःखमसुखमा एक कोडा कोडी सागर प्रमाण से
द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोना[१/१]।।भवतिT	=बियालीस सहस्रवर्ष न्यून वा हीन होता है
तद्-आदौ[७/१]।।मनुष्याः[१/३]।विदेह-जन-तुल्याः[१/३]।भवन्तिT	=तिस (दुःखमसुखमा) की आदि में मनुष्य विदेहक्षेत्र के मनुष्योंके समान होते हैं ॥
ततः*क्रमेण[३/१]।हानौ[७/१]।।सत्याम्[७/१]।।दुष्षमा[१/१]।।	=तहांसे यथाक्रम हानि होने पर दुःखमाकाल
भवतिTएकविंशति-वर्षसहस्राणि[१/३]।।।ततः क्रमेण[३/१]।	=इकीसो सहस्र वर्षका होता है। तहांसे क्रमानुसार
हानौ[७/१]।।सत्याम्[७/१]।।अतिदुष्षमा[१/१]।।एकविंशति-	=हानि होनेपर अति दुःखमकाल इकीस
वर्ष-सहस्राणि[१/१]।।।भवतिTएवम्*उत्सर्पिणी[१/१]।।अपि*	=सहस्र वर्षका होता है। इस प्रकार उत्सर्पिणीकाल भी
विपरीतक्रमा[१/१]।।वेदितव्या[१/१]।।	=उलटा अनुक्रमरूप जानना चाहिये
अथ*इतरासु[७/३]।।भूमिषु[७/३]।।का[१/१]।।अवस्था[१/१]।।इतिअतःआहT	=आगे (=अथ) अन्य (भूमियों) विषैं क्या दशा (=अवस्था) है इसलिये कहते हैं कि

(१) 'आदि' त्रिलिंगी है, यहां "सुषमदुष्षमा" वाक्य के लिये आया है अत. स्त्रीलिंगमें रक्खा है यदि काल के लिये लेवें तो पुल्लिंग में होसक्ता है ॥

षड्विधैव भवति ॥ अवसर्पिण्याः परिमाणं दशसागरकोटीकोट्यः । उत्सर्पिण्या अपि तावतेव ॥ याऽसौ उभयी (सोभयी) कल्प इत्याख्यायते ॥ तत्र सुषमसुषमा चतस्रः सागरोपमकोटीकोट्यः । तदादौ मनुष्या उत्तरकुरुमनुष्यतुल्याः ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां सुषमा भवति तिस्रः सागरोपमकोटीकोट्यः । तदादौ मनुष्या हरिवर्षमनुष्यसमाः

षड्विधा।।एव*भवति। =छह प्रकारकी ही होती है अर्थात् अतिदुःखमा, दुःखमा, दुःखमासुखमा, सुखमा दुःखमा, सुखमा, सुखमासुखमा ऐसे छह काल हैं ॥

अवसर्पिण्याः।।परिमाणं।।दशसागरकोटीकोट्यः।। =अवसर्पिणीकालकी मर्यादा दश कोड़ाकोड़ी सागर अथवा १०००००००० गुणित १०००००००=१०००००००००००००००० है अर्थात् एक पद्म सागर है ॥

उत्सर्पिण्याः।।अपि*तावत्*एव* =उत्सर्पिणी (काल) का भी तितना ही (एक पद्मसागर मर्यादा) है ॥

या।।असौ।।उभयी।।(सा।।-उभयी।।) कल्पः। =जो (=या) वह (=असौ) दोनों (उभयी।।), कल्प काल हैं ॥

इति*आख्यायते।तत्र*सुषमसुषमा।।चतस्रः।। =ऐसा कहा गया है । तहां सुखमसुखमा चार

सागरोपमकोटीकोट्यः।। =कोड़ा कोड़ीसागर प्रमाण अर्थात् ४०००००००×१०००००००= ४००००००००००००००० चालीस लाख नील सागर का है ॥

तद्-आदौ।मनुष्याः।उत्तरकुरु-मनुष्य-तुल्याः। =तिस (काल) की आदिमें मनुष्य उत्तरकुरुभोगभूमिके मनुष्योंके समान हैं ॥ अर्थात् इस (काल) की आदिमें मनुष्योंकी आयु तीन पल्यकी होती है । अनुक्रम से घटती है अन्त में दो पल्य की रहती है (२) शरीर की ऊंचाई आदि में तीन कोस अनुक्रम से अन्त में २ कोस(३)तीन दिन पश्चात् चौथे दिन बदरीफल सम आहार इत्यादि घटता घटता जाता है

ततः*क्रमेण।हानौ।।सत्याम्।।सुषमा।। =तहांसे अनुक्रमसे हानि होनेपर सुखमा काल

भवति तिस्रः।।सागरोपम-कोटीकोट्यः।।तद्-आदौमनुष्याः=तीन कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण होताहै । तिस(सुखमाकाल) की आदि विषैं मनुष्य

हरिवर्ष-मनुष्य-समाः। =हरिवर्ष मध्यम भोगभूमिके मनुष्योंके तुल्य हैं (२ कोश शरीर २ पल्य आयु इत्यादि)

सर्वार्थ सिद्धि

अध्यायः ३ सूत्र २९

६२

हैमवते भवा हैमवतका इत्येवं वुञि सति मनुष्यसम्प्रत्ययो भवति । एवमुत्तरयोरपि ॥ हैमवतकादयस्त्रयः । एकादयस्त्रयः । तत्र यथासंख्यमभिसम्बन्धः क्रियते । एकपल्योपमस्थितयो हैमवतकाः । द्विपल्योपमस्थितयो हारिवर्षकाः । त्रिपल्योपमस्थितयो दैवकुरवका इति ॥ तत्र पञ्चसु हैमवतेषु सुषमदुष्षमा सदाऽवस्थिता ।

एक पल्यकी अवस्था होती है । हरिवर्ष जहां मध्यमभोग भूमिहै यहांके निवासी मनुष्योंकी आयु दो पल्य की होती है । और देवकुरु उत्तम भोगभूमिके निवासकरनेवाले नरोंका तीन पल्योपम जीवन काल है ।

(१)हैमवते।भवाः।हैमवतकाः।इत्येवं* =हैमवतवर्षमें होनेवाले अर्थात् उपजने वाले वे हैमवतका हैं इस प्रकार

वुञि।सति। =वुञ् प्रत्यय (हैमवत शब्द के साथ) होनेमें (=सति) (उसक्षेत्रमें होनेवाले)

मनुष्य-सम्प्रत्ययः।भवति।एवं*उत्तरयोः।अपि* =मनुष्योंका ज्ञान वा वोध होता है ऐसे अग्रिम दोमें (=उत्तरयोः) भी हैं ॥ अर्थात् हारिवर्ष और दैवकुरु शब्दों के साथ वुञ् प्रत्यय लाने पर उन दोनों क्षेत्रों में उत्पन्न होनेवाले नरोंका वोध होताहै और हारिवर्षक, दैवकुरुवकरूप होजाते हैं॥

हैमवतक-आदयः।त्रयः।एक-आदयः।त्रयः। =(इस सूत्र में) हैमवतक आदिक तीन हैं ॥ एक आदिक तीन (संख्या) हैं ॥

तत्र* =तहां (हैमवतक-हारिवर्षक और दैवकुरुवक का एक दो तीन गणनाओंके साथ)

यथासंख्यम्।।। =संख्याके अनुसार वा अनुसरण (=यथासंख्यम् अर्थात् पहिले को पहिली दूसरे को दूसरी तीसरे को तीसरी इस क्रमसे)

अभिसम्बन्धः।क्रियते।एक-पल्योपम-स्थितयः। =सम्बन्ध वा संयोग क्रिया जाय है (जैसे) एक पल्योपमकी आयुधारक

हैमवतकाः। =हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोगभूमि) के उपजे मनुष्य हैं ॥

द्वि-पल्योपम-स्थितयः।हारिवर्षकाः। =दो पल्योपम के जीवनकालवाले हरिवर्ष(जघन्य भोग भूमि)के निवासी मनुष्य हैं

त्रि-पल्योपम-स्थितयः।दैवकुरुवकाः।इति* =तीन पल्योपमकी अवस्थावाले देवकुरु (उत्तम भोगभूमि के) रहने वाले नर हैं

तत्र*पञ्चसु।हैमवतेषु।सुषमदुःष्षमा।।सदा*अवस्थिता।। =तहां पांच हैमवत देशोंमें सुखमदुःखम (काल) सर्वदाविद्यमान है ।

(१) 'हिमवत' शब्दमें 'अण' (=अ)प्रत्यय जोडनेसे, हिमवत् की 'इ'की वृद्धि होकर हैमवत्+अण् बना=हैमवत, इसमें 'वुञ्' प्रत्यय जोड़ो, वुञ् का उ, ञ् इत् संज्ञिक होने से लोप हुआ और व् के स्थान में 'अक' का आदेश हुआ अत हैमवत+अक, तके अकार का लोप होकर हैमवतक बना

६२

॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

ताभ्यां भरतैरावताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता भवन्ति, न हि तत्रोत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ स्तः ॥ किं तासु भूमिषु मनुष्यास्तुल्यायुष आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—

॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥२९॥

सूत्रम्–(१)ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः–ताभ्याम्५।३।अपराः१।३।	=तिन(भरत तथा ऐरावतवर्षों)से अन्य (हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत)
भूमयः१।३।अवस्थिताः१।३।	=पृथिवीयें ज्योंकीत्योंनित्य हैं अर्थात् इनके क्षेत्रोंमें वृद्धि ह्रास नहीं होता है ॥
वृत्यनुवादः–ताभ्याम्५।३।भरत-ऐरावताभ्याम्५।३।अपराः१।३।	=उन भरत तथा ऐरावत वर्षोंसे अन्य (हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत)
भूमयः१।३।अवस्थिताः१।३।भवन्तिT	=पृथिवीयें ज्योंकीत्योंनित्यविद्यमान (=अवस्थिताः) हैं (=भवन्ति)
न*हि*तत्र*स्तः।T	=क्योंकि (=हि) नहीं हैं तहां (पूर्वोक्त पांच क्षेत्रोंमें)
उत्सर्पिणी-अवसर्पिण्यौ१।२। । किम्१।१।तासु७।३।भूमिषु७।३।	=उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीकाल (प्रश्न) क्या तिन (पांच) भूमियोंविषैं
तुल्य-आयुषः१।३।मनुष्याः१।३।आहोस्वित्*कश्चित्*	=समान अवस्था वाले मनुष्य हैं ॥ अथवा (=आहोस्वित्) कुछ
अस्तिTप्रतिविशेषः१।१।इति*अतः*आहT	=भिन्नता वा पृथकृता (=प्रतिविशेष) है इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्–(१)एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः–एक-द्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयः१।३।हैमवतकाः१।३।	=एक दो और तीन पल्य प्रमाण आयुवाले (क्रमसे) हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले
हारिवर्षकाः१।३।दैवकुरवकाः१।३। ॥२९॥	=हरिवर्षके निवासकरनेवाले मनुष्य और दैवकुरु(भोगभूमि)के वसनेवाले मनुष्यहैं
	अर्थात् हैमवत क्षेत्र जो जघन्य भोग भूमि का क्षेत्र है यहांके उपजे मनुष्योंकी

---

(१) हमारे यहां इन सूत्रोंका पाठ एकसा है श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में इन सूत्रोंको सूत्र नहीं मानेहैं (टिप्पणी पृष्ठ३७, ३८ देखो)

षड्धनुःसहस्रोच्छ्राया अष्टमभक्ताहाराः कनकवर्णाः ॥ अथोत्तरेषु काऽवस्थेत्यत आह—

॥ तथोत्तराः ॥ ३० ॥

यथा दक्षिणा व्याख्यातास्तथैवोत्तरा वेदितव्याः। हैरण्यवतका हैमवतकैस्तुल्याः। राम्यका हारिवर्षकैस्तुल्याः

षड्-धनुष्-सहस्र-उच्छ्रायाः।अष्टमभक्त-आहाराः। =छह सहस्र चाप ऊंचाईवाले आठवां भोजन ग्रहण करने वाले हैं अर्थात् तीन दिन का बीच में अन्तर देकर चौथे दिन उसी समय भोजन ग्रहण करनेवाले

कनकवर्णाः।अथ*उत्तरेषु। =स्वर्ण वा कंचनरूप हैं (प्रश्न) अब उत्तर दिशाओंविषैं

का।अवस्था।इति*अत*आह। =क्या अवस्था है इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— (१)तथोत्तरा ॥ ३० ॥ =(यथा दक्षिणाः व्याख्याताः) तथा (एव) उत्तराः (वेदितव्याः)

सूत्रार्थः—यथा*दक्षिणाः।व्याख्याताः।तथा*(एव*) =जैसे दक्षिण वाले वर्णन किये गये हैं तैसे (ही)

उत्तराः।वेदितव्याः। =उत्तरदिशाके (तीन क्षेत्र हैरण्यवत रम्यक और उत्तरकुरु के) निवासकरनेवाले (मनुष्योंको) समझना चाहिये अर्थात् हैरण्यवतक्षेत्र जो जघन्य भोगभूमिका क्षेत्र है यहांके उपजे मनुष्योंकी एक पल्य की आयु होती है । रम्यक क्षेत्र जहां मध्यम भोग भूमि है यहां के निवासी मनुष्योंकी आयु दोपल्यकी होती है ॥ और उत्तरकुरु जो उत्तम भोग भूमिका क्षेत्र है यहाके निवासकरने वाले नरोंका तीन पल्योपमाका जीवनकालहै इसप्रकार पांचमेरु सम्बन्धी दक्षिण और उत्तरदिशाओंकी सर्व तीसभोगभूमि हैं

वृत्त्यनुवादः-यथा*दक्षिणाः।व्याख्याताः।तथा*एव*उत्तराः=जैसे दक्षिणदिशाके(क्षेत्रों)वाले वर्णन कियेगयेहैं तैसेही उत्तरदिशाके(क्षेत्रों)वालोंको

वेदितव्याः।-हैरण्यवतकाः। =जानना चाहिये अर्थात् हैरण्यवत क्षेत्रकेनिवासीमनुष्य

(२)हैमवतकैः।तुल्याः।राम्यकाः। =हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले मनुष्योंसे समान हैं। रम्यक क्षेत्रकेनिवासकरनेवाले मनुष्य

हारिवर्षकैः।तुल्याः। =हरिवर्षके रहनेवाले मनुष्योंसे तुल्य हैं

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसको सूत्र नहीं माना है (पृष्ठ ३७, ३८की टिप्पणी)

(२) क्योंकि यहांपर संस्कृत वृत्तिमें त्रितीया कारक है इस हेतु से अनुवादमें 'मनुष्योंसे' ऐसा लाये हैं जिसका यही अभिप्राय है जो मनुष्योंके वाक्यके लानेपर होता है अर्थात् हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले मनुष्योंके समान हैं ॥

तत्र मनुष्या एकपल्योपमायुषो द्विधनुःसहस्रोच्छ्रिताः चतुर्थभक्ताहारा नीलोत्पलवर्णाः ॥ पञ्चसु हरिवर्षेषु सुखमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्या द्विपल्योपमायुषश्चतुश्चापसहस्रोत्सेधाः षष्ठभक्ताहाराः शंखवर्णाः ॥ पञ्चसु देवकुरुषु सुषमसुषमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्यास्त्रिपल्योपमायुषः

तत्र*एकपल्योपमआयुषः१।३।मनुष्याः१।३।	=तहां मनुष्य एक पल्योपम आयुवाले
द्वि-धनुष्-सहस्र-उच्छ्रिताः१।३।	=दो सहस्र चाप ऊंचे (=उच्छ्रित)
चतुर्थ-भक्त-आहाराः१।३।	=चौथा(=चतुर्थ)भोजन वा अन्नके(=भक्त) खानेवाले (=आहार) अर्थात् तीनवारके भोजन(के समय)को त्यागकर चोथीवारका भोजन करनेवाले तात्पर्य्य एकदिनको वीचमें छोड़कर भोजनकरनेवाले
नील-उत्पल-वर्णाः१।३। पञ्चसु७।३।हरिवर्षेषु७।३।	=और नीले कमल सम रूपकेधारक हैं । पांच हरि क्षेत्रोंमें
सुखमा१।१।सदा*अवस्थिता१।१। तत्र*मनुष्याः१।३। दो-पल्योपम	=सुखमाकाल सर्वकालमें वर्तमान है । तहां मनुष्य दोपल्यप्रमाण
आयुषः१।३। चतुर्-चाप-सहस्र-उत्सेधाः१।३।	=अवस्थाके धारक चार सहस्र धनुष ऊंचे, लम्बे अथवा ऊंचाईवाले
षष्ठ-भक्त-आहाराः१।३।	=छठवां भोजन ग्रहण करनेहारे अर्थात् दो दिनका वीचमें अवकाश देकर तीसरे दिन उसी समय भोजन करनेवाले हैं
शंख-वर्णाः१।३।पञ्चसु७।३।देवकुरुषु७।३।सुषमसुषमा१।१।	=धवल अथवा श्वेत शरीर धारक हैं । पांच देवकुरु क्षेत्रोंविषैं सुखमसुखमा
सदा*अवस्थिता१।१।तत्रमनुष्याः१।३।त्रिपल्योपमआयुषः१।३।	=सर्व कालमें अवस्थित है ॥ तहां मनुष्य तीन पल्य प्रमाण स्थिति वाले हैं

चौथे दुःखमसुखमाकालमें एक वार भोजन साधारणतः प्रत्येक दिन मनुष्य करता था और पंचमकालमें बहुधा दो वार भोजन प्रत्येक पुरुष करता है । क्योंकि सर्वार्थसिद्धिकी संस्कृतवृत्ति पूज्यपाद स्वामीने जिनका जन्म विक्रम संवत् ३०८ ज्येष्ठ सुदी दशमीको हुआ था पंचमकालमें रची है । इसकारण चतुर्थ भोजन करनेवालेका तात्पर्य्य यह है कि 'एक दिनका अन्तर देकर भोजन करनेवाला' 'एक दिनके अवकाश से भोजन करने वाला' 'एकदिन वीचमें भोजन न करके भोजन करनेवाला' जैसे मानलो कि पंचमकालके एक मनुष्यने और जघन्य भोग भूमिके एक मनुष्यने साथसाथ रविवार को भोजन सायंकाल किया तो पंचमकालका पुरुष सोमवारकी प्रातःकालमें एक भोजन और दूसरा उसी दिवसकी सायंकालको करेगा और वही मनुष्य एक भोजन मंगलवारके प्रातःकालमें करेगा तवलग जघन्य भोग भूमिका मनुष्य कोई भोजन न करेगा जब पंचमकालका मनुष्य मंगलकी सायंकालको चौथा भोजन करेगा तब भोग भूमिका पूर्वोक्त मनुष्य फिर भोजन करेगा इसलिये कहा है कि चौथा भोजन करनेवाले अर्थात् तीनवार का भोजन त्यागकर वा एक दिवसका अन्तर देकर दूसरे दिन भोजन करनेवाला ॥

संख्येयकाला मनुष्याः ॥ तत्र कालः सुषमदुःषमान्तोपमः सदाऽवस्थितः । मनुष्याश्च पञ्चधनुः शतोत्सेधाः । नित्याहाराः । उत्कर्षेणैकपूर्वकोटीस्थितिकाः ।

---

(१)संख्येय-कालाः $^{1}_{3}$। मनुष्याः $^{1}_{3}$। तत्र*कालः $^{1}_{1}$। =संख्यात काल आयुके धारक मनुष्य होते हैं । तहां (विदेह क्षेत्रों में) काल

(२)सुषम-दुःषम-अन्त-उपमः $^{1}_{1}$। सदा*अवस्थितः $^{1}_{1}$। =सुखमदुःखमा (तीसरे काल के) अन्तके सरीखा (=उपम) सर्वदा विद्यमान (अवस्थित)है

मनुष्याः $^{1}_{3}$। च*पञ्च-धनुःशत-उत्सेधाः $^{1}_{3}$। =बहुरि मनुष्य पांचसौ धनुष ऊंचे वा लम्बे हैं अर्थात् पांचसौ धनुष उचाईमें होते हैं

नित्य-आहाराः $^{1}_{3}$। =प्रति दिन (=नित्य-पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २१३) आहार वा भोजन करने वाले है ॥

उत्कर्षेण $^{3}_{1}$। एक-पूर्व(३)-कोटी-स्थितिकाः $^{1}_{3}$। =उत्कृष्टकरि एक करोड़ पूर्वकी आयुके धारक हैं

---

(१) सख्यायते गणयितुं शक्यते इति संख्येय । सख्येय कालो जीवित येषां ते सख्येयकालाः ॥

संख्यायतेT गणयितुम् $^{1}_{1}$।।। शक्यतेT इति*संख्येय $^{1}_{1}$। =गणना के योग्य है (=संख्यायते) गिनाजासक्ता है ऐसा संख्येय है ॥

सख्येय $^{1}_{1}$। कालः $^{1}_{1}$। जीवितं $^{1}_{1}$।।। येषां $^{6}_{3}$। ते $^{1}_{3}$। संख्येय-काला $^{1}_{3}$। =गिन्नेके योग्य है जीवन काल जिनका वे संख्येयकाल (आयु) वाले हैं ॥

(२) सुषमदुःषमाकालान्तकालसदृशइत्यर्थः ॥ अत्र "दु षमसुषमादि." इति पाठभेदस्तालपत्रपुस्तके वर्तते ॥

सुषम-दु षमा-काल-अन्त-काल-सदृश-इति-अर्थः $^{1}_{1}$। =सुखमदुःखमा (तीसरे) कालके अन्त समयके समान ऐसा अर्थ वा आशय है ॥

अत्र*दु.षम-सुषम-आदिः $^{1}_{1}$। इति*पाठ-भेदः $^{1}_{1}$। =यहां दुःखमसुखम (चौथे) काल की आदि वा प्रारम्भ (सदृश) ऐसा पठन विशेष

ताल-पत्र-पुस्तके $^{7}_{1}$।। वर्तते T =ताडवृक्ष (=ताल) के पत्तों पर लिखित पुस्तकमें है (पुरातन वा प्राचीन समय में जब कागद के परत न थे तब ताड़वृक्षके पत्तोंपर वा भोजपत्र इत्यादि पर लिखाई होती थी)

(३) पूर्वाङ्गं वर्षलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा । ८४०००० ॥ तद्वर्गितं भवेत्पूर्वं ७०५६०००००००००० तत्कोटी पूर्वकोट्यसौ ॥ ७०५६०००००००००००००००००॥

पूर्व-अङ्गं $^{1}_{1}$।।। वर्ष-लक्षाणां $^{6}_{3}$।।। अशीतिः $^{1}_{1}$।। चतुर्-उत्तरा $^{1}_{1}$।। =पूर्वांग है (यह)बरस लाख अस्सी ऊपर(=उत्तर)चार है-अर्थात् चौरासीलाख वर्षका है ॥

८४००००० ॥ तद् =चौरासीलाख संख्या है । उन (चौरासीलाख बरसों) को

वर्गितं $^{1}_{1}$॥ भवेत्T पूर्वं $^{1}_{1}$।।। ७०५६०००००००००० =आपस में गुणित (=वर्गित) हो (भवेत्) सो पूर्व है अर्थात् चौरासी लाख को चौरासी लाखसे गुणा करनेसे जो गुणनफलहो उतने वर्षोंका एकपूर्व होताहै ८४००००० × ८४००००० ७०५६०००००००००००भावार्थ सातनील, पांच खर्व साठ अरब बरसोंका एक पूर्वहोता है ॥

देवकुरवकैरौत्तरकुरवकाः समाख्याताः ॥ अथ विदेहेष्ववस्थितेषु का स्थितिरित्यत्रोच्यते—

॥ विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

सर्वेषु पञ्चसु महाविदेहेषु

देवकुरवकैः३।३ औत्तरकुरवकाः१।३ =देवकुरु क्षेत्रके उपजे मनुष्योंसे उत्तर कुरुक्षेत्रके उत्पन्न हुये मनुष्य

सम-आख्याताः१।३ । अथ*विदेहेषु७।३ =समान (=सम) वर्णित कियेगये हैं ॥ (प्रश्न) अब विदेहक्षेत्रोंमें

अवस्थितेषु७।३ का१।१ स्थितिः१।१ इति*अत्र*उच्यते T =रहनेवाले, वा निवासकरनेवालोंकी क्या आयु है ऐसे(प्रश्नपर) यहां कहा जाता कि

(१)सूत्रम्— विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थ–विदेहेषु७।३ संख्येय-कालाः१।३ =विदेहक्षेत्रोंकेविषैं संख्यातवर्षकी अवस्था वा आयुवाले होते हैं अर्थात् पांच मेरु सम्बन्धी पांचों विदेह क्षेत्रोंमें मनुष्य संख्यात वरसकी आयुवाले होते हैं

वृत्त्यनुवादः–सर्वेषु७।३ पञ्चसु७।३ (२)महाविदेहेषु७।३ =(पांच मेरु सम्बन्धी) समस्त पांच महाविदेहोंमें

(१) हमारेयहां कहीं संख्येय, कहीं सङ्ख्येय पाठ है दोनो पाठ ठीक हैं (अ०१पृष्ठ५४०,५४१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में इसको सूत्र नहीमाना है

(२) विगतो विनष्टो देहः शरीरं मुनीनां येषु ते विदेहाः । प्रायेण मुक्तिपदप्राप्तिहेतुत्वात् । तेषु विदेहेषु पञ्चानां मेरूणां सम्बन्धिनः पञ्चपूर्वविदेहाः पञ्च अपरविदेहा उभये मिलित्वा पञ्चमहाविदेहाः कथ्यन्ते ॥

विगतः१।१ विनष्टः१।१ देहः१।१ शरीरं१।१॥ मुनीनां६।३ =विनशन हुआ है(=विगतः)ध्वंस हुआ है (=विनिष्टः) गात्र(देहः)काय (शरीर)ऋषियोंका

येषु७।३ ते१।३ विदेहाः१।३ । प्रायेण*मुक्ति-पद-प्राप्ति- =जिन (देशोंमें) वे विदेह हैं । प्रायशः वा बहुधा (=प्रायेण) मोक्षपदकी लब्धिके

हेतुत्वात्५।१॥ तेषु७।३ विदेहेषु७।३ पञ्चानां६।३ मेरूणां६।३ =कारणापनासे (इन देशोंके नाम विदेह) हैं । तिन विदेहोंमें पांच मेरु

सम्बन्धिनः१।३ पञ्च१।३ पूर्व-विदेहाः१।३ पञ्च१।३अपर-विदेहाः१।३ =सम्बन्धी पांच पूर्व दिशाके विदेह, पांच पश्चिम दिशाके विदेह

उभये१।३॥ मिलित्वा ÷ पञ्चमहाविदेहाः१।३कथ्यन्ते T =दोनों मिलकर पांच महाविदेह (ऊपरकी वृत्तिमें) कहेगये हैं या वर्णन कियेगये हैं ॥

॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

जम्बूद्वीपविष्कम्भस्य योजनशतसहस्रस्य नवतिशतभागीकृतस्यैको भागो भरतस्य विष्कम्भः स पूर्वोक्त एव॥ उक्तं जम्बूद्वीपं परिवृत्य वेदिका स्थिता, ततः परो लवणोदः समुद्रो द्वियोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः।

---

[1]सूत्रम—भरतस्य विष्कम्भो जम्बूदीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—भरतस्य६/१। विष्कम्भः१/१। जम्बूद्वीपस्य६/१। =भारतवर्षकी (दक्षिण-उत्तर) चौड़ाई जम्बूद्वीपके (जिसका व्यास एकलक्षयोजन है)
नवतिशत-भागः१/१। =एकसौ नव्वै भागोंमें से (एक भाग) है अर्थात् (१००००० / १९० = ५२६ ६/१९ योजन है)
वृत्त्यनुवादः—जम्बूद्वीप-विष्कम्भस्य६/१। योजन-शतसहस्रस्य६/१। =जम्बूद्वीपके विस्तारके लाख योजनके
नवतिशत-भागीकृतस्य६/१। एकः१/१। भागः१/१। भरतस्य६/१। =एकसौ नव्वे भाग किये हुओंमें से, एकभाग भरतक्षेत्रकी (दक्षिण-उत्तर)
विष्कम्भः१/१। सः१। पूर्व-उक्तः१। एव; उक्तं२। जम्बूद्वीपं२। =चौड़ाई है सो पहिले वर्णितही है। वर्णित जम्बूद्वीपको
परिवृत्त्य[2] वेदिका१।।स्थिता१।। =बेढ़कर वेदी तिष्ठी है अर्थात् जम्बूद्वीपके चारो ओर वेदिका है उसकेपीछे लवणोदधि है
ततः*परः१/१। लवणोदः१/१। समुद्रः१/१। द्वियोजनशतसहस्र— =तिस (वेदिका) से आगे लवणोदधि समुद्र दोलाख योजन
वलय-विष्कम्भः१/१। =वलयाकार कड़ेके आकार विस्ताररूप है अर्थात् लवणोदधि की परिधिपर

एकविंदु लेकर उसकी सीधमें जंबूद्वीपकी परिधिपर दूसरा विंदुलेकर दोनोंविंदुओंके मिलानेवाली रेखा दोलाखयोजन लम्बी होगी।

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ एक है। श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में इसको सूत्र नहीं माना है (इस अध्यायके पृष्ठ ३७, ३८ की टिप्पणी देखो)। (२) सबधसूचक भूतकृदन्त है॥ (३) एक भागमें भरतक्षेत्र, दो भागोंमें हिमवान् पर्वत चार भागोंमें हैमवतक्षेत्र, आठ भागोंमें महाहिमवान् पर्वत, सोलह भागोंमें हरिक्षेत्र, बत्तीस भागोंमें निषिध पर्वत, और चौसठि भागोंमें विदेह क्षेत्रका विस्तार है। ऐसे जम्बूद्वीपके एकसौ सत्ताइस (१२७) भाग तो दक्षिण सम्बन्धी हैं और नील पर्वत बत्तीस भागोंमें, रम्यकक्षेत्र सोलह भागोंमें, रुक्मी पर्वत आठ भागोंमें, हैरण्यवत् क्षेत्र चार भागोंमें, शिखरी पर्वत दो भागोंमें तथा ऐरावत क्षेत्र एक भागमें विभक्त हैं। ऐसे उत्तर सम्बन्धी ये त्रेसठ भाग, दोनों मिलानेसे (१२७+६३)=१९० भाग जंबूद्वीप के है। २४ वां सूत्र के होते हुये कि भरतक्षेत्र ५२६ ६/१९ है इसकी आवश्यकता नहीं क्योंकि एक साधारण पाठक ५२६ ६/१९ = १०००० / १९ = १००००० / १९० निकालसक्ता है कि १९० वां भाग भरत है॥ अथवा इस सूत्रको २४ वां सूत्र करदेते तो विद्यमान चौवीसवां सूत्र जो इससे बड़ा सूत्र है न बनाना होता और १००००० / १९० = १०००० / १९ = ५२६ ६/१९ भरतक्षेत्रकी उत्तर दक्षिण की सूची भी निकल आती॥

जघन्येनान्तर्मुहूर्तायुषः ॥ तस्याश्च सम्बन्धे गाथां पठन्ति ॥ [1]पुव्वस्स दु परिमाणं सदरिं खलु कोडिसदसहस्साइम् । छप्पएणं च सहस्सा बोद्धव्वा वा सकोडीणम् ॥ १ ॥७०५६०००००००००० उक्तो भरतस्य विष्कम्भः । पुनः प्रकारान्तरेण तत्प्रतिपत्त्यर्थमाह—

जघन्येन॥।अन्तर्मुहूर्त-आयुषः।	=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त आयुवाले हैं ॥
तस्याः॥च*सम्बन्धे।गाथां॥पठन्तिT	=बहुरि तिस (स्थिति)के संयोगमें गाथा बांचते वा पठन करते हैं ॥
[1]पुव्वस्स॥।दु*परिमाणं॥(पूर्वस्य॥।तु*परिमाणं॥।)	=और (=दु=तु) पूर्वका प्रमाण
सदरिं॥।खलु*कोडि-सद-सहस्साइम्॥। (खलु*सप्तति-[2]कोटि-शत-सहस्राणि॥।)	=निश्चयसे (=खलु) सत्तर लाख करोड़
छप्पएणं॥। च सहस्सा॥। (च षट्-पञ्चाशत्-सहस्राणि॥।)	=और (=च) छप्पन सहस्र
बोद्धव्वा।वा*स-कोडीणम्॥। (१) बोद्धव्याः।वा*स-कोटयः। (=स-कोट्यः) (१)	=करोड़ [3](वरस) सहित जानना चाहिये (सातनील पांचखर्व साठसहस्र अर्ब)
७०५६००००००००००	=(एक पूर्वके) सातनील पांचखर्व साठ सहस्र अर्ब हुये
उक्तः।भरतस्य।विष्कम्भः। पुनः*प्रकार-अन्तरेण*	=भरतक्षेत्र की कही हुई (दक्षिण-उत्तर) चौड़ाई है सो पुनि अन्य प्रकारकरि
तत्-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥।आहT	=उस (चौड़ाई)के जतलानेकेलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

तत्-कोटी॥पूर्व-कोटि (कोटी) असौ॥	=वे करोड़ (पूर्व हैं) सो पूर्वकोटी है (जिसके)
७०५६००००००००००००००००००	='७०५६०००००००००००००००००० अर्थात् सातसहस्र छप्पन शंख वरस होते हैं

(१) अस्यायमर्थः-सप्ततिलक्षकोटिवर्षाणि षट्पञ्चाशत्सहस्रकोटिवर्षाणि यदा भवन्ति तदैकं पूर्वमुच्यते

अस्य। अयम्। अर्थः। सप्ततिलक्षकोटि वर्षाणि॥	=इसका यह अभिप्राय है कि सत्तर लाख करोड़ वरस (और)
षट्-पञ्चाशत्सहस्रकोटि॥ वर्षाणि॥ यदा* भवन्ति T	=छप्पन सहस्र करोड़ वरस जब होते हैं
तदा* एकं॥ पूर्वम्॥ उच्यते T	=तब एक पूर्व कहा जाता है (संख्यामें ७०५६०००००००००० ऐसे रखते हैं)

(२) कोटि-कोटी । दोनों शब्द करोड़के बोधक हैं ।'कोटि'शब्दका बहुवचन मति शब्दके सदृश'कोटयः' है और'कोटी'शब्दका 'दासी' शब्द के समान 'कोट्यः'प्रथमाविभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंग है ॥ (३) वरस—ऐसा जान पड़ता है कि जहां से यह आर्या छंद लिया गया है, उस छंद से 'वर्ष' शब्द की अनुवृत्ति इसमें वर्तती है अतः इसमें 'वर्ष' शब्द नहीं लाये । अनुवादमें 'वर्ष' शब्द लाना अति आवश्यक है ॥

सुच् ॥ यथा द्विस्तावानयं प्रासादो मीयत इति ॥ एवं द्विर्धातकीखण्डे भरतादयो मीयन्ते इति ॥ तद्यथा—द्वाभ्यामिष्वाकारपर्वताभ्यां दक्षिणोत्तरायताभ्यां लवणोदकालोदवेदिकास्पृष्टकोटिभ्यां विभक्तो धातकीखण्डः पूर्वापर इति ॥ तत्र पूर्वस्य चापरस्य मध्ये द्वौ मन्दरौ । तयोरुभयतो भरतादीनि क्षेत्राणि हिमवदादयश्च

सुच् $\frac{1}{1}$।	=(द्विशब्द पर) सुच् है अर्थात् स् (कर्ताका चिन्ह जो सूत्रमें 'र्' में पलट जाता है लगाया) है भावार्थ इस सूत्रके 'द्वि' शब्द पर स् (=र्) कर्ता कारकका प्रत्यय (मापना) क्रिया के [1]अध्याहार वा सूत्रके अन्तमें (मापना) क्रिया की विद्यमानताकी कल्पनाके लिये लाये हैं ॥
यथा*द्विः*तावान् $\frac{1}{1}$। अयं $\frac{1}{1}$। प्रासादः $\frac{1}{1}$। मीयते। इति*	=जैसे दोगुणा (=द्विः) माप (=तावान्) यह राजभवन नापाजाय है वा परिमाण कियाजाय है
एवम्*द्विः*धातकीखण्डे $\frac{7}{1}$। भरत-आदयः $\frac{1}{3}$।	=इस प्रकार (जम्बूद्वीपसे) द्विगुने (=द्विः) धातकीखंड द्वीपमें भरतक्षेत्रादिक
मीयन्ते। इति*	=नापे जाते हैं अथवा गणना किये जाते हैं भावार्थ-इस सूत्र के द्विशब्द पर स् (=र्) कर्त्ता का प्रत्यय लानेसे और सूत्रके अंतमें मापना क्रियाका अध्याहार करके यह फलनिकाला हैकि जम्बूद्वीपमें जो भरतक्षेत्र, कुलाचल, द्रह पुष्करादिक है उनकी अपेक्षा धातकीखंडमें दुगुणे हैं
तद्यथा*द्वाभ्याम् $\frac{3}{2}$। इष्वाकारपर्वताभ्याम् $\frac{3}{2}$।	=जैसे दो इष्वाकार पर्वतोंकरि (जो चारसौ योजन ऊंचे और सौ योजन पृथिवीमें प्रविष्ट हैं)
लवणोद-कालोद-वेदिका-स्पृष्टकोटिभ्याम् $\frac{3}{2}$।	=लवण समुद्र और कालोदधिकी वेदियों को छूनेवाले दोनों अटनियों वा सिरों तक
दक्षिण-उत्तर-आयताभ्याम् $\frac{3}{2}$। विभक्तः $\frac{1}{1}$। धातकीखंड $\frac{1}{1}$।	=दक्षिण-उत्तर दिशामें (चार लाख योजन) लम्बे हैं। धातकी खंड
पूर्व-अपरः $\frac{1}{1}$। इति। तत्र*पूर्वस्य $\frac{6}{1}$। च*अपरस्य $\frac{6}{1}$। मध्ये $\frac{7}{1}$।	=पूर्व पश्चिम (दो भागों में) बटा हुआ है तहा पूर्व और पश्चिमके (भागों के) बीच में
द्वौ $\frac{1}{2}$। मन्दरौ $\frac{1}{2}$। तयोः $\frac{6}{2}$। उभयतः*भरत-	=दो मेरु पर्वत हैं। तिन (दोनों मेरु पर्वतों) के दोनोंओर भरत-
आदीनि $\frac{1}{3}$।।। क्षेत्राणि $\frac{1}{3}$।।। च*हिमवत्-आदयः $\frac{1}{3}$।	=आदिक क्षेत्र हैं और (=च) हिमवान् आदिक

'अध्याहार'-वह वाक्य जो स्पष्टता से समझमें नहीं आसका उसे किसी दूसरे शब्दकी कल्पना करि स्पष्ट करदेना। अनुवृत्ति और अध्याहार में यह भेद है कि अनुवृत्ति में जो शब्द वा वाक्य किसी पहिले सूत्र वा वाक्य में आया है उसे उत्तर सूत्र वा वाक्य में खींच लेना, अनुकर्षण करना और आशय अभिप्राय को समझलेना है परन्तु अध्याहार में जो शब्द वा वाक्य पहिले सूत्र में तो आया नहीं है परन्तु किसी भी वाक्यको स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है तो उस वाक्यको स्पष्ट करनेके लिये किसी शब्द वा वचनकी कल्पना करलेते हैं जिससे कि सूत्र इत्यादिकका अर्थ समझमें आजावे ॥

ततः परो धातकीखण्डो द्वीपश्चतुर्योजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः ॥

तत्र वर्षादीनां संख्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥

भरतादीनां द्रव्याणामिहाभ्यावृत्तिर्विवक्षिता । तत्र कथं सुच् ?। अध्याह्रियमाणक्रियाभ्यावृत्तिद्योतनार्थः

ततः*परः धातकीखण्डः द्वीपः चतुर्-	=उस (लवण समुद्र) से आगे धातकीखंड द्वीप चार
योजन-शतसहस्र-वलय-विष्कम्भः तत्र*	=लाख योजन वलयाकार वा कड़ेकेआकार विस्तारवाला है । तहां
वर्षादीनाम् संख्या-विधि-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह।	=क्षेत्रादिकोंकी गणनाके क्रम (=विधि) के ज्ञानके लिये (अग्रिमसूत्रमें)कहते हैं कि
[1]सूत्रम्—द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥	=धातकीखण्डे द्वीपे भरतादयो द्विः* संख्यायन्ते ॥३३॥
सूत्रार्थः-धातकीखण्डे द्वीपे भरत-आदयः	=धातकीखंड द्वीपमें भारतवर्ष, कुलाचल, पर्वत, द्रह कमल आदि (जम्बूद्वीपसे)
द्विः*संख्यायन्ते।	=दूने दूने गिनेजाते हैं ।
वृत्त्यनुवादः-भरत-आदीनाम् [2]द्रव्याणाम् इह अभ्यावृत्तिः	=भारतवर्ष(कुलाचल,द्रह,कमल)आदि द्रव्यवाची शब्दोंका यह(=इह)दुबाराकथन
विवक्षिता।	=(धातकीखंडद्वीपादिककी)विवक्षासे कियागयाहै अर्थात् सूत्रग्रन्थोंमें वा सूत्रशास्त्रोंमें

सूत्रकार दुबारा कभी किसी वस्तुका कथन नहीं करते, जब एकबार भरत,कुलाचल,आदिका कथन आचार्यकरचुके तब दुबारा कथन नहीं करना चाहियेथा, उसके उत्तरमें कहतेहैं कि धातकीखण्ड और पुष्कार्ध आदिका कथनअवश्यही करनाथा उनका कथन भरतादिकके विवरण किये बिना होनहीं सकता है अगर ऐसा न करते तो धातकी खण्ड और पुष्करार्द्ध आदिका कथनरहजाता, तत्त्वार्थसूत्र अधूरा होजाता सो ठीक नहींथा इसअपेक्षाको लियेहुये दुबाराभरतादिकका कथन करना पड़ा ॥

तत्र*कथम्*सुच्। ?	=तहां(सूत्रमें द्वि शब्दको)कैसे सुच्प्रत्यय(जो रूपान्तर होकरसुच्=सु=स्=र्,)होताहै
अध्याह्रियमाण-क्रिया-अभ्यावृत्ति-द्योतन-अर्थः।	=(इससूत्रमें) क्रियाके कल्पना द्वारा विवरणकी स्पष्टताके जनावनेके लिये

(१) इस सूत्रका दोनो आम्नायों में पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२)यहां पर भरतआदि द्रव्य हैं । व्याकरणमें प्रकृति प्रत्यय लिंग संख्या विशिष्टको द्रव्य कहा जाता है भरतादि शब्द लिंग संख्या विशिष्ट होनेंसे द्रव्यवाचक शब्द हैं ॥(व्याकरणमें)वह पदार्थ कि जिसका लिङ्ग और संख्या से अन्वय हो द्रव्यहै । पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ१८६ ॥ अतएव द्रव्य शब्दका अर्थयहांपर जीव,अजीव,धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्योंमेंसे कोईभी अपेक्षित नहीं है ॥

वलयविष्कम्भः ॥ कालोदपरिक्षेपी पुष्करद्वीपः षोडशयोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः ॥
तत्र द्वीपाम्भोनिधिविष्कम्भद्विगुणपरिक्लृप्तिवद्धातकीखण्डवर्षादिद्विगुणवृद्धिप्रसङ्गे विशेषावधारणार्थमाह

॥ पुष्कराद्धे च ॥ ३४ ॥

(किं)द्विरित्यनुवर्तते। किमपेक्षा द्विरावृत्तिः? जम्बूद्वीपेभरतहिमवदाद्यपेक्षयैव। जम्बूद्वीपात्पुष्करार्धेद्वौ भरतौ द्वौ

वलय-विष्कम्भः[1/1] कालोदपरिक्षेपी[1/1] पुष्करद्वीपः[1/1] =वलयाकार (अर्थात् कड़ेके आकार) विस्तार रूप है। कालोदधि को बेढ़ेहुए पुष्करद्वीप
षोडशयोजन-शतसहस्र-वलय-विष्कम्भः[1/1] =सोलहलाखयोजन वलयाकार(अर्थात् कड़ेके आकार)चौड़ाईका धारक है।
तत्रद्वीप-अम्भोनिधि विष्कम्भ-द्विगुण-परिक्लृप्तिवत् =तहां (पुष्करद्वीपसेपूर्व)द्वीप और समुद्रों की द्विगुणी द्विगुणी रचनाके सदृश (परिक्लृप्तिवत्)
धातकीखण्ड-वर्ष-आदि द्विगुण- =धातकी खंडके क्षेत्र (तथा पर्वतों) आदिक से दुगुन (दुगुन आगेके क्षेत्र तथा पर्वतोंकी)
वृद्धि-प्रसंगे[1/7] विशेष-अवधारण-अर्थम्[1/1] =बढ़तीके अवसर(आजाने) पर पृथक् अथवा भिन्न =विशेष) नियमके लिये
आह T ='आचार्य्य,अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं। भावार्थ-जम्बूद्वीपसे अगलेके समुद्र तथा द्वीपोंका विष्कम्भ दूना है और जम्बूद्वीपसे धातकी खंडकी रचना दूनी है तो इस प्रसंगके निषेधके लिये अर्थात् ऐसा न समझ लियाजावै कि धा की खंड़से पुष्करद्वीपकी रचना दूनीहै। उत्तर सूत्र कहते हैं कि "पुष्करार्द्धे च"॥

सूत्रम्—[1]पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥ (= भरतादय. द्विः संख्यायन्ते) पुष्करार्द्धे च

सूत्रार्थ—च*भरत-आदयः[1/3] द्विः* =और =च) भारतवर्ष (कुलाचल-द्रह-कमल) आदिक (जम्बूद्वीपसे) दूने दूने
पुष्कर-अर्द्धे[1/7] संख्यायन्ते T =पुष्करद्वीपके आधेभागमें गिनाये गये हैं
वृत्त्यनुवादः-(किम्[1/1])द्विः*इति*अनुवर्तते T =प्रश्न (क्या द्वि(शब्द) ऐसा (पहिले सूत्रसे इससूत्रमें अनुवर्तता है वा लाया गया है)
किम्[1/1] अपेक्षा[1/1] द्विः आवृत्तिः[1/1] जंबूद्वी[7/1] भरत- =किस विवक्षा द्विगुणना (=आवृत्ति) है (उत्तर) जम्बूद्वीपमें भरतक्षेत्र तथा
हिमवत्-आदि-अपेक्षया[1/3] एव* =हिमवान्पर्वत आदिककी अपेक्षासे ही(पुष्करार्द्धमें दूनेक्षेत्र तथा दूने कुलाचल)हैं
जंबूद्वीपात्[1/5] पुष्करार्द्धे[1/7] द्वौ[1/2] भरतौ[1/2] द्वौ[1/2] =(प्रश्न)जंबूद्वीपसे पुष्करार्द्धविषैं दो भरतक्षेत्र दो

(१) श्वताम्बर-आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "पुष्करार्धे च" ऐसा पाठ है हमारे यहां भी जैसे तत्त्वार्थ-राज-पृ०१३६,श्लोक वार्तिकमेंभी यही पाठ "पुष्करार्धे च" है इसलिये दोनों आम्नाओंमें पाठभेद नहीं है। अर्थ भी दोनों सम्प्रदाओंमें एक है॥ अर्ध और अर्द्ध दोनों शब्द ठीक हैं॥

वर्षधरपर्वताः । एवं द्वौ भरतौ द्वौ हिमवन्तौ इत्यवमादिसंख्यानं द्विगुणं वेदितव्यम् ॥ जम्बूद्वीप हिमवदादीनां वर्षधराणां यो विष्कम्भस्तद्द्विगुणो धातकीखण्डे हिमवदादीनां वर्षधराणाम् ॥ वर्षधराश्चक्रारवदवस्थिताः ॥ अरविवरसंस्थानानि क्षेत्राणि ॥ जम्बूद्वीपे यत्र जम्बूवृक्षः स्थितः । तत्र धातकीखण्डे धातकीवृक्षः सपरिवारः । तद्योगाद्धातकीखण्ड इति द्वीपस्य नाम प्रतीतम् ॥ तत्परिक्षेपी कालोदः समुद्रः टङ्कच्छिन्नतीर्थः अष्टयोजनशतसहस्र–

वर्षधर-पर्वताः। एवम्*द्वौ। भरतौ। द्वौ। =कुलाचल हैं इस प्रकार दो भारतवर्ष दो
हिमवन्तौ। इत्येवम्*आदि-संख्यानम्।। द्विगुणम्।। =हिमवान्पर्वत इत्येवं आदिक गणना (जम्बूद्वीपसे धातुकीखंडमें) दूनी
वेदितव्यम्।। जम्बूद्वीप-हिमवत्-आदीनाम्। =जाननी चाहिये । जम्बूद्वीपके हिमवान् आदिक
वर्षधराणाम्। यः। विष्कम्भः। तद्-द्वि-गुणः। =पर्वतोंका जो विस्तार है तिससे दुगुणा
धातकीखंडे। हिमवत्-आदीनां। वर्षधराणाम्। =धातकीखंडमें, हिमवान् आदिक कुलाचलोंका है
वर्षधराः। चक्र(1)-अरवत्*अवस्थिताः। अर- =कुलाचल पहियेकी आरक आर वा अरा (=अरा)के सदृश तिष्ठे हुए हैं । अरोंके
विवर-संस्थानानि।। क्षेत्राणि।। =छिद्रोंके आकार (=संस्थान) (वत्) (भरतादिक) क्षेत्र हैं । अर्थात् पहियेको पृथ्वीपर इसप्रकार धरिये कि उसका समस्त घेरा पृथ्वीको छूजाय तो उस पहियेकी नाभि (धुरी)और घेरेके बीचमेंडंडारूप लकड़ियें हैं तैसे पर्वत तिष्ठे हैं और पूर्वोक्त लकड़ियोंके मध्यका शून्य (खाली) स्थान रहता है तैसे क्षेत्र तिष्ठे हैं
जम्बूद्वीपे। यत्र*जम्बूवृक्षः।स्थितः। तत्र* =जम्बूद्वीपमें जहां जम्बूवृक्ष अवस्थित है वहां
धातकीखंडे। धातकीवृक्षः। सपरिवारः। तद्- =धातकीखंडमें धातकीवृक्ष छोटे छोटे परिवार (के वृक्षों) सहित (स्थित) है तिसके
योगात्। धातकीखंडः।इति*द्वीपस्य। नाम।। =संयोगसे वा उपलक्षणसे धातकीखंड ऐसी द्वीपकी संज्ञा
प्रतीतम्।। तद्-परिक्षेपी। कालोदः। =प्रसिद्ध वा ज्ञात है । तिस (धातकीखंड द्वीप) को समस्त ओरसे घेरे हुए कालोदः
समुद्रः। टङ्कच्छिन्न-तीर्थः। अष्टयोजन-शतसहस्र- =समुद्र टांकीसे छेदे काटे वा उकेले हुए जलकेस्थान समान(=तीर्थ)आठ लाख योजन

(१) पहियेकी नाभि अथवा धुरी या बीचके गोलेके छेदोंमेंसे जो लकड़ियां पहियेके घेरके छेदोंमें लगाई जाती हैं उनमेंसे प्रत्येक लकड़ी डंडेरूपको आरक, आर, अरा अथवा अर कहते हैं ॥

॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

पुष्करद्वीपबहुमध्यदेशभागी वलयवृत्तो मानुषोत्तरो नामशैलः। तस्मात्प्रागेव मनुष्या न बहिरिति। ततो न बहिः पूर्वोक्तक्षेत्रविभागोऽस्ति। नास्मादुत्तरं कदाचिदपि विद्याधरा ऋद्धिप्राप्ता अपि मनुष्या गच्छन्ति अन्यत्रोपपादसमुद्घाताभ्यां। ततोऽस्यान्वर्थसञ्ज्ञा॥ एवंजम्बूद्वीपादिष्वर्धतृतीयेषुद्वयोश्चसमुद्रयोर्मनुष्या-

(१)सूत्रम्—प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः। (अन्यपाठ) प्राग्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः—प्राग्-मानुषोत्तरात्[५/१]मनुष्याः[१/३]	=मानुषोत्तर पर्वतसे पहिले पहिले देश वा स्थानमें मनुष्य है अर्थात् जम्बूद्वीप, धातकीखंड और पुष्करद्वीपके उरेके आधेभागमें ऐसे अढ़ाई द्वीपमें मनुष्य हैं
वृत्त्यनुवादः—पुष्करद्वीप-बहु-मध्य-देश-भागी[१/१]	=पुष्करद्वीपके बहुतबीच (=बीचाबीचही) का स्थान(=देश) भागमें
वलय-वृत्तः[१/१]मानुषोत्तरः[१/१]नामशैलः[१/१]	=वलयाकार वृत्तरूप मानुषोत्तर नामक पर्वत है
तस्मात्[५/१]प्राक्*एव*मनुष्याः[१/३]न*(२)बहिस्*इति*	=तिस (मानुषोत्तर पर्वत) से पहिलेही मनुष्य हैं बाहिर नहीं हैं
ततः*न*बहिस्*पूर्वोक्त-क्षेत्र-विभागः[१/१] अस्तिT	=तिस(मानुषोत्तर पर्वत) से बाहिर (बहिस्) प्रथमवर्णित क्षेत्रों का विभाग नहीं है।
न*अस्मात्[५/१]उत्तरम्[१/१]॥कदाचित्*अपि*विद्याधराः[१/३]	=न इस (मानुषोत्तर) से आगे कभी भी विद्याधर (और)
ऋद्धिप्राप्ताः[१/३]अपि*(३)मनुष्याः[१/३]गच्छन्तिTअन्यत्र❀ उपपाद-समुद्घाताभ्याम्[५/२]	=ऋद्धिधारी भी मनुष्य, उपपाद और समुद्घातोंसे अतिरिक्त, गमन करते हैं (भावार्थ-मूलदेहको न छोड़कर उपपादसे और समुद्घातसे आत्माके प्रदेश अढ़ाई द्वीपसे बाहिर जाते हैं विना उपपाद और समुद्घातके आत्माके प्रदेश बाहिर नहीं जाते हैं)
ततः*अस्य[६/१]अन्वर्थ-संज्ञा[१/१]॥एवम्❀जंबूद्वीपादिषु[७/३]	=तिससे इस (मानुषोत्तर पर्वत) का सार्थक नाम है। इसप्रकार जम्बूद्वीप आदिक
अर्द्धतृतीयेषु[७/३] द्वयोः[७/२] च समुद्रयोः[७/२] (२) मनुष्याः[१/३]	=अढ़ाई (द्वीपों) और दो (लवणोद और कालोद) समुद्रोंमें मनुष्य

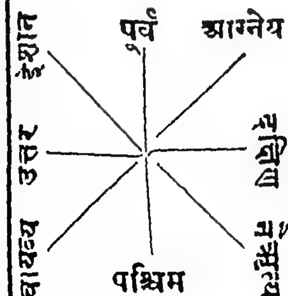
(१) दोनों आम्नाओंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ समुद्घात सात प्रकार है, इसके विशेषके लिये देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११६ से १२१ तक ॥ (२) बहिस् अथवा वहिस् (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३४१) दोनों ठीक हैं ॥ बहिस् केलिये देखो अमरकोश २४ अव्ययवर्ग श्लो०१७ "सनानित्ये-बहिर्वहिः" (३) "बहुरि जलचर जीव तथा विकलत्रयत्रस भी नहीं जाय हैं। तहां उपजे भी नहीं है" देखो इससूत्रपर जयचन्द्ररायकृता वचनिका

हिमवन्तौ इत्यादि। कुतः ?। व्याख्यानतः ॥ यथा धातकीखण्डे हिमवदादीनां विष्कम्भस्तथा पुष्कराधे हिमवदादीनां विष्कम्भो द्विगुण इति व्याख्यायते ॥ नामानि तान्येव, इष्वाकारौ मन्दरौ च पूर्ववत्। यत्र जम्बूद्वीपे जम्बूवृक्षस्तत्र पुष्करं सपरिवारम्। तत एव तस्य द्वीपस्यानुरूढं पुष्करद्वीप इति नाम ॥ अथ कथं पुष्करार्द्धसञ्ज्ञा? मानुषोत्तरशैलेन विभक्तार्धत्वात्पुष्करार्धसञ्ज्ञा॥ अत्राह किमर्थं जम्बूद्वीपहिमवदादिसंख्या द्विरावृत्ता पुष्करार्धे कथ्यते? न पुनः कृत्स्न एव पुष्करद्वीपे ? इत्यत्रोच्यते—

हिमवन्तौ इत्यादि कुतः* व्याख्यानतः*	=हिमवान् कुलाचल इत्यादिक क्योंकर हैं (इससूत्रके) व्याख्यानसे (जंबूद्वीपसे पुष्करार्द्ध विषैं दोदोभरत दोदोहिमवान् कुलाचल इत्यादिक) हैं
यथा* धातकीखण्डे हिमवत्-आदीनाम् विष्कम्भः	=जैसे धातकीखंडमें हिमवान् आदिक (कुलाचलों)का विस्तार है
तथा* पुष्करार्धे हिमवत्-आदीनाम्	=तैसे पुष्करार्धविषैं हिमवान् आदिक (कुलाचल) निका
विष्कम्भः द्विगुणः इति* व्याख्यायते। नामानि	=(विस्तार) दुगुना है इसमकार विवरण कियागया है। नाम
तानि एव* इष्वाकारौ मन्दिरौ च*	=तेही हैं दो इष्वाकारपर्वत और दो (पूर्वमें मन्दिर नामा और पश्चिममें विद्युन्माली)मेरु
पूर्ववत्* यत्र* जम्बूद्वीपे जम्बूवृक्षः तत्र*	=पहिले (धातकीखंडद्वीप) के समान हैं। यहां जम्बूद्वीपमें जंबूवृक्ष है। वहां(पुष्करद्वीपमें)
पुष्करम् सपरिवारम् ततः* एव* तस्य	=पुष्करवृक्ष (चारोओर अपने छोटे२) परिवार(के वृक्षों) सहित है। वहांसे ही तिस
द्वीपस्य अनुरूढम् पुष्करद्वीपः इति* नाम॥	=द्वीपकी सार्थकसंज्ञा (=अनुरूढ)पुष्करद्वीप ऐसानाम वा संज्ञा है
अथ* कथम्* पुष्कर-अर्द्ध-संज्ञा। ? मानुषोत्तर-	=आगे (=अथ)किसप्रकार (इसद्वीपका) पुष्करार्द्ध नाम है (उत्तर) मानुषोत्तर–
शैलेन विभक्त-अर्द्धत्वात् पुष्करार्द्ध-	=पर्वतकरि विभाग आधे आधे होनेसे पुष्करार्द्ध
संज्ञा॥	=नाम है अर्थात् मानुषोत्तरपर्वत ने इसद्वीपके मध्यमें पतनकरि अथवा अवस्थित होकर दोभाग करदिये हैं इससे पुष्करार्द्ध ऐसा नाम है
अत्र* आह। किम्-अर्थम् जम्बूद्वीप-हिमवत्-	=(प्रश्न) यहां पूछता है कि किसलिये जंबूद्वीपके हिमवान्
आदिसंख्या द्विः* आवृत्ता पुष्करार्द्धे कथ्यते।	=आदिककी गणना दुगुणीवार (=द्विःआवृत्ता) पुष्करार्द्धद्वीपविषैंवर्णित है
न* पुनः* कृत्स्ने एव* पुष्करद्वीपे	=बहुरि समस्त (=कृत्स्ने)ही पुष्करद्वीपमें (भरतादिकक्षेत्र) क्यों नहीं कहेगये हैं। आधेमें क्यों कहेगये हैं ? (कृत्स्ने और द्वीपे पुलिंग नपुंसकलिंग दोनों लिंगोंमें आते हैं)
इति* अत्र* उच्यते।	=ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां (इसअवसर पर) (उत्तर सूत्रमें) कहाजाता है कि

रुभयोश्च विजयार्द्धयोरन्तेष्वष्टौ । तत्र दिक्षु द्वीपा वेदिकायास्तिर्यक्पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपाः पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति । शैलान्तेषु द्वीपाः षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु द्वीपाः शतयोजनविस्ताराः । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपास्तदर्धविष्कम्भाः ।

उभयोः६/२।च*विजयार्द्धयोः६/२।अन्तेषु७/३।	=दोनोंके (पूर्व और पश्चिम) और दोनों वैताढ्यों के(पूर्व और पश्चिम के)अन्तविषैं
अष्टौ१/३।	=आठ हैं (अर्थात् सब मिलकर चौवीस अंतर्द्वीपहैं)
तत्र*दिक्षु७/३।द्वीपाः१/३।वेदिकायाः५/१।।तिर्यक्*	=तहां (आठ) दिशाविषैं अन्तर्द्वीप (=जम्बूदीपकी) वेदिकाके तिर्यक्
पञ्चयोजनशतानि१/३।।।प्रविश्य – भवन्तिTविदिक्षु७/३।च*	=पांचसौ योजन (समुद्र में) प्रवेश होते हैं और (=च)विदिशा
अन्तरेषु७/३।द्वीपाः१/३।पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु७/३।।।	=अन्तराल में (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीप की वेदिका से) पांचसो पचास योजन
गतेषु७/३।।।भवन्तिT । शैल-अन्तेषु७/३।द्वीपाः१/३।	=परे (समुद्रमें) हैं । पर्वतों के अन्त में (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीपकी वेदीसे)
षट्सु७/३।।योजनशतेषु७/३।।।गतेषु७/३।।भवन्तिT । दिक्षु७/३।	=छहसो योजन परै (=गतेषु) (समुद्र में) है । (आठ) दिशाओंमें
द्वीपाः१/३।शतयोजन-विस्ताराः१/३।;विदिक्षु७/३।अन्तरेषु७/३।च*	=अन्तरद्वीप सौ सौ योजन विस्तार वाले है । बहुरि (=च)(आठ)विदिशाअंतरालमें
द्वीपाः१/३।तद्द-अर्ध-विष्कम्भाः१/३।	=अन्तर्द्वीप उन (आठ आठ दिशा वाले अन्तर्द्वीपों से) आधे आधे अर्थात् पचास पचास योजन विस्तार वाले हैं



(१) ज्योतिष विषयमें आठ दिशा मानी गई है और यहां पर पूज्यपाद स्वामी ने अन्तर्द्वीपोंके विस्तारके संबन्धमें सामान्य कथन किया है इसलिये आठ दिशाके अन्तर्द्वीपोंका जो जम्बूद्वीपकी वेदिकासे पांचसौ योजन समुद्र में परे हैं सौ सौ योजन विस्तार कहा है परन्तु बहुधा करि ससारमें चारदिशा पूर्व, उत्तर, पश्चिम और दक्षिण प्रसिद्ध हैं और चारही विदिशा ईशान, वायव्य, नैऋत्य, आग्नेय प्रसिद्ध हैं इसलिये प० जयचन्द्ररायजी ने सर्वार्थसिद्धिकी वचनिकामें पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण, चार ही दिशा मान कर और ईशान वायव्य, नैऋत, आग्नेयको विदिशा मानकर विशेषत यह कथन किया है कि "तहां दिशानि के (चार) द्वीप तौ जम्बूद्वीप की वेदी तैं पांचसौ योजन परैं समुद्र में है तिनका सौ सौ योजन विस्तार है। बहुरि विदिशानि कै (चार) द्वीप वेदीनितैं पांचसो योजन परे है तिनका विस्तार पचावन पचावन (५५) योजन का है बहुरि दिशा विदिशानिके अन्तरालके(आठ)द्वीप वेदी तैं पांच से पचास योजन परैं है। तिनिका विस्तार पचास पचासयोजनका है" ॥

वेदितव्याः ॥ ते द्विविधाः ॥

॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्यन्त इत्यार्याः । ते द्विविधाः । ऋद्धिप्राप्तार्या अनृद्धिप्राप्तार्याश्चेति ॥ अनृद्धिप्राप्तार्याः पञ्चविधाः । क्षेत्रार्या जात्यार्याः कर्मार्याश्चरित्रार्या दर्शनार्याश्चेति ॥ ऋद्धिप्राप्तार्याः सप्तविधाः । बुद्धिविक्रियातपोबलौषधरसाक्षीणभेदात् ॥ म्लेच्छा द्विविधाः । अन्तर्द्वीपजाः कर्मभूमिजाश्चेति ॥ तत्रान्तर्द्वीपा लवणोदधेरभ्यन्तरेऽष्टासु दिक्ष्वष्टौ । तदन्तरेषु चाष्टौ, हिमवच्छिखरिणो-

---

वेदितव्याः।ते।द्विविधाः। =जानना चाहिये ते (मनुष्य) दो प्रकार हैं ॥

सूत्रम्–'आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥=(मनुष्याः) आर्या म्लेच्छाश्च भवन्ति ॥३६॥

सूत्रार्थः–मनुष्याः।आर्याः।म्लेच्छाः।च*भवन्ति। =मनुष्य आर्य और (=च) म्लेच्छ होते हैं

वृत्त्यर्थः–गुणैः।गुणवद्भिः।वा*अर्यन्ते।इति*आर्याः।=गुणों करि अथवा गुणवान पुरुषोंकरि सेवेजाय हैं ऐसे आर्या हैं

ते।द्विविधाः।ऋद्धिप्राप्त-आर्याः।च*अन्-ऋद्धिप्राप्त- =ते (आर्या) दो प्रकार हैं। ऋद्धि प्राप्त आर्या और अनृद्धिप्राप्त

आर्याः।इति*अनृद्धिप्राप्तार्याः।पञ्चविधाः। =आर्या। अनृद्धिप्राप्त आर्य पांच प्रकार हैं।

क्षेत्र-आर्याः।जाति-आर्याः।कर्म-आर्याः।चारित्रआर्याः।=क्षेत्र-आर्य, जाति आर्य, कर्म आर्य, चारित्र आर्य,

दर्शन-आर्याः।च*इति*। ऋद्धि-प्राप्त-आर्याः। =और (=च) दर्शन आर्य ऐसे हैं। ऋद्धि प्राप्त आर्य

सप्त-विधाः।बुद्धि-विक्रिया-तपस्-बल-औषध-रस- =सात प्रकार, बुद्धिऋद्धि,विक्रियाऋद्धि,तपोऋद्धि, बलऋद्धि,औषधऋद्धि, रसऋद्धि

अक्षीण-भेदात्। =अक्षीणऋद्धि भेदोंकरि, हैं(इनके भेद, प्रभेदके वास्तेदेखो प०जय०वच० ३३१से३४०)

म्लेच्छाः।द्वि-विधाः।अन्तर्द्वीपजाः।कर्मभूमिजाः।चइति=म्लेच्छ (म्लेच्छ,म्लिश) दो प्रकार हैं अन्तर्द्वीपमें उत्पन्नहुये, और कर्मभूमिमें उत्पन्नहुये

तत्र*अन्तर्द्वीपजाः।लवणोदधेः। =तहां अंतर्द्वीपज लवणसमुद्र के

अभ्यन्तरे।अष्टासु।दिक्षु।अष्टौ। =भीतर (=अभ्यन्तरे) आठ (पूर्व, ईशान्य वा ईशान,उत्तर, वायव्य, पश्चिम, नैऋत्य वा नैऋत, दक्षिण, आग्नेय वा अग्नि) दिशामें (दिक्षु) आठ (अन्तर्द्वीप)

तद्-अन्तरेषु।च*अष्टौ।हिमवत्-शिखरिणोः। =तथा तिन(दिशाओं)के अंतराल वा मध्यमें आठ (अंतर्द्वीप)और हिमवत् शिखरीपर्वत

अन्तरेषु अश्वसिंहश्वमहिषवराहव्याघ्रकाककपिमुखाः ॥ मेघविद्युन्मुखाःशिखरिण उभयोरन्तयोः

	पूर्व-उत्तर-पश्चिम-दक्षिण चार दिशाओं तथा ईशान-वायव्य-नैऋत्य-आग्नेय चार विदिशाओंके
(१)अन्तरेषु[७/३]।(दिक्षु[७/३]।)	=अंतरालोंमें-अन्तर्दिशाओंमें अर्थात् चारदिशा चार विदिशाओंके बीच बीच की(आठ)दिशाओंमें जो अंतर्द्वीप हैं उनमें रहनेवाले मनुष्य
अश्व-मुखाः[१/३]।सिंह-मुखाः[१/३]।,श्व-मुखाः[१/३]।	=घोड़ा के सदृश मुखवाले, सिंह सरीखे मुखवाले, कुत्ता सम मुखवाले,
महिष-मुखाः[१/३]।वराह-मुखाः[१/३]।,व्याघ्र-मुखाः[१/३]।	=भैंसा समान मुखवाले, सूकर सम मुखधारक, बघेराके सदृश मुखधारक
(२)काक-मुखाः[१/३]।कपि-मुखाः[१/३]। ॥	=काक समान मुखवाले वा कऊआ सदृश मुखके धारक, बंदरके समान मुखवाले, होते हैं ॥
मेघ-मुखाः[१/३]।विद्युन्मुखाः[१/३]।शिखरिणः[६/१]।	=मेघ मुखवाले और विजलीके सदृश मुखवाले (मनुष्य) शिखिरी पर्वतके
उभयोः[६/२]।अन्तयोः[६/२]।	=दोनों (पूर्व-पश्चिमके) अंतोंमें-छोरोंमें (दो अंतर्दीपों में वसने वाले) हैं

तथा दो हस्त लिखित अन्य प्रतियें जो हमको इन्द्रप्रस्थके मन्दिरोंसे प्राप्त हुई हैं सबमें ही 'कर्णप्रावरण' पाठ है। इसके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है कि 'म्लेच्छा द्विविधा वेदितव्याः इत्यादि से····· सर्वे ते पल्योपमायुषः पर्यन्त सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और राजवार्तिकका लेख लगभग एकही है ॥ तीसरे यह कि 'प्रावरण' का अर्थ दुपट्टा है केवल'प्रावरण'का विना कर्ण शब्द लाये हुये कुछभी अर्थ नहीं होसकता है अतःपाठ शुद्ध करके लिखा है ॥

(१) 'अन्तरेषु' शब्द के सम्बन्ध में हमारी वही टिप्पणी है जो हमने पृष्ठ ७७ में 'विदिक्षु' शब्द के सम्बन्ध में दी है।

(२) 'काक' शब्दके पश्चात् 'घूक' शब्द दो हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धि वृत्तियोंसे मिलाया गया उनमें किसीमें नहीं है। 'घूक' का अर्थ घुग्घू वा उल्लू है। पं० जयचन्द्रायजीने 'श्वान के सदृश मुखवाले' वा श्वानमुखा अपनी वचनिकामें नहीं लिखा है परन्तु 'उलूकमुखा' 'काक मुखा' लिखा है सम्भव है कि जिस प्रतिसे उनने वचनिका की हो उसमें "श्वमुखा" नहो और'काकघूकमुखाः'हो जैसा कि सर्वार्थ सिद्धि की दोनों मुद्रित आवृत्तियों से प्रगट है ॥ राजवार्तिककी मुद्रित तथा हस्तलिखित दोनों प्रकारकी प्रतियों में "अश्व सिंह-श्व-महिष-वराह-व्याघ्र उलूक-कपिमुखाः" ऐसा पाठ है अर्थात् "काकघूकमुखाः" के स्थान में 'उलूकमुखाः' शब्द है यदि हम यह मानलें कि शुद्धपाठ वाली सर्वार्थसिद्धिमें 'घूक' शब्द नहीं है तो 'काकमुखाः' के स्थान में'उलूक मुखाः'रहजाता है ॥ हमने एक बहुत प्राचीन हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिसे ऊपर का पाठ उद्धृत किया है उसमें 'घूक' शब्द नहीं है अतः घूक शब्द छोड़दिया है हमारे विचारमें उपर्युक्त आठ अन्तर्दिशाओंमें नो प्रकारके मुखवाले नहीं होसक्तेहैं। भूल होतो पाठक कृपया सूचित करें ॥

शैलान्तेषु पञ्चविंशतियोजनविस्तारा: । तत्र पूर्वस्यां दिश्येकोरुका: । अपरस्यां दिशि लांगूलिन: उत्तरस्यां दिश्यभापका: । दक्षिणस्यां दिशि विषाणिन: । विदिक्षु शशकर्णशष्कुलीकर्ण कर्णप्रावरण लम्बकर्णा:

शैल—अन्तेषु ७/३।	=(हिमवान्-शिखिरी औरदोविजयार्द्ध)पर्वतोंके(आठ)छोरों में वा आठ प्रान्तों में (आठद्वीप)
पञ्चविंशतियोजन-विस्तारा: १/३।	=पचीस पचीस-योजन विष्कम्भ के धारक हैं
तत्र*पूर्वस्याम् ७/१।दिशि ७/१।एक-ऊरुका: १/३।	=जहां पूर्वदिशामें (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले) एक जांघ के (ऊरुका) धारक हैं अर्थात् एक टांगवाले मनुष्य पूर्वी अन्तर्द्वीपमें निवास करते हैं
अपरस्याम् ७/१।दिशि ७/१।लांगूलिन: १/३।	=पश्चिम दिशा में (जो अन्तर्द्वीप हैं उसमें रहने वाले मनुष्य) पूंछ वाले हैं
उत्तरस्याम् ७/१।दिशि ७/१।अभापका: १/३।	=उत्तर दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) वचन रहित गूंगे हैं
दक्षिणास्याम् ७/१।दिशि ७/१।विषाणिन: १/३।	=दक्षिण दिशा में (जो अंतर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) सींग वाले हैं
(१)विदिक्षु ७/३ ॥	=(चार) विदिशाओं (ईशान–वायव्य-नैर्ऋत्यु-आग्नेय) में (जो अंतर्द्वीप हैं उनके मनुष्य)
शशकर्ण—	=खरहा के सदृश कानवाले (=शशकर्ण) मनुष्य हैं (शशक-खरहा-ससा एकार्थी हैं)
शष्कुलीकर्ण –	=साकल वा शाकली कहिये यवकी नालीके समानहैं कान जिनके ऐसे मनुष्य अर्थात् एक प्रकार के मच्छ सदृश हैं कान जिनके ऐसे मनुष्य होते हैं
(२)कर्ण-प्रावरण—	=कान ही है ओढ़ने और ढकने का दुपट्टा वा उपकरण जिनकें अर्थात् अंतर्द्वीप के रहने वाले वे मनुष्य जिनके चादरा वा उससे और बड़े बड़े कान हैं जिनमेंसे एक कान वह बिछा सकते हैं दूसरे को ओढ़ सकते हैं
लम्बकर्णा: १/३।	=(भिन्न भिन्न) लम्बाई के कानों सहित अन्तर्द्वीप वासी मनुष्य हैं ॥

(१) विदिक्षु:—इस शब्द को मुद्रणयंत्र वालो ने तथा लेखकोंने असावधानीसे किसी-किसी हस्त लिखित लिपिमें उत्तर वाक्य "अश्व-सिंहश्वमहिश इत्यादि में मिलाकर" "विदिक्ष्वश्वसिंहश्वमहिश इत्यादि" लिखदिया है तथा छापदिया है। किसी किसी प्रतिमें इस शब्दके आगे पीछे एक एक विराम का चिह्न देकर "।विदिक्ष।" ऐसा लिखा है। कहीं पर दोनों वाक्यों को एक कर दिया है जिससे यह नहीं जान पड़ता है कि यह शब्द विदिशाओं से संबन्ध रखता है अथवा विदिशाओं के बीच २ में जो दिशायें हैं उनसे सम्बन्ध रखता है हमने इसको सबसे प्रथममें लिखा है इससे स्पष्ट होजाय कि यह प्रथम वाक्य से सम्बन्ध रखता है। और ईशान-वायव्य-नैर्ऋत्य-आग्नेय विदिशाओं का द्योतक है

(२) 'कर्ण-प्रावरण' के स्थान में 'प्रावरण' ऐसा सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें अशुद्ध छप गया है। क्योंकि हमने हस्तलिखित तीन प्रतियोंसे मिलाया तो सबमें 'कर्ण-प्रावरण' निकला दूसरे यह कि मुद्रित राजवार्तिक, तथा पं०पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित राजवार्तिक

बाहिरीपरिधि सम्बन्धी ऐसे सब कालोदधि सम्बन्धी अड़तालीस अन्तर्द्वीपहुये । अतः लवणोदधि औरकालोदधिके सब छयानवे अन्तर्द्वीप हुये॥

(१) हमारे यहां आचार्योंमें पूज्यपाद स्वामीके मतमें तथा श्रीमद्विद्यानन्दिके मतमें छियानवे (अडतालीस-लवनोदधि-सम्बन्धी और अड़तालीस कालोदधि सम्बन्धी) अन्तर्द्वीप है ,राजवार्तिकके रचयिता श्रीमद्भट्ट अकलंकदेवके मतमें अडतालीस (चौबीस लवनोदधि सम्बन्धी और चौबीस कालोदधि सम्बन्धी)ऐसे केवल अडतालीस अन्तर्द्वीप है । "जयचंद्रराय जी ने अडतालीसका उल्लेख किया है । पं० सदासुखजीने, प० गोपालदासजी इत्यादि ने छियानवे का ॥ श्वेताम्बर आम्नाय के 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में हिमवान् पर्वतके सम्बंधी छप्पन अतर्द्वीप माने हैं और "इसी प्रकार छप्पन अन्तरद्वीप शिखरी पर्वत संबंधी भी" माने हैं ॥ 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगसूत्र' के पृष्ठ ८७ को देखो ॥

"ते चतुर्विंशतिरपिद्वीपाः जलतलादेक योजनोत्सेधा ॥ लवणोदधेर्बाह्यपार्श्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्याः ॥ तथा कालोदेऽपि" वेदितव्याः ॥ सर्वार्थसिद्धि वृत्ति प्रथम संस्करण पृष्ठ २२४ और द्वितीयावृत्ति पृष्ठ १३१ ॥ इसके अनुवाद के वास्ते देखो पृष्ठ ७६ ॥ हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धि का आशय यही है परन्तु पाठ तनिक भिन्न है ॥ वह इस प्रकार है कि "ते चतुर्विंशति द्वितीय पक्षेपि उभयोस्तटयोश्चत्वारिंशद्वीपा जलतलादेक योजनोत्सेधा ॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्याः" =वे चौवीस अन्तर्द्वीप पक्षान्तरमें (अर्थात् दूसरी कल्पनामें और दूसरे मतमें) भी (लवणोदधिके दोनों भीतरी बाहिरी तटोंमें चौबीस चौबीस अन्तर्द्वीप जलके तलसे एक योजन ऊंचे हैं । कालोदधिकेभी इतनेही जानना चाहिये ।

"तत्राद्यास्तावल्लवणोदस्योभयोरष्टचत्वारिंशत् तथा कालोदस्य इति षण्णवतिः" =तहां प्रथम कहे हुये तो लवण समुद्रके दोनों तटोंके अड़तालीस (अन्तरद्वीप) है । और कालोदधिके इसप्रकार छियानवै हैं ॥ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३५७ ॥ जैसे लवण समुद्रमें अन्तरद्वीप अड़तालीस हैं दोऊ तट सम्बन्धी, तैसेही कालोदधि समुद्रमें अड़तालीस जानना ऐसे समस्त छियाणवैं अन्तरद्वीपनिमें कुभोग भूमिया मनुष्य हैं ॥ अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ २०८ ॥ लवण समुद्र और कालोदधि समुद्रमें ९६ अन्तरद्वीप है जिनमें कुभोग भूमिकी रचना है । वहां मनुष्यही रहते हैं उनमें मनुष्योंकी आकृति नाना प्रकारकी कुत्सित है ॥ सिद्धान्तप्रवेशिका पृष्ठ १३४ ॥ ते चतुर्विंशतिरपिद्वीपाः जलतलादेकयोजनोत्सेधा तथा कालोदेऽपि वेदितव्याः ॥ मुद्रित तत्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १४५ ॥ यही पाठ हस्तलिखितमें है ="बहुरि ये चौबीसहू अन्तरद्वीप हैं ते जलके तलमें एक एक योजन ऊचे हैं ॥ जैसे लवणोदधिके विषै अन्तरद्वीपनिका कथन है तैसेही कालोदधिके विषैभी जानना" ॥ पं० पन्नालाल दूनीकृत भाषा पृष्ठ ८८६ ॥

"बहुरि ए चौबीसही द्वीपजलके तलतैं एकएक योजन उचेहैं । ऐसेही कालोद समुद्र विषैं जानना"पं०जयचन्दजीकृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ३४१ हिमवान् पर्वत सबन्धी छप्पन अन्तर्द्वीप सभाष्य० (पृष्ठ ८६-८७) में कहने के पश्चात् उल्लेख किया है कि "इसी प्रकार छप्पन अन्तर्द्वीप शिखिरी पर्वत सम्बन्धी भी जानना चाहिये" 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' पृष्ठ ८७ ॥ इसके पश्चात् चरणटिप्पणी ऐसे दी है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०की चरणटिप्पणीः- "यह अन्तरद्वीपका भाष्य प्रायः नष्ट होगया है, कई दुर्विदग्ध छयानवें अन्तरद्वीप भाष्यमें लिखतेहै किन्तु यह अनार्ष है, क्योंकि आर्ष जीवागमादि ५६ही मिलता है । वाचक परंपरासे यह भेद नहीं है क्योंकि सूत्रका उल्लंघन नहीं होता । इसलिये इष्टसिद्धान्त भाष्यको नष्ट किया है" ॥

मत्स्यमुखकालमुखाः हिमवत उभयोरन्तयोः। हस्तिमुखा आदर्शमुखाः उत्तरविजयार्द्धस्योभयोरन्तयोः। गोमुखमेषमुखाः दक्षिणदिग्विजयार्धस्योभयोरन्तयोः। एकोरुका मृदाहारा गुहावासिनः शेषाः पुष्पफलाहारा वृक्षवासिनः सर्वे ते पल्योपमायुषः॥ ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलादेकयोजनोत्सेधाः॥ लवणोदधेर्बाह्यपार्श्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्याः॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्याः॥

मत्स्य-मुखाः१।काल-मुखाः१। (१)	=मच्छ वा मच्छलीके समान मुखवाले और काले वा कालेनीले (=काल) मुखवाले
हिमवतः६।उभयोः७।अन्तयोः७।	=हिमवान् कुलाचलके दोनों (पूर्व-पश्चिम) छोरोंमें (दो अन्तर्द्वीपोंके रहनेवाले) हैं
हस्ति-मुखाः१।आदर्श-मुखाः१।	=हस्ती समान मुखवाले (मनुष्य) और दर्पन समान मुखवाले (मनुष्य)
उत्तरविजयार्द्धस्य६। उभयोः७।अन्तयोः७।	=उत्तर वैताड्य पर्वतके दोनों (पूर्व-पश्चिम) छोरोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) हैं
गो-मुखाः१।मेष-मुखाः१।	=गो सदृश मुख धारक (मनुष्य) और मेडा वा भेड़ समान मुखवाले (मनुष्य)
दक्षिणदिग्विजयार्धस्य६।उभयोः७।अन्तयोः७।	=दक्षिण दिशिके वैताड्य पर्वतके दोनों (पूर्व-पश्चिम) अन्तोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) हैं
एक-(२)ऊरुकाः१।मृद्-आहाराः१।गुह-आवासिनः१।	=एक जांघवाले मनुष्य मिट्टीका आहार करनेवाले हैं (और) गुफाओंमें रहनेवालेहैं
शेषाः१।पुष्प-फल-आहाराः१।वृक्ष-वासिनः१।	=अवशेष मनुष्य (जो अंतर्द्वीपों में रहते हैं) फूल फलके आहारी हैं पेड़ोंके वासी हैं
सर्वे१।ते१।पल्योपम-आयुषः१। । ते चतुर्विंशतिः१॥	=वे समस्त पल्य प्रमाण आयुके वा स्थितिके धारक हैं। वे चौवीसों
अपि*द्वीपाः१।जल-तलात्५।एक-योजन-उत्सेधाः१।	=ही (अन्तर) द्वीप जलके तलसे एक योजन ऊंचे हैं वा जोजनके उंचाई वाले हैं
लवण-उदधेः६।बाह्य-पार्श्वे७।अपि*एवम्*	=लवण समुद्रके वाहिरी चक्र वा वाहिरी परिधिमें (=बाह्य-पार्श्वे) भी ऐसे
चतुर्विंशतिः१।द्वीपाः१।विज्ञातव्याः१।	=चौवीस (अन्तर) द्वीप जानना चाहिये अर्थात् चौवीस अन्तरद्वीप जो ऊपर कहे और जो लवण समुद्रकी भीतरी परिधिमें हैं वे और चौवीस ये वाहिरी परिधिके सब ४८ भये॥
तथा*कालोदे७।अपि*वेदितव्याः१।	=वैसे ही (जैसा कि ऊपर कहचुके हैं) कालोदधि समुद्रमें भी (४८ अन्तर्द्वीप) हैं अर्थात् चौवीस अन्तर्द्वीप कालोदधिकी भीतरी परिधि सम्बन्धी और चौवीस ही

---

(१) काल=काला, कालानीलामिश्रित (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १०६ वैद्यमहाशयका कोशपृष्ठ १८५)॥ (२) ऊरु=जांघ, ऊरुक=जांघवाला, जांघधारक

भरतैरावतविदेहाश्च पञ्च पञ्च, एताः कर्मभूमय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ तत्र विदेहग्रहणाद्दे-वकुरूत्तरकुरुग्रहणे प्रसक्ते तत्प्रतिषेधार्थमाह "अन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः" इति ॥ अन्यत्र शब्दो वर्जनार्थः । देवकुरव उत्तरकुरवो हैमवतो हरिवर्षो रम्यको हैरण्यवतोऽन्तर्द्वीपाश्च भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ अथ कथं कर्मभूमित्वं ? शुभाशुभलक्षणस्य कर्मणोऽधिष्ठानत्वात् ॥ ननु सर्वं लोक-त्रितयं कर्मणोऽधिष्ठानमेव,

---

वृत्त्यनुवादः—भरत-ऐरावत-विदेहाः१।३ च॰पञ्च१।३ = भरत, ऐरावत और विदेहक्षेत्र पांच,

पञ्च१।३ एताः१।३ कर्मभूमयः१।३ इति॰व्यपदिश्यन्ते = पांच हैं। इतनी कर्म भूमियें इसप्रकार विवरण कीगई हैं।

तत्र॰विदेह-ग्रहणात्५।१ देवकुरु-उत्तरकुरु- = तहां (सूत्रमें) विदेहके ग्रहणसे देवकुरु और उत्तर कुरुके (जोजम्बूद्वीपकेविदेहवालेभागमें हैं)

ग्रहणे७।१ प्रसक्ते७।१ तत्-प्रतिषेध- = आदान अथवा उपलब्धिका प्रसंग होनेपर तिस (ग्रहण) के निराकरणके

अर्थम्२।१ आह अन्यत्र॰देवकुरु-उत्तरकुरुभ्यः५।३ इति॰ = लिये कहते हैं कि देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर (पंद्रह कर्म भूमियें हैं)

अन्यत्र॰शब्दः१।१ वर्जन-अर्थः१।१ देवकुरवः१।३ = (सूत्रमें) अन्यत्र शब्द निषेध के लिये है ॥ देवकुरुयें,

उत्तरकुरवः१।३ हैमवतः१।१ हरिवर्षः१।१ रम्यकः१।१ हैरण्यवतः१।१ = उत्तरकुरुयें, हैमवत, हरिवर्ष, रम्यक, हैरण्यवत, और

अन्तर्द्वीपाः१।३ भोगभूमयः१।३ इति॰व्यपदिश्यन्ते = अन्तर्द्वीप, भोग भूमियें इस प्रकार व्याख्यानकीगई हैं ॥ भावार्थ यह है कि पांच विदेह सम्बन्धी पांच देवकुरु (उत्तम भोग भूमियें) और पांच उत्तरकुरु (उत्तम भोग भूमियें) पांच मेरु सम्बन्धी पांच हरिवर्ष और पांच रम्यक ये दश मध्यम भोग भूमियें, और पांच मेरु सम्बन्धी पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत ये दश जघन्य भोग भूमियें और अड़तालीस अन्तर्द्वीपं लवणोदधि समुद्र सम्बन्धी और अड़तालीस ही कालोद समुद्र सम्बन्धी ऐसे छयानवे ये जघन्य कुभोग भूमियें, सर्व मिलकर एकसौ छब्बीस हैं। तिन सबको सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें भोगभूमियें कही है ॥

अथ॰कथं॰कर्म-भूमित्वं१।१ ? = आगे (=अथ) (पूर्वोक्त पंद्रह क्षेत्रोंके) कर्मभूमिपना कैसे है ॥

शुभ-अशुभ-लक्षणस्य६।१ कर्मणः६।१ अधिष्ठानत्वात्५।१ = (उत्तर) शुभ और अशुभ लक्षणरूप कर्मके आश्रयतासे (पूर्वोक्तपंद्रहक्षेत्रोंमेंकर्मभूमिपनाहै)

ननु॰सर्वम्१।१ लोक-त्रितयम्१।१ कर्मणः६।१ अधिष्ठानम्१।१ एव = प्रश्न (=ननु) सबतीनों (=त्रितय) लोक (क्या) कर्मके आधारही हैं ॥

त एतेऽन्तर्द्वीपजा म्लेच्छाः कर्मभूमिजाश्चशकयवनशवरपुलिन्दादयः॥ काःपुनः कर्मभूमय इत्यत आह—

॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥

ते॥एते॥अन्तर्द्वीपजाः॥म्लेच्छाः॥कर्म-भूमिजाः॥च॥	=ते इतने अन्तरद्वीपोंमें उत्पन्नहुये म्लेच्छ हैं। और (=च) कर्मभूमिमें उत्पन्नहुये
शक-यवन-शवर-पुलिन्द-आदयः॥पुनः॥कर्म-	=शक-यवन-शवर-पुलिन्द आदि (म्लेच्छ) हैं। (प्रश्न) पुनि कर्म-
भूमयः॥काः॥इति॥अतः॥आह।	=भूमियें क्या हैं। ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
[1]सूत्रम्—	=भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः[2]।
	=भरतैरावत विदेहाः(पञ्च, पञ्च, पञ्च, एताः) कर्मभूमयः भवन्ति,अन्यत्र(पञ्च)देवकुरुभ्यः,(पञ्च)उत्तरकुरुभ्यः।३७।
सूत्रार्थः—पञ्चदेवकुरुभ्यः॥	=(पांच मेरु सम्बन्धी)पांच देवकुरु[3](जहां उत्तम भोग भूमि प्रवर्तती है और)
पञ्चउत्तरकुरुभ्यः॥अन्यत्र॥	=(पांचमेरु सम्बन्धी पांच उत्तर कुरु[3](जहांभी उत्तम भोग भूमि वर्ते है)कोछोड़कर
पञ्च॥भरताः॥पञ्च॥ऐरावताः॥	=(पांच मेरु सम्बन्धी) पांच भरत क्षेत्र (पांच मेरु सम्बन्धी) पांच ऐरावत क्षेत्र
पञ्च॥विदेहाः॥	=(पांच मेरु सम्बन्धी सामान्यरूपसे) पांच (महा[4]) विदेह क्षेत्र (विशेषतासे प्रत्येक मेरुसम्बंधी बत्तीस बत्तीस विदेह ऐसे एकसौ साठ विदेह)
एताः॥कर्मभूमयः॥भवन्ति।	=ये कर्म भूमिये[4]) हैं॥ (इसकी विशेष टिप्पणी संख्या चारमें नीचे देखो)

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ (२) पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरुक्षेत्र ऐसे दश क्षेत्र हुये इसलिये सूत्रमें "देवकुरूत्तरकुरुभ्यः" पञ्चमी बहुवचन लाये हैं यदि एक एक क्षेत्र होता तो पञ्चमी द्विवचन 'देवकुरूत्तरकुरुभ्याम्' ऐसा वाक्य लाते।

(३) पांच मेरुसम्बन्धी पांच हरिवर्ष और पांच रम्यक क्षेत्र ये दश मध्यम भोगभूमियें, और पांच मेरुसम्बन्धी पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत ये दश जघन्य भोगभूमियें, अड़तालीस अन्तर्द्वीप लवण समुद्र सम्बंधी और अड़तालीस कालोदधि सम्बंधी ये छियानवै जघन्य भोगभूमियें हुईं इस प्रकार देवकुरु उत्तरकुरु दश उत्कृष्ट, दश मध्यम और दश जघन्य भोग भूमियें सर्व मिलकर एकसौ छब्बीस हुईं

(४) पांच विदेह पांच मेरु सम्बन्धी कहे हैं वास्तविक में पांच विदेह विशेषरूपसे एकसो साठ हैं। और प्रत्येक विदेहमें पांच म्लेच्छ खंड हैं, और एक आर्य खण्ड है। और पांच मेरुसम्बन्धी पांच भरतक्षेत्र हैं। और पांच ही ऐरावत क्षेत्र हैं। और प्रत्येक भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्रमें पांच पांच म्लेच्छ खंड हैं और एक एक आर्य खंड हैं। इस प्रकार विदेह और भरत और ऐरावत समस्त क्षेत्रों में १७० आर्य खण्ड हैं। और ८५० म्लेच्छ खण्ड हैं विशेषरूपसे १७० कर्मभूमियें हैं। सामान्यरूप से १५ हैं अर्थात् १६० विदेहों को पांच महाविदेह पांच मेरु-सम्बन्धी कहते हैं॥

पात्रदानादिसहितस्य तत्रैवारम्भात्कर्मभूमिव्यपदेशो वेदितव्यः॥ इतरासु दशविधकल्पवृक्ष-कल्पितभोगानुभवनविषयत्वाद्भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते॥ उक्तासु भूमिषु स्थितिपरिच्छेदार्थमाह—

पात्र-दान-आदि-सहितस्य६/१॥ तत्र-एव॥आरम्भात्५/१।	=प्रशस्त दानादिक (छहकर्मों) सहित तहांही प्रारम्भ होने (के निमित्त) से
कर्म-भूमि-व्यपदेशः१/१।वेदितव्यः१/१। इतरासु७/३॥	=(तिन पन्द्रहक्षेत्रोंका) कर्मभूमि नाम जानना चाहिये। अन्य वा दूसरों (क्षेत्र अर्थात् उपर्युक्त छयानवैं कुभोगभूमियोंमें और पूर्वोक्त तीस उत्तम,मध्यम जघन्यभोगभूमियों)में
दश-विध-कल्प-वृक्ष-कल्पित-भोग-अनुभवन-	=दश भांतिके कल्पवृक्षोंसे इच्छित वा वांछित भोगोंका अनुभवन
विषयत्वात्५/१॥भोगभूमयः१/३॥इति॥व्यपदिश्यन्तेT	=विषय होनेसे भोगभूमियें ऐसे नाम कहेजाते हैं (=व्यपदिश्यन्ते)
उक्तासु७/३॥भूमिषु७/३॥स्थिति-परिच्छेद-अर्थम्२/१॥आहT	=कथित (समस्त) भूमियोंमें आयुके अवधिके(=परिच्छेद) लिये कहते हैं कि

असिः१/१मषिः१/१॥कृषिः१/१॥विद्या१/१॥वाणिज्यं१/१॥शिल्पं१/१॥इति॥ अपि॥	=असि, मशि, खेती, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ऐसे भी
कर्माणि१/३॥ षड्विधानि१/३॥ स्युःT प्रजा-जीवनहेतवः१/३। ॥ १ ॥	=छह प्रकार कर्म प्रजाके जीविका (=जीवन) के कारण होते हैं ॥ १ ॥
अत्र॥असि कर्म १/१॥ सेवायाम् ७/१॥ मषि १/१॥लिपि-विधौ७/१॥	=यहां (कर्मभूमिमें) असिकर्म सेवाविषैं (और) मसी (कर्म) लेखनकार्यमें
स्मृता१/१॥ । कृषि १/१॥	=स्मरण किया जाना है। (खेती)कृषि
भू-कर्षणे७/१॥प्रोक्ता१/१॥विद्या१/१॥ शास्त्र उपजीवने७/१॥ ॥२॥	=भूमिके जोतनेमें विवर्णितहै (और)विद्या(कर्म) शास्त्रकी जीवकामें वा धंधेमें है
वाणिज्य१/१॥ वणिजां६/३। कर्म१/१॥ शिल्पं१/१॥स्यात्Tकर-	=वाणिज्यकर्म वनियों अथवा व्यापारियों का काम है। शिल्प (कर्म) हाथकी
कौशलम् १/१॥	=निपुणता, चतुरता वा प्रवीणताहै अर्थात् हस्तसे नानाप्रकारके काममेंचतुराईहै
तत्१/१॥ च॥चित्र-	=और(=च)वह(शिल्पकर्म)चित्र विचित्र अर्थात् बहुरङ्गी मूर्तियांबनाना(चित्र)
कला-पत्र-	चौंसठ प्रकारका गाना बजाना आदि (=कला)पर्ण अथवा कागदका
च्छेदादि१/१॥ बहुधा॥स्मृतम् १/१॥	=छेदना, काटना, बनाना, इत्यादि बहुप्रकार(को निपुणता) स्मरण कीजातीहै(३)

(१) देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय. संयमस्तपः। दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

देवपूजा१/१॥ गुरु-उपास्तिः१/१॥स्वाध्यायः१/१। सयमः१/१। तपः१/१॥	=देवकी पूजा, गुरुकी उपासना,अर्थात् सेवा(उपास्ति) शास्त्रकाअध्ययन,संयम, तप,
दान१/१॥ च॥इति॥गृहस्थानाम् ६/३। षट्-कर्माणि१/३॥दिने७/१ दिने७/१	=बहुरि दान इस प्रकार गृहस्थोंके छह कर्म प्रत्येक दिनमें(दिनेदिने) होते हैं।

तत एवं प्रकर्षगतिर्विज्ञायते प्रकर्षेण यत्कर्मणोऽधिष्ठानमिति ॥ तत्राशुभकर्मणस्तावत्सप्तमनरकप्रापणस्य भरतादिष्वेवार्जनं, शुभस्य सर्वार्थसिध्यादिस्थानविशेषप्रापणस्य पुण्यकर्मण उपार्जनं, तत्रैव कृष्यादिलक्षणस्य षड्विधस्य कर्मणः

ततः॥एवम्॥प्रकर्ष-	=वहां (कर्मभूमिमें कर्मका आधारपना) वास्तविक (=एवं) उत्कर्ष
गतिः विज्ञायते (१)प्रकर्षेण॥यत् कर्मणः	=दशा (=गति) में जाना जाता है (अर्थात्) उत्कृष्टपनासे जो कर्मका
अधिष्ठनम् इति॥	=आश्रय है ऐसा भावार्थ है कि आचार्यके इस उत्तर पर कि कर्मके आश्रयपनासे इन पन्द्रह क्षेत्रोंकें कर्म भूमिपना है शिष्यने फिर तर्क की कि कर्मके आधार तौ तीन लोकही हैं तौ तीनों लोक कर्मभूमि क्यों न कहेगये इसपर कहते हैं कि कर्मका आधार तौ तीनोंलोकमें अवश्य है। परन्तु जिन स्थानोंमें कर्मका आश्रय अतिशयकरि अथवा उत्कृष्टपनासे पायाजाता है। उन पन्द्रह भूमियोंको कर्मभूमि कहा है। (आगे इस उत्कृष्ट कर्मपनाके दो दृष्टान्त देते हैं)
तत्र॥अशुभ-कर्मणः तावत्॥सप्तम-नरक-	=तहां अशुभरूपकर्मसे सातवां नर्क तक (=तावत्)
प्रापणस्य भरतादिषु एव॥अर्जनम्	=पानेकी(=प्रापणस्य)भरतादिक(पन्द्रहकर्मभूमियों)में ही सिद्धिवा प्राप्ति(=अर्जन)होती है।
शुभस्य सर्वार्थसिद्धि-स्थान-विशेष-प्रापणस्य	=(और) शुभरूप (कर्मसे) सर्वार्थसिद्धि(आदिक) विशेष स्थानोंके पानेके
पुन्य-कर्मणः उपार्जनम् तत्र॥एव॥	=पुण्यकर्मका उपार्जन है। तहां (कर्मभूमियोंमें) ही
(२)कृषि-आदि-लक्षणस्य षड्-विधस्य कर्मणः	=खेती करना आदिक लक्षणरूप छः प्रकारके कर्मका

(१) 'प्रकर्ष' शब्द पुल्लिंग है। जब 'प्रकर्षेण' और 'प्रकर्षात्' करण कारक और अपादान कारकोंके एकवचन उत्कृष्टता वा प्रधानताके अर्थमें आते हैं तब उनका प्रयोग अव्ययकी भांति होता है। इसलिये 'उत्कर्षेण' शब्दको पदच्छेदमें अव्यय लिखा है। देखो वैद्यकोश पृष्ठ ४५६ ॥

(२) (क) असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमित्यपि। कर्माणि षड्विधानिस्युः प्रजाजीवनहेतवः ॥ १ ॥ (ख) अत्रासिकर्म सेवायां मषिर्लिपिविधौ स्मृता। कृषिर्भूकर्षणे प्रोक्ता विद्या शास्त्रोपजीवने॥२॥ वाणिज्यं वणिजां कर्म शिल्पं स्यात्करकौशलम्। तच्च चित्रकलापत्रच्छेदादिबहुधा स्मृतम् ॥३॥

अन्वर्थसञ्ज्ञा एताः ॥ आद्यं व्यवहारपल्यमित्युच्यते उत्तरपल्यद्वयस्य व्यवहारबीजत्वात् नानेन किञ्चित्परिच्छेद्यमस्तीति। द्वितीयमुद्धारपल्यं। तत उद्धृतैर्लोमकच्छेदैर्द्वीपसमुद्राः संख्यायन्त इति। तृतीयमद्धापल्यमद्धाकालस्थितिरित्यर्थः ॥ तत्राद्यस्य प्रमाणं कथ्यते। तद्यथा—प्रमाणांगुल

अन्वर्थ-संज्ञाः$\frac{1}{3}$।।एताः$\frac{1}{3}$।।	=ये (तीनों पल्य) सार्थक नामवाले हैं अर्थात् जैसाजैसा जिसजिस पल्यका नाम है वैसा वैसा उस पल्य का अर्थ है।
आद्यम्$\frac{1}{1}$।।। व्यवहारपल्यम्$\frac{1}{1}$।।। इति❀उच्यते। उत्तर-	=प्रथम व्यवहार पल्य (नाम) कहाजाता है क्योंकि (वह व्यवहारपल्य) अग्रिम
पल्य-द्वयस्य$\frac{6}{1}$। व्यवहार-बीजत्वात्$\frac{5}{1}$।।।	=दो पल्य (उद्धार तथा अद्धा)के व्यवहार अथवा वर्तनेका कारण (=बीजत्वात्) है अर्थात् उद्धार और अद्धापल्यकी उत्पत्ति जाननेके लिये व्यवहारपल्य है।
न❀अनेन$\frac{3}{1}$।।। किञ्चित्❀परिच्छेद्यम्$\frac{1}{1}$।।।अस्ति इति❀	=न इस (व्यवहार पल्य) करि कोई वस्तु (किञ्चत्) प्रमाण कियेजाने योग्य वा विचारनीय है अर्थात् व्यवहार पल्य किसी वस्तुके नापनेके काममें नहींआती है। केवल उसमें रोमोंकी गणना ४५ अंक प्रमाण होती है "प्रथम रोम गिनिदेय"
द्वितीयम्$\frac{1}{1}$।।उद्धारपल्यम्$\frac{1}{1}$।।ततः❀उद्धृतैः$\frac{3}{3}$।लोमकच्छेदैः$\frac{3}{3}$।	=दूसरी उद्धारपल्य है वहांसे लोमकखंड निकालकरि वा उद्धारकरि (उद्धृतैः)
द्वीप-समुद्राः$\frac{1}{3}$।संख्यायन्ते।इति❀तृतीयम्$\frac{1}{1}$।।अद्धापल्यम्$\frac{1}{1}$।।।	=द्वीप और समुद्र गिने जाते हैं "दूसरि द्वीप समुद्र गिनै"। तीसरी अद्धापल्य
अद्धा-काल-स्थितिः$\frac{1}{1}$।। इति❀अर्थः$\frac{1}{1}$।	=बहुत वा उत्कृष्ट (=अद्धा) कालकी स्थितिवाली है ऐसा आशय है।
तत्र❀आद्यस्य$\frac{6}{1}$।।। प्रमाणम्$\frac{1}{1}$।।। कथ्यते। तद्यथा❀	=तहां प्रथम (पल्य) का प्रमाण कहाजाता है। जैसे-
प्रमाण-अंगुल	=प्रमाण अंगुल अर्थात् वह अंगुल जो उत्सेधअंगुल व्यवहारअंगुल, प्रचलित-अंगुल अथवा आठ जोंके मध्यभागोंके प्रमाणसे पांचसौगुणा है तिसके

(१) तहां आदि मध्य अन्तकरि रहित जिसका दूसरा विभाग न हो ऐसा अविभागी पुद्गल का परमाणु है। सो इन्द्रियकरि ग्रह्य नहीं जाता है। जिसमें एक रस, एक वर्ण, एक गन्ध, दो स्पर्श यह पांच गुण हैं। ऐसा अनन्तानन्त परमाणुओंके समूहोंको अवसन्नासन्न कहते हैं। अवसन्नासन्न आठ मिले तब एक संज्ञासंज्ञ(वा सन्नासन्न)होताहै॥ आठ सन्नासन्न मिले तब एक तृटरेणु होता है। आठ तृटरेणुका एक त्रसरेणु (त्रसरैन) और आठ त्रसरैन का एक रथरैन (रथरेणु) होय, आठ रथरेणुका एक उत्तम भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग है। आठ उत्तमभोग भूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग मिलें तब एक मध्यमभोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होय। आठ मध्यमभोग भूमिके मनुष्य के बालके अग्र भाग मिलें

॥ नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

त्रीणि पल्योपमानि यस्याः सा त्रिपल्योपमा । अन्तर्गतो मुहूर्तो यस्याः सा अन्तर्मुहूर्ता ॥ यथासंख्येन सम्बन्धः ॥ मनुष्याणां परा उत्कृष्टा स्थितिः त्रिपल्योपमा ॥ अपरा जघन्या अन्तर्मुहूर्ता । मध्ये अनेकविकल्पा ॥ तत्र पल्यं त्रिविधं व्यवहारपल्यमुद्धारपल्यमद्धापल्यमिति ।

सूत्रम्—नृस्थिती परापरे(१)त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते=नृ-स्थिती-परापरे-त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते-(यथासंख्यम्)

सूत्रार्थ—नृ-स्थिती।।परा-अपरे।।त्रि-पल्योपम-अन्तर्मुहूर्ते।।	=मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट और जघन्य तीन पल्यप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त
यथासंख्यम्।।।	=अनुक्रमसे है अर्थात् मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट (=परा) तीन पल्य प्रमाण और जघन्य (=अपरा) अन्तर्मुहूर्त है । और मध्य आयुके अनेक भेद हैं ।
वृत्त्यनुवादः—त्रीणि।।।पल्योपमानि।।।यस्याः।।सा।।	=तीन पल्य प्रमाण है जिसकी सो
त्रि-पल्योपमा।।अन्तर्गतः।मुहूर्तः।यस्याः।।	=त्रिपल्योपमा है । भीतर वा अभ्यन्तर मुहूर्त जिसकी अर्थात् मुहूर्त वा दो घड़ी के भीतर भीतर जिसकी
सा।।अन्तर्मुहूर्ता।।यथासंख्येन।।।	=सो अन्तर्मुहूर्ता है । यथासंख्याकरि अथवा संख्याके क्रमसे (इन-परा-अपरा-त्रिपल्योपमा अन्तर्मुहूर्ता शब्दोंका परस्पर)
सम्बन्धः।	=सम्बन्ध है(अर्थात् परा शब्दके साथ त्रिपल्योपमा का सम्बन्ध किया जाता है और अपराके साथ अंतर्मुहूर्ताका तब निम्नलिखित इसप्रकार अर्थ होगा कि)
मनुष्याणाम्।परा।।उत्कृष्टा।।स्थितिः।।त्रि-पल्योपमा।।	=मनुष्योंका सबसे अधिक जीवनकाल तीनपल्य प्रमाण है ॥
अपरा।।जघन्या।।अन्तर्मुहूर्ता।।मध्ये।अनेक-विकल्पा।।	=सबसेथोड़ि(आयुका)जघन्य(आयु)अन्तर्मुहूर्त है । और मध्यमें अनेक भेद हैं
तत्र※पल्यम्।।।त्रिविधम्।।।व्यवहारपल्यम्।।।	=तहां पल्य तीन प्रकार है । व्यवहारपल्य,
उद्धारपल्यम्।।।अद्धापल्यम्।।।इति※	=उद्धारपल्य और अद्धापल्य ऐसें

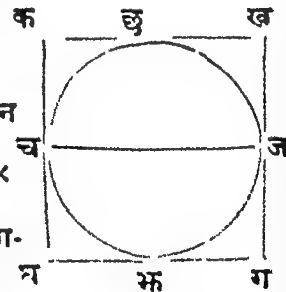
---

(१) परापरे, परावरे, पराऽपरे, अथवा पराऽवरे सब पाठ्य ठीक हैं ॥ कोई भी पाठ नृस्थिती पाठ के पश्चात् लिखा जासकता है ॥

तादृशैर्लोमच्छेदैः परिपूर्णं घनीभूतं व्यवहारपल्यमित्युच्यते ॥

तादृशैः[३।३] लोमच्छेदैः[३।३] परिपूर्णम्[१।१] =वैसे ही (=तादृशैः) रोमखंडकरि सम्पूर्ण (=परिपूर्ण) घनीभूतम्[१।१] व्यवहार-पल्यम्[१।१] इति उच्यते। =ठोसरूप भराजाता है (=घनीभूतं) सो व्यवहारपल्य इस प्रकार वर्णित की गई है ॥

(१) प्रथम एक महा योजन अथवा प्रमाण योजन लम्बे चौड़े और गहरे इस प्रकार घनाकार रूप महा योजनके गड्हाके लोमच्छेदोंकी संख्या सुगम और विस्तार रूपसे कहते हैं॥ उतनाही लम्बा उतनाही चौडा उतनाही गहरा अथवा ऊंचेको घनाकार कहतेहैं। इस टिप्पणीको प्रमाणअंगुलकी टिप्पणी पढकर और समझ कर पढ़ना चाहिये॥ एक घनाकार प्रमाण योजन का गढा एक व्यवहार योजन के घनाकार गढेसे पांचसौ गुना लम्बा पांचसौ गुना चौडा और पांचसौ गुणा गहरा होता है। और एक व्यवहार योजन चारकोश का होना है। इसलिये प्रमाण योजनका गढ़हा दो सहस्र योजन लम्बा दो सहस्र योजन चौडा और दो सहस्र योजन गहरा हुआ। यह प्रकरण कुछ क्लिष्ट है इसलिये निम्नक्षेत्र पाठकोंकी सुगमताके लिये है॥



कखगघ क्षेत्रकी प्रत्येक भुजा कख, खग, गघ, घक। दो दो सहस्र कोस की मानी गई है। एक कोसके २००० चाप ८००० हाथ, ८००० × २४ = १९२००० उत्सेध अंगुल हुये, इसलिये एक महायोजन अथवा दोसहस्रकोसके १९२००० × २००० = ३८४००००००० उत्सेध अंगुल हुये = कख = खग = गघ = घक = चज व्यासके ३८४००००००० × ८ = ३०७२००००००० आडे जौकेसमान हुये ३०७२००० ००० × ८ = २४५७६०००००० तिल हुये २४५७६००० ००० × ८ = १९६६०८००० ००० लीख, १९६६०८००० ००० × ८ = १५७२८६४००००००० कर्मभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग हुये। १५७२८६४००००००० × ८ = १२५८२९१२००००००० जघन्यभोगभूमि के मनुष्य के बाल के अग्रभाग १२५८२९१२००० ००० × ८ = १००६६३२९६००० ००० मध्यम भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग। १००६६३२९६००० ००० × ८ = ८०५३०६३६८००० ००० उत्तम भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग इस (८०५३०६३६८००००००) संख्यासे एक प्रमाण योजन अथवा एक महायोजनकी लम्बाई, कख रेखाके लोमच्छेद हुये इस संख्या को इसी संख्यासे गुणा करनेसे (क्योंकि कख रेखा खग रेखा के बराबर है) सर्व कखगघ क्षेत्रके, क्षेत्रफलके, रोम छेद आते हैं। अर्थात् वर्ग प्रमाण योजनके लोमच्छेद निकलते हैं ॥

परिमितयोजनविष्कम्भायामावगाहानि त्रीणि पल्यानि कुसूला इत्यर्थः । एकादिसप्तान्ताहोरात्र-जाताविवालाग्राणि तावच्छिन्नानि यावद्द्वितीयं कर्तरिच्छेदं नाप्नुवन्ति,

परिमित-योजन-विष्कम्भ-आयाम-	=प्रमाण करि अथवा नापे हुये योजन(योजन) भर चौड़ाई (=विष्कम्भ)लम्बाई(=आयाम)और
अवगाहानि॥। त्रीणि॥। पल्यानि॥।	=गहराईवाले (गोल ढोलके आकार) तीनि खाडे वा गढ़े (=पल्यानि)
कुसूलाः॥ इति॥अर्थः॥	=भड़ोले वा खत्ते (कुसूला=कुशूला) हैं ऐसा अभिप्राय अथवा आशय है।
एक-आदि-सप्त-अन्त-अहोरात्र-जात-अवि-	=एक से सात तक दिन रातके जन्मे हुये (उत्तम भोगभूमिके) मेढ़ा वा भेड़ (=अवि)के
वाल-अग्राणि॥।तावत्॥छिन्नानि॥।यावत्॥	=केशका(वाल=वाल) अग्रभाग तब तक छेदकर काटकर जब तक (यावत्)
द्वितीयं॥। कर्तरि-च्छेदं॥। न-आप्नुवन्ति॥	=दूसरे (लघु) खंड कतर्नी (=कर्तरि,कर्तरी)से प्राप्त नहीं होसकते हैं (पूर्वोक्त गडाहा)

तब एक जघन्य भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होता है। जघन्य भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग आठ मिलें तब एक कर्म भूमि के मनुष्यके बालका अग्रभाग होता है॥ आठ कर्म भूमिके नरके बालके अग्रभाग मिलें तब एक लीप(=लीख)हो, आठ लीख मिलें तब एक यूका (=जूं) अथवा तिलहो। आठ तिल मिलें तब एक यवमध्य अथवा जौ का मध्यभाग के प्रमाण हो। आठ यवमध्य का एक उत्सेध अंगुल होता है। इस अंगुल-करि नारकी तिर्यंच मनुष्य देवोंका शरीर तथा अकृत्रिम प्रतिमाका देह मापिये है। बहुरि पांचसे पूर्वोक्त उत्सेध अंगुलका एक प्रमाण अंगुल होताहै॥ सो यह प्रमाण अंगुल अवसर्पिणी कालके पहिले चक्रवर्तीके हाथके अंगुलके बराबर होता है। तिस समय तिस अंगुलकरि गांव नगरादिकका प्रमाण होता है। अन्य काल में मनुष्यों का अपना अपना अंगुल का प्रमाण होता है। अर्थात् जिस काल में जैसा मनुष्य हो उसका अंगुल, इसको आत्म अंगुल कहते हैं। इससे भिन्न भिन्न समय के अनुसार गांव, नगर, भवन, घट, रथ, छत्र, आसन, धुजा, आदि का प्रमाण होता है॥ प्रमाण अंगुलसे द्वीप समुद्र तथा उनकी वेदी, नदी, पर्वत, विमान, नरकके प्रस्तार, जैनधाम, आदि अकृत्रिम वस्तुका विस्तार-आयाम-आदि नापे जाते हैं। छह अंगुल का एक पाद, बारह अंगुल का एक वितस्ति (विलाद, विलस्ति) दो विलांद का एक हाथ, दो हाथ का एक इषु अथवा गज, दो गजका एक धनुष दो सहस्र चापका एक कोश, चार कोशका एक योजन इस लिये पांचसौ व्यवहार योजनका एक प्रमाण योजन होय है। अर्थात् उत्सेध अंगुल के कोश दो सहस्र हों तब एक प्रमाण योजन होता है॥

जाती हैं उनमें वृत्तका क्षेत्रफल मोटे रूपसे गणितके इस नियमसे सिखाया जाता है कि विवक्षित वृत्तके आधे व्यासके वर्गको $\frac{२२}{७}$ से गुणा करदो गुणनफल ही उस वृत्तके क्षेत्रका प्रमाण होगा। वस्तुत. लगभग एक ही प्रमाण होगा क्योंकि यहांपर एक व्यास माना है आधेका वर्ग $\frac{१}{४}$ होगा और $\frac{१९}{६}$ मोटे रूपमें १०का वर्गमूलका परिणाम है। और $\frac{२२}{७}$ कुछ सूक्ष्म रूपसे परिणाम है इसमें ३$\frac{१}{७}$से आधे व्यासको गुणा करना पडता है उसमें ३$\frac{१}{६}$से गुणा करना पड़ता है $\frac{२२}{७}$सेभी अधिक सूक्ष्मरूपमें १०का मापके उच्चकोटाके ग्रन्थोंमें समझाया है(इसी अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ३४ पर देखो)गहराई एकयोजन प्रमाण है इसलिये इस घनरूपक्षेत्र अथवा एक योजन कूपका घनरूप क्षेत्रफल गहराईसे गुणा करनेसे निकलता है अर्थात् $\frac{१९}{२४}\times१=\frac{१९}{२४}$ घन रूप है ॥ अब ऊपरके पैतालीस अक्षरकी संख्याको सुगमताकेलिये घनसंख्या मानो और वाञ्छित निकलनेवाली संख्याको फल मानो तो इसप्रकार त्रैराशिक हुई कि १ को $\frac{१९}{२४}$ से वही सम्बन्ध है जो घनसंख्याको फलसंख्यासे है अर्थात् १:$\frac{१९}{२४}$::घनसंख्या फलसंख्या: इसलिये फलसंख्या=फलसंख्या$\times$१=$\frac{१९}{२४}\times$घन-संख्या=$\frac{१९}{२४}\times$ घन संख्या ॥ प्रथम १९ से गुणाकरके पश्चात् भाग २४ का घन संख्यामें देंगे अर्थात् =$\frac{१९}{२४}\times$घन संख्या ॥

५७२२५५९५४०७२५१६८०१४७३०६८०३२०००००००००००००००००००० मानी हुई घन संख्या। इसको उन्नीस से गुणा किया तो गुणनफल

=९९२२८९३१२७३९९८७९२९५९८८२९२९६०८००००००००००००००००००

भाग

२४)९९२२८९३१२७३९९८७९२९५९८८२९२९६०८००००००००००००००००००(४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००

९६			
३२	७३	१७९	२२०
२४	७२	१६८	२१६
८२	१९९	११८	४८
७२	१९२	९६	४८
१०८	४८	२२८	
९६	४८	२१६	
१२६	७६	१२२	
१२०	७२	१२०	
६३	४२	२९	
४८	२४	२४	
१५१	१८६	५२	
१४४	१६८	४८	
७२	१८५	४६	
७२	१६८	२४	

इस प्रकार व्यवहार पल्यके समस्त रोम छेदोंकी संख्या निम्न ४५ अक्षर प्रमाण हुई

४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००

अंकनाम, अडिल्ल	अडिल्लका अभिप्राय। इस छंदके सब अंक औरशून्य क्रमसे एक दूसरेके ऊपर होंगे
चौ इक तिय चउ पांच दोय षट् तीन है	=चार(ऊपर)एक(ऐसेही)तीन,चार,पांच,दो,छह,तीन
नभ तिय नभ वसु दो नभ तिय इक कीन है	=शून्य(=नभ) तीन, बिंदु, आठ, दो, बिंदु, तीन, एक
सत सत सत चौ नौ पन इक दो इक कहे	=सात, सात, सात, चार, नौ, पांच, एक, दो, एक
नौ दो आगे ठारै सुन्न सरव लहे (कवि द्यानतराय)	=नव,दोय,(फिर एकदूसरेके ऊपर)सब अठारह शून्य देदो तो पल्यके पैतालीस अंक निकल आते हैं॥

ततः॥वर्ष-शते॥॥ =वहां (उस कूप से) सौ (सौ) वरसमें

८०५३०६३६८०००००००
८०५३०६३६८०००००००

००००००००००००००००
००००००००००००००००
००००००००००००००००
००००००००००००००००
००००००००००००००००
००००००००००००००००
६४४२४५०९४४००००००
४८३१८३८२०८००००००
२४१५९१९१०४००००००
४८३१८३८२०८००००००
००००००००००००००००
२४१५९१९१०४००००००
४०२६५३१८४०००००००
००००००००००००००००
६४४२४५०९४४००००००

६४८५१८३४६३४१३५१४२४००००००००००००००

इन वर्ग प्रमाण योजन क्षेत्रके लोमच्छेदोंको गहराई(के लोमच्छेदों)से गुणा करदिया जावे तो घनाकार महा योजन या घनाकार प्रमाण योजनके रोमच्छेद पैतालीस अंक प्रमाण निम्न लिखित विधि से.आते हैं॥ क्योंकि पूर्वोक्त गढ्ढा अथवा खंडर की गहराई दो सहस्र कोश है और हम जानते हैं कि दो सहस्र कोशके लोमच्छेद ८०५३०६३६८००००००० हैं॥ गुणन का एक नियम यह भी है कि गुण्य और गुणक अथवा दोनोंमेंसे किसीके अंतमें

ततः॥वर्ष-शते॥ =वहां (उस कूप से) सौ (सौ) वरसमें

```
                    ८०५३०६३६८००००००
                    ८०५३०६३६८००००००
                ~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~
                    ०००००००००००००००
                   ०००००००००००००००
                  ०००००००००००००००
                 ०००००००००००००००
                ०००००००००००००००
               ०००००००००००००००
             ६४४२४५०९४४००००००
            ४८३१८३८२०८००००००
           २४१५९१९१०४००००००
          ४८३१८३८२०८००००००
           ०००००००००००००००
        २४१५९१९१०४००००००
       ४०२६५३१८४०००००००
        ०००००००००००००००
      ६४४२४५०९४४००००००
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~
      ६४८५१८३४६३४१३५१४२४००००००००००००
```

इन वर्ग प्रमाण योजन क्षेत्रके लोमच्छेदोंको गहराई(के लोमच्छेदों)से गुणा करदिया जावे तो घनाकार महा योजन वा घनाकार प्रमाण योजनके रोमच्छेद पैंतालीस अंक प्रमाण निम्न लिखित विधि से आते हैं॥ क्योंकि पूर्वोक्त गढ़ा अथवा खंडर की गहराई दो सहस्र कोश है और हम जानते हैं कि दो सहस्र कोशके लोमच्छेद ८०५३०६३६८०००००० है॥ गुणन का एक नियम यह भी है कि गुण्य और गुणक अथवा दोनोंमेंसे किसीके अंतमें

जो शून्य हों उनको शेष अंकोंके साथ गुणा करनेके पश्चात् गुणनफलके अंतमें उतनेही शून्य लगादो तो ठीक गुणनफल वैसाही निकलआता है जैसा ऊपर की क्रिया से निकला है ॥ जैसे ५० गुण्य है और ३० गुणक है तो ५ और ३ के गुणनफल १५ के अन्त में दो शून्य रखने से भी १५०० हो जाते हैं और

```
 ५०
 ३०
 ००
१५०
१५००
```

इस रीति से भी १५०० आते हैं सुगमता के लिये हमने नीचे यही विधि ग्रहण की है ॥

६ ४ ८ ५ १ ८ ३ ४ ६ ३ ४ १ ३ ५ १ ४ २ ४ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० को

८ ० ५ ३ ० ६ ३ ६ ८ ० ० ० ० ० ० ० से गुणा करना है ॥

तो निम्न लिखित अंकोंको गुणाकरके गुणनफलके अन्तमें १८ शून्य रखदो।

```
                ६ ४ ८ ५ १ ८ ३ ४ ६ ३ ४ १ ३ ५ १ ४ २ ४
                                  ८ ० ५ ३ ० ६ ३ ६ ८
              ---------------------------------------
                  ५ १ ८ ८ १ ४ ६ ७ ७ ० ७ ३ ० ८ १ १ ३ ९ २
                ३ ८ ९ १ १ १ ० ० ७ ८ ० ४ ८ १ ० ८ ५ ४ ४
              १ ९ ४ ५ ५ ५ ५ ० ३ ९ ० २ ४ ० ५ ४ २ ७ २
            ३ ८ ९ १ १ १ ० ० ७ ८ ० ४ ८ १ ० ८ ५ ४ ४
          ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
        १ ९ ४ ५ ५ ५ ५ ० ३ ९ ० २ ४ ० ५ ४ २ ७ २
      ३ २ ४ २ ५ ९ १ ७ ३ १ ७ ० ६ ७ ५ ७ १ २ ०
    ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
  ५ १ ८ ८ १ ४ ६ ७ ७ ० ७ ३ ० ८ १ १ ३ ९ २
------------------------------------------------------------
  ५ २ २ २ ५ ५ ९ ५ ४ ० ७ ३ ५ १ ९ ८ ० ३ ४ ७ ३ ० ६ ८ ० ३ २०००००००००००००००००
```


हमारा गढ़ा व्यवहार पल्यका गोलकूपके आकार है। जैसाकि वृत्ताकार जो घर्गाकार क्षेत्रके भीतर पृष्ठ ८८में है उससे प्रगट है॥चूंकि चौड़ाई क्षेत्रकी एक(योजन)मानी है। तिसका वर्ग १ हुआ तिसको दशसे गुणाकरि वर्गमूल निकालनेसे कूपकी परिधि आतीहै अर्थात १×१×१० = १० = १०(वर्गमूल) बहुरि विष्कम्भके चौथाईसे गुणा करनेसे अर्थात् १/४ से वृत्तका क्षेत्रफल १०/१ × १/४ = १०/४ भया। आजकल पाठशालाओंमें मापप्रकाशक पुस्तकें जो पढ़ाई

उक्ता च संग्रहगाथा—ववहारुद्धारद्धापल्ला तिण्णेव होंति बोद्धव्वा। संखादीव सम्मुद्दा कम्मट्ठिदि वण्णिदा तदिये ॥ १॥ यथैवेते उत्कृष्टजघन्ये स्थिती नृणां तथैव—

॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

उक्ता[१/६]।। च❀संग्रह-गाथा[१/६]।। =वहुरि (पल्यकी कथनकी) संचयकी हुई।
अथवा एकत्र कीहुई आर्या छंदोंमेंसे एक (गाथा) कहीजाती है

ववहारु-द्धार-द्धा-पल्ला[१/३]।।(व्यवहार-उद्धार-अद्धा-पल्यानि[१/३]।।।) =व्यवहार उद्धार अद्धा पल्यें

तिण्ण-एव❀होंति-वोद्धव्वा[१/६]।।(=त्रीणि[१/३]।।।एव❀भवन्तिTवोद्धव्या:[१/३]।।) =तीनही हैं सो जानना

संखा-दीव-समुद्दा[१/३]। (=संख्या द्वीप-समुद्रा:[१/३]।) =संख्या द्वीप समुद्र

कम्म-ट्ठिदि-वण्णिदा-तदिये (=कर्म्म-स्थिति-वर्णिता[१/६]।। तदिके) =(और)कर्म्मस्थिति तिन (पल्यों) करि वर्णित है। भावार्थ
पहिली व्यवहारपल्यसे रोमोंकी संख्या वर्णन कीगई है अर्थात्
वह संख्याकी उत्पत्ति जाननेके लिये है। उद्धारपल्यकरि द्वीप और समुद्र गिने जाते हैं और
अद्धापल्य द्वारा कर्मस्थिति (भवस्थिति, आयुस्थिति, कायस्थिति) का कथन होता है।

यथा❀एव❀एते[१/३]।।। उत्कृष्टजघन्ये[१/२]।।। स्थिती[१/२]।। नृणां[६/३]। तथा❀एव❀ =जैसेही ये उत्कृष्ट और जघन्य आयु मनुष्योंकी हैं तैसेही

(१)सूत्रम्—तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥ =तिर्यग्योनिजानां च स्थिति परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते भवतः

सूत्रार्थः—तिर्यक्-योनिजानाम्[६/३]।।। च❀ =तिर्यंच योनिसे उत्पन्न होनेवालोंकी भी अर्थात् तिर्यंचोंकी भी (=च)

परा[१/६]।। स्थितिः[१/६]।। त्रि-पल्योपमा[१/६]।।भवतिT =उत्कृष्ट (=परा) आयु तीन पल्य प्रमाण

अपरा[१/६]।। स्थितिः[१/६]।। अन्तर्मुहूर्ता[१/६]।।भवतिT =(और) जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

(१) सभाष्य०में 'तिर्यग्यानीनां च' ऐसा पाठ है। उसमें "तिर्यग्योनिजानां चेत्यपि पाठ" (=तिर्यग्यानिजानां च ऐसा भी पाठ है) यह चरणटिप्पणी पृष्ठ ८८ में दी है "तिर्यग्योनिज" शब्दकी षष्ठी बहुवचन नपुंसकलिंग "तिर्यग्योनिजानां" वाक्य है और तिर्यग्योनि (=तिर्यंचयोनीवाले) की षष्ठी-बहुवचन स्त्रीलिंग "तिर्यग्योनीना" है ॥

पूर्णमद्धापल्यम् ॥ ततः समये समये एकैकस्मिन्रोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्रिक्तं भवति तावान्कालोऽद्धापल्योपमाख्यः ॥ एषामद्धापल्यानां दशकोटीकोट्य एकमद्धासागरोपमम् ॥ दशाद्धासागरोपमकोटीकोट्य एकावसर्पिणी ॥ तावत्यैवोत्सर्पिणी ॥ अनेनाद्धापल्येन नारकतैर्यग्योनीनां देवमनुष्याणां च कर्मस्थितिर्भवस्थितिरायुः स्थितिः कायस्थितिश्च परिच्छेत्तव्या ॥

पूर्णम्॥अद्धापल्यम्॥	=पूर्ण अद्धापल्य होती है अर्थात् उपर्युक्त उद्धारपल्यके एक एक रोम के इतने इतने खंड किये जांय कि जितने जितने सौ वरसके समय होते हैं तब अद्धापल्यके रोमोंका प्रमाण होता है ॥
ततः*समये॥ समये॥ एक-एकस्मिन्॥	=वहांसे समय समयमें अर्थात् प्रत्येक समयमें एक एक (पूर्वोक्त खंड किये हुये)
रोमच्छेदे॥ अपकृष्यमाणे॥ यावता॥ कालेन॥	=लोमच्छेद निकालनेमें जिस कालकरि
तद्-रिक्तं॥भवति।तावान्॥ कालः॥ अद्धा-पल्योपम-	=वह खाली होजाता है। उतना काल अद्धापल्योपम (के नाम) से
आख्यः॥ दशकोटीकोट्यः॥एषां॥अद्धा-पल्यानां॥	=प्रसिद्ध है। दश कोड़ा कोड़ी इन अद्धापल्योंका
एकं अद्धासागरोपमम्॥।दश-अद्धासागरोपम-कोटी-कोट्यः॥	=एक अद्धासागरोपम है। दश कोड़ा कोड़ी अद्धा-सागरोपमका
एक-अव-सर्पिणी॥।तावत्*एव*	=एक अवसर्पिणीकाल है ॥ तितनाही (दश कोड़ा कोड़ी अद्धापल्योपमका)
उत्सर्पिणी॥ । अनेन॥अद्धा-पल्येन॥	=उत्सर्पिणी काल है। इस अद्धापल्यकरि
नारक-तैर्यग्योनीनाम्॥ देव-मनुष्याणाम्॥ च*	=नारकियों और तिर्यचोंकी और (=च) देव मनुष्योंकी
कर्मस्थितिः॥ भवस्थितिः॥	=कर्मस्थितिः॥ भवस्थितिः॥ अर्थात् एक भवकी स्थिति
आयुःस्थितिः॥ कायस्थितिः॥च*परिच्छेत्तव्या॥	=आयु स्थिति और (=च) कायस्थिति जानना चाहिये।

(१) एक कायमें अनेक भव धारण करै तिसको कायस्थिति कहते हैं। जैसे पृथिवी अप् तेज वायुकायिक जीवोंके कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। तिनहीमें उपजबो करै तो एताकालताईं उपजबो करै। बहुरि वनस्पतिकायका अनन्तकाल है सो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनमात्र है। बहुरि विकलत्रयका असंख्यात सहस्र वरस है। पंचेंद्रिनिकी, तिर्यंच मनुष्यनिकी पृथक्त्व कोटि पूर्व अधिक तीनि पल्य है। बहुरि जघन्य कायस्थिति इन सर्वोंकी अन्तर्मुहूर्तमात्र है। बहुरि देवनारकीनिकी भवस्थिति है सोही काय स्थित है। देवसे देव नहीं होता नारकीसे नारकी नहीं होता यह नियमहै॥

सरःसरिताम् ॥ मानं नृणां च भेदः स्थितिस्तिरश्चामपि तृतीयाध्याये ॥ १ ॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

सरस्-	=(पद्मसे पुंडरीकलों उन छह पर्वतोंकेद्रह) सरोवर, उन सरोवरोंके पुष्कर, माप, परिवारसहित देवियां) (सूत्र १४, १५, १६, १७, १८, १९
सरिताम्६॥	=चौदह नदियें (उनके वहनेकी दिशायें, और उनकी परिवारकी नदियें छोटीछोटी) (देखो सूत्र २०, २१, २२, २३)
मानं	=(क्षेत्र तथा पर्वतोंके) माप, वा नाप (देखो सूत्र २४, २५, २६, ३२)
मानं	=समयकी क्रिया(पद्मचन्द्रकोप पृष्ठ २६५) अर्थात् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप छह समय अथवा कालोंकी वृद्धि ह्रासरूप क्रिया (देखो सूत्र २७, २८)
मानं	=परिमाण अर्थात् भरतक्षेत्र,कुलाचल,पर्वत,द्रह,आदि(देखो सूत्र३३, ३४,३५)कोंका जम्बूद्वीपसे धातुकीखंड और पुष्करार्धमें दूना दूना परिमाण है। और मनुष्योंका परिमाणकि वे पुष्करद्वीपके आधे भागके इधर हैं(देखो सूत्र ३५)
नृणाम्६॥च॥भेदः१॥	=बहुरि (=च) मनुष्योंका भेद (देखो सूत्र ३६)
(नृणाम्) स्थितिः१॥	=मनुष्यों की स्थिति अर्थात् जीवन काल (देखो सूत्र २९, ३०, ३१, ३८)
तिरश्चाम्-अपि-(स्थितिः१॥)	=तिर्यचोंकी स्थिति वा आयु (देखो सूत्र ३९) (ये सर्व ही)
तृतीय-अध्याये७॥	=तीसरे अध्याय में (वर्णन किये गये) हैं
इतितत्त्वार्थ-वृत्तौसर्वार्थसिद्धि-	=ऐसे तत्त्वार्थकी व्याख्यामें सर्वार्थसिद्धि
संज्ञिकायां तृतीयःअध्यायः१॥	=नामाग्रंथमें तीसरा अध्याय(पूर्ण)हुआ॥

तिरश्चां योनिस्तिर्यग्योनिः । तिर्यग्गतिनामकर्मोदयापादितं जन्मेत्यर्थः । तिर्यग्योनौ जातास्तिर्यग्योनिजाः । तेषां तिर्यग्योनिजानामुत्कृष्टा भवस्थितिस्त्रिपल्योपमा ॥ जघन्या अन्तर्मुहूर्ता ॥ मध्येऽनेकविकल्पा ॥ ॐ ॥ भूविल्लेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरि-

---

वृत्त्यनुवादः-तिरश्चाम्(६।३)योनिः(१।१)तिर्यग्योनिः(१।१)। =तिर्यंचों का उत्पत्ति स्थान सो तिर्यग्योनि है

तिर्यग्-गति-नामकर्म-उदय-आपादितम्(१।१)। =तिर्यंचगतिनामा नामकर्मके उदयकरि गृहीत अथवा प्राप्त (आपादित)

जन्म(१।१)।इति❀अर्थः(१।१)।तिर्यग्योनौ(७।१)।जाताः(१।३)। =जन्म (=नवीन शरीर धरना) ऐसा अर्थ है । तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुये

तिर्यग्योनिजाः(१।३)।तेषाम्(६।३)।तिर्यग्योनिजानाम्(६।३)। =वे तिर्यंच योनिज हैं । तिन तिर्यंच योनिमें उत्पन्न हुओंकी

उत्कृष्टा(१।१)।भवस्थितिः(१।१)।त्रिपल्योपमा(१।१)।जघन्या(१।१)। =उत्कृष्ट भवकी आयु तीन पल्य प्रमाण है जघन्य

अन्तर्मुहूर्ता(१।१)।मध्ये(७।१)।अनेक-विकल्पा(१।१)। =अंतर्मुहूर्त है मध्यविषैं नानाभेद हैं ।

भूविल्लेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरिसरः सरिताम्॥माननृणांचभेदःस्थितिस्तिरश्चामपितृतीयाध्याये

भू-विल- =(सात) भूमियें (इन सात भूमियों में चौरासी लाख) बिले (देखो सूत्र १, २)

लेश्या-आदि- =(कापोत, नील-कृष्ण) लेश्यादिक अर्थात् (अशुभतरलेश्यावाले, अशुभतरपरिणामवाले अशुभतरदेहके धारक, अशुभतर वेदना वाले, अशुभतर विक्रिया करनेवाले, परस्पर दुःख उत्पन्न करनेवाले नारकी जीव) (देखो सूत्र ३, ४, ५)

आयुस्- =(नारियों की उत्कृष्ट तथा जघन्य) आयु (देखो सूत्र ६)

द्वीप-उदधि- =द्वीप तथा समुद्र अर्थात् जम्बूद्वीपसे स्वयम्भूरमणद्वीपतक असंख्याते द्वीप और लवणोदधिसे स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत असंख्याते समुद्र, उनके विस्तार और आकार (देखो सूत्र ७, ८, ९)

वास्य- =(जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रसे ऐरावतक्षेत्र लग सात) क्षेत्र (देखो सूत्र १०)

गिरि- =(हिमवान् से शिखिरी लग छह) पर्वत(वर्ण विस्तार सहित)(देखो सूत्र ११, १२, १३,)

विशेषैर्द्वीपादिसमुद्रादिषु प्रदेशेषु यथेष्टं दीव्यन्ति क्रीडन्ति ते देवाः ॥ इहैकवचननिर्देशो युक्तः "देवश्चतुर्णिकायः" इति, जात्यभिधानाद्बहूनां प्रतिपादको भवति ॥ बहुत्वनिर्देशस्तदन्तर्गतभेद-प्रतिपत्त्यर्थः । इन्द्रसामानिकादयो बहवो भेदाः सन्ति स्थित्यादिकृताश्च तत्सूचनार्थः ॥ देवगतिनाम-कर्मोदयस्य स्वधर्म-

---

विशेषः ३। द्वीपादि-समुद्रादिषु ७। प्रदेशेषु ७।	=विशेषकरि द्वीपादिक समुद्रादिक स्थानो में (=प्रदेशेषु)
यथा-इष्टम्* दीव्यन्ति-क्रीडन्ति ते १। देवाः १।	=इच्छानुसार खेलतेहैं (=दिव्यन्ति) क्रीड़ा करते हैं वे देवता हैं
इह-एक-वचन-निर्देशः १। युक्तः १।	=(प्रश्न) यह (सूत्र) एक वचनमें निरूपण वा वर्णन होना उचित (युक्त) था
देवः १। चतुर-निकायः १। इति* जाति-अभिधानात् ५।।	=देवः चतुर्णिकायाः इस प्रकार क्योंकि समान जाति के कहने से
बहूनां ६।। प्रतिपादकः १। भवति	=बहुतकी प्रतिपत्ति वा ज्ञान होता है अर्थात इस सूत्र का प्रत्येक पद देवाः और चतुर्णिकायाः बहुवचन में हैं सो शिष्य प्रश्न करता है कि समान जाति के कथन करने में यदि ये पद "देवः चतुर्णिकायः" इस प्रकार एक वचन में होते तौ भी बहुत के वाचक होते; तो ये दोनों पद बहुवचनान्त क्यों हैं। एक वचन में ही इन का निर्देश क्यों नहीं किया है।
बहुत्व-निर्देशः १। तद्-	=(उत्तर) बहुतता अर्थात् बहुवचन का कथन (=निर्देश) उन (चार प्रकारके देवों) के
अन्तर्गत-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थः १। इन्द्र-सामानिक-	=अन्तर्भेद जानने के लिये (=प्रतिपत्ति) है (जैसे) इन्द्र-सामानिक (सूत्र ४)
आदयः १। बहवः १। भेदाः १। स्थिति-आदि-कृताः १। च* सन्ति	=आदिक बहुत भेद हैं और आयु आदिक
तद्-सूचन-अर्थः १।	=तिन (इन्द्र सामानिक, आदि, तथा स्थिति, आदिक) के ज्ञापन वा जतलाने के लिये (देवाः चतुर्णिकायाः दोनों वाक्य बहुवचन में इस सूत्र में लाये) हैं
देवगति-नामकर्म-उदयस्य ६। स्वधर्म-	=देवगति नामा नामकर्म के उदय (और) अपने धर्म वा स्वभाव (=स्वधर्म) की अर्थात् देवगति में गमन करने वाले जीवों की।

१

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणामित्येवमादिष्वसकृद्देवशब्द उक्तस्तत्र न ज्ञायते के देवाः कतिविधा इति वा तन्निर्णयार्थमाह—

॥ देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥

देवगतिनामकर्मोदये सत्यभ्यन्तरे हेतौ बाह्यविभूति—

अथ॰ चतुर्थः।। अध्यायः।।	=चौथा अध्याय प्रारम्भ (=अथ) है।
भव-प्रत्ययः।। अवधिः।। देव-नारकाणाम्।।	=भव अथवा जन्म निमित्तक अवधिज्ञान देव तथा नारकियों के होता है।
इति॰ एवम्॰ आदिषु॰। असकृत्-	=इस प्रकार (=एवं) इत्यादि (सूत्रों) में अनेक बार अथवा बार बार (असकृत्)
देव-शब्दः।। उक्तः।। तत्र॰ न ज्ञायते।	=देव शब्द कहा गया है। वहां (ऐसा) नहीं बताया गया है कि
के।। देवाः।। कति।। विधाः।। इति वा तत्-	=देव कौन हैं अथवा (=वा) कितने प्रकार हैं। तिन (देवों) के
निर्णय-अर्थम्।।। आह।	=निश्चय के लिये (आचार्य उत्तर सूत्र में) कहते हैं कि
सूत्रम्-	देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥
सूत्रार्थः—देवाः।। चतुर्-निकायाः।।	=देवता चार समूह (=निकाय) संयुक्त हैं अथवा देव चार समूह वा संघवाले हैं। अर्थात् देवों के चार, भवनवासी, व्यंतर, जोतिष्क, वैमानिक समूह हैं।
शब्दानुवादः—देवगति-नामकर्मउदये॰।	=देव गति नामक नामकर्मका उदय
सति॰ अभ्यन्तरे॰। हेतौ॰। बाह्य-विभूति-	=अंतरंगकारण होने पर (=सति) (और) बहिरंग ऐश्वर्य अथवा विभवके

(१) आदि शब्देन, देवनारकाणामुपपादः। न देवाः। इति सूत्रद्वयं ग्राह्यम्॥

आदि-शब्देन ।। । देव-नारकाणाम्।। उपपादः ।।	=(उपर्युक्त वृत्ति में) आदि शब्द से 'देवनारकाणां-उपपाद' अध्याय २ सूत्र ३४
न॰ देवाः ।। । इति सूत्र द्वयं ।।।। ग्राह्यम् ।।।।	=(और) न देवाः (अध्याय २ सूत्र ५१) ऐसे दो सूत्र लिये गये हैं

(२) यह शब्द सकृत् अव्यय है जिसका अर्थ 'एक बार' है इसलिये अ-सकृत = अन्-एक बार अर्थात् अनेक बार बारबार

(३) 'इति वा' ऐसा जान पड़ता है कि मुद्रणयंत्र की अशुद्धतासे, 'वा इति' अथवा (संधि करने से) वेति (वा-इति) के स्थान में 'इति वा' छप गया है। इसी सूत्र के संबन्धमें 'समस्तशक्तार्थाधिगम सूत्र' में 'तत्र के देवाः। कति विधा वेति' ऐसा पाठ है॥

आदौ आदितः ॥ द्वयोरेकस्य च निवृत्यर्थं त्रिग्रहणं क्रियते ॥ अथ चतुर्णां निवृत्यर्थं कस्मान्न भवति ? । आदित इति वचनात् ॥ षड्लेश्या उक्तास्तत्र चतसृणां लेश्यानां ग्रहणार्थं पीतान्तग्रहणं क्रियते ॥ पीतं तेज इत्यर्थः । पीता अन्ते यासां ताः पीतान्ताः लेश्या येषा ते पीतान्तलेश्याः ॥ एतदुक्तं भवति– आदितस्त्रिषु निकायेषु भवनवासिव्यन्तर–

समुदायसे पहिले तीन ग्रहण करना चाहिये न कि मध्यसे व्यन्तर ज्योतिष्कके समुदायोंसे अथवा अन्तसे वैमानिक समुदायसे (ग्रहण करो)

आदौ ७। आदितः * द्वयोः ६। एकस्य ६। च * =जो आदि विषैं हो वा आदि पर हो सो आरम्भसे है (=आदित) दोयके और (=च)एकके
निवृत्ति– अर्थं ३॥ त्रि- ग्रहणं १॥ क्रियते T =निषेधके लिये (इस सूत्रमें) तीन (शब्द)का ग्रहण किया गया है ॥
अथ * चतुर्णां ६। निवृत्ति–अर्थं १॥ कस्मात् ५। =(प्रश्न)आगे(=अथ)चारके निराकरणका अभिप्राय अथवा प्रयोजन किसी(शब्द)से
न * भवति T आदितः * इति * वचनात् ५॥ =(सूत्रमें)नहीं होता है (उत्तर) "आदितः" ऐसे वाक्यसे (देवोंके चौथे समुदायके ग्रहण का निषेध) होता है (क्योंकि "आदितः त्रिषु" अर्थात् आरम्भ से लेकर तीन भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके समूह तो इससे ग्रहण होते हैं और चौथा वैमानिकोका निकायका प्रतिषेध वा निषेध हो जाता है ॥

षड् १॥ लेश्या १॥ उक्ताः १॥ तत्र* चतसृणां ६॥ लेश्यानां ६॥ =छह लेश्यायें वर्णित हैं वहां चार लेश्याओं के
ग्रहण-अर्थं १॥ पीत-अन्त-ग्रहणं १॥ क्रियते T =उपलब्धि वा ग्रहणके लिये(सूत्रमें)पीत तक(ऐसा वचन)ग्रहण किया गया है
पीतं १॥ तेजः १॥ इति अर्थः १। पीता १॥ अन्ते ७। यासां ६॥ =पीत है सो ही तेज है ऐसा अर्थ है। पीत (लेश्या) है अन्तमें जिन(लेश्याओं) के
ताः १॥ पीत-अन्त-लेश्याः १॥ =वे पीत पर्यन्त, लेश्या हैं
(पीतान्तलेश्याः १॥) येषां ६। ते १। पीतान्तलेश्याः १। =(पीतान्त लेश्या है) जिन्होंके वे पीतान्तलेश्या वाले देव हैं
एतद् १॥ (वा एतत् १॥) उक्तं १॥ भवति– T =(तब इस समस्त सूत्रका)यह(=एतद्)कथन अर्थात् अर्थ होता है कि
आदितः * त्रिषु ७। निकायेषु ७। भवनवासिन्–व्यन्तर— =आरम्भसे तीन समुदाय भवनवासी–व्यन्तर–

विशेषापादितभेदस्य सामर्थ्यान्निचीयन्त इति निकायाः संघाता इत्यर्थः। चत्वारो निकाया येषां ते चतुर्णिकायाः॥ के पुनस्ते ? भवनवासिनो, व्यन्तरा, ज्योतिष्का, वैमानिकाश्चेति ॥ तेषां लेश्यावधारणार्थमुच्यते—

॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥

आदित इत्युच्यते अन्ते मध्ये वा ग्रहणं मा विज्ञायीति।

३

विशेष–आपादित–भेदस्य ‡। सामर्थ्यात् ‡॥ निचीयन्ते T
इति* निकायाः ‡। संघाताः ‡। इति * अर्थ ‡।
चत्वारः ‡। निकायाः ‡। येषां ‡। ते ‡। चतुर–निकायाः ‡।
के ‡। पुनः * ते ‡।, भवन–वासिनः ‡। व्यन्तराः ‡।
ज्योमिष्काः ‡। वैमानिकाः ‡। च इति तेषां ‡। लेश्या–
अवधारण- अर्थम् ‡॥ उच्यते T

=विशेष प्राप्त भेदकी सामर्थ्य वा शक्तिसे भेदरूप समूह है।
=ऐसे निकाय हैं समुदाय अथवा समूह इस प्रकार अर्थ है।
=चार समुदाय जिनके हैं। वे चतुर्णिकायाः हैं॥
=बहुरि वे (चतुर्णिकाय) कोन हैं। (उत्तर) भवनवासी, व्यन्तर,
=ज्योतिष्क बहुरि (=च) वैमानिक ऐसे हैं। उन (चार समुदाय)की लेश्याके–
=नियम (=अवधारण) के लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहा जाय है कि

आदितास्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥ २ ॥

सूत्रम्

सूत्रार्थः—आदितः * त्रिषु ‡।
पीत-अन्त–लेश्याः ‡।
वृत्यनुवाद—आदितः * इति * उच्यते T अन्ते ‡।
मध्ये ‡. वा * ग्रहणं ‡॥ मा * विज्ञायि–इति *

=आरम्भसे (लेकर) तीन (समुदायके भवनवासी,व्यन्तर,ज्योतिष्क देवों) में
=पीत पर्यन्त (अर्थात् कृष्ण, नील, कापोत पीत, ये चार ही) लेश्या हैं॥
=(इस सूत्रमें) आरम्भ से ऐसा वर्णित है। सो अन्त में
=अथवा वीचमें ग्रहण मति (=मा) जानो अर्थात् आदिसे भवनवासी देवों के

३

(१) कहीं पर 'पीतान्त' पाठ है कहीं पर पीतांत है दोनों ठीक हैं (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४१)। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य-तत्त्वार्थाधिकमसूत्र में "तृतीयः पीत लेश्याः २॥=तीसरा (निकाय वा समुदाय ज्योतिष्क देवों का) पीत लेश्या वाला है ऐसा दूसरा सूत्र है। 'पीतान्त लेश्याः' ॥ ७॥ इस सूत्र में भाष्यकार ने सभाष्य ० के छठवां सूत्र "पूर्वयोर्द्वीन्द्राः" से 'पूर्वयोः' शब्दकी अनुवृत्ति लेकर ऐसा अर्थ किया है (पूर्वयोर्निकायोर्देवानां पीतान्ताश्चतस्रो लेश्या भवन्ति) =पहिले दो (भवनवासी और व्यन्तर) देवों के समुदायके (आरंभ से लेकर) पीत पर्यंत चार (कृष्णा-नीला-कापोता पीता) लेश्या होती हैं॥ दिगंबरों का दूसरा, श्वेताम्बरोंका दूसरा और सातवां सूत्रोंको पढ़नेसे अर्थ भेद ऐसा हुआ कि दोनोंके अनुकूल भवनवासी और व्यंतरों में उक्त चार लेश्या होती हैं। ज्योतिष्कोंमें हमारे यहां चार लेश्या मानी हैं इनके यहां पीत मानी है॥

चतुर्णां देवनिकायाना दशादिभिः संख्याशब्दैर्यथासंख्यमभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ दशविकल्पा भवनवासिनः । अष्टविकल्पा व्यन्तराः । पञ्चविकल्पा ज्योतिष्काः । द्वादशविकल्पा वैमानिका इति ॥ सर्ववैमानिकानां द्वादशविकल्पान्तःपातित्वे प्रसक्ते ग्रैवेयकादिनिवृत्त्यर्थं विशेषणमुपादीयते कल्पोपपन्नपर्यन्ता इति ॥ अथ कथं कल्पसञ्ज्ञा ? इन्द्रादयः प्रकारा दश एतेषु कल्प्यन्त इति कल्पाः ॥ भवनवासिषु तत्कल्पना

वृत्त्यनुवाद—चतुर्णाम् ६। देव-निकायानाम् ६।	=चार (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक) देवाके समूह वा समुदायोंका
दश- आदिभिः ३। संख्या-शब्दैः ३। यथासंख्यम् ※	=दश, आठ, पांच और वारह गणना शब्दों से संख्या के क्रम से
अभिसम्बन्धः १। वेदितव्यः १।	=सम्बन्ध जानना चाहिये (इस प्रकार यथासंख्य सम्बन्ध करने से)
दश-विकल्पाः १। भवनवासिनः १। अष्ट-विकल्पाः १।	=दश भेदरूप भवनवासी (देव) हैं। आठ भेदों के धारक
व्यन्तराः १। पञ्च-विकल्पाः १। ज्योतिष्काः १। द्वादशविकल्पा १।	=व्यन्तर हैं। पांच भेद वाले ज्योतिषी देव हैं। बारह भेदरूप
वैमानिकाः १। इति ※	=वैमानिक हैं अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग पर्यंत उत्पन्न होने वाले देव हैं
सर्व-वैमानिकानाम् ६। द्वादश-विकल्प-अन्तः	=सब वैमानिक देवों का वारह भेदों के भीतर (=अन्तः)
पातित्वे ७।॥ प्रसक्ते ७।॥ ग्रैवैयक-आदि-निवृत्ति-अर्थम् १।॥	=आजाने के (=पातित्वे) प्रसंग होने पर ग्रैवैयक आदि के निषेध के लिये
कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः १। इति ※ विशेषणम् १।॥	=कल्पोपपन्न पर्यन्ता ऐसा (इस सूत्र में) विशेषण
उपादीयते T, अथ ※ कथं ※ कल्प-संज्ञा १।॥	=लाया गया है (=उपादीयते) (प्रश्न (अथ) (इन वैमानिक देवों की) कल्पसंज्ञा कैसे हैं
इन्द्रादयः १। प्रकाराः १। दश १। एतेषु ७।	=(उत्तर) इन्द्रादिक (देखिये सूत्र चौथा) दश भेद इन (वैमानिक देवों) में
कल्प्यन्ते T इति कल्पाः १।	=कल्पना किये हैं वा माने गये हैं इस प्रकार कल्पा है। अर्थात् कल्पसंज्ञा इन देवों की इस हेतु से हैं कि इन के दश भेदों की कल्पना की गई है।
भवनवासिषु T, ३। तत्कल्पना	=(प्रश्न) भवनवासि देवों में वही कल्पना है (उत्तर) (ऐसी कल्पना)

ज्योतिष्कनामसु देवानां कृष्णा नीला कापोता पीतेति चतस्रो लेश्या भवन्ति ॥ तेषां निकायानामन्तर्विकल्प-प्रतिपादनार्थमाह—

॥ दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

ज्योतिष्क—नामसु ७।। देवानां ६।। कृष्णा १।। नीला १।। =ज्योतिष्क नामवालेदेवताओं के कृष्ण नील

कापोता १।। पीता १।। इति * चतस्रः १।। लेश्याः १।। भवन्ति T =कापोत पीत ऐसे चार लेश्यायें होती हैं।

तेषां ६। निकायानां ६। अन्तर्विकल्प— प्रतिपादन—अर्थम् २।।।, आह =तिन समुदायोंके अन्तर्भेद कहनेके लिये वा ज्ञान कराने के लिये =कहते हैं कि

सूत्रम्— दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

=(देवाश्चतुर्णिकायाः) दशाष्टपञ्चद्वादश विकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

सूत्रार्थः—देवा १। चतुः-निकायाः १। दश-अष्ट-पञ्च =चार समुदाय वाले देव (यथासंख्य) दश, आठ, पांच,

द्वादश-विकल्पाः १। कल्प- उपपन्न- पर्यन्ताः १। =और वारह भेदों के धारक स्वर्ग में उत्पन्न होने वालों तक अर्थात् स्वर्ग-वासी देवों पर्यन्त (=कल्पोपपन्न पर्यंत) हैं। भावार्थ यह है कि दशप्रकार के भवन वासी देव हैं, आठ भेद व्यन्तर देवोंके हैं, पांच विकल्प ज्योतिषी देवोंके हैं। और वारह प्रकार के सोलह स्वर्ग पर्यन्त कल्पवासी देव हैं।

(.) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नाओंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है। (२) ऊर्ध्व लोक के दो भेद हैं कल्प और कल्पातीत। और जिन में वैमानिक देव निवास करते हैं वे भी स्थान भेद से दो प्रकार हैं। एक कल्पोपपन्न अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग तक उत्पन्न हो कर उन स्वर्गों में निवास करने वाले। इन देवों के ही वारह भेद इस सूत्र में कहे हैं। दूसरे कल्पातीतोपपन्न अर्थात् सोलहवां स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पंचानुत्तर इन तेईस स्थानों में उपजकर सोलहवां स्वर्ग से ऊपर वसते हैं। यह इन वारह भेदों में अन्तर्गत नहीं हैं।

एटानिवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद अध्याय ४ सूत्र ४

अर्थ प्रकाशिकामें और पांच स्थानों में पं० सदासुखजी कृत लघुटीकामें पांचवें सूत्रमें सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियोमें और निर्णयसागर मुद्रणयंत्र के सोलह पाठ के गुटका में भी एक स्थान मे और चौथा पांचवां सूत्र हस्त लिखित बहुत सी प्रतियोंमें देखे गये उनमें भी किसी २ स्थान में त्रायस्त्रिशत् मिलता है। साधारण पाठक प्रायः भ्रम में पड जाते हैं कि यह क्या बात है इससे हम इस लिखने को बाध्य हुये कि व्याकरण के अनुसार 'त्रायस्त्रिशत्' चौथे सूत्र में तथा 'त्रायस्त्रिशल्लोक' पांचवां सूत्र में सर्वथा अशुद्ध हैं।

पं० जयचन्द जी की वचनिका मुद्रित में, तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित में, तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक मुद्रित में, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र मुद्रितमें, पं० पन्नालाल जी मोक्षशास्त्र मुद्रित में, जैनी जी अङ्गल भाषा में अनुवादित तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में ' चौथे सूत्र ' तथा 'त्रायस्त्रिंशलोकपाल'... पांचवां सूत्र मे त्रायस्त्रिंश शुद्ध है बहुत से अन्य भाष्य और भाषा की टीकाएं देखी गई उनमे किसी किसी में शुद्ध पाठ है अधिकतर में अशुद्ध पाठ हैं परन्तु श्वेताम्बर आम्नाय की भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्री सिद्धसेन सूरिरचित) हस्त लिखितमें उक्त पाठ दोनों सूत्रों का पृष्ठ ३१८ और ३१९ पर शुद्ध पाया गया है यह प्रति हस्तलिखित बहुत प्राचीन है। और इसमें बाईस सहस्र श्लोक से अधिक हैं॥ परंतु स्मरण रहे कि त्रायस्त्रिंशाँल्लोकपालांश्च' (=त्रायस्त्रिंशान् लोकपालान् च) यह वाक्य ठीक है क्योंकि 'त्रायस्त्रिंश' शब्द की द्वितीया विभक्ति बहुवचन पुल्लिङ्गरूप 'रामान्' शब्द के सदृश बनता है॥ उक्त छहों शब्द 'त्रयस्त्रिंशत्', 'त्रायस्त्रिंश' 'त्रायस्त्रिंशत्तम्' त्रायस्त्रिशत, 'त्रायस्त्रिंशाः' 'त्रायस्त्रिंश' क्यों शुद्ध और ठीक हैं तथा 'त्रायस्त्रिंशत्' क्यों अशुद्ध है इन सबों के लिये निम्न लिखित हेतु क्रम से देते हैं॥ विंशति, त्रिंशत्, बीस, तीस हैं इनको प्रायः सबही जानते हैं। विंशति और त्रिंशत शब्दों के पहले एक-द्वि-त्रि-चतुर्-पञ्चन्-षष्-सप्तन्-अष्टन्-नवन् जोडकर उनतीस और उनतालीस तककी संख्यायें बना लेते हैं परन्तु इनके बनाने में न् गिर जाता है, द्वि का द्वा, त्रि का त्रयः और अष्टन् का अष्टा हो जाता है हम केवल इकत्तीस से उनतालीस तक की संख्या लेते हैं एकत्रिंशत्=इकतीस, द्वात्रिंशत्=बत्तीस, त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस, चतुस्त्रिंशत्=चौंतीस, पञ्चत्रिंशत्=पैंतीस, षट्त्रिंशत्=छत्तीस, सप्तत्रिंशत्=सैंतीस, अष्टात्रिंशत्=अड़तीस, नवत्रिंशत्=उनतालीस, (=एकोन चत्वारिंशत्) ॥ त्रि+त्रिंशत्=त्रयः+त्रिंशत्=त्रयस्त्रिंशत् (तकारके हेतु से विसर्गका परिवर्तन स् में हो गया) इसलिये तीन+तीस=तेतीस त्रयस्त्रिंशत् शब्द बन गया ( ) विंशति और त्रिंशत् इत्यादि संख्याओं से क्रमिक संख्या के बनाने में, विंशति का ति और एकत्रिंशत्, द्वात्रिंशत्, त्रयस्त्रिंशत् आदि का व्यंजन गिरा देनेसे बन जाती है जैसे विंशति=बीस से विंश (=बीसवां) और त्रिंशत् (=तीस) से त्रिंश (=तीसवां) बन गया इस प्रकार एकत्रिंश=इकतीसवां, द्वात्रिंश=बत्तीसवां त्रयस्त्रिंश=तेतीसवां बनगया॥ ( ) क्रमिक संख्याके बनानेका दूसरा नियम यह है कि संख्याके अन्तमें 'तम' प्रत्यय लगादेते हैं जैसे विंशति=बीस विंशतितम=बीसवां एक विंशति=इक्कीस, एकविंशतितम=इक्कीसवां, इत्यादि। त्रिंशत्=तीस, त्रिंशत्तम (=त्रिंशत्तमः) तीसवां॥ एकत्रिंशत्=इकतीस, एकत्रिंशत्तमः (=एकत्रिंशत्तमः)=इकतीसवां; द्वात्रिंशत्=बत्तीस, द्वात्रिंशत्तमः(=द्वात्रिंशतमः) =बत्तीसवां॥ त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस, त्रयस्त्रिंशत्तमः (=त्रयस्त्रिंशत्तमः) तेतीसवां॥ ( ) 'त्रायस्त्रिंशाः' यह नाम इन देवों का सार्थक है क्योंकि ये तेतीसही होते हैं जैसा कि 'त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशाः' (=तेतीस ही हो त्रायस्त्रिंश हैं—सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ २३२ प्रथम संस्करण, और 'त्रयस्त्रिंशत् देवाः ते एव त्रायस्त्रिंशाः (=तेतीस देव हैं ते ही त्रायस्त्रिंश हैं—

सम्भवेऽपि रूढिवशाद्वैमानिकेष्वेव वर्तते कल्पशब्दः॥ कल्पेषूपपन्नाः कल्पोपपन्नाः। कल्पोपपन्नाः पर्यन्ता येषां ते कल्पोपपन्नपर्यन्ताः॥ पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः॥४॥

सम्भवे॰। अपि॰ रूढि-वशात्॥। वैमानिकेषु॰। एव॰ =सम्भव होने पर भी प्रसिद्धता के वशसे वैमानिक देवों में ही

वर्तते। कल्प-शब्दः।। कल्पेषु॰। उपपन्नाः।। =कल्पशब्द प्रवर्तता है। कल्पों अथवा स्वर्गों में उत्पन्न होने वाले हैं

कल्प-उपपन्नाः।; कल्प-उपपन्नाः।। =वे-कल्पोपन्न हैं अर्थात् स्वर्गवासी देव हैं। कल्पोंमें उत्पन्न होनेवाले

पर्यन्ताः।। येषाम्।। ते।। कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः।। =तक जिनके (बारह भेद) हैं वे कल्पोपन्न पर्यन्त हैं।

पुनः-अपि॰ तद्-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्।।। आह। =फिर भी उन (देवों) का विशेष जाननेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहतेहैं कि

सूत्रम्— इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः॥४॥

पदच्छेदः— इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद-आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य-किल्विषिकाः[1] च॰ एकशः॰ (देवनिकायेषु देवाः दशविधा भवन्ति)

(१) इस सूत्र का पाठ हमारे यहां एक सा है किसी २ प्रति में 'किल्विषिका' है किसी २ में 'किल्विषिका' है कोषों में 'किल्विष' शब्द पाप और अपराध के अर्थ में मिलता है॥ श्वेताम्बर आम्नाय के संभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में 'पारिषद्' शब्दके स्थान में 'पारिषद्य' है शेष पाठ दोनों आम्नायों में एक सा है अर्थ भी एक है। भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका (श्री सिद्धसेन सूरि रचित) में 'किल्विषिका' पाठ है। शेष पाठ उनके यहां भी एक है॥

(२) त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस; त्रयस्त्रिंशा वा त्रयस्त्रिंशत्तम (=त्रयस्त्रिंशत्तम) =तेतीसवां; त्रायस्त्रिंशताः वा त्रायस्त्रिंशाः=एक प्रकार के नियमित तेतीस देवों का समूह अर्थात् इन्द्रके मंत्री, पुरोहित के समान वा उनके स्थापन्न हैं वे त्रायस्त्रिंश हैं और इस जातिके ये तेतीस ही देव होते हैं॥ त्रायस्त्रिंशाः=उन(३३) देवों में से एक। उक्त छहों शब्द ठीक हैं परन्तु हमको चौथे और पांचवें सूत्र के पाठ में 'त्रायस्त्रिंशत्' शब्द पांच स्थानों में

कि "जाते चार्थेयोऽन्येन बाधितः पुनरण् विधीयते स वा डिद्भवतीति वक्तव्यम्'

च जाते अर्थे यः अण् अन्येन बाधितः पुनः विधीयते =और(च) जात अर्थमें जो अण् अन्य (सूत्र) से बाधित होकर फिर विहित हो वा -लाया जावे

१० सः डित्वत् वा =वह (अण्) डित्वत् (ङ् हो इत् संज्ञक जिसका ऐसे प्रत्ययके सदृश) -विकल्पसे

भवति इति वक्तव्यम् =हो (अर्थात् जी चाहे अण् को डित्वत् मानो वा न मानो यह कहना चाहिये

भावार्थ चौथे अध्यायके प्रथम पादके तिरासीवां सूत्रके बलसे "अण्" प्रत्ययका अधिकार वा प्रकरण 'तेन दीव्यति' इस (चौथे पाद के) सूत्रके पहिले पहिले हैं परन्तु 'अण्' इसी अध्यायके तीसरे पादके ग्यारहवां सूत्रसे बाधित हुआ है पश्चात् इसी पादके सोलहवां सूत्रसे विहित हुआ है वा फिर लगाया गया है, फिर लागू किया गया है इस लिये इस अण् को डित्वत् विकल्पसे मान सकते हैं।

अब प्रश्न यह है कि 'डित्वत् विकल्पसे मानने में क्या लाभ है (उत्तर) अष्टाध्यायीके छठे अध्यायके चौथे पादके एकसौ तेतालीसवां सूत्र (टेः डिति लोपः) से यदि किसी शब्द के पश्चात् डित् प्रत्यय आवे तो उस शब्द के टि (भाग) का अर्थात् उस शब्द के अंत के स्वरका मय उसके पश्चात् के व्यंजन का (यदि कोई हो तो) लोप हो जाता है। जैनेन्द्र व्याकरणकी शब्दार्णव चन्द्रिका नामक लघुवृत्तिके चौथे अध्यायके चोथे पादके १४०वां सूत्र. ड़िति टे'(-टे डिति ख)=(टि संज्ञस्यखं (=लोप)भवतिडिति पर =टि संज्ञाका डित् परे लोप होजाता है जैसे शतभिषज्(जहां सैकड़ो तारा वैद्यों के समान है अश्विना से चोवीसवां नक्षत्र जिसके सौ तारेहैं और त्रयस्त्रिंशत् -ततीस इन दोनों शब्दों के उपर्युक्त नियम से दो दो रूप तत्र जातःअर्थ में इस प्रकार बन जाते हैं कि शतभिषजि जातः (जो वहां शतभिषज में उत्पन्न हो) सो शतभिषज्+अण् -शातभिषज (यदि अण् को डित्वत् न माने तो रूप होगा) और (यदि अण् को डित्वत् माने तो अज् का लोप हो कर शातभिष, जिनके प्रथमाविभक्ति एक वचन पुल्लिंग रूप 'शातभिषजः और शातभिषः होगे (देखो सिद्धान्त कौमुदीपर तत्वबोधिनी व्याख्या के तद्धित के रक्ताद्यर्थका प्रकरणको जहां शातभिषःऔर शातभिषजः दोनों शब्द सिद्ध किये हैं त्रयस्त्रिंशति जातः =जो तेतीस में उत्पन्न हो सो त्रयस्त्रिंशत्+ अण् -त्रायस्त्रिंशत (यदि अण् को डित्वत् न मानें तो) और त्रायस्त्रिंश (यदि अण् को डित्वत् माने तो अत् का लोप होने पर) रूप होंगे जिनके प्रथमाविभक्ति एक वचन और प्रथमाविभक्ति बहुवचन क्रम से त्रायस्त्रिंशतः त्रायस्त्रिंशताः त्रायस्त्रिंशः 'त्रायस्त्रिंशाः' होंगे इस लिये त्रायस्त्रिंशतः और त्रायस्त्रिंशः रूप शुद्ध हैं। और त्रायस्त्रिंशत् सर्वथा अशुद्ध हैं। पं० पन्ना-लाल जी न्यायदिवाकार अनुवादित तत्वार्थ राजवार्तिक लिखित पृष्ठ ९०८ म 'त्रायस्त्रिंशत शब्द तैसेही स्वर्ग में इन्द्रनिकें मंत्री और पुरोहित के स्थानीय 'त्रायस्त्रिंशत' कहिये तेतीस देव होय हैं। इस वाक्य में आया है। १०

इत. ३।१।८२ यहां पर 'इत' ऐसा एक वचनांत शब्द का ही उल्लेखउपर्युक्त था अथवा तद्धिताः अष्टाध्यायी अध्याय चार पादएक सूत्र ७६ के तद्धित

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३७२, हस्तलिखित पृष्ठ २९६, वाक्योंसे प्रगट है। यह शब्द ऐसे बना है कि

६ (क) 'त्रयस्त्रिंशति जाताः त्रायस्त्रिंशाः'=त्रयस्त्रिंशति ७।। जाताः १।। त्रायस्त्रिंशाः १। =तेतीसमें (जो) उत्पन्न हों (वे) त्रायस्त्रिंश (देव) हैं ॥

"त्रयस्त्रिंशति कहिये तेतीस संख्याके आधाररूप जे होंय ते त्रायस्त्रिंशाः तेतीस देव हैं" श्रीमान् विद्वद्वर्य स्वर्गीय पं० पन्नालाल जी न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थरत्नमालानामग्रन्थ के हस्तलिखित पृष्ठ ९०८ से उद्धृत ॥ आधाररूप=आश्रयरूप, अधिकरणरूप ॥

तत्र जातः। अष्टाध्यायी,अध्याय चौथा पाद तीन सूत्र पच्चीसवां और जैनेन्द्र व्याकरण ३-३-१ दोनों व्याकरणोंमेंशब्दशः एक पाठ है ॥

=तत्र॰जातः १। (समर्थात् ५। अण्-आदयः १। घ-आदयः १। प्रत्ययाः १।)॥समर्थात्की अनुवृत्ति इसीअध्यायके पादप्रथम सूत्र ८२ वां(समर्थानांप्रथमाद्वा) से लीगई है। 'अण्-आदय'और'घ-आदय'की अनुवृत्तियें,इसी अध्यायके पाद प्रथम सूत्र ८३ वां (पाद दो सूत्र २९ वां इत्यादि) (क्रमसे प्राग्दिव्यतोऽण्, महेन्द्राद् घणौ च इत्यादि) से अवसर आवश्यकता, और अर्थके अनुकूल ली गई हैं॥ प्रत्ययाःकी अनुवृत्ति अष्टाध्यायी, अध्याय तीसरा पाद प्रथम सूत्र पहले से ली गई है॥ तत्र= वहांपर, तहांपर अर्थात् एक शब्द जो सप्तमी विभक्तिमें हो, और जो तात्पर्य वा अर्थमें वाक्यके अवशेष शब्द वा पदोंसे सम्बन्ध रखता हो।

'समर्थ' का यहां पर यह आशय है कि 'वाक्यमें वह शब्द वा पद जो वाक्यके अन्य पदों के साथ मिलकर तात्पर्य वा अर्थ से सम्बन्ध रखता हो' अर्थात् वाक्यके विग्रह करने पर उस (वाक्य) के तात्पर्य को प्रगट कर सके॥

इस लिये "तत्र जातः" सूत्रका संस्कृत अर्थ ऐसा हुआ कि "सप्तमी समर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च प्रत्ययाः स्युः" भावार्थ ऐसा है कि

तत्र॰ जातः १। इति ॰ अर्थे ७। सप्तमी (विभक्ति अन्त) १॥ =तहां उत्पन्न हुवा ऐसे अर्थमें सप्तमी है विभक्ति अन्त में (जिसके ऐसे)

समर्थात् ५। =समर्थपद (=वाक्यमें अन्य पद वा पदोंके साथ मिलकर तात्पर्य प्रकाशक शब्द वा पद) से अर्थात् ऐसे समर्थ पदके पश्चात

अण्-आदयः १। च ॰ घ-आदयः १। प्रत्ययाः १। स्युः T =अण् आदिक और घ आदिक प्रत्यय हों (अन्य प्रत्ययों को छोड़ कर केवल अण् को लेते हैं। अण् प्रत्यका ण् इत्संज्ञक है इस लिये अण्=अ 'त्रयस्त्रिंशति' में अण् जोड़ने से त्रयस्त्रिंशति+अ ऐसा रूप बना त्रयस्त्रिंशति ७।। जातः=त्रयस्त्रिंशत्+अ

अष्टाध्यायी ७-२-११७ (तद्धितेष्वचामादेः=तद्धितेषु, अचाम्, आदेः('ञ्णिति णिति' सूत्र ११५से और 'वृद्धिः' सूत्र ११४ से अनुवर्तता है)

=ञिति, णिति तद्धतेषु अचाम् आदेः वृद्धिः=ञिति तद्धित (संज्ञक)प्रत्यय हो तो (अङ्ग शब्द के स्वरोंमें से प्रथम स्वरको वृद्धि हो)

इसलिये 'त्रयस्त्रिंशत्+अ' =त्रायस्त्रिंशत्+अ ॥ अब यहां पर अष्टाध्यायी, अध्याय चार पाद दूसरा सूत्र सातवां दृष्टं साम्के नीचे यह वार्तिक है ६

अन्यदेवासाधारणाणिमादिगुणयोगादिन्दन्तीति १ इन्द्राः ॥ आज्ञाश्चैर्यवर्जितं यत्समानायुर्वीर्यपरिवार-भोगोपभोग तत्समानं, तस्मिन्समाने भवाः २ सामानिकाः । महत्तराः पितृगुरूपाध्यायतुल्या ॥ मन्त्रिपुरोहित-स्थानीयाः ३ त्रायस्त्रिंशाः त्रयस्त्रिंशदेवत्रायस्त्रिंशाः

सूत्रार्थ—इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद्-	=इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद,
आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य	=आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग
किल्विषिकाः। च॥ एकशः॥ देवनिकायेषु।	=और किल्विषिक एक एक देवों के समूह में
(देवाःदशविधा॥ भवन्तिT)	=दश दश प्रकार के देव होते हैं अर्थात् (१) देवों का राजा (२) आज्ञा और ऐश्वर्य रहित अन्य बातों में इन्द्र के समान हों (३) मंत्री और पिरोहित के समान तेतीस देव (४) सभासद (५) शरीर रक्षक (६) कोटपाल वा गढ़पाल (७) पियादे आदिक सात प्रकार की सैना (८) प्रजाके सदृश देव (९) सेवकों के स्थानापन्न वा ठौर (१०) नीच अधम चांडालों के सदृश देव ये एक एक देवों के समूह में दश दश प्रकार के देव होते हैं ।
वृत्त्यनुवादः—अन्य-देव-असाधारण-अणिमादि-गुण-	=अन्य देवों से असमान्य वा विशेष अणिमादिक ऋद्धिरूप गुणों के
योगात्। इन्दन्तिT	=संयोग से जो ऐश्वर्य करिवर्ते हैं तथा ऐश्वर्य को प्राप्त हुये हैं
इति(१) इन्द्राः। आज्ञा-ऐश्वर्य-वर्जितं॥ यत्॥ समान-	=ऐसे (१) इन्द्र हैं ॥ आज्ञा और ऐश्वर्य रहित जो तुल्य वा बराबर
आयुर्-वीर्य- परिवार-भोग-उपभोगादि-	=जीवनकाल, बल, परिवारभोग और उपभोगादिक हैं ।
तत्॥ समानं॥ तस्मिन्॥	=वह समान हैं, तिस (आयु, बल, परिवार, भोग, उपभोगादिक) में
समाने॥ भवाः (२) सामानिकाः। महत्तराः।	=समान (इन्द्रके) हैं (२) वे सामानिक हैं(वे सामानिक) बड़े वा महत्वमहिमावाले हैं
पितृ-गुरू-उपाध्याय-तुल्याः। ॥ मन्त्रि-पुरोहित-	=(और इन्द्र के) पिता, गुरु, उपाध्याय के सदृश हैं॥ (इन्द्रके) मन्त्री पुरोहित के
स्थानीयाः। (३)त्रायस्त्रिंशाः। त्रयस्त्रिंशत्। एव त्रायस्त्रिंशाः	=स्थानापन्न हैं। वे त्रायस्त्रिंश हैं, तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं ॥

शब्द का ही प्रयोग उचित था फिर इतः (वा तद्धिताः) इस बहुवचनांत शब्द का जो उल्लेख किया गया है उसकी सामर्थ्य से स्वार्थ में भी अण् आदि प्रत्ययोंका विधान माना गया है। हमारे यहां के व्याकरणों में 'स्वार्थके ऽण्' वचन प्रसिद्ध है और अन्य व्याकरणों में "स्वार्थेऽण्" ऐसा वाक्य प्रसिद्ध हैं त्रायस्त्रिंश तेतीस देवता (जो देव शब्द के विना अर्थ के परिवर्तनके निकला है स्त्रीलिंग है) ओंमें से एक देवता ऐसा अर्थ है। और यह देवता शब्द प्रज्ञादि गण का है इसीलिये यहां पर 'प्रज्ञादिभ्योऽण्' = प्रज्ञादिक छत्तीस शब्दों के पश्चात् अपने अर्थ में अण् प्रत्यय हो। शाकटायन शब्दानुशासन ३।४।१३२ सूत्र लगा है अथवा प्रज्ञादिभ्य (जैनेन्द्र व्याकरण ४-२-५२ सूत्र)=प्रज्ञादिभ्यः (अण्), इस अण् की अनुवृत्ति पचासवां सूत्र 'कर्मणो अण्" से आती है। *पत्योऽण स्याद्वा स्वार्थे =स्वार्थ में इन प्रज्ञादि शब्दों से परे विकल्पकरि अण् प्रत्यय हो। अथवा "प्रज्ञादिभ्यश्च"* (प्रज्ञ इत्येवमादिभ्यः प्रातिपादिकेभ्यः स्वार्थेण् प्रत्ययोभवति =प्रज्ञ इत्यादिक प्रातिपदकों से परेस्वार्थ में अण् प्रत्यय हो। अष्टाध्यायी ५।४।३८ सूत्र लगता है। प्रज्ञ-आदिभ्यः च (अण्),इस सूत्रमें "अण् की अनुवृत्ति तद्युक्तात्कर्मणोऽण्" छतीसवां सूत्र से आती है। स्वार्थे की अनुवृत्ति तीसरे सूत्र "स्थूलादिभ्य प्रकार वचनेकन्" से ज्ञापकरूपमें निकलती है। यह अण् किसी दूसरे प्रत्यय से वाधित नहीं हुआ है। क्योंकि इस छत्तीसवें सूत्र के "अण्" की अनुवृत्ति सैतीसवां और अड़तीसवां दोनों सूत्रों में है इसलिये यह अण् विकल्पकरि 'ङित्वत्' हमारी समझ में है और ङित्वत् होने में पूर्वोक्त कथनानुसार त्रायस्त्रिंशः और त्रायस्त्रिंशतः दो रूप बनेंगे और त्रायस्त्रिंशत् अर्थात् हलन्तत काररूप वाला शब्द कदापि नहीं बनेगा। यह अशुद्ध सर्वप्रकार से है। इसका विग्रह तत्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ १५१ और सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ २३२ (द्वितीय संस्करण पृष्ठ १३६) में जहां स्वार्थमें "अण्" प्रत्यय किया है ऐसा है त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशाः = त्रयस्त्रिंशत् एव त्रायस्त्रिंशाः =तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं अर्थात् "त्रयस्त्रिंशत् एव कहिये तेतीसही त्रायस्त्रिंश हैं" पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर और श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३७२ में इसका विग्रह ऐसा है कि "त्रयस्त्रिंशद्देवा एव त्रायस्त्रिंशा" 'स्वार्थिकोऽपिहृत्' इति बहुत्व निर्देशात् त्रयस्त्रिंशत देवा एव कहिये तेतीस देव ही त्रायस्त्रिंश हैं। ऐसे हृतः बहुवचनांत निर्देश वा उपदेशसे स्वार्थ में भी (अण् तद्धित प्रत्यय आता) है इस समस्त उपर्युक्त व्याख्या का सारांश यह निकला कि त्रयस्त्रिंशत् (-तेतीस) (२) त्रयस्त्रिंश =तेतीसवां (३) त्रयस्त्रिंशत्तम =तेतीसवां (४) त्रायस्त्रिंशः तेतीस नियत देवों में से एक (५) त्रायस्त्रिंशाः तेतीस नियमित देव ,(६) त्रायस्त्रिंशतः तेतीस नियत देवों में से एक (७) त्रायस्त्रिंशताः तेतीस नियमित देव ये सातों शब्द ठीक और शुद्ध हैं परन्तु त्रायस्त्रिंशत् शब्द सर्वथा अशुद्ध है।

(१) त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशाः (=त्रयस्त्रिंशत् एव त्रायस्त्रिंशाः)॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १५१ में इस वाक्य के संबंध में ऐसा उल्लेख है कि "स्वार्थे के ऽण्, त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशा इति हृत इति बहुत्व निर्देशादंतमादिवत्" अपने अर्थ को द्योतक करते हुये (शब्दमें) अण् (=अ) प्रत्यय आता है और तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं ऐसा बना अर्थात् त्रयस्त्रिंशत् शब्द में अपने अर्थ में अण् लगाने से 'त्रायस्त्रिंश' बना॥ (शंका) त्रयस्त्रिंशत्+अण्=त्रायस्त्रिंशत बनना चाहिये क्योंकि अण् ङित् वत् हुआ नहीं फिर 'अत्' का लोप न हुआ॥ अत् को 'टि' कहते हैं (६-४-१४३, १-१-६४) (देखो उपर्युक्त टिप्पणी पृष्ठ ८-११ तक)

६ आभियोग्या दाससमाना वाहनादिकर्माणि प्रवृत्ता अन्तेवासिस्थानीयाः ॥ किल्बिषं पापं येषामस्ति ते १० किल्बिषिकाः ॥ एकैकस्य निकायस्य एकश एते इन्द्रादयो दश विकल्पाश्चतुर्षु निकायेषूत्सर्गेण प्रसक्तास्ततो-ऽपवादार्थमाह—

॥ त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥

(९) आभियोग्याः ३। दास-समानाः ३। =(९) आभियोग्य (वे देव हैं जो) सेवकों और किंकरों के तुल्य
वाहन-आदि कर्मणि ७।।। प्रवृत्ताः ३। अन्ते- =(हस्ति घोड़े इत्यादि) वाहनादिक कार्य मे प्रवर्तनेवाले हैं। (नगरके) अन्तमें
वासि-स्थानीयाः ३।।। किल्बिषं ३।।। पापं ३।।। =रहनेवालों को स्थानापन्न (और) अपराध (=किल्बिष) पातक (=पापं)
येषाम् ६। अस्ति ते ३। १० किल्बिषिकाः ३। =जिनके (उदय) है ते १० किल्बिष हैं अर्थात् पापकर्म के उदय सहित नीच जाति के देव चंडालों के समान नगर से बाहर रहने वाले और दूर ही खड़े होने वाले ऐसे किल्बिष्क देव हैं ॥ और जिनकी गणना क्रममें दशवीं है
एक-एकस्य ६। निकायस्य ६। एकशः ॐ =एक एक समुदाय के क्रम से (=एकशः)
एते ३। इन्द्रादयः ३। दश ३ विकल्पा ३। चतुर्षु ७। = ये इन्द्रादिक दश भेद चारों
निकायेषु ७। उत्सर्गेण ३। प्रसक्ताः ३। =समूहों में सामान्यपने से (इस सूत्र के अनुसार) प्राप्त हैं (प्रसक्ता)
ततः ॐ अपवाद-अर्थं ३।।। आह T =इस कारण (=ततस्) अपवाद के लिये (आचार्य अगला सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) सूत्रम्— त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥
=त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः (इतरे अष्टौ विकल्पा भवन्ति) ॥५॥

सूत्रार्थः—त्रायस्त्रिंश-लोकपाल-वर्ज्याः ३। व्यन्तर- =त्रायस्त्रिंशनामक तेतीस देव और लोकपाल को छोड़ कर व्यन्तर देवों के
ज्योतिष्काः ३। इतरे ३। अष्टौ ३। विकल्पा ३। भवन्ति T =तथा ज्योतिष्क देवों के अन्य आठ भेद होते हैं अर्थात् चार निकायोंमेंसे व्यन्तर तथा ज्योतिष्क इन दो निकायों में इंद्र, सामानिक पारिषद, आत्मरक्ष, अनीक प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्बिषिक ये आठ ही भेद होते हैं। १४

(१) इस सूत्र का श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्य में तथा भष्यानुसारिणितत्वार्थटीका (सिद्धसेन सूरि रचित) में और हमारे यहां पाठ अर्थ एक है।

वैयस्यपीठमर्दसदृशाः परिषदि भवाः ४ पारिषदाः ॥ ५ आत्मरक्षाः शिरोरक्षोपमानाः ॥ अर्थचरा-रक्षकसमानाः ६ लोकपालाः। लोकं पालयन्तीति लोकपालाः ॥ पदात्यादीनि सप्त ७ अनीकानि दण्डस्थानीयानि ॥ ८ प्रकीर्णकाः पौरजानपदकल्पाः ॥

वयस्य-पीठमर्द-	=मित्र (=वयस्य) और संधानकारी अथवा पिछाड़ी दाव बैठने वालोंके
सदृशाः;। परिषदि;॥ भवाः;। (४) पारिषदाः;। ॥	=सरीखे सभा में हों (४) वे पारिषद हैं ॥
(५) शिरस्-रक्षा-उपमानाः;। आत्मरक्षाः ;। ॥	=शिरकी रक्षा करने वालों के समान वा सदृश (५) आत्मरक्षक हैं । अर्थात् इन्द्र के शुभ शस्त्र धारी अंग की रक्षा करने वालों के सदृश हैं ॥
अर्थ-चर-	=(किसी) वस्तु-बात-विषय अथवा प्रयोजनके सन्धानी, खोजिया वा खोजी (=चर)
आ-रक्षक-समानाः;। (६) लोकपालाः;।	=और सर्वतः रक्षा करने वालों के (आ-रक्षक) सदृश (६) लोकपाल हैं
लोकं ;। पालयन्ति इति लोकपालाः;। ॥ पदाति-	=लोक को पालते हैं अथवा रक्षा करते हैं ऐसे लोकपाल हैं ॥ पियादे (=पदाति)
आदीनि;॥ सप्त;॥ दण्ड-स्थानीयानि;॥ ॥ ७ अनीकानि;॥	=आदिक सात (प्रकार की) सैना (=दण्ड) के स्थानापन्न (७) अनीक हैं। अर्थात् पियादे, अश्व, वृषभ, रथ, हस्ती, गंधर्व और नर्त्तकी इन सात प्रकार की सैनाओं के रूप धारण करने वाले देव हैं वे अनीक वा सैना के ठौर हैं ॥
(८) प्रकीर्णकाः;। पौर-जानपद-	=(८) प्रकीर्णक नगरवासी (=और) तथा देश से आये हुओं के (=जानपद)
कल्पाः;। ॥	=समान हैं अर्थात् प्रकीर्णक देव, इन्द्रके पुरवासी तथा राज्यकी प्रजाके सदृश हैं ॥

(१) परिषद् स्त्रीलिंग है अर्थ सभा वा धर्म सभा है परन्तु पारिषद् और परिषद् और परिषद्य का अर्थ सभासद के हैं ।

(२) अङ्ग-रक्षा-उपमानाः;।	=शरीर की रक्षा करने वालों के समान हैं। यद्यपि देवोंमें घातादिक नहीं हैं तथापि ऋद्धि विभवकी महिमा के लिये इस प्रकार के भेद हैं ॥
अर्थ-उत्पादक-कोट-पाल-सदृशाः;।	=प्रयोजन के निकालने वाले और गढ़ की रक्षा करनेवालोंके समान हैं

सादृश्य अर्थ में यहां "कल्पप्" प्रत्यय है जैसे "पितृ कल्प" पिता के समान "गुरु कल्प" गुरु के समान इसी प्रकार "पौर जानपदकल्पाः" नगरवासी और देशसे आये हुओं के समान ॥ "कल्प" शब्द के अर्थ नीचे लिखते हैं ॥

(१) "संवर्त्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि" अमर कोश काल वर्ग श्लोक २२ संवर्त्त, प्रलय, कल्प, क्षय, कल्पांत, ये पांच (पु०) नाम प्रलयके हैं ॥

(२) "कल्पे विधि क्रमौ" कल्पं, विधि क्रम ये तीन (पु०)नाम नियोग शास्त्र के हैं अमरकोशब्रह्मवर्ग ३९वें श्लोक का अंत भाग ॥

(३) अभ्रेष न्याय कल्पास्तु देशरूप समञ्जसम्" अभ्रेष (पु०) न्याय (पु०) कल्प (पु०) देशरूप (न०) समंजस (न०) ये नाम नीतिके हैं क्षत्रिय वर्ग २४ ॥

पूर्वयोर्निकाययोर्भवनवासिव्यन्तरनिकाययोः ॥ कथं द्वितीयस्य पूर्वत्वम् ? सामीप्यात्पूर्वत्वमुपचर्योक्तम् ॥ द्वीन्द्रा इति अन्तर्नीतवीप्सार्थः । द्वौ द्वौ इन्द्रौ येषां ते द्वीन्द्रा इति । यथा सप्तपर्णोऽष्टापद इति ॥ तद्यथा-भवनवासिषु तावदसुरकुमाराणां द्वाविन्द्रौ चमरो

(देखो सूत्र ११) दो दो इन्द्र हैं इस प्रकार भवनवासी देवोंमें बीस इन्द्र हैं और व्यन्तर देवोंके आठ भेदोंमें सोलह इन्द्र हैं सर्व छत्तीस इन्द्र हैं ॥

वृत्त्यनुवाद— पूर्वयोः ७/२। निकाययोः ७/२। भवनवासि- =पहिले दो निकायोंमें भवनवासी

व्यन्तर-निकाययोः ७/२। =और व्यन्तरोंके निकायों विषैं (प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र) हैं

कथं * द्वितीयस्य ६/१। पूर्वत्वम् १/१॥ =(प्रश्न) दूसरे (व्यन्तरनिकाय) कें कैसे प्रथमपना अथवा पूर्वपना है ॥

सामीप्यात् ५/१॥ पूर्वत्वम् १/१॥ उपचर्य-उक्तम् १/१॥ =निकटता (के कारण)से पूर्वपना उपचारकरि अथवा कल्पनाकरि कहा गया है ॥

द्वि-इन्द्राः १/३। इति * अन्तर्नीत-वीप्सा[1]- ="द्वि-इन्द्रा"ऐसा(वाक्य)अन्तर्प्राप्त वा अन्तरगर्भित क्रमसे प्रत्येक(=वीप्सा) भेदके

अर्थः १/१। =लिये(=अर्थ)है अर्थात् दश भेद(देखो सूत्र १०)भवनवासी निकायके हैं सो क्रमसे प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र हैं और व्यन्तरनिकायके आठ भेद (देखो सूत्र ११) हैं सो प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र हैं इस प्रकार अभ्यन्तरगत वीप्सा के अर्थ सूत्रमें "द्वि-इन्द्रा" लाये हैं ॥

द्वौ १/२। द्वौ १/२। इन्द्रौ १/२। येषां ६/३। ते १/३। द्वि-इन्द्रा १/३। इति *=दो दो इन्द्र जिन (असुरों) के हैं ते "द्वि इन्द्रा" हैं

यथा सप्तपर्णः १/१। =जैसे सतौनेका वृक्ष अर्थात् जिस (वृक्ष) के प्रति पत्ते के साथ सात सात पत्ते हों।

अष्टापदः १/१। इति * तद्यथा-भवनवासिषु ७/३। =और अष्टापद अर्थात् प्रयेक के आठ आठ पद हों हैं ॥ जैसे भवनवासियों में

तावत् * असुरकुमाराणां ६/३। द्वौ १/२। इन्द्रौ १/२। चमरः १/१। =तो (=तावत्) असुर कुमारों के दो इन्द्र चमर

१—वीप्सा शब्द स्त्रीलिंग है अमरकोश का संक्षेप गोले महाशय ने श्लोक बद्ध किया है जो अमरसार के नाम से प्रसिद्ध है जिसकी आवृत्ति १८८८ के पृष्ठ ३७१ में वीप्सा=क्रमसे प्रत्येक,ऐसा अर्थ लिखा है ॥ वीप्सा=बार बार उसी अर्थ में शब्दोंका दुहराना ॥ देखो वैद्य कोश पृष्ठ ६८५ ॥

व्यन्तरेषु ज्योतिष्केषु च त्रायस्त्रिंशलोकपालांश्च वर्जयित्वा इतरेऽष्टौ विकल्पा द्रष्टव्या ॥ अथ तेषु निकायेषु किमेकैक इन्द्र उतान्यः प्रतिनियमः कश्चिदस्तीत्यत आह–

॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।६।

पृथग्नुवाद– व्यन्तरेषु ७। ज्योतिष्केषु ७। च ❀ =व्यंतरों और (=च) ज्योतिष्कविषें

त्रायस्त्रिंशान् २। लोक-पालान् २। च ❀ वर्जयित्वा=इतरे १। =त्रायस्त्रिंशों को और लोकपालों को छोड़कर अन्य

अष्टौ १। =आठ(इन्द्र-सामानिक-पारिषद, आत्मरक्ष-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य, किल्विषिक,

विकल्पाः १। द्रष्टव्याः १। अथ ❀ तेषु ७। निकायेषु ७। किम् ❀=भेद जानना चाहिये । आगे (=अथ) तिन समूहों में क्या

एक-एकः १। इन्द्रः १। उत ❀ अन्य १। एक एक इन्द्र है ।अथवा(=उत)दूसरा

प्रतिनियमः १। कश्चित् ❀ अस्ति T इति ❀ अतः ❀ आह T=कोई नियम है इसलिये (आचार्य अगले सूत्रमें) कहते है कि

सूत्रम्– पूर्वयोर्द्वीन्द्रा ॥६॥ पूर्वयोर्निकाययोर्द्वीन्द्रा ॥६॥

सूत्रार्थः– पूर्वयोः ७। निकायोः ७। द्वी-इन्द्राः १। =पहिले दो समुदाय (भवनवासी और व्यन्तरों) मेंप्रत्येक भेद के दो दो इन्द्र हैं अर्थात् पूर्वोक्त देवों के चार समुदायों में से पहिले दो भवनवासी देवों के प्रत्येक भेद में (देखो सूत्र १०) दो २ इन्द्र हैं और व्यन्तर देवों के प्रत्येक भेद में

(१) जब तवर्ग से ल पश्चात् आवे तो तवर्ग को ल् ही हो जसे तत्+लय = तल्+लय = तल्लय परन्तु नकार को अनुनासिक ही लकार हो जैसे त्रायस्त्रिंशान्+लोकपालान्=त्रायस्त्रिंशाँल्लोकपालान् । (२) जब अंतिम न् के उत्तर में च् छ् । त् थ् । और ट् ठ् में से कोई आवे तो वह न् अनुस्वार और विसर्ग में पलट जाता है । जैसे लोकपालन् च = लोकपालाः च यदि विसर्ग के पश्चात् च् अथवा छ् आवे तो वह विसर्ग श् में पलट जाता है इस कारण लोकपालान् = लोकपालांश्च हुआ जैसे कि वृत्ति में है ।

(३) श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र । का तथा श्री सिद्धसेन रचित भाष्यानुसारिणितत्वार्थटीका का और अधिकतम हमारे यहां की पुस्तकों का पाठ इस सूत्र का एक है अर्थ सर्वत्र एक है । ज्ञानचन्द्र जी मुद्रित तत्वार्थ सूत्र में "पूर्वयोर्द्वीन्द्राः" ऐसा पाठ है यह भी पाठ "अचोरहाभ्याम् द्वेवा" सूत्र से ठीक है । (४) पूर्वयोः निकायोः प्रत्येक शब्द षष्ठी के वचन में भी हो सका है उस समय अर्थ ऐसा होगा कि पहिले दो समुदाय (भवनवासी और व्यन्तरों) के इत्यादि । (५) द्वी-इन्द्राः =प्रत्येक भेद के दो दो इन्द्र हैं (यह अर्थ कैसे हुआ देखो वृत्ति में यह वाक्य अन्तर्नीत वीप्सा है।।

गन्धर्वाणां गीतरतिर्गीतयशाश्च। यक्षाणां पूर्णभद्रो माणिभद्रश्च। राक्षसानां भीमो महाभीमश्च। भूतानां प्रतिरूपोऽप्रतिरूपश्च पिशाचानां कालो महाकालश्च ॥ अथैषां देवानां सुखं कीदृशमित्युक्ते सुखावबोधनार्थमाह—

॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥

गन्धर्वाणां। गीतरतिः। गीतयशाः। च*।	=गन्धर्वोंके गीतरति और गीतयशाः (ये दो इन्द्र) हैं।
यक्षाणां। पूर्णभद्रः। माणिभद्रः। च*। राक्षसानां।	=यक्षोंके पूर्णभद्र और माणिभद्र (ये दो इन्द्र) हैं राक्षसोंके
भीमः। महाभीमः। च*। भूतानां। प्रतिरूपः।	=भीम और महाभीम (ये दो इन्द्र) हैं। भूतोंके प्रतिरूप
अप्रतिरूपः। च*। पिशाचानां। कालः। महाकालः। च*	=और(=च) अप्रतिरूप (ये दो इन्द्र) हैं। पिशाचोंके काल और महाकाल (दो इन्द्र) हैं।
अथ* एषां।	=आगे (=अथ) इन (भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषी तथा स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाले)
देवानां। सुखं। कीदृशम्। इति* उक्ते। सुख-	=देवोंके सुख किसप्रकार है, ऐसे पूंछने पर सुखके
अवबोधन-अर्थम्। आह।	=जाननेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि
सूत्रम्— कायप्रविचारा आ ऐशानात् ॥७॥	**= भवनवास्यादयो देवा आ ऐशानात् कायप्रवीचारा भवन्ति**
काय-प्रवीचाराः।	=शरीरसे मैथुन विषयका उपसेवनवाले वा कामसेवनहारे (भवनवासी देवोंसे)
आ ऐशानात्।	=ऐशान (दूसरे) स्वर्ग पर्यन्त (=आ) हैं अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म (पहिलास्वर्ग) तथा ऐशान (दूसरे) स्वर्ग तकके देव, मनुष्यों के समान अपनी अपनी देवांगनाओके साथ कामसेवन करते हैं ॥

(१) गीत यशाः शब्द के रूप विश्वपाके (=सूर्य-चन्द्र-अग्नि-विश्वम्भर) जो पुल्लिंग है सदृश है जैसे विश्वपा का पुल्लिग एक वचन प्रथमा विभक्ति "विश्वपाः" है। वैसे ही गीतयशाः है कई महाशयोंने हिन्दीमे इस गीतयशाः" शब्दका अनुवाद 'गीतयश' ऐसा किया है चूंकि 'गीतयशा' एक इन्द्रका नाम है वह निश्चय से एक वचन मे है। हमको एक हस्त लिखित संस्कृत सर्वार्थसिद्धि मे "गन्धर्वाणां गीतरतिः। गीतयशश्च॥ ऐसा पाठ पृष्ठ ९४ पर प्राप्त हुआ है और पं० पन्नालाल जी दूनी ने "अर गंधर्वनि के विषै गीतरति अर गीतयशा नामा दोय इन्द्र हैं" ऐसा अनुवाद किया है ॥ हमने भी क्योंकि एक इन्द्र का नाम है बिना परिवर्तनकिये हुए गीतयशा अनुवाद किया है ॥

(२) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आचार्यों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक सा है। कहीं प्रविचार, कहीं प्रवीचार शब्द है, दोनों ठीक हैं ॥

वैरोचनश्च । नागकुमाराणां धरणो भूतानन्दश्च । विद्युत्कुमाराणां हरिसिंहो हरिकान्तश्च । सुपर्णकुमाराणां वेणुदेवो वेणुधारी च । अग्निकुमाराणां अग्निशिखोऽग्निमाणवश्च । वातकुमाराणां वैलम्बः प्रभञ्जनश्च । स्तनितकुमाराणां सुघोषो महाघोषश्च । उदधिकुमाराणां जलकान्तो जलप्रभश्च । द्वीपकुमाराणां पूर्णो विशिष्टश्च । दिक्कुमाराणां अमितगतिरमितवाहनश्चेति ॥ व्यन्तरेष्वपि किन्नराणां द्वाविन्द्रौ किन्नरः किम्पुरुषश्च । किम्पुरुषाणां सत्पुरुषो महापुरुषश्चेति । महोरगाणां अतिकायो महाकायश्च ।

वैरोचनः ॥ च० । नागकुमाराणां ॥ धरणः ॥	=और (च) वैरोचन हैं नागकुमारोंके धरण
भूतानन्दः ॥ च० । विद्युत्कुमाराणां ॥ हरिसिंहः ॥	=और भूतानन्द (दो इन्द्र) हैं । विद्युत्कुमारोंके हरिसिंह
हरिकान्तः ॥ च० । सुपर्णकुमाराणां ॥ वेणुदेवः ॥	=और हरिकान्त (दो इन्द्र) हैं । सुपर्णकुमारोंके वेणुदेव
वेणुधारी ॥ च० । अग्निकुमाराणां ॥ अग्निशिखः ॥	=और वेणुधारी (दो इन्द्र) हैं । अग्निकुमारोंके अग्निशिख
अग्निमाणवः ॥ च० । वातकुमाराणां ॥ वैलम्बः ॥	=और (च) अग्निमाणव (ये दो इन्द्र) हैं । वातकुमारोंके वैलम्ब
प्रभञ्जनः ॥ च० । स्तनितकुमाराणां ॥ सुघोषः ॥	=और (च) प्रभञ्जन (ये दो इन्द्र) हैं । स्तनित कुमारोंके सुघोष
महाघोषः ॥ च० । उदधिकुमाराणां ॥ जलकान्तः ॥	=और (च) महाघोष (ये दो इन्द्र) हैं । उदधि कुमारोंके जलकान्त
जलप्रभः ॥ च० । द्वीपकुमाराणां ॥ पूर्णः ॥	=और (च) जलप्रभः (ये दो इन्द्र) हैं । द्वीपकुमारोंके पूर्ण
वशिष्टः ॥ च० । दिक्कुमाराणां ॥ अमितगतिः ॥	=और (च) वशिष्ठ (ये दो इन्द्र) हैं । दिक्कुमारोंके अमितगति
अमितवाहनः ॥ च० इति० । व्यन्तरेषु ॥ अपि०	=और (च) अमितवाहन (ये दो इन्द्र) हैं । व्यन्तरोंमें भी
किन्नराणां ॥ द्वौ ॥ इन्द्रौ ॥ किन्नरः ॥ किम्पुरुषः ॥ च० ।	=किन्नरोंके दो इन्द्र किन्नर और (च) किम्पुरुष हैं ॥
किम्पुरुषाणां ॥ सत्पुरुषः ॥ महापुरुषः ॥ च० इति० ।	=किम्पुरुषों के सत्पुरुष और महापुरुष (ये दो इन्द्र) हैं ।
महोरगाणां ॥ अतिकायः ॥ महाकायः ॥ च० ।	=महोरगों के अतिकाय और (च) महाकाय (ये दो इन्द्र) हैं ।

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्— शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रविचाराः ॥८॥

=(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें' हमारे यहांके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहांके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "ऐशानादूर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासङ्ख्यम्"=ऐशानात् ऊर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्नाः देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः-प्रवीचाराः भवन्ति यथासङ्ख्यम्="ऊपर कहे हुये ईशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपपन्न देव हैं। वे दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श, रूप, शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयोः"=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमें। दोनों आम्नायके इन सूत्रोंके अर्थभेद समझनेमें स्मरण रहै कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में दश कल्प माने हैं जेसा कि पृष्ठ ९३ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमें से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका" में बारह कल्प माने है। "कल्पः समुदाय सन्निवेशो विमानमात्रपृथिवीप्रस्तारसनिमित्तभेदा द्वादशधा" "सूत्र २० 'सौधर्मादि' पृष्ठ ३२५।"...... आरणाच्युतावित्येव द्वादश कल्पाः तद् उपरिग्रैवेयकानिनवोपर्युपरित पंच महा विमानानि इति" पृ०.ठ२२६ ॥ इस भाष्य मे बाईस सहस्र श्लोक से अधिक हैं श्वेताम्बरो में सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के लेखमें मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है ॥ हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं ॥ बांयें ओर दिगम्बर आम्नाय का लेख है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्रकल्प	यहां स्पर्शन द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहां स्पर्शन द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मकल्प	ब्रह्मोत्तरकल्प	यहां रूपदर्शनद्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है	ब्रह्मलोक कल्प		यहां रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लांतवकल्प	कापिष्टकल्प		—एक ही इन्द्र है	लान्तक कल्प		
शुक्रकल्प	महाशुक्र कल्प	" शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है		महाशुक्र कल्प	यहां शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
सतारकल्प	सहस्रार कल्प		—एक ही इन्द्र है		सहस्रार कल्प	
आनतकल्प	प्राणत कल्प	" मनो विकल्प से काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	आनतकल्प	प्राणत कल्प	यहां मनो विकल्प से काम सेवन है
आरणकल्प	अच्युत कल्प		—एक एक इन्द्र है	आरणकल्प	अच्युत कल्प	

प्रविचारो मैथुनोपसेवनम् । कायेन प्रविचारो येषां ते कायप्रविचाराः ॥ आङ् अभिविध्यर्थः । असंहितया निर्देशः असंदेहार्थः ॥ एते भवनवास्यादय ऐशानान्ताः संक्लिष्टकर्मत्वान्मनुष्यवत्स्त्रीविषयसुखमनुभवन्तीत्यर्थः ॥ अवधिग्रहणादितरेषां सुखविभागेऽनिर्ज्ञाते तत्प्रतिपादनार्थमाह—

सूत्रानुवाद—प्रविचारः ।। मैथुन-उपसेवनम् ।।। — =प्रविचार है सो कामसेवन अथवा मैथुन विषयका उपभोग है।

कायेन ।। प्रविचारः ।। येषां ।। ते ।। कायप्रविचारः ।। =शरीरसे कामसेवन जिनके हैं ते काय प्रविचारा हैं।

आङ् ।। अभिविधः ।। अर्थः ।। =(सूत्रमें) आङ् उपसर्ग सीमाके लिये अर्थात् सूत्रमें आ शब्द लग, तक वा पर्यन्त अर्थमें है जो सीमा बतलाता है

असंहितया ।।। निर्देशः ।। =(उस आ का) संधिसे रहित वा विनासंधि उच्चारण वा कहना (निर्देश)

असन्देह -अर्थः ।। =सन्देहके निवारणके लिये हैं अर्थात् 'आऐशानात्' ऐसा सूत्रमें वाक्य है

इस आ तथा ऐशानात् की संधि करदेवें मिलादेवें तो व्याकरण की रीतिसे ऐशानात् होजावेगा फिर स्पष्ट रीतिसे यह न जान पडेगा कि ऐशानात् में आ उपसर्ग मिलाहुआ है अथवा नहीं इस सन्देह के दूर करने के लिये संधि न करके उमास्वामी ने आ ,ऐशानात् ऐसा उच्चारण किया है।

एते ।। भवन-वासी-आदयः ।। ऐशान-अन्ताः ।। =ये सब भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषी सौधर्म (आदय) ऐशान तक

संक्लिष्ट-कर्मत्वात् ।।। मनुष्यवत् * स्त्री-विषय-सुखम् ।।। =संक्लिष्ट कर्मके (उदय) होनेसे मनुष्यके समान स्त्रीके विषय सुखको

अनु-भवन्ति T इति * अर्थः ।। =अनुभवन करते हैं अथवा भोगते हैं ऐसा अभिप्राय है।

अवधि-ग्रहणात् ।।।। इतरेषां।। सुख-विभागे।। =(इस सूत्रमें) मर्यादा ग्रहण करनेसे अन्य (देवों) के सुखका विभाग

अनिर्ज्ञाते।। तत्-प्रतिपादन-अर्थम् ।।। आहT =न जानने पर उस (विभाग) के ज्ञानके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) याद अ अथवा आ से परं ए ऐ ओ औ इन स्वरोंमेंसे कोई स्वर आवे तो (अ+ए) (अ+ऐ) (आ+ए) (आ+ऐ) मिलकर ऐ होजायगा और (अ+ओ) (अ+औ) (आ+ओ) (आ+औ मिलकर औ हो जावेगा इस कारण ऊपर के वाक्य में काय प्रविचारा आ ऐशानात् में आ+ऐशानात् मिलकर 'ऐशानात्' होजायगा और फिर समस्त सूत्र 'कायप्रविचारा ऐशानात्' ही होजायगा। अब 'ऐशानात्' वाक्य से यह संदेह हो सका है कि "ऐशानात्" विना आ के मिलायेहुये आचार्य्य ने उच्चारण किया है अथवा आ को मिलाकर "ऐशानात्" किया है। इस सन्देह के निराकरण करनेके लिये स्पष्टतया "कायप्रविचारा आ ऐशानात्" ऐसा सूत्र कथित है।

कथमभिसम्बन्धः ? आर्षाविरोधेन । कुतः पुनः प्रवीचारग्रहणं ? इष्टसम्प्रत्ययार्थमिति ॥ कः पुनरिष्टोऽभिसम्बन्ध आर्षाविरोधी ? । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवा देवाङ्गनास्पर्शमात्रादेव परां प्रीतिमुपलभन्ते तथा देव्योऽपि । ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु देवा दिव्याङ्गनानां

	अर्थात् स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें और मनके विचारनेमें कामसेवनेवाले हैं
कथम् * अभिसम्बन्धः १।	=(इन देव और मैथुनके भेदोंमें) कैसे अभिसम्बन्ध है अर्थात् प्रश्न यह है कि इन शेष चौदह स्वर्गोंके देवोंका स्पर्शप्रविचार, रूपप्रविचार, शब्दप्रविचार, मनःप्रविचारोंमें से किस किस प्रकार वा भांतिके प्रविचारसे सम्बन्ध है ॥
आर्ष-अविरोधेन ३।	=(उत्तर) आगम अथवा धर्मशास्त्रकी विरुद्धता (=विरोध) से रहित (अभिसम्बन्ध) है
कुतः * पुनः * प्रविचार—	=(प्रश्न) क्यों फिर (जब पूर्व सूत्रमें प्रविचार शब्द विद्यमान है) प्रविचारका (इस सूत्रमें)
ग्रहणं १॥ इष्ट-सम्प्रत्यय-अर्थम् १॥ इति * ॥	=उपादान है। (उत्तर) अभिलपित अभिसम्बन्धके लिये है अर्थात् शिष्यके पूछने पर कि जब सातवां सूत्रमें प्रविचार शब्द विद्यमान है तब फिर इस सूत्रमें क्यों लाये हो उत्तरमें कहते हैं कि वांछित अभिसम्बन्धके (जो चौदह स्वर्गके देवोंको जिस जिस भांति के प्रविचार है) प्रगट करने के लिये लाये हैं।
कः १। पुनः-इष्टः १। अभिसम्बन्धः १।	=(प्रश्न) बहुरि क्या वांछित अभिसम्बन्ध (कथित देवों और उक्त प्रविचारोंमें) है
आर्ष-अविरोधी १। सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः ७। देवाः १।	=(उत्तर) आगमसे अविरोधरूप (सम्बन्ध) है। (अर्थात्) सनत्कुमार, महेन्द्र स्वर्गमें देव
देव-अङ्गना-स्पर्श-मात्रात् ५॥ एव परां २॥ प्रीतिम् २॥	=देवियोंके स्पर्श करने मात्रसे ही परम प्रीतिको
उपलभन्ते T तथा * देव्यः १॥ अपि * ।	=प्राप्त होते हैं। तैसे देवाङ्गना भी (परमप्रीति को प्राप्त होती हैं) ॥
ब्रह्म—ब्रह्मोत्तर—लान्तव—	=ब्रह्म [पांचवां स्वर्ग] ब्रह्मोत्तर [छठवां स्वर्ग] लान्तव [सातवां स्वर्ग]
कापिष्ठेषु ७॥ देवाः १। दिव्य—अङ्गनानाम् ६॥	=कापिष्ठ [आठवां स्वर्ग] में, देव स्वर्गकी [= दिव्य] स्त्रियोंके अर्थात् देवियोके

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टाः ? कल्पवासिनः ॥ स्पर्शश्च रूपं च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारो येषां ते स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥

=(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाःदेवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ५। ऊर्ध्वम् ✽ शेषाः १। कल्पोपपन्नाः १। देवाः १।	=ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात् तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)
स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्—	=स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें
प्रविचाराः १। यथासंख्यम् १॥। भवन्ति T	=काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥
वृत्त्यनुवाद—उक्त—अवशिष्ट—	=(तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के
ग्रहण—अर्थं १॥। शेष—ग्रहणम् १॥। पुनर्—उक्त—	=आदानके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[प्रश्न] बहुरि कथित (देवों) मेंसे
अवशिष्टाः १। के १। कल्प—वासिनः १।	=शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥
स्पर्शः १। च ✽ रूपं १॥। च शब्दः १। च मनः १॥।	=और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]
स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि १॥। तेषु ७॥।	=स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं । तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषैं
प्रविचारः १। येषां ६। ते १। स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-प्रविचाराः१।	=काम सेवन हैं जिनके ते स्पर्श-रूप-शब्द-मनः प्रविचारा हैं

इस सर्वके मिलाने से दोनों सम्प्रदायों के अर्थ भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प, प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में " द्वयोर्द्वयोः " वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका, ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका, कापिष्ठकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्ठकल्पको नहीं माना है । इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्रकल्प, शतारकल्प, सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शकरि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

। परेऽप्रवीचाराः ॥९॥

परग्रहणमितराशेषसंग्रहार्थम् । अप्रवीचारग्रहणं परमसुखप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ प्रवीचारो हि वेदनाप्रतिकारः । तदभावे तेषा परमसुखमनवरतं भवति ॥ उक्ता ये आदिनिकायदेवा—

सूत्रम्— परेऽप्रवीचाराः	=(कल्पोपपन्नेभ्यः)[तीसरे सूत्रासे लिया]परे देवाः अप्रवीचाराः भवन्ति
सूत्रार्थ—कल्प-उपपन्नेभ्यः ५। परे १' देवाः १।	=स्वर्ग में उत्पन्न होनेवाले देवोंसे परे वा अन्य अनशेष देव अर्थात् कल्पातीत देव वाअहमिन्द्र
अप्रविचाराः१।	=काम सेवन सेरहित हैं।
वृत्त्यर्थ-पर-ग्रहणम् १॥ इतर-अशेषं—	=(इस सूत्र में) पर शब्दका ग्रहण अन्य समस्त (अशेष) (देवों) के
संग्रह-अर्थम् १॥ अप्रविचार-ग्रहणम् १॥ परम—	=संग्रह के लिये है। अप्रविचारका ग्रहण उत्कर्ष
सुख-प्रतिपत्ति-अर्थम् १॥ प्रविचारः १॥ हि वेदना	=सुख के जनावने के लिये है काम सेवन ही (=हि) (मैथुन) वेदना वा पीड़ाका
प्रतिकार १। तद्-अभावे ७।	= उपाय वा चिकित्सा (प्रतिकार= प्रतीकार) है तिस (मैथुनरूपी वेदना) के न होने पर
तेषाम्६। परम-सुखं १॥ अनवरतम् १॥ भवति T	=तिन (कल्पातीत देवों) के उत्कृष्ट (=परम) निरंतर वा लगातार (=अनवरत) सुख होता है
उक्ता १। ये १। आदि-निकाया-देवाः १।	=कहे जे प्रथम समुदाय के देव (अर्थात् भवनवासी)

(१) इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है सामान्य रूप से अर्थ भी एक है क्योंकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "नवअनुदिश" नहीं माने हैं तब भी विमानों की संख्या जो सोलहवां स्वर्ग से ऊपर हैं दोनों आम्नाओंमें ३२३ (तीन सौ तेईस) ऐसे हैं कि 'और ग्रैवेयकोंके अधोभागमें एक सौ ग्यारह (१११) विमान हैं। मध्य भाग में एकसौ सात (१०७) और ऊपर केवल शत (१००) विमान हैं। और अनुत्तरदेवोंके केवल पांच हैं सभाष्य० पृष्ठ१०९। तीन अधोग्रैवेयक विषै एकसौ ग्यारह विमान हैं। और तीन मध्यम ग्रैवेयक विषे एकसो सात विमान हैं। और तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयकनि विषैं इक्याणवे विमान हैं बहुरि 'नव अनुदिश विषे नव विमान हैं और अनुत्तर विषे पांच विमान है अर्थ प्रकाशिका सूत्र १९ पृष्ठ २६४ अतः ३२३ हुये
(२) पं० जयचन्द रायजीकी वचनिकामें इस वाक्यसे कि 'यहां पर शब्द का ग्रहण अवशेष रहे जे अहमिन्द्र तिन के ग्रहण के अर्थि है'। जान पड़ता है कि जिस संस्कृत वृत्ति से उन्हों ने वचनिका की है उसमें ऐसा पाठ होगा कि 'परग्रहणमितरावशेषसंग्रहार्थम्' अर्थात् अशेष शब्द के स्थान मे अवशेष शब्द होगा। परन्तु सदासुख जी की अर्थप्रकाशिकाके इस वाक्यमे कि यहां 'पर' शब्दके कहने करि कल्पातीत समस्त देवनिका संग्रह भया जान पड़ता है कि जिस प्रति से उन्हों ने भाव लिया है उसमें 'अशेष' शब्द था जैसा कि ऊपर पाठ है। दोनो पाठोंका एकही आशय है। हस्तलिखित एक प्रतिमें हमको 'मशेष' शब्द मिला है।

शृङ्गाराकारविलासचतुरमनोज्ञवेपरूपावलोकनमात्रादेव परमसुखमाप्नुवन्ति। शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु देवा देववनितानां मधुरसङ्गीतमृदुहसितललितकथितभूषणरवश्रवणमात्रादेव परां प्रीतिमास्कन्दन्ति। आनतप्राणतारणाच्युतकल्पेषु देवाः स्वाङ्गनामनःसङ्कल्पमात्रादेव परं सुखमाप्नुवन्ति॥

अथोत्तरेषां किंप्रकारं सुखमित्युक्ते तन्निश्चयार्थमाह—

शृङ्गार-आकार-विलास-चतुर-मनोज्ञ-वेप-रूप-	=शृङ्गार, आकार, हर्ष (=विलास) चतुर, सुंदर (=मनोज्ञ) वेप और रूपके
अवलोकन-मात्रात् ५।१ एव* परम्-सुखम् २।१ आप्नुवन्तिT॥	=केवलमात्र देखनेसे ही उत्कृष्ट सुखको प्राप्त होते हैं॥
शुक्र-महाशुक्र-शतार-	=शुक्र (नवमां स्वर्ग) महाशुक्र (दशवां स्वर्ग) शतार (ग्यारहवां स्वर्ग)
सहस्रारेषु ७।३ देवाः १।३ देव-वनितानाम् ६।३ मधुर-	=सहस्रार (बारहवां स्वर्ग) में देव और देवियोंके प्रिय (=मधुर)
सङ्गीत-मृदु-	=नाचना-गाना-बजाना (=संगीत) अथवा गान (=संगीत) कोमल (=मृदु)
हसित-ललित-कथित-भूषण-रव-	=हास्य, मनोहर (=ललित) बोलना (=कथित) और आभूषण के शब्द (=रव)के
श्रवण-मात्रात् ५।१ एव* पराम् २।१ प्रीतिम् २।१ आस्कन्दन्तिT	=केवल (=मात्र) सुननेसे ही अतिशय प्रीतिको प्राप्त होते हैं॥
आनत-प्राणत-आरण-अच्युत-	=आनत (तेरहवां) प्राणत (चौदहवां) आरण (पंद्रहवां) और अच्युत (सोलहवां)
कल्पेषु ७।३ देवाः १।३ स्व-अङ्गना-	=स्वर्गोंमें (=कल्पेषु) देव अपनी २ (=स्व) सुंदरीयोंकी (=अङ्गना) अर्थात् देवियोंका
मनः-सङ्कल्प-मात्रात् ५।१ एव* परम् २।१ सुखम् २।१	=मनमें विचार अथवा चितवन मात्रसे ही उत्कर्ष सुखको
आप्नुवन्तिT अथ-उत्तरेषाम् ६।३	=पाते हैं। अब अग्रिम (अहमिन्द्र अथवा कल्पातीत देव) निके
किम्* प्रकारम् २।१ सुखम् १।१ इति* उक्ते ७।१ तत्-	=सुख कौन प्रकार है ऐसा पूंछने पर उस (सुख) के
निश्चय-अर्थम् २।१ आहT	=निर्धारणके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) परम् (अव्य०)=केवल, अनन्तर॥ परम (त्रि०)=उत्कृष्ट, प्रधान, बड़ा, पहिला॥ परमम् (अव्य०)=हां, स्वीकार, अनुज्ञा॥ पर=का अर्थ सबसे अच्छे का भी है। (देखो पराम् प्रीति आस्कन्दन्ति पृ० २३६ वृत्ति०)

(२) 'कल्प' यह शब्द "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्" में निम्न वाक्योंमें पुल्लिंगमें आया है। सौधर्मस्य कल्पस्योपर्यैशानः कल्पः। सा (=सभा) अस्मिन्नस्तीति सौधर्मः कल्पः। सर्वकल्पाः (देखो पृष्ठ १०६ चौथा अध्याय सूत्र २० का)

सामान्यसञ्ज्ञा । असुरादयो विशेषसञ्ज्ञा विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तयः । सर्वेषां देवानामवस्थितवयः स्वभावत्वेऽपि वेषभूषायुधयानवाहनक्रीडनादिकुमारवदेषामाभासन्त इति भवनवासिषु कुमारव्यपदेशो रूढः । स प्रत्येकं परिसमाप्यते असुरकुमारा इत्येवमादि ॥ क्व तेषां भवनानीति चेदुच्यते— रत्नप्रभायाः पङ्कबहुलभागेऽसुर

सामान्य-सञ्ज्ञा १॥ असुर-आदयः १। =सामान्य संज्ञा है असुर, नाग, विद्युत्, सुपर्ण, अग्नि,वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक

विशेष-संज्ञा १॥ विशिष्ट-नामकर्म-उदय-आपादित— =विशेषसंज्ञा है । विशेष नाम कर्मके उदयके प्राप्तसे (=आपादित)

वृत्तयः १॥ सर्वेषाम् ६। देवानाम् ६। =(ये दश विशेषसंज्ञा) प्रवर्तें हैं । समस्त (भवनवासी) देवों के

अवस्थितवयः १॥ =स्थिर अथवा एकरूप (=अवस्थिति) (बालपन योवनादिक) अवस्था

स्वभात्वे ७॥ अपि * वेष-भूषा-आयुध— =स्वभावसे होनेपर भी वेष सजावट (=भूषा) अस्त्र (=आयुध)

यान-वाहन— =लेजानेके साधन रथ, गाड़ी आदिक (=यान) सवारी (=वाहन)

क्रीडन-आदि-कुमार-वत् * एषाम् ६। आभासते T इति =परिहास वा कौतुक आदिक कुमारके सदृश इन (भवनवासी देवों)के शोभे हैं अर्थात् यद्यपि समस्त भवनवासी देवोंके जन्म समयसे मरण पर्यन्त एकसी दशा अथवा अवस्था रहती है । बाल, यौवन, जरा आदिक अवस्था पलटती नहीं है तो भी इनकी कुमार संज्ञा पूर्वोक्त निमित्तसे नहीं हैं वरण इस कारणसे है कि वे वेष, आभूषण, यान, वाहन, क्रीडनकरि कुमारके समान प्रवर्तें हैं ।

भवनवासिषु ७। कुमार-व्यपदेशः १। रूढः १। =भवनवासी (देवों) विषैं कुमारनाम प्रसिद्ध (=रूढ) है

सः १। प्रत्येकं * परिसमाप्यते T =वह कुमार व्यपदेश वा संज्ञा प्रत्येक (दश विशेष संज्ञाओं पर) जोड़ा जाता है ।

असुर-कुमाराः १। इति * एवम् * आदि १॥ =(तत्र) असुरकुमार एवं आदिक (पूर्वोक्त दश संज्ञा) हैं ।

क्व * तेषाम् ६। भवनानि १॥ इति * चेत् * उच्यते T =कहां तिनके निवासस्थान हैं ? इस प्रकार शंका होनेपर (=चेत्) कहा जाय है कि

रत्नप्रभायाः ६। पङ्कबहुल-भागे ७। असुर— =रत्नप्रभा (पृथिवी) के पङ्कबहुल भागमें अर्थात् दूसरे भागमें असुर

(१) यह शब्द भूष् धातु जिसका अर्थ सजाना है आ लगाने अर्थात् भूष्+आ =भूषा (स्त्रीलिंगमें) होता है जिसका अर्थ भूषण, आभूषण ,सजावट, मण्डनक्रिया ,अलंकार, आभरण है । देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २७८

दशविकल्पा इति तेषां सामान्यविशेषसञ्ज्ञाविज्ञापनार्थमिदमुच्यते–

सर्वार्थ- **भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः।१०।** सिद्धि

भवनेषु वसन्तीत्येवंशीला भवनवासिनः। आदिनिकायस्येयम्

२१ दश-विकल्पाः ।१ इति * तेषां ।६ सामान्य-विशेष- =दश भेदरूप तिन (भवनवासी देवों) के सामान्य और विशेष
सञ्ज्ञा-विज्ञापन-अर्थम् ।॥ इदम् ।॥ उच्यते T =संज्ञाओंके जतावनेके लिये यह (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाय है कि

सूत्रम्– भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥
= भवनवासिन :असुरकुमाराः नागकुमाराः विद्युत्कुमाराः सुपर्णकुमाराः अग्निकुमाराः वातकुमाराः स्तनितकुमाराः उदधिकुमाराः द्वीपकुमाराः दिक्कुमाराः च दशविकल्पाः भवन्ति ॥

सूत्रार्थः– भवनवासिनः ।१ असुरकुमाराः ।१ नागकुमाराः ।१ =भवनवासी देव, असुरकुमार, नागकुमार,
विद्युत्कुमाराः ।१ सुपर्णकुमाराः ।१ अग्निकुमाराः ।१ =विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार,
वातकुमाराः ।१ स्तनितकुमाराः ।१ उदधिकुमाराः ।१ =वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार,
द्वीपकुमाराः ।१ दिक्कुमाराः, ।१ च * दश-विकल्पाः ।१ भवन्ति=द्वीपकुमार, और (=च) दिक्कुमार, दशभेदरूप हैं
वृत्त्यनुवादः–भवनेषु ।७ वसन्ति T इति * एवं शीलाः ।१ =भवनोंमें वसते हैं ऐसे स्वभाव वाले (=शीलाः)
भवनवासिनः ।१ आदिनिकायस्य ।६ इयम् ।॥ =भवनवासी देव हैं (चार समूहके देवोंमेंसे) प्रथमसमुदायकी यह

(१) दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्र का अर्थ और पाठ एक है। हमारे यहां यह दशवां सूत्र है श्वेताम्बर आम्नाय में यह ग्यारहवां सूत्र है।

(२) द्वंद्व समासमें जितने शब्द जोड़े जावें उन प्रत्येकके अन्तका एक चकार गुप्त समझ लिया जावे अथवा प्रत्येक शब्द के साथ जितने शब्द जोड़े जावें उतने ही चकार समझ लिये जावें इसलिये ऊपरके दशदेवोंके भेदोंमें इस प्रकार दश चकार होंगे कि असुरकुमाराः च, नागकुमाराः च, विद्युत्कुमाराः च, सुपर्णकुमाराः च, अग्निकुमाराः च, वातकुमाराः च, स्तनितकुमाराः च, उदधिकुमाराः च, द्वीपकुमाराः च, दिक्कुमाराः च, इस अवस्थामें अनुवादमें भी दशवार 'और' शब्द आवेगा परन्तु अनुवादक ने केवल एक चकार लेकर ऊपरका अनुवाद किया है। २५

॥व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

विविधदेशान्तराणि येषां निवासास्ते व्यन्तरा इत्यन्वर्था सामान्यसञ्ज्ञेयमष्टानामपि विकल्पानाम् ॥ तेषां व्यन्तराणामष्टौ विकल्पाः किन्नरादयो वेदितव्या नामकर्मोदयविशेषापादिताः ॥ क पुनस्तेषामावासा इति चेदुच्यते—अस्माज्जम्बूद्वीपादसंख्येयान्द्वीपसमुद्रानतीत्य उपरिष्टे खरपृथिवीभागे सप्तानां व्यन्तराणाम्

सूत्रम्— व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

=व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः (अष्ट-विकल्पाः) भवन्ति

सूत्रार्थ—व्यन्तराः। किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-	=व्यन्तर, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग,
गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः। अष्ट। विकल्पाः। भवन्ति	=गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आठ प्रकारके हैं।
वृत्त्यनुवाद—विविध-देश-अन्तराणि।। येषाम्।	=नाना प्रकारके अन्य देश हैं, जिनके
निवासाः। ते। व्यन्तराः। इति*	=वासस्थान ते व्यन्तर हैं इस प्रकार
अन्वार्था।। सामान्य-सञ्ज्ञा।। इयम्।। अष्टानाम्। अपि*	=सार्थक अथवा यथा नाम तथा गुणरूप सामान्य संज्ञा यह आठौं ही
विकल्पानाम्। तेषां। व्यन्तराणां। अष्टौ।	=भेदों की है। तिन व्यन्तरोंके आठ
विकल्पाः। किन्नर-आदयः।।	=भेद किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आदिक
विशेष-सञ्ज्ञाः।। वेदितव्याः।। नाम-कर्म-	=विशेष संज्ञायें जानना चाहिये। (ये आठ विशेष संज्ञा) नाम कर्मके
उदय-विशेष-आपादिताः।। क* पुनः* तेषां। आवासाः।	=उदयकी विशेषतासे प्राप्त(आपादित)हैं। बहुरि तिन (व्यन्तरों)के वासस्थान कहां हैं
इति* चेत्-उच्यते।' अस्मात्। जम्बूद्वीपात्।	=इसप्रकार प्रश्न वा शंका (=चेत्) होने पर कहाजाय है कि इस जम्बूद्वीपसे
असंख्येयान्। द्वीप-समुद्रान्। अतीत्य÷	=असंख्यात द्वीप और समुद्रोंको उल्लंघकरि (=अतीत्य) (इस रत्नप्रभाके)
उपरिष्टे* खर-पृथिवीभागे। सप्तानाम्। व्यन्तराणाम्।	=ऊपरले अर्थात् पहिले खर पृथिवी भागमें सात व्यन्तरोंके
	(अर्थात् किन्नर किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत, पिशाचोंके)

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इस सूत्रको बारहवां लिखा है॥

कुमाराणां भवनानि । खरपृथिवीभागे उपर्यधश्च एकैकयोजनसहस्रं वर्जयित्वा शेषनवानां कुमाराणामावासाः ॥

द्वितीयनिकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञावधारणार्थमाह—

कुमाराणाम्॥ भवानानि;॥। खर-पृथिवी-भागे॥। =कुमारोंके भवन हैं (रत्नप्रभाके तीन भागोंमेंसे ऊपरके) खर पृथिवी भागमें

उपरि॥ अधस्॥ च॥ एक-एक-योजनसहस्रं;॥ वर्जयित्वा =ऊपर और नीचे एक एक सहस्र योजन छोड़कर

शेष-नवानाम्॥। =अवशेष (भागमें) नो (नाग, विद्युत, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्)

कुमाराणाम्॥ आवासाः॥। =कुमारोंके निवास स्थान हैं अर्थात् रत्नप्रभा नामकी पृथिवी एक लाख अस्सी सहस्र योजनकी मोटी है। उसके तीन विभाग हैं, उन तीन भागोंमें से ऊपरका खरभाग १६००० योजन मोटा है। उसमें चित्रा, वज्रा, वैडूर्य इत्यादि एक एक सहस्र योजनकी मोटी १६ पृथिवी हैं॥ इनमेंसे ऊपर और नीचे की एक एक सहस्र योजनकी दो पृथिवी छोड़कर बीचकी चौदह सहस्र योजन मोटी और एक राजू लम्बी चौड़ी पृथिवीमें नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार, इन नव प्रकारके भवनवासी देवोंके निवास स्थान हैं॥ इस खर भागके नीचे दूसरा पङ्कबहुल भाग है जो चौरासी सहस्र योजन मोटा है। उसमें असुरकुमार रहते हैं और पङ्क भागके नीचे अस्सी सहस्र वा ८००००×२०००=१६०००००० सोलह करोड़ कोस मोटा अब्बहुल भाग है उसमें प्रथम नरक है।

द्वितीय-निकायस्य॥ सामन्य-विशेष सञ्ज्ञा- =दूसरे समुदायके सामान्य और विशेष संज्ञाओंके

अवधारण-अर्थम्॥॥ आह॥ =निश्चय करने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) वर्जयित्वा संबंधकसूचक भूत कृदन्त है।

ज्योतिस्स्वभावत्वादेषां पञ्चानामपि ज्योतिष्का इति सामान्यसञ्ज्ञा अन्वर्था ॥ सूर्यादयस्तद्विशेषसंज्ञा नामकर्मोदयप्रत्ययाः ॥ सूर्याचन्द्रमसाविति पृथग्ग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम् ॥

सूत्रार्थ—ज्योतिष्काः₁। सूर्य-चन्द्रमसौ₁। ग्रह-नक्षत्र च* =ज्योतिष्कदेव सूर्य चन्द्रमा और (=च) ग्रह, नक्षत्र
प्रकीर्णकतारकाः₁। पञ्च₁। विकल्पाः₁। भवन्ति =प्रकीर्णक तारे पांच प्रकार हैं

वृत्त्यर्थ— ज्योतिः-स्वभावत्वात्₅॥ एषां₆। पञ्चानाम्₆। =उद्योतरूप स्वभाव होनेसे इन पांचों (सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक तारों) की
अपि* ज्योतिष्का₁। इति* सामान्य-सञ्ज्ञा₁॥ अन्वर्था₁॥ =ही ज्योतिष्का ऐसी सामान्य संज्ञा सार्थक अर्थात् यथा नाम तथा गुणरूप है।
सूर्य-आदयः₁। =सूर्यादिक अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक, तारका,
तद्-विशेष-संज्ञा₁। नाम-कर्म-उदय-प्रत्ययाः₁। =उन (ज्योतिषी देवों)की विशेष संज्ञायें (विशेष) नाम कर्मके उदयके निमित्तसे हैं
सूर्या-चन्द्रमसौ₁। इति* पृथक्* ग्रहणं₁॥ =सूर्याचन्द्रमसौ ऐसे (इस सूत्रके शेष भागसे) अलग (विभक्ति) ग्रहण
प्राधान्य-स्थापन-अर्थम्₁॥ =(इन दोनों सूर्य चन्द्रकी)मुख्यता वा श्रेष्ठता(ग्रह नक्षत्र तारकोंपर) जतानेके लिये है

अर्थात् प्रश्न यह है कि जैसे दशवां सूत्रमें भवनवासी देवोंके दश भेद मिलाकर कहे और अन्तमें प्रथमा विभक्ति बहुवचन दे दी और व्यन्तरोंके आठ भेद मिलाकर अन्तमें प्रथमा विभक्ति बहुवचन देदी।

जिनकी गति नियत नहीं ऐसे होनेसे सूर्य तथा चन्द्रमाके ऊपर तथा नीचे भी भ्रमण करते हैं और सूर्यसे दश योजन अवलम्ब होते हैं अर्थात् सूर्यसे दश योजन दूर रहते है ॥ ( ) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र० में हमारे यहांके 'प्रकीर्णक' शब्दके स्थानमें 'प्रकीर्ण' शब्द है। शेषपाठ एक हैं दोनों सम्प्रदायोंमेंअर्थ लगभग एक सा है।

( )श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र'का पाठ "ज्योतिष्काः सूर्याश्चन्द्रमसो ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णतारकाश्च॥१३॥"

श्वेताम्बर समाजके 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका'–सिद्धसेनसूरि रचितका पाठ "ज्योतिष्काः सूर्याः चन्द्रमसो ग्रहा नक्षत्राणि प्रकीर्ण ताराश्च"

(१) इस "पञ्चविकल्पा" वाक्यको तीसरे सूत्रसे इस सूत्रमें लिया है अथवा अनुवर्तन किया है ( ) (प्रश्न) 'चन्द्रमस्' शब्द सूत्रमें क्यों लाये? जब पुल्लिङ्गमें ही 'चन्द्र'शब्द उसी अर्थमें छोटा शब्द है। अथवा इन्दु, विधु, अब्ज,सोम,ग्लौ, इन छोटे शब्दोंमेंसे कोईशब्द लाते। अमरकोष ३ वर्ग १२ श्लोक (उत्तर)चन्द्र और शब्दोंसे प्रसिद्ध है परन्तु चन्द्रमा सब से प्रसिद्ध है बच्चे तक चन्द्रमा कहते हैं- इससे सूत्रमें 'चन्द्रमस्' शब्द लाये हैं ॥

आवासाः ॥ राक्षसानां पङ्कबहुलभागे ॥ तृतीयस्य निकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञासंकीर्तनार्थमाह-

॥ ज्योतिष्काःसूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

आवासाः ॥ राक्षसानाम् ॥ पङ्कबहुलभागे ॥ = निवासस्थान हैं। राक्षसोंके (निवासस्थान) पङ्कबहुलभागमें हैं।
तृतीयस्य ॥ निकायस्य ॥ सामान्य- = तीसरे निकायके (देवोंकी) सामान्य और
विशेष-सञ्ज्ञा-संकीर्तन-अर्थम् ॥ आह T = विशेष संज्ञाके कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्- ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

= ज्योतिष्काः सूर्या चन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णकतारकाः च (पंचविकल्पा भवन्ति

(१) सूर्य अथवा सूर्य्य यह शब्द दोनोंभांति शुद्ध है क्योंकि संस्कृतके व्याकरणमें यदि किसी शब्दमें पहिले रकार आवे र् अथवा ह् पीछेसे आवे और यकार् कोई व्यंजन ह् को छोड़कर आवे तो वह व्यंजन इच्छानुसार द्वित्व होजाता है अर्थात् चाहो तो उस व्यंजनको दोहरा करदो चाहो न करो जैसे अर्क वा अर्क्क, मर्क वा मर्क्क, धर्म वा धर्म्म, कर्म वा कर्म्म, ब्रह्मा वा ब्रह्म्मा, अपह्नुते वा अपह्न्नुते इसी प्रकार सूर्य वा सूर्य्य दोनोंही ठीक है

(२) इस सूत्र का पाठ हमारे यहां की बहुधा पुस्तकोंमें "सूर्याचन्द्रमसौ" है कहीं कहीं पर 'सूर्याचन्द्रमसौ' भी है ऊपरकी टिप्पणीसे यह प्रगट है कि दोनों पाठ ठीक हैं और पाठ हमारे यहां सर्वत्र पढ़ना है। अब प्रश्न यह है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों शब्दोंका समास "सूर्यचन्द्रमसौ" क्यों नहीं हुआ 'सूर्याचन्द्रमसौ' कैसे हुआ। (उत्तर, यहांपर सूर्याचन्द्रमसौ यह देवता द्वन्द्वसमास है अर्थात् देवताओंके नामोंके द्वन्द्वसमास बनाने में पहिले शब्दके अन्तको 'आनङ् (= आ =) आदेश होता है। जैसे इन्द्रावरुणौ, इन्द्रासोमौ, मित्रावरुणौ, इन्द्राबृहस्पती, अतः सूर्याचन्द्रमसौ हुआ, अष्टाध्यायी अध्याय ६ पाद ३ सूत्र २५,२६ देखो।

(३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें हमारे यहांके "सूर्याचन्द्रमसौ" पाठके स्थानमें "सूर्याश्चन्द्रमसो" पाठ है अर्थात् सूर्याः (बहुत होनेसे अधिक सूर्य) चन्द्रमसः (बहुत होनेसे अधिक चन्द्रमा) अतः यहां भी सूर्याचन्द्रमसौ पाठका = एक सूर्य और एक चन्द्रमा किया है परन्तु सभाष्यके 'सूर्याश्चन्द्रमसो' पाठ का अर्थ = बहुत सूर्य बहुत चन्द्रमा किया है सभाष्यमें सूर्य-चन्द्रमाको समासरूप न करने का हेतु ऐसा है कि इस सूत्रमें समास न करनेका और आदिमाचार्य सूर्य तथा चन्द्रमा का क्रमभेद करनेका कारण यह है कि जिससे यह सूचित होजाय कि इनकी क्या क्रम ऊपर स्थिति है अर्थात् आदि प्रवीण चन्द्रमा सूर्य पहिले है। और सूर्य पश्चात् यह यहां पर इष्ट नहीं है। यहां पर सूर्यका ही प्रथम कहना है क्योंकि पाठ के क्रमानुसार ऊपर इन सूर्योंकी स्थिति नहीं है। किन्तु इनका एकके पश्चात् दूसरेकी ऊपर ऊपर स्थिति है। जैसे सबके नीचे प्रथम सूर्य है। चन्द्रमाओंके ऊपर ग्रह हैं, इनके ऊपर नक्षत्र हैं। और नक्षत्रोंके ऊपर प्रकीर्णक तारका हैं। और तारा, यह तो आनेवाले चारों अर्थात्

योजनान्युत्पत्य शुक्राः। ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य वृहस्पतयः। ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्यागारकाः। ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य शनैश्चराश्चरान्ति। स एष ज्योतिर्गणगोचरो नभोऽवकाशो दशाधिकयोजनशतबहलस्तिर्यगसंख्यातद्वीपसमुद्रप्रमाणो घनोदधिपर्यन्तः॥ उक्तं च-णउदुत्तरसत्तसया-

योजनानि ;।॥ उत्पत्य ॐ शुक्राः ;।; ततः ॐ त्रीणि ;॥। =योजन ऊंचे शुक्र हैं। वहां से तीन

योजनानि ;॥। उत्पत्य ॐ वृहस्पतयः ;।; ततः ॐ त्रीणि ;॥। =योजन ऊंचे वृहस्पति हैं। वहां से तीन

योजनानि ;॥। उत्पत्य ॐ अङ्गारकाः ;।; ततः ॐ त्रीणि ;॥। =योजन ऊपर मंगल हैं। वहां से तीन

योजनानि;॥। उत्पत्य ॐ शनैश्चराः ;। चरन्ति T =योजन ऊपर शनैश्चर भ्रमण करते हैं।

सः ;। एषः;। ज्योतिगर्ण-गोचरः ;। नभस्-अवकाशः ;। =सो यह जोतिष्क मंडल (=गण) को विषयरूप (=गोचर) आकाशका स्थानदेना (अवकाश)

दश-अधिक-योजन-शत-बहलः ;। =दश ऊपर सौ योजन मोटा (=बहलः) है अर्थात् इस समतल भूमिसे अर्थात् चित्रा पृथिवीसे सातसौनव्वे योजनके ऊपर नौसौ योजन पर्यन्त एकसौदश योनज मोटा ज्योतिषी देवोंका पटल है

तिर्यग् ॐ =और तिर्यग् विस्तार अर्थात् तिरछा वा दायें बायें वा इधर उधर फैलाव

असंख्यात-द्वीप-समुद्र-प्रमाण ;। घनोदधिपर्यन्तः ;। =असंख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण (लम्बा चौडा) घनोदधि वातवलय पर्यन्त है अर्थात् घनोदधिवातवलय (जो घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय जो तनुवातवलयके आधार है तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश अपने ही आधार है) गीली पवनका है उसके भीतर इनका तिर्यग् विस्तार नहीं है वरन जहां यह घनोदधिवातवलय आरम्भ हुआ है वहां इन ज्योतिष्क देवोंके विस्तारका अंत है (घनोदधि पर्यन्त वाक्य का आशय और भावार्थ मेरी समझमें ऐसाही आया है वह स्पष्ट करदिया, शेष पाठकगण निर्णय करे)

उक्तम् ;॥। च ॐ णउदु-उत्तर-सत्तसया(नवति-उत्तर-सप्तशतानि ;॥।) =कहा गया भी है कि नव्वे ऊपर सातसौ योजन अर्थात् सातसौ नव्वे योजन

* यह गाथा जिस स्थानसे लीगई है इससे पहिलेकी आर्यासे 'योजन' शब्द की जो प्रकरणवश इस गाथामें नहीं है अनुवर्तन यहां करना चाहिये।

किं कृतं पुनः प्राधान्यं ? प्रभावादिकृतम् ॥ क पुनस्तेषामावासाः ? इत्यत्रोच्यते अस्मात्समानभूमिभागादूर्ध्वं सप्तयोजनशतानि नवत्युत्तराणि ७९० उत्पत्य सर्वज्योतिषामधोभागविन्यस्तास्तारकाश्चरन्ति । ततो दशयोजनान्युत्पत्य सूर्याश्चरन्ति । ततोऽशीतियोजनान्युत्पत्य चन्द्रमसो भ्रमन्ति । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य नक्षत्राणि । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य बुधाः । ततस्त्रीणि

उसी प्रकार इन पांचों भेदोंको मिलाकर इसप्रकार सूत्र करदेते कि "सूर्य-चन्द्रमः-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्ण- कतारकाश्च" सो ऐसा सूत्र न करके "सूर्यचन्द्रमसौ" इन दो शब्दोंकी प्रथमा विभक्ति दो वचन न्यारीकी और शेष सूत्र "ग्रह-नक्षत्र प्रकीर्णकतारकाश्च" इन तीन शब्दोंकी न्यारी विभक्तिकी सो ऐसा क्यों किया । उत्तरमें कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रकी शेष तीन प्रकारके ज्योतिषी देवोंपर प्रधानता (=प्राधान्य)जतानेके लिये सूर्य-चन्द्रमाकी विभक्ति अथवा कारक न्यारा किया और शेष तीन ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक तारका का न्यारा कारक किया ॥

किं॥॥ कृतम्॥॥ पुनः॥ प्राधान्यम्॥॥	=(प्रश्न) बहुरि क्या प्रधानपना वा श्रेष्ठता (इन सूर्य चन्द्रकी अन्य ज्योतिषियोंपर) है
प्रभाव-आदि-कृतम्॥॥ । क॥ पुनः॥ तेषाम्॥।	=(उत्तर) प्रताप आदिक करि (प्रधानपना) किया है । (प्रश्न) बहुरि तिनके कहां
आवासाः॥। इति॥ । अत्र॥ उच्यते॥	=निवास स्थान हैं (उत्तर) यहां कहा जाय है कि
अस्मात्॥। समान-भूमि-भागात्॥। ऊर्ध्वम्॥	=इस (मध्यलोकके) समान भूमिभागसे अर्थात् चित्राभूमिसे ऊपरकी ओर(=ऊर्ध्वम्)
सप्त-योजन-शतानि॥॥ नवति-उत्तराणि॥॥ उत्पत्य	=सात सौ योजन नव्वै अधिक ७९० ऊंचा (=उत्पत्य)
सर्व-ज्योतिषाम्॥ अधस्॥ भाग-विन्यस्ताः॥।	=समस्त ज्योतिषियोंके नीचे भागमें फैले हुये (=विन्यस्त)
तारकाः॥। चरन्ति ततः॥ दशयोजनानि॥॥	=तारे विचरते हैं वहांसे अर्थात तिन तारकाओंसे दशयोजन
उत्पत्य॥ सूर्याः॥। चरन्ति-ततः॥ अशीति-योजनानि॥॥	=ऊपर सूर्य भ्रमण करते हैं । वहांसे अस्सीयोजन
उत्पत्य॥ चन्द्रमसः॥। भ्रमन्ति॥ ततः॥ चत्वारि॥	=ऊपर चन्द्रमा विचरे हैं । वहांसे चार
योजनानि॥॥ उत्पत्य॥ नक्षत्राणि॥॥ ततः॥ चत्वारि॥॥	=योजन ऊपर नक्षत्र (२८) हैं । वहांसे चार
योजनानि॥॥ उत्पत्य॥ बुधाः॥। ततः॥ त्रीणि॥॥	=योजन ऊंचे बुद्ध हैं । वहांसे तीन

उसके दश योजन ऊपर भान वा सूर्य विमानका प्रस्तार वा पटल है। उसके ऊपर अस्सी योजन चन्द्रमाके विमानका प्रस्तार है। तिस (चन्द्र-विमान) के ऊपर बीस योजन तारा ग्रहोंके विमानका विस्तार है। इस प्रकार ज्योतिष्कलोक एकसौ दश योजन मोटा है। देखो भाष्यानुसारिणी-तत्वार्थटीका इसी सूत्रपर पृष्ठ ३२४ जहांमे उपर्युक्त भाष्यका शब्दशः अनुवाद किया है। संस्कृतभाष्य विस्तारभयमे नहीं लिखा है। ऊपरसे प्रगट है कि उनके यहां उक्त दो भाष्योंमें विशेषरूपसे नहीं दर्शाया है कि जिससे हमको निर्णय करनेमें सहायता मिले। एक बातको आचार्योंके मतमें पढ़कर बहुत अचम्भित और विस्मय हुआ कि उसी एक गाथासे पूज्यपाद स्वामीने अपना मत पोषण किया है और उसी आर्या छन्दमे कुछ एक शब्दकी हेराफेरी सहित अकलंक स्वामीने अपना मत पोषण किया है। अब हम उक्त तीनों आचार्योंका मत शब्दशः लिखते हैं। पूज्यपाद स्वामीका मत शब्दशः हम पृष्ठ ३१, ३२, ३३ में लिख चुके हैं विस्तारभयसे दुहरानेकी आवश्यकता नहीं।

(१) अकलंक स्वामीका मत ऐसे है कि:-

अस्मात् समात् भूमिभागात् ऊर्ध्वं सप्तयोजनशतानि	=इस समतल (चित्रा पृथिवीके) भूमिभागसे ऊपर सातसौ योजन (और)
नवत्युत्तराणि उत्प्लुत्य	=नव्वे सहित ऊंचाईपर (=उत्प्लुत्य) अर्थात् सातसौ नव्वे योजनकी ऊंचाईपर
सर्व ज्योतिषां-अधोभाविन्यः तारकाः चरन्ति	=समस्त ज्योतिषीदेवोंमें नीचे रहने वाले (=अधोभाविन्य) तारे भ्रमण करते हैं।
ततःदशयोजनानि उत्प्लुत्य सूर्याः चरन्ति	=उन (तारों) से दशयोजन ऊंचाई पर (=उत्प्लुत्य) सूर्य भ्रमण करते हैं।
ततः अशीति योजनानि उत्प्लुत्य चन्द्रमसः भ्रमंति	=उन (सूर्यों) से अस्सी योजन ऊंचाईपर वा उलंघनकर चन्द्रमा भ्रमण करते हैं।
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य नक्षत्राणि	=उन (चन्द्रमाओं) से तीन योजन ऊंचाईपर नक्षत्र (भ्रमण करते है)
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य बुधाः	=उन (नक्षत्रों) से तीन योजन ऊंचाईपर बुद्ध (देव भ्रमण करते) हैं
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य शुक्राः	=उन (बुद्धदेवों) से तीन योजन ऊपर शुक्र (देव भ्रमण करते) हैं
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य बृहस्पतयः	=उन शुक्र (देवोंसे) तीन योजन ऊपर बृहस्पति (देव) है
ततः चत्वारि योजनानि उत्प्लुत्य अंगारकाः	=उन बृहस्पति (देवों) से चार योजन ऊंचे मंगल (=अंगारका) भ्रमण करते) हैं
ततः चत्वारि योजनानि उत्क्रम्य शनैश्चराः चरन्ति	=उन (मंगल देवो)से चार योजन ऊचे (=उत्क्रम्य) शनिश्चर (भ्रमण करते) हैं
सः एषः ज्योतिर्गणगोचरः नभ अवकाशः दशाधिक—	=सो यह ज्योतिषियोंका समूहके गोचर आकाशका अवकाश वा आकाशदेश दशऊपर
योजनशतबहुलः	=सौ योजन मोटा है (=बहुलः =बहुदः) अर्थात् एक सौ दश योजन गगनमें फैलि रह्यो परमाणियें

दस सीदी चदुदुगातियचउक्कम् ताराविससिरिक्खा बुहभग्गवगुरुअंगिरारसणी ॥१॥

ज्योतिष्काणां गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

दसः॥। सीदीः॥ चदुदुग-तियचउक्कं ःः॥ (दशः॥। अशीतिः॥ चतुर्द्विक-त्रयचतुष्कम्ः॥।) =दशयोजन-अस्सीयोजन-चारयोजन दो वार अर्थात् चारयोजन चारयोजन तीनयोजन चारवार अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन,

तारा-रवि-ससि-रिक्खाः। (तारा-रवि-शशि-रिक्षाःः।) =तारे, भान, चन्द्रमा, नक्षत्र (अठाईस)

बुह-भग्गव-गुरु-अंगिरा-रसणीः। बुद्ध-भार्गव-गुरु-अंगारका-शनयःः। =बुद्ध-शुक्र-बृहस्पति-मंगल (और) शनैश्चर (यथासंख्य सम भूमिसे विचरें) हैं

भावार्थ सम भूमि चित्रा पृथिवीसे सातसौ नव्वै योजन ऊंचे तारे हैं। तिन तारों से दश योजन ऊपर सूर्य हैं। तिन से ८० योजन ऊपर चन्द्रमा हैं। तिनसे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं। तिनसे चारयोजन ऊपर बुद्ध हैं। तिनसे तीनयोजन उर्ध्व शुक्र हैं। तिनसे तीनयोजन ऊपर बृहस्पति है। तिनसे तीनयोजन ऊंचे मंगल हैं और मंगलसे तीनयोजन ऊपर शनिश्चर हैं।

ज्योतिष्काणांः। विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थःः॥ आह- =ज्योतिषी देवोंके गमन विशेषके ज्ञानके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

---

* पूज्यपाद स्वामीके मतमें चन्द्रमासे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं और नक्षत्रोंसे चारयोजन ऊपर बुद्ध (बुध) हैं परन्तु तत्वार्थराजवार्तिकके रचयिता श्री अकलंक स्वामी तथा श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीमद् विद्यानंदि स्वामीके मतमें चन्द्रमासे तीन योजन ऊपर नक्षत्र हैं और नक्षत्रोंसे तीन ही योजनपर बुद्ध हैं इन आचार्योंके मतानुसार बृहस्पति देवोंसे चारयोजनकी उंचाईपर मंगल हैं और मंगलसे चार योजनकी उंचाईपर शनैश्चर नामके ज्योतिषीदेव भ्रमण करतेहैं अर्थात् सवे आचार्य (i) ज्योतिष्क समस्तदेवोंके क्रमानुसार अवस्थित (ii) तथा क्रमानुसार एक दूसरेके ऊपर ऊपर होनेमें सहमत हैं (iii) इस बातमें भी सहमत हैं कि ज्योतिष्क पटल एकसौ दशयोजन उंचाईमें गगनमें फैल रहा है। केवल मतभेद इतना है कि एकके मतमें नक्षत्र और बुद्ध चार चार योजन ऊंचे हैं और मंगल शनिश्चर तीन तीन योजन ऊंचे हैं अन्य आचार्योंके मतमें मंगल शनिश्चर प्रत्येक गण चार चार योजन ऊंचे हैं और नक्षत्र, बुद्ध (बुध) तीन तीन योजन ऊपर हैं॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगममें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्री सिद्धसेनसूरि रचित) में ऐसा आशय दिया है कि 'समान भूमिभागसे आठसौ (८००) योजनपर सूर्य है, सूर्यसे अस्सी (८०) योजनपर चन्द्रमा है और चन्द्रमासे बीस (२०) योजनपर तारा हैं" श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ १००

"यहां सम तल भूमि भागसे ऊपर सातसौ (७००) योजन अधिक नव्वै (९०) योजन, प्रथम ज्योतिष्क विमानका प्रस्तार है

॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥

मेरोः प्रदक्षिणाः मेरुप्रदक्षिणाः। मेरुप्रदक्षिणा इति वचनं गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थं विपरीतगतिर्मा विज्ञायीति ॥ नित्यगतय इति विशेषणमनुपरतक्रियाप्रतिपादनार्थम्। नृलोकग्रहणं विषयार्थम्। अर्धतृतीयेषु द्वीपेषु द्वयोश्च समुद्रयोर्ज्योतिष्का नित्यगतयो नान्यत्रेति ॥

सूत्रम्— मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ =(ज्योतिष्काः) मेरु प्रदक्षिणाः नित्यगतयः नृलोके ॥१३

सूत्रार्थ— ज्योतिष्काः १।	=(ये पांच प्रकारके) ज्योतिषीदेव
मेरु-प्रदक्षिणाः १॥	=सुमेरुकी प्रदक्षिणा देते हुये अथवा मंडलाकार फिरते हुये
नृ-लोके ७। नित्य-गतयः १॥	=मनुष्य लोकमें अर्थात् अढाई द्वीप और दो समुद्रोंमें निरन्तर गमन करनेवाले हैं
शब्दानुवाद— मेरोः ६। प्रदक्षिणा १॥ मेरु-प्रदक्षिणा १॥	=सुमेरुके मंडलाकार फिरना सो मेरुप्रदक्षिणा है।
मेरु-प्रदक्षिणा १॥ इति * वचनं १॥ गति-विशेष—	=मेरुप्रदक्षिणा ऐसा वाक्य गमनविशेष
प्रतिपत्ति-अर्थम् १॥ विपरीतगतिः १॥ मा * विज्ञायि-इति	=जाननेके लिये है अन्य प्रकार गमन न जानो अर्थात् पूर्वोक्त ज्योतिषी देवोंका गमन सुमेरु पर्वतके मंडलाकार ही जानो भिन्न प्रकारसे न जानना
नित्य-गतयः १॥ इति * विशेषणं १॥ अनु-उपरत—	=(सूत्रमें) 'नित्यगतय' ऐसा गुणवाचक शब्द निरन्तर अथवा लगातार
क्रिया-प्रदिपादन-अर्थम् १॥ नृ-लोक—	=(गमनरूप) क्रियाके जनावनेके लिये है। मनुष्य लोकका
ग्रहणं १॥ विषय-अर्थम् १॥	=ग्रहण देश (=विषय) के लिये है। अर्थात् ज्योतिषी देवोंके गमनकी मर्यादा अथवा सीमाके लिये है।
अर्ध-तृतीयेषु ७। द्वीपेषु ७। द्वयोः ७। च समुद्रयोः ७।	=अढाई (=अर्धतृतीयेषु) द्वीपमें और (=च) दो समुद्रोंमें
ज्योतिष्काः १। नित्यगतयः १॥ न-अन्यत्र * इति *	=ज्योतिषीदेव नित्यगमन (करने) वाले हैं न दूसरे स्थानमें।

* श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रका पाठ और हमारे यहां का पाठ और अर्थ एक है परन्तु उनके यहांके 'भाष्यानुसारिणी-तत्त्वार्थटीका हस्तलिखितमें (श्री सिद्धसेनसूरि रचित) में 'मेरु प्रदक्षिणा नित्यगतयः' ऐसा पाठ है ॥

३५

तिर्यग्-असंख्यात-द्वीप-समुद्रप्रमाणः घनोदधिपर्यंत	=(और) तिरछा विस्तार असंख्याते द्वीप समुद्र प्रमाण घनोदधि वातवलय तक है।
उक्तं च—णवदुत्तरसत्तसया (नवति-उत्तर-सप्तशतानि)	=कहा जाता भी है कि नव्वे ऊपर सातसौ (योजन) अर्थात् सातसौ नव्वे योजन
दस-सीदि-चदु तिगं च दुगचदुक्कं दश-अशीति-चतुःत्रिक-च द्विक चतुष्कम्	=दशयोजन, अस्सीयोजन, चारवार तीनयोजन, और (=च) दोवार चार योजन अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन और चारयोजन चारयोजन (चित्रा भूमिके समतलसे उंचाईपर-क्रमसे)
तारा-रवि-ससि-रिक्खा (तारा-रवि-शशि-रिक्षाः)	=तारे, सूर्य, चन्द्रमें, नक्षत्र
बुध-भागव-गुरु-अंगिरा-रसणी बुद्ध-भार्गव-गुरु-अंगारका-शनयः	=बुद्ध-शुक्र-बृहस्पति-मंगल-शनिश्चर (देव) (विद्यमान) हैं

यह आर्या छंदके सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें (और एक हस्त लिखित प्रतिमें भी) और राजवार्तिक की दो मुद्रित प्रतियोंमें, पन्नालाल दुनीको हस्तलिखित प्रतिमें तथा पन्नालाल न्यायदिवाकर हस्तलिखित और अनुवादित एक प्रतिमें भी, प्रथम, तृतीय और चतुर्थ पाद शब्दशः एक ही है केवल द्वितीय पादके अंत भागके पाठमें सर्वार्थसिद्धिका पाठ "चदुदुग तियचउक्कं" (चार दोवार, तीन चारवार) के स्थानमें तत्त्वार्थराजवार्तिक में "चदु तिग" च "दुग चदुक्क" पाया जाता है इसीसे अर्थमें भेद है जिसको हम ऊपर लिख चुके हैं और दोनों पाठोंमें जो अन्तर है उस तृतीय पादका भी अर्थ दोनों मतानुसार ऊपर लिख चुके हैं विद्यानंदि स्वामीने 'मेरुप्रदिक्षणा नित्यगतयो नृलोके' ॥१३॥ इससूत्रके नीचे अकलंक स्वामी से सहमत होते हुये निम्न श्लोक दिये हैं :—

योजनानां शतान्यष्टौ (=शतानि अष्टौ) हीनानि दश योजनैः । उत्पत्य तारकास्तावच्चरंत्यध (तारकाः तावत् चरंति अधस्) इति श्रुतिः —आठसौ योजनमेंसे दशयोजन कमि घाटि, सातसौ नव्वे योजन तो (चित्रा भूमिके समतलसे) ऊपर (=उत्पत्य) तारे (सब ज्योतिष्कोंमे) नीचे विचरते हैं ऐसा शास्त्र है ॥ ततः सूर्या दशोत्पत्य (=दश-उत्पत्य) योजनानि महाप्रभाः । ततश्चंद्रमसो शीति (ततः चन्द्रमसोऽशीति) भानि त्री णि ततस्त्रयः (ततः त्रय) ॥४॥ उन (ताराकाओं)मे दशयोजन ऊपर महाप्रभावाले सूर्य भ्रमते हैं । उन (सूर्योंसे) अस्सीयोजन (ऊपर) चन्द्रमें हैं । इन तीनोंसे (ऊपर) तीन (त्रीणि) योजन नक्षत्र हैं ॥४॥ त्रीणि त्रीणि बुधाः शुक्रा गुरवश्चोपरि (=गुरवः च उपरि) क्रमात् । चत्वार्यंगारका रतश्चत्वारि (=चत्वारि-अंगारकाः तद्वत् चत्वारि) च शनैश्चराः ॥५॥ तीन तीन (योजन) बुद्ध शुक्र बृहस्पति क्रमसे (एक दूसरेके) ऊपर हैं । वैसे ही (=तद्वत) चारयोजन ऊपर मंगल हैं और (=च) चारयोजन ऊपर शनीश्चर है ॥५॥ भाषाके टीकाकार पं० सदासुख जी और पं० जयचंद राय जी ने अकलंकदेव स्वामी और विद्यानन्दि स्वामीके मतानुसार अर्थ प्रकाशिका और सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें उल्लेख किया है परन्तु कविवर धानतराय जीने चरचा शतकमें (संवत् १७८०) पूज्यपाद स्वामीके मतानुसार ऐसा छप्पयछंद बनाया है कि "सात सतक अरु नव्वे तासपर तारे राजै। ता ऊपर दशमान असीपर चन्द्र विराजै। चार नखत बुधचार तीनपर शुक्र बतायो। तीन गुरू कुज तीन तीन पर शनि (=शनिश्चर) ठहरायो

३५

तद्ग्रहणं गतिमज्ज्योतिःप्रतिनिर्देशार्थम्। न केवलया गत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भिः कालः परिच्छिद्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च॥

वृत्त्यनुवादः–तद्-ग्रहणम्॥गतिमत्-ज्योतिस्-	=(सूत्रमें) तत् शब्दका आदान गमन सहित ज्योतिषी देवों
प्रति*निर्देश-अर्थम्॥न*केवलया॥गत्या॥	=के (=प्रति) कथनके लिये है न अकेले गमनसे (और)
न*अपि*केवलैः॥ज्योतिर्भिः॥कालः॥परिच्छिद्यते।	=न केवल ज्योतिषी देवों करि ही (=अपि) (यह व्यवहार) काल जानाजाता है
	(गमन करतेहुये ज्योतिषी देवोंकरि ही उक्त व्यवहारकाल समय आवलीआदि ज्ञात हैं)
अनुपलब्धेः॥च*	=क्योंकि (व्यवहार काल) प्रत्यक्ष नेत्रों द्वारा नहीं देखाजासक्ता है और (=च)
अपरिवर्तनात्॥	=न (उस व्यवहार काल का) पलटना (भी दीखे है)

(१) अनुपलब्धेः और अपरिवर्तनात् ये दो शब्द व्यवहार काल से सम्बन्ध रखते हैं अथवा ज्योतिष्क देवों से अर्थात् व्यवहार काल प्रत्यक्ष नेत्रों द्वारा और उस व्यवहारकालका परिवर्तन और पलटन नहीं दीखते हैं अथवा ज्योतिषी देवोंकी गति, गमन नहीं देखा जासक्ता, है और वे परिवर्तन रहितहैं अर्थात् अवस्थित हैं॥ इस 'तत' शब्दके सम्बन्धमें हमको श्लोकवार्तिकमें, अर्थप्रकाशिकामें, प०सदासुखजीकी लघुटीकामें, श्वेताम्बरसम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें तथा दो चार अन्य भाषाओंकी टीका में कुछ भी नहीं मिलता है॥ तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें ठीक उसी आशय का लेख है जो सर्वार्थसिद्धि में है जैसे

संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका पाठ

तद् ग्रहणं गतिमज्ज्योतिः प्रतिनिर्देशार्थम्

नकेवलया गत्यानापिकेवलैर्ज्योतिर्भिःकालःपरिच्छिद्यते,अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च॥

"इहां ततशब्दका ग्रहण गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है। सो यह व्यवहार काल केवल गतिही करि तथा केवल ज्योतिषीहीनिकरि नाहीं जान्या जायहै जातैं गमनतौ इनिका काहू कू दीपै नाहीं। बहुरि गमन न होयतौ ये थिरही रहैं। तातैं दोनों सम्बन्ध लैना" पं० जयचन्दजी कृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ ३७४, हस्तलिखित पृष्ठ १४७ वा १४८

तत्त्वार्थ राजवार्तिकालंकार का पाठ

तद्वचनं गतिमज्ज्योतिः प्रति निर्देशार्थम्॥१॥

गतिमतां ज्योतिषां प्रतिनिर्देशार्थं तदित्युच्यते

नहि केवलगत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भिः कालः परिच्छिद्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च ज्योति परिवर्तनलभ्यो हि कालपरिच्छेदः।

"सूत्रमें जो तत् शब्दका उल्लेख किया गया है वह गतिमान ज्योतिषियोंके ग्रहणार्थ हैं॥१॥ केवल गति क्रियाके आधीन कालका निर्णय नहीं हो सकता क्योंकि गतिकी अनुपलब्धि है नेत्र से नहीं दीखपडती॥ केवल ज्योतिषियों सेभी काल का निश्चय नहीं होसका क्योंकि

ज्योतिष्कविमानानां गतिहेत्वभावात्तद्वृत्त्यभाव इति चेन्न, असिद्धत्वात् ॥ गतिरताभियोग्यदेवप्रेरितगति-परिणामात्कर्मविपाकस्य वैचित्र्यात्तेषां हि गतिमुखेनैव कर्म विपच्यत इति ॥ एकादशभिर्योजनशतैरेक-विंशैर्मेरुमप्राप्य ज्योतिष्काः प्रदक्षिणाश्चरन्ति ॥ गतिमज्ज्योतिस्सम्बन्धेन व्यवहारकालप्रतिपत्त्यर्थमाह

॥ तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

ज्योतिष्क-विमानानाम् । गति-हेतु अभावात् =(प्रश्न) ज्योतिषी देवोंके विमानोंके गमनका कारण न होनेसे
तद्-वृत्ति-अभावः । इति * चेत् * न * =उस (गति) का प्रवर्तन नहीं (=अभाव) है। ऐसा संदेह होना चाहिये (उत्तर) (शंका) नहीं
(क्योंकि यह कहना कि ज्योतिषीदेवोंके विमान स्थिर हैं इससे गमन नहीं करते हैं)
असिद्धत्वात् ।।। गति-रत-आभियोग्य- =असिद्ध होता है। क्योंकि गमन विषैं लीन ऐसे आभियोग्य जातिके
देव-प्रेरित-गति-परिणामात् =देवोंकरि किया (=प्रेरित) गमन परिणाम है।
अर्थात् गतिरूप अवस्थामें परिवर्तन अथवा पलटाव है ॥
कर्म-विपाकस्य । वैचित्र्यात् ।।। तेषाम् । हि ❀ =सो कर्मकी उदयकी विलक्षणतासे तिन (आभियोग्य जातिके देवों) के ही
गति मुखेन ।।। एव ❀ कर्म ।।। विपच्यते । इति ❀ =गमन रूप प्रधानतासे ही कर्म पकाया जाता है अर्थात् उदय होता है।
एकादशभिः ।।। योजन-शतैः ।।। एकविंशैः ।।। मेरुम् । अप्राप्य- =ग्यारह सौ इक्कीस योजन मेरु को छोड़कर (उरे)
ज्योतिष्काः । प्रदक्षिणाः ।। चरन्ति । गतिमत्-ज्योतिस्- =ज्योतिषी देव प्रदक्षिणा करते हैं। गमन करने वाले अथवा गतिमान्ज्योतिषीयोंके
सम्बन्धेन । व्यवहार-काल-प्रतिपत्ति-अर्थम् ।।। आह । =सम्बन्धसे व्यवहार कालके जाननेके लिये (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—

तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—तत्कृतः । (=तत्-कृतः) काल विभागः =तिन गतिमान् ज्योतिषियों से (=तत्) कियागया काल वा समयका विभाग है
अर्थात् गमन करतेहुये सूर्य चन्द्रमादिक द्वारा व्यवहार कालके भाग जैसे समय, आवली, पल, घड़ी, पहर, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, इत्यादि सूचित कियेजाते हैं

(१) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें, तथा सिद्धसेन सूरिरचित भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकामें तथा हमारे यहां सर्वत्र इस सूत्रका एक पाठ और अर्थ है॥

कालो द्विविधो व्यावहारिको मुख्यश्च ॥ व्यावहारिकः कालविभागस्तत्कृतः समयावलिकादिः क्रियाविशेषपरिच्छिन्नोऽन्यस्यापरिच्छिन्नस्य परिच्छेदहेतुः ॥ मुख्योऽन्यो वक्ष्यमाणलक्षणः ॥ इतरत्र ज्योतिषामवस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

॥ बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥

बहिरित्युच्यते, कुतो बहिः ? नृलोकात् ॥ कथमवगम्यते ?

कालः१/१ द्वि-विधः१/१ व्यावहारिकः१/१ मुख्यः१/१ च*	=काल दो प्रकार है व्यवहार और निश्चय (=परमार्थकाल) अर्थात् कालके अणु ॥
व्यावहारिकः१/१ काल-विभागः१/१ तत्-कृतः१/१	=व्यवहार कालका विभाग तिन(गमन करते हुये ज्योतिषी देवों)से सूचितकियाहुआ
समय-आवलिक-आदिः१/१ क्रिया-विशेष-परिच्छिन्नः१/१	=समय, आवली आदिक क्रिया विशेषकरि जाना गया है।
अन्यस्य६/१ अपरिच्छिन्नस्य६/१ परिच्छेद-हेतुः१/१	=(सो) दूसरे विना जाने हुयेके जनावनेका कारण है। अर्थात् उसव्यवहारकालके विभाग समय आवली घटिका, दिन, मास, वर्ष, इत्यादि दूसरे निश्चयकाल जो जाननेमें नहीं आसक्ता है। उसके सूचित करने वा जनावने का कारण है।
मुख्यः१/१ अन्यः१/१ वक्ष्यमाण-लक्षणः१/१ ॥	=दूसरा परमार्थ काल या निश्चयकालका स्वरुप (अ०पांच २२,३९,४०सूत्रोंमें है)
इतरत्र*ज्योतिषाम्६/३ अवस्थान-प्रतिपादन-अर्थम्१/१ आह।	=यहां (मनुष्यलोक)से भिन्न ज्योतिषी देवोंके अवस्थितहोनेके कथनको कहते हैं कि
[1]सूत्रम्—बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥	=([2]ज्योतिष्काः [3]नृलोकात्)बहिर्-अवस्थिताः(भवन्ति)।१५।
सूत्रार्थ—ज्योतिष्काः१/३ नृ-लोकात्५/१	=ज्योतिषी देव मनुष्य लोक से अर्थात् जम्बूद्वीप धातकी खंड, पुष्करार्ध और लवणोदधि और कालोदधि दो समुद्रोंसे
बहिर्*अवस्थिताः१/३ भवन्ति।	=बाहिर गमन रहित है (जहां के तहां स्थिर रहते है)
वृत्त्यनुवादः—बहिर्*इति*उच्यते, कुतः*बहिः*	=बाहिर ऐसा (सूत्रमें) कहा गया है। (प्रश्न) कहां से बाहिर
नृ-लोकात्५/१ कथम्*अवगम्यते।	=(उत्तर) मनुष्यलोकसे (बाहिर) (प्रश्न) (मनुष्यलोकसे बाहिर यह) कैसे जानागया

(१) 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में तथा 'भाषानुसारिणी' तत्त्वार्थबोधिनी टीकामें और हमारे यहां सर्वत्र इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ एक है ॥

(२) (३) 'ज्योतिष्का' बारहवां और 'नृलोकात्' तेरहवां सूत्रसेक्रमसे लियेगयेहै। सबकीसन्धि करनेसे 'ज्योतिष्का नृलोकाद्बहिरवस्थिताः' ऐसासूत्रहोगा ॥

गति क्रिया रहित केवल ज्योतिषियोंको परिवर्तन रहित-स्थिर माना जायगा।
स्थितिशील ज्योतिषियोंसे कालका निर्णय नहीं हो सकता। इसलिये कालके निश्चयमें गतिमान ज्योतिषी ही असाधारण कारण हैं। उन्हींसे कालका निर्णय होता है "राजवार्तिक अनुवादित पं० गजाधरलाल शास्त्री, पं० मक्खनलाल न्यायालंकारद्वारा संसोधित पृष्ठ१०३५॥
"अर्थ—सूत्रके विषैं तत् शब्दका ग्रहण है सो गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है"
अर्थ टीकाका—गतिरूप परिणये जे ज्योतिषी ऐसे गति विशिष्ट ज्योतिषीनिके कहने के अर्थ सूत्र के विषैं तत् शब्द कहा है॥
तहां यह व्यवहारकाल है सो केवल गतिही करि तथा ज्योतिषीनिकरि नाहीं जान्या जायहै॥ जातैं गमनतो इनका काहू कूं दीखै नाहीं और गमन न होय तौ ज्योतिषीनिका परिवर्तनका अभाव होय तौ ये थिरही रहैं॥ ऐसे गमनकी अनुपलब्धितैं तथा ज्योतिषीनिके अपरिवर्तनतैं व्यवहार काल नहीं जाना जाय है॥
तातैं निश्चयकरि (=हि) ज्योतिषिनिके परिवर्तनतैं व्यवहारकाल जाना जाय है" पं० पन्नालाल न्याय दिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थ रत्नमाला पृष्ठ ८३३
"गतिमान ज्योतिषीनिका क्रिया काल विभागकूं जनावने के अर्थ तत् ऐसोशब्द कहिये है। अर निश्चयकरि केवल गति करि भी काल नहीं जानिये है अर केवल ज्योतिषीनिकरि भी काल नहीं जानिये है क्योंकि अनुपलब्धितैं कि प्रत्यक्ष नहीं दीखनेंतें। अर अपरिवर्तनतैं कालकी सत्ता नहीं ज्ञात होय है अर्थात् काल प्रत्यक्ष भी नहीं दीखे है अर कालका पलटना भी नहीं दीखे है। यातैं ज्योतिषीनिका परिवर्तन करिही कालका जानपन है"॥ पं०पन्नालाल जी दूनीवाले अनुवादित राजवार्तिक पृष्ठ २१॥

मैंने पं० पन्नालालजी दूनीवाले के साथ सहमत होकर ऊपर अनुवाद किया है॥ मुझको लगभग दशवर्ष प्रथम भी संदेह हुआ था कि "अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च" वाक्यका अनुवाद ठीक नहीं है उस समय मैंने उसे छोड़ दिया था अब इन्द्रप्रस्थमें नाना प्रकार के साधन प्राप्त होने पर लिखा है॥ कारण यह है कि ज्योतिषियों का गमन अनुपलब्ध नहीं है क्योंकि हम सर्व उनका गमन प्रत्यक्ष आंखों से देखते हैं निस्संदेह काल प्रत्यक्ष नहींदीखता है और कालका पलटना भी नहीं दीखता है॥ स्मरण रहे कि कितने ही ज्योतिषोदेव थिर हैं उनका गमन नही होता अतः नहीं देखा जासकता है॥

॥ वैमानिकाः ॥ १६ ॥

वैमानिकग्रहणमधिकारार्थम्। इत उत्तरं ये वक्ष्यन्ते तेषां वैमानिकसम्प्रत्ययो यथा स्यादिति अधिकारः क्रियते॥ विशेषेणात्मस्थान् सुकृतिनो मानयन्तीति विमानानि। विमानेषु भवा वैमानिकाः॥ तानि विमानानि त्रिविधानि। इन्द्रकश्रेणिपुष्पप्रकीर्णकभेदेन॥ तत्र इन्द्रकविमानानि इन्द्रवन्मध्ये व्यवस्थितानि।

[1]सूत्रम्—वैमानिकाः ॥ १६ ॥	=([2]चतुर्थः [3]देवनिकायः) वैमानिकाः (सामान्यसञ्ज्ञा भवति)
सूत्रार्थः—चतुर्थः 1/1 देवनिकायः 1/1 वैमानिकाः 1/3 सामान्यसंज्ञा 1/1 भवति	=चौथा देवोंका समुदाय वैमानिक ऐसी (उन देवों की) सामान्य संज्ञा है
वृत्त्यनुवादः—वैमानिक-ग्रहणम् 1/1 । अधिकार-अर्थम् 1/1	=वैमानिक शब्दका ग्रहण अधिकार वा प्रकरण के लिये है
इतस् *उत्तरम् 1/1 वक्ष्यन्ते। तेषाम् 6/3	=यहांसे आगे जो कहे जांयगे तिनकी
वैमानिक-सम्प्रत्ययः 1/1 [4] यथा *स्यात् T	=यथायोग्य वैमानिक संज्ञा जानना चाहिये वा समझना चाहिये (=सम्प्रत्ययःस्यात्)
इति *अधिकारः 1/1 क्रियते T ॥ विशेषेण 3/1 आत्मस्थान् 2/3	=(यहां) ऐसा प्रकरण किया गया है॥ जिनमें रहनेवाले जीवोंको विशेषकरि
सुकृतिनः 2/3 मानयन्ति T इति *विमानानि 1/3	=पुन्यवंत (अन्यजीव) मानते हैं। ऐसे विमान हैं ॥
विमानेषु 7/3 भवाः 1/3 वैमानिकाः 1/3 । तानि 1/3 विमानानि 1/3	=विमानोंमें (उत्पन्न) होनेवाले वैमानिक हैं। ते विमान
त्रिविधानि 1/3 इन्द्रक-श्रेणि-पुष्पप्रकीर्णक-भेदेन 3/1	=तीन प्रकार इन्द्रक, श्रेणीवद्ध, और पुष्पप्रकीर्णक भेदसे हैं।
तत्र *इन्द्रक विमानानि 1/3 इन्द्रवत् *मध्ये 7/1 व्यवस्थितानि 1/3	=तहां इन्द्रक विमान इन्द्रके समान वीचा वीचमें (=मध्ये) तिष्ठते हैं

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥ (२) इस वाक्यकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पहिले सूत्रसे लीगई है।

(३) क्योंकि इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें देवोंके चार निकाय वा समुदाय कहे हैं और १०वां ११वां १२वांसूत्रोंमें भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंकी सामान्य और विशेषसंज्ञायें यथासख्य कही हैं। तव केवल चौथासमुदाय अवशेष रहता है इसलिये चतुर्थशब्दका अध्याहार(=वह वाक्य जो स्पष्ट समझमें न आसके उसे किसी दूसरे शब्दकी कल्पना करि स्पष्ट करदेना) 'इस सोलवां सूत्र में किया है ॥

(४) यहां 'यथा' शब्द यथायोग्यके अर्थ मे लाया गया जान पड़ता है अर्थात् जिस जिस प्रकारके वैमानिक देव हैं जैसे कल्पोपपन्न उनमें भी लौकांतिक जातिके देव और कल्पातीत वैमानिका इत्यादि हों तैसे तैसे यथायोग्य जानों ॥ यथायोग्य, यथोचित, यथाविधि विधिपूर्वक ये चारों समान अर्थ वाचक है ॥ सस्कृत वृत्तिहस्तलिखित दो प्रतियोंसे मिलान किया तो यथा शब्द ही पाठ प्राप्त हुआ परन्तु राजवार्तिक मुद्रित तथा दो हस्त लिखित प्रतियों में "वैमानिक सप्रत्ययः कथं स्यादित्यधिकार. क्रियते" अर्थात् 'यथा' शब्दके स्थान में कथम् शब्द है ॥ "पन्नालाल दूनीजीने "वैमानिकपणों की भले प्रकार प्रतीति कैसे होय यातै अधिकाररूप सूत्र करिये हैं ऐसा अनुवाद किया है ॥

अर्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवति ॥ ननु च नृलोके नित्यगतिवचनादन्यत्रावस्थानं ज्योतिष्काणां सिद्धं । अतो वहिरवस्थिता इति वचनमनर्थकमिति । तन्न । किं कारणम् ? नृलोकादन्यत्र वहिर्ज्योतिषामस्तित्वमवस्थानं चासिद्धम् । अतस्तदुभयसिध्यर्थं वहिरवस्थिता इत्युच्यते ॥ विपरीतगतिनिवृत्त्यर्थं कादाचित्कगतिनिवृत्त्यर्थं च सूत्रमारब्धम् ॥

तुरीयस्य निकायस्य सामान्यसञ्ज्ञासङ्कीर्तनार्थमाह—

अर्थवशात् विभक्ति-परिणामः भवति । =(उत्तर)अभिप्रायकेवलसे वा सामर्थ्यसे विभक्तिका पलटाउ,वा परिणमनहोजाताहै अर्थात् १३ वां सूत्रमें कहा है कि "नित्यगतयो नृलोके" (=नरलोकमें नित्यगमनकरनेवाले है) इस वाक्यसे स्वाभाविक प्रश्न आता है कि नरलोकमें तो नित्यगमनकरने वाले हैं । फिर नरलोकके वाहिर क्या हैं यहां पर सप्तमी विभक्ति "नरलोकमें" अभिप्रायवश पंचमी विभक्ति "नरलोकसे" में परिणमन होजाती है अथवा परिवर्तन करली जाती है

ननु*च*नृलोके नित्य-गति-वचनात् अन्यत्र* =वहुरिप्रश्न मनुष्यलोकमें नित्यगमन(ऐसे)वाक्यसेयहां(मनुष्यलोक)सेअन्यस्थानमें

अवस्थानम् ज्योतिष्काणाम् सिद्धम् । =ज्योतिषी देवोंका अवस्थान सिद्ध वा निष्पन्न है ।

अतः*वहिर्*अवस्थिताः इति*वचनम् =इस लिये "वहिर् अवस्थिताः" ऐसा वचन अर्थात् यह पंद्रहवां समस्त सूत्रही

अन्-अर्थकम् इति* । तद् न* =निष्प्रयोजन है (उत्तर) सो (=तद्) नहीं है

किम् कारणम् नृ-लोकात् अन्यत्र* =क्या कारण कि मनुष्य लोकसे अन्यत्र

वहिर्*ज्योतिषाम् अस्तित्वम् अवस्थानम् च*असिद्धम् =वाहिर ज्योतिषी देवोंकी विद्यमानता औरगमनका अभाव(१५सूत्रसे सिद्ध है)

अतः*तद्-उभय-सिद्धि-अर्थम् =इसलिये उन(=तद्) दोनों (अस्तित्व सत्ता और अवस्थान स्थिरता)प्राप्तिकेलिये

"वहिरवस्थिताः" इति*उच्यते । ॥ विपरीत गति- ="वहिरवस्थिता"ऐसा(सूत्र)कहागया है। उलटागमन अर्थात् अप्रदक्षिणारूपगतिके

निवृत्ति अर्थम् कादाचित्क-गति-निवृत्ति-अर्थम् च* =निषेधके लिये और (=च) कभी कभी होने वाले गमन के निराकरणकेलिये

सूत्रम् आरब्धम् तुरीयस्य निकायस्य =(यह पन्द्रहवां) सूत्र प्रारम्भ कियागया है ॥ (देवोंकी) चौथे समुदायकी

सामान्य-सञ्ज्ञा-सङ्कीर्तन-अर्थम् आह । =सामान्य संज्ञा कहनेके लिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

॥ उपर्युपरि ॥ १८ ॥

(१)सूत्रम्—उपर्युपरि (उपर्य्युपरि) =(वैमानिकाः) उपर्युपरि (अवस्थितयः भवन्ति) ॥१८॥

सूत्रार्थः—वैमानिकाः१/३ उपरि॰ उपरि॰ =वैमानिक देवोंके निवासस्थान (एक दूसरेसे) ऊपर ऊपर

अवस्थितयः१/३ भवन्ति =अवस्थित हैं वा विद्यमान हैं अर्थात् कल्पोंके युगल तथा उनके पटल तथा नवग्रैवेयक नव अनुदिश और पांच अनुत्तर ये सब विमान क्रमसे ऊपर ऊपर अवस्थित हैं

---

(१) हमारे यहां 'उपर्युपरि' और कहीं कहीं 'उपर्य्युपरि' पाठ है 'अचोरहाभ्यां द्वे वा' व्याकरणके सूत्रसे दूसरा पाठ भी ठीकहै ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य॰में'उपर्युपरि'पाठहै परन्तु भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका श्रीसिद्धसेन सूरिरचितमें 'उपर्युपरि च' ऐसा पाठहै अर्थ सर्वत्र एक है ॥

(२) इससूत्रमें अनुवृत्ति किसकिस वाक्यकी है इसमें चार मतभेद हैं(क)पूज्यपाद स्वामीके मतमें "कल्पा"शब्द अनुवर्तताहै(सर्वार्थसिद्धिपृष्ठ२४३)

(ख) श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकों से अधिक हैं उसके अनुकूल 'कल्पा' शब्दअनुवर्तताहै। न तो 'देवा' न 'विमानानि' शब्द अनुवर्तत है। देखो भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका पृष्ठ ३३५

(ग) तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार 'कल्पाः' शब्द की अनुवृत्ति सोलह स्वर्ग तकके लिये और 'विमाना' शब्दकी कल्पोंसे(स्वर्गोंसे)ऊपरके लियेहै अर्थात् 'कल्पा' और 'विमाना' दो शब्द अनुवर्तते हैं ॥ (घ)तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकके अनुसार "वैमानिकाः" शब्दकी अनुवृत्ति इसहेतुसे होना चाहियेकि "वैमानिकाः" ऐसा अधिकार सूत्र सोलहवां जब कह चुके हैं तब उसके अनुकूल किसी अन्य शब्द वा वाक्य का अनुवर्तन नहीं होना चाहिये। श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८१ देखो ॥ यहां आशयके सम्बन्धमें सा "व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्ति नहि सदेहादलक्षणम्" (=सदेहात्मक वाक्यका यथार्थ तात्पर्य उसकी व्याख्यासे निर्णय किया जाता है क्योंकि नियम लक्षण रहित नहीं होता है) व्याकरण के इस सिद्धान्तसे स्पष्ट होसक्ता है ॥

सब आचार्यों के वाक्य अथवा वाक्योंके अनुवादका उल्लेख नीचे क्रमसे किया है ॥

() "उपर्युपरीत्युच्यन्ते"(सूत्रमें)ऊपर ऊपर ऐसे वर्णितहैं(प्रश्न)के ते ? ते(ऊपर ऊपर वर्णित)कौनहैं ॥ (उत्तर)कल्पाः= कल्पहैं (सर्वार्थ॰पृष्ठ २४३

() 'कल्पा सम्बन्ध्यन्ते। न देवा विमानानि वा यो य निर्देशः करिष्यते" भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीका पृष्ठ ३३५ देखो ॥

=इस उपर्युपरि सूत्रमें कल्पाः शब्द मिलायाजाता है न कि 'देवा' वा 'विमानानि' शब्द जो यह कथन किया गया है ॥ (ऊपरके वाक्य का यह शब्दशः अनुवाद है)

() "इदं विचार्यते-किमत्रादेयत्वेन कल्प्यमानाः देवा उत विमानानि आहोस्वित् कल्पा इति किं वा कामचार." । तत्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ१५६

=यह विचार उत्पन्न होता है कि यहां (उपरि उपरि इस वचनसे) उपादेयपणांकरि (आदेयपनाकरि) अर्थात् ग्रहण करने योग्य कल्पना कियेगये (=कल्प्यमानाः) देव (ऊपर ऊपर) हैं वा विमान (ऊपर ऊपर) हैं अथवा स्वर्ग (=कल्प)(ऊपर ऊपर) हैं अथवा वक्ताकी इच्छाका विषय स्वतन्त्र कोई पदार्थ है (=कामचारः) अर्थात् वक्ताकी इच्छानुसार कहीं देवोंका ग्रहणहै कहीं विमानोंका तो कहीं स्वर्गों का ग्रहण है ॥

तेषां चतसृषु दिक्षु आकाशप्रदेशश्रेणिवदवस्थानात् श्रेणिविमानानि । विदिक्षु प्रकीर्णपुष्पवद-वस्थानात्पुष्पप्रकीर्णकानि ॥ तेषां वैमानिकानां भेदावबोधनार्थमाह—

॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

कल्पेषूपपन्नाः कल्पोपपन्नाः कल्पानतीताः कल्पातीताश्चेति द्विविधा वैमानिकाः ॥

तेषामवस्थानविशेषनिर्ज्ञापनार्थमाह—

तेषाम् चतसृषु दिक्षु	=तिन (इन्द्र विमानों) की चारों दिशाओंमें
आकाश-प्रदेश-श्रेणिवत् *अवस्थानात्	=आकाशके प्रदेशकी श्रेणीके सदृश तिष्ठनेसे
श्रेणि-विमानानि विदिक्षु प्रकीर्ण-पुष्पवत् *	=श्रेणीबद्ध विमान हैं ॥ विदिशाओंमें विखरे फूलोंके समान
अवस्थानात् पुष्पप्रकीर्णकानि	=स्थिति होनेसे वा तिष्ठनेसे पुष्प प्रकीर्णक हैं ।
तेषाम् वैमानिकानाम् भेद-अवबोधन-अर्थम् आह	=तिन वैमानिकदेवोंके भेद जाननेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
(१)सूत्रम्—कल्पोपपन्नाःकल्पातीताश्च॥१७॥	=(वैमानिकाः)कल्पोपपन्नाः कल्पातीताःच (द्विविधाभवन्ति)
सूत्रार्थः—वैमानिकाः कल्प-उपपन्नाः	=वैमानिक देव कल्प (अर्थात् स्वर्गो) में उत्पन्नहोनेवाले
कल्प-अतीताः च*	=तथा(=च)कल्पातीत अर्थात् स्वर्गोसे ऊपर उत्पन्नहोनेवाले भावार्थ स्वर्गों को उलंघकरि (ऊपर ऊपर) नवग्रैवेयक, नवअनुदिश, पांचअनुत्तरोंमेंउपजनेवालेऐसे
द्वि-विधा*भवन्ति	=दो प्रकार होते हैं
वृत्त्यनुवादः—कल्पेषु उपपन्नाः	=स्वर्गोंमें (=कल्पेषु)उपजने वाले हैं
कल्पोपपनाः कल्पान् अतीताः च*	=(वे) कल्पोपपन्न हैं और (=च) स्वर्गोंको लांघने वाले (अर्थात् स्वर्गोंमें न उपज-करि उनके ऊपर नवग्रैवेयक नव अनुदिश, पांच अनुत्तर इन तेईस स्थानोंमें उत्पन्न होने वाले)
कल्प-अतीताः इति*द्वि-विधा*वैमानिकाः	=कल्पातीत हैं। ऐसे दो प्रकार वैमानिक देव हैं ।
तेषाम् अवस्थान-विशेष-निर्ज्ञापन-अर्थम् आह	=तिनके निवासस्थानका विशेष जाननेके(=निर्ज्ञापन) लिये कहते हैं कि

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥

दो राजू तक हैं इकतीस पटल, दूसरे युगल (तीसरे चौथे स्वर्ग सानत माहेंद्र जो मध्यलोकसे तीसरे राजूमें है) के सातपटल तीसरे युगल (ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवां छठवां स्वर्ग जो मध्यलोकसे साड़े तीसरे राजूमें है) के चार पटल, चौथा युगल (लांतव सातवां स्वर्ग कापिष्ट आठवां स्वर्ग जो तीसरे युगलसे आधे राजू ऊपर में है) के दो पटल, पांचवे युगल (शुक्र नवमां स्वर्ग महाशुक्र दशवां स्वर्ग जो मध्यलोक से साड़े चौथे राजू में है) का एक पटल, छठवां युगल (शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार बारहवां स्वर्ग जो पांचवां युगलसे ऊपर आधे राजूमें है)का एक पटल, सातवां युगल(आनत तेरहवां स्वर्ग प्राणत चौदहवां स्वर्ग जो मध्यलोकसे साड़े पांचवां राजूमें है)के तीनपटल, आठवां युगल(आरण पंद्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग जो सातवां युगलसे ऊपर आधे राजू में है) के तीन पटल इसप्रकार बावन पटलतो सोलह स्वर्गों के और तीन तिकड़ी ग्रैवेयक(अधोतिकड़ी, मध्यकी

() कल्पा इत्येके=कल्पाः इति एके (मुद्रित श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८१) =(उपर्युपरि के साथ अनुवृत्ति) 'कल्पाः' शब्दकी होना ऐसा कितनोंका मत है श्लोकवार्तिकका शब्दशः संस्कृत पाठ विस्तारभयसे न लिखकर पं० गजाधरलाल शास्त्रीकी टिप्पणी जो पृष्ठ १०४५ (राजवार्तिकके अनुवाद) में दी है ऐसे है कि "उपर्युपरि" यहांपर कल्प शब्दका सम्बन्ध मानना सर्वसम्मत नहीं है क्योंकि 'वैमानिकाः' इस सूत्रको अधिकारसूत्र कहआये हैं। इसलिये इस सूत्रमें उसीका सम्बन्ध मानना ठीक होगा इस रीतिसे जिस प्रकार वैमानिकदेव कल्पोपपन्न और कल्पातीतहैं(इस प्रकार 'कल्पोपपन्ना 'कल्पातीताश्च' इस सूत्रमें वैमानिकोंका सम्बन्ध है उसी प्रकार वैमानिकदेव ऊपरऊपर है, इस रूपसे 'उपर्युपरि' इस सूत्रमें भी वैमानिक देवोंका ही संबंध है। यदि यहांपर यह कहाजाय कि पहिले देवोंका ऊपरऊपर अवस्थान अनिष्ट कह आये हैं। यदि 'उपर्युपरि' यहांपर वैमानिकदेवोंका सम्बन्ध कर उनका ऊपर अवस्थान माना जायगा तो अनिष्ट होगा। सो ठीक नहीं। विशेषण रहित केवल देवोंका यदि ऊपर ऊपर अवस्थान मानाजाय तब अनिष्ट कहा जा सकता है किन्तु वहांतो मध्य में स्थित इन्द्रक विमान, तिर्यग् अवस्थित श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक विमानरूप कल्पोपपन्नत्व विशेषण विशिष्ट देवों का तथा कल्पातीतत्व (नवग्रैवेयकत्व) आदि विशिष्ट देवोंका ग्रहण है। इस प्रकारके विशेषण विशिष्ट देवोंका ऊपर ऊपर रहना शास्त्र सम्मत है। अतएव इष्ट है। इसलिये कल्पोपपन्न और कल्पातीत दोनों की अपेक्षा 'उपर्युपरि' यहां पर 'वैमानिक' शब्द का ही सम्बन्ध ठीक है ॥

() श्लोकवार्तिकका यह कथन यद्यपि स्थूल दृष्टि से विरुद्धसा मालूम होता है कि राजवार्तिक कारने विमानों को ऊपर ऊपर कहा है और श्लोक वार्तिक कारने देवों को ऊपर ऊपर कहा है, तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे दोनों एक रूप ही में पडते है, श्लोक वार्तिक कारने केवल देवों को ऊपर २ नहीं कहा है किन्तु विमानोंसे विशिष्ट देवोंको कहा है, विमान सहित देव कहा जाय वा विमान कहाजाय दोनों का एक ही अर्थ है ॥
"ते कल्प उपरि उपरि हैं" पं० जयचन्दकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ३७६ ॥

हम स्वामी विद्यानन्दिके सहमत हैं कि उक्त सूत्रमें 'वैमानिकाः' की अनुवृत्ति आती है क्योंकि यह अधिकार सूत्रहै। इसीलिये अधिकार सूत्र होताहै कि उसकी अनुवृत्ति बराबर अगले अगले सूत्रोंमें चलीजावै ॥ रहा सूत्रोंका आशय सो प्रकरणके प्रसंगवश द्वारा निकल आता है ॥

भावार्थ प्रथम युगल पहले सौधर्म दूसरे ईशान स्वर्गके जो मध्य लोकसे

() देवा इतिचेन्नाऽनिष्टत्वात् ॥२॥ यदि देवा उपर्युपरीत्यनेनाभिसम्बन्ध्यन्ते । तन्न, किं कारणं, अनिष्टत्वात् देवानां हि उपर्युपरि अवस्थानमनिष्टम् ॥ =जो 'देवा' उपरि उपरि के साथ सम्बन्ध कियेजांय सो हो नहीं सकते, किस कारण कि आगमके विरुद्ध होने से अनिष्ट हैं अतः देवोंका ऊपर ऊपर अवस्थान नहीं माना जासका है ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १५८

() विमानानि इति चेन्न श्रेणि प्रकीर्णकानां तिर्यगवस्थानात् ॥३॥ संस्कृतअर्थ । अथ विमानान्युपर्युपरीति कल्प्यंते तदपिनोपपद्यते । श्रेणिप्रकीर्णकानां तिर्यगवस्थानात् । श्रेणिविमानानि पुष्पं प्रकीर्णक विमानानि च प्रतींद्रकं तिर्यगवस्थितानि इति इष्यंते ॥ राजवार्तिक पृष्ठ १५८=विमान ऊपर ऊपर हैं यदि (= अथ) ऐसो कल्पनाकी जाय सो अर्थ भी उत्पन्न नहीं होय है क्योंकि श्रेणीबद्ध विमानोंका अर प्रकीर्णक विमानोंका तिर्यग् तिरछा अवस्थान है। (अर्थात्) श्रेणीबद्ध विमान, पुष्पप्रकीर्ण विमान और प्रतीन्द्रक विमान (ये) तिर्यग् अवस्थित हैं ऐसा आगममें इष्ट करये है

() कल्पा इति चेद्दोपः ॥४॥ संस्कृत अर्थ । यदि कल्पा न दोषो भवति 'यथा न दोषः तथास्तु' कल्पाहि उपर्युपरि स्थिता इति॥ राजवार्तिक १५८ =जो (ऊपर ऊपर) कल्प (स्वर्ग) अवस्थित (हैं) तब (कुछ) दोष नहीं है। जैसे दोष न होय तैसे ही ठीक है। निश्चयकरि (=हि) कल्प ऊपर ऊपर अवस्थित हैं भावार्थ यदि कहा जायगा कि कल्प ऊपर ऊपर अवस्थित हैं तब कुछ दोष नहीं। तथा जिस बातके मानने में किसी प्रकारका दोष नहीं वही बात मानना ठीक है। स्वर्गों का ऊपर ऊपर अवस्थान मानने में कोई दोष नहीं इसरीति से देव और विमानोंका ऊपर ऊपर अवस्थान बाधित होनेसे स्वर्गोंका ही ऊपर ऊपर अवस्थान सुनिश्चित है।

() कल्पातीतेषु किमभिसम्बन्ध्यते ? विमानानि । तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १५८

(प्रश्न) कल्पातीतनिमें क्या सम्बन्ध किया जाय अर्थात् प्रश्न का सारांश यह है 'उपर्युपरि'में यदि हम केवल 'कल्पा' शब्दकी अनुवृति लेतेहैं तो यह अर्थ होता है कि स्वर्ग वा कल्प ऊपर ऊपर हैं स्वर्ग से परें नवग्रैवेयक विमान, नव अनुदिश विमान, पांच अनुत्तर विमानों के अवस्थानके सम्बन्धमें कुछ न जाना तो इनके अवस्थान जानने के लिये 'उपर्युपरि' वाक्य के साथ कौन शब्द अनुवर्तता है सो कहिदीजिये ।

(उत्तर) "उपर्युपरि के साथ' विमानानि (का सम्बन्ध करना चाहिये) इस सबका सारांश यहहै कि जहां हमें कल्पोपपन्न देवोंका'अवस्थान जाननाहै वहां 'उपर्युपरि' के साथ 'कल्पा.' शब्द लगाना चाहिये कि स्वर्ग और उनके पटल ऊपर ऊपर हैं और जहां अहमिन्द्रों का अवस्थान विवक्षित हैं वहां 'उपयुपरि' के साथ 'विमानों" इस शब्द को जोड़लो और कल्पातीत विमान ऊपर ऊपर हैं यह अर्थ समझलेना चाहिये ॥

पदच्छेदः (वैमानिकाः) सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रारेषु, आनत-प्राणतयोः, आरण-अच्युतयोः, ग्रैवेयकेषु, नवसु, विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु-सर्वार्थसिद्धौ च भवन्ति ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः--वैमानिकाः॥ सौधर्म-ऐशान, =वैमानिकदेव सौधर्म और ऐशानमें (प्रथमस्वर्ग और द्वितीयस्वर्गमें)
सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, =सानत्कुमार और माहेन्द्रमें, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरमें, लान्तव और कापिष्ठमें,

(१) हमारे यहांके सूत्रके 'ब्रह्म' शब्दके स्थानमें श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'ब्रह्मलोक' शब्द है और 'ग्रैवेयकेषु' शब्दके स्थानमें उक्त सभाष्य में 'ग्रैवेयेषु' शब्द है परन्तु उनके यहांकी श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें' "ग्रैवेयकेषु" ही है और "सर्वार्थसिद्धौ" शब्दके स्थानमें उक्त समाजके दोनों भाष्योंमें, 'सर्वार्थसिद्धे' शब्द है। इन चारों शब्दोंमें अर्थभेद नहीं है ॥ उनके दोनों ही भाष्योंमें ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ शुक्र शतार शब्द नहीं है अर्थात् उनके यहां केवल बारह ही स्वर्ग माने हैं, लान्तवके स्थाममें लांतक है शेष पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है ॥ इस सूत्रकी संख्याभी उनके यहां वीसवीं है ॥ हमारे यहां भी इन्द्रोंकी अपेक्षासे बारह कल्पही माने हैं ॥ देखो तत्वार्थराजवार्तिक वार्तिक४॥

दिगम्बर आम्नायके उन्नीसवां सूत्रका पाठ	श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके बीसवां सूत्रका पाठ
सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठ-	सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोक——लान्तक——
शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणच्युतयो,	——महाशुक्र——सहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो-
र्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषुसर्वार्थसिद्धौ च	र्नवसु ग्रैवयेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धे च
	(यदि ग्रैवेयेषुके स्थानमें 'ग्रैवेयकेषु' लिखदें तो भाष्यानुसारिणी का पाठ है)

अर्थभेद—सभाष्य० और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकाके अनुकूल बारह स्वर्ग हैं हमारें यहां सोलह स्वर्ग हैं । ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ-शुक्र-शतारको स्वर्ग नहींमानेहै। उक्त आम्नायके दोनों भाष्योंमें 'नवसुग्रैवेयेषु' वा 'नवसुग्रैवेयकेषु' वाक्य केवल नोग्रैवेयकोंका द्योतक है नकि नव अनुदिशविमानोंका भी। हमारे यहां सर्वभाष्योंमें तथा हिन्दीअनुवाद और टीकाओंमें, उक्त वाक्यसे 'नौग्रैवेयक, और नौ ही अनुदिश ग्रहण किये है जिन अनुदिशोंका केवल एकही पटलहै। क्योंकि यदि उमास्वामी नो ग्रैवेयक ही ग्रहणकरते तो 'नव' शब्दको और ग्रैवेयक शब्दको भिन्नभिन्नसप्तमीविभक्तियोंमेंनहींलाते।

किमर्थमिदमुच्यते? तिर्यगवस्थितिप्रतिषेधार्थमुच्यते॥ न ज्योतिष्कवत्तिर्यगवस्थिताः। न व्यन्तरवदसमावस्थितयः। उपर्युपरीत्युच्यन्ते॥ के ते? कल्पाः॥ यद्येवं, कियत्सु कल्पविमानेषु ते देवा भवन्तीत्यत आह—

॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥

तिकड़ी ऊर्ध्व तिकड़ी) के नौ पटल जो मध्यलोकसे सातवां राजूसे आरम्भ होकर चौड़ाई राजूके भीतर हैं । एक पटल नव अनुदिशका जो मध्यलोकसे साढ़े छठवां राजूसे आरम्भ होता है और उसही के भीतर है और एक पटल पांचअनुत्तरका जो मध्यलोकसे पोने सातवाँ राजूसे आरम्भ होता है और उसके भीतर ही है ये सब तेरह (=आठ युगलोंके, तीन तिकड़ी ग्रैवेयकोंके, एक अनुदिशका, एक पांच अनुत्तरका) स्थानों में त्रेसठ (६३) पटल एक दूसरेके ऊपर ऊपर अवस्थित हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—किम्।।।अर्थम्।।।इदम्।।।उच्यते	=किसलिये यह (सूत्र) कहागया है ।
तिर्यग्-अवस्थिति-प्रतिषेध-अर्थम्।।।उच्यते	=(उत्तर) (वैमानिकदेवोंकी) तिर्यग् अवस्थानके निषेधकेलिये(यहसूत्र)कहागया है
न*ज्योतिष्कवत्*तिर्यग्-अवस्थिताः।	=न (वे वैमानिक देव) ज्योतिषी देवोंके सदृश तिर्यग् अवस्थित हैं ।
न*व्यन्तरवत्*असम-अवस्थितयः।	=न व्यन्तरों के समान विषम (अर्थात् जहां तहां) अवस्थित हैं ॥
उपरि*उपरि*इति*उच्यन्ते । के।ते।कल्पाः।	=(इसलिये)ऊपरऊपर ऐसे वर्णित हैं । ते कल्प कौन हैं? अर्थात् वे स्वर्ग क्या हैं?
यदि*एवम्*कियत्सु।।।कल्पविमानेषु।।।	=जो इस प्रकार हैं अर्थात् ऊपर ऊपर हैं तो कितने कल्प विमानोंमें
ते।देवाः।भवन्ति।इति*अतः*आह	=वे देव हैं? इसलिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानत प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय वैजयन्तजयन्ता परा जितेषु सर्वार्थसिद्धौच ॥ १९ ॥

१शतार-सहस्रारेषु३	=शतार और सहस्रार ग्यारहवें और बारहमें स्वर्गोंमें (इन छह युगलों में)
आनत-१प्राणतयोः३।आरण-१अच्युतयोः३।	=आनत और प्राणत तेरहवां और चौदहवां स्वर्गोंमें, आरण और अच्युत स्वर्गोंमें

(१) यहां प्रश्न यह है कि कल्पोपन्नादेव और कल्पातीतदेव जब सब वैमानिक हैं और विमानोंके रहनेवाले हैं तो उमास्वामीने सूत्रके अतमें ही एकबार सप्तमी विभक्ति बहुवचनमें क्यों नहीं की सातवार सप्तमी विभक्ति क्योंकी, एक विभक्ति करनेमें छह अक्षर और च और कईएक मात्राओंका लाभ होजाता अर्थात् जिसरूपमें सूत्रहै उस रूपमें न करके ऐसा सूत्र रचते 'सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतार-सहस्रारानतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकविजयवैजयन्तजयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धिषु' ॥ १६ ॥

(उत्तर) आनत प्राणतयो. । आरण-अच्युनयोः इन दो युगलोंकी जुदी जुदी विभक्तियां करनेसे यह जानना चाहिये कि सोलह स्वर्गोंके आठ युगल हैं सो प्रत्येक युगल एक दूसरेके ऊपर है न कि एक स्वर्ग दूसरेके ऊपर है जैसे सौधर्म स्वर्गके ऊपर ऐशान स्वर्ग नहीं है वरन सौधर्म ऐशान युगलके ऊपर सानत्कुमार-माहेन्द्र युगल है इसी प्रकार और भी शेष सात युगलोंको एकसे दूसरेको ऊपर ऊपर जानो जैसाकि हम भावार्थ पृष्ठ ४५, ४६, और ४७ में लिखचुके हैं ॥ प० जयचन्द्रायजी इस सम्बन्धमें लिखते हैं कि "इहां कल्पका युगलका उपरि उपरि दोयदोय कहना अंतके दोय युगलनिके जुदी विभक्ती करी समास न किया, तातैं जाना जायहै ॥ इस सम्बन्धमें अपर वा अधिकतर प्रश्न यहहै कि श्री उमास्वामीने 'सौधर्मैशानयोः' 'सानत्कुमार माहेन्द्रयोः' 'ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोः' 'लांतवकापिष्ठयोः' 'शुक्रमहाशुक्रयोः' 'शतारसहस्रारयोः' 'आनतप्राणतयो.' 'आरणच्युनयोः' ऐसेआठविभक्तियां क्योंन की, प्रथम बारह स्वर्गोंकी एक विभक्ति क्योंकी, फिर आनत प्राणतकी एक विभक्ति क्योंकी अन्तमें आरण-अच्युनकी एक विभक्ति क्यों की ? यदि आठ विभक्तियां करदेते तो स्पष्ट होजाताकि स्वर्गोंके आठ युगलहैं सो एकयुगलसे दूसरा युगल ऊपर है दूसरे से तीसरा ऐसेही सबसे ऊपर आठवां युगल 'कल्पोपन्ना' देवोंमेंहै ।

(उत्तर) आनतप्राणतद्वन्द्वमारणाच्युतयोरिति । सूचनाद्तशः सा चकल्पेष्वेवैकशस्ततः" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक श्लोक ३ पृष्ठ ३८२ = आनतस्वर्गप्राणतस्वर्गका द्वन्द्व समास है,आरण अच्युतमें (द्वंद्वसमास)है ऐसी सूचना है कि द्वन्द्ववृत्ति(=सा)का अंत कल्पोंमें ही(कल्पोंतक ही) है यहां से(अर्थात् पन्द्रहवां सोलहवां आरण अच्युत कल्पों वा स्वर्गोंसे ऊपर) एकएककी(विभक्ति) है ॥ अर्थात् आनत प्राणत और आरणअच्युतमें पृथक् पृथक् द्वन्द्व समास और विभक्तियोंसे प्रगट है कि सोलह स्वर्गतकही एक युगल दूसरे युगलसे ऊपर ऊपर है उसके ऊपर फिर एक एक है ॥ आठ युगलोंकी आठ विभक्तियां जुदी जुदी इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढ़जाता । अथवा योंभी कहसकतेहैं कि आनत प्राणतकी विभक्तिसे यह भासहोताहै कि एक एक युगल दूसरे दूसरे से ऊपर ऊपर है और आरणअच्युतकी विभक्तिसे यह बातभी झलकती है कि युगलोंका अन्त सोलह स्वर्ग तक है और द्वन्द्व समास भी सोलह स्वर्ग तक ही है ॥

प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने "एवकृत्वा इत्यादि वाक्यका निम्न लिखित अर्थ पृष्ठ ६४२में किया है "ऐसे किये अगिले दोय युगल आनत प्राणत आरण अच्युत इनके विषै भिन्न भिन्न विभक्तिकरि निर्देश है सो सार्थिक होय है ॥ आनत प्राणतयो. आरणअच्युतयोः ऐसे भिन्नविभक्तिरूप निर्देश करा है॥सो एकएक कल्पमें एकएक इन्द्रहै ॥ ऐसे चारिहै" ॥ पिछला वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है अशुद्ध है क्योंकि यहां कथन चौदह इन्द्रोंके सम्बन्धमें है (नकि बारह इन्द्रोंकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक होता) यदि हम इन आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें भी चार इन्द्र मानलें और बारह इंद्र सौधर्मसे सहस्रार स्वर्गतक मानलें तो इंद्र सोलह हुये जाते हैं ॥ पश्चात् पृष्ठ ६६३ में और पृष्ठ ६६४में स्वयम् न्यायदिवाकरजी लिखते हैं कि आनतप्राणत आरण अच्युत स्वर्गों मे "आरणनामादेवराज है——अच्युतनामा देवराजहै" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरण नामक और अच्युत नामक (चौदह इद्रोंकी अपेक्षासे) दोही इन्द्र हैं पं० पन्नालाल दूनीवालोंने अपनी तत्त्वकौमदीमें और प० गजाधर शास्त्रीने पृष्ठ १०७८ और १०७९ (संस्थाद्वारा अनुवादित और प्रकाशित तत्त्वार्थ राजवार्तिक) में किया है ॥

तद्यथा*............. .... =जैसे सौधर्म इन्द्र, ऐशान इन्द्र, सानत्कुमारइन्द्र, माहेन्द्र इन्द्र, ब्रह्मनामक इन्द्र, ब्रह्मोत्तरनामकइन्द्र, लांतव नामक इंद्र, कापिष्ठ नामक इंद्र, शुक्र नामक इंद्र, शतार नामक इन्द्र, सहस्रार नामक इन्द्र, आरण नामक इन्द्र, अच्युत नामक इन्द्र, (आनत प्राणत नामक कोई इद्र नहीं है) ते इतने लोक नियोगके उपदेशकरि चौदह इन्द्र कहेगये हैं (राजवार्तिक पृष्ठ १६१ से १६६ तक)

इह*द्वादश॥इष्यन्तेT =यहां(=इह) (सूत्र सिद्धान्तकी अपेक्षासे) बारह(इन्द्र कहना)इष्ट है ॥ इसका देखो पृष्ठ ५१ ॥

इस समस्त टिप्पणीका आरम्भसे अततक सारांश यह है कि(क)प्रथम छहयुगलों बारह स्वर्गोंकी विभक्तियां इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढजाता (ख) 'आनत प्राणतयोः' 'आरणाच्युतयो.' की दो विभक्तियोंसे प्रगट है कि एकएक युगल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक स्वर्ग एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरणाच्युतयो' विभक्तिसे यह भी झलकता है कि युगल युगल की विभक्ति केवल सोलह स्वर्गों तकही है (घ) उक्त तीन विभक्तियोंसे यहभी झलकताहै कि सागरोंसे कुछ अधिक देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति है सो केवल प्रथम छह युगल बारह स्वर्ग तक ही है और आनत प्राणतकी उत्कृष्टस्थित बीस ही सागर की है अधिक नहीं है और आरण अच्युतकी भी बाईस सागर पूरे की उत्कृष्टस्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (च) ये तीन विभक्तियां इस बातकीभी द्योतक हैं कि प्रथम बारह स्वर्गमें एक एक इंद्र है ऐसे बारह ये हुये और आनत प्राणत जहां दूसरी विभक्ति की है एक इन्द्र है और आरण अच्युत जहां दूसरी विभक्ति कीहै वहांभी एक इंद्र है ऐसे तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार लोक अनुयोगउपदेशसे चौदह इन्द्रभी मानेहै परन्तु प्रसिद्ध बारहही इंद्र हैं ॥ श्वेताम्बरआम्नायमें १२ही मानेहैं।

कथमेषां सौधर्मादिशब्दानां कल्पाभिधानं ? चातुरर्थिकेनाणा, स्वभावतो वा कल्पस्याभिधानं भवति ॥ अथ कथमिन्द्राभिधानं ? स्वभावतः साहचर्याद्वा ॥ तत्-

वृत्त्यनुवादः—कथम्*एषाम्[6/3]सौधर्म-आदि-शब्दानाम्[6/3] =कैसे इन सौधर्म आदिक (सोलह) शब्दोंका (अर्थात् सोलह स्वर्गोंका)

कल्प-अभिधानम्[1/1]चातुरर्थिकेन[3/1]अणा[3/1] =कल्प नाम हुआ ? (उत्तर) चातुरर्थिक अण्(=अ-प्रत्यय)करि अर्थात् व्याकरणके तद्धितप्रकरणमें (=संज्ञामें प्रत्यय मिलाकर अर्थ बदलने रूप प्रकरणमें)

चातुरर्थिक प्रकरणके (=वह अधिकार जिसमें अण्-अञ्-ठक्-[1]वुञ्-छण् इत्यादि बहुतसे प्रत्ययोंमेंसे प्रत्येकप्रत्यय चारचार (क) [2]वह जिसमें हो (ख) [3] बनायागया (ग) [4] उसका निवास (घ) [5]अदूर अर्थोंमें विधान कियाजाता है उन प्रत्ययोंमेंसे इस) अण् (प्रत्यय) द्वारा (वह जिसमें हो—उसका निवास-इन अर्थोंमें लेकर वा ग्रहणकरि)

वा*स्वभावतः*कल्पस्य[6/1]अभिधानम्[1/1]भवति =अथवा (=वा) स्वभावसे, कल्पकी संज्ञा वा नाम (अभिधान) होता है भावार्थ सौधर्म आदिकी कल्पसंज्ञा चाहे अण् प्रत्यय 'वह जिसमें हो' 'उसका निवास' अर्थोंमें लेकर सुधर्मा, ईशान, सनत्कुमार, महेन्द्र आदि शब्दोंमें यथायोग्य लगाकर करलेनी चाहिये अथवा सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र आदि स्वभाविक नाम हैं यों समझलेना चाहिये

अथ*कथम्*इन्द्र-अभिधानम्[1/1]स्वभावतः* =प्रश्न (=अथ) इन्द्रका नाम कैसे है ? (उत्तर) स्वभावसे, प्रकृतिसे,

साहचर्यात्[5/1]वा* =अथवा संसर्गतासे, सहचरितासे, उसमें रहनसहनसे (अर्थात् जैसा अमुक कल्प वा स्वर्ग का नाम है वैसा उस स्वर्ग वा कल्प के इन्द्रका नाम है)

तत्[1/1] =सो (अर्थात् कल्पका अभिधान, नाम अण् प्रत्यय करि अथवा स्वभावसे और इन्द्रकी संज्ञा वा नाम स्वभावसे अथवा साहचर्यसे)

[१] वुञ्छण्क इत्यादि ४-२-८० । [२] तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥ ४-२-६७ ॥ [३] तेन निर्वृत्तम् ॥ ४-२-६८ ॥ [४] तस्य निवास ॥ ४-२-६९ ॥ [५] अदूरभवश्च ॥ ४ २-७० ॥ उक्त पांच सूत्रोंको अष्टाध्यायी पाणिनिमुनिकृतमें देखो ॥ इन्हीं सूत्रोंके समानअर्थक निम्नलिखित सूत्र जैनेन्द्रव्याकरण में देखना चाहिये ॥ वे सूत्र इस प्रकार हैं कि

[१] वुञ्छण्क इत्यादि । ३ २-६१ । [२] तदस्मिन्नस्तीति देश खो ॥ ३-२-५८ ॥ (३) तेन निर्वृत्त । ३।२।५६ (४) (५) तस्यनिवासादूरभवौ। ३-२-६०

ग्रैवेयकेषु नवसु विजय-वैजयन्त-जयन्त-	=(नौ) ग्रैवेयकोंमें, नव अनुदिशोंमें, विजय वैजयन्त जयन्त-
अपराजितेषु च सर्वार्थसिद्धौ॥	=अपराजित विमानोंमें और (=च) सर्वार्थसिद्धिमें (रहते) हैं

(१) सौधर्म स्वर्गसे आदि लेकर अच्युत पर्यंत बारह कल्प हैं अर्थात् इन्द्रोंकी अपेक्षासे श्वेताम्बर आम्नायके सदृश यहां बारह ही कल्प माने हैं (क्योंकि इन्द्रआदिकी कल्पना केवल बारहही स्वर्गोंमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ महाशुक्र सहस्रार स्वर्गोंके तो इन्द्र ब्रह्म लांतव शुक्र शतार दक्षिण इन्द्रोंके आधीन रहते हैं) अथवा सोलह स्वर्ग हैं उनके ऊपर कल्पातीत हैं इसबातके स्पष्ट करनेके लिये सौधर्म आदिसे ग्रैवेयकोंका भिन्न विभक्तिद्वारा पृथक् ग्रहण किया है।

(२) इस समस्त सूत्रको विचार पूर्वक पढ़नेसे ज्ञान पड़ता है कि जो जो विमान पहिले पहिले कहेगये हैं वे उत्तर उत्तर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शब्दसे 'अनुदिश' ग्रहण किये गये हैं (=निर्दिष्ट हैं) मुद्रितसर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २४१, द्वितीयावृत्ति पृष्ठ १४३ देखो। 'नवसु' शब्द यदि 'ग्रैवेयकेषु' के पहिले माना जावे तो 'नवअनुदिश' ग्रैवेयकोंसे नीचे हुये जाते हैं। यदि कहाजावे कि 'नवसु' शब्द नवग्रैवेयकोंकी संख्या जतलानेके लिये है तो फिर 'नवअनुदिश' छूटेजाते हैं इसलिये मैंने 'नवसु' शब्दको 'ग्रैवेयकेषु' के पश्चात् रखकर 'नवअनुदिशोंमें' ऐसा अनुवाद किया है॥ यदि यह कहाजावे कि 'नवसु' को पश्चात् लानेसे ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट नहीं होती है सो हो नहीं सकता क्योंकि 'नवसु' शब्द को जब पूर्वको आकर्षण करते हैं तब ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट होजाती है जब ऊपर को ग्रहण करते हैं तब अनुदिशोंका द्योतक 'नवसु' 'शब्द होजाता है॥ यदि 'नवसु' शब्द से नव अनुदिशका अभिप्राय श्री उमास्वामीका न होता तो 'नवसु' शब्दकी जुदी विभक्ति नहीं करते, नवसु शब्दको 'ग्रैवेयक'के साथ समास ऐसे करदेते कि 'नवग्रैवेयकेषु' और एक अक्षरका लाभ होजाता। हमारे कथनका समर्थन श्लोकवार्तिकके श्लोक चार से (देखो मुद्रित पृष्ठ ३८२) ऐसे होता है कि "ग्रैवेयकेषु नवसु नवस्वनुदिशेष्विदं"=ग्रैवेयकेषु नवसु, नवसु अनुदिशेषु इदम्=ग्रैवेयक नौमें, नौ अनुदिशोंमें, यह (वृत्ति=विभक्ति भिन्नभिन्न) है

ग्रैव ग्रीव्य ग्रैवेय तथा ग्रैवेयक सब एकार्थवाचक हैं॥ अनुदिशका अर्थ यहां प्रतिदिश है अर्थात् जो प्रत्येक दिशामें हो वह अनुदिश कहाजाता है॥ 'दिशा' शब्द जिसके अन्तमें 'आ' है उसका समास 'अनु' अव्ययके साथ करने पर 'अनुदिश' शब्दकी सिद्धि होती है॥

(३) (प्रश्न) विजय,वैजयन्त,जयन्त,और अपराजितविमानोंसे सर्वार्थसिद्धिका विमान ऊंचा नहींहै फिर भिन्नविभक्तिद्वारा सूत्रमें क्यों निर्देश किया? (उत्तर)(क) उक्तचार विमानोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक बत्तीस सागर है। उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिके रहनेवाले देवोंकी उत्कृष्ट और जघन्य दोनो प्रकारकी स्थिति तेतीस सागर प्रमाण हैं।

(ख) सर्वार्थसिद्धि वाला देव एक भव धारण कर मोक्ष को जाता है उक्त चार विमानोंके देव प्रायः दो भव धारण कर मोक्षको जाते हैं।

(ग) सर्वार्थसिद्धि वाले देवका जितना प्रभाव और प्रताप है उतना सर्व विजय आदि विमानके रहने वाले सब देवोंका भी नहीं है।

(घ) सर्वार्थसिद्धिवासीदेव निरंतर शुभभावनामें लीन रहतेहैं और उपशांतश्रेणीकेविषै अत्यन्त मंदकषायरूप विशुद्धपरिणामोंकी उत्कृष्टसीढीको प्राप्त होचुके हैं इत्यादि विशेषता प्रतिपादनके लिये या जतलानेके लिये "सर्वार्थसिद्धौ" ऐसी भिन्न विभक्ति "विजय वैजयन्त जयन्तापराजितेषु से की।

सनत्कुमारो नाम इन्द्रः स्वभावतः । तस्य निवास इत्यण् । सानत्कुमारः कल्पः । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि सानत्कुमारः ॥ महेन्द्रो नामेन्द्रः स्वभावतस्तस्य निवासः कल्पो माहेन्द्रः । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि माहेन्द्रः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ आगमापेक्षया व्यवस्था भवतीति, उपर्युपरीत्यनेन द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ प्रथमौ सौधर्मैशानकल्पौ, तयोरुपरि सानत्कुमारमाहेन्द्रौ तयोरुपरि ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरौ, तयोरुपरि लान्तवकापिष्ठौ, तयोरुपरि

सनत्कुमार:$^{1}_{1}$।नाम$^{1}_{1}$।।इन्द्र:$^{1}_{1}$।स्वभावत:※ । 'तस्यनिवास:'
इति※अण्$^{1}_{1}$।
सानत्कुमार:$^{1}_{1}$।कल्प:$^{1}_{1}$; तत्साहचर्यात्$^{5}_{1}$।।
इन्द्र:$^{1}_{1}$।अपि※सानत्कुमार:$^{1}_{1}$। । महेन्द्र:$^{1}_{1}$।नाम$^{1}_{1}$।।इन्द्र:$^{1}_{1}$।
स्वभावत:※तस्य$^{6}_{1}$।निवास:$^{1}_{1}$।कल्प:$^{1}_{1}$।माहेन्द्र:$^{1}_{1}$।

तत्-साहचर्यात्$^{5}_{1}$।।इन्द्र:$^{1}_{1}$।अपि※माहेन्द्र:$^{1}_{1}$। ।।
एवम्※उत्तरत्र※अपि※
योज्यम्$^{1}_{1}$।।
आगम-अपेक्षया$^{3}_{1}$।।व्यवस्था$^{1}_{1}$।।भवति।इति※
उपरि※उपरि※इति※अनेन$^{3}_{1}$।।द्वयो:$^{6}_{2}$।द्वयो:$^{6}_{2}$।
अभिसम्बन्ध:$^{1}_{1}$।वेदितव्य:$^{1}_{1}$। । प्रथमौ$^{1}_{2}$।सौधर्म-ऐशानकल्पौ$^{1}_{2}$।
तयो:$^{6}_{2}$।उपरि※सानत्कुमार-माहेन्द्रौ$^{1}_{2}$।
तयो:$^{6}_{2}$।उपरि※ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरौ$^{1}_{2}$।
तयो:$^{6}_{2}$।उपरि※लान्तव-कापिष्ठौ$^{1}_{2}$।तयो:$^{6}_{2}$।उपरि※

=सनत्कुमार नाम इन्द्र(है सो) स्वभावसे है । 'तस्य निवास:' उक्तसूत्र द्वारा
=ऐसे अण्(=अ)प्रत्यय (निवास अर्थमें) होकर (सनत्कुमार से,सानत्कुमारबनकर)
=सानत्कुमार स्वर्ग हुआ । उस (सानत्कुमार कल्प) में रहनेसे या रहनसहनसे
=इन्द्रभी सानत्कुमार है । महेन्द्र नाम इन्द्र है
=सो स्वभावसे है उसका निवासस्थान स्वर्ग माहेन्द्र है ("तस्य निवास:" इस सूत्र
द्वारा ऐसे अण् प्रत्यय निवास अर्थमें होकर महेन्द्र से माहेन्द्र शब्द बनाया)
=उस (माहेन्द्र कल्प)के साहचर्यासे इन्द्र भी माहेन्द्र है।
=इस प्रकार यहां (माहेन्द्र कल्प) से आगे (उत्तरत्र) भी
=(ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर इत्यादि सोलह स्वर्ग पर्यंत इन्द्र तथा कल्पकानाम)जोड़नाचाहिये
=शास्त्रकी अपेक्षासे ऐसे निर्णय (=व्यवस्था) होता है कि
=ऊपर ऊपर इस (वाक्य) करि दो दो (स्वर्गों) का
=सम्बंध जानना योग्य है । पहिले दो सौधर्म और ऐशान कल्प हैं ।
=उनके ऊपर सानत्कुमार और माहेन्द्र हैं ।
=तिनके ऊपर ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर हैं ।
=उनके ऊपर लान्तव और कापिष्ठ है । तिनके ऊपर

कथमिति चेदुच्यते—सधर्मा नाम सभा, साऽस्मिन्नस्तीति सौधर्मः कल्पः। तदस्मिन्नस्तीत्यण् तत्कल्पसाहचर्यादिन्द्रोऽपि सौधर्मः॥ ईशानो नाम इन्द्रः स्वभावतः। ईशानस्य निवासः कल्प ऐशानस्तस्य निवास इत्यण्। तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि ऐशानः॥

कथम्॥इति॥चेत्॥उच्यते सुधर्मा॥नाम॥ =कैसे हैं? ऐसे प्रश्न (करने) पर कहा जाता है कि सुधर्मा नाम

सभा॥सा॥अस्मिन्॥अस्ति॥इति॥सौधर्मः॥कल्पः॥ =सभा है। वह (सभा) जिसमें है ऐसा सौधर्म कल्प है

"तदस्मिन्नस्तीत्यण्"(=तत्॥अस्मिन्॥अस्ति॥इति॥अण्॥)='तदस्मिन्नस्ति' ऐसे (अष्टाध्यायीके चौथे अध्याय पाद दो सूत्र ६७ से और जैनेन्द्रव्याकरण के तीसरा अध्याय पाद दो सूत्र ५८ से)

अण् (प्रत्ययको 'वह जिसमें हो' इस अर्थमें प्रयोग करके सौधर्म शब्द सिद्धि किया) है। भावार्थ सुधर्मा शब्दमें अण् प्रत्ययका यह प्रभाव है कि सुधर्मा शब्दके 'उ'की वृद्धि संज्ञा होजातीहै और अण्प्रत्ययका अ जोड़ाजाता है तब सौधर्मा+अ ऐसा रूप हुआ क्योंकि 'अण्' के 'ण्' का इत् संज्ञक होनेसे लोप होजाता है शेष 'अ'रहता है अण् प्रत्ययका यहभी प्रभाव है कि शब्दके स्वरोंमेंसे अंतिम स्वरवालेभाग वा खंडको मय उस भागके व्यंजनको यदि कोई व्यंजन उस भागमें होतो गिरादेताहै और अण् प्रत्ययका अ उस शब्दके शेषभागमें जुड़जाताहै इसलिये सौधर्मा शब्दका 'आ' गिरकर और अण्का अ मिलनेसे सौधर्म शब्द ऐसे सिद्ध हुआ कि सौधर्म्+अ=सौधर्म

तत्-कल्प-साहचर्यात्॥ =उस (सौधर्म) कल्पमें रहन सहन से अथवा सौधर्म कल्पकी सहचरितासे

इन्द्रः॥अपि॥सौधर्मः॥ =इन्द्र भी (=अपि) सौधर्म है ॥

ईशानः॥नाम॥इन्द्रः॥स्वभावतः॥। ईशानस्य॥निवासः॥ =ईशान नामा इन्द्र है सो स्वभावसे है। ईशान इन्द्रका निवास

कल्पः॥ऐशानः॥"तस्य निवासः" =सो स्वर्ग(=कल्प)ऐशान है॥ 'तस्य निवास' जैनेन्द्रव्याकरण और अष्टाध्यायीके इसी सूत्रसे

इति॥अण्॥ =ऐसे अण्(=अ)प्रत्यय(निवास अर्थमें)है कि ईशान+अण्=ऐशान्+अ=ऐशान बना

तत्-साहचर्यात्॥इन्द्रः॥अपि॥ऐशान॥ =उस (ऐशान कल्प, स्वर्ग) में रहनसहनसे अथवा सहचरितासे इन्द्र भी ऐशान है।

योजनसहस्रावगाहो भवति नवनवतियोजनसहस्राच्छ्रायः । तस्याधस्तादधोलोकः । बाहुल्येन तत्प्रमाण—(मेरुप्रमाण) स्तिर्यक्प्रसृतस्तिर्यग्लोकः । तस्योपरिष्टादूर्ध्वलोकः । मेरुचूलिका चत्वारिंशद्योजनोच्छ्राया । तस्या उपरि केशान्तरमात्रे व्यवस्थितमृजुविमानमिन्द्रकं सौधर्मस्य ॥ सर्वमन्यल्लोकानुयोगाद्वेदितव्यम् ॥ नवसु ग्रैवेयकेष्विति नवशब्दस्य पृथग्वचनं किमर्थम् ? । अन्यान्यपि नवविमानानि अनुदिशसञ्ज्ञकानि सन्तीति ज्ञापनार्थम् ।

योजन-सहस्र अवगाहः$^{1}_{1}$।भवतिT नव-नवति- =सहस्र योजन पृथिवीमें प्रविष्ट होता है (और) निन्यानवे
योजन-सहस्र-उच्छ्रायः$^{1}_{1}$।तस्य$^{6}_{1}$।अधस्तात्* =सहस्र योजन की ऊंचाई है । तिस (सुमेरु पर्वत की जड़) के नीचे
अधोलोकः$^{1}_{1}$।बाहुल्येन$^{3}_{1}$। =अधोलोक है बहुतायतसे अथवा प्रचुरतासे वा बहुलतासे
तत्प्रमाणः$^{1}_{1}$।(मेरुप्रमाणः$^{1}_{1}$।)तिर्यक्-प्रसृतः$^{1}_{1}$।तिर्यग्लोकः$^{1}_{1}$। =उसके परिमाण (सुमेरुके बराबर मोटाई) तिर्यक् फैलवां तिर्यग्लोक है
तस्य$^{6}_{1}$।[1]उपरिष्टात्*[2]उर्ध्व-लोकः$^{1}_{1}$।मेरु-चूलिका$^{1}_{1}$।। =उस (सुमेरु)के ऊपर उर्ध्व लोक है । मेरु पर्वतकी चूलिका
चत्वारिंशत् योजन-उच्छ्राया$^{1}_{1}$।।तस्याः$^{6}_{1}$।।उपरि* =चालीस योजन ऊंचाई वाली है तिस (चूलिका) के ऊपर
केशान्तरमात्रे$^{7}_{1}$।।।व्यवस्थितं$^{1}_{1}$।।।ऋजुविमानंइन्द्रकं$^{1}_{1}$।।।सौधर्मस्य$^{6}_{1}$।=बालके अन्तरमात्र तिष्ठा हुआ ऋजुनामा इन्द्रक विमान सौधर्म(स्वर्ग)का है
सर्वम्$^{1}_{1}$।।।अन्यत्*लोक-अनुयोगात्$^{5}_{1}$।वेदितव्यम्$^{1}_{1}$।।। =अन्य(=अन्यत्)समस्त वर्णन लोकनियोग(=लोकमें प्रचलित)ग्रंथसे जानना चाहिये
नवसु$^{7}_{3}$।ग्रैवेयकेषु$^{7}_{3}$।इति* । नव-शब्दस्य$^{6}_{1}$। =(प्रश्न) "नवसु ग्रैवेयकेषु" इस प्रकार नव शब्दके (ग्रैवेयक शब्दसे)
पृथग्*वचनम्$^{1}_{1}$।।।किम्$^{1}_{1}$।।।अर्थम्$^{1}_{1}$।।। ? =न्यारी विभक्ति किस लिये है अर्थात् प्रश्न यह है कि जब नवग्रैवेयक हैं तो "नवग्रैवेयकेषु" ऐसा मिलाकर एकही बहुवचन कारक वा विभक्ति क्यों न की नवसु को सप्तमी बहुवचन में भिन्न कारक किया और 'ग्रैवेयकेषु' को सप्तमी बहुवचन न्यारा कारक किया यदि एकही में दोनों को मिलाकर एकही विभक्ति करदेते तो "सु" अक्षर न्यून होजाता ।
अन्यानि$^{1}_{3}$।।।अपि*नव-विमानानि$^{1}_{3}$।।। =(उत्तर) (इन नवग्रैवेयकोंसे ऊपर) इतर वा दूसरे भी नौ विमान
अनुदिशसञ्ज्ञकानि$^{1}_{3}$।।।सन्तिTइति*ज्ञापन-अर्थम्$^{1}_{1}$।।। =अनुदिशनामक हैं ऐसा जनावनेको(नवसु ग्रैवेयकेषुसे न्यारीन्यारी विभक्ति की)है॥

---

(१) उपरिष्टात् और उपरि दोनों अव्यय हैं इनके साथ (जैसे यहां) द्वितीया और षष्ठी विभक्तियां मिलती है ॥ (२) सुमेरू के ऊपर चालीस योजन की चूलिका है सो तिर्यग्लोक का भाग है ॥

शुक्रमहाशुक्रौ, तयोरुपरि शतारसहस्रारौ, तयोरुपरि आनतप्राणतौ, तयोरुपरि आरणाच्युतौ ॥ अध उपरि च प्रत्येकमिन्द्रसम्बन्धो वेदितव्यः। मध्ये तु प्रतिद्वयमेकः ॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्राणां चतुर्णां चत्वार इन्द्राः। ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोरेको ब्रह्मेन्द्रो नाम। लान्तवकापिष्ठयोरेको लान्तवाख्यः। शुक्रमहाशुक्रयोरेकः शुक्रसञ्ज्ञः। शतारसहस्रारयोरेकः शतारनामा। आनतप्राणतारणाच्युतानां चतुर्णां चत्वारः। एवं कल्पवासिनां द्वादश इन्द्रा भवन्ति ॥ जम्बूद्वीपे महामन्दरो

शुक्र-महाशुक्रौ $\frac{1}{2}$ तयोः $\frac{6}{2}$ उपरि * शतार-	=शुक्र और महाशुक्र हैं ॥ तिनके ऊपर शतार
सहस्रारौ $\frac{1}{2}$ तयोः $\frac{6}{2}$ उपरि * आनत-प्राणतौ $\frac{1}{2}$	=और सहस्रार हैं। उनके ऊपर आनत और प्राणत (कल्प) हैं
तयोः $\frac{6}{2}$ उपरि * आरण-अच्युतौ $\frac{1}{2}$ ॥ अधः *	=तिनके ऊपर आरण और अच्युत हैं। नीचे (चार स्वर्गों में)
उपरि * च * प्रत्येकम् $\frac{1}{1}$ इन्द्रसम्बन्धः $\frac{1}{1}$ वेदितव्यः $\frac{1}{1}$	=और ऊपर(चार स्वर्गोंमें) एकएक (=प्रत्येकम्) इन्द्रका सम्बन्ध जानना चाहिये अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, इन प्रत्येक प्रत्येकमें एकएक इन्द्र ऐसे चार और आनत, प्राणत, आरण, अच्युत प्रत्येकप्रत्येकमें एकएक ऐसे आठ इन्द्र हैं
मध्ये $\frac{7}{1}$ तु * प्रति-द्वय $\frac{1}{1}$ एकः $\frac{1}{1}$ ॥ सौधर्म-ऐशान-	=और (=तु) मध्य (आठ स्वर्गों) में प्रति युगल एक (एक) इन्द्र है सौधर्मऐशान
सानत्कुमार-माहेन्द्राणाम् $\frac{6}{3}$ चतुर्णाम् $\frac{6}{3}$ चत्वारः $\frac{1}{3}$	=सानत्कुमार और माहेन्द्र चार (स्वर्गों) के चार
इन्द्राः $\frac{1}{3}$ (1) ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोः $\frac{6}{2}$ एकः $\frac{1}{1}$ ब्रह्म-	=इन्द्र हैं, ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर का एक ब्रह्म
इन्द्रः $\frac{1}{1}$ (2) नाम * (1) लान्तवकापिष्ठयोः $\frac{6}{2}$ एकः $\frac{1}{1}$	=नाम इन्द्र है, लान्तव कापिष्ठ (कल्प) का एक
लान्तव-आख्यः $\frac{1}{1}$ (1) शुक्र-महाशुक्रयोः $\frac{6}{2}$ एकः $\frac{1}{1}$	=लान्तव नाम (इन्द्र) है, शुक्र और महाशुक्र (स्वर्गों) का एक
शुक्र-सञ्ज्ञः $\frac{1}{1}$ (1) शतार-सहस्रारयोः $\frac{6}{2}$ एकः $\frac{1}{1}$	=शुक्र नामा (इन्द्र) है, शतार सहस्रार का एक
शतारनामा $\frac{1}{1}$ आनत-प्राणत-आरण-अच्युतानाम् $\frac{6}{3}$	=शतार नामा (इन्द्र) है, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत
चतुर्णाम् $\frac{6}{3}$ चत्वारः $\frac{1}{3}$ एवम् * कल्प-वासिनाम् $\frac{6}{3}$	=चार (स्वर्गों) के चार (इन्द्र) हैं, इस प्रकार स्वर्गों में निवास करनेवाले(देव)निके
द्वादश $\frac{1}{3}$ इन्द्राः $\frac{1}{3}$ भवन्ति। जम्बूद्वीपे $\frac{7}{1}$ महामन्दरः $\frac{1}{1}$	=बारह इन्द्र होते हैं ॥ जम्बूद्वीपमें सुमेरुपर्वत

(१) इन चारों वाक्योंको पृथक् पृथक् सप्तमी द्वि वचन मानकर 'का' के स्थानमें "में" ऐसा अनुवाद भी होसक्ता है जैसे ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर में एक ब्रह्म नाम इन्द्र है इत्यादि ॥ (२) 'नाम' यहां पर अव्यय है जैसे 'हिमालयो नाम, नगाधिराजः' कुम्हारसंभवसे (वैद्यकोश पृष्ठ ३७४ देखो)

शरीरवसनाभरणादिदीप्तिर्द्युतिः। लेश्या उक्ता। लेश्याया विशुद्धिर्लेश्याविशुद्धिः।इन्द्रियाणामवधेश्च विषय इंद्रियावधिविषयः। तेभ्यस्तैर्वाऽधिका इति॥ तस्मिन्नुपर्युपरि प्रतिकल्पं प्रतिप्रस्तारं च वैमानिकाः स्थित्यादिभिरधिका इत्यर्थः॥ यथा स्थित्यादिभिरुपर्युपर्यधिका एवं गत्यादिभिरपीत्यतिप्रसङ्गे तन्निवृत्त्यर्थमाह–

॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

शरीर-वसन-आभरण-आदि-दीप्तिः॥द्युतिः॥, =शरीर वस्त्र तथा भूषण अथवा गहना आदिक का प्रकाश सो द्युति है

लेश्या॥ =लेश्या अर्थात् कषायके उदयकरि रंजित योगों की प्रवृत्ति

उक्ता॥लेश्यायाः॥विशुद्धिः॥ =(दूसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें) वर्णित है। लेश्याकी उज्ज्वलता वा विशुद्धता

लेश्या-विशुद्धिः॥इन्द्रियाणाम्॥अवधेः॥च*विषयः॥इन्द्रिय-=सो लेश्या विशुद्धि है। इन्द्रियोंका और अवधिज्ञानका विषय हैं सो इन्द्रिय

अवधि-विषयः॥तेभ्यः॥ =अवधिविषयहै।तिन(स्थिति,प्रभाव,सुख,द्युति,लेश्याविशुद्धि,इन्द्रिय,अवधि विषय)से

वा*तैः॥ =अथवा तिन(स्थिति,प्रभाव,सुख,द्युति,लेश्याविशुद्धि,इन्द्रियविषय,अवधिविषय)करि

अधिकाः॥इति*तस्मिन्॥उपरि*उपरि* =अधिक अधिक हैं ऐसें तिस (ऊर्ध्वलोक) में ऊपर ऊपर

प्रति*कल्पम्॥प्रति*प्रस्तारम्॥च*वैमानिकाः॥स्थिति- =स्वर्गस्वर्ग प्रति और पटल प्रति वैमानिक देव स्थिति

आदिभिः॥अधिकाः॥इति*अर्थः॥यथा*स्थिति- =आदि करि अधिक अधिक हैं ऐसा आशय है जैसे स्थिति

आदिभिः॥उपरि*उपरि*अधिकाः॥एवम्*गति- =आदि करि ऊपर ऊपर अधिक अधिक हैं ऐसे गमन

आदिभिः॥अपि*इति*अतिप्रसंगे॥ =आदिकरि भी इस प्रकार अति प्रसक्ति अर्थात् विपरीत सम्बन्ध आने पर

तत्-निवृत्ति-अर्थम्॥आह॥ =उस (विपरीत प्रसक्ति) के निषेध के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहतेहैंकि

सूत्रम्– गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

(वैमानिकाः उपर्युपरि) गति-शरीर-परिग्रह-अभिमानतः हीना भवन्ति ॥

सूत्रार्थः–वैमानिकाः॥उपरि*उपरि* =वैमानिक देव हैं वे ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति पटल पटल प्रति

गति-शरीर-परिग्रह अभिमानतः*हीनाः॥ =गमन, शरीर की उच्चता, परिग्रह और अहंकार करि घटते घटते हैं

तेनानुदिशानां ग्रहणं वेदितव्यम्॥एषामधिकृतानां वैमानिकानां परस्परतो विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः॥२०॥

स्वोपात्तस्यायुष उदयात्तस्मिन्भवे शरीरेण सहावस्थानं स्थितिः । शापानुग्रहशक्तिः प्रभावः । सुखमिन्द्रियार्थानुभवः ।

तेन अनुदिशानाम् ग्रहणम् वेदितव्यम् =तिस ('नवसु'कारक) से अनुदिश विमानों का ग्रहण जानना चाहिए ॥

एषाम् अधिकृतानाम् वैमानिकानाम् =इन प्रकरणकियेहुये वैमानिकदेवोंके

परस्परतः*विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह =आपसमें विशेष जाननेकेलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्— स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥

(=वैमानिकाःउपर्युपरि)स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्याविशुद्धि-इन्द्रियविषयतः-अवधिविषयतः अधिकाः

सूत्रार्थः-वैमानिकाः उपरि*उपरि* =वैमानिकदेव हैं वे ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति तथा पटल पटल प्रति

स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति- =आयु, प्रताप वा महिमा, सुख, द्वीप्ति (शरीरादि की कान्ति वा प्रकाश)

लेश्याविशुद्धि-इन्द्रियविषयतः* =लेश्याकी विशुद्धता अथवा उज्ज्वलता, इन्द्रियोंके विषयकरि

अवधि-विषयतः*अधिकाः =और अवधि ज्ञानके विषयकरि (अर्थात् इन सातों वातोंमें) अधिक अधिक हैं

वृत्त्यनुवादः-स्व-उपात्तस्य आयुषः उदयात् =स्वप्राप्त आयुके उदयसे

तस्मिन् भवे शरीरेण सह* =तिस भवमें वा जन्ममें शरीर सहित

अवस्थानम् स्थितिः शाप- =टिकाव वा ठहराव सो स्थिति है(परका)अपकार वा विग्रह(वशमेंलाकरदंडदेने)की

(शक्तिः)-अनुग्रहशक्तिः प्रभावः =(सामर्थ्य और) उपकार करनेकी सामर्थ्य सो प्रभाव है

इन्द्रिय-अर्थ-अनुभवः सुखम् =(सातावेदनीय के उदयसे) इन्द्रिय विषय (=अर्थ) का भोगना सो सुख हैं

---

(१) हमारे यहांकी पुस्तकोंमें कहीं पर "विशुद्धीन्द्रिया" पाठ है कहीं पर "विशुद्धोद्रिया"पाठ है दोनोंपाठ ठीक हैं । शेषपाठ हमारे यहां सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें तथा 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें और दिगम्बरआम्नायके भाष्योंमें पाठ तथा अर्थ एकसा है ॥

अर्द्धतृतीयारत्निप्रमाणम् ॥ मध्यग्रैवेयकेष्वरत्निद्वयप्रमाणम् ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु अनुदिशविमानेषु च अध्यर्द्धारत्निप्रमाणम् ॥ अनुत्तरेष्वरत्निप्रमाणम्॥ परिग्रहश्च विमानपरिच्छदादिरुपर्युपरि हीनः॥ अभिमानश्चोपर्युपरि तनुकषायत्वाद्धीनः ॥ पुरस्तात्त्रिषु निकायेषु देवानां लेश्याविधिरुक्तः

अर्द्ध-तृतीया-(१)अरत्नि-प्रमाणम्[१/१]।।।मध्य-ग्रैवेयकेषु[७/३]।	=अढ़ाई हाथ परिमाण (शरीर) है । मध्य ग्रैवेयक (तिकड़ी) में
अरत्निद्वय-प्रमाणम्[१/१]।।। उपरिम-ग्रैवेयकेषु[७/३]।	=दो हाथ माप (शरीर) है । उपरिम ग्रैवेयक (तिकड़ी) में
अनुदिश-(३)विमानेषु[७/३]।च*अध्यर्द्ध-अरत्नि-प्रमाणम्[१/१]।। ॥	=और अनुदिश (नव) विमानोंविषैं डेढ़ हस्त प्रमाण(शरीर) है ।
अनुत्तरेषु[७/३]।	=अनुत्तर (विजय, वैजयन्त,जयन्त,अपराजित और सर्वार्थसिद्धि) विषैं
अरत्नि-प्रमाणम्[१/१]।।। । परिग्रहः[१/१]।च*विमान-(२)परिच्छद-	=एक हाथ प्रमाण (शरीर) है । वहुरि परिग्रह विमान परिवार (=परिच्छद)
आदिः[१/१]।ऊपरि*ऊपरि*हीनः[१/१]।अभिमानः[१/१]।चउपरि*उपरि*	=आदिक ऊपर ऊपर घाटि घाटि हैं । वहुरि अभिमान वा अहंकार ऊपर ऊपर
तनु-कषायत्वात्[५/१]।।हीनः[१/१]।पुरस्तात्*त्रिषु[७/३]।	=थोड़ी वा मंद कषाय होने से हीन है । पहिले तीन
निकायेषु[७/३]।देवानाम्[६/३]।लेश्या-विधिः[१/१]।उक्तः[१/१]।	=समुदायके देवोंके लेश्याका नियम कहा गया ।

(१) अरत्नि—(पु०)(क)कुहनी(ख)मुट्ठी(ग)-पु०स्त्री-कोहनीसे लेकर कनिष्टका पर्यंत हाथकी लंबाई(वैद्यकोशपृष्ठ ६२) (कनिष्ठा छिगुनीको कहते हैं)

अरत्नि—(पु०) "चीची अगुलीको फैलाकर मुट्ठी वांधा हुआ हाथ" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४१ ॥ चीची अंगुली, कनिष्ठा वा छिगुनीको कहते हैं॥

रत्नि—(पु०स्त्री) वंधीहुई मुट्ठी वाले हाथ का माप (पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३१६ ॥ अमरकोश, १६ वर्ग, श्लोक ८६ में वंधीहुई मुट्ठी सहित हाथ ॥ उपर्युक्त लेखसे विदित है कि अरत्नि एक छगुनी (एक कनिष्ठा अंगुली) के बरावर रत्नि से वडी है और एक इञ्छ हाथ से न्यून है जैसाकि हलायुध ग्रन्थकारके निम्न लिखित श्लोक से प्रगट है

मध्यांगुली कुर्पयोर्मध्ये प्रामाणिक करः । (मध्य-अंगुली-कुर्परयो) =बीचकी अंगुली और कुहनी(=कुर्पर)के बीचमें जो मापागया है वह हाथहै ॥

बद्धमुष्टि करो रत्निररत्नि· सकनिष्टक. ॥ (बद्धमुष्टिकर. रत्निः अरत्नि) =वधी हुई मुट्ठी सहित हाथ है सो रत्नि है और वंधीहुई मुट्ठी सहित हाथ मय फैली हुई छगुनी के अरत्नि है अर्थात् कोहनी से लेकर कनिष्ठका तक लंबाई को अरत्नि कहते हैं जो हाथ भरसे एक इंछ हीन होती है ॥

(२) परिच्छेद—(पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २३० में) विशेष रूप से इयत्ताकरण, सर्ग, अध्याय, सीमा, विचार अर्थों में है परन्तु परिच्छद का अर्थ (पृष्ठ २३०) में उपकरण, सामान, कपडा, गहना-परिवार के हैं यहांपर परिवार के अर्थ में है ॥ परिच्छद के स्थानमें परिच्छेद अशुद्ध छपगया है । हस्त लिखित प्रति पृष्ठ ८८ पर 'परिग्रहश्च विमान परिच्छदादि ' ऐसा पाठ है ॥ (३) 'विमान' शब्द पुल्लिंग और नपुसक लिंग दोनोंमें आता है ॥

देशाद्देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः। शरीरं वैक्रियिकमुक्तम्। लोभकषायोदयाद्विषयेषु सङ्गः परिग्रहः। मानकषायादुत्पन्नोऽहङ्कारोऽभिमानः। एतैर्गत्यादिभिरुपर्युपरि हीनाः॥ देशान्तरविषयक्रीडारतिप्रकर्षाभावादुपर्युपरि गतिर्हीनाः॥ शरीरं सौधर्मैशानयोर्देवानां सप्तारत्निप्रमाणम्॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः षडरत्निप्रमाणम्॥ ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पञ्चारत्निप्रमाणम्॥ शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु चतुररत्निप्रमाणम्॥ आनतप्राणतयोरर्द्धचतुर्थारत्निप्रमाणम्॥ आरणाच्युतयोस्त्र्यरत्निप्रमाणम्॥ अधोग्रैवेयकेषु

वृत्त्यनुवादः–देशात्।देश-अन्तर-प्राप्ति-हेतुः।	=एक क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रके प्राप्तिका कारण
गतिः।।शरीरम्।।।वैक्रियकम्।।।	=सो गति अथवा गमन है ॥ (देवों का) शरीर वैक्रियक है
उक्तम्।।।लोभ-कषाय-उदयात्।	=जो (दूसरे अध्याय के ४६ वां सूत्रमें) कथित है। लोभ तथा कषायके उदयसे
विषयेषु।संगः।परिग्रहः।मान-कषायात्।	=विषयोंमें सम्बन्ध सो परिग्रह है। मान और कषायके उदयसे
उत्पन्नः।अहङ्कारः।अभिमानः।एतैः।गति-	=उत्पन्न हुआ गर्व सो अभिमान है। इन गति
आदिभिः।उपरि*उपरि*	=शरीर, परिग्रह, अभिमानकरि, ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्गप्रति पटल२ प्रति
हीनाः।देशान्तर-विषय-क्रीडा-रति-	=घटते घटते हैं। अन्य क्षेत्र-विषय-क्रीड़न-प्रीति की
प्रकर्ष-अभावात्।उपरि*ऊपरि*गति-हीनाः।	=बहुलताके न होनेसे ऊपर ऊपर गमन हीन है।
शरीरम्।।।सौधर्म-ऐशानयोः।देवानाम्।सप्त-अरत्नि-	=शरीर सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें देवोंका सात हाथ
प्रमाणम्।।।सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः।षड्-अरत्नि-प्रमाणम्।।।	=प्रमाण है। सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें छह हाथ प्रमाण (शरीर) है।
ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठेषु।	=ब्रह्मलोक तथा ब्रह्मोत्तर, लान्तव तथा कापिष्ठ (स्वर्गों) में
पञ्च-अरत्नि-प्रमाणम्।।।शुक्र-महाशुक्र-शतार-	=पांच हस्त परिमाण (शरीर) है। शुक्र तथा महाशुक्र शतार तथा
सहस्रारेषु।चतुर्-अरत्नि-प्रमाणम्।।।आनत-प्राणतयोः।	=सहस्रार स्वर्गोंमें चार हस्त प्रमाण (शरीर) है। आनत प्राणत स्वर्गोंमें
अर्द्धचतुर्थ-अरत्नि प्रमाणम्।।।आरण-अच्युतयोः।	=साढ़े तीन हाथ परिमाण (शरीर) है। आरण-अच्युत स्वर्गोंमें
त्र्यरत्नि-प्रमाणम्।।।अधः*ग्रैवेयकेषु।	=तीन हाथ माप (शरीर) है। नीचली ग्रैवेयक (तिकड़ी) में

(उपर्युपरि वैमानिकाः) पीत-पद्म-शुक्ललेश्याःद्वि-त्रि-शेषेषु (यथासंख्यम्) (भवन्ति)

उपरि*उपरि*वैमानिकाः॥पीत-पद्म-शुक्र-लेश्याः॥	=ऊपर ऊपर रहनेवाले वैमानिक देव पीत पद्म और शुक्ललेश्याओं के धारक
यथासंख्यम्*द्वि-	=क्रमसे (सामान्यपनेसे) दो (युगल सौधर्मैशान और सानत्कुमार माहेन्द्र) में
त्रि-	=तथा तीन (युगल ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर और लांतव-कापिष्ठ और शुक्र महाशुक्र) में
शेषेषु॥	=बचेहुये (शतार-सहस्रार और आनत-प्राणत और आरण अच्युत तथा नवग्रैवेयक और नव अनुदिशों और पांच अनुत्तर)निमें हैं परन्तु विशेष रीति से

केवल शब्दश· यह अनुवाद होसकता है कि पीत पद्म और शुक्ल लेश्यायें ही प्रकार प्रकार (भिन्न भिन्न-स्वर्गों) में होती हैं यह तुष्टिप्रद नहीं है न किसी तात्पर्य को स्पष्ट रूपसे प्रगट करता है। पंडित ठाकुर प्रसादजी ने "सौधर्मादि कल्पोंमें प्रथक् दो कल्पोंमें तो पीत लेश्या है, और उसके आगे तीन कल्पोंके देवोंमें पद्मलेश्या है, और आगे शेष देवोंमें शुक्ललेश्या है" अर्थ किया है सो 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका'के अनुकूल है इस सूत्रके पाठानुसार नहीं है ॥ जो समझमें आया है वही लिखा है विशेष रूपसे पाठकगण अन्वेषण करलें ॥

दोनों समाजोंमें सूत्रका अर्थ भेद उपर्युक्त टिप्पणीसे और हमारे यहां के सूत्र अर्थ से (जो विशेषरूप से किया है) इस प्रकार प्रगट होता है कि

() श्वेताम्बर आम्नायमें सौधर्म-ऐशान स्वर्गोंमें पीत लेश्या है वही पीतलेश्या दिगम्बर आम्नायके अनुकूल सौधर्म-ऐशान कल्पोंमें है
() श्वेताम्बरीय भाष्योंमें सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंमें पद्मलेश्या है। पीतलेश्या और पद्मलेश्या दिगम्बर समाजके अनुसार सानत्कुमार माहेन्द्रमें हैं
() श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ब्रह्मलोक स्वर्गमें पद्मलेश्या है वही पद्मलेश्या दिगम्बर आचार्यों के अनुकूल ब्रह्मलोक स्वर्ग वा कल्पमें है
() श्वेताम्बर आचार्योंमें लान्तक कल्पमें शुक्ललेश्या है परन्तु पद्मलेश्या दिगम्बर आम्नायके अनुकूल लान्तव (=लान्तक) स्वर्गमें है
() श्वेताम्बर समाजमें महाशुक्र सहस्रार कल्पोंमें शुक्ललेश्या है परन्तु पद्म शुक्ललेश्यायें दिगम्बर सिद्धान्तके अनुसार महाशुक्र सहस्रारस्वर्गों में हैं
() श्वेताम्बर भाष्योंमें आनत-प्राणत-आरण अच्युत-नवग्रैवेयक-पांच अनुत्तरोंमें शुक्ललेश्या है वही शुक्ललेश्या दिगम्बरआचार्योंमें नवअनुदिश सहितमें है ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ शुक्र-शतार स्वर्गोंको श्वेताम्बरोंने नहीं माना है इससे मिलान नहीं होसकता है हमारे यहां ब्रह्मोत्तर कापिष्ठमें पद्म, शुक्र-शतारमें पद्मशुक्ल लेश्यायें मानी हैं

(१) 'वैमानिका.' सोलहवांसूत्रसे और(२)उपर्युपरि अठारहवां सूत्र से अनुवर्ततेहैं(३)'यथासंख्यम्' शब्दका अध्याहार सूत्रार्थ स्पष्टकेलिये कियागयाहै

(४) तेषाम्॥इव*लेश्या ॥येषां॥	=तिन पीत पद्म शुक्ल रंगवाले पदार्थों के सदृश हैं लेश्यायें जिन (देवों) के
ते॥पीत-पद्म-शुक्ललेश्या ॥	=ते पीत पद्म और शुक्ल लेश्यावाले (देव) हैं।

इदानीं वैमानिकेषु लेश्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

इदानीं[1]वैमानिकेषु[2]लेश्या-विधि-प्रतिपत्ति-अर्थम्[3][4]आह =अब वैमानिक देवोंमें लेश्याके नियमके प्राप्तिके लिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

[1]सूत्रम्— पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्याद्वि त्रिशेषेषु" ऐसा है श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका और हमारे यहांका पाठ एकहै। हमारे यहां इस सूत्रका अर्थ सामान्यरूपसे और विशेषरूपसे ऐसे दोप्रकारसे किया है। एकसा पाठ होने पर भी अर्थ भेद है जिसको सविस्तार निम्नलेख में दिखलाते हैं॥

श्वेताम्बर आम्नायकी 'भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका'सिद्धसेनसूरि रचितकापाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु"

'पूर्वत्र बहुव्रीहिरुत्तरत्र द्वन्द्वः। यथासंख्यं चाभि सम्बन्धः कार्यः। उपर्युपरि वैमानिका इत्यादि भाष्यम् पृष्ठ ३४०=इस सूत्रके पहले पीतपद्मशुक्ललेश्या तक बहुव्रीहि समास है आगे 'द्वित्रिशेषेषु' तक द्वन्द्व समासहै। 'यथासंख्य' शब्द इस सूत्रमें लगाना चाहिये। उपर्युपरि वैमानिका इत्यादिक भाष्य वा व्याख्या है॥ स्मरण रहै कि सौधर्मैशान इत्यादि सूत्र २० में ब्रह्मोत्तर, कापिष्ठ, शुक्र, शतार ये चार स्वर्ग नहीं माने हैं इसलिये उनके यहां दोनों भाष्योंके अनुकूल बारहस्वर्गहैं "समानत्येसत्यप्युपर्युपरिविशुद्धिप्रकर्षःसौधर्मैशानयोः कनकत्वचपसुराः" सानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकेषु पद्मदलत्विषमलांतकादिषु धवलरुचः" पृष्ठ ३५० =(लेश्याओंमें) समानता होनेपर भी(=सति अपि)ऊपर ऊपरके देवोंकी लेश्या अधिक विशुद्ध है। सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमे पीतलेश्याके धारक देव हैं। सानत्-कुमार-माहेन्द्र और ब्रह्मलोक (स्वर्गों)में पद्मलेश्या वाले देव हैं। लांतकसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक शुक्लेश्या के प्रेमी देव हैं।

श्वेताम्बरस॰"सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र"तथा भेदप्रदर्शककोष्ठकका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वि त्रिशेषेषु" ॥ २३ ॥

भाष्यम्—उपर्युपरि वैमानिकाः सौधर्मादिषु द्वयोस्त्रिषु शेषेषु च पीतपद्मशुक्ललेश्या, भवन्ति यथासंख्यम् ॥ द्वयोः पीतलेश्याः सौधर्मै-शानयोः। त्रिषु पद्मलेश्याः सानत्कुमार माहेन्द्रब्रह्मलोकेषु। शेषेषु लान्तकादिष्वासर्वार्थसिद्धाच्छुक्ललेश्याः।उपर्युपरितु विशुद्धतरेत्युक्तम् =ऊपरऊपर वैमानिकसौधर्मादिक दो(स्वर्ग वा कल्प)में,तीनस्वर्गोंमें और (=च) बचेहुये (सातस्वर्ग-नवग्रैवेयक पंचोत्तर निमेंपीत-पद्म-शुक्लेश्या क्रम से हैं॥

दो सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें पीतलेश्या है। तीन सानत्कुमार माहेन्द्र-ब्रह्मलोकमें पद्मलेश्याहै।बचेहुये लांतकआदिमें अर्थात्महाशुक्रसहस्रार आनत प्राणत आरण अच्युत, नवग्रैवेयक, पांच विजय वैजयंत जयंत अपराजित (=आदिषु)निमें,सर्वार्थसिद्धि, पर्यंतमें(आ-सर्वार्थसिद्धौ) शुक्लेश्या है (और समान लेश्याओं में भी) ऊपर ऊपर के देवों की लेश्या अधिक विशुद्ध है ऐसा कहचुके हैं (सभाष्य॰ पृष्ठ ११२)

श्वेताम्बर आम्नायके उक्त दोनों भाष्योंके अर्थ करने पर एक ही भाव वा अभिप्राय प्रगट होता है यद्यपि सूत्र पाठमें भेद है सम्भव है कि सभाष्य॰के पाठमें 'द्वि त्रि' 'द्वि त्रि'के स्थानमें अशुद्ध छपगया हो वा अशुद्ध लिखगयाहो क्योंकि शब्दशः उक्त सूत्रका कोई अनुवाद समाधान योग्य नहीं होसका है

औत्तरपदिकम् ।

औत्तरपदिकम् =अग्रिम पद (दीर्घ) रहनेसे पूर्व पदको ह्रस्व हुआ है अर्थात् 'पीतापद्मा' द्वंद्वसमासमें 'पद्मा' अग्रिम पद स्त्रीलिंग दीर्घ होनेसे 'पीता' का तकार ह्रस्व होकर 'पीतपद्मा' हुआ पश्चात् 'पीतपद्माशुक्लाः१।।' वाक्य में 'शुक्ला' शब्द स्त्रीलिंग दीर्घ पद होने से 'पद्मा' का ह्रस्व हुआ, अतः 'पीतपद्मशुक्लाः' ऐसा वाक्य द्वन्द्वसमास स्त्रीलिंग प्रथमा विभक्ति बहुवचनमें बनगया । स्मरण रहै कि यहांपर 'पीतापद्मा' शब्दोंको पुंवद्भाव (=पुरुपलिंगी शब्दकेसदृश तात्पर्यको प्रगट करनेवाला) नहीं हुआ, केवल पीता पद्मा ह्रस्व होगये हैं ।। 'पीतपद्मशुक्लाः१।।' वाक्य का अर्थ 'पीत और पद्म और शुक्ल' हैं ऐसा है । ऐसा रूप बनजानेके लिये कोई व्याकरणका नियम और वार्तिक इस विषयपर नहीं है । श्री पतञ्जलिमुनिने जिनका अस्तित्व खृष्टीयशतकसे लगभग १५० वर्ष पहिले निर्णय कियागया है और जिनने पाणिनिमुनिकृता अष्टाध्यायी पर लगभग एकलाख श्लोकका महाभाष्य रचा है उनने अध्याय १ पाद १ सूत्र ७० 'तपरस्तत्कालस्य' पर 'द्रुतायां तपर करणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' यह वार्तिक उक्तमहाभाष्यमें दी है इसमें 'मध्यमविलम्बितयोः' ='मध्यमा च विलम्बिता च मध्यमविलम्बित तयोः' का प्रयोग किया है इस द्वंद्वसमास युक्त पदमें 'विलम्बिता' उत्तर पद दीर्घ रहनेसे 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्वकर निर्देश किया है । जैसे इस द्वंद्वसमास युक्तपद में 'विलंबिता' उत्तर दीर्घ पद रहनेसे 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्वकर निर्देश किया है उसी प्रकार यहांपर 'पद्मा' अग्रिम पद रहते 'पीता' को ह्रस्व किया और 'शुक्ला' को उत्तरपद रहते 'पद्मा' को ह्रस्व किया । यह एक बात प्रसिद्ध है कि यदि किसी रूपकी सिद्धिके लिये व्याकरणमें किसी सूत्र, वार्तिक वा अन्य नियमका अभाव हो और किसी शब्दको किसी रूपमें (चाहैं वह व्याकरणके विरुद्धही क्योंन हो) पाणिनि,कात्यायन,पतञ्जलि योगी और श्रीकुन्दकुन्द, उमास्वामी, भद्रबाहु स्वामी इत्यादि आचार्य प्रयोग करदें वह शुद्ध मानलिया जाताहै और उसको आर्ष प्रयोग भी कहतेहैं यही दशा हमारे 'पीतापद्मा'वाक्यकी है । उक्त वार्तिकके अनुवादमें हम इसकी पूरी व्याख्या देंगे ।।'ह्रस्व'के लिये उत्तरपद दीर्घ और स्त्रीलिंगमें होना चाहिये ।।

दूसरी शंका (कि 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यमें शुक्ल शब्दका ह्रस्वहोकर 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः१।' वाक्य कैसे होगया) का उत्तर पीत और पद्म और शुक्ल हैं लेश्या जिनके वे पीत और पद्म और शुक्ल लेश्यावाले (देव) हैं । ऐसा अर्थ 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः१।' इस द्वंद्व गर्भित बहुव्रीहि समास वाले वाक्य का हुआ ।। 'शुक्ला' शब्दका

पीता च पद्मा च शुक्ला च ताः पीतपद्मशुक्लाः। पीतपद्मशुक्ला लेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥ कथं ह्रस्वत्वम् ?।

सौधर्म ऐशानमें पीतलेश्यावाले देव और सानत्कुमार माहेन्द्रमें पीत पद्म दोनों लेश्यावाले देव और ब्रह्मलोक ब्रह्मोत्तर और लान्तव कापिष्ठमें पद्मलेश्यावाले देव, शुक्र महाशुक्र और शतार सहस्रारमें पद्म शुक्ल दोनोंलेश्यावाले देव आनत प्राणत और आरण अच्युत और नव ग्रैवेयकोंमें शुक्ललेश्यावाले देव और नव अनुदिशमें और पांच अनुत्तरोंमें देव परम शुक्ल लेश्या वाले हैं॥

वृत्त्यनुवादः–पीता१/१।।च*पद्मा१/१।।च*शुक्ला१/१।।च* =और पीता और पद्मा तथा शुक्ला हैं

ताः१/३।।पीत-पद्म-शुक्लाः१/३।।पीत-पद्म-शुक्लाः१/३।।लेश्याः१/३।।येषाम्६/३। =वे पीतपद्मशुक्लाः (द्वंद्व समास रूपमें)हैं। पीत पद्म और शुक्ल हैं लेश्यायें जिनकें

ते१/३।पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः१/३। =वे पीत-पद्म-शुक्ल लेश्यावाले(देव)हैं (यह वाक्य द्वन्द्वगर्भित बहुव्रीहि समासमें है) अर्थात् 'पीतपद्मशुक्लाः१/३।।' यह वाक्य स्त्रीलिंग द्वन्द्व समासमें है और "पीतपद्मशुक्ल-लेश्याः१/३।' यह वाक्य पुरुषलिंग द्वंद्व समास गर्भित बहुव्रीहिसमासमें है। सारांश पीत, पद्म, शुक्ललेश्या जिनकें हैं वे पीत-पद्म-शुक्ललेश्या सहित देव हैं॥

कथं*ह्रस्वत्वम्१/१।।? =(प्रश्न) ह्रस्वपना वा लघुपना (पीता, पद्मा और शुक्ला शब्दों के) कैसे हुआ?

इस प्रश्न का दोहरा तात्पर्य है प्रथम यह कि पीता-पद्मा-शुक्ला तीनों शब्दोंका द्वंद्वसमास किया है तो 'पीतापद्माशुक्लाः१/३।।' ऐसा रूप होना चाहिये क्योंकि द्वन्द्वसमासमें जो शब्द समुच्चय किये जाते हैं वे ह्रस्व हों तो ह्रस्व बने रहते हैं और दीर्घ हों तो दीर्घ बने रहते हैं द्वंद्वसमासमें पूर्व पदका कभी ह्रस्व नहीं होता है। जैसे हरिश्च हरश्च=हरिहरौ(विष्णु और महादेव)ईशश्च कृष्णश्च ईशकृष्णौ(शिव औरकृष्ण) माता च पितरा च=माता पितरौ (मा और बाप) इसलिये 'पीतापद्माशुक्लाः१/३।।' रूप होना चाहिये। दूसरा तात्पर्य है कि यदि हम 'पीतापद्माशुक्लाः१/३।।' द्वंद्व समासमें 'लेश्या' शब्द मिलाकर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास करदें तो 'पीतापद्माशुक्लालेश्याः१/३।' ऐसा रूप होना चाहिये 'शुक्ला' शब्दका 'शुक्ल' ह्रस्व कैसे हुआ॥ (उत्तर)

यथाहुः द्रुतायां तपरकरणे

यथा*आहु।तपरकरणे७/१।। =जैसा कि वे कहते हैं कि 'तपर' करनेपर अर्थात् तकार जिससे परे करना हो, जिसके पश्चात् तकार जोड़ना हो वा लगाना हो अथवा तकार से जिसको परे करना हो, तकार से जिसको पश्चात् लाना हो तो (ऐसे प्रयोग में)

द्रुतायाम्७/१। =द्रुता वृत्तिमें अर्थात् शीघ्र उच्चारण की चाल, ढव, क्रिया अथवा रीतिमें; शब्द के जल्दी बोलनेमें

वा सामानाधिकरणमें है और यह भार्या शब्द क्रमिक संख्या वाला नहीं है और न प्रियादिगणके शब्दोंमेंसे कोई शब्द है अतः 'दर्शनीया' शब्द अपने अनुरूपक पुलिंगशब्द 'दर्शनीय'में पलट जाता है ॥ ऐसेही दीर्घजङ्घः =दीर्घा जङ्घा यस्य दीर्घजङ्घ जिसकी जांघ बडी है और रूपवती भार्या यस्य=रूपवद्भार्यः॥

स्त्री१॥पुंवत्*एकार्थे७/१। =(जैनेन्द्र व्याकरणके अध्याय ४ पाद ३ सूत्र १४६ का अनुवाद) स्त्रीलिंग शब्द पुलिंग सदृश हो जब (समासमें) एक अर्थमें

स्त्रियाम्७/१॥यअडट्प्रियादौ७/१। =ऐसा स्त्रीलिंग (शब्द) उत्तर पद हो जो संख्या न हो (=अडट् अष्टाध्यायी १-१-२३) न प्रियादि गण में (से) हो

उक्त-पुस्कात्५/१। =(और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्द का) पूर्व पद भाषित पुंस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि

अन्-ऊः१/१। =जिसके अन्त में ऊ प्रत्यय न (=अन्) हो ॥ ऊङ् प्रत्ययके ङ् का इत् संज्ञक होनेसे लोप होजाता है ऊ शेष रहजाता है प्रियादि शब्द ये हैं (१) प्रिया (२) मनोज्ञा (३) कल्याणी (४) सुभगा (५) दुर्भगा (६] भक्ति [७] सचिवा(८)स्वा (स्वसा) (९)कान्ता (१०) क्षान्ता (११) समा (१२) चपला (१३) दुहिता (१४)वामना (वामा) (१५)तनया [१६] अम्बा॥इन शब्दोंमें 'दृढभक्तिः' समास नियम विरुद्ध है ॥

(१) आहु-यह शब्द हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ९९ पर नहीं है न राजवार्तिकमें है जिसका लेख लगभग वही है जो सर्वार्थसिद्धिमें है हस्तलिखित प्रति में 'यथा द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति द्रुतमध्यमविलम्बिता इति" ॥ ऐसा पाठ है अर्थात् 'आहुः'शब्द नहीं है और 'द्रुतमध्यमविलम्बिता इति यह वाक्य अधिक है। हमने यह पाठ नहीं लियाहै क्योंकि श्रीपतञ्जलिकी वार्तिक केवल 'उपसंख्यानम्' तक है ॥

[२] द्रु-यह शब्द सकर्मक अकर्मक परस्मैपद भ्वादि प्रथम गणका धातु है यह () बहना, दौडना, उडना, दौडपडना, आक्रमणकरना ()गलजाना पतला होजाना इत्यादि अर्थोंमें आता है। जब 'द्रु' (पु०। न०) में संज्ञा होता है तो काठ, काठ का बनाहुआ लोखर, इन दो अर्थों में आता है जब केवल पुलिंगमें आता है तो वृक्ष उसकी डाली इन दो अर्थों में आता है ॥ 'द्रु' में त जोडदें तो 'द्रुत' त्रिलिंगी होजाता है और ता जोड़ने पर द्रुता स्त्रीलिंग होजाता है जल्दी, पिघला हुआ, भागा हुआ अर्थोंमें प्रयोग कियाजाताहै। द्रुत पुलिंगमें वृक्ष,बिल्ली,बीछूके अर्थोंमें आता है ॥द्रुतम् अव्यय है॥ जल्दी, शीघ्र अर्थोंमें आता है ॥ द्रुता यहांपर स्त्रीलिंग एक वचन सप्तमी विभक्तिमें "द्रुतायाम्" ऐसे रूपमें शीघ्रता के अर्थमें आया है ॥ श्लोकवार्तिक हस्त लिखित में "द्रुतायाम्" सप्तमी एक बचन स्त्रीलिंगमें है परन्तु मुद्रित श्लोक वार्तिक पृष्ठ ३८४ पर द्रुतायात् पञ्चमी विभक्ति एक वचन नपुंसक लिंग 'तपरकरणात्' शब्द से प्रथम आया है ॥ द्रुतायात्=यहां पर 'शीघ्रतासे' इस अर्थमें आया है ॥

अष्टाध्यायी अध्याय छह पाद तीन सूत्र (१) चौंतीसवें अथवा जैनेन्द्र व्याकरण अध्याय चार पाद तीन सूत्र एकसौ छयालीसवें से (देखो निम्नलिखित टिप्पणी) पुंवद्भाव होकर (अर्थात् शुक्ला के आकारका अकार होकर पुरुष लिंगी शब्दके सदृश तात्पर्यको प्रगट करते हुये) 'शुक्ल' शब्द होगया अतः 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' ऐसा वाक्य होगया भावार्थ 'पीतपद्मशुक्लाः$^{1}_{3}$''लेश्याः$^{1}_{3}$''येषाम्$^{1}_{2}$।(=पीतपद्मशुक्ललेश्याः$^{1}_{3}$।) यहांपर शुक्लाशब्द स्त्रीलिंग है उसके समान आकृति (=रूपवाला) और समान भावका (=आयाम) द्योतक पुल्लिंग शब्द 'शुक्ल' है । इस स्त्रीलिंग शब्द 'शुक्ला'के अन्तमें'ऊङ्' प्रत्यय नहीं है वरन अंतमें 'आ' प्रत्यय है इस (शुक्ला शब्द)के पश्चात् वा उत्तरमें 'लेश्या' स्त्रीलिंग शब्द है यह'लेश्या' शब्द शुक्ला शब्दके साथ समानाधिकरणमें है और यह लेश्या शब्द क्रमिक संख्या (जैसे पहला दूसरा-तीसरा-चौथा इत्यादि) नहीं है और न प्रियादि गणके शब्दोंमें से एक शब्द है इसलिये यह शब्द 'शुक्ला'जो स्त्रीलिंग है अपने अनुरूप वाले 'शुक्ल' पुलिंग शब्दमें पलट जाता है इसलिये 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यके स्थानमें उक्त सूत्र द्वारा 'पीतपद्मशुक्ल-लेश्याः' ऐसा वाक्य बनगया । इस 'शुक्ला' शब्दका उसीप्रकार से पुंवद्भाव हुआ है जिस प्रकारसे 'दर्शनीया' शब्दका पुंवद्भाव होकर 'दर्शनीय' शब्द दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य) वाक्यमें बन जाता है ॥ अर्थात् दर्शनीयाभार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः हुआ ।

पूज्यपाद स्वामीने 'द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' पतञ्जलि वार्तिकको प्रमाणरूपमें केवल इसीलिये दियाहै कि जैसे पतंजलिने मध्यमाका मध्यम विलंबिता अगलेपद होतेसंते करदिया उसीप्रकार उमास्वामीने 'पीता पद्मा' को शुक्ला परे होते संते क्रमसे पीत पद्म करदिया ॥ उनको इस वार्तिक के वस्तुतः अर्थसे कुछ प्रयोजन नहीं और यथार्थ अर्थ इस वार्तिकका सूत्रके अर्थ वा भावसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता वार्तिकका अर्थ पृष्ठ६८-७४ तकहै ।

---

(१)स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ॥६।३।३४॥ स्त्र्युक्तपुंस्कादनूङेकार्थे ऽङट् प्रियादौ स्त्रियां पुंवत् ॥ ४।३।१४६

=स्त्रियाः$^{1}_{1}$॥ पुंवत्,भाषितपुंस्कात्$^{1}_{1}$।अनूङ्$^{1}_{1}$।समानाधिकरणे$^{1}_{1}$॥।स्त्रियाम्$^{1}_{1}$॥अपूरणीप्रियादिषु$^{1}_{1}$। ॥(अपूरणी-अप्रियादिषु)

स्त्रियाः$^{1}_{1}$॥पुंवत्,समानाधिकरणे$^{1}_{1}$॥। =स्त्रीलिंग शब्दका पुंवाचक समान रूप हो जब (समास में) समानाधिकरण में अथवा एकान्वय में

स्त्रियाम्$^{1}_{1}$॥अपूरणीः =ऐसा स्त्रीलिंग(शब्द) उत्तरपद हो जो क्रमिक संख्या(प्रथम दूसरा-तीसरा-चौथा-पांचवा इत्यादि)न हो और

प्रियादिषु$^{1}_{1}$। =न प्रियादिगण के शब्दोंमेंसे कोई शब्द हो । (और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्दका)

भाषितपुंस्कात्$^{1}_{1}$।अनूङ्$^{1}_{1}$। =पूर्वपद भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि जिसके अन्तमें (स्त्रीलिंग) ऊङ् प्रत्यय न हो। जैसे दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य) । यहां 'दर्शनीया' स्त्रीलिंग शब्द है जिसका अनुरूप पुलिंग शब्द उसी आकृति और उसी अर्थवाला दर्शनीय शब्द है । इस 'दर्शनीया' शब्द के अन्तमें ऊङ् प्रत्यय नहीं है वरन 'आ' है इस 'दर्शनीया' शब्द के पश्चात् स्त्रीलिंगी शब्द भार्या है जो दर्शनीया शब्द के साथ एकान्वयमें है ॥

प्रसिद्ध है कि विक्रिया ऋद्धिद्वारा सांपके बच्चेने ऋषिका रूप धारण करके इस 'महाभाष्य' को लिखा और महादेवजी इसको एक कोठरीमें से बोलते गये। पतंजलि ऋषि के लगभग एक सहस्र शिष्य थे। इस भाष्यके लेख को रोककर उक्त ऋषि कही आवश्यकीय कार्यको गये और शिष्योंको उपदेश करगये कि कोठरीका आवरणपट न उठाना,परन्तु आपको अनुभव होगाकि जिस कामकी लडकोंसे कहो कि मत करना, वस उसको अवश्यही करें आवरणपट खोलदिया तो ऐसा कहाजाता है कि उष्णताके कारण समस्त शिष्य भस्म होगये केवल दो चार शिष्य जो कार्यवश बाहर चलेगये थे जीवित रहे। अष्टाध्यायीके आठ भागहै यह महाभाष्य भी आठ खडोंमें काशी,बवई इत्यादि देशोंमें मुद्रित हुआहै। कहतेहैंकि कुछेक भाग इस भाष्यको जहांकहीं प्रकरण ठीकठीक नहीं मिलता है नष्ट होगया है अर्थात् उपहासमें प्रसिद्ध है कि ऋषिके अनुपस्थितिमें बकरी कुछ पत्र महाभाष्यके चरगई॥

इस बातके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है कि पूज्यपादस्वामीने जैनेन्द्र व्याकरण रचा और बड़े प्रकर्ष वैयाकरण थे उन्होंने कहीं पर भी इस समस्त सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें अन्य मतके किसी शास्त्रका प्रमाण नहीं दिया है जैनमतके ही शास्त्रोंका प्रमाण दिया है। इस वार्तिकका प्रमाण देनेके दो कारण सम्भव है प्रथम यह कि प्रश्न करनेवाला कोई अन्य मतका विद्वान् हो और वह जैनमतके शास्त्रोंके प्रमाणसे इस वैयाकरणीय प्रश्नके उत्तरसे सन्तुष्ट न हुआ हो तब उक्त स्वामीजीने उसको इस महाभाष्यकी पंक्तिसे संतुष्ट किया हो जो अन्यमतमें सबसे प्राचीन, महत्वका और प्रभाव शाली महाभाष्य है। दूसरे यहकि उनको श्री उमास्वामीसे पूर्वका कोई प्राचीन प्रमाण जैनमतके ग्रन्थोंसे प्राप्त न होसका हो और उमास्वामी जिन्होंने सम्वत् १०१ में तत्त्वार्थसूत्र की रचना कीथी उनके पश्चात् के ग्रंथों द्वारा इस व्याकरणके प्रश्नका समाधान नहीं होसक्ता है। इसीकारण से हमने उक्त इतिहास दिया है कि कोई अन्यमतका विद्वजन 'पीत पद्म शुक्ललेश्याः' वाक्यकी रचना पर संदेह और तर्क न कर सकै।

प्रथम इसके कि हम श्री पतंजलिकी वार्तिक और उसकी संस्कृत व्याख्याका शब्दश. अनुवाद और भावार्थ लिखें 'अ' स्वरके अठारहरूप और अष्टाध्यायीके 'अणुदित्सवर्णस्य चा प्रत्यय.' सूत्र ६९॥ 'तपरस्तत्कालस्य' ॥ सूत्र७०। और विप्रतिषेधे परं कार्यम्। अध्यायप्रथम पादचौथा सूत्र दूसरे को समझादेवें कि उक्त वार्तिकका अनुवाद भले प्रकार और सरलता से पाठकोंकी समझ में आजावे।

'अ' स्वर के अठारह रूप हैं। उदात्त 'अ' जिसका उच्चारण तालु आदि स्थानोंके ऊपरके भागसे होता है। अनुदात्त 'अ' जिसका उच्चारण तालु आदि स्थानों के निचले भाग से होता है और स्वरित 'अ' जिसके उच्चारणमें उदात्त और अनुदात्त दोनों वर्णधर्म समान हों अर्थात् दोनों उदात्त अनुदात्त वर्णधर्म मिले हों। इन प्रत्येक तीन के अनुनासिक उच्चारण और निरनुनासिक उच्चारण से दोदो भेद होकर छह भेद 'अ' स्वर के हुये, पश्चात् प्रत्येक छह भेद ह्रस्व (एक मात्रिक उच्चारण) दीर्घ (दो मात्रिक उच्चारण) प्लुत (तीन मात्रिक उच्चारण)से अठारह भेद इस प्रकार होजातेहैं अ-अ॒-अ॑ अँ-अँ॒-अँ॑। आ-आ॒-आ॑ आँ-आँ॒-आँ॑। अ३-अ॒३-अ३॑ अँ३-अँ॒३-अँ३॑। इनमें उदात्त पर कोई चिन्ह नहीं हैं, अनुदात्त 'अ' के नीचे ऐसी—लकीर है और स्वरित 'अ' के ऊपर ऐसी। खड़ी लकीर है॥

मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति ॥

मध्यम-	=मध्यमा वृत्तिका अर्थात् मध्यमकालिक उच्चारणका और
विलम्बितयोः॥उपसंख्यानम्॥इति॥	=विलम्बिता वृत्ति अर्थात् विलम्ब वा देरीकालिक उच्चारणका समावेश वा अन्तर्गतहोना चाहिये (इस वार्तिक सम्बन्धीय, इतिहास, व्याख्या, श्री पतञ्जलिका भाष्य अनुवाद सहित नीचे टिप्पणी में देते हैं)

खृष्ट शतकसे लगभग ६५० वर्ष पूर्व थी पाणिनिजी ने जो दाक्षीके पुत्र शालातुरीय नामक ग्राममें उत्पन्न हुये थे अष्टाध्यायीरूप व्याकरण जिसमें ३६७५ सूत्र हैं बनाया तत्पश्चात् खृष्टीय शतकसे ३५० वर्ष पहिले कात्यायन मुनिने पाणिनि मुनिके सूत्रोंमें जो त्रुटि थी उसको दूर करनेके लिये लगभग एक सहस्र अस्सी वार्तिक रचे। तत्पश्चात् पतंजलि मुनिने खृष्टीय शतकसे १५०वर्ष पूर्व अष्टाध्यायीके सूत्रों पर महाभाष्य रचा जिसमें लगभग एक लाख श्लोक हैं इससे बड़ा कोई भाष्य वा वृत्ति उक्त व्याकरण पर नहीं है। खृष्टीय शतक ६२५में भर्तृरचित भागवृत्ति इसी अष्टाध्यायी पर रचीगई। इसके कुछ समय पश्चात् लगभग ६५० खृस्ताब्दीमें वामन जी और जयादित्यजीने 'काशिकावृत्ति' लगभग दशसहस्र श्लोक के रची। इसी अष्टाध्यायी की इसी काशिका वृत्तिके ऊपर जिनेन्द्रबुद्धि (द्वितीय पूज्यपाद स्वामी) ने खृष्टीय ७०० से ७५० तक 'काशिकाविवर्ण पञ्चिका' इस काशिका पर बनाई जिसकी श्लोक संख्या ३०००० सहस्र से अधिक है। इसका सम्पादन श्रीमान् शनीशचन्द्र चक्रवर्तिने कियाहै और वारिन्द्रअन्वेषण सभा,राजशाही प्रान्त से प्रकाशित हुई है। स्मरण रहै कि प्रथम पूज्यपाद स्वामी सर्वार्थसिद्धि वृत्ति के कर्ता ने विक्रम सम्वत् ५४० के लगभग जैनेन्द्र व्याकरण रचा॥ इसके पश्चात् अष्टाध्यायी पर भागवृत्तिअर्थात् वैदिक सूत्रोंको छोड़कर संस्कृतमें ही लघुभाष्य रचा इसके रचयिता पुरुषोत्तमदेव हुये। पश्चात् भट्टोजी दीक्षितने खृष्टीय बारहवी शतकमें 'सिद्धान्त कौमदी' रची॥ इसमें पाणिनि मुनिके समस्त सूत्र हैं परन्तु सूत्रोंका क्रम भट्टोजी दीक्षितने परिवर्तन करदियाहै॥ इसकेपीछे मध्यकौमुदी रचीगई, फिर श्रीयुत् वरदराजने लघुकौमदी रची जिसमें अष्टाध्यायीके १२००सूत्रसे अधिकहैं॥

इस महाभाष्यके रचनेके सम्बन्धमें एक मनोरञ्जक दन्त कथा इस प्रकार है कि एक बार पतंजलिकी माता सूर्यको अर्घ देरही थीं कि अर्घ देते समय लोटेमेंसे एक सांपका बच्चा भूमिपर गिरपड़ा श्रीमतीकी जिव्हासे घबराहटमें 'को भवान्' (=आप कौन हैं) के स्थान में 'कोर्भवान्' निकलगया, तब ('सर्पोऽहम्' के स्थानमें) उत्तर मिला कि 'सपोऽहम्' (=मैं सांप हूं)। तब माताजीने सावधानीमें आकर प्रश्न किया कि 'रेफकुतः गतः' अर्थात् सांप के बच्चे से पूछा कि तुमने अशुद्ध उच्चारण 'सर्पोऽहम्' के स्थानमें 'सपोऽहम्' क्यों किया फिर उत्तर मिलाकि 'त्वयाऽपहृतः' अर्थात् रेफ तुमने हरलिया भावार्थ 'को भवान्' के स्थानमें तुम 'कोर्भवान्' वाक्यका उच्चारण करगई फिर मैंने 'सपोऽहम्' कहदिया। 'कोर्भवान्' का रेफ यदि 'सपोऽहम्' वाक्य में मिलादियाजावे तो दोनों वाक्य 'को भवान्' (=आप कौन हैं) और 'सर्पोऽहम्' (मैं सांप हूं) ठीक होजावेंगे। पश्चात् ऐसा

के ग्राही होतेहैं) जैसे 'सनाशंसभिक्ष उः । ३ । २ । १६८ उन धातुओंके (जिनके अन्तमें सन् प्रत्ययहो) और 'आशंस्' (=चाहना) और भिक्ष् (=मांगना) धातुओंके पश्चात् उनस्वभाववाले कर्ताओंके अर्थमें 'उ' प्रत्यहो जैसे भिक्ष् मांगनासे भिक्षु · भीख मांगनेवाला बना । यहांपर केवलह्रस्व उका ग्रहणहै, दीर्घ ऊ और प्लुत'उ३'का ग्रहणनहीं हुआ ॥

() तपरस्तत्कालस्य ॥ ७० ॥ =त-परः१। तत्कालस्य६। (स्वम्१रूपम्१)=तकार जिससे परे हो वा तकारसे जो परे हो वह उतनेकी संबन्धीय सवर्ण को अपने अर्थ और का ग्राहक हो ॥

तपरः१।तत्कालस्य६। =(अर्थात्) तकार (=त्) जिस अक्षर से पीछे आवे अथवा तकार (=त) से कोई अक्षर परेमें होतो वह अक्षर

स्वम्१॥रूपम्१॥ =अपने अर्थ रूप और अपने उन सवर्णीय अक्षरोंका रूप वअर्थका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें वही काल लगे, उतनाही समयलगे जितना कि पूर्वोक्त अक्षर के उच्चारणमें लगता है सूत्र ६९ में यह कथन कियागया है कि व्यक्तिगत स्वरमें उसके सर्व सवर्णीय अक्षर समावेश होजावेंगे इस प्रकारकि 'अ' में आ भी अन्तर्गत होगा और इ में ई इत्यादि । यहसूत्र निर्देश करता है कि अक्षर का वही रूप ग्रहण किया जावेगा न कि उसके जाति के सर्व अक्षर ग्रहण किये जावेंगे यह कार्य अक्षर के पश्चात् अथवा प्रथम त् लाने से होता है जैसे अत् का आशय केवल 'अ' अक्षर ग्रहण करना है न कि उसके सर्व सवर्णीय अक्षर । इसी प्रकार उत् का अभिप्राय केवल ह्रस्व'उ' ग्रहण करने का है न कि दीर्घ और प्लुत उ । इस सूत्रमें तपरः और तत्कालस्य दोपद है । तपरःका अर्थ जो तकार के परे हो अथवा तकार जिसके पीछे हो, 'तत्काल' का अर्थ है उतनाही काल ॥ समय की अपेक्षासे स्वरोंकेह्रस्व दीर्घ, और प्लुत तीन भेद हैं. 'ह्रस्व' स्वर में एक मात्रा होती है, दीर्घ स्वर दो मात्रिक होते हैं और प्लुत स्वर तीन मात्रा वालेहोते हैं । व्यंजन के उच्चारण में ह्रस्व स्वर से आधा समय लगता है इसलिये एक अक्षर त् जिसके पश्चात् हो औरजो'त'केपश्चात् हो अपने अर्थ वरूपका ग्राहक है और केवल उन सवर्णीय अक्षरोंके अर्थवरूपोंका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें उतनाहीवासमान काल लगताहोजैसे अक्षर'अत्'में उदात्त,अनुदात्त,स्वरित अनुनासिकऔरअननुनासिक'अ'अर्थात्छह ह्रस्वरूप'अ'केगर्भितहोंगे,दीर्घऔर प्लुत रूप अकारका एकभी समावेश न होगा ॥ यहसूत्र आज्ञा ज्ञापकहै । इस सूत्रमें 'अण्' शब्दकी अनुवृत्तिपूर्व सूत्रसे नहींआती है । अण् प्रत्याहार के चौदह अक्षरों के अतिरिक्त किसी भी अक्षर के पश्चात् तकार आवे, तब उसपर भी यह सूत्र लागू होगा । यह सूत्र पूर्व सूत्रको परिमित और समर्यादा करता है अतः इससे पूर्व सूत्रका अर्थ होगाकि 'अणप्रत्याहारके अक्षर यदि उनमेंसे किसी भी अक्षर के प्रथम वा पश्चात् में 'त' न हो तो वे अपने अर्थ व रूपके और अपने सवर्णीय अक्षरों के अर्थ व रूपों के क्रमसे ग्राहक होंगे ॥ इसप्रकार कि सूत्र ७ १-९ 'अतोभिस ऐस्' शब्द जिनके अन्तमें अत् (अर्थात् ह्रस्व अकार) हो, तो भिस्के स्थानमें ऐस् हो जैसे वृक्ष+भिस् के स्थानमें वृक्ष+ऐस् होकर वृक्षैः बना परन्तु खट्वा जिसके अन्तमें दीर्घ 'आ'है और जिसका उच्चारण काल अकारके उच्चारण कालसे भिन्नहै, उक्तसूत्र लागू न होगा और खट्वाभिः रूप बनेगा अर्थात् भिस् का ऐस् नहोगा ॥

() विप्रतिषेधे७। =(परस्पर) तुल्यबल विरोधमें (=विप्रतिषेधे) अर्थात् तुल्य वा समान बलवाले आपसमें विरोधी

परम्१॥ कार्यम्॥ =नियम वा सूत्र किसी स्थानमें (किसी कृतिमें)एक साथ लगने हों तो (अष्टाध्यायीके) पिछले दिये नियम वा सूत्रके अनुसार कार्य हो भावार्थ अष्टाध्यायीमें दिया हुआ पिछला सूत्र लागू हो इससे पूर्वका सूत्र न लगेगा ॥ श्री पतंजलिभाष्य ऐसे है कि

प्रथम 'उदात्त ह्रस्व निरनुनासिक' अ है। दूसरा 'अनुदात्त ह्रस्व निरनुनासिक' अ़ है। तीसरा 'स्वरित ह्रस्व निरनुनासिक' अ॑ है। (विना नाक बोलो)
चौथा 'उदात्त ह्रस्व अनुनासिक' अँ है। पांचवां 'अनुदात्त ह्रस्व अनुनासिक' अँ है। छठवां 'स्वरित ह्रस्व अनुनासिक' अँ॑ है। (नाकसे बोलो)
सातवां 'उदात्तदीर्घ निरनुनासिक' आ है। आठवां 'अनुदात्त दीर्घनिरनुनासिक' आ़ है। नववां 'स्वरित दीर्घ निरनुनासिक आ॑' है। (विना नाक बोलो)
दशवां 'उदात्तदीर्घ अनुनासिक' आँ है। ग्यारहवां 'अनुदात्त दीर्घअनुनासिक' आँ है। बारहवां स्वरित दीर्घ अनुनासिक आँ॑ है। (नासिकासे बोलो)
तेरहवां 'उदात्त प्लुत निरनुनासिक' अ३ है। चौदहवां 'अनुदात्त प्लुत निरनुनासिक' अ३ है। पंद्रहवां 'स्वरित प्लुत निरनुनासिक' अ॑ ३ है। (विनानाक बोलो)
सोलहवां 'उदात्त प्लुतअनुनासिक' अँ३ है। सत्रहवां 'अनुदात्त प्लुत अनुनासिक' अँ३। अठारहवां 'स्वरित प्लुत अनुनासिक' अँ॑ ३ है। (नाकसे बोलो)

() अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः = अण्१।, उदित्१।, सवर्णस्य६।।।, च, अप्रत्ययः१।, स्वम्१, रूपम्१।।। ॥ अष्टाध्यायी प्रथम अध्याय प्रथमपादका ६६ वां सूत्र

अण्१। = प्रत्याहार अण् के अक्षर अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, जिनमें अ, इ, उ प्रत्येक के अठारह 'ऋ' के अठारह और बारह 'लृ' के रूप मिलने से ऋकार के तीस रूप, ऐसे ही लृ के बारह रूप और ऋ से अठारह रूप मिलने से ऐसे लृ कारके भी तीस रूपहैं (क्योंकि ऋ, और लृ की आपस में सवर्ण संज्ञा मानी गई है) ए, ओ, ऐ, औ, में से प्रत्येक के बारह बारह रूप,हैं। अनुनासिक औरअननुनासिक भेदों से य, व, ल प्रत्येकके दोदो रूपहैं अर्थात् साधारण य, व, ल में अनुनासिक यँ वँ लँ का भी समावेश होजाता है। र, ह यद्यपि 'अण्' प्रत्याहारमें अन्तर्गत हैं तौभी अपने एक एक रूपको ही प्रगट करते हैं क्योंकि उनका कोई सवर्णीय अक्षर नहीं है

उदित्१। = कु चु टु तु पु ये उदित् हैं अर्थात् कु = कवर्ग (= क, ख, ग, घ, ङ) चु = चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) टु = टवर्ग (= ट, ठ, ड, ढ, ण), तु = तवर्ग (= त, थ, द, ध, न) पु = पवर्ग (= प, फ, ब, भ, म,) [समावेशहैं]

स्वम्१,रूपम्१।।।च सवर्णस्य६।।।रूपम्१।।। = अपनेअर्थव रूपको तथासवर्णके अर्थवरूपको ग्रहणकरतेहैं (जैसे 'अ'में अठारा प्रकारके 'अ' और 'कु'में क-ख-ग-घ-ङ

इस सूत्रमें 'स्वंरूपम्' वाक्यकी अनुवृत्ति 'स्वं रूपं शब्दस्या शब्द संज्ञा' इस ६८ वां सूत्रसे आती है। स्वम्का अर्थ अपनाहीहै अर्थात् अर्थको प्रगटकरताहै और 'रूपम्' शब्दके व्यक्तिगतआकारको प्रगट करताहै ॥ स्वम्रूपम्का अतः यह भाव है कि किसी शब्दके अर्थ और उसके आकार का द्योतक हो। जैसे कोई नियम जो अग्नि पर लागू होता है उस शब्द पर जो अ, ग्, न्, इ से बना हो लागू होगा नकि अग्नि शब्द के समानार्थक वाची शब्दों पर जैसे कि पावकः, ज्वलनः इत्यादि ॥ जैसे सूत्र आद्गुणः (६-१-८७] का अर्थ है कि 'जब एक स्वर अ के पश्चात् आवे तो दोनों स्वरोंके स्थानमें गुण संज्ञाका आदेश हो, यहांपर सूत्र मे केवल ह्रस्व अ का निर्देश है परन्तु इस सूत्रसे दीर्घ 'आ' भी आजाता है जैसे केवल नर+ईशः = नरेश नहीं है परन्तु महा+ईश भी महेश है ॥ अन्य उदाहरणों के लियेदेखो ७-४-३२' ५-४-५०, ६-४-१४८ सूत्र ॥

अप्रत्ययः१। = यदि उक्त सर्व अक्षर प्रत्ययकी भांति या प्रत्ययकी रीतिपर प्रयोगमें न लाये जावेंतो (अपने रूप और सवर्ण के रूपों

ये १/३।हि*द्रुतायाम् ७/१।।वृत्तौ ७/१।। =(शिष्य कथन करता है कि कितना काल भेद पड़ता है) जो ही द्रुतावृत्तिमें

वर्णाः १/३।त्रिभाग-अधिकाः १/३।मध्यमायाम् ७/१।। =बोलनेके क्रम (=वर्णाः--देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३३७) हैं (समयका) तीन भाग अधिक मध्यमा वृत्तिमें

ते १/३। =वे (बोलनेके क्रम=वर्णाः) है अर्थात् जो ही कालद्रुतावृत्तिमें वर्णोंके उच्चारणमें लगताहै उससे तीसराभाग अधिक(काल)मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है

ये १/३ च*मध्यमायाम् ७/१।।वर्णाः १/३।त्रिभाग-अधिका १/३।ते १/३।तु*विलम्बितायाम् ७/१।। =और (=च) जे मध्यमा (वृत्ति) में बोलनेके क्रम (=वर्णाः) है। तीन भाग =अधिक(मध्यमा वृत्तिसे)वे(बोलनेकेक्रम)बिलम्बिता वृत्तिमेंभी(=तु-पद्म०कोश१७२)है अर्थात् जो (काल) मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है उससे तीसरा भाग अधिक विलम्बिता वृत्तिके उच्चारणमें लगता है जैसे यदि नौ पल काल द्रुता उच्चारणमें लगै तो मध्यमामें बारह पल और विलम्बितामें सोलह पल लगेंगे ॥

सिद्धम् १/१।।तु*अवस्थिताः १/३।वर्णाः १/३। =(उत्तर) वर्ण वा अक्षर तोअवस्थितहै इससे(गुरूजी कहते हैं हमारा कथन)बनजाताहै अर्थात् काल भेद होने पर भी तीनों वृत्तियोंमेंवर्ण ज्योंकेत्यों रहतेहैंइससेबनजातीहैं

वक्तु ६/१।चिर-अचिर-वचनात् ५/१।।वृत्तय १/३।।विशिष्यन्तेT =क्योंकि वक्ताके देर और शीघ्र उच्चारण सेही द्रुताआदि वृत्तियोंमें भेदपडता है

सिद्धम् १/१।।एतत् १/१।।कथम्* ? =(गुरुजी कहते हैं कि) यह सिद्ध होजाता है। [प्रश्न] कैसे सिद्ध होजाता है

अवस्थिता १/३।वर्णा १/३। =(उत्तर) क्योंकि वर्ण (प्रत्येक वृत्तिमें जैसे के तैसे] अवस्थित वा स्थिर

द्रुता-मध्यमा-विलम्बितासु ७/३।। =द्रुता-मध्यमा-विलम्बिता कालके उच्चारणों में (रहते) हैं

किम् १/१।।कुतः*तर्हि*वृत्ति-विशेष १/१। =(प्रश्न (यदि वर्ण अवस्थित हैं)तो वृत्ति भेद कहांसे हुये(तीनों वृत्तियें कहांसे हुई')

वक्तु ६/१।चिर-अचिर-वचनात् ५/१।।वृत्तय १/३।।विशिष्यन्तेT =(उत्तर) वक्ताके देर और शीघ्र बोलने के कारण से वृत्तियोंमें भेद होगये ॥

वक्ता १/१।कश्चित्*आशु*अभिधायी १/१।भवतिT =कोई वक्ता झट (=आशु) बोलता है (अर्थात्)

आशु*वर्णान् २/३।अभिधत्तेTकश्चित्*चिरेण* =शीघ्रता से वर्णोंका उच्चारण करता है। कोई वक्ता विलम्बसे बोलताहै

कश्चित्*चिरतरेण ३/१।कश्चित्*चिरतमेन ३/१। =कोई वक्ता और देरसे बोलता है कोई और भी देरसे बोलता है (जैसे पथिक से घोड़ा धीरे चलता है। घोडा से मनुष्य धीरे चलता है और मनुष्यसे बच्चाधीरे चलता है ॥ सारांश यह है कि इनतीनों शीघ्र उच्चारण रूप वृत्तिमें मध्यम कालीन उच्चारणमें और विलम्बित कालके उच्चारण में काल भेद रहने पर भी वर्णों के अवस्थित (ज्यों के त्यों) रहने से काल भेद नहीं माना जाता है क्योंकि काल भेदमें वक्ताका जल्दी और देरसे कहना अथवा बोलना ही कारण है क्योंकि शब्द का रूप प्रत्येक अवस्थामें एकसा रहता है ॥ किं कुत' के स्थानमें किसी किसी मुद्रित भाष्यमें'किं कृतः' पाठहै अर्थ दोनों पाठोंका एकसा है ॥ पृष्ठ ७५ में भिन्नभिन्न अनुवादकोंके अनुवाद शब्दशः दिये हैं जिनसे पाठक कुछ लाभ उठासकें हमारी समझमें उनके अनुवाद नहीं आये है अगले एक पृष्ठ ७६ में भिन्न भिन्न पाठ इस वार्तिकके जो हमारे यहां के ग्रन्थोंमें पाये जाते है वे दियेगये हे ॥ इस समस्तको पाठक बहुत ध्यानसे पढैं ॥

तपरस्तत्कालस्येत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन। यद्येवं द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानं कालभेदात्। द्रुतायां तपर-करणे मध्यम-विलम्बितयोरुपसंख्यानं कर्तव्यम्। तथा मध्यमायां द्रुतविलम्बितयोः। तथा विलम्बितयां द्रुतमध्यमयोः। किं पुनः कारणं न सिद्ध्यतिकालभेदात्। ये हिद्रुतायां वृत्तौ वर्णास्त्रिभागाधिकास्ते मध्यमायां ये च मध्यमायां वर्णास्त्रिभागाधिकास्ते तु विलम्बितायाम्॥ सिद्धं त्ववस्थितावर्णाः। वक्तुश्चिराचिर वचनाद् वृत्तयो विशिष्यन्ते। सिद्धमेतत्। कथम्। अवस्थिता वर्णा द्रुतमध्यमविलम्बितासु किं कुतस्तर्हि वृत्ति विशेषः। वक्तुश्चिराचिर वचनाद् वृत्तयो विशिष्यन्ते। वक्ता कश्चिदाश्वभिधायी भवति। आशु वर्णानभिधत्ते। कश्चिच्चिरेण, कश्चिच्चिरतरेण॥ कश्चिच्चिरतमेन॥ पतञ्जलि महाभाष्य, प्रथमपाद 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्र की व्याख्यासे उद्धृत है॥

७३

विप्रतिषेधेन३/१।तपरस्तत्कालस्य६/१।इति॰=	='विप्रतिषेधेन परं कार्यम्' सूत्र द्वारा 'तपरस्तत्कालस्य' ऐसे (सूत्रकी)
एतद्॰भवतिT	=इस समय (=एतद्॰वैद्यकोश पृष्ठ १५३ में अव्यय माना है) प्राप्ति होतीहै अर्थात्'अणुदित्स-वर्णस्यचाप्रत्ययः' सूत्रकी निवृत्ति और 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्रकी प्रवृत्ति 'विप्रतिषेधेन परंकार्यम्' सूत्रसे होती है॥
यदि॰एवम्॰	=(प्रश्न) जो ऐसेहैं अर्थात् तत्काल(=उतनाकाल)कीप्रवृत्ति करताहै और भिन्नकालकी निवृत्ति
द्रुतायाम्७/१॥तपरकरणे७/१॥मध्यम-	=तो शीघ्र कालिक उच्चारणकी वृत्तिमें 'तपर' करनेमें मध्यमकालीन उच्चारणका
विलम्बितयोः६/२॥उपसंख्यानम्१/१॥कालभेदात्५/१।	=और विलम्बित या देरी कालीन उच्चारणका समावेश है (उसमें) काल भेद पड़जाता है (क्योंकि उतनेही कालमें शीघ्रतावृत्ति, मध्यमावृत्ति और विलम्बिता वृत्ति नहीं होसक्ती)
द्रुतायाम्७/१।।तपरकरणे७/१।।	=(अर्थात् शिष्यके प्रश्न वा शंकाका आशय यहहै कि) शीघ्र कालिक उच्चारणमें तपरकरणमें
मध्यम-विलम्बितयोः६/२।।उपसंख्यानम्१/१।।कर्तव्यम्१/१।।	=मध्यमा कालीन उच्चारण और विलम्बिता कालीन उच्चारणका समावेश करनाचाहिये
तथा॰मध्यमायाम्७/१।।(तपर करणे७/१।।)द्रुत-	=और मध्यमा कालीन उच्चारणमें (तपर करणमें) द्रुताकालीन उच्चारणका
विलम्बितयोः६/२।।(उपसंख्यानम्१/१।।)	=और विलम्बिता कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)
तथा॰विलम्बितायाम्७/१।।(तपरकरणे) द्रुत-	=और विलम्बित कालीन उच्चारणमें (तपर करणमें) द्रुता कालीन उच्चारण का
मध्यमयोः६/२।।(उपसंख्यानम्१/१।।)	=और मध्यमा कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)
किम्१/१।।पुनः॰कारणम्१/१।।	=(शिष्य बल देकर कहता है कि गुरुजी समझो) फिर क्या कारण है कि
न॰सिद्ध्यतिTकालभेदात्५/१।	=(ऊपर के तीनो उच्चारणोंकी) सिद्धि नहीं होती है। क्योंकि (उतनाहीकाल नहींलगता है) काल भेद पड़जाता है॥

७३

अथवा पीतश्च पद्मश्च शुक्लश्च पीतपद्मशुक्ला वर्णवन्तोऽर्थाः । तेषामिव लेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः ॥

अथवा*	=वा (यदि उपर्युक्त उत्तरसे अधिकतम संशयशील प्रश्न कर्ताओंका समाधान न हो तो)
पीत:[1/1]।च*पद्म:[1/1]।च*शुक्ल:[1/1]।च*पीतपद्मशुक्ला:[1/3]।	=पीत और पद्म और शुक्ल हैं वे पीत पद्म शुक्ल
वर्णवन्त:[1/3]।अर्था:[1/3]।	=रूपवाले पदार्थ हैं अर्थात् पीत पद्म शुक्ल ये तीनों सूत्रित शब्द पीत पद्म शुक्ल रंगवाले वस्तुओंके शब्दार्थहैं औरउन्हीं रंगवाले पदार्थोंके वाचकहैं और येतीनों शब्दपुरुषलिंगीहैं॥
तेषाम्[6/3]।इव*लेश्या:[1/3]।।येषाम्[6/3]।ते[1/3]।	=तिन (पीत पद्म शुक्ल रंगवाले पदार्थों) के सदृश हैं लेश्यायें जिन (देवों) की ते
पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या:[1/3]। ॥	=पीत पद्म शुक्ल लेश्या वालेहैं(यहां उक्त रंगीन वस्तुओंकी उपमा भी इन लेश्याओं को दी गईहै और उपमित समासमें ह्रस्व होता ही है अतः पीतपद्मशुक्ल उपमितसमास ह्रस्वरूपमें है ॥

() यथाहु (यथा-आहुः) द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति ॥ सर्वार्थसिद्धि प्रथम संस्करण पृष्ठ २४७, द्वितीयावृत्ति पृष्ठ१४५ "यथा द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानमिति द्रुतमध्यमविलंबिता इति" ॥ हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ८८

() "द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलबितयोरुपसंख्यानमित्यत्रौत्तरपदिकं ह्रस्वत्वमेवमिहापि वेदितव्यं" तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७०

() "द्रुतायां तपरकरणे मध्यविलंबितयोरुपसंख्यानमित्यत्र औत्तरपदिकं ह्रस्वत्वमेवमिहापिवेदितव्यं" यह पाठ प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर की हस्त लिखिततत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ८७४ परसे तथा प०पन्नालालदूनीजीकी हस्तलिखित राजवार्तिक पृष्ठ ५४ अध्याय ४ परसे लिया है इनदोनों प्रतियों के पाठमें 'मध्यम' शब्दके स्थानमें'मध्य'शब्द मिलता है । पं०जय०वचनिकाकी एक मुद्रित दोहस्तलिखित प्रतियोंमें'मध्या'मिलताहै॥ 'मध्यम'चाहिये

() पीतपद्मशुक्लानां द्वन्द्वे पीतपद्मयोरुत्तरपदिकं ह्रस्वत्व 'द्रुतायान्तपरकरणान्मध्यमविडंबितयोरुपसंख्यानमित्याचार्यवचनदर्शनात् मध्यमाशब्दस्य विडंबितोत्तरपदे द्वन्द्वेपि ह्रस्वत्वसिद्धेः' । यह पाठ मुद्रित तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८४ और दो हस्त लिखित प्रतियोंके क्रमसे पृष्ठ ३०५ और३२१ पर है ॥ यहीपाठहै इसकोहमने बहुतसावधानीसे तीनोंप्रतियोंको मिलाकर लिखाहै इसमें'विलंबिता'के स्थानमें विद्यानंदिस्वामी'विडंबिता' लायेहैं और सप्तमी विभक्तियोंके स्थानमें पचमी विभक्तियां लाये हैं । हमारी ठीक ठीक समझमें यह नहीं आया है कि'इति आचार्य वचन दर्शनात्' वाक्य में 'आचार्य' से श्लोक वार्तिकके कर्ताका पूज्यपाद स्वामी, श्रीमदकलंक भट्ट जिन्होंने यह वार्तिक शब्दशः पतञ्जलि मुनिके महाभाष्यसे उद्धृत की है इनमेंसे किसी से अभिप्राय है अथवा श्रीमान् पतंजलिसे तात्पर्य है अथवा किसी अन्य आचार्य से प्रयोजन है । विद्वज्जन इसका अन्वेषण करके कृपया मुझको सूचित करें ॥

पं० जयचंद्ररायजी की वचनिकासे उद्धृत

"इहां प्रश्न,जो, इहां समास विषैं पीत पद्म शुक्ल इनके ह्रस्व अकार कैसे भया ? शब्द तौ पीता पद्मा शुक्ला ऐसा चाहिये। तहां कहिये है,जो व्याकरण विषैं उत्तर पदसे ह्रस्व होना भी कहा है। जैसे द्रुता (द्रुती ?) ऐसा शब्दकातपरकरणविषैं है। तहां'मध्याविलंबिता का उपसंख्यान है ऐसे इहां भी जानना।जय०वचनिकामुद्रित पृष्ठ ३८२ (यह पाठ दोहस्तलिखित पाठोंसेभीमिलाकर लिखाहै जिनमें 'मध्याविलंबिका उपसंख्यानहै।मुद्रित में 'मध्याविलंबिता का उपसंख्यान है ऐसा पाठ है ॥

पं० पन्नालाल दूनी के अनुवादसे उद्धृत

पीतापद्मामें इहांउत्तर पद संबंधी ह्रस्वपणो है।'सो यथा कार्यका विपरिणामतैं सिद्धभयो है। अर द्रुतायां या सूत्रमें तपर करण है। तामें मध्यविलंबितयोरुपसंख्यानं ऐसो व्याकरण का वार्तिक है। तहां मध्याविलंबिता शब्दमें उत्तर पद संबंधी ह्रस्वपणो भयोहै, तैसेही इहां भी उत्तर पद संबंधी ह्रस्वपणो जानने योग्य है ॥ पं० पन्नालाल दूनी पृष्ठ५४ अध्याय चौथेसे उद्धृत

पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकरके अनुवाद से,उद्धृत

(प्रश्न) "पीतपद्मशुक्ल इन शब्दनिकैं ह्रस्व अकार है यातैं पुरुषलिंग है ॥ तातैं लेश्या का विशेषणकरि पीतादिकशब्दनिका निर्देश करना युक्तनाहीं होय है। किंतु पीता पद्माशुक्ला ऐसाकहना चाहिये। यातैंलेश्या शब्द स्त्रीलिंग है ताके विशेषण भी तिन्ही लिंग का होना चाहिये। ऐसा शब्द शास्त्र का न्यायहै॥समाधान। व्याकरणविषैंउत्तर पदतैं ह्रस्व होना भी कह्या है। सो यथा कार्यके विपरणमनतैं सिद्ध है ॥ जैसे द्रुतायां या सूत्रमें तपर करण है ताके विषैं मध्याविलंबित का उपसंख्यान है। यह व्याकरण सूत्र है। यहां उत्तर पदका ह्रस्व होने तें मध्यविलंबित ऐसा सिद्ध होय है। तैसे यहां भी पीतादिकशब्दनिके ह्रस्वपना करि निर्देश जाननी"

पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखित पृष्ठ ६७४

पं० गजाधरलाल शास्त्रीके अनुवादसे उद्धृत

"पीता च पद्मा च शुक्ला च पीतपद्मशुक्लाः पीतपद्म शुक्लालेश्याः येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः । यह यहां पर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास है। यदि यहां पर कहाजाय कि-'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' यहांपर द्वन्द्व समास किया जायगा तो द्वन्द्वमें पुंवद्भाव तो होगा नहीं इसलिए 'पीतपद्मशुक्ललेश्या' यह जो पुंवद्भावविशिष्ट निर्देश कियागया है अर्थात् आकार का अकार करदियागया है यह अयुक्तहै किन्तु यहां पर'पीतापद्माशुक्लालेश्याः'ऐसानिर्देश करनाचाहिए। सो ठीक नहीं। यहां पुंवद्भाव नहीं हुआ है किंतु उत्तर पद रहने से पूर्वपद को ह्रस्व हुआ है जैसे "द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानम्"इस व्याकरण शास्त्रकी वार्तिकमेंमध्यमा च विलंबिता च 'मध्यमविलंबितातयोः' इसद्वंद्व समासयुक्त पदमें 'विलंबिता' उत्तर पद रहने से 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्व करि निर्देश कियागयाहै उसी प्रकार 'पीतपद्मशुक्ला लेश्याः' यहांपर भी 'शुक्ला' उत्तरपद के रहते पीता और पद्मा इन दोनों पदों में ह्रस्व निर्देश न्याय्य है" ॥

'द्रुतायाम्' जहांतक हमने ८, १० व्याकरण देखे हमको नहीं मिला और अन्य विद्वानभी कहते हैं कि 'द्रुतायाम्' ऐसा कोई सूत्र नहीं है ॥ जो महोदय इसंपढ़ें उनको विद्यार्थियों के लाभार्थ उचित है कि यदि 'द्रुतायाम्' कोई सूत्र है तो कृपया मुझे सूचनादें कि अनुवादमें मुद्रित कियाजावे।

तद्यथा—छत्रिणो गच्छन्ति इति अछत्रिषु छत्रिव्यवहारः। एवमिहापि मिश्रयोरन्यतरग्रहणांभवति॥ अयमर्थः सूत्रतः कथं गम्यते ? इति चेदुच्यते—एवमभिसम्बन्धः क्रियते, द्वयोः कल्पयुगलयोः पीतलेश्या। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पद्मलेश्यायाः

तद्यथा॥छत्रिणः१।गच्छन्ति। इति॥ =जैसे (लोक विदित वा प्रसिद्धमें राजादिक) छत्रधारी जाते हैं इस प्रकार

अछत्रिषु७।छत्रिन्-व्यवहारः१। =विना छत्रवाले (साथियों) विषैं छत्रधारीका व्यवहार होता है अर्थात् राजादिक छत्रधारी और उनके साथीगण सब साथ साथ जाते हैं परन्तु पूंछने पर लोक प्रसिद्धमें यह कहा जाता है कि अमुक छत्रधारी राजा जाते हैं भावार्थ मुख्य अथवा प्रधानका तो नाम लेते हैं उसमें गौणभी गर्भित होजाते हैं ॥

एवम्॥इह॥अपि॥ =इस प्रकार यहां (लेश्याओंके कथनमें) भी

अन्यतर-ग्रहणम्१।।। =दोनों (पृथक् और मिश्र लेश्याओं)में से एकके(सूत्रमें) ग्रहणसे

मिश्रयोः३।भवति।। =मिश्र (पीतपद्म, पद्मशुक्ल वा शुक्लपद्म लेश्याओं) का (ग्रहण) होजाताहै भावार्थ ऐसाहैकि पीत पद्म-शुक्ल-तीन लेश्यायें पृथक् पृथक्हैं और पीतपद्म तथा पद्मशुक्ल (जोशतारसहस्रारमें भीहैं) ये दो मिश्र हैं। सूत्रमें पीत,पद्म,शुक्ल व्यक्तिगत लेश्याओं का ग्रहण है इन व्यक्तिगत लेश्याओंके ग्रहणसे पीतपद्म, पद्मशुक्ल इन दो मिश्र लेश्याओंका ग्रहण उसी प्रकारसे होजाताहै कि जिस प्रकार किसीसड़कपर छत्री और विनाछत्री वाले दोनों प्रकारके मनुष्य जातेहों। उनमें छत्रीवाले अधिक होंतो वहांपर 'छत्रिणोगच्छंति' अर्थात् छत्रीवाले जा रहे हैं ऐसा व्यवहार होताहै और वहां पर 'छत्रीवाले' कहनेसे छत्री और विनाछत्रीवाले दोनों प्रकारके पुरुषोंका ग्रहण होजाताहै तैसेही इस सूत्रमें पीत,पद्म,शुक्ल लेश्याओंसे मिश्रका भी है

अयम्१।अर्थः१।सूत्रतः॥कथम्॥गम्यते।। =यहअर्थ सूत्रसे कैसे जानाजाताहै अर्थात् पीतपद्म पद्मशुक्लका ग्रहणसूत्रमेंकैसेहुआ

इति॥चेत्॥उच्यते।एवम्॥अभि-सम्बन्धः१ क्रियते।। =ऐसा संदेह होने पर कहाजाता है कि इस प्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि

द्वयोः३। कल्प-युगलयो ३। =दो स्वर्ग-युगलों (सौधर्म और ऐशान सानत्कुमार और माहेन्द्र) में

पीतलेश्या१।।सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः३।पद्मलेश्यायाः६।। =पीत लेश्या है सानत्कुमार माहेन्द्र में पद्मलेश्या का (अस्तित्व)

तत्र कस्य का लेश्येत्यत्रोच्यते—सौधर्मैशानयोः पीतलेश्या। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पीतपद्मलेश्येब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पद्मलेश्या। शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु पद्मशुक्ललेश्ये। आनतादिषु शुक्ललेश्या। तत्राप्यनुदिशानुत्तरेषु परमशुक्ललेश्या। सूत्रेऽनभिहितं कथं मिश्रग्रहणं? साहचर्याल्लोकवत्॥

तत्र*कस्य[६/१]।का[१/१]।लेश्या[१/१]।इति*अत्र*उच्यते। =तहां किस (देव) के कौन लेश्या है (ऐसे) यहां (=अत्र) कहा जाता है कि

सौधर्म-ऐशानयोः[७/२]।पीतलेश्या[१/१]।सानत्कुमार- =सौधर्म ऐशान में (देवनिकें) पीत लेश्या है। सानत्कुमार

माहेन्द्रयोः[७/२]।पीत-पद्म-लेश्ये[१/२]।ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर- =माहेन्द्र में (देवों के) पीतपद्मलेश्या हैं। ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर

लान्तव-कापिष्ठेषु[७/३]।पद्म-लेश्या[१/१]।शुक्र-महाशुक्र- =लान्तव और कापिष्ठ में (देवों के) पद्मलेश्या है। शुक्र और महाशुक्र

शतार-सहस्रारेषु[७/३]।पद्म-शुक्ल-लेश्ये[१/२]।आनत- =शतार और सहस्रार में (देवों के) पद्म-शुक्ल दो लेश्या हैं। आनत

आदिषु[७/३]। =और प्राणत, आरण और अच्युत इन दो युगलोंमें और नवग्रैवेयकोंमें और नव अनुदिशों में और पांच अनुत्तरोंमें (देवोंकें)

शुक्ल-लेश्या[१/१]।तत्र*अपि*अनुदिश-अनुत्तरेषु[७/३]। =शुक्ललेश्या है। तहां भी (नव) अनुदिशोंमें और (पांच)अन्तरोंमें (देवोंकें)

परम-शुक्ल-लेश्या[१/१]।सूत्रे[७/१]।अन्-अभिहितम्[१/१]। =उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या है (प्रश्न) सूत्रमें अकथित

कथम्*मिश्र-ग्रहणम्[१/१]। ? =मिश्र (लेश्या) का ग्रहण(यहां)कैसे है ? अर्थात् इस बाईसवां सूत्रमें तो किसी युगलके देवोंके दो लेश्या वर्णन नहीं की हैं इस सूत्रकी वृत्तिमें आपने कैसे कहा कि सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें पीत-पद्म दो लेश्या हैं सूत्रमें तो इस युगलमें केवल पीतलेश्या कही है और शुक्र महाशुक्र के युगलमें सूत्रमें तो पद्मलेश्या कही वृत्तिमें आपने पद्मशुक्ल दोनों लेश्यायें कैसे कही और शतार सहस्रार युगलमें सूत्रानुसार केवल शुक्ल लेश्या है आपने वृत्तिमें पद्म शुक्ल दो लेश्यायें कैसे कहीं।

साहचर्यात्[५/१]। =(उत्तर) एक ही आश्रय होनेसे अथवा साथ साथ रहनेसे

लोकवत्* =लोक (व्यवस्था वा रीति) सदृश (मिश्र लेश्याओंका ग्रहण हैं अर्थात् मुख्यता करि जो जो लेश्या जिन जिन युगलोंमें हैं वहतो सूत्र विषैं कहीं उसके साथ लोक रीतिके समान गौण लेश्याका भी ग्रहण करना योग्य है॥

इदं न ज्ञायते इत आरम्भ कल्पा भवन्तीति सौधर्मादिग्रहणमनुवर्तते। तेनायमर्थो लभ्यते- सौधर्मादयः प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पा इति पारिशेष्यादितरे कल्पातीता इति ॥

लौकान्तिका देवा वैमानिकाः सन्तः क्व गृह्यन्ते? कल्पोपपन्नेषु। कथमिति चेदुच्यते—

॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥

सूत्रार्थः—सौधर्म-आदयः$^{1}_{3}$। प्राग्*ग्रैवेयकेभ्यः$^{1}_{3}$। कल्पाः$^{1}_{3}$।	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व (पूर्व) कल्प हैं अर्थात् सौधर्म पहिले स्वर्गसे लेकर अच्युत सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त 'कल्प' कहेजाते हैं
वृत्त्यनुवादः—इदम्$^{1}_{6}$।।। न* ज्ञायतेT	=(सूत्रमें) यह नहीं बोध करागागया है अथवा जतायागया है कि
इतः* आरम्भ-कल्पाः$^{1}_{3}$। भवन्तिT इति* सौधर्म-आदि-	=यहांसे (=इतः) कल्प आरम्भ होतेहैं (उन्नीसवां सूत्रसे) 'सौधर्म आदिका'
ग्रहणम्$^{1}_{6}$।।। अनुवर्ततेT	=(इससूत्रमें)ग्रहण प्रवर्तता है अर्थात् उन्नीसवां सूत्रसे सौधर्म आदि शब्दलियेगये हैं
तेन$^{3}_{6}$।।। अयम्$^{1}_{6}$। अर्थः$^{1}_{6}$। लभ्यतेT	=तिस (सौधर्म आदिके ग्रहण)से यह अर्थ प्राप्त कियागया है कि
सौधर्म-आदयः$^{1}_{3}$। प्राग्*ग्रैवेयकेभ्यः$^{1}_{5}$। कल्पाः$^{1}_{3}$।	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व २ वा पहिले २ कल्प हैं, स्वर्ग हैं।
इति* पारिशेष्यात्$^{1}_{5}$। इतरे$^{1}_{3}$। कल्प-अतीताः$^{1}_{3}$। इति*	=ऐसे इन (कल्पों) से अवशेष (=पारिशेष्यात्) अन्य (=इतरे) कल्पातीत हैं, अर्थात् प्रथम सौधर्म स्वर्गसे अच्युत सोलह स्वर्ग तक कल्प कहलातेहैं। सोलह स्वर्गों से भिन्न जे नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर पर्यन्त कल्पातीत कहेजाते हैं॥
लौकान्तिकाः$^{1}_{3}$। देवाः$^{1}_{3}$। वैमानिकाः$^{1}_{3}$। सन्तः$^{1}_{3}$। क्व* गृह्यन्तेT	=लौकान्तिकदेव वैमानिक हैं। कहां मानेगये हैं वा ग्रहण किये गये हैं?
कल्प-उपपन्नेषु$^{7}_{3}$। कथम्* इति* चेत्* उच्यतेT	=(उत्तर) कल्प वासियोंमें (प्रश्न) कैसे ऐसा संदेह होनेपर कहाजाता है कि
(१)सूत्रम्—ब्रह्मलोकालयालौकान्तिकाः	= ब्रह्मलोकालयाः लौकान्तिकाः (भवन्ति) ॥२४॥

जैसे ज्ञानचन्द जी (लाहौर) मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र में तथा प० सदा सुखजी कृत लघुटीकामें 'कल्पाः' शब्दके स्थानमें 'कल्प' शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि कल्प सोलह हैं और कल्प. शब्द प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग है केवल एक स्वर्गका द्योतक है। अतः 'कल्पाः' बहुवचन होना चाहिये॥

(१) हमारे यहां कहीं कहीं पर 'लौकांतिका' पाठ भी है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें, भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्वेताम्बरीयभाष्य) में "लौकान्तिका" पाठ है दोनों पाठ शुद्ध हैं (देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ५,६, टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४२)॥ दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एकसा है॥

सर्वार्थ

अध्याय४

७६

अविवक्षातः ॥ ब्रह्मलोकादिषु त्रिषु कल्पयुगलेषु पद्मलेश्या । शुक्रमहाशुक्रयोः शुक्ललेश्याया अविवक्षातः ॥ शेषेषु शतारादिषु शुक्ललेश्या । पद्मलेश्याया अविवक्षातइति नास्ति दोषः ॥ आह कल्पोपपन्ना इत्युक्तं तत्रेदं न ज्ञायते के कल्पा इत्यत्रोच्यते—

॥प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः॥ २३॥

अविवक्षातः*	=अपेक्षा रहित है अर्थात् पद्मलेश्या इस सूत्रमें गौण है इसलिये सूत्रमें कहनेकी इच्छा नहीं है भावार्थ सूत्रमें गौण लेश्याका कथन कहनेका अभिप्राय, वांछा, वा प्रयोजन नहीं है। इससे पद्मलेश्याका निर्देश इस सूत्रमें नहीं किया गया है ॥
ब्रह्मलोक-आदिषु७। त्रिषु७। कल्पयुगलेषु७।	=ब्रह्मलोक, ब्रह्मोत्तर, लान्तव कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र तीन कल्प युगलोंमें
पद्मलेश्या १।; शुक्र-महाशुक्रयोः७। शुक्ललेश्यायाः६।	=पद्मलेश्या है। शुक्र और महाशुक्रमें शुक्ललेश्याका (अस्तित्व)
अविवक्षातः*	=विवक्षा से रहित है अर्थात् इस युगलमें शुक्ललेश्या गौण है इससे कहने की सूत्र में इच्छा नहीं है
शेषेषु७। शतार-आदिषु ७। शुक्ललेश्या१।	=शेष शतार-सहस्रार, आनत प्राणत, आरण अच्युत में शुक्ललेश्या है।
पद्मलेश्यायाः६। अविवक्षातः*	=(शतार सहस्रार विषैं) पद्मलेश्या का (अस्तित्व) विवक्षा से रहित है अर्थात् इस युगलके देवोंके पद्मलेश्या गौण है इससे सूत्र में कहने की इच्छा नहीं है
इति*	=इस प्रकार (कथनसे कि मुख्यताकरि दो युगलोंमें पीतलेश्या, तीन युगलोंमें पद्मलेश्या शेष तीन युगलों में शुक्ललेश्या है)
न*अस्ति T दोषः१।	=दूषण नहींहै(क्योंकि मुख्य लेश्या तो सूत्रद्वारा कहीं गौण लोक रीतिसे जानना चाहिये)।
आह T 'कल्प-उपपन्नाः१।' इति*उक्तम्१।।	=शिष्य प्रश्न करता है कि "कल्पोपपन्ना" ऐसा वाक्य सत्रहवां सूत्रमें कहा गया है।
तत्र*इदम्१।। न*ज्ञायते T	=तहां यह ज्ञान नहीं कराया गया है अथवा वहां यह नहीं जतलाया गया है कि
के१। कल्पाः १। इति*अत्र* उच्यते T	=कल्प कौन हैं यहां (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

[१]सूत्रम्-प्राग्ग्रैवेयकेभ्यःकल्पाः॥ २३॥ = (सौधर्म-आदयः) प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः भवन्ति ॥ २३॥

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्वार्थ टीका (श्री सिद्धसेन सूरि रचित) में केवल बारह स्वर्ग माने हैं हमारे यहां सोलह स्वर्ग मानेहैं ॥ हमारे यहां किसी २ पुस्तक में

तेषां हि विमानानि ब्रह्मलोकस्यान्तेषु स्थितानि ॥ अथवा जन्मजरामरणाकीर्णो लोकः संसारःतस्यान्तो लोकान्तः। लोकान्तेभवा लौकान्तिकाः ते सर्वे परीतसंसाराः । ततश्च्युता एकं गर्भावासं प्राप्य परिनिर्वास्यन्ति ॥ तेषां सामान्येनोपदिष्टानां भेदप्रदर्शनार्थमाह—

॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५॥

तेषाम्$^{6}_{3}$। हि* विमानानि$^{1}_{3}$। ब्रह्म-लोकस्य$^{6}_{1}$। अन्तेषु$^{7}_{3}$। =तिन (लौकान्तिक देवों)केही विमान ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) के अन्तमें
स्थितानि$^{1}_{3}$।। अथवा* जन्म-जरा-मरण-आकीर्णः$^{1}_{1}$। लोकः$^{1}_{1}$। =स्थित हैं अथवा जन्म जरा और मृत्युकरि व्याप्त =आकीर्ण)जो भुवन (=लोक)
संसारः$^{1}_{1}$। तस्य$^{6}_{1}$। अन्तः$^{1}_{1}$। लोक-अन्तः$^{1}_{1}$। =जो जगत (=संसार) तिस (संसार)का अन्त वा छोर सो लोकान्त है
लोक-अन्ते$^{7}_{1}$। भवाः$^{1}_{3}$। लौकान्तिकाः$^{1}_{3}$। ते$^{1}_{3}$। सर्वे$^{1}_{3}$। =संसारके अन्तमें हों वे लौकान्तिक हैं । वे समस्त (लौकान्तिकदेव)
परीत-संसाराः$^{1}_{3}$। ततस्* =संसारसे विरक्त वा उदासीन(=परीत)हैं वहां(ब्रह्मलोकके अंत अपने निवासस्थान)से
च्युताः$^{1}_{3}$। एकम्$^{2}_{1}$। गर्भ-आवासम्$^{2}_{1}$। प्राप्य – परिनिर्वास्यन्ति(१)=पतित होकर एक गर्भवासस्थानको प्राप्त कर कर्मों के विरुद्ध अर्थात् कर्मोंकोजीतकर निर्वाण जाते हैं
तेषाम्$^{6}_{3}$।सामान्येन$^{3}_{1}$।।।उपदिष्टानाम्$^{6}_{3}$।भेद-प्रदर्शनअर्थम्$^{2}_{1}$।।।आह ।=सामान्यकरि कहेहुये तिन (लौकान्तिकदेवों)के भेद दिखावनेके लिये कहते हैं कि

(३)सूत्रम्—सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

= सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च + (लौकान्तिका)(२) भवन्ति

सूत्रार्थः—सारस्वत-आदित्य-वह्नि-अरुण-गर्दतोय- तुषित- =सारस्वत, आदित्य वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित
अव्याबाध-अरिष्टाः$^{1}_{3}$। च* लौकान्तिकाः$^{1}_{3}$। भवन्ति। =अव्याबाध, अरिष्ट भी (= च)लौकान्तिकदेव हैं अर्थात् अन्य लौकान्तिकदेव

(१) 'परि' अव्यय जब क्रियाके साथ लातेहैं तब उसको उपसर्ग कहते हैं । इसके क्रियाके साथमें चारोंओर; अधिक,विरुद्ध-प्रतिकूल,विपरीत; अतिशय अत्यन्त; इन चार अर्थोंमें आताहै यहां 'विरुद्ध' 'प्रतिकूल' अर्थमेंहै अतः कर्मोके विरुद्ध प्रतिकूल ऐसाअनुवादकियाहै पृष्ठ ८६में'निर्वास्यन्ति'है।

(२) 'लौकान्तिकाः' वाक्यकी अनुवृत्ति चौबीसवां सूत्रसे है ॥ सूत्रमें 'च' शब्द अन्य सोलह प्रकारके लौकान्तिक देवोंके समुच्चय के लिये हैं ॥

(३) हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रका और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाका पाठ और हमारे यहां का पाठ 'सारस्वादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाध'तक एक है हमारे यहां अव्याबाधके पश्चात् "अरिष्टाश्च" पाठ औरहै । भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'अव्याबाध'के पीछे 'मरुतः' शब्द अधिक है । सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमे सूत्रमें 'अव्याबाध'के पश्चात् 'मरुतः' (अरिष्टाश्च)वाक्य अधिक है ॥

एत्य तस्मिन् लीयन्त इति आलयः आवासः । ब्रह्मलोक आलयो येषां ते ब्रह्मलोकालया लौका-
सर्वार्थ न्तिका देवा वेदितव्याः । यद्येवं सर्वेषां ब्रह्मलोकालयानां देवानां लौकान्तिकत्वं प्रसक्तं? । अन्वर्थ सिद्धि
सञ्ज्ञाग्रहणाददोषः ॥ ब्रह्मलोको लोकः तस्यान्तो लोकान्तः तस्मिन्भवा लौकान्तिका इति न
सर्वेषां ग्रहणम् ।

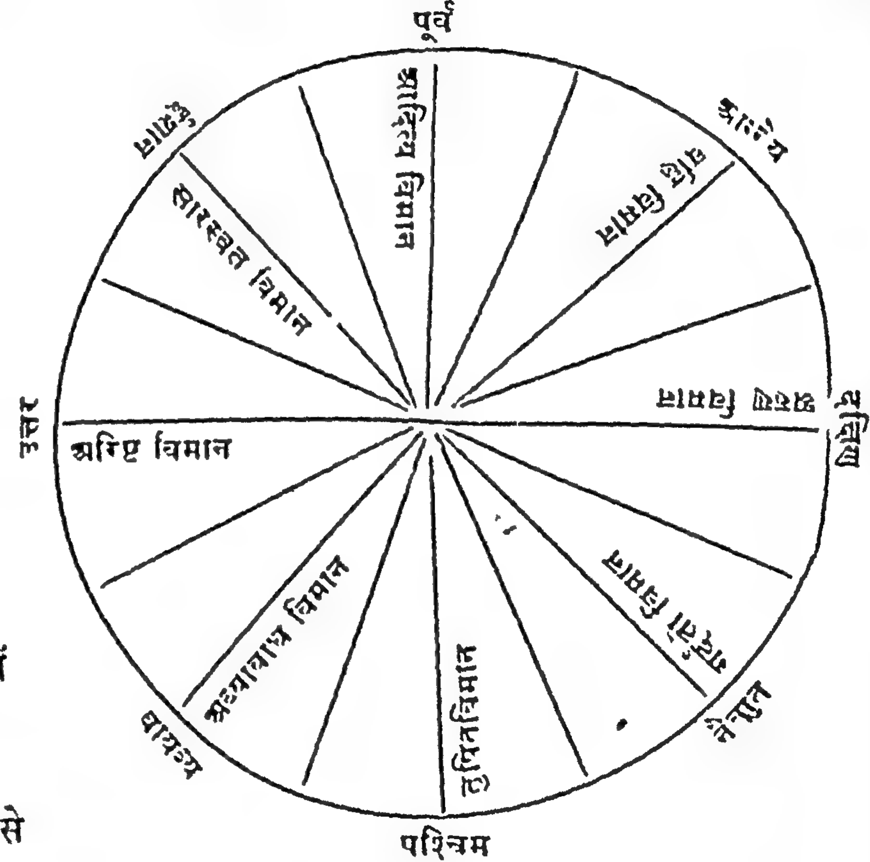
८१

सूत्रार्थः–ब्रह्मलोक-आलयाः१/३ लौकान्तिकाः१/३ भवन्तिT =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग है निवासस्थान जिनका ते लौकान्तिक देव हैं अर्थात् ब्रह्मलोकालय इस शब्दके साथ लौकान्तिक शब्दका सम्बंध है। ब्रह्मलोकके अंतका नाम लोकांत है और वहां पर रहनेवाले लौकान्तिक कहेजाते हैं॥ इस रीति से ब्रह्मलोकके अन्तमें रहनेवाले ही देव लौकान्तिक होसकते हैं सब ब्रह्मलोक निवासी नहीं अथवा जन्म जरा और मरण से व्याप्त स्थानका नाम लोक है ; उसका अन्त लोकान्त है जिन्हें उस लोकांतका प्रयोजन होवे, वे लौकांतिक कहेजाते हैं । ये लौकांतिक देव परीतसंसार हैं । ब्रह्मलोकसे च्युत होकर एक गर्भवास अर्थात् नर भव पाकर नियमसे मोक्ष प्राप्त करलेते हैं ऐसे दोनों प्रकारसे सार्थक नाम वाले लौकान्तिक देव हैं ॥

वृत्त्यनुवादः–एत्य* तस्मिन्७/१ लीयन्तेT इति* आलयः१/१ =आनकरि जिसमें मिलते हैं, छिपते हैं, वा रहते हैं ऐसा आलय
आवासः१/१ ब्रह्मलोकः१/१ आलयः१/१ येषाम्६/३ ते१/३ =निवास स्थान है । ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) है निवासस्थान जिनका ते
ब्रह्मलोक-आलयाः१/३ लौकान्तिकाः१/३ देवाः१/३ वेदितव्याः१/३ =ब्रह्मलोक आलयवाले(पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले) लौकांतिक देव जानने चाहिये
यदि* एवम्* सर्वेषाम्६/३ =(प्रश्न)जो ऐसे हैं अर्थात् पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले लौकान्तिक देव हैं तो समस्त
ब्रह्मलोक-आलयानाम्६/३ देवानां६/३ लौकान्तिकत्वं१/१॥ प्रसक्तं१/१॥?=ब्रह्मलोकमें रहनेवाले देवोंके लौकान्तिक होना पाया जाता है
अन्वर्थ-सञ्ज्ञा- =(उत्तर) (इन देवोंका) सार्थक नाम (अर्थात् जैसा नाम है वैसाही अर्थ
ग्रहणात्५/१॥ अदोषः१/१ ब्रह्मलोकः१/१ लोकः१/१ =ग्रहण करनेसे दूषण नहीं है । ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) सो लोक है
तस्य६/१ अन्तः१/१ लोक-अन्तः१/१ तस्मिन्७/१ भवाः१/३ लौकान्तिकाः१/३ =तिसका छोर सो लोकांत है तिस (पांचवां स्वर्गके अन्त)में (उत्पन्न)होनेवाले वे लौकांतिक हैं
इति* न* सर्वेषाम्६/३ ग्रहणम्१/१॥ =ऐसे समस्त (पांचवां स्वर्गके देवोंका) ग्रहण नहीं होता है ॥ ८१

पूर्वोत्तरकोणे सारस्वतविमानं, पूर्वस्यां दिशि आदित्यविमानं, पूर्वदक्षिणस्यां दिशि वह्नि विमानं, दक्षिणस्यां दिशि अरुणविमानं, दक्षिणापरकोणे गर्दतोयविमानं, अपरस्यां दिशि तुषितविमानं, उत्तरापरस्यां दिशि अव्याबाधविमानं, उत्तरस्यां दिशि अरिष्टविमानम्॥ चशब्दसमुच्चिताःतेषामन्तरे द्वौ द्वौ देवगणौ॥

पूर्व-उत्तर-कोणे[७।१] =पूर्व-उत्तरके कोनमें अर्थात् ईशान दिशामें
सारस्वत-विमानम्[१।१] =सारस्वत (देवोंका) विमान है
पूर्वास्यां[७।१] दिशि[७।१] =पूर्व दिशामें
आदित्य-विमानम्[१।१] =आदित्य (देवोंका) विमान है
पूर्व-दक्षिणस्याम्[७।१] दिशि[७।१] =पूर्व-दक्षिणदिशामें अर्थात् आग्नेय दिशामें
वह्नि-विमानम्[१।१] =वह्नि (देवोंका) विमान है
दक्षिणस्याम्[७।१] दिशि[७।१] =दक्षिण दिशामें
अरुण-विमानम्[१।१] =अरुण (देवोंका) विमान है
दक्षिण-अपर-कोणे[७।१] =दक्षिण पश्चिम कोनमें अर्थात् नैऋत्य दिशामें
गर्दतोय-विमानम्[१।१] =गर्दतोय (देवोंका) विमान है
अपरस्याम्[७।१] दिशि[७।१] =पश्चिम दिशामें
तुषित-विमानम्[१।१] =तुषित (देवों का) विमान है
उत्तर-अपरस्याम् दिशि[७।१] =उत्तर पश्चिम दिशा में अर्थात् वायव्यदिशा में
अव्याबाध-विमानम्[१।१] =अव्याबाध (देवोंका) विमान है
उत्तरस्याम्[७।१] दिशि[७।१] =उत्तरदिशामें
अरिष्ट-विमानम्[१।१] चशब्द- =अरिष्ट (देवोंका) विमान है (सूत्रमें) च शब्दसे
समुच्चिताः[१।३] =अन्यलौकान्तिक मिलायेगये हैं
तेषाम्[६।३] अन्तरे[७।१] =तिन (सारस्वतादि आठ प्रकारके लौकान्तिक देवों) के मध्य में (क्रमसे)
द्वौ[१।२] द्वौ[१।२] देवगणौ[१।२] =दो दो (प्रकार के) देवों के समुदाय हैं अर्थात् सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देवोंके समूहऔर है।



क्व इमे सारस्वतादयः। अष्टास्वपि पूर्वोत्तरादिषु दिक्षु यथाक्रममेते सारस्वतादयो देवगणा वेदितव्याः। तद्यथा-

---

हैं और सारस्वत भीआठ प्रकारके लौकान्तिक देवहैं भावार्थ अग्न्याभ, सूर्याभ, चन्द्राभ, सत्याभ, श्रेयस्कर, क्षेमंकर, वृषभेष्ट, कामचर, निर्माणरज, दिगन्तरक्षित, आत्मरक्षित, सर्वरक्षित, मरुत्, वसु, अश्व, विश्व, ये सोलह प्रकारके लौकान्तिक देव हैं और सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, अरिष्ट भी आठ प्रकारके लौकान्तिक देव ऐसे सर्व लौकान्तिक चौवीस प्रकारके हैं।

वृत्यनुवादः-क्व*इमे¹₃।सारस्वत-आदयः¹₃।,अष्टासु⁷₃। =(प्रश्न) कहां हैं ये सारस्वतादिक (लौकान्तिक देव), आठों

अपि*पूर्व-उत्तर-आदिषु⁷₃।। =ही पूर्व ईशान-उत्तर,वायव्य-पश्चिम-नैऋत्य (नैऋत)-दक्षिण-आग्नेय (=आदिषु)

दिक्षु⁷₃।।यथाक्रमम्*एते¹₃।सारस्वत-आदयः¹₃। =दिशाओंमें अनुक्रमसे ये सारस्वत आदिक (निम्न लिखित चौवीस प्रकारके)

देवगणाः¹₃।वेदितव्याः¹₃।तद्यथा* =देवोंके समूह जानने चाहिये-जैसे

और 'मरुतः (अरिष्टाश्च)'का अनुवाद यह कियाहै कि 'उत्तरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव रहते हैं। सभाष्य०में केवल आठ प्रकारके लौकान्तिक देवोंका कथन है इससे प्रगट है कि 'मरुत्' और 'अरिष्ट' एक ही प्रकार है॥ आठ दिशाओंमें रहनेकी अपेक्षासे हमारे यहांके लेखसे श्वेताम्बरसमाजका लेख मिलता है केवल इतना भेद है कि उत्तर दिशा में हमारे यहां 'अरिष्ट' देवोंका निवास है उनके यहां मरुत् देवों का, यदि मरुत् और अरिष्ट देवोंको अभेद रूपसे मानलें तो कुछभी अन्तर दोनोंमें नहीं रहता है जैसाकि निम्न लेखसे जो सभाष्य० के पृष्ठ ११३ और ११४ से लिया है विदित है

"जैसे पूर्वोत्तर दिशामें सारस्वत देव रहते हैं, अर्थात् पूर्व और उत्तर दिशा के कोण (ऐशानकोण) में सारस्वत रहते हैं। पूर्व दिशामें आदित्य संज्ञक देव रहते हैं। इसी प्रकार अन्य देवोंके विषयमें भी जानलेना चाहिये अर्थात् पूर्व दक्षिण (आग्नेय कोण) में वह्नि, दक्षिणमें अरुण, दक्षिणपश्चिम (नैऋर्त्यकोण) में गर्दतोय, पश्चिम में तुषित, पश्चिमोत्तर(वायव्यकोण)में अव्याबाध और उत्तरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव" रहते हैं। सभाष्य०में'च' शब्द का कोई अर्थ नहीं किया है हमारे यहां चकार से सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देव लिये हैं। आठ प्रकार के देवोंमें 'अरिष्ट देव' उत्तर दिशामें रहने वाले हैं और सोलहप्रकार के देवोंमेंसे मरुत् देव हैं जो 'वायव्य और उत्तर दिशाओं के' मध्यमें रहते हैं (देखो वृत्ताकार पृष्ट ८५ में)।

श्वेताम्बर समाजके भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका के निम्नलेखसे प्रगट है कि कोई आठप्रकारके लौकान्तिक देव मानते हैं कोई कोई नव प्रकारके "न त्वेवमनेव नवभेदा भवंति। भाष्यकृतावाष्टविधा इति मुद्रिता उच्यते। लोकांत वर्तिन एतेऽष्टभेदाः। सूरिणोपात्ताः। अरिष्ट विमान प्रस्तार वर्तिभिः नवधा भवंतीत्यदोषः" पृष्ट ३५२॥

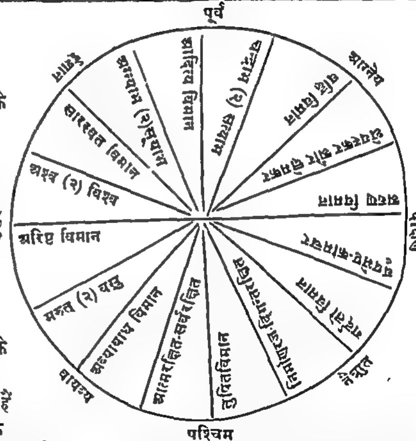
विषयरतिविरहाद्देवर्षयः इतरेषां देवानामर्च्चनीयाः, चतुर्दशपूर्वधराः, तीर्थंकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्याः ॥ आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एकं गर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ताः। किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते? इत्यत आह—

विषयरतिविरहात्[५/१] [(१)]देव-ऋषयः[१/३]	=विषयोंमें रागसे रहित होने (के कारण)से देवऋषि अर्थात् देवोंमें ऋषि है
इतरेषाम्[६/३] देवानाम्[६/३] अर्चनीयाः[१/३] चतुर्दशपूर्वधराः[१/३]	=अन्य देवोंके पूजनीय अथवा पूज्य हैं ये समस्त देव चौदह पूर्वके धारक हैं अर्थात् अंग और दृष्टिवाद बारहवां अंगमें 'परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और पूर्वगत (चौदह पूर्व) के ज्ञानी हैं देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ४२७ की टिप्पणी
[(२)]तीर्थंकरनिःक्रमण-प्रतिबोधनपराः[१/३] वेदितव्याः[१/३]	=तीर्थंकरके तप कल्याण विषैं समझानेमें तत्पर (लवलीन वा निपुण) जानने चाहिये
आहT उक्ताः[१/३] लौकान्तिकाः[१/३] ततस्* [(३)]च्युताः[१/३]	=(शिष्य) पूछता है कि लौकांतिकदेव कहेगये। वहां (ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग) से चयकर
एकम्[२/१] गर्भवासम्[२/१] अवाप्य - निर्वास्यन्तिT इतिउक्ताः[१/३]	=एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य भवको धारण करके मोक्ष जाते है ऐसे कहेगये हैं
किम्* एवम्* अन्येषु[७/३] अपि* निर्वाणप्राप्तिकालविभागः[१/१]	=क्या इसप्रकार अन्य देवोंमें भी मोक्षके पावनेके कालका विभाग अथवा पृथकता
[(३)]विद्यतेT इति* अतः* आहT	=वर्तमान है(=विद्यते) इसलिये (आचार्य्य अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि

(१) पहिले कोई स्वर ए ऐ ओ औ को छोडकर आवे उसके पश्चात् ह्रस्व ऋकार होतो ऐसा ऋ स्वरके साथ नहीं मिलता है और मिलता भी है अर्थात् चाहे उसको स्वरके साथ मिलादो चाहे न मिलादो जैसे देव ऋषिः=देवऋषि अथवा देव-ऋषि=देवर्षि। 'देवर्षयः' बहुवचन'देवर्षि'का है। (२) तीर्थंकर-तीर्थ (हितशासनं,-हितको करनेहारा,आगम-शास्त्रउपदेशक)करोति तीर्थंकर, तीर्थङ्कर, तीर्थंकर इसी अर्थमें होताहै(पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ१७३) (३) 'च्युत्वा'—सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें 'च्युत्वा' पाठ है परन्तु उनके सूत्र २४, २६ में तीन स्थानोंमें और हस्तलिखित तीन प्रति में(इस सूत्रमें) तथा तीन स्थानोंमें सूत्र २४, २६ में और राजवार्तिकके सूत्र २४ में एक स्थानमें सूत्र २६ के पांच स्थानोंमें (च्युता) शब्द है हमने हस्तलिखित तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक पाठके अनुकूल 'च्युता' शब्द लिया है॥ 'च्यु'प्रथम भ्वादि 'पतन होना' अर्थमें है 'च्युत्वा' शब्द भी ठीक है(देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ १६की टिप्पणी दो)॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें २४ सूत्रकी व्याख्यामें 'च्युत्वा' शब्दका प्रयोग है।(३)विद् यहांपर दिवादि चतुर्थगणका धातु है इस गणमें क्रियाका प्रत्यय जोड़नेके पहिले 'य' विकरण जोड़ाजाता है। अर्थ विद् धातुका 'होना' ऐसा है जैसे विद् य ते=विद्यते=वर्तमान है)

तद्यथा सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभाः। आदित्यस्य च वह्नेश्चान्तरे चन्द्राभसत्याभाः। वह्न्यरुणान्तराले श्रेयस्करक्षेमकराः। अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचराः।गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरक्षिताः। तुषिताव्याबाधमध्ये आत्मरक्षितसर्वरक्षिताः। अव्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्वसवः। अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्वविश्वाः॥ सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात्॥

तद्यथा*सारस्वत-आदित्य- =जैसे सारस्वत आदित्य के
अन्तरे*अग्न्याभ-सूर्याभाः। =अन्तराल में अग्न्याभसूर्याभ हैं।
आदित्यस्य।च*वह्नेः।च*अन्तरे=बहुरिआदित्य के और वह्निके बीच में
चन्द्राभ-सत्याभाः। वह्नि-अरुण- =चन्द्राभ सत्याभ हैं। वह्नि और अरुण के
अन्तराले।श्रेयस्कर-क्षेमकराः।=मध्यमें श्रेयस्कर क्षेमकर हैं।
अरुण-गर्दतोय-अन्तराले। =अरुण गर्दतोय के अन्तर वा मध्य में
वृषभेष्ट-कामचराः। =वृषभेष्ट और कामचर हैं।
गर्दतोय-तुषित-मध्ये।निर्माणरजो=गर्दतोय और तुषितके बीचमें निर्माणरज
दिगन्तरक्षिताः।तुषित- =और दिगन्तर रक्षित हैं। तुषित और
अव्याबाध-मध्ये। =अव्याबाधके बीचमें
आत्मरक्षित-सर्वरक्षिताः। =आत्मरक्षित और सर्वरक्षित हैं।
अव्याबाध-अरिष्ट-अन्तराले। =अव्याबाध और अरिष्ट के अन्तरालमें
मरुद्-वसवः।अरिष्ट-सारस्वत- =मरुत् और वसु हैं।अरिष्ट और सारस्वतके
अन्तराले।अश्व-विश्वाः।सर्वे। =बीचमें अश्व और विश्व हैं। समस्त
एते।स्वतन्त्राः। =ये (चौबीस प्रकारके लौकान्तिक) स्वाधीन हैं
हीन-अधिकत्व-अभावात्। =क्योंकि (इनके) हीनता, अधिकताका एक दूसरेसे अभाव है अर्थात् इन चौबीस प्रकारके देवोंमें कोईदेव अन्य देवसे हीन अधिक नहीं है वरन् सब समानहैं।



(१)हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिके पृष्ठ १०१में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके मुद्रित पृष्ठ१७४में 'अरिष्टसारस्वतांतरे अश्वविश्वाः' ऐसा पाठ है दोनों पाठ ठीकहैं॥

सर्वार्थसिद्धिप्रसंग इति चेन्न तेषां परमोत्कृष्टत्वात्। अन्वर्थसञ्ज्ञातः एकचरमत्वसिद्धेः ॥

सर्वार्थसिद्धि-प्रसंगः इति* चेत्* =सर्वार्थसिद्धि (विमानकाभी) ग्रहण हुआ ऐसा सन्देह (शिष्यकी ओरसे) है अर्थात् आचार्य्यके उत्तर देने पर कि विजय आदिक तेरह विमानोंमें सम्यग् दृष्टिके अतिरिक्त कोई जीव जन्म धारण नहीं करता है शिष्यने यह संदेह किया कि ऐसा करनेमें सर्वार्थसिद्धि का विमान भी ग्रहण होजाता है क्योंकि सर्वार्थसिद्धि विमानमें वसनेवाले देव भी तो अहमिन्द्र ही हैं और सम्यग् दृष्टि ही हैं (उत्तर)

न*तेषाम् परम-उत्कृष्टत्वात् =नहीं तिन) सर्वार्थसिद्धिवासी देवों,का(ग्रहण) परम उत्कृष्ट होने(के कारण)से (यहांपर) हुआ (क्योंकि सर्वार्थसिद्धि अर्थात् जहां सम्पूर्ण अभ्युदयके अर्थ सिद्धि होगये है ऐसी)

अन्वर्थ-सञ्ज्ञातः* =सार्थक संज्ञा वा जैसा नाम है वैसा अर्थ वाली संज्ञा होनेसे

एकचरमत्वसिद्धेः॥ =एक (मनुष्य) देहके अन्तपनेसे (चरमत्व) सिद्ध होवे है अर्थात् सर्वार्थसिद्धिसे च्युत होकर मनुष्यका एक शरीर धारणकर मोक्ष पावें हैं। इस समस्त प्रश्न और उत्तरका भावार्थ यह है कि शंका करनेपर कि अहमिन्द्र और सम्यग्दृष्टी तो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी भी देव हैं। यदि यहाँ पर प्रकारका अर्थ यह कियाजायगा कि जो वैमानिकदेव अहमिंद्र और सम्यग्दृष्टि हों वे द्विचरम (=दो भव धारणकर मोक्ष जाते) हैं तनतो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंको भी दो मनुष्य भव धारण करके पीछे मोक्ष माननी पड़ेगी क्योंकि अहमिंद्र और सम्यग्दृष्टी वे भी हैं। परन्तु उ हें शास्त्रमें एक चरमी (=एक भव धारणकर मोक्ष जानेवाला माना) है इसलिये प्रकार शब्दका जो अहमिंद्र और सम्यग्दृष्टि अर्थ माना है वह अयुक्त है)। उत्तरमें कहते हैं कि सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव परमोत्कृष्ट हैं। जहां पर सर्व प्रयोजनोंकी सिद्धि हो वह सर्वार्थसिद्धि है। यह सर्वार्थ-सिद्धि शब्दका अन्वर्थरूपसे अभिप्राय है। सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंके किसी प्रयोजनीय कार्य सम्पादन करनेवाला कर्म शेष नहीं रहता जिससे वे दो मनुष्य भव धारणकर मोक्ष जायं अतः मोक्षार्थ वे एकही मनुष्य भव धारण करते हैं और वहांसे मोक्ष चले जाते हैं अतः उनके एक चरमपनाही है द्विचरमपना नहीं है ॥

सौधर्म इन्द्रकी इन्द्राणी (जो तीर्थंकरको जन्म समय प्रसूत गृहमेंसे लाय इन्द्रको सौंपे सो शची) सौधर्म स्वर्गके चारो लोकपाल(१ सोम २ यम ३ वरुण ४ कुबेर) और सब लौकान्तिक देव अर सर्वार्थसिद्धिविमानके सब अहमिन्द्रदेव एक भव अवतारी हैं" ॥

॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

आदिशब्दः प्रकारार्थे वर्तते, तेन विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टानां ग्रहणं सिद्धं भवति ॥ कः पुनरत्र प्रकारः ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्ट्युपपादः ।

(1)सूत्रम्—विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥ = (वैमानिकाः(2)) विजयादिषु(3) द्विचरमा भवन्ति ॥

विजय-आदिषु वैमानिकाः =विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजिते, नव अनुदिश विमानोंमें वैमानिक देव

द्विचरमाः भवन्ति =दो अन्तिम देह धरनेवाले होते हैं वा इनके दो जन्म अन्तके रहजाते हैं ॥

अर्थात् येदेव मनुष्यके दोभव धारणकर मोक्षजातेहैं वा इनके दो मनुष्यभव सिद्धावस्था प्राप्त होनेमें शेष रहजातेहैं भावार्थ ऐसाहै कि नोअनुदिश और विजय-वैजयन्त-जयन्त-अराजित इन तेरह विमानोंसे चयकर मनुष्य होय बहुरि संयम आराध कर फिर विजयादिक विमानों उपजैं वहांसे चयकर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष पाते हैं ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छब्बीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

आदिशब्दः प्रकार-अर्थे वर्तते तेन =सूत्रमें आदिशब्द सादृश्य (जनावने) के अर्थमें है । तिस (आदि शब्द)से

विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित-अनुदिश-विमानानाम् =विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित और नव अनुदिश विमानोंका

इष्टानाम् ग्रहणम् सिद्धम् भवति =जो वांछित अथवा मानित हैं ग्रहण सिद्ध होता है

कः पुनः अत्र प्रकारः अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्टि-उत्पादः =पुनि यहां क्या सदृशता हुई (उत्तर) अहमिन्द्र होनेमें सम्यग्दृष्टिका उत्पाद है

(१) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है ॥ परन्तु उनके यहां नवअनुदिशके नामसे कोई विमान नहींहै इसलिये हमारे यहां तेरह विमानोंके वासीदेव द्विचरमा हैं उनके यहां केवल विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितवासी द्विचरमा हैं देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ११४ । (२) सोलहवां सूत्रसे 'वैमानिकाः' शब्दकी अनुवृत्ति इससूत्रमें लीगई है (३) "अर विजयादिकनितैं, आयजीव एक जन्मभी लेवें अरदो जन्मभी मनुष्यके लेवैंहै तातैं ऐसो अर्थ है जो विजयादिकनितैं चयकर मनुष्य होय, बहुरि संयम आराधि फेर विजयादिकनिमें उपजैं तहांते चय मनुष्य होय मोक्ष जायहैं ऐसे द्विचरम देहपना है । ऐसे अनुदिश अर चार अनुत्तरके देव तो दोय भवभी धारैं एक भी धारैं । स्वर्गके आठ युगल हैं तिनमें बारह इन्द्र हैं छह इंद्र दक्षिणके और छह इंद्र उत्तरके इनमें उत्तरके छः इंद्रोंको छोड़कर दक्षिणके जो छह इंद्र (१ सौधर्म २ सानत्कुमार ३ ब्रह्म ४ शुक्र ५ आनत ६ आरण) और

तिर्यग्योनिजानां चेति । तत्र न ज्ञायते के [१]तिर्यग्योनयः ? इत्यत्रोच्यते—

[२]औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

औपपादिका उक्ता देवनारकाः । मनुष्याश्च निर्दिष्टाः । प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या इति । एभ्योऽन्ये संसारिणो जीवाः शेषास्तिर्यग्योनयो वेदितव्याः ॥

तिर्यग्योनिजानाम् $^{6}_{3}$। च*इति* तत्र*न* ज्ञायतेT =‘तिर्यग्योनिजानां च’ ऐसे (अध्याय ३ सूत्र ३९ वांहे)वहां नहीं वतलायागया है कि
के$^{1}_{3}$। तिर्यग्योनयः$^{1}_{3}$। इति* अत्र* उच्यतेT =तिर्यग्योनिवाले कौन हैं इसलिये यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

सूत्रम्— (१)औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥
= औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः (भवन्ति) ॥२७॥

सूत्रार्थः—औपपादिकमनुष्येभ्यः$^{5}_{3}$। शेषाः$^{1}_{3}$। =उपपादरूप जन्मसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् अध्याय २ सूत्र ३४वां में उक्त देव तथा नारकीजीव और तीसराअध्यायके ३५वां सूत्रमें वर्णितमनुष्योंसेभिन्न अवशेष
तिर्यग्योनयः$^{1}_{3}$। भवन्तिT =तिर्यञ्च योनिज होते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इससत्ताईसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

औप-पादिकाः$^{1}_{3}$। उक्ताः$^{1}_{3}$। देवनारकाः$^{1}_{3}$। =उत्पादरूप जन्मसे उत्पन्न होनेवाले देव, व नारकी अध्यायदो सूत्र ३४में कहेगये हैं
मनुष्याः$^{1}_{3}$। च*निर्दिष्टाः$^{1}_{3}$। प्राङ्-मानुषोत्तरात्$^{5}_{1}$।मनुष्याः$^{1}_{3}$।इति =और मनुष्य भी कहेगये हैं कि मानुषोत्तर पर्वतसे पहिले पहिले मनुष्य हैं (अध्याय तीसरेका सूत्र ३५ वां देखो)
एभ्यः$^{5}_{3}$। अन्ये$^{1}_{3}$। संसारिणः$^{1}_{3}$। जीवाः$^{1}_{3}$। शेषाः$^{1}_{3}$। =इन (देव नारकी तथा मनुष्यों) से भिन्न संसारी जीव शेष
तिर्यग्योनयः$^{1}_{3}$। वेदितव्याः$^{1}_{3}$। =तिर्यञ्चयोनिवाले जानने चाहिये । (एभ्यः पंचमी वहु वचन पुल्लिंग इदम्का है)

[१] ‘योनि’ शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनोंमें “अमरकोश” वर्ग १६ श्लोक ७६ में है परन्तु ‘के’ बहुवचन पुल्लिंग में है अतः “योनयः” भी बहुवचन पुल्लिंगमें है। [२]श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यमें“औपपादिक”शब्दके स्थानमें‘औपपातिक’है। शेषपाठ दोनों आम्नायोंमें एकहै अर्थभीएकसाहै।

चरमत्वं देहस्य । मनुष्यभवापेक्षया द्वौ चरमौ देहौ येषां ते द्विचरमाः । विजयादिभ्यश्च्युता अप्रतिपतितसम्यक्त्वा मनुष्येषूत्पद्य सँयममाराध्य पुनर्विजयादिषूत्पद्य ततश्च्युताः पुनर्मनुष्यभवमवाप्य सिद्ध्यन्तीति द्विचरमदेहत्वम्॥ आह जीवस्यौदयिकेषु भावेषु तिर्यग्योनिगतिरौदयिकीत्युक्तं, पुनश्चस्थितौ

चरमत्वम्॥ (१)देहस्य।	=(यहां एक चरमत्वसिद्धेः इस वाक्यमें) चरमत्व शब्द है सो देहका चरमत्व है अर्थात् देहका अवसानपना वा अन्तपना ऐसा चरमत्व शब्दसे अभिप्राय है
मनुष्यभव-अपेक्षया॥ द्वौ। चरमौ। देहौ। येषाम्।	=मनुष्य जन्मकी विवक्षासे दो अन्तिम शरीर जिनके हैं
ते। द्विचरमाः।	=वे द्विचरमा हैं अर्थात् मनुष्यभवमें संयमको आराधनकर पुनः विजयादि विमानोंमें उत्पन्न होता है। वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य होता है और वहांसे फिर मोक्ष चला जाता है किन्तु भव सामान्यकी अपेक्षा यहां पर द्विचरमपना नहीं है अन्यथा दो मनुष्यभव और एक देवभव इस प्रकार तीन चरम देहपना सिद्ध होगा दो चरम देहपना सिद्ध न होसकेगा।
विजयादिभ्यः। च्युताः। (२)अप्रतिपतितसम्यक्त्वाः।	=विजयादिक (तेरह) विमानोंसे चयकर (निकलकर) अप्रतिपतित सम्यग् दर्शनवाले अर्थात् क्षायिकसम्यग् दर्शन सहित
मनुष्येषु। उत्पद्य + संयमम्। आराध्य(३) + पुनः* विजय-	=मनुष्योंमें उत्पन्न होकर संयमको धारणकर फिर विजय
आदिषु। उत्पद्य(३) + ततः* च्युताः। पुनः* मनुष्यभवम्।	=आदिक (विमानोंमें) उत्पन्न होकर वहांसे च्युत होते हैं। फिर मनुष्यजन्मको
(३)अवाप्य + सिद्ध्यन्ति। इति* द्विचरमदेहत्वम्॥	=प्राप्त होकर मोक्ष जाते है। इस प्रकार दो चरम अर्थात् दो अन्तिम देहपना है
आह। जीवस्य। औदयिकेषु। भावेषु। तिर्यग्योनिगतिः॥	=(शिष्य) पूछता है कि जीवके औदयिक भावोंमें तिर्यञ्चगति
औदयिकी॥ इति* उक्तम्॥ पुनः* च* स्थितौ।	=औदयिकीऐसे(दूसराअध्याय सूत्र ६में)कथित वा वर्णित है बहुरि स्थितिमेंभी(=च)

(१) देहस्य षष्ठी विभक्तिका एक वचन पुंल्लिंग वा नपुंसकलिंग दोनों होसकते हैं। (२) सर्वार्थसिद्धि हस्तलिखित तथा द्वितीयावृत्तिमें, तत्त्वार्थ-राजवार्तिकमें 'अप्रतिपतित' शब्द है, प्रथमावृत्तिमें 'अप्रतिपातित' शब्दहै, ज्ञात होता है कि भूलसे छपगया है (३) उत्पद्य (=उत्पन्न होकर) आराध्य (=आराधनकर) और अवाप्य(=प्राप्त होकर) ये सम्बन्धसूचक भूत कृदन्त है। [४]'योनि' शब्द स्त्रीलिंग, पुल्लिंग दोनोंमें अमरकोश वर्ग १६में आया है।

असुरादीनां सागरोपमादिभिर्यथाक्रममत्राभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ इयं स्थितिरुत्कृष्टा । जघन्याऽप्युत्तरत्र वक्ष्यते ॥ तद्यथा-असुराणां सागरोपमा स्थितिः । नागानां त्रिपल्योपमा स्थितिः सुपर्णानामर्द्धतृतीयानि । द्वीपानां द्वे ।

सागरोपम-त्रिपल्योपम-अर्धहीनम् $^{१}_{१}$॥	=एक सागर प्रमाण-तीन पल्यप्रमाण उससे आधी आधी पल्य प्रमाण घाटि तीनस्थानमें
इता $^{१}_{१}$॥	=प्राप्त है (हीनम्-इता $^{१}_{१}$॥भवति) अर्थात् उत्कृष्ट आयु असुर कुमारों की एक सागर है, नाग कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यहै, सुपर्ण कुमारोंकी उत्कृष्ट आयु ढाई पल्य है, और द्वीप कुमारोंकीउत्कृष्ट आयु दो पल्यहै, शेष छह विद्युत्कुमारोंकी-अग्निकुमारोंकी-वात कुमारोंकी-स्तनित कुमारोंकी, उदधिकुमारोंकी, दिक्कुमारोंकी-उत्कृष्ट स्थिति डेढ़ डेढ़पल्य है॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अट्ठाईसवां [१] सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

असुरादीनाम् $^{६}_{३}$। सागरोपमादिभिः $^{३}_{३}$। यथाक्रमम् *अत्र*	=असुरादिकोंका सागर प्रमाणादिक गणनाकरि क्रमसे यहां
अभिसम्बन्धः $^{१}_{१}$। वेदितव्यः $^{१}_{१}$। इयम् $^{१}_{१}$॥ स्थितिः $^{१}_{१}$॥ उत्कृष्टा $^{१}_{१}$।	=सम्बन्ध जानना चाहिये। यह आयु उत्कर्ष है
जघन्या $^{१}_{१}$॥ अपि*उत्तरत्र*वक्ष्यते . तद्यथा*असुराणाम् $^{६}_{३}$।	=जघन्य (स्थिति) भी यहांसे आगे (सेतीसवांसूत्रमें) कहेंगे। जैसे असुर कुमारोंकी
सागरोपमा $^{१}_{१}$॥ स्थितिः $^{१}_{१}$॥ नागानाम् $^{६}_{३}$। त्रिपल्योपमा $^{१}_{१}$॥ स्थितिः $^{१}_{१}$॥	=सागर प्रमाण आयु है। नाग कुमारोंकी तीन पल्य प्रमाण आयु है
सुपर्णानाम् $^{६}_{३}$। अर्द्धतृतीयानि $^{१}_{३}$॥ द्वीपानाम् $^{६}_{३}$। द्वे $^{१}_{२}$॥	=सुपर्ण कुमारोंकी ढाई (पल्यप्रमाण आयु)है द्वीप कुमारों की दो(पल्योपम) आयु है

---

(१)हमारे यहांके इस अट्ठाईस[२८]वां सूत्रमें स्थिति शब्द जो आदिमें आयाहै उसको श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें उन्तीसवांसूत्र माना है और उसका तात्पर्य यह है कि इस सूत्रसे अध्याय के अन्त तक देवोंकी स्थिति का कथन करेंगे अर्थात् उनके यहां यह अधिकार सूत्र है और प्रयोजन यह है कि अग्रिमके सर्व सूत्रोंमें अध्यायके अन्ततक 'स्थिति' शब्दको प्रत्येक सूत्रमें लगालो। मेरी समझमें यह विधान ठीक है क्योंकि ऐसा माननेमें कोई अक्षर और शब्द अधिक नहीं होता और दो बातें प्रगट होजाती हैं प्रथम यह कि यहांसे इस अध्यायके अन्ततक सब आयुका ही प्रकरण है और दूसरी बात यह कि इस 'स्थिति' शब्दकी अनुवृत्ति सर्व सूत्रोंमें इस सूत्रसे अध्याय पर्यंत लेलीजाती है॥ दिगम्बर आम्नायके इस अट्ठाईसवां सूत्रमें दश भवनवासी देवोंकी आयु वर्णित है वेही स्थितियें कुछ भेदके साथ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित तीन सूत्रोंमें उन्हीं दश भवन वासी देवोंकी आयुका कथन किया गया है॥

तेषां तिरश्चां देवादीनामिव क्षेत्रविभागः पुनर्निर्देष्टव्यः। सर्वलोकव्यापित्वात्तेषां क्षेत्रविभागो नोक्तः॥ आह स्थितिरुक्ता नारकाणां, मनुष्याणां तिरश्चां च। देवानां नोक्ता। तस्यां वक्तव्यायामादावुद्दिष्टानां भवनवासिनां स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता॥

पुनः*तेषाम्।तिरश्चाम्।देव-आदीनाम्।इव*	=और उन तिर्यञ्चोंका देवादिकों के समान (=इव)
क्षेत्रविभागः।निर्देष्टव्यः।	=क्षेत्रविभाग अर्थात् जिस क्षेत्रमें तिर्यञ्च पाये जावें सो कहना चाहिये
सर्वलोक-व्यापित्वात्।तेषाम्।क्षेत्रविभागः।न*उक्तः।	=(परन्तु) सर्वलोकमें पायेजानेसे उन (तिर्यञ्चों) का क्षेत्रविभागनहीं कहागया
आह।स्थितिः।उक्ता।नारकाणाम्।मनुष्याणाम्।	=(शिष्य) पूछता है कि आयु नारकोंकी कही गई, मनुष्योंकी
तिरश्चाम्।च*देवानाम्।न*उक्ता।तस्याम्॥	=तिर्यञ्चोंकी भी (=च, कहीगई) देवोंकी नहीं कहीगई उसके
वक्तव्यायाम्।आदौ।उद्दिष्टानाम्।भवनवासिनाम्।	=कहनेकेआदिमें(इसअध्यायकासूत्र२,३,१०में)उपदेशकियेगयेभवनवासीदेवोंकी
स्थिति-प्रतिपादन-अर्थम्।आह।	=आयुके कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्[1]—स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता ॥ २८ ॥

= (परा[2]) स्थितिः—असुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणाम्-सागरोपम-त्रिपल्योपम-अर्द्धहीनं[3] इता भवति[3])

परा।स्थितिः।असुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-	=उत्कृष्टआयु असुर कुमार, नाग कुमार, सुपर्ण कुमार, द्वीपकुमार, और
शेषाणाम्।	=बचे हुए (छह विद्युत कुमार-अग्नि कुमार-वातकुमार-स्तनितकुमार-उदधि-कुमार-दिक्कुमारों) की (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

(१) हमारे यहांके इससूत्रके स्थानमें श्वेताम्बर आम्नायके'सभाष्य'में २९,३०,३१,३२ सूत्र दियेहैं। उनमें 'स्थितिः' यह २९ वां सूत्र अधिकारसूत्रहै

(२) तेतीसवां सूत्रके 'अपरा' शब्दको देखनेसे जिस सूत्रसे अड़तीसवां सूत्रतक जघन्य स्थितिका कथनहै और विशेषतः ३७वां सूत्रपर दृष्टिकरनेसे-जिसमें भवनवासी देवोंकी जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्षकी वर्णित है यह आशय झलकता है कि इस २८ वां सूत्रमें भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वर्णन है अतः मैंने इस सूत्रमें 'परा' (=उत्कृष्ट) शब्दको जोड़कर अर्थ किया है 'अपरा' का प्रतिकूल परा है॥

(३) हीनमिता-स्मरण रहे कि 'इता' शब्द का अर्थ प्राप्त ऐसा है और 'मिता' शब्दका अर्थ 'परिमित' मापा हुआ (पद्मचन्द्रकोश पृ ८६] है॥ यहां पर'हीनमिता'=हीनम्-इता ऐसा पदच्छेदहै नकि हीन-मिता क्योंकि इताजो प्रथमा विभक्ति-एकवचन-स्त्रीलिंगहै उसका अन्वय'स्थिति'शब्दके साथहै।

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके ११ वां सूत्रमें (=हमारे यहांके दश १० वां सूत्रके) कथित दो दो भवनवासी इन्द्रोंमेंसे पूर्व पूर्वका इन्द्र दक्षिणार्धाधिपति कहाजाताहै और दूसरा उत्तरार्धाधिपतिहै [सभाष्य० पृष्ठ११५ सेउद्धृत]॥ तात्पर्य ऐसा है कि दश भवनवासियोंमेंसे सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित ३२ वां सूत्रमें वर्णित असुर कुमारेंद्र और नाग कुमारेंद्रको निकालकर जिनकी उत्कृष्टस्थिति अनुक्रमसे सागरोपम और कुछ अधिक सागरोपम है॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके तीसवां सूत्रके अनुकूल शेष चार विद्युत कुमार दक्षिणार्धाधिपति की डेढ़ पल्योपम परास्थिति है। अग्निकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है, स्तनितकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है, द्वीपकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ पल्योपम परास्थिति है॥

शेषाणां पादोने ॥ ३१ वां सूत्र ॥ (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५ से उद्धृत)

शेषाणां६।पाद ऊने७॥। =(भवनवासियोंमेंसे) बचे हुए उत्तरार्धाधिपतिनिकी एक पाद से हीन दो अर्थात् पौने दो (पल्योपम परास्थिति है) भावार्थ ऐसा है कि चार सुपर्ण कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दो पल्योपम उत्कृष्ट स्थिति है, वात कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पोने दो पल्योपम उत्कृष्ट आयु है, उदधिकुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पोने दोपल्योपम उत्कृष्ट अवस्था है, दिक्कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पोनेदोपल्योपम अधिकसे अधिक स्थिति है॥

असुरेन्द्रयोः सागरोपममधिकं च ॥३२ वां सूत्र सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५सेउद्धृत

=असुरेन्द्रयोस्तु दक्षिणार्धाधिपत्युत्तरार्धाधिपत्योः सागरोपममधिकं च यथासंख्यं परास्थितिभवति

तु*दक्षिणार्धाधिपति-उत्तरार्धाधिपत्योः६।असुरेन्द्रयोः६। =और दक्षिणार्धाधिपति उत्तरार्धाधिपति दोनों असुरेन्द्रों की
सागरोपमम्१॥।अधिकं१॥।च*यथासंख्यम्*परा१॥स्थितिः१॥ =एक सागर प्रमाण और [=च] कुछ अधिक सागर प्रमाण क्रम से उत्कृष्ट आयु
भवतिT =होती है अर्थात् असुर कुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी उत्कृष्ट आयु एक सागर प्रमाण है औरनागकुमार उत्तरार्धाधिपतिकी अधिकसे अधिकस्थिति कुछअधिक एकसागर है॥

ये सब दशों "कुमारोंके समान रमणीय दर्शन, सुकुमार, मृदु, मधुर तथा ललित गतिवाले, शृंगार सहित सुन्दर रूप विक्रिया युक्त होते है॥ और कुमारोंके तुल्य उद्धृतरूप, वेष, भाषा, आभरण, अस्त्रशस्त्रादि प्रहरण, वस्त्र तथा यान वाहनादि युक्त होते हैं। और कुमारोंके ही समान इनका व्यक्त अर्थात् स्पष्टराग क्रीडामें तत्पर रहता है, अतएव इन्हें कुमार कहते हैं। इनमें असुर कुमार असुर कुमारके आवासमें रहते है और शेष भवनोंमें निवास करते हैं। महामन्दरके दक्षिण और उत्तर दिग्विभागोंमें अनेक लाख योजन कोटी कोटीयोंमें असुर कुमारोंके आवास हैं और भवनभी दक्षिणार्धाधिपतियोंके और उत्तरार्धाधिपतियोंके यथास्वं हैं। वहां रत्नप्रभामें बहल भागके अर्ध मध्यमें प्रवेश करके मध्यमें भवन है॥ भवनोंमें जो रहते हैं उन्हें भवनवासी कहते हैं॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र के पृष्ठ ९६ से उद्धृत॥

शेषाणां षण्णामध्यर्द्धपल्योपमम् ॥

आद्यदेवनिकायस्थित्यभिधानादनन्तरं व्यन्तरज्योतिष्कस्थितिवचने क्रमप्राप्ते सति तदुल्लंघ्य वैमानिकानां स्थितिरुच्यते। कुतः ?तयोरुत्तरत्र लघुनोपायेन स्थितिवचनात् ॥ तेषु चादावुद्दिष्टयोः कल्पयोः स्थितिविधानार्थमाह—

शेषाणाम्३।षण्णाम्३।
अध्यर्द्धपल्योपमम्१।।।
आद्य-देव-निकाय-स्थिति-अभिधानात्५।।।अनन्तरम्१।।।
व्यन्तर-ज्योतिष्क-स्थिति-वचने७।।।क्रमप्राप्ते७।।।सति७।।।
तत्*उल्लङ्घ्य+वैमानिकानाम्३।स्थितिः१।।उच्यतेT
कुतः ?*तयोः३।उत्तरत्र*
लघुना३।-उपायेन३।
स्थिति-वचनात्५।।।

तेषु३।च*आदौ७।उद्दिष्टयोः३।कल्पयोः३।
स्थिति-विधान-अर्थम्१।।।आहT

=बचे हुए छह (विद्युत कुमार-अग्नि कुमार-वात कुमार-स्तनितकुमार-उदधिकुमार दिक्कुमारों) की (स्थिति)
=आधी अधिक सहित एक पल्य प्रमाण अर्थात् डेढ़ पल्य प्रमाण है
=प्रथम अर्थात् भवन वासी देवोंके समुदायकी स्थितिके कहनेसे अत्यन्त समीप
=व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंकी आयुके कथन (वचन) विषैं क्रम प्राप्त होने पर
=उस (क्रम)को छोड़कर वा त्यागकर वैमानिक देवोंकी आयु कही जाती है
=(प्रश्न)क्योंकरउन(व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवों)की(स्थिति)यहांसेआगे(कहीजायगी)
=(उत्तर) लघुकरणद्वारा वा लघुसाधनद्वारा (उन व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंकी)
=स्थितिका कथन होगा अर्थात् अग्रिमसूत्रोंमें वर्णन करेंगे जो सूत्र उनसे, पहिले सूत्रोंसे अनुवृत्ति लेनेके निमित्तसे लघुहोंगेदेखो ३८-३९-४०-४१सूत्र जो कितने लघु हैं और जिनसे स्पष्ट है कि यदि व्यन्तर ज्योतिषियोंकी स्थिति २८वांसूत्र के अनन्तर कहते तौ इन सूत्रोंकी इतनी लघु रचना कदापि नहीं होसकती थी
=और तिन (वैमानिक देवों) विषैं आदिमें कहे हुए (सौधर्म और ऐशान) स्वर्गोंमें
=आयुके नियम के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

भवनेषु दक्षिणार्धाधिपतीनां पल्योपममध्यर्धम् ॥ ३० सूत्र ॥ (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ११५ से उद्धृत)

भवनेषु७।दक्षिणार्धाधिपतीनाम्३। =भवनवासी (देवों) में दक्षिणार्धाधिपति (देव) तिनका अर्थात् विद्युत अग्नि स्तनित और द्वीप कुमारों की
पल्योपमम्१।।।अध्यर्धम्१।।। =अर्ध अधिक (सार्द्ध) एक पल्य प्रमाण अर्थात् डेढ़पल्य प्रमाण[परा स्थिति-उत्कृष्ट स्थिति]है ॥३०सूत्र॥

सागरोपमे इति द्विवचननिर्देशाद् द्वित्वगतिः । अधिके इत्ययमधिकारः । आ कुतः ? आ सहस्रारात्

सूत्रार्थः-परा१।१।।स्थितिः१।१।।(सूत्र २८ वां से उद्धृत) =उत्कृष्ट स्थिति अथवा आयु
सौधर्म-ऐशानयोः७।२।।सागरोपमे१।२।।अधिके१।२।। ।।२९।। =सौधर्म ऐशान (स्वर्गों) में दो सागर प्रमाण और कुछ अधिक है ।।२९।।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उनतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

सागरोपमे१।२।।इति*द्वि-वचन-निर्देशात्५।१।।द्वित्व-गतिः१।१।। =(इस २९ वां सूत्र में) 'सागरोपमे' ऐसे दो वचनके कथनसे दोकी प्राप्ति(=गति) है
अधिके१।२।।इति*अयम्१।१।।अधिकारः१।१।।आ*कुतः* ? =(सूत्रमें) 'अधिके' ऐसे यह प्रकरण है ।। कहां तक (=आ) ('अधिके' शब्दकाविषयहै)
आ*(२)सहस्रारात्५।१।। =(उत्तर) सहस्रार (बारहवां स्वर्ग) तक (=आ) ('अधिके' शब्द का अधिकार है)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इस सूत्रका लगभग तात्पर्य नीचे के तीन सूत्रमें ऐसे दिया है कि सौधर्मादिषु यथाक्रमम् ।।३३।। अर्थात् सौधर्मादिक (कल्पोंमें) क्रमानुसार परा (उत्कृष्ट) स्थिति कहेंगे ।। सागरोपमे ।।३४।। अर्थात सौधर्म कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो सागर प्रमाण है ।। मधिके च ।।३५।। अर्थात् और (=च) कुछ अधिक दो सागर प्रमाण ऐशान कल्पके देवोंकी स्थिति है । हमारे यहांके इस सूत्रके अर्थमें और श्वेताम्बर आम्नायके उक्त तीन सूत्रोंके तात्पर्यमें यह भेद हुआकि हमारे यहां सौधर्म स्वर्गके देवोंकी आयु कुछ अधिक दो सागर प्रमाण मानी है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमें केवल दो सागर है ऐशान स्वर्गके देवोंकी स्थिति दोनों आम्नायों में एकसी है अर्थात् दो सागरसे कुछ अधिकहै

(२) आङ् (=आ) अव्यय जब'प्रगृह्य'(=व्याकरणमें स्वरसन्धि न होने योग्य पद जैसे आ एवं मन्यसे ओह तुम ऐसा मानते हो) नहो तब चार अर्थोंमें आता है (i) थोडा-जैसे-आ+उष्णम्=ओष्णम्=थोडा तप्त (ii) जब क्रिया के प्रथम आता है तब निकटके अर्थमें और चलना, लेना, देना इत्यादि क्रियापदोंके साथमें उक्त क्रियाओंके-प्रतिकूल अर्थों का द्योतक होता है जैसे गच्छति वह जाता है, आगच्छति वह=आता है दत्ते=वह देता है, आदत्ते वह लेता है ।। (iii) मर्यादा (जो सीमा कहीजाय उसके बाहर बाहर) (iv) अभिविध अर्थमें (जो सीमा कही जाय उसको मिलाकर देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ७३ की टिप्पणी चार) जहां तक मेरा ज्ञान है उमास्वामीने इस चौथे अर्थमें सर्वत्र प्रयोग किया है देखो अध्याय १, सूत्र ३०, अध्याय २ सूत्र ४३, अध्याय ४ सूत्र ७; अध्याय ५ सूत्र ६, अध्याय ९ सूत्र १७, अध्याय ९ सूत्र २७, अध्याय १० सूत्र ५, इसी अर्थमें यहां 'आ सहस्रारात्' वाक्यमें पूज्यपाद स्वामीने प्रयोग किया है अथात् सागरों से 'कुछ अधिक' आयुका सम्बन्ध 'सहस्रार स्वर्गको समावेश, वा अन्तर्गत करते हुये है ।। -

घातायुष्कसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया किञ्चिदूनार्द्धसागरोपममधिकंभवति सौधर्मकल्पात्सहस्रारपर्यन्तम् ।। सम्मेघादेऊणसायरदलमहियमासहस्सारा इति वचनात् ।।

घात-आयुष्क-सम्यग्दृष्टि-अपेक्षया३।१।। =सम्यग्दृष्टि जीवकी विवक्षासे घातायुष्क अर्थात् पूर्व भवमें विशुद्ध परिणामोंसे बंधीहुई आयुका पश्चात् संक्लेश परिणामोंसे घटिजाना अथवा न्यून होजाना
किञ्चित्-ऊन-अर्द्ध-सागरोपमम्१।१।।अधिकम्१।१।। =कुछन्यून (अर्थात् अन्तर्मुहूर्त घाटि) आधे सागर प्रमाण अधिक
सौधर्म कल्पात्५।१।।सहस्रारपर्यन्तम्१।१।।भवतिT =सौधर्मस्वर्गसे सहस्रार तक (की पृथक् पृथक् नियमित स्थितिसे) होय है—(क्योंकि)

सौधर्मैशानयोः सागरोपमे [1]अधिके ॥ २९ ॥

सूत्रम्—सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥ २६ ॥

= (परा-स्थितिः सूत्र २८वां से) सौधर्म-ऐशानयोः सागरोपमे अधिके (भवति)

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके २६-३०-३१-३२ और हमारे यहांके २८ वां सूत्रको मिलाकर विचार पूर्वक पढ़नेसे भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भेद दोनों सम्प्रदायोंमें निम्न सूचीसे भले प्रकार विदित होता है ॥ जैसे

भवन वासी देवका नाम ॥	श्वेताम्बरआम्नायके अनुसार उत्कृष्टस्थिति	दिगम्बरआम्नायके	अनुकूलउत्कृष्ट आयु	सूचना
(१) असुर कुमार	एक सागर प्रमाण } सभाष्य०	एक सागर प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	दोनों सम्प्रदायोंमें असुर-कुमारकी आयु एक सागर प्रमाण है और विद्युत्कुमार अग्निकुमार स्तनितकुमार की आयु डेढ़ डेढ़ पल्यकी है अवशेष छह कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थितिमें दोनोंसम्प्रदायोंमेंभेदहै जैसाकि सूची से प्रगट है ॥
(२) नाग कुमार	एकसागरप्रमाणसेकुछअधिक } सूत्र३२देखो	तीन पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(३) विद्युत्कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(४) सुपर्ण कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण सभाष्य०सूत्र३१देखो	ढाई पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(५) अग्नि कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(६) वात कुमार	पोने दोपल्य प्रमाणसभाष्य० सूत्र३१देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(७) स्तनित कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(८) उदधि कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण सभाष्य०सूत्र३१ देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(९) द्वीप कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	दो पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(१०) दिक्कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण सभाष्य०सूत्र३१देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	

(१) दिगम्बर आम्नायमेंसर्वार्थसिद्धि वृत्तिके दोनों संस्करणोंमें 'अधिके' पाठ है, हस्त लिखित प्रतिमें 'ऽधिके' पाठ है अन्य अन्य पुस्तकोंमें कहीं कहीं पर अधिके' पाठ है और कहीं कहीं पर 'ऽधिके' पाठ भी है दोनों पाठ ठीक हैं देखो इस अनुवाद का अध्याय १ पृष्ठ १० की टिप्पणी (२)तेतीसवां सूत्रमें सौधर्म ऐशान स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति कही है और इस तेतीसवांसूत्रकी आदिमें 'अपरा' शब्द लाये हैं इससे स्पष्ट है कि इस सूत्र में उपर्युक्त दोनों स्वर्गोंकी ही उत्कृष्ट स्थिति कही है और परा शब्द का आवश्यकता से अध्याहार करना योग्य है ॥ अतः हमने 'परा' शब्द जोड़ा है ।

सर्वार्थ सिद्धि

अध्याय ४ सूत्र ३० ३१

॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अनयोः कल्पयोर्देवानां सप्तसागरोपमाणि साधिकानि उत्कृष्टा स्थितिः ॥

ब्रह्मलोकादिष्वच्युतावसानेषु स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशाभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

सूत्रम्—सानत्कुमार माहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ = सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त-सागरोपमाणि (४ अध्याय-सूत्र २९ से) अधिकानि (४ अध्याय सूत्र-२९ से) परास्थितिः (४ अध्याय सूत्र २८ से) भवति

(१) सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः[७/२] सप्त[१/३] सागरोपमाणि[१/३] अधिकानि[१/३] = सानत्कुमार (तीसरे) और (माहेन्द्र (चौथे स्वर्गों) में सात सागर प्रमाण

पराः[१/१] स्थितिः[१/१] = और कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है ॥

वृत्त्यनुवादः—अनयोः[७/२] कल्पयोः[७/२] देवानाम्[६/३] = इन दो (सानत्कुमार और माहेन्द्र) स्वर्गों में देवों की

सप्त-सागरोपमाणि[१/३] साधिकानि[१/३] उत्कृष्टा[१/१] स्थितिः[१/१] = सात सागर प्रमाण अधिक सहित उत्कृष्ट आयु है (=सातसागरसेअधिकहै)

ब्रह्म-लोकादिषु[७/३] अच्युत-अवसानेषु[७/३] स्थिति-विशेष- = ब्रह्मलोकादिकमें (और) अच्युत (सोलहवां स्वर्ग) पर्यन्तविषै आयुकाविशेष

प्रतिपत्ति-अर्थम्[२/१] आह = जानने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(२) सूत्रम्—त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

(यह सूत्र इतना सार गर्भित है कि बहुत सी अनुवृत्तियां अथवा अध्याहार द्वारा इसका अर्थ पूरा करनेके लिये पहिले पहिले इससूत्र के दो भाग करके अनुवाद शब्दशः करना पड़ा है, दूसरे यह कि भले प्रकार समझाने के लिये इस सूत्रकी (में) पूर्ण रूप से अनुवृत्तियों को लाकर और शब्दोंका अध्याहार करके छह सूत्रोंमें इस सूत्रको ढाल दिया है)

(२) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र में "सप्तसानत्कुमारे" ॥३६॥ यह सूत्र है = सानत्कुमार कल्पके देवोंकी सात सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है-हमारे यहां इस तीसवां सूत्रमें सानत्कुमार स्वर्गमें उत्कृष्ट आयु सात सागरसे कुछ अधिक है ॥ माहेन्द्र कल्पमें भी हमारे यहां उत्कृष्ट आयु सात सागर प्रमाणसे कुछ अधिक है। इतनी ही स्थिति माहेन्द्र स्वर्गमें श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके ३७ वां

। इदं तु कुतोज्ञायते ? उत्तरत्र तुशब्दग्रहणात् । तेन सौधर्मैशानयोर्देवानां द्वे सागरोपमे सातिरेके प्रत्येतव्ये ॥ उत्तरयोः स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

([1]आ*इदम्$^{1}_{1}$।। तु*	=(प्रश्न) तौ (=तु) यह 'आ' अर्थात् 'आ' सहस्रारात् भावार्थ सहस्रार तक 'अधिके' का अधिकार है ॥
कुतः*ज्ञायते। उत्तरत्र*तुशब्दग्रहणात्$^{5}_{1}$।।	=क्योंकर जानाजाता है(उत्तर)यहांसे आगे (इकतीसवां सूत्रमें) 'तु' शब्दकेलानेसे
तेन$^{3}_{1}$सौधर्म-ऐशानयोः$^{7}_{2}$देवानाम्$^{6}_{3}$द्वे$^{1}_{2}$।।सागरोपमे$^{1}_{2}$।।	=तिससे सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें देवोंके दो सागर प्रमाण
सातिरेके$^{1}_{2}$।।प्रत्येतव्ये$^{1}_{2}$।।	=अधिक सहित जानना चाहिये अर्थात् 'सौधर्मैशान'में दो सागरसे कुछअधिकहै
उत्तरयोः$^{6}_{2}$स्थिति-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्$^{1}_{1}$।।आह	=(सौधर्म-ऐशानसे)अगले दो (स्वर्गों)में आयुका विशेष जाननेके लिये कहतेहैं कि

सम्मे$^{7}_{1}$।।घादे$^{7}_{1}$।।ऊणं$^{1}_{1}$।।(=सम्यक्त्वे$^{7}_{1}$।।घाते$^{7}_{1}$।।ऊनम्$^{1}_{1}$।।)	=सम्यक्त्व (अवस्था) में घातायुष्क विषैं (अन्तर्मुहूर्त)न्यून
सायर-दलम्$^{1}_{1}$।।अहियम्$^{1}_{1}$।।(=सागर-दलम्$^{1}_{1}$।।अधिकम्$^{1}_{1}$।।)	=आधे (=दल) सागर (आयु प्रथम युगल से) अधिक
आ*सहस्सारा$^{5}_{1}$[आ*सहस्रारात्$^{5}_{1}$)इति*वचनात्$^{5}_{1}$।।	=सहस्रार तक(कीपृथक् पृथक् नियमित स्थितिसे) होतीहै। ऐसा(वाक्यउपर्युक्तआया)है

इस सबका भावार्थ यह है कि पूर्व भवमें किसी जीवने विशुद्ध परिणामोंसे आयु का बंध अधिक किया था, पश्चात् संक्लेश परिणामोंके वशसे आयु घटाय थोड़ी रक्खी तिस जीवको घातायुष्क कहिये। जैसे कोई मनुष्य ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गका आयु दश सागर प्रमाण बंध किया। फिर उसही मनुष्यभवमें संक्लेश परिणामोंके बंधनेसे आयुकी स्थितिका घात करके सौधर्म ऐशानमें जाय उपजा सो घातायुष्क है। सो अन्य देवोंकी अपेक्षा दो सागर प्रमाण आयुते अंतर्मुहूर्त न्यून आधा सागर अधिक आयु पावै है ॥ आयु का घात दो प्रकार है एक अपवर्तन घात दूजा कदली घात तहां वध्यमान आयु का घटावना सो अपवर्तन घात है अर भुज्यमान आयुका घटावना कदली घात है। देवोंमें कदली घात संभव नहीं है ॥

[१] सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकीद्वितीयावृत्तिमें और हस्तलिखित पुस्तकमें'आ'नहीं है, प्रथमावृत्तिमें'आ'है दोनों ही पाठ ठीक हैं क्योंकि इदम् आ और इदम् का वोही अर्थ हैं ॥ कोई संख्याओं (जैसे विंशति-त्रिंशत्-चत्वारिंशत् इत्यादि) के अतिरिक्त विशेष्य और विशेषणके कारक, वचन, लिंग एकहीहोते हैं इसलिये 'इदम्' के साथ 'आ' की विभक्ति लिंग और वचन भी वही होना चाहिये। 'आ' अव्यय है और अव्यय वह शब्द है जो तीनों लिंग सातों विभक्ति और सब वचनोंमें विकार वा रूप की पलटन को प्राप्त न हो ॥ जैसा कि कहागया है कि 'सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम्'=जो[शब्द] समान तीन लिंगोंमें, और (=च] सब [सातों] विभक्तियोंमें और (=च] सब [तीनों) वचनोंमें विकारको प्राप्त नहीं होता है वह अव्यय है ॥

आनत-प्राणत-आरण-अच्युतेषु॥ =आनत, प्राणत, आरण, अच्युत (स्वर्गों) में है अर्थात् आनत तेरहवांस्वर्ग, प्राणत चौदहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कर्ष आयु(तेरह + सात)पूरे वीस सागरकी है और आरण पन्द्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कृष्ट स्थिति (पंद्रह + सात) पूरे वाईस सागरकी है ॥ उपर्युक्तचारों स्वर्गोंमें पूरे पूरे सागरोंकी ही आयु है कुछ कुछ अधिक नहीं है इससे इस सूत्रमें 'तु' शब्द लाये हैं ॥

(अ) (ii) इस सूत्रको छह सूत्रोंमें विभाग करके अनुवृत्तियों और अध्याहारों द्वारा निम्न लेखसे अर्थको स्पष्ट करदिया है ॥

(१)त्रिभिः॥।अधिकानि॥।(इसी सूत्रसे)(२)सप्त॥सागरोपमाणि॥।(२९और३०सूत्रोंसे)=तीनकरिअधिक सातसागर प्रमाणअर्थात्दशसागरप्रमाण
स-(३)अधिकानि॥।(=सातिरेकानि सूत्र २९और वृत्ति सूत्र २९ से) परा॥स्थितिः॥ =और कुछ अधिक (कुछ अतिरेक) उत्कृष्ट आयु
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः॥कल्पयोः॥भवति।' =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्गमें औरब्रह्मोत्तर छठास्वर्गमेंहोतीहै
सारांश ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर स्वर्गोंमें कुछ अधिक दश सागर उत्कृष्ट स्थिति है

(इ) सप्तभिः॥अधिकानि॥।(इसी सूत्रसे) सप्त॥सागरोपमाणि॥।(३०,२९सूत्रोंसे) =सातकरि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात्१४सागर
स-अधिकानि॥।(=सातिरेकानि-सूत्र२९ और वृत्ति सूत्र २९ से) परा॥स्थितिः॥ =औरकुछअधिकअर्थात्१४सागरसेभीकुछअधिकउत्कृष्टआयु
लान्तव-कापिष्ठयोः॥कल्पयोः॥भवति।' =लान्तवस्वर्ग और कापिष्ठ (प्रत्येक) कल्पमें होती है

(उ) नवभिः॥अधिकानि॥।(इसीसूत्रसे) सप्त॥सागरोपमाणि॥।(२९और३०सूत्रोंसे) =नौ करि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात्सोलहसागर
स-अधिकानि॥। (=सातिरेकानि सूत्र२९औरवृत्ति सूत्र२९से) परा॥स्थितिः॥ =कुछ अधिक (=स-अधिकानि) उत्कर्ष स्थिति
शुक्र-महाशुक्रयोः॥कल्पयोः॥भवति।' =शुक्र नौवां में और महाशुक्र दशवां स्वर्गमें है भावार्थ नवमा स्वर्गमें और दशवां स्वर्ग प्रत्येक में सोलह सागर से कुछ अधिक स्थिति हैं।।

---

(१) त्रिभि ॥ = त्रि-सागरोपमैः ॥ क्योंकि सागरोपम शब्द नपुंसक लिंगी है और संख्याओंमें चारतक गणनाओंका लिंगभी वही होता है जो उसके सम्बन्धवाली संज्ञा का होता है अतः 'त्रिभिः' को नपुंसक लिंगमें रक्खा है (२) सप्तभिः इत्यादि को त्रिलिंगी इस हेतुसे रक्खा है कि पांचसे उन्नीस तक संख्यायें विशेषण मानी जासकती हैं इन संख्याओंका वचन और कारक वहीं होताहै जो संज्ञाका परन्तु येसंख्यायें केवल बहुवचनमेंआती हैं और तीनों लिंगों में वही अर्थात् एकही रूप होता है ॥

(३) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके पृष्ठ २५४में 'अधिके' शब्दजो सूत्रमें आयाहै उसकी वृत्ति पूज्यपादस्वामीने 'स अतिरेके' की है अतिरेकका अर्थ अधिकहै इसलिये सूत्र में अधिके=स-अधिके ॥

त्रि-सप्त-नव-एकादशभिः³।।।अधिकानि³।।। (३१ सूत्रसे[1])=तीन-सात-नौ-ग्यारह अधिक सहित (=अधिकानि इस ३१ वां सूत्र से)
सप्त³सागरोपमाणि³(३०वांसूत्रसे)अधिकानि(२९वांसूत्रसे) =सात सागर प्रमाण और कुछ अधिक
परा¹।।स्थितिः¹।। (२८ वां सूत्रसे) [2]ब्रह्मब्रह्मोत्तर- =उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य वा अनुक्रमसे) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर
लान्तवकापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्र-शतारसहस्रारेषु⁷। =लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र, शतार सहस्रार (स्वर्गों) में है अर्थात् ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवें और छठवां स्वर्गोंमें उत्कृष्टआयु कुछ अधिक (सात+तीन) दश सागर प्रमाण (प्रत्येकमें) है। लान्तव सातवां स्वर्ग कापिष्ठ आठवां कल्पमें उत्कर्ष आयु कुछ अधिक (सात+सात) चोदह सागर (प्रत्येकमें) है। शुक्र नववां स्वर्ग, महाशुक्र दशवां स्वर्गमें उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक (नव+सात) सोलह सागर (प्रत्येकमें) है। शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार वारहवां स्वर्गमें उत्कर्ष स्थिति कुछ अधिक (ग्यारह+सात) अठारह सागर प्रमाण प्रत्येक में है। स्मरण रहै कि श्वेताम्बर आम्नायमें ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ-शुक्र और शतार ये चार स्वर्ग नहीं हैं उनके यहां केवल १२ स्वर्ग माने है हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं ॥
[3]तु॥त्रयोदश-पञ्चदशभिः³अधिकानि³।।।(३१वांसूत्रसे) =परन्तु(=तु)अर्थात् कुछअधिक स्थितिको छोड़कर तेरह पंद्रहकरि अधिक सहित
सप्त-सागरोपमाणि(३०वांसूत्रसे)परा¹।।स्थितिः¹।।(२८वांसूत्रसे)=सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

सूत्रसे विदित है ॥ माहेन्द्र कल्पमें दोनो आम्नायके अनुकूल एकसी स्थिति उत्कृष्ट है अर्थात् सात सागरसे उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इससूत्रके स्थानमें ऐसा सूत्रहै"विशेषत्रिसप्तदशैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानिच"३७ हमारे यहांके इकतीसवां सूत्रसे इस सैंतीसवां सूत्रमें विशेष शब्द अधिक है नव के स्थान में दश है 'तु' के स्थानमें 'च' है। शेष पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है ॥ दोनों आम्नायोंके पूर्व सूत्रसे इस सूत्रमें 'सप्त' शब्द की अनुवृत्ति आती है। इसलिये 'विशेष' =विशेष+अधिकानि इसमें सप्त अनुवर्तं मानाको जोड़कर विशेष+अधिक+सप्त इतनी आयु अर्थात् सात सागरसे कुछ अधिक माहेन्द्र स्वर्गके देवोंकी है सो हमारेयहांकी आयुसेमिलती है॥

(२) ब्रह्मब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्र-शतार सहस्रारेषु ये शब्द (यह देखकर कि २९ वां सूत्रमें सौधर्मैशानयोः तथा ३० वां सूत्रमें सानत्कुमार माहेन्द्रयोः इन स्वर्गोंके आचार्य ने नाम लिये हैं) अध्याहार किये गये हैं अथवा यों समझलोकि इस अध्यायके १९ वां सूत्र से 'ब्रह्म ब्रह्मोत्तर-लान्तव कापिष्ठ-शुक्र महाशुक्र-शतार सहस्रारेषु अनुवर्तंत हैं ॥

(३) 'तु' शब्द अव्यय है, यहांपर परन्तु, किन्तु के अर्थात् भेद के अर्थमें प्रवर्तता है कभी वाक्यके पहिले नहीं आता है जिस अथवा जिन शब्दोंसे सम्बन्ध रखता है उसके अथवा उनके पश्चात् आता है जैसे यहां पर इस सूत्रके स्पष्टताके लिये मैंने 'तु' को उन शब्दोंसे (के) प्रथम रखदिया है जिनसे उसका सम्बन्ध है अर्थात् ऐसा अर्थ होता है कि सौधर्म स्वर्गसे सहस्रार तक उत्कृष्ट आयुसे कुछ अधिक आयु है आगे भेद (=तु) यह है कि पूरे पूरे सागरों की उत्कृष्ट स्थिति है 'स+अधिक' नहीं है ॥

सप्तग्रहणं प्रकृतम् ।तस्येह त्र्यादिभिर्निर्दिष्टैरभिसम्बन्धो वेदितव्यः॥ सप्त त्रिभिरधिकानि, सप्त सप्तभिरधिकानीत्यादिद्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः॥ तुशब्दो विशेषणार्थः॥ किं विशिनष्टि? अधिकशब्दोऽनुवर्तमानश्चतुर्भिरभिसम्बध्यते नोत्तराभ्यामित्ययमर्थो विशिष्यते॥ तेनायमर्थो भवति—ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोर्दशसागरोपमाणि साधिकानि॥लान्तवकापिष्ठयोश्चतुर्दशसागरोपमाणि साधिकानि॥ शुक्रमहाशुक्रयोः षोडशसागरोपमाणि साधिकानि ॥ शतारसहस्रारयोरष्टादशसागरोपमाणि

सप्त-ग्रहणम्[1/1]।।।प्रकृतम्[1/1]।।।	=(इस सूत्रमें पूर्व सूत्रसे) सात शब्दका ग्रहण अधिकृत अथवा प्रकरण रूप है
तस्य[6/1]।इह*त्रि-आदिभिः[3/3]।निर्दिष्टैः[3/3]।अभिसम्बन्धः[1/1]।	=तिस सप्तका यहां तीन आदिक कहीहुई संख्याओंसे सम्बन्ध
वेदितव्यः[1/1]।सप्त[1/3]।।।त्रिभिः[3/3]।।।अधिकानि[1/3]।।।	=जानना चाहिये । तीन करि अधिक सात अर्थात् दश,
सप्त[1/3]।।।सप्तभिः[3/3]।।।अधिकानि[1/3]।।।	=सातकरि अधिक सात अर्थात् चौदह
इत्यादि[1/1]।।।द्वयोः[6/2]।द्वयोः[6/2]।अभिसम्बन्धः[1/1]।वेदितव्यः[1/1]।	=इत्यादिक, दो दो संख्याओं का मिलाउ वा जोड़ जानना योग्य है
तुशब्दः[1/1]।विशेषण-अर्थः[1/1]।किम्[1/1]।।।विशिनष्टि[1/1]।।। ?	=(इस सूत्रमें) तु शब्द भेदके (जनावनेके) लिये है प्रश्न क्या विशेषण है
अधिकशब्दः[1/1]।अनुवर्तमानः[1/1]।	=अधिक शब्द (विशेषण) है जिसकी अनुवृत्ति (२९वांसूत्रसेइससूत्रमेंभी) विद्यमानहै
चतुर्भिः[3/3]।अभिसम्बध्यतेT	=(इस सूत्रकी) चार (संख्या त्रि-सप्त-नव-एकादश) से सम्बन्धकीजाती वा जोड़ीजातीहै
म-उत्तराभ्याम्[3/2]।इति*	=न अग्रिम दो (गणना वा संख्या त्रयोदश-पंचदश) से इस प्रकार
अयम्[1/1]।अर्थः[1/1]।विशिष्यतेTतेन[3/1]।अयम्[1/1]।अर्थः[1/1]।भवतिT	=यह अभिप्राय व्यक्त वा प्रगटकियाजाता है । तिस(अधिक शब्द)से यह अर्थहोताहैकि
ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरयोः[6/2]।दशसागरोपमाणि[1/3]।।।	=ब्रह्मलोक (पांचवा) ब्रह्मोत्तर (छठवां) स्वर्गोंमें दश सागर प्रमाण
स-अधिकानि[1/3]।।।लान्तव-कापिष्ठयोः[6/2]।	=कुछ अधिक (उत्कृष्ट स्थिति) है-लान्तव (सातवां) कापिष्ठ (आठवां) स्वर्गोंमें
चतुर्दश[1/3]।।।सागरोपमाणि[1/3]।।।स-अधिकानि[1/3]।।।शुक्र-	=चौदह सागर प्रमाण कुछ अधिक (उत्कर्ष आयु है) शुक्र (नवमां)
महाशुक्रयोः[6/2]।षोडश-सागरोपमाणि[1/3]।।।स-अधिकानि[1/3]।।।	=महाशुक्र (दशवां स्वर्गो) मे सोलह सागर प्रमाण कुछ अधिक (उत्कृष्ट आयु) है
शतार-सहस्रारयोः[6/2]।अष्टादश-सागरोपमाणि[1/3]।।।	=शतार (ग्यारहवां) सहस्रार (बारहवां स्वर्ग में) अठारह सागर प्रमाण

(ऋ) एकादशभिः ३। अधिकानि ३।।। (इसीसूत्रसे) सप्त ३ सागरोपमाणि ३।। (२९,३०सूत्रोंसे)	=ग्यारहकरिअधिक सातसागर प्रमाणअर्थात्‌अठारहसागर
स-अधिकानि ३।। (सातिरेकानि २९सूत्रऔर वृत्तिसूत्र २९से) परा १।। स्थितिः १।।	=(और) कुछ अधिक (स-अधिकानि) उत्कृष्ट आयु
शतार-सहस्रारयोः ३। कल्पयोः ३।	=शतार स्वर्गमें और सहस्रार (प्रत्येक) स्वर्गमें है
(लृ) तु*त्रयोदशभिः ३। अधिकानि ३।।। (इसी सूत्रसे)	=किन्तु(पर)अर्थात्‌कुछअधिकस्थितिकेविनातेरहकरिअधिक
सप्त ३ सागरोपमाणि ३।।। (२९ और३०सूत्रोंसे)परा १।। स्थितिः १।। (२८सूत्रदेखो)	=सात सागर प्रमाण अर्थात्‌ पूरे वीस सागर उत्कृष्ट आयु
आनत-प्राणतयोः ३। कल्पयोः ३।	=आनत स्वर्ग और प्राणत (प्रत्येक) स्वर्गमें है
(ए) तु*पञ्चदशभिः ३।।। अधिकानि ३।।। (इसी सूत्रसे)	=परन्तु(=तु)अर्थात्‌कुछअधिकस्थितिकेविनापंद्रहकरिअधिक
सप्त ३ सागरोपमाणि ३।।। (३०और२९सूत्रोंसे)परा १।। स्थितिः १।। (टिप्पणीसूत्र२८)	=सातसागर प्रमाण अर्थात्‌ पूरे वाईस सागर,उत्कर्षस्थिति
आरण-अच्युतयोः ३। कल्पयोः ३।	=आरण स्वर्ग और अच्युत स्वर्ग (प्रत्येक) में है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इकतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

सौधर्म स्वर्गसे अच्युत स्वर्ग तक श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंके देवोंकी समानता और अन्तरकी सूची निम्न प्रकार है॥ देखो सभाष्य०

दिगम्बर आम्नायके स्वर्गोंके नाम और उनकी उत्कृष्ट स्थिति सहित॥	श्वेताम्बर आम्नायके स्वर्गोंके नाम उन स्वर्गों की उत्कृष्ट आयुसहित
() दो सागर प्रमाणसे कुछअधिक उत्कृष्टआयु सौधर्मस्वर्गके देवोंकी है (सूत्र२९)	() सौधर्म कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट आयु दो सागर प्रमाण है (सूत्र३४)
() कुछ अधिकदो सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति ऐशान स्वर्गके देवोंकी है (सूत्र२९)	() ऐशानस्वर्गके देवोंकी उत्कर्षस्थिति कुछअधिक दोसागरहै(सूत्र३५)
() कुछ अधिकसातसागर प्रमाणउत्कर्षआयु सानत्कुमारकल्पकेदेवोंकी है (सूत्र३०)	() सानत्कुमार स्वर्गके देवोंकी उत्कर्षआयु सात सागर है (सूत्र३६)
() कुछ अधिक सातसागर प्रमाण उत्कर्षआयु माहेन्द्र कल्पके देवोंकी है (सूत्र३०)	() माहेन्द्र कल्पकेदेवोंकी परास्थितिकुछअधिक सातसागरहै(सूत्र३७)
() कुछअधिकदशसागरोपमउत्कृष्टस्थितिब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरस्वर्गकेदेवोंकीहै(सूत्र३१	() ब्रह्मलोक स्वर्गके देवोंकीउत्कृष्ट स्थिति दशसागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() कुछ अधिकचौदहसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिलान्तव कापिष्ठ स्वर्गोंके देवोंकीहै	() लान्तक स्वर्गके देवोंकी उत्कर्षआयु चौदह सागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() कुछ अधिक सोलहसागर प्रमाण उत्कर्षआयु शुक्र महाशुक्रस्वर्गके देवोंकीहै ,,	() महाशुक्र कल्पके देवोंकी उत्कर्षआयु सत्रहसागर प्रमाणहै (सूत्र३७)
() कुछ अधिक अठारहसागरोपम उत्कृष्टस्थिति सतारसहस्रार स्वर्गोंकेदेवोंकीहै,,	() सहस्रार स्वर्गकेदेवोंकी परास्थिति अठारह सागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() आनत प्राणत कल्पोंके देवोंकी उत्कृष्ट आयु पूरेवीस सागर प्रमाण है (सूत्र३१)	() आनतप्राणतस्वर्गोंकेदेवोंकीउत्कृष्टआयुवीससागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() आरण अच्युतस्वर्गोंके देवोंकी उत्कर्षआयु पूरेवाईस सागर प्रमाण है (सूत्र३१)	()आरणअच्युतस्वर्गोंकेदेवोंकीपरास्थितिवाईससागरप्रमाणहै(सूत्र३७)

सूत्रार्थः—आरण-अच्युतात्[५।१]ऊर्ध्वम्॥एकैकेन[३।१]॥।	=आरण-अच्युत (युगल) से ऊपर एक एक करि
(सागरोपमाणि[१।३]।) अधिकानि[१।३]।परा[१।१]।स्थितिः[१।१]।	=(सागर प्रमाण) वढ़ती हुई उत्कृष्ट आयु
ग्रैवेयकेषु[७।३]।नवसु[७।३]।अनुदिशेषु[७।३]।	=(क्रमसे प्रत्येक) नौग्रैवेयकविषैं और नौ अनुदिशोंमें
विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु[७।३]।सर्वार्थसिद्धौ[७।१]।च॥	=विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितमें है सर्वार्थसिद्धि में स्थिति उत्कृष्ट ही (=च) है जघन्य नहीं होती है अर्थात् नीचेके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथम ग्रैवेयकमें

सूत्रमें 'च' शब्द निश्चयके अर्थमें है अर्थात् च=ही ॥ आशय यह है कि जो नीचे नीचे में उत्कृष्ट स्थिति है वह ऊपर ऊपर में जघन्य जघन्य है जैसे नौ अनुदिशमें बत्तीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति है वही विजयादिकमें जघन्य है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमें एक उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरसे अधिक आयु नही होसकती जघन्यस्थिति दोनों आम्नायमें सर्वार्थसिद्धिमें नहीं हैं॥ विजय, वैजयन्त, जयत, अपराजित विमानोंमें भी उत्कृष्टआयु तेतीससागरहै

दिगम्बर आम्नायके कल्पातीतों के नाम स्थिति सहित	श्वेताम्बर आम्नायके कल्पातीतोंके नाम स्थिति सहित
() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिंद्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ सागर प्रमाण है ॥आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक पर्यन्त दोनों आम्नायकी स्थितिमें भेदनहींहै	() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिंद्रोंकी उत्कृष्ट आयु,२३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, सागर प्रमाण है । आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक तक दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा जघन्य स्थितिमें अन्तर नहीं है
() नौ अनुदिशोंके प्रत्येक अहमिंद्रकी उत्कृष्ट स्थिति ३२ सागर है हमारे यहां ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिकमें ९१ विमान माने हैं और नौ अनुदिश ऐसे १०० विमान माने हैं	() श्वेताम्बर आम्नायमें नवअनुदिश नामसे विमान नही माने हैं पर तीन ऊपर की ग्रैवेयकत्रिकमें १०० विमानोंमें हमारे यहांके नौ अनुदिशोको भी समावेश करलिया है (देखो अध्याय ५ पृष्ठ ४९)
() विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित चार विमानोंके अहमिंद्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है	() विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित चार विमानोंके अहमिंद्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागरोपम है (सभाष्यतत्त्वार्थाधिम सूत्र ३८ पृष्ट११७)
() सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट तथा जघन्यआयु तेतीस ही सागर प्रमाण है ॥	() सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र' ३८, ४२ पृष्ठ ११७, ११८)

इस टिप्पणी से प्रगट है कि श्वेताम्बर आम्नायमें नव अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में 'परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनंतरा जो ४२ वां सूत्रहै (हमारे यहां ३४वां है) वह इस बातका ज्ञापक है कि नवग्रैवेयकोंके और विजय वैजयन्त-जयन्त अपराजित विमानोंके मध्यमें कोई

साधिकानि ॥ आनतप्राणतयोर्विंशतिसागरोपमाणि ॥ आरणाच्युतयोर्द्वाविंशतिसागरोपमाणि ॥

तत उर्ध्वं स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषुविजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च॥

स-अधिकानि॥॥ आनत-प्राणतयोः॥	=कुछ अधिक (उत्कृष्टआयु है) आनत (तेरहवां) प्राणत (चौदहवां स्वर्गों) में
विंशति-सागरोपमाणि॥॥	=वीस सागर प्रमाण अर्थात् कुछ अधिक विना, पूरे वीस सागर ही की(उत्कृष्ट आयु) है
आरण-अच्युतयोः॥ द्वा-विंशति-सागरोपमाणि॥॥	=आरण (पन्द्रहवां) अच्युत (सोलहवां स्वर्गों)में वाईस सागर प्रमाण अर्थात् कुछ अधिक स्थितिके अतिरिक्त, पूरे वाईस सागर की उत्कृष्ट आयु है

ततः॥ऊर्ध्वम्॥स्थिति-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥॥आह=तिस (आठवां युगल) से ऊपर स्थिति विशेष जाननेके लिये (अगलेसूत्रमें) कहतेहैं कि

सूत्रम्(१) आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ(३) च ॥३२॥

= आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन सागरोपमाणि (२९ वां सूत्रसे) अधिकानि (३१वां सूत्रसे) परा स्थितिः(२८वांसूत्रसे)ग्रैवेयकेषु नवसु(२) अनुदिशेषु विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषुसर्वार्थसिद्धौच

(१) चूंकि तेतीसवां सूत्रमें 'अपरा' शब्द जघन्यके अर्थमें लाये हैं इसलिये यहां 'परा' शब्द का अध्याहार भी उत्कृष्ट अर्थमें होसकता है ॥

(२) हमने इस बात पर कि 'ग्रैवेयकेषु' शब्दके पश्चात् 'नवसु' शब्द को क्यों रक्खा है पृष्ठ ५३ में एक पूर्ण टिप्पणी देदी है क्योंकि उन्नीसवां सूत्रमें भी 'नवसु' शब्द इसी प्रकरणमें आया है यहां पर अधिक तर्क यह होसकता है कि इस सूत्रका रूप 'ग्रैवेयकेषु नवसु विजयादिषु' होजाता है और फिर बाह्य रूप से अर्थ यह होजाता है कि नव ग्रैवेयक हैं और नव विजयादिषु हैं इसका उत्तर यह है कि उन्नीसवां सूत्रमें 'विजयादिषु' शब्द न लाकर 'विजय वैजयन्त जयन्त अपराजितेषु' वाक्य लाये हैं जिससे प्रगट होता है कि विजयादिषु नौ विमान नहीं हैं वरन् चार ही विजय-वैजयन्त जयन्त और अपराजित हैं ॥

(३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में 'सर्वार्थसिद्धौ' के स्थानमें 'सर्वार्थसिद्धे' ऐसा पाठ है शेष पाठ एकसा है। अर्थ नवसु 'ग्रैवेयकेषु'तकएकसाहै हमारे यहांनव अनुदिशोंमें बत्तीससागरकी उत्कृष्ट आयु और विजयवैजयन्त,जयन्त और अपराजित प्रत्येकमें उत्कृष्ट आयुतेतीस तेतीस सागरकी है श्वेताम्बर आम्नायमें नवअनुदिश नहीं माने हैं वरन् तीन ऊपर की ग्रैवेयकनि में इक्यानवै विमान हमारे माने हैं और नौ अनुदिश पृथक् माने हैं उनके यहां ग्रैवेयकनिके ९१ विमान न मानकर सौ विमान माने हैं अर्थात् नव अनुदिशोंको भी इन्हीं विमानोंमें समावेश करदिया है इसलिये यहां विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित प्रत्येक विमानमें उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर मानी है और सर्वार्थसिद्धि में हमारे यहां और उनके यहां तेतीस सागर की आयु उत्कृष्ट मानी है सर्वार्थसिद्धमें दोनों आम्नायके अनुकूल जघन्य स्थिति नहीं है ॥ देखो सभाष्य० पृष्ठ ११८ सूत्र ४२)

अधिकग्रहणमनुवर्तते। तेनेहाभिसम्बन्धो वेदितव्यः। एकैकेनाधिकानीति॥ नवग्रहणं किमर्थम्? प्रत्येकमेकैकमधिकमिति ज्ञापनार्थम्॥ इतरथा हि ग्रैवेयकेष्वेकमेवाधिकं स्यात्॥ विजयादिष्विति आदिशब्दस्य प्रकारार्थत्वादनुदिशानामपि ग्रहणम्॥सर्वार्थसिद्धेःपृथग्ग्रहणं जघन्याभावप्रतिपादनार्थम्

तथा अनुदिश विमानविषैं बत्तीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित प्रत्येक विमान में उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है सर्वार्थसिद्धि विषैं तेतीस सागर ही स्थितिहै (-यहांजघन्य स्थितिनहींहैएक हीआयु है)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित बत्तीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

अधिक-ग्रहणम्[१/१]॥अनुवर्तते।	=(इस सूत्रमें) अधिक शब्दका उपादान (पिछले ३१ वां सूत्रसे) प्रवर्तता है
तेन[३/१]॥इह*अभिसम्बन्धः[१/१]वेदितव्यः[१/१]एक-एकेन[३/१]॥	=तिस (अधिक शब्दके ग्रहण) से इह सम्बन्ध जानना चाहिये (कि) एक एक
अधिकानि[१/३]॥इति*नव-ग्रहणम्[१/१]॥किम्[१/१]॥अर्थम्[१/१]॥	=(सागर प्रमाण)करि अधिक है(प्रश्न)(इस सूत्रमें) नौ(शब्द)काग्रहणकिसलियेहै
प्रत्येकम्[१/१]॥एकैकम्[१/१]॥अधिकम्[१/१]॥इति ज्ञापन-अर्थम्[१/१]॥	=(उत्तर) पृथक् पृथक् (ग्रैवेयकमें) एकएक सागर बढ़ती(आयु)ऐसाजाननेकेलियेहै
इतरथा*हि*ग्रैवेयकेषु[७/३]एकम्[१/१]॥एव*	=क्योंकि (=हि) अन्यथा (सर्व) ग्रैवेयकोंमें एक (सागर प्रमाण) ही (स्थिति)
अधिकम्[१/१]॥स्यात्।	=अधिक होती अर्थात् सब नव ग्रैवेयकों की स्थिति तेईस सागर होती किसी की भी अधिक नहीं होती इसलिये इससूत्रमें नव शब्दका ग्रहण है
विजय-आदिषु[७/३]इति*आदिशब्दस्य[६/१]प्रकार-अर्थत्वात्[५/१]॥	=विजय-आदिकमें ऐसे आदि शब्दके प्रकारार्थ होनेसे
अनुदिशानाम्[६/३]अपि*ग्रहणम्[१/१]॥सर्वार्थसिद्धेः[६/१]॥	=अनुदिशोंका भी ग्रहण हुआ। सर्वार्थसिद्धि का (इस सूत्रमें)
पृथग्-ग्रहणम्[१/१]॥जघन्य-अभाव-प्रतिपादन-अर्थम्[१/१]॥	=भिन्न ग्रहण (वहां) जघन्य (स्थिति) का न होना जनावनेके लियेहै अर्थात् विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित-और सर्वार्थसिद्धि इन पांचों विमानों का

जब एकही पटल है और सबमें उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है तौसूत्रमें 'सर्वार्थसिद्धौ' ऐसा पृथक् वाक्य क्योंलाये औरभिन्न विभक्ति क्योंकी "विजयादिषु" इसमें गर्भित क्यों न रक्खा इसका कारण यह है कि अन्य चार विमानोंमें तो जघन्य स्थिति बत्तीस सागर प्रमाण है और उत्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमेंकेवल उत्कृष्टही स्थितिहैजघन्य नहींइससे इसको पृथक् लायेऔरसप्तमीविभक्तिमें लायेहैं॥

तेईस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति दूसरेमें चौवीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, तीसरेमें पचीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, बहुरि मध्य ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें छब्बीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, दूसरेमें सत्ताईस सागर प्रमाण परा स्थिति, तीसरेमें अट्ठाईस सागर प्रमाण परा स्थिति है और ऊपरके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें उनतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति, दूसरेमें तीससागर प्रमाण परास्थिति, तीसरेमें इकतीस सागरप्रमाण परास्थितिहै

और विमानवासी हैं जिनकी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर होसक्ती है। हम उसको यहांपर संस्कृत भाष्य, हिंदी अनुवाद और चरण टिप्पणी सहित सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पृष्ठ ११८ से शब्दशः उद्धृत करते हैं

॥ परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थः—"माहेन्द्र कल्पके परे पूर्व अर्थात् पूर्व २ स्वर्गोंमें जो परास्थिति है वह पर २ में जघन्य अर्थात् अपरा स्थिति होती है ॥"

भाष्यम्—"माहेन्द्रात्परतः पूर्वा परानन्तरा जघन्यास्थितिर्भवति। तद्यथा-माहेन्द्रे परा स्थितिर्विशेषाधिकानि सप्त सागरोपमाणि सा ब्रह्मलोके जघन्या भवति। ब्रह्मलोके दश सागरोपमाणि परास्थितिः सा लान्तके जघन्या। एवमासर्वार्थसिद्धादिति। (विजयादिषु चतुर्षु परा स्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सा त्वजघन्योत्कृष्टा सर्वार्थसिद्ध इति)"

विशेष व्याख्या—माहेन्द्र कल्पसे आगे पूर्व २ की जो परास्थिति है वह पर २ अर्थात् आगे २ के कल्पोंमें अपरा स्थिति होजाती है। जैसे माहेन्द्र कल्पमें परास्थिति विशेष अधिक सप्त सागरोपम है, वह ब्रह्मलोकमें अपरा अर्थात् जघन्या है। ऐसेही ब्रह्मलोकमे परा स्थिति दश सागरोपम है वह लान्तकमें जघन्या वा अपरा स्थिति है। इसी प्रकार पूर्व २ की परा स्थिति पर २ की जघन्या स्थिति सर्वार्थसिद्धि (१) पर्यन्त जाननी चाहिये। (२) (विजयआदि चार विमानो में परा स्थिति तेंतीस सागरोपम है, वह सर्वार्थसिद्धमें अजघन्योत्कृष्टा है।) ॥" चरणटिप्पणी (१) (२) सभाष्य०में ऐसेहैं कि "(१) यहां पर यह जानना उचित है कि विजय आदि चार विमानोंमें परास्थिति बत्तीस सागरोपम है और सर्वार्थसिद्धमें तेंतीस सागरोपम अजघन्योत्कृष्ट है, अर्थात् यहां एकही स्थिति है, परा अपरा भेद नहीं है। और भाष्यकार सर्वार्थसिद्धिमें भी जघन्या बत्तीस सागरोपम है ऐसा जो कहते हैं-आसर्वार्थसिद्धात्-उसका अभिप्राय नहीं ज्ञात होता है। कदाचित् यहां आङ् (आ) मर्यादाबोधक हो अर्थात् सर्वार्थसिद्ध को छोड़के "तेन विना मर्यादा तत्सहितोऽभिविधिः ॥"

"॥२॥ विजयादिककी परास्थिति तो बत्तीस की (३२) कही है यहां ३३ किस अभिप्राय से कहे यह नहीं जाना जाता। और कहीं २ कोष्ठका पाठ नहीं है क्योंकि अर्थ संगत नहीं है" आङ् मर्य्यादाभिविध्योः अष्टाध्यायी २। १। १३ ॥ आङ् (=आ) जिसके प्रथम आवे तिसको छोड़ कर (तेनविना) मर्यादा अर्थमें आता है जेसे आपाटलिपुत्रात् वृष्टोः देव=पटना को छोड़कर मेह बरषा ॥ तिस सहित (=तत्संहित) अभिविध अर्थमें आता है=आ आकाशादेकद्रव्याणि=आकाशको लेते हुये या आकाश को समावेश करते हुये एक एक द्रव्यें हैं ॥ अर्थात् धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य औरआकाश ये एक२ हैं।

॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

पल्योपमं व्याख्यातम् । अपरा जघन्यस्थितिः ॥ पल्योपमं साधिकम् ॥ केषां ? सौधर्मैशानीयानाम् ॥ कथं गम्यते परतः परत इत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥

तत ऊर्ध्वं जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

[१]सूत्रम्—अपरापल्योपममधिकम्॥ ३३॥ = (सौधर्मैशानयोः २९वां सूत्रसे) अपरा (स्थितिः २८वां सूत्रसे) पल्योपमम् अधिकम् भवति ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः—सौधर्म-ऐशानयोः।अपरा।।स्थितिः।। =सौधर्म-ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें जघन्य आयु
पल्योपमम्।।।अधिकम्।।।भवति। =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इसतेतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिंदी अनुवाद

प्रल्य-उपमम्।।।व्याख्यातम्।।। =पल्यका प्रमाण (तीसरे अध्याय के ३८ वां सूत्रमें) कहा जा चुका है
अपरा।।जघन्य-स्थितिः।।पल्योपमम्।।।स-अधिकम्।।। =अपरा है सो निकृष्ट स्थिति है (सो) कुछ अधिक पल्य प्रमाण है
केषाम्।? =(प्रश्न) किनकी (जघन्य आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण) है
सौधर्म-ऐशानीयानाम्। =(उत्तर) सौधर्म-ऐशानके देवोंकी निकृष्ट स्थिति कुछ अधिक पल्य प्रमाण है
कथम्*गम्यते। परतः*परतः*इति*उत्तरत्र* =(प्रश्न)कैसे जाना जाय है ॥ [उत्तर] अगले अगलेमें ऐसा यहांसे अग्रिम [सूत्रमें]
वक्ष्यमाणत्वात्।।। =कहेजानेसे सौधर्मऐशान स्वर्गोंमें जघन्य स्थितिकुछअधिक पल्य प्रमाणजानीजातीहै
ततः*ऊर्ध्वम्।।।जघन्य-स्थिति-प्रतिपादन-अर्थम्।।।आह। =वहां [सौधर्म ऐशान युगल] से ऊपर निकृष्ट आयुके कहनेके लिये कहतेहैं कि

(१) श्वेताम्बर आम्नायमें 'अपरा पल्योपममधिकम् च' पाठ है अर्थात् हमारे यहांसे च अधिक है और सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ ११७ पर यह भाष्य है कि तत्र सौधर्मेऽपरा स्थितिः पल्योपममैशाने पल्योपममधिकं च'=तहां सौधर्म (स्वर्ग) में जघन्य आयु पल्यप्रमाण है (और) ऐशान (स्वर्ग) में पल्य प्रमाण तथा कुछ अधिक है। हमारे यहां सौधर्म ऐशान प्रत्येकमें एक पल्यसे कुछअधिक निकृष्ट आयुहै यही अर्थभेद दोनोंआम्नायोंमेंहै

तेनायमर्थः, अधोग्रैवेयकेषु प्रथमे त्रयोविंशतिः । द्वितीये चतुर्विंशतिः ॥ तृतीये पञ्चविंशतिः ॥ मध्यमग्रैवेयकेषु प्रथमे षड्विंशतिः ॥ द्वितीये सप्तविंसतिः ॥ तृतीयेऽष्टाविंशतिः ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु प्रथमे एकोनत्रिंशत् ॥ द्वितीये त्रिंशत् ॥ तृतीये एकत्रिंशत् ॥ अनुदिशविमानेषु द्वात्रिंशत् ॥ विजयादिषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्युत्कृष्टा स्थितिः । सर्वार्थसिद्धेस्त्रयस्त्रिंशदेवेति ॥ निर्दिष्टोत्कृष्टस्थितिकेषु देवेषु जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

तेन अयम् अर्थः अध *(1)ग्रैवेयकेषु	=तिस (नवशब्दके ग्रहण) से यह अर्थ होता है कि नीचले ग्रैवेयक त्रिकमें
प्रथमे त्रयोविंशतिः द्वितीये चतुर्विंशतिः	=पहिलेमें तेईस(सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है । दूसरेमें चौबीस(सागरप्रमाणउत्कृष्टआयु)है।
तृतीये पञ्चविंशतिः मध्यम-ग्रैवेयकेषु	=तीसरेमें पचीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है । मध्यग्रैवेयकत्रिकमें
प्रथमे षड्-विंशतिः द्वितीये	=प्रथममें छब्बीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है । दूसरेमें
सप्तविंशतिः तृतीये अष्टाविंशतिः	=सत्ताईस (सागरप्रमाणउत्कृष्ट आयु)है। तीसरेमें अट्ठाईस (सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है।
उपरिम *ग्रैवेयकेषु प्रथमे एकोनत्रिंशत्	=ऊपरके ग्रैवेयक त्रिकमें प्रथममें उनतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है ।
द्वितीये त्रिंशत् तृतीये	=दूसरेमें तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है । तीसरेमें
एकत्रिंशत् अनुदिश-विमानेषु	=इकतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है । अनुदिश विमानोंमें
द्वा-त्रिंशत् विजय-आदिषु	=बत्तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है । विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितमें
त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि उत्कृष्टा स्थितिः	=तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ।
सर्वार्थसिद्धेः त्रयस्त्रिंशत् एव *इति*	=सर्वार्थसिद्धिमें तेतीस ही (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है (जघन्यस्थिति नहींहोती है)
निर्दिष्ट-उत्कृष्ट स्थितिकेषु देवेषु	=वर्णित उत्कर्ष स्थिति वाले देवोंमें
जघन्य-स्थिति-प्रतिपादन-अर्थम् आहा	=जघन्य आयुके कहने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) इस बत्तीसवां सूत्रमें नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु इस रूपसे पृथक् पृथक् उल्लेख क्यों किया है नवग्रैवेयक विजयादिषु ऐसा समासांतपद पदही मानना चाहिये था । ऐसा मानने में दो अक्षरों का लाघव भी होता । (उत्तर) ग्रैवेयकोंसे विजयादि विमानोंका जो पृथक् रूपसे ग्रहण कियागया है वह नौ अनुदिश विमानोंके संग्रहके लिये है यदि 'नवग्रैवेयक विजयादिषु' ऐसा उल्लेख करते तो नव अनुदिश विमानोंका ग्रहण नहीं होता वे कथन करनेसे रहजाते हैं ॥

() सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंके (प्रत्येकके)देवों की जघन्य आयु दो सागर से कुछ अधिक है (देखो सूत्र२९,३४)	() सानत्कुमार में जघन्य स्थिति दो सागर है (सभाष्य० सूत्र ४०)माहेन्द्रमें दो सागर से अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४१)
() ब्रह्म ब्रह्मोत्तर(प्रत्येक)स्वर्गके देवोंकी अपरा स्थिति सात सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३०, ३४)	() ब्रह्मलोक (ब्रह्मोत्तर स्वर्ग सभाष्य० सूत्रमें नहीं है) में सात सागर से कुछ अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र ४२)
() लांतव—कापिष्ठ (प्रत्येक) स्वर्गके देवों की निकृष्ट आयु दश सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१, ३४)	() लांतक (कापिष्ठ सभाष्य०सूत्रमें नहीं माना है)में जघन्य स्थिति दस सागर है (देखो सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)
() शुक्र—महाशुक्र (प्रत्येक)स्वर्गके देवोंकी जघन्य स्थिति चौदह सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१, ३४)	() महाशुक्र कल्प (शुक्र कल्प सभाष्य०सूत्र में नहीं है)में जघन्य स्थिति चौदह सागर है (देखो सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)
() शतार-सहस्रार (प्रत्येक) कल्पके देवोंकी अपरा आयु सोलह सागर से कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१, ३४)	() सहस्रार स्वर्ग (शतार सभाष्य०में नहीं माना है)में जघन्य आयु सोलहसागर है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)
() आनत—प्राणत(प्रत्येक) स्वर्गके देवोंकी निकृष्ट स्थिति पूरे अठारह सागर है (देखो सूत्र ३१,३४)	() आनत प्राणत स्वर्गोंमें वही जघन्य स्थितिहै जो हमारे यहां है (सभाष्य०सूत्र ३७, ४२)
() आरण—अच्युत (प्रत्येक) कल्पके देवोंकी जघन्य आयु पूरे बीस सागर प्रमाण है (देखो सूत्र ३१, ३४)	() आरण अच्युत स्वर्गोंमें वही स्थितिहै जो हमारे यहां है(सभाष्य०सूत्र३७ ४२)
() प्रत्येक नव ग्रैवेयकमें क्रमसे एक एक वृद्धिको प्राप्त बाईस सागर से ३० सागर तक जघन्य स्थिति है (देखो सूत्र ३२,३४)	[] सभाष्य० के सूत्र ३८, ४२, से वही जघन्य स्थिति श्वेताम्बर आम्नाय में है
() नव अनुदिश जिनका एक पटल है जघन्य स्थिति ३१ सागर है (देखो सूत्र ३२, ३४)	[] नव अनुदिश नहीं माने हैं इस लिये जघन्य और पृकृष्ट कोई स्थिति नहीं हो सकती है।
() विजय—वैजयन्त—जयन्त—अपराजितमें (प्रत्येकमें) जघन्य आयु ३२ सागर है (देखो सूत्र ३२,३४)	[] विजय—वैजयन्त—जयन्त-अपराजित में सभाष्य० के आरणाच्युत इत्यादि ३८वां सूत्र को परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा' ४२वां सूत्रके साथ पढने से यह बात निकलती है कि प्रत्येक उक्त चार विमानों में जघन्य आयु ३१ सागर है क्योंकि अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु ४२ सूत्रके कोष्ठकका पाठ कि विजयादि चार विमानोंमें परास्थिति तेतीस सागर है इस बात का ज्ञापक है कि जघन्य आयु ३२ सागर है क्योंकि विजयादिक की उत्कृष्ट स्थिति ३८,४२ सूत्रमें बतीस सागर है ४२वां सूत्रके कोष्ठकमें ३३ सागर है
() सर्वार्थसिद्धिमें जघन्योत्कृष्ट एकही स्थिति तेतीससागर प्रमाणहै	[] सर्वार्थसिद्धिमें जघन्योत्कृष्ठ एक ही आयु तेतीस सागर है।

परतः परतः पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा ॥ ३४ ॥

सूत्रम्—परतः परतः पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा ॥३४॥ =पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा परतः परतः ॥३४॥

=पूर्वा पूर्वा[2] ऽनन्तरा(साधिका ३३वां सूत्रसे)([1]परास्थितिः २८वां सूत्रसे)[3] परतः[3] परतः(अपरा ३३वां सूत्रसे)(स्थितिः २८वां सूत्रसे)भवति

(१)अट्ठाईसवां सूत्रमें भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा आयुका वर्णन है उनतीसवां सूत्रसे बत्तीसवां तक चार सूत्रोंमें समस्त कल्पवासी और कल्पातीत अहमिन्द्रोंकी उत्कृष्ट आयुका उल्लेख है। तेतीसवां सूत्रसे अड़तीसवां सूत्र तक और ४१वां सूत्रमें भी कल्पवासी देव कल्पातीत अहमिन्द्र (सर्वार्थसिद्धि को छोडकर जहां उत्कृष्ट जघन्य तेतीस सागरकी एकही स्थिति है) नारकियों, भवनवासी, और व्यंतर देवोंकी जघन्य आयु का प्रकरण है ॥ इस सूत्रमें कुछ अधिक = अधिका = साधिकाकी अनुवृत्ति३३वां सूत्रसे आतीहै जैसाकि ३४वां सूत्रकी वृत्तिमें अधिक ग्रहणमनुवर्तते और तीन स्थानोंमें साधिका वाक्योंके प्रयोगसे प्रगट है नकि उक्त अनुवर्तन उनतीसवां सूत्रसे है क्योंकि वहां उनतीसवां सूत्रमें उत्कृष्ट आयुका कथन है।

(२) पूर्वा पूर्वा और अनन्तरा शब्द प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग हैं और स्थितिः शब्द जो प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग में है उसके विशेषण हैं नकि स्वर्ग, कल्प वा युगल इत्यादि के (३)पर अर्थात् अगले देशमें जो रहे उसको 'परतः कहते हैं 'परतः परतः' यहां पर वीप्सा वा अनेकता अर्थमें द्वित्व(=दोवार)है 'पूर्वा पूर्वा'यहां पर भी वीप्साअर्थमें द्वित्व है ॥(४)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें हमारे यहांके ३३वां और ३४वां सूत्रके मध्यमें उनके यहांका ४०वां सूत्र सागरोपमे = सानत्कुमार कल्पमें जघन्य स्थिति दो सागर प्रमाण है और ४१वां सूत्र अधिके च = माहेन्द्र स्वर्गमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक दो सागर प्रमाण बढती वा अधिक है। इन ४०वां, वा ४१वां सूत्रोंके पश्चात् उनके यहां का ४२वां सूत्र 'परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा हमारे यहांके उपर्युक्त ३४वां सूत्रके पाठसे अक्षरशः मिलता है परन्तु तात्पर्यमें अन्तर यह है कि सभाष्य-तत्वार्थाधिगम सूत्रके अनुसार इस सूत्रसे *ब्रह्मलोककी जघन्य स्थिति का आरम्भ होता है और सर्वार्थ सिद्धिकी स्थिति तकका वर्णन है* हमारे यहांके अनुकूल इस सूत्रसे सानत्कुमार माहेन्द्र युगल की जघन्य स्थिति का प्रारम्भ होता है और विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानोंतककी जघन्य आयुका कथन है। दोनों आम्नायोंके अनुकूल सर्वार्थ सिद्धिमें एक तेतीस सागरकी अजघन्योत्कृष्टा स्थिति है यहां पर परा अपरा स्थितिका भेद नहीं है(सभाष्य० पृष्ठ ११७,११८)इसलिये हमारे यहां सौधर्म ऐशान दोनो स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति दो पल्य प्रमाणसे प्रत्येकमें कुछ अधिक है। श्वेताम्बर आम्नायके अनुसार सौधर्म स्वर्गमें जहां पर स्थिति एक पल्य प्रमाण है ऐशान स्वर्ग में एक पल्यसे निकृष्ट स्थिति कुछ अधिक है (सभाष्य सूत्र ३६)वैसेही हमारे यहां सानत्कुमार माहेन्द्र प्रत्येक स्वर्गमें जघन्यस्थिति दोसागर प्रमाणसे कुछ अधिक हैं उनके यहां सानत्कुमार स्वर्गमें दोसागर प्रमाण जघन्य स्थिति है और माहेन्द्र कल्पमें अपरा स्थिति दो सागरसे कुछ अधिक है। जो टिप्पणी हमने पृष्ठ १०१, १०४, १०५, में उत्कृष्ट स्थितिके सम्बन्धमें दी हैं उनसे यद्यपि जघन्य स्थिति का भेद निकल आता है तो भी सरलताके लिए निम्न टिप्पणी भी देते हैं ॥

दिगम्बर आम्नायकी सौधर्मस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य आयु	श्वेताम्बर आम्नायकी सौधर्मस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य स्थिति
() सौधर्म और ऐशान स्वर्गों की देवों की जघन्य स्थिति एक पल्य से कुछ अधिक है(देखो सूत्र३३)	() सौधर्मस्वर्गमें जघन्य आयु एक पल्य है और ऐशानस्वर्गमें एक पल्यसे कुछ अधिक है (देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्रमें सूत्र ३६)

परा स्थितिः सप्तसागरोपमाणि साधिकानि, तानि ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्जघन्या स्थितिरित्यादि ॥

नारकाणामुत्कृष्टा स्थितिरुक्ता । जघन्यां सूत्रेऽनुपात्तामप्रकृतामपि लघुनोपायेन प्रतिपादयितुमिच्छन्नाह

नारकाणां च द्वितीयादिषु॥३५॥

परा॥ स्थितिः॥ स-अधिकानि॥ =उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक

सप्त-सागरोपमाणि॥ तानि॥ ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः॥ =सात सागर प्रमाण है ते (सात सागर और कुछ अधिक) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें

जघन्या॥ स्थितिः॥ । इति*आदि॥ =निकृष्ट स्थिति है । ऐसेही आगे आगे है अर्थात् सागरोंसे कुछ अधिक है यह अधिकता बारहवां सहस्रार स्वर्गतक है । आनत प्राणत स्वर्गोंसे आगे पूरेपूरे सागरोंकी आयुहै नीचली नीचली उत्कृष्ट स्थिति ऊपर ऊपर विजयादिक तक जघन्य जघन्य है ॥

नारकाणाम्॥ उत्कृष्टा॥ स्थितिः॥ उक्ता॥ सूत्रे॥ =नारकियोंकी प्रकृष्ट आयु(तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें)कही । (इस) सूत्रमें

अनुपात्ताम्॥ अप्रकृताम्॥ अपि॥ जघन्याम्॥ =अप्राप्त(=अनुपात्ताम्) और अनधिकृत (नारकियोंकी) जघन्य (स्थिति) भी

लघुना॥ उपायेन॥ प्रतिपादयितुम्० इच्छन्॥ आह । =लघु साधन द्वारा अर्थात् थोड़े अक्षरों द्वारा कहनेको इच्छुक (आगे दो सूत्रमें) कहते हैं अर्थात् नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तौ तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें कहदी और यहां वैमानिकोंकी स्थितिका उल्लेख किया है इसलिये नारकियोंकी जघन्यस्थितिकहने का कोई अवसर प्राप्त नहीं है औरन नारकियोंका कथनका कोई प्रकरण वा विषयही है तौ भी आचार्यकी इच्छा नारकियोंकी जघन्य स्थिति वर्णन करनेकी इस हेतुसे है कि अल्प शब्दोंमेंही इस सूत्रकी अनुवृत्ति लेनेसेअभीष्ट स्थिति कही जासकती है ॥

(२)सूत्रम्—नारकाणां च द्वितीयादिषु = नारकाणाम् च द्वितीयादिषु (भूमिषु(१) अध्याय ३ सूत्र १ से)

पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा परा स्थितिः परतः परतः अपरा स्थितिः भवति

(१)'भूमिषु' इस शब्दकी अनुवृत्ति तीसरे अध्यायके पहिले सूत्रसे लीगई है क्योंकि इस स्थिति का यहां विषय न था वरन् तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रके पश्चात् था,वहां लघु अक्षरोंमें यह स्थिति नहीं कही जासकती थी इस हेतुसे यहां कहीगई है तीसरा अध्याय सूत्र १से यह 'भूमिषु' शब्द अनुवर्तता है । चकारसे सबका सब सूत्र ३४वां कीअनुवृत्ति आती है ।(२) श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥

परस्मिन्देशे परतः । वीप्सायां द्वित्वम् । पूर्वशब्दस्याप्यधिकग्रहणमनुवर्तते ॥ तेनैवमभिसम्बन्धः क्रियते-सौधर्मैशानयोर्द्वे सागरोपमे साधिके उक्ते, ते साधिके सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्जघन्यस्थितिः ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः

सूत्रार्थः-पूर्वा॥ पूर्वा॥अनन्तरा॥साधिका॥परा॥स्थितिः॥=पहिली पहिली अत्यन्त निकट (=अनन्तरा)कुछ अधिक सहित, उत्कृष्ट स्थिति

परतः* परतः* अपरा॥ स्थितिः॥ भवतिT =अगले अगलेमें वा ऊपर ऊपरमें (=परतःपरतः) जघन्य स्थिति होती है अर्थात् सर्वार्थसिद्धि को छोड़कर जहां जघन्य और उत्कृष्ट एक स्थिति तेतीस सागरकी ही है । वैमानिकदेवोंमें नीचे नीचे युगलोंमें जो उत्कृष्ट आयु है वही ऊपर ऊपर क्रमसे निकृष्ट स्थिति है जैसे सौधर्म ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें कुछ अधिक दोसागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है वही सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें जघन्य है॥

वृत्त्यनुवादः—परस्मिन्॥ देशे॥'परतः'* =उत्तर ऊपर वा अगले स्थानमें जो रहै (वा हो) सो 'परतः' है

वीप्सायाम्॥ द्वित्वम्॥ =अनेकता वा वार वारके (अर्थ)में दो वार (=द्वित्व) (इस सूत्रमें परतः और पूर्वा प्रत्येक शब्द लाये)हैं अर्थात् इस सूत्रमें'परतः परतः'दोवार लानेसे और 'पूर्वा पूर्वा'भी दोवार लानेसे वहुतवार अनेकवारके अर्थमें दोनोंही शब्दोंका प्रयोग सूत्रमें जानना चाहिये ।

पूर्वशब्दस्य॥ अपि*अधिक-ग्रहणम्॥ अनुवर्ततेT =(इस सूत्रमें) 'पूर्व' शब्दके भी (=अपि) (तेतीसवां सूत्रसे) 'अधिक' शब्दका आदान आता है अर्थात् नीचले नीचले कल्प युगलोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति सागर प्रमाणोंसे कुछ अधिक है वह ऊपर-ऊपरके शतारसहस्रार युगलों तक जघन्य स्थिति उतने सागर प्रमाण है और कुछ अधिक भी है परन्तु आनत प्राणत सातवां युगलमें पूरे वीस सागरकी आयु है और आरण अच्युत आठवां युगलमें वाईस सागरकी पूरी स्थिति है ।

तेन॥ एवम्*अभिसम्बन्धः॥ क्रियतेT =तिस (अधिक ग्रहण) करि इसप्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि

सौधर्म-ऐशानयोः॥द्वे॥सागरोपमे॥स-अधिके॥उक्ते॥ =सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें दो सागर प्रमाण कुछ अधिक (स्थिति) कही

ते॥स-अधिके॥सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः॥ =वे(दो सागर प्रमाण स्थिति)किंचित् अधिक (स्थिति)सानत्कुमारमाहेंद्रमें

जघन्यस्थितिः॥सानत्कुमार-माहेंद्रयोः॥ =निकृष्ट आयु है । सानत्कुमार माहेन्द्र (युगल) में

॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

अपरा स्थितिरित्यनुवर्तते । रत्नप्रभायां दशवर्षसहस्राणि अपरा स्थितिर्वेदितव्या ॥

अथ भवनवासिनां का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥

चशब्दः किमर्थः ? प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ तेन भवनवासिनामपरास्थितिः

---

(१)सूत्रम्—दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

= दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् (भूमौ अध्याय ३ सूत्र १ से) अपरा (३३वां सूत्रसे) स्थितिः (२८ वां सूत्रसे) नारकाणाम् (३५ वां सूत्रसे) भवति ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थः—दशवर्षसहस्राणि।।।प्रथमायाम्।।भूमौ।। =दश हजार वर्ष प्रथम भूमिमें (अर्थात् सीमंतक नाम पहिले पाथड़ेमें)
अपरा।।स्थितिः।।नारकाणाम्। =जघन्य आयु नारकी जीवोंकी है
वृत्त्यनुवादः—अपरा।।स्थितिः।।इति*अनुवर्तते। रत्नप्रभायाम्।।=(इस सूत्रमें) 'अपरा' और 'स्थितिः' ऐसी अनुवृत्तिहैं । रत्नप्रभा(पहिली भूमि)में
दशवर्षसहस्राणि।।।अपरा।।स्थितिः।।वेदितव्या।। =दश हजार वर्ष निकृष्ट आयु जानना चाहिये
अथ*भवनवासिनाम्।का।।जघन्या।।स्थितिः।।इति* =अब (=अथ) भवनवासी देवनिकी क्या जघन्य आयु है । इसलिये कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—भवनेषु च ॥ ३७॥

= भवनेषु च दशवर्षसहस्राणि (सूत्र ३६ से) अपरा (सूत्र ३३ से) स्थितिः (सूत्र २८वां से) भवति

भवनेषु।च*दशवर्षसहस्राणि।।।अपरा।।स्थितिः।।भवति। =भवनवासी देवनिमें भी (=च) दश हजार वर्ष जघन्य वा निकृष्ट आयु होती है
वृत्त्यनुवादः—चशब्दः।किमर्थः।प्रकृत-समुच्चय-अर्थः। =इस सूत्रमें च शब्द किसलिये हैं । स्थितिके प्रकरणके समुच्चयके लिये है ॥
तेन।भवनवासिनाम्।अपरा।।स्थितिः।। =तिस (च शब्द) करि भवनवासी देवोंकी जघन्य आयु

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है । सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४४ वीं है ॥
(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें एकसाहै 'सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४५ वीं है ॥

चशब्दः किमर्थः ?। प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ किं च प्रकृतं ?। परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा अपरा स्थितिरिति ॥ तेनायमर्थो लभ्यते—रत्नप्रभायां नारकाणां परास्थितिरेकं सागरोपमम्। सा शर्कराप्रभायां जघन्या। शर्कराप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रीणि सागरोपमाणि। सा वालुकाप्रभायां जघन्येत्यादि ॥ एवं द्वितीयादिषु जघन्या स्थितिरुक्ता ॥ प्रथमायां का जघन्येति तत्प्रदर्शनार्थमाह—

सूत्रार्थः–पूर्वा॥पूर्वा॥अनन्तरा॥परा॥स्थितिः॥	=पहिली पहिली व्यवधान रहित वा लगताही उत्कृष्ट स्थिति
नारकाणाम्॥च*परतः*परतः*द्वितीयादिषु॥	=नारकियों के भी [=च] उत्तर उत्तर में दूसरी आदि
भूमिषु॥अपरा॥स्थितिः॥भवति।	=भूमियोंमें जघन्य आयु है (जैसे प्रथम भूमिमें एक सागर उत्कृष्ट स्थिति है वही दूसरी पृथिवीमें जघन्य है दूसरीमें तीन सागर परा है वही तीसरीमें अपराहै) ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस पैंतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

च-शब्दः॥किमर्थः॥प्रकृत-समुच्चय-अर्थः॥	=(इस सूत्रमें) च शब्द किसलिये है ? (उत्तर) प्रकरणके समुच्चय वा जोड़नेको है
किम्॥च*प्रकृतम्॥अनन्तरा॥	=(प्रश्न) वहुरि (=च) क्या प्रकरण वा विषय है (उत्तर) अत्यन्तनिकट वर्ती है
पूर्वा॥पूर्वा॥ परास्थितिः॥)परतःपरतःअपरा॥स्थितिः॥	=पूर्व पूर्व की (उत्कृष्ट आयु) उत्तर उत्तरमें जघन्य आयु होती है ऐसा प्रकरण है
इति*। तेन॥अयम्॥अर्थः॥लभ्यते। रत्न-प्रभायाम्॥	=तिस (च शब्द) से यह अर्थ लियाजाता है कि रत्नप्रभा पृथिवीमें
नारकाणाम्॥परास्थितिः॥एकम्॥सागरोपमम्॥	=नारकी जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण है ॥
सा॥शर्करा-प्रभायाम्॥जघन्या॥;शर्कराप्रभायाम्॥	=वही (स्थिति) शर्करा प्रभा (दूसरी पृथिवी) में निकृष्ट स्थिति है। शर्कराप्रभामें
उत्कृष्टा॥स्थितिः॥त्रीणि॥सागरोपमाणि॥सा॥	=प्रकृष्ट आयु तीन सागर प्रमाण है। वही (तीन सागर प्रमाण स्थिति)
वालुकाप्रभायाम्॥जघन्या॥इति*आदि॥एवम्*	=वालुकाप्रभामें जघन्य (आयु) है। ऐसे और भी (सातवीं भूमि पर्यंत) है ॥ ऐसे
द्वितीय-आदिषु॥जघन्या॥स्थितिः॥उक्ता॥प्रथमायाम्॥	=दूसरी आदिक (भूमि) में जघन्य आयु कही गई। पहली भूमिमें
का॥जघन्या॥इति*तत्-प्रदर्शन-अर्थम्॥आह।	=क्या निकृष्ट (आयु) है। उस(प्रथम भूमिकी जघन्य आयु)केदिखानेको कहतेहैंकि

पराउत्कृष्टा स्थितिर्व्यन्तराणां पल्योपममधिकम् ॥ इदानीं ज्योतिष्काणां परा स्थितिर्वक्तव्येत्यत आह

॥ ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥

सूत्रार्थः-व्यन्तराणाम्।परा।स्थितिः।पल्योपमम्।अधिकम्।भवति।=व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस उनतालीसवां सूत्र पर शब्दशः हिंदी अनुवाद

परा।उत्कृष्टा।स्थितिः। =उत्कृष्ट वा प्रकर्ष आयु

व्यन्तराणाम्।पल्योपमम्।अधिकम्।इदानीम्* =व्यन्तरोंकी कुछ अधिक पल्य प्रमाण है। अब

ज्योतिष्काणाम्।परा।स्थितिः।वक्तव्या।इति*अतःआह=ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट आयु कहना चाहिये। ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

(१)सूत्रम्-ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥ =ज्योतिष्काणाम् च स्थितिः (२८वां सूत्रसे) परा पल्योपममधिकम् (३९ वां सूत्रसे) भवति ॥ ४० ॥

सूत्रार्थः-ज्योतिष्काणाम्।च*परा।स्थितिः। =ज्योतिषी देवनिकी उत्कृष्ट स्थिति

पल्योपमम्।अधिकम्।भवति। =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है अर्थात् चंद्रमाकी आयु एक पल्यसे एक लाखबरस अधिक है। सूर्य की आयु एक पल्यसे एक सहस्रबरस अधिकहै शुक्रकी एकपल्यसे सौ बरस अधिक है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चालीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

चशब्दः।प्रकृत-समुच्चय-अर्थः। =(इस सूत्रमें) च शब्द प्रकरणके संग्रहके लिये है अर्थात् यहां स्थितिका विषय चलरहा है सो चकार से ३८ वां सूत्रमें वर्णित आयुको यहां जोड़ागया है

(१) श्वेताम्बरआम्नायमें पाठ "ज्योतिष्काणामधिकम्" ॥ ४८ वां सूत्रहै। हमारे यहां अधिकम् की अनुवृत्ति ३९ वां सूत्रसे आती है अर्थ एकहै ॥

दशवर्षसहस्राणीत्यभिसम्बध्यते ॥ व्यन्तराणां तर्हि का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ तेन व्यन्तराणामपरा स्थितिर्दशवर्षसहस्राणीत्यवगम्यते ॥ अथैषां परा स्थितिः का इत्यत्रोच्यते ॥

॥ परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

दशवर्षसहस्राणि।।।इति*अभिसम्बध्यते।व्यन्तराणाम्।तर्हि* =दश हजार वर्ष ऐसा (वाक्य इस सूत्रमें) जोड़ा जाता है। तौ व्यन्तरोंकी
का।।जघन्या।।स्थितिः।।इति*अतः*आह। =क्या जघन्य आयु है। ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

[1]सूत्रम्—व्यन्तराणाम् च ॥ ३८ ॥ = व्यन्तराणाम् च दशवर्षसहस्राणि(३६ वां सूत्रसे) अपरा(३३वां सूत्रसे) स्थितिः(२८वांसूत्र से)भवति

व्यन्तराणाम्।च*दशवर्षसहस्राणि।।।अपरा।।स्थितिः।।भवति।=व्यन्तर देवोंकी भी (=च) दशहजार वर्ष जघन्य आयु है (यहां अनुवृत्तिलेने के लियेकि सूत्रछोटाहो व्यन्तरोंकी उत्कृष्टस्थितिनकहकरपहिले जघन्य कही)

वृत्त्यनुवादः—च-शब्दः।प्रकृत-समुच्चय-अर्थः। =(इस सूत्रमें) च शब्द (स्थितिरूप) प्रकरण के समुच्चके लिये है ॥
तेन।व्यन्तराणाम्।अपरा।।स्थितिः।। =तिस (च शब्द) करि व्यन्तर देवनिकी जघन्य आयु
दशवर्षसहस्राणि।।।इति*अवगम्यते।अथ*एषाम्। =दश हजार वरस ऐसे जानी जाती है। अब इन व्यन्तर देवोंकी
परा।।स्थितिः।।का।।इति*अत्र*उच्यते। =उत्कृष्ट आयु क्या है ऐसे प्रश्न पर यहां कहाजाता है कि

[2]सूत्रम्—परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥ = व्यन्तराणाम् (३८वां सूत्र से) परा स्थितिः(२८ वां सूत्र से) पल्योपमम् अधिकम् भवति

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमें एकसा है श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४६ वीं मानी है ॥
(२) श्वेताम्बर आम्नायमें इस सूत्रका पाठ "परापल्योपमम् ॥४७॥" ऐसा है हमारे यहां स्थिति पल्यसे अधिक है उनके यहां एकही पल्य है ॥

९ ग्रह, २७ (अभिजित सहित) २८ नक्षत्रों और तारकाओंकी पृथक् पृथक् विशेष रूपसे जघन्य स्थिति वार्तिकोंमें दी गई है उसकी तुलनात्मक सूची श्वेताम्बरसमाजके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके सूत्र४९ से ५३ तक नीचे दीजातीहै कि विषय स्पष्ट होजावै॥श्वेताम्बर आम्नायमें'चतुर्भागः शेषाणाम् ५३' सूत्रमें यह चौथा अध्याय पूर्ण होता है। उनके यहां 'लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम्' सूत्र वा वार्तिक नहीं है ॥

श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रसे उद्धृत	दिगम्बर आम्नायके तत्त्वार्थराजवार्तिकमलंकारसे उद्धृत
() ग्रहाणांमेकम् (सूत्र४९) =ग्रहाणामेकं पल्योपमं परा स्थितिःभवति =सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु इन नव ग्रहोंकी (उत्कृष्ट स्थिति) एक पल्य प्रमाण होती है	(क) चंद्राणां वर्ष शतसहस्राधिकम् (वार्तिक १) =चंद्राणां वर्षशतसहस्राधिकं पल्योपमं परा स्थितिः =चंद्रमाओंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्यसे एक लाख बरस अधिक होती है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८) () सूर्याणां वर्ष सहस्राधिकम् (वार्तिक २) =वर्षसहस्राधिकं पल्योपमं सूर्याणां परा स्थितिः =सूर्योंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्यसे एक हजार बरस अधिक है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८) () शुक्राणां शताधिकम् (वार्तिक३) =शुक्राणां वर्षशताधिक पल्योपमं परास्थितिः =शुक्रोंकी प्रकृष्ट आयु एक पल्यसे एकसौ बरस अधिकहै (राज०पृष्ठ१७८) () बृहस्पतीनां पूर्णम् (वार्तिक ४) बृहस्पतीनाम् पूर्णपल्योपमम् परा स्थिति =बृहस्पतियोंकी उत्कृष्ट आयु पूरी एक पल्य प्रमाण है (राज० पृष्ठ १७८) () शेषाणामर्धम्(वार्तिक ५) शेषाणां ग्रहाणांबुद्धादीनां पल्योपमस्यार्धंपरास्थितिः =बचे हुए अर्थात् चन्द्रमा, सूर्य, शुक्र बृहस्पतियोंके अतिरिक्त बुध, मगल शनिश्चर, राहु और केतु ग्रहोंकी उत्कृष्ट आयु आधे पल्य प्रमाण होती है। तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८)
() नक्षत्राणामर्धम् (सभाष्य० सूत्र ५०) =नक्षत्राणां देवानां पल्योपमार्धं परा स्थितिर्भवति =(२७ वा २८) नक्षत्रदेवोंकी उत्कृष्ट आयु आधे पल्यकी होती है	() नक्षत्राणां च (वार्तिक ६) =नक्षत्राणाम् अर्धपल्योपमं परा स्थितिः भवति (राज० पृष्ठ १७८) =(सत्ताईस वा अट्ठाईस) नक्षत्रोंकी उत्कृष्ट आयु आधेपल्य होती है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)
() ताराकाणां चतुर्भागः (सूत्र ५१) =ताराकाणां च पल्योपम चतुर्भागः परा स्थितिः =ताराओंकी उत्कृष्ट आयु पल्यका चौथाई भाग प्रमाण है ॥	() तारकाणां चतुर्भागः (वार्तिक७) =पल्योपमस्यचतुर्भाग तारकाणांपरास्थितिः =ताराओंकी उत्कृष्ट स्थिति पल्यके चौथाईभाग प्रमाणहै (राजवार्तिक पृष्ठ १७८)

तेनैवमभिसम्बन्धः।ज्योतिष्काणां परा स्थितिः पल्योपममधिकमिति॥ अथापरा कियतीत्यतआह–

॥ तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

तस्य पल्योपमस्याष्टभागो ज्योतिष्काणामपरा स्थितिरित्यर्थः ॥

अथ लौकान्तिकानां विशेषोक्तानां स्थितिविशेषो नोक्तः। स कियानित्यत्रोच्यते—

तेन॥एवम्*अभिसम्बन्धः॥ज्योतिष्काणाम्॥परा॥	=तिस (च शब्द) करि ऐसे सम्बन्ध होता है कि ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट
स्थितिः॥पल्योपमम्॥अधिकम्॥इति*॥ अथ*	=आयु कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण है। आगैं
अपरा॥कियती॥इति*अतः*आह।	=(ज्योतिषी देवोंकी) जघन्य (स्थिति) कितनी है ऐसे प्रश्नपर इसलिये कहतेहैंकि

[1]तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

= तदष्टभागः ज्योतिष्काणाम् (४० वां सूत्रसे) अपरा, स्थितिः (२८ वां सूत्रसे) भवति ॥

सूत्रार्थः–तद्-अष्टभागः॥ज्योतिष्काणाम्॥अपरा॥स्थितिः॥ =उस (पल्य प्रमाण) के आठवां भाग ज्योतिषियोंकी जघन्य आयु है।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस इकतालीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिंदीअनुवाद

तस्य॥पल्योपमस्य॥अष्टभागः॥	=तिस पल्यके आठवां भाग
ज्योतिष्काणाम्॥अपरा॥स्थितिः॥इति*अर्थः॥	=ज्योतिषी देवोंकी जघन्य आयु है ऐसा अभिप्राय है।
अथ*लौकान्तिकानाम्॥विशेषउक्तानाम्॥स्थिति-विशेषः॥	=अब विशेष वर्णित लौकान्तिक देवोंकी स्थितिका प्रभेद
न*उक्तः॥सः॥कियान्॥इति*अत्र*उच्यते।	=नहीं कहागयाहै। सो(=स्थिति विशेष)कितना है। ऐसे(प्रश्नपर)यहांकहाजाताहै कि

(१) इस सूत्रका हमारे यहां पाठ और अर्थ एक है ॥ हमारे यहां सामान्यरूपसे या अविशेष रूपसे (तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८ में) ज्योतिषियोंकी यह जघन्य स्थिति है और इस सूत्रमें ४० वां सूत्रसे 'ज्योतिष्काणाम्' की अनुवृत्ति लीहै। श्वेताम्बर आम्नायमें 'जघन्या त्वष्टभागः" ऐसा ५२ वां सूत्र सभाष्य० में है। उक्त सभाष्य० के अनुकूल 'परा पल्योपम्' ४७ वां सूत्र से ५२ वां सूत्रमें पल्य शब्द अनुवर्तता है और 'तारकाणाम् शब्दकी अनुवृत्ति ५१ वां सूत्र "तारकाणांचतुर्भागः" से लीगई है इसलिये ५२ वां सूत्र 'तारकाणां तु जघन्या (स्थितिः २९ वां सूत्रसे) पल्योपमम् अष्ट भागः" ऐसा हुआ अर्थमें दोनों आम्नायोंमें भेद यह हुआ कि श्वेताम्बर आम्नायमें तारकाओंको जघन्यस्थिति पल्यके आठवां भाग हुई हमारे यहां सब ज्योतिषियोंकी सामान्यरूपसे पल्यका आठवां भाग जघन्य स्थिति हुई ॥ हमारे यहां तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८, १७९ में चन्द्र, सूर्य,

अविशिष्टाः सर्वे ते शुक्ललेश्याः पञ्चहस्तोत्सेधशरीराः

॥ चतुर्णिकायदेवानां । स्थानं भेदाः सुखादिकम् ॥ परापरस्थितिर्लेश्या। तुर्याध्याये निरूपितम् ॥ १ ॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां चतुर्थोऽध्याय ॥

सूत्रार्थः-सर्वेषाम्[६/३]।लौकान्तिकानाम्[६/३]।परा[१/१]।।अपरा[१/१]।।	=सब लौकान्तिक (देव) निकी (देखो सूत्र २४, २५) उत्कृष्ट और जघन्य
स्थितिः[१/१]।।अष्टौ[१/३]।।।सागरोपमाणि[१/३]।।।	=आयु आठ सागर प्रमाण है
वृत्त्यनुवादः—अवशिष्टाः[१/३]।	=अवशेष वा वचेहुये अर्थात् सर्व प्रकारके देवोंसे जिनकी स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य कही जो शेपरहे ऐसे लौकान्तिकदेव
सर्वे[१/३]।ते[१/३]।शुक्ल लेश्याः[१/३]।पञ्च-हस्त-उत्सेध-शरीराः[१/३]।	=ते समस्त शुक्ललेश्याके धारक, पांच हाथकी ऊचाईके शरीर सहित हैं अर्थात् सब लौकान्तिक देवोंकें शुक्ललेश्या हैं और पांच पांच हाथ ऊंचा शरीर है ॥
चतुर्णिकाय-देवानाम्[६/३]।स्थानम्[१/१]।।।	=चार समुदायके देवोंके निवास स्थान (सूत्र १२, १४, १५, १८, १६, २३, २४)
भेदाः[१/३]।	=तथा भेद (सूत्र १, ३, ४, ५, ६, १०, ११, १२, १६, १७, २४, शेपार्थ २५, २६)
सुखादिकम्[१/१]।।।	=और सुखादिक (सूत्र ७, ८, ६, २०, २१, २७)
पर-अपरा-स्थितिः[१/१]।।	=उत्कृष्ट और जघन्य आयु (देखो सूत्र ३४, ३५, ४२,)
(परा[१/१]।।स्थितिः[१/१]।।)	=वहुरि परास्थिति (सूत्र २८ से ३२ तक ३६, ४०)
(अपरा[१/१]।।स्थितिः[१/१]।।) लेश्या[१/१]।।	=और अपरा स्थिति (सूत्र ३३, ३६, ३७, ३८, ४१) तथा लेश्या (सूत्र २, २२)
तुर्याध्याये[७/१]।निरूपितम्[१/१]।।।	=चौथे अध्यायमें वर्णित हैं।
इति*तत्त्वार्थ-वृत्तौ[७/१]।।	**=इसप्रकार तत्त्वार्थके विवरणमें (=वृत्तौ)**
सर्वार्थसिद्धि-सञ्ज्ञिकायाम्[७/१]।।	**=सर्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थमें**
चतुर्थः[१/१]। अध्यायः[१/१]।॥	**=चौथा अध्याय (समाप्त) हुआ ॥**

॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

(१)सूत्रम्—लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

= सर्वेषाम् लौकान्तिकानाम् परा(३९वां सूत्रसे)अपरा (३३वां सूत्रसे)स्थितिः(२८वां सूत्रसे) भवति॥

() जघन्या त्वष्टभागः (सूत्र ४२) =तारकाणांतु जघन्या स्थितिः पल्योपमाष्टभागः =और ताराओंकी जघन्य स्थिति पल्य के आठवां भाग प्रमाण है

() चतुर्भागः शेषाणाम(सूत्र४३) =तारकाभ्यः शेषाणांज्योतिष्काणां चतुर्भागः पल्योपमस्यापरास्थितिः

=ताराओंसे बचे हुए (सत्ताईस नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र,मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु ये भी ग्रह) ज्योतिषीदेवोंकी जघन्य आयु पल्यके चौथाई भाग प्रमाण है ॥

() तदष्टभागो जघन्योभयेषाम् (वार्तिक ८) =तस्य पल्योपमस्याष्टभागः जघन्या स्थितिः उभयेषां तारकाणां नक्षत्राणां च भवति(राजवार्तिकपृष्ठ१७६)

=तिस पल्यके आठवां भाग प्रमाण, जघन्य आयु दोनों ताराओं और नक्षत्रोंकी होती है (दोनों आम्नायोंमें ताराओंकी निकृष्ट स्थिति एक है परन्तु नक्षत्रोंकी जघन्यस्थिति श्वेताम्बरसमाजकेसभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रकेअनुसार सूत्रके अनुकूल चौथाई पल्य है हमारे यहांसे दूनी हुई)

() शेषाणां चतुर्भागः (वार्तिक ९) शेषाणां सूर्यादीनां पल्योपम चतुर्भागो जघन्य स्थितिर्वेदितव्या (राजवार्तिक पृष्ठ१७७)

=बचेहुए सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु ये नवग्रहोंकी जघन्य स्थिति पल्यके चौथाई भाग प्रमाण जानो ॥ इस सूत्रका पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है परन्तु हमारे यहां नक्षत्रोंकी जघन्य आयु पल्य के आठवां भाग है श्वेताम्बर समाज में पल्य का चौथाई भाग है

(१) इसके स्वरूपमें पं० पन्नालाल बाकलीवालजीने यह लिखा है कि यह श्री पूज्यपाद स्वामीकृत सर्वार्थसिद्धिका वार्तिक है । क्योंकि श्री महाकलंकदेवने 'अष्टसागरोपमा सर्वलौकांतिकाः' कहा है । मेरी समझमें यह नहीं आया कि 'अष्टसागरोपमा सर्वलौकांतिकाः' यह वाक्य कहांसे लिया है पं० पन्नालालजी दूनी, पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर पं०गजाधरलालजी अनुवादित राजवार्तिकका पाठ कई हस्तलिखित राजवार्तिकप्रतियोंके पाठ और बाकली वालजीकी स्वयं मुद्रित कोलुई राजवार्तिककेभी पाठ देखेगये परन्तु हमको यह सूत्ररूपमें राजवार्तिकमें,अर्थप्रकाशिकामें,सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें, श्रुतसागरी टीकामें मिला है । कई प्रतियें श्लोकवार्तिक, पं० सदासुखजी कृत सूत्रपर लघुटीका सं० १९१० और श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र भी सिद्धसेनसूरिरचित भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका जिसमें २२ सहस्र श्लोकसे अधिक हैं उपर्युक्त वाक्य न तो यह सूत्र रूपमेंही मिला और न वार्तिकरूपमेंही मिला ॥ कोई भी प्रमाण नहीं है कि यह सूत्रपूज्यपाद स्वामी कृत वार्तिक है ॥बहुधा भाष्यकारों और टीकाकारोंकी उत्थानिकाओं से कि 'सूत्रमाहुः' (देखो श्रुतसागरी टीका) 'इत्यत्रोच्यते' (देखो तत्वार्थ राजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि) स्पष्ट है कि यह सूत्र है ॥

प्रचयात्मकं तथा धर्मादिष्वपि प्रदेशप्रचयापेक्षया काया इव काया इति। अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः ॥ विशेषणं विशेष्येणेति वृत्तिः ॥

प्रचय-आत्मकं १।।। तथा*धर्मादिषु ७।३। अपि*	=समूहरूप (=प्रचयात्मक) हैं तैसे धर्मादिकद्रव्योंमें भी
प्रदेश-प्रचय-अपेक्षया ३।१।। कायाः ३।।। इव*इति*	=प्रदेशोंके समूहरूप विवक्षासे कायासरीखा (व्यवहार) है इसप्रकार
कायाः ३। च* अजीवाः ३।	=(वे धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल) काया हैं। और (=च) अजीव
च*कायाः ३। ते ३। अजीवकायाः ३।	= और (=च)काय हैं ते अजीव काया हैं अर्थात् ये चार धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुत प्रदेशी हैं इसलिये ये अजीवकाय (अचेतन और बहुप्रदेशी)हैं। ये बहु प्रदेशी हैं इससे ये द्रव्य काय कहलाते हैं और चेतना रहित हैं इससे अजीव कहलाते हैं
विशेषणं १।।। विशेष्येण ३।१। इति* वृत्तिः १।।	=गुणवाचक(अजीव शब्द)विशेष्य(कायशब्द)से मिलकर ऐसें (कर्मधारय) समास हुआ

* परार्थभिधानं वृत्तिः—एकरूपसे अर्थ प्रकाश करनेकी शक्तिको वृत्ति कहते हैं। उस वृत्तिके पांच भेद हैं जैसे कृत्, 'तद्धित', समास, एकशेष, और सनाद्यन्त धातु हैं। यहां पर वृत्ति शब्दका अर्थ केवल समास है। अनेक पदोंको एकमें मिला देनेको समास कहते हैं। वह पांच प्रकार का है (I) जिसका कोई विशेष नाम नहीं है वह केवल समास कहाता है (II) बहुधा जिसमें पूर्व पदका अर्थ प्रधान होता है वह अव्ययी भाव समास है (III) प्रायः जिसके उत्तर पदका अर्थ प्रधान हो वह तत्पुरुष समास है। तत्पुरुष समास का एक भेद कर्मधारय समास है। इसमें दोनों विभक्ति समान होती हैं और विशेषण विशेष्य भाव होता है। जैसे यहां "अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः" इसमें अजीवाः और कायाःदोनों समान विभक्ति (प्रथमाविभक्ति बहु वचन पुलिंग) हैं ॥ (प्रश्न) यहां पर वे काया कैसे गुण वा विशेषण सहित हैं। (उत्तर) चेतना रहित उन कायाओंका गुण है ॥ ऐसे "अजीवाः" विशेषण हुआ और काया विशेष्य हुआ इसलिये विशेषण और विशेष्य भाव हुआ ॥ कर्मधारय का एक भेद द्विगु है। इसका प्रथम संख्या वाचक शब्द होता है। (IV जिसमें समासके पदोंको छोडकर और ही पदका अर्थ प्रधान हो वह बहुव्रीहि समास है। (V) जिसमे दोनों पद का अर्थ प्रधान हो वह द्वन्द्व नामक पांचवां समास है।

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

इदानीं, सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपक्षिप्तेषु जीवादिषु जीवपदार्थो व्याख्यातार्थः ।
अथाजीवपदार्थो विचारप्राप्तस्तस्य सञ्ज्ञाभेदसंकीर्तनार्थमिदमुच्यते ।

॥ (१) अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

कायशब्दः शरीरे व्युत्पादितः । इहोपचारादध्यारोप्यते । कुत उपचारः ? । यथा शरीरं पुद्गलद्रव्य-

---

अथ०पञ्चमः ॥, अध्यायः ॥ इदानीं ०सम्यग्दर्शनस्य ॥ =पांचवा अध्याय प्रारम्भ (=अथ) है । अब सम्यग्दर्शनके
विषय-भावेन ॥ उपक्षिप्तेषु ॥ जीवादिषु ॥ जीव-पदार्थः ॥ = विषयभावकरि गर्भित (=उपक्षिप्तेषु) जीवादिकोंमें जीव पदार्थ है
व्याख्यात-अर्थः ॥ =(सो) कहा हुआ विषय (=अर्थ) है (अर्थात् जीवका वर्णन कर चुके हैं)
भावार्थ—सम्यक्त्वके विषय निरूपणमें जीवादिक सात तत्त्व (अ० १ सूत्र २, ४) गर्भित हैं उनमेंसे जीव द्रव्यका व्याख्यान कर चुके हैं ।
अथ०अजीव-पदार्थः ॥ विचार-प्राप्तः ॥ तस्य ॥ संज्ञा- =अब (=अथ) अजीवपदार्थ विचारमें प्राप्त हुआ तिस (अजीवपदार्थ) के नाम
भेद-संकीर्तन-अर्थम् ॥ इदम् ॥ उच्यते । =और भेद कहनेके लिये यह कहा जाता है कि—

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गलाः ॥ अजीव-कायाः ॥ =धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुप्रदेशी (काय) हैं अर्थात् इन प्रत्येक प्रत्येक द्रव्यमें अचेतनपना और बहुप्रदेश वा बहुत अवयवोंका होना पाया जाता है । १
इह-अनुवादः-कायशब्दः ॥ शरीरे ॥ व्युत्पादितः ॥ =(इस सूत्र में) काय शब्द शरीर (अर्थ) में व्याकरण की रीतिसे उत्पन्न हुआ है
इह०उपचारात् ॥ अध्यारोप्यते । यहां व्यवहारसे अध्यारोपण कियागया है अथवा संस्थापन वा नियत किया गया है
कुतः० उपचारः ॥ यथा०शरीरं ॥ पुद्गलद्रव्य- =(प्रश्न) कहांसे उपचार किया गया है । (उत्तर) जैसे शरीर पुद्गलद्रव्यके

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों भाषाओंमें एकसा है । धर्माधर्मा भी अचोरहाभ्याम् द्वे वा' ८।४।४६ अष्टाध्यायी सूत्रसे ठीक है ।

कालस्य प्रदेशप्रचयाभावज्ञापनार्थं च इह कायग्रहणम् । कालो वक्ष्यते । तस्य प्रदेशप्रतिषेधार्थमिह कायग्रहणम् ॥ यथाऽणोः प्रदेशमात्रत्वाद्द्वितीयादयोऽस्य न सन्तीत्यप्रदेशोऽणुः । तथा कालपरमाणुरप्येकप्रदेशत्वादप्रदेश इति ॥ तेषांधर्मादीनामजीव इति सामान्यसञ्ज्ञा जीवलक्षणाभावमुखेन प्रवृत्ता ॥ धर्माधर्माकाशपुद्गला इति विशेषसञ्ज्ञाः सामयिक्यः ॥

अत्राह सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्येत्येवमादिषु द्रव्याण्युक्तानि, कानि तानीत्युच्यते—

बहुत्व सामान्य जतायाहै और आठवां सूत्रमें प्रदेशोंकी संख्या जताई है

कालस्य $^{6}_{1}$। प्रदेश–प्रचय–अभाव–ज्ञापन–अर्थं $^{2}_{1}$।।। च* = कालक प्रदेशसमूहका अभाव जतावनेके लिये भी (= च)

इह*कायग्रहणम् $^{1}_{1}$।।।कालः $^{1}_{1}$। वक्ष्यते T तस्य $^{6}_{1}$। प्रदेश– = यहां सूत्रमें कायका ग्रहण है काल द्रव्य (३९, ४०वां सूत्रों में) कहेंगे तिसके प्रदेशोंके

प्रतिषेध–अर्थम् $^{1}_{1}$।।। इह*काय–ग्रहणम् $^{1}_{1}$।।।यथा*अणोः $^{6}_{1}$। = निषेधके लिये यहां कायका आदान है जैसे पुद्गलकेअणुके

प्रदेश-मात्रत्वात् $^{5}_{1}$।।। द्वितीय–आदयः $^{1}_{3}$। अस्य $^{6}_{1}$। = केवल एकप्रदेशहोनेसे वा एक प्रदेशपनासे दूसरा (प्रदेश) आदिकजिस(पुद्गलअणु)के

न*सन्ति इति * अप्रदेशः $^{1}_{1}$। अणुः $^{1}_{1}$। तथा * काल– = नहीं है ऐसा अप्रदेश अर्थात् दूसरा प्रदेश रहित अणु है तैसे कालका

परमाणुः $^{1}_{1}$।अपि*एक–प्रदेशत्वात् $^{5}_{1}$।।। अप्रदेशः $^{1}_{1}$। इति* = परमाणु भी एकप्रदेशभावसे अथवा एक प्रदेश होनेसे अप्रदेश है

तेषां $^{6}_{3}$। धर्म–आदीनां $^{6}_{3}$। अजीवः $^{1}_{1}$। इति*सामान्यसज्ञा $^{1}_{1}$।। = उन धर्म अधर्म–आकाश–पुद्गल की अजीव ऐसी सामान्य संज्ञा है अर्थात् ऐसा नाम है कि अचेतनपना इन चारोंमें साधारण वा एकसा धर्म अथवा स्वभाव है

जीव–लक्षण–अभाव–मुखेन $^{3}_{1}$।।। प्रवृत्ता $^{1}_{1}$।। = सो (यह सामान्य संज्ञा) चैतन्य स्वभावके अभावंद्वाराकरि प्रवर्ते है अर्थात् सामान्यसंज्ञा के अस्तित्व को इन चारोंमें जो अचेतनपना है सो जतावे हैं

धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गलाः $^{1}_{3}$। इति*विशेषसंज्ञाः $^{1}_{3}$।। = धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल ऐसी भेद रूप संज्ञायें हैं

सामायिक्यः $^{1}_{3}$।। = और शास्त्र सम्बन्धी है (= सामायिक्यः) अर्थात् सिद्धान्त और आगम पठित हैं भावार्थ सर्वज्ञ भाषित आगम (शास्त्र) में ये संज्ञायें रूढ़ि हैं और प्रत्येक २ धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल अपने २ संकेत से प्रवर्तती हैं

अत्र*आह । सर्व–द्रव्य–पर्यायेषु $^{7}_{3}$। केवलस्य $^{6}_{1}$।।। = यहां शिष्य पूछता है कि समस्त द्रव्यों की समस्त पर्यायों में केवल ज्ञान के

इत्येवं आदिषु $^{7}_{3}$। द्रव्याणि उक्तानि कानि तानि इति उच्यते = इत्यादिक(सूत्रों)में(देखो १ अ० सूत्र २६, २९)द्रव्य कहेवे क्या हैं ऐसेंकहा जाताहैकि

सर्वार्थ सिद्धि

ननु च नीलोत्पलादिषु व्यभिचारे सति विशेषणविशेष्ययोगः। इहापि व्यभिचारयोगोऽस्ति । अजीव-शब्दोऽकाये कालेऽपि वर्तते, कायोऽपि जीवे । किमर्थः कायशब्दः ? । प्रदेशबहुत्वज्ञापनार्थः । धर्मादीनां प्रदेशा बहव इति ॥ ननु च असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानामित्यनेनैव प्रदेशबहुत्वं ज्ञापितम्। सत्य-मिदम्। परं किन्त्वस्मिन्विधौ सति तदवधारणं विज्ञायते. असंख्येयाः प्रदेशा न संख्येया नाप्यनन्ता इति ॥

२ ३

ननु * च * नील-उत्पल-आदिषु $\frac{7}{3}$।	= पुनि प्रश्न । नील-कमल आदिक (कर्मधारयसमास) निर्मे
व्यभिचारे $\frac{7}{1}$। सति १। विशेषण-विशेष्य-योगः $\frac{1}{1}$।	= वही गुण दूसरी वस्तुमें होनेपर (= सति) विशेषण और विशेष्यका मेल होता है अर्थात् प्रश्न यह है कि विशेष्य में जो गुण होता है वह दूसरी वस्तुओं में भी पाया जाता है तब विशेषण विशेष्य मिलकर कर्मधारय समास होता है जैसे नीलकमलमें और रक्तकमलमें नीलापन और रक्तता यथासंख्य पाई जाती है इनके अतिरिक्त और भी अनेक वस्तुऐं हैं जिनमें नीलता और रक्तता पाई जाती है तो यहां अजीव काय विषैं क्या व्यभिचार है ।
इह * अपि * व्यभिचार-योगः $\frac{1}{1}$। अस्ति T	= (उत्तर) यहां भी(इस 'अजीवकाय' कर्मधारय समास में) व्यभिचारका मेल या जोड़ है
अजीव-शब्दः $\frac{1}{1}$। अकाये $\frac{7}{1}$। काले $\frac{7}{1}$। अपि*वर्तते T	= (क्योंकि) अजीवशब्द काय रहित वा अप्रदेशी कालद्रव्यमें भी वर्तता है
कायः $\frac{1}{1}$। अपि * जीवे $\frac{7}{1}$। किम् * अर्थः $\frac{1}{1}$।	= (और) बहुत प्रदेशोंका होना भी (अजीवत्व रहित) जीवद्रव्यमें वर्ते है। कौन अर्थ है
कायशब्दः $\frac{1}{1}$। ? प्रदेश-बहुत्व-ज्ञापन-अर्थः $\frac{1}{1}$	= काय शब्द (उत्तर) प्रदेशोंका प्रचयपना जनावनेके लिये है कि
धर्म-आदीनां ^{6}। प्रदेशाः $\frac{1}{3}$ बहवः $\frac{1}{3}$। इति *	= धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल के प्रदेश बहुत हैं
ननु*च*असंख्येयाः $\frac{1}{3}$। प्रदेशाः $\frac{1}{3}$। धर्म-अधर्म-	= पुनि प्रश्न असंख्यातअसंख्यात प्रदेश धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और
एक-जीवानाम् $\frac{6}{3}$। इति*अनेन $\frac{3}{1}$॥ एव* प्रदेश—	= एक जीव के हैं इस (अगले आठवां सूत्र) करि ही प्रदेशोंकी
बहुत्वं $\frac{1}{1}$॥ ज्ञापितम् $\frac{1}{1}$॥ सत्यम् $\frac{1}{1}$॥ इदम् $\frac{1}{1}$॥	= प्रचुरता जताई जाती है (उत्तर) यह सत्य है
परं किन्तु-अस्मिन् $\frac{7}{1}$॥ विधौ $\frac{7}{1}$॥ सति $\frac{7}{1}$। तद्-मवधारणं $\frac{1}{1}$॥	= किन्तु केवल (= परं) इस विधि (आठवां सूत्र)के होनेपर उस (प्रदेश बहुत्व) का नियम
विज्ञायते T असंख्येयाः $\frac{1}{3}$। प्रदेशाः $\frac{1}{3}$। न*संख्येयाः $\frac{1}{3}$।	= जतलाया गया है कि असंख्यात प्रदेश हैं, संख्यात नहीं हैं
न*मपि*अनन्ताः $\frac{1}{3}$। इति*॥	= अनन्त भी नहीं है अर्थात् केवल असंख्यात ही हैं—भावार्थ इस सूत्र में कायशब्दसे

आकाशकुसुमस्य प्रकृतिपुरुषस्य द्वितीयाशिरसश्च योगः स्यादिति ॥ अथ पृथक्सिद्धिरभ्युपगम्यते, द्रव्यत्वकल्पना निरर्थिका । गुणसमुदायो द्रव्यमिति चेत्तत्रापि गुणानां समुदायस्य च भेदाभावे तद्द्रव्य-व्यपदेशो नोपपद्यते । भेदाभ्युपगमे च पूर्वोक्त एव दोषः ॥ ननु गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्त इति ।

आकाश-कुसुमस्य ६।।। (योगःस्यात्) प्रकृतिपुरुषस्य ६।च* =(आकाशऔर) आकाश पुष्पके सम्बन्ध हो जाय और (=च) स्वाभाविक पुरुषके अर्थात् स्वभावसे एक मस्तकवाले पुरुषके

द्वितीय-शिरसः ६। योगः १। स्यात् T इति * = दूसरे मस्तकका सम्बन्ध हो जाय (इसी प्रकार द्रव्यतो द्रव्यत्वरूप है ही तिसके फिर दूसरे द्रव्यत्वका योग ठहरै)

अथ * पृथक् * सिद्धिः १।। अभ्युपगम्यते T — पक्षान्तरमें अथवा अब (द्रव्य और द्रव्यत्व) न्यारे सिद्ध मानेजाते हैं तो

द्रव्यत्व-कल्पना १।। निरर्थिका १।। = द्रव्यपनाकी कल्पना निष्प्रयोजन है अर्थात् हमको द्रव्य सिद्ध करना है और जब द्रव्यका अस्तित्व हमने भिन्न मान लिया पुनः यह कहना कि द्रव्य के द्रव्यत्व का योगहै तिस हेतुसे द्रव्य है निरर्थक है क्योंकि द्रव्यकी विद्यमानता तो हम मान ही बैठे हैं

गुण-समुदायः १। द्रव्यम् १।।। इति* चेत्*तत्र* अपि* = गुणोंका समूह है सो द्रव्य है ऐसा प्रश्न अथवा शंका है (उत्तर) वहां भी

गुणानां ६। समुदायस्य ६। च*भेद-अभावे ७। तत्द्रव्य- = गुणोंके और समुदायके (सर्वथा) भेद न माननेमें उस द्रव्यका (पृथक्)

व्यपदेशः १। न* उपपद्यते T = नाम प्राप्त नहीं होता है (क्योंकि गुणोंका समुदाय कहा तब द्रव्य कहां)

भेद-अभ्युपगमे ७। च* पूर्व-उक्तः १। एव* दोषः १। = और(च) गुणनिके और समुदायके भेद माननेमें पहिले कहा हुआ ही दूषण आताहै अर्थात् उस द्रव्य नामकी अप्राप्ति आती है (क्योंकि जब समुदाय गुणोंसे भिन्न ठहरा तब गुणोंका समुदाय क्यों कहना चाहिए उसको तो गुणोंसे पृथक ही मान लिया है

ननु*गुणान् २। द्रवन्ति T गुणैः ३। वा द्रूयन्ते T इति* = (इसी सम्बन्धमें पुनि) प्रश्न गुणोंको प्राप्त होता है अथवा गुणोंकरि प्राप्त किया जाता है (सो तुम्हारे कथनानुसार द्रव्य है) ऐसे

॥ द्रव्याणि ॥ २ ॥

यथास्वं पर्यायैर्द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि द्रव्याणि॥ द्रव्यत्वयोगाद्द्रव्यमिति चेन्न। उभयासिद्धेः॥ यथा दण्डदण्डिनोर्योगो भवति पृथक्सिद्धयोः न च तथाद्रव्यद्रव्यत्वे पृथक्सिद्धेस्तः॥ यद्यपृथक्सिद्धयोरपियोग: स्यात्

सूत्रार्थः–धर्म–अधर्म-आकाश–पुद्गलाः ;। द्रव्याणि ¹॥। = धर्म,अधर्म,आकाश,पुद्गल,द्रव्यहैं। जीव,काल,(सूत्र२, ३६में)कहेंगे ऐसे है(१)द्रव्य हैं
पृच्छानुवादः (२) यथास्वं ;॥। (३) पर्यायैः ;। द्रूयन्ते T = स्वरूप(स्वं)के अनुसार अथवा जैसा स्वरूप हो तिसकी पर्यायोंसे प्राप्त किये जाते हैं
द्रवन्ति T वा तानि;॥। द्रव्याणि ;॥। द्रव्यत्वयोगात्;। = अथवा (पर्यायोंको) प्राप्त होते हैं वे द्रव्य हैं। द्रव्यपनाके सम्बन्धसे
द्रव्यम् ;॥।इति*चेत्* = द्रव्य है ऐसी शंका वा प्रश्न (= चेत्) है ॥
न* उभय–असिद्धेः ;॥ = (उत्तर) (द्रव्यत्व के योग से द्रव्य) नहीं है (क्योंकि) (द्रव्यत्व तथा द्रव्य) दोनों असिद्धहैं।
यथा*पृथक्सिद्धयोः ;॥। दंडदण्डिनोः;॥।योगः ;।भवतिT = जैसे (दंड और पुरुष) न्यारे सिद्ध होनेपर दंड और दंडी (पुरुष) में सम्बन्ध होता है
न*च*तथा*द्रव्य–द्रव्यत्वे;॥। पृथक्* सिद्धे ;॥। स्तः T = बहुरि (च) नहीं हैं तैसे द्रव्य और द्रव्यत्व न्यारे सिद्ध। तात्पर्य्य यह है कि शिष्य के प्रश्न करने पर कि द्रव्यपना के संयोगसे द्रव्य होता है। यदि उसमें द्रव्यत्वकी विद्यमानता न हो तो द्रव्यका अस्तित्व सम्भव नहीं है तिसके उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि जैसे दंड और पुरुष न्यारे न्यारे सिद्ध हैं और जब पुरुष दंड को धारण करे तब दंडी कहलावे, बिना दंडके सम्बन्धके उसको दंडी नहीं कह सक्ते। वैसे द्रव्य और द्रव्यत्व न्यारे न्यारे नहीं दीखते हैं और न सिद्ध हैं तिस कारणसे द्रव्यपनाके योगसे द्रव्य हो सक्ती है यह तुम्हारी शंका ठीक नहीं है (फेरिआचार्य कहते हैं--
यदि*अपृथक् * सिद्धयोः ;॥। अपि* योगः ;। स्यात्T = जो (द्रव्यत्व और द्रव्यमें) भिन्न भिन्न सिद्ध न होनेपर भी सम्बन्ध हो तो

(१) हमारे यहां इस सूत्रका सर्वत्र एक अर्थ और एक ही पाठ है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें "द्रव्याणि जीवाश्च" ऐसा दूसरा सूत्र है अर्थात् सभाष्य० में "धर्म, अधर्म, आकश, पुद्गल, और संपूर्ण जीव ये पांच द्रव्य हैं "ऐसा अर्थ है कालको द्रव्य नहीं माना है॥

(२) यथास्वं शब्द अव्ययीभावसमास है और अव्ययीभावसमास नपुंसक लिङ्ग ही होता है।

(३) इस वाक्यके गुप्त शब्दोंको प्रकट करनेसे ऐसे वाक्य स्पष्ट होजाता है कि-पर्यायैः द्रूयन्ते तानि द्रव्याणि वा = पर्यायोंसे प्राप्त किये जाय वे द्रव्य हैं अथवा (= वा। पर्यायान् ;। द्रवन्ति तानि ;॥। द्रव्याणि¹॥। = पर्यायों को (जो) प्राप्त हों वे द्रव्य हैं।

स्यादेतत्संख्यानुवृत्तिवत्पुल्लिङ्गानुवृत्तिरपि प्राप्नोति। नैष दोषः। आविष्टलिंगाः शब्दा न कदाचिल्लिंग व्यभिचरन्ति। अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति॥

अनन्तरत्वाच्चतुर्णामेव द्रव्यव्यपदेशप्रसंगेऽध्यारोपणार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीवशब्दो व्याख्यातार्थः।

स्यात् T-एतत् ¹₁।।। संख्या-अनुवृत्ति-वत् * = यह हो अर्थात् यह मानलो (परन्तु) (प्रश्न) संख्याके अनुवर्तनके सदृश

पुल्लिग-अनुवृत्तिः ¹₁।। अपि * प्राप्नोति T = पुलिंगकी अनुवृत्ति भी (इस सूत्रमें) प्राप्त होती है अर्थात् प्रश्न यह है कि धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्योंको प्रथम सूत्रमें बहुवचनमें लाये हैं

इसलिये "द्रव्याणि" शब्द भी यहां बहुवचनमें कहा तो धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें जब पुल्लिगमें है फिर इस सूत्रमें द्रव्य शब्दको पुल्लिगमें द्रव्याः ऐसा क्यों नहीं रक्खा नपुंसकलिंगमें "द्रव्याणि" ऐसा क्यों लाये हैं

न * एषः ¹₁। दोषः ¹₁। आविष्ट-लिंगाः ¹₃। शब्दाः ¹₃। = (उत्तर) यह दूषण नहीं है (क्योंकि) निवेशित लिंगी शब्द अर्थात् जिन २ शब्दों को जो जो लिंग प्राप्त है

न * कदाचित् * लिंगं ²₁।।। व्यभिचरन्ति T = कभी अपना लिंग नहीं छोड़ते हैं (इसलिये क्योंकि द्रव्य शब्द नपुंसक लिंगी है इस सूत्रमें भी "द्रव्याणि' ऐसाद्रव्य शब्द नपुंसकलिंगमें लाये हैं)

अतः * धर्म-आदयः ¹₃। द्रव्याणि ¹₃।।। भवन्ति T इति * = इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्य हैं ऐसा (सूत्र) है

चतुर्णाम् ⁶₃। एव * अनन्तरत्वात् ⁵₁।।। = चारों (धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल) के ही अत्यन्त समीपतासे अथवा लगावसे

द्रव्य-व्यपदेशे-प्रसंगे ⁷₁। अध्यारोपण-अर्थम् ²₁।।। = द्रव्योंके कथनके प्रकरणमें (अन्य द्रव्य के) संस्थापन वा नियत करनेके लिये

इदम् ¹₁।।। उच्यते T = यह (अग्रिम सूत्र में) कहा जाता है कि

सूत्रम्- जीवाश्च ॥३॥ = **जीवाश्च (द्रव्याणि भवन्ति) = जीवाःच द्रव्याणि भवन्ति T**

सूत्रार्थः— जीवाः ¹₃। च * द्रव्याणि ¹₃।।। भवन्ति T = जीव भी द्रव्य हैं

वृत्त्यनुवादः—जीव-शब्दः ¹₁। व्याख्यात-अर्थः ¹₁। = जीव शब्द है सो कहा हुआ विषय है

 विग्रहेऽपि स एव दोष इति चेन्न । कथञ्चिद्भेदाभेदोपपत्तेस्तद्व्यपदेशसिद्धिः व्यतिरेकेणानुपलब्धेरभेदः
सञ्ज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदाद्भेद इति ॥ प्रकृता धर्मादयो बहवस्तत्सामानाधिकरण्याद्बहुत्वनिर्देशः ॥

विग्रहे १। * अपि*सः१। एव * दोषः१। इति*चेत्*	=द्रव्य शब्दके अर्थ प्रकाश करनेवाले वाक्यमें भी वही दोष आता है। ऐसी शंका है अर्थात् द्रव्य व्यपदेशकी अप्राप्ति आती है ऐसाप्रश्न है।
न *	=(उत्तर)(द्रव्य व्यपदेशकी अप्राप्ति का दूषण)नहीं आता है
कथञ्चित् * भेद-अभेद-उपपत्तेः ५।१	=(क्योंकि गुणोंकेऔर समुदायके वा द्रव्यके) कथंचित् भेद और कथंचित् उनमें अभेद माननेसेहै
तद्-व्यपदेश-सिद्धिः १।१ व्यतिरेकेण ३।१	=उस (द्रव्य) के नाम (=व्यपदेश) की सिद्धि होय है (गुण और द्रव्य में) भिन्नता सहित
अनुपलब्धेः ५।१ अभेदः १।१सञ्ज्ञा-लक्षण-प्रयोजनादि-	=न दीखने (के हेतु) से अभेद है (और) संज्ञा (संख्या) लक्षण और प्रयोजनादिक
भेदात् ५।१ भेदः१।१ इति* प्रकृताः १।३ धर्मादयः १।३ बहवः१।३	=भेद करि भेद है । प्रकरणरूप धर्मादिक (द्रव्य) बहुत हैं
तत्-समान-अधिकरणयात् ५।१ बहुत्व-निर्देशः १।१	=सो समान आधार के योग से (इस सूत्र में) बहु वचनता का निरूपण है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें ये चार द्रव्य हैं और बहुवचन हैं इसलिये इस सूत्रमें ('द्रव्याणि' ऐसा शब्द बहुवचन में लाये हैं १)

---

(१) कृत्, तद्धित, समास, एकशेष, सनाद्यन्तधातु इन पांच प्रकारकी वृत्तियोंमेंसे किसी भेदके अर्थको बोधन करनेवाले वाक्यको विग्रह कहते हैं। विग्रह लौकिक और अलौकिक दो प्रकारका है जैसे राजपुरुषः का लौकिक विग्रह राज्ञः पुरुषः होगा और अलौकिक विग्रह राजन्-ङस्-पुरुष०सु होगा॥ इसलिये "गुणान् द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्ते" यह लौकिक विग्रह द्रव्य शब्दका (जो वृत्तिके पहिले भेदमें द्रुधातु से बना, है॥ इस हेतु से विग्रह वाक्य का अनुवाद स्पष्ट रूप से ये हुआ कि "द्रव्य शब्दके अर्थ प्रकाश करने वाले वाक्यमें भी" अर्थात् गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्ते में भी इत्यादि ॥

रूपरसगन्धस्पर्शवत्त्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ।

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शवत्त्वात्-५।१ चक्षुःइन्द्रिय-वत्※=(उत्तर)रूप-रस-गंध-और स्पर्शवान् होनेसे नेत्र इन्द्रियके सदृश(पुद्गलद्रव्यमें गर्भित)है

१० (१) यहांसे आगे इस वृत्तिके अर्थको भले प्रकार समझने के लिये इस टिप्पणी को चित्त लगाकर समझलेना चाहिये अन्य वादियोके माने हुये चार गुणों में कौन कौन किस किस मेंहै? जैनियों ने स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-वाले पुद्गल माने है

(तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ५ सूत्र २३, द्रव्यसंग्रह ग्रंथकी गाथा १५)

(१)रूप—पृथिवी,जल,और तेजमें रहताहै (तर्कसंग्रह १-१६) (१) रूप अर्थात् कृष्ण, नील,रक्त, पीत, श्वेत.ये पांच रूप वा वर्ण वा रग है ।

(२) रस—पृथिवी और जल में रहता है (तर्कसंग्रह १-२०) (२) रस अर्थात् खट्टा, मीठा,कडुआ (कटुक), कषायला, चिरपरा (तिक्त) ये पांच हैं

(३)गंध—पृथिवी मात्रमे ही रहताहै (तर्कसग्रह १-२१), (३) गन्ध अर्थात् सुगन्ध (सुरभि), दुर्गन्ध (असुरभि) , भेदरूप है

(४)स्पर्श-पृथिवी,जल,तेज,और वायुमेरहताहै(तर्कसंग्रह१-२२)(४)स्पर्श—कोमल(मृदु),कठोर;हलका,भारी;शीत,उष्ण;सचिक्कन(स्निग्ध),(रूक्ष) रूखा); -ये आठभेद स्पर्शकेहैंऐसेसामान्यतासेचारगुणऔरविशेषरूपसे२०गुणवालेपुद्गलहै

(५)नित्य औरपरमाणुरूपमनहैअर्थात्पौद्गलिकवापुद्गलीकमनहे (देखोतर्कसग्रह१।१८) (५) मन अर्थात् द्रव्यमन जो पुद्गलद्रव्यका विकारहै, भावमन जो ज्ञानहै आत्मामेगर्भितहै

इन दोनों बीजको के पढने से यह अन्तर निकलता है कि अन्य वादियोंने वायुको रूपवान् नही माना है जैनियों ने रूपवान् माना है; रस गुणको अग्नि और वायु मे नहीं माना है हमने माना है,गन्ध को जल अग्नि वायु में नहीं माना है जैनियों ने माना है। स्पर्श अन्यवादियोंने पृथिवी, जल, तेज और वायु सब में माना है सो हम जैनियों ने भी माना है ॥ पूज्यपाद स्वामीने "कथ......व्यवहारोपपत्तेः" तक वृत्तिके पृष्ठ२०३और२०४की १५ पंक्तियोमे,तीन बातें सिद्ध की है (१) जो प्रतिवादी नौ द्रव्यें मानते है वे सर्व द्रव्य आत्मा-काल-आकाश और पुद्गलद्रव्य मे अन्तर्भाव है इसलिये नौ द्रव्योंके माननेकी आवश्यकता नहीं, है वरन् धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, को मिलाकर केवल छह द्रव्य मानना चाहिये-(२)रूप- रस-गन्धा-स्पर्श, ये पृथिवी,जल,अग्नि और वायु, और द्रव्यमन में भी(जो पुद्गल द्रव्यका विकार है)विद्यमान हैं और पुद्गलोंके गुण है और उनमे पाये जाते है,अर्थात् १० भिन्नवादियों ने वायु में रूप(वर्ण)नहीं मानाहै उसका खण्डन होताहै। अग्नि और वायु मे रस गुण नही माना हैउसका भी खण्डन होता है और इसी प्रकार जल अग्नि-वायुमे गन्धा नहीं माना है उसकाभी खडन होता है। मनमें स्पर्शमाना है रस-रूप-गध नहीं माने हैं इसलिये पूज्यपाद स्वामीने

बहुत्वनिर्देशो व्याख्यातभेदप्रतिपत्त्यर्थः । चशब्दः सञ्ज्ञानुकर्षणार्थः जीवाश्च द्रव्याणीति ॥ एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह षड्द्रव्याणि भवन्ति॥ ननु द्रव्यस्य लक्षणं वक्ष्यते 'गुण-पर्ययवद्द्रव्यमिति' तल्लक्षणयोगाद्धर्मादीनां द्रव्यत्वव्यपदेशो भवति, नार्थःपरिगणनेन? ॥ परिगणनमवधारणार्थं, तेनान्यवादिपरिकल्पितानां पृथिव्यादीनां निवृत्तिःकृता भवति ॥ कथं? पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि पुद्गलद्रव्येऽन्तर्भवन्ति

बहुत्व-निर्देशः। व्याख्यात-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थः=(इस सूत्रमें 'जीवाः' ऐसा) बहुवचनका निरूपण वा कथन वर्णित (जीवके) भेदोंकेजनानेको है
च-शब्दः। संज्ञा-अनुकर्षण-अर्थः =(सूत्रमें) च शब्द (द्रव्य) संज्ञाके ग्रहण करनेके लिये वा अनुवृत्तिके लिये है
जीवाः। च* द्रव्याणि॥ इति* एवम्* एतानि॥ =जीव भी द्रव्यें हैं ऐसा (अर्थ होता) है इसप्रकार ये
वक्ष्यमाणेन। कालेन। सह* षड्द्रव्याणि॥ भवन्ति।=आगेकहेजानेवाले काल सहित छह द्रव्यें होती हैं
ननु* गुण-पर्यय-वत्* द्रव्यम्॥ इति* द्रव्यस्य॥=प्रश्न, गुण पर्याय वाला द्रव्य होता है ऐसा द्रव्यका
लक्षणम्॥ वक्ष्यते। तत्-लक्षणयोगात्। धर्मादीनाम्॥=लक्षण (सूत्र ३८ वां में) कहेंगे तिस लक्षणके सम्बन्धसे धर्मादिकोंकें
द्रव्यत्व-व्यपदेशः। भवति, न* अर्थः। परि-गणनेन॥=द्रव्यत्वनाम होताहैगणना(करने)सेप्रयोजननहीं(तो आपने छह द्रव्यहैंऐसी गणना क्यों की)
परिगणनम्॥ अवधारण-अर्थम्॥ तेन॥ अन्यवादिन्-=(उत्तर) गिनती है सो नियम के लिये है तिस (गिनती) से [१] भिन्नवादीसे
परिकल्पितानाम्॥ पृथिवी-आदीनाम्। =मानेगये पृथिवी-जल-तेज वायु आकाश-काल-दिशा-आत्मा, मन की अर्थात् पृथिवी आदिक इन नौ द्रव्योंकी (देखो 'तर्कसंग्रह' दूसरा सूत्र)
निवृत्तिः। कृता॥ भवति। कथम्? पृथिवी-अप् =निवृत्ति वा रोक पूरी- (=कृता) होती है (प्रश्न)कैसे पृथिवी, जल,
तेजो-वायु-मनांसि॥ पुद्गलद्रव्ये॥ अन्तर्भवन्ति।=अग्नि, वायु, मन, पुद्गल द्रव्यविषैं गर्भित हैं।

(१) इस प्रश्नकी योग्यता इसप्रकार है कि अन्यवादियोंने तर्क संग्रहआदि न्यायके ग्रंथोंमें आत्मा, काल, आकाश, दिशा, पृथिवी, जल,तेज, वायु और मन नौ द्रव्य माने हैं हमारे यहां आत्मा, काल,आकाश,पुद्गल,धर्म और अधर्म ये छह द्रव्य माने हैं धर्म और अधर्म अन्यवादियों ने द्रव्य नहीं माने हैं ऊपर की गणनासे स्पष्ट है कि आत्मा, काल और आकाश जिसमें दिशा भी गर्भित हैं (दिशा का आकाश में गर्भित होना इससूत्रकी वृत्ति के अन्तभागमें सिद्ध किया है) हमारे यहां और उनके यहां एक से हैं। अब अन्यवादियोंकीशेष पांच द्रव्यें पृथिवी, जल, तेज,वायु, और मन रह गये सो हमारे यहां के पुद्गल द्रव्यमें सब के सब आजातेहैं इसलिये प्रश्नकर्ताने उपर्युक्त तर्क संग्रह ग्रन्थमें वर्णित नौ द्रव्योंके कथन या गणना को चित्त में धारण करके यह प्रश्न किया है कि पुद्गल द्रव्यमें ये पांचों कैसे गर्भित हैं ॥

चक्षुरादिकरणग्राह्यत्वाभावाद्रूपाद्यभाव इति चेत्परमाण्वादिष्वतिप्रसङ्गः स्यात्॥ आपो गन्धवत्यः स्पर्शवत्त्वात्पृथिवीवत् ॥ तेजोऽपि रसगन्धवत् रूपवत्त्वात्॥ तद्वदेव मनोऽपि द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति । तत्र भावमनो ज्ञानम्, तस्य जीवगुणत्वादात्मन्यन्तर्भावः । द्रव्यमनश्च रूपादियोगात्पुद्गलद्रव्यविकारः ॥

चक्षुर्–आदि–करण–ग्राह्यत्व–अभावात्[५/१] =नेत्रादिक इन्द्रियोंसे ग्रहणयोग्य न होनेसे वा न आकर्षित क्रियेजासकनेसे

रूप–आदि–अभावः[१/१] इति* चेत्* =(वायुके) रूप,रस गंधआदिका अस्तित्व नहीं है। ऐसी शंका वा प्रश्न है

परमाणु–आदिषु[७/३] =(उत्तर)तो परमाणु आदिक लक्ष्यमें (जो नेत्रोंकरि नहीं दीखते हैं)

अतिप्रसंगः[१/१] स्यात् I, आपः[१/३] स्पर्शवत्त्वात्[५/१] पृथिवीवत्=(स्पर्शादिक)लक्षणकोभी अतिप्रसंग होगा॥ जल स्पर्शवान् होनेसे पृथिवीके समान

गन्धवत्यः[१/३], =गंधवान्है (अन्यवादियोंनेजलमेंरूपरसस्पर्शहीमानेहैंइसलियेयहांगंधत्वसिद्धकिया है)

तेजः[१/१] अपि*रूपवत्त्वात्[५/१] रस-गन्धवत्* =अग्नि भी रूपवान् होनेसे रस और गन्धवानहै(क्योंकि अन्यवादियोंने अग्निमें रूप और स्पर्शमाने हैं इसलिये यहांपर रसत्व और गंधत्व सिद्ध किये हैं)।

तद्-वत्*एव*मनः[१/१] अपि*द्विविधम्[१/१] =उस (जल)के सदृश ही है॥ मन भी दो प्रकार है।

द्रव्यमनः[१/१] भावमनः[१/१] च*इति,तत्र*भावमनः[१/१]=द्रव्यमन और भावमन । तहां भावमन है

ज्ञानम्[१/१] तस्य[६/१] जीवगुणत्वात्[५/१] आत्मनि[७/१] =सो ज्ञान है। तिस (भावमन) के चेतनका गुणहोनेसे,आत्मा (द्रव्य) में

अन्तर्भावः[१/१], द्रव्यमनः[१/१] च*रूप– =गर्भित है। बहुरि द्रव्यमन अर्थात् सूक्ष्म पुद्गलका प्रचय रूप अष्ट पांखुरी के फूले कमलके आकार हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ है सो रूप

आदि–योगात्[५/१] पुद्गलद्रव्य-विकारः[१/१], =रस-गंध-स्पर्शके संयोगसे पुद्गलद्रव्य का परिणाम है।

अति प्रसङ्ग=अति प्रसक्ति, प्रसग को छोड़ने वाला,लक्ष्यमें जो लक्षणका सम्बन्ध होताहै उसको प्रसग कहते हैं जो इसके विपरीत हो वह अति प्रसंग हैं अर्थात लक्ष्यमे लक्षण के सम्बन्धकाअभाव (१) वायु और मन इन दोके सबंध में रुपादिक के अभाव होने का प्रश्न किया गया था सो वायु को रुपादिक का होनासिद्ध करदिया,वायु के लगता ही जलमें गध और अग्नि में रस और गध सिद्धि करनेके पश्चात् शेप रहे हुए मनके दो भेद करते हुये द्रव्यमनमें रूप रस-गध-स्पर्शको सिद्ध आगे करेंगे॥

वायुमनसो रूपादियोगाभाव इति चेन्न । वायुस्तावद्रूपादिमान्स्पर्शवत्त्वाद्घटादिवत् ॥

अर्थात् पृथिवी,जल,अग्नि, वायु और द्रव्यमन रूप वा वर्ण,रस,गंध,और स्पर्श सहितहैं और पुद्गल भी रूप,रस,गन्ध,और स्पर्शवान् हैं तिससे ये पांचों पुद्गल द्रव्यमें गर्भित हैं

वायु-मनसोः६॥।रूप-आदि-योग-अभावः१इति*चेत्*=वायु और मनकें रूपादिकका सम्बन्ध नहीं हैं ऐसा प्रश्न वा शंका (=चेत्) है

अर्थात् अन्यवादियोंकी तर्कसंग्रहके सूत्र १८ के अनुसार मन परमाणु रूप है (अतःस्पर्शवान् तो हुआ) उसके रस,गन्ध,और वर्ण नहीं माने हैं और सूत्र २२ के अनुसार वायु में केवल स्पर्श माना है और वर्ण-रस-गन्ध नहीं माने हैं (देखो तर्कसंग्रह सूत्र १९,२०, २१)

न*वायुः१तावत्*स्पर्शवत्त्वात्५॥।घटादिवत्*रूप-(१)आदिमान्१=(उत्तर) (सो) नहीं है ॥ वायु है सो प्रथम तो स्पर्शवान् होनेसे घटादिके समान रूप=रस गन्ध वाला है अर्थात् जहां स्पर्श है वहां रूप रस गंध होंय हीं हों यह नियम है

जलमें गंधसिद्ध किया है अग्निमें रस और गंधसिद्ध किये हैं।और वायु में रूप-रस-गंध-सिद्धकिये हैं और द्रव्यमनविषैं रस-रूप-गंध सिद्ध किये हैं जिनको अन्यवादियों ने नहींमाना है (३) समस्त पुद्गल परमाणुओंकें एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहती है । जैसे पृथिवी में जल होता है जलसे पृथिवी होती है अग्नि से पृथिवी होय है और पृथिवी आदिक से अग्निहोतीहै इसप्रकार पृथिवी आदि से उपजे हुए और वायु तथा द्रव्यमनसे न्यारे परमाणु नहीं है, ये समस्त ही पुद्गल के विकार हैं ॥

'१'संज्ञावाचक पुल्लिङ्ग शब्द जिनके अन्त में'वत्'और'मत्'हो प्रथमा विभक्ति एक वचन,द्विवचन, बहुवचन, और द्वितीया विभक्ति एक वचन और द्विवचन में अन्त के तकार के पहिले न् जोड़ते हैं फिर प्रत्यय लगाते हैं, जैसे-आदिमत्-और सबसे पहिले प्रथमा विभक्ति एक वचनमें 'त्' के पहिलेस्वर को दीर्घ करदेते हैं जैसे-आदिमन् से आदि-मात् हुआ पश्चात् न्-त् से प्रथम जोड़ा तो आदिमान् त् हुआ फिर स् प्रथमा विभक्ति एक वचनका प्रत्यय जोड़ा तब आदिमान् त् स् ऐसा रूप बना जब पद के अन्त में एक व्यंजन से अधिक हों तो प्रथम रहजाता है शेषसब गिर जाते हैं(देखो-संयोगान्तस्यलोपःअष्टाध्यायी सूत्र ८-२-२३) ॥ शेषरूप आदिमन्तौ,आदिमन्तःऔर आदिमन्तम् और आदिमन्तौ(द्वितीया विभक्तिमें) होंगे ॥ इसलिये 'आदिमान्' यह रूप प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग में बना ॥

'संयोगान्तस्य लोपः=संयोगान्तस्य६। लोपः१। =संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ॥

संयोग-अन्तम्१॥यत्पदम्१॥ =जिस पदके अन्तमें सयोग (व्यंजन)हो और

तद्-अन्तस्य६। लोपः१। स्यात् T =वह संयोग जिस समुदायके अन्तमें होय तिसका लोप होजावै अर्थात् जब पदके अन्तमें एक व्यंजनसे अधिक हों तो पहिला रहजाता है शेष सब गिरजाते हैं

१४

दिशोऽप्याकाशेऽन्तर्भावः । आदित्योदयाद्यपेक्षया आकाशप्रदेश-पंक्तिषु इत इदमिति व्यवहारोपपत्तेः ॥ उक्तानां द्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥

अर्थात् समस्त पुद्गल परमाणुओं के एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहतीहै जैसे पृथिवी परमाणुओं से जल होताहै जल परमाणुओंसे पृथिवी होय है, अग्निसे पृथिवी होती है, और पृथिवी काष्ठादिकसे अग्नि होय है इस प्रकार पृथिवी आदिकसे उत्पन्न हुए वायु मनके न्यारे न्यारे परमाणु नहीं हैं ये समस्त ही पुद्गलके विकार हैं !

दिशः ६/१ ।। अपि * आकाशे ७/१ अन्तर्भावः १/१ ; आदित्य-उदय-आदि- =दिशोका भी आकाश (द्रव्य) में समावेश है। सूर्यके उदय आदिके
अपेक्षया ३/१ । आकाश-प्रदेश-पंक्तिषु ७/३ । इतः * इदम् १/१ ।। =अपेक्षासे आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तियोंमें यहांसे यह (इधर) है
इति * व्यवहार-उपपत्तेः ५/१ । =इस प्रकार (पूर्वादिक दिशाओंके)व्यवहारकी सिद्धि है अर्थात् जहां सूर्य उगता है उसओरके आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तियोंको पूर्वदिशा कहते हैं जहां सूर्य अस्त होता हैउस ओरके आकाशके प्रदेशकी पंक्तियोंको पश्चिम दिशा कहते हैं इस प्रकार शेष दिशाओं को जानना

उक्तानाम् ६/३ ।। द्रव्याणाम् ६/३ ।। विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् २/१ ।। आह । =वर्णित द्रव्योंके विशेषज्ञानके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

=((२)धर्मादीनि, (३)कालः, (४)जीवाश्च, (५)द्रव्याणि)नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—धर्म-आदीनि १/३ ।। कालः १/१ । जीवाः १/३ । च * द्रव्याणि १/३ ।। =धर्म—अधर्म-आकाश-पुद्गल—काल—और जीव द्रव्यें
नित्य- ध्रुव वा नित्य हैंअर्थात् द्रव्यविषैं अनेक धर्म हैं वे(धर्म)द्रव्यपनाकी अपेक्षा (न कि पर्यायकी अपेक्षा) अविनाशी हैं अथवा सदा विद्यमान है ।

१४

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ,अर्थएक है?(२)'धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल'यह प्रथम सूत्र से लिया है(३) 'कालः'इस अध्यायके उनतालीसवां सूत्रसे अध्याहार किया है(४) 'जीवाश्च'इस अध्यायके तीसरे सूत्रसेयह अनुवृत्ति लीगई है(५)'द्रव्याणि'इस अध्यायके दूसरे सूत्र से अनुवर्तताहै॥

रूपादिमन्मनः ज्ञानोपयोगकारणत्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ॥ ननु अमूर्तेऽपि शब्दे ज्ञानोपयोगकारणत्वदर्शनाद्व्यभिचारी हेतुरिति चेन्न । तस्य पौद्गलिकत्वान्मूर्तिमत्त्वोपपत्तेः ॥ ननु यथा परमाणूनां रूपादिमत्कार्यत्वदर्शनाद्रूपादिमत्त्वम्, न तथा वायुमनसो रूपादिमत्कार्यं दृश्यते इति चेन्न । तेषामपि तदुत्पत्तेः । सर्वेषां परमाणूनां सर्वरूपादिमत्कार्यत्वप्राप्तियोग्यत्वाभ्युपगमात् ॥ न च केचित्पार्थिवादिजातिविशेषयुक्ताः परमाणवः सन्ति, जातिसङ्करेणारम्भदर्शनात् ॥

ज्ञानोपयोग-कारणत्वात्॥चक्षुःइन्द्रियवत्* =ज्ञानोपयोग को निमित्तहोनेसे नेत्र इन्द्रियके समान
रूप-आदिवत्*मनः;ननु*अमूर्ते अपि* =मन रूपरस-गंध-स्पर्शवान् (=रूपादि) है। प्रश्न। मूर्तिशून्यहोनेपर भी
शब्दे ज्ञानोपयोग-कारणत्व-दर्शनात्व्यभिचारी हेतुः =शब्दविषैं ज्ञानोपयोग कारणभावदीखनेसे व्यभिचारीहेतुहै अर्थात्शब्दअमूर्तिकहोनेपर
इति*चेत्* भीज्ञानोपयोगकीप्राप्तिकाकारणदेखेजानेसेहेतुपक्ष,सपक्ष,विपक्षमेंरहनेवालाव्यभिचारी
=हुआ ऐसी शंका है(भावार्थ)द्रव्यमन रूपादि सहित हैसो ज्ञानके प्राप्तिविषैं कारण
कहा है और अमूर्तिक शब्द भी ज्ञान करानेमें कारण है तो ऐसे ज्ञानकी उपलब्धिमें
मूर्तिक द्रव्यमन और अमूर्तिक शब्द दोनों ही कारण हुये इसलिये यह नियम नहीं होसकता
किजो ज्ञान करानेमें कारण है वह रूप-रस-गन्ध-स्पर्शवाला (=मूर्तिक) ही होता है ॥
न*;तस्य पौद्गलिकत्वात्॥मूर्तिमत्त्व- =(उत्तर) नहीं; क्योंकि तिस (शब्द)कें पुद्गल जन्य होनेसे मूर्तिपना
उपपत्तेः;ननु*यथा*परमाणूनाम्रूपादिमत्- =सिद्धि (=उपपत्ति) है। प्रश्न। जैसे परमाणुओं के रूपादिवाला
कार्यत्व-दर्शनात्॥रूपादि-मत्त्वम्;नतथावायु- =कार्यपना दीखनेसे रूपादिकवान् पना है,नहीं तैसे वायु
मनसोः॥रूप-आदिमत्-कार्यम्॥दृश्यते I =और मनके रूपादिकमान् कार्य देखा जाता है
इति*चेत्*न*;तेषाम् अपि*तद् =ऐसी शंका है (उत्तर) नहीं, क्योंकि तिन (वायु और मनके) भी वह
उत्पत्तेः॥सर्वेषाम्परमाणूनाम्सर्व-रूप-आदिमत्-=(रूपादिवान्कार्य)उत्पन्न होताहैक्योंकि सब परमाणुओंके समस्त रूपादिक
कार्यत्व-प्राप्ति-योग्यत्व-अभ्युपगमात्; =कार्यपनाकी प्राप्ति होनेकी शक्ति, सामर्थ्य वा योग्यता मानी गई है
न*च*केचित्*पार्थिव-आदि-जाति-विशेष-युक्ताः =बहुरि नहीं कोई पृथिवी आदिक जन्य जाति विभेद सहित
परमाणवः सन्ति I जाति-सङ्करेण आरम्भ-दर्शनात्॥=परमाणु हैंक्योंकि(समस्त पुद्गल परमाणुओं के)जातिके पलटन करि आरम्भदीखेहै

कदाचिदपि न व्ययन्तीति नित्यानि। वक्ष्यते हि तद्भावाव्ययं नित्यमिति ।इयत्ताऽव्यभिचारादवस्थितानि धर्मादीनि षडपि द्रव्याणि कदाचिदपि षडिति इयत्वं नातिवर्तन्ते। ततोऽवस्थितानीत्युच्यन्ते॥ न विद्यते रूपमेषामित्यरूपाणि, रूपप्रतिषेधेन तत्सहचारिणां रसादीनामपि प्रतिषेधः। तेन अरूपाण्यमूर्तानीत्यर्थः ॥

यथा सर्वेषां द्रव्याणां नित्यावस्थितानीत्येतत्साधारणं लक्षणं तथा अरूपित्वं पुद्गलानामपि प्राप्तम्।

कदाचित्*अपि*न*व्ययन्ति T इति*नित्यानि$^{1}_{3}$।।;	=कभी भी नाश वा नष्ट नहीं होती हैं इसप्रकार नित्य हैं वा अविनाशी हैं
वक्ष्यते T हि*तद्भाव–अव्ययम्$^{1}_{1}$।।	=क्योंकि(=हि)(इस अध्यायके इकतीसवें सूत्रमें) कहेंगे कि "तद्भावाव्ययं नित्यम्"
	अर्थात् जो (तद्भाव) रूपसे वा सत्स्वभावसे(=तद्भाव)अविनाशी (=अव्यय) है
नित्यम्$^{1}_{1}$।।इति*;इयत्ता-अव्यभिचारात्$^{5}_{1}$ अवस्थितानि$^{1}_{3}$।।	=सोनित्यहै; इतनेका होना परिमाण वा गिनतीके न छोड़ने(के हेतु)सेअवस्थित हैं
धर्म-आदीनि$^{1}_{3}$।।षड्$^{1}_{3}$।।अपि*द्रव्याणि$^{1}_{3}$।।कदाचित्*अपि*षड्	=धर्मादिक छह ही(=अपि) द्रव्य हैं किसीकाल में भी(=अपि)छह हैं
इति*इयत्वम्$^{2}_{1}$।। न*अतिवर्तन्ते T;	=इस प्रकार परिमाण को वा संख्याको नहीं उलंघे हैं, नहीं त्यागेहैं
ततः*अवस्थितानि$^{1}_{3}$।।इति*उच्यन्ते; न*विद्यते T	=तिसलिये(ये छहो द्रव्य) अवस्थित कही जाती हैं। नहीं है
रूपम्$^{1}_{1}$।।एषाम्$^{6}_{1}$।।इति*अरूपाणि$^{1}_{3}$।।रूप-प्रतिषेधेन$^{3}_{1}$।	=रूप वा वर्ण जिनके इस प्रकार(येद्रव्यें)अरूपी हैं। रूपके निषेधसे
तत्-सहचारिणाम् $^{6}_{3}$। रसादीनाम्$^{6}_{3}$ अपि*	=उस(रूप=वर्ण=रंग)केसहचारी अर्थात्एकसाथरहनेवालेरस-स्पर्श गंधकीभी(=अपि)
प्रतिषेधः$^{1}_{1}$; तेन$^{3}_{1}$।अरूपाणि$^{1}_{3}$।। अमूर्तानि$^{1}_{3}$।।	=निवृत्ति है। तिस(रूपके प्रतिषेध) से अरूपी हैं अमूर्ती हैं
इति*अर्थः$^{1}_{1}$। यथा*सर्वेषाम्$^{6}_{3}$।।द्रव्याणाम्$^{6}_{3}$।।नित्य-	=ऐसा अभिप्राय है। जैसे समस्त द्रव्योंके नित्य
अवस्थितानि $^{1}_{3}$।। इति*एतत्$^{1}_{1}$।।साधारणम्$^{1}_{1}$।।	=अवस्थित ऐसा यह(=एतत्)सामान्य
लक्षणम्$^{1}_{1}$।।तथा*अरूपित्वं$^{1}_{1}$।।पुद्गलानाम्$^{6}_{3}$।अपि*प्राप्तम्$^{1}_{1}$।।	=लक्षण है। तैसे अरूपीपना पुद्गलोंके भी सिद्ध है।

(१)'विद्यते'–यह रूप विद् धातुसे बनाहै।'विद्'संज्ञा और धातु दोनों अर्थोंमें आताहै जब संज्ञा होताहै तब ज्ञान,पंडित,और बुधग्रह ये तीन अर्थ देताहै। ( ) विद् अदादि द्वितीय गणका धातु, परस्मैपद, सकर्मक, जानना अर्थमें गुण संज्ञाहोकर'वेद्' रूपहुआ, अन्यपुरुष,एक वचन,परस्मैपद,वर्तमान कालकी क्रिया का ति लगानेसे वेद्+ति=वेत्ति हुआ ( ) विद्=होना, दिवादि चतुर्थगण' आत्मनेपद अकर्मक धातु यहांपर है। चतुर्थगणका विकरण 'य'और वर्तमान काल, अन्यपुरुष, एक वचन आत्मने पदका'ते'जोड़नेसे विद्+य+ते=विद्यते हुआ ( ) विद्=पाना तुदादि उभय पदी, सकर्मक गतुहै विकरण'अ'लगानेसे प्रथम'न्'लगाया जाताहै विन्द्+अ हुआ,ति प्रत्यय लगानेसे विन्दति=पाताहै विन्दते=अपने लिये पाताहै, दो रूप बने॥

नित्यं ध्रुवमित्यर्थः । नेः ध्रुवे त्यः इति निष्पादितत्वात् ॥ धर्मादीनि द्रव्याणि गति-हेतुत्वादिविशेषलक्षणद्रव्यार्थादेशादस्तित्वादिसामान्यलक्षणद्रव्यार्थादेशाच्च

अवस्थित— =अवस्थित हैं अथवा ज्योंके त्यों रहते हैं अर्थात् द्रव्योंमें अपने अपने जो जो विशेष(२)लक्षण हैं उनको नहीं छोड़ते हैं जैसे जो द्रव्य चेतन है वह अचेतन नहीं हो सक्ता जो द्रव्य मूर्तिक है वह अमूर्तिक नहीं हो सक्ता और जो अमूर्तिकहै वह मूर्तिक नहीं हो सक्ता इत्यादि तिससे द्रव्योंकी संख्याकी व्यवस्थाहैऔर छह द्रव्योंकीसंख्या१,२,३,४,५,वा ७,इत्यादि नहीं होसक्ती है

अरूपाणि ३।।। =(पुद्गल द्रव्यके अतिरिक्त) अरूपी हैं अर्थात् अमूर्तिक हैं

वृत्त्यनुवादः-नित्यम् १।।।ध्रुवम् १।। इति* अर्थः१।नेः ६। ध्रुवे ७। =नित्य है सो ध्रुव अथवा अविनाशी ऐसा अर्थ है(नि)धातु से स्थिर अर्थमें

त्यः १। इति* =त्यप् अर्थात् (त्य) प्रत्ययलगाकर (नित्य) ऐसा(शब्द)

निष्पादितत्वात् ५।।।;धर्म–आदीनि १।।। =सिद्ध वा निष्पन्न होता है ॥ धर्म–अधर्म–आकाश-पुद्गल–जीव–काल

द्रव्याणि१।।।गति–हेतुत्व–आदि-विशेषलक्षण- =द्रव्यहैंगति-हेतुत्व-आदिकसवद्रव्योंमें न व्यापने वाले गुणोंसे(=विशेष लक्षण)

द्रव्यार्थ(१)–आदेशात्५।च*अस्तित्व–आदि– =द्रव्यस्वरूपके आदेशकरि और (=च) अस्तित्वादिक (=सामान्य लक्षण)

सामान्य-लक्षण-द्रव्य-अर्थ–आदेशात् ५। च* =सब द्रव्योंमें व्यापनेवाले गुणोंसे द्रव्यार्थिक नयके नियमसे

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके प्रथम संस्करण में' द्रव्यत्व–आदेशात् ' पाठ है हमने 'द्वितीयावृत्ति' का पाठ 'द्रव्यार्थादेशात्' लिया है क्योंकि यह पिछला पाठ तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी मिलता है॥ दोनों पाठों का अर्थ लग भग एक है। (२) गुण अथवा लक्षण के दो भेद हैं (i)सामान्य और (ii) विशेष (i)जो सब द्रव्योंमें व्यापैं वे सामान्य अथवा साधारण हैं वे गुण अनेक हैं परन्तु उनमें अस्तित्व–वस्तुत्व–द्रव्यत्व–प्रमेयत्व–अगुरुलघुत्व–प्रदेशवत्व–ये मुख्यहैं(देखो अध्याय २ पृष्ठ २६)iiiजो सब द्रव्योंमें न व्यापैं उसको विशेष गुण कहतेहैं जैसे जीवका विशेषगुण ज्ञान ॥ नित्य और अवस्थित शब्दोंमें क्या भेद अथवा अन्तर है। देखो पं० जयचंद्रायजी वचनिका पृष्ठ ४११) द्रव्यार्थिक नयके आदेशकरि द्रव्योंको अपने गति हेतुत्व स्थिरहेतुत्व आदि विशेष गुण तथा अस्तित्व आदि सामान्य लक्षणका किसी समयमें न छोड़ना सो नित्य है। धर्मादिक षट् द्रव्योंकी कही गई संख्या तथा उनके प्रदेशोंकी कथित इयत्ता (संख्या) कभी भी न्यून वा वढ़ती नहीं होना उसे अवस्थित कहते हैं। भावार्थ अवस्थित विशेषणसे द्रव्यों तथा उनके प्रदेशोंकी संख्याका क्रम कभी घटेगा वढेगा नहीं' ज्योंका त्यों अथवा वैसाही क्रम रहैगा ॥

न। तदविनाभावात्तदन्तर्भावः ॥ पुद्गला इति बहुवचनं भेदप्रतिपादनार्थम् ॥ भिन्ना हि पुद्गलाः। स्कन्धपरमाणुभेदात्तद्विकल्प उपरिष्टाद्वक्ष्यते॥ यदि प्रधानवदरूपत्वमेकत्वं चेष्टं स्यात् विश्वरूपकार्यदर्शनविरोधःस्यात्॥आह किं पुद्गलवद्धर्मादीन्यपि द्रव्याणि प्रत्येकं भिन्नानीत्यत्रोच्यते-

न*	=(उत्तर) सो नहीं हैं अर्थात् रूपमें रस–गन्ध–स्पर्शका ग्रहण है
तद्–अविनाभावात् ५/१।	=उस (रूप) के अविनाभावकरि अथवा उस (रूप) से व्याप्त होने (केकारण)से वा उस (रूप) के विना उनकी स्थिति न रहने से
तद्–अन्तर्भावः१/१। ;पुद्गलाः१/३। इति*बहुवचनम् १/१।।	=उस (रूप) में (रस-गंध-स्पर्श) गर्भितहै । (सूत्रमें) पुद्गलाः ऐसा बहुवचन है
भेद-प्रतिपादन-अर्थम्१/१।।;भिन्नाः१/३। हि*पुद्गलाः१/३।;	=सो (पुद्गलोंके) भेदोंके जनावनेके लिये है । क्योंकि(=हि) पुद्गल भिन्न भिन्न हैं
स्कन्ध-परमाणु-भेदात्५/१।तद–विकल्पः १/१।	=स्कन्ध परमाणु के भेदसे उन (पुद्गलों) के भेद
उपरिष्टात्*वक्ष्यते।यदि*प्रधानवत् *	=आगे कहेंगे ।जो सांख्य मतकी सत्वरजस्तमोरूप तीनों गुणोंवाली प्रकृतिके सदृश
अरूपित्वम्१/१।।एकत्वम्१/१।।च*इष्टम् १/१।। स्यात् T	=अरूपता और (=च) एकता (पुद्गलोंके) मानीजाय (=इष्ट स्यात्) तो
विश्व-रूप-कार्य-दर्शन-विरोधः १/१। स्यात् T	=संसार में मूर्तिक कार्य के देखनेमें विरोध होजाय अर्थात् यदि सांख्य मतके अनुसार प्रकृतिको अरूपी और एक माने तो जगतमें वहुतसे कार्य,मूर्तिक दीखते हैंसो न दीखें भावार्थ प्रकृतिरूपीहै,मूर्तिकहै,उसके बहुत भेदहैं,और विशेष अवस्थाओंमें दीखतेभी हैं?
आह Tकिम्*पुद्गलवत्*धर्म–आदीनि १/३।।	= (शिष्य) पूछता है कि क्या पुद्गल द्रव्यके समान धर्म-अधर्म आकाश
अपि*द्रव्याणि१/३।।प्रत्येकम्*भिन्नानि१/३।।इति*अत्र*उच्यते	=भी प्रत्येक द्रव्य भिन्न भिन्न(=भिन्नानि) है यहां (अग्रिमसूत्रमें)कहा जाता है कि

"रूप शब्दके अनेक अर्थ होते हैं जैसे गोरूपाणि–गोद्रव्याणि अर्थात् गौ द्रव्य है। यहां रूप शब्दका अर्थ द्रव्य है। 'चैतन्य पुरुषस्य स्वरूप स्वभाव इत्यर्थः' अर्थात् चैतन्य पुरुषका स्वभाव है। यहां रूप शब्दका अर्थ स्वभाव है। दशरूपमध्ययन कार्यं–दशवारानभ्यासः कार्यः अर्थात् दश वार अभ्यास करना चाहिये। यहां रूप शब्दका अर्थ अभ्यास है। 'स्वरूप शब्दस्य स्वा श्रुतिरित्यर्थः' शब्दका स्वरूप अर्थात् शब्दका अपना श्रवण है। यहां रूप शब्दका अर्थ श्रवण है। 'रूप-चत्वारि महाभूतानि उपादाय रूप चेति' रूप अर्थात् चार महाभूतोंको ग्रहण कर, यहां रूप शब्दका अर्थ चार महाभूत है। 'चक्षुर्ग्रहणयोग्यो यो ऽर्थस्तद्रूपमिति' अर्थात् नेत्र इन्द्रियके ग्रहण करने योग्य जो पदार्थ हो वह रूप है, यहां रूप शब्दका अर्थ गुणविशेष है। कहीं कहीं पर रूप शब्दका मूर्ति भी अर्थ है जिस प्रकार 'रूपिद्रव्यं मूर्तिमद् द्रव्य'अर्थात् यह द्रव्य मूर्तिमान है यहां रूप शब्द का अर्थ मूर्ति है। परन्तु उपर्युक्त अनेक अर्थोंके रहते भी शास्त्रकी सामर्थ्यसे यहां पर रूप शब्दका अर्थ मूर्ति ही लिया गया है।" प० गजाधर लाल

अतस्तदपवादार्थमाह—

॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥

रूपं मूर्तिरित्यर्थः ॥ का मूर्तिः? रूपादिसंस्थानपरिणामो मूर्तिः ॥ रूपमेषामस्तीति रूपिणः । मूर्तिमन्त इत्यर्थः ॥ अथवा रूपमिति गुणविशेषवचनशब्दस्तदेषामस्तीति रूपिणः ॥ रसाद्यग्रहणमिति चेत्

अतः तद्-अपवाद-अर्थम् आह ।	=इसलिये उस (अरूपित्व) के विरोध वा भिन्नताके लिये (अगले सूत्रमें) कहते हैं कि
[1]रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥	=रूपिणः पुद्गलाः भवन्ति ॥ ५ ॥
सूत्रार्थः—रूपिणः पुद्गलाः भवन्ति ।	=(सूत्रार्थ) (उक्तछहो द्रव्योंमेंसे केवल) पुद्गल रूपी हैं, पुद्गल मूर्तिमान हैं अर्थात् पुद्गलोंके रूप अथवा मूर्ति है और नेत्रोंसे देखेजासकते हैं और स्पर्शे जासकते हैं
वृत्त्यनुवादः रूपम् मूर्तिः इति अर्थः का मूर्तिः	=रूप है सो मूर्ति है ऐसा अर्थ है(प्रश्न) मूर्ति क्या है ? ।
रूप-आदि-संस्थान-	=(उत्तर)रूप-रस-गन्ध-स्पर्शका गोल, तिकौना, चौकोना लंबा आकार(=संस्थान) का
परिणामः मूर्तिः ;रूपम् एषाम् अस्ति इति	=परिणमन है सो मूर्ति है । रूप जिनके है ऐसे
रूपिणः; मूर्तिमन्तः इति अर्थः अथवा रूपम् इति	=रूपी हैं आकृतिवान् ऐसा अर्थ है अथवा रूप ऐसा
गुण-विशेष-वचन-शब्दः तद् एषां अस्ति इति रूपिणः	=गुणका जाति(=रस-गंध-स्पर्श का भी)वाची शब्दहै। वह(रूपगुण)जिनकेहै ऐसे रूपीहैं
रस-आदि-अग्रहणम् इति चेत्	=(इससूत्रविषैं रूपमें) रस-गंध-स्पर्शका ग्रहण नहीं होता है ऐसी शंका है ?

( ) विद्=विचारकरना,रुधादि सातवांगणका आत्मनेपदी सकर्मक धातुहै । इसका विकरण'न' को धातुके स्वर और अन्तके व्यंजनके मध्य लगाते हैं अतःविद्=विनद् । यदि क्रियाका ङित् प्रत्यय लगाना हो तो इस विकरण का 'अ' गिरजाता है इसलिये विन्द्+ते,'ते'के कारण'द्' त् में वदलगया, (देखो, प्रथम अध्याय पृष्ठ ११ में 'खरि झलां चरः स्युः' सूत्रका अर्थ) इसलिये अव 'विंत्ते'=वह विचार (अपने लिये) करता है रूप वनगया ॥ ( ) विद् चुरादिदशवेंगणका आत्मनेपदी, अकर्मक और सकर्मक कहना प्रसिद्धकरना, अनुभव करना, रहना चार अर्थोंमें आता है ॥ इसके विकरण 'अय'के पहिले धातुके उपान्तिम ह्रस्व स्वरकी प्रायःगुण संज्ञा होजातीहै जैसे विद्=वेद्+अय)उक्त तेके जोड़नेसे वेदयते रूप,कहताहै,प्रसिद्ध करताहैं अनुभवकरता है,रहता है,अर्थोंमें वनता है ॥ सहेतुक सकर्मक रूप वेदयति-वेदयते हैं ॥ (१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ और पाठ एकसा है ? रूपमेषामस्त्येषु वास्तीतिरूपिणः=रूपम् एषाम् अस्ति वा एषु(रूपम्, अस्ति इति रूपिणः=जिनकें रूपहै वा जिनमेंरूप हैऐसा' रूपिणः'शब्दका विग्रह है

एकं द्रव्यं एकद्रव्यमिति ॥ यद्येवं बहुवचनमयुक्तं, धर्माद्यपेक्षया बहुत्वसिद्धिर्भवति ॥ ननु एकस्यानेकार्थप्रत्यायनशक्तियोगादेकैकमित्यस्तु लघुत्वाद् द्रव्यग्रहणमनर्थकं, तत्क्रियते द्रव्यापेक्षया एकत्वख्यापनार्थं द्रव्यग्रहणम्। क्षेत्रभावापेक्षया असंख्येयत्वानन्तत्वविकल्पस्येष्टत्वात् न जीवपुद्गलवत्

एकम्॥द्रव्यम्॥एकद्रव्यम्॥इति* =‘एकं द्रव्यं’ समासरूपमें “एकद्रव्यं” ऐसा होता है अर्थात् टुकड़े रूप नहीं है न दो, तीन, चार पांच इत्यादि संख्या रूप हैं एक ही द्रव्य हैं बहुत नहीं हैं ऐसी-धर्म-अधर्म-आकाश तीन ही द्रव्य हैं

यदि*एवम्* =(प्रश्न)जो ऐसाहै अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश एकएक द्रव्यहैं वा अभेदरूप द्रव्य हैं

बहुवचनम्॥अयुक्तम्॥ =तो (सूत्रमें द्रव्याणि ऐसा) बहुवचन (का प्रयोग) ठीक नहीं है

धर्म-आदि-अपेक्षया॥बहुत्वसिद्धिः॥भवति। =(उत्तर) धर्म-अधर्म-आकाशकी अपेक्षासे बहुतपनाकी प्राप्ति होती है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश ये तीन द्रव्यें पृथक् पृथक् हैं परन्तु एक एक है टुकड़े रूपमें नहीं हैं तीन होनेके हेतुसे “द्रव्याणि” इस बहुवचन शब्दकी प्राप्ति है यदि एक द्रव्य होती तौ सूत्रमें एक वचन “द्रव्यं” ऐसालाते और दो द्रव्यें अभेद रुप वा एकएक होतीं तो “द्रव्ये” ऐसा द्विवचनसूत्रमें लाते क्यों कि तीनद्रव्यें धर्म-अधर्म और आकाश पृथक् पृथक् टुकड़े रहित हैं इसलिये सूत्रमें “द्रव्याणि” ऐसा बहुवचन लाये हैं

ननु*एकस्य॥अनेक-अर्थ-प्रत्यायन-शक्ति-योगात्॥ =प्रश्न एक (शब्द) के अनेक अर्थोंके उपजावनेकी सामर्थ्यके प्रसंगसे

एक-एकम्॥इति*अस्तु। =(यदि सूत्रमें“एक द्रव्याणि”इस वाक्यके स्थानमें)एक एक(=एकैक)ऐसा होता

लघुत्वात्॥द्रव्य-ग्रहणम्॥अनर्थकम्॥ =तो(सूत्र)छोटा होजाकरि द्रव्य शब्दके ग्रहण की आवश्यकता (इससूत्रमें) न होती

तत्-क्रियते।द्रव्य-अपेक्षया॥ =(उत्तर अतः)ऐसा किया गयाहै कि द्रव्यकी अपेक्षासे(न कि क्षेत्र,भावकीअपेक्षासे)

एकत्वख्यापन-अर्थम्॥द्रव्य-ग्रहणम्॥; =एकपन (धर्म-अधर्म-आकाश के) कहनेके लिये द्रव्य(शब्द)का(सूत्रमें) आदान है

क्षेत्र-भाव-अपेक्षया॥असंख्येयत्व-अनन्तत्व-विकल्पस्य॥इष्टत्वात्॥न*जीव-पुद्गलवत्* =क्योंकि क्षेत्र,भावकी अपेक्षासे(धर्म-अधर्म-आकाशके)असंख्यातपना अनन्तपनाके भेद माने हैं। न जीव और पुद्गल के समान

१ सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें 'तत्क्रियते' के स्थान में ‘तथापि’ पाठ है, किसी किसी हस्तलिखित प्रतिमें ‘तज्ज्ञायते’ ऐसा पाठ है परन्तु बहुधा हस्तलिखित प्रतियोंमें 'तत्क्रियते' पाठ है इसलिये यह पाठ लिया गया है ॥

॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥

आङ् अयमभिविध्यर्थः। सौत्रीमानुपूर्वीमनुसृत्यैतदुक्तं, तेन धर्माऽधर्माकाशानि गृह्यन्ते। एकशब्दः संख्यावचनस्तेन द्रव्यं विशिष्यते,

---

[1]आ आकाशादेक[2]द्रव्याणि ॥६॥ = आ आकाशात्-एकद्रव्याणि भवन्ति ॥६॥

सूत्रार्थः–[3]आ आकाशात् एकद्रव्याणि भवन्ति = (प्रथम सूत्रके धर्म द्रव्यसे लेकर) आकाश पर्यंत एक एक द्रव्य हैं अर्थात् धर्मद्रव्य–अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य अखंड रूप हैं बहुत वा अनेक नहीं हैं

वृत्त्यनुवादः–आङ् अयम् अभिविधि–अर्थः = आङ् उपसर्ग अर्थात् आ शब्द है सो यह अभिविधि, अभिव्याप्ति वा पर्यंत के अर्थ है

सौत्रीम् आनुपूर्वीम् = (इसअध्याय के प्रथम) सूत्र द्वारा पठित (=सौत्रीम्) क्रमके (=आनुपूर्वीम्)

अनुसृत्य एतद् उक्तम्, तेन = अनुसार (=अनुसृत्य) यह कथन हुआ कि तिस (आङ् वा पर्यंत) करि

धर्म–अधर्म–आकाशानि गृह्यन्ते = धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य लिये जाते हैं अथवा ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् इस अध्याय का प्रथम सूत्र ऐसा है कि "धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गलाः अजीव–कायाः" आकाश द्रव्य पर्यंत सूत्रके आरम्भिक क्रमानुसारमें धर्म–अधर्म आकाश तक गर्भित होगयेहैं शेष द्रव्य छूटगये)

एक–शब्दः संख्या–वचनः तेन द्रव्यम् विशिष्यते = (इस सूत्रमें) एक शब्द है सो संख्यावाची है तिस (एकशब्द) से द्रव्य विशेषित है –अर्थात् एक शब्द द्रव्यका विशेषण अथवा द्रव्यके गुणका वाचक है

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में "आ आकाशादेकद्रव्याणि" और "आकाशादेक द्रव्याणि" ऐसे दोपाठ हैं, पिछले पाठमें आङ्" की (=अर्थात् आ की) आकाश शब्द के साथ संधि करदीगई है ऐसा सभाष्य० की चरण टिप्पणीमें लिखा है

(२) जब ये तीनों एक एक द्रव्य हैं तो जीव पुद्गल, और काल इन तीनों द्रव्योंमें विना कहे भी अनेकता सिद्ध होजाती है सो आगमानुसार जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं, पुद्गल परमाणु जीवों से अनन्त गुणं हैं और काल द्रव्य के अणु असंख्यात हैं॥

(३) आकाशादेकद्रव्याणि (=आ आकाशात्-एक-द्रव्याणि) श्वेताम्बर सम्प्रदायके "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र" में उपर्युक्त पाठ है यहां प्रथम 'आ' शब्द अभिव्याप्ति (पर्यंत) रूप अर्थका बोधक है, पूर्वोक्त पाठमें भी आकाश शब्दके पूर्व "आ" पद है परन्तु दीर्घ रूप संधि होगई है॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानः पर्यायो द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतुः क्रिया, तस्या निष्क्रान्तानि निष्क्रियाणि ॥ अत्र चोद्यते--धर्मादीनि द्रव्याणि यदि निष्क्रियाणि ततस्तेषामुत्पादो न भवेत् । क्रियापूर्वको हि घटादीनामुत्पादो दृष्टः । उत्पादाभावाच्च व्ययाभाव इति ॥ अतः सर्वद्रव्याणामुत्पादादित्रयकल्पनाव्याघात इति ॥ तन्न ॥ किं कारणम् ?

(२)उभय-निमित्त-(१)वशात्॥द्रव्यस्य॥।देशान्तरप्राप्ति-	=दोनों (बाह्य,अभ्यन्तर)निमित्तके वशसे द्रव्यके(एकक्षेत्र से)अन्य क्षेत्रमें गमन करनेका
हेतुः।उत्पद्यमानः।पर्यायः।क्रिया॥	=कारणरूप उपजी जो पर्याय अथवा विशेष अवस्था सो क्रिया है
	अर्थात् पदार्थोंका क्षेत्रांतरमें गमन तथा प्रदेशोंका सकंपपनारूप क्रिया होती है
तस्याः॥निष्क्रान्तानि॥।निष्क्रियाणि॥।अत्र*चोद्यते	=तिस (क्रिया) से पृथक् होनेसे वे क्रिया रहित हैं। यहां तर्क की जाती है कि
धर्म-(३)आदीनि॥।द्रव्याणि॥।यदि*निष्क्रियाणि॥।	=धर्म-अधर्म-आकाश द्रव्यें यदि हलनचलनरूप क्रियासे रहित हैं
ततस्*तेषाम्॥।उत्पादः।न*भवेत् ।	=तो (=ततः) तिनके उत्पाद न होना चाहिये
क्रिया-पूर्वकः।हि*घटादीनाम्।उत्पादः।दृष्टः।	=क्योंकि (=हि) क्रिया है कारण जिसको ऐसी उत्पत्ति घटादिकोंकी देखीजाती है
उत्पाद अभावात्।च*व्यय-अभावः।इति*	=और (=च) उत्पत्तिके न होनेसे नाशका अभाव है
अतस्*सर्व-द्रव्याणाम्॥।उत्पाद-आदि-त्रय-कल्पना-	=इसलिये समस्त द्रव्योंके उत्पत्ति, विनाश, ध्रौव्य वा स्थिरपना तीनों कल्पनाओंमें
व्याघातः।इति*तत्॥।न*;किं*कारणम्॥। ?	=बाधा अथवा विघ्न आता है। (उत्तर)सो (व्याघात)नहीं हैं।(प्रश्न)क्या कारण है

(१) 'वश' शब्द पुल्लिंग और नपुसकलिंग दोनो है (२) क्रियापरिणामशक्तियुक्त द्रव्यमभ्यन्तरनिमित्त, प्रेरणादिक बाह्यनिमित्तं तद्वशादित्यर्थः ॥

क्रिया-परिणाम-शक्ति-युक्तं॥ द्रव्यम्॥अभ्यन्तर-निमित्तम्॥	=क्रियारूप परिणमन शक्ति सहित द्रव्य है सो अभ्यन्तर निमित्त है अर्थात् द्रव्यमें क्रियारूप परिणमनकी सामर्थ्य है सो अभ्यन्तर निमित्त है।
प्रेरण-आदिकम्॥बाह्यनिमित्तम्॥	=(और पर द्रव्यकी) प्रेरणा, प्रेपण, या संचोदन आदिक है सो बाह्य कारण है
तद्-वशात्।इति*अर्थः।	=तिन (दोनों निमित्तों) के आश्रयसे (द्रव्यकें क्रियाउत्पन्न होती है) ऐसा तात्पर्य है

(३) आदीनि—अभीतक उमास्वामीने कालका उपदेश नहीं कियाहै इससे अनुवादकरनेमें आदि शब्दमें कालको नहींलियाहै यद्यपिकालभी निष्क्रियहै

एषां बहुत्वमित्येतदनेन ख्याप्यते॥ अधिकृतानामेव एकद्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते

॥ निष्क्रियाणि च॥ ७॥

एषाम्॥बहुत्वम्॥इति॥;एतद्॥ =इन (धर्म-अधर्म-आकाश) के (द्रव्यकी अपेक्षासे) बहुतपन है॥ यह (=एतद्)

अनेन॥ख्याप्यते।;अधिकृतानाम्॥एव॥ =इस (सूत्र) करि प्रसिद्ध है॥ प्रकरणरूप कियेगये ही

एक-द्रव्याणाम्॥विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥इदम्॥उच्यते=अभेदरूप(धर्म-अधर्म-आकाश)द्रव्योंके विशेष जाननेके लिये यह कहाजाताहैकि

सूत्रम्- "(१)निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥ =(आ आकाशात्) निष्क्रियाणि च (भवन्ति) ॥७॥

सूत्रार्थः-आ॥आकाशात्॥निष्क्रियाणि॥च॥भवन्ति। =और(=च)आकाश पर्यंत(द्रव्यें)हलनचलनरूप क्रियासे रहित हैं। अथवा आकाश पर्यंत(द्रव्यें)हलन चलन रूप क्रियासे भी(=च)रहित हैं अर्थात् धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य नित्य-अवस्थित-अरूपी-एकएक द्रव्य होनेके अतिरिक्त(=च)अपने अपने स्थानसे कदाचित् चलायमान नहीं होते हैं

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' का तथा हमारे यहां का शुद्ध पाठ 'निष्क्रियाणि च' एक है उनके यहां की भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकाके पृष्ठ ३५६ में "निः क्रियाणि च अथवा" यह पाठ है। हमारे यहां भी कितनीही पुस्तकोंमें जैसे तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६६ पर और ज्ञानचन्द्रजी लाहोर के मुद्रित "तत्त्वार्थ सूत्राणि" के पृष्ठ १५ पर 'निः क्रियाणि च' पाठ है सो अशुद्ध है क्योंकि दुस्-दुर् दो अव्यय दुःख, कठिनता अर्थोंमें एकार्थ वाची हैं और निस्, निर् ये दो अव्यय निषेध, नहिं, निश्चय, रहित, अर्थोंमें समानार्थक शब्द हैं जिसके स्' को "ससजुषो रुः (८-२-६६ सूत्रसे) =पदान्त सकार और सजुष् शब्दके षकार को रु हो, रु हुआ, 'रु' में उ इत्संज्ञक है इस 'उ' का लोप होगया फिर केवल निर् रहगया अब निस् और निर् दोनोंका 'निर्' रूप रहा। "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" (८-३-१५ सूत्र से) खर् परे हो या अवसानमें पदान्तरेफको विसर्जनीय आदेशहो, 'निर्' का 'निः' हुआ। निः+क्रिया+जस् (=अस् प्रथमा बहुवचनका चिन्ह है)॥ कुप्वोः ≍क ≍पौ च (८-३ ३७ सूत्रसे) कवर्ग पवर्ग परे हों तो विसर्जनीयको यथासंख्य जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश हो और विसर्जनीय भी(=च)हो।इस सूत्रने विसर्जनीय को स् नहीं होने दिया क्योंकि यह सूत्र'विसर्जनीयस्य'सः ८।३।३४(=खर् परे हो तो विसर्जनीयको सकार आदेश हो) सूत्र के प्रयोग को रोकता है॥ हमने विसर्जनीय का विसर्जनीयही नियत रक्खा॥ अब 'इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य ८।३।४१ सूत्र (कवर्ग पवर्ग परे हों तो इकार और उकार हैं उपधामें जिसके ऐसे प्रत्ययभिन्न के विसर्जनीयको षकारादेश हो॥ इसलिये निष्+क्रिया+अस् रूप हुआ॥ यदि यहांपर कोई तर्क करै कि हम संधि नहीं करते हैं निर्+क्रियाणि अथवा निः क्रियाणि ही रक्खाजाय तो क्या हानि है॥ (उत्तर) एकपदमें अर्थात् अखंड पदमें जैसे राम+नाम्=रामाणाम्; धातुके साथ उपसर्गमें जैसे प्र+नदति=प्रणदति=अधिक नाद करता है और समासमें जैसे यहां निः+क्रिया+अस्=निष्क्रियाणि नित्य,वा आवश्यकतासे संधि होती है। यहां पर यदि संधि न की जाती तो 'क्रिया' शब्द जो स्त्रीलिंग है नपुंसकलिंग नहीं होसक्ताथा।यहांपर निष्क्रियाणि प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसकलिंगीहै परन्तु अन्य प्रकारके वाक्योंमें वक्ताकी इच्छा है संधि करै या न करै इसलिये 'निःक्रियाणि' शब्द अशुद्ध है और विना 'समास' के क्रिया शब्द का कदापि क्रियाणि नहीं बनसकता है॥

धर्मादीनि, जीवपुद्गलानां गत्यादिहेतुत्वं नोपपद्यते । जलादीनि हि क्रियावन्ति मत्स्यादीनां गत्यादिनिमित्तानि दृष्टानीति ॥ नैष दोषः ॥ बलाधाननिमित्तत्वाच्चक्षुर्वत् । यथारूपोपलब्धौ चक्षुर्निमित्तमपि न व्याक्षिप्तमनस्कस्यापि भवति॥ अधिकृतानां धर्माधर्माकाशानां-

धर्म-आदीनि $\frac{1}{3}$ ।।। जीव-पुद्गलानाम् $\frac{6}{3}$। गति-आदि- =धर्म अधर्म आकाश द्रव्यें हैं तौ जीव और पुद्गलोंके गति स्थिति अवगाहनाका
हेतुत्वम् $\frac{1}{1}$ ।।। न : उपपद्यते । जलादीनि $\frac{1}{3}$ ।।। हि * क्रियावन्ति $\frac{1}{3}$ ।।। =निमित्तपना प्राप्त नहीं होता है । क्योंकि (हि) क्रियावान् जलादिक
मत्स्य-आदीनाम् $\frac{6}{3}$ । गत्यादि-निमित्तानि $\frac{1}{3}$ ।।। दृष्टानि $\frac{1}{3}$ ।।। इति *; =मीन आदिकोंके गमनादिकके कारण इसप्रकार देखे जाते हैं
न * एषः $\frac{1}{1}$ दोषः $\frac{1}{1}$; (१) बलाधान-निमित्तत्वात् $\frac{5}{1}$ ।।। चक्षुवत् * =(उत्तर)यह दूषण नहीं है । क्योंकि नेत्रेन्द्रियके समान अप्रेरक निमित्तहै अर्थात् धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य जीव तथा पुद्गलोंकी यथासंख्य गति, स्थिति, अवगाहनके लिये प्रेरणा नहीं करते हैं किन्तु यदि जीव और पुद्गल गमन करैं तौ धर्मद्रव्य गमन में अप्रेरक निमित्त होती है । अधर्मद्रव्य स्थितिमें उदासीनतासे कारणहोतीहै और इसी प्रकार आकाश द्रव्य अवगाहनमें बलाधान वा उदासीनतासे निमित्त होती है ॥
यथा * रूप-उपलब्धौ $\frac{7}{1}$ चक्षुः $\frac{1}{1}$ ।।। निमित्तम् $\frac{1}{1}$ ।।। अपि * =जैसे--रूपके देखनेमें (=उपलब्धौ) नेत्र निमित्त है तौभी (=अपि)
व्याक्षिप्त-मनस्कस्य $\frac{6}{1}$। अपि * =न लगेहुये (मनुष्यके) मनकें भी वा मनुष्यके अनाकर्षित चित्तकेंभी
न * भवति । =(रूपकी उपलब्धि)नहीं होती हैअर्थात् यदि पुरुषका चित्त अन्य पदार्थमें लगाहो तब रूपको नहीं देखसकता है । जब नेत्र और पुरुषका चित्त दोनों एकही कालमें किसी पदार्थको और होवैं तब पुरुषके नेत्र रूपके देखनेमें निमित्त हैं नहीं तो निमित्त नहीं हैं
अधिकृतानाम् $\frac{6}{3}$ । धर्म-अधर्म-आकाशानाम् $\frac{6}{3}$। =प्रकरण प्राप्त जे धर्मद्रव्यकें, अधर्मद्रव्यकें,और आकाशद्रव्यके

(१) गत्यादि परिणतस्य बलाधान कुर्वन्ति न तु स्वय प्रेरयन्तीति भाव : ॥
गत्यादि-परिणतस्य $\frac{6}{1}$। बलाधानम् $\frac{2}{1}$ ।।। कुर्वन्ति । =(धर्मादिक द्रव्य) गमनादिक अवस्थाके अप्रेरक निमित्तको करती है
न * तु * स्वयम् * प्रेरयन्ति । इति * भावः $\frac{1}{1}$। =किन्तु स्वय (गति-स्थिति--अवगाहनकी) प्रेरक नहीं है ऐसा तात्पर्य है
इसके पश्चात् जयचन्द्ररायजीकी वचनिकामें निम्न लिखित भाषाका वाक्य है"बहुरि सूत्रमे चशब्द है सो पहले सूत्रमें कहे तिन तीनिही द्रव्यके सबधके अर्थि है । जीव पुद्गल क्रियामान् हैं" ॥ देखो पडित जयचदजी कृता वपचनिका मुद्रित पृष्ठ ४१५ ॥

अन्यथोपपत्तेः॥ क्रियानिमित्तोत्पादाभावेऽप्येषां धर्मादीनामन्यथोत्पादः कल्प्यते॥ तद्यथा-द्विविध उत्पादः स्वनिमित्तः परप्रत्ययश्च ॥ स्वनिमित्तस्तावदनन्तानामगुरुलघुगुणानामागमप्रामाण्यादभ्युपगम्यमानानां षट्स्थानपतितया वृध्द्या हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो व्ययश्च ॥ परप्रत्ययोऽपि अश्वादिगतिस्थित्यवगाहनहेतुत्वात्क्षणे क्षणे तेषां भेदात्तद्धेतुत्वमपि भिन्नमिति परप्रत्ययापेक्ष उत्पादो विनाशश्च व्यवह्रियते ॥ ननु यदि निष्क्रियाणि

अन्यथा*उपपत्तेः॥;क्रियानिमित्त–उत्पाद–अभावे॥ =क्योंकि दूसरे प्रकारसे भी सिद्ध होती हैं। क्रियानिमित्तक उत्पादके न होनेपर अपि एषां॥धर्म–आदीनाम्॥अन्यथा*उत्पादःकल्प्यते॥ =भी इन धर्म–अधर्म–आकाशकैं औरप्रकार उत्पाद मानाजाता है तद्॥।यथा*द्वि–विधः॥उत्पादः॥; स्वनिमित्तः॥ च* =वह ऐसे है–उत्पाद दो प्रकार है स्वनिमित्त और (=च)
परप्रत्ययः॥;स्वनिमित्तः॥तावत्*अनन्तानाम्॥अगुरुलघु=परनिमित्त। स्वनिमित्त तो (=तावत्) अनन्त अगुरुलघु
गुणानाम्॥आगम–प्रामाण्यात्॥।अभ्युपगम्यमानानाम्॥=गुणोंके जो शास्त्र प्रमाणकरि माने हुये हैं
षट्–स्थानपतितया ॥ वृध्या ॥हान्या ॥ च* =छह स्थानोंमें रहने वाली वृद्धि और हानिकरि
प्रवर्तमानानाम् ॥स्वभावात्॥एतेषाम् ॥ =प्रवर्तनेवाले (अगुरुलघुगुणोंके)स्वभावसेअर्थात्परिणमनसेइन(धर्म-अधर्म-आकाश)कें
उत्पादः ॥ व्ययः॥ च*; =उत्पाद होता है। और (=च) (इसी प्रकार) व्यय होता है
पर–प्रत्ययः॥ अपि*अश्वादि–गति–स्थिति- =और (=अपि) पर निमित्त (उत्पाद व्यय) हैं सो अश्वादिकका गमन स्थिति
अवगाहन-हेतुत्वात्॥। क्षणे॥ क्षणे॥ =अवगाहनका कारण (धर्म-अधर्म-आकाशकैं यथासंख्य) होनेसे क्षण क्षणमें
तेषाम्॥भेदात्॥तद्-हेतुत्वम्॥।अपि*भिन्नम्॥।इति* =तिन(गति-स्थिति-अवगाहन)के भेद होनेसे उन(गति आदिकें) हेतुताभी भिन्न है
अर्थात् मनुष्य,गाय, अस्वादिककों गमनका निमित्त धर्म द्रव्य हैं। स्थितिका कारण अधर्मद्रव्य है और अवकाशदान अथवा स्थान दानकाहेतु आकाश द्रव्य है और क्षण क्षणमें उन गति स्थिति अवगाहनके भेद हैं इसलिये उन गति–स्थिति-स्थान दानके कारणभी पृथक् पृथक् हैं
परप्रत्यय-अपेक्षः॥उत्पादः॥विनाशः॥च* =परनिमित्त अपेक्षा उत्पाद, द्रव्य भी (=च)
व्यवह्रियते॥ननु* । यदि*निष्क्रियाणि ॥। =माना जाता है। प्रश्न। यदि हलन चलन रूप क्रियासे रहित

संख्यामतीता असंख्येयाः ॥ असंख्येयस्त्रिविधः । जघन्य उत्कृष्टोऽजघन्योत्कृष्टश्चेति ॥ तत्रेहाजघन्योत्कृष्टासंख्येयः परिगृह्यते॥ प्रदिश्यन्त इति प्रदेशाः॥वक्ष्य माणलक्षणः परमाणुः स यावति क्षेत्रे व्यवतिष्ठते स प्रदेश इतिव्यवह्रियते॥ धर्माधर्मैकजीवास्तुल्यासंख्येयप्रदेशाः तत्र धर्माधर्मौ निष्क्रियौ लोकाकाशं व्याप्य स्थितौ ।

असंख्येयाः।१।३। प्रदेशाः।१।३। =(क्रमसे) असंख्यात, असंख्यात, और असंख्यात(प्रत्येकके)प्रदेश हैं अर्थात् धर्म द्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं,अधर्मद्रव्यके असंख्यात प्रदेशहै और एक जीवके भी असंख्यातप्रदेशहै

वृत्त्यनुवादः-संख्याम्।२।१।अतीताः।१।३। असंख्येयाः।१।३। =संख्याको उल्लंघगये हैं वे असंख्येया है अर्थात् जो गणनामें न आसके वे असंख्यात हैं

असंख्येयः।१।१।त्रिविधः।१।१।जघन्यः।१।१।उत्कृष्टः।१।१।च* =असंख्येय तीन प्रकार है, जघन्य वा निकृष्ट, उत्कृष्ट वा प्रकर्ष और (=च)

अजघन्य-उत्कृष्टः।१।१।इति,तत्र इह*अजघन्योत्कृष्ट-=मध्यम ॥ तहां यह(=इह) मध्यम वा बीचका

असंख्येयः।१।१।परिगृह्यते।प्रदिश्यन्ते। ;इति* =असंख्यात लियागया है ॥ (जिनकरि आकाशके) विभाग किये गये हैं ऐसे

प्रदेशाः।१।३। =(आकाशके विभाग) प्रदेश हैं । अर्थात् परमाणुओंद्वारा पर्यायनयकी अपेक्षासे आकाशके विभाग किये जाते हैं उन विभागों को अथवा आकाशके प्रदेशोंको प्रदेश कहते हैं भावार्थ यह है कि यद्यपि आकाश अखंड, निरंश,सर्वगत और एक द्रव्य है तौभी परमाणुओंकरि मापिये तौ अनंत परमाणु होते हैं और इसप्रकार आकाशके अनंत अंश मानेजाते हैं, इसीलिये एक ही आकाशको अनंतप्रदेशी पर्यायनयकरि कहते है परन्तु द्रव्यार्थिकनय अथवा द्रव्य अपेक्षासे अखंड, निरंश,सर्वगत, एक, और भिन्नता रहित आकाश है

वक्ष्यमाणलक्षणः।१।१। परमाणुः।१।१। =आगे कथन किये जाने लक्षण रूप वा अग्रिम कहेजाने लक्षणवाला परमाणु है

सः।१।१।यावति।७।१।क्षेत्रे।७।१।व्यवतिष्ठते।सः।१।१।प्रदेशः।१।१। =वह (परमाणु)जितने क्षेत्रमें निश्चल ठहरती है वा समाजाती है सो प्रदेश है

इति*व्यवह्रियते। ;धर्म-अधर्म एकजीवाः।१।३।तुल्य- =ऐसा माना गया है ॥ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एकजीव समान

असंख्येय-प्रदेशाः।१।३।, तत्र*धर्म-अधर्मौ।१।२।निष्क्रियौ।१।२। =असंख्यात (असंख्यात) प्रदेशी है। तहां धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य क्रिया रहित

लोक-आकाशम्।२।१।व्याप्य-स्थितौ।१।२। =लोकाकाशको व्याप्त कर स्थित हैं अर्थात् समस्त लोकाकाशमें ऊपर तले मध्यमें और

निष्क्रियत्वेऽभ्युपगते जीवपुद्गलानां सक्रियत्वमर्थादापन्नम् ॥ कालस्यापि सक्रियत्वमितिचेन्न । अनधिकारात् अत एवासावेतैः सह नाधिक्रियते ॥ अजीवकाया इत्यत्र कायग्रहणेन प्रदेशास्तित्वमात्रं निर्ज्ञातं नत्वियत्तावधारिता प्रदेशानामतस्तन्निर्धारणार्थमिदमुच्यते—

॥ असङ्ख्येयः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥

निष्क्रियत्वे॥अभ्युपगते॥जीव-पुद्गलानाम्॥सक्रियत्वम्॥अर्थात्॥आपन्नम्॥ =निष्क्रियपना माननेमें जीव और =पुद्गलोंके सक्रियपन अथवा क्रियावान्पन अर्थसे वा विषयसे प्राप्त होता है

कालस्य॥अपि*सक्रियत्वम्॥इति*चेत्*न*; =कालद्रव्यकें भी क्रियावान्पन (आता) है ऐसी शंका (=चेत्) हैं(उत्तर) सो नहीं है

अन्-अधिकारात्॥अतः*एव*असौ॥ =क्योंकि कालद्रव्यका (यहां) विषय वा प्रकरण नहीं है। इसलिये ही वह (कालद्रव्य)

एतैः॥सह*न*, अधिक्रियते। =इन (जीव, पुद्गल) के साथ (=एतैःसह) प्रकरणरूप नहीं कियागया है

"अजीव कायाः"॥इति*अत्र*कायग्रहणेन॥ ='अजीव काया' ऐसे यहां (प्रथम सूत्रमें) कायके ग्रहण करनेसे

प्रदेश-अस्तित्वमात्रम्॥निर्ज्ञातम्॥ न*तु*प्रदेशानाम्=प्रदेशोंकी केवल (=मात्रं) विद्यमानता जानीजाती है। परन्तु प्रदेशोंका

इयत्ता॥अवधारिता॥अतः* =परिमाण वा संख्या (=इयत्ता) निश्चित नहीं की गईहै(=अवधारिता)। इसलिये

तद्-निर्धारण-अर्थम्॥इदम्॥उच्यते। =उन(प्रदेशोंकी गिनती)का निश्चय करने केलिये यह(अग्रिम सूत्रमें)कहाजाताहै कि

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम्=धर्म-अधर्म-एक जीवानाम् असंख्येयाः प्रदेशा भवन्ति।८।

सूत्रार्थः-धर्म-अधर्म-एक-जीवनाम्॥ =धर्मद्रव्यके, अधर्मद्रव्यके और एक जीवके

(१) 'निष्क्रियाणिच'सूत्रमें'च'शब्दका अर्थ यहां पर और अथवा भी दोनों होसकतेहैं जैसाकि भिन्नभिन्न उपर्युक्त अनुवादसे प्रगटहै॥यदि च'शब्द"और"के अर्थमें लेवें तो तीन ही द्रव्यें जो सूत्रमें कहीं हैं उनके सम्बन्धके अर्थ है अर्थातधर्म-अधर्म-आकाश तीनको आकर्षण करता है, प्रगट करता है, वा ग्रहण करता है क्यांकि "कालद्रव्य का" अभी तक आचार्य ने उपदेश नहीं किया है। कालद्रव्य भी निष्क्रिय है। यदि "च" शब्दका 'भी' अर्थ लेये तो उसका सम्बन्ध द्रव्यां के गुणोंसे होजाता है नकि उनकी संख्यासे अर्थात् ये तीन द्रव्यें एक एक हैं दूसरा गुण उनमें यह है कि किया रहित हैं तब दोनों सूत्रोंको अर्थ अत्यन्त संक्षेपतासे यह होता है कि धर्म-अधर्म-आकाश एक एक द्रव्य हैं और क्रिया रहित भी हैं॥

(२) इयत्ता (स्त्री०) = 'इतनेका होना। सीमा। परिमाण। माप। संख्या। गिनती" पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ६७॥ अतः "इयत्ता" का अनुवाद 'संख्या' किया गया है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें इस सूत्रके स्थानमें नीचे लिखे हुये दो सूत्र हैं जिनसे विदित है कि दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका एकसा तात्पर्य है। 'असंख्येयप्रदेशाधर्माधर्मयोः ॥७॥ जीवस्य च ॥८॥ देखो उक्त सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १२२

आकाशस्यानन्ताः ॥९॥

लोकेऽलोके चाकाशं वर्तते ॥ अविद्यमानोऽन्तो येषां ते अनन्ताः॥ के? प्रदेशाः। कस्य? आकाशस्य॥ पूर्ववदस्यापि प्रदेशकल्पनाऽवसेया ॥ उक्तममूर्तानां प्रदेशपरिमाणम् इदानीं मूर्तानां पुद्गलानां प्रदेशपरिमाणं निर्ज्ञातव्यमित्यत आह—

॥ संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

[१] सूत्रम्—आकाशस्यानन्ताः॥९॥ = आकाशस्यानन्ताः (प्रदेशाः) सन्ति ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः-आकाशस्य[६/१]अनन्ताः[१/३]प्रदेशाः[१/३] सन्ति । =आकाश द्रव्यके अर्थात् लोकाकाशके और अलोकाकाशके अनन्त प्रदेश हैं

वृत्त्यनुवादः। लोके[७/१]अलोके[७/१]च*आकाशम्[१/१]॥वर्तते।=लोक और (=च)अलोक(दोनों)विषैं आकाश विद्यमान है (वर्तते)

अविद्यमानः[१/१]।अन्तः[१/१]।येषाम्[६/३]।ते[१/३]।अनन्ताः[१/३],के[१/३]। =नहीं है विद्यमान अन्त जिनका ते अनन्त हैं । क्या (अनन्त) हैं

प्रदेशाः[१/३],कस्य[६/१];आकाशस्य[६/१]; =प्रदेश । किसके (प्रदेश अनन्त) हैं, (लोक अलोक) आकाशके (प्रदेश अनन्त) है

पूर्ववत्*अस्य[६/१]अपि*प्रदेश-कल्पना-अवसेया[१/१]॥, =पहिलेके सदृश इस (आकाश) के भी प्रदेशोंकी कल्पना जानना चाहिये

अमूर्तानाम्[६/३]॥ प्रदेश-परिमाणम्[१/१]॥ =अमूर्तीक (धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य, एक जीव, आकाश द्रव्य) निके प्रदेशोंकी संख्या

उक्तम्[१/१]॥;इदानीम्*मूर्तानाम्[६/३]पुद्गलानाम्[६/३]। प्रदेश- =कही गई है । अब मूर्तीक पुद्गलों के प्रदेशों की

परिमाणम्[१/१]॥निर्ज्ञातव्यम्[१/१]॥ इति*अतः*। आह । =गणना जानना चाहिये। इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

[२] सूत्रम्-- संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

=संख्येयाः असंख्येयाः च (अनन्ताः अनन्तानन्ताः) पुद्गलानाम् प्रदेशाः भवन्ति ॥१०॥

सूत्रार्थः-संख्येयाः[१/३]असंख्येयाः[१/३]च अनन्ताः[१/३] अनन्तानन्ताः=संख्यात,असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त भी (=च)

पुद्गलानाम्[६/३]। प्रदेशाः[१/३] भवन्ति । =पुद्गलोंके प्रदेश हैं अर्थात् यद्यपि शुद्ध पुद्गल तो अविभागी एक परमाणु

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर 'आकाशस्यानताः' पाठ है सो भी ठीक है ॥ आकाश शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनोंहैं (२)दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर सङ्ख्येयाऽसङ्ख्येयाश्च भी

जीवस्तावत्प्रदेशोऽपि सन् संहरणविसर्पण स्वभावत्वात्कर्मनिर्वर्तितं शरीरमणुमहद्वाऽधितिष्ठं स्तावदवगाह्य वर्तते यदा तु लोकपूरणं भवति मन्दरस्याधश्चित्रवज्रपटलमध्ये जीवस्याष्टौ मध्य प्रदेशा व्यवतिष्ठन्ते। इतरे प्रदेशा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् कृत्स्नं लोकाकाशं व्यश्नुवते ॥
अथाकाशस्य कति प्रदेशा इत्यत आह—

इधर उधर सर्वत्र पूर्णरूपसे धर्म और अधर्म द्रव्य जो हलन चलन रूप क्रियासे वर्जित हैं भरी हुई हैं

जीवः[1]।तावत्*प्रदेशः[1]।अपि*सन्[1]। =जीव इतने(=तावत्) अर्थात् असंख्यात प्रदेशी होते हुयेभी (=अपि सन्)

संहरण-विसर्पण-स्वभावत्वात्[5]।।कर्मनिर्वर्तितम्[2]।। =संकोच और फैलावरूप स्वभावके होनेसे कर्मरचित (अथवा कर्मजनित)

शरीरम्[2]।।अणु-महत्-वा*[(1)]अधितिष्ठन्[1]।तावत्* =छोटा अथवा बड़ा शरीर पाते हुए(=अधितिष्ठन्) तिसप्रमाण (=तावत्)

[(2)]अवगाह्य-÷-वर्तते।,*यदा*तु*[(3)]लोकपूरणम्[1]।।भवति। =विस्तरित होकर प्रवर्तता है परन्तु जब(केवलि समुद्धात करि)लोक पूरण होताहै

मन्दरस्य[6]।अधस्*चित्र-वज्र-पटल-मध्ये[7]। =तो सुमेरु पर्वतके नीचे चित्रा प्रथिवीके वज्रमयी पटलके मध्यमें

जीवस्य[6]।अष्टौ[1]।मध्यप्रदेशाः[1]।व्यवतिष्ठन्ते। =जीवके आठ मध्यके प्रदेश निश्चल तिष्टते हैं अर्थात् जिस अवसरमें केवली हो लोकपूरण समुद्घात करते हैं तब सुमेरु की जड़ जो चित्रापृथिवीकी मोटाईके बराबर एक सहस्रयोजन मोटी है। चित्रा और वज्रा प्रथिवीके पटलोंके बीच केवली भगवान् केआत्माके आठमध्यके प्रदेश निश्चल ठहरते हैं

इतरे[1]।प्रदेशाः[1]।ऊर्ध्वम्*अधस्*तिर्यक्* =(और केवली भगवानके)अन्य प्रदेश ऊपर नीचे इधर उधर (=दायें वायें)

कृत्स्नम्[2]।लोकाकाशम्[2]।व्यश्नुवते। =समस्त लोककाशको व्याप्त करलेते हैं। केवलिसमुद्घातका विस्तारसे कथन जाननेके लिये देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११६से १२१ तक

अथ*आकाशस्य[6]।।[(4)]कति[1]।प्रदेशाः[1]।इति*अतः*आह =अब आकाशके कितने प्रदेश हैं इसलिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) अधितिष्ठन् वर्तमान कृदन्त है॥ (२) अवगाह्य सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त है (३) कषाय वेदनादिक सातकारणोंसे जो जीवके प्रदेश मूल शरीर को न छोड़कर शरीरसे वाहर होते हैं' उसको समुद्घात कहते है। वे समुद्घात सातप्रकारके हैं॥ मूल देह छूटे नाहि इत्यादि कवित्तके लिये जिसमें सातप्रकारका समुद्घात वर्णितहै देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११५ से १२१ तक॥ (४) कति सर्वनाम है केवल वहुवचनमें आता है॥

नानन्त्यमिति ॥ नैष दोषः । सूक्ष्मपरिणामावगाहनशक्तियोगात्परमाण्वादयो हि सूक्ष्मभावेन परिणता एकैकस्मिन्नप्याकाशप्रदेशेऽनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते, अवगाहनशक्तिश्चैषामव्याहताऽस्ति तस्मादेकस्मिन्नपि प्रदेशे अनन्तानन्तानामवस्थानं न विरुध्यते ॥ पुद्गलानामित्यविशेषवचनात्परमाणोरपि प्रदेशत्वप्रसंगे तत्प्रतिषेधार्थमाह—

न—अनन्त्यम्॥ इति* =अन्त्यम रहित अर्थात् असख्यात प्रदेश हैं प्रश्नका भावार्थ यह है कि लोक तो असंख्यात प्रदेशी है उसमें पुद्गलके अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध किस प्रकार समासकते है

न* एषः दोषः सूक्ष्म-परिणाम- =(उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि (पुद्गल परमाणुओंका) सूक्ष्म वा लघु परिणमन

अवगाहन—शक्ति—योगात् परमाणु—आदयः हि* =(और आकाशके प्रदेशों का) स्थानदानदेनेकी सामर्थ्यके योगसे परमाणु आदि ही

सूक्ष्म—भावेन परिणताः एक-एकस्मिन् अपि* =लघुरूपहोकर परिणत हो रहे हैं (और) एक एक भी

आकाश-प्रदेशे अनन्तानन्ताः अवतिष्ठन्ते । च* =आकाशके प्रदेशमें अनन्तानन्त(परमाणु) तिष्ठते हैं और (=च)

एषाम् अवगाहन-शक्तिः अव्याहता अस्ति । =इन (आकाशके प्रदेशों) के स्थानदानदेनेकी सामर्थ्य अरोक है (=अव्याहता अस्ति)

तस्मात् एकस्मिन् अपि* प्रदेशे =तिससे एक भी (आकाशके) प्रदेशमें

अनन्तानन्तानाम् अवस्थानम् । नविरुध्यते । =अनन्तानन्त (परमाणुओं) का ठहराव नहीं विरोधा जाता है

पुद्गलानाम् इति* अविशेष-वचनात् ॥ = (सूत्रमें) पुद्गलोंके (संख्यात-असंख्यात-अनन्त और अनन्तानन्त प्रदेश हैं) ऐसे सामान्य वाक्यसे

परमाणोः अपि* प्रदेशत्व-प्रसंगे ॥ =(पुद्गल) परमाणुओंके भी प्रदेशपनाका प्रसंग आने पर

तत्-प्रतिषेध-अर्थम् ॥ आह =उस (परिमाणु) के (बहुप्रदेशपनाके) निषेधके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

---

(१) जैसे एक चपाकी कली विषे तिष्ठे हुये सुगन्ध पुद्गल परमाणु सूक्ष्म रूप परिणमनसे सकोच रूप तिष्ठत हैं बहुरि वही सुगन्ध परमाणु जब फैले तब सर्व दिशाओंमें व्यापक हो जाते हैं तैसे सूक्ष्म परिणमनसे लोकाकाशके एक प्रदेशमें तिष्ठते हुए परमाणु बादर वा स्थूलरूप परिणमैं तब बहुत प्रदेशोंमें तिष्ठते हैं ॥ इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है कि कड़े वा गील काष्ठमें प्रचय विशेषसे इतने पुद्गल स्कन्ध हैं यदि अग्निसे जलायं जावे तो धूम रूपमें होकर सब दशाओंमें भरजाते हैं तैसे अल्पह लोकाकाशमें अनन्तानन्त जीव अनन्तानन्त पुद्गल का अवस्थान विरुद्ध रहित पाया जाता है॥

चशब्देनानन्ताश्चेत्यनुकृष्यन्ते कस्यचित्पुद्गलद्रव्यस्य द्व्यणुकादेः संख्येयाःप्रदेशाः कस्यचिद्-संख्येया अनन्ताश्च अनन्तानन्तोपसंख्यानमिति चेन्न। अनन्तसामान्यात् अनन्तप्रमाणं त्रिविधमुक्तं परीतानन्तं युक्तानन्तमनन्तानन्तं चेति। तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते स्यादेतद-संख्यातप्रदेशो लोकःअनन्त प्रदेशस्यानन्तानन्तप्रदेशस्य च स्कन्धस्याधिकरणमिति विरोधस्ततो

एकही प्रदेश वाला है परन्तु पुद्गल परमाणुओंमें मिलन विछुरन शक्ति हैं इस कारण अनेक स्कन्ध दो दो परमाणुंके और अनेक तीन तीन, चार चार आदिक संख्यात परमाणुंओंके है केई केई असंख्यात और केई केई अनन्त केई केई अनन्तानन्त परमाणुंके स्कन्ध हैं

वृत्त्यनुवादः–च-शब्दे॥अनन्ताः॥च*इति* =(सूत्रमें) च शब्दकारअनन्त भी (=च) है ऐसे पूर्व सूत्र नवमासे
अनुकृष्यन्ते। कस्यचित्*पुद्गलद्रव्यस्य॥द्वि-अणुक- =अनुवृत्तियें ली गई हैं। केई पुद्गल द्रव्यके दो अणुक
आदेः॥संख्येयाः॥प्रदेशाः॥कस्यचित्*असंख्येयाः॥ =आदिके (स्कन्धके)संख्यात प्रदेश हैं। केई(पुद्गलद्रव्य)के(स्कन्धके)असंख्यात हैं
अनन्ताः॥च*अनन्तानन्त- =(केई पुद्गल द्रव्यके स्कन्धके)अनन्त (प्रदेश)भी हैं अनन्तानन्तकी (गणनाका)
उपसंख्यानम्॥इति*चेत्*, =समावेश होना चाहिये (=उपसंख्यानम्)ऐसी शंका (=चेत्) है
न*अनन्त- =(उत्तर- अनन्तानन्तकी गणनाकी शंका)नहीं(होनाचाहिये)क्योंकिअनन्त(शब्दसूत्रमें)
सामान्यात्॥अनन्त-प्रमाणम्॥त्रिविधम्॥उक्तम्॥ =सामान्य है। अनन्तकी मर्यादा तीन प्रकार कही गई है
परीतानन्तम्॥युक्तानन्तं॥च*अनन्तानन्तम्॥ =परीतानन्त,युक्तानन्त, और (=च)अनन्तानन्त देखो (अध्याय१पृष्ठ२६६से२७६तक
इति*;तत्॥सर्वम्॥अनन्त- =ऐसे है। वह समस्त (परीतानन्त-युक्तानन्त और अनन्तानन्त) अनन्त शब्दमें
सामान्येन॥गृह्यते,स्यात् एतत्॥ =सामान्यकरि ग्रहण किया गया है। यह शंका है कि
असंख्यात-प्रदेशः॥लोकः॥, अनन्त-प्रदेशस्य॥ =असंख्यात प्रदेशी लोक है तो अनन्त प्रदेश वाले
च*अनन्तानन्त-प्रदेशस्य॥स्कन्धस्य॥ =और अनन्तानन्त प्रदेश वाले(पुद्गल)निके स्कन्ध का
अधिकरणम्॥इति*विरोधः॥ततः* =आश्रय वा आधार कैसे है ऐसा विरोध(आता)है क्योंकिवहां (=ततः)अर्थात्लोकमें

पाठहै दोनों पाठ ठीकहैं॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें'सङ्ख्येया संङ्ख्येयाश्च पुद्गलानाम्'ऐसा पाठहै॥ जहां कहीं'पुद्गलानाम्'के स्थानमें'पुद्गलानां' है वह कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है। प्रदेश शब्दकी अनुवृति आठवां सूत्रसे ली है॥

प्रदेशानां धर्मादीनामाधारप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—

॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

उक्तानां धर्मादीनां द्रव्याणां लोकाकाशेऽवगाहो न बहिरित्यर्थः॥ यदि धर्मादीनां लोकाकाशमाधारः। आकाशस्य क आधार इति ? ॥ आकाशस्य नास्त्यन्य आधारः। स्वप्रतिष्ठमाकाशम् ॥

प्रदेशानां धर्मादीनां आधार-प्रतिपत्ति- अर्थम् इदम् उच्यते =प्रदेशवाले धर्मादिक(द्रव्यों)के अधिकरण जाननेकेलिये यह कहाजाता है कि

(१)सूत्रम्—लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ = (धर्मादीनाम् द्रव्याणाम्(३))लोकाकाशेअवगाहः॥ १२॥

सूत्रार्थः(२)धर्मआदीनां॥द्रव्याणां॥लोकाकाशे॥अवगाहः॥=धर्म, अधर्म, जीव और पुद्गल द्रव्योंकी लोकाकाशमें स्थिति है

वृत्त्यनुवादः-उक्तानाम्॥धर्मादीनाम्॥द्रव्याणाम्॥ ='कथित धर्मादिक' द्रव्योंकी

लोकाकाशे॥अवगाहः॥न*बहिस्*इति*अर्थः॥ =लोकाकाश में स्थिति है न कि (लोकाकाशके)बाहिर ऐसा तात्पर्य है

यदि*धर्म-आदीनाम्॥लोकाकाशम्॥आधारः॥ =(प्रश्न) जो धर्मादिकद्रव्योंका लोकाकाश आधार है तो

आकाशस्य॥कः॥आधारः॥इति*आकाशस्य॥ =आकाशका क्या आधार है ॥ आकाशका

न*अस्ति अन्यः॥आधारः॥स्व-प्रतिष्ठम्॥आकाशम्॥ =और वा भिन्न (=अन्य) अधिकरण नहीं है। आकाश अपने आधार है

गुण अथवा अवगुण लघुता अथवा गुरुता दोसे अधिक पर प्राप्य करे जैसे मोहन सर्व छात्रों मे दयालु है ॥

ईयस् प्रत्यय 'आधिक्यबोधक अवस्था' के विशेषणका चिन्ह है और 'इष्ठ' प्रत्यय आतिशय्य बोधक अवस्थाके विशेषणका चिन्ह है। इन प्रत्ययोंके लगाने के प्रथम, शब्द अर्थात् प्रातिपदिकके अन्तिम स्वर और यदि शब्दके अन्तमे व्यजन होतो अन्तिम व्यजन उसके समीपके स्वरसहित को गिरादेते हैं जैसे अल्प=अल्प+ईयस्=अल्पीयस्)महत्=मह्+अत्, अत् गिराकर(अर्थात् महत्के उक्त स्वर और व्यजन दोनों गिराकर) और ईयस् जोडकर महीयस् बनालिया ॥

सज्ञायें जिनके अन्तमें वस् और ईयस् अथवा एयस् हों तो पुल्लिगमें शब्दके अन्तिम स् के पूर्व न् प्रथम कारकके एक वचन, द्विवचन वहुवचन और कर्म कारकके एक वचन और दो वचनमें जोडदेते हैं इन सज्ञायोंका उपांतिक अकार दीर्घ होजाता है। प्रथमा एक वचनके अन्तमे 'वान् वा यान्' आते हैं ॥ जैसे विद्वस्=विद्वन् स्+स्=विद्वान् स् स् (जब शब्दके अन्तमें दो अथवा दोसे अधिक व्यजन हों तो केवल एक रहजाता है शेष गिरजाते हैं) अतः विद्वान्। बनगया शेषरूप विद्वांसौ।विद्वांसः।, विद्वांसम्।, विद्वांसौ। ()अल्पीयस्=अल्पीयन् स्+स्=अल्पीयान् स् स्=अल्पीयान् ।

(१) इसे सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायों में एकसा है ॥ (२) 'धर्मादीनां द्रव्याणां' इस वाक्यका अभ्याहार किया गया है (३)काल द्रव्यका आचार्य ने अभी कथन नहीं किया है क्योंकि उसका कथन उनतालीसवांसूत्रमें है इससे अनुवादमें काल द्रव्यको गर्भित नहीं किया है यद्यपि काल द्रव्यकी भी स्थिति लोकाकाश में ही है ॥

॥ नाणोः ॥ ११ ॥

३१ अणोः प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेषः ॥ कुतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात्। यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभावः॥ किंच ततोऽल्पपरिमाणाभावान्न ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति। यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन् ॥ एषामवधृत

सूत्रम्—नाणोः॥११॥	= नाणोः (प्रदेशाः भवन्ति)॥११॥
सूत्रार्थः—न*अणोः, प्रदेशाः भवन्ति T	= अणुके प्रदेश नहीं होते हैं, शुद्ध पुद्गल एक परमाणुके बहुत प्रदेशोंका अभावहै एक प्रदेशमात्रता ही कही है क्योंकि परमाणुके खंडका अभाव है
वृत्त्यनुवादः–अणोः प्रदेशाः न*सन्ति T इति*	= अणुके प्रदेश नहीं है ऐसा
(१)वाक्यशेषः	= वाक्य शेप है अर्थात् 'न-अणो':वाक्यअपूर्ण है। उसका शेपवाक्य प्रदेशाः सन्ति है
कुतः* न* सन्ति T इति* चेत्*	= क्योंकर (अणुके प्रदेश) नहीं है। ऐसी शका है।
प्रदेश-मात्रत्वात्	= (उत्तर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेसे (अणुके बहुत प्रदेश नहीं है)
यथा*आकाश-प्रदेशस्य, एकस्य प्रदेश-भेद-	= जैसे आकाशके एक प्रदेशके प्रदेश भेद
अभावात् अप्रदेशत्वम् एवम्*अणोः अपि*	= न होनेसे अप्रदेशपना है। ऐसे अणुके भी
प्रदेशमात्रत्वात्- प्रदेश-भेद-अभावः	= प्रदेशमात्रपनासे प्रदेशके भेदका अभाव है ॥
किम्*च* ततः* अल्प-परिमाण-अभावात्	= और क्योंकि (किस लियेकि) तिस (परमाणु) से लघु परिणमन न होने(के हेतु)से
नहि*अणोः (२)अल्पीयान् अन्यः अस्ति T; यतः*	= अणुसे अन्य (वस्तु) लघुतर नहीं (= न हि) है। जिससे
अस्य प्रदेशाः (२)भिद्येरन् । एषाम् अवधृत-	= इस (परिमाणु)के प्रदेश भेदे जावै ॥ इन निरचय किये हुये वा निर्णीत किये हुये

(१)वाक्यशेष = वाक्य वा वचनका छूटा हुआ वा अवशेष भाग(ii)पद आकांक्षा,वाक्य आकांक्षा,समर्थपदलोप (२)भिद्येरन् यह आत्मनेपदी विधि लिंग क्रियाहै (२)अल्पीयान् विशेषणों की जो अपने विशेष्योंके गुणों को प्रगट करते हैंतीन श्रेणीं होती हैं(क)साधारण अवस्था अर्थात् अपने विशेष्य के साधारण गुण कोप्रगट करे जैसे अच्छा मनुष्य बुरा मनुष्य(ख)आधिक्य बोधक अवस्था वह है जो दो विशेष्योंमें से एकके गुण वा दूषण कोदूसरे पर लघुता श्रेष्ठता प्रगट करे जैसे देवदत्तसे यज्ञदत्त बुरा है।मोहनसे सोहन अच्छा है।(ग)अतिशय्य बोधक अवस्था वह है जिससे केवलएक विशेष्यका

क्क भावानास्ते ? आत्मनीति ॥ धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहिः सन्तीति एतावत् अत्राधाराधेयकल्पनासाध्यं फलम् ॥ ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्टः यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि

क्क*भवान्[१/१]।(१)आस्ते।आत्मनि[७/१]।इति*;धर्मादीनि[१/३]।।	=कि आप कहां वैठे हैं (उत्तर)आत्माविषैं (वैठा हूं) धर्मादिक (द्रव्यें)
लोकाकाशात्[५/१]।।न*वहिस्*सन्ति।इति*एतावत्*	=लोकाकाशसे बाहिर नहीं हैं इतनाही
अत्र*(२)आधार-आधेय-कल्पना-साध्यम्[१/१]।। फलम्[१/१]।।	;=यहां आधार आधेयके माननेका साधनीय अथवा सिद्ध करने योग्य फल है
(३)ननु*च*लोके[७/१]।। पूर्व-उत्तर-काल-भाविनाम्[६/३]।।	=बहुरि प्रश्न, लोकमें पहिले पिछले(पश्चात्)कालमें होनेवाली वस्तुओंकें
आधार-आधेयभावः[१/१]। दृष्टः[१/१]।	=आधार आधेयभाव देखाजाता है अर्थात् आधार पहिले पश्चात् आधेय देखाजाताहै
यथा*कुण्डे[७/१]। बदर-आदीनाम्[६/३]।	=जैसे गढ़हा(आधार)में बेरके वृक्ष आदिकें वा कपासके पौदा आदिकें(आधेयभाव) हैं
न*तथा*आकाशम्[१/१]।।पूर्वम्[१/१]।।;धर्मादीनि[१/३]।। उत्तर-	=तैसे आकाश पहिले नहीं है और धर्मादिक (द्रव्यें) पश्चात्
काल-भावीनि[१/३]।।	=कालवाली (नहीं) है अर्थात् प्रश्न यह है कि गढ़हा पहिले होता है उसमें बेर वा
	कपासादिका वृक्ष पीछे होता है । तब आधार आधेयभाव होता है तैसे आकाश
	पहिले हो पीछे तिसमें धर्मादिक द्रव्य धरे होंय, तब आधार आधेयभाव होना
	चाहिये सो इस प्रकार हैं नहीं । क्योंकि आकाश और धर्मादिक द्रव्योंके अनादि
	परिणामिक यौगपद्यकी सिद्धि है । पूर्वमें होना वा पीछेहोना ऐसा भेद नहीं है ॥

(१) अस् =वैठना-अदादि (दूसरे)गणका धातु है। आत्मनेपदी सकर्मक है इसलिये आस्+ते=आस्ते=वह वैठा है ॥

(२) जिसके आश्रय वा आसरेसे कोई वस्तु तिष्ठी हो उसे आधार कहते हैं । वह वस्तु जो किसीके आश्रित तिष्ठी हो उस वस्तुको आधेय कहतेहैं जैसे चौकी पर पुस्तक है यहां चौकी आधार है और पुस्तक आधेय है ।

(३) पाठकोंको ध्यान रहे कि"ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्टः । यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि । अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ ऐसा और इतना प्रश्न कियागया है ॥

यद्याकाशं स्वप्रतिष्ठं, धर्मादीन्यपि स्वप्रतिष्ठान्येव । अथ धर्मादीनामन्य आधारः कल्प्यते, आकाशस्याप्यन्य आधारः कल्प्यः । तथा सत्यनवस्थाप्रसङ्ग इति चेन्नैष दोषः ॥ नाकाशादन्यदधिकपरिमाणं द्रव्यमस्ति । यत्राकाशं स्थितमित्युच्यते । सर्वतोऽनन्तं हि तत् । ततो धर्मादीनां पुनरधिकरणमाकाशमित्युच्यते व्यवहारनयवशात् । एवम्भूतनयापेक्षया तु सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठान्येव ॥ तथा चोक्तं

यदि * आकाशम् स्वप्रतिष्ठम् धर्मादीनि अपि * =(प्रश्न)जो आकाश अपने आधार है तो धर्मादिक(द्रव्यें)भी
स्वप्रतिष्ठानि एव * ; अथ * धर्मादीनाम् अन्यः =अपने आश्रय ही हैं। जो(=अथ)धर्मादिक(द्रव्यों)का और (=अन्य)
आधारः कल्प्यते, आकाशस्य अपि * अन्यः आधारः =आधार मानाजाता है। तो आकाशको भी अन्य आधार
कल्प्यः ; तथा * सति =मानना चाहिये। वैसा(=तथा होने पर अर्थात् आकाश का अन्य आधार माननेमें
अनवस्था प्रसङ्ग इति * चेत् * न * एषः दोषः ॥ =व्यवस्थाके अभावका प्रसंग होता है, ऐसी शंका है। (उत्तर) यह दूषण नहीं है
न आकाशात् अन्य अधिक-परिमाणम् =क्योंकि आकाशसे अन्य विशेष परिमाण वाली
द्रव्यम् अस्ति । =द्रव्य नहीं है अर्थात् आकाश से कोई दूसरी द्रव्य महान् बड़ी नहीं है।
यत्र * आकाशम् स्थितम् इति * उच्यते । =जिसमें(=यत्र)आकाश स्थित हो ऐसा कहा गया है।
सर्वतः * अनन्तम् हि * तत् ; ततः * धर्मादीनाम् पुनः * =सो(=तत्)सर्वओर(आकाश)ही अनन्त है। बहुरि तिससे धर्मादिकों का
अधिकरणम् आकाशम् व्यवहारनय-वशात् =आधार(आकाश)है। व्यवहारनयके आश्रयसे
इति * उच्यते । एवम्भूतनय-अपेक्षया तु (१) * =ऐसा कहा जाता है, और(=च)एवम्भूतनयकी अपेक्षासे अर्थात् जिस स्वरूपकरिके पदार्थ हो, तिस स्वरूपकरिकेंही निश्चयकरनेवाली नयकी अपेक्षासे
सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठानि एव * ॥ तथा च * उक्तम् =सब द्रव्यें अपने (अपने)आधार ही हैं और (=च)वैसेही(तथा=)कहा जाता है

---

(१) 'तु' सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्ति में 'तु' के स्थान में 'च' है कई हस्तलिखित प्रतियोंमें और द्वितीय संस्करणमें 'तु' शब्द है इसलिये हमने भी 'तु' पाठ लिया है॥

विज्ञेयः ॥ असति हि तस्मिन्धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलानां गतिनियमहेत्वभावाद्विभागो न स्यात् । असति चाधर्मास्तिकाये स्थितेराश्रयनिमित्ताभावात् स्थितेरभावः । तस्या अभावे लोकालोकविभागाभावो वा स्यात् । तस्मादुभयसद्भावाल्लोकालोकविभागसिद्धिः ॥

तत्रावध्रियमाणानामवस्थानभेदसम्भवाद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

विज्ञेयः[१/१] ॥	=जाननायोग्यहै(जहांतक,जहांपरधर्म,अधर्मद्रव्योंकाअस्तित्वहैवहांतकलोकाकाशहै)
असति[७/१] हि*तस्मिन्[७/१] धर्मास्तिकाये[७/१]	=क्योंकि (=हि) तिस धर्मास्तिकायके न होनेपर
जीव-पुद्गलानाम्[६/३] गति-नियम-हेतु-अभावात्[५/१] विभागः[१/१]	=जीव पुद्गलोंके गमनके नियमके कारणके अभावसे लोक और लोकका)विभाग
न*स्यात्T;च*असति[७/१] अधर्मास्तिकाये[७/१] स्थितेः[६/१] ॥	=नहीं होसकता है और (=च) अधर्मास्तिकाय न होनेपर स्थितिके
आश्रय-निमित्त-अभावात्[५/१] स्थितेः[६/१] ॥ अभावः[१/१];तस्याः[६/१] ॥	=आश्रयके हेतुके अभावसे स्थितिका अभाव होता है । तिस (स्थिति)के
अभावे[७/१] लोक-अलोक-विभाग-अभावः[१/१] वा*स्यात्T।	=न होनेपर लोक अलोकका विभाग निश्चयसे(=वा) नहीं होगा(अभावः स्यात्)
तस्मात्*उभय-सद्भावात्[५/१] लोक-अलोक-विभाग-सिद्धिः[१/१] ॥	=तिससे दोनों(धर्म,अधर्म द्रव्यों)के अस्तित्वसे लोक अलोकके विभागकी सिद्धि है
तत्र*अवध्रियमाणानाम्[६/३] अवस्थान-	=तहां निर्णयकियेगये अथवा अवधारणकियेगयेके अवस्थानके
भेद-सम्भवात्[५/१] विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्[२/१] ॥ आहT	=भेद सम्भव होनेसे विशेष ज्ञानके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि
[१]सूत्रम्-धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥	= धर्माधर्मयोः कृत्स्ने(लोकाकाशे अवगाहःभवति)।१३।
सूत्रार्थः—धर्म-अधर्मयोः[६/२] कृत्स्ने[७/१] ॥ लोकाकाशे[७/१] ॥	=धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्यकी समस्त लोकाकाशमें
अवगाहः[१/१] भवतिT	=स्थिति है अर्थात् जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है उसी प्रकार लोकाकाशके समस्त प्रदेशों में धर्म अधर्म द्रव्योंके प्रदेश पूर्णरुपसे व्याप्त हैं ।

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है ॥ कहींपर "धर्म्माधर्म्मयोः कृत्स्ने" पाठ है दोनों पाठ "अचो रहाभ्यां द्वे(वा)" अष्टाध्यायी ८-४ ४६ सूत्रसे ठीक है ।

अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ नैष दोषः ॥ युगपद्भाविनामपि आधाराधेयभावो दृश्यते । घटे रूपादयः शरीरे हस्तादय इति ॥ लोक इत्युच्यते । को लोकः ? । धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोक इति ॥ अधिकरणसाधने घञ् ॥ आकाशं द्विधा विभक्तं । लोकाकाशमलोकाकाशं चेति ॥ लोक उक्तः । स यत्र तल्लोकाकाशम् । ततो बहिः सर्वतोऽनन्तमलोकाकाशम् ॥ लोकालोकविभागश्च धर्माधर्मास्तिकायसद्भावात्,

अतः * व्यवहारनय-अपेक्षया ॥ अपि * आधार-आधेय-कल्पना-अनुपपत्तिः ॥ इति * ॥
=इसलिये व्यवहारनयकी अपेक्षासे भी आधार आधेयके
=माननेकी सिद्धि नहीं(होती)है(क्योंकि पूर्व में कथन कर चुके हैं कि एवम्भूतनय की अपेक्षासे सर्व द्रव्य अपने अपने आधार हैं और व्यवहारनयसे आश्रय आश्रयी (=आधेय)भाव है

न * एषः । दोषः ।; युगपद् * भाविनाम् ॥ अपि *
=(उत्तर)यह दूषण नहीं है(क्योंकि)एक कालमें होनेवालोंके भी

आधार-आधेय-भावः । दृश्यते । घटे । रूपादयः ।
=आधार आधेय भाव।देखा जाता है ।(जैसे)घड़ा में रूपादिक हैं

शरीरे ॥ हस्त-आदयः । इति * ॥ लोकः । इति * उच्यते ।
=शरीर में हस्तादिक हैं ॥ 'लोक' ऐसा कहा जाता है ॥

कः । लोकः । ? । धर्म-अधर्म-आदीनि ॥ द्रव्याणि ॥ यत्र *
=(प्रश्न)लोक क्या है ? (उत्तर)धर्म, अधर्म आदिक द्रव्यें जहां

लोक्यन्ते । सः । लोकः । इति * अधिकरणसाधने ॥
=देखी जाती हैं सो लोक है।ऐसे(लोक शब्द के)अधिकरण वा आधार सिद्ध करनेमें

(१) घञ् ॥ आकाशम् ॥ द्विधा * विभक्तम् ॥
=घञ् (=अ) प्रत्यय लगाया है, जोड़ा है । आकाश दो प्रकारसे बटा हुआ है

लोकाकाशम् ॥ अलोकाकाशम् ॥ च * इति । लोकः । उक्तः ।,
=लोकाकाश और अलोकाकाश हैं । लोक (जहां धर्मादिक द्रव्यें देखी जाती हैं ऐसा) कहा गया है

सः । यत्र * तत् ॥ लोकाकाशम् ॥; ततः * बहिस् *
=वह (लोक) जहां (=यत्र) है सो (=तत्) लोकाकाश है, तिस (लोक) से बाहिर

सर्वतः * अनन्तम् ॥ अलोकाकाशम् ॥; च * लोक-
=चारोंओर अन्तरहित अलोकाकाश है और लोक

अलोक-विभागः । धर्म-अधर्म-अस्तिकाय-सद्भावात् ।
=अलोक का विभाग धर्मास्तिकायकी, अधर्मास्तिकाय की विद्यमानता से

(१) लोक् धातु का अर्थ देखना है घञ् प्रत्ययमें घ् ञ् इत् होनेसे लोप होगये अ शेष रहा, तब लोक्+अ ऐसा रूप हुआ, अर्थात् 'लोक' शब्द बनगया ॥

॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

(१)सूत्रम्—एकप्रदेशादिषु (५)भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

= ((२) लोकाकाशे)एकप्रदेशादिषु(४)भाज्यः(एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां) पुद्गलानां ((२)अवगाहः)

सूत्रार्थः—लोकाकाशे एकप्रदेशः-आदिषु =लोकाकाशके एक प्रदेशादिकोंनिमें

एकप्रदेश-संख्येय-असंख्येय- =एक प्रदेशी, दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी आदि संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी और

अनन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां पुद्गलानां अवगाहः भवति=अनन्तप्रदेशी,अनन्तानन्तप्रदेशी पुद्गलोंका अवगाह-स्थिति-अवस्थान-ठहराव-टिकाव

भाज्यः =विभाग. करने योग्य है, विकल्पनीय है वा बांटेजाने योग्य है अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेशों तकमें पुद्गलद्रव्य के एकपरमाणु, दोपरमाणुं, तीनपरमाणुं, चारपरमाणुं, पांचपरमाणुं, छहपरमाणुं इत्यादिक संख्यात परमाणुं,असंख्यात परमाणुं अनन्त परमाणुं, और अनन्तानन्त परमाणुंओंका अवगाह विभाग करने योग्य है,बांटेजाने योग्य है भावार्थ कि लोका-काशके एकप्रदेशमें पुद्गलद्रव्यके एकपरमाणु,दोपरमाणुके(जो सूक्ष्मपरिणये)स्कंधका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है ॥ 'पुद्गलानाम्'के स्थानमें जहां कहीं 'पुद्गलानां' ऐसा पाठ है वह कातंत्ररूपमाला व्याकरणको छोडकर अशुद्ध है ॥ (२) 'लोकाकाशे' और 'अवगाह' की बारहवां सूत्रसे अनुवृत्ति है॥ 'एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्त प्रदेशानां पुद्गलानाम्' यह समस्त यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखाजावै तो दशवां सूत्रकी अनुवृत्ति है क्योंकि उक्त सूत्रमें प्रदेशशब्दकी अनुवृत्ति आठवां सूत्रसे लीगई है अतः यहांभी प्रदेश शब्द आठवां सूत्रसे अनुवर्तना है ॥ दशवां सूत्रके 'संख्येय' शब्दमें एक प्रदेश और संख्यात प्रदेशआजाते है ॥ दशवां सूत्रके अनन्त शब्दमें 'अनन्तानन्त'भी गर्भित है जैसाकि उक्त सूत्रकी वृत्तिके निम्न वाक्योंसे प्रगट है अनन्त सामान्यात् ॥ अनन्त प्रमाणं त्रिविधमुक्तं परीतानन्त युक्तानन्तमनन्तानन्त चेति । तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते ॥ इन वाक्योंके अर्थके लिये देखो पृष्ठ २६ ॥ (३) यह अनुवाद दशवां सूत्रके आधारपर है। (४) "भाज्य" विभजनीय, विभाग करने योग्य, विभाज्य, विकल्प करने योग्य, विकल्पनीय, बांटने योग्य अंशनीय ये सर्व एकार्थवाची हैं ॥(५) पुद्गल द्रव्यका अवगाह लोकाकाशके एक प्रदेश तैं लगाय असंख्यात प्रदेश तांई अनेक प्रकार है ॥ पं० सदासुखजीकृता अर्थप्रकाशिका ॥

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रदर्शनार्थम् ।

अगारेऽवस्थितो घट इति यथा, तथा धर्माधर्मयोर्लोकाकाशेऽवगाहो न भवति किं तर्हि?। कृत्स्ने, तिलेषु तैलवदिति ॥ अन्योऽन्यप्रदेशप्रवेशव्याघाताभावोऽवगाहनशक्तियोगाद्वेदितव्यः ॥

अतो विपरीतानां मूर्तिमतामेकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां पुद्गलानामवगाहविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

वृत्त्यनुवादः-कृत्स्न-वचनम्।।।अशेष-व्याप्ति-प्रदर्शन-अर्थं	=(इस सूत्रमें)कृत्स्न शब्द सर्व(लोकमें)व्याप्ति अथवा फैलावटके दिखानेके लिये है,
अगारे।।।अवस्थितः।घटः।इति*यथा*,तथा*	=जैसे घरमें घड़ा अवस्थित वा रक्खा हुआ है तैसे
धर्म-अधर्मयोः।लोकाकाशे।।।अवगाहः।न*भवति	=धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनोंका लोकाकाशमें अवगाह नहीं होता है
किं* तर्हि* ।	=(प्रश्न) तो कैसे हैं ? प्रश्नका भावार्थ ऐसा है कि आचार्यकी यह बात सुनकर, कि घरमें रक्खे हुये घटके समान धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोकाकशमें रक्खेहुये नहीं हैं शिष्यने अचम्भित,उत्सक और अधीर होकर तत्कालही प्रश्न करदियाकि तो कैसे हैं
कृत्स्ने।।। तिलेषु। तैलवत्*इति* ॥	(=उत्तर)सम्पूर्णमें अर्थात् तिलोंमें तेलके सदृश भावार्थ जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है तैसे लोकाकाशके समस्त प्रदेशोंमें सर्वत्र धर्म-अधर्मद्रव्योंकेप्रदेश पूर्णतया व्याप्त हैं
अन्योऽन्य-प्रदेश-प्रवेश-व्याघात-अभावः।	=(धर्म-अधर्मद्रव्योंके) परस्पर प्रदेशोंके प्रवेशमें व्याघात वा रुकावट नहीं है
अवगाहन-शक्ति-योगात्।	=(सो रुकावटका अभाव धर्म-अधर्मद्रव्योंकी)अवगाहनकी सामर्थ्यके योगसे
वेदितव्यः।	=जानना चाहिये अर्थात् धर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश-अधर्मद्रव्यके एक२ प्रदेशमें व्याघात रहित प्रवेश है और अधर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश धर्मद्रव्यके पृथक् पृथक् प्रदेशमें विना रोकटोक प्रवेशहै सो यह परस्पर प्रवेशता धर्म-अधर्मके अवगाहनशक्तिके निमित्तसेहै
अतः* विपरीतानाम्।मूर्तिमताम्।एकप्रदेश-संख्येय-	=इसलिये(इन अमूर्तीक धर्म-अधर्मद्रव्योंके)विरुद्ध मूर्तिमान् एकप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी
असंख्येय-अनन्त-प्रदेशानाम्। पुद्गलानाम्।	=असंख्यात प्रदेशी अनन्त प्रदेशी (अनन्तानन्त प्रदेशी) पुद्गलोंकी
अवगाह-विशेष-प्रतिपत्ति- अर्थम्।।।आह।	=अवगाहको विशेष जाननेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

एक एव प्रदेशः एकप्रदेशः । एकप्रदेश आदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः । तेषु पुद्गलानामवगाहो भाज्यो विकल्प्यः ॥ अवयवेन विग्रहः

उतने लोकाकाशके प्रदेशोंसे अधिकमें अवगाहनीय नहीं होसकती हैं । अधिकसे अधिक उतने ही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह वा टिकाव होसकता है जितनी उनकी खुले रूपमें संख्या है ॥

वृषयनुवादः—एकः एव प्रदेशः।एकप्रदेशः। ।	=एकही प्रदेश है सो (द्विगु समासरूपमें) एकप्रदेश है
एकप्रदेशः।आदिः। येषाम् ।ते।इमे।एकप्रदेशादयः।	। =एक प्रदेश है आदिमें अर्थात् प्रथममें जिनके वे इतने "एक प्रदेशादयः" हैं
तेषु।	=तिन (एक प्रदेशादिक अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच-छह-इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेशोंतक)में
पुद्गलानाम्।	=पुद्गलों (की एकपरमाणु,दो परमाणु,तीन परमाणु, चार परमाणु, पांच परमाणु, छह परमाणु, सात परमाणु, आठ परमाणु इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त परमाणुओं)की
अवगाहः।भाज्यः।विकल्प्यः।	=स्थिति विभाग करनेयोग्य(=भाज्य)है । विकल्पनीय है-अंशनीय है ॥
अवयवेन।	=(एकप्रदेशादिषु इस बहुवचनांतसमासका) टुकड़ेटुकड़ेरूपसे वा अंशअंशकरि
विग्रहः।	=व्याकरणानुसार व्यवच्छेद(=विग्रह)प्रसार (विग्रह)वा विस्तार कियागया है सो

(१) "एकप्रदेशादिषु"समासके अवयव इसप्रकार होसकतेहैं कि=(लोकाकाशे)एकप्रदेशे पुद्गलाना अवगाहः भाज्यः)ऐसे एकप्रदेशभी लियागया है॥

() लोकाकाशे द्विप्रदेशयोः पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्य. । () लोकाकाशे त्रिप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः ।

() लोकाकाशे चतुःप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्य । () लोकाकाशे पंचप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह. भाज्यः।

() लोकाकाशे षट् प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । ()

() लोकाकाशे सप्तप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशेषु अष्टप्रदेशेषु पुद्गलानाम अवगाहः भाज्यः ।

() लोकाकाशे नवप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्य । () लोकाकाशे दशप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः ।

() इत्येवम् लोकाकाशे संख्यातप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे असंख्यातप्रदेशेषु अपि पुद्गलानां अवगाहः भाज्यश्च ॥

(२) दोनों वारकी छपीहुई संस्कृत सर्वार्थसिद्धिमें'विग्रहसमुदायः समासार्थ. ऐसा पाठ है अर्थात् विग्रह और समुदाय शब्दोंको मिलादिया है सो बहुत गहरी खोजके पश्चात्

तीन परमाणुंके(जो सूक्ष्मरूपमें पलटगये हैं)स्कंधका चार परमाणुंके(जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका इत्यादि संख्यात परमाणुंके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणमें हैं) स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुंओंके स्कंध का, तथा सूक्ष्मरूप परिणमें अनन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिणत अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुके स्कंधका भी अवगाह वा अवस्थान (लोकाकाशके एक प्रदेशमें) है;

लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके दोपरमाणुं खुलेहुओंका अथवा दो परमाणुं बन्धे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये हैं स्थिति है, तीन परमाणुंओंके (जो सूक्ष्मरूप विकारको प्राप्ति हुई है) स्कंधका, चार परमाणुंओं के (जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका और ऐसाही परिवर्तित पांच परमाणुंके स्कंधका तथा ऐसेही परिणत छह परमाणुओंके स्कंधका, इत्यादिक ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित संख्यात पुद्गल परमाणुंके स्कंधका, ऐसाही स्कंध असंख्यात परमाणुंओंकेका, ऐसाही स्कंध अनन्त परमाणुंओंकेका और पुद्गलके अनन्तानंत परमाणुंओंके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणये हैं) स्कंधकाभी अवगाह वा ठहराव वा स्थिति (लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें) है;

लोकाकाशके तीन प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके तीन परमाणुं खुले हुओंका अथवा तीन परमाणुं बंधे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये हैं, चार परमाणुंओंके (जो सूक्ष्मरूप परिणमें हैं) स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिणत पांच परमाणुंके स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिवर्तित छह परमाणुओंके स्कंधका अवगाह, इत्यादिक सात, आठ, नौ, दश ....संख्यात सूक्ष्मरूप परिणत परमाणुओंके स्कंधकी स्थिति, ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंधका अवस्थान, अनन्त परमाणुके ऐसेही स्कंधकी स्थिति, और ऐसेही सूक्ष्म परिणत अनन्तानंत परमाणुओंकी स्थिति तीन प्रदेशोंमें है।-

इसही प्रकार लोकाकाशके चार-पांच-छह-सात-आठ-नौ-दश इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेश पर्यंतोंमें चार-पांच-छह-सात-आठ नौ-दश-इत्यादिक संख्यात और असंख्यात पुद्गल परमाणुओंके स्कंध का जो लोकाकाशके प्रदेशोंकी यथायोग्य गणनानुसार खुले हुये होसकते हैं वा बंधे हुये (सूक्ष्मरूपमें नहीं) अथवा उक्त नियमकी गणनानुसार सूक्ष्मरूपमें परिणतभी होसकते हैं, अवस्थान भाज्यरूप जानो, परन्तु अनन्त और अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका लोकाकाशके एक,दो,तीन, चारसे असंख्यात प्रदेशों तकमें उसी समय, अवस्थान वा अवगाह होसक्ता है जब वे अनन्त परमाणु वा अनन्तानन्त परमाणु सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं क्योंकि लोकाकाशके तो असंख्यात ही प्रदेश हैं। स्मरण रहे कि जितनी खुली हुई परमाणु हैं

यह बहुवचनांत समास है, इस समासके भाग अथवा अवयव 'एकप्रदेशे' एकप्रदेश-आदिषु हैं अर्थात् एकप्रदेशमें, दोप्रदेशोंमें, तीन प्रदेशोंमें, चारप्रदेशोंमें इत्यादिक संख्यात प्रदेशोंमें और असंख्यात प्रदेशोंमें इसप्रकार उक्त समासका अवयव सहित अथवा टुकड़े२ रूपमें, अंश २ रूपमें विग्रह वा व्याकरणानुसार व्यवच्छेद, प्रसार, वा विस्तार हुआ सो यह विग्रह इस बातका द्योतक है कि उक्त (एकप्रदेशादिषु) समासका अर्थ तात्पर्य वा भाव समुदाय है। यदि इस समासका अर्थ यहांपर समुदाय न माना जाता तो यहांपर अन्य पदार्थकी प्रधानता रहनेसे एकप्रदेशसे भिन्नही प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन सिद्ध होता और एकप्रदेश छूट जाता, समासका समुदाय अर्थ माननेमें ग्रहण करनेमें लोकाकाशका एक प्रदेशभी पुद्गलके अवगाहके लिये ग्रहणमें आगया है

विग्रहका समूह है सो (यह अवयवरूपसे विग्रहका समुदाय) 'एक प्रदेशादिषु समासके (स्पष्ट करनेके) अर्थ है ऐसे लोकाकाशका एकप्रदेशभी (पुद्गलके) अवगाहके लिये लिया है॥ पं० गजाधरलालजीने तत्त्वार्थराजवार्तिककी 'एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रह समुदायो वृत्त्यर्थः' का भावार्थ ऐसा दिया है कि

'एकश्चासौ प्रदेशश्चैकप्रदेश एकप्रदेशआदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः तेषु एकप्रदेशादिषु' यह यहांपर अवयवके साथ समासहै। 'एकप्रदेश आदि लेकर जितने प्रदेश है उनमें' यह यहांपर 'एकप्रदेशादिषु' पदका अर्थ है। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपरबहुव्रीहिसमासरहनेसेअन्य पदार्थ प्रदेश लिया गया है और वह विशेष्य और एक प्रदेशादि पदार्थको विशेषण माना गया है। यदि यहांपर यह तर्क किया जाय कि अन्यपदार्थ प्रदेश ही क्यों लिया गया और कोई पदार्थ क्यों नहीं लिया गया? तो इसका समाधान यह है कि जहांपर उपलक्ष्य और उपलक्षणभाव रहता है वहांपर समान जातीयपदार्थका ही ग्रहण होता है जिसतरह ब्राह्मणोंको निमंत्रण आदिके समय कहा जाता है–सोमशर्मा आदिका निमंत्रण है। वहांपर आदिशब्दसे सोमशर्माके समानजातीय अन्य ब्राह्मणोंका ही ग्रहण होता है। यहांपर सोमशर्मा उपलक्षण है क्योंकि जो अपना और अपने समानजातीयका ग्राहक होता है वह उपलक्षण माना जाता है। यहांपर सोमशर्मा अपना और अपने सजातीय ब्राह्मणोंका ग्रहण करनेवाला है इसलिये वह उपलक्षण है और जो ग्रहण किये जांय वे उपलक्ष्य कहे जाते है यहांपर सोमशर्मासे भिन्न अन्य ब्राह्मण उपलक्ष्य हैं इसलिये उपलक्ष्य उपलक्षण भावके होनेसे जिसप्रकार यहांपर समानजातीय अन्य ब्राह्मणोंका ग्रहणहै उसीप्रकार 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी उपलक्ष्य उपलक्षण भाव है क्योंकि बहुव्रीहि समासांत एकप्रदेशादि शब्द अन्य पदार्थका ग्राहक है इसलिये यहांपर भी समानजातीय पदार्थका ही ग्रहण होसकता है विजातीय पदार्थका नहीं। प्रदेशका समानजातीय पदार्थ प्रदेशही है इस लिये यहांपर अन्य पदार्थ प्रदेशही ग्रहण किया जासकता है अन्य नहीं। इस रीतिसे 'एक प्रदेशको आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यही 'एकप्रदेशादिषु' शब्दका अर्थ ठीक है। अथवा ऊपर से प्रदेश शब्दकी अनुवृत्ति आ रही है इसलिये भी 'एकप्रदेशको आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यही 'एकप्रदेशादिषु' शब्दका अर्थ न्याय्य है।

'एकप्रदेशादिषु' यहांपर जो समास मानागया है उसका अर्थ समुदाय है इसलिये 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर यद्यपि एकप्रदेश शब्द उपलक्षणस्वरूप है तो भी उसका ग्रहण है। यदि समासका अर्थ यहांपर समुदाय न माना जाता, तो यहांपर अन्य पदार्थकी प्रधानता रहनेसे एकप्रदेशसे भिन्नही प्रदेशोंमें द्रव्यका अवगाहन सिद्ध होता, गौण होनेसे एक प्रदेशमें अवगाहन न सिद्ध होता। खुलासा तात्पर्य यह है—

बहुव्रीहि समास तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि और अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिके भेदसे दो प्रकारका मानागया है। जहांपर विशेषणविशिष्ट पदार्थका ग्रहण हो वह तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है जिस प्रकार, "लंबकर्णमानय" अर्थात् जिसके लंबे कान हों उस पुरुषको लेआओ, यहांपर लंबे कान सहित पुरुषके आनेसे विशेषणविशिष्ट पदार्थका ग्रहण है तथा जहांपर विशेषणयुक्त पदार्थका ग्रहण न हो वह अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है जिस प्रकार 'सागरदृष्टमानय' अर्थात् जिस पुरुषने सागरको देख लिया है उसे लेआओ, यहांपर सागरसहित पुरुषका आना न होनेसे विशेषणविशिष्ट पदार्थका

समास-अर्थः॥	=सो(उक्त 'एकप्रदेशादिषु') समासका भाव, अभिप्राय, वा तात्पर्य (=अर्थः)
समुदायः॥	=संचयरूपमें ग्रहण करनेका है (=समुदाय),अथवा इकट्ठेरूपमें लियेजानेका है(=समुदाय) कि
इति*एक-प्रदेशः॥अपि*गृह्यते।	=इस प्रकारसे(=इति)एकप्रदेश भी लेलियागया है भावार्थ ऐसा है कि 'एकप्रदेशादिषु'

निम्नलिखित हेतुओंसे ज्ञात होताहै कि उक्त पाठ अशुद्ध है (क) सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंके पर्व १११, ६२, ५१ परक्रमसे 'अवयवेन विग्रहस्समुदायः समासार्थ इति' पाठ है ॥ यदि विसर्गके पश्चात् श्-ष्-स् आवें तो विसर्गका विसर्ग बना रहनेदो चाहें क्रमसे श्-ष्-स् में पलटदो इसलिये विग्रहस्समुदायः=विग्रहः समुदाय (वाक्य)के ॥

(ख)तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २०७ पर कलकत्तेकी संस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिकका मुद्रित अनुवादके अध्याय ५ पृष्ठ १४६ पर और पं० पन्नालालजी दूनी अनुवादित राजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ० ३७ पर और पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ०५४पर प्रथमवार्तिक यह है"एकप्रदेशादिष्विस्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः"॥१॥यहांपर'वृत्ति'शब्दकाअर्थ समास है।

तत्त्वार्थराजवार्तिकके सूत्र"असंख्येयभागादिषु जीवानाम्" ॥ १५ ॥ पर प्रथमवार्तिक यह है कि "अवयवेन विग्रह समुदायो वृत्त्यर्थ इति"

(ग) श्रुतसागरि सूरि कृता 'श्रुतसागरीटीका' हस्तलिखितप्रतिके पर्व १५३ पर 'यथा व्याकरणेऽवयवेन विग्रहो भवति समुदायः समासार्थो भवति तथा एकप्रदेशोपि गृह्यते बहवश्च प्रदेशा गृह्यते=जब व्याकरणमें अवयव सहित विग्रह होता है समासका अर्थ समुदाय होता है तब एक प्रदेश भी ग्रहण कियागया है और बहुत प्रदेश भी लियेगये है अथवा ग्रहण किये गये हैं ॥ इस सम्बन्धमें हमको तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक तथा श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें कुछभी नहीं प्राप्त हुआ है ॥

(घ) पं० जयचन्द्ररायजीने इसी सूत्रकेनीचे ऐसा अनुवाद किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिषु समास अवयवकरि कियाहै, तातैं समुदाय जानना" ॥

(ङ)पं० पन्नालालजी दूनीका अनुवाद इस प्रकार है 'तिन एकप्रदेशादिकनिविषैं ऐसो समास जोहै सो समुदायरूपवृत्तिके अर्थ सर्वादिकके समानहै उक्त दूनीजीने राजवार्तिक १५वां सूत्रकी प्रथमवार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थ इति' का यह अनुवाद किया है कि'अवयवकरिविग्रहहोयहै अरवृत्तिका अर्थ समुदाय है' यहांपरभी वृत्तिका अर्थ समास है ॥

(च) पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवाद करते हैं 'एक प्रदेशादिकके विषैं समुदायवृत्तिरूप जो अर्थ है सो सर्वादिगणके समान है। ताकरि एकप्रदेशभी ग्रहण होय है ऐसा जानना" ॥ यह अनुवाद 'एकप्रदेशादिषु इति विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः सर्वादिवत् । तेनैकप्रदेशोऽपि अंतर्भवति' वृत्तिका है ॥ प्रथम वार्तिक 'एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः' का अनुवाद ऐसे किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिषु या बहुवचनांत वाक्यका विग्रह अवयवकरि है तातैं समुदाय वृत्ति जानना' ॥ 'असंख्येयभागादिषु जीवानाम्'॥ १५वां सूत्रकी प्रथम वार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थ इति' का अनुवाद ऐसा किया है कि "अवयवकरि विग्रह है सो समासमें समुदायरूप अर्थ कूं कहै है"

यदि हम छपीहुई सर्वार्थसिद्धियुक्तियोंका पाठ मानलेंतो अवयवेन विग्रहसमुदायःसमासार्थइति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते,वाक्यका अनुवाद इसप्रकार होगा.

अवयवेन॥ विग्रह-समुदायः॥	=टुकड़े २ रूपसे वा अंश २ रूपसे विग्रह (अर्थात् समासार्थबोधक वाक्यों)का(यहां) संग्रह व समुच्चय है.
समास-अर्थः॥ इति*एकप्रदेशः॥अपि*	=सो (एकप्रदेशादिषु) समासके अर्थके (स्पष्ट करनेके लिये) है ऐसे (आकाशका) एक प्रदेशभी. . .
गृह्यते।	=ग्रहण किया गया है भावार्थ यह है कि (एकप्रदेशादिषु)यह समास है इस समासके अंश वा अवयववा भाग 'एकप्रदेशे और एक प्रदेशादिषु हैं ये अवयवरूपसे

ननु युक्तं तावदमूर्त्तयोर्धर्माधर्मयोरेकत्राविरोधनावरोध इति। मूर्तिमतां पुद्गलानां कथमित्यत्रोच्यते—अवगाहनस्वभावत्वात्सूक्ष्मपरिणामाच्च मूर्तिमतामप्यवगाहो न विरुध्यते । एकापवरके अनेकदीपप्रकाशावस्थानवत् ॥ आगमप्रामाण्याच्च तथाऽध्यवसेयम् ॥ तदुक्तम्—ओगाढगाढणिचिओ

प्रदेशोंसे अधिक प्रदेशोंमें अवगाहनीय नहीं हो सकती हैं। अधिकसे अधिक उतनेही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह वा स्थिति हो सकती है जितनी उनकी खुलेरूपमें संख्या है। जैसे पचास खुलीहुई परमाणुं हैं तो ये परमाणुं पचास ही आकाशके प्रदेशोंको अवगाहवेंगी नकि अधिक प्रदेशोंको

४४ ननु*युक्तम्[१/२]।।।तावत्*अमूर्त्तयोः[६/२]।धर्म-अधर्मयोः[६/२]। =प्रश्न इतना (=तावत्) ठीक (=युक्त) है कि अमूर्तीक धर्मद्रव्यका और अधर्मद्रव्यका

एकत्र*अविरोधेन[३/१]।अवरोधः[१/१]।इति*मूर्तिमताम्[६/३]। =एकक्षेत्रमें विरोधकरि रहित अवगाह वा अवस्थान(=अवरोध) है। रूपी अथवा मूर्तीक

पुद्गलानाम्[६/३]।कथम्*इति*अत्र*उच्यते। =पुद्गलोंके कैसे इस प्रकार (परस्पर अविरोधरूप एकक्षेत्रमें अवगाह) यहां कहागया है

अवगाहन-स्वभावत्वात्[५/१]।।।च*सूक्ष्मपरिणामात्[५/१]। =(उत्तर) अवगाहनके स्वभावपणासे तथा(=च)सूक्ष्म परिणामनसे

मूर्तिमताम्[६/३]।अपि*अवगाहः[१/१]।न*विरुध्यते। =रूपी(पुद्गल)निकेंभी अवगाह नहीं विरोधाजाता है अर्थात् मूर्तीकपदार्थोंकी अवगाहन स्वभाव वा शक्तिकरि(=अवकाशदान अथवा स्थानदान देनेकी शक्तिसे)और सूक्ष्म रूप विकारकोप्राप्त होनेसे एक क्षेत्रविषैं अवस्थान वा स्थिति अविरोधरूप है॥ भावार्थ द्रव्योंके स्वभाव प्रति नियत हैं और वे भिन्नभिन्न हैं इसलिये उनके स्वभावके विषयमें यह आक्षेपही नहीं होसकता कि ऐसा होना चाहिये वा ऐसा न होना चाहिये जैसे अग्नि आदि पदार्थोंका स्वभाव जलानेआदिकाहै वहां पर यह आक्षेप नहीं किया जा सकता है कि इनका स्वभाव जलाने आदिका क्यों है जलने आदिका क्यों नहीं तथा तृण काष्ठादि पदार्थोंका स्वभाव जलनेआदिका क्यों हैं जलानेआदिका क्यों नहीं? क्योंकि जैसा जिसका स्वभाव होगा उसका वैसा ही स्वभाव रहगा वह पलट नहीं जासकता वैसेही यद्यपि पुद्गलमूर्तिमान पदार्थ में तथापि अपनेसमानजातीय पदार्थोंको अवगाहन दान देना उनका स्वभाव है अतः एक आकाशकें प्रदेशमेंभी अनन्त रह सकते हैं॥

एकअपवरके[७/१]।।अनेकदीपप्रकाश-अवस्थान- =एक घरविषैं (=अपवरके) अनेक दीपकोंके उजालोंकी स्थितिके ४४

वत्* =समान(मूर्तीक द्रव्योंके भी एकक्षेत्रविषैं परस्पर अवगाह अविरोधरूपसे होता है)

च*आगम प्रामाण्यात्[५/१]।। तथा अध्यवसेयम्[१/१]।।।तदुक्तं[१/१]।।। =बहुरि(=च)आगमके प्रमाणपनेसे उसी प्रकार जानना चाहिये। कहाभीहै कि

ओगाढ-गाढ-णिचिओ[१/१]। (अवगाढ-गाढ-निचयः[१/१]) =गाढागाढ भरा हुआ है॥ ('णिचिदो' भी पाठ है)॥

तद्यथा—एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे परमाणोरवगाहः द्वयोरेकत्रोभयत्र च बद्धयोरबद्धयोश्च त्रयाणामेकत्र द्वयोस्त्रिषु च बद्धानामबद्धानां च ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामेकसंख्येयासंख्येयप्रदेशेषु लोकाकाशेऽवस्थानं प्रत्येतव्यम् ॥

तद्यथा*एकस्मिन् आकाशप्रदेशे परमाणोः =जैसे एक आकाशके प्रदेशमें (एक) परमाणुका

अवगाहः द्वयोः एकत्र*उभयत्र*च* =अवस्थान है। दो(परमाणु)का एकप्रदेशमें (=एकत्र) तथा दो प्रदेशोंमें (=उभयत्र)

बद्धयोः अबद्धयोः च* =बंधी हुई का तथा (=च)खुलीहुई का (अवगाह) है अर्थात् दो परमाणु बंधीहुईकी जो सूक्ष्मरूपमें परिणमी हैं लोकाकाशके एकप्रदेशमें अवगाह है और दो परमाणु खुली हुईका जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणमी हैं तथा दो परमाणु बंधीका भी जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणमी हैं लोकाकाशके दो प्रदेशमें अवगाह है।

च*त्रयाणाम् एकत्र*बद्धानाम् =और (=च)तीन(परमाणुओं)का एकप्रदेशमें(=एकत्र)बंधेहुओंका(सूक्ष्मरूपपरवर्तितका)

(त्रयाणाम्) द्वयोः बद्धानाम् च*अबद्धानाम् =(तीन परमाणुओंका) दो प्रदेशोंमें (=द्वयोः)बंधेहुए और(=च) खुलेहुओंका अर्थात् दो परमाणुं(सूक्ष्मरूप परिणत)और एक खुलीहुईका वा तीनों सूक्ष्मरूप परिणतका(अवगाह)है।

(त्रयाणाम्) त्रिषु अबद्धानाम् =(तीन परमाणुका) तीन प्रदेशोंमें खुले हुओंका (अवस्थान या अवगाह) है

एवं*संख्येय-असंख्येय-अनन्तप्रदेशानाम् स्कन्धानाम् =इस प्रकार संख्यात-असंख्यात अनन्त और अनंतानन्त प्रदेशोंके स्कन्धोंका (क्योंकियहां अनन्तमें अनन्त और अनन्तानन्त दोनो जैसा पूथम कहाहै आजातेहैं)

एक-संख्येय-असंख्येय-प्रदेशेषु लोकाकाशे =एक ,दो,तीन,चार,पांच,छह इत्यादि संख्यात और असंख्यात लोकाकाशप्रदेशोंमें

अवस्थानम् प्रत्येतव्यम् ॥ =अवगाह अथवा स्थिति प्रतीति करनी चाहिये अर्थात् पुद्गलकी दो तीन चार पांच आदिक संख्यात,असंख्यात,अनन्त तथा अनन्तानन्त परमाणुओंके जो(सूक्ष्मरूपमें परणमीहैं)स्कन्धका अवगाह लोकाकाशके एकप्रदेशमेंभी है। संख्यात-असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके संख्यात प्रदेशोंमेंभी है और असंख्यात अनन्त तथाअनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें भी है। यहांपर स्मरण रहै कि जितनी खुलीहुई परमाणुहैं उतनेआकाशके

ग्रहण नहीं। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी जो बहुव्रीहि समास माना है वह तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि है इसलिये यहांपर एकप्रदेशसहित अन्य प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन माना है। यदि यहांपर अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि यह समास माना जाता तो एकप्रदेशका ग्रहण नहीं होता फिर एकप्रदेशमें भी किन्हीं किन्हीं पुद्गलोंका अवगाह है यह अर्थ नहीं होसकता।

ऽसंख्येयभागादयः। तेषु जीवानामवगाहो वेदितव्यः॥ तद्यथा-एकस्मिन्नसंख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते। एवंद्वित्रिचतुरादिष्वपि असंख्येयभागेषु आ सर्वलोकादवगाहः प्रत्येतव्यः॥ नानाजीवानां तु सर्वलोक एव ॥ यद्येकस्मिन्नसंख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते, कथं द्रव्यप्रमाणेनानन्तानन्तो जीवराशिः सशरीरोऽवतिष्ठते ?। लोकाकाशे सूक्ष्मबादरभेदादवस्थानं प्रत्येतव्यम्। बादरास्तावत्सप्रतिघात-शरीराः। सूक्ष्मास्तु सशरीरा अपि सूक्ष्मभावादेकनिगोदजीवावगाह्येऽपि प्रदेशे साधारणशरीराः

असंख्येय-भाग आदयः।	=असंख्येयभाग आदयः (तद्गुणसंविज्ञानरूप बहुव्रीहिसमासरूपमें) हैं अर्थात् असंख्यातवां भाग सेलेकर लोकपर्यन्त समस्त भाग हैं वे असंख्येयभाग आदि हैं ॥
तेषु। जीवानाम्। अवगाहः।	=तिन (असंख्येय भाग आदि लोक पर्यन्त) में जीवोंका अवस्थान
वेदितव्यः। तद्यथा * एकस्मिन्। असंख्येयभागे। एकः।	=जानना चाहिये। जैसे एक असंख्यातवें भागमें एक
जीवः। अवतिष्ठते। एवम् * द्वि-त्रि-चतुर्-आदिषु।	=जीव तिष्ठता है। इस प्रकार दो-तीन-चार आदिक
असंख्येयभागेषु। अपि * आ * सर्वलोकात्। अवगाहः।	=असंख्यात भागोंमें भी समस्त लोक पर्यंतन (एक जीव)का अवगाह
प्रत्येतव्यः। ॥	=प्रतीति करना चाहिये अथवा जानना चाहिये। (असंख्यात के असंख्यात भेद हैं) तिससे लोकाकाशके असंख्यातवां भागके भी प्रदेश असंख्यातही जानना।
नानाजीवानाम्। तु * सर्वलोके। एव * यदि * एकस्मिन्।	=नानाजीवों का तो (अवगाह) सर्वलोकमें ही है (प्रश्न) जो एक
असंख्येयभागे। एकः। जीवः। अवतिष्ठते।	=असंख्यातवांभाग में एक जीव तिष्ठता है तो
कथम् * द्रव्यप्रमाणे। अनन्तानन्त। जीवराशिः।	=कैसे द्रव्यमर्यादासे अनन्तानन्त जीवराशि है
सशरीरः। अवतिष्ठते। लोकाकाशे। सूक्ष्मबादर-	=सो शरीर सहित (लोकमें) तिष्ठती है (उत्तर) लोकाकाशमें सूक्ष्मबादरके
भेदात्। अवस्थानम्। प्रत्येतव्यम्। बादराः। तावत् *	=भेदसे (जीवोंका अवस्थान वा अवगाह) जानना चाहिये। बादर (जीव) तो (=तावत्)
सप्रतिघात-सशरीराः।	=सप्रतिघात शरीर हैं अर्थात् बादर शरीर परस्पर एक दूसरेसे रुके हैं और रोकें भी हैं
तु * सूक्ष्माः। सशरीराः। अपि * सूक्ष्मभावात्। एव *	=परन्तु सूक्ष्मजीव शरीर सहित है तो भी सूक्ष्मपना से ही (=एव)
एक-निगोदजीव-अवगाह्ये। अपि * प्रदेशे।	=एक निगोद जीवकरि अवगाहने योग्य क्षेत्रमें (नकि परमाणु से रोके हुये प्रदेशमें)
साधारणशरीराः।	=साधारण शरीर अर्थात् वे जीव जिनके आहार श्वासोच्छ्वास आयु और काय ये साधारण समान वा एक हों जैसेकंद मूलादिक

पुग्गलकाएहि सव्वदो लोगो । सुहुमेहि वादरेहि अणंताणंतेहि विविहेहिं ॥ १ ॥

अथ जीवानां कथमवगाहनमित्यत्रोच्यते—

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

लोकाकाशे इत्यनुवर्तते। तस्यासंख्येयभागीकृतस्यैको भागोऽसंख्येयभाग इत्युच्यते।स आदिर्येषां ते

पुग्गलकाएहि॥सव्वदो*लोगो॥(पुद्गलकायैः॥सर्वतःलोकः॥)=चारोंओर यह लोक पुद्गलकायोंसे
सुहुमेहि॥वादरेहि॥ (सूक्ष्मैः॥वादरैः॥) =जो (पुद्गलकाय) सूक्ष्मवादर (वादरेहि॥वादरेहि॥प्राकृतमें तृतीयाके दोनोंरूप हैं
अणंताणंतेहि॥विवहेहि॥ (अनन्तानन्तैः॥ विविधैः॥) = अनन्तान्त नानाप्रकारसे हैं अर्थात् सबओर यहलोक सूक्ष्म और वादरअनंता-
नंत नाना प्रकार पुद्गलकायोंकरि गाढागाढ ठसाठस, वा खचाखच भराहुआहै
अथ*जीवानाम्॥कथम्*अवगाहनम्॥इति*अत्र*उच्यते॥=आगे जीवोंका कैसे अवस्थान वा अवगाह है ऐसे यहां(अग्रिमसूत्रमें)कहाजाताहैकि

सूत्रम्—[1]असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

= (लोकाकाशे) असंख्येयभागादिषु जीवानाम् (अवगाहः) भवति ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—लोकाकाशे॥असंख्येयभागादिषु॥ =लोकाकाशके असंख्येयभागादिकोंमें
जीवानाम्॥अवगाहः॥भवति॥ ॥ १५ ॥ =जीवोंका अवस्थान है। अर्थात् लोकाकाशके असंख्यातवांभाग और असंख्यातवें भागोंको आदिलेकर लोकपर्यन्त जीवों की स्थिति है । भावार्थ यह है कि लोकाकाशके एक असंख्यातवां भागमें एक जीव तिष्ठता है,दो असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवकी स्थिति वा अवगाह है औरऐसेही भागोंमें भी एक जीवका अवस्थान है चार असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवका अवस्थान है,तीन असंख्यातवें एक जीव का अवगाह पांच आदि संख्यातभागोंमे और असंख्यात भागोंमें समस्त लोकपर्यन्त है ; जब केवली समुद्घात करते हैं तब लोकपूर्ण समुद्घातमें सबलोक एक जीवका अवगाह होता है । नाना जीवका अवगाह तो सर्वलोकमें है ही । कोई प्रदेश लोकाकाशकाजीवविना नहींहै। दोनोंआम्नायोंमें इससूत्रकापाठ और अर्थ एकसाहै।

वृत्त्यनुवादः—लोकाकाशे॥इति * अनुवर्तते॥तस्य॥ =(इस सूत्रमें) लोकाकाशमें ऐसी अनुवृत्ति (बारहवें सूत्रसे) है । तिस(लोकाकाश)के
असंख्येयभागीकृतस्य॥एकः॥भागः॥असंख्येयभागः॥=असंख्यातभाग करके एक भाग है सो असंख्यातवांभाग है ।
इति*उच्यते॥सः॥आदिः॥येषाम्॥ते॥ =ऐसा कहाजाता है ।सो(असंख्यातवां भाग आदिमें वा प्रथममें जिनके है ते

अमूर्तस्वभावस्यात्मनोऽनादिबन्धंप्रत्येकत्वात् कथञ्चिन्मूर्ततां बिभ्रतः कार्मणशरीरवशान्महदणु च शरीरमधितिष्ठतस्तद्वशात्प्रदेशसंहरणविसर्पणस्वभावस्य तावत्प्रमाणतायां सत्यां असंख्येय-भागादिषु वृत्तिरुपपद्यते, प्रदीपवत् ॥ यथा निरावरणव्योमप्रदेशे

यद्यपि एकजीवके प्रदेशलोकाकाशके समान हैं सो वह जीव सर्व लोकाकाशमें व्याप्तहोना चाहिये तथापि वे प्रदेशदीपकके प्रकाश के समान संकोच विस्ताररूप होजाते हैं और जैसा आधार(आश्रय-शरीर) जीव पाता है वैसाही उस (जीव)के प्रदेश संकोच विस्ताररूप होकर लोकाकाशके असंख्यात भागादिकमें उस जीव)का अवगाह होताहै। परन्तु केवलि समुद्घातकी अवस्थामें आत्माके मध्यके आठप्रदेश मेरु मंदिरके नीचे चित्रा पृथ्वीका वज्रमयी पटलके मध्यके आठप्रदेशोंमें निश्चल तिष्ठते हैं और केवलि भगवान्के अन्यप्रदेश ऊर्ध्व अधः तिर्यक्(दायें वायें-इधर-उधर)सर्वत्र सर्वलोकमें पूर्णतया व्याप्तहोजाते हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—अमूर्त-स्वभावस्य[६/१] आत्मनः[६/१] अनादिबन्धम्[२/१] =मूर्ति शून्य स्वभाववाले आत्माके(कर्मके) अनादिबंध

प्रति*एकत्वात्[५/१] कथञ्चित्*मूर्तताम्[२/१] =प्रति एकता रूप होनेसे वा एक क्षेत्ररूप अवगाह होनेसे कथञ्चित् मूर्तिपनाको

बिभ्रतः[६/१] कार्मणशरीर-वशात्[५/१] महद्[१/१] च*अणु[१/१] =धारण करनेवाले(=बिभ्रतः)कार्मण शरीरके वशसे बड़ा और छोटा

शरीरं[२/१] अधितिष्ठतः[६/१] तद्-वशात्[५/१] प्रदेश- =शरीरको ग्रहण करनेवाले और उस(महद्व वा अणु शरीर)के वशसे प्रदेशोंके

संहरण-विसर्पण-स्वभावस्य[६/१] तावत्* =संकोचन और फैलाव स्वरूपवाले (ऐसी आत्माके)उतने(देहके)

प्रमाणतायाम्[७/१] सत्याम्[७/१] असंख्येयभागादिषु[७/३] =प्रमाण होते(=प्रमाणतायां)संते(=सत्यां)(लोकाकाशके)असंख्यातवां भागादिकमें

प्रदीपवत्*वृत्तिः[१/१] उपपद्यते। =दीपकके प्रकाश सदृश अवगाह (=वृत्ति) होता है अर्थात् यद्यपि स्वभावसे आत्मा अमूर्तीक है तौभी कर्मके अनादि सम्बन्धसे एक क्षेत्ररूप अवगाह होने से कथंचित् मूर्तिमान होजाताहै और कार्माण शरीरके वशसे छोटा अथवा बड़ा शरीर पाता है उस प्राप्त कियेहुये शरीरके अनुसार प्रदेशोंको संकोच अथवा विस्ताररूपमें दीपकके प्रकाशवत् लोकाकाशके असंख्यातवां भागादिकमें उस जीवका अवगाह होता है ॥ ४८

यथा*निरावरण-व्योम-प्रदेशे[७/१] =जैसे खुले हुये आकाश क्षेत्रमें

अनन्तानन्ता वसन्ति ॥ न ते परस्परेण बादरैश्च व्याहन्यन्त इति नास्त्यवगाहविरोधः ॥

अत्राह लोकाकाशतुल्यप्रदेशो एकजीव इत्युक्तं, तस्य कथं लोकस्यासंख्येयभागादिषु वृत्तिः । ननु सर्वलोकव्याप्त्यैव भवितव्यमित्यत्रोच्यते—

॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अनन्तानन्ताः[1] वसन्ति ।; न॰ते॰ परस्परेण[1] =अनन्तानन्त रहते हैं। न वे (सूक्ष्म सशरीर जीव) परस्परकरि
न॰बादरैः[1] व्याहन्यन्ते। इति॰न॰अस्ति॰अवगाह- =तथा बादर(जीवों)से व्याघातेजाते हैं। ऐसे नहीं है अवगाहनामें
विरोधः[1] =विरोध अर्थात् एकही स्थानमें बहुत जीवोंका अवगाह, विना परस्पर रोकटोकके होता है
अत्र॰आह॰लोकाकाश-तुल्यप्रदेशः[1] एकजीवे[1] =यहां पूछता है कि लोकाकाशके बराबर प्रदेश एक जीवमें हैं
इति॰उक्तम्[1] तस्य[1] कथम्॰लोकस्य[1] असंख्येय- =ऐसा कहाजाता है। तिस (जीव)का कैसे लोकके असंख्यातवां
भागादिषु[1] वृत्तिः[1] ; ननु॰सर्वलोक- =भागादिकोंमें स्थिति है (=वृत्ति) ॥ सचमुच (=ननु) (यह तो) सब लोक
व्याप्त्या[1] एव॰भवितव्यम्[1] इति॰अत्र॰उच्यते =व्याप्तिकरि ही होना चाहिये। ऐसे यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्-प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् = प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् (लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु जीवानाम् अवगाहः भवति)॥ १६

सूत्रार्थः-प्रदेश-संहारविसर्पाभ्याम्[3] प्रदीपवत्॰ =प्रदेशोंके संकोच और विस्तार होनेसे दीपकके प्रकाशके सदृश
लोकाकाशे[1] असंख्येयभागादिषु[3] जीवानां[1] अवगाहः =लोकाकाशके असंख्यातवां भागादिकमें जीवोंका अवगाह वा स्थिति है अर्थात्

(१) परस्पर—यह शब्द त्रिलिंगी है। (२) लोक—यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग है। (३) आकाश—यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंगमें आता है। (४) श्वेताम्बर आम्नायके "तत्त्वार्थाधिगमसूत्र"में 'विसर्पाभ्यां' शब्दके स्थानमें 'विसर्गाभ्यां' पाठ है और विसर्ग शब्दका अर्थ विस्तार किया है (देखो पृष्ठ १२३) शेष पाठ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है अर्थ भी एक है॥ हमारे यहां किसी किसी पुस्तकमें 'विसर्पाभ्यां' पाठके स्थानमें 'विसर्पणाभ्यां' पाठ है॥ दोनोंही पाठ "अघोरघाभ्यां हे (गा)" ८-४-५६वां सूत्रसे शुद्ध हैं॥ पंद्रहवां सूत्र अनुपलब्धियो न देख पड़ता था इस (सूत्र)में अध्याहार किया गया है॥

मेलंता विय णिच्चं सग सम्भावं ण जहंति ॥ १ ॥ यद्येवं धर्मादीनां स्वभावभेद उच्यतामित्यत आह–

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

मेलंता॥वि * य * णिच्चं*(मिलन्तः॥अपि*च*नित्यम्*)	=और(=य)नित्य(=णिच्चं=सदा)मिलते हुये होनेपर भी(=वि=अपि)
सग*सम्भावं॥ण * जहंति(स्व*स्वभावं॥न*जहति।)॥१॥	=अपने (अपने) स्वभावको नहीं छोड़ते हैं(=जहति–देखो टिप्पणी(१) पृष्ठ ४६)
यदि*एवम्*	=जो ऐसे हैं अर्थात् यदि ये छहों द्रव्यें अपने अपने स्वभावको नहीं छोड़ते हैं तो
धर्मादीनाम्॥स्वभावभेदः॥उच्यताम्। इति* अतः * आह।	=धर्मादिक (द्रव्यों)के स्वभावका भेद कहाजाना चाहिये इसलिये(उत्तर सूत्रमें)कहते हैंकि

(१)सूत्रम्–गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

= ((२)जीवानाम् पुद्गलानाम् च)(३)गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः भवति ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—जीवानाम्॥पुद्गलानाम्॥च*गति-स्थिति-उपग्रहौ॥	=जीवोंके और पुद्गलोंके गमन और स्थितिका कारण अथवा कार्य(=उपग्रह) (बाह्य)प्रेरक बलाधीन वा उदासीनरूपसे परन्तु अविनाभावी अर्थात् जिस विना गमन और स्थिति न होसके ऐसा
धर्म-अधर्मयोः॥उपकारः॥भवति।	=(क्रमसे)धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी सहायता सहकारता वा उपकार होता है अर्थात् गमनमें परिणामन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "उपग्रहो 'के स्थानमें "उपग्रहो" ऐसा पाठ है और 'उपग्रहो' तीन स्थानमें आनेसे प्रगट है कि उनके यहांका पाठ यही है छापेकी अशुद्धि नहीं है अर्थ और शेषपाठ दोनोंसम्प्रदायोंमें एक है "धर्म्माधर्म्मयोः" भी "अचोरहाभ्यां द्वे वा" सूत्रसे शुद्ध है॥

(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति पंद्रहवां सूत्रसे और पुद्गलानां शब्द की चौदहवां सूत्रसे (अनुवृत्ति) लीगई है ॥

(३) उपग्रह और उपकार दोनों शब्द कर्मसाधन, कर्मप्रधान अथवा कर्मणि प्रयोग में हैं (देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकमें, वार्तिक १०, ११, १२, १३, पं० जयचन्द्रजी की वचनिका पृष्ठ४२८)। कर्मसाधन वह है जिसकी क्रियाका कर्ता जान नहीं पड़ता हो, तात्पर्य यह है कि अपनी अवस्थामें विद्यमान नहीं है और जो होभी तो करणकी अवस्थामें हो और जिसमें कर्मके जानलियेजानेकी आवश्यकता प्रधानहो और वही कर्मकर्ताकाप्रतिनिधि गिनाजावे जैसे फल खाया जाता है यहां कर्ता अपनी स्थितिमें विद्यमान नहीं है और जैसे लड़केसे रोटी खाईजाती है, रोटी कर्मकर्ताके स्थानमें है और लडका कर्ता की अवस्थामें न होकर करणकी अवस्थामें है, इसीप्रकार गमन (करने)का उपकार कियाजाता है धर्मद्रव्यसे और स्थितिका उपकार किया जाता है अधर्मद्रव्यसे ॥ अपकारका अर्थ उपकारसे विरुद्ध है अपकार शब्दमें 'अप' उपसर्गका अर्थ बुराईका है और उपकार तथा उपग्रह शब्दोंमें 'उप' उपसर्गका

अनवधृतप्रकाशपरिमाणस्य प्रदीपस्य शरावमानिकापवरकाद्यावरणवशात्तत्परिमाणतेति ॥ अत्राह धर्मादीनामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशात्सङ्करे सति; एकत्वं प्राप्नोतीति ॥ तन्न । परस्परमत्यन्तसँश्लेषे सत्यपि स्वभावं न जहति ॥ उक्तं च । अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स ॥

अनवधृत-प्रकाश-परिमाणस्य प्रदीपस्य शराव-मानिका- =अमर्यादित प्रकाश परिमाणवाले दीपकका सकोरा(=शराव)माणिका वा पतीली
अपवरक-आदि-आवरण-वशात् तत्- =घरादिकमें (=अपवरक)आवरणके वशसे उन(शराव-मानिका-अपवरकादि)के
परिमाणता॥ इति * =बरोबरि(=परिमाण)होता है अर्थात् दीपक जब खुले स्थानमें रक्खा जाता है तब उसका प्रकाश मर्यादारहित फैलता है और वही दीपक किसी भाजन वा घर आदिकमें धराजाता है तब उसका प्रकाशभी उस भाजनादिकके बराबरही परिमित वा सीमामें होजाता है
अत्र * आह। धर्मादीनाम्॥ अन्योन्य-प्रदेश- =यहां पूछता है कि धर्मादि द्रव्योंके परस्पर प्रदेशोंके
अनुप्रवेशात् संकरे सति, एकत्वम्॥ प्राप्नोति। इति * =मिलरहनेसे एकमेक (=संकरे) होजानेपर (दोनोंकी)एकता प्राप्त होती है
तत्॥ न * । परस्परम्॥ अत्यन्तसँश्लेषे सति =(उत्तर)वह(एकता)नहीं(होती) है । परस्पर अत्यन्त मिलाव होनेपर
अपि * स्वभावम्॥ न * । (१)जहति।, उक्तम्॥ च * =भी (द्रव्यें अपने अपने)स्वभावको नहीं छोड़ती हैं । कहागया भी है कि
अण्णोण्णं॥ पविसंता॥ (अन्योन्यम्॥ प्रविशन्तः॥) =(ये छह द्रव्य) परस्पर प्रवेश करते हुये
(२ दिंता॥ ओगासं॥ अण्णमण्णस्स॥
ददन्ति॥ (वा ददति॥) अवकाशम्॥ अन्यमन्यस्य॥ } =आपसेका (=आपसमें)अवकाश देते हैं

(१) हा—तीसरे जुहोत्यादिगणका धातु है जिसका अर्थ परस्मैपदमें त्यागना वा छोड़ना है और आत्मनेपदमें जानेके अर्थमें आता है । यहांपर छोड़नेके अर्थ परस्मैपदमें लाये हैं । तीसरे गणका धातु जिसमें एक स्वर हो तो उसको दुहरादेते हैं अर्थात् यदि स्वर आदिमें हो तो स्वरको दुहरादेते हैं जैसे इण् धातुसे इइख् होगया यदि आदिमें व्यंजन हो (जैसाकि यहां है) तो आदिके व्यंजनको उसके पश्चात्के स्वरके साथ दुहराते हैं जैसे हा धातुका 'हाहा' रूप होगया; दुहरे रूप कियेहुये स्वरको लघु करदेते हैं(देखो अष्टाध्यायी७-४-५६)और 'ह'को 'ज'से पलटदेते हैं (देखोअष्टाध्यायी७-४-६२सूत्र) तब 'जहा' ऐसा रूप हुआ ॥ इस 'जहा' के दीर्घ 'आ' को वर्तमानकाल (लट्)के अनद्यतन भूतकाल (=लङ्)के, लोट कालके और विधिलिङ् कालके उन ङित् संज्ञक प्रत्ययोंके साथ गिरा देते हैं जिनके आदिमें स्वर होता है 'जहा' से 'जह्' रूप बना और अति (बहुवचनका प्रत्यय जोड़कर 'जहति' रूप बना जिसका अर्थ 'छोड़ते हैं' त्यागते हैं' हुआ । और पित् संज्ञक प्रत्यय जैसे मि-सि-ति इत्यादिके साथ 'जहा' रूप रहता है जैसे जहामि-मैं छोड़ता हूं जहासि तू छोड़ता है जहाति=वह छोड़ता है ॥ (२) 'ददत्' नपुंसकलिंग, प्रथमा और द्वितीया विभक्ति बहुवचनके 'ददन्ति' और ददति दो रूप हैं और पुल्लिंगमें दोनों विभक्तियोंका 'ददतः' है यहां प्रथमा विभक्ति नपुंसकलिंगमें मेरी समझमें प्रयोग किया गया है ॥

सो जीव-विपाकी प्रकृतियोंका उपकार है" अर्थात् सुख उपगृह, दुःख उपगृह, जीवित उपगृह, मरण उपगृह। यहां उपगृह विशेष वचन है) पुद्गलोंका जीवोंको उपकार है (यहां उपकार सामान्य वचन है)॥ (५) कालस्योपग्रहाः प्रोक्ता येपुनर्वर्तनादयः । स्यात्त एवोपकारो तस् तस्यानुमितिरिष्यते ॥

=पुनि ये वर्तनादय कालस्य उपग्रहाः प्रोक्ता स्यात् ते एव उपकार अतः तस्य अनुमिति इष्यते (२८वां श्लोकतत्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ४१४)

=पुनि जे वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व कालद्रव्यकेउपग्रह कहेगयेहैं । वेही उपकारहैं इसलियेउस(कालद्रव्य)के अस्तित्व)कानिर्णय होजाताहै

(ख)(१) सहायता-सहाराके अर्थमें:-जैसे आकाशस्य उपकारःअवगाहः=आकाशद्रव्यकी सहायता वा सहारा स्थानदान देनाहै सर्वार्थसिद्धिवृत्तिपृ०२०६

भृत्यानाम् उपकारे वर्तते =सेवकोंकी(धनादिसे स्वामी)सहायता(करने)में वा सहारा देनेमें प्रवर्तताहै पृ०२८६

बाह्य उपग्रहात् विना =बाहिरकी सहायता अथवा सहारा विना ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २८७

स्व-उपग्रह-प्रदर्शनअर्थम्-इदम्-पुद्गलानाम् पुद्गलकृत उपकार इति=अपने लिये सहायता दिखावनेकेलियेकि पुद्गलोंकापुद्गलकृत उपकारहै उपगृहलायेहैं

परस्परस्य-उपग्रहः =आपसकी सहायता वा आपसमें एकदूसरेका सहारा [(२१वां सूत्रमें)कहतेहैं

(२) अनुग्रह-अनुकूलता-भलाईकेअर्थमें:-जैसे जीवकृत-उपकारप्रदर्शनअर्थम्आह=जीवकाकियाहुआ(परस्पर)अनुगृह-भलाईवाअनुकूलता दिखानेकेलिये

किम् एतावान् एव पुद्गलकृत उपकारः=क्या इतनाही पुद्गलका कियाहुआ अनुगृह है(सर्वार्थ० पृ० २८४)

परस्परस्य-उपग्रह. =आपसकीभलाई वा अनुग्रह (सर्वार्थ० पृ० २८६)

उपग्रहः =अनुग्रहहै(देखो तत्वार्थराजवार्तिकपृ०२१०,वार्तिक३,श्लो०वा०पृ०४१०)

(३) कारण-निमित्त-हेतु-प्रत्ययके अर्थमें-जैसे जीवानां सुख-दुःख जीवित-मरण-उपगृहाःच पुद्गलानां उपकारः (सूत्र २०)

=जीवोंके (ऊपर)सुखका कारण दुखका निमित्त जीवनका हेतु-मरणका प्रत्ययभी पुद्गलकृत सहायता है (संस्कृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० २८४)

(ग) उपगृह और उपकार एकही अर्थमें जैसे शिष्याणाम् अनुगृहे वर्तते=शिष्योंके उपकारमें(=अनुग्रहे, आचार्य) प्रवर्तता है(सर्वार्थसिद्धि पृ०२८६)

आचार्याणाम् उपकारे वर्तते=(शिष्य)आचार्योंके उपकारमें प्रवर्तते हैं (सर्वार्थसिद्धि पृ० २८६)

() "उपगृह कहिये उपकार वर्ते हैं" जय०व०पृ०४३६ ()"शरीर,वाक्,मन,तथा प्राण,अपान ये पुद्गलोंकाजीवोंके ऊपर उपगृह है

"()विष शस्त्र अग्नि आदानि मरणस्य अपवर्तनं चायुष्कस्य" उपकार.=तथा विष,शस्त्र,और अग्निआदि मरणके अर्थात्आयुके अपवर्तन होनेके उपगृह है'यहां उपकार शब्दका अनुवाद उपग्रह किया है । देखो सभाष्य०पृ०१२६)

()उपगृहो निमित्त-अपेक्षा-कारणं-हेतुरित्यनर्थान्तरम् " =उपगृह निमित्त,अपेक्षा,कारण,ये सब समानार्थकहैं (देखो सभाष्य० पृ०१२५)

और उपकारका अर्थभी निमित्त, कारण, वचनिका और अर्थप्रकाशिकामें लिखा है—"कि छूकार्यकूं निमित्त होय ताकूं उपकार कहिये है" वचनिका पृष्ठ ४३४ (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३०६ सूत्र १९)

()हमारे पास एक कोष बहुत प्राचीन और जीर्ण है जिसके ऊपरकेपृष्ठ और अन्य सरनामा भी नहीं है जिसके पृ०२६में पद्रहवां शब्द उपकारका अर्थ कृपा,सहायता लिखा है और इकीसवें शब्द उपगृहका अर्थ दया सहायता (बंधुआ भी लिखा है जिसको छोड़देते है) लिखा है ।

() तेन शरीरादि परिणामैरात्मनां पुद्गला उपग्रहीतार इत्युक्तं भवति=तेन शरीरादि-परिणामैः आत्मनां पुद्गला उपगृहीतारःइति उक्तं भवति (अर्थ)ताकारणकरि शरीरादि परिणामकरि आत्माका उपकार करने वारे पुद्गल हैं ऐसें कहनां होयहै" उपगृहीतृ शब्द है जिसकी प्रथमा विभक्ति बहुवचन उपगृहीतारः बनता है जिसका अर्थ उपगृह करनेवाले होता है पं०पन्नालालजी दूनीवालोंने इस तत्वार्थराजवार्तिककी.इकतालीसवांवार्तिकमें आयेहुए इस शब्दका अनुवाद "उपकार करनेवाले" ऐसा किया है अर्थात् उपगृहीतृ=उपकर्तृ ५२

उसी प्रकारसे धर्मद्रव्य बाह्य और अप्रेरकनिमित्तहै जैसे जलवाह्यरूप और उदासीनतासे मछलीके गमनकरनेमें सहकारी वा सहायक है और स्थितिमें परिवर्तन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको अधर्मद्रव्य उसी प्रकार बाह्य और बलाधान(अविनाभावी) कारण है जैसे छाया पथिक जनोंके ठहरानेमें सहायक वा सहकारी है,न तो जल मछलीको प्रेरणा करता है कि वह गमन करै और न छाया पथिक जनको स्वयम् ठहरनेकी प्रेरणा करती है यदि वे गमनस्थिति करैं तो उनको उदासीनतासे सहायता प्रदान करती हैं,परन्तु स्मरण रहै कि उक्त बाह्य और अप्रेरक कारण गमन और स्थितिके लिये अविनाभावी है कि जिसके बिना गमन और स्थिति नहीं होसकते हैं ॥

अर्थ भलाई वा सहायताका है जैसे उपकुर्वन्ति=उपकार अथवा सहायता करते हैं (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १२७) इसलिये उपकार शब्दका अर्थ यहां भलाई सहायता कीजाय ऐसा है। इस अर्थका समर्थन सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २७७के 'उपक्रियत इत्युपकारः'=उपक्रियते इति उपकारः=उपकार किया जाता है वा सहायता कीजाती है, इस वाक्यसे होता है ॥ उपग्रह शब्दका अर्थ भलाई अथवा सहायता ग्रही(ग्रहण की)जाती है ऐसा है जैसे "उपगृह्यत इत्युपग्रहः"=उपगृह्यते इति उपग्रहः अर्थात् भलाई वा सहायता ग्रहण कीजाती है (देखो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २७७) ॥ दोनों उपग्रह और उपकार शब्दोंके ये व्युत्पत्त्यर्थ हैं, अर्थात् ये अर्थ व्याकरणकी रीतिसे निकलते हैं ॥

उपकार =फैलाये हुये पुष्पादि()नौकरी, सेवा()साजसंभाल()अलंकार, भूषण, (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ७६ और वैद्य संस्कृत आङ्गलकोप पृष्ठ १३५)
उपग्रह =राहु, धूम, केतु आदि ग्रह()कारावन्धन()कारावन्धनमेंडालना()बंधुआ-कारागारस्थ()जोड़ना-लगाना-संयोग(उक्तकोपोंकेपृ०७६,१३६में क्रमसे है)इत्यादि और भी अर्थोंमें आते हैं उन समस्तको छोड़कर अब शास्त्रानुकूल तीन बात सिद्ध करनी हैं(क)यह कि उपकार तो सामान्यवचन है अर उपग्रह विशेष वचन है"अर्थात् उपग्रहोंका समुदाय उपकार है जैसे कोई व्यक्ति किसीको पढ़ावै, पोषण करै,उसका विवाह करै-उसे व्यापारके लिये धन दे तो अवसर आने पर कहसकता है कि मैंने तुम्हारे साथ पाठन उपग्रह, पोषणकरणउपगूह, विवाहकरणउपगूह, धान्यउपगूह, धनउपगूह, इतना उपकार किया तिसपर भी तुम मेरे प्रति कृतघ्नता प्रगट करते हो। उपगूहका अर्थ अनुगूहभी है। (ख)यह कि उपगूह और उपकार शब्द()सहायता-सहारा()अनुगूह-अनुकूलता-भलाई()कारण निमित हेतु-प्रत्यय अर्थोंमें लाये जाते हैं ॥ (ग) यह कि जब एकही बातके सम्बन्धमें उपगूह किया जाय तब और अन्य अवसरोंपर भी उपकार और उपगूह शब्द अभेदरूपसे एक दूसरेके अर्थमें जहां जैसी आवश्यकता हो काममें लायेजाते हैं ॥

(क) (१) जो इस प्रकार है अर्थात् गतिका उपगूह है और स्थितिका भी उपगूह है तो दो(वचन)का निरूपण वा कथन उपकार शब्दकै प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें लाना योग्य था तब सूत्रका अन्तिम भाग ऐसा होता "धर्माधर्मयोरुपकारौ" (उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि सामान्यकरि कहा हुआ गृहीत संख्यावाला (उपकार शब्द)अन्य शब्द (उपगूहौ)के साथ संबन्ध होनेपर भी प्रथम गृहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है (देखो संस्कृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० २७७) ॥(२) "न चैवमुपकारशब्दस्य द्विवचनप्रसङ्गः सामान्योपक्रमादेकवचनोपपत्तेः=च एवम् उपकार-शब्दस्य द्विवचनप्रसङ्गः न सामान्यउपक्रमात् एक वचन उपपत्तेः और इस प्रकार उपकार शब्दभी दो वचनमें स्थिति होवे (स्थिति होना चाहिये) ॥ (उत्तर)नहीं(होना चाहिये) क्योंकि सामान्यमें आरम्भ करनेसे वा सामान्य वशसे एक वचन की प्राप्ति है ॥(३)"तत्किमिदानीमुपगूहवचनं? न कर्तव्यं। कर्तव्यमेवोपकारशब्देन कार्यसामान्यस्याभिधानात् गतिस्थित्युपगूहाविति कार्यविशेषकथनात्"। श्लोकवार्तिकपृ०४१०=तो अब(=इदानीं)उपगृहवचन (सूत्रमें) क्यों है, नहीं लाना चाहिये (उत्तर) (उपगूह शब्द सूत्रमें)लानाही चाहिये क्योंकि उपकार शब्दकरि सामान्य कार्यनिरूपण कियागया है(और) गति उपगूह,स्थिति उपग्रहसे, विशेष कार्यका कथन होता है अर्थात् उपकार सामान्यवचन है और उपगूह विशेष वचन है ॥(४) (श्लोक) "सुखाद्युप-गूहाश्चोप-कारो जीवविपाकिनाम्"=सुखादि उपगूहाः च उपकारः जीवविपाकिनाम् ॥ श्लोकवार्तिक पृ० ४१२ और सुखदुःख,जीवित, मरण उपगूह है

धर्म और अधर्मके द्वारा जिनका उपकार कियाजाता है ऐसी गति और स्थिति जीव और पुद्गलोंमें रहैगी अर्थात् उपकारशब्दको भावसाधन माननेपर उसका आधार तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य पड़ेगा और कर्म साधन उपगूहका आधार जीव और पुद्गल पडेंगे इसलिये उपकार और उपगह दोनोंकी भिन्न भिन्न पदार्थोंमें वृत्तिरहनेसे उन दोनोंका सामानाधिकरण्य नहीं होसकता, इसलिये उपकार शब्दकी भावसाधन व्युत्पत्ति तो बन नहीं सकती। यदि कहा जायगा कि 'उपक्रियत इत्युपकार' इस प्रकार उपकार शब्द कर्म साधन है इसलिये उपर्युक्त दोष नहीं होसकता ? सो भी ठीक नहीं क्योंकि उपकार शब्द और उपगूह शब्द दोनोंकी कर्म साधन व्युत्पत्तिके मानने पर दोनोंका सामानाधिकरण्य अर्थात् एक अधिकरण तो हो सकता है परन्तु यह नियम है कि जिनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध रहता है उनके एकवचन द्विवचन आदि वचन भी सामान रहते हैं। यदि उपगूह उपकार दोनोंका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध मानाजायगा तो जिस प्रकार द्विवचनांत उपगूह पदका उल्लेख कियागया है उसी प्रकार द्विवचनांत उपकार शब्दका भी उल्लेख करना चाहिये परन्तु सूत्रमें एकवचनांत उपकार शब्दकाही उल्लेख कियागया है इसलिये उपकार शब्दको कर्मसाधनभी नहीं मानाजासक्ता इस रीतिसे उपकार शब्दकी भावसाधन और कर्म साधन दोनों प्रकारकी व्युत्पत्तियें बाधित हैं ? (उत्तर) यहांपर उपकार शब्दका सामान्यरूपसे ग्रहण कियागया है इसलिये उसके एकवचनांत ग्रहण करनेपर भी कोई दोष नहीं आता है अर्थात् 'साधोः कार्यं तपःश्रुते वाक्यमें तप करना शास्त्र अध्ययन करना ये दो कार्य साधुके हैं। यहां तप और श्रुतदोको कार्य माना है इसलिये आपसमें उनका सामानाधिकरण्य संबन्ध है क्योंकि तपश्रुतरूप कार्य का आधार एक है परन्तु कार्य शब्दका एकवचनमें उल्लेख किया गया है और 'तप श्रुते' शब्दका द्विवचनमें ग्रहण है इसलिये यहांपर भी यह शंका उठती है कि जब आपसमें यहांपर सामानाधिकरण्य संबन्ध है तब जिस प्रकार 'तप श्रुते' शब्द द्विवचनांत रूपसे कहागया है उसी प्रकार कार्य शब्दभी द्विवचनांतरूपसेही कहना चाहिये, एक वचनांत कार्यका उल्लेख यहां प्रसगरहित है। उसका समाधान यहां यह दियागया है कि कार्य शब्दका प्रयोग उपर्युक्त वाक्यमें सामान्यरूपसे किया गया है और यह नियम है कि जिस पदका प्रयोग सामान्यरूपसे किया जाता है और उसका उस समय जो एक वचन, द्विवचन आदि रहता है वही तदवस्थ रहता है, पश्चात् यदि उस पदके विशेषण स्वरूपही तीन आदि पद हों और उनके सम्बन्धसे सामान्य-रूपसे कहेगये पदके वचनके पलटनेकी आवश्यकता पडे तो भी यहांपर विशेषणके अनुसार वचनका परिवर्तन नहीं होता 'कार्यं तप श्रुते' यहांपर एक वचनान्त कार्य शब्दका सामान्यरूपसे उपादान कियागया है यद्यपि पीछेसे तप श्रुत शब्द उसका विशेषणहोनेसे विशेषणके अनुसार कार्य शब्दमें वचनका परिवर्तन होना चाहिये अर्थात् एकवचनके स्थानमें द्विवचन होना चाहिये परन्तु सामान्यरूपसे उल्लेख होनेके कारण वहां पर एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहींहोता उसीप्रकार उपकार शब्दकाभीसामान्यरूपसे एकचनमें उल्लेखकियागयाहै इसलिये पीछेसेउसकाउपगूहविशेषण होनेपर भी उसके अनुसार उपकार शब्दके एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीं होसकता अतःसूत्रमें जो एकवचनरूपमें उपकारशब्द लाया गयाहैवह ठीकहै।अथवा जिस प्रकार 'उपकरण उपकारः' इस प्रकार उपकारशब्द भाव साधन मानागया है उसी प्रकार 'उपगूहण, उपगूहः' इस प्रकार उपगूहशब्द भी भाव साधन है इसलिये गतिस्थित्योरुपगूहौ गतिस्थित्युपगूहाविति' जो ऊपर षष्ठी तत्पुरुष समास कह आये हैं उसके माननेमें भी कोई दोषनहीं तथा उपगूह और उपकार शब्दका भावसाधन मानने पर गतिका उपगूह धर्मद्रव्यका उपकार है और स्थितिका उपगूहअधर्मद्रव्यकाउपकार है यह शास्त्रानुकूल अर्थ भी निरापद होजाता है इसलिये उपगूह और उपकार शब्दको कर्मसाधन मानने पर कर्मधारय समास और भावसाधन माननेपर षष्ठी तत्पुरुष समास दोनों ही समासोंका मानना निर्दोष है॥ (प्रश्न पर प्रश्न) यदि 'उपगूह' शब्द भावसाधन है तो चूंकि भाव पदार्थ एक माना है इसलिये उपगूहौ के स्थानमें उपग्रह एकवचन होना चाहिये (उत्तर) धर्म और अधर्म द्रव्यें भिन्न भिन्न हैं गतिमें उपग्रह करना और स्थितिमें उपग्रह करना भी भिन्नभिन्न है। गमनमें उपग्रह करना धर्मद्रव्यका उपकारहै और स्थितिमेंउपग्रहकरना अधर्मद्रव्यका उपकारहैइसकेजतानेकोउपग्रहौद्विवचन हैनहींतो जैसे पृथिवी, अश्व बैलआदिके गमनस्थितिमें सहकारी हैं वैसेही धर्मवा अधर्मद्रव्य दोमेंसे कोईएक गमन और स्थितिमें उपकारी ठहरती॥

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः । तद्विपरीता स्थितिः । उपगृह्यत इत्युपग्रहः । गतिश्च स्थितिश्च गति-स्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ (१)धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देशः ॥

वृत्त्यनुवादः-देशान्तर-प्राप्ति-हेतुः गतिः॥	=(द्रव्यका एक क्षेत्रसे)दूसरे स्थानमें प्राप्तिका कारण है सो गति अथवा गमन है
तद्-विपरीता स्थितिः॥	=उस(गति)से उलटा (अर्थात् गमन क्रियासे रुकना वा थंबना)सो स्थिति है
उपगृह्यते। इति*उपग्रहः ; गति*च* स्थितिः*च*	=सहायता ग्रहण कीजाती है ऐसा उपग्रह है और(=च)गति तथा(=च)स्थिति है
गति-स्थिती॥ ; गति-स्थिती एव*उपग्रहौ	=सो गतिस्थिती(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है। गति ही उपग्रह और ठहराव ही उपग्रह
गतिस्थिति-उपग्रहौ ॥	=वे गति-स्थति-उपग्रहौ(इस द्वंद्वसमासरूपमें)हैं अर्थात् गति और स्थितिही उपग्रह हैं।
(१)धर्म-अधर्मयोः इति*कर्तृ-निर्देशः	=(इस सूत्रमें)धर्म-अधर्मयोः ऐसा (वाक्य)कर्ताके अर्थ है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य उपकारके करनेवाले हैं भावार्थ इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नहीं है बरन् जीव पुद्गलोंका गमनका उपकार करनेवाली अप्रेरकरूपसे धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गलोंको स्थितिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है।

() यस्य अर्थस्य लिंगं।उक्ताः वर्तनादयः उपकाराः सः कालः इति अनुमीयते(राजवार्तिक २२७)=जिस द्रव्यका (अर्थस्य) लक्षण (=लिंग) कहेहुये वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व उपकार हैं सो काल है ऐसा अनुमान कियाजाता है ॥ यहांपर सूत्रमें 'कालस्य' शब्दके पश्चात् 'उपकारः' अनुवर्तता है और उस कालका जीव पुद्गलोंके साथ वर्तना उपग्रह, परिणाम उपग्रह, क्रिया उपग्रह, परत्वउपग्रह, अपरत्व उपग्रह इतना उपकार है वार्तिककार इन पांचों उपग्रहोंके लिये "उपकाराः"ऐसा शब्द बहुवचनमें लाये हैं ॥

() जीवपुद्गलानां गतिउपग्रहे कर्तव्ये साधारण-आश्रयः धर्मास्तिकायः ="गमन करते जे जीव पुद्गलद्रव्य तिनके गमनका उपकार विषैं साधारण आश्रय धर्मद्रव्य है" अध० वच० ४२६ 'उपग्रहे'का अनुवाद 'उपकार विषैं' ऐसा किया है

(१) इस सूत्रमें 'धर्माधर्मयोः' वाक्यसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कर्ता माना है। (प्रश्न) धर्म अधर्मको कर्ता माननेमें यहां प्रथमा विभक्ति होना चाहिये (उत्तर) कर्ता कारकमें षष्ठी विभक्तिका भी विधान मानागया है अतः'धर्माधर्मयोः' षष्ठी विभक्ति द्विवचन पदके रहते भी धर्म अधर्मका कर्ता होना निर्बाध है (प्रश्न) किसी न किसी क्रियाके सम्बन्धसे कर्ताका व्यवहार होता है, धर्म अधर्मके साथ कौनसी क्रिया है जो इन (धर्म-अधर्म)को कर्ता मान लिया जावै ॥ (उत्तर) सूत्रमें उपकार शब्दका ग्रहण है इसलिये 'उपकरोति'अर्थात् उपकार स्वरूप क्रियाके संबन्धसे धर्म और अधर्मको कर्ता माना गया है ॥ सूत्रमें'उपकार'शब्द भाव साधन है 'उपकरणं' उपकारः यह भावसाधन उपकार शब्दका विग्रह(=समासके अर्थ को प्रगट करनेवाला वाक्य) अथवा व्युत्पत्ति(=व्याकरणकी रीतिसे शब्दकीसिद्धि) है (प्रश्न)यदि'उपकरणं उपकारः'ऐसे उपकारशब्दको भावसाधन माना जायगा तो गति और स्थिति स्वरूप उपग्रह धर्म और अधर्म द्रव्योंका उपकार है। इस रूपमें जो 'गतिस्थित्युपग्रहौ' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है वह न बन सकेगा क्योंकि क्रिया तो कर्ता में रहती है इसलिये यहां उपकाररूप क्रिया तो धर्म और अधर्मरूप कर्ताओंमें रहैगी तथा उपगृह्यमाण अर्थात्

एतदुक्तं भवति—गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गत्युपग्रहे कर्तव्ये धर्मास्तिकायः साधारणाश्रयो जलवन्मत्स्यगमने ॥ तथा स्थितिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां स्थित्युपग्रहे कर्तव्ये अधर्मास्तिकायः साधारणाश्रयः पृथिवीधातुरिवाश्वादिस्थिताविति ॥ ननु च उपग्रहवचनमनर्थकमुपकार इत्येवं सिद्धत्वात् । गतिस्थिती धर्माधर्मयोरुपकार इति ॥ नैष दोषः याथासंख्य-

एतत्[१/१]।।उक्तम्[१/१]।।भवति।गतिपरिणामिनाम्[६/३]।	=यह कथन वा अर्थ होता है कि गमनमें परिणमन होनेवाले, गमनकरनेवाले
जीवपुद्गलानाम्[६/३]।गति-उपग्रहे[७/१]।कर्तव्ये[७/१]।धर्म-	=जीव पुद्गलोंके गमनके उपकार करनेमें धर्म (जो जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-पांच अस्तिकायोंमेंसे एक है)
अस्तिकायः[१/१]।साधारण-आश्रयः[१/१]।	=बहुत प्रदेशवाली वा बहु प्रदेशीद्रव्य(=अस्तिकाय)है साधारण आधार है
जलवत्*मत्स्य-गमने[७/१];तथा*स्थिति-परिणामिनाम्[६/३]।	=जैसे जल मछलीके चलनेमें है वैसेही (=तथा)ठहरनेमें परिणमन होनेवाले
जीव-पुद्गलानाम्[६/३]।स्थिति-उपग्रहे[७/१]।कर्तव्ये[७/१]।(१ अधर्म-	=जीव पुद्गलोंके स्थितिके कारण कर्तव्यमें अधर्मद्रव्य (जो जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश पांच आस्तिकायोंमें से एक है)
अस्तिकायः[१/१]। साधारण-आश्रयः[१/१]।	=अस्तिकाय अर्थात् बहुप्रदेशी द्रव्य है साधारण वा सामान्य आश्रय है
पृथिवी २)धातुः[१/१]।इव*अश्वादिस्थितौ[७/१]।।इति * ॥	=जैसे(=इव)भूमिका आधार घोड़ा आदिकके ठहरनेमें है ॥
ननु*च*उपग्रह-वचनम्[१/१]।।अनर्थकम्[१/१]।।	=पुनि प्रश्न (इस सूत्रमें)उपग्रह(शब्द)का कहना(=वचन)निष्प्रयोजन है
उपकारः[१/१]।इत्येवम्*सिद्धत्वात्[५/१]।।	=क्योंकि (धर्म-अधर्मका) उपकार वा सहायता सूत्रकी रचनासे सिद्ध होजाती है कि
गतिस्थिती[१/२]।।धर्म-अधर्मयोः[६/२]।उपकारः[१/१]। इति* ;	=गति-स्थिति धर्म-अधर्मका उपकार है । ऐसा(अर्थ) हुआ ॥
न*एषः[१/१]।दोषः[१/१]।याथासंख्य-(३	=(उत्तर)यह दोष नहीं है(क्योंकि)यथासंख्यपनाके (=पहिलेको पहला दूसरेको दूसरा)

(१) (अश्वादि-स्थितौ[७/१]॥भूमि आधारवत् इति अर्थः =घोड़ा आदिकके ठहरनेमें पृथिवीके आधारके सदृश है ऐसा तात्पर्य्य है (२)दधाति।इतिधातुः[१/१]।= जो (अपने ऊपर) रखता है वा धारण करता है ऐसा धातु है आधार ऐसा अभिप्राय (धातु शब्दका) है। अर्थात् जो धारण करता है वा धारण करने वाला यह अर्थ "पृथिवीधातुरिवाश्वादि" वाक्यमें जो 'धातु' शब्द आया है उसका है। (३) 'याथासंख्य'का वही अर्थ है जो 'यथासंख्य' शब्दका है ॥

उपक्रियत इत्युपकारः । कः पुनरसौ? गत्युपग्रहः स्थित्युपग्रहश्च ॥ यद्येवं द्वित्वनिर्देशः प्राप्नोति? नैष दोषः । सामान्येन व्युत्पादित उपात्तसंख्यः शब्दान्तरसम्बंधे सत्यपि न पूर्वोपात्तां संख्यां जहाति ॥ यथा-साधोः कार्यं तपःश्रुते इति ॥

उपक्रियते।इति*उपकारः१।पुनः*असौ१।कः१। =उपकार कियाजाता है वा सहायताकी जाती है ऐसा उपकार है। और यह(उपकार)क्याहै

गति-उपग्रहः१।च*स्थिति-उपग्रहः१।;यदि*एवम्* =गमनका उपग्रह तथा स्थितिका उपग्रह है। (प्रश्न)जो ऐसे है अर्थात् गतिकाभी उपग्रह है और स्थितिकाभी उपग्रह है तो (इस सूत्रमें)

द्वित्व-निर्देशः१। प्राप्नोति? =दो वचनका निरूपण वा कथन(उपकार शब्दको)प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें लाना था तब 'धर्माधर्मयोरुपकारौ' सूत्रके अन्तमें होता ॥

न*एषः१।दोषः१।;सामान्येन३।।।व्युत्पादितः१। =(उत्तर)यह दूषण नहीं है। (क्योंकि) सामान्यकरि कहाहुआ

उपात्तसंख्यः१।शब्दान्तर-सम्बन्धे७।सति७।अपि* =गृहीत संख्यावाला(उपकार शब्द)अन्य शब्द उपग्रहौ के साथ सम्बन्ध होनेपर भी

न*पूर्व-उपात्ताम्२।।संख्याम्२।।जहाति =पहिले ग्रहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको सामान्यरूपसे ग्रहणकरि एकवचनमें निर्देश कियाहै यद्यपि इस उपकार शब्दका उपग्रह' शब्दसे ऐसे सम्बंध है कि गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार और स्थितिका उपग्रह अधर्म द्रव्यका उपकार है तौ भी प्रथम ग्रहण कियेहुये एकवचन संख्याको उपकार शब्द नहीं त्यागता है और उपग्रहौ शब्द दोवचनान्तके साथ उपकारौ (दोवचनान्त)ऐसा नहीं होजाता है वरन् उपकार ऐसाही रहता है ॥ ('हा' धातु पर देखो टिप्पणी पृष्ठ ४६)

यथा*साधोः६।कार्यम्१।।।तपःश्रुते१।।।इति* =जैसे साधु पुरुषका काम तप करना और शास्त्र पढना ऐसा है अर्थात् वाक्यमें तपःश्रुते द्विवचन है और इसके अनुसार'कार्यम्'शब्दके स्थानपर कार्ये द्विवचन होनाचाहियेपरन्तु यहांपर कार्य शब्द सामान्य है और'तपो'कार्यम् श्रुतेकार्यम् ऐसे दो स्थानोंके लिये आयाहै। जैसे सामान्य होनेके हेतुसे (कार्य शब्द) द्विवचन नहीं हुआ तैसेही सूत्रमें 'उपकार' शब्द सामान्य है और वह गतिउपकार और स्थितिउपकार इन दो वार्तोका द्योतक है इसलिये सूत्रमेंभी'उपकार'शब्दको सामान्यवचन होनेसे एकवचनमें लाये हैं द्विवचन न...

॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥

पाषाण जिससे सुवर्ण निकलताहै कनक,अन्ध दो भेदका होताहै, जब कनक पाषाण कहदिया तब इतर दूसरा पाषाण अन्ध पाषाण शेष रहगया । (१) हमारे यहां इस सूत्रका सर्वत्र एक पाठ है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसुत्रमे तथा भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका मे "स्त्यानगृद्धयश्च" वाक्यके स्थानमें "स्त्यानगृद्धिवेदनीयानि च" ऐसा वाक्य है अर्थात् उनके यहां पांचों निद्राओंमें वेदनीय शब्दको जोड़कर दर्शनावरणके नव भेदों में ही गर्भित ऐसे कर दिया है कि "भाष्यम् —चक्षुर्दर्शनावरणम् अचक्षुर्दर्शनावरणम्, अवधिदर्शनावरणम्, केवलदर्शना-वरणम् निद्रावेदनीयम्, निद्रानिद्रावेदनीयम्, प्रचलावेदनीयम्, प्रचलाप्रचलावेदनीयम्, स्त्यानगृद्धिवेदनीयमिति दर्शनावरण नवभेद भवति"। वेदनीयमिति = वेदनीयम् इति। इस भाष्यका अर्थ स्पष्ट है। प० जयचन्द्ररायजो ने सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ मुद्रित ६९० में निद्राओंको साताका अनुभव कराने वाला इस प्रकार कहा है कि" यहां कोई पूछै जो निद्रातौ पाप प्रकृति है अर सोवनेमें प्राणिनि के सुख दीखै है सो कैसे है? ताका समाधान-जो निद्रा आवे है सो तौ पाप ही का उदय है। जातैं दर्शन ज्ञान वीर्य आत्मा का स्वभाव है ताका घात होय है। बहुरि सोवनेतैं खेद ग्लानि मिटै भी है सो याके लगता सातावेदनीय का उदय है तथा असाताका उदय भेद पडै है ताकूं यह निद्रा सहकारी मात्र होय है तातैं यह प्राणी सुख भी मानै है ॥ परमार्थतैं किछु सुख है नाहीं" ॥ (२) केवलानाम्" षष्ठी विभक्ति बहुवचन नपुसकलिंगमे है और "स्त्यानगृद्धयः" प्रथमा विभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंगमे है। इन दोनों विभक्तियोंको मिलाकर नीचे लिखा हुआ लघुसूत्र क्यों नहीं किया ?

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलनिद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयः ॥

(उत्तर) चक्षुरादिकका दर्शनावरणके साथ भेद अपेक्षासे सम्बन्ध है निद्रादिकके साथ अभेद रूपसे। इसलियेषष्ठी प्रथमा दोहरी विभक्तियें है। चक्षुरादीनां दर्शनावरणसम्बन्धात् भेद निर्देश (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ३०२ तत्त्वार्थश्लोक वार्तिक पृष्ठ ४७८ चक्षुरादिकका दर्शनावरणके सम्बन्धसे भेद रूप उपदेश वा कथन है अर्थात् चक्षु, अचक्षु अवधि केवलका भेदकी अपेक्षासे दर्शनावरणके साथ सम्बन्ध किया गया है। (परन्तु) निद्रादीनाम् अभेदेन अभिसम्बन्ध. तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ट३०३ = निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यान गृद्धय. अनुवर्त-मानेन दर्शना वरणेन- अभेदेन अभिसम्बन्ध क्रियते (राजवार्तिक पृष्ट ३०३) निद्रादिकोंका अभेदकरि सम्बन्ध होता है अर्थात् निद्रा-निद्रा निद्रा-प्रचला प्रचलाप्रचला स्त्यान गृद्धिनिका अनुवर्तमान दर्शनावरणकरि अभेद (विवक्षा) से संबन्ध कियाजाता है ॥ स्त्यान गृद्धयश्च स्त्यान गृद्धयः च,यह स्त्यान गृद्धयः रूप स्त्यानगृद्धि शब्दकी प्रथमा विभक्ति बहु वचन स्त्रीलिंग है ॥ (१) चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां ॥ इस वाक्य का विग्रह (=समास के अर्थ को जताने हारा वाक्य, सामासार्थ बोधक वाक्य विग्रहः) तत्त्वार्थ राजवार्तिकके अनुसार निम्न पदच्छेद है चक्षुः च अचक्षुः च अवधि च केवल च चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानि तेषाम् चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां दर्शनावरणानि भेद निर्देश. दर्शनावरण सवंधात् वेदितव्यः इति = बहुरि (=च) चक्षु. और अचक्षुः और अवधि और केवल मिलकर चक्षुरचक्षुर वधि केवलानि (ऐसा वाक्य हुआ)

सूत्रार्थः—चक्षुषः ॥ दर्शनावरणम् ॥=नेत्र के अवलोकनको आच्छादन करे भावार्थ जिसके उदयसे आत्मा चक्षु इन्द्रिय रहित हो

अचक्षुषः ॥ दर्शनावरणम् ॥=नेत्र [इन्द्रिय] के अतिरिक्त अन्य इन्द्रिय [स्पर्शन–रसन–नासिका–कान के विषयों] के दर्शन [=सामान्यज्ञान–सामान्य ग्रहण] को ढांके वा आवरण करे अर्थात् जो चक्षु विना अन्य इन्द्रिय द्वारैं अर्थके सामान्य ग्रहणको नहीं होने दे सो अचक्षुर्दर्शनावरण प्रकृति है

अवधेः ॥ दर्शनावरणम् ॥ =जो अवधि दर्शन वा सामान्यग्रहणको रोके वा आच्छादन करे अर्थात् अवधि दर्शनसे जो वस्तुका सामान्य ग्रहण वा अवलोकन होता है उसका आच्छादन करे सो अवधि दर्शनावरण प्रकृति है

केवलस्य ॥ दर्शनावरणम् ॥ =केवल दर्शनको जो रोके वा आच्छादन करे सो केवल दर्शनावरण प्रकृति है

च+निद्रा-दर्शनावरणम् ॥ =और (=च) आलस, दुःख, वा शोक, थकावटको दूर करने केलिये सोना अथवा शयनकरना सो निद्रादर्शनावरण प्रकृति है

निद्रा–निद्रा–दर्शनावरणम् ॥ =जिस निद्राका फिर फिर प्रवृत्ति अथवा स्थिति सो निद्रानिद्रा दर्शनावरणप्रकृति है अर्थात् निद्रा-निद्रादर्शनावरण कर्म प्रकृतिके उदयसे जीवनेत्रोंको उघाड़ नहीं सकता है ऐसी गाढ़ निद्रा होती है

प्रचलादर्शनावरणम् ॥ =जो क्रिया आत्माको चलाती है अथवा चलायमान करती है सो प्रचला है शोक खेद मद आदि की उपजावने हारी है बैठे हुये के भी नेत्रमें शरीरमें विकार उत्पन्न करने वाली है भावार्थ प्रचला दर्शनावरण कर्म प्रकृति के उदय से जीवनेत्रों को कुछ उघाड़े हुये हो सो जाता है [अर्थात् सोता सोता भी कुछ जानता है] बैठा बैठाही घूमने लग जाता है नेत्र गात्र चलायमान रहते हैं देखते हुये भी कुछ नहीं देखता है

तिन चक्षुरचक्षुरवधि केवलके दर्शनावरण या दर्शनके ढकने ऐसे दर्शनावरणके संयोगसे भेदरूप कथन जानना चाहिये अर्थात् तेषां चक्षुरचक्षुरवधि केवलानाम् इन दो षष्ठी बहुवचनोंसे और अवधि दर्शनावरणानि से स्पष्ट है कि प्रत्येक शब्द–चक्षुः–अचक्षुः अवधि केवल को षष्ठीमें लेना चाहिये और दर्शनावरण शब्द के साथ संबन्ध करना चाहिये, इसलिये चक्षुः दर्शनावरणम्- अचक्षुः दर्शनावरणम् अवधदर्शनावरणम्-केवल दर्शनावरणम् ऐसे पद छेद किया है और संस्कृत सर्वार्थसिद्धि के पृष्ठ ३८५ पंक्ति ९-१० में "चक्षुर्दर्शनावरणमचक्षुर्दर्शनावरणमवधि दर्शनावरणं केवलदर्शनावरण 'मिति" ऐसा वाक्य है उसमें चक्षुः और दर्शनावरणम् के बीचमें विभक्ति षष्ठी (अस) का लोप करके चक्षु-दर्शनावरणम् समास कर दिया है इसी प्रकार अचक्षु में भी जानो और अवधि और दर्शनावरणके मध्यमें भी षष्ठी विभक्ति का लोप करके अवधिदर्शनावरणम् ऐसा समास किया है इसी प्रकार केवल और दर्शनावरणम् शब्दों के बीच में स्य षष्ठीके चिह्नको लोप करके केवल-दर्शनावरणम् समास किया है मैंने षष्ठियों को लोप न करके पृथक् पृथक् पदच्छेद कर दिया है।

मत्यादीनि ज्ञानानि व्याख्यातानि ॥ तेषामावृतेरावरणभेदो भवतीति पञ्चोत्तरप्रकृतयो वेदितव्याः ॥ अत्र चोद्यते—अभव्यस्य मनःपर्ययज्ञानशक्तिः केवलज्ञानशक्तिश्च स्याद्वा न वा ?। यदि स्यात्—तस्याभव्यत्वाभावः । अथ नास्ति-तत्रावरणद्वयकल्पना व्यर्थेति ॥ उच्यते आदेशवचनान्न दोषः—द्रव्यार्थादेशान्मनःपर्ययकेवलज्ञानशक्तिसम्भवः । पर्यायार्थादेशात्तच्छक्त्यभावः ॥ यद्येवं, भव्याभव्यविकल्पो नोपपद्यते ।

ज्ञानावरण कर्मने सब ज्ञानोंको ढक रखा है मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरणके किंचित् क्षयोपशमसे थोड़ा बहुत ज्ञान सब जीवोंमें है । शेष सब प्रकारका ज्ञान उक्त पांचो प्रकारके ज्ञानावरणकर्माने ढक रखा है ॥

वृत्त्यनुवादः—मति–आदीनि[१।३] ज्ञानानि[१।३] व्याख्यातानि[१।३]
तेषाम्[६।३] । आवृत्तेः[५।१]
आवरण–भेदः[१।१] भवति T इति* पञ्च-उत्तर-प्रकृतयः वेदितव्याः[१।३]
अत्र(१)* चोद्यते T अभव्यस्य[६।१] मनःपर्ययज्ञान-शक्तिः[१।१] च*
केवलज्ञान–शक्तिः[१।१] स्यात् T वा* न* वा* ? यदि* स्यात् T तस्य[६।१]
अभव्यस्य–अभावः[१।१] ; अथ* न* अस्ति T तत्र*
आवरण–द्वयकल्पना[१।१] व्यर्था[१।१] ~*;
उच्यते T आदेश–वचनात्[५।१] न* दोषः[१।१]
द्रव्यार्थआदेशात्[५।१] मनःपर्यय–केवलज्ञान–
शक्ति–सम्भवः[१।१] पर्यायार्थ–आदेशात्[५।१] तत्–
शक्ति–अभावः[१।१] यदि* एवम्*
भव्य–अभव्य–विकल्पः[१।१] न* उपपद्यते T

=मति आदिक ज्ञान व्याख्यान किये गये (अध्याय १ सूत्र ९)
=तिन (मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय केवलज्ञान) के आवरणसे वा आच्छादनसे
=आवरणका भेद होताहै, ऐसे पांच (ज्ञानावरणकी) उत्तर प्रकृति जानना चाहिये।
=यहप्रश्न किया जाता है (=चोद्यते) कि अभव्य के मनःपर्यय ज्ञानकी शक्ति और
=केवल ज्ञानकी सामर्थ्य है वा नहीं ? जो है तिस (जीव) के
=अभव्यपनाकी विद्यमानता नहीं है जो (=अथ) नहीं है तो वहां (सूत्रमें)
=दो [मन:पर्यय केवल] ज्ञानके आवरणका मानना निष्प्रयोजन है [उत्तरमें]
=कहाजाता है कि [अपेक्षारूप वचनमें] नियमरूप वचनसे दूषण नहीं हैं
=द्रव्यार्थिक नयके नियमसे वा अपेक्षासे मन पर्ययज्ञान केवलज्ञानकी (अभव्यके)
=सामर्थ्य सम्भव है पर्यायार्थिक नयके आदेशसे उन [मनःपर्यय केवलज्ञान]की
=शक्ति वा सामर्थ्यका अभाव है, जो ऐसे है, अर्थात् द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षासे तो अभव्यमें भी मनःपर्ययज्ञानकी शक्ति और केवलज्ञानकी शक्ति विद्यमान है
=भव्य अभव्यका भेद नहीं होता है [=न उपपद्यते]

---

(१) यह शब्द चुद् चुरा दशवांगणके उभय (परस्मैपदका वा आत्मनेपदका) सकर्मक धातु (प्रेरणा करना) का। गुण करनेसे और यप्रत्यय कर्मणिप्रयं गका

उभयत्र तच्छक्तिसद्भावात् ॥ न शक्तिभावाभावापेक्षया भव्याभव्यविकल्प इत्युच्यते ॥ कुतस्तर्हि ? व्यक्तिसद्भावासद्भावापेक्षया ॥ सम्यग्दर्शनादिभिर्व्यक्तिर्यस्य भविष्यति स भव्यः। यस्य तु न भविष्यति सोऽभव्यः। कनकेतरपाषाणवत् ॥

आह, उक्तो ज्ञानावरणोत्तरप्रकृतिविकल्पः। इदानीं दर्शनावरणस्य वक्तव्य इत्यत आह—

उभयत्र*तत्–शक्ति–सद्भावात् ५'; =क्योंकिदोनों(भव्य-अभव्य)में उस(मनःपर्ययज्ञान,केवलज्ञान)की शक्तिकी विद्यमानताहै

न*शक्तिभाव-अभाव-अपेक्षया५'' भव्य-अभव्य-विकल्पः१'इति*उच्यते T;कुतः*तर्हि*व्यक्ति-सद्भाव-असद्भाव-अपेक्षया५''; =[उत्तर] शक्तिकी विद्यमानता और अविद्यमानताकी अपेक्षासे भव्य अभव्यका भेद नहीं है (पुनः प्रश्न) तो क्योंकर है ? उत्तर प्रगटताके होने और नहोनेकी विवक्षासे (भव्य अभव्यमें) भेद है अर्थात् जिन जीवोंके मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानप्रगट होजाय वे और जिनके प्रगट न होवै प्रगट न हो सकेवे अभव्यहै

सम्यग्दर्शनादिभिः३'''व्यक्तिः१''यस्य६' भविष्यति T =जिस(जीव) के सम्यग्दर्शन आदि सहित प्रगटता होगी

सः१' भव्यः१'; यस्य६' तु*न*भविष्यतिTसः१' अभव्यः१'=सो भव्य है और (=तु) जिस (आत्मा) के (व्यक्ति) न होयगी सो अभव्य है।

कनक–इतर–पाषाणवत् =जैसे (भव्य) सुवर्ण पाषाण सदृश और (अभव्य) अन्ध पाषाणवत् अर्थात् जैसे कनकपाषाण अथवा सुवर्णपाषाणको किसी कालमें अग्नि,यन्त्र लोखर इत्यादि परिपूर्ण सामग्री मिलनेपर उसमें से स्वच्छ सुवर्णन्यारा हो जाता है और किट्टिका तथा मैल पृथक् होजाता है तैसे जिस जीवके गुरु शास्त्र इत्यादिकका संयोग मिलनेपर अथवा और प्रकार से सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी प्रगटता होजावैगी सो भव्य है और जैसे अन्ध पाषाणमेंसे अग्नि यन्त्र लोखर इत्यादिक सामग्री मिलने पर भी सुवर्ण नहीं निकलता है तैसे ही गुरु आचार्य मुनि शास्त्र इत्यादिकके उपदेश अथवा भिन्न प्रकारसे तिस जीवको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकी व्यक्ति प्राप्त न हो सो अभव्य है।

आह T उक्त १' ज्ञानावरण–उत्तरप्रकृति–विकल्पः१'; =प्रश्नकरताहै कि ज्ञानावरणकी उत्तरप्रकृतिका भेद कहा गया है

इदानीम्*दर्शनावरणस्य६'''वक्तव्यः१' इति*अतः*आह =अब दर्शनावरणका (उत्तरप्रकृतिबन्धका भेद)कहे जाने योग्य है इसलिये [सूत्रमें] कहतेहैं कि

जोड़नेसे,पीछे ते प्रथम पुरुष एक वचन आत्मनेपद लट् वर्तमानकालद्योतक क्रियाका चिन्ह लगानेसे बनाहै जैसे चुद्+य=चु+य+ते=चोद्यते।

(१) सद्भावका अर्थ पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४०३में विद्यमानता का लिखा हुआ है। (२)इतर का अर्थ यहां पर अन्धका इसलिये लिया गयाहै क्योंकि

यदि ज्ञानावरणं पंचभेदं तत्प्रतिपत्तिरुच्यतामित्यत आह

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥ ६ ॥

यदि*ज्ञानावरणम् १।।। पंचभेदम् १।।। तत्-प्रतिपत्तिः १।। (१) उच्यताम् T इति*अतः*आह T =जो ज्ञानावरण [कर्म] पांच प्रकार है तो उस [ज्ञानावरण] का = निरूपण वा कथन किया जाय अथवा परिभाषण किया जाय इसलिये ऐसा कहते हैं कि

(२) मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥ ६ ॥

(१) यह शब्द वच् कहना-परिभाषण करना अदादि द्वितीयगणका द्विकर्मक परस्मैपदधातुसे इस प्रकार बना है कि व इसका उ मे पलट कर उच् हो जाता है पश्चात् य कर्मणि प्रयोगका प्रत्यय लगानेसे उच्य हो गया। पश्चात् अन्य पुरुष एकवचन आत्मनेपदी आज्ञाद्योतक (=लोट्) क्रियाका चिन्ह ताम् लगानेसे उच्य+ताम् हुआ। पुन., उच्यताम्=कहा जाय ऐसा हुआ।

(२) सभाष्यतत्वार्थधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणीतत्वार्थ टीकामें यह सूत्र नही है वरन् इस सूत्रके स्थानमे "मत्यादीनाम्' ऐसा सूत्र है और इस सूत्र को उन्होंने अपने यहांका नवमां सूत्र प्रथम अध्यायके (मतिश्रुताधिमन पर्यायकेवलानि ज्ञानम्) का सम्बन्ध लेकर ऐसे अर्थ किया है कि "ज्ञानावरणम् पञ्चविधम् भवति। मत्यादीनां ज्ञानानामावरणानि पञ्चविकल्पाश्चैकशः इति" सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १७५ ज्ञानावरणम् पञ्चविधम् भवति च" =ज्ञानावरण(जो प्रकृतिवन्धका प्रथम भेद है)पांच प्रकार होताहै और(=च) एकश *मत्यादीनाम्ज्ञानानाम्आवरणानि पञ्चविकल्पा·इति*=प्रत्येक वा एक २ (=एकश.)मति आदिक ज्ञानोंके आवरण अथवा ढकने पाँचप्रकारहै जैसे १. मतिज्ञानावरण २ श्रुतज्ञानावरण ३. अवधिज्ञानावरण ∴ मनःपर्ययज्ञानावरण ५ केवलज्ञानावरण अर्थात् उनके यहा 'मत्यादीनाम्' मे आदीनाम् शब्दको श्रुत-अवधि मन.पर्यय और केवलज्ञानोंका द्योतक माना है। हमारे यहाँ भी प्रथम अध्यायका नवमां सूत्र वही है जो उनके यहां है। मनःपर्यय शब्द के स्थानमे हमारे यहां मन.पर्यय ऐसा शब्द है। हमारे यहां भी इस सूत्र का वही अर्थ किया है जो उनके यहा अर्थात् ऐसा अर्थ किया है कि मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण मे पाँच भेद ज्ञानावरण प्रकृतिवन्ध के हैं परन्तु तत्त्वार्थ राजवार्तिक और तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मे इस "मत्यादीनाम्" सूत्रको इस कारण अस्वीकार किया है कि इन पांच ज्ञानोंका मत्यादीनाम् सूत्रके निर्देशमें पांच आवरण नहीं ठहरेंगे। केवल एक आवरण पाचों मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन.पर्ययज्ञान, और केवलज्ञानों का ठहरेगा।

=मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय-केवलानाम् ज्ञानावरणानि (=ज्ञानानामावरणानि)एते: ज्ञानावरणप्रकृतिबन्धस्य पंचभेदाः-भवन्ति

सूत्रार्थः-मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यय-केवलानाम् ज्ञानानाम् =मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ज्ञानोंके आवरणानि एते ज्ञानावरणप्रकृतिबन्धस्य पंचभेदाः भवन्ति । =आवरण अथवा ढकने ये ज्ञानावरण प्रकृतिबन्धके पांचभेद होते हैं अर्थात् मतिज्ञानावरण(मतिज्ञानको ढकनेवाला)श्रुतज्ञानावरण[जो श्रुतज्ञानका आच्छादकहै)अवधिज्ञानावरण(अवधिज्ञानका आवरक) मनः पर्ययज्ञानावरण (मनः पर्ययज्ञानका आवरण करने वाला) केवलज्ञानावरण (केवलज्ञानका आवरण करने वाला) ये सब ज्ञानावरण प्रकृतिबन्धके भेद हैं भावार्थ , आवरण नाम आड़का अथवा ढकने का है जैसे किसी मूर्तिपर कपड़ेसे आड़करी जाय तो उसका आकार नहीं दीखता है उसी प्रकार आत्मामें केवलज्ञान रूप होने की शक्ति है परन्तु इस

मत्यादीनामिति पाठो लघुत्वादितिचेन्न, प्रत्येकमभि संबंधार्थत्वात् । तेन पंच ज्ञानावरणानि सिद्धानिभवन्ति । तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ।४७७

मत्यादीनाम् इति पाठःलघुत्वात् इति चेत् न	=मत्यादीनाम् ऐसा पाठ छोटा होता ऐसा प्रश्न वा सदेह (=चेत्)है (उत्तर) नहीं होता
प्रत्येकम्	=(क्योंकि) प्रत्येक (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान) के
अभिसम्बन्ध-अर्थत्वात् । तेन	=सम्बन्धके लिये =अर्थ) ऐसा सूत्रहै । तिस,मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलाना(सूत्र)करि
पंच-ज्ञान-आवरणानि सिद्धानि भवन्ति ।	=पांचों ज्ञानों के ढकने या आवरण सिद्ध होते हैं (तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ४७७)

तत्त्वार्थराजवार्तिक में इसी "मत्यादीनामिति पाठोलघुत्वादिति चेन्नप्रत्येकमभिसम्बन्धार्थत्वात् 'वार्तिकको दूसरी वार्तिक नियतकर विशेष वर्णन वा भाष्य इसप्रकार कियाहै

स्यान्मतं मत्यादीनि ज्ञानानि उक्तानि तेषामिहादिशब्दोपलक्षितानां पाठोऽयुक्तो लघुत्वादिति ? तन्न किं कारणं ? प्रत्येकमभिसंबंधार्थं इह प्रतिपदं पाठ क्रियते । मतेरावरणं श्रुतस्यावरण मित्यादि । इतरथा हि मत्यादीनामित्युच्यमाने तेषामेकमावरणमिति संप्रत्ययः स्यात् पृष्ठ ३०१,३०२

स्यात् मतम् मत्यादीनि ज्ञानानि उक्तानि	=(ऐसा)अभिप्राय वा आशय =मत)हो कि (प्रथमअध्यायके नवमे सूत्रमें)कथित मत्यादिकज्ञान
तेषाम् इह आदिशब्द-उपलक्षितानाम् पाठ अपि उक्तः	=तिनज्ञानोंका इसस्थानमें(=इह)आदिशब्दकरिउपलक्षितवा संयुक्त कहा हुआ(=उक्त)पाठभी
लघुत्वात् इति तत् न किम् कारणम्	=छोटा होगा । सो (आदिशब्दकरि उपलक्षित पाठ ठीक) नहीं है क्या कारण भावार्थ
	मत्यादीनाम् ऐसा सूत्र कहकर लघु (पाठ) क्यों न किया सो नहीं क्योंकि (आवरण शब्दको)
प्रत्येकम् अभिसम्बन्ध-अर्थम् इह	=प्रत्येक (ज्ञान) को लगानेकेलिये इस स्थान (सूत्र) में
प्रतिपदम् पाठ क्रियते ।	=पदपदप्रति वा प्रत्येक शब्दश पर अर्थात् प्रत्येक ज्ञानका न्यारा न्यारा पाठ किया है जैसे
मतेः आवरणम् श्रुतस्य आवरणम्	=मतिका आवरण, श्रुतका आवरण,
इत्यादि इतरथा हि	=अवधिका आवरण, मनःपर्ययका आवरण, केवलकाआवरण क्योंकि (=हि) अन्य प्रकार
मत्यादीनां इतिउच्यमाने तेषां एक आवरणं इतिसंप्रत्ययःस्यात्	=मत्यादीनाम् ऐसे सूत्रके निर्देश किये जानेमें तिन मत्यादिकका एक आवरण प्रतीत होता

नकि पांच मतिज्ञानका आवरण, श्रुतज्ञानका आवरण, अवधिज्ञानका आवरण, मनःपर्ययज्ञानका आवरण, केवलज्ञानका आवरण प्रतीत होते

सकृदुपभुक्तान्नपरिणामरसरुधिरादिवत् ॥

आहोक्तो मूलप्रकृतिबन्धोऽष्टविधः । इदानीमुत्तरप्रकृतिबन्धो वक्तव्य इत्यत आह—

॥ पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

द्वितीयग्रहणमिह कर्तव्यं द्वितीय उत्तरप्रकृतिबन्ध एवं विकल्प इति ॥ न कर्तव्यं

सकृत्–उपभुक्त–अन्न–परिणाम–रस–रुधिर– =जैसे एकवारके खाये हुये अन्नके परिणमनरूप [पलटनेरूप] रष रुधिर

आदिवत्* =मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, शुक्र [=वीर्य] [हो जाते हैं]

आहा उक्तः[१/१] मूलप्रकृतिबन्धः[१/१] अष्ट–विधः[१/१] । =प्रश्न करता है कि मूलप्रकृतिबन्ध आठ प्रकार कहा गया है।

इदानीम्*उत्तर-प्रकृति-बन्धः[१/१]वक्तव्यः[१/१]इति*अतः*आहा=अब उत्तर प्रकृतिबन्ध अर्थात् प्रकृतिबन्धके भेद कहना चाहिये इसलिये कहते हैं कि

(१) पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

=[आद्यो मूलप्रकृतिबन्धोऽष्टविधो पुनरेकशः]पञ्चभेद. नवभेदः, द्विभेदः, अष्टाविंशतिभेदः, चतुर्भेदः, द्विचत्वारिंशद्भेदः द्विभेदःपञ्चभेदःयथाक्रमम्

सूत्रार्थः—आद्यः[१/१] मूलप्रकृतिबन्धः[१/१]अष्टविधः[१/१]= आदिका मूलप्रकृतिबन्ध आठ प्रकार है

पुनः*एकशः*पञ्चभेदः[१/१] नवभेदः[१/१] द्विभेदः[१/१] = फिर प्रत्येकके (=एकशः) वा एकएकके [=एकशः] पांचभेद, नौभेद, दोभेद,

अष्टाविंशतिभेदः[१/१] चतुर्भेदः[१/१] द्विचत्वारिंशद्भेदः[१/१] = अट्ठाईस भेद, चारभेद, व्यालीसभेद

द्वि–भेदः[१/१] पंच–भेदः[१/१] यथाक्रमम्* = दो भेद [और] पांचभेद क्रमानुसार हैं अर्थात् ज्ञानावरणके पांचभेद, दर्शनावरणके नौभेद, वेदनीयके दो भेद, मोहनीयके अट्ठाईस भेद, आयुके चार भेद, नामकर्मके बियालीस भेद, गोत्रकर्मके दो भेद, अन्तरायकर्मके पांच भेद हैं

द्वितीय–ग्रहणम्[१/१] इह* कर्तव्यम्[१/१] द्वितीय– = द्वितीय शब्दका आदान इस स्थानमें अर्थात् इस सूत्रमें करना चाहिये ॥

उत्तर–प्रकृति–बन्धः[१/१] एवम्*विकल्पः[१/१] इति* = क्योंकि दूसरा उत्तर–प्रकृतिबन्ध इस प्रकार भेद वाला है ॥

न* कर्तव्यम्[१/१], =(उत्तर) (इस सूत्रमें द्वितीय शब्दका ग्रहण) न करना चाहिये (क्योंकि)

न के अ को विकल्प करि(जी चाहै करो जी चाहै न करो) वृद्धिकर देते हैं, वृद्धि न करैं तो नम् + अय + ति = नमयति रूप है, वृद्धि करनेपर नाम् + अय + ति = नामयति है (१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमे एकसा है (२) एकश.–जिन शब्दों के अन्तमे 'शस्' प्रत्यय आता है वे अव्यय होते है

पारिशेष्यात्सिद्धेः ॥ आद्यो मूलः प्रकृतिबन्धोऽष्टविकल्प उक्तः । ततः पारिशेष्या-दयमुत्तरप्रकृतिविकल्पविधिर्भवति ॥ भेदशब्दः पञ्चादिभिर्यथाक्रममभिसम्बध्यते-पंचभेदं ज्ञानावरणीयं, नवभेदं दर्शनावरणीयं, द्विभेदं वेदनीयं, अष्टाविंशतिभेदं मोहनीय, चतुर्भेदमायुः, द्विचत्वारिंशद्भेदं नाम, द्विभेदं गोत्रं, पंचभेदोऽन्तराय इति ॥

पारिशेष्यात् ५''' सिद्धेः ५''; =अवशेषताके नियमसे वा शेषमात्र बच रहनेकी रीतिसे (द्वितीय शब्दका ग्रहण) सिद्ध है अर्थात् मूलप्रकृतिबन्ध, उत्तर प्रकृतिबन्ध जब दोही भेद हैं। और एक भेद (मूलप्रकृतिबन्ध) का कथन कर दिया तब स्वतः बिना ग्रहण किये हुये ही वा बिना कथन किये ही दूसरा भेद जाना जाता है। इसलिये सूत्रमें द्वितीय शब्द का आदान नहीं कियागया है।

आद्यः१'मूलः१'प्रकृतिबन्धः१'अष्टविकल्पः१'उक्तः;१'ततः*=आदिका मूलप्रकृतिबन्ध आठ प्रकार कहा गया है, तिस (निरूपण वा वर्णन) से

पारिशेष्यात्५''' अयम्१'उत्तर-प्रकृति-विकल्प-विधिः१' =अवशेषमात्र रही हुई यह उत्तर प्रकृति के भेदोंका क्रम अर्थात् आठ भेदोंके प्रभेद

भवति T;भेदशब्दः१' पञ्चादिभिः३''' यथाक्रमम्* =है(=भवति)। भेद शब्द पंच आदि (गणना) करि क्रमानुसार (चौथे सूत्रके ज्ञानावरण दर्शनावरण आदिक पर अर्थात् पहिलेको पहिला, दूसरेको दूसरा, तीसरेको तीसरा, चौथेको चौथा, पांचमेको पांचमा छटवेंको छट्वां सातवेंको सातवां आठवेंको आठवां)

अभिसम्बध्यते T पञ्चभेदम्१''' =जोड़ाजाता है, सम्बन्ध कियाजाता है अथवा मिलाया जाता है कि पांच प्रकार

ज्ञानावरणीयम्१''' ,नवभेदम्१''' दर्शनावरणीयम्१''', =ज्ञानावरणीय (कर्म) है। नौ प्रकार दर्शनावरणीय (कर्म) है।

द्विभेदम्१''' वेदनीयम्१''', अष्टाविंशतिभेदम्१'''मोहनीयम्१''', =दो प्रकार(साता असाता रूप)वेदनीय (कर्म)है। अट्ठाईस प्रकार मोहनीय(कर्म) है

चतुर्भेदम्१''' आयुः१''', द्विचत्वारिंशद्भेदम्१''' नाम१''', =चार प्रकार आयु (कर्म) है। ब्यालीस प्रकार नाम (कर्म) है

द्विभेदम्१'''गोत्रम्१''' पंचभेदः१'अन्तरायः१' इति* =दो प्रकार गोत्र (कर्म) है। पांच प्रकार अन्तराय (कर्म) है।

---

(१) आयुस् शब्द नपुंसकलिंगी है। नियम यह है कि शब्दके अन्त में जब एक व्यञ्जनसे अधिक हो तो प्रथम व्यञ्जनको रहने देते हैं और शेष व्यंजनों को गिरादेते हैं। जैसे मरुत् (पुंलिंग) वाच् (स्त्रीलिंग) आयुस् (नपुंसकलिंग) के प्रथमा विभक्ति बनानेमें स् जोड़ाजाता है इसलिये मरुत् साथ स् के और वाच साथ स् के आयुस् साथ स् के मरुत्स्-वाच्स्-आयुस्स् होजाते हैं। इन सबका स् गिरजाने से मरुत्, वाक् (च पलट जाता है क् में) और आयुस् रहजाते हैं। इसलिये आयुः शब्द प्रथमा विभक्ति-एकवचन-नपुंसक लिंगी हुआ॥

वेद्यत इति वा वेदनीयम्॥ मोहयति मुह्यतेऽनेनेति वा मोहनीयम् ॥

किया जाता है सो वेदनीय है

[१]वेद्यतेऽइति*वा*[२]वेदनीयम्[१।१।१] =अथवा[जिसकरि]वेदनाकी जाती है(=वेद्यते)अर्थात्‌जिससे अनभव सुख दुःखका

मोहयतिऽअनेन[१।३]वा* =जो मोहको उत्पन्न करती है, जो मूढ़ करती है, जो भुलाती है, अथवा जिसकारे [आत्मा]

मुह्यतेऽइति* [३]मोहनीयम्[१।१।१] =मोही जाती है, भुलाई जाती है, अथवा मूढ़ की जाती है सो मोहनीय है

धातु	गण	अर्थ	पद	प्रथम पुरुष एक वचन कर्तृ प्रधान	किस प्रकारसे बना है
(ग) विद्	छठवां	पाना [सकर्मक]	उभयपदी	ति (परस्मैपदका) ते(आत्मनेपदका)	अनुनासिक न्‌-वि और द के मध्यमे आता है पुन विकरण अ तथा ति अथवा ते लाकर विंदति, विन्दति और विंदते, विन्दते बना जिसका अर्थ पाता है
[घ] विद्	सातवाँ	जानना [सकर्मक]	आत्मनेपदी	ते (आत्मनेपदका चिन्ह है)	न विकरण मूलीय स्वर और अन्त के व्यञनके मध्यमें लाकर इस न का अ ते ङित्‌ संज्ञक प्रत्यय होनेसे जाता रहता है वि न्‌ द्‌ =विन त्‌ + ते = विन्त्‌ + ते = विन्त्ते रूप बन गया
[ङ] विद्	दसवां	कहना अनुभव करना	आत्मनेपदी	ते (आत्मनेपदका चिन्ह है)	दसवाँ गणका अय विकरण लगानेसे और विदको गुणकरनेसे वेद्‌ + अय + ते = वेदयते बना ।

(१) यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि 'विद्यत' का अर्थ वही नहीं है जो 'वेद्यते' का है क्योंकि 'विद्यते' चतुर्थ गणका विद्‌धातु है होता है परन्तु विद्‌धातुमे य कर्मणिप्रधान उसमे 'य' विकरण लगानेसे तथा ते चिन्ह आत्मनेपदोका जोडनेसे विद्यते बना है इसका अर्थ है का चिन्ह लानेसे और ते आत्मनेपदी कियाका प्रत्यय लगानेसे और विद्‌ धातुकी इ को गुण करनेसे बनता है। जैसे विद्‌ + य + ते = वेद्यते अर्थ है वेदा जाता है अर्थात्‌ (जिससे) सुख दुःखका अनुभव किया जाता है।(२)'वेदनीयम्‌' यह शब्द विद्‌ धातुमे अनीयर्‌ प्रत्यय लगानेसे और विद्‌ के इ को गुण करनेसे और नपुंसकलिंग एक वचनका म्‌ लानेसे बना है॥ जैसे विद्‌ + अनीयर्‌ + म्‌ = वेद्‌ + अनीय + म्‌ = वेदनीयम्‌ = जे वेदतीहै

(३) मोहनीयम्‌-यह शब्द मुह धातुमे अनीयर्‌ प्रत्यय लगानेसे मुह्‌ के उ की गुण(संज्ञा)करनेसे बना है तव्यत्तव्यानीयरः अष्टा॰३।१।९६॥ तव्यत्‌,तव्य अनीयर. (धातं..)अर्थ-धातुके पश्चात्‌ तव्यत्‌, तव्य, अनीयर्‌ प्रत्यय आते हैं। तव्यत्‌का त्‌ और अनीयर्‌ का र्‌ केवल उच्चारणके लिये हैं इसलिये तव्य-तव्य-अनीय ऐसे तीन प्रत्यय हुये। जैसे कृ + तव्यत्‌ = कर्तव्यम्‌ (= अवश्य किया जाना चाहिये) और कृ + तव्य = कर्तव्यम्‌, कृ + अनीयर्‌ = करणीयम्‌ (अवश्य किया जाय, किया जाना चाहिये) इसी प्रकार-

(क) विद्‌ + अनीयर्‌ = वेद + अनीय नपुंसकलिंग एकवचनका चिन्हम्‌लगानेसे वेदनीयम्‌ हुआ ।[जिससे सुख दुःखका अनुभव किया जाता है]

(ख) मुह्‌ अनीयर्‌ = मोह्‌ + अनीय नपुंसकलिंग एकवचनका चिन्ह म्‌ लगानेसे मोहनीयम्‌ हुआ। अर्थ-कर्मणिप्रधान और कर्तरिप्रधान दोनोंमे इन दोनों शब्दोंको आचार्योंने लिया है।जैसे-

(क) वेदनीयम्‌ = जो वेदती है [कर्तरिप्रधान हुई] जिस करि वेदना की जाय अथवा जिसकरि वेदा जाय [कर्मणिप्रधान हुई] [ख]मोहनीयम्‌ = जो मूढ करती है-जो भुलाती है। जो मोह लेती है [कर्तरिप्रधान हुई] जिसकरि मोही जाती है [आत्मा] जिसकरि भुलाई जाती है-जिस

एत्यनेन नारकादिभवमित्यायुः ॥ नमयत्यात्मानं नम्यतेऽनेनेति वा नाम ॥ उच्चैर्नीचैश्च गूयते शब्द्यत इति वा गोत्रम् ॥ दातृदेयादीनामन्तरं मध्यमेतीत्यन्तरायः ॥ एकेनात्मपरिणामेनादीयमानाः पुद्गला ज्ञानावरणाद्यनेकभेदं प्रतिपद्यन्ते

एति T अनेन३' नारकादि-भवम्२''' इति*आयु१;	=जिसकरि नारक आदि भवको वा जन्मको जाता है, प्राप्त करता है ऐसी आयु है।
(२)नमयति T आत्मानम्२'	=जो आत्माको नम्रकरती है(=नमयति), नमावती है (=नमयति)
नम्यते T अनेन३'''वा*	=अथवा जिसकरि(आत्मा)नम्र कीजाती है (=नम्यते) (आत्मा: नवाई जातीहै [=नम्यते] "जो आत्माका नाम करे" 'जाकरि नाम कीजिये" जयचन्द्रजी वचनिका से उद्धृत।
इति*नाम१'''उच्चैः*नीचैः*च*(१)गूयते T	=ऐसा नाम है जिससे ऊंचा वा नीचा [=च] कहाजाता है (=गूयते)
शब्द्यते T इति*वा*गोत्रम्१''';दातृ-देय-आदीनाम्६'	=अथवा प्रसिद्ध किया जाता है सो गोत्र है। दाता तथा देने योग्यवस्तुआदिक[=पात्र]के
अन्तरम्२। मध्यम२' एति T	=मध्य अन्तरको (भेद वा दूरी को) करता है अर्थात् विघ्न बाधाओं को करता है
इति* अन्तरायः१'; एकेन३' आत्म-परिणामेन३'	=ऐसा अन्तराय है। एक जीवके परिणाम अथवा भावकरि
आदीयमानाः१' पुद्गलाः१' अनेक-भेदम्२'	=ग्रहण कियेजे पुद्गल परमाणु (ते) अनेक भेदको
ज्ञानावरणादि १''' प्रतिपद्यते T	=ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय,नाम,गोत्र,अंतराय (रूपसे वेसेहैं।)प्राप्तहोतेहैं

करि मूढकी जाती है [आत्मा] यहां पर कर्मणिप्रधान हुई। मोहयति-यह शब्द मुह् दिवादि चतुर्थ गणके उभय [परस्मैपदी और आत्मनेपदी] धातुके आगे णिच् [=अय] प्रत्यय हेतु अर्थमें लानेसे और मुह्के स्वरको गुण करनेसे और प्रथम पुरुष एक वचन कर्तप्रधान लट् वर्तमानकाल द्योतक क्रियाका 'ति' चिन्ह लगानेसे इस प्रकार बना है कि मुह+णिच्+ति=मुह्+अय+ति=मोह्+अय+ति=मोहयति।[५] मुह्-मुह्यते पूर्वोक्त चतुर्थगणके धातुमें य लगानेसे और प्रथमपुरुष एकवचन कर्मणिप्रधान लट् वर्तमानकाल द्योतक क्रियाका ते चिन्ह लगानेसे इस प्रकार बना है कि मुह्+य+ते मुह्यते [जिसकरि आत्मा मूढकी जाती है वा भुलाई जाती है] परन्तु ध्यान रहे कि मुह् धातुका य चिन्ह लगाकर चौथे गणमें मुह्यति बनाते हैं अर्थ-बेसुध होता है बेचित्त होता है। यह भी ध्यान रहे कि मोहयते भी आत्मनेपदमें होता है, मेरी समझमें मोहयति और मोहयते दोनोंके अर्थमें यह अन्तर है कि जो दूसरेको जैसे अन्य जीव अथवा अन्य आत्माको मोह उपजावै वा भुलावै सो मोहयति कहा जाता है इसीलिये ग्रं.आचार्य ने यहां पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें मोहयति लाये हैं और जो अपने को मोह उपजावै तब मोहयते ऐसा आत्मने पदमें लाते हैं यदि उनके पहिले परि उपसर्ग लावैं, तो परिमोहयति और परिमोहयते ऐसे रूप बनेंगे। परिका अर्थ बहुत वा अधिक का है।

[१] न से गू यहा पर] भ्वादि प्रथम गणका आत्मनेपदी धातु है। कर्मणि प्रयोग में उकारदीर्घ हो जाता है जैसे गू+य+ते= गूयते=कहाजाता है

[२]नमति-नमयति-नम् भ्वादि प्रथमगण परस्मैपद धातु प्रणाम करने और शब्दकरने [प्रह्वे शब्दे च] अर्थ में आता है नम् धातु में अय् प्रत्यय लगानेसे

तत्राद्यस्य प्रकृतिवन्धस्य भेदप्रदर्शनार्थमाह—

॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः॥४॥

नहीं ऐसे उपशान्त कषाय,कषायस्थान जिनके क्षीण होगये है ऐसे क्षीणकषाय, सयोगकेवलीके एक समयका वन्ध, स्थितिका कारण नहीं अर्थात् जिससमय वन्ध हो उसी समय झड़जावै और "य=घ" अयोगकेवलीके चारों वन्ध (प्रकृति–प्रदेश स्थिति–अनुभाग) के कारण योग और कषाय ये दोनों ही नहीं हैं ।

तत्र* आद्यस्य६' प्रकृतिवन्धस्य६' भेद-प्रदर्शन-अर्थम्१''' आह१'=तहां आदिके-प्रकृतिवन्ध के भेद प्रगटकरने के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥ ४ ॥

=आद्य (प्रकृतिवन्धः) ज्ञानावरण–दर्शनावरण–वेदनीय-मोहनीय-आयुः-नाम–गोत्र–अन्तरायाः (अष्टविधयः)

सूत्रार्थः—आद्यः१' प्रकृतिवन्धः१' ज्ञानावरण-दर्शनावरण-- =आदिका प्रकृतिवन्ध ज्ञानावरण–दर्शनावरण–
वेदनीय-मोहनीय-आयुः-नाम-गोत्र-अन्तरायाः१' =वेदनीय–मोहनीय--आयुः–नाम–गोत्र-अन्तराय
अष्टविधयः१' =आठ प्रकार है अर्थात्–(१) ज्ञानको आच्छादन करनेवाला वा ढकनेवाला सो ज्ञानावरण है (२)पदार्थके सामान्य अवलोकनको आच्छादन वा ढकनेवाला दर्शनावरण है (३) वेदना वा सुख दुःख रूप अनुभव करानेवाली वेदनीय है (४) जो मोहित करती है अथवा जिसकरि आत्मा मोहको प्राप्त होता है सो मोहनीय है । (५) जिसकरि (नारकादिक के) जन्म को प्राप्त होता है वह आयुः है (६) अनेक प्रकार उत्पत्तिस्थानोमें नारकादिक पर्यायोंकरि आत्माको नाम धरावै है वा प्रसिद्ध करताहै सो नाम है (७)ऊंचापन तथा नीचापन प्राप्तकरावे वह गोत्र है(८)दातार,देनेयोग वस्तु,याचकके मध्य विघ्न डाले बाधाकरै सोअन्तराय है।

'मे है ॥ गोम्मटसार मे कुणदि के स्थान मे होति [- भवन्ति] है दोनों पाठ ठीक हैं क्योंकि पयडि पएसा और ठिदिअणुभागा के रूप प्राकृत मे प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों के एक है इसलिये उक्त दोनों वाक्य जब द्वितीया विभक्ति मे है तब करोति के साथ अन्वय होजाता है और जब प्रथमा विभक्ति में है तब भवन्ति के साथ अन्वय हो जाता है । दो हस्त लिखित प्रतियोंमे कुणदि शब्द है पर तीसरी हस्त लिखित प्रतिमे होति शब्द है । गोम्मटसार मे ' पएसा शब्द के स्थानमे पदेसा शब्द है । दोनों को संस्कृत छाया प्रदेशाः है

श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमे तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीकामे " आयुः " के स्थानमे आयुष्क शब्द है । आयुः और आयुष्क मे अर्थ भेद नही है ॥ अर्थात् स्व-अर्थ में [=अपनेअर्थ मे आयुस् शब्दमें] कन् [=क] प्रत्यय लगाकर आयुष्क शब्द बनाया है सूत्रका शेष पाठ दोनों आम्नायोंमे एकसा है और अर्थ भी एक है ॥ कन् प्रत्यय न लाकर सूत्र लघु होना ही अच्छा है ॥

आद्यः प्रकृतिबन्धो ज्ञानावरणाद्यष्टविकल्पो वेदितव्यः॥ आवृणोत्याव्रियतेऽनेनेति वा आ-
वरणम् । तत्प्रत्येकमभिसम्बध्यते—ज्ञानावरणं, दर्शनावरण मिति ॥ वेदयति

वृत्त्यनुवादः—आद्यः१' प्रकृतिबन्धः१' ज्ञानावरणादि—अष्ट—=आदिका वा पहिला प्रकृतिबन्ध ज्ञानावरणादिक आठ
विकल्पः१' वेदितव्यः १'(१)आवृणोति T अनेन१' वा*=प्रकार जानना चाहिये । जो आवरण वा आच्छादन करताहै, अथवा जिसकरि
आव्रियते T इति*आवरणम्१''' ; तत्१''' =आवरण वा आच्छादन किया जाता है[=आव्रियते]ऐसा आवरण है। वह(आवरण) प्र-
त्येकम्१'''[२)अभिसम्बध्यतेTइति*ज्ञानावरणम्१''' =पृथक्पृथक् (ज्ञानतथादर्शन) को लगाया जाताहै वा जोड़ा जाता है ऐसे ज्ञानावरण
दर्शनावरणम् १''' ॥ (३) वेदयति T =दर्शनावरण हुये । जो वेदती है अर्थात् जो वेदना वा सुख दुःखका अनुभव कराती है

(१) यह शब्द वृ (आच्छादन करना पकाना) स्वादि पांचमां गणका उभय (परस्मैपदी और आत्मनेपदी) सकर्मक धातु है । पांचमें गणके धातुमें 'नु' विकरण लगाया जाता है इस लिये वृ + नु हुआ, न् उसी शब्दमें यदि ऋ–र् अथवा ष् के पश्चात् आवे तो ण् में पलट जाता है और पित्संज्ञक प्रत्ययके पहिले अंगका अन्तिक स्वर और उपान्तिक ह्रस्वके गुणका आदेश हो जाता है इसलिये वृणो हुआ 'ति' पित्संज्ञक प्रथम पुरुष एक वचन वर्तमान कालकी क्रियाका चिन्ह है ॥ अतः वृणोति हुआ । आ अव्ययका अर्थ यहां पर असर्व वा थोड़े का है, इसलिये आवृणोति बन गया । भावार्थ आत्माके ज्ञानको सर्वथा नहीं ढंकता है एक देश ढंकता है ।

(२) बन्ध् क्र्यादि नवमें गणका परस्मैपदी सकर्मक धातु है । इस गणके धातुओंका उपान्तिक (एक छोड़कर अन्तका) न् गिरजाता है इसलिये बन्ध् = बध् कर्मणि प्रधानका य जोड़कर प्रथम पुरुष एक वचन वर्तमानकाल क्रियाका 'ते लगानेसे बध्यते बना. पश्चात् अभि और सम् उपसर्गोंके लगानेसे अभिसम्बध्यते धातु रूप बना । (३) यह शब्द विदु धातुके पश्चात् णिच् (=इ) प्रत्यय हेतु अर्थमें लगानेसे और विदुके स्वरको गुण करनेसे तथा प्रथम पुरुष एक वचन कर्त प्रधान लट् वर्तमान कालकी द्योतक क्रियाका 'ति' चिन्ह लगानेसे इस प्रकार बना है कि-विदु + णिच् = वेदु + इ = वेदु + ए = वेदु + अय अब पूर्वोक्त "ति" जोड़ दो = वेदयति = अनुभव कराता है बन गया, परन्तु ध्यान रहेकि वेदयते जोविदुका दशवां गणमें रूप है उस का अर्थ = अनुभव करता है ऐसा है ।

धातु	गण	अर्थ	पद	प्रथम पुरुष एक वचन कर्तृप्रधान	किस प्रकार से बना
(क) विदु	दूसरा	जानना अनुभवकरना	परस्मै	लट् वर्तमानकाल द्योतक क्रियाका चिन्ह ति	()ति पित् संज्ञक है ∴ विद्के स्वरका गुणहोकरऔरद्कात् होकरवेत्तिरूपबना ()इस विद्में अ परोक्षावृत्ति लिट्का अ(प्रथम पु० वर्त०)जोड़नेसे विद्मो बना
(ख) विद्	चौथा	होना(अकर्मक)	आत्मने	ते	()इस चौथे गणके 'धातुमें य विकरण जोड़कर ते लगानेसे विद् + य + ते = विद्यते

यथा-अजागोमहिष्यादिक्षीराणां माधुर्यस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः। तथा ज्ञानावरणादीनामर्थानवग-मादिस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः। तद्रसविशेषोऽनुभवः। यथा-अजागोमहिष्यादिक्षीराणां तीव्रमंदा-दिभावेनरसविशेषः। तथा कर्मपुद्गलानां स्वगतसामर्थ्यविशेषोऽनुभवः॥ इयत्तावधारणं प्रदेशः।

उक्त आठ प्रकारकी कर्म प्रकृति जो आत्माके प्रदेशोंसे वंध रूप हुई है वे जितने काल तक रहेगी वा जितने कालतक अपने स्वभावका नहीं छोडेगीं, उसको स्थिति कहते हैं

यथा* अजा-गो-महिषी-आदि-क्षीराणाम्[६/३] =जैसे बकरी छेरी गाय, भैंस (=महिषा आदिकके दूधके

माधुर्य-स्वभावात्[५/१] अप्रच्युतिः[१/१] स्थितिः[१/१]; तथा* =मीठे स्वभावसे क्षीण न होना (=अप्रच्युति) स्थिति है तैसे

ज्ञानावरणादीनाम्[६/३] अर्थ-अन्-अवगमादि-स्वभावात्[५/१] =ज्ञानावरणादिकनिके पदार्थका न जनने देना आदिक स्वभावसे [जब तक]

अप्रच्युतिः[१/१] स्थितिः[१/१]; =न छूटना सो स्थिति है। संक्षेपतः कर्म (अपने स्वभावको लिये हुये) जितने कालतक आत्मासे जुदा न हों वह स्थिति वन्ध है।

तद्-रस-विशेषः[१/१] अनुभवः[१/१]; =तिस(कर्म)केरसका(तीव्र-मन्द मध्यम)विशेषसे अनुभाग है

यथा*अजा-गो-महिषी-आदि-क्षीराणाम्[६/३]; =जैसे बकरीगाय भैंस(=महिषी) आदिक दुग्धका

तीव्र-मन्दादिभावेन[३/१] रस-विशेषः[१/१]; =तीखा धीमादिक स्वरूप करि(=भावेन) रस (स्वाद का विशेष है।

तथा*कर्मपुद्गलानाम्[६/३] स्वगत-सामर्थ्य-विशेषः[१/१] =तैसे कर्मके (उत्पन्न होने) योग्यपुद्गलोंकी अपने विषैं प्राप्त हुई शक्तिकी विशेष सो

अनुभवः[१/१]; =अनुभव वा अनुभाग है।

(१)इयत्ता-अवधारणम्[१/१] प्रदेशः[१/१]। =गिनती(=इयत्ता) वा संख्या[=इयत्ता]का निश्चयकरना सो =प्रदेश है(कि इतने है)अर्थात् परमाणुओंकी गिनतीरूप अवधारण वा निश्चयसो प्रदेश है

(१)"इयत्तावधारणंप्रदेशः॥७॥" "कर्मभाव परिणत पुद्गल स्कन्धानां परमाणुपरिच्छेदेनावधारणं प्रदेश इति व्ययदिश्यते। तत्त्वार्थराज-वार्तिक पृष्ठ २९९। पूज्यपाद स्वामीके उपर्युक्त दोनों वाक्योंमे से पहिलेको तत्त्वार्थराजवार्तिकके कर्ताने सातवां वार्तिक शब्दशः माना है और दूसरेको सातवी वार्तिककी संस्कृत व्याख्याके रूपमे शब्दशः दिया हैं॥ इति व्ययदिश्यते (=ऐसा विशेषतासे उपदेश दिया गया है) अधिक वाक्य है। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें "इयत्तावधारणं प्रदेश' है उक्त दोनोंवाक्योंका प०जयचन्द्रजीने अपनी वचनिकामेंनिम्न प्रकारक्रमसे अनुवाद किया है

इयत्तावधारण प्रदेश. (=इयत्ता-अवधारणम् प्रदेश.) "बहुरि परमाणुनिका गणतिरूप अवधारण जो पते हैं सो प्रदेश है,

कर्मभाव-परिणत-पुद्गल-स्कन्धानाम् =जो पुद्गल परमाणुके स्कन्ध कर्म भावकूं परिणये

परमाणु-परिच्छेदेन-अवधारणम् प्रदेशः =तिनका गणनारूप परिमाण यामे करिये है सोप्रदेश हैं। तिनका = परिमाणुनिका

कर्मभावपरिणतपुद्गलस्कन्धानां परमाणुपरिच्छेदेनावधारणं प्रदेशः ॥ विधिशब्दः प्रकारवचनः। त एते प्रकृत्यादयश्चत्वारस्तस्य बन्धस्य प्रकाराः ॥ तत्र योगनिमित्तौ प्रकृतिप्रदेशौ कषाय-निमित्तौ स्थित्यनुभवौ। तत्प्रकर्षाप्रकर्षभेदात्तद्बन्धविचित्रभावः । तथा चोक्तम्–जोगा पयडि पएसा ठिदिअणुभागा कसायदो कुणदि । अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधठिदिकारणं णत्थि॥१॥

कर्म-भाव-परिणत-पुद्गल-स्कन्धानाम्[६] परमाणु-परिच्छेदेन[३] अवधारणम्[१] प्रदेशः[१]

विधि-शब्दः[१] प्रकार-वचनः[१]; ते[१] एते[१] प्रकृति-आदयः[१] चत्वारः[१] तस्य[६] बन्धस्य[६] प्रकाराः[१]; तत्र* योग-निमित्तौ[१] प्रकृति-प्रदेशौ[१] कषाय-निमित्तौ[१] स्थिति-अनुभवौ[१]; तत्-प्रकर्ष-अप्रकर्ष-भेदात्[५] तद्-बन्ध-विचित्रभावः[१]; तथा* च* उक्तम्[१]

जोगा[५] पयडिपएसा[१] (योगात्[५] प्रकृतिप्रदेशौ[१])
ठिदिअणुभागा[१] कसायदो* कुणदि[T]
(स्थित्यनुभागौ[१] कषायतः* करोति[T])
अपरिणदुच्छिण्णेसु[७] (अपरिणतोच्छिन्नेषु[७])

य* बन्धठिदि कारणं[१] णत्थि [T]
च* बन्ध-स्थितिकारणम्[१] न* अस्ति [T]

=कर्मस्वरूपको परिणये पुद्गलस्कन्धोंके परमाणुओंको
=गणनाकरि (=परिच्छेदेन) निश्चय करना (=अवधारण) सो प्रदेश है ।
अर्थात् परमाणुओंके वे स्कन्ध जो ज्ञानावरणादि कर्म स्वरूपमें परिणमन वा परिवर्तन
कराये हैं उनपरमाणुओंके स्कन्धोंकी गणना जिसमें की जावे वह प्रदेश है ॥
=इस सूत्रमें) विधिशब्द प्रकारवाची है । ते इतने प्रकृति–स्थिति–अनुभव–प्रदेश
=चार तिस बन्धके विकल्प वा भेद हैं । तहां (मनो, वचन, काय) योगके
=कारण प्रकृति (बन्ध) और प्रदेश (बन्ध) हैं । कषाय के निमित्त स्थिति (बन्ध)
=अनुभाग(बन्ध)हैं । तिन(योग कषाय)के हीनादिक भेदसे उस बन्धका
=विचित्रस्वरूप है अथवा नाना प्रकारका रूपहै । उसी प्रकार कथन भी है कि
=योगसे प्रकृति (बन्ध) और प्रदेश(बन्ध) को
=कषाय से स्थिति (बन्ध) अनुभाग(बन्ध) को जीव करता है।
=कषायके अपशान्त होने पर(=अपरिणतेषु)तथा कषायके निर्वाण होनेपर (=उच्छिन्नेषु)
अथवा कषायके क्षीण होनेपर (=उच्छिन्नेषु)
=बन्ध ,स्थितिबन्धका कारण नहीं है,और(=य=च)(बन्ध भी नहीं है)भावार्थ जिस के ज-
=घन्यएक समयतथाउत्कृष्ट अन्त मुहूर्त काल प्रमाण कषायस्थान अपरणित अर्थात्उदय रूप

(१) प्राकृत [भाषा] में विसर्ग चतुर्थी विभक्ति [जिसके स्थानमें छठी विभक्ति का प्रयोग है] और दो वचन नहीं होते हैं। दो वचनके स्थानमें बहु वचनका प्रयोग होता है । अतः 'पयदि पएसा, और 'ठिदिअणुभागा बहु वचनमें हैं परन्तु संस्कृत में प्रकृति प्रदेशौ औरस्थित्यनुभागौ दो वचन

आह किमयं बन्ध एकरूप एव, आहोस्वित्प्रकारा अप्यस्य सन्तीत्यत इदमुच्यते —

॥ प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥

[ख] आत्मा बन्धरूप आपही परिणमें है तिससे बन्धको कर्त्ता कहिये। यहां कर्त्तसाधन है।
[ग] पहिले बन्धकी अपेक्षासे आत्माबन्धकरि नवीन बन्ध करे है तिससे बन्ध करणसाधन है
[घ] बहुरि बन्धन रूप क्रिया सोही भाव ऐसे क्रिया रूपभी बन्ध है यहां भाव साधन है।

आहTकिम्*अयम्$^{1}_{1}$।वन्धः$^{1}_{1}$।एकरूपः$^{1}_{1}$।एव*आहोस्वित* =वह प्रश्न करता है कि यह बन्ध एकरूपही है।?अथवा [=आहोस्वित्] प्रकाराः$^{1}_{3}$।अपि*अस्य$^{6}_{1}$।सन्तिTइतिअतः*इदम्$^{1}_{1}$।।उच्यतेT=इसके भेद[=प्रकाराः] भी हैं। इसलिये यह [अग्रिमसूत्र] कहा जात है कि

प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः ==प्रकृति-स्थिति अनुभव-प्रदेशाःतद् (बन्ध य) विधयः॥३॥

=प्रकृतिबन्ध-स्थितिबन्ध-अनुभवबन्ध-प्रदेशबन्धःतद्(बन्धस्य) विधयःभवन्ति ॥

सूत्रार्थः—प्रकृतिबन्धः$^{1}_{1}$।स्थितिबन्धः$^{1}_{1}$।अनुभवबन्धः$^{1}_{1}$। प्रदेशबन्धः$^{1}_{1}$।तद्-बन्धस्य$^{6}_{1}$।भेदाः$^{1}_{3}$।भवतिT =प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभवबन्ध प्रदेशबन्ध-उसबन्धके भेद हैं अर्थात् कर्माण वर्गनाओंमें आठ प्रकार (ज्ञानके ढकने वाले, दर्शनके आच्छादन करने वाले, सुख दु:खका अनुभव करने वाले, मोह उत्पन्न करनेवाले, शरीरमें कालकी मर्यादा किये हुये आत्माको अटकानेके, आत्माके लिये नाना प्रकारके शरीर सांगोपांग आदि रचनेके, जीवको ऊंच नीच कुलमें उत्पन्न करनेके आत्माकेदान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्यमेंबाधा डालने) के स्वभावका रसका पडना सो प्रकृति बंध हैं। कर्म (अपने स्वभाव को छोड़कर) जितने कालतक आत्मासे भिन्न न हो सो स्थिति बन्ध है। कर्मों में तीव्र, मध्यम, मंद, रस (फल) देने की शक्ति होनेको अनुभव बन्ध अथवा अनुभाव बन्ध वा अनुभाग बन्ध कहते हैं। आठ प्रकारके कर्मों का आत्माके सर्व प्रदेशोंमें एक क्षेत्रमें आत्मा के साथ अवगाह करि स्थिर रूपसे रहते हुए नीर क्षीरवत् संबन्धका होना सो प्रदेश बन्ध है।

[१] हमारी आम्नायमे सूत्रका कही अनुभव और कही अनुभाग पाठ है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमे तथा भाष्यानुसारणी तत्त्वार्थटीकामें अनुभाव पाठ है और उक्तदोनों भाष्योंमें विपाकोविपाकोनुभाव.)नुभावःक्रमसे (हमारे यहाँके २१वां सूत्रका पाठ है॥अर्थ एक है॥

प्रकृतिः स्वभावः। निम्बस्य का प्रकृतिः? तिक्तता। गुडस्य का प्रकृतिः? मधुरता। तथा ज्ञानावरणस्य का प्रकृतिः?। अर्थानवगमः। दर्शनावरणस्य का प्रकृतिः? अर्थानालोच (क) नम्॥ वेद्यस्यसदसल्लक्षणस्य सुखदुःखसंवेदनम्॥ दर्शनमोहस्यतत्त्वार्थाश्रद्धानम्॥ चारित्रमोहस्यासंयमः॥ आयुषो भवधारणम्॥ नाम्नो नारकादिनामकरणम्॥गोत्रस्योच्चैर्नीचैः स्थानसंशब्दनम्॥अन्तरायस्य दानादि विघ्नकरणम्॥ तदेवं लक्षणं कार्यम्—प्रक्रियते प्रभवत्यस्या इति प्रकृतिः॥ तत्स्वभावादप्रच्युतिःस्थितिः।

वृत्यानुवादः—प्रकृतिः१/१ स्वभावः१/१, निम्बस्य६/१	=प्रकृति है सो बान वा शील वा लक्षण [=स्वभाव] है, नीमका
का१/१ प्रकृतिः१/१ ? तिक्तता१/१ गुडस्य६/१ का१/१	=क्या स्वभाव है ? कड़वापन वा कटुकता, गुड़का क्या
प्रकृतिः१/१ ? मधुरता१/१, तथा*ज्ञान-आवरणस्य६/१	=स्वभावहै, मीठापन, मिठास, मिष्टता, वैसे ही ज्ञानावरण (कर्म) का
का१/१ प्रकृतिः१/१ ? अर्थ-अन्-अवगमः१/१ ;	=क्या स्वभाव है। पदार्थ वा वस्तुका न जानने देना है।
दर्शनावरणस्य६/१ का१/१ प्रकृतिः१/१ ? अर्थ-अन्-	=दर्शनावरण (कर्म) की क्या बान है अथवा क्या लक्षण है। पदार्थ का न
आलोच (क) नम्१/१;	=देखनाहै अर्थात् वस्तुके ज्ञानके सामान्यअवलोकन रूप अंशको अच्छादन करदेनेका है।
वेद्यस्य६/१ सत्-असत्-लक्षणस्य६/१	=वेदनीयका प्रशस्त(सत्=सराहेनेयोग्य)अप्रशस्त (असत्=असराहनेयोग्य) स्वभाव(=लक्षण)
सुखदुःखसंवेदनम्१/१,	=सुख दुःख रूप अनुभव होना (=संवेदन) है।
दर्शन-मोहस्य६/१ तत्त्वार्थ-अश्रद्धानम्१/१ ;	=दर्शनमोहका (लक्षण) तत्त्वार्थका अविश्वासहै अथवा अतत्त्वार्थका विश्वास है।
चारित्रमोहस्य६/१ असंयमः१/१; आयुषः६/१ भवधारणम्१/१;	=चारित्र मोहका (लक्षण) संयम रूप न होने देनाहै। आयुका(लक्षण)भवमेंस्थिर करनेकाहै।
नाम्नः६/१ नारक-आदि-नाम-करणम्१/१; गोत्रस्य६/१	=नामकी (प्रकृति)नारकादिक नामका कारण[=करण]है वा हेतु है। गोत्रका (लक्षण)
उच्चैः*नीचैः*स्थान-संशब्दनम्१/१; अन्तरायस्य६/१	=ऊंचे नीचे स्थानके कथन का है। अन्तरायका (लक्षण)
दान-आदि-विघ्नकरणम्१/१, तद्-एवम्*लक्षणम्१/१	=दान आदिकमें बाधा करनेका है, उस प्रकृति का इस प्रकार लक्षण हुआकि
कार्यम्१/१, प्रक्रियते।प्रभवति। अस्याः५/१	=जिससे[=अस्याः]कार्य प्रकर्षकरि किया जाता है,जिससे[=अस्याः५/१]कार्य प्रगट होता है
इति*प्रकृतिः१/१, तत्-स्वभावात्५/१, अप्रच्युतिः१/१ स्थितिः१/१;	=ऐसी प्रकृति है। उस स्वभावसे(जब तक)छूटे नहीं वा चाए नहीं सो स्थिति है अर्थात्

तेनआत्मगुणोऽदृष्टो निराकृतो भवति तस्य संसारहेतुत्वानुपपत्तेः॥आदत्त इति हेतुहेतुमद्भाव-ख्यापनार्थम् । अतो मिथ्यादर्शनाद्यावेशादार्द्रीकृतस्यात्मनः सर्वतो योगविशेषात्तेषां सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहिनामनन्तानन्तप्रदेशानां पुद्गलानां कर्मभावयोग्यानाम्॥

तेन ३।।।	=तिस(कर्मके पुद्गल स्वरूप मय होने अथवा कर्मको पुद्गल परमाणु का स्कन्ध होने) से
आत्म-गुणः१।१ अदृष्टः१।१ निराकृतः१।१ भवति	=आत्माका अदृष्ट गुण (कर्मको मानने का सिद्धान्त) अपाकृत अथवा दूर होता है।
तस्य६।१ संसार-हेतुत्व-	=क्योंकि तिस (कर्म) के (यदि कर्म आत्माका गुण होय तो) संसारके कारणपनाका
अनुपपत्तेः५।१,	=साधन(=उपपत्ति) नहीं(=अन्) हो सकता है भावार्थ सूत्रमें पुद्गलशब्द इसलिये लाये हैं कि कर्म पुद्गल स्वरूपही हैं वा पुद्गल परमाणुका स्कन्धही है। कर्मको पुद्गलका स्कन्ध होनेसे वैशेषिक मती आदिकके इस सिद्धान्तका निराकरण होता है कि कर्म आत्माका अदृष्टगुण है और कर्मको यदि आत्माका अदृष्टगुण माने तो कर्म संसारका हेतु नहीं होता है। कर्म पुद्गलमयी है आत्माका गुण नहीं है इसलिये इस सिद्धान्तकी पुष्टि होता है कि कर्म संसारका कारण है
[१]आदत्ते(वाक्यम्)१।१ इति*हेतु-[२]हेतुमत्-	=आदत्ते ऐसा (वाक्य) हेतुके और हेतुमानके
भाव-ख्यापन-अर्थम्१।१	=भाव (=कार्यके) प्रगट करनेके लिये है अर्थात् मिथ्यादर्श-अविरति-प्रमाद-कषाय-योग ये हेतु हैं और हेतुमान अथवा कार्य (पुद्गल कर्मका) बन्ध है।
अतः*मिथ्यादर्शनादि-आवेशात्५।१	=इसलिये (ऐसा अर्थ सिद्ध होता है कि) मिथ्यादर्शन आदि के आश्रयसे
आर्द्रीकृतस्य६।१ आत्मनः६।१	=गीलाभया (=आर्द्रीकृत) वा सीले हुए (=आर्द्रीकृत) आत्माके
सर्वतः*योग-विशेषात्५।१ तेषाम्६।३ सूक्ष्म-	=सब ओरसे अथवा सब जगसे योगके विशेषसे तिन सूक्ष्म
एक-क्षेत्र-अवगाहिनाम्६।३ अनन्तानन्त-	=एक क्षेत्रमें स्थिति करनेवाले(=अवगाहिनाम्] अथवा रहनेवाले[=अवगाहिनाम्]अनन्तानन्त
प्रदेशानाम्६।३ पुद्गलानाम्६।३ कर्मभावयोग्यानाम्६।३	=कर्म होने [=भाव] योग्य पुद्गलके प्रदेशोंका

[१] ''आदत्ते'' का यहां पर कर्त्ताकी भांति प्रयोग हुआ है और वाक्यम् वा वचनम् इसके पश्चात् वाक्यशेष है और ख्यापनार्थम् वाक्य नपुंसक-लिंगमें है इसलिये आदत्तेका लिंगभी नपुंसक है॥ [२] हेतुमत् = [हेतुः अस्ति अस्य] हेतुवाला, कार्य [पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ४५१]

अविभागेनोपश्लेषो वन्ध इत्याख्यायते ॥ यथा भाजनविशेषे क्षिप्तानां विविधरसबीजपुष्पफलानां मदिराभावेन परिणामस्तथा पुद्गलानामप्यात्मनि स्थितानां योगकषायवशात्कर्मभावेन परिणामो वेदितव्यः ॥ सवचनमन्यनिवृत्त्यर्थम् । स एष वन्धो नान्योऽस्तीति । तेन गुणगुणिवन्धो निवर्तितो भवति ॥ कर्मादिसाधनो वन्धशब्दो व्याख्येयः ॥

अविभागेन उपश्लेषः वन्धः इति *	=विभाग रहित परस्परमिलना (=उपश्लेषः)(सो) वन्ध है ऐसा
(१) आख्यायतेT। यथा-भाजन-विशेषे-	=प्रसिद्ध है । जैसे वासन विशेष (अर्थात् भाजनके विशेष जे हांडी आदिक) में
क्षिप्तानाम् विविधरस-बीज-पुष्प-फलानाम्	=क्षेपेहुए नाना प्रकार (=विविध) के रस वा द्रवंवस्तु, बीज (=बिया)फूल फलों के
मदिरा-भावेन परिणामः तथा * आत्मनि अपि *	=मदिरा स्वभावकरि (=भावेन) पलटना होता है तैसे आत्मामें भी
स्थितानाम् पुद्गलानाम् योगकषाय-वशात्	=टिकेहुये पुद्गलोंके योगकषायके आश्रय वा बलसे
कर्मभावेन परिणामः वेदितव्यः; (२) सवचनम्	=कर्मरूपकरि (=भावेन) परिणमन जानना योग्य है। (सूत्रमें) 'स' का कथन(=वचन)
अन्य-निवृत्ति-अर्थम्; सः एषः वन्धः	=अन्यके निराकरण वा निवारण के लिये है सो यह वन्ध है ।
न * अन्यः अस्ति T इति*; तेन गुणगुणिवन्धः	=दूसरा वन्ध नहीं है (तिस वचन वा कथन) करि गुण और गुणीका वन्ध
निवर्तितः भवति T ।	=निराकृत होता है अर्थात् गुण गुणीके वन्ध होताहै सो वंध इस सूत्रमें न जानना।
कर्म-आदि-साधनः	=कर्म आदिक है साधन जिसका ऐसा अथवा कर्म आदिक साधनवाला
वन्ध-शब्दः व्याख्येयः	=वन्ध शब्द व्याख्यान योग्य है अर्थात् वन्ध शब्द है सो कर्म साधन है, कर्तृ साधन है, करणसाधन है भावसाधन भी है जिनका विशेष कथन ऐसे हैकि (क) जो आत्मा बांध्या सो वन्ध ऐसे कर्मसाधन है ।'

(१) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ५३ में जहां 'आख्या' शब्द लिखा है । वहाँ 'आख्यायते' का अर्थ वा अनुवाद 'प्रसिद्ध' ऐसा किया है (२)[प्रश्न]सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स वन्धः" इस सूत्रमें 'सः' शब्द का ग्रहण न करना चाहिये । और प्रश्न कर्ता का अभिप्राय है कि "सः" शब्द नहीं देते तो भी वन्धका लक्षण हो ही जाता तो भी काम चल जाता फिर 'सः' शब्द सूत्रमें क्यों लिखा ।(उत्तर)संसारमें अनेक प्रकारकेवन्धहैं जैसे गुण गुणीका वन्ध, पद्मबन्ध, श्रृङ्गवन्ध, मुरजवन्ध इत्यादि इनके निषेधके लिये सशब्द हैकि सूत्रमें वर्णित लक्षण वाले वन्धसे यहां प्रयोजन है अन्यसे नहीं । 'सवचनम्' यहां पर कर्त्ता वा प्रथम कारक में मेरी समझसे प्रयोग हुआ है और नपुंसक लिंगमें है ॥ पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ २३२ में वचनके अर्थ कथन, वाक्य, ये दो भी लिखे हैं ।

कर्मयोग्यानिति लघुनिर्देशात्सिद्धेः । कर्मणो योग्यानिति । पृथग्विभक्त्युच्चारणं वाक्यान्तरज्ञापनार्थम् ॥ किं पुनस्तद्वाक्यान्तरम् । कर्मणो जीवः सकषायो भवतीत्येकं वाक्यम् । एतदुक्तं भवति— कर्मण इति हेतुनिर्देशः कर्मणो हेतोर्जीवः सकषायो भवति नाकर्मकस्य कषायलेपोऽस्ति ततो जीवकर्मणोरनादिसम्बन्ध इत्युक्तं भवति ॥ तेनामूर्तो जीवो मूर्तेन कर्मणा कथं बध्यते इति चोद्यमपाकृतं भवति ॥ इतरथा हि

कर्मयोग्यान् इति * लघु-निर्देशात् ५/१' सिद्धेः ५/१';	=(प्रश्न) कर्मयोग्यान् ऐसी सिद्धि थोड़े कथन (कर्मयोग्यान्) से हो जाती अर्थात् सूत्रमें कर्मणोयोग्यान् वाक्यके स्थानमें कर्मयोग्यान् लघुवाक्य ठीक होता ।
कर्मणः ५/१''' योग्यान् इति* पृथक्-विभक्ति-उच्चारणम् १/१'''	=(उत्तर) कर्मणः और योग्यान् ऐसे (दो) न्यारे कारकोंका वर्णन वा कथन
वाक्य-अन्तर-ज्ञापन-अर्थम् १/१''' किम्*पुनः तद् १/१'''	=अन्य वाक्यके जतावनेके लिये है (प्रश्न) बहुरि वह अन्य
वाक्य-अन्तरम् १/१''' कर्मणः ५/१''' जीवः १/१' सकषायः १/१'	=वाक्य क्या है । कर्मसे जीव कषाय सहित
भवति T इति * एकम् १/१''' वाक्यम् १/१''' एतद् १/१''' उक्तम् १/१'''	=होता है ऐसा एक वाक्य हुआ अर्थ यह
भवति T कर्मणः ५/१''' इति*हेतु-निर्देशः १/१'	=होता है किकर्मणः (कर्मसे) ऐसे (कर्म शब्द के पंचमी विभक्ति करि) हेतुका उपदेशहै कि
कर्मणः ६/१''' हेतोः ५/१''' जीवः १/१' सकषायः १/१' भवति T	=कर्मके निमित्तसे जीव कषा सहित होता है ।
अकर्मकस्य ६/१''' न *कषाय-लेशः १/१' [=लेपः १/१' अस्ति T ततः*	=कर्म रहित (जीव) के कषाय का लगाव नहीं है, तिस (हेतुनिर्देश) से
जीवकर्मणः ६/१''' अनादि-सम्बन्धः १/१' इति * उक्तम् १/१''' भवति T	=जीव कर्म का अनादि संयोग है ऐसा अर्थ वा आशय वा कथन होता है
तेन ३/१' अमूर्तः १/१' जीवः १/१' मूर्तेन ३/१' कर्मणः ६/१''' कथम् *	=तिस (जीव कर्मके अनादि सम्बन्धहोने) से अमूर्तिक जीव मूर्तिक कर्मकरि कैसे
वध्यते T इति*चोद्यम् १/१''' अपाकृतम् १/१''' भवति T ॥	=बांधा जाय है ऐसी तर्कणा वा प्रश्न (=चोद्य) निराकृत होता है ।
इतरथा*हि*	=क्योंकि (=हि) अन्यथा अर्थात् जीव कर्मका अनादि सम्बन्ध न मान करि बन्ध नवीन माना जाय तो

पांच (स्पर्शन = त्वचा, रसन = रसना, जीभ — जिह्वा, घ्राण = नाक = नासिका, चक्षु = आंख = नेत्र = अक्षि, श्रोत्र = कान) इन्द्रियें, मनोबल वचनबल कायबल तीन योग श्वासोच्छ्वास आयुः केवल चार हैं ।

बन्धस्यादिमत्त्वे आत्यन्तिकीं शुद्धिं दधतः सिद्धस्येव बन्धाभावः प्रसज्येत ॥ द्वितीयं वाक्यं कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्त इति । अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति पूर्व हेतुसम्बन्धं त्यक्त्वा षष्ठीसम्बन्धमुपैति कर्मणो योग्यानिति ॥ पुद्गलवचनं कर्मणस्तादात्म्यख्यापनार्थम्

बन्धस्य६' आदिमत्त्वे७' आत्यन्तिकीम्२' शुद्धिम्२'' =बन्धका आदिमान् वा आदिवाले होनेमें आतिशयजात अथवा सर्वथा शुद्धताको
दधतः६''' सिद्धस्य६' इव* बन्ध-अभावः१' (१)प्रसज्येत T =धारण करनेसे सिद्धके समान (जीवके) बन्धका अभाव ठहरै भावार्थ इसका यह है कि जीवके यदि कर्मोंका बंध नवीन मानलें तो उस समयसे पहिले जब जीवके बन्ध होना प्रारम्भ हुआ है सर्वथा जीव शुद्ध ठहरे जब जीवको सर्वथा शुद्ध मान लिया जाय तो मुक्त जीवोंके समान अर्थात् सिद्धोंके तुल्य इन जीवोंके भी बन्धका अभाव हुआ जाता है ।
द्वितीयम्१''' वाक्यम्१''' कर्मणः६''' योग्यान्२' =दूसरा वाक्य कर्मके (उत्पन्न होने) योग्य
पुद्गलान्२' आदत्ते T =पुद्गलोंको ग्रहण करता है
इति*। अर्थ-वशात्५' विभक्ति-परिणामः१' इति* =ऐसा है। तात्पर्यके वशसे विभक्तिके पलटाव इस प्रकार होता है कि
पूर्वम्२' हेतुसम्बन्धम्२' त्यक्त्वा षष्ठीसम्बन्धम्२' =पहिले हेतुका संसर्ग वा लगाव छोड़कर षष्ठी विभक्तिके संयोगको
(२)उपैति T कर्मणः६''' योग्यान्२' इति* =कर्मणो योग्यान् वाक्य प्राप्त होताहै अर्थात् कर्मणो शब्दको पहिले हेतुनिर्देश कियाथा, अब सम्बन्ध निर्देश किया है। पहिले कर्मणो शब्दका अर्थ होता था कि कर्म (केहेतु) से (जीव कषाय सहित होजाता है) अब कर्मणो शब्दका अर्थ होता है कि कर्मके (योग्य)
पुद्गल-वचनम्१''' कर्मणः६''' तादात्म्य- =(सूत्रमें) पुद्गलका कथन [=वचन] कर्मका उसी(पुद्गल) स्वरूपमय होनेके (=तादात्म्य)
ख्यापन-अर्थम्१''', =प्रकाश करनेके लिये है

(१) यह वाक्य प्रथम गणके संज् धातुमें प्र उपसर्ग लगाने से बना है, कर्मणि प्रयोग, प्रथम पुरुष एक वचन विधिलिङ् (क्रिया) है। (२)

(२) यह उपैति शब्द द्वितीय गणके इ धातुसे बना है इ का गुण होने से 'ए' हो जाता है पश्चात् प्रथम पुरुष एक वचन वर्तमान क्रिया का ति प्रत्यय लगानेसे एति हो जाताहै पश्चात् उप उपसर्ग जोड़नेसे उप+एति)=उपैति बनजाताहै प्राप्त होजाता है ऐसा अर्थ है।

सर्वार्थसिद्धि १९ | अध्याय ८ सूत्र २

सह कषायेण वर्तत इति सकषायः। सकषायस्य भावः सकषायत्वम्। तस्मात्सकषायत्वादिति ॥ पुनर्हेतुर्निर्देशः किमर्थम्। जठराग्न्याशयानुरूपाहारग्रहणवत्तीव्रमन्दमध्यमकषायाशयानुरूपस्थित्यनुभवविशेष-

---

स्कन्धों का ग्रहण करता है वही बन्ध है। यह ही एक बन्ध है। अन्यप्रकार के बन्धसे यहां प्रयोजन नहीं है। जैसे गुण और गुणीके भी बन्ध हैं सो बन्ध यहां न जानना। कर्मके निमत्तसे आत्मामें कषाय उत्पन्न होती है इस बातका ज्ञापक है कि आत्मा और कर्मका सम्बन्ध अनादि कालसे है॥ पुद्गलद्रव्यके तेईस भेद हैं। अणुवर्गणा, संख्याताणुवर्गणा, असंख्याताणुवर्गणा, अनन्ताणुवर्गणा, आहारवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, तैजसवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, भाषावर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, मनोवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, कार्मणवर्गणा, ध्रववर्गणा, सांतरनिरंतरवर्गणा, शून्यवर्गणा, प्रत्येकशरीरवर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, नभोवर्गणा, महास्कन्धवर्गणा। तेईस प्रकारकी वर्गणाओंमेंसे अणुवर्गणा में जघन्य उत्कृष्ट भेद नहीं है। शेष बाईस जातिकी वर्गणाओं में जन्यघ उत्कृष्ट भेद हैं। तथा इन बाईस जातिकी वर्गणाओंमें भी आहारवर्गणा, भाषावर्गणा (=बचनवर्गणा), मनोवर्गणा, तैजसवर्गणा, कार्मणवर्गणा ये पांच ग्राह्यवर्गणा है अर्थात् येही आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा विषय में जीव के साथ सम्बन्ध रखती हैं और ज्ञानावर्णादिक कर्मरूप में परिवर्तित होती रहती हैं। आहार वर्गणाओं के द्वारा आहारिक वैक्रियिक आहारक ये तीन शरीर और श्वासोच्छ्वास होते हैं। तथा तेजोवर्गणारूप स्कन्धके द्वारा तैजस शरीर बनता है॥

व्यत्यनुवादः—सह * कषायेण[६/१]' वर्तते T इति * सकषायः[१/१]' ;=कषायकरि सहित (=सह) वर्तता है ऐसा सकषाय है।

सकषायस्य[६/१]' भावः[१/१]' सकषायत्वम्[१/१]''', तस्मात्[५/१],''' =सकषायका सत्ता वा होना सो सकषायपना है तिस

सकषायत्वात्[५/१]''' इति * ॥ पुनः * हेतुर्निर्देशः[१/१]''' =कषाय सहितपना (के हेतु) से ऐसा (सकषायत्वात्) है (प्रश्न) बहुरि हेतुकानिर्देश

किम्[१/१]''' अर्थम्[१/१]''' । =क्यों किया अर्थात् सूत्रमें सकषायत्व शब्दकी पञ्चमी विभक्ति (सकषायत्वात्) करि हेतु कहा सो इस हेतु के कहने का क्या अभिप्राय है ?।

जठर-अग्नि-आशय-अनुरूप— =(उत्तर) उदर वा पेट में (=जठर) अग्नि के आशय अथवा पचने के स्थानके अनुसार

आहार-गृहणवत् * तीव्र-मन्द-मध्यम-कषाय— =आहार गृहण कियेजाने के सदृश तीव्र, मन्द, मध्यम कषायके

आशय-अनुरूप-स्थिति-अनुभव-विशेष— =स्थानके अनुकूल (कर्मों की) स्थिति (बन्ध) की और अनुभाग बन्ध की विशेषता

प्रतिपत्त्यर्थम् ॥ अमूर्तिरहस्त आत्मा कथं कर्मादत्त इति चोदितः सन् जोव इत्याह ॥
जीवनाज्जीवः प्राणधारणादायुः सम्बन्धान्नायुर्विरहादिति ॥

प्रतिपत्ति–अर्थम् ॥

=जतावनेके लिये (हेतुका निर्देश पंचमी विभक्तिकरि किया) है अर्थात् अग्रिम सूत्रमें प्रकृतिबन्ध स्थितिबन्ध अनुभवबन्ध और प्रदेशबन्ध कहेंगे। उनमें प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध तो योग द्वारा होते हैं ॥ सो यहां पर कहते हैं कि जैसे उदर पकनेके स्थानकी तीव्र, मन्द, मध्यम अग्निके अनुसार अहारका रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि (=हड्डी) मज्जा, शुक्र (वीर्य) और खल (=खलि) भाग आदि रूप परिणमन होता है। तैसे ही कषायके आशय वा स्थानों की तीव्र, मन्द, मध्यम अवस्थाके अनुकूल कर्मोंकी स्थितिबन्धकी तथा अनुभागबन्धकी विशेषता होती है।

(१) अमूर्तिः अहस्तः आत्मा कथम् *कर्म आदत्ते इति* चोदितः सन् जीवः इति* आह ॥

=आत्मा अमूर्तिक है, हाथ रहित है कैसे कर्मको (=कर्म) ग्रहणकरता है
=ऐसा प्रश्न(=चोदित) होनेपर (=सन्) जीव ऐसे कहते हैं अर्थात् इस सूत्र में वर्णित जीवकी परिभाषा आचार्य आगे कहते हैं।

जीवनात् जीवः प्राणधारणात्-आयुस् सम्बन्धात् न* आयुस्-विरहात् इति*

=जीनेसे जीव है प्राणके धारणसे आयु (नामाप्राण के) सम्बन्धसे (जीव) है
=न कि आयु (नामा प्राणके) विच्छेदसे अथवा पृथक्तासे (जीव) है।
=ऐसा (जीव कर्मको ग्रहण करता) है

(१) मूर्ति शब्द स्त्रीलिंग होता है यहां पर अमूर्ति शब्द आत्मा शब्दका जो सदा पुलिंग होता है विशेषण है। इस लिये अमूर्ति शब्द भी पुलिंग है अर्थ यह है आत्मा नहीं है मूर्ति जिसकी सो अमूर्तिक है। (२) प्राणके मूल भेद चार हैं और विशेष भेद निम्नलिखित कवित्तमें दस हैं तथा परिभाषा भो व्यवहार तथा निश्चय जीवकी बहुत श्रेष्ठ इकतीसा (मनहर) में है—

इन्द्री पांच बल तीन श्वास आव दस प्राण, मूल चार इन्द्री बल श्वास आव मानियें।
पूरव जीवै था अब जीवै आगे जीवैहिगा, येही प्राण सेती विवहार जीव जानियै ॥
सुख सत्ता बोध और चेतन निहचै प्राण सास्वतः स्वभाव तीन कालमें बखानिये।
विवहार निहचे स्वरूप जान सरधाने, ऐसे जीव वस्तु लखसो सुखो पिछानिये ॥ १ ॥ (द्यानतरायजी अनुवादितद्रव्यसंग्रहसे)

उपशान्तकषायक्षीणकषायसयोगकेवलिनामेक एव योगः । अयोगकेवलिनो न बन्धहेतुः ॥
उक्ता बन्धहेतवः । इदानीं बन्धो वक्तव्य इत्यत आह—

॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ २ ॥

उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवलिनाम्[६/३] एकः[१/१] एव* योगः[१/१], अयोगकेवलिनः[६/१] न * बन्धहेतुः[१/१]; बन्धहेतवः[१/३] उक्ताः[१/३], इदानीम् * बन्धः[१/१] वक्तव्यः[१/१] इति * अतः* आह T

=उपशान्तकषाय क्षीणकषाय और सयोगकेवलीयों के एक ही =योग (बन्धका कारण) है। अयोगकेवली के बन्धका कारण नहीं है बन्धके =कारण कहे गये। इस समय बन्ध कहना चाहिये, इसलिये कहते हैं कि

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ २ ॥

(१)सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलान् (६) आदत्ते सः बन्धः (भवति)
(२)सकषायत्वात् (३) जीवः(४) (५) कर्मणः योग्यान् पुद्गलान् (६) आदत्ते सः बन्धः (भवति)

सूत्रार्थः—सकषायत्वात्[५/१] जीवः[१/१] कर्मणः[६/१] योग्यान्[२/३] पुद्गलान्[२/३] आदत्ते T सः[१/१] बन्धः[१/१] भवति T
कर्मणः[५/१] जीवः[१/१] सकषायत्वात्[५/१] योग्यान्[२/३] पुद्गलान्[२/३] आदत्ते T सः[१/१] बन्धः[१/१]

=कषायसहित होनेसे प्राणी वा संसारी कर्मके (उत्पन्न होने) योग्य =पुद्गलोंको ग्रहण करता है सो बन्ध होता है (दूसरे प्रकार से अर्थ) [संबंध है =कर्मकेहेतुसे जीव कषाय सहित होकरि (=सकषायत्वात्) =उचित पुद्गलों को ग्रहण करता है सो बन्ध होता है। अतः जीवकर्मका अनादि

(१) इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें एक पाठ तथा एकसा अर्थ है। अध्याय छठवें में "कायवाङ्मनः-कर्मयोग. प्रथमसूत्र स आस्रव' द्वितीय सूत्र जिस प्रकार दोनों सम्प्रदायों में इनको दो दो सूत्र माने हैं। तैसे ही श्वेताम्वर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र में इस सूत्रके भी दो सूत्र इस प्रकार माने हैं कि " सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते ॥१॥ " "स बन्धः ॥२॥ " परन्तु हमारे यहाँ एक ही सूत्र माना है। (२) सकषायत्वात् +जीव. =सकषायत्वाद् + जीव =सकषायत्वाज् + जीव. अर्थात् द् यदि च, छ, ज, झ, ञ इनमें से किसी एक के साथ आने पर ज् मे पलट जाता है। (३) जीवसे यहां पर शुद्ध जीवसे प्रयोजन नहीं है। प्राणों द्वारा जीने वाले वा प्राणधारी जीवसे प्रयोजन है अर्थात् ससार में परिभ्रमण करने वाले जीवसे अभिप्राय है (४) यहांपर छठवीं विभक्ति सम्बन्धके अर्थ में है "कर्मण" सम्बन्ध है योग्यपुद्गलान् सम्बन्धवान् है और कर्मणः का अर्थ कर्म के ऐसा है अर्थात् ज्ञानवरण आदि आठ कर्म प्रकृतियों के (परिणमने) योग्य पुद्गलस्कन्धको। (५) यहाँपर कर्मणः अपादान कारक अर्थात् पञ्चमी विभक्ति में लाये हैं हेतुके अर्थ मे। अर्थ-कर्म से अर्थात् कर्मके हेतुसे जीव कषाय सहित होता है। कर्म रहित (जीव) के कषाय का लगाव नहीं है तिस हेतुसे जीव कर्म का अनादि संयोग है ऐसा अभिप्राय है इसलिये कर्म के निमित्त से जीव कषाय सहित होकर ऐसा अर्थ किया है। (६) आदत्ते यह रूप दा धातु मे आङ् उपसर्ग जोडने के बना है परन्तु जब आङ् (=आ) उपसर्ग क्रिया के पहिले लगाया जाता है तब क्रिया के अर्थ को उलट देता है। जैसे दा=देना परन्तु आदा=लेना वा ग्रहण करना है ॥

भावार्थ इस सूत्रका इस प्रकार है कि समस्त लोक ऊपर नीचे इधर उधर सब ओर पुद्गलोंकरि गाढा गाढ भराहुआ है। ते पुद्गल अनेक प्रकार परिणमन की योग्यता को प्राप्त हो रहे हैं। तिनमें अनन्तानन्त पुद्गलपरमाणु कर्म होने योग्य भी समस्त लोक में भरे है - जहां आत्माके प्रदेश हैं, वहां भी विद्यमान हैं अथवा तिष्ठे हुए हैं। जब यह आत्मा मन वचन, काय योगों द्वारा सकम्प होकर कषाय सहित होता है, तब सब ओरसे समस्त आत्माके प्रदेशोंकरि कर्म के उत्पन्न होने योग्य पुद्गलस्कन्धों का ग्रहण करता है सोही बन्ध है अथवा यों कहिये कि कर्म के हेतुसे (=कर्मणः) यह आत्मा कषायसहित होता है। मन वचन काय योगों द्वारा सकम्प होता है, तब सब ओरसे समस्त आत्म प्रदेशोंकरि उचित (योग्य) पुद्गल-

'दा' प्रथम भ्वादि, द्वितीय अदादि, तृतीय जुहोत्यादि चतुर्थ दिवादि गणका धातु है। इस सूत्र में तृतीयगण का दा है जो परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों में आता है। प्रथम पुरुष (=अन्य पुरुष, भिन्न पुरुष) एक वचन वर्तमान कालकी क्रिया का चिन्ह परस्मैपद में 'ति' और आत्मनेपदमें "ते" है। जुहोत्यादिगणमें यदि धातुमें एकस्वर हो तो उस धातु के प्रथम स्वर को दुहरा कर देते हैं। जैसे इण् धातुमें इको दोहरा कर देनेसे "इइ्" हो जाता है अथवा धातुके प्रथम व्यञ्जनको और उसके लगता ही या अत्यन्त समीप स्वर दोनोंको दोहरा देते हैं। जैसे दाको "दादा" कर देते हैं। यह दोहरा हुआ दीर्घ स्वर ह्रस्वहो जाता है इसलिये दादा का ददा होगया। परस्मैपदी पूर्वोक्त क्रिया का "ति" चिन्ह लगानेसे 'ददाति' बनगया॥

ददाति=वह देता है परन्तु आददाति=वह लेताहै, वह ग्रहण करताहै। अब प्रश्न यह है कि आददाति को सूत्रमें न लगाकर आदत्ते क्यों लाये? उत्तरमें कहते हैं कि आदत्ते आत्मनेपदी है। आत्मनेपदी क्रिया से यह अभिप्राय है कि क्रियाका फल अपने पर पड़ता है और परस्मैपदमें दूसरे पर क्रिया का फल होता है। जैसे पचति=वह पकाताहै परस्मैपद में यह क्रिया है और अर्थ यह है कि वह रसोई करता है जिसको अन्य पुरुष खावेगा परन्तु पचते आत्मनेपदी है उसका अर्थ यह है कि वह रसोई पकाताहै और स्वयम् खावेगा अर्थात् अपने खाने के वास्ते रसोई करता है। इसी प्रकार आदत्ते का अर्थ है कि जीव कर्म के योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है और उन का शुभ अशुभ फल जो कुछ भी होगा उसका भोक्ता वही जीव होगा अर्थात् अपने ही वास्ते ग्रहण करताहै। इस लिये आददाति न लाकर आदत्ते लाये हैं। आदत्ते वाक्य आददाति से लघु भी है परन्तु हमारी समझ में अर्थ की यथार्थता प्रकाश करना ही यहां पर आदत्ते लाने का विशेष कारण जान पड़ता है। 'आदत्ते' वाक्य और अग्रिम कथित 'धत्ते' वाक्य (देखो सं० सर्वार्थसिद्धि अध्याय ८ सूत्र २ पृष्ठ ४६० प्रथमावृत्ति 'इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्म,) इस प्रकार बने हैं कि दा और धा के अन्त का आ ङित् संज्ञक प्रत्ययों (जैसे ये, से, ते इत्यादिक) के पहिले गिर कर दद् और दध् क्रम से हो जाते हैं। दध् के पश्चात् यदि स्, ध्व, त्, थ् क्रियाप्रत्यय आवें तो दध् का धत् हो जाता है इस लिये दद्+ते और धत्+ते=दत् [देखो खरिच् (झलांचर) अष्टाध्यायी ८।४।५५।] +ते दत्ते और धत्ते रूप क्रमसे हुये दत्ते में आङ् (=आ) लगाने से आदत्ते (हुआ) लेता है। दा के चारों गणों में प्रथम पुरुष एक वचन वर्तमानकाल क्रियाके रूप :-

[क] दा, प्रथम गणमें यच्छ् होजाता है अ [प्रथम गणका विकरण] और पूर्वोक्त ति-प्रत्यय लगाकर यच्छति [=वह देता है] हो जाता है।

[ख] दा, दूसरे गणमें विकरण नहीं होता है। ति पूर्वोक्त क्रिया का चिन्ह लगाने से दाति [=वह काटता है] हो जाता है।

[ग] ददाति [परस्मैपदमें होता है]=इस दा का ददाति और दत्ते रूपों के बननेके नियम ऊपर दे चुके हैं। इस शब्दके इस तीसरे गणमें दत्ते आत्मने-पद में होता है-अर्थ है देता है और आदत्ते =लेता है ग्रहण करता है। दा के और भी कई अर्थ हैं परन्तु उनको स्थान अभाव से नहीं लिखा है॥

[घ] दा [चतुर्थ गण परस्मैपदमें] इस धातुके पश्चात् य विकरण आता है पुनः ति लगाकर दायति [=देता है] बनजाता है॥

इति त्रयोदशविकल्पो योगः ॥ आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगयोः प्रमत्तसँयते सम्भवात्पञ्चदशापि भवन्ति ॥ प्रमादोऽनेकविधः– पञ्चसमितित्रिगुप्तिशुध्यष्टकोत्तमक्षमादिविषयानुत्साहभेदात् ।

इति* त्रयोदश-विकल्पः[१/१] योगः[१/१] ।	=ऐसे तेरह प्रकार योग है ।
आहारककाययोग-आहारकमिश्रकाययोगयोः[६/२]	=आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग का
प्रमत्तसंयते[७/१] सम्भवात्[५/१] पञ्चदश[१/३] अपि * भवन्ति ¶ ।	=प्रमत्तसंयमी (छटवें गुणस्थानवर्ती) मुनि में सम्भव होने से (योग) पन्द्रह भी होतेहै ।
पञ्च-समिति–	=पांच(सम्यगीर्या,सम्यग्भाषा,सम्यगेषणा,सम्यगादाननिक्षेपण,सम्यगुत्सर्ग)समितिमें
त्रिगुप्ति–शुद्धिअष्टक—	=तीन(सम्यग्मनो,सम्यग्वचन,सम्यक्काय)गुप्तिमें और(अग्रिम कथित) आठशुद्धियोंमें
उत्तम-क्षमा-आदि–	=उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमशौच, उत्तमसत्य, उत्तमसंयम, उत्तमतप उत्तमत्याग, उत्तमआकिञ्चन्य, उत्तमब्रह्मचर्य
(१) विषय-अनुत्साह-भेदात्[५/१] प्रमादः[१/१] अनेक-विधः[१/१]	=विषयमें उत्साहरहित भेदसे प्रमाद अनेक प्रकार है, अर्थात् इनमें उत्साहवर्जित परिणाम होना सो प्रमाद है उस प्रमादके अनेक भेद हैं ॥

(१) अनुत्साह–शब्द मुद्रित पुस्तकमें जिससे अनुवादकने अनुवाद किया है नही है, किन्तु तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ २६६ मे यह शब्द आया हैं । विना इस शब्दके अर्थ और भाव स्पष्ट नहीं होते हैं । इस शब्दको पं० जयचन्द्रजीने भी अपनी वचनिकामे लेकर इस प्रकार अर्थ किया है "बहुरि प्रमाद है सो अनेक विध है । तहां भाव, काय, विनय, ईर्यापथ, भिक्षा, प्रतिष्ठापन, शयनासन, वाक्य ये आठ तो शुद्धि बहुरि दशलक्षणधर्म इन विषै उत्साह रहित परिणाम होय तहां प्रमाद कहिये" तत्त्वार्थराजवार्तिकमें यहवाक्य तीसवीं वार्तिकके रूपमे ऐसे है "प्रमादोऽनेकविधिः ।३०। भावकायविनयेर्यापथभैक्ष्यशयनासनप्रतिष्ठापनवाक्यशुद्धिलक्षणाऽष्टविधसंयमोत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यतपस्त्यागाऽऽकिञ्चन्यब्रह्मचर्यादि विषयानुत्साहभेदादनेकविधः प्रमादोऽवसेयः" =भावकी, कायकी, विनयकी, ईर्यापथकी, भिक्षाकी, शयनासनकी, प्रतिष्ठापनकी, वाक्यकी शुद्धि स्वरूप (=लक्षण) आठ प्रकार और (उत्तम) संयम–उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमशौच, उत्तमसत्य, उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआकिञ्चन्य, उत्तमब्रह्मचर्यआदिक विषयमे उत्साह रहित भेद से अनेक भांति प्रमाद जानना चाहिये (=प्रमाद.अवसेयः) सम्भव है कि विषय शब्द और भेदात् शब्द के मध्य मे "अनुत्साह" छपनेसे रह गया हो अथवा यों कहिये कि इन दोनों शब्दों के बीच मे अनुत्साह शब्द का अध्याहार करना चाहिये वा लगाना चाहिये कि अर्थ स्पष्ट होजाय ॥ हमने तीन हस्तलिखित प्रतियें देखी उनका पाठ नीचे देते हैं "प्रमादोऽनेकविधः भावकायविनयेर्यापथभिक्षाप्रतिष्ठापनशयनासनवाक्यशुद्धयोऽष्टौ शुद्धयष्टकोत्तमक्षमादि भेदात्" ॥ विद्वान् इसपर अधिक प्रकाश डालकर कृपया सूचित करें

शुध्यष्टकस्यार्थः भावकायविनयेर्यापथभिक्षाप्रतिष्ठापनशयनासनवाक्यशुद्धयोऽष्टौ, दशलक्षणो धर्मश्च ॥ त एते पंच वन्धहेतवः समस्ता व्यस्ताश्च भवन्ति ॥ तद्यथा—मिथ्यादृष्टेः पंचापि समुदिता बन्धहेतवो भवन्ति ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसमग्मिथ्यादृष्टचसंयतसम्यग्दृष्टीनामविरत्यादयश्चत्वार. ॥ संयतासयतस्याविरतिर्विरतिमिश्राः, प्रमादकषाययोगाश्च । प्रमत्तसंयतस्य प्रमादकषाययोगाः । अप्रमत्तादीनां चतुर्णां योगकषायौ ।

शुद्धि-अष्टकस्य "अर्थः 'अष्टौ' भाव-काय-	=शुद्धि अष्टकका अभिप्राय है कि आठ परिणामकी पवित्रता, शरीरकी शुद्धि वा मार्जन
विनय-ईर्यापथ-भिक्षा	=नम्रताकी निर्मलता, देखकर चलनेकी शुद्धि, भिक्षाकी पवित्रता,
प्रतिष्ठापन-शयनासन-वाक्यशुद्धयः'	=प्रतिष्ठापनकी शुद्धिता, सोने और बैठनेकी शुचाई, वचनकी शुद्धता
दशलक्षणः 'धर्मः 'च*; ते 'एते 'पंच'	=और (=च) दशलक्षण धर्म है वे इतने पांच
वन्धहेतवः 'समस्ताः 'व्यस्ताः 'च*भवन्ति; तद्यथा*—	=बन्धके कारण (कहीं कहीं) सब और (=च) (कहीं कहीं) न्यारे होते हैं जैसे
मिथ्यादृष्टेः 'पंच अपि*समुदिताः 'वन्धहेतवः 'भवन्ति	=मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुण स्थानवर्ती) के पांचों ही (=अपि) इकट्ठे बन्धके कारण होते हैं
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-	=सासादन सम्यग्दृष्टि (=दूसरे गुणस्थानवर्ती) सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र गुणस्थानवर्ती)
असंयतसम्यग्दृष्टीनाम् 'अविरति-आदयः'	=तथा असंयतसम्यग्दृष्टि (चौथा वा अव्रतगुणस्थानवर्ती) नि के अविरति, प्रमाद, कषाय, योग
चत्वारः'; संयतासंयतस्य	=चार (बन्धके कारण) होते है । संयतासंयत (अणुव्रतगुणस्थान वा पांचमेगुणस्थान वर्तीके)
अविरतिः "(१) विरति-मिश्राः "प्रमाद-कषाय-योगाः 'च*	= अविरति (बन्धका कारण) है सो विरति करि मिली हुई है प्रमाद, कषाय, योगभी बन्धके (कारण होतेहैं) अर्थात् अणुव्रत गुणस्थानवर्तीके विरति करि मिश्रित अविरति और प्रमाद-कषाय-योग ये चार बन्धके कारण होते हैं ।
प्रमत्तसंयतस्य 'प्रमाद-कषाय-योगाः'	=प्रमत्तसंयमी (छठवे गुणस्थानवर्ती) मुनिके प्रमाद, कषाय योग होते हैं ।
अप्रमत्तादीनाम् 'चतुर्णाम्'	=अप्रमत्तसंयमी (सातवे गुणस्थानवर्ती मुनि) आदिक चार (अप्रमत्त संयमी)
कषाय-योगौ'.	=अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मलोभके योग कषाय (ये दो बन्धके कारण होते हैं) ।

(१) उत्तरोत्तर भावे तु = परन्तु (=तु) उत्तर उत्तर (आगे आगे) के होने पर (अर्थात् अविरतिकी सत्तामें मिथ्यादर्शन हो भी सकता है और नहीं भी सकता) पूर्वेषाम् अनियमः इति = पूर्व पूर्वके (बन्धके हेतुओंकी स्थितिका) नियम नहीं कि अवश्यहो) जैसे अविरतिकी सत्तामें नियम नहीं कि मिथ्यादर्शन अवश्यहो

(४३)मोक्षपदार्थ अस्तिअवक्तव्यस्वरूप है यह कौन जानेहै कोई भी नहीं जानता (४४)पुन्यपदार्थ अस्तिअवक्तव्यस्वरूपहै यह कौन जानेहै कोईभीनही जानता
(४५)पापपदार्थ ,, ,, है यह कौन जानेहै कोई भी नही जानता (४६)जीवपदार्थ नास्ति ,, है यह कौन जाने है कोईभीनही जानता
(४७)अजीवपदार्थ नास्ति ,, है यह कौन जाने है कोई भी नही जानता (४८)आस्रवपदार्थ ,, ,, है यह कौन जानेहै कोई भी नही जानता
(४९)बन्ध पदार्थ ,, ,, है यह कौन जाने है कोईभी नही जानता (५०)संवर पदार्थ ,, ,, है यह कौन जाने है कोईभी नही जानता
(५१)निर्जरा पदार्थ ,, ,, है यह कौन जाने है कोई भीनहीं जानता (५२)मोक्ष पदार्थ ,, ,, है यह कौन जाने है कोई भीनही जानता
(५३)पुण्य पदार्थ ,, ,, हैयह कौन जानेहै कोई भी नहीं जानता (५४)पाप पदार्थ ,, ,, है यह कौन जाने है कोई भी नही जानता
(५५)जीवपदार्थअस्तिनास्तिअवक्तव्यस्वरूप है कौन जाने कोई नहीं जानता (५६)अजीवपदार्थअस्तिनास्तिअवक्तव्यस्वरूपहै कौन जाने कोई नही जानता
(५७)आस्रवपदार्थ ,, ,, है कौन जानेकोई नहीं जानता (५८)बन्धपदार्थ ,, ,, हैकौन जाने कोई नही जानता
(५९)संवरपदार्थ ,, ,, है कौन जाने कोई नही जानता (६०)निर्जरापदार्थ ,, ,, है कौनजाने कोई नही जानता
(६१)मोक्षपदार्थ ,, ,, है कौन जाने कोई नही जानता (६२)पुण्यपदार्थ ,, ,, है कौन जाने कोई नही जानता
(६३)पापपदार्थ अस्तिनास्तिअवक्तव्यस्वरूप है कौन जाने कोई नहीं जानता

नव पदार्थ का भेद न कर और एकशुद्ध पदार्थ थापि करके इसको अस्ति,नास्ति,अस्ति,अस्तिनास्ति,अवक्तव्य,पर लगाने से चार भेद ऐसेहोतेहैं कि (१) शुद्धपदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौनजाने है कोई भी नहीं जानताहै (२) शुद्धपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नही जानता है (३)शुद्धपदार्थ अस्तिनास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता (४) शुद्धपदार्थ अवक्तव्यस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नही जानता है अर्थात् इस प्रकार कहना कि पदार्थ है कि नही है कि दोनों रूप है कि अवक्तव्य है ऐसे कौन जानता है कोई नहीं जानता यहां भावार्थ ऐसा जानना कि सर्वज्ञ कोई नही है सर्वज्ञविना कौन जाने—ऐसे अज्ञान की पक्ष हुई ॥ ६३ और ४ भेद ये सर्व का योग ६७ हुआ ॥

अब वैनयिक वाद के बत्तीस भंग कहते हैं

(१) मनसे देवका विनय करना (२) वचनद्वारा देवका विनय करना (३) कायसे देवका विनय करना (४) ज्ञानसे देवका विनय करना (५) मनसे राजाका विनय करना (६) वचनसे राजा का विनय करना (७) शरीरसे राजाका विनय करना (८) ज्ञानसे राजा का विनय करना (९) मनसे ज्ञातिका विनय करना (१०) वचनसे ज्ञातिका विनय करना (११) शरीरसे ज्ञातिका विनय करना (१२) ज्ञानसे ज्ञातिका विनय करना (१३) मनसे यतिका विनय करना (१४) वचनसे यतिका विनय करना (१५) कायसे यतिका विनय करना (१६) ज्ञानसे यतिका विनय करना (१७) मनसे वृद्धका विनय करना (१८) वचनसे वृद्धका विनय करना (१९ कायसे वृद्धका विनय करना (२०) ज्ञानसे वृद्धका विनय करना (२१) मनसे बालका विनय करना (२२) वचनसे बालका विनय करना (२३) कायसे बालका विनय करना (२४) ज्ञानसे बालका विनय करना (२५) मनसे माताकी विनय करना (२६) वचनसे माताकी विनय करना (२७) कायद्वारा माताकी विनय करना (२८) ज्ञानसे माताकी विनय करना (२९) मनसे पिताकी विनय करना (३०) वचनसे पिताकी विनय करना (३१) कायसे पिताको विनय करना (३२) ज्ञानसे पिताकी विनय करना

सर्वार्थसिद्धि १४ — अध्याय ८ सूत्र १

अविरतिर्द्वादशविधा पट्कायषट्करणविषयभेदात् । षोडश कषाया नव नोकषायास्तेषामीषद्भेदो न भेद इति पञ्चविंशतिकषायाः॥ चत्वारो मनोयोगाश्चत्वारो वाग्योगाः पंच काययोगा

पट्–काय–पट्–	=छह (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति त्रस) काय और छह (स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षुः, श्रोत्र, मन)
करण-विषय-भेदात् 'अविरतिः' 'द्वादशविधा';	=इन्द्रियोंके विषयभेदसे अविरति बारह प्रकार है अर्थात् त्वचा, जीभ, नासिका, नेत्र, कान और मन इन छह इन्द्रियोंके विषयोंमें रागसहित प्रवृत्ति और पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय जीवोंकी रक्षा न करना ये बारह अविरति हैं ।
षोडश	=सोलह (अनन्तानुबन्धीक्रोध, अनन्तानुबन्धीमान, अनन्तानुबन्धीमाया, अनन्तानुबन्धीलोभ; अप्रत्याख्यानक्रोध, अप्रत्याख्यानमान, अप्रत्याख्यानमाया, अप्रत्याख्यानलोभ; प्रत्याख्यानक्रोध, प्रत्याख्यानमान, प्रत्याख्यानमाया, प्रत्याख्यानलोभ; सञ्ज्वलनक्रोध, सञ्ज्वलनमान, सञ्ज्वलनमाया, सञ्ज्वलनलोभ ।
कषायाः नव	=कषाय है । नौ (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद)
नोकषायाः(१) तेषाम् ईषत्(२)* भेदः	=नोकषाय हैं । तिन कषायोंके हलके (=ईषत्) भेद वा प्रकार (ये नोकषाय) हैं ।
न* भेदः	=अन्यभेद वा अन्तर (=भेद) (इन कषाय वा नो कषाय में) नहीं है अर्थात् नोकषाय हैं वे हलके कषाय हैं कषाय रहित नहीं हैं ।
इति*पञ्चविंशतिकषायाः; चत्वारः	=ऐसे पच्चीस कषाय हैं । चार (सत्य, असत्य, मिश्र, अनुभय)
मनोयोगाः चत्वारः वाक्–योगाः	=मनोयोग हैं । चार (सत्य, असत्य, उभय, अनुभय) वचनयोग हैं
पञ्च काययोगाः	=पांच (औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, कार्मण) काययोग हैं ।

(१) नो (अव्यय) = " अभाव । नहीं । न होना " पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २२२ परन्तु "नो" शब्द यहाँ पर अर्थात् नोकषाय वाक्यमें अभाव वा निषेध अर्थ में नहीं है वरन ईषत्–किंचित् वा अल्पके अर्थमें है ।(२) ईषत् शब्द अव्ययहै "अल्प थोड़ा किंचित-कुछ" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ६८ देखो ॥

(११) निर्जरा पदार्थ नियतिकरि आपसे नास्तिस्वरूप कीजिये। (१२) निर्जरा पदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(१३) मोक्ष पदार्थ नियतिकरि आपसेनास्तिस्वरूप कीजिये। (१४) मोक्ष पदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।

॥अग्रिम चौदह भेद आत्मा पर लगाने से हुये॥

(१) जीव पदार्थ आत्माकरि आपसे नास्ति स्वरूप कीजिये। (२) जीव पदार्थ आत्माकरि परसे नास्ति स्वरूप कीजिये।
(३) अजीव पदार्थ आत्माकरि आपसे ,, ,, कीजिये। (४) अजीव पदार्थ आत्माकरि परसे ,, ,, कीजिये।
(५) आस्रव पदार्थ आत्माकरि आपसे ,, ,, कीजिये। (६) आस्रव पदार्थ आत्माकरि परसे ,, ,, कीजिये।
(७) बन्ध पदार्थ आत्माकरिआपसे ,, ,, कीजिये। (८) बन्ध पदार्थ आत्माकरि परसे ,, ,, कीजिये।
(९) संवर पदार्थ आत्माकरि आपसे ,, ,, कीजिये। (१०) संवर पदार्थ आत्माकरि परसे ,, ,, कीजिये।
(११) निर्जरा पदार्थ आत्माकरि आपसे ,, ,, कीजिये। (१२) निर्जरा पदार्थ आत्माकरि परसे ,, ,, कीजिये।
(१३) मोक्ष पदार्थ आत्माकरि आपसे ,, ,, कीजिये। (१४) मोक्ष पदार्थ आत्माकरि परसे ,, ,, कीजिये।

॥ सततरमेंसे शेष अग्रिम चौदह भेद स्वभाव पर लगाने से हुये ॥

(१) जीवपदार्थ स्वभावकरि आपसे नास्तिस्वरूप कीजिये। (२) जीवपदार्थ स्वभावकार परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(३) अजीवपदार्थ स्वभावकरि आपसे ,, कीजिये। (४) अजीवपदार्थ स्वभावकरि परसे ,, कीजिये।
(५) आस्रवपदार्थ स्वभावकरि आपसे ,, कीजिये। (६) आस्रवपदार्थ स्वभावकरि परसे ,, कीजिये।
(७) बन्धपदार्थ स्वभावकरि आपसे ,, कीजिये। (८) बन्धपदार्थ स्वभावकरि परसे ,, कीजिये।
(९) संवरपदार्थ स्वभावकरि आपसे ,, कीजिये। (१०) संवरपदार्थ स्वभावकरि परसे ,, कीजिये।
(११) निर्जरापदार्थ स्वभावकरि आपसे ,, कीजिये। (१२) निर्जरापदार्थ स्वभावकरि परसे ,, कीजिये।
(१३) मोक्षपदार्थ स्वभावकरि आपसे ,, कीजिये। (१४) मोक्षपदार्थ स्वभावकरि परसे ,, कीजिये।

(ख) अक्रिया वादीयोंके ८४ भेदोंमेसे ७० भंगका कथन करचुके हैं अब केवल चौदह भेद शेष कथन करने के लिये रहे, नास्तित्व,शब्द,काल और नियति इन दो पर लगाने से और फिर पूर्वोक्त सात पदार्थों पर इन दोनोंके लगानेसे चौदह भेद हो जाते हैं, यहां यह विशेष हुआ कि इन भेदों मे स्वतः परतः न कहा नास्तित्वही कहा अर्थात् जैसे ॥(१) जीवपदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये। (२) अजीव पदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये। (३) आस्रव पदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये। (४) बन्धपदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये (५) सवर पदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये। (६) निर्जरा पदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये। (७) मोक्ष पदार्थ कालतैं नास्तित्व कीजिये।

नियति पर लगानेसे ७ भेद जैसे

(१) जीव पदार्थ नियतितैं नास्तित्व कीजिये। (२) अजीवपदार्थ नियतैं नास्तित्व कीजिये। (३) आस्रव पदार्थ नियतितैं नास्तित्व कीजिये (४) बन्धपदार्थ नियतितैं नास्तित्व कीजिये। (५) संवरपदार्थ नियतितैं नास्तित्व कीजिये। (६) निर्जरा पदार्थ नियतितैं नास्तित्व कीजिये। (७) मोक्ष पदार्थ नियतितैं नास्तित्व कीजिये। उपर्युक्त सत्तरभेद (७०) और चौदह (१४) ये सर्व जोड़नेसे ८४ भेद अक्रियावादियोंके हुये ॥

सत्तट्ठण्णाणीणं वेणइयाणं तु वत्तीसम् ॥ १ ॥

सप्तषष्टिअज्ञानिकं ^१^ वैनयिकम् ^१^ तु द्वात्रिंशत् ^१^
सत्तट्ठण्णाणीणं ^१^ वेणइयाणं तु* वत्तीस

{ सरसठ अज्ञानिक [वादी] हैं और [=तु] बत्तीस वैनयिक हैं
{ अर्थात् सरसठ भेद अज्ञान वादियों के हैं और बत्तीस भेद वैनयिक वादियों के हैं

(१) अज्ञानवाद के सरसठ भंग या भेदोंमेंसे ६३ भेद इस प्रकार हैं कि प्रत्येक अस्ति (२) नास्ति (३) अस्तिनास्ति (४) अवक्तव्य (५) अस्तिअवक्तव्य (६) नास्तिअवक्तव्य (७) अस्तिनास्तिअवक्तव्य को समस्त ही जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप इन नव पदार्थों पर लगाने से तिरसठ भेद हुए अर्थात्

(१) जीव पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है।(२)अजीव पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(३) आस्रव पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता (४) बन्ध पदार्थ अस्ति स्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(५) संवर पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोईभी नहीं जानता है (६) निर्जरा पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(७) मोक्ष पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है (८) पुण्य पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(९) पाप पदार्थ अस्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है (१०) जीव पदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(११)अजीवपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है(१२) आस्रवपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(१३) बन्धपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है(१४) संवरपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(१५) निर्जरापदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है(१६) मोक्षपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(१७) पुण्यपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है(१८) पापपदार्थ नास्तिस्वरूप है यह कौन जानता है कोई भी नहीं जानता है
(१९)जीवपदार्थ अस्तिनास्तिस्वरूप है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है(२०)अजीवपदार्थ अस्तिनास्तिस्वरूप यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(२१)आस्रवपदार्थ " है यह कौनजाने है कोई नहीं जानता है(२२)बन्धपदार्थ " है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(२३)संवरपदार्थ " है यह कौनजाने है कोई नहीं जानता है(२४)निर्जरापदार्थ " है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(२५)मोक्षपदार्थ " है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है(२६)पुण्यपदार्थ " है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(२७)पापपदार्थ " है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है(२८)जीवपदार्थ अवक्तव्य स्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(२९)अजीवपदार्थ अवक्तव्यस्वरूप है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है(३०)आस्रव पदार्थ " है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(३१)बन्धपदार्थ " है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है(३२)संवरपदार्थ " है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(३३)निर्जरापदार्थ " है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है(३४)मोक्षपदार्थ " है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(३५)पुण्यपदार्थ " है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता है(३६)पापपदार्थ " है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(३७)जीवपदार्थ अस्तिअवक्तव्यस्वरूप है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता(३८)अजीवपदार्थ अस्तिअवक्तव्यस्वरूप है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता है
(३९)आस्रवपदार्थ " है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता(४०)बन्धपदार्थ " है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता
(४१)संवरपदार्थ " है यह कौन जाने है कोई नहीं जानता।(४२)निर्जरापदार्थ " है यह कौन जाने है कोई भी नहीं जानता

(१७) संवर पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तिव कीजिये। (१८) सवर पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(१९) सवर पदार्थ नियतिकरि नित्यताकरि अस्तिव कीजिये। (२०) सवर पदार्थ नियतिकरि अनित्यत्वकरि अस्तिव कीजिये।
(२१) निजरा पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये। (२२) निजरा पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(२३) निजरा पदार्थ नियतिकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (२४) निजरा पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(२५) मोक्ष पदार्थ आपहो से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये। (२६) मोक्ष पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(२७) मोक्ष पदार्थ नियतिकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (२८) मोक्ष पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(२९) पुन्य पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तिव कीजिये। (३०) पुन्य पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(३१) पुन्य पदार्थ नियतिकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (३२) पुन्य पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।
(३३) पाप पदार्थ आपही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये। (३४) पाप पदार्थ परही से नियतिकरि अस्तित्व कीजिये।
(३५) पाप पदार्थ नियतिकरि नित्यताकरि अस्तित्व कीजिये। (३६) पाप पदार्थ नियतिकरि अनित्यपनाकरि अस्तित्व कीजिये।

निम्नलिखित छत्तीस (३६) भेद स्वभाव पर लगाने से होते हैं

(१) जीव पदार्थ आपहो से स्वभावकरि अस्तित्व कीजिये। (२) जीव पदार्थ परही तै स्वभावकरि अस्तिव कीजिये।
(३) जीव पदार्थ स्वभावकरि नित्यत्वकरि अस्तित्व कीजिये। (४) जीव पदार्थ स्वभावकार अनित्यताकरि अस्तित्व कीजिये।
(५) अजीव पदार्थ आपही त स्वभावकरि अस्तित्व कीजिये। (६) अजीव पदार्थ परही से स्वभावकरि अस्तित्व कीजिये।
(७) अजीव पदार्थ स्वभावकरि नित्यताकरि „ „ कीजिये। (८) अजीव पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि „ „ कीजिये।
(९) आस्रव पदार्थ आपही तैस्वभावकरि „ „ कीजिये। (१०) आस्रव पदार्थ परही से स्वभावकरि „ „ कीजिये।
(११) आस्रव पदाथ स्वभावकरि नित्यताकरि „ „ कीजिये। (१२) आस्रव पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि „ „ कीजिये।
(१३) बन्ध पदार्थ आपही तै स्वभावकरि „ „ कीजिये। (१४) बन्ध पदार्थ परही से स्वभावकरि „ „ कीजिये।
(१५) बन्ध पदार्थ स्वभावकरि नित्यताकरि „ „ कीजिये। (१६) बन्ध पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि „ „ कीजिये।
(१७) संवर पदार्थ आपहीतै स्वभावकरि „ „ कीजिये। (१८) संवर पदार्थ परही तै स्वभावकरि „ „ कीजिये।
(१९) संवर पदार्थ स्वभावकरि नित्यताकरि „ „ कीजिये। (२०) संवर पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि „ „ कीजिये।
(२१) निर्जरा पदार्थ आपही तै स्वभावकरि „ „ कीजिये। (२२) निर्जरा पदार्थ परहीसे स्वभावकरि „ „ कीजिये।
(२३) निर्जरा पदार्थस्वभावकरि नित्यताकरि „ „ कीजिये। (२४) निर्जरा पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि „ „ कीजिये।
(२५) मोक्ष पदार्थ आपही तैं स्वभावकरि „ „ कीजिये। (२६) मोक्ष पदार्थ परही से स्वभावकरि „ „ कीजिये।
(२७) मोक्ष पदार्थ स्वभावकरि नित्यताकरि „ „ कीजिये। (२८) मोक्ष पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि „ „ कीजिये।
(२९) पुन्य पदार्थ आपही तैं स्वभावकरि „ „ कीजिये। (३०) पुन्य पदार्थ परही से स्वभावकरि „ „ कीजिये।
(३१) पुन्य पदार्थ स्वभावकरि नित्यताकरि „ „ कीजिये। (३२) पुन्य पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि „ „ कीजिये।
(३३) पाप पदार्थ आपही तैं स्वभावकरि „ „ कीजिये। (३४) पाप पदार्थ परही से स्वभावकरि „ „ कीजिये।
(३५) पाप पदाथ स्वभावकरि नित्यताकरि „ „ कीजिये। (३६) पाप पदार्थ स्वभावकरि अनित्यताकरि „ „ कीजिये।

अक्किरियाणं च होइ चुलसीदि

अक्किरियाणं ६''' च*होइ T चुलसीदि ६''	और (=च) अक्रिया वादी चौरासी हैं
अक्रियावादि १''' च* भवति T चतुर-अशीतिः६''	=अर्थात् अक्रिया वादियोंके चौरासी भेद हैं ॥

(क) अक्रिया वादीयोंकेचौरासी भेद इस प्रकार हैं कि उनके मूलभेद दो नास्तिस्वतः(२)नास्ति परतः इन दोनोंको प्रत्येक जीवपदार्थ(वा जीवतत्व) अजीव पदार्थ आस्रव पदार्थ, बन्ध पदार्थ, संवर पदार्थ, निर्जरा पदार्थ, और मोक्ष पदार्थ पर लगाने से चौदह भेद हुये ॥ इन चौदहमेंसे प्रत्येकको काल-ईश्वर-नियति आत्मा-स्वभाव-पर लगाने से सत्तर भंगहुये अर्थात्

(१) जीवपदार्थ कालकरि आपही से नास्तिस्वरूप कीजिये। (२) जीवपदार्थ कालकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(३) अजीवपदार्थ कालकरि आपही से ,, कीजिये। (४) अजीवपदार्थ कालकरि परसे ,, कीजिये।
(५) आस्रवपदार्थ कालकरि आपही से ,, कीजिये। (६) आस्रवपदार्थ कालकरि परसे ,, कीजिये।
(७) बन्धपदार्थ कालकरि आपही से ,, कीजिये। (८) बन्धपदार्थ कालकरि परसे ,, कीजिये।
(९) संवरपदार्थ कालकरि आपही से ,, कीजिये। (१०) संवरपदार्थ कालकरि परसे ,, कीजिये।
(११) निर्जरापदार्थ कालकरि आपही से ,, कीजिये। (१२) निर्जरापदार्थ कालकरि परसे , कीजिये।
(१३) मोक्षपदार्थ कालकरि आपही से ,, कीजिये। (१४) मोक्षपदार्थ कालकरि परसे ,, कीजिये,

निम्नलिखित १४ भेद ईश्वर पर लगाने से हुये

(१) जीवपदार्थ ईश्वरकरि आप से नास्तिस्वरूप कीजिये। (२) जीवपदार्थ ईश्वरकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(३) अजीवपदार्थ ईश्वरकरि आप से ,, कीजिये। (४) अजीवपदार्थ ईश्वरकरि परसे ,, कीजिये।
(५) आस्रवपदार्थ ईश्वरकरि आप से ,, कीजिये। (६) आस्रवपदार्थ ईश्वरकरि परसे ,, कीजिये।
(७) बन्धपदार्थ ईश्वरकरि आप से ,, कीजिये। (८) बन्धपदार्थ ईश्वरकरि परसे ,, कीजिये।
(९) संवरपदार्थ ईश्वरकरि आप से ,, कीजिये। (१०) संवरपदार्थ ईश्वरकरि परसे ,, कीजिये।
(११) निर्जरापदार्थ ईश्वरकरि आप से ,, कीजिये। (१२) निर्जरापदार्थ ईश्वरकरि परसे ,, कीजिये।
(१) मोक्षपदार्थ ईश्वरकरि आप से ,, कीजिये। (१४) मोक्षपदार्थ ईश्वरकरि परसे ,, कीजिये।

नीचे के १४ भेद नियति पर लगाने से हुये

(१) जीवपदार्थ नियतिकरि आपतैं नास्तिस्वरूप कीजिये। (२) जीवपदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(३) अजीवपदार्थ नियतिकरि आपतैं नास्तिस्वरूप कीजिये। (४) अजीवपदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(५) आस्रवपदार्थ नियतिकरि आपतैं नास्तिस्वरूप कीजिये। (६) आस्रवपदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(७) बन्धपदार्थ नियतिकरि आपसे नास्तिस्वरूप कीजिये। (८) बन्धपदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।
(९) संवर पदार्थ नियतिकरि आपसे नास्तिस्वरूप कीजिये। (१०) संवर पदार्थ नियतिकरि परसे नास्तिस्वरूप कीजिये।